अग्निपुराणम्

(हिन्दी-अनुवाद-सहित)

अनुवादक

श्री तारिणीश झा • डॉ० घनश्याम त्रिपाठी

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२ सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद - ३

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निपुराणम्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निपुराणम्

[हिन्दी-अनुवाद-सहित]

⊙

अनुवादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

डॉ० घनश्याम त्रिपाठी

एम० ए०, पी-एच० डी०

व्याकरणाचार्य

शक १९२८ : संवत् २०६३ : सन् २००७

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशक :

विभूति मिश्र

प्रधानमन्त्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

प्रकाशन वर्ष : प्रथम संस्करण – शक १९०७ : सन् १९८५ ई०

द्वितीय संस्करण – शक १९१९ : सन् १९९८ ई०

तृतीय संस्करण – शक १९२८ : सन् २००७ ई०

प्रतियाँ : २२००

मूल्य : ६०० रुपये

मुद्रक :

सम्मेलन मुद्रणालय

१३, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशकीय

(तृतीय संस्करण)

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असन्दिग्ध है और वे भारत के अतीतकालीन धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान् गौरव के प्रतीक हैं। आज की बौद्धिकता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्त्व को रंचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। इस समय भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा सुदूर अतीत में था। अपौरुषेय वेद में भी पुराणों की चर्चा है और उन्हें वेदों की ही भाँति नित्य और प्रमाणभूत बताया गया है। जैसे अध्वर्यु यज्ञ में कुछ पुराण-पाठ के लिए यह कहकर प्रेरणा देता है कि 'पुराण' वेद है। यह वही वेद है-'तानुपदिशति पुराणम्'। वेदः सोऽयमिति। किञ्चित् पुराणमाचक्षीत एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषितः·····(शतपथब्राह्मण १३।४।३१३)। इसी प्रकार अथर्ववेद, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय में पुराणों के प्रति प्रकृष्ट श्रद्धा प्रकट की गयी है।

सन् १९४३ में सम्मेलन के प्राण राजर्षि पुरुषोत्तदास टण्डन को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी, बँगला आदि भाषाओं में प्रायः सभी पुराणों के अनुवाद उपलब्ध हैं, पर हिन्दी में नहीं हैं। इससे प्रेरित होकर उन्होंने विद्वानों से परामर्श करके सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी-अनुवाद-योजना का प्रवर्तन किया, जिससे कि हिन्दीभाषी पुराण के अध्येता भी उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें। यह कार्य अत्यधिक श्रम, व्यय और समयसाध्य था, फिर भी सम्मेलन ने पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत मत्स्य तथा वायुपुराणों के मात्र हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किये थे। अनेक कारणों से यह योजना भी कई वर्षों तक स्थगित रही। किन्तु सम्मेलन के लोकतन्त्रीय स्वरूप के पुनः स्थापित होने के बाद मन्त्रिमण्डलीय प्रशासन ने महत्त्वपूर्ण पुराण-प्रकाशन-योजना को गतिशील करने का संकल्प लिया। परिणामस्वरूप इस योजना को और भी सार्थक रूप देने की दृष्टि से संस्कृत के मूल श्लोक, हिन्दी-अनुवाद और पाठान्तरों के साथ पुराणों के प्रकाशन-कार्य को पुनः गतिमान् बनाया। इस पद्धति से सन् १९७६ में 'ब्रह्मपुराण' प्रकाशित किया। सम्मेलन के इस पुराण को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया। विद्वानों ने भी सम्मेलन की इस योजना के प्रति अपना सन्तोष व्यक्त किया। इसी क्रम में सन् १९८१ में ब्रह्मवैवर्तपुराण का पूर्वभाग, सन् १९८४ में उत्तरभाग का पूर्वार्द्ध तथा सन् १९८५ में उत्तरभाग का उत्तरार्द्ध प्रकाशित हुआ।

सम्मेलन ने इसी योजना के अन्तर्गत 'अग्निपुराण' के भी प्रकाशन का संकल्प लिया। 'अग्निपुराण' पुराण क्रम में आठवाँ पुराण है, जिसमें अग्नि को मूल तत्त्व निरूपित किया गया है। मत्स्य एवं स्कन्दपुराण में अग्निपुराण के सम्बन्ध में वर्णित है कि ईशानकल्प-सम्बन्धी जो ज्ञान अग्निदेव ने वशिष्ठ को दिया था, उसी को अग्निपुराण में प्रकाशित किया गया है-

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं सम्प्रकाशते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अग्निपुराण भारतीय ज्ञानकोश है। इसके पौराणिक स्वरूप में कारणसृष्टि, कार्यसृष्टि और लय, देवपितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र प्रभृति) वंशों में उत्पन्न राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसमें तन्त्र, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, राजनीति, कोश आदि विविध विषयों का सुन्दर परिचय मिलता है।

अग्निपुराण के महत्त्व को ध्यान में रखकर इसका हिन्दी-अनुवाद सहित संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बहुत पहले किया था। तदनुसार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के समय में ही सम्मेलन ने इस पुराण का हिन्दी-अनुवाद श्री तारिणीश झा तथा डॉ० घनश्याम त्रिपाठी से कराया था। पश्चात् अग्निपुराण के विषय-बाहुल्य एवं अर्थगाम्भीर्य को दृष्टि में रखकर तत्तत् विषय के विद्वानों से इसका संशोधन कराया गया। व्याकरण अंश के अनुवाद में पण्डित श्री रामपाल त्रिपाठी, तन्त्र अंश के अनुवाद में पण्डित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी, ज्योतिष अंश में श्री हरिशरण द्विवेदी और आयुर्वेद में श्री रामराज शुक्ल तथा श्री योगीन्द्रचन्द्र शुक्ल से सहयोग लिया गया। समस्त पाण्डुलिपि का यथोचित संशोधन एवं मुद्रण-कार्य पुराण-साहित्य के विख्यात विद्वान् पण्डित श्री तारिणीश झा के निर्देशन में सम्पन्न हुआ था तथा इसकी प्रेस कापी तैयार करने में पण्डित श्री रुद्रप्रसाद मिश्र की दक्षता एवं इसकी साजसज्जा, आवरण पृष्ठ आदि के निर्माण में तत्कालीन साहित्य विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय तथा श्री शेषमणि पाण्डेय की तत्परता उल्लेखनीय रही।

सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व० डॉ० प्रभात शास्त्री ने संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य जी से इसकी भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया था। श्री भट्टाचार्य महोदय ने भूमिका लिखकर जो सहयोग दिया है, उसके प्रति सम्मेलन-परिवार आभारी है, पर उनकी कुछ स्थापनाएँ विचारणीय हैं।

प्रथम संस्करण में इस पुराण को दो भागों में प्रकाशित किया गया था, सम्प्रति सम्पूर्ण पुराण एक साथ आक्टोवो (८ पेजी) में अध्येताओं की सुविधानुसार प्रकाशित किया जा रहा है। तृतीय संस्करण को अल्पावधि में जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ, साथ ही इस कार्य के सुष्ठु प्रकाशन में सभी सहयोगियों के साथ सम्मेलन मुद्रणालय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

विश्वास है, अग्निपुराण का यह तृतीय संस्करण लोकप्रिय होगा। आशा है, जिज्ञासु अध्येताओं के स्नेहसम्बल के सहारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस प्रकाशन-योजना को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने में सक्षम रहेगा।

मकरसंक्रान्ति

संवत् २०६३

विभूति मिश्र

प्रधानमन्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूमिका

अग्निपुराण का स्वरूप एवं उसका श्लोकपरिमाण

पुराणों में अष्टादश पुराणों (जो कभी-कभी महापुराण भी कहलाते हैं) की जो सूचियाँ[१] मिलती हैं, उनमें अग्नि या आग्नेय नाम अवश्य मिलता है, जिससे अग्निपुराण की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ज्ञात होती है। अग्नि नामक देव इस पुराण के वक्ता हैं, अतः यह अग्नि नाम से अभिहित होता है। आग्नेय का अर्थ है-अग्नि से सम्बन्धित अथवा अग्नि द्वारा प्रोक्त।

अग्निपुराण के स्वरूप एवं परिमाण के विषय में पुराणों में कुछ निर्देश मिलते हैं। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जिस पुराण में अग्नि ने वशिष्ठ को ईशानकल्प का वृत्तान्त कहा, वह आग्नेयपुराण है (५३।२८)। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड (२।४७) तथा नारदीयपुराण (१।९९।१) का भी यही मत है।

प्रचलित अग्निपुराण का वक्ता यद्यपि अग्नि है, तथापि इसमें ईशानकल्प का नाम नहीं मिलता। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई प्राचीनतर ईशानकल्पीय-वृत्तान्तख्यापक अग्निपुराण था, जो लुप्त हो गया है और प्रचलित अग्निपुराण उस पुराण का आश्रय करके लिखा गया है (अल्प प्राचीन सामग्री के साथ अत्यधिक नवीन सामग्री जोड़कर)।

विभिन्न समयों में विभिन्न अग्निपुराण (प्राचीन तथा नवीन सामग्री का संयोजनात्मक) प्रचलित थे-इस तथ्य में सर्वबलिष्ठ हेतु है-अग्निपुराण के परिमाण के विषय में मतभेद। अग्निपुराण में एक स्थल पर अग्निपुराण का परिमाण १२००० (२७२/११) तथा अन्यत्र (३८३/६४) १५००० कहा गया है। इस पुराण का श्लोकपरिमाण भागवतानुसार १५४०० (१२।१३।५), देवीभागवतानुसार १६००० (१।३।९) तथा नारदीयपुराणानुसार १५००० है (१।९९।२)। एक निश्चित ग्रन्थ के श्लोकपरिमाण के विषय में ऐसे मतभेद नहीं हो सकता, अतः यह स्वीकार्य है कि इन पुराणों के रचनाकारों ने अपने समय में जिस अग्निपुराण को देखा था, उनके परिमाण का ही उल्लेख उन्होंने किया है।

निबन्धग्रन्थों को देखने से भी ज्ञात होता है कि कभी प्रचलित अग्निपुराण से पृथक् (चाहे सर्वथा भिन्न न हो) कोई अग्निपुराण विद्यमान था, क्योंकि निबन्धग्रन्थों में उद्धृत अग्निपुराण के श्लोक प्रचलित अग्निपुराण में नहीं मिलते (अपेक्षाकृत अर्वाचीन निबन्धग्रन्थों में प्रचलित अग्निपुराण के श्लोक उद्धृत मिलते हैं)। प्रसिद्ध

---

१. श्लोकपरिमाण का तात्पर्य है-३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर गणना करना। मुद्रित अग्निपुराण के प्रत्येक अध्याय में जो श्लोकगणना मिलती है, वह श्लोकपरिमाण-गणना नहीं है। अग्निपुराण में कितने ही श्लोक हैं, जिनमें ३२ से अधिक अक्षर हैं। कितने ही बड़े-बड़े मन्त्र हैं, जिनमें ५० से भी अधिक अक्षर हैं। ऐसे स्थलों में ३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर ही गणना की जाती है। अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण में श्लोकपरिमाण ११४५७ कहा गया है। प्रत्येक अध्याय के श्लोकों को गिनकर यह संख्या दी गयी है- ऐसा प्रतीत होता है। यह गणना श्लोकों की संख्या को दिखाती है, श्लोकों के परिमाण को नहीं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निबन्धग्रन्थकार वल्लालसेन ने तो प्रचलित अग्निपुराण को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में एक अप्रामाणिक ग्रन्थ कहा है।[१]

अग्निपुराण को 'तामस' माना गया है (पद्मपु० ६।२६३।८१-८२)। पुराणों में ही कहा गया है कि तामस वह पुराण होता है, जिसमें अग्नि अथवा शिव की महिमा का प्रधानतः प्रतिपादन किया गया हो (मत्स्यपु० ५३।६८-६९)। प्रचलित अग्निपुराण में अग्निदेवता के माहात्म्य के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रचलित अग्निपुराण से भिन्न कोई प्राचीनतर अग्निपुराण था, जिसमें अग्नि-महिमा का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया था।

उपलब्ध प्राचीनतर अग्निपुराण

हमारा सौभाग्य है कि अग्निपुराण के पुराणोक्त लक्षण जिसमें घटते हों, ऐसे एक अग्निपुराण का हस्तलेख प्राप्त हो गया है। इसका हस्तलेख एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता) में है और वह्निपुराण नाम से अभिहित हुआ है। निबन्धग्रन्थों में 'आग्नेयपुराण' नाम से जो उद्धरण मिलते हैं, वे इस पुराण में मिल जाते हैं। इस पुराण में तान्त्रिक प्रभाव अणुमात्रा में नहीं है। इसमें अग्निमाहात्म्य का प्रतिपादन है। पर इसमें भी ईशानकल्प का उल्लेख नहीं है, जिससे सिद्ध होता है कि यह आग्नेयपुराण (प्रचलित अग्निपुराण से प्राचीन होने पर भी) वह पुराण नहीं है, जो मत्स्य-आदि-पुराणकारों के द्वारा लक्षित हुआ है। यह भी हो सकता है कि इस आग्नेयपुराण से ईशानकल्प का वृत्तान्त च्युत हो गया है। प्रचलित अग्निपुराण के साथ इस आग्नेयपुराण का तुलनामूलक अध्ययन करके तथा आग्नेयपुराण पर सर्वाङ्गीण विचार करके डॉ० आर० सी० हाजरा ने एक विद्वत्-प्रशंसित निबन्ध प्रकाशित किया है।[२] अग्निपुराण के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को यह निबन्ध अवश्य देखना चाहिए।

प्रचलित अग्निपुराण का वैशिष्ट्य

उपर्युक्त आग्नेयपुराण के अतिरिक्त अन्य भी अग्निपुराण (कथंचित् सदृश) थे-यह निश्चित है। चूँकि ये अनुपलब्ध हैं, अतः इन पर कुछ विचार नहीं किया जा सकता। आग्नेयपुराण पर भी विवाद करना व्यर्थ है, क्योंकि यह अभी तक अमुद्रित है।

अग्निपुराण के नाम से जो पुराण आजकल प्रचलित हैं (जिसके संस्करण आनन्दाश्रम एवं वेंकटेश्वर प्रेस से देवनागरी लिपि में तथा कलकत्ता के वङ्गवासी प्रेस से बँगलालिपि में प्रकाशित हुए हैं), उस पुराण के विषय में हम मुख्य रूप से कुछ चर्चा करना चाहते हैं।

---

१. तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च।
दीक्षाप्रतिष्ठापाषण्डमुक्तिरत्नपरीक्षणैः।।
मृषावंशानुचरितैः कोशव्याकरणादिभिः
असंगतकथाबन्ध-परस्परविरोधितः ।
इत्यादि। वल्लालसेन-कृत दानसागर-ग्रन्थ के ये श्लोक डॉ० हाजरा कृत आग्नेयपुराण-सम्बन्धी लेख में उद्धृत हुए हैं।
(इस लेख के विषय में अगली टिप्पणी देखें)

२. Our Heritage (Vol. I तथा II) में प्रकाशित Studies in the genuine Agneyapurana alias Vahni-purana शीर्षक लेख द्र०। All-India Kashiraj Trust द्वारा प्रकाशित Dr. R. C. Hazra Commemoration Volume, Part-I में यह लेख अन्तर्भूत है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रचलित अग्निपुराण (जो मूलतः अग्नि-वसिष्ठ संवाद में है) अपने को 'विद्यासार' कहता है (१।६।, १।७, १।१३)। इस पुराण में सभी विद्याएँ प्रदर्शित हुई हैं-यह ३८३।५२ में कहा गया है। अग्निदेवता से उपदेश पाने के बाद वसिष्ठ स्वयं भी व्यास को कहते हैं कि 'मैं दोनों प्रकार के ब्रह्म को कहूँगा' (१।८)। इन कथनों से ज्ञात होता है कि इस पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है-'नानाविध विद्याएँ'। पुराणपरम्परा में प्रसिद्ध 'पञ्चलक्षण' (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंश्यानुचरित; वंशानुचरित शब्द असंगत है) इस पुराण में गौण हैं, यद्यपि इन पाँच विषयों का प्रतिपादन भी विभिन्न अध्यायों में मिलता है। अग्निपुराण का गौरव विविध विद्याओं का प्रतिपादन करने में ही है। गरुड़ एवं नारदीयपुराणों में भी विद्याओं का विवरण मिलता है, पर अग्निपुराण में यह विवरण अधिक मात्रा में है-यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

अग्निपुराण के विषयों का क्रमबद्ध निर्देश

अग्निपुराण में जिस क्रम के अनुसार विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उसका एक स्पष्ट विवरण नारदीयपुराण (पूर्वार्द्ध ९९।१-२२) में मिलता है। नारदीय-पुराणोक्त क्रम के साथ प्रचलित अग्निपुराण का विषयक्रम सर्वथा समान नहीं है।[१] इससे यह अनुमित होता है कि सूचीकार ने जिस अग्निपुराण को देखा था, वह प्रचलित अग्निपुराण से थोड़ा-बहुत भिन्न था। सूचीकार के द्वारा दृष्ट अग्निपुराण ने पुनः सम्पादित (परिवर्तन-परिवर्द्धन-परिवर्जन से युक्त) होकर वर्तमान अग्निपुराण का रूप लिया है-यह कहना असंगत नहीं है।

प्रचलित अग्निपुराण में जिन विषयों की चर्चा की गयी है, उन विषयों का क्रमबद्ध निर्देश अग्निपुराण के ३८३ अध्याय (अन्तिम अध्याय) में किया गया है (श्लोक ५२-६४)। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूची प्रचलित अग्निपुराण को देखकर लिखी गयी है और पुराण के अन्तिम अध्याय के रूप में इस सूची को रखा गया है। सूची-रचना के बाद भी पुराण में ईषत् परिवर्तन हुआ है, क्योंकि सूची में पूर्वमीमांसा और न्यायविस्तर का उल्लेख है (श्लोक ६०), पर ये विषय प्रचलित अग्निपुराण में नहीं मिलते।

अग्निपुराण का रचना-काल

प्रत्येक पुराण का रचना-काल सामान्यतः इतना विवादास्पद है कि 'भूमिका' में इस पर विचार नहीं किया जा सकता। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि चूँकि वल्लालसेन (ईसवीय १२वीं शती का मध्य) को प्रचलित अग्निपुराण ज्ञात था, अतः यह पुराण उनसे कई शताब्दियों से पहले प्रणीत हुआ था। 'कितनी शताब्दियों से पहले' इसका अवधारण करना दुष्कर है। आधुनिक गवेषक विद्वानों का अनुमान है कि अग्निपुराण का रचना-काल ईसवीय सप्तम शताब्दी के बाद का है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह पुराण ईसवीय नवम शताब्दी में या उससे कुछ काल बाद रचित हुआ था।[२]

---

१. सूची में रामोक्त नीति (अग्निपु० २८-२४२) के बाद रत्नलक्षण कहा गया है, जो अ० २४६ में है। पर अ० २४३-२४४ में पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण आदि कहे गये हैं, जिनका निर्देश सूची में नहीं है। रत्नलक्षण (अ० २४६) के बाद धनुर्विद्या का उल्लेख किया गया है, जो २४९-२५२ अध्यायों में है। पर अ० २४७-२४८ में वास्तुपूजा का विधान है, जो सूची में नहीं है। व्यवहार (अ० २५३-२५८) के बाद देवासुरविमर्द का उल्लेख है, जो अ० २७६ में है। अ० २५९-२७५ में चतुर्वेदविधान, पूजा, वेदशाखा, पुराण, वंश आदि कथित हुए हैं; इन विषयों का निर्देश सूची में नहीं है।

२. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ९), J. R. A. S. १९२३, पृ० ५२७-५४९ में प्रकाशित डॉ० सुशीलकुमार दे का निबन्ध; Dr. R. C. Hazra कृत Puranic Records ग्रन्थ (पृ० १३८), J. A. H. R. S. भाग १०, पृ० १२७-१३४ में S. B. Chowdhury का निबन्ध आदि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस विषय में यह स्पष्टतया ज्ञातव्य है कि नवम शताब्दी अथवा उससे किंचित् पूर्व या पश्चात् काल की रचना होने पर भी अग्निपुराण के सभी श्लोक अग्निपुराण-रचना-काल में ही रचित हुए हैं–ऐसा नहीं समझना चाहिए। 'पुराण-रचना-काल' का अर्थ है–पुराण के अन्तिम सम्पादन का काल–यद्यपि सम्पादित सामग्री सम्पादन-काल की ही है, ऐसी बात नहीं। इसमें अणुमात्र संशय नहीं है कि अग्निपुराण के अनेक प्रकरण प्राचीन-प्राचीनतर ग्रन्थों के आधार पर (बहुधा उन ग्रन्थों के वाक्यों का ही प्रयोग कर) देश-काल-सम्प्रदायानुसार अल्प या अधिक परिवर्तन (जिसमें परिवर्धन एवं परिवर्जन दोनों हैं) के साथ लिखे गये हैं। विद्वानों का कहना है कि इस पुराण का तान्त्रिक कर्म-प्रतिपादक अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। रचना-काल के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है।

अग्निपुराणोक्त विषय

चूँकि अग्निपुराण अपना परिचय विविध विद्याओं के संग्राहक के रूप में देता है, इसलिए इस पुराण में प्रतिपादित विषयों पर विचार करना हम सर्वाधिक आवश्यक समझते हैं। प्रस्तुत भूमिका में इन विषयों पर विस्तृत विचार करना सम्भव नहीं है। हम यहाँ पुराणोक्त कुछ विशिष्ट बातों का ही उल्लेख करेंगे, जिससे पाठकों का ध्यान इन विषयों पर आकृष्ट हो।

अध्याय १ में ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में सूत ने शब्दब्रह्म (ऋग्वेदादिशास्त्र) एवं परब्रह्म (ब्रह्मविद्या) रूप द्विविध विद्या का परिचय दिया है (५-९)। यह भी कहा गया है कि यह मत 'आथर्वणी श्रुति' का है। यह कथन सत्य है, क्योंकि अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद् (५।४-५) पुराणवाक्य का आधार है। १५-१८ श्लोकों में १८ अपरा विद्याओं के नाम हैं–चार वेद, छह अङ्ग, ज्योतिष, छन्दःशास्त्र (छन्द है अभिधान=नाम जिसका वह छन्दोऽभिधान-छन्दःशास्त्र), मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्व, धनुर्वेद तथा अर्थशास्त्र। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि उपर्युक्त मुण्डकवाक्य में चार वेद और छह अङ्गों का ही निर्देश है, मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि आठ शास्त्रों का नहीं। यह निश्चित है कि पुराणवाक्य का आधार मुण्डक उपनिषद् है (अग्नि १।१७ख, १८ के साथ मुण्डक १-१।५-६ तुलनीय है) और यह भी निश्चित है कि पुराणोक्त विद्यागणना (अष्टादश विद्यागणना) परम्परा-प्रसिद्ध है। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि पुराणकार ने मुण्डक उपनिषद् को अपने आधार के रूप में क्यों कहा।

प्रतीत होता है कि मुण्डक उपनिषद् का ऐसा भी कोई पाठ प्रचलित था, जिसमें चार वेद और छह अंगों के अतिरिक्त मीमांसा आदि की गणना भी की गयी थी और अग्निपुराणकार ने उस पाठ के अनुसार उपर्युक्त मत को कहा है। यह मत काल्पनिक नहीं है, क्योंकि न्यायवार्त्तिक की भूमिका में पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि उन्होंने मुण्डक का ऐसा हस्तलेख देखा है जिसमें अपराविद्या की गणना में वेद-वेदाङ्गों के साथ मीमांसादि शास्त्रों के नाम भी गिनाये गये हैं (पृ० २०)।[१]

अ० २-१६ में विभिन्न अवतारों का विवरण इन अध्यायों में दिया गया है।[२] मत्स्यावतार के प्रसंग में कृतमाला

---

१. मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसादि का उल्लेख था, यह मुण्डक उपनिषद् के शांकरभाष्य की नारायणकृत दीपिका टीका से भी जाना जाता है। यह बात दूसरी है कि टीकाकार नारायण ने उस पाठ को प्रक्षिप्त माना है। प्रबोधचन्द्रोदय (कृष्णमिश्रकृत) की चन्द्रिका टीका से भी ज्ञात होता है कि मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसा, इतिहास-पुराण आदि का उल्लेख था (पृ० ३१)। अग्निपुराण का मत कितना सुदृढ़ है–यह उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है।

२. इन अवतारों के स्वरूपादि के विषय में (मुख्यतया पुराणवाक्यों का आश्रय करके) रूपगोस्वामी ने संक्षेपभागवतामृतग्रन्थ (विद्याभूषणकृत टीका सहित) में तथा सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृतग्रन्थ में विशद विचार किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नदी का उल्लेख है, जो भागवत (८।२४।१२) में भी मिलता है, यद्यपि इस कथा के वैदिक मूल (शतपथ ब्राह्मण १।८।१।१) में इस नदी का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवतः अग्निपुराण का आधार भागवतपुराण ही है (महाभा० वनपर्व में इस प्रसंग में चारिणी नदी का उल्लेख है, १७७।६)। मत्स्य ने वेदापहरणकारी हयग्रीव दानव का भी वध किया था, यह २।१६-१७ में कहा गया है। कूर्मावतार की घटना वाराहकल्प की है, यह २।१७ में कहा गया है। अ० ४ में वराह, नरसिंह, वामन तथा परशुराम (४।१६ में 'राम' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो इनका प्रकृत नाम है; परशुयुक्त राम=परशुराम) की कथाएँ हैं। ये कथाएँ अन्यान्य पुराणों में भी हैं; अग्निपुराण के विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

अ० ५-११ में रामावतार की कथा है। यहाँ का विवरण सप्त-काण्डयुत वाल्मीकि-रामायण पर पूर्णतया आधारित है। पुराण के कितने ही वाक्यांश हैं, जो रामायण में अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ मिलते हैं। यह लक्षणीय है कि गुह का उल्लेख (६।३३) रहने पर भी शबरी का कोई उल्लेख अग्निपुराण में नहीं मिलता। अ० १२ में कृष्णावतार का वर्णन है। यहाँ 'हरिवंशं' प्रवक्ष्यामि (१२।१) कहा गया है, हरिवंश का अर्थ है-हरि का वंश, न कि हरिवंश नामक पुराण। कृष्ण का जो चरित विष्णुपुराण (अ० ४), ब्रह्मपुराण (अ० १८०-२१२), हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व) और भागवत में है, उसका संक्षिप्त-सार यहाँ कहा गया है। कृष्णानुरक्त गोपियों का उल्लेख १२।२३ में है, यद्यपि राधा का नाम नहीं है।

अ० १३-१५ में भारत-कथा (महाभारत की मूल घटना) दी गयी है-'भारतं संप्रवक्ष्यामि' कहा गया है (१३।१), 'महाभारतम्' नहीं। इससे यह अनुमित हो सकता है कि २४ सहस्रश्लोकमय जो भारतसंहिता थी, उसका सार यहाँ दिया गया है। पर यह अनुमान सुदृढ़ नहीं है, क्योंकि अग्निपुराण के रचना-काल में भारतग्रन्थ प्रचलित था-ऐसा मानना कठिन है। यह हो सकता है कि परम्परा में भरतवंशियों की जो कथा ज्ञात थी, उसके आधार पर यह श्लोकबद्ध प्रकरण लिखा गया है। गीता का उपदेश अ० १४ में लक्षित हुआ है।

अ० १६ में बुद्ध और कल्कि का वर्णन है। बुद्ध को दैत्यमोहकर एवं शुद्धोदनसुत कहा गया है। कलियुगान्त में आविर्भूत होनेवाले कल्कि के प्रसंग में दो बातें कही गयी हैं, जो अस्पष्ट हैं-(१) कलियुगान्त में वाजसनेयक वेद की १५ शाखाओं की स्थिति[1] तथा (२) याज्ञवल्क्य को कल्कि का पुरोहित मानना।

(अ० १७-२०) अ० १७ में जगत्-सृष्टि, अ० १८ में स्वायंभुवमनु (प्रथम मनु) के वंशजों के नाम तथा अ० १९ में कश्यप के वंशजों के नाम कहे गये हैं। १९।२३-२९ में राज्यप्रदान का विवरण (किसको किस विषय का अधिपति बनाया गया-इसका विवरण) है। यह विषय गीता (अ० १०) में भी है (अमुकों में मैं अमुक हूँ-इस प्रकार का उल्लेख करके)। गीता में जहाँ 'मरीचिर्मरुतामस्मि' (१०-२१) कहा गया है, वहाँ पुराण में 'मरुतां वासवः प्रभुः' कहा गया है (१९-२४), प्रह्लाद[2] को दानवाधिप कहा गया है (१९।२४), यद्यपि जातितः प्रह्लाद दैत्य है (दिति-गर्भज हिरण्यकशिपु के पुत्र होने के कारण)। गीता में उचित ही कहा गया है-'प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्' (१०।३०)।

---

१. अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण के सम्पादक ने वेदशाखापरक वाक्य के पाठ को सन्दिग्ध माना है। (प्रश्नज्ञापक चिह्न का प्रयोग करके)। इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि हरिवंश के कलियुग-विवरण में कहा गया है--सर्वे वाजसनेयिनः (३।३।१२)। इस पर टीकाकार नीलकण्ठ कहते हैं-'शाखान्तरलोपात्। तेन वेदत्रयसाध्यो यज्ञ उत्सन्नो भविष्यति इति भावः। इदानीमेव पश्चिमदेशे तथा दर्शनात्'।

२. अग्निपुराण में 'प्रह्लाद' ऐसा रकारघटित मुद्रित पाठ है। यह पाठ अन्यत्र भी मिलता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अ० २० में प्राकृत आदि सर्गों का उल्लेख तथा भृगु, मरीचि आदि के वंशों का विवरण है। उपर्युक्त सभी विषय अन्यान्य पुराणों में भी हैं। अग्निपुराणगत विवरण अत्यल्प है तथा इस विवरण का कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

(अ० २१-१०६) अनेक स्मार्त एवं तान्त्रिक कर्मों का विवरण इन अध्यायों में मिलता है। यह विवरण तन्त्र एवं स्मृतिग्रन्थों पर आधारित है। आधारग्रन्थों की तुलना में पुराण का विवरण अनेकत्र संक्षिप्त एवं सामान्य है। इन अध्यायों में विभिन्न देवताओं की सामान्य पूजा (स्नान आदि कर्मों के वर्णनों के साथ) तथा प्रतिष्ठाविधि (वास्तुपूजा, प्रासाद में देवतास्थापन, प्रतिमाओं के लक्षण, शालिग्रामों के लक्षण, शान्तिकर्म, अधिवास, ध्वजारोपण, होम, दीक्षा आदि के साथ) कही गयी हैं।

यहाँ कुछ विशिष्ट बातें मिलती हैं, यथा-हयशीर्ष आदि २५ तन्त्रों के नाम (अ० ३९), स्मार्तकर्मों के प्रसंग में अनेक वैदिक मन्त्र, सूक्त आदि का उल्लेख[1] (अ० ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६४, ६६, ६७) है, ये सभी मन्त्र आदि वैदिक ग्रन्थ एवं सूत्रग्रन्थों में मिल जाते हैं। पुस्तक-लेखन की चर्चा ६३।१३-१६ में है। यहाँ रौप्य आधार में स्वर्णनिर्मित लेखनी से नागराक्षर लिखने का उल्लेख है। 'गर्गविद्या' शब्द का प्रयोग ६५।७ में है, इसका अर्थ है-गृह-प्रासादादि निर्माण का शास्त्र। वास्तुशास्त्र से तथा बृहत्संहिताग्रन्थ से ज्ञात होता है कि गर्ग इस विद्या के आचार्य थे।

दीक्षा के प्रसंग में अनेक तान्त्रिक मन्त्र भी उद्धृत हुए हैं। (मन्त्रों का पाठ तन्त्रग्रन्थ के आधार पर कहीं-कहीं संशोधनीय है)। तन्त्र की कई गूढ़ बातें (जैसे शक्तिपात, ८८।५६-६१) यहाँ कही गयी हैं।

(अ० १०७-१२०) स्वायंभुवमनु (प्रथम मनु) का वंश, तीर्थ एवं भुवनकोश यहाँ प्रतिपादित हुए हैं। स्वायंभुवमनु के वंशजों ने पृथिवी को सात द्वीपों में बाँटकर राज्य किया था-यह पुराणप्रसिद्ध मत है। इन द्वीपों (जम्बू आदि) के वर्ष, नदी, पर्वत आदि का विवरण पुराणीय भुवनकोश का मुख्य विषय है। अग्निपुराण का विवरण संक्षिप्त है। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है कि स्वायंभुववंशीय भरत के नाम से इस देश का नाम भारत (वर्ष) पड़ा था (१०७।१२)। प्रायः सभी पुराणों में यह मत मिलता है। शकुन्तलापुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ था-यह मत पुराणों द्वारा कथमपि समर्थित नहीं होता है-यह ज्ञातव्य है। भरत का उल्लेख १०७ अ० में है, उनका चरित ३८० अ० में द्रष्टव्य है। इस पुराण में भुवनकोश का प्रारम्भिक विवरण १०७-१०८ अ० में दिया गया है, अ० ११८-१२० में भारतवर्ष, प्लक्ष आदि द्वीप तथा पाताल आदि का विवरण दिया गया है। अग्निपुराण के विवरण में कोई विशिष्ट बात नहीं मिलती।

अग्निपुराण में तीर्थपरक विवरण विस्तृत नहीं है। अ० १०९ में तीर्थों की गणना, अ० ११० में गंगा का माहात्म्य, अ० १११ में प्रयाग-माहात्म्य, अ० ११२ में वाराणसी-माहात्म्य, अ० ११३ में नर्मदा-माहात्म्य, अ० ११४-११६

---

१. अग्निपुराण के सभी संस्करणों में ये मन्त्र आदि कहीं-कहीं भ्रष्टरूप से मुद्रित हुए हैं। २५।२९ में यज्ञ को 'सप्तरूप' कहा गया है, पर छह ही रूपों के नाम कहे गये हैं-अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम (२८-२९)। यहाँ अग्निष्टोम के बाद अत्यग्निष्टोम नाम होना चाहिए। इन अध्यायों में जिन वैदिक सूक्तों के नाम कहे गये हैं (श्रीसूक्त, मैत्रक, वृषाकपि आदि) उनके परिचय के लिए मेरा 'पुराणगत-वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ (अ० २, परि० ५) द्रष्टव्य है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में गया-माहात्म्य कहे गये हैं। इन अध्यायों के कुछ श्लोकों का तात्पर्य स्पष्टीकरणीय है (यथा १११।४)[१], कहीं-कहीं यात्राविधि भी कही गयी है। वाराणसी-माहात्म्य में अष्ट गुह्येश्वर की गणना है (११२।३-५)। पर गिनने पर सात नाम होते हैं। हिन्दी अनुवादक ने भूमि और चण्डेश्वर को दो नाम मानकर आठ संख्या की पूर्ति की है, जो विचारणीय है। गयातीर्थ के प्रसंग में महाबोधितरु का उल्लेख है (११५।३२)। अन्य पुराणों में भी इसी प्रकरण में इसका उल्लेख मिलता है। गया के प्रसंग में ही चार प्रकार की मुक्ति कही गयी है।[२]

कात्यायन द्वारा प्रोक्त श्राद्धकल्प का उल्लेख ११७।१ में है। चूँकि गयातीर्थ के साथ श्राद्ध का निकटतम सम्बन्ध है, अतः गयातीर्थ के बाद श्राद्ध का प्रसंग किया गया है-ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। कात्यायन नामक ऋषि का कोई श्राद्धसूत्र था-यह वैदिकपरम्परा में प्रसिद्ध है, निबन्धग्रन्थों में इस ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हुए हैं।

(अ० १२१-१४३) फलितज्योतिष, युद्धजयार्णव, नानाविध मन्त्र, ओषधि एवं तान्त्रिक कर्म इन अध्यायों में कहे गये हैं। अ० १२३-१३९ में युद्धजयार्णव है, युद्ध में विजय-प्राप्ति के लिए जिन तान्त्रिक कर्मों का अनुष्ठान किया जाता है, वे यहाँ कहे गये हैं। युद्धजयार्णव नामक कोई ग्रन्थ अवश्य था, क्योंकि निबन्धग्रन्थों में इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। यहाँ जो कुब्जा-पूजा और त्वरिता-पूजा का उल्लेख है, उनका विशेष विवरण तन्त्रग्रन्थों में द्रष्टव्य है (द्र० कृष्णानन्द आगमवागीश-कृत तन्त्रसार)। इन अध्यायों में कुछ विशिष्ट बातें कही गयी हैं-(१) जरामृत्युनाशक ३६ ओषधियों की एक सूची १४१।१-५ में दी गयी है, (२) अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रों के संक्षिप्त नाम (अ, भ, कृ, रो आदि) १३६।७-८ में कहे गये हैं।[३]

(अ० १५०) स्वायंभुव, स्वारोचिष आदि चौदह मन्वन्तरों का जैसा विवरण अन्य पुराणों में मिलता है, वही यहाँ भी है। अध्यायान्त में एक वेद के चतुर्धाकरण का तथा ऋक् आदि चार वेदों की शाखाओं का अतिसंक्षिप्त उल्लेख मिलता है। यहाँ यजुर्वेद की २७ शाखाएँ हैं-ऐसा कहा गया है (१५०।२७)। इस मत का मूल अन्वेषणीय है। वेदशाखाविवरणपरक चरणव्यूहग्रन्थ में 'यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिभेदा भवन्ति' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सप्तविंशतिभेद' माननेवाली भी कोई वैदिक परम्परा थी। अथर्ववेदीय शाखा के प्रसंग में पिप्पलाद आदि शाखाकार आचार्यों का उल्लेख है (पैप्पलादीन् सहस्रशः, १५०।३०, 'पैप्पलादीन्' के स्थान पर 'पिप्पलादीन्' होना चाहिए-'पिप्पलाद' ही ऋषि का नाम है, पैप्पलाद नहीं)।[४]

---

१. गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थवृषयो विदुः ।। (१११/४)। जघन एवं उपस्थ से कौन-सा सादृश्य विवक्षित है-यह निर्धारणीय है।

२. ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।। (११५/५ख-६ क) यहाँ प्रकृत पाठ 'गोग्रहे मरणं' (किसी के द्वारा बलपूर्वक गो का ग्रहण होने पर उसका विरोध करनेवाले का जो मरण होता है वह 'गोग्रहे मरणम्' है)। 'गोगृह में मरण' कोई उदात्त कर्म नहीं है। यह श्लोक अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है, जहाँ 'गोग्रहे मरणम्' पाठ है।

३. संक्षेपीकरण की ऐसी प्रवृत्ति अन्यत्र भी देखी जाती है। आषाढ़ी-कार्तिकी-माघी-वैशाखी (पूर्णिमा) के लिए 'आ-का-मा-वै' शब्द का प्रयोग स्मार्त ग्रन्थकारों ने किया है।

४. अथर्ववेद की शाखाएँ आजकल प्रचलित हैं-शौनक तथा पिप्पलाद। पुराणों में अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के निर्देश में पिप्पलाद शाखा के प्रथम मन्त्र का ही उल्लेख सर्वत्र किया गया है। यह ज्ञातव्य है (द्र० पुराणगत-वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १३९-१४०)।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(अ० १५१-२१७) वर्णाश्रम-धर्म तथा व्रत आदि का विशद विवरण इन अध्यायों में मिलता है। इस विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है, मनु, याज्ञवल्क्य आदि के वाक्य अविकलरूप से या अल्पाधिक परिवर्तन के साथ यहाँ मिलते हैं। कहीं-कहीं भ्रष्ट पाठ भी है।

अग्निपुराण में 'पञ्चधा' धर्म कहा गया है (१६६।१)। वर्ण, आश्रम, वर्णाश्रम, गुण और नैमित्तिक रूप पाँच भेद स्वीकृत हुए हैं। यह दृष्टि परम्परास्वीकृत है (द्र० मनुस्मृति २।५ का मेधातिथिकृत भाष्य)। यह ज्ञातव्य है कि पुराणों में वर्णित धर्मकृत्य पृथक्-पृथक् शाखा पर प्रायेण प्रतिष्ठित होता है। यही कारण है कि कर्मानुष्ठानसम्बन्धी पौराणिक मतों में कभी-कभी भिन्नता पायी जाती है, उदाहरणार्थ अग्निपुराण में बृहस्पतिग्रह का मन्त्र 'बृहस्पते अतियदर्यो····' (ऋग्वेद २।२३।१५) है (१६४।७), जबकि मत्स्यपुराण (१३।३५) में 'बृहस्पते परिदीया····' (ऋग्वेद १०।१०३।४) है।

व्रत के प्रसंग में यह कहा गया है कि व्रत को क्यों 'तपः' या 'नियम' कहा जाता है (१७५।२-३)। इस पुराण में तिथि के अनुसार व्रतों का विवरण दिया गया है और बाद में 'नक्षत्रव्रत', 'दिवसव्रत' आदि का विवरण है। प्रत्येक व्रत के साथ सम्बन्धित पूजा, उपवास आदि भी उल्लिखित हुए हैं। दोनों का विवरण अ० २१० में है, प्रकरण के अन्त में सन्ध्या एवं गायत्री का विवरण दिया गया है।

गायत्री का अर्थ अ० २१५ में सविस्तार दिया गया है। इस प्रसंग में एक विशेष बात ज्ञातव्य है। गायत्री मन्त्र (ऋग्वेद ३।६२।१०) में जो 'प्रचोदयात्' शब्द है, वह लोट् लकार का रूप है, विधिलिङ्ग का नहीं, पर अग्निपुराण में 'प्रचोदयात्' की व्याख्या 'प्रेरयेत्' शब्द से की गयी है, जो विधिलिङ्ग का रूप है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकार को यहाँ भ्रम हुआ है।[१]

(अ० २१८-२४२) राजनीति-राजधर्म का प्रतिपादन इन अध्यायों में किया गया है। अ० २१८-२३७ में वक्ता पुष्कर हैं और श्रोता राम अर्थात् परशुराम (भार्गवराम) हैं, दाशरथि राम नहीं। इन अध्यायों में राजा का अभिषेक, सहाय-सम्पत्ति, भृत्य आदि के कर्त्तव्य, दुर्ग, राज्यपालन, अन्तःपुर-व्यवस्था, साम-दाम-दण्ड-भेद, युद्ध, शकुन (शुभाशुभसूचक-चिह्न), षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह आदि) तथा प्रात्यहिक राजकर्म आदि का विशद विवरण दिया गया है। अ० २३८-२४२ पर्यन्त राम-प्रोक्त राजनीति है (लक्ष्मण के प्रति प्रोक्त)। इसमें सात अंग (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र आदि) एवं सन्धि आदि छह गुणों के साथ तीन शक्तियों (प्रभाव-मन्त्र-उत्साह-शक्ति) राज्यव्यसन, सामादि उपाय एवं षड्विध बलों की विस्तृत चर्चा की गयी है।

दोनों नीतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजनीति कामन्दकीय नीतिसार का अतिसंक्षिप्त रूप है; तथा पुष्करोक्त नीति की अपेक्षा इसमें कौटिल्य की चिन्ताधारा अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुई है।[२]

(अ० २४३-२४५) अ० २४३-२४४ में समुद्र नामक आचार्य के द्वारा प्रोक्त स्त्री-पुरुष-लक्षणशास्त्र का सार

---

१. देवीभागवत की टीका में नीलकण्ठ ने भी गायत्रीमन्त्रस्थ 'प्रचोदयात्' को विधिलिङ्ग का रूप ही समझा है, क्योंकि वे कहते हैं-
'प्रचोदयात् प्रेरयेत् प्रार्थनायां लिङ्ग' (टीकारम्भ में भागवतस्वरूपविचारप्रकरण द्रष्टव्य)।

२. दशरथ शर्मा के Political thought and practice in the Agnipurāṇa शीर्षक लेख (Purāṇa Vol. III, pp. 23-37) में इन दोनों नीतियों पर विशद चर्चा की गयी है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कहा गया है। यह सामुद्रिक विद्या कहलाता है। शरीर का कौन अंग किस प्रकार का होने पर किस भाव (शुभ-अशुभ) का सूचक होता है–यह इस शास्त्र में दिखाया जाता है। यह 'अङ्गविद्या' बहुत प्राचीन है। पाणिनि के गणपाठ (४-३-७३) में इस विद्या का निर्देश है। लक्षणप्रकाश आदि ग्रन्थों में इस शास्त्र के अनेक वाक्य उद्धृत मिलते हैं। अ० २४५ में चामर, खड्ग आदि के विषय में कई ज्ञातव्य बातें कही गयी हैं; यथा–किस देश के खड्ग का वैशिष्ट्य क्या है, यह २४५।२२ में उल्लिखित हुआ है।

(अ० २४६-२४८) विभिन्न दलों के लक्षण, वास्तु (गृहनिर्माणार्थ भूमि) के लक्षण तथा पूजा में उपयोगी पुष्पों के विवरण यहाँ दिये गये हैं।

(अ० २४९-२५२) इन अध्यायों में धनुर्वेद का स्पष्ट विवरण दिया गया है। वैशम्पायन आदि के प्राचीन धनुर्वेदविषयक ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिता प्रचलित है, पर वह अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता (इस ग्रन्थ का बँगला अनुवाद प्रकाशित हो चुका है)। कोदण्डमण्डन-ग्रन्थ बँगला-लिपि में सानुवाद प्रकाशित है, पर यह बहुत ही अर्वाचीन ग्रन्थ है। युक्तिकल्पतरु आदि कुछ ग्रन्थों में इस शास्त्र का अल्प विवरण मिल जाता है। ऐसी स्थिति में अग्निपुराणोक्त धनुर्वेद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ का विवरण अपेक्षाकृत विशद है। कामन्दकीय नीतिसार का कुछ प्रभाव भी पुराणोक्त विवरण में देखा जाता है। चतुरङ्गबल प्रसिद्ध है, अग्निपुराण में अस्त्रहीन योद्धा को पञ्चम बल माना गया है। योद्धाओं के आसनों के नामों में कुछ भिन्नता मिलती है।

(अ० २५३-२५८) स्मृतिशास्त्रीय व्यवहार-प्रकरण का एक सारवान् विवरण इन अध्यायों में दिया गया है। जिन विषयों को लेकर विवाद, हिंसा आदि कर्म किये जाते हैं, वे 'व्यवहार' के विषय हैं। ऋण, साक्ष्य, सम्पत्तिविभाग, सीमा, परुषवाक्य आदि से सम्बन्धित व्यवहार व्यवहारप्रकरण में विचारित होते हैं। अग्निपुराण का यह प्रकरण याज्ञवल्क्यस्मृतिगत व्यवहारप्रकरण पर अधिकांशतः आधारित है; कहीं-कहीं नारदस्मृति का भी अनुसरण किया गया है–ऐसा विद्वानों का कहना है।[१]

(अ० २५९-२६२) ऋग्-यजुः-साम-अथर्ववेदों के मन्त्र-सूक्त-अनुवादक आदि का विनियोग (कर्मों में प्रयोग) इन अध्यायों में दिखाया गया है। यह प्रकरण ऋग्विधान आदि ग्रन्थों पर प्रतिष्ठित है। खेद है कि इन अध्यायों के पाठ अनेकत्र भ्रष्ट हो गये हैं।[२] कुछ शब्द अस्पष्ट हैं, यथा–एकचक्रा (२६०-८१), तनूनन्पाग्ने सदिति (२६०-१५)। विनियोग के लिए ऋषि, देवता, छन्द का ज्ञान चाहिए–इस वैदिक दृष्टि का उल्लेख २६२-२५ में किया गया है।

(अ० २६३-२७०) उत्पातशान्ति, पूजा, वैश्वदेव-बलि, स्नान, होम, नीराजन (एक प्रकार का कर्म जो युद्ध से पहले राजा के द्वारा अनुष्ठित होता है) आदि यहाँ कहे गये हैं। स्मृति आदि शास्त्रों में इन कर्मों का जो विवरण

---

१. **The Vyavahara portion of the Purana leaves no doubt that it is borrowed partly from the Narada-smriti and largely from the Yajnavalkya-smriti (द्र० Purana पत्रिका के वर्ष २० में S. C. Banerjee का लेख 'Vyavahara portion of the Agni purana'), पृ० ३९; काणे कृत History of Dharmashastra भाग १, पृ० १६२ भी द्रष्टव्य।**

२. उभे पुमान·····मन्त्र २५९/३३ में उक्त हुआ है, जिसका प्रकृत पाठ 'उभे पुनामि' है (द्र० ऋग्वेद १/१३३/१)। 'स्वस्ति पन्था' मन्त्र (२५९/५१) मन्त्र का प्रकृत पाठ 'स्वस्ति पन्थाम' होगा (ऋग्० ५/५१/१५); या ओषधयः (२५९/८५) 'या ओषधीः' होगा; या सेना (२६०/३५) 'याः सेना' होगा (यजुर्वेद ११/७७), चत्वारि शृङ्गः (२६०/३८) 'चत्वारि शृङ्गाः' होगा (यजुः (१७/९१); परिमे गामनेनेति (२६०/७७) 'परी मे' (यजुः ३५/१८) होगा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है, इस पर ही पुराण का विवरण आधारित है। कहीं-कहीं मन्त्रादि के पाठ में भ्रंश है। 'स्रावन्तीयं....' (२६३।२) का प्रकृत पाठ 'श्रायन्तीयं....' होगा। यह 'श्रायन्त इव सूर्यम्....' इस सामवेदीय मन्त्र (२६७ स्वाध्यायमण्डल संस्क०) पर गायी जानेवाली गीति का नाम है। २६९।१४ में कुमुद, ऐरावत (ऐरावण पाठ भ्रष्ट है) आदि दिग्गजों के नाम कहे गये हैं (अमरकोश, दिग्वर्ग ५); इनको यहाँ 'देवयोनि' कहा गया है। अवश्य ही 'देवयोनि' पाठ भ्रष्ट है, क्योंकि अन्यान्य ग्रन्थों में भी कुमुद आदि को 'दिग्गज' ही कहा गया है।

(अ० २७१-२७२) वेद की शाखाओं तथा अट्ठारह पुराणों का विवरण यहाँ दिया गया है। चारों वेदों के मन्त्रों की संख्या एक लाख कही गयी है (२७१।१)। यह मत परम्परागत है, क्योंकि चरणव्यूह में 'लक्षं तु चतुरो वेदाः' कहा गया है। 'शत साहस्र समित' (अर्थात् एक लाख परिमाणवाले) वेद का उल्लेख विष्णुपुराण ३।४।१ में मिलता है। यह गणना किस रीति से की गयी है-यह अज्ञात है। ऐसी एक प्रसिद्धि है कि वेद के ८०००० मन्त्र कर्मकाण्डपरक, १५००० मन्त्र उपासनापरक तथा ५००० मन्त्र ज्ञानपरक हैं। इस प्रसिद्धि की संगति चिन्तनीय है। यहाँ ऋग्वेदीय मन्त्र के परिमाण के विषय में 'यतानि दश' (१०००) कहा गया है (२७१।२), जो प्रायः सत्य है।[१] ऋग्वेदीय ब्राह्मण के परिमाण के विषय में जो कहा गया है (ब्राह्मणं द्विसहस्रकम्), वह परीक्षणीय है। इस पुराण में ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा एवं शाङ्खायन शाखा का उल्लेख है (२७१।२)। वायु आदि पुराणों के शाखा प्रकरण में ये नाम नहीं मिलते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि ये दो शाखाएँ कृष्णद्वैपायन व्यास से पहले काल की हैं, अतः वायु आदि पुराणों में इन दोनों के नाम नहीं लिये गये हैं क्योंकि इन पुराणों में कृष्णद्वैपायन की परम्परा में कृत शाखाविभाग का ही विवरण दिया गया है। चारों वेदों की शाखा आदि के मुद्रित नामों में कई भ्रष्ट पाठ हैं।

मूल पुराण संहिता (जिसको व्यास ने बनाकर लोमहर्षण को पढ़ाया) का उल्लेख २७१।११-१२ में मिलता है। छह आदिम पुराणाचार्यों के नामों के पाठ कुछ भ्रष्ट हो गये हैं[२] -शिंशपायन शांशपायन होगा, कृतव्रण अकृतव्रण होगा।

यहाँ १८ पुराणों में प्रत्येक का जो श्लोकपरिमाण कहा गया है (२७२।१-२३), उसका पूर्णयोग ३४०००० (तीन लाख चालीस हजार) होता है-चार लाख नहीं। कुछ पुराणों के श्लोकपरिमाण सांशयिक हैं-पद्मपुराण का श्लोकपरिमाण १२००० कहा गया है, जो अन्यत्र नहीं मिलता। पद्मपुराण का जो प्रचलित रूप है, उसमें न्यूनाधिक ५००० श्लोक निश्चयेन हैं। सम्भवतः पद्मपुराण के श्लोकपरिमाण का मुद्रित पाठ भ्रष्ट है।

(अ० २७३-२७८) सूर्य एवं सोम वंशों (ये दो राजवंश हैं) का धारावाहिक विवरण यहाँ दिया गया है। इस विवरण में अग्निपुराण का कोई वैशिष्ट्य नहीं है। यह विवरण प्राचीन प्रतीत नहीं होता। अनेक नये श्लोक बनाकर पुराणकार ने इस प्रकरण की रचना की है। कान्यकुब्ज एवं काशी वंश के विवरण में कई भ्रान्तियाँ लक्षित होती हैं।[३]

---

१. तुल० दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्य (शान्तिपर्व २४६/१४)। इसकी व्याख्या में नीलकण्ठ ने कहा है कि प्रकृतमन्त्रसंख्या दस सहस्र से कुछ अधिक है। इस विषय में अतिविस्तृत विचार के लिए पं० युधिष्ठिर मीमांसक-कृत 'ऋग्वेद की ऋक्संख्या' ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

२. इन छह पुराण प्रणेताओं एवं मूलपुराणसंहिता के विषय में विशद विवरण के लिए (Ancient Indian Historical Tradition) ग्रन्थ (पृ० २१-२४) तथा पं० बलदेव उपाध्यायकृत पुराणविमर्श (पृ० ५८-६२) द्रष्टव्य हैं।

३. द्र० Ancient Indian Historical Tradition (पृ० ८०)।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इन अध्यायों में कई नाम भ्रष्ट रूप से मुद्रित हुए हैं। एक उदाहरण लें–गङ्गायां शन्तनोर्भीष्मः काल्यायां चित्रवीर्यकः। कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्र-वीर्यके।। (२७८।३६)। इन श्लोकों में 'काल्यायां' के स्थान पर 'काल्यां' पाठ होगा तथा 'वैचित्रवीर्यके' एक शब्द होगा।

यहाँ शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में कहा गया है–दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत्। शकुन्तलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारताः (२७८।६-७)। 'भारताः' का अर्थ है–'भारता जनाः'–भारत नामक जनसमुदाय (क्षत्रियगण)। इससे स्पष्ट है कि पुराणकार के अनुसार इस देश का 'भारत' नाम शकुन्तलापुत्र के नाम के अनुसार नहीं पड़ा। सभी पुराणों के अनुसार इस नाम का हेतु है–स्वायंभुवमनुवंशीय भरत, जो भारतवर्ष के अधिपति थे।[१]

(अ० २७९-२८६) धन्वन्तरि ने सुश्रुत के प्रति जो आयुर्वेदविषयक सिद्धान्त कहा, वह यहाँ प्रतिपादित हुआ है। मनुष्य, अश्व तथा हस्ती के रोग, रोगों की चिकित्सा तथा अन्यान्य आवश्यक विषय संक्षेप-विस्तार के साथ कहे गये हैं। यह विवरण वाग्भट-कृत अष्टाङ्गहृदय पर मुख्यतया आधारित है।[२]

(अ० २८७।२९२) अङ्गराज लोमपाद (१८६।२४) के प्रति 'हस्तिशास्त्रविद्' पालकाप्य ने जो कहा, उसका सार यहाँ दिया गया है। पालकाप्य का ग्रन्थ प्रसिद्ध रहा है। उनका हस्त्यायुर्वेदपरक ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्त्तिक में इस ग्रन्थ का वाक्य उद्धृत हुआ है (पृ० २५९, आनन्दाश्रम संस्करण)।

अश्वायुर्वेद के दो वक्ता हैं–धन्वन्तरि (अ० २८८) तथा शालिहोत्र (२८९-२९१)। गजशान्ति (अ० २९१) के वक्ता भी शालिहोत्र हैं। अद्भुत सागर ग्रन्थ में शालिहोत्र के मत उद्धृत हुए हैं। धन्वन्तरि द्वारा प्रोक्त गवायुर्वेद का विवरण अ० २९२ में मिलता है। वहाँ गोचिकित्सा के साथ गोपरक शान्ति कर्म भी उक्त हुआ है।[३]

(अ० २३९-३२७) नानाविध (वैदिक एवं तान्त्रिक) मन्त्रों का प्रयोग तथा मन्त्रसिद्धि के उपाय यहाँ कहे गये हैं। अ० २९५ में मन्त्रप्रयोग द्वारा सर्पदंश की चिकित्सा कही गयी है, इस अध्याय में विषसम्बन्धी आवश्यक बातें मिलती हैं। स्तम्भनादि-षट्कर्मपरक मन्त्र अ० ३१५ में हैं।

(अ० ३२८-३३५) छन्दःशास्त्रपरक जो विवरण यहाँ दिया गया है, वह पिङ्गलछन्द सूत्र पर आधारित है। छन्दःसूत्र के विषयक्रम का भी अनुसरण अनेक स्थानों पर किया गया है–यह देखा जाता है। छन्द सम्बन्धी गण, छन्दों के देवता, पाद, उत्कृति आदि छन्दोभेद, सम-अर्धसम-विषम रूप तीन छन्द-प्रकार, यति तथा प्रस्तार का विशद विवरण यहाँ मिलता है।

कुछ श्लोकों के पाठ भ्रष्ट हैं। ३३०।९ (स्कन्धो ग्रीवा·····) का पाठ भ्रष्ट है, शुद्ध पाठ होगा–'स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुकेः स्याद् यास्कस्योरोबृहत्यपिः; द्र० छन्दः सूत्र ३।२९-३०। ३३४।२६ में मत्तक्रीडा नाम छपा है, जो मत्ता क्रीडा होगा (द्र० छन्दः सूत्र ७।२८), उसी प्रकार ३३४।२९ में जो 'दण्डदः' शब्द है, वह दण्डकः होगा।

---

१. यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने भी शकुन्तला नाटक में शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में यह नहीं कहा कि इस देश का नाम भरत के नाम के अनुसार हुआ था।

२. अग्निपुराण के इन अध्यायों पर पूर्ववङ्ग-निवासी कविराज (वैद्य) गङ्गाधर (१७९८-१८८५ ई०) का एक भाष्य है। यह भाष्य अब अप्रचलित हो गया है। भाष्यकार ने चरक पर जल्पकल्पतरु नामक सुप्रसिद्ध टीका लिखी है।

३. गोपरकशास्त्र प्राचीनकाल में रचित हुआ था–यह निश्चित है। बृहत्संहिता (अ० ६१) में पराशकृत गोलक्षण का उल्लेख है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(अ० ३३६) शिक्षा ('वर्णोच्चारणशास्त्र') परक यह अध्याय श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा पर आधारित है–यह स्पष्टतया प्रतीत होता है।

डॉ० मनीमोहन घोष द्वारा सम्पादित 'पाणिनीय शिक्षा' (कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित) में इस शिक्षा–अध्याय का अन्तर्भाव किया गया है। सम्पादक ने टिप्पणियों में अग्निपुराण के मतों पर कहीं–कहीं संक्षिप्त आलोचना की है।

(अ० ३३७–३४७) इन ११ अध्यायों के विषय यथाक्रम में हैं–काव्यादि–लक्षण, नाटकादि–लक्षण, रसनिरूपण, रीतिनिरूपण, नृत्यादिगत अङ्गकर्म, अभिनयादि, शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, शब्दार्थालङ्कार, काव्यगुण तथा काव्य–दोष।

अग्निपुराण के इन अध्यायों के विषय में कई विद्वानों ने विचार किया है। पुराणोक्त मतों का मूल क्या है तथा पुराणमतों का आश्रयकारी कौन–कौन आचार्य हैं–इत्यादि विषयों का निरूपण करने की चेष्टा की गयी है।[१] डॉ० सुशीलकुमार दे ने अत्यन्त विशदता के साथ यह दिखाया है कि अग्निपुराणगत यह विवरण भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण ग्रन्थ का उपजीव्य है।

(अ० ३४८) एकाक्षराभिधान अर्थात् एकाक्षर कोश। इसमें अ, आ आदि वर्णों के अर्थ दिये गये हैं, कु आदि अक्षरों (व्यञ्जन सहित स्वर=अक्षर) के अर्थ भी कहीं–कहीं कहे गये हैं। एक–दो स्थलों पर मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं–ऋ शब्दे चादितौ ऋ स्यात् (३४८।३) का शुद्ध पाठ होगा–'ऋ (दीर्घ ॠ) स्यात्।' ऋ का अर्थ अदिति है–यह प्रसिद्ध है (अदितिपुत्र देवों को 'ऋभु' कहा जाता है)।

पूर्वाचार्यों ने कई एकाक्षर कोश लिखे हैं।[२] इन ग्रन्थों के आधार पर यह अंश लिखा गया है।

(अ० ३४९–३५९) व्याकरणपरक यह प्रकरण कातन्त्र (नामान्तर कलाप) पर आधारित है। स्कन्द ने कात्यायन से यह शास्त्र कहा–यह ३४८।२८ तथा ३४९।१ में कहा गया है। यह प्रसिद्ध है कि कातन्त्र व्याकरण मूलतः कुमार (स्कन्द) द्वारा प्रोक्त है (अर्थात् कुमार की कृपा से शर्ववर्मा ने यह व्याकरण रचा है) तथा कात्यायन नामक विद्वान् ने इस व्याकरण का आंशिक पूरण किया है।

यह आश्चर्य है कि इस प्रकरण में पाणिनीय पद्धति भी अंशतः मिश्रित है। यहाँ जिस क्रम में व्याकरणीय विषय रखे गये हैं, वह क्रम पाणिनि–व्याकरण का नहीं है, वह अधिकांशतः कातन्त्र में मिलता है। यह ज्ञातव्य है कि इस प्रकरण में जितने उदाहरण दिये हुए हैं, वे सब कातन्त्र में मिल जाते हैं।

(अ० ३६०–३६७) कोशपरक ये अध्याय सर्वथा अमरकोश पर आधारित हैं। इनके प्रायः सभी वाक्य अमरकोश के वाक्य (क्वचित् अल्पाधिक परिवर्तित रूप में) ही हैं। शब्दों का क्रम भी प्रायेण सर्वत्र अमरकोशानुसारी है, क्वचित् भिन्नता देखी जाती है। अमर में 'संश्लेष उपगूहनम्' के बाद 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' कहा गया है (संकीर्णवर्ग ३०–३१)।

---

१. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ४-९); P. C. Lahiri का Theory of रीति and गुण in Agni Purāṇa शीर्षक लेख (Indian Historical Quarterly, IX); Descriptive style of Alankara's in the Agnipurana (Munshi Felicitation Volume, पृ० ९६-११०); अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग आदि।

२. द्र० नानार्थरत्नमालाकोश (शाश्वत कोश के साथ प्रकाशित, Oriental Book Agency), सौभरिकृत एकार्थनाममाला, एकाक्षरीकोश (ज्ञानपीठ-मूर्तिदेवी जैनग्रन्थमाला) के अन्त में मुद्रित।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पर अग्निपुराण में प्रत्यादेशो निराकृतिः (२४ श्लोक) के बाद 'संश्लेष उपगूहनम्' (२५) कहा गया है। अ० ३६७ के अन्त में अनुमा, शाब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव का उल्लेख है, पर ये शब्द अमरकोश में नहीं मिलते।[१]

(अ० ३६८-३७१) नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक रूप चार प्रकार के प्रलय का विवरण यहाँ दिया गया है। प्रसंगतः यहाँ परार्ध का परिमाण कहा गया है, जो १ के बाद १७ शून्य है (१००००००००००००००००)।[२] नागेश भट्ट द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्डपुराण-वचन में यह मत माना गया है (सप्तशती २।४१ की टीका)। इसी प्रकार आतिवाहिक शरीर का विवरण अ० ३६९ में मिलता है, गर्भोत्पत्ति तथा शरीरावयवों का विवरण इसी अध्याय में तथा अ० ३७० में दिया गया है। अ० ३७१ में प्राणनिर्गमनमार्गों तथा नरकों के नाम आवश्यक विवरण के साथ कहे गये हैं। क्षिति के अधोदेश में अष्टाविंशति नरक-कोटि (२८ प्रकार के नरक) की सत्ता ३७१।१३ में कही गयी है तथा नरक के २८ नाम १४-१८ श्लोकों में कहे गये हैं।

(अ० ३७२-३८०) इन अध्यायों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि तथा ब्रह्मज्ञान (अन्तिम तीन अध्यायों में) का उत्कृष्ट विवरण दिया गया है। प्राचीन तथा अर्वाचीन योगग्रन्थों तथा स्मृतियों में अष्टाङ्ग योग का जो विवरण मिलता है, पुराणोक्त विवरण उससे सारतः भिन्न नहीं है। उपनिषद्, गीता एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के कई वचन यहाँ अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ पठित हुए हैं। ३७९। ७ख-३२ क० में प्रतिपादित विषय विष्णुपुराण (६।५-७) में मिलता है, अ० ३८० का विषय भी विष्णुपुराण (२।१५-१६) में मिलता है। सम्भवतः विष्णुपुराण से ही इन विषयों को अग्निपुराण ने लिया है। खाण्डिक्य-केशिध्वजसंवाद नारदीयपुराण १/४६-४७ में भी है। यह पुराण विष्णुपुराण से अर्वाचीन है।

इन अध्यायों में कई मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं। 'पातितः श्रावणोधातुर्दशनस्वाङ्ग वेदनाः' तुलनीय योगसूत्र ३।६६।[३] ।३७६।१३ का 'तथा विपक्षकरणः' का शुद्ध पाठ 'तथाऽविपक्तकरणः' होगा। ३८०।४६ का 'निदाघ-ऋतु-संवादम्' 'निदघऋभुसंवादम्' होगा। (इस अध्याय में जहाँ भी 'ऋतु' है वह 'ऋभु' होगा)।

(अ० ३८१-३८२) कृष्ण ने अर्जुन के प्रति जो कहा (भगवद्गीता), उसका संक्षिप्तसार अ० ३८१ में दिया गया है। इसके प्रायः सभी वाक्य गीता के शब्दों पर आश्रित हैं, कुछ वाक्य शब्दों पर आश्रित न होकर अर्थों पर आश्रित हैं, जैसे 'दुःसंगहानिः सत्संगात् मोक्षकामी च कामनुत्' (३८१/४)। गीता (१८/१४) में 'विविधाश्चपृथक्

---

१. यह ज्ञातव्य है कि अमरकोश की पूर्ति के लिए त्रिकाण्डशेष नामक जो कोश पुरुषोत्तमदेव द्वारा प्रणीत हुआ था, उसमें अनुमा का उल्लेख है। (अनुमात्वनुमानं स्यात् ३/२/११, अग्निपु० का वाक्य है-अनुमा पक्षहेत्वाद्यैः, ३६७/२५)। पर इस कोश में शाब्द, उपमान और अर्थापत्ति का कोई उल्लेख नहीं है।

२. परार्ध-परिमाण के विषय में मतभेद है। शुक्लयजुर्वेद संहिता के अनुसार परार्ध = १०००००००००००० (१ के बाद १२ शून्य) है; पर वेदव्याख्याकार महीधर परार्ध = १००००००००००००००००० (१ के बाद १७ शून्य) कहते हैं। ज्योतिषी धनंजय भट्ट के अनुसार परार्ध = १ के बाद ३१ शून्य है।

३. ३/३६ योगसूत्र का मुद्रित पाठ है-'ततः प्रातिभ-श्रावण-वेदना-दर्शास्वादवार्ता जायन्ते।' सभी व्याख्याकार षष्ठ सिद्धि का नाम 'वार्ता' (आकारान्त) समझते हैं, यह वस्तुतः अकारान्त वार्त शब्द है। इस विषय में विस्तृत विचार के लिए मेरा An Introduction to the Yoga-sutra (Chapter V, Section 2) द्रष्टव्य है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चेष्टाः' कहा गया है, पर पुराण में 'त्रिविधाश्च' पाठ है (३८१/५१)। शायद यह भ्रष्ट पाठ है। क्या यह हो सकता है कि यहाँ 'शारीरिक, वाचिक और मानसिक' रूप त्रिविध चेष्टा की बात कही गयी है।

यमगीता (अ० ३८२) कठोपनिषद् पर आधारित है। इस उपनिषद् के कई वाक्य यहाँ अविकल रूप से या किंचित् पाठभेद के साथ उद्धृत हुए हैं। इस अध्याय में (कपिल, पञ्चशिख, जैगीषव्य, देवल आदि कुछ आचार्यों) सांख्याचार्यों के श्रेयःपरक मत उद्धृत हुए हैं (३८२/३-१०)। इन नामों में 'गङ्गाविष्णु' नाम भी है, जो सर्वथा सांशयिक है। इस नाम का कोई आचार्य इतिहासपुराणादि में स्मृत नहीं हुए हैं। यह अवश्य ही भ्रष्ट पाठ है, प्रकृत पाठ क्या होगा–इसका निर्धारण करना दुष्कर है।[१]

(अ० ३८३) अग्निपुराण के स्वरूप तथा माहात्म्य के साथ इस पुराण में प्रतिपादित विषयों का परिचय यहाँ दिया गया है।

इस अध्याय की सामग्री के विषय की भूमिका में यथास्थान विचार किया गया है।

विविध विद्याओं के विवरण से विभूषित साथ ही अनेकत्र भ्रष्ट पाठों से दूषित अग्निपुराण का अनुवाद करना वस्तुतः एक कठिन कार्य है। अग्निपुराण में ऐसे अनेक वाक्य या वाक्यांश हैं, जो दुरूहार्थक हैं, कहीं–कहीं अस्पष्टार्थक भी। प्रस्तुत अनुवाद में अनुवादक महोदय का परिश्रम दर्शनीय है। हम उनको धन्यवाद देकर इस भूमिका को समाप्त करते हैं।

रामशंकर भट्टाचार्य

(सम्पादक/पुराण

सर्वभारतीय काशिराज न्यास

वाराणसी)

---

१. अग्निपुराण के श्रेयःपरक श्लोक (३८२/३-११) विष्णुधर्मनामक पुराण में भी हैं। यह अमुद्रित है। इस पुराण में गङ्गाविष्णु के स्थान पर मगारिष्ट पाठ है; द्रष्टव्य आर० सी० हाजरा कृत Studies in the Upapuranas Volume I (पृ० १३०)। यह नाम भी अशुद्ध प्रतीत होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१	**मंगलाचरण**	६५	१९
	ऋषियों द्वारा सूत से प्रश्न। बदरिकाश्रम में सूत, शुक और पैल आदि ऋषियों द्वारा व्यास से प्रश्न। ऋषियों और व्यास के संवाद में अग्नि और वसिष्ठ का संवाद। विद्यातत्त्व और विज्ञान के सम्बन्ध में वसिष्ठ द्वारा अग्नि से प्रश्न। अग्नि द्वारा वसिष्ठ के प्रति सबके कारणभूत विष्णु का प्रभाव-वर्णन।		
२	**मत्स्यावतार-वर्णन**	६७	१७
	विष्णु के मत्स्य आदि अवतार के सम्बन्ध में वशिष्ठ द्वारा अग्नि से प्रश्न। अग्नि द्वारा वशिष्ठ से कृतमाला नदी में वैवस्वत मनु को मत्स्यरूप भगवान् के दर्शन होने का कथन। मत्स्यावतार भगवान् विष्णु द्वारा हयग्रीव दैत्य का वध।		
३	**कूर्मावतार-वर्णन**	६९	२३
	दुर्वासा के शाप से नष्ट वैभववाले देवताओं का विष्णु के पास जाना। विष्णु के द्वारा देवताओं को समुद्र-मन्थन करने की आज्ञा। विष्णु की आज्ञा से मन्दराचल को समुद्र में डालकर देव-दानवों द्वारा किये गये क्षीरसागर के मन्थन का वर्णन। क्षीरसागर से हलाहल विष की उत्पत्ति। शंकर द्वारा हलाहल विष का भक्षण। कूर्मावतार विष्णु द्वारा मन्दराचल का धारण। क्षीरसागर से वारुणी, मदिरा, कौस्तुभ मणि, लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति। लक्ष्मी द्वारा विष्णु को पति रूप में स्वीकार। अमृतकलश के साथ धन्वन्तरि का उद्भव। उनके हाथ से दैत्यों द्वारा अमृत का अपहरण। विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारणकर देवताओं को अमृत देना और दैत्यों को मोहित करना। चन्द्रमा का रूप धारणकर राहु द्वारा अमृत भक्षण। सूर्य और चन्द्रमा द्वारा सूचित करने पर राहु का शिरःकर्तन। अत्यन्त प्रसन्न विष्णु द्वारा राहु के प्रति देवत्व-प्राप्ति का वर्णन। विष्णु की कृपा से सन्तुष्ट राहु द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के प्रति ग्रहण प्राप्त करने का शाप और प्रसंगतः ग्रहण-काल में दान की प्रशंसा। शंकर की प्रार्थना करने पर विष्णु द्वारा शंकर के प्रति पुनः मोहिनी रूप का प्रदर्शन। मोहिनी के रूप से मोहित होकर पार्वती का परित्याग करके उसके पीछे दौड़ना। पृथ्वी पर शंकर का वीर्यस्खलन। अमृत न पानेवाले दैत्यों का देवताओं के साथ युद्ध। देवताओं द्वारा दैत्यों का पराजय।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
४	**वराह, नृसिंह आदि अवतारों का वर्णन**	७२	२१

हिरण्याक्ष का देवेन्द्र पद पर अधिरोहण। हिरण्याक्ष के बल से उद्विग्न देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। वराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध। उसके भाई हिरण्यकशिपु का नरसिंह अवतार विष्णु द्वारा वध। बलि आदि के द्वारा पराजित देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। अदिति से वामन रूप विष्णु का प्रादुर्भाव। पादत्रय-परिमित भूमि-याचन द्वारा वामनकृत राजा बलि की वञ्चना। जमदग्नि से रेणुका में परशुराम का अवतार। परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन का वध। इस आख्यान के श्रवण का फल।

५	**श्रीरामावतार-वर्णन**	७४	१५

प्रसंगतः वैवस्वत मनु का वंशवर्णन। कौशल्या से राम की उत्पत्ति। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति। यज्ञ-रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के आश्रम में जाना। विश्वामित्र के यज्ञ में राम द्वारा मारीच-सुबाहु का वध। जनक के गृह में राम द्वारा शिव-चाप का खण्डन। सीता के साथ राम का विवाह। उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति का क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ विवाह। परशुराम को जीतकर राम आदि का अयोध्या लौटना।

६	**अयोध्याकाण्ड**	७५	५०

दशरथ का रामचन्द्र के साथ युवराज पद सँभालने के सम्बन्ध में वार्तालाप। मन्थरा के वचन से कैकेयी का मति-परिवर्तन। दशरथ से कैकेयी को दो वर की प्राप्ति। कैकेयी के वचनानुसार दशरथ की आज्ञा से राम का सीता और लक्ष्मण के साथ वन-गमन। चित्रकूट पर्वत पर सीता के प्रति अपराधी होते हुए भी शरण में आये हुए इन्द्र-पुत्र जयन्त की राम द्वारा रक्षा। कौशल्या के प्रति 'पुत्र-शोक से मेरा मरण अवश्यम्भावी है' दशरथ का यह कथन। दिवंगत दशरथ के शरीर को तेल-पात्र में रखा जाना। वशिष्ठ की आज्ञा से सुमन्त आदि द्वारा भरत को अयोध्या ले आना। सरयू के तट पर भरत के द्वारा दशरथ की अन्त्येष्टि-क्रिया। वशिष्ठ के द्वारा भरत को राजपालन का उपदेश। राजपद स्वीकार कर भरत का राम को लौटाने के लिए भरद्वाज आश्रम को जाना। भरत के साथ राम-लक्ष्मण का मिलन। पिता का निधन-समाचार देकर भरत की राम से राजपद स्वीकार करने की प्रार्थना। राम की आज्ञा से भरत का पादुका ग्रहणपूर्वक राज्य पालन के लिए नन्दि ग्राम में जाना।

७	**अरण्यकाण्ड**	८०	२४

अत्रि, शरभंग और सुतीक्ष्ण आदि का राम के साथ समागम। अगस्त्य से राम को धनुष और खड्ग की प्राप्ति। दण्डकारण्य में राम का जाना। पंचवटी में राम का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	रूप देखकर शूर्पणखा का मोहित होना। पंचवटी में राम के कहने पर लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का कर्ण-नासिका-छेदन। राम द्वारा खर, दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों का वध। पुत्र के निधन से पीड़ित शूर्पणखा का रावण के प्रति सीता-हरण विषयक सम्भाषण। रावण की मारीच से स्वर्णमृग का रूप धारणकर राम को ठगने के लिए अभ्यर्थना। राम द्वारा मारीच का वध। रावण द्वारा सीता का हरण। रावण और जटायु का युद्ध। रावण द्वारा जटायु का वध। सीतापहारक रावण का लंका पहुँचना। सीता वियुक्त राम का विलाप। राम द्वारा सीता का अन्वेषण। राम द्वारा जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार। राम द्वारा कबन्ध राक्षस का वध। शापमुक्त कबन्ध का राम के प्रति सुग्रीव से मैत्री का कथन।		
८	**किष्किन्धाकाण्ड**	८३	१७
	राम का पम्पासर में गमन। राम का सुग्रीव के साथ समागम। सुग्रीव के विश्वास के लिए राम द्वारा सात ताड़वृक्षों का भेदन। राम द्वारा दुन्दुभि का शरीरपात। राम द्वारा बालि का वध। किष्किन्धा में लक्ष्मण का गमन। सीता के अन्वेषण के सम्बन्ध में सुग्रीव द्वारा वानरों के साथ हनुमान् को भेजना। वानरों को सम्पाति का दर्शन।		
९	**सुन्दरकाण्ड**	८५	३३
	सम्पाति के कहने से लंका में हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका में दर्शनपूर्वक सीता को अँगूठी देना। सीता द्वारा हनुमान् को चूड़ामणि प्रदान करना। हनुमान् द्वारा रावण के उपवन का विध्वंस। मेघनाद द्वारा नागपाश से हनुमान् का बन्धन। हनुमान् के साथ रावण का सम्भाषण। हनुमान् द्वारा लंकादहन। हनुमान् द्वारा राम को सीता द्वारा दी हुई चूड़ामणि समर्पित करना। राम का विभीषण के साथ समागम। राम द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक। राम द्वारा सेतु बाँधकर सुवेल पर्वत पर पहुँचना।		
१०	**युद्धकाण्ड**	८८	३५
	अंगद का रावण के साथ लंका में सम्भाषण। राम-रावण का युद्ध। राम से पराजित रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाना। राम द्वारा कुम्भकर्ण और रावण का वध। युद्ध में मरे हुए वानरों को राम द्वारा अमृत वर्षा करके जिलाना। विभीषण को लंका का राज्य प्रदान करना। अग्नि-परीक्षा के द्वारा शुद्ध सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या जाते हुए श्रीराम का नन्दिग्राम में भरत से मिलाप। राम का अयोध्या गमन।		
११	**उत्तरकाण्ड**	९१	१३
	अगस्त्य आदि के द्वारा राम की स्तुति। वाल्मीकीय आश्रम में सीता से कुश और लव की उत्पत्ति। राम का स्वर्गलोक गमन। इस अध्याय के श्रवण करने का फल। रामचरित की समाप्ति।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१२	**कृष्णावतार-कथा**	९३	५६

प्रसंगतः हरिवंश का वर्णन। बलराम और कृष्ण की उत्पत्ति। वसुदेव द्वारा कृष्ण को गोकुल पहुँचाना। कृष्ण द्वारा यमलार्जुन का मोक्ष। कृष्ण द्वारा शकटासुर का वध। कृष्ण द्वारा पूतना का वध। कृष्ण द्वारा कालिय का मर्दन। कृष्ण द्वारा गोवर्धन का धारण। कंस के भेजे हुए अक्रूर का राम और कृष्ण के साथ मथुरा जाना। मथुरा में कृष्ण द्वारा रजक का वध। कृष्ण द्वारा माली को वरदान देना। कृष्ण द्वारा कुब्जा के शरीर को सीधा करना। कृष्ण द्वारा कुवलयापीड नामक हाथी का वध। कृष्ण और बलराम का चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों के साथ मल्लयुद्ध। कृष्ण और बलराम द्वारा चाणूर और मुष्टिक का वध। कृष्ण द्वारा कंस का वध। कृष्ण द्वारा उग्रसेन को कंस का राज्य देना। कृष्ण द्वारा जरासन्ध और पौण्ड्रक वासुदेव का वध। कृष्ण का द्वारका जाना। कृष्ण द्वारा नरकासुर को मारकर उसके द्वारा लायी गयी सोलह हजार राजकन्याओं का पाणिग्रहण। रुक्मिणी आदि का कृष्ण द्वारा पाणिग्रहण। सान्दीपनि गुरु के मृतक पुत्रों को पुनः प्रत्यावर्तित करके कृष्ण द्वारा गुरु को सौंपना। कृष्ण द्वारा कालयवन का वध। कृष्ण से रुक्मिणी में प्रद्युम्न की उत्पत्ति। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध नामक पुत्र की उत्पत्ति। बाणासुर की कन्या उषा को स्वप्न में अनिरुद्ध का दर्शन। चित्रलेखा द्वारा द्वारका से अनिरुद्ध का आनयन। शोणितपुर में उषा के साथ अनिरुद्ध का विवाह। अनिरुद्ध और बाणासुर में युद्ध। शंकर और विष्णु का युद्ध। कृष्ण द्वारा बाणासुर की सहस्र भुजाओं का छेदन। बाणासुर के ऊपर शिव द्वारा प्रार्थित श्रीकृष्ण का अनुग्रह। उषा से युक्त अनिरुद्ध का कृष्ण आदि के साथ द्वारका-गमन। बलराम द्वारा हस्तिनापुर का आकर्षण। रुक्मिणी आदि में कृष्ण से अनन्त पुत्रों की उत्पत्ति। हरिवंश पाठ का फल।

१३	**भारताख्यान (महाभारत)**	९९	२९

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि से चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्रमा से बुध आदि की उत्पत्ति। विचित्रवीर्य की भार्या अम्बिका-अम्बालिका में व्यास से धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति। धृतराष्ट्र से गान्धारी में दुर्योधन आदि की उत्पत्ति।

पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन

दुर्योधन आदि का पाण्डवों के साथ विरोध। द्रुपद द्वारा किये गये द्रौपदी स्वयंवर में पाण्डवों को द्रौपदी की प्राप्ति। अर्जुन द्वारा खाण्डव वन का दहन। युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ। दुर्योधन आदि के साथ पाण्डवों की द्यूत-क्रीड़ा। द्यूत में पाण्डवों का पराजयपूर्वक वनवास। पाण्डवों के साथ दुर्योधन आदि का युद्धारम्भ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१४	**भारताख्यान में कौरव और पाण्डवों का संग्राम**	१०२	२८
	कृष्ण का अर्जुन के प्रति उपदेश। शिखण्डी के द्वारा भीष्म का पतन। धृष्टद्युम्न से द्रोण का वध। कर्ण और अर्जुन का युद्ध। अर्जुन द्वारा कर्ण का वध। भीम और दुर्योधन का युद्ध। भीम द्वारा दुर्योधन का वध। अश्वत्थामा द्वारा पाण्डवों के पुत्रों का विनाश। कृष्ण द्वारा उत्तरा के गर्भ में परीक्षित की रक्षा। युधिष्ठिर द्वारा मृतकों को जलाञ्जलि। युधिष्ठिर के प्रति भीष्म द्वारा राजधर्म आदि का उपदेश। युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित का राज्याभिषेक।		
१५	**पाण्डवों का स्वर्गारोहण**	१०४	१५
	गान्धारी के साथ धृतराष्ट्र का वन-गमन। मूसल से यदुवंशियों का नाश। चोरों के द्वारा श्रीकृष्ण की पत्नियों का हरण। पाण्डवों का महापथ पर गमन। स्वर्ग में पाण्डवों का वासुदेव का दर्शन। भारताख्यान के श्रवण का फल।		
१६	**बुद्धावतार-वर्णन**	१०६	१४
	दैत्यों की वञ्चना के लिए विष्णु का बौद्धावतार। प्रसंगतः कल्कि अवतार का वर्णन। अवतारों के चरित्र-श्रवण का फल।		
१७	**जगत्सृष्टि-वर्णन**	१०८	१७
	सृष्टि-काल में महत्तत्त्व की उत्पत्ति। महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति। उससे वैकारिक आदि की उत्पत्ति। पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों की उत्पत्ति। ब्रह्मा की उत्पत्ति। ब्रह्मा से मरीचि आदि मानस-पुत्रों की उत्पत्ति।		
१८	**स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन**	११०	४५
	स्वायंभुव से प्रियव्रत और उत्तानपाद की उत्पत्ति। उत्तानपाद से सुरुचि, सुनीति में उत्तम और ध्रुव की उत्पत्ति। प्रसंगतः ध्रुव की महिमा का वर्णन। ध्रुव से वृद्धि आदि पुत्रों की उत्पत्ति। पृथ्वी का आख्यान। पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन। दक्ष की उत्पत्ति का प्रकार। प्रसंगतः कश्यप से एकादश रुद्रों की उत्पत्ति।		
१९	**कश्यपवंश का वर्णन**	११४	२९
	कश्यप से बारह आदित्यों की उत्पत्ति। कश्यप से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की उत्पत्ति। प्रह्लाद की उत्पत्ति। विरोचन से बलि की उत्पत्ति। इन्द्र द्वारा दिति के गर्भ को सात टुकड़े करना। उससे मरुतों की उत्पत्ति। हरि द्वारा पृथु आदि को राज्य पद प्रदान।		
२०	**जगत्सृष्टि का वर्णन**	११६	२३
	ब्रह्मा से नौ प्रकार की सृष्टियों की उत्पत्ति। दक्ष कन्याओं द्वारा भृगु आदि को पति		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	रूप में वरण। अत्रि से अनसूया में सोम आदि पुत्रों की उत्पत्ति। सात हजार बालखिल्यों की उत्पत्ति। अधर्म से हिंसा रूपी पत्नी में अनृत आदि पुत्रों की उत्पत्ति।		
२१	**विष्णु आदि देव का सामान्य पूजा-विधान**	११९	२७
	विष्णु आदि के मन्त्रों से उन-उन देवताओं का पूजन। नवग्रह पूजन। सरस्वती आदि देवताओं की पूजा-विधि। देवताओं की तुष्टि के लिए तिलादि द्रव्यों से हवन। देवताओं का मन्त्र-निरूपण।		
२२	**पूजा अधिकार के लिए सामान्य स्नान-विधि**	१२२	९
	मृत्तिका-स्नान आदि की विधि। अघमर्षण आदि की विधि। पितर आदि का तर्पण।		
२३	**पूजा-विधि**	१२३	२३
	योग के द्वारा शरीरशोधनपूर्वक न्यास आदि। विष्णु और द्वारस्थ देवताओं की पूजा-विधि। आवाहन आदि के द्वारा विष्णु की सपर्या। नवव्यूह का अर्चन।		
२४	**कुण्ड निर्माण एवं अग्नि विधि कार्य**	१२६	५९
	अर्ध चन्द्राकार, चौकोर, गोलाकार कुण्डों का निर्माण। होम-विधि का प्रकार। अग्नि-संस्कार कथन। गुरु द्वारा शिष्यों को उपदेश।		
२५	**वासुदेव आदि के मन्त्रों के लक्षण**	१३२	५०
	जीवों का स्वरूप-वर्णन।		
२६	**मुद्रा-लक्षण**	१३७	७
	अञ्जलि मुद्रा-लक्षण। वन्दनी मुद्रा-लक्षण। वराह मुद्रा-लक्षण।		
२७	**शिष्यों को दीक्षा-दान विधि**	१३८	८१
	गुरु द्वारा शिष्य को दीक्षा-विधि प्रकार-वर्णन।		
२८	**आचार्य के अभिषेक का विधान**	१४५	५
२९	**मन्त्रसाधन विधि तथा सर्वतोभद्रादिमण्डल के लक्षण**	१४६	५०
३०	**सर्वतोभद्रमण्डलादि विधि-वर्णन**	१५१	३६
	पूर्वादिक्रम से ब्रह्मादि देवताओं की प्रतिष्ठा। सर्वतोभद्रादि मण्डल की रक्त, पीत आदि अनेक वर्णों से संरचना। साधक का नियम-कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३१	**सर्वरोगनाशक अपामार्जन-स्तोत्र**	१५४	४७
३२	निर्वाण आदि की दीक्षा के अधिकार के लिए गर्भाधान आदि अड़तालीस संस्कारों का कर्त्तव्यत्वेन निरूपण।	१५८	१३
३३	श्री आदि देवताओं के उद्देश्य से सुवर्ण आदि से निर्मित पवित्रक का धारण। एकादशी को बलिदानपूर्वक विष्णु की सपर्या। देहशुद्धिपूर्वक विष्णु की मानसोपचार पूजा। आवरण-देवता पूजन।	१५९	६३
३४	**पवित्रक के आरोपण में पूजाहोमादि की विधि**	१६५	४१
	मण्डल विलेखनपूर्वक द्वारपूजा। वासुदेव आदि मन्त्रों से गोमूत्र आदि द्रव्यों का ग्रहण। कलश पर देवता की प्रतिष्ठापूर्वक पूजा। होम-विधि का प्रकार।		
३५	**पवित्र अधिवासन-विधि**	१६९	१८
३६	**विष्णु पवित्रारोपण-विधि**	१७१	२३
	पवित्र दानपूर्वक विष्णु-पूजा-विधान। ब्राह्मण को पवित्र दान। पवित्र-धारण प्रशंसा।		
३७	**संक्षेपतः सब देवों के लिए साधारण पवित्रारोपण-विधि**	१७३	१४
३८	**देवालयनिर्माण-फल वर्णन**	१७४	५१
	देवालय आदि में अनुपयुक्त धन की व्यर्थता। मृत्तिका से, लकड़ी से, ईंटों से, पत्थरों और सुवर्ण से देवालय-निर्माण करने में उत्तरोत्तर फलविशेष-कथन। इनका माहात्म्य प्रकाशित करने के लिए यमदूतों के प्रति यमराज का भाषण।		
३९	**विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा में भूमि परिग्रह-संस्कार**	१७९	२१
	ब्रह्मा के साथ यमदूत के संवाद में हयग्रीव का संवाद। कच्छदेश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण से तथा कावेरी प्रदेश एवं कोंकण देश में उत्पन्न ब्राह्मण से प्रतिष्ठा नहीं करानी चाहिए, यह कथन। तन्त्र के पारगामी विद्वान् के हाथ से देवता की प्रतिष्ठा कराना। पूर्वादि दिशाओं में ब्रह्मादि देवताओं की प्रतिष्ठा। हल से भूमि-शोधन-प्रकार।		
४०	**वास्तुमण्डल देवता-स्थापन, पूजन, अर्घ्यदान, बलिदानादि का विधान**	१८१	३१
४१	**शिला-विन्यास का विधान**	१८४	३७
	मण्डल-विधान एवं चार कुण्डों का निर्माण-कथन। इष्ट का न्यास (ईंट का न्यास)। इष्ट का परिमाण (नाप)। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्रों से शिलान्यास करना। देवालय-निर्माण प्रशंसा।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
४२	प्रासाद (मन्दिर) लक्षण का विधान	१८७	२६
४३	प्रासाद में देवता-स्थापन और भूतशान्ति	१९०	२९
४४	वासुदेव आदि की प्रतिमाओं के लक्षण। देवताओं के अंगों का सप्रमाण कथन।	१९३	४९
४५	पिण्डिकादि का लक्षण	१९७	१५
४६	शालग्राम मूर्तियों के लक्षण	१९९	१३
४७	शालग्रामादि की पूजा का कथन	२००	१४
४८	चौबीस मूर्तियों का स्तोत्र	२०२	१५
४९	मत्स्यादि दश अवतारों की प्रतिमा का लक्षण	२०४	२८
५०	चण्डी आदि देवताओं की प्रतिमा का लक्षण	२०७	४३
	बीस भुजाओंवाली चण्डी का स्वरूप-कथन। दस भुजाओंवाली चण्डी का कथन। नवदुर्गा का स्वरूप-वर्णन। प्रसंगतः अन्य देवताओं के स्वरूप का वर्णन।		
५१	सूर्यादिग्रहदेवताओं की प्रतिमाओं के लक्षण	२११	१८
५२	चौंसठ योगिनियों की प्रतिमाओं के लक्षण	२१३	१७
५३	लिङ्गादि के लक्षण	२१५	२३
५४	लिंगमान और व्यक्ताव्यक्त-लक्षण	२१७	४८
५५	पिण्डिका-लक्षण	२२२	९
५६	दसदिक्पाल याग-कथन	२२३	३२
५७	कलशादि वास-विधि	२२६	२६
५८	स्नपन-विधि का वर्णन	२२८	३४
५९	अधिवासन विधि	२३१	५८
	हरिप्राप्ति योग-विधि। न्यास-विधि कथन। लोकपालों की सपर्या। देवताओं के उद्देश्य से हवन-विधि। बलिदान का प्रकार।		
६०	वासुदेव आदि देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठा-विधि	२३६	३६
	आठ दिशाओं में कलशस्थापनपूर्वक हवन। शिविका (दोला) में हरि को स्थापित करके नगर में घुमाना।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
६१	**अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा, ध्वजारोपण आदि की विधि**	२४०	५०
	ध्वजा के दण्ड का परिमाण। ध्वजमोचन। ध्वजदान फल-कथन।		
६२	**लक्ष्मी आदि देवताओं की प्रतिष्ठा**	२४४	१४
	श्रीसूक्तोक्त ऋचाओं से लक्ष्मी-पूजन और आचार्य-पूजन।		
६३	**विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा**	२४६	२६
	पुस्तक लेखन-विधि। पुस्तक-प्रतिष्ठापन-विधि। पुस्तकदान-माहात्म्य।		
६४	**कूप, वापी, तड़ाग की प्रतिष्ठा-विधि**	२४८	४४
	तड़ागादि में यूप (खम्भा) निवेशन। जलदान की प्रशंसा।		
६५	**सभादिस्थापन**	२५२	२३
६६	देवता सामान्य प्रतिष्ठा। उपवन (उद्यान) की प्रशंसा। मठ, पौशला के दान की महिमा।	२५५	३२
६७	**जीर्णोद्धार-विधि**	२५८	६
	जीर्ण प्रतिमा का गाजे-बाजे के साथ जलादि में प्रक्षेपण। बावली, पोखरा आदि के जीर्णोद्धार का माहात्म्य।		
६८	**उत्सव-विधि का कथन**	२५९	१९
	अंकुर का आरोपण। देवता की तीर्थयात्रा करना।		
६९	**स्नपनोत्सव का विस्तार से कथन**	२६१	२३
७०	**वृक्षारोपण की विधि**	२६३	९
	वृक्षोद्यान लगाने से पापनाश के फल का कथन।		
७१	**गणपति-पूजा की विधि**	२६४	८
७२	**स्नान-विधि**	२६५	५१
	संध्या-विधि का निरूपण। संध्या-देवता के ध्यान का कथन। रात्रि आदि में ज्ञानियों की चौथी संध्याओं का वर्णन। अघमर्षण, तर्पण-विधि का वर्णन।		
७३	**सूर्य-पूजा की विधि**	२७०	१७
	ग्रहों को नमस्कार तथा सूर्य की प्रार्थना।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
७४	**शिव की पूजा-विधि का कथन**	२७२	८४
	द्वारस्थ देवता का पूजन तथा नव देवता का पूजन। शिव के ध्यान का कथन। शिव-पूजा के अंगभूत जप की विधि।		
७५	**शिव-पूजा के अंगभूत होम-विधि**	२८०	७१
	देवताओं के लिए बलिदान-विधि का निरूपण।		
७६	**चण्ड-पूजा की विधि का वर्णन**	२८६	१५
	पूजा के अंगभूत जप-होम का विधान।		
७७	**कपिला-पूजन**	२८७	२४
७८	**पवित्र अधिवासन-विधि का वर्णन**	२९०	६९
	सत्ययुगादि में क्रमशः सोने, चाँदी, ताँबे और कपास से निर्मित पवित्रकों का विधान। पवित्रक के मान का कथन।		
७९	**पवित्रारोहण की विधि**	२९६	४६
	शिव की अर्चना का विधान। वस्त्र और आभूषण के द्वारा गुरु की अभ्यर्चना।		
८०	**दमनक वृक्ष के आरोहण का विधान**	३००	१५
	शंकर के क्रोध से उत्पन्न भैरव को शंकर का शाप। दमन के रूप को प्राप्त करनेवाले भैरव का दमन-पूजन द्वारा उद्धार। दमनक के द्वारा शिव की पूजा-विधि का वर्णन।		
८१	**समयाचार दीक्षाविधि का वर्णन**	३०१	९५
	निराधार और साधार भेद से दीक्षा के दो प्रकारों का वर्णन। कोरदार एवं श्वेत वस्त्र से शिष्य के नेत्र-बन्धन आदि का वर्णन।		
८२	**संस्कार-दीक्षा का विधान**	३१०	२५
	गुरु के द्वारा शिष्य के प्रति किये गये उपदेश का वर्णन।		
८३	**निर्वाण-दीक्षा की विधि का वर्णन**	३१२	६२
	दीक्षा में सूत्र के द्वारा शिष्य के देह बन्धन की प्रक्रिया का वर्णन। कलाओं के ग्रहण-बन्धन आदि प्रयोग का कथन। चण्डेश, लोकपालों का पूजन। स्नानपूर्वक गुरु का यज्ञशाला में प्रवेशन।		
८४	**निर्वाण-दीक्षा में निवृत्तिकला का शोधन**	३१७	६७
	दीक्षा के अन्तर्गत स्वप्न में हाथी, घोड़ा आदि के आरोहण का शुभसूचक वर्णन। दुःस्वप्न देखने के निवारणार्थ होमादि विधि का कथन। ब्रह्मा का आह्वानपूर्वक पूजन। वागीश्वरी देवी के पूजन की विधि का वर्णन। ब्रह्मप्रार्थना आदि का कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
८५	**प्रतिष्ठा-कला के शोधन-विधि का वर्णन** दीक्षा में २५ तत्त्वों का विभावनादि कथन। आवाहनपूर्वक विष्णु का पूजन। पूर्ववत् वागीश्वर और वागीश्वरी देवी का पूजन। शिष्य में चैतन्य प्रवेशन आदि की विधि का वर्णन। शिष्योद्देश्यक विष्णु की प्रार्थना का वर्णन।	३२३	४१
८६	**विद्या-कला के शोधन-विधि का निरूपण** रुद्रों के स्वरूप का वर्णन और भुवनों के स्वरूप का कथन। हृदयप्रवेश से कला को अपने में निरूपित करके कुण्ड में निवेशन आदि का वर्णन।	३२७	२२
८७	**शान्ति कला का शोधन** शिष्य के सिर पर अमृत-विन्दु की स्थापना आदि का वर्णन।	३२९	२७
८८	**निर्वाण-दीक्षा की अवशेष-विधि का वर्णन** आवाहनपूर्वक शिव का पूजन। सम्पुट आत्मबीज से शिष्य के हृदय में ताड़न आदि विधान का कथन। शिव के अस्त्र (मन्त्र) से शिष्य की शिखा-छेदन आदि का कथन। अस्त्र मन्त्र के द्वारा होम-विधि का निरूपण और शिष्य का स्नान-कथन।	३३२	६१
८९	**एकतत्त्व दीक्षा की विधि का वर्णन** शिष्य के सूत्र-बन्धन आदि प्रकारों का वर्णन।	३३७	५
९०	**अभिषेक आदि विधि का वर्णन** दिशाओं में घटादि स्थापन की विधि। स्नान-मण्डप में शिष्य को घड़े के जल से स्नान कराने की विधि का निरूपण।	३३८	१८
९१	**अभिषिक्त के द्वारा देवताओं के पूजन की विधि** पञ्चगव्य आदि के द्वारा देवपूजा करनेवाले को देवलोक की प्राप्ति का कथन। सूर्य, शंकर आदि देवताओं का मण्डलपरिमाण कथन।	३४०	१८
९२	**संक्षेप में प्रतिष्ठा-विधि** पाँच प्रतिष्ठाओं का वर्णन। प्रासाद बनाने की इच्छा से पृथ्वी का परीक्षण। मण्डप में द्वारपूजा आदि का कथन। भूमि-परिग्रहण। शिला संस्कार-वर्णन। शिलाओं पर ब्रह्मा आदि देवताओं का पूजन। न्यूनाधिक्य दोष की निवृत्ति के लिए होमादि कथन।	३४२	६५
९३	**वास्तुपूजा आदि की विधि** कोणों में वंश (बाँस) विन्यास। द्रव्य से इन्द्रादि देवताओं का पूजन। वास्तुप्रमाण का लक्षण।	३४८	४२

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
९४	**शिलाविन्यास-विधि**	३५२	१७
	ईशानादि कोणों में चरकी आदि देवताओं का पूजन। शिला की प्रार्थनापूर्वक शिला का स्थापन। प्रायश्चित्त होम।		
९५	**प्रतिष्ठा-काल तथा सामग्री आदि की विधि**	३५४	६१
	चैत्र को छोड़कर माघ आदि पाँच मासों में प्रतिष्ठा आदि करने की विधि। ग्रहों का शुभाशुभ निरूपण। कुण्ड और मण्डप का लक्षण। वट और गूलर की ग्राह्यता का कथन आदि (तोरण) बन्दनवार का लक्षण। कषाय पञ्चक (वटादि वृक्षों के रस) स्नानोपयुक्त ओषधियों का कथन। कलशस्थापन आदि की विधि। गन्धक, अभ्रक आदि का कथन।		
९६	**प्रतिष्ठा में अधिवासन की विधि**	३५९	१२८
	पूर्व आदि दिशाओं में नन्दी आदि देवताओं की स्थापना आदि का कथन और अन्तर्याग। विशेष अर्घ्य आदि का कथन। लोकपालादि का पूजा-प्रकार-वर्णन। ब्राह्मण द्वारा श्रीसूक्त आदि का पाठ। लिंग में जीव आदि के न्यास का वर्णन। तत्त्व और तत्त्वेश्वरादि का घृत आदि से पूजन। होम विधि। बिना अधिवासन के याग की निष्फलता का कथन।		
९७	**शिव-प्रतिष्ठा की विधि**	३७०	८९
	द्वारपाल आदि की पूजा का प्रकार। शिला-विन्यास आदि का कथन। वक्र आदि दोषयुक्त लिंग में सौ बार हवन और शिव-शान्ति-पाठ। शिवलिंग प्रतिष्ठा। कलश के जल से शिव को नहलाना। चल लिंग का संस्कार। मृत्तिकामय लिंगादि का पूजन।		
९८	**गौरी-प्रतिष्ठा-विधि**	३७८	१७
	प्रतिष्ठापक मन्त्र।		
९९	**सूर्य-प्रतिष्ठा-विधि**	३८०	५
१००	**द्वार-प्रतिष्ठा-विधि**	३८१	९
	कषायादि से द्वार का अंग-संस्कार। मूल, मध्य और अन्य भाग में आत्मा और ईश्वर का विन्यास।		
१०१	**प्रासाद-प्रतिष्ठा-विधि**	३८२	१३
	शय्या पर कुम्भादि (कलश) का आरोपण।		
१०२	**ध्वजारोपण**	३८३	३०
	बाँस आदि के दण्ड का सकलकामनादायकत्व कथन। ध्वजारोपण के समय		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	ध्वजभंग होने पर राजा और यजमान का अनिष्ट-कथन, तदर्थ शान्ति-विधान। दण्ड में अर्थतत्त्व का विन्यास। प्रतिमा, लिंग और वेदी की प्रतिष्ठा का फल।		
१०३	**जीर्णोद्धार-विधि**	३८६	२२
	चिह्नरहित, अंग-भंग शिवलिंग के पिण्डी आदि के परित्याग का कथन। द्वारपूजन आदि का विधान। मन्दिर के टूट जाने पर उतने ही परिमाण से जीर्णोद्धार कथन। घटाने-बढ़ाने पर मरण, धन-क्षयादि दोष की सम्भावना का वर्णन।		
१०४	**प्रासाद-लक्षण**	३८८	३४
	शकुन-परीक्षा।		
१०५	**गृह आदि का वास्तु-शोधन**	३९२	३९
	दिशाओं में ईश आदि देवताओं का पूजन। पूर्वादि दिशा द्वारों के फल का कथन।		
१०६	**नगर आदि का वास्तु-कथन**	३९६	२४
	योजन आदि परिमाण में स्थान-निरूपण। आग्नेय आदि दिशाओं में सोनार, बढ़ई आदि को पृथक्-पृथक् बसाने का कथन।		
१०७	**स्वायंभुव सर्ग का कथन**	३९८	१९
	प्रियव्रत के पुत्रों का नाम-कथन। अग्नीध्र आदि को प्रियव्रत द्वारा जम्बूद्वीप आदि का दान। प्रियव्रत का वैकुण्ठ-गमन। ऋषभ से मेरु देवी में भरत की उत्पत्ति। भरत से सुमति आदि की उत्पत्ति।		
१०८	**भुवनकोश कथन**	४००	३३
	जम्बू आदि सातों द्वीपों का वर्णन। मेरु पर्वत का परिमाण-कथन। भारत, किंपुरुष आदि वर्षों का वर्णन। मर्यादा पर्वतों का वर्णन। केसर आदि में लक्ष्मी आदि देवताओं का स्थान-कथन। कुल पर्वत आदि का वर्णन।		
१०९	**तीर्थ-माहात्म्य**	४०३	२४
	पुष्कर माहात्म्य-वर्णन। कण्वाश्रम आदि का कथन। कुरुक्षेत्र की महिमा का वर्णन। धर्म-तीर्थ आदि का वर्णन।		
११०	**गङ्गा-माहात्म्य**	४०५	६
१११	**प्रयाग-माहात्म्य**	४०६	१४
	प्रयाग में दान आदि की प्रशंसा। माघ-स्नान की महिमा। गंगाद्वार आदि में गंगा की दुर्लभता।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
११२	**वाराणसी-माहात्म्य**	४०८	७
	अविमुक्तेश्वर-वर्णन। वाराणसी में स्नान-दानादि की प्रशंसा।		
११३	**नर्मदा-माहात्म्य**	४०९	७
	प्रसंगतः श्रीपर्वत का वर्णन। दान आदि की प्रशंसा।		
११४	**गया-माहात्म्य**	४१०	४१
	प्रसंगतः गयासुर का आख्यान। ब्रह्मयाग-वर्णन। याग में ब्राह्मणों को ब्रह्मा के द्वारा शाप-दान आदि का वर्णन। उनके शाप का विमोचन।		
११५	**गया-यात्रा-विधि**	४१४	७४
	गया-गमन की प्रशंसा। तीर्थ में मुण्डन आदि का विधान। गया में माता का पृथक् श्राद्ध-कथन। पिता आदि का नौ देवता निमित्त श्राद्ध-कथन। कनखल तीर्थ की प्रशंसा। फल्गु तीर्थ का वर्णन। फल्गु तीर्थ में श्राद्ध की अनिवार्यता का वर्णन। मतंग वापी में स्नानादि का कथन। ब्रह्म सरोवर में स्नानादि का विधान। दशाश्वमेध में पितामह दर्शनपूर्वक श्राद्ध करने का विधान। पिण्डदान की प्रशंसा। पिण्डदान से पितरों की मुक्ति। अन्नदान की प्रशंसा।		
११६	**गया-यात्रा की विधि**	४२०	४३
	प्रातःकाल स्नानपूर्वक श्राद्ध-कर्म करना। मध्याह्न-काल में सन्ध्योपासन करके श्राद्ध का कर्त्तव्य पूरा करना। काकशिला पर बलि प्रदान करना। सोमकुण्ड आदि तीर्थों में पिण्डदान। महालक्ष्मी आदि देवताओं का पूजन। गदाधर-स्तोत्र। श्राद्धादि में गया-माहात्म्य का पाठ करने में ब्रह्मलोक की प्राप्ति।		
११७	**श्राद्धकल्प**	४२४	६६
	श्राद्धकर्म में आचारसम्पन्न ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना। सफेद कोढ़ से युक्त ब्राह्मण को न खिलाना। श्राद्ध में ब्राह्मणों के बैठाने की प्रक्रिया। श्राद्धकर्त्ता को ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करना। आवाहन आदि विधि का निरूपण। अग्नि में आहुतिकरण। पिण्डदान-विधि। प्रसंगतः एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि का निरूपण। सपिण्डीकरण-विधि। आभ्युदयिक श्राद्ध-विधि। फलादि से पितरों की अधिक तृप्ति का वर्णन। प्रतिपदा आदि तिथियों में काम्य श्राद्ध आदि से धनादि की प्राप्ति। पिता के जीवित रहने पर पुत्रादि के द्वारा पितामह आदि का वृद्धि-श्राद्ध करना। तीर्थ आदि में श्राद्ध की अवश्यकर्त्तव्यता।		
११८	**भारतवर्ष का वर्णन**	४३०	८
	भारतवर्ष का परिमाण महेन्द्र आदि कुलपर्वतों का कथन। नौ द्वीपों का कथन। नर्मदा		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	आदि नदियों का कथन। महाद्वीप आदि का वर्णन। जम्बू आदि द्वीपों का वर्णन। भूमि-परिमाण।		
११९	**महाद्वीप आदि का वर्णन**	४३१	२८
	जम्बू आदि द्वीपों का वर्णन। भूमि-परिमाण।		
१२०	**भुवनकोश वर्णन**	४३४	४२
	अतल आदि सात पातालों का वर्णन। भूमि, सूर्यमण्डल आदि का मध्य परिमाण-कथन। सूर्यरथ का परिमाण-कथन। ध्रुवस्थान-वर्णन। सोम आदि ग्रहों का रथ परिमाण-कथन। इस अध्याय के पाठ का फल।		
१२१	**ज्योतिःशास्त्र-कथन**	४३८	७९
	वधू-वर का गुणागुण विचार-कथन। विवाहादि वर्णन। पुंसवनकाल। अन्नप्राशनकाल। शत्रुस्तम्भन आदि मन्त्र। कर्णवेध आदि का काल। वस्त्रधारण आदि का काल। ग्रहणकाल में दान की प्रशंसा। बालव आदि करण में सूर्य-संक्रान्ति होने पर लोकमंगल होना। चतुष्पद आदि में सूर्य-संक्रान्ति होने पर राजा आदि का अशुभ होना। सूर्य आदि का दशा काल।		
१२२	**काल-गणना**	४४५	२४
१२३	**युद्धजयार्णवीय नाना योग**	४४८	३४
	स्वरोदय चक्र। शनि-चक्र। कूर्म-चक्र। राहु-चक्र। चण्डी आदि ओषधियों के धारण से जय की प्राप्ति। जय-प्राप्ति में तिलक आदि का विधान।		
१२४	**युद्धजयार्णवीय ज्योतिःशास्त्र का सार**	४५१	२३
	जय-प्राप्ति में मन्त्रपूर्वक मृत्युञ्जय पूजा।		
१२५	**युद्धजयार्णवीय नाना चक्र**	४५४	५५
	मारण, पातन, मोहन तथा उच्चाटन के मन्त्रों का कथन। शत्रुस्तम्भन आदि में मिट्टी के हाथी आदि का कथन और होमादि विधि का निरूपण।		
१२६	**नक्षत्रों का निर्णय**	४५९	३६
	जय, पराजय आदि के विवेक में शकुन-परीक्षा। अश्विनी आदि विशेष नक्षत्रों में यात्रा। अनुराधा आदि विशेष नक्षत्रों की सभी कार्यों में प्रशस्ति। राज्याभिषेक आदि में शुभ नक्षत्रों आदि का कथन।		
१२७	**अनेक प्रकार के बलों का निरूपण**	४६३	१९
	जय आदि की प्राप्ति में विष्कम्भ आदि योगों में घटिकात्याग का प्रकार। ग्रहों की अनुकूलता का कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१२८	कोटचक्र	४६५	१३
१२९	अर्घकाण्ड	४६६	५
१३०	मण्डल आदि का कथन	४६७	१९
	आग्नेयमण्डल का वर्णन। वायव्यमण्डल का कथन। वारुण-मण्डल, माहेन्द्र-मण्डल, सोमग्रास-कथन।		
१३१	घातचक्र आदि का वर्णन	४६९	२०
	जयचक्र आदि का वर्णन।		
१३२	सेवाचक्र आदि का कथन	४७१	२५
	ताराचक्र का कथन।		
१३३	नाना बलों का निरूपण	४७४	४७
	भास्कर आदि ग्रहों की दशा का वर्णन। शत्रु-संहारक भैरव मन्त्र का कथन। भैरव ध्यान-वर्णन। शत्रु-सेना को भंग करने का प्रयोग। जय-प्राप्ति में तार्क्ष्य (गरुड़) चक्र का वर्णन। महातार्क्ष्य का स्वरूप। शत्रु-सेना के क्षय के निमित्त पिच्छिका आदि विधि का निरूपण। शत्रु नाशार्थ भंग-विद्या आदि का कथन।		
१३४	त्रैलोक्यविजयविद्या	४७९	५
	जय-प्राप्ति के लिए होमादि का कथन।		
१३५	संग्रामविजयविद्या	४८०	७
	चामुण्डा देवी के ध्यान आदि का कथन।		
१३६	नक्षत्र-चक्र	४८२	८
१३७	महामारी विद्या का कथन	४८३	२१
	शत्रु-क्षय के लिए शव आदि के वस्त्र पर देवता का स्वरूप-निर्माण करना। बकरी के रक्त मिश्रित नीम की समिधाओं से हवन करना। शत्रुओं के उच्चाटन आदि की विधि।		
१३८	षट् कर्मों का निरूपण	४८५	१४
	पल्लव लक्षण। वंश-विनाश आदि में योगाख्य आदि सम्प्रदायों का कथन। शत्रुनाश के लिए शुक्लपक्ष में यम की पूजा। यम देवता के उद्देश्य से होमादि का विधान।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१३९	साठ संवत्सर	४८७	१३
	प्रभव आदि संवत्सरों का फल-निरूपण।		
१४०	वश्यादि योग	४८८	१७
१४१	छत्तीस पदकों का ज्ञान	४९०	१६
	हरीतकी आदि का फल-कथन। मृतसंजीवनी योग का कथन। सर्वरोग प्रशमनादि योग।		
१४२	मन्त्रौषधादि	४९२	२१
	प्रश्न के विषम आदि वर्णनों के द्वारा गर्भस्थ शिशु आदि का लक्षण-कथन। शनि-चक्र आदि का कथन।		
१४३	कुब्जिका-पूजा	४९५	१७
१४४	कुब्जिका मन्त्र आदि का कथन	४९७	४१
१४५	मालिनी-मन्त्र	५००	३०
	शाक्त और शाम्भव आदि मन्त्रों का न्यास।		
१४६	अष्टाष्टक देवियाँ	५०३	२८
	त्रिखण्डी आदि देवताओं का मन्त्र-कथन।		
१४७	त्वरिता-पूजा	५०६	१२
	गुह्य कुब्जिका आदि देवताओं का मन्त्र-निरूपण।		
१४८	संग्राम-विजय के लिए पूजा	५०८	९
	दीप्ता, सूक्ष्मा आदि देवताओं का पूजन।		
१४९	लक्षकोटि होम	५०९	१५
	होम से उत्पात का नाश। होम का फल-कथन। अयुतादि होमों का विशेष कथन। होम के अनुरूप से कुण्ड का परिमाण।		
१५०	मन्वन्तर-वर्णन	५१०	३१
	स्वायंभुव से लेकर आग्नीध्र आदि सुतों की उत्पत्ति। उन मन्वन्तरों में सप्तर्षि आदि की उत्पत्ति। वेदों का विभाग।		
१५१	वर्णेतर धर्म	५१३	१८
	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों का आचार-निरूपण। चाण्डाल आदि की उत्पत्ति का कथन। उनकी उपजीविका का वर्णन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१५२	**गृहस्थ-वृत्ति का कथन**	५१५	५
१५३	**ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के धर्म**	५१६	१६
	गर्भाधान, पुंसवन का समय। सीमन्तोन्नयन का समय। जातकर्म आदि का कथन। ब्राह्मण आदि के उपनयन का समय।		
१५४	**विवाह-कथन**	५१७	१९
	ब्राह्मण की ब्राह्मणी आदि चार पत्नियों के परिग्रहण में अधिकार का कथन। क्षत्रिय की क्षत्रिया आदि तीन भार्याएँ, वैश्य की वैश्या आदि दो पत्नियाँ, शूद्र की शूद्र जातीय एक ही पत्नी का कथन। विवाह-भेद का कथन। विवाह में शची-पूजन का विधान। विवाह में निषिद्ध काल। विवाह-काल। विवाह में ग्रहों की अनुकूलता का कथन।		
१५५	**आचार-वर्णन**	५१९	३१
	नित्य, नैमित्तिक आदि छह प्रकार के स्नान की विधि। मन्त्र-स्नान विधि। पुरुष-सामान्य का धर्म-निरूपण।		
१५६	**द्रव्य-शुद्धि**	५२३	१६
	मृत्तिका आदि द्रव्यों की शुद्धि का कथन। मार्जन आदि यज्ञ-पात्रों की शुद्धि। गृह आदि की शुद्धि।		
१५७	**प्रेतशुद्धि-वर्णन**	५२५	४२
	मृतकाशौचादि। जन्म और मरण में सपिण्डों की दस दिनों में शुद्धि। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की क्रमशः बारह दिन, एक पक्ष और एक मास में शुद्धि। प्रेत को उद्देश्य करके श्राद्धादि का कथन। शूद्र का बुलाने का कर्म। पर्वत से गिरकर, अग्नि में जलकर, फाँसी लगाकर, आत्महत्या करनेवाले पतितों के, बिजली गिरने से मरनेवालों, शस्त्रों से विहत होनेवालों के मरने पर सपिण्डों का अशौचाभाव। ब्राह्मण द्वारा शूद्र के और शूद्र द्वारा ब्राह्मण के शव उठाने पर दोष-कथन। अनाथ ब्राह्मण के शव वहन करने से स्वर्ग आदि की प्राप्ति। शव वहन करने की विधि। अनुत्पन्न दाँतवाले शिशुओं के अग्नि संस्कार का अभाव-कथन।		
१५८	**गर्भस्त्रावादि अशौच का कथन**	५२९	६९
	ब्राह्मण आदि के अस्थि संचय का समय। सपिण्ड आदि का मृतकाशौच कथन। आत्महत्या करनेवालों को नरक की प्राप्ति। मृतक के दशाह कर्म का निरूपण। पिता के मर जाने पर पुत्र आदि का धर्म-कथन। पुत्र के जन्म-दिन में कर्त्तव्य श्राद्ध का कथन। अशौच संपात का निर्णय।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१५९	**असंस्कृत आदि का शौच**	५३६	१४
	गंगा में अस्थि प्रक्षेप करने से मृतक के अभ्युदय आदि का कथन। आत्महत्या करनेवाले पतितों की जल-क्रिया न होने का कथन। उनको उद्देश्य करके नारायण बलि देने का प्रतिपादन।		
१६०	**वानप्रस्थाश्रम**	५३८	५
	वनवासियों के धर्म।		
१६१	**संन्यासी के धर्म**	५३९	३१
	प्राजापत्य यज्ञ के द्वारा अपने को आरोपित करके गृह से प्रव्रजन करना। संन्यासी के ग्रहण करने योग्य पात्रों का कथन। पाँच प्रकार की भिक्षा। हिंसा-दोष निवृत्ति के लिए प्राणायाम आदि का कथन। भिक्षु के कुटीचक्र आदि चार भेद। प्रसंगतः यम, नियम का कथन। सगर्भ और अगर्भ भेद से प्राणायाम के दो प्रकार। पूरक, कुम्भक और रेचक भेद से पुनः उसके तीन प्रकार। संन्यासी के कर्त्तव्य ध्यान आदि का कथन।		
१६२	**धर्मशास्त्र का कथन**	५४२	१८
	प्रवृत्त, निवृत्त भेद से दो प्रकार का कर्म। श्रावणी पूर्णिमा को स्वाध्यायों की उपाकर्म विधि। सैंतीस अनध्यायों का कथन।		
१६३	**श्राद्धकल्प-कथन**	५४४	४२
	ब्राह्मणों के निमंत्रण आदि का कथन। देवकर्म और पितृकर्म के क्रमशः युग्म और अयुग्म संख्यावाले ब्राह्मणों को बैठाने का कथन। 'विश्वेदेवासह' इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण-पूजन का विधान। पिण्डदान-निरूपण। वृद्धि श्राद्ध-कथन। एकोद्दिष्ट-श्राद्ध-विधि। सपिण्डीकरण विधान। एक वर्ष तक जल सहित घटदान आदि का विधान। मासिक आदि श्राद्धों का कर्त्तव्यत्वेन विधि-निरूपण। श्राद्धकर्त्ता को स्वर्गादि का विधान।		
१६४	**नवग्रह होम**	५४८	१४
	ताँबे आदि से ग्रहों की प्रतिमा बनाने का विधान। 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र से अर्क आदि की समिधा से हवन। दक्षिणा में धेनु आदि का प्रदान।		
१६५	**नाना धर्म**	५४९	२८
	ध्यान करनेवाले को श्राद्धादि देने का निरूपण। गजच्छाया में श्राद्धादि दान से पितरों को अक्षय तृप्ति की प्राप्ति। योगविधि-निरूपण। विजातीय से प्राप्त गर्भवाली स्त्री का दोष-निरूपण। गर्भ के बाद रजोधर्म हो जाने पर स्त्री की शुद्धि का विधान। ध्यान		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	द्वारा पाप कर्मों का शोधन। नैष्ठिकधर्म में आरूढ़ व्यक्ति का व्रत से सम्बन्ध होने पर प्रायश्चित्ताभाव कथन। पत्नी का परित्याग कर संन्यास ग्रहण करके पुनः सन्तान उत्पन्न करने पर वह सन्तान 'विदुर' नामक चाण्डाल कहलाती है, ऐसा कथन। योग की श्रेष्ठता।		
१६६	**वर्णधर्मादि कथन**	५५२	२२
	अड़तालीस संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति को ब्रह्मलोक की प्राप्ति। गर्भाधान आदि संस्कारों का निरूपण। दया आदि आठ गुणों का कथन। प्रचार आदि में मौन धारण। जल आदि से पंक्ति दोषाभाव।		
१६७	**अयुतलक्षकोटि होम**	५५४	४४
	ग्रह प्रतिष्ठापन आदि का प्रकार। अभिषेक मन्त्र का कथन। विवाहोत्सव और यज्ञ आदि में ग्रह यज्ञ की आवश्यकता। कुण्ड के परिमाण का लक्षण। अभिचार कर्मों में त्रिकोण कुण्ड का विधान। अभिचार कर्म की विधि। पिष्टपिण्ड से शत्रु का रूप बनाकर छूरे से काटने का विधान।		
१६८	**महापातक आदि का कथन**	५५७	४०
	पागल, क्रोधी आदि का अन्नभक्षण निषेध। गणिका आदि के अन्न का भी अभक्ष्य होने का निरूपण। अभिशप्त व्यक्ति का अन्न त्याग-कथन। निमन्त्रित होकर शूद्र ब्राह्मण का अन्न न खायें। उनके अन्नभक्षण से प्रायश्चित्त का वर्णन। चाण्डाल और मेहतर (श्वपच) का अन्न भक्षण करने पर चान्द्रायण-व्रत का विधान। शशक आदि पंचनखवाले जीवों के किसी कुएँ में मर जाने पर उस कुएँ का जल पी लेने पर उपवास करना। शूकर, गधा, ऊँट आदि के मूत्र, मल भक्षण करने पर चान्द्रायण-व्रत करना। गाय, मनुष्य और अश्व आदि का मांस भक्षण करने पर तप्तकृच्छ्र आदि का प्रायश्चित्त करना। ब्रह्महत्या आदि महापातकों का कथन। ब्रह्महत्या के समान पातकों का निरूपण। उपपातक का कथन। जातिभ्रष्ट करनेवाले का कथन।		
१६९	**प्रायश्चित्त-वर्णन**	५६१	४१
	ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कथन। गोहत्या आदि का प्रायश्चित्त कथन। ब्रह्मचर्य व्रत भंग करनेवाले का चान्द्रायणादि व्रत-विधान। मदिरापान का प्रायश्चित्त। सोना चुराने का प्रायश्चित्त। गुरुपत्नी गमन का प्रायश्चित्त। जातिभ्रंश का प्रायश्चित्त कथन। बिल्ली आदि के मारने का प्रायश्चित्त कथन। तुच्छ वस्तु के चुराने पर प्रायश्चित्त। भक्ष्य, भोज्य आदि चुराने का प्रायश्चित्त कथन। अगम्या स्त्री के साथ गमन करने का प्रायश्चित्त।		
१७०	**प्रायश्चित्त-वर्णन**	५६५	४६
	पातकी के साथ संसर्ग करनेवाले का प्रायश्चित्त कथन। पतित को जलदान देने का		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	कथन। असत्प्रतिग्रह होने पर प्रायश्चित्त का विधान। कुत्ते और शृगाल के काट लेने पर प्रायश्चित्त। अज्ञान से चाण्डाल आदि के गृह में वास करने पर और पश्चात् गृहपति के चाण्डाल होने का ज्ञान हो जाने पर प्रायश्चित्त करना। म्लेच्छों का सम्पर्क होने पर प्रायश्चित्त करना। एक रजस्वला स्त्री के द्वारा दूसरी रजस्वला स्त्री का स्पर्श हो जाने पर प्रायश्चित्त करना।		
१७१	**प्रायश्चित्त-वर्णन**	५६९	१७
	रहस्य (गुप्त पाप) आदि का प्रायश्चित्त। सभी प्रायश्चित्तों में मुण्डन आदि का विधान। वीरासन का लक्षण। संन्यासी के चान्द्रायण का लक्षण। शिशुओं के चान्द्रायण व्रत और देवताओं के चान्द्रायण व्रत का लक्षण। तप्तकृच्छ्रव्रत का लक्षण। कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत का लक्षण। कृच्छ्रसान्तपन व्रत का लक्षण। महासान्तपन का लक्षण। अतिसान्तपन का लक्षण। तप्तकृच्छ्रादिव्रत का कथन। ब्रह्मकूर्चव्रत का लक्षण।		
१७२	**सभी पापों के प्रायश्चित्त**	५७१	२१
	विष्णु के पापप्रणाशन स्तोत्र का वर्णन।		
१७३	**प्रायश्चित्त-वर्णन**	५७३	५४
	ब्रह्महत्या का स्वरूप कथन। ब्रह्महत्यादि के प्रायश्चित्त। लकड़ी आदि से गोहत्या करने पर सान्तपन व्रत का विधान। वीर्य, मूत्र और विष्ठा के पान का प्रायश्चित्त। मनुष्यहरण आदि दोषों का प्रायश्चित्त।		
१७४	**प्रायश्चित्त**	५७८	२४
	देवाश्रम में अर्चन (पूजन) आदि के लोप होने पर प्रायश्चित्त। पापक्षय के लिए अन्नदान आदि का निरूपण। गंगा आदि तीर्थों का पापहारकत्वेन कथन। पाप मिटानेवाले काशी आदि तीर्थों का कथन।		
१७५	**व्रत-परिभाषा**	५८०	६२
	व्रत में वर्जनीय द्रव्यों का कथन। बार-बार जलपान करने से उपवास का भंग होना। सब प्रकार के व्रतों में साधारण धर्म का प्रतिपालन। व्रत में ग्रहण करने योग्य द्रव्यों का निरूपण। व्रत में कूष्माण्ड (कोंहड़ा) का निषेध। प्रसंगतः प्राजापत्य, अतिकृच्छ्र, सान्तपन, महासान्तपन, पराक और चान्द्रायण का लक्षण। ब्रह्मकूर्च का लक्षण। मलमास में अग्न्याधेय आदि का निषेध। चान्द्रमास आदि का वर्णन। पितृपक्ष में श्राद्ध की कर्त्तव्यता। गर्भिणी, प्रसूतिका, रजस्वला आदि का अशुद्धिकाल में दूसरे के द्वारा व्रतादि का सम्पन्न कराना। क्रोध आदि से व्रतभंग होने पर प्रायश्चित्त। व्रत की परिपूर्ति के लिए भगवान् जगदीश की प्रार्थना। व्रत के अंगभूत ब्राह्मण-भोजन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१७६	**प्रतिपदा व्रत**	५८६	७
	पंचदशी (पूर्णिमा) को निराहारपूर्वक प्रतिपदा में ब्रह्मार्चन विधान। सलक्षण सुवर्णब्रह्म-पूजन। शक्तिपूर्वक ब्रह्मा को दुग्धदान। व्रतफल का विधान। मार्गशीर्ष की प्रतिपदा में शिखिव्रत।		
१७७	**द्वितीया व्रत**	५८७	२०
	द्वितीया में अश्विनीकुमार का पूजन। कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया में यम का पूजन। श्रावण कृष्णपक्ष की द्वितीया में अशून्यशयनव्रत करण। अशून्यशयनव्रत का विधिनिरूपण। कार्तिक शुक्लपक्ष में कान्तिव्रत। उस व्रत की विधि। पौष शुक्लपक्ष की द्वितीया में विष्णु का व्रत। उस व्रत के विधान का निरूपण।		
१७८	**तृतीया व्रत**	५८९	२८
	चैत्र शुक्लपक्ष की तृतीया में मूलगौरीव्रत। उस व्रत की विधि का निरूपण। भाद्रपद, वैशाख और मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष में भी इस व्रत का विधान। फाल्गुन आदि की तृतीया विधि में सौभाग्य व्रत का कथन।		
१७९	**चतुर्थी व्रत**	५९२	६
	मार्गशीर्ष की चतुर्थी में गणेश-व्रत। इनके मन्त्र का कथन, गणेश-पूजन विधि। भाद्रपद चतुर्थी व्रत। अंगारक चतुर्थी व्रत।		
१८०	**पंचमी व्रत**	५९३	३
	भाद्रपद आदि मास के शुक्लपक्ष की पंचमी में वासुकी आदि का पूजन।		
१८१	**षष्ठी व्रत**	५९३	२
	कार्तिक व्रत में षष्ठी आदि का विधान। भाद्रपद में स्कन्द षष्ठी। मार्गशीर्ष में कृष्ण षष्ठी व्रत।		
१८२	**सप्तमी व्रत**	५९४	४
	माघ आदि के शुक्लपक्ष में सूर्य की पूजा।		
१८३	**अष्टमी व्रत**	५९५	१८
	जन्माष्टमी व्रत। रोहिणी सहित चन्द्रमा को अर्घ्यदान देने की विधि। व्रत-पूजा-विधि का कथन। व्रत की महिमा का वर्णन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१८४	**अष्टमी व्रत**	५९७	२३
	चैत्र कृष्ण अष्टमी में कृष्णाष्टमी व्रत। मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी में नक्तव्रत। पौष मास आदि में शिव-व्रत और उसका विधान-कथन। बुधाष्टमी-व्रत-कथन। बुधाष्टमी कथा निरूपण। पुनर्वसु नक्षत्र में अशोक रसपान का विधान।		
१८५	**नवमी व्रत**	५९९	१५
	आश्विन शुक्लपक्ष में नवमी व्रत। रुद्रचण्डा आदि देवताओं का पूजन। आयुध-पूजन। पशुहनन का विधान। इसके रुधिर से पूतना आदि देवताओं का संतर्पण। इसके आगे पिष्टमय शत्रु का हनन। उसके हवन का विधान। जयन्ती आदि को उद्देश्य करके बलिदान आदि का कथन।		
१८६	**दशमी व्रत**	६०१	१
१८७	**एकादशी व्रत**	६०१	९
	एकादशी में पूजा आदि का विधान।		
१८८	**द्वादशी व्रत**	६०३	१४
	चैत्र शुक्ल द्वादशी को मदनद्वादशी व्रत। माघ शुक्ल द्वादशी में भीमद्वादशी व्रत। फाल्गुन शुक्ल द्वादशी में गोविन्दद्वादशी व्रत। आश्विन शुक्ल द्वादशी में विशोक-द्वादशी व्रत। मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी में कृष्ण की अभ्यर्चना करके लवण-दान की विधि। भाद्रपद में गोवत्सद्वादशी व्रत। श्रवण युक्त द्वादशी में तिलद्वादशी व्रत। फाल्गुन शुक्लपक्ष में मनोरथद्वादशी व्रत। केशव आदि नामों से नामद्वादशी व्रत। भाद्र शुक्ल में आनन्दद्वादशी व्रत। पौष शुक्ल द्वादशी में सम्प्राप्तिद्वादशी व्रत।		
१८९	**श्रवणद्वादशी व्रत**	६०४	१५
	भाद्रपद शुक्लपक्ष द्वादशी में श्रवणद्वादशी व्रत। वामनद्वादशी व्रत। इसकी पूजा-विधि।		
१९०	**अखण्डद्वादशी व्रत**	६०६	६
	मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की द्वादशी में अखण्डद्वादशी व्रत। द्वादशी में यव, धान्य आदि से युक्त पात्र का दान। चैत्रादि मासों में सत्तू पात्र आदि दान करने का विधान।		
१९१	**त्रयोदशी व्रत**	६०७	११
	मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष त्रयोदशी में अनंगत्रयोदशी व्रत। पौषादि मासों में योगेश्वर आदि का पूजन। आश्विन मास में त्रिदशाधिप-पूजन। कार्तिक में विश्वेश्वर-पूजन। वर्षान्त में शिव की स्वर्ण प्रतिमा का दान।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१९२	**चतुर्दशी व्रत**	६०८	१०
	कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को शिव-पूजन। शुक्ल कृष्ण पक्षों की चतुर्दशी और अष्टमी को शिव का पूजन। अनंगचतुर्दशी व्रत। चावल के चूर्ण का पुआ बनाना।		
१९३	**शिवरात्रि व्रत**	६१०	६
	माघ कृष्ण चतुर्दशी को शिवरात्रि व्रत।		
१९४	**अशोकपूर्णिमादि व्रत**	६११	८
	फाल्गुनी पूर्णिमा को अशोकपूर्णिमा व्रत। कार्तिक पूर्णिमा को वृषोत्सर्गपूर्वक वृषभ व्रत कथन। माघ की पंचदशी को छाग-पूजन। ज्येष्ठ मास की पंचदशी को सावित्री व्रत। इस व्रत का विधान।		
१९५	**वार व्रत**	६१२	५
	हस्त नक्षत्र में सूर्यवार का व्रत। रात्रि में आब्दिक व्रत। चित्रा नक्षत्र में सोमवार व्रत। स्वाती नक्षत्र में भौम व्रत। विशाखा नक्षत्र में बुध व्रत। अनुराधा नक्षत्र में गुरुवार व्रत। ज्येष्ठा नक्षत्र में शुक्रवार व्रत। मूल नक्षत्र में शनि व्रत।		
१९६	**नक्षत्र व्रत**	६१३	२३
	मूलादि में विष्णु के चरण आदि का पूजन। कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र में केशव आदि नामों से अच्युत पूजन। कार्तिक आदि चार मासों में अन्नदान की कर्त्तव्यता। फाल्गुन आदि चार मासों में खिचड़ी दान। आषाढ़ आदि में खीर दान। नक्षत्र-व्रत में अनन्त व्रत कथन। अनन्त को उद्देश्य करके घृत से चार मास तक हवन करना। चैत्र आदि में चावल से हवन करना।		
१९७	**दिवस व्रत**	६१५	१६
	धेनुव्रत का कथन। पयोव्रत। कल्पवृक्ष व्रत। त्रिरात्रव्रत की महिमा का वर्णन। कार्तिक शुक्ल दशमी में कार्तिक व्रत। चैत्र में त्रिरात्र आदि व्रत का वर्णन।		
१९८	**मास व्रत**	६१७	१६
	आषाढ़ आदि में चतुर्मास व्रत। वैशाख मास व्रत। माघ और चैत्र में गुड़ की धेनु का दान। मार्गशीर्ष आदि मासों में नक्तव्रत। मांस आदि के त्याग से विप्रत्व आदि की प्राप्ति का कथन। आश्विन में कौमुदव्रत। कौमुदव्रत का फल निरूपण।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
१९९	**नाना व्रत**	६१९	११
	वर्षाकाल में ईंधन दान-व्रत। संध्याकाल में मौनव्रत। तिल, घण्टा और वस्त्र दान आदि के व्रत। संक्रान्ति व्रत। उमा व्रत।		
२००	**दीपदान व्रत**	६२०	१९
	दीपदान की प्रशंसा। दीपदान से विदर्भ राजकुमारी ललिता को राजपत्नीत्व की प्राप्ति। दीपहरण करनेवाले को नरक आदि की प्राप्ति।		
२०१	**नवव्यूह का अर्चन**	६२२	१६
	कमल पर वासुदेव की अर्चना आदि का कथन। दिशाओं में प्रद्युम्न आदि देवताओं की स्थापना। गुरु द्वारा कर्त्तव्य न्यासादि का निरूपण। गुरु द्वारा कर्त्तव्य न्यास का ही शिष्य की देह में कर्त्तव्यत्व कथन। नेत्र में पट्टी बाँधे हुए शिष्य द्वारा जिस देवता की मूर्ति पर फूल चढ़ाया जाता है, उसी देवता का नामकरण। तिल-व्रीहि से होम करना। शिष्य को दीक्षा देना।		
२०२	**पुष्पवर्ग कथन**	६२४	२३
	पुष्प, गन्ध, धूप आदि से विष्णु का तोषण। मालती आदि पुष्पों से विष्णु पूजा में तत्तत् फल की प्राप्ति। पुष्पमाला चढ़ाने में अधिक पुण्य का कथन। अपने वन और दूसरे के वन (पुष्पवाटिका) में उत्पन्न पुष्पों से जंगल में उत्पन्न पुष्पों का अधिक फल कथन। झड़कर गिरे हुए पुष्पों से विष्णु पूजा का निषेध। कचनार आदि से विष्णु की पूजा करने पर नरक आदि की प्राप्ति का कथन। सुगंधित ब्रह्मपद्म आदि से विष्णु की पूजा का विधान। अर्क और मदार आदि के पुष्पों से शिव का पूजन। अहिंसा रूप पुष्पादि से ईश पूजन करने पर भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति का कथन। वारुण आदि आठ पुष्पों से पूजन का विधान।		
२०३	**नरक-स्वरूप-वर्णन**	६२६	२३
	पुष्पादि से विष्णु का पूजन करने पर नरक प्राप्ति के अभाव का कथन। आयु के अन्त में प्राणी की मृत्यु हो जाने पर अपने कर्म के द्वारा यातना शरीर की प्राप्ति। पापी को यमलोक की प्राप्ति। धर्माचरण से स्वर्ग की प्राप्ति। संयमनी पुरी में पापियों का विविध यातनाओं का भोग।		
२०४	**मासोपवास-व्रत**	६२९	१८
	आश्विन शुक्ल एकादशी को मास व्रत का विधान। व्रत नियमादि का कथन। व्रत विधि का निरूपण। व्रताचरण फल कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२०५	**भीष्मपंचक-व्रत**	६३१	९
	कार्तिक शुक्ल एकादशी को भीष्मपंचक-व्रत का कथन। पंचगव्य आदि के द्वारा विष्णु पूजा की विधि का कथन। तिल और व्रीहि आदि से होम आदि का कथन।		
२०६	**अगस्त्यार्घ्यदान-कथन**	६३२	२०
	मुनि की काश पुष्प रचित मूर्ति का पूजन। अर्घ्यदान विधि। लोपामुद्रा को अर्घ्यदान। ब्राह्मण भोजन आदि का कथन। अर्घ्यदान फल कथन।		
२०७	**कौमुद-व्रत**	६३४	६
	आश्विन शुक्लपक्ष में व्रत ग्रहण। मासपर्यन्त विष्णु का पूजन तथा व्रत विधान।		
२०८	**व्रतदानादि-समुच्चय**	६३५	१२
	समस्त व्रतों के सामान्य विधि का निरूपण।		
२०९	**दानपरिभाषाकथन**	६३६	६३
	वापी, कूप आदि के निर्माण से मुक्ति प्राप्ति का वर्णन। अग्निहोत्र वेदादि का परिपालन करने से स्वर्ग की प्राप्ति। ग्रहण आदि में दान आदि का कर्त्तव्यत्व कथन। युगादि में दान की महिमा। युगों का उत्पत्ति काल। आश्विन शुक्ल नवमी आदि में दान का आवश्यकत्वेन कथन। दान-काल में 'दाता को पूर्वमुख होना चाहिए और प्रतिगृहीता को उत्तरमुख होना चाहिए' यह कथन। सुवर्ण, अश्व, तिल आदि दान का महत्त्वदानत्व कथन। प्रतिज्ञा करके न देने पर वंश-नाश। गुरु आदि का पुण्य-दान कथन। दान में पात्र, अपात्र का विचार। कन्या आदि दान के प्राजापत्य आदि देवता हैं, यह कथन। यज्ञ के लिए शूद्र के धन का अग्राह्यत्व। अध्यापन करने और यज्ञ कराने तथा निन्दित प्रतिग्रह लेने से विप्रों का दोषाभाव कथन।		
२१०	**महादान**	६४२	३४
	तुला पुरुष आदि सोलह महादानों का निरूपण। मेरु दान का कथन। दस धेनुओं का दान। धेनु की प्रशंसा, गोदान आदि की विधि।		
२११	**नाना दान**	६४५	७२
	गोदान कथन। गोदान प्रशंसा। महिषी आदि का दान। वृषोत्सर्ग विधि का वर्णन। शय्या आदि दान का कथन। काले तिल के बने पुरुष का दान और उसकी प्रशंसा। सुवर्ण आदि दान के फल की प्राप्ति। अन्नदान की प्रशंसा। अभयदान की प्रशंसा। विद्यादान की प्रशंसा। पुस्तक दान का फल निरूपण। विष्णु आदि देवता की प्रतिमा का दान।		

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Foundation

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२१२	**मेरुदान**	६५१	३५
	मार्गशीर्ष आदि में पिष्टमय (आटे के बने) अश्व आदि के दान का वर्णन। मेरुदान की विधि। मेरुदान का फल वर्णन। महामेरुदान। सुवर्ण मेरुदान आदि का कथन।		
२१३	**पृथ्वी-दान**	६५५	१०
	पाँच भार सोने से सात द्वीपोंवाली समुद्र समेत पृथ्वी बनाकर दान का कथन। पृथ्वी दान का फल कथन। पाँच सौ पल सुवर्ण से कामधेनु बनाकर दान की विधि। धेनुदान। सालङ्कार (आभूषणयुक्त) स्त्री दान करने से अश्वमेध यज्ञ की प्राप्ति। भूमिदान आदि का कथन।		
२१४	**नाड़ीचक्र कथन**	६५६	४१
	नाभि से नीचे मूलाधार से बहत्तर हजार नाड़ियों की उत्पत्ति का कथन। उनके बीच इड़ा आदि प्रधान नाड़ियों का कथन। प्राण-अपान आदि वायुओं का प्रतिपादन। नाग, कूर्म आदि उपवायुओं का कथन। प्राणादि वायुओं का लक्षण। जीव के दस स्थानों से प्रयाण करने का वर्णन। सुषुम्ना आदि नाड़ियों का स्थान कथन। प्राणायाम कथन। अजपा गायत्री का जप विधान। देह में ब्रह्मादि देवताओं का स्थान कथन। प्रासाद का लक्षण। जप, होम आदि की विधि।		
२१५	**सन्ध्या-विधि**	६५९	५०
	'ओं'कार सभी मन्त्रों के लिए उपयोगी है, यह कथन। गायत्री-माहात्म्य-वर्णन। गायत्री मंत्र के ऋषि आदि का कथन। गायत्री के वर्ण, देवता आदि का कथन। मार्जन, अघमर्षण आदि का विधान।		
२१६	**गायत्री-निर्वाण**	६६४	१८
	गायत्री जप की कर्त्तव्यता। हवन से वृष्टि आदि की उत्पत्ति का कथन।		
२१७	**गायत्री-निर्वाण**	६६६	१३
	लिङ्गमूर्ति-शिव-स्तुति कथन। वशिष्ठ के प्रति शिव कृत वरदान आदि का कथन।		
२१८	**राज्याभिषेक कथन**	६६७	३५
	राजलक्षण। संवत्सर पर्यन्त पुरोहित आदि का वरण। राज्याभिषेक के पहले ऐन्द्री शान्ति का विधान। अभिषेक दिन के कर्त्तव्य विधि का निरूपण। अभिषेक के लिए मृत्तिकाहरण आदि का कथन। सौ छिद्रवाले सुवर्ण पात्र से अभिषेक का कथन। विष्णु आदि देवताओं की पूजा-विधि।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२१९	अभिषेक-मन्त्र	६७०	७२
२२०	सहाय सम्पत्ति	६७५	२४

राजा द्वारा ब्राह्मण और क्षत्रिय में से किसी एक नीतिज्ञ को सेनापति बनाने का कथन। दूत आदि का संग्रह। उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषों को उन-उन कार्यों में नियुक्त करने का कथन। शरण चाहने की इच्छा से दूसरे राजा के गृह से आये हुए दुष्ट और अदुष्ट का विचार करके शरण देना। राजाओं को शत्रुओं के प्रति व्यवहार करने का क्रमिक निरूपण।

२२१	अनुजीवियों का राजा के प्रति कर्त्तव्य का वर्णन	६७८	१४
२२२	दुर्ग सम्पत्ति	६७९	२६

राजा के लिए संग्रहणीय देश का कथन। दुर्ग संरचना वर्णन। विष आदि से राजा की रक्षा करने का वर्णन। प्रसंगतः विष से पीड़ित वृक्ष आदि का कथन। विषनाशक वृक्ष का ज्ञान करना। देवता सम्बन्धी द्रव्य आदि का हरण करने से राजा को नरक की प्राप्ति। देवालय आदि के निर्माण से स्वर्ग आदि की प्राप्ति। राजधर्म कथन। स्त्रीधर्म कथन।

२२३	राजधर्म	६८२	३४

ग्रामाधिपति के स्थापन आदि का कथन। प्रजापालन आदि राज-नियम का निरूपण। नष्टस्वामिक द्रव्य की व्यवस्था। राजा द्वारा ग्राह्य राज-कर का निरूपण। राजाओं द्वारा अपने धर्म के पालन से आयुवृद्धि आदि फल-प्राप्ति का कथन।

२२४	राजधर्म	६८५	४२

विरक्ता स्त्री का त्याग कथन। अनुरक्ता स्त्रियों का संग्रहण। स्नानोपयोगी द्रव्यों का कथन। मुखरोग विनाशक गुटिका का प्रयोग कथन। स्त्रियों की रक्षा का निरूपण।

२२५	राजधर्म	६८९	३३

राजकुमारों को उपदेश। राजा के लिए दिन में सोने का निषेध। राजा के गुप्त मन्त्रणा करने का कथन।

२२६	साम आदि उपायों का कथन	६९२	२०

राजपुरुषार्थ की श्रेष्ठता का वर्णन। साम आदि उपायों का अलग-अलग वर्णन। साम के तथ्यातथ्य रूप दो विधाओं का कथन। अदण्डनीय को दण्ड देने पर राजा को दोष की प्राप्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२२७	**दण्ड प्रणयन**	६९४	६७
	ताँबा, चाँदी और सुवर्णों का मान। चौरादि के दण्ड का प्रकार। एक व्यक्ति को कन्या देकर पुनः दूसरे व्यक्ति को वही कन्या देनेवाले व्यक्ति को राजा द्वारा दण्ड देने का विधान। ब्राह्मणों को धर्म का उपदेश देनेवाले शूद्र को दण्ड देने का विधान। अनेक अपराध करनेवाले पुरुषों को दण्ड देने का प्रकार।		
२२८	**युद्ध-यात्रा**	७००	८
	शत्रु जब संकट में फँसा रहे, तभी उसके ऊपर आक्रमण करने का कथन।		
२२९	**स्वप्न में शुभाशुभ तथा दुःस्वप्न हरण का कथन**	७०१	३१
	प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ प्रहर में स्वप्न देखने पर अनुक्रम से १ वर्ष, ६ माह, ३ माह, अर्धमास में फल का विधान। स्वप्न के अन्त में राजा, हाथी आदि के दर्शन का शुभ फल।		
२३०	**शकुन-वर्णन**	७०४	१३
	रणयात्रा में श्वेत वस्त्र आदि दर्शन का अशुभ फल। हरि-पूजन आदि से अमंगल का नाश। श्वेत पुष्पादि दर्शन का शुभ फल। सबसे अधिक मन की प्रसन्नता ही फलदात्री है, यह कथन।		
२३१	**शकुन-वर्णन**	७०५	३६
	छह प्रकार के शकुनों का वर्णन। गौ, अश्व, उष्ट्र आदि का ग्रामवासित्वेन कथन। गोकर्ण (खच्चर) आदि दिन में चलनेवाले होते हैं, यह कथन। वागुरी, उलूक आदि रात्रिचर हैं, यह कथन। हंस आदि का दिन-रात चलने सम्बन्धी कथन। ये सब झुण्ड में सामने दिखायी पड़ें, तो शुभ फल होता है, यह कथन। प्रयाण में नीलकण्ठ दर्शन का शुभ फल कथन।		
२३२	**शकुन-वर्णन**	७०८	३७
	संग्राम-यात्रा में अनेक प्रकार के शुभाशुभ शकुनों का फल कथन।		
२३३	**यात्रा के मुहूर्त और द्वादश राजमण्डल का विचार**	७१२	२६
	शुक्रास्त आदि में प्रयाण न करने का कथन। सूर्य आदि छायामान का कथन। जन्म लग्न में इन्द्रधनुष सम्मुख दिखने पर यात्रा का निषेध। स्वामी, अमात्य आदि राज्य के सात अंगों का कथन। मण्डल-चिन्तन-निरूपण। शत्रुओं के तीन भेद-कुल्य, अनन्तर और कृत्रिम।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२३४	**छह गुण**	७१४	२५
	परदेश में दण्ड आदि का कथन। प्रकाश और अप्रकाश रूप से दण्ड के दो भेद। छल, कपट आदि के द्वारा शत्रु को उद्विग्न करने का निरूपण। छह गुणों का पृथक् स्वरूप वर्णन।		
२३५	**राजा की नित्यचर्या**	७१७	१७
	राजव्यवहार का क्रम कथन।		
२३६	**रणदीक्षा**	७१९	६६
	युद्ध प्रयाण से पूर्व राजा के सात दिनों का कर्त्तव्य। मौदक आदि से विनायक आदि देवताओं का पूजन। राजा का विजयार्थ स्नान। सातवें दिन त्रिविक्रम पूजन। युद्ध गमन विधि का वर्णन। दस व्यूहों का प्रतिपादन। सैन्य रचनादि का वर्णन। युद्ध धर्म निरूपण। विजय-प्राप्ति के लिए देवों और ब्राह्मणों का आवश्यक पूजन। अपने अधीन हुए शत्रु का पुत्रवत् प्रतिपालन करना।		
२३७	**श्रीस्तोत्र**	७२५	१९
	श्रीस्तोत्र के पाठ का श्रवण फल।		
२३८	**रामोक्त नीति**	७२७	२२
	न्यायपूर्वक धनार्जन, वर्धन, रक्षण और सत्पात्र में वितरण, इन चार प्रकारों के राजधर्म का कथन। राजगुण कथन। कामादि का निषेध। आन्वीक्षिकी आदि के द्वारा अर्थ, विज्ञान आदि का चिन्तन-प्रकार। ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के अहिंसा आदि सामान्य धर्मों का कथन।		
२३९	**राजधर्म**	७२९	४८
	राज्य के सप्ताङ्ग का कथन। अच्छे राजा का गुण निरूपण। आत्म-सम्पदा रूप गुण का कथन। मंत्री के गुण का कथन। पुरोहित के गुण का वर्णन। मित्र-संग्रह आदि का कथन। अनुजीवियों का आचार कथन। अष्टवर्ग के परिपालन आदि का कथन।		
२४०	**छह गुण**	७३३	३२
	बारह राजमण्डल आदि का निरूपण। संधि-विग्रह यान और आसन का कथन। संधि का सोलह प्रकार। बाल, वृद्ध आदि के साथ सन्धि न करने का विचार। सापत्न्य आदि भेद से वैर का पाँच प्रकार से वर्णन। विग्रह के अवसर का वर्णन। यान के पाँच प्रकार का कथन। आसन का भी पाँच प्रकार से कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२४१	**सामदि कथन**	७३६	६८
	प्रभाव और उत्साह आदि के द्वारा मन्त्र-शक्ति की प्रशस्ति का वर्णन। विज्ञान भेद से मन्त्र के पञ्चांग का कथन। कर्मसिद्धि के लक्षण का कथन। राजदूत का लक्षण-निरूपण। शत्रु के छिद्र का पता लगाने का प्रकार। राज-व्यसन का कथन। सचिव व्यसन का कथन। राष्ट्र-व्यसन आदि का कथन। पंचविध दान का वर्णन। शत्रुओं को डराने के लिए इन्द्रजाल का निर्माण।		
२४२	**राजनीति**	७४२	७३
	सेना-रचना का वर्णन। युद्ध धर्म का कथन। सेना के विभाग से व्यूह आदि की रचना का कथन। गोमूत्रिका आदि रूप में व्यूह का वर्णन। गोमूत्रिका आदि व्यूहों का लक्षण।		
२४३	**पुरुष-लक्षण**	७४९	२६
	त्रिवलीयुक्त पुरुष का त्रिकालज्ञत्व आदि कथन।		
२४४	**स्त्री-लक्षण**	७५१	६
२४५	**चामरादि-लक्षण**	७५२	२७
	भद्रासन का लक्षण। लकड़ी के चाप आदि का निर्माण-कथन। वेदोक्त मोहनमन्त्रों द्वारा धनुष और खड्ग का पूजन-विधान। नन्दक नामक खड्ग की उत्पत्ति का कथानक। खड्ग-लक्षण। खड्ग का मुख नहीं देखना चाहिए इत्यादि धर्म-कथन।		
२४६	**रत्न-परीक्षा**	७५५	१५
	वज्र (हीरा), मरकत (पन्ना) आदि रत्नों का वर्णन। मोती की उत्पत्ति का कथन और मोती का गुण-वर्णन।		
२४७	**वास्तु-लक्षण**	७५७	३१
	चौंसठ पदों में ब्रह्मादि देवताओं की स्थापना-विधि। मन्त्रों द्वारा शिलान्यास का कथन। घर के समीप में वृक्ष रोपने का कथन। सभी वृक्षों में फल-फूल आदि की समृद्धि के लिए उपयुक्त द्रव्यों का कथन। वृक्ष का दोहद-वर्णन।		
२४८	**पुष्पादि से पूजा करने का फल**	७५९	६
२४९	**धनुर्वेद**	७६०	३७
	पाँच प्रकार के धनुर्वेद का लक्षण। यन्त्र से मुक्त आदि का लक्षण। सीधे पैर रखकर खड़े होने का लक्षण। धनुष-धारण आदि का प्रकार।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२५०	**धनुर्वेद-कथन**	७६३	१९
	धनुर्विद्या के अभ्यास आदि का प्रकार। वेध्य के विविध भेदों का वर्णन।		
२५१	**धनुर्वेद-कथन**	७६५	१२
	धनुर्विद्या की सिद्धि को लेकर वाहन आदि पर चढ़ाने का विधान।		
२५२	**धनुर्वेद-कथन**	७६७	३३
	ढाल-तलवार आदि अनेक प्रकार के शस्त्र धारण कर लेने पर भ्रान्तोद्भ्रान्त (पैतरे बदलने) आदि भेद से नाना जातीय प्रकार का वर्णन।		
२५३	**व्यवहार-कथन**	७६९	६६
	नीति, अनीति का विवेचन। दो प्रकार के अभियोग का कथन। धरोहर के लक्षण। मूल्य लेकर विक्रेय वस्तु बेचकर क्रेता को न देने सम्बन्धी विवाद का कथन।		
२५४	**व्यवहार-कथन**	७७५	२७
	ऋण चुकाने आदि का व्यवहार-कथन।		
२५५	**दिव्य प्रमाण-कथन**	७७९	५०
	साक्षी के लक्षण आदि का कथन। कूटसाक्षी (मिथ्या साक्षी) को पातक लगाने का कथन। उसको दण्ड देने का प्रकार। लिखा-पढ़ी के साथ दिये गये ऋण का देना इत्यादि कथन। सत्यपरीक्षण आदि में सात पीपल के पत्तों पर अग्निमय लौह पिण्ड को सूत्रों से वेष्ठित करके हाथों पर धारण करने का वर्णन।		
२५६	**पैतृक धन का विभाग**	७८४	३६
	माता-पिता के मर जाने के बाद सम्पत्ति को समरूप से बाँटने का कथन। विद्या से उपलब्ध धन का बँटवारा न होने का कथन। औरस आदि पुत्रों के भेद का कथन। धनाधिकारियों का निरूपण-स्त्री धन आदि का कथन। स्त्री धन के अधिकारी का कथन। दुर्भिक्ष आदि संकट-काल में स्वामी द्वारा गृहीत स्त्री धन को पुनः न लौटाने का कथन।		
२५७	**सीमा-विवाद का निर्णय**	७८७	५३
	मिथ्या सीमा-विवाद होने पर दण्ड का निरूपण। अनाज को क्षति पहुँचानेवाले भैंस आदि पशुओं को दण्ड देने का विधान। काम करनेवालों को वेतन आदि देने का कथन।		
२५८	**वाणी की कठोरता आदि का प्रकरण**	७९३	८३
	मिथ्या बोलेनेवालों को अनेक प्रकार के दण्ड का कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२५९	**ऋग्विधान**	८०१	१००
	गायत्री-जप आदि की विधि का निरूपण 'अग्निमीले पुरोहितं' इस ऋचा का एक वर्ष पर्यन्त जप करने से सभी कामनाओं की पूर्ति कथन। 'सदसस्पति' आदि मन्त्रों से अनेक प्रकार के अनुष्ठान का कथन।		
२६०	**यजुर्विधान**	८०९	८४
	होम आदि अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का निरूपण। उन अनुष्ठानों का फल कथन।		
२६१	**साम-विधान**	८१७	२४
	'यत इन्द्र भयामह' इत्यादि मन्त्र के जप से हिंसाजनित दोष के विनाश का फल। 'सर्पसाम' मन्त्र का प्रयोग करने से सर्पभय का नाश-कथन। अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का कथन। उनकी फल-प्राप्ति का वर्णन।		
२६२	**अथर्व-विधान**	८१९	२५
	होमादि अनुष्ठान की विधि।		
२६३	**उत्पात-शान्ति**	८२१	३२
	भक्तिपूर्वक श्रीसूक्त का जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति आदि का कथन। 'अमृता', 'अभया' आदि शान्तियाँ सभी प्रकार के उत्पातों की नाशक हैं, यह कथन। उल्कापात आदि की शान्ति का निरूपण। अकाल प्रसव एवं विकृत प्रसव की शान्ति का कथन। आकाश में तुरही आदि के शब्द की शान्ति।		
२६४	**देवपूजा और वैश्वदेव बलि**	८२४	२९
	मन्त्रपूर्वक विष्णु पूजा-विधि का कथन। विष्णु के उद्देश्य से होम-विधि का निरूपण। देवताओं को बलिदान-अर्पण का कथन। पिण्ड प्रदान का विधान।		
२६५	**दिक्पाल आदि का स्नान**	८२७	१८
	देवालय आदि में स्नान से पृथक् फल प्राप्ति का वर्णन। गदहपुरना आदि से उबटन लगाकर स्नान करने का विधान। मण्डल में विष्णु आदि देवता का पूजनपूर्वक होम-विधि का निरूपण। कलश में ओषधि-प्रक्षेपण का विधान।		
२६६	**विनायक-स्नान**	८२९	२०
	दुःस्वप्न-दर्शन के दोष-विनाशक विधि का प्रतिपादन। स्त्रियों की सन्तानहीनता दोष के विनाशक स्नान-विधि का निरूपण। होमादि विधि-कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२६७	**माहेश्वर-स्नान, लक्ष कोटि होम**	८३१	२६

राजा आदि के जयवर्द्धक माहेश्वर-स्नान। मन्त्रपूर्वक होम-विधि का कथन। शूलपाणि का पूजन। घृतादि के स्नानादि से आयुवर्धन रूप फल का कथन। विष्णु के चरणोदक से स्नान की उत्तमता का कथन। 'अक्रन्दयति' इस सूक्त से हाथ में मणिबन्धन आदि प्रकार का वर्णन। घृत आदि से विष्णु-स्नान। धूपदीप आदि से विष्णु-पूजन का विधान। लक्ष-होम, कोटि-होम का प्रतिपादन।

२६८	**नीराजन-विधि**	८३४	३१

जन्म-नक्षत्र में राजपूजन और अगस्त्योदय में अगस्त-पूजन। चातुर्मास्य में विष्णु पूजन। विष्णु के शयन और जागरण के अवसर पर पाँच दिन उत्सव मनाने का कथन। भाद्रपद के शुक्लपक्ष में इन्द्रध्वज स्थापनपूर्वक शची और इन्द्र का पूजन। ब्रह्मा आदि की प्रार्थना। भद्रकाली पूजन। नीराजन आदि विधियों का कथन।

२६९	**छत्रादि प्रार्थना-मन्त्र**	८३७	३९
२७०	**विष्णुपञ्जर**	८४०	१५

विष्णु के आयुध-गदा आदि का पृथक्त्वेन वर्णन। वासुदेव-प्रार्थना।

२७१	**वेदशाखादि-कथन**	८४१	२२

ऋग्वेद आदि मन्त्रों के प्रमाण-कथन। उनके शाखा-भेद का कथन। अग्निपुराण की प्रशंसा।

२७२	**पुराणदानादि माहात्म्य**	८४३	२९

महादान आदि का कथन।

२७३	**सूर्यवंश का कीर्त्तन**	८४६	३९

ब्रह्मा से मरीचि की उत्पत्ति। मरीचि से कश्यप की तथा सूर्य आदि की उत्पत्ति का कथन।

२७४	**सोमवंश का वर्णन**	८४९	२३

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनसे सोम आदि की उत्पत्ति। सोम के रूप से मोहित लक्ष्मी आदि देवता के द्वारा अपने पति का त्यागपूर्वक सोम के प्रति अभिलाषा का वर्णन। सोम द्वारा सात लोकों के स्वामित्व की प्राप्ति। सोम द्वारा तारा का अपहरण। तन्निमित्त देव-दानवों का युद्ध। तारा से बुध की उत्पत्ति। उससे पुरूरवा आदि की उत्पत्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२७५	**यदुवंश का वर्णन**	८५१	५१
	यदु से सहस्रजित् आदि की उत्पत्ति। प्रसंगतः स्यमन्तकाख्यान का कथन। पाण्डव की उत्पत्ति का कथन।		
२७६	**द्वादश संग्राम**	८५६	२५
	देवकी से कृष्ण की उत्पत्ति। संक्षेप से कृष्णचरित्र का वर्णन। नारसिंह आदि बारह संग्रामों का वर्णन।		
२७७	**राजवंश का वर्णन**	८५८	१७
	तुर्वसु से वर्गादि की उत्पत्ति।		
२७८	**पुरुवंश-वर्णन**	८६०	४१
	पुरु से जनमेजय आदि की उत्पत्ति। शान्तनु से गंगा में भीष्म की उत्पत्ति।		
२७९	**सिद्धौषध-वर्णन**	८६३	६३
	अधोगामी ज्वर में वमन एवं ऊर्ध्वगामी ज्वर में विरेचन करने का कथन। ज्वर आदि की निवृत्ति के लिए सिद्ध औषध। वात रोग आदि में तक्रारिष्ट की हितकारिता।		
२८०	**सर्वरोगहारक औषध**	८६९	४८
	शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज व्याधियों का पृथक्-पृथक् वर्णन। इनके परिहार के लिए रविवार आदि में घृत-गुड़ आदि के दान का कथन। शिशिर आदि का धर्म-कथन। रोगोत्पत्ति के निदान का निरूपण। वात, प्रकृति आदि का लक्षण-कथन।		
२८१	**रसादि लक्षण**	८७४	३३
	कषाय कल्पना आदि का कथन। कषाय में द्रव्य-परिमाण का कथन। लेह्य, चूर्ण के गुण का वर्णन। निदाघ आदि में मालिश कराने का विधान। 'अजीर्णता में परिश्रम नहीं करना चाहिए', यह कथन। व्यायाम आदि के द्वारा कफ-नाश आदि कथन।		
२८२	**वृक्षायुर्वेद-कथन**	८७७	१४
	उत्तर आदि दिशाओं में वटादिवृक्षों का शुभत्वेन कथन। ब्राह्मण और चन्द्रमा का पूजनपूर्वक वृक्षारोपण करने का विधान। अशोक आदि वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः सींचने का वर्णन। शीतकाल में एक दिन का अन्तर करके सींचने का निरूपण। वृक्षों के फल-फूल की समृद्धि के लिए बायविंडग और घृत आदि से सींचने का विधान।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२८३	**अनेक रोग-नाशक औषध**	८७९	५१
	सर्वातिसार आदि रोगों में सिंही, शटी इत्यादि ओषधियों से निर्मित काढ़े का विधान। वात-रोगनाशक औषध। बवासीर में तक्रादि सेवन करने का विधान। मूत्रकृच्छ्र आदि रोगनाशक कषायादि का वर्णन।		
२८४	**मन्त्ररूप औषध-कथन**	८८४	१४
	ओंकारादि मन्त्र आयु और आरोग्य के वर्धक हैं-यह कथन।		
२८५	**मृतकों को जिलानेवाला सिद्ध योग**	८८५	७९
	वातजन्य ज्वर आदि में बेल आदि पञ्चमूल का काढ़ा। गण्डमाला रोग-नाशक तेल आदि का कथन। स्त्रियों के प्रदर रोग-नाशक औषध। दिन और रात्रि में अन्धत्वनिवारक गुटिका, अंजन आदि का कथन।		
२८६	**मृत्युञ्जय कल्प**	८९२	२४
	रोगमर्दक त्रिफला आदि चूर्ण का कथन। कुष्ठनाशक क्वाथ आदि का कथन। बालों को काला करनेवाले तेल आदि का कथन।		
२८७	**गज-चिकित्सा**	८९५	३३
	हाथी का विशेष लक्षण कथन। गज-रोग नाशक औषध। मद से क्षीण हुए हाथी का पयःपान आदि। हाथी के नेत्रों में गौरैया आदि के मल का अंजन।		
२८८	**अश्ववाहन-सार**	८९८	६६
	घोड़े आदि वाहनों के सम्बन्ध में अश्विन्यादि नक्षत्रों की प्रशस्ति। घोड़े के मुँह पर प्रहार करने का निषेध। अश्व के शरीर में ब्रह्मा आदि देवताओं को जोड़ने का प्रकार। अश्व की प्रार्थना। अश्वारोहण आदि का वर्णन। मक्खी आदि के काटने से श्रम-विनाशक अङ्ग-लेप आदि का कथन। गुण-विशेष के दर्शन से अश्वों में द्विज जातीयता का कथन।		
२८९	**अश्व-चिकित्सा**	९०४	५६
	अश्व के लक्षण। अश्व के अतिसार रोग-नाशक क्वाथ (काढ़ा) आदि का कथन। अनार, त्रिफला, सोंठ, पीपर, मिर्च आदि को अश्वपोषक बताना। अश्व-शोथ आदि के नाशक लेपादि का कथन।		
२९०	**अश्वशान्ति**	९०८	८
	अश्व-रोगनाशक शान्ति-प्रयोग।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
२९१	**गजशान्ति**	९०९	२४
	गज-रोगनाशक शान्ति-प्रयोग।		
२९२	**गवायुर्वेद**	९१२	४४
	गौ का माहात्म्य-वर्णन। महासान्तपन व्रत-कथन। कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और तप्तकृच्छ्र आदि व्रतों का कथन। गोमती विद्या के जप से गोलोक की प्राप्ति का वर्णन। गो-रोग नाशक तेल आदि का कथन।		
२९३	**मन्त्र-परिभाषा**	९१६	५१
	स्त्री, पुरुष, नपुंसक के भेद से मन्त्र की जातियों के तीन प्रकार। स्त्री आदि मन्त्रों के लक्षण। गुरु-लक्षण। शिष्य-लक्षण। कपट से मन्त्र-ग्रहण करने की अनर्थकता। मन्त्र जप का विधान आदि। अंग सहित मन्त्रों का सिद्धिदायकत्व कथन।		
२९४	**नाग-लक्षण**	९२१	४१
	शेष, वासुकि, तक्षक आदि का प्रधानत्वेन वर्णन। विविध नाग जातियों का वर्णन। प्रस्थान-काल में शुभ शकुन आदि का कथन।		
२९५	**डँसे हुए की चिकित्सा**	९२५	३६
	विष के दो प्रकार। विषनाशक तार्क्ष्य आदि का कथन।		
२९६	**पञ्चाङ्ग रुद्र-विधान**	९२९	२१
	विष व्याधिनाशक पञ्चांग मन्त्रों का कथन। विषहरण करनेवाले कुब्जिका आदि देवताओं का कथन।		
२९७	**विषहारक मन्त्र और औषध**	९३१	१२
	विषनाशक औषध-कथन।		
२९८	**सर्पादि की चिकित्सा**	९३२	२४
	सर्पादि के विषनाशक औषध। मन्त्रपूर्वक औषध-सेवन का विधान।		
२९९	**बालादि ग्रहनाशक बालतन्त्र**	९३५	५५
	बलपीड़ा-निवर्तक धूप आदि का विधान। देवता के उद्देश्य से बलिदान आदि का विधान। बालग्रह नाशक मन्त्रों का कथन।		
३००	**ग्रहनाशक मन्त्रों का कथन**	९४१	३५
	गुरु और देवता आदि के कोप होने पर पाँच प्रकार के रोगों की उत्पत्ति। शून्य गृह आदि में ग्रहों की स्थिति आदि का वर्णन। ग्रहों से गर्भिणी आदि को होनेवाली पीड़ाओं का वर्णन। सूर्यादि ग्रहों की पूजन-विधि। ग्रह-दोष-निवारक अञ्जन आदि का कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३०१	**सूर्यार्चन**	९४४	३८
	गणपति-मन्त्र-कथन। विशेषतः चतुर्थी तिथि में गणेश-पूजन आदि का विधान। सूर्यादि ग्रहों का पूजन। सूर्य को अर्घ्य-प्रदान। सूर्यादि के पूजन से युद्ध में जय प्राप्ति आदि का वर्णन।		
३०२	**नानामन्त्रौषध-कथन**	९४८	३१
	मन्त्र द्वारा अनुष्ठान करने से खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति। वशीकरणादि औषध-कथन। लेप लगाने से प्रसव। गोरक्षकमन्त्र का कथन।		
३०३	**अङ्गाक्षरार्चन मन्त्र-कथन**	९५१	१७
	वासुदेवादि देवताओं का पूजन-विधान।		
३०४	**पञ्चाक्षर आदि पूजा-मन्त्र**	९५३	४१
	शिष्यों की दीक्षा का विधान। अनन्त योग पीठ पर तत्पुरुष आदि मूर्तियों का स्थापन और पूजन-विधान। दीक्षा में शिष्य के नामकरण आदि का विधान।		
३०५	**पचपन विष्णु नाम**	९५७	१७
३०६	**नारसिंह आदि मन्त्र**	९५८	२२
	मन्त्र-जप से क्षुद्र ग्रह, महामारी आदि रोगों का नाश।		
३०७	**त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र**	९६१	३८
	विष्णु-पूजा, जप, होमादि का विधान।		
३०८	**त्रैलोक्यमोहनी लक्ष्मी आदि की पूजा**	९६४	३१
	उस देवता का मन्त्र-कथन।		
३०९	**त्वरिता पूजा**	९६७	२०
	त्वरिता के ध्यान-पूजनादि का कथन।		
३१०	**त्वरिता मन्त्रादि**	९६९	४३
	प्रणीता आदि मुद्रा का विधान।		
३११	**त्वरिता के मूल मन्त्रादि**	९७३	३७
	पूजा, जप, होम आदि का विधान।		
३१२	**त्वरिता विद्या**	९७७	२५
	विद्या-प्रस्ताव का कथन। मुखस्तम्भन आदि के प्रयोग। त्वरिता विद्या की महिमा का वर्णन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३१३	**नाना मन्त्र**	९७९	३७
	विनायक अर्चनादि का प्रयोग। शत्रु का उच्चाटन। गौरी मन्त्र से अनुष्ठान आदि का विधान।		
३१४	**त्वरिता-ज्ञान**	९८२	२५
	त्वरिता पूजन-विधि। निग्रहानुग्रह चक्र लेखन आदि का विधान।		
३१५	**स्तम्भनादि मन्त्र**	९८५	१९
३१६	**नाना मन्त्र**	९८७	७
	काल के द्वारा डँसे हुए के जीवनादि मन्त्र का निरूपण।		
३१७	**सकलादिमन्त्रोद्धार**	९८८	३४
	ब्रह्म पंचक कथन। प्रासाद मंत्रादि कथन। पञ्चांग सदाशिव कथन। विद्येश्वर वर्णन।		
३१८	**गणपूजा**	९९२	२२
	शिव गायत्री कथन। द्वार और उपद्वार में बनाये गये विघ्नमर्द नामक मण्डल में गणपति का पूजन। जप-होमादि का विधान।		
३१९	**वागीश्वरी पूजा**	९९४	११
	मण्डल सहित वागीश्वरी का पूजन। कपिला गाय के घी से होम करने का विधान। पूजन से कवित्व शक्ति की प्राप्ति।		
३२०	**मण्डल-कथन**	९९५	४८
	सर्वतोभद्रक आदि मण्डल का विधान।		
३२१	**अघोरास्त्रादि शान्ति**	१०००	१६
	शिवादि अस्त्र पूजन। ग्रह पूजन से ग्यारह स्थानों में फल प्राप्ति का कथन। सर्वोत्पात विनाशक अस्त्र-शान्ति-विधान।		
३२२	**पाशुपत शान्ति**	१००२	३
३२३	**छह अंगोंवाले अघोरास्त्र का कथन**	१००३	३७
	वशीकरण आदि मन्त्रों का विधान। शतावरी आदि चूर्ण के सेवन से पुत्र-लाभ का कथन। महामृत्युंजय आदि मन्त्रों का कथन।		
३२४	**रुद्रशान्ति-कथन**	१००७	३१
	रुद्र शान्ति का फल कथन।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३२५	**अंशकादि-कथन**	१०१०	२३
	रुद्राक्ष धारण विधान। मन्त्र सिद्धों द्वारा सिद्धादि अंश का कथन।		
३२६	**गौरी आदि की पूजा**	१०१२	२७
	मन्त्र, ध्यान, मण्डल, मुद्रा, होम आदि का कथन। गौरी पूजा फल निरूपण। मृत्युंजयार्चन कथन। उनके पूजन का फल निरूपण।		
३२७	**देवालय-माहात्म्य**	१०१५	१९
	माला जप विधि का निरूपण। शिवलिंग पूजा की महिमा का वर्णन। वित्त के अनुसार देवालय बनाने का विधान।		
३२८	**छन्दःसार**	१०१७	३
३२९	**छन्दःसार**	१०१८	५
	यजुओं की छह अक्षरोंवाली गायत्री। ऋचाओं की अठारह अक्षरोंवाली गायत्री का भेद निरूपण। गायत्री का छन्द निरूपण।		
३३०	**छन्दःसार**	१०१९	२३
	पाद भेद से छन्दों का भेद कथन। छन्दों के देवता का कथन।		
३३१	**छन्दजाति का निरूपण**	१०२२	१९
	उत्कृति आदि छन्दों की जाति का कथन।		
३३२	**विषमवृत्त कथन**	१०२६	१०
३३३	**अर्धसमवृत्त निरूपण**	१०२८	६
३३४	**समवृत्त निरूपण**	१०२९	३०
३३५	**प्रस्तार निरूपण**	१०३३	५
३३६	**शिक्षा निरूपण**	१०३५	२२
	कण्ठस्थान आदि का निरूपण।		
३३७	**काव्य आदि का लक्षण**	१०३८	३९
	काव्य लक्षण, गद्य-पद्य आदि भेद से काव्य का तीन प्रकार से वर्णन। आख्यायिका आदि भेद से गद्य काव्य का पाँच प्रकार। आख्यायिका आदि का लक्षण। पद्य-कुटुम्बादि का कथन। महाकाव्य लक्षणादि कथन।		
३३८	**नाटक-निरूपण**	१०४२	२७
	नाटक प्रकरण आदि का भेद निरूपण। नाट्य-लक्षण। पूर्व रंग में नान्दी मुख लक्षण।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	नटी, विदूषक, पारिपार्श्वक आदि पात्रों का कथन। कथोद्घात लक्षण। सिद्धोत्प्रेक्षितादि के भेदों का कथन।		
३३९	**शृंगारादि रसों का निरूपण**	१०४४	५४
	रति, हास आदि का लक्षण। विभाव का आलम्बन-उद्दीपन भेद से दो प्रकार का वर्णन। धीरोदात्त आदि नायकों का भेद। भाषण आदि का स्वरूप-कथन।		
३४०	**रीति निरूपण**	१०४९	११
	पाञ्चाली, गौड़ी आदि भेद से रीति-निरूपण।		
३४१	**नृत्य आदि में अंग कर्मों का निरूपण**	१०५०	२१
	स्त्रियों के लीला-विलास आदि भेद से शरीर चेष्टा विशेष का कथन। शिरःकम्पन से आकम्पित आदि भेद के द्वारा तेरह प्रकार का वर्णन। सात प्रकार से भृकुटि-प्रदर्शन। तारक आदि का नवधा कर्मादि कथन।		
३४२	**अभिनय आदि का निरूपण**	१०५२	३३
	अभिनय लक्षण। रस आदि के विनियोग का कथन। शृंगार के सम्भोग, विप्रलम्भ भेद से दो प्रकार का कथन। पुनः उन भेदों का निरूपण। हास आदि का लक्षण। करुण आदि रसों के भेद का निरूपण। शब्दालंकार लक्षण।		
३४३	**शब्दालंकार**	१०५५	६५
	अनुप्रास आदि अलंकारों का कथन। चक्रबन्ध आदि का निरूपण। गोमूत्र आदि अनेक बन्धों का कथन।		
३४४	**अर्थालंकार**	१०६१	३२
	सादृश्य आदि अलंकारों का निरूपण। उनके लक्षणों का निरूपण।		
३४५	**शब्दार्थालंकार**	१०६४	१८
	प्रशस्ति इत्यादि से छह भेदों का कथन। उनके लक्षण का कथन।		
३४६	**काव्यगुण-विवेक**	१०६६	२५
	शब्दगुण-कथन। गुण लक्षण। प्रसाद आदि गुणों का लक्षण। द्राक्षा एवं नारिकेल पाकों का कथन।		
३४७	**काव्यदोष-विवेक**	१०६९	४०
	श्रव्य काव्यों के उद्वेगजनक दोष का सात प्रकार से वर्णन। असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व दोषों का पदनिग्रहत्वेन प्रतिपादन और उन दोनों के शब्दशास्त्र विरुद्ध होने से		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
	असाधुत्वेन कथन। छान्द सत्त्व, अविस्पृष्टत्व आदि दोषों का कथन। उनका लक्षण-कथन। विसन्धि आदि दोषों का कथन।		
३४८	**एकाक्षराभिधान (कोश)**	१०७३	२८
	एकाक्षर मन्त्र निरूपण। मातृका मन्त्र कथन। नवदुर्गा का पूजन विधान। गणपति मन्त्र कथन। स्वाहान्त मन्त्र से हवन-पूजन विधान।		
३४९	**व्याकरण-सार**	१०७६	७
	प्रत्याहार साधक सूत्रों का कथन। अण् आदि प्रत्याहारों का कथन।		
३५०	**संधिसिद्ध रूप**	१०७७	१३
	'दण्डाग्र' आदि उदाहरणों का निरूपण।		
३५१	**सुब्विभक्ति का सिद्धरूप**	१०७९	७३
	विभक्ति पदवाच्य सुप् तिङ् का कथन। स्वादि विभक्ति का निरूपण। अजन्त, हलन्त के भेद से प्रातिपदिक का दो प्रकार से कथन। पुनः उनका पुँल्लिङ्गत्व आदि भेद से तीन प्रकार का वर्णन। वृक्षादि सिद्ध रूपों का कथन।		
३५२	**स्त्रीलिंग शब्दों का सिद्ध रूप**	१०८७	१३
	रमा आदि रूपों का कथन।		
३५३	**नपुंसक शब्दों का सिद्ध रूप**	१०८९	९
३५४	**कारक**	१०९१	२६
	'अभिहित' और 'अनभिहित' के भेद से कर्त्ता के उत्तमत्व और अधमत्व का कथन। कर्म संज्ञा आदि का निरूपण।		
३५५	**समास**	१०९४	१९
	तत्पुरुष आदि समास का कथन।		
३५६	**तद्धित**	१०९७	३०
	तद्धित का सिद्धरूप कथन।		
३५७	**उणादि के सिद्ध रूपों का कथन**	११०१	१२
३५८	**तिङ् विभक्ति के सिद्धरूप**	११०२	३०
३५९	**कृदन्त के सिद्धरूप**	११०५	८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३६०	स्वर्ग-पातालादि वर्ग	११०६	९५
३६१	अव्यय वर्ग	१११४	३८
३६२	नानार्थ वर्ग	१११८	४१
३६३	भूमि, वनौषध आदि वर्ग	११२२	७८
३६४	मनुष्य, ब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्ग	११३०	२९
३६५	ब्रह्म वर्ग	११३३	११
३६६	क्षत्रविट्शूद्र वर्ग	११३४	४९
३६७	सामान्य नामों के लिङ्ग	११३९	२८
३६८	प्रलय वर्णन	११४२	२७

नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक आदि भेदों से चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन।

३६९	आत्यन्तिकलय और गर्भोत्पत्ति का निरूपण	११४५	४५

शारीरिक और मानसिक भेद से आध्यात्मिक सन्ताप का दो प्रकार से वर्णन। भोगदेह को त्यागकर कर्म से जीव का गर्भान्तर प्राप्त करने का कथन। शुभाशुभ कर्मफल निरूपण। गर्भ में स्थित जीव के प्रथम आदि मासों में तत्तत् अवयवों की उत्पत्ति का कथन। सात्त्विक आदि गुणों का लक्षण। देह में रुधिर आदि का गुण-कथन।

३७०	शरीर के अवयव	११४९	४३

कर्मेन्द्रियों का निरूपण। देह में सात आशयों का कथन। पैर से लेकर सिर तक शरीर में सोलह जालों का निरूपण। ग्रीवा आदि अवयवों में नाड़ी का प्रमाण।

३७१	नरक-निरूपण	११५३	४०

'शुभ कर्म करनेवाले पुरुषों के प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं' यह कथन। याम्य मार्ग-कथन। तामिस्र आदि नरकों का निरूपण। पापियों के नाना प्रकार की यातनाओं का वर्णन। आध्यात्मिक आदि तापों का लक्षण।

३७२	यम-नियम	११५६	३६

अष्टांग योग निरूपण। बलपूर्वक दूसरे का धन हरण करने से पशु-पक्षी योनि की प्राप्ति होती है, यह कथन। मन पर विजय आदि का कथन। विष्णु-पूजन से उत्तम गति होती है, यह कथन।

३७३	आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार	११६०	२१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्याय	विषय	पृ० सं०	श्लोक सं०
३७४	**ध्यान**	११६२	३५
	ध्यान-यज्ञ मुक्ति का साधन है, यह कथन। हृदय में विष्णु के ध्यानादि का कथन।		
३७५	**धारणा**	११६५	२२
	धारणा-लक्षण कथन। वारुणी धारणा। ऐशानी धारणा। धारणा आदि से साधक क्लेशरहित हो जाता है, यह कथन।		
३७६	**समाधि**	११६७	४४
	समाधि का लक्षण। योगी की प्रशंसा। योगी सूर्यमण्डल का भेदन तथा ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं, यह निरूपण। सदाचारी गृहस्थ की भी मुक्ति होती है, यह कथन।		
३७७	**ब्रह्मज्ञान**	११७१	२४
	देह आत्मा नहीं है, यह कथन। आत्मा का सर्वद्रष्टा होना, सर्वभोक्ता होना, यह कथन। लिङ्ग शरीरादि की उत्पत्ति। ब्रह्मज्ञाता संसार से मुक्त हो जाता है, यह कथन।		
३७८	**ब्रह्मज्ञान**	११७३	२३
३७९	**ब्रह्मज्ञान**	११७५	३२
	यज्ञों से देवताओं की प्राप्ति। तप से वैराग्य पद की प्राप्ति, कर्म-संन्यास से ब्रह्मपद की प्राप्ति, वैराग्य से कृति में लय, ज्ञान से कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति, ये पाँच गतियाँ जीव की होती हैं, यह कथन। ब्रह्मज्ञान लक्षण आदि का कथन।		
३८०	**अद्वैतब्रह्म-विज्ञान**	११७८	६८
	अन्तकाल में मृग का स्मरण करने से मृग की ही देह मिली, यह कथन। अद्वैतज्ञान के विषय में राजा और ब्राह्मण का संवाद। राजा और ब्राह्मण के संवाद में निदाघ ऋतु का संवाद कथन। ब्राह्मण के उपदेश से राजा की मुक्ति।		
३८१	**गीतासार**	११८५	५८
३८२	**यमगीता**	११९०	३७
	गीता-पठन का फल।		
३८३	**आग्नेय महापुराण का माहात्म्य**	११९३	७२
	हेमन्त आदि में आग्नेय पुराण सुनने से अग्निष्टोमादि यज्ञों की फलप्राप्ति। आग्नेय पुराण के अन्तर्गत विषयक्रम का निरूपण। पुराणसंख्या-कथन। पुराणपाठक के पूजन आदि का निरूपण। पुस्तक-दान-प्रशंसा।		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतम्

अग्निपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

प्रश्नाध्यायः

[1]श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्। ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ।।१।।
नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ।।२।।

ऋषय ऊचुः

सूतं त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः। येन विज्ञातमात्रेण[2] सर्वज्ञत्वं प्रजायते ।।३।।

सूत उवाच

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः। ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ।।४।।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये [3]शब्दब्रह्म परं च यत्। द्वेविद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ।।५।।
अहं शुकश्च पैलाद्या गत्वा वदरिकाश्रमम्। व्यासं नत्वा पृष्टवन्तः सोऽस्मान्सारमथाब्रवीत्[4] ।।६।।

अध्याय १

प्रश्नाध्याय

मैं (व्यास) लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, अग्नि और इन्द्र आदि देवताओं को तथा वासुदेव (भगवान् कृष्ण) को नमस्कार करता हूँ ।।१।। नैमिषारण्य में विष्णु का यज्ञ करते हुए शौनक आदि ऋषियों ने तीर्थयात्रा के सिलसिले में (आये हुए) सूत से स्वागत (वचन) कहा ।।२।।

ऋषियों ने कहा–हे सूत! हम सबने आपका पूजन किया। आप हमें सार से भी सार जो वस्तु है, उसका उपदेश करें जिसके जानते ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।३।।

सूत बोले–भगवान् विष्णु सार से भी सार, सृष्टि आदि करनेवाले तथा सर्वव्यापक हैं–उनको 'मैं ब्रह्म हूँ'–इस प्रकार जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।४।। ब्रह्मद्वय को जानना चाहिए–शब्दब्रह्म और परब्रह्म को। दो विद्याओं को जानना चाहिए–ऐसा अथर्ववेद में (भी) आया है ।।५।। मैंने और शुक जी तथा पैल आदि ऋषियों ने बदरिकाश्रम जाकर, (वहाँ) व्यास जी को प्रणाम करके (उनसे) पूछा। इसके बाद उन्होंने हमें सार वस्तु का उपदेश किया ।।६।।

---

१ लक्ष्मीमिति क्वचित्पुस्तके पाठः। २ विज्ञानमात्रेण इति ङ पुस्तके पाठः। ३ 'अपरं च परं च यत्' इति कुत्रचित् पुस्तके पाठः। ४ क. ङ. ० त्। शु°

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यास उवाच

शुकाद्यैः शृणु सूत त्वं वसिष्ठो मां यथाब्रवीत्[१]। ब्रह्मसारं हि पृच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम्[२] ।।७।।

[३]वसिष्ठ उवाच

द्विविधं[४] ब्रह्म वक्ष्यामि शृणु व्यासाखिलात्मगम्[५]। यथाग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्दैवतैः सह ।।८।।
पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याक्षरं परम्। [६]ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म [७]सर्वदेवसुखं[८] परम् ।।९।।
अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं[९] वेदसम्मितम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं [१०]पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ।।१०।।
कालाग्निरूपिणं विष्णुं ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम्[११]। मुनिभिः पृष्टवान् देवं पूजितं ज्ञानकर्मभिः ।।११।।

वसिष्ठ उवाच

संसारसागरोत्तारनावं[१२] ब्रह्मेश्वरं वद। विद्यासारं यद्विदित्वा सर्वज्ञो जायते नरः ।।१२।।

अग्निरुवाच

विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते। ब्रह्माग्नेयं[१३] पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम् ।।१३।।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च। वंशानुचरितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपधृक्[१४] ।।१४।।

व्यास जी बोले–हे सूत! शुक आदि मुनियों के साथ तुम सुनो जैसा कि मुनियों के साथ मेरे द्वारा पूछे जाने पर–श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्व को वसिष्ठ जी ने कहा था ।।७।।

वसिष्ठ बोले–हे व्यास! सुनो! निखिल चराचर में व्याप्त रहनेवाले द्विविध ब्रह्म के विषय में प्राचीनकाल में अग्निदेव ने मुनियों और देवताओं के साथ मुझसे जैसा कहा था, उसे मैं कहूँगा ।।८।। अग्निपुराण ब्रह्मविद्या, अक्षर, परमतत्त्व ऋग्वेदादि से अतिरिक्त परन्तु उनसे सम्मत और सब देवताओं को सुख देनेवाला परम (उत्कृष्ट) ब्रह्म (अथवा ब्रह्मज्ञान) है ।। ९।। इस वेदसम्मत पुराण को अग्निदेव ने कहा है इसीलिए इसका नाम अग्निपुराण पड़ गया है, इसके पढ़ने और सुननेवालों को यह पुराण (इस संसार में) भोग और (तदनन्तर) मोक्ष प्राप्त कराता है ।।१०।। मैंने भगवान् कालाग्निदेव से पूछा था, जो ज्ञानकर्म में लगे हुए मुनियों से पूजित, परात्पर ब्रह्म, ज्योतिरूप और विष्णुस्वरूप हैं ।।११।।

वसिष्ठ बोले–हे देव! संसारसागर को पार करने के लिए नौकारूप, ज्ञानतत्त्व उस ब्रह्म–ईश्वर का उपदेश दें जिसे जान लेने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।१२।।

अग्निदेव बोले–मैं कालाग्नि, विष्णु और रुद्र हूँ और मैं इस अग्निपुराण को तुम्हें सुना रहा हूँ, जो सम्पूर्ण विद्याओं का सार और सम्पूर्ण ज्ञान का कारण है।।१३।। इस पुराण में सर्ग (ईश्वरकृत सृष्टि), प्रतिसर्ग (कार्य सृष्टि और लय), वंश (देवताओं और पितरों की वंशावली), मन्वन्तर (अर्थात् किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य–चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होनेवाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) और मत्स्य तथा कूर्म आदि रूपों को धारण करनेवाले भगवान् विष्णु का वर्णन है ।।१४।। हे द्विज! दो विद्याएँ भगवान् विष्णु हैं–एक परा विद्या है और दूसरी अपरा

---

१ क. घ. यदब्र°। २ ख. ङ. च. परापरम्। ३ इदमधिकम्। ४ ख. ग. द्वैविद्यं घ. द्वैविध्यम्। ५ क. ङ. °लाध्वग°। घ. °लानुगम्। ६ क. 'दाद्यं प' ङ. °दादिप°। ७ ख. ग. सर्ववेदमुखं। ८ घ. सुखावहम्। ९ घ. ङ. °यं ब्रह्मसं°। १० घ. ङ. दिव्यं। ११ क. ङ. °रापरं°। १२ क. °त्तारं नादं ब्र°। १३ क. ङ. विद्यासारं। १४ क. ङ. °पकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वे विद्ये भगवान् विष्णुः परा चैवापरा द्विज[1]। ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदा[2] अङ्गानि षड् द्विज ।।१५।।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः। छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ।।१६।।
न्यायो वैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम्। अपरेयं परा विद्या यया ब्रह्मावगम्यते[3] ।।१७।।
यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम्[4]। विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ।।१८।।
तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यासप्रोक्ते प्रथमः प्रश्नाध्यायः ।।१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

मत्स्यावतारकथावर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्वादिकारणम्। पुराणं ब्रह्म चाग्नेयं यथा विष्णोः पुरा श्रुतम् ।।१।।

अग्निरुवाच

मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वशिष्ठ शृणुवै हरेः। अवतारक्रिया दुष्टनष्ट्यै सत्पालनाय हि ।।२।।
आसीदतीतकल्पान्ते[5] [6]ब्राह्मो नैमित्तिको लयः। समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादिका मुने ।।३।।

विद्या। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छह वेदांग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्दस्, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्व वेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र–ये सब अपरा विद्याएँ हैं। परा विद्या वह है जिससे उस ब्रह्म का ज्ञान होता है, जो अदृश्य, अग्राह्य, गोत्र और चरण शाखा से परे है। मैं मत्स्यादि रूप के हेतुभूत भगवान् विष्णु को आपसे उसी प्रकार कहूँगा जिस प्रकार प्राचीनकाल में विष्णु ने मुझसे और ब्रह्मा ने देवताओं से कहा था ।।१५–१९।।

श्री अग्निमहापुराण में व्यासकथित प्रश्नाध्याय नामक पहला अध्याय समाप्त ।।१।।

अध्याय २

मत्स्यावतार कथा का वर्णन

वसिष्ठ बोले–सृष्टि के आदि कारण, मत्स्य आदि रूप धारण करनेवाले विष्णु और प्राचीनकाल में उनके मुख से सुने हुए ब्रह्म (वेद) रूप अग्निपुराण के विषय में बतलाइये ।।१।।

अग्नि ने कहा–वसिष्ठ! मैं विष्णु के मत्स्यावतार की कथा कह रहा हूँ, सुनो! विष्णु के अवतार लेने का काम दुष्टों का नाश और सज्जनों का पालन करने के लिए होता है ।।२।। हे मुने! बीते हुए कल्प के अन्त में ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था जिसमें भूः आदि सब लोक समुद्र में डूब गये थे ।।३।। कल्पान्त में वैवस्वत मनु

---

१. घ. च. ह। २ क. 'दाङ्गानि च यद्द्विज। ३ घ. ङ.'ह्याभिग'। ४ घ. परम् ङ. ब्रुवन। ५. ख. ग. 'न्ते ब्रह्मन्नैमि'। ६ क. ङ. ब्राह्मो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनुर्वैवस्वतस्तेपे तपो वै भुक्तिमुक्तये। एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।।४।।
तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत। क्षेप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नृपोत्तम[१] ।।५।।
ग्राहादिभ्यो भयं मेऽत्र[२] तच्छ्रुत्वा कलशेऽक्षिपत्[३]। मनुं वृद्धः[४] पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे बृहत् ।।६।।
स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाथोदञ्चनेऽक्षिपत्। तत्र वृद्धोऽब्रवीद्भूपं पृथु देहि पदं मनो ।।७।।
सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान्। ऊचे देहि बृहत्स्थानं प्राक्षिपच्चाम्बुधौ मनुः ।।८।।
लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत्। मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवीन्मनुः[५] ।।९।।
को भवान्ननु[६] विष्णुस्त्वं नारायण नमोऽस्तु ते। मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ।।१०।।
मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतः[७]। अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ।।११।।
[८]सप्तमेऽथ दिने [९]ह्यब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत्। उपस्थितायां नावि त्वं बीजादीनि निधाय[१०] च ।।१२।।
सप्तर्षिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मीं चरिष्यसि[११]। उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ।।१३।।
इत्युक्त्वान्तर्दधे[१२] मत्स्यो मनुः कालप्रतीक्षकः। स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ।।१४।।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः। नावं बद्ध्वा[१३] तस्य शृङ्गे मत्स्याख्यं च पुराणकम् ।।१५।।

ने भोग और मोक्ष के लिए तपस्या की। एक बार जब वे कृतमाला नदी में तर्पण कर रहे थे तब उनके अञ्जलि के जल में एक छोटी-सी मछली आ गयी। जब उन्होंने उसे जल में फेंकना चाहा (तब) वह मछली बोल पड़ी-हे राजोत्तम! मुझे मत फेंको ।।४-५।। क्योंकि वहाँ मुझे घड़ियाल आदि का डर है। यह सुनकर मनु ने उसे कलश-जल में डाल दिया। (उस कलश में वह मछली बढ़ने लगी और अपने लिये पर्याप्त स्थान न पाकर) बढ़ी हुई मछली ने मनु से फिर कहा-"मुझे बड़ा स्थान दो।" इस वचन को सुनकर राजा मनु ने उसे एक हौज में डाल दिया। वहाँ भी वह इसी प्रकार बढ़कर राजा से कहने लगी-हे मनु! मुझे (और) बड़ा स्थान दो ।।६-७।। मनु ने (वहाँ से निकालकर) उसको एक सरोवर में डाल दिया। वहाँ भी बढ़ती-बढ़ती वह सरोवर के बराबर हो गयी। उसने फिर कहा-(इससे भी) बड़ा स्थान दो! (तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया)। क्षण भर में वह मछली एक लाख योजन (में) फैल गयी। उस आश्चर्यजनक मछली को देखकर आश्चर्ययुक्त मनु बोले ।।८-९।। 'प्रभो! आप कौन हैं? आप विष्णु हैं? हे नारायण! आपको नमस्कार है। हे जनार्दन! आप किसलिए मुझे माया से मोहित कर रहे हैं' ।।१०।। मनु के (इस प्रकार) कहने पर (उस) मत्स्य ने मनु से कहा-'मैं सृष्टिपालक विष्णु हूँ, जो इस जगत् के दुष्टों का नाश करने के लिए अवतरित हुआ हूँ ।।११।। आज से सातवें दिन समुद्र संसार को डुबो देगा। जब एक बड़ी नाव आये तो संसार के सब प्रकार के बीजों को उसमें रख देना और स्वयं सप्तर्षियों के साथ, उस नाव पर चढ़कर उस ब्रह्मा के त्रिकाल तक विचरण करना और जब मैं वहाँ आ जाऊँ तो उस नाव को बड़े सर्प से मेरी सींग में बाँध देना ।।१२-१३।। यह कहकर यह मत्स्य अन्तर्धान हो गया। मनु उस समय की प्रतीक्षा करते रहे और समुद्र के बढ़ जाने पर वह नाव में बैठ गये ।।१४।। (उसी समय) एक लाख योजन लम्बा एक सुनहला मत्स्य आया जिसके एक ही सींग थी। मनु ने उसकी सींग में नाव को बाँधकर उस मत्स्य (रूपधारी भगवान् विष्णु) को अनेक

---

१ घ. ङ. नरोत्तम। २ घ. मेऽद्य। ३ घ. °त्। स तु वृ०। ४ ग. क्रुद्धः। ५ घ. ङ. ततः। ६ घ. ङ. °नु वै विष्णुर्नारा°। ७ क. घ. ङ. रतम्। ८ ङ. °मे दिवसे ह्य°। ९ ग. घ. त्वब्धिः। १० घ. ङ. विधाय। ११ ख. ङ. चरिष्यति। १२ ग °न्तर्हिते मत्स्य म°। °न्तर्हितो म°। १३ घ. ङ. बबन्ध तच्छृङ्गे।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन् स्तुतिभिश्च तम्। ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवं च दानवम् ।।१६।।
अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामास केशवः। प्राप्ते[1] कल्पेऽथ वाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽग्निप्रोक्ते मत्स्यावतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

कूर्मावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये कूर्मावतारं च संश्रुतं[2] पापनाशनम्[3]। पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ।।१।।
दुर्वाससश्च शापेन निश्रीकाश्चाभवंस्तदा। सुराः[4] क्षीराब्धिगं विष्णुमूचुः पालय वै सुरान् ।।२।।
ब्रह्मादिकान् हरिः प्राह सन्धिं कुर्वन्तु चासुरैः। क्षीराब्धिमथनार्थं च[5] अमृतार्थं श्रिये सुराः ।।३।।
अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे[6]। युष्मानमृतभाजोऽथ[7] करिष्यामि न दानवान् ।।४।।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च[8] वासुकिम्। क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथत ह्यतन्द्रिताः ।।५।।

स्तुतियों से सन्तुष्ट करके उनके मुख से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाले मत्स्यपुराण को सुना। (उस कल्प में) भगवान् ने ब्रह्मा और वेदों को नष्ट करनेवाले दानव हयग्रीव को मारकर वेदमन्त्रों और शास्त्र आदि की रक्षा की थी। तत्पश्चात् वाराह कल्प में भगवान् ने कूर्म अवतार धारण किया था ।।१५-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में अग्निदेव द्वारा कथित मत्स्यावतार वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।।२।।

अध्याय ३

कूर्मावतार की कथा का वर्णन

अग्नि बोले-अब मैं कूर्मावतार का वर्णन करूँगा, जो श्रवणमात्र से पापों को नष्ट करनेवाला है। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में देवता लोग असुरों से हार गये थे ।।१।। (उस समय पराजित होने के साथ-साथ) वे दुर्वासा ऋषि के शाप से श्रीहीन भी हो गये थे। तब वे देवता क्षीरशायी विष्णु भगवान् से बोले-'(हे प्रभो!) हम देवताओं की (राक्षसों से) रक्षा कीजिये' ।।२।। (यह सुनकर) भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा आदि देवताओं से कहा-(अये देवताओ! इस समय) क्षीरसागर के मन्थन के लिए, अमृत के लिए तथा श्री-प्राप्ति के लिए असुरों के साथ सन्धि कर लो ।।३।। (क्योंकि) किसी महान् कार्य की सिद्धि के लिए शत्रुओं के साथ भी सन्धि कर लेनी चाहिए। मैं तुम लोगों को ही अमृत प्रदान करूँगा, दानवों को नहीं ।।४।। मन्दराचल को मथानी और वासुकि (नाग) को रस्सी बनाकर मेरी सहायता से आलस्यरहित होकर क्षीरसागर को मथ डालो ।।५।।

---

१ क, ङ. पातुं रुद्रेऽथ। २ घ. ङ. श्रुत्वा। ३ घ. ङ. °पप्रणाश°। ४ ग. घ. ङ. स्तुत्वा। ५ ख. घ. हि। ६ ख. ग. कार्यस्य गौ°। ७ घ. ङ.° जो हि कारयामि। ८ ग. घ. ङ. तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णूक्ताः संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः । ततो मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ।।६।।
फणिनिश्वाससङ्ग्लाना[1] हरिणाऽऽप्यायिताः सुराः । मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।।७।।
कूर्मरूपं समास्थाय दध्रे विष्णुश्च मन्दरम् । क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ।।८।।
हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभवत्[2] । ततोऽभूद्वारुणी देवी पारिजातश्च कौस्तुभः ।।९।।
गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरिं गता । पश्यन्तः सर्वदेवास्तां स्तुवन्तः सश्रियोऽभवन् ।।१०।।
ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः[3] । बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः[4] ।।११।।
अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्धं प्रदाय च । गृहीत्वा जग्मुर्जम्भाद्या विष्णुः स्त्रीरूपधृक्ततः[5] ।।१२।।
तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां दैत्याः प्रोचुर्विमोहिताः । भव भार्याऽमृतं गृह्य[6] पाययास्मान् वरानने ।।१३।।
तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान् । चन्द्ररूपधरो राहुः पिबंश्चार्केन्दुनार्पितः[7] ।।१४।।
हरिणाप्यरिणा छिन्नं सबाहु[8] तच्छिरः[9] पृथक् । कृपयाऽमरतां नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ।।१५।।

भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर देवताओं ने असुरों के साथ सन्धि कर ली और दैत्यों के साथ क्षीरसागर के समीप पहुँच गये। वहाँ दोनों ने मिलकर समुद्र का मन्थन प्रारम्भ कर दिया। जिधर (वासुकि) की पूँछ थी उधर देवता लगे हुए थे ।।६।। सर्प (वासुकि) के (विषाक्त) श्वास से जब देवता घबड़ाने लगते थे तब भगवान् (इन्द्र) उन पर जलवृष्टि कर देते थे। समुद्रमन्थन प्रारम्भ होने पर वह मन्थन-दण्ड (मन्दराचल) जल में डूबने लगा, क्योंकि उसका कुछ आधार तो था ही नहीं ।।७।। (यह देखकर) भगवान् विष्णु ने कूर्मरूप धारण करके उस मन्दर को रोक लिया। मथे जानेवाले समुद्र से (पहले) हलाहल विष निकला ।।८।। (उस हलाहल विष को) कण्ठ में धारण करने से भगवान् शंकर नीलकण्ठ हो गये। तदनन्तर वारुणी (मदिरा), पारिजात (कल्पवृक्ष), कौस्तुभ (मणि), कामधेनु, दिव्य अप्सराएँ और लक्ष्मी उत्पन्न हुई और उत्पन्न होते ही वह (लक्ष्मी) देवताओं के देखते-देखते विष्णु के पास चली गयी। लक्ष्मी की स्तुति करके सभी देवता श्रीसम्पन्न हो गये ।।९-१०।। तदनन्तर आयुर्वेद के आविष्कारक, विष्णु भगवान् के अवतार धन्वन्तरि अमृत से भरे हुए कमण्डलु को धारण करते हुए निकल आये ।।११।। जम्भ आदि दैत्य उनके हाथ से अमृत लेकर और आधा देवताओं को देकर चलते बने। यह देखकर विष्णु ने स्त्रीवेश धारण कर लिया ।।१२।। उस रूपवती स्त्री को देखकर दैत्य मुग्ध होकर उससे कहने लगे-अयि सुन्दरि! तुम हम दैत्यों की स्त्री बन जाओ और यह अमृत हमें पिलाओ ।।१३।। 'ऐसा ही हो' कहकर (मोहिनी रूपधारी) भगवान् विष्णु उनसे अमृत लेकर देवताओं को पिलाने लगे। चन्द्रमा का रूप बनाकर (देवताओं के साथ अमृत पीता हुआ) राहु सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा पहचान लिया गया ।।१४।। (दैत्यों के शत्रु विष्णु ने) अपनी भुजाओं से राहु का सिर काटकर पृथक् कर दिया। परन्तु अपनी कृपा से उन्होंने (भगवान् विष्णु ने) राहु के उस कटे हुए शरीर को भी अमर कर दिया। तत्पश्चात् राहु ने वरदायक भगवान् विष्णु से कहा ।।१५।।

---

१ घ. ङ. 'सन्तप्ताह'। २ ख. ग. °तो हरः। त°। ३ ख. ग. °प्रवर्तकः। ४ ङ. समन्वितम्। ५ ग. °पमागतः। ६ ग. गुह्यम्। ७ क्वचित्पुस्तके-°न्दुसूचितः इतिपाठो वर्तते। ८ घ. स राहुस्तच्छि°। ९ ग. कण्ठतः-शिरः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राहुर्मत्तस्तु चन्द्रार्कौ प्राप्स्येते ग्रहणंग्रहः[1]। तस्मिन् काले च यद्दानं दास्यन्ते स्यात्तदक्षयम् ।।१६।।
तथेत्याहाथ तं विष्णुस्ततः सर्वैः[2] सहामरैः। [3]स्त्रीरूपं सम्परित्यज्य [4]हरेणोक्तं प्रदर्शय ।।१७।।
दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान् हरिः। मायया मोहितः शम्भुर्गौरीं त्यक्त्वा स्त्रियं गतः ।।१८।।
नग्न [5]उन्मत्तरूपोऽभूत्स्त्रियः(याः)केशानधारयत्। अगाद्विमुच्य केशान्स्त्री अन्वधावच्च तां गताम् ।।१९।।
स्खलितं तस्य वीर्यं कौ यत्र यत्र हरस्य हि। तत्र [6]तत्राभवत्क्षेत्रं लिङ्गानां कनकस्य च ।।२०।।
मायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्धरः[7]। शिवमाह हरी रुद्र जिता माया त्वया हि मे ।।२१।।
न जेतुमेनां शक्तो मे[8] त्वदृतेऽन्यः पुमान्भुवि। [9]अप्राप्ताश्चामृतं दैत्या देवैर्युद्धे निपातिताः।।२२।।
त्रिदिवस्थाः सुराश्चासन्दैत्याः[10] पातालवासिनः। यो नरः पठते देवविजयं त्रिदिवं व्रजेत् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विद्यासारे कूर्मावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

मैं राहु ग्रह हूँ, मुझसे चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण को प्राप्त करेंगे और उस वेला में जो भी दान दिया जायगा वह अक्षय हो जायगा ।।१६।। भगवान् विष्णु ने कहा –'ऐसा ही होगा' तदनन्तर सभी देवताओं के साथ (रहकर) भगवान् विष्णु ने स्त्रीरूप छोड़ दिया। स्त्रीरूप का त्याग करने के बाद भगवान् शंकर ने भगवान् विष्णु से कहा–(मुझे वह स्त्रीरूप पुनः) दिखाइये। (फिर) भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव को स्त्रीरूप दिखा दिया। माया से मोहित होकर भगवान् शंकर (प्रियतमा) गौरी को छोड़कर (उस मोहिनी) स्त्री के पास पहुँच गये ।।१७–१८।। नंगे (काम से) पागल रूपवाले शिव ने (मोहिनी) स्त्री के बालों को पकड़ लिया। वह स्त्री अपने केश छुड़ाकर भागने लगी, किन्तु (वह कामातुर शंकर भी) उसका पीछा किये जा रहे थे ।।१९।। जहाँ–जहाँ पृथ्वी पर (कामातुर शंकर जी का) वीर्य गिरा, वहाँ–वहाँ शिवलिंग और सोने के क्षेत्र बन गये ।।२०।। (अन्त में) यह माया है–ऐसा जानकर भगवान् शिव अपने (वास्तविक) रूप में आ गये। यह देखकर भगवान् विष्णु ने रुद्र से कहा–हे शिव! तुमने मेरी माया को जीत लिया है ।।२१।। तुमको छोड़कर इस पृथ्वी पर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, जो मेरी इस (माया को) जीत सके। (इस प्रकार विष्णु की माया से मुग्ध होकर) दैत्यगण अमृत से वञ्चित होकर युद्ध में (भी) देवताओं के द्वारा हरा दिये गये ।।२२।। (विजयी) देवता स्वर्ग में रहने लगे (और) दैत्य लोग पाताल के निवासी हो गये। जो मनुष्य इस देवविजय (आख्यान) को पढ़ता है, वह स्वर्ग चला जाता है ।।२३।।

श्री अग्निमहापुराण के विद्यासार प्रकरण में कूर्मावतार वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।।३।।

---

१ क. ख. घ. च. °हः। भवेयं ये तदा दानम्! २ ङ. च. सर्वैस्तदामरैः। ३ स्त्रीरूप°°°°°हरिः ग. पुस्तके नास्ति। ४ क. ख. घ. हरेणोक्तः। ५ ख. ग. °पोऽपि स्त्रियः। ६ क. तत्र च तत्क्षे°। ७ ख. °द्धरेः। शि°। ८ क. मे त्वामृते°। ९ ग. घ. अप्राप्याथामृ°। १० क. ङ. च. °सन्यः पठेत्स दिवं। घ. सन्यः पठेत् त्रिदिवं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्थोऽध्यायः

वराहनरसिंहादीनामवताराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम् । हिरण्याक्षोऽसुरेशोऽभूद्देवाञ्जित्वा दिवि[1] स्थितः ।।१।।
देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः । अभूत्तं दानवं हत्वा दैत्यैः [2]सार्धं तु कण्टकम् ।।२।।
धर्मदेवादिरक्षाकृत्ततः सोऽन्तर्दधे हरिः । हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ।।३।।
जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत् । नारसिंहं वपुः कृत्वा तं जघान सुरैः[3] सह ।।४।।
स्वपदस्थान्सुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः [4]स्तुतः । देवासुरे पुरा युद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः ।।५।।
जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं ते[5] शरणं गताः । सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ।।६।।
स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां[6] स क्रतुं ययौ । बलेः श्रीयजमानस्य गङ्गाद्वारे[7] गृणन् स्तुतिम् ।।७।।
वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् । ([8]निवारितोऽपि शुक्रेण बलिर्ब्रूहि यदिच्छसि ।।८।।
तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत्) । पदत्रयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ।।९।।

अध्याय ४

वराहनृसिंह आदि अवतारों का वर्णन

अग्नि बोले–(अब मैं) पापनाशक वराहावतार का वर्णन करूँगा। हिरण्याक्ष नामक एक दैत्यराज था, जो देवताओं को जीतकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित हो गया ।।१।। देवताओं ने जाकर यज्ञरूप वराहरूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति की और उन्होंने दैत्यों के साथ उस कण्टकभूत दैत्यराज हिरण्याक्ष का वध करके धर्म और देवता आदि की रक्षा की। तदनन्तर (वराहरूपधारी) भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। हिरण्याक्ष का भाई हिरण्यकशिपु हुआ, जिसने यज्ञ में देवताओं के भाग को तो जीत ही लिया, सभी देवताओं को भी अपने अधिकार में कर लिया। भगवान् विष्णु ने नरसिंह का रूप धारण करके उसको मार डाला ।।२–४।। भगवान् विष्णु ने देवताओं को उनके अपने स्थान स्वर्ग में प्रतिष्ठित कर दिया। (इससे प्रसन्न होकर) देवताओं ने भगवान् नृसिंह की स्तुति की। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में बलि आदि से हारकर देवता स्वर्गलोक से परिभ्रष्ट होकर भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे ।। ५–५$\frac{1}{2}$ ।। भगवान् ने देवताओं को अभय-दान दे दिया। अदिति और कश्यप की स्तुति से (प्रसन्न होकर विष्णु ने) अदिति के गर्भ से (वामन के रूप में अवतार लिया)। (वामन) यज्ञ में लगे हुए बलि के यज्ञ में गये। (वामन ने) गंगाद्वार में स्तुतिपाठ किया ।।६–७।। इष्ट मनोरथ को पूर्ण करनेवाले बलि ने वेदपाठी वामन के वेदपाठ को सुनकर (कुछ माँगने के लिए) कहा। शुक्राचार्य के द्वारा मना किये जाने पर भी बलि ने कहा–आपकी जो इच्छा हो माँगिये, मैं आपको अवश्य दूँगा–तब वामन ने बलि से कहा–मेरे गुरु के लिए तीन पग (भूमि) दे दो। बलि ने वामन से कहा–मैं दे दूँगा ।।८–९।।

---

१ क. ङ. च. दिवं। २ घ. ङ. साकं च। ३ ख. ग. ङ.° धानासु°। ४ च. रैः सह। दे°। ५ घ. ङ. वै°। दित्याश्च क्र°। ६ क. °दिव्याश्च क्र°। ७ ख. च. रे गुणञ्श्रुतिन्। घ. °रेऽगृणाच्छ्रुतिम्। ८ निवारितोऽपि.....बलिमब्रवीत् ग. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः। भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकं[1] च पदत्रयम् ।।१०।।
चक्रे बलिं च सुतले तच्छक्राय ददौ हरिः। शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत् ।।११।।
वक्ष्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज। उद्धतान्क्षत्रियान्मत्वा भूभारहरणाय[2] सः ।।१२।।
अवतीर्णो हरिः[3] शान्त्यै देवविप्रादिपालकः। जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्त्रपारगः ।।१३।।
दत्तात्रेयप्रसादेन कार्तवीर्यो नृपस्त्वभूत्। सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः ।।१४।।
श्रान्तो[4] निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना। कामधेनुप्रभावेण भोजितः सबलो नृपः ।।१५।।
अप्रार्थयत्कामधेनुं[5] यदा स न ददौ तदा। हृतवानथ रामेण शिरश्छित्वा निपातितः ।।१६।।
([6]युद्धे परशुना राजा सधेनुः स्वाश्रमं ययौ। कार्तवीर्यस्य पुत्रैस्तु जमदग्निर्निपातितः) ।।१७।।
रामे वनं गते[7] वैरादथ रामः समागतः। पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमर्षितः ।।१८।।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद्विभुः[8]। कुरुक्षेत्रे पञ्च कुण्डान् कृत्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ।।१९।।
कश्यपाय[9] महीं दत्त्वा महेन्द्रे पर्वते स्थितः। कूर्मस्य च वराहस्य नृसिंहस्य च वामनम् ।।२०।।
अवतारं[10] च रामस्य श्रुत्वा याति दिवं नरः ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वराहनृसिंहवामनपरशुरामावतारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

(संकल्प) जल हाथ पर पड़ते ही वामन ने अपना विराट् रूप धारण कर लिया। उन्होंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक को अपना तीन पग बना लिया और (राजा) बलि को सुतल में भेज दिया। इन्द्र को स्वर्गलोक दे डाला। देवताओं के सहित इन्द्र ने भगवान् विष्णु की स्तुति की और स्वयं भुवनेश बनकर सुखी हो गये ।।१०-११।। हे ब्राह्मण! अब मैं परशुराम का अवतार कहूँगा। सुनो! क्षत्रियों को उद्धत जानकर पृथ्वी का बोझ दूर करने के लिए देवता और ब्राह्मण आदि का पालन करनेवाले भगवान् विष्णु ने (विश्व) शान्ति के लिए जमदग्नि की पत्नी रेणुका के गर्भ से परशुराम के रूप में अवतार लिया। भृगुवंशी परशुराम शस्त्रविद्या में पारंगत थे ।।१२-१३।। (उस समय) भगवान् दत्तात्रेय की कृपा से सहस्रबाहु कार्तवीर्य राजा हुए। हजार भुजाओंवाले और सारी पृथ्वी के स्वामी वे राजा कार्तवीर्य (एक बार) शिकार खेलने गये ।।१४।। उस जंगल में मृगया से थके हुए महाराज कार्तवीर्य को जमदग्नि ने (अपने आश्रम में) निमन्त्रण दिया और कामधेनु के प्रभाव से सेना सहित राजा को भोजन कराया ।।१५।। (यह देखकर लोभवश) राजा ने उस कामधेनु को (जमदग्नि से) माँगा, किन्तु जब उन्होंने नहीं दिया तब बलात् उसे छीन लिया। इसके बाद परशुराम ने (राजा का) सिर काटकर (उसे) मार गिराया ।।१६।। युद्ध में परशुराम ने राजा का वध कर दिया और गाय को छीनकर उसे वह अपने आश्रम में ले आये। (उधर) कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि का वध कर डाला ।।१७।। जब परशुराम वन से लौटकर फिर अपने आश्रम में आये तब वैर से पिता को मरा हुआ देखकर पितृ वध से क्रुद्ध होकर व्यापक परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया (और) कुरुक्षेत्र में पाँच कुण्ड बनवाकर (उनसे) पितरों का तर्पण करके, समस्त पृथ्वी कश्यप को देकर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर चले गये ।।१८-१९½।। कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम की अवतार कथा सुनकर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।।२०-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में वराहनृसिंहवामनपरशुराम आदि का अवतार-वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।।४।।

---

१ च. स्वर्गलोकं प°। २ ङ. च° रतर°। ३ ग.° रिः साक्षाद्देव°। ४ क. शान्तो। ५ ख. ग.° यद्धोम°। ६ युद्धे ... निपातितः पुस्तके नास्ति। ७ क. ङ. च. ते° वीस°। ८ ख. ग. °रोत्प्रभुः। ९ य काश्यपाय। १० क. ङ. च. °रं स रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच

रामायणमहं वक्ष्ये नारदेनोदितं पुरा। वाल्मीकये[1] यथा तद्वत्पठितं भुक्तिमुक्तिदम् ।।१।।

नारद उवाच[2]

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः। मरीचेः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः ।।२।।
ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः। ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः ।।३।।
रावणादेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः। राज्ञो दशरथाद्रामः कौसल्यायां बभूव ह ।।४।।
कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चर्ष्यशृङ्गेण[3] तासु सन्दत्तपायसात् ।।५।।
प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समाः पितुः। यज्ञविघ्नविनाशाय विश्वामित्रार्थितो नृपः ।।६।।
रामं सम्प्रेषयामास लक्ष्मणं मुनिना सह। रामो गतोऽस्त्रशस्त्राणि शिक्षितस्ताडकान्तकृत्[4] ।।७।।
मारीचं मानवास्त्रेण[5] मोहितं दूरतोऽनयत्। सुबाहुं यज्ञहन्तारं सबलं चावधीद्बली[6] ।।८।।

अध्याय ५

श्रीरामावतारकथा का वर्णन

अग्नि बोले–अब मैं रामायण की कथा को जैसे प्राचीनकाल में नारद ने वाल्मीकि से कहा था उस प्रकार से कहूँगा। (वह रामायण कथा) पढ़ी जाने पर (संसार में) भोग और (बाद में) मोक्ष दोनों प्रदान करती है ।।१।।

नारद बोले–विष्णु से पद्मयोनि ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से कश्यप उत्पन्न हुए। कश्यप से सूर्य और सूर्य से वैवस्वत मनु हुए ।।२।। फिर उसी प्रकार वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु के वंश में ककुत्स्थ हुए। ककुत्स्थ के रघु, रघु के अज और अज से दशरथ (उत्पन्न हुए) ।।३।। रावण आदि (दुष्टों) का वध करने के लिए स्वयं भगवान् विष्णु चार रूपों में अवतरित हुए। राजा दशरथ के पुत्र राम कौसल्या के गर्भ से हुए। कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। ऋष्य-शृंग ऋषि द्वारा कराये गये पुत्रेष्टि यज्ञ में सम्यक् सिद्ध हविष् को खिलाने से राम आदि (चारों पुत्र) पिता दशरथ के समान हुए ।।४-५ $\frac{1}{2}$ ।। विश्वामित्र ने यज्ञ के विघ्नों को नष्ट करने के लिए महाराज दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगा। महाराज दशरथ ने मुनि के साथ अपने दोनों पुत्रों–राम और लक्ष्मण को भेज दिया। भगवान् राम गये, (विश्वामित्र से) अस्त्र और शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की तथा ताड़का राक्षसी का वध करनेवाले हुए ।।६-७।। भगवान् राम ने मानवास्त्र से मूर्च्छित (करके) मारीच को दूर पहुँचा दिया। फिर बलवान् भगवान् राम ने यज्ञ-विध्वंसक सुबाहु को उसकी सेना के सहित मार डाला ।।८।। सिद्धाश्रम

---

१ ख. ग. वाल्मीकाय। २ ग. च°-सृष्ट्यर्थं च हरेर्ब्रह्मा। ३ ख. ग. घ. °घ्न ऋष्य°। ४ ख. ग. °स्ताटका°। ५ क. पावकास्त्रेण। ङ. च. पावनास्त्रेण। ६ °धीद्व्रती।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सिद्धाश्रमनिवासी च विश्वामित्रादिभिः सह। गतः क्रतुं मैथिलस्य द्रष्टुं चापं[1] सहानुजः ।।९।।
[2]शतानन्दनिमित्तेन विश्वामित्रप्रभावतः[3]। रामश्च[4] प्रथितो[5] राज्ञा समुनिः पूजितः क्रतौ ।।१०।।
धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत्। वीर्यशुल्कां स जनकः सीतां कन्यां त्वयोनिजाम् ।।११।।
ददौ रामाय, रामोऽपि पित्रादौ हि समागते। उपयेमे जानकीं तामूर्मिलां लक्ष्मणस्तदा[6] ।।१२।।
श्रुतकीर्तिर्माण्डवी च कुशध्वजसुते तथा। जनकस्यानुजस्यैते शत्रुघ्नभरतावुभौ ।।१३।।
कन्ये द्वे तूपयेमाते, जनकेन सुपूजितः[7]। रामोऽगात्स वसिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च ।।१४।।
अयोध्यां भरतोऽप्यागात्सशत्रुघ्नो[8] युधाजितः[9] ।।१५।।

इत्यादिमहापुराणे श्रीरामायणे बालकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

रामायणेऽयोध्याकाण्डम्

नारद उवाच

भरतेऽथ गते रामः पित्रादीनभ्यपूजयत्। राजा दशरथो राममुवाच शृणु राघव ।।१।।

में निवास करते हुए राम अपने अनुज लक्ष्मण और विश्वामित्र आदि ऋषियों के साथ मैथिल राजा जनक के यज्ञ में (शिव जी का) धनुष देखने गये ।।९।। (वह यज्ञ) शतानन्द को (पुरोहित रूप) निमित्त बनाकर विश्वामित्र के प्रभाव से (हुआ)। भगवान् राम मुनि विश्वामित्र के साथ यज्ञ में राजा जनक के द्वारा पूजित और प्रशंसित हुए ।।१०।। भगवान् राम ने खेल-खेल ही में धनुष पर डोरी चढ़ा दी और वह धनुष टूट गया। तब राजा जनक ने वीरता ही जिसकी कीमत थी, उस अयोनिज (भू-पुत्री) अपनी कन्या सीता को राम को दे दिया। पिता दशरथ आदि के आने पर भगवान् राम ने सीता जी से विवाह किया। उसी समय लक्ष्मण ने उर्मिला से (विवाह किया) ।।११-१२।। जनक के छोटे भाई कुशध्वज की दो कन्याओं-श्रुतकीर्ति और माण्डवी का विवाह (क्रमशः) शत्रुघ्न और भरत से हो गया ।। १३।। जनक के द्वारा सम्मानित होकर और परशुराम को जीतकर वसिष्ठ आदि ऋषियों के साथ राम तो अयोध्या लौट गये और भरत शत्रुघ्न के साथ अपने मामा युधाजित् के पास-ननिहाल कैकयदेश चले गये ।।१४-१५।।

श्री अग्निमहापुराण के रामायणाख्यान में बालकाण्ड-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।५।।

अध्याय ६

अयोध्याकाण्ड का वर्णन

नारद बोले-भरत के चले जाने पर राम माता-पिता का आदर-सत्कार करने लगे। (कुछ समय बीतने पर) महाराज दशरथ ने राम से कहा-'राघव, सुनो ।।१।। तुम्हारे गुणों में अनुरक्त प्रजा ने मन से तुम्हारा अभिषेक कर

---

१ क. चायं। २ क. सदान°। ३ ख. ग. ङ. च. वक.। रा°। ४ ख. ग. घ. ङ. च. रामाय। ५ ख. ग. ङ. कथितो। ६ घ. ङ. °स्तथा। श्रु°। ७ ङ. च. सूपूजिताः। ८ क. °घ्नोऽथ राजिताम्। ख. ग. ङ. घ्नो युधाजितम्। ९ पुरीमिति शेषः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजाभिरभिषेचितः। मनसाहं प्रभाते ते[2] यौवराज्यं ददामि ह ।।२।।
रात्रौ त्वं सीतया सार्धं संयतः सुव्रतो भव। राज्ञश्च मन्त्रिणश्चाष्टौ[3] सवसिष्ठस्तथाऽ[4]ब्रुवन् ।।३।।
दृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राज्यवर्धनः[5]। अशोको[6] धर्मपालश्च सुमन्त्रः सवसिष्ठकः ।।४।।
पित्रादिवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः। स्थितो देवार्चनं कृत्वा कौसल्यायै[7] निवेद्य तत् ।।५।।
राजोवाच वसिष्ठादीन् रामराज्याभिषेचने। सम्भारान् सम्भरन्तु[8] स्म इत्युक्त्वा कैकेयीं गतः ।।६।।
अयोध्यालङ्कृतिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा रामाभिषेचनम्। भविष्यतीत्याचचक्षे कैकेयीं मन्थराऽसती[9] ।।७।।
पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः। तेन वैरेण सा रामं वनवासं च[10] काङ्क्षति ।।८।।
कैकेयि[11] त्वं समुत्तिष्ठ रामराज्याभिषेचनम्। मरणं तव पुत्रस्य मम ते नात्र संशयः ।।९।।
कुब्जयोक्तं च तच्छ्रुत्वा एकमाभरणं ददौ। उवाच मे यथा रामस्तथा[12] मे भरतः सुतः ।।१०।।
उपायं[13] तं न पश्यामि भरतो येन राज्यभाक्। कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धा[14] हारं त्यक्त्वाथ मन्थरा ।।११।।

मन्थरोवाच

वालिशे रक्ष भरतमात्मानं मां च राघवात्। भविता राघवो राजा राघवस्य ततः सुताः[15] ।।१२।।
राजवंशस्तु कैकेयि, भरतात्परिहास्यते। देवासुरे पुरा युद्धे शम्बरेण हताः सुराः ।।१३।।

(ही) दिया है। प्रातःकाल मैं (भी) तुम्हें युवराज का पद प्रदान कर दूँगा ।।२।। रात्रि में तुम सीता के साथ संयमपूर्वक व्रत का पालन करना।' राजगुरु वसिष्ठ के साथ राजा के आठ मन्त्रिगण–दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त्र ने भी इसका समर्थन किया ।।३–४।। पिता, राजगुरु और मन्त्रियों का अभिमत सुनकर राम ने 'ऐसा हो' कहकर तथा उस (समाचार) को कौशल्या को सुनाकर, देव–पूजन करके (व्रतयुक्त) हो गये ।।५।। महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि से 'राम के राज्याभिषेक की सामग्री जुटायी जाय', ऐसा कहकर कैकेयी के पास चले गये ।।६।। इधर राजधानी अयोध्या की शोभा देखकर और (दूसरे दिन) राम का अभिषेक होगा–यह जानकर दुष्टा मन्थरा ने कैकेयी से कहा ।।७।। (बात यह थी कि एक बार) किसी गलती पर भगवान् राम ने उसका पैर पकड़कर घसीटा था। उसी दुश्मनी से मन्थरा भगवान् राम का वनवास चाहती थी ।।८।। (मन्थरा कैकेयी के पास जाकर बोली)–हे कैकेयी! तुम उठ जाओ। राम के राज्याभिषेक (का अर्थ) तेरी, तेरे पुत्र की (और) मेरी मौत (ही है) इसमें कोई सन्देह नहीं ।।९।। कुबड़ी (मन्थरा) की इस बात को सुनकर कैकेयी ने अपना एक आभूषण उतारकर उसे दे दिया और बोली–जैसे राम मेरे हैं वैसे ही भरत मेरे पुत्र हैं ।।१०।। मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं सूझ रहा है जिससे भरत राज्य के अधिकारी (भोक्ता) हो सकें। इसके बाद कुपित होकर, हार का परित्याग करके मन्थरा कैकेयी से बोली ।।११।।

मन्थरा बोली–'अयि मूर्खे! राम से भरत की, अपनी और मेरी रक्षा करो। (अभी) राम राजा होंगे तत्पश्चात् उनकी सन्तान राज्य की अधिकारी होगी ।।१२।। कैकेयी! इस प्रकार तो राजवंश भरत के हाथ से निकल जायगा। (क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि) आज से वर्षों पहले देवासुर-संग्राम में शम्बर ने देवताओं को पराजित कर दिया था ।।१३।।

---

१ क. ङ. गुणान्धरागा°। च. गुणान्धकाराद्रा°। २ ङ. त्वां। ३ क. °श्चाशु स°। ४ ख. °स्तदाऽब्रु°। ५ ग. घ. राष्ट्रवर्धनः। ६ क. °को मन्त्रपा°। ७ क. ख. ग. घ. ङ. कौशल्या°। ८ क. ख. घ. °भवन्तु। ९ घ. °रा सखी। पा°। १० क. च. च. कां गतिम्। कै°। ग. ङ. च. काङ्क्षती। कै°। ११ क. ग. कैकेयी। ख. घ. ङ. कैकयि। १२ च. रामो भरतो मत्सुतस्तथा। ङ.। १३ ख. ग. घ. ङ. च. °यं तु न। १४ क. °वीत्कुब्जा हा°। १५ ख. घ. सुतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रात्रौ भर्ता गतस्तत्र रक्षितो विद्यया त्वया। वरद्वयं तदा प्रादाद्याचेदानीं नृपं च यत् ।।१४।।
रामस्य च वने वासं नव वर्षाणि पञ्च च। यौवराज्यं च भरते तदिदानीं प्रदास्यति ।।१५।।
प्रोत्साहिता कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी। उवाच सदुपायो[1] मे कथितः [2]स करिष्यति ।।१६।।
क्रोधागारं प्रविश्याथ[3] पतिता भुवि मूर्च्छिता। द्विजादीनर्चयित्वाथ राजा दशरथस्तदा ।।१७।।
ददर्श कैकेयीं रुष्टामुवाच कथमीदृशी। रोगार्ता किं भयोद्विग्ना किमिच्छसि करोमि तत् ।।१८।।
येन रामेण हि विना न जीवामि मुहूर्तकम्। शपामि तेन कुर्यां ते वाञ्छितं तव सुन्दरि ।।१९।।
सत्यं ब्रूहीति सोवाच नृप मह्यं ददासि चेत्। वरद्वयं पूर्वदत्तं सत्यार्थं[4] देहि मे नृप ।।२०।।
चतुर्दश समा रामो वने वसतु संयतः[5]। सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोऽत्राभिषेच्यताम्[6] ।।२१।।
विषं पीत्वा मरिष्यामि दास्यसि त्वं न[7] चेन्नृप। तच्छ्रुत्वा मूर्च्छितो भूमौ वज्राहत इवापतत्
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ।।२२।।

दशरथ उवाच

किं कृतं तव रामेण मया वा पापनिश्चये। यन्मामेवं ब्रवीषि त्वं सर्वलोकाप्रियङ्करि ।।२३।।

उस युद्ध में रात्रि के समय तुम्हारे स्वामी (देवताओं की सहायता के लिए) गये हुए थे। उस समय तुमने अपनी विद्या से राजा के प्राणों की रक्षा की थी। तब प्रसन्न होकर उन्होंने तुम्हें दो वर दिये थे। इस समय उन्हीं को माँग लो ।।१४।। उनमें से एक वर हो राम का चौदह वर्ष के लिए वनवास और दूसरा हो भरत को यौवराज्य प्रदान करना। (माँगकर तो देखो) राजा इस समय दे देंगे ।।१५।। कुबड़ी की कूटनीति से प्रोत्साहित होकर, अनर्थ में भी स्वार्थ-सिद्धि देखनेवाली कैकेयी बोली–तुमने मुझे अच्छा उपाय बतलाया। वह राजा इसे अवश्य करेगा ।।१६।। इसके बाद कोप-भवन में जाकर कैकेयी भूमि पर गिरकर मूर्च्छित हो गयी। तदनन्तर राजा दशरथ ने द्विज और देवताओं की पूजा से निवृत्त होकर देखा कि कैकेयी रुष्ट (पड़ी हुई) है। उन्होंने पूछा–तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो गयी है? क्या तुम किसी रोग से पीड़ित हो? अथवा किसी भय से उद्विग्न हो? कहो क्या चाहती हो? मैं अवश्य उसको पूरा करूँगा ।।१७-१८।। अयि सुन्दरि! जिन राम के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता हूँ, उनकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे मनोरथ को अवश्य पूर्ण करूँगा ।।१९।। उसने कहा–हे महाराज! सच-सच कहना। यदि तुम मुझे कुछ देना ही चाहते हो, तो उन दो वरों को दो जिन्हें तुम मुझे पहले ही दे चुके हो–आज अपनी बात को सत्य कर दो ।।२०।। पहला वर है कि राम संयमपूर्वक चौदह वर्ष वन में रहें और इन सामग्रियों से जिनसे राम का राज्याभिषेक होनेवाला था, आज ही यहीं उनसे भरत का अभिषेक कर दो ।।२१।। हे महाराज! यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी। कैकेयी की इन बातों को सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो गये और वज्राहत के समान पृथ्वी पर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद चेतना लौटने पर वे कैकेयी से कहने लगे ।।२२।।

दशरथ बोले–अयि! तुम तो पाप करने पर तुल गयी हो। अरे राम ने अथवा मैंने ही तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम ऐसा कह रही हो? हे सम्पूर्ण संसार का अप्रिय करनेवाली! केवल तुम्हारा ही प्रिय मनोरथ पूर्ण करके मैं संसार

---

१ क. ङ. च. स त्वया यन्मे कथितं कारयिष्यति। ख. घ. सदुपायं मे कच्चित्तं कारयिष्यति। २ स दशरथः। ३ ख. घ. च. प्रविष्टाऽथ। ४ घ. सत्यात्त्वं। ५ क. ग. संगतः। ६ ख. ग. ङ. च. °भिषिच्य°। ७ ग. न मे नृप।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

केवलं त्वत्प्रियं कृत्वा भविष्यामि सुनिन्दितः। न[1] त्वं भार्या कालरात्रिर्भरतो नेदृशः सुतः ।।२४।।
प्रशाधि विधवा राज्यं मृते मयि गते सुते। सत्यपाशनिबद्धस्तु[2] राममाहूय चाब्रवीत् ।।२५।।
कैकेय्या वञ्चितो राम राज्यं कुरु निगृह्य माम्। [3]त्वया वने तु[4] वस्तव्यं कैकेयी भरतो नृपः[5] ।।२६।।
[6]पितरं चैव कैकेयीं नमस्कृत्य प्रदक्षिणम्। कृत्वा नत्वा च कौसल्यां समाश्वास्य सलक्ष्मणः ।।२७।।
सीतया भार्यया सार्धं सरथः ससुमन्त्रकः। दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव सः ।।२८।।
मातृभिश्चैव पित्राद्यैः शोकार्तैर्निर्गतः पुरात्। उषित्वा तमसातीरे[7] रात्रौ पौरान् विहाय च ।।२९।।
प्रभाते तमपश्यन्तोऽयोध्यां ते पुनरागतः। रुदन्[8] राजापि कौसल्यागृहमागात्सुदुःखितः ।।३०।।
पौरा जनाः स्त्रियः सर्वा रुरुदू राजयोषितः[9]। रामो रथस्थश्चीराढ्यः शृङ्गवेरपुरं ययौ ।।३१।।
गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रितः। लक्ष्मणः सगुहो रात्रौ[10] चक्रतुर्जागरं हि तौ ।।३२।।
सुमन्त्रं सरथं त्यक्त्वा [11]प्रातर्नावाऽथ[12] जाह्नवीम्। रामलक्ष्मणसीताश्च[13] तीर्त्वा तेऽगुः प्रयागकम् ।।३३।।
भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटगिरिं ययुः। वास्तुपूजां तत्र[14] कृत्वा स्थिता मन्दाकिनीतटे ।।३४।।

में निन्दित हो जाऊँगा। तुम मेरी भार्या नहीं, तुम तो मेरी कालरात्रि हो। भरत ऐसा (अर्थात् तुम्हारी तरह) पुत्र नहीं है ।।२३-२४।। ('अच्छा तो अब) मेरे मर जाने और पुत्र राम के वन चले जाने पर तुम विधवा होकर शासन करो।' (कैकेयी से ऐसा कहकर) सत्य के फंदे से बँधे हुए महाराज दशरथ ने राम को बुलाकर कहा- ।।२५।। हे राम! कैकेयी ने मुझे ठग लिया। तुम मुझे गिरफ्तार करके राज्य करो। (कैकेयी ने वर माँगा है कि) तुम वन में निवास करो और कैकेयी (-सहित उस) का पुत्र भरत राजा बने ।।२६।। (पिता की इस बात को सुनकर) राम ने पिता (दशरथ) और कैकेयी को नमस्कार किया। उन्होंने दोनों की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् माता कौशल्या को प्रणाम करके तथा उनको सान्त्वना देकर लक्ष्मण तथा भार्या सीता सहित और सुमन्त्र के साथ रथ पर सवार होकर (राम वन को चल पड़े।) चलते समय उन्होंने ब्राह्मणों, दीनों और अनाथों को दान दिया और शोकविह्वल माताओं और पिता तथा अन्य हितचिन्तकों के साथ अयोध्या नगर से बाहर निकल गये। सरयू (तमसा ?) नदी के तट पर रात बिताकर अयोध्यावासियों को छोड़कर (राम आगे वन को चल पड़े।) प्रातःकाल राम को न देखकर सब पुरवासी पुनः अयोध्या लौट आये। अत्यन्त दुःखित राजा भी रोते हुए कौशल्या के भवन में आ गये ।।२७-३०।। सब पुरवासी, स्त्रियाँ और रानियाँ धाड़ मार-मारकर रोने लगीं। (उधर) राम चीर धारण करके रथ पर बैठकर शृङ्गवेरपुर चले गये ।।३१।। वहाँ निषादराज गुह ने भगवान् की पूजा की। राम ने एक इङ्गुदीवृक्ष के नीचे आश्रय लिया और गुह के साथ लक्ष्मण रात भर जागते रह गये ।।३२।। प्रातःकाल राम ने मन्त्री सुमन्त्र को रथ के सहित लौटा दिया। राम, लक्ष्मण और सीता नाव से गङ्गापार करके प्रयाग गये ।।३३।। वहाँ भरद्वाज ऋषि को नमस्कार करके चित्रकूट पर्वत पर गये। वहाँ पर वास्तु-पूजा करके मन्दाकिनी नदी के किनारे रहने लगे ।।३४।।

---

१ घ. या त्वं भार्या कालरात्रिर्भर°। २ क. ङ. च. ''पाशेन ब°। ३ अर्थपूरणायात्र अथवा इति ग्राह्यम्। ४ भवत्विति शेषः। ५ 'इति दशरथवाक्यं श्रुत्वा रामः' इत्यर्थपूरणायात्र ग्राह्यम्। ६ ख. ग. न। ७ रामो गत इति शेषः। ८ रुदन् मातापि कौशल्या गृहमागात्सुदुःखिता। ९ ग. तः। सस्त्रीकः सानुजी रामः शृ°। १० क. ङ. च. °त्रौ ददतु°। ११ प्रातःकालेऽथ। १२ क. ङ. च °वा च. जा°। १३ ग. °श्च ययुस्तीर्णाः प्र०। घ. °श्च तीर्णा आपुः प्र°। १४ घ. ग. ततः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सीतायै दर्शयामास चित्रकूटं च राघवः । नखैर्विदारयन्तं तं काकं तच्चक्षुराक्षिपत् ।।३५।।
ऐषिकास्त्रेण (?) शरणं[1] प्राप्तो देवान् विहाय सः । रामे वनं गते राजा षष्ठेऽह्निनिशि चाब्रवीत् ।।३६।।
कौशल्यायै[2] कथां पूर्वां यदज्ञानाद्धतः पुरा । कौमारे सरयूतीरे[3] यज्ञदत्तकुमारकः[4] ।।३७।।
[5]शब्दभेदाच्च कुम्भेन शब्दं कुर्वंश्च तत्पिता । शशाप विलपन्मात्रा[6] शोकं कृत्वा रुदन्मुहुः ।।३८।।
पुत्रं विना मरिष्यावस्त्वं[7] च शोकान्मरिष्यसि । पुत्रं विना स्मरञ्शोकात्कौशल्ये मरणं मम ।।३९।।
कथामुक्त्वाथ[8] हा राममुक्त्वा राजा दिवं गतः । सुप्तं मत्वाऽथ कौशल्या सुप्ता शोकार्तमेव सा ।।४०।।
सुप्रभाते शयानं तं सूतमागधबन्दिनः । ([9]प्रबोधका बोधयन्ति न च बुध्यत्सयौ नृपः[10]) ।।४१।।
कौशल्या तं मृतं ज्ञात्वा हा हतास्मीति चापतत्[11] । नरा नार्योऽथ रुरुदुस्तैलद्रोण्यां निधाय तम् ।।४२।।
वसिष्ठेन च तत्कालमानीतो भरतः किल । सुमन्त्राद्यैः सशत्रुघ्नः शीघ्रं राजगृहात्पुरीम् ।।४३।।
दृष्ट्वा सशोकां कैकेयीं निन्दयामास दुःखितः । अकीर्तिः पातिता मूर्ध्नि कौशल्यां स प्रशस्य च ।।४४।।
पितरं तैलद्रोणीस्थं संस्कृत्य सरयूतटे । वसिष्ठाद्यैर्जनैरुक्तो राज्यं कुर्विति सोऽब्रवीत् ।।४५।।

वहाँ उन्होंने सीता को चित्रकूट का दर्शन कराया। सीता जी पर नखों से चोट करनेवाले उस कौए (जयन्त) को राम ने सींक के बाण से मारकर उसके एक नेत्र को फोड़ डाला। वह कौआ (रूपधारी इन्द्रपुत्र) जयन्त देवताओं को छोड़कर भगवान् की शरण में आ गया ।।३५-३५$\frac{1}{2}$।। राम के चले जाने के छठे दिन, रात में दशरथ ने कौशल्या से पहले का वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि किस प्रकार उन्होंने (अपनी) कुमारावस्था में अज्ञानवश सरयू-तट पर घड़ा भरने के शब्द को सुनकर शब्दवेधी बाण से यज्ञदत्त के पुत्र श्रवणकुमार का वध कर दिया था ।।३६-३७$\frac{1}{2}$।। श्रवणकुमार की माता जब रो-रोकर विलाप कर रही थी, उस समय उसके पिता ने शोक करते हुए बार-बार रोते हुए राजा दशरथ को शाप दिया था-'हम दोनों तो पुत्र के बिना मर ही रहे हैं, तू भी पुत्र-शोक से मरेगा।' अतः अयि कौशल्ये! पुत्र (राम) के बिना उसका स्मरण करते हुए शोक से मेरी मृत्यु हो जायगी। इस कथा को कहकर 'हा राम' ऐसा कहकर राजा स्वर्ग चले गये। कौशल्या महाराज दशरथ को शोक से कातर (अतः) सोया हुआ समझकर सो गयीं ।।३८-४०।। दूसरे दिन सवेरे (राजा को) जगानेवाले सूत, मागध और बन्दिजन महाराज दशरथ को जगाने लगे परन्तु वह जागे ही नहीं ।।४१।। अब कौशल्या उनको मृत समझकर 'हाय, मैं मर गयी' ऐसा कहकर गिर पड़ीं। राज्य के सब नर और नारी रोने लगे। राजा (के शरीर) को तेल की कुण्डी में रखकर वसिष्ठ ने तत्काल ही सुमन्त्र आदि को भेजकर शत्रुघ्न सहित भरत को राजगृह (ननिहाल) से अयोध्या नगर में बुलवा लिया ।।४२-४३।। दुःखी भरत ने शोकार्त कैकेयी को देखकर उसकी निन्दा की। और सारा कलंक कैकेयी के सिर मढ़ दिया और माता कौशल्या की प्रशंसा करके तेल की कुण्डी में रखे हुए पिता के शव का सरयू नदी के किनारे संस्कार किया। वसिष्ठ आदि ऋषियों के द्वारा राज्य सँभालने के लिए कहे जाने पर भरत ने कहा-मैं राम को बुलाने के लिए जा रहा हूँ। मेरे मत से बलवान् राम ही राजा हैं ।।४४-४५$\frac{1}{2}$।। (यह कहकर

---

१ क. ङ. च. वः। एकास्त्रेणैव श°। २ क. घ. कौशल्यां स कथां पौर्वां। ३ क. सरयूतीरे। ४ क. ङ. च. °दत्तः कुमा°। ५ 'शब्दभेदात्'''''मुहुः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ यज्ञदत्तमात्रा सहेत्यर्थः। ७ क. ङ. च. °ष्यामि त्वं च। ८ क. ङ. च. °थ वा राममुक्तो रा°। ९ प्रबोधका''''नृपः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। १० ख. घ. मृतः। ११ ख. घ. चाब्रवीत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्रजामि राममानेतुं रामो राजा मतो बली। शृङ्गवेरं[1] प्रयागं च भरद्वाजेन भोजितः ।।४६।।
नमस्कृत्य भरद्वाजं रामं लक्ष्मणमागतः। पिता स्वर्गं गतो राम अयोध्यायां नृपो भव ।।४७।।
[2]अहं वनं प्रयास्यामि त्वदादेशप्रतीक्षकः[3]। रामः श्रुत्वा जलं दत्त्वा गृहीत्वा पादुके व्रज ।।४८।।
राज्यायाहं न यास्यामि [4]सत्याच्चीरजटाधरः। रामोक्तो भरतश्चागान्नन्दिग्रामे स्थितो बली ।।४९।।
त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यं[5] प्रपालयत् ।।५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामाख्यानेऽयोध्याकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

रामायणेऽरण्यकाण्डवर्णनम्

नारद उवाच

रामो वसिष्ठं मातृश्च नत्वात्रिं च प्रणम्य सः। अनसूयां च तत्पत्नीं शरभङ्गं सुतीक्ष्णकम् ।।१।।
अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यं तत्प्रसादतः[6]। धनुः खड्गं च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः ।।२।।

राम को बुलाने के लिए भरत जी चल पड़े) भरत जी शृङ्गवेरपुर के बाद प्रयाग में आये जहाँ भरद्वाज ने उन्हें भोजन कराया ।।४६।। भरत ने भरद्वाज को प्रणाम करके राम और लक्ष्मण के समीप जाकर कहा–'हे भाई राम! पिता जी स्वर्ग सिधार गये हैं। अब आप अयोध्या में चलकर राजा होइये ।।४७।। आपका आज्ञाकारी मैं वन को चला जाऊँगा।' राम ने यह सुनकर पिता को जलाञ्जलि दी और भरत से कहा–तुम मेरी खड़ाऊँ लेकर लौट जाओ ।।४८।। मैंने तो सत्य की रक्षा के लिए चीर और जटा धारण कर लिया है, अतः राज्य के लिए अयोध्या नहीं जाऊँगा। राम के ऐसा कहने पर बलशाली भरत लौट गये और अयोध्या को छोड़कर नन्दिग्राम में रहने लगे। वे वहाँ पादुकाओं की पूजा करते हुए वहीं से राज्य का सञ्चालन भी करते थे ।।४९–५०।।

श्री अग्निमहापुराण के रामाख्यानान्तर्गत अयोध्याकाण्ड वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।।६।।

अध्याय ७

अरण्यकाण्ड वर्णन

नारद बोले–राम ने पहले चित्रकूट में आये हुए गुरु वसिष्ठ और माताओं को नमस्कार करके विदा किया। तत्पश्चात् अत्रि और उनकी पत्नी अनसूया, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य के भ्राता (अग्निजिह्व) और अगस्त्य मुनि को नमस्कार करके उनकी कृपा से तलवार और धनुष प्राप्त करके राम दण्डकारण्य पहुँचे ।।१–२।। दण्डकारण्य

---

१ क. ङ. च. °वेरप्र°। २ अहं°°°°प्रतीक्षकः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ग. °प्ररक्ष°। ४ ग. सत्यं चीर°। ५ ख. ग. घ. राज्यमपा°। ६ क. ग. तत्प्रमाणतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरीतटे । तत्र शूर्पणखाऽऽयाता भक्षितुं तान्भयङ्करी ।।३।।
रामं सुरूपं दृष्ट्वा सा कामिनी वाक्यमब्रवीत् ।।४।।

शूर्पणखा उवाच

कस्त्वं कस्मात्समायातो भर्ता मे भव चार्थितः । एतौ च भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वात्तं[1] समुद्यता ।।५।।
तस्य नासां च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत् । रक्तं क्षरन्ती प्रययौ खरं भ्रातरमब्रवीत् ।।६।।
मरिष्यामि विनासाऽहं खर जीवामि वै तदा । रामस्य जाया[2] सीताऽस्ति तस्यासील्लक्ष्मणोऽनुजः ।।७।।
तेषां यद्रुधिरं कोष्णं पाययिष्यसि मां यदि । खरस्तथेति तामुक्त्वा चतुर्दशसहस्रकैः ।।८।।
रक्षसां दूषणेनागादथ त्रिशिरसा सह । रामं, रामोऽपि युयुधे शरैर्विव्याध राक्षसान् ।।९।।
हस्त्यश्वरथपादातं बलं निन्ये यमक्षयम् । त्रिशीर्षाणं खरं रौद्रं युध्यन्तं चैव दूषणम् ।।१०।।
ययौ शूर्पणखा लङ्कां रावणाग्रेऽपतद्भुवि । अब्रवीद् रावणं क्रुद्धा न त्वं राजा च[3] रक्षकः ।।११।।
खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च । रामलक्ष्मणरक्तस्य पानाज्जीवामि नान्यथा ।।१२।।
तथेत्याह च तच्छ्रुत्वा मारीचं प्राह वै व्रज । स्वर्णचित्रमृगो[4] भूत्वा रामलक्ष्मणकर्षकः ।।१३।।
सीताग्रे, तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव । मारीचो रावणं प्राह रामो मृत्युर्धनुर्धरः[5] ।।१४।।

में भगवान् राम गोदावरी नदी के किनारे पञ्चवटी में रहने लगे। उन वन में शूर्पणखा नाम की एक भयङ्कर राक्षसी उनको खा जाने के अभिप्राय से आयी ।।३।। परन्तु राम के मनोहर रूप को देखकर वह काम के वशीभूत होकर राम से कहने लगी ।।४।।

शूर्पणखा बोली–तुम कौन हो ? किस देश से यहाँ आये हो ? मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम मेरे पति बन जाओ। किन्तु इन दोनों को तो मैं खा ही जाऊँगी, ऐसा कहकर आगे बढ़ी ।।५।। राम के कहने पर लक्ष्मण ने उसके नाक और कान काट दिये। खून बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास जाकर बोली–खर! मैं नककटी बनकर जीवित नहीं रह सकती हूँ। मैं तो तभी जीवित रहूँगी जब तुम राम, राम की स्त्री सीता और राम के छोटे भाई लक्ष्मण का गुनगुना रक्त मुझे पिलाओगे। खर ने कहा–'ऐसा ही होगा।' वह अपने चौदह हजार सैनिकों तथा त्रिशिर और दूषण के साथ राम से जा भिड़ा। राम भी उससे युद्ध करने लगे और बाणों से राक्षसों को मारने लगे ।।६–९।। भगवान् राम ने युद्ध करनेवाले भयंकर खर, दूषण को और त्रिशिर को (तथा उनके) हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना को मारकर यमलोक भेज दिया ।।१०।। (निराश होकर) शूर्पणखा लंका में जाकर रावण के आगे पछाड़ खाकर गिर पड़ी और क्रुद्ध होकर रावण से कहने लगी–न तो तुम राजा हो और न प्रजा–रक्षक ।।११।। तुम खर आदि का वध करनेवाले राम की पत्नी सीता का हरण कर लो। मैं राम और लक्ष्मण के रक्त को पीकर ही जीवित रह सकती हूँ अन्यथा नहीं ।।१२।। उसकी बातों को सुनकर रावण ने कहा–'ऐसा ही होगा।' तदनन्तर उसने मारीच से कहा–"तुम सोने का विचित्र मृग बनकर राम और लक्ष्मण के समीप जाओ और सीता के सामने उनको (छल से) दूर हटा ले जाओ ।।१३।। तब मैं सीता का हरण कर लूँगा, अन्यथा (यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो) तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।" यह सुनकर मारीच ने रावण से कहा–'धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं' ।।१४।।

---

१ क. ग. घ. °क्त्वा तं स°। च. °क्त्वाऽन्तं स°। २ ख. ग. घ. भार्या सीताऽसौ। ३ च. °जा न राक्षसः। ४ क. ख. ग. घ. ङ. च. °चित्रो मृ°। ५ ङ. मृत्युः कृतो मम। च. मृत्युर्न तद्वरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रावणादपि मर्तव्यं मर्तव्यं राघवादपि । अवश्यं यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ।।१५।।
इति मत्वा मृगो भूत्वा सीताग्रे व्यचरन्मुहुः । सीतया प्रेरितो रामः शरेणाथावधीच्च तम् ।।१६।।
म्रियमाणो मृगः प्राह हा सीते! लक्ष्मणेति च । सौमित्रिः सीतयोक्तोऽथ विरुद्धं राममागतः[1] ।।१७।।
रावणोऽप्यहरत्सीतां हत्वा गृध्रं जटायुषम् । जटायुषा स विरथो[2] अंसमादाय[3] जानकीम् ।।१८।।
गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत् ।।१९।।

रावण उवाच

'भव भार्या ममाग्र्या त्वं', 'राक्षस्यो[4]! रक्ष्यतामियम्' । रामो हत्वाथ मारीचं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ।।२०।।

श्रीराम उवाच

मायामृगोऽसौ सौमित्रे! यथा त्वमिह चागतः । तथा सीता हृता नूनं नापश्यत्स गतोऽथ ताम् ।।२१।।
शुशोच विललापार्तो मां त्यक्त्वा क्व गतासि वै । लक्ष्मणाश्वासितो रामो मार्गयामास जानकीम् ।।२२।।
दृष्ट्वा जटायुस्तं[5] प्राह रावणो हृतवांश्च ताम् । मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धं चावधीत्ततः ।।२३।।
शापमुक्तोऽब्रवीद्रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणेऽरण्यकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

(मारीच ने मन में सोचा–) मुझे रावण से भी मरना है और राम से भी। यदि मुझे मरना ही है तो राम के हाथों से ही मरना श्रेयस्कर है, रावण के हाथों से नहीं ।।१५।। ऐसा निश्चित करके वह मारीच मृग बनकर सीता के सामने बार-बार घूमने लगा। सीता के कहने पर राम ने उसको बाण से मार गिराया ।।१६।। मरता हुआ मृग चिल्लाया–हा सीता! हा लक्ष्मण! सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सीता द्वारा (कटु वचन) कहे जाने पर राम की आज्ञा के विरुद्ध राम के समीप चले गये ।।१७।। रावण ने भी जटायु नामक गीध को मारकर सीता का हरण किया। जटायु ने रावण को रथविहीन कर दिया था, अतएव वह सीता को कन्धे पर रखकर लंका ले गया। वहाँ अशोक वन में सीता को रखकर बोला–।।१८–१९।।

रावण ने कहा–'(हे सीते!) तुम मेरी पटरानी बनो।' 'अयि राक्षसियो! तुम सब इसकी निगरानी करती रहो।' मारीच को मारकर लौटते हुए राम ने (मार्ग में) लक्ष्मण को देखकर कहा– ।।२०।।

श्रीराम बोले–अरे, सुमित्रानन्दन लक्ष्मण! वह तो कपटमृग था। तुम जैसे ही इधर आये वैसे ही, लगता है कि किसी ने जरूर सीता का अपहरण कर लिया है। ऐसा कहकर राम (कुटी में) आये किन्तु वहाँ उन्होंने सीता को नहीं देखा ।।२१।। (सीता को न पाकर) भगवान् राम शोक करने लगे और व्यथित होकर विलाप करने लगे–'अयि सीते! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी हो ?' लक्ष्मण के समझाने-बुझाने पर राम सीता की खोज में लग गये ।।२२।। (मार्ग में) जटायु ने राम को देखकर कहा–'सीता को रावण हर ले गया है।' इतना कहकर (रावण के द्वारा घायल किये गये) जटायु ने प्राण त्याग कर दिया। राम ने जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया करके फिर (मार्ग में) कबन्ध का वध किया ।।२३।। शापमुक्त होकर कबन्ध ने राम से कहा–'आप सुग्रीव के पास जाइये' ।।२४।।

श्री अग्निमहापुराण में रामायणान्तर्गत अरण्यकाण्ड वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।।७।।

---

१ च. मृगमागतः। २ ख. ग. भिन्नाङ्गो। ३ क. अङ्कमादाय। ख. अंसेनादाय। ग. अङ्गेनादाय। घ. अङ्केनादाय। ४ क. °स्यो भक्ष्य°। ५ क. °टायुः सम्प्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टमोऽध्यायः

रामायणे किष्किन्धाकाण्डम्

नारद उवाच

रामः पम्पासरो गत्वाऽशोचत्स शबरीं गतः। हनूमताऽथ सुग्रीवं नीतो मित्रं चकार ह ।।१।।
सप्ततालान्विनिर्भिद्य शरेणैकेन पश्यतः। पादेन दुन्दुभेः कायं चिक्षेप दशयोजनम् ।।२।।
तद्रिपुं वालिनं हत्वा भ्रातरं वैरकारिणम्। किष्किन्धां कपिराज्यं च रुमां तारां समर्पयत् ।।३।।
ऋष्यमूके हरीशाय, किष्किन्धेशोऽब्रवीदथ। सीतां त्वं प्राप्स्यसे यद्वत्तथा राम! करोमि ते ।।४।।
तच्छ्रुत्वा माल्यवत्पृष्ठे चातुर्मास्यं चकार सः। किष्किन्धायां च सुग्रीवो यदा नायाति दर्शनम् ।।५।।
तदाब्रवीत्तं रामोक्तो[1] लक्ष्मणो व्रज राघवम्। न च सङ्कुचितः पन्था येन वाली[2] हतो गतः ।।६।।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः। सुग्रीव आह संसक्तो गतं कालं न बुद्धवान् ।।७।।
इत्युक्त्वा स गतो रामं नत्वोवाच हरीश्वरः ।।८।।

अध्याय ८

किष्किन्धाकाण्ड वर्णन

नारद बोले–राम पम्पा सरोवर के समीप जाकर शोकयुक्त हो गये। फिर वह शबरी के आश्रम में गये, तदनन्तर हनुमान् ने उन्हें सुग्रीव के पास ले जाकर उनसे मैत्री करा दी ।।१।। (सुग्रीव के विश्वास के लिए) देखते-ही-देखते राम ने एक बाण से ताड़ के सात वृक्षों को गिरा दिया (और) एक पैर से दुन्दुभि राक्षस के शरीर को दस योजन (४० कोस) दूर फेंक दिया ।।२।। राम ने सुग्रीव से शत्रुता रखनेवाले उसके भाई बालि को मारकर किष्किन्धा नामक वानर-राज्य तथा रुमा और तारा को (सुग्रीव को) दे दिया ।।३।। तदनन्तर किष्किन्धा के महाराज सुग्रीव ने कहा–हे राम! मैं वैसा ही उपाय करूँगा जिससे सीता आपको प्राप्त हो सके ।।४।। उसकी उस बात को सुनकर भगवान् ने माल्यवान् पर्वत पर चातुर्मास्य बिताया, (इसके बाद भी) जब किष्किन्धा में सुग्रीव दिखायी तक न पड़ा तब भगवान् राम द्वारा कहे जाने पर लक्ष्मण ने उस (सुग्रीव) से कहा–हे सुग्रीव! तुम भगवान् राम के पास जाओ (और अपने वचन को पूरा करो) अन्यथा वह रास्ता सँकरा नहीं है जिससे बालि मारे जाने पर गया। हे सुग्रीव! अपने वादे को पूरा करो, बालि के मार्ग को मत अपनाओ। (लक्ष्मण के द्वारा राम के सन्देश को पाकर) सुग्रीव ने (लक्ष्मण से) कहा–'वासना में फँसे होने के कारण मुझे समय का व्यतीत होना ज्ञात ही नहीं हुआ' यह कहकर वानरराज सुग्रीव राम के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले– ।।५-८।।

---

१ ग. रामोक्तं। २ क. वालिहतो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुग्रीव उवाच

आनीता वानराः सर्वे सीतायाश्च गवेषणे। त्वन्मताः[1] प्रेषयिष्यामि विचिन्वन्तु च जानकीम् ।।९।।
पूर्वादौ मासपर्यन्तं मासादूर्ध्वं निहन्मि तान्। इत्युक्ता वानराः पूर्वपश्चिमोत्तरमार्गगाः ।।१०।।
जग्मू रामं ससुग्रीवमपश्यन्तस्तु जानकीम् (?)। रामाङ्गुलीयं सङ्गृह्य हनूमान् वानरैः सह ।।११।।
दक्षिणे मार्गयामास सुप्रभाया गुहान्तिके[2]। मासादूर्ध्वं च विन्ध्यस्था[3] अपश्यन्तस्तु जानकीम् ।।१२।।
ऊचुर्वृथा मरिष्यामो जटायुर्धन्य एव सः। सीतार्थे योऽत्यजत्प्राणान् रावणेन हतो रणे ।।१३।।
तच्छ्रुत्वा प्राह सम्पातिर्विहाय कपिभक्षणम्। भ्रातासौ मे जटायुर्वै मयोड्डीनोऽर्कमण्डलम् ।।१४।।
अर्कतापाद्रक्षितोऽगाद्दग्धपक्षो[4]ऽहमत्रगः[5]। रामवार्ताश्रवात्पक्षौ जातौ भूयोऽथ जानकीम् ।।१५।।
पश्याम्यशोकवनिकागतां लङ्कागतां किल। शतयोजनविस्तीर्णे लवणाब्धौ त्रिकूटके ।।१६।।
ज्ञात्वा, रामं ससुग्रीवं वानराः कथयन्तु वै ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

सुग्रीव ने कहा–मैं सब वानरों को सीता की खोज करने के लिए ले आया हूँ। इन्हें मैं आपके आज्ञानुसार (इधर-उधर) भेज दूँगा जिससे ये जानकी की खोज कर सकें ।।९।। उन्होंने वानरों से भी कहा– 'वानरो! पूर्व आदि दिशाओं में जाकर एक मास के अन्दर ही सीता की खोज कर लो। एक माह से अधिक होने पर मैं सबको मार डालूँगा'– यह सुनकर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के मार्गों पर (सीता की खोज में) जानेवाले वानर सीता जी को न पाकर सुग्रीव सहित भगवान् राम के पास (वापस लौट) गये ।।१०-१०$\frac{1}{2}$।। भगवान् राम की अँगूठी लेकर हनुमान् जी वानरों के साथ दक्षिण में सुप्रभा की गुहा के पास (सीता जी की) खोज करते रहे ।।११-११$\frac{1}{2}$।। एक महीने से अधिक समय तक विन्ध्याचल पर भटकते हुए जब उन्होंने सीता जी को नहीं देखा तब कहने लगे–"हम लोग तो व्यर्थ ही मरेंगे। जटायु ही धन्य था जिसने सीता जी के लिए रावण द्वारा मारे जाने पर प्राण-त्याग कर दिया ।।१२-१३।। यह सुनकर सम्पाति ने वानरों को खा जाने का विचार छोड़कर कहा–वह जटायु तो मेरा भाई था। एक बार हम दोनों सूर्यमण्डल तक पहुँचने के उद्देश्य से उड़े ।।१४।। (जटायु तो मेरे द्वारा) सूर्य की गर्मी से बचा लिया गया और (उसे बचाने में) जले हुए पंखोंवाला मैं यहाँ गिर पड़ा। भगवान् राम की वार्ता सुनने से मेरे पंख पुनः उत्पन्न हो गये ।।१५।। मैं यहीं से लवणसागर के बीच में सौ योजन विस्तृत त्रिकूट पर्वत पर स्थित लङ्का में अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता को देख रहा हूँ। हे वानरो! (अब सीता का पता) जानकर सुग्रीव-सहित भगवान् राम से जाकर कह दो ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण के रामायणान्तर्गत किष्किन्धाकाण्ड वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।।८।।

---

१ °न्मतात्प्रेष°। २ क. ङ. च. गुहान्तिके। ३ घ. विन्यस्ता। ४ च.° क्षोऽय म°। ५ घ. °हमभ्रगः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवमोऽध्यायः

रामायणे सुन्दरकाण्डम्

नारद उवाच

सम्पातिवचनं श्रुत्वा हनूमानङ्गदादयः । अब्धिं दृष्ट्वाऽब्रुवंस्तेऽब्धिं लङ्घयेत्को नु[1] जीवयेत् ।।१।।
कपीनां जीवनार्थाय रामकार्यप्रसिद्धये । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवेऽब्धिं स मारुतिः ।।२।।
दृष्ट्योत्थितं[2] च मैनाकं सिंहिकां विनिपात्य च । लङ्कां दृष्ट्वा राक्षसानां गृहाणि, वनितागृहे ।।३।।
दशग्रीवस्य कुम्भस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः । विभीषणस्येन्द्रजितो [3]गृहेऽन्येषां च रक्षसाम् ।।४।।
नापश्यत्पानभूम्यादौ सीतां चिन्तापरायणः । अशोकवाटिकां गत्वा दृष्टवान् (शिंशपातले[4] ।।५।।
राक्षसीरक्षितां सीतां, भव भार्येतिवादिनम् । रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतां सुवादिनीम्) ।।६।।
भव भार्या रावणस्य राक्षसीर्वादिनीः कपिः । गते तु रावणे प्राह राजा दशरथोऽभवत् ।।७।।
रामोऽस्य लक्ष्मणः पुत्रौ वनवासं[5] गतौ वरौ । रामपत्नी जानकी त्वं रावणेन हृता बलात् ।।८।।

अध्याय ९

सुन्दरकाण्ड वर्णन

नारद बोले–सम्पाति की बातों को सुनकर और साथ ही समुद्र को देखकर हुनमान्, अंगद आदि परस्पर कहने लगे कि 'हममें से कोई एक समुद्र को पार करके (सीता का पता लगाकर) हम सबकी प्राण रक्षा कर लें' ।।१।। वानरों के प्राणों की रक्षा और राम के कार्य को भी सिद्ध करने के लिए पवनपुत्र हनुमान् सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ गये ।।२।। उन्होंने (मार्ग में जल के ऊपर) उठे हुए मैनाक पर्वत को देखकर और सिंहिका को मारकर (फिर) लङ्का में (जाकर सीता जी को खोजना शुरू कर दिया।) वहाँ राक्षसों के घरों में (सीता जी को खोजा–)। रावण, कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद तथा दूसरे राक्षसों के स्त्रीगृहों में तथा मदिरालयों में भी सीता को (खोजने पर) चिन्ताग्रस्त हनुमान् ने नहीं पाया ।।३–४ $\frac{1}{2}$।। (अन्त में) अशोक वाटिका में जाकर शीशम के वृक्ष के नीचे बैठी हुई राक्षसियों से रक्षित सीता को हनुमान् जी ने देखा। शीशमं के पेड़ पर बैठे हुए हनुमान् जी ने देखा कि रावण सीता जी से कह रहा है कि 'तुम मेरी पत्नी बन जाओ।' और सीता जी ने उसके प्रस्ताव को सम्यक् प्रकार से बोलते हुए अस्वीकार कर दिया। राक्षसियाँ भी सीता जी से कह रही थीं कि 'तुम रावण की भार्या बन जाओ'–ऐसा हनुमान् जी ने देखा ।।५–६ $\frac{1}{2}$।। रावण के चले जाने पर हनुमान् ने (वृक्ष पर बैठे-ही-बैठे) कहना प्रारम्भ किया–एक थे राजा दशरथ। उनके दो श्रेष्ठ पुत्र हुए–राम और लक्ष्मण जिन्हें वनवास के लिए वन में जाना पड़ा। हे जानकी! आप राम की पत्नी हैं। रावण ने हठात् आपका अपहरण कर लिया है ।।७–८।।

---

१ ग. ङ. न। २ क. ङ. च. दृष्ट्वा स्थितं। ३ ङ° हे तेषां। ४ शिंशपातले…सुवादिनीम् ङ. सञ्ज्ञिते पुस्तके नास्ति। ५ क. ङ. च. °वासग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रामः सुग्रीवमित्रस्त्वां [1]मार्गयन्प्रैषयच्च माम्। साभिज्ञानं चाङ्गुलीयं रामदत्तं गृहाण वै ।।९।।
सीताङ्गुलीयं जग्राह सापश्यन्मारुतिं तरौ। भूयोऽग्रे चोपविष्टं तमुवाच यदि जीवति ।।१०।।
रामः कथं न नयति शङ्कितामब्रवीत्कपिः ।।११।।

हनुमानुवाच

रामः सीते न जानाति[2] ज्ञात्वा त्वां स नयिष्यति। रावणं राक्षसं हत्वा सबलं देवि मा शुचः ।।१२।।
साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददात् कपौ[3]। उवाच मां यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा कुरु ।।१३।।
[4]काकाक्षिपातनकथां[4] प्रातर्याहि हि शोकहा। मणिं कथां गृहीत्वाऽऽह हनूमान्नेष्यते[6] पतिः ।।१४।।
अथवा ते त्वरा काचित्पृष्ठमारुह मे शुभे। अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवं च राघवम् ।।१५।।
सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि राघवः। हनूमान् स दशग्रीवदर्शनोपायमाकरोत् ।।१६।।
वनं बभञ्ज तत्पालान्हत्वा[7] दन्तनखादिभिः। हत्वा तु किङ्करान् सर्वान् सप्त मन्त्रिसुतानपि ।।१७।।
पुत्रमक्षं[8] कुमारं च शक्रजिच्च बबन्ध तम्। नागपाशेन पिङ्गाक्षं दर्शयामास रावणम् ।।१८।।
उवाच रावणः 'कस्त्वं' मारुतिः प्राह रावणम् ।।१९।।

राम ने सुग्रीव से मित्रता कर ली है। उन्होंने मुझे आपका पता लगाने के लिए स्मृति-चिह्न के साथ आपके पास भेजा है। अतः राम की दी हुई इस अँगूठी को ग्रहण कीजिये ।।९।। सीता ने अँगूठी ले ली और वृक्ष पर बैठे हुए मारुति को देखा। पुनः अपने आगे आये हुए हनुमान् से सीता ने प्रश्न किया–'यदि राम जीवित हैं, तो क्यों नहीं मुझे यहाँ से ले जाते हैं?' वानरराज हनुमान् ने शंकाकुला सीता को (समझाते हुए) कहा ।।१०-११।।

हनुमान् ने कहा–हे सीते! राम अभी तक आपका पता ही नहीं जानते हैं। पता लग जाने पर सेना के साथ रावण का वध करके वे अवश्य आपको ले चलेंगे। देवि! आप शोक मत कीजिये ।।१२।। आप भी मुझे कोई अपनी पहचान दे दीजिये। पहचान के लिए वानरराज हनुमान् को अपनी चूड़ामणि देकर सीता जी ने कहा–'तुम ऐसा उपाय करना जिससे राम मुझे शीघ्र ही यहाँ से ले जायँ' ।।१३।। (सीता ने आगे कहा–) कौआ का रूप धारण करनेवाले इन्द्रपुत्र की एक आँख फोड़ने की कथा को (इस समय मुझसे सुनकर) हे मेरे शोक को दूर करनेवाले वानर तुम कल सवेरे जाना! हनुमान् जी ने चूड़ामणि ले लिया और कथा भी सुन ली। फिर उन्होंने कहा–'राम अवश्य आपको यहाँ से ले चलेंगे' ।।१४।। अथवा यदि आपको शीघ्रता हो तो आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं आज ही आपको सुग्रीव के साथ राम का दर्शन करा दूँगा ।।१५।। किन्तु सीता जी ने हनुमान् जी से कहा–'नहीं, मुझे राम ही यहाँ से ले चलें।' तदनन्तर हनुमान् ने रावण को देखने के लिए उपाय ढूँढ़ निकाला ।।१६।। उन्होंने वाटिका को उजाड़ दिया। दाँत और नाखूनों से वाटिका के राक्षसों को मार डाला। उन्होंने सभी सेवकों और सात मन्त्रिकुमारों तथा रावण के पुत्र अक्षयकुमार को भी मार डाला। इतने में इन्द्रजित् (मेघनाद) नागपाश से हनुमान् को बाँधकर पीले नेत्रोंवाले रावण के सामने ले गया। रावण के द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'तुम कौन हो' हनुमान् ने रावण से कहा– ।।१७-१९।।

---

१ ङ. °गयेत्प्रेषयेच्च। २ ख. ग. घ. ङ. च. जानीते। ३ ङ. °त्कपेः। उ°। ४ काकाक्षिपातन-कथा-रूपप्रत्यभिज्ञानं गृहीत्वा त्वं प्रातर्याहि, त्वं मच्छोकहाऽसीत्यर्थः। ५ घ. °थां प्रतियाहि हि शोकह। म°। ६ क. ख. ग. ङ. च. °मानेष्य°। ७ क. ख. च. ङ. ला° हता द°। ८ क. च. °त्रमङ्क°। ख. ग. °त्रमक्षकु°। ङ °त्रमुख्यं कु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हनूमानुवाच

रामदूतो राघवाय सीतां देहि मरिष्यसि। रामबाणैर्हतः सार्धं लङ्कास्थै राक्षसैर्ध्रुवम् ।।२०।।
रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः। दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः ।।२१।।
दग्ध्वा लङ्कां राक्षसानां[1] दृष्ट्वा सीतां प्रणम्य ताम्। समुद्रपारमागम्य दृष्टा सीतेति चाब्रवीत् ।।२२।।
अङ्गदादीन्, अङ्गदाद्यैः पीत्वा मधुवने मधु। जित्वा दधिमुखादींश्च दृष्ट्वा रामं च तेऽब्रुवन् ।।२३।।
दृष्टा सीतेति रामोऽपि हृष्टः पप्रच्छ मारुतिम् ।।२४।।

श्रीराम उवाच

कथं दृष्टा त्वया सीता किमुवाच च मां प्रति। सीताकथामृतेनेव सिञ्च मां कामवह्निवगम् ।।२५।।

नारद उवाच

हनूमानब्रवीद्रामं लङ्घयित्वाब्धिमागतः। सीतां दृष्ट्वा पुरीं दग्ध्वा सीतामणिं गृहाण वै ।।२६।।
हत्वा तं रावणं सीतां प्राप्स्यसे राम मा शुचः[2]। गृहीत्वा तं मणिं रामो रुरोद विरहातुरः ।।२७।।
मणिं दृष्ट्वा जानकी मे दृष्टा, सीतां नयस्व माम्। तया विना न जीवामि, सुग्रीवाद्यैः प्रबोधितः ।।२८।।
समुद्रतीरं गतवांस्तत्र रामं विभीषणः। गतस्तिरस्कृतो भ्रात्रा रावणेन दुरात्मना ।।२९।।

हनुमान् बोले–मैं राम का दूत हूँ। सीता को, राम को लौटा दो अन्यथा तुम निश्चय ही राम के बाणों से लङ्कानिवासी राक्षसों के साथ मार डाले जाओगे ।।२०।। (यह सुनकर) रावण (हनुमान् को) मारने के लिए तैयार हो गया, परन्तु विभीषण ने उसे रोक दिया। फिर भी रावण ने हनुमान् की पूँछ में आग लगवा दी। अपनी पूँछ को जलती हुई देखकर हनुमान् ने (उसी से) राक्षसों की लङ्का को भस्म कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सीता का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और फिर समुद्र के इस पार आकर अङ्गदादि साथियों को सीता का पता लग जाने का समाचार दिया ।।२१–२२।। (इसके बाद) अङ्गदादि वानरों के साथ मधुवन में आकर मधुपान किया। इन लोगों ने दधिमुख आदि (वनपालों) को जीतकर राम से मिलकर कहा–'सीता का पता चल गया है।' यह सुनकर राम प्रसन्न हो उठे और उन्होंने पवनसुत हनुमान् से पूछा– ।।२३–२४।।

श्रीराम बोले–तुमने सीता को कैसे देख लिया है ? उसने मेरे लिये क्या कहा है ? तुम सीता की अमृततुल्य कथा से ही कामाग्नि में जलते हुए मुझे शीतल करो ।।२५।।

नारद बोले–हनुमान् ने राम से कहा कि सबसे पहले मैं समुद्र को पार करके लङ्का में गया। वहाँ सीता का दर्शन करके लङ्कापुरी को जलाकर भस्म कर दिया। आप सीता जी की दी हुई इस मणि को ले लीजिये ।।२६।। हे राम! आप शोक न करें क्योंकि आप शीघ्र ही उस रावण को मारकर सीता को प्राप्त कर लेंगे। विरही राम उस मणि को (हाथ में) लेकर रोने लगे ।।२७।। आज इस मणि को देखकर मैंने सीता को ही देख लिया है। मुझको सीता के पास ले चलो! मैं उसके बिना (एक क्षण भी) जीवित नहीं रह सकता। सुग्रीव आदि ने राम को समझा–बुझा दिया ।।२८।। तत्पश्चात् राम अपनी सेना के साथ समुद्रतट पर पहुँच गये। वहाँ दुष्ट भाई रावण के द्वारा अपमानित होकर विभीषण राम की शरण में आ गया ।।२९।।

---

१ ख. ग. घ. राक्षसांश्च। २ क. ख. घ. ङ. च. शुच।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रामाय देहि सीतां त्वमित्युक्तेनासहायवान् । रामो विभीषणं मित्रं लङ्कैश्वर्येऽभ्यषेचयत् ।।३०।।
समुद्रं प्रार्थयन्मार्गं यदा नादात्तदा शरैः । भेदयामास, रामं च उवाचाब्धिः समागतः ।।३१।।

समुद्र उवाच

नलेन सेतुं बद्ध्वाऽब्धौ लङ्कां व्रज गम्भीरकः । अहं त्वया कृतः पूर्वं रामोऽपि नलसेतुना ।।३२।।
कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः । वानरैः स सुवेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे सुन्दरकाण्डे नवमोऽध्यायः ।।९।।

अथ दशमोऽध्यायः

रामायणे युद्धकाण्डम्

नारद उवाच

रामोक्तश्चाङ्गदो गत्वा रावणं प्राह जानकी । दीयतां राघवायाऽऽशु अन्यथा त्वं मरिष्यसि ।।१।।
रावणो हन्तुमुद्युक्तः[1] स आगाद्धतराक्षसः । रामायाऽऽह दशग्रीवो युद्धमेकं तु मन्यते ।।२।।
रामो युद्धाय तच्छ्रुत्वा लङ्कां सकपिराययौ । वानरा[2] हनुमान् मैन्दो द्विविदो जाम्ववान्नलः ।।३।।
नीलस्तारोऽङ्गदो धूम्रो सुषेणः केसरी[3] गजः । पनसो[4] विनतो रम्भः शरभः[5] कम्पनो[6] बली ।।४।।

असहाय विभीषण का अपराध यह था कि उसने रावण से सीता को लौटा देने के लिए कहा था। राम ने विभीषण से मित्रता करके उसका लङ्का के राजा के रूप में अभिषेक कर दिया ।।३०।। राम के प्रार्थना करने पर भी जब समुद्र ने उन्हें मार्ग नहीं दिया तब उन्होंने बाणों से सागर को बींध डाला। राम के पास आकर समुद्र बोला ।।३१।।

समुद्र बोला–आप नल के द्वारा सेतु बँधवाकर लङ्का को चले जाइये। हे राम! मुझको तो आपने ही गहरा बनाया है (अतः मेरी मर्यादा बचाइये) राम भी नल के द्वारा वृक्षों और शिलाखण्डों से बनाये हुए पुल से वानरों के साथ समुद्र को पार कर गये। सागर–तट पर खड़े होकर सभी ने लङ्कापुरी को देखा ।।३२-३३।।

श्री अग्निमहापुराण के रामायणाख्यानान्तर्गत सुन्दरकाण्ड वर्णन नामक नौवाँ अध्याय समाप्त ।।९।।

अध्याय १०

युद्धकाण्ड-वर्णन

नारद बोले–राम के कहने पर अंगद ने रावण के पास जाकर कहा, 'शीघ्र ही सीता राम को दे दो, नहीं तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है ।।१।। यह सुनकर रावण अङ्गद को मारने के लिए तैयार हो गया। अङ्गद राक्षसों का वध करके राम के निकट आकर कहने लगा–'रावण तो युद्ध पर ही उतारू है' ।।२।। उस (वचन) को सुनकर राम (भी) वानरों के साथ युद्ध के लिए लङ्का में पहुँच गये। हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी,

---

१ घ. °क्तः सङ्ग्रामोद्ध°। २ घ. ङ. वानरो। ३ ख. घ. च. केशरी। ४ क. पिनसो। ५ क. सरभः। ६ ख. ग. घ. ङ. क्रथनो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गवाक्षो दधिवक्त्रश्च गवयो[1] गन्धमादनः। एते[2] चान्ये च सुग्रीव एतैर्युक्तो ह्यसङ्ख्यकैः ।।५।।
[3](रक्षसां वानराणां च युद्धं सङ्कुलमाबभौ। राक्षसा वानराञ्जघ्नुः शरशक्तिगदादिभिः) ।।६।।
वानरा राक्षसाञ्जघ्नुर्नखदन्तशिलादिभिः। हस्त्यश्वरथपादातं राक्षसानां बलं हतम् ।।७।।
हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम्। अकम्पनं[4] प्रहस्तं च युध्यन्तं नील आवधीत् ।।८।।
इन्द्रजिच्छरबन्धाच्च विमुक्तौ रामलक्ष्मणौ। तार्क्ष्यसन्दर्शनाद्बाणैर्जघ्नतू राक्षसं बलम् ।।९।।
रामः शरैर्जर्जरितं रावणं चाकरोद्रणे। रावणः कुम्भकर्णं च बोधयामास दुःखितः ।।१०।।
कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽथ पीत्वा घटसहस्रकम्। मद्यस्य महिषादीनां[5] भक्षयित्वाऽऽह रावणम् ।।११।।

कुम्भकर्ण उवाच

सीताया हरणं पापं कृतं त्वं हि गुरुर्यतः। अतो गच्छामि युद्धाय रामं हन्मि सवानरम् ।।१२।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् कुम्भकर्णो ममर्द ह। गृहीतस्तेन सुग्रीवः कर्णनासं चकर्त सः ।।१३।।
कर्णनासाविहीनोऽसौ भक्षयामास वानरान्। रामोऽथ कुम्भकर्णस्य बाहू चिच्छेद सायकैः ।।१४।।
ततः पादौ ततश्छित्वा शिरो भूमौ न्यपातयत्। अथ कुम्भो निकुम्भश्च मकराक्षश्च राक्षसः ।।१५।।
महोदरमहापार्श्वौ मत्त उन्मत्तराक्षसः। प्रघसो भासकर्णश्च विरूपाक्षश्च सङ्गरे[6] ।।१६।।

गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, कम्पन, बली, गवाक्ष, दधिवक्त्र, गवय, गन्धमादन तथा अन्य असंख्य वानरों के साथ सुग्रीव (भी युद्धक्षेत्र में आ गये) ।।३-५।। राक्षसों और वानरों में घोर युद्ध हुआ। राक्षसों ने वानरों को बाण, शक्ति और गदा आदि से मारना आरम्भ कर दिया ।।६।। वानरों ने राक्षसों को नख, दाँत और पत्थर आदि से प्रहार किया। राक्षसों की सेना जिसमें हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल थे-मारी गयी ।।७।। हनुमान् ने पर्वतशिखर के प्रहार से अपने शत्रु धूम्राक्ष को मार डाला। नील ने लड़नेवाले अकम्पन और प्रहस्त का वध कर दिया ।।८।। गरुड़ के दर्शन से मेघनाद के (नागपाश रूप) शरबन्ध से छूटे हुए राम और लक्ष्मण के बाणों ने राक्षसों की सेना का संहार किया ।।९।। राम ने युद्ध में बाणों से रावण को जर्जर कर डाला। इससे दुःखी होकर रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया ।।१०।। कुम्भकर्ण ने हजार घड़े मदिरा का पान करके और भैंसे आदि का मांस खाकर, तृप्त होकर रावण से कहा- ।।११।।

कुम्भकर्ण ने कहा-'सीता का हरण करके किया तो तुमने पाप ही है। परन्तु तुम मुझसे बड़े हो इसलिए मैं जाता हूँ और वानरों के सहित राम को मार गिराता हूँ ।।१२।।

नारद बोले-यह कहकर कुम्भकर्ण सभी वानरों को कुचलने लगा। कुम्भकर्ण के द्वारा पकड़े जाने पर सुग्रीव ने उसका नाक-कान काट लिया ।।१३।। कान और नाक को खोकर उसने बहुत से वानरों को खा डाला, किन्तु (शीघ्र ही) राम ने बाणों से कुम्भकर्ण की दोनों भुजाओं को काट डाला ।।१४।। तदनन्तर उसके दोनों पैरों और सिर को काटकर भूमि पर गिरा दिया। इसके बाद राम, लक्ष्मण और विभीषण सहित वानरों के द्वारा लड़ाई करते हुए कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा, अतिकाय और अन्य

---

१ क. शरया। २ क. पप्ले। ३ राक्षसां...गदादिभिः पुस्तके नास्ति। ४ ङ. अकल्पनं। ५ अर्थपूरणायात्र "सहस्रकं च" इत्यध्याहर्तव्यम्। ६ घ. संयुगे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवान्तको नरान्तश्च त्रिशिराश्चातिकायकः । रामेण लक्ष्मणेनैते वानरैः सविभीषणैः ।।१७।।
युध्यमानास्तथा त्वन्ये राक्षसा भुवि पातिताः । इन्द्रजिन्मायया युध्यन्रामादीन् स बबन्ध ह ।।१८।।
वरदत्तैर्नागपाशैरोषध्या[1] तौ विशल्यकौ । [2]विशल्ययाऽव्रणौ कृत्वा मारुत्यानीतपर्वते ।।१९।।
हनूमान्धारयामास तत्रागं[3] यत्र संस्थितः । निकुम्भिलायां होमादि[4] कुर्वन्तं तं हि लक्ष्मणः ।।२०।।
शरैरिन्द्रजितं वीरं[5] युद्धे[6] तं तु व्यपातयत्[7] । रावणः शोकसन्तप्तः सीतां[8] हन्तुं समुद्यतः ।।२१।।
[9]अविन्ध्यवारितो राजा रथस्थः सबलो ययौ । इन्द्रोक्तो मातली रामं रथस्थं प्रचकार तम् ।।२२।।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव । रावणो वानरान्हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम् ।।२३।।
रामः शस्त्रैस्तमस्त्रैश्च ववर्ष जलदो यथा । तस्य ध्वजं स चिच्छेद रथमश्वांश्च सारथिम् ।।२४।।
धनुर्बाहूञ्शिरांस्येव उत्तिष्ठन्ति शिरांसि हि । पैतामहेन हृदयं भित्त्वा रामेण रावणः ।।२५।।
भूतले पातितः सर्वै राक्षसै रुरुदुः स्त्रियः । आश्वास्य तं च संस्कृत्य रामाज्ञप्तो विभीषणः ।।२६।।
हनूमताऽऽनयद्रामः सीतां शुद्धां[10] गृहीतवान् । रामो वह्नौ प्रविष्टां तां शुद्धामिन्द्रादिभिः[11] स्तुतः ।।२७।।
ब्रह्मणा दशरथेन त्वं विष्णू[12] राक्षसमर्दनः । इन्द्रोऽर्थितोऽमृतवृष्ट्या जीवयामास वानरान् ।।२८।।

राक्षस युद्ध में पृथ्वी पर गिरा दिये गये। मेघनाद (इन्द्रजित्) ने मायापूर्वक युद्ध करते हुए राम आदि को वरदान में प्राप्त नागपाश से बाँध लिया ।।१५-१८।। वहाँ के वैद्य सुषेण ने विशल्या (नामक अस्त्र-विशेष) से दोनों के अंग में से टूटे हुए बाण को निकालकर हनुमान् द्वारा लाये हुए पर्वत की ओषधि से घावों को ठीक कर दिया ।।१९।। तत्पश्चात् हनुमान् ने उस पर्वत को, जहाँ पहले था, वहीं रख दिया। निकुम्भिला में होम आदि क्रिया करनेवाले वीर मेघनाद को लक्ष्मण ने लड़ाई में बाणों से मार गिराया। इससे शोकसन्तप्त होकर रावण सीता को मारने के लिए तैयार हो गया ।।२०-२१।। अविन्ध्य ने उसको समझाकर शान्त कर दिया। तत्पश्चात् रावण स्वयं रथ पर चढ़कर सैनिकों के साथ रणक्षेत्र में गया। इन्द्र के कहने पर मातलि ने राम को अपने रथ पर बैठा लिया ।।२२।। राम-रावण का युद्ध तो राम और रावण के युद्ध के समान ही था। रावण वानरों को मारता था और हनुमान् आदि रावण को मारते थे ।।२३।। राम ने रावण के ऊपर उसी प्रकार शस्त्रास्त्रों की वर्षा की जैसे मेघ जलवृष्टि करता है। उन्होंने रावण की ध्वजा को काट गिराया तथा रथ, घोड़े और सारथि को मार गिराया ।।२४।। जैसे-जैसे राम रावण की भुजाओं और सिरों को काटते जाते थे, वैसे-वैसे उसके (बाहु और) सिर उत्पन्न होते जाते थे। अन्त में ब्रह्मास्त्र से उसके हृदय को बींधकर राम ने रावण को भूमितल पर गिरा दिया। यह देखकर राक्षस और राक्षसियाँ सभी विलाप करने लगे। राम की आज्ञा से विभीषण ने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया और उस (मृतक रावण) का (अग्नि) संस्कार किया ।।२५-२६।। राम ने हनुमान् के द्वारा सीता को बुलवाया और अग्नि में प्रविष्ट सीता को शुद्ध-चरित्र समझकर पुनः अपना लिया। इन्द्रादि देवताओं, ब्रह्मा और दशरथ ने राम की स्तुति की और प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम राक्षसों का सर्वनाश करनेवाले विष्णु हो ।।२७-२७ $\frac{1}{2}$।। प्रार्थना किये जाने पर इन्द्र ने अमृतवर्षा की जिससे (सब मरे हुए) वानर फिर जीवित हो उठे ।।२८।।

---

१ ग. घ. च. °गबाणैरो°। २ क. च. विशल्यया वर्णकृतौ मा°। ख. ग. विशल्यया वर्णकृता मा°। ङ. विशिल्यादाय वर्णतो मा°। ३ क. ङ. च. तद्रागं यत्र संस्थितम्। ख. ग. तद्रामं यत्र संस्थितम्। ४ ङ. °दि कर्तु हर्तु समुद्य°। ५ ग. वीर्यं। ६ च. °द्धे युद्धे व्य°। ७ ख. घ. व्यशातयत्। ८ क. च. °तां तां हन्तुमु°। ९ ग. अवन्ध्य°। १० ङ. शुद्धिं। ११ च. °भिस्ततः। १२ क. ङ. विष्णुना राक्षसार्दन। इ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रामेण पूजिता जग्मुर्युद्धं दृष्ट्वा दिवं च ते। रामो विभीषणायादाल्लङ्कामभ्यर्च्य वानरान् ।।२९।।
ससीतः पुष्पके स्थित्वा [1]गतमार्गेण वै गतः। दर्शयन् वनदुर्गाणि सीतायै हृष्टमानसः।।३०।।
भरद्वाजं नमस्कृत्य नन्दिग्रामं समागतः। भरतेन [2]नतश्चागादयोध्यां तत्र संस्थितः ।।३१।।
वसिष्ठादीन्नमस्कृत्य कौशल्यां चैव कैकयीम्। सुमित्रां प्राप्तराज्योऽथ([3]द्विजादीन् सोऽभ्यपूजयत् ।।३२।।
वासुदेवं[4] स्वमात्मानमश्वमेधैरथायजत्। सर्वदानानि स ददौ पालयामास स प्रजाः ।।३३।।
पुत्रवद्धर्मकामादीन्) दुष्टनिग्रहणे रतः। सर्वो धर्मपरो लोकः सर्वसस्या च मेदिनी ।।३४।।
नाकालमरणं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ।।३५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे युद्धकाण्डे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अथैकादशोऽध्यायः

रामायण-उत्तरकाण्डम्

नारद उवाच

राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः ।।१।।

तदनन्तर (राम और रावण के) युद्ध को देखकर और राम से सम्मानित होकर वे स्वर्ग चले गये। राम ने विभीषण को लंका (का राज्य) दे दिया। वानरों का सत्कार करके, सीता के सहित पुष्पक विमान पर बैठकर जिस मार्ग से गये थे, उसी मार्ग से लौट पड़े। राम अत्यन्त प्रसन्न थे और मार्ग में सीता को वन में दुर्गम पथों को दिखाते हुए चले जा रहे थे ।।२९-३०।। भरद्वाज को प्रणाम करके राम नन्दिग्राम पहुँचे। यहाँ भरत ने नम्रतापूर्वक उनको प्रणाम किया। वहाँ से चलकर सभी लोग अयोध्या में आकर रुक गये। राज्य प्राप्त कर लेने पर राम ने वसिष्ठ आदि ऋषियों तथा कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि को प्रणाम किया (और) ब्राह्मणों की पूजा की ।।३१-३२।। भगवान् राम ने अश्वमेध यज्ञों के द्वारा आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव की पूजा की। उन्होंने सब तरह का दान दिया (और) प्रजाओं का पुत्रवत् पालन किया। भगवान् राम धर्म काम आदि पुरुषार्थों का पालन करते हुए दुष्टों का निग्रह करने में लग गये ।।३३-३३½।। भगवान् राम जब राज्य पर शासन कर रहे थे, सभी लोग धर्मपरायण थे। पृथ्वी सब प्रकार के धन-धान्य से भरी-पूरी थी और किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होती थी ।।३४-३५।।

श्री अग्निमहापुराण के रामायणाख्यानान्तर्गत युद्धकाण्डवर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ।।१०।।

अध्याय ११

उत्तरकाण्डवर्णन

नारद बोले-राम के सिंहासनासीन होने पर सम्मानित अगस्त्य आदि ऋषि राम के पास गये ।।१।।

---

१ घ. पुस्तकस्थटिप्पण्यां 'स्वर्गमार्गेण वै गतः' इति पाठो वर्तते। २ क. ङ. च. न गत°। ३ द्विजादीन्...कामादीन् नास्ति ङ. पुस्तके। ४ क. °वं सुखात्मा°। °व° युध्यमान°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषय ऊचुः

धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः। ब्रह्मात्मजः पुलस्त्योऽभूद्विश्रवास्तस्य कैकसी ।।२।।
[1]पुष्पोत्कटाऽभूत्प्रथमा तत्पुत्रोऽभूद्धनेश्वरः। कैकस्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहुर्दशाननः ।।३।।
तपसा ब्रह्मदत्तेन वरेण जितदैवतः। कुम्भकर्णः सनिद्रोऽभूद्धर्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः ।।४।।
स्वसा शूर्पणखा तेषां रावणान्मेघनादकः। इन्द्रं जित्वेन्द्रजिच्चाभूद्रावणादधिको बली।
हतस्त्वया[2] लक्ष्मणेन देवादेः क्षेममिच्छता ।।५।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा ते गता विप्रा अगस्त्याद्या नमस्कृताः। देवप्रार्थितरामोक्तः शत्रुघ्नो लवणार्दनः ।।६।।
अभूत्पूर्मथुरा[3] काचिद्रामोक्तो भरतोऽवधीत्। कोटित्रयं च शैलूषपुत्राणां निशितैः शरैः ।।७।।
शैलूषं दृप्तगन्धर्वं[4] सिन्धुतीरनिवासिनम्। तक्षं च पुष्करं पुत्रं स्थापयित्वाऽथ देशयोः ।।८।।
भरतोऽगात्सशत्रुघ्नो राघवं पूजयन् स्थितः। रामो दुष्टान्निहत्याजौ शिष्टान्सम्पाल्य मानवः[5] ।।९।।
पुत्रौ कुशलवौ जातौ वाल्मीकेराश्रमे वरौ। लोकापवादात्त्यक्तायां ज्ञातौ सुचरितश्रवात् ।।१०।।
राज्येऽभिषिच्य ब्रह्माऽहमस्मीति ध्यानतत्परः। दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।।११।।

ऋषि बोले–हे राम! तुम धन्य हो, तुम सर्वश्रेष्ठ विजेता हो, क्योंकि तुमने मेघनाद–जैसे इन्द्र विजयी योद्धा का वध किया है। ब्रह्मा के पुत्र थे पुलस्त्य। उनका पुत्र था विश्रवा। विश्रवा की कैकसी और पुष्पोत्कटा दो पत्नियाँ थीं। पुष्पोत्कटा से उसको धनेश्वर (कुबेर) नामक पुत्र हुआ। कैकसी से रावण उत्पन्न हुआ, जिसके बीस भुजाएँ और दस सिर थे। रावण ने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा से वर प्राप्त करके सब देवताओं को जीत लिया था ।।२–३ $\frac{१}{२}$ ।। कैकसी का दूसरा पुत्र था कुम्भकर्ण जो बहुत सोनेवाला था। तीसरा पुत्र था विभीषण, जो धर्मनिष्ठ था। इसके एक बहन थी शूर्पणखा। रावण का पुत्र मेघनाद हुआ ।।४–४ $\frac{१}{२}$ ।। मेघनाद ने इन्द्र को जीतकर इन्द्रजित् की उपाधि प्राप्त की थी। वह रावण से भी अधिक बलशाली था। देवता इत्यादि के कल्याण की कामना से आपने लक्ष्मण द्वारा उसका वध करा दिया ।।५।।

नारद बोले–यह कहकर अगस्त्य इत्यादि ऋषि अभिवादन प्राप्त कर चले गये। देवताओं की प्रार्थना पर राम ने शत्रुघ्न को देखकर लवणासुर के वध के लिए भेजा। शत्रुघ्न ने उसका वध किया ।।६।। उस समय मथुरा नाम की एक नगरी थी। राम के आदेश से भरत ने वहाँ जाकर तीन करोड़ शैलूष पुत्रों को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डाला ।।७।। सिन्धु–तटवासी उद्धत गन्धर्व और शैलूष को मारकर उनके देशों के राज्यसिंहासन पर उनके पुत्र तक्ष और पुष्कर को बैठाया। तदनन्तर शत्रुघ्न के सहित भरत अयोध्या को लौट गये, जहाँ वे राम की सेवा में रहने लगे। मानव शरीरधारी राम युद्ध में दुष्टों को मारते थे एवं सज्जनों का पालन करते थे ।।८–९।। लोकापवाद के कारण निर्वासित जानकी के गर्भ से वाल्मीकि के श्रेष्ठ आश्रम में कुश, लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् सीता की सच्चरित्रता को सुनकर राम ने अपने दोनों पुत्रों को पहचाना और उन्हें राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे ध्यान में लगे

---

१ पौलस्त्यस्य विश्रवसो द्वे भार्ये, एका कैकसी अन्या पुष्पोत्कटा, तयोः पुष्पोत्कटा प्रथमा, तस्यां कुबेरोऽजीजनदन्यस्यां रावणादय इत्ययमस्य श्लोकस्यार्थः। २ क. हतः स्वयं ल°। च. हतस्त्वयं ल°। ३ क.°रा काशी रामो°। ङ. च. °राकारा रामो। ४ घ. च. दुष्टगन्धर्वं। ५ दानतः (मू० पा०)। ख. ग. घ. मानवः। च. दानदः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राज्यं कृत्वा[1] क्रतून् कृत्वा स्वर्गं[2] देवार्थितो[3] ययौ । सपौरः सानुजः, सीतापुत्रो [4]जनपदान्वितः[5] ।।१२।।

अग्निरुवाच

वाल्मीकिर्नारदाच्छ्रुत्वा रामायणमकारयत् । सविस्तरं य एतच्च शृणुयात्स दिवं व्रजेत् ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायण उत्तरकाण्ड एकादशोऽध्यायः ।।११।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

कृष्णावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि विष्णुनाभ्यम्बुजादजः[6] । ब्रह्मणोऽत्रिस्ततः सोमः सोमाज्जातः पुरूरवाः ।।१।।
तस्मादायुरभूत्तस्मान्नहुषोऽतो ययातिकः । यदुं च तुर्वसुं तस्माद्देवयानी व्यजायत ।।२।।
द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । यदोः कुले यादवाश्च वासुदेवस्तदुत्तमः ।।३।।
भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवतः । हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा योगनिद्रया ।।४।।

हुए राम ने ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया। उन्होंने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया। देवताओं की प्रार्थना पर राम सभी पुरवासियों और भाइयों के साथ स्वर्ग चले गये। पुरवासियों, अनुजों एवं जनपदवासियों समेत सीता-पुत्र लव और कुश राज्य सँभालने लगे ।।१०-१२।।

अग्नि बोले-(देवर्षि) नारद के मुख से राम-कथा को सुनकर वाल्मीकि ने विस्तारपूर्वक रामायण की रचना की। जो इनको सुनता है वह अवश्य ही स्वर्ग चला जाता है ।।१३।।

श्री अग्निमहापुराण के रामायणान्तर्गत उत्तरकाण्डवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११।।

अध्याय १२

कृष्णावतार वर्णन

अग्नि बोले-अब मैं हरिवंश का वर्णन करूँगा। विष्णु की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा से अत्रि और अत्रि से चन्द्रमा उत्पन्न हुए तथा चन्द्रमा से पुरूरवा उत्पन्न हुए ।।१।। पुरूरवा के पुत्र आयु और आयु के नहुष हुए। नहुष के पुत्र ययाति हुए। ययाति से देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ।।२।। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने ययाति से द्रुह्य, अनु और पुरु नामक पुत्रों को जन्म दिया। यदु के वंशज यादव कहलाये। उनमें वासुदेव सबसे उत्तम हुए ।।३।। वे भगवान् वासुदेव पृथ्वी के (पाप का) बोझ उतारने के लिए पिता वसुदेव तथा माता देवकी के गर्भ से (अवतरित हुए)। कृष्णजन्म के पूर्व विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा

---

१ क. च. दत्त्वा। २ ङ. स्वर्गे। ३ घ. ङ च. देवार्चितो। ४ क. ङ. च. °दास्थितः। ५ राज्यं चकारेति शेषोऽर्थः।
६ अजीजनदिति शेषः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णुप्रयुक्तया नीता देवकीजठरं पुरा। अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्या जठराद्बलः ।।५।।
सङ्क्रामितोऽभूद्रोहिण्यां रौहिणेयस्ततो हरिः। कृष्णाष्टम्यां च [1]नभसि अर्द्धरात्रे चतुर्भुजः ।।६।।
देवक्या वसुदेवेन स्तुतो बालो द्विबाहुकः। वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ।।७।।
यशोदाबालिकां गृह्य देवकीशयनेऽनयत्। कंसो बालध्वनिं श्रुत्वा तां चिक्षेप शिलातले ।।८।।
वारितोऽपि स देवक्या[2] मृत्युर्गर्भोऽष्टमो मम। श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाचमतो[3] गर्भांस्तु मारिताः[4] ।।९।।
सा क्षिप्ता बालिका कंसमाकाशस्याऽब्रवीदिदम् ।।१०।।

बालिकोवाच

किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति। सर्वस्वभूतो देवानां भूभारहरणाय[5] सः ।।११।।

अग्निरुवाच

इत्युक्त्वा सा च शुम्भादीन्हत्वा इन्द्रेण च स्तुता। आर्या दुर्गा देवगर्भा[6] अम्बिका भद्रकाल्यपि ।।१२।।
भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम्। त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नाम सर्वकामान्स[7] चाऽऽप्नुयात् ।।१३।।
कंसोऽपि पूतनादींश्च[8] प्रेषयद्बालनाशने। यशोदापतिनन्दाय वसुदेवेन चार्पितौ ।।१४।।
रक्षणाय च कंसादेर्भीतेनैव हि गोकुले। रामकृष्णौ चेरतुस्तौ गोभिर्गोपालकैः सह ।।१५।।

हिरण्यकशिपु के छह पुत्रों को देवकी के गर्भ में लायी थी। सातवीं बार देवकी के गर्भ से बलराम उत्पन्न हुए जिसको माया ने रोहिणी के गर्भ में रख दिया। इसलिए वे रौहिणेय (रोहिणीपुत्र) कहलाये ।।४-५$\frac{1}{2}$ ।। तदनन्तर भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की अर्द्धरात्रि के समय चतुर्भुज रूप में भगवान् कृष्ण प्रकट हुए। देवकी और वसुदेव के द्वारा स्तुति किये जाने पर वे दो भुजावाले बालक बन गये। वसुदेव ने कंस के भय से कृष्ण को यशोदा की शय्या पर पहुँचा दिया ।।६-७।। वसुदेव जी ने यशोदा की कन्या को लाकर देवकी की शय्या पर रख दिया। कंस ने शिशु का रोना सुनकर उसे शिलातल पर पटक दिया ।।८।। देवकी कंस को बार-बार मना कर रही थी। कंस ने कहा कि 'आठवाँ गर्भ मेरा काल होगा'– इस आकाशवाणी को सुनकर ही मैंने तुम्हारे पुत्रों की हत्या की है। कंस के द्वारा फेंकी जाने पर वह बालिका आकाश में जाकर कंस से कहने लगी ।।९-१०।।

बालिका बोली–रे कंस, मुझे (इस प्रकार) फेंकने से क्या ? तेरा वध करनेवाला तो (पहले ही) उत्पन्न हो चुका है। वह देवताओं का सर्वस्व है और पृथ्वी के भार को हटाने के लिए उत्पन्न हुआ है ।।११।।

अग्नि बोले–इस प्रकार कहकर और शुम्भ आदि राक्षसों का वध करके वह देवी इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूजित हुई–'आर्या, दुर्गा, देवगर्भा (वेदगर्भा), अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या, क्षेमकरी, नैकबाहु आदि नामोंवाली हे देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। जो व्यक्ति तीनों सन्ध्याओं में इन नामों का पाठ करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ।।१२-१३।। कंस ने भी उस शिशु का नाश करने के लिए पूतना इत्यादि को भेजा। कंस आदि से डरे हुए वसुदेव ने गोकुल में यशोदापति नन्द को अपने दोनों लड़के सौंप दिये। सम्पूर्ण जगत् का पालन करनेवाले बलराम और कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ गायों को चराते हुए स्वयं गोपाल बन गये ।।१४-१५$\frac{1}{2}$।। एक बार यशोदा ने खीझकर कृष्ण को

---

१ 'कृष्णाष्टम्यां नभस्ते तु इति पाठः साधीयान् स्यात्? अत्र मूलपाठः चिन्त्यः? २ ग. °क्या विवाहसमयेरितः। सा। ३ घ. वाचं मत्तो ग°। ४ घ. ताः। ५ समर्पितास्तु देवक्या विवाहसमयेरिताः। सा। ६ ख. घ. वेदगर्भा। ७ ख. ग. घ. 'मानवाप्नुया'। ८ घ. °दींश्चाप्रे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वस्य जगतः पालौ गोपालौ तौ बभूवतुः । कृष्णश्चोलूखले बद्धो दाम्ना व्यग्रयशोदया ।।१६।।
यमलार्जुनमध्येऽगाद् भग्नौ च यमलार्जुनौ । परिवृत्तश्च शकटः पादक्षेपात्स्तनार्थिना ।।१७।।
पूतना स्तनपानेन सा हता हन्तुमुद्यता । वृन्दावनगतः कृष्णः कालियं यमुनाह्रदात् ।।१८।।
जित्वा निःसार्य चाब्धिस्थं चकार बलसंस्तुतः । क्षेमं तालवनं चक्रे हत्वा धेनुकगर्दभम् ।।१९।।
अरिष्टवृषभं हत्वा केशिनं हयरूपिणम् । शक्रोत्सवं परित्यज्य कारितो गोत्रयज्ञकः ।।२०।।
पर्वतं धारयित्वा च शक्राद् वृष्टिर्निवारिता । नमस्कृतो[1] महेन्द्रेण [2]गोविन्दोऽथार्जुनोऽर्पितः ।।२१।।
इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूयः कृष्णेन कारितः । रथस्थो मथुरां चागात्कंसोक्ताक्रूरसंस्तुतः ।।२२।।
गोपीभिरनुरक्ताभिः क्रीडिताभिर्निरीक्षितः । रजकं [3]चाप्रयच्छन्तं हत्वा वस्त्राणि[4] सोऽग्रहीत् ।।२३।।
सह रामेण मालाभृन्मालाकारे[5] वरं[6]ददौ । दत्तानुलेपनां कुब्जामृजुं [7]चक्रेऽहनद्गजम् ।।२४।।
मत्तं कुवलयापीडं द्वारि रङ्गं प्रविश्य च । कंसादीनां पश्यतां च मञ्चस्थाने[8] नियुद्धकम् ।।२५।।
चक्रे चाणूरमल्लेन मुष्टिकेन बलोऽकरोत् । चाणूरमुष्टिकौ ताभ्यां हतौ मल्लौ तथाऽपरे ।।२६।।

रस्सी से ओखली में बाँध दिया। कृष्ण (धीरे-धीरे) यमलार्जुन वृक्षों के बीच से निकले जिससे वे दोनों वृक्ष उखड़ गये। कृष्ण ने शकटासुर को चरणों के आघात से नष्ट कर दिया ।।१६-१७।। पूतना ने स्तनपान के लिए उत्सुक कृष्ण को अपने विषाक्त स्तनों को पिलाकर मारना चाहा, किन्तु कृष्ण ने उसके स्तनों को पीते-पीते उसे ही मार डाला। वृन्दावन में जाकर कृष्ण ने कालिय नाग को यमुना के गर्त से निकालकर सागर में डाल दिया, जिससे बलदेव ने उनकी (इस अद्भुत कार्य के लिए) प्रशंसा की। धेनुकासुर को मारकर उन्होंने तालवन को बाधाओं से मुक्त कर दिया ।।१८-१९।। बैल का रूप धारण करनेवाले अरिष्टासुर को (और) घोड़े का रूप धारण करनेवाले केशी को मारकर भगवान् कृष्ण ने इन्द्रोत्सव को बन्द कराकर (गोवर्धन) पर्वत के पूजन की प्रथा चला दी ।।२०।। गोवर्धन पर्वत को उठाकर उन्होंने (कुपित) इन्द्र के कोप से उत्पन्न वृष्टि से व्रजवासियों को बचा लिया। महेन्द्र ने गोविन्द को प्रणाम किया, अर्जुन ने भगवान् की शरण में आत्मसमर्पण किया ।।२१।। सन्तुष्ट होकर भगवान् कृष्ण ने पुनः इन्द्रोत्सव की परम्परा चला दी। कंस के भेजे हुए दूत अक्रूर के द्वारा निमन्त्रण पाकर कृष्ण रथ पर सवार होकर मथुरा को चल दिये ।।२२।। (जाते समय) साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाली, प्रेम करनेवाली गोपियों के द्वारा देखे गये भगवान् कृष्ण (गोकुल से मथुरा चले गये)। (कृष्ण ने मथुरा में) एक धोबी को मार डाला। क्योंकि उसने माँगने पर वस्त्रों को नहीं दिया था। तदनन्तर उन्होंने उससे वस्त्रों को ले लिया ।।२३।। बलराम के सहित स्वयं उन वस्त्रों को पहनकर आगे बढ़ गये। एक माली से माला माँगकर उन्होंने माला पहन ली और उसे इष्ट वरदान देकर सन्तुष्ट किया। (चन्दनादि) लेप (सामग्री) प्रदान करनेवाली कुबड़ी को सीधी कर दिया। राजद्वार पर जाकर मतवाले (मार्गावरोधक) कुवलयापीड हाथी को मार गिराया। फिर रंगभूमि में जाकर कंस आदि राक्षसों के सामने मञ्चस्थान पर चाणूर नामक असुर मल्ल से मल्लयुद्ध करने लगे। बलराम मुष्टिक से भिड़ गये। अन्त में बलराम और कृष्ण ने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य असुर मल्लों को मार गिराया ।।२४-२६।।

---

१ क. ख. ग. ङ. च. नमस्कृत्य। २ ख. ङ. च. °गोविन्देऽथाऽ°। ३ 'च प्रजल्पन्तं' इति घ. पुस्तक-टिप्पणीस्थः पाठः। ४ ख. घ. ङ. च. °णि चाग्र°। ५ क. ख. ग. ङ. च. °लाभून्मा°। ६ ङ. धनं। ७ क. ङ. च. °क्रे हरिः कुजम्। ८ घ. मञ्चस्थानां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मथुराधिपतिं कंसं हत्वा तत्पितरं हरिः। चक्रे यादवराजानमस्तिप्राप्ती च कंसगे ।।२७।।
जरासन्धस्य ते पुत्र्यौ जरासन्धस्तदीरितः। चक्रे स मथुरारोधं यादवैर्युयुधे शरैः ।।२८।।
रामकृष्णौ च मथुरां त्यक्त्वा गोमन्तमागतौ। जरासन्धं विजित्याऽऽजौ पौण्ड्रकं वासुदेवकम् ।।२९।।
पुरीं तु[१] द्वारकां कृत्वा न्यवसद्यादवैर्वृतः। भौमं तु नरकं हत्वा तेनाऽऽनीताश्च कन्यकाः ।।३०।।
देवगन्धर्वयक्षाणां ता उवाह जनार्दनः। षोडश स्त्रीसहस्राणि रुक्मिण्याद्यास्तथाऽष्ट च ।।३१।।
सत्यभामासमायुक्तो गरुडे नरकार्दनः। मणिशैलं सरत्नं च इन्द्रं जित्वा हरिर्दिवि ।।३२।।
पारिजातं समानीय सत्यभामागृहेऽकरोत्। सान्दीपनेश्च[२] शस्त्रास्त्रं[३] ज्ञात्वा तद्बालकं ददौ ।।३३।।
जित्वा पञ्चजनं दैत्यं यमेन च सुपूजितः। अवधीत्कालयवनं मुचुकुन्देन पूजितः ।।३४।।
वसुदेवं देवकीं च [४]भक्तविप्रांश्च सोऽर्चयत्। रेवत्यां बलभद्राच्च जज्ञाते[५] निषधोल्मुकौ[६] ।।३५।।
कृष्णात्साम्बो[७] जाम्बवत्यामन्यास्वन्येऽभवन्सुताः।
प्रद्युम्नोऽभूच्च रुक्मिण्यां षष्ठेऽह्नि स हृतो बलात् ।।३६।।
शम्बरेणाम्बुधौ क्षिप्तो मत्स्यो जग्राह, धीवरः। तं मत्स्यं शम्बरायादान्मायावत्यै च शम्बरः ।।३७।।
मायावती मत्स्यमध्ये दृष्ट्वा स्वं पतिमादरात्। पुपोष सा तं[८] चोवाच रतिस्तेऽहं पतिर्मम ।।३८।।

मथुराधिपति कंस को मारकर कृष्ण ने उसके पिता उग्रसेन को यादवों का राजा बना दिया। जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो पुत्रियाँ थीं, जिनका विवाह कंस से हुआ था। उनके कहने पर जरासन्ध ने मथुरा को चारों ओर से घेरकर बाणों से यादवों के साथ युद्ध किया ।। २७-२८।। राम और कृष्ण मथुरा को छोड़कर गोमन्त पर्वत पर चले गये। बाद में भगवान् कृष्ण ने जरासन्ध को पराजित किया। वासुदेव (बननेवाले) पौण्ड्रक को (भगवान् ने मारा।) ।।२९।। द्वारका नाम की एक नयी नगरी बसाकर कृष्ण यादवों के साथ वहाँ रहने लगे। उसके बाद (कामरूप के राजा) भौम-नरकासुर का वध करके वहाँ से देव, गन्धर्व और यक्षों की अनेक कन्याओं को (छुड़ाकर) ले आये और उनसे विवाह कर लिया। इस प्रकार उनकी सोलह हजार स्त्रियाँ हो गयीं। इनके अतिरिक्त रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ और भी थीं ।।३०-३१।। एक बार नरकान्तक श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़ पर सवार होकर देवलोक में गये। वहाँ पर उन्होंने इन्द्र को पराजित करके मणिशैल और अनेक बहुमूल्य रत्नों के साथ पारिजात का अपहरण करके सत्यभामा के अन्तःपुर में रख दिया। कृष्ण ने सान्दीपनि गुरु से शस्त्रास्त्रों की शिक्षा लेकर गुरुदक्षिणा में उनके (मृत) बालक को लाकर दे दिया ।।३२-३३।। उन्होंने पञ्चजन को जीता और फिर यम के द्वारा भगवान् की सम्यक् रूप से पूजा की गयी। भगवान् ने कालयवन का वध किया और मुचुकुन्द से सम्मान प्राप्त किया ।।३४।। कृष्ण ने वसुदेव, देवकी, भक्तों और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार किया। बलभद्र से रेवती ने निषध और उल्मुक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ।।३५।। कृष्ण ने जाम्बवती से साम्ब को जन्म दिया। अन्य स्त्रियों से भी अनेक पुत्र हुए। रुक्मिणी से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। जन्म के छठे दिन शम्बर ने बलात् उसका अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया। वहाँ उसे एक मत्स्य निगल गया। उस मछली को एक कछुए ने पकड़ा। वह मछली शम्बर को उपहार में दी गयी। शम्बर ने उसे मायावती को दे दिया। मायावती ने मछली के पेट में (बालक के रूप में आये हुए) अपने पति को देखकर आदरपूर्वक उसका पालन-पोषण किया। (बड़े होने पर) मायावती ने उससे कहा-'तुम मेरे पति हो और मैं तुम्हारी पत्नी रति हूँ' ।।३६-३८।।

---

१ घ. च.। २ ग. सान्दीपिने°। ङ. सान्दीपनाच्च। ३ च. सच्छास्त्रं। ४ ङ. भक्तं वि°। ५ क. ख. घ. यज्ञाते। ग. ङ. यज्ञाते। च. यज्ञान्ते। ६ ख. ग. घ. निशठोन्मुकौ। ७ घ. ङ. च. °ष्णाच्छाम्बो°। ८ ङ. तं प्रोवा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(१कामस्त्वं शम्भुनाऽनङ्गः कृतोऽहं शम्बरेण च । हृता, न तस्य पत्नी, त्वं मायाज्ञः शम्बरं जहि ।।३९।।
तच्छ्रुत्वा शम्बरं हत्वा प्रद्युम्नं सह भार्यया।) । मायावत्या ययौ कृष्णं कृष्णो हृष्टोऽथ रुक्मिणी ।।४०।।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूदुषापतिरुदारधीः । बाणो बलिसुतस्तस्य सुतोषा शोणितं पुरम् ।।४१।।
तपसा शिवपुत्रोऽभून्मयूरध्वजपाततः[२] । युद्धं प्राप्स्यसि बाण त्वं बाणं तुष्टः शिवोऽभ्यधात्[३] ।।४२।।
शिवेन क्रीडती[४] गौरीं दृष्ट्वोषा[५] सस्पृहा पतौ । तामाह गौरी भर्ता ते निशि स्वप्ने तु[६] दर्शनात् ।।४३।।
वैशाखमासद्वादश्यां[७] पुमान्भर्ता भविष्यति । गौर्युक्ता हर्षिता चोषा गृहे सुप्ता ददर्श तत् ।।४४।।
आत्मना सङ्गतं ज्ञात्वा तत्सख्या चित्रलेखया । लिखिताद्वै चित्रपटादनिरुद्धं[८] समानयत् ।।४५।।
कृष्णपौत्रं द्वारकातो दुहित्रा बाणमन्त्रिणः । कुम्भाण्डस्यानिरुद्धोऽगाद्रराम ह्युषया सह ।।४६।।
वाणध्वजस्य सम्पातो रक्षिभिः स निवेदितः । अनिरुद्धस्य बाणेन युद्धमासीत्सुदारुणम् ।।४७।।
श्रुत्वा तु नारदात्कृष्णः प्रद्युम्नबलभद्रवान् । गरुडस्थोऽथ जित्वाऽग्नीञ्ज्वरं माहेश्वरं तथा ।।४८।।
हरिशङ्करयोर्युद्धं बभूवाथ शराशरि । [९]नन्दिविनायकस्कन्दमुख्यास्तार्क्ष्यादिभिर्जिताः ।।४९।।

तुम कामदेव हो, शंकर ने तुमको भस्म करके अनंग बना दिया था और शम्बर ने मेरा अपहरण कर लिया था। मैं उसकी पत्नी नहीं हूँ। तुम माया को जाननेवाले हो अतः शम्बर को मार डालो ।।३९।। यह सुनकर प्रद्युम्न शम्बर को मारकर अपनी पत्नी मायावती के साथ कृष्ण के समीप आये। कृष्ण और रुक्मिणी अपने पुत्र को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ।।४०।। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का जन्म हुआ जो उषा के पति और उदार बुद्धिवाले थे। बलि का पुत्र था बाण। उसकी पुत्री थी उषा। बाण की राजधानी थी शोणितपुर। बाण तपस्या द्वारा शिव का पुत्र हो गया। बाण की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने कहा–'हे बाण! जब तुम्हारा मयूरध्वज टूटकर गिर जायगा, तब तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा ।।४१–४२।। एक बार गौरी को शिव के साथ क्रीड़ा करते हुए देखकर उषा ने भी पति (प्राप्त करने) की इच्छा की। गौरी ने उषा से कहा कि रात्रि में स्वप्न देखने से तुम्हें पति मिलेगा ।।४३।। "वैशाख मास की द्वादशी की रात में स्वप्न के समय तुम अपने पति को प्राप्त करोगी।" गौरी के इस वरदान को सुनकर उषा प्रसन्न होकर घर चली गयी और उसी रात में स्वप्न में अपने पति का दर्शन किया ।।४४।। स्वप्न में अपने पति के सहवास को प्राप्तकर उषा ने अपनी सखी चित्रलेखा द्वारा बनाये गये चित्रलेख से स्वप्नगत अनिरुद्ध का परिचय प्राप्त किया। उषा ने अपने पिता बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड की कन्या तथा अपनी सहेली चित्रलेखा से कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को द्वारका से मँगा लिया। अनिरुद्ध ने आकर उषा के साथ रमण किया ।।४५–४६।। रक्षकों ने बाण को बाणध्वज के टूटकर गिरने का समाचार सुनाया। अनिरुद्ध का बाणासुर के साथ घोर युद्ध हुआ ।।४७।। नारद के द्वारा युद्ध का समाचार सुनकर कृष्ण, प्रद्युम्न और बलदेव के साथ गरुड़ पर सवार होकर युद्धभूमि में पहुँच गये। उन्होंने (आते ही) महेश्वर द्वारा भेजे गये माहेश्वर ज्वर और आग्नेयास्त्र को जीत लिया ।।४८।। इसके बाद विष्णु और शंकर में बाणों से युद्ध होने लगा। नन्दी, विनायक, स्कन्द आदि प्रमुख शिवगणों को गरुड़ आदि विष्णु के गणों ने जीत लिया ।।४९।। कृष्ण ने जृम्भास्त्र के प्रयोग से शंकर को सुला दिया और बाण

---

१ कामस्त्वं...सह भार्यया पुस्तके नास्ति। २ ग. घ. ङ. °भून्मायूरध्वजपातितः। ३ क. ख. ग. ङ. च. °भ्ययात्। ४ ङ. क्रीडितां। ५ क. ङ. च. दृष्ट्वा सा स°। ६ घ. सुप्तेति। ७ क. ङ. च. °श्यां पुंसोभर्ता। ८ क. ङ. च. °द्धं च साऽऽनय°। ९ क. ङ. च. नन्दी विनायकः स्कन्दमुखास्ता°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जृम्भिते शङ्करे सुप्ते[1] जृम्भणास्त्रेण विष्णुना। छिन्नं सहस्रं बाहूनां रुद्रेणाभयमर्थितम्[2] ।।५०।।
विष्णुना जीवितो बाणो द्विबाहुः प्राब्रवीच्छिवम् ।।५१।।

कृष्ण उवाच

त्वया यदभयं दत्तं बाणस्यास्य मयाऽपि तत्। आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात् ।।५२।।
शिवाद्यैः पूजितो विष्णुः सानिरुद्ध उषादियुक्। द्वारकां तु गतो रेमे उग्रसेनादियादवैः ।।५३।।
अनिरुद्धात्मजो वज्रो मार्कण्डेयात्तु सर्ववित्। बलभद्रः प्रलम्बघ्नो यमुनाकर्षणोऽभवत् ।।५४।।
द्विविदस्य कपेर्भेत्ता कौरवोन्मादनाशनः। हरी रेमेऽनेकमूर्ती रुक्मिण्यादिभिरीश्वरः ।।५५।।
पुत्रानुत्पादयामास त्वसङ्ख्यातान्स यादवान्[3]। हरिवंशं पठेद्यस्तु प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ।।५६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये हरिवंशे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

की हजार भुजाओं को काट डाला। शिव ने बाण को अभय वरदान देने के लिए कृष्ण से प्रार्थना की ।।५०।। विष्णु ने बाणासुर को द्विबाहु बनाकर जीवित कर दिया और शिव से कहा ।।५१।।

कृष्ण बोले–आपने जो इस बाणासुर को अभयदान दिया है, इसलिए मैंने भी उसे अभय कर दिया है। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। हम दोनों में भेद बुद्धि रखनेवाला नरकगामी होता है ।।५२।। शिव आदि से सम्मान पाकर कृष्ण उषा और अनिरुद्ध के साथ द्वारका में आ गये जहाँ वे उग्रसेन आदि यादवों के साथ क्रीड़ा करने लगे ।।५३।। अनिरुद्ध का वज्र नामक एक पुत्र हुआ जो मार्कण्डेय ऋषि के प्रभाव से सर्वज्ञ हो गया। प्रलम्ब का वध करनेवाले बलभद्र यमुना को खींचने के कारण यमुनाकर्षण रूप में प्रसिद्ध हो गये ।।५४।। द्विविद नामक वानर का वध करनेवाले बलराम जी ने कौरवों के उन्माद को नष्ट कर दिया। सर्वसमर्थ (कृष्णरूपधारी) विष्णु ने (अपनी माया से अनेक रूपों को धारण करके) रुक्मिणी आदि के साथ रमण किया ।।५५।। भगवान् कृष्ण ने असंख्य यादव-पुत्रों को जन्म दिया। जो व्यक्ति इस हरिवंश का पाठ करता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं और विष्णु के पास चला जाता है ।।५६।।

श्री अग्निमहापुराण में हरिवंशवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१२।।

---

१ क. ख. घ. च. नष्टे। २ क. ङ. च. °यसन्निमम्। ३ स कृष्णो यादवान् पुत्रवत्पालयामासेत्यर्थः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भारताख्यानम्

अग्निरुवाच

भारतं सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यलक्षणम् । भूभारमहरद्विष्णुर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ।।१।।
विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः । सोमः सोमाद् बुधस्तस्मादैल आसीत्पुरूरवाः ।।२।।
तस्मादायुस्ततो रांजा नहुषोऽतो ययातिकः । ततः पुरुस्तस्य वंशे भरतोऽथ नृपः कुरुः ।।३।।
तद्वंशे शन्तनुस्तस्माद् भीष्मो गङ्गासुतोऽनुजौ[1] । चित्राङ्गदो विचित्रश्च सत्यवत्यां च शन्तनोः ।।४।।
स्वर्गं गते शन्तनौ च भीष्मो भार्याविवर्जितः । अपालयद् भ्रातृराज्यं बालश्चित्राङ्गदो हतः ।।५।।
[2]चित्राङ्गदेन, द्वे कन्ये काशिराजस्य चाम्बिका । अम्बालिका च भीष्मेण आनीते विजितारिणा ।।६।।
भार्ये विचित्रवीर्यस्य, यक्ष्मणा स दिवं गतः । सत्यवत्या[3] ह्यनुमतादम्बिकायां नृपोऽभवत् ।।७।।
धृतराष्ट्रोऽम्बालिकायां पाण्डुश्च व्यासतः सुतः । गान्धार्यां धृतराष्ट्राच्च दुर्योधनमुखं शतम् ।।८।।
शतशृङ्गाश्रमपदे भार्यायोगादथो[4] मृतः[5] । ऋषिशापात्ततो धर्मात्कुन्त्यां पाण्डोर्युधिष्ठिरः ।।९।।

अध्याय १३

महाभारत का आख्यान

अग्नि बोले–अब मैं कृष्ण के माहात्म्य को सूचित करनेवाली महाभारत की कथा को कहूँगा, जिसमें विष्णु ने पाण्डवों को निमित्त बनाकर पृथ्वी का भार दूर कर दिया था ।।१।। विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और अत्रि के पुत्र सोम हुए। सोम से बुध और बुध से ऐल पुरूरवा का जन्म हुआ। ऐल पुरूरवा के पुत्र आयु, आयु के नहुष और नहुष के पुत्र ययाति हुए। ययाति के पुरु और पुरु के वंश में भरत हुए। भरत के वंश में कुरु हुए ।। २–३।। कुरु के वंश में शन्तनु और शन्तनु के गङ्गापुत्र भीष्म हुए। सत्यवती के गर्भ से शन्तनु के द्वारा भीष्म के दो अनुज–चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए ।।४।। शन्तनु के स्वर्गगामी हो जाने पर भीष्म ने ब्रह्मचारी रहकर भाई के राज्य का पालन किया। (चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व ने) बालक चित्राङ्गद को मार डाला ।।५।। शत्रुओं को जीतनेवाले भीष्म काशिराज की दो कन्याओं–अम्बिका और अम्बालिका को अपहरण करके ले आये ।।६।। उन दोनों कन्याओं का विचित्रवीर्य से विवाह कर दिया। विचित्रवीर्य यक्ष्मा रोग से मर गये। सत्यवती की अनुमति से व्यास ने (नियोग द्वारा) अम्बिका से धृतराष्ट्र नामक राजा को उत्पन्न किया। उसी प्रकार अम्बालिका से पाण्डु की उत्पत्ति हुई। धृतराष्ट्र से गान्धारी के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।।७–८।। ऋषि के शाप से पाण्डु शतशृङ्ग के आश्रम में स्त्री–सहवास के कारण स्वर्गगामी हो गये। कुन्ती ने धर्म से पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को, वायु से भीम को

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °तो ध्वजौ। २ चित्राङ्गदाख्येन गन्धर्वेण हत इत्यर्थः। ३ ख. °त्याभ्यनु°। ४ क. °गाद्यतो मृ°। ख. ग. °गाच्च तन्मृतिः। ऋ°। ५ पाण्डुमृ°त इत्यर्थः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाताद्भीमोऽर्जुनः शक्रान्माद्र्यामश्विकुमारतः। नकुलः सहदेवश्च, पाण्डुर्माद्रीयुतो[1] मृतः ।।१०।।
कर्णः कुन्त्यां हि कन्यायां जातो दुर्योधनाश्रितः। कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद् बभूव ह ।।११।।
दुर्योधनो जतुगृहे पाण्डवानदहत्कुधीः। दग्धागाराद्विनिष्क्रान्ता मातृषष्ठास्तु पाण्डवाः ।।१२।।
ततस्त[2] एकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने। मुनिवेषाः स्थिताः सर्वेनिहत्य बकराक्षसम् ।।१३।।
ययुः पाञ्चालविषयं द्रौपद्यास्ते स्वयंवरे। सम्प्राप्ता बहुवेषेण[3] द्रौपदीं[4] पञ्चपाण्डवैः[5] ।।१४।।
अर्धराज्यं पुनः[6] प्राप्ता ज्ञाता दुर्योधनादिभिः। गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं पावकाद्रथमुत्तमम् ।।१५।।
सारथिं चार्जुनः सङ्ख्ये कृष्णमक्षय्यसायकान्। ब्रह्मास्त्रादींस्तथा द्रोणात्सर्वे सर्वविशारदाः[7] ।।१६।।
कृष्णेन सोऽर्जुनो वह्निं खाण्डवे समतर्पयत्। इन्द्रवृष्टिं वारयंश्च शरबन्धेन[8] पाण्डवः ।।१७।।
जिता दिशः पाण्डवैस्तु राज्यं चक्रे युधिष्ठिरः। बहुस्वर्णं राजसूयं, न सेहे तत्सुयोधनः ।।१८।।
भ्रात्रा दुःशासनेनोक्तः कर्णेन प्राप्तभूतिना। द्यूतकार्ये शकुनिना द्यूतेन स युधिष्ठिरम् ।।१९।।
अजयत्तस्य राज्यं च सभास्थो मायया हसन्। जितो युधिष्ठिरो भ्रातृयुक्तश्चारण्यकं ययौ ।।२०।।
वने द्वादश वर्षाणि प्रतिज्ञातानि सोऽनयत्। अष्टाशीतिसहस्राणि भोजयन् पूर्ववद् द्विजान् ।।२१।।

और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। माद्री ने अश्विनीकुमार से नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया। माद्री के साथ सहवास करते-करते पाण्डु की मृत्यु हो गयी। कौमार्यावस्था में ही कुन्ती के कर्ण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जो कि दुर्योधन के आश्रम में रहता था। दैवयोग से कौरवों और पाण्डवों में वैर हो गया ।।९-११।। दुर्बुद्धि दुर्योधन ने लाक्षागृह में पाण्डवों को जला दिया किन्तु वे पाँचों पाण्डव अपनी माता के साथ जलते हुए घर से निकल आये ।।१२।। तदनन्तर एक चक्रपुरी में जाकर वे पाण्डव मुनियों के वेश में एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे। वहाँ उन्होंने बक नामक राक्षस का वध किया ।।१३।। वहाँ से वे पाँचों भाई पाञ्चाल नामक प्रान्त में द्रौपदी के स्वयंवर में सम्मिलित हुए। पाँचों पाण्डवों ने अनेक वेश धारण करके द्रौपदी को प्राप्त कर लिया ।।१४।। वनवास से लौट आने पर दुर्योधन आदि के द्वारा जान लिये जाने पर पाण्डवों ने फिर से आधा राज्य प्राप्त कर लिया। अर्जुन ने अग्नि से गाण्डीव नामक दिव्य धनुष, उत्तम रथ, युद्ध में सारथि के रूप में कृष्ण को, अक्षय बाणों को और ब्रह्मास्त्र आदि को प्राप्त कर लिया। सभी पाण्डव गुरु द्रोणाचार्य से सब प्रकार की अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करके शस्त्र-संचालन में निपुण हो गये ।।१५-१६।। अर्जुन ने कृष्ण की सहायता से पाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया और अपने शस्त्र-कौशल से बाणों का जाल बिछाकर इन्द्र की वृष्टि को रोक दिया ।।१७।। पाण्डवों ने दिग्विजय कर लिया। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया जिसमें बहुत-सा सोना दान में दिया गया। सुयोधन (पाण्डवों के) इस ऐश्वर्य को बर्दाश्त नहीं कर सका ।।१८।। अपने भाई दुःशासन और ऐश्वर्यशाली कर्ण के कहने पर उसने शकुनी के द्वारा जुए में युधिष्ठिर को हरा दिया और सभा में ही व्यंग्यपूर्वक युधिष्ठिर की हँसी उड़ाते हुए उनके राज्य को भी जीत लिया। इसके बाद हारे हुए युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों (और द्रौपदी) के साथ जंगल में चले गये ।।१९-२०।। प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने जंगल में बारह वर्ष बिताये। वन में युधिष्ठिर ने पहले की भाँति धौम्य आदि अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया ।।२१।। फिर वे लोग द्रौपदी

---

१ क. ङ. च. °द्रीसुतो नृपः। क°। २ ख. ग. घ. °तस्तु ए°। ३ ख. घ. ङ. बाहुवेधेन। ग. बाहुवेदेन। च. बहुबोधेन। ४ क. द्रौपदीं। ५ क. पाण्डवा। ६ ख. घ. ततः। ७ घ. शस्त्रविशारदाः। ८ ख. ग. घ. शरवर्षेण।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सधौम्यो द्रौपदीषष्ठस्ततः प्रागाद्विराटकम् । कङ्को द्विजो ह्यविज्ञातो राजा भीमोऽथ सूपकृत् ।।२२।।
बृहन्नडाऽर्जुनो, भार्या सैरन्ध्री, यमजौ तथा । अन्यनाम्ना, भीमसेनः कीचकं चावधीन्निशि ।।२३।।
द्रौपदीं हर्तुकामं[1] तमर्जुनश्चाजयत्कुरून्[2] । कुर्वतो गोग्रहादीश्च तैर्ज्ञाता पाण्डवा अथ ।।२४।।
सुभद्रा कृष्णभगिनी अर्जुनात्समजीजनत् । अभिमन्युं ददौ तस्मै विराटश्चोत्तरां सुताम् ।।२५।।
सप्ताक्षौहिणीश आसीद्धर्मराजो रणाय सः । कृष्णो दूतोऽब्रवीद्गत्वा दुर्योधनममर्षणम् ।।२६।।
एकादशाक्षौहिणीशं नृपं दुर्योधनं तदा । युधिष्ठिरायार्धराज्यं देहि ग्रामांश्च पञ्च वा
युध्यस्व वा वचः श्रुत्वा कृष्णमाह सुयोधनः ।।२७।।

सुयोधन उवाच

भूसूच्यग्रं न दास्यामि योत्स्ये सङ्ग्रहणोद्यतः ।।२८।।

अग्निरुवाच

विश्वरूपं दर्शयित्वा अधृष्यं [3]विदुरार्चितः । प्रागाद्युधिष्ठिरं प्राह योधयैनं सुयोधनम् ।।२९।।

इत्यादिपुराण आग्नेये आदिपर्वादिभारताख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

के साथ घूमते हुए अज्ञात-वास करने के लिए विराट की राजधानी में गये। अपने को गुप्त रखने के लिए युधिष्ठिर ने अपने को कङ्क नामक ब्राह्मण घोषित कर दिया। भीम रसोइया बना, अर्जुन बृहन्नला और उनकी स्त्री द्रौपदी सैरन्ध्री बन गयी। इसी प्रकार नकुल और सहदेव ने भी अपने-अपने नाम बदल दिये। भीमसेन ने रात में कीचक का वध कर दिया ।।२२-२३।। क्योंकि वह (कीचक) द्रौपदी का अपहरण करना चाहता था। अर्जुन ने विराट की गायों को चुराने के लिए आये हुए कौरवों को पराजित कर दिया। इसके बाद कौरवों ने पाण्डवों को पहचान लिया ।।२४।। कृष्ण की बहन सुभद्रा ने अर्जुन से अभिमन्यु नामक पुत्र को उत्पन्न किया जिसके साथ विराट ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह कर दिया ।।२५।। धर्मराज युधिष्ठिर के पास युद्ध के लिए सात अक्षौहिणी सेना थी। युधिष्ठिर का दूत बनकर भगवान् कृष्ण ने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी, असहनशील राजा दुर्योधन से कहा ।।२६।। युधिष्ठिर को आधा राज्य या कम-से-कम पाँच गाँव दे दो अन्यथा उनके साथ युद्ध करो। कृष्ण की इन बातों को सुनकर सुयोधन ने कृष्ण से कहा ।।२७।।

सुयोधन बोला–मैं सुई की नोक के बराबर भी भूमि (पाण्डवों को) नहीं दूँगा, मैं भी उनके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हूँ ।।२८।।

अग्नि बोले–जिसको अभिभूत न किया जा सके ऐसे अपने विश्वरूप को दिखलाकर भगवान् कृष्ण (दुर्योधन की सभा से) चले आये। विदुर जी ने भगवान् कृष्ण की पूजा की। भगवान् कृष्ण युधिष्ठिर के पास आकर बोले, 'इस सुयोधन से युद्ध करना ही पड़ेगा' ।।२९।।

श्री अग्निमहापुराण में महाभारत आदिपर्व नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१३।।

---

१ ङ. च. हन्तुकाम। २ क. ग. ङ. च. °श्चावधीत्क°। ३ क. ङ. च. विदुरान्वित।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भारताख्याने कुरुपाण्डवसङ्ग्रामवर्णनम्

अग्निरुवाच

यौधिष्ठिरी दौर्योधनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः। भीष्मद्रोणादिकान्दृष्ट्वा नायुध्यत् गुरूनिति ।।१।।
पार्थं ह्युवाच भगवानशोच्या भीष्ममुख्यकाः। शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति ।।२।।
अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम्। सिद्धसिद्ध्योः समो योगी राजधर्मं प्रपालय ।।३।।
कृष्णोऽक्तोऽथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थो वाद्यशब्दवान्। भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्योधने बले[1] ।।४।।
पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह। धार्तराष्ट्राः पाण्डवांश्च जघ्नुर्युद्धे सभीष्मकाः ।।५।।
धार्तराष्ट्राञ्शिखण्डाद्याः पाण्डवा जघ्नुराहवे। देवासुरसमं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।।६।।
बभूव खस्थदेवानां पश्यतां प्रीतिवर्धनम्। भीष्मोऽस्त्रैः पाण्डवं सैन्यं दशाहोभिर्न्यपातयत् ।।७।।
दशमे ह्यर्जुनो बाणैर्भीष्मं वीरं ववर्ष ह। शिखण्डी द्रुपदोक्तोऽस्त्रैर्ववर्ष जलदो यथा ।।८।।
हस्त्यश्वरथपादातमन्योन्यास्त्रनिपातितम्[2] । भीष्मः स्वच्छन्दमृत्युश्च युद्धमार्गं प्रदर्श्य च ।।९।।

अध्याय १४

महाभारत में कौरव-पाण्डव-संग्राम वर्णन

अग्नि बोले–कुरुक्षेत्र में कौरव और पाण्डव की सेनाएँ आ डटीं। भीष्म और द्रोण आदि को रणभूमि में देखकर अर्जुन ने यह कहते हुए लड़ने में असमर्थता प्रकट की कि 'ये हमारे गुरु हैं' ।।१।। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा–हे अर्जुन, भीष्म आदि के विषय में शोक करना ठीक नहीं है। नश्वर तो ये शरीर हैं, जो शरीरी है उस आत्मा का तो कभी नाश ही नहीं होता ।।२।। आत्मा ही परब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान से ही तुम इसे समझो। देखो, योगी उसी को कहते हैं जो सफलता और असफलता (असिद्धि) में समभाव रखता है। इसलिए (तुम योगी बनो और) राजधर्म का पालन करो ।।३।। कृष्ण के समझाने से अर्जुन युद्ध के लिए तैयार होकर रथ पर सवार हो गये। रण के बाजे बजने लगे। सबसे पहले भीष्म दुर्योधन की सेना के सेनापति नियुक्त हुए ।।४।। और शिखण्डी पाण्डवों की सेना के (सेनापति हुए) दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया। भीष्म (आदि) के साथ धृतराष्ट्र के पुत्र भी युद्ध में पाण्डवों को मारने लगे ।।५।। उधर शिखण्डी आदि पाण्डव (पक्षीय) युद्ध में कौरव को मारने लगे। कौरव-पाण्डव सेनाओं में देवासुर-संग्राम की भाँति युद्ध होने लगा ।।६।। यह युद्ध आकाश में रहनेवाले देवताओं के लिए अत्यन्त प्रीतिकर था। भीष्म अपने तीक्ष्ण बाणों से दस दिन तक पाण्डव सेना का संहार करते रहे ।।७।। दसवें दिन अर्जुन पराक्रमी भीष्म के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रुपद के कहने पर शिखण्डी ने भी मेघों की भाँति बाणों की झड़ी लगा दी ।।८।। (युद्ध में) असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों ने एक-दूसरे को मार गिराया। भीष्म तो इच्छानुसार मुत्यु प्राप्त करनेवाले थे, अतएव

---

१ क. ङ. च. रणे। २ क. ङ. च.° निपीडित°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वसूक्तो वसुलोकाय शरशय्यागतः स्थितः । उत्तरायण मीक्षश्च ध्यायन् विष्णुं स्तुवन् स्थितः ।।१०।।
दुर्योधने तु शोकार्ते द्रोणः सेनापतिस्त्वभूत् । पाण्डवे हर्षिते[1] सैन्ये धृष्टद्युम्नश्चभूपतिः ।।११।।
तयोर्युद्धं बभूवोग्रं यमराष्ट्रविवर्धनम् । विराटद्रुपदाद्याश्च निमग्ना द्रोणसागरे ।।१२।।
दौर्योधनी महासेना हस्त्यश्वरथपत्तिनी । धृष्टद्युम्नाद्धि[2] पतिता द्रोणः काल इवाऽऽबभौ[3] ।।१३।।
हतोऽश्वत्थामा वेत्युक्ते[4] द्रोणः शस्त्राणि[5] चात्यजत् । धृष्टद्युम्नशराक्रान्तः पतितः स महीतले ।।१४।।
पञ्चमेऽहनि दुर्धर्षः सर्वक्षत्रं प्रमथ्य च । दुर्योधने तु शोकार्ते कर्णः सेनापतिस्त्वभूत् ।।१५।।
अर्जुनः पाण्डवानां च तयोर्युद्धं बभूव ह । शस्त्राशस्त्रि महारौद्रं देवासुररणोपमम् ।।१६।।
कर्णार्जुनाख्ये सङ्ग्रामे कर्णोऽरीनवधीच्छरैः । द्वितीयेऽहनि कर्णस्तु अर्जुनेन निपातितः ।।१७।।
शल्यो दिनार्धं युयुधे ह्यवधीत्तं युधिष्ठिरः । युयुधे भीमसेनेन हतः सैन्यः सुयोधनः ।।१८।।
बहून् हत्वा नरादींश्च भीमसेनमथाऽद्रवत्[6] । गदया प्रहरन्तं तु भीमस्त तु व्यपातयत् ।।१९।।
गदयाऽन्यानुजांस्तस्य[7] तस्मिन्नष्टादशेऽहनि । रात्रौ सुषुप्तं च बलं पाण्डवानां न्यपातयत् ।।२०।।
अक्षौहिणीप्रमाणं तु अश्वत्थामा महाबलः । द्रौपदेयांश्च[8] पाञ्चालान् धृष्टद्युम्नं च सोऽवधीत् ।।२१।।

वह अपना रण–कौशल दिखलाकर वसुओं के कहने से वसुलोक में जाने के लिए बाणों की शय्या पर लेट गये और अपने हृदय में विष्णु का ध्यान करते हुए सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे ।।९–१०।। दुर्योधन को शोकार्त देखकर गुरु द्रोणाचार्य ने सेना की बागडोर सँभाली। इधर धृष्टद्युम्न विजयी पाण्डव सेना का सेनापति नियुक्त हो गया ।।११।। दोनों सेनाओं में ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि यमराज को अपना उपनिवेश बढ़ाना पड़ा। विराट और द्रुपद आदि वीर द्रोणरूपी सागर में डूब गये ।।१२।। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन की सेना के अनेक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों को मार गिराया। उस समय द्रोणाचार्य काल के समान पाण्डव–सेना का नाश करने लगे ।।१३।। 'अश्वत्थामा (नामक हाथी) या (मनुष्य) मारा गया'–यह सुनकर द्रोणाचार्य ने शस्त्रों को डाल दिया। पाँचवें दिन अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्य सभी क्षत्रियों को मारकर धृष्टद्युम्न के बाणों से जर्जर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।।१४–१४ $\frac{1}{2}$ ।। (इसे देखकर) दुर्योधन के शोकाकुल होने पर कर्ण सेनापति बने। उधर अर्जुन पाण्डवों के सेनापति बने। अर्जुन और कर्ण में युद्ध होने लगा। देवासुर–संग्राम के समान उस महाभयंकर युद्ध में शस्त्रों का जवाब शस्त्रों से दिया जाने लगा ।।१५–१६।। कर्णार्जुन–युद्ध में कर्ण ने अपने बाणों से शत्रुओं का संहार कर दिया। दूसरे दिन अर्जुन ने कर्ण को मार गिराया ।।१७।। शल्य ने आधे दिन तक युद्ध किया परन्तु (अन्त में) युधिष्ठिर ने उसे मार डाला। सेना के नष्ट हो जाने पर दुर्योधन (बची हुई सेना के साथ) भीमसेन के साथ युद्ध करने लगा ।।१८।। वह युद्ध में अनेक सैनिकों को मारकर भीम के ऊपर झपट पड़ा। भीम ने गदा–प्रहार करते हुए दुर्योधन को मार गिराया ।।१९।। दुर्योधन के अन्य छोटे भाई भी भीमसेन के द्वारा ही मारे गये। महाभारत संग्राम के उस (आखिरी) अट्ठारहवें दिन महाबली अश्वत्थामा ने रात में सोयी हुई पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना को मार गिराया। उसने पाञ्चाल वीरों, द्रौपदी के पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न का भी वध कर दिया ।।२०–२१।। पुत्रों के विनाश से द्रौपदी रोने–चिल्लाने लगी। (फिर उसको

---

१ च°र्षित सै०। २ क. ङ. च. °म्नाभिष°। घ. °म्नाभिष। ३ क. °वा चले। ह°। ४ घ. चेत्युयते। ५ क. च. सत्त्वानि। ६ क. ख. घ. ङ.° थाद्रवात्। ७ क. च. °न्यात्मजां°। ङ. °न्यांस्तथा तस्य। ८ घ. °देयान्सपा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुत्रहीनां द्रौपदीं तां[1] रुदतीमर्जुनस्ततः। शिरोमणिं तु जग्राह ऐषीकास्त्रेण तस्य च ।।२२।।
अश्वत्थामास्त्रनिर्दग्धं जीवयामास वै हरिः। उत्तरायास्ततो गर्भं स परीक्षिदभून्नृपः ।।२३।।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिस्त्रयो[2] मुक्तास्ततो रणात्। पाण्डवाः सात्यकिः कृष्णः सप्त[3] मुक्ता न चापरे ।।२४।।
स्त्रियश्चाऽऽर्ताः समाश्वास्य भीमाद्यैः स युधिष्ठिरः। संस्कृत्य प्रहतान् वीरान् दत्तौदकधनादिकः ।।२५।।
भीष्माच्छन्तनवाच्छ्रुत्वा धर्मान्सर्वांश्च शान्तिदान्। राजधर्मान् मोक्षधर्मान् दानधर्मान् नृपोऽभवत् ।।२६।।
अश्वमेधे ददौ दानं ब्राह्मणेभ्योऽरिमर्दनः। श्रुत्वाऽर्जुनान्मौसलेयं[4] यादवानां च संक्षयम् ।।२७।।
राज्ये परीक्षितं स्वाप्य सानुजः [5]स्वर्गमाप्तवान् ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारताख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पाण्डवस्वर्गारोहणवर्णनम्

अग्निरुवाच

युधिष्ठिरे तु राज्यस्थे आश्रमादाश्रमान्तरम्। धृतराष्ट्रो वनमगाद् गान्धारी च पृथा द्विज ।।१।।

सान्त्वना देने के लिए) अर्जुन ने अश्वत्थामा के सिर की मणि को सींक के अस्त्र से निकाल लिया ।।२२।। कृष्ण ने अश्वत्थामा के अस्त्र से दग्धप्राय उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित की रक्षा कर ली। वही (आगे चलकर भारत का) सम्राट् हुआ ।।२३।। युद्ध के बाद कौरव पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा शेष रह गये। पाण्डव पक्ष में जो सात वीर शेष रह गये थे– पाँचों पाण्डव, सात्यकि और कृष्ण। और कोई (वीरों में) जिन्दा नहीं बचा ।।२४।। भीम आदि के साथ युधिष्ठिर ने दुःखी और रोती हुई स्त्रियों को समझा-बुझाकर युद्ध में मारे गये वीरों का (दाह) संस्कार कर दिया। उन्होंने जलतर्पण तथा धन आदि का दान किया ।।२५।। युधिष्ठिर ने शन्तनु-पुत्र भीष्म से शान्ति देनेवाले सब प्रकार के धर्म-राजधर्म-मोक्षधर्म और दानधर्म को सुना और विधिपूर्वक राज्यासन ग्रहण किया ।।२६।। शत्रुओं का संहार करनेवाले युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणों को नाना प्रकार का दान दिया। तदनन्तर अर्जुन के मुख से मुसल-युद्ध द्वारा यादवों का विनाश सुनकर राज्यभार परीक्षित को सौंप दिया और अपने चारों छोटे भाइयों (द्रौपदी तथा पालित कुत्ते) के साथ स्वर्ग चले गये ।।२७-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में भारत आख्यान नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।१४।।

अध्याय १५

पाण्डव-स्वर्गारोहण वर्णन

अग्नि बोले–हे ब्राह्मण! जब युधिष्ठिर राज्य करने लगे तब गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करते हुए धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती जंगल में चले गये ।।१।। महात्मा विदुर दावाग्नि में जलकर स्वर्ग को सिधार गये।

---

१ च. तां सुद°। २ दुर्योधनपक्षीयास्त्रयो। रणान्मुक्ताः। ३ पाण्डवपक्षीयाश्च सप्तेत्यर्थः। ४ क. ङ. च. °ले स या°। ५ ग. ङ. माप्नुयात्। इ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विदुरस्त्वग्निना दग्धो वनजेन दिवं गतः। एवं विष्णुर्भुवो भारमहरद् दानवादिकम् ।।२।।
धर्मायाधर्मनाशाय निमित्तीकृत्य पाण्डवान्। स [1]विप्रशापव्याजेन मुसलेनाहरत्[2] कुलम् ।।३।।
यादवानां भारकरं, वज्रं राज्येऽभ्यषेचयत्। देवादेशात्प्रभासे स देहं त्यक्त्वा स्वयं हरिः ।।४।।
इन्द्रलोके ब्रह्मलोके पूज्यते स्वर्गवासिभिः[3]। बलभद्रोऽनन्तमूर्तिः पातालस्वर्गमीयिवान्[4] ।।५।।
अविनाशी हरिर्देवो ध्यानिभिर्ध्येय एव सः। विना[5] तं द्वारकास्थानं प्लावयामास सागरः ।।६।।
संस्कृत्य यादवान् पार्थो दत्तोदकधनादिकः। स्त्रियोऽष्टावक्रशापेन भार्या विष्णोश्च याः स्थिताः ।।७।।
पुनस्तच्छापतो नीता [6]गोपालैर्लगुडायुधैः। अर्जुनं हि तिरस्कृत्य, पार्थः शोकं चकार ह ।।८।।
व्यासेनाश्वासितो मेने बलं मे कृष्णसन्निधौ। हस्तिनापुरमागत्य पार्थः सर्वं न्यवेदयत् ।।९।।
युधिष्ठिराय [7]सभ्रात्रे पालकाय नृणां तदा। तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।।१०।।
विना कृष्णेन तन्नष्टं [8]दानमश्रोत्रिये यथा। तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु राज्ये स्थाप्य परीक्षितम् ।।११।।
प्रस्थानं[9] प्रस्थितो धीमान् द्रौपद्या भ्रातृभिः सह। [10]संसारानित्यतां ज्ञात्वा जपन्नष्टशतं हरेः ।।१२।।
महापथे तु पतिता द्रौपदी सहदेवकः। नकुलः फाल्गुनो भीमो राजा शोकपरायणः ।।१३।।

इस प्रकार विष्णु ने दानव और अन्यायियों का संहार करके पृथ्वी के भार को हल्का कर दिया ।।२।। भगवान् कृष्ण ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए पाण्डवों को निमित्त बनाकर यह संहार-कार्य किया। तत्पश्चात् ब्राह्मण-शाप के बहाने मुसल-युद्ध के द्वारा भारभूत यादव-कुल का संहार कर दिया ।।३।। उन्होंने वज्र को यादवों का राजा बना दिया और स्वयं देवताओं के अनुरोध से प्रभास क्षेत्र में शरीर-त्याग करके इन्द्रलोक में रहनेवाले देवताओं से सम्मानित हुए ।।४-४ $\frac{1}{2}$।। अनन्तमूर्ति बलदेव जी पाताल-स्वर्ग को चले गये। ध्यानी जन अविनाशी भगवान् कृष्ण का ध्यान किया करते हैं। भगवान् हरि के बिना द्वारकापुरी को समुद्र ने जलमग्न कर दिया ।।५-७।। अर्जुन ने मरे हुए यादवों का (दाह-) संस्कार किया और उनके निमित्त जल-तर्पण और धन आदि का दान दिया। अष्टावक्र के शाप से जो स्त्रियाँ विष्णु की पत्नियाँ हुई थीं उनको उन्हीं के शाप से गोपालों ने लाठी के जोर से अर्जुन को हराकर छीन लिया। यह देखकर अर्जुन को बड़ी चिन्ता हुई ।।८।। व्यास के समझाने पर अर्जुन को ज्ञान हुआ कि उनकी जो कुछ शक्ति थी वह कृष्ण के सान्निध्य का ही परिणाम था। अर्जुन ने हस्तिनापुर आकर युधिष्ठिर से सब-कुछ कह सुनाया। उस समय युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ प्रजा का पालन कर रहे थे ।।९-९ $\frac{1}{2}$।। अर्जुन ने कहा-'मेरा धनुष वही है, अस्त्र वही हैं, रथ वही है, घोड़े भी वही हैं, परन्तु कृष्ण के बिना ये सारी वस्तुएँ उसी प्रकार निष्फल हो रही हैं जिस प्रकार अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है' ।।१०-१० $\frac{1}{2}$।। यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्यभार तो परीक्षित के हाथों सौंप दिया और स्वयं द्रौपदी और भाइयों के साथ संसार को अनित्य समझकर एक सौ आठ बार हरि का जप करते हुए महाप्रस्थान कर दिया ।।११-१२।। उस महापथ पर चलते हुए सर्वप्रथम द्रौपदी गिर पड़ी, फिर सहदेव तब नकुल और तदनन्तर अर्जुन और भीम भी पृथ्वी पर गिर पड़े। इससे राजा युधिष्ठिर शोकातुर हो गये ।।१३।।

---

१ क. ङ. च. °प्रमायाव्य°। २ क. ङ. च. °हनत्कु°। ३ ख. ग. स्वर्निवा°। ४ क. °तालात्स्वर्ग°। ५ क. °नातद्द्वार'। ६ ङ. च° र्लकुटायु°। ७ घ. °य स भ्रा°। ङ. °व्य सद्भ्रात्रे। ८ घ. दानं चाश्रो°। ९ ग. प्रास्थानं। क. °स्थानप्र°। १० क. ग. °रानन्ततां°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रानीतरथारूढः सानुजः स्वर्गमाप्तवान्। दृष्ट्वा दुर्योधनादींश्च वासुदेवं च हर्षितः ।।१४।।
एतत्ते भारतं प्रोक्तं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाण्डवप्रास्थानिकपर्ववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अथ षोडशोऽध्यायः

बुद्धावतारवर्णनम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये बुद्धावतारं च पठतः शृण्वतोऽर्थदम्। पुरा दे (दै) वासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ।।१।।
रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम्। मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत् ।।२।।
मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम्। ते च बौद्धा बभूवुर्हि तेभ्योऽन्ये वेदवर्जिताः ।।३।।
([1]आर्हतः सोऽभवत्पश्चादार्हतानकरोत्परान्। एवं पाषण्डिनो जाता वेदधर्मादिवर्जिताः ।।४।।)
नरकार्हं कर्म चक्रुर्ग्रहीष्यन्त्यधमादपि[2]। सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च सङ्कराः ।।५।।

इन्द्र के लाये हुए विमान से युधिष्ठिर भाइयों के साथ स्वर्ग चले गये। वहाँ पर दुर्योधन आदि तथा कृष्ण को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार मैंने तुमको महाभारत की कथा सुना दी है। जो व्यक्ति इस आख्यान का पाठ करता है, वह स्वर्ग को चला जाता है ।।१४-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में पाण्डव प्रास्थानिक पर्व वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।१५।।

अध्याय १६

बुद्धावतार वर्णन

अग्नि बोले–अब मैं बुद्धावतार का वर्णन करूँगा, जो पढ़ने और सुननेवालों का देवताओं का अभीष्टदाता है। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर दिया था ।।१।। तब 'बचाइये!' 'बचाइये!' कहते हुए देवता लोग ईश्वर की शरण में गये। माया-मोह-स्वरूप भगवान् (विष्णु) शुद्धोदन-पुत्ररूप में अवतरित हुए ।।२।। उन्होंने दैत्यों को मोहित करके वैदिक धर्म से विमुख कर दिया। वे दैत्य ही बौद्ध हो गये। फिर उन्होंने दूसरे लोगों से भी वेदधर्म का त्याग करवाया ।।३।। स्वयं अर्हत् (बौद्ध-जैन साधु) बनकर फिर उन अन्य लोगों को भी अर्हत् बना लिया, जो वैदिक धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे। इस प्रकार वैदिक धर्म से विमुख होकर वे लोग पाखण्डी (विधर्मी) बन गये ।।४।। ये पाखण्डी सदा ऐसे कर्म किया करते हैं, जो नरक में ले जानेवाले होते हैं। ये लोग अधमों से भी प्रतिग्रह ले लेते हैं। कलियुग के अन्त में सभी वर्णसंकर हो जायँगे ।।५।। सब दस्यु

---

१ आर्हतः····धर्मादिवर्जिताः ग. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. च. °न्त्यवमा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दस्यवःशीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः । दश पञ्च च शाखा[1] वै प्रमाणेन भविष्यति (?) ।।६।।
धर्मकञ्चुकसंवीता अधर्मरुचयस्तथा । मानुषाद् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः पार्थिवरूपिणः ।।७।।
कल्कि विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः । [2]उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्रः कृतायुधः ।।८।।
स्थापयिष्यति मर्यादां[3] चातुर्वर्ण्ये यथोचिताम्[4] । आश्रमेषु च सर्वेषु प्रजा सद्धर्मवर्त्मनि ।।९।।
कल्किरूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति । ततः कृतयुगं नाम पुरावत्सम्भविष्यति ।।१०।।
वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम । एवं सर्वेषु कल्पेषु सर्वमन्वन्तरेषु च ।।११।।
अवतारा असङ्ख्याता अतीतानागतादयः । विष्णोर्दशावतारांशान्यः[5] पठेच्छृणुयान्नरः ।।१२।।
सोऽवाप्तकामो विमलः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् । धर्माधर्मव्यवस्थानमेवं वै कुरुते हरिः ।।१३।।
[6]अवतीर्णः स जगतः सर्गादेः कारणं हरिः ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये बुद्धावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

शीलविहीन हो जायँगे। वेदों में केवल वाजसनेय (यजुर्वेद) और केवल दस-पाँच शाखाओं की ही मान्यता रह जायगी (?) ।।६।। धर्म का चोला पहने हुए और अधर्म में रुचि रखनेवाले राजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्यों का भक्षण करेंगे ।।७।। तदनन्तर भगवान् कल्कि का अवतार होगा। वे विष्णुयश के पुत्र होंगे। याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे। वे अस्त्र-शस्त्र धारण करके म्लेच्छों का संहार कर डालेंगे ।।८।। भगवान् कल्कि चारों वर्णों और सभी आश्रमों में शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेंगे। वे सभी प्रजाजनों को सद्धर्म में लगायेंगे ।।९।। इस प्रकार (धर्म की स्थापना करके) भगवान् कल्कि अपने रूप को छोड़कर स्वर्ग चले जायँगे। तत्पश्चात् पहले की भाँति कृतयुग पुनः प्रारम्भ होगा ।।१०।। हे मुनिश्रेष्ठ! कृतयुग (सत्ययुग) आने पर सभी अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों का पालन करने लगेंगे। इसी प्रकार सब कल्पों और मन्वन्तरों में असंख्य अवतार अतीत में भी हुए हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे ।।११-११$\frac{1}{2}$।। जो मनुष्य विष्णु के दस अंशावतारों का पाठ करेगा या उसे सुनेगा वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके सकुटुम्ब स्वर्ग को प्राप्त कर लेगा ।।१२-१२$\frac{1}{2}$।। संसार की सृष्टि आदि के आधारभूत भगवान् विष्णु इस प्रकार अवतार लेकर धर्म और अधर्म की व्यवस्था किया करते हैं ।।१३-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में बुद्धावतार नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।१६।।

---

१ ग. शाला वै प्रायेणैव भ°। २ क. उच्छेद°। ३ च. °दा भविष्यति पृथक्-पृथक्। वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम। आश्र°। ४ क. यथेरिताम्। ५ ख. घ.° ताराख्यान्यः। ६ घ.° तीर्णश्च स गतः स°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तदशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच

जगत्सर्गादिकां[1] क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु । स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः ।।१।।
ब्रह्माव्यक्तं[2] सदग्रेऽभून्नखं[3] रात्रिदिनादिकम् । प्रकृतिं[4] पुरुषं विष्णुं प्रविश्याक्षोभयत्ततः ।।२।।
सर्गकाले महत्तत्त्वमहङ्कारस्ततोऽभवत् । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।।३।।
अहङ्काराच्छब्दमात्रमाकाशमभवत्ततः । स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ।।४।।
रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा धरित्र्यभूत् । अहङ्कारात्तामसात्तु तैजसानीन्द्रियाणि च ।।५।।
वैकारिकादश देवा मन एकादशेन्द्रियम् । 'ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।६।।
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत् । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।।७।।
अयनं तस्य ताः पूर्वं[5] तेन नारायणः स्मृतः । हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ।।८।।

अध्याय १७

जगत्सर्ग वर्णन

अग्नि बोले–अब मैं भगवान् विष्णु की क्रीडा–संसार की सृष्टि आदि का वर्णन कर रहा हूँ। उसे सुनो! स्वर्ग आदि के निर्माता विष्णु सृष्टि के आदि हैं। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी ।।१।। सर्वप्रथम सत्स्वरूप ब्रह्म ही थे। उस समय न आकाश था, न रात्रि थी और न दिन ही थे। तत्पश्चात् पुरुष विष्णु ने प्रकृति के अन्दर प्रविष्ट होकर उसको क्षुब्ध कर दिया ।।२।। सृष्टि के समय सर्वप्रथम (अव्यक्त प्रकृति से) महत्तत्त्व हुआ। महत्तत्त्व से अहङ्कार हुआ। अहङ्कार के तीन भेद हैं–वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप (तामस) ।।३।। तामस अहङ्कार से शब्दतन्मात्र, फिर शब्दतन्मात्र से आकाश उत्पन्न हुआ। फिर स्पर्शतन्मात्र से वायु और रूपतन्मात्र से अग्नि उत्पन्न हुआ ।।४।। रसतन्मात्रा से जल और गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी उत्पन्न हुई। राजस (तैजस) अहङ्कार से इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं ।।५।। दस इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता तथा ग्यारहवाँ मन–ये वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छावाले भगवान् स्वयम्भू ने सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की और उसमें अपने वीर्य को निहित कर दिया। अप्–जल को नार कहा गया है और उसे ही नरसूनु भी कहा गया है। पहले वही भगवान् का अयन (आश्रम, स्थान) था अतः भगवान् को नारायण कहते हैं ।।६–७ $\frac{१}{२}$।। उस जल से ही हिरण्यवर्ण (सुनहला) अण्डा उत्पन्न हुआ। उससे साक्षात् ब्रह्म की उत्पत्ति हुई, जो 'स्वयम्भू' नाम से विख्यात हैं ।।८–८ $\frac{१}{२}$।। भगवान् हिरण्यगर्भ

---

१ क. ख. ग. ङ. च. जगत्सर्गादिकी °। २ क. ङ. च. ब्रह्म व्यक्त। ३ घ. सदाग्रे°। ४ ग. °कृतिं पुरुषो विष्णुः प्र°। ५ इत आरभ्याध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्तः श्लोका महाभारतान्तर्गत–हरिवंशपर्वस्थद्वितीयाध्यायत उद्धृता इति गम्यते श्लोकानामक्षरशः उभयत्र पाठसाम्यात्। ६ क. पूर्णं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् । हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।।९।।
तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च । तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ।।१०।।
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे । तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ।।११।।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतिः । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।।१२।।
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं[1] चाथ वक्त्रतः । ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ।।१३।।
साध्यास्तैरयजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजात्[2] । सनत्कुमारं रुद्रं च ससर्ज क्रोधसम्भवम् ।।१४।।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं [3]मानसान्सप्त ब्राह्मणानिति[4] निश्चितम्[5] ।।१५।।
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्राश्च सत्तम । द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।।१६।।
अर्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत्प्रजाः ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

एक वर्ष तक उसी अण्डे में अवस्थित रहे। तदनन्तर उसको दो भागों में विभक्त कर स्वर्ग और भूलोक की सृष्टि की। फिर परमेश्वर ने उन दोनों खण्डों के मध्य में आकाश की सृष्टि की ।।९-१०।। उन्होंने जल में तैरती हुई पृथ्वी को और दस दिशाओं को यथोचित स्थान पर रख दिया। फिर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध, रति आदि को भी उत्पन्न किया। फिर सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति ने तदनुकूल ही सृष्टि करना प्रारम्भ किया। सबसे पहले विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्रधनुष, पक्षियों और पर्जन्य की सृष्टि की। तदनन्तर प्रजापति ने यज्ञानुष्ठान के लिए मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण किया ।।११-१३।। उन (वेदों) के द्वारा साध्यगणों ने देवताओं का यजन किया। फिर ब्रह्मा जी ने अपनी भुजा से ऊँचे तथा नीचे (या छोटे-बड़े) भूतों को उत्पन्न किया। फिर सनत्कुमार को पैदा किया तथा क्रोध से पैदा होनेवाले रुद्र को उत्पन्न किया ।।१४।। ब्रह्मा जी ने मन से मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ नामक सप्त ऋषियों को उत्पन्न किया ।।१५।। हे मुनिश्रेष्ठ! इन सप्तर्षियों से तथा रुद्रों से ही प्रजाओं की सृष्टि होती है। सृष्टि-वृद्धि की इच्छा से ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किये-आधे भाग से वे पुरुष हुए और दूसरे आधे भाग से स्त्री बन गये। फिर उस नारी के गर्भ से ब्रह्मा ने प्रजाओं की सृष्टि की। (ये स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मानवीय सृष्टि के आदि हैं) ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में जगत्सर्ग वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।१७।।

---

१ क.° न्यं वर्षचक्रतः। २ च. ह्यजात्। ३ घ. °नसाः सप्त। ४ घ. ब्रह्माण इति। ५ घ. निश्चिताः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टादशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

[1]प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवात् सुतौ। अजीजनत् सुतां रम्यां[2] शतरूपा[3] तपोऽन्विता ।।१।।
काम्या कर्दमकन्याऽतः[4] सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः। सुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ।।२।।
सुनीत्यां च ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे सुकीर्तये। ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि हे मुने ।।३।।
तस्मै प्रीतो हरिः प्रादान्मुन्यग्रे स्थानकं स्थिरन्। श्लोकं पपाठ ह्युशना वृद्धिं दृष्ट्वा स तस्य च ।।४।।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम्। यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ।।५।।
तस्माद्[5] वृद्धिश्च भव्यश्च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत[6]। वृद्धेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।।६।।
रिपुं रिपुञ्जयं पुष्यं[7] वृकसं[8] वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।।७।।
अजीजनत्पुष्करिण्यां वीरिण्यां[9] चाक्षुषो मनुम्। ([10]मनोरजायन्त दश नड्वलायां सुतोत्तमाः) ।।८।।
ऊरुः[11] पूरुः[12] शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः। अग्निष्टुदतिरात्रश्च[13] सुद्युम्नश्चातिमन्युकः ।।९।।

अध्याय १८

स्वायम्भुव मनुवंश का वर्णन

अग्नि बोले–स्वायम्भुव मनु ने तपस्विनी भार्या शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया ।।१।। वह सुन्दरी कन्या कर्दम ऋषि की पत्नी हुई, जिससे चक्रवर्ती सम्राट् कुक्षि उत्पन्न हुए। सुरुचि नाम की भार्या से उत्तानपाद का पुत्र उत्तम उत्पन्न हुआ तथा सुनीति नाम की (दूसरी भार्या से) ध्रुव पैदा हुए। हे मुने! सुयश प्राप्त करने के लिए ध्रुव ने तीन हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की ।।२–३।। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने ध्रुव को (सप्तर्षि–मण्डल के) ऋषियों के आगे एक स्थिर स्थान प्रदान कर दिया। ध्रुव के अभ्युदय को देखकर शुक्राचार्य ने (उसकी प्रशंसा में) यह श्लोक पढ़ा ।।४।। "अहो! इस ध्रुव की तपस्या में कितना बल है। इसका ज्ञान अद्भुत है जिसे आगे करके आज सप्तर्षि भी स्थित हैं ।।५।। ध्रुव से वृद्धि, भव्य और शम्भु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सुच्छाया ने वृद्धि से पाँच पुण्यात्मा पुत्रों को प्राप्त किया ।।६।। (उन पुत्रों के नाम हैं–) रिपु, रिपुञ्जय, पुष्य, वृक और वृकतेजस। रिपु से बृहती ने अत्यन्त तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।७।। चाक्षुष ने वीरण की पुत्री पुष्करिणी से मनु को उत्पन्न किया। नड्वला से मनु को दस पुत्र उत्पन्न हुए ।।८।। वे दस पुत्र थे– ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अतिमन्युक ।।९।।

---

१ अयमप्यध्यायः पूर्वाध्यायवद्बहुशो हरिवंशस्थश्लोकपाठसदृश एव। २ घ. कन्या°। ३ घ. शतरुपां°। ४ क. ख. घ. °मभार्याऽतः। ५ क. घ.° स्माच्छिष्टि च भव्यं च ध्रु°। ६ क. °त। घ.° त। शिष्टेरा°। ७ ख. ग. पुत्रं। घ. रिप्रं। च. पुष्यं। ८ ख. ग. घ. वृकलं। ९ करिण्यां। ग. वारुण्यां। च. वारिण्यां। १० मनोरजायन्त…सुतोत्तमाः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ११ च. उरूः। १२ च पुरुः। १३ क. ङ.° रात्रिश्च। ख. ग.° श्चाभिम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् । अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।।१०।।
अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत । अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ।।११।।
प्रजार्थमृषयोऽथास्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेणस्य मथिते पाणौ सम्बभूव पृथुर्नृपः ।।१२।।
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः । करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।।१३।।
स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव । पृथुर्वैण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष[1] क्षत्रपूर्वजः ।।१४।।
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स पृथिवीपतिः । तस्माच्चैव समुत्पन्नौ[2] निपुणौ सूतमागधौ ।।१५।।
तत्स्तोत्रं चक्रतुर्वीरौ, राजाऽभूज्जनरञ्जनात् । दुग्धा गौस्तेन सस्यार्थं[3] प्रजानां जीवनाय च ।।१६।।
सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः । पितृभिर्दानवैः सर्पैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ।।१७।।
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा । प्राद्याद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ।।१८।।
पृथोः पुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ । शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ।।१९।।
हविर्धाना (त्वडाग्नेयी[4] धिषणाजनयत्सुतान् । प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।।२०।।
प्राचीनाग्राः[5] कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः । प्राचीनबर्हिर्भगवा) न्महानासीत्प्रजापतिः ।।२१।।
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः । सर्वे प्रचेतसी नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।।२२।।

आग्नेयी ने ऊरु से छह महातेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम थे–अंग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अंगिरा और गय ।।१०।। अंग से सुनीथा ने वेण नामक पुत्र प्राप्त किया, जो राजा होते हुए भी प्रजारक्षक न था और सदा पापकर्म ही किया करता था। इसलिए मुनियों ने उसे कुशों से मार डाला ।।११।। उन्होंने प्रजा की रक्षा के लिए उसके दाहिने हाथ को मथना प्रारम्भ किया। वेण का हाथ मथने पर उससे राजा पृथु उत्पन्न हुआ ।।१२।। उसको देखकर ऋषियों ने कहा–"यह राजा अवश्य अपने न्यायाचरण से प्रजाओं को सुखी बनाकर महान् यश प्राप्त करेगा" ।।१३।। उसने धनुष और कवच धारण किया। वह मानो तेज से दहक रहा था। क्षत्रियों के पूर्वज उस राजा पृथु ने अपने पिता वेण की सारी प्रजाओं की रक्षा की ।।१४।। राजसूय यज्ञ करनेवाले राजाओं में वे सबसे पहले राजा थे। उस राजसूय से उत्पन्न हुए, स्तुति करने में चतुर सूतों और मागधों ने उनकी स्तुति की ।।१५।। प्रजा का अनुरञ्जन करने के कारण वह (यथार्थ में) राजा कहलाया। उसने प्रजा का पालन तथा अन्न उपजाने के लिए पृथ्वी का दोहन किया ।।१६।। देवता, मुनिजन, गन्धर्व, अप्सरा, पितृगण, दानव, सर्प, लता, पर्वत और मनुष्यों के सहयोग से दुही जानेवाली पृथ्वी से उन–उन पात्रों में यथेष्ट दूध दिया, जिससे सब प्राण धारण किये ।।१७–१८।। पृथु के दो पुत्र हुए–अन्तर्धि और पालित। दोनों ही धर्मात्मा थे। अन्तर्धान अर्थात् अन्तर्धि से (उसकी पत्नी) शिखण्डिनी ने हविर्धान को उत्पन्न किया ।।१९।।

अग्नि की पुत्री धिषणा ने हविर्धान से इन छह पुत्रों को उत्पन्न किया–प्राचीनबर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन ।।२०।। भगवान् प्राचीनबर्हि महान् प्रजापति थे। क्योंकि यज्ञ करते समय वे पूरब की ओर नोक किये कुशों को फैलाते थे, अतः उनका नाम प्राचीनबर्हिः पड़ गया था ।।२१।। प्राचीनबर्हि की सजातीया सामुद्री ने प्राचीनबर्हि से दस प्रचेताओं को जन्म दिया, जो धनुर्वेद में पारंगत थे ।।२२।। वे एक प्रकार का ही धर्मपालन करते थे। उन्होंने दस हजार

---

१ घ.° क्ष क्षेत्रपू°। २ पुत्राविति शेषः। ३ क. ङ. च. सस्यानि। ४ त्वडाग्नेयी····भगवान् ख. पुस्तके नास्ति। ५ क. ङ. च.° गाः। सपृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।।२३।।
प्रजापतित्वं सम्प्राप्य तुष्टा विष्णोश्च निर्गताः। भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तरूनदहंश्च ते ।।२४।।
मुखजाग्निमरुद्भ्यां च दृष्ट्वा[1] चाथ द्रुमक्षयम्। उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ।।२५।।
कोपं यच्छत दास्यन्ति कन्यां वो मारिषां वराम्। तपस्विनो मुनेः कण्डोः[2] प्रम्लोचायां मयैव च ।।२६।।
भविष्यं जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलङ्करी। अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः ([3]प्रजाः संवर्धयिष्यति ।।२७।।
प्रचेतसस्तां जगृहुर्दक्षोऽस्यां च ततोऽभवत्। अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।।२८।।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः) पश्चादसृजत स्त्रियः। ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।।२९।।
सप्तविंशति (तिं) सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने। द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे ह्यदात्[4] ।।३०।।
तासु देवाश्च नागाद्या मैथुनान्[5] मनसा पुरा। धर्मसर्गं प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ।।३१।।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान्व्यजायत। मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन् ।।३२।।
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः। लम्बाया धर्मतो घोषो नागवीथी च यामिजा[6] ।।३३।।
पृथिवीविषयं सर्वं[7] मरुत्वत्यां व्यजायत। सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पा इन्दोर्नक्षत्रतः सुताः ।।३४।।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च[8] वसवोऽष्टौ च नामतः ।।३५।।

वर्षों तक समुद्र-जल में रहकर घोर तपस्या की ।।२३।। फलस्वरूप भगवान् विष्णु से प्रजापतित्व का वरदान पाकर सन्तुष्ट होकर जल से बाहर निकले। उस समय प्रायः समस्त भूमण्डल और आकाश वृक्षों से व्याप्त थे। प्रचेताओं ने उन वृक्षों को जला दिया। इस प्रकार वनस्पतियों का विनाश होता हुआ देखकर महाराज सोम ने उन प्रजापति प्रचेताओं के पास जाकर कहा ।।२४-२५।। आप लोग अपने क्रोध को शान्त करें। ये वृक्ष आप लोगों को मारिषा नाम की श्रेष्ठ कन्या देंगे। इस कन्या को तपस्वी मुनि काण्डु से प्रम्लोचा नाम की अप्सरा में मैंने ही भविष्य को जानते हुए उत्पन्न किया। वह आपके कुल को बढ़ानेवाली भार्या होगी। इसके गर्भ से दक्ष उत्पन्न होंगे जिनके द्वारा प्रजा की वृद्धि होगी ।।२६-२७।। प्रचेताओं ने उस कन्या का पाणिग्रहण किया। उस (मारिषा) के गर्भ से दक्ष उत्पन्न हुए। दक्ष ने पहले चराचर, द्विपदों और चतुष्पदों की मन से सृष्टि की। इसके बाद उन्होंने स्त्रियों को उत्पन्न किया। उन स्त्रियों में से दस स्त्रियाँ धर्म को, तेरह कश्यप को दी गयीं ।।२८-२९।। सत्ताईस स्त्रियाँ चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को और दो अङ्गिरा को दीं ।।३०।।

पूर्वकाल में संकल्प-मात्र से मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में उन दक्ष-कन्याओं में मैथुन द्वारा देवता और नाग उत्पन्न हुए। अब मैं धर्म की दस पत्नियों से उत्पन्न होनेवाली धर्म की सृष्टि का वर्णन करूँगा ।।३१।। विश्वा से वे विश्वेदेव, साध्या से साध्यगण, मरुत्वती से मरुत्वान् लोग तथा वसु से वसुगण उत्पन्न हुए ।।३२।। भानु से भानु पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, मुहूर्ता से मुहूर्त, धर्म के द्वारा लम्बा से घोष और नागवीथी से यामिज नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।।३३।। मरुत्वती के गर्भ पृथिवी से सम्बद्ध सभी प्राणी उत्पन्न हुए। संकल्पा से संकल्प उत्पन्न हुए। चन्द्रमा ने अपनी नक्षत्ररूपिणी पत्नियों से इन पुत्रों को उत्पन्न किया ।।३४।। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास और आठ वसुगण ।।३५।।

---

१ च.° ष्ट्वाऽनाथ°। २ क. ङ. च. कण्ड्वोः। ३ प्रजाः°°°दक्षः च. पुस्तके नास्ति। ४ ख. ग. घ. च. अदात। ५ ख.° नान्मानसाः पु°। ६ च. भूमिजा। ७ घ. सर्वमरुन्धत्यां। ८ घ. प्रभाषश्च। च. प्रभावश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सापस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा । ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वर्चाः सोमस्य वै सुतः ।।३६।।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा । मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ [1]रमणस्तथा ।।३७।।
पुरोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातोऽनलस्य च । अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्बे व्यजायत ।।३८।।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः । कृत्तिकातः कार्तिकेयो यतिः सनत्कुमारकः ।।३९।।
प्रत्यूषाद्देवलो जज्ञे विश्वकर्मा प्रभासतः[2] । कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः[3] ।।४०।।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम् । सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञुषी ।।४१।।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती । अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च सत्तम ।।४२।।
त्वष्टुश्चैवात्मजः[4] श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः । हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।।४३।।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा । मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली दश चैककः ।।४४।।
रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरम् ।।४५।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

आप के पुत्र वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि हुए, ध्रुव के काल और लोकान्त, और सोम के वर्चा पुत्र हुए ।।३६।। मनोहरा के गर्भ से धर के पुत्र द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण हुए ।।३७।। अनिल के पुत्र पुरोजव और अनल (अग्नि) के पुत्र अविज्ञात हुए। अग्नि के पुत्र कुमार शरस्तम्ब (सरपत) से पैदा हुए ।।३८।। बाद को अग्नि के तीन और पुत्र उत्पन्न हुए–शाख, विशाख और नैगमेय। कृत्तिका से कार्तिकेय और यति सनत्कुमार उत्पन्न हुए ।।३९।। प्रत्यूष से देवल और प्रभास से विश्वकर्मा उत्पन्न हुए, जो सहस्रों प्रकार के शिल्पों के आचार्य और देवताओं के बढ़ई हैं ।।४०।। उन्हीं के आविष्कार किये हुए शिल्प और आभूषण–निर्माण–कला को अपनाकर मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। कश्यप से सुरभी ने ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया ।।४१।। हे मुनिश्रेष्ठ! महादेव जी की कृपा से युक्त होकर सती ने इन चार पुत्रों को उत्पन्न किया–अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र ।।४२।। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप हुए, जो श्रीसम्पन्न तथा महान् यशस्वी थे। (ग्यारह) रुद्र ये हैं–हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली। ऐसे तो सैकड़ों-लाखों रुद्र हैं जिनसे यह चराचरात्मक (सम्पूर्ण) जगत् व्याप्त है ।।४३–४५।।

श्री अग्निमहापुराण में स्वायम्भुव मनुवंश वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१८।।

---

१ क. ग. ङ. °थ मरणस्त°। २ घ. प्रभापतः। ३ ङ. वर्धकः। ४ ख. ग. °वानुजः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कश्यपवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

कश्यपस्य बदे सर्गमदित्यादिषु हे मुने। चाक्षुषे तुषिता देवास्तेऽदित्यां कश्यपात्पुनः ।।१।।
आसन् विष्णुश्च शक्रश्च त्वष्टा धाता तथार्यमा। पूषा[1] विवस्वान् सविता मित्रोऽथ वरुणो भगः ।।२।।
अंशुश्च द्वादशादित्या आसन् वैवस्वतेऽन्तरे। अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।।३।।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रः विद्युतः स्मृता[2]। प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य[3] सुरायुधाः ।।४।।
उदयास्तमने सूर्ये तद्वदेते युगे-युगे[4]। हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षश्च कश्यपात् ।।५।।
सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः। राहुप्रभृतयस्तस्यां सैंहिकेया इति श्रुताः[5] ।।६।।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः। अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चातिवैष्णवः ।।७।।
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद् ह्लादपुत्रो ह्रदस्तथा। संह्लादपुत्र[6] आयुष्माञ्शिविर्बाष्कल एव च ।।८।।
([7]विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्)। बलेःपुत्रशतं त्वासीद्[8]बाणज्येष्ठं महामुने ।।९।।

अध्याय १९

कश्यपवंश का वर्णन

अग्नि बोले–हे मुने! अब मैं कश्यप की अदिति आदि पत्नियों से उत्पन्न सृष्टि के बारे में कहूँगा। चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नामक देवता थे, जो अदिति से कश्यप के पुत्र थे। वे ही इस वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य हुए–विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशु। अरिष्टनेमि की पत्नियों से सोलह सन्तानें उत्पन्न हुईं ।।१–३।। विद्वान् बहुपुत्र की चार पुत्रियाँ थीं–चारों बिजलियाँ। अङ्गिरा मुनि से श्रेष्ठ ऋचाएँ उत्पन्न हुईं और कृशाश्व ऋषि से दिव्य आयुध उत्पन्न हुए ।।४।। जिस प्रकार आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होता रहता है उसी प्रकार युग–युग में ये देवता उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं। दिति से कश्यप के दो पुत्र हुए–हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष तथा एक कन्या भी हुई जिसका नाम था सिंहिका। सिंहिका विप्रचित्ति की पत्नी हुई। उस सिंहिका से उत्पन्न राहु आदि सैंहिकेय कहे जाते हैं ।।५–६।। हिरण्यकशिपु के चार ओजस्वी पुत्र हुए–अनुह्लाद, ह्लाद और परमवैष्णव प्रह्लाद–उसका चौथा पुत्र था संह्लाद। ह्लाद का पुत्र था ह्रद। संह्लाद के तीन पुत्र थे–आयुष्मान्, शिवि और बाष्कल। ।।७–८।। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और विरोचन का पुत्र बलि था। हे मुनिश्रेष्ठ! बलि के सौ पुत्र थे जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ थे ।।९।।

---

१ क. ङ. च. वृषा। २ घ सुताः। ३ द्र. कल्याण-हरिवंश ३-६५-प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसात्कृताः। कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देव-प्रहरणानि च ।। ४. द्रष्टव्य हरिवंश-'एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ।।३.६६ तथा मत्स्यपुराण ।।६-७।। ५ क. ङ. च. स्मृताः। ६ क. ङ. च. ह्रदस्य पुत्र। ७ विरोचनस्तु ... विरोचनात्। ८ ख. ग. घ. °णश्रेष्ठं। क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुराकल्पे हि[1] बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्[2] । पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात् ।।१०।।
हिरण्याक्षसुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति[3] । द्विमूर्धा [4]शङ्कुरार्यश्च शतमासन्दनोः सुताः ।।११।।
स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची स्मृता । उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।।१२।।
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते उभे । कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ।।१३।।
प्रह्लादस्य चतुष्कोट्यो निवातकवचाः कुले । ताम्रयाः षट्सुताः स्युश्च काकी श्येनी च भास्यपि ।।१४।।
गृध्रिका च शुचिर्ग्रीवा ताभ्यः काकादयोऽभवन् । अश्वाश्चोष्ट्राश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ।।१५।।
बिनतायाः सहस्रं तु सर्पाश्च सुरसाभवाः । काद्रवेयाः सहस्रं तु शेषवासुकितक्षकाः ।।१६।।
दंष्ट्रिणः क्रोधवशगा धरायाः[5] पक्षिणो जले । सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणादयः ।।१७।।
खसायां यक्षरक्षांसि मुनेरप्सरसोऽभवन् । अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धिः स्थिरं चरम् ।।१८।।
एषां पुत्रादयोऽसङ्ख्या देवैर्वै दानवा जिताः । दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।।१९।।
पुत्रमिन्द्रप्रहर्तारमिच्छती प्राप कश्यपात् । पादाप्रक्षालनात्सुप्ता तस्या गर्भ जघान ह ।।२०।।
छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् । शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ।।२१।।

पूर्वकल्प में बाण ने उमापति भगवान् शंकर को (अपनी तपस्या से) प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि "मैं आपके पास ही विचरण करता रहूँगा।।" ।।१०।। हिरण्याक्ष के पाँच पुत्र थे–शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। दनु के सौ पुत्र थे ।।११।। स्वर्भानु की कन्या थी सुप्रभा और पुलोमा की कन्या थी शची। वृषपर्वा की तीन कन्याएँ थीं–उपदानवी, हयशिरा और शर्मिष्ठा ।।१२।। वैश्वानर की पुलोमा और कालका नाम की दो कन्याएँ थीं जो कश्यप की दो पत्नियाँ हुईं। इन दोनों के करोड़ों पुत्र हुए ।।१३।। प्रह्लाद के कुल में चार करोड़ असुर थे जो निवात कवच कहलाये। ताम्रा की छह पुत्रियाँ हुईं–काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका, शुचि और ग्रीवा। इन्हीं से कौए आदि उत्पन्न हुए ।।१४-१४½।। ताम्रा से घोड़े और ऊँट पैदा हुए। विनता से अरुण और गरुड़। सुरसा से हजारों दाँतोंवाले और क्रोधी साँप उत्पन्न हुए। कद्रू से हजारों शेष, वासुकि और तक्षक नाग उत्पन्न हुए । धरा के गर्भ से जल में रहनेवाले पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभि से गाय और भैंस आदि तथा इरा से तृण उत्पन्न हुए ।।१५-१७।। खसा से यक्ष और राक्षस उत्पन्न हुए। मुनि नामक पत्नी से अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। अरिष्टा से गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस प्रकार कश्यप से स्थावर और जंगम जगत् की सृष्टि हुई ।।१८।। कश्यप की इन सन्तानों से असंख्य सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं। (कुछ काल बाद) देवताओं ने दानवों को हरा दिया। पुत्रों के नष्ट हो जाने से दिति ने (अपनी सेवा से) कश्यप जी को सन्तुष्ट किया ।।१९।। इन्द्र को मारनेवाले पुत्र की इच्छा करती हुई दिति ने कश्यप से (अभिमत वर) प्राप्त किया। एक दिन दिति पैरों को धोये बिना ही सो गयी। इन्द्र ने दोष पाकर उसके गर्भ को काट डाला। वह कटा हुआ गर्भ ही मरुत् देवों के रूप में उत्पन्न हुआ। वे तेजस्वी उनचास मरुत् इन्द्र की सहायता करनेवाले हुए ।।२०-२१।। ब्रह्मा और विष्णु ने इस सम्पूर्ण संसार (के राज्य) में पृथु का राज्याभिषेक

---

१ क. ङ. च. हिरण्येन। २ घ. वरः। ३ क. ङ. च. °कुनिः स्तुतिः। द्वि°। ४ ख. शम्बराद्याश्च। ५ क. च. धरोत्थाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एतत्सर्वं[1] हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम्। ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ।।२२।।
द्विजौषधीनां चन्द्रस्तु अपां तु वरुणो नृपः। राज्ञां वैश्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः ।।२३।।
वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः। प्रजापतीनां दक्षोऽथ प्रह्लादो दानवाधिपः ।।२४।।
पितृणां च यमो राजा भूतादीनां[2] हरः प्रभुः। हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः ।।२५।।
गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः। सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ ।।२६।।
ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोऽथ गवामपि। मृगाणामथ शार्दूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः ।।२७।।
उच्चैःश्रवास्तथाश्वानां सुधन्वा पूर्वपालकः। दक्षिणस्यां शङ्खपदः केतुमान् पालको जले ।।२८।।
हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोऽयमीरितः ।।२९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिसर्गे कश्यपवंशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।२९।।

अथ विंशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः। तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ।।१।।

कर दिया। भगवान् विष्णु ने अन्य राज्यों को भी क्रमशः बाँट दिया ।।२२।। ब्राह्मणों और ओषधियों के राजा चन्द्रमा हुए। जल के स्वामी वरुण हुए। राजाओं के (भी) राजा कुबेर हुए और भगवान् विष्णु द्वादश सूर्यों के स्वामी हो गये ।।२३।। वसुओं के राजा अग्नि और मरुतों के स्वामी वासव हो गये। प्रजापतियों के स्वामी दक्ष तथा दानवों के अधिपति प्रह्लाद हुए ।।२४।। पितरों के राजा यम और भूतों के अधिपति शङ्कर हुए। हिमालय शैलाधिराज हो गया और नदियों का स्वामी सागर हुआ ।।२५।। गन्धर्वों के स्वामी चित्ररथ और नागों के स्वामी वासुकि हुए। सर्पों के तक्षक और पक्षियों के स्वामी गरुड़ बने ।।२६।। हाथियों के अधिनायक ऐरावत और गौवों के राजा गोवृष हुए तथा मृगों के शार्दूल और वनस्पतियों का स्वामी पाकड़ हुआ ।।२७।। अश्वों का स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। पूर्व का स्वामी सुधन्वा तथा दक्षिण का शंखपद स्वामी बना। जल का रक्षक केतुमान् हुआ ।।२८।। उत्तर दिशा का रक्षक हिरण्यरोमक हुआ। यह प्रतिसर्ग का वर्णन किया गया ।।२९।।

श्री अग्निमहापुराण में कश्यपवंशवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१९।।

अध्याय २०

जगत्सर्ग वर्णन

अग्नि बोले–(प्रकृति से) महत्तत्त्व की सृष्टि हुई, इसे ब्रह्मा की सृष्टि समझनी चाहिए। दूसरी सृष्टि तन्मात्राओं की है, इसे भूतसर्ग कहा जाता है ।।१।। तीसरा वैकारिक (सात्त्विक) सर्ग है जिसे ऐन्द्रियक सर्ग कहते हैं। यह प्रकृति

---

१ अत्र किञ्चित् त्रुटितमिवाभाति। २ क. ङ. च. °तानां च ह°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः[1] स्मृतः । इत्येष[2] प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।।२।।
मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः । [3]तिर्यक्स्रोतास्तु यः [4]प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यस्ततः[5] स्मृतः ।।३।।
तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः । ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।।४।।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः । पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ।।५।।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा । ब्रह्मतो[6] नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ।।६।।
ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृग्वाद्या उपयेमिरे । नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधाऽथ[7] कथितो जनैः ।।७।।
प्राकृतो, दैनन्दिनीयादान्तरप्रलयादनु । जायन्ते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि स[8] स्मृतः ।।८।।
देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत । श्रियं च पत्नी विष्णोर्या स्तुता शक्रेण वृद्धये ।।९।।
धातुर्विधातुर्द्वौ पुत्रौ क्रमात्प्राणो मृकण्डुकः[9] । मार्कण्डेयो मृकण्डोश्च[10] जज्ञे वेदशिरास्तथा ।।१०।।
पौर्णमासश्च सम्भूत्यां मरीचेरभवत्सुतः । स्मृत्यामाङ्गिरसः पुत्राः सिनीवाली कुहूस्तथा ।।११।।
राका चानुमतिश्चात्रेरनसूयाप्यजीजनत् । सोमं दुर्वाससं पुत्रं दत्तात्रेयं च योगिनम् ।।१२।।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुताऽभवत् । [11]क्षमायां पुलहाज्जातः सहिष्णुः सर्वपादिकः[12] ।।१३।।
सन्नत्यां च क्रतोरासन् बालखिल्या महौजसः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रास्ते ये हि षष्टिसहस्रिणः ।।१४।।

से होनेवाली सृष्टि है जिसमें बुद्धि (महत्तत्त्व सबसे) पहले उत्पन्न हुई ।।२।। चौथा सर्ग मुख्य सर्ग है। मुख्य कहते हैं स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि) को। (पाँचवाँ) जो तिर्यक्स्रोत (पशु, पक्षी आदि) कहा गया है, वह तैर्यग्योन्य सर्ग कहा जाता है ।।३।। छठा सर्ग ऊर्ध्वरेता प्राणियों का है जिसे देवसर्ग कहते हैं। तदनन्तर अधोरेता प्राणियों के सातवें सर्ग का निर्माण हुआ जिसे मानुषसर्ग कहते हैं ।।४।। आठवाँ सर्ग अनुग्रह सर्ग है जो सात्त्विक और तामस भेद से दो प्रकार का है। इनमें से पहले के तीन सर्ग प्राकृत सर्ग और शेष पाँच सर्ग वैकृत सर्ग हैं ।।५।। (तीन) प्राकृत, (पाँच) वैकृत (ये आठ) तथा नवाँ कौमार सर्ग– ये सब सर्ग ब्रह्मा के द्वारा निर्मित तथा संसार के मूल कारण हैं ।।६।। भृगु आदि ऋषियों ने ख्याति आदि दक्ष की कन्याओं से विवाह किया। कुछ लोग तीन प्रकार की सृष्टि मानते हैं–नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत ।।७।। नित्य सर्ग उसे कहते हैं, जो प्रतिदिन होनेवाले अवान्तर प्रलय के बाद प्रतिदिन जन्म होते रहते हैं ।।८।। भृगु से उनकी पत्नी ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओं को जन्म दिया तथा लक्ष्मी नाम की कन्या को उत्पन्न किया जो विष्णु की पत्नी हुई तथा जिसकी स्तुति इन्द्र ने अभ्युदय के लिए किया ।।९।। धाता और विधाता के क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय और मार्कण्डेय के पुत्र वेदशिरा हुए ।।१०।। मरीचि ने सम्भूति नामक पत्नी से पौर्णमास को उत्पन्न किया। अंगिरा ने स्मृति नामक पत्नी से अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याओं को उत्पन्न किया। अत्रि से अनुसूया ने सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय को जन्म दिया ।।११–१२।। पुलस्त्य की पत्नी प्रीति से उनके पुत्र दत्तोलि का जन्म हुआ। पुलह ने क्षमा के गर्भ से सहिष्णु और सर्वपादिक को जन्म दिया ।।१३।। क्रतु ने सन्नति से महान् ओजस्वी बालखिल्यों को उत्पन्न किया। उन बालखिल्यों की संख्या साठ हजार थी और वे अँगूठे के एक पोर के बराबर थे ।।१४।।

---

१ क. ङ. च. इत्येवं। २ इन्द्रिय सम्बन्धी। ३ ग. °क्स्त्रोतस्तु। ४ ख. ग. °क्तस्निर्य°। ५ तिर्यग्योनि सम्बन्धी। ६ ग. ब्रह्मणो। ७ ख. ग. °धा प्रक°। ८ ख. संमतः। ९ ख. ग. मृकण्डकः। १० ख. ग. मृकण्डाच्च। ११ क. ङ. च. कुमार्या। १२ ख. ग. सर्ववादिकः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऊर्जायां च वसिष्ठाच्च [1]राजा गात्रोर्ध्वबाहुकः। सवनश्चानघः[2] शुक्रः सुतपाः सप्त चर्षयः ।।१५।।
पावकः पवमानोऽभूच्छुचिः स्वाहाग्नितोऽभवत्[3]। अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयो ह्यजात् ।।१६।।
पितृभ्यश्च स्वधायां च मेना वैधारिणी सुते। हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथानृतम् ।।१७।।
कन्या निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च। माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः[4] ।।१८।।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्। वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।।१९।।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे। ब्रह्मणश्च रुदञ्जातो रोदनाद्रुद्रनामकः ।।२०।।
भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज। भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ।।२१।।
दक्षकोपाच्च तद्भार्या देहं तत्याज सा सती। हिमवद्दुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत् पुनः ।।२२।।
ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजाः स्नानादिपूर्विकाः।
स्वायम्भुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्णवादेर्भुक्तिमुक्तिगाः ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।।२०।।

वसिष्ठ–भार्या ऊर्जा ने राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहुक, सवन, अनघ, शुक्र और सुतपा–इन सात ऋषियों को जन्म दिया ।।१५।। अग्नि ने स्वाहा से पावक, पवमान और शुचि को उत्पन्न किया। अज से अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, अनग्नि और साग्नि उत्पन्न हुए ।।१६।। पितरों ने स्वधा से मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याओं को उत्पन्न किया। अधर्म की भार्या थी हिंसा। अधर्म और हिंसा से अनृत की उत्पत्ति हुई। उन्हीं से निकृति नाम की कन्या भी उत्पन्न हुई। भय और नरक भी इन्हीं से उत्पन्न हुए। क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं ।।१७–१८।। इन दोनों में से माया ने (भय से) जीवों का संहार करनेवाले मृत्यु को उत्पन्न किया। और वेदना ने नरक के संयोग से दुःख नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।१९।। मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध का जन्म हुआ। ब्रह्मा के रुद्र नामक पुत्र हुए। वे रोते हुए ही पैदा हुए इसलिए रोने के कारण ही उनका नाम रुद्र पड़ा ।।२०।। हे ब्राह्मण! पितामह ने महादेव को भव, शर्व, ईशान, भीम और उग्र–इन नामों से पुकारा ।।२१।। दक्ष के क्रोध से महादेव की पत्नी सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। सती ने ही हिमालय की कन्या पार्वती के रूप में जन्म लेकर पुनः शंकर जी की पत्नी हुई ।।२२।। नारद के कथनानुसार ऋषियों द्वारा स्नानादिपूर्वक पूजाविधि का वर्णन किया, जिनके करने से स्वायम्भुव आदि विष्णु आदि को प्रसन्न करके भुक्ति और मुक्ति के अधिकारी बन गये ।।२३।।

श्री अग्निमहापुराण में जगत्सर्गवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२०।।

---

१ क. ङ. रजो गात्रौर्ध्वबाहुकः। २ घ.° श्चालघुः शु°। ३ घ.° ग्निजोऽभ°। ४ क. ङ. च. चेदमतयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकविंशोऽध्यायः

विष्णवादिदेवानां सामान्यपूजाविधानम्

नारद उवाच

सामान्यपूजां विष्णवादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान्। समस्तपरिवाराय अच्युताय नमो यजेत् ।।१।।
धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै निधी तथा। द्वारश्रियं वास्तुनरं शक्तिं कूर्ममनन्तकम् ।।२।।
पृथिवीं धर्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च। अधर्मादीन् कन्दनालपद्मकेसरकर्णिकाः ।।३।।
ऋग्वेदाद्यं कृताद्यं[1] च [2]सत्त्वाद्यर्कादिमण्डलम्। विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च ता यजेत् ।।४।।
प्रह्वी सत्या तथेशा चानुग्रहामलमूर्तिका। दुर्गां गिरं गणं क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ।।५।।
हृदयं च शिरश्चूडां वर्म नेत्रमथास्त्रकम्। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ।।६।।
वनमालां श्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत्। इन्द्रमग्निं यमं रक्षो[3] जलं वायुं धनेश्वरम् ।।७।।
ईशानं तमजं चास्त्रं[4] वाहनं कुमुदादिकम्। विष्वक्सेनं मण्डलादौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ।।८।।
शिवपूजार्थं सामान्या पूर्वं नन्दिनमर्चयेत्। महाकालं यजेद् दुर्गां यमुनां च गणादिकम् ।।९।।
गिरं, श्रियं, गुरुं, वास्तुं शक्त्यादीन् धर्मकादिकम्। वामा, ज्येष्ठा तथा[5] रौद्री काली, कलविकारिणी ।।१०।।
बलविकारिणी चापि[6] बलप्रमथिनी क्रमात्। सर्वभूतदमनी च [7]मदनोन्मादिनी शिवा ।।११।।

अध्याय २१

विष्णु आदि देवों का सामान्य पूजा-विधान

नारद बोले–अब मैं विष्णु इत्यादि देवताओं की सामान्य पूजा तथा सब कुछ देनेवाले मन्त्रों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। पूरे परिवार के साथ अच्युत को नमस्कार करके यजन करना चाहिए ।।१।। धाता, विधाता, दोनों निधियाँ (शंखनिधि और पद्मनिधि), द्वारलक्ष्मी, वास्तु–पुरुष, शक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म इत्यादि, कन्द, नाल, पद्म, केसर, कर्णिका, ऋग् आदि वेद, कृत आदि युग, सत्त्व इत्यादि गुण, सूर्य आदि मण्डल तथा विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया और योगा–इनका यजन करना चाहिए ।।२–४।। प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, निर्मलमूर्ति, दुर्गा, वाणी, गण, क्षेत्र और वासुदेव आदि का यजन करना चाहिए ।।५।। हृदय, सिर, चूडा (शिखा), कवच, नेत्र, अस्त्र, शंख, चक्र, गदा, कमल, श्रीवत्स और कौस्तुभ का यजन करना चाहिए ।।६।। वनमाला, लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड़ और गुरु की अर्चना करनी चाहिए। इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, जल, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अस्त्र, वाहन, कुमुद, विष्वक्सेन की पूजा मण्डल आदि में करने से सिद्धि होती है ।।७–८।। सामान्यरूप से शिवपूजा के पहले नन्दी की पूजा करनी चाहिए। महाकाल, दुर्गा, यमुना, (शिव के) गण, सरस्वती, श्री, गुरु, वास्तु, शक्ति, धर्म आदि तथा वामा, ज्येष्ठ, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, सब भूतों का दमन करनेवाली, मदन को उन्मत्त करनेवाली शिवा की पूजा करनी चाहिए ।।९–११।।

---

१ ख. ग. हृदाद्य°। २ क. ङ. च. च मन्वाद्य°। ३ क. ङ. च. राज्यं। ४ क. ङ. च. वास्तुं। ५ क. ङ च. ततो। ६ क. ङ. च. वाऽपि। ७ क. ख. ग. च. मनोन्मानी शिवासनम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हां हूं हां शिवमूर्तये [1]साङ्गवक्त्रं शिवं यजेत् । हौं शिवाय हौमित्यादि हामीशानादिवक्त्रकम् ।।१२।।
ह्रीं गौरीं गंगणः शक्रमुखाश्चण्डो हृदादिकाः । क्रमात्सूर्यार्चने[2] मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ।।१३।।
उच्चैःश्रवाचारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् । सोमं[3] सन्ध्ये परसुखं स्कन्दाद्यं मध्यतो यजेत् ।।१४।।
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । [4]अमोघा विद्युता चैव पूज्याथो सर्वतोमुखी ।।१५।।
अर्कासनं हि हं खं खं सोल्कायेति च मूर्तिकम् । ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नम आं नमो हृदयाय च ।।१६।।
अर्काय शिरसे तद्वदग्नीशाश्रयवायुगान्[5] । भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं कवचं स्मृतम् ।।१७।।
भां नेत्रं रस्तथार्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निःस्वका[6] । सोमोऽङ्गारकोऽथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः क्रमात् ।।१८।।
राहुः केतुस्तेजश्चण्डः सङ्क्षेपादथ पूजनम् । आसनं मूर्त्तयो मूलं हृदाद्यं परिचारकः[7] ।।१९।।
विष्ण्वासनं विष्णुमूर्ते रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः । ह्रीं सर्वमूर्तिमन्त्रोऽयमिति त्रैलोक्यमोहनः[8] ।।२०।।
क्लीं हृषीकेशो हूं विष्णुः स्वरैर्दीर्घैर्हृदादिकम् । समस्तैः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादौ जयादिदा ।।२१।।

"हां हूं हां शिवमूर्तये"–इस मन्त्र से शिव के मुख तथा सभी अंगों की पूजा करनी चाहिए। "हौं शिवाय हौं" इत्यादि मन्त्र से शिव की पूजा करनी चाहिए। 'हां' इत्यादि मन्त्र से (शिव के) ईशान आदि पाँच मुखों की पूजा करनी चाहिए। (–हां ईशानाय नमः, ह्रीं वामदेवाय नमः, हूं सद्योजाताय नमः, हैं अघोराय नमः, हौं तत्पुरुषाय नमः। ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर और तत्पुरुष ये शिव के पाँच मुख हैं।) "ह्रीं गौर्यै नमः" इस मन्त्र से गौरी का, "गं गणाय नमः" इस मन्त्र से शिवगणों का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार इन्द्र आदि तथा चण्ड और हृदय आदि की भी पूजा करनी चाहिए। इसी क्रम से सूर्यार्चन के भी मन्त्र हैं। इनमें दण्डी सबसे पहले पूज्य है। इसके बाद पिंगल, उच्चैःश्रवा और अरुण की पूजा करनी चाहिए। प्रभूत, विमल, सोम, दोनों सन्ध्याकाल, परसुख स्कन्द आदि की मध्य में पूजा करनी चाहिए ।।१२–१४।। तत्पश्चात् दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी–इन नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ।।१५।। "हं खं" इस मन्त्र से सूर्य के आसन की, "खं सोल्काय" से सूर्य–मूर्ति की, तथा "ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः" इस मन्त्र से सूर्य की पूजा करनी चाहिए। "आं नमो हृदयाय च" इस मन्त्र से हृदय की पूजा करनी चाहिए ।।१६।। "अर्काय नमः" इस मन्त्र से सिर की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार अग्नि, ईशा और वायु में अधिष्ठित सूर्य की पूजा करनी चाहिए। "भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं"–इसको कवच कहा गया है ।।१७।। "भां" कहकर नेत्र की और "रः" से अर्कास्त्र की पूजा की जाती है। राज्ञी, शक्ति, निःस्वका, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तेज और चण्ड की क्रमशः पूजा करनी चाहिए। अब संक्षेप में पूजन बतलाते हैं ।।१८–१८½।। देवता के आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि और परिचारक इनकी पूजा होती है। भगवान् विष्णु के आसन की पूजा–"रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः" इस मन्त्र से करनी चाहिए। यह ह्रीं सर्वमूर्तिमन्त्र है। इसे त्रैलोक्यमोहन भी कहते हैं ।।१९–२०।। भगवान् हृषीकेश की पूजा "ॐ क्लीं हृषीकेशाय नमः" इस मन्त्र से तथा भगवान् विष्णु की पूजा "ॐ हूं विष्णवे नमः" इस मन्त्र से करनी चाहिए। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरों के द्वारा हृदय आदि की पूजा करनी चाहिए (जैसे "ॐ आं हृदयाय नमः" इससे हृदय की पूजा करनी चाहिए)। पाँचवीं अर्थात् परिचारकों की पूजा संग्राम आदि में विजय देनेवाली है ।।२१।। क्रमशः चक्र, गदा, शंख, मुसल,

---

१ ख. ग. साङ्गं वक्त्रं। २ अत्र ख. ग. पुस्तकयोः 'शिवपूजाक्रमः' इत्यधिकं वर्तते। ३ क. घ. ङ. च. साराराध्यौ परसुखं। ४ क. ङ. च. अयोध्या। ५ घ. °शासुरवा°। ६ क. च. निर्मता। घ. निष्कुम्भा। ७ क. ङ. च. परिवारिकः। ख. परिचालकः। ८ ङ. च. °हनम्। क्लीं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चक्रं गदां क्रमाच्छङ्खं[1] मुसलं [2]खड्गशार्ङ्गकम् । पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ।।२२।।
श्रीं श्रीर्महालक्ष्मीस्तार्क्ष्यो गुरुरिन्द्रादयोऽर्चनम् । सरस्वत्यासनं मूर्ति रों ह्रीं देवी सरस्वती ।।२३।।
हृदाद्या लक्ष्मीर्मेधा च कला तुष्टिश्च पुष्टिका । गौरी प्रभा मतिर्दुर्गा गणो गुरुश्च क्षेत्रपः ।।२४।।
तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्रीं श्रियै । ह्रीं त्वरितायै ऐं क्लीं सौं त्रिपुरा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तका ।।२५।।
प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं विन्दुसंयुतम् । ॐयुता वा सर्वमन्त्राः पूजनाज्जपतः स्मृताः ।।२६।।
होमस्तिलघृताद्यैश्च धर्मकामार्थमोक्षदाः । पूजामन्त्रान्पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्ण्वादिदेवतासामान्यपूजाविधानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

खड्ग, शार्ङ्ग, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ और वनमाला (की पूजा करनी चाहिए) ।।२२।। 'श्रीं' इस मन्त्र से श्री, महालक्ष्मी, गरुड़, गुरु, इन्द्र आदि और सरस्वती के आसन तथा मूर्ति की पूजा करनी चाहिए। (इनके पूजन के लिए सर्वप्रथम प्रणव तब नाम के प्रथम वर्ण में अनुस्वारयुक्त अक्षर और फिर चतुर्थी विभक्ति सहित नाम के बाद 'नमः'–यह पद जोड़ना चाहिए। जैसे–"ॐ चं चक्राय नमः", "ॐ गं गदायै नमः" इत्यादि।) सरस्वती के आसन की पूजा में, "ॐ ऐं देव्यै सरस्वत्यै नमः" इस मंत्र का और उनकी मूर्ति की पूजा में, "ॐ ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः" इस मन्त्र का उपयोग करना चाहिए। इस तरह हृदय आदि, लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु और क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए ।।२३–२४।। गणेश की पूजा "ॐ गं गणपतये नमः" इस मन्त्र से; गौरी की पूजा–"ॐ ह्रीं गौर्यै नमः"–इस मन्त्र से; श्री की पूजा "ॐ श्रीं श्रियै नमः" इस मन्त्र से; त्वरित की पूजा–"ॐ ह्रीं त्वरितायै नमः" इस मन्त्र से और त्रिपुरा की पूजा "ॐ ऐं क्लीं सौं त्रिपुरायै नमः" इस मन्त्र से करनी चाहिए। इस प्रकार "त्रिपुरा" शब्द चतुर्थ्यन्त हो और फिर "नमः" शब्द का प्रयोग हो। (देवताओं की पूजा का मन्त्र बनाने का नियम–) सभी मन्त्रों में पहले प्रणव फिर अनुस्वारयुक्त नाम का पहला अक्षर (फिर चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में 'नमः' इस पद का प्रयोग होता है।) पूजा और जप में प्रायः सभी मन्त्र ॐकार से युक्त बतलाये गये हैं। (पूजा की समाप्ति पर–) तिल और घी से होम करना चाहिए। इस प्रकार ये देवता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले होते हैं। जो मनुष्य पूजा के मन्त्रों को पढ़ता है, वह (सभी) भोगों को भोगकर स्वर्ग चला जाता है ।।२५–२७।।

श्री अग्निमहापुराण में विष्णु आदि देवताओं के सामान्य-पूजा-विधान-वर्णन नामक
इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१।।

---

१ क. ङ. च. °मात्खड्गं मु°। २ क. ङ. च. शङ्खशार्ङ्गकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पूजाधिकारार्थं सामान्यस्नानविधिः

नारद उवाच

वक्ष्ये स्नानं क्रियाद्यर्थं नृसिंहेन तु मृत्तिकाम्। ([1]गृहीत्वा तां द्विधा कृत्वा [2]मलस्नानमथैकया[3] ।।१।।
निमज्ज्याचम्य विन्यस्य सिंहेन कृतरक्षकः। विधिस्नानं ततः) कुर्यात् प्राणायामपुरः सरम् ।।२।।
हृदि ध्यायन्[4] हरिं देवं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण हि। त्रिधा पाणितले मृत्सां दिग्बन्धं सिंहजप्ततः ।।३।।
वासुदेवप्रजप्तेन तीर्थं सङ्कल्प्य चालभेत्। गात्रं वेदादिमन्त्रैश्च[5] सम्मार्ज्याराध्वमूर्तिगम् ।।४।।
स्मृत्वाघमर्षणं वस्त्रं परिधाय समाचरेत्। विन्यस्य मन्त्रैर्निर्मार्ज्य पाणिस्थं जलमेव च ।।५।।
नारायणेन संयम्य वायुमाघ्राय चोत्सृजेत्। जलं ध्यायन्हरिं पश्चाद् दत्त्वार्घ्यं द्वादशाक्षरम् ।।६।।
जप्त्वाऽ[6]न्यान्भक्तितस्तर्प्य योगपीठादितः क्रमात्। मन्त्रान् दिक्पालपर्यन्तानृषीन् पितृगणानपि ।।७।।

अध्याय २२

पूजा अधिकार के लिए सामान्य स्नानविधि

नारद बोले–किसी धार्मिक कृत्य से पूर्व स्नान करने के लिए स्नानविधि का वर्णन कर रहा हूँ। पहले नृसिंह का नाम लेकर मिट्टी ले। उसे दो भागों में बाँटकर एक भाग से (शरीर के) मल (को दूर करने) के लिए स्नान करे। फिर डुबकी लगाकर स्नान करे और आचमन करके "ॐ नृसिंहाय नमः"–इस मन्त्र से अंगन्यास और शरीर की रक्षा करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक स्नान के बाद हृदय में भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए–"ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्र से प्राणायाम करे ।।१–२$\frac{1}{2}$।। हाथ में मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे। फिर नृसिंह मंत्र के जपपूर्वक (उन तीनों भागों से तीन बार) दिग्बन्ध करे (हर दिशा में वहाँ के विघ्न करनेवाले भूतों को भगाने की दृष्टि से मिट्टी बिखेरने को दिग्बन्ध कहते हैं।) ।।३।। तत्पश्चात् "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस वासुदेव मन्त्र से जप करके फिर संकल्प करके तीर्थ–जल का स्पर्श करना चाहिए। इसके बाद वेद आदि के मन्त्रों से अपने शरीर का और आराध्य देवता की मूर्ति का सम्मार्जन करना चाहिए ।।४।। तदनन्तर अघमर्षण मन्त्र का जप करके वस्त्र पहनकर फिर आगे का कार्य करे–अंग–न्यास करके मन्त्रों से मार्जन करना चाहिए। हाथ में जल लेकर नारायण मन्त्र से प्राण–संयम करके जल को सूँघने के बाद भगवान् हरि का ध्यान करते हुए पानी गिरा दे। इसके बाद अर्घ्य देकर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए ।।५–६।। अन्य देवताओं का भक्तिपूर्वक तर्पण करना चाहिए। फिर योगपीठ आदि के क्रम से दिक्पाल तक के मन्त्रों का, ऋषियों, पितरों, मनुष्यों और स्थावर पर्यन्त सभी प्राणियों का तर्पण करके आचमन

---

१ गृहीत्वा...ततः ग. पुस्तके नास्ति। २ घ. मनःस्ना°। ३ ख. °या। विमृज्याऽऽच°। ४ क. ख. घ. ङ. च. न्हरिज्ञानं म°। ५ क. ख. ग. घ. °दिना मन्त्रैः सम्मार्ज्याऽऽरध्यमूर्तिना°। ६ घ. न्याञ्शतशस्तं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनुष्यान् सर्वभूतानि स्थावरान्तान्यथाचमेत्। न्यस्य चात्मनि संहृत्य मन्त्रान् [1]यागगृहं व्रजेत् ।।८।।
एवमन्यासु पूजासु मूलाद्यैः स्नानमाचरेत् ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

मूर्त्यादिदेवानांसामान्यपूजाविधिः

नारद उवाच

वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा[2] यं कृत्वा सर्वमाप्नुयात्। प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यतः कृतरक्षणः ।।१।।
प्राङ्मुखः स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च। यं बीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ।।२।।
[3]विश्लेषयेदशेषं तु [4]ध्यायन् कायात्तु कल्मषम्। क्षौं हृत्पङ्कजमध्यस्थं बीजं तेजोनिधिं स्मरन् ।।३।।
अधोर्ध्वतिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभिः कल्मषं दहेत्। शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदम्बरस्थं सुधाम्बुभिः ।।४।।
हृत्पद्मव्यापिभिर्देहं [5]स्वकमाप्लावयेत्सुधीः। सुषुम्नायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्पिभिः ।।५।।

करे। तत्पश्चात् न्यास करके हृदय में मन्त्रों का उपसंहार करके यज्ञ-गृह में प्रवेश करे। इसी प्रकार अन्य पूजाओं में भी मूल आदि मन्त्रों से स्नान करना चाहिए ।।७-९।।

श्री अग्निमहापुराण में सामान्यपूजाविधिवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२।।

अध्याय २३

मूर्त्यादिदेवताओं की सामान्य पूजाविधि

नारद ने कहा-हे ब्रह्मर्षियो! अब मैं उस पूजाविधि का वर्णन करूँगा जिसको करके सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। पहले पादप्रक्षालन करके आचमन करे, फिर मौन होकर शरीर की रक्षा करे ।।१।। पूर्वाभिमुख होकर स्वस्तिकासन या पद्मासन या अन्य आसन लगाकर बैठे। फिर नाभि के मध्य भाग में स्थित धुएँ की तरह वर्णवाले प्रचण्ड वायुरूप 'यं' बीज का ध्यान करते हुए अपने शरीर से सभी पापों को दूर कर दे। हृदय-कमल में स्थित तेज के आधारभूत 'क्षौं' बीज का स्मरण करते हुए नीचे, ऊपर और इधर-उधर फैलनेवाली ज्वालाओं से अपने पापों को जला डालना चाहिए ।।२-३$\frac{1}{2}$।। (इस प्रकार पापों को जला डालने के पश्चात्) बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि आकाश में स्थित चन्द्रमा के समान अमृत बरसानेवाली पिण्डाकृति का ध्यान करके हृदय-कमल को व्याप्त करने-वाली और सुषुम्ना नाड़ी से होकर सब नाड़ियों में फैलनेवाली अमृत की धाराओं से अपने शरीर को आप्लावित करे ।।४-५।। (इस प्रकार तत्त्वों को) शुद्ध करके उनका न्यास करे (शरीर के विभिन्न अंगों को विभिन्न देवताओं

---

१ च °न्त्रान्योग°। २ ख. ग. घ. ङ. च. °प्रा यत्कृत्वा। ३ घ. विशेष°। ४ ख. ग. च. ध्यायेत्कायात्°। ५ क. ङ. च. °महाह्लादये°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शोधयित्वा न्यसेत्तत्वं [1]करशुद्धिरथास्त्रकम् । व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽङ्गकम् ।।६।।
मूलं देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रैर्द्विषट्ककैः[2] । हृदयं च शिरश्चैव शिखावर्मास्त्रलोचने ।।७।।
उदरं च तथा पृष्ठं बाहूरू जानुपादकम्[3] । मुद्रां दत्त्वा स्मरेद् विष्णुं जप्त्वाष्टशतमर्चयेत् ।।८।।
वामे तु वर्द्धनीं[4] न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे । प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्येऽथ गन्धपुष्पान्विते न्यसेत् ।।९।।
चैतन्यं सर्वगं ज्योतिरस्त्रजप्तेन[5] वारिणा । फडन्तेन तु संसिच्य हस्ते ध्यात्वा हरिं परम्[6] ।।१०।।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं वह्निदिङ्मुखान्[7] । अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादौ[8] योगपीठके ।।११।।
कूर्मं पीठे ह्यनन्तं च पद्मं[9] सूर्यादिमण्डलम् । विमलात्ताः केसरस्था[10] ग्रहाः कर्णिकसंस्थिताः ।।१२।।
पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्यार्चेच्च मण्डले । अर्घ्यं पाद्यं तथाचामं मधुपर्कं पुनश्च तत् ।।१३।।
स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं गन्धपुष्पकम् । धूपदीपनैवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्यया ।।१४।।
यजेदङ्गानि पूर्वादौ द्वारि पूर्वे परेऽण्डजम् । दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोणे शङ्खं धनुर्न्यसेत् ।।१५।।

को समर्पित करने को न्यास कहते हैं।) फिर हाथों को शुद्ध करे। इसके बाद अस्त्रों का न्यास करे। फिर व्यापक करे। दाहिने अँगूठे से प्रारम्भ करके (अन्य) अंगों में व्यापक करना चाहिए। (अब व्यापक के बारे में विस्तृत विवरण दिया जाता है।)–अपने शरीर में द्वादशाक्षर मूल मन्त्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का बारह मन्त्रवाक्यों से न्यास करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, घुटना, पैर–ये शरीर के बारह स्थान हैं। इन बारह अंगों में द्वादश मन्त्र के एक-एक वर्ण का न्यास करना चाहिए। (जैसे–ॐ नमो हृदये", "ॐ नं नमः शिरसि", "ॐ मों नमः शिखायाम्" इत्यादि।) फिर मुद्रा का समर्पण करके भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए। फिर अष्टोत्तरशत (१०८) मन्त्र का जप करके पूजा करनी चाहिए ।।६–८।। बायीं तरफ जलपात्र और दाहिनी ओर पूजन-सामग्री रखकर (उनका) मन्त्र से प्रक्षालन करके सुगन्धित पदार्थ और पुष्पों को दो पूजा-पात्रों में रखे ।।९।। 'फट्' में अन्त होनेवाले अस्त्र मन्त्र–"अस्त्राय फट्" से अभिमन्त्रित जल से सर्वव्यापक चैतन्यस्वरूप ज्योतिर्मय परमेश्वर को हाथ में जल लेकर नहलाये। फिर परमेश्वर श्रीहरि का ध्यान करके योगपीठ पर धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि, दिक्पाल, अधर्म आदि के विग्रह की स्थापना पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से करना चाहिए। उस पीठ पर कच्छप, अनन्त, पद्म, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियों की कमल के केसरस्थ ग्रहों की कर्णिका में स्थापना करनी चाहिए ।।१०–१२।। पहले देवता का हृदय में ध्यान करे, फिर मण्डल में आवाहन करके उसकी पूजा करे। तदनन्तर (क्रम से) अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि को पुण्डरीकाक्षविद्या ("ॐ नमो भगवते वासुदेवाय") इस मन्त्र से अर्पित करे। इसके अनन्तर मण्डल के पूर्व आदि दिशाओं में भगवान् के पार्षदों की पूजा करे। श्रेष्ठ पूर्व दरवाजे पर गरुड़ की, दक्षिण द्वार पर चक्र की, उत्तर द्वार पर गदा, ईशान तथा अग्निकोण में शंख एवं धनुष की स्थापना करनी चाहिए। भगवान् के बायें और दाहिने

---

१ ख. ग. घ. °द्धिरथा°। २ ख. ग. °न्त्रैर्विसर्गकैः°। ३ क. ङ. च. पादजानुकम्। ४ वर्द्धनीजलपात्रम्। ५ घ.° रष्टज°। ६ क. घ. ङ. च. परे। ख. पढ़े। ७ क. ख. ग. घ. च. °मुखाः। अ°। ८ ङ. सप्ताऽऽदौ। ९ घ. यमं। १० क. घ. ङ. च.° स्थानुग्रहा कर्णिकास्थिता। पू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवस्य वामतो दक्षे चेषुधि खड्गमेव च। वामे चर्म श्रियं दक्षे पुष्टिं वामेऽग्रतो न्यसेत् ।।१६।।
वनमालां च श्रीवत्सकौस्तुभो दिक्पतीन् बहिः। स्वमन्त्रैः पूजयेत्सर्वान्[1] विष्णोरर्चावसानतः ।।१७।।
व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्बीजेन वै यजेत्। जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य जप्त्वार्घ्यं च समर्प्य च ।।१८।।
हृदये विन्यसेद्ध्यात्वा अहं ब्रह्म हरिस्त्विति। आगच्छावाहने योज्यं क्षमस्वेति विसर्जने ।।१९।।
एवमष्टाक्षराद्यैश्च[2] पूजाः[3] कृत्वा विमुक्तिभाक्। एकमूर्त्यर्चनं प्रोक्तं नवव्यूहार्चनं शृणु ।।२०।।
अङ्गुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेवं बलादिकान्। तर्जन्यादौ शरीरेऽथ शिरोललाटवक्त्रके ।।२१।।
हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये[4] पूर्वादिकं यजेत्। एकपीठं नवव्यूहं नवपीठं च पूर्ववत् ।।२२।।
नवाब्जे नवमूर्त्या च नवव्यूहं च पूर्ववत्[5]। पद्ममध्ये[6] च तत्स्थानि वासुदेवं[7] च पूजयेत् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आदिमूर्त्यादिपूजाविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाग की दो तूणीर, बायें भाग में तलवार और चर्म (ढाल), दाहिने भाग में लक्ष्मी और बायें भाग में पुष्टि देवी की स्थापना करनी चाहिए ।।१३-१६।। भगवान् के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ की स्थापना करनी चाहिए। दिक्पालों को मण्डल के बाहर स्थापित करना चाहिए। सभी (पार्षदों और देवताओं की) पूजा उनके मन्त्रों से होनी चाहिए। सबके अन्त में भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।।१७।। अङ्गों के साथ अलग-अलग (व्यस्त) और एक साथ (समस्त रूप से) मन्त्रों को पढ़कर भगवान् की पूजा करनी चाहिए। क्रम से जाप, प्रदक्षिणा और स्तुति करके अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। फिर "मैं ब्रह्म-स्वरूप विष्णु हूँ", ऐसा ध्यान करके हृदय में भगवान् हरि की स्थापना करनी चाहिए ।।१८-१८ $\frac{१}{२}$।। आवाहन-मन्त्र में "आगच्छ"! (भगवान्! "आइये") इस शब्द को जोड़ना चाहिए और विसर्जन-मन्त्र में "क्षमस्व" (त्रुटियों को क्षमा कीजिये)-यह शब्द जोड़ देना चाहिए ।।१९।। इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रों से पूजा करके मनुष्य मोक्ष का भागी होता है। यह भगवान् के एक विग्रह का पूजन कहा गया। अब नौ व्यूहों के पूजन की विधि सुनो ।।२०।। दोनों अँगूठों में और तर्जनी आदि में वासुदेव और बलभद्र आदि का न्यास करना चाहिए। फिर शरीर में अर्थात् सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य अंग, जानु और चरण आदि अंगों में (पूर्ववत्) अन्य देवताओं की स्थापना करके उनका पूजन करे। फिर मध्य में और पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे। इस प्रकार एक पीठ पर एक व्यूह के क्रम से नौ व्यूहों के लिए नौ पीठों की स्थापना करनी चाहिए। नौ कमलों में नौ मूर्तियों के द्वारा पहले की तरह नौ व्यूहों की पूजा करनी चाहिए। कमल के मध्यभाग में जो भगवान् का स्थान है, उसमें वासुदेव की पूजा करनी चाहिए ।।२१-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में आदिमूर्त्यादिपूजाविधि नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३।।

---

१ क. ङ. च. °न्विष्णवोर्घावसानतः घ. °न्विष्णुरर्घोव°। २ क. ङ. च. °राद्याश्च। ३ ग. घ. पूजां। ४ क. ङ. च. मध्यपू°। ५ ख. ग. घ. °त्। इष्टं म°। ६ ख. ग. घ. °ध्ये ततः स्था°। ७ ख. ग. घ. °वं च पूज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ कुण्डनिर्माणाग्निकार्यादिविधिः

नारद उवाच

अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक् । चतुरभ्यधिकं विंशमङ्गुलं[1] चतुरस्त्रकम् ।।१।।
सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत् खनेत्समम् । खातस्य मेखलाः कार्यास्त्यक्त्वा चैवाङ्गुलद्वयम् ।।२।।
सत्त्वादिसञ्ज्ञाः पूर्वास्या[2] द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रिताः । अष्टाङ्गुलाद्द्वयङ्गुलाथ चतुरङ्गुलविस्तृता ।।३।।
योनिर्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुर्द्वयङ्गुलोच्छ्रिताः[3] । क्रमान्निम्ना तु कर्तव्या पश्चिमाशाव्यवस्थिता ।।४।।
अश्वत्थपत्रसदृशी किञ्चित्कुण्डे निवेशिता । तुर्याङ्गुलायतं[4] नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम् ।।५।।
मूलन्तु त्र्यङ्गुलं योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम् । लक्षणं चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ।।६।।
एकत्रिमेखलं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम् । कुण्डार्द्धे तु स्थितं सूत्रं कोणे यदतिरिच्यते ।।७।।
तदर्द्धदिशि संस्थाप्य भ्रामितं वर्तुलं भवेत् । कुण्डार्द्धं कोणभागार्द्धं दिशि[5] चोत्तरतो बहिः ।।८।।

अध्याय २४

कुण्डनिर्माण एवं अग्नि की कार्यविधि

नारद बोले–महर्षियो! अब मैं उस अग्निकार्य का वर्णन करूँगा जिससे मनुष्य को सभी मनोवाञ्छित वस्तुओं की प्रप्ति हो जाती है। चौबीस अङ्गुल की चौकोर (२४ × ४) भूमि को सूत से नापकर उस क्षेत्र को (सभी ओर से) बराबर खोदना चाहिए। उस खोदे हुए कुण्ड के चारों ओर दो अंगुल भूमि छोड़कर एक मेखला (सी) बना लेनी चाहिए ।।१–२।। ये मेखलाएँ–सत्त्व, रजस्, तमस् नाम (संख्या में तीन होती हैं।) मेखलाओं की ऊँचाई बारह अंगुल होती है। इन मेखलाओं की चौड़ाई क्रम से आठ, दो और चार अंगुल की होती है ।।३।। (कुण्ड से) पश्चिम दिशा की ओर दस अंगुल लम्बी सुन्दर योनि बनायी जाय। उस योनि को इस क्रम से आगे की ओर नीचा बनाना चाहिए अर्थात् सबसे पिछला भाग छह अंगुल, फिर उसके आगे का भाग चार अंगुल, फिर उसके भी आगे का भाग दो अंगुल ऊँचा होना चाहिए ।।४।। योनि की आकृति पीपल के पत्ते की–सी होनी चाहिए। उसका कुछ भाग कुण्ड के अन्दर प्रविष्ट होना चाहिए। योनि का आयाम चार अंगुल का हो तथा नाल फैलाव पन्द्रह अंगुल होना चाहिए। योनि का मूल भाग तीन अंगुल एवं उसका अग्रभाग छह अंगुल विस्तृत होना चाहिए। यह एक हाथ लम्बे–चौड़े कुण्ड का लक्षण कहा गया। दो हाथ या तीन हाथ लम्बे–चौड़े कुण्ड में सभी नाप दुगुने या तिगुने हो जायँगे ।।५–६।। अब मैं एक या तीन मेखलावाले वर्तुल आदि आकारवाले कुण्डों का वर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्ड के आधे भाग अर्थात् ठीक बीच में सूत रखकर उसे किसी एक कोण की सीमा तक ले जाना चाहिए। मध्य विन्दु से कोण विन्दु तक सूत को ले जाने में सामान्य दिशाओं की अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय उसके आधे भाग

---

१ च. विंशं मण्डलं। २ ख. ग. घ. पूर्वाशा। च. पूर्वासा। ३ क. घ. ङ्गुलग्रगा। क्र°। ङ. °ङ्गुला यथा। क्र°। ४ घ. तुर्याङ्गुलायता। ५ घ. दिशाश्चोत्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वपश्चिमतो यत्नाल्लाञ्छयित्वा तु मध्यतः । संस्थाप्य भ्रमितं कुण्डमर्द्धचन्द्रं भवेच्छुभम् ।।९।।
पद्माकारे दलानि स्युर्मेखलायां[1] तु वर्तुले । बाहुदण्डप्रमाणन्तु होमार्थं कारयेच्छुभम्[2] ।।१०।।
सप्तपञ्चाङ्गुलं वापि चतुरस्त्रं तु कारयेत् । त्रिभागेन भवेद्गर्तं[3] मध्ये वृत्तं सुशोभनम् ।।११।।
तिर्यगूर्ध्वं समं खात्वा[4] बहिरर्द्धं तु शोधयेत् । अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्द्धार्द्धं तथान्ततः ।।१२।।
खातस्य मेखलां[5] रम्यां शेषार्द्धेन तु कारयेत् । कण्ठं त्रिभागविस्तारमङ्गुष्ठकसमायतम् ।।१३।।
सार्द्धमङ्गुष्ठकं वा स्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत् । चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ।।१४।।
त्रिकं द्व्यङ्गुलकं तत्स्यान्मध्यं[6] तस्य सुशोभनम् । आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभनः ।।१५।।
सुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद्यावत्कनीयसी । शेषं कुण्डं तु कर्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ।।१६।।
([7]स्रुवं तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम्) । [8]बटुकं (?) द्व्यङ्गुलं वृत्तं कर्तव्यं तु सुशोभनम् ।।१७।।
गोपदं तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत् । उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनामिकाम्[9] ।।१८।।

को प्रत्येक दिशा में बढ़ाकर स्थापित करना चाहिए। मध्य स्थान से उन्हीं विन्दुओं में सब ओर सूत को घुमाने से गोल आकार का कुण्ड बन जाता है। कुण्डार्द्ध से बढ़ा हुआ जो कोणभागार्द्ध है उसे उत्तर दिशा में बढ़ाना चाहिए। फिर यत्नपूर्वक सूत को पूरब से पश्चिम की ओर घुमाकर चिह्न लगा देना चाहिए। इस प्रकार मध्य विन्दु से स्थापित करके अर्द्धचन्द्राकार घुमाने से अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड बन जाता है ।।७–९।। पद्म के आकारवाले गोलकुण्ड की मेखला पर दलाकार चिह्न बनाये जाने चाहिए। हवन के लिए अपने बाहुदण्ड के बराबर स्रुक् बनाना चाहिए। यह स्रुक् चौकोर हो. स्रुक् (बाहुदण्ड के बराबर हो अथवा) सात या पाँच अंगुल का भी हो सकता है ।।१०–१०$\frac{1}{2}$।। तीन चौथाई भाग में गड्ढा (खोदकर) बीच में एक अत्यन्त सुन्दर मण्डल बना देना चाहिए ।।११।। उस गड्ढे को नीचे और ऊपर बराबर खुदवाकर बाहर के आधे भाग को छीलकर साफ करा देना चाहिए। चारों ओर चौथाई अंगुल–जो शेष के आधे भाग का आधा है, भीतर से भी छीलकर साफ करा देना चाहिए ।।१२।। बाकी बचे आधे भाग से उक्त खात की सुन्दर मेखला बनवानी चाहिए। खात का कण्ठ मेखला के तीन चौथाई के बराबर होना चाहिए। कण्ठ की चौड़ाई एक अंगुल होनी चाहिए ।।१३।। (अथवा कण्ठ की चौड़ाई) डेढ़ अंगुल भी हो सकती है। स्रुक् के अग्रभाग में उसका मुख होना चाहिए जो चार या पाँच अंगुल का हो ।।१४।। उसके मुख का मध्य भाग दो या तीन अंगुल का और खूब सुन्दर होना चाहिए। उसकी लम्बाई चौड़ाई के बराबर होनी चाहिए। मुख का मध्यभाग नीचा और अत्यन्त सुन्दर होना चाहिए ।।१५।। स्रुक् कण्ठ–प्रदेश में एक ऐसा सुन्दर छिद्र होना चाहिए जिसमें कनिष्ठिका अँगुली प्रविष्ट हो जाय। कुण्ड (अर्थात् स्रुक् के मुख) का शेष भाग अपनी इच्छानुसार विचित्र शोभा से सम्पन्न बनाना चाहिए ।।१६।। (स्रुक् के अलावा) एक स्रुवा भी होना चाहिए जो दण्ड भाग को मिलाकर एक हाथ लम्बा हो। गोल डंडे की मोटाई दो अंगुल हो तथा उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिए ।।१७।। थोड़े–से कीचड़ में गाय का पैर पड़ने पर जैसा पदचिह्न उभर आता है वैसा ही उस स्रुवा का मुख होना चाहिए। अग्निकुण्ड को लीपकर उसके भीतर की भूमि पर बीच में एक अंगुल मोटी एक रेखा खींचनी चाहिए जो दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हो। इस रेखा का नाम वज्र है ।।१८।। उस उत्तराग्र प्रथम रेखा

---

१ क. ङ. च. °लानां तु। २ ख. ग. घ. ङ. °येत्स्रुचम्। ३ ख. ग. ङ. °द्गर्भ। ४ क. घ. खाताद्बहि°। ५ क. ख. ङ. च. मेखलार्द्धेन। ६ ख. ङ. च. न्मध्यान्तं तु सु°। ७ अस्यश्लोकस्यार्धभागं ङ पुस्तके नास्ति। ८ क. चटुकं। ङ. चतुष्कं। ९ घ. वज्रनासिकाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौम्याग्रां प्रथमां तस्यां रेखे पूर्वमुखे तयोः। मध्ये तिस्रस्तथा कुर्याद् दक्षिणादिक्रमेण तु ।।१९।।
एवमुल्लिख्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित्। विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिञ्शक्तिं तु वैष्णवीम् ।।२०।।
[1]अलङ्कृतामृतुमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन्। प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य तम् ।।२१।।
दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ तत्र पात्रकम्। आसादयेदिध्मबर्हिर्द्वयं[2] स्रुक्स्रुवकद्वयम् ।।२२।।
आज्यस्थालीं चरुस्थालीं कुशाज्यं च प्रणीतया। प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीं च गृहीत्वापूर्य वारिणा ।।२३।।
पवित्रान्तर्हिते हस्ते [3]परिस्राव्य च तज्जलम्[4]। अग्निं ध्यात्वाथ प्रोक्षण्यां योन्या अग्रे निधाय च ।।२४।।
तदद्भिस्त्रिश्च सम्प्रोक्ष्य इध्मं विन्यस्य चाग्रतः। प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ।।२५।।
आज्यस्थालीनथाज्येन सम्पूर्याग्रे निधाय च। सम्प्लवोत्प्लवनाभ्यां तु कुर्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ।।२६।।
अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ। ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामङ्गुष्ठानामिकेन तु ।।२७।।
आज्यं ताभ्यां[5] तु सङ्गृह्य[6] त्रिवारं चोर्ध्वमुत्क्षिपेत्। स्रुक्स्रुवौ चापि सङ्गृह्य ताभ्यां प्रक्षाल्य[7] वारिणा ।।२८।।
प्रताप्य[8] दर्भैः सम्मृज्य पुनः प्रक्षाल्य चैव हि। निष्टप्य स्थापयित्वा तु प्रणवेनैव साधकः ।।२९।।

पर पूर्वाभिमुख दो रेखाएँ खींचनी चाहिए। फिर उन दोनों रेखाओं के बीच में तीन रेखाएँ दक्षिणादि–क्रम से खींचनी चाहिए अर्थात् पहली रेखा दक्षिण भाग में फिर दूसरी रेखा पहली रेखा से उत्तर की ओर और तीसरी रेखा दूसरी रेखा के भी उत्तर की ओर खींचनी चाहिए ।।१९।। इस प्रकार मन्त्रज्ञ पुरुष रेखाएँ खींचकर, उन पर जल छिड़ककर फिर उस (परमात्मरूप) प्रणव का उच्चारण करके एक आसन की कल्पना करे, जिस पर वैष्णवी शक्ति अधिष्ठित हो ।।२०।। वैष्णवी देवी का इस प्रकार ध्यान करे–वे (दिव्य) आभूषणों से विभूषित हैं तथा दिव्य विग्रह से युक्त हैं। तदनन्तर हरि का स्मरण करते हुए अग्नि को (कुण्ड में) स्थापित करना चाहिए। फिर प्रादेश–मात्र (अँगूठे से लेकर तर्जनी के अग्रभाग के बराबर) समिधाएँ (यज्ञ की लकड़ियाँ) देकर उस (अग्नि) का परिसमूहन (अग्नि के चारों ओर कुश बिखेरने का कार्य) करना चाहिए ।।२१।। (पूर्वोक्त परिसमूहन) कुश से तीन बार करना चाहिए। फिर पूर्व आदि सभी दिशाओं में (चारों ओर) कुश फैलाकर पात्र को तथा समिधा, कुशा दोनों को व स्रुक् और स्रुवा (इन) दोनों को (यथास्थान) रखना चाहिए ।।२२।। आज्य–स्थाली, चरुस्थाली, कुशाच्छादित घी (और प्रणीता–पात्र) को (यथास्थान रखे।) प्रणीता–पात्र से जल छिड़ककर प्रोक्षणी–पात्र को लेकर जल से पूर्ण कर लेना चाहिए ।।२३।। और उस जल को पवित्री से युक्त हाथ के ऊपर डालकर फिर प्रोक्षणी–पात्र में अग्नि का ध्यान करके उसे योनि के सामने रख देना चाहिए ।।२४।। उस जल से तीन बार छिड़काव करके, आगे की ओर समिधा को रखकर, उत्तर की ओर पुष्प–युक्त प्रणीतापात्र में विष्णु का ध्यान करना चाहिए ।।२५।। इसके बाद आज्य–स्थाली को आज्य से भरकर आगे की ओर रख लेना चाहिए; तदनन्तर सम्प्लवन और उत्प्लवन के द्वारा आज्य को शुद्ध कर लेना चाहिए ।।२६।। (अब सम्प्लवन और उत्प्लवन की विधि बताते हैं–) दो ऐसे कुशों को लेकर जिनका ऊपर का भाग टूटा न हो और जिनकी लम्बाई अँगूठे से लेकर तर्जनी के बराबर हो, अँगूठे और अनामिका से पकड़ लेना चाहिए। उन दोनों कुशों से जल ग्रहण करके तीन बार ऊपर की ओर छिड़कना चाहिए। इसके बाद स्रुक् और स्रुवा को लेकर उनसे जल छिड़कना चाहिए ।।२७–२८।। (उन स्रुक् और स्रुवा को आग से) तपाकर, कुशों से पोंछकर और (जल से) धोकर पुनः आग से तपाकर और प्रणव का उच्चारण करके, साधक उन्हें रख दे ।।२९।। (चतुर्थ्यन्त

---

१ ख. ग. घ. °कृत्वा मूर्तिमतीं। २ घ. °ध्कवह्नी भूसौ च स्रुक्स्रुवद्वयम्। ३ क. ङ. च. अविस्राव्य। ४ घ °म्। प्राङ्नीत्वा प्रोक्षणी-पात्र ज्योतिरग्रे। ५ घ. तयोस्तु। ६ ख. °ह्य त्रीन्वारानूर्ध्व°। घ. °ह्य द्विर्नीत्वा त्रिखाङ् क्षिपेत्। ७ घ. प्रक्षिप्य। ८ क. ङ. च. आतप्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रणवादिनमोऽन्तेन पश्चाद्धोमं समाचरेत् । गर्भाधानादिकर्माणि यादवङ्गव्यवस्थया[1] ।।३०।।
नामान्तं व्रतबन्धान्तं समावर्तावसानकम् । अधिकारावसानं वा कुर्यादङ्गानुसारतः ।।३१।।
प्रणवेनोपचारं तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः । अङ्गैर्होमस्तु कर्तव्यो यथावित्तानुसारतः ।।३२।।
गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवनं स्मृतम् । सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामानुशासनम्[2] ।।३३।।
चूडाकृतिं[3] व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः । समावर्तनं पत्न्या च योगो[4] यागाधिकारकः ।।३४।।
हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म पूज्य च । अष्टावष्टौ तु जुहुयात् प्रतिकर्माहुताः पुनः ।।३५।।
पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्स्रुचा मूलेन साधकः । वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ।।३६।।
विष्णोर्वह्निं तु संस्कृत्य श्रपयद् वैष्णवं चरुम् । आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान् संस्मृत्य पूजयेत्[5] ।।३७।।
आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् । गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ।।३८।।
आधायेध्ममथाधारावाज्यावग्नीशसन्निधौ । वायव्यनैर्ऋताशादि प्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ।।३९।।
आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे । मध्ये तु जुहुयात् [6]सर्वमन्त्रैरर्चाक्रमेण तु ।।४०।।

देवता के नाम के) पहले प्रणव तथा बाद में "नमः" पद लगाकर फिर होम करना चाहिए। गर्भाधान से लेकर सारे संस्कार अंग-व्यवस्था के अनुसार करने चाहिए ।।३०।। अथवा (दूसरे मतानुसार) नामकरण, यज्ञोपवीत, समावर्तन व यज्ञाधिकार में समाप्त होनेवाला यज्ञ अंगानुसार करना चाहिए ।।३१।। साधक सर्वत्र प्रणव के द्वारा पूजोपचार करे तथा अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अङ्गमन्त्रों के द्वारा होम करे ।।३२।। पहला संस्कार है गर्भाधान, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोन्नयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूड़ाकर्म, सातवाँ व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पत्नीसंयोग (विवाह-) संस्कार है जो यज्ञ के लिए अधिकार प्रदान करनेवाला है ।।३३-३४।। इसके बाद प्रत्येक देवता का क्रम से ध्यान करके तथा प्रत्येक पूजन-कर्म द्वारा पूजा करके हृदय आदि अंग-मन्त्रों द्वारा प्रति कर्म के लिए आठ-आठ आहुतियाँ समर्पित करनी चाहिए ।।३५।। इसके बाद साधक को मूलमन्त्र के द्वारा पूर्णाहुति देनी चाहिए। उस समय मन्त्र के अन्त में 'वौषट्' पद जोड़कर प्लुत स्वर से सुस्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना चाहिए ।।३६।। इस प्रकार वैष्णव अग्नि का संस्कार करके उस पर विष्णु भगवान् के निमित्त चरु पकाना चाहिए। वेदी पर भगवान् विष्णु की स्थापना एवं आराधना करके, मन्त्रों को स्मरण करके भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।।३७।। तदनन्तर अङ्ग और आवरण-देवताओं सहित सर्वोत्तम देवता भगवान् विष्णु को आसन, गन्ध, पुष्प आदि उपचार अर्पित करते हुए सम्यक् प्रकार से उनकी पूजा करनी चाहिए ।।३८।। इसके बाद अग्नि में समिधा का आधान करके अग्नीश्वर भगवान् विष्णु के समीप 'आधार' नामक घृत की दो आहुतियाँ देनी चाहिए। इनमें से एक को वायव्यकोण में और दूसरे को नैर्ऋत्यकोण में देना चाहिए। यही इनका क्रम है ।।३९।। इसके पश्चात् 'आज्यभाग' नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा में देनी चाहिए और उनमें अग्निदेव के दायें-बायें नेत्रों की भावना करनी चाहिए। शेष आहुतियों को इन्हीं के बीच में पूजा-क्रम से मन्त्रोच्चारणपूर्वक देना चाहिए ।।४०।।

---

१ घ. °वदंशव्य°। २ ख. निष्क्रमणं ततः। घ. ङ. नामा न्नप्राशनम्। ३ अत्र किञ्चित् त्रुटितमिति भाति। ४ घ. योगश्चाथाधिकारकः। ५ घ. संश्रपेत्। ६ क. ख. घ. च. °मन्त्रानर्चा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आज्येन, तर्पयेन्मूर्तिं[1] दशांशेनाङ्गहोमकम् । शतं सहस्रं वाज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सदा[2] ।।४१।।
समाप्याचां तु होमान्तां शुचीञ्शिष्यानुपोषितान् । आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्पशून् ।।४२।।
शिष्यानात्मनि संयोज्याविद्याकर्मनिबन्धनैः । लिङ्गानुवृत्तं चैतन्यं सह लिङ्गेन पालितम्[3] ।।४३।।
ध्यानमार्गेण सम्प्रोक्ष्य[4] वायुबीजेन शोषयेत्[5] । ततो दहनबीजेन सृष्टिं[6] ब्रह्माण्डसञ्ज्ञिकाम् ।।४४।।
([6]निर्दग्धां सकलां ध्यायेत् भस्मकूटनिभस्थिताम् । प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाङ्मयं[7] स्मरेत्) ।।४५।।
तत्र शक्तिं न्यसेत्पश्चात् पार्थिवीं बीजसञ्ज्ञिकाम् । तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृत्तं पार्थिवं शुभम् ।।४६।।
अण्डं तद्भवं ध्यायेत्तदाधारं तदात्मकम् । तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ।।४७।।
लिङ्गं सङ्क्रामयेत्पश्चात्पार्श्वस्थं[8] पूर्वसंस्कृतम् । विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमाद् वृद्धं विचिन्तयेत् ।।४८।।
ततोऽण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम् । द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्मध्ये प्रजापतिम् ।।४९।।
जातं ध्यात्वा पुनः प्रोक्ष्य प्रणवेन तु तं शिशुम् । मन्त्रात्मकतनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम् ।।५०।।

घी से भगवान् की मूर्ति को तृप्त करना चाहिए। अंग-देवताओं के लिए (अङ्गी भगवान् की अपेक्षा) दशांश में हवन करना चाहिए। घी आदि से अथवा समिधाओं से अथवा तिलों से, हमेशा एक सौ या एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए ।।४१।। होम में अन्त होनेवाली पूजा को समाप्त करके (स्नानादि से) शुद्ध हुए तथा उपवास किये हुए शिष्यों को बुलाकर तथा उन्हें सामने बैठाकर उनमें पाशबद्ध पशु की भावना करके उनका प्रोक्षण (जल से सिंचन) करना चाहिए ।।४२।। इसके बाद शिष्यों को भावना द्वारा अपने आत्मा से संयुक्त करना चाहिए। फिर अविद्या और कर्म के बन्धनों से बँधे हुए लिङ्ग के साथ पालित तथा लिङ्ग शरीर का अनुवर्तन करनेवाले चैतन्य को ध्यान-मार्ग से प्रोक्षित करके वायु-बीज ('यं') के द्वारा (उसका) शोषण करना चाहिए। फिर अग्नि-बीज ('रं') के द्वारा ब्रह्माण्ड नामक सृष्टि को पूरी तरह से जली हुई तथा भस्मराशि के समान स्थित है, ऐसा ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर जलबीज ('बं') के द्वारा उस भस्म-राशि को बहा देना चाहिए और अब संसार वाणीमात्र रह गया है, ऐसा स्मरण करना चाहिए ।।४३-४५।। फिर वहाँ बीजसञ्ज्ञक पार्थिव शक्ति का न्यास करना चाहिए। सभी तन्मात्राओं से संवृत पार्थिव बीज शुभ होता है। फिर, उस पार्थिव बीज से उत्पन्न, उसी पर आधृत तथा तदात्मक अण्ड का ध्यान करना चाहिए। उस अण्ड के भीतर प्रणवस्वरूप पुरुष की मूर्ति का चिन्तन करना चाहिए ।।४६-४७।।

तत्पश्चात् पहले से शुद्ध किये हुए एवं अपने आत्मा में स्थित लिङ्गशरीर का उस पुरुष में संक्रमण कराना चाहिए। उस शरीर में सभी इन्द्रियों का आकार अलग-अलग अभिव्यक्त हो गया है तथा वह पुरुष क्रम से बढ़ गया है-ऐसा चिन्तन करना चाहिए ।।४८।। इसके बाद (यह चिन्तन करना चाहिए कि) एक वर्ष तक स्थित रहकर वह अण्ड दो टुकड़ा कर दिया गया है। वे दोनों टुकड़े हैं-(ऊपर) द्युलोक और (नीचे) पृथिवीलोक। उन दोनों लोकों के बीच में प्रजापति पुरुष आविर्भूत हुआ है, ऐसा ध्यान करके फिर उस शिशुरूप प्रजापति का प्रणव से प्रोक्षण करना

---

१ क. ङ. च. °न्मूर्तेर्दशाङ्गेना° घ. °न्मूतो द°। २ घ. सह। ३ घ. पाशितम्। टिप्पण्यां दर्शितम्। ४ क. ङ. च. सम्प्रेक्ष्य। ५ घ. शोधयेत्। ६ निर्दग्धां...स्मरेत् ख. पुस्तके नास्ति। ७ घ. पुस्तकटिप्पण्यां चाक्षतं। ८ क. ङ. °श्चात्स्थण्डिले पू°। घ. °श्चादात्मस्थं पू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णुहस्तं ततो मूर्ध्नि दत्त्वा ध्यात्वा तु वैष्णवम् । एवमेकं बहून्वापि जपित्वा[1] ध्यानयोगतः ।।५१।।
करो[2] सङ्गृह्य[3] मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा । नेत्रमन्त्रेण मन्त्री [4]तानशेषानाहतेन तु ।।५२।।
कृतपूजो गुरुः सम्यग्देवदेवस्य तत्त्ववान् । शिष्यान् पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ।।५३।।
अर्चयेयुश्च तेऽप्येवं प्रसूता गुरुणा हरिम् । क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम्[5] ।।५४।।
वासुदेवार्चनं कृत्वा गुरोः पादार्चनं ततः । विधाय दक्षिणां दद्यात् सर्वस्वं चार्धमेव वा ।।५५।।
गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यांस्तैः पूज्यो नामभिर्हरिः । विष्वक्सेनं यजेदीशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।५६।।
तर्जयन्तं[6] च तर्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत् । विष्णुनिर्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत् ।।५७।।
प्रणीताभिस्तथात्मानमभिषिच्य च कुण्डकम् । वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत् ।।५८।।
बुभुक्षुः सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ ।।५९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुण्डनिर्माणाद्यग्निकार्यादिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

चाहिए। फिर यथोचित रूप से पूर्वोक्त न्यास करके उसके शरीर को मन्त्रमय बना देना चाहिए। इसके बाद उनके सिर पर विष्णुहस्त रखकर 'वे वैष्णव हैं'–ऐसा ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार एक अथवा बहुत से पुरुषों का ध्यानयोग से जप करना चाहिए। इसके बाद मूलमन्त्रोच्चारण से शिष्य के दोनों हाथों को सम्यक् रूप से ग्रहण करके फिर मन्त्र देनेवाला गुरु नेत्रमन्त्र (वौषट्) से, छिद्ररहित वस्त्र द्वारा उन सभी शिष्यों के नेत्रों को (पट्टी) बाँध दें। फिर तत्त्वज्ञ गुरु देवाधिदेव भगवान् की पूजा करके पुष्पाञ्जलि धारण करनेवाले शिष्यों को पूर्वाभिमुख बैठाना चाहिए ।।४९–५३।। इस प्रकार गुरु के द्वारा (दूसरा) जन्म पाकर वे शिष्य भी भगवान् श्रीहरि की पूजा करें। (द्विज बनने के तुरन्त) बाद वे शिष्य भगवान् को पुष्पाञ्जलि समर्पित करके पुष्प आदि उपचारों से उनकी पूजा करें ।।५४।। तदनन्तर फिर वासुदेव की पूजा करके उसके बाद गुरु के चरणों का पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् (गुरु की) दक्षिणा के रूप में अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दे ।।५५।। फिर गुरु शिष्यों को सम्यक् रूप से शिक्षा दे और वे शिष्य भगवान् के नाम–मन्त्रों द्वारा उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् मण्डल में विराजमान शंख–चक्र–गदाधारी भगवान् विष्वक्सेन का भजन करना चाहिए जो द्वारपाल बनकर अपनी तर्जनी अँगुली से लोगों को गलत कार्य करने से रोक रहे हैं। इसके बाद भगवान् की प्रतिमा का विसर्जन करना चाहिए। भगवान् विष्णु के सारे निर्माल्य को भगवान् विष्वक्सेन के लिए समर्पित कर देना चाहिए ।।५६–५७।। फिर प्रणीता–पात्र (जल–पात्र) के जल से अपना और कुण्ड का अभिषेक करके तथा अपने आत्मा में अग्नि को लीन करके भगवान् विष्वक्सेन का विसर्जन करना चाहिए ।।५८।। ऐसा करने से भोग की इच्छा करनेवाला साधक सभी मनोवाञ्छित वस्तुएँ पा जाता है और मोक्ष की इच्छा करनेवाला भक्त भगवान् श्रीहरि में लीन हो जाता है अर्थात् सायुज्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।।५९।।

श्री अग्निमहापुराण में कुण्डनिर्माण आदि वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४।।

---

१ ख. घ. जनित्वा। २ ङ. कलौ। ३ क. ख. संयुज्य। ४ ख. तान्सदेन्शेना°। घ. तान्सदनेना°। ५ घ. °म्। अमन्त्रमर्च°। ६ घ. तज्जपन्तं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

वासुदेवादिमन्त्राणां लक्षणानि

नारद उवाच

वासुदेवादिमन्त्राणां पूज्यानां लक्षणं वदे। वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।।१।।
नमो भगवते चादौ अ आ अं अः सबीजकाः। ओङ्काराद्या नमोऽन्ताश्च नमो नारायणस्ततः ।।२।।
ॐ तत्सद् ब्रह्मणे चैव हूं नमो विष्णवे नमः। ॐ औं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय वै नमः ।।३।।
ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय नराधिपाः (?) जपारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः ।।४।।
मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वल्लभा नवनायकाः। अङ्गानि स्वरबीजानां स्वनामान्तैर्यथाक्रमम् ।।५।।
हृदयादीनि कल्पेत विभक्तैस्तन्त्रवेदिभिः। व्यञ्जनादीनि बीजानि तेषां लक्षणमन्यथा ।।६।।

अध्याय २५

वासुदेव आदि के मन्त्रों के लक्षण

नारद बोले–अब मैं पूज्य वासुदेवादि मन्त्रों के लक्षण कह रहा हूँ। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध (इनके मन्त्रों की विधि इस प्रकार है–) पहले ओङ्कार कहकर फिर क्रम से अ आ अं अः–इन बीजमन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए। तब 'नमो भगवते' पद का प्रयोग करना चाहिए। इसके बाद चतुर्थी विभक्तियुक्त, 'वासुदेव', 'सङ्कर्षण', 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। (इस प्रकार ये चार मन्त्र बनते हैं–ॐ आं नमो भगवते वासुदेवाय नमः, ॐ आं नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः, ॐ अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः।) इसके बाद इस तरह नारायण मन्त्र कहना चाहिए–'ॐ नमो नारायणाय' ।।१–२।।

ब्रह्मा, विष्णु नरसिंह और वराह भगवान् के मन्त्र इस प्रकार हैं–

१. ब्रह्ममन्त्र–'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे ॐ नमः'।

२. विष्णुमन्त्र–'ॐ विष्णवे नमः'।

३. नरसिंहमन्त्र–'ॐ औं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः'।

४. वराहमन्त्र–'ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय'।

ये सभी मन्त्रराज हैं। उपर्युक्त नौ मन्त्रों के वासुदेव आदि नौ नायक हैं जो (भक्तों के) वल्लभ (इष्ट देवता) हैं। (क्रम से) इनके ये वर्ण हैं–जवाकुसुम के सदृश अरुण, हल्दी के समान पीला, नीला, श्यामल, लोहित, मेघसदृश, अग्निसदृश, मधु के समान तथा पिङ्गल। स्वर के बीजाक्षरों से क्रमशः, पृथक्–पृथक् हृदय आदि अंगों की कल्पना तन्त्रवेत्ता करें। उन बीजों के अन्त में अङ्गों के नाम हों (जैसे–"ॐ आं हृदयाय नमः", 'ॐ ईं शिरसे स्वाहा', 'ॐ ऊं शिखायै वषट्' इत्यादि) ।।३–५½।। जिन मन्त्रों के प्रारम्भ में व्यञ्जन अक्षर होते हैं उनके लक्षण दूसरी तरह से होते हैं। दीर्घ स्वरों के योग से उनके रूप अलग–अलग होते हैं। उनके अन्त में अंगों के नाम होते हैं तथा अंग–नामों के अन्त में 'नम' पद जुड़ा होता है। (यथा–'क्लां

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दीर्घस्वरैस्तु भिन्नानि नमोन्तान्तस्थितानि तु। अङ्गानि ह्रस्वयुक्तानि उपाङ्गानीति वर्ण्यते ।।७।।
विभक्तं नामवर्णान्तस्थितबीजात्ममुत्तमम्। दीर्घस्वरैश्च संयुक्तमङ्गोपाङ्गैः स्वरैः क्रमात् ।।८।।
व्यञ्जनानां क्रमो ह्येष हृदयादिप्रक्लृप्तये। स्वरबीजेषु नामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनामभिः ।।९।।
युक्तानि हृदयादीनि द्वादशान्तानि पञ्चतः। आरभ्य कल्पयित्वा तु जपेत् सिद्ध्यनुरूपतः ।।१०।।
हृदयं च शिरश्चूडा कवचं नेत्रमस्त्रकम्। षडङ्गानि तु बीजानां मूलस्य द्वादशाङ्गकम् ।।११।।
हृच्छिरश्च शिखा चैव[1] हस्तौ नेत्रे तथोदरम्। पृष्ठबाहूरुजानूंश्च जङ्घेपादौ क्रमान्न्यसेत् ।।१२।।
कं ठं शं पं वैनतेयः खं ठं फं षं गदानुजम्। गं डं वं सं पुष्टिमन्त्रोघं टं भं हं श्रियै नमः ।।१३।।
चं णं मं क्षं पाञ्चजन्यं छं तं पं कौस्तुभाय च। जं खं वं सुदर्शनाय श्रीवत्साय सं वं दं च लम् ।।१४।।
ॐ वं पं वनमालायै पद्मनाभाय[2] वै नमः। निर्बीजपदमन्त्राणां पदैरङ्गानि कल्पयेत् ।।१५।।
जात्यन्तैर्नामसंयुक्तैर्हृदयादीनि पञ्चधा। प्रणवं हृदयादानि ततः प्रोक्तानि पञ्चधा ।।१६।।
प्रणवं हृदयं पूर्वं परायेति शिरः शिखा। नाम्नात्मना तु कवचमस्त्रं[3] नामान्तकं भवेत् ।।१७।।

हृदयाय नमः'। 'क्लीं शिरसे स्वाहा' इत्यादि।) ह्रस्व-स्वरयुक्त अंग उपांग कहलाते हैं ।।६-७।। देवता के नामाक्षरों को अलग-अलग करके, उनमें से हर एक के अन्त में विन्दु रूप बीज का योग करके उनसे अंगन्यास करना भी उत्तम है। अथवा नाम के आदि अक्षर को दीर्घस्वरों से युक्त करके अंगों और उपांगों के द्वारा (इस प्रकार) स्वरों से क्रमशः न्यास करना चाहिए ।।८।। हृदय आदि अंगों की कल्पना करने के लिए व्यंजनों का यही क्रम है। देवता के मन्त्रों के स्वर-बीजों के बाद देवता का नाम लेना चाहिए। फिर अंग सम्बन्धी नामों के द्वारा पृथक्-पृथक् वाक्यरचना करके उससे युक्त हृदय आदि बारह अंगों की कल्पना करनी चाहिए। पाँच से लेकर बारह अंगों तक के न्यास-वाक्य की कल्पना करके सिद्धि के अनुरूप उनका जप करना चाहिए ।।९-१०।। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र-ये छह अंग हैं। इन अंगों में मूल-मंत्र के बीजों का न्यास करना चाहिए। बारह अंग ये हैं-हृदय, सिर, शिखा, हाथ, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जंघा और पैर। इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिए ।।११-१२।। "कं ठं शं पं वैनतेयाय नमः"-यह गरुड़ का बीजमन्त्र है। "खं ठं फं षं गदायै नमः"-यह गदा-मन्त्र है। "गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः"-यह पुष्टि का बीजमन्त्र है। "घं टं भं हं श्रियै नमः-यह श्रीमन्त्र है। "चं णं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः"- यह पाञ्चजन्य का मन्त्र है। "छं तं पं कौस्तुभाय नमः"-यह कौस्तुभ का मन्त्र है। "जं खं वं सुदर्शनाय नमः"-यह सुदर्शन-मन्त्र है। "सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः"-यह श्रीवत्स-मन्त्र है। "ॐ वं वनमालायै नमः"-यह वनमाला का मन्त्र है। "ॐ पं पद्मनाभाय नमः"-यह पद्म का अथवा पद्मनाभ का मन्त्र है। बीज-रहित पदवाले मन्त्रों का अंगन्यास उनके पदों द्वारा ही करना चाहिए ।।१३-१५।। जात्यन्त नामसंयुक्त पदों द्वारा हृदय आदि पाँच अंगों में पाँच प्रकार से न्यास करना चाहिए। (जाति-हृदय का 'नमः', सिर की 'स्वाहा', शिखा की 'वषट्', कवच की 'हुम्', नेत्र की 'वौषट्' तथा अस्त्र की 'फट्' जाति है।) पहले प्रणव का उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँच अंगों के नाम पाँच प्रकार से कहे गये हैं। (यथा-"ॐ हृदयाय नमः" इत्यादि।) पहले प्रणव और तब हृदय-मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। ("ॐ हृदयाय नमः"-कहकर हृदय का स्पर्श करना चाहिए।) तदनन्तर "ॐ पराय शिरसे स्वाहा" कहकर सिर का स्पर्श करना चाहिए। तब "ॐ वासुदेवाय शिखायै वषट्" कहकर शिखा का स्पर्श करना चाहिए। "ॐ आत्मने कवचाय हुम्"-इस मन्त्र से कवच-न्यास करना चाहिए।

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. वर्म। २ ख. यमुनाभाय। घ. महानन्ताय। ३ क. ङ. च. °वचं अं आं नामा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐपरास्त्रादिश्च नामात्मा चतुर्थ्यन्तो नमोऽन्तकः। एकव्यूहादिषड्विंशव्यूहान्तः[1] स्यात्समो मनुः ।।१८।।
कनिष्ठादिकराग्रेषु प्रकृतिं देहकेऽर्चयेत्। पराय पुरुषात्मा स्यात् प्रकृत्यात्मा द्विरूपकः ।।१९।।
ॐ परायाग्न्यात्मने च वस्वर्कौ[2] वह्निरूपकः। अग्निं त्रिमूर्तौ विन्यस्य व्यापकं करदेहयोः ।।२०।।
वाय्वर्कौ करशाखासु सव्येतरकरद्वये। हृदि मूर्तौ तनावेष त्रिव्यूहे तुर्यरूपके ।।२१।।
ऋग्वेदं व्यापकं हस्ते अङ्गुलीषु यजुर्न्यसेत्[3]। तलद्वयेऽथर्वरूपं शिरोहृच्चरणान्तगम्[4] ।।२२।।
आकाशं व्यापकं न्यस्य करे देहे तु पूर्ववत्। अङ्गुलीषु च वाय्वादि शिरोहृद्गुह्यपादके ।।२३।।
वायुर्ज्योतिर्जलं पृथ्वी पञ्चव्यूहः समीरितः। मनः श्रोत्रं त्वग् दृग् जिह्वा घ्राणं षड्व्यूह ईरितः ।।२४।।
व्यापकं मानसं न्यस्य ततोऽङ्गुष्ठादितः क्रमात्। मूर्धास्यहृद्गुह्यपत्सु कथितः सरणात्मकः[5] ।।२५।।
आदिमूर्तिस्तु सर्वत्र व्यापको जीवसञ्ज्ञितः। भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं च सप्तधा ।।२६।।
करे देहे न्यसेदाद्यमङ्गुष्ठादिक्रमेण तु। तलसंस्थः सप्तमश्च लोकात्मा[6] देहके क्रमात् ।।२७।।

अस्त्र–न्यास करने के लिए भगवान् का नाम कहकर इस तरह मन्त्र बोलना चाहिए–"ॐ वासुदेवाय अस्त्राय फट्"। आदि में "ॐ" आदि नामात्मक पद तथा अन्त में "नमः" पद हों एवं पूज्य के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगानी चाहिए। एक व्यूह (भगवान् का वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि रूपों में आविर्भाव।) से लेकर छब्बीस व्यूह तक के यह समान मन्त्र हैं ।।१६–१८।। अपने शरीर में प्रकृति की पूजा कनिष्ठा से लेकर सभी अँगुलियों में हाथ के अग्रभाग में न्यास करके करना चाहिए। "पराय" पद से परमात्मा पुरुष कहा जाता है। वही परमात्मा प्रकृति और पुरुष–इन दो रूपों में अभिव्यक्त होता है ।।१९।। "ॐ परायाग्न्यात्मने नमः"–यह व्यापक मन्त्र है। वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि ये तीन त्रिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं। इन तीनों में अग्नि का विधिवत् न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास करना चाहिए ।।२०।। वायु और सूर्य का क्रमशः बायें और दायें दोनों हाथों की अँगुलियों में न्यास करना चाहिए। हृदय मे मूर्तिमान् अग्नि का न्यास करना चाहिए। यह त्रिव्यूहात्मक पूजा का विधान है। अब चतुर्व्यूहात्मक पूजा का वर्णन करते हैं ।।२१।। सम्पूर्ण शरीर और हाथ में ऋग्वेद का, अँगुलियों में यजुर्वेद का, हथेलियों में अथर्ववेद का तथा सिर और हृदय में अंतिम वेद सामवेद का व्यापक न्यास करना चाहिए ।।२२।। पञ्चव्यूह पूजा में पहले की तरह सम्पूर्ण शरीर और हाथ में आकाश का व्यापक न्यास करना चाहिए। अँगुलियों में भी आकाश का न्यास करना चाहिए। फिर क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का सिर, हृदय, गुह्य और पैर में न्यास करना चाहिए ।।२३।। वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी और आकाश–ये पञ्चव्यूह कहलाते हैं। मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका–ये षड्व्यूह कहे गये हैं। मन का व्यापक न्यास करने के बाद शेष पाँच (इन्द्रियों का) अंगुष्ठ आदि के क्रम से (पाँचों अँगुलियों में तथा) सिर, मुख, हृदय, गुह्य और चरण–इन पाँच अंगों में भी न्यास करना चाहिए। यह करणात्मक (सरणात्मक) (इन्द्रियों का) न्यास कहा गया है ।।२४–२५।। जीवसञ्ज्ञक आदिमूर्ति सर्वत्र व्यापक है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्–इन सात (लोक–नामात्मक–महाव्याहृतियों) को सप्तव्यूह कहते हैं ।।२६।। (पूर्वोक्त इन सात लोकों में) प्रथम लोक 'भूः' का न्यास हाथ और सम्पूर्ण शरीर में करना चाहिए। शेष में भुवः, स्वः, महः, जनः और तपः–इन लोकों का न्यास अङ्गुष्ठ आदि के क्रम से पाँचों अँगुलियों में करना चाहिए। सातवें लोक 'सत्यं' का न्यास, क्रम से हथेली में करना चाहिए। यह लोकात्मक

---

१ घ.° हात्तस्यात्मनो म°। २ क. घ. ङ. च. वाश्वर्को°। ३ ङ. °त्। स्तनद्वये°। ४ ख. ग. घ. च. शिरो हृच्चरणान्तकः। ५ ख. करणार्थकः। घ. करुणात्मकः। ६ घ. लोकेशो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवः[1] शिरो ललाटास्य हृद्गुह्याङ्घ्रिषु संस्थितः । अग्निष्टोमस्तथोक्थस्तु षोडशी वाजपेयकः ।।२८।।
[2]अतिरात्राऽप्तोर्यामश्च यज्ञात्मा सप्तरूपकः । धीरहं मनः शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्ततः ।।२९।।
गन्धो बुद्धिर्व्यापकं च करे देहे न्यसेत्क्रमात् । न्यसेदङ्घ्रौ च तलयोः के ललाटे मुखे हृदि ।।३०।।
नाभौ गुह्ये च पादे च अष्टव्यूहः पुमान्स्मृतः । जीवो बुद्धिरहङ्कारो मनः शब्दो गुणोऽनिलः ।।३१।।
रूपं रसो नवात्मायं जीव अङ्गुष्ठकद्वये । तर्जन्यादिक्रमाच्छेषं यावद्वामप्रदेशिनीम् ।।३२।।
देहे शिरोललाटास्य हृन्नाभिगुह्यजानुषु । पादयोश्च दशात्मायमिन्द्रो व्यापा समास्थितः ।।३३।।
अङ्गुष्ठकद्वये वह्नौ तर्जन्यादौ परेषु च । शिरोललाटवक्त्रेषु हृन्नाभिगुह्यजानुषु ।।३४।।
पादयोरेकादशात्मा मनः श्रोत्रं त्वगेव च । चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राणं वाक् पाण्यङ्घ्री[3] च पायु च ।।३५।।
उपस्थं मनसा ध्यायञ्श्रोत्रमङ्गुष्ठकद्वयम् । तर्जन्यादिक्रमादष्टावतिरिक्तं तलद्वये ।।३६।।
उत्तमाङ्ग ललाटास्यहृन्नाभ्यङ्घ्रिषु गुह्यके । ऊरुयुग्मे तथा जङ्घागुल्फपादेषु च क्रमात् ।।३७।।
विष्णुर्मधुहरश्चैव त्रिविक्रमकवामनौ । श्रीधरोऽथ हृषीकेशः पद्मनाभस्तथैव च ।।३८।।
दामोदरः केशवश्च नारायण इतः परः । माधवश्चाथ गोविन्दो विष्णुर्वै[4] व्यापकं न्यसेत् ।।३९।।

सप्तव्यूह है जिसका सम्पूर्ण शरीर में न्यास किया जाता है ।।२७।। अब सप्त यज्ञ–स्वरूप सप्तव्यूह का वर्णन किया जाता है–परमात्मा भगवान् विष्णुदेव (सम्पूर्ण शरीर में तथा विशेष रूप से) सिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्य और चरण में स्थित हैं। इन अंगों में भगवान् का न्यास करना चाहिए। अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम तथा यज्ञात्मा–इन सात को यज्ञमय सप्तव्यूह कहा जाता है। बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये आठ तत्त्व अष्टव्यूह हैं। बुद्धि का व्यापक न्यास हाथ और शरीर में करना चाहिए। तदनन्तर उपर्युक्त आठों तत्त्वों का क्रम से पैर के तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्यप्रदेश और पैर में न्यास करना चाहिए। इनको अष्टव्यूहात्मक पुरुष रूप में याद किया जाता है। जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–नवव्यूह हैं। जीव का न्यास हाथ के दोनों अँगूठों में करना चाहिए। शेष आठ तत्त्वों का न्यास क्रम से दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से लेकर बायें हाथ की तर्जनी (मूल–प्रदेशिनी) तक आठ अँगुलियों में करना चाहिए। सम्पूर्ण शरीर, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और पाद–इन नौ स्थानों में पूर्वोक्त को तत्त्वों का न्यास करके इन्द्र का व्यापक न्यास किया जाय तो यह दसव्यूहात्मक न्यास हो जाता है ।।२८–३३।। दोनों अँगूठों के दोनों हथेलियों में, तर्जनी आदि आठ अँगुलियों में, सिर, मस्तक, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य (उपस्थ और पायु), दोनों जानु और दोनों पाद–इन ग्यारह अंगों में ग्यारह इन्द्रियों का न्यास एकादशव्यूह–न्यास कहा जाता है। ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं–मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय। मन का ध्यान (व्यापक न्यास) करते हुए हाथ के दोनों अँगूठों में श्रवणेन्द्रिय का न्यास करना चाहिए। फिर त्वचा आदि आठ तत्त्वों का तर्जनी आदि आठ अँगुलियों में न्यास करना चाहिए। शेष ग्यारहवें तत्त्व उपस्थ का दोनों हथेलियों में न्यास करना चाहिए। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुह्य, ऊरुद्वय, जंघा, गुल्फ और पैर–इन ग्यारह अंगों में भी क्रम से पूर्वोक्त ग्यारह तत्त्वों का न्यास करना चाहिए। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव और गोविन्द–यह द्वादशात्मक व्यूह है। इनमें से विष्णु का व्यापक न्यास करना चाहिए। फिर शेष भगवन्नामों का अङ्गुष्ठा आदि दस अँगुलियों और दोनों

---

१ ख. घ. ङ. च. देहः। २ घ. °रात्राप्तोर्याम च. य°। ३ क. ङ. च. °ण्यङ्घ्रिश्च पावकः। ४ घ. विष्णुं वै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अङ्गुष्ठादौ तले चैव[1] पादे जानुनि वै कटौ। [2]शिरःशिखोरःकट्यास्यजानुपादादिषु न्यसेत् ।।४०।।
द्वादशात्मा पञ्चविंश षड्विंशव्यूहकस्तथा। पुरुषो धीरहङ्कारो मनश्चित्तं च शब्दकः ।।४१।।
तथा स्पर्शो रसो रूपं गन्धः श्रोत्रं त्वचस्तथा। चक्षुर्जिह्वा नासिका च वाक्पाण्यङ्घ्री च पायवः ।।४२।।
उपस्थो भूर्जलं तेजो वायुराकाशमेव च। पुरुषं व्यापकं न्यस्य अङ्गुष्ठादौ दश न्यसेत् ।।४३।।
शेषान्हस्ततले न्यस्य शिरस्यथ ललाटके। मुखहृन्नाभिगुह्योरुजान्वङ्घ्रिकरणोद्गते ।।४४।।
पादे जान्वोरुपस्थे च हृदये मूर्ध्नि च क्रमात्। परश्च पुरुषात्मादौ षड्विंशे पूर्ववत् परम् ।।४५।।
सञ्चिन्त्य मण्डलेऽब्जे[3] तु प्रकृतिं पूजयेद् बुधः। पूर्वयाम्याप्यसौमीषु[4] हृदयादीनि विन्यसेत् ।।४६।।
अस्त्रमग्न्यादिपत्रेषु वैनतेयादि पूर्ववत्। दिक्पालांश्च विधिस्तुल्यस्त्रिव्यूहेऽग्निश्च मध्यतः ।।४७।।
पूर्वदिदिग्दलावासैः[5] पाद्यादिभिरलङ्कृतः। कर्णिकायां नाभसश्च मानसः कर्णिकास्थितः ।।४८।।
विश्वरूपं सर्वसिद्ध्यै[6] यजेद्राज्यजयाय च। सर्वव्यूहैः समायुक्तमङ्गैरपि च पञ्चभिः ।।४९।।
गरुडाद्यैस्तथेन्द्राद्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात्। विष्वक्सेनं यजेन्नाम्ना[7] रौं बीजं नामसंयुतम् ।।५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिमन्त्रलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

हथेलियों में न्यास करना चाहिए। तदनन्तर पादतल, दक्षिण पद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, वक्ष, वाम कटि, मुख, वाम जानु और वाम पादादि में भी न्यास करना चाहिए ।।३४–४०।। यह द्वादशात्मक व्यूह हुआ। अब पञ्चविंश–व्यूह तथा षड्विंश–व्यूह का वर्णन किया जा रहा है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश–ये पचीस तत्त्व हैं। इनमें से पुरुष का सर्वांग में व्यापक न्यास करके शेष दस का अंगुल इत्यादि में न्यास करना चाहिए। शेष (चौदह) का निम्न (चौदह) स्थानों में क्रम से न्यास करना चाहिए–करतल, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, पैर, उपस्थ, हृदय और मूर्धा। इसी पञ्चविंश व्यूह में सर्वप्रथम परम पुरुष परमात्मा का पूर्ववत् व्यापक न्यास कर देने से षड्विंश–व्यूहात्मक न्यास हो जाता है ।।४१–४५।। विद्वान् को अष्टदल कमल–चक्र में प्रकृति का स्थापन करके उसकी पूजा चिन्तन करनी चाहिए। उस पद्म–चक्र के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलों में हृदय आदि अंगों का न्यास करना चाहिए। अग्निकोण आदि दलों में पूर्ववत् अस्त्र और वैनतेय (गरुड़) आदि की स्थापना करनी चाहिए। इन्द्र आदि दिक्पालों का पूर्व आदि दिशाओं में चिन्तन करना चाहिए। इस सब की पूजा–विधि समान है। (सूर्य, सोम और अग्नि–इस) त्रिव्यूह में अग्नि का मध्य में स्थान है। पूर्व आदि दिशाओं के दलों में निवास करनेवाले देवताओं के साथ पाद्य–जल आदि से विभूषित कमल की कर्णिका में नाभस (आकाश की तरह व्यापक आत्मा) तथा मानस (अन्तरात्मा) स्थित है। सभी प्रकार की सिद्धियों के लिए तथा राज्य पर विजय पाने के लिए भगवान् के विश्वरूप का यजन करना चाहिए। सभी व्यूहों, हृदय आदि पाँचों अंगों, गरुड़ आदि तथा इन्द्र आदि दिक्पालों के साथ परमात्मा की पूजा का विधान है। इस तरह पूजा करने से साधक सभी कामनाओं को प्राप्त कर सकता है। अन्त में विष्वक्सेन की पूजा नाम–मात्र से करनी चाहिए। नाम के साथ 'रौं' बीजाक्षर लगाकर "रौं विष्वक्सेनाय नमः" ऐसा मन्त्र बोलना चाहिए ।।४६–५०।।

श्री अग्निमहापुराण में वासुदेव आदि के मन्त्रलक्षणवर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२५।।

---

१ घ. द्वौ च। २ घ. °शिखरकट्यां च जानु°। ३ क. ङ. च. °ण्डले द्वे तु। घ. °ण्डलैके तु। ४ क. ङ. च. सौम्येषु। ५ ख. ग. °वासैर्वाधा। घ. °वासी राज्यादि°। ६ घ. सर्वस्थित्यै। ख. ग. °द्ध्यै जपेद्रा°। ७ क. घ. ङ. च. °म्ना वै बीजं व्योमसंस्थितम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षड्विंशोऽध्यायः

मुद्रालक्षणानि

नारद उवाच

मुद्राणां लक्षणं वक्ष्ये [1]सान्निध्यादिप्रकारकम् । अञ्जलिः[2] प्रथमा मुद्रा वन्दनी[3] हृदयानुगा ।।१।।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिदक्षिणाङ्गुष्ठबन्धनः[4] । सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यस्य चोर्ध्वं[5] प्रकीर्तितः[6] ।।२।।
तिस्रः साधारणा व्यूहे अथासाधारणा इमाः । कनिष्ठादिविमोकेन अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम् ।।३।।
([7]अष्टानां पूर्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत्)। अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाङ्गुलित्रयम् ।।४।।
ऊर्ध्वं कृत्वा सम्मुखं च बीजाय नवमाय वै । वामहस्तमथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं[8] नामयेच्छनैः ।।५।।

अध्याय २६

मुद्रा के लक्षण

नारद जी बोले–हे मुनियो! अब मैं मुद्राओं का लक्षण कहूँगा। सान्निध्य आदि, मुद्राओं के भेद हैं। पहली मुद्रा अञ्जलि है, दूसरी वन्दनी है तथा तीसरी हृदयानुगा है ।।१।। दोनों हाथों के अँगूठे ऊपर की ओर उठे रहें तथा बायें हाथ की मुट्ठी से दाहिने हाथ के अँगूठे को बाँध लें और बायें हाथ के अँगूठे को (दायें हाथ के अँगूठे के साथ) ऊपर की ओर उठाये ही रहें तो यह हृदयानुगा मुद्रा है। (इसी मुद्रा को अन्य ग्रन्थों में संरोधिनी या निष्ठुरा नाम दिया गया है)। (उपर्युक्त) तीन साधारण मुद्राएँ हैं। अब आगे ये असाधारण–(–विशेष–) मुद्राएँ कही जा रही हैं। (दोनों हाथों की अँगुलियों को नवाने के बाद) कनिष्ठा आदि अँगुलियों को क्रम से मुक्त करने से आठ मुद्राएँ बनती हैं ।।२–३।। 'अ क च ट त प य श'–इन आठ वर्गों के पूर्व बीज 'अं कं चं टं' आदि को क्रम से सूचित करनेवाली पूर्वोक्त आठ मुद्राएँ हैं–ऐसा निश्चय करना च पर उठाकर सम्मुख करने से जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज 'क्षं' के लिए है। बायें हाथ को (दाहिने हाथ के) ऊपर उत्तान करके

---

१ (क) 'आदि' पद से अन्य ग्रन्थों में वर्णित 'आवाहनी' आदि मुद्राओं को समझना चाहिए। (ख) दोनों हाथों के अँगूठों को ऊपर करके फिर मुट्ठी बाँधकर दोनों मुट्ठियों को परस्पर सटाकर नमस्कार करने को सान्निध्य या सन्निधारिनी मुद्रा कहते हैं।

२ अञ्जलि ही अञ्जलिमुद्रा है–'अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्यात्–मन्त्रमहार्णव।

३ वन्दनी–हाथ जोड़कर नमस्कार करना वन्दनी मुद्रा है–

''वद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकल्पं यद्दक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम्।
ज्येष्ठां समक्रम्य तु वन्दनीयं मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या।।''

—ईशानशिवगुरुदेवपद्धति

४ क. ङ. च. °न्धनम्। सन्यस्य। ५ घ. चोर्ध्वे। ६ म. ङ. प्रकीर्तितम्। ७ अष्टानां····अवधारयेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ८ घ. कृत्वाऽर्व।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वराहस्य स्मृता मुद्रा अङ्गानां च क्रमादिमाः। एकैकां मोचयेन्मुद्रां वाममुष्टौ तथाङ्गुलीम् ।।६।।
आकुञ्चयेत्पूर्वमुक्तां[1] दक्षिणेऽप्येवमेव च। ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्मुद्रासिद्धिस्ततो भवेत् ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मुद्रालक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शिष्येभ्यो दीक्षादानविधिः

नारद उवाच

वक्ष्ये दीक्षां सर्वदा च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत्। दशम्यामुपसंहृत्य[2] यागद्रव्यं समस्तकम् ।।१।।
विन्यस्य नारसिंहेन सम्मन्त्र्य शतवारकम्। सर्षपांस्तु फडन्तेन रक्षोघ्नान्सर्वतः क्षिपेत् ।।२।।
शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत्प्रासादरूपिणीम्। सर्वौषधीः समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत् ।।३।।
शतवारं शुभे पात्रे वासुदेवेन साधकः। संसाध्य पञ्चगव्यं तु पञ्चभिर्मूलमूर्तिभिः ।।४।।

धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकना चाहिए। इसको वराह की मुद्रा माना गया है। ये क्रम से अंगों की मुद्राएँ हैं। बायीं मुट्ठी में बँधी हुई एक-एक अँगुली को क्रम से मुक्त करना चाहिए (और) पहले से मुक्त हुई अँगुली को फिर सिकोड़ लेना चाहिए। इसी तरह से दाहिने हाथ में भी करना चाहिए। बायें हाथ के अँगूठे को ऊपर की ओर उठाये रखना चाहिए। ऐसा करने से मुद्रा सिद्ध होती है ।।४-७।।

श्री अग्निमहापुराण में मुद्रालक्षणवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२६।।

अध्याय २७

शिष्यों के लिए दीक्षा दान-विधि

नारद बोले-अब मैं कुछ देनेवाली दीक्षा का वर्णन करूँगा। कमलाकार मण्डल में भगवान् श्रीहरि का यजन करना चाहिए। दशमी तिथि को यज्ञसंबंधी सारी वस्तुओं का संग्रह करके रख लेना चाहिए। फिर नरसिंह बीज-मन्त्र 'क्ष्रौं' से उनको सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। इस मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर (बोलते हुए) राक्षसों का नाश करनेवाले सरसों को सब ओर छींटना चाहिए ।।१-२।। तदनन्तर वहाँ सर्वस्वरूपवाली प्रासादरूपिणी शक्ति का न्यास करना चाहिए। सभी ओषधियों को इकट्ठा करके बिखेरने के काम में आनेवाली सरसों आदि वस्तुओं को पवित्र पात्र में रखकर साधक को वासुदेव-मन्त्र से उनको सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। तदनन्तर वासुदेव से लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण) के मूलमन्त्रों से पञ्चगव्य तैयार करना चाहिए। फिर कुशाग्र से पञ्चगव्य पर जल छिड़ककर उस भूमि का प्रोक्षण करना चाहिए।

---

१ घ. °मुद्रां° द। २ ख. ग. संस्कृत्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नारायणान्तैः सम्प्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम् । विकिरान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना ।।५।।
त्रिधा पूर्वामुखस्तिष्ठन् ध्यायन् विष्णुं तदा हृदि । वर्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत् ।।६।।
शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्धनीम् । अच्छिन्नधारया सिञ्चन्नैशान्यन्तं[1] नयेच्च ताम् ।।७।।
कलशं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि । संहृत्य विकिरान्दर्भैः कुम्भेशं कर्करीं यजेत् ।।८।।
सवस्त्रे[2] पञ्चरत्नाढ्ये स्थण्डिले पूजयेद्धरिम् । अग्नावपि समभ्यर्च्य [3]मन्त्रैः सन्तर्प्य पूर्ववत् ।।९।।
प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्तः सुगन्धिना । उखामाज्येन सम्पूर्य गोक्षीरेण तु साधकः ।।१०।।
आबोड्य[4] वासुदेवेन ततः सङ्कर्षणेन च । तण्डुलानाज्यसंसृष्टान् क्षिपेत् क्षीरे सुसंस्कृते ।।११।।
प्रद्युम्नेन समालोड्य दर्व्या सङ्घट्टयेच्छनैः । पक्वमुत्तारयेत्पश्चादनिरुद्धेन देशिकः ।।१२।।
प्रक्षाल्यालिप्य तत्कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना । हारायणेन पार्श्वेषु चरुमेवं सुसंस्कृतम् ।।१३।।
भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम् । तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।।१४।।
शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये । नारायणेन सम्मन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम् ।।१५।।
([5]दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा त्यक्त्वा ज्ञात्वा[6] स्वपातकम्) । ऐन्द्राग्न्युत्तरकैशानीमुखः[7] स्नातो ह्यनुत्तमम् ।।१६।।

फिर हाथ उत्तान करके वासुदेव-मन्त्र से बिखेरी जानेवाली वस्तुओं को बिखेरना चाहिए ।।३-५।। इसके बाद पूरब की ओर मुँह करके तीन बार हृदय में भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए वर्धनीयुक्त कलश पर पार्षद-सहित भगवान् विष्णु की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए ।।६।। सौ बार अस्त्र-मन्त्र पढ़कर वर्धनी को जल की अविच्छिन्न धार से सींचे और ईशानकोण में स्थापित करे ।।७।। कलश को पीछे की ओर ले जाकर विकिरों के ऊपर स्थापित कर दे। कुशा से विकिरों को इकट्ठा करके कुम्भेश और कर्करी की पूजा करनी चाहिए ।।८।। वस्त्र और पञ्चरत्नों से भूषित भूमि पर विष्णु का पूजन करके अग्नि में भी पूर्ववत् मन्त्रों द्वारा अर्चना करनी चाहिए ।।९।।

पुण्डरीक मन्त्र-"ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

(इस मन्त्र) से बटलोई को धोकर उसको भीतर से सुगन्धयुक्त घी से पोंछ देना चाहिए। इसके बाद साधक उसमें गाय का दूध भरकर वासुदेव-मन्त्र से उसको आलोडित (कलछुली से चलाना चाहिए) करके इसके बाद संकर्षण-मन्त्र पढ़कर उसमें घी मिले हुए चावल को छोड़ देना चाहिए ।।१०-११।। प्रद्युम्न-मन्त्र पढ़कर कलछुली से उसका आलोडन करके उसको धीरे-धीरे चलाना चाहिए। खीर के पक जाने पर आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे (आग से नीचे) उतार दे ।।१२।। उस पर जल छिड़क करके घी से लेप करना चाहिए। फिर नारायण-मन्त्र से (ललाट एवं) पार्श्व-भागों में भस्म से ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाना चाहिए। इस प्रकार से सुसंस्कृत चरु का (चार भाग करना चाहिए) ।।१३।। चरु के एक भाग को देवताओं को अर्पित करे। दूसरा भाग कलश में छोड़ दे। तीसरे भाग की तीन आहुतियाँ (अग्नि में) छोड़े ।।१४।। चरु के चौथे भाग को शिष्यों के साथ गुरु को आत्मशुद्धि के लिए रखना चाहिए। (दूसरे) दिन एकादशी तिथि को प्रातःकाल सात बार नारायण-मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दूधवाले वृक्ष के दातून करके उसे फेंक दे। अपने पापों का स्मरण करते हुए पूर्व, अग्निकोण, उत्तर या ईशानकोण की ओर मुँह करके स्नान करना

---

१ ख. घ. °ञ्चन्नीशानान्तं। २ ख. घ. च. सवस्त्रं पञ्चरत्नाढ्यं। ३ घ. मन्त्रान् सञ्जप्य पू। ४ क. ख. घ. च. आलोक्य। ५ दन्तकाष्ठं...स्वपातकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ ख. ग. ज्ञात्वोप पा°। ७ ख. ग. घ. ङ. च. मुखं पतितमुत्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुभं[1] सिद्धमिति ज्ञात्वाचम्य[2] प्राणान्नियम्य च । पूजागारं[3] विशेन्मन्त्री प्रार्थ्य[4] विष्णुं सदक्षिणम् ।।१७।।
संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये । त्वमेव शरणं देव! सदा त्वं भक्तवत्सलः[5] ।।१८।।
देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः । पाशितान् मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात्पशूनिमान् ।।१९।।
इति विज्ञाप्य देवेशं सम्प्रविश्य पशूंस्ततः । धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्ववज्ज्वलनादिना ।।२०।।
संस्कृत्य, मूर्त्या संयोज्य नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत् । पुष्पपूर्णाञ्जलींस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत् ।।२१।।
अमन्त्रमर्चनं तत्र पूर्ववत्कारयेत् क्रमात् । यस्यां मूर्तौ पतेत्पुष्पं तस्य तन्नाम निर्विशेत् ।।२२।।
शिखान्तसम्मितं[6] सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि[7] षड्गुणम् । कन्यया[8] कर्तितं रक्तं पुनस्तत् त्रिगुणीकृतम् ।।२३।।
यस्यां संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते । प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थितां तत्र चिन्तयेत् ।।२४।।
तेन प्रकृतिकान् पाशान् ग्रथित्वा तत्त्वसङ्ख्यया । कृत्वा शरावे तत्सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु ।।२५।।
ततस्तत्त्वानि सर्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत् । सृष्टिक्रमात् प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः ।।२६।।
त्रेधा वा पञ्चधा वा स्याद् दशद्वादशधापि च । दातव्यः सर्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः ।।२७।।
अङ्गैः पञ्चभिरस्त्रान्तं निखिलं प्रकृतिक्रमात् । तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ ।।२८।।
प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्ता बुद्धिस्तथा मनः । पञ्चतन्मात्रबुद्ध्याख्यं कर्माख्यं[9] भूतपञ्चकम् ।।२९।।

चाहिए। स्नान से अपने को पवित्र, सिद्ध और उत्तम समझकर आचमन करे और प्राणायाम कर शुद्ध होकर मन्त्रदाता गुरु पूजागृह में जाय और विष्णु की प्रार्थना करके प्रदक्षिणा करे ।।१५-१७।। प्रार्थना मन्त्र-संसार-सागर में डूबनेवाले जीवों को मायाबन्धन से छुड़ानेवाले केवल आप ही हैं। हे देव! आप सदा भक्तों भर वात्सल्यभाव रखते हैं ।।१८।। देवाधिदेव! मुझे अनुमति दीजिये, मैं आपकी कृपा से नैसर्गिक माया-बन्धनों से बँधे हुए इन जीवों को मुक्त करूँगा ।।१९।। इस प्रकार देवेश्वर श्रीहरि से प्रार्थना करके पूजागृह में प्रवेश करके फिर शिष्यभूत समस्त पशुओं को अग्नि आदि की धारणाओं से सम्यक् रूप से शोधन करके संस्कार करना चाहिए। फिर शिष्यों का वासुदेवादि मूर्तियों से संयोग कराकर उनके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियों की ओर उन्मुख होने के लिए निर्देश करे। शिष्य उन मूर्तियों की ओर पुष्पों की पुष्पाञ्जलि फेंके। तदनुसार मूर्तियों के साथ शिष्यों का नाम जोड़ना चाहिए। पहले की भाँति शिष्यों के द्वारा क्रम से मूर्तियों का मन्त्ररहित पूजन करना चाहिए। जिस मूर्ति पर शिष्य की पुष्पाञ्जलि गिरे उस शिष्य का वही नाम रखना चाहिए ।।२०-२२।। इसके अनन्तर कन्या के हाथ का कता हुआ लाल रंग का सूत लेकर उसे छह गुना बट देना चाहिए। उस छह गुने सूत की लम्बाई शिष्य के अँगूठे से लेकर चोटी तक होनी चाहिए। फिर उसको तिगुना कर देना चाहिए। उस त्रिगुणित सूत्र में प्रक्रिया-भेद से स्थित उस प्रकृति देवी का चिन्तन करना चाहिए जिसमें सारा विश्व लीन हो जाता है और जिससे सारा विश्व उत्पन्न होता है। उस सूत्र में प्राकृतिक पाशों को तत्त्व की संख्या के अनुसार ग्रथित करे अर्थात् २४ गाँठें लगाये। उनको प्राकृतिक पाशों का प्रतीक समझना चाहिए। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूत को कसोरे में रखकर कुण्ड के पास स्थापित कर देना चाहिए ।।२३-२५।। तत्पश्चात् सब तत्त्वों का ध्यान करता हुआ गुरु सृष्टिक्रम के अनुसार प्रकृति-तत्त्व से प्रारम्भ करके पृथ्वीतत्त्व तक शिष्य के शरीर पर न्यास करे ।।२६।। तत्त्वचिन्तक यह क्रिया तीन, पाँच, दस या बारह बार करे और साथ-साथ प्रत्येक तत्त्व के अनुसार सूत में गाँठें भी देता जाय ।।२७।। प्रकृति-क्रम (अर्थात् कारण तत्त्व में कार्य-तत्त्व के लय के क्रम) से हृदय से लेकर अस्त्र-पर्यन्त पाँच अंग सम्बन्धी मन्त्रों को पढ़कर सभी पञ्चभूतों को तन्मात्रास्वरूप

---

१ ख. ग. °भं निंहशतं हुत्वा°। २ ख. ग. घ. त्वा आचम्याथ प्रविश्य च। ३ ख. ग. घ. °रं न्यसेन्म°। ४ ख. ग. प्राच्या°। ५ क. ख. ग. घ. भक्तवत्सल। ६ ख. ग. °खानुसं°। ७ ख. ग. °ष्ठात्रिष°। ८ ख. ग. घ. कन्यासुक°। ९ क. ङ. च. पञ्चाङ्ग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया। हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टेः सृष्टिक्रमेण तु ।।३०।।
एकैकं शतहोमेन दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः। शरावे सम्पुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत् ।।३१।।
अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत्। करणीं कर्तरीं चापि रजांसि खटिकामपि ।।३२।।
अन्यदप्युपयोगि स्यात्सर्वं वामगोचरे[1]। संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृश्याधिवासयेत् ।।३३।।
नमो भूतेभ्यश्च बलिः कुशे[2] देयः स्मरन्हरिम्। मण्डपं भूषयित्वाथ वितानघटलड्डुकैः ।।३४।।
मण्डलेऽथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम्। आहूय दीक्षयेच्छिष्यान्बद्धपद्मासनस्थितान् ।।३५।।
सम्प्रोक्ष्य विष्णुहस्तेन मूर्धानं स्पृश्य वै क्रमात्। प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदेवताम् ।।३६।।
सृष्टिमाध्यात्मिकींकृत्वा हृदि तां संहरेत्क्रमात्। तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम् ।।३७।।
ततः सम्प्रार्थ्य कुम्भेशं सूत्रं संस्कृत्य देशिकः। अग्नेः समीपमागत्य पार्श्वे तं सन्निवेश्य तु ।।३८।।
मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम्। उदासीनमथासाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः ।।३९।।
शुक्लं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम्। सन्ताड्य हृदयं तेन हुम्फट्कारान्तसंयुतैः ।।४०।।
वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात्। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य[3] जुहुयात्ततः ।।४१।।

में लीन करके उस मायामय सूत्र में और पशु (शिष्य रूपी जीव) के शरीर में भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्त्ता, बुद्धि और मन–इनका उपसंहार करे। फिर पञ्चतन्त्रमात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत–इस द्वादशात्मा का सूत्र और शिष्य के शरीर में भी ध्यान करे। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृष्टि की सम्पात–विधि से हवन करके एक–एक को सौ–सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति देनी चाहिए। कसोरे में रखे हुए ग्रथित सूत्र को सम्पुट (ढक) करके उसे कुम्भेश को समर्पित करना चाहिए ।।२८–३१।। तदनन्तर यथोचित रीति से अधिवासन करके भक्त शिष्य को दीक्षा देनी चाहिए। दीक्षा के समय शिष्य के वाम भाग में करनी, कर्तरी (कतरनी, कैंची), धूल या बालू, खड़िया मिट्टी तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी रहनी चाहिए। सम्यक् स्थापना करने के बाद मूलमन्त्र से उनका स्पर्श करके अधिवासित करना चाहिए ।।३२–३३।। भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए 'नमो भूतेभ्यः' मन्त्र से कुश पर बलि देना चाहिए। एक सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें चँदोवा टाँग दे और कलश स्थापित कर मोदक आदि भोज्य सामग्री भर दे ।।३४।। इसके अनन्तर उस मण्डप में विष्णु की प्रतिष्ठा कर पूजा करे और अग्नि में आहुति देकर शिष्यों को बुलावे। शिष्य पद्मासन लगाकर बैठें और गुरु उनको दीक्षा दे ।।३५।। बारी–बारी से शिष्यों का प्रोक्षण (जल छिड़क) करके विष्णुहस्त से उनके मस्तक का स्पर्श करना चाहिए। प्रकृति से विकृतिपर्यन्त अधिभूत और अधिदैवत सहित सारी सृष्टि को आध्यात्मिक करके अर्थात् सबको अपने आत्मा में स्थित मानकर हृदय में क्रमशः उनका संहार करे। इस प्रकार तन्मात्र–स्वरूप सारी सृष्टि जीव के समान हो जाते हैं ।।३६–३७।। इसके बाद आचार्य कुम्भेश से प्रार्थना करके सूत्र का संस्कार करे, फिर अग्नि के समीप आकर अपने पास शिष्य को बैठाये। फिर मूलमन्त्र से सृष्टि के स्वामी ब्रह्मा के लिए सौ आहुतियाँ दे। इसके बाद उदासीन भाव से स्थित शिष्य के पास आचार्य पूर्णाहुति के साथ आये। श्वेत रेणु लेकर उसे मूलमन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। फिर उससे शिष्य के हृदय पर ताड़न करना चाहिए। उस समय वियोगवाची क्रियापद से युक्त बीजमन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियों से घटित 'हुं फट्' का उच्चारण करना चाहिए ।।३८–४१।।

---

१ ख. ग. घ. 'द्वायुगो'। २ ख. ग. घ. कुशे शेते। ३ क. ङ. च. विश्लेष्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वह्नावखिलतत्त्वानामालये व्याहृते[1] हरौ। नीयमानं क्रमात्सर्वं तत्त्वाधारं स्मरेद् बुधः ।।४२।।
ताडनेन वियोज्यैवमादायापाद्य साम्यताम्[2]। प्रकृत्याहृत्य जुहुयाद्यथोक्ते जातवेदसि ।।४३।।
गर्भाधानं जातकर्म भोगं चैव लयं तथा। कृत्वाष्टौ तत्र तत्रैव ततः शुद्धं तु होमयेत् ।।४४।।
शुद्धं तत्त्वं समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या तु देशिकः। सन्धयेद्धि परे तत्त्वे यावदव्याकृतं क्रमात् ।।४५।।
तत्परं ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि। विमुक्तबन्धनं जीवं परस्मिन्नव्यये पदे ।।४६।।
निर्वृत्तं परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद् बुधः। दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चादेवं दीक्षा समाप्यते ।।४७।।
प्रयोगमन्त्रान् वक्ष्यामि यैर्दीक्षाहोमसंल्लयः। ॐ यं भूतानि विशुद्धं[3] हुं फट्
अनेन ताडनं कुर्याद् वियोजनमिह द्वयम् ।।४८।।
ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम् आदानं कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु।
ॐ यं भूतानि पुंश्चाहो[4] होममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ततः पूर्णाहुतेर्मनुम् ।।४९।।
ॐ भूतानि संहर स्वाहा

यथा–'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुङ्क्ष्व हुं फट्'। 'ॐ णं (नमः) भूतानि वियुङ्क्ष्व' सारे प्राकृतिक तत्त्वों का (इस प्रकार अर्थात् कार्यतत्त्वों का कारण–तत्त्वों में) लय करने के बाद उन तत्त्वों का उनके मूल आलय (लय–स्थान) भगवान् श्रीहरि में लय करना चाहिए। विद्वान् पुरुष क्रम से भगवान् श्रीहरि में सभी तत्त्वों का लय हो जाने पर सभी तत्त्वों के अधिष्ठान (भगवान् विष्णु) का स्मरण करे। पूर्वोक्त रीति से ताड़न द्वारा भूतों और इन्द्रियों को पृथक् करके शुद्ध हुए शिष्य को अपनावे और प्रकृति से उसकी समता करे। फिर पूर्वोक्त अग्नि में उसके प्राकृतभाव का भी हवन करे ।।४२–४३।। तदनन्तर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लय का अनुष्ठान करके उस कर्म के निमित्त वहाँ आठ बार शुद्धि के लिए हवन करना चाहिए ।।४४।। इसके बाद आचार्य पूर्णाहुति के द्वारा शुद्ध तत्त्व का उद्धार करके अव्याकृत प्रकृति–पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् का क्रमानुसार परम–तत्त्व में लय कर दे ।।४५।। उस परम–तत्त्व को ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा में विलीन करके बन्धन से छूटे हुए जीव को अविनाशी परमात्मपद पर प्रतिष्ठित करे। फिर विद्वान् आचार्य यह स्मरण करे कि शिष्य शुद्ध बुद्ध परमानन्द में कृतकृत्य हो चुका है। बाद को पूर्णाहुति देनी चाहिए। इस प्रकार दीक्षा समाप्त होती है ।।४६–४७।। अब मैं उन प्रयोग–सम्बन्धी मन्त्रों को कहूँगा जिनसे दीक्षा, होम और संल्लय का सम्पादन होता है। "ॐ यं भूतानि विशुद्धं हुं फट्" इस मन्त्र से ताड़न करना चाहिए। वियोजन के दो मन्त्र हैं। एक पहले कहा जा चुका है। दूसरा इस प्रकार है–"ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्" इस मन्त्र से आपातन (प्रकृति से वियोजन) करके पुनः प्रकृति से योजन करने का मन्त्र यह है–"ॐ यं भूतानि पुंश्च"। अब मैं होम करने का मन्त्र कहूँगा और उसके बाद पूर्णाहुति का मन्त्र बतलाऊँगा। "ॐ भूतानि संहर स्वाहा" यह होम–मन्त्र है। "ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

---

१ क. ङ. च. व्याहृतौ। २ ख. ग. घ. शाम्यताम्। ३ विशुद्धं···मनुम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ घ. °पुंश्चाहो। हो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्। पूर्णाहुत्यन्तरं तु तत्त्वे शिष्यं तु सन्धयेत् ।।५०।।
एवं तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात् संशोधयेद् बुधः। नमोन्तेन स्वबीजेन ताडनादिपुरःसरम्[1] ।।५१।।
ॐ रां कर्मेन्द्रियाणि, ॐ दें बुद्धीन्द्रियाणि (च)। यं बीजेन समानं तु ताडनादिप्रयोगकम् ।।५२।।
[2]ॐ सुगन्धतन्मात्रे बिम्बं युङ्क्ष्व हुं फट्। ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या ।।५३।।
अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा। ततः पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते।
ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे। ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे। ॐ यं शब्दतन्मात्रे।
ॐ भं नमः। ॐ मौ अहङ्कारः ॐ नं बुद्धौ। ॐ ॐ ॐ प्रकृतौ।
एकमूर्तावयं प्रोक्तो दीक्षायोगः समासतः। एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यूहादिके स्मृतः ।।५४-५८।।
दग्ध्या परिस्मिन् सन्दध्यान्निर्वाणे प्रकृतिं नरः। शोधयित्वाथ भूतानि कर्माक्षाक्षि विशोधयेत् ।।५९।।
बुद्ध्यक्षाण्यथ तन्मात्रं मनो ज्ञानमहङ्कृतिम्। लिङ्गात्मानं विशोध्यान्ते प्रकृतिं शोधयेत्पुनः ।।६०।।
पुरुषं प्राकृतं शुद्धमैश्वरे धाम्नि संस्थितम्। स्वगोचरीकृताशेषभोगं मुक्तौ[3] कृतास्पदम् ।।६१।।
ध्यायेत्पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं[4] त्वधिकारदा। अङ्गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगणं समम् ।।६२।।
क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम्। ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता ।।६३।।

अं वौषट्" यह पूर्णाहुति का मन्त्र है। पूर्णाहुति के पश्चात् शिष्य को तत्त्व में संयुक्त करना चाहिए ।।४८-५०।। इसी प्रकार बुद्धिमान् गुरु सभी तत्त्वों का क्रम से शोधन करे। तत्त्वों के अपने-अपने बीज के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर ताड़नादिपूर्वक तत्त्वशुद्धि का सम्पादन किया जाना चाहिए ।।५१।। 'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि'। 'ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि'-इन पदों के अन्त में 'वियुङ्क्ष्व हुं फट्' जोड़ देना चाहिए। पूर्वोक्त 'यं बीज की तरह प्रस्तुत मन्त्र से भी ताड़न आदि प्रयोग होता है ।।५२।। संयोजन और होम के मन्त्र क्रम से इस प्रकार हैं-"ॐ सुगन्धतन्मात्रे बिम्बं युङ्क्ष्व हुं फट्", "ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा" ।।५३।। तत्त्व-संशोधन के अनन्तर 'ॐ रां रसतन्मात्रे', 'ॐ तें रूपतन्मात्रे', 'ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे', 'ॐ यं शब्दतन्मात्रे', 'ॐ भं नमः', 'ॐ मौ अहङ्कारः,' 'ॐ नं बुद्धौ', 'ॐ ॐ ॐ प्रकृतौ', इन मन्त्रों से पूर्णाहुति प्रदान करे। संक्षेप में एक मूर्ति के विषय में यह दीक्षाविधि कही गयी है। इसी प्रकार नवव्यूहादि में भी दीक्षा का प्रयोग शास्त्रसम्मत कहा गया है ।।५४-५८।। जीव (शिष्य) को इस प्रकार शुद्ध कर पर (ब्रह्म) में युक्त करना चाहिए। भूत-शुद्धि के अनन्तर कर्मेन्द्रियों का विशोधन करना चाहिए ।।५९।। बुद्धि, इन्द्रियाँ, तन्मात्रा, मन, ज्ञान, अहं तत्त्व का संशोधन करे और पुनः प्रकृति का विशोधन करे-यही उपयुक्त विधि है ।।६०।। ईश्वरीय प्रकाश में स्थित, शुद्ध, प्राकृत-पुरुष और अपने प्रभाव से सम्पूर्ण भोगों को भोगनेवाले, मुक्ति में अपना स्थान बनानेवाले अर्थात् मुक्त ब्रह्म का ध्यान कर पूर्णाहुति दे। ऐसी ही दीक्षा यथार्थ अधिकार को प्रदान करनेवाली है। मन्त्र के प्रत्येक अंग से आराधना करके और तत्त्वगणों के साथ क्रमशः सबका संशोधन करके अन्त में सब प्रकार की सिद्धियों की देनेवाले पुरुष (ब्रह्म) का ध्यान करते हुए पूर्णाहुति दे। इस विधि से दी हुई दीक्षा इष्ट को सिद्ध करनेवाली मानी गयी है ।।६१-६३।। यदि शिष्य के पास धन की कमी हो या किसी प्रकार की असमर्थता हो तो गुरु सब प्रकार की सामग्रियों को जुटाकर द्वादशी

१°दिप्रयोगकम्। २ थ. ॐ सं तन्सात्रे वियुङ्क्ष्व हुं। ३ क. भुक्त्वा। ४ क. ङ. च. °यं साधके स्मृता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्रव्यस्य वा न सम्पत्तिरशक्तिर्वात्मनो यदि । इष्ट्वा देवं यथापूर्वं सर्वोपकरणान्वितः ।।६४।।
सद्योऽधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः । भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः ।।६५।।
शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेऽभ्यर्च्य दीक्षयेत् । अध्वानं निखिलं दैवं भौतं वाध्यात्मिकीकृतम् ।।६६।।
सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः । अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात्सन्तर्प्य सृष्टिमान् ।।६७।।
स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीञ्[1] ज्वलनादीन्[2] विसर्जयेत् । होमेन शोधयेत् पश्चात् संहारक्रमयोगतः[3] ।।६८।।
यानि सूत्राणि बद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः । शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्त्वानि शोधयेत् ।।६९।।
अग्नौ प्राकृतिके विष्णौ लयं नीत्वाधिदैविके । शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु सन्धयेत्[4] ।।७०।।
शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान्गुणान् । मोचयेदधिकारे वा नियुञ्ज्याद्देशिकः शिशून् ।।७१।।
अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्याद् भावे स्थितो गुरुः । भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां[5] निर्धनस्य च ।।७२।।
सम्पूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम् । देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः ।।७३।।
अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम् । शिष्यदेहे तथा देवमाधिदैविकयाजनम्[6] ।।७४।।
ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना । क्रमात्तत्त्वानि सर्वाणि शोधयेत्स्थण्डिले हरौ ।।७५।।
ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वात्मनि तत्पुनः[7] । देवे संयोज्य संशोध्य गृहीत्वा तत्स्वभावतः ।।७६।।

के दिन इष्ट देवता की पूजा करके दीक्षा प्रदान करे ।।६४-६४½।। जो शिष्य अत्यन्त धनी न हो परन्तु वह विनीत, भक्त और सब प्रकार के शारीरिक गुणों से युक्त हो तो वेदी पर ही देवस्थापना करके उसे दीक्षा दे देनी चाहिए ।।६५-६५½।। पहले गुरु सृष्टि के क्रम से शिष्य पर अखिल अध्वान समस्त देव, भौतिक और आध्यात्मिक गुणों की प्रतिष्ठा करके और उसका ध्यान करके आठ-आठ आहुतियों से हवन करके प्रतिष्ठापित देवों को तृप्त करना चाहिए। फिर उन-उन देवों के मन्त्रों से वासुदेव आदि देवों और अग्नि का विसर्जन करे और हवन के द्वारा संहार-क्रम से संशोधन करे ।।६६-६८।। जो सूत बाँधे गये थे, गुरु उनको खोल दे और शिष्य की देह से सबको खींचकर तत्त्वों का क्रमशः शोधन करे ।।६९।। और उस सूत्र को प्राकृतिक और आधिदैविक विष्णुरूप अग्नि में सबको विलीन कर पूर्णाहुति के द्वारा शुद्ध तत्त्व को अशुद्ध तत्त्व के साथ संयुक्त करके अशुद्ध को भी शुद्ध करे ।।७०।। जब शिष्य के प्राकृतिक गुण नष्ट हो जायँ और वह प्रकृतिस्थ हो जाय अर्थात् अपने साधारण गुणों को छोड़कर दीक्षा द्वारा उत्तम गुणों को ग्रहण कर ले तो गुरु उसको अन्य शिशुओं को पढ़ाने या उपदेश देने का अधिकार दे ।।७१।। गुरु उपर्युक्त प्रकार की दीक्षा के अतिरिक्त शक्ति-दीक्षा भी स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार दे सकता है। उसकी विधि इस प्रकार है कि भक्तिपूर्वक शरण में आये हुए यतियों और निर्धन भक्तों को गुरु अपने समीप पुत्र की भाँति बैठावे ।।७२।। वेदी पर विष्णु की पूजा करके भक्त शिष्य को देवताभिमुख बैठावे और स्वयं कुछ तिरछा होकर बैठे ।।७३।। शिष्य के शरीर पर अपने पर्वों के विकल्पित अखिल अध्वान का ध्यान कर आधिदैविक देव की पूजा करावे और पूर्वकथित नियम के अनुसार ध्यानयोग से चिन्तन कर ताड़न आदि के द्वारा क्रमशः सब तत्त्वों को उस वेदी पर विष्णु के समीप ही शुद्ध करे ।।७४-७५।। ताड़न के द्वारा उन तत्त्वों को वहाँ (वेदी) से पृथक् कर अपने में संयुक्त करे। फिर देव में उनको संयुक्त कर शोधन करे और स्वभावानुसार उनका ग्रहण भी करे ।।७६।।

---

१ ख. ग. घ. °दीञ्जनना°। २ ख. ग. °न्विवर्ज°। ३ ख. ग. घ. °तः। योनिसू°। ४ क. ङ. च. संनयेत्। घ. साधयेत्। ५ ङ. सतीनां। ६ ख. ग. घ. °याचन°। ७ घ. तत्परः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आनीय शुद्धतत्त्वे[1] सन्धयित्वा क्रमेण तु। शोधयेद्ध्यानयोगेन सर्वत्रोत्तानमुद्रया ।।७७।।
शुद्धेषु सर्वतत्त्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते। दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान्[2] पदे चैशे नियोजयेत् ।।७८।।
निनयेत् सिद्धिमार्गेण[3] साधकं देशिकोत्तमः। एवमेवाधिकारस्थो गृही कर्माण्यतन्द्रितः ।।७९।।
आत्मानं शोधयंस्तिष्ठेद्यावद्रागक्षयो भवेत्। क्षीणरागमथात्मानं ज्ञात्वा संशुद्धकिल्विषः ।।८०।।
आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारं तु संयमी। दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः ।।
शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिङ्गवान् ।।८१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदीक्षाविधिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

अथाष्टविंशोऽध्यायः

आचार्याभिषेकविधानम्

नारद उवाच

अभिषेकं प्रवक्ष्यामि यथा[4] कुर्यात्तु पुत्रकः। सिद्धिभावसाधको येन रोगी रोगात्प्रमुच्यते ।।१।।

क्रमशः इस प्रकार उनको खींचकर लावे और शुद्ध तत्त्वों से मिलाकर ध्यानयोग से उत्तान-मुद्रा के द्वारा सर्वत्र शोधन करे ।।७७।। सब तत्त्वों की शुद्धि हो जाने और प्रधान ईश्वर-तत्त्व से स्थित हो जाने पर शिष्यों के सब अशुद्ध तत्त्वों को जलाकर उनको शुद्ध कर दे और ईश्वरीय स्थान पर नियुक्त करे ।।७८।। उत्तम गुरु का कर्त्तव्य है कि वह साधक को सिद्धि-मार्ग से ले जाय। इस प्रकार दीक्षित होकर गृहस्थ सजग भाव से अपने कर्मों का और अपना तब तक संशोधन करे जब तक रागक्षय न हो जाय। जब गृहस्थ अपने को निष्पाप जान ले कि वह रागों से मुक्त हो गया है तब वह संयमी शिष्य या पुत्र को अपना अधिकार सौंपकर मायापाश को तोड़कर संन्यास ग्रहण कर ले और आत्मस्थ होकर सर्वदा शरीर-पात की आकांक्षा करे। किन्तु उसे अपनी विशेषताओं अर्थात् बाह्य मुद्राओं द्वारा अपने को व्यक्त न करे ।।७९-८१।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वदीक्षाविधि वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२७।।

अध्याय २८

आचार्य के अभिषेक का विधान

नारद ने कहा-अब मैं उस विधि को बतला रहा हूँ जिस विधि से पुत्र या शिष्य को आचार्य का अभिषेक करने से साधक मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त करता है और रोगी रोग से मुक्त हो जाता है ।।१।। इन सम्पूर्ण मलों को

---

१ घ. शुद्धभावेन। २ क. च. °ष्यान्यादवेशे। ३ क. ख. ग. घ. ङ. र्गे वा सा°। ४ ख. ग. घ. °थाऽऽचार्यस्तु पुत्रकः। सि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राज्यं राजा सुतं[1] स्त्री च प्राप्नुयान्मलनाशनम्[2] । मृत्साकुम्भान्सुरत्नाढ्यान् मध्यपूर्वादितो न्यसेत् ।।२।।
सहस्रावर्तितान् कुर्यादथवा शतवर्तितान् । मण्डपे मण्डले विष्णुं प्राच्यैशान्योश्च[3] पीठके ।।३।।
निवेश्य सङ्कलीकृत्य[4] पुत्रं साधकादिकम् । अभिषेकं समभ्यर्च्य कुर्याद् गीतादिपूर्वकम् ।।४।।
दद्याच्च योगपीठादींस्त्वनुग्राह्यास्त्वया नराः । गुरुश्च समयान् ब्रूयाद्[5] गुरुः शिष्योऽथ सर्वभाक् ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आचार्याभिषेकविधिवर्णनं नामाष्टविंशोऽध्यायः ।।२८।।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

मन्त्रसाधनविधिः सर्वतोभद्रादिमण्डललक्षणानि च

नारद उवाच

साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके । शुद्धभूमौ गृहे प्रार्च्य मण्डले हरिमीश्वरम् ।।१।।
चतुरस्त्रीकृते[6] क्षेत्रे मण्डलादीनि वै लिखेत् । रसबाणाक्षिकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् ।।२।।
षट्त्रिंशत्कोष्ठकैः[7] पद्मं पीठे[8] पङ्क्त्या बहिर्भवेत् । द्वाभ्यां तु वीथिका तस्माद् द्वाभ्यां द्वाराणि दिक्षु च ।।३।।

नष्ट कर देनेवाले अभिषेक के द्वारा राजा राज्य को और पुत्र अभिलाषिणी स्त्री पुत्र को प्राप्त करती है। सबसे पहले मिट्टी के कलशों को रत्नों से भरकर मध्यकेन्द्र से पूर्व की ओर रखे ।।२।। उन कलशों को हजार बार या सौ बार सूत या कपड़े से लपेटे। मण्डप के मण्डल में पूर्व और ईशानकोण की ओर पीठ पर विष्णु को स्थापित करे ।।३।। सब पुत्र, पौत्र आदि और साधक को वहाँ एकत्र कर अभिषेक करके मंगल–गान आदि करे ।।४।। अभिषेक के अनन्तर योगपीठ का दान करे। उस समय गुरु को यह कहना चाहिए कि "हे ईश्वर! तुम इन भक्तों पर अनुग्रह करो।" इस प्रकार अभिषेक करने से गुरु और शिष्य सब प्रकार के मनोरथ प्राप्त करते हैं ।।५।।

श्री अग्निमहापुराण में आचार्याभिषेक वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२८।।

अध्याय २९

मन्त्रसाधनविधि तथा सर्वतोभद्रादिमण्डल के लक्षण

नारद बोले–साधक को देवतायतन आदि में शुद्ध भूमि पर मण्डल में भगवान् विष्णु की अर्चना करके मन्त्र की साधना करनी चाहिए ।।१।। एक वर्गाकार भूमि पर मण्डलाकार चित्र को बनाकर उसके ऊपर नवें, पाँचवें और दूसरे कोष्ठकों में सर्वतोभद्र का चित्रण करना चाहिए ।।२।। इसके बाहर छत्तीस कोष्ठकों को बनाना चाहिए। दो पंक्तियों में बनाये हुए इन कोष्ठकों में दोनों ओर दो द्वारों का निर्माण करना चाहिए ।।३।। बाहर की ओर पद्माकार

---

१ ख. ग. पतिं। २ क. घ. ङ. च. °म्। मूर्तिकु°। ख. म्। मृद्भिः कु°। ३ ख. ग. घ. च. शान्यां च पी°। ४ क. ख. ङ. च. सकलीकृत्य। घ. शकलीकृत्य। ५ घ. याद् गुप्ताशि°। ६ क. °तुरः स्त्रीकृ°। ७ ख. ग. षड्विंश°। ८ ख. घ. पीठं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्तुलं भ्रामयित्वा तु पद्मक्षेत्रं पुरोदितम्। पद्मार्धे भालयित्वा तु भागं द्वादशमं (कं) बहिः ।।४।।
विभज्य भ्रामयेच्छेषं चतुष्क्षेत्रं तु वर्तुलम्। प्रथमं कर्णिकाक्षेत्रं केसराणां द्वितीयकम् ।।५।।
तृतीयं दलसन्धीनां दलाग्राणां चतुर्थकम्। प्रसार्य कोणसूत्राणि कोणदिङ्मध्यमं ततः ।।६।।
निधाय केसराग्रे तु दलसन्धींस्तु लाञ्छयेत्। पातयित्वाथ सूत्राणि तत्र पत्राष्टकं लिखेत् ।।७।।
दलमध्यान्तरालं तु मानं मध्ये निधाय तु। दलाग्रं भ्रामयेत्तेन तदग्रं तदनन्तरम् ।।८।।
तदन्तरालं तत्पार्श्वे कृत्वा बाह्यक्रमेण च। केसरौ तु लिखेद् द्वौ द्वौ दलमध्ये ततः पुनः ।।९।।
पद्मलक्ष्मैतत्सामान्यं[1] तद् द्विषड्दलमुच्यते। कर्णिकार्धेन मानेन प्राक्संस्थं भ्रामयेत्क्रमात् ।।१०।।
तत्पार्श्वे भ्रमयोगेण कुण्डल्यः षड् भवन्ति हि। एवं द्वादश मत्स्याः स्युर्द्विषट्कदलकं च तैः ।।११।।
पञ्चपत्रादिसिद्ध्यर्थं मत्स्यैः कृत्वैवमब्जकम्। व्योमरेखाबहिःपीठं तत्र कोष्ठानि मार्जयेत् ।।१२।।
त्रीणि कोणेषु पादार्थं द्विद्विकान्यपराणि तु। चतुर्दिक्षु विलिप्तानि पत्रकाणि भवन्त्युत[2] ।।१३।।
ततः पङ्क्तिद्वयं दिक्षु वीथ्यर्थं तु विलोपयेत्। द्वाराण्याशासु कुर्वीत चत्वारि चतसृष्वपि ।।१४।।
द्वाराणां पार्श्वतः शोभा अष्टौ कुर्याद् विचक्षणः। तत्पार्श्व उपशोभास्तु तावत्यः परिकीर्तिताः ।।१५।।
समीप उपशोभानां कोणास्तु परिकीर्तिताः। चतुर्दिक्षु ततो द्वे द्वे चिन्तयेन्मध्यकोष्ठकैः ।।१६।।

मण्डल बनाकर उस पद्म के अर्ध भाग में बारह कोष्ठकों का निर्माण करना चाहिए ।।४।। इस प्रकार विभाजन करके एक-दूसरे पर चार मण्डलों का चित्रण करना चाहिए। उसमें से पहला है कर्णिका क्षेत्र, दूसरा है केसर क्षेत्र, तीसरा है दलसन्धि क्षेत्र और चौथा है दलाग्र क्षेत्र। तदनन्तर त्रिकोण के विन्दुओं को एक तागे से जोड़ देना चाहिए ।।५-६।। केसर के अग्रभाग में सूत रखकर दलसन्धियों को चिह्नित करे, फिर सूत्रों को गिराकर अष्टदलों का निर्माण करे ।।७।। तत्पश्चात् मण्डल के अन्दर दलों में अन्तराल का निर्माण करना चाहिए और एक के बाद दूसरे दलाग्रों को बनाना चाहिए ।।८।। इन्हें मण्डल के पार्श्व तथा बाहर की ओर भी बना देना चाहिए। दो दलों के बीच में केसरों का चित्रण करना चाहिए ।।९।। यही बासठ दलोंवाला साधारण पद्ममण्डल है। इस मण्डल के पूर्व की ओर उपयुक्त मात्रा में कर्णिकार्द्ध का चित्र बनाना चाहिए ।।१०।। उसी के पार्श्व में मण्डलाकार छह कुण्डलियाँ बना देनी चाहिए। बासठ दल कमल में बारह मत्स्याकृतियों को बना देना चाहिए ।।११।। अनुष्ठान में सिद्धि प्राप्त करने के लिए पाँच कमलदलों से एक अखण्डित मत्स्याकृति बनानी चाहिए। पीठिका के बाहर की ओर व्योमरेखा खींचकर कोष्ठकों का सम्मार्जन करना चाहिए ।।१२।। तीनों कोनों में चरणों के लिए दो-दो रेखाओं को खींच देना चाहिए। पद्म के सभी दल सभी दिशाओं में फैले रहते हैं ।।१३।। एक पंक्ति में मीन-पक्षों को बनाकर चारों दिशाओं में चार द्वारों का निर्माण कर देना चाहिए ।।१४।। बुद्धिमान् व्यक्ति को द्वारों के पार्श्व भाग में आठ शोभाकृतियों का निर्माण करके उनके समीप उतनी ही उपशोभाओं को बना देना चाहिए ।।१५।। इन उपशोभाओं के समीप कोणों का निर्माण बताया गया है। चारों दिशाओं में मध्य-कोष्ठकों में दो-दो आकृतियाँ बनायी जाती हैं ।।१६।। पीठिका के बाहर की ओर

---

१ क. घ. ङ. च. °न्यं द्विषट्कद°। २ ख. ग. °वन्त्यतः। त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चत्वारि बाह्यतो मृज्यादेकैकं पार्श्वयोरपि । शोभार्थं पार्श्वयोस्त्रीणि त्रीणि लुम्पेद् दलस्य तु ।।१७।।
तद्वद्विपर्यये कुर्यादुपशोभां ततः परम् । कोणस्यान्तर्बहिस्त्रीणि चिन्तयेन्निर्विभेदतः ।।१८।।
एवं षोडशकोष्ठं स्यादेवमन्यत्तु मण्डलम् । द्विषट्कभागे षड्विंशत्पदं पद्म तु वीथिका ।।१९।।
एका पङ्क्तिः पराभ्यां तु द्वारशोभादि पूर्ववत् । द्वादशाङ्गुलिभिः पद्ममेकहस्ते तु मण्डले ।।२०।।
द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद् वृद्ध्या[1] द्वारेण चाचरेत् । अपीठं चतुरस्त्रं स्याद् द्विकरं चक्रपङ्कजम् ।।२१।।
पद्मार्धं नवभिः प्रोक्तं नाभिस्तु तिसृभिः स्मृता । अष्टाभिस्त्वारकान् कुर्यान्नेमिं तु चतुरङ्गुलैः ।।२२।।
त्रिधा विभज्य च क्षेत्रमन्तर्द्वाभ्यामथाङ्कयेत् । पञ्चान्तस्त्वारसिद्ध्यर्थं तेष्वास्फाल्य लिखेदरान् ।।२३।।
इन्दीवरदलाकारानथ वा मातुलुङ्गवत् । पद्मपत्रायतान्वापि लिखेदिच्छानुरूपतः ।।२४।।
भ्रामयित्वा बहिर्नेमावरसन्ध्यन्तरे स्थितः । भ्रामयेदरमूलं तु सन्धिमध्ये व्यवस्थितः ।।२५।।
अरमध्ये स्थितो मध्यमराणां भ्रामयेत्समम् । एवं सिध्यन्त्यराः सम्यङ्मातुलिङ्गनिभाः समाः ।।२६।।
विभज्य सप्तधा क्षेत्रं चतुर्दशकरं समम् । त्रिधा कृते शतं ह्यत्र षण्णवत्यधिकानि तु ।।२७।।
काष्ठकानि चतुर्भिस्तैर्मध्ये भद्रं समालिखेत् । परितो विसृजेद् वीथ्यै तथा दिक्षु समालिखेत् ।।२८।।
कमलानि पुनर्वीथ्यै परितः परिमृज्य तु । द्वे द्वे मध्यकोष्ठे तु ग्रीवार्थं दिक्षु लोपयेत् ।।२९।।

चार-चार और पार्श्व में एक-एक आकृति बनायी जाती है। उसमें शोभा के लिए दलों के पार्श्व में तीन-तीन आकृतियाँ और बना दी जाती हैं ।।१७।। इसी प्रकार विपरीत में भी तीन उपशोभाकृतियों का निर्माण किया जाता है किन्तु कोणों के बीच में तनिक भी स्थान नहीं छोड़ा जाता है ।।१८।। इस प्रकार सोलह कोष्ठकों से युक्त एक अन्य मण्डल का भी निर्माण किया जाता है। पद्म के अन्दर उसके बासठवें भाग में छब्बीस दलों का चित्रण किया जाता है ।।१९।। द्वार की शोभा के लिए पूर्व की भाँति एक पंक्ति का भी निर्माण किया जाता है। एक हाथ के विस्तार के मण्डल में बारह अँगुलियों से एक पद्म का चित्रण किया जाता है ।।२०।। अँगूठे से एक हाथ के क्षेत्रफल के द्वारा चित्रण करा देना चाहिए। तदनन्तर चार वेदिकाओं का निर्माण करना चाहिए और उसमें दो अंगुल परिधि का एक चक्राकार पद्म भी चित्रित करना चाहिए ।।२१।। पद्म का आधा भाग नौ अंगुल, नाभि तीन अंगुल, द्वार आठ अंगुल और परिधि चार अंगुल होना चाहिए ।।२२।। क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके बीच में दो अँगुलियों से चिह्नित करना चाहिए। अपने अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए पद्म के बीच में पाँच ह्रस्व स्वरों को लिखकर अर्द्धव्यास खींच देना चाहिए ।।२३।। तदनन्तर साधक को अपनी इच्छानुसार पद्मदलों, नींबू अथवा पद्मपत्रों के आकार का चित्रण करना चाहिए ।।२४।। अरों की सन्धियों के बीच में सूत रखकर उसे बाहर की नेमि तक ले जाय और चारों ओर घुमावे। अरे के मूल भाग को उसके सन्धिस्थान में सूत रखकर घुमावे ।।२५।। अर्द्धव्यास तथा परिधि के बीच के स्थान में मध्यम अरों को झुका देना चाहिए। इस प्रकार अरों की सिद्धि हो जाती है ।।२६।। इसके बाद क्षेत्र को चौदह-चौदह अंगुल के सात कोष्ठकों में विभक्त करके दो सौ छियानबे कोष्ठकों को बनाकर उसमें 'भद्र' शब्द लिख देना चाहिए। इन कोष्ठकों को दिशाओं के नामों से अंकित पंक्तियों के द्वारा घेर देना चाहिए ।।२७-२८।। तदनन्तर इन सभी पंक्तियों के ऊपर पद्मों की आकृतियाँ बना दी जाती हैं। बीच कोष्ठक में सभी दिशाओं में ग्रीवाओं का चित्रण करना चाहिए ।।२९।। बाहर की ओर चार

---

१ ख. स्याद् बुद्ध्याधारे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चत्वारि बाह्यतः पश्चात्त्रीणि त्रीणि तु लीपयेत् । ग्रीवापार्श्वे बहिस्त्वेकः शोभा सा परिकीर्तिता ।।३०।।
विसृज्य बाह्यकोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि मार्जयेत् । मण्डलं नवनालं स्यान्नवव्यूहं[1] हरिं यजेत् ।।३१।।
पञ्चविंशतिकव्यूहं मण्डलं विश्वरूपगम् । द्वात्रिंशद्हस्तकं क्षेत्रं भक्तं द्वात्रिंशता समम् ।।३२।।
एवं कृते चतुर्विंशत्यधिकं तु सहस्रकम् । कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ।।३३।।
भद्रकं परिलिख्याथ पार्श्वे पङ्क्तिं विसृज्य तु । ततः षोडशभिः कोष्ठैर्दिक्षु भद्राष्टकं लिखेत् ।।३४।।
ततोऽपि पङ्क्तिं सम्मृज्य तद्वत्षोडशभद्रकम् । लिखित्वा परितः पङ्क्तिं विमृज्याथ प्रकल्पयेत् ।।३५।।
द्वारद्वादशकं दिक्षु त्रीणि-त्रीणि यथाक्रमम्[2] । षड्बहिः परिलुप्यान्तर्मध्ये चत्वारि पार्श्वयोः ।।३६।।
चत्वार्यन्तर्बहिर्द्वे तु शोभार्थं परिमृज्य तु । उपद्वारप्रसिद्ध्यर्थं त्रीण्यन्तः पञ्च बाह्यतः ।।३७।।
परिमृज्य तथा शोभां पूर्ववत्परिकल्पयेत् । बहिः कोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि कोष्ठानि मार्जयेत् ।।३८।।
पञ्चविंशतिकव्यूहे परं ब्रह्म यजेत्[3] कजे । मध्ये पूर्वादितः पद्मे वासुदेवादयः क्रमात् ।।३९।।
वाराहं पूजयित्वा तु पूर्वपद्मे ततः क्रमात् । व्यूहान् सम्पूजयेत्तावद्यावत् षट्विंशगो[4] भवेत् ।।४०।।
([5]यथोक्तं व्यूहमखिलमेकस्मिन्[6] मण्डले क्रमात् । यष्टव्यमिति मन्त्रेण[7] प्रचेता मन्यतेऽध्वरम्) ।।४१।।
सत्यस्तु मूर्तिभेदेन विभक्तं मन्यतेऽच्युतम् । चत्वारिंशत्करं क्षेत्रं ह्युत्तरं विभजेत्क्रमात् ।।४२।।

आकृतियों को बनाकर पंक्तियों के ऊपर एक-एक आकृति बना देनी चाहिए और बाहर की ओर ग्रीवा के पास में शोभाकृति का निर्माण कर देना चाहिए ।।३०।। बाह्यकोण के सात छोरों पर तीन-तीन बार जल छिड़कना चाहिए। इस प्रकार पीठिका का निर्माण कर लिया जाता है, जिसके ऊपर भगवान् विष्णु का पूजन किया जाता है ।।३१।। यही पचीस व्यूहों से युक्त मण्डलाकार पीठिका है जिसके ऊपर विश्वरूप भगवान् विष्णु का पूजन होता है। साधक को अपने हाथ से बत्तीस हाथ क्षेत्र नाप लेना चाहिए ।।३२।। उसमें बने हुए सोलह बड़े-बड़े कोष्ठकों के अन्दर एक हजार चौबीस छोटे-छोटे कोष्ठक बना लिये जाते हैं ।।३३।। 'भद्र' लिखकर और पार्श्व में पंक्ति का विसर्जन करके सभी दिशाओं में सोलह कोष्ठकों से आठ भद्रकों का चित्रण करना चाहिए ।।३४।। तत्पश्चात् पंक्ति मिटाकर पुनः सोलह भद्रमण्डल लिखे। तत्पश्चात् सब ओर की एक-एक पंक्ति मिटाये ।।३५।। साधक को सभी दिशाओं में तीन-तीन करके बारह द्वारों का निर्माण करके बाहर की ओर छह तथा किनारे, बीच में और सभी दिशाओं में चार-चार द्वार बना देने चाहिए ।।३६।। इस आकृति को सुशोभित करने के लिए बाहर और भीतर दो-दो करके चार छोरों पर तीन और बाहर की ओर पाँच द्वारों को बनाना चाहिए ।।३७।। तदनन्तर पूर्व की भाँति बाह्य कोणों में सात और किनारे की ओर तीन शोभाकृतियों को चित्रित करना चाहिए ।।३८।। साधक को परब्रह्म की अर्चना पचीस व्यूह से युक्त पद्म कर करनी चाहिए और मध्य पद्म में पूर्वादि से क्रमशः वासुदेव आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए ।।३९।। प्रथम पद्म के ऊपर वाराहावतार का यजन करके पचीसों व्यूहों की अर्चना करनी चाहिए। यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक छब्बीसवें तत्त्व-परमात्मा का पूजन न हो ।।४०।। पद्म के सभी व्यूहों का पूजन सावधानीपूर्वक करना चाहिए। तदनन्तर साधक को यज्ञ के रूप में प्रचेतस् की कल्पना करनी चाहिए ।।४१।। इसे यह कल्पना करनी चाहिए कि अच्युत ही सत्य आदि रूपों में विभक्त है। उसके बाद चालीस अंगुल क्षेत्र अलग कर लेना चाहिए ।।४२।। उसे पहले सात भागों में विभाजित करके

---

१ घ. °वभागं ह°। २ ङ. °म्। यद्वहिः परिलुप्यन्ते मध्ये। ३ क. ङ. °जेत्कुजे। च. °जत्कुले म°। ४ घ. °त्षट्त्रिंशगो भ°। ५ यथोक्त°°°अध्वरम् ङ. पुस्तके नास्ति। ६ घ. स्मिन् पङ्कजे क्र°। ७ क. घ. च यत्नेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकैकं सप्तधा भूयस्तथैकैकं द्विधा पुनः। चतुःषष्ट्युत्तरं सप्त शतान्येकं सहस्रकम् ।।४३।।
कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः। पार्श्वे वीथीं[1] ततश्चाष्टभद्राण्यथ च वीथिका ।।४४।।
षोडशाब्जान्यथो वीथी चतुर्विंशतिपङ्कजम्। वीथीपद्मानि द्वात्रिंशत् पङ्क्तिवीथीकजान्यथ ।।४५।।
चत्वारिंशत्ततो वीथी शेषपङ्क्तित्रयेण तु। द्वारशोभोपशोभाः स्युर्दिक्षु मध्ये विलोप्य च ।।४६।।
द्विचतुष्षड्द्वारसिद्ध्यै चतुर्दिक्षु विलोपयेत्। पञ्चत्रीण्येककं बाह्ये शोभोपद्वारसिद्धये ।।४७।।
द्वाराणां पार्श्वयोरन्तः षट्चत्वारि च मध्यतः। द्वे द्वे लुम्पेदेवमेव षड् भवन्त्युपशोभिकाः ।।४८।।
एकस्यां दिशि सङ्ख्याः स्युश्चतस्रः परिसङ्ख्यया। एकैकस्यां दिशि त्रीणि द्वाराण्यपि भवन्त्यतः ।।४९।।
पञ्च पञ्च तु कोणेषु पङ्क्तौ पङ्क्तौ क्रमात् सृजेत्। कोष्ठकानि भवेदेवं सतीष्टं[2] मण्डलं शुभम् ।।५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रादिमण्डलवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

तत्पश्चात् दो, चार, छह, सात, एक सौ और एक हजार भागों में विभक्त कर देना चाहिए ।।४३।। कोष्ठकों में लिखित 'भद्र' शब्द को इनमें से सोलह कोष्ठकों से आवृत करके 'भद्र' के निकट किनारे की ओर रेखाएँ खींच देनी चाहिए ।।४४।। सोलह दल के कमल और वीथी का निर्माण करे, तत्पश्चात् चौबीस दल के कमल, वीथी, बत्तीस दल के कमल और वीथी बनावे ।।४५।। सभी दिशाओं में चालीस रेखाओं और तीन पंक्तियों से द्वारों की मुख्य तथा गौण (मध्य भाग को छोड़कर) शोभाकृतियाँ बना देनी चाहिए ।।४६।। सभी दिशाओं में दो, चार या छह द्वारों का निर्माण करना चाहिए और बाहर की ओर शोभा के लिए पाँच अथवा तीन द्वारों को बना देना चाहिए ।।४७।। द्वारों के किनारे अथवा उनके पार्श्व में छह शोभाकृतियाँ बनायी जानी चाहिए जिनमें से चार मध्य में हों और वहीं पर छह गौण शोभाकृतियों का चित्रण कर देना चाहिए ।।४८।। इन सभी आकृतियों को एक ओर ही बनाना चाहिए। संख्या में चार शोभाएँ होती हैं। प्रत्येक ओर तीन द्वार होने चाहिए ।।४९।। पाँच कोणों में पाँच द्वारों का निर्माण होना चाहिए। इस प्रकार इस मण्डलाकार पवित्र वेदी में आठ कोष्ठक होते हैं ।।५०।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वतोभद्रमण्डल वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२९।।

---

१ च. वीर्यं। २ घ. मत्येंष्ट्य (ष्टं)।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिंशोऽध्यायः

सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनम्

नारद उवाच

मध्ये पद्मे यजेद् ब्रह्म साङ्गं पूर्वेऽब्जनाभकम्। आग्नेयेऽब्जे च प्रकृतिं याम्येऽब्जे पुरुषं यजेत् ।।१।।
पुरुषाद् दक्षिणे वह्निं नैर्ऋते वारुणेऽनिलम्। आदित्यमैन्दवे पद्मे ऋग्यजुश्चैश[1] पद्मके ।।२।।
इन्द्रादींश्च द्वितीयायां पद्मे षोडशके तथा। सामाथर्वाणमाकाशं वायुं तेजस्तथा जलम् ।।३।।
पृथिवीं च मनश्चैव श्रोत्रं त्वक्चक्षुरर्चयेत्। रसनां च तथा घ्राणं भूर्भुवश्चैव षोडशम् ।।४।।
महर्जनस्तपः सत्यं तथाग्निष्टोममेव च। अत्यग्निष्टोमकं चोक्थं षोडशीं वाजपेयकम् ।।५।।
अतिरात्रं च सम्पूज्य तथाप्तोर्याममर्चयेत्। मनो बुद्धिमहङ्कारं ([2]शब्दं स्पर्शं च रूपकम् ।।६।।
रसं गन्धं च पद्मेषु चतुर्विंशतिषु क्रमात्। जीवं मनो धियं चाहं प्रकृतिं) शब्दमात्रकम् ।।७।।
वासुदेवादिमूर्तींश्च तथा चैव दशात्मकम्। मनः श्रोत्रं त्वचं प्राच्यं चक्षुश्च रसनं तथा ।।८।।
घ्राणं वाक्पाणिपादं च द्वात्रिंशद्वारिजेष्विमान्। चतुर्थावरणे पूज्याः साङ्गाः सपरिवारकाः[3] ।।९।।
पायूपस्थौ च सम्पूज्य मासानां द्वादशाधिपान्। पुरुषोत्तमादिषड्विंशान् बाह्यावरणके यजेत् ।।१०।।

अध्याय ३०

सर्वतोभद्रमण्डल विधि-वर्णन

नारद बोले–सर्वतोभद्रमण्डल के बने कमल के मध्य में ब्रह्मा की और पूर्वभाग में पद्मनाभ (विष्णु) की सांगोपांग पूजा करनी चाहिए। अग्निकोण के कमल पर प्रकृति की ओर दक्षिण ओर के कमल पर पुरुष की पूजा करनी चाहिए ।।१।। पुरुष के दक्षिण ओर नैर्ऋत्यकोण में अग्नि की, पश्चिम ओर वायु की, सौम्य पद्म पर आदित्य की, ईश–पद्म पर ऋग्यजुष् की और द्वितीय पंक्ति पर इन्द्रादि देवताओं की तथा सोलह पंखुड़ियोंवाले पद्म पर साम, अथर्व, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका और भूः, भुवः, स्वः आदि सोलह पदार्थों की पूजा करनी चाहिए ।।२–४।। पुनः मह, जन, तप, सत्य, अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेयक और अतिरात्र की पूजा कर आप्तोर्याम की चौबीस कमलों पर पूजा करे। क्रमशः मन, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को जीव, मन, धी, अहंकार, प्रकृति, शब्दतन्मात्रा, वासुदेव आदि की मूर्तियों और मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाणी, पाणि, पाद आदि दस इन्द्रियों की बत्तीस कमलों पर अर्चना करे। चौथे आवरण में अंग और परिवार के सहित इन उपर्युक्त वस्तुओं की पूजा करनी चाहिए ।।५–९।। पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) की पूजा करने के अनन्तर बारह मासाधिपतियों का और पुरुषोत्तम आदि छब्बीस देवों का बाह्य आवरण (कोष्ठक) में पूजन करना चाहिए ।।१०।। चक्र

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °श्चैव प°। २ शब्दं°°°प्रकृतिं च. पुस्तके नास्ति। ३ ख. ग. °रिचार°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चक्राब्जे तेषु सम्पूज्या मासानां पतयः क्रमात् । अष्टौ प्रकृतयः षड्वा पञ्च वा[1] चतुरोऽपरे ।।११।।
रजःपातं ततः कुर्याल्लिखिते मण्डले शृणु । कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रेखाः सर्वाः सिताः समाः ।।१२।।
द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्राः स्युर्हस्ते बाहुसमाः[2] सिताः । पद्मं शुक्लेन सन्धींस्तु कृष्णेन श्यामतोऽथ वा ।।१३।।
केसराः रक्तपीताः स्युः कोणान् रक्तेन पूरयेत् । भूषयेद्योगपीठं तु यथेष्टं सार्ववर्णिकैः ।।१४।।
लतावितानपत्राद्यैर्वीथिकामुपशोभयेत् । पीठद्वारे तु शुक्लेन शोभा रक्तेन पूरिताः[3] ।।१५।।
उपशोभाश्च नीलेन कोणशङ्खांश्च वै सितान् । भद्रके पूरणं प्रोक्तमेवमन्येषु पूरणम् ।।१६।।
त्रिकोणं सितरक्तेन कृष्णेन च विभूषयेत् । द्विकोणं रक्तपीताभ्यां नाभिं कृष्णेन चक्रके ।।१७।।
अरकान्पीतरक्ताभिः श्यामान्नेमिस्तु रक्ततः । सितश्यामारुणाः कृष्णाः पीता रेखास्तु बाह्यतः ।।१८।।
शालिपिष्टादि शुक्लं स्याद्रक्तं कौसुम्भकादिकम् । हरिद्रया च हारिद्रं कृष्णं स्याद्दग्धधान्यतः ।।१९।।
शमीपत्रादिकैः श्यामं बीजानां लक्षजाप्यतः । चतुर्लक्षैस्तु[4] मन्त्राणां विद्यानां लक्षसाधनम् ।।२०।।
अयुतं वृद्धविद्यानां[5] स्तोत्राणां च सहस्रकम् । पूर्वमेवाथ लक्षेण मन्त्रशुद्धिस्तथात्मनः ।।२१।।

कमल में उन कोष्ठकों में क्रमशः बारह मासाधिपतियों, आठ प्रकृतियों, छह, पाँच या चार प्रकृतियों का पूजन दूसरे कमल पर करना चाहिए ।।११।। अब उन बने हुए कोष्ठकों अथवा कमल–कोष्ठकों पर किस प्रकार रँगा हुआ चूर्ण छोड़ना चाहिए, उसे भी सुनिये। कर्णिका पर पीले रंग का चूर्ण और सब रेखाओं को श्वेत चूर्ण से रँगना चाहिए ।।१२।। दो हाथ की मण्डल रेखाएँ अँगूठे के बराबर होनी चाहिए। एक हाथ के मण्डल में उनकी मोटाई आधे अँगूठे के समान रखनी चाहिए। रेखाएँ श्वेत बनायी जायँ। कमल को श्वेतवर्ण से और सन्धिरेखाओं को काले अथवा श्याम रंग से बनाना चाहिए ।।१३।। केसर को रक्त और पीत वर्ण से तथा कोणों को केवल लाल रंग से भरना चाहिए। योगपीठ को तो इच्छा के अनुसार अनेक रंगों से रँग दे ।।१४।। इसी प्रकार लता–वितान, पत्तियों और वीथियों को रंग से रँगकर सुशोभित कर देना चाहिए। पीठ द्वार को श्वेत और रक्त चूर्ण से पूर्ण करके सजा देना चाहिए ।।१५।। नीले रंग से उपशोभा को और कोण पर बने हुए शंखों को श्वेत वर्ण का बनाना चाहिए। इस प्रकार सर्वतोभद्र मण्डल में रंग भरा जाता है ।।१६।। मण्डल में बने हुए त्रिकोण को श्वेत, रक्त और कृष्ण वर्ण से, द्विकोण को रक्त और पीत वर्ण से तथा चक्र की नाभि को काले रंग से रँगना चाहिए ।।१७।। चक्र की अराओं को पीत, रक्त और श्याम वर्ण से तथा नेमि (पुठिया) को रक्त वर्ण से रँगना चाहिए। बाहर की रेखाओं को श्वेत, श्याम, अरुण, कृष्ण और पीत–वर्ण से बनाना चाहिए ।।१८।। श्वेत रंग के लिए चावल के चूर्ण का, रक्त वर्ण के लिए कुसुम्भ के रंग का, पीले के लिए हल्दी के चूर्ण का और काले रंग के जले हुए धान्य की राख का प्रयोग करना चाहिए ।।१९।। शमी की पत्तियों को श्याम रंग के उपयोग में लाना चाहिए। बीज–मन्त्रों का एक लाख बार जप करने से, मन्त्रों का चार लाख बार जपने से और विद्याओं को एक लाख बार जपने से सिद्धि प्राप्त होती है ।।२०।। वृद्ध विद्याओं को दस हजार और स्तोत्रों को एक हजार बार जपने से सिद्धि प्राप्त होती है। पहले एक लाख जप करने से मन्त्रशुद्धि और आत्मशुद्धि होती है ।।२१।। तथा अन्य एक लाख बार जपने से मन्त्र

---

१ ख. वाऽप्यृतवोप°। २ घ. चार्थसमाः। ३ घ. ङ. च. पीततः। ४ च. वर्णलक्षैस्तु। ५ घ. बुद्धविद्यानां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथापरेण लक्षेण मन्त्रः क्षेत्रीकृतो भवेत् । पूर्वसेवासमो होमो बीजानां सम्प्रकीर्तितः ।।२२।।
पूर्वसेवादशांशेन मन्त्रादीनां प्रकीर्तिता । पुरश्चर्या तु मन्त्रेण मासिकं व्रतमाचरेत् ।।२३।।
भुवि न्यसेद्वामपादं न गृह्णीयात्प्रतिग्रहम् । एवं द्वित्रिगुणेनैव मध्यमोत्तमसिद्धयः ।।२४।।
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि येन स्यान्मन्त्रजं फलम् । स्थूलं शब्दमयं रूपं विग्रहं बाह्यमिष्यते ।।२५।।
सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं रूपं हार्दं चिन्तामयं भवेत् । चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम् ।।२६।।
वाराहसिंहशक्तीनां स्थूलं रूपं प्रधानतः[1] । चिन्तया रहितं रूपं वासुदेवस्य कीर्तितम् ।।२७।।
इतरेषां स्मृतं रूपं हार्दं चिन्तामयं सदा । स्थूलं वैराजमाख्यातं सूक्ष्मं वै[2] लिङ्गितं भवेत् ।।२८।।
चिन्तया रहितं रूपमैश्वरं परिकीर्तितम् । हृत्पुण्डरीकनिलयं चैतन्यं ज्योतिरव्ययम् ।।२९।।
बीजं जीवात्मकं ध्यायेत् कदम्बकुसुमाकृतिम् । कुम्भान्तरगतो दीपो निरुद्धप्रसवो यथा ।।३०।।
संहतः केवलस्तिष्ठेदेवं मन्त्रेश्वरो हृदि । अनेकसुषिरे कुम्भे तावन्मात्रा गभस्तयः ।।३१।।
प्रसरन्ति बहिस्तद्वन्नाडीभिर्बीजरश्मयः । [3]अन्त्रावभासका दैवीमात्मीकृत्य तनुं स्थितः ।।३२।।
हृदयात्प्रस्थिता नाड्यो [4]दर्शनेन्द्रियगोचराः[5] । द्वेऽग्नीसोमात्मिके तासां नाड्यौ नासाग्रसंस्थिते[6] ।।३३।।
सम्यगुद्धातयोगेन[7] जित्वा देहसमीरणम् । जपध्यानरतो मन्त्रीं मन्त्रजं[8] फलमश्नुते ।।३४।।

का क्षेत्रीकरण होता है। बीज–मन्त्रों का पहले जितना जप किया गया हो उतना ही उनके लिए होम का भी विधान है ।।२२।। अन्य मन्त्रादि के होम की संख्या पूर्व जप के दशांश के तुल्य बतायी गयी है। मन्त्रों से पुरश्चरण करने पर एक मास का व्रत करना चाहिए ।।२३।। पृथ्वी पर पहले अपना बायाँ पैर रखे और किसी का दिया दान न ले। इस प्रकार दो–तीन बार व्रत और पुरश्चरण करने से मध्यम और उत्तम श्रेणी की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।।२४।। इसके अनन्तर मन्त्रध्यान की विधि बतला रहा हूँ जिससे मन्त्र का पूर्ण फल प्राप्त होता है। मन्त्र का स्थूल शब्दमय रूप बाह्य विग्रह है ।।२५।। सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, चिन्तामय रूप, हार्द (अन्तःकरण सम्बन्धी) रूप है। चिन्ता से रहित जो रूप है वही मन्त्र का उत्कृष्ट रूप है। वराह, नृसिंह और शक्तियों के स्थूल रूप की प्रधानता रहती है। वासुदेव का रूप चिन्तारहित माना गया है ।।२६–२७।। इतर देवों को सदैव चिन्तामय हार्द रूप ही कहा गया है। स्थूल रूप को वैराज और सूक्ष्म को लिङ्गित कहा गया है ।।२८।। हृत्कमल में रहनेवाले अव्यय, चैतन्य ज्योति का जो चिन्तारहित रूप है, वही ईश्वर का रूप है ।।२९।। कदम्ब के कुसुम की आकृति जो जीवात्मक बीज है उसका ध्यान करना चाहिए। जिस प्रकार घड़े के मध्य में रखे हुए दीप की शिखा वायु–प्रवेश न होने के कारण निश्चल रहती है उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदय में निश्चल और संहत भाव से रहना चाहिए। अनेक छिद्रवाले घड़े के मध्य में स्थापित दीप की किरणें छिद्रों से जिस प्रकार फैलती रहती हैं उसी प्रकार नाड़ियों से बीच की किरणें फूटकर बिखरती रहती हैं। अँतड़ियों से स्पष्ट उद्भासित होनेवाली ये बीज किरणें दैवी–प्रभा से युक्त होकर शरीर में स्थित रहती हैं ।।३०–३२।। हृदय से इधर–उधर जानेवाली जो नाड़ियाँ आँख से दिखायी पड़ती हैं उनमें से दो अग्नि और सोम नाड़ियाँ नासिका के अग्र भाग में स्थित हैं ।।३३।। भली–भाँति सिद्ध किये हुए योग के द्वारा शरीर की प्राणवायु को जीतकर सर्वदा जप के ध्यान में मग्न रहनेवाला साधक मन्त्र के सम्पूर्ण फल को पाता है ।।३४।। सकाम भाव से योग का अभ्यास करनेवाला योगी सम्पूर्ण भूतों और

---

१ क. ङ. च. विधानतः। २ ङ. त्वालिङ्गितं। ३ ख. ग. घ. च. अथावभासतो। ४ क. ङ. च. दशमेन्द्रि°। ख. ग. दशनेन्द्रि°। ५ ख. ग. °राः येऽग्नी°। घ. °राः। अग्नी°। ६ क. ङ. च. °सानुसं°। ७ घ. °म्यग्गुह्येन यो°। ८ घ. °न्त्रद्धक्षणम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संशुद्धभूततन्मात्रः सकामो योगमभ्यसन् । अणिमादिमवाप्नोति विरक्तः प्रविलङ्घ्य च[1] ।।३५।।
चिदात्मको[2] भूतमात्रान् मुच्यते चेन्द्रियग्रहात् ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

अपामार्जनविधानम्

अग्निरुवाच

रक्षां स्वस्य परेषां च वक्ष्येऽपामार्जनाह्वयाम्[3] । यथा विमुच्यते दुःखैः सुखं[4] च प्राप्नुयान्नरः ।।१।।
ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने । अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ।।२।।
([5]निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।) नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।३।।
वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने[6] । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।४।।
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।५।।

गुणों को शुद्ध करके अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करता है। इसके विपरीत विरक्त (निष्काम) योगी चित्स्वरूप होकर समस्त इच्छाओं से ऊपर उठकर इन्द्रियविषयों और तन्मात्राओं (शब्द, रूप, रस आदि) से मुक्त होकर चैतन्य रूप को प्राप्त कर लेता है ।।३५-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वतोभद्रमण्डलविधि-वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३०।।

अध्याय ३१

अपामार्जन विधान

अग्निदेव बोले-अब मैं अपनी तथा दूसरों की रक्षा करनेवाली अपामार्जन विधि को बतलाऊँगा। इसके द्वारा मनुष्य दुःखों से मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है ।।१।। ॐ महात्मा, अरूप, बहुरूप, निष्पाप, शुद्ध, ध्यानयोगरत, सर्वव्यापक, परमार्थ, पुरुष परमात्मा को नमस्कार है। आज मैं (अपामार्जनकर्त्ता) भगवान् को नमस्कार करके जिस तत्त्व को कह रहा हूँ उससे मेरी वाणी सफल हो ।।२-३।। वराह, नृसिंह और महात्मा वामन को नमस्कार कर जो कुछ बोल रहा हूँ, वह सार्थक हो ।।४।। त्रिविक्रम, राम, वैकुण्ठ और नर को नमस्कार करके जिस वाणी का उच्चारण कर रहा हूँ वह वाणी सिद्धिप्रदायिनी हो ।।५।। हे वराह, नृसिंह, ईश, वामनेश, त्रिविक्रम, हयग्रीवेश, सर्वेश, हृषीकेश ! आप

---

१ क. ङ. च. °विलाप्य च। २ घ. देवात्मको। ३ क. ङ. च. °क्ष्ये सम्मार्जनाह्व°। घ. °क्ष्ये तां मार्ज°। ४ क. ङ. च. °खं ब्रह्माप्नु°। ५ निष्कल्मषाय°°°ध्यानयोगरताय च ङ. पुस्तके नास्ति। ६ ख. ग. महामुने।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम । हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ।।६।।
अपराजितचक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः । अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ।।७।।
हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु । मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य[1] च यत्फलम् ।।८।।
पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् । गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं[2] जरया जर ।।९।।
ॐ नमो[3] वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने । नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ।।१०।।
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे । महाहयरिपुस्कन्धधृष्टचक्राय[4] चक्रिणे ।।११।।
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः । महायज्ञवराहाय शेषभागाङ्कशायिने ।।१२।।
तप्तहाटककेशान्त[5] ज्वलत्पावकलोचन । वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ।।१३।।
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे । तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते[6] गां नमो नमः ।।१४।।
वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै । मर्द मर्द[7] महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ।।१५।।
नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलाज्ज्वल । भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान्[8] पश्यार्तिनाशन[9] ।।१६।।
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् । प्रशमं सर्वदुःखानि[10] नयत्वस्य जनार्दनः ।।१७।।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् । चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ।।१८।।

अब हमारे अमङ्गल नाश कीजिये ।।६।। अपने चक्र आदि चारों परमायुधों के कारण अपराजित आप अपने व्यापक और नित्य अनुभावों से सब दुष्टों का संहार करें ।।७।। अमुक व्यक्ति के दुर्योगों और पापों को नष्ट कर उसे कुशल करें। मृत्युबन्धन तथा अनिष्ट से भयप्रद फल, दुर्देयों के फल, दूसरों के द्वारा प्रयुक्त हुए अभिचार तथा विषस्पर्श एवं महारोग से उत्पन्न होनेवाले फल को शीघ्र ही जरा से जीर्ण कर दें ।।८–९।। ॐ वासुदेव को नमस्कार है। खड्गधारी कृष्ण को नमस्कार है। कमलनेत्र केशव और चक्रधर को नमस्कार है ।।१०।। कमल–किञ्जल्क के समान पीत और निर्मल वस्त्र को धारण करनेवाले, रण में शत्रुओं के गर्दन को काट देनेवाले और चक्र धारण करनेवाले को नमस्कार है ।।११।। अपने दाँतों पर पाताल से उठायी हुई पृथ्वी को धारण करनेवाले (वराह) और त्रिमूर्तिमान् को नमस्कार है। महायज्ञ वराह और शेषनाग के फनों पर शयन करनेवाले (भगवान् विष्णु) को नमस्कार है ।।१२।। तप्त स्वर्ण के समान सुनहले केशोंवाले, जलती हुई अग्नि के समान नेत्रवाले, वज्र से भी कठोर नख को धारण करनेवाले हे अलौकिक सिंह! आपको नमस्कार है ।।१३।। अति लघु रूप धारण करनेवाले, ऋक्, यजु और साम से सुशोभित तथा पृथ्वी को अपने पगों से नापनेवाले वामनरूपधारी आपको बार–बार नमस्कार है ।।१४।। हे वराह! सम्पूर्ण अशुभों और पापफलों को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। हे महादंष्ट्र! उन पापफलों को रौंद दो, रौंद दो ।।१५।। हे नृसिंह! करालमुख! दन्त–पंक्तियों की उज्ज्वल प्रभा से प्रभावित ! हे पीड़ा–भंजक! देखिये! आप अपने गम्भीर गर्जन से इन दुष्ट शत्रुओं को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये ।।१६।। वामनरूपधारिन् जनार्दन! अपनी ऋक्, यजुः और सामगर्भित वाणी से इस व्यक्ति के सब दुःखों को शान्त कर दीजिये ।।१७।। गोविन्द! एक दिन बाद आनेवाले, दो दिन बाद आनेवाले अथवा तीन दिनों के बाद आनेवाले ज्वर को, चार दिन के बाद आनेवाले उग्र ज्वर को, सदा रहनेवाले ज्वर

---

१ ख. ग. दुरितस्य। २ घ. गदस्थ°। ३ ख. मो भगवते वा°। ४ घ. हरिरिपुस्कन्दसृष्ट°। ५ घ. °शाग्रज्व°। ६ क. ख. ग. ङ. च. °पायसृजते। ७ ङ. नर्द। ८ क. घ. ङ. च. °ष्टानस्यार्ति°। ९ क. ङ. °नार्दितान्। ऋ। १० ङ. °र्वदुष्टानि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दोषोत्थं सन्निपातात्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् । शमं नयाशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम् ।।१९।।
नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम् । अनिश्वासमतिश्वासं[1] परितापं सवेपथुम् ।।२०।।
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् । कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ।।२१।।
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ।।२२।।
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवा । कफोद्भवाश्च ये के चिद्ये चान्ये सान्निपातिकाः ।।२३।।
आगन्तुकाश्च ये[2] रोगा लूताविस्फोटकादयः । ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य[3] कीर्तनात् ।।२४।।
विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च । क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ।।२५।।
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् । नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।२६।।
स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद् विषम् । दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ।।२७।।
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् । शमं नयतु तत् सर्वं वासुदेवस्य[4] कीर्तनम् ।।२८।।
ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान् । वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान्[5] ।।२९।।
शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान्ग्रहान् । मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ।।३०।।
वृद्धिकाख्यान्[6] ग्रहां[7]श्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि । बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ।।३१।।
वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद्ये च बालग्रहाः क्वचित् । नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ।।३२।।
सटाकरालवदनो[8] नारसिंहो महाबलः । ग्रहानशेषान्निःशेषान्करोतु जगतो हितः[9] ।।३३।।
नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन । ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ।।३४।।

को, दोष–ज्वर, सन्निपात–ज्वर और भविष्य में आनेवाले ज्वर को शीघ्र शान्त कीजिये। इस व्यक्ति की सब वेदनाओं का हरण कर लीजिये ।।१८–१९।। नेत्रपीड़ा, सिर–पीड़ा, उदर–पीड़ा, साँस रुक–रुककर आना, दमा, कम्पन, परिताप, गुदा, नासिका और पैर के रोग, कुष्ठादि रोग तथा क्षय रोग, कामादि रोग, प्रमेह आदि दारुण रोग, भगन्दर, अतिसार, मुखरोग, वल्गुली, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, और अन्यान्य रोग, वातजन्य और पित्तजन्य व्याधियों अथवा कफजन्य रोग, सान्निपातिक रोग, लूता, विस्फोटक आदि आगन्तुक रोग वासुदेव के नाम–कीर्त्तन से शीघ्र ही दूर हो जायँ ।।२०–२४।। ये सब रोग विष्णु के नामोच्चारण से नष्ट हो जायँ और विष्णुचक्र के प्रहार से भी रोग नष्ट हो जायँ ।।२५।। मैं सच–सच कहता हूँ कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द नामोच्चारणरूपी ओषधि से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ।।२६।। स्थावर, जंगम या कृत्रिम विष को दाँत, नख या आकाश से उत्पन्न होनेवाले या अन्य दुःखदायी विषों को वासुदेव का नाम–कीर्त्तन शान्त कर दे ।।२७–२८।। ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, बेताल, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी, पूतना आदि, वैनायक, ग्रह, मुखमण्डी, क्रूर रेवती, वृद्ध रेवती, उग्र वृद्धिक नाम के ग्रह तथा उग्र मातृग्रह इन बालग्रहों को बालक रूपधारी विष्णु का चरित्र (कृष्णलीला) नष्ट करे ।।२९–३१।। जो कोई वृद्धग्रह, बालग्रह अथवा नरसिंह की अग्निदृष्टि से यौवन में ही भस्म होनेवाले ग्रह हैं उनको अपनी सटा (केसर) से विकराल वदनवाले महाबली नृसिंह संसार के कल्याण के लिए नष्ट कर दें ।।३२–३३।। हे नरसिंह! महासिंह ज्वाला–माला से प्रकाशपूर्ण आननवाले अग्निलोचन! सर्वेश! सब अशुभ ग्रहों को खा जाइये, खा जाइये ।।३४।। इसके जितने

---

१ घ. अन्तःश्वा°। २ क. देवस्य चाज्ञया। वि°। ३ अत्र भगन्दरातिसारांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम्। इत्येतच्छ्लोकार्द्धं ख. ग. पुस्तकयोरधिकं वर्तते। ४ क. ख. ग. घ. च. कीर्तितोऽस्य जनार्दनः। ५ क. ङ. °न्। वासुकीपू°। ६ घ. वृद्धका°। ७ क. ङ. च. °हांश्चान्यांस्त°। ८ घ. सदा क°। ९ ङ. हरिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ये रोगा ये महोत्पाता यद् विषं ये महाग्रहाः । यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।।३५।।
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः । तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ।।३६।।
किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय । क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ।।३७।।
सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ! सुदर्शन महाज्वालच्छिन्धि च्छिन्धि महारव ।।३८।।
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण । प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ।।३९।।
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः[1] । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।।४०।।
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः । यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।४१।।
तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै । यथा विष्णौ स्मृते सद्यः सङ्क्षयं यान्ति पातकाः ।।४२।।
सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु । यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते ।।४३।।
सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।।४४।।
वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं[2] मया । अपमार्जति[3] गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ।।४५।।
तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो[4] वचनाद्धरेः । अपमार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम् ।।४६।।
अहं हरिः कुशा[5] विष्णुर्हता रागा मया तव ।।४७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुशापामार्जनस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

रोग, महोत्पात, विष, महाग्रह, क्रूर भूत, दारुण ग्रह–पीड़ा, शस्त्रप्रहार के घावों से होनेवाले घावों के दोष और ज्वाला–गर्दभ आदि दोष हैं–सर्वात्मा, परमात्मा, जनार्दन, वासुदेव, आप इन समस्त बाधाओं को कोई रूप धारण करके अपनी ज्वालामाला से भीषण चक्रसुदर्शन के प्रहार से नष्ट कर दीजिये ।।३५–३७।। हे देववर अच्युत! सब दुष्टों को नष्ट कर दीजिये! हे सुदर्शन! महाज्वाल! इसके सभी अशुभों को छिन्न–भिन्न कर दीजिये ।।३८।। हे विभीषण! तुम्हारे भय से सब दुष्ट राक्षस नष्ट हो जायँ! सर्वात्मन् नृसिंह! आप अपने गर्जन से पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में रक्षा कीजिये ।।३९–३९$\frac{1}{2}$।। आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में पीछे, आगे और अगल–बगल व्यापक बहुरूप जनार्दन भगवान् रक्षा करें। जैसे कि विष्णु देव, असुर तथा सम्पूर्ण जगत्स्वरूप हैं, इस सत्य के द्वारा इसके सारे दुष्ट ग्रह शान्त हो जायँ। जिस प्रकार विष्णु के स्मरण से सारे पातक शीघ्र नष्ट हो जाते हैं उस सत्य के आधार पर इसके सब दुरित नष्ट हो जायँ। जैसे यज्ञेश्वर विष्णु की स्तुति देवमण्डली में भी की जाती है वैसे ही उस सत्य के द्वारा जो कल्याण मैं करता हूँ वह अविकल रूप से प्राप्त हो। इस (यजमान) को शान्ति मिले, शिव प्राप्त हों और इसके सब दुरित शान्त हो जायँ ।।४०–४४।। मैंने वासुदेव के शरीर के रोम से उत्पन्न हुए कुशों से इसके सम्पूर्ण दुरित नष्ट कर दिये हैं, इसी प्रकार गोविन्द, नर और नारायण इस अपामार्जन से सब अशुभों को नष्ट करें ।।४५।। हरि के नाम–कीर्त्तन से सब दुःखों की शान्ति हो जाय। इस प्रकार का अपामार्जन श्रेयस्कर, प्रशस्त और सब रोगों को दूर करनेवाला है ।।४६।। मैं हरि हूँ, मैं विष्णु हूँ। मैंने तुम्हारे सब रोगों को नष्ट कर दिया है ।।४७।।

श्री अग्निमहापुराण में कुशापामार्जन स्तोत्र वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३१।।

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. सुगार्जितैः। २ घ. °निर्मथितं°। ३ घ. अपमार्जतु। ४ घ. °शमो जपना°। ङ °शमः कीर्तना°। ५ घ. कुशो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच

निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्वारिंशत्तथाष्ट[1] च । संस्कारान् कारयेद्धीमाञ्शृणु तान् यैः सुरो भवेत् ।।१।।
गर्भाधानं तु योन्यां वै ततः पुंसवनं चरेत् । सीमन्तोन्नयनं चैव जातकर्म च नाम च ।।२।।
अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्य[2] व्रतानि च । ([3]चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रौतिकी तथा ।।३।।
गोदानं स्नातकत्वं च पाकयज्ञाश्च सप्त ते । अष्टका पार्वणश्राद्धं[4] श्रावण्याग्रायणीति[5] च ।।४।।)
चैत्री चाश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च ताञ्शृणु । आधानं चाग्निहोत्रं च दर्शो वै पौर्णमासकः ।।५।।
चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः । सोमस्थाः[6] सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः ।।६।।
अत्यग्निष्टोम उक्थ्यश्च[7] षोडशी वाजपेयकः[8] । [9]अतिरात्रोऽप्तोर्यामश्च सहस्रेशा सवा इमे ।।७।।
[10]हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षा हिरण्यमित्र इत्यतः । हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रकः ।।८।।
हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान् । अश्वमेधो हि सर्वेशो गुणाश्चाष्टाथ ताञ्छृणु ।।९।।

अध्याय ३२

निर्वाणदीक्षासंस्कार की सिद्धि का वर्णन

अग्निदेव बोले–अब मैं निर्वाण और दीक्षा–विधियों में जिन संस्कारों का करना किसी बुद्धिमान् के लिए आवश्यक होता है और जिसके द्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है उनके विषय में कह रहा हूँ ।।१।। पहले गर्भाधान संस्कार तदनन्तर पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म और नामकरण संस्कार करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म और ब्रह्मचर्य–व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी–ये चार प्रकार की संस्कार विधियाँ हैं। उपर्युक्त चार और गोदान, स्नातकत्व और पाकयज्ञ– ये मिलाकर इनकी संख्या सात हो जाती है। अष्टका, पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रायणी, चैत्री और आश्वयुजी– ये पाकयज्ञ है। अब सात हविर्यज्ञों की नामावली सुनो! ये हैं–आधान, अग्निहोम, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध और सौत्रामणि। अब सात सोमसंस्थाओं के सम्बन्ध में सुनिये। उत्तमक्रतु (यज्ञ), अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेयक, अतिरात्र, आप्तोर्याम, सहस्रेश सव (यज्ञ) कहलाते हैं ।।२–७।। हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्रक, हिरण्यास्य (हिरण्यमुख), हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सर्वेश अश्वमेध– ये उत्तम यज्ञ हैं। अब अष्ट गुण का वर्णन सुनिये ।।८–९।। ये हैं–सब प्राणियों पर दया, क्षमा, विनम्रता, पवित्रता,

---

१ क. ङ. च. °ष्टकम्। सं°। २ ख. ग. घ. ङ. °चर्यव्र°। ३ चत्वारि…च पुस्तके नास्ति। ४ ख. ग. °र्वणं श्रा°। ५ घ. °वण्यग्रां। ६ घ. उदक्थश्च। ७ उक्थश्च। ८ क. ङ. च. °कः। त्रिरात्रश्चाप्तो°। ९ ख. घ. °रात्राप्तो°। १० ख. °व्याब्धिर्हि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथार्जवम्। शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चापरो गुणः ।।१०।।
अकार्पण्यञ्चास्पृहा च मूलेन जुहुयाच्छतम्। सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्वेतेसमाः स्मृताः ।।११।।
संस्कारैः संस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। सर्वरोगादिनिर्मुक्तो देववद् वर्तते नरः ।।१२।।
जप्याद्धोमात्पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक् ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणविधिकथनम्

अग्निरुवाच

पवित्रारोपणं[1] वक्ष्ये वर्षपूजाफलं[2] हरेः। आषाढादौ कार्तिकान्ते प्रतिपत्[3] त्यज्यते तिथिः ।।१।।
श्रिया गौर्या गणेशस्य सरस्वत्या गुहस्य च। मार्तण्डमातृदुर्गाणां [4]नागर्षिहरिमन्मथैः ।।२।।
शिवस्य ब्रह्मणस्तद्वद् द्वितीयादितिथिक्रमात्। यस्य देवस्य यो भक्तः पवित्रा तस्य सा तिथिः ।।३।।

अनायास (शक्ति के अनुसार श्रम), मङ्गल, अकृपणता (उदारता) और अस्पृहा (सन्तोष)। प्रत्येक दीक्षा कर्म में मूलमन्त्र से सौ बार आहुति देनी चाहिए ।।१०-११।। इन संस्कारों से संस्कृत मनुष्य भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करता है और सब प्रकार के रोगों से मुक्त होकर देवता के समान पूज्य होता है ।।१२।। इष्टदेव के जप, हवन, पूजन और ध्यान से मनुष्य निःसन्देह अपने इष्ट को प्राप्त कर लेता है ।।१३।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाणदीक्षा संस्कार की सिद्धि का वर्णन
नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२।।

अध्याय ३३

पवित्रारोपण विधि

अग्निदेव बोले–अब मैं पवित्रारोपण विधि और हरि की वर्ष-पूजा के फल का वर्णन करूँगा। आषाढ़ से लेकर कार्तिक तक उपर्युक्त विधियों का अनुष्ठान किया जाता है परन्तु प्रत्येक मास की प्रतिपदा तिथि इन कर्मों में अग्राह्य होती है ।।१।। श्री, गौरी, गणेश, सरस्वती, गुह, सूर्य, मातृका, दुर्गा, नाग, ऋषि, हरि, कामदेव, शिव और ब्रह्मा की क्रमशः द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णमासी एवं अमावस्या तिथियाँ हैं। जो जिस देवता का भक्त होता है उसके लिए उस देवता की तिथि पवित्र होती है ।।२-३।।

---

१ घ. °रोहणं। २ घ. °जाकलं ह°। ३ ख. °पद्वर्तते। घ. °पद्वनदा ति°। ङ. °पद्वलना ति°। ४ ङ. नागारिह°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आरोहणे तुल्यविधिः पृथङ्मन्त्रादिकं यदि । सौवर्णं राजतं ताम्रं नेत्रकार्पासिकादिकम् ।।४।।
ब्राह्मण्या कर्तितं सूत्रं तदलाभे तु संस्कृतम् । द्विगुणं[1] त्रिगुणीकृत्य तेन कुर्यात्पवित्रकम् ।।५।।
([2]अष्टोत्तरशतादूर्ध्वं तदर्धं चोत्तमादिकम्) । क्रियालोपविधातार्थं[3] यत्त्वयाभिहितं प्रभो ।।६।।
मया तत् क्रियते देव यथा यत्र पवित्रकम् । अविघ्नं तु भवेदेतत्[4] कुरु नाथ[5] तथाव्यय ।।७।।
प्रार्थ्य तन्मण्डलादौ तु गायत्र्या बन्धयेन्नरः । ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।।८।।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्[6] । एषा प्रयोज्या सर्वत्र देवानामनुरूपतः ।।९।।
जानूरुनाभिपादान्तं[7] प्रतिमासु पवित्रकम् । पादान्ता वनमाला स्यादष्टोत्तरसहस्रतः ।।१०।।
मालां तु कल्पसाध्यां वा द्विगुणां षोडशाङ्गुलात् । कर्णिकासरैः[8] पत्रैर्मन्त्राद्यं मण्डलान्तकम् ।।११।।
मण्डलाङ्गुलमात्रैकचक्राङ्गादौ[9] पवित्रकम् । स्थण्डिलेऽङ्गुलमानेन आत्मनः सप्तविंशतिः ।।१२।।
आचार्याणाञ्च सूत्राणि पितृमात्रादिकैः[10] स्वकैः । नाभ्यन्तं द्वादशग्रन्थिं तथा गन्धपवित्रके ।।१३।।
अङ्गुलात्कल्पनादौ द्विर्माला चाष्टोत्तरं शतम् । अथवार्कचतुर्विंशषट्त्रिंशन्मालिका द्विज[11] ।।१४।।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैर्मन्दाद्यैर्मालिकार्थिभिः । कनिष्ठादौ द्वादश वा ग्रन्थयः स्युः पवित्रके ।।१५।।

पवित्रक के लिए सोना, चाँदी, ताँबा, नेत्र (रेशम) और कपास का सूत उत्तम होता है। सूत ब्राह्मणी के हाथ का कता हुआ होना चाहिए। अन्यथा सूत का संस्कार करके उसका उपयोग किया जा सकता है। दुगुने सूत को तिगुना करके उससे पवित्रक बनाना चाहिए ।।४-५।। एक सौ आठ अंगुल या उससे कुछ अधिक लम्बा सूत उत्तम कोटि का और इसका आधा लम्बा सूत मध्यम कोटि का होता है। पहले त्रुटियों अथवा क्रियालोप-दोष को दूर करने के लिए भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे प्रभो! क्रियालोप-दोष को दूर करने के लिए जो कुछ तुम्हारे द्वारा शास्त्रों में विधि प्रदर्शन किया गया है उसी के अनुसार पवित्रक-आरोपण कर रहा हूँ। हे नाथ! अव्यय! आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे कि यह शुभ कर्म निर्विघ्न समाप्त हो सके ।।६-७।। इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त गायत्री मन्त्र से बने हुए मण्डल के चारों ओर रक्षा बन्धन करे। मन्त्र इस प्रकार है-"ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।।" देवों के अनुरूप इस गायत्री मन्त्र में परिवर्तन भी कर लेना चाहिए। प्रतिमा को सदा जानु, ऊरु (घुटना) और पैर तक लम्बा पवित्रक देना चाहिए। एक हजार आठ मणियों से बनी हुई वनमाला पैर तक होनी चाहिए ।।८-१०।। माला शक्ति के अनुसार अथवा बत्तीस अंगुल की होनी चाहिए। एक अंगुल परिमाण के पद्ममण्डल में कर्णिका, केसर, पत्र और मन्त्र तथा उसके बाह्य परिधि का पूजन करना चाहिए ।।११।। अंगुल-परिमाण से बनी हुई वेदिका के ऊपर के अपने २७ सूत्र, आचार्य और माता-पिता का पूजन करना चाहिए। (वेदिका की) नाभि के एक ओर बारह सूत्रों तथा पवित्रकों का पूजन करना चाहिए ।।१२-१३।। तदनन्तर एक सौ आठ मन्त्रों को पढ़कर दो अँगुलियों से दो मालाओं को बाँधना चाहिए। उसके बाद अनामिका और मध्यमा अँगुलियों से सूर्य देवता के लिए अलग चौबीस और छत्तीस मालाओं का पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् कनिष्ठिका

---

१ ख. घ. त्रिगुणं। २ अष्टोत्तर'''आदिकम् ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ङ. विधानार्थं। ४ ख. ग. घ. ङ. च. °वेदत्र कुरु। ५ क. ख ग. घ. च. °थ जयाव्य°। ६ ख. ग. घ. °याद्देवादिरनु। ७ ख. ग. ङ. च. °भिमानान्त°। घ. °भिनामान्त°। ८ ख. घ. °सरं पत्रं मन्त्रा°। ९ ख. °क्राङ्कादौ। १० ख. °दिषुते स्वके। ना°। घ °दि पुस्तके। ना°। ११ ख. घ. द्विजः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रवेः कुम्भहुताशादेः सम्भवे विष्णुवन्मतम् । पीठस्य पीठमानं स्यान्मेखलान्तं च कुण्डके ।।१६।।
यथाशक्ति सूत्रग्रन्थिः परिचारेऽथ वैष्णवे । सूत्राणि वा सप्तदश सूत्रेण त्रिविभक्तके ।।१७।।
रोचनागरुकर्पूरहरिद्राकुङ्कुमादिभिः । रञ्जयेच्चन्दनाद्यैर्वा स्नानसन्ध्यादिकृन्नरः ।।१८।।
एकादश्यां यागगृहे भगवन्तं हरिं यजेत् । समस्तपरिवाराय बलिं दद्यात्समर्चयेत् ।।१९।।
क्षौं क्षेत्रपालाय द्वारान्ते द्वारोपरि तथा श्रियम् । धात्रे[1] दक्षविधात्रे च गङ्गां च यमुनां तथा ।।२०।।
शङ्खपद्मनिधी पूज्य मध्ये वस्त्रप्रसारणम्[2] । सारङ्गायेति भूतानां भूतशुद्धिं स्थितश्चरेत् ।।२१।।
"ॐ हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः ।।२२।।
ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।।२३।।
ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । ([3]पञ्चोद्घातैर्गन्धतन्मात्रस्वरूपं भूमिमण्डलम्) ।।२४।।
चतुरस्त्रं च पीठं च काञ्चनं वज्रलाञ्छितम् । इन्द्रादिदैवतं पादयुग्ममध्यगतं स्मरेत् ।।२५।।
शुद्धं च रसतन्मात्रं प्रविलाप्याथ संहरेत् । रसमात्रं रूपमात्रे क्रमेणानेन पूजकः ।।२६।।
ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।।२७।।
ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।।२८।।

से प्रारम्भ करके अँगुलियों से विष्णु के समान सूर्य और अग्नि इत्यादि देवताओं की और बारह सूत्रों को स्थापित करना चाहिए ।।१४-१६।। यथाशक्ति वेदी के ऊपर विष्णु की पूजन-सामग्री के साथ यज्ञोपवीत को रख देना चाहिए। स्नान और सन्ध्या करनेवाले पुरुष को रोली, अगुरु, कपूर, हल्दी, लाक्षारस अथवा चन्दन से यज्ञोपवीत के सत्रह सूत्रों को तीन भागों में विभक्त करके रँग लेना चाहिए ।।१७-१८।। एकादशी तिथि को याग-गृह में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। पहले समस्त परिवार को बलि दे तत्पश्चात् पूजा करे। "क्षौं क्षेत्रपालाय नमः"-इस मन्त्र से द्वारान्त पर क्षेत्रपालों को बलि दे। द्वार के ऊपर लक्ष्मी, धातृ, दक्षविधातृ, गंगा, यमुना, शंख और पद्मनिधि की पूजा करके बलि देनी चाहिए। द्वार के मध्य भाग में एक वस्त्र 'सारङ्गाय नमः' कहकर फैला दे। तत्पश्चात् स्थित होकर भूतों की पूजा करे और भूतशुद्धि करे ।।१९-२१।। "ॐ हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः"-इन पाँच प्रार्थनामन्त्रों से गन्धतन्मात्रस्वरूप, चौकोर, वज्र से चिह्नित सुवर्णमय पीठ इन्द्रदेवतात्मक विष्णु के दोनों चरणों के मध्यवर्ती भूमण्डल का स्मरण करना चाहिए और साधक को शुद्ध रसतन्मात्र में विलयित कर संहार कर देना चाहिए ।।२२-२५½।। इस क्रम से रसतन्मात्रा को रूपतन्मात्रा में आगे कहे हुए मन्त्रों का उच्चारण कर संहृत करे। मन्त्र यह है-"ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट्

---

१ घ. °त्रे दक्षे वि°। २ ख. ग. घ. च. वास्त्वपवारणम्। ३ पश्चोद्घातैः....भूमिमण्डलम् ङ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जानुनाभिमध्यगतं श्वेतं वै पद्मलाञ्छितम्। शुक्लवर्णं चार्धचन्द्रे ध्यायेद्वरुणदैवतम् ।।२९।।
चतुर्भिश्च तदुद्घातैः शुद्धं तद्रसमात्रकम्। संहरेद्रसतन्मात्रं रूपमात्रे च योजयेत् ।।३०।।
ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः। ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।।३१।।
ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः। इति त्रिभिस्तदुद्घातैस्त्रिकोणं वह्निमण्डलम् ।।३२।।
नाभिकण्ठमध्यगतं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम्। ध्यात्वानलाधिदैवं तच्छुद्धं स्पर्शे लयं नयेत् ।।३३।।
ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः। ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।।३४।।
कण्ठनासामध्यगतं वृत्तं वै वायुमण्डलम्। द्विरुद्घातैर्धूमवर्णं ध्यायेच्छुद्धेन्दुलाञ्छितम् ।।३५।।
स्पर्शमात्रं शब्दमात्रैः संहरेद् ध्यानयोगतः। ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।।३६।।
एकोद्घातेन चाकाशं शुद्धस्फटिकसन्निभम्। नासापुटशिखान्तस्थमाकाशमुपसंहरेत् ।।३७।।
शोषणाद्यैर्देहशुद्धिं कुर्यादेवं क्रमात्ततः। शुष्कं कलेवरं ध्यायेत् पादाद्यं च शिखान्तकम् ।।३८।।
यं-बीजेन वं-बीजेन ज्वालामालासमायुतम्। देहं रमित्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्राद् विनिर्गमम् ।।३९।।
बिन्दुं ध्यात्वा चामृतस्य तेन भस्मकलेवरम्। सम्प्लावयेल्लमित्यस्माद् देहं सम्पाद्य दिव्यकम् ।।४०।।
न्यासं कृत्वा करे देहे मानसं यागमाचरेत्। विष्णुं साङ्गं हृदि पद्मे मानसैः कुसुमादिभिः ।।४१।।
मूलमन्त्रेण देवेशं प्रार्चयेद्[1] भुक्तिमुक्तिदम्। स्वागतं देव! देवेश सन्निधौ भव केशव ।।४२।।

हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं सहंरामि नमः"। तदनन्तर जानु और नाभि के मध्य में श्वेतपद्म से युक्त, शुक्लवर्ण के वरुण देवतात्मक अर्धचन्द्र का ध्यान करना चाहिए। इन चार मन्त्रों से शुद्ध रसतन्मात्र को संहृत करके रसतन्मात्रा को रूपतन्मात्र से युक्त कर देना चाहिए ।।२६-३०।। "ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः"-इन तीन मन्त्रों से त्रिकोण वह्निमण्डल, नाभि और कण्ठ के मध्यगत स्वस्तिक चिह्न से युक्त अग्निदेव का ध्यान करके शुद्ध रूपतन्मात्र को स्पर्शतन्मात्र में विलीन करना चाहिए ।।३१-३३।। "ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रमुपसंहरामि नमः", "ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रमुपसंहरामि नमः"-इन दो मन्त्रों से कण्ठ और नासिका के मध्य स्थित गोलाकार धूमवर्ण और पूर्णचन्द्र से युक्त वायुमण्डल का ध्यान करके स्पर्शतन्मात्रा को ध्यानयोग के द्वारा शब्दतन्मात्रा में विलीन करना चाहिए। "ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः"-इस मन्त्र से शुद्ध स्फटिक के समान, नासिका और शिखान्तस्थ आकाश का ध्यान करके उसे संहृत करना चाहिए। इस प्रकार शोषण (योग-क्रिया) के द्वारा क्रमशः देह-शुद्धि करनी चाहिए। तत्पश्चात् पैर से लेकर शिखा तक सम्पूर्ण शुष्क कलेवर का ध्यान करना चाहिए ।।३४-३८।। 'यं' 'वं'-इन बीजों से युक्त ज्वालामाला से समन्वित ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न 'रम्' बीज से युक्त देह को अमृत-विन्दु का ध्यान कर उससे भस्मयुक्त कलेवर को आर्द्र करना चाहिए। 'लं' मन्त्र से शरीर को दिव्य बना देना चाहिए ।।३९-४०।। हृदय-कमल पर अंग सहित विष्णु की प्रतिष्ठा कर मानस कुसुमों से मूल मन्त्र के द्वारा भुक्ति और मुक्ति के दाता देवेश का मानस योग शरीर और हाथ पर न्यास करके करना चाहिए। मन्त्रदेव! देवेश!

---

१ क. ङ. च. प्रार्थये°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गृहाण मानसीं पूजां यथार्थं परिभाविताम् । आधारशक्तिः कूर्मोऽथ पूज्योऽनन्तो मही ततः ।।४३।।
मध्येऽग्न्यादौ च धर्माद्या अधर्माद्याश्च मुख्यगाः । सत्त्वादिमध्ये पद्मं च मायाविद्याख्यतत्त्वके ।।४४।।
कालतत्त्वं च सूर्यादिमण्डलं पक्षिराजकः । मध्ये ततश्च वायव्यादीशान्ता गुरुपङ्क्तिका ।।४५।।
गणः सरस्वती पूज्या नारदो नलकूबरः । गुरुर्गुरोः पादुका च परोगुरुश्च पादुका ।।४६।।
पूर्वसिद्धाः परसिद्धाः केसरेषु च शक्तयः । लक्ष्मी सरस्वती प्रीतिः कीर्तिः शान्तिश्च कान्तिका ।।४७।।
पुष्टिस्तुष्टिर्महेन्द्राद्या मध्ये चावाहितो हरे । धृतिः श्रीरतिकान्त्याद्या मूलेन स्थाप्यतेऽच्युतः ।।४८।।
ॐ अभिमुखो भवेति प्रार्थ्य प्राच्यां सन्निहितो भव । विन्यस्यार्घ्यादिकं दत्त्वा गन्धाद्यैर्मूलतो यजेत् ।।४९।।
ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वै नमः । मर्दय मर्दय शिखामग्न्यादौ क्रमतोऽस्त्रकम् ।।५०।।
"रक्ष रक्ष प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः । हूं फट् अस्त्राय नमो मूलबीजेन चाङ्गकम् ।।५१।।
पूर्वदक्षाप्यसौम्येषु मूर्त्यावरणमर्चयेत् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।।५२।।
अग्न्यादौ श्रीरतिधृतिकान्तयो मूर्तयो हरेः । शङ्खं चक्रं गदां पद्ममग्न्यादौ पूर्वकादिकम् ।।५३।।
शार्ङ्गं च मुसलं खड्गं वनमालां च तद्बहिः । इन्द्राद्यांश्च तथानन्तं नैर्ऋत्यां वरुणं ततः ।।५४।।
ब्रह्मेन्द्रेशानयोर्मध्ये अस्त्रावरणकं बहिः । ऐरावतस्ततश्छागो महिषोऽथ नगेशयः ।।५५।।

तुम्हारा स्वागत है। केशव! तुम्हारा सामीप्य मुझे प्राप्त हो। श्रद्धापूर्वक अर्पित की हुई मानसी पूजा को ग्रहण करो। इस प्रकार विष्णु की मानसी पूजा करके आधार शक्ति, कूर्म और मही की पूजा करनी चाहिए ।।४१-४३।। अग्नि आदि के मध्य में और वायव्य तथा ईशान्त तक गुरु, गण, सरस्वती, नारद, नलकूबर, गुरु, गुरु पादुका, परगुरु पादुका की पूजा करनी चाहिए। कमल केसरों पर पूर्व सिद्ध, पर सिद्ध शक्तियों, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि, तुष्टि, महेन्द्र आदि की स्थापना करके मध्य में हरि का आह्वान करना चाहिए। धृति, श्री, रति, कान्ति की प्रतिष्ठा करके मूलमन्त्र से अच्युत की स्थापना करनी चाहिए ।।४४-४८।। "ॐ अभिमुखो भव"-इस मन्त्र से प्रार्थना करके "ॐ प्राच्यां सन्निहितो भव"-इस मन्त्र से प्रतिष्ठा करके अर्घ्य आदि देकर मूलमन्त्र से गन्ध आदि के द्वारा पूजा करनी चाहिए ।।४९।। "ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वै नमः मर्दय मर्दय शिखामग्न्यादौ"-इस मन्त्र से क्रम अस्त्रक करे ।।५०।। "ॐ रक्ष रक्ष प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः हूं फट् अस्त्राय नमः"-इस मन्त्र-बीज से अङ्गन्यास करना चाहिए ।।५१।। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की मूर्तियों की संगोपांग पूजा करनी चाहिए ।।५२।। अग्नि आदि कोणों में श्री, रति, धृति, कान्ति आदि विष्णु-मूर्तियों को स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिए। अग्निकोण से पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म की स्थापना करनी चाहिए ।।५३।। उसके बाद बाहर की ओर शार्ङ्गधनुष, मुसल, खड्ग, वनमाला की तथा कोणों में इन्द्र आदि देवों की तथा अनन्त और नैर्ऋतकोण में वरुण की, ईशान और पूर्व दिशा के मध्य में ब्रह्मा की स्थापना करके पूजा करनी चाहिए। अस्त्र और आवरण को बाह्य भाग में स्थापित करना चाहिए। ऐरावत, छाग, भैंसा, नगेशय, मृग,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृगः शशोऽथ वृषभः कूर्मो हंसस्ततो बहिः। पृश्निगर्भः कुमुदाद्या द्वारपाला द्वयं द्वयम् ।।५६।।
पूर्वाद्युत्तरद्वारान्तं हरिं नत्वा बलिं बहिः। विष्णुपार्षदेभ्यो नमो बलिपीठे बलिं ददेत् ।।५७।।
([1]विश्वाय विष्वक्सेनात्मने ईशानके यजेत्)। देवस्य दक्षिणे हस्ते रक्षासूत्रं च बन्धयेत् ।।५८।।
संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने। पवित्रारोहणायेदं कौतुकं धारय ॐ नमः ।।५९।।
उपवासादिनियमं कुर्याद्वै देवसन्निधौ। उपवासेन नियतो देवं सन्तोषयाम्यहम् ।।६०।।
कामक्रोधादयः सर्वे मा मे तिष्ठन्तु सर्वथा। अद्यप्रभृति देवेश यावद् वैशेषिकं दिनम् ।।६१।।
यजमानो ह्यशक्तश्चेत्कुर्यान्नक्तादिकं व्रता। हुत्वा विसर्जयेत् स्तुत्वा श्रीकरं नित्यपूजनम् ।।६२।।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः ।।६३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदेवतासाधारणपवित्रकारोपणविधिकथनं
नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

खरहा, बैल, कछुआ और हंस को बाह्य भाग में स्थापित करके पृश्निगर्भ और कुमुद नामक दो द्वारपालों को स्थापित करे। तदनन्तर पूर्व से लेकर उत्तर द्वार तक हरि को ले जाकर बाहर नमस्कार करे। "विष्णुपार्षदेभ्यो नमः"–इस मन्त्र से बलिपीठ पर बलि चढ़ानी चाहिए ।।५४–५७।। ईशानकोण में "विश्वाय विष्वक्सेनाय नमः" कहकर विष्वक्सेन की पूजा करे और देवता के दाहिने हाथ में रक्षासूत्र बाँध दे ।।५८।। रक्षा–सूत्र–बन्धन मन्त्र–"एक वर्ष तक की हुई पूजा के सम्पूर्ण फल को देनेवाले पवित्रक पर आरोहण करने के लिए इस कौतुक को धारण कीजिये। आपको नमस्कार है। देवता के समीप उपावासादि नियमों को करना चाहिए। उपवास संकल्प–मन्त्र–"नियमपूर्वक उपवास के द्वारा देव को प्रसन्न करूँगा" ।।५९–६०।। देवेश! आज से लेकर जब तक वैशेषिक दिन (व्रत का दिन) रहे तब तक काम, क्रोध आदि का आक्रमण मेरे ऊपर न हो ।।६१।। यदि यमजान अधिक दिन तक उपवास करने में समर्थ न हो तो एक दिन और रात व्रत करे। उपवासान्त में हवन करके श्रीकर का नित्य पूजन करके उसका विसर्जन करना चाहिए। विसर्जन–मन्त्र यह है–"ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः" ।।६२–६३।।

श्री अग्निमहापुराण में पवित्रकारोपण विधि–वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३।।

---

१ विश्वाय...यजेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणे पूजाहोमादिविधिः

अग्निरुवाच

विशेदनेन मन्त्रेण यागस्थानं च भूषयेत् । नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ।।१।।
ऋग्यजुः सामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे । विलिख्य मण्डलं सायं यागद्रव्यादि चाहरेत् ।।२।।
प्रक्षालितकराङ्घ्रिः सन् विन्यस्यार्घ्यकरो नरः । अर्घ्याद्भिस्तु शिरः प्रोक्ष्य द्वारदेशादिकं तथा ।।३।।
आरभेद् द्वारयागं च तोरणेशान्प्रपूजयेत् । अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पूर्वादिगा नगाः ।।४।।
ऋगिन्द्रशोभनं प्राच्यां यजुर्यमसुभद्रकम् । सामापश्च सुधन्वाख्यं सोमाथर्वसुहोत्रकम् ।।५।।
तोरणान्तः[1] पताकाश्च कुमुदाद्या घटद्वयम् । द्वारि द्वारि स्वनाम्नार्च्याः पूर्वे पूर्णश्च पुष्करः ।।६।।
आनन्दनन्दनौ दक्षो वीरसेनः सुषेणकः । सम्भवप्रभवौ सौम्ये द्वारपांश्चैव पूजयेत् ।।७।।
अस्त्रजप्तपुष्पक्षेपाद्विघ्नानुत्सार्य संविशेत्[2] । भूतशुद्धिं विधायाथ विन्यस्य कृतमुद्रकः[3] ।।८।।
फट्कारान्तं[4] शिखां जप्त्वा सर्षपान्दिक्षु निक्षिपेत् । वासुदेवेन गोमूत्रं सङ्कर्षणेन गोमयम् ।।९।।
प्रद्युम्नेन पयस्तज्जाद्दधि नारायणाद् घृतम् । एकद्वित्र्यादिवारेण[5] घृताद्वै भागतोऽधिकम् ।।१०।।

अध्याय ३४

पवित्रकारोपण में पूजाहोमादि विधि

अग्निदेव बोले–"ब्राह्मणों (ज्ञानियों) की रक्षा करनेवाले देव, श्रीधर, अव्ययात्मा, ऋक्– यजुः–साम रूप शब्ददेह विष्णु को नमस्कार है।" इसका उच्चारण करता हुआ साधक यज्ञमण्डप में प्रवेश करे और यज्ञ–स्थान को सजाकर मण्डल का चित्रण करे और सायंकाल याग–सामग्री मँगा ले ।।१–२।। अपने हाथ–पैर धोकर, हाथ में अर्घ्य पात्र रखकर, अर्घ्य जल से सिर पर मार्जन करके द्वारदेश पर भी उस अर्घ्य जल को छिड़क देना चाहिए। पहले द्वारयज्ञ करे और तोरणेशों की पूजा करे। पीपल, गूलर, बरगद तथा पाकड़–इन वृक्षों की पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से पूजा करनी चाहिए। पूर्व दिशा में ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभन की; दक्षिण में यजुर्वेद, यम और सुभद्र की; पश्चिम में सामवेद, वरुण और सुधन्वा की और उत्तर में अथर्ववेद, सोम और सुहोत्र की पूजा करनी चाहिए ।।३–५।। प्रत्येक द्वार के मध्य में तोरण, पताका, कुमुद आदि और दो घट की स्थापना करके गोत्र आदि पूर्वक अपना नाम लेकर पूजा करनी चाहिए। पूर्व दिशा में पूर्ण और पुष्कर का, दक्षिण में आनन्द और नन्दन का, पश्चिम में वीरसेन और सुषेण का तथा उत्तर में सम्भव और प्रभव नामक द्वारपालों का पूजन करना चाहिए ।।६–७।। अस्त्र–मन्त्र का उच्चारण करके फूलों को चारों ओर बिखेरकर यज्ञमण्डप में प्रवेश करना चाहिए। भूतशुद्धि करके अंगन्यास को और मुद्राओं को धारण कर फट्कारान्त मन्त्र का जप करके सरसों को चारों ओर बिखेर दे। फिर पञ्चगव्य बनाना चाहिए। पञ्चगव्य बनाने की विधि–वासुदेव मन्त्र से गोमूत्र को, सङ्कर्षण–मन्त्र से गोबर को, प्रद्युम्न–मन्त्र से दूध को, अनिरुद्ध मन्त्र

---

१ क. ग. घ. ङ. च. °णान्तः प°। २ ख. सङ्क्षिपेत्। ३ क. ङ. च. कृतमूत्रकः। ४ क. ख. ग. ङ. च. °रान्तसिंहजप्तस°। ५ ख. ग. घ. च. °वाराणि घृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घृतपात्रे तदेकत्र पञ्चगव्यमुदाहृतम् । मण्डपप्रोक्षणायैकं चापरं प्राशनाय च ।।११।।
स्नानाय[1] दशकुम्भेषु इन्द्राद्याँल्लोकपान्यजेत् । पूज्याज्ञां श्रावयेत्तांश्च स्थातव्यं चाज्ञया हरेः ।।१२।।
यागद्रव्यादि[2] संरक्ष्य विकिरान् विकरेत्ततः । मूलाष्टशतसञ्जप्तान् कुशकूर्चान् हरेच्च तान् ।।१३।।
ऐशान्यां दिशि तत्रस्थं स्थाप्य कुम्भं च वर्धनीम् । कुम्भे साङ्गं हरिं प्रार्च्य वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ।।१४।।
प्रदक्षिणं यागगृहं [3]वर्धनीछिन्नधारया । सिञ्चन्नयेत्ततः कुम्भं पूजयेच्च स्थिरासने ।।१५।।
सपञ्चरत्नवस्त्राढ्ये[4] कुम्भे गन्धादिभिर्हरिम् । वर्धन्यां हेमगर्भायां यजेदस्त्रं च वामतः ।।१६।।
तत्समीपे वास्तुलक्ष्मीभूविनायकमर्चयेत् । स्नपनं कल्पयेद् विष्णोः सङ्क्रान्त्यादौ तथैव च[5] ।।१७।।
पूर्णकुम्भानवस्थाप्य[6] नवकोणेषु निर्व्रणान् । पाद्यमर्घ्यं[7] चाचमनं पञ्चगव्यं च निक्षिपेत् ।।१८।।
पूर्वादिकलशेऽग्न्यादौ पञ्चामृतजलाधिकम् । दधिक्षीरं मधूष्णोदं पाद्यं स्याच्चतुरङ्गकम् ।।१९।।
पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम् । तथाष्टाङ्गार्घ्यमाख्यातं यवगन्धफलाक्षतम् ।।२०।।
कुशाः सिद्धार्थपुष्पाणि तिला[8] द्रव्याणि चाऽऽहरेत्[9] । लवङ्गकक्कोलयुतं दद्यादाचमनीयकम् ।।२१।।

से दधि को और नारायण–मन्त्र से गाय के घी को मिलाना चाहिए। अन्य पदार्थ घृत की अपेक्षा क्रमशः एक, दो, तीन और चार भाग अधिक होना चाहिए। इन सब वस्तुओं को एक घी के बरतन में मिला देना चाहिए। इसे ही पञ्चगव्य कहते हैं। उसके एक भाग से मण्डप का प्रोक्षण करे और दूसरे भाग को आचमन और स्नान के लिए रखे। दस कलशों पर इन्द्र आदि दस लोकपालों को स्थापित करके पूजन करना चाहिए और विष्णु की आज्ञा से यहाँ सदा स्थित रहना चाहिए ।।८–१२।। यज्ञ–सामग्री की देखभाल करने के बाद विकिर को चारों ओर बिखेर दे। एक सौ आठ बार मूल–मन्त्रों को जपकर कुश की कूँची से अभिमन्त्रित करे और उनको (विकिरों को) इकट्ठा कर ले ।।१३।। ईशानकोण में एक कलश स्थापित करके उसके समीप ही वर्धनी स्थापित करे। कलश पर सपरिवार विष्णु की साङ्गोपाङ्ग पूजा करनी चाहिए और वर्धनी पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिए ।।१४।। यज्ञगृह की प्रदक्षिणा करके झाड़ू से जल को छिड़कता हुआ कलश को उस स्थान से उठाकर किसी स्थिर आसन पर रखकर पूजा करे ।।१५।। पञ्चरत्न और वस्त्र से अलङ्कृत उस घट पर गन्ध आदि से हरि की पूजा करके वर्धनी में सोना रखकर बायीं ओर अस्त्र की पूजा करे ।।१६।। उसके समीप ही वास्तुलक्ष्मी और भूविनायक की पूजा करे। सङ्क्रान्ति आदि तिथियों में विशेष रूप से विष्णु की स्नान–व्यवस्था करनी चाहिए ।।१७।। शेष कोनों में भी नव पूर्ण–कुम्भों को जिनमें छेद न हो–स्थापित करके पाद्य, अर्घ्य, आचमन और पञ्चगव्य छोड़ दे ।।१८।। अग्नि आदि कोणों में स्थापित प्रत्येक कलश में पञ्चामृत और दही, दूध, मधु और गरम जल मिलाकर बनाया हुआ चतुरङ्गक पाद्य देना चाहिए ।।१९।। कमल, साँवाँ, दूब, तुलसीदल, जौ, गन्ध, फल और अक्षत से मिलाकर बनाया हुआ अर्घ्य अष्टाङ्गक अर्घ्य कहा जाता है ।।२०।। कुश, श्वेत सरसों का फूल, तिल और द्रव्य–पूजन के लिए रखना चाहिए। लवङ्ग और कक्कोल से युक्त जल को आचमन के लिए देना चाहिए ।।२१।। मूल–मन्त्र के उच्चारण

---

१ घ. आनीय। २ क. ङ. च.° व्यादिसंरक्षा वि०। ३ ख. ग. घ. °र्धन्याश्छिन्न°। ४ क. ङ. च. °स्त्राद्यैः कु°। ५ क. ख. ग. ङ. च. च । पूर्वे कु०। ६ घ.° म्भान्नव स्था°। ७ घ° मर्घ्यमाचमनीयं प°। ८ क. ङ. तिलदर्भाणि। ९ क. च. चार्हणा। ख. घ. चार्हणम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नपयेन्मूलमन्त्रेण देवं पञ्चामृतैरपि । शुद्धोदं मध्यकुम्भेन देवमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ।।२२।।
कलशान्निःसृतं तोयं दूर्वाग्रं[1] संस्पृशेन्नरः । शुद्धोदकेन पाद्यं च अर्घ्यमाचमनं ददेत् ।।२३।।
परिमृज्य पटेनाङ्गं सवस्त्रं मण्डलं नयेत् । तत्राभ्यर्च्याचरेद् होमं कुण्डादौ प्राणसंयमी ।।२४।।
प्रक्षाल्य हस्तौ रेखाश्च तिस्रः पूर्वाग्रगामिनीः । दक्षिणादुत्तरान्ताश्च तिस्रश्चैवोत्तराग्रगाः ।।२५।।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् । ध्यात्वात्मरूपं[2] चाग्निं तु योन्या[3] कुण्डे क्षिपेन्नरः ।।२६।।
पात्राण्यासदयेत्पश्चाद् दर्भस्रुक्स्रुवकादिभिः । बाहुमात्राः परिधय इध्मव्रश्चनमेव च ।।२७।।
प्रणीतां प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीघृतादिकम् । प्रस्थद्वयं तण्डुलानां युग्मं युग्ममधोमुखम् ।।२८।।
प्रणीता प्रोक्षणीपात्रे न्यसेत्प्रागग्रगं कुशम् । अद्भिः पूर्य प्रणीतां तु ध्यात्वा देवं प्रपूज्य च ।।२९।।
प्रणीतां [4]स्थापयेदग्नेर्द्रव्याणां चैव मध्यतः । प्रोक्षणीमद्भिः सम्पूर्य प्रार्च्य दक्षे तु विन्यसेत् ।।३०।।
चरुं च श्रपयेदग्नौ बह्माणं दक्षिणे न्यसेत् । कुशानास्तीर्य पूर्वादौ परिधीन् स्थापयेत्ततः ।।३१।।
वैष्णवीकरणं कुर्याद्गर्भाधानादिना ततः[5] । गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जनिः ।।३२।।
नामादिसमावर्तनान्तं जुहुयादष्ट चाऽऽहुतीः । पूर्णाहुतिं[6] प्रतिकर्म स्रुचा स्रुवसुयुक्तया ।।३३।।

द्वारा पञ्चामृत से विष्णु को स्नान कराना चाहिए। मध्य कलश से शुद्ध जल को निकालकर देवता के सिर पर छिड़के ।।२२।। स्वयं यजमान कलश से निकले हुए जल एवं दूर्वाग्र का स्पर्श करे। तत्पश्चात् देवता को शुद्ध जल का पाद्य, अर्घ्य और आचमन दे ।।२३।। किसी वस्त्र से हरि का अंग सुखाकर वस्त्र आदि पहनाकर मण्डल में ले जाय। वहाँ भलीभाँति पूजा करके वह प्राण-संयमी व्यक्ति अग्नि में हवन करे ।।२४।। दोनों हाथ धोकर कुण्ड में या वेदी पर तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। ये रेखाएँ दक्षिण की ओर आरम्भ करके क्रमशः उत्तर की ओर से खींची जायँ। फिर इन्हीं के ऊपर तीन उत्तराग्र रेखाएँ खींचे। (ये भी दाहिने से आरम्भ करके क्रमशः बायें खींची जायँ।) ।।२५।। अर्घ्य जल से सम्प्रोक्षण (जल छिड़क) कर योनिमुद्रा दिखलाये। आत्मरूप का ध्यान करके कुण्डयोनि से कुण्ड में अग्नि छोड़े ।।२६।। तत्पश्चात् कुशा, स्रुक् और स्रुवा आदि से पात्रों का स्पर्श करे। भुजा के बराबर लम्बी परिधियाँ, कुठार, प्रणीता, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, घी, दूध आदि, दो पसेरी चावल, दो पात्रों में भरकर औंधा करके रख दे ।।२७-२८।। प्रणीता और प्रोक्षणीपात्र पर पूर्व की ओर आगे का हिस्सा करके कुशों को रख दे। प्रणीता को जल से भरकर अग्नि देवता का आह्वान करके विधिवत् पूजन करना चाहिए। प्रणीतापात्र को अग्नि तथा यज्ञार्थ रक्षित द्रव्यों के मध्य में रखना चाहिए। प्रोक्षणी को जल से भरकर उसे दक्षिण भाग में रखे ।।२९-३०।। अग्नि पर चरु को रख दे। ब्रह्मा को अग्नि से दक्षिण दिशा में रखे। पूर्व की ओर कुशा फैलाकर उस पर परिधियों को रख दे ।।३१।। इतनी क्रिया के अनन्तर गर्भाधान आदि से वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुंसवन, समीन्तोन्नयन, जन्म, नामकरण, चूड़ाकरण, व्रतबन्ध और समावर्तन संस्कार के लिए आठ आहुतियाँ दे। प्रत्येक हवन कर्म में स्रुक् और स्रुवा में संयुक्त कर अर्थात् स्रुक् और स्रुवा से स्पर्श करते हुए पूर्णाहुति दे ।।३२-३३।। कुण्ड के मध्य में ऋतुमती लक्ष्मी का ध्यान करके हवन करना चाहिए।

---

१ क. घ. ङ. च. कूर्चाग्रं। २ ख.° त्वान्नरु°। घ. °त्वाग्निरु°। ३ ख. घ. योन्यां। ४ क. °दग्रे द्र°। ५ क. घ. ङ. च. नरः। ६ ख. घ. ङ. च. पूर्णाहुतीः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुण्डमध्ये ऋतुमतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत् । कुण्डलक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।।३४।।
सा योनिः सर्वभूतानां विद्यामन्त्रगणस्य च । विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा तु मुक्तिदः[1] ।।३५।।
प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू कोणे व्यवस्थितौ । ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते ।।३६।।
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिर्योनिर्विधीयते । गुणत्रयं मेखलाः स्युर्ध्यात्वैवं समिधो दश ।।३७।।
पञ्चाधिकास्तु जुहुयात् प्रणवान्[2] मुष्टिमुद्रया । पुनराधारौ जुहुयाद् वाय्वग्न्यन्तं ततः श्रयेत् ।।३८।।
ईशान्तं मूलमन्त्रेण आज्यभागौ तु होमयेत् । उत्तरे द्वादशान्तेन दक्षिणे तेन मध्यतः ।।३९।।
व्याहृत्या पद्ममध्यस्थं ध्यायेद् वह्निं तु संस्कृतम् । वैष्णवं सप्तजिह्वं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।४०।।
[3]चन्द्रवक्त्रं च सूर्याक्षं[4] जुहुयाच्छतमष्ट च । तदर्धं [5]चाष्टमूलेन अङ्गानां च दशांशतः ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्रकारोपणसम्बन्धिपूजाहोमादिविधिकथनं
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

विज्ञों ने कुण्डलक्ष्मी को त्रिगुणात्मक प्रकृति रूप माना है ।।३४।। वह सब प्राणियों, विद्याओं और मन्त्रगणों की जननी है। अग्निदेव मुक्ति के एकमात्र कारण तथा परमात्मा मुक्ति के दाता हैं ।।३५।। ऋतुमती लक्ष्मी का सिर पूर्व की ओर रहता है। दोनों कोणों (ईशान और नैर्ऋत) में दोनों भुजाएँ, ईशान और अग्निकोण में दोनों जङ्घाएँ। कुण्ड उदर है और कुण्डयोनि योनि है। तीनों (सत्त्व, रजस् और तमस्) गुण उसकी मेखला हैं। इस प्रकार लक्ष्मी का ध्यान करके पन्द्रह समिधाओं का मुष्टिमुद्रा से हवन करे। तदनन्तर आधार हवन करे। वायु से अग्नि–पर्यन्त प्रत्येक लोकपाल के उद्देश्य से आहुतियाँ दे ।।३६–३८।। मूलमन्त्र से ईशानान्त तक आज्यभागों की आहुति करे। उत्तर में द्वादशान्त में, दक्षिण में और मध्य में व्याहृति से हवन करे। कमल–दल के मध्य में स्थित, कोटि सूर्य के समान कान्तिमान्, सात जीभवाले, चन्द्ररूपी मुख और सूर्यरूपी नेत्रवाले विष्णु रूप (विष्णु देवता का) अग्नि का ध्यान कर एक सौ आठ बार हवन करके उसके आधे से आठ बार अधिक और सम्पूर्ण अंगों के दशम भाग के बराबर आहुतियाँ दे ।।३९–४१।।

श्री अग्निमहापुराण में पवित्रारोपणसम्बन्धी पूजाहोमादिविधिकथन
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४।।

---

१ ख. च. भुक्तिदः। २ क. ङ. च. °वात्स्वस्तिमुद्रया। ३ क. ङ. च. पञ्चवक्त्रं। ४ क. ङ. च. सूर्याख्यं। ५ ख. चार्घम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिः

अग्निरुवाच

सम्पाताहुतिनासिच्य पवित्राण्यधिवासयेत् । नृसिंहमन्त्रजप्तानि गुप्तान्यस्त्रेण तानि तु ।।१।।
वस्त्रसंवेष्टितान्येव पात्रस्थान्यभिमन्त्रयेत् । ([1]बिल्वाद्यद्भिः प्रोक्षितानि मन्त्रेण चैकधा द्विधा) ।।२।।
कुम्भपात्रे तु संस्थाप्य रक्षां विज्ञाप्य देशिकः । दन्तकाष्ठं चामलकं पूर्वे सङ्कर्षणेन[2] तु ।।३।।
प्रद्युम्नेन भस्मतिलान् दक्षे गोमयमृत्तिकाम् । वारुणे चानिरुद्धेन सौम्ये नारायणेन च ।।४।।
दर्भोदकं चाथ हृदा अग्नौ कुङ्कुमरोचनम् । ऐशान्यां शिरसा धूपं शिखया नैर्ऋतेऽप्यथ ।।५।।
मूलपुष्पाणि दिव्यानि कवचेनाथ वायवे । [3]चन्दनाम्ब्वक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिताः ।।६।।
गृहं त्रिसूत्रेणाऽऽवेष्ट्य पुनः सिद्धार्थकान् क्षिपेत् । दद्यात् पूजाक्रमेणाथ स्वैः स्वैर्गन्धपवित्रकम् ।।७।।
मन्त्रैर्वै द्वारपादिभ्यो विष्णुं कुम्भे त्वनेन च । विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ।।८।।
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् । ([4]सम्पूज्य धूपदीपाद्यैर्व्रजेद् द्वारसमीपतः ।।९।।

अध्याय ३५

पवित्राधिवासन-विधि

अग्निदेव बोले–इस प्रकार उपर्युक्त विधि से पवित्रकारोपण और हवन करने के अनन्तर पवित्रक का अधिवासन करना चाहिए। नृसिंह का जप करके अस्त्र से अभिमन्त्रित करके उन पवित्रकों को गुप्त रूप से वस्त्रों से आच्छादित करके किसी पात्र में रखकर अभिमन्त्रित करे। पहले मन्त्रोच्चारण करके बिल्व-पत्र आदि से उस पात्र पर दो बार जल छिड़क दे। तत्पश्चात् गुरु उसको एक कलश में रखकर मन्त्र से रक्षित कर दे। संकर्षणमन्त्र से दातून और आँवला पूर्व दिशा में, प्रद्युम्न-मन्त्र में भस्म और तिल को दक्षिण दिशा में, गोबर और मिट्टी पश्चिम दिशा में अनिरुद्ध मन्त्र से, नारायण मन्त्र से उत्तर में कुश और जल को फेंक दे ।।१-४।। हृदय से अग्निकोण में कुंकुम और रोली छिड़के। सिर से ईशानकोण में धूप, शिखा से नैर्ऋतकोण में दिव्य मूल पुष्पों को, कवच से वायव्यकोण में एक पुड़िये में चन्दन, जल, अक्षत, दधि और दूध रखकर फेंक दे ।।५-६।। गृह को तीन सूत से आवेष्टित करके फिर पीले सरसों को चारों ओर फेंक दे। इस विधि से रक्षा-व्यवस्था करने के अनन्तर पूजन-क्रम से यथाविधि वेद-मन्त्रों से गन्ध और पवित्रक चढ़ाये। अपने-अपने मन्त्रों से द्वारपाल देवों को और कुम्भस्थ विष्णु को आगे कहे हुए मन्त्र से पूजा-सामग्री चढ़ावे। मन्त्र यह है–"देव, विष्णु-तेज से उत्पन्न, सब पापों को नष्ट करनेवाले और सब मनोरथों को देनेवाले इस सामग्री (गन्ध-पुष्प आदि) को तुम्हारे अंगों पर चढ़ा रहा हूँ। इस मन्त्र द्वारा धूप-दीप आदि से पूजन करके द्वार-देश से आगे बढ़े ।।७-९।। स्वयं अपने अंगों

---

१ बिल्वाद्यद्भि…द्विधा क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ क. ङ. च. सङ्घर्षणेन। ३ क. ङ. च. °नान्यक्ष°। ४ सम्पूज्य…धारयाम्यहम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गन्धपुष्पाक्षतोपेतं पवित्रं चाऽऽत्मनोऽर्पयेत्। पवित्रं वैष्णवं तेजो महापातकनाशनम् ।।१०।।
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम्)। ([1]आसने परिवारादौ गुरौ दद्यात्पवित्रकम्) ।।११।।
गन्धादिधिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः[2]। विष्णुतेजोद्भवेत्यादिमूलेन हरयेऽर्पयेत् ।।१२।।
वह्निस्थाय ततो दत्त्वा देवं सम्प्रार्थयेत्ततः। क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।।१३।।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव। इन्द्रादिभ्यस्ततो दत्त्वा विष्णुपार्षदके बलिम् ।।१४।।
ततो देवाग्रतः कुम्भं वासोयुगसमन्वितम्। रोचनाचन्द्रकाश्मीरगन्धाद्युदकसंयुतम् ।।१५।।
गन्धपुष्पादिनाऽऽभूष्य मूलमन्त्रेण पूजयेत्। मण्डपाद् बहिरागत्य विलिप्ते मण्डलत्रये ।।१६।।
पञ्चगव्यं चरुं दन्तकाष्ठं चैव क्रमाद् भजेत्[3]। पुराणश्रवणं स्तोत्रं पठञ्जागरणं निशि ।।१७।।
परप्रेषकबालानां स्त्रीणां भोगभुजां तथा। सद्योऽधिवासनं कुर्याद्विना गन्धपवित्रकम् ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिवर्णनं
नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

पर भी गन्ध, पुष्प, अक्षत से युक्त पवित्रक धारण करना चाहिए। पवित्रक धारण करने का मन्त्र यह है–"मैं धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए महापापों को नष्ट करनेवाले और पवित्र विष्णु तेज को अपने अंगों पर धारण कर रहा हूँ। अपने आसन, परिवार और गुरु आदि को भी पवित्रक अर्पित करे। गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन करके 'विष्णुतेजोद्भव'–आदि मन्त्र से विष्णु को सारी पूजा अर्पित कर दे ।।१०–१२।। तदनन्तर अग्निस्थ ब्रह्म की पूजन–सामग्री से पूजा करके देवता की प्रार्थना करे। प्रार्थना मन्त्र यह है–"क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थित विग्रह। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव।" इन्द्र आदि और विष्णु–पार्षदों को भी विधिपूर्वक बलि देनी चाहिए ।।१३–१४।। तदनन्तर देवता के सम्मुख युग्म–वस्त्रों से कुम्भ को आवेष्टित करके स्थापित करना चाहिए और फिर उन्हें रोचना, कपूर, केसर आदि सुगन्धित–पदार्थों से मिले हुए जल से भर देना चाहिए। फिर गन्ध, पुष्प आदि के द्वारा अलङ्कृत करके मूल–मन्त्र से पूजा करनी चाहिए। पूजनानन्तर मण्डप से बाहर आकर लिपे–पुते तीन मण्डलों में क्रमशः पञ्चगव्य, चरु और दातून रखे। पुराण सुने, स्तोत्र पाठ करे और रात्रि में जागरण करे ।।१५–१७।। दूसरों के भेजे हुए बालकों, स्त्री और भोगपरायण व्यक्तियों का अधिवासन बिना गन्ध और पवित्रक के ही करना चाहिए ।।१८।।

श्री अग्निमहापुराण में पवित्राधिवासनविधिवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३५।।

---

१ आसने…पवित्रकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. ग. घ. दिमत्। वि°। ३ ख. घ. °द्भवेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णुपवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच

प्रातः स्नानादिकं कृत्वा द्वारपालान् प्रपूज्य च। प्रविश्य गुप्ते देशे च समाकृष्याथ धारयेत् ।।१।।
पूर्वाधिवासितं द्रव्यं वस्त्राभरणगन्धकम्। निरस्य सर्वं निर्माल्यं देवं संस्नाप्य पूजयेत् ।।२।।
पञ्चामृतैः कषायैश्च शुद्धगन्धोदकैस्ततः। पूर्वाधिवासितं दद्याद् वस्त्रं गन्धं च पुष्पकम् ।।३।।
अग्नौ हुत्वा नित्यवच्च देवं सम्प्रार्थयेन्नमेत्। समर्प्य कर्म देवाय पूजां नैमित्तिकीं चरेत् ।।४।।
द्वारपालविष्णुकुम्भवर्धनीः प्रार्थयेद्धरिम्। अतो देवेति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कुम्भके ।।५।।
कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं[1] गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्। पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।६।।
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम्। शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ।।७।।
पवित्रं च हृदाद्यैस्तु आत्मानमभिषिच्य च। विष्णुकुम्भं च सम्प्रोक्ष्य व्रजेद् देवसमीपतः ।।८।।
पवित्रमात्मने दद्याद्रक्षाबन्धं विसृज्य च। गृहाण ब्रह्मसूत्रं च यन्मया कल्पितं प्रभो ।।९।।

अध्याय ३६

विष्णुपवित्रारोपणविधि

अग्निदेव बोले–भक्त प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त होकर द्वारपालों की पूजा करके गुप्त पूजा-मण्डप में जाय और पूर्व की रखी हुई वस्तुओं–वस्त्र, आभूषण, गन्ध, चन्दन तथा पहले की संस्कृत सामग्रियों को धारण करे। सभी निर्माल्य पदार्थों को दूर हटाकर देवता को स्नान कराये और विधिपूर्वक पूजन करे ।।१-२।। पहले पञ्चामृत से स्नान करावे, फिर कषाय जल और सुगन्धित जल से स्नान कराकर इष्टदेव को पहले से संस्कृत किये हुए वस्त्र, गन्ध और पुष्प आदि अर्पित करे ।।३।। नित्य की भाँति अग्नि में हवन करके देव की प्रार्थना और नमस्कार करे। सारे पूजन-कर्म को भगवान् के चरणों में अर्पित करके नैमित्तिक पूजा प्रारम्भ करे ।।४।। सबसे पहले द्वारपाल, विष्णु, कुम्भ, वर्धनी और हरि की 'अतो देव' इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना करे। आगे कहे गये मूल-मन्त्र से कुम्भ पर पवित्रक चढ़ाये ।।५।। मन्त्र इस प्रकार है–"कृष्ण! कृष्ण! तुमको नमस्कार है। मुझे पवित्र करने के लिए वर्ष-पूजा के फल को देनेवाले इस पवित्रक को ग्रहण करें। जो कुछ दुष्कर्म मैंने किये हैं उन्हें दूर करके मुझको आज पवित्र कर दें। सुरेश्वर! तुम्हारी कृपा से मैं शुद्ध हो रहा हूँ" ।।६-७।। इस मन्त्र से भगवान् को पवित्रक अर्पित करके हृद् आदि (मन्त्रों) से अपने ऊपर जल छिड़के और विष्णु-कुम्भ को भी सींचकर देवता के समीप जाय ।।८।। स्वयं भी पवित्रक धारण करे और रक्षाबन्धन को हटाकर प्रार्थना करे, "प्रभो ! मैंने जो यह ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) बनाया है उसको

---

१ ख. नमस्कृत्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्मणां पूरसार्थाय यथा दोषो न मे भवेत्। द्वारपालासनगुरुमुख्याणां च पवित्रकम् ।।१०।।
कनिष्ठादि च देवाय वनमालां च मूलतः। हृदादिविष्वक्सेनान्ते पवित्राणि समर्पयेत् ।।११।।
वह्नौ हुत्वा वह्निगेभ्यो विश्वादिभ्यः पवित्रकम्। प्राच्यं[1] पूर्णाहुतिं दद्यात् प्रायश्चित्ताय मूलतः ।।१२।।
अष्टोत्तरशतं वापि पञ्चोपनिषदैस्ततः। मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।।१३।।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज। वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ।।१४।।
तद्वत्पवित्रतन्तूंश्च पूजां च हृदये वह। कामतोऽकामतो वापि यत्कृतं नियमार्चने ।।१५।।
विधिना विघ्नलोपेन परिपूर्णं तदस्तु मे। प्रार्थ्य नत्वा क्षमाप्याथ पवित्रं[2] मस्तकेऽर्पयेत् ।।१६।।
दत्त्वा बलिं दक्षिणाभिर्वैष्णवं तोषयेद् गुरुम्। विप्रान् भोजनवस्त्राद्यैर्दिवसं पक्षमेव वा ।।१७।।
पवित्रं स्नानकाले वा अवतार्य समर्चयेत्[3]। अनिवारितमन्नाद्यं दद्याद् भुङ्क्तेऽथ केवलम् ।।१८।।
विसर्जनेऽह्नि सम्पूज्य पवित्राणि विसर्जयेत्। सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ।।१९।।
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः। मध्ये सोमेशयोः प्राच्यं विष्वक्सेनं हि तस्य च ।।२०।।
पवित्राणि समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत्। यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन् पवित्रे परिकल्पिताः ।।२१।।

ग्रहण कीजिये जिससे कि इस कर्म की पूर्ति हो जाय और मैं किसी दोष का भागी न बनूँ। द्वारपाल और आसनासीन गुरुजनों को पवित्रक अर्पित करे। मूलमन्त्र से वनमाला और हृद् से लेकर विष्वक्सेन तक को पवित्रक समर्पित करे ।।९-११।। वह्निग देवों के निमित्त अग्नि में हवन करके विश्वादि देवों को पवित्रक प्रदान करे और उनकी भली-भाँति पूजा करके मूलमन्त्र से प्रायश्चित्त के लिए पूर्णाहुति दे ।।१२।। एक सौ आठ मन्त्र-जप करे। मणि, विद्रुम की मालाओं से, मदार के फूलों से और पञ्चोपनिषद्-मन्त्रों से पूजन करे। "हे गरुड़ध्वज! यह आपकी वार्षिकी पूजा आपको ही समर्पित है। जिस प्रकार आपके हृदय पर सर्वदा कौस्तुभमणि और वनमाला शोभित रहती है उसी प्रकार अपने हृदय पर इन पवित्र तन्तुओं और पूजा को धारण करें। चाहे इच्छापूर्वक या अनिच्छा से अर्चना में जो कुछ त्रुटियाँ या विधिहीनता हुई हैं वे सब कुछ दूर हो जायँ और पूर्णफल प्राप्त हो।"-इस प्रकार प्रार्थना करके नमस्कार करे और क्षमा-याचना करके पवित्रक को मस्तक पर धारण करे ।।१३-१६।। देवों को बलि देकर एक या पन्द्रह दिन तक दक्षिणा द्वारा वैष्णव गुरु को और विप्रों को भोजन और वस्त्र आदि से सन्तुष्ट करता रहे ।।१७।। प्रतिदिन स्नान के समय पवित्रक को उतारकर पूजा करे, पवित्र अन्न का भोग लगावे और स्वयं भी भोजन करे ।।१८।। विसर्जन के दिन भगवान् की पूजा करके पवित्रक का विसर्जन कर देना चाहिए। विसर्जन का मन्त्र यह है-"हे पवित्रक! मेरी इस वार्षिक पूजा को विधिपूर्वक सम्पन्न करके अब विष्णुलोक को जाओ। मैं तुम्हें विदा कर रहा हूँ।" सोम और ईश के मध्य में विष्वक्सेन की पूजा करके और उनके पवित्रक की पूजा करके ब्राह्मण को अर्पित कर देना चाहिए। उस पवित्रक में

---

१ ख. ग. प्राच्यां। च. प्रार्थ्य। २ क. ख. ङ. च. °त्रं° पुस्तके। ३ ख. ग. घ. च. समर्पयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते। कुलानां शतमुद्धृत्य दशपूर्वान् दशापरान् ।।२२।।
विष्णुलोके तु संस्थाप्य स्वयं मुक्तिमवाप्नुयात् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपवित्रारोपणविधिनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ संक्षेपतः सर्वदेवपवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच

संक्षेपात्सर्वदेवानां पवित्रारोपणं शृणु ! पवित्रं पूर्वलक्ष्म[1] स्यात्[2] स्वरसानलगं त्वयि ।।१।।
जगद्योने समागच्छ परिवारगणैः सह। निमन्त्रयाम्यहं प्रातर्दद्यां[3] तुभ्यं पवित्रकम् ।।२।।
जगत्सृजे नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्। पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।३।।
([4]शिवदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्)। मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।।४।।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु वेदवित्पते। सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ।।५।।
व्रज पवित्रकेदानीं स्वर्गलोकं विसर्जितः। सूर्यदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।६।।

जितने धागे होते हैं, उतने हजार युगों तक वह व्यक्ति विष्णुलोक में पूजित होता है और अपने सौ कुलों का उद्धार करके और आगे-पीछे की दस-दस पीढ़ियों को विष्णुलोक में स्थान दिलाकर स्वयं मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।।१९-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में विष्णुपवित्रारोपण विधिनिरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३६।।

अध्याय ३७

सर्वदेवपवित्रारोपण-विधि

अग्निदेव बोले-संक्षेप में सब देवताओं की पवित्रारोपण विधि को सुनो! पवित्रक पूर्वोक्त सभी लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए ।।१।। हे जगदादिकारण! अपने परिवार के सहित यहाँ आओ। मैं तुम्हें निमन्त्रित कर रहा हूँ। प्रातःकाल तुमको पवित्रक अर्पित करूँगा ।।२।। "जगत् की सृष्टि करनेवाले! तुमको नमस्कार है। सांवत्सर-पूजा के फल को देनेवाले इस पवित्रक को (मुझे) पवित्र करने के लिए ग्रहण करो!"-इस मन्त्र से जगत्-स्रष्टा भगवान् को पवित्रक अर्पित करे ।।३।। "शिव देव! तुमको नमस्कार है। इस पवित्रक को ग्रहण करो!" इस मन्त्र से शिव को पवित्रक अर्पित करना चाहिए। अर्पण मन्त्र यह है-"हे वेदज्ञपति! मणि, विद्रुम, माला और मदार-पुष्पों की माला के द्वारा सम्पन्न की हुई यह वर्ष-पूजा आपको अर्पित है।" विसर्जन-मन्त्र यह है-"हे पवित्रक! आपने इस सांवत्सरी पूजा को विधिपूर्वक सम्पन्न किया है। अब मैं आपको विसर्जित कर रहा हूँ। आप स्वर्गलोक को प्रस्थान कीजिये!" सूर्य को पवित्रक प्रदान करने का मन्त्र यह है-"हे सूर्यदेव! आपको नमस्कार है। इस पवित्रक को

---

१ घ. सर्वलक्ष्म। २ क. स्यात् खर°। ३ क. ख. ग. ङ. च. °र्दद्यात्तुभ्यं। ४ शिव°°°पवित्रकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । ([1]शिव देव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्) ।।७।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । (गणेश्वर[2] नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।८।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्) । शक्तिदेवि! नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।९।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । नारायणमयं[3] सूत्रमनिरुद्धमयं परम् ।।१०।।
धनधान्यायुरारोग्यप्रदं[4] सम्प्रददामि ते । कामदेवमयं सूत्रं संकर्षणमयं[5] वरम् ।।११।।
([6]विद्यासन्ततिसौभाग्यप्रदं सम्प्रददामि ते । वासुदेवमयं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।।१२।।
संसारसागरोत्तारकारणं प्रददामि ते । विश्वरूपमयं सूत्रं सर्वदं पापनाशनम्) ।।१३।।
अतीतानागतकुलसमुद्धारं ददामि ते । कनिष्ठादीनि चत्वारि मनुभिस्तु क्रमाद्ददे ।।१४।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये संक्षेपतः सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

देवालयनिर्माणफलादिवर्णनम्

अग्निरुवाच

वासुदेवाद्यालयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम् । चिकीर्षेर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत ।।१।।

ग्रहण कीजिये! वर्ष-पूजा के फल को देनेवाले इस पवित्रक के द्वारा हमें पवित्र कीजिये!" शिव को पवित्रक अर्पण करने का मन्त्र यह है–"हे शिव देव! आपको नमस्कार है। मुझे पवित्र करने के लिए वर्ष-पूजा के फल को देनेवाले इस पवित्रक को ग्रहण कीजिये।" गणेश्वर को पवित्रक चढ़ाने का मन्त्र यह है–"हे गणेश्वर! आपको नमस्कार है। मैं पवित्रीकरण के लिए इस वर्ष-पूजा के फल को देनेवाले पवित्रक को प्रदान कर रहा हूँ। इसे स्वीकार कीजिये!" शक्ति मन्त्र यह है–"शक्तिदेवि! आपको नमस्कार है। पवित्र करने के लिए आप इस वर्ष-पूजा के फल को देनेवाले पवित्रक को स्वीकार कीजिये!" इस पवित्रक के तन्तु (धागे) नारायणमय, अनिरुद्धमय और उत्कृष्ट हैं। कामदेवमय, सङ्कर्षणमय और श्रेष्ठ हैं। ये धन-धान्य और आरोग्य को देनेवाले और मोक्ष, विद्या, सन्तान व सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं। इन्हें आप (देवताओं) को अर्पित कर रहा हूँ। पापनाशन, विश्वरूपमय, सर्वाभीष्टदाता और संसार-सागर को पार करने के कारणभूत इन सूत्रों से युक्त; भूत और भविष्य के कुलों का उद्धार करनेवाले इस पवित्रक को मैं समर्पित कर रहा हूँ। इन उपर्युक्त मन्त्रों से क्रमशः कनिष्ठादि चारों को अर्पित करे ।।४-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपण-विधि वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३७।।

अध्याय ३८

देवालयनिर्माण के फल का वर्णन

अग्निदेव बोले–अब मैं वासुदेव आदि देवताओं के मन्दिरों के निर्माण से प्राप्त होनेवाले फलों को बतला

---

१ शिव…पवित्रकम् ड. पुस्तके नास्ति। २ गणेश्वर……वर्षपूजाफलप्रदम् क. पुस्तके नास्ति। ३ ख. घ. बाणेश्वर। ४ च. °ग्यप्रवंशं प्र°। ५ क. ङ. च. °त्रं सर्वदं पापनाशनम्। ६ विद्यासन्तति…पापनाशनम् ग्रन्थः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनसा सद्मकर्तृणां शतजन्माघनाशनम् । येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरा गृहम् ।।२।।
तेऽपि पापैर्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम् । समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः ।।३।।
विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् । वसन्ति[1] पितरो हृष्टा विष्णुलोके ह्यलङ्कृताः ।।४।।
विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुः कृष्णस्य मन्दिरम् । ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम् ।।५।।
फलं यन्नाप्यते यज्ञैर्धाम कृत्वा तदाप्यते । देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेत् ।।६।।
देवाद्यर्थे[2] हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम् । शाठ्येन पांसुना[3] वापि कृतं धाम च नाकदम् ।।७।।
एकायतनकृत्स्वर्गी त्र्यगारी ब्रह्मलोकभाक् । पञ्चागारी शम्भु-लोकमष्टागाराद्धरौ स्थितिः ।।८।।
षोडशालयकारी तु भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात् । कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ।।९।।
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात् । श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवांल्लभेत्[4] ।।१०।।
कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः । समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम्[5] ।।११।।
कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान् । लक्षेणाथ सहस्रेण शतेनार्धेन वा हरेः ।।१२।।
कारयन्भवनं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः । बाल्ये तु क्रीडमाना[6] ये पांसुभिर्भवनं हरेः ।।१३।।

रहा हूँ। देवालय-निर्माण कराने की इच्छा करनेवाले भक्त के सहस्र जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१।। मन में देव-गृह-निर्माण का विचार करनेवाले के सौ जन्मों के पाप क्षीण हो जाते हैं। जो कृष्ण-मन्दिर के निर्माण का समर्थन करते हैं वे भी अपने पापों से मुक्त होकर अच्युत-लोक को प्राप्त करते हैं। विष्णु-मन्दिर का निर्माण करा देने से मनुष्य अपने दस हजार अतीत और भविष्य की पीढ़ियों को विष्णु-लोक में पहुँचा देता है और उसके पितर विष्णु-लोक में सम्मानपूर्वक निवास करते हैं ।।२-४।। कृष्ण-मन्दिर के निर्माणकर्त्ता सम्पूर्ण नारकीय दुःखों से विमुक्त हो जाते हैं और उनके ब्रह्म-हत्या आदि पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं ।।५।। जो फल यज्ञों के द्वारा नहीं प्राप्त होते हैं वे फल देवालय के निर्माण से अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। मन्दिर का निर्माण करने पर सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है ।।६।। देवता, ब्राह्मण आदि के लिए रणभूमि में मारे जानेवाले धर्मात्मा शूर-वीरों को जिस फल आदि की प्राप्ति होती है, वही देवालय के निर्माण से भी सुलभ होता है। कोई शठता (कंजूसी) के कारण धूल-मिट्टी से भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्गलोक प्रदान करनेवाला होता है ।।७।। एक मन्दिर के बनवाने से स्वर्ग मिलता है, तीन से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और पाँच से शिवलोक की तथा आठ मन्दिर बनवाने से निर्माता साक्षात् हरिरूप हो जाता है। सोलह मन्दिरों का निर्माणकर्त्ता तो भुक्ति और मुक्ति दोनों का अधिकार प्राप्त कर लेता है। छोटा, बड़ा और श्रेष्ठ देवायतन बनवाने से क्रमशः स्वर्ग, विष्णुलोक और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।८-९$\frac{1}{2}$ ।। धनी व्यक्ति श्रेष्ठ देव-मन्दिर बनवाकर जो फल प्राप्त करता है वही फल निर्धन व्यक्ति छोटा-सा मन्दिर बनवाकर पा जाता है ।।१०-१०$\frac{1}{2}$।। जो व्यक्ति स्वयं अपने श्रम से उपार्जित धन के थोड़े से अंश से भी हरि-मन्दिर का निर्माण करता है वह अत्यधिक पुण्य और अनेक शुभ वरों को प्राप्त करता है ।।११-११ $\frac{1}{2}$ ।। एक लाख, हजार, सौ या पचास रुपये की लागत से भी जो भगवान् का मन्दिर बनवाता है वह गरुड़ध्वज के लोक में स्थान पाता है ।।१२-१२ $\frac{1}{2}$।। जो लोग बचपन में खेलते समय धूलि से भगवान् विष्णु का

---

१ क. ङ. च. नन्दन्ति। २ ङ. देवतीर्थे। च. देवतार्थ। ३ क. घ. ङ. च. पांशुना। ४ क. ख. ग. ङ. च. °नवान्भवेत्। ५ घ. वरम्। ६ घ. क्रीडमाणा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः। तीर्थे चायतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाश्रमे ।।१४।।
कर्तुरायतनं विष्णोर्यथोक्तात्त्रिगुणं फलम्। बन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम् ।।१५।।
ये विलिम्पन्ति भवनं ते यान्ति भगवत्पुरम्। पतितं पतमानं तु तथार्धपतितं नरः ।।१६।।
समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम्। पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता ।।१७।।
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपभाक्। इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावादायतनं हरेः ।।१८।।
सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते। स एव पुण्यवान् पूज्य इहलोके परत्र च ।।१९।।
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्। जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पालितम् ।।२०।।
विष्णुरुद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्ता स कीर्तिभाक्। किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः ।।२१।।
दुःखार्जितै यः कृष्णस्य न कारयति केतनम्। नोपभोग्यं धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम् ।।२२।।
नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः। यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः ।।२३।।
मूढस्तत्रानुबध्नाति जीवितेऽथ चले[1] धने। यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ।।२४।।
नापि कार्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येऽथ को गुणः। तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ।।२५।।
दद्यात्सम्यग् द्विजाग्र्येभ्यः कीर्तनानि च कारयेत्। दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात्कीर्तनेभ्यो वरं यतः ।।२६।।

मन्दिर बनाते हैं वे भी उनके धाम को प्राप्त होते हैं ।।१३-१३ $\frac{1}{2}$।। तीर्थ में, पुण्य-स्थान पर, सिद्ध-क्षेत्र में या मुनि-आश्रम में विष्णु-मन्दिर बनवाने से पूर्वोक्त फल से तिगुना फल मिलता है ।।१४-१४ $\frac{1}{2}$।। जो दीवारों पर बन्धूक पुष्प का चित्र बनाकर चूने से मन्दिर को पुतवाते हैं वे अन्त में भगवान् के धाम में पहुँच जाते हैं ।।१५-१५ $\frac{1}{2}$।। गिरे हुए या गिरते हुए या आधा गिरे हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार करानेवाला व्यक्ति दुगुना फल प्राप्त करता है ।।१६-१६ $\frac{1}{2}$ ।। जो गिरे हुए विष्णु-मन्दिर का उद्धार करता है या गिरते हुए मन्दिर की रक्षा करता है वह मनुष्य विष्णु का रूप है ।।१७-१७ $\frac{1}{2}$।। जब तक उस विष्णु-मन्दिर की ईंटें रहती हैं तब तक वह व्यक्ति परिवार के सहित विष्णुलोक में सम्मानपूर्वक निवास करता है ।।१८-१८ $\frac{1}{2}$।। वही व्यक्ति पुण्यशाली और इहलोक तथा परलोक में पूज्य होता है जो कृष्ण-वासुदेव का मन्दिर बनवाता है ।।१९-१९ $\frac{1}{2}$।। वही व्यक्ति सुकृती है, उसी ने अपने कुल का पालन किया है और वही यशस्वी है जिसने विष्णु, रुद्र, सूर्य या देवी का मन्दिर बनवा दिया है ।।२०-२० $\frac{1}{2}$।। जिस मूर्ख ने बड़े कष्ट से धन जोड़ा और उसकी रक्षा करता रहा परन्तु उस धन से कृष्ण का मन्दिर नहीं बनवाया; जिसके धन का उपयोग देव, पितर और ब्राह्मणों ने नहीं किया और न तो जिसका धन भाई-बन्धुओं के ही उपयोग में आया उसका धनोपार्जन व्यर्थ है ।।२१-२२ $\frac{1}{2}$ ।। जिस प्रकार मनुष्य की मृत्यु निश्चित है उसी प्रकार धन का नाश भी। तो वह व्यक्ति मूर्ख है जो धन और जीवन के मोह में बँधा रहता है ।।२३-२३ $\frac{1}{2}$।। जिस धन का उपयोग न तो दान में हुआ, न वह प्राणी के स्वयं उपभोग में आया और न उसका व्यय कीर्ति या धर्म-कार्य में ही हुआ उस धन का स्वामित्व प्राप्त करने से क्या लाभ ? ।।२४-२४ $\frac{1}{2}$।। इसलिए अपने पौरुष या भाग्यवश यदि धन प्राप्त हो जाय तो शुद्ध ब्राह्मणों को यथाविधि दान कर देना चाहिए और उस धन से कीर्त्तन कराना चाहिए ।।२५-२५ $\frac{1}{2}$ ।। मन्दिर-निर्माण दान और कीर्त्तन से श्रेष्ठ है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को विष्णु

---

१ ख. ग. च. बले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतश्च कारयेद्धीमान् विष्णवादेर्मन्दिरादिकम् । विनिवेश्य हरेर्धाम भक्तिमद्भिर्नरोत्तमैः ।।२७।।
निवेशितं भवेत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भूतं भव्यं भविष्यं च स्थूलं सूक्ष्मं तथेतरत् ।।२८।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णोः समुद्भवम् । तस्य देवाधिदेवस्य[1] सर्वगस्य महात्मनः ।।२९।।
निवेश्य भवनं विष्णोर्न भूयो भुवि जायते । यथा विष्णोर्धामकृतौ फलं तद्वद् दिवौकसाम् ।।३०।।
शिवब्रह्मार्कविघ्नेशचण्डलक्ष्म्यादिकात्मनाम् । देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ।।३१।।
प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते । मृन्मयाद्दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकोद्भवे[2] ।।३२।।
इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमातेरधिकं फलम् । सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ।।३३।।
देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं स न गच्छति । कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ।।३४।।
यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः ।।३५।।

([3]यम उवाच)

प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः । देवालयाद्यकर्तार आनेयास्ते[4] विशेषतः ।।३६।।
विचरध्वं यथान्यायं नियोगो[5] मम पाल्यताम् । नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ।।३७।।
केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः । भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः ।।३८।।

के मन्दिर आदि का निर्माण कराना चाहिए ।।२६-२६ $\frac{1}{2}$।। भक्त नर-पुंगव विष्णु-मन्दिर की स्थापना करके मानो सम्पूर्ण सचराचर त्रैलोक्य के लिए मन्दिर का निर्माण कर देते हैं ।।२७-२७ $\frac{1}{2}$।। क्योंकि संसार में जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्य है तथा स्थूल, सूक्ष्म एवं ब्रह्मा से लेकर तृण-पर्यन्त पदार्थ हैं सब विष्णु से ही उत्पन्न हुए हैं ।।२८-२८ $\frac{1}{2}$।। उस सर्वव्यापक देवाधिदेव महात्मा विष्णु के मन्दिर का निर्माण करके मनुष्य पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ।।२९-२९ $\frac{1}{2}$।। विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराने से जितना पुण्य होता है उतना ही शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, चण्डी, लक्ष्मी आदि देवों के मन्दिरों के निर्माण से भी प्राप्त होता है ।।३०-३० $\frac{1}{2}$।। देवालय-निर्माण से अधिक फल प्रतिमा-निर्माण कराने से होता है। प्रतिमा-स्थापन के समय होनेवाले यज्ञ के फल की तो गणना ही नहीं हो सकती है। मिट्टी की प्रतिमा से अधिक पुण्य काष्ठ-प्रतिमा के निर्माण से होता है और काष्ठ-प्रतिमा के निर्माण से अधिक पुण्य ईंट की प्रतिमा निर्माण से होता है ।।३१-३२।। ईंट की प्रतिमा से अधिक फल पाषाण-प्रतिमा और पाषाण-प्रतिमा से अधिक फल सोना आदि धातु की प्रतिमा बनवाने से मिलता है। इस शुभ कर्म के (देवालय के) प्रारम्भ मात्र से सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं ।।३३।। वह व्यक्ति कभी भी नरक में नहीं जाता, प्रत्युत अपने सौ कुलों का उद्धार करके विष्णुलोक को ले जाता है ।।३४।। साक्षात् यम ने अपने दूतों को मन्दिर बनवानेवालों के लिए यह निर्देश दिया था ।।३५।।

यमराज बोले-प्रतिमा-निर्माण और पूजा आदि करनेवालों को कभी नरक में नहीं लाना चाहिए। जिन लोगों ने कभी देवालय-निर्माण नहीं किया उनको विशेषरूप से यहाँ (नरक में) लाना चाहिए ।।३६।। तुम लोग संसार में विचरण करो और न्यायपूर्वक मेरे इस आदेश का पालन करो। प्राणिमात्र तुम्हारी आज्ञा का उल्लङ्घन कहीं नहीं करेंगे ।।३७।। जिन्होंने जगत्पिता अनन्त भगवान् का आश्रय ग्रहण किया है उन्हें आपको छोड़ देना चाहिए, उनकी यहाँ (यमलोक में) स्थिति नहीं होती ।।३८।।

---

१ घ. °वादिदे°। २ क. ङ. च. °ष्टकाभवे। ३ एतदत्र सर्वेष्वादर्शपुस्तकेषूपलभ्यते परं चैतदधिकम्। ४ ख. ग. ङ. °स्ते तु गोचराः। घ. °स्ते तु गोचरे। ५ क. ङ. च. °गो मैऽनुपा°। ६ घ. ते वस्त्याज्याः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः । पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च[६] त्याज्याः सुदूरतः ।।३९।।
([१]यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते स्थिते[२] । सङ्कीर्तयन्ति गोविन्दं ते[३] च त्याज्याः सुदूरतः) ।।४०।।
नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् । नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता[४] यान्ति तद्गतिम् ।।४१।।
ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः । अर्चयन्ति न ते ग्राह्यानराः कृष्णालये[५] गताः ।।४२।।
उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये । कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ।।४३।।
येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् । पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा ।।४४।।
यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा । कारयेन्मृन्मयं वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४५।।
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् । प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ।।४६।।
कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम् । कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् ।।४७।।
सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम् । तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान्[६] प्रतिपद्यते ।।४८।।
इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ।।४९।।
प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ । देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ।।५०।।

अग्निरुवाच

यमोक्ता न नयन्त्येतं प्रतिष्ठादिकृतं हरेः । हयग्रीवः प्रतिष्ठाद्यं देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ।।५१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवालयनिर्माण-माहात्म्यादिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

संसार में जो भागवत हों, भगवान् में दत्तचित्त हों, भगवत्परायण हों तथा सदा भगवान् विष्णु की पूजा करते हों उन्हें तुम लोगों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए ।।३९।। जो स्थिर होते, सोते, चलते, उठते, गिरते-पड़ते या खड़े होते समय गोविन्द संकीर्त्तन करते हों उनको बहुत दूर से ही छोड़ देना ।।४०।। जो व्यक्ति नित्य-नैमित्तिक कर्मों से जनार्दन देव की पूजा करते हैं उनकी ओर तो आँख उठाकर भी मत देखना क्योंकि भगवान् का व्रत करनेवाले सालोक्य के अधिकारी हो जाते हैं ।।४१।। जो कृष्ण-मन्दिर में जाकर पुष्प, धूप, आभूषण और वस्त्र आदि प्रिय पदार्थों से कृष्ण की पूजा करते हों, उनको मत छूना ।।४२।। जो लोग कृष्ण-मन्दिर में लेप करते हों या झाड़ू लगाते हों उनको, उनके पुत्रों को और उनके परिवार को छोड़ देना ।।४३।। जिन्होंने देवालय बनवाया हो उनके कुल सौ पीढ़ियों की ओर बुरी दृष्टि से न देखना ।।४४।। जो मिट्टी, लकड़ी या पत्थर से विष्णु का मन्दिर बनवा देते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।४५।। प्रतिदिन यज्ञ करनेवाले को जो महाफल मिलता है वह फल विष्णु का मन्दिर बनवानेवाले को प्राप्त होता है ।।४६।। भगवद्धाम का निर्माण कराकर मनुष्य अपने कुल की सौ पीछे की और सौ आगे की पीढ़ियों को अच्युतलोक में पहुँचा देता है ।।४७।। विष्णु सप्तलोकमय हैं। इसलिए जो व्यक्ति उनका मन्दिर बनवाता है वह कुल को अक्षयलोकों में पहुँचा देता है और स्वयं भी अक्षयलोकों को प्राप्त करता है ।।४८।। जितने वर्षों तक मन्दिर की ईंटें रहती हैं उतने हजार वर्षों तक मन्दिर का निर्माता स्वर्ग में विराजमान रहता है ।।४९।। प्रतिमा-निर्माता विष्णुलोक को प्राप्त करता है और प्रतिष्ठाता विष्णु में ही लीन हो जाता है तथा देव-मन्दिर और प्रतिमा की प्रतिष्ठा करनेवाला सदा भगवान् के लोक में निवास करता है ।।५०।।

अग्निदेव बोले-यमराज के इस प्रकार आज्ञा देने पर यम के दूत भगवान् विष्णु की स्थापना आदि करनेवालों को यमलोक में नहीं ले जाते। देवताओं की प्रतिष्ठा आदि की विधि का भगवान् हयग्रीव ने ब्रह्मा जी से वर्णन किया था ।।५१।।

श्री अग्निमहापुराण में देवालय-निर्माण माहात्म्यादि वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३८।।

---

१ यस्तिष्ठन्...सुदूरतः ङ. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. श्रुते। ३ घ. ते वस्त्याज्याः। ४ घ. तद्गता। ५ क. ङ. च. कृष्णाश्रये। ६ क. ग. घ. ङ. च. °क्षयान्प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठापने भूपरिग्रहविधानम्

हयग्रीव[1] उवाच

विष्ण्वादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे। प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ।।१।।
व्यक्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशतिसंख्यया। हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ।।२।।
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम्। नारदीयं च श्रीप्रश्नं[2] शाण्डिल्यं चेश्वरं[3] तथा ।।३।।
सत्यक्ति शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम्। स्वायम्भुवं कापिलं च तार्क्ष्यं नारायणीयकम् ।।४।।
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारुणम्। बौधायनं तथाष्टाङ्गं[4] विश्वोक्तं तस्य सारतः ।।५।।
प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्यान्मध्यदेशादिसम्भवः। न कच्छदेशसम्भूतः कावेरीकौङ्कणोद्गतः ।।६।।
कामरूपः कलिङ्गोत्थः काञ्चीकाश्मीरके[5] स्थितः। आकाशवायुतेजाम्बुभूरेता[6] पञ्चरात्रयः ।।७।।
अचैतन्यास्तमोद्रिक्ताः पञ्चरात्रिविवर्जिताः। ब्रह्माहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ।।८।।
सर्वलक्षणहीनोऽपि गुरुः स तन्त्रपारगः। नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ।।९।।

अध्याय ३९

विष्णु आदि देवताप्रतिष्ठापन में भूपरिग्रह-विधान

हयग्रीव बोले–ब्रह्मन्! अब मैं विष्णु आदि देवताओं के प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा। आप ध्यानपूर्वक सुनिये! मैंने पञ्चरात्र और सप्तरात्र नामक ग्रन्थों को कहा है ।।१।। संसार में मुनियों ने उनको ही पचीस भागों में व्यक्त किया है। (उन पचीस तन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं)–१. आदिहयशीर्षतन्त्र, २. त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, ३. वैभवतन्त्र, ४. पुष्कर-तन्त्र, ५. प्रह्लादतन्त्र, ६. गार्ग्यतन्त्र, ७. गालवतन्त्र, ८. नारदीयतन्त्र, ९. श्रीप्रश्नतन्त्र, १०. शाण्डिल्यतन्त्र, ११. ईश्वरतन्त्र, १२. सत्यतन्त्र, १३. शौनकतन्त्र, १४. वसिष्ठोक्त ज्ञानसागरतन्त्र, १५. स्वायम्भुवतन्त्र, १६. कपिलतन्त्र, १७. तार्क्ष्य (गरुड़)–तन्त्र, १८. नारायणीयतन्त्र, १९. आत्रेयतन्त्र, २०. नारसिंहतन्त्र, २१. आनन्दतन्त्र, २२. आरुणतन्त्र, २३. बौधायनतन्त्र, २४. अष्टाङ्गतन्त्र और २५. विश्वतन्त्र। इन तन्त्रों के सारभूत मन्त्रों या विधियों के अनुसार मध्यदेशीय कुलीन ब्राह्मणों को ही देवविग्रहों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। कच्छदेश, कावेरी-तटवर्ती देश, कोंकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा कश्मीर देश में उत्पन्न ब्राह्मण देव-प्रतिष्ठा आदि न करे। आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं ।।२-७।। चेतना-रहित, तामस-अज्ञानान्धकार से उद्दण्ड व्यक्ति पञ्चरात्रि के योग्य नहीं है। जो व्यक्ति यह समझता है कि "मैं पापरहित परब्रह्म विष्णु हूँ–वह देशिक–(आचार्य) होता है ।।८।। सब लक्षणों से रहित परन्तु तन्त्र-शास्त्र में पारङ्गत विद्वान् गुरु बनने का अधिकारी है। देव-प्रतिष्ठा नगराभिमुख होनी चाहिए विपरीत दिशा में नहीं ।।९।।

---

१ ग. अग्निरुवाच। २ घ. सम्प्रश्नं। ३ घ. वैश्वकं। ४ घ. तथार्षं तु। ५ ख. ग. घ. च. °रकोशलः। आ°। ६ क. ख. ङ. च. °जोर्द्युभू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुरुक्षेत्रे गयादौ च नदीनां[1] तु समीपतः। ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्वे शक्रस्य शोभनम् ।।१०।।
अग्नावग्नेश्च मातृणां भूतानां च यमस्य च। दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदैत्यादिकस्य च ।।११।।
नैर्ऋते मन्दिरं कुर्याद्वरुणादेश्च वारुणे। वायोर्नागस्य वायव्ये सौम्ये यक्षगुहस्य च ।।१२।।
चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णोश्च सर्वशः। पूर्वदेवकुलं पीड्य प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ।।१३।।
समं वाप्यधिकं वापि न कर्तव्यं विजानता। उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्रायसम्मिताम् ।।१४।।
प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद् बुधः। भूमौ तु शोधितायां तु कुर्याद् भूमिपरिग्रहम् ।।१५।।
प्राकारसीमापर्यन्तं ततो भूतबलिं हरेत्। माषं हरिद्राचूर्णं तु सलाजं दधिसक्तुभिः ।।१६।।
अष्टाक्षरेण सक्तूंश्च पातयित्वाष्टदिक्षु च। राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ।।१७।।
सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः। हलेन दारयित्वा[2] गां गोभिश्चैवावचारयेत्[3] ।।१८।।
परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः। रथरेण्वष्टकेनैव त्रसरेणुः प्रकीर्त्यते ।।१९।।
तैरष्टभिस्तु बालाग्रं लिक्षा[4] तैरष्टभिर्मता। ताभिर्यूकषट्भिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ।।२०।।
यवाष्टकैरङ्गुलं स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः करः। चतुरङ्गुलसंयुक्तः स्वहस्तः[5] पद्महस्तकः ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठार्थभूपरिग्रहवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।।३९।।

कुरुक्षेत्र, गया या नदी के समीप (तट पर) देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। ब्रह्मा का मन्दिर नगर के मध्य भाग में तथा इन्द्र का पूर्व दिशा में उत्तम माना गया है। अग्निकोण में अग्नि और मातृकाओं का, दक्षिण में भूतों और यम का, नैर्ऋतकोण में चण्डिका, पितर और दैत्य आदि का देवालय बनवाना चाहिए ।।१०-११।। पश्चिम में वरुण आदि का, वायव्यकोण में वायु और नाग का, उत्तर में यक्ष और गुह का तथा ईशानकोण में शिव का मन्दिर बनाना चाहिए। विष्णु की प्रतिष्ठा चारों ओर हो सकती है। ज्ञानवान् मनुष्य को पहले से स्थापित देवमन्दिर को संकुचित करके अल्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिए ।।१२-१३ $\frac{1}{2}$।। दो मन्दिरों की ऊँचाई के बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देव-प्रासाद का निर्माण कराना चाहिए। विद्वान् व्यक्ति दोनों मन्दिरों को पीड़ित न करे। भूमि का शोधन करने के बाद भूमि का परिग्रह करना चाहिए ।।१४-१५।। इसके बाद मन्दिर के चहारदीवारी की सीमा तक उड़द, हल्दी का चूर्ण, धान का लावा, सत्तू और दही को मिलाकर भूतों की बलि देनी चाहिए ।।१६।। अष्टाक्षर-मन्त्र से आठों दिशाओं में सत्तू बिखराना चाहिए। (मन्त्र इस प्रकार है)-"इस भू-भाग पर जो राक्षस और पिशाच रहते हैं वे सब यहाँ से चले जायँ। मैं यहाँ पर विष्णु का मन्दिर बनवाऊँगा।" फिर भूमि को हल से जुतवाकर गोचारण करावे ।।१७-१८।। आठ परमाणु का एक रथरेणु और आठ रथरेणु का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणु का एक बालाग्र, आठ बालाग्र की एक लिक्षा और आठ लिक्षा की एक यूका मानी जाती है। आठ यूका का एक यव और आठ यव का एक अंगुल होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ और चार अंगुल से अधिक एक हाथ पद्महस्त कहा जाता है ।।१९-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में विष्णु आदि देवता की प्रतिष्ठा में भूपरिग्रह वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३९।।

---

१ क. ङ. च. नद्याद्रिषु स°। २ घ. वाहयित्वा। ३ ख. घ. °वदार°। ४ ख. ग. घ. लिख्या। ५ घ. स हस्तः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

वास्तुमण्डलदेवतास्थापनपूजार्घ्यदानबलिदानादिविधानकथनम्

हयग्रीव[1] उवाच

पूर्वमासीन्महद्भूतं सर्वभूतभयङ्करम् । तद्देवैर्निहितं भूमौ स वास्तु-पुरुषः स्मृतः ।।१।।
चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे ईशं कोणार्धसंस्थितम् । घृताक्षतैस्तर्पयेत्तं पर्जन्यं पदगं ततः ।।२।।
उत्पलाद्भिर्जयन्तं च द्विपदस्थं पताकया । महेन्द्रं चैककोष्ठस्थं सर्वरक्तपदे[2] रविम् ।।३।।
वितानेनार्धपदगं सत्यं पादे भृशं घृतैः । व्योम शाकुनमांसेन कोणार्धपदसंस्थितम् ।।४।।
स्रुचा चार्धपदे वह्निं पूषणं लाजयैकतः । स्वर्णेन वितथं द्विस्थं[3] मन्थनेन गृहाक्षतम्[4] ।।५।।
मांसौदनेन धर्मेशमेकैकस्मिन् स्थितं द्वयम्[5] । गन्धर्वं द्विपदं गन्धैर्भृशं शाकुनजिह्वया ।।६।।
एकस्थमर्धसंस्थं च यथा[6] नीलपटैस्तथा । पितॄन् कृशरयार्धस्थं दन्तकाष्ठैः पदस्थितम् ।।७।।
दौवारिकंद्विसंस्थं च सुग्रीवं यावकेन तु । पुष्पदन्तं कुशस्तम्बैः पद्मैर्वरुणमेकतः ।।८।।
असुरं सुरया द्विस्थं[7] पदेशाय घृताम्भसा । यवैः पापं पदार्धस्थं रोगमध्ये च मण्डकैः ।।९।।

अध्याय ४०

वास्तुमण्डल के देवताओं की स्थापना-पूजा-विधान आदि का वर्णन

हयग्रीव बोले–प्राचीनकाल में सब प्राणियों को भयत्रस्त करनेवाला एक महान् भूत (प्राणी) था। देवताओं ने उसे भूमि में गाड़ दिया, वही वास्तुपुरुष नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१।। चतुःषष्टि पदों से युक्त क्षेत्र में अर्धकोण में स्थित ईश को घी एवं अक्षतों से तृप्त करे। फिर एक पद में स्थित पर्जन्य को कमल तथा जल से तृप्त करना चाहिए। द्विपदस्थ जयन्त को और एक कोष्ठ में स्थित महेन्द्र को पताका से तथा सम्पूर्ण रूप से लाल वर्णाकार कोष्ठ में स्थित रवि को चँदोवे से तृप्त करना चाहिए। आधे पद में स्थित सत्य को और एक पद में स्थित भृश को घी से तृप्त करना चाहिए। अर्ध कोण में स्थित व्योम को शाकुन–मांस से तृप्त करना चाहिए ।।२–४।। कोणार्ध में स्थित अग्नि को स्रुक् से, एकपदस्थ पूषा को धान के लावा से, द्विपदस्थ वितथ को स्वर्ण से और मन्थन–दण्ड से गृहाक्षत को तृप्त करना चाहिए ।।५।। एक पद में स्थित यमराज को मांस–भात से, द्विपदस्थ गन्धर्व को गन्धों से और भृश को शाकुन–जिह्वा से तृप्त करना चाहिए ।।६।। एक या आधे कोष्ठ में स्थित देवों को जिस प्रकार नीले वस्त्र से पूजा जाता है उसी प्रकार पितरों को कृशरा (खिचड़ी) से तथा पदस्थित देवताओं को दातून से पूजना चाहिए ।।७।। दो कोष्ठों में स्थित द्वारपाल सुग्रीव को हलुवे से, पुष्पदन्त को कुशसमूहों से और एक ओर वरुण की पूजा कमल से करनी चाहिए ।।८।। दो कोष्ठको में स्थापित असुर को मदिरा से, शेष को घृतमिश्रित जल से, पदार्ध में स्थित पाप को यव से, अर्धपदस्थ रोग को माँड़ से तृप्त करना चाहिए ।।९।। पद में स्थित नागदेव को नागकेसर से, दो

---

१ क. ख. ग. घ. च. भगवानुवाच। २ ख. घ. ङ. च. °रक्ते प°। ३ घ. द्विष्ठं। ४ क. ङ. च. गृहक्षतम्। ५ क. ङ. च. स्वयम्। ६ क. ङ. च. मृगं। ७ घ. द्विष्ठं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नागपुष्पैः पदे नागं मुख्यं भक्ष्यैर्द्विसंस्थितम् । मुद्गौदनेन भल्लाटं पदे सोमं पदे तथा ।।१०।।
मधुना पायसेनाथ शालूकेन ऋषिं[1] द्वये । पदेऽदितिं लोपिकाभिरर्धे दितिमथापरम् ।।११।।
पुरिकाभिस्ततश्चापमीशाधः पयसा पदे । ततोऽधश्चापवत्सं तु दध्ना चैकपदे स्थितम् ।।१२।।
लड्डूकैश्च मरीचिं तु पूर्वं कोष्ठचतुष्टये । सावित्रे रक्तपुष्पाणि ब्रह्माधःकोणकोष्ठके ।।१३।।
तदधःकोष्ठके दद्यात्सवित्रे च कुशोदकम् । विवस्वतेऽरुणं दद्याच्चन्दनं चतुरङ्घ्रिषु ।।१४।।
रक्षोऽधःकोणकोष्ठे तु इन्द्रायार्घ्यं निशान्वितम् । इन्द्रजयाय तस्याद्यो घृतार्घं कोणकोष्ठके ।।१५।।
चतुष्पदे तु दातव्यमिन्द्राय गुडपायसम् । वाय्वधःकोणदेशे तु रुद्राय पक्वमांसकम् ।।१६।।
तदधःकोणकोष्ठे तु यक्षायार्धफलं तथा । महीधराय मांसान्नं माषं च चतुरङ्घ्रिषु ।।१७।।
मध्ये चतुष्पदे स्थाप्या ब्रह्मणे तिलतण्डुलाः । चरकीं मांससर्पिभ्यां स्कन्दं कृशरया स्रजा ।।१८।।
रक्तपत्रैर्विदारीं च कन्दर्पं च पलौदनैः । पूतनां पलपित्ताभ्यां मांसासृग्भ्यां च जम्भकम् ।।१९।।
पित्तासृगस्थिभिः पापं पिलिपित्सं[2] स्रजासृजा । ईशाद्यान् रक्तमांसेन [3]अभावादक्षतैर्यजेत् ।।२०।।
रक्षोमातृगणेभ्यश्च पिशाचादिभ्य एव च । पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो बलीन् दद्यात्प्रकामतः ।।२१।।
अहुत्वैतानसन्तर्प्य प्रासादादीन्न कारयेत् । ब्रह्मस्थाने हरिं लक्ष्मीं गणं पश्चात्समर्थयेत् ।।२२।।

कोष्ठकों में स्थित मुख्य नाग को भोज्य-पदार्थ से, पद में स्थित भल्लाट को उड़द मिले चावल से, सोम को खीर और मधु से तृप्त करना चाहिए। दो पदों में स्थित ऋषि को शालूक (जातीफल) से, एक पद में विद्यमान अदिति को लोपिका (एक प्रकार की मिठाई) से, दूसरे आधे में दिति को पूड़ी से तृप्त करना चाहिए। ईश के नीचे एक कोष्ठ में चाप को दूध से, उसके नीचे चाप-वत्स को दही से अर्चित करना चाहिए ।।१०-१२।। पूर्व दिशा में चार कोष्ठकों में स्थित मरीचि को लड्डू चढ़ाना चाहिए। ब्रह्मा के अधोभाग के कोणस्थित कोष्ठ में अर्धपदस्थ सावित्र को लाल फूल चढ़ाना चाहिए ।।१३।। उसके निम्नवर्ती अर्ध-कोष्ठक में स्थित सविता को कुशोदक प्रदान करे। विवस्वान् के लिए चारों प्रकोष्ठों में लाल चन्दन अर्पित करना चाहिए ।।१४।। रक्ष के नीचे कोने के प्रकोष्ठ में इन्द्र को हल्दी मिला अर्घ्य दे। कोनेवाले प्रकोष्ठ में इन्द्रजय के लिए घी का अर्घ्य देना चाहिए ।।१५।। चार प्रकोष्ठों में इन्द्र के लिए गुड़ और खीर दे। वायु के नीचेवाले प्रकोष्ठ में रुद्र को पका मांस चढ़ाये ।।१६।। उसके नीचे कोने के कोठे में यक्ष को आधा फल दे। महीधर (पर्वत) के लिए मांसान्न और उड़द चार प्रकोष्ठों में चढ़ाये ।।१७।। बीच के चार प्रकोष्ठों में ब्रह्मा को तिल-तण्डुल अर्पित करे। चरकी को मांस और घी से सन्तुष्ट करके स्कन्द के ऊपर खिचड़ी और माला चढ़ाये ।।१८।। विदारी को रक्तपत्र तथा कामदेव के ऊपर मांस और चावल चढ़ाये। पूतना को मांस और पित्त की बलि चढ़ाये तथा जम्भक को मांस और शोणित चढ़ाये ।।१९।। पाप को मांस, पित्त और रक्त तथा पिलिपित्स को माला और रक्त चढ़ाये। ईश आदि को रक्त और मांस चढ़ावे, किन्तु इनके न मिलने पर अक्षत से पूजा करनी चाहिए ।।२०।। रक्ष, मातृगण, पिशाच, पितर और क्षेत्रपालों को इच्छानुसार बलि चढ़ावे ।।२१।। इन देवों को बिना आहुति दिये या बलि चढ़ाये मन्दिर या घर आदि नहीं बनाना चाहिए। इनको बलि आदि दे देने के अनन्तर ब्रह्मा के कोष्ठ में हरि, लक्ष्मी और गणेश की पूजा करनी चाहिए ।।२२।। पृथ्वी, वास्तुपुरुष और वर्धनी के सहित घट और ब्रह्मा को स्थापित

---

१ ङ.। च. गिरिद्वये। २ घ. पिलिपिङ्गं। ३ ख. ग. अपि वा चाक्ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महीं[1] नरं वास्तुमयं वर्धन्या सहितं घटम्। ब्रह्माणं मध्यतः कुम्भे ब्रह्मादींश्च दिगीश्वरान् ।।२३।।
दद्यात्पूर्णाहुतिं पश्चात् स्वस्तिवाच्य प्रणम्य च। प्रगृह्य कर्करीं सम्यङ्मण्डलं तु प्रदक्षिणम् ।।२४।।
सूत्रमार्गेण हे ब्रह्मंस्तोयधारां च भ्रामयेत्। पूर्ववत्तेन मार्गेण सप्त बीजानि वापयेत् ।।२५।।
प्रारम्भं तेन मार्गेण तस्य खातस्य कारयेत्। ततो गर्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रं प्रमाणतः ।।२६।।
चतुरङ्गुलकं चाधश्चोपलिप्यार्चयेत्ततः[2]। ध्यात्वा चतुर्भुजं विष्णुमर्घ्यं दद्यात्तु कुम्भतः ।।२७।।
कर्कर्या पूरयेच्छ्वभ्रं शुक्लपुष्पाणि च न्यसेत्। दक्षिणावर्तकं श्रेष्ठं बीजैर्मृद्भिश्च पूरयेत् ।।२८।।
अर्घ्यदानं विनिष्पाद्य गोवस्त्रादीन् ददेद् गुरौ। कालज्ञाय स्थपतये वैष्णवादित्यपूजनम्[3] ।।२९।।
ततस्तु खानयेद्यत्नाज्जलान्तं यावदेव तु। पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेद् ।।३०।।
अस्थिशल्ये भिद्यते वै भित्तिर्वै गृहिणोऽसुखम्। यन्नामशब्दं शृणुयात्तत्तु [4]शल्यं तदुद्भवम् ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्घ्यदानविधानादिकथनं
नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

करे। कलश के मध्य में ब्रह्मा आदि देवों और दिक्पालों को पूर्णाहुति दे। स्वस्तिपाठ कर प्रणाम करे। स्वयं कर्करी (छिद्रयुक्त जलपात्र) लेकर मण्डल की परिक्रमा करे ।।२३-२४।। हे ब्रह्मन्! प्रदक्षिणा करके चारों ओर बँधे सूत्रमार्ग से जलधारा गिराता हुआ घूम आये। पूर्व की भाँति उस मार्ग में सात स्थानों पर थोड़ा-सा बीज बोना चाहिए ।।२५।। उसी जलधार से सिंचे हुए मार्ग में नींव के लिए गड्ढा खुदवाना प्रारम्भ करके उसके मध्यभाग में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोद देना चाहिए ।।२६।। उसके चारों ओर चार अंगुल नीचे लीपकर पूजन प्रारम्भ करे। चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करके कलश से जल लेकर अर्घ्य दे ।।२७।। कर्करी से गर्त को भरकर उसमें श्वेत पुष्प डाले। उस श्रेष्ठ दक्षिणावर्त गर्त को बीज एवं मृत्तिका से भर दे ।।२८।। अर्घ्यदान के अनन्तर गुरु को, गोवस्त्रादि का दान करे। ज्योतिषी और राजमिस्त्री का यथोचित सत्कार करके विष्णु-भक्त और सूर्य का पूजन करे ।।२९।। तदनन्तर जब तक जल न निकले तब तक नींव को खुदवाना चाहिए। एक पोरसा नीचे मिली हुई हड्डी घर के लिए दोषकारक नहीं होती ।।३०।। अस्थि (शल्य) होने पर घर की दीवार टूट जाती है और गृहपति को सुख नहीं प्राप्त होता। खुदाई के समय जो नाम-शब्द सुना जाता है वह शल्य उसी का माना जाता है ।।३१।।

श्री अग्निमहापुराण में वास्तुमण्डल देवताओं के अर्घ्यदानादि का वर्णन नामक
चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४०।।

---

१ घ. महीश्वरं। २ ख. ग. येच्च तत्। ३ घ. °दिभ्य अर्चयेत्। ४ घ. °तत्र श°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधानम्

हयग्रीव उवाच

पादप्रतिष्ठां वक्ष्यामि शिलाविन्यासलक्षणाम् । अग्रतो मण्डपः कार्यः कुण्डानां तु चतुष्टयम् ।।१।।
कुम्भन्यासेष्टकान्यासो द्वारस्तम्भोच्छ्रयं शुभम् । पादोनं पूरयेत्खातं तत्र वास्तुं यजेत्समे ।।२।।
इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः[1] । स्वविस्तारत्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः ।।३।।
करप्रमाणा श्रेष्ठा स्याच्छिलाप्यथ[2] शिलामये । नव कुम्भांस्ताम्रमयान्स्थापयेदिष्टकाघटान् ।।४।।
अद्भिः पञ्चकषायेण सर्वोषधिजलेन च । गन्धतोयेन च तथा कुम्भैस्तोयसुपूरितैः ।।५।।
हिरण्यव्रीहिसंयुक्तैर्गन्धचन्दनचर्चितैः । आपो हिष्ठेति तिसृभिः शं नो देवीति चाप्यथ ।।६।।
तरत्समन्दीरिति च पावमानीभिरेव च । उदुत्तमं वरुणमिति कयानश्च तथैव च ।।७।।
वरुणस्येति मन्त्रेण हंसः शुचिषदित्यपि । श्रीसूक्तेन च तथा शिलाः संस्थाप्य सङ्घशः[3] ।।८।।
शय्यायां मण्डपे प्राच्यां मण्डले हरिमर्चयेत् । जुहुयाज्जनयित्वाग्निं समिधो द्वादशार्णतः[4] ।।९।।

अध्याय ४१

शिलाविन्यास-विधान

हयग्रीव बोले–अब मैं शिलाविन्यासस्वरूपा पादप्रतिष्ठा का वर्णन करूँगा। अग्रभाग में एक मण्डप और चार कुण्ड बनवाना चाहिए ।।१।। उसके बाद कलश–स्थापन, इष्टिकान्यास और ऊँचा माङ्गलिक द्वारस्तम्भ बनवाना चाहिए। पहले गड्ढे को तीन–चौथाई भर देना चाहिए और तब उसकी मिट्टी को बराबर करके उस पर वास्तु की पूजा करनी चाहिए ।।२।। ईंटें खूब पकी हुई बारह अंगुल लम्बी हों। उनकी मोटाई, लम्बाई की तिहाई हो ।।३।। शिलामय मन्दिर के शिलान्यास के लिए एक हाथ लम्बी शिला उपयुक्त होती है। ताँबे के नौ कलशों की अथवा मिट्टी के बने नौ कलशों की स्थापना करनी चाहिए ।।४।। उन कलशों को पञ्च कषाय सर्वोषधि मिले जल से भर देना चाहिए। उस जल में सुवर्ण, सप्तधान्य, गन्ध और चन्दन छोड़ देना चाहिए। चन्दन, पुष्प, गन्ध आदि से उन कलशों की भलीभाँति पूजा कर देनी चाहिए। 'आपो हिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं, 'शं नो देवीरभिष्टय' आदि मन्त्रों, तरत्समन्दीः इत्यादि मन्त्र एवं पावमानी ऋचाओं के तथा 'उदुत्तमं वरुणं', 'कया नः' और 'वरुणस्योत्तम्भनमसि' इत्यादि मन्त्रों के पाठपूर्वक 'हंसः शुचिषद्' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्त का भी उच्चारण करते हुए बहुत–सी शिलाओं अथवा ईंटों का अभिषेक करे। फिर उन्हें नींव में स्थापित करके मण्डप के भीतर एक शय्या पर पूर्वमण्डल में भगवान् श्री विष्णु का पूजन करे। अरणी-मन्थन द्वारा अग्नि प्रकट करके द्वादशाक्षर–मन्त्र से उसमें समिधाओं का हवन करना चाहिए ।।५–९।। 'आधार' और

---

१ घ. °ताः। सुवि°। २ ख. ग. °ला स्यान्न शि°।। ३ क. संयुताः। घ. संघटाः। ४ घ. °दशीस्तः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आधारावाज्यभागौ तु प्रणवेनैव कारयेत्। अष्टाहुतीस्तथाष्टार्णैराज्यं[1] व्याहृतिभिः क्रमात् ।।१०।।
लोकेशायाग्नये[2] चैव सोमाय[3] च ग्रहाय च। पुरुषोत्तमायेति च व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ।।११।।
प्रायश्चित्तं ततः पूर्णां मूर्तिं[4] मांसं घृतं तिलान्। वेदाद्यै[5] द्वादशान्तेन[6] कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ।।१२।।
प्राङ्मुखस्तु गुरुः कुर्यादष्टदिक्षु विलिप्य च। मध्ये चैकां शिलां कुम्भान् न्यसेदेतान्सुरान् क्रमात् ।।१३।।
पद्मं चैव महापद्मं मकरं कच्छपं तथा। कुमुदं च तथानन्दं पद्मं शङ्खं च पद्मिनीम् ।।१४।।
कुम्भान्न चालयेत्तेषु न्यसेदष्टेष्टकाः क्रमात्। ईशानान्ताश्च पूर्वादाविष्टकाः प्रथमं न्यसेत् ।।१५।।
शक्तयो विमलाद्यास्तु इष्टकानां तु देवताः। न्यसनीया यथायोगं मध्ये न्यस्या त्वनुग्रहा ।।१६।।
अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते। इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ।।१७।।
मन्त्रेणानेन विन्यस्य इष्टका देशिकोत्तमः। गर्भाधानं ततः कुर्यान्मध्यस्थाने समाहितः ।।१८।।
कुम्भोपरिष्टाद् देवेशं पद्मिनी न्यस्य देवताम्। मृत्तिकाश्चैव पुष्पाणि धातवो (तून्वै) रत्नमेव च ।।१९।।
लोहादिनिर्मिते[7] चास्त्रं यजेद्वै गर्भभाजने। द्वादशाङ्गुलविस्तारे चतुरङ्गुलकोच्छ्रये ।।२०।।
पद्माकारे ताम्रमये भाजने पृथिवीं यजेत्। एकान्ते सर्वभूतेशे पर्वतासनमण्डिते ।।२१।।

'आज्य' नामक आहुतियाँ प्रणव-मन्त्र से ही कराये। फिर अष्टाक्षर-मन्त्र से आठ आहुतियाँ देकर 'ॐ भूः स्वाहा', 'ॐ भुवः स्वाहा', 'ॐ स्वः स्वाहा'-इन तीन् व्याहृतियों से क्रमशः लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तम के निमित्त हवन करे ।।१०-११।। इसके बाद प्रायश्चित्त संज्ञक हवन करके प्रणवयुक्त द्वादशाक्षर-मन्त्र से मूर्ति, मांस, घी और तिल को एक साथ लेकर पूर्णाहुति-हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर आठ दिशाओं में स्थापित कलशों पर पृथक्-पृथक् पद्म आदि देवताओं का स्थापन-पूजन करे। बीच में भी धरती लीपकर पत्थर की एक शिला और कलश स्थापित करे। इन नौ कलशों पर क्रमशः नीचे लिखे देवताओं की स्थापना करनी चाहिए ।।१२-१३।। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, आनन्द, पद्म, शङ्ख और पद्मिनी देवताओं को स्थापित करना चाहिए ।।१४।। इन कलशों को हिलाये-डुलाये नहीं; उनके निकट पूर्व आदि के क्रम से ईशानकोण तक एक-एक ईंट रख दे ।।१५।। विमला आदि शक्तियाँ उन इष्टकाओं की देवता हैं। उन देवताओं को यथायोग उन ईंटों पर स्थापित करके मध्य में अनुग्रहा देवी की स्थापना करनी चाहिए ।।१६।। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे-"मुनिवर अङ्गिरा की सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अंग टूटा-फूटा या खराब नहीं हुआ है, तुम अपने सभी अंगों से पूर्ण हो। मेरा अभीष्ट पूर्ण करो। अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ'।।१७।। उत्तम आचार्य इस मन्त्र से इष्टकान्यास करके एकचित्त होकर मध्यस्थान में गर्भाधान करे ।।१८।। कुम्भ के ऊपर देवेश और पद्मिनी (लक्ष्मी) देवी को स्थापित करके मृत्तिका (मिट्टी), पुष्प, धातु और रत्न समर्पित करे ।।१९।। लोहा आदि के बने गर्भभाजन पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिए। बारह अंगुल विस्तारवाले और चार अंगुल ऊँचे पद्माकार ताँबे के पात्र में पृथिवी की पूजा करनी चाहिए ।।२०-२०½।। पृथ्वी की प्रतिष्ठा का मन्त्र-"सम्पूर्ण भूतों की ईश्वरी पृथ्वीदेवी! तुम पर्वतों के आसन से सुशोभित हो, चारों ओर समुद्रों से घिरी हुई हो;

---

१ घ. °ष्ठान्तैरा। २ घ. °शानामग्नये। °वै सो°। ३ घ. मायावग्रहेषु च। ४ घ. मूर्तिमांसघृतास्तिला°। ५ ख. °दान्तैद्वा°। ६ क. ङ. च. शार्णेन। ७ घ. लौहानि दिक्पतेरस्त्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समुद्रपरिवारे त्वं देवि गर्भं समाश्रय। नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ।।२२।।
जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे। पूर्णेऽङ्गिरस (सो) दायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ।।२३।।
भद्रे! काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम। सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नोषधीवृते ।।२४।।
जये रुचिरे नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह। प्रजापतिसुते देवि चतुरस्त्रे महीयसि ।।२५।।
सुभगे सुप्रभे भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम्। पूजिते परमाश्चर्ये[1] गन्धमाल्यैरलङ्कृते ।।२६।।
भव भूतिकरी[2] देवि गृहे भार्गवि रम्यताम्। [3]देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ।।२७।।
मनुष्यादिकतुष्ट्यर्थं पशुवृद्धिकरी भव। एवमुक्त्वा ततः खातं गोमूत्रेण तु सेचयेत् ।।२८।।
कृत्वा निधापयेद्गर्भं गर्भाधानं भवेन्निशि। गोवस्त्रादि प्रदद्याच्च गुरवेऽन्येषु भोजनम् ।।२९।।
गर्भं न्यस्येष्टका न्यस्य ततो गर्भं प्रपूरयेत्। पीठबन्धमतः कुर्यात्ततः[4] प्रासादमानतः ।।३०।।
पीठोत्तमं चोच्छ्रयेण प्रासादस्यार्धविस्तरात्। पादहीनं मध्यमं स्यात् कनिष्ठं चोत्तमार्धतः ।।३१।।
पीठबन्धोपरिष्टात्तु वास्तुयागं[5] पुनर्यजेत्। पादप्रतिष्ठाकारी तु निष्पापो दिवि मोदते ।।३२।।

एकान्त में गर्भ धारण करो। वसिष्ठकन्या नन्दा! वसुओं और प्रजाओं के सहित तुम मुझे आनन्दित करो। भार्गवपुत्री जया! तुम प्रजाओं को विजय दिलानेवाली हो (मुझे भी विजय दो)। अङ्गिरा की पुत्री पूर्णा! तुम मेरी कामनाएँ पूर्ण करो। महर्षि कश्यप की कन्या भद्रा! तुम मेरी बुद्धि कल्याणमयी कर दो। सम्पूर्ण बीजों से युक्त और समस्त रत्नों एवं औषधों से सम्पन्न सुन्दरी जया देवी तथा वसिष्ठ की पुत्री नन्दा देवी! यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ। हे कश्यप की कन्या भद्रा! तुम प्रजापति की पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो, परम महती हो, साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो। इस गृह में रमण करो। हे भार्गवि देवी! तुम परम आश्चर्यमयी हो, गन्ध और माल्य आदि से सुशोभित एवं पूजित हो। लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम इस गृह में रमण करो। इस देश के सम्राट्, इस नगर के राजा और इस घर के मालिक के बाल-बच्चों को तथा मनुष्य आदि प्राणियों को आनन्द देने के लिए पशु आदि सम्पदा की वृद्धि करो। इसी प्रकार प्रार्थना करके वास्तुकुण्ड को गोमूत्र से सींचना चाहिए ।।२१-२८।। यह सब विधि पूर्ण करके कुण्ड में गर्भ को स्थापित करे। यह गर्भाधान रात में होना चाहिए। उस समय आचार्य को गोवस्त्रादि दान करे तथा अन्य लोगों को भोजन दे ।।२९।। इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईंटों को भी रखकर उस कुण्ड को भर दे। तत्पश्चात् मन्दिर की ऊँचाई के अनुसार प्रधान देवता की पीठ का निर्माण करे ।।३०।। 'उत्तम पीठ' वह है जो ऊँचाई में मन्दिर के आधे विस्तार के बराबर हो। उत्तम पीठ की अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होने पर 'मध्यम पीठ' कहलाता है और 'उत्तम पीठ' की आधी ऊँचाई होने पर 'कनिष्ठ पीठ' होता है ।।३१।। पीठ-बन्ध के ऊपर पुनः वास्तु-देवता का पूजन करना चाहिए। केवल पाद-प्रतिमा करनेवाला मनुष्य भी सब पापों से रहित होकर देवलोक में आनन्दभोग करता है ।।३२।।

---

१ क. ङ. च. °माचार्ये। २ ख. ग. °करे दे°। ३ क. ङ. च. देहस्वा°। ४. क. ख. ग. घ. °र्यान्मितप्रा°। ५ क. च. वास्तुयोगं। ख. ग. वास्तु वाजं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवागारं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत्। तस्य कायगतं पापं तदह्ना हि प्रणश्यति ।।३३।।
कृते तु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु। अष्टेष्टकासमायुक्तं यः कुर्याद् देवतालयम् ।।३४।।
न तस्य फलसम्पत्तिर्वक्तुं शक्येत केनचित्। अनेनैवानुमेयं हि फलं प्रासादविस्तरात् ।।३५।।
ग्राममध्ये च पूर्वस्यां[1] प्रत्यग्द्वारं प्रकल्पयेत्। विदिशासु च सर्वासु [2]ग्रामप्रत्यङ्मुखं भवेत् ।।३६।।
दक्षिणे चोत्तरे चैव पश्चिमे प्राङ्मुखं[3] भवेत् ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वशिलाविन्यासविधानादिकथनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासादलक्षणकथनम्

हयग्रीव उवाच

प्रासादं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसाधारणं शृणु। चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं भजेत्षोडशधा बुधः ।।१।।
मध्ये तस्य चतुर्भिस्तु कुर्यादायसमन्वितम्। द्वादशैव तु भागांश्च भित्त्यर्थं परिकल्पयेत् ।।२।।

'मैं देवमन्दिर बनवा रहा हूँ'–ऐसा जो मन से चिन्तन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है ।।३३।।–तो जो विधान के अनुकूल मन्दिर बनवा देता है उसके विषय में क्या कहा जाय ? जो व्यक्ति अष्ट इष्टका से युक्त मन्दिर (भी) बनवाता है उसके पुण्य–फल का तो कोई वर्णन करने में समर्थ ही नहीं हो सकता। इसी से देव प्रासाद–निर्माण के विस्तृत फल–सम्पत्ति का अनुमान कर लेना चाहिए ।।३४–३५।। गाँव के बीच में अथवा गाँव के पूरब में बने हुए मन्दिर के द्वार का मुख पश्चिम की ओर होना चाहिए। सभी दिक्कोणों में बने हुए मन्दिरों के द्वार पश्चिमाभिमुख होने चाहिए। दक्षिण, उत्तर और पश्चिम में बने मन्दिरों का द्वार पूरब की ओर होना चाहिए ।।३६–३७।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वशिलाविन्यासविधान वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४१।।

अध्याय ४२

प्रासादलक्षण–वर्णन

हयग्रीव बोले–अब मैं सर्वसाधारण प्रासाद (निर्माण–विधि) के विषय में बतला रहा हूँ, उसे सुनो। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह एक चौकोर भूभाग को सोलह भागों में विभक्त करे। इनमें से बीच के चार भागों को आय सहित गर्भ (मन्दिर के भीतरी भाग की रिक्त भूमि) निश्चित करे तथा शेष बारह भागों को दीवार उठाने के लिए नियत करे ।।१–२।। उक्त बारह भागों में से चार भाग की जितनी लम्बाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासाद के दीवारों

---

१ ख. ग. घ. पूर्वे च। ङ. च. मध्ये च। २ घ. ग्रामे प्रत्यङ्मुखी भ°। ३ घ. प्राङ्मुखो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जङ्घोच्छ्रायस्तु कर्तव्यश्चतुर्भागेण चायतः । जङ्घाया द्विगुणोच्छ्रायो मञ्जर्याः कल्पयेद् बुधः ।।३।।
तुर्यभागेण मञ्जर्याः कार्यः[1] सम्यक्प्रदक्षिणः[2] । तन्माननिगमः कार्य उभयोः पार्श्वयोः समः ।।४।।
शिखरेण समं कार्यमग्रे जगति विस्तरम् । द्विगुणेनापि कर्तव्यं यथाशोभानुरूपतः ।।५।।
विस्तारान्मण्डपस्याग्रे गर्भसूत्रद्वयेन तु । दैर्घ्यात्पादादिकं कुर्यान्मध्यस्तम्भैर्विभूषितम् ।।६।।
प्रासादगर्भमानं वा कुर्वीत मुखमण्डपम् । एकाशीतिपदैर्वास्तुं पश्चान्मण्डपमारभेत् ।।७।।
शुकान्प्राग्द्वारविन्यासे([3]पादान्तःस्थान्यजेत् सुरान्) । तथा प्राकारविन्यासे यजेद् द्वात्रिंशदन्तगान्[4] ।।८।।
सर्वसाधारणं चैतत् प्रासादस्य च लक्षणम् । मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं शृणु ।।९।।
प्रतिमायाः प्रमाणेन कर्तव्या पिण्डिका शुभा । गर्भस्तु पिण्डिकार्धेन गर्भमानास्तु भित्तयः ।।१०।।
भित्तेरायाममानेन उत्सेधं तु प्रकल्पयेत् । भित्युच्छ्रायात्तु द्विगुणं शिखरं कल्पयेद् बुधः ।।११।
शिखरस्य तु तुर्येण भ्रमणं परिकल्पयेत् । शिखरस्य चतुर्थेन अग्रतो मुखमण्डपम् ।।१२।।
अष्टमांशेन गर्भस्य रथकानां तु निर्गमः । परिधेर्गुणभागेन रथकांस्तत्र कल्पयेत् ।।१३।।
तत्तृतीयेन वा कुर्याद्रथकानां तु निर्गमः । वामत्रयं स्थापनीयं रथकत्रितये सदा ।।१४।।
शिखरार्थं[5] हि सूत्राणि चत्वारि विनिपातयेत् । शुकनासोर्ध्वतः सूत्रं तिर्यग्भूतं निपातयेत् ।।१५।।

की होनी चाहिए। विद्वान् पुरुष दीवारों की ऊँचाई से दुगुनी शिखर की ऊँचाई रखे ।।३।। शिखर के चौथे भाग की ऊँचाई के अनुसार मन्दिर की परिक्रमा की ऊँचाई रखे। उसी मान के अनुसार दोनों पार्श्व भागों में निकलने का मार्ग (द्वार) बनाना चाहिए। वे द्वार एक-दूसरे के समान होने चाहिए ।।४।। मन्दिर के सामने के भूभाग का विस्तार भी शिखर (की ऊँचाई) के बराबर करना चाहिए। सुन्दरता के अनुसार उसका विस्तार दुगुना भी किया जा सकता है ।।५।। मन्दिर के आगे सभामण्डप विस्तार में मन्दिर के गर्भसूत्र से दूना होना चाहिए। मन्दिर के पाद-स्तम्भ आदि भित्ति के बराबर ही बनाये जायँ। वे मध्यवर्ती स्तम्भों से विभूषित हों ।।६।। अथवा मन्दिर के गर्भ का जो मान है, वही उसके मुखमण्डप (सभामण्डप या जगमोहन) का भी रखे। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों) से युक्त वास्तु-मण्डप का आरम्भ करे ।।७।। अग्र द्वार पर शुकों का, निर्गत द्वार पर देवताओं का और चारों ओर की दीवारों पर बत्तीस अन्तगों का पूजन होना चाहिए ।।८।। यह तो रहा प्रासादों का सर्वसाधारण लक्षण। अब मैं प्रतिमा के मान से बनाये जानेवाले अन्य प्रासादों के सम्बन्ध में बताता हूँ, उसे भी सुनो ।।९।। जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी बड़ी सुन्दर पिण्डी बनाये। पिण्डी के आधे मान से गर्भ का निर्माण करे और गर्भ के मान के ही अनुसार भित्तियाँ उठाये ।।१०।। भीतों की लम्बाई के अनुसार ही उनकी ऊँचाई रखे। विद्वान् पुरुष भीत की ऊँचाई से दुगुनी शिखर की ऊँचाई कराये ।।११।। शिखर की ऊँचाई की चौथाई के बराबर परिक्रमा का निर्माण कराये और इसी प्रमाण का मुखमण्डप भी होना चाहिए ।।१२।। गर्भ के अष्टमांश से रथकों का निर्गम बनाना चाहिए। अथवा रथकों का निर्गम परिधि के तृतीयांश से भी बनाया जा सकता है ।।१३।। अथवा उनके भी तृतीय भाग के माप का उन रथों के निकलने के मार्ग (द्वार) का निर्माण करावे। तीन रथकों पर सदा तीन वामों की स्थापना करे ।।१४।। शिखर के लिए चार सूत्रों का निपातन करे। शुकनासा के ऊपर से सूत को तिरछा गिरावे ।।१५।। शिखर के आधे भाग में सिंह की प्रतिमा का

---

१ क. ङ. च. कार्या। २ क. ङ. च. क्षिणा। °त°। ३ च. पुस्तके पादान्त°°°सुरान् नास्ति। ४ ख. °न्तकान्। ५ क. ख. च. शिखरार्थं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिखरस्यार्धभागस्थं सिंहं तत्र तु कारयेत् । शुकनासां स्थिरीकृत्य मध्यसन्धौ विधारयेत् ।।१६।।
अपरे च तथा पार्श्वे तद्वत्सूत्रं विधारयेत्[1] । तदूर्ध्वं तु भवेद्वेदी सकण्ठासनसारकम्[2] ।।१७।।
स्कन्धभग्नं न कर्तव्यं विकरालं तथैव च । ऊर्ध्वं तु वेदिकामानात्कलशं परिकल्पयेत् ।।१८।।
विस्ताराद् द्विगुणं द्वारं कर्तव्यं तु सुशोभनम् । उदुम्बरौ तदूर्ध्वं च न्यसेच्छाखां सुमङ्गलैः ।।१९।।
द्वारस्य तु चतुर्थांशे कार्यौ चण्डप्रचण्डकौ । विष्वक्सेनो वत्सदण्डो शाखार्धोदुम्बरे[3] श्रियम् ।।२०।।
दिग्गजैः स्नाप्यमानां तां घटैः साब्जां सुरूपिकाम् । प्रासादस्य चतुर्थांशैः प्राकारस्योच्छ्रयो भवेत् ।।२१।।
प्रासादात्पादहीनं तु गोपुरस्योच्छ्रयो भवेत् । पञ्चहस्तस्य देवस्य एकहस्ता तु पीठिका ।।२२।।
गारुडं मण्डपं चाग्रे एकं भौमादिधाम च । कुर्याद् द्विप्रतिमायामं[4] दिक्षु चाष्टासु चोपरि ।।२३।।
पूर्वे वराहं दक्षे च नृसिंहं श्रीधरं जले । उत्तरे तु हयग्रीवमाग्नेय्यां जामदग्न्यकम् ।।२४।।
नैर्ऋत्यां रामकं वायौ वामनं वासुदेवकम् । ईशे प्रासादरचना देया वस्वर्ककादिभिः ।।२५।।
द्वारस्य चाष्टमाद्यंशं त्यक्त्वा वेधो न दोषभाक् ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादादीनां लक्षण-वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

निर्माण करावे। शुकनासा पर सूत को स्थिर करके उसे मध्य सन्धि तक ले जाय ।।१६।। इसी प्रकार दूसरे पार्श्व में भी सूत्रपात करे। शुकनासा के ऊपर वेदी हो और वेदी के ऊपर आसनसार नामक कण्ठ सहित कलश का निर्माण कराया जाय ।।१७।। (सिंह के) ऊपर स्कन्ध का भंग नहीं होना चाहिए और न ही उसे विकराल बनाना चाहिए। वेदी के मान से ऊपर ही कलश की कल्पना करनी चाहिए ।।१८।। मन्दिर के द्वार की जितनी चौड़ाई हो, उससे दुगुनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिए। द्वार को बहुत ही सुन्दर और शोभायमान बनाना चाहिए। द्वार के ऊपरी भाग में सुन्दर मंगलमय वस्तुओं के साथ गूलर की दो शाखाएँ स्थापित करे (खुदवाये) ।।१९।। द्वार के चतुर्थांश में चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्सेन और वत्सदण्ड इन चार द्वारपालों की मूर्तियों का निर्माण करना चाहिए। गूलर की शाखा के अर्ध-भाग में लक्ष्मी देवी के श्रीविग्रह को अंकित करे ।।२०।। (उस लक्ष्मी को) दिग्गज कलश के द्वारा नहला रहे हों, उसके हाथ में कमल हो और वह सुन्दर रूपवाली हो। मन्दिर के परकोटे की ऊँचाई उसके चतुर्थांश के बराबर हो ।।२१।। प्रासाद की ऊँचाई गोपुर की होती है। पाँच हाथ ऊँचे देवता की पीठिका एक हाथ ऊँची होती है ।।२२।। विष्णु-मन्दिर के सामने एक गरुड़-मण्डप तथा भौमादि-धाम का निर्माण करे। भगवान् के श्रीविग्रह के सब ओर आठों दिशाओं के ऊपरी भाग में भगवत्प्रतिमा से दुगुनी अवतारों की मूर्तियाँ बनावे ।।२३।। पूर्व दिशा में वराह, दक्षिण में नृसिंह, पश्चिम में श्रीधर, उत्तर में हयग्रीव और अग्निकोण में परशुराम की मूर्ति का निर्माण करना चाहिए ।।२४।। नैर्ऋत्यकोण में श्रीराम, वायव्यकोण में वामन तथा ईशानकोण में वासुदेव की मूर्ति का निर्माण करे। प्रासाद-रचना, आठ, बारह आदि सम संख्यावाले स्तम्भों द्वारा करनी चाहिए ।।२५।। द्वार के अष्टम आदि अंश को छोड़कर जो वेध होता है वह दोषकारक नहीं होता ।।२६।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रासादलक्षण-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४२।।

---

१ थ. च. निधापयेत्। २ ख. °ण्ठासनसारकम्। घ. °ण्ठर्धं मनं°।३ घ. शिखोर्ध्वोदुम्बरे। ४ थ. कुर्याद्धि प्रतिमायां तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्त्यादिकथनम्

हयग्रीव उवाच

प्रासादे देवताः स्थाप्या वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे। पञ्चायतनमध्ये तु वासुदेवं निवेशयेत् ।।१।।
वामनं नृहरिं चाश्वशीर्षं तद्वच्च शूरकम्। आग्नेये नैर्ऋते चैव वायव्ये चेशगोचरे ।।२।।
अथ नारायणं मध्ये ह्याग्नेय्यामम्बिकां न्यसेत्। नैर्ऋत्यां भास्करं वायौ ब्रह्माणं लिङ्गमीशके ।।३।।
अथवा रुद्ररूपं तु अथवा नवधामसु। वासुदेवं न्यसेन्मध्ये पूर्वादौ रामरामकान्[1] ।।४।।
इन्द्रादींल्लोकपालांश्च अथवा नवधामसु। पञ्चायतनकं कुर्यान्मध्ये तु पुरुषोत्तमम् ।।५।।
लक्ष्मीवैश्रवणौ पूर्वे दक्षे मातृगणं न्यसेत्। स्कन्दं गणेशमीशानं सूर्यादीन्पश्चिमे ग्रहान् ।।६।।
उत्तरे दश मत्स्यादीनाग्नेय्यां चण्डिकां तथा। नैर्ऋत्यामम्बिकां स्थाप्य वायव्ये तु सरस्वतीम् ।।७।।
पद्मामैशे वासुदेवं मध्ये नारायणं च वा। त्रयोदशालये मध्ये विश्वरूपं न्यसेद्धरिम् ।।८।।

अध्याय ४३

प्रासाददेवतास्थापन एवं भूतशान्तिविधान

हयग्रीव बोले–ब्रह्मन्! अब मैं मन्दिर में स्थापित करने योग्य देवताओं का वर्णन करूँगा, आप सुनें। पञ्चायतन मन्दिर में जो बीच का प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेव को स्थापित करे। शेष चार मन्दिरों में से अग्निकोणवाले मन्दिर में भगवान् वामन की, नैर्ऋत्यकोण में नरसिंह की, वायव्यकोण में हयग्रीव की और ईशानकोण में वराह भगवान् की स्थापना करे ।।१–२।। अथवा यदि बीच में भगवान् नारायण की स्थापना करे तो अग्निकोण में दुर्गा की, नैर्ऋत्यकोण में सूर्य की, वायव्यकोण में ब्रह्मा की और ईशानकोण में लिङ्गमय शिव की स्थापना करे। अथवा ईशान में रुद्र रूप की स्थापना करे। अथवा एक–एक आठ दिशाओं में और एक बीच में–इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवाये। उनमें से बीच में वासुदेव की स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओं में परशुराम–राम आदि नौ अवतारों की तथा इन्द्र आदि लोकपालों की स्थापना करनी चाहिए। अथवा कुल नौ धामों में पाँच मन्दिर मुख्य बनवाये। इनके मध्य में भगवान् पुरुषोत्तम की स्थापना करे ।।३–५।। पूर्व दिशा में लक्ष्मी और कुबेर की, दक्षिण में मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिव की, पश्चिम में सूर्य आदि नौ ग्रहों की तथा उत्तर में मत्स्य आदि दस अवतारों की स्थापना करे, इसी प्रकार अग्निकोण में चण्डी की, नैर्ऋत्यकोण में अम्बिका की, वायव्यकोण में सरस्वती की और ईशानकोण में लक्ष्मी जी की स्थापना करनी चाहिए। मध्यभाग में वासुदेव अथवा नारायण की स्थापना करे। अथवा तेरह कमरोंवाले देवालय के मध्य में विश्वरूप भगवान् विष्णु की स्थापना करे ।।६–८।। पूर्व आदि दिशाओं में केशव आदि द्वादश विग्रहों

---

१ ख. ग. घ. वामवामकान्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वादौ केशवादीन्वा अन्यधामस्वयं हरिः[1]। मृन्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ।।९।।
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी[2] सप्तधा स्मृता। कौसुमी गन्धजा चैव मृन्मयी प्रतिमा तथा ।।१०।।
तत्कालपूजिताश्चैताः सर्वकामफलप्रदाः। अथ शैलमयीं वक्ष्ये शिला यत्र च गृह्यते ।।११।।
पर्वतानामभावे च गृह्णीयाद्भूगतां शिलाम्। पाण्डुरा ह्यरुणा पीता कृष्णा शस्ता तु वर्णिनाम् ।।१२।।
न यदा लभ्यते सम्यग्वर्णिनां वर्णतः शिला। वर्णाद्यापादनं तत्र जुहुयात्सिंहविद्यया ।।१३।।
शिलायां शुक्लरेखाग्र्या कृष्णाग्र्या सिंहहोमतः। कांस्यघण्टानिनादा स्यात्पुँल्लिङ्गा विस्फुलिङ्गका ।।१४।।
तन्मन्दलक्षणा स्त्री स्यद्रूपाभावान्नपुंसका। दृश्यते मण्डलं यस्यां सगर्भा तां विवर्जयेत् ।।१५।।
प्रतिमार्थं धनं दत्त्वा वनयागं समाचरेत्। तत्र खात्वोपलिप्याथ मण्डपे तु हरिं यजेत् ।।१६।।
बलिं दत्त्वा कर्मशस्त्रं टङ्कादिकमथार्चयेत्। हुत्वाथ शालितोयेन अस्त्रेण प्रोक्षयेच्छिलाम् ।।१७।।
रक्षां कृत्वा नृसिंहेन मूलमन्त्रेण पूजयेत्। हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात्ततो भूतबलिं गुरुः ।।१८।।

को स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त गृहों में साक्षात् श्रीहरि ही विराजमान होते हैं। भगवान् की प्रतिमा मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल–इन सात वस्तुओं की बनी हुई सात प्रकार की मानी जाती है। फूल, मिट्टी तथा चन्दन की बनी हुई प्रतिमाएँ बनने के बाद तुरन्त पूजी जाती हैं (अधिक काल के लिए नहीं होतीं।)। पूजन करने पर ये समस्त कामनाओं को पूर्ण करती हैं। अब मैं शैलमयी प्रतिमा का वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनाने में शिला (पत्थर) का उपयोग किया जाता है ।।९–११।। उत्तम तो यह है कि किसी पर्वत का पत्थर लाकर प्रतिमा बनवाये। पर्वतों के अभाव में जमीन से निकले हुए पत्थर का उपयोग करे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णवालों के लिए क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला पत्थर उत्तम माना गया है। यदि ब्राह्मण आदि वर्णवालों को उनके वर्ण के अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्ण की कमी की पूर्ति करने के लिए नरसिंह–मन्त्र से हवन करना चाहिए। यदि शिला में सफेद रेखा हो तो वह बहुत ही उत्तम है, अगर काली रेखा हो तो वह नरसिंह–मन्त्र से हवन करने पर उत्तम होती है। यदि शिला से काँसे के बने हुए घण्टे की–सी आवाज निकलती हो और काटने पर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह पुँल्लिङ्ग है, ऐसा समझना चाहिए। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखायी दें; तो उसे स्त्रीलिङ्ग समझना चाहिए और पुँल्लिङ्ग–स्त्रीलिङ्ग–बोधक कोई रूप न होने पर उसे नपुंसक समझना चाहिए। तथा जिस शिला में कोई मण्डल का चिह्न दिखायी दे उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिए ।।१२–१५।। प्रतिमा बनाने के लिए वन में जाकर वनयाग आरम्भ करना चाहिए। वहाँ कुण्ड खोदकर और उसे लीपकर मण्डप में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए तथा उन्हें बलि समर्पण कर कर्म में उपयोगी टंक आदि शास्त्रों की भी पूजा करनी चाहिए। फिर हवन करने के बाद अगहनी के चावल के जल से अस्त्र–मन्त्र (अस्त्राय फट्) के उच्चारणपूर्वक उस शिला को सींचना चाहिए। नरसिंह–मन्त्र से उसकी रक्षा करके मूल–मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति होम करके आचार्य भूतों के लिए बलि समर्पित करे। वहाँ जो भी अव्यक्त

---

१ घ. हरिम्। ङ. भुवि। २ ङ. कौमुदी दशथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अत्र ये संस्थिताः सत्त्वा यातुधानाश्च गुह्यकाः । सिद्धादयो वा ये चान्ये तान्सम्पूज्य क्षमापयेत्[1] ।।१९।।
प्रतिबिम्बार्थमस्माकं यात्रैषा केशवाज्ञया । विष्णवर्थं यद् भवेत्कार्यं युष्माकमपि तद्भवेत् ।।२०।।
अनेन बलिदानेन प्रीता भवत सर्वथा । क्षेमेण गच्छतान्यत्र मुक्त्वा स्थानमिदं त्वरात् ।।२१।।
एवं प्रबोधिता मुक्त्वा यान्ति तृप्ता यथासुखम् । शिल्पिभिश्च चरुं प्राश्य स्वप्नमन्त्रं जपेन्निशि ।।२२।।
ॐ नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे । विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।।२३।।
आचक्ष्व देव देवेश प्रसुप्तोऽस्मि[2] तवान्तिकम् । स्वप्ने सर्वाणि कार्याणि हृदिस्थानि तु यानि मे ।।२४।।
ॐ ॐ हुं फट् विष्णवे स्वाहा । शुभे स्वप्ने शुभं सर्वं ह्यशुभे सिंहहोमतः ।।२५।।
प्रातरर्घ्यं शिलायां तु दत्त्वास्त्रेणास्त्रकं यजेत् । कुद्दालटङ्कशस्त्राद्यं मध्वाज्याक्तमुखं चरेत् ।।२६।।
आत्मानं चिन्तयेद्विष्णुं शिल्पिनं विश्वकर्मिणम्[3] । शस्त्रं विष्णवात्मकं दद्यान्मुखपृष्ठादि दर्शयेत् ।।२७।।
जितेन्द्रियष्टङ्कहस्तः शिल्पी तु चतुरस्त्रकाम् । शिलां कृत्वा पिण्डिकार्थं किञ्चिन्न्यूनां[4] तु कल्पयेत् ।।२८।।
रथे स्थाप्य समानीय सवस्त्रां कारुवेश्मनि । पूजयित्वाथ घटयेत् प्रतिमां स तु कर्मकृत् ।।२९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्तिशिलालक्षणप्रतिमानिर्माणादिनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

रूप रहनेवाले जन्तु–यातुधान (राक्षस), गुह्यक और सिद्ध आदि हों अथवा और जो भी हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा–प्रार्थना करनी चाहिए ।।१६–१९।। 'भगवान् केशव की आज्ञा से प्रतिमा के लिए हम लोगों की यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णु के लिए जो कार्य हो, वह आप लोगों का भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस बलिदान से आप लोग सर्वथा तृप्त हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलपूर्वक अन्यत्र चले जायँ' ।।२०–२१।। इस भाँति प्रार्थना करने पर वे सभी जीव प्रसन्न हो सुखपूर्वक उस स्थान को छोड़कर चले जाते हैं। तदनन्तर शिल्पियों के सहित चरु को खाकर रात में (सोते समय) इस स्वप्न–मन्त्र का जप करे ।।२२।। जो समस्त प्राणियों के निवास–स्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, स्वयं विश्वरूप हैं और सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उस स्वप्न के अधिपति भगवान् श्रीहरि को नमस्कार है ।।२३।। देव! देवेश्वर! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मन में जिन कार्यों का संकल्प है, उन सबके सम्बन्ध में मुझे बताइये ।।२४।। 'ॐ ॐ हुं फट् विष्णवे स्वाहा' इस मन्त्र का जप करके सो जाने पर शुभ स्वप्न देखने पर सब शुभ होता है और अशुभ स्वप्न भी नृसिंह होम से शुभ हो जाते हैं ।।२५।। प्रातःकाल शिला पर शस्त्र अर्घ्य देकर अस्त्र–मन्त्र से अस्त्रों की पूजा करे। कुद्दाल, छेनी, टंक और शस्त्र आदि के मुख पर घी और मधु लगाकर पूजन करना चाहिए ।।२६।। अपने–आपको विष्णु रूप से चिन्तन करे। कारीगर को विश्वकर्मा माने और शस्त्र को भी विष्णु होने की ही भावना करे। फिर शस्त्र कारीगर को दे और उसका मुख, पृष्ठ आदि उसे दिखा दे ।।२७।। जितेन्द्रिय शिल्पी उस चौकोर शिला को छेनी से काटकर पिण्डिका के लिए काट–छाँटकर कुछ न्यून कर दे ।।२८।। इसके बाद शिला को वस्त्र में लपेटकर रथ पर रखे और शिल्पशाला में लाकर पुनः उस शिला का पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा बनाये ।।२९।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रासाददेवतास्थापन एवं भूतशान्ति विधान–वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४३।।

---

१ घ. °त्। विष्णुबि°। २ क. ङ. च. प्रपन्नोऽस्मि। ३ ख. घ. कर्मकम्। ४ °चिन्मूलं तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वासुदेवादिप्रतिमानां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच

वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते। प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुखीं वा चोत्तराननाम् ।।१।।
संस्थाप्य पूज्य च बलिं दत्त्वाथो मध्यसूत्रकम्। शिलां शिल्पी तु नवधा विभज्य नवमेंऽशके ।।२।।
सूर्यभक्ते[1] शिलायां तु भागं स्वाङ्गुलमुच्यते। द्व्यङ्गुलं गोलकं नाम्ना कलानेत्रं[2] तदुच्यते ।।३।।
भागमेकं त्रिधा कृत्वा पार्ष्णिभागं प्रकल्पयेत्। भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ।।४।।
मुकुटं तालमात्रं स्यात् तालमात्रं तथा मुखम्। तालेनैकेन कण्ठं तु तालेन हृदयं तथा ।।५।।
नाभिमेढ्रान्तरं तालं द्वितालावूरुकौ तथा। तालद्वयेन जङ्घा स्यात् सूत्राणि शृणु साम्प्रतम् ।।६।।
कार्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथापरम्। जानौ सूत्रद्वयं कार्यमूरुमध्ये तथापरम् ।।७।।
मेढ्रे तथापरं कार्यं कट्यां सूत्रं तथापरम्। मेखलाबन्धसिद्ध्यर्थं नाभ्यां चैवापरं तथा ।।८।।
हृदये च तथा कार्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा। ललाटे चापरं कार्यं मस्तके च तथापरम् ।।९।।
मुकुटोपरि कर्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः। सूत्राण्यूर्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव ।।१०।।

अध्याय ४४

वासुदेव आदि प्रतिमाओं का लक्षण

हयग्रीव बोले–अब मैं वासुदेव प्रतिमा का लक्षण बता रहा हूँ। सुनो! मन्दिर के उत्तर भाग में शिला को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर शिला के बीच में सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भाग को भी बारह भागों में विभाजित करने पर एक–एक भाग अपने अंगुल से एक अंगुल का होता है। दो अंगुल का गोलक होता है जिसे कलानेत्र भी कहते हैं ।।१–३।। उक्त नौ भागों में से एक भाग के तीन हिस्से करके उसमें पार्ष्णि–भाग की कल्पना करे। एक भाग घुटने के लिए तथा एक भाग कण्ठ के लिए निश्चित रखे। मुकुट को एक बित्ता रखे। मुँह का भाग भी एक बित्ते का होना चाहिए। इसी प्रकार एक बित्ते का कण्ठ और एक बित्ते का हृदय हो। नाभि और लिङ्ग के बीच में एक बित्ते का अन्तर होना चाहिए। दोनों ऊरु दो बित्ते के हों। जंघा भी दो बित्ते की हो। अब सूत्रों का माप सुनो ।।४–६।। दो सूत पैर में और दो सूत जंघा में लगाये। घुटनों में दो सूत तथा दोनों ऊरुओं में भी दो सूत का प्रयोग करे। लिङ्ग में दूसरे दो सूत तथा कटि में भी कमरबन्ध (करधन) बनाने के लिए दूसरे दो सूतों का योग करे। नाभि में भी दो सूत काम में लाये। इसी प्रकार हृदय और कण्ठ में दो सूत का उपयोग करे। ललाट में दूसरे और मस्तक में दूसरे दो सूतों का उपयोग करे। बुद्धिमान् कारीगरों को मुकुट के ऊपर एक सूत करना चाहिए।

---

१ क. ङ. च. सूर्येभक्ते। थ. सूर्पभक्तैः। २ थ. कालनेत्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कक्षात्रिकान्तरेणैव षट् सूत्राणि प्रदापयेत्। मध्यसूत्रं तु सन्त्यज्य सूत्राण्येव निवेदयेत् ।।११।।
ललाटं नासिका[1] वक्त्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम्। ग्रीवाकर्णौ तु कर्तव्यावायामाच्चतुरङ्गुलम् ।।१२।।
द्व्यङ्गुले हनुके कार्ये विस्ताराच्चिबुकं तथा। अष्टाङ्गुलं ललाटं तु विस्तारेण प्रकीर्तितम् ।।१३।।
परेण द्व्यङ्गुलौ शङ्खौ कर्तव्यावलकान्विती। चतुरङ्गुलमाख्यातमन्तरं कर्णनेत्रयोः ।।१४।।
द्व्यङ्गुलौ पृथुकौ कर्णौ कर्णापाङ्गार्धपञ्चमे। भ्रूसमेन तु सूत्रेण कर्णस्रोतः प्रकीर्तितम् ।।१५।।
विद्धं षडङ्गुलं कर्णमविद्धं चतुरङ्गुलम्। चिबुकेन समं विद्धमविद्धं वा षडङ्गुलम् ।।१६।।
गन्धपात्रं तथावर्तं शष्कुलीं कल्पयेत्तथा। अङ्गुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्धेनोत्तराधरः ।।१७।।
अर्धाङ्गुलं तथा[2] नेत्रं वक्त्रं तु चतुरङ्गुलम्। आयामेन तु वैपुल्यात्सार्धमङ्गुलमुच्यते ।।१८।।
नासावंशसमुच्छ्रायं मूले त्वेकाङ्गुलं मतम्। उच्छ्रायाद् द्व्यङ्गुलं चाग्रे करवारोपमा स्मृता ।।१९।।
अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरङ्गुलमानतः। द्व्यङ्गुलं चाक्षिकोशं[3] च द्व्यङ्गुलं चान्तरं तयोः ।।२०।।
तारा नेत्रत्रिभागेण दृक्तारा पञ्चमांशिका। त्र्यङ्गुलं(लो)नेत्रविस्तारं(रो)द्रोणीचार्धाङ्गुलामता ।।२१।।
तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लेखा भ्रुवौ चैव समे मते। भ्रूमध्यं द्व्यङ्गुलं कार्यं भ्रूदैर्घ्यं चतुरङ्गुलम् ।।२२।।

ब्रह्मन्! ऊपर सात ही सूत देने चाहिए। तीन कक्षाओं के अन्तर से ही छह सूत दिलावे। फिर मध्य सूत्र को त्याग दे और केवल सूत्रों को ही निवेदित करे ।।७-११।। ललाट, नासिका और मुख का विस्तार चार अंगुल का करना चाहिए। गला और कान का भी चार-चार अंगुल का विस्तार करना चाहिए। दोनों ओर की हनु (ठोढ़ी) दो-दो अंगुल हो और चिबुक (ठोढ़ी के बीच का भाग) भी दो अंगुल का हो। पूरा विस्तार छह अंगुल का होना चाहिए। इसी प्रकार ललाट भी विस्तार में आठ अंगुल का बताया गया है। दोनों ओर के शंख दो-दो अंगुल के बीच बनाये जायँ और उन पर बल भी हों। कान और नेत्र के बीच में चार अंगुल का अन्तर रहना चाहिए। दो-दो अंगुल के कान और पृथुक बनाये। कान और अपाङ्ग ढाई-ढाई अंगुल का बनाये। भौंहों के समान सूत्र के माप को कान का स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छह अंगुल का हो और बिना बिंधा हुआ चार अंगुल का। अथवा बिंधा हुआ या बिना बिंधा, सब चिबुक के समान छह अंगुल का होना चाहिए ।।१२-१६।। गन्धपात्र, आवर्त तथा शष्कुली (कान का पूरा घेरा) भी बनावे। एक अंगुल में नीचे का ओंठ और आधे अंगुल में ऊपर का ओंठ बनावे। नेत्र का विस्तार आधा अंगुल का हो और मुख का विस्तार चार अंगुल का हो। मुख की चौड़ाई डेढ़ अंगुल की होनी चाहिए। नाक की ऊँचाई एक अंगुल हो और ऊँचाई से आगे केवल लम्बाई दो अंगुल की रहे। करवीर कुसुम के समान उसकी आकृति होनी चाहिए। दोनों नेत्रों के बीच चार अंगुल का अंतर हो। दो अंगुल तो आँख के घेरे में आ जाता है, सिर्फ दो अंगुल अन्तर रह जाता है। पूरे नेत्र का तीन भाग करके एक भाग के बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भाग के बराबर दृक्तारा (छोटी पुतली) बनावे। नेत्र का विस्तार दो अंगुल का हो और द्रोणी आधे अंगुल की। उतना ही प्रमाण भौंहों की रेखा का हो। दोनों ओर की भौंहें बराबर रहनी चाहिए। भौंहों का मध्य दो अंगुल का और विस्तार चार अंगुल का होना चाहिए ।।१७-२२।।

---

१ घ. °सिकाव°। २ क. ख. ग. ङ. च. °था गोजी व°। ३ ग. °कोणं च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षड्विंशदङ्गुलायामं मस्तकस्य तु वेष्टनम्। मूर्तीनां केशवादीनां द्वात्रिंशद्वेष्टनं भवेत् ।।२३।।
पञ्चनेत्रा त्वधोग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पुनः। त्रिगुणं तु भवेदूर्ध्वं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुनः ।।२४।।
ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत्। स्कन्धावष्टाङ्गुलौ कार्यौ त्रिकलावंशकौ शुभौ ।।२५।।
सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रबाहू षोडशाङ्गुलौ। त्रिकलौ[1] विस्तृतौ बाहू प्रबाहू चापि तत्समौ ।।२६।।
बाहुदण्डोर्ध्वतो ज्ञेयः परिणाहः कला नव। सप्तदशाङ्गुलो मध्ये कूर्परोऽर्धे च षोडश ।।२७।।
कूर्परस्य भवेन्नाहस्त्रिगुणः कमलोद्भव। नाहः प्रबाहुमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते ।।२८।।
अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते। विस्तारेण करतलं कीर्तितं तु षडङ्गुलम् ।।२९।।
दैर्घ्यं सप्ताङ्गुलं कार्यं मध्या पञ्चाङ्गुला मता। तर्जन्यनामिका चैव तस्मादर्धाङ्गुलं विना ।।३०।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ कार्यौ चतुरङ्गुलसम्मितौ। द्विपर्वोऽङ्गुष्ठकः कार्यः शेषाङ्गुल्यस्त्रिपर्विकाः ।।३१।।
सर्वासां पर्वणोऽर्धेन नखमानं विधीयते। वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमाणतः ।।३२।।
अङ्गुलैका भवेन्नाभिर्वेधेन च प्रमाणतः। ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ।।३३।।
नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः। अन्तरं स्तनयोः[2] कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ।।३४।।
चूचुकौ[3] यवमानौ तु मण्डलं द्विपदं भवेत्। चतुष्षष्ट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् ।।३५।।

भगवान् केशव आदि की मूर्तियों के मस्तक का पूरा घेरा छब्बीस अंगुल का हो अथवा बत्तीस अंगुल का। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अंगुल) की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अंगुल उसका वेष्टन (चारों ओर का घेरा) हो। नीचे से ऊपर की ओर ग्रीवा का विस्तार आठ अंगुल का हो। ग्रीवा और छाती के बीच का अन्तर ग्रीवा के तीन गुने विस्तारवाला होना चाहिए। दोनों ओर के कंधे आठ-आठ अंगुल के और सुन्दर अंश तीन-तीन अंगुल के हों। सात नेत्र (यानी चौदह अंगुल) की दोनों बाँहें और सोलह अंगुल की दोनों प्रबाहुएँ हों। बाहुओं की चौड़ाई छह अंगुल की हो। प्रबाहुओं की भी इनके समान ही होनी चाहिए। बाहुदण्ड का चारों ओर का घेरा कुछ ऊपर से लेकर नौ कला अथवा सत्रह अंगुल समझना चाहिए। आधे पर बीच में कोहनी है। कोहनी का घेरा सोलह अंगुल का होता है। ब्रह्मा जी! प्रबाहु के मध्य में उसका विस्तार सोलह अंगुल का हो। हाथ के अग्रभाग का विस्तार बारह अंगुल का हो और उसके बीच करतल का विस्तार छह अंगुल कहा गया है। हाथ की चौड़ाई सात अंगुल की करे। हाथ के मध्यमा अँगुली की लम्बाई पाँच अंगुल की हो और तर्जनी तथा अनामिका की लम्बाई उससे आधा अंगुल कम अर्थात् ४½ अंगुल की करे। कनिष्ठा और अँगूठे की लम्बाई चार अंगुल की करे। अँगूठे में दो पोरु बनावे और बाकी सभी अँगुलियों में तीन-तीन पोरु बनावे। सभी अँगुलियों के एक-एक पोरु के आधे भाग के बराबर प्रत्येक अँगुली के नख की नाप समझनी चाहिए। छाती की जितनी नाप हो, पेट की उतनी ही रखे। एक अंगुल की छेदवाली नाभि हो। नाभि से लिङ्ग के बीच का अन्तर एक बित्ता होना चाहिए ।।२३-३३।। नाभि-मध्याङ्ग (उदर) का घेरा बयालीस अंगुल का हो। दोनों स्तनों के बीच का अन्तर एक बित्ता होना चाहिए। स्तनों का अग्रभाग चूचुक यव के बराबर बनाये। दोनों स्तनों का घेरा दो पदों के बराबर हो। छाती

---

१ च. त्रिकले। २ च. त्वनयोः। ३ ख. ग. चिबुकौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्मुखं च तदधो वेष्टनं परिकीर्तितम्। परिणाहस्तथा कट्याश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलैः ।।३६।।
विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलैः। तस्मादभ्यधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् ।।३७।।
विस्तृताष्टाङ्गुलं जानु त्रिगुणा परिणाहतः। जङ्घामध्ये तु विस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः ।।३८।।
त्रिगुणः परिधिश्चास्य जङ्घाग्रं पञ्च विस्तरात्। त्रिगुणः परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ ।।३९।।
आयामादुत्थितौ पादौ चतुरङ्गुलमेव च। गुल्फात्पूर्वं तु कर्तव्यं प्रमाणाच्चतुरङ्गुलम् ।।४०।।
त्रिकलं विस्तृतौ पादौ त्र्यङ्गुलो गुह्यकः स्मृतः। पञ्चाङ्गुलस्य नाहोऽस्य दीर्घा तद्वत्प्रदेशिनी ।।४१।।
अष्टमाष्टांशमध्योनाः शेषाङ्गुल्यः[1] क्रमेण तु। सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्तितम्[2] ।।४२।।
तदेव द्विगुणं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा। अर्धाङ्गुलं तथान्यासं क्रमान्न्यूनं तु कारयेत् ।।४३।।
त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरङ्गुलम्। परिणाहोऽत्र कोषाग्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम् ।।४४।।
षडङ्गुलपरिणाहौ वृषणौ परिकीर्तितौ। प्रतिमा भूषणाढ्या स्यादेतदुद्देशलक्षणम् ।।४५।।
अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वा तु लक्षणम्। दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात् पद्ममेव च ।।४६।।

का घेरा चौंसठ अंगुल का बनावे। उसके नीचे और चारों ओर का घेरा वेष्टन कहा गया है। इसी प्रकार कमर का घेरा चौवन अंगुल का होना चाहिए। ऊरुओं के मूल का विस्तार बारह-बारह अंगुल का हो। इसके ऊपर मध्य भाग का विस्तार अधिक रखना चाहिए। मध्य भाग से नीचे के अंगों का विस्तार क्रमशः कम होना चाहिए। घुटनों का विस्तार आठ अंगुल का करे और उसके नीचे जंघा का घेरा तीन गुना अर्थात् चौबीस अंगुल का हो। जंघा के मध्य का विस्तार सात अंगुल का होना चाहिए और उसका घेरा तीन गुना अर्थात् इक्कीस अंगुल का हो। जंघा के अग्रभाग का विस्तार पाँच अंगुल और उसका घेरा तीन गुना-पन्द्रह अंगुल का हो। चरण एक-एक बित्ते लम्बे होने चाहिए। विस्तार से उठे हुए पैर अर्थात् पैरों की ऊँचाई चार अंगुल की हो। गुल्फ (घुट्टी) से पहले का हिस्सा भी चार अंगुल का ही हो। दोनों पैरों की चौड़ाई छह अंगुल की, गुह्यभाग तीन अंगुल का और उसका पंजा पाँच अंगुल का होना चाहिए। पैरों में प्रदेशिनी अर्थात् अँगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अँगुलियों के मध्यभाग का विस्तार क्रमशः पहली अँगुली आठवें-आठवें भाग के बराबर कम होना चाहिए। अँगूठे की ऊँचाई सवा अंगुल बतायी गयी है। इसी प्रकार अँगूठे के नख का प्रमाण और अँगुलियों से दूना रखना चाहिए। दूसरी अँगुली के नख का विस्तार आधा अंगुल तथा अन्य अँगुलियों के नखों का विस्तार क्रमशः जरा-जरा-सा कम कर देना चाहिए ।।३४-४३।। दोनों अण्डकोश तीन-तीन अंगुल लम्बे बनावे और लिंग चार अंगुल लम्बा करे। इसके ऊपर का भाग चार अंगुल कर रखे। अण्डकोशों का पूरा घेरा छह-छह अंगुल का होना चाहिए। इसके सिवा भगवान् की प्रतिमा सब प्रकार के भूषणों से भूषित करनी चाहिए। यह लक्षण संक्षेप से बताया गया ।।४४-४५।। इसी प्रकार लोक में देखे जानेवाले अन्य लक्षणों को भी दृष्टि में रखकर प्रतिमा में उसका निर्माण करना चाहिए। दाहिने हाथों में से ऊपरवाले हाथ में चक्र और नीचेवाले हाथ में पद्म धारण करावे। बायें हाथों में से ऊपरवाले हाथ में शंख और नीचेवाले

---

१ ख. शेषं गुल्फक्रमे°। २ ध °म्। यवोनमङ्गुलं का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वामे शङ्खं गदाधस्ताद् वासुदेवस्य लक्षणात्। श्रीपुष्टी चापि कर्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते ।।४७।।
ऊरुमात्रोच्छ्रितायामे मालाविद्याधरौ तथा। प्रभामण्डलसंस्थौ तौ प्रभा हस्त्यादिभूषणा ।।४८।।
पद्माभं पादपीठं तु प्रतिमास्वेवमाचरेत् ।।४९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिप्रतिमालक्षणकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पिण्डिकादिलक्षणम्

हयग्रीव उवाच

पिण्डिकालक्षणं वक्ष्ये दैर्घ्येण प्रतिमासमा। उच्छ्रायः प्रतिमार्धं तु चतुःषष्टिपुटां च ताम् ।।१।।
त्यक्त्वा पङ्क्तिद्वयं चाधस्तदूर्ध्वं यत्तु कोष्ठकम्। समन्तादुभयोः पार्श्वे अन्तस्थं परिमार्जयेत् ।।२।।
ऊर्ध्वं पङ्क्तिद्वयं त्यक्त्वा अधस्ताद्यत्तु कोष्ठकम्। अन्तः सम्मार्जयेद्यत्नात्पार्श्वयोरुभयोः समम् ।।३।।
तयोर्मध्यगतौ तत्र चतुष्कौ मार्जयेत्ततः। चतुर्धा भाजयित्वा तु ऊर्ध्वपङ्क्तिद्वयं बुधः ।।४।।
मेखला भागमात्रा स्यात् खातं तस्यार्धमानतः। भागं भागं परित्यज्य पार्श्वयोरुभयोः समम् ।।५।।

हाथ में गदा बनावे। यह वासुदेव श्रीकृष्ण का चिह्न है, अतः उन्हीं की प्रतिमा में रहना चाहिए। भगवान् के निकट हाथ में कमल लिये हुए लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये पुष्टि देवी की भी प्रतिमा बनावे। इनकी ऊँचाई (भगवद्विग्रह के) ऊरुओं के बराबर होनी चाहिए। इनके अलावा प्रभामण्डल में स्थित मालाधर और विद्याधर का विग्रह बनावे। प्रभा हस्ती आदि से भूषित होती है। भगवान् के चरणों के नीचे का भाग अर्थात् पादपीठ कमल के आकार का बनावे। इस प्रकार देव-प्रतिमाओं में उक्त लक्षणों का समावेश करना चाहिए ।।४६-४९।।

श्री अग्निमहापुराण में वासुदेव प्रतिमा लक्षण वर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४४।।

अध्याय ४५

पिण्डिका-लक्षण

हयग्रीव बोले-अब मैं पिण्डिका का लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लम्बाई में प्रतिमा के समान ही होती है, परन्तु उसकी ऊँचाई प्रतिमा की आधी होती है। प्रतिमा को चौंसठ पुटों (पदों या कोष्ठकों) से युक्त करके नीचे की दो पंक्ति छोड़ दे और उसके ऊपर का जो कोष्ठ है, उसे चारों ओर दोनों पार्श्वों में भीतर की ओर से साफ कर दे। इसी तरह ऊपर की दो पंक्तियों को त्यागकर उसके नीचे का जो एक कोष्ठ (या पंक्ति) है, उसे भीतर की ओर से साफ कर ले। दोनों पार्श्वों में समानरूप से यह क्रिया करे ।।१-३।। दोनों पार्श्वों के मध्यगत जो चौक है, उसका भी मार्जन कर दे। तदनन्तर उसे चार भागों में बाँटकर विद्वान् पुरुष ऊपर की दो पंक्तियों की मेखला माने। मेखला-भाग की जो मात्रा है, उसके आधे मान के अनुसार उसमें खात खुदावे। फिर दोनों पार्श्वभागों में समानरूप से एक-एक भाग को त्यागकर बाहर की ओर का एक पद

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दत्त्वा चैकं पदं बाह्ये प्रणालं[1] कारयेद् बुधः । त्रिभागेण च भागस्याग्रे स्यात्तोयविनिर्गमः ।।६।।
नानाप्रकारभेदेन भद्रेयं पिण्डिका शुभा । अष्टताला तु कर्त्तव्या देवी लक्ष्मीस्तथा स्त्रियः ।।७।।
भ्रुवौ यवाधिके कार्ये यवहीना तु नासिका । गोलकेनाधिकं वक्त्रमूर्ध्वं तिर्यग्विवर्जितम् ।।८।।
आयते नयने कार्ये त्रिभागोनैर्यवैस्त्रिभिः । तदर्धेन तु वैपुल्यं नेत्रयोः परिकल्पयेत् ।।९।।
कर्णपाशोऽधिकः कार्यः सृक्कणी[2] समसूत्रतः । नम्रं कलाविहीनं तु कुर्याद्वंशद्वयं तथा ।।१०।।
ग्रीवा सार्धकला कार्या तद्विस्तारोपशोभिता । नेत्रं विना तु विस्तारौ ऊरू जानू च पिण्डिका ।।११।।
अङ्घ्रिपृष्ठौ स्फिचौ कट्यां यथायोगं प्रकल्पयेत् । सप्तांशोनास्तथाङ्गुल्यो दीर्घविष्कम्भनाहतः ।।१२।।
नेत्रैकवर्जितायामा जङ्घोरुश्च तथा कटिः । मध्यपार्श्वं च तद्वृत्तं घनं पीनं कुचद्वयम् ।।१३।।
तालमात्रौ स्तनौ कार्यौ कटिः सार्धकलाधिका । लक्ष्म शेषं पुरावत्स्याद्दक्षिणे चाम्बुजं करे ।।१४।।
वामे बिल्वं स्त्रियौ पार्श्वे शुभे चामरहस्तके । दीर्घघोणस्तु गरुडश्चक्राङ्गाद्यानथो वदे ।।१५।।

इत्यादिमहापुराणआग्नेये पिण्डिकादीनां लक्षणवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

नाली बनाने के लिए दे दे। विद्वान् पुरुष उसमें नाली बनवाये। फिर तीन भाग में जो एक भाग है उसके आगे जल निकलने का मार्ग रहे ।।४–६।। नाना प्रकार के भेद से यह शुभ पिण्डिका भद्रा कही गयी है। लक्ष्मी देवी की प्रतिमा ताल (हथेली) के माप से आठ ताल की बनायी जानी चाहिए। अन्य देवियों की प्रतिमा भी ऐसी ही हो। दोनों भौंहों को नासिका की अपेक्षा एक–एक जौ अधिक बनावे और नासिका को उनकी अपेक्षा एक जौ कम। मुख नेत्र गोलक से कुछ अधिक प्रमाण का ऊपर की ओर बनाना चाहिए। वह ऊँचा और टेढ़ा–मेढ़ा न हो। आँखें बड़ी–बड़ी बनानी चाहिए। उनका माप सवा तीन जौ के बराबर हो। नेत्रों की चौड़ाई उनकी लम्बाई की अपेक्षा आधी करे। मुख के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक की जितनी लम्बाई है, उसके बराबर सूत से नापकर कर्णपाश (कान का पूरा घेरा) बनावे। उसकी लम्बाई उक्त सूत से कुछ अधिक ही रखे। दोनों कन्धों को कुछ झुका हुआ और एक कला से रहित बनावे। ग्रीवा की लम्बाई डेढ़ कला रखनी चाहिए। वह उतनी ही चौड़ाई से भी सुशोभित हो। दोनों ऊरुओं का विस्तार ग्रीवा की अपेक्षा एक नेत्र कम होगा। जानु (घुटने), पिण्डली, पैर, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग–इन सबकी यथायोग्य कल्पना करे ।।७–११ $\frac{१}{२}$।। हाथ की अँगुलियाँ बड़ी हों। वे परस्पर अवरुद्ध न हों। बड़ी अँगुली की अपेक्षा छोटी अँगुलियाँ सातवें अंश से रहित हों। जंघा, ऊरु और कटि–इनकी लम्बाई क्रमशः एक–एक नेत्र कम हो। शरीर के मध्यभाग के आसपास का अंग गोल हो। दोनों कुच घने (परस्पर सटे हुए) और पीन (उभरे हुए) हों। स्तनों का माप हथेली के बराबर हो। कटि उनकी अपेक्षा डेढ़ कला अधिक बड़ी हो। शेष चिह्न पूर्ववत् रहें। लक्ष्मी जी के दाहिने हाथ में कमल और बायें हाथ में बिल्वफल हो। उनके पार्श्व भाग में हाथ में चँवर लिये दो सुन्दरी स्त्रियाँ खड़ी हों। सामने बड़ी नाकवाले गरुड़ की स्थापना करे। अब मैं चक्राङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदि का वर्णन करता हूँ ।।१२–१५।।

श्री अग्निमहापुराण में पिण्डिका–लक्षण वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४५।।

---

१ ख. ग. घ. प्रमाणं। २ क. ङ. च. सृक्कण्यां स°। ख. सृक्किणी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्राममूर्तीनां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच

शालग्रामादिमूर्तींश्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाः। वासुदेवः[1] सितो द्वारि[2] शिलालग्नद्विचक्रकः ।।१।।
ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः। सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः[3] प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ।।२।।
पीतोऽनिरुद्धः पद्माङ्को वर्तुलो द्वित्रिरेखवान्। कृष्णो नारायणो नाभ्युन्नतः[4] सुषिरदीर्घवान् ।।३।।
परमेष्ठी साब्जचक्रः पृष्ठच्छिद्रश्च विन्दुमान्। स्थूलचक्रोऽसितो विष्णुर्मध्ये रेखा गदाकृतिः ।।४।।
नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात्पञ्चविन्दुकः। वराहः शक्तिलिङ्गः स्यात्तच्चक्रौ विषमौ स्मृतौ ।।५।।
इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखालाञ्छितः शुभः। कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्तकोऽसितः ।।६।।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकाररेखो नीलः सविन्दुकः। वैकुण्ठ एकचक्रोऽब्जी मणिभः पुच्छरेखकः ।।७।।

अध्याय ४६

शालग्राम मूर्ति के लक्षण

हयग्रीव बोले–अब मैं शालग्रामगत भगवन्मूर्तियों का वर्णन आरम्भ करता हूँ जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जिस शालग्राम-शिला के द्वार में दो चक्र के चिह्न हों और जिसका वर्ण श्वेत हो उसकी 'वासुदेव' संज्ञा है। जिस उत्तम शिला का रंग लाल हो और जिसमें दो चक्र के चिह्न संलग्न हों उसे भगवान् संकर्षण का श्री-विग्रह समझना चाहिए। जिसमें चक्र का सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो वह प्रद्युम्न की मूर्ति है। जहाँ कमल का चिह्न हो, जिसकी आकृतियाँ गोल और रंग पीला हो तथा जिसमें दो-तीन रेखाएँ शोभा पा रही हों वह अनिरुद्ध का श्रीअङ्ग है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत हो और जिसमें बड़े-बड़े छिद्र हों, उसे नारायण का स्वरूप समझना चाहिए। जिसमें कमल और चक्र का चिह्न हो, पृष्ठ भाग में छिद्र हो और जो विन्दु से युक्त हो, वह शालग्राम 'परमेष्ठी' नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें चक्र का स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति श्याम हो और मध्य में गदा जैसी रेखा हो उस शालग्राम की विष्णु संज्ञा है ।।१-४।। नृसिंह-विग्रह में चक्र का स्थूल चिह्न होता है। उसकी कान्ति कपिल वर्ण की होती है और उसमें पाँच विन्दु सुशोभित होते हैं। वराह-विग्रह में शक्ति नामक अस्त्र का चिह्न होता है। उसमें दो चक्र होते हैं जो परस्पर विषम (समानता से रहित) होते हैं ।।५।। इन्द्रनील के समान वर्णवाला, स्थूल और त्रिरेखा से समन्वित शुभ माना गया है। जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्त चिह्न से युक्त एवं श्याम हो, उस शालग्राम की 'कूर्म' (कच्छप) संज्ञा है ।।६।। जो अंकुश की-सी रेखा से सुशोभित, नीलवर्ण एवं विन्दुयुक्त हो, उस शालग्राम-शिला को हयग्रीव कहते हैं। जिसमें एक चक्र और कमल का चिह्न हो, जो मणि के समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखा से सुशोभित हो उस शालग्राम को 'वैकुण्ठ' समझना चाहिए।

---

१ घ. °देवोऽसि°। २ घ. द्वारे। ३ ख. रक्तच्छिद्रः। ४ ङ. च. °तः। शिशिर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मत्स्यो दीर्घस्त्रिविन्दुः स्यात्काचवर्णस्तु पूरितः। श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वर्तुलः ।।८।।
वामनो वर्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सविन्दुकः। श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो वामेन रिक्तकः[1] ।।९।।
अनन्तो नागभोगाङ्को नैकाभो नैकमूर्तिमान्। स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रोऽधः सूक्ष्मविन्दुकः ।।१०।।
सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मीनारायणो द्वयात्। त्रिचक्रश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रो वा त्रिविक्रमः ।।११।।
जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभिः। षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः सङ्कर्षणश्च सप्तभिः ।।१२।।
पुरुषोत्तमोष्टचक्रो नवव्यूहो नवाङ्कितः। दशावतारो दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः ।।
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिमूर्तिलक्षणकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४६।।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्रामादिपूजाकथनम्

हयग्रीव उवाच

शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः[2] सिद्ध्यै वदामि ते। त्रिविधा स्याद्धरेः पूजा काम्याकाम्योभयात्मिका ।।१।।

जिसकी आकृति बड़ी हो, जिसमें तीन विन्दु शोभा पाते हों, जो काँच के समान श्वेत तथा भरा-पूरा हो वह शालग्राम शिला मत्स्यावतारधारी भगवान् की मूर्ति मानी जाती है। जिसमें वनमाला का चिह्न और पाँच रेखाएँ हों उस गोलाकार शालग्राम-शिला को 'श्रीधर' कहते हैं ।।७-८।। गोलाकार, अत्यन्त छोटी, नीली एवं विन्दुयुक्त शालग्राम-शिला की 'वामन' संज्ञा है। जिसकी कान्ति श्याम हो, दक्षिण भाग में हार की रेखा और बायें भाग में विन्दु का चिह्न हो, उस शालग्राम-शिला को 'त्रिविक्रम' कहते हैं ।।९।। जिसमें सर्प के शरीर का चिह्न हो, अनेक प्रकार की आभाएँ दीखती हों तथा जो अनेक मूर्तियों से मण्डित हो, वह शालग्राम-शिला 'अनन्त' (शेषनाग) कही गयी है। जो स्थूल हो, जिसके मध्यभाग में चक्र का चिह्न हो तथा अधोभाग में सूक्ष्म विन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्राम की 'दामोदर' संज्ञा है। एक चक्रवाले शालग्राम को 'सुदर्शन' कहते हैं, दो चक्र होने से उसकी 'लक्ष्मीनारायण' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हों, वह शिला भगवान् 'अच्युत' अथवा 'त्रिविक्रम' है, चार चक्रों से युक्त शालग्राम को 'जनार्दन', पाँच चक्रवाले को 'वासुदेव', छह चक्रवाले को 'प्रद्युम्न' तथा सात चक्रवाले को 'संकर्षण' कहते हैं। आठ चक्रवाले शालग्राम की 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। नौ चक्रवाले को 'नवव्यूह' कहते हैं। दस चक्रों से युक्त शिला की 'दशावतार' संज्ञा है। ग्यारह चक्रों से युक्त होने पर उसे 'अनिरुद्ध', द्वादश चक्रों से चिह्नित होने पर 'द्वादशात्मा' तथा इससे अधिक चक्रों से युक्त होने पर उसे 'अनन्त' कहते हैं ।।१०-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में शालग्रामादिमूर्ति-लक्षण वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४६।।

अध्याय ४७

शालग्राम की पूजा का कथन

हयग्रीव बोले-अब मैं तुम्हारे सम्मुख पूर्वोक्त चक्रांकित शालग्राम विग्रहों की पूजा का वर्णन करता हूँ जो सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीहरि की पूजा तीन प्रकार की होती है-काम्या, अकाम्या और उभयात्मिका। मत्स्य आदि

---

१ घ. विन्दुकः। २ क. च. °पूजां सि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मीनादीनां तु पञ्चानां काम्यार्था[1] वोभयात्मिका । वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये ।।२।।
चक्रादीनां त्रयाणां तु शालग्रामार्चनं शृणु । उत्तमा निष्कला[2] पूजा कनिष्ठा सकलार्चना[3] ।।३।।
मध्यमा मूर्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्त्रके । प्रणवं हृदि विन्यस्य षडङ्गं करदेहयोः ।।४।।
कृतमुद्रात्रयश्चक्राद्बहिः पूर्वे गुरुं यजेत् । आप्ये गणं वायवे च धातारं नैर्ऋते यजेत् ।।५।।
विधातारं च कर्तारं हर्तारं दक्षसौम्ययोः । विष्वक्सेनं यजेदीश आग्नेये क्षेत्रपालकम् ।।६।।
ऋगादिवेदान्प्रागादावाधारानन्तकं भुवम् । पीठं पद्मं चार्कचन्द्रब्रह्माख्यं[4] मण्डलत्रयम् ।।७।।
आसनं द्वादशान्तेन[5] तत्र स्थाप्य शिलां यजेत् । व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत्क्रमात् ।।८।।
पूर्वादावथ वेदाद्यैर्गायत्रीभ्यां जितादिना । प्रणवेनार्चयेत्पश्चान्मुद्रास्तिस्त्रः प्रदर्शयेत् ।।९।।
विष्वक्सेनस्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत् । शालग्रामस्य प्रथमा पूजाऽथो निष्कलोच्यते[6] ।।१०।।
पूर्ववत्षोडशारं च सपद्मं मण्डलं लिखेत् । शङ्खचक्रगदाखड्गैर्गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत् ।।११।।
पूर्वेसौम्ये धनुर्बाणान् वेदाद्यैरासनं ददेत् । शिलां न्यसेद् द्वादशार्णैस्तृतीयं पूजनं शृणु ।।१२।।

पाँच विग्रहों की पूजा काम्या अथवा उभयात्मिका हो सकती है। पूर्वोक्त चक्रादि से सुशोभित वराह, नृसिंह और वामन–इन तीनों की पूजा मुक्ति के लिए करनी चाहिए ।।१–२।। अब शालग्राम–पूजन के विषय में सुनो, जो तीन प्रकार की होती है। इनमें निष्कला पूजा उत्तम, सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजा को मध्यम माना गया है । चौकोर मण्डल में स्थित कमल पर पूजा की विधि इस प्रकार है–हृदय में प्रणव का न्यास करते हुए षडङ्गन्यास करे। फिर करन्यास और व्यापक न्यास करके तीन मुद्राओं का प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् चक्र के बाह्यभाग में पूर्व दिशा की ओर गुरुदेव का पूजन करे। पश्चिम दिशा में गण का, वायव्यकोण में धाता का एवं नैर्ऋत्यकोण में विधाता का पूजन करे। दक्षिण और उत्तर दिशा में क्रमशः कर्त्ता और हर्त्ता की पूजा करे। इसी प्रकार ईशानकोण में विष्वक्सेन और अग्निकोण में क्षेत्रपाल की पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में ऋग्वेदादि चारों वेदों की पूजा करके आधारशक्ति, अनन्त, पृथिवी, योगपीठ, पद्म, सूर्य, चन्द्र और ब्रह्मात्मक अग्नि–इन तीनों के मण्डलों का यजन करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर–मन्त्र से आसन पर शिला की स्थापना करके पूजन करे। फिर मूल मन्त्र का विभाग करके एवं सम्पूर्ण मन्त्र से क्रमपूर्वक पूजन करे। फिर प्रणव से पूजन करने के पश्चात् तीन मुद्राओं का प्रदर्शन करे ।।३–९।। विष्वक्सेन, चक्र और क्षेत्रपाल को (ये मुद्राएँ) दिखाये। इस प्रकार यह शालग्राम की प्रथम पूजा निष्कला कही जाती है। पूर्ववत् षोडशदलकमल से युक्त मण्डल को अङ्कित करे। उसमें शंख, चक्र, गदा और खड्ग–इन आयुधों की तथा गुरु आदि की पहले की भाँति पूजा करे। पूर्व और उत्तर दिशाओं में क्रमशः धनुष और बाण की पूजा करे। प्रणवमन्त्र से आसन समर्पण करे और द्वादशाक्षर–मन्त्र से शिला का न्यास करना चाहिए। अब तीनों प्रकार की कनिष्ठ पूजा का वर्णन करता हूँ, सुनो।

---

१ घ. °म्याद्यो वो°। ख. °म्यार्थे वो°। २ घ. निष्फला। ३ घ. सफला°। ४ घ. °न्द्रवह्न्याख्यं। ५ घ. द्वादशार्णेन। ६ घ. निष्फलो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टारमब्जं विलिखेद् गुर्वाद्यं पूर्ववद् यजेत्। अष्टार्णेनासनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत् ।।१३।।
पूजयेद् दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं ततः[1] ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिपूजाकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम्

श्रीभगवानुवाच

[2]ओंरूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः। नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम् ।।१।।
ततो गदी माधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामि तम्। चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः ।।२।।
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक्। शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे ।।३।।
भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि। शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ।।४।।
गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शंख्यपि। हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ।।५।।

अष्टदलकमल अंकित करके उस पर पहले के समान गुरु आदि की पूजा करे। फिर अष्टाक्षर-मन्त्र से आसन देकर उसी से शिला का न्यास करे। उसी मन्त्र से दस बार पूजन करे और दो बार गायत्री से न्यास करे ।।१०-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में शालग्रामादि पूजन वर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४७।।

अध्याय ४८

चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्र कथन

श्री भगवान् बोले-ओंकारस्वरूप केशव अपने हाथों में पद्म, शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं। नारायण शंख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं। मैं प्रदक्षिणापूर्वक उनके चरणों में नतमस्तक होता हूँ। माधव गदा, चक्र, शंख और पद्म धारण करनेवाले हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ। गोविन्द अपने हाथों में क्रमशः चक्र, गदा, पद्म और शंख धारण करनेवाले तथा बलशाली हैं। श्रीविष्णु गदा, पद्म, शंख और चक्र धारण करते हैं, वे मोक्ष देनेवाले हैं। मधुसूदन शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। मैं उनके सामने भक्ति-भाव से नतमस्तक होता हूँ। त्रिविक्रम क्रमशः पद्म, गदा, चक्र एवं शंख धारण करते हैं। भगवान् वामन के हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पाते हैं, वे सदा मेरी रक्षा करें ।।१-४।। श्रीधर कमल, चक्र, शार्ङ्ग धनुष एवं शंख धारण करते हैं। वे सबको सद्गति प्रदान करनेवाले हैं। हृषीकेष गदा, चक्र, पद्म एवं शंख धारण करते हैं। वे हमारी रक्षा करें। वरदायक भगवान् पद्मनाभ

---

१ घ. तथा। २ घ. तथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खाब्जारिगदाधरः । दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामि तम् ।।६।।
तेने[1] गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत्[2] । सङ्कर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः ।।७।।
गदी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः । अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ।।८।।
सुरेशोऽर्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः । अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खचक्री च पातु वः ।।९।।
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शङ्खी नमामि तम् । अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः[3] ।।१०।।
बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि । जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ।।११।।
शङ्खी पद्मी च चक्री च हरिः कौमोदकीधरः । कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः ।।१२।।
आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात् सङ्कर्षणोऽभवत् । सङ्कर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ।।१३।।
केशवादिप्रभेदेन एकैकः [4]स्यात्त्रिधा क्रमात् । ।।१४।।
द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनं नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

शंख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं। दामोदर के हाथों में पद्म, शंख, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। गदा, शंख, चक्र और पद्म धारण करनेवाले वासुदेव ने ही सम्पूर्ण जगत् का विस्तार किया है। गदा, शंख, पद्म और चक्र धारण करनेवाले संकर्षण आप लोगों की रक्षा करें ।।५-७।। वाद-(युद्ध) कुशल भगवान् प्रद्युम्न चक्र, शंख, गदा और पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध चक्र, गदा, शंख और पद्म धारण करनेवाले हैं। वे हम लोगों की रक्षा करें। सुरेश्वर पुरुषोत्तम चक्र, कमल, शंख और गदा धारण करते हैं, भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शंख और चक्र धारण करनेवाले हैं, वे आप लोगों की रक्षा करें। नृसिंह देव चक्र, कमल, गदा और शंख धारण करनेवाले हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। श्रीगदा, पद्म, चक्र और शंख धारण करनेवाले अच्युत आप लोगों की रक्षा करें। शंख, गदा, चक्र और पद्म धारण करनेवाले बालबटुकरूपधारी वामन, पद्म, चक्र, शंख और गदा धारण करनेवाले जनार्दन, शंख, पद्म, चक्र और गदाधारी यज्ञस्वरूप श्रीहरि तथा शंख, गदा, पद्म एवं चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण मुझे भोग और मोक्ष देनेवाले हों ।।८-१२।। आदिमूर्ति भगवान् वासुदेव हैं। उनसे संकर्षण प्रकट हुए। संकर्षण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से एक-एक क्रमशः केशव आदि मूर्तियों के भेद से तीन-तीन रूपों में अभिव्यक्त हुआ। चौबीस मूर्तियों की स्तुति से युक्त इस द्वादशाक्षर स्तोत्र का जो पाठ अथवा श्रवण करता है वह निर्मल होकर सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेता है ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में चतुर्विंशतिमूर्ति स्तोत्र कथन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४८।।

---

१ क. च. ततो। ख. ग. वामे। २ क. ख. ग. ङ. च.° ब्जजो जग°। ३ क. ख. च. माम्। ४ ख. ग. घ. °कैकस्य त्रिधा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षणवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

दशावतारं[1] मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते। मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात्कूर्मः कूर्माकृतिर्भवेत् ।।१।।
नराङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो[2] गदारिभृत्[3]। दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ।।२।।
श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ। वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत् ।।३।।
नरसिंहो विवृतास्यो वामोरुधृतदानवः[4]। तद्वक्षो दारयन्माली स्फुरच्चक्रगदाधरः ।।४।।
छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः। रामः चापेषुहस्तः स्यात्खड्गी परशुनान्वितः ।।५।।
रामश्चापी शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजः स्मृतः। गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः ।।६।।
वामार्धे[5] लाङ्गलं दद्यादधः शङ्खं सुशोभनम्। मुसलं दक्षिणार्धे[6] तु चक्रं चाधः सुशोभनम् ।।७।।
शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः। ऊर्ध्वं पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ।।८।।

अध्याय ४९

मत्स्यादि दशावतार प्रतिमा लक्षण का वर्णन

श्री हयग्रीव भगवान् बोले–अब मैं तुम्हें मत्स्य आदि दस अवतार–विग्रहों का लक्षण बताता हूँ। मत्स्य भगवान् की आकृति मत्स्य के समान और कूर्म भगवान् की प्रतिमा कूर्म के आकार की होनी चाहिए। पृथ्वी के उद्धारक भगवान् वराह को मनुष्याकार बनाना चाहिए। वे दाहिने हाथ में गदा और चक्र धारण करते हैं। उनके बायें हाथ में शंख और पद्म शोभा पाते हैं। अथवा पद्म के स्थान पर बायें भाग में पद्मा देवी सुशोभित होती हैं। लक्ष्मी उनके बायें कोहनी का सहारा लिये रहती हैं। पृथ्वी तथा अनन्त चरणों के अनुगत होती हैं। भगवान् वराह की स्थापना से राज्य की प्राप्ति होती है और मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है। नरसिंह का मुँह खुला हुआ है। उन्होंने अपनी बायीं जाँघ पर दानव हिरण्यकशिपु को दबा रखा है और उस दैत्य के वक्ष को विदीर्ण करते दिखायी देते हैं। उनके गले में माला है और हाथों में चक्र एवं गदा प्रकाशित हो रहे हैं ।।१–४।। वामन का विग्रह छत्र एवं दण्ड से सुशोभित होता है अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज बनाया जाय। परशुराम के हाथों में धनुष और बाण होना चाहिए। वे खड्ग और फरसे से भी शोभित होते हैं। श्री रामचन्द्र जी के श्रीविग्रह को धनुष, बाण, खड्ग और शंख से सुशोभित करना चाहिए! अथवा वे द्विभुज माने गये हैं। बलराम जी गदा एवं हल धारण करनेवाले हैं अथवा उन्हें भी चतुर्भुज बनाना चाहिए। उनके बायें भाग के ऊपरवाले हाथ में हल धारण कराये और नीचेवाले में सुन्दर शोभावाला शंख, दायें भाग के ऊपरवाले हाथ में मुसल धारण कराये और नीचेवाले हाथ में शोभायमान सुदर्शन चक्र ।।५–७।। बुद्धदेव की प्रतिमा का लक्षण यों है–बुद्ध ऊँचे

---

१ क. ङ. च. 'तारम'। २ क. ङ. च. नृवराहो। ३ ख. ग. घ. 'दादिभृ'। ४ ख. ग. घ. ङ. च. 'रुक्षत'। ५ ख. ग. घ. वामोर्ध्वे। ६ ख. दक्षिणार्धेन। घ. दक्षिणोर्ध्वे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धनुस्तूणान्वितः कल्की म्लेच्छोत्सादकरो द्विजः । अथवाश्वस्थितः खड्गी शङ्खचक्रगदान्वितः ।।९।।
लक्षणं वासुदेवादिनवकस्य वदामि ते । दक्षिणार्धे[1] गदा वामे वामार्धे[2] चक्रमुत्तमम् ।।१०।।
ब्रह्मेशौ पार्श्वगौ नित्यं वासुदेवोऽस्ति पूर्ववत्[3] । शङ्खी सवरदो वाथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः ।।११।।
लाङ्गली मुसली रामो गदापद्मधरः स्मृतः । प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं[4] शङ्खं वामे धनुः करे ।।१२।।
गदाधन्वावृतः[5] प्रीत्या प्रद्युम्नो वा धनुःशरी । चतुर्भुजोऽनिरुद्धः स्यात्तथा नारायणो विभुः ।।१३।।
चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्बृहज्जठरमण्डलः । लम्बकूर्चो जटायुक्तो ब्रह्मा हंसाग्रवाहनः ।।१४।।
दक्षिणे चाक्षसूत्रं च स्रुचो वामे तु कुण्डिकाः । आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे ।।१५।।
विष्णुरष्टभुजस्तार्क्ष्ये[6] करे खड्गस्तु दक्षिणे । गदाधरश्च वरदो वामे कार्मुकखेटके ।।१६।।
चक्रशङ्खौ चतुर्बाहुर्नरसिंहश्चतुर्भुजः । शङ्खचक्रधरो वापि विदारितमहासुरः ।।१७।।
चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले धृतः । धारयन् बाहुना पृथ्वीं वामनः कमलामधः[7] ।।१८।।

पद्ममय आसन पर बैठे हैं। उनके एक हाथ में वरद और दूसरे में अभय की मुद्रा है। वे शान्तस्वरूप हैं। उनके शरीर का रंग गोरा और कान लम्बे हैं। वे सुन्दर पीत वस्त्र से आवृत हैं। कल्कि भगवान् धनुष और तूणीर से सुशोभित हैं। म्लेच्छों के संहार में लगे हैं। वे ब्राह्मण हैं। अथवा उनकी आकृति इस प्रकार बनाये–वे घोड़े की पीठ पर बैठे हैं और अपने चार हाथों में खड्ग, शंख, चक्र एवं गदा धारण किये हैं ।।८–९।। अब मैं तुम्हें वासुदेवादि नौ मूर्तियों के लक्षण बताता हूँ। दाहिने भाग के ऊपरवाले हाथ में उत्तम चक्र–यह वासुदेव की मुख्य पहचान है। उनके एक पार्श्व में ब्रह्मा और दूसरे भाग में महादेव जी सदा विराजमान रहते हैं। वासुदेव की शेष बातें पूर्ववत् हैं। वे शंख अथवा वरद की मुद्रा धारण करते हैं। उनका स्वरूप द्विभुज अथवा चतुर्भुज होता है। बलराम की चार भुजाएँ हैं। वे दायें हाथ में हल और मुसल तथा बायें हाथ में गदा और पद्म धारण करते हैं। प्रद्युम्न दायें हाथ में चक्र और शंख तथा बायें हाथ में धनुष–बाण धारण करते हैं। अथवा द्विभुज प्रद्युम्न के एक हाथ में गदा और दूसरे में धनुष है। वे प्रसन्नतापूर्वक इन अस्त्रों को धारण करते हैं। या उनके एक हाथ में धनुष और दूसरे में बाण है। अनिरुद्ध और भगवान् नारायण का विग्रह चतुर्भुज होता है। ब्रह्मा जी हंस पर आरूढ़ होते हैं। उनके चार मुख और चार भुजाएँ हैं। उदरमण्डल विशाल है। लम्बी दाढ़ी और सिर पर जटा–यही उनकी प्रतिमा का लक्षण है ।।१०–१४।। वे दाहिने हाथों में अक्षसूत्र और स्रुवा एवं बायें हाथों में कुण्डिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं। उनके वाम भाग में सरस्वती और दक्षिण भाग में सावित्री हैं। विष्णु की आठ भुजाएँ हैं। वे गरुड़ पर आरूढ़ हैं। उनके दाहिने हाथ में खड्ग, गदा, बाण और वरद की मुद्रा है। बायें हाथ में धनुष, खेट, चक्र और शंख हैं। अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज भी है। नृसिंह की चार भुजाएँ हैं। उनकी दो भुजाओं से वे महान् असुर हिरण्यकशिपु का वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं ।।१५–१७।। वराह के चार भुजाएँ हैं। उन्होंने शेषनाग को अपने करतल में धारण कर रखा है। वे बायें हाथ से पृथ्वी को और वाम भाग में लक्ष्मी को धारण करते हैं। जब लक्ष्मी

---

१ घ. दक्षिणोर्ध्वे। २ घ. वामोर्ध्वे। ३ ख. °र्वतः। श°। ४ घ. वज्रं। ५ घ. दानभ्यावृ°। ६ घ. °स्तार्क्षे क°। ७ घ. कमलाधरः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पादलग्ना धरा कार्या यदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता। त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये ह्यष्टबाहुस्तु दक्षिणे ।।१९।।
चक्रं शङ्खं च मुसलमङ्कुशं वामके करे। शङ्खशार्ङ्गगदापाशान् पद्मवीणासमन्विते ।।२०।।
लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये विश्वरूपोऽथ दक्षिणे। चक्रं खड्गं च मुसलमङ्कुशं पट्टिशं क्रमात् ।।२१।।
मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशूलं शरं करे। वामे शङ्खं च शार्ङ्गं च गदां पाशं च तोमरम् ।।२२।।
लाङ्गलं परशुं दण्डं छुरिकां चर्म[1] चोत्तमम्। विंशद्बाहुश्चतुर्वक्त्रो दक्षिणस्थोऽथ वामके ।।२३।।
त्रिनेत्रो वामपार्श्वेऽपि[2] शयितो जलशाय्यपि। श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडितः ।।२४।।
नाभिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरेः, शङ्करको हरिः। सूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे[3] ।।२५।।
रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः। शङ्खचक्रगदावेदपाणिश्चाश्वशिरा हरिः ।।२६।।
वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्मपृष्ठगः। दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गे श्रिया सह ।।२७।।
विष्वक्सेनश्चक्रगदी हलशङ्खी हरेर्गणः ।।२८।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षणवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।४९।।

उनके साथ हों, तब पृथ्वी को उनके चरणों में संलग्न बनाना चाहिए। त्रैलोक्यमोहनमूर्ति श्रीहरि गरुड़ पर आरूढ़ हैं। उनके आठ भुजाएँ हैं। वे दाहिने हाथों में चक्र, शंख, मुसल और अंकुश धारण करते हैं। उनके बायें हाथों में शंख, शार्ङ्गधनुष, गदा और पाश शोभा पाते हैं। वाम भाग में कमलधारिणी कमला और दक्षिण भाग में वीणाधारिणी सरस्वती की प्रतिमाएँ बनानी चाहिए। भगवान् विश्वरूप का विग्रह बीस भुजाओं से सुशोभित है। वे दाहिने हाथों में क्रमशः चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, पट्टिश, मुद्गर, पाश, शक्ति, शूल तथा बाण धारण करते हैं। बायें हाथों में शंख, शार्ङ्गधनुष, गदा, पाश, तोमर, हल, फरसा, दण्ड, छुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। उनके दाहिने भाग में चतुर्भुज ब्रह्मा तथा बायें भाग में त्रिनेत्रधारी महादेव विराजमान हैं। जलशायी जल में शयन करते हैं। इनकी मूर्ति शेष-शय्या पर सोयी हुई बनानी चाहिए। भगवती लक्ष्मी उनके एक चरण की सेवा में लगी हैं। विमला आदि शक्तियाँ उनकी स्तुति करती हैं। उन श्रीहरि के नाभि-कमल पर चतुर्भुज ब्रह्मा विराजमान रहे हैं। हरिहर मूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिए ।।१८-२४$\frac{1}{2}$।। वे दाहिने हाथ में शूल और शक्ति धारण करते हैं तथा अन्य बायें हाथ में गदा और चक्र। इस प्रकार शरीर के दाहिने भाग में रुद्र के चिह्न हैं और वाम भाग में केशव के। दाहिने पार्श्व में गौरी तथा वाम पार्श्व में लक्ष्मी विराज रही हैं। भगवान् हयग्रीव के चार हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और वेद शोभा पाते हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर शेषनाग पर और दाहिना पैर कच्छप की पीठ पर रख छोड़ा है। दत्तात्रेय के दो बाँहें हैं। उनके वामांक में लक्ष्मी शोभा पाती हैं। भगवान् के पार्षद विष्वक्सेन अपने चार हाथों में क्रमशः चक्र, गदा, हल और शंख धारण करते हैं ।।२५-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में मत्स्यादिदशावतार प्रतिमालक्षण वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।।४९।।

---

१ ख. ग. घ. चर्मक्षेपणम्। २ घ. °र्श्वेन श°। ३ घ. °पदे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच

चण्डी विंशतिबाहुः स्याद् बिभ्रती दक्षिणैः करैः । शूलासिशक्तिचक्राणि पाशखेटायुधाभयम् ।।१।
डमरुं शक्तिकां वामैर्नागपाशं च खेटकम् । कुठाराङ्कुशपाशांश्च धण्टायुधगदास्तथा ।।२।।
आदर्शमुद्गरान्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका । तदधो महिषश्छिन्नमूर्ध्ना पातितमस्तकः ।।३।।
शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तद्ग्रीवासम्भवः पुमान् । शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्धजेक्षणः ।।४।।
सिंहेनास्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् । याम्याङ्घ्रयाक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगासुरे ।।५।।
चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्दिनी । नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्तितः[1] ।।६।।
आदौ मध्ये तथेन्द्राद्या नवतत्त्वात्मभिः[2] क्रमात् । अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डं च खेटकम् ।।७।।
आदर्शं तर्जनीं चापं ध्वजं डमरुकं तथा । पाशं वामे बिभ्रती च शक्तिमुद्गरशूलकम् ।।८।।

अध्याय ५०

चण्डी आदि देवताप्रतिमाओं के लक्षण

श्री भगवान् बोले–चण्डी बीस भुजावाली हो जो अपने दक्षिण हाथों में शूल, खड्ग, शक्ति, चक्र, पाश, खेट, आयुध, अभय, डमरू और शक्ति धारण करती हो। बायें हाथों में नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घंटा, आयुध, गदा, दर्पण और मुद्गर लिये हो अथवा चण्डी की प्रतिमा दस भुजाओं से युक्त होनी चाहिए। उसके चरणों के नीचे कटे हुए मस्तकवाला महिष हो। उसका मस्तक अलग गिरा हुआ हो। वह हाथों में शस्त्र उठाये हो। उसकी ग्रीवा से एक पुरुष प्रकट हो गया हो जो अत्यन्त कुपित हो। उसके हाथ में शूल हो, वह मुँह से रक्त उगल रहा हो। उसके गले की माला, सिर के बाल और दोनों नेत्र लाल दिखायी देते हों। देवी का वाहन सिंह उसके रूप का आस्वादन कर रहा हो। उस महिषासुर के गले में खूब कसकर पाश बाँधा गया हो। देवी का दाहिना पैर सिंह पर और बायाँ पैर नीचे महिषासुर के शरीर पर हो ।।१–५।। वे चण्डी देवी त्रिनेत्रधारिणी हैं तथा शस्त्रों से सम्पन्न रहकर शत्रुओं का मर्दन करनेवाली हैं। नवकमलात्मक पीठ पर दुर्गा की प्रतिमा में उनकी पूजा करनी चाहिए। पहले कमल के नौ दलों में तथा मध्यवर्तिनी कर्णिका में इन्द्र आदि दिक्पालों की तथा नौ तत्त्वात्मिका शक्तियों के साथ दुर्गा की पूजा करे ।।६–६ $\frac{1}{2}$।। दुर्गा की एक प्रतिमा अट्ठारह भुजाओं की होती है। वह दाहिने भाग के हाथों में मुण्ड, खेटक, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू, ढाल और पाश धारण करती हैं तथा वाम भाग की भुजाओं में शक्ति, मुद्गर,

---

१ क. ङ. च. स्वरूपतः। २ क. ङ. च. °त्त्वाणुभिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वज्रखड्गाङ्कुशशरांश्चक्रं देवी शलाकया। एतैरेवायुधैर्युक्ताः शेषाः षोडशबाहुकाः ।।९।।
डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव। रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।।१०।।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका। उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनाभारुणासिता ।।११।।
नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंहगा। महिषोत्थः पुमाञ्शस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिका ।।१२।।
आलीढा नव दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये। तथा[1] गौरी चण्डिकाद्या कुण्ड्यक्षररदाग्निधृक् ।।१३।।
सैव रम्भा वने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा। स्कन्धमूर्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्पणा ।।१४।।
याम्ये[2] कलाङ्गुलिहस्ता सौभाग्या तत्र चर्द्धिका[3]। लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता ।।१५।।
पुस्ताक्षमालिका हस्ता वीणाहस्ता सरस्वती। कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वापि जाह्नवी ।।१६।।
कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते। सवीणस्तुम्बुरुः शस्तः[4] शूली मात्रग्रतो वृषे ।।१७।।
गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालास्त्रुगन्विता। कुण्डाक्षपात्रिणी वामे हंसगा शाङ्करी स्थिता[5] ।।१८।।

शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र और शलाका लिये रहती हैं। सोलह बाँहवाली दुर्गा की प्रतिमा भी इन्हीं आयुधों में युक्त होती है। अठारह में से दो भुजाओं तथा डमरू और तर्जनी–इन दो आयुधों को छोड़कर शेष सोलह हाथ उन पूर्वोक्त आयुधों से ही सम्पन्न होते हैं। रुद्रचण्डा आदि नौ दुर्गाएँ इस प्रकार हैं–रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका और उग्रचण्डा। ये पूर्वादि आठ दिशाओं में पूजित होती हैं और नवीं उग्रचण्डा मध्यभाग में स्थापित एवं पूजित होती हैं। रुद्रचण्डा आदि आठ देवियों की अंगकान्ति क्रमशः गोरोचना के सदृश पीली, अरुणवर्णा, काली, नीली, शुक्लवर्णा, धूमवर्णा, पीतवर्णा और श्वेतवर्णा है। वे सब-की-सब सिंहवाहिनी हैं। महिषासुर के कण्ठ से प्रकट हुआ जो पुरुष है वह शास्त्रधारी है और ये पूर्वोक्त देवियाँ अपनी मुट्ठी में उसका केश पकड़े रहती हैं ।।७–१२।। ये नौ दुर्गाएँ 'आलीढा' आकृति की होनी चाहिए। पुत्र–पौत्र आदि की वृद्धि के लिए इनकी स्थापना (एवं पूजा) करना उचित है। गौरी ही चण्डिका आदि देवियों के रूप में पूजित होती हैं। वे ही हाथों में कुण्डी, अक्षमाला, गदा और अग्नि धारण करके 'रम्भा' कहलाती हैं। वे ही वन में 'सिद्धा' कही गयी हैं। सिद्धावस्था में वे अग्नि से रहित होती हैं। 'ललिता' भी वे ही हैं। उनका परिचय इस प्रकार है–उनके एक बायें हाथ में गर्दन–सहित मुण्ड है और दूसरे में दर्पण। दाहिने हाथ में कलाङ्गुलि है और उससे ऊपर के हाथ में सौभाग्य की गदा ।।१३–१४ $\frac{1}{2}$।। लक्ष्मी के दायें हाथ में कमल और बायें हाथ में श्रीफल होता है। सरस्वती के दो हाथों में पुस्तक और अक्षमाला शोभा पाती है और शेष दो हाथों में वे वीणा धारण करती हैं। गङ्गा जी की अङ्गकान्ति श्वेत है। वे मकर पर आरूढ़ हैं। उनके एक हाथ में कलश है और दूसरे में कमल। यमुना देवी कछुए पर आरूढ़ हैं। उनके दोनों हाथों में कलश है और वे श्यामवर्णा हैं। इसी रूप में इनकी पूजा होती है। तुम्बुरु की प्रतिमा वीणासहित होनी चाहिए। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। शूलपाणि शंकर वृषभ पर आरूढ़ हो मातृकाओं के आगे–आगे चलते हैं। ब्रह्मा जी की प्रिया सावित्री गौरवर्णा एवं चतुर्मुखी हैं। उनके दाहिने हाथ में अक्षमाला और स्रुक् शोभा पाते हैं और बायें हाथ में वे कुण्ड एवं अक्षपात्र लिये रहती हैं। उनका वाहन हंस है। शंकर–प्रिया पार्वती वृषभ पर आरूढ़ होती हैं।

---

१ ख. ग. त्रयो। २ घ. °म्ये फला°। ३ घ. चोर्ध्विका। ४ घ. शुक्लः। ५ क. ङ. च. सिता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शरचापौ दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं धनुर्वृषौ । कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ।।१९।।
शङ्खचक्रधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक् । दण्डशङ्खारिगदया[1] वाराही महिषस्थिता ।।२०।।
ऐन्द्री गजे[2] वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये । चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्मांसा तु त्रिलोचना ।।२१।।
निर्मांसा अस्थिसारा वा ऊर्ध्वकेशी कृशोदरी । द्वीपिचर्मधरा वामे कपालं पट्टिशं करे ।।२२।।
शूलं कर्त्री दक्षिणे स्याच्छवारूढास्थिभूषणा । विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ।।२३।।
बृहच्छुण्डो[3]ह्यपवीती मुखं सप्तकलं भवेत् । विस्ताराद्दैर्घ्यतश्चैव शुण्डं[4] षट्त्रिंशदलङ्गुलम् ।।२४।।
कला द्वादश नाडी तु ग्रीवा सार्धकलोच्छ्रिता । षट्त्रिंशदङ्गुलः कण्ठो गुह्यमध्यर्धमङ्गुलम् ।।२५।।
नाभिरूरू द्वादशं च जङ्घे पादे तु दक्षिणे । स्वदन्तं परशुं वामे लड्डुकं चोत्पलं शये ।।२६।।
सुमुखी च विडालाक्षी[5] पार्श्वे स्कन्दो मयूरगः । स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ।।२७।।
दक्षे शक्तिः कुक्कुटेऽथ एकवक्त्रोऽथ षण्मुखः । षड्भुजो[6] वा द्वादशभिर्ग्रामेऽरण्ये द्विबाहुकः ।।२८।।
शक्तीषुपाशनिस्त्रिंश[7] गदासत्तर्जनीयुतः । शक्त्या दक्षिणहस्तेषु षट्सु वामे करे तथा ।।२९।।

उनके दाहिने हाथ में धनुष–बाण और बायें हाथ में चक्र–धनुष शोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मोर पर आरूढ़ होती है। उनकी अङ्गकान्ति लाल होती है। उनके दो हाथ हैं और वे अपने हाथों में शक्ति धारण करती हैं ।।१५–१९।। लक्ष्मी अपने दायें हाथ में चक्र और शंख धारण करती हैं तथा बायें हाथ में गदा एवं कमल लिये रहती हैं। वाराही शक्ति भैंसे पर आरूढ़ होती है। उनके हाथ दण्ड, शंख, चक्र और गदा से सुशोभित होते हैं। ऐन्द्री शक्ति ऐरावत पर आरूढ़ होती है। उनके सहस्र नेत्र हैं तथा उनके हाथों में वज्र शोभा पाता है। ऐन्द्री देवी पूजित होने पर सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। चामुण्डा की आँखें वृक्ष के खोखले की भाँति गहरी होती हैं। उनका शरीर मांसरहित–कंकाल दिखायी देता है। उनके तीन नेत्र हैं। मांसहीन शरीर में अस्थिमात्र ही सार है। केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं। पेट सटा हुआ है। हाथी का चमड़ा पहनती हैं। उनके बायें हाथ में कपाल और पट्टिश है तथा दायें हाथ में शूल और कटार है। वे शव पर आरूढ़ होती हैं और हड्डियों के गहनों से अपने शरीर को विभूषित करती हैं ।।२०–२२$\frac{1}{2}$।। विनायक की आकृति मनुष्य के समान है किन्तु उनका पेट बहुत बड़ा है। मुख हाथी के समान है और सूँड़ लम्बी है। वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनके मुख की चौड़ाई सात कला है और सूँड़ की लम्बाई छत्तीस अंगुल। उनकी नाड़ी (गर्दन के ऊपर की हड्डी) बारह कला विस्तृत और गर्दन डेढ़ कला ऊँची होती है। उनके कण्ठभाग की लम्बाई छत्तीस अंगुल है और गुह्यभाग का घेरा डेढ़ अंगुल ।।२३–२५।। नाभि और ऊरु का विस्तार बारह अंगुल है। जाँघों और पैरों का भी यही माप है। वे दाहिने हाथों में गजदन्त और फरसा धारण करते हैं तथा बायें हाथों में लड्डू एवं उत्पल लिये रहते हैं ।।२६।। स्कन्द स्वामी मयूर पर आरूढ़ हैं। उनके उभय पार्श्व में सुमुखी और विडालाक्षी मातृका तथा शाख और विशाख अनुज खड़े हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। वे बालरूपधारी हैं। उनके दाहिने हाथ में शक्ति शोभा पाती है और बायें हाथ में कुक्कुट। उनके एक या छह मुख बनाने चाहिए। कौमारी शक्ति की छहों दाहिनी भुजाओं में शक्ति, बाण, पाश, खड्ग, गदा और तर्जनी (मुद्रा)–ये अस्त्र रहने चाहिए

---

१ क. ङ. च. °खादिग°। २ ख. ग. घ. वामे। ३ क. ङ. च. बृहद्दण्डो। ४ क. कुण्ड°। ५ घ. बिडालाक्षी। ६ ङ. षड्दन्तो। ७ ख. ग. °शस्तत्रदोस्तर्ज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिखिपिच्छं धनुः खेटं पताकाभयकुक्कुटे । कपालकर्तरीशूलपाशभृद्याम्यसौम्ययोः ।।३०।।
([1]गजचर्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद्रुद्रचर्चिका) । सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता ।।३१।।
तेन सा रुद्रचामुण्डा[2] नाटेश्वर्यथ[3] नृत्यती । इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी ।।३२।।
नृवाजिमहिषेभांश्च खादन्ती च करे स्थितान् । दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम् ।।३३।।
बिभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च खेटकम् । खट्वाङ्गं च त्रिशूलं च सिद्धचामुण्डिकाह्वया ।।३४।।
सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका । एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुतारुणा ।।३५।।
भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभिर्युता । एताः श्मशानजा रौद्रा [4]अम्बाष्टकमिदं स्मृतम् ।।३६।।
क्षमा शिवावृता वृद्धा द्विभुजा विवृतानना । दन्तुरा क्षेमकारी स्याद् भूमौ जानुकरा स्थिता ।।३७।।
यक्षिण्यः स्तब्धदीर्घाक्ष्यः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः । पिङ्गाक्ष्यः स्युर्महारम्या रूपिण्योऽप्सरसः सदा ।।३८।।
साक्षमालस्त्रिशूली[5] च नन्दीशो द्वारपालकः । महाकालोऽसिमुण्डी स्याच्छूलखेटकरस्तथा[6] ।।३९।।
कृशो भृङ्गी च नृत्यन्वै कूष्माण्डस्थूलखर्ववान् । गजगोकर्णवक्त्राद्या वीरभद्रादयो गणाः ।।४०।।
घण्टाकर्णोऽष्टादशदोः पापरोगं विदारयन् । वज्रासिदण्डचक्रेषु मुसलाङ्कुशमुद्गरान् ।।४१।।

और छह बायें हाथों में मोरपंख, धनुष, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुक्कुट होने चाहिए। रुद्रचर्चिका देवी हाथी के चर्म धारण करती हैं। उनके मुख और एक पैर ऊपर की ओर उठे हैं। वे बायें-दायें हाथों में क्रमशः कपाल, कर्तरी, शूल और पाश धारण करती हैं। वे ही देवी-'अष्टभुजा' के रूप में चर्चित होती हैं-वे मुण्डमाला और डमरू से सुशोभित होती हैं ।।२७-३१।। इसी (अर्थात् डमरू और मुण्डमाला से युक्त होने के) कारण से वे ही रुद्रचामुण्डा कही गयी हैं। वे नृत्य करती हैं, इसलिए नाट्येश्वरी कहलाती हैं। ये ही आसन पर बैठी हुई चतुर्मुखी 'महालक्ष्मी' (की तामसी मूर्ति) कही गयी हैं, जो अपने हाथों में पड़े हुए मनुष्यों, घोड़ों, भैंसों और हाथियों को खा रही हैं। सिद्धचामुण्डा देवी के दस भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। ये दाहिने भाग के पाँचों हाथों में शस्त्र, खड्ग तथा तीन डमरू धारण करती हैं और बायें भाग के हाथों में घण्टा, खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल (और ढाल) लिये रहती हैं। सिद्धयोगेश्वरी देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं देवी की स्वरूपभूता एक दूसरी शक्ति हैं, जिनकी अंगकान्ति अरुण है। ये अपने दो हाथों में पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा भैरवी नाम से विख्यात हैं। रूपविद्या बारह भुजाओं से युक्त कही गयी हैं। ये सब-की-सब श्मशान-भूमि में प्रकट होनेवाली तथा भयंकर हैं। इन आठों देवियों को अम्बाष्टक कहते हैं ।।३२-३६।। क्षमादेवी-शृगालियों से आवृत हैं। वे एक बूढ़ी स्त्री के रूप में स्थित हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। मुँह खुला हुआ है, दाँत निकले हुए हैं तथा ये धरती पर घुटनों और हाथ का सहारा लेकर बैठी हैं। उनके द्वारा उपासकों का कल्याण होता है। यक्षिणियों की आँखें एकटक देखनेवाली और बड़ी होती हैं। शाकिनियाँ वक्रदृष्टि से देखनेवाली होती हैं। अप्सराएँ सदा ही अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर रूपवाली होती हैं। इनकी आँखें भूरी होती हैं ।।३७-३८।। भगवान् शंकर के द्वारपाल नन्दीश्वर एक हाथ में अक्षमाला और दूसरे में त्रिशूल लिये रहते हैं। महाकाल के एक हाथ में तलवार, दूसरे में कटा हुआ सिर, तीसरे में शूल और चौथे में खेट होना चाहिए। भृङ्गी का शरीर कृश होता है। वे नृत्य की मुद्रा में देखे जाते हैं। उनका मस्तक कूष्माण्ड के समान स्थूल और गंजा होता है। वीरभद्र आदि गण हाथी और गाय के समान कान और मुखवाले होते हैं। वे पाप और रोग का विनाश करनेवाले हैं। वे बायें भाग के आठों हाथों में वज्र, खड्ग, दण्ड, चक्र, बाण, मुसल, अंकुश और मुद्गर तथा दायें भाग में आठ हाथों में तर्जनी, खेट, शक्ति,

---

१ गजचर्म·····चर्चिका क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २. क. ङ. च. भद्रचामुण्डा। ३ च. नाटेश्व°। ४ आद्याष्टकमिति कुत्रचित्पुस्तके पाठः। ५ ख. ग. °क्षपात्रा त्रिशू°। ६ घ. °कवांस्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिणे तर्जनीं खेटं शक्तिं मुण्डं च पाशकम् । चापं घण्टां कुठारं च द्वाभ्यां चैव त्रिशूलकम् ।।४२।।
घण्टामालाकुलो देवो विस्फोटकविमर्दनः ।।४३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणनिरूपणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५०।।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच

ससप्ताश्वे सैकचक्रे रथे सूर्यो द्विपद्मधृक् । मषीभाजनलेखन्यौ[1] बिभ्रद्दण्डी[2] तु दक्षिणे ।।१।।
वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत्स रवेर्गणः । बालव्यजनधारिण्यौ पार्श्वे राज्ञी च निष्प्रभा ।।२।।
अथवाश्वसमारूढः कार्य एकस्तु भास्करः । वरदा द्व्यब्जिनः सर्वे दिक्पाः शस्त्रकराः क्रमात् ।।३।।
मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोऽग्न्यादिविदिक्स्थिताः । सूर्यार्यमादिरक्षोऽन्ताश्चतुर्हस्ता द्विषड्दले ।।४।।

मुण्ड, पाश, धनुष, घण्टा और कुठार धारण करते हैं। शेष दो हाथों में त्रिशूल लिये रहते हैं। घण्टी की माला से अलंकृत देव घण्टाकर्ण विस्फोटक (फोड़े आदि) का निवारण करनेवाले होते हैं ।।३९-४३।।

श्री अग्निमहापुराण में चण्डी आदि देवप्रतिमालक्षण वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ।।५०।।

अध्याय ५१

सूर्यादिग्रहदेवताओं की प्रतिमाओं के लक्षण

श्री भगवान् हयग्रीव बोले–सात अश्वों से जुते हुए एक पहियेवाले रथ पर विराजमान सूर्यदेव की प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए। भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथों में दो कमल धारण करते हैं। उनके दाहिने भाग में दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हैं और वाम भाग में हाथ में दण्ड लिये द्वार पर पिङ्गल विद्यमान हैं। ये दोनों सूर्यदेव के पार्षद हैं। भगवान् सूर्यदेव के उभय पार्श्व में चँवर लिये राज्ञी तथा निष्प्रभा खड़ी हैं। अथवा घोड़े पर चढ़े हुए एकमात्र सूर्य की ही प्रतिमा बनानी चाहिए। समस्त दिक्पाल हाथों में वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में स्थित दिखाये जाने चाहिए ।।१-३।। बारह दलों का एक कमल चक्र बनावे। उसमें सूर्य, अर्यमा आदि नामवाले बारह आदित्यों का क्रमशः बारह दलों में स्थापना करे। यह स्थापना वरुण दिशा एवं वायव्यकोण से आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोण के अन्त तक दलों में होनी चाहिए। उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथों में मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों। अग्निकोण से लेकर नैर्ऋत्य तक, नैर्ऋत्य से वायव्य तक, वायव्य से ईशान तक और वहाँ से अग्निकोण तक के दलों में उक्त आदित्यों की स्थिति जाननी चाहिए ।।४।।

---

१ घ. मसीभा°। २ घ. °भ्रत्कुण्डी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वरुणः सूर्यनामा च सहस्रांशुस्तथापरः। धाता तपनसञ्ज्ञश्च सविताऽथ गभस्तिकः ।।५।।
रविश्चैवाथ पर्जन्यस्त्वष्टा मित्रोऽथ विष्णुकः। मेषादिराशिसंस्थाश्च मार्गादिकार्तिकान्तकाः ।।६।।
कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डरकः सितः। कपिलः पीतवर्णश्च शुकाभो धवलस्तथा ।।७।।
धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केसराग्रगाः। इडा सुषुम्ना विश्वार्चिरिन्दुसञ्ज्ञा प्रमर्दिनी ।।८।।
प्रहर्षिणी महाकाली कपिला च प्रबोधिनी। नीलाम्बरा वनान्तस्था[1] अमृताख्या च शक्तयः ।।९।।
वरुणादेश्च तद्वर्णा केसराग्रेषु विन्यसेत्। तेजश्चण्डो महावक्त्रो द्विभुजः पद्मखड्गभृत् ।।१०।।
कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्त्यक्षमालिकः। बुधश्चापाक्षपाणिः[2] स्याज्जीवः कुण्ड्यक्षमालिकः ।।११।।
शुक्रः कुण्ड्यक्षमाली स्यात्किङ्किणीसूत्रवाञ्शनिः। अर्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ।।१२।।
अनन्तस्तक्षकः कर्कः पद्मो महाब्जः शङ्खकः। कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः ।।१३।।
इन्द्रोवज्री गजारूढच्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान्। यमो दण्डी च महिषे नैर्ऋतः खड्गवान्नरे[3] ।।१४।।
मकरे वरुणः पाशी वायुर्वज्रधरो मृगे। गदी कुबेरो मेषस्थ ईशानश्च जटी वृषे ।।१५।।
द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्माक्षसूत्रभृत्। हनुमान् वज्रहस्तः स्यात् पद्भ्यां सम्पीडितासुरः[4] ।।१६।।

बारह आदित्यों के नाम इस प्रकार हैं–वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु। वे मेष आदि बारह राशियों में स्थित होकर जगत् को ताप एवं प्रकाश देते हैं। ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (वृश्चिक राशि) से लेकर कार्तिक मास (तुला राशि) तक के मासों (अथवा राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य करते हैं। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ लाल, पीली, पाण्डु, श्वेत, कपिल, पीला, तोते के समान हरा, धवल, धूम्र और नीला है। शक्तियाँ द्वादश–दल कमल के केसराग्रों में स्थित होती हैं ।।५–७ $\frac{1}{2}$।। शक्तियों के नाम ये हैं–इड़ा, सुषुम्ना, विश्वार्ची, इन्दु, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था और अमृता ।।८–९।। वरुण आदि की जो अंगकान्ति है, वही इन शक्तियों की भी है। केसरों के अग्रभाग में इनकी स्थापना करनी चाहिए। सूर्यदेव का तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपने हाथों में कमल और खड्ग धारण करते हैं ।।१०।। चन्द्रमा, कुण्डिका और अक्षमाला से युक्त होते हैं। मंगल शक्ति और अक्षमाला धारण करते हैं। बुध के हाथों में धनुष और अक्षमाला होती है। बृहस्पति कुण्डी और अक्षमालाधारी होते हैं। शुक्र के हाथों में भी कुण्डिका और अक्षमाला होती है। शनि किङ्किणी–सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्धचन्द्रधारी हैं तथा केतु के हाथों में खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं। अनन्त, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक आदि सभी मुख्य नागगण सूत्रधारी होते हैं। फन ही इनके मुख हैं। वे सब महान् प्रभापुञ्ज से उद्भासित होते हैं। इन्द्र वज्रधारी हैं। ये हाथी पर आरूढ़ होते हैं। अग्नि का वाहन बकरा है। अग्नि देवशक्ति धारण करते हैं। यम दण्डधारी हैं और भैंसे पर आरूढ़ होते हैं। निर्ऋति खड्गधारी हैं और मनुष्य उनका वाहन है। वरुण मकर पर आरूढ़ हैं और पाश धारण करते हैं। वायु वज्रधारी हैं और मृग उनका वाहन है। कुबेर मेष पर चढ़ते और गदा धारण करते हैं। ईशान जटाधारी हैं और वृषभ उनका वाहन है ।।११–१५।। समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान् जी के हाथ में वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरों से असुर को दबा रखा है। किन्नर–

---

१ घ. घनान्तस्था। २ ख. ग. ङ. °क्षसाली स्या°। ३ घ. वान्करे। ४ °ताश्रयः। वी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वीणाहस्ताः किन्नराः स्युर्मालाविद्याधराश्च खे। दुर्बलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः ।।१७।।
क्षेत्रपालाः शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षणवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५१।।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच

योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये इन्द्रादीशान्ततः क्रमात्। अक्षोभ्यां रुक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणा[1] क्षमा ।।१।।
पिङ्गाक्षी चाक्षया[2] क्षेमा इला नीलालया तथा। लोला रक्ता[3] बलाकेशा लालसा विमला पुनः ।।२।।
दुर्गा[4] सा च विशालाक्षी ह्रींकारा[5] वडवामुखी। महाक्रूरा क्रोधना तु भयङ्करी महानना ।।३।।
सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना। साराख्या रससङ्ग्राही[6] शबरा[7] तालजङ्घिका ।।४।।
रक्ताक्षी सुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्किणी। मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी वरप्रदा ।।५।।
चण्डा[8] चण्डवती[9] चैव प्रपञ्चा प्रलयान्तिका। शिशुवक्त्रा पिशाची पिशितासवलोलुपा[10] ।।६।।

मूर्तियाँ हाथ में वीणा लिये हुए हों और विद्याधर माला धारण किये आकाश में स्थित दिखाये जायँ। पिशाचों के शरीर दुर्बल कंकालमात्र हों। वेतालों के मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतों के पेट लम्बे और कृश हों ।।१६-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में सूर्यादिग्रहदेवताओं की प्रतिमाओं का लक्षणवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५१।।

अध्याय ५२

चतुःषष्टियोगिनी-प्रतिमालक्षण

श्री भगवान् बोले-अब मैं चौंसठ योगिनियों का वर्णन करूँगा। इनका स्थान क्रमशः पूर्व दिशा से ईशान-पर्यन्त है। इनके नाम इस प्रकार हैं-१. अक्षोभ्या, २. रुक्षकर्णी, ३. राक्षसी, ४. क्षपणा, ५. क्षमा, ६. पिङ्गाक्षी, ७. अक्षया, ८. क्षेमा, ९. इला, १०. नीलालया, ११. लोला, १२. रक्ता, १३. बलाकेशा, १४. लालसा, १५. विमला, १६. दुर्गा (अथवा हुताशा), १७. विशालाक्षी, १८. ह्रींकारा (अथवा हुंकारा), १९. अश्वमुखी, २०. महाक्रूरा, २१. क्रोधना, २२. भयङ्करी, २३. महानना, २४. सर्वज्ञा, २५. तरला, २६. तारा, २७. ऋग्वेदा, २८. हयानना, २९. सारा, ३०. रससङ्ग्राही, ३१. शबरा, ३२. तालजङ्घा, ३३. रक्ताक्षी, ३४. सुप्रसिद्धा, ३५. विद्युज्जिह्वा, ३६. करङ्किणी, ३७. मेघनादा, ३८. प्रचण्डा, ३९. उग्रा, ४०. कालकर्णी, ४१. वरप्रदा, ४२. चण्डा, ४३. चण्डवती, ४४. प्रपञ्चा, ४५. प्रलयान्तिका, ४६. शिशुमुखी, ४७. पिशाची, ४८. पिशितासवलोलुपा,

---

१ घ. कृपणाक्षया। २ घ. च क्षया। ३ घ. लक्ता। ४ घ. हुताशा। ५ घ. हुङ्कारा। ६ क. च. सुसङ्ग्राही। ग. घ. रुद्रसङ्ग्राही। ७ ख. घ. सम्बरा। ८ ख. ग. घ. चन्द्रा। ९ ख. ग. घ. चन्द्रावली। १० घ. °ताशा चलो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धमनी तपनी चैव रागिणी[१] विकृतानना। वायुवेगा बृहत्कुक्षिर्विकृता विश्वरूपिका ।।७।।
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयन्तिका। बिडाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका ।।८।।
अष्टहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः। भैरवश्चार्कहस्तः स्याद्दन्तुरास्यो[२] जटेन्दुभृत् ।।९।।
[३]खट्वाङ्कुशकठोरेषुविश्वाभयभृदेकतः। चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः[४] ।।१०।।
गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः। प्रेतासनो[५] मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽथवा ।।११।।
अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम्। तत्षडङ्गानि जात्यन्तैरन्वितं च क्रमाद्यजेत् ।।१२।।
मन्दिराग्निदलारूढं[६] सुवर्णरसनान्वितम्[७]। नादविन्द्विन्दुसंयुक्तं मातृनाथाङ्गदीपितम् ।।१३।।
वीरभद्रो वृषारूढो मातृगः[८] स चतुर्भुजः। गौरी तु द्विभुजा त्र्यक्षा शूलिनी दर्पणान्विता ।।१४।।
त्रिशूलकुण्डिकाकुण्डिवरहस्ता चतुर्भुजा। अब्जस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशलाकया ।।१५।।
चण्डिकादशहस्ता स्यात्खड्गशूलारिशक्तिधृक्। दक्षे वामे नागपाशं चर्माङ्कुशकुठारकम् ।।१६।।
धनुः सिंहे च महिषः शूलेन प्रहतोग्रतः ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५२।।

---

४९. धमनी, ५०. तपनी, ५१. रागिणी, ५२. विकृतवदना, ५३. वायुवेगा, ५४. बृहत्कुक्षि, ५५. विकृता, ५६. विश्वरूपिका, ५७. यमजिह्वा, ५८. जयन्ती, ५९. दुर्जया, ६०. जयन्तिका, ६१. विडाली, ६२. रेवती, ६३. पूतना, ६४. विजयान्तिका ।।१–८।। ये अष्टहस्ता, चतुर्हस्ता और इच्छा के अनुसार शस्त्रों को धारण करनेवाली और सब सिद्धियों को देनेवाली हैं। भैरव के बारह भुजाएँ होती हैं। उनके दाँत मुख से बाहर निकले हुए होते हैं और वे सिर पर जटा और चन्द्रमा को धारण किये रहते हैं ।।९।। एक ओर के हाथों में खट्वा (एक अस्त्र), अङ्कुश, कुठार, बाण और अभय (मुद्रा) को धारण करते हैं तो दूसरी ओर के हाथों में धनुष, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। इनके अवशिष्ट दो हाथों में गजचर्म रहता है और वह स्वयं गजचर्म पहने रहते हैं। शरीर पर साँप लपेटे रहते हैं अथवा भैरव की आकृति पञ्चमुखी होती है, वे मातृकाओं के बीच प्रेतासन पर विराजमान रहते हैं और सबसे पूज्य हैं ।।१०–११।। पूर्व दिशा से लेकर अग्नि दिशा तक अविलोमक्रम से दीर्घाष्टक के एक–एक मन्त्र से जात्यन्त से युक्त उनके षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए ।।१२।। मन्दिर के अग्निदल पर आरूढ़, स्वर्ग की करधनी पहने, नाद, विन्दु और बालचन्द्रमा से संयुक्त तथा मातृनाथ की अङ्गशोभा से दीप्त भैरव की पूजा भलीभाँति होनी चाहिए ।।१३।। चतुर्भुज वीरभद्र मातृगणों के मध्य में बैल पर सवार रहते हैं। गौरी जी के दो भुजाएँ और तीन नेत्र होते हैं। वह एक हाथ में शूल और दूसरे में दर्पण लिये रहती हैं ।।१४।। चार भुजावाली ललिता के हाथों में त्रिशूल, गगरी, कमण्डलु और वरद मुद्रा रहती है। वह कमलासन पर विराजमान और स्कन्दगणों से सुशोभित रहती हैं ।।१५।। चण्डिका के दस हाथ होते हैं, जिसमें दाहिने हाथों में खड्ग, शूल, चक्र, शक्ति, और बायें हाथों में नागपाश, चर्म, अंकुश, कुठार और धनुष रहते हैं। वह सिंह पर आरूढ़ होकर शूल से महिषासुर के ऊपर प्रहार करती हैं ।।१६–१७।।

श्री अग्निमहापुराण में चतुःषष्टि योगिनी प्रतिमालक्षण वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५२।।

---

१ क. वामनी। २ ख. ग. घ. स्यात् कूर्पर°। ३ क. घ. खड्गाङ्कुश। ४ ङ च. °र्धघरोद्यतः। ५ घ. °ताशनो। ६ मण्डलाग्निदलारूढमिति क्वचित् पुस्तके पाठः। ७ घ. °सकान्वि°। ८ ग. घ. मात्रग्रे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गादिलक्षणम्

श्रीभगवानुवाच

लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छृणु । दैर्घ्यार्द्धं वसुभिर्भक्त्वा त्यक्त्वा भागत्रयं ततः ।।१।।
विष्कम्भं भूतभागैस्तु चतुरस्त्रं तु कारयेत् । आयाममृतुभिर्भक्त्वा[1] एकद्वित्रिक्रमान्न्यसेत् ।।२।।
ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्धमानोऽयमुच्यते । चतुरस्त्रोऽस्य कर्णार्धं गुह्यकोणेषु लाञ्छयेत् ।।३।।
अष्टाग्रो वैष्णवो भागः सिद्धत्येव न संशयः । षोडशास्त्रं ततः कुर्याद्द्वात्रिंशास्त्र ततः पुनः ।।४।।
चतुःषष्ट्यस्त्रकं कृत्वा वर्तुलं साधयेत्ततः । कर्तयेदथ लिङ्गस्य शिरो वै देशिकोत्तमः ।।५।।
विस्तारमथलिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् । भागार्धार्धं तु संत्यज्य च्छत्राकारं शिरो भवेत् ।।६।।
त्रिषु भागेषु सदृश आयामो यस्य विस्तरः । तद्विभागसमं लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ।।७।।
दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं देवपूजिते । सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृणु साम्प्रतम् ।।८।।
मध्यसूत्रं समासाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं बुधः । षोडशाङ्गुललिङ्गस्य षड्भागैर्भाजितो यथा ।।९।।

अध्याय ५३

लिङ्गादिलक्षण

श्री भगवान् बोले–अये ब्रह्मन्! अब मैं लिङ्गादि का लक्षण बतलाऊँगा, उसे सुनो। पहले एक चौकोर प्रस्तर–खण्ड को लेकर उसे लम्बाई से दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए। उसमें से नीचेवाले भाग के आठ बराबर भाग कर देना चाहिए। इसके तीन भागों को छोड़कर शेष पाँच भागों में से चौकोर विष्कम्भ का निर्माण कराये। फिर लम्बाई के छह भाग करके उनको एक, दो और तीन के क्रम से अलग रखिये ।।१–२।। इनमें से प्रथम भाग ब्रह्मभाग, दूसरा विष्णुभाग और तीसरा शिवभाग कहलाता है। यह शिवभाग शेष दो भागों की अपेक्षा बड़ा होता है। यह वर्धमान कहलाता है। विष्णुभाग को अष्टभुजा के रूप में बना लिया जाता है। तत्पश्चात् उसकी बत्तीस और चौंसठ भुजाएँ बनाकर गोलाकार बना लेना चाहिए। तदनन्तर शिल्पी को लिङ्ग का सिर काटना चाहिए और लिङ्ग के विस्तार को आठ भागों में विभक्त करके उसके सिर को छत्राकार बना लेना चाहिए ।।३–६।। जिसकी लम्बाई–चौड़ाई तीन भागों में समान हो वह समभागवाला लिङ्ग सभी कामनाओं को प्रदान करनेवाला कहा जाता है ।।७।। इस लिङ्ग का विष्कम्भ पूरी लिङ्ग की लम्बाई का चतुर्थांश होता है और देवोपासना में इसी प्रमाण को स्वीकार किया जाता है। अब मैं सभी लिङ्गों का सामान्य लक्षण बताऊँगा, उसे सुनो ।।८।। बुद्धिमान् व्यक्ति को सोलह अङ्गुल लिङ्ग को छह भागों में इस प्रकार से विभक्त करना चाहिए कि मध्यसूत्र ब्रह्म और रुद्र भागों से होता हुआ जाय। इस प्रकार सूत्रों से बने हुए भागों में पहले दो भागों का

---

१ ख. ङ. च. °यामं मूर्तिभि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तद्वैयमनसूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते। यवाष्टमुत्तरे कार्यं शेषाणां यवहानितः ।।१०।।
अर्चाभागं त्रिधा कृत्वा ह्यूर्ध्वमेकं परित्यजेत्। अष्टधा तद्द्वयं कृत्वा ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यजेत् ।।११।।
ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्भागाद्भ्राम्यलेखां प्रलम्बयेत्। भागमेकं परित्यज्य संगमं कारयेत्तयोः ।।१२।।
एतत्साधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया। सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकान्तं[1] निबोध मे ।।१३।।
ब्रह्मभागप्रवेशं च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम्। न्यसेद्ब्रह्मशिलां विद्वान् सम्यक्कर्म शिलोपरि ।।१४।।
तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत्। द्विभागमुच्छ्रितं पीठं विस्तारे लिंगसम्मितम् ।।१५।।
त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं विभाजयेत्। स्वमानार्धत्रिभागेण बाहुल्यं परिकल्पयेत् ।।१६।।
बाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ कल्पयेत्। खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमान्निम्नं तु कारयेत् ।।१७।।
मेखलाषोडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः। उच्छ्रायं तस्य पीठस्य विकाराङ्गं तु कारयेत् ।।१८।।
भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागेनैकेन पिण्डिका। कण्ठं भागैस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ।।१९।।
द्व्यंशेन चोर्ध्वपट्टं तु एकांशाः शेषपट्टिकाः। भागं भागं प्रविष्टं तु यावत्कण्ठं ततः पुनः ।।२०।।
निर्गमं भागमेकं तु यावद्वैशेषपट्टिका। प्रणालस्य त्रिभागेण निर्गमस्तु त्रिभागतः ।।२१।।

विस्तार आठ यव होता है और उसके बाद प्रत्येक वर्ग अपने पूर्व वर्ग की अपेक्षा एक यव कम होता है ।।९-१०।। उसके ऊपर के भाग को छोड़कर नीचे के भाग को तीन भागों में विभक्त कर देना चाहिए और शेष दो भागों को आठ खण्डों में विभक्त करके ऊपर के तीन भागों को अलग कर देना चाहिए ।।११।। पाँचवें भाग के ऊपर घूमती हुई एक लम्बी रेखा बनावे और एक भाग को छोड़कर बीच में उन दो रेखाओं का संगम करावे ।।१२।। यह मैंने लिङ्गों का साधारण लक्षण बताया है, अब मैं पिण्डिकान्त के सम्बन्ध में साधारण रूप से बताऊँगा, इसे भी समझिये ।।१३।। ब्रह्मभाग में प्रवेश तथा लिङ्ग की ऊँचाई ज्ञात करके विद्वान् व्यक्ति को कर्मशिला के ऊपर ब्रह्मशिला को स्थापित करना चाहिए। पिण्डिका के विभिन्न भागों को उसकी ऊँचाई के अनुसार ही बनाना चाहिए। पीठ की ऊँचाई ऐसे दो भागों के बराबर होनी चाहिए और उसकी लम्बाई लिङ्ग की लम्बाई के अनुसार होनी चाहिए ।१४-१५।। पीठ के मध्य भाग में खात (गड्ढा) करके उसे तीन भागों में विभाजित करे। अपने मान के त्रिभाग से बाहुल्य की कल्पना करे ।।१६।। बाहुल्य के तृतीय भाग से मेखला बनावे और मेखला के ही तुल्य खात (गड्ढा) तैयार करे। उसे क्रमशः निम्न (नीचे झुका हुआ) रखे ।।१७।। मेखला के सोलहवें अंश से खात निर्माण करे और उसी के माप के अनुसार उस पीठ की ऊँचाई बनवाये। पीठ का एक भाग भूमि में रहेगा और एक भाग से पिण्डिका बनेगा। तीन भागों से कण्ठ और एक भाग से उसकी पट्टिका का निर्माण करना चाहिए। इसी प्रकार उसके दो अंशों से ऊर्ध्व पट्ट और एक-एक अंश से शेष पट्टिकाओं का निर्माण करना चाहिए ।।१८-१९ $\frac{1}{2}$।। प्रत्येक पट्ट इतना चौड़ा होना चाहिए जिससे क्रमशः कण्ठ तक पहुँचा जा सके। तत्पश्चात् पुनः एक भाग से निर्गम (जल निकालने का मार्ग) बनाया जाय। यह शेष पट्टिकों तक रहे। प्रणाल (नाली) के तृतीय भाग से निर्गम बनाना चाहिए ।।२०-२१।। उसके आधार की चौड़ाई एक ओर किनारे की चौड़ाई अङ्गुल

---

१ क. घ. °कान्तान्निबो०।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलेऽङ्गुल्यग्रविस्तारमग्रे त्र्यंशेन चार्धतः। ईषन्निम्नं तु कुर्वीत खातं तच्चोत्तरेण वै ।।२२।।
पिण्डिकासहितं लिङ्गमेतत्साधारणं स्मृतम् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गादिलक्षणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनम्

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्याम्यन्यप्रकारेण लिङ्गमानादिकं शृणु। वक्ष्ये लवणजं लिङ्गं घृतजं बुद्धिवर्धनम् ।।१।।
भूतये वस्त्रलिङ्गं तु लिङ्गं तात्कालिकं विदुः। पक्वापक्वं मृन्मयं स्यादपक्वात्पक्वजं परम् ।।२।।
ततो दारुमयं पुण्यं दारुजाच्छैलजं वरम्। शैलाद्वरं तु मुक्ताजं ततो लौहं सुवर्णजम् ।।३।।
राजतं[1] कीर्तितं ताम्रं पैत्तलं भुक्तिमुक्तिदम्। रत्नजं[2] रसलिङ्गं च भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ।।४।।
रसजं[3] रजलोहादिरत्नगर्भं तु बन्धयेत्। मानादि[4] लौष्टे सिद्धादिस्थापितेऽथ स्वयंभुवि ।।५।।

का षष्ठांश होना चाहिए और उनका ढाल कुछ-कुछ नीचे की ओर होना चाहिए। यह पिण्डिका से युक्त साधारण लिङ्ग कहा जाता है ।।२२-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में लिङ्गादिलक्षणवर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।५३।।

अध्याय ५४

लिङ्ग के मानादि का व्यक्ताव्यक्त लक्षण-वर्णन

श्री भगवान् बोले-अब मैं लिङ्ग के मानादि के सम्बन्ध में अन्य प्रकार से कह रहा हूँ, उसे सुनो। नमक और घी का बना हुआ लिङ्ग बुद्धिवर्द्धक होता है तथा वस्त्र का बना हुआ लिङ्ग सम्पत्ति को बढ़ानेवाला हुआ करता है। ये लिङ्ग पूजा के लिए तत्काल बना लिये जाते हैं। मिट्टी के लिङ्ग दो प्रकार के होते हैं-पक्व और अपक्व। अपक्व की अपेक्षा पक्व लिङ्ग उत्तम होता है ।।१-२।। मिट्टी से बने हुए लिङ्ग की अपेक्षा काष्ठलिङ्ग अधिक पुण्यप्रद होता है। काष्ठलिङ्ग से प्रस्तरलिङ्ग, प्रस्तरलिङ्ग से मौक्तिकलिङ्ग और मौक्तिकलिङ्ग से लौहलिङ्ग अधिक श्रेष्ठ होता है। किन्तु स्वर्णलिङ्ग लौहलिङ्ग से भी अधिक फल देनेवाला हुआ करता है ।।३।। चाँदी, ताँबा, पीतल, राँगा और रस (पारद) के बने हुए लिङ्ग श्रेष्ठ और भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हुआ करते हैं ।।४।। रस (पारद) के लिङ्ग को राँगा, लोहा (सुवर्ण, ताँबा) आदि के भीतर रत्नादि से जटित कर स्थापित करना चाहिए। सिद्ध आदि के द्वारा स्थापित हुए अथवा स्वयंभू लिङ्ग में मान का विचार नहीं

---

१ क. ङ. च. तारज°। २ ख. ग. घ. रङ्गजं। ३ ख. ग. घ. रसलो°। ४ ख. ग. घ. मानादिनेष्टं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाणे[1] च स्वेच्छया तेषां पीठप्रासादकल्पना। पूजयेत्सूर्यबिम्बस्थं दर्पणे [2]प्रतिबिम्बितम् ।।६।।
पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्चनं भवेत्। हस्तोत्तरोच्छ्रितं[3] शैलं दारुजं तद्वदेव हि ।।७।।
चलमङ्गुलमानेन द्वारगर्भकरैः स्थिरम्[4]। अङ्गुलाद्गृहलिङ्गं स्याद्यावत्पञ्चदशाङ्गुलम् ।।८।।
द्वारमानात्त्रिसंख्याकं[5] नवधागर्भमानतः। नवधागर्भमानेन लिङ्गं धाम्नि[6] च पूजयेत् ।।९।।
एवं लिङ्गानि षट्त्रिंशज्ज्ञेयानि ज्येष्ठमानतः। मध्यमानेन षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशदधमेन च ।।१०।।
इत्थमैक्येन लिङ्गानां शतमष्टोत्तरं भवेत्। एकाङ्गुलादि पञ्चान्तं कनिष्ठं [7]चलमुच्यते ।।११।।
षडादिदशपर्यन्तं चललिङ्गं च मध्यमम्। एकादशाङ्गुलादि स्याज्ज्येष्ठं पञ्चदशान्तिकम् ।।१२।।
षडङ्गुलं महारत्नैरत्नैरन्यैर्नवाङ्गुलम्। [8]रविभिर्हेमतारोत्थं लिङ्गं शेषैस्त्रिपञ्चभिः ।।१३।।
षोडशांशे च वेदांशे युगं लुप्तोर्ध्वदेशतः। द्वात्रिंशत्षोडशांशाश्च कोणयोस्तु विलोपयेत् ।।१४।।
चतुर्निवेशनात्कण्ठो विंशतिस्त्रियुगैस्तथा। पार्श्वभ्यां विलुप्ताभ्यां चललिङ्गं भवेद्वरम् ।।१५।।
धाम्नो युगर्तुनागांशैर्द्वारमानोनितं क्रमात्। लिङ्गे द्वारोच्छ्रयादर्वाग्भवेत्पादोनितं क्रमात् ।।१६।।

है। यही बात बाण लिङ्ग (नर्मदेश्वर) के सम्बन्ध में भी है। शिवलिङ्गों के पीठ और प्रासाद की कल्पना इच्छानुसार कर लेनी चाहिए। सूर्य बिम्ब में स्थित लिङ्ग की पूजा दर्पण में प्रतिबिम्बित करनी चाहिए ।।५-६।। वैसे तो शिव की पूजा सर्वत्र की जा सकती है, किन्तु लिङ्ग के रूप में शिवार्चन करने से पूजा पूर्ण मानी जाती है-पत्थर और काष्ठ का बना हुआ लिङ्ग एक हाथ ऊँचा होना चाहिए ।।७।। चलशिवलिङ्ग का स्वरूप अङ्गुलमान के अनुसार निर्मित करना चाहिए तथा स्थिर लिङ्ग का द्वारमान गर्भमान तथा हस्तमान से। गृह में स्थापित चललिङ्ग की ऊँचाई एक अंगुल से लेकर पन्द्रह अंगुल तक होनी चाहिए ।।८।। द्वारमान से लिङ्ग के तीन भेद हैं। इनमें से प्रत्येक के गर्भाधान के अनुसार नौ-नौ भेद हैं। इस प्रकार कुल सत्ताईस हुए। इसके अतिरिक्त करमान से नौ लिङ्ग और हैं। इनकी देवालय में पूजा करनी चाहिए ।।९।। इस प्रकार सबको एक में जोड़ने पर छत्तीस लिङ्ग जानने चाहिए। ये ज्येष्ठमान के अनुसार हैं। मध्यममान से छत्तीस प्रकार और अधममान से छत्तीस प्रकार के लिङ्ग होने से सब मिलाकर एक सौ आठ प्रकार के लिङ्ग होते हैं। चललिङ्ग का प्रमाण एक अंगुल से लेकर पाँच अंगुल तक होता है। यह सबसे छोटा प्रमाण है ।।१०-११।। छह अंगुल से दस अंगुल तक मध्यममान होता है। और ग्यारह अंगुल से पन्द्रह अंगुल तक का मान ज्येष्ठमान कहा जाता है ।।१२।। महारत्नों का बना हुआ लिङ्ग छह अंगुल का, अन्य रत्नों का बना हुआ लिङ्ग नौ अंगुल का, स्वर्णभार का बना हुआ लिङ्ग बारह अंगुल का तथा शेष वस्तुओं से बना हुआ लिङ्ग पन्द्रह अंगुल का होना चाहिए ।।१३।। लिङ्ग शिला के षोडशांश और चतुर्थांश में ऊपर से दो भाग करके दोनों कोणों के बत्तीस और सोलह अंशों में मिटा देना चाहिए ।।१४।। तत्पश्चात् उसमें चार भाग और जोड़ देने से 'कण्ठ' बनता है। दोनों पार्श्वों के बाहर अंशों को मिटा देने से ज्येष्ठ चललिङ्ग बन जाता है। प्रासाद की ऊँचाई को सोलह भागों में विभक्त करके उसमें चार, छह और आठ अंशों द्वारा क्रमशः हीन, मध्यम और उत्तम द्वार बन जाते हैं। द्वार की ऊँचाई की एक चौथाई कम कर देने से जो ऊँचाई शेष रहती है वही लिङ्ग की ऊँचाई होती है ।।१५-१६।। लिङ्ग शिला के गर्भ की आधी ऊँचाई का

---

१ ख. ग. घ. वामे। ङ. च. बाणवत्स्वेच्छया। २ ख. ग. °तिचिह्नित°। ३ घ. हस्तोत्तरविधं°। ४ ख. ग. घ. स्थितम्। ५ क. ङ. च. नाद्विसं°। ६ क. ङ. च. वाऽग्निं। ७ क. ख. ग. घ. ङ. च. कन्यसंवलमु°। ८ घ. °मभारो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भार्धेनाधमं लिङ्गं भूतांशैः स्यात्त्रिभिर्वरम् । तयोर्मध्ये सूत्राणि सप्त सम्पातयेत्समम् ।।१७।।
एवं स्युर्नवसूत्राणि भूतसूत्रैश्च मध्यमम् । द्व्यन्तरो वामवा (भाग) श्च लिङ्गानां दीर्घता नव ।।१८।।
हस्ताद्विवर्धते हस्तो यावत्स्युर्नव पाणयः । हीनमध्योत्तमं लिङ्गं त्रिविधं त्रिविधात्मकम् ।।१९।।
एकैकलिङ्गमध्येषु त्रीणि त्रीणि च पादशः । लिङ्गानि घटयेद्धीमान्षट्सु चाष्टोत्तरेषु च ।।२०।।
स्थिरदीर्घप्रमाणैस्तु[1] द्वारगर्भकरात्मिका । भागेशं चाऽऽप्यमीशं च देवेशं तुल्यसंज्ञितम् ।।२१।।
चत्वारि लिङ्गरूपाणि विष्कम्भेण तु लक्षयेत् । दीर्घमायान्वितं कृत्वा लिङ्गं कुर्यात्त्रिरूपकम् ।।२२।।
चतुरष्टाष्टवृत्तं च तत्त्वत्रयगुणात्मकम् । लिङ्गानामीप्सितं दैर्घ्यं तेन कृत्वाऽङ्गुलानि वै ।।२३।।
ध्वजाद्यायैः सुरैर्भूतैः शिखिभिर्वा हरेत्कृती[2] । तान्यङ्गुलानि यच्छेषं लक्षयेच्च शुभाशुभम् ।।२४।।
ध्वजाद्या ध्वजसिंहेभवृषः श्रेष्ठाः परेऽशुभाः । स्वरेषु षड्जगान्धारपञ्चमाः शुभदायकाः ।।२५।।
भूतेषु च शुभा भूः स्यादग्निश्चाऽऽहवनीयकः । उक्तायामस्य चार्धांशे नागांशैर्भाजिते क्रमात् ।।२६।।
रसभूतांशषष्ठांशत्र्यंशाधिकशरैर्भवेत् । आद्यानाद्यसुरे[3] ज्यार्क तुल्यानां चतुरस्त्रता ।।२७।।

शिवलिङ्ग अधम और तीन भूतांशों की ऊँचाई का शिवलिङ्ग ज्येष्ठ माना जाता है। इन दोनों के बीच में सात स्थानों पर सूत्रों के द्वारा रेखाएँ बना देनी चाहिए ।।१७।। इस प्रकार सूत्र के द्वारा बनी हुई रेखाओं की संख्या नौ हो जाती है। इन नौ सूत्रों में पाँच सूत्रों की ऊँचाई के बराबर शिवलिङ्ग मध्यम कहलाता है। लिङ्गों की लम्बाई क्रमशः दो-दो अंशों में अन्तर से होने के कारण लिङ्गों की सम्पूर्ण संख्या नौ होगी। नव लिङ्गों का निर्माण यदि हाथों से नापकर किया जाय तो पहला लिङ्ग एक हाथ का बनाकर उत्तरोत्तर लिङ्ग की लम्बाई (ऊँचाई) में एक-एक हाथ की वृद्धि करते हुए नवाँ लिङ्ग नौ हाथ की ऊँचाई का हो जाता है। पहले हीन, मध्यम और ज्येष्ठ भेद से तीन प्रकार के जो लिङ्ग बताये गये हैं उनमें भी तीन-तीन भेद होते हैं ।।१८-१९।। बुद्धिमान् व्यक्ति को एक-एक लिङ्ग में विभागशः तीन-तीन लिङ्गों का निर्माण करना चाहिए। स्थिर लिङ्ग का निर्माण तीन परिमाणों का होता है जिन्हें क्रमशः द्वारमान, गर्भमान तथा हस्तमान कहना चाहिए। उपर्युक्त परिमाणों के आधार पर ही इन लिङ्गों के तीन नाम हैं-भागेश, जलेश और देवेश ।।२०-२१।। विस्तार के अनुसार लिङ्गों का लक्षण चार प्रकार का होता है। लिङ्ग को आय आदि से युक्त करके लम्बा और तीन रूपों में बनाना चाहिए ।।२२।। इन तीनों प्रकार के लिङ्गों की लम्बाई चार या आठ हाथ होनी चाहिए। यही लिङ्ग का तत्त्वत्रय रूप है। जो लिङ्ग जितने अंगुल ऊँचा होता है उन अंगुलों को आठ, सात, पाँच और तीन संख्याओं से भाग देने पर जो शेष बचता है उसी के अनुसार शुभाशुभ फल माना जाता है ।।२३-२४।। ध्वज आदि आयों में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ आय हैं-ध्वज, सिंह, गज और वृषभ। अन्य चार आय अशुभ माने जाते हैं। स्वरों में षड्ज, गान्धार और पञ्चम शुभ फल देनेवाले हुआ करते हैं ।।२५।। भूतों में पृथ्वी तथा अग्नि में आहवनीय शुभ मानी गयी है। लिङ्ग की लम्बाई को आधा करके और उसे आठ से भाग देने पर सात, छह, पाँच और तीन से अधिक शेष रहने पर लिङ्ग क्रमशः आढ्य, दैवेज्य, अनाढ्य और अर्कतुल्य माना जाता है। यह चारों प्रकार के लिङ्ग चौकोर होते हैं ।।२६-२७।। व्यास की अपेक्षा नाह दीर्घ होने के कारण पाँचवें प्रकार का लिङ्ग

---

१ ख. घ. प्रमेयात्तु द्वा°। २ ख. घ. °त्कृतिम्। ता°। ३ घ. आढ्यानाढ्यसु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चमं वर्धमानाख्यं व्यासान्नाहप्रवृद्धितः । द्विधा भेदा बहून्यत्र वक्ष्यन्ते विश्वकर्मतः ।।२८।।
आद्यादीनां[1] त्रिधा स्थौल्यादवधूतं[2] तथाऽष्टधा । त्रिधा हस्ताज्जिनाख्यं च युक्तं सर्वसमेन च ।।२९।।
पञ्चविंशतिलिङ्गानि नाद्ये देवार्चिते तथा । पञ्चसप्तभिरेकत्वाज्जिनैर्भक्तैर्भवन्ति हि ।।३०।।
चतुर्दशसहस्राणि चतुर्दशशतानि च । एवमष्टाङ्गुलविस्तारो नवैककरगर्भतः ।।३१।।
तेषां कोणार्धकोणस्थैश्छिन्द्यात्कोणानि सूत्रकैः । विस्तारं मध्यतः कृत्वा स्थाप्यं वा मध्यतस्त्रयम् ।।३२।।
विभागादूर्ध्वमष्टास्त्रो द्वयष्टास्त्रः स्याच्छिवांशकः । पादाज्जान्वन्तको ब्रह्मा नाभ्यन्तो विष्णुरित्यतः ।।३३।।
मूर्धान्तो भूतभागेशो व्यक्तेऽव्यक्ते च तद्वति । पञ्चलिङ्गव्यवस्थायां शिरो वर्तुलमुच्यते ।।३४।।
छत्राभं कुक्कुटाभं वा [3]बालेन्दुपुरुषाकृतिः । एकैकस्य चतुर्भेदैः कामभेदात्फलं वदे ।।३५।।
लिङ्गमस्तकविस्तारं वसुभक्तं तु कारयेत् । आद्यभागं चतुर्धा तु विस्तारोच्छ्रायतो भजेत् ।।३६।।
चत्वारि तत्र सूत्राणि भागभागानुपातनात् । पुण्डरीकं तु भागेन विशालाख्यं विलोपनात् ।।३७।।
त्रिशातनात्तु श्रीवत्सं शत्रुकृद्वेदलोपनात् । शिरःसर्वसमे श्रेष्ठं कुक्कुटाभं सुराह्वये ।।३८।।

वर्धमान नाम से जाना जाता है। इन लिङ्गों के भी दो भेद होते हैं–एक तो वह जिसमें व्यास से नाह बड़ा होता है और दूसरा वह जिसमें नाह से व्यास बड़ा होता है। विश्वकर्मा के मतानुसार इसके बहुत से भेदों के सम्बन्ध में बताया जायगा ।।२८।। आद्य इत्यादि लिङ्गों के स्थूलत्व के कारण तीन भेद और हो जाते हैं। इन तीनों भेदों में से एक यव की वृद्धि से सब लिङ्ग आठ प्रकार के हो जाते हैं। तदनन्तर हस्तमान से बने 'जिन' संज्ञक लिङ्ग के भी तीन भेद हो जाते हैं। उसे सर्वसमलिङ्ग से युक्त कर देना चाहिए ।।२९।। अनाद्य तथा देवार्चित लिङ्गों के पचीस भेद हो जाते हैं। ये सभी एक–एक, जिन और भक्त दोनों से पचहत्तर प्रकारों के हो जाते हैं ।।३०।। इन सब भेदों को मिलाकर शिवलिङ्ग के कुल पन्द्रह हजार चार सौ (१५,४००) हो जाते हैं। इसी प्रकार आठ अंगुल का लिङ्ग भी एकाङ्गुल मान, हस्तमान और गर्भमान के अनुसार नौ भेदों से युक्त है ।।३१।। इनके कोणों का छेदन कोणस्थ और अर्धकोणस्थ सूत्रों के द्वारा करना चाहिए। लिङ्ग के मध्य भाग के विस्तार को ही प्रमाण मानकर उसके अनुसार ऊर्ध्व और निम्न भागों की स्थापना करनी चाहिए ।।३२।। मध्यम भाग से ऊपर अष्टकोण तथा षोडश कोणवाला विभाग शिवांश कहलाता है। लिङ्ग का पाद से लेकर जानुपर्यन्त जो भाग होता है वह ब्रह्मा का अंश माना जाता है तथा जानु से नाभिपर्यन्त जो भाग होता है उसे विष्णु का अंश माना जाता है ।।३३।। लिङ्ग का मूर्धान्त भूतभागेश्वर का होता है। यह बात व्यक्त और अव्यक्त सभी लिङ्गों में सम्बन्धित है। पञ्चलिङ्ग व्यवस्था से युक्त शिवलिङ्ग का सिर वर्तुलाकार कहा गया है ।।३४।। वह वर्तुल (गोलाई) छत्राकार, कुक्कुट (के अण्डे) के आकारवाला, चन्द्राकार और पुरुषाकार हो सकता है। इस प्रकार एक–एक के चार–चार भेद हो जाते हैं। कामनाओं के भेद के अनुसार उनके फलों को बताया जा रहा है ।।३५।। लिङ्ग के मस्तक के विस्तार को आठ भाग में करना चाहिए। इनमें से प्रथम भाग को विस्तार की ऊँचाई से चार भाग में विभक्त कर देना चाहिए ।।३६।। उसमें प्रत्येक भाग में अनुपात से चार भाग हो जाते हैं। एक भाग को अलग कर देने से जो लिङ्ग बनता है, उसे 'पुण्डरीक' कहते हैं। दो भागों के लोप से बना हुआ लिङ्ग 'विशाल', तीन भागों का उच्छेद कर देने पर 'श्रीवत्स' संज्ञक लिङ्ग तथा चार भागों के लोप से बना हुआ लिङ्ग 'शत्रुकृत' कहा जाता है। सभी ओर से समसिर श्रेष्ठ होता है और सुर नामक लिङ्ग में वह कुक्कुट (के अण्डे) के समान होता है ।।३७–३८।। चार भागों

---

१ घ. आद्यादीनां। २ ख. ल्यादाद्यवृद्ध्या त°। ३ घ. °न्दुप्रतिमाकृ°। च. °न्दुत्रपुषां°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्भागात्मके लिङ्गे त्रपुषं द्वयलोपनात्। अनाद्यस्य शिरः प्रोक्तमर्धचन्द्रं शिरः शृणु ।।३९।।
अंशात्प्रान्ते युगांशैश्च द्वैकहान्याऽमृताक्षकम्। पूर्णबालेन्दुकुमुदं द्वित्रिवेदक्षयात्क्रमात् ।।४०।।
चतुस्त्रिरेखं वदनं मुखलिङ्गमतः शृणु। पूजाभागः प्रकर्त्तव्यो मूर्त्यग्निपदकल्पितः ।।४१।।
अर्काशं पूर्ववत्त्यक्त्वा षट्स्थानानि च वर्तयेत्। शिरोन्नतिः प्रकर्तव्या ललाटं नासिका ततः ।।४२।।
वदनं चिबुकं ग्रीवा युगभागैर्भुजाक्षिभिः। कराभ्यां मुकुलीकृत्य प्रतिमायाः प्रमाणतः ।।४३।।
मुखं प्रति समः कार्यो विस्तारादष्टमांशतः। चतुर्युगं मया प्रोक्तं त्रिमुखं चोच्यते शृणु ।।४४।।
कर्णपादाधिकास्तस्य ललाटादीनि निर्दिशेत्। भुजौ चतुर्भिर्भागैस्तु कर्तव्यौ पश्चिमोर्जितौ ।।४५।।
विस्तारादष्टमांशेन मुखानां प्रतिनिर्गमः। एकवक्त्रं तथा कार्यं पूर्वास्यं[1] सौम्यलोचनम् ।।४६।।
ललाटनासिकावक्त्रग्रीवायां च विवर्तयेत्। भुजाच्च पञ्चमांशेन भुजहीनं विवर्तयेत् ।।४७।।
विस्तारस्य षडंशेन मुखैर्निर्गमनं हितम्। सर्वेषां मुखलिङ्गानां त्रपुषं वाऽथ कुक्कुटम् ।।४८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५४।।

से युक्त लिङ्ग में दो भागों का लोप कर देने से 'त्रपुष' नामक लिङ्ग बन जाता है। इसे अनाद्य नामक शिवलिङ्ग का सिर कहा जाता है। अब अर्धचन्द्र नामक सिर के सम्बन्ध में सुनिये ।।३९।। शिवलिङ्ग के प्रान्त भाग में चार अंशों में से एक भाग को हटा देने से लिङ्ग का नाम अमृताक्ष पड़ जाता है। दो, तीन तथा चार अंशों के लोप से बननेवाले लिङ्गों के नाम हैं–पूर्णेन्दु, बालेन्दु और कुमुद ।।४०।। यह क्रमशः चतुर्मुख, त्रिमुख और द्विमुख होते हैं। अब मुखलिङ्ग के सम्बन्ध में बताया जा रहा है, उसे सुनो। पूजा भाग की कल्पना तीन प्रकार से करनी चाहिए–मूर्तिपूजा, अग्निपूजा और पदपूजा ।।४१।। पहले के समान द्वादशांश का परित्याग करके छह भागों के द्वारा छह स्थानों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए। सर्वप्रथम सिरोन्नति करनी चाहिए और उसके बाद ललाट और नासिका को उठाना चाहिए ।।४२।। इसी प्रकार मुख, चिबुक और ग्रीवा को भी स्पष्ट करना चाहिए। दो भागों द्वारा दोनों भुजाओं तथा नेत्रों के साथ प्रतिमा के प्रमाणानुसार मुकुलाकार हाथों का निर्माण करके विस्तार के अष्टमांश से चारों मुखों को बनाना चाहिए। ये मुख सभी ओर से समान होते हैं। इस प्रकार चार मुखवाले लिङ्ग के सम्बन्ध में बताया गया है। अब त्रिमुख लिङ्ग के सम्बन्ध में बताया जा रहा है, इसे भी सुनिये ।।४३–४४।। त्रिमुख लिङ्ग में चतुर्मुख लिङ्ग की अपेक्षा कान और पेट बड़े होते हैं, किन्तु ललाट इत्यादि पूर्ववत् ही रहते हैं। चार अंशों में से दो भुजाओं का निर्माण करना चाहिए जिनका पिछला भाग परिपुष्ट हो। मुखों का निर्गम लिङ्ग के विस्तार के अष्टमांश से होना चाहिए। इसी प्रकार एक मुखवाले लिङ्ग का निर्माण भी करना चाहिए जिसमें मुख पूर्व की ओर हो और जिसके नेत्र अत्यन्त सौम्य हों ।।४५–४६।। इस लिङ्ग के ललाट, नासिका, मुख और ग्रीवा में उभार होना चाहिए। इन भागों को मुद्रा के पञ्चमांश से बनाना चाहिए, किन्तु इसे भुजाओं से हीन ही रखना चाहिए ।।४७।। इसमें विस्तार के षडंश से मुख का निर्माण करना चाहिए। इन सभी लिङ्गों का मुख त्रपुष के आकार का अथवा कुक्कुट (के अण्डे) के आकार का हुआ करता है ।।४८।।

श्री अग्निमहापुराण में लिङ्ग के मानादि का व्यक्ताव्यक्त लक्षणवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।।५४।।

---

१ घ. पूर्वस्यां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिण्डिकालक्षणम्

श्रीभगवानुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमानां तु पिण्डिकाम्। दैर्घ्येण प्रतिमा तुल्या तदर्धेन तु विस्तृता ।।१।।
उच्छ्रिताऽऽयामतोऽर्धेन सुविस्ताराऽर्धभागतः। तृतीयेन तु वा तुल्यां तत्त्रिभागेन मेखलाम् ।।२।।
खातं च तत्प्रमाणं तु किञ्चिदुत्तरतो नतम्। विस्तारस्य चतुर्थेन तोयमार्गं तु कारयेत् ।।३।।
पिण्डिकार्धेन वा तुल्यं दैर्घ्यमीशस्य[1] कीर्तितम्। ऐशं[2] वा तुल्यदीर्घं च ज्ञात्वा सूत्रं[3] प्रकल्पयेत् ।।४।।
([4]उच्छ्रायं पूर्ववत्कुर्याद्भागषोडशसंख्यया। अधः षट्कं द्विभागं तु कण्ठे[5] कुर्यात्त्रिभागकम् ।।५।।
शेषास्त्वेकैकशः कार्याः प्रतिष्ठा निर्गमस्तथा। पट्टिका पिण्डिका चेयं सामान्यप्रतिमासु च ।।६।।
प्रासादद्वारमानेन [6]प्रतिमाद्वारमुच्यते। गजव्यालकसंयुक्ता प्रभास्यात्प्रतिमासु च ।।७।।
पिण्डिकाऽपि यथाशोभं कर्तव्या सततं हरेः)। सर्वेषामेव देवानां विष्णूक्तं मानमुच्यते ।।८।।
देवीनामपि सर्वासां लक्ष्म्युक्तं मानमुच्यते ।।९।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये पिण्डिकालक्षणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५५।।

अध्याय ५५

पिण्डिका-लक्षण

श्री भगवान् बोले–इसके अनन्तर मैं प्रतिमा की पिण्डिका (पीठ) के सम्बन्ध में बताऊँगा। पीठिका, लम्बाई में प्रतिमा के बराबर होनी चाहिए परन्तु चौड़ाई उसकी आधी होनी चाहिए ।।१।। ऊँचाई और लम्बाई के आधे से और चौड़ाई के आधे से अथवा तिहाई के बराबर पीठिका और उसकी तिहाई के बराबर मेखला बनानी चाहिए ।।२।। उसी परिमाण के बराबर प्रतिमा से उत्तर की ओर एक गड्ढा खोदना चाहिए जो आगे की ओर कुछ झुका हुआ रहे। उसके विस्तार के चौथाई भाग से जल के निकलने का मार्ग (प्रणाल) बनाना चाहिए ।।३।। मूलभाग में उसका विस्तार पूर्व के ही बराबर हो, परन्तु आगे चलकर वह आधा हो जाय। पिण्डिका के विस्तार के एक तिहाई भाग के बराबर वह जलमार्ग हो। पिण्डिका के परिमाण के बराबर प्रतिमा की लम्बाई होनी चाहिए। उसी के बराबर ईश की प्रतिमा का परिमाण जानकर सूत्र को बनाना चाहिए ।।४।। सोलह भाग की संख्या के बराबर ऊँचाई अधोभाग बारह के बराबर और तीन भाग के बराबर कण्ठ बनाना चाहिए। प्रतिष्ठा निर्गम और पट्टिका एक-एक भाग के बराबर बनाना उत्तम होता है। यह सामान्य प्रतिमाओं में पिण्डिका का लक्षण बताया गया है ।।५-६।। प्रासाद द्वार के मान के बराबर प्रतिमा का द्वार होता है। प्रतिमा के चारों ओर हाथी और व्याल से युक्त प्रभामण्डल अवश्य रहना चाहिए ।।७।। विष्णु की पिण्डिका भी सुशोभित होनी चाहिए। सब देवों की प्रतिमा के लिए विष्णु की प्रतिमा का परिमाण और सब देवियों की प्रतिमा के लिए लक्ष्मी की प्रतिमा का परिमाण उपयुक्त होता है ।।८-९।।

श्री अग्निमहापुराण में पिण्डिका का लक्षणवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।।५५।।

---

१ ख. °र्घ्यंकुश°। ङ. च. °र्घ्यंदेश°। २ ख. ङ. च. कुशं। ३. ङ. च. पुत्र°। ४ उच्छ्र°°°सततं हरेः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ घ. कण्ठं। ६ ङ. च. °मा द्रव्यगु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशदिक्पालयागकथनम्

श्रीभगवानुवाच

प्रतिष्ठापञ्चकं वक्ष्ये प्रतिमात्मा तु पूरुषः। प्रकृतिः पिण्डिका लक्ष्मीः प्रतिष्ठा योगकस्तयोः ।।१।।
इच्छाफलार्थिभिस्तस्मात्प्रतिष्ठा क्रियते नरैः। गर्भसूत्रं तु निःसार्य प्रासादस्याग्रतो गुरुः ।।२।।
अष्टषोडशविंशान्तं मण्डपं[1] चाधमादिकम्। स्नानार्थं[2] कलशार्थं च यागद्रव्यार्थमर्धतः ।।३।।
त्रिभागेणार्धभागेन वेदिं कुर्यात्तु शोभनाम्। कलशैर्घटिकाभिश्च वितानाद्यैर्विभूषयेत् ।।४।।
पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य सर्वद्रव्याणि धारयेत्। अलङ्कृतो गुरुर्विष्णुं ध्यात्वा तं च प्रपूजयेत् ।।५।।
अङ्गुलीयप्रभृतिभिर्मूर्तिपान्प्रार्थनादिभिः। कुण्डे कुण्डे स्थापयेच्च मूर्तिपांस्तत्र पारगान् ।।६।।
चतुष्कोणे चार्धकोणे वर्तुले पद्मसंनिभे। पूर्वादौ तोरणार्थं तु पिप्पलोदुम्बरौ वटः ।।७।।
प्लक्षःसुशोभनं पूर्वं सुभद्रं[3] दक्षतोरणम्। सुकर्माणं सुहोत्रं च आप्ये सौम्ये समुच्छ्रयम् ।।८।।

अध्याय ५६

दसदिक्पालयाग-वर्णन

श्री भगवान् बोले–अब मैं प्रतिष्ठा के पाँच अङ्गों (मण्डप-निर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलशध्वजस्थापन, दसदिक्पालपूजन) के विषय में बतला रहा हूँ। पुरुष प्रतिमा की आत्मा है, पिण्डिका प्रकृति या लक्ष्मी है। प्रतिष्ठा, प्रकृति और पुरुष को संयुक्त करती है ।।१।। इसलिए अपने मनोरथ को पूर्ण करने की इच्छा से मनुष्य अवश्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा करते हैं। गुरु को प्रासाद के आगे गर्भ-सूत्र को निकालकर आठ, सोलह या बीस हाथ लम्बा मण्डप बनाना चाहिए। ये तीन प्रकार के मण्डप अधम, मध्यम तथा उत्तम कोटि के कहे जाते हैं। मण्डप के आधे भाग में यज्ञीय द्रव्य और स्नान के लिए कलश रखना चाहिए ।।२-३।। मण्डप के तीसरे या आधे भाग में उत्तम वेदी बनानी चाहिए। वेदी को कलश, छोटी-छोटी घण्टियों और वितानों से सुसज्जित करना चाहिए ।।४।। सब यज्ञ-सामग्रियों को पञ्चगव्य छिड़ककर पवित्र कर देना चाहिए। आचार्य को नवीन वस्त्र पहनकर विष्णु का ध्यान और उनका विधिवत् पूजन करना चाहिए ।।५।। प्रत्येक यज्ञ-कुण्ड के निकट अँगूठी, नवीन वस्त्र और मन्त्रों के द्वारा विद्वान् को चारों कोणों पर, अर्धकोण पर तथा प्रत्येक दिशा में वृत्ताकार या पद्माकार कुण्डों के ऊपर मूर्तिपालक विद्वानों की पूजा करके उन्हें बैठाना चाहिए। तोरण के लिए पिप्पल, गूलर, वट और पाकड़ के पत्तों का प्रयोग उत्तम माना गया है ।।६-७।। पूर्व दिशा का द्वार 'सुशोभन', दक्षिण दिशा का 'सुभद्र', पश्चिम का 'सुकर्मा' और उत्तर का द्वार 'सुहोत्र'

---

१ ख. म. मण्डलं। २ च. °र्थयागद्रव्यार्थमर्धतः कलशाय च। त्रि°। ३ क. ङ. च. सुवर्णं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चहस्तं तु संस्थाप्य स्योना पृथिवीति पूजयेत् । तोरणस्तम्भमूले तु कलशान्मङ्गलान्कुरु[१] ।।९।।
प्रदद्यादुपरिष्टाच्च कुर्याच्चक्रं सुदर्शनम् । पञ्चहस्तप्रमाणस्तु ध्वजः कार्यो विचक्षणैः ।।१०।।
वैपुल्यं[२] चास्य कुर्वीत षोडशाङ्गुलसंमितम् । सप्तहस्तोच्छ्रितं चास्य कुर्याद्दण्डं[३] सुरोत्तम ।।११।।
अरुणोऽग्निनिभश्चैव कृष्णः शुक्लोऽथ पीतकः । रक्तवर्णस्तथा [४]श्वेतश्चैते वर्णाः क्रमाद्ध्वजे ।।१२।।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः । शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।।१३।।
पूज्या कोटिगुणैर्युक्ताः पूर्वाद्या ध्वजदेवताः । जलाढकसुपूरास्तु पक्वबिम्बोपमाघटाः ।।१४।।
अष्टाविंशाधिकशतं कालदण्डेन[५] वर्जिताः । सहिरण्या वस्त्रकण्ठाः सोदकास्तोरणाद्बहिः ।।१५।।
घटाः स्थाप्याश्च पूर्वादौ वेदिकायाश्च कोणगाः[६] । चतुरः स्थापयेत्कुम्भानाजिघ्रेति समन्ततः ।।१६।।
कुम्भेष्वावाह्य शक्रादीन्पूर्वादौ पूजयेत्क्रमात् । इन्द्राऽऽवागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित ।।१७।।
पूर्वद्वारं च मे रक्ष देवैः सह नमोऽस्तु ते । [७]त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद्बुधः ।।१८।।
आगच्छाग्ने शक्तिहस्त छागस्थ बलसंयुतः । रक्षाऽऽग्नेयी दिशः देवैस्त्वं समरुद्भि नमोऽस्तु ते ।।१९।।
अग्निर्मूर्धेति[८] मन्त्रेण यजेद्वा अग्नये नमः । महिषस्थ यमाऽऽगच्छ दण्डहस्त महाबल ।।२०।।

नाम से प्रसिद्ध है। ये सभी तोरण-स्तम्भ पाँच हाथ लम्बे होने चाहिए। इनकी स्थापना करके 'स्योना पृथिवी' आदि मन्त्र से पूजन करना चाहिए। तोरण-स्तम्भ के मूल में मांगलिक कलश (आम्र पल्लव, यवाङ्कुर आदि से युक्त) की स्थापना करनी चाहिए ।।८-९।। इन मङ्गल कलशों के ऊपर सुदर्शन-चक्रों का निर्माण करना चाहिए। विद्वान् आचार्य वहाँ पर पाँच हाथ ऊँचा एक ध्वज भी गाड़ दे ।।१०।। अये सुरोत्तम! ध्वज की लम्बाई सोलह अंगुल की और डण्डे की ऊँचाई सात हाथ की होनी चाहिए ।।११।। पूर्वादि दिशाओं में ध्वजाओं का वर्ण क्रमशः अरुण, अग्नि के समान, काला, शुक्ल, पीत, रक्त, श्वेतवर्ण होना चाहिए। इनमें कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित कोटिगुणों से युक्त इन ध्वज देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।।१२-१३½।। पके हुए बिम्बफल के समान रक्तवर्ण के कलश जिनकी संख्या एक सौ अट्ठाईस (१२८) हो, वे एक-एक आढक जल से पूर्णतः भरे हों। 'कालदण्ड' नामक योग से रहित समय में इनकी स्थापना करनी चाहिए। सभी कलशों में सुवर्ण डालकर वस्त्र से कण्ठ तक ढककर जलपूर्ण कलश तोरण से बाहर स्थापित करने चाहिए ।।१४-१५।। वेदी के पूर्व आदि दिशाओं तथा कोणों में भी कलश स्थापित करने चाहिए। चारों ओर चार कलशों को 'आजिघ्रकलशम्' इत्यादि मन्त्र से स्थापित करे ।।१६।। पूर्व आदि दिशाओं में उन कलशों पर क्रमशः इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके क्रमशः उनकी पूजा करे। हे ऐरावत! हाथी पर विराजमान इन्द्र! देवराज! वज्रहस्त! आइये। इस पूर्व द्वार में देवों के सहित स्थित होकर मेरी रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है। इस प्रकार विद्वान् व्यक्ति रक्षक इन्द्र की 'त्रातारमिन्द्र' इत्यादिक मन्त्र से पूजा करे ।।१७-१८।। शक्तिहस्त, छागवाहन, बलशाली, हे आग्ने! आप आग्नेय दिशा की रक्षा करें, मेरी इस पूजा को स्वीकार करें, आपको नमस्कार है ।।१९।। 'अग्निर्मूर्धादिव' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'अग्नये नमः' आदि मन्त्र से अग्नि की पूजा करे। हे महिषस्थ! दण्डहस्त, महाबल,

---

१ क. °लाङ्कुरान्। प्र°। २ ख. नैपुण्यं चास्य। ३ क. ख. घ. ङ. च. °र्यात्कुण्डं। ४ घ. श्वेतः श्वेत °वर्णादिकक्रमात्। कु°। ५ घ. °लमण्डनवार्जिताः। ६ घ. ङ. कोणगान्। ७ त्रातारमिन्द्र°°°यजेद्बुधः च पुस्तके नास्ति। ८ ख. °ति अर्ध्याद्यैर्यजे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्षस्व दक्षिणं द्वारं वैवस्वत नमोऽस्तु ते। वैवस्वतं संगमनमित्यनेन यजेद्यमम् ।।२१।।
नैर्ऋताऽऽगच्छ खड्गाढ्य बलवाहनसंयुत। इदमर्घ्यमिदं पाद्यं रक्षत्वं नैर्ऋतीं दिशम् ।।२२।।
एष ते नैर्ऋतेत्यादि[1] यजेदर्घ्यादिभिर्नरः। मकरारूढ वरुण पाशहस्त महाबल ।।२३।।
आगच्छ पश्चिमं द्वारं रक्ष रक्ष नमोऽस्तु ते। उरुं हि राजा वरुण यजेदर्घ्यादिभिर्गुरुः ।।२४।।
आगच्छ वायो सबल ध्वजहस्तसवाहन। वायव्यं रक्ष देवैस्त्वं समरुद्भिर्नमोऽस्तु ते ।।२५।।
वात इत्यादिभिश्चार्चेदोन्नमो वायवेऽपि वा। अगच्छ सोम सबल गदाहस्त सवाहन ।।२६।।
रक्षत्वमुत्तरं द्वारं सकुबेर नमोऽस्तु ते। सोमं राजानमिति वा यजेत्सोमाय वै नमः ।।२७।।
आगच्छेशान सबल शूलहस्त वृषस्थित। यज्ञमण्डपस्यैशानीं दिशं रक्ष नमोऽस्तु ते ।।२८।।
ईशानमस्येति यजेदीशानाय नमोऽपि वा। ([2]ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्थ स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्तक ।।२९।।
सलोकोर्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोऽस्तु ते। हिरण्यगर्भेतियजेन्नमस्ते ब्रह्मणेऽपि वा) ।।३०।।
अनन्तागच्छ चक्राढ्य कूर्मस्था हि गणेश्वर। अधोदिशं रक्ष रक्ष अनन्तेश नमोऽस्तु ते ।।३१।।
नमोऽस्तु सर्पेति यजेदनन्ताय नमोऽपि वा ।।३२।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये दशदिक्पालयागकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५६।।

सूर्यपुत्र, यम, आप दक्षिण दिशा की रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है। यम का आवाहन कर 'वैवस्वतं संगमन' इत्यादि मन्त्र से उनकी पूजा करे ।।२०-२१।। हे नैर्ऋत, खड्गहस्त, बलवाहनसंयुत, आपको यह पाद्य और अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ। आप नैर्ऋत दिशा में मेरी रक्षा करें ।।२२।। इस प्रकार आवाहन करके 'एष ते नैर्ऋत' इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य आदि दें। हे महाबल, मकरारूढ़, पाशहस्त, वरुण! आइये, पश्चिम द्वार की रक्षा करें। 'आपको नमस्कार है'-इस मन्त्र से आवाहन करके 'उरु हि राजा वरुण' इत्यादि मन्त्र से आचार्य को वरुण की अर्घ्यादि से पूजा करनी चाहिए ।।२३-२४।। हे वायु, सबल, ध्वजहस्त, वाहनयुक्त आप मरुत आदि देवों के साथ आइये और वायव्य दिशा में मेरी रक्षा करें। इस मन्त्र से आवाहन करके 'ॐ नमो वायवे' इत्यादि मन्त्र से या 'वात' इत्यादि मन्त्र से वायु की पूजा करे ।।२५-२५ $\frac{1}{2}$।। हे सोम, सबल, गदाहस्त! वाहनयुक्त आप कुबेर सहित उत्तर दिशा में हमारी रक्षा करें। आपको नमस्कार है। 'सोमाय नमः' इस मन्त्र से या 'सोमं राजानम्' इत्यादि तन्त्र से सोम की पूजा करे ।।२६-२७।। हे ईशान, वृषस्थित, शूलहस्त, सबल, आपको नमस्कार है। आप यज्ञ-मण्डप के ईशानकोण में हमारी रक्षा करें, इस मन्त्र से आवाहन करके 'ईशान मस्य' इत्यादि मन्त्र से ईशान की पूजा करे ।।२८-२८ $\frac{1}{2}$।। ब्रह्मा का आवाहन 'हे ब्रह्मन्! हंसस्थ! स्रुक् और स्रुव को अपने हाथ में धारण करनेवाले अज! आपको नमस्कार है। आप इस यज्ञ की रक्षा करें-इस मन्त्र से आवाहन करके 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि अथवा 'नमस्ते ब्रह्मणे' इत्यादि मन्त्र से ब्रह्मा की पूजा करे ।।२९-३०।। हे अनन्त, कूर्मस्थ, अहिगणों के ईश्वर, चक्राढ्य, अनन्तेश! आपको नमस्कार है। अधो दिशा की आप रक्षा करें-इस मन्त्र से आवाहन करके 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो' अथवा 'अनन्ताय नमः' इत्यादि मन्त्र से अनन्त देव की पूजा करे ।।३१-३२।।

श्री अग्निमहापुराण में दसदिक्पालयाग कथन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।।५६।।

---

१ क. ख. घ. ऋतमन्त्रेण य°। २ ब्रह्मन्नागच्छ'''ब्रह्मणेऽपि वा ङ. च. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कलशाधिवासविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच

भूमेः परिग्रहं कुर्यात्क्षिपेद्व्रीहींश्च सर्षपान्। नारसिंहेन रक्षोघ्नान्प्रोक्षयेत्पञ्चगव्यतः ।।१।।
भूमिं घटे तु सम्पूज्य[1] सरत्ने साङ्गकं हरिम्। अस्त्रमन्त्रेण करकं तत्र चाष्टशतं यजेत् ।।२।।
अच्छिन्नधारया सिञ्चन्व्रीहीन्संस्कृत्य[2] धारयेत्। प्रदक्षिणं परिभ्राम्य कलशं विकिरोपरि ।।३।।
सवस्त्रे कलशे भूयः पूजयेदच्युतं श्रियम्। योगे योगेति मन्त्रेण न्यसेच्छय्यां तु मण्डले ।।४।।
कुशोपरि तूलिकां च शय्यायां दिग्विदिक्षु च। विद्याधिपान्यजेद्विष्णुं मधुघातं त्रिविक्रमम् ।।५।।
वामनं दिक्षु वह्न्यादौ[3] श्रीधरं च हृषीकेशम्। पद्मनाभं दामोदरमैशान्यां स्नानमण्डपे ।।६।।
अभ्यर्च्य पश्चादैशान्यां चतुष्कुम्भे सवेदिके। स्नानमण्डपके सर्वद्रव्याण्यानीय निक्षिपेत् ।।७।।
स्नानकुम्भेषु कुम्भांस्तांश्चतुर्दिक्ष्वधिवासयेत्। कलशाः स्थापनीयास्तु अभिषेकार्थमादरात् ।।८।।
वटोदुम्बरकाश्वत्थांश्चम्पकाशोकश्रीद्रुमान्। पलाशार्जुनप्लक्षांस्तु कदम्बबकुलाम्रजान्[4] ।।९।।
पल्लवांस्तु समानीय पूर्वकुम्भे[5] विनिक्षिपेत्। पद्मकं रोचनां दूर्वां दर्भपिञ्जूलमेव च ।।१०।।

अध्याय ५७

कलशाधिवासन वर्णन

श्री भगवान् बोले–भूमि का संस्कार करके रक्षोघ्न व्रीहि तथा सरसों को नारसिंह मन्त्र पढ़कर चारों ओर छीटे और पञ्चगव्य को सब पूजन-सामग्रियों के ऊपर छिड़के ।।१।। रत्न के साथ घट पर भूमि और हरि की अङ्ग–देवताओं के साथ पूजा करके अस्त्र–मन्त्र से एक सौ आठ कारकों की पूजा करे ।।२।। व्रीहि (धान्य) को निरन्तर जलधार से सींचकर या धोकर एक ओर रख ले। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके धान्य को पृथ्वी पर बिखेरकर उस पर कलश को रखे ।।३।। कलश पर वस्त्र लपेटकर उस पर अच्युत और श्री की पूजा करे। 'योगे–योगे' इत्यादि मन्त्र से मण्डल में शय्या लगाकर रखे ।।४।। कुश के ऊपर रूई रखकर शय्या पर प्रत्येक दिशाओं और कोणों में विद्याधीशों की मधुसूदन, त्रिविक्रम, हरि और वामन की चारों दिशाओं में पूजा करे। वह्नि आदि कोण में श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर का अर्चन करे। तदनन्तर ईशानकोणों में वेदी पर चतुष्कुम्भ रखकर और उसकी पूजा करके स्नानमण्डप में लायी हुई सब प्रकार की सामग्रियों को उन कलशों में छोड़ दे ।।५–७।। स्नान–कलशों को चारों दिशाओं में रखे और स्नानार्थ कलशों को चारों दिशाओं में आदर के साथ स्थापित करना चाहिए। बरगद, गूलर, पीपल, चम्पक, अशोक, श्रीद्रुम (बिल्व), पलाश, अर्जुन, पाकड़, कदम्ब, मौलश्री (बकुल) और आम्र के पल्लवों को लाकर पूर्व दिशा में स्थापित कलश पर छोड़े ।।८–९½।। कमल, रोचना, दूर्वा, कुश, हरिद्रा, मालती, कुन्दपुष्प, चन्दन, रक्तचन्दन,

१ ख. संग्राह्य। २ ख. °न्संत्यज्य धा°। ङ. च. °न्संहृत्य धा°। ३ घ. वाय्वादौ। ४ घ. °म्रकान्। ५ ङ. च. पूर्णकुम्भे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जातीपुष्पं कुन्दपुष्पं चन्दनं रक्तचन्दनम् । सिद्धार्थं[1] तगरं चैव तण्डुलं दक्षिणे न्यसेत् ।।११।।
सुवर्णं रजतं चैव कूलद्वयमृदं तथा । नद्याः समुद्रगामिन्या विशेषाज्जाह्नवीमृदम् ।।१२।।
गोमयं च यवाञ्शालींस्तिलांश्चैव परे न्यसेत् । विष्णुपर्णीं शालपर्णीं[2] भृङ्गराजं शतावरीम् ।।१३।।
सहदेवीं[3] वचां सिंहीं वलां व्याघ्रीं सलक्ष्मणाम् । ऐशान्यामपरे कुम्भे मङ्गलानि[4] निवेशयेत् ।।१४।।
वल्मीकमृत्तिकां सप्तस्थानोत्थामपरे न्यसेत् । जाह्नवीबालुकां तोयं विन्यसेदपरे घटे ।।१५।।
वराहवृषनागेन्द्रविषाणोद्धृतमृत्तिकाम् । मृत्तिकां पद्ममूलस्य कुशस्य त्वपरे न्यसेत् ।।१६।।
([5]तीर्थपर्वतमृद्भिश्च युक्तमप्यपरे न्यसेत् । नागकेशरपुष्पं च काश्मीरमपरे न्यसेत्) ।।१७।।
चन्दनागुरुकर्पूरैः [6]पूर्यं चैवापरे न्यसेत् । वैदूर्यं विद्रुमं मुक्तां स्फटिकं वज्रमेव च ।।१८।।
एतान्येकत्र निक्षिप्य स्थापयेद्देवसत्तमम् । नदीनदतडागानां सलिलैरपरे न्यसेत् ।।१९।।
एकाशीतिपदे चान्यान्मण्डले[7] कलशान्न्यसेत् । गन्धोदकाद्यैः सम्पूर्णाञ्श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रयेत् ।।२०।।
यवान्सिद्धार्थकं[8] गन्धं कुशाग्रं चाक्षतांस्तथा । तिलान्फलं तथा पुष्पमर्घ्यार्थं पूर्वतो न्यसेत् ।।२१।।
पद्मं श्यामलतां दूर्वां विष्णुक्रान्तां[9] कुशांस्तथा । पाद्यार्थं दक्षिणे भागे मधुपर्कं तु पश्चिमे[10] ।।२२।।
([11]कक्कोलकं लवङ्गं च तथा जातीफलं शुभम् । उत्तरे ह्याचमनाय अग्नौ दूर्वाक्षतान्वितम् ।।२३।।

श्वेत सरसों, तगर और तण्डुल को दक्षिण कलश पर छोड़े ।।१०-११।। सोना, चाँदी, समुद्रगामिनी नदी विशेषकर गङ्गा के दोनों किनारों की मिट्टी, गोबर, यव, धान और तिल को दूसरे घड़े में, विष्णुपर्णी, शालपर्णी, भृङ्गराज, शतावरी, सहदेवी, वचा, सिंही, बला, लक्ष्मणसहितव्याघ्री आदि माङ्गलिक ओषधियों को ईशानकोण में स्थापित दूसरे कलश में छोड़े ।।१२-१४।। वल्मीक की मिट्टी और सप्तमृत्तिका को अन्य कलश में छोड़े। गङ्गाजल और गङ्गा के बालू को अन्य कलश में डाले। उस कलश को छोड़कर दूसरे कलश में सूकर, साँड़, हाथी से खोदी हुई मिट्टी को तथा कुश और कमल की जड़ की मिट्टी को रखे ।।१५-१६।। एक कलश में तीर्थ और पर्वतों की मिट्टी को रखे तथा दूसरे में नागकेशर और कुङ्कुम को। चन्दन, अगर और कर्पूर को दूसरे कलश में डाले ।।१७-१७ ½।। वैदूर्य, विद्रुम, मुक्ता, स्फटिक और वज्र आदि रत्नों को एक कलश में रखकर उस पर विष्णु को स्थापित करे। दूसरे कलश को नदी, नद और तड़ाग के जल से भरकर रखे ।।१८-१९।। इक्यासी पगवाले वर्गाकार मण्डप में अन्य कलशों को स्थापित करे। उन कलशों को श्रीसूक्त से अभिमन्त्रित करके गन्ध-मिश्रित जल से भर दे। अर्घ्य के निमित्त यव, श्वेत सरसों, गन्ध, कुशाग्र, अक्षत, तिल, फल और पुष्प को पूर्व दिशा में लाकर रख दे ।।२०-२१।। दक्षिण दिशा में पद्म, श्यामलता, दूर्वा, विष्णुक्रान्ता, कुशा को पाद्य के लिए पश्चिम की ओर मधुपर्क और उत्तर की ओर कक्कोलक, लवङ्ग और जायफल से मिला हुआ शुभ जल आचमन के लिए रख दे। अग्निकोण में नीराजन के लिए दूर्वा और अक्षत से युक्त पात्र रखे। इसी प्रकार उबटन

---

१ ख. ग. °द्धार्थाभरणं चै°। २ ख. ग. घ. श्यामलता°। ३ घ. °वीं महादेवी व°। ४ ख. ग. घ. °ङ्गल्यान्विनि°। ५ तीर्थपर्वत°°°न्यसेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ घ. पुष्पं। ७ ख. ग. घ. ङ. °ण्डपेक°। ८ क. पञ्चसिद्धात्मकं। ९ घ. विष्णुपर्णी। १० ख. ग. घ. दक्षिणे। ११ कक्कोलकं°°°पङ्कजादिकम् क. ङ. च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पात्रं नीराजनार्थं च तथोद्वर्तनमानिले। गन्धपिष्टान्वितं[1] पात्रमैशान्यां कलशे[2] न्यसेत् ।।२४।।
सुरमांसी चाऽऽमलकं सहदेवीं निशादिकम्। षष्टिदीपान्न्यसेदष्टौ न्यसेन्नीराजनाय च ।।२५।।
शङ्खं चक्रं च श्रीवत्सं कुलिशं पङ्कजादिकम्)। हेमादिपात्रे कृत्वा तु नानावर्णादिपुष्पकम् ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कलशाधिवासविधिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५७।।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नपनविध्यादिकथनम्

श्रीभगवानुवाच

ऐशान्यां[3] जनयेत्कुण्डं[4] गुरुर्वह्निं च वैष्णवम्। गायत्र्याऽष्टशतं हुत्वा संपातविधिना घटान् ।।१।।
प्रोक्षयेत्कारुशालायां शिल्पिभिर्मूर्तिपैर्व्रजेत्। तूर्यशब्दैः कौतुकं च बन्धयेद्दक्षिणे करे ।।२।।
विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णासूत्रेण सर्षपैः। पट्टवस्त्रेण कर्त्तव्यं देशिकस्यापि कौतुकम् ।।३।।
मण्डले[5] प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन्। नमस्तेऽर्चे सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा ।।४।।
प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः। त्वयि सम्पूजयामीशे नारायणमनामयम् ।।५।।

के लिए अग्निकोण में गन्ध और पिष्ट को एक बर्तन में रख दे। ईशानकोण में सुरमांसी, आँवला, सहदेवी, हल्दी आदि रखे। नीराजन के लिए अड़सठ दीपकों को शङ्ख, चक्र, श्रीवत्स, कुलिश, कमल आदि को, रङ्ग-बिरङ्गे फूलों को स्वर्णादि के पात्रों में रखे ।।२२-२६।।

श्री अग्निमहापुराण में कलशाधिवासविधि-वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५७।।

अध्याय ५८

स्नपनविधि का वर्णन

श्री भगवान् बोले-आचार्य ईशानकोण में एक हवनकुण्ड बनाये और उसमें वैष्णव अग्नि की स्थापना करे। गायत्री मन्त्र से एक सौ आठ बार हवन करके सम्पात-विधि से घटों का प्रोक्षण करे ।।१।। शिल्पगृह में मूर्तिकार और मूर्तियों को संग में लेकर मङ्गल-वाद्य-ध्वनि के साथ जाना चाहिए। 'विष्णवे! शिपिष्टः' इत्यादि मन्त्र से ऊन के सूत में सरसों की पोटली बाँधकर मूर्ति के दाहिने हाथ में कौतुक बाँध दे। गुरु के भी हाथ में पट्ट-वस्त्र से कौतुक बन्धन कर दे ।।२-३।। शिलागृह से प्रतिमा को लाकर मण्डप में स्थापित करके वस्त्र आदि पहनाकर उस मूर्ति की पूजा करके पूज्ये! सुरेशानि! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित! आपको नमस्कार है, इस प्रकार स्तुति करे ।।४।। अशेष विश्व का शासन करनेवाली जगदम्बिके! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ईशे, आप में अच्युत नारायण की पूजा कर

---

१ घ. °न्धपुष्पान्वि°। २ ख. पात्रके। ३ ऐशान्यामित्यारभ्य स्नपनस्य विधिः स्मृतः इत्यन्तोऽयमध्यायः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ ख. ग. °येद्दण्डं। ५ घ. मण्डपे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव। एवं विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम् ।।६।।
शिल्पिनं तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत्। चित्रं देवेति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ।।७।।
अग्निर्ज्योतीति दृष्टिं च दद्याद्वै भद्रपीठके। ततः शुक्लानि पुष्पाणि घृतं सिद्धार्थकं तथा ।।८।।
दूर्वां कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः। मधुवातेतिमन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद्गुरुः ।।९।।
हिरण्यगर्भमन्त्रेण इमं मेति च कीर्तयेत्। घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चात्पठन्घृतवतीं पुनः ।।१०।।
[1]मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य अतो देवेति कीर्तयेत्। क्षालयेदुष्णतोयेन[2] सप्त तेऽग्नेति देशिकः ।।११।।
द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्ठेति सिञ्चयेत्। नदीजैस्तीर्थजैः स्नानं पावमानीति रत्नजैः ।।१२।।
समुद्रं गच्छ[3] गच्छेति तीर्थमृत्कलशेन च। शं नो देवीः स्नापयेच्च गायत्र्याऽप्युष्णवारिणा ।।१३।।
पञ्चमृद्भिर्हिरण्येति स्नापयेत्परमेश्वरम्। सिकतादिभिरिमं मेति [4]वल्मीकोद्घटनेन च ।।१४।।
तद्विष्णोरिति ओषध्यद्भिर्या [5]ओषधि मन्त्रतः। यज्ञा यज्ञेति काषायैः [6]पञ्चभिर्गव्यकैस्ततः ।।१५।।
पयः पृथिव्यां मन्त्रेण याः फलीति फलाम्बुभिः। विश्वतश्चक्षुः सौम्येन पूर्वेण कलशेन च ।।१६।।

रहा हूँ। आप मूर्तिकार या शिल्प-कला की त्रुटियों से रहित हो सदा कल्याण प्रदान करें–इस प्रकार की स्तुति करके उस प्रतिमा को स्नान-मण्डप में ले जाय ।।५-६।। मूर्तिकार को द्रव्य देकर सन्तुष्ट करे और गुरु को गोदान करे। 'चित्रं देवानाम्°' इत्यादि मन्त्र से नेत्रोन्मीलन करे और 'अग्निर्ज्योति' इत्यादि मन्त्र से दृष्टि-सञ्चार करे। फिर भद्रपीठ पर प्रतिमा को स्थापित करे। इसके अनन्तर आचार्य श्वेत पुष्प, घी, सरसों, दूर्वादल तथा कुशाग्र इष्टदेव के सिर पर चढ़ावे। इसके बाद 'मधुवाता°' इत्यादि मन्त्र से गुरु प्रतिमा के नेत्रों में अञ्जन करे। उस समय 'हिरण्यगर्भः°' इत्यादि मन्त्र तथा 'इमं मे वरुणं°' इत्यादि मन्त्र से कीर्त्तन करे। तत्पश्चात् पुनः 'घृतवती°' ऋचा का पाठ करते हुए घृत का अभ्यङ्ग लगावे। तत्पश्चात् मसूर के बेसन से उबटन का काम लेकर 'अतो देवाः°' इत्यादि मन्त्र का कीर्त्तन करे। फिर 'सप्त ते अग्ने°' इत्यादि मन्त्र बोलकर गुरु गर्म जल से प्रतिमा का प्रक्षालन करे। तदनन्तर 'द्रुपदादिव°' इत्यादि मन्त्र से अनुलेपन तथा 'आपो हिष्ठा°' इत्यादि से अभिषेक करे ।।७-११ ।। अभिषेक के पश्चात् नदी एवं तीर्थ के जल से स्नान कराकर 'पावमानी' ऋचा का पाठ करते हुए, रत्नस्पर्श युक्त जल से स्नान करावे। 'शं नो देवी°' इत्यादि तथा गायत्री मन्त्र से गरम जल के द्वारा इष्टदेव की प्रतिमा को नहलावे ।।१२-१३।। 'हिरण्यगर्भः°' इत्यादि मन्त्र से पञ्चमृत्तिका को प्रतिमा पर छिड़के। तीर्थबालुका और वल्मीक की मिट्टी से मिले जल से 'इमं मे°' इत्यादि मन्त्र का पाठ करके स्नान कराना चाहिए ।।१४।। ओषधि मन्त्र या 'तद्विष्णो°' इस मन्त्र से ओषधि जल से स्नान कराना चाहिए। 'यज्ञा यज्ञा°' इत्यादि मन्त्र से काषाय जल से, 'पयः पृथिव्याम्°' इस मन्त्र से पञ्चगव्य से, 'याः फलिनीर्या°' इस मन्त्र से फल-मिश्रित जल से स्नान कराना चाहिए। 'विश्वतश्चक्षुः°' इस मन्त्र से उत्तर या पूर्व स्थापित घट से स्नान करना चाहिए ।।१५-१६।। 'सोमं राजानम्°' इस मन्त्र

---

१ मयूरपिच्छेनोद्वर्त्येत्यपि घ. पुस्तकस्य टिप्पणी पाठः। २ ख. °येद्वस्तुतो°। ग. येदुक्ततो°। ३ ख. °च्छवसनैस्तीर्थं°। घ. °च्छ चन्दनैस्तीर्थ। ४ ख. ग. °कोत्थघ°। ५ घ. °षधीतिम°। ६ ख. ग. भिर्द्रव्यं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सोमं राजानमित्येवं विष्णोरराटं [1]दक्षिणतः। हंसः शुचि पश्चिमेन कुर्यादुद्वर्तनं हरेः ।।१७।।
मूर्धानमितिमन्त्रेण[2] धात्रीमांस्युदकेन[3] च। मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ।।१८।।
इदमापेति च घटैरेकाशीतिपदस्थितैः। एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ।।१९।।
यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तु ते। अनेनाऽऽवाह्य देवेशं कुर्यात्कौतुकमोचनम् ।।२०।।
मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत्। हिरण्मयेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्घ्यकम् ।।२१।।
मधुवाता मधुपर्कं मयि गृह्णामि चाऽऽचमेत्। अक्षन्नमीमदन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ।।२२।।
[4]काण्डान्निर्मन्थनं कुर्याद्गन्धं गन्धवतीति च। [5]उन्नयामीति माल्यं च इदं विष्णुः पवित्रकम् ।।२३।।
बृहस्पतेवस्त्रयुग्मं वेदाहमुत्तरीयकम्[6]। महाव्रतेन सकलान्पुष्पं चौषधयः क्षिपेत् ।।२४।।
धूपं दद्याद्धूरसीति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम्। युञ्जन्तीति च तिलकं दीर्घायुष्ट्वेति माल्यकम् ।।२५।।
इन्द्रच्छत्रेति च्छत्रं तु आदर्शं तु विराजतः। चामरं तु विकर्णेन भूषां रथन्तरेण च ।।२६।।
व्यजनं [7]वासुदेवाद्यैर्मुञ्चामि त्वेति पुष्पकम्। वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्याद्धरेः पुरुषसूक्ततः ।।२७।।
सर्वमेतत्समं[8] दद्यात् पिण्डिकादौ हरादिके। देवस्योत्थानसमये सौपर्णं[9] सूक्तमुच्चरेत् ।।२८।।

से या 'विष्णोरराट्°' इस मन्त्र से दक्षिण कलश के जल से तथा 'हंसःशुचि°' इस मन्त्र से पश्चिम कलश के जल से अभिषेक करे ।।१७।। 'मूर्धानम्°' इस मन्त्र से धात्री जल से, 'मा नस्तोके°' इस मन्त्र से जटामांसीयुक्त जल के द्वारा, 'गन्धद्वारां°' इस मन्त्र से गन्ध-मिश्रित जल से स्नान कराये ।।१८।। 'इदमाप°' इस मन्त्र से इक्यासी पदों के मण्डल में स्थापित कलशों में भगवान् को नहलाये। भगवान् विष्णो! लोक पर अनुग्रह दृष्टि रखनेवाले! इस यज्ञ-भाग को ग्रहण करें। वासुदेव आपको नमस्कार है। इससे देवेश का आवाहन करके उनके हाथ में बँधा मङ्गल-सूत्र खोल दे। 'मुञ्चामि त्वा°' इस मन्त्र से कौतुक मोचन करे। इसी मन्त्र से आचार्य का भी कौतुक-सूत्र खोल दे ।।१९-२०$\frac{1}{2}$ ।। 'हिरण्मयेन°' इत्यादि मन्त्र से पाद्य और 'अतो देवा°' इस मन्त्र से अर्घ्य देवे। 'मधुवाता°' इत्यादि मन्त्र से मधुपर्क दे। 'मयि गृह्णामि°' इत्यादि मन्त्र से आचमन करावे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष 'अक्षन्नमीमदन्त°' इत्यादि मन्त्र से अक्षत एवं दूर्वा बिखेरे ।।२१-२२।। 'काण्डात्°' इत्यादि मन्त्र से निर्मञ्छन करे। 'गन्धवती°' इत्यादि मन्त्र से गन्ध अर्पित करे। 'उन्नयामि°' इस मन्त्र से पुष्प-माला, तथा 'इदं विष्णुः°' इत्यादि मन्त्र से पवित्रक चढ़ाना चाहिए ।।२३।। 'बृहस्पते°' इत्यादि मन्त्र से एक जोड़ा वस्त्र, 'वेदाहम्°' इस मन्त्र से उत्तरीयक तथा 'महाव्रतेन°' इत्यादि मन्त्र से पुष्पों और ओषधियों को चढ़ावे ।।२४।। 'धूरसि°' इस मन्त्र से धूप तथा 'विभ्राट्' सूक्त से अञ्जन लगाना चाहिए। 'युञ्जन्ति°' इत्यादि मन्त्र से तिलक और 'दीर्घावायुष्ट्व°' इस मन्त्र से माला आदि चढ़ावे ।।२५।। 'इन्द्रच्छत्र°' इत्यादि मन्त्र से छत्र और 'विराट्°' मन्त्र से दर्पण, 'विकर्ण' मन्त्र से चँवर तथा रथन्तर साम मन्त्र से आभूषण निवेदित करे ।।२६।। वायुदेवता के मन्त्र से व्यजन डुलावे, 'मुञ्चामि त्वा' इस मन्त्र से फूल चढ़ावे। पुरुष-सूक्त और अन्य वेदमन्त्रों से विष्णु की स्तुति करे ।।२७।। विष्णु-प्रतिमा के लिए यह जो कुछ विधि बतायी गयी है वह महादेव आदि से सम्बन्धित पिण्डिका आदि के स्थापन के सम्बन्ध में भी समान समझनी चाहिए। देवता के उत्थान-काल में सौपर्ण सूक्त का पाठ करे ।।२८।।

---

१ घ. दक्षतः। २ घ. °र्धानंदिवम°। ३ ख. घ. धात्रीं मांसीं च के ददेत्। मा। ४ ग. °न्निर्मूर्छनं। घ. °निर्मञ्छनं। ५ ख. ग. उन्मया°। ६ घ. °हमित्युत°। ७ वायुदैवत्यैर्मु°। ८ घ. मंकुर्यात्पि°। ९ ख. ग. सौवर्णं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्यायां[1] मण्डपे नयेत्। शाकुनेनैव सूक्तेन देवं ब्रह्मरथादिना ।।२९।।
अतो देवेति सूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा। श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णोर्न सकलीकृतिः[2] ।।३०।।
मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा। वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम् ।।३१।।
दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति। उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दीर्घिकां[3] ददेत् ।।३२।।
मुसलोलूखलं दद्याच्छिलां संमार्जनीं तथा। तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च ।।३३।।
शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम्। खण्डखाद्यैः पूरयित्वा शयनस्य[4] विधिः स्मृतः ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेस्नपनविध्यादिकथनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५८।।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

अधिवासनविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच

हरेः सांनिध्यकरणमधिवासनमुच्यते। सर्वज्ञं सर्वगं ध्यात्वा आत्मानं पुरुषोत्तम ।।१।।
ओंकारेण समायोज्य चिच्छक्तिमभिमानिनीम्। निःसार्याऽऽत्मैकतां कृत्वा स्वस्मिन्सर्वगते विभौ ।।२।।
योजयेन्मरुता पृथ्वीं वह्निबीजेन दीपयेत्। संहरेद्वायुना चाग्निं वायुमाकाशतो नयेत् ।।३।।

'उत्तिष्ठ०' इस मन्त्र से देव-प्रतिमा को शय्या से उठाकर मण्डप में शाकुन-सूक्त का पाठ करते हुए ब्रह्मरथ पर आरूढ़ कराकर लाना चाहिए ।।२९।। 'अतो देव०' इत्यादि सूक्त से और श्री-सूक्त से पुरोहित को विष्णु की प्रतिमा तथा पिण्डिका को शय्या पर शयन करना चाहिए ।।३०।। मृगराज, वृष, नाग, व्यजन (पङ्खा), कलश, वैजयन्ती, भेरी और दीप इनको अष्टमङ्गल कहते हैं ।।३१।। अश्वसूक्त से अष्टमङ्गल दिखाये। 'त्रिपादूर्ध्व०' इस मन्त्र से पाद देश में उखा (पात्र-विशेष), ढक्कन, अम्बिका और दीर्घिका अर्पित करे ।।३२।। मुसल, ओखली, शिला, झाड़ू और अन्यान्य भोजन पात्र तथा गृह की सामग्री को रखे ।।३३।। सिर की ओर वस्त्र तथा रत्न और मिष्टान्न आदि से भरकर एक निद्रासंज्ञक घट रख दे। इस प्रकार शयन की विधि शास्त्रों में बतायी गयी है ।।३४।।

श्री अग्निमहापुराण में स्नपन-विधि वर्णन नामक अठावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५८।।

अध्याय ५९

अधिवासन-विधि-वर्णन

श्री भगवान् बोले–अब मैं हरि के समीप पहुँचनेवाली अर्थात् सामीप्यमुक्ति प्रदान करनेवाली अधिवासन-विधि का वर्णन करता हूँ। सर्वज्ञ, सर्वग और परम आत्मा पुरुषोत्तम का ध्यान करके अभिमानिनी चिच्छक्ति को ओङ्कार के द्वारा समायुक्त कर, जीव-ईश्वर का भेद मिटाकर उस सर्वगत, व्यापक परमात्मा से अविच्छिन्न आत्मा का एकीकरण करे ।।१-२।। वायु से पृथ्वी को मिलावे और वह्निबीज से उसको दीप्त करे। वायु से अग्नि को शान्त करके उसे

---

१ ख. ग. शय्याया°। २ घ° ष्णोस्तु शकलीकृतिः। मृ°। ३ ग. घ. दर्विकां। ४ घ. स्नपनस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधिभूताधिदेवैस्तु साध्याख्यै (त्मै) र्विभवैः सह । तन्मात्रपातकान्कृत्वा[1] संहरेत्तत्क्रमाद् बुधः ।।४।।
आकाशं मनसाऽऽहृत्य[2] मनोऽहंकरणे कुरु । अहंकारं च महति तं चाप्यव्याकृते नयेत् ।।५।।
अव्याकृतं ज्ञानरूपे वासुदेवः स ईरितः । सतामव्याकृतां मायामवष्टम्भ्य-सिसृक्षया ।।६।।
संकर्षणं संशब्दात्मा स्पर्शाख्यमसृजत्प्रभुः । क्षोभ्य[3] मायां स प्रद्युम्न तेजोरूपं समासृजत्[4] ।।७।।
अनिरुद्धं रसमात्रं ब्रह्माणं गन्धरूपकम् । अनिरुद्धः स च ब्रह्मा अप आदौ ससर्ज ह ।।८।।
तस्मिन्हिरण्मयं चाण्डं सोऽसृजत्पञ्चभूतवत् । तस्मिन्सङ्क्रामते[5] जीवशक्तिरात्मोपसंहृता ।।९।।
प्राणो जीवेन संयुक्तो वृत्तिमानिति शब्द्यते । जीवो व्याहृतिसंज्ञस्तु[6] प्राणेष्वाध्यात्मिकः स्मृतः ।।१०।।
प्राणैर्युक्ता ततो बुद्धिः संजाता चाष्टवृत्तिका[7] । अहंकारस्ततो जज्ञे मनस्तस्मादजायत ।।११।।
अर्थाः प्रजज्ञिरे पञ्च संकल्पादियुतास्ततः । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्ध इति स्मृतः ।।१२।।
ज्ञानशक्तियुतान्येतैरारब्धानीन्द्रियाणि तु । त्वक् श्रोत्रघ्राणचक्षूंषि जिह्वाबुद्धीन्द्रियाणि तु ।।१३।।
पादौ पायुस्तथा पाणी वागुपस्थश्च पञ्चमः । कर्मेन्द्रियाणि चैतानि पञ्च भूतान्यतः शृणु ।।१४।।
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा । स्थूलमेभिः शरीरं तु सर्वाधारं प्रजायते ।।१५।।
एतेषां वाचका मन्त्रा न्यासायोच्यन्त उत्तमाः । जीवभूतं मकारं तु देहस्य[8] व्यापकं न्यसेत् ।।१६।।

आकाश में मिलाये। बुद्धिमान् व्यक्ति को साध्य नामक आधिभौतिक और आधिदैविक वस्तुओं के साथ पञ्चतन्मात्राओं की सम्मिलनात्मक कल्पना करनी चाहिए ।।३-४।। आकाश को मन में लीन करके मन को अहङ्कार में विलीन करके, अहङ्कार को महान् में और महान् को अव्यक्त में एकाकार कर दे ।।५।। अव्यक्त या अव्याकृत को ज्ञान रूप में मिला दे, उसी ज्ञानरूप को वासुदेव कहते हैं। विभु वासुदेव सृष्टि की इच्छा से अव्याकृत माया की सहायता से स्पर्शात्मक सङ्कर्षण की सृष्टि करते हैं। माया को क्षुब्धकर उन्होंने तेजोरूप प्रद्युम्न की, रसरूप अनिरुद्ध और गन्धरूप ब्रह्मा की सृष्टि की, अनिरुद्ध और ब्रह्मा ने सबसे पहले जल की सृष्टि की ।।६-८।। उस जल में उन्होंने पञ्चभूतों के समान एक हिरण्मय अण्ड की रचना की। उस हिरण्मय अण्ड में आत्मा से गृहीत जीव शक्ति को सङ्क्रान्त कर देता है ।।९।। जीव से संयुक्त प्राण को वृत्तिमान् नाम से पुकारा जाता है। जीव प्राणों से संयुक्त होने पर आध्यात्मिक हो जाता है और उसको व्याहृति कहते हैं ।।१०।। बुद्धि प्राण से युक्त होने पर अष्टवृत्तिका (आठ वृत्तिवाली) हो जाती है। उस बुद्धि से अहङ्कार और अहङ्कार से मन उत्पन्न हुआ ।।११।। तत्पश्चात् संकल्प आदि से युक्त पञ्च अर्थ (तत्त्व) उत्पन्न हुए। ये पाँच अर्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं ।।१२।। ज्ञान-शक्ति से युक्त इन पाँच पदार्थों से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, चक्षु और जिह्वा, बुद्धि-इन्द्रियाँ और पाद, गुदा, पाणि, वाक् और लिङ्ग ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। अब पञ्चमहाभूतों के नाम सुनो—आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँच महाभूत हैं ।।१३-१४$\frac{1}{2}$।। इन्हीं भूतों से सबका आधार स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। मैं न्यास के लिए इनके वाचक उत्तम मन्त्रों को बतला रहा हूँ। जीवभूत मकार को देह के ऊपर व्यापक न्यास में प्रयुक्त करना चाहिए ।।१५-१६।। भकार प्राणतत्त्व है, इसका जीवोपाधिगत

१ ख. घ. पात्रका°। २ क. ख. ङ. च. साऽऽकृत्य। °घ. °साऽऽहत्य। ३ क. ङ. च. क्षोभयामास। ४ क. ख. ग. घ. च. स चासृ°। ५ घ. °न्संक्रामिते जीवे श°। ६ क. ङ. च. °हृतगन्धस्तु प्राणः साध्यात्मिकः स्थितः। ७ ख. घ. °ष्टमूर्तिकी। अ°। ८ क. ख. ङ. देवस्य। ख. तदेव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राणतत्त्वं भकारं तु जीवोपाधिगतं न्यसेत्। हृदयस्थं बकारं तु बुद्धितत्त्वं न्यसेद् बुधः ।।१७।।
फकारमपि तत्रैव ह्यहंकारमयं न्यसेत्। मनस्तत्त्वं पकारं तु न्यसेत्संकल्पसंभवम् ।।१८।।
शब्दतन्मात्रतत्त्वं तु नकारं मस्तके न्यसेत्। स्पर्शात्मकं धकारं तु वक्त्रदेशे तु विन्यसेत् ।।१९।।
दकारं रूपतत्त्वं तु दृग्देशे विनिवेशयेत्। थकारं वस्तिदेशे तु रसतन्मात्रकं न्यसेत् ।।२०।।
तकारं गन्धतन्मात्रं जङ्घयोर्विनिवेशयेत्। णकारं श्रोत्रयोर्न्यस्य ढकारं विन्यसेत्त्वचि ।।२१।।
डकारं नेत्रयुग्मे तु रसनायां ठकारकम्। टकारं नासिकायां तु अकारं वाचि विन्यसेत् ।।२२।।
झकारं करयोर्न्यस्य पाणितत्त्वं विचक्षणः। जकारं पादयोर्न्यस्य छं पायौ चमुपस्थके ।।२३।।
विन्यसेत् पृथिवीतत्त्वं ङकारं पादयुग्मके। वस्तौ धकारं गं तत्त्वं तैजसं हृदि विन्यसेत् ।।२४।।
खकारं वायुतत्त्वं तु नासिकायां निवेशयेत्। ककारं विन्यसेन्नित्यं खतत्त्वं मस्तके बुधः ।।२५।।
हृत्पुण्डरीके संन्यस्य यकारं सूर्यदैवतम्। द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिःसृता ।।२६।।
कलाषोडशसंयुक्तं सकारं तत्र विन्यसेत्। तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री विन्दुं वह्नेस्तु मण्डलम् ।।२७।।
हकारं विन्यसेत्तत्र प्रणवेन सुरोत्तम। (ॐ आं परमेष्ठ्यात्मने आं नमः पुरुषात्मने[1] ।।२८।।
[2]ॐ वां नमो नित्यात्मने नां च विश्वात्मने नमः। वं नमः सर्वात्मने) इत्युक्ताः पञ्चशक्तयः ।।२९।।

न्यास करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति बुद्धितत्त्व बकार को हृदय पर न्यस्त करे ।।१७।। अहंकारमय फकार का वहीं (हृदय पर) न्यास करे। तदनन्तर सङ्कल्प से उत्पन्न मनस्तत्त्व पकार का भी वहीं न्यास करे ।।१८।। शब्दतन्मात्र तत्त्व नकार का मस्तक पर न्यास करे। स्पर्शात्मक धकार का मुख प्रदेश में रूपतत्त्व दकार को पलकों पर और रसतन्मात्र थकार का वस्ति देश (पेड़ू) पर न्यास करे ।।१९-२०।। गन्धतन्मात्र तकार को दोनों जाँघों पर, णकार को दोनों कानों पर और ढकार को त्वचा पर न्यस्त करे ।।२१।। डकार को दोनों नेत्रों पर, ठकार को रसना पर, टकार को नासिका पर और ञकार को वाक् पर विन्यस्त करे ।।२२।। विद्वान् व्यक्ति पाणितत्त्व झकार को दोनों हाथों पर न्यस्त कर जकार का न्यास दोनों चरणों पर, छकार का गुदा पर और चकार का लिङ्ग पर न्यास करे ।।२३।। पृथिवी तत्त्व ङकार को दोनों पैरों पर, धकार को वस्ति में और तेजस्तत्त्वरूप गकार का हृदय में न्यास करे ।।२४।। खकार वायुतत्त्व का प्रतीक है, उसको नासिका में और आकाशतत्त्व ककार का मस्तक पर न्यास करे ।।२५।। सूर्य दैवत यकार को हृत्पुण्डरीक पर न्यस्त करके हृदय कमल से चारों ओर स्फुरित होती हुई बहत्तर हजार नाड़ियों में सोलह स्वरों से युक्त सकार का न्यास करे ।।२६-२६½।। अये सुरोत्तम! मन्त्र साधक उसके मध्य में अग्निमण्डल विन्दु का चिन्तन कर उस विन्दु में प्रणव से युक्त हकार का न्यास करे ।।२७-२७½।। ॐ आं नमः पुरुषात्मने, ॐ आं नमः परमेष्ठ्यात्मने, ॐ वां नमो नित्यात्मने, ॐ नां नमो विश्वात्मने, ॐ वं नमः सर्वात्मने–ये पाँच शक्तियाँ कही गयी हैं ।।२८-२९।। स्नानकाल में पहली शक्ति का, आसन काल में दूसरी का, शयन में तीसरी का,

---

१ क्वचित्पुस्तकेऽयं पाठोदृश्यते--ॐ षं परमेष्ठ्यात्मने यं नमः पुरुषात्मने। २ च. °ने। शं नामानि वृत्त्यात्मने लां च विश्वा°। घ. ॐ वां मनोनि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नाने[1] तु प्रथमा योज्या द्वितीया आसने मता। तृतीया शयने तद्वच्चतुर्थी यानकर्मणि[2] ।।३०।।
अभ्यर्चायां[3] पञ्चमी स्यात् पञ्चोपनिषदः स्मृताः। [4]क्षकारं विन्यसेन्मध्ये ध्यात्वा मन्त्रमयं हरिम् ।।३१।।
या [5]मूर्त्तिः स्थाप्यते तस्याः मूलमन्त्रं न्यसेत्ततः। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूलकम् ।।३२।।
शिरोघ्राणललाटेषु मुखे कण्ठे हृदि क्रमात्। भुजयोर्जङ्घयोरङ्घ्र्योः केशवं शिरसि न्यसेत् ।।३३।।
नारायणं न्यसेद्वक्त्रे ग्रीवायां माधवं न्यसेत्। गोविन्दं भुजयोर्न्यस्य विष्णुं च हृदये न्यसेत् ।।३४।।
मधुसूदनकं पृष्ठे वामनं जठरे न्यसेत्। कट्यां त्रिविक्रमं न्यस्य जङ्घायां श्रीधरं न्यसेत् ।।३५।।
हृषीकेशं दक्षिणायां पद्मनाभं तु गुल्फके। दामोदरं पादयोश्च हृदयादिषडङ्गकम् ।।३६।।
एतत्साधारणं प्रोक्तमादिमूर्तेस्तु सत्तम। अथवा यस्य देवस्य प्रारब्धं स्थापनं भवेत् ।।३७।।
तस्यैव मूलमन्त्रेण सजीवकरणं भवेत्। यस्या मूर्तेस्तु यन्नाम तस्याऽऽद्यं चाक्षरं च यत् ।।३८।।
तत्स्वरैर्द्वादशैर्भेद्य ह्यङ्गानि परिकल्पयेत्। हृदयादीनि देवेश मूलं च द्वादशाक्षरम् ।।३९।।
यथा देवे तथा देहे तत्त्वानि विनियोजयेत्। चक्राब्जमण्डले विष्णुं यजेद्गन्धादिना ततः[6] ।।४०।।
पूर्ववच्चाऽऽसनं ध्यायेत्तन्मात्रं[7] सपरिच्छदम्। शुभं चक्रं द्वादशारं ह्युपरिष्टाद्विचिन्तयेत् ।।४१।।

यान कर्म अर्थात् सवारी के समय चौथी का और पूजा के समय पाँचवीं का ध्यान करना चाहिए। ये ही पाँच उपनिषद् भी हैं। मध्य में मन्त्रमय हरि का ध्यान करके क्षकार का न्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त जिस मूर्ति की स्थापना की जाती है, उसी के मूल मन्त्र का न्यास करना चाहिए। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मूल मन्त्र है ।।३०-३२।। सिर, नासिका, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दो भुजा, दो पिण्डली और दो चरणों में इस मूल मन्त्र के प्रत्येक अक्षर से क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् केशव का मस्तक में न्यास करे ।।३३।। मुख में नारायण का और ग्रीवा पर माधव का न्यास करना चाहिए। भुजाओं पर गोविन्द का न्यास करके हृदय पर विष्णु का न्यास करे ।।३४।। पृष्ठ भाग पर मधुसूदन का और जठर पर वामन का न्यास करे। कटि पर त्रिविक्रम का और जङ्घा पर श्रीधर का न्यास करे ।।३५।। दक्षिण जङ्घा पर हृषीकेश का, गुल्फ पर पद्मनाभ का और चरणों पर दामोदर का न्यास करे। पश्चात् हृदय आदि का षडङ्गन्यास करे ।।३६।। अये सत्तम! साधारण रूप से आदि मूर्ति का न्यास व्रत कहा गया है। अथवा जिस देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो, उसी के मूल मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा तथा सजीवकरण होना चाहिए ।।३७-३७$\frac{1}{2}$ ।। जिस मूर्ति की जो संज्ञा हो उसके आदि अक्षर को द्वादश स्वरों के संयोग से पृथक्-पृथक् रूप बनाकर मूल मन्त्र के द्वादश अक्षरों के समान द्वादश कल्पना करे। हे देवेश! हृदयादि न्यास और द्वादशाक्षर मूल मन्त्र का तथा तत्त्वों का जिस प्रकार देवमूर्ति पर न्यास किया जाता है, उसी प्रकार अपने अङ्गों पर भी न्यास करे। तदनन्तर चक्र के भीतर स्थित कमल मण्डल पर गन्ध आदि से विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।।३८-४०।। पूर्ववत् शरीर और वस्त्राभूषणों सहित भगवान् के आसन का ध्यान करे। ऊपरी भाग से द्वादश अंशवाले चक्र का चिन्तन करना चाहिए जिसमें तीन

---

१ ख. ग. घ. स्थाने। २ ख. ग. प्राणकर्मणि। घ. पानकर्मणि। ३ ख. ग. घ. प्रत्यर्चायां। ४ क. ङ. च. ककार°। ख. ग. घ. हुंकारं। ५ ख. घ. यां मूर्ति स्थापयेत्तस्मान्मूल°। ६ ख. ग. घ. तथा। ७ घ. °येत्सगात्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिनाभिचक्रं द्विनेमि स्वरैस्तच्च समन्वितम्। पृष्ठदेशे ततः प्राज्ञः प्रकृत्यादीन्निवेशयेत् ।।४२।।
पूजयेदरकाग्रेषु सूर्यं द्वादशधा पुनः। कलाषोडशसंयुक्तं सोमं तत्र विचिन्तयेत्[1] ।।४३।।
([2]वसनत्रितयं नाभौ चिन्तयेद्देशिकोत्तमः। पद्मं च द्वादशदलं पद्ममध्ये विचिन्तयेत्) ।।४४।।
तन्मध्ये पौरुषीं शक्तिं ध्यात्वाऽऽभ्यर्च्य च देशिकः। प्रतिमायां हरिं न्यस्य तत्र तं पूजयेत्सुरान् ।।४५।।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक्साङ्गं सावरणं[3] क्रमात्। ([4]द्वादशाक्षरबीजैस्तु केशवादीन्समर्चयेत् ।।४६।।
द्वादशारे मण्डले तु लोकपालादिकं क्रमात्)। प्रतिमामर्चयेत्पश्चात्गन्धपुष्पादिभिर्द्विजः ।।४७।।
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रियाः सूक्तेन पिण्डिकाम्। जननादिक्रमात्पश्चाज्जनयेद्वैष्णवानलम् ।।४८।।
हुत्वाऽग्निं वैष्णवैर्मन्त्रैः कुर्याच्छान्त्युदकं बुधः। तत्सिक्त्वा प्रतिमामूर्ध्नि वह्निप्रणयनं चरेत् ।।४९।।
दक्षिणेऽग्निं हुतमिति कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः। अग्निमग्नीति पूर्वे तु कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः ।।५०।।
उत्तरे प्रणयेदग्निमग्निमग्नीहरामहे। अग्निप्रणयने मन्त्रस्त्वमग्ने द्युभिरुच्यते ।।५१।।
पलाशसमिधानां तु अष्टोत्तरसहस्रकम्। कुण्डे कुण्डे होमयेच्च व्रीहीन्वेदादिकैस्तथा ।।५२।।
साज्यांस्तिलान्व्याहृतिभिर्मूलमन्त्रेण वै घृतम्। कुर्यात्ततः शान्तिहोमं मधुरत्रितयेन च ।।५३।।

नाभिचक्र और दो नाभियाँ हों और जिन पर स्वरों का न्यास हुआ हो। फिर पृष्ठ-देश पर बुद्धिमान् साधक प्रकृति आदि का न्यास करे ।।४१-४२।। उन अराओं के अग्र भाग पर द्वादश सूर्य और सोलह कलाओं से युक्त सोम का ध्यान करे ।।४३।। विज्ञ आचार्य नाभि में बलराम के साथ प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन तीन देवताओं का और पद्म के मध्य में द्वादश दल पद्म का ध्यान करे ।।४४।। पुनः गुरु उस कमल के मध्य में पौरुषी शक्ति का ध्यान करके उसकी पूजा करे और प्रतिमा में हरि का न्यास करके हरि और अन्य देवताओं की पूजा करे ।।४५।। क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि से द्वादशाक्षर-मन्त्र बीजों से सांग और सावरण केशव आदि का पूजन करना चाहिए ।।४६।। द्वादश दलवाले मण्डल में क्रमशः लोकपालों की भी पूजा करनी चाहिए। लोकपालों की पूजा के अनन्तर गन्ध, पुष्प आदि से प्रतिमा का अर्चन पुरुषसूक्त से, और श्रीसूक्त से पिण्डिका का पूजन करना चाहिए ।।४७-४७ $\frac{1}{2}$।। इसके पश्चात् जनन आदि संस्कार क्रम से वैष्णव से अनल को प्रज्वलित करना चाहिए। ज्ञानी आचार्य वैष्णव मन्त्रों से अग्नि में हवन कर शान्त्यभिषेक करे। इस जल से प्रतिमा के सिर पर सिञ्चन कर वह्निप्रणयन करे ।।४८-४९।। 'अग्निदूतम्' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करे। 'अग्निमग्नी' इत्यादि मन्त्र से पूर्व कुण्ड में अग्नि स्थापित करके, उत्तर कुण्ड में 'अग्निमग्नीहरामहे' इत्यादि मन्त्र से अग्न्याधान करे। अग्नि-प्रणयन के लिए 'त्वमग्नेद्युभि' इत्यादि मन्त्र भी कहा गया है ।।५०-५१।। एक हजार आठ पलाश की समिधाओं का प्रत्येक कुण्ड में हवन करके वैदिक मन्त्रों से व्रीहि-हवन करे ।।५२।। व्याहृतियों से घी मिले हुए तिल की तथा मूल मन्त्र से घृत की आहुतियाँ दे। तदनन्तर मधुरत्रय (घी, शहद तथा चीनी) से शान्ति हवन करे ।।५३।। द्वादशाक्षर-मन्त्र से दोनों

---

१ घ. °त्। सवलं त्रि°। २ वसनत्रितयं...विचिन्तयेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ख. साधारणं। ४ द्वादशाक्षरबीजैस्तु...क्रमात् ङ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वादशार्णैः स्पृशेत्पादौ नाभिं हृन्मस्तकं ततः। घृतं दधि पयो हुत्वा स्पृशेन्मूर्धन्यथो ततः ।।५४।।
स्पृष्ट्वा शिरोनाभिपादांश्चतस्रः स्थापयेन्नदीः[1]। गंगा च यमुना गोदा क्रमान्नाम्ना सरस्वती ।।५५।।
देहे[2] तु विष्णुगायत्र्या गायत्र्या श्रपयेच्चरुम्। होमयेच्च बलिं दद्यादुत्तरे भोजयेद्द्विजान् ।।५६।।
मासाधिपानां[3] तुष्ट्यर्थं हेमगां गुरवे ददेत्। दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा रात्रौ कुर्याच्च जागरम् ।।५७।।
ब्रह्मगीतादिशब्देन सर्वभागधिवासनात् ।।५८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवताधिवासनविधिकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

वासुदेवादिदेवतानां सामान्यः प्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच

पिण्डिकास्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा। विभजेद्ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ।।१।।
देवमानुषपैशाचभागेषु न कदाचन। ब्रह्मभागं परित्यज्य किंचिदाश्रित्य चाण्डज ।।२।।
देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका। नपुंसकशिलायां तु रत्नन्यासं समाचरेत् ।।३।।

पैर, नाभि, हृदय और मस्तक का स्पर्श करे। घी, दही और दूध से हवन करके मूर्धा (सिर) का स्पर्श करे। तत्पश्चात् मस्तक, नाभि और चरणों का स्पर्श करके गङ्गा, यमुना, गोदावरी तथा सरस्वती नामक चार नदियों को स्थापित करे ।।५४-५५।। विष्णु गायत्री से अग्नि को प्रज्वलित करके गायत्री मन्त्र से चरु को पकावे। हवन और बलि प्रदान करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।।५६।। मासाधिपों की तुष्टि के लिए गुरु को सोने की गाय की दक्षिणा दे। दिक्पालों को बलि प्रदान करके रात्रि में जागरण करे और ब्रह्मगीता आदि का पाठ करे। इस प्रकार अधिवासन (पूजन-संस्कार) क्रिया की साङ्गोपाङ्ग पूर्ति करने पर मनुष्य सम्पूर्ण फलों का भागी होता है ।।५७-५८।।

श्री अग्निमहापुराण में देवताधिवासन-विधिकथन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।।५९।।

अध्याय ६०

वासुदेवादि देवताओं की प्रतिष्ठा-विधि

श्री भगवान् ने कहा-विवेकी गुरु पिण्डिका स्थापन के लिए गर्भगृह को सात भागों में विभक्त करके ब्रह्मभाग में प्रतिमा की प्रतिष्ठा करे ।।१।। देव, मानुष और पैशाच भागों में कभी भी प्रतिमा स्थापन करना चाहिए। हे ब्रह्मन्। ब्रह्मभागों को छोड़कर देव और मानुष भाग में से थोड़ा-थोड़ा-सा अंश लेकर यत्नपूर्वक पिण्डिका को स्थापित करना चाहिए। नपुंसक शिला पर रत्न का न्यास करना चाहिए ।।२-३।। नारसिंह मन्त्र से हवन करके उसी

---

१ क. ङ. च. °येच्च गाः। ग°। २ घ. दहेत्तु। ३ घ. सामाधिपानां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नारसिंहेन हुत्वाऽथ रत्नन्यासं च तेन वै। व्रीहीरत्नानि धातूंश्च लोहान्वै चन्दनादिकम् ।।४।।
पूर्वादिनवगर्तेषु न्यसेन्मध्ये यथारुचि। अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्तगुग्गुलनाऽऽवृतम् ।।५।।
रत्नन्यासविधिं कृत्वा प्रतिमामालभेद्गुरुः। सशलाकैर्दर्भपुञ्जैः सहदेवैः समन्वितैः ।।६।।
सबाह्यान्तैश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत्। प्रोक्षयेद्दर्भतोयेन[1] नदीतीर्थोदकेन च ।।७।।
होमार्थे स्थण्डिलं कुर्यात्सिकताभिः समन्ततः। सार्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्त्रं सुशोभनम् ।।८।।
अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत्। पूर्वाद्यानष्ट वर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ।।९।।
त्वमग्ने द्युभिरिति च गायत्र्या समिधो हुनेत्। अष्टार्णेनाष्टशतकमाज्यं[2] पूर्णां प्रदापयेत् ।।१०।।
शान्त्युदकं[3] ताम्रपत्रे मूलेन शतमन्त्रितम्। सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्ध्नि श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ।।११।।
ब्रह्मयानेन चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते। तद्विष्णोरिति मन्त्रेण प्रासादाभिमुखं नयेत् ।।१२।।
शिविकायां हरिं स्थाप्य भ्रामयीत पुरादिकम्। गीतवेदादिशब्दैश्च प्रासादद्वारि धारयेत् ।।१३।।
स्त्रीभिर्विप्रैर्मङ्गलाष्टघटैः संस्नापयेद्धरिम्। ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः ।।१४।।
अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गार्घ्यं निवेद्य च। स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत् ।।१५।।
ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम। संस्थाप्य पिण्डिकायां तु स्थिरं कुर्याद्विचक्षणः ।।१६।।

मन्त्र से रत्नन्यास भी करे। व्रीहि (धान्य), रत्न, धातु, लोहा और चन्दन आदि को पूर्वोक्त पूर्व आदि दिशाओं में बने हुए नौ गड्ढों में रुचि के अनुसार छोड़ दे। तदनन्तर इन्द्र आदि के मन्त्रों का उच्चारण करके उन्हें गुग्गुल से भर दे ।।४-५।। इस प्रकार आचार्य के रत्नन्यास विधि को पूरा करके प्रतिमालम्भन कराना चाहिए। पहले शलाका, कुश और सहदेवी से उस प्रतिमा के चारों ओर भलीभाँति स्वच्छ करके उसे पञ्चगव्य से शुद्ध करे, फिर कुश के जल और तीर्थ के जल से उसको स्नान करावे ।।६-७।। हवन के लिए, डेढ़ हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी सुन्दर वर्गाकार वेदी बालुका से बनावे। आठों दिशाओं में यथाविधि कलशों को स्थापित करे ।।८-८ $\frac{1}{2}$।। उन पूर्वादि कलशों को आठ प्रकार के रंगों से सुसज्जित करे। तदनन्तर सुसंस्कृत अग्नि को लाकर हवन-कुण्ड में स्थापित करे ।।९।। उसमें 'त्वमग्ने द्युभि' इत्यादि गायत्री छन्द से समिधा का हवन करे। अष्टार्ण मन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुति दे ।।१०।। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित किये हुए शान्ति जल को आम्र पल्लवों के द्वारा 'श्रीश्च ते लक्ष्मी' इत्यादि मन्त्र से प्रतिमा के सिर पर अभिषेक करे ।।११।। 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इत्यादि मन्त्र से प्रतिमा को उठाकर ब्रह्मयान पर रखे तथा 'तद् विष्णो' इस मन्त्र से ब्रह्मयान पर आरूढ़ प्रतिमा को मन्दिर की ओर ले जाय ।।१२।। वहाँ पर शिविका में हरि को प्रतिष्ठित कर, नगर में समारोह के साथ घुमावे। साथ-साथ मंगल गीत और वेद का उच्चारण होता रहे। फिर मन्दिर के द्वार पर भगवान् को शिविका से उतारे ।।१३।। वहाँ स्त्रियों और ब्राह्मणों के द्वारा आठ मंगल-कलशों से उनको स्नान कराना चाहिए। स्नान के पश्चात् गुरु मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए गन्ध आदि से उसका पूजन करे ।।१४।। 'अतो देव' इत्यादि मन्त्र से वस्त्रादि पहनाकर अष्टाङ्ग अर्घ्य अर्पण करे। स्थिर लग्न में पिण्डिका के मध्य में 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से प्रतिमा को स्थापित कर दे ।।१५।। विद्वान् आचार्य 'ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम' इत्यादि मन्त्र से उसको पिण्डिका में भलीभाँति स्थिर कर दे ।।१६।। 'ध्रुवा द्यौः' इस मन्त्र से तथा

---

१ क. ङ. च. येन्दान्धतो°। २ क. ङ. च. °ष्टान्तेना°। ३ ख. घ.° दकमाम्रपत्रैर्मूले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्रुवाद्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि। पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षाल्य गन्धोदकेन च ।।१७।।
पूजयेत्सकलीकृत्य साङ्गं सावरणं हरिम्। ध्यायेत्खं[1] तत्र मूर्तिं तु पृथिवी तस्य पीठिका ।।१८।।
कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः। जीवमावाहयिष्यामि पञ्चविंशतितत्त्वगम् ।।१९।।
चैतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम्। देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ।।२०।।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम्। हृदयात्प्रतिमाबिम्बे स्थिरो भव परमेश्वर ।।२१।।
सजीवं कुरु बिम्बं त्वं सबाह्याभ्यन्तरस्थितः[2]। अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ।।२२।।
ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम्[3]। सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निबोधयेत् ।।२३।।
सांनिध्यकरणं नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत्। सूक्तं तु पौरुषं ध्यायन्निदं गुह्यमनुं जपेत् ।।२४।।
नमस्तेऽस्तु सुरेशाय संतोषविभवात्मने। ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुयायिने ।।२५।।
गुणातिक्रान्तरूपाय[4] पुरुषाय महात्मने। अक्षयाय पुराणाय विष्णो संनिहितो भव ।।२६।।
यच्च ते परमं तत्त्वं यच्चज्ञानमयं वपुः। तत्सर्वमेकतो[5] नीतमस्मिन्देहे विबुध्यताम् ।।२७।।
आत्मानं संनिधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान्। स्वनाम्ना स्थापयेदन्यानायुधादीन्समुद्रया ।।२८।।

'विश्वतश्चक्षुः' इत्यादि मन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराकर गन्धोदक से प्रक्षालन करे ।।१७।। सकलीकरण करने के पश्चात् साङ्ग और सावरण हरि का पूजन करे और इस प्रकार ध्यान रहे कि आकाश भगवान् का विग्रह है और पृथिवी उसकी पीठिका (सिंहासन) है। तैजस परमाणुओं से उसके शरीर की रचना की कल्पना करे और कहे कि मैं उस तैजस देह में पचीसों तत्त्वों में व्याप्त रहनेवाले, चैतन्य, परमानन्द, जाग्रत स्वप्न से रहित, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से विवर्जित ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त प्रत्येक वस्तुओं के हृदय में वर्तमान रहनेवाले जीव (परमात्मा) का आवाहन कर रहा हूँ। हे परमेश्वर! तुम हृदय से निकलकर इस प्रतिमा बिम्ब में स्थिर हो जाओ ।।१८-२१।। तुम इस बिम्ब के बाहर और भीतर स्थित होकर उसको सजीव कर दो, तुम जीवों के देहों में स्थिर रहनेवाले अङ्गुष्ठमात्र पुरुष हो ।।२२।। 'तुम ज्योति, ज्ञान, परब्रह्म और अद्वितीय ब्रह्म हो', इत्यादि कहकर मूर्ति का सजीवीकरण सम्पन्न करे। सजीवीकरण के अनन्तर ओङ्कार से उसको जगावे ।।२३।। भगवान् के हृदय का स्पर्श कर पुरुष सूक्त का जप करे। इसे सांनिध्यकरण नामक कर्म कहा गया है। इसके लिए भगवान् का ध्यान करते हुए निम्न गुह्य मन्त्र का जप करे ।।२४।। प्रभो! आप देवताओं के स्वामी हैं। सन्तोष वैभव रूप हैं। आपको नमस्कार है। ज्ञान और विज्ञान आपके रूप हैं। आप ब्रह्मतेज के अनुगामी हैं। आपको नमस्कार है ।।२५।। गुणों से अतिक्रान्त रूपवाले महात्मा पुरुष को नमस्कार है। हे विष्णो! इस प्रतिमा को अक्षय और सनातन बनाने के लिए इसमें सन्निविष्ट होइये ।।२६।। आपका जो परमतत्त्व और ज्ञानमय शरीर है, उस सबको मैंने इस मूर्ति में एकांश रूप से एकत्र किया है, इसमें अब अपने को प्रकाशित कीजिये ।।२७।। इस प्रकार परमात्मा को उस मूर्ति में आहूत करके तथा संयुक्त करके ब्रह्मा आदि देवों को सपरिवार उनके मन्त्रों से स्थापित करे। समीप में ही उनके

---

१ क. ङ. च. °येत्खातस्य मूर्तिस्तु पृ°। २ ख. ङ. च. °स्थितम्। अ°। ३ ख. यमोम्। स°। ४ क. ख. ङ. च. °न्तदेशाय। घ °न्तवेशाय। ५ घ. °तो लीनम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यात्रावर्षादिकं दृष्ट्वा[1] ज्ञेयः संनिहितो हरिः। नत्वा[2] स्तुत्वा स्तवाद्यैश्च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ।।२९।।
चण्डप्रचण्डौ द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद् गुरुः। अथ मण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ।।३०।।
दिगीशान्दिशि देवांश्च स्थाप्य संपूज्य देशिकः। विष्वक्सेनं तु संस्थाप्य शङ्खचक्रादि पूजयेत् ।।३१।।
सर्वपार्षदकेभ्यश्च बलिं भूतेभ्य अर्पयेत्। ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुरवे दक्षिणां ददेत् ।।३२।।
यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्याय नरोऽर्पयेत्। आचार्यदक्षिणार्धं तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत् ।।३३।।
अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद्भोजयेद्ब्राह्मणांस्ततः। अवारितान्फलं[3] दद्याद्यजमानाय वै गुरुः ।।३४।।
विष्णुं नयेत्प्रतिष्ठाता चाऽऽत्मना सकलं कुलम्। सर्वेषामेव देवानामेष साधारणो विधिः ।।३५।।
मूलमन्त्राः पृथक्तेषां शेषं कार्यं समानकम् ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं
नाम षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

अस्त्रों को भी मुद्रा के साथ स्थापित करे ।।२८।। यात्रा और वर्ष आदि का विचार करके हरि को सन्निहित करना चाहिए। स्तुति, प्रार्थना आदि से स्तुति करके अष्टाक्षर मन्त्रों का जप करके भगवान् को प्रसन्न करना चाहिए ।।२९।। तदनन्तर आचार्य मन्दिर से निकलकर द्वार पर चण्ड और प्रचण्ड की पूजा करे, फिर मण्डप में जाकर गरुड़ की स्थापना करके पूजा करे ।।३०।। दिशाओं में दिक्पालों, विष्वक्सेन और शङ्ख, चक्रादि को स्थापित करके उनकी पूजा करे। सब पार्षदों और भूतों को बलि प्रदान करे। तत्पश्चात् गुरु को ग्राम, वस्त्र और स्वर्ण दक्षिणा में दे और यज्ञोपवीती द्रव्य आचार्य को अर्पित करे। आचार्य की दक्षिणा से आधी दक्षिणा ऋत्विकों को दे ।।३१-३३।। अन्य ब्राह्मणों को भी दक्षिणा देकर आगत ब्राह्मणों को भोजन कराये, किसी को रोके नहीं। इस कार्य के अनन्तर गुरु यजमान को फल प्रदान करे ।।३४।। प्रतिष्ठाता पुरुष अपने पूरे परिवार को अपने साथ विष्णुलोक को ले जाता है। सब देवों की यही प्रतिष्ठा-विधि है। केवल मूल मन्त्र ही पृथक्-पृथक् हैं। शेष विधियाँ समान हैं ।।३५-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में वासुदेवादि प्रतिष्ठासामान्यविधिवर्णन
नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ।।६०।।

---

१ क. ङ. च. कृत्वा। २ ख. गत्वा। ३ घ. °न्फलान्दद्या°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

अवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिः

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्ये चावभृथस्नानं विष्णोर्नत्वेति[1] होमयेत्। एकाशीतिपदे कुम्भान्संस्थाप्य[2] स्नापयेद्धरिम् ।।१।।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्बलिं दत्त्वा गुरुं यजेत्। द्वारप्रतिष्ठां वक्ष्यामि द्वाराधो हेम वै ददेत् ।।२।।
अष्टभिः कलशैः स्थाप्य शाखोदुम्बरकौ गुरुः। गन्धादिभिः समभ्यर्च्य मन्त्रैर्वेदादिभिर्गुरुः ।।३।।
कुण्डेषु होमयेद्वह्निं समिदाज्यतिलादिभिः[3]। दत्त्वा शय्यादिकं चाधो दद्यादाधारशक्तिकाम् ।।४।।
शाखयोर्विन्यसेन्मूले देवौ चण्डप्रचण्डकौ। ऊर्ध्वोदुम्बरके देवीं लक्ष्मीं सुरगणार्चिताम् ।।५।।
न्यस्याभ्यर्च्य यथान्यायं श्रीसूक्तेन चतुर्मुखम्। हुत्वा तु श्रीफलादीनि आचार्यादेस्तु दक्षिणाम् ।।६।।
प्रतिष्ठासिद्धद्वारस्य त्वाचार्यः स्थापयेद्धरिम्। प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु हृत्प्रतिष्ठेति तां शृणु ।।७।।
समाप्तौ शुकनासाया वेद्याः प्राग्गर्भमस्तके। सौवर्णं राजतं कुम्भमथवा शुक्लनिर्मितम्[4] ।।८।।
अष्टरत्नौषधीधातुबीजलौहान्वितं शुभम्। सवस्त्रपूरितं चाद्भिर्मण्डले चाधिवासयेत् ।।९।।
सपल्लवं नृसिंहेन हुत्वा संपातसंचितम्[5]। नारायणाख्यतत्त्वेन प्राणभूतं न्यसेत्ततः ।।१०।।

अध्याय ६१

अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठादि विधि-वर्णन

श्री भगवान् बोले–अब मैं अवभृथ स्नान की विधि बता रहा हूँ। 'विष्णोर्नत्वा' इत्यादि मन्त्र से हवन करे। इक्यासी पदवाले वर्गाकार क्षेत्र में कलशों को स्थापित करके हरि को स्नान कराकर गन्ध-पुष्प आदि चढ़ाकर बलि प्रदान करे और गुरु का पूजन करे। द्वार प्रतिष्ठा विधि यह है कि द्वार के नीचे सोना रखे ।।१-२।। गुरु गूलर की दो शाखाओं को समीप में गाड़कर आठ कलशों को स्थापित करके वेदमन्त्रों से गन्ध आदि से पूजा करके कुण्ड में समिधा, घी और तिल आदि की अग्नि में आहुतियाँ दे। भूमि पर शय्या रखकर उसे आधार शक्ति को प्रदान करे ।।३-४।। उदुम्बर की शाखाओं के मूल में चण्ड और प्रचण्ड की प्रतिष्ठा करे। देवगणों से पूजित लक्ष्मी को शाखाओं के ऊपर स्थापित करे। तत्पश्चात् यथाविधि ब्रह्मा की भी स्थापना करके श्रीसूक्त से उसकी पूजा करे। श्रीफल आदि से पूजन कर आचार्य को दक्षिणा दे ।।५-६।। तदनन्तर आचार्य उस प्रतिष्ठासिद्ध द्वार पर हरि की स्थापना करे। प्रासाद की प्रतिष्ठा की जो हृदय-प्रतिष्ठा है, उसकी प्रतिष्ठा की विधि सुनो ।।७।। शुक नासिका के समान आकारवाली वेदिका के अन्त में, पूर्वगर्भमस्तक पर सोने और चाँदी के कलशों को स्थापित करे ।।८।। उस कलश को वस्त्र से आच्छादित करके अष्टरत्न, ओषधि, धातु, बीज और लोहे को उसमें छोड़ दे। पुनः उस कलश की विधिवत् पूजा करे। नृसिंहमन्त्र से उस कलश को जल से सींचकर उस पर पल्लव रखे। नारायण तत्त्व से प्राणभूत तत्त्व का न्यास करे ।।९-१०।।

---

१ क. ङ. च. °ष्णोर्नुकेति। ख. °ष्णोर्नमेति। २ घ °म्भान्स्थाप्य संस्थाप्य°। ३ क. घ. ङ. च. मिल्लाजति। ४ च. °निर्मलम्। ५ ख. संपातसिञ्चितम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैराजरूपं[1] तं ध्यायेत्प्रासादस्य सुरेश्वर। ततः पुरुषवत्सर्वं प्रासादं चिन्तयेद्बुधः ।।११।।
अधोदत्त्वा सुवर्णं तु तत्त्वभूतं[2] घटं न्यसेत्। गुर्वादौ दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणादेश्च भोजनम् ।।१२।।
ततः पश्चाद्वेदिबन्धं तदूर्ध्वं कण्ठबन्धनम्। कण्ठोपरिष्टात्कर्तव्यं विमलामलसारकम् ।।१३।।
तदूर्ध्वं वृकलं[3] कुर्याच्चक्रं चाद्यं सुदर्शनम्। मूर्तिं श्रीवासुदेवस्य ग्रहगुप्तां निवेदयेत् ।।१४।।
कलशं वाऽथ कुर्वीत तदूर्ध्वं चक्रमुत्तमम्। वेद्याश्च परितः स्थाप्या अष्टौ [4]विघ्नेश्वरास्त्वज ।।१५।।
चत्वारो वा चतुर्दिक्षु स्थापनीया गरुत्मतः। ध्वजारोहं प्रवक्ष्यामि येन भूतादि नश्यति ।।१६।।
प्रासादबिम्बद्रव्याणां यावन्तः परमाणवः। तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्ता विष्णुलोकभाक् ।।१७।।
कुम्भाण्डवेदिबिम्बानां[5] भ्रमणाद्वायुनाऽनघ। कण्ठस्याऽऽवेष्टनाज्ज्ञेयं फलं कोटिगुणं ध्वजात् ।।१८।।
पताकां प्रकृतिं विद्धि दण्डं पुरुषरूपिणम्। प्रासादो वासुदेवस्य मूर्तिरूपो[6] निबोध मे ।।१९।।
धारणाद्धरणीं[7] विद्धि आकाशं सुषिरात्मक। तेजस्तत्पावकं विद्धि वायुं स्पर्शगतं तथा ।।२०।।
पाषाणादिष्वेवजलं पार्थिवं[8] पृथिवीगुणम्। प्रतिशब्दोद्भवं शब्दं स्पर्शं स्यात्कर्कशादिकम् ।।२१।।
शुक्लादिकं भवेद्रूपं रसमाह्लाद[9] दर्शकम्। धूपादिगन्धं गन्धं तु वाग्भेर्यादिषु संस्थिता ।।२२।।

अये सुरेश्वर! उस कलश में प्रासाद के वैराजरूप का ध्यान कर सम्पूर्ण प्रासाद की कल्पना पुरुष के रूप में करे। तदनन्तर नीचे सुवर्ण देकर तत्त्वभूत कलश की स्थापना करे। गुरु आदि को दक्षिणा देकर और ब्राह्मण भोजन कराकर यह विधि समाप्त करे ।।११-१२।। इसके बाद वेदि-बन्धन और तत्पश्चात् कण्ठ-बन्धन करे। कण्ठ के ऊपर विमलामल सारक, उसके ऊपर वृकल और उसके ऊपर सुदर्शनचक्र को निहित करे। यहीं ग्रहों से सुरक्षित श्री वासुदेव की मूर्ति निवेदित करे ।।१३-१४।। इसके अनन्तर पृथक् कलश स्थापित करे। उसके ऊपर सुदर्शन-चक्र बनावे। वेदी के चारों ओर आठ विघ्नेश्वरों की स्थापना करनी चाहिए ।।१५।। अथवा चारों दिशाओं में चार ही विघ्नेश्वर स्थापित करे। अब मैं ध्वजारोहण की विधि बतला रहा हूँ जिससे भूतप्रेतादि का विनाश हो जाता है ।।१६।। इस विधि को पूर्ण करने से प्रासादबिम्ब बनाने में जितनी सामग्री काम में लायी गयी है और उन सामग्रियों में जितने परमाणु हैं, उतने वर्षों तक प्रासाद (मन्दिर) का निर्माता विष्णुलोक में निवास करता है ।।१७।। निष्पाप ब्रह्मा जी! जब वायु से ध्वज फहराता है और कलश, वेदी, प्रासादबिम्ब के कण्ठ को आवेष्टित कर लेता है, तब प्रासादकर्त्ता को ध्वजारोपण से प्रासादबिम्बादि की अपेक्षा कोटि गुना अधिक फल प्राप्त होता है ।।१८।। पताका को प्रकृति और दण्ड को पुरुष समझो। देवता के मन्दिर को देवमूर्ति समझो ।।१९।। वह मन्दिर देवता को धारण करता है अतः उसकी धरणी (पृथ्वी) समझो। उसमें छिद्र रहता है, वह स्वयं पोला है, अतः उसको आकाश समझो, उसकी प्रभा अग्नितत्त्व है (स्पर्श) के कारण उसको वायु भी समझो ।।२०।। पत्थर आदि में भी जलतत्त्व और पार्थिव तत्त्व होते हैं, उनमें प्रतिध्वनि शब्दतत्त्व होते हैं, उनकी कठोरता स्पर्श गुण है ।।२१।। शुक्ल आदि उसका रूप और उस मन्दिर के दर्शन से जो आनन्द मिलता है, वह रस है। धूप आदि का गन्ध, गुण और वाणी (ध्वनि) भेरी आदि में है ।।२२।। शुकनासा,

---

१ ख. घ. वैराजभूतं। २ घ. तद्वद्भूतं। ३ ख. चुबुकं। ङ. च. चलकं। ४ ख. ङ. च. विद्येश्व। ५ ख. दिद्रव्याणां भ्र°। ङ. च. °दिविद्यानां। ६ क. ङ. च. मूर्तिभूतं। ७ च. °रणी° वा°। ८ घ. ग. ङ. च. स्पर्श। ९ क. ङ. च. °समाम्लादिदर्श°। घ. °समन्नादिदं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुकनासाश्रिता नासा बाहू भद्रात्मकौ[1] स्मृतौ। शिरस्त्वण्डं निगदितं कलशो मूर्धजाः स्मृताः ।।२३।।
कण्ठं कण्ठमितिज्ञेयं स्कन्धो वेदी निगद्यते। पायूपस्थे प्रणाले तु त्वक्सुधा परिकीर्तिता ।।२४।।
मुखं द्वारं भवेदस्य प्रतिमा जीव उच्यते। तच्छक्तिं पिण्डिकां विद्धि प्रकृतिं च तदाकृतिम् ।।२५।।
निश्चलत्वं च गर्भोऽस्या अधिष्ठाता तु केशवः। एवमेष हरिः साक्षात्प्रासादत्वेन संस्थितः ।।२६।।
जङ्घा त्वस्य शिवो ज्ञेयः स्कन्धे धाता व्यवस्थितः। ऊर्ध्वभागे स्थितौ विष्णुरेवं तस्य स्थितस्य हि ।।२७।।
प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु ध्वजरूपेण मे शृणु। ध्वजं कृत्वा सुरैर्दैत्या जितः शस्त्रादिचिह्नितम् ।।२८।।
अण्डोर्ध्वं[2] कलशं न्यस्य तदूर्ध्वं विन्यसेद्ध्वजम्। बिम्बार्धमानं दण्डस्य त्रिभागेणाथ कारयेत् ।।२९।।
अष्टारं द्वादशारं वा मध्ये मूर्तिमताऽन्वितम्। नारसिंहेन तार्क्ष्येण ध्वजदण्डस्तु निर्व्रणः ।।३०।।
प्रासादस्य तु विस्तारो मानं दण्डस्य कीर्तितम्। शिखरार्धेन वा कुर्यात्तृतीयार्धेन वा पुनः ।।३१।।
द्वारस्य दैर्घ्यादिगुणं दण्डं वा परिकल्पयेत्। ध्वजयष्टिर्देवगृहे ऐशान्यां वायवेऽथवा ।।३२।।
क्षौमाद्यैश्च ध्वजं कुर्याद्विचित्रं वैकवर्णकम्। घण्टचामरकिङ्किण्या भूषितं पापनाशनम् ।।३३।।
दण्डाग्राद्धरणीं यावद्वस्त्रैक्यं[3] विस्तरेण तु। महाध्वजः सर्वदः स्यात्तुर्यांशाद्धीनतोऽर्चितः ।।३४।।
ध्वजे चार्धेन विज्ञेया पताका मानवर्जिता। विस्तारेण ध्वजः कार्यो विंशदङ्गुलसंनिभः ।।३५।।

वेदिकानासा और भद्रात्मक भुजाएँ, अण्ड सिर और कलश केश है ।।२३।। कण्ठ, कण्ठ और वेदी कन्धे हैं। जल निकालने के लिए बनी हुई नालियाँ मल-मूत्र द्वार और सुधा (चूना) त्वचा है ।।२४।। द्वार मुख और प्रतिमा जीव है, पिण्डिका को उसकी शक्ति और आकृति समझो ।।२५।। इसकी स्थिरता गर्भ और अधिष्ठाता स्वयं हरि हैं। इस प्रकार साक्षात् हरि मन्दिर रूप में स्थित रहते हैं ।।२६।। प्रासाद की जङ्घा पर शिव और कन्धे पर ब्रह्मा विराजित रहते हैं, ऊपर के भाग को स्वयं विष्णु सुशोभित करते हैं। इस प्रकार विष्णु देवरूप में स्थित मन्दिर के ऊपर ध्वज-प्रतिष्ठा की विधि और फल को सुनो। शस्त्र आदि से चिह्नित ध्वजा के कारण ही देवता दानवों को परास्त करने में सफल हुए ।।२७-२८।। पहले अण्ड (मन्दिर का ऊपरी गोल भाग, गुम्बज) के ऊपर कलश स्थापित करके उसके ऊपर बिम्ब के आधे भाग के बराबर ध्वजा को रखे। वह ध्वज दण्ड के तृतीय भाग के बराबर हो और आठ या बारह पंखुड़ियोंवाले कमल या अन्य मूर्ति उस पर बनी हुई हो। नरसिंह अथवा तार्क्ष्य मन्त्र से ध्वजा के बाँस की गाँठें काटकर अलग कर दे ।।२९-३०।। प्रासाद का विस्तार ध्वज दण्ड के बराबर हो अथवा शिखर के आधे या तृतीयांश के बराबर हो ।।३१।। अथवा उसे द्वार की ऊँचाई से दूना होना चाहिए। ध्वज दण्ड देवगृह के ईशानकोण में या वायव्यकोण में स्थापित करना चाहिए ।।३२।। ध्वजा रेशम या किसी अच्छे वस्त्र का हो। यह चितकबरा अथवा कोई एक रंग का हो। घण्टा, चामर और किङ्किणी से भूषित ध्वज सम्पूर्ण पापों का नाशक होता है ।।३३।। दण्ड के अग्रभाग से लेकर पृथिवी तक एक वस्त्र लपेट देने से वह महाध्वज सब कामनाओं को देनेवाला होता है। चतुर्थांश कम होने पर वह ध्वज इष्टप्रद होता है। ध्वज पर लगानेवाली पताका के मान का कोई परिमाण नहीं होता है, परन्तु ध्वजा का परिमाण बीस अंगुल से कम नहीं होता है ।।३४-३५।। साधिवास विधि के अनुसार चक्र, दण्ड तथा

---

१ घ. तद्रथकौ। २ ख. अतोर्ध्व°। ३ ख. ग. घ. °बद्धस्तैकं वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधिवासविधानेन चक्रं दण्डं ध्वजं तथा। देववत्सकलं कृत्वा मण्डपस्नपनादिकम् ।।३६।।
नेत्रोन्मीलनकं त्यक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वमाचरेत्। अधिवासयेद्विधिना[1] शय्यायां स्थाप्य देशिकः ।।३७।।
ततः सहस्रशीर्षेति सूक्तं चक्रे न्यसेद्बुधः। तथा सुदर्शनं मन्त्रं मनस्तत्त्वं निवेशयेत् ।।३८।।
मनोरूपेण तस्यैव सजीवकरणं स्मृतम्। अरेषु मूर्तयो न्यस्याः केशवाद्याः सुरोत्तम ।।३९।।
नाभ्यब्जप्रतिनेमीषु न्यसेत्तत्त्वानि देशिकः। नृसिंहं विश्वरूपं वा अब्जमध्ये निवेशयेत् ।।४०।।
सकलं विन्यसेद्दण्डे सूत्रात्मानं सजीवकम्। निष्कलं परमात्मानं ध्वजे ध्यायन्न्यसेद्धरिम् ।।४१।।
तच्छक्तिं व्यापिनीं ध्यायेद् ध्वजरूपां बलाबलाम्। मण्डले[2] स्थाप्य चाभ्यर्च्य होमं कुण्डेषु कारयेत् ।।४२।।
कलशे स्वर्णकलशं न्यस्य रत्नानि पञ्च च। स्थापयेच्चक्रमन्त्रेण स्वर्णचक्रमधस्ततः ।।४३।।
पारदेन तु संप्लाव्य[3] नेत्रपट्टेन छादयेत्। ततो निवेशयेच्चक्रं तन्मध्ये तु हरिं स्मरेत् ।।४४।।
ॐ क्षौं[4] नृसिंहाय नमः पूजयेत्स्थापयेद्धरिम्। ततो ध्वजं गृहीत्वा तु यजमानः सबान्धवः ।।४५।।
दधिभक्तयुते पात्रे ध्वजस्याग्रं निवेशयेत्। ध्रुवाद्येन फडन्तेन ध्वजं मन्त्रेण पूजयेत् ।।४६।।
शिरस्याधाय तत्पात्रं नारायणमनुस्मरन्। प्रदक्षिणं तु कुर्वीत तूर्यमंगलनिःस्वनैः ।।४७।।
ततो निवेशयेद्दण्डं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण तु। मुञ्चामि त्वेतिसूक्तेन ध्वजं मुञ्चेद्विचक्षणः ।।४८।।

ध्वज का देवता की भाँति मण्डप स्नान आदि कराना चाहिए। नेत्रोन्मीलन को छोड़कर ये उपुर्यक्त सारी विधियाँ एकाग्र भाव से सम्पन्न होनी चाहिए। आचार्य पताका को शय्या पर रखकर उसकी विधिवत् पूजा करे ।।३६-३७।। तत्पश्चात् 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि सूक्त को उस पताका पर बने हुए चक्र पर लिख दे तथा उसके ऊपर सुदर्शन मन्त्र और मनस्तत्त्व का न्यास करे ।।३८।। उसका मन रूप से सजीवीकरण शास्त्रों द्वारा समर्थित है। अये सुरोत्तम! उस कमलचक्र के प्रत्येक अरे पर केशव आदि की मूर्तियाँ न्यस्त होनी चाहिए ।।३९।। आचार्य नाभि और प्रत्येक नेमि पर तत्त्वों का न्यास करे, कमल के मध्य में नृसिंह अथवा विश्वरूप का न्यास करे ।।४०।। उस दण्ड पर सकलीभूत जीवात्मा सहित सूत्रात्मा का न्यास करे। निष्कल परमात्मा हरि का ध्यान करके ध्वज पर हरि का न्यास करे ।।४१।। उस परमात्मा की व्यापक ध्वज रूप बलाबल शक्ति का ध्यान करके उसको मण्डप में स्थापित करके उसकी पूजा करे। तदनन्तर कुण्ड में हवन करे ।।४२।। कलश पर एक सोने का कलश रखकर उसमें पञ्चरत्न छोड़े। उसके नीचे चक्रमन्त्र से एक स्वर्ण चक्र रखे ।।४३।। उस कलश को पारद (पारा) से सींचकर उसे नेत्रपट्ट से ढक दे। उसके मध्य में हरि का स्मरण करते हुए चक्र को स्थापित करे ।।४४।। 'ॐ क्षौं नृसिंहाय नमः' इत्यादि मन्त्र से हरि की स्थापना और अर्चना करे। तदनन्तर बन्धु-बान्धवों सहित उस ध्वज को उठाकर एक पात्र में दही और भात रखकर उसमें निचले सिरे को रख दे। ध्रुव को आदि में और फट् को अन्त में रखकर अर्थात् 'ॐ फट्' इत्यादि मन्त्र से ध्वज की पूजा करे ।।४५-४६।। सिर पर उस पात्र को रखकर नारायण को स्मरण करता हुआ बाजे और मङ्गलगान के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करे ।।४७। पुनः ध्वजदण्ड अष्टाक्षर मन्त्र से स्थापित करे तथा 'मुञ्चामि त्वा' इत्यादि सूक्त से ध्वज को छोड़ दे ।।४८।।

---

१ ख. घ. °सयेच्च विधि°। २ घ. मण्डपे। ३ क. ख. ङ. च. सम्प्राप्य। ४ ङ. च. ह्रौं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पात्रं ध्वजं कुञ्जरादिं दद्यादाचार्यके द्विजः। एष साधारणः प्रोक्तो ध्वजस्याऽऽरोहणे विधिः ।।४९।।
यस्य देवस्य यच्चिह्नं तन्मन्त्रेण स्थिरं चरेत्। स्वर्गच्छेद्ध्वजदानात्तु भुवि राजा बली भवेत् ।।५०।।
इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः

श्रीभगवानुवाच

समुदायेन देवादेः प्रतिष्ठां प्रवदामि ते। लक्ष्म्याः प्रतिष्ठां प्रथमं तथा देवीगणस्य च ।।१।।
पूर्ववत्सकलं कुर्यान्मण्डपस्नपनादिकम्। भद्रपीठे श्रियं न्यस्य स्थापयेदष्ट वै घटान् ।।२।।
घृतेनाभ्यज्य[1] मूलेन स्नापयेत्पञ्चगव्यकैः। हिरण्यवर्णां हरिणीं नेत्रे चोन्मीलयेच्छ्रियाः[2] ।।३।।
तां म आवह इत्येवं प्रदद्यान्मधुरत्रयम्। अश्वपूर्णेति[3] पूर्वेण[4] तां कुम्भेनाभिषेचयेत् ।।४।।
कांसोऽस्मितेति[5] याम्येन[6] पश्चिमेनाभिषेचयेत्। चन्द्रां प्रभासामुच्चार्याऽऽदित्यवर्णेति चोत्तराम् ।।५।।

द्विज आचार्य को पात्र, ध्वज, हाथी आदि दक्षिणा में दे। यह ध्वजारोहण की साधारण विधि है ।।४९।। जिस देव का जो चिह्न है, उस मन्त्र से ध्वजा को स्थिर करना चाहिए। मनुष्य ध्वज-दान से स्वर्ग प्राप्त करता है और इस पृथिवी पर बलवान् राजा बनता है ।।५०।।

श्री अग्निमहापुराण में अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा ध्वजारोपणादि विधि वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६१।।

अध्याय ६२

लक्ष्मी आदि की प्रतिष्ठा विधि

श्री भगवान् बोले–अब मैं तुमसे सामूहिक रूप से देवों की प्रतिष्ठा के विषय में बतला रहा हूँ। पहले लक्ष्मी और देवियों की प्रतिष्ठा विधि को सुनो, पूर्व की भाँति मण्डप-स्नान आदि सब विधियाँ सम्पन्न कर भद्रपीठ पर लक्ष्मी का न्यास करे और आठ कलशों को स्थापित कर पूजन करे ।।१-२।। घी से नहलाकर मूलमन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराये। 'हिरण्यवर्णा हरिणी' इत्यादि मन्त्र से लक्ष्मी का नेत्रोन्मीलन करे ।।३।। 'तां म आवह' इत्यादि मन्त्र से तीन प्रकार के मधुर पदार्थ अर्पित करे। 'अश्वपूर्वा' इत्यादि मन्त्र से पूर्व की ओर स्थापित किये हुए कलश के जल से स्नान कराये ।।४।। 'कांसोऽस्मि' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण दिशावाले कलश से 'चन्द्रांप्रभासां' इत्यादि मन्त्र से पश्चिम घट और 'आदित्यवर्णे' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए उत्तर दिशावाले कलश से नहलावे ।।५।।

---

१ ख. °नाभ्युक्ष्य मू°। २ क. ङ °या। तस्मादावाह°। घ. °या°। तन्म आ°। च. याः। श्रियामावाह°। ३ घ. अश्वपूर्वेति। ४ ख. पूर्णेन। ५ घ. कामोऽस्मितेति। ६ घ. चन्द्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपैतु मेति चाऽऽग्नेयात्क्षुत्पिपासेति नैर्ऋतात् । गन्धद्वारेति वायव्यान्मनसः काममाकृतिम् ।।६।।
ईशानकलशेनैव शिरः सौवर्णकर्दमात् । एकाशीतिघटैः स्नानं मन्त्रेणायं[1] सृजन्क्षितम् ।।७।।
आर्द्रां पुष्करिणीं गन्धैरार्द्रामित्यादिपुष्पकैः[2] । तां म आवह मन्त्रेण आनन्द इति चाखिलम् ।।८।।
श्रायन्तीयेन[3] शय्यायां श्रीसूक्तेन च संनिधिम् । लक्ष्मीबीजेन चिच्छक्तिं विन्यस्याभ्यर्चयेत्पुनः ।।९।।
श्रीसूक्तेन मण्डपेऽथ कुण्डेष्वब्जानि होमयेत् । करवीराणि वा हुत्वा सहस्रं शतमेव वा ।।१०।।
गृहोपकरणान्तादि[4] श्री सूक्तेनैव चार्पयेत् । ततः प्रासादसंस्कारं सर्वं कृत्वा तु पूर्ववत् ।।११।।
([5]मात्रार्थे [6]पिण्डिकां कृत्वा प्रतिष्ठानं ततः श्रियाः) । श्रीसूक्तेन च सांनिध्यं पूर्ववत्प्रत्यृचं [7]जपेत्।।१२।।
चिच्छक्तिं बोधयित्वा तु मूलात्सांनिध्यकं चरेत् । भूस्वर्णवस्त्रगोन्नादि गुरवे ब्रह्मणेऽर्पयेत् ।।१३।।
एवं देव्योऽखिलाः स्थाप्य[8] राज्यस्वर्गादिभाग्भवेत् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

'उपैतु मां' इत्यादि मन्त्र से आग्नेय घट से, 'क्षुत्पिपासा' इत्यादि मन्त्र से नैर्ऋत्य कलश से, 'गन्धद्वारा' इत्यादि मन्त्र से वायव्य से तथा 'मनसः काममाकृतिं' इस मन्त्र से ईशान कलश के जल से अभिषेक करना चाहिए। 'कर्दमेन प्रजाभूता' इत्यादि मन्त्र से सुवर्णमय कलश के यव और इक्यासी कलशों के जल से 'आपः सृजन्तु' इस मन्त्र से नहलाये, 'आर्द्रा पुष्करिणी' इत्यादि मन्त्र से गन्ध अर्पण करे। 'आर्द्रा यः करिणी' इत्यादि मन्त्र से पुष्प चढ़ावे। 'तां म आवह' इत्यादि मन्त्र से तथा 'आनन्द' इत्यादि श्लोक से अखिल सामग्रियों को चढ़ावे ।।६-८।। श्रायन्तीय सूक्त से शय्या पर लिटावे, श्रीसूक्त से सन्निधीकरण करे और लक्ष्मीबीज से चिच्छक्ति का विन्यास करके पुनः अर्चन करे ।।९।। तदनन्तर मण्डप के मध्य में कुण्ड में श्रीसूक्त से कमल का हवन करे अथवा सौ या हजार करवीर के फूलों का हवन करे ।।१०।। गृहोपयोगी वस्तुओं को श्रीसूक्त से अर्पित करे। तत्पश्चात् पूर्व की भाँति मन्दिर का तथा पिण्डिका का संस्कार करके लक्ष्मी की प्रतिष्ठा करे। पहले की ही भाँति श्रीसूक्त से सन्निधीकरण करके प्रत्येक ऋचा का पाठ करे ।।११-१२।। मूल मन्त्र से चिच्छक्ति को उद्बुद्ध करके सन्निधीकरण करे। पूजा समाप्त करके गुरु को भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, गाय और अन्न आदि अर्पित करे। इस प्रकार अखिल देवियों की स्थापना करने से मनुष्य राज्य और स्वर्ग का अधिकारी होता है ।।१३-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में लक्ष्मी आदि देवताओं की प्रतिष्ठाविधिवर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।६२।।

---

१ घ. °णापः सृ°। २ °कैः। तन्म आ°। ३ घ. शायन्तीयेन। ४ ख णाशादि। ५ मात्रार्थे…श्रियाः घ पुस्तके नास्ति। ६ घ. मन्त्रेण। ७ ङ यजेत्। ८ घ. स्थाप्याऽऽवाह्य स्वर्गादि भावयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः पुस्तकलेखनविधिश्च

श्रीभगवानुवाच

एवं तार्क्ष्यस्य चक्रस्य ब्रह्मणो नृहरेस्तथा । प्रतिष्ठा विष्णुवत्कार्या स्वस्वमन्त्रेण तां शृणु ।।१।।
सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयङ्कर, छिन्धि च्छिन्धि भिन्धि भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान्ग्रस ग्रस
भक्षय भक्षय भूतांस्त्रासय त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः ।।२।।
अभ्यर्च्य चक्रं चानेन रणे दारयते रिपून् ।।३।।
क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा ।।४।।
नरसिंहस्य मन्त्रोऽयं पातालाख्यस्य[1] वच्मि ते ।।५।।
ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकटविकीर्णकेशरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिनिर्घोषाय[2] सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुष परापरब्रह्म सत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादं[3] विदारय विदारय विद्रावय विद्रावयाऽऽविशाऽविश सर्वमन्त्ररूपाणि मन्त्रजातीश्च हन हन च्छिन्द च्छिन्द संक्षिप संक्षिप दर[4] दर दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासंघातमयसर्वतोऽनन्तज्वाला-वज्राशनिचक्रेणसर्वपातालानुत्सादयोत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्वपातालान्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षयाकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः ([5]फडसुरेभ्यः फणमन्त्ररूपेभ्यः फणमन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः) सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हुं फणनमो नमस्ते ।।६।।

अध्याय ६३

विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठाविधि एवं पुस्तकलेखन विधि

श्री भगवान् बोले–इसी प्रकार गरुड़, चक्र, ब्रह्मा और नृसिंहदेव की प्रतिष्ठा भी विष्णु की भाँति उन-उन देवों के मन्त्रों से करनी चाहिए। अब उसे (मुझसे) सुनिये ।।१।। सुदर्शन महाचक्र, शान्त, दुष्ट, भयङ्कर, छिन्धि, छिन्धि, भिन्धि, भिन्धि, विदारय, विदारय, परमन्त्रान् ग्रस ग्रस, भक्षय, भक्षय, भूतांस्त्रासय, त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः–इस मन्त्र से चक्र की पूजा करने से रण में शत्रुओं का नाश होता है ।।२-३।। 'ॐ क्षौं नरसिंह उग्र रूप ज्वल-ज्वल प्रज्वल-प्रज्वल स्वाहा'। यह नरसिंह भगवान् का मन्त्र है। अब मैं तुमको पाताल नृसिंह मन्त्र का उपदेश करता हूँ। ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे···नमो नमस्ते। यह श्रीहरिस्वरूपिणी नृसिंह विद्या

---

१ ङ °लाक्षस्य। २ क. घ. च. °म्भोददुभि°। ३ क. ङ. च. °नादान्चिद्रा°। ४ घ. सर सर। ५ फडसुरेभ्य···सर्वापद्भ्यः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नरसिंहस्य विद्येऽयं हरिरूपाऽर्थसिद्धिदा[1] । त्रैलोक्यमोहनैर्मन्त्रैः स्थाप्यस्त्रैलोक्यमोहनः ।।७।।
गदी दक्षे शान्तिकरो द्विभुजो वा चतुर्भुजः । वामोर्ध्वे कारयेच्चक्रं पाञ्चजन्यमथो ह्यधः ।।८।।
श्रीपुष्टिसंयुतं कुर्याद्बलेन सह भद्रया । प्रासादे स्थापयेद्विष्णुं गृहे वा मण्डपेऽपि वा ।।९।।
वामनं चैव वैकुण्ठं हयास्यमनिरुद्धकम् । स्थापयेज्जलशय्यास्थं मत्स्यादींश्चावतारकान् ।।१०।।
संकर्षणं विश्वरूपं लिङ्गं वै रुद्रमूर्तिकम् । अर्धनारीश्वरं तत्र[2] हरिशंकरमातृकाः ।।११।।
भैरवं च तथा सूर्यं ग्रहांस्तद्वद्विनायकम् । गौरीमिन्द्रादिभिः सेव्यां चित्रजां च बलाबलाम् ।।१२।।
पुस्तकानां प्रतिष्ठां च वक्ष्ये लिखनतद्विधिम् । स्वस्तिके मण्डलेऽभ्यर्च्य शरयन्त्रासने[3] स्थितम् ।।१३।।
लेख्यं च लिखितं पुस्तं गुरुर्विद्यां हरिं यजेत् । यजमानो गुरुं विद्यां हरिं लिपिकृतं नरम् ।।१४।।
प्राङ्मुखः पद्मिनीं ध्यायेल्लिखित्वा श्लोकपञ्चकम् । रौप्यस्थमष्या हैम्या च लेखन्या[4] नागराक्षरम् ।।१५।।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । गुरुं विद्यां हरिं प्रार्च्य[5] पुराणादि लिखेन्नरः ।।१६।।
पूर्ववन्मण्डलाद्यैश्च ऐशान्यां भद्रपीठके । दर्पणे पुस्तकं धृत्वा[6] सेचयेत्पूर्ववद्घटैः ।।१७।।
नेत्रोन्मीलकं कृत्वा शय्यायां तु न्यसेन्नरः । न्यसेत्तु पौरुषं सूक्तं वेदाद्यं तत्र पुस्तके ।।१८।।
कृत्वा सजीवीकरणं प्रार्च्य हुत्वा चरुं ततः । संप्रार्च्य[7] दक्षिणाभिस्तु गुर्वादीन्भोजयेद्द्विजान् ।।१९।।

है, जो अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाली है। त्रैलोक्य-मोहन मन्त्रों से शान्ति करके द्विभुज या चतुर्भुज त्रैलोक्यमोहन विष्णु की स्थापना करनी चाहिए ।।४-७।। दाहिनी ओर गदा और बायीं ओर ऊपर की ओर चक्र और नीचे पाञ्चजन्य शंख रहे। साथ ही, बलभद्र और सुभद्रा को श्री और पुष्टि के सहित स्थापित करना चाहिए। विष्णु की स्थापना मन्दिर, घर या मण्डप में होनी चाहिए ।।८-९।। वामन, वैकुण्ठ, हयग्रीव, अनिरुद्ध और जलशय्या पर सोनेवाले मत्स्य आदि अवतारों को, जलशय्या पर स्थापित करके शयन करावे। संकर्षण, विश्वरूप, रुद्रमूर्ति लिङ्ग, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मातृकागण, भैरव, सूर्य, ग्रह, विनायक तथा इन्द्र आदि के द्वारा सेवनीया गौरी और चित्रजा एवं 'बलाबला' विद्या की स्थापना करनी चाहिए ।।१०-१२।। अब मैं पुस्तकों की प्रतिष्ठा और पुस्तक-लेखन विधि को बतला रहा हूँ। गुरु स्वस्तिक-मण्डल में शरपत्र (शरपत) के आसन पर लिखे जानेवाले ग्रन्थ, लेख्य सामग्री, लिखित पुस्तक, गुरु, विद्या और हरि की पूजा करे। यजमान गुरु, विद्या, हरि और लिपिक की पूजा करे। पहले लिपिक पूर्वाभिमुख होकर पद्मिनी का ध्यान करके रुपहले पात्र में रखी हुई स्याही से सुनहरी लेखनी से नागराक्षर में पाँच श्लोक लिखे ।।१३-१५।। यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा दक्षिणा देनी चाहिए। गुरु, विद्या और हरि की पूजा करके पुराणादि को मनुष्य लिखना प्रारम्भ करे ।।१६।। पूर्व की भाँति मण्डल आदि बनाकर ईशानकोण में भद्रपीठ के ऊपर दर्पण पर पुस्तक को रखकर स्थापित कलशों से पुस्तक का अभिषेक करे ।।१७।। नेत्र खोलकर शय्या पर पुस्तक को रखे। उस पुस्तक के ऊपर पुरुषसूक्त और वेद आदि का न्यास करे ।।१८।। सजीवीकरण करके पुस्तक की पूजा करे, चरु का हवन करे। दक्षिणा आदि के द्वारा गुरु आदि की पूजा करके ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ।।१९।।

---

१ ङ. च. °पा सुसि°। २ घ. तद्वद्धरि°। ३ घ. °रपत्रास। ४ तु वराक्षरमिति क्वचित् पुस्तके पाठः। ५ ख. °र्च्य कृत्वा च वस्त्रतः। ६ क. ग. ङ. च. दृष्ट्वा। ख. दत्वा। ७ घ. संप्राश्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रथेन हस्तिना वाऽपि भ्रामयेत्पुस्तकं नरैः। गृहे देवालयादौ तु पुस्तकं स्थाप्य पूजयेत् ।।२०।।
वस्त्रादिवेष्टितं पाठादादावन्ते समर्चयेत्। जगच्छान्तिं चावधार्य पुस्तकं वाचयेन्नरः ।।२१।।
अध्यायमेकं कुम्भाद्भिर्यजमानादि सेचयेत्। द्विजाय पुस्तकं दत्वा फलस्यान्तो न विद्यते ।।२२।।
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येव[1] जपवापनदोहनात् ।।२३।।
विद्यादानफलं दत्त्वा मष्याक्तं पत्रसंचयम्। यावत्तु पत्रसंख्यानमक्षराणां तथाऽनघ ।।२४।।
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते। पञ्चरात्रं पुराणानि भारतानि ददन्नरः ।।२५।।
कुलैकविंशमुद्धृत्य परे तत्त्वे तु लीयते ।।२६।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कूपवापीतडागप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच

कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु। जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ।।१।।

तदनन्तर उस पुस्तक को रथ, हाथी या मनुष्यों के द्वारा नगर में घुमाना चाहिए। गृह और देवालय आदि में पुस्तक की स्थापना करके उसकी पूजा करनी चाहिए ।।२०।। उस पुस्तक को वस्त्र में लपेटकर रखना चाहिए और पुस्तक पढ़ने के आदि और अन्त में उसकी पूजा करनी चाहिए। पाठक, जगत् में शान्ति की स्थापना के उद्देश्य से पुस्तक का पाठ करे ।।२१।। एक अध्याय पढ़कर कलश के जल से यजमान आदि के ऊपर जल छिड़कना चाहिए। ब्राह्मण को पुस्तक दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।।२२।। गाय, भूमि और सरस्वती के तीन दान ही सर्वोत्कृष्ट माने गये हैं। ये तीनों दोहन, वपन और जप करने से मनुष्य को नरक से निकालनेवाले हैं ।।२३।। स्याही से लिखे हुए पत्रों के समूह (पुस्तक) के दान से तथा विद्या-दान से दाता उतने हजार वर्षों तक विष्णुलोक में पूजित होता है जितनी पुस्तकों में पत्रों की संख्या होती है और जितनी उसमें लिखे हुए अक्षरों की संख्या होती है। पञ्चरात्र, पुराण और महाभारत का दान करने से दाता अपने कुल की इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके परमतत्त्व में विलीन हो जाता है ।।२४-२६।।

श्री अग्निमहापुराण में विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा का सामान्य विधिवर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६३।।

अध्याय ६४

कुआँ, बावली, बगीचा की प्रतिष्ठाविधि

श्री भगवान् बोले-अब मैं कुआँ, बावली और तड़ाग की प्रतिष्ठा को कह रहा हूँ, उसे सुनो। हरि जल-स्वरूप हैं। सोम और वरुण जल के उत्तम देवता हैं ।।१।। अग्नि और सोममय संसार के विष्णुरूप जल कारण हैं। वरुण की

---

१ एतदर्धं ङ. पुस्तक एव केवलम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम् । हैमं रौप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ।।२।।
द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् । वामेन नागपाशं तु[1] नदीनागादिसंयुतम् ।।३।।
यागमण्डपमध्ये स्याद्वेदिका कुण्डमण्डिता । तोरणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वितम् ।।४।।
भद्रके चार्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारिकुम्भकान् । अग्न्याधानं चापि[2] कुण्डे कृत्वा पूर्णा प्रदापयेत् ।।५।।
वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शतेति संस्पृशेत् । घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ।।६।।
शं नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः । अधिवासयेदष्टकुम्भान्सामुद्रं पूर्वकुम्भके ।।७।।
गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु[3] नैर्झरम् । नदीतोयं पश्चिमे तु वायव्ये तु नदोदकम् ।।८।।
औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्यमैशान्यां तीर्थसम्भवम् । अलाभे तु नदीतोयं[4] यासां राजेति[5] मन्त्रयेत् ।।९।।
(देवं[6] निर्मार्ज्य निर्मथ्य[7] दुर्मित्रियेति विचक्षणः) । नेत्रे चोन्मीलयेच्चित्रं तच्चक्षुर्मधुरत्रयैः ।।१०।।
ज्योतिः 'सम्पूजयेद्धैम्यां[8] गुरवे गामथार्पयेत् । समुद्रज्येष्ठेत्यभिषिञ्चेद्वरुणं पूर्वकुम्भतः ।।११।।
समुद्रं गच्छ गाङ्गेयात्सोमो धेन्विति वर्षकात् । देवीरापो निर्झरादिभर्नदादिभः पञ्चनद्यतः ।।१२।।
उद्भिज्जादिभश्चोद्भिदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः । आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्धिरण्यवर्णेति स्वर्णजात् ।।१३।।

पूजा के लिए मनुष्य सोने, चाँदी अथवा रत्न की वरुण प्रतिमा बनाये ।।२।। मूर्ति दो भुजावाली, हंस पर आरूढ़, दाहिने हाथ से अभय प्रदान करने की मुद्रा व्यक्त करनेवाली हो। उसके बायें हाथ में नागपाश हो, नदी और नाग की प्रतिमाएँ भी साथ में हों ।।३।। यज्ञमण्डप के मध्य में कुण्ड से सुशोभित एक वेदी का निर्माण करे जिसके चारों ओर तोरण बँधा हो और जिस पर करक से सुशोभित और जल से परिपूर्ण एक घट रखा हो ।।४।। द्वार पर भद्रक, अर्धचन्द्र या स्वस्तिक के आकार का मण्डप बनाकर कलशों को स्थापित करे। कुण्ड में अग्न्याधान करके उसमें पूर्णाहुति करनी चाहिए। स्नानपीठ पर वरुण को स्थापित करके 'ये ते शतं' इत्यादि मन्त्र से उनका स्पर्श करे। तत्पश्चात् आचार्य मूलमन्त्र पढ़कर घी से वरुण को नहलाये ।।५-६।। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र से प्रक्षालन कर शुद्धवती ऋचा के शुद्ध जल से स्नान कराकर, आठ दिशा के कलश में समुद्र का, अग्निकोणवाले में गङ्गा का, दक्षिण कलश में वर्षा का, नैर्ऋतकोण में झरने का, पश्चिम दिशा में नदी का, वायव्यकोण में नद का तथा उत्तरस्थ कलश में वनस्पतियों से मिश्रित और ईशानकोण में स्थापित कलश में तीर्थ-जल रखना चाहिए। यदि इतने प्रकार के जल न मिलें तो सब में नदी का जल छोड़कर 'यासां राजा' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दे ।।७-९।। विद्वान् आचार्य विधिपूर्वक देवता (वरुण) के ऊपर मार्जन-जल छिड़ककर या भलीभाँति नहलाकर 'दुर्मित्रिय' इत्यादि मन्त्र से निर्मन्थन करे। 'चित्रं देवानाम्' इत्यादि मन्त्र से देवप्रतिमा का नेत्रोन्मीलन करके, 'तच्चक्षुः' इत्यादि मन्त्र से मधुरत्रय अर्पित करे। तदनन्तर वरुण की हेममय मूर्ति में ज्योति की पूजा करके गुरु को गाय का दान करे। 'समुद्रज्येष्ठा' इत्यादि मन्त्र से पूर्व कुम्भ के जल से वरुण को नहलाये ।।१०-११।। 'समुद्रं गच्छं' इत्यादि मन्त्र से, 'सोमो धेन्वा' इत्यादि मन्त्र से, वर्षाजल से, 'देवीरापो' इत्यादि मन्त्र से, झरने के जल से, 'पञ्चनद्यः' इत्यादि मन्त्र से, नदी के जल से, 'उद्भिद्भ्यः' इत्यादि मन्त्र से उद्भिज्ज जल से, 'पावमानी' इत्यादि मन्त्र से तीर्थजल से 'आपो हिष्ठा' इत्यादि मन्त्र से, स्वर्ण जल से स्नान कराना चाहिए ।।१२-१३।।

---

१ घ. तं। २ क. ङ. च. वाप्यकुण्डे। घ. चाप्यकुण्डे। ३ ख. रक्षः स्थले करम्। ङ. च. रक्षस्व नैर्ऋतम्। ४ क. ङ. च. नदीक्षोदं। ५ ङ. च. रुद्रेति। ६ देवं...विचक्षणः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ ख. निर्मज्य। घ. निर्मज्छ्य। ८ घ °पूरये। ९ ङ. येद्वंश्यां गु०।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आपो अस्मेति वर्षोत्थैर्व्याहृत्या कूपसम्भवैः। वरुणं च तडागोत्थैर्वरुणादिभस्तु वाग्यतः[1] ।।१४।।
आपो देवीति गिरिजैरेकाशीतिघटैस्ततः। स्नापयेद्वरुणस्येति त्वं नो वरुण चार्घकम् ।।१५।।
व्याहृत्या मधुपर्कं तु बृहस्पतेति वस्त्रकम्। वरुणेति पवित्रं तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ।।१६।।
यद्वारुणेन[2] पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु। चामरं दर्पणं क्षत्रं व्यजनं वैजयन्तिकम् ।।१७।।
मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत्। वरुणं वेति सान्निध्यं यद्वारुण्येन[3] पूजयेत् ।।१८।।
सजीवीकरणं मूलात्पुनर्गन्धादिना यजेत्। मण्डले[4] पूर्ववत्प्रार्च्य कुण्डेषु समिदादिकम् ।।१९।।
वेदादिमन्त्रैर्गङ्गाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत्। दिक्ष्वथो वै यवचरुं ततः संस्थाप्य होमयेत् ।।२०।।
व्याहृत्या वाऽथ गायत्र्या मूलेनाऽऽमन्त्रयेत्तथा। सूर्याय प्रजापतये द्यौः स्वाहा चान्तकनिग्रहाय[5] ।।२१।।
तस्यै पृथिव्यै देहधृत्यै इह स्वधृतये ततः। इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ।।२२।।
विष्णुश्च वरुणो धाता रायस्पोषो महेन्द्रकः। अग्निर्यमो नैर्ऋतोऽथ वरुणो वायुरेव च ।।२३।।
कुवेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः। तस्मै स्वाहेदं विष्णुश्च तद्विप्रासेति होमयेत् ।।२४।।
सोमो धेन्विति षड्हुत्वा इमं मेति च होमयेत्। आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ।।२५।।
दशदिक्षु बलिं दद्याद् गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत्। प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद्बुधः ।।२६।।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हेमपुष्पादिभिः क्रमात्। जलाशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसंमितान् ।।२७।।

'आपो अस्मात्' इस मन्त्र से वर्षाजल से, व्याहृतियों से कुएँ के जल से, 'वरुणं च' इत्यादि मन्त्र से तालाब के जल से और वरुण के जल से मौन होकर स्नान कराना चाहिए। 'आपो देवी' इत्यादि मन्त्र से, पर्वतीय जल से, स्नान कराकर इक्यासी कलशों से पुनः 'वरुणस्य' इत्यादि मन्त्रों से स्नान कराना चाहिए। 'त्वं नो वरुण' इत्यादि मन्त्र से अर्घ और व्याहृतियों से मधुपर्क अर्पित करे। 'बृहस्पते' इस मन्त्र से वस्त्र, 'वरुण' इत्यादि मन्त्र से पवित्रक, 'प्रणव' से उत्तरीय और 'यद्वारुणेन' इत्यादि से वरुण को पुष्प आदि अर्पित करे। इसी प्रकार चामर, दर्पण, क्षत्र, व्यजन और पताका भी मूलमन्त्र से चढ़ावे। 'वरुणं वा' इत्यादि मन्त्र से सन्निधीकरण और 'वरुणमन्त्र' से पूजा करे ।।१४-१८।। मूलमन्त्र से सजीवीकरण करके पुनः गन्ध आदि से पूजन करे। मण्डल में पूर्व की भाँति अग्नि की पूजा करके हवन कुण्डों में वेदादि मन्त्रों से समिधा आदि का हवन करे। गङ्गा आदि चार धेनुओं का दोहन करे। प्रत्येक दिशा में देवों को स्थापित करके यव-चरु का हवन करे। व्याहृति, गायत्री अथवा मूलमन्त्र से आवाहन करना चाहिए ।।१९-२०$\frac{1}{2}$।। 'सूर्याय प्रजापतये द्यौः····तस्मै स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से हवन करना चाहिए। 'विष्णुश्च तद्विप्रासः' इत्यादि मन्त्र से भी हवन करे ।।२१-२४।। 'सोमो धेनुं' इत्यादि मन्त्र से छह बार आहुतियाँ देकर 'इमं मे', 'आपो हि ष्ठा', 'इमा रुद्र' इन तीनों मंत्रों से तीन बार हवन करे। दशों दिशाओं में बलि प्रदान करके गन्ध-पुष्पादि से प्रतिमा की पूजा करे। कुशल आचार्य प्रतिमा को मण्डल में स्थापित करके गन्ध, पुष्प और सुवर्ण आदि से पूजन करे। तत्पश्चात् आचार्य आठों दिशाओं में दो बित्ते प्रमाण के जलाशय का निर्माण करे ।।२५-२७।। साथ-ही-साथ बालुका की वेदिका बनावे। 'वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र से एक

---

१ ख. घ. वश्यतः। २ घ. यद्वारण्येन। ङ. च. साद्वरुण्येन। ३ घ. यद्वारण्येन। ङ. च. सद्वारुण्येन। ४ घ. मण्डपे। ५ ख. घ. चान्तरिक्षकः। ङ. च. चान्तकविक्षकः।

CC-0. Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलान् रम्यान्सैकताद्वेदिकोत्तमः। वरुणस्येति मन्त्रेण आज्यमष्टशतं ततः ।।२८।।
चरुं यवमयं हुत्वा शान्तितोयं समाहरेत्। सेचयेन्मूर्ध्नि देवं तु सजीवकरणं चरेत् ।।२९।।
ध्यायेत्तु वरुणं युक्तं गौर्यानदनदीगणैः। ॐ वरुणाय ततोऽभ्यर्च्य ततः सांनिध्यमाचरेत् ।।३०।।
उत्थाय नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तैः समङ्गलैः। आपो हि ष्ठेति च क्षिपेत्त्रिमध्वाक्ते घटे जले ।।३१।।
जलाशये मध्यगतं सुगुप्तं विनिवेशयेत्। स्नात्वा ध्यायेच्च वरुणं सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ।।३२।।
अग्निबीजेन संदग्ध्वा (ह्य) तद्भस्म प्लावयेन्नरः। सर्वमापोमयं लोकं ध्यायेत्तत्र जलेश्वरम् ।।३३।।
तोयमध्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत्। चतुरस्त्रमथाष्टास्त्रं वर्तुलं वा सुकीर्तितम्[1] ।।३४।।
आराध्यं देवतालिङ्गं दशहस्तं तु कूपके। यूपं यज्ञी (ज्ञि) यवृक्षोत्थं मूले हैमं फलं न्यसेत् ।।३५।।
वाप्यां पञ्चदशकरं पुष्करिण्यां तु विंशकम्। तडागे पंचविंशाख्यं जलमध्ये निवेशयेत् ।।३६।।
यागमण्डपाङ्गणे[2] वा यूप ब्रह्मेतिमन्त्रतः[3]। स्थाप्य तद्वेष्टयेद्वस्त्रैर्यूपोपरि पताकिकाम् ।।३७।।
तदभ्यर्च्य च गन्धाद्यैर्जगच्छान्तिं समाचरेत्। दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम् ।।३८।।
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान्भोजयेत्तथा। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये केचित्सलिलार्थिनः ।।३९।।

सौ आठ बार घी की आहुतियाँ देकर यवमय चरु की आहुति दे और शान्ति जल से अभिषेक करे। पुनः सजीवीकरण करे ।।२८-२९।। गौरी, नद और नदीगण से युक्त वरुण की 'ॐ वरुणाय नमः' इत्यादि मन्त्र से पूजा करके सान्निध्यकरण करे ।।३०।। हाथी की पीठ पर वरुण को बिठलाकर मङ्गलगान के साथ नगर में घुमाये। पुनः त्रिमधु से मिले कलश के जल में 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्र से उस वरुण प्रतिमा को छोड़ दे ।।३१।। जलाशय के मध्य में उस देव-प्रतिमा को भली-भाँति छिपा दे। स्वयं स्नान करने के पश्चात् ब्रह्माण्ड, सृष्टि और वरुण का ध्यान करे ।।३२।। नर (यजमान) अग्निबीज से उसको जलाकर उसके भस्म को जल में बहा दे। उस समय लोक को जलमय समझे। जल-कुण्ड (तालाब) में जलेश्वर का ध्यान करे ।।३३।। जल के मध्य स्थित वरुणदेव के लिए तब यूप की स्थापना करे। वह काष्ठ यूप चौकोर, अठपहलू या गोला होना चाहिए ।।३४।। कुएँ में स्थापित करने के लिए दस हाथ लम्बा यूप होना चाहिए। देवता की आराधना के बाद यूप की स्थापना करनी चाहिए। यूप यज्ञीय वृक्ष के बनाये जायँ। उनके मूल में सोने का फल रखे ।।३५।। वापी के लिए पन्द्रह हाथ का, पुष्पकरिणी के लिए बीस हाथ का तथा तड़ाग के लिए पचीस हाथ का यूप होना चाहिए। ये यूप जलाशय के मध्य गाड़े जायँ ।।३६।। अथवा 'यूप ब्रह्म' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ-मण्डप के आँगन में स्थापित कर उसको वस्त्र से लपेट दे और यूप के शिखर पर पताका लगा दे ।।३७।। उस यूप की पूजा करके जगत् की शान्ति के लिए शान्ति कर्म करे। गुरु को भूमि, गाय, सुवर्ण और पात्र आदि का दान करे ।।३८।। आगन्तुक को भोजन कराकर, अतिथि या निमन्त्रित ब्राह्मण को दक्षिणा दे। 'इस भूमण्डल पर जो भी जल के इच्छुक ब्रह्मा से लेकर पौधे

---

१ ख. प्रकीर्तितम्। घ. प्रवर्तितम्। च. सुवर्णितम्। २ यागमण्डपाङ्गणे...मन्त्रतः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ घ. ब्रस्केति°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा। तोयमुत्सर्जयेदेवं पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ।।४०।।
आपो हि ष्ठेति तिसृभिः शान्तितोयं द्विजैः कृतम्। तीर्थतोयं क्षिपेत्पुण्यं गोकुलं चार्पयेद्विजान् ।।४१।।
अनिवारितमन्नाद्यं सर्वजन्यं च कारयेत्। अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ।।४२।।
एकाहं स्थापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुतायुतम्। विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ।।४३।।
गवादि पिबते यस्मात्तस्मात्कर्तुर्न पातकम्। तोयदानात्सर्वदानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ।।४४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कूपवापीतडागादिप्रतिष्ठाकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।।६४।।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

सभादिस्थापनविधिः

श्रीभगवानुवाच

सभादिस्थापनं वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तनम्। भूमी परीक्षितायां च वास्तुयागं समाचरेत् ।।१।।
स्वेच्छया तु सभां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत्सुरान्। चतुष्पथे च ग्रामादौ न शून्ये कारयेत्सभाम् ।।२।।

तक हों, वे सभी इस तालाब के जल को पीकर तृप्त हों'–यह सोचते हुए जल उत्सर्जन करे और इस जलाशय में पञ्चगव्य छोड़े ।।३९-४०।। ब्राह्मण 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्र से तीन बार शान्तिजल छोड़े और पवित्र तीर्थजल छोड़कर ब्राह्मणों को गोदान करे ।।४१।। सबको यथेष्ट भोजन करावे। किसी को भोजन देने में किसी प्रकार की रुकावट न हो। लाखों अश्वमेधयज्ञ करने से जो फल होता है, उससे असंख्य गुना अधिक फल एक बार की जलाशय-प्रतिष्ठा से होता है। वह जलदान करनेवाला व्यक्ति स्वर्ग में विमान पर आरूढ़ होकर विहार करता है, वह नरक में कभी नहीं जाता ।।४२-४३।। उसके जलाशय निर्माण करने से गौ आदि जल पीकर तृप्त होते हैं। इसलिए जलाशय निर्माता को कोई पाप नहीं लगता और वह जलदान से सब दानों के फल को प्राप्त करता है तथा स्वर्ग का अधिकारी होता है।।४४।।

श्री अग्निमहापुराण में कुआँ, बावली, बगीचा आदि के प्रतिष्ठा-वर्णन नामक
चौसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६४।।

अध्याय ६५

सभा आदि की स्थापन विधि

श्री भगवान् बोले–अब मैं सभा आदि की स्थापना और उनकी प्रवर्तना के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। सर्वप्रथम किसी परीक्षित भूमि में वास्तुयाग का अनुष्ठान करना चाहिए ।।१।। तदनन्तर अपनी इच्छानुसार सभा का निर्माण करके उसमें अपनी इच्छा से देवताओं की स्थापना करनी चाहिए। चौराहे पर और ग्राम आदि में सभा का निर्माण करावे, निर्जन प्रदेश में नहीं ।।२।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निर्मलः कुलमुद्धृत्य कर्ता स्वर्गे विमोदते। अनेन विधिना कुर्यात्सप्तभौमं हरेर्गृहम् ।।३।।
यथा राज्ञां तथाऽन्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः। कोणभुजान्वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्जयेत् ।।४।।
त्रिशालं वा द्विशालं वा एकशालमथापि वा। व्ययाधिकं न कुर्वीत व्ययदोषकरं हि तत् ।।५।।
आयाधिके भवेत्पीडा तस्मात्कुर्यात्समं द्वयम्। कराशिं समस्तं तु कुर्याद्वसुगुणं गुरुः ।।६।।
सप्तार्चिषा कृते भागे[1] गर्गविद्याविचक्षणः। अष्टधा भाजते तस्मिन्यच्छेषं स व्ययो मतः[2] ।।७।।
अथवा कराशिं तु हन्यात्सप्तार्चिषा बुधः। वसुभिः संहृते[3] भागे ध्वजादि[4] परिकल्पयेत् ।।८।।
ध्वजो[5] धूम्रस्तथा सिंहः श्वा वृषस्तु खरो गजः[6]। ध्वाङ्क्षश्चेति क्रमेणैव मायाष्टकमुदाहृतम् ।।९।।
त्रिशालकत्रयं शस्तं[7] सर्वभेदविवर्जितम्। याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं शस्यते[8] सदा ।।१०।।
याम्ये शालैकशालं तु प्रत्यक्शालमथापि वा। एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्वन्ये भयावहाः ।।११।।
चतुःशालं सदा शस्तं सर्वदोषविवर्जितम्। एकं भौमादि कुर्वीत भवनं सप्तभौमकम् ।।१२।।
द्वारवेधादिरहितं पुराणेन[9] विवर्जितम्। देवगृहं देवतायाः प्रतिष्ठाविधिना सदा ।।१३।।
संस्थाप्य मनुजानां च समुदायोक्तकर्मणा। प्रातः सर्वौषधीस्नानं कृत्वा शुचिरतन्द्रितः ।।१४।।

सभा का निर्माता निर्मल स्वभाववाला होता है और वह अपना उद्धार करके स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। भगवान् विष्णु के सप्तभौम गृह का निर्माण इस विधि से करना चाहिए ।।३।। राजाओं के प्रासादों के समान अन्य (देवताओं) का भी प्रासाद बनाया जाता है। इन भवनों में पूर्व से प्रारम्भ करके जो ध्वज आदि आय होते हैं, सभा आदि के निर्माण में कोणभुजाओं और चतुःशाल का त्याग करना चाहिए ।।४।। सभामण्डप तीन मंजिलवाला, दो मंजिलवाला या एक मंजिलवाला होता है। सभा का निर्माण अधिक व्यय (पद) में नहीं करना चाहिए। क्योंकि अत्यधिक व्यय (पद) दोषप्रद हुआ करता है और अधिक आय होने से भी पीड़ा होती है। अतः आय-व्यय (पद) समान होना चाहिए ।।५-६।। तदनन्तर ब्रह्म-विद्या में निष्णात व्यक्ति को उस संख्या को सात से विभक्त करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त संख्या को पुनः आठ भागों में विभक्त करके जितना धन शेष रह जाता है उतना ही व्यय उचित माना गया है। अथवा कर की राशि को सात से विभक्त करके और इस प्रकार से प्राप्त संख्या को पुनः आठ से विभक्त करके ध्वजा इत्यादि का निर्माण करना चाहिए ।।७-८।। ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, हाथी और कौवा इन्हें क्रमशः मायाष्टक कहा गया है ।।९।। सभी भेदों से रहित तीन कलशों से युक्त सभा को श्रेष्ठ कहा गया है। रात्रि में दो शालाओं से युक्त सभामण्डप सदैव प्रशंसनीय कहा गया है ।।१०।। दक्षिण दिशा में एक शाला और दो शालाओं से युक्त मण्डप सदैव प्रशंसनीय होते हैं किन्तु अन्य भयावह होते हैं ।।११।। चतुःशालमण्डप श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि वह सभी दोषों से वर्जित हुआ करता है। सभाभवन को एक मंजिल से लेकर सात मंजिल तक का बनाना चाहिए ।।१२।। जिस प्रकार से देवता-प्रतिष्ठा का विधान है, उसी प्रकार देवगृह को भी द्वार और वेधादि से रहित तथा पुरानी सामग्री से वर्जित होना चाहिए ।।१३।। इस गृह की स्थापना मनुष्य समुदायों के लिए कर्म एवं प्रतिष्ठा-विधि के अनुसार स्थापित करे। गृहप्रवेशार्थी आलस्य को छोड़कर प्रातःकाल सर्वौषधि-मिश्रितजल से स्नान कर पवित्र होवे ।।१४।।

---

१ क. ङ. च. °गे खड्गादि°। २ ख. ग. घ. च. गतः। ३ ख. संस्कृते। ४ घ. पृथ्व्यादि। ५ ख. °जो धौम्रोऽथ सिंहश्च सौरभेयः ख°। ६ °प्यज तथा ध्वङ्क्षस्तु पूर्वादावुद्भवन्ति विकल्पयेत्। त्रि°। ७ ख. घ. च. शास्तमुदक्पूर्वावि°। ८ ख. घ. लभ्यते। ९ घ. पूरणेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मधुरैस्तु द्विजान्भोज्य पूर्णकुम्भादिशोभितम्। सतोरणं स्वस्तिवाच्यं द्विजान्गो[1] पृष्ठहस्तकः ।।१५।।
गृही गृहं प्रविशेच्च दैवज्ञान्प्रार्च्य संविशेत्। गृहे पुष्टिकरं मन्त्रं पठेच्चेमं समाहितः ।।१६।।
ॐ नन्दे नन्दय वाशिष्ठे वसुभिः प्रजया सह। जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ।।१७।।
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम्। भद्रे कश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ।।१८।।
सर्वबीजौषधीयुक्ते[2] सर्वरत्नौषधीवृते। रुचिरे नन्दने नन्दे वाशिष्ठे रम्यतामिह ।।१९।।
प्रजापतिसुते देवि ([3]चतुरस्त्रे महीयसि। सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ।।२०।।
पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते। भवभूतिकरे देवि) गृहे भार्गवि रम्यताम् ।।२१।।
अव्यक्तेऽव्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते। इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम्[4] ।।२२।।
देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामि परिगृ (ग्र) हे। मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सभादिस्थापनविधिकथनं
नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।।६५।।

दैवज्ञ ब्राह्मणों की पूजा करके उन्हें मधुर अन्न (पकवान) भोजन करावे। फिर उन ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर गाय के पीठ पर हाथ रखे हुए पूर्ण कलश आदि से सुशोभित तोरण-युक्त गृह में प्रवेश करे। घर में जाकर एकाग्रचित्त हो, गौ के सम्मुख हाथ जोड़कर यह पुष्टिकारक मन्त्र पढ़े ।।१५-१६।। 'ॐ वशिष्ठ जी के द्वारा लालित-पालित नन्दे! धन और सन्तान देकर मेरा आनन्द बढ़ाओ। प्रजा को विजय प्रदान करानेवाली भार्गवनन्दिनि जये! तुम मुझे धन और सम्पत्ति से आनन्दित करो। अङ्गिरा की पुत्री पूर्णे! तुम मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। मुझे पूर्णकाम बना दो। काश्यपकुमारी भद्रे! तुम मेरी बुद्धि को कल्याणमयी बना दो। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली वशिष्ठनन्दिनि नन्दे! तुम समस्त बीजों और ओषधियों से युक्त तथा सम्पूर्ण रत्नोषधियों से सम्पन्न होकर इस सुन्दर घर में सदा आनन्दपूर्वक रहो। कश्यप प्रजापति की पुत्री देवि भद्रे! तुम सर्वथा सुन्दर हो, महती महत्ता से युक्त हो, सौभाग्यशालिनी एवं उत्तम व्रत का पालन करनेवाली हो, मेरे घर में आनन्दपूर्वक निवास करो। देवि भार्गवि जये! सर्वश्रेष्ठ आचार्यों ने तुम्हारा पूजन किया है, तुम चन्दन और माला से अलंकृत हो तथा संसार के समस्त ऐश्वर्यों को देनेवाली हो। तुम मेरे घर में आनन्दपूर्वक विहार करो। अङ्गिरा मुनि की पुत्री पूर्णे! तुम अव्यक्त अव्याकृत हो, इष्टके देवि! तुम मुझे अभीष्ट वस्त्र प्रदान करो। मैं तुम्हारी इस घर में प्रतिष्ठा चाहता हूँ। देवि! तुम देश के स्वामी (राजा), ग्राम या नगर के स्वामी तथा गृहस्वामी पर भी अनुग्रह करनेवाली हो। मेरे घर में जन, धन, हाथी, घोड़े तथा गाय-भैंस आदि पशुओं की वृद्धि करनेवाली बनो ।।१७-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में सभा आदि की स्थापनाविधि-वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६५।।

---

१ गोपुच्छहस्तक इति घ. पुस्तकटिप्पणीस्थः पाठः। २ च.° र्वजीवौष°। ३ चतुरस्त्रे····भवभूतिकरे देवि च पुस्तके नास्ति। ४ क. ख. च. काम पा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

देवतासामान्यप्रतिष्ठा

श्रीभगवानुवाच

समुदायप्रतिष्ठां च वक्ष्ये सा वासुदेववत् । आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ।।१।।
ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विशेषकम् । यस्य देवस्य यन्नाम तस्याऽऽद्यं गृह्य [1]चाक्षरम् ।।२।।
मात्राभिर्भेदयित्वातु दीर्घाण्यङ्गानि भेदयेत्[2] । प्रथमं कल्पयेब्दीजं सविन्दुं (न्दु) प्रणवान्वितम्[3] ।।३।।
सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा । नियमव्रतकृच्छ्राणां[4] मठसंक्रमवेश्मनाम् ।।४।।
मासोपवासं द्वादश्या इत्यादि स्थापनं वदे । शिलां पूर्णघटं कांस्यं संभारं स्थापयेत्ततः ।।५।।
ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद्यवमयं चरुम् । क्षीरेण कपिलायास्तु[5] तद्विष्णोरिति साधकः ।।६।।
प्रणवेनाभिधार्यैव दर्व्या संघटयेत्ततः । साधयित्वाऽवतार्याथ विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ।।७।।
व्याहृत्या चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत् । विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यैर्भूरग्नये तथैव च ।।८।।
सूर्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत् । द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथ्वी महाराजकः ।।९।।

अध्याय ६६

देवता की सामान्य-प्रतिष्ठा

श्री भगवान् बोले–अब मैं समुदाय-प्रतिष्ठा के विषय में बतलाऊँगा। समुदाय-प्रतिष्ठा भी वासुदेव-प्रतिष्ठा के ही समान होनी चाहिए। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार और सब ऋषियों की जो विशेषता है, मैं उसे भी कहूँगा। जिस देवता का जो नाम है, उसका आदि अक्षर ग्रहण करे ।।१-२।। तदनन्तर मात्राओं द्वारा भेदन करे। अर्थात् उनमें स्वर मात्रा लगावे, फिर दीर्घ स्वरों से युक्त उन बीजों द्वारा अङ्गन्यास करे। उस प्रथम अक्षर को विन्दु और प्रणव से संयुक्त करके 'बीज' माने। समस्त देवताओं का मूलमन्त्र से पूजन एवं स्थापन करे। इसके अतिरिक्त मैं नियम, व्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतु, गृह, मासोपवास और द्वादशी व्रत आदि की स्थापना के विषय में भी कहूँगा। पहले शिला, पूर्णकुम्भ और कांस्यपात्र लाकर रखे ।।३-५।। ब्रह्मकूर्च को एकत्रित करके यवमय चरु को अग्नि पर रखे। उसमें कपिला गाय का दूध 'तद्विष्णो' इस मन्त्र से मिलाये ।।६।। प्रणवमन्त्र का उच्चारण करके करछुली से चलावे। पक जाने पर उसको उतार ले और विष्णु की पूजा करके हवन करे ।।७।। सप्त व्याहृति, गायत्री और 'तद्विप्रास' इत्यादि मन्त्रों द्वारा हवन करना चाहिए। 'विश्वतश्चक्षुः' इत्यादि मन्त्र से भू, अग्नि, सूर्य, प्रजापति और अन्तरिक्ष के लिए हवन करे। द्यौः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, पृथिव्यै स्वाहा, सोमाय स्वाहा आदि मन्त्रों से सोम,

---

१ क. ङ. च. गृहभास्कर°। २ क. ङ. च. कल्पयेत्। ३ क. ङ. च. °णवं गति। स°। घ. °णवं नतिम्। ४ क. ङ. च ° यमं तत्र कि°। ५ क. ङ. च. °स्तु त्वं विष्णो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मै सोमं च राजानमिन्द्राद्यैर्होममाचरेत् । एवं हुत्वा[1] चरोर्भागान्दद्याद्दिग्बलिमादरात् ।।१०।।
समिधोऽष्टशतं हुत्वा पालाशां (शी) श्चाऽऽज्यहोमकम् । कुर्यात्पुरुषसूक्तेन इरावतीतिलाष्टकम् ।।११।।
हुत्वा तु ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानामनुयायिनाम् । ग्रहाणामाहुतीर्हुत्वा लोकेशानामथो पुनः ।।१२।।
पर्वतानां नदीनां च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः । हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात्स्रुवपूर्णाहुतित्रयम् ।।१३।।
वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन पितामह । पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्त्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ।।१४।।
तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलंकृताम् । प्रीयतां भगवान्विष्णुरित्युत्सृजेद्व्रतं बुधः ।।१५।।
मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्वतः । यज्ञेन (ना ऽऽ) तोष्य देवेश श्रपयेद्वैष्णवं चरुम् ।।१६।।
तिलतण्डुलनीवारैः श्यामाकैरथवा यवैः । आज्येनाऽऽघार्य चोत्तार्य होमयेन्मूर्तिमन्त्रकैः ।।१७।।
विष्ण्वादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत्पुनः ।।१८।।

ॐ श्री विष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय[2] स्वाहा ।
ॐ श्री विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा[3] । ॐ नरसिंहाय स्वाहा ।
ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।।१९।।

द्वादशाश्वत्थसमिधो होमयेद्घृतसंप्लुताः । विष्णोरराटं मन्त्रेण ततो द्वादश चाऽऽहुतीः ।।२०।।
इदं विष्णुरिरावती चरोर्द्वादश चाऽऽहुतीः । हुत्वा चाऽऽज्याहुतीस्तद्वत्तद्विप्रासेति होमयेत् ।।२१।।

राजा, इन्द्र आदि के उद्देश्य से हवन करना चाहिए ।।८-९ ½।। इस प्रकार चरु भाग के हवन करने के अनन्तर आदरपूर्वक दिग्बलि प्रदान करे। एक सौ आठ बार समिधा का हवन करके पुरुषसूक्त से पलाश और घी की आहुतियाँ और 'इरावती' से तिलाष्टक सम्बन्धी आहुतियाँ दे ।।१०-११।। फिर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य अनुचरों को आहुति प्रदान करके ग्रहों के निमित्त आहुति देनी चाहिए। तदनन्तर लोकेशों, पर्वतों, नदियों तथा समुद्रों के निमित्त हवन करे। व्याहृतियों से स्रुवा का स्पर्श करके तीन पूर्णाहुति दे ।।१२-१३।। जिस मन्त्र के अन्त में वौषट् हो उस मन्त्र से या वैष्णव मन्त्र से पञ्चगव्य और चरु का प्राशन करे। तत्पश्चात् गुरुदक्षिणा में तिलपात्र, सोना और वस्त्र से अलङ्कृत गाय का दानकर बुद्धिमान् व्यक्ति को 'अनेन भगवान् विष्णुः प्रीयताम्' इत्यादि मन्त्र से व्रत का उत्सर्जन करना चाहिए ।।१४-१५।। अब मैं पूर्व की भाँति ही व्रतोपवास प्रतिष्ठा से अन्य प्रकार की प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूँ। पहले यज्ञ के द्वारा देवेश विष्णु भगवान् को प्रसन्न करके वैष्णव चरु को पकावे ।।१६।। चरु की पाकविधि यह है कि तिल, चावल, नीवार, साँवाँ, यव को घी में भूनकर उतार ले। उस चरु को मूर्तिमन्त्रों से हवन करे ।।१७।। अन्त में विष्णु आदि मासपतियों के निमित्त हवन करे। हवन मन्त्र यह है—ॐ विष्णवे स्वाहा, ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा, ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा, ॐ नरसिंहाय स्वाहा, ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।।१८-१९।। इस हवन के पश्चात् घी में भीगी हुई पीपल की समिधा की 'विष्णोरराटमसि' इत्यादि मन्त्र से बारह आहुतियाँ दे ।।२०।। 'इदं विष्णु' और 'इरावती' इत्यादि मन्त्र से चरु की बारह आहुतियाँ दे। 'तद्विप्रासो' इत्यादि मन्त्र से घी का हवन करे ।।२१।।

---

१ क. ङ. च. दत्त्वा। २ ख. °वेऽतिभूशयाय। घ. °वे निभूयपाय। ३ ख. ग. °हा। ॐ पु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतित्रयम् । [1]युञ्जतेत्यनुवाकं[2] तु जप्त्वा प्राश्यी(श्नी)तवै चरुम् ।।२२।।
प्रणवेन स्वशब्दान्ते कृत्वा पात्रे तु पैप्पले । ततो मासाधिपानां तु विप्रान्द्वादश भोजयेत् ।।२३।।
त्रयोदशो गुरुस्तत्र तेभ्यो दद्यात् त्रयोदश । कुम्भान्स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्सच्छत्रोपानहान्वितान् ।।२४।।
सुवस्त्रहेममाल्याढ्यान्व्रतपूर्त्यै त्रयोदश । गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः ।।२५।।
इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् । दशहस्तं प्रपाराममठसंक्रमणादिषु ।।२६।।
गृहे च होममेवं तु कृत्वा सर्वं यथाविधि । पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही ।।२७।।
अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् । द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्ति विचक्षणैः ।।२८।।
आरामं कारयेद्यस्तु नन्दिने सुचिरं वसेत् । मठप्रदानात्स्वर्लोके शक्रलोके वसेत्ततः ।।२९।।
प्रपादानाद्वारुणेन संक्रमेण वसेद्दिवि । इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद्गवाम् ।।३०।
नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा (?) । गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसंप्लवम् ।।३१।।
समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ।।३२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवतासामान्यप्रतिष्ठाकथनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।।६६।।

फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति दे। 'युञ्जते' आदि अनुवाक का जप करके मन्त्र के आदि में स्वकर्तृक मन्त्रोच्चारण के पश्चात् पीपल के पत्ते आदि के पास में रखकर चरु का प्राशन करे। प्रणव से युक्त देवता के नाम से अर्थात् 'ॐ अमुकाय स्वाहा' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके पीपल के बने पात्र में चरु रखकर बारह मासाधिपतियों के निमित्त बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।।२२-२३।। इन मासाधिपतियों के अतिरिक्त तेरहवाँ गुरु का स्थान है। उनको मधुर जल से पूर्ण तेरह कलश, उत्तम छत्र, पादुका सहित दान दे ।।२४।। साथ ही अच्छे-अच्छे तेरह वस्त्र, सोना, विभिन्न प्रकार की उत्तम मालाओं के साथ तेरह गायों को व्रत की पूर्ति के लिए दान करे। 'गायें प्रसन्नतापूर्वक आयें-जायें'—इस वाक्य से गौओं के आने-जाने का मार्ग छोड़ दे तथा दस हाथ लम्बा यूप जल पीने के स्थान पर उपवन, मठ और सेतु मार्ग पर गाड़ दे ।।२५-२६।। इस प्रकार विधिपूर्वक गृह में भी हवन करके पूर्वोक्त विधान से गृह में प्रवेश करे। इन कृत्यों में सब अतिथियों को अन्न और वस्त्र आदि दान दे तथा ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा भी दे ।।२७-२८।। जो आराम (बगीचा) लगवाता है, वह स्वयं नन्दन वन में निवास करता है, मठ प्रदान करने से दाता स्वर्गलोक को जाता है और इन्द्रलोक में निवास करता है ।।२९।। प्याऊ बैठानेवाला व्यक्ति वरुण लोक में और सेतु का निर्माता स्वर्ग में निवास करता है। ईंटों का पुल बनवानेवाला भी स्वर्गलोक में निवास करता है। गायों के लिए प्रशस्त मार्ग बनवानेवाला गोलोक को जाता है ।।३०।। नियम और व्रतों का पालक स्वयं विष्णु हो जाता है। कृच्छ्र व्रतों का आचरण (पालन) करनेवाला सब पापों से मुक्त हो जाता है। गृह-दानकर्त्ता व्यक्ति कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। गृहस्थ मनुष्यों को शिव आदि देवताओं की समुदाय प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।।३१-३२।।

श्री अग्निमहापुराण में देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठाविधि-वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।।६६।।

---

१ युञ्जते...वै चरुम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. वाकाद्यं 'ज'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधिः

श्रीभगवानुवाच

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद्गुरुः। अचलां विन्यसेद्गेहे अतिजीर्णा परित्यजेत् ।।१।।
व्यङ्गां[1] भग्नां च शैलाद्यां न्यसेदन्यां च पूर्ववत्। संहारविधिना तत्र तत्त्वान्संहृत्य देशिकः ।।२।।
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद्गुरुः। दारवीं दाहयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले ।।३।।
धातुजां रत्नजां वाऽपि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ। यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ।।४।।
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत्। यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने ।।५।।
कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जीर्णोद्धारविधिकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।६७।।

अध्याय ६७

जीर्णोद्धार-विधि

श्री भगवान् बोले–अब मैं जीर्णोद्धार-विधि का वर्णन कर रहा हूँ। गुरु अलङ्कृत मूर्ति को स्नान कराकर उसको घर में प्रतिष्ठित करे, अतिजीर्ण प्रतिमा का परित्याग करे ।।१।। विकृत, भग्न अथवा शिलामात्रावशिष्ट प्रतिमा को छोड़ दे। आचार्य उसके स्थान पर पूर्ववत् देवगृह में नवीन प्रतिमा की स्थापना करे। आचार्य वहाँ पर (भूतशुद्धि प्रकरण से युक्त) संहार-विधि से उस प्रतिमा में तत्त्वों का आरोपण करके नरसिंह मन्त्र से एक हजार बार हवन करके उस प्रतिमा का उद्धार करे ।।२-२$\frac{1}{2}$।। काठ की बनी भग्नमूर्ति को जला दे, धातु या रत्न की प्रतिमा को अगाध जल अथवा समुद्र में डुबो दे। जीर्ण-शीर्ण प्रतिमा को सवारी पर चढ़ाकर उसके जीर्णाङ्गों को वस्त्र से ढक दे। इस प्रकार उसको बाजे-गाजे के साथ समारोहपूर्वक ले जाकर जल में छोड़ दे। तदनन्तर गुरु को दक्षिणा दे। जिस परिमाण की, जितने मूल्य की वह जीर्ण मूर्ति हो, उतने ही परिमाण और मूल्य की मूर्ति का निर्माण करके दिन में उसकी पुनः प्रतिष्ठा करे। कुआँ, बावली और तालाब आदि का जीर्णोद्धार करने से भी महान् फल प्राप्त होता है ।।३-६।।

श्री अग्निमहापुराण में जीर्णोद्धार विधि-वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६७।।

---

१ व्यङ्गां...पूर्ववत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

उत्सवविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु सुरे चरेत्। तस्मिन्दिने[1] वैकरात्रं त्रिरात्रं[2] चाष्टरात्रकम्[3] ।।१।।
उत्सवेन विना यस्मात्स्थापनं निष्फलं[4] भवेत्। अयने विषुवे चापि शयनोपवने[5] गृहे ।।२।।
कारकस्यानुकूलो[6] वा यात्रां देवस्य कारयेत्। मङ्गलाङ्कुररोपैस्तु गीतनृत्यादिवाद्यकैः ।।३।।
शरावघटिकापाली[7] स्वाङ्कुरारोहणे हिता[8]। यवाञ्शालींस्तिलान्मुद्गान्गोधूमान्सितसर्षपान् ।।४।।
कुलत्थमाषनिष्पावान्क्षालयित्वा तु वापयेत्[9]। पूर्वादौ तु बलिं दद्याद्भ्रमन्दीपैः पुरं निशि ।।५।।
इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च। अनुगच्छन्ति ते[10] तत्र प्रतिरूपधरा पुनः ।।६।।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः। आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद्गुरुः ।।७।।
तीर्थयात्रा त्वया[11] देव श्वः कर्तव्या सुरोत्तम। तस्या (दा) रम्भमनुज्ञातुमर्हः[12] सर्वज्ञ सर्वदा ।।८।।

अध्याय ६८

उत्सवविधि-वर्णन

श्री भगवान् बोले–मैं तुम्हें देवता की प्रतिष्ठा के अनन्तर होनेवाले उत्सव की विधि बतला रहा हूँ। स्थापना के वर्ष में ही एक रात, तीन रात या आठ रात तक उत्सव मनाना चाहिए ।।१।। उत्सव के बिना देव प्रतिष्ठा व्यर्थ-सी हो जाती है, अतः उत्सव अवश्य कराना चाहिए। वह उत्सव अयनकाल में, विषुव काल में, घर पर या उपवन में या शयन-कक्ष में करना चाहिए ।।२।। अथवा कर्त्ता को जब अनुकूल समय मिले, तब देवता का यात्रोत्सव करे। उत्सव के समय मङ्गल अङ्कुर (का आरोप), गीत, नृत्य और बाजे आदि अवश्य रखने चाहिए। अङ्कुर आरोपण के लिए शराव, घटिका, पाली उपयुक्त पात्र हैं। अङ्कुर उगाने की विधि यह है कि यव, धान, तिल, मूँग, गेहूँ, पीली सरसों, कुलथी, उड़द और निष्पाव को पछोरकर धो ले और ऊपर कहे हुए पात्रों में मिट्टी रखकर बो दे ।।३-४ $\frac{1}{2}$।। पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पाल, कुमुद आदि दिग्गज और सब भूतों को बलि देकर, रात्रि में दीपक हाथ में लेकर नगर में घूमे। ऐसा करने पर वे इन्द्रादि देवता भी विभिन्न रूप धारण करके उस महोत्सव में पीछे-पीछे चलते हैं। इस उत्सव को करनेवाले व्यक्तियों को पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, इनमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।५-६ $\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् गुरु देवागार में आकर भगवान् से प्रार्थना करे। 'हे सुरोत्तम! कल आपको तीर्थयात्रा करनी है, इसलिए हे सर्वज्ञ! उसको आरम्भ करने का आप आदेश प्रदान करें।' इस प्रकार देवता को सम्बोधित करके आगे का कार्य आरम्भ करे। पहले अङ्कुर और कलश में सुशोभित वेदी का निर्माण कराकर

---

१ क. ङ. च. °स्मिन्नब्दे चैक°। २ च. °त्र चतुरष्टक°। ३ क. ङ. चन्तराष्टक°। ४ क. ङ. च. मिष्यजं। ५ क. ङ. च. °यने स्थापने। ६ क. ङ. च °कूले वा°। ७ ख. ग. °लीस्त्वङ्कु°। ८ ख. ग. हिताः। ९ क. ङ. मापयेत्। च. मायया। १० क. च. ये। ११ ख. ग. घ. मया। १२ क. च. °मर्हसे देव स°। ख. ग. घ. मर्हसे देवसर्वथा। दे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवमेवं[1] सु विज्ञप्य ततः कर्म समारभेत् । प्ररोहघटिकाद्यां[2] तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ।।९।।
चतुःस्तम्भां तु तन्मध्ये स्वस्तिकं प्रतिमां न्यसेत्[3] । काम्यार्थं लेख्य चित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत् ।।१०।।
वैष्णवैः सह कुर्वीत घृताभ्यङ्गं तु मूलतः । घृतधाराभिषेकं वा[4] सकलां शर्वरीं बुधः ।।११।।
दर्पणं दर्श्य[5] नीराजगीतवाद्यैश्च[6] मङ्गलम् । बी (वी) जनं पूजनं दीपगन्धपुष्पादिभिर्यजेत्[7] ।।१२।।
हरिद्रामुक्तकाश्मीरशुक्लचूर्णादि[8] मूर्धनि । प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं[9] (ले ?) धृते ।।१३।।
स्थापयित्वा[10] समभ्यर्च्य यात्राबिम्बं रथे स्थितम् । नयेद्गुरुर्नदीं नादैश्छत्राद्यै[11] राष्ट्रपालिकाम् ।।१४।।
निम्नगा (गां) योजनादर्वाक्तत्र[12] वेदीं तु कारयेत् । वाहनादवतार्यैनां[13] तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ।।१५।।
चरुं च[14] श्रपयेत्तत्र पायसं होमयेत्ततः । अब्लिङ्गैर्वैदिकै[15] र्मन्त्रैस्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ।।१६।।
आपो हि ष्ठोपनिषदैः (?) पूजयेदर्घ[16] (र्घ्य) मुख्यकैः । पुनर्देवं समादाय तोये[17] कृत्वाऽघमर्षणम् ।।१७।।
स्नायान्महाजनैर्विप्रैर्वेद्यामुत्तार्य[18] तं न्यसेत् । पूजयित्वा तदह्ना[19] च प्रासादं तु नयेत्ततः ।।१८।।
पूजयेत्पावकस्थं[20] तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उत्सवविधिकथनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

वहाँ जाय और उस वेदी के चारों कोणों पर चार स्तम्भ गाड़े। उसके मध्य में स्वस्तिक बनाकर उस पर देव प्रतिमा स्थापित करे ।।७-९$\frac{1}{2}$।। काम्य अर्थ को लिखकर चित्रों से स्थापित करके अधिवासन करे। पुनः देव-प्रतिमा का संस्कार आदि करे। अनेक वैष्णवजनों के साथ मूलमंत्र से देव-प्रतिमा में घी का लेप करे अथवा रात भर घी की धारा में उसका अभिषेक करे ।।१०-११।। दर्पण दिखाकर नीराजन प्रदान करे और मङ्गलगीत, वाद्य आदि से पूजन, वीजन और आरती आदि करे। उसके बाद दीप, धूप, गन्ध अर्पित करे। देव-प्रतिमा के सिर पर हल्दी, कपूर, केसर और श्वेत-चन्दन के चूर्ण को लगावे तथा उत्सव में सम्मिलित होनेवाले वैष्णवजनों को टीका लगावे। ऐसा करने से यजमान सब तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है ।।१२-१३।। उसके बाद प्रतिमा को स्नान कराकर और पूजन करके उसको रथ पर स्थापित करे। गुरु इस यात्रादल को छत्र, चामर, बाजे आदि के साथ अपने प्रान्त की विशिष्ट नदी की ओर ले चले जो कि वहाँ से एक योजन से अधिक दूर न हो। यहाँ पर वेदी बनावे, रथ से प्रतिमा को उतारकर उस वेदी पर स्थापित करे ।।१४-१५।। वहाँ चरु-पाक बनाकर खीर का हवन करे। तदनन्तर वरुण देवता सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों से सब तीर्थों का आवाहन करे। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्र से या उपनिषद्-मन्त्रों से अर्घ्य आदि प्रदान करे। पुनः देवता को जल के मध्य ले जाकर अघमर्षण करे, स्वयं महाजनों और भक्तों के साथ स्नान करे और प्रतिमा को पुनः वेदी पर प्रतिष्ठित करे। उस दिन वहीं पर उनकी पूजा करने के बाद देवमन्दिर में ले जाय। जो गुरु अग्नि के मध्य में स्थित (विष्णु) देव की इस प्रकार पूजा करता है, वह भुक्ति-मुक्ति का अधिकारी होता है ।।१६-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में उत्सवविधि-वर्णन नामक अरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६८।।

---

१ क. ङ. च. °वदेवं। २ ख. ग. घ. °का स्वर्णवे°। ३ क. ङ. °त्। कर्मार्थान्ते पवित्रे°। च. °त्। कर्मार्थाल्लेप्यचि°। ४ च। ५ क. ख. ग. घ. दर्शनी°। ६ ख. °राजं गी°। ७ क. ख. ग. घ. च. दीपं गा°। ८ क. ङ. च. र्णानि यू°। ९ क. ङ. च. फलैर्वृते। १० क. ङ. च. स्नापयित्वा। ११ ख. ग. घ.° दैश्छात्रा। १२ ख. ग. घ. °त्विकाः। नि०। १३ क. ङ. च. °यैंव त°। १४ ख. ग. घ. वै। १५ अबिलंगै····नाहयेत्ततः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति १६ च. °येद्दर्भमु°। १७ च. °ये दत्वाऽघ°। १८ क. च. °जलैर्वि°। १९ क. च.° °दङ्गा च प्रा°। ङ. °दङ्गाच्च प्रा। २० ख. ग. घ. °कस्तं तु गु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवषष्टितमोऽध्यायः

स्नपनोत्सवविस्तारकथनम्

अग्निरुवाच

ब्रह्मञ्शृणु प्रवक्ष्यामि स्नपनोत्सवविस्तरम् । प्रासादस्याग्रतः कुम्भान्मण्डपे [1]मण्डले न्यसेत् ।।१।।
कुर्याद्ध्यानार्चनं होमं हरेरादौ च कर्मणि[2] । सहस्रं वा शतं वाऽपि होमयेत्पूर्णया सह ।।२।।
स्नानद्रव्याण्यथाऽऽहृत्य कलशांश्चापि विन्यसेत् । अधिवास्य सूत्रकण्ठान्धारयेन्मण्डितो[3] घटान् ।।३।।
चतुरस्रं पुरं कृत्वा [4]रुद्रैस्तं प्र (स्तत्र) विभावयेत् । मध्ये[5] तु नवकं स्थाप्य पार्श्वपङ्क्तिं[6] प्रमार्जयेत् ।।४।।
शालिचूर्णादिनापूर्यपूर्वादिनवकेषु च । कुम्भमुद्रां ततो बद्ध्वा घटं तत्राऽऽनयेद्बुधः ।।५।।
पुण्डरीकाक्षमन्त्रेण दर्भास्तांस्तु विसर्जयेत् । अद्भिः पूर्णं सर्वरत्नयुतं मध्ये न्यसेद्घटम् ।।६।।
यवव्रीहितिलांश्चैव नीवाराञ्श्यामकान्क्रमात् । कुलित्थमुद्गसिद्धार्थान्मुक्त्वाऽन्यानष्टदिक्षु च ।।७।।
ऐन्द्रे तु नवके मध्ये घृतपूर्णं घटं न्यसेत् । पलाशाश्वत्थन्यग्रोधबिल्वोदुम्बरशी[7] (क्ष) रिणाम् ।।८।।
जम्बूशमीकपित्थानां त्वक्कषायैर्घटाष्टकम् । आग्नेयनवके मध्ये मधुपूर्णं घटं न्यसेत् ।।९।।

अध्याय ६९

स्नपनोत्सव-कथन

अग्निदेव बोले–ब्रह्मन् ! सुनिये, अब मैं स्नपनोत्सव विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। प्रासाद के आगे एक मण्डप बनाकर उस मण्डप-भूमि पर मण्डल बनाकर कलशों को स्थापित करे। सबसे पहले वहाँ हरि का ध्यान, अर्चन, होम आदि करे। पूर्णाहुति के साथ एक सौ या एक हजार आहुतियाँ दे ।।१-२।। स्नानोपयोगी द्रव्यों को लाकर रखे, कलशों के कण्ठ में सूत्र लपेटकर उनको वहाँ मण्डल बनाकर स्थापित करे। वहाँ एक चौकोना पुर (उत्सव-मण्डप) बनाकर उसे ग्यारह रेखाओं द्वारा विभाजित कर दे। मध्य में नव कलशों को स्थापित करके इधर-उधर की पंक्ति को भी शुद्ध करे ।।३-४।। कुशल व्यक्ति चावल के चूर्ण या यवचूर्ण आदि से पूर्व के नव घटों को भर दे, फिर कुम्भ मुद्रा के द्वारा एक घट को लाये ।।५।। पहले पृथ्वी पर पुण्डरीकाक्ष मन्त्र से कुशों को बिछा दे। उन कुशों पर सब रत्नों से युक्त और जल से परिपूर्ण कलश को रख दे ।।६।। यव, धान्य, तिल, नीवार, श्यामाक (साँवाँ), कुल्थी, मूँग और सरसों को क्रमशः आठों दिशाओं में छिड़क दे ।।७।। उन नौ कलशों के मध्य में पूर्व दिशा में घी से भरे हुए एक कलश को रखे। पलाश, पीपल, वट, श्रीफल, गूलर आदि तथा जामुन, शमी, कैंथ आदि के वल्कल से युक्त कषाय जल से भरे आठ कलशों को रखे। नौ कलशों के मध्य अग्निकोण में मधु पूर्ण कलश रखे ।।८-९।। गौ

---

१ ख. ग. घ. मण्डलं। २ क. ङ. च. कर्मसु। ३ ङ. °येन्मण्डले पुटा°। ४ क. ङ. च. रुद्रेऽस्त्रं प्रविभाजये°। ५ ख. ग. घ.° ध्येन तु चरुस्था°। ६ क. ङ. च. पङ्क्तीः प्रसर्ज°। ७ ख. ग. घ. °रसारिकाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोशृङ्गनगगङ्गाम्बुगजेन्द्रदर्शनेषु[1] च। तीर्थक्षेत्र[2] खलेष्वष्टौ[3] मृत्तिकाः[4] स्युर्घटाष्टके ।।१०।।
याम्ये तु नवके मध्ये तिलतैलघटं न्यसेत्। नारङ्गमथ जम्बीरं खर्जूरं[5] मृद्विका (कां) क्रमात् ।।११।।
नारिकेलं[6] न्यसेत्पूगं दाडिमं पनसं फलम्। नैर्ऋते नवके मध्ये क्षीरपूर्णं घटं न्यसेत् ।।१२।।
कुङ्कुमं नागपुष्पं च चम्पकं मालतीक्रमात्। मल्लिकामथ पुंनागं करवीरं महोत्पलम् ।।१३।।
पुष्पाणि चान्ये (न्य) नवके मध्ये वै नारिकेलकम्। नादेयमथ सामुद्रं सारसं कौप्यमेव च ।।१४।।
वर्षजं हिमतोयं च नैर्झरं गाङ्गमेव च। उदकान्यथ वायव्ये[7] नवके कदलीजलम् ।।१५।।
सहदेवीं कुमारीं च सिंहीं व्याघ्रीं तथाऽमृताम्। विष्णुपर्णी[8] शतनिभां वचां दिव्यौषधीर्न्यसेत् ।।१६।।
पूर्वादौ सौम्यनवके मध्ये दधिघटं न्यसेत्। पत्रमेलां त्वचं कुष्ठं बालकं चन्दनद्वयम् ।।१७।।
लतां कस्तूरिकां चैव कृष्णागरुमनुक्रमात्। सिद्धद्रव्याणि पूर्वादौ शान्तितोयमथैकतः ।।१८।।
चन्द्रतारं क्रमाच्छुक्ला[9] गिरिसारं त्रपु न्यसेत्। घोषसारं तथा सीसं[10] पूर्वादौ रत्नमेव च ।।१९।।
घृतेनाभ्यज्य[11] चोद्वर्त्य स्नपयेन्मूलमन्त्रतः। गन्धाद्यैः पूजयेद्वह्नौ हुत्वा[12] पूर्णाहुतिं चरेत् ।।२०।।
बलिं च सर्वभूतेभ्यो भोजयेद्दत्तदक्षिणः[13]। देवैश्च मुनिभिर्भूपैर्देवं संस्नाप्य[14] चेश्वराः[15] ।।२१।।

के सींग से उखाड़ी हुई, पर्वत, गङ्गाजल, गज, यज्ञस्थल, तीर्थक्षेत्र और खलिहान से लायी हुई मृत्तिका आठ घड़ों में देनी चाहिए ।।१०।। दक्षिण दिशा के नवम घट को तिल के तैल से भर दे। नैर्ऋत दिशा के नव घटों में से आठ में नारङ्ग, जम्बीर (नींबू), खर्जूर, अंगूर, नारियल, सुपारी, अनार और कटहल रखे। नवम घट दूध से भरा हुआ रखे ।।११-१२।। पश्चिम दिशा के नव घटों में से आठ घटों में कुङ्कुम, नागकेशर, चम्पक, मालती, मल्लिका, पुंनाग, करवीर और कमल आदि पुष्पों को रखे ।।१३।। पश्चिमीय नवक में नारिकेल-जल से पूर्ण कलश में नदी, समुद्र, सरोवर, कूप, वर्षा, हिम, निर्झर तथा देवनदी का जल छोड़े। वायव्यकोणवर्ती नवक में कदली जलपूरित कुम्भ रखे ।।१४-१५।। उत्तर दिशा के नौ घटों में से आठ में सहदेवी, कुमारी, सिंही, व्याघ्री, अमृता, विष्णुपर्णी, शतनिभा, वच आदि ओषधियों को छोड़े ।।१६।। नवम घट को दही से भरकर रखे। ऐशान्य नवक में से आठ में इलायची, त्वच, कुट, बालछड़, दोनों चन्दन, लता, कस्तूरी और कृष्ण अगरु आदि भी रखे। नवम कलश में अन्य सिद्ध (द्रव्य) और शान्ति जल को रखे ।।१७-१८।। शुक्ल चन्द्रतार, गिरिसार (शिलाजीत), त्रपु (राँगा), घोषसार, सीसा और रत्न, पूर्व आदि दिशाओं में रखे। इस प्रकार कलशों को स्थापित करके, देवताओं को घी से आप्लावित करके भलीभाँति मले और मूलमन्त्र से नहलाये। गन्ध आदि से पूजन करके हवन करे और पूर्णाहुति दे ।।१९-२०।। सब भूतों को बलि-प्रदान करके ब्राह्मण भोजन कराये और दक्षिणा दे। देवता, मुनि और राजगण इस प्रकार देवता (हरि) को स्नान कराकर शक्तिशाली हो गये ।।२१।। इस प्रकार

---

१ क. ङ. °गरङ्गासुग°। च. °गमङ्गासुग। २ ङ. °त्रवरे मुष्टौ। ३ क. च. °खरेष्वष्टौ। ४ क. ङ. च. तिकाश्च घटा°। ५ क. ङ. च. °रं पूर्विकाः क्र°। ६ क. ङ. च. नालिकेरं। ७ क. ङ. च. वा मध्ये न°। ८ क. ङ. च. °पत्रीं श°। ९ क. ष्ट. च. माद्गुल्फ गि°। १० ख. ग. घ. शीर्षं। ११ क. ङ. च. °नाऽऽसह्य चो°। १२ क. ङ. च. कृत्वा। १३ ख. ग. घ° क्षिणाम्। दे°। १४ ख. ग. घ. संस्थाप्य। १५ क. °श्वरः। बभूव स्त्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बभूवुः[1] स्नापयित्वेत्थं स्नपनोत्सवकं चरेत् । अष्टोत्तरसहस्रेण घटानां सर्वभाग्भवेत् ।।२२।।
यज्ञावभृथस्नाने[2] च पूर्णसंस्नापनं[3] कृतम् । गौरीलक्ष्मीविवाहादि चोत्सवं स्नानपूर्वकम् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नपनोत्सवविधिकथनं नाम नवषष्टितमोऽध्यायः ।।६९।।

अथसप्ततितमोऽध्यायः

पादपप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच

प्रतिष्ठा पादपानां च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । सर्वौषध्यो (ध्यु) दकैर्लिप्तान्पिष्टातकविभूषितान्[4] ।।१।।
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् । सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ।।२।।
हेमशलाकयाऽञ्जनं वेद्यां तु फलसप्तकम् । अधिवासयेच्च प्रत्येकं[5] घटान्बलिं निवेदयेत्[6] ।।३।।
इन्द्रादेरधिवासेऽथ होमः कार्यो वनस्पतेः । ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च[7] वारुणैर्मत्तभैरवैः[8] ।।४।।
वृक्षवेदिककुम्भैश्च स्नपनं द्विजपुंगवाः । तरुणां यजमानस्य कुर्युश्च[9] यजमानकः ।।५।।

देवता को नहलाकर स्नपनोत्सव करे। एक हजार आठ घटों से स्नान कराने पर मनुष्य सब फलों को प्राप्त करता है ।।२२।। यज्ञों में अवभृथ-स्नान करने पर पूर्ण स्नान अवश्य करना चाहिए। गौरी और लक्ष्मी आदि के विवाहोत्सव में इस प्रकार स्नानोत्सव अवश्य करना चाहिए ।।२३।।

श्री अग्निमहापुराण में स्नपनोत्सव विधि-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।६९।।

अध्याय ७०

वृक्ष-प्रतिष्ठा

भगवान् बोले-अब भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली वृक्ष-प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा। सब ओषधियों के जल से वृक्ष को सींचकर सुगन्धित चूर्ण वृक्षों पर डाले।।१।। माला से वृक्षों को सुसज्जित करके वस्त्रों से आवेष्टित कर दे। सोने की सुई से सबका कर्णभेदन करे, सुवर्ण की शलाका से अञ्जन लगाये, वेदी पर सात प्रकार के फल रखे। प्रत्येक की विधिवत् पूजा करके घट और बलि प्रदान करे ।।२-३।। इन्द्र आदि का पूजन हो जाने पर वनस्पतियों का हवन करे। ऋक्, यजुः, साम अथवा वरुण मन्त्रों से या मत्त भैरव मन्त्रों से वृक्ष के समीप बनी हुई वेदी के कलशों से उत्तम ब्राह्मणों, वृक्षों और यजमानों को नहलाये ।।४-५।। यजमान स्नान

---

१ ख. ग. घ. °वुः स्थापं। २ क. ङ. च.° थ संस्थाने पू°। ३ क. ङ. च. पने कृते। गौ°। ४ क. ङ. च. कैर्दीप्ता°। ५ क. ङ. च. °कं कुम्भान्व°। ६ ख. ग. घ.° दनम्। इ°। ७ एतस्मादनन्तरं वृक्षमध्यादुत्सृजेत्तां ततोऽभिषेकं च मन्त्रतः इत्यर्धमधिकं ख. ग. घ. पुस्तकेषु। ८ ख. ग. घ. °र्मङ्गलै र°। ९ क. ङ. च. कुर्याच्च य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूषितो दक्षिणां दद्याद्गोभूभूषणवस्त्रकम् । क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ।।६।।
होमस्तिलाज्यैः[१] कार्यस्तु पलाशसमिधैस्तथा । आचार्ये द्विगुणं दद्यात्पूर्ववन्मण्डपादिकम् ।।७।।
पापनाशः परा सिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया । स्कन्दायेशो यथा प्राह प्रतिष्ठाद्यं[२] तथा शृणु ।।८।।
सूर्येशगणशक्त्यादेः परिवारस्य वै हरेः ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पादपप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।।७०।।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गणपतिपूजाविधिः

ईश्वर उवाच

गणपूजां प्रवक्ष्यामि [३]निर्विघ्नायाखिलार्थदाम्[४] । गणाय स्वाहा हृदयमेकदंष्ट्राय वै शिरः ।।१।।
गजकर्णिने[५] च शिखा गजवक्त्राय चर्म[६] च । महोदराय सुदण्डहस्तायाक्षि तथाऽस्त्रकम् ।।२।।
गणो गुरुः पार्श्वका[७] च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः[८] । मुख्यास्थिमण्डलं[९] चाधश्चोर्ध्व (र्ध्वं) छदनमर्चयेत् ।।३।।

के अनन्तर सब प्रकार के आभूषणों से आभूषित होकर गुरु को गाय, वस्त्र, आभूषण आदि दक्षिणा में दे। चार दिनों तक ब्राह्मणों को दुग्ध पान कराये ।।६।। तिल, घी और पलाश समिधा का हवन करे। आचार्य को दुगुनी दक्षिणा दे। मण्डप आदि का निर्माण पूर्ववत् करे ।।७।। इस प्रकार वृक्ष और आराम (बगीचा) की प्रतिष्ठा करने से पापों का नाश होता है और उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। स्कन्द को शिव जी ने सूर्य, ईश, गण, शक्ति और विष्णु परिवार की जो प्रतिष्ठा-विधि बतायी गयी है, उसे ध्यान से सुनिये ।।८-९।।

श्री अग्निमहापुराण में पादपप्रतिष्ठाविधि-वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७०।।

अध्याय ७१

गणपति-पूजाविधि

श्री महादेव बोले–अब मैं अखिल मनोरथों को प्रदान करनेवाली गणेश पूजा विधि को बतलाऊँगा, जिसके अनुष्ठान से विघ्न का नाश होता है। 'गणाय स्वाहा' कहकर हृदय-स्पर्श करे, 'एकदंष्ट्राय स्वाहा' कहकर सिर, 'गजकर्णिने स्वाहा' कहकर शिखा, 'गजवक्त्राय स्वाहा' से कवच, 'महोदराय स्वाहा' से नेत्र-त्रय, और 'सुदण्डहस्ताय स्वाहा' कहकर अस्त्राय फट् कहे। इस प्रकार षडङ्गन्यास करके गणेश गुरु हैं, शक्ति, अनन्त और धर्मक में पार्श्वक हैं। नीचे के मुख्य अस्थि-मण्डल और ऊपर के आवरण की भी पूजा करनी चाहिए ।।१-३।। पद्मकर्णिक के बीज,

---

१ क. ख. घ. च. लाद्यैः का°। २ क. ङ. च. द्यात्पुरोव°। ३ ग. °घ्नामिश्व° । ४ च °लापदा° । ५ च. लम्बकर्णिने। ६ च. वर्म। ७ ख. ग. पादुका। ८ क. च. कर्मकः। ९ क. च.° स्वयास्त्रि म° ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पद्मकर्णिकं[1] बीजं[2] च[3] ज्वालिनीं[4] नन्दयार्चयेत् । सूर्येशा कामरूपा च उदया कामवर्तिनी ।।४।।
सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्ध[5] मृत्तिका[6] । वंशो घोरं च दहनं प्लवो लम्बं तथा स्मृतम् ।।५।।
लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ।।६।।
गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः । गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ।।७।।
गजवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशकः । धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूज्या गणपतेः स्मृताः ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपतिपूजाविधिकथनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्यामि स्कन्द नित्याद्यं स्नानं पूजां प्रतिष्ठया । स्नात्वा[7] शिलां समुद्धृत्य मृदमष्टाङ्गुलां[8] ततः ।।१।।
सर्वात्मना समुद्धृत्य[9] पुनस्तेनैव पूजयेत्[10] । शिरसा पयसस्तीरे निधायास्त्रेण शोधयेत् ।।२।।
तृणादि शिखयोद्धृत्य ब्रह्मणा विभजेत्त्रिधा[11] । एकया नाभिपादान्तं प्रक्षाल्य पुनरन्यया ।।३।।

ज्वालिनी और नन्दा की भी पूजा करे। सूर्येशा, कामरूपा, उदया, कामवर्तिनी, सत्या और विघ्ननाशा को आसन, गन्ध और मृत्तिका प्रदान करे। यं, रं, लं, वं–ये चार बीज क्रमशः शोषण, दाहन, आप्लावन तथा अमृतीकरण की प्रक्रिया पूरी करते हैं। 'लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्' यह गणेश गायत्री मन्त्र है ।।४-६।। गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणक्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बकुक्षि, विकट, विघ्ननाशक, धूम्रवर्ण और महेन्द्र आदि पूज्य देवता हैं, जो गणपति के पूजन में अङ्गरूप में पूजित होते हैं ।।७-८।।

श्री अग्निमहापुराण में गणेशपूजाविधि-वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७१।।

अध्याय ७२

स्नान-विधि

महादेव बोले–हे स्कन्द! मैं नित्य, नैमित्तिक आदि स्नान-प्रतिष्ठा सहित पूजा की विधि बतला रहा हूँ। पहले स्नान करके आठ अङ्गुल की एक शिला (टुकड़ा) उखाड़ ले ।।१।। उसको भलीभाँति यत्नपूर्वक लाकर पूजा करे। सिर से नदी तीर पर रखकर अस्त्र-मन्त्र से उसे शुद्ध करे ।।२।। ब्राह्मण तृण आदि को शिखा मन्त्र से उखाड़कर कवच मन्त्र से उस मिट्टी के टुकड़े को तीन भाग में बाँट दे। एक भाग को नाभि से लेकर पैर तक लगाये ।।३।।

---

१ ख. ग. घ. °णिंकाबीजाश्च ज्वा° । २ क. च. °बीजांश्च जालि° । ३ ङ. च जालि° । ४ ख. ग. घ. °लिनी नन्दनार्च°। ५ क. ङ. च. °न्धमूर्तिका। ६ क. च. °का। यं °का. यं शोषणं च दहनं नष्टवो वितथाऽमृतम्। ७ ख. °त्वाऽसिना स° । ८ ख. ग. ङ. °ङ्गुलं त° । ९ क. समाहृत्य प्रमष्टेनै° । १० ख. पूरयेत्। ११ क. ङ. च. °जेद्द्विधा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अस्त्राभिलब्धया[1] लक्ष्मीदीप्तया सर्वविग्रहम् । निरुध्याऽऽस्याक्षि[2] पाणिभ्यां प्राणान्संयम्य वारिणि[3] ।।४।।
निमज्याऽऽसीत ह्यद्यस्त्रं स्मरन्कालानलप्रभम् । मलस्नानं विधायेत्थं समुत्थाय जलान्तरात् ।।५।।
अस्त्रसंध्यामुपास्याथ विधिस्नानं समाचरेत् । सारस्वतादितीर्थानामेकमङ्कुशमुद्रया ।।६।।
हृदाऽऽकृष्य तथाऽऽस्थाप्य[4] पुनः संहारमुद्रया । शेषं मृद्भागमादाय प्रविश्याऽऽनाभि वारिणि ।।७।।
वामपाणितले कुर्याद्भागत्रयमुदङ्मुखः । अङ्गैर्दक्षिणमेकाद्यं पूर्वमस्त्रेण[5] सप्तधा ।।८।।
शिवेन दशधा सौम्यं[6] यजेद्भागत्रयं क्रमात् । सर्वदिक्षु[7] क्षिपेत्पूर्वं हुंफडन्तगवाणुना[8] ।।९।।
कुर्याच्छिवेन सौम्येन शिवतीर्थेन[9] तु क्रमात् । सर्वाङ्गमङ्गजप्तेन मूर्धादि चरणावधि ।।१०।।
दक्षिणेन समालभ्य[10] पठन्नङ्गचतुष्टयम् । पिधाय खानि सर्वाणि सम्मुखीकरणेन च ।।११।।
शिवं स्मरन्निमज्जेत हरिं गङ्गेति वा स्मरन् । वौषडन्तषडङ्गेन के कुर्यादभिषेचनम् ।।१२।।
कुम्भपात्रेण रक्षार्थं पूर्वादौ विक्षिपेज्जलम् । स्नात्वा राजोपचारेण सुगन्धामलकादिभिः ।।१३।।
स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तीर्थं संहारिण्योपसंहरेत् । अथातो विधिशुद्धेन संहितामन्त्रितेन च ।।१४।।
निवृत्त्यादिविशुद्धेन भस्मना स्नानमाचरेत् । शिरसः पादपर्यन्तं[11] हुंफडन्त[12] गवा[13]णुना[14] ।।१५।।

तत्पश्चात् उसे धोकर, अस्त्रमन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भाग की दीप्तिमती मृत्तिका के द्वारा शेष सम्पूर्ण शरीर को अनुलिप्त करके, दोनों हाथों से कान-नाक आदि इन्द्रियों के छिद्रों को बन्दकर, साँस रोककर, मन-ही-मन कालाग्नि के समान तेजोमय अस्त्र का चिन्तन करते हुए पानी में डुबकी लगाकर स्नान करे। यह मल (शारीरिक मैल) को दूर करनेवाला स्नान कहलाता है। इस प्रकार जल के भीतर से निकल आवे और सन्ध्या करके विधि-स्नान करे ।।४-५$\frac{1}{2}$।। पहले अंकुश-मुद्रा के द्वारा सारस्वत आदि तीर्थों को हृदय-मन्त्र (नमः) से आकृष्ट करके संहारमुद्रा के द्वारा स्थापित करे। शेष मिट्टी को लेकर नाभि तक जल में घुस जाय ।।६-७।। मिट्टी को बायीं हथेली पर रखकर उत्तराभिमुख होकर उसको तीन भागों से विभक्त कर दे। प्रथम भाग को अस्त्र आदि मन्त्रों से सात भागों में बाँटकर दाहिने अंगों में लगावे ।।८।। दूसरे को शिव मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से अभिमन्त्रित करके दस भागों में बाँट दे और 'हुं फट्' मन्त्र से उत्तर से प्रारम्भ करके सब दिशाओं में उन भागों को फेंक दे ।।९।। उसको शिवमन्त्र से शिवतीर्थ के द्वारा सिर से लेकर पैर तक सर्वाङ्ग में लगाये ।।१०।। दक्षिण अङ्ग में भी मृत्तिका लगाकर अङ्गचतुष्टय का पाठ करते हुए इन्द्रियों को बन्द करके सम्मुखीकरण करे ।।११।। शिव, हरि और गङ्गा का स्मरण करते हुए डुबकी लगाये और वौषडन्त षडङ्ग-मन्त्र से अभिषेक करे ।।१२।। रक्षा के लिए घड़े में जल भरकर पूर्वादि चारों दिशाओं में गिरावे। इस प्रकार मृत्तिका-स्नान करने के पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों और आँवला आदि से स्नान करे ।।१३।। स्नान के पश्चात् नदी से निकलकर संहारिणी (संहिता) से उपसंहार करे। तदनन्तर विधिपूर्वक शुद्ध किये हुए, (संहिता) से अभिमन्त्रित, निवृत्ति आदि से परिष्कृत भस्म से 'ॐ हुं फट्' मन्त्र से सिर से पैर तक स्नान करे ।।१४-१५।। इस प्रकार विधिवत्

---

१ ख. °स्त्रादि लब्धमारभ्य दी° । २ ख. ग. °ध्याक्षाणि पा° । ३ ख. ग. वारिणा। ४ ख. °थाऽऽस्नाप्य। ५ ख. ग. °मन्त्रेण। ६ ख. ग. °म्यं जपेद्भा° । ७ ङ् °क्षु यचेत्पू° । ८ ख. ग. न्तशराणु° । ९ क. च. °तीर्थं रुजक्र°। ख. °तीर्थं° भुजक्र°। १० क. ङ. च. समारभ्य। ११ क. ङ. न्तं हूं फ°। ख. ग. °न्तं हूं फ°। १२ ख. ग. न्तशराणु°। १३ क. च वानना। १४ ङ° ना। तै कृत्वाऽऽचमनस्ना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेन कृत्वा मलस्नानं[1] विधिस्नानं समाचरेत् । ईषतत्पुरुषाघोरगुह्यकाजातसंवरैः[2] ।।१६।।
क्रमेणोद्वर्तयेन्मूर्ध्नि वस्त्रहृद्गुह्यविग्रहान् । संध्यात्रये निशीथे च वर्षापूर्वावसानयोः ।।१७।।
सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा[3] चाऽऽवश्यकादिकम् । स्त्रियं नपुंसकं शूद्रं[4] बिडालशवमूषिकम् ।।१८।।
स्नानमाग्नेयकं स्पृष्ट्वा शुच्यम्बुचुलकं[5] चरेत् । सूर्यांशुवर्षसंपर्के प्राङ्मुखेनोर्ध्वबाहुना ।।१९।।
माहेन्द्रं स्नानमैशेन[6] कार्यं सप्तपदावधि । गोसंघमध्यगः[7] कुर्यात्खुरोत्खातकरेणुभिः[8] ।।२०।।
पावनं[9] मूलमन्त्रेण स्नानं तद्धर्मणाऽथवा[10] । सद्योजातादिभिर्मन्त्रैरम्भोभिरभिषेचनम् ।।२१।।
मन्त्रस्नानं भवेदेवं वारुणाग्नेययोरपि । मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम् ।।२२।।
कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत् । वैष्णवादौ च तन्मन्त्रैरेवं स्नानानि[11] कारयेत् ।।२३।।
सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रैर्भिन्नैः समं[12] गुह । संवीक्ष्य त्रिः पिबेदम्बु ब्रह्मतीर्थेन शंकरैः[13] ।।२४।।
स्वधान्तैरात्मतत्त्वाद्यैस्ततः खानि स्पृशेन्मृदा । सकलीकरणं कृत्वा प्राणायामेन संस्थितः ।।२५।।
त्रिः समावर्तयेन्मन्त्री मनसा शिवसंहितम्[14] । आचम्य न्यस्य संध्यां च ब्राह्मीं प्रातः स्मरेन्नरः ।।२६।।
हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम्[15] । अङ्गाक्षमालिनीं दक्षे वामे दण्डकमण्डलुम् ।।२७।।
तार्क्ष्यपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम् । शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयाम् ।।२८।।

स्नान करना चाहिए। तदनन्तर ईष, तत्पुरुष, अघोर, गुह्यक, अजात और संवर मन्त्र से क्रमशः वस्त्र, हृदय, गुह्यस्थान और अन्य अङ्गों में, तीन सन्ध्याओं में, आधी रात को, वर्षा के पूर्व और अन्त में उद्वर्तन करे ।।१६-१७।। शयन, भोजन, पयःपान और अन्य आवश्यक कार्य करने के पश्चात् स्त्री, नपुंसक, शूद्र, बिल्ली, शव, चूहे आदि से स्पर्श हो जाने पर अग्नि की आँच में शरीर सेंककर एक चुल्लू जल पी ले। सूर्य-किरण और वर्षा से सम्पर्क होने पर पूर्वाभिमुख होकर बाहु ऊपर उठाकर ईश मन्त्र से माहेन्द्रस्नान करे। अथवा गायों के झुण्ड में सात पद तक जाय और उनके खुरों से उठी हुई धूल ले मूलमन्त्र का उच्चारण करके स्नानकर पवित्र हो जाय या धूपस्नान करे अथवा 'सद्योजात' आदि मन्त्रों द्वारा जल से अभिषेक करे ।।१८-२१।। इसी प्रकार मन्त्रों द्वारा वारुण और आग्नेय-स्नान भी होते हैं। पहले प्राणायाम कर मूलमन्त्र से मानस-स्नान भी करना चाहिए। यह मानस-स्नान सर्वत्र सब कार्यों में विहित है। इसी प्रकार वैष्णव कार्यों में भी वैष्णव-मन्त्र से स्नान कराना चाहिए ।।२२-२३।। हे गुह! अब मैं भिन्न-भिन्न मन्त्रों के सहित सन्ध्या-विधि का वर्णन कर रहा हूँ। सूर्य की ओर देखकर ब्रह्म-तीर्थ एवं शङ्कर-मन्त्रों से तीन बार जल पीना चाहिए ।।२४।। तदनन्तर स्वधान्त आत्म-तत्त्व आदि मन्त्रों से इन्द्रियों का स्पर्श करे। सकलीकरण के पश्चात् प्राणायाम करे ।।२५।। इसके बाद मन्त्र-साधक पुरुष मन-ही-मन तीन बार शिवसंहिता की आवृत्ति करे। आचमनान्तर सन्ध्या समाप्त कर 'ब्राह्मी' सन्ध्या का प्रातःकाल स्मरण करे, जो चतुर्भुज, चार मुखबाली, रक्तवर्ण, हंसासन और पद्मासन पर आरूढ़ हों, जिनके वामभाग में दण्ड, कमण्डलु और दाहिने हाथ में अक्षमाला हो ।।२६-२७।। मध्याह्न-काल में श्वेत-वर्ण की, गरुड़ और पद्मासन पर आसीन वैष्णवी

---

१ क. च. मतं स्ना°। २ ख. संबरैः। ३ क. ङ. च. हुत्वा। ४ क. ङ. च. द्रं वितानश°। ५ क. ङ. च. शुचाबुद्धूत्रं च°। ६ क. ङ. च. °मैशान°। का°। ७ च. गोहंसम°। ८ र्यातच्छरो°। ९ ख. ग. °नं नवमं। १० ख. ग. तत्कर्म°। ११ क. ख. ग. च. स्नानादि। १२ क. ङ. च. समन्ततः। सं°। १३ क. ङ. च. संवरैः। १४ क. च. °संमिताम्। ङ. संमितम्। १५ ख. °म्। प्रस्कन्दमा°। ग. °म्। शङ्खपद्मान्वितां द°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रौद्रीं ध्यायेद्वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम् । त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम् ।।२९।।
साक्षिण्यः[1] कर्मणां सन्ध्या आत्मानं तत्प्रभानुगम् । चतुर्थी ज्ञानिनः सन्ध्या निशीथादौ विभाव्यते ।।३०।।
हृद्विन्दुब्रह्मरन्ध्रेषु अरूपा तु परे स्थिता । शिवे[2] चैव परो[3] यस्तु ना सन्ध्या परमोच्यते ।।३१।।
पैत्रं मूले प्रदेशिन्याः कनिष्ठायाः प्रजापतेः । ब्राह्ममङ्गुष्ठमूलस्थं तीर्थं दैवं कराग्रतः ।।३२।।
सव्यपाणितले वह्नेस्तीर्थं सोमस्य वामतः । ऋषीणां तु समग्रेषु अङ्गुलीपर्वसन्धिषु ।।३३।।
ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम् । मार्जनं संहितामन्त्रैस्ततो येन समाचरेत् ।।३४।।
वामपाणिपतत्तोययोजनं[4] सव्यपाणिना । उत्तमाङ्गे[5] क्रमान्मन्त्रैर्मार्जनं समुदाहृतम् ।।३५।।
नीत्वा तदुपनासाग्रं दक्षपाणिपुटस्थितम् । बोधरूपं शिवं[6] तोयं वाममाकृष्य स्तम्भयेत् ।।३६।।
तत्पापं कज्जलाभासं पिङ्गयाऽऽरिच्य[7] मुष्टिना । क्षिपेद्वज्रशिलायां[8] यत्तद्भवेदघमर्षणम् ।।३७।।
स्वाहान्तशिवमन्त्रेण कुशपुष्पाक्षतान्वितम् । शिवायार्घ्याञ्जलिं दत्त्वा गायत्रीं शक्तितो यजेत् ।।३८।।
तर्पणं संप्रवक्ष्यामि देवतीर्थेन मन्त्रकात् । तर्पयेद्द्वौ शिवायेति स्वाहाऽन्यान्स्वाहया सुतान्[9] ।।३९।।

सन्ध्या करे, जिसके बायें हाथ में शङ्ख, चक्र और दाहिने हाथ में अभय मुद्रा और गदा हो। सायंकाल बैल पर कमलासन लगाये बैठी हुई, द्वितीया के चन्द्रमा से सुशोभित, त्रिनेत्र, दाहिने हाथ में त्रिशूल और अक्षमाला धारण करनेवाली, बायें में अभय और शक्ति धारण करनेवाली रौद्री सन्ध्या का ध्यान करे। ये तीनों सन्ध्याएँ सन्ध्या करनेवाले व्यक्तियों के कर्म की साक्षिणी हैं। एक चौथी सन्ध्या भी है, जिनका अनुष्ठान विज्ञजन आधी रात में करते हैं। हृदय, विन्दु, ब्रह्मरन्ध्रों में वह चौथी अरुण सन्ध्या परम शिव-स्थान में स्थित है ।।२८-३१।। तर्जनी के मूल को पैत्रतीर्थ, कनिष्ठा के मूल में प्रजापति, अँगूठे के मूल में ब्रह्मा, अँगुलियों के अग्रभाग को दैव, दाहिनी हथेली को वह्नि, बायीं हथेली को सोमतीर्थ और सब अँगुलियों के पोरों की सन्धियों को ऋषितीर्थ कहा जाता है ।।३२-३३।। इसके पश्चात् शिवमन्त्रों से शिवतीर्थ (जल) की भावना कर उस जल से संहिता मन्त्रों द्वारा मार्जन करे। बायें हाथ से गिरते हुए जल को दायें हाथ में लेकर मन्त्रों से सिर आदि पर छिड़कना 'मार्जन' कहा जाता है ।।३४-३५।। दाहिने हाथ की हथेली पर जल रखकर नासिका के अगले भाग के समीप खींच ले जाय, बोधरूप शिवतत्त्व जल में आकृष्ट कर वामभाग में स्थापित करे। पिङ्गला नाड़ी से शरीरस्थ पाप को खींचकर मुट्ठी में ग्रहण करे और उसे वज्रशिला पर पटक दे। इस विधि को 'अघमर्षण' कहते हैं ।।३६-३७।। स्वाहान्त शिव-मन्त्र से अर्थात् 'नमः शिवाय' इस मन्त्र से कुश, पुष्प, अक्षत युक्त जल की शिव को अर्घ्याञ्जलि देकर शक्ति के अनुसार गायत्री-जप करे ।।३८।। अब तर्पण की विधि कहूँगा। देवतीर्थ से उनके नाम मन्त्र के उच्चारणपूर्वक तर्पण करे। 'ॐ हूं शिखाय स्वाहा' ऐसा कहकर शिव को तर्पण प्रदान करे। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी उनके स्वाहान्त मन्त्र से तर्पण प्रदान करना चाहिए ।।३९।।

---

१ क. ङ. च. साक्षिणः। २ ख. ग. शिवरोधः प°। ३ क. ङ. च. परे यस्तु सामर्थ्यात्परः°। ४ क. ङ. च. °णिषु त°। ५ ख. ग. °माङ्गैः क्र°। ६ ख. ग. सित०। ७ क. ङ. च. °या दिव्यमु°। ख. °याऽऽविध्य मु°। ८ ख. ग. °यां तु उत्तरेद°। ९ ख. स्वनात्। ग. स्वतान्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हं[1] हृदयाय हां[2] शिरसे हुं[3] शिखायै हैं[4] कवचाय[5] । अस्त्रायाष्टौ देवगणान्हृदाऽऽदित्येभ्य एव च ।।४०।।
हां (तु) वसुभ्यो रुद्रेभ्यो विश्वेभ्यश्चैव मरुद्भ्यः । भृगुभ्यो हामङ्गिरोभ्य ऋषीन्कण्ठोपवीत्यथ ।।४१।।
अत्रयेऽथ वशिष्ठाय नमश्चाथ पुलस्तये[6] । क्रतवे भारद्वाजाय विश्वामित्राय वै नमः ।।४२।।
प्रचेतसे मनुष्यांश्च सनकाय वषट् तथा । हां सनन्दायाथ वषट् सनातनाय वै वषट् ।।४३।।
सनत्कुमाराय वषट् कपिलाय तथा वषट् । पञ्चशिखाय[7] द्युभवे संलग्नकरमूलतः ।।४४।।
सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषड् भूतान्देवपितृनथ । दक्षस्कन्धोपवीती च कुशमूलाग्रतस्तिलैः[8] ।।४५।।
कव्यवाहानलायाथ सोमाय च यमाय च ।
अर्यम्णे चाग्निसोमाय बर्हिषद्भ्यः[9] स्वधायुतान् (तम्) ।।४६।।
आज्यपाय च सोमाय विशेषसुरवत्पितॄन्[10] । ॐ[11]हामीशानाय पित्रे[12] स्वधा दद्यात्पितामहे ।।४७।।
शान्तप्रपितामहाय[13] तथा प्रेतपितॄंस्तथा । पितृभ्यः पितामहेभ्यः स्वधाऽथ प्रपितामहे ।।४८।।

'ॐ हां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ हूं शिखायै वषट्। ॐ हैं कवचाय हुम्। ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हः अस्त्राय फट्'। इन वाक्यों को क्रमशः पढ़कर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र-विषयक न्यास करना चाहिए। आठ देवगणों को उनके नाम के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर तर्पणार्थ जल अर्पित करना चाहिए। यथा–'ॐ हां आदितेभ्यो नमः। ॐ हां वसुभ्यो नमः। ॐ हां रुद्रेभ्यो नमः। ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां मरुद्भ्यो नमः। ॐ हां भृगुभ्यो नमः। ॐ हां अङ्गिरोभ्यो नमः।' तत्पश्चात् जनेऊ को कण्ठ में माला की भाँति धारण करके ऋषियों का तर्पण करे। 'ॐ हां अत्रये नमः। ॐ हां वशिष्ठाय नमः। ॐ हां पुलस्त्याय नमः। ॐ हौं क्रतवे नमः। ॐ हां भरद्वाजाय नमः। ॐ हां विश्वामित्राय नमः। ॐ हां प्रचेतसे नमः। ॐ हां मरीचये नमः।' इन मन्त्रों को पढ़ते हुए अत्रि आदि ऋषियों को (ऋषितीर्थ) से एक-एक अञ्जलि जल दे। तत्पश्चात् सनकादि मनुष्यों को (दो-दो अञ्जलि) जल देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्र-वाक्य पढ़े।–'ॐ हां सनकाय वषट्। ॐ हां सनन्दनाय वषट्। ॐ हां सनातनाय वषट्। ॐ हां सनत्कुमाराय वषट्। ॐ हां कपिलाय वषट्। ॐ हां पञ्चशिखाय वषट्। ॐ हां ऋभवे वषट्' इन मन्त्रों द्वारा जुड़े हाथों की कनिष्ठिका के मूल भाग से जलाञ्जलि देनी चाहिए। 'ॐ हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्।' इस मन्त्र से वषट्-स्वरूप भूतगणों का तर्पण करे। तत्पश्चात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर करके दुहरे मुड़े हुए कुश के मूल और अग्रभाग से तिल सहित जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ दिव्य पितरों के लिए अर्पित करे। 'ॐ हां कव्यवाहनाय स्वधा। ॐ हां अनलाय स्वधा। ॐ हां सोमाय स्वधा। ॐ हां यमाय स्वधा। ॐ हां अर्यम्णे स्वधा। ॐ हां अग्निष्वात्तेभ्यः स्वधा। ॐ हां सोमपेभ्यः स्वधा।' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण कर विशिष्ट देवताओं की भाँति दिव्यपितरों को जलाञ्जलि से तृप्त करना चाहिए। 'ॐ हां ईशानाय पित्रे स्वधा।' कहकर पिता को, 'ॐ हां पितामहाय स्वधा' कहकर पितामह को तथा 'ॐ हां शान्तप्रपितामहाय स्वधा' कहकर प्रपितामह को भी तृप्त करे। इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरों का तर्पण करे। यथा–'ॐ हां पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां पितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा।

---

१ क. च. हां। ख. ग. ॐ। २ ख. ग. ह्रीं। ३ ख. ग. हूं। ४ ख. ग. हैं। ५ क. ङ. च. °य च। अ°। ६ क. ङ. च. प्रनष्टये। ७ क. ङ. च. °य ह्यम°। ८ क. च. °लैः। हव्य°। ९ क. ङ. च. °द्भ्यः स्रुचा यु°। १० ङ °शेषः सुरसन्पितृ°। क. च.° षसुरसन्पि°। ११ ख. ग. ॐ हामी°। १२ क. ङ. च. त्रे पृषदाज्याय पिता°। १३ क. ङ. च. °य अथ प्रे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृद्धप्रपितामहेभ्यो मातृभ्यश्च स्वधा तथा। हां[1] मातामहेभ्यः स्वधा हां[2] प्रमातामहेभ्यश्च ।।४९।।
वृद्धप्रमातामहेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यस्तथा। सर्वेभ्यः स्वधा ज्ञातिभ्यः सर्वाचार्येभ्य एव च ।।५०।।
दिशां दिक्पतिसिद्धानां मातृणां ग्रहरक्षसाम् ।।५१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नानादिविधिकथनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।७२।।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यपूजाकथनम्

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये सूर्यार्चनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम्। अहं तेजोमयः सूर्य इति ध्यात्वाऽर्घ्यमर्चयेत्[3] ।।१।।
पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टविन्दुना। तं सम्पूज्य रवेरङ्गैः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ।।२।।
संप्रोक्ष्य तज्जलैर्द्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत्। ॐ अं हृद्बीजादि सर्वत्र पूजनं दण्डिपिङ्गलौ ।।३।।
द्वारिदक्षे वामपार्श्वे ईशाने अङ्गणाय च। अग्नौ गुरुं[4] पीठमध्ये प्रभूतं चाऽऽसनं यजेत् ।।४।।
अग्न्यादौ विमल[5] सारमाराध्यं परमं सुखम्। सितरक्तपीतनीलवर्णान्सिंहनिभान्यजेत् ।।५।।

ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वाचार्येभ्यः स्वधा। ॐ हां दिग्भ्यः स्वधा। ॐ हां दिक्पतिभ्यः स्वधा। ॐ हां सिद्धेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वधा। ॐ हां रक्षोभ्यः स्वधा।' इन वाक्यों को पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्ध प्रमातामहों, सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों, सभी आचार्यों, सभी दिशाओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राक्षसों को जलाञ्जलि प्रदान करे ।।४०-५१।।

श्री अग्निमहापुराण में स्नानादि विधि-वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७२।।

अध्याय ७३

सूर्यपूजावर्णन

शंकर बोले–हे स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यपूजन की विधि बतला रहा हूँ। "मैं तेजोमय सूर्य हूँ ऐसा ध्यान करते हुए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए और यह कल्पना करनी चाहिए कि वह अर्घ्य देवता के मस्तक पर छिड़के हुए जल से रक्त-वर्ण का हो गया है। मन्त्रों से सूर्य के अङ्गों की पूजा करके रक्षार्थ चारों ओर आवरण-वृत्त घेर देना चाहिए ।।१-२।। पूर्वाभिमुख होकर जल से सब सामग्री को शुद्ध करके सूर्य की पूजा करे। 'ॐ अं हृदयाय नमः' इस प्रकार आदि में स्वर बीज लगाकर सर्वत्र पूजन करे। द्वार के दाहिने और बायें पार्श्व में दण्डि और पिङ्गल का, ईशानकोण में गणपति और अग्निकोण में गुरु और पीठमध्य में अन्य आसन (देवासन) का पूजन करे ।।३-४।। अग्नि आदि कोणों में विमल, आराध्य परम सुखप्रद तत्त्वों का और श्वेत, रक्त, पीत, नीलवर्ण के सिंह के समान आकृतिवाले देवों की पूजा करे ।।५।।

---

१ ख. ग. ह्रां। २ ख. ग. ह्रां। ३ क. ख. ग. घ. ङ. च. °त्वाऽर्घम°। ४ क. च. गुरुर्मठ°। ५ ख.° मलासा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पद्ममध्ये रां च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रुं जयां क्रमात् । रूं भद्रां रें विभूतीश्च विमलां रैममोघया ।।६।।
रों रौं (च) विद्युता शक्तिं पूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः । रं मध्ये अर्कासनं स्यात्सूर्यमूर्तिं[1] षडक्षरम् ।।७।।
ॐ हं खं[2] खशोल्कायेति[3] यजेदावाह्य भास्करम् । ललाटाकृष्टमञ्जल्यां[4] ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ।।८।।
ह्रीं ह्रीं सः सूर्याय नमो मुद्रयाऽऽवाहनादिकम् । विधाय प्रीतये बिम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत् ।।९।।
पद्ममुद्रां बिम्बमुद्रां प्रदर्श्याग्नौ हृदीरितम् । ॐ आं हृदयाय नमः अर्काय शिरसे तथा ।।१०।।
भूर्भुवः[5] स्वः सुरेशाय[6] शिखायै नैर्ऋते यजेत् । [7]हुं कवचाय वायव्ये हां[8] नेत्रायेति मध्यतः ।।११।।
वः[9] अस्त्रायेति पूर्वादौ ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् । धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविषाणा च नेत्रयोः ।।१२।।
अस्त्रस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया । सों सोमं बुं बुधं बृं च जीवं भं भार्गवं यजेत् ।।१३।।
दले पूर्वादिकेऽग्न्यादौ अं (भं) भौमं शं शनैश्चरम् । रं राहुं [10]कें केतवे च गन्धाद्यैश्च खशोल्किना[11] ।।१४।।
मूलं जप्त्वाऽर्घ्यपात्राम्बुं[12] दत्त्वा सूर्याय संस्तुतिः । नत्वा पराङ्मुखं चार्कं[13] क्षमस्वेति ततो वदेत् ।।१५।।

पद्म-मण्डल के मध्य दीप्त रां, सूक्ष्म रीं, रुं, जया,भद्रा को रूं, विभूति को रें, विमला को रैं, अमोघा को रों, विद्युता को रौं और पूर्वा आदि को सर्वतोमुखरूप में 'रं' और षडक्षर सूर्यमूर्ति का न्यास करे ।।६-७।। 'ॐ हं खं खशोल्काय नमः' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का आवाहन करके उनका पूजन करे। अञ्जलि को ललाट से लगाकर रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करे ।।८।। 'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः' इत्यादि मन्त्र से सूर्यमुद्रा के द्वारा आवाहन कर सूर्य की प्रसन्नता के लिए बिम्बमुद्रा दिखाये और गन्ध आदि समर्पित करे ।।९।। पद्ममुद्रा और बिम्बमुद्रा को दिखाकर विभिन्न दिशाओं में षडङ्गन्यास करना चाहिए। 'अं आं हृदयाय नमः', 'अर्काय शिरसे स्वाहा', 'भूर्भुवः स्वः सुरेशाय शिखायै' मन्त्रों से नैर्ऋतकोण में यज्ञ करे। 'हुं कवचाय नमः' इस मन्त्र से वायव्य में 'हां नेत्राय' मन्त्र से मध्य में और 'वः अस्त्राय' मन्त्र से पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे, अनन्तर मुद्राएँ लगाये। हृदय आदि पर धेनुमुद्रा, नेत्रों पर गोविषाणमुद्रा, अस्त्र को त्रासनी मुद्रा और ग्रहों को नमस्कारमुद्रा दिखाये, 'सों सोमाय नमः' मन्त्र से सोम का, 'बुं बुधाय नमः' से बुध का, 'बृं बृहस्पतये नमः' से बृहस्पति का, 'भं भार्गवाय नमः' से शुक्र का पूजन करे ।।१०-१३।। पद्ममण्डल की पंखुड़ियों पर पूर्व आदि दिशाओं में और अग्नि आदि कोणों में 'भं भौमाय नमः', 'शं शनैश्चराय नमः', 'रं राहवे नमः' और 'कें केतवे नमः' मन्त्रों से गन्ध आदि से इन ग्रहों के साथ खखोल्की नामक भगवान् सूर्य का पूजन करना चाहिए ।।१४।। मूल मन्त्र का जप करके अर्घ्य पात्र से अर्घ्य देकर सूर्य की स्तुति करे और सूर्य का पराङ्मुख नमस्कार करके 'क्षमा कीजिये' ऐसा कहे ।।१५।।

---

१ ख. ग.° मूर्तिष°। २ घ. खं खोल्का°। ३ क. खसोल्का। च. खषोल्का। ४ क. च. °ञ्जन्यां ध्या°। ५ क. ङ. च. °वः स्वरे कालिनि शि°। ख.° वः स्वरो कालिनि शि°। ६ ख. सुरं कालिनि शि°। ७ क. ङ. च. हूं। ख. ग. हूं। ८ क. ख. ग. ङ. च. भां। ९ क. रः। १० क. ख. ग. ङ. च. कं। ११ क. च. खषोल्कि°। ग. खसोल्कि°। घ. खखोल्कय। मू°। ङ. खखोल्कि°। १२ क. ख. ग. ङ. च. °प्त्वाऽर्घपा°। १३ क. ख. ग. ङ. च. चार्घं क्ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शराणुना फडन्तेन समाहृत्याणु संहृतिम्[1] । हृत्पद्मे शिव सूर्येति संहारिण्योपसंस्कृतिम्[2] ।।१६।।
योजयेत्तेजश्चण्डाय रविनिर्माल्यमर्पयेत् । अभ्यर्च्येशजपाद्ध्यानाद्धोमात्सर्वं रवेर्भवेत् ।।१७।।

इत्यादिमहांपुराण आग्नेये सूर्यपूजाविधि-कथनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।।७३।।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजाकथनम्

ईश्वर उवाच

शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान्[3] । द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत्[4] ।।१।।
गणं सरस्वतीं लक्ष्मीमूर्ध्वोदुम्बरके यजेत् । नन्दिगङ्गेदक्षशाख[5] (खा) स्थिते वामगते यजेत् ।।२।।
महाकालं च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपाति (त) तः । उत्सार्य दिव्यान्विघ्नांश्च पुष्पक्षेपान्तरिक्षगान्[6] ।।३।।
दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठान्यागमन्दिरम् । देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वै विशेत् ।।४।।
प्रविष्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बरे । ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ।।५।।

तत्पश्चात् 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से शराणु से अणुसंहृति को इकट्ठा करके हृदय-कमल पर 'शिव और सूर्य' का आवाहन करके अन्तिम बार पूजा करे। प्रचण्ड सूर्य को तेज से युक्त करके सूर्य को निर्माल्य अर्पित करे। 'हे ईश! इस प्रकार सूर्य का पूजन करके जप, ध्यान और हवन करने से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध होते हैं ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में सूर्यपूजा विधान-वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७३।।

अध्याय ७४

शिवपूजा विधि-वर्णन

शिव बोले-अब मैं शिवपूजन के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। सर्वप्रथम आचमन करके मन में प्रणव का जप करके अस्त्र मन्त्रों से पवित्र रत्न के द्वारा मन्दिर के द्वार का प्रोक्षण करे तथा होम एवं अन्य द्वारपालों का अर्चन करे ।।१।। तदनन्तर लक्ष्मी और सरस्वती तथा गणपति का पूजन दरवाजे की चौखट पर करना चाहिए। दक्षिण की ओर नन्दी और गङ्गा तथा बायीं ओर महाकाल और यमुना की अर्चना करनी चाहिए। उस समय यजमान को अपने-आपको दिव्यदृष्टि से युक्त समझना चाहिए। अन्तरिक्ष में पुष्पों को फेंककर अंतरिक्षगत विघ्नों को दूर कर देना चाहिए ।।२-३।। दाहिने पैर की एड़ी से तीन बार भूमि पर आघात करे। इस क्रिया द्वारा भूतलवर्ती समस्त विघ्नों के निवारण की भावना करे। तत्पश्चात् यज्ञमण्डप की देहली को लाँघे। वाम शाखा का आश्रय लेकर भीतर प्रवेश करे। दाहिने पैर से मण्डप के भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बर वृक्ष में अस्त्र का न्यास करे तथा मण्डप के मध्य भाग में पीठ की आधार भूमि में 'ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्र से वास्तुदेवता की पूजा करे ।।४-५।।

---

१ ख °हृतिः। हृ°। २ ख. ग. संहृतम्। ३ क. ख. ग. ङ. च. °वार्घवा°। ४ ख. ग. °पान्यसेत्। ५ घ. दक्षिणेऽथ स्थि°। ६ घ. पुष्पाक्षे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गड्डुकान्[1] । लब्धानुज्ञः शिवान्मौनी गङ्गादिकमनुव्रजेत् ।।६।।
पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन वारिणा । पूरयेदम्बुधौ तांस्तान्गायत्र्या हृदयेन वा ।।७।।
गन्धकाक्षतपुष्पादिसर्वद्रव्यसमुच्चयम् । सन्निधीकृत्य पूजार्थं भूतशुद्ध्यादि कारयेत् ।।८।।
देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः । संहारमुद्रयाऽऽदाय मूर्ध्नि मन्त्रेण धारयेत् ।।९।।
भोग्यकर्मोपभोगार्थं[2] पाणिकच्छपिकाख्यया । हृदम्बुजे निजात्मानं द्वादशान्तपदेऽथ वा ।।१०।।
शोधयेत्पञ्चभूतानि संचिन्त्य सुषिरं तनौ । चरणाङ्गुष्ठयोर्युग्मान्सुषिरान्तर्बहिः स्मरेत् ।।११।।
शक्तिं हृद्व्यापिनीं पश्चाद्धङ्कारे पावकप्रभे । रन्ध्रमध्ये[3] स्थिते कृत्वा[4] प्राणरोधं हि चिन्तकः ।।१२।।
निवेशयेद्रेचकान्ते फडन्तेनाथ तेन च । हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रे विभिद्य च ।।१३।।
ग्रन्थीन्निर्भिद्य 'हुंकारं मूर्ध्नि विन्यस्य जीवनम् । संपुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम्[6] ।।१४।।
हूं[7] शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं[8] विन्द्वात्मकं स्मरेत् । कृत्वाऽथ कुम्भकं शंभावेकोद्घातेन योजयेत् ।।१५।।
रेचकेन बीजवृत्त्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत् । प्रतिलोमं[9] स्वदेहे तु विन्द्वन्तं तत्र विन्दुकम् ।।१६।।

निरीक्षण आदि शस्त्रों द्वारा शुद्ध किये हुए गडुओं को हाथ में लेकर, भावना द्वारा भगवान् शिव से आज्ञा प्राप्त करके साधक मौन हो गङ्गा आदि नदी के तट पर जाय ।।६।। वहाँ अपने शरीर को पवित्र करके गायत्री-मन्त्र का जप करते हुए वस्त्र से छाने हुए जल के द्वारा जलाशय में उन गडुओं को भरे अथवा हृदय-बीज (नमः) का उच्चारण करके जल भरे ।।७।। सुगन्धित द्रव्यों, अक्षत और पुष्प इत्यादि समस्त सामग्रियों को इकट्ठा करके पूजा के लिए भूतशुद्ध्यादि कराना चाहिए ।।८।। देवता के दायीं तथा बायीं ओर न्यास करके मन्त्रपाठ करते हुए संहार-मुद्रा के द्वारा सिर से न्यास करना चाहिए ।।९।। तत्पश्चात् भोग्यकर्मों के उपयोग के लिए पाणिकच्छपिका (कूर्ममुद्रा) का प्रदर्शन करके द्वादश दलों से युक्त हृदय-कमल में अपने आत्मा का चिन्तन करे ।।१०।। तदनन्तर शरीर में शून्य का चिन्तन करते हुए पाँच भूतों का क्रमशः शोधन करे। पैरों के दोनों अँगूठों को पहले बाहर और भीतर से छिद्रमय (शून्यरूप) देखे। फिर कुण्डलिनी-शक्ति को मूलाधार से उठाकर हृदय-कमल से संयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे "हृदय-रन्ध्र में स्थित अग्नि-तुल्य तेजस्वी 'हूं' बीज में कुण्डलिनी-शक्ति विराज रही है।" उस समय चिन्तन करनेवाला साधक प्राणवायु का अवरोध (कुम्भक) करके उसका रेचक (निःसारण) करने के पश्चात् 'हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक क्रमशः उत्तरोत्तर चक्रों का भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनी को हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य में ले जाकर स्थापित करे। इन ग्रन्थियों का भेदन करके कुण्डलिनी के साथ हृदय-कमल से ब्रह्म-रन्ध्र में आये 'हूं' बीजस्वरूप जीव को वहीं मस्तक में स्थापित कर दे। हृदय-स्थित 'हूं' बीज से सम्पुटित हुए उस जीव में पूरक प्राणायाम द्वारा चैतन्य भाव जाग्रत किया गया है। शिखा के ऊपर 'हूं' का न्यास करके शुद्ध विन्दुस्वरूप जीव का चिन्तन करे। फिर कुम्भक प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य गुण से युक्त जीव को शिव के साथ संयुक्त कर दे ।।११-१५।। इस प्रकार शिव में लीन होकर रेचक बीजवृत्ति द्वारा अपने-आपको शुद्ध करके अपने शरीर में प्रतिलोम रूप से विन्द्वन्त तक विन्दु को ले जाना चाहिए। पृथ्वी और वायु, जल

---

१ ख. गन्त्वगान्। क. ङ. च. शत्रुकान्। २ क. च. °र्थ याने कच्छापकाक्षया। ङ. र्थ जने कच्छापकाक्षया। ३ क. ङ. च. चन्द्रमध्ये। ४ क. च. °त्वा प्रणवे वह्निचि°। ५ क. च. °न्निर्वर्त्य हुं का०। ख. ग. °न्निर्वर्ण्य हूं। ६ख.काहत०। ७ ख. हूरूं। ८ ख. ग. शुद्धि विद्वानुक। ९ प्रतिलोमं...बिन्दुकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लयं नीत्वा महीवातौ[1] जलवह्नी परस्परम् । द्वौ द्वौ साध्यौ तथाऽऽकाशमविरोधेन तच्छृणु ।।१७।।
पार्थिवं मण्डलं पीतं कठिनं वज्रलाञ्छितम्[2] । हौमित्यात्मीयबीजेन[3] तन्निवृत्तिकलामयम् ।।१८।।
पादादारभ्य मूर्धान्तं विचिन्त्य चतुरस्त्रकम् । उद्घातपञ्चकेनैव वायुभूतं विचिन्तयेत् ।।१९।।
अर्धचन्द्रं द्रवं सौम्यं शुभ्रमम्भोजलाञ्छितम् । ह्रीमित्यनेन[4] बीजेन प्रतिष्ठारूपतां गतम् ।।२०।।
संयुक्तं राममन्त्रेण पुरुषान्तमकारणम्[5] । अर्घ्यं चतुर्भिरुद्घातैर्वह्निभूतं विशोधयेत् ।।२१।।
आग्नेयं मण्डलं त्र्यस्त्रं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् । ह्रूमित्यनेन बीजेन विद्यारूपं विभावयेत् ।।२२।।
घोराणुत्रिभिरुद्घातैर्जलभूतं विशोधयेत् । षडस्त्रं मण्डलं वायोर्विन्दुभिः षड्भिरङ्कितम् ।।२३।।
[6]कृष्णं[7] ह्रेमिति बीजेन जातं शान्तिकलामयम् । संचिन्त्योद्घातयुग्मेन पृथ्वीभूतं विशोधयेत् ।।२४।।
नमो विन्दुमयं वृत्तं विन्दुशक्तिविभूषितम्[8] । व्योमाकारं सुवृत्तं च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।।२५।।
हौंकारेण फडन्तेन शान्त्यतीतकलामयम् । ध्यात्वैकोद्घातयोगेन सुविशुद्धं विभावयेत् ।।२६।।
आप्याययेत्ततः सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा । आधाराख्या (ख्य) मनन्तं च धर्मज्ञानादिपङ्कजम् ।।२७।।
हृदाऽऽसनमिदं ध्यात्वा ([9]मूर्तिमावाहयेत्ततः । सृष्ट्या शिवमयं तस्यामात्मानं[10] द्वादशान्ततः ।।२८।।

तथा अग्नि एवं आकाश–इन सब में दो-दो को परस्पर अविरोध से लीन कर देना चाहिए ।।१६-१७।। पार्थिव-मण्डल पीला, कठोर एवं वज्र चिह्नित हुआ करता है। 'हां' इस बीजमन्त्र से युक्त तथा 'निवृत्ति' कला से सम्पन्न है ।।१८।। इस प्रकार पैरों से लेकर मूर्धापर्यन्त शरीर को चौकोर रूप में समझना और उसे उद्घात-पञ्चक से वायुमय बनाना चाहिए ।।१९।। जलीय मण्डल अर्धचन्द्र आकार, द्रव, शुभ्र और पद्मचिह्नित होता है। 'ह्रीं' इस बीजमन्त्र से वह प्रतिष्ठा कला में परिणत हो जाती है ।।२०।। वह वामदेव तथा तत्पुरुष मन्त्रों से संयुक्त जलतत्त्व चार गुणों से युक्त है। उसे इस प्रकार (घुटने से नाभि तक जल का) चिन्तन करते हुए उस जलतत्त्व का वह्नि-स्वरूप में लीन करके शोधन करे ।।२१।। आग्नेय मण्डल त्रिकोण, लाल और स्वस्तिक से चिह्नित होता है। 'ह्रूं' इस बीजमन्त्र से उसे विद्यारूप समझना चाहिए ।।२२।। उसे जल के रूप में तीन उद्घातों से शुद्ध करना चाहिए। वायुमण्डल षट्कोण होता है और वह छह विन्दुओं से चिह्नित रहा करता है ।।२३।। उसका वर्ण कृष्ण रहता है तथा 'ह्रें' इस बीजमन्त्र से वह 'शान्ति' कला युक्त रहता है। इसे पृथ्वी के रूप में कल्पित करके दो उद्घातों से शुद्ध करना चाहिए। नभोवृत्त विन्दुमय तथा विन्दुशक्ति से विभूषित हुआ करता है। वह व्योमाकार, सुवृत्त और शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल रहा करता है ।।२४-२५।। वह 'हौं' इस मन्त्र से "शान्त्यतीतकला' से युक्त होता है। एक उद्घात के द्वारा उसका ध्यान करते हुए उसे सुविशुद्ध समझना चाहिए ।।२६।। तदनन्तर आधार नामक अनन्तधर्मज्ञानादि पङ्कज को अमृतवर्षी मूल से आप्यायित करना चाहिए। हृदयरूपी इस आसन का विचार करते हुए उसमें शिवमय मूर्ति और द्वादशान्त से आत्ममूर्ति का आवाहन करना चाहिए ।।२७-२८।। इसके बाद उस मूर्ति को वौषट् से अन्त होनेवाले शक्ति मन्त्र से आप्लावित करके सकलीकरण

१ ख. स्वहेतौ तु विद्धं तं त० ख. महीपातौ। २ ख. ग. लाच्छनम्। ३ क. ङ. च.० त्यार्थीय० ख. त्यात्याय। ४ ह्रीमित्यनेन ... गतम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ५ ख. न्तसका°। ६ क. च. कृष्ट हौमि। ङ. कृष्टं हैमि। ७ ख. ग. ष्णंह्रैमि०। ८ क. °विशेषि। ९ मूर्तिमानाह्योत्ततः नास्ति ङ. पुस्तके। १० क. च. °माघानं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तां शक्तिमन्त्रेण वौषडन्तेन सर्वतः । दिव्यामृतेन[1] संप्लाव्य कुर्वीत सकलीकृतम् ।।२९।।
हृदयादिकरान्तेषु) कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च । हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ।।३०।।
अस्त्रेण (णाऽऽ) रक्ष्य प्राकारं तनुत्रेणाथ[2] तद्बहिः । शक्तिजालमधश्चोर्ध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।।३१।।
आपादमस्तकं यावद्भावपुष्पैः शिवं हृदि । पद्मे यजेत्पूरकेण आकृष्टामृतसद्घृतैः[3] ।।३२।।
शिवमन्त्रैर्नाभिकुण्डे तर्पयेत शिवानलम् । ललाटे विन्दुरूपं च चिन्तयेच्छुभविग्रहम् ।।३३।।
एकं[4] स्वर्णादिपात्राणां पात्रमस्त्राम्बुशोधितम्[5] । विन्दुप्रसूतपीयूषरूपतौयाक्षतादिना ।।३४।।
हृदाऽऽपूर्य[6] षडङ्गेन[7] पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत्[8] । संरक्ष्य हेतिमन्त्रेण [9]कवचेनावगुण्ठयेत्[10] ।।३५।।
रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्गं[11] सेचयेद्धेनुमुद्रया । अभिषिञ्चेदथाऽऽत्मानं मूर्ध्नि तत्तोयबिन्दुना ।।३६।।
तत्रस्थं यागसंभारं[12] प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा । अभिमन्त्र्य हृदा पिण्डैस्तनुत्राणेन वेष्टयेत् ।।३७।।
दर्शयित्वाऽमृतां मुद्रां पुष्पं दत्त्वा निजासने । विधाय तिलकं मूर्ध्नि पुष्पं मूलेन योजयेत् ।।३८।।
स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः । आवश्यके जपे धीरः सदा वाचं यमो भवेत् ।।३९।।
नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा[13] सुसंस्कृताम्[14] । पूजामभ्यर्च्य[15] गायत्र्या सामान्यार्घ्यमुपाहेत्[16] ।।४०।।
ब्रह्मपञ्चकमावर्त्य माल्यमादाय लिङ्गतः । ऐशान्यां दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत् ।।४१।।

करना चाहिए। हृदय से लेकर हाथ तक और कनिष्ठा आदि अँगुलियों में हृदयादि मन्त्र का न्यास सकलीकरण कहा गया है ।।२९-३०।। अस्त्र से प्राकार की रक्षा करके कवच से उसके बाहर की रक्षा करनी चाहिए। नीचे की ओर शक्तिजल और ऊपर की ओर महामुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए ।।३१।। हृदय में कमल के ऊपर भावना के पुष्पों से आपादमस्तक शिव की अर्चना करनी चाहिए। शिव मन्त्रों के द्वारा नाभिकुण्ड में शिवाग्नि का तर्पण करना चाहिए और मस्तक में विन्दु रूप में सुन्दर शरीरवाले शिव का चिन्तन करना चाहिए ।।३२-३३।। स्वर्णादि पात्रों में एक पात्र को अस्त्राम्बु से शुद्ध करके विन्दु से उत्पन्न होनेवाले अमृतमय जल और अक्षत इत्यादि के षडङ्ग से पूजा करके, अभिमन्त्रण करके अस्त्र मन्त्र से उसकी रक्षा करके, उसे कवच से अवगुण्ठित कर देना चाहिए ।।३४-३५।। तदनन्तर अष्टाङ्ग अर्घ्य बनाकर धेनु मुद्रा से उसका सेचन करना चाहिए और उस जल के विन्दु से अपने मस्तक का अभिषेक करना चाहिए ।।३६।। वहाँ पर रखे यज्ञ सम्भार का अस्त्र-जल से प्रोक्षण करके विन्दुओं से अभिमन्त्रित करके कवच से आवेष्टित कर देना चाहिए ।।३७।। अमृत मुद्रा का प्रदर्शन करके अपने आसन के ऊपर एक पुष्प रख देना चाहिए और अपने मस्तक पर तिलक लगाकर मूलमन्त्र से एक पुष्प चढ़ा देना चाहिए ।।३८।। धीर मनुष्य को स्नान, देवार्चन, होम, भोजन, याग और आवश्यक जप में सदा मूक ही रहना चाहिए ।।३९।। मन्त्र के अन्त में नाद (ॐ) मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए और गायत्री मन्त्र से पूजन करके सामान्य अर्घ्य को ठीक करना चाहिए ।।४०।। ब्रह्मपञ्चक की अवृत्ति करके लिङ्ग से माल्य को लेकर पूर्वोत्तर कोण की ओर उसे चण्ड नामक देवता को हृदय-मन्त्र से निवेदित कराना चाहिए ।।४१।। अस्त्र-

---

१ दिव्यामृतेन···करान्तेषु च. पुस्तके नास्ति। २ क. घ. ङ. च. तन्मन्त्रेणा°। ३ क. ङ. च. °त संवृतैः। ४ ख. ग. एवं। ५ ख. ग. °शोभितं°। ६ क. ङ. च. प्रस्रुत°। ७ ख. ग. °पूज्य ष°। च. षडंशेन। ८ ख. ग. °यित्वा निम°। ९ ख. ग. °चेन विलुण्ठ°। °चेन विगुण्ठ। १० क. ङ. च. °त्। वर्धयित्वाऽर्घम°। ११ क. ङ. च. °ङ्ग. रोपये°। ख. ग. °ङ्ग. रेचये°। १२ क. ङ. च. °संस्कारं। १३ क. ङ. च. °त्वा पुरा कृतम्। १४ घ. °स्कृतम्। १५ घ. पूजनेऽभ्य°। १६ क. ख. ग. ङ. च. न्यार्घ मु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रक्षाल्य पिण्डिकालिङ्गे अस्त्रतोये ततो हृदा । अर्घ्यपात्राम्बुना सिञ्चेदिति लिङ्गविशोधनम् ।।४२।।
आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धौ सर्वान्सुरान्यजेत् । वायव्ये गणपतये हां गुरुभ्योऽर्चयेच्छिवे ।।४३।।
आधारशक्तिमङ्कुरनिभां कूर्मशिलास्थिताम् । यजेद्ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम् ।।४४।।
विचित्रकेसरि प्रख्यानन्योन्यं[1] पृष्ठदर्शिनः । कृतत्रेतादिरूपेण शिवस्याऽऽसनपादुकाम्[2] ।।४५।।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चाग्निदिङ्मुखान्[3] । कर्पूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान्यजेत्क्रमात् ।।४६।।
पद्मं च कर्णिकामध्ये[4] पूर्वादौ मध्यतो[5] नव[6] । वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः ।।४७।।
वामा[7] ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारिणी[8] । बलविकार (रि) णी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ।।४८।।
हां सर्वभूतदमनी केसराग्रे मनोन्मनी । क्षित्यादिशुद्धविद्यां तु तत्त्वव्यापकमासनम् ।।४९।।
न्यसेत्सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम् । दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ।।५०।।
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं[9] वामकैः करैः । डमरुं बीजपूरं च नीलाब्जं सूत्रमुत्पलम् ।।५१।।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतां शैवीं[10] मूर्तिं तु मध्यतः । हां हं हां शिवमूर्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ।।५२।।

मन्त्र तथा हृद्मन्त्र से पवित्र जल के द्वारा पिण्डिका और लिङ्ग का प्रक्षालन करके अर्घ्यपात्र के जल से लिङ्ग को सिञ्चित करना ही लिङ्ग-शोधन कहलाता है ।।४२।। आत्मा, द्रव्य (पूजा-सामग्री), मन्त्र और लिङ्ग की शुद्धि के बाद सभी देवताओं का यजन करना चाहिए और पश्चिमोत्तर दिशा की ओर 'हां गणपतये', 'हां गुरुभ्यो' मन्त्रों से शिवार्चना करनी चाहिए ।।४३।। कूर्म-शिला के ऊपर रखे हुए अङ्कुर के समान आधार शक्ति और ब्रह्मशिला के ऊपर रखे हुए शिव के अनन्त आसन का यजन करना चाहिए ।।४४।। विचित्र सिंह की-सी आकृति से सुशोभित सिंहासन है। वे सिंह मण्डलाकार में स्थित होकर अपने आगेवाले पृष्ठ भाग को ही देखते हैं तथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग-इन चार युगों के प्रतीक हैं। तत्पश्चात् शिव की आसनपादुका की पूजा करे ।।४५।। धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य को जो कि कर्पूर, केसर, स्वर्ण और कज्जल के समान हैं, और दक्षिण दिशा की ओर मुखवाले हैं, क्रमशः यजन करना चाहिए ।।४६।। पद्म के बीच कर्णिका के मध्य में नव शक्तियों का पूजन करना चाहिए जो कि एक हाथ में चामर तथा दूसरे हाथ में अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं ।।४७।। जिनके नाम हैं-वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी। तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्टमूर्ति तथा शुद्ध विद्या का चिन्तन एवं अर्चना करनी चाहिए ।।४८-४९।। सिंहासन के ऊपर शुक्ल वर्णवाले पञ्चमुख, दस बाहु तथा दाहिने हाथों से चन्द्रखण्ड को धारण करनेवाले देवता की स्थापना करनी चाहिए ।।५०।। देवता के बायें हाथों में शक्ति, ऋष्टि, शूल, खट्वाङ्ग, डमरू, बीजपूर, नलीकमल और सूत्र रहते हैं। मध्य में बत्तीस लक्षणों से युक्त शिव की मूर्ति को स्थापित करना चाहिए और 'हां हं हां शिवमूर्तये' मन्त्र से स्वप्रकाश शिव का स्मरण करते रहना चाहिए ।।५१-५२।।

---

१ ख. केशविप्राख्या°।°केशप्राख्यानमन्यो°। २ क. ख. ङ. च. °कान् ध०। ३ क. ङ. च. ङ्मुखाः। °क। ४ ख. ग. °र्णिकां ग°। ५ ङ. °ध्यतोऽथ वा। °व। ६ क. ङ. च. °तो नवा। °व। ख. गतो° न. च। व°। ७ ख. रामा। ८ क. ङ. च. °का तथा। पू०। ९ शक्त्यृष्टि°°°करैः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। १० क. ङ. च. गौरी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मादिकारणत्यागमन्त्रं नीत्वा शिवास्पदम् । ततौ ललाटमध्यस्थं स्फुरत्ताराप्रतिप्रभम् ।।५३।।
षडङ्गेन[1] समाकीर्णं बिन्दुरूपं पर शिवम् । पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्य[2] मूर्तौ[3] निवेशयेत् ।।५४।।
ॐ हां हौं शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः ।
आवाह्य (ह्या) स्थाप्य स्थापन्या संनिधायान्तिकं[4] शिवम् ।।५५।।
निरोधयेन्निष्ठुरया [5]कालकान्त्या फडन्ततः[6] । [7]विघ्नानुत्सार्य[8] मुष्ट्याऽथ लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिम् ।।५६।।
हृदाऽवगुण्ठयेत्पश्चादावाहः संमुखो[9] ततः । [10]निवेशनं[11] स्थापनं स्यात्संनिधानं तवास्मि भोः ।।५७।।
आकर्मकाण्डपर्यन्तं [12]संनिधेर्योऽपरिक्षयः[13] । स्वभक्तेश्च प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम् ।।५८।।
सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षड्भिरथैकताम् । अङ्गानामङ्गिना सार्धं विदध्यादमृतीकृतम् ।।५९।।
चिच्छक्तिहृदयं शंभोः शिव ऐश्वर्यमष्टधा । शिखा वशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ।।६०।।
प्रतापो दुःसहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् । नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट्चेति यथाक्रमम् ।।६१।।
हृत्पुरः सरमुच्चार्य पाद्यादीनि निवेदयेत् । पाद्यं पादाम्बुजद्वन्द्वे वक्त्रे[14] स्वाचमनीयकम् ।।६२।।
अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्वापुष्पाक्षतानि च । एवं संस्कृत्य संस्कारैर्दशभिः परमेश्वरम् ।।६३।।
यजेत्पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः । [15]अभ्युक्ष्योद्वर्त्य [16]निर्मृज्य राजिकालवणादिभिः ।।६४।।

ब्रह्म आदि कारण छोड़कर शिव के स्थान में मन्त्र का पाठ करते हुए अपने मस्तक के बीच में स्फुरणशील चन्द्रमा का ध्यान करके षडङ्गन्यास से विन्दुरूप और पुष्पाञ्जलि में स्थित शिव का ध्यान करते हुए उसे लक्ष्मी की मूर्ति में रख देना चाहिए ।।५३-५४।। 'ॐ हां हौं शिवाय नमः' इस मन्त्र से शिव का आवाहनी मुद्रा से आवाहन करके शिव को अपने निकट स्थापनी मुद्रा से स्थापित करना चाहिए और कालकान्ति निष्ठुरा मुद्रा से निरोधन कर फट् से अन्त होनेवाले मन्त्रों के द्वारा विघ्नों को दूर करके लिङ्ग मुद्रा के द्वारा मूर्ति का अवगुण्ठन करके उसका आवाहन, सम्मुखीकरण, निवेशन, स्थापन और संनिधान करते हुए इस प्रकार सोचना चाहिए कि 'हे देव! मैं आपका हूँ ।।५५-५७।। कर्मकाण्ड पर्यन्त सन्निधि का जो अपरिक्षय और इष्टदेव की भक्ति का जो प्रकाश होता है, उसी को अवगुण्ठन कहते हैं ।।५८।। छह मन्त्रों के द्वारा सकलीकरण करके अङ्गी के साथ अङ्गों का अमृतीकरण करना चाहिए। चिच्छक्ति शिव का हृदय है, अष्टविध ऐश्वर्य सिर है, वशित्व शिखा है, तेज अभेद्य कवच है। ईश्वर का दुःसह प्रताप, अन्तराय को दूर करनेवाला कवच है। हृदय आदि के साथ नमः, स्वधा, स्वाहा और वौषट् आदि का प्रयोग करना चाहिए ।।५९-६१।। हृद्मन्त्रों का उच्चारण करके पाद्यादि का निवेदन करना चाहिए। इस पाद्य को मूर्ति के चरणों के ऊपर तथा आचमनीय जल को उसके मुख के ऊपर तथा आचमनीय जल को उसके मुख के ऊपर डालना चाहिए ।।६२।। देवता के सिर के ऊपर अर्घ्य, दूर्वा, अक्षत और पुष्पों को डालना चाहिए। इस प्रकार दस संस्कारों से परमेश्वर का संस्कार करके पञ्चोपचार विधि से पुष्प इत्यादि से देवता का यजन करना चाहिए ।।६३-६३½।। तदनन्तर मूर्ति को नमक और राई इत्यादि से मलकर उसे दूध, दही, मक्खन, शहद तथा मधुर-सुगन्धवाले पुष्पों

---

१ क. ङ. च. पतङ्गेन। २ ग. घ. लक्ष्मी मू°। ३ क. ङ. च. °मूर्ति नि°। ४ क. ख. ग. ङ. च. °धानान्ति°। ५ क. ङ. च. कालकर्ण्या। ६ क. ङ. च. °तः बिम्बा नु°। ७ ख. ध्नायुत्सा°। ८ क. ङ. च° र्य° षष्ट्याऽ°। घ° र्य विष्ट्या°। ९ क. ङ. च. °खीकृतः°। १० क. ङ. च° वेशः स्था°। ११ क. ङ. च.° नं तत्स्यात्सं°। १२ क. घ. ङ. च. °धेयोऽप°। १३ क. ङ. °यः। अवकाश प्र°। ख. ग. °यः। अ भ°। १४ क. ङ. च. °क्त्रे °वाऽऽच°। घ. °क्त्रेष्वाच°। १५ अभ्युक्ष्योद्वर्त्य°°°लवणादिभिः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। १६ घ निर्मज्ज्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]अर्घ्योदविन्दुपुष्पाद्यैर्गड्डूकैः[2] स्नापयेच्छनैः । पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात् ।।६५।।
ईशादिमन्त्रितैर्भुक्त्यै[3] मुक्त्यै तेषां विपर्ययः । तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नापयेच्छिवम् ।।६६।।
विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलैर्जलैः । स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ।।६७।।
निर्मार्ज्यार्घ्यं प्रदद्याच्च नोपरि भ्रामयेत्करम् । न शून्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्यात्ततो ददेत् ।।६८।।
चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्रार्च्य शिवाणुना । धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य शिवाणुना ।।६९।।
अस्त्रेण पूजितां[4] घण्टां चाऽऽदाय गुग्गुलं [5]दहेत् । दद्यादाचमनं पश्चात्सुधाभं[6] हृदयाणुना ।।७०।।
आरात्रिकं[7] समुत्तार्य तथैवाऽऽचमयेत्पुनः । प्रणम्याऽऽदाय देवाज्ञां भोगाङ्गानि प्रपूजयेत् ।।७१।।
हृदग्नौ चन्द्रभं चैशे शिवं[8] चामीकरप्रभम् । शिखं रक्तां च नैर्ऋत्ये (ते) कृष्णं चर्म[9] च वायवे ।।७२।।
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं दलस्थान्पूजयेदिमान्[10] । दंष्ट्राकरालमप्यस्त्रं पूर्वादौ वज्रसंनिभम् ।।७३।।
मूले हौं[11] शिवाय नमः ॐ[12] हां हूं हीं हों शिरश्च । हूं शिखायै हैं वर्म हश्चास्त्रं परिवारयुताय च ।।७४।।
शिवाय दद्यात्पाद्यं च आचामं चार्घ (र्घ्य) मेव च । गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ।।७५।।
करोद्वर्तनताम्बूलं मुखवासं च दर्पणम् । शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ।।७६।।

के द्वारा स्नान कराना चाहिए। ईशादि मन्त्रों के द्वारा भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है। शिव की मूर्ति को जल और धूप इत्यादि के द्वारा स्नान कराना चाहिए तथा उसके ऊपर जौ का आटा तथा यथेष्ट रूप से शीतल जल डालना चाहिए ।।६४-६६ $\frac{1}{2}$।। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार सुगन्धित जल से स्नान कराकर, उसे पवित्र वस्त्र से पोंछकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, किन्तु मूर्ति के ऊपर हाथ नहीं घुमाना चाहिए और न तो मूर्ति का मस्तक पुष्पों से शून्य होना चाहिए ।।६७-६८।। इसके बाद शिव मन्त्रों से चन्दन और पुष्प इत्यादि चढ़ाकर उसी मन्त्र से उसकी अर्चना करनी चाहिए। धूप के पात्र के अस्त्र और शिवमन्त्रों से अर्चित घण्टे को लाकर गुग्गुल को जलाना चाहिए। इसके बाद हृद्मन्त्रों से अमृतुल्य आचमन करना चाहिए। उसके बाद आरती करके पुनः आचमन करना चाहिए। देवता को प्रणाम करके तथा उसकी आज्ञा लेकर भोग इत्यादि लगाना चाहिए ।।६९-७१।। अग्निकोण में चन्द्रप्रभा हृदय का और ईशानकोण में सुवर्ण के समान कान्तिवाले सिर का, नैर्ऋतकोण में लाल रंग की शिखा का, वायव्यकोण में कृष्ण वर्ण के कवच का पूजन करे ।।७२।। चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्बाहु विष्णु की पूजा दलों के ऊपर तथा वज्रतुल्य करालदंष्ट्रा अस्त्र का पूजन पूर्व इत्यादि की ओर होना चाहिए ।।७३।। मूल में 'हौं शिवाय नमः', 'ॐ हां हृदयाय नमः', 'ह्रीं शिरसे स्वाहा' कहकर हृदय और सिर की पूजा करे। 'हूं शिखायै वषट्' बोलकर शिखा की, 'हैं कवचाय' बोलकर कवच की तथा 'हः अस्त्राय फट्' बोलकर अस्त्र की पूजा करे। इसके बाद शिव के लिए पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य, आचमनीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुखवास, दर्पण इत्यादि प्रदान करना चाहिए। देवता के सिर के ऊपर पवित्र दूर्वा और अक्षत को रखना चाहिए ।।७४-७६।। हृद्मन्त्र से युक्त मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार जप करके कवच से वेष्टित और अस्त्र से सुरक्षित, कुश, पुष्पों और अक्षतों

---

१ ख. अर्घोद°। २ ग. °र्गज्जकै°। ३ ख. ग. °तैर्भक्ष्यैर्मुख्यैस्तेषां। घ. °तैर्द्रव्यैरर्च्य ते°। ४ क. ङ. च.° तां मध्ये वादयेद्गुग्गु°। ५ ख. ग. घ. ददेत्। ६ क. ङ. च. °श्चाद्देवान्तं ह°। घ.° श्चात्स्वधान्तं ह°। ख. °धातं ह°। ७ क. च. °रातिकं। ग रार्तिकं। ८ क. ख. ग. ङ. च. शिरश्चामी°। ९ घ. वर्म। १० क. ङ. च. दर्भस्था°। ११ क. ङ. च. हां। १२ ख. ग. ॐ ह्रां हूं ह्रीं शि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलमष्टशतं जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितम्। चर्मणा वेष्टितं खड्गरक्षितं[1] कुशपुष्पकैः ।।७७।।
अक्षतैर्मुद्रया युक्तं शिवमुद्भवसंज्ञया। गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।।७८।।
सिद्धिर्भवति[2] मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते। भोगी श्लोकं पठित्वा[3] तु दक्षहस्तेन शंभवे ।।७९।।
मूलाणुनाऽर्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत्[4]। यत्किंचित्कुर्महे[5] देव सदा सुकृतदुष्कृतम् ।।८०।।
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शंकर। शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।।८१।।
शिवो जयति[6] सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च। श्लोकद्वयमधीत्यैवं जपं देवाय चार्पयेत् ।।८२।।
शिवाङ्गानां दशांशं च दत्त्वाऽर्घ्यं[7] स्तुतिमाचरेत्। प्रदक्षिणीकृत्य नमेच्चाष्टाङ्गं चाष्टमूर्तये ।।८३।।
नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्रेऽनलादिषु ।।८४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवपूजाविधिकथनं नाम
चतुःसप्ततिमोऽध्यायः ।।७४।।

से युक्त उद्भव नाम की मुद्रा से समन्वित कर शिव के लिए यह श्लोक पढ़ना चाहिए–गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते। अर्थात् हे गोपनीयों में गोपनीय अपनी रक्षा के लिए किये गये मेरे जप को ग्रहण कीजिये जिससे आपकी कृपा से और आपके रहते हुए मुझे सिद्धि-भोग की कामनावाला व्यक्ति प्राप्त हो सके ।।७७-७८ ।। इस श्लोक को पढ़ते हुए मूलमन्त्र से दाहिने हाथ में शम्भु के लिए अर्घ्य-जल का निवेदन करना चाहिए। उस समय याजक को यह ध्यान करना चाहिए कि 'हे देव, मैं जो कुछ भी पाप-पुण्य करता हूँ वह सब शिवाधार ही है, इसलिए आप मेरे पापों का नाश करें ।।७९-८०½।। शिव ही दाता हैं, शिव ही भोक्ता हैं, शिव ही सम्पूर्ण जगत् हैं। शिव की सर्वत्र विजय होती है, जो शिव है वही मैं हूँ। इस प्रकार दो श्लोकों को पढ़ते हुए देवता के लिए जप समर्पित करना चाहिए ।।८१-८२।। शिव के अङ्गों को दशांश अर्घ्य प्रदान करके स्तुति करनी चाहिए। तदनन्तर देवता की प्रदक्षिणा करके अष्टमूर्ति शंकर के लिए साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए और ध्यान इत्यादि करते हुए अग्नि आदि में यजन करना चाहिए ।।८३-८४।।

श्री अग्निमहापुराण में शिवपूजाविधान-वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७४।।

---

१ ग. घ. ङ. खड्ग र°। २ घ. ङ.° वतु मे। ३ क. ग. ङ. च. °ठित्वाऽऽर्थ द°। घ.° ठित्वाऽऽद्यं द°। ४ च निवेशयेत्।
५ ख. च° चित्कर्म हे। ६ क. ङ. च. याजति। ७ क. ख. ग. ङ. च. °त्त्वाऽर्घं स्तु°।

CC-0. Nanaji Deshmukh Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजाङ्गहोमविधिः

ईश्वर उवाच

अर्घपात्रकरो यायादग्न्यागारं सुसंवृतः । यागोपकरणं सर्वं दिव्यं (व्य) दृष्ट्वा (ष्ट्या) च कल्पयेत् ।।१।।
उदङ्मुखः कुण्डमीक्षेत्प्रोक्षणं ताडनं कुशैः । विदध्यादस्त्रमन्त्रेण[1] वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम् ।।२।।
खड्गेन खातमुद्धारं पूरणं समतामपि । कुर्वीत वर्मणा सेकं कुट्टनं तु शराणुना[2] ।।३।।
संमार्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम् । त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्मणाऽभ्यर्चनं सदा ।।४।।
रेखात्रयमुदक्कुर्यादेकां पूर्वाननामधः । कुशेन च शिवास्त्रेण[3] यद्वा तासां विपर्ययः ।।५।।
वज्रीकरमणमंत्रेण[4] हृदा दर्भैश्चतुष्पथम् । अक्षपात्रं तनुत्रेण विन्यसेद्विष्टरं हृदा ।।६।।
हृदा वागीश्वरीं तत्र ईशमावाह्य[5] पूजयेत् । वह्निं सदाश्रयानीतं शुद्धपात्रोपरि स्थितम् ।।७।।
क्रव्यादांशं परित्यज्य वीक्षणादिविशोधितम् । औदार्यं चैन्दवं[6] मौनमेकीकृत्यानलत्रयम् ।।८।।
ॐ हूं[7] वह्निचैतन्याय वह्निबीजेन विन्यसेत् । संहितामन्त्रितं वह्निं धेनुमुद्रामृतीकृतम्[8] ।।९।।

अध्याय ७५

शिवपूजांगहोम-विधि

ईश्वर बोले–यजमान को हाथ में अर्घ्यपात्र लेकर समाहित चित्त होकर अग्नि-गृह में जाना चाहिए। समस्त यज्ञ-सामग्री को भलीभाँति देखकर दिव्य बना ले ।।१।। उत्तराभिमुख होकर कुण्ड का अवलोकन करके अस्त्र-मन्त्र से कुशों से ताड़न और प्रेक्षण करे। कवच-मन्त्र से अभ्युक्षण (सेचन) करना युक्तियुक्त है ।।२।। खड्ग से गड्ढा खोदकर उसको बराबर भी कर दे। वर्म (मन्त्र) से जल छिड़ककर शरमन्त्र से भूमि को कूटने का कार्य करे। सम्मार्जन, समालेपन, कलात्मक-चित्रण, त्रिसूत्रीधारण और पूजन सर्वदा वर्म-मन्त्र से करना चाहिए। कुश या त्रिशूल से ऊपर की ओर तीन रेखाएँ खींचे। एक रेखा उन तीनों के नीचे पश्चिम से पूर्व की ओर खींचे अथवा इसके विपरीत ही रेखाएँ खींचे ।।३-५।। अस्त्र-मन्त्र से वज्रीकरण करे और हृन्मन्त्र से बिस्तर बिछाये। हृन्मन्त्र से उस चतुष्पथ पर वागीश्वरी और ईश का आवाहन करके शुद्ध पात्र के ऊपर रखकर सद्ब्राह्मण द्वारा लायी अग्नि की पूजा करे ।।६-७।। असुरों का भाग छोड़कर (यज्ञ-सामग्री का) भलीभाँति निरीक्षण करके शुद्ध कर ले। औदार्य (जठराग्नि), ऐन्दव (वडवाग्नि) और (सामान्य) अग्नि को 'ॐ हूं वह्निचैतन्याय' इत्यादि वह्नि-बीज से स्थापित करे। संहिता के द्वारा आमन्त्रित अग्नि का धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके अस्त्र-मन्त्र से रक्षित करे तथा कवच से उसको अवगुण्ठित करके पूजन करे और

---

१ ख. ग. °ण धर्मेणाभ्यु°। २ घ. °रात्मना। ३ ख. °ण हृदा ता°। ४ क. ङ. च. °मस्त्रेण। ५ क. ङ. च. °माराध्य पू°। ६ ख. ग. चैन्धनं भौ°। ७ ख. ग. हुं। ८ ख. मृतं हृतं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्षितं हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठितम् । पूजितं त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योर्ध्वं प्रदक्षिणम् ।।१०।।
शवबीजमिति ध्यात्वा वागीशागर्भगोचरे । वागीश्वरेण देवेन क्षिप्यमाणं विभावयेत् ।।११।।
भूमिष्ठजानुको मन्त्री हृदाऽऽत्मसंमुखं क्षिपेत् । ततोऽन्तःस्थितबीजस्य नाभिदेशे समूहनम् ।।१२।।
संभृतिं परिधानस्य शौचमाचमनं हृदा । गर्भाग्नेः पूजनं कृत्वा तद्रक्षार्थं शराणुना ।।१३।।
बध्नीयाद्गर्भजं देव्याः कङ्कणं पाणिपल्लवे । गर्भाधानाय संपूज्य सद्योजातेन पावकम् ।।१४।।
ततो हृदयमन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् । पुंसवनाय वामेन तृतीये मासि पूजयेत् ।।१५।।
आहुतित्रितयं दद्याच्छिरसाऽम्बुकणान्वितम् । सीमन्तोन्नयनं षष्ठे मासि संपूज्य रूपिणा[1] ।।१६।।
जुहुयादाहुतीस्तिस्रः शिखया शिखयैव तु । वक्त्राङ्गकल्पनां कुर्याद्वक्त्रोद्घाटननिष्कृती ।।१७।।
जातकर्मनृकर्मभ्यां दशमे मासि पूर्ववत् । वह्निं संधुक्ष्य[2] दर्भाद्यैः स्नानं गर्भमलापहम् ।।१८।।
सुवर्णबन्धनं देव्या[3] कृतं ध्यात्वा हृदाऽर्चयेत् । सद्यः सूतकनाशाय प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ।।१९।।
कुण्डं[4] तु बहिरस्त्रेण 'ताडयेद्वर्मणोत्क्षिपेत्[5] । अस्त्रेणोत्तरपूर्वाग्रान्मेखलासु बहिः कुशान् ।।२०।।
आस्थाप्य[7] स्थापयेत्तेषु हृदा परिधिविस्तरम्[8] । वक्त्राणामस्त्रमन्त्रेण ततो नालापनुत्तये ।।२१।।
समिधः पञ्च होतव्याः प्रान्ते मूसे घृतप्लुता । ब्रह्माणं शंकरं विष्णुमनन्तं च हृदार्चयेत्[9] ।।२२।।

तीन बार कुण्ड के ऊपर हाथ को घुमाकर प्रदक्षिणा करे ।।८-१०।। वागीश के मध्य में दिखायी पड़नेवाले वागीश्वर से फेंके गये (छवि) का शिव-बीज मन्त्र से ध्यान करके उसकी विभावना करे ।।११।। मन्त्री (यजमान) भूमि पर घुटने टेककर हृन्मन्त्र से अपनी ओर पात्र का मुख कर अग्नि को कुण्ड में छोड़े। तदनन्तर कुण्डनाभि में मध्यस्थित बीज का समूहन करे, वस्त्र को भलीभाँति पहनकर हृन्मन्त्र से अपने को पवित्रकर आचमन करे। अग्निकुण्ड के गर्भ में स्थित अग्नि की पूजा करके उसकी रक्षा के लिए शराणु मन्त्र से कंकण को देवी के पल्लव के समान कोमल कर में बाँध दे ।।१२-१३।। गर्भाधान के लिए अग्नि की 'सद्योजात' मन्त्र से पूजा करके हृदयमन्त्र से तीन आहुतियाँ दे। पुंसवन के लिए तीसरे महीने में वाममन्त्र से अग्नि का पूजन करके शिर (मन्त्र) से जलकण से मिश्रित तीन आहुतियाँ दे। छठे मास में सीमन्तोन्नयन की पूजा करनी चाहिए ।।१४-१६।। तदनन्तर शिखा मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे तथा शिखामन्त्र से ही मुख और अङ्ग आदि की कल्पना करे। दसवें महीने में जातकर्म और नृकर्म करे। पूर्व की ही भाँति अग्नि को कुश आदि से प्रज्वलित कर गर्भ-दोष को दूर करनेवाला स्नान करे। देवी के द्वारा किये गये सुवर्ण बन्धन का हृन्मन्त्र से ध्यान कर पूजन करे। तत्काल-सूतक-दोष की निवृत्ति के लिए अस्त्रजल से सिंचन करे ।।१७-१९।। अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके उसके कुण्ड को बाहर की ओर से ताड़न करे, कवच से ऊपर की ओर जल फेंके, अस्त्र से कुण्ड की मेखला पर बाहर की ओर उत्तर और पूर्व की ओर अभिमुख करके कुशों को रखे ।।२०।। उन पर परिधि के विस्तार के बराबर मुख बनावे। तदनन्तर अस्त्रमन्त्र से नाल काटने के लिए घी में डुबोकर पाँच समिधाओं की आहुतियाँ दे। ब्रह्मा, शङ्कर, अनन्त और विष्णु का हृदय (मन्त्र) से पूजन करे ।।२१-२२।। दूब और अक्षत से क्रमशः परिधि-मण्डल

---

१ क. ङ. च. दारुणा। २ क. ङ. संवीक्ष्य। च. संमीक्ष्य। ३ क. ख. ग. ङ. च. देव्याः। ४ ख. ग. घ. कुम्भ°। ५ ख. ग. °येद्धर्म°। ६ घ. °णोक्षयेत्। ७ क. ङ. च. आस्तीर्य। ८ ख. °विष्ठिर°। ९ क. ङ. च. °त्। पूर्वाभ्यन्तरप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दूर्वाक्षतैश्च पर्यन्तं परिधिस्थाननुक्रमात्। इन्द्रादीशानपर्यन्तान्विष्टरस्थाननुक्रमात् ।।२३।।
अग्नेरभिमुखीभूतान्[1] निजदिक्षु हृदार्चयेत्। निवार्य विघ्नसंघातबालकं पालयिष्यथ[2] ।।२४।।
शैवीमाज्ञामिमां तेषां श्रावयेत्तदनन्तरम्। गृहीत्वा सुक्स्रुवावूर्ध्ववदनाधोमुखौ [3]क्रमात् ।।२५।।
प्रताप्याग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकैः स्पृशेत्। कुशस्पृष्टप्रदेशेषु[4] आयुर्विद्याशिवात्मकम् ।।२६।।
क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्य हां हीं हूं संरवैः क्रमात्। स्रुचि शक्तिं स्रुवे शंभुं विन्यस्य हृदयाणुना ।।२७।।
त्रिसूत्रीवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः। कुशानामुपरिष्टात्तौ स्थापयित्वा स्वदक्षिणे ।।२८।।
गव्यमाज्यं समादाय वीक्षणादिविशोधितम्। स्वकां ब्रह्ममयीं मूर्तिं संचिन्त्याऽऽदाय तद्घृतम् ।।२९।।
कुण्डस्योर्ध्वं हृदावर्त्य[5] भ्रामयित्वाऽग्निगोचरे। पुनर्विष्णुमयीं ध्यात्वा घृतमीशानगोचरे ।।३०।।
धृत्वाऽऽदाय कुशाग्रेण स्वाहान्तं शिरसाऽणुना। जुहुयाद्विष्णवे विन्दुं रुद्ररूपमनन्तरम्[6] ।।३१।।
भावयन्निजमात्मानं नाभौ धृत्वा प्लवेत्ततः। प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः ।।३२।।
घृताभ्यां सम्मुखं[7] वह्नेरस्त्रेणाऽऽप्लवमाचरेत्। हृदाऽऽत्मसंमुखं तद्वत्कुर्यात्संप्लवनं ततः ।।३३।।
हृदालब्धदग्धदर्भं शस्त्रक्षेपात्पवित्रयेत्। दीप्तेनापरदर्भेण [8]नीराज्यान्येन[9] दीपयेत् ।।३४।।
अस्त्रमन्त्रेणनिर्दग्धं वह्नौ दर्भं पुनः क्षिपेत्। क्षिप्त्वा घृते कृतग्रन्थिकुशं प्रादेशसंमितम् ।।३५।।

पर स्थापित आसन पर इन्द्र (पूर्व) दिशा से लेकर ईशानपर्यन्त बैठकर देवों की पूजा करे ।।२३।। हृद् मन्त्र से अग्नि की ओर अभिमुख देवों की उनकी दिशाओं में पूजा करके 'सब विघ्नों को दूर कर बालक का पालन करो'–शिव की इस आज्ञा को देवताओं से निवेदित करे। तत्पश्चात् स्रुक् और स्रुवा को क्रमशः ऊर्ध्वमुख और अधोमुख करके अग्नि पर तीन बार तपावे, कुश के मूल से उनके मूल को, मध्य से मध्य को और शिखा से शिखा को स्पर्श कराये ।।२४–२५$\frac{1}{2}$।। कुश से स्पर्श किये हुए भागों पर आत्मा, विद्या और शिव तत्त्वों का क्रमशः हां हीं हूं का उच्चारण करके न्यास करे। स्रुक् पर शक्ति को और स्रुव पर शम्भु को हृदय मन्त्र से न्यस्त करे ।।२६–२७।। त्रिसूत्री उनके गले में लपेटकर पुष्प, अक्षत और चन्दन आदि से पूजन करके दक्षिण की ओर कुशों पर रखे ।।२८।। गाय के घी को लेकर भलीभाँति निरीक्षण करके शुद्ध कर ले। अपनी ब्रह्ममयी मूर्ति का चिन्तन करके घी को हाथ में ले ले और हृद्मन्त्र से कुण्ड के ऊपर अग्नि के चारों ओर घुमाये, फिर अपनी विष्णुमयी मूर्ति का ध्यान करके उस घृत को ईशानकोण में रखकर कुशाग्र से उस घृत का स्वाहान्त मन्त्र से, शिर (मन्त्र) से या अणु मन्त्र से विष्णु के निमित्त हवन करे। तदनन्तर अपने-आप में रुद्र की भावना करके घी को अपनी नाभि में लगाये ।।२९–३१$\frac{1}{2}$।। प्रादेश परिमाण के दो कुशों को अँगूठा और अनामिका के अग्रभाग के बीच पकड़कर अग्नि में सम्मुख होकर उन कुशाओं से घृत लेकर छिड़के, फिर हृद्-मन्त्र से आत्माभिमुख होकर घृत छिड़के ।।३२–३३।। हृद् मन्त्र से हाथ में लिये हुए कुश के जल जाने पर शस्त्र-क्षेप के द्वारा पवित्र करे। एक जलते हुए कुश से उसकी आरती करके फिर दूसरे कुश से उसे जलावे। उस जले हुए कुश को अस्त्र-मन्त्र से पुनः अग्नि ही में डाल दे ।।३४–३४$\frac{1}{2}$।। घी में प्रादेश परिमाण

---

१ क. ङ. च. °तान्नयदि°। २ क. ङ. च. °थ। गौरीमा°। ३ घ. °मुखैः क्र°। ४ ख. ग. घ. °शे तु आत्मविद्या°। ५ क. च. °र्त्य तापयि°। ६ क. ङ. च. °म् तावन्निजयमात्मानं नाभौ वृद्धायवेत्ततः। ७ क. ङ. च. °ख बाहुच्छत्रणोत्पप्लं°। ८ घ. °ण निवाह्यानेन। ९ ख. नीवाह्यानेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पक्षद्वयमिडादीनां त्रयं[1] बाह्ये विभावयेत् । क्रमाद्भागत्रयादाज्यं स्रुवेणाऽऽदाय होमयेत् ।।३६।।
स्वेत्यग्नौ हां घृते भागं शेषमाज्यं क्षिपेत्क्रमात् । ॐ हामग्नये स्वाहा। ॐ हां सोमाय स्वाहा ।
ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।।३७।।
उद्घाटनाय नेत्राणामग्नेर्नेत्रत्रये मुखे । स्रुवेण घृतपूर्णेन चतुर्थीमाहुतिं यजेत् ।।३८।।
ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।।३९।।
अभिमन्त्र्य षडङ्गेन बोधयेद्धेनुमुद्रया । अवगुण्ठ्य तनुत्रेण रक्षेदाज्यं शराणुना ।।४०।।
हृदाज्यविन्दुविक्षेपात्कुर्यादभ्युक्ष्य शोधनम् । वक्त्राभिघारसंघानं वक्त्रैकीकरणं तथा ।।४१।।
ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा । ॐ हां वामदेवाय स्वाहा । ॐ हामघोराय स्वाहा ।
ॐ तत्पुरुषाय स्वाहा । ॐ हामीशानाय स्वाहा[2] ।।४२।।
इत्येकैकघृताहुत्या कुर्याद्वक्त्राभिघारकम् ।।४३।।
ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा । ॐ हां वामदेवाघोराभ्यां[3] स्वाहा ।
ॐ हामघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा । ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा ।।४४।।
इतिवक्त्रानुसन्धानं मन्त्रैरेभिः क्रमाच्चरेत् । अग्नितो गतया वायुं निर्ऋतादिशिवान्तया ।
वक्त्राणामेकतां कुर्यात्स्रुवेण घृतधारया ।।४५।।
ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोरतत्पुरुषेशानेभ्यः[4] स्वाहा ।।४६।।
इतीष्टवक्त्रे[5] वक्त्राणामन्तर्भावस्तदाकृतिः । ईशेन[6] वह्निमभ्यर्च्य दत्त्वाऽस्त्रेणाऽऽहुतित्रयम् ।।४७।।

लम्बा और गाँठ लगा हुआ कुश रखकर बाह्य भाग में इड़ा आदि तीन नाड़ियों और दो पक्षों की सम्भावना करे। क्रम से स्रुवा से उन तीनों भागों में से घी लेकर स्वाहा का उच्चारण करने पर अग्नि में, हां का उच्चारण करने पर घी के पात्र में इस प्रकार शेष घी को भिन्न-भिन्न पात्र में छोड़े। मन्त्र यह है–"ॐ हामग्नये स्वाहा', ॐ हां सोमाय स्वाहा', ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इत्यादि ।।३६-३७।। नेत्र खोलने के लिए अग्निदेव के तीन नेत्रों को लक्षित कर घृतपूर्ण स्रुवा से उपर्युक्त मन्त्रों से हवन करे। घी से स्रुवा को भरकर 'ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' का उच्चारण करके अग्निमुख में चौथी आहुति दे ।।३८-३९।। षडङ्ग से अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा से उद्बोधन करे, कवच से अवगुण्ठन कर शर-मन्त्र से घी का रक्षण करे ।।४०।। हृद् से घृत विन्दु का विक्षेप करके सिञ्चन, शोधन, वक्त्राभिघार-संधान और मुखों का एकीकरण करे ।।४१।। 'ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा', 'ॐ हां वामदेवाय स्वाहा', 'ॐ हामघोराय स्वाहा', 'ॐ तत्पुरुषाय स्वाहा', 'ॐ हामीशानाय स्वाहा'–इन मन्त्रों से एक-एक घृताहुति देकर वक्त्राभिघार करना चाहिए ।।४२-४३।। 'ॐ हां सद्योजात-देवाभ्यां स्वाहा····ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से मुखानुसन्धान करे ।।४४।। अग्निकोण से प्रारम्भ करके वायु दिशा तक, नैर्ऋतकोण से ईशान दिशा पर्यन्त स्रुवा को घी से भरकर उसकी धार से 'ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोर-तत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से मुखों को एक में मिलाये ।।४५-४६।। इस प्रकार इष्ट मुख से अन्य मुखों को मिलाने पर सब एक ही आकार के हो जाते हैं। ईश मन्त्र से अग्नि की पूजा करके अस्त्र मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे ।।४७।। तत्पश्चात् 'हे हुताशन!

---

१ घ° यं चाऽऽज्ये वि°। २ क. ङ. च. °हा। एकैककया घृ°। ३ क. ख. ग. ङ. च. वामाघो°। ४ क. ङ. च. वामाघो°। ५ क. ङ. च. इत्यष्ट°। ६ क. ऐशेन। ङ. च. ईशाने।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्यात्सर्वात्मना नाम शिवाग्निस्त्वं हुताशन। हृदार्चितौ [1]विसृज्याग्नौ[2] पितरौ विधिपूरणीम् ।।४८।।
मूलेन वौषडन्तेन दद्यात्पूर्णां यथाविधि। ततो हृदम्बुजे[3] साङ्गं सासनं भासुरं परम् ।।४९।।
यजेत्पूर्ववदावाह्य प्रार्थ्याऽऽज्ञां तर्पयेच्छिवम्। यागाग्निशिवयोः कृत्वा नाडीसंधानमात्मना ।।५०।।
शक्त्या मूलाणुना होमं कुर्यादङ्कैर्दशांशतः[4]। घृतस्य कार्शिको[5] होमः क्षीरस्य मधुनस्तथा ।।५१।।
शुक्तिमात्राऽऽहुतिर्दध्नः प्रसृतिः[6] पायसस्य तु। यथावत्सर्वभक्षाणां लाजानां मुष्टिसंमितम् ।।५२।।
खण्डत्रयं तु मूलानां फलानां तु प्रमाणतः। ग्रामार्धमात्रमन्नानां सूक्ष्माणि पञ्च होमयेत् ।।५३।।
इक्षोरापर्विकं मानं लतानामङ्गुलद्वयम्[7]। पुष्पं पत्रं स्वमानेन समिधा तु दशाङ्गुलम् ।।५४।।
चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीयक्षकर्दमान्। [8]कलायसंमितानेतान्गुग्गुल[9] बदरास्थिवत् ।।५५।।
कन्दानामष्टमं भागं जुहुयाद्विधिवत्परम्। होमं निर्वर्तयेदेवं ब्रह्मबीजपदैस्ततः ।।५६।।
घृतेन स्रुचि पूर्णायां निधायाधोमुखं स्रुवम्। स्रुगग्रे पुष्पमारोप्य पश्चाद्वामेन पाणिना ।।५७।।
पुनः सव्येन तौ धृत्वा शङ्खसंनिभमुद्रया। समुद्गतोर्ध्वकायश्च समपादः समुत्थितः ।।५८।।
नाभौ तन्मूलमाधाय स्रुगग्रव्यग्रलोचनः। ब्रह्मादिकारणत्यागाद्विनिःसृत्य[10] सुषुम्नया[11] ।।५९।।
वामस्तनान्तमानीय[12] तयोर्मूलमतन्द्रितः। मूलमन्त्रमविस्पष्टं वौषडन्तं समुच्चरेत् ।।६०।।

तुम सब प्रकार से निश्चय ही शिवाग्नि हो–इस प्रकार प्रार्थना करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति दे। यह पूर्णाहुति विधिपूर्वक वौषडन्त मूलमन्त्र से देनी चाहिए। इसके अनन्तर हृदय कमल पर अङ्ग और आसन सहित तेजस्वी शिव का पूजन करे। पहले आवाहन कर प्रार्थना करे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त करके तर्पण करे ।।४८–४९½।। आत्मा द्वारा यागाग्नि और शिव के बीच नाड़ी संविधान कर शक्ति के अनुसार मूलाग्र से और अङ्गों से दशांश हवन करे। घी का हवन एक पैसे के चौथाई परिमाण में करना चाहिए और दूध, मधु, दही का एक सीप के परिमाण में, अन्य खाद्य पदार्थों और धान के लावे को मुट्ठी भर के परिमाण में हवन करना चाहिए ।।५०–५२।। जड़वाले फल को तीन खण्ड करके और फलों का उनके परिमाण के अनुसार आधे ग्रास के परिमाण में हवन करे। अन्य अन्नों की सूक्ष्म मात्रा को लेकर पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।।५३।। गन्ने की एक-एक गाँठ का और लताओं के दो-दो अङ्गुल के खण्ड काटकर हवन करे, फूल पत्तियों का तो परिमाण उनके मान के अनुसार ही है, समिधा का मान दस अङ्गुल का है ।।५४।। कर्पूर, चन्दन, केसर और कस्तूरी को मिलाकर बने सुगन्धित पदार्थों का मसूर के बराबर और गुग्गुल को बेर की गुठली के परिमाण में आहुति देनी चाहिए ।।५५।। कन्दों के आठवें भाग को एक आहुति के रूप में दे। इस प्रकार हवन करने के पश्चात् ब्रह्मबीज पद से घी से स्रुक् को परिपूर्ण करके स्रुवा को अधोमुख करके रखे। स्रुक् के अग्र भाग पर एक फूल रखकर बायें हाथ से पकड़े, फिर दाहिने हाथ से उनको पकड़कर शङ्ख के समान मुद्रा बनाये और सिर को ऊँचा किये उठकर खड़ा हो जाय और पैरों को सीधा कर ले ।।५६–५८।। नाभि पर उनके मूल को रखकर स्रुक् के अग्र भाग से नेत्रों को चञ्चल कर ब्रह्मा आदि कारणों के त्याग से सुषुम्ना की ओर से बायें स्तन के अन्त तक उनके मूल को लाकर अनलस भाव से वौषडन्त मूल-मन्त्र का मन्द-मन्द अस्फुट अक्षरों में उच्चारण करे ।।५९–६०।। उस

---

१ घ. सृष्टाग्नौ। २ क. ङ. च. °ज्याग्नेः पि°। ३ ख. ग. हृदाम्बु°। ४ ख. ग. °र्दशाङ्गतः। ५ ख. ग. वार्षिको। ६ क. ङ. च. प्रसूतिः। ७ ख. ग. °लत्रयं°। ८ ख. कपालस°। ९ घ. °ग्गुलं ब°। १० घ. °रणात्या°। ११ क. ङ. च. मुमुक्षया। घ. सुषुम्णया। १२ ख. महस्तान्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तदग्नौ जुहुयादाज्यं यवसंमितधारया । आचमं चन्दनं दत्त्वा ताम्बूलप्रभृतीनपि ।।६१।।
भक्त्या तद्भूतिमावन्द्य विदध्यात्प्रणतिं पराम् । ततो वह्निसमभ्यर्च्य फडन्तास्त्रेण संवरान्[1] ।।६२।।
संहारमुद्रयाऽऽहृत्य क्षमस्वेत्यभिधाय च । भासुरान्परिधीस्तांश्च पूरकेण हृदाऽणुना ।।६३।।
श्रद्धया परमाऽऽत्मीये स्थापयेद्धृदयाम्बुजे[2] । सर्वप्राकाग्रमादाय कृत्वा मण्डलकद्वयम् ।।६४।।
अन्तर्बहिर्बलिं दद्यादाग्नेय्यां कुण्डसंनिधौ । ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा पूर्वे मातृभ्यो दक्षिणे तथा ।।६५।।
वरुणे हां गणेभ्यश्च स्वाहा तेभ्यस्त्वयं बलिः । उत्तरे हां च यक्षेभ्यः ईशाने हां[3] ग्रहैः[4] सह ।।६६।।
अग्नौ[5] हामसुरेभ्यश्च रक्षोभ्यो नैर्ऋते बलिः । वायव्ये हां च नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च मध्यतः ।।६७।।
हां राशिभ्यः स्वाहा वह्नौ विश्वेभ्यो नैर्ऋते तथा । वारुण्यां[6] क्षेत्रपालाय अन्तर्बलिरुदाहृतः ।।६८।।
द्वितीये मण्डले बाह्य इन्द्राग्नेर्यमाय[7] च । नैर्ऋताय जलेशाय वायवे धनरक्षिणे ।।६९।।
ईशानाय च पूर्वादावीशाने[8] ब्रह्मणे नमः । नैर्ऋते विष्णवे स्वाहा वायसादेर्बलिर्बहिः ।।७०।।
बलिद्वयगतान्मन्त्रान्संहरेन्मुद्रयाऽऽत्मनि[9] ।।७१।।

इत्याग्नेये महापुराणे शिवपूजाङ्गहोमविधिनिरूपणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५।।

घी को यव के परिमाण में एक धारा के रूप में अग्नि में आहुति दे। पुनः आचमन, चन्दन, पान आदि लेकर भक्तिपूर्वक उसकी विभूति की वन्दना कर अत्यन्त विनीत भाव से वन्दना करे। तदनन्तर फडन्त अस्त्र मन्त्र से अग्नि की पूजा करके संहारमुद्रा में लाकर 'क्षमा करो' का उच्चारण करके तेजस्वी देवताओं और उन परिधियों को पूरक के साथ हृद् और अणु मन्त्रों से अत्यन्त श्रद्धा से अपने हृदय-कमल में स्थापित करे। सब प्रकार के बने हुए पाक में से थोड़ा-सा लेकर दो मण्डल बनाये ।।६१-६४।। कुण्ड के समीप ही अग्निकोण में अन्तः और बहिः बलि दे। बलि मन्त्र ये हैं-'ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा' मन्त्र से पूर्व में, 'मातृभ्यः स्वाहा' से दक्षिण में, 'हां गणेभ्यः स्वाहा' से पश्चिम में, 'तेभ्यः अयं बलिः', 'हां च यक्षेभ्यः' मन्त्र से उत्तर में, 'हां ग्रहेभ्यः' मन्त्र से ईशानकोण में, 'हामसुरेभ्यः' मन्त्र से अग्निकोण में, 'हां रक्षोभ्यो' मन्त्र से नैर्ऋत में, 'हां नागेभ्यः' मन्त्र से वायव्यकोण में, 'हां नक्षत्रेभ्यः' मन्त्र से मध्य में, 'हां राशिभ्यः स्वाहा' मन्त्र से अग्नि में, 'विश्वेभ्यो०' मन्त्र से नैर्ऋत में, 'क्षेत्रपालाय स्वाहा' मन्त्र से पश्चिम में बलि दे। यह बलि अन्तर्बलि कही गयी है ।।६५-६८।। दूसरे मण्डल के बाह्य भाग में इन्द्राय, अग्नये, यमाय, नैर्ऋताय, जलेशाय, वायवे, धनरक्षिणे और ईशानाय के साथ स्वाहा जोड़कर क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में बलि दे। ईशानकोण में 'ब्रह्मणे नमः' से और नैर्ऋतकोण में 'विष्णवे स्वाहा' मन्त्र से वायस आदि को बहिर्बलि दे। उपर्युक्त दो प्रकार की बलियों में प्रयुक्त मन्त्रों को अपनी आत्मा में संहारमुद्रा द्वारा संहार करे ।।६९-७१।।

श्री अग्निमहापुराण में शिवपूजांगहोम-विधि वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७५।।

---

१ ख. ग. संबरा°। २ क. ङ. च. °येच्च हृदम्बु°। घ. येत हृदम्बु। ३ ख. ग. हां गुहेभ्यश्च। अ°। ४ घ. ग्रहेभ्य उ। अ°। ५ क. ख. ग. ङ. च. °ग्नौ होम°। ६ ख. ग. वायव्यां। ७ घ. °याग्नियमा°। ८ क. ङ. च. °शानब्र°। ९ क. घ. ङ. च. °न्संहारमुद्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

चण्डपूजा

ईश्वर उवाच

ततः शिवान्तकं गत्वा पूजाहोमादिकं मम। गृहाण भगवन्पुण्यफलमित्यभिधाय च ।।१।।
अर्घ्योदकेन[1] देवाय मुद्रयोद्भवसंज्ञया। हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयेत् ।।२।।
ततः पूर्ववदभ्यर्च्य स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च। अर्घ्यं पराङ्मुखं दत्त्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च ।।३।।
नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फडन्तेनाऽऽत्मसंचयम्। संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्तिमन्त्रेण योजयेत् ।।४।।
स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्रसंहारमात्मनि[2]। नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम् ।।५।।
ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये। ॐ[3] धू लिचण्डेश्वराय हूं फट्[4] स्वाहा तमाह्वयेत् ।।६।।
चण्डहृदयाय 'हूं फडो चण्डशिरसे तथा। ॐ चण्डशिखायै हूं फट् चण्डायुष्कवचाय च ।।७।।
चण्डास्त्राय तथा हूं[6] फट् चण्डं रुद्राग्निजं स्मरेत्। शूलटङ्कधरं कृष्णं साक्षसूत्रकमण्डलुम्[7] ।।८।।
टङ्काकारेऽर्धचन्द्रे वा चतुर्वक्त्रं प्रपूजयेत्। यथाशक्ति जपं कुर्यादङ्गानां[8] तु दशांशतः ।।९।।

अध्याय ७६

चण्ड-पूजा

ईश्वर बोले–इसके पश्चात् शिव के समीप जाकर 'भगवन्! मेरे पूजा, होम आदि और पुण्य फल को ग्रहण कीजिये', ऐसा कहकर स्थिरचित्त होकर देवता को उद्भवमुद्रा के द्वारा हृद्बीज युक्त मूल मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करे ।।१-२।। पुनः पूर्व की भाँति पूजन करके स्तोत्रों से स्तुति और प्रणाम करे। देवता के सम्मुख होकर अर्घ्य देकर 'आप मुझे क्षमा करें', ऐसा कहकर नाराच मुद्रा से फडन्त अस्त्र मन्त्र से आत्मा का संचय करे। दिव्य मुद्रा के द्वारा संहार कर लिङ्ग को मूर्ति मन्त्र से युक्त कर दे ।।३-४।। वेदी पर देव की अर्चना हो जाने पर अपने अन्तःकरण में मन्त्र-समूह का विनियोजन करके विधिपूर्वक चण्ड-पूजन करे ।।५।। उस समय, 'ॐ चण्डेशाय नमः' से चण्ड देवता को नमस्कार करे। फिर मण्डप के मध्य में 'चण्डमूर्तये' से चण्ड की पूजा करे। 'ॐ धूलिचण्डेश्वराय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से आवाहन करे। 'चण्डहृदयाय हुं फट्', 'ॐ चण्डशिरसे' तथा 'ॐ चण्डशिखायै हुं फट्', 'चण्डायुष्कवचाय', 'चण्डास्त्राय' तथा 'हुं फट्' मन्त्रों में रुद्राग्नि से उत्पन्न चण्ड का स्मरण करे ।। ६-७ $\frac{1}{2}$।। टङ्काकार या अर्धचन्द्र पर शूलटङ्कधारी, अक्षसूत्र और कमण्डलु से युक्त कृष्णवर्ण और चार मुखवाले चण्ड का पूजन करे। यथाशक्ति अङ्गों का दशमांश जप करे ।।८-९।। गाय, भूमि, सोना,

---

१ क. ख. ग. छ. च. अर्घोद°। २ क. °संहार°। घ. °संघातमा। ङ. °सहतिमा°। च. संहतमा°। ३ क. ङ. च. ॐ ध्वनि च°। ४ ख.ग. हरूं। ५ ख. ग. हरूं। ६ ख. ग. हूं च हुं। ७ क. ङ. च. म्°। ढक्काका°। ८ क. ङ. च. °नां तद्दशां°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम् । विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ।।१०।।
लेह्यचोष्याद्यन्नवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम् । निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं[1] प्रदत्तं तु शिवाज्ञया ।।११।।
सर्वमेतत्क्रियाकाण्डं मया चण्ड तवाज्ञया । न्यूनाधिकं कृतं मोहात्परिपूर्णं सदाऽस्तु मे ।।१२।।
इति विज्ञाप्य देवेशं दत्त्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन् । संहारमूर्तिमन्त्रेण शनैः संहारमुद्रया ।।१३।।
पूरकान्वितमूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत् । निर्माल्यापनयस्थानं लिम्पेद्गोमयवारिणा ।।१४।।
प्रोक्ष्यार्घ्यादि[2] विसृज्याथ आचान्तोऽन्यत्समाचरेत् ।।१५।।

इत्याग्नेये महापुराणे चण्डपूजाकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।७६।।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कपिलापूजनम्

ईश्वर उवाच

कपिलापूजनं वक्ष्ये एभिर्मन्त्रैर्यजेच्च गाम् । ॐ कपिले नन्दे नमः[3] कपिले भद्रिके नमः[4] ।।१।।
कपिले सुशीले नमः कपिले सुरभिप्रभे । ॐ कपिले सुमनसे[5] भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ।।२।।

वस्त्र, मणि और स्वर्ण के आभूषण को छोड़कर शेष निर्माल्य चण्डेश को अर्पित कर दे। अर्पण मन्त्र यह है– मैं चाटने-चूसने और अन्य प्रकार के भोजन पदार्थों को ताम्बूल, माला, लेप, निर्माल्य और भोजन को शिव की आज्ञा से आपको प्रदान कर रहा हूँ। हे चण्ड, जो कुछ यह कर्मकाण्ड आपसे आज्ञा लेकर मैंने किया है, इसमें अज्ञानवश जो कुछ न्यूनता या अधिकता हुई वह सब-कुछ परिपूर्ण हो जाय' ।।१०-१२।। इस प्रकार देवेश चण्ड से निवेदन करके अर्घ्य प्रदान करे। देवता का स्मरण करता हुआ संहारमूर्ति मन्त्र से धीरे-धीरे संहारमुद्रा के द्वारा पूरक प्राणायाम से युक्त मूल मन्त्र से मन्त्रों को आत्मा में युक्त करे। निर्माल्य जहाँ चढ़ाया गया हो वहाँ से उसको हटाकर गोबर से लीप दे। उसके ऊपर शुद्ध जल छिड़ककर अर्घ्य आदि दे और आचमन के अनन्तर अन्य कार्यों को करे ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में चण्डपूजा वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७६।।

अध्याय ७७

कपिला-पूजन

शिव बोले–अब मैं कपिला-पूजन का वर्णन कर रहा हूँ। इन मन्त्रों से गाय की पूजा करे–'ॐ कपिले नन्दे नमः', 'कपिले भद्रिके नमः', 'कपिले सुशीले नमः', 'कपिले सुरभिप्रभे', 'ॐ कपिले भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ।।१-२।।

---

१ क. ङ. तासां। च तोयं। २ ख. °र्घ्याथ विमृज्या°। ३ ख. ग. घ. °नम ॐ क°। ४ ख. घ. °मः ॐ क°। ५ घ. °से नम ॐ भु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे। गृहाण वरदे ग्रासमीप्सितार्थं च देहि मे ।।३।।
वन्दिताऽसि वशिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता[1]। कपिले हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।४।।
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च। गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहं ।।५।।
दत्तं गृहाण[2] मे ग्रासं जप्त्वाऽस्यां निर्मलः शिवः। प्रार्च्य विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमेन्नरः ।।६।।
यजेत्स्नात्वा तु मध्याह्ने अष्टपुष्पिकया शिवम्। पीठमूर्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ।।७।।
मध्याह्ने भोजनागारे सुलिप्ते पाकमानयेत्। ततो मृत्युञ्जयेनैव वौषडन्तेन सप्तधा ।।८।।
जप्तैः सदर्भशङ्खस्थैः सिञ्चेत्तं वारिविन्दुभिः। सर्वपाकाग्रमुद्धृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ।।९।।
अथार्धं चुल्लिकाहोमे विधानायोपकल्पयेत्। विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्निं पूरकाहुतिम् ।।१०।।
हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना। वह्निबीजं समादाय कादिस्थानगतिक्रमात् ।।११।।
शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नौ निवेशयेत्। ॐ हामग्नये (च) नमो वै हां सोमाय वै नमः[3] ।।१२।।
सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः। सर्वेभ्यश्चैव[4] देवेभ्यः सर्वविश्वेभ्य[5] एव च ।।१३।।
हामऽग्नये स्विष्टकृते[6] पूर्वादावर्चयेदिमान्। स्वाहान्तमाहुतिं दत्त्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत् ।।१४।।
चुल्ल्या दक्षिणवह्नौ च यजेद्धर्माय वै नमः। वामबाहावधर्माय काञ्जिकादिकभाण्डके ।।१५।।

अयि सौरभेयि, जगन्मातः! देवों को अमृत देनेवाली, वरदे, इस ग्रास को ग्रहण करो और मेरे अभीष्ट को दो ।।३।। बुद्धिमान् विश्वामित्र और वशिष्ठ ने तुम्हारी वन्दना की है। कपिले! मेरे पापों और किये हुए दुष्कर्मों को नष्ट करो ।।४।। गायें सदा मेरे आगे और पीछे रहें, मेरे हृदय में रहें और मैं सर्वदा गौओं के मध्य में ही रहूँ ।।५।। मेरे द्वारा दिये हुए इस ग्रास को ग्रहण करो। गो-मन्त्र का जप करके निर्मल शिव हो जाऊँ। तदनन्तर विद्यापुस्तकों की पूजा करके गुरुचरणों की वन्दना करे ।।६।। दोपहर को स्नान करके अष्टपुष्पिका से शिव की पूजा करे। पीठमूर्ति और शिवाङ्ग को अष्टपुष्पिका कहते हैं ।।७।। मध्याह्न में भलीभाँति लिपे-पुते भोजनागार में पकायी हुई भोजन-सामग्री लाये। तदनन्तर वौषडन्त मृत्युञ्जय मन्त्र का सात बार जप करके शङ्ख में कुश और जल रखकर उन पाकों के ऊपर जल छिड़क दे। सब सामग्रियों में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर शिव को अर्पित करे। आधा भाग चुल्हिका-विधान के लिए अलग कर ले। पहले विधिपूर्वक चूल्हे को शुद्ध कर ले। उसमें अग्नि को प्रज्वलित करके पूर्णाहुति दे ।।८-१०।। नाभ्यग्नि से पुनः रेचकवायु से वह्निबीज को लेकर गतिक्रम से शिवाग्नि के रूप में उसका ध्यान करते हुए उसे चुल्हिका की अग्नि में स्थापित कर दे ।।११-११½।। ॐ हामनग्नये नमो, हां सोमाय नमः, सूर्याय बृहस्पतये, प्रजानां पतये नमः, सर्वेभ्यश्च देवेभ्यः, सर्वविश्वेभ्यो नमः, हामग्नये स्विष्टकृते नमः-इन मन्त्रों से पूर्व आदि दिशाओं में इन देवों की पूजा करके 'अग्नये स्वाहा' 'सोमाय स्वाहा'-आदि मन्त्रों से हवन करे। तत्पश्चात् क्षमा-प्रार्थना करके देवताओं का विसर्जन करना चाहिए ।।१२-१४।। चूल्ही के दक्षिण ओर 'धर्माय वै नमः' मन्त्र से धर्म की पूजा करे। बायीं और सिरका आदि के पात्र पर अर्घ्य की, जलाशय में 'रसपरिवर्तमानाय वरुणाय नमः' इस मन्त्र से वरुण को गृहद्वार

---

१ क. ङ. च. जह्नुना। २ क. घ. ङ. च. गृहणन्तु। ३ क. ङ. च. °वेदये°। ४ क. ङ. च. सर्वशश्चै°। ५ क. ङ. त्र. °श्वेश ग°। ६ क. ङ. च. ते °सर्वदादयर्च्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसपरिवर्तमानाय वरुणाय जलाश्रये[1] । [2]विघ्नराजे [3]गृहद्वारे प्रेषण्यां सुभगे नमः ।।१६।।
ॐ रौद्रिके[4] गिरिके च नमश्चोलूखले यजेत् । बलिप्रियायाऽऽयुधाय नमस्ते मुसले यजेत् ।।१७।।
सम्मार्जन्यां देवतोक्ते कामाय शयनीयके । मध्यस्तम्बे च स्कन्दाय दत्त्वा वास्तुबलिं ततः ।।१८।।
भुञ्जीत पात्रे सौवर्णे पद्मिन्यादिदलादिके । आचार्यः साधकः पुत्रः समयी मौनमास्थितः ।।१९।।
[5]वटाश्वत्थार्कवातारिसर्जभल्लातकांस्त्यजेत्[6] । आपोशा(श)नं[7] पुराऽऽदाय प्राणाद्यैः प्रणवान्वितैः ।।२०।।
स्वाहान्ते चाऽऽहुतीः पञ्च दत्त्वाऽऽदीप्योदरानलम् । नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।।२१।।
एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहाऽऽपोशा(श)नवारिणा । भक्तादिकं निवेद्याथ पिवेच्छेषोदकं नरः ।।२२।।
अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतीस्ततो ददेत् । प्राणाय स्वाहाऽपानाय समानाय ततस्तथा ।।२३।।
उदानाय च व्यानाय भुक्त्वा[8] चुल्ल(ल)कमाचरेत् । अमृतापिधानमसीति[9] शरीरेऽन्नादनाय च ।।२४।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये कपिलापूजनादिविधिकथनं नाम

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

पर विघ्नराज विनायक की और चक्की पर सुभगा की पूजा करनी चाहिए ।।१५-१६।।ओखली पर 'ॐ रौद्रिके गिरिके नमः' मन्त्र से रौद्रिका और गिरिका की पूजा करे। मुसल पर 'बलप्रियाय आयुधाय नमः' मन्त्र से मुसल की, झाड़ू और पलँग पर कामदेव की पूजा करे, मध्य स्तम्भ पर स्कन्द की पूजा करके वास्तुबलि प्रदान करे ।।१७-१८।। तदनन्तर सोने के पात्र या कमल के पत्ते पर स्वयं भोजन करे। आचार्य, पुत्रक, साधक और समयी—चारों मौन होकर भोजन करें ।।१९।। वट, पीपल, मदार, वातारि, सर्ज और भल्लातक को छोड़ दें। पहले आपोशान जल को लेकर प्रणव से युक्त प्राण आदि को स्वाहान्त कर अर्थात् ॐ प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, आदि मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ देकर उदरानल को प्रज्वलित करे ।।२०-२० $\frac{१}{२}$।। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय—इन पाँच उपवायुदेवों का नाम लेकर 'एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहा' मन्त्र से आपोशान के जल सहित भात आदि अर्पित कर 'अमृतोपस्तरणमसि' इत्यादि कहते हुए बचे हुए जल को पी जाय ।।२१-२२।। तदनन्तर 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'समानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा'—मन्त्रों से प्राणाहुति प्रदान कर, भोजन करके, कुल्ला करने के बाद 'अमृतापिधानमसि' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे। ऐसा शरीर में अन्न को आच्छादित करने या पचाने के लिए किया जाता है ।।२३-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में कपिलापूजन-विधि-वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७७।।

---

१ घ. °लाग्नये। २ घ. °राजो गृ°। ३ विघ्नराजे…नमः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ घ. °के नमो गि°। ५ ख. तानि स°। घ. ताविस। ६ क. ङ. च. °तु। अपो°। ७ ख. ग. °न° सुरेशाय। ८ ङ. भुक्त्वाऽऽचनमा°। ९ अमृतापिधान…शरीरेऽन्नादाय च। क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिकथनम्

ईश्वर उवाच

पवित्रारोहणं वक्ष्ये क्रियार्चादिषु[1] पूरणम् । नित्यं[2] तन्नित्यमुद्दिष्टं नैमित्तिकमथापरम् ।।१।।
आषाढादिचतुर्दश्यामथ श्रावणभाद्रयोः । सितासितासु कर्तव्यं चतुर्दश्यष्टमीषु तत् ।।२।।
कुर्यादा कार्तिकीं यावत्तिथौ प्रतिपदादिके । वह्निब्रह्माम्बिकेभास्यनागस्कन्दार्कशूलिनाम् ।।३।।
दुर्गायमेन्द्रगोविन्दस्मरशंभुसुधाभुजाम् । सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम् ।।४।।
कलौ कार्पासजं वाऽपि पट्टपद्मादिसूत्रकम् । प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागो गुहो हरिः ।।५।।
सर्वेशः सर्वदेवाः स्युः क्रमेण नवतन्तुषु । अष्टोत्तरशताद्य[3] (ध्य) र्धं तदर्धं[4] चोत्तमादिकम् ।।६।।
एकाशीत्याऽथवा सूत्रैस्त्रिंशताऽप्यष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ।।७।।
द्वादशाङ्गुल मानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च । लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलिकानि वा ।।८।।
तथैव पिण्डिकास्पर्शं चतुर्थं सार्वदैवतम् । गङ्गावतारकं कार्यं[5] प्रजातेन[6] सुधौतकम् ।।९।।

अध्याय ७८

पवित्राधिवासन-विधि

भगवान् महेश्वर बोले–अब मैं देवपूजन आदि कर्मों को पूर्ण करनेवाले पवित्रारोहण विधि का वर्णन कर रहा हूँ। नित्य किये जानेवाले सन्ध्या आदि कर्म के अङ्गभूत कर्म को नित्य कहते हैं। किसी निमित्तवश किये हुए अन्य कर्मों के अंगभूत कर्म को नैमित्तिक कहते हैं। नैमित्तिक कर्म आषाढ़ की चतुर्दशी, श्रावण, भादों के कृष्ण और शुक्लपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को करना चाहिए ।।१-२।। अथवा कार्तिक तक प्रतिपदा आदि तिथियों को अग्नि, ब्रह्मा, अम्बिका, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, इन्द्र, गोविन्द, काम, शंभु और अमृतपायी देवों की पूजा करनी चाहिए। कृतादि युगों में क्रमशः स्वर्ण, रजत और ताँबे के सूत्र का पवित्रक होता था, किन्तु कलि में उसे, कपास, पट्टसूत्र या कमलसूत्र का होना चाहिए ।।३-४½।। प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, गुह, हरि, सर्वेश और सब देव क्रमशः नवतन्तुओं में निवास करते हैं। एक सौ आठ, इसके आधे व चौथाई परिमाण का सूत्र क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम का होता है ।।५-६।। इक्यासी या अड़तीस या पचास के परिमाणवाला सूत्र बीच-बीच में बराबर दूरी पर, 'गाँठें' लगाकर बनाया जाता है ।।७।। द्वादश अङ्गुल का या व्यास से आठ या चार अङ्गुल का लिङ्ग विस्तार के मान का यह होना चाहिए ।।८।। इसी प्रकार पिण्डिका के परिमाण का चौथा सार्वदैवत पवित्र बनता है। यह 'गङ्गावतारक' नाम से कहा जाता है। इसे 'सद्योजात' मन्त्र से अच्छी तरह धोना चाहिए। वाम मन्त्र

---

१ क. ङ. च. °यार्थादि°। २ ख. नित्ये। ३ ख. °तात्पूर्वं° त°। ४ ख. °र्धं चारुमासिक°। ५ क. ङ. च. कार्यमजा°। ६ घ. सुजातेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रन्थिं कुर्याच्च वामेन अघोरेणाथ शोधयेत् । रञ्जयेत्पुरुषेणैव रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ।।१०।।
कस्तूरीरोचनाचन्द्रैर्हरिद्रागैरिकादिभिः । ग्रन्थयो दश कर्तव्या अथ वा तन्तुसंख्यया ।।११।।
अन्तरं वा यथाशोभमेकद्विचतुरङ्गुलम् । प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता ।।१२।।
जयाऽन्या विजया षष्ठी अजिता च सदाशिवा । मनोन्मनी सर्वमुखी ग्रन्थयोऽभ्यधिकाः शुभाः ।।१३।।
कार्या वा [1]चन्द्रवह्न्यर्कपवित्रं शिववद्धृदि[2] । एकैकं निजमूर्तौ वा[3] पुस्तके गुरुके[4] गणे ।।१४।।
स्यादेकैकं तथा द्वारदिक्पालकलशादिषु । हस्तादिनवहस्तान्तं लिङ्गानां स्यात्पवित्रकम् ।।१५।।
अष्टाविंशतितो वृद्धं दशभिर्दशभिः क्रमात् । द्व्यङ्गुलाभ्यन्तरास्तत क्रमादेकाङ्गुलान्तराः ।।१६।।
ग्रन्थयो मानमप्येषां लिङ्गविस्तारसंमितम् । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कृतनित्यक्रियः शुचिः ।।१७।।
भूषयेत्पुष्पवस्त्राद्यैः सायाह्ने यागमन्दिरम् । कृत्वा नैमित्तिकीं सन्ध्यां[5] विशेषेण च तर्पणम् ।।१८।।
परिगृहीते भूभागे पवित्रे[6] सूर्यमर्चयेत् । आचम्य सकलीकृत्य प्रणवार्घ्यकरो गुरुः ।।१९।।
द्वाराण्यस्त्रेण संप्रोक्ष्य पूर्वादिक्रमतोऽर्चयेत् । हां[7] शान्तिकलाद्वाराय तथा विद्याकलात्मने ।।२०।।
निवृत्तिकलाद्वाराय प्रतिष्ठाख्यकलात्मने । तच्छाखयोः प्रतिद्वारं द्वौ द्वौ द्वाराधिपौ यजेत् ।।२१।।

से ग्रन्थि लगावे तथा अघोर मन्त्र से शोधन करके पुरुष मन्त्र से रक्त, चन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, कर्पूर, हल्दी और गेरू आदि से उनको रंग दे। दस ग्रन्थियों अथवा तन्तुओं की संख्या के बराबर उनमें गाँठें लगावे ।।९-११।। गाँठों के बीच की दूरी शोभा की दृष्टि से एक, दो या चार अङ्गुल होनी चाहिए। प्रकृति, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, अजिता, सदाशिवा, मनोन्मनी और सर्वमुखी–ये ग्रन्थियाँ अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। सूत्र में दस से भी अधिक ग्रन्थियाँ लगायी जा सकती हैं ।।१२-१३।। पवित्रक के चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल से युक्त होने की भावना करके उसे साक्षात् शिव के तुल्य मानकर हृदय में धारण करे। शिव स्वरूप से भावित अपने स्वरूप को, पुस्तक को तथा गुरु गण को एक-एक पवित्रक अर्पण करे। इसी प्रकार द्वारपाल, दिक्पाल और कलश आदि पर भी एक-एक पवित्रक चढ़ाया जाता है। एक हाथ से लेकर नौ हाथ तक का पवित्रक शिवलिङ्ग के लिए होता है ।।१४-१५।। एक हाथ के पवित्रक में अट्ठाईस ग्रन्थियाँ होती हैं। इसके बाद प्रत्येक हाथ में दस ग्रन्थियाँ बढ़ती जाती हैं। इस तरह नौ हाथवाले पवित्रक में एक सौ आठ गाँठें होती हैं। ये ग्रन्थियाँ क्रमशः एक-एक, दो-दो अँगुलियों के अन्तर पर होती हैं ।।१६।। ये ग्रन्थियाँ क्रमशः एक-एक, दो-दो अँगुलियों के अन्तर पर होती हैं। सप्तमी या त्रयोदशी के दिन नित्यक्रिया आदि समाप्त करके पवित्र होकर, सायंकाल पुष्प, वस्त्र आदि से यज्ञ-मन्दिर को सजा दे। उस दिन विशेष रूप से नैमित्तिकी सन्ध्या और विशेष तर्पण करके परिष्कृत और निर्वाचित पवित्र भूभाग पर सूर्य की पूजा करे। गुरु आचमन और सकलीकरण करने के बाद प्रणव के द्वारा अर्घ्य प्रदान करे ।।१७-१९।। सब द्वारों के ऊपर जल छिड़ककर पूर्व की ओर से क्रमशः उनकी पूजा करे। पूजा-मन्त्र है–'हां शान्तिकलाद्वाराय', 'विद्याकलात्मने', 'निवृत्तिकलाद्वाराय', 'प्रतिष्ठाख्यकलात्मने' इत्यादि। प्रत्येक द्वार की दोनों शाखाओं पर दो-दो द्वारपतियों की पूजा करनी चाहिए ।।२०-२१।।

---

१ क. ख. ग. ङ. च. चण्डव°। २ क. ङ. च. °वत्यापि। ए°। ख. °क्त्वया। ए°। ३ ख. ग. वा सप्तके गुरवे ग°। ४ क. ङ. च. गुरवे ग°। ५ क. ङ. च. शय्यां। ६ क. ख. ग. ङ. च. सूत्रिते। ७ क. ख. ग. ङ. च. हा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नन्दिने महाकालाय[1] भृङ्गिणेऽथ गणाय च। वृषभाय च स्कन्दाय देव्यै चण्डाय च क्रमात् ।।२२।।
नित्यं च द्वारपालादीन्प्रविश्य [2]द्वारि पश्चिमे। इष्ट्वा वास्तुं भूतशुद्धिं विशेषार्घ्यकरः शिवः ।।२३।।
प्रोक्षणाद्यं विधायाथ यज्ञसंस्कारकृन्नरः[3]। मन्त्रयेद्दर्भदूर्वाद्यैः[4] पुष्पाद्यैश्च हृदादिभिः ।।२४।।
शिवहस्तं विधायेत्थं स्वशिरस्यधिरोपयेत्। शिवोऽहमादिः सर्वज्ञो मम यज्ञप्रधानता ।।२५।।
अत्यर्थं भावयेद्देवं ज्ञानखड्गकरो गुरुः। नैर्ऋतीं दिसमासाद्य प्रक्षिपेदुदगाननः ।।२६।।
अर्घ्याम्बु पञ्चगव्यं च समन्तान्मखमण्डपे[5]। चतुष्पथान्तसंस्कारैर्वीक्षणाद्यैः सुसंस्कृतैः ।।२७।।
विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्च्योपसंहरेत्[6]। तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोकल्पयेत् ।।२८।।
नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणा (न्) द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत्। पश्चिमाभिमुखं कुम्भं सर्वधान्योपरिस्थितम् ।।२९।।
प्रणवेन वृषारूढं सिंहस्थां वर्धनीं ततः। कुम्भे साङ्गं शिवं देवं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ।।३०।।
दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णुब्रह्मशिवादिकान्[7]। वर्धनीं सम्यगादाय[8] घटपृष्ठानुगामिनीम् ।।३१।।
शिवाज्ञां श्रावयेन्मन्त्री पूर्वादीशानगोचरम्। अविच्छिन्नपयोधारां मूलमन्त्रमुदीरयेत् ।।३२।।
समन्ताद्भ्रामयेदेनां रक्षार्थं शस्त्ररूपिणीम्। पूर्वं कलशमारोप्य शस्त्रार्थं[9] तस्थु वामतः ।।३३।।
समग्रासनके कुम्भे यजेद्देवं स्थिरासने। वर्धन्यां प्रणवस्थायामायुधं यदनु द्वयोः ।।३४।।

नन्दी, महाकाल, भृङ्गी, गण, वृषभ, स्कन्द, देवी और चण्ड–आठ द्वाराधिपतियों की पूजा नित्य प्रति करे ।।२२।। घर में घुसकर पश्चिम द्वार पर वास्तु की पूजा करके भूतशुद्धि करे। विशेषार्घ्य प्रदान करने से विशेष कल्याण होता है। जल से सिञ्चन आदि करने के बाद यज्ञ-संस्कार करनेवाला व्यक्ति कुश, दूब, फूल, हृद् आदि से देवों को आमन्त्रित करे ।।२३-२४।। इस प्रकार शिव-हस्त को बनाकर अपने सिर पर रखे। 'मैं आदि सर्वज्ञ शिव हूँ, यज्ञ में मेरी ही प्रधानता है'–इस प्रकार ज्ञानरूपी कृपाण को हाथ में लेनेवाला गुरु विशेष रूप से अपने देवता की भावना करे। नैर्ऋतकोण में जाकर गुरु उत्तराभिमुख होकर अर्घ्यजल और पञ्चगव्य को यज्ञ-मण्डप में चारों ओर छिड़के ।।२५-२६$\frac{1}{2}$।। चतुष्पथान्त संस्कारों और निरीक्षण आदि से भली-भाँति संस्कार करके विखेरने योग्य वस्तुओं को फेंक दे। एक दर्भपिञ्जुल लेकर उसको ईशानकोण में रखी हुई बढ़नी (झाड़ू) के ऊपर आसन के निमित्त फैला दे ।।२७-२८।। नैर्ऋतकोण में वास्तु और सरस्वती की तथा द्वार पर लक्ष्मी की पूजा करे। सर्वधान्य के ऊपर रखे हुए पश्चिमाभिमुख कलश का पूजन करे ।।२९।। प्रणव से वृषारूढ़ शिव और सिंहस्थवर्धनी की पूजा करके कुम्भ पर अङ्ग सहित शिव की और वर्धनी पर अस्त्र की पूजा करे ।।३०।। दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों तथा विष्णु, ब्रह्मा और अस्त्र की पूजा करे। घट के पृष्ठ भाग में स्थापित वर्धनी को सँभालकर हाथ में ले ले और मन्त्रोच्चारण करता हुआ पूर्व आदि दिशाओं की ओर क्रमशः मुँह करके शिव की आज्ञा को सुनावे। मूल मन्त्र उच्चारण करता हुआ अपनी रक्षा के लिए निरन्तर जल की धारा को शस्त्र रूप समझकर चारों ओर गिरा दे। पहले शस्त्र के लिए कलश स्थापन करके उसके बायें भाग में स्थिर आसन पर स्थापित समग्रासन कलश पर देव की पूजा करे ।।३१-३३$\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् प्रणवस्थ वर्धनी पर आयुध की पूजा करे–लिङ्ग मुद्रा से कलश पर भग और

---

१ ख. °य शङ्गि°। २ ख. ग. द्वारमध्यमे। घ. द्वारप°। ३ घ. °संभार। ४ क. ङ. च. मण्डपे दर्भकृद्वाच्यैः पु°। ५ क. ङ. च. °न्तामुख°। ६ ख. ग. घ. °कूर्चोप°। ७ क. ङ. च. °ब्रह्मावसानका°। ख. ग. °ब्रह्मेश्वरादि°। ८ क. ख. ग. ङ. च. °य मूढं दृष्ट्वाऽन्तु°। ९ ख. °स्त्रालाभस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया[1] । कुम्भे निवेद्य बोधांसि मूलमन्त्रजपं तथा ।।३५।।
तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेदपि । गणेशं वायवेऽभ्यर्च्य हरं पञ्चामृतादिभिः ।।३६।।
स्नापयेत्पूर्ववत्प्रार्च्य कुण्डे च शिवपावकम् । विधिवच्चरुकं कृत्वा संपाताहुतिशोधितम् ।।३७।।
देवाग्न्यात्मविभेदेन दर्व्या तं विभजेत्त्रिधा । दत्त्वा भागौ शिवाग्निभ्यां संरक्षेद्भागमात्मनि ।।३८।।
नरेण[2] वर्मणा[3] देयं पूर्वतो दन्तधावनम्[4] । [5]भस्मघोरशिखाभ्यां[6] वा दक्षिणे पश्चिमे मृदम् ।।३९।।
सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे[7] वाऽऽमलीफलम् । जलं वामेन शिरसा ईशे[8] गन्धान्वितं जलम् ।।४०।।
पञ्चगव्यं पलाशादिपुटकं वै समन्ततः । ऐशान्यां कुसुमं दद्यादाग्नेय्यां दिशि रोचनाम् ।।४१।।
अगुरुं निर्ऋताशायां बायव्यां च चतुःसमम् । होमद्रव्याणि सर्वाणि सद्योजातैः कुशैः सह ।।४२।।
दण्डाक्षसूत्रकौपीनभिक्षापात्राणि रूपिणे । कज्जलं कुंकुमं तैलं शलाकां केशशोधिनीम् ।।४३।।
ताम्बूलं दर्पणं दद्यादुत्तरे रोचनामपि । आसनं पादुके[9] पात्रं योगपट्टातपत्रकम्[10] ।।४४।।
ऐशान्यामीशमन्त्रेण दद्यादीशानतुष्टये । पूर्वस्यां चरुकं साज्यं दद्याद्गन्धादिकं नरे[11] ।।४५।।
पवित्राणि समादाय प्रोक्षितान्यर्घ्यवारिणा । संहितामन्त्रपूतानि नीत्वा पावकसंनिधिम् ।।४६।।
कृष्णाजिनादिनाऽऽच्छाद्य स्मरन्संवत्सरात्मकम् । साक्षिणं सर्वकृत्यानां गोप्तारं शिवमव्ययम् ।।४७।।

लिङ्ग का संयोग करे और ज्ञान खड्ग को निवेदित कर मूल मन्त्र का जप करे ।।३४-३५।। मन्त्र जप की संख्या के दशांश से वर्धनी पर रक्षा का विज्ञापन करे, गणेश, वायु और शिव को पञ्चामृत आदि से नहलाकर पूजन करे और पूर्व की ही भाँति कुण्ड के मध्य में शिव और अग्नि की पूजा करे। विधिपूर्वक चरु बनाकर उसको सम्पात आहुति से शुद्ध करे ।।३६-३७।। उस चरु को करछुली से देव, अग्नि और आत्मा के भेद से तीन भागों में विभक्त करे। शिव और अग्नि को उनका भाग प्रदान कर शेष भाग को अपने लिये सुरक्षित रखे ।।३८।। पहले वर्म मन्त्र से दन्तधावन, घोर शिखा से भस्म, दक्षिण और पश्चिम में 'सद्योजात' मन्त्र से मिट्टी, हृद् मन्त्र से उत्तर में आँवले का फल, वाम भाग की ओर जल, ईशानकोण में सुगन्धित जल, पञ्चगव्य और चारों ओर पलाश के बने दोने को रखे ।।३९-४० $\frac{1}{2}$।। ईशानकोण में फूल, अग्निकोण में गोरोचन, नैर्ऋत में अगुरु, वायव्यकोण में चतुःसम (कस्तूरी, लवङ्ग, कर्पूर, कुङ्कुम) और उत्तर दिशा में नवीन कुशों के सहित सकल हवन सामग्री, दण्ड, रुद्राक्ष, सूत्र, कौपीन, भिक्षापात्र, कज्जल, कुङ्कुम, तेल, शलाका, कंघी, ताम्बूल, दर्पण और गोरोचना रखे ।।४१-४३ $\frac{1}{2}$।। आसन, खड़ाऊँ, पात्र, योगपट्ट तथा छाते को ईश मन्त्र से ईशान आदि चारों कोणों में रखे। पूर्व दिशा में घी सहित चरु और गन्ध आदि दे। हाथ में पवित्रक लेकर उसके ऊपर अर्घ्य-जल छिड़ककर संहितामन्त्रों से उनको पवित्र करके उसको अग्नि के समीप ले जाय ।।४४-४६।। कृष्ण मृग-चर्म से ढककर संवत्सरात्मक, सब कर्मों के

---

१ क. ङ. च. °ध्यादङ्गमु°। २ घ. शरेण। ३ ख. धर्मणा। ४ ख. ग. घ. °म्। तस्माद्घोर°। ५ क. ङ. च. भस्माङ्गार°। ६ ख. ग. °शिखाभ्यां। ७ ख. ग. °रे बामलीकृतम्। घ° रे बामनीकृतम्। ८ क. ख. ग. ङ. च. ईशग°। ९ ख. °दुकापा°। १० ख.°ड्डादिपात्रं°। ११ घ. नवे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वेति हेति प्रयोगेण मन्त्रसंहितया पुनः। शोधयेच्च पवित्राणि वाराणामेकविंशतिम् ।।४८।।
गृहादि वेष्टयेत्सूत्रैर्गन्धाद्यं रवये ददेत्। पूजिताय समाचम्य कृतन्यासः कृतार्घ्यकः ।।४९।।
नन्दादिभ्योऽथ गन्धाख्यं वास्तोश्चाथ प्रविश्य च। शस्त्रेभ्यो लोकपालेभ्यः स्वनाम्ना शिवकुम्भके ।।५०।।
वर्धन्यै विघ्नराजाय गुरवे ह्यात्मने यजेत्। अथ सर्वौषधीलिप्तं धूपितं पुष्पदूर्वया ।।५१।।
आमन्त्र्य च पवित्रं तद्धिधायाञ्जलिमध्यगम्। ॐ समस्तविधिच्छिद्रपूरणे च विधिं प्रति ।।५२।।
प्रभवान्मन्त्रयामि त्वां त्वदिच्छावावप्तिकारिकाम्। तत्सिद्धिमनुजानीहि यजतश्चिदचित्पते ।।५३।।
सर्वथा सर्वदा शंभो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे। आमन्त्रितोऽसि देवेश सह देव्या गणेश्वरैः ।।५४।।
मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः। निमन्त्रयाम्यहं तुभ्यं प्रभाते तु पवित्रकम् ।।५५।।
नियमं च करिष्यामि परमेश तवाज्ञया। इत्येवं देवमामन्त्र्य रेचकेनामृतीकृतम् ।।५६।।
शिवान्तं मूलमुच्चार्य तच्छिवाय निवेदयेत्। जपं[1] स्तोत्रं प्रणामं च कृत्वा शम्भुं क्षमापयेत् ।।५७।।
हुत्वा चरोस्तृतीयांशं तद्द[2] (तं द) दीत शिवाग्नये। दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्रगणैः[3] सह ।।५८।।
रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो नमः स्वाहा बलिस्त्वयम्। दिग्गजाद्यैश्च[4] पूर्वादौ क्षेत्राय चाग्नये बलिः ।।५९।।
समाचम्य विधिच्छिद्रपूरकं होममाचरेत्। पूर्णां व्याहृतिहोमं च कृत्वा रुन्धीत पावकम् ।।६०।।

साक्षी, रक्षक और अव्यय शिव का स्मरण करते हुए स्वाहा के द्वारा तथा पुनः मन्त्र-संहिता से पवित्रक को इक्कीस बार शोधन करे ।।४७-४८।। घर आदि सूत्र से वेष्टित करके सूर्य को गन्ध आदि अर्पित करे। फिर पूजित सूर्य को आचमनपूर्वक अर्घ्य दे। न्यास करके नन्दी आदि द्वारपालों को और वास्तु देवता को भी गन्धादि समर्पित करे। तदनन्तर यज्ञ-मण्डप के भीतर प्रवेश करके शिव-कलश पर उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों और उनके अस्त्रों की अपने-अपने नाम-मन्त्रों से पूजा करे। इसके बाद वर्धनी में विघ्नराज, गुरु और आत्मा का पूजन करे ।।४९-५०$\frac{1}{2}$।। सब ओषधियों से लिप्त, धूप से सुवासित पवित्रक को पुष्प तथा दूर्वा से आमन्त्रित कर अपनी अञ्जलि में रखे। 'ॐ समस्त विधियों के दोष को दूर करनेवाली, सब कर्मों के सिद्धि के आदि कारण तुमको आमन्त्रित कर रहा हूँ, तुम अपनी इच्छाओं को अनुकूल बनानेवाली कार्यसिद्धि को मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिए प्रेरित कर भेजो'—इस मन्त्र से वर्धनी की पूजा करे। चित्पते! शम्भो! आपको सर्वदा नमस्कार है, आप मुझ पर प्रसन्न होइये ।।५१-५३$\frac{1}{2}$।। देवेश! मैं पार्वती, गणेश्वर, मन्त्रेश, लोकपाल और परिचारक वृन्दों के सहित आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ। देव! परमेश्वर! मैं आपकी आज्ञा से कल प्रातःकाल पवित्राधिवासन और नियमव्रत करूँगा ।।५४-५५$\frac{1}{2}$।। इस प्रकार शिव को आमन्त्रित करके रेचक प्राणायाम से अमृतीकरण कर मूलमन्त्र में शिव शब्द जोड़कर उस मन्त्र से प्रार्थना करे। जप, स्तोत्र और प्रणाम करने के अनन्तर क्षमापन करे ।।५६-५७।। चरु के तीसरे भाग का हवन कर उसको शिवाग्नि को अर्पित कर दे। फिर "दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्रगणैः सह रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो नमः स्वाहा" इस मन्त्र से बलि प्रदान करे। पूर्वादि दिशाओं में दिग्गजों, क्षेत्रपतियों और अग्नि को भी बलि दे ।।५८-५९।। आचमन करके विधिच्छिद्रपूरक हवन

---

१ ख. ग. जप्त्वा। २ क. च. तदधीत शिवालये। ३ ख. ग. घ. °गणेभ्य उ। रु°।४ दिग्गजाद्यैश्च°°°बलिः क. ङ. च पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत ओमग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि। ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते तथा ।।६१।।
इत्याहुतिचतुष्कं तु नत्त्वा कुर्यात्तु योजनाम्। वह्निकुण्डार्चितं देवं मण्डलाभ्यर्चिते शिवे ।।६२।।
नाडीसंधानरूपेण[1] विधिना योजयेत्ततः। वंशादिपात्रे[2] विन्यस्य अस्त्रं च हृदयं ततः ।।६३।।
अधिरोप्य पवित्राणि कलाभिर्वाऽथ मन्त्रयेत्। षडङ्गं[3] ब्रह्ममूलैर्वा हृद्वर्मास्त्रं[4] च योजयेत् ।।६४।।
विधाय सूत्रैः संवेष्ट्य पूजयित्वाऽङ्गसंभवैः[5]। रक्षार्थं जगदीशाय भक्तिनम्रः समर्पयेत् ।।६५।।
पूजिते पुष्पधूपाद्यैर्दत्त्वा सिद्धान्तपुस्तके। गुरोः पादान्तिकं गत्वा भक्त्या दद्यात्पवित्रकम् ।।६६।।
निर्गत्य बहिराचम्य गोमये मण्डलत्रये[6]। पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च क्रमाद्यजेत् ।।६७।।
स्वाचान्तो[7] मन्त्रसंनद्धः[8] कृतसंगीतजागरः। स्वपेदन्तः स्मरन्नीशं बुभुक्षुर्दर्भसंस्तरे ।।६८।।
अनेनैव प्रकारेण मुमुक्षुरपि संविशेत्। केवलं भस्मशय्यायां सोपवासः[9] समाहितः ।।६९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिकथनं
नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

करे। पूर्णाहुति तथा व्याहृति होम से अग्नि को अवरुद्ध कर दे। इतनी क्रिया के पश्चात् 'ॐ अग्नये स्वाहा', 'सोमाय स्वाहा', 'ओमग्नीषोमाभ्याम्', 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा'–इन मन्त्रों से चार आहुतियों को देकर योजना करे ।।६०-६१½।। मण्डप में पूजित शिव में और अग्निकुण्ड में अर्चित शिव को नाड़ी संधान रूप से विधिपूर्वक संयुक्त करे। वंश आदि पात्र में अस्त्र और हृदय का न्यास करके पवित्रक को रखकर कलाओं के द्वारा उसे अभिमन्त्रित करे ।।६२-६३½।। ब्रह्ममूल से षडङ्ग से हृद् और वर्मास्त्र की योजना करे। इस प्रकार योजना करके उसको सूत्र से घेरकर रक्षा के लिए अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रों से पूजन करके जगदीश के सम्मुख भक्ति से विनम्र होकर आत्मार्पण करे ।।६४-६५।। पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन करने के पश्चात् सिद्धान्त पुस्तक दानकर गुरुचरणों के समीप जाकर भक्तिपूर्वक पवित्रक का दान करना चाहिए ।।६६।। वहाँ से बाहर आकर आचमन करके गोबर के बने तीन मण्डलों में पञ्चगव्य, चरु और दन्तधावन रखकर क्रमशः उनकी पूजा करे ।।६७।। आचमन के अनन्तर मन्त्र-जप में तल्लीन हो गान आदि के द्वारा जागरण करे। अन्त में बिना कुछ खाये, हृदय में शिव का स्मरण करते हुए कुशासन पर सोये ।।६८।। इसी प्रकार से मुमुक्षु-जन को भी सोना चाहिए। उसे केवल भस्म की शय्या पर एकाग्र होकर सोना और निराहार रहना चाहिए ।।६९।।

श्री अग्निमहापुराण में पवित्राधिवासन विधि-वर्णन नामक
अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७८।।

---

१ क. ङ. च. नाभिसं°। २ ख. पात्रं वि°। ३ ख. पूजिते। ४ ख. ग. ङ. च. हृद्वर्मा°। ५ क. ङ. च. ङ्गसस्वनैः। ख. ग. °ङ्गशंबरैः। र°। ६ क. ङ. च. °ण्डपत्र°। ७ घ. आचान्तो। ८ घ. °सघद्धः। ९ क. ङ. च. °परागः स°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

पवित्रारोहणविधिः

ईश्वर उवाच

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानः समाहितः। कृतसंध्यार्चनो मन्त्री प्रविश्य मखमण्डलम्[1] ।।१।।
समादाय पवित्राणि अविसर्जितदेवतः। ऐशान्यां भाजने शुद्धे स्थापयेत्कृतमण्डले ।।२।।
ततो विसर्ज्य देवेशं निर्माल्यमपनीय च। पूर्ववद्भूतले शुद्धे कृत्वाऽऽह्निकमथद्वयम्[2] ।।३।।
आदित्यद्वारदिक्पालकुम्भेशानौ शिवेऽनले। नैमित्तिकीं सविस्तारां कुर्यात्पूजां विशेषतः ।।४।।
मन्त्राणां तर्पणं[3] प्रायश्चित्तहोमं शराणुना[4]। अष्टोत्तरशतं कृत्वा[5] दद्यात्पूर्णाहुतिं शनैः ।।५।।
पवित्रं भानवे दत्त्वा समाचम्य ददीत च। द्वारपालादिदिक्पालकुम्भवर्धनिकादिषु ।।६।।
संनिधाने ततः शम्भोरुपविश्य निजासने[6]। पवित्रमात्मने दद्याद्गणाय गुरुवह्नये ।।७।।
ॐ कालात्मना[7] त्वया देव यद्दिष्टं[8] मामके विधौ। कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं कृतं गुप्तं च यत्कृतम् ।।८।।
तदस्तु क्लिष्टमक्लिष्टं कृतं[9] क्लिष्टमसंस्कृतम्। सर्वात्मनाऽमुना शंभो पवित्रेण त्वदिच्छया ।।९।।
ॐ पूरय मखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा ।।१०।।

अध्याय ७९

पवित्रारोहण-विधि

महेश्वर बोले–इसके बाद प्रातःकाल उठकर स्नान करे और एकाग्र होकर सन्ध्या-पूजा आदि करके यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करे ।।१।। पवित्रक को हाथ में लेकर देवताओं को बिना विसर्जित किये ही ईशानकोण में शुद्ध पात्र में मण्डल बनाकर उसमें पवित्रक को स्थापित करे ।।२।। तदनन्तर देवेश शिव को विसर्जित करके निर्माल्य को पृथक् कर दे। पूर्व की भाँति शुद्ध भूमि पर दो बार आह्निक कर्म करके आदित्य, द्वारपाल, दिक्पाल, कुम्भ, ईशान, शिव और अग्नि की विस्तारपूर्वक विशेषरूप से नैमित्तिकी पूजा करे ।।३-४।। मन्त्रों का तर्पण और एक सौ आठ बार शर-मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करके पूर्णाहुति प्रदान करे। सूर्य को पवित्रक प्रदान करके स्वयं आचमन करे और द्वारपाल तथा दिक्पाल के लिए कुम्भ और वर्धनिकादि पर भी पवित्रक समर्पित कर दे ।।५-६।। तदनन्तर शिव के समीप अपने आसन पर बैठकर आत्मा, गुरु, गण और अग्नि को पवित्रक दे। ॐ देव! कालात्मन्! तुम्हारी प्रेरणा से मेरी यज्ञविधि में जो कुछ कठिनाई के कारण छूट गये हैं, वे सब-कुछ तुम्हारी कृपा से भली-भाँति इस पवित्रक प्रदान से सरल हो जायँ और कठिनाइयाँ दूर हो जायँ। ॐ नियमेश्वर को स्वाहा, मेरे यज्ञ-व्रत को पूर्ण कीजिये ।।७-१०।। ब्रह्मा से पालित प्रकृतिपर्यन्त

---

१ क. च. मण्डमण्डपे। त°। २ ख. ग. °मखद्व°। ३ क. ङ. च. °र्पणे होमं प्रायश्चित्तं श°। ४ घ. °रात्मना। ५ क. ख. ग. ङ. च. हुत्वा। ६ ग. सुखासने। ७ ङ. च. °कारार्थं त्व°। ८ ङ. च. यद्दृष्टं। ९ क. ङ. च-°तं क्षिप्तम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मतत्त्वे प्रकृत्यन्ते पालिते पद्मयोनिना। मूलं लयान्तमुच्चार्य पवित्रेणार्चयेच्छिवम् ।।११।।
विद्यातत्त्वे[1] च विद्यान्ते[2] विष्णुकारणपालिते। ईश्वरान्तं समुच्चार्य पवित्रमधिरोपयेत् ।।१२।।
शिवान्ते[3] शिवतत्त्वे च रुद्रकारणपालिते। शिवान्तं मन्त्रमुच्चार्य तस्मै देयं पवित्रकम् ।।१३।।
सर्वकारणपालेषु[4] शिवमुच्चार्य सुव्रत। मूलं लयान्तमुच्चार्य दद्याद्गङ्गावतारकम्[5] ।।१४।।
आत्मविद्याशिवैः प्रोक्तं मुमुक्षूणां पवित्रकम्। विनिर्दिष्टं बुभुक्षूणां शिवतत्त्वात्मभिः[6] क्रमात् ।।१५।।
स्वाहान्तं वा नमोन्तं वा मन्त्रमेषामुदीरयेत् ।।१६।।
ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा। ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।।
ॐ[7] हौं शिवतत्त्वाधिपतये[8] शिवाय स्वाहा। ॐ हौं सर्वतत्त्वाधिपतये[9] शिवाय स्वाहा ।।१७।।
नत्वा[10] गङ्गावतारं तु प्रार्थयेत्तं[11] कृताञ्जलिः। त्वं गतिः सर्वभूतानां संस्थितिस्त्वं चराचरे ।।१८।।
अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर। कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।।१९।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं[12] द्रव्यहीनं च यत्कृतम्। जपहोमार्चनैर्हीनं कृतं नित्यं मया तव ।।२०।।
अकृतं वाक्यहीनं च तत्पूरय महेश्वर। सुपूतस्त्वं परेशान पवित्रं पापनाशनम् ।।२१।।
त्वया पवित्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। खण्डितं यन्मया देव व्रतं वैकल्ययोगतः ।।२२।।

आत्मतत्त्व में लयान्त मूल का उच्चारण करके पवित्रक प्रदान करे। विष्णु से पालित विद्यातत्त्व में तथा विद्या के अन्त में ईश्वरान्त विष्णु-मन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक चढ़ावे। रुद्र से पालित शिवान्त शिव-तत्त्व को शिव-मन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक समर्पित करे। अये सुव्रत! सब कारणों के पालक के विषय में शिव का उच्चारण करके गङ्गावतारक प्रदान करे ।।११-१४।। आत्मविद्या और शिव के क्रम से आचार्यों ने मुमुक्षुजनों के लिए पवित्रकविधि का वर्णन किया है और शिव, शक्ति और आत्मा के क्रम से भोग की इच्छा रखनेवालों के लिए पवित्रक का विधान है। इनका मन्त्र स्वाहान्त (शिवाय स्वाहा) या नमोऽन्त (नमः शिवाय) कहा गया है ।।१५-१६।। 'ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा····ॐ हौं सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा'-ये पवित्रक प्रदान के मन्त्र हैं ।।१७।। गङ्गावतार पवित्रक को नमस्कार करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करे-"परमेश्वर! तुम सब भूतों की एकमात्र गति हो। तुम चराचर की स्थिति हो ।।१८।। तुम सब प्राणियों के अन्तःकरण में रहकर उनकी गतिविधि को देखते हो। मैं कार्य, मन और वाणी से तुमको ही अपना एकमात्र गति समझता हूँ, अन्य को नहीं ।।१९।। हे परमेश्वर! मैंने जो कुछ मन्त्रहीन, क्रियाहीन, द्रव्यहीन (दक्षिणाहीन) कर्म किये हैं, जप, होम और विधिवत् पूजन से या वाक्य से हीन जो कुछ मैंने तुम्हारी पूजा की है, उसको तुम पूर्ण करो। अये परेश! तुम अति पवित्र हो, पवित्र और पापनाशन हो। तुमने सारे स्थावर-जङ्गम को पवित्र कर दिया है। देव! विह्वलता या अभाव के कारण मेरा जो व्रत खण्डित हो गया है, वह तुम्हारी आज्ञारूपी सूत से गुँथकर एक हो जाय" ।।२०-२२½।। भक्त,

---

१ क. ङ. च.° तत्त्वं च। २ ख. °वविद्यादिभिः। ३ ख. शिवान्तं। ४ क. ङ. च. °षु सर्वतत्त्वेषु सु°। ५ क. ङ. च. °रणम्। ६ ख. °वविद्यादिभिः। ७ ॐ हौं···शिवाय स्वाहा ख. ग. पुस्तकयोरन्यथा ग्रन्थः स यथा--"ॐ हां बलतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा" इति। ८ क. ङ. च. °धिपाय शि°। ९ क. ङ. च. °धिपाय शि°। १० क. ख. ग. ङ. च. दत्त्वा। ११ ख. °येत्तु कृ°। १२ ङ. °नं °विधिही°। च. नं भक्ति ही°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकी भवतु तत्सर्वं तवाऽऽज्ञासूत्रगुम्फितम् । जपं निवेद्य देवस्य भक्त्या स्तोत्रं विधाय च ।।२३।।
नत्वा तु गुरुणाऽऽदिष्टं गृहणीयान्नियमं नरः । चतुर्मासं त्रिमासं वा त्र्यहमेकाहमेव च ।।२४।।
प्रणम्य क्षमयित्वेशं गत्वा कुण्डान्तिकं व्रती । पावकस्थे शिवेऽप्येवं पवित्राणां चतुष्टयम् ।।२५।।
समारोप्य समभ्यर्च्य पुष्पधूपाक्षतादिभिः । अन्तर्बलिं पवित्रं च रुद्रादिभ्यो निवेदयेत् ।।२६।।
प्रविश्यान्तः शिवं स्तुत्वा सप्रणामं क्षमापयेत् । प्रयश्चित्तकृतं होमं कृत्वा हुत्वा च पायसम् ।।२७।।
शनैः पूर्णाहुतिं दत्त्वा वह्निस्थं विसृजेच्छिवम् । होमं व्याहृतिभिः कृत्वा[1] रुन्ध्यान्निष्ठुरयाऽनलम् ।।२८।।
अग्न्यादिभ्यस्ततो दद्यादाहुतीनां चतुष्टयम् । दिक्पतिभ्यस्ततो दद्यात्सपवित्रं[2] बहिर्बलिम् ।।२९।।
सिद्धान्तपुस्तके दद्यात्सप्रमाणं पवित्रकम् ।।३०।।
ॐ हां भूः स्वाहा। ॐ हां भुवः स्वाहा । ॐ हां स्वः स्वाहा। ॐ हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।।३१।।
होमं व्याहृतिभिः कृत्वा दत्त्वाऽऽहुतिचतुष्टयम् ।।३२।।
ॐ हां अग्नये स्वाहा। ॐ हां सोमाय स्वाहा।
ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा[3] ।।३३।।
गुरुं शिवमिवाभ्यर्च्य वस्त्रभूषादिविस्तरैः । समग्रं सफलं तस्य क्रियाकाण्डादि वार्षिकम् ।।३४।।
यस्य तुष्टो गुरुः सम्यगित्याह परमेश्वरः । इत्थं गुरोः समारोप्य हृदालम्बि पवित्रकम् ।।३५।।
द्विजादीन्भोजयित्वा तु भक्त्या वस्त्रादिकं ददेत् । दानेनानेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ।।३६।।

जप को शिवार्पण और स्तुति करके गुरु को प्रणाम करे और उनके आदेश से व्रत नियम स्वीकार करे। यह व्रत चार या तीन मास, तीन दिन या एक दिन का होना चाहिए ।।२३-२४।। व्रतान्त में व्रती ईश को प्रणामकर क्षमाप्रार्थना करे। तदनन्तर कुण्ड के समीप जाकर अग्नि में स्थित शिव को चार पवित्रक प्रदान करे। पुष्प, धूप, अक्षत आदि से पूजन कर अन्तर्बलि पवित्रक रुद्र आदि देवों को समर्पित करे ।।२५-२६।। मण्डप में प्रवेश कर शिव की स्तुति करके प्रणामपूर्वक क्षमायाचना करके खीर की आहुति दे और पूर्णाहुति प्रदान करके अग्निस्थ शिव का विसर्जन करे। व्याहृति के द्वारा हवन का निष्ठुर मुद्रा से अग्नि का अवरोध करे ।।२७-२८।। इसके अनन्तर अग्न्यादि देवों को चार आहुतियाँ देनी चाहिए। दिक्पालों को पवित्रक सहित बहिर्बलि, सिद्धान्त-पुस्तक पर विहित प्रमाणानुरूप पवित्रक समर्पित करे ।।२९-३०।। "ॐ हां भूः स्वाहा, ॐ हां भुवः स्वाहा, ॐ हां स्वः स्वाहा, ॐ हां भूर्भुवः स्वाहा"-इन व्याहृतियों से हवन करने के पश्चात् चार आहुतियाँ दे। मन्त्र ये हैं-"ॐ हामग्नये स्वाहा, ॐ हां सोमाय नमः स्वाहा, ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।" शिव की भाँति वस्त्र, आभूषण, आसन आदि से गुरु की भी पूजा करे। परमेश्वर ने कहा है कि इस प्रकार गुरु की पूजा करने से गुरु के सन्तुष्ट हो जाने पर मनुष्य के सम्पूर्ण क्रियाकाण्डादि वार्षिक कार्य सफल हो जाते हैं ।। ३१-३४ ।। इस प्रकार गुरु का पूजन करके उन्हें हृदय तक लटकता हुआ पवित्रक धारण करावे तथा ब्राह्मण आदि को भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें वस्त्रादि दे। हे देवेश! मेरे द्वारा दिये हुए इस दान से शिव प्रसन्न होवें ।।३५-३६।।

---

१ क. ङ. च. °त्वा कन्या विष्टर°। २ ख. दत्त्वा सप°। ३ ख. स्वाहेति। गु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भक्त्या स्नानादिकं प्रातः कृत्वा शंभोः समाहरेत् । पवित्राण्यष्टपुष्पैस्तं पूजयित्वा विसर्जयेत् ।।३७।।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा विस्तरेण यथा पुरा । पवित्राणि समारोप्य प्रणम्याग्नौ शिवं यजेत् ।।३८।।
प्रायश्चित्तं ततोऽस्त्रेण हुत्वा पूर्णाहुतिं यजेत् । भुक्तिकामः शिवायाथ कुर्यात्कर्मसमर्पणम् ।।३९।।
त्वत्प्रसादेन कर्मेदं ममास्तु फलसाधकम् । मुक्तिकामस्तुकर्मेदं माऽस्तु मे नाथ बन्धकम् ।।४०।।
वह्निस्थं नाडीयोगेन शिवं संयोजयेच्छिवे । हृदि न्यस्याणुसंघातं[1] पावकं च विसर्जयेत् ।।४१।।
समाचम्य प्रविश्यान्तः कुम्भानुगतसंवरान् । शिवं संयोज्य साक्षेपं[2] क्षमस्वेति विसर्जयेत् ।।४२।।
विसृज्य लोकपालादीनादायेशात्पवित्रकम् । सति चण्डेश्वरे पूजां कृत्वा दत्वा पवित्रकम् ।।४३।।
तन्निर्माल्यादिकं तस्मै सपवित्रं समर्पयेत् । अथवा स्थण्डिले चण्डं विधिना पूर्ववद्यजेत् ।।४४।।
यत्किंचिद्वार्षिकं कर्म कृतं न्यूनाधिकं मया । तदस्तु परिपूर्णं मे चण्ड नाथ तवाज्ञया ।।४५।।
इति विज्ञाप्य देवेशं नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् । त्यक्तनिर्माल्यकः शुद्धः स्नापयित्वा शिवं यजेत् ।
पञ्चयोजनसंस्थोऽपि पवित्रं गुरुसन्निधौ ।।४६।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये पवित्रारोहणविधिकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक शम्भु की पूजा करे और पुनः आठ पुष्पों से युक्त पवित्रकों से पूजन कर विसर्जन करे ।।३७।। पहले की ही भाँति विस्तारपूर्वक नित्य और नैमित्तिक कर्मों को करके पवित्रकों को समर्पित कर प्रणाम करे और अग्नि में पूजा करे ।।३८।। प्रायश्चित्त हवन करके पूर्णाहुति दे। भक्ति की कामना करनेवाले व्यक्ति को अपने किये हुए कर्मों को–"नाथ! तुम्हारी कृपा से मेरा यह कर्म फल देनेवाला हो, मुमुक्षुजन को मेरे लिये यह कर्म-बन्धन न बने"–मन्त्र से शिवार्पण कर देना चाहिए ।।३९-४०।। नाड़ी योग से अग्निस्थ शिव को शिव में संयुक्त करे। हृदय में अणु समूह का न्यास करके अग्नि को विसर्जित कर दे। तत्पश्चात् आचमन कर मण्डप में प्रवेश करे और कलश के जल से शिव को स्नान कराकर अपने प्रति आक्षेपयुक्त बातें कहकर, 'क्षमा करो', कहकर विसर्जन करे ।।४१-४२।। लोकपाल आदि का विसर्जन कर शिव को अर्पित किये हुए पवित्रक को लेकर चण्डेश्वर की पूजा करे। उनको पवित्रक अर्पित करके पवित्रक सहित निर्माल्य आदि अर्पित करे ।।४३-४३$\frac{1}{2}$।। अथवा किसी वेदी पर चण्डी की विधिवत् पूजा करके प्रार्थना करे कि "हे नाथ! हे चण्ड! मेरे किये हुए वार्षिक कृत्य में जो कुछ कमी या अधिकता हुई हो, तुम्हारी आज्ञा से वह परिपूर्ण हो जाय।" इस प्रकार विज्ञापित कर देवेश को नमस्कार कर और स्तुति करके उसका विसर्जन करे ।।४४-४५$\frac{1}{2}$।। सब निर्माल्य को पृथक् करके शुद्ध होकर शिव को स्नान कराकर उनका पूजन करे। पाँच योजन दूर रहने पर भी गुरु के समीप जाकर पवित्रक को अर्पण करके पूजन करे ।।४६।।

श्री अग्निमहापुराण में पवित्रारोहण-विधि-वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।७९।।

---

१ क. ङ. च. °स्वाश्वसं°। घ. स्याग्निसं°। २ क. ख. ङ. सापेक्षा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाशीतितमोऽध्यायः

दमनकारोहणविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये दमनकारोहविधिं पूर्ववदाचरेत्। हरकोपात्पुरा जातो भैरवो दमिताः सुराः ।।१।।
तेनाथ शप्तो विटपो भवेति त्रिपुरारिणा। प्रसन्नेनेरितं चेदं पूजयिष्यन्ति ये नराः ।।२।।
परिपूर्णं फलं तेषामन्यथा न भविष्यति। सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां दमनं संहिताणुभिः[1] ।।३।।
संपूज्य बोधयेद्वृक्षं भववाक्येन मन्त्रवित्। हरप्रसादसंभूत त्वमत्र संनिधी भव ।।४।।
शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया। गृहेऽप्यामन्त्रणं[2] कुर्यात्सायाह्ने चाधिवासनम् ।।५।।
यथाविधि समभ्यर्च्य सूर्यशंकरपावकान्। देवस्य पश्चिमे मूलं[3] दद्यात्तस्य मृदायुतम्[4] ।।६।।
वामेन शिरसा वाऽथ नालं धात्रीं तथोत्तरे। दक्षिणे[5] भग्नपत्रं[6] च[7] प्राच्या[8] पुष्पं च धावनम्[9] ।।७।।
पुटिकास्थं[10] फलं मूलमथैशान्यां यजेच्छिवम्। पञ्चाङ्गमञ्जलौ कृत्वा आमन्त्र्य शिरसि न्यसेत् ।।८।।
आमन्त्रितोऽसि देवेश प्रातःकाले मया प्रभो। कर्तव्यस्तपसोलाभः पूर्णं सर्वं तवाज्ञया ।।९।।

अध्याय ८०

दमनकारोहण-विधि

महेश्वर बोले–अब मैं दमनकारोहण-विधि को बतला रहा हूँ। पहले अध्यायों में बतायी हुई विधि के अनुसार पूजन करना चाहिए। प्राचीनकाल में शङ्कर के क्रोध से भैरव उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओं का दमन किया ।।१।। त्रिपुरारि ने उसको शाप दिया कि तुम वृक्ष हो जाओ–अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर कहा कि जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे, उनकी आशा विफल न होगी ।।२-२½।। पूजन विधि इस प्रकार है कि सप्तमी या त्रयोदशी के दिन संहिता-मन्त्रों के द्वारा दमन की पूजा करके मन्त्रज्ञ व्यक्ति शिव की आज्ञा से वृक्ष को लगावे–'हे शिव के प्रसाद से उत्पन्न होनेवाले! तुम इस वृक्ष में वास करो, तुमको शिव की आज्ञा से शिब कार्य के लिए जाना है।' सायंकाल अपने घर पर भी आमन्त्रित करके अधिवासन करे ।।३-५।। सूर्य, शङ्कर और अग्नि की यथाविधि पूजा करके देवता के पश्चिम और मिट्टी से युक्त मूल रख दे ।।६।। वाम अथवा शिर (मन्त्र) से उत्तर दिशा में नाल या आँवले को रखे, दक्षिण में भग्नपत्र तथा पूर्व में धावन तथा पुष्प रखे। ईशानकोण में पुटिका में पुष्प फल रखकर शिव की पूजा करे। अञ्जलि में पञ्चाङ्ग (मूल, पत्र, फूल, फल, वल्कल) रखकर आमंत्रित करे और सिर पर चढ़ा दे ।।७-८।। उस समय यह प्रार्थना करे कि 'हे देवेश! प्रातःकाल के लिए आपको आमन्त्रित करता हूँ। तुम्हारी आज्ञा से मेरी

---

१ घ. °तात्मभिः। २ क. °हेष्वाम°। ३ क. च.° लं गं धं° तस्य च शाश्वतम्। ङ. °लं गत्वा तस्य च शाश्वतम्। ४ ख. फलं। ५ ङ. °णोऽम्भसः प°। ६ ख. च. भस्म प°। ७ ङ. च. पुष्पं च दन्तधावनम्। ८ क. च. पुष्पं°। ९ ख. धावलम्। घ. धारणम्। १० क. ङ. च. कारकं फ°। ख. कास्त्रफ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलेन शेषं पात्रस्थं पिधायाथ पवित्रकम्। प्रातः स्नात्वा जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।।१०।।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दमनैः पूजयेत्ततः। शेषमञ्जलिमादाय आत्मविद्याशिवात्मभिः[1] ।।११।।
मूलाद्यैरीश्वरान्तैश्च चतुर्थाञ्जलिना ततः ।।१२।।
[2]हौं महेश्वराय[3] मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ।।१३।।
शिवं वह्निं च सम्पूज्य गुरुं प्रार्च्याथ बोधयेत्[4]। भगवन्नतिरिक्तं वा हीनं वा यन्मया कृतम् ।।१४।।
सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं यच्च दामनकं मम। सकलं चैत्रमासोत्थं फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दमनकारोहणविधिकथनं नामाशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

समयदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्यामि भोगमोक्षार्थं दीक्षां पापक्षयंकरीम्। मलमायादिपाशानां विश्लेषः क्रियते यया ।।१।।
ज्ञानं च जन्यते शिष्ये सा दीक्षा भुक्तिमुक्तिदा। विज्ञातकलनामैको[5] द्वितीयः प्रलयाकलः ।।२।।

सारी कर्त्तव्यविधियाँ पूर्णरूप से लाभप्रद हों।' मूल मन्त्र से वस्तुओं के ऊपर पवित्रक रखकर ढक दे और प्रातःकाल स्नान के पश्चात् गन्ध-पुष्प आदि से जगन्नाथ की पूजा करे ।।९-१०।। तदनन्तर नित्य और नैमित्तिक कार्य को समाप्त करके दमन से पूजा करे। शेष अञ्जलि को हाथ में लेकर आत्म, विद्या और शिवतत्त्वों से मूलादि और ईश्वरान्त मन्त्रों से चौथी अञ्जलि प्रदान करे ।।११-१२।। उसका मन्त्र यह है-'ॐ हौं महेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः।' शिव और अग्नि की पूजा करे। तत्पश्चात् भगवान् की प्रार्थना करके क्षमाप्रार्थना करे कि 'हे भगवन्! इस विधि में जो त्रुटि या अधिकता हुई हो, उससे उत्पन्न दोष दूर हो जाय। मेरा यह दमन-पूजा पूर्ण फल दे।' इस प्रकार हवन की पूजा करने से मनुष्य चैत्रमास व्रत के सब फल को प्राप्तकर स्वर्ग को जाता है ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में दमनकारोहण-विधि वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।।८०।।

अध्याय ८१

समयदीक्षाविधि का वर्णन

महादेव बोले-मैं आपसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पाप को नष्ट करनेवाली उस दीक्षा को कहूँगा, जो कि माया आदि मल और पाशों से मनुष्य को छुड़ा देती है ।।१।। यह दीक्षा शिष्य को ज्ञानी बनाकर उसे भुक्ति-मुक्ति प्रदान करती है। शास्त्र में दीक्षा प्रदान करने के योग्य अनुग्राह्य जीव तीन प्रकार के माने गये हैं-पहला विज्ञानाकल,

---

१ क. °वाणुभिः। २ क. ङ. च. ॐ हौ मग्नेश्व°। ३ घ. मखेश्व°। ४ ख. शोधयेत्। ५ ख. °तकाल°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यस्त्रिविधो मतः। तत्राऽऽद्यो मलमात्रेण[1] मुक्ताऽन्यो मलकर्मभिः ।।३।।
कलादिभूमिपर्यन्तं स्तम्बैस्तु[2] सकलो मतः[3]। निराधाराऽथ साधारा दीक्षाऽपि द्विविधा मता ।।४।।
निराधारा द्वयोस्तेषां साधारा सकलस्य तु। आधारनिरपेक्षेण क्रियते शंभुचर्यया ।।५।।
तीव्रशक्तिनिपातेन निराधारेति सा स्मृता। आचार्यमूर्तिमास्थाय मायातीव्रादिभेदया ।।६।।
शक्त्या यां कुरुते शंभुः सा साधिकरणोच्यते। इयं चतुर्विधा प्रोक्ता सबीजा बीजवर्जिता ।।७।।
साधिकाराऽनधिकारा यथा तदभिधीयते। समयाचारसंयुक्ता सबीजा जायते नृणाम् ।।८।।
निर्बीजा[4] त्वसमर्थानां समयाचारवर्जिता। नित्ये नैमित्तिके काम्ये यतः[5] स्यादधिकारिता ।।९।।
साधिकारा भवेद्दीक्षा साधकाचार्ययोरतः[6]। निर्बीजा दीक्षितानां तु[7] तथा समयि पुत्रयोः ।।१०।।
[8]नित्यमात्राऽधिकारत्वाद्दीक्षा[9] (?) निरधिकारिका। द्विविधेयं द्विरूपा[10] हि प्रत्येकमुपजायते ।।११।।
एका क्रियावती तत्र कुण्डमण्डलपूर्विका। मनोव्यापारमात्रेण या सा ज्ञानवती मता ।।१२।।
इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाऽऽचार्येण साध्यते। स्कन्ददीक्षां गुरुः कुर्यात्कृत्वा[11] नित्यक्रियां ततः ।।१३।।
प्रणवार्घ्यं कराम्भोजः कृतद्वाराधिपार्चनः[12]। विघ्नानुत्सार्य देहल्यां न्यस्यास्त्रं स्वासने स्थितः ।।१४।।

दूसरा प्रलयाकल, तीसरा सकल ।।२-२ $\frac{1}{2}$।। इनमें पहला जीव मल नामक पाश से मुक्त होता है। दूसरा मल और कर्म से, तीसरा कला से लेकर भूमिपर्यन्त सभी से अर्थात् मल, माया और कर्म से बँधा रहता है—ऐसा शास्त्रों में प्रतिपादित है। दीक्षा भी निराधार और साधार भेद से दो प्रकार की होती है ।।३-४।। निराधार दीक्षा दो प्रकार (विज्ञानाकल तथा प्रलयाकल) जीवों के लिए, साधार सकल के लिए उपयुक्त मानी गयी हैं। केवल शम्भु की पूजा से जो आधार निरपेक्ष और तीव्र शक्ति के निपात से सम्पन्न की जाती है उस दीक्षा को निराधार कहते हैं ।।५-५ $\frac{1}{2}$।। आचार्य की मूर्ति प्रतिष्ठा करके मन्द, तीव्र आदि शक्तिपात के भेद से जिस दीक्षा को शम्भु कहते हैं, उसको साधारा कहते हैं। यह चार प्रकार की है—सबीजा, निर्बीजा, साधिकारा और निरधिकारा। इसकी जो परिभाषा है, उसे कह रहा हूँ। मनुष्यों को समयानुकूल आचार से संसक्त दी जानेवाली दीक्षा सबीजा कही जाती है ।।६-८।। असमर्थों के समाचार से वर्जित दी जानेवाली दीक्षा निर्बीजा है। नित्य, नैमित्तिक और काम्यकार्यों में जिसके द्वारा साधक और आचार्य को अधिकार प्राप्त होता है, उसे साधिकारा कहते हैं। निर्वाण-दीक्षा तो समयी और पुत्रक नामक शिष्यों के लिए हुआ करती है ।।९-१०।। निरधिकारा दीक्षा से नित्य कर्मों अथवा ऐसे कर्मों के करने की योग्यता प्राप्त होती है, जिनको करने से मनुष्य को कुछ लाभ तो नहीं होता, किन्तु जिन्हें न करने से उसके गुणों का ह्रास हो जाता है। यह द्विविध दीक्षा दो रूपों में सम्पन्न की जाती है ।।११।। एक क्रियावती, जो कुण्ड और मण्डल आदि से सम्पन्न की जाती है और दूसरी, केवल मानसिक भावना से सम्पन्न की जानेवाली ज्ञानवती मानी जाती है ।।१२।। हे स्कन्द! इस प्रकार आचार्य के द्वारा दीक्षा दी जानी चाहिए। गुरु नित्य-क्रिया करने के पश्चात् ही दीक्षा दे ।।१३।। पहले अपने कमलवत् हाथों में अर्घ्य-जल से ॐ कार के उच्चारणपूर्वक द्वाराधिप की पूजा करे। विघ्नों का अपसारण करके देहली पर अस्त्र का न्यास करके अपने आसन पर बैठ जाय ।।१४।। नियम के अनुसार मन्त्रयोग

---

१ ख. °ण युक्तोऽ°। २ घ. स्तवैस्तु। ३ ख. युतः। ४ क. घ. °बींजत्वे स°। ५ क. ङ. च. यत्र। ६ क. ङ. च. °र्यगी चरे। नि°। ७ ख. तु यथा सदपि पु°। घ. तु यदा स मम पु°। ८ च. °मात्माविकारित्वा°। ९ क. ङ. °त्राविकारित्वा°। १० क. ङ. च. °रूपाऽपि प्र°। ११ क. ङ. च. °कृतनित्यक्रियोनुप°। प्र°। १२ क. ङ. च. °रा (र) विपर्ययः। वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्वीत भूतसंशुद्धिं मन्त्रयोगं यथोदितम् । तिलतण्डुलसिद्धार्थकुशदूर्वाक्षतोदकम् ।।१५।।
सयवक्षीरनीरं च विशेषार्घ्यमिदं ततः । तदम्बुना द्रव्यशुद्धिं तिलकं स्वासनात्मनोः ।।१६।।
पूजनं मन्त्रशुद्धिं[1] च पञ्चगव्यं च पूर्ववत् । लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाक्षतं कुशान् ।।१७।।
विकिराञ्शुद्धलाजां[2] स्तान्सधूपानस्त्रमन्त्रितान्[3] । शस्त्राम्बुप्रोक्षितानेतान्कवचेनावगुण्ठितान् ।।१८।।
नानाप्रहरणाकारान्विघ्नौघविनिवारकान् । दर्भाणां तालमानेन[4] कृत्वा[5] षट्त्रिंशतादलैः ।।१९।।
सप्तजप्तं शिवास्त्रेण वेणीं बोधासिमुत्तमम् । शिवमात्मनि विन्यस्य सृष्ट्याधारमभीप्सितम् ।।२०।।
निष्कलं च शिवं न्यस्य शिवोऽहमिति भावयेत् । उष्णीषं शिरसि न्यस्य अलं कुर्यात्स्वदेहकम् ।।२१।।
गन्धमण्डनकं[6] स्वीये विदध्याद्दक्षिणे करे । विधिनाऽत्रार्चयेदीशमित्थं[7] स्याच्छिवहस्तकम्[8] ।।२२।।
विन्यस्य शिवमन्त्रेण भास्वरं[9] निजमस्तके । शिवादभिन्नमात्मानं कर्तारं भावयेद्यथा ।।२३।।
मण्डले कर्मणां साक्षी कलशे यज्ञरक्षकः । होमाधिकरणं[10] वह्नौ शिष्ये पाशविमोचकः ।।२४।।
स्वात्मन्यन्यगृहीतेति षडाधारो य ईश्वरः । सोऽहमेवेति कुर्वीत भावं[11] स्थिरतरं पुनः ।।२५।।
ज्ञानखड्गकरः स्थित्वा नैर्ऋत्या (त्य) भिमुखो नरः । सार्घ्याम्बुपञ्चगव्याभ्यां प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ।।२६।।

से भूत-शुद्धि करे। तिल, अक्षत, सरसों, कुश, दूब, जल, यव और दूध मिला हुआ जल विशेषार्घ्य कहा जाता है ।।१५-१५ $\frac{1}{2}$।। विशेषार्घ्य के अनन्तर उपर्युक्त मिश्रित जल से द्रव्यशुद्धि, अपनी और आसन की शुद्धि और तिलक करे। फिर पूर्ववत् पूजन, मन्त्रशोधन तथा पञ्चगव्य-प्राशन आदि कार्य करने चाहिए। क्रमशः लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अक्षत, कुश और अन्त में पुनः शुद्ध लावा-ये सब 'विकिर' (बिखरने-योग्य द्रव्य) कहे गये हैं। इन सब वस्तुओं को एकत्र करके सात बार अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से इनका प्रोक्षण करके फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठन करे ।।१६-१८।। विघ्नों को दूर करने के लिए कुशों के छत्तीस दलों से एक बालिश्त अनेक शस्त्रों के आकार की वस्तु बनाये। शिवास्त्र का सात बार जप करके उत्तम वेणी और ज्ञान खड्ग बनाये। अपने शरीर पर अभीप्सित सृष्ट्याधार शिव का न्यास करके, निष्कल शिव का न्यास करे तथा अपने में 'मैं शिव हूँ' ऐसी भावना करे। सिर पर पगड़ी बाँधकर अपने को आभूषण और उत्तम वस्त्रों से अलंकृत करे ।।१९-२१।। अपने दाहिने हाथ में सुगन्धित लेप आदि लगाकर विधिपूर्वक दाहिने हाथ पर शिव की पूजा करे। ऐसा करने से वह दाहिना हाथ शिवहस्तक (शुभहस्त) हो जाता है ।।२२।। आचार्य शिवमन्त्र से अपने मस्तक पर भास्वर (तेज) का न्यास करके अपने में शिव से अभिन्नकर्त्ता की भावना करे ।।२३।। मण्डल में अपने-आप में उस ईश्वर की भावना करे जो कर्म के साक्षी, कलश पर यज्ञरक्षक, अग्नि में हवन का आधार, शिष्य में पाशविमोचक और अपनी आत्मा में अनुगृहीत होने से षडाधार है ।।२४-२५।। ज्ञानखड्ग को हाथ में लेकर नैर्ऋत्याभिमुख होकर बैठ जाना चाहिए। अर्घ्यजल और पञ्चगव्य से ज्ञानमण्डप का प्रोक्षण (सिञ्चन) करे, चतुष्पथान्त संस्कार और ईक्षण आदि से अग्नि का संस्कार करे ।।२६-२६ $\frac{1}{2}$।। उस यागमण्डप

---

१ क. ङ. च. °न्त्रसंशुद्धिं प। २ क. ङ. च. °लाजास्थान्स°। ३ ख. °न् भस्त्रा°। ४ ख. °मात्रेण कृ°। ५ क. ख. ङ. च. कृतां। ६ क. ख. ङ. च. ण्डलकं। ७ ख. घ. °वमस्त°। ८ ख. °स्तके। वि°। ९ क. ङ. च. °भास्करं। १० ख. °मादिक°। ११ क. च. °वं च सुस्थिरं पु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुष्पथान्तरसंस्कारैः संस्कुर्यादीक्षणादिभिः । विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्चोपसंहरेत् ।।२७।।
तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोपकल्पयेत् । नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणान्द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ।।२८।।
आज्ये[1] रत्नैः[2] पूरयन्तीं हृदा मण्डपरूपिणीम् । साम्बुवस्त्रे सरत्ने च धान्यस्थे पश्चिमानने ।।२९।।
ऐशे कुम्भे यजेच्छम्भुं शक्तिं कुम्भस्य दक्षिणे । पश्चिमस्यां(मायां)तु सिंहस्थां वर्धनीं खड्गरूपिणीम् ।।३०।।
दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णवन्तान्प्रणवासनान्[3] । वाहनायुधसंयुक्तान्हृदाऽभ्यर्च्य स्वनामभिः ।।३१।।
प्रथमं तान्समादाय कुम्भस्याग्राभिगामिनीम्[4] । अविच्छिन्नपयोधारां भ्रामयित्वा प्रदक्षिणम् ।।३२।।
शिवाज्ञां लोकपालानां श्रावयेन्मूलमुच्चरन् । संरक्षत यथायोगं कुम्भं धृत्वाऽथ तां धरेत् ।।३३।।
ततः स्थिरासने कुम्भे साङ्गं सम्पूज्य शङ्करम् । विन्यस्य शोध्यमध्वानं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ।।३४।।

ॐ हः,[5] अस्त्रासनाय[6] हूं फट् । ॐ[7] ओमस्त्रमूर्तये नमः ।
ॐ[8] हूं फट्, पाशुपतास्त्राय नमः। ॐ ॐ हृदयाय हूं फट्, नमः ।
ॐ[9] श्रीं शिरसे हूं फट्, नमः । ॐ यं शिखायै हूं फट्, नमः ।
ॐ गूं[10] कवचाय हूं फट्, नमः । ॐ[11] फट्, अस्त्राय हूं फट्, नमः ।।३५।।

चतुर्वक्त्रं सदंष्ट्रं च स्मरेदस्त्रं सशक्तिकम् । समुद्गुरत्रिशूलासिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।३६।।

में अक्षतों को बिखेरकर कुश की बनी कूँची से उसको बटोर ले। उनको ईशानकोण में वर्धनी पर आसन के लिए रख दे। नैर्ऋतकोण में वास्तु और देवताओं की और लक्ष्मी की विधिवत् पूजा करे ।।२७-२८।। घृत-पात्र में उनकी स्थापना करके हृद्-मन्त्र से मण्डपरूपिणी रत्नों से परिपूर्ण करनेवाली पश्चिमाभिमुख वस्त्र से आवेष्टित,.पञ्चरत्नयुक्त तथा जल से परिपूर्ण लक्ष्मी की पूजा करे ।।२९।। ईशानकोण में जल, वस्त्र, रत्नयुक्त कलश को धान्यराशि पर रखकर पश्चिम की ओर उसे उन्मुख करे, उस पर शम्भु की पूजा करे। कलश के दक्षिण में पश्चिमाभिमुख, सिंहारूढ़, वर्धनी और खड्गरूपिणी-शक्ति की पूजा करे ।।३०।। सब दिशाओं में इन्द्र से लेकर विष्णु-पर्यन्त उन देवों का हृद्-मन्त्र से तत्तद् देवताओं के नामों का निर्देश करते हुए पूजन करे, जो प्रणवासन पर स्थित हों और अपने वाहन तथा अस्त्र से युक्त हों। प्रथम उन देवताओं को लेकर कलश के आगे की ओर से अविच्छिन्न जलधारा चारों ओर घुमाये और प्रदक्षिणा करे ।।३१-३२।। मूल मन्त्र का उच्चारण करता हुआ लोकपालों को शिव का आदेश सुनाये कि "आप लोग यथोचित रूप से यज्ञ-कुम्भ की रक्षा करें, इसके अनन्तर शक्ति देवी को धारण करें और कलश को स्थिर करके उसके ऊपर शङ्कर की साङ्गोपाङ्ग पूजा करें" ।।३३-३३$\frac{1}{2}$।। वर्धनी पर शोध्य अध्वा का न्यास करके अस्त्र की पूजा करे। न्यास और अस्त्र-पूजन के मन्त्र ये हैं-'ॐ हः अस्त्रासनाय हूं फट्', 'ॐ अस्त्रमूर्तये नमः', 'ॐ हूं फट्, पाशुपतास्त्राय नमः', 'ॐ हृदयाय हूं फट् नमः,' 'ॐ श्रीं शिरसे हूं फट् नमः', 'ॐ यं शिखायै हूँ फट् नमः', 'ॐ गूं कवचाय हूं फट् नमः', 'ॐ फट् अस्त्राय हूं फट् नमः ।।३४-३५।। पूजा के समय चतुर्मुख, बड़े-बड़े दाँतोंवाले, शक्तियुक्त, मद्गर, त्रिशूल और शङ्ख को धारण करनेवाले तथा कोटिसूर्य के समान प्रभावशाली अस्त्रदेवता का स्मरण करे ।।३६।। लिङ्गमुद्रा के

---

१ ख. आद्ये। २ क. ङ. बलिः। ३ क. ङ. च. °चिष्कम्भान्प्र°। ४ च. ग्रानुवर्तिनी°। ५ क. ङ. च. ॐ अहः। ६ क. ङ. च. °य. फ°। ७ क. ङ. च. ॐ अं ॐ-अस्त्र°। ८ क. ङ. च. ॐ यं रूं हूं। ९ क. च. ग्लां। १० क. च. श्रूं। ११ क. च. ॐ हूं फ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया। अंगुष्ठेन स्पृशेत्कुम्भं हृदा[1] मुष्ट्याऽस्त्रवर्धनीम् ।।३७।।
भुक्तये मुक्तये त्वादौ मुष्टिना वर्धनीं स्पृशेत्। कुम्भस्य मुखरक्षार्थं ज्ञानखड्गं समर्पयेत् ।।३८।।
शस्त्रं च मूलमन्त्रस्य शतकुम्भे निवेशयेत्। तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेत्ततः ।।३९।।
यथेदं कृत(त)(?) यत्नेन भगवन्मखमन्दिरम्। रक्षणीयं जगन्नाथ सर्वाध्वरधर त्वया ।।४०।।
प्रणवस्थं चतुर्बाहुं वायव्ये गणमर्चयेत्। स्थण्डिले शिवमभ्यर्च्य सार्घ्यः कुण्डं व्रजेन्नरः ।।४१।।
निविष्टो [2]मन्त्रतुष्ट्यर्थं अर्घ्यगन्धघृतादिकम्। वामे सव्ये तु विन्यस्य समिद्दर्भतिलादिकम् ।।४२।।
कुण्डवह्निस्रुगाज्यादि प्राग्वत्संस्कृत्य भावयेत्। मुख्यतामूर्ध्ववक्त्रस्य हृदि वह्नौ शिवं यजेत् ।।४३।।
स्वमूर्तौ शिवकुम्भे च स्थण्डिले त्वग्निशिष्ययोः।
सृष्टिन्यासेन विन्यस्य (स्याऽऽ) शोध्याध्वानं यथाविधिः ।।४४।।
कुण्डमानं मुखं ध्यात्वा हृदाहुतिभिरीप्सितम्। बीजानि सप्तजिह्वानामग्नेर्होमाय भण्यते ।।४५।।
विरेफावन्तिमौ[3] वर्णो रेफषष्ठखरान्वितौ[4]। इन्दुविन्दुशिखायुक्तौ[5] जिह्वाबीजाद्यनुक्रमात्[6] ।।४६।।
हिरण्या, कनका रक्ता कृष्णा तदनुसुप्रभा। अतिरिक्ता बहुरूपा रुद्रेन्द्राग्न्याप्यदिङ्मुखाः(?) ।।४७।।

द्वारा भग और लिङ्ग का संयोग करे। अँगूठे से कुम्भ का स्पर्श करे। हृद् मन्त्र का उच्चारण करके मुट्ठी से अस्त्र और वर्धनी का स्पर्श करना चाहिए ।।३७।। सर्वप्रथम भुक्ति और मुक्ति दोनों के लिए मुट्ठी से वर्धनी का स्पर्श करना चाहिए। कुम्भ-मुख की रक्षा के लिए ज्ञान-खड्ग को समर्पित करे। मूलमन्त्र का उच्चारण करके शस्त्र को शत-कुम्भ में प्रविष्ट कर दे। उसके दसवें भाग वर्धनी पर रक्षा के लिए निवेदन करे ।।३८-३९।। इतनी क्रिया समाप्त हो जाने पर हे भगवन्! हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार यत्न से इस यज्ञ-मण्डप का निर्माण हुआ है, अखिल यज्ञों के एकमात्र धारक! आप इसकी रक्षा करें। इस प्रार्थना-मन्त्र से यज्ञमण्डप की रक्षा के लिए यज्ञपति विष्णु की प्रार्थना करे। वायव्यकोण में प्रणव पर स्थित चतुर्बाहु गण की अर्चना करे। यजमान को वेदी पर शिव की पूजा करके अर्घ्य के सहित कुण्ड के निकट जाना चाहिए। वहाँ आसन पर बैठकर मन्त्रतुष्टि के लिए अर्घ्य, गन्ध, घृत आदि बायें भाग में तथा समिधा, कुश एवं तिल आदि दाहिने भाग में रखे ।।४०-४२।। कुण्ड, वह्नि, स्रुक् और घृत आदि का संस्कार करके हृदय में ऊर्ध्वमुख (अग्नि) की प्रधानता की भावना करे। अग्नि में शिव की पूजा करे। स्वमूर्ति, शिवकुम्भ और वेदी पर अग्नि और शिष्य का सृष्टिन्यास कर, यथाविधि शोध्य अध्वा का न्यास करे ।।४३-४४।। कुण्ड के परिमाण में मुख का ध्यान कर हृद्मन्त्र से आहुतियों को प्राप्तकर अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है। अग्नि की सप्तजिह्वाओं के बीज अग्नि में होम के लिए कहे जाते हैं ।।४५।। वर्णमाला के रेफ को छोड़कर सात वर्ण यदि रकार और छठें स्वर (ऊ) पर आरूढ़ हों, विन्दु और इन्द्रशिखा से युक्त हों तो ये ही सात वह्निजिह्वा के बीज हैं-(यूरूँ, ल्रूँ, व्रूँ, श्रूँ, स्रूँ, ष्रूँ, ह्रूँ) आदि। अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम हैं-हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, अतिरिक्ता और बहुरूपा। ये सभी अग्निदेह के विभिन्न कोणों को व्याप्त किये रहती हैं ।।४६-४७।। शान्ति और पौष्टिक कर्मों में दुग्ध आदि मधुर पदार्थों का हवन करना चाहिए।

---

१ ख. °दा पुष्ट्याऽ°। २ घ. °न्त्रतृप्त्यर्थं°। ३ ख. °मौ रे°। ४ ख. °ष्ठसुरक्षितौ। ५ ख. °शिवायु°। ६ ज °जानुपंक्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षीरादिमधुरैर्होमं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिके। अभिचारे तु पिण्याकसक्तुकञ्चुककाञ्जिकैः ।।४८।।
लवणैराजिकातक्रकटुतैलैश्च कण्टकैः। समिद्भिरपि वक्त्राभिः क्रुद्धो भाष्याणना यजेत् ।।४९।।
कदम्बकलिकाहोमाद्यक्षिणी सिद्ध्यति ध्रुवम्। बन्धूककिंशुकादीनि वश्याकर्षाय होमयेत् ।।५०।।
बिल्वं राज्याय लक्ष्म्यर्थं पाटलांश्चम्पकानपि। पद्मानि चक्रवर्तित्वे भक्ष्यभोज्यानि संपदे ।।५१।।
दूर्वा व्याधिविनाशाय सर्वसत्त्ववशीकृते। प्रियंगुपाटलीपुष्पं चूतपत्रं ज्वरान्तकम् ।।५२।।
मृत्युञ्जयो मृत्युजित्स्याद्[1] वृद्धिः स्यात्तिलहोमतः। रुद्रशान्तिः सर्वशान्त्या अथ प्रस्तुतमुच्यते ।।५३।।
आहुत्यष्टशतैर्मूलमङ्गानि तु दशांशतः। संतर्पयेत्[2] मूलेन दद्यात्पूर्णा यथा पुरा ।।५४।।
तथा शिष्यप्रवेशाय[3] प्रतिशिष्यं शतं जपेत्। दुर्निमित्तापसाराय सुनिमित्तकृते तथा ।।५५।।
शतद्वयं च होतव्यं मूलमन्त्रेण पूर्ववत्। मूलाद्यष्टास्त्रमन्त्राणां स्वाहान्तैस्तर्पणं सकृत् ।।५६।।
शिखासंपुटितैर्बीजैर्हूफण्डन्तैश्च[4] दीपनम्। ॐ हौं शिवाय स्वाहा इत्यादिमन्त्रैश्च तर्पणम् ।।५७।।
ॐ हूरूं ह्रौं ह्रीं शिवाय हूरूँ फडित्यादि (च) दीपनम्।
ततः शिवाम्भसा स्थालीं क्षालितां वर्मगुण्ठिताम् ।।५८।।
चन्दनादिसमालब्धां बध्नीयात्कटकं गले। वर्मास्त्रजप्तसद्दर्भपत्राभ्यां[5] चरुसिद्धये ।।५९।।

अभिचार में पिण्याक (तिल की खली), सत्तू, सर्प की केंचुल, सिरका, लवण, राई, तक्र, कड़ुआ तेल, कँटीली समिधाओं की आहुतियाँ मुखमुद्रा के द्वारा क्रोध की अभिव्यक्ति करते हुए, भाष्यमन्त्र का उच्चारण करके देनी चाहिए ।।४८-४९।। कदम्ब की कली का हवन करने से निश्चित रूप से यक्षिणी सिद्ध होती है। गुलदुपहरिया तथा पलाश के फूलों के हवन करने से वशीकरण तथा आकर्षण होता है ।।५०।। राज्यप्राप्ति के लिए बेल का, धनप्राप्ति के लिए पाटल और चम्पक का, चक्रवर्ती बनने की इच्छा से कमल का तथा विभव-प्राप्ति के लिए भक्ष्य और भोज्य पदार्थ का हवन करना चाहिए ।।५१।। रोगनाश के लिए दूब की, सब जीवों को वश में करने के लिए प्रियङ्गु और पाटलीपुष्प की आहुति श्रेष्ठ है। आम की पत्तियों के हवन से ज्वर नष्ट होता है, तिल के होम से मृत्यु पर विजय-प्राप्ति होती है और होता की वैभव वृद्धि होती है। सब प्रकार की शान्ति के लिए रुद्र-शान्ति का विधान है। अब प्रस्तुत प्रसंग पुनः प्रारम्भ किया जा रहा है ।।५२-५३।। मूलमन्त्र से एक सौ आठ आहुतियाँ देकर अङ्गों के दशांश तर्पण करे, पुनः मूलमन्त्र से पूर्णाहुति दे ।।५४।। पहले की (दीक्षाविधि की) भाँति शिष्यों के प्रवेश के लिए प्रत्येक शिष्य के अनुसार सौ-सौ बार मन्त्रों का जप करे। अमङ्गल को हटाने तथा शुभ वातावरण उत्पन्न करने के लिए मूल मन्त्र से दो सौ बार आहुतियाँ देनी चाहिए। स्वाहान्त मूल आदि आठ अस्त्र मन्त्रों से एक बार तर्पण करे ।।५५-५६।। शिखा से सम्पुटित 'हुं फट्' इत्यादि मन्त्रों से दीपन करे। 'ॐ हौं शिवाय स्वाहा'-आदि मन्त्रों से तर्पण और 'ॐ हूं ह्रौं ह्रीं शिवाय हूं फट्-इत्यादि से दीपन करना चाहिए। तदनन्तर पवित्र जल से स्थाली का प्रक्षालन करके कवच से उसे अवगुण्ठित कर दे ।।५७-५८।। चन्दन आदि का लेप लगाकर उसके गले में कटक नामक आभूषण-विशेष बाँध दे। चरु को वर्म और अस्त्र से अभिमन्त्रित करके अच्छे कुश और पत्र से ढक दे ।।५९।।

---

१ ख. °त्स्याद्विष्टिः स्या°। २ ख. °तर्प्य प्लुत°। ३ ख. °प्रदेशा°। ४ ख. जैर्हूरूफ°। ५ ख. °प्तसंदर्भ प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्माद्यैरासने दत्ते[1] सार्धेन्दुकृतमण्डले। न्यस्तायां मूर्तिभूतायां भावपुष्पैः शिवं यजेत् ।।६०।।
वस्त्रबद्धमुखायां वा स्थाल्यां पुष्पैर्बहिर्भवैः। चुल्ल्यां पश्चिमवक्त्रायां शुद्धायां वीक्षणादिभिः ।।६१।।
न्यस्ताहंकारबीजायां न्यस्तायां कुण्डदक्षिणे। धर्माधर्मशरीरायां जप्तायां मानुषात्मना ।।६२।।
स्थालीमारोपयेदस्त्रजप्तां[2] गव्याम्बुमार्जिताम्। गव्यं पयोऽस्त्रसंशुद्धं प्रासादशतमन्त्रितम् ।।६३।।
तण्डुलान्श्यामकादीनां निक्षिपेत्तत्र तद्यथा। एकशिष्यविधानाय तेषां प्रसृतिपञ्चकम् ।।६४।।
प्रसृतिं प्रसृतिं पश्चाद्वर्धयेद्द्वयादिषु क्रमात्। कुर्याच्चानलमन्त्रेण[3] विधानं कवचाणुना ।।६५।।
शिवाग्नौ मूलमन्त्रेण पूर्वास्यश्चरुकं यजेत्। सुस्विन्ने तत्र तच्चुल्ल्यां स्रुवमापूर्य सर्पिषा ।।६६।।
स्वाहान्तैः संहितामन्त्रैर्दत्त्वा तप्ताभिधारणम्। संस्थाप्य मण्डले स्थालीं सद्दर्भेऽस्त्राणुनाकृते ।।६७।।
प्रणवेन पिधायास्यां तद्देहलेपनं हृदा। सुशीतलो भवत्येवं प्राप्य शीताभिधारणम् ।।६८।।
विदध्यात्संहितामन्त्रैः शिष्यं प्रति सकृत्सकृत्। धर्माद्यासनके हुत्वा[4] कुण्डमण्डलपश्चिमे[5] ।।६९।।
संपातं च स्रुचा हुत्वा संहितयाऽऽचरेत्। चरुकं सकृदालभ्य तयैव वषडन्तया ।।७०।।
धेनुमुद्रामृतीभूतं स्थण्डिले शान्तिकं नयेत्। साज्यभागं स्वशिष्याणां भागो देवाय वह्नये ।।७१।।

अर्धचन्द्राकार बने हुए मण्डल पर दिये गये आसन पर धर्म आदि के सहित न्यस्त प्रतिमा में शिव की भावना के फूलों से उसकी पूजा करे ।।६०।। अथवा स्थाली के मुख को वस्त्र से आच्छादित करके उसी पर विभिन्न प्रकार के फूलों से शिव की पूजा करे। इसके बाद कुण्ड के दक्षिण में रखी हुई उस चूल्ही पर स्थाली को रख दे, जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो, जिसको देखकर भली-भाँति शुद्ध कर लिया गया हो, जिस पर अहंकार बीज का न्यास किया गया हो, जो अधर्म और धर्मरूपी शरीर से युक्त और मानवात्मा के रूप में अभिमन्त्रित की गयी हो ।।६१-६२।। उसको अस्त्र से अभिमन्त्रित करके दूध और जल से उसका मार्जन कर दे। उसमें अस्त्र-मन्त्र से शुद्ध किया हुआ और सौ प्रासादमन्त्रों से अभिमन्त्रित किये हुए गाय के दूध को छोड़कर उसमें तण्डुल या साँवाँ छोड़ दे। एक शिष्य के निमित्त पाँच पसर चावल या साँवाँ छोड़ना चाहिए ।।६३-६४।। दो शिष्यों के लिए एक पसर और बढ़ा दे। इसी प्रकार क्रमशः एक-एक शिष्य के निमित्त एक-एक पसर बढ़ाते जाना चाहिए। अग्नि मन्त्र से आग जलावे तथा कवच मन्त्र से ढक देना चाहिए ।।६५।। शिवाग्नि पर मूलमन्त्र का उच्चारण करके स्वयं पूर्वाभिमुख होकर चरु का पाचन करे। जब उस चूल्हे पर ही चरु भलीभाँति पक जाय, तब घी से स्रुवा को भरकर स्वाहान्त संहितामन्त्रों से तप्ताभिधारण दे। अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके बनाये हुए मण्डल में कुशा बिछाकर, उस पर स्थाली को चूल्हे से उतारकर रख दे। उसे प्रणव मन्त्र से ढककर हृद्-मन्त्र से स्थाली में देहलेपन करे। इस प्रकार शीताभिधारण करने पर चरु शीतल हो जाता है ।।६६-६८।। संहितामन्त्रों से प्रत्येक शिष्य के लिए एक-एक बार हवन करे। धर्म आदि के आसन के समीप, कुण्डमण्डल के पश्चिम भाग में हवन करके स्रुक् से संपात आहुति दे। तदनन्तर संहिता से शुद्धि करे। एक बार चरु का आलम्भन करके वषडन्त संहिता से वेदी पर धेनु मुद्रा से अमृतीभूत शान्ति-भाग को

---

१ ख. °त्ते मात्रो यकृ°। २ ख. °जप्तग°। ३ ख. कुर्वश्चालनमस्त्रेण। ४ ख. घृत्वा। ५ ख. °ण्डपप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्यात्तु लोकपालादेः समध्वाज्यमिदं त्रयम्। नमोऽन्तेन हृदा दद्यात्तेनैवाऽऽचमनीयकम्[1] ।।७२।।
साज्यं[2] मन्त्रशतं हुत्वा दद्यात्पूर्णां यथाविधि। मण्डलं कुण्डतः पूर्वे मध्ये वा शंभुकुम्भयोः ।।७३।।
रुद्रमातृगणादीनां निर्वर्त्यान्तर्बलिं हृदा। शिवमध्येऽथ[3] लब्धाज्ञो विधायैकत्वभावनाम् ।।७४।।
सर्वज्ञतादियुक्तोऽहं समन्ताच्चोपरिस्थितः। ममांशो योजनास्थानमधिष्ठाताऽहमध्वरे ।।७५।।
शिवोऽहमित्यहंकारी निष्क्रमेद्यागमण्डपात्। न्यस्तपूर्वाग्रसंदर्भे[4] शस्त्राणकृतमण्डले ।।७६।।
प्रणवासनके शिष्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम्। स्नातं चोदङ्मुखं मुक्त्यै पूर्ववक्त्रं तु भुक्तये ।।७७।।
ऊर्ध्वकायं समारोप्य पूर्वास्यं प्रविलोकयेत्। चरणादिशिखां यावन्मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः ।।७८।।
चक्षुषा सप्रसादेन शैवं धाम विवृण्वता। अस्त्रोदकेन संप्रोक्ष्य मन्त्राम्बुस्नानसिद्धये ।।७९।।
भस्मास्नानाय विघ्नानां शान्तये पापभित्तये। सृष्टिसंहारयोगेन (ण) ताडयेदस्त्रभस्मना ।।८०।।
पुनरस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य सकलीकरणाय तम्। नाभेरूर्ध्वं कुशाग्रेण मार्जनीयास्त्रमुच्चरन् ।।८१।।
त्रिधाऽऽलभेत तन्मूलैरघमर्षाय नाभ्यधः। द्वैविध्याय च पाशानामालभेत शराणुना ।।८२।।
तच्छरीरे शिवं साङ्गं सासनं विन्यसेत्ततः। पुष्पादिपूजितस्यास्य नेत्रे नेत्रेण वा हृदा ।।८३।।

ले जाय। शिष्यों, अग्नि और लोकपाल आदि को मधु, घी आदि से युक्त तीन भाग बनाकर नमः पद से युक्त हृद्मन्त्र से अर्पित करके उसी मन्त्र से आचमन भी कराये ।।६९-७२।। सौ मन्त्रों से आज्य की आहुतियाँ देकर यथाविधि पूर्णाहुति देनी चाहिए। कुण्ड के पूर्व में या शम्भु या कुम्भ के मध्य में मण्डल बनाकर रुद्र और मातृगण आदि को हृद्-मन्त्र से अन्तर्बलि दे। शिव से आज्ञा प्राप्तकर शिव और अपने में एकत्व की भावना करके "मैं सर्वज्ञाता आदि गुणों से युक्त हूँ, चारों ओर, ऊपर मैं अनेक रूपों में स्थित हूँ, यज्ञ में योजना-स्थान और अधिष्ठाता मैं ही हूँ" ।।७३-७५।। "मैं शिव हूँ"-इस प्रकार अहंकार की भावना करके यज्ञ-मण्डप से बाहर निकल जाय। अस्त्र-मन्त्र के द्वारा विरचित मण्डल में जिसके अग्रभाग की रचना पूर्व दिशा की ओर हुई हो, प्रणवासन पर उस शिष्य को बिठलाये, जो स्नान से पवित्र होकर श्वेत उत्तरीय वस्त्र धारण किये हो ।।७६-७६ $\frac{1}{2}$।। मुक्ति की इच्छावाले शिष्य को उत्तराभिमुख और भुक्ति की कामनावाले को पूर्वाभिमुख बैठाये। वह पूर्वाभिमुख होकर सीधे बैठ जाय। गुरु, शिष्य को यदि मुक्ति प्राप्ति के लिए दीक्षा दे रहा हो तो अपने नेत्रों को प्रसन्न मुद्रा से शैव-तेज को उसके अङ्गों पर फैलाता हुआ चरण से लेकर शिखा तक देखे। यह क्रम मुक्ति के लिए है। यदि शिष्य को लौकिक भोग की इच्छा हो तो विलोम रूप से (सिर से चरण तक) देखे ।।७७-७८ $\frac{1}{2}$।। इसके अनन्तर अस्त्र जल से सिञ्चन करके, मन्त्र जल से स्नान कराने के लिए, भस्म स्नान के लिए, विघ्नशान्ति और पापनाश के लिए सृष्टि-संहार योग से अस्त्र भस्म से ताड़न करे ।।७९-८०।। पुनः शिष्य के सकलीकरण के लिए उसके ऊपर अस्त्र-जल छिड़के। अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके नाभि से ऊपर कुशाग्र से मार्जन करे ।।८१।। अघमर्षण के लिए नाभि के नीचे कुशमूल से तीन बार स्पर्श करे, पाशों के छेदन के लिए शरमन्त्र से आलम्भन करे ।।८२।। तत्पश्चात् शिव के शरीर पर अङ्गों और आसन सहित शिव का न्यास करे। पुष्प आदि से पूजन करके नेत्र (मन्त्र) से नेत्र का न्यास करे अथवा हृद्-मन्त्र

---

१ ख. °नीत्रयम्। २ ख. सायं। ३ घ. °ध्येऽप्यल°। ४ घ. °ग्रसन्धर्मे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बद्ध्वा मन्त्रितवस्त्रेण सितेन सदशेन च। प्रदक्षिणक्रमादेनं प्रवेश्य शिवदक्षिणम् ।।८४।।
सवस्त्रमासनं दद्याद्यथावर्णं निवेदयेत्। संहारमुद्रयाऽऽत्मानं मूर्त्या तस्य हृदम्बुजे ।।८५।।
निरुध्य शोधिते काये न्यासं कृत्वा तमर्चयेत्। पूर्वाननस्य शिष्यस्य मूलमन्त्रेण मस्तके ।।८६।।
शिवहस्तं प्रदातव्यं रुद्रेशपददायकम् (?)। शिवसेवाग्रहोपायं दत्तहस्तं शिवाणुना ।।८७।।
शिवे प्रक्षेपयेत्पुष्पमपनीयार्चकान्तरम्। तत्पात्रस्थानमन्त्राद्यं शिवदेवगणानुगम् ।।८८।।
विप्रादीनां क्रमान्नाम कुर्याद्वा स्वेच्छया गुरुः। प्रणतिं कुम्भवर्धन्योः कारयित्वाऽनलान्तिके ।।८९।।
सदक्षिणासने तद्वत्सौम्यास्यमुपवेशयेत्। शिष्यदेहविनिष्क्रान्तां सुषुम्नामिव चिन्तयेत् ।।९०।।
निजविग्रहलीनां च दर्भमूलेन मन्त्रितम्। दर्भाग्रं दक्षिणे तस्य विधाय करपल्लवे ।।९१।।
तन्मूलमात्मजङ्घायामग्रं चेति शिखिध्वज। शिष्यस्य हृदयं गत्वा रेचकेन शिवाणुना ।।९२।।
पूरकेण समागत्य स्वकीयं हृदयान्तरम्। शिवाग्निना पुनः कृत्वा नाडीसंधानमीदृशम् ।।९३।।
हृदा तत्संनिधानार्थं जुहुयादाहुतित्रयम्। शिवहस्तस्थिरत्वार्थं शतं मूलेन होमयेत् ।।९४।।
इत्थं समयदीक्षायां भवेद्योग्यो भवार्चने ।।९५।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये समयदीक्षाविधिकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।।८१।।

से अभिमन्त्रित श्वेत वस्त्र से अञ्चल बाँधकर शिव के दक्षिण भाग में प्रदक्षिणा विधि से ले जाकर, रुचि के अनुसार वस्त्र और आसन दे ।।८३-८४$\frac{1}{2}$।। संहार-मुद्रा से अपने को मूर्ति रूप में उसके हृदय-कमल में निरुद्ध करके, उसके शुद्ध किये हुए शरीर पर शिव का न्यास करके उसकी पूजा करे। पूर्वाभिमुख स्थित शिष्य के मस्तक पर मूलमन्त्र से रुद्र और ईश के पद को प्रदान करनेवाले शिव हस्त को रखे। शिव मन्त्र से शिवभक्ति को प्रदान करने का साधन शिव हस्त को देकर, शिव के समीप से अन्य चढ़ायी हुई पूजन समग्री को हटाकर उन पर पुष्प चढ़ाये। उस समय शिष्य को शिवमन्त्रों का पाठ करना चाहिए। शिष्य को शिव के गणों का अनुगमन करनेवाले ब्राह्मण आदि का नाम रखना चाहिए अथवा गुरु अपने इच्छा से शिष्य का नामकरण करे ।।८५-८८$\frac{1}{2}$।। कुम्भ और वर्धनी का नमस्कार कराकर शिष्य को अग्नि के दाहिने पार्श्व में शान्त मुख-मुद्रा में बैठाये। शिष्य के शरीर से निकलती हुई सुषुम्ना अपने शरीर में विलीन हो रही है, ऐसी भावना करे ।।८९-९०।। कुश-मूल से अभिमन्त्रित कुशाग्र को उसके दक्षिण कर-पल्लवों में रखकर उसके मूल और अग्रभाग को अपनी जङ्घा पर रखे। शिव मन्त्र और रेचक के द्वारा शिष्य के हृदय में भावना से जाकर पुनः पूरक प्राणायाम से अपने हृदय में आ जाय। पुनः शिवाग्नि से इसी प्रकार नाड़ी-सन्धान करे ।।९१-९३।। उसकी समीपता की प्राप्ति के लिए हृद्-मन्त्र से तीन बार आहुतियाँ दे। शिवहस्त की स्थिरता के लिए मूल से सौ बार आहुतियाँ देनी चाहिए। इस प्रकार समय-दीक्षा ग्रहण कर लेने पर मनुष्य शिवार्चन का अधिकारी हो जाता है ।।९४-९५।।

श्री अग्निमहापुराण में समय-दीक्षा-विधि-वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८१।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथद्व्यशीतितमोऽध्यायः

संस्कारदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु षण्मुख। आवाहयेन्महेशस्य वह्निस्थस्य शिवौ[1] हृदि ।।१।।
संश्लिष्टौ तौ समभ्यर्च्य संतर्प्य हृदयाणुना[2]। तयोः संनिधये दद्यात्तेनैवाऽऽहुतिपञ्चकम् ।।२।।
कुसुमेनास्त्रलिप्तेन ताडयेत्तं हृदा शिशुम्। प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत् ।।३।।
प्रविश्य तत्र[3] हुंकारमुक्तं रेचकयोगतः। संहारिण्या तदाहृष्य[4] पूरकेण हृदि न्यसेत् ।।४।।
ततो वागीश्वरीं योनौ मुद्रयोद्भवसंज्ञया। हृत्संपुटितमन्त्रेण[5] रेचकेन विनिक्षिपेत् ।।५।।
ॐ हां हां[6] हामात्मने नमः ।।६।।
जाज्वल्यमाने निर्धूमे जुहुयादिष्टसिद्धये। अप्रवृद्धे[7] सधूमे तु होमो वह्नौ न सिद्ध्यति ।।७।।
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः। विपरीतः स्फुलिङ्गी च भूमिस्पृङ्न[8] प्रशस्यते ।।८।।
इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्हुत्वा शिष्यस्य कल्मषम्। पापभक्षणहोमेन दहेद्वातं[9] भवात्मना ।।९।।

अध्याय ८२

संस्कार की दीक्षा-विधि

महेश्वर बोले–हे षडानन! अब मैं संस्कार-दीक्षा का विधान बतला रहा हूँ, उसे सुनो। पहले हृदय में अग्निस्थ शिवा-शिवमय महेश का आवाहन करे ।।१।। एकीकृत उन दोनों की पूजा करके हृदय-मन्त्र से तर्पण करे। उनका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए उसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दे ।।२।। अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प से उस शिशु का ताड़न हृद्मन्त्र का उच्चारण करते हुए करे। उसमें तेज विकीर्ण करनेवाले, तारा के आकार की चैतन्य-ज्योति की भावना करे ।।३।। उस ज्योति में प्रवेश करके रेचक योग से हुंकार का उच्चारण कर (संहारिणी) मुद्रा के द्वारा उसको पूरक योग से आकृष्ट कर हृदय में स्थापित करे। तदनन्तर वागीश्वरी योनि में उद्भव नामक मुद्रा के द्वारा हृद् से सम्पुटित मन्त्र से युक्त रेचक से वागीश्वरी को निक्षिप्त करे। निक्षेप मन्त्र यह है–'ॐ हां हां हामात्मने नमः'। इष्ट-सिद्धि के लिए धूमरहित प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिए, भली-भाँति न जलनेवाली धूमयुक्त अग्नि में हवन करने से इष्ट-सिद्धि नहीं होती ।।४-७।। स्निग्ध, दक्षिणावर्त लपटों से युक्त और सुगन्धित अग्नि हवन के लिए प्रशस्त मानी गयी है। विपरीत क्रम से जलनेवाली, जिसमें से चिनगारियाँ निकल रही हों और जिसकी लपटें भूमि का ही स्पर्श करती हों–ऐसी अग्नि हवन के लिए प्रशस्त नहीं मानी गयी है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त अग्नि में पाप-भक्षण हवन करके शिष्य के कल्मषों को जला डाले, शिव की भावना से भावित होकर वात (दोष) को भी दूर करे ।।८-९।।

---

१ घ. शिरो। २ ग. °चात्यमना। ३ ख. °त्र हूरूं का°। ४ घ. °दाकृष्य। ५ क. ङ. च. °पुटात्मम° ख. °पुटासमुद्रेण। ६ क. ङ. च. हं। ७ क. ङ. च. अप्रबुद्धे। ८ घ. °भिस्पर्शः प्र°। ९ क. ङ. च. तं नवां°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावने । आहारबीजसंशुद्धौ गर्भाधानाय संस्थितौ ।।१०।।
सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत् । शतानि पञ्चमूलेन वौषडादिदशांशतः ।।११।।
शिथिलीभूतबन्धस्य[1] शक्तावुत्कर्षणं च यत् । आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते ।।१२।।
स्वातन्त्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवनं मतम् । मायात्मनोर्विवेकेन ज्ञानं सीमन्तवर्धनम् ।।१३।।
शिवादितत्त्वशुद्धेस्तु[2] स्वीकारो जननं मतम् । बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वार्हस्य नो मतम् ।।१४।।
संहारमुद्रयाऽऽत्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमम् । विदधीत समादाय निजे हृदयपंकजे ।।१५।।
ततः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् । कुर्यात्समरसीभावं[3] तदा च शिवयोर्हृदि ।।१६।।
ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमाद्रेचकयोगतः[4] । नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ।।१७।।
हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् । शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ।।१८।।
पूजां शिवस्य वह्नेश्च गुरुः कुर्यात्तदोचिताम् । प्रणतिं चाऽऽत्मने शिष्यं समयाञ्श्रावयेत्तथा[5] ।।१९।।
देवं[6] न निन्देच्छास्त्राणि[7] निर्माल्यादि न लङ्घयेत् । शिवाग्निगुरुपूजा च कर्तव्या जीवितावधि ।।२०।।
बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनाम् । यथाशक्ति ददीतार्थं[8] समर्थस्य समग्रकान् ।।२१।।
व्रताङ्गानि[9] जटाभस्मदण्डकौपीनसंयमान् । ईशानाद्यैर्वार्हृदाद्यैर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ।।२२।।

द्विजत्व की प्राप्ति के लिए, रुद्ररूप में उसको भावित करने के लिए, आहारबीज की शुद्धि के लिए, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जन्म और नामकरण आदि संस्कारों के निमित्त एक सौ पाँच बार मूलमन्त्र से वौषट् जिसके अन्त में आये, उस मन्त्र से दशांश हवन करे ।।१०-११।। शिथिलीभूत बन्ध को शक्ति से खींचकर ले जाना और अपने-आपको रुद्र के अंश में समझना 'गर्भाधान' कहलाता है ।।१२।। स्वतन्त्रतापूर्वक आत्मगुणों की अभिव्यक्ति 'पुंसवन' है, माया और आत्मा के विवेक से युक्त ज्ञान 'सीमन्तवर्धन' कहा जाता है। शिव आदि तत्त्व-शुद्धि को स्वीकार करना 'जनन' है। शिवत्व के योग्य आत्मा में शिवत्व की प्रतीति या बोध ही सच्चा ज्ञान माना गया है ।।१३-१४।। अपने हृदय-कमल में संहारमुद्रा के द्वारा तेज बिखेरनेवाले वह्निकण के समान आत्मतेज को खींचकर स्थापित करे। तदनन्तर कुम्भक योग से मूलमन्त्र का उच्चारण करे और हृदय में उभय शिव का समरसीभाव करे ।।१५-१६।। रेचक प्राणायाम के द्वारा आदि कारण ब्रह्मा को क्रमशः छोड़ते हुए उद्भव मुद्रा के द्वारा आत्मा को शिवतत्त्व के समीप ले जाकर विधानज्ञ योगी हृद्-सम्पुटित मन्त्र से रेचक प्राणायाम करके उस शिवतत्त्व को शिष्य के हृदय-कमल की कर्णिका में स्थापित कर दे ।।१७-१८।। इस प्रकार शिष्य के हृदय-कमल में शिवतत्त्व का आधान करने के बाद गुरु उचित रीति से शिव और अग्नि की पूजा करे और प्रणाम करके अपने शिष्य से प्रतिज्ञाएँ कराये कि वह देव और शास्त्र की निन्दा नहीं करेगा, जब तक प्राण रहेंगे, शिव, अग्नि और यथाशक्ति गुरु की पूजा करता रहेगा। बालक, प्रमादी, वृद्ध, स्त्री, कर्मभोग करनेवाले और रोगी की यथाशक्ति धन से सहायता करेगा ।।१९-२१।। इसके अनन्तर गुरु जटा, भस्म, दण्ड, कौपीन आदि व्रत की सामग्रियों को क्रमशः ईशान या हृद् आदि मन्त्रों का जप करके अभिमन्त्रित करे

---

१ क. ङ. च. शिखिनां भू°। २ क. ङ. च. °त्वसिद्धस्तु। ३ घ.° मवशीभा°। ४ घ. °रणात्या°। ५ ख. °येद्यथा। ६ च. देवान्न नि°। ७ क. ङ. च. °स्त्रादि नि°। ८ क. ङ. च. °तान्नं °स°। ९ ख. घ. भूताङ्गानि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाहान्तसंहितामन्त्रैः पात्रेष्वारोप्य पूर्ववत्। संपाताभिहुतं[1] हुत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ।।२३।।
रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकम्। शिवादाज्ञां समादाय ददीत व्रतिने गुरुः ।।२४।।
एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः। वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः संजायते शिशुः[2] ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संस्कारदीक्षाविधिकथनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।।८२।।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच

अथ निर्वाणदीक्षायां कुर्यान्मूलादिदीपनम्[3]। पाशबन्धनशक्त्यर्थं ताडनादिकृतेन[4] वा ।।१।।
एकैकया तदाहुत्या[5] प्रत्येकं तत्त्रयेण वा। बीजगर्भशिखार्धं[6] तु हूंफडन्तध्रुवादिना ।।२।।
ॐ[7] हूं ह्रौं ह्रौं हूं फडिति मूलमन्त्रस्य दीपनम्। ॐ[8] हूं ह्रौं हूं फडिति हृदय एवं शिरोमुखे ।।३।।
प्रत्येकं दीपनं कुर्यात्सर्वस्मिन्क्रूरकर्मणि[9]। शान्तिके पौष्टिके चास्य वषडन्तादिनाऽणुना[10] ।।४।।

और स्वाहान्त संहिता-मन्त्रों का पाठ करके पात्रों में रखकर, संपात आहुति दे और वेदी के स्वामी शिव को दिखा दे ।।२२-२३।। रक्षा के निमित्त उसे क्षणभर कलश के नीचे रख दे और पुनः शिव की आज्ञा से वहाँ से उठाकर व्रती शिष्य को दे दे। इस प्रकार विशिष्ट रूप से समय-दीक्षा करने से शिशु शिष्य हवन-कर्म और शास्त्र-ज्ञान का विशेष रूप से अधिकारी हो जाता है ।।२४-२५।।

श्री अग्निमहापुराण में संस्कार-दीक्षा-विधान-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।८२।।

अध्याय ८३

निर्वाणदीक्षा का विधान

भगवान् शिव बोले-इसके पश्चात् निर्वाण दीक्षा में पाश-बन्धन शक्ति प्राप्त करने के लिए मूलमन्त्र आदि का दीपन करे। ताड़न आदि के द्वारा, एक-एक आहुति से या प्रत्येक को तीन-तीन आहुतियों से, बीजगर्भ शिखार्ध से अथवा 'हूं फट्' से अन्त होनेवाले मन्त्र से दीपन करना चाहिए ।।१-२।। 'ॐ हूं ह्रौं ह्रौं हूं फट्' इस मन्त्र से हृदय, सिर और मुख पर न्यास करे ।।३।। सभी प्रकार के अभिचार कर्म में प्रत्येक का दीपन करना चाहिए। शान्ति और पौष्टिक कर्मों में 'वषट्' से अन्त होनेवाले मन्त्र से दीपन करना चाहिए ।।४।। 'वषट्' और 'वौषट्' से युक्त

---

१ घ. °पादितद्रुतं। २ ख. शुचिः। ३ ख. °पकम्। ४ क. ङ. च. °कृतेऽपि वा। ५ क. ख. ङ. च. हुत्वा प्रा°। ६ क. ख. ङ. च. °खाद्वं द्वं हूं°। ७ ङ. च. ॐ हूं ह्रौं हूं हूं फ°। ८ क. ङ. च. ॐ हूं हूं हां हूं हूं फ°। ९ ख. °स्मिन्सुर°। १० ख. °डन्तशिवाणु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वषड्वौषट्समोपेतैः सर्वकाम्योपरि स्थितैः । हवनं[1] संवरैः कुर्यात्सर्वत्राऽऽप्यायनादिषु ।।५।।
ततः स्वसव्यभागस्थं मण्डले शुद्धविग्रहम्[2] । शिष्यं संपूज्य[3] तत्सूत्रं सुषुम्नेति विभावितम् ।।६।।
मूलेन तच्छिखाबन्धं पादाङ्गुष्ठान्तमानयेत् । संहारेण मुमुक्षोस्तु बध्नीयाच्छिष्यकायके ।।७।।
पुंसस्तु दक्षिणे भागे वामे नार्या नियोजयेत् । शक्तिं च शक्तिमन्त्रेण पूजितां तस्य मस्तके ।।८।।
संहारमुद्रयाऽऽदाय सूत्रं[4] तेनैव योजयेत् । नाडीं त्वादाय मूलेन सूत्रे न्यस्य हृदार्चयेत् ।।९।।
अवगुण्ठ्य तु रुद्रेण हृदयेनाऽऽहुतित्रयम् । प्रदद्यात्संनिधानार्थं शक्तावप्येवमेव हि ।।१०।।
[5]ॐ हां पदाध्वने[6] नमः[7] ।।११।।
ॐ हां वर्णाध्वने[8] नमो [9]हां भवाध्वने नमः । ॐ हां कलाध्वने[10] नमः ([11]शोध्याध्वानं हि सूत्रके ।।१२।।
न्यस्यास्त्रवारिणा शिष्यं प्रोक्ष्यास्त्रमन्त्रितेन च । पुष्पेण हृदि संताड्य शिष्यदेहे प्रविश्य च) ।।१३।।
गुरुश्च तत्र[12] हूंकारयुक्तं[13] रेचकयोगतः । चैतन्यं हंसबीजस्थं [14]विश्लिष्येदायुधाणुना[15] ।।१४।।
ॐ हौं हूं[16] फट् ।।१५।।
आच्छिद्य शक्तिसूत्रेण[17] हां हं स्वाहेति चाणुना । संहारमुद्रया सूत्रे नाडीभूते नियोजयेत् ।।१६।।
ॐ हां हं हामात्मने नमः[18] ।।१७।।

तथा सम्पूर्ण काम्य-कर्मों के ऊपर स्थित शम्बर मन्त्रों द्वारा आप्यायन आदि सभी कर्मों में हवन करना चाहिए ।।५।। तदनन्तर मण्डल में अपनी दाहिनी ओर बैठे हुए शुद्ध शरीरवाले शिष्य की पूजा करके उस सूत्र को सुषुम्ना से भावित कर मूल-मन्त्र से उसके शिखा-बन्ध को पैर के अँगूठे तक ले जाना चाहिए। संहार-मुद्रा के द्वारा मुक्ति चाहनेवाले शिष्य के शरीर को बाँध दे ।।६-७।। पुरुष के दाहिने भाग में और स्त्री के वाम भाग में सूत्र-बन्धन करना चाहिए। उसके मस्तक पर शक्ति-मन्त्र की पूजा करके संहार-मुद्रा के द्वारा सूत्र को बाँधना चाहिए। मूल-मन्त्र से नाड़ी का न्यास करके हृद्मन्त्र से उसकी पूजा करे ।।८-९।। रुद्र-मन्त्र से अवगुण्ठन करके हृदय से तीन आहुतियाँ दे। शक्ति में भी इसी प्रकार सन्निधान के लिए तीन आहुतियाँ दे।।१०।। इन आहुतियों के मन्त्र निम्न हैं–'ॐ हां तत्त्वात्मने नमः', 'ॐ हां पदाध्वने नमः', 'ॐ हां वर्णाध्वने नमः', 'ॐ हां मन्त्राध्वने नमः', 'ॐ हां भुवनाध्वने नमः', 'ॐ कलाध्वने नमः'। सूत्र पर शोध्याध्वा का न्यास करके अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से शिष्य के शरीर पर जल छिड़ककर अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित पुरुष से हृदय में ताड़न करे तथा गुरु को उसके हृदय में प्रवेश करना चाहिए और वहाँ पर रेचक योग से हुंकार युक्त, हंस बीजस्थ चैतन्य को आयुध मन्त्र से वियुक्त करे ।।११-१४।। 'ॐ हौं हूं फट्' ये आयुध मन्त्र हैं। शक्ति-सूत्र से 'हां हूं स्वाहा'–मन्त्र से आच्छादन करके संहार मुद्रा से नाड़ी रूप सूत्र में उसको नियोजित करे। 'ॐ हां हं हामात्मने नमः'–मन्त्र से अव्यापक रूप की भावना करे और कवच मन्त्र से अवगुण्ठित कर दे। समीप

---

१ क. ङ. च. हिरण्यं। २ ख. मण्डलैः। ३ ख. °ज्य सत्सू°। ४ ख. सूत्रे। ५ ॐ हां°°°नमः घ. पुस्तके नास्ति। ६ क. ङ. च. °दात्मने। ७ क. ख. ङ. च. °मः। हां। ८ क. च. °र्णात्मने। ९ क. ङ. च. हां भुवनात्मने। १० क. ङ. च. °लात्मने। ११ शोध्याध्वानं°°°प्रविश्य च सम्पुटितः क. ङ. च. पुस्तकेषु। १२ क. ङ. च. °त्र हुंका°। ख. °त्र ह् रूं का°। १३ क. ख. ङ. च. °रमुक्तरे°। १४ घ. °धात्मना। १५ ख. °ना। ह्रों ह्रौं फ°। १६ क. ङ. च. हां। १७ ख. हां। १८ ख. °मः। ॐ हौं हं हुम्। आ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यापकं भावयेदेनं तनुत्रेणावगुण्ठयेत् । आहुतित्रितयं दद्याद्धृदा संनिधिहेतवे ।।१८।।
विद्यादेहं च विन्यस्य शान्त्यतीतावलोकनम् । तस्यामितरतत्त्वाद्यं[1] मन्त्रभूतं विचिन्तयेत्[2] ।।१९।।
ॐ हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय । नम इत्यनेनावलोकयेत् ।।२०।।
द्वे तत्त्वे मन्त्रमप्येकं पदं वर्णा (र्णा) श्च षोडश । तथाऽष्टौ भुवनान्यस्यां बीजनाडीकथद्वयम्[3] ।।२१।।
विषयं च गुणं चैकं कारणं च सदाशिवम्[4] । सितायां शान्त्यतीयामन्तर्भाव्यं प्रपीडयेत् ।।२२।।
ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं[5] फट् ।।२३।।
संहारमुद्रयाऽऽदाय विदध्यात्सूत्रमस्तके । पूजयेदाहुतीस्तिस्रो दद्यात्संनिधिहेतवे ।।२४।।
तत्त्वे द्वे अक्षरे द्वे च बीजनाडीकथद्वयम्[6] । गुणौ मन्त्रौ तथाऽब्जस्थमेकं[7] कारणमीश्वरम् ।।२५।।
पदानि भानुसंख्यानि भुवनानि[8] च सप्त च । एकं च विषयं[9] शान्तौ कृष्णायामच्युतं[10] स्मरेत् ।।२६।।
ताडयित्वा समादाय मुखसूत्रे नियोजयेत् । जुहुयान्निजबीजेन सांनिध्यायाऽऽहुतित्रयम् ।।२७।।
विद्यायां सप्ततत्त्वानि[11] पदानामेकविंशतिम् । षड्वर्णान्संचरं[12] चैकं लोकानां पञ्चविंशतिम् ।।२८।।
गुणानां त्रयमेकं च विषयं[13] रुद्रकारणम् । अन्तर्भाव्यातिरिक्तायां बीजनाडी[14] कथद्वयम्[15] ।।२९।।
तान्यादाय विदध्याच्च पदं द्व्यधिकविंशतिम् । लोकानां च कलानां च षष्टिं गुणचतुष्टयम् ।।३०।।

लाने के लिए हृद्-मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे ।।१५-१८।। विद्यादेह का विन्यास करके शान्त्यतीत कला का अवलोकन करे। उसमें अन्य तत्त्वों के आद्य मन्त्र-भूत का चिन्तन करे। 'ॐ हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय नमः'-मन्त्र से अवलोकन करे ।।१९-२०।। दो तत्त्वों, एक मन्त्र, पद, सोलह वर्ण, आठ भुवन, बीजनाड़ी, कथ (कर) द्वय, विषय, गुण, एककारण सदाशिव को श्वेत शान्त्यतीत कला में अन्तर्भाव करके प्रपीड़न करे ।।२१-२२।। 'ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्'-मन्त्र से संहार मुद्रा के द्वारा सूत्र को लेकर उस पर गाँठ लगावे, उसकी पूजा करके सन्निधि के लिए तीन आहुतियाँ दे ।।२३-२४।। दो तत्त्व, दो अक्षर, बीजनाड़ी, दो गुण, दो मन्त्र तथा पद्मस्थ एक कारणभूत ईश्वर का, द्वादशपदों, सत्रह भुवनों और एक विषय और अच्युत का कृष्णवर्ण की शान्तिकला में स्मरण करे ।।२५-२६।। फिर उसका ताड़न करके उसको उठा ले और उसे मुखसूत्र में नियोजित करे। अपने ही बीज से सान्निध्य के लिए तीन आहुतियाँ दे ।।२७।। विद्या में सात तत्त्वों, इक्कीस पदों, छह वर्णों, एक मन्त्र और पचीस लोकों, तीन गुणों, एक विषय और कारण रुद्र को अन्तर्भूत करके रक्तवर्ण की विद्याकला में बीजनाड़ी और दो करों का अन्तर्भाव करे ।।२८-२९।। उन सबको लेकर बाईस पद का विधान करें, फिर लोकों, साठ कलाओं, चार गुणों, तीन मन्त्रों, एक विषय और कारण हरि

---

१ क. ख. ङ. च. °त्वाद्यम°। २ क. ङ. च. °त्। ऐं हौं। ३ ख. °करद्व°। ४ क. ख. ङ. च. °म्। शिता°। ५ क. ङ. च. हुं। ख. ह् रूं। ६ ख. °कखद्व°। ७ ख. °थाऽन्तस्थ°। ८ ख. घ. °नि दश स°। ९ क. ङ. च. मध्यतः। १० क. ङ. च. कृष्टायां मध्यतः स्म°। ११ क. ङ. च. °नि पदा°। १२ क. ङ. च. षडन्तान्सस्वर°। १३ च. °यं कारणं हरिम्। १४ क. ङ. °करद्व° ख. कखद्व। १५ घ. °म्। अश्त्रमादाय द°। ख. °कखद्व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्राणां त्रयमेकं च विषयं कारणं हरिम्। अन्तर्भाव्य प्रतिष्ठायां शुक्लायां ताडनादिकम् ।।३१।।
विधाय नाभिसूत्रस्थां संनिधायाऽऽहुतीर्यजेत्[1]। ह्रीं भुवनानां शत साग्रं[2] पदानामष्टविंशतिम्[3] ।।३२।।
बीजनाडीसमीराणां द्वयोरिन्द्रिययोरपि[4]। वर्णं तत्त्वं च विषयमेकैकं गुलपञ्चकम् ।।३३।।
हेतुं ब्रह्माण्डमन्तस्थं[5] शम्बराणां चतुष्टयम्। वृनित्तौ पीतवर्णायामन्तर्भाव्य प्रताडयेत् ।।३४।।
आदौ[6] यत्तत्त्वभागान्ते सूत्रे विन्यस्य पूजयेत्। जुहुयादाहुतीस्तिस्त्रः संनिधानाय पावके ।।३५।।
इत्यादाय कलासूत्रे योजयेच्छिष्यविग्रहात्। सबीजायां तु दीक्षायां समायाचारयागतः[7] ।।३६।।
देहारम्भकरक्षार्थं[8] मन्त्रसिद्धिफलादपि। इष्टापूर्तादिधर्मार्थं[9] व्यतिरिक्तं प्रबन्धकम् ।।३७।।
चैतन्यबोधकं[10] सूक्ष्मं कलानामन्तरे न्यसेत्। अमुनैव क्रमेणाथ कुर्यात्तर्पणदीपने ।।३८।।
आहुतिभिः स्वमन्त्रेण तिसृभिः तिसृभिस्तथा ।।३९।।
ॐ हौं[11] शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहेत्यादि तर्पणम्
ॐ हां[12] हं हां[13] शान्त्यतीतकलापाशाय हूं[14] फडित्यादिदीपनम् ।।४०।।
तत्सूत्रं व्याप्तिबोधाय[15] कलास्थानेषु पञ्चसु। संगृह्य कुंकुमाद्येन[16] तत्र साङ्गं शिवं यजेत्[17] ।।४१।।
हूं फडन्तैः कलामन्त्रैर्भित्त्वा पाशाननुक्रमात्। नमोन्तैश्च प्रविश्यान्तः कुर्याद्ग्रहणबन्धने ।।४२।।

का शुक्ला कला (प्रतिष्ठा) में अन्तर्भाव करके, नाभिसूत्रस्थान पर ताड़न करके सन्निधि के लिए तीन आहुतियाँ दे ।।३०-३१ $\frac{1}{2}$।। (ह्रीं) सौ भुवनों, अट्ठाईस पदों, बीजनाड़ी, समीर, दोनों प्रकार की इन्द्रियों, एकवर्णतत्त्व, विषय, पाँच गुणों, एक हेतु, अन्तस्थ ब्रह्माण्ड और चार शम्बरों को पीतवर्ण की निवृत्ति कला में अन्तर्भूत करके प्रताड़न करे ।।३२-३४।। सर्वप्रथम तत्त्व भाग के अन्त में सूत्र का न्यास करके पूजन करे और सन्निधि के लिए अग्नि में तीन बार आहुतियाँ दे ।।३५।। इस प्रकार आहुति करने के पश्चात् शिष्य के शरीर से कलासूत्र को बाँध दे। सबीजदीक्षा में समयाचार याग (पाश) से रक्षा के लिए मन्त्र-सिद्धि के फल देनेवाले (कवच से) देहारम्भक करे ।।३६-३६ $\frac{1}{2}$।। इष्ट, आपूर्त आदि धर्म-कृत्यों में अतिरिक्त प्रबन्धक कर्म भी करना चाहिए। कलाओं के मध्य चैतन्यबोधक सूक्ष्म का स्मरण करना चाहिए। इसी क्रम से तर्पण और दीपन करे। तदनन्तर अपने मन्त्रों से तीन-तीन आहुतियाँ दे ।।३७-३९।। ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहा' से तर्पण और 'ॐ हां हं हां शान्त्यतीतकलापाशाय फट्' मन्त्र से दीपन करे। पहले के सूत्र को व्याप्तिबोध के लिए पाँच कला स्थानों पर बाँधकर वहाँ कुङ्कुम आदि से साङ्ग-शिव की पूजा करे ।।४०-४१।। 'हूं' और 'फट्' जिनके अन्त में हो ऐसे कला-मन्त्रों से पाशों का क्रमशः भेदन करके, 'नमः' जिसके अन्त में हो ऐसे मन्त्र से अन्तःप्रवेश कर ग्रहण और बन्धन आदि का प्रयोग करे। "ॐ हूं हां हौं हां

---

१ क. ङ. च. °त्। केवलानां। २ ख. °ग्रं पादा°। ३ ङ. नामेक विं°। ४ ङ. °योरन्तरयो°। ५ क. ङ. च. °न्तस्थमसुरा°। ६ क. ङ. च. आदायैतत्रिभा°। ७ क. ङ. च. °रपाशतः। ८ क. ङ. च. °कधर्मार्थं। ९ ख. °र्थं प्रतिबीजं प्र°। १० क. ङ. च. °न्यरोचकं मृक्षक°। ११ ख. हां। १२ क. ङ. च. हां हूं हौं शा°। १३ ख. हौं। १४ ख. हः। १५ क. ङ. च. °प्तिरोधा°। १६ घ. ङ. °माज्येन। १७ ख. °त्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ हूं हां हौं हां हूं फट्शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि चेत्यादिभिर्मन्त्रैः कलानां ग्रहणबन्धनादिप्रयोगः ।।४३।।
पाशादीनां च स्वीकारो ग्रहणं बन्धनं पुनः । पुरुषं प्रति निःशेषव्यापारप्रतिपत्तये[1] ।।४४।।
उपवेश्याथ तत्सूत्रं शिष्यस्कन्धे निवेशयेत् । विस्मृताघप्रमोषाय[2] शतं मूलेन होमयेत् ।।४५।।
शरावसंपुटे पुंसः स्त्रियाश्च प्रणितोदरे । हृदस्त्रसंपुटं सूत्रं [3]विधायाभ्यर्चयेद्धृदा ।।४६।।
सूत्रं शिवेन साङ्गेन कृत्वा संपातशोधितम् । निदध्यात्कलशस्याधो रक्षां विज्ञापयेदिति ।।४७।।
शिष्यं पुष्पं करे दत्त्वा सम्पूज्य[4] कलशादिकम् । प्रणमय्य बहिर्यायाद्यागमन्दिरमध्यतः ।।४८।।
मण्डलत्रितयं कृत्वा मुमुक्षूनुत्तराननान् । भुक्तये पूर्ववक्त्रांश्च शिष्यांस्तत्र निवेशयेत् ।।४९।।
प्रथमे पञ्चगव्यस्य प्राशयेच्चुलुकत्रयम्[5] । पाणिना कुशयुक्तेन अर्चितानन्तरान्तरम् ।।५०।।
चरुं ततस्तृतीये तु ग्रासत्रितयसंमितम् । अष्टग्रासप्रमाणं वा दशनस्पर्शवर्जितम् ।।५१।।
पालाशपुटके मुक्तौ भुक्तौ पिप्पलपत्रके । हृदा संभोजनं दत्त्वा पूतैराचामयेज्जलैः ।।५२।।
दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेच्छोभने शुभम् । न्यूनादिदोषमोषाय[6] मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ।।५३।।
विधाय स्थण्डिलेशाय सर्वकर्मसमर्पणम् । पूजाविसर्जनं चास्य चण्डेशस्य च पूजनम् ।।५४।।
निर्माल्यमपनीयाथ शेषमग्नौ यजेच्चरोः । कलशं लोकपालांश्च पूजयित्वा विसृज्य च ।।५५।।

हूं फट् शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि च'–इत्यादि मन्त्रों के द्वारा कलाओं के ग्रहण और बन्धन का प्रयोग करे। पाश आदि का स्वीकार, ग्रहण और बन्धन पुरुष को सम्पूर्ण व्यापारों में सिद्धि प्राप्त कराता है।।४२-४४।। इतनी क्रिया के अनन्तर शिष्य को समीप बैठाकर उस सूत्र को शिष्य के कन्धे पर रख दे। भूले और अनजान पापों के नाश के लिए मूल-मन्त्र से सौ आहुतियाँ देनी चाहिए ।।४५।। पुरुष के लिए मिट्टी की तश्तरी के सम्पुट में, स्त्रियों के लिए प्रणीता (मिट्टी के पात्र-विशेष) में हृद् और अस्त्र मन्त्र से सम्पुटित सूत्र को रखकर हृद् मन्त्र से पूजन करे ।।४६।। साङ्गशिव मन्त्र से संपात के द्वारा सूत्र का संशोधन करके उसको कलश के नीचे रखकर रक्षा-मन्त्र से रक्षा के लिए निवेदन करे ।।४७।। शिष्य के हाथ में पुष्प देकर, कलश की पूजा करके यज्ञ-मण्डप से बाहर चला जाय। यज्ञ-मण्डप के बाहर तीन मण्डल बनाकर मुक्ति चाहनेवालों को उत्तराभिमुख और सांसारिक सुख चाहनेवाले शिष्यों को पूर्वाभिमुख बैठाये ।४८-४९।। पहले मण्डल में बैठाकर उसको तीन चुल्लू पञ्चगव्य पिलाये। द्वितीय मण्डल में तीन ग्रास या आठ ग्रास चरु खिलाये। चरु खाते समय दाँत का स्पर्श न हो ।।५०-५१।। मुक्ति की कामना करनेवालों को पीपल के पत्ते पर, हृद् मन्त्र से भोजन परोसना चाहिए। भोजन के पश्चात् पवित्र जल से आचमन कराये ।।५२।। हृद् मन्त्र से दन्तधावन करके उस शुभ दातून को अच्छे स्थान पर फेंक दे। न्यूनाधिक दोष को दूर करने के लिए मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार हवन करे ।।५३।। वेदी के अधिपति देवता को समस्त कर्म समर्पित करके पूजा-विसर्जन और वेदी के अधिपति देव की पूजा करे ।।५४।। निर्माल्य को हटाकर शेष चरु को अग्नि में डाल दे। कलश और लोकपालों की पूजा करके उनका विसर्जन करे ।।५५।। गणेश और अग्नि का विसर्जन

---

१ क. ङ. च. °तिषेचनम्। उ.°। २ घ. विस्तृता°। ३ क. ङ. च. °त्रं निधा। ४ च. संपूर्य। ५ घ. °च्चुल्लक°। ६ क. ङ. च. °मोक्षाय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विसृजेद्गणमग्निं[1] च रक्षितं यदि बाह्यतः। बाह्यतो लोकपालानां दत्त्वा संक्षेपतो बलिम् ।।५६।।
भस्मना शुद्धतोयैर्वा स्नात्वा यागालयं विशेत्। गृहस्थान्दर्भशय्यायां पूर्वशीर्षान्सुरक्षितान् ।।५७।।
हृदा सद्भस्मशय्यायां यतीन्दक्षिणमस्तकान्। शिखाबद्धशिखानस्त्रसप्तमाणवकान्वितान् ।।५८।।
विज्ञाय[2] स्नापयेच्छिष्यांस्ततो यायात्पुनर्बहिः ।।५९।।
ॐ हिलि हिलि[3] शूलपाणये स्वाहा ।।६०।।
पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य गृहीत्वा दन्तधावनम्। समाचम्य शिवं ध्यात्वा शय्यामास्थाय[4] पावनीम् ।।६१।।
दीक्षागतं[5] क्रियाकाण्डं संस्मरन्संविशेद्गुरुः। इति संक्षेपतः प्रोक्तो विधिर्दीक्षाधिवासने ।।६२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेय निर्वाणदीक्षायामधिवासनविधिकथनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनम्

ईश्वर उवाच

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानादिको गुरुः। दध्यार्द्रमांसमद्यादेः प्रशस्ताऽभ्यवहारिता ।।१।।
गजाश्वारोहणं स्वप्ने शुभं शुक्लांशुकादिकम्। तैलाभ्यङ्गादिकं हीनं होमोऽघोरेण शान्तये ।।२।।

करे। यदि बाहर से अन्य देवों द्वारा रक्षित हों तो बाहर से लोकपालों को संक्षेप में बलि दे ।।५६।। भस्म से या शुद्ध जल से स्नानकर यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करे। कुश के आसन पर गृहस्थों को पूर्वाभिमुख बैठाकर हृद् मन्त्र का उच्चारण करते हुए भस्म के उत्तम आसन पर संन्यासियों को दक्षिणाभिमुख बैठावे ।।५७-५७ $\frac{1}{2}$ ।। शिखा मन्त्र से शिखा बाँधे हुए सात बटुओं को भी वहाँ बैठाये, पुनः अस्त्र-मन्त्र से उन शिष्यों को नहलाये, तत्पश्चात् यज्ञमन्दिर से बाहर जाय और 'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा'-मन्त्र का उच्चारण करे ।।५८-६०।। पञ्चगव्य और चरु का स्वयं भक्षण करके दातून ले ले। आचमन करके शिव का ध्यान करके पवित्र शय्या पर सोने के लिए जाय। गुरु दीक्षा सम्बन्धी क्रिया-कलापों का स्मरण करता हुआ सो जाय। इस प्रकार यहाँ संक्षेप रूप में दीक्षाधिवासन की विधि बतायी गयी है ।।६१-६२।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाणदीक्षा-विधि कथन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८३।।

अध्याय ८४

निर्वाणदीक्षा में निवृत्ति कला-शोधन

महादेव बोले-गुरु को प्रातःकाल उठकर स्नान इत्यादि करना चाहिए। उसकी पूर्व की रात्रि में गुरु के द्वारा स्वप्न में दही, अदरक, कच्चा मांस और मद्यादि का भोजन देखना शुभ होता है। स्वप्न में हाथी अथवा घोड़े पर चढ़ना और शुक्ल वस्त्रादि का देखना भी शुभ माना गया है किन्तु शरीर के ऊपर तैलादि की मालिश करना अनिष्टकर होता है जिसकी शान्ति अघोर मन्त्र से यज्ञ करने से हो सकती है ।।१-२।। गुरु को दोनों नित्य कर्म (सन्ध्या) करके यज्ञ-मण्डप

---

१ क. ङ. च. °जेत्क्षण°। ख. °जेद्गण°। २ क. ङ. च. °य श्रावये°। ख °य स्थाप्य। ३ घ. °लि त्रिशू°। ४ ख. °मादाय। ५ घ. °गतक्रि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नित्यकर्मद्वयं कृत्वा प्रविश्य मखमण्डपम्। स्वाचान्तो[1] नित्यवत्कर्म कुर्यान्नैमित्तिके विधौ ।।३।।
ततः संशोध्य चाऽऽत्मानं शिवहस्तं[2] तथाऽऽत्मनि। विन्यस्य कुम्भगं इन्द्रादीनामनुक्रमात् ।।४।।
मण्डले स्थण्डिले वाऽपि प्रकुर्वीत शिवार्चनम्। तर्पणं पूजनं वह्नेः पूर्णान्तं मन्त्रतर्पणम् ।।५।।
दुःस्वप्नदोषमोषाय शस्त्रेणाष्टाधिकं शतम्। हुत्वा[3] हूंसंपुटेनैव विदध्यान्मन्त्रदीपनम् ।।६।।
अन्तर्बलिविधानं च मध्ये स्थण्डिलकुम्भयोः। कृत्वा शिष्यप्रवेशाय लब्धानुज्ञो बहिर्व्रजेत् ।।७।।
कुर्यात्समयवत्तत्र[4] मण्डलारोपणादिकम्। संपातहोमं[5] तन्नाडीरूपदर्भकरानुगम् ।।८।।
तत्संनिधानाय तिस्रो हुत्वा मूलाणुनाऽऽहुतीः। कुम्भस्थं शिवमभ्यर्च्य पाशसूत्रमपाहरेत्[6] ।।९।।
स्वदक्षिणोर्ध्वकायस्य शिष्यस्याभ्यर्चितस्य च। तच्छिखायां निबध्नीयात्पादाङ्गुष्ठावलम्बितम् ।।१०।।
तं निवेश्य निवृत्तेस्तु व्याप्तिमालोक्य चेतसा। ज्ञेयानि भुवनान्यस्यां शतमष्टाधिकं ततः ।।११।।
कपालोऽजश्च बुद्धश्च वज्रदेहः प्रमर्दनः। विभूतिरव्ययः शास्ता पिनाकी त्रिदशाधिपः ।।१२।।
अग्नी[7] रुद्रो हुताशी च पिङ्गलः खादको हरः। ज्वलनो दहनो[8] बभ्रुर्भस्मान्तकक्षपान्तकौ ।।१३।।
याम्यमृत्युहरौ[9] धाता विधाता कार्यरञ्जकः[10]। कालो धर्मोऽप्यधर्मश्च संयोक्ता[11] च वियोजकः ।।१४।।
नैर्ऋतो मारणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः। ऊर्ध्वांशको विरूपाक्षो धूम्रलोहितदंष्ट्रवान् ।।१५।।
बलश्चातिबलश्चैव पाशहस्ती[12] महाबलः। श्वेतश्च जयभद्रश्च दीर्घबाहुर्जलान्तकः ।।१६।।

में प्रवेश करना चाहिए। अच्छी तरह आचमन करके नैमित्तिक कार्य नित्य-कर्म के समान करना चाहिए ।।३।। अपनी आत्मा तथा शिवहस्त नामक हाथ के अङ्ग को पवित्र करके अपने अन्दर इन्द्र आदि दिक्पालों का न्यास करना चाहिए। शिव का अर्चन किसी मण्डल अथवा स्थण्डिल पर करना चाहिए और अग्नि का पूजन तथा मन्त्रों से तर्पण भी करना चाहिए ।।४-५।। उपर्युक्त दुःस्वप्नों से उत्पन्न दोषों से मुक्ति पाने के लिए 'हूं' सम्पुटपूर्वक शस्त्र-मन्त्र से एक सौ आठ बार हवन करके मन्त्र को दीप्त करना चाहिए ।।६।। स्थण्डिल और कुम्भ के बीच में अन्तर्बलि का विधान करके देवता से शिष्य के प्रवेश की आज्ञा प्राप्त करके बाहर चला जाना चाहिए ।।७।। वहाँ समय-दीक्षा के समय मण्डल आरोपण इत्यादि क्रियाएँ करनी चाहिए। वहाँ पर पवित्र कुशों के द्वारा सम्पात होम करना चाहिए। उनके सन्निधान के लिए मूल-मन्त्र से तीन आहुतियाँ देनी चाहिए और कुम्भस्थ शिव की अर्चना करके पाश-सूत्र को हाथ में उठा लेना चाहिए ।।८-९।। तदनन्तर पूजित शिष्य के ऊपरी शरीर के दक्षिणी भाग में—उसकी शिखा में उस सूत्र को बाँधे और उसे पैर के अँगूठे तक लम्बा रखे ।।१०।। इस प्रकार उस पाश का निवेश करके उसमें मन-ही-मन निवृत्ति कला की व्याप्ति का दर्शन करे। उसमें एक सौ आठ भुवन जानने योग्य हैं ।।११।। उनके नाम हैं—कपाल, अज, बुद्ध, वज्रदेह, प्रमर्दन, विभूति, अव्यय, शास्ता, पिनाकी, इन्द्र, अग्नि, रुद्र, हुताशी, पिङ्गल, खादक, हर, ज्वलन, दहन, बभ्रु, भस्मान्तक, क्षपान्तक, याम्य, मृत्युहर, धाता, विधाता, कार्यरञ्जक, काल, धर्म, अधर्म, संयोक्ता, वियोजक, नैर्ऋत, मारण, हन्ता, क्रूरदृष्टि, भयानक, ऊर्ध्वांशक, विरूपाक्ष, धूम्र, लोहित, दंष्ट्री, बल, अतिबल, पाशहस्त, महाबल, श्वेत, जयभद्र, दीर्घबाहु,

---

१ क. ङ. च. स्वधान्तं। २ ख. शिवं हंसं त°। ३ क. ङ. च. °त्वा हुं सं°। ख. °त्वा ह् रूं सं°। ४ क. ङ. च. यकं तत्र। ५ ख. °होमवन्ना°। ६ घ. °त्रमुपा°। ७ क. ख. ङ. च. अग्निरुद्रौह°। ८ ख. °नो वाऽपि भस्मा°। ९ क. ख. ङ. च. याम्यो मृ°। १० क. च. °र्यवञ्चकः। ११ क. ङ. च. °क्ताविधिपोषकः। १२ क. ङ. च. °हस्तो म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वडवास्यश्च[1] भीमश्च दशैते वारुणाः स्मृताः । दीर्घो[2] लघुवायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षमान्तकः[3] ।।१७।।
पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्दी मेघवाहनः । जटामुकुटधारी च नानारत्नधरस्तथा ।।१८।।
निधीशो[4] रूपवान्धन्यः[5] सौम्यदेहः प्रसादकृत् । प्रकाशोऽप्यथ लक्ष्मीवान्कामरूपो दशोत्तरे ।।१९।।
विद्याधरो ज्ञानधरः सर्वज्ञो वेदपारगः । मातृवृत्तश्च पिङ्गाक्षो भूतपालो बलिप्रियः ।।२०।।
सर्वविद्याविधाता च सुखदुःखहरो दश । अनन्तः पालको धीरः[6] पातालाधिपतिस्तथा ।।२१।।
वृषो वृषधरो[7] वीर्यो ग्रसनः सर्वतोमुखः । लोहितश्चैव विज्ञेया दशरुद्राः फणिस्थिताः ।।२२।।
शंभुविभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षस्त्रिदशवन्दितः । संवाहश्च[8] विवाहश्च[9] लाभो लिप्सुर्विचक्षणः ।।२३।।
अत्ता कुहककालाग्निरुद्रो हाटक एव च । कुष्माण्डश्चैव सत्यश्च ब्रह्मा विष्णुश्च सप्तमः ।।२४।।
रुद्रश्चाष्टाविमे रुद्राः कटाहाभ्यन्तरे स्थिताः । एतेषामेव नामानि भुवनानामपि स्मरेत् ।।२५।।
भवोद्भवः सर्वभूतः सर्वभूतसुखप्रदः । सर्वसांनिध्यकृद्ब्रह्मविष्णुरुद्रशरार्चितः[10] ।।२६।।
संस्तुतपूर्वस्थित, ॐ साक्षिन्[11], ॐ रुद्रान्तक, ॐ पतंग,
ॐ शब्द, ॐ सूक्ष्म, ॐ शिव सर्वसर्वद सर्वसांनिध्यकर
ब्रह्मविष्णुरुद्रकर[12], ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नमः[13] ।।२७।।
अष्टाविंशतिपादानि[14] व्योमव्यापिमनोगुह । सद्योहृदस्त्रनेत्राणि[15] मन्त्रवर्णाष्टको मतः ।।२८।।
बीजकारो मकारश्च नाड्याविडापिङ्गलाह्वये । प्राणापानावुभौ वायू घ्राणोपस्थौ तथेन्द्रिये ।।२९।।

जलान्तक, वडवास्य, भीम (इनमें से अंतिम दस वरुण दिशा में स्थिर रहते हैं), दीर्घ, लघु, वायुवेग, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, क्षमान्तक, पञ्चान्तक, पञ्चशिख, कपर्दी, मेघवाहन, जटामुकुटधारी, नानारत्नधर, निधीश, रूपवान्, धन्य, सौम्यदेह, प्रसादकृत्, प्रकाश, लक्ष्मीवान्, कामरूप (ये रुद्र उत्तर दिशा में अवस्थित हैं), विद्याधर, ज्ञानधर, सर्वज्ञ, वेदपारग, मातृवृत्त, पिङ्गाक्ष, भूतपाल, बलिप्रिय, सर्वविद्याविधाता, सुखदुःखहर, अनन्त, पालक, धीर, पातालाधिपति, वृष, वृषधर, वीर्य, ग्रसन, सर्वतोमुख, लोहित (इनमें से अन्तिम दस शेषनाग की फण अर्थात् पाताललोक में अवस्थित हैं), शम्भु, विभु, गणाध्यक्ष, त्रैक्ष, त्रिदशवन्दित, संवाह, विवाह, लाभ, लिप्सु, विचक्षण, अत्ता, कुहक, कालाग्निरुद्र, हाटक, कूष्माण्ड, सत्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (इनमें से आठ कटाह स्थित रुद्र के प्रतिरूप हैं)। ये नाम एक सौ आठ भुवनों के भी हैं। भवोद्भव, सर्वभूतसुखप्रद, सर्वसान्निध्यकर, ब्रह्मविष्णुरुद्रकर, अनर्चितानर्चित, असंस्तुतासंस्तुत, पूर्वस्थित साक्षिन्, पतंग, शब्द, सूक्ष्म, शिव, सर्व, सर्वद, ॐ नमो नमः, ॐ नमः शिवाय, नमो नमः, ये अट्ठाईस पाद हैं। हे स्कन्द! उपर्युक्त पाशसूत्र में निवृत्तिकला को अट्ठाईस पादों से युक्त समझना चाहिए। उनमें सद्यो, हृदय तथा नेत्र ये तीन मन्त्र हैं। उसमें अकार और लकार बीजमन्त्र, इड़ा और पिङ्गला नामक नाड़ियाँ, प्राण और अपान वायु, घ्राण तथा

---

१ च. °श्च भौम°। २ घ. शीघ्रो। ३ क. ङ. च. क्षपान्तकः। घ. क्षयान्तकः। ४ ख. °वान्वद्यः सौ°। ५ घ. न्धन्योऽसौ°। ६ क. ङ. च. वीरः। ७ क. च. °रो धार्यो ग्रथनः। ८ घ. संधारश्च विहारश्च। ९ ख. °श्चनभोलि°। १० क. ङ. °तः। अनर्चित, अ सं°। ११ क. ख. ङ. च. °न्, 'तुङ्ग°, पतङ्ग°, ज्ञान°, शब्द°, सूक्ष्म°, °शिव°, सर्वदण्ड°, सर्वसां°। १२ क. ङ. च. °द्र पर। १३ क. ङ. च. °मः, ॐ शिवाय, ॐ नमो नमः। अ°। १४ क. ख. ङ. च. °तिपदा°। १५ क. ङ. च. °दन्ते ने°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गन्धस्तु विषयः प्रोक्तो गन्धादिगुणपञ्चके। पार्थिवं मण्डलं पीतं वज्राङ्कं चतुरस्त्रकम् ।।३०।।
विस्तारो योजनानां तु कोटिरस्य शताहता। अत्रैवान्तर्गता ज्ञेया योनयोऽयि चतुर्दश ।।३१।।
प्रथमा[1] सोमदेवानामश्वाद्या[2] देवयोनयः। मृगः[3] पक्षी च पशवश्चतुर्धा तु सरीसृपाः ।।३२।।
स्थावरं पञ्चमं सर्वं योनिः षष्ठी अमानुषी। पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्वं चैन्द्रमेव च ।।३३।।
सौम्यं प्राजेश्वरं[4] ब्राह्ममष्टमं परिकीर्तितम्। अष्टानां पार्थिवं तत्त्वमधिकारास्पदं मतम् ।।३४।।
लयस्तु प्रकृतौ बुद्धौ भोगो ब्रह्मा च कारणम्। ततो जाग्रदवस्थानैः समस्तैर्भुवनादिभिः ।।३५।।
निवृत्तिं गर्भितां ध्यात्वा स्वमन्त्रेण नियोज्य च ।।३६।।
ॐ हां हूं[5] हां निवृत्तिकलापाशाय हूं[6] फट् तत ॐ हां[7] हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहेत्यनेनाङ्कुशमुद्रया पूरकेणाऽऽकृष्य, ॐ हूं[8] ह्रां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं[9] फडित्यनेन संहारमुद्रया [10]कुम्भकेनाधःस्थानादादाय, ॐ[11] ॐ हूं हां निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे[12] संस्थाप्य, ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनार्घ्यं दत्वा संपूज्य विमुखेनैव स्वाहान्तेनैव संनिधानायाऽऽहुतित्रयं संतर्पणाहुतित्रयं च दत्त्वा, ॐ हां ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य संपूज्य च स्वाहान्ते संतर्प्य ।।३७।।
ब्रह्मं स्तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं। भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विधिं विज्ञापयेदिति ।।३८।।

उपस्थ इन्द्रियाँ और गन्धादि गुण पञ्चकों में गन्ध विषय भी रहा करता है। पार्थिव मण्डल पीतवर्ण, चतुष्कोण और वज्राङ्कित होता है ।।१२-३०।। उसका विस्तार सौ करोड़ योजन होता है। इसी के अन्तर्गत चौदह योनियाँ भी होती हैं ।।३१।। प्रथम योनियाँ सोमदेवों की हैं अन्य अश्व आदि देवयोनियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है–मृग, पक्षी, पशु और सरीसृप, पाँचवीं स्थावर तथा छठीं अमानुषी योनि, पैशाची, राक्षसी, याक्षी, गान्धर्वी, ऐन्द्री, सौमी, प्राजापत्या और ब्राह्मी ये आठ देवयोनियाँ हैं। इन आठों योनियों में पार्थिव तत्त्व का अधिकार रहता है ।।३२-३४।। इनका लय प्रकृति में, भोगबुद्धि में होता है और ब्रह्मा कारण है। उसी की जाग्रत अवस्थाओं के कारण इन भुवनादिकों की स्थिति रहा करती है। सर्वप्रथम इन सबसे गर्भिता निवृत्ति का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका विनियोग करना चाहिए ।।३५-३६।। 'ॐ हां हूं हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा'। तदनन्तर 'ॐ हां हूं हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहा'–इस मन्त्र से अङ्कुशमुद्रा के द्वारा पूरक से आकृष्ट करना चाहिए। 'ॐ हूं ह्रां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्'–इस मन्त्र से संहार मुद्रा एवं कुम्भक द्वारा, नाभि के नीचे से ग्रहण करना चाहिए; 'ॐ ॐ हूं हां निवृत्तिकलापाशाय नमः–इस मन्त्र से उद्भव मुद्रा के द्वारा रेचक प्राणायाम से कुम्भ में स्थापित करना चाहिए। 'ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः'–इस मन्त्र से अर्घ्य देकर पूजन करके और स्वाहा से अन्त करके इसी मन्त्र के द्वारा तीन संनिधानाहुति और संतर्पणाहुतियाँ देनी चाहिए, 'ॐ हां ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्र से ब्रह्म का आवाहन करके ब्रह्मा का पूजन और तर्पण करना चाहिए ।।३७।। हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे इस अधिकार में मैं मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ इसलिए यह विधि आपके अनुकूल होनी चाहिए, ऐसा निवेदन करना

---

१ घ. °मा सर्वदे°। २ घ. °वानां मन्वाद्या। ३ ख. घ. मृगप°। ४ घ. प्राणेश्व°। ५ ख. रूं। ६ ख. हरूं। चहुं। ७ ख. हां नि°। च. हां हूं हां। ८ च. हूं हूं हूं नि°। ९ ख. हुं। १० च. कुम्भेन नाम्यवस्था°। ११ ख. ॐ हूं हां नि°। च. ॐ हां हूं नि°। १२ च. कुम्भ संप्राप्य, ॐ हूं नि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आवाहयेत्ततो देवीं रक्षां वागीश्वरीं हृदा। इच्छाज्ञानक्रियारूपां षड्विधां[1] ह्येककारणम् ।।३९।।
पूजयेत्तर्पयेद्देवीं प्रकारेणामुनः ततः। वागीश्वरीं[2] विनिःशेषयोनिविक्षोभकारणम् ।।४०।।
हृत्संपुटार्थबीजादिहूंफडन्तशराणुना। ताडयेद्धृदये तस्य प्रविशेत्स[3] विधानवित् ।।४१।।
ततः शिष्यस्य चैतन्यं हृदि वह्निकणोपमम्। निवृत्तिस्थं युतं पाशैर्ज्येष्ठया विभजेद्यथा ।।४२।।
ॐ हां[4] हूं[5] हः, हूं फट् ।।४३।।
ॐ हां स्वाहेत्यनेनाथ पूरकेणाङ्कुशमुद्रया। तदाकृष्य[6] स्वमन्त्रेण गृहीत्वाऽऽत्मनि योजयेत् ।।४४।।
ॐ हां[7] हूं हामात्मने नमः ।।४५।।
पित्रोर्विभाव्य संयोगं चैतन्यं रेचकेन तत्। ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमान्नीत्वा शिवास्पदम् ।।४६।।
गर्भाधानार्थमादाय युगपत्सर्वयोनिषु। क्षिपेद्वागीश्वरीयोनौ वामयोद्भवमुद्रया ।।४७।।
ॐ हां[8] हां हामात्मने नमः ।।४८।।
पूजयेदप्यनेनैव तर्पयेदपि पञ्चधा। अन्ययोनिषु सर्वासु देहशुद्धिं हृदाऽऽचरेत् ।।४९।।
नात्र पुंसवनं स्त्र्यादिशरीरस्यापि संभवात्। सीमन्तोन्नयनं वाऽपि दैवान्यङ्गानि देहवत् ।।५०।।
शिरसा जन्म कुर्वीत युगपत्सर्वदेहिनाम्। तथैव भावयेदेषामधिकारं शिवाणुना[9] ।।५१।।

चाहिए ।।३८।। इसके बाद हृद्-मन्त्र से वागीश्वरी रक्षा देवी का आवाहन करना चाहिए। यह इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप है। छह प्रकार की यह एकमात्र कारण होती है ।।३९।। इसके बाद इस प्रकार से देवी का पूजन तथा तर्पण करना चाहिए। मुख्य मन्त्रों के आदि में हृद्मन्त्र तथा अन्त में हुं फट् शब्दों का सम्पुट करना चाहिए और जिससे पहले वागीश्वरी के गर्भ को विक्षुब्ध किया गया उससे शिष्य के हृदय को भी प्रभावित करना चाहिए। इन विधियों में पारङ्गत गुरु को शिष्य के हृदय में प्रवेश करके वह्निकण के समान उसके निवृत्तिस्थ चैतन्य को 'ॐ हां हूं हः, हूं फट्' मन्त्र से विभक्त करना चाहिए ।।४०-४३।। 'ॐ हां स्वाहा' इस मन्त्र से पूरक प्राणायाम और अंकुश-मुद्रा के द्वारा उस जीव चैतन्य को हृदय में आकृष्ट करके, आत्ममन्त्र से पकड़कर, उसे अपनी आत्मा में योजित करे। वह मन्त्र इस प्रकार है-'ॐ हां हूं हामात्मने नमः' ।।४४-४५।। माता-पिता के सयोग की कल्पना करके रेचक से चैतन्य को ब्रह्मादि कारणों के त्याग से शिव के स्थान पर युक्त करना चाहिए। गर्भाधान के लिए उद्भव-मुद्रा से वागीश्वरी योनि में उसका प्रक्षेप कर देना चाहिए ।।४६-४७।। 'ॐ हां हां हामात्मने नमः'-इस मन्त्र से पूजन और पाँच प्रकार का तर्पण भी करना चाहिए। अन्य सभी योनियों में हृद्मन्त्र से देहशुद्धि का आचरण करना चाहिए ।।४८-४९।। यहाँ पर पुंसवन संस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्त्री आदि शरीर की सम्भावना हो सकती है। न तो सीमन्तोन्नयन करना चाहिए। शिरस् मन्त्र के द्वारा जन्म कराना चाहिए और शिव-मन्त्र से उसके अधिकार की भावना करनी चाहिए ।।५०-५१।। कवच-मन्त्र से भोग और अस्त्र-मन्त्र से

---

१ क. ङ. च. °ड्विधायैककारणात्। पू०। २ क. ङ. च. °श्वर च. निः°। ३ क. ङ. च. °शेच्च वि°। ४ ख. हां हूं हां हः, हूं फ°। ५ क. ङ. च. हूं हां हः। ६ क. ङ. च. °कृष्याऽऽत्मम°। ७ क. ङ. च. हं। ८ क. ङ. च. हं। ९. क. ङ. च. शिखण्डिना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भोगं कवचमन्त्रेण शस्त्रेण विषयात्मना। मोहरूपमभेद्यं च लयसंज्ञं विभावयेत् ।।५२।।
शिवेन स्रोतसां शुद्धिं हृदा तत्त्वविशोधनम्। पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्याद्गर्भाधानादिषु क्रमात् ।।५३।।
मायया मलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये। निष्कृत्यैव हृदा पश्चाद्यजेत शतमाहुतीः ।।५४।।
मलशक्तिनिरोधेन[1] पाशानां च वियोजनम्[2]। स्वाहान्तायुधमन्त्रेण पञ्च पञ्चाहुतीर्यजेत् ।।५५।।
मायाद्यन्तस्य[3] पाशस्य सप्तवारास्त्रजप्तया। कर्तर्या छेदनं कुर्यात्कल्पशस्त्रेण तद्यथा ।।५६।।
ॐ हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् ।।५७।।
बन्धकत्वं च निर्वर्त्य हस्ताभ्यां च शराणुना। विसृज्य वर्तुलीकृत्य घृतपूर्णे स्रुवे धरेत्[4] ।।५८।।
दहेदनुकलास्त्रेण केवलास्त्रेण भस्मसात्। कुर्यात्पञ्चाऽऽहुतीर्दत्त्वा पाशाङ्कुशनिवृत्तये[5] ।।५९।।
ॐ हः,[6] अस्त्राय हूं[7] फट् ।।६०।।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यादस्त्राहुतिभिरष्टभिः। अथाऽऽवाह्य विधातारं पूजयेत्तर्पयेत्तथा ।।६१।।
ततः— ॐ हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन्गृहाण। स्वाहेत्याहुतित्रयेणाधिकारमस्य समर्पयेत् ।।६२।।
दग्धनिःशेषपापस्य ब्रह्मन्नस्य पशोस्त्वया। बन्धाय न पुनः स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।६३।।
ततो विसृज्य धातारं नाड्या दक्षिणया शनैः। संहारमुद्रयाऽऽत्मानं कुम्भकेन निजाणुना[8] ।।६४।।

विषयों की शुद्धि करनी चाहिए तथा आत्म-मन्त्रों से मोह, रूप, अभेद्य और लय की भी भावना करनी चाहिए ।।५२।। शिव-मन्त्र से कानों की शुद्धि करनी चाहिए और हृद्मन्त्र से तत्त्वों का विशोधन। गर्भाधान इत्यादि में पाँच बार आहुतियाँ देनी चाहिए तथा माया मन्त्र से शिष्य के पापों का शमन करना चाहिए। इसी प्रकार कर्मादि के पाशों से मुक्त करने के लिए भी माया मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। हृद्मन्त्र से सौ आहुतियाँ देकर आहुति देने से सभी बन्धनों से शिष्य का निस्तार हो जाता है ।।५३-५४।। मल-शक्ति के निरोध से ही पाशों की विमुक्ति होती है। स्वाहा से अन्त करके आयुधमन्त्र के द्वारा पाँच-पाँच आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिए ।।५५।। अस्त्र-मन्त्रों से सात बार पाठ करके मायादि पाश का छेदन करना चाहिए। उसके लिए कल्पशस्त्र से तथा कर्तरी से उसका छेदन भी करना चाहिए ।।५६।। 'ॐ हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्'-इस मन्त्र से हाथों से बन्धन को हटाकर उसको वर्तुलाकार करके घृतपूर्ण स्रुव में रखना चाहिए तथा अनुकलास्त्र मन्त्र से उसे जलाकर केवलास्त्र मन्त्र से उसे भस्मसात् कर देना चाहिए। पाशाङ्कुश निवृत्ति के लिए इसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।।५७-५९।। 'ॐ हः अस्त्राय हूं फट्'-इस मन्त्र से आठ अस्त्राहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। तदनन्तर ब्रह्मा का आवाहन करके उसका पूजन तथा तर्पण करना चाहिए और 'ॐ हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन् गृहाण स्वाहा'-इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ देकर उसके अधिकार को समर्पित करना चाहिए ।।६०-६२।। उस समय इस शिव आज्ञा को भी सुनाना चाहिए कि हे ब्रह्मन्! इस पशु के पाप दग्ध हो चुके हैं, अतः उसे पुनः बन्धन में मत डालना। इसके बाद विधाता को विदा करके कुम्भक के द्वारा संहारमुद्रा से दक्षिण नाड़ी को पूरित करना चाहिए और अपने-

---

१ क. ङ. च. मनः श°। २ क. ङ. च. नियोजनम्। ३ क. ङ. च. °न्तस्थपा°। ४ क. ङ. च. चरेत्। ५ क. ङ. च. पाशशङ्कुनि°। ६ क. ङ. च. हूं। ७ क. ङ. च. हुं। ८ घ. °जात्मना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राहुयुक्तैकदेशेन चन्द्रबिम्बेन संनिभम् । आदाय योजयेत्सूत्रे रेचकेनोद्भवाख्यया ।।६५।।
पूजयित्वाऽर्घ्यपात्रस्थतोयविन्दुसुधोपमम् । आप्यायनाय शिष्यस्य गुरुः शिरसि विन्यसेत् ।।६६।।
विसृज्य पितरौ दद्याद्वौषडन्तशिवाणुना[1] । पूरणाय[2] विधिः पूर्णा निवृत्तिरिति शोधिता ।।६७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।।८४।।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच

तत्त्वयोरथसंधानं[3] कुर्याच्छुद्धविशुद्धयोः । ह्रस्वदीर्घप्रयोगेण नादनादान्तसङ्गिना[4] ।।१।।
ॐ हां ह्रूं हाम् ।।२।।
अप्तेजो वायुराकाशं तन्मात्रेन्द्रियबुद्धयः । गुणत्रयमहंकारश्चतुर्विंशः पुमानिति ।।३।।
प्रतिष्ठायां निविष्टानि तत्त्वान्येतानि भावयेत् । पञ्चविंशतिसंख्यानि खादियान्ताक्षराणि च ।।४।।
पञ्चाशदधिका षष्टिर्भुवनैस्तुल्यसंज्ञिताः[5] । तावन्त एव रूपाश्च विज्ञेयास्तत्र तद्यथा ।।५।।

आपको उस परमात्मा के साथ एकाकार करना चाहिए जो राहुग्रस्त चन्द्र-बिम्ब के समान प्रतीत होता है। उद्भव नामक मुद्रा से रेचक द्वारा उसे सूत्र से युक्त करना चाहिए ।।६३-६५।। तदनन्तर अर्घ्यपात्र में रहनेवाले अमृतोपम जल-विन्दु की अर्चना करके गुरु को उसे शिष्य के आप्यायन के लिए सिर पर रख देना चाहिए ।।६६।। तदनन्तर देवता और देवी को विदा करके वौषट् से अन्त होनेवाले शिव-मन्त्र का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार से निवृत्ति-विधि की शुद्धि और पूर्ति की जाती है ।।६७।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाणदीक्षा में निवृत्तिकला-शोधन नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८४।।

अध्याय ८५

प्रतिष्ठा-कला-शोधन-विधि

भगवान् शिव बोले-ह्रस्व और दीर्घ मात्रावाले और नाद तथा घोष प्रयत्नवाले 'ॐ हां ह्रूं हाम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके शुद्ध और अविशुद्ध निवृत्ति और प्रतिष्ठा कला को जोड़ देना चाहिए ।।१-२।। तदनन्तर जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा, इन्द्रियाँ, बुद्धि, सत्त्व, रज, तम, अहङ्कार, चौबीसवाँ पुरुष-इन पचीस तत्त्वों का ध्यान करना चाहिए, जो प्रतिष्ठा-कला में निविष्ट हैं। तत्पश्चात् 'ख' से लेकर 'य' तक अक्षरों, छप्पन-भुवनों

---

१ ख. °न्तशराणु°। २ क. ङ. च. श्रावणाय। ३ क. ङ. च. तत्तयो°। ४ ख. ग. °न्तसंज्ञिना। ५ क. ख. ग. ङ. च. °वनास्तुल्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अमरेशः प्रभावश्च नैमिषः[१] पुष्करोऽपि च। तथा[२] पादिश्च दण्डिश्च भावभूतिरथाष्टमः ।।६।।
नकुलीशो हरिश्चन्द्रः श्रीशैलो दशमः स्मृतः[३]। अन्वीशोऽभ्रातिकेशश्च[४] महाकालोऽथ मध्यमः ।।७।।
केदारो भैरवश्चैव द्वितीयाष्टकमीरितम्। ततो गयाकुरुक्षेत्रखलानादिकनादिके[५] ।।८।।
विमलश्चाट्टहासश्च[६] माहेन्द्रो भीम एव च। वस्वापदं[७] रुद्रकोटिरवियुक्तो महाबलः ।।९।।
गोकर्णो भद्रकर्णाश्च स्वर्णाक्षः स्थाणुरेव च[८]। अजेशश्चैव सर्वज्ञो भास्वरः सूदनान्तरः[९] ।।१०।।
सुबाहुर्मन्त्ररूपी[१०] च विशालो जटिलस्तथा। रौद्रोऽथ पिङ्गलाक्षश्च कालदंष्ट्री भवेत्ततः ।।११।।
विदुरश्चैव[११] घोरश्च प्राजापत्यो हुताशनः। कामरूपी तथा कालः कर्णोऽप्यथ भयानकः[१२] ।।१२।।
मतङ्गः पिङ्गलश्चैव हरो वैधातृसंज्ञकः। शङ्कुकर्णो विधानश्च श्रीकण्ठश्चन्द्रशूलिना[१३]
सहैतेन च पर्यन्ताः कथ्यन्तेऽथ पदान्यपि ।।१३।।
व्यापिन्[१४], ओम्रूप, ॐ प्रमथ, ॐ तेजः, ॐ ज्योतिः, ॐ पुरुष, ओमग्ने, ॐ धूम, ओमभस्म (न्), ॐ अनादि, ॐ नाना, ॐ धू धू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन विधनोद्भव शिव शर्व परमात्मन् महेश्वर महादेव सद्भावेश्वर महातेजः, भोगाधिपते[१५] मुञ्च[१६] प्रथम[१७] सर्वसर्वेति द्वात्रिंशत्पदानि ।।१४।।
वी (बी) जभावे त्रयोमन्त्रा वामदेवः शिवः शिखा[१८]।
गान्धारी च सुषुम्ना च नाड्यौ द्वौ मारुतौ तथा ।।१५।।
समानोदाननामानौ रसना पायुरिन्द्रिये। रसस्तु विषयो रूपशब्दस्पर्शरसा गुणाः ।।१६।।

का और इतनी ही संख्या में रुद्रों का ध्यान करना चाहिए ।।३-५।। अमरेश, प्रभाव, नैमिष, पुष्कर, पादि, दण्डि, भावभूति, नकुलीश, हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, अन्वीश, अभ्रातिकेश, महाकाल, मध्यम, केदार, भैरव, गया, कुरुक्षेत्र, खल, अनादिक, नादिक, विमल, अट्टहास, महेन्द्र, भीम, वस्वापद, रुद्रकोटि, अवियुक्त, महाबल, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष, स्थाणु, अजेश, सर्वज्ञ, भास्वर, सूदनान्तर, सुबाहु, मन्त्ररूपी, विशाल, जटिल, रौद्र, पिङ्गलाक्ष, कालदंष्ट्री, विदुर, घोर, प्राजापत्य, हुताशन, कामरूपी, काल, कर्ण, भयानक, मतङ्ग, पिङ्गल, हर, धातृसंज्ञक, शङ्कुकर्ण, विधान, श्रीकण्ठ और चन्द्रशूली—यह रुद्रों की नामावली है। इसके पश्चात् पदों को बतलाया जा रहा है ।।६-१३।। व्यापिन्, अरूपिन्, प्रमथ, तेजस्, ज्योतिः, अरूप, पुरुष, अनग्ने, अधूम, अभस्मन्, अनादे, नाना नाना, धूधू धूधू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन, निधन, निधनोद्भव, शिव, शर्व, परमात्मन्, महेश्वर, महादेव, सद्भाव, ईश्वर, महातेजा, योगाधिपते, मुञ्च, प्रथम, सर्व, सर्वसर्व—ये बत्तीस पद हैं ।।१४।। प्रतिष्ठा कला में दो बीज और वामदेव शिव तथा शिखा के तीन मन्त्र हैं। गान्धारी तथा सुषुम्ना नामक नाड़ियों का, समान तथा उदान नामक वायु का, जिह्वा और

---

१ क. ङ. च. °षः प्लक्षवोऽपि। २ क. ङ. च. तथाऽऽषाढिश्च। ३ क. ङ. च. °तः। जलान्सौम्याति°। ४ घ. °शोऽस्त्राति°। ५ ख. ग. गयां कुरुक्षेत्रं खलोना°। ६ क. ङ. च. °श्चाथ होमश्च मा°। घ. °चाट्टहा°। ७ क. ख. ग. ङ. च. वस्त्राप°। ८ ख. च। ओजे°। ९ क. ङ. च. ° रः। स्वराहुर्मत्तरू°। १० घ. °हुर्मत्तरूं°। ११ ख. विदूर°। १२ क. ङ. च. °कः। पतङ्गश्चैव बहवः श्री°। १३ घ. चन्द्रशेखरः। स°। १४ क. ङ. च. °न्, अरूप, २ प्रथम तेज (जो) ज्योतिः २ पुरुषः (ष) (?) २ अनश्व २ अधूम, २ अभस्म २ अनादि २ नाना २ वृत्त २ ॐ भूः। १५ ख. ग. घ. योगाधिपतये। १६ ख. °ञ्च ॐ प्र°। १७ ख. °थम, ॐ स°। १८ ख. सखा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मण्डलं वर्तुलं तच्च पुण्डरीकाङ्कितं सितम्[1]। स्वप्नावस्था प्रतिष्ठायां कारणं गरुडध्वजम् ।।१७।।
प्रतिष्ठान्तर्गतं सर्वं संचिन्त्य भुवनादिकम्। सूत्रं देहेऽथ[2] मन्त्रेण प्रविश्यैनां वियोजयेत् ।।१८।।
ॐ हां खीं[3] प्रतिष्ठाकलापाशाय, ॐ फट्[4]। स्वाहान्तेनानेनैव पूरकेणाङ्कुशमुद्रया समाकर्षेत्।
ततः ॐ हां[5] हूं ह्रां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं[6] फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेन हृदयादधो
नाभिसूत्रादादाय[7], ॐ हां हूं[8] हां[9] हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन
कुम्भे समारोपयेत्। ॐ हां[10] ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनार्चयित्वा[11] संपूज्य
स्वाहान्तेनाऽऽहुतीनां त्रयेण संनिधाय ततः-ॐ हां विष्णवे नम इति विष्णुमावाह्य संपूज्य
संतर्प्य ।।१९।।
विष्णो तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं। भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विष्णुं विज्ञापयेदिति ।।२०।।
ततो वागीश्वरीं देवीं वागीशमपि पूर्ववत्। आवाह्याभ्यर्च्य संतर्प्य शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ।।२१।।
ॐ हां[12] हां हं फट् ।।२२।।
प्रविशेदप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः। शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ।।२३।।
ॐ हां हं[13] हों[14] हूं फट् ।।२४।।

पायु नामक इन्द्रियों का, रस, विषय तथा रूप, शब्द, स्पर्श और रस नामक गुणों का, कमल से अंकित, स्वच्छ और वर्तुलाकार मण्डल का, स्वप्नावस्था का तथा कारणभूत गरुड़ध्वज भगवान् का ध्यान करना चाहिए ।।१५-१७।। तदनन्तर शिष्यदेह में सूत्र संयोजन कर प्रतिष्ठा कला के अन्तर्गत समस्त भुवन आदि का वियोजन 'ॐ हां खीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय ॐ फट् स्वाहा' इस मन्त्र से शरीर पर उसे धारण करना चाहिए। पुनः इसी मन्त्र को पढ़कर पूरक प्राणायाम तथा अंकुश मुद्रा करके वायु को ऊपर खींचना चाहिए। तत्पश्चात् 'ॐ हां हूं ह्रां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् मन्त्र को पढ़कर कुम्भक प्राणायाम तथा संहार मुद्रा करके सूत्र को हृदय से नीचे नाभि तक ले जाकर डाल लेना चाहिए और 'ॐ हां हूं हां हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः' मन्त्र को पढ़कर रेचक-प्राणायाम तथा उद्भव-मुद्रा के द्वारा सूत्र को घट के ऊपर स्थापित कर दे। तत्पश्चात् 'ॐ हां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः' मन्त्र से कलश की पूजा करके इसी मन्त्र में 'स्वाहा' शब्द जोड़कर तीन बार आहुतियाँ डाले। अनन्तर 'ॐ हां विष्णवे नमः' इस मन्त्र से विष्णु का आवाहन, पूजन तथा तर्पण करके यह प्रार्थना करे ।।१८-१९।। हे विष्णो! आपके इस अधिकार में मैं मोक्षाभिलाषी जन को दीक्षा देता हूँ। आप इसमें अनुकूलता प्रदान करें ।।२०।। तदनन्तर वागीश्वरी देवी तथा वागीश का भी पूर्ववत् आवाहन, पूजन, तर्पण करके 'ॐ हां हां हं फट्' मन्त्र से शिष्य के हृदय पर ताड़न करे और इसी मन्त्र से प्रवेश भी करे (अर्थात् इस मन्त्र को पढ़ते हुए भावना भी करे कि मैं शिष्य के अन्तःकरण में प्रविष्ट हूँ) ।।२१-२२½।। इसके बाद उस सूत्र में शस्त्र-मन्त्र से पाश-युक्त चैतन्य का विभाग कर ज्येष्ठा अंकुशमुद्रा

---

१ क. ख. ग. ङ. च. शितम्। २ घ. देहे स्वम°। ३ क. ङ. च. खां। ४ क. ङ. च. हुं। ५ क. ङ. च. हां हूं क्लीं हां हूं प्र°। ख. हां हुं हूं प्र°। ६ क. ङ. च. हुं। ७ घ. नाडीसू°। ८ क. ङ. च. हूं। ९ क. ख. ग. घ. ङ. च. हां प्र°। १० क. ख. ग. ङ. च. हरां। ११ क. ख. ग. ङ. च. °नार्थयि°। १२ क. ङ. च. हां हं हां हः फ°। १३ क. ङ. च. हं हां हूं फ°। १४ ख. हां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाहान्तेन हृदाऽऽकृष्य तेनैव पुटितात्मना। गृहीत्वा[1] तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ।।२५।।
ॐ हां हं[2] होमात्मनेनमः ।।२६।।
पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया। वामया[3] तदनेनैव देवीगर्भे[4] विनिक्षिपेत् ।।२७।।
ॐ हां हं हामात्मने नमः ।।२८।।
देहोत्पत्तौ हृदा ह्येवं शिरसा जन्मना[5] तथा। शिखया वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना[6] ।।२९।।
तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानाय पूर्ववत्। शिरसा पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैवं शतं जपेत्[7] ।।३०।।
एवं पाशवियोगेऽपि ततः शस्त्रात्मजप्तया। छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या कला बीजवता यथा ।।३१।।
ॐ ह्रीं[8] प्रतिष्ठाकलापाशाय हः[9] फट् ।।३२।।
विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण पूर्ववत्। घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ।।३३।।
अस्त्रेण जुहुत्यात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये[10]। प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतिस्ततः[11] ।।३४।।
ॐ हः, अस्त्राय[12] हूं[13] फट् ।।३५।।
हृदाऽऽवाह्य हृषीकेशं कृत्वा पूजनतर्पणे। पूर्वोक्तविधिना कुर्यादधिकारसमर्पणम् ।।३६।।
ॐ हां रसशुल्कं गृहाण स्वाहा ।।३७।।

के द्वारा 'ॐ हां हं हों हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से सूत्र को हृदय से खींचकर 'ॐ हां हं होमात्मने नमः' मन्त्र से अपनी आत्मा में उसका नियोग करे ।।२३-२५।। तत्पश्चात् पहले की भाँति उद्भव-मुद्रा से उसका पितृसंयोग करके 'ॐ हां हं होमात्मने नमः' मन्त्र को पढ़कर वामा मुद्रा से देवी (वागीश्वरी) के गर्भ में उसका प्रक्षेप करे ।।२६-२७।। साथ ही 'ॐ हां हं हामात्मने नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करे। देह की उत्पत्ति को जाने पर उसके अधिकार तथा भोग की रक्षा के लिए हृदय, शिर, जन्म, शिखा तथा कवच के मन्त्र से उसका संस्कार करना चाहिए ।।२८-२९।। तदनन्तर उसके अङ्गभूत तत्त्व की शुद्धि हृदय-मन्त्र से सम्पन्न करके पहले की भाँति गर्भाधान करना चाहिए। फिर सांसारिक बन्धनों को शिथिल करने के लिए सौ बार शिरोमन्त्र का जप करके पाश-वियोग होने पर शस्त्र मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् 'ॐ ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हः फट्' कला-मन्त्र से सूत्र को चाकू से काट दे। उस कटे हुए सूत्र का पाशमन्त्र से गुट्ठल बनाकर घृतपूर्ण स्रुव के ऊपर रखकर कलामन्त्र से हवन करे ।।३०-३३।। पाश तथा अंकुश की निवृत्ति के लिए 'ॐ हं अस्त्राय हूं फट्' इस अस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ डालकर प्रायश्चित्त का निवारण करने के लिए इसी मन्त्र से आहुतियाँ डाले ।।३४।। 'ॐ हः, अस्त्राय हूं फट्' इस अस्त्र-मन्त्र से आहुति डाले। तदनन्तर हृदय-मन्त्र से हृषीकेश का आवाहन करके पूजन, तर्पण करे और 'ॐ हां रसशुल्कं गृहाण-स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर पूर्वोक्त विधि से अधिकार समर्पण करे ।।३५-३७।। पश्चात्-'हे हरे! इस पशु का पाश निःशेष

---

१. ख. °हीत्वाऽन्तर्नमो°। २ क. ङ. च. हं हामा°। ३ क. ङ. °मपादतलेनै°। ४ ख. देवो °ग। ५ क. ख. ग. ङ. च. जन्मने। ६ क. ङ. च. °ना। नवशु°। ख. ग. ना°। बलशु°। ७ क. ङ. च. यजेत्। ८ क. ङ. च. क्लीं। ९ ङ. च. हः। वि०। १० ख. ग. घ. °ङ्कुरनि°। ११ क. ङ. च. °तः। अ°। १२ क. ङ. च. °य फ°। १३ ख. हुं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य हरे त्वया। न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।३८।।
ततो विसृज्य गोविन्दं विद्यात्मानं नियोज्य[1] च। राहुमुक्तार्धदृश्येन चन्द्रबिम्बेन संनिभम् ।।३९।।
संहारमुद्रया स्वस्थं विधायोद्भवमुद्रया। सूत्रे संयोज्य विन्यस्य तोयविन्दुं[2] यथा पुरा ।।४०।।
विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः। दद्यात्पूर्णां विधानेन प्रतिष्ठाऽपि विशोधिता ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिकथनं
नाम पञ्चाशीतितमोध्यायः ।।८५।।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

विद्यासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच

संधानमथ विद्यायाः प्राचीनकलया सह। कुर्वीत पूर्ववत्कृत्वा तत्त्वं[3] वर्णय तद्यथा ।।१।।
ॐ[4] ह्रीं क्षीमिति संधानम्[5] ।।२।।
रागश्च[6] शुद्धविद्या च नियतिः कलया सह। कालो माया तथाऽविद्या तत्त्वानामिति सप्तकम् ।।३।।

होकर जल गया है। अतः आप इसको बन्धन में नहीं डालेंगे'–यह शिव की आज्ञा सुनकर गोविन्द का विसर्जन करे और संहार मुद्रा से आत्मा का इस प्रकार नियोग करे कि मानो राहु से छोड़ा हुआ आधा दिखायी देनेवाला चन्द्रविन्दु हो ।।३८–३९।। फिर उद्भव-मुद्रा से जलविन्दु की तरह आत्मा को सूत्र के साथ संयुक्त करके पुष्पादि से पूजित वागीश्वरी देवी और वागीश्वर देवता का विसर्जन करे। अन्त में विधिपूर्वक पूर्णाहुति प्रदान करे। इस प्रकार प्रतिष्ठा-कला का भी शोधन सम्पन्न होता है ।।४०–४१।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाण दीक्षा में प्रतिष्ठा-कला संशोधन-विधि वर्णन नामक
पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८५।।

अध्याय ८६

विद्यासंशोधनविधि

महेश्वर बोले–'ॐ ह्रीं क्षीम्' इस मन्त्र से प्रतिष्ठा-कला के साथ विद्या-कला का संधान पहले की ही भाँति करना चाहिए। अब मैं विद्या-कला के तत्त्व, वर्ण आदि बतला रहा हूँ। राग, शुद्धविद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या–ये सात तत्त्व हैं। विद्या के छह वर्ण हैं–र, ल, व, श, ष, स। इसके प्रणव आदि पदों की संख्या इक्कीस

---

१ ख. ग. घ. च। बाहु°। २ ख. ग. °यविद्धं य°। ३ क. ङ. च. तद्वद्वर्णोदितं यथा। ४ क. च. ॐ ह्रां क्लीं ह्रूं ह्रां संधाने। रोग°। ङ. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रां संधाने। रोग°। ५ ख. ग. °म्। योग। ६ क. ख. ङ. च. °गश्चाशु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रलवाः शषसा वर्णाः षड्विद्यायां प्रकीर्तिताः। पदानि प्रणवादीनि एकविंशतिसंख्यया ।।४।।
ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे[१] शिवायेशानमूर्धाय तत्पुरुषवक्त्रायाघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तय ॐ नमो नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय सर्वाधिपाय[२] ज्योतीरूपाय परमेश्वराय[३] भावेन, ॐ व्योम ।।५।।
ॐ रुद्राणां भुवनानां च स्वरूपमथ[४] कथ्यते। प्रथमो वामदेवः स्यात्ततः सर्वभवोद्भवः ।।६।।
वज्रदेहः प्रभुर्धाता क्रमविक्रमसुप्रभाः[५]। वटुः प्रशान्तनामा च परमाक्षरसंज्ञकः ।।७।।
शिवश्च सशिवो बभ्रुरक्षयः शंभुरेव च। अदृष्टरूपनामानौ तथाऽन्यो रूपवर्धनः ।।८।।
मनोन्मनो महावीर्यश्चित्राङ्गस्तदनन्तरम्। कल्याण इति विज्ञेयाः पञ्चविंशतिसंख्यया ।।९।।
मन्त्रौ[६] घोरामरौ बीजे नाड्यौ द्वे तत्र ते यथा[७]। पूर्वा च हस्तिजिह्वा च व्याननागौ प्रभञ्जनौ ।।१०।।
विषयो रूपमेवैकमिन्द्रिये पादचक्षुषी। शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रय एते गुणाः स्मृताः ।।११।।
अवस्थाऽत्र सुषुप्तिश्च रुद्रो देवस्तु कारणम्। विद्यामध्यगतं सर्वं भावयेद्भुवनादिकम् ।।१२।।
ताडनं छेदनं तत्र प्रवेशं चापि योजनम्। आकृष्य ग्रहणं कुर्याद्विद्यया[८] हृत्प्रदेशतः ।।१३।।
आत्मन्यारोप्य संगृह्य कलां[९] कुण्डे निवेशयेत्। वामया योजयेद्योनौ गृहीत्वा द्वादशान्ततः ।।१४।।
कुर्वीत देहसंपत्तिं जन्माधिकारमेव च। भोगं लयं तथा स्रोतः शुद्धिस्तत्त्वविशोधनम् ।।१५।।
निःशेषमलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये। निष्कृत्यैव विधानेन यजेत शतमाहुतीः ।।१६।।

है, जो ये हैं–ॐ नमः शिवाय, सर्वप्रभवे, शिवाय, ईशानमूर्ध्ने, तत्पुरुषवक्त्राय, अघोरहृदयाय, वामदेवगुह्याय, सद्योजातमूर्तये, ॐ नमः नमः गुह्यातिगुह्याय, गोप्त्रे, अनिधनाय, सर्वभोगाधिकृताय, सर्वयोगाधिपाय, ज्योतिरूपाय, परमेश्वराय, अचेतन-अचेतन, व्योमन्-व्योमन् ।।१-५।। अब रुद्रों का तथा भुवनों का स्वरूप वर्णन करता हूँ। उनका प्रथम नाम है–वामदेव। उसके बाद सर्वभवोद्भव, वज्रदेह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, वटु, प्रशान्त, परमाक्षर, शिव, सशिव (कल्याणयुक्त), बभ्रु, अक्षय, शम्भु, अदृष्टरूप, अदृष्टनाम, रूपवर्धन, मनोन्मन, महावीर्य, चित्राङ्ग तथा कल्याण–ये पचीस नाम हैं ।।६-९।। बीज मन्त्र दो हैं–घोर और अमर बीज, दो नाड़ियाँ हैं–पूर्वा और हस्तजिह्वा। वायु दो हैं–व्यान और प्रभंजन। विषय एक ही है। रूप, इन्द्रियाँ दो हैं–चरण और नेत्र। गुण तीन हैं–शब्द, स्पर्श और रूप ।।१०-११।। इसकी अवस्था है सुषुप्ति और कारण हैं रुद्र-देवता। (गुरु को) विद्या के मध्य में भुवन आदि सकल पदार्थों का चिन्तन करना चाहिए ।।१२।। फिर वहाँ ताड़न, छेदन, प्रवेश तथा योजन करके विद्या के द्वारा (शिष्य के) हृदय-प्रदेश से खींचकर ग्रहण करना चाहिए ।।१३।। तत्पश्चात् कला को आत्मा में आरोपित तथा गृहीत करके कुण्ड में प्रविष्ट कर दे। तदनन्तर द्वादशान्त से लेकर वामा मुद्रा से योनि में नियुक्त करे ।।१४।। तत्पश्चात् पाश-बन्धन से छुटकारा पाने के लिए देहसम्पत्ति, जन्माधिकार, भोग, लय, स्रोतः-शुद्धि, तत्त्वविशोधन और मलनिराकरण आदि कार्य करे। इस प्रकार निस्तार के लिए विधिपूर्वक सौ आहुतियाँ डालकर अस्त्र-मन्त्र से पाठ की शिथिलता,

---

१ घ. °वे हं शि°। २ क. ङ. च. सर्वविद्याधि°। ३ क. ङ. च. °रायाचिन्तनाय। रुद्राय भु°। ४ ख. °मपि क°। ५ क. ङ. च. । °प्रजाः। व°। ६ ख. ग. घ. ङ. च. मन्त्रौ। ७ ख. ग. तथा। ८ क ङ. च °द्विक्षेपाद्घृत्प्रवेश°। ९ क. ङ. च. कलाकु°। ख. ग. कल्पकु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अस्त्रेण पाशशैथिल्यं मलशक्तितिरोहितम्[1] । छेदनं मर्दनं तेषां वर्तुलीकरणं तथा ।।१७।।
दाहं तदक्षराभावं[2] प्रायश्चित्तमथोदितम् । रुद्राण्यावाहनं पूजा रूपगन्धसमर्पणम् ।।१८।।
ॐ ह्रीं[3] रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा ।।१९।।
संश्राव्य शाम्भवीमाज्ञां रुद्रं विसृज्य कारणम् । विधायाऽऽत्मनि चैतन्यं पाशसूत्रे निवेशयेत् ।।२०।।
विन्दुं शिरसि विन्यस्य विसृजेत्पितरौ ततः । दद्यात्पूर्णां विधानेन समस्तविधिपूरणीम् ।।२१।।
पूर्वोक्तविधिना कार्यं विद्यायां ताडनादिकम् । स्वबीजं तु विशेषः[4] स्यादिति विद्या विशोधिता ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां विद्याशोधनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।।८६।।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शान्तिशोधनम्

ईश्वर उवाच

संदध्यादधुना विद्यां शान्त्या सार्धं यथाविधि । शान्तौ तन्तुद्वयं[5] लीनं[6] भावेश्वरसदाशिवौ ।।१।।
हकारश्च क्षकारश्च द्वौ वर्णौ परिकीर्तितौ । रुद्राः समाननामानो भुवनैः सह तद्यथा ।।२।।

मलशक्ति का तिरोधान, छेदन, मर्दन, वर्तुलीकरण, दाह, अक्षराभाव तथा प्रायश्चित्त करे ।।१५-१७$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर रुद्राणी का आवाहन करके 'ॐ ह्रीं रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा' इस मन्त्र से रूप, गन्ध आदि वस्तु समर्पित करे। फिर शिव की आज्ञा सुनाकर कारणरूप रुद्र का विसर्जन करे। तत्पश्चात् आत्मा में चेतनता का ध्यान करके पाश-सूत्र में उसे आरोपित करे ।।१८-२०।। सिर पर विन्दु का न्यास करके वागीश्वरी और वागीश्वर का विसर्जन करे। तदनन्तर विधानपूर्वक सकल विधियों को पूर्ण करनेवाली पूर्णा दक्षिणा देनी चाहिए ।।२१।। फिर पूर्वोक्त विधि से विद्या में ताड़न आदि करना चाहिए। पूर्वोक्त विधि से इसमें इतनी विशेषता यह है कि यहाँ पर अपने (विद्या) बीज मन्त्र का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार विद्या-कला की शुद्धि की जाती है ।।२२।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाणदीक्षा-विद्या-संशोधन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८६।।

अध्याय ८७

शान्ति-शोधन

महेश्वर बोले--अब शान्ति-कला के साथ विधिपूर्वक विद्या-कला का सन्निधान करना चाहिए। शान्ति में ईश्वर और सदाशिव–ये दो तत्त्व विद्यमान रहते हैं ।।१।। इसमें हकार और क्षकार वर्ण तथा समान नामवाले रुद्र और भुवन ये हैं–प्रभव, समय, क्षुद्र, विमल, शिव, धन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरस्, दीप्त, कारण, त्रिदशेश्वर, कालसूक्ष्म और

---

१ घ. °रोहिताम्। २ क. ङ. च. °दङ्गनाभा°। ३ क. ङ. च. हां। ४ क. ख. ग. ङ. च. विशेषं। ५ क. ङ. च. तत्त्वत्रयं नीलं भा°। ६ ख. ग. नीलं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रभवः समयः क्षुद्रो विमलः शिव इत्यपि। घनौ[1] निरञ्जनाकारौ श्वशुरौ दीप्तकारणौ ।।३।।
त्रिदशेश्वरनामा च त्रिदशः कालसंज्ञकः। सूक्ष्माम्बुजेश्वरश्चेति रुद्राः शान्तौ प्रतिष्ठिताः[2] ।।४।।
व्योमव्यापिने व्योमव्याप्यरूपाय सर्वव्यापिने शिवायानन्ता[3] यानाथायानाश्रिताय ध्रुवाय[4] शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहारायेति द्वादशपदानि ।।५।।
पुरुषः कवचोमन्त्रो[5] बीजे विन्दूपकारकौ। अलम्बुषायसानाड्यौ वायूकृकरकूर्मकौ ।।६।।
इन्द्रिये त्वक्करावस्याः स्पर्शस्तु विषयो मतः। गुणौ[6] स्पर्शनिनादौ द्वावेकः कारणमीश्वरः ।।७।।
तुर्यावस्थितिशान्तिस्थं[7] संभाव्य भुवनादिकम्। विदध्यात्ताडनं भेदं प्रवेशं च[8] वियोजनम् ।।८।।
आकृष्य ग्रहणं कुर्याच्छान्तेर्वदनसूत्रतः। आत्मन्यारोप्य संगृह्य[9] कलां कुण्डे निवेशयेत् ।।९।।
ईश[10] तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम्। भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन कुर्याद्विज्ञापनामिति ।।१०।।
आवाहनादिकं पित्रोः शिष्यस्य ताडनादिकम्। विधायाऽऽदाय चैतन्यं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ।।११।।
पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया। हृत्संपुटात्मबीजेन देवीगर्भे नियोजयेत् ।।१२।।
देहोत्पत्तौ हृदा पञ्च शिरसा जन्महेतवे। शिखया[11] वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना ।।१३।।
लयाय शस्त्रमन्त्रेण स्त्रोतः शुद्धौ शिवेन च। तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानादि पूर्ववत् ।।१४।।

अम्बुजेश्वर। शान्ति-कला में निम्न बारह पद विद्यमान हैं—व्योमव्याप्यरूपाय, सर्वव्यापिने, शिवाय, अन्ताय, अनाथाय, अनाश्रिताय, ध्रुवाय, शाश्वताय, योगपीठसंस्थिताय, नित्ययोगिने तथा ध्यानाहाराय। पुरुष और कवच में दो बीज मन्त्र हैं—विन्दु और पकार वर्ण हैं ।।२-५ $\frac{1}{2}$।। इसकी अलम्बुषा और अयसा नाड़ियाँ, कृकर और कूर्मक नामक वायु हैं। दो इन्द्रियाँ मानी गयी हैं—त्वचा और हाथ, जिनका विषय स्पर्श माना गया है। स्पर्श और निनाद नामक दो गुण हैं। इसका कारण ईश्वर है और तुर्यावस्था शान्ति-कला की अवस्था है। इस प्रकार शान्ति-कला में विद्यमान भुवनादि का ताड़न, भेद, प्रवेश और वियोजन करना चाहिए ।।६-८।। गुरु को शान्ति में प्रवेश करके वदन सूत्र से आत्मा को खींचकर अपने-आप में आरोप और संग्रह करके कला को कुण्ड में निवेशित करना चाहिए। उस समय उसे इस प्रकार निवेदन करना चाहिए—'हे ईश! आपके अधिकार में मैं इस मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ।' आपको इसके अनुकूल होना चाहिए ।।९-१०।। उसे माता और पिता (रूपी देवी और देवता) का आवाहन करके, शिष्य का ताड़नादि करके विधिपूर्वक चैतन्य को ग्रहण करके उसे अपने-आप में विनियुक्त करना चाहिए ।।११।। पूर्ववत् उद्भव नाम्नी मुद्रा से पितृसंयोग की कल्पना करके हृत् सम्पुट मन्त्र युक्त आत्मबीज से देवी के गर्भ में नियोजित करना चाहिए ।।१२।। शरीर की उत्पत्ति में हृद्-मन्त्र और जन्म के लिए पाँच बार शिरस्-मन्त्र, अधिकार के लिए शिखा-मन्त्र और भोग के लिए कवच-मन्त्र हुआ करता है ।।१३।। लय के लिए शस्त्र मन्त्र और स्त्रोतः शुद्धि शिव मन्त्र से की जाती है। तत्त्व-शुद्धि हृद्मन्त्र से होती है और गर्भाधानादि पूर्ववत् किये जाते हैं ।।१४।। कवच-मन्त्र से पाश को शिथिल करके सौ आहुतियाँ देनी चाहिए

---

१ ख. ग. घनौ। २ क. ङ. च. °ताः। व्या°। ३ क. °वायानाथा°। ङ. °वायानाश्रि°। च. वाय स्वनाथा°। ४ क. ङ. च. क्रूराय। ५ घ. कवचौ। ६ क. ङ. च. °णौ चात्र नि°। ७ ख. ग. शान्त्यर्थे सं०। ८ ङ. च. नियोजयेत्। ९ क. ङ. च. संपूज्य। १० क. ङ. च. ईशे। ११ क. ङ. च. °या चाधि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्मणा पाशशैथिल्यं निष्कृत्यैवं शतं यजेत्[1] । मलशक्तितिरोधाने शस्त्रेणाऽऽहुतिपञ्चकम् ।।१५।।
एवं पाशवियोगेऽपि ततः सप्तास्त्रजप्तया । छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या पाशान्बीजवता यथा ।।१६।।
ॐ हौं[2] शान्तिकलापाशाय हः,[3] हूं फट् ।।१७।।
विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण[4] पूर्ववत् । घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ।।१८।।
अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधाय दद्यादष्टाऽऽहुतीरथ ।।१९।।
ॐ हः, अस्त्राय[5] हूं फट् ।।२०।।
हृदेश्वरं समावाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । विदधीत विधानेन तस्मै शुल्कसमर्पणम् ।।२१।।
ॐ हामीश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा ।।२२।।
निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्येश्वर त्वया । न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।२३।।
विसृजेदीश्वरं देवं रौद्रात्मानं नियोजयेत् । ईशश्चन्द्रमिवाऽऽत्मानं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ।।२४।।
सूत्रे संयोजयेदेनं शुद्धयोद्भवमुद्रया । दद्यान्मूलेन शिष्यस्य शिरस्यमृतविन्दुकम्[6] ।।२५।।
विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः । दद्यात्पूर्णां विधानज्ञो निःशेषविधिपूरणीम् ।।२६।।
अस्यामपि विधातव्यं पूर्ववत्ताडनादिकम् । स्वबीजं तु विशेषः स्याच्छुद्धिः शान्तेरपीडिता ।।२७।।

इत्याग्नेये महापुराणे निर्वाणदीक्षायां शान्तिशोधनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

और मल-शक्ति को दूर करने के लिए शस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।।१५।। इसी प्रकार पाश के विमोचन में सात बार अस्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए और बीज युक्त अस्त्र-मन्त्र से पाशों का छेदन करना चाहिए ।।१६।। उस समय 'ॐ हौं शान्तिकलापाशाय हः, हूं फट्' इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए ।। १७।। पूर्ववत् अस्त्र-मन्त्र से पाश को वर्तुलाकार करके उसे छुड़ाकर घृतपूर्ण स्रुव को लेकर अस्त्र-मन्त्र से होम करना चाहिए ।१८।। पाशाङ्कुश की निवृत्ति के लिए अस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ डालनी चाहिए और प्रायश्चित्त का निषेध करने के लिए आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। उस समय 'ॐ हः अस्त्राय हूं फट्' यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ।।१९-२०।। हृदेश्वर का आवाहन करके तथा उसका पूजन, तर्पण करके विधानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए ।।२१।। उस समय 'ॐ हामीश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ।।२२।। उस समय इस शिवाज्ञा को सुनना चाहिए-"ईश्वर! जिसके समस्त पाश दग्ध हो गये हैं, उसे इस पशु के बन्धन के रूप में तुम्हें नहीं रहना चाहिए ।।२३।। तदनन्तर इन देवता को विदा करके रुद्र का विनियोग करना चाहिए और अपने-आप में ईश और चन्द्रमा की तरह योग कराना चाहिए ।।२४।। तदनन्तर शुद्ध उद्भव मुद्रा से इसे सूत्र से संयुक्त करके मूल मन्त्र से शिष्य के मस्तक पर अमृतविन्दु डालना चाहिए ।।२५।। पुष्पादि से पूजित माता-पिता रूप दोनों देवताओं को विदा करके विधान को जाननेवाले गुरु को विशेष विधि की पूर्ति के लिए पूर्णाहुति देनी चाहिए ।।२६।। इसमें भी पूर्ववत् ताड़न इत्यादि का विधान करना चाहिए। यहाँ पर भी पूर्वोक्त विधि से इतनी ही विशेषता आती है कि यहाँ विधि में शान्ति कला के बीज का विनियोग किया जाय। इस प्रकार शान्तिकला की शुद्धि पूरी होती है ।।२७।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाण-दीक्षा-शान्ति-शोधन वर्णन नामक सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८७।।

---

१ घ. जपेत्। २ क. ङ. च. हूं। ३ क. ङ. च. हाः। ४ ख. °मन्त्रेण। ५ ख. हूं। ६ क. ङ. च. °तपिण्डक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाशेषविधिः

ईश्वर उवाच

संधानं शान्त्यतीतायाः शान्त्या सार्धं विशुद्धया। कुर्वीत पूर्ववत्तत्र तत्त्ववर्णादि[1] तद्यथा ।।१।।
ॐ ह्रीं[2] क्षौं हौं हामिति संधानानि ।।२।।
उभौ शक्तिशिवौ तत्त्वे भुवनाष्टकसिद्धिकम्[3]। दीपकं रोचिकं[4] चैव मोचकं चोर्ध्वगामि च ।।३।।
व्योमरूपमनाथं च स्यादनाश्रितमष्टकम्। ॐ कारपदमीशाने[5] मन्त्रो वर्णाश्च षोडश ।।४।।
अकरादिविसर्गान्ता बीजेन देहकारकौ। कुहूश्च शङ्खिनी नाड्यौ[6] देवदत्तधनंजयौ ।।५।।
मारुतौ[7] स्पर्शनं श्रोत्रमिन्द्रिये विषयो नभः। शब्दो गुणोऽस्यावस्था तु तुर्यातीता तु पञ्चमी ।।६।।
हेतुः सदाशिवो देव इति तत्त्वादिसंचयम्। संचिन्त्य शान्त्यतीताख्यं[8] विदध्यात्ताडनादिकम् ।।७।।
कलापाशं समाताड्य फडन्तेन विभिद्य च। प्रविश्यान्तर्नमोन्तेन फडन्तेन[9] वियोजयेत् ।।८।।

अध्याय ८८

निर्वाणदीक्षाविधि

महेश्वर बोले–विशुद्ध शान्ति के साथ शान्त्यतीत कला को जोड़ते हुए पहले की विधि का अनुसरण करे। शान्त्यतीत कला में तत्त्व, वर्ण आदि बताये जाते हैं। शान्ति कला को मिलाने का मन्त्र यह है–'ॐ ह्रीं क्षौं हौं हाम्' इसमें शक्ति और शिव–ये दो तत्त्व हैं। दीपक, रोचिक, मोचक, ऊर्ध्वगामि, व्योमरूप, अनाथ, अनाश्रित और ॐकार पद–ये आठ सिद्धि के भुवन हैं और ईशान मन्त्र है। अकार से लेकर विसर्गपर्यन्त सोलह वर्ण हैं ।।१-४।। अकार से लेकर विसर्गपर्यन्त सोलह अक्षर हैं, नाद और हकार बीज हैं। कुहू और शङ्खिनी नामक दो नाड़ियाँ हैं। देवदत्त और धनञ्जय नामक दो वायु हैं ।।५।। त्वचा और श्रोत्र दो इन्द्रियाँ हैं, शब्द विषय है, गुण भी वही है और अवस्था पाँचवीं तुरीयातीता है। सदाशिव देव ही एकमात्र हेतु है। इस तत्त्वादि संचय की शान्त्यतीत कला में स्थिति है, ऐसा चिन्तन कर ताड़न आदि कर्म करे ।।६-७।। कलापाश के ताड़न करने के बाद अन्त में 'फट्' से अन्त होनेवाले मन्त्र से उसे काट दे। पश्चात् 'नमः' जुड़े हुए मन्त्र से भीतर प्रवेश करके 'फट्' से अन्त होनेवाले मन्त्र से उसे वियुक्त कर दे ।।८।। शिखा और हृद्-मन्त्र से सम्पुटित और अन्त में स्वाहा शब्द से युक्त शान्ति मन्त्र पढ़कर अङ्कुश मुद्रा

---

१ क. च. °वर्णोदितं य°। २ क. ङ. च. हां। ख. ह्रीं। ३ क. ङ. च.° कमिश्रितम्। ४ क. च. रौचकं। ५ क. ङ. च. ज्ञानं म°। ६ क. ख. ङ. च. नाथौ। ७ मारुतौ...पञ्चमी नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ८ क. ङ. च. °तायां वि°। ९ क. ङ. च. °न नियो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिखाहृत्संपुटीभूतं स्वाहान्तं सृणिमुद्रया[1] । पूरकेण समाकृष्य पाशं मस्तकसूत्रतः ।।९।।
कुम्भकेन समादाय रेचकेनोद्भवाख्यया[2] । हृत्संपुटनमोन्तेन[3] वह्निं[4] कुण्डे निवेशयेत् ।।१०।।
अस्याः पूजादिकं सर्वं निवृत्तेरिव साधयेत् । सदाशिवं समावाह्य पूजयित्वा प्रतर्प्य च ।।११।।
सदाऽऽख्यातेऽधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम् । भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन भवत्या विज्ञापयेदिति ।।१२।।
पित्रोरावाहनं पूजां कृत्वा तर्पणसंनिधी । हृत्सम्पुटात्मबीजेन शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ।१३।।
ॐ[5] हां हूं हां[6] फट् ।।१४।।
प्रविश्य चाप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः । शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ।।१५।।
ॐ हां[7] हः, हूं[8] फट् ।।१६।।
स्वाहान्तेन तदाकृष्य तेनैव पुटितात्मना । गृहीत्वा तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ।।१७।।
ॐ हां हं[9] हीमात्मने नमः ।।१८।।
पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । वामया तदनेनैव देव्या गर्भे नियोजयेत् ।।१९।।
गर्भाधानादिकं सर्वं पूर्वोक्तविधिनाऽऽचरेत्[10] । मूलेन पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैव शतं जपेत् ।।२०।।
मलशक्तितिरोधाने पाशानां च वियोजने । पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्यादायुधेन यथा पुरा ।।२१।।
पाशानायुधमन्त्रेण सप्तवाराभिजप्तया । छिन्द्यास्त्रेण कर्तर्या कलाबीजयुजा यथा ।।२२।।

बनाकर पूरक प्राणायाम कर लेने के पश्चात् पाश को मस्तक सूत्र से खींच ले। फिर कुम्भक प्राणायाम करने के बाद उसे हाथ में लेकर रेचक प्राणायाम तथा उद्भव मुद्रा करके 'हृद्' शब्द से सम्पुटित और अन्त में 'नमः' शब्द से युक्त मन्त्र पढ़कर अग्नि को कुण्ड में स्थापित करे ।।९-१०।। शान्त्यतीत कला की भी पूजा आदि निवृत्ति कला की ही तरह करनी चाहिए। सदाशिव का आवाहन, पूजन तथा तर्पण करके उससे भक्तिपूर्वक निवेदन करे कि–'इस नित्य प्रसिद्ध अधिकार में मैं मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ। इसलिए आप अनुकूल रहें' ।।११-१२।। तदनन्तर माता-पिता का आवाहन और पूजन तथा तर्पण करके 'हृद्' शब्द से सम्पुटित बीज-मन्त्र के द्वारा शिष्य के वक्षःस्थल पर ताड़न करे ।।१३।। इसका बीज-मन्त्र यह है–'ॐ हां हूं हां फट्' इसी मन्त्र से प्रवेश भी करना चाहिए। तदनन्तर 'ॐ हां हः, हूं फट्' मन्त्र पढ़कर ज्येष्ठा नामक अङ्कुश मुद्रा बनाकर शस्त्र से पाशसंयुक्त चैतन्य को विभक्त करे। फिर अन्त में 'स्वाहा' शब्द जोड़कर इसी मन्त्र से पाश को खींचकर 'ॐ हां हं हीमात्मने नमः' मन्त्र से उसे आत्मा में नियोजित करे ।।१४-१८।। पहले की भाँति उद्भव-मुद्रा से पितृसंयोग उत्पन्न करके, उपर्युक्त मन्त्र से देवी के गर्भ में नियोग करे ।।१९।। गर्भाधान आदि समस्त कार्य पूर्वोक्त विधि से सम्पन्न करना चाहिए। मूल मन्त्र से पाश को शिथिल कर निष्कृति के लिए सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिए ।।२०।। मल-शक्ति को तिरोहित करने में तथा पाशों को वियुक्त करने में पूर्व की भाँति आयुध-मन्त्र से पाँच-पाँच आहुतियाँ डाले ।।२१।। आयुध मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित की हुई छुरी से 'ॐ हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः, हूं फट्' यह कलाबीज मन्त्र पढ़ते हुए पाशों को

---

१ क. ङ. च. प्राणमुद्रया। ख. ग. शूलमुद्रया। २ क. ङ. च. °केनान्तराख्य°। ३ ख. ग. °पुटं न°। ४ क. ख. ग. ङ. च. वह्निकु°। ५ ख. ॐ ह्रां ह्रूं ह्रां फ°। ६ घ. हं। ७ क. ङ. च. हां हूं। ८ ख. ग. ह्रूं। ९ क. ङ. च. हं हामा। १० क. ङ. च. °धिमाच°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः, हूं[1] फट् ।।२३।।

विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशानस्त्रेण पूर्ववत् । घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ।।२४।।

अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतीस्ततः ।।२५।।

सदाशिवं हृदाऽऽवाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । पूर्वोक्तविधिना कुर्यादधिकारसमर्पणम् ।।२६।।

ॐ हां सदाशिव[2] मनोविन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा ।।२७।।

निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य सदाशिव । बन्धाय न त्वया स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।२८।।

मूलेन जुहुयात्पूर्णां विसृजेत्तु सदाशिवम् । ततो विशुद्धमात्मानं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ।।२९।।

संहारमुद्रया रौद्र्या संयोज्य गुरुरात्मनि[3] । कुर्वीत शिष्यदेहस्थमुद्धृत्योद्भवमुद्रया ।।३०।।

दद्यादाप्यायनायास्य मस्तकेऽर्घ्याम्बुविन्दुकम्[4] । क्षमयित्वा महाभक्त्या पितरौ विसृजेत्तथा ।।३१।।

खेदितौ शिष्यदीक्षायै यन्मया पितरौ युवाम् । कारुण्यान्मोक्ष(च)यित्वा तद्व्रज त्वं स्थानमात्मनः ।।३२।।

शिखामन्त्रितकर्तर्या बोधशक्तिस्वरूपिणीम् । शिखां छिन्द्याच्छिवास्त्रेण शिष्यस्य चतुरङ्गुलाम्[5] ।।३३।।

ॐ क्लीं[6] शिखायै हूं[7] फट्, ओमस्त्राय हूं[8] फट् ।।३४।।

स्रुचि तां घृतपूर्णायां गोविड्गोलकमध्यगाम्[9] । संविधायास्त्रमन्त्रेण[10] हूंफडन्तेन होमयेत् ।।३५।।

ॐ हौं हः,[11] अस्त्राय[12] हूं फट् ।।३६।।

काट दे। पुनः पहले की भाँति विसर्जन कर पाशों की गुठली बनाकर अस्त्र मन्त्र से घृतपूर्ण स्रुव पर रखकर कलास्त्र मन्त्र से हवन करे। पाश तथा अङ्कुश का दोष दूर करने के लिए अस्त्र मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त के निषेध के लिए आठ आहुतियाँ दे ।।२२-२५।। तदनन्तर हृद्-मन्त्र से सदाशिव का आवाहन, पूजन और तर्पण करके 'ॐ हां सदाशिव मनोविन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा' मन्त्र से पहले की भाँति अधिकार समर्पण करे और शिव की यह आज्ञा सुनाये–'हे सदाशिव! जिसका पाश भली-भाँति जल गया है, ऐसे पशु को तुम बन्धन में मत डालो' ।।२६-२८।। इसके बाद मूल मन्त्र से हवन करके सदाशिव का विसर्जन करे। तत्पश्चात् गुरु शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान विशुद्ध मन को रुद्र देवतावाली संहारमुद्रा से आत्मा में संयुक्त करके उद्भव-मुद्रा से उसे शिष्य की देह में स्थापित करे।।।२९-३०।। तदनन्तर वृद्धि के लिए शिष्य के मस्तक पर अर्घ्य-जल का विन्दु छिड़ककर अत्यन्त भक्ति से क्षमाप्रार्थनापूर्वक माता-पिता का विसर्जन करते हुए यह कहे कि–"शिष्य की दीक्षा के लिए जो मैंने आप दोनों को कष्ट दिया है, उसे कृपया क्षमा करके अपने स्थान को जाइये" ।।३१-३२।। तत्पश्चात् 'ॐ क्लीं शिखायै हूं फट्, ओमस्त्राय हूं फट्' इस शिवास्त्र-मन्त्र को पढ़कर शिखा-मन्त्र से अभिमन्त्रित की हुई छुरी से चार अँगुलियों की बोधशक्तिरूप शिखा को काट डाले ।।३३-३४।। उस कटी हुई शिखा को गोबर के गोलों के बीच में रखकर घृतपूर्ण स्रुव के ऊपर रखकर 'ॐ हौं हः, अस्त्राय हूं फट्'–इस अस्त्र-मन्त्र से हवन करे ।।३५-३६।। इसके बाद स्रुक् तथा स्रुव को धोकर,

---

१ क. ङ. च. हुं। ख. हूरूं। २ क. च. °व नमो वि°। ३ क. ङ. च.° त्मवान्। कु°। ४ ख. ग. °स्तके ह्यम्बु°। ५ क. ख. ग. ङ. च. °ङ्गुलम्। ६ क. ङ. च. हूं। ख. ग. हूं। ७ ख. ग. हूं। ८ ख. ग. हूं। ९ ख. ग. °विन्दोऽल°। १० ख. °ण रूं फ°। ११ क. ङ. च. हं। १२ ख. °य फ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रक्षाल्य स्रुक्स्रुवौ शिष्यं संस्नाप्याऽऽचम्य च स्वयम् । योजनिकास्थमात्मानं[1] शस्त्रमन्त्रेण ताडयेत् ।।३७।।
वियोज्याऽऽकृष्य संपूज्य[2] पूर्ववद्द्वादशांशतः । आत्मीयहृदयाम्भोजकर्णिकायां निवेशयेत् ।।३८।।
पूरितं[3] स्रुवमाज्येन विहिताधोमुखस्रुचा[4] । नित्योक्तविधिनाऽऽदाय शङ्खसंनिभमुद्रया ।।३९।।
प्रसारितशिरोग्रीवो नादोच्चारानुसारतः । समदृष्टिः[5] स्थिरश्चान्तः परभावसमन्वितः ।।४०।।
कुम्भमण्डलवह्निभ्यः शिष्यादपि निजात्मनः । गृहीत्वा[6] षड्विधाध्वानं श्रु(स्रु)गग्रे प्राणनाडिकम्[7] ।।४१।।
संचिन्त्य[8] विन्दुवद्ध्यात्वा क्रमशः सप्तधा यथा । प्रथमं प्राणसंयोगस्वरूपमपरं[9] ततः ।।४२।।
हृदयादिक्रमोच्चारविसृष्टं[10] मन्त्रसंज्ञकम्[11] । सुषुम्नानुगतं नादस्वरूपं[12] तु तृतीयकम् ।।४३।।
सप्तमे कारणत्यागात्प्रशान्तविस्वरं[13] लयः । शक्तिनादोर्ध्वसंचारस्तच्छक्ति विस्वरं[14] मतम् ।।४४।।
प्राणस्य निखिलस्यापि शक्तिप्रमेयवर्जितम् । तत्कालविस्वरं[15] षष्ठं शक्त्यतीतं[16] च सप्तकम् ।।४५।।
तदेतद्योजनस्थानं[17] विस्वरं[18] तत्त्वसंज्ञकम् । पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक् ।।४६।।
शनैरुदीरयन्मूलं कृत्वा शिष्यात्मनो[19] लयम् । हकारे तडिदाकारे षडध्वप्राणरूपिणि ।।४७।।

शिष्य को नहलाकर स्वयं आचमन करके अस्त्र-मन्त्र से योजनिका स्थित आत्मा का ताड़न करे ।।३७।। फिर पहले की भाँति वियोग, आकर्षण तथा पूजन करके द्वादशान्त से लेकर अपने हृदय-कमल की कर्णिका पर उसे स्थान दे ।।३८।। स्रुव को घी से भरकर अधोमुख स्रुक् से स्पर्श कराकर, शङ्खमुद्रा बनाकर, पूर्वोक्त विधि से ही उसका ग्रहण करे ।।३९।। उस समय नाद के उच्चारण के अनुसार, सिर और ग्रीवा को सीधा रखे। दृष्टि समान और स्थिर होनी चाहिए। हृदय में आकृष्ट भाव रखना चाहिए। तदनन्तर यह चिन्तन करे कि 'कुम्भमण्डल की अग्नियों से, शिष्य से तथा अपनी आत्मा से लेकर षड्विध अध्वा तक स्रुवा के अग्रभाग पर प्राणनाड़ी में स्थित है' ।।४०-४१।। इस प्रकार चिन्तन कर फिर विन्दु की तरह क्रमशः सात विषुओं का ध्यान करे। जैसे, पहले प्राण संयोगस्वरूप का, दूसरे हृदयादि क्रम से उच्चारण करके परित्यक्त मन्त्रसंज्ञकस्वरूप का, तीसरे सुषुम्ना का अनुगमन करनेवाले नादस्वरूप का, चौथे सातवें में कारण के त्याग से प्रशान्त विषुवस्वरूप का, पाँचवें शक्तिनाद के ऊपर संचरण करने की शक्तिरूप विषुव का, छठे निखिल प्राणों की अभेद शक्ति से वर्जित काल विषुव स्वरूप का और सातवें अतीतशक्तिस्वरूप तत्त्व विषुव का ध्यान करे ।।४२-४५।। इसी को योजन स्थान कहते हैं। इसके बाद पूरक तथा कुम्भक प्राणायाम करके थोड़ा-सा मुख खोलकर धीरे-धीरे मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए बिजली-जैसी आकृतिवाले तथा षडध्व के प्राणरूप हकार में शिष्य की आत्मा का लय करे ।।४६-४७।। नाभि के ऊपर एक बालिश्त तक व्याप्त करके,

---

१ क. ङ. च. °जनीकाक्षमा°। २ क. ङ. च. संगृह्य। ३ क. ङ. च. °तं श्रुव°। ४ क. घ. ङ. च. °खश्रुचा। ५ ख. ग. घ. °दृष्टिशिवश्चा°। ६ क. ङ. च. °त्वा स द्विधाऽऽत्मानं युगाग्रे। ७ क. ङ. च. °डिगम्। ८ क. ङ. च. °न्त्य विश्रवं ध्यात्वा। ९ ख. ङ. च. °योगं स्व°। १० क. ङ. च. °त्ररूपक°। ११ 'मन्त्रसंज्ञकम्' इत्यस्याग्रे 'पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक्' इत्यर्धमधिकं घ. पुस्तके। १२ ख. नादं स्व°। १३ क. ख. ग. ङ. च. विषुवं ल°। १४ क. ख. ग. ङ. च. विषुवं। १५ क. ख. ग. ङ. च। °विषुवं ष°। १६ क. ङ. च. °तं तु संयुतम्। १७ घ. °जनास्था°। १८ क. ख. ग. ङ. च. विषुवं। १९ क. ख. ग. ङ. च. °त्मना ल°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उकारं परतो नाभेर्वितस्तिं व्याप्य संस्थितम्। ततः परमकारस्तु हृदयाच्चतुरङ्गलम् ।।४८।।
ॐ[1] कारवाचकं[2] विष्णोस्ततोऽष्टाङ्गुलकण्टकम्[3]। चतुरङ्गुलतालस्थं मकारं रुद्रवाचकम् ।।४९।।
तद्वल्ललाटमध्यस्थं विन्दुमीश्वरवाचकम्। नादं सदाशिवं देवं ब्रह्मरन्ध्रावसानकम् ।।५०।।
शक्तिं च ब्रह्मरन्ध्रस्थां त्यजन्नित्यमनुक्रमात्। दिव्यं पिपीलिकास्पर्शं तस्मिन्नेवानुभूय च ।।५१।।
द्वादशान्ते परे तत्त्वे परमानन्दलक्षणे। भावशून्ये मनोऽतीते शिवे नित्यगुणोदये ।।५२।।
विलीय मानसे तस्मिञ्शिष्यात्मानं[4] विभावयेत्। विमुञ्चन्सर्पिषो धारां ज्वालान्तेऽपि परे शिवे ।।५३।।
योजनिकास्थिरत्वाय[5] वौषडन्तशिवाणुना। दत्त्वा पूर्णां विधानेन गुणापादनमाचरेत् ।।५४।।
ॐ हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा। ॐ हामात्मने परितृप्तो भव स्वाहा[6]। ॐ ह्रूमात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा। ॐ हौमात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा। ॐ हौमात्मन् अलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा। ॐ हः, आत्मनेऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ।।५५।।
इत्थं षड्गुणमात्मानं गृहीत्वा परमाक्षरात्। विधिना भावनोपेतः शिष्यदेहे[7] नियोजयेत् ।।५६।।
तीव्राणुशक्तिसंपातजनितश्रमशान्तये। शिष्यमूर्धनि विन्यस्येद्[8] अर्घ्यादमृतविन्दुकम्[9] ।।५७।।
प्रणमय्येशकुम्भादीञ्शिवाद्दक्षिणमण्डले। सौम्यवक्त्रं व्यवस्थाप्य शिष्यं दक्षिणमात्मनः ।।५८।।
त्वयैवानुगृहीतोऽयं मूर्तिमास्थाय मामकीम्। देवे वह्नौ गुरौ तस्माद्भक्तिं[10] चाप्यस्य वर्धय ।।५९।।

स्थिर उकार को हृदय से चार अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर आकार को, कण्ठ से आठ अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर विष्णुवाचक ॐकार को, तालु से चार अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर रुद्रवाचक मकार को, ललाट के मध्य में स्थित ईश्वरवाचक विन्दु को, ब्रह्मरन्ध्र के अन्त में स्थित नादरूप सदाशिव देव को और ब्रह्मरन्ध्र में स्थित शक्ति को अनुक्रम से छोड़ते हुए उसी ब्रह्मरन्ध्र में दिव्य पिपीलिका स्पर्श का अनुभव करे ।।४८-५१।। पश्चात् ऐसी भावना करे कि परमानन्द लक्षणवाले द्वादशानन मन से परे, भावशून्य, नित्यगुणों के उदय से सम्पन्न और परम तत्त्वस्वरूप शिव में शिष्य की आत्मा विलीन हो गयी है ।।५२-५२$\frac{1}{2}$।। इसके बाद 'ॐ हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा', 'ॐ हामात्मने परितृप्तो भव स्वाहा', 'ॐ ह्रूमात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा', 'ॐ हौमात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा', 'ॐ हौमात्मन्···स्वाहा', 'ॐ हः, आत्मनेऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा।' इन मन्त्रों से प्रज्वलित अग्नि में परमशिव के उद्देश्य से घी की धारा छोड़कर योजनिका की स्थिरता के लिए अन्त में 'वौषट्' शब्द से युक्त शिवमन्त्र से विधिपूर्वक पूर्ण दक्षिणा का दान करे ।।५३-५५।। इस प्रकार भावनायुक्त होकर परमाक्षर षड्गुणसम्पन्न आत्मा का ग्रहण करके उसे शिष्य की देह में नियुक्त करे ।।५६।। तदनन्तर तीव्र अणुशक्ति के संपात से उत्पन्न श्रम की शान्ति के लिए शिष्य के मस्तक पर अर्घ्य से अमृत-विन्दु को छिड़क दे और शिवकुम्भ आदि (पात्रों) को प्रणाम करके शिव से दक्षिण ओर के मण्डल में प्रसन्न मुखवाले शिष्य को अपनी दाहिनी ओर बैठाकर देवेश से यह निवेदन करे कि-"मेरी मूर्ति को धारणकर आपने ही इसे अनुगृहीत किया है। इसलिए देवता, अग्नि तथा गुरु में इसकी भक्ति को बढ़ाते रहिये" ।।५७-५९।। यह कहकर स्वयं गुरु देवेश को प्रणामकर शिष्य

---

१ ख. घ. °कारं वा°। २ ख. °चको वि°। ३ घ. °कण्ठक। ४ ख. ग. घ. °नसे त°। ५ क. ङ. च. °जनीयास्थि°। ६ ख. °हा। ओ मा°। ७ क. ङ. शिवदे°। ८ क. ङ. च. °न्यस्य दद्यादमृ°। ९ ख. ग. °दर्घाद°। १० क. ङ. च. °क्तिनायास्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इति विज्ञाप्य देवेशं प्रणम्य च गुरुः स्वयम्। श्रेयस्तवास्त्विति ब्रूयादाशिषं शिष्यमादरात् ।।६०।।
ततः परमया भक्त्या दत्त्वा देवेऽष्टपुष्पिकाम्। पुत्रकं शिवकुम्भेन संस्नाप्य विसृजेन्मखम् ।।६१।।
इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षाकथनं नामाष्टाशीतिमोऽध्यायः ।।८८।।

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

एकतत्त्वदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच

अथैकतात्त्विकी दीक्षा लघुत्वादुपदिश्यते। सूत्रबन्धादि कुर्वीत यथायोगं निजाणुना[1] ।।१।।
कालाग्न्यादिशिवान्तानि तत्त्वानि परिभावयेत्। समतत्त्वे समग्राणि सूत्रे मणिगणानिव ।।२।।
आवाह्य शिवतत्त्वादि[3] गर्भाधानादि पूर्ववत्। मूलेन किं तु कुर्वीत सर्वशुल्क समर्पणम् ।।३।।
प्रददीत ततः पूर्णां तत्त्वव्रातोपगर्भिताम्। एकयैव यया शिष्यो निर्वाणमधिगच्छति ।।४।।
योजनायै शिवे चान्यां स्थिरत्वापादनाय च। दत्त्वा पूर्णां प्रकुर्वीत शिवकुम्भाभिषेचनम् ।।५।।
इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकतत्त्वदीक्षाविधिकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।।८९।।

को आदरपूर्वक आशीर्वाद दे कि–'तुम्हारा कल्याण हो।' तदनन्तर देवता को परम भक्तिपूर्वक आठ पुष्पों का गुच्छा समर्पित करके शिष्य को शिव-कुम्भ के जल से नहलाकर यज्ञ का विसर्जन कर देना चाहिए ।।६०-६१।।

श्री अग्निमहापुराण में निर्वाणदीक्षा-कथन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८८।।

अध्याय ८९

एकतत्त्वदीक्षा-विधि

महेश्वर बोले–अब एक तत्त्व की दीक्षा लघु होने के कारण पहले मैं उसे ही बता रहा हूँ। यथावसर यथोचित विधि से स्वकीय मन्त्र से सूत्र-बन्धन आदि करके कालाग्नि से लेकर शिव पर्यन्त तत्त्वों का इस प्रकार चिन्तन करे कि 'यथा सूत्र में मणियाँ गूँथी रहती हैं, वैसे ही शिव तत्त्व में अन्य समस्त तत्त्व ओत-प्रोत हैं।' तदनन्तर शिव तत्त्व आदि का आवाहन करके पूर्व की भाँति गर्भाधान आदि संस्कार करके मूल मन्त्र से सब शुल्कों का समर्पण करे। फिर तत्त्व समूह से उपगर्भित पूर्णाहुति प्रदान करे, जिससे शिष्य को निर्वाण की प्राप्ति हो जाय। शिवभक्ति में नियोजन और स्थिरता की प्राप्ति के लिए दूसरी बार पूर्णाहुति देकर शिव-कुम्भ के जल से उसका अभिषेक करना चाहिए ।।१-५।।

श्री अग्निमहापुराण में एकतत्त्वदीक्षा विधि-कथन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८९।।

---

१ घ. °जात्मना। २ ख. °त्त्वानि ग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवतितमोऽध्यायः

अभिषेकादिविधिकथनम्

ईश्वर उवाच

शिवमभ्यर्चाभिषेकं कुर्याच्छिष्यादिके श्रिये। कुम्भानीशादिकाष्ठासु क्रमशो नव विन्यसेत् ।।१।।
तेषु क्षारोदं क्षीरोदं दध्युदं घृतसागरम्। इक्षुकादम्बरीस्वादुमस्तूदानष्ट सागरान् ।।२।।
निवेशयेद्यथासंख्यमष्टौ विद्येश्वरानथ[1]। एकं शिखण्डिनं रुद्रं श्रीकण्ठं तु द्वितीयकम् ।।३।।
त्रिमूर्तिमेकरुद्राक्षमेकनेत्रं[2] शिवोत्तमम्। सप्तमं[3] सूक्ष्मनामानमनन्तं रुद्रमष्टमम् ।।४।।
मध्ये शिवं समुद्रं च शिवमन्त्रं च विन्यसेत्। यागालयान्दिगीशस्य[4] रचिते स्नानमण्डपे ।।५।।
कुर्यात्करद्वयायामां वेदीमष्टाङ्गुलोच्छ्रिताम्। श्रीपर्णाद्यासने तत्र विन्यस्यानन्तमासनम्[5] ।।६।।
शिष्यं निवेश्य पूर्वास्यं सकलीकृत्य पूजयेत्। काञ्जिकौदनमृद्भस्मदूर्वागोमयगोलकैः ।।७।।
सिद्धार्थदधितोयैश्च कुर्यान्निर्मन्थनं[6] ततः[7]। क्षारोदानुक्रमेणाथ हृदा विद्येशशम्बरैः[8] ।।८।।
कलशैः स्नपयेच्छिष्यं सुधाधारणयाऽन्वितम्। परिधाप्य सिते वस्त्रे निवेश्य शिवदक्षिणे ।।९।।

अध्याय ९०

अभिषेकादि विधि का वर्णन

महेश्वर बोले–शिव का पूजन करके शिष्य आदि के कल्याण के लिए अभिषेक करे। उत्तर-पूर्व आदि दिशा-विदिशाओं में क्रमशः नौ घटों की स्थापना करे। उन घटों में लवण-समुद्र, क्षीर-समुद्र, दधि-समुद्र, घृत-समुद्र, इक्षु-समुद्र, मद्य-समुद्र, मधु-समुद्र और तक्र-समुद्र–इन आठ समुद्रों का (भावात्मक) निवेश करके क्रमशः आठ विद्येश्वरों को भी उनमें सन्निविष्ट कर दे। पहला विद्येश्वर (रुद्र) शिखण्डी है, दूसरा श्रीकण्ठ, तीसरा त्रिमूर्ति, चौथा एक रुद्राक्ष, पाँचवाँ एक नेत्र, छठा शिवोत्तम, सातवाँ सूक्ष्म, आठवाँ अनन्त है। मध्य में शिव, समुद्र तथा शिवमन्त्र का न्यास करना चाहिए तथा यज्ञमन्दिर एवं दिक्पालों के स्नान-मण्डप का निर्माण करना चाहिए ।।१-५।। तदनन्तर दो हाथ लम्बी-चौड़ी और आठ अङ्गुल ऊँची वेदी का निर्माण करे। बिल्वपत्र आदि के बने आसन पर अनन्त (भगवान्) के आसन की रचना करके शिष्य को पूर्वाभिमुख बैठाकर सकलीकरणपूर्वक पूजन करे। पश्चात् कांजी, भात, मिट्टी, भस्म, दूब, गोबर, सरसों और तक्र से क्रमशः शिष्य के देह को मलकर लवण-समुद्र आदि के क्रम से मन्त्रोच्चारणपूर्वक विद्येश्वरों के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए कलशों के जल से उस शिष्य को स्नान कराये, जो उस जलधारा को

---

१ क. ख. ग. ङ. च. विश्वेश्व°। २ ख. ग. घ. °मूर्तमे°। ३ ख. ग. °मं शूकना°। ४ ख. ग. °यादिगरीश°। ५ घ. ङ. °मानसम्। ६ ख. ग. °र्मथनं। ७ क. ङ. च. °तः। क्षीरो°। ८ च. °शसंचरैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वोदितासने शिष्यं पुनः पूर्ववदर्चयेत् । उष्णीषं योगपट्टं च [1]मुकुट्टं कर्तरीं घटीम्[2] ।।१०।।
अक्षमालां पुस्तकादि[3] शिविकाद्यधिकारकम् । दीक्षाव्याख्याप्रतिष्ठाद्यं ज्ञात्वाऽद्यप्रभृति त्वया ।।११।।
सुपरीक्ष्य विधातव्यमाज्ञां संश्रावयेदिति । अभिवाद्य ततः शिष्यं प्रणिपत्य महेश्वरम् ।।१२।।
विघ्नज्वालापनोदार्थं कुर्याद्विज्ञापनां[4] यथा । अभिषेकार्थमादिष्टस्त्वयाऽहं गुरुमूर्तिना ।।१३।।
संहितापारगः सोऽयमभिषिक्तो मया शिव । तृप्तये मन्त्रचक्रस्य पञ्चपञ्चाऽऽहुतीर्यजेत् ।।१४।।
दद्यात्पूर्णां ततः शिष्यं स्थापयेन्निजदक्षिणे । शिष्यदक्षिणपाणिस्था अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीः क्रमात् ।।१५।।
लाञ्छयेदुपबद्धाय[5] दग्धदर्भाग्रशम्बरैः । कुसुमानि करे दत्त्वा प्रणामं कारयेदमुम् ।।१६।।
कुम्भेऽनले शिवे स्वस्मिंस्ततस्तत्कृत्यमाविशेत् । अनुग्राह्यास्त्वया शिष्याः शास्त्रेण सुपरीक्षिताः ।।१७।।
भूपवन्मानवादीनामभिषेकादभीप्सितम् । [6]ॐ[7] श्रां श्रौं पशुं हूं फडित्यस्त्रराजाभिषेकतः ।।१८।।

इत्याग्नेये महापुराणेऽभिषेकादिविधिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।।९०।।

अमृत के समान समझता हो। स्नानोत्तर शुक्ल वस्त्र पहनाकर शिव से दाहिनी ओर पूर्वोक्त आसन पर बैठाकर पुनः पहले की भाँति पूजन करे। तदनन्तर शिष्य से कहे कि "आज से तुम दीक्षा की व्याख्या, प्रतिष्ठा आदि जानकर उष्णीष, योगपट्ट, मुकुट, कर्तरी (कैंची), घटी, रुद्राक्षमाला, पुस्तक, शिविका आदि वस्तुओं की भलीभाँति परीक्षा करके उसका व्यवहार करो।" इसके बाद शिष्य और महादेव का अभिवादन करके विघ्नज्वाला की शान्ति के लिए (शिव से) निवेदन करे कि "हे शिव! गुरुमूर्तिरूप अपने अभिषेक के लिए मुझे आदेश दिया है, इसलिए मैंने संहिता भाग का पूर्ण अध्ययन किये हुए, इस शिष्य को अभिषिक्त किया है।" तदनन्तर मन्त्र-चक्र की तृप्ति के लिए पाँच-पाँच आहुतियाँ डालकर पूर्णाहुति प्रदान करे ।।६-१४।। फिर शिष्य को अपने दाहिने भाग में बैठाकर उसके दाहिने हाथ के अँगूठे और अँगुलियों को क्रमशः जले हुए कुशों के अग्रभाग से पोंछकर उसके हाथ में फूल देकर उसे घट, अग्नि, शिव तथा अपने को प्रणाम कराये। तत्पश्चात् देवता से यह प्रार्थना करे कि "शास्त्र द्वारा परीक्षा किये हुए शिष्यों के ऊपर आप अनुग्रह किया करें।" जैसे राज्याभिषेक के बाद राजा प्रजा की अभिलाषाएँ पूरी करता है उसी भाँति 'ॐ श्रां श्रौं पशुं हूं फट्-' इस मन्त्रराज के द्वारा अभिषिक्त होने पर शिष्य की सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं ।।१५-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में अभिषेकादि विधि-वर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।।९०।।

---

१ ख. मुकुरं। २ ख. पटीम्। ३ ख. ङ. पुष्पका°। ४ ख. °पनं तथा। ५ ग. ङ. च. °येदूषरत्वायदग्रगर्भाङ्गसंचरैः। ६ ॐ श्रां°°°राजाभिषेकतः क. ङ. घ. पुस्तकेषु नास्ति। ७ ख. ॐ श्रां पशुन्हुं फ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकनवतितमोऽध्यायः

अभिषिक्तेन कर्त्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिः

ईश्वर उवाच

अभिषिक्तः शिवं विष्णुं पूजयेद्भास्करादिकान् । शङ्खभेर्यादिनिर्घोषैः स्नापयेत्पञ्चगव्यकैः ।।१।।
[1]यो देवान्देवलोकं स याति स्वं कुलमुद्धरन् । वर्षकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम्[2] ।।२।।
घृताभ्यङ्गेन देवानां भस्मीभवति पावके । आढकेन घृताद्यैश्च देवान्स्नाप्य सुरो भवेत् ।।३।।
चन्दनेनानुलिप्याथ गन्धाद्यैः पूजयेत्तथा[3] । अल्पायासेन स्तुतिभिः स्तुता देवास्तु सर्वदा ।।४।।
अतीतानागतज्ञानमन्त्रधीभुक्तिमुक्तिदाः । गृहीत्वा प्रश्नसूक्ष्मार्णे हृते द्वाभ्यां शुभाशुभम् ।।५।।
त्रिभिर्जीवो [4]मूलधातुश्चतुर्भिर्ब्राह्मणादिधीः । पञ्चादौ भूततत्त्वादि शेषे चैवं जयादिकम् ।।६।।
एकत्रिकातित्रिकान्ते[5] पदे[6] द्विपमकान्तके[7] । अशुभं मध्यमं मध्येष्विन्द्रस्त्रिषु[8] नृपः शुभः ।।७।।
संख्यावृन्दे[9] जीविताब्दं[10] यमोऽब्ददशहा ध्रुवम् । सूर्येभास्येशदुर्गाश्रीविष्णुमन्त्रैर्लिखेत्कजे ।।८।।
कठिन्या जप्तया स्पृष्टे[11] गोमूत्राकृतिरेखया[12] । आरभ्यैकं त्रिकं यावत्त्रिचतुष्कावसानकम् ।।९।।

अध्याय ९१

अभिषिक्त द्वारा देवताओं के पूजन की विधि

महादेव बोले–अभिषिक्त शिष्य को शङ्ख और भेरी आदि निर्घोष से शिव, विष्णु और भास्करादि का पूजन करना चाहिए। पहले उनको पञ्चगव्य से स्नान कराना चाहिए। ऐसा करनेवाला शिष्य अपने कुल का उद्धार करके देवलोक को जाता है। घृत से देवताओं का अभ्यञ्जन करनेवाले शिष्य के हजारों करोड़ वर्षों में समुपार्जित पापों का नाश हो जाता है। एक आढक परिमाण घृत इत्यादि से देवताओं को स्नान करानेवाला व्यक्ति स्वयं देवता हो जाता है ।।१-३।। चन्दन से लेपादि करने के बाद गन्ध आदि से देवार्चन करना चाहिए। थोड़े से परिश्रम से स्तुतियों द्वारा देवताओं की सर्वदा स्तुति करनी चाहिए। इसमें भूत, भविष्य का ज्ञान, फल, मन्त्र, बुद्धि, योग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रश्नकर्त्ता के संक्षिप्त प्रश्न वाक्य के अक्षरों को गिनकर उसमें दो से भाग दे। एक और दो बचने पर क्रमशः शुभाशुभ की प्राप्ति होती है, तीन से व्यक्ति की मूल धातु मालूम होती है, चार मन्त्रों से ब्राह्मणों की बुद्धि, पाँच मन्त्रों से भूततत्त्वादि ज्ञान की प्राप्ति होती है और शेष से जय इत्यादि अधिक बीजाक्षर हों अथवा दो प, म एवं क हो तो इनमें से प्रथम वर्ण अशुभ, बीचवाला मध्यम तथा अन्तिम वर्ण शुभ है। यदि अन्त में संख्या समूह हो तो वह जीवनकाय के दस वर्ष का सूचक है। यदि दस की संख्या हो तो दस वर्ष बाद साधक पर यमराज

---

१ यो देवान्'''कुलमुद्धरन् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. °मुपस्थित°। ३ क. ख. ग. ङ. च. °जयंस्तथा। ४ क. ङ. च. °तुर्बहूक्तेर्ब्रा°। ५ ख. °कात्रित्रि। ६ क. ङ. च. °द्वेद्वयम°। ७ °पदका°। ८ क. ङ. च. °ध्ये स्वकेन्द्रस्त्रिनृ° ख. °ध्ये स्वे केन्द्रस्त्रिनृ°। ९ ख. °वृत्ते जी°। १० ख. °ब्दं मयोऽब्द°। ११ क. ङ. स्पृष्टो गो°। १२ क. ख. ग. ङ. च. °मूत्र्याकृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मरुद्व्योममरुद्बीजैश्चतुःषष्टिपदे[1] तथा । अक्षाणां[2] पातनात्स्पर्शाद्विषमादौ शुभादिकम् ।।१०।।
एकत्रिकादिमारभ्य अन्ते चाष्टत्रिकं तथा[3] । ध्वजाद्यायाः समा हीना विषमाः शोभनादिदाः[4] ।।११।।
आईपल्लवितैः[5] काद्यैः षोडशस्वरपूर्वगैः । आद्यैस्तैः[6] सस्वरैः काद्यैस्त्रिपुरानाम[7] मन्त्रकाः[8] ।।१२।।
ह्रीं बीजाः प्रणवाद्याः स्युर्नमोन्ता यत्र पूजने । मन्त्रा विंशतिसाहस्राः शतं षष्ठ्यधिकं[9] ततः ।।१३।।
आ[10] ह्रींमन्त्राः सरस्वत्याश्चण्डिकायास्तथैव च । तथा गौर्याश्च दुर्गाया आं[11] श्रीमंत्राः श्रियस्तथा[12] ।।१४।।
तथा[13] क्षौंमन्त्राः सूर्यस्य[14] आंहौंमन्त्राः शिवस्य च । आंगंमन्त्रा[15] गणेशस्य[16] आंमंन्त्राश्च तथा हरेः ।।१५।।
शतार्धैकाधिकैः काद्यैस्तथा[17] षोडशभिः स्वरैः । काद्यैस्तैः सस्वरैराद्यैः कान्तैर्मन्त्रास्तथाऽखिलाः ।।१६।।
रवीशदेवीविष्णूनां खाब्धिदेवेन्द्रवर्तनात् । शतत्रयं[18] षष्ठ्यधिकं प्रत्येकं मण्डलं क्रमात् ।।१७।।
अभिषिक्तो जपेद्ध्यायेच्छिष्यादीन्दीक्षयेद्गुरुः ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिषिक्तेन कर्त्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।।९१।।

का आक्रमण होगा। भविष्य को जानने के लिए पद्माकर चित्र में गुरु को सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी के लिए पवित्र मन्त्रों का उल्लेख करना चाहिए। मन्त्र को कनिष्ठिका अँगुली पर गोमूत्रिका चित्र की भाँति जपना चाहिए, जिसकी प्रत्येक रेखा तीन भागों में विभक्त हो और इन तीन भागों को बाद में चौंसठ भागों में विभक्त किया गया हो। यक्ष को इन वर्गों में डालकर प्रश्न का उत्तर पूछना चाहिए। यदि यक्ष युग्म संख्या का स्पर्श कर ले तो प्रश्न का उत्तर शुभ समझना चाहिए। 'यं वं हं' इन तीन वर्णों के आठ मिथ हैं। वे ध्वज आदि आठ आयों के प्रतीक हैं। इन आयों में जो सम हैं, वे अशुभ हैं। विषम आय शुभप्रद कहे गये हैं। त्रिपुर मन्त्र 'क' अक्षर से युक्त होता है जिसके पूर्व सोलह स्वर होते हैं। इन मन्त्रों के बीज प्राप्त होते हैं। यदि मन्त्रपद के अन्त में एक मिथ (तीन बीजाक्षर) हों, ह्रीं होता है और इनका प्रारम्भ 'ॐ' तथा अन्त 'नमः' से किया जाता है। इनकी संख्या बीस हजार एक सौ साठ होती है ।।४-१३।। 'आं ह्रीं' मन्त्र सरस्वती और चण्डिका के कहे गये हैं तथा गौरी, दुर्गा और श्री के मन्त्र 'आं श्रीं' माने गये हैं। इसी प्रकार 'आं क्षौं' मन्त्र सूर्य के, 'आं हौं' मन्त्र शिव के, 'आं गं' मन्त्र गणेश के और 'आं' मन्त्र विष्णु के माने गये हैं। शिष्य को अभिषिक्त करने के बाद गुरु को उपर्युक्त मन्त्रों को तीन सौ छह बार पढ़ना चाहिए। ये मन्त्र क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, देवी और विष्णु से सम्बन्धित हैं और इनकी रचना सोलह-स्वरों के साथ 'क' आदि इक्यावन अक्षरों को मिलाकर की जाती है और इन मन्त्रों का अन्त भी 'क' अक्षर से होता है। अभिषिक्त गुरु इन सब मन्त्रों तथा देवताओं का जप-ध्यान करे तथा शिष्य आदि को भी दीक्षा दे ।।१४-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में अभिषिक्त देवताओं का विधि-वर्णन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९१।।

---

१ क. ङ. न्न. °रुत्वोराम रुद्धे गैश्च°। २ घ. °णां पत°। ३ ख. त्रिधा। ४ क. ङ. च. °दिकाः। आ°। ५ क. आए प°। ख. आहाप°। ६ क. ङ. च. संवरैः। ख. सुस्वरैः। ७ क. ङ. च. °मन्त्रिकाः। ८ क. ङ. च. °काः। क्लीं बी°। ९ ख. षष्ठ्याऽधि। १० क. च. अश्रीमन्ताः। ११ क. ख. ग. ङ. च. अश्रीमंत्राः। १२ क. ङ. च. °था। क्षौ°। १३ ख. घ. °था क्रौम°। घ. °था क्रौंक्षौं°। १४ क. च. °स्य आग्नौम°। १५ क. च. आगमन्ता। १६ क. ख. ग. ङ. च. °स्य आयान्ताश्च। १७ क. ख. ग. ङ. च. °द्यैराद्यैः षो°। १८ ख. शतद्वयं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

संक्षेपेण प्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच

प्रतिष्ठां संप्रवक्ष्यामि क्रमात्संक्षेपतो गुह। पीठं शक्तिं शिवो लिङ्गं तद्योगः सा शिवाणुभिः ।।१।।
प्रतिष्ठायाः पञ्चभेदास्तेषां रूपं वदामि ते। यत्र ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ।।२।।
स्थापनं तु यथायोगं पीठ एव निवेशनम्। प्रतिष्ठा भिन्नपीठस्य स्थितस्थापनमुच्यते ।।३।।
उत्थापनं च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःसरा। यस्यां तु[1] लिङ्गमारोप्य संस्कारः क्रियते बुधैः ।।४।।
आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्णवादिकस्य च। आसु सर्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ।।५।।
यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चथा। परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्यात्प्रासादकाम्यया ।।६।।
[2]शुक्लाऽऽज्यगन्धा[3] रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी। पीता कृष्णा सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात् ।।७।।
पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां[4] विशिष्यते। आखाते[5] हास्तिके यस्याः पूर्णैः[6] मृदधिका भवेत् ।।८।।

अध्याय ९२

संक्षिप्त प्रतिष्ठाविधि

महादेव बोले–अये कार्तिकेय! मैं क्रमशः संक्षेप में प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूँ। प्रतिष्ठा के पाँच भेद होते हैं–पीठ, शक्ति, शिव, लिङ्ग तथा इनका सम्बन्ध। प्रतिष्ठा शिव मन्त्रों से करनी चाहिए। मैं तुम्हें उनके भेदों का स्वरूप बता रहा हूँ। जिस प्रतिष्ठा का ब्रह्मशिला योग होता है, वह विशेष कहलाती है। योग के अनुसार पीठ पर निवेश करने को ही स्थापना कहते हैं। भिन्न पीठ की प्रतिष्ठा स्थित स्थापना कहलाती है ।।१-३।। जिस प्रतिष्ठा में लिङ्गोद्धार किया जाता है, उसे उत्थापना कहते हैं। जिसमें लिङ्ग को आरोपित कर विद्वान् लोग संस्कार करते हैं, उसे आस्थापना कहते हैं। विष्णु आदि देवताओं की आस्थापना दो प्रकार की मानी गयी है। उन सब प्रकार की प्रतिष्ठाओं में चैतन्य रूप शिव को नियुक्त करना चाहिए। उनके आधार आदि भेद से प्रासादों में भी पाँच प्रकार की प्रतिष्ठा मानी गयी है। जहाँ प्रासाद बनाना हो, पहले वहाँ की भूमि परीक्षित कर लेनी चाहिए ।।४-६।। ब्राह्मण आदि वर्णों के लिए क्रमशः शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण की भूमि होनी चाहिए, जिनमें शुक्ल भूमि की गन्ध घी के समान, पीत भूमि की गन्ध सुगन्धित द्रव्य के समान और कृष्ण भूमि की गन्ध मद्य के समान होनी चाहिए। यद्यपि पूर्व, उत्तर और पूर्वोत्तर–ये तीनों दिशाएँ भवन-निर्माण के लिए शुभ हैं, तथापि इनमें पूर्व दिशा सबसे उत्तम है। एक हाथी के बराबर की खाईं खोदने पर यदि खाईं के भीतर

---

१ क. ङ. च. तु पीठमा°। २ क. घ. ङ. च. शुल्काऽऽज्य। ३ ख. ग. °क्लाऽऽद्यग°। ४ ख. ग. परा। ५ क. ङ. च. आख्याते। ६ ख. पूर्वे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम् । अस्थ्यङ्गारादिभिर्दृष्टामत्यन्तं[1] शोधयेद्गुरुः[2] ।।९।।
नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम् । खननैर्गोकुलावासैः कषणैर्वा मुहुर्मुहुः ।।१०।।
मण्डपे द्वारपूजादिमन्त्रतृप्त्यवसानकम्[3] । कर्म निर्वर्त्याघोरास्त्रं[4] सहस्रं विधिना यजेत् ।।११।।
समीकृत्योपलिप्तायां भूमौ संशोधयेद्दिशः । स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत प्रदक्षिणम् ।।१२।।
मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूर्णकुम्भे शिवं यजेत् । वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयैः सिञ्चेत्कुद्दालकादिकम् ।।१३।।
बाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्बलिं[5] क्षिपेत् । भूमिं संसिच्य[6] संस्नाप्य कुद्दालाद्यं प्रपूजयेत् ।।१४।।
अन्यं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः । निधाय गीतवाद्यादिब्रह्मघोषसमाकुलम् ।।१५।।
पूजां कुम्भे समाहृत्य प्राप्ते लग्नेऽग्निकोष्ठके । कुद्दालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन[7] तु खानयेत् ।।१६।।
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत् । पुरस्य पूर्वसीमान्तं नयेद्यावदभीप्सितम् ।।१७।।
अथ तद्रक्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्परितः[8] पुरम् । सिञ्चन्सीमान्तचिह्नानि यावदीशानगोचरम् ।।१८।।
अर्घ्यदानमिदं[9] प्रोक्तं तत्र [10]कुम्भपरिभ्रमात् । इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्वीत तदनन्तरम् ।।१९।।
कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया[11] । खादयेद्भूकुमारीं चेद्विधिना शल्यमुद्धरेत् ।।२०।।

मिट्टी-ही-मिट्टी मिले या जल आदि (पवित्र चीजें) मिले तो वहाँ की भूमि उत्तम समझनी चाहिए। यदि हड्डी, कोयला आदि चीजों से अत्यन्त दूषित भूमि मिले तो गुरु को उस भूमि का शोधन करना चाहिए ।।७-९।। नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासाद के लिए निर्धारित भूमि का संशोधन भूमि को खोदकर, वहाँ पर गोष्ठ बनाकर तथा बार-बार उसे जोतकर कर लेना चाहिए। मण्डप में द्वार-पूजा, हवन आदि कर्म करके एक हजार बार अघोरास्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए ।।१०-११।। भूमि को समतल करके उसे लीप-पोतकर दिशा की शुद्धि करे। सोना, दही तथा अक्षत से रेखा खींचकर मध्य में ईशानकोण में स्थित पूर्ण कुम्भ के ऊपर शिव का पूजन करे। डीह की अर्चना करके कलश के पानी को कुदाल आदि पर छिड़क दे। बाहर रक्षोगण की पूजा करके विधिपूर्वक दिशाओं को बलि चढ़ावे। भूमि पर जल छिड़ककर, कुदाल आदि को धोकर उनकी पूजा करे ।।१२-१४।। किसी ब्राह्मण के कन्धे पर एक जोड़े वस्त्र से आच्छादित एक दूसरे घड़े को रखकर गाना, बजाना, वेदध्वनि आदि के साथ घट की पूजा करके अग्निकोण में ठीक लग्न के समय अभिषिक्त तथा मधुलिप्त कुदाल से खोदना प्रारम्भ करे। खोदी हुई मिट्टी को नैर्ऋत्यकोण में फेंककर गड्ढे में घड़े का जल छिड़के। उस घड़े को नगर की सीमा तक ले जाकर सुरक्षापूर्वक नगर की परिक्रमा करके ईशानकोण तक सीमान्त के चिह्नों में जल छिड़क देना चाहिए ।।१५-१८।। वहाँ घड़े को घुमाने से अर्घ्यदान हो जाता है। इस प्रकार भूमि का परिग्रह करके शल्य-दोष को दूर करने के लिए भूमि तब तक खोदे, जब तक कंकड़ या जल न दिखायी पड़ जाय। यदि वहाँ (वास्तुभूमि के अन्दर) शल्य (हड्डी आदि) मिलने की आशंका हो तो उसका विधिपूर्वक उद्धार करना चाहिए ।।१९-२०।। इस जगह

---

१ क. च. अस्त्रागारा°। २ ख. °येत्पुरा। न°। ३ च. °न्त्रदृष्ट्यव° ४ क. ख. ग. ङ. च. °र्बत्य घोरास्त्रस°। ख. ग. °र्वर्त्य घो°। ५ ख. ग. °ग्बलीन्क्षिपे°। ६ क. ख. ग. ङ. च. संस्थाप्य। ७ क. ङ. च. सरक्तेन। ८ ख. ग. मयन्परि°। ९ क. ख. ग. ङ. च. अर्घदा°। १० क. ङ. च.° क्तं भद्रकु°। ११ क. ङ. च. जिहास°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(१अकचटतपयशहान्मानवश्चेत्प्रश्नाक्षराणि तु । अग्नेर्ध्वजादिपतिताः[२] स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ।।२१।।
कर्तुश्चाङ्विकारेण जानीयात्तत्प्रमाणतः । पश्वादीनां प्रवेशेन कीर्तनैर्विरुतैर्दिशः ।।२२।।
मातृकामष्टवर्गाढ्यां फलके भुवि वा लिखेत् । शल्यज्ञानं वर्गवशात्पूर्वादीशान्ततः क्रमात् ।।२३।।
अवर्गे चैव लोहं तु कवर्गेऽङ्गारमग्नितः । चवर्गे भस्म दक्षे स्वादृवर्गेऽस्थि[३] च नैर्ऋते ।।२४।।
तवर्गे चेष्टका चाऽऽप्ये कपालं च पवर्गके । यवर्गे शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत्[४] ।।२५।।
हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चानर्थकरानपि । प्रोक्ष्याश्मभिः[५] करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरैः ।।२६।।
पादोनं खातमापूर्य सजलैर्मुद्गराहतैः । लिप्तां समप्लवां तत्र कारयित्वा भुवं गुरुः ।।२७।।
सामान्यार्घ्यकरो[६] यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकम् । तोरणद्वाःपतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ।।२८।।
कुर्यात्तत्राऽऽत्मशुद्ध्यादिकुण्डमण्डपसंस्कृतिम् । कलशं वर्धनीशक्तं लोकपालशिवार्चनम् ।।२९।।
अग्नेर्ज्वलनपूजादि[७] सर्वं पूर्ववदाचरेत् । यजमानान्वितो यायाच्छिलानां[८] स्नानमण्डपम् ।।३०।।

शल्य है या नहीं–इस प्रकार के प्रश्न करनेवाले के मुख से अ क च ट त प य श ह–ये अक्षर निकलें तो वे ही पूर्व से लेकर मध्य पर्यन्त शल्यकारण होते हैं (जैसे–'अ' कहने से पूर्व दिशा में और 'क' कहने से अग्निकोण में शल्य को बतलाना चाहिए इत्यादि।) प्रश्नकर्त्ता के अङ्गविकार से भी शल्याशल्य का विचार किया जा सकता है। अर्थात् प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता किस अङ्ग के बल बैठा है, किस अङ्ग का स्पर्श कर रहा है–इन सब बातों के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। (जिस स्थान में उस समय) पशु-पक्षियों के प्रवेश करने तथा शब्द करने से भी शब्द का ज्ञान होता है। (शल्यज्ञान करने के उपर्युक्त प्रकारों का स्पष्टीकरण यह है कि) किसी तख्ते के ऊपर या भूमि पर (अवर्ग आदि) आठ वर्गों के मातृकाक्षरों को लिखकर पूर्व से ईशानकोण की दिशा तक क्रमशः वर्ग द्वारा शल्यज्ञान कराना चाहिए। अवर्ग के पड़ने से अग्निकोण में कोयला समझना चाहिए। चवर्ग के पड़ने से दक्षिण दिशा में भस्म, टवर्ग के पड़ने से नैर्ऋतकोण में हड्डी और तवर्ग के पड़ने से पश्चिम दिशा में ईंट समझना चाहिए। पवर्ग के पड़ने से शव और कीड़े-मकोड़े आदि तथा शवर्ग के पड़ने से (अवशिष्ट दिशाओं में) लोहा समझना चाहिए। इसी भाँति हवर्ग में चाँदी और अवर्ग में अनर्थकारी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिए। गुरु को मुग्दर से मिट्टी के बड़े-बड़े टुकड़ों को तुड़वाकर भूमि को समतल और चिकनी करवा लेनी चाहिए ।।२१-२७।। उसके बाद भूमि को आठ अङ्गुल ऊँची मिट्टी से लिपवाकर उसे जल से भलीभाँति स्वच्छ करवा लेना चाहिए। इस प्रकार भूमि को समतल बनवाकर और लिपवाकर सामान्य अर्घ्यजल को लेकर गुरु को आगे कहे जानेवाले मण्डप के लिए प्रस्थान करना चाहिए। मण्डप के मुख्य द्वार पर द्वारपतियों की पूजा करके उसमें पश्चिम द्वार से प्रवेश करे। वहाँ आत्म-शुद्धि करके कुण्ड तथा मण्डप का संस्कार करे। फिर टोंटीवाले कलश की स्थापना करके, लोकपाल और शिव की अर्चना करके, अग्नि-प्रज्वलन तथा पूजन आदि सब कार्य पहले ही की भाँति कर लेना चाहिए। (अब शिलान्यास की विधि बतायी जा रही है) गुरु यजमान को साथ लेकर

---

१ अकचटत'''तत्प्रमाणतः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ ख. ग. °दिपाति°। ३ क. ङ. च. °वर्गे स्थिरनै°। ख. ग. °वर्गे चरनै°। ४ क. ङ. च. °त्। कवर्गे रजतं तद्वद्रक्षास्ताच्च करान°। ख. ग. °त्। कवर्गे रजतं तद्वदवर्गानर्थचारपि। ५ घ. प्रोक्ष्याऽऽत्मभिः। ६ क. ख. ग. ङ. च. °न्यार्घक°। ७ घ. °ग्नेर्जनन°। ८ ख. ग. नां स्थान°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादा[1] धर्मादिसंज्ञकाः । अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्राः करायताः ।।३१।।
पाषाणानां शिलाः कार्या इष्टकानां तदर्धतः । प्रासादेऽश्मशिलाः शैल इष्टका इष्टकामये ।।३२।।
अङ्किता नववक्त्राद्यैः पङ्कजाः पङ्कजान्विताः । नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता ।।३३।।
आसां पद्मो महापद्मः शङ्खोऽथ मकरस्तथा । समुद्रश्चेति पञ्चामी निधिकुम्भाः क्रमादधः ।।३४।।
नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता । विजया मङ्गलाख्या[2] च धरणी नवमी शिला ।।३५।।
सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः[3] । जयोऽथ विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः[4] ।।३६।।
नवानां तु यथासंख्यं निधिकुम्भा अमी नव । आसनं प्रथमं[5] दत्त्वाऽऽताड्योल्लिख्य शराणुना ।।३७।।
सर्वासामविशेषेण तनुत्रेणावगुण्ठनम् । मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ।।३८।।
अस्त्रेण[6] हुंफडन्तेन मलस्नानं समाचरेत् । विधिना[7] पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ।।३९।।
गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्किताणुना । फलरत्नसुवर्णानां[8] गोशृङ्गसलिलैस्ततः ।।४०।।
चन्दनेन समालभ्य [9]वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाम्[10] । स्वर्णोत्थमासनं दत्वा नीत्वा योगं[11] प्रदक्षिणम् ।।४१।।
शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत् । संपूज्य न्यस्य बुद्ध्यादिधरान्तं तत्त्वसंचयम् ।।४२।।
त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वत्रयं चानुक्रमान्न्यसेत् । बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चिन्तातन्मात्रकावधौ[12] ।।४३।।
तन्मात्रादौ धरान्ते[13] च शिवविद्यात्मनां स्थितिः । तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेशांश्च हृदार्चयेत् ।।४४।।

उस स्थान में जाय जहाँ शिलाएँ रखी हुई हों। महल बनाने की शिला पाद और धर्म आदि के नाम से पुकारी जाती है। पत्थर की शिला आठ अङ्गुल ऊँची, सुन्दर, चौकोर तथा हाथ भर लम्बी होनी चाहिए और ईंट की शिला आकार में उसकी आधी होनी चाहिए। पत्थर का महल बनवाना हो तो पत्थर की शिला का न्यास करे और ईंट का बनवाना हो तो ईंट का शिलान्यास करे ।।२८-३२।। शिला के ऊपर नौ मुखों तथा कमलों का चिह्न अङ्कित करना चाहिए। नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा–ये पाँच निधियाँ और इनके पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर और समुद्र–ये पाँच कुम्भ क्रमशः नीचे की ओर अङ्कित रहने चाहिए। नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मंगला और धरणी–ये नौ निधियाँ तथा इनके सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पनन्दक, जय, विजय, कुम्भ, पूर्ण और उत्तर–ये नौ कुम्भ भी अङ्कित होने चाहिए ।।३३-३६ $\frac{1}{2}$।। तदनन्तर शिला को आसन पर रखकर शस्त्र-मन्त्र से ताड़न करके उस पर मन्त्र लिख दे। फिर कवच से लपेटकर 'हुं फट्' शब्द से अन्त होनेवाले अस्त्र-मन्त्र को पढ़कर मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, कषाय और गन्ध-जल से मलस्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराकर अपना नाम जुड़े हुए मन्त्र द्वारा गन्ध, फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोशृङ्ग के जल से स्नान कराये ।।३७-४०।। तदनन्तर चन्दन का लेपकर वस्त्रों से शिला को आच्छादित कर दे, फिर उसे सोने का आसन देकर सामान्य शय्या या कुश की बनी हुई शय्या पर उसे हृदय-मन्त्र से स्थापित करे। तदनन्तर उसका पूजन करके बुद्धि से धरा तक तत्त्व का सञ्चय करते हुए त्रिखण्ड में व्याप्त तीन तत्त्वों का क्रमशः न्यास करे। उस समय यह भावना करे कि बुद्धि से चित्त तक, चित्त से तन्मात्रा तक और तन्मात्रा से धरा तक शिव, विद्या और आत्मतत्त्वों की स्थिति है। तत्पश्चात् अपने मन्त्र से तत्त्वों का और हृद्मन्त्र से तत्त्वेशों का पूजन करे ।।४१-४४।।

---

१ घ. पादध°। २ क. च. मण्डलाक्षा। ३ क. ङ. च. °ष्पदन्तकः। ४ क. ङ. च. पूर्वस्त°। ५ क. ख. ग. ङ. च. प्रणवं। ६ घ. °ण हूं फ°। ७ क. ङ. च. कुम्भानां। ८ क. ङ. च. °लवत्सुसु°। ९ क. ङ. च. °च्छिलाः। तद्वर्णनाश°। १० ख. ग. °म्। यदुत्थ°। ११ घ. यागं। १२ ङ. च. चित्तं तैर्मातृका°। १३ क. ङ. वरान्ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानेषु पुष्पमालादिचिह्नितेषु यथाक्रमम् । ।।४५।।
ॐ हूं[1] शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हूं[2] शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः । ॐ हां[3] विद्यातत्त्वाय नमः ।
ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः । ॐ हामात्मतत्त्वाय नमः ।।४६।।
ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः
क्षमाग्नियजमानार्काञ्जलवातेन्दुखानि च । प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्तीः प्रतिशिलां शिलाम् ।।४७।।
स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम् । महादेवं च भीमं च मूर्तीशांश्च यथाक्रमात् ।।४८।।
ॐ[4] धरामूर्तये नमः । ॐ[5] धराधिपतये नमः[6] ।।४९।।
इत्यादिमन्त्राँल्लोकपालान्यथासंख्यं निजाणुभिः । विन्यस्य पूजयेत्कुम्भांस्तन्मन्त्रैर्वा निजाणुभिः ।
इन्द्रादीनां तु बीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु[7] ।।५०।।
लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षूमिति ।।५१।।
उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा[8] । प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्तीः सृष्ट्या पञ्च धरादिकाः ।।५२।।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः ईश्वरश्च सदाशिवः । एते च पञ्चमूर्तीशा यष्टव्यास्तासु पूर्ववत् ।।५३।।
ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः । ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः । इत्यादि मन्त्राः ।।५४।।
संपूज्य कलशान्पञ्च क्रमेण निजनामभिः । निरुन्धीत विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात् ।।५५।।

पुष्प, माला अदि से चिह्नित स्थानों पर क्रमशः 'ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः', 'ॐ हूं शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः', 'ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः', 'ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः', 'ॐ हामात्मतत्त्वाय नमः', 'ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः'–इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूजन करना चाहिए ।।४५-४६।। तदनन्तर प्रत्येक तत्त्व में पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश–इन आठ मूर्तियों का न्यास करके प्रत्येक शिला में शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, महेश्वर, महादेव और भीम–इन आठ मूर्ति स्वामियों का भी क्रमशः न्यास करे। उसके बाद 'ॐ धरामूर्तये नमः', 'ॐ धराधिपतये नमः'–इत्यादि मन्त्रों से तथा लोकपालों का अपने मन्त्र से संख्यानुसार न्यास करके कुम्भों का उनके मन्त्र से अथवा अपने मन्त्र से न्यास करना चाहिए। इन्द्र आदि के बीज मन्त्र ये हैं–'लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षूम्।' इस प्रकार नवशिला पक्ष की विधि का वर्णन हुआ। अब पञ्चशिला पक्ष का वर्णन किया जाता है–प्रत्येक तत्त्व में सृष्टि-प्रक्रिया से पृथ्वी आदि पाँच मूर्तियों को शिलाओं के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव–इन मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। उनके 'ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः', 'ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः' इत्यादि मन्त्र हैं ।।४७-५४।। तदनन्तर अपने नामों से पाँच कलशों का क्रमपूर्वक पूजन करके मध्यशिला से लेकर विधिपूर्वक न्यास करे। फिर कुश-तिल लेकर प्राकार मन्त्र से कुण्डों में धारिका-शक्ति का न्यास करके, पूजन करके, घी आदि से तत्त्वों, तत्त्वाधिपों और मूर्तियों-मूर्तीशों का तर्पण करना चाहिए ।।५५-५६ $\frac{1}{2}$ ।।

१. ख. ग. हूं। २ ख. ग. हूं। ३ क. ङ. च. ह्रीं। ख. हीं। ४ क. ङ. च. ॐ वरा°। ५ क. ङ. च. ॐ वरा। ६ क. ङ. च. °मः । लोकपालानन्तान्त्यान्य°। ७ क. ङ. च. तु। ॐ सूं रूं यूं शूं हूं कुमि°। ८ क. ख. ग. ङ. च. तदा। ९ क. ङ. च. कुम्भेषु। ख. कुशेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्यात्प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भैस्तिलैस्ततः । कुण्डेषु[1] धारिकां शक्तिं विन्यास्याभ्यर्च्य तर्पयेत् ।।५६।।
तत्त्वतत्त्वाधिपान्मूर्तिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः । ततो ब्रह्मांशशुद्ध्यर्थं मूलाङ्गं ब्रह्मभिः क्रमात् ।।५७।।
कृत्वा शतादिपूर्णान्तं प्रोक्ष्य[2] शान्तिजलैः शिला । पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वमनुक्रमात् ।।५८।।
सांनिध्यमथ संधानं कृत्वा शुद्धं पुनर्न्यसेत् । एवं भागत्रये कर्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ।।५९।।
ॐ, आम्, ईम्, आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नम इति ।।६०।।
संस्पृशेद्दर्भमूलाद्यैर्ब्रह्माङ्गादित्रयं क्रमात् । कुर्यात्तत्त्वानुसंधानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ।।६१।।
ॐ हाम्[3], ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः ।।६२।।
घृतेन मधुना पूर्णास्ताम्रकुम्भान्सरत्नकान् । पञ्चगव्यार्घ्यसंसिक्ताँल्लोकपालाधिदैवतान् ।।६३।।
पूजयित्वा निजैर्मन्त्रैः संनिधौ होममाचरेत् । शिलानामथ सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ।।६४।।
विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः । [3]न्यूनादिदोषमोषार्थं[4] वास्तुभूमेश्च शुद्धये ।।
यजेदस्त्रेण[5] मूर्धान्तमाहुतीनां शतं शतम् ।।६५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाङ्गशिलान्यासविधिकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।।९२।।

तदनन्तर ब्रह्मांश की शुद्धि के लिए मन्त्रों से क्रमशः शान्ति जल को शिलाओं के ऊपर छिड़ककर कुशों से स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्व का क्रमशः पूजन करे। 'ॐ', आम्, ईम्, आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नमः'–इस मन्त्र से तत्त्व का सान्निध्य तथा सन्धान करके फिर शुद्ध तत्त्व का न्यास करे। इस प्रकार तीन भागों में जा-जाकर कर्म सम्पादन करना चाहिए। इसके बाद कुश के मूल से ब्रह्माङ्ग आदि तीनों का स्पर्श करके 'ॐ हां, ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः'–मन्त्र से ह्रस्व, दीर्घ (स्वरों) के उच्चारणपूर्वक तत्त्वानुसंधान करे ।।५७-६२।। तदनन्तर ऐसे पूर्ण कुम्भों का, जो रत्न, पञ्चगव्य तथा जल से पूर्ण हों, पूजन करके समीप ही तत्तद् मन्त्रों से हवन करे। इसके पश्चात् समस्त शिलाओं के देवताओं का इस प्रकार स्मरण करे कि उनके रूप विद्या ही हैं, वर्ण सोने के समान है, वस्त्र शिला के सदृश हैं और वे स्नान कर चुके हैं। फिर न्यूनादि-दोष-निवारणार्थ तथा वास्तु-भूमि की शुद्धि के लिए अस्त्र-मन्त्र से सौ बार आहुतियाँ डाले ।।६३-६५।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रतिष्ठाङ्ग-शिलान्यास-विधि-कथन नामक
बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९२।।

---

१ घ. प्रोक्ष्याः। २ क. ङ. च. ईं°। ३ क. ङ. च. °षनाशार्थं। ४ ख. °मोक्षार्थं। ५ क. ङ. च. °ण शुद्ध्यर्थमाकृती°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

वास्तुपूजादिविधिः

ईश्वर उवाच

ततः प्रासादमासूत्र्य[१] वर्तयेद्वास्तुमण्डपम्[२] । कुर्यात्कोष्ठचतुःषष्ठिं क्षेत्रे वेदास्त्रके[३] समे ।।१।।
कोणेषु [४]विन्यसेद्वंशौ[५] रज्जवोऽष्टौ[६] विकोणगाः । द्विपदाः षट्पदास्तास्तु वास्तुं तत्राचर्ययेद्यथा ।।२।।
आकुञ्चितकरं[७] वास्तुमुत्तानमसुराकृतिम् । स्मरेत्पूजासु कुड्यादिनिवेशे[८] त्वधराननम् ।।३।।
जानुनी कूर्परौ सक्थि दिशि वातहुताशयोः । पैत्र्यां पादपुटौ[९] रौद्र्यां शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः ।।४।।
अस्य देहे समारूढा देवताः पूजिताः शुभाः । अष्टौ कोणाधिपास्तत्र कोणार्धेष्वष्टसु स्थिताः ।।५।।
षट्पदास्तु[१०] मरीच्याद्या दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् । मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा शेषास्तु पदिकाः[११] स्मृताः ।।६।।
समस्तनाडीसंयोगे महामर्मानुजं[१२] हलम्[१३] । त्रिशूलं स्वस्तिकं वज्रं महास्वस्तिकसंपुटौ ।।७।।
त्रिकटं[१४] मणिबन्धं च सुविशुद्धं पदं तथा । इति द्वादश मर्माणि वास्तोर्भित्त्यादिषु त्यजेत् ।।८।।
साज्यमक्षतमीशाय पर्जन्यायाम्बुजोदकम् । ददीताथ जयन्ताय पताकां कुङ्कुमोज्ज्वलाम् ।।९।।

अध्याय ९३

वास्तुपूजा-विधि

महेश्वर बोले–तदनन्तर महल को नापकर उस चौकोर और समतल क्षेत्र में चौंसठ कोठरियोंवाले एक वास्तुमण्डप की रचना करे ।।१।। क्षेत्र के चारों कोणों पर एक-एक बाँस गाड़कर अष्टकोण बनानेवाले विन्दुओं से रस्सियाँ लगानी चाहिए। मण्डप के दो तथा छह कोष्ठों में अवस्थित देवताओं की संयुक्त पूजा वासुदेव के साथ होनी चाहिए। पूजा-काल में वास्तु (अधिदेवता) इस प्रकार रहे कि उसके हाथ सिकुड़े हुए हैं, शरीर उत्तान पड़ा हुआ है, आकृति असुर की तरह है; भित्ति के निवेश का ध्यान इस प्रकार है–मुख नीचे की ओर लटका हुआ है, घुटना, कोहनी तथा जङ्घा वायु तथा अग्निकोण में स्थित हैं, चरण नैर्ऋतकोण में और सिर, हृदय तथा अञ्जलि ईशानकोण में स्थित हैं। उसके शरीर में सम्मानित देवगणों का वास है। आठ कोणों के आधे-आधे हिस्से में आठ कोणपति निवास करते हैं। पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः मरीचि आदि ऋषियों का छह कोष्ठों में पूजन करना चाहिए, मध्य में ब्रह्मा का पूजन चार कोष्ठों में और शेष देवताओं का पूजन एक कोष्ठ में करना चाहिए ।।२-६।। समस्त नाड़ी सम्पात, महामर्म, कमल, हल, त्रिशूल, स्वस्तिक, वज्र, महास्वस्तिक, सम्पुट, त्रिकटि, मणिबन्ध, सुविशुद्ध और पद–ये बारह मर्म-स्थान हैं। वास्तु की भित्ति आदि में इन सबका पूजन करे। इसके बाद शिव को घी सहित अक्षत और मेघ को कमल-जल समर्पित करे। जयन्त को श्वेत तथा केसरिया रंग की पताका, महेन्द्र को रत्न का

---

१ क. ङ. च. °माश्रित्य व°। २ क. ख. ग. ङ. च. °ण्डलम्। ३ क. ङ. च. °दाग्रके। ४ क. ङ. च. सेद्धंसौ र°। ५ क. ङ. च. °शौ राज्ञानष्टौ द्विको°। ६ ख. ग. रज्जावष्टौ। ७ घ. कचं वा°। ८ घ. °वेश उत्तरा°। ९ घ. °पुटे रौ°। १० क. ख. ग. ङ. °दासु म°। ११ ख. पट्टिकाः। १२ ख. °र्माम्बुजं। १३ घ. फलम्। १४ घ. त्रिकटुं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रत्नवारि महेन्द्राय खौ धूम्रं वितानकम्। सत्याय घृतगोधूममाज्यभक्तं भृशाय च ।।१०।।
विमांसमन्तरिक्षाय[1] शकुन्तेभ्यश्च पूर्ववत्। मधुक्षीराज्यसंपूर्णां[2] प्रदद्याद्वह्नये श्रु[3] (स्रु) चम्[4] ।।११।।
लाजान्पूर्णां[5] सुवर्णाम्बु वितथाय निवेदयेत्। दद्याद्गृहक्षते[6] क्षौद्रं यमराजे पलौदनम् ।।१२।।
गन्धं गन्धर्वनाथाय जिह्वा भृङ्गाय[7] पक्षिणः। मृगाय[8] यवपर्णानि याम्यामित्यष्ट देवताः ।।१३।।
पित्रे तिलोदकं क्षीरं वृक्षजं दन्तधावनम्। दौवारिकाय देवाय प्रदद्याद्धेनुमुद्रया ।।१४।।
सुग्रीवाय [9]दिशेत्पूगान्पुष्पदन्ताय[10] दर्भकम्। रक्तं प्रचेतसे पद्ममसुराय सुरासवम् ।।१५।।
घृतं गुडौदनं शेषे रोगाय घृतमण्डकान्। लाजान्वा पश्चिमाशायां देवाष्टकमितीरितम् ।।१६।।
मारुताय ध्वजं पीतं नागाय नागकेशरम्। [11]मुख्ये[12] भक्ष्याणि भल्लाटे मुद्गसूपं सुसंस्कृतम् ।।१७।।
सोमाय पायसं साज्यं शालूकमूषये[13] दिशेत्। लोपीमदितये दित्यै पुरीमित्युत्तराष्टकम् ।।१८।।
मोदकान्ब्रह्मणः प्राच्यां षट्पदाय मरीचये। सवित्रे रक्तपुष्पाणि[14] ब्रह्माधः कोणकोष्ठके ।।१९।।
तदधः कोष्ठके दद्यात्सावित्र्यै च कुशोदकम्। दक्षिणे चन्दनं रक्तं षट्पदाय विवस्वते ।।२०।।
हरिद्रौदनमिन्द्राय रक्षोधः कोणकोष्ठके। इन्द्रजयाय मिश्रान्नमिन्द्राधस्तान्निवेदयेत् ।।२१।।

जल, सूर्य को धूम्रवर्ण का वितान, सत्य को घी, गेहूँ तथा भृश को घी-भात, अन्तरिक्ष को विशिष्ट मांस, पक्षियों को पूर्ववत् (वस्तुएँ) और अग्नि को मधु, दूध तथा घी से पूर्ण स्रुव प्रदान करे। लावा और सोने का जल वितथ को अर्पित करे ।।७-११½।। गृहक्षत को मधु और यमराज को मांस तथा भात समर्पित करे। गन्धर्वेश को गन्ध, भृङ्ग को जिह्वा और मृग को जौ के पत्ते दान करे। ये आठ देवता दक्षिण दिशा के माने गये हैं। पितर को तिल और जल देना चाहिए। द्वारपाल देवता को धेनुमुद्रा दिखाकर वृक्ष का दूध तथा दातून देनी चाहिए। सुग्रीव को सुपाड़ी, पुष्पदन्त को कुशा, प्रचेतस् को रक्त कमल, असुर को मद्य, शेषनाग को घी तथा गुड़-भात और रोग को घी, माँड़ तथा लावा देना चाहिए। ये आठ देवता पश्चिम दिशा के स्वामी माने गये हैं। हनुमान् को पीली पताका, नाग को नागकेशर का पुष्प, मुख्य को भक्ष्यपदार्थ, भल्लाट को भलीभाँति पकायी हुई मूँग की दाल, चन्द्रमा को घी सहित खीर और उषा देवी को शालूक (जलीय कन्द) देना चाहिए। अदिति को लोपी (एक प्रकार की मिठाई) और दिति को पुरी देनी चाहिए। ये हैं-उत्तर दिशा के आठ देवता। पूर्व दिशा में ब्रह्मा को तथा छह कोष्ठों पर अधिकार रखनेवाले मरीचि को लड्डू देना चाहिए। अग्निकोण के कोष्ठ में सूर्य को लाल पुष्प और उससे नीचे के कोष्ठ में सावित्री को कुशोदक समर्पण करना चाहिए। दक्षिण दिशा में छह कोष्ठोंवाले विवस्वान् को रक्तचन्दन, नैर्ऋतकोण के कोष्ठ में इन्द्र को हल्दी, भात और इन्द्र के नीचे इन्द्रजय को मिश्रित अन्न समर्पण करना चाहिए ।।१२-२१।। पश्चिम दिशा में छह

---

१ क. ङ. च. °य सकृद्वेत्यथ पूर्वतः। म°। २ ख. ग. °पूर्णं प्र°। ३ क. ङ. च. श्रुवम्। ख. ग. श्रुतम्। ४ ख. °म्। जालां पूर्णे। ५ क. ङ. च. °र्णेऽथव°। ६ ख. ग. °द्यात्भूतकृते। ७ ख. ग. श्रृङ्गाय। ८ घ. य° पद्मय°। ९ क. ङ. च. °शेद्यूपान्पु°। १० घ. °त्पूपान्पु°। ११ मुख्ये...सुसंस्कृतम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। १२ ख. ग. सुखे। १३ क. ङ. च. °लूकं मृगये। ग. °लूकं संशये। १४ घ. °णि वह्न्यधः°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वारुण्यां षट्पदासीने मित्रे सगुडमोदनम् । रुद्राय घृतसिद्धान्नं वायुकोणाधरे पदे ।।२२।।
तदधो रुद्रदासाय मांसं मार्गमथोत्तरे । ददीत माषनैवेद्यं षट्पदस्थे धराधरे ।।२३।।
आपाय[1] शिवकोणाधस्तद्वत्साय च तत्तले[2] । क्रमाद्दद्याद्दधि क्षीरं पूजयित्वा विधानतः ।।२४।।
चतुष्पदे निविष्टाय ब्रह्मणे मध्यदेशतः । पञ्चगव्याक्षतोपेतं चरुं साज्यं निवेदयेत् ।।२५।।
ईशादिवायुपर्यन्तकोणेष्वथ यथाक्रमम् । वास्तुबाह्येचरक्याद्याश्चतस्त्रः पूजयेद्यथा[3] ।।२६।।
चरक्यै सघृतं मांसं[4] विदार्यै दधिपङ्कजम् । पूजनायै पलं पित्तं रुधिरं च निवेदयेत् ।।२७।।
अस्थीनि पापराक्षस्यै रक्तपित्तपलानि च । ततो माषौदनं प्राच्यां स्कन्दाय विनिवेदयेत् ।।२८।।
अर्यम्णे दक्षिणाशायां पूपान्कृसरया युताम् । जम्भकाय च वारुण्यामामिषं रुधिरान्वितम् ।।२९।।
उदीच्यां पिलिपिच्छाय[5] रक्तान्नं कुसुमानि च । यचेद्वा सकलं वास्तुं कुशदध्यक्षतैर्जलैः ।।३०।।
गृहे च नगरादौ च एकाशीतिपदैर्यजेत् । त्रिपदा रज्जवः कार्याः षट्पदाश्च विकोणके ।।३१।।
ईशाद्याः पादिकास्तस्मिन्नागाद्याश्च[6] द्विकोष्ठगाः[7] । षट्पदस्था मरीचा (च्या) द्या ब्रह्मा नवपदः स्मृतः ।।३२।।
नगरग्रामखेटादौ वास्तुः शतपदोऽपि वा । वंशद्वयं कोणगतं दुर्जयं दुर्धरं सदा ।।३३।।
यथा देवालये न्यासस्तथा[8] शतपदे हितः । ग्रहाः स्कन्दादयस्तत्र विज्ञेयाश्चैव षट्पदाः ।।३४।।

कोष्ठोंवाले मित्र देवता को गुड़-भात, वायुकोण में नीचे के कोष्ठ में अधिकारी रुद्र को घी तथा सिद्ध अन्न और उससे नीचे रुद्रदास को हिरन का मांस देना चाहिए। छह कोष्ठों के अधिकारी पर्वत देवता को उड़द का नैवेद्य और ईशानकोण के जल का तथा उसके नीचे वत्स का विधिपूर्वक पूजन करके क्रमशः दोनों को ही दही और दूध समर्पित करना चाहिए। मण्डप के मध्यवर्ती चार कोष्ठों में ब्रह्मा को पञ्चगव्य, अक्षत, चरु तथा घी समर्पित करना चाहिए। ईशानकोण से लेकर वायव्यकोण तक वास-भूमि से बाहर चरकी आदि चार राक्षसियों की पूजा करनी चाहिए ।।२२-२६।। चरकी को घी और मांस अर्पित करना चाहिए। विदारी को दही-कमल, पूतना को मांस, पित्त तथा शोणित और पापराक्षसी को हड्डी, रक्त, पित्त तथा मांस अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर पूर्व दिशा में स्कन्द को उड़द की खिचड़ी अर्पित करनी चाहिए। दक्षिण दिशा में अर्यमा को खिचड़ी तथा पुआ, पश्चिम दिशा में जम्भक को मांस, शोणित और उत्तर दिशा में पिलिपिच्छ को लाल अन्न और फूल चढ़ाना चाहिए अथवा सकल देवताओं के साथ वास्तुदेव का (केवल) कुश, दही, अक्षत तथा जल से पूजन करना चाहिए ।।२७-३०।। यदि गृह तथा नगर आदि की स्थापना करनी हो तो इक्यासी प्रकोष्ठवाले वास्तु-मण्डप की रचना करनी चाहिए। वहाँ कोण स्थित तीन कोष्ठों में तथा विकोण स्थित छह कोष्ठों में रस्सियाँ बाँधनी चाहिए। ईश आदि देवताओं को एक कोष्ठ, नाग आदि को दो कोष्ठ, मरीचि आदि को छह कोष्ठ और ब्रह्मा को नौ कोष्ठ अर्पित करना चाहिए। यदि (महा) नगर, ग्राम तथा खेट (ग्राम का भेद) आदि की प्रतिष्ठा करनी हो तो सौ कोष्ठवाले वास्तु का विधान करना चाहिए। वहाँ दुर्जय तथा दुर्धर नामक दो बाँसों को कोने में गाड़ना चाहिए और जैसे देवालय की स्थापना में न्यास किया जाता है, उसी

१ क. ङ. च. अपाय। २ घ. तत्स्थले। ३ ख. ग. °था। वाराह्यै स°। ४ ख. ग. °सं पूजयित्वा विधानतः। पू°। ५ घ. °पिञ्जाय। ६ ख. ग. °न्नापाद्या°। ७ क. ख. ग. ङ. च. °ष्ठकाः। ष°। ८ ख. ग. °स्तदा श°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चरक्याद्या[1] भूतपदा रज्जुवंशादि पूर्ववत् । देशसंस्थापने वास्तु[2] चतुस्त्रिंशच्छतं[3] भवेत् ।।३५।।
चतुःषष्टिपदो ब्रह्मा मरीच्याद्याश्च देवताः । चतुष्पञ्चाशत्पदिका[4] आपाद्यष्टौ रसाग्निभिः ।।३६।।
ईशानाद्या नवपदाः स्कन्दाद्या शतिकाः स्मृताः । चरक्याद्यास्तद्वदेव रज्जुवंशादि पूर्ववत् ।।३७।।
ज्ञेयो विंशसहस्त्रैस्तु वास्तुमण्डलगः पदैः । न्यासो नवगुणस्तत्र कर्त्तव्यो देशवास्तुवत्[5] ।।३८।।
पञ्चविंशत्पदा (दो) वास्तुर्वैतालाख्यश्चितौ स्मृतः । अन्यो नवपदो वास्तुः षोडशाङ्घ्रिस्तथाऽपरः ।।३९।।
षडस्त्रत्र्यस्त्रवृत्तादेर्मध्ये स्याच्चतुरस्त्रकम् । खाते[6] वास्तुसमं[7] पृष्ठे न्यासे ब्रह्मशिलात्मके ।।४०।।
शावाकस्य निवेशे च मूर्तिसंस्थापने तथा । पायसेन तु नैवेद्यं सर्वेषां वा प्रदापयेत् ।।४१।।
उक्तानुक्ते तु वै वास्तुः पञ्चहस्तप्रमाणतः । गृहप्रासादमानेन वास्तुः श्रेष्ठस्तु सर्वदा ।।४२।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये वास्तुपूजाविधिकथनं नाम
त्रिनवतितमोऽध्यायः ।।९३।।

प्रकार यहाँ भी न्यास करना चाहिए। वहाँ ग्रहों तथा स्कन्द आदि राक्षसियों को पाँच कोष्ठ प्राप्त होने चाहिए। रस्सी तथा बाँस आदि की स्थापना उपर्युक्त प्रकार से करनी चाहिए। यदि देश की प्रतिष्ठा करनी हो तो चौंतीस सौ कोष्ठवाले वास्तु का विधान करना चाहिए ।।३१-३५।। वहाँ ब्रह्मा को चौंसठ कोष्ठ, मरीचि आदि देवताओं को आठ कोष्ठ और चरकी आदि राक्षसियों को भी स्कन्द आदि के बराबर ही कोष्ठ प्राप्त होने चाहिए। वहाँ भी पहले की भाँति रस्सी तथा बाँस इत्यादि की स्थापना करनी चाहिए। परन्तु वहाँ नगर-निर्माण की अपेक्षा नव गुने बार अधिक न्यास करना चाहिए। चिति की स्थापना में पचीस कोष्ठों में विभक्त मण्डल को वैताल कहा जाता है। अन्य प्रकार के मण्डल क्रमशः नौ और सोलह कोष्ठों में विभक्त रहा करते हैं। त्रिकोण, षट्कोण और चक्र के अन्दर चतुष्कोण का निर्माण करना चाहिए। ब्रह्मशिला की भाँति इसके चारों ओर किये गये उत्खनन में भी न्यास करना चाहिए। पूर्ववत् न्यास उसी प्रकार चाहिए जैसे कि वह शिवलिङ्ग की स्थापना में अथवा शिवालय में निर्माण में किया जाता है। सभी देवताओं को खीर का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए। यदि वास्तु की माप का कोई नियम निर्दिष्ट न किया गया हो तो पाँच हाथों का माप रखना चाहिए। गृह और प्रासाद के बराबर का माप रखना वास्तु के लिए सर्वदा उत्तम है ।। ३६-४२।।

श्री अग्निमहापुराण में वास्तुपूजा-विधि-वर्णन नामक तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९३।।

---

१ ख. ग. °रकाद्या। २ क. ङ. च. °स्तुश्च तु°। ३ क. ङ. च. °तं श (म) तम्। च°। ४ चतुष्पञ्चाशत्°°°रसाग्निभिः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ५ ख. ग. देव वा°। ६ ख. ग. खातवा°। ७ च. °वास्तोः स°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधिः

ईश्वर उवाच

ईशादिषु चरक्याद्याः पूर्ववत्पूजयेद्बहिः[1] । आहुतित्रितयं दद्यात्प्रतिदेवमनुक्रमात् ।।१।।
दत्वा भूतबलिं लग्ने शिलान्यासमनुक्रमात् । मध्यसूत्रे न्यसेच्छक्तिं कुम्भं जान्वन्तमुत्तमम् ।।२।।
नकारारूढमूलेन कुम्भेऽस्मिन्धारयेच्छिलाम् । कुम्भानष्टौ सुभद्रादीन्दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।।३।।
लोकपालाणुभिर्न्यस्य[2] श्वभ्रेषु[3] न्यस्तशक्तिषु । शिलास्तेष्वथ नन्दाद्याः क्रमेण विनिवेशयेत् ।।४।।
शम्बरैर्मूर्तिनाथानां यथा स्युर्भित्तिमध्यतः[4] । [5]तासु [6]धर्मादिकानष्टौ कोणात्कोणं विभागशः ।।५।।
सुभद्रादिषु नन्दाद्याश्चतस्रोऽग्न्यादिकोणगाः । अजिताद्याश्च पूर्वादिजयादिष्वथविन्यसेत् ।।६।।
[7]ब्रह्माणं चौपरि न्यस्य व्यापकं च महेश्वरम् । [8]चिन्तयेदेष [9]चाऽऽत्मानं [10]व्योमप्रासादमध्यगम् ।।७।।
बलिं दत्त्वा जपेदस्त्रं विघ्नदोषनिवारणम् । शिलापञ्चकपक्षेऽपि मनागुद्दिश्यते यथा ।।८।।

अध्याय ९४

शिलाविन्यास-विधि

महादेव बोले–गुरु को पूर्व की भाँति ईशान आदि कोणों में चरकी आदि राक्षसियों का पूजन करके वास्तु की सीमा-पंक्ति से बाहर प्रत्येक देवता को क्रमशः तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिए। लग्न-काल में भूतों को बलि चढ़ाकर क्रमशः शिलान्यास करना चाहिए। जैसे मध्यसूत्र में (अर्थात् शिव के आसन के बीच में) शक्ति देवी का न्यास करके उसके ऊपर अनन्त नामक उत्तम घट स्थापित करना चाहिए। उस घट के ऊपर 'न' अक्षर से युक्त मूल मन्त्र से शिला की स्थापना करके पूर्व आदि दिशाओं में सुभद्र आदि नामवाले आठ घटों को लोकपाल के मन्त्रों से क्रमशः स्थापित करना चाहिए। घटों को उन छिद्रों (गड्ढों) में रखे जहाँ पहले शक्ति देवी का आवाहन कर लिया गया हो। फिर उन घटों के ऊपर नन्दा आदि नामवाली शिलाओं को भित्ति के मध्य भाग में मूर्तिपतियों के मन्त्रों से क्रमपूर्वक स्थापित करना चाहिए। प्रत्येक कोण के विभाग से उन शिलाओं पर धर्म आदि आठ देवताओं का आवाहन करना चाहिए ।।१-५।। सुभद्र आदि चार घटों के ऊपर नन्दा आदि चार शिलाओं को अग्नि आदि कोणों में स्थापित करे और जय आदि चार घटों के ऊपर अजिता आदि शिलाओं को पूर्व आदि दिशाओं में स्थापित करे। घटों के ऊपर ब्रह्मा तथा व्यापक महेश्वर का न्यास करके प्रासाद के आकाश में विद्यमान आत्मा का ध्यान करे। तदनन्तर उसे बलि देकर विघ्न-दोष की निवृत्ति के लिए अस्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए। अब जहाँ पाँच ही शिलाओं की स्थापना का विधान है,

---

१ °येद्धरिः। आ°। २ क. ङ. च.° °र्न्यस्येत्पात्रेषु। ३ ख. ग. सूत्रेषु। ४ ख. ग. स्युर्मितिम°। ५ तासु°°°विभागशः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ ख. ग. तास्वध°। ७ ब्रह्माणं°°°महेश्वरम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ८ ख. ग. °येदसुराध्वान°। ९ घ. °देषु चाऽऽधानं। १० च. °नं योगप्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्ये पूर्णशिलान्यासः[1] सुभद्रकलशेऽर्धतः[2] । पद्मादिषु च नन्दाद्याः कोणेष्वग्न्यादिषु क्रमात् ।।९।।
मध्याभावे[3] चतस्रोऽपि मातृवद्भावसंमताः । ॐ पूर्णे त्वं महाविद्ये सर्वसंदोहलक्षणे ।।१०।।
सर्व (र्वं) संपूर्णमेवात्र कुरुष्वाङ्गिरसः सुते । ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् ।।११।।
प्रासादे तिष्ठ संतृप्ता यावच्चन्द्रार्कतारकम् । आयुः कामं श्रियं नन्दे देहि वाशिष्ठि देहिनाम् ।।१२।।
अस्मिन्रक्षा सदा कार्या प्रासादे यत्नतस्त्वया । ॐ भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि ।।१३।।
आयुर्दा कामदा देवि श्रीप्रदा च सदा भव । ॐ जयेऽत्र[4] सर्वदा देवि श्रीदाऽऽयुर्दा सदा भव ।।१४।।
ॐ जयेऽत्र सर्वदा देवि तिष्ठ त्वं स्थापिता मम । नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि ।।१५।।
ॐ रिक्तेऽतिरिक्तदोषघ्ने सिद्धिमुक्तिप्रदे शुभे । सर्वदा सर्वदेशस्थे तिष्ठास्मिन्नीशरूपिणि[5] ।।१६।।
गगनायतनं ध्यात्वा तत्र तत्त्वत्रयं न्यसेत् । प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा विधिना विसृजेन्मखम्[6] ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिलाविन्यासविधिकथनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।।९४।।

उस पक्ष का भी थोड़ा वर्णन किया जा रहा है। यज्ञमण्डप के मध्य में सुभद्रा नामक कलश के ऊपर पूर्णा नामक शिला को स्थापित करे। अन्यत्र मातृसद्भाव मन्त्र में प्रदर्शित पूर्णा, नन्दा आदि शिलाओं को पद्म आदि नामवाले घटों के ऊपर अग्नि आदि कोणों में क्रमशः स्थापित करे और गुरु उनको यह कहकर सम्बोधित करे कि "ॐ पूर्णे! महाविद्ये! सर्वसंदोह लक्षणे! अङ्गिरा की पुत्री! यहाँ तुम समस्त वस्तुओं को परिपूर्ण करो! ॐ नन्दे! तुम पुरुषों को आनन्द देनेवाली हो। तुम्हें मैं यहाँ स्थापित कर रहा हूँ। तुम इस महल में तब तक आनन्द से रहो, जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे। नन्दे! वशिष्ठ की पुत्री! तुम प्राणियों को आयु, भोग तथा श्री प्रदान करो। तुम सदा ध्यानपूर्वक इस महल की रक्षा किया करो। ॐ भद्रे! कश्यप की पुत्री! तुम सदा लोगों का कल्याण किया करो ।।६-१३।।

हे देवि! तुम लोगों को सदा आयु, भोग और ऐश्वर्य प्रदान किया करो। ॐ जये! देवि! तुम यहाँ सदा आयु और ऐश्वर्य प्रदान किया करो। ॐ जये! देवि! तुम मुझसे स्थापित होकर यहाँ सर्वदा निवास करो। अयि भृगुपुत्रि! तुम अपने स्वामी की नित्य विजय और विभूति की वृद्धि करती रहो। ॐ रिक्ते! अतिरिक्त दोषों का निवारण करनेवाली! सिद्धि तथा मुक्ति देनेवाली! सब देशों में निवास करनेवाली! ईश्वररूपिणि! शुभे! तुम इस महल में सदा निवास करो।" तत्पश्चात् गुरु आकाश ग्रह का ध्यान करके उसमें तत्त्वों का न्यास करे और तब विधिपूर्वक प्रायश्चित्तीय होम करके यज्ञ का विसर्जन करे ।।१४-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में शिलाविन्यास विधि-वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ९४।।

---

१ क. ङ. च. °सः समुद्र°। २ क. ख. ग. ङ. च. °लशोऽर्ध°। ३ घ. मध्यभा°। ४ ख. ग. °त्रं त्व° सदा। ५ घ. °स्मिन्विश्वरू°। ६ ख. °जेन्मुख°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्येलिङ्गप्रतिष्ठां च प्रासादे भुक्तिमुक्तिदाम्। तां चरेत्सर्वदा मुक्तौ भुक्तौ देवदिने सति ।।१।।
विना चैत्रेण माघादौ प्रतिष्ठामासपञ्चके। गुरुशुक्रोदये कार्या प्रथमे करणत्रये ।।२।।
शुक्लपक्षे विशेषेण कृष्णेऽप्यापञ्चमं दिनम्। चतुर्थीं नवमीं षष्ठीं वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।।३।।
शोभनास्तिथयः शेषाः क्रूरवारविवर्जिताः। शतभिषा धनिष्ठाऽऽर्द्रा अनुराधोत्तरात्रयम् ।।४।।
रोहिणी श्रवणश्चेति स्थिरारम्भे महोदयाः। लग्नं च कुम्भसिंहालितुलास्त्रीवृषधन्विनाम् ।।५।।
शस्तो जीवो नवर्क्षेषु सप्तस्थानेषु सर्वदा। बुधः षडष्टदिक्सप्ततुर्येषु विनर्तुं सितः ।।६।।
सप्तर्तुत्रिदशादिस्थः शशाङ्को बलदः सदा। रविर्दशत्रिषट्संस्थो राहुस्त्रिदशषड्गतः ।।७।।
षट्त्रिस्थानगताः शस्ता मन्दाङ्गारककेतवः[1]। शुभाः क्रूराश्च पापाश्च सर्व एकादशस्थिताः ।।८।।
एषां दृष्टिर्मुनौ पूर्णा त्वार्धिकी ग्रहभूतयोः। पादिकी रामदिक्स्थाने[2] चतुरष्टौ पादवर्जिता ।।९।।

अध्याय ९५

प्रतिष्ठा-काल तथा सामग्री आदि का वर्णन

महादेव बोले–अब मैं मन्दिर में शिव-लिङ्ग (या अन्य देवता) की प्रतिष्ठा बतलाऊँगा, जो भुक्ति-मुक्ति को देनेवाली है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह प्रतिष्ठा सर्वदा करनी चाहिए; परन्तु भोग के लिए देवताओं के दिन में ही करनी चाहिए अर्थात् उत्तरायण में यह कर्म किया जाता है। चैत्र मास को छोड़कर माघ आदि पाँच मासों में, प्रथम तीन करणों (बव, बालव, कौलव) में तथा बृहस्पति और शुक्र के उदय होने पर उस देवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। विशेषकर शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में भी पाँच दिनों तक प्रतिष्ठा की जा सकती है। चतुर्थी, षष्ठी, नवमी तथा चतुर्दशी को छोड़कर शेष तिथियाँ प्रतिष्ठा-कार्य के लिए उत्तम हैं। इसमें क्रूर संज्ञक (शनि, रवि, मङ्गल) दिनों का भी परित्याग कर देना चाहिए। शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अनुराधा, उत्तरात्रय (उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद), रोहिणी तथा श्रवण–ये नक्षत्र तथा कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष और धन–ये लग्न प्रतिष्ठारम्भ में शुभदायक हैं। इस कार्य के लिए लग्न से सातवें, नवें तथा बारहवें स्थानों में बृहस्पति, चौथे, छठें, सातवें और आठवें स्थान में बुध तथा चौथे, सातवें और आठवें स्थान में शुक्र सदा शुभ माने गये हैं। पहले, तीसरे, छठें, सातवें और दसवें स्थान में चन्द्रमा बलदायक है। तीसरे, छठें तथा दसवें स्थान में सूर्य तथा राहु उत्तम है ।।१-७।। तीसरे और छठें स्थान में शनि, मङ्गल और केतु सुन्दर हैं। ग्यारहवें स्थान में शुभ या अशुभ ग्रह भी उत्तम ही होते हैं। इन ग्रहों की दृष्टि मुनि के ऊपर पूरी पड़ती है और ग्रहों तथा भूतों के ऊपर आधी। तीसरे और चौथे स्थान में इनकी दृष्टि चतुर्थांश पड़ती

---

१ घ. °ङ्गारार्ककेतवः°। २ क. ङ. च. °ने वसुद्वौ पा°। ख. ग. °ने रसुष्टौ पा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पादन्यूनचतुर्नाडीभोगः स्यान्मीनमेषयोः । वृषकुम्भौ च भुञ्जाते चतस्रः पादवर्जिताः ।।१०।।
मकरो मिथुनं पञ्च चापालिहरिकर्कटाः । पादोनाः षट्तुलाकन्ये घटिकाः सार्धपञ्च च ।।११।।
केशरीवृषभः कुम्भः स्थिराः स्युः सिद्धिदायकाः । चरा धनुस्तुलामेषा द्विस्वभावास्तृतीयकाः ।।१२।।
कर्कटो[1] मकरोऽलिश्च प्रव्रज्याकार्यनाशकाः । शुभः शुभग्रहैर्दृष्टः शस्तो लग्नः शुभाश्रितः ।।१३।।
गुरुशुक्रबुधैर्युक्तो[2] लग्नो दद्याद्बलायुषी । राज्यं शौर्यं बलं पुत्रान्यशो धर्मादिकं बहु ।।१४।।
प्रथमः सप्तमस्तुर्यो दशमः केन्द्र उच्यते । गुरुशुक्रबुधास्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकाः[3] ।।१५।।
त्र्येकादशचतुर्थस्था लग्नात्पापग्रहाः शुभाः । [4]अतोऽन्येऽमी [5]च कर्मार्थं योज्यास्तिथ्यादयो बुधैः[6] ।।१६।।
धाम्नः पञ्चगुणां भूमिं त्यक्त्वा वा[7] धामसंमिताम् । [8]हस्ताद्द्वादशसोपानात्कुर्यान्मण्डपमग्रतः ।।१७।।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं स्नानार्थं[9] तु तदर्धतः । एकास्यं[10] चतुरास्यं वा रौद्र्यां प्राच्युत्तरेऽथ[11] वा ।।१८।।
हास्तिको दशहस्तो वै मण्डपोऽर्ककरोऽथ वा । द्विहस्तोत्तरया वृद्ध्या शेषं स्यान्मण्डपाष्टकम् ।।१९।।
वेदी[12] चतुस्करा मध्ये कोणस्तम्भेन[13] संयुता । वेदी पादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नवपञ्च वा ।।२०।।

है, जबकि चौथे और आठवें स्थान में इनकी तीन-चौथाई दृष्टि पड़ती है। मीन और मेष राशि पर ये एक पाद कम चार घड़ी भोग करते हैं। वृष और कुम्भ राशि पर पादवर्णित चार घड़ी इनका भोग रहता है, मकर तथा मिथुन राशि पर पाँच घड़ी और धनु, मकर, सिंह और कर्क राशि पर एक पाद कम छह घड़ी इनका भोग होता है। तुला और कन्या राशि पर ये साढ़े पाँच घड़ी भोग करते हैं ।।८-११।। सिंह, वृष, कुम्भ-ये सिद्धिदायक स्थिर लग्न कहलाते हैं। धनु, तुला, मेष-ये दूसरे और तीसरे स्वभाववाले चर लग्न कहलाते हैं। कर्क, मकर, वृश्चिक-ये कर्मनाशक प्रव्रज्य लग्न कहलाते हैं। शुभ ग्रहों की दृष्टि में रहनेवाला लग्न शुभदायक माना गया है। गुरु, शुक्र तथा बुध से युक्त लग्न बल, आयु, राज्य, पराक्रम, पुत्र, यश और धर्म आदि प्रचुर मात्रा में प्रदान करता है। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम लग्न केन्द्र कहलाता है। उसमें पड़े हुए गुरु, शुक्र तथा बुध सकल सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। लग्न से तीसरे, चौथे और ग्यारहवें स्थान में स्थित पापग्रह शुभ माने जाते हैं। इसलिए ये तथा अन्य ग्रह और तिथि आदि यज्ञादि कर्म में विद्वानों द्वारा व्यवहार करने योग्य हैं ।।१२-१६।। मन्दिर की पचगुनी या मन्दिर के बराबर की भूमि छोड़कर मन्दिर के सामने एक-एक हाथ की बारह सीढ़ियों और चार द्वारोंवाला चौकोर मण्डप बनाये परन्तु स्नान के लिए जो गृह बनेगा, वह इसका आधा होना चाहिए। मण्डप चाहे एक द्वार का हो या चार द्वारों का, उसे ईशानकोण में या पूर्वोत्तर दिशा में बनाना चाहिए। मण्डप का माप एक हाथ या दस हाथ या बारह हाथ होना चाहिए और शेष आठ मण्डपों के माप में उत्तरोत्तर दो हाथ की वृद्धि करनी चाहिए। मध्य में चौकोर वेदी का निर्माण करना चाहिए, जो कोने में जुड़े हुए स्तम्भ से सुशोभित हो। वेदी के चतुर्थांश का अन्तर बीच की दूरी छोड़कर चौदह कुण्ड खोदने चाहिए,

---

१ कर्कटो…कार्यनाशकाः घ. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. °डैर्मुक्तो। ३ क. ङ. च. °काः। एका°। ख. ग. °काः। द्वयेका°। ४ घ. °तोऽप्यनीचक°। ५ क. ङ. च. °न्ये नैष (व) क°। ६ क. ख. ग. ङ. च. थैः। आयुष्यञ्च°। ७ क. ङ. च. वा धेनुसं°। ८ क. ङ. च. °स्तान्वाद°। ९ क. ख. ग. ङ. च. स्थानार्थं। १० एकास्यं…प्राच्युत्तरेऽथ वा क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ११ ख. ग. त्तरे तथा। हा°। १२ वेदी…संयुता क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। १३ ख. ग. म्भेषु सं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकं वा शिवकाष्ठायां प्राच्यां वा तद्गुरोः परम् । मुष्टिमात्रं शतार्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकम् ।।२१।।
हस्तं सहस्रहोमे स्यान्नियुते तु द्विहास्तिकम् । लक्षे चतुष्करं कुण्डं कोटिहोमेऽष्टहस्तकम् ।।२२।।
भगाभमग्नौ खण्डेन्दु दक्षे त्र्यस्त्रं[1] च नैर्ऋते । षडस्त्रं वायवे पद्मं सौम्ये चाष्टास्त्रकं शिवे ।।२३।।
तिर्यक्पातसमं[2] खातमूर्ध्वं मेखलया सह । तद्बहिर्मेखलास्तिस्रो वेदवह्नियमाङ्गुलैः ।।२४।।
अंगुलैः षड्भिरेका वा कुण्डाकारास्तु मेखलाः । तासामुपरि योनिः स्यान्मध्येऽश्वत्थदलाकृतिः ।।२५।।
उच्छ्रायेणाङ्गुलं तस्माद्विस्तारेणाङ्गुलाष्टकम् । दैर्घ्यं कुण्डार्धमानेन कुण्डकण्ठसमोऽधरः ।।२६।।
पूर्वाग्नियाम्यकुण्डानां योनिः स्यादुत्तरानना । पूर्वानना तु [3]शेषाणामैशान्येऽन्यतरा[4] तयोः ।।२७।।
कुण्डानां यश्चतुर्विंशे भागः सोऽङ्गुल इत्यतः । प्लक्षोदुम्बरकाश्वत्थवटजास्तोरणाः क्रमात् ।।२८।।
शान्तिभूतिबलारोग्यपूर्वाद्या नामतः क्रमात् । पञ्चषट्सप्तहस्तानि हस्तखातस्थितानि च ।।२९।।
तदर्धविस्तराणि स्युर्युतान्याम्रदलादिभिः । इन्द्रायुधोपमा रक्ता कृष्णा धूम्रा शशिप्रभा ।।३०।।
शुकाभा[5] हेमवर्णा च पताका स्फाटिकोपमा । [6]पूर्वादितोऽब्जजे[7] रक्ता[8] नीलाऽनन्तस्य नैर्ऋते ।।३१।।

जिससे गुरु के लिए एक कुण्ड ईशानकोण में या पूर्व दिशा में खोदने चाहिए और अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार खोदना चाहिए। यदि पचास बार हवन करना हो तो कुण्ड एक मुट्ठी का बनाना चाहिए। सौ बार हवन करना हो तो एक अरत्नि (कनिष्ठिका अँगुली को फैलाकर मुट्ठी बाँधा हुआ हाथ) का, हजार बार हवन करना हो तो एक हाथ का, दस हजार आहुति के लिए दो हाथ का, लाख बार हवन करना हो तो चार हाथ का और करोड़ बार करना हो तो आठ हाथ का कुण्ड बनाना चाहिए ।।१७-२२।। अग्निकोण में जो कुण्ड खोदा जाय, उसकी आकृति भाग के आकार की होनी चाहिए। दक्षिण दिशा में खोदा जानेवाला कुण्ड अर्धचन्द्र की तरह, नैर्ऋत्यकोण का कुण्ड त्रिकोण, वायव्यकोण का कुण्ड षट्कोण, उत्तर दिशा का कुण्ड पद्माकार और ईशानकोण का कुण्ड अष्टकोण होना चाहिए। कुण्ड की खाईं तिर्यक्पात होनी चाहिए। उसके ऊपर का भाग मेखला (होमकुण्ड के ऊपर मिट्टी का बना हुआ घेरा) से युक्त होना चाहिए। उसका बाहर भी क्रमशः चार, तीन और दो अंगुल चौड़ी तीन मेखलाएँ होनी चाहिए, अथवा छह अंगुल की एक ही मेखला होनी चाहिए। मेखलाओं का आकृति कुण्ड जैसी होनी चाहिए। उन मेखलाओं का आकार योनि-सा तथा मध्य में पीपल के पत्ते के समान होना चाहिए। उसकी ऊँचाई एक अंगुल, चौड़ाई आठ अंगुल, लम्बाई आधे कुण्ड के समान और तल कुण्ड के कण्ठ के बराबर होना चाहिए। पूर्व दिशा, अग्निकोण तथा नैर्ऋत्यकोण के कुण्डों की योनि पूर्वाभिमुख और ईशानकोण में कुण्ड की योनि उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख होनी चाहिए। कुण्डों का जो चौबीसवाँ भाग है, उसे अंगुल कहते हैं। यज्ञ-मण्डप के चार बन्दनवार क्रमशः पाकर, गूलर, पीपल, बरगद के होने चाहिए। मण्डप की लम्बाई अठारह हाथ, चौड़ाई नौ हाथ और नींव एक हाथ लम्बी होनी चाहिए। उनको आम के पत्तों से सजा देना चाहिए। उनके ऊपर फहरायी जानेवाली पताका इन्द्रधनुषी रंग में लाल, काली, धूसर रंग में, सुनहरी और स्फटिक के समान रंग की होनी चाहिए। पूर्व दिशा में ब्रह्मा की पताका और नैर्ऋतकोण

---

१ क. ङ. च. कुम्भं°। २ घ. °तशिवं खा°। ३ क. ङ. च. °न्यत्र वा त°। ४ ख. ग. °तराऽनयोः। ५ घ. शुक्लाभा। ६ पूर्वादितो°°°नैर्ऋते क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ ख. ग. °तो ध्वजे। ८ ग. °क्ता तिलाऽ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चहस्तास्तदर्धाश्च ध्वजा दीर्घाश्च विस्तराः । हस्तप्रदेशिता[1] दण्डा ध्वजानां पञ्चहस्तकाः ।।३२।।
वल्मीकाद्दन्तिदन्ताग्रात्तथा वृषभशृङ्गतः । पद्मखण्डाद्वराहाच्च गोष्ठादपि चतुष्पथात् ।।३३।।
मृत्तिका द्वादश ग्राह्या वैकुण्ठेऽष्टौ पिनाकिनी । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थचूतजम्बूत्वगुद्भवम् ।।३४।।
कषायपञ्चकं ग्राह्यमार्तवं च फलाष्टकम्[2] । तीर्थाम्भांसि सुगन्धीनि तथा सर्वौषधीजलम् ।।३५।।
शस्तं[3] पुष्पफलं वक्ष्ये रत्नगोशृङ्गवारि च । स्नानायापहरेत्पञ्च पञ्चगव्यामृतं तथा ।।३६।।
पिष्टनिर्मितवस्त्रादि[4] द्रव्यं[5] निर्मज्जनाय च । सहस्रसुषिरं कुम्भं मण्डलाय च रोचना ।।३७।।
शतमोषधिमूलानां[6] विजया [7]लक्ष्मणा बला[8] । गुडूच्यतिबला[9] पाठा सहदेवा शतावरी ।।३८।।
ऋद्धिः सुवर्चला[10] वृद्धिः स्नाने[11] प्रोक्ता पृथक्पृथक् । रक्षायै[12] तिलदर्भाद्यं[13] भस्मस्नानं तु केवलम् ।।३९।।
यवगोधूमबिल्वानां चूर्णानि च विचक्षणः । विलेपनं सकर्पूरं स्नानार्थं कुम्भगण्डकान् ।।४०।।
खट्वां च तूलिकायुग्मं सोपधानं सवस्त्रकम् । कुर्याद्वित्तानुसारेण शयने लक्ष्यकल्पने ।।४१।।
घृतक्षौद्रयुतं पात्रं कुर्यात्स्वर्णशलाकिकाम् । वर्धनीं शिवकुम्भं च लोकपालघटानपि ।।४२।।
एकं निद्राकृते कुम्भं शान्त्यर्थं कुण्डसंख्यया । द्वारपालादिधर्मादिप्रशान्तादिघटानपि ।।४३।।

में अनन्त भगवान् की पताका नीली होनी चाहिए। पताका की लम्बाई पाँच हाथ और चौड़ाई ढाई हाथ होनी चाहिए और उसके डण्डे पाँच हाथ के होने चाहिए ।।२३-३२।। विष्णुमूर्ति की प्रतिष्ठा में वल्मीक की मिट्टी, हाथी के दाँत पर लगी मिट्टी, बैल की सींग पर लगी मिट्टी, कमल की जड़ की मिट्टी, सुअर की खोदी हुई मिट्टी, गोष्ठ (गोशाला) की मिट्टी, चौराहे पर की मिट्टी आदि बारह प्रकार की मिट्टियों का और शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा में आठ प्रकार की मिट्टियों का संग्रह करना चाहिए। उसी तरह वट, गूलर, पीपल, आम और जामुन की छाल–ये पाँच कषाय, सुगन्धित जल, सर्वोषधियों का जल तथा प्रशस्त फल-फूल संगृहीत करे। स्नान के लिए रत्न, गोशृङ्ग से स्पर्श किया हुआ जल, पञ्चगव्यामृत, आटे के बने हुए वस्त्र आदि द्रव्य, सहस्र छिद्रोंवाला घड़ा तथा गोरोचन का संग्रह करना चाहिए। शतोषधि की जड़ में विजया, लक्ष्मणा, बला, गुरुच, अतिबला, पाठा, सहदेवा, शतावरी, ऋद्धि, सुवर्चला तथा वृद्धि-इन ओषधियों से (युक्त जल से) पृथक्-पृथक् स्नान कराना चाहिए ।।३३-३८$\frac{1}{2}$।। रक्षा के लिए तिल और कुश के जल से तथा केवल भस्म के जल से भी स्नान किया जा सकता है। विद्वान् साधक उन घड़ों के ऊपर, जिनके जल से स्नान करना है, यव, गेहूँ, बेल तथा कपूर के चूर्ण का लेप करे। साधक अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार मण्डप-स्थित शयन-कक्ष को सजाये। वहाँ पलँग, रुई से भरे दो गद्दे, तकिया, चादर, घी और मधु से युक्त पात्र, स्वर्णशलाका, झाड़ू, शिवकलश, लोकपालों के कलश, निद्रा के निमित्त एक कलश, शान्त्यर्थ कुण्डों की संख्या के सदृश कलश, द्वारपाल, धर्मपाल और प्रशान्त आदि के कलश और वास्तु लक्ष्मी तथा गणेश आदि के कलश आदि

---

१ क. ङ. च. हस्ताग्रदे°। २ ख. ग. कलाष्टकम्। ३ एतत्प्रभृत्यर्धचतुष्टयं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ ख. ग. °वक्त्रादि। ५ ख. ग. द्रव्यनि°। ६ ख. ग. °लायां वि°। ७ क. ख. ग. ङ. च. लक्षणा। ८ क. ङ. च. °ला। अवल्गुही चाति°। ९ क. ङ. च. °ला स°। १० घ. सुवर्चसा। ११ क. ख. ग. ङ. च. स्थाने। १२ रक्षायै···केवलम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। १३ घ. °दर्भोद्यो भ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वास्तुलक्ष्मीगणेशानां कलशानपरानपि । धान्यपुञ्जकृताधारान्सवस्त्रान्स्रग्विभूषितान् ।।४४।।
सहिरण्यान्समालब्धान्गन्धपानीय पूरितान् । पूर्णपात्रफलाधारान्पल्लवाढ्यान्सलक्षणान्[1] ।।४५।।
वस्त्रैराच्छादयेत्कुम्भानाहरेद्गौरसर्षपान् । विकिरार्थं तथालाजाञ्ज्ञानखण्ड्गं च पूर्ववत् ।।४६।।
सापिधानां चरुस्थालीं दर्वीं च ताम्रनिर्मिताम् । घृतक्षौद्रान्वितं पात्रं पादाभ्यङ्गकृते तथा ।।४७।।
विष्टरांस्त्रि (स्त्रि) शता दर्भदलैर्बाहुप्रमाणकान् । चतुरश्चतुरस्तद्वत्पालाशान्परिधीनपि ।।४८।।
तिलपात्रं हविष्पात्रमर्घपात्रं पवित्रकम् । पलविंशतिमानानि[2] घण्टाधूपप्रदानकम्[3] ।।४९।।
स्रुक्स्रुवौ पिटकं पीठं व्यजनं शुष्कमिन्धनम् । पुष्पं पत्रं गुग्गुलं च घृतैर्दीपांश्च धूपकम् ।।५०।।
अक्षतानि[4](?)त्रिसूत्रीं च गव्यमाज्यं यवांस्तिलान् । कुशाः शान्त्यै[5] त्रिमधुरं समिधो दशपर्विकाः ।।५१।।
बाहुमात्रं स्रुवं हस्तमर्कादिग्रहशान्तये । समिधोऽर्कपलाशोत्थाः खादिरामार्गपिप्पलाः(?) ।।५२।।
उदुम्बरशमीदूर्वाः कुशोत्थाः शतमष्ट च । तदभावे यवतिला[6] गृहोपकरणं तथा ।।५३।।
स्थालीदर्वीपिधानादि [7]देवादिभ्योंऽशुकद्वयन् । मुद्रामुकुटवासांसि हारकुण्डलकङ्कणान् ।।५४।।
कुर्यादाचार्यपूजार्थं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । तत्पादपादहीना च[7] मूर्तिभृदस्त्रजापिनाम्[8] ।।५५।।
पूजा स्याज्जापिभिस्तुल्या विप्रदैवज्ञशिल्पिनाम् । वज्रार्कशान्तौ[9] नीलातिनीलमुक्ताफलानि[10] च ।।५६।।

सामग्री को विधिपूर्वक रखना चाहिए। कलशों को धान्यराशि के ऊपर वस्त्रों तथा मालाओं से विभूषित करे और उनमें सोना डालकर सुगन्धित जल से भर दे ।।३९-४४ $\frac{1}{2}$।। उनके ऊपर ऐसे पूर्णपात्र रखे, जो शुभ पल्लवों और फलों से युक्त हों। तत्पश्चात् कलशों को वस्त्रों से आच्छादित करके उनके चारों ओर सफेद सरसों और लावा बिखेर दे। तत्पश्चात् आचार्य की पूजा के लिए धन की कृपणता त्यागकर पहले की भाँति ज्ञान-खड्ग, ढक्कन सहित चरुस्थाली, ताँबे की करछुल, घी और मधु से भरे पात्र, पाँव में लगाने का उबटन, कुशा के तीस दलों से बने हुए दो-दो हाथ लम्बे आसन, चार-चार गूलर तथा पलाश के दण्ड, तिल पात्र, हविष्पात्र, अर्घपात्र, पवित्री, बीस प्रकार के फल, घण्टा, धूपदान, स्रुक्, स्रुव, पिटारी, पीढ़ा, पङ्खा, सूखा ईंधन, पुष्प, पत्र, गुग्गुल, घी से जलाया हुआ दीपक, धूप, अक्षत, त्रिसूत्र, गाय का घी, यव, तिल, कुश, शान्ति के लिए त्रिमधुर (चीनी, मधु, घी) तथा दस पोरवाली समिधा, बाहुमात्र का स्रुव—इन वास्तुओं का संग्रह करना चाहिए। सूर्य आदि ग्रहों की शान्ति के लिए आक, पलाश, खैर, चिरचिरा, गूलर, शमी तथा पीपल की समिधाएँ होनी चाहिए। एक सौ आठ कुश तथा दूब भी पूजन में अपेक्षित है ।।४५-५२ $\frac{1}{2}$।। यदि ये न मिलें तो यव और तिल ही ले लें। अन्य गृह सामग्रियों में—थाली, करछुल, तकिया, देव आदि के निमित्त एक जोड़ा वस्त्र, मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार, कुण्डल तथा कंगन भी आचार्य की पूजा के लिए संगृहीत करे। आचार्य की भाँति देवता (पुजारी), अस्त्र-मन्त्र का जप करनेवाले, ज्योतिषी तथा शास्त्री ब्राह्मणों की उपर्युक्त सामग्रियों के तीन चौथाई भागों से पूजा करनी चाहिए। वज्रमणि, सूर्यकान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मोती,

---

१ ख. ग. °त्रकलाहारा°। २ घ. विंशाष्टामा°। ३ घ. घटीधू°। ४ क. ङ. च. अकृता°। ५ क. ख. ग. ङ. च. शान्तौ। ६ ख. ग. °लान्गृहो°। ७ ख. ग. च. पूजाऽभूद्°। ८ क. ङ. च. °भृच्छस्त्र°। ९ क. ख. ङ. च. °र्ककान्तौ। १० क. ङ. च. °लाभं नी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुष्पपद्मादिरागं च वैडू (दू) र्यं रत्नमष्टमम् । उशीरमाधवक्रान्ता[1] रक्तचन्दनकागुरु[2] ।।५७।।
श्रीखण्डं सारिकं कुष्ठं शङ्खिनी ह्योषधीगणः । हेमताम्रमयो[3] रङ्गं[4] राजतं च सकांस्यकम् ।।५८।।
सीसकं चेति लोहानि हरितालं मनःशिला । गैरिकं हेममाक्षीकं पारदो वह्निगैरिकम् ।।५९।।
गन्धकाभ्रकमित्यष्टौ धातवो व्रीहयस्तथा । गोधूमान्सतिलान्माषान्मुद्गानप्याहरेद्यवान् ।।६०।।
नीवाराञ्श्यामकानेवं व्रीहयोऽप्यष्ट कीर्तिताः ।।६१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधिकथनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।।९५।।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठायामधिवासनविधिः

ईश्वर उवाच

स्नात्वा नित्यद्वयं कृत्वा प्रणवार्धकरो गुरुः । सहायैर्मूर्तिपैर्विप्रैः सह गच्छेन्मखालयम् ।।१।।
शान्त्यादितोरणांस्तत्र पूर्ववत्पूजयेत्क्रमात् । प्रदक्षिणक्रमादेषां शाखायां द्वारपालकान् ।।२।।
प्राचि नन्दिमहाकालौ याम्ये[5] भृङ्गिविनायकौ । वारुणे वृषभस्कन्दौ देवीचण्डौ तथोत्तरौ ।।३।।

पुष्पराग-मणि, पद्मरागमणि तथा वैदूर्यमणि–ये आठ रत्न, खस, माधवक्रान्ता, रक्तचन्दन, अगर, श्रीखण्ड, सारिक, कुष्ठ तथा शंखिनी–ये आठ ओषधियाँ, सोना, ताँबा, राँगा, चाँदी, काँसा, सीसा, लोहा और पीतल–ये आठ धातुएँ, हरिताल, मैनसिल, गेरू, स्वर्णमाक्षिक, पारा, वह्निगैरिक, गन्धक तथा अभ्रक–ये आठ धातुएँ और व्रीहि, गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग, यव, नीवार, साँवाँ–ये आठ धान्य भी पूजा में प्रदान करने चाहिए ।।५३-६१।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रतिष्ठाकालसामग्री आदि विधि-वर्णन नामक
पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९५।।

अध्याय ९६

प्रतिष्ठा में अधिवासन विधि

महादेव बोले–गुरु स्नान तथा दो समय की नित्य-पूजा-विधि समाप्त करके मूर्तिरक्षक सहायक विप्रों के साथ यज्ञ-गृह में प्रवेश करे। वहाँ शान्ति आदि नामों से प्रसिद्ध बाहरी दरवाजों का पहले की भाँति क्रमशः पूजन करके प्रदक्षिणा के क्रम से उन (यज्ञीय वृक्षों) की शाखाओं पर, जिनसे दरवाजे सजाये गये हैं, अवस्थित द्वाररक्षक देवों का पूजन करे। उनमें नन्दी तथा महाकाल नामक देवों की पूजा पूर्व दिशा में, भृङ्गी तथा विनायक देवों की पूजा दक्षिण दिशा में, वृषभ तथा स्कन्द की पूजा पश्चिम दिशा में और देवी तथा चण्ड की पूजा उत्तर दिशा में करनी चाहिए। शाखाओं के नीचे

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °धवीक्रा°। २ ख. ग. घ. °रुम्। श्री°। ३ घ. °मयं रक्तं रा°। ४ क. ङ. च. °ङ्ग तालमात्रं स°। ख. ग. °ङ्ग° तावमायं स°। ५ ख. ग. °म्ये शृङ्गि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तच्छाखामूलदेशस्थौ प्रशान्तशिशिरौ घटौ। पर्जन्याशोकनामानौ भूतसंजीवनामृतौ ।।४।।
धनदश्रीप्रदौ द्वौ द्वौ पूजयेदनुपूर्वशः। स्वनामभिश्चतुर्थ्यन्तैः प्रणवदिनमोन्तकैः ।।५।।
लोकग्रहवसुद्वाःस्थस्त्रवन्तीनां द्वयं द्वयम्। भानुत्रयं युगं वेदो लक्ष्मीर्गणपतिस्तथा ।।६।।
इति देवा मखागारे तिष्ठन्ति प्रतितोरणम्। विघ्नसंधापनोदाय क्रतोः संरक्षणाय च ।।७।।
वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम्। त्रिशूलं चक्रमम्भोजं पताकाश्चार्चयेत्क्रमात् ।।८।।
ॐ[1] हूं फट् नमः। ॐ हूं फट्, हस्ते शक्तये हूं फट् नम इत्यादिमन्त्रैः ।।९।।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः। शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।।१०।।
ध्वजाष्टदेवताः पूज्याः पूर्वादौ भूतकोटिभिः। ॐ कौं कुमुदाय नम इत्यादिमन्त्रैः ।।११।।
हेतुकं त्रिपुरघ्नं च शक्त्याख्यं[2] यमजिह्वकम्। कालं करालिनं षष्ठमेकाङ्घ्रिं भीममष्टकम् ।।१२।।
तथैव पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालाननुक्रमात्। बलिभिः कुसुमैर्धूपैः सन्तुष्टान्परिभावयेत् ।।१३।।
[3]कम्बलास्तृतेषु[4] वर्णेषु वंशस्थूणास्वनुक्रमात्[5]। पञ्चक्षित्यादितत्त्वानि सद्योजातादिभिर्यजेत् ।।१४।।
सदाशिवपदव्यापि मण्डपं धाम शांकरम्[6]। पताकाशक्तिसंयुक्तं तत्त्वदृष्ट्याऽवलोकयेत् ।।१५।।
दिव्यान्तरिक्षभूयिष्ठविघ्नानुत्सार्य पूर्ववत्। [7]प्रविशेत्पश्चिमद्वारा शेषद्वाराणि दर्शयेत् ।।१६।।

(दरवाजों के ऊपर) रखे हुए प्रशान्त और शिशिर, पर्जन्य और अशोक, भूतसंजीवन और अमृत तथा धनद और श्रीपद नामक दो-दो घटों को क्रमशः उनके नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा नमः शब्द और आदि में 'ॐ' शब्द जोड़कर बने हुए मन्त्र से पूजन करे। मन्त्र यह है–'ॐ प्रशान्त शिशिराभ्यां नमः', या 'ॐ प्रशान्ताय नमः', 'ॐ शिशिराय नमः' इत्यादि। विघ्न-समूह का निवारण तथा यज्ञगृह के प्रत्येक दरवाजों पर लोक, ग्रह, वसु, दो-दो स्रवन्ती, तीन सूर्य, युग, वेद, लक्ष्मी तथा गणपति ये देवगण निवास किया करते हैं। इनकी 'ॐ हूं फट् नमः', 'ॐ हूं फट् हस्ते शक्तये हूं फट् नमः' इत्यादि मन्त्रों से वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र, कमल तथा पताकाओं में पूजा करनी चाहिए। 'ॐ कौं कुमुदाय नमः' इत्यादि भूतकोटि मन्त्रों से कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित नामक आठ ध्वज-देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।।१-११।। इसी प्रकार सब दिशाओं में हेतुक, त्रिपुरघ्न, शक्ति, यमजिह्वक, काल, करालिन्, एकांघ्रि तथा भीम नामक आठ क्षेत्रपालों का पूजन क्रमशः बलि, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि से करके ऐसा सोचना चाहिए कि ये देवगण सन्तुष्ट हो गये हैं। तदनन्तर पवित्र तृणों पर तथा बाँस के स्तम्भों पर 'सद्योजात' आदि मन्त्रों से पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों का क्रमशः पूजन करके गुरु को तत्त्व की दृष्टि से इस मण्डप का अवलोकन करना चाहिए, जो सदाशिव तत्त्व से व्याप्त, शंकर का धाम और पताका शक्ति (देवी) से युक्त है। तत्पश्चात् आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि सम्बन्धी विघ्नों का पूर्ववत् निराकरण करके मण्डप में पश्चिम-द्वार से प्रवेश करे और शेष द्वारों का निरीक्षण करे।

---

१ क. ङ. च. ॐ हूं फट् शक्त°। २ क. ङ. च. वह्न्याख्यं। ३ कम्बलास्तृतेषु…स्वनुक्रमात् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ ख. ग. °म्बरातृणेषु। ५ ख. वंशे स्थू°। ६ क. ङ. च. °म्। पिनाकश°। ७ प्रविशेत्…पूर्ववत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रदक्षिणक्रमाद्गत्वा निविष्टो वेददक्षिणे । उत्तराभिमुखः कुर्याद्भूतशुद्धिं यथा पुरा ।।१७।।
अन्तर्यागं विशेषार्घ्यं मन्त्रद्रव्यादिशोधनम् । कुर्वीत स्वात्मानः[1] पूजां पञ्चगव्यादि पूर्ववत् ।।१८।।
साधारं कलशं तस्मिन्विन्यसेत्तदनन्तरम् । विशेषाच्च[2] शिवं[3] ध्यायेत्तत्त्वत्रयमनुक्रमात् ।।१९।।
ललाटस्कन्धपादान्तं शिवविद्यात्मकं परम् । [4]रुद्रनारायणब्रह्मदैवतं[5] निजसंच (व) रैः ।।२०।।
ॐ हं हाम् ।।२१।।
मूर्तींस्तदीश्वरांस्तत्र पूर्ववद्विनिवेशयेत् । तद्व्यापकं शिवं साङ्गं शिवहस्तं च मूर्धनि ।।२२।।
ब्रह्मरन्ध्रप्रविष्टेन[6] तेजसा बाह्यसान्तरम् । तमःपटलमाधूय प्रद्योतितदिगन्तरम् ।।२३।।
आत्मानं मूर्तिपैः सार्धं स्रग्वस्त्रमुकुटादिभिः[7] । भूषयित्वा शिवोऽस्मीति ध्यात्वा बोधासिमुद्धरेत् ।।२४।।
चतुष्पदान्तसंस्कारैः[8] संस्कुर्यान्मखमण्डपम् । विक्षिप्य विकिरादीनि कुशकूर्चो (र्च्यो) पसंहरेत् ।।२५।।
आसनीकृत्य वर्धन्या वास्त्वादीन्पूर्ववद्यजेत् । शिवकुम्भास्त्रवर्धन्यौ पूजयेच्च स्थिरासने ।।२६।।
स्वदिक्षुकलशारूढाँल्लोकपालाननुक्रमात् । वाहायुधादिसंयुक्तान्पूजयेद्विधिना यथा ।।२७।।
ऐरावतगजारूढं स्वर्णवर्णं किरीटिनम् । सहस्रनयनं शक्रं वज्रपाणि विभावयेत् ।।२८।।
सप्तार्चिषं च विभ्राणमक्षमालां कमंण्डलुम् । ज्वालामालाकुलं रक्तं शक्तिहस्तमजासनम् ।।२९।।

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके वेदी से दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होकर बैठ जाय और पूर्ववत् भूतशुद्धि, अन्तर्याग (मानसिक यज्ञ), विशेष अर्घ्यदान, मन्त्र तथा द्रव्य आदि की शुद्धि और आत्मपूजा करे। पञ्चगव्य आदि का प्राशन भी पहले की ही भाँति करना चाहिए। उसके बाद उचित स्थान में आधारयुक्त कलश की स्थापना करके शिव तथा उनके तीन तत्त्वों का विशेष रूप से ध्यान करे। तदनन्तर अपने शरीर में ललाट से लेकर कन्धे तक शिव, विद्या तथा आत्मतत्त्वस्वरूप रुद्र, नारायण और ब्रह्मा देवता का अपने नाम मन्त्र 'ॐ हं हाम्' से न्यास करे ।।१२-२१।। गुरु पहले की भाँति मूर्तियों तथा उनके देवताओं (अर्थात् देवत्व युक्त मूर्तियों) को अपने में धारण करके यह विचार करे कि साङ्गोपाङ्ग व्यापक शिव मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर अपना हाथ मेरे मस्तक पर रख रहे हैं और उनका तेज मेरे ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट होकर बाह्य और अभ्यन्तर तमो राशि को नष्ट करता हुआ दसों दिशाओं को अवलोकित कर रहा है। मूर्तिरक्षकों (पुजारी विप्रों) के साथ अपने को माला, वस्त्र और मुकुट आदि से विभूषित करके मैं 'शिव हूँ'-ऐसी भावना करते हुए ज्ञानखड्ग का आकर्षण करे। तदनन्तर चतुष्पदान्त संस्कारों द्वारा यज्ञ-मण्डप का संस्कार करके वहाँ कुश आदि बिखेरकर कुश के कूर्च से फिर उन्हें समेट ले। उनका आसन बनाकर पहले की भाँति वर्धनी (टोंटीवाले पात्र) के जल से वास्तु आदि का पूजन करे। तत्पश्चात् स्थिर आसन पर शिव-कलश तथा अस्त्ररूप वर्धनी की पूजा करके सब दिशाओं में कलशों के ऊपर वाहन और आयुध आदि से युक्त लोकपालों का क्रमशः विधिपूर्वक पूजन करे। विधि यह है-ऐरावत हाथी पर आरूढ़, सोने के समान वर्णवाले, सहस्र नेत्रोंवाले, मुकुट पहने तथा हाथ में वज्र लिये हुए इन्द्र का ध्यान करे। इसके बाद अक्षमाला तथा कमण्डलु धारण किये हुए, ज्वालाओं के समूह से व्याप्त, रक्त वर्णवाले, हाथ में शक्ति-अस्त्र धारण करनेवाले, अज-चर्म पर बैठनेवाले अग्नि का ध्यान करे।

---

१ घ. आत्मनः। २ घ. °षाच्छिवतत्त्वाय तत्त्व। ३ ख. ग. शिवत्वाय तत्त्व°। ४ ख. ग. रुद्रं ना°। ५ ख. ग. °यणं ब्र°। ६ ख. ग. °प्रतिष्ठेन। ७ घ. स्त्रकुसुमादि°। ८ क. ङ. च. °°ष्यथातु सं°। ख. ग. °ष्यथां तु सं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महिषस्थं दण्डहस्तं यमं कालानलं स्मरेत्। रक्तनेत्रं खरारूढं खड्गहस्तं च नैर्ऋतम् ।।३०।।
वरुणं मकरे श्वेतं नागपाशधरं स्मरेत्। वायुं च हरिणे नीलं कुवेरं मेषसंस्थितम् ।।३१।।
त्रिशूलिनं वृषे चेशं कूर्मेऽनन्तं तु चक्रिणम्। ब्रह्माणं हंसगं ध्यायेच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ।।३२।।
स्तम्भमूलेषु कुम्भेषु वेद्यां धर्मादिकान्यजेत्[1]। दिक्षु कुम्भेष्वनन्तादीन्पूजयन्त्यपि केचन ।।३३।।
शिवाज्ञां श्रावयेत्कुम्भं[2] भ्रामयेदात्मपृष्ठगम्[3]। पूर्ववत्स्थापयेदादौ कुम्भं तदनुवर्धनीम् ।।३४।।
शिवं स्थिरासनं कुम्भे शस्त्रार्थं च ध्रुवासनम्। पूजयित्वा यथापूर्वं स्पृशेदुद्भवमुद्रया ।।३५।।
निजयागं जगन्नाथ रक्ष भक्तानुकम्पया। एभिः संश्राव्य रक्षार्थं कुम्भे खड्गं निवेशयेत् ।।३६।।
दीक्षास्थापनयोः कुम्भे स्थण्डिले मण्डलेऽथ वा। मण्डलेऽभ्यर्च्य देवेशं व्रजेद्वै [4]कुण्डसंन्निधौ[5] ।।३७।।
कुण्डनाभिं पुरस्कृत्य निविष्टा मूर्तिधारिणः। गुरोरादेशतः कुर्युर्निजकुण्डेषु संस्कृतिम् ।।३८।।
[6]जपेयुर्जापिनोऽसंख्यं[7] मन्त्रमन्ये तु संहिताम्। पठेयुर्ब्राह्मणाः शान्तिं स्वशाखावेदपारगाः ।।३९।।
श्रीसूक्तं पावमानीश्च मैत्रकं च वृषाकपिम्। ऋग्वेदी पूर्वदिग्भागे सर्वमेतत्समुच्चरेत् ।।४०।।
देवव्रतं तु भारुण्डं ज्येष्ठसाम रथंतरम्। पुरुषं गीतिमेतानि[8] सामवेदी तु दक्षिणे ।।४१।।
रुद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं विशेषतः। ब्राह्मणं च यजुर्वेदी पश्चिमायां समुच्चरेत् ।।४२।।

महिष पर आरूढ़ तथा हाथ में दण्ड धारण किये हुए कालाग्नि रूप यम का स्मरण करे। तत्पश्चात् रक्त नेत्रोंवाले, गर्दभ पर आरूढ़ तथा खड्गहस्त नैर्ऋत देव का, ग्राह पर आरूढ़ तथा श्वेतवर्ण एवं नागपाशधारी वरुण देव का, हरिण पर स्थित चक्रधारी अनन्तदेवता का और हंस पर आरूढ़ चार मुख और चार भुजावाले ब्रह्मा का ध्यान करे ।।२२-३२।। तदनन्तर स्तम्भ-मूल में कुम्भों तथा वेदी के ऊपर धर्म आदि की पूजा करे और किसी के मतानुसार सब दिशाओं में कुम्भों के ऊपर अनन्त आदि देवताओं की पूजा की जाती है। पूजन के पश्चात् शिव की आज्ञा सुनाते हुए अपने चारों ओर कुम्भ को घुमाकर उसे यथास्थान रख दे। उसके पीछे वर्धनी, शिव, स्थिरासन, कुम्भ, शस्त्र तथा ध्रुवासन की पूर्ववत् पूजा करके उद्भव-मुद्रा के द्वारा सबका स्पर्श करे। 'हे जगन्नाथ! भक्त के ऊपर अनुकम्पा करके अपने याग की रक्षा करो'-यह कहकर रक्षा के लिए खड्ग को कलश के पास रख दे। तत्पश्चात् दीक्षास्थान, घट-स्थापन के स्थान तथा स्थण्डिल में अथवा मण्डल में देवेश की अर्चना करके कुण्ड के समीप जाना चाहिए। वहाँ समस्त होतागण कुण्डनाभि को आगे करके गुरु की आज्ञा से अपने-अपने कुण्डों का संस्कार करें, जप करनेवाले लोग असंख्य मन्त्रों का जप करें, कोई संहिता का पाठ करे और अपनी वेदशाखा में पारङ्गत ब्राह्मणों को शान्ति का पाठ करना चाहिए। ऋग्वेदपाठी ब्राह्मण को पूर्व दिशा में श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मैत्रक सूक्त तथा वृषाकपि सूक्त का उच्चस्वर से पाठ करना चाहिए। दक्षिण दिशा में सामवेदी ब्राह्मणों को देवव्रत, भारुण्ड, ज्येष्ठसाम, रथन्तर तथा पुरुष नामक गीतों का गान करना चाहिए। पश्चिम दिशा में यजुर्वेदी ब्राह्मणों को रुद्राध्याय, पुरुष-सूक्त, विशेषकर श्लोकाध्याय तथा ब्राह्मण ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए। उत्तर

---

१ ख. ग. °कान्यसेत्। २ ख. ग. °वयन्कुम्भं। ३ क. ङ. च. °दानुपूर्वशः पू°। ४ ख. ग. °कुण्ठसं°। ५ क. ङ. च. °ण्डलादिभिः। गु°। ६ घ. °पिनः सं°। ७ क. ङ. च. संख्यमस्त्रम°। ख. ग. संख्यमत्रम°। ८ ख. ग. गीतमे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नीलरुद्रं तथाऽथर्वी सूक्ष्मासूक्ष्मं तथैव च। उत्तरेऽथर्वशीर्षं च तत्परस्तु समुद्धरेत् ।।४३।।
आचार्यश्चाग्निमुत्पाद्य प्रतिकुण्डं प्रदापयेत्। वह्नेः पूर्वादिकान्भागान्पूर्वकुण्डादितः क्रमात् ।।४४।।
धूपदीपचरूणां च ददीताग्निं समुद्धरेत्। पूर्ववच्छिवमभ्यर्च्य शिवाग्नौ मन्त्रतर्पणम् ।।४५।।
देशकालादिसंपत्तौ दुर्निमित्तप्रशान्तये। होमं कृत्वा[1] तु मन्त्रज्ञः पूर्णां दत्त्वा शुभावहाम् ।।४६।।
पूर्ववच्चरुकं कृत्वा प्रतिकुण्डं निवेदयेत्। यजमानालंकृतास्तु व्रजेयुः स्नानमण्डपम् ।।४७।।
भद्रपीठे निधायेशं ताडयित्वाऽवगुण्ठयेत्। स्नापयेत्पूजयित्वा तु मृदा काषायवारिणा ।।४८।।
गोमूत्रैर्गोमयेनापि वारिणा चान्तराऽन्तरा। भस्मना गन्धतोयेन फडन्तास्त्रेण वारिणा ।।४९।।
देशिकौ मूर्तिपैः सार्धं कृत्वा कारणशोधनम्। धर्मजप्तेन संछाद्य पीतवर्णेन वाससा ।।५०।।
संपूज्य सितपुष्पैश्च नयेदुत्तरवेदिकाम्। तत्र दत्तासनायां च शय्यायां संनिवेश्य च ।।५१।।
कुंकुमालिप्तसूत्रेण विभज्य गुरुरालिखेत्। शलाकया सुवर्णस्य अक्षिणी शस्त्रकर्मणा ।।५२।।
अञ्जयेल्लक्ष्मकृत्पश्चाच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा। (कृतकर्मा[2] च शस्त्रेण लक्ष्मी (क्ष्मीं ?) शिल्पी समुत्क्षिपेत् ।।५३।।
त्र्यंशादर्धोऽथ पादार्धादर्धाया अर्धतोऽथ वा। सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं शुभं लक्ष्मावतारणम्[3] ।।५४।।

दिशा में अथर्ववेदी ब्राह्मणों को नीलरुद्र, सूक्ष्मासूक्ष्म, अथर्वशिरस् मन्त्रों का पाठ तत्परता से करना चाहिए। तदनन्तर आचार्य को अग्नि उत्पन्न करके उसे प्रत्येक कुण्ड में रखना चाहिए। अग्नि के पूर्व आदि भागों को पूर्व आदि कुण्ड के क्रम से रखना चाहिए ।।३३-४४।। अग्नि को धूप, दीप तथा चरु भी समर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् मन्त्र-ज्ञाता गुरु पहले की भाँति शिव की पूजा करके शिवाग्नि में मन्त्रतर्पण क्रिया करे और दुर्निमित्तों को रोकने के लिए तथा देश, काल आदि को सुन्दर बनाने के लिए हवन करके शुभदायक पूर्णाहुति डाले। तदनन्तर पूर्ववत् चरु बनाकर प्रत्येक कुण्ड में छोड़े। यजमान वस्त्र, आभूषण आदि से सुसज्जित होकर स्नान-मण्डप में प्रवेश करे और गुरु भद्रपीठ पर शिव को स्थापित करके ताड़न तथा अवगुण्ठन-क्रिया सम्पन्न करे। फिर 'फट्' शब्द से अन्त होनेवाले अस्त्र-मन्त्र को पढ़कर मूर्ति को मिट्टी तथा कड़वी ओषधि मिश्रित जल, गोमूत्र, गोमय, जल, भस्म, सुगन्धित जल और पुनः सामान्य जल से क्रमशः स्नान कराये ।।४५-४९।। तदनन्तर गुरु पुजारियों के साथ कारण शरीर (सूक्ष्म) की शुद्धि करके मूर्ति को धर्ममन्त्र से अभिमन्त्रित पीत वस्त्र से ढँक दे और श्वेत पुष्पों से पूजन करने के बाद उसे उत्तर वेदी के पास ले जाय। वहाँ शय्या पर आसन बिछाकर उसके ऊपर मूर्ति रखकर केसर से लिप्त सूत्र से मूर्ति के शरीर में (प्रत्येक अङ्ग का) चिह्न बनाये और नेत्र बन जाने पर सोने की शलाका से अस्त्र-मन्त्र द्वारा उनमें नेत्र अंकित करे ।।४९-५२।। नेत्रों का चिह्न शास्त्रोक्त रीति से शस्त्र-मन्त्र द्वारा मूर्ति की पूरी लम्बाई के तीन चौथाई भाग की प्रथम पंक्ति में अथवा द्वयर्ध अधोभाग के लगभग अर्धपाद पर ऊपर बनाना चाहिए। इस प्रकार का चिह्न सभी कामनाओं को सिद्ध करनेवाला तथा शुभ माना गया है।

---

१ ख. ग. कृत्वाऽथ म°। २ कृतकर्मा...लक्ष्मीं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ग. लक्ष्म्याव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिङ्गदीर्घविकारांशे त्रिभक्ते भागवर्णनात्। विस्तारो लक्ष्मदेहस्य भवेल्लिङ्गस्य सर्वतः ।।५५।।
यवस्य नवभक्तस्य भागैरष्टाभिरावृता। हास्तिके लक्ष्मरेखा च गाम्भीर्याद्विस्तरादपि ।।५६।।
एवमष्टांशवृद्ध्या तु लिङ्गे सार्धकरादिके। भवेदष्टयवा पृथ्वी [1]गम्भीराऽत्र[2] च हास्तिके ।।५७।।
शांभवेषु च लिङ्गेषु पादवृद्धेषु सर्वतः। लक्ष्मदेहस्य विष्कम्भो भवेद्वै यववर्धनात् ।।५८।।
गम्भीरत्वपृथुत्वाभ्यां रेखाऽपि त्र्यंशवृद्धितः। सर्वेषु च भवेत्सूक्ष्मं लिङ्गमस्तकमस्तकम् ।।५९।।
लक्ष्मक्षेत्रेऽष्टधा भक्ते मूर्ध्नि भागद्वये शुभे। षड्भागपरिवर्तेन मुक्त्वा भागद्वयं त्वधः ।।६०।।
रेखात्रयेण[3] सम्बद्धं कारयेत्पृष्ठदेशगम्। रत्नजे लक्षणोद्धारो यवौ हेमसमुद्भवे ।।६१।।
स्वरूपलक्षणं तेषां प्रभा रत्नेषु निर्मला। नयनोन्मीलनं वक्त्रे[4] सांनिध्याय च लक्ष्म तत् ।।६२।।
लक्षणोद्धाररेखां[5] च घृतेन मधुना यथा। मृत्युञ्जयेन सम्पूज्य शिल्पिदोषनिवृत्तये ।।६३।।
अर्चयेच्च ततो लिङ्गं स्नापयित्वा मृदादिभिः। शिल्पिनं तोषयित्वा तु दद्याद्गां गुरवे ततः ।।६४।।
लिङ्गं धूपादिभिः प्रार्च्य गायेयुर्भर्तृगाः स्त्रियः। सव्येन चापसव्येन सूत्रेणाथ कुशेन वा ।।६५।।
स्पृष्ट्वा[6] च रोचनं दत्त्वा कुर्युर्निर्मन्थनादिकम्। गुडलवणधान्याकदानेन विसृजेच्च ताः ।।६६।।
गुरुमूर्तिधरैः सार्धं हृदा वा प्रणवेन वा। मृत्स्नागोमयगोमूत्रभस्माभिः सलिलान्तरम् ।।६७।।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन पञ्चामृतपुरःसरम्। विरूक्षणं कषायैश्च सर्वौषधिजलेन वा ।।६८।।

एक हाथ लम्बे शिवलिङ्ग में नेत्रों के गोलकों की गहराई और चौड़ाई यव का बहत्तरवाँ भाग होना चाहिए। यदि लिङ्ग की लम्बाई आधा हाथ अधिक हो तो नेत्र गोलकों की चौड़ाई और गहराई यव के अष्टांश भाग और बढ़ जाती है। लिङ्ग के ऊपर के भाग में रहनेवाली रेखाओं की गहराई और चौड़ाई भी तृतीयांश बढ़ जाती है। सर्वत्र लिङ्ग का ऊपरी भाग उत्तर की ओर पतला होता जाता है। लिङ्ग के नेत्रों के भाग को आठ भागों में और लिङ्ग के सिरस्थान को दो शुभ भागों में विभक्त करना चाहिए। उपर्युक्त ढंग से विभक्त नेत्रों के नीचे के दो भागों को तीन रेखाओं के रूप में लिङ्ग की मूर्धा के पीछे मिला देना चाहिए। जहाँ पर लिङ्ग सोने अथवा मणियों का होता है, वहाँ पर ऊपर की ओर बनी हुई रेखाएँ यव परिमाण की होती हैं। रत्नों में निर्मल प्रभा रहती है। सान्निध्य के लिए नेत्रोन्मीलन दोषों को दूर करने के लिए मृत्युञ्जय-मन्त्र पढ़कर घी तथा मधु से मूर्ति का लक्षण बतानेवाली रेखा की पूजा करे ।।५३-६३।। तदनन्तर मृत्तिका आदि से शिवलिङ्ग को स्नान कराकर प्रतिमा बनानेवाले को सन्तुष्ट करके गुरु को दक्षिणा में गो प्रदान करे। तत्पश्चात् धूप आदि से शिवलिङ्ग की पूजा करे और सधवा स्त्रियाँ शिवलिङ्ग के समीप लोकगीत गायें। उसके बाद स्त्रियों को वाम तथा दक्षिण क्रम से रखे हुए सूत या कुशा से शिवलिङ्ग का स्पर्श करके उसके ऊपर रोचना आदि का उबटन लगाना चाहिए। तदनन्तर गुरु स्त्रियों को गुड़, लवण तथा धान्य समर्पण करके विदा करे ।।६४-६६।। तत्पश्चात् पुजारियों के साथ हृदय-मन्त्र या प्रणव-मन्त्र पढ़ते हुए मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, भस्म से तथा बीच-बीच में जल से शिवलिङ्ग को स्नान कराये। फिर पञ्चामृत, पञ्चगव्य, कषाय-जल, सर्वौषधि-जल,

---

१ क. ङ. च. भ्भीरा नवहा°। २ ख. °रात्र च हा°। ३ क. ङ. च. °खाभ्रमेण। ४ ख. ग. व्यक्ते। ५ ख. ग. °रलेखा°। ६ घ. स्मृत्वा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुभ्रपुष्पफलस्वर्णरत्नशृङ्ग्यवोदकैः[1] । तथा धारासहस्रेण दिव्यौषधिजलेन च ।।६९।।
तीर्थोदकेन गाङ्गेन चन्दनेन च वारिणा । क्षीरार्णवादिभिः कुम्भैः शिवकुम्भजलेन च ।।७०।।
विरूक्षणं विलेपं च सुगन्धैश्चन्दनादिभिः । संपूज्य ब्रह्मभिः पुष्पैर्वर्मणा रक्तचीवरैः ।।७१।।
रक्तरूपेण[2] नीराज्य रक्षातिलकपूर्वकम्[3] । गीतौघैर्जलदुग्धैश्च कुशाद्यैरर्घ्यसूचितैः ।।७२।।
द्रव्यैः स्तुत्यादिभिस्तुष्टमर्चयेत्पुरुषाणुना । समाचम्य हृदा देवं ब्रूयादुत्थीयतां प्रभो ।।७३।।
देवं ब्रह्मरथेनैव क्षिप्रं[4] द्रव्याणि तं नयेत् । मण्डपे पश्चिमद्वारे शय्यायां विनिवेशयेत् ।।७४।।
शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्ते[5] विन्यसेदासने शुभे । पश्चिमे पिण्डिकां तस्य न्यसेद्ब्रह्मशिलां तथा ।।७५।।
शस्त्रमस्त्रशतालब्धनिद्राकुम्भं[6] ध्रुवासनम् । प्रकल्प्य शिवकोणे च दत्वाऽर्घ्यं हृदयेन तु ।।७६।।
उत्थाप्योक्तासने लिङ्गं शिरसा पूर्वमस्तकम् । समारोप्य न्यसेत्तस्मिन्सृष्ट्या धर्मादिवन्दनम् ।।७७।।
दद्याद्धूपं[7] च संपूज्य तथा वासांसि वर्मणा । गृहोपकृतिनैवेद्यं हृदादद्यात्स्वशक्तितः ।।७८।।
घृतक्षौद्रयुतं पात्रमभ्यङ्गाय पदान्तिके । देशिकश्च स्थितस्तत्र षट्त्रिंशत्तत्त्वसंचयम् ।।७९।।
शक्त्यादिभूमिपर्यन्तं[8] सुतत्त्वाधिपसंयुतम् । विन्यस्य पुष्पमालाभिस्त्रिखण्डं परिकल्पयेत् ।।८०।।

श्वेत पुष्प, फल, सुवर्ण, रत्न, शृङ्ग, यव के जल, सहस्रधारा, दिव्योषधि-जल, तीर्थ-जल, गङ्गा-जल, चन्दन, सामान्य जल, क्षीर आदि समुद्र के जल, शिवकुम्भ-जल तथा अन्य कुम्भों के जल से क्रमशः स्नान कराकर सुगन्धित चन्दन आदि का लेप कराये ।।६७-७०$\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् ब्रह्म-मन्त्रों द्वारा पुष्पों से पूजन करके कवचमन्त्र द्वारा रक्तवस्त्र, विविध प्रकार की आरती, रक्षा-तिलक, जल, दूध, कुश-जल तथा द्रव्य समर्पण करके गीत और स्तुति आदि से शिव को सन्तुष्ट करे। तदनु पुरुष-सूक्त से पुनः उनकी पूजा करके हृदय-मन्त्र से आचमनपूर्वक उनसे निवेदन करे कि 'हे प्रभो! उठिये', यह कहने के बाद शिवलिङ्ग को ब्रह्म रथ पर बिठलाकर पूजन-सामग्री के साथ शीघ्र मण्डप पर ले आये। वहाँ पश्चिम द्वार के सामने शय्या पर अवस्थित करके शक्ति (देवी) आदि की मूर्तियों को भी पवित्र आसनों पर स्थापित कर दे। मूर्तियों से पश्चिम शिवलिङ्ग की पिण्डिका तथा ब्रह्म-शिला को स्थापित करे ।।७१-७५।। तत्पश्चात् सौ बार शस्त्र-मन्त्र से निद्रा-कुम्भ को स्थिरासन के रूप में अभिमन्त्रित करे और ईशानकोण में हृदय-मन्त्र से अर्घ्य देकर शय्या पर से शिवलिङ्ग को उठा ले। पुनः शिरोमन्त्र से आसन पर शिवलिङ्ग को पूर्वाभिमुख स्थापित करके उसमें सृष्टि-मन्त्र से धर्म आदि की वन्दना का न्यास करे और धूप आदि से शिवलिङ्ग की पूजा करके कवच-मन्त्र से वस्त्र तथा हृदय-मन्त्र से अपनी शक्ति के अनुसार गृहोपकरण और नैवेद्य शिव को समर्पित करे। शिवलिङ्ग के अभ्यञ्जन के लिए उसके चरण के समीप घी तथा मधु से भरा हुआ पात्र रखे। गुरु शिवलिङ्ग में तत्त्वाधीशों के साथ शक्ति से लेकर भूमिपर्यन्त छत्तीस तत्त्वों का न्यास करके पुष्पमालाओं से तीन खण्डों की रचना करे ।।७६-८०।। ये तीन

---

१ क. ङ. च. °ङ्गवोद°। ख. ग. ङ्गसरोद°। २ क. ङ. च. बहुरूपेण। ३ घ. °म्। घृतौ°। ४ क. ङ. च. क्षिपेद्द्रव्या°। ख. ग. क्षिप्तद्र°। ५ घ. °दिशक्तिप°। ६ क. ङ. च. °मन्त्रशतावच्च नि°। ७ क. ङ. च. द्याद्द्वयं च। ८ घ. °न्तं स्वत°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(१मायापदेशशक्त्यन्तं तुर्या२ (र्यां) शाष्टांशवर्तुलम्। तत्राऽऽत्मतत्त्वविद्याख्यं शिवं सृष्टिक्रमेण तु) ।।८१।।
एकशः प्रतिभागेषु ब्रह्मविष्णुहराधिपान्। विन्यस्य मूर्तिमूर्तीशान्पूर्वादिक्रमतो यथा ।।८२।।
क्ष्मावह्नियजमानार्कजलवायुनिशाकरान्। आकाशमूर्तिरूपांस्तान्न्यसेत्तदधिनायकान् ।।८३।।
स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम्। महादेवं च भीमं च मन्त्रास्तद्वाचका इमे ।।८४।।
लवशषचयसाश्च हकारश्च त्रिमात्रिकाः। प्रणवो हृदयाणुर्वा मूलमन्त्रोऽथ वा क्वचित् ।।८५।।
पञ्चकुण्डात्मके यागे मूर्तीः पञ्चाथ वा न्यसेत्। पृथिवीजलतेजांसि वायुमाकाशमेव च ।।८६।।
क्रमात्तदधिपान्पञ्च ब्रह्माणं धरणीधरम्। रुद्रमीशं सदाख्यं च सृष्टिन्यायेन मन्त्रवित् ।।८७।।
मुमुक्षोर्वा निवृत्ताद्या अजाताद्यास्तदीश्वराः। त्रितत्त्वं वाऽथ सर्वत्र न्यसेद्व्याप्त्यात्मकारणम् ।।८८।।
शुद्धे चाऽऽत्मनि विद्येशा अशुद्धे लोकनायकाः। द्रष्टव्या मूर्तिपाश्चैव भोगिनो मन्त्रनायकाः ।।८९।।
पञ्चविंशत्तथैवाष्ट पञ्च त्रीणि यथाक्रमम्। एषां तत्त्वं तदीशानामिन्द्रादीनां ततो यथा ।।९०।।

ॐ हां शक्तितत्त्वाय३ नम इत्यादि।
ॐ हां शक्तितत्त्वाधिपाय४ नम इत्यादि।
ॐ हां५ क्ष्मामूर्तये नमः।
ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपाय६ शिवाय नम इत्यादि।
ॐ हां पृथिवीमूर्तये नमः।
ॐ हां७ पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नम८ इत्यादि। ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नम इत्यादि ।।९१।।

भाग माया से शक्तिपर्यन्त हैं। इनमें प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीय भाग अष्टकोण तथा तृतीय वर्तुल है। प्रथम भाग में आत्मतत्त्व, द्वितीय में विद्यातत्त्व तथा तृतीय में शिवतत्त्व की स्थिति है। प्रत्येक भाग में सृष्टि-क्रम से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का न्यास करके पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से मूर्तियों और मूर्तिपतियों का भी न्यास करे। पृथ्वी, अग्नि, यजमान, अर्क, जल, वायु, चन्द्रमा तथा आकाश–इन मूर्तियों तथा शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, मन, ईश्वर, महादेव तथा भीम–इन मूर्तिपतियों, ल, व, श, ष, च, य, स, ह–इन त्रिमासिक मन्त्रों, प्रणव, हृदय-मन्त्र तथा मूलमन्त्र का भी न्यास करना चाहिए ।।८१-८५।। अथवा मन्त्रवेत्ता गुरु पाँच कुण्डवाले भाग में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप पाँच मूर्तियों का न्यास करके ब्रह्मा, धरणीधर, रुद्र, ईश और सदाशिव रूप पाँच मूर्तियों का न्यास करे। मोक्षाभिलाषी व्यक्ति को निवृत्ति आदि कलाओं तथा अजात आदि तदधिपतियों के साथ-साथ करना चाहिए। शुद्ध आत्मा में विद्यापतियों, अशुद्ध आत्मा में लोकनायकों, मूर्तिरक्षकों, सर्पों और मन्त्रनायकों का न्यास करके क्रमशः पचीस, आठ, पाँच तथा तीन तत्त्वों का और उनके इन्द्रादि अधिपतियों का भी न्यास करना चाहिए ।।८६-९०।। तदनन्तर गुरु को 'ॐ हां शक्तितत्त्वाय नमः', 'ॐ हां शक्तितत्त्वाधिपाय नमः', 'ॐ हां क्ष्मामूर्तये नमः', 'ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपाय नमः', 'ॐ पृथिवीमूर्तये नमः', 'ॐ हां पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नमः', और 'ॐ शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः' इत्यादि मन्त्रों का नाभिदेश से

---

१ मायापदेश'''सृष्टिक्रमेण तु नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ ख. ग. तुर्योयाष्टांसव°। ३ ख. ग. त्त्वात्मने न°। ४ क. ङ. च. °धिपतये न°। ५ क. ङ. च. हां पृ°। ६ घ. °र्त्यधीशाय। ७ ख. ग. घ. मू°। ८ क. ङ. च. नमः। ॐ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाभिकन्दात्समुच्चार्य घण्टानादविसर्पणम् । ब्रह्मादिकारणत्यागाद्द्वादशान्तसमाश्रितम् ।।९२।।
मन्त्रं च मनसाऽभिन्नं प्राप्तानन्दरसोपमम् । द्वादशान्तात्समानीय निष्कलं व्यापकं शिवम् ।।९३।।
अष्ट(ष्टा)त्रिंशत्कलोपेतं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् । सर्वशक्तिमयं सांगं ध्यात्वा लिङ्गे निवेशयेत् ।।९४।।
जीवन्यासो भवेदेवं लिङ्गे सर्वार्थसाधकः । पिण्डिकादिषु[1] तु न्यासः प्रोच्यते साम्प्रतं यथा ।।९५।।
पिण्डिको च कृतस्नानां विलिप्तां चन्दनादिभिः । सद्वस्त्रैश्च समाच्छाद्य रन्ध्रे च भगलक्षणे ।।९६।।
पञ्चरत्नादिसंयुक्तां लिङ्गस्योत्तरतः स्थिताम् । लिङ्गवत्कृतविन्यासां विधिवत्सम्प्रपूजयेत् ।।९७।।
कृतस्नानादिकां तत्र लिङ्गमूले शिलां न्यसेत् । कृतस्नानादिसंस्कारं शक्त्यन्तं[2] वृषभं तथा ।।९८।।
प्रणवपूर्वं हुं[3] पूं ह्रीं मध्यादन्यतयेन च । क्रियाशक्तियुतां पिण्डीं शिलामाधाररूपिणीम् ।।९९।।
भस्मदर्भतिलैः कुर्यात्प्राकारत्रितयं ततः । रक्षायै लोकपालांश्च सायुधान्योजयेद्बहिः ।।१००।।
ॐ हूं[4] ह्रां क्रियाशक्तये नमः ।
ॐ [5]हूं [6]ह्रां हः, महागौरी (रि) रुद्रदयिते स्वाहेति
च पिण्डिकायाम् । ॐ हामाधारशक्तये नमः ।
ॐ हां वृषभाय नमः ।।१०१।।

उच्चारण करना चाहिए। इन मन्त्रों के उच्चारण की ध्वनि घण्टानाद से मिश्रित हो जाती है। मन्त्रों को हृद् देश में ले जाकर द्वादश-दल-कमल मण्डल में स्थापित शिवलिङ्ग में विलीन कर देना चाहिए। वहाँ पर अड़तीस कलाओं से युक्त, सहस्र किरणों से उज्ज्वल तथा सर्वशक्तिमय शिव का अङ्गदेवताओं सहित ध्यान करके शिवलिङ्ग में इस रूप का न्यास करे। इस प्रकार सकल कामनाओं को सिद्ध करनेवाला जीवन्यास शिवलिङ्ग में सम्पन्न होता है ।।९१-९४½।। अब मैं पिण्डिका (ताँबे आदि की बनी हुई पीढ़ी), जिस पर शिवलिङ्ग स्थापित किया जाता है, आदि में न्यास की विधि बतला रहा हूँ। पिण्डिका को नहलाकर उसके ऊपर चन्दन आदि का लेप करना चाहिए। फिर उसे उत्तम वस्त्र से ढँककर शिवलिङ्ग की भाँति न्यास करके विधिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिए। पिण्डिका का छिद्र भगाकार होना चाहिए। उसमें पाँच रत्न जड़े होने चाहिए तथा उसे शिवलिङ्ग से उत्तर दिशा में रखना चाहिए। इसके बाद उसे पुनः नहलाकर उसके ऊपर शिवलिङ्ग की जड़ में शिला का न्यास करे। तदनन्तर 'ॐ हूं ह्रां क्रियाशक्तये नमः', 'ॐ हूं ह्रां हः महागौरी रुद्रदयिते स्वाहा', 'ॐ हामाधारशक्तये नमः', 'ॐ हां वृषभाय नमः'-इन मन्त्रों से शक्ति, वृषभ, क्रियाशक्ति से युक्त पिण्डी तथा आधाररूपिणी शिला का स्नान आदि संस्कारपूर्वक पूजन करके भस्म, कुश तथा तिल से तीन प्राकारों की रचना करे और रक्षा के लिए बाहर आयुध सहित लोकपालों को स्थापित करे दे ।।९५-१०१।। तत्पश्चात् धारिका,

---

१ ख. ग. °षु भून्या°। २ ख. शक्त्या तं वृ°। ३ क. ङ. च. हूं। ख. ग. हूं। ४ ख. ग. ॐ हूं हं क्रि°। ५ क. ङ. च. ॐ ह्रीं सः म°। ६ ख. हं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धारिकादीप्तिमत्युग्रा ज्योत्स्ना चैता बलोत्कटाः । तथा धात्री विधात्री च न्येसद्वा पञ्चनायिकाः ।।१०२।।
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वेधा[1] त्रिस्त्रोऽथ वा न्यसेत् । क्रिया ज्ञाना तथेच्छा च पूर्ववच्छान्तिमूर्तिषु ।।१०३।।
तमी मोहा क्षमी निष्ठा मृत्युर्मायाभवज्वराः । पञ्च चाथ महामोहा घोरा [2]रात्रिमयाज्वराः ।।१०४।।
तिस्त्रोऽथ वा क्रिया ज्ञाना तथा बाधादिनायिका[3] । आत्मादित्रिषु तत्त्वेषु तीव्रमूर्तिषु विन्यसेत् ।।१०५।।
अत्रापि पिण्डिका ब्रह्मशिलादिषु यथाविधि । गौर्यादिसंवरैरेव पूर्ववत्सर्वमाचरेत् ।।१०६।।
एवं विधाय विन्यासं गत्वा कुण्डान्तिकं ततः । कुण्डमध्ये महेशानं मेखलासु महेश्वरम् ।।१०७।।
क्रियाशक्तिं तथाऽन्यासु नादमोष्ठे च विन्यसेत् । घटं स्थण्डिलवह्नीशैर्नाडीसंधानकं ततः ।।१०८।।
पद्मतन्तुसमां शक्तिमुद्वातेन[4] समुद्यताम् । विशन्ती[5] (न्तीं) सूर्यमार्गेण निःसरन्तीं समुद्गताम् ।।१०९।।
पुनश्च शून्यमार्गेण विशन्तीं स्वस्य चिन्तयेत् । एवं सर्वत्र सन्धेयं मूर्तिपैश्च परस्परम् ।।११०।।
सम्पूज्य धारिकां शक्तिं कुण्डे सन्तर्प्य च क्रमात् । तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्तिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः ।।१११।।
सम्पूज्य तर्पयित्वा तु सन्निधौ संहिताणुभिः । शतं सहस्रमर्धं वा पूर्णया सह होमयेत् ।।११२।।
तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्ति मूर्तीशांश्च करेणुकान् । तथा संतर्प्य सांनिध्ये जुहुयुर्मूर्तिपा अपि ।।११३।।
ततो ब्रह्ममिरङ्गैश्च द्रव्यकालानुरोधतः । सन्तर्प्य[6] शान्तिकुम्भाम्भः प्रोक्षिते कुशमूलतः ।।११४।।

दीप्तिमती, उग्रा, ज्योत्स्ना, बलोत्कटा, धात्री तथा विधात्री का अथवा वामा, ज्येष्ठा, क्रिया, ज्ञाना, वेधा इन पाँच नायिकाओं का अथवा क्रिया, ज्ञाना, इच्छा–इन तीन नायिकाओं का पूर्ववत् शान्तिमूर्तियों में न्यास करना चाहिए। इसी प्रकार तमी, मोहा, क्षमी, निष्ठा, मृत्यु, माया तथा भवज्वरा का अथवा महामोहा, घोरा, रात्रिमया–इन तीन नायिकाओं का अथवा क्रिया, ज्ञाना, बाधाविनायिका–इन तीन नायिकाओं का आत्मा आदि तीन तत्त्वों में तथा तीव्र मूर्तियों में न्यास करे। यहाँ भी पिण्डिका तथा ब्रह्मशिला आदि में गौरी आदि के साथ शिव की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार का न्यास करके कुण्ड के समीप जाकर कुण्ड के मध्य में महेशान का, अन्य स्थानों पर क्रियाशक्ति का और ओष्ठ पर नाद का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर गुरु घट, स्थण्डिल, अग्नि तथा ईश के साथ नाड़ियों का सन्धान करके अपनी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करे कि पद्म तन्तु के समान स्वरूपवाली शक्ति वायुलोक तथा सूर्यलोक में प्रवेश करके पुनः वहाँ से निकलकर शून्य मार्ग से अपने स्वरूप में प्रवेश कर रही है ।।१०२-१०९$\frac{1}{2}$।। इसी प्रकार मूर्तिरक्षक पुजारी भी सर्वत्र सन्धान करे। तदनन्तर गुरु कुण्ड में धारिका शक्ति का पूजन तथा तर्पण करके उसके समीप संहिता मन्त्रों द्वारा क्रमशः तत्त्व, तत्त्वेश्वर, मूर्ति और मूर्तीशों का घृत आदि से पूजा और तर्पण करे तथा एक हजार या पाँच सौ बार हवन करके पूर्णाहुति दे। गुरु की भाँति मूर्तिरक्षक इतर ब्राह्मण भी कुण्ड के समीप अपने-अपने तत्त्व, तत्त्वेश, मूर्ति, मूर्तीशों का पूजन-तर्पण करके हवन करे। तदनन्तर गुरु द्रव्य, काल के अनुसार पंथ ब्रह्ममन्त्रों और अङ्गमन्त्रों से पुनः पूजन-तर्पण करके शान्तिकुम्भ के जल से नहलाये शिवलिङ्ग के मूल को कुश के मूल से स्पर्श करे। तत्पश्चात् जितनी आहुतियाँ

---

१ क. ख. ग. ङ. च. रोधा। २ घ. रा. च. त्रितयज्व°। ३ ख. ग. °धा विनायका। ४ ख. °मुद्धाते°। ५ क. ख. ग. ङ. च. °न्ती शून्यमा°। ६ घ. °र्प्य शक्तिं कु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिङ्गमूलं च संस्पृश्य जपेयुर्होमसंख्यया । संनिधानं हृदा कुर्युर्वर्मणा चावगुण्ठनम् ।।११५।।
एवं संशोध्य ब्रह्मादिविष्ण्वन्तादिविशुद्धये । विधाय पूर्ववत्सर्वं होमसंख्याजपादिकम् ।।११६।।
कुशामध्याग्रयोगेन (ण) लिङ्गमध्याग्रकं स्पृशेत् । यथा यथा च सन्धानं तदिदानीमिहोच्यते ।।११७।।
[1]ॐ हां हम्[2], ओम्[3], ओम्, ओम्, एम्, ॐ भूं[4]
भूं बाह्ममूर्तये नमः । ॐ [5]हां वाम्[6], आम्, ओम्,
आं षाम् ॐ भूं भूं वां वह्निमूर्तये नमः ।।११८।।
एवं च यजमानादिमूर्तिभिरभिसंधेयम् । पञ्चमूर्त्यात्मकेऽप्येवं सन्धानं हृदयादिभिः ।।११९।।
मूलेन स्वीयबीजैर्वा ज्ञेयं तत्त्वत्रयात्मके । शिलापिण्डी वृषेष्वेवं पूर्णाछिन्नं सुसंवरै ।।१२०।।
भागाभागविशुद्ध्यर्थं होमं कुर्याच्छतादिकम् । न्यूनादिदोषमोक्षाय शिवेनाष्टाधिकं शतम् ।।१२१।।
हुत्वाऽथ यत्कृतं कर्म शिवश्रोत्रे निवेदयेत् । एतत्समन्वितं[7] कर्म त्वच्छक्तौ च मया प्रभो ।।१२२।।
ॐ नमो भगवते रुद्राय रुद्र नमोऽस्तु ते । विधिपूर्णमपूर्णं वा स्वशक्त्याऽऽपूर्य गृह्यताम् ।।१२३।।
ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा, इति पिण्डिकायाम् ।।१२४।।
अथ लिङ्गे न्यसेज्ज्ञानी क्रियाख्यं पीठविग्रहे । आधाररूपिणीं शक्तिं न्यसेद्ब्रह्मशिलोपरि ।।१२५।।

दी गयी हों, उतनी बार मन्त्र का जाप करके हृदय-मन्त्र से शिव का आवाहन और कवच-मन्त्र से उनकी अवगुण्ठन क्रिया सम्पन्न करे। पुनः प्रारम्भ में ब्रह्मा और अन्त में विष्णु युक्त शिवलिङ्ग की शुद्धि के लिए पूर्ववत् हवन तथा जप आदि करके कुश के मध्य अग्रभाग से शिवलिङ्ग के मध्य तथा अग्रभाग का स्पर्श करे। उसके बाद जिस प्रकार से सन्धान करना चाहिए, उसे अब मैं बता रहा हूँ ।।११०-११७।। 'ॐ हां हम्, ओम्, ओम्, ओम्, एम्, ओम् भूं भूं ब्राह्ममूर्तये नमः' और 'ॐ हां वाम् आं ॐ आम्, षां ॐ भूं भूं वह्निमूर्तये नमः'–इन मन्त्रों से शिव की यजमान आदि मूर्तियों के साथ शिवलिङ्ग का अभिसन्धान करना चाहिए। इसी प्रकार पाँच मूर्ति रूप शिवलिङ्ग में भी हृदय-मन्त्रों से सन्धान करना चाहिए। तीन तत्त्व रूप शिवलिङ्ग में मूलमन्त्र या बीजमन्त्रों से सन्धान करके इसी प्रकार शिलापिण्डिका और वृषभ में भी अपने-अपने मन्त्रों से सन्धान करना चाहिए। तदनन्तर शिवलिङ्ग के भिन्न-भिन्न भागों की शुद्धि के लिए शिव मन्त्र से एक सौ आठ बार आहुतियाँ देकर न्यूनाधिक्य दोषों का निराकरण कर देना चाहिए। हवन के पश्चात् जो कुछ कर्म किया जा चुका है, उसे शिव के कान में यह कहकर निवेदन करे कि "हे प्रभो! भगवान् रुद्र को (मेरा) नमस्कार है। हे रुद्र! आपको नमस्कार है। मैंने जो कुछ कर्म विधिपूर्वक अथवा बिना विधान के किया है, उसे आप अपनी शक्ति से पूरा करके ग्रहण कर लीजिये।" इसके बाद गुरु पिण्डिका का स्पर्श करते हुए यह मन्त्र पढ़े–'ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा।' तदनन्तर ज्ञानी गुरु पीठविग्रह शिवलिङ्ग में क्रिया का न्यास करके ब्रह्मशिला के ऊपर आधाररूपिणी शक्ति का न्यास करे। इतनी क्रिया सम्पन्न कर लेने के बाद सात

---

१. क. ङ. च. ॐ हाम्, ओम्, ओम्, वाम्, ओ भू भुवो रवम्°। २ ख. हाम्। ३ ख. ग. °म् ए°। ४ ख. ग. भूं ब्र°। ५ क. ङ. च. ॐ हम्, ओम्, ओम्, ओम्, वाम्, ॐ भूं। ६ ख. °भू, ओम्, ओम्, ओम्, वाम्, ॐ भूं। ७ क. ङ. च. °तन्मयाऽर्पित°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निबध्य सप्तरात्रं वा पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम्। एकरात्रमथो वाऽपि यद्वा सद्योऽधिवासनम् ।।१२६।।
विनाऽधिवासनं यागः कृतोऽपि न फलप्रदः। स्वमन्त्रैः प्रत्यहं देयमाहुतीनां शतं शतम् ।।१२७।।
शिवकुम्भादि पूजां च दिग्बलिं च निवेदयेत्। गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वकम् ।।
अधिवासः[1] स वसतेरधेर्भावे[2] घ ईरितः ।।१२८।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये प्रतिष्ठायामधिवासन विधिकथनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।।९६।।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच

प्रातर्नित्यविधिं कृत्वा द्वारपालप्रपूजनम्। प्रविश्य प्राग्विधानेन देहशुद्ध्यादिमाचरेत् ।।१।।
दिक्पतींश्च समभ्यर्च्य शिवकुम्भं च वर्धनीम्। अष्टमुष्टिकया लिङ्गं वह्निं सन्तर्प्य च क्रमात् ।।२।।
शिवाज्ञातस्ततो गच्छेत्प्रासादं शस्त्रमुच्चरन्। तद्गतान्प्रक्षिपेद्विघ्नान्हुंफडन्तशराणुना ।।३।।
तन्मध्ये स्थापयेल्लिङ्गं वेधदोषविशङ्कया। तस्मान्मध्यं परित्यज्य यवार्धेन यवेन वा ।।४।।

रात, पाँच रात या तीन रात या एक रात इस स्थान में अधिवास करना चाहिए। क्योंकि बिना अधिवासन के किया हुआ यज्ञ कार्य फलदायक नहीं होता है। प्रत्येक दिन अपने मन्त्रों से सौ-सौ बार आहुतियाँ देकर शिवकुम्भ आदि का पूजन और दिशाओं को बलि समर्पण भी करना चाहिए। रात्रि में गुरु आदि के साथ नियमपूर्वक वास करने को अधिवास कहते हैं। यह शब्द अधि पूर्वक 'वस्' धातु से भाव में घञ् प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है ।।११८-१२८।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रतिष्ठान्तर्गत अधिवास-विधिवर्णन नामक
छानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९६।।

अध्याय ९७

शिवप्रतिष्ठा-विधि

महादेव बोले-गुरु प्रातःकालीन नित्य कर्म सम्पन्न कर द्वारपालों का पूजन तथा पूर्वोक्त रीति से मन्दिर में प्रवेश करके देहशुद्धि आदि कर्म करे। दिक्पालों तथा शिवकुम्भ और वर्धनी का पूजन करके, अष्टपुष्पिका से शिवलिङ्ग की अर्चना कर क्रमशः आहुति देकर अग्निदेव को तृप्त करे। तदनन्तर शिव की आज्ञा प्राप्त करके, शस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करते हुए मन्दिर में प्रवेश करे और वहाँ के सकल विघ्नों को 'हुं फट्' से अन्त होनेवाले शर मन्त्र से दूर करके मन्दिर के मध्य में शिवलिङ्ग की स्थापना करे। किन्तु वेध दोष न लग जाय इसलिए एक या आधे यव

---

१ अधिवास...ईरितः क. ङ. च. नास्ति। २ घ. °र्भावः समीरि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

किञ्चिदीशानमाश्रित्य शिलामध्ये निवेशयेत् । मूलेन तामनन्ताख्यं सर्वाधारस्वरूपिणीम् ।।५।।
सर्वगां सृष्टियोगेन[1] विन्यसेदचलां शिलाम् । अथवाऽनेन मन्त्रेण शिवस्याऽऽसनरूपिणीम् ।।६।।
ॐ नमो व्यापिनि भगवति[2] स्थिरेऽचले[3] ध्रुवे । ह्रीं[4] लं ह्रीं स्वाहा ।।७।।
त्वया शिवाज्ञया शक्ते स्थातव्यमिह संततम् । इत्युक्त्वा स समभ्यर्च्य निरुध्याद्रोधमुद्रया[5] ।।८।।
वज्रादीनि च रत्नानि तथोशीरादिकौषधीः । लोहान्हेमादिकांस्यान्तान्हरितालादिकांस्तथा ।।९।।
धान्यप्रभृतिसस्यांश्च पूर्वमुक्ताननुक्रमात् । प्रभारागत्वदेहत्ववीर्यशक्तिमयानिभान् ।।१०।।
भावयन्नेकचित्तस्तु लोकपालेशसंवरैः । पूर्वादिषु च गर्तेषु न्यसेदेकैकशः क्रमात् ।।११।।
हेमजं तारजं कूर्मं वृषं वा द्वारसम्मुखम् । सरित्तटमृदा युक्तं पर्वताग्रमृदाऽथ वा ।।१२।।
प्रक्षिपेन्मध्यगर्तादौ[6] यद्वा मेरुं सुवर्णजम् । मधूकाक्षतसंयुक्तमञ्जनेन समन्वितम् ।।१३।।
पृथिवीं राजतीं यद्वा यद्वा हेमसमुद्भवाम् । सर्वबीजसुवर्णाभ्यां समायुक्तां विनिक्षिपेत् ।।१४।।
स्वर्णजं राजतं वाऽपि सर्वलोहसमुद्भवम् । सुवर्णं कृशरायुक्तं पद्मनालं[7] ततो न्यसेत् ।।१५।।
देवदेवस्य शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्तमासनम् । प्रकल्प्य पायसेनाथ लिप्त्वा गुग्गुलुनाऽथ वा ।।१६।।
श्वभ्रमाच्छाद्य वस्त्रेण तनुत्रेणास्त्ररक्षितम् । दिक्पतिभ्यो बलिं दत्वा समाचान्तोऽथ देशिकः ।।१७।।

के बराबर मध्य भाग को छोड़कर किञ्चित् ईशानकोण की तरफ आकर शिला को प्रतिष्ठित करना चाहिए। 'अनन्ता' नाम की, सबकी आधारस्वरूपा, सर्वगामिनी तथा अचलाशिला को मूल मन्त्र से स्थापित कर लेना चाहिए। अथवा 'ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे। ह्रीं लं ह्रीं स्वाहा'–इस मन्त्र से शिव की आसनरूप शिला को स्थापित करके 'हे शक्ते! तुम शिव की आज्ञा से यहाँ सतत स्थापित रहना' कहकर उसकी पूजा करके रोधमुद्रा से उसे रोक दे ।।१-८।। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर लोकपाल तथा शिव के मन्त्रों को पढ़कर पूर्वोक्त वज्र आदि रत्नों, उशीर आदि वनस्पतियों, लोहा, सोना, काँसा आदि धातुओं, हरिताल आदि खनिजों और धान्य आदि सस्यों तथा अन्य वस्तुओं में क्रमशः प्रभा, रागत्व, देहत्व तथा वीर्य शक्ति की भावना करके लोकपालों के मन्त्रों से मन्दिर की पूर्व आदि दिशाओं में खोदे हुए गड्ढों में एक-एक करके सभी वस्तुओं को डाल दे। द्वार की ओर मुँह करके सोने या चाँदी के बने हुए कछुए या बैल को स्थापित करके बीच के गड्ढे में महुआ, अक्षत, अञ्जन तथा नदी के किनारे की मिट्टी या पर्वत की शिखर की मिट्टी से युक्त सोने का बना हुआ मेरु डाल दे। तत्पश्चात् सर्वबीज और सुवर्ण से युक्त सोने या चाँदी की बनी पृथिवी और सोने या चाँदी का या सब प्रकार के लोहों से बना पद्मनाल सोने तथा खिचड़ी के साथ डाल दे। उसके बाद शिव तथा शक्ति आदि की मूर्तियों के लिए आसनों की रचना करके गड्ढे को खीर या गुग्गुल से लीप दे और फिर अस्त्र-मन्त्र से उसकी रक्षा करके कवच-मन्त्र पढ़ते हुए वस्त्र से उसे ढँक दे ।।९-१६ $\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् दिक्पालों को बलि समर्पण कर, आचमन करके

---

१ ख. °ष्टिघोषेण वि°। २ क. ङ. च. °ति स्वा°। ३ ख. °रे ध्रु°। ४ ध. हूं°। ५ क. ङ. च. ध्यात्क्रोधं। घ. ध्याद्रौद्रमु°। ६ क. ङ. च. °र्तार्यां य°। ख. ग. र्तानां °य°। ७ क. ख. ग. ङ. च. °द्मवालं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिवेन वा शिलाश्वभ्रसङ्गदोषनिवृत्तये । शस्त्रेण वा शतं सम्यग्जुहुयात्पूर्णया सह ।।१८।।
एकैकाहुतिदानेन संतर्प्य वास्तुदेवताः । समुत्थाप्य हृदा देवमासनं मङ्गलादिभिः ।।१९।।
गुरुर्देवाग्रतो गच्छेन्मूर्तिपैश्च दिशि स्थितैः । चतुर्भिः[1] सह कर्ता[2] च देवयानस्य[3] पृष्ठतः ।।२०।।
प्रासादादि परिभ्रम्य भद्राख्यद्वारसंमुखम् । लिङ्गं संस्थाप्य दत्त्वार्घ्यं प्रासादं संनिवेशयेत् ।।२१।।
द्वारेण द्वारबन्धेन द्वारदेशेन तद्विच्छि[4](तच्छि(?)लाः । द्वारबन्धे शिखाशून्ये तदर्धेनाथ[5] तदृते (?) ।।२२।।
वर्जयन्द्वारसंस्पर्शं द्वारेणैव महेश्वरम् । देवगृहसमारम्भे कोणेनापि प्रवेशयेत् ।।२३।।
अयमेव विधिर्ज्ञेयोऽव्यक्तलिङ्गेऽपि सर्वतः । गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकैरपि समीरिता (त) म् ।।२४।।
अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहम् । अथ पीठे च संस्थाप्य लिङ्गं द्वारस्य सम्मुखम् ।।२५।।
तूर्यमङ्गलनिर्घोषैर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् । समुत्तिष्ठ हृदेत्युत्वा महापाशुपतं पठेत् ।।२६।।
अपनीय घटं श्वभ्राद्देशिको मूर्तिपैः सह । मन्त्रं संधारयित्वा[6] तु विलिप्तं कुङ्कुमादिभिः ।।२७।।
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं ध्यात्वा चैव तु रक्षितम् । ([7]लयान्तं मूलमुच्चार्य स्पष्ट्वा श्वभ्रे निवेशयेत् ।।२८।।
अंशेन ब्रह्मभागस्य यद्वा अंशद्वयेन च । अर्धेन वाऽष्टमांशेन सर्वस्याथ प्रवेशनम् ।।२९।।

गुरु को शिला तथा गड्ढे का सङ्गदोष दूर करने के लिए शिवमन्त्र या अस्त्रमन्त्र से पूर्णाहुति के साथ सौ बार हवन करना चाहिए। तदनन्तर एक-एक आहुति देकर वास्तुदेवताओं को तृप्त करे तथा मांगलिक पदार्थों के साथ हृदय-मन्त्र से देवता और आसन को उठाकर गुरु को शिवलिङ्ग के आगे जाना चाहिए; जहाँ चारों दिशाओं में चार मूर्तिपूजक ब्राह्मण पहले से उपस्थित रहते हैं। तब मन्दिर की परिक्रमा करके भद्रद्वार के सामने शिवलिङ्ग को रखकर अर्घ्य प्रदान करके मन्दिर में प्रवेश कराना चाहिए, किन्तु उसे द्वार का स्पर्श न होने पावे। देवमन्दिर के समारम्भ में कोने से भी प्रवेश करा सकते हैं ।।१७-२३।। व्यक्त लिङ्ग की स्थापना में यही विधि समझनी चाहिए। जनश्रुति भी यही है कि गृह-प्रवेश मुख्य द्वार से ही करना चाहिए। अपद्वार से प्रवेश करने से वंश का नाश हो जाता है। उपर्युक्त विधि से ढोलक तथा अन्य माङ्गलिक वाद्य-ध्वनियों के साथ दूर्वा और अक्षत से द्वार के सम्मुख शिवलिङ्ग को पीठ पर स्थापित करके हृदय-मन्त्र से 'उठिये' कहकर महापाशुपत स्तोत्र का पाठ करे। तदनन्तर गुरु को मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ घट को गड्ढे से निकालकर शिवलिङ्ग को अभिमन्त्रित करके उस पर केसर आदि का लेप करना चाहिए। फिर शक्ति और शक्तिमान् (शिव) की एकता तथा रक्षा का ध्यान करते हुए अन्त तक मूलमन्त्र का उच्चारण करके उसे गड्ढे में रख दे ।।२४-२८।। ब्रह्मभाग नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग का एक भाग या दो भाग या आधा भाग या अष्टमांश गड्ढे के अन्दर रहना चाहिए। अत्यन्त सावधानी से लिङ्ग को कटिपर्यन्त गहरी भूमि में गड़े हुए सीसे

---

१ क. ङ. च. बन्धुभिः। २ घ. कर्त्तव्या देवयज्ञस्य। ३ क. ङ. च. °वपालस्य। ४ क. ख. ग. ङ. च. तद्विना। द्वा°। ५ क. ङ. च. °थ घातयेत्। तक्षय°। ६ ल्यबभाव आर्षः। ७ लयान्तं···निवेशयेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पिधाय सीसकं नाभिर्दीर्घाभिः सुसमाहितः । श्वभ्रं[1] बालुकयाऽऽपूर्य ब्रूयात्स्थिरी भवेति च) ।।३०।।
ततो लिङ्गे स्थिरीभूते ध्यात्वा सकलरूपिणम् । मूलमुच्चार्य शक्त्यन्तं स्पृष्ट्या[2] च निष्कलं न्यसेत् ।।३१।।
स्थाप्यमानं [3]यदा लिङ्गे यामीं दिशमथाऽऽश्रयेत् । तत्तद्दिगीशमन्त्रेण पूर्णान्तं दक्षिणान्वितम् ।।३२।।
सव्यस्थाने च वक्रे च चलिते स्फुटितेऽथ[4] वा । जुहुयान्मूलमन्त्रेण बहुरूपेण वा शतम् ।।३३।।
किं चान्येष्वपि दोषेषु शिवशान्तिं समाश्रयेत्[5] । उक्तन्यासविधिं लिङ्गे कुर्यादेवं न दोषभाक् ।।३४।।
पीठबन्धमतः कृत्वा लक्षणस्यांशलक्षणम् । गौरीमन्त्रं लयं नीत्वा सृष्ट्या पिण्डीं च विन्यसेत् ।।३५।।
संपूर्य पार्श्वसंधिं[6] च बालुकावज्रलेपतः[7] । ततो मूर्तिधरैः सार्धं गुरुः [8]शान्तिपटोर्ध्वतः[9] ।।३६।।
[10]संस्नाप्य कलशैरन्यैस्तद्वत्पञ्चामृतादिभिः । विलिप्य चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य जगदीश्वरम् ।।३७।।
उमामहेशमन्त्राभ्यां तौ स्पृशेल्लिङ्गमुद्रया । ततस्त्रितत्त्वविन्यासं षडर्घादिपुरःसरम्[11] ।।३८।।
कृत्वा मूर्तिं तदीशानामङ्गानां ब्रह्मणामथ । ज्ञानलिङ्गे[12] क्रियापीठे विन्यस्य स्नापयेत्ततः ।।३९।।
गन्धैर्विलिप्य संधूप्य व्यापित्वेन शिवे न्यसेत् । स्रग्धूपदीपनैवेद्यैर्हृदयेन फलानि च ।।४०।।
विनिवेद्य यथाशक्ति समाचम्य महेश्वरम् । दत्त्वाऽर्घ्यं च जपं कृत्वा निवेद्य वरदे करे ।।४१।।

के फलक पर स्थापित करके गड्ढे के रिक्त भाग को बालू से भर देना चाहिए। उस समय शिवलिङ्ग से यह भी निवेदन करना चाहिए कि 'स्थिर हो जाइये'। तदनन्तर शिवलिङ्ग के स्थिर हो जाने पर ऐसा ध्यान करे कि वह 'सकल' रूप है। फिर उच्च स्वर से मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए शिवलिङ्ग का स्पर्श करके 'निष्कल' का न्यास करे। यदि स्थापना-काल में शिवलिङ्ग दक्षिण की ओर झुक जाय तो दिक्पाल के मन्त्र से हवन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए। यदि शिवलिङ्ग वाम भाग की ओर झुक जाय या टेढ़ा हो जाय या विचलित हो जाय या टूट जाय तो मूलमन्त्र से बहुरूप मन्त्र से सौ बार हवन करना चाहिए तथा अन्य प्रकार की दोष-निवृत्ति के लिए भी शिवशान्ति-मन्त्र का पाठ करना चाहिए। शिवलिङ्ग में उक्त न्यास की विधि करनेवाला व्यक्ति दोषों से मुक्त हो जाता है ।।२९-३४।। इसके बाद लिङ्ग के अंशरूप पीठ-बन्ध-न्यास करके शिवलिङ्ग में गौरीमन्त्र का लय करके तथा सृष्टि-मन्त्र का लय करके सृष्टि-मन्त्र से पिण्डी का न्यास करे। शिवलिङ्ग की पार्श्व-सन्धि को बालू तथा वज्र लेप से भरकर मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ गुरु को शिवलिङ्ग के ऊपर शान्ति वस्त्र रखकर कलशों के जल से तथा पञ्चामृत (दूध, घी, मधु, शक्कर) आदि से भी स्नान कराना चाहिए। अनन्तर उमा और महेश के मन्त्रों को पढ़कर चन्दन आदि से जगदीश्वर (शिव) की पूजा करके लिङ्ग-मुद्रा से शिवलिङ्ग के दोनों पार्श्वों का स्पर्श करे। तत्पश्चात् छह प्रकार के अर्घ्य देकर तीन तत्त्वों (आत्म, विद्या और शिव) का न्यास करे। फिर अङ्ग देवता के सहित शिव की मूर्ति को क्रियापीठ पर स्थापित करके उसे स्नान कराये ।।३५-३९।। तदनन्तर चन्दन आदि का लेप तथा धूपदान करके उसमें व्यापक शिवतत्त्व का न्यास करे और उसके बाद हृदय-मन्त्र से यथाशक्ति पुष्पमाला, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पण करके स्वयं आचमन करे। महेश्वर को अर्घ्य देकर मन्त्र-जप करके मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ मिलकर

---

१ ख. ग. अथ। २ ख. स्पृष्ट्वा। ३ ख. यथा। ४ घ. °तेऽपि वा। ५ घ.°त्। युक्तन्यासादिभिर्लिङ्गं कुर्वन्नेव°। ६ घ. °र्श्वसंसिद्धिं वा°। ७ ख. ग. घ. °पनम्। त°। ८ घ. शान्तिं घटो°। ९ ख. ग. °न्तिघटो°। १० ग. संस्थाप्य। ११ घ. °डर्चादि°। १२ घ. ज्ञानी लि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चन्द्रार्कतारकं यावन्मन्त्रेण शैवमूर्तिपैः। स्वेच्छयैव त्वया नाथ स्थातव्यमिह मन्दिरे ।।४२।।
प्रणम्यैवं बहिर्गत्वा हृदा वा प्रणवेन वा। संस्थाप्य वृषभं पश्चात्पूर्ववद्बलिमाचरेत् ।।४३।।
न्यूनादिदोषमोक्षाय ततो मृत्युजिता शतम्। शिवेन सशिवो हुत्वा शान्त्यर्थं पायसेन च ।।४४।।
ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च तत्पूरय महाविभो। हिरण्यपशुभूम्यादिगीतवाद्यादिहेतवे ।।४५।।
अम्बिकेशाय तद्भक्त्या शक्त्या सर्वं निवेदयेत्। दानं महोत्सवं पश्चात्कुर्याद्दिनचतुष्टयम् ।।४६।।
त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं मन्त्री होमयेन्मूर्तिपैः सह। चतुर्थेऽहनि पूर्णां च चरुकं बहुरूपिणा ।।४७।।
निवेद्य सर्वकुण्डेषु सम्पाताहुतिशोधितम्। दिनचतुष्टयं यावन्न[1] निर्माल्यं तदूर्ध्वतः ।।४८।।
निर्माल्यापनयं कृत्वा स्नापयित्वा तु पूजयेत्। पूजा सामान्यलिङ्गेषु कार्या साधारणाणुभिः ।।४९।।
विहाय लिङ्गचैतन्यं कुर्यात्स्थाणुविसर्जनम्। असाधारणलिङ्गेषु क्षमस्वेति विसर्जनम् ।।५०।।
आवाहनमभिव्यक्तिर्विसर्गः शक्तिरूपता। प्रतिष्ठान्ते क्वचित्प्रोक्तं स्थिराद्याहुतिसप्तकम् ।।५१।।
स्थिरस्तथाऽप्रमेयश्चानादिबोधस्तथैव च। नित्योऽथ सर्वगश्चैवाविनाशी दृष्ट[2] एव च ।।५२।।
एते गुणा महेशस्य संनिधानाय कीर्तिताः। ॐ नमः शिवाय स्थिरो भवेत्याहुतीनां क्रमः ।।५३।।
एवमेतच्च सम्पाद्य विधाय शिवकुम्भवत्। कुम्भद्वयं च तन्मध्यादेककुम्भाम्भसा भवम् ।।५४।।
संस्नाप्य तद्द्वितीयं च कर्तृस्नानाय धारयेत्। दत्त्वा बलिं समाचम्य बहिर्गच्छेच्छिवाज्ञया[1] ।।५५।।

शिव से प्रार्थना करे कि 'हे नाथ! जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तब तक आप अपनी इच्छा से ही इस मन्दिर में निवास कीजिये।' इस प्रकार प्रणाम करके बाहर जाकर हृदय-मन्त्र से या प्रणव-मन्त्र से वृषभ की मूर्ति को मन्दिर के द्वार के समक्ष स्थापित करे और न्यूनाधिक दोषों को दूर करने के लिए मृत्युञ्जय मन्त्र से पहले की भाँति सौ बार बलि चढ़ाकर शान्ति के लिए खीर से सौ आहुतियाँ दे। तदनन्तर यह कहते हुए कि 'हे महाविभो! मैंने ज्ञान या अज्ञान से जो कुछ किया है, उसे पूर्ण कीजिये–सुवर्ण, पशु, भूमि, गीत, वाद्य आदि के कारण अम्बिका-पति शिव को भक्तिपूर्वक सब-कुछ समर्पित कर दे ।।४०-४५½।। तत्पश्चात् चार दिनों तक दान तथा महोत्सव करता रहे। तीन दिनों तक तीनों सन्ध्याओं में मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ हवन करके, चौथे दिन बहुरूप मन्त्र से चरु से पूर्णाहुति दे। इस प्रकार समस्त कुण्डों को सम्पात नामक आहुतियों से शुद्ध करके चार दिनों तक निर्माल्य सुरक्षित रखे। तत्पश्चात् निर्माल्य फेंककर स्नान कराकर पूजा करे। लिङ्ग-चैतन्य को छोड़कर साधारण शिवलिङ्ग के पूजन में सामान्य मन्त्रों का व्यवहार करना चाहिए। तदनन्तर शिवलिङ्ग का विसर्जन करना चाहिए, परन्तु असाधारण शिवलिङ्ग के विसर्जन में 'क्षमा कीजिये' ऐसा कहना चाहिए ।।४६-५०।। कहीं तो ऐसा कहा गया है कि प्रतिष्ठा के अन्त में स्थिर, अप्रमेय, अनादिबोध, नित्य, सर्वगामी, अविनाशी तथा दृष्ट–इन सात नाम की आहुतियाँ और आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्जन और शक्ति के अनुकूल कर्म करना चाहिए। उपर्युक्त सात गुण महेश का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए कहे गये हैं। 'ॐ नमः शिवाय स्थिरो भव'–इस प्रकार कहकर आहुतियाँ देनी चाहिए। तदनन्तर जल से परिपूर्ण दो कलशों में से एक यज्ञकर्त्ता के स्नान के लिए रख देना चाहिए और दूसरे से शिव को नहलाकर बलि

---

१ घ. °वत्तन्निर्मा°। २ ख. ग. तृप्त।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जगती बाह्यतश्चण्डमैशान्यां दिशि मन्दिरे। धामगर्भप्रमाणे च सुपीठे कल्पितासने ।।५६।।
पूर्ववन्न्यासहोमादि विधाय ध्यानपूर्वकम्। संस्थाप्य विधिवत्तत्र ब्रह्माङ्गैः पूजयेत्ततः ।।५७।।
अङ्गानि पूर्वमुक्तानि[२] ब्रह्माणि[३] त्वणुना यथा[४] ।।५८।।
ए (ॐ) वं सद्योजाताय हूरूं फट् नमः। ॐ[५] विं वामदेवाय हूरूं फट् नमः।
ॐ[६] वुम् अघोराय हूरूं फट् नमः[७]। ओम् एवं (एवम्, ॐ) चें (वें) तत्पुरुषाय[८]
वोमीशानाय च हूरूं फट्[९] नमः ।।५९।।
जपं निवेद्य सन्तर्प्य विज्ञाप्य नतिपूर्वकम्। देवः सन्निहितो यावत्तावत्त्वं संनिधो भव ।।६०।।
न्यूनाधिकं च यत्किञ्चित्कृतमज्ञानतो मया। त्वत्प्रसादेन चण्डेश तत्सर्वं परिपूरय ।।६१।।
बाणलिङ्गे बाणरोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि। प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ।।६२।।
अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि। अभ्यर्च्य चण्डं ससुतं यजमानं हि भार्यया ।।६३।।
पूर्वस्थापितकुम्भेन स्नापयेत्स्नापकः स्वयम्। स्थापकं[१०] यजमानोऽपि सम्पूज्य च महेशवत् ।।६४।।
वित्तशाठ्यं विना दद्याद्भूहिरण्यादिदक्षिणाम्। मूर्तिपान्विधिवत्पश्चाज्जापकान्ब्राह्मणांस्तथा ।।६५।।
दैवज्ञं शिल्पिनं प्रार्च्य दीनानाथादि भोजयेत्। यदत्र सम्मुखीभावे खेदितो भगवन्मया ।।६६।।
क्षमस्व नाथ तत्सर्वं कारुण्याम्बुनिधे मम। इति विज्ञप्तियुक्ताय यजमानाय सद्गुरुः ।।६७।।

देकर आचमन करके शिव की आज्ञा से बाहर जाय ।।५१-५५।। तत्पश्चात् यज्ञ-कुण्ड के घेरे से बाहर मन्दिर के ईशानकोण में एक सुन्दर आसन पर चण्डदेव की स्थापना करके पहले की भाँति न्यास, होम, ध्यान आदि करके 'ए (ॐ) वं सद्योजाताय हूं फट् नमः', 'ॐ विं वामदेवाय हूं फट् नमः', 'ॐ वुं अघोराय हूं फट् नमः', 'ॐ एवं (एवम्, ओं) चें (वें) तत्पुरुषाय वोमीशानाय च हूं फट् नमः'-इन मन्त्रों से अङ्गदेवताओं के साथ उनकी पूजा तथा जप और तर्पण करके नम्रतापूर्वक उनसे निवेदन करे कि "हे चण्ड! जब तक शिव यहाँ रहेंगे, तब तक आप भी रहिये। मैंने अज्ञान से जो कुछ न्यूनाधिक कर्म किया है, उसे आप कृपा करके परिपूर्ण कर दीजिये।" बाणलिङ्ग, चललोहसुवर्णादि लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग तथा अन्य प्रतिमाओं की स्थापना में चण्डदेव का आवाहन नहीं करना चाहिए ।।५६-६२।। अद्वैत की भावना से युक्त स्थण्डिलेश की स्थापना में भी चण्ड का आवाहन निषिद्ध है। तदनन्तर स्त्री-पुत्र के साथ यजमान को पूर्व स्थापित कलश के जल से स्नान कराये। यजमान भी स्नान करानेवाले का महेश की पूजा की भाँति, पूजन करके उदारता से उसे भूमि और सुवर्ण आदि दक्षिणा प्रदान करे। पश्चात् विधिवत् मूर्तिपूजक ब्राह्मणों, जप करनेवालों, ज्योतिषी और शिल्पी की पूजा कर दीनों और अनाथों को भोजन कराये। तदनन्तर गुरु से प्रार्थना करे कि "हे करुणासागर! भगवान्! नाथ! मैंने इस कार्य में आपको जो कष्ट दिया है, उसे क्षमा कीजिये।"

---

१ क. ङ. च. बहिः कुम्भे शिवा°। २ क. ङ. च. °नि ब्राह्मणत्वर्चना। ३ ङ. °ह्याणी त्वर्चना। ४ क. ङ. च. °था। ॐ स°। ५ क. ङ. च. ॐ वा°। ६ क. ङ. च. ॐ अ°। ७ क. ङ. च. °मः। एवं चे। घ. °मः। ॐ त°। ८ ख. ग. °य नमः। ओ मी°। ९ क. घ. ङ. च. °ट्। ज°। १० ख. स्नापकं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतिष्ठापुण्यसद्भावं स्फुरत्तारकसप्रभम् । कुशपुष्पाक्षतोपेतं स्वकरेण समर्पयेत् ।।६८।।
ततः पाशुपतं[1] जप्त्वा प्रणम्य परमेश्वरम् । ततोऽपि बलिभिर्भूतान्संनिधाय निबोधयेत् ।६९।।
स्थातव्यं भवता[2] तावद्यावत्संनिहितो हरः । ([3]गुरुर्वस्त्रादिसंयुक्तं गृह्णीयाद्यागमण्डपम् ।।७०।।
सर्वोपकरणं शिल्पी तथा[4] स्नापनमण्डपम्) । अन्ये देवादयः स्थाप्या मन्त्रैरागमसंभवैः ।।७१।।
आदिवर्णस्य[5] भेदाद्वा सुतत्त्वव्याप्तिभाविताः । साध्यप्रमुखदेवाश्च सरिदोषधयस्तथा ।।७२।।
क्षेत्रपाः किन्नराद्याश्च पृथिवीतत्त्वमाश्रिताः । [6]स्थानं[7] सरस्वती लक्ष्मीनदीनामम्भसि क्वचित् ।।७३।।
भुवनाधिपतीनां च स्थानं[8] यत्र व्यवस्थितिः । अण्डवृद्धिप्रधानान्तं त्रितत्त्वं ब्रह्मणः पदम् ।।७४।।
तन्मात्रादिप्रधानान्तं पदमेतत्त्रिकं[9] हरेः । नाट्येशगणमातृणां यक्षेशशरजन्मनाम् ।।७५।।
अण्डजाः शुद्धविद्यान्तं पदं गणपतेस्तथा । मायांशदेशशक्त्यन्तं शिवाशिवोत्परोचिषाम् ।।७६।।
पदमीश्वरपर्यन्तं व्यक्तार्चासु च कीर्तितम् । कूर्माद्यं कीर्तितं यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकम् ।।७७।।
प्रक्षिपेत्पीठगर्तायां पञ्चब्रह्मशिलां विना । षड्भिर्विभाजिते गर्ते त्यक्त्वा भागं च पृष्ठतः ।।७८।।
स्थापनं पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते । स्थापनं सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम् ।।७९।।

इसके बाद गुरु अपने हाथ से शिवलिङ्ग-स्थापना के पुण्य से युक्त और तारा के समान चमकती हुई कान्तिवाले कुश, पुष्प तथा अक्षत यजमान को प्रदान करे ।।६३-६८।। तदनन्तर पाशुपत-मन्त्र का जप करते हुए परमेश्वर को प्रणाम करके भूतों को बलि देते हुए निवेदन करे कि "जब तक शिव रहेंगे तब तक आप भी रहिये। वस्त्र आदि सहित यज्ञमण्डप गुरु को मिलना चाहिए और समस्त उपकरणों के साथ स्नान-मण्डप कारीगर को प्रदान करना चाहिए। अन्य देवताओं की स्थापना आगम-मन्त्रों से या देवताओं के नामों के प्रथम अक्षर के भेद से करनी चाहिए। (अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रों में ही देवनामों के प्रथम अक्षर जोड़कर काम चलाना चाहिए) अन्य देवता जैसे-पृथ्वी तत्त्व के आश्रित साध्यगण, सरिताएँ, ओषधियाँ, क्षेत्रपाल और किन्नर आदि; जल तत्त्व के आश्रित सरस्वती, लक्ष्मी और नदियाँ; ब्रह्म के आश्रित भुवनपति, अण्डकटाह तथा प्रधान; हरि के आश्रित तन्मात्राएँ तथा प्रधान; गणपति के आश्रित नाट्येश, गण, मातृकाएँ, यक्षेश, कार्तिकेय, अण्डज तथा शुद्धविद्या और ईश्वर के आश्रित माया, अंश, देश, शक्ति, शिवा, शिव तथा सूर्य-इन देवताओं की स्थापना में व्यक्त पूजा करनी चाहिए। पूर्व की भाँति कछुए आदि की मूर्तियाँ तथा पाँच रत्न आदि वस्तुएँ बिना पाँच ब्रह्मशिलाओं के पीठ के गड्ढे में डाल देनी चाहिए ।।६९-७७½ ।। यदि गड्ढा छह भागों में विभक्त कर दिया जाय तो पृष्ठ भाग को छोड़कर पाँचवें भाग में मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए, जो प्रतिमा के लिए सुखावह माना गया है। जहाँ देवता का चित्र

---

१ घ. °पतोपेतं प्र°। २ ख. भावतां। ३ गुरुर्वस्त्रादि.....मण्डपम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ ख. °था स्थाप°। ५ क. ङ. च. °स्य शेषत्वात्स्वत°। ६ स्थानं क्वचित् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ घ. स्नानं। ८ ख. ग. °नं त्रयव्य°। ९ ख. ग. मेकं° त्रिकं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात्स्थापने लेपचित्रयोः । स्नानादि मानसं तत्र शिलारत्नादिवेशनम् ।।८०।।
नेत्रोद्घाटनमन्त्रेष्टमासनादिप्रकल्पनम् । पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति ।।८१।।
विधिस्तु चललिङ्गेषु सम्प्रत्येव निगद्यते । पञ्चभिर्वा त्रिभिर्वाऽपि[1] पृथक्कुर्याद्विभाजते ।।८२।।
([2]भागत्रयेण भागांशो भवेद्भागद्वयेन वा[3]) । स्वपीठेष्वपि तद्वत्स्याल्लिंगेषु तत्त्वभेदतः ।।८३।।
सृष्टिमन्त्रेण संस्कारो विधिवत्स्फाटिकादिषु । किं च ब्रह्मशिलारत्नप्रभूतेश्चानिवेदनम् ।।८४।।
योजनं पिण्डिकायाश्च मनसा परिकल्पयेत् । स्वयंभूबाणलिङ्गादौ संस्कृतौ नियमो न हि ।।८५।।
स्नापनं संहितामन्त्रैर्न्यासं होमं च कारयेत् । नदीसमुद्ररोहाणां स्थापनं पूर्ववन्मतम् ।।८६।।
ऐहिकं मृण्मयं लिङ्गं पिष्टिकादि च तत्क्षणात् । कृत्वा सम्पूजयेच्छुद्धं दीक्षाणादिविधानतः ।।८७।।
समादाय ततो मन्त्रानात्मानं संनिधाय च । तज्जले प्रक्षिपेल्लिंगं वत्सरात्कामदं भवेत् ।।८८।।
विष्ण्वादिस्थापनं चैव पृथङ्मन्त्रैः समाचरेत् ।।८९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।।९७।।

स्थापित करना हो, वहाँ धारणा-ध्यान के द्वारा शुद्धि मानस-स्नान तथा शिलारत्न आदि का निवेश करना चाहिए। मन्त्र द्वारा (चित्र का) नेत्रोद्घाटन और आसन आदि की रचना करके जल के बिना ही पुष्पों से पूजन करे, जिससे चित्र को कोई हानि न पहुँचे ।।७८-८१।। अब मैं चल-मूर्तियों की स्थापना का विधान बता रहा हूँ। चल-मूर्ति के पीठ को तीन या पाँच भागों में विभक्त करके तीन या दो भागों में मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए। स्फटिक आदि की बनी मूर्तियों का संस्कार सृष्टिमन्त्र से विधिपूर्वक करना चाहिए। इन मूर्तियों को ब्रह्मशिला तथा रत्न आदि का समर्पण नहीं करना चाहिए। पिण्डिका की योजना मन में करनी चाहिए। स्वयंभू तथा बाणलिङ्ग आदि का संस्कार करने का नियम नहीं है। चलमूर्ति का स्नान संहिता-मन्त्रों से कराना चाहिए तथा नदियों, समुद्रों और पर्वतों का आवाहन भी करना चाहिए। मिट्टी आदि और पीठ के शिवलिङ्ग को तत्काल बनाकर दीक्षाविधि के अनुसार पूजन आदि करके उसे ले जाकर जल में फेंक दे। तदनन्तर गुरु को पूर्वोक्त पूजन-मन्त्रों के साथ अपने को लीन कर लेना चाहिए। इस प्रकार का पूजन एक वर्ष में अभीष्ट को सिद्ध करता है। विष्णु आदि देवों की स्थापना इनसे भिन्न मन्त्रों से करनी चाहिए ।।८२-८९।।

श्री अग्निमहापुराण में शिवप्रतिष्ठाविधिवर्णन नामक
सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९७।।

---

१ ख. पृथुक्षीक्षीणविभा°। २ भागत्रयेण···द्वयेन वा नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. बा। सुपीठे स्वपिते तद्वल्लि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

गौरीप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये गौरीप्रतिष्ठां च पूजया सहितां शृणु। मण्डपाद्यं पुरो यच्च संस्थाप्य चाधिरोपयेत् ।।१।।
शय्यायां[1] तांश्च विन्यस्य मन्त्रान्मूर्त्यादिकान्गुह। आत्मविद्याशिवान्तं च कुर्यादीशनिवेशनम्[2] ।।२।।
शक्तिं परां[3] ततो न्यस्य हुत्वा जप्त्वा च पूर्ववत्। संधाय च तथा पिण्डीं क्रियाशक्तिस्वरूपिणीम् ।।३।।
सदेशव्यापिकां ध्यात्वा न्यस्तरत्नादिकां तथा। एवं संस्थाप्य तां पश्चाद्देवीं तस्यां नियोजयेत् ।।४।।
परशक्तिस्वरूपां तां स्वाणुना शक्तियोगतः। ततो न्यसेत् क्रियाशक्तिं पीठे ज्ञानं च विग्रहे ।।५।।
ततोऽपि व्यापिनीं शक्तिं समावाह्य नियोजयेत्। अम्बिकां[4] शिवनाम्नीं च समालभ्य प्रपूजयेत्[5] ।।६।।
ॐ आधारशक्तये[6] नमः[7]। ॐ कूर्माय नमः।
ॐ स्कन्दाय च तथा नमः। ॐ ह्रीं[8] नारायणाय नमः।
ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ[9] अधच्छदनाय नमः। ॐ ऊर्ध्वच्छदनाय नमः। ।।७।।
ॐ पद्मासनाय नमोऽथ सम्पूज्याः केशवांस्तथा ।।८।।
ॐ ह्रीं[10] कर्णिकायै नमः। ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्य इहार्चयेत् ।।९।।

अध्याय ९८

गौरीप्रतिष्ठा-विधि

महेश्वर बोले–हे स्कन्द! अब मैं पार्वती की मूर्ति की प्रतिष्ठा तथा पूजा का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। पूर्व की भाँति मण्डप आदि की रचना करके शय्या के ऊपर गौरी की मूर्ति रखकर वहाँ पर मूर्ति आदि का न्यास करके, आत्मविद्या और शिवतत्त्व पर्यन्त न्यास-विधि करे। पश्चात् पराशक्ति का न्यास करके पूर्ववत् हवन-जप करके पिण्डिका का ध्यान इस प्रकार करे कि वह क्रियाशक्तिस्वरूपिणी है, सब देशों में व्याप्त है तथा रत्न आदि से परिपूर्ण है। अनन्तर उसकी स्थापना कर उस पर पराशक्ति रूप उमा देवी को अपने मन्त्र से शक्ति योग के द्वारा प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर पीठ पर क्रियाशक्ति और शरीर में ज्ञान का न्यास करके वहीं व्यापिनी शक्ति को नियुक्त करे। फिर अम्बिका तथा शिवा का आवाहन करके निम्नलिखित मन्त्रों से उनकी पूजा करना प्रारम्भ करे ।।१-६।। 'ॐ आधारशक्तये नमः', 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ स्कन्दाय नमः', 'ॐ ह्रीं नारायणाय नमः', 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', 'ॐ अधच्छदनाय नमः', और 'ॐ ऊर्ध्वच्छदनाय नमः', 'पद्मासनाय नमः'। इसके बाद केशव आदि देवों की पूजा इन मन्त्रों से करनी चाहिए–'ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः', 'ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः', 'ॐ हां पुष्ट्यै नमः', 'ॐ ह्रीं

---

१ ख. ग. तां च वि°। २ ख. ग. °दीशे नि°। ३ ख. ग. परापरां न्य°। ४ ख. ग. अमुके शिविना°। ५ ख. ग. °त्। आ°। ६ ख. ग. °ये च न°। ७ ख. ग. °मः। स्क°। ८ ख. ग. हुं। ९ ख. ॐ, अम्, अधष्टदलच्छ°। १० ख. ग. हं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ हां पुष्ट्यै[1] ह्रीं च ज्ञानायै हूं क्रियायै ततो नमः ।।१०।।
ॐ नालाय नमः[2] । ॐ रुं[3] धर्माय नमः[4] ।
ॐ रुं ज्ञानाय वै नमः । ॐ वैराग्याय नमः[5] ।
ॐ वै,[6] अधर्माय नमः। ॐ रुं अज्ञानाय वै नमः ।
ॐ अवैराग्याय वै नमः
ॐ अनैश्वर्याय नमः हूं[7] वाचे हूं[8] च रागिण्यै हूं[9] ज्वालिन्यै ततो नमः ।
ॐ ह्रौं शमायै च नमो हूं[10] ज्येष्ठायै ततो नमः ॐ ह्रौ[11]
रौं क्रौं नवशक्त्यै[12] गौं च गौर्यासनाय च । गौं गौरीमूर्तये नमो गौर्या मूलमथोच्यते ।।११-१३।।
ॐ ह्रीं सः, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः[13] ।।१४।।
ॐ गां हूं[14] ह्रीं शिवो गूं स्याच्छिखायै कवचाय च ।
गों नेत्राय च गोम्,[15] अस्त्राय ॐ गों[16] विज्ञानशक्तये ।।१५।।
ॐ[17] गूं क्रियाशक्तये नमः पूर्वादौ शक्रादिकान् । ॐ सुं[18] सुभगायै नमो [19]ह्रीं बीजललिता ततः ।।१६।।
ॐ ह्रीं कामिन्यै च नम ॐ हूं स्यात्कामशालिनी । मन्त्रैर्गौरीं प्रतिष्ठाप्य प्रार्च्य जप्त्वाऽथ सर्वभाक् ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौरीप्रतिष्ठाविधिकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।।९८।।

ज्ञानायै नमः', 'ॐ हूं क्रियायै नमः', 'ॐ नालाय नमः', 'ॐ रुं धर्माय नमः', 'ॐ रुं ज्ञानाय वै नमः', 'ॐ वैराग्याय नमः', 'ॐ वै अधर्माय नमः', 'ॐ रुं अज्ञानाय वै नमः', 'ॐ अवैराग्याय वै नमः', 'ॐ अनैश्वर्याय नमः', 'ॐ हूं ज्वालिन्यै नमः', 'ॐ हूं रागिण्यै नमः','ॐ ह्रौं शमायै नमः', 'ॐ हूं ज्येष्ठायै नमः', 'ॐ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै नमः', 'ॐ गौं गौर्यासनाय नमः', 'ॐ गौं गौरीमूर्तये नमः'। गौरी के मूल मन्त्र हैं–'ॐ ह्रीं सः, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः', 'ॐ गां हूं ह्रीं शिवाय नमः', 'ॐ गूं शिखायै नमः', 'ॐ गूं कवचाय नमः', 'ॐ गों नेत्राय नमः', 'ॐ गों अस्त्राय नमः', 'ॐ गों विज्ञानशक्तये नमः', 'ॐ गूं क्रियाशक्तये नमः' इत्यादि। इसके बाद पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए ।।७-१५$\frac{१}{२}$।। 'ॐ सुं सुभगायै नमः', 'ॐ ह्रीं बीजललितायै नमः', 'ॐ ह्रीं कामिन्यै नमः', 'ॐ हूं कामशालिन्यै नमः।' उपर्युक्त मन्त्रों से गौरी की स्थापना और पूजा करने से तथा उक्त मन्त्रों का जप करने से मनुष्य की समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में गौरीप्रतिष्ठाविधि वर्णन नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९८।।

---

१ ख. °ष्ट्यै, ॐ नाला°। २ घ. °मः। रुं। ३ ख. ॐ धं°। ४ ख. °मः। ज्ञा°। ग °मः। सज्ञा°। ५ ग. °मः। हूं वा°। ६ ख. ॐ हूं वा°। ७ घ. हुं। ८ घ. हुं। ९ घ. क्रै। १० घ. हूरूं। ११ ख. ग. ह् रौं रौ द्रौ न°। १२ ख. ग. शक्ताश्च गौं°। १३ घ. °मः। गां। १४ ख. ग. हूरूं गीं शिवां गूं। १५ ख. ग. गोस्त्रा°। १६ ख. ग. गीं। १७ ख. ग. ॐ भूक्रि°। १८ ख. खं। १९ ख. ग. नमः; ॐ ह्रीं बीजालताय नमः। ॐ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

सूर्यप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये सूर्यप्रतिष्ठां च पूर्ववन्मण्डपादिकम् । स्नानादिकं च सम्पाद्य पूर्वोक्तविधिना ततः ।।१।।
विद्यामासनशय्यायां[1] साङ्गं विन्यस्य भास्करम् । त्रितत्त्वं विन्यसेत्तत्र सं (स) स्वरं खादिपञ्चकम् ।।२।।
शुद्ध्यादि पूर्ववत्कृत्वा पिण्डीं संशोध्य पूर्ववत् । सदेशपदपर्यन्तं[2] विन्यस्य तत्त्वपञ्चकम् ।।३।।
शक्त्या च सर्वतोमुख्या संस्थाप्य विधिवत्ततः । स्वाणुना विधिवत्सूर्यं शक्त्यन्तं स्थपयेद्गुरुः ।।४।।
स्वाम्यन्तमथ वाऽऽदित्यं[3] पादान्तं नाम धारयेत् । सूर्यमन्त्रास्तु पूर्वोक्ता द्रष्टव्याः स्थापनेऽपि च ।।५।।

इत्याग्नेयेमहापुराणे सूर्यप्रतिष्ठाविधि-कथनं
नाम नवनवतितमोऽध्यायः ।।९९।।

अध्याय ९९

सूर्यप्रतिष्ठा-विधि

शंकर बोले–अब मैं सूर्यदेव की स्थापना का विधान बतला रहा हूँ। पूर्व की भाँति मण्डप आदि की रचना कर पूर्वोक्त विधि से स्नान आदि सम्पन्न करके विद्यान्त आसन रूप शय्या पर अङ्गदेवता सहित सूर्यदेव को रखकर तीन तत्त्वों (आत्म, विद्या और शिव) तथा स्वर सहित आकाश आदि पाँच महाभूतों का न्यास करे। अनन्तर पूर्व की भाँति शुद्धि आदि करके पिण्डी को पवित्र करे। फिर सदाशिवपर्यन्त पञ्चतत्त्व का न्यास करके उसके ऊपर गुरु उपयुक्त मन्त्र से विधिपूर्वक सूर्य की स्थापना करे। नाम के अन्त में 'स्वामी' शब्द अथवा छह-आदित्य शब्द जोड़कर उसे धारण करना चाहिए। पहले बताये हुए सूर्य के मन्त्रों का व्यवहार स्थापन-काल में भी करना चाहिए ।।१-५।।

श्री अग्निमहापुराण में सूर्यप्रतिष्ठाविधिवर्णन नामक
निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९९।।

---

१ ख. ग. °द्यादास°। २ ख. °शपाद°। ३ ख. ग. °त्य यदा तन्नाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ शततमोऽध्यायः

द्वारप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच

द्वाराश्रितप्रतिष्ठाया[१] वक्ष्यामि विधिमप्यथ । द्वाराङ्गाणि कषायाद्यैः संस्कृत्य शयने न्यसेत् ।।१।।
मूलमध्याग्रभागेषु त्रयमात्मादिसेश्वरम् । विन्यस्य संनिवेस्याथ हुत्वा जप्त्वाऽत्र रूपतः ।।२।।
द्वारादथो यजेद्वास्तुं तत्रैवानन्तमन्त्रतः[२] । रत्नादि पञ्चकं न्यस्य शान्तिहोमं विधाय च ।।३।।
यवसिद्धार्थकाक्रान्ता[३] ऋद्धिवृद्धिमहातिलाः[४] । गोमृत्सर्षपरागेन्द्रमोहिनीलक्ष्मणामृताः ।।४।।
रोचनारुग्वचो[५] दूर्वा प्रासादाधश्च[६] पोटलीम्[७] । प्रकृत्योदुम्बरे बद्ध्वा रक्षार्थं प्रणवेन तु ।।५।।
द्वारमुत्तरतः किञ्चिदाश्रितं संनिवेशयेत् । आत्मतत्त्वमधो न्यस्य विद्यातत्त्वं च शाखयोः ।।६।।
शिवमाकाशदेशे च व्यापकं सर्वमण्डले । ततो महेशनाथं च विन्यसेन्मूलमन्त्रतः ।।७।।
द्वाराश्रितांश्च तल्पादीन्कृतयुक्तैः स्वनामभिः । जुहुयाच्छतमर्धं वा द्विगुणं शक्तितोऽथ वा ।।८।।
न्यूनादिदोषमोक्षार्थं हेतितो जुहुयाच्छतम् । दिग्बलिं पूर्ववद्दत्त्वा[८] प्रदद्याद्दक्षिणादिकम् ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वारप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम शततमोऽध्यायः ।।१००।।

अध्याय १००

द्वारप्रतिष्ठा-विधि

महेश्वर बोले–अब मैं द्वार से सम्बन्ध रखनेवाली प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा। द्वार के अवयवों को कषाय आदि ओषधियों से परिष्कृत करके शय्या पर रख दे। उसके मूल, मध्य तथा अग्रभाग में आत्मविद्या और शिव इन तत्त्वों का ईश्वर के साथ न्यास करके हवन और जप करे। द्वार से थोड़ी दूर पर अनन्त मन्त्र से वासुदेव की अर्चना करके उसके नीचे पाँच रत्नों को गाड़कर शान्ति होम करे। तदनन्तर यव, उजली सरसों, आक्रान्ता, ऋद्धि, वृद्धि, महातिल, गोमृत्तिका, सरसों, रागेन्द्र, मोहिनी, लक्ष्मणा, अमृता, रोचना, अरुक्, बच और दूब–इन पदार्थों को एक पोटली में बाँधकर मन्दिर के नीचे अपने-आप उत्पन्न गूलर के वृक्ष पर रक्षा के लिए प्रणवमन्त्र से लटका दे ।।१-५।। तत्पश्चात् मन्दिर के नीचे द्वार से थोड़ा उत्तर आत्मतत्त्व, दोनों पदार्थों में विद्यातत्त्व, आकाशदेश में शिवतत्त्व और सम्पूर्ण मण्डल में व्यापकतत्त्व का न्यास करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से महेशनाथ का न्यास करके द्वाराश्रित शय्या आदि को उनके नामों से अथवा शक्ति-मन्त्र के द्वारा पचास या सौ बार आहुतियाँ दे। फिर न्यूनाधिक दोषों के निवारण के लिए 'हेति' मन्त्र से सौ बार हवन करके पहले की भाँति दिग्बलि समर्पण करके दक्षिणा आदि प्रदान करे ।।६-९।।

श्री अग्निमहापुराण में द्वारप्रतिष्ठा-विधि-वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।।१००।।

---

१ ख. ग. °ष्ठायां व°। २ ख. ग. °तः। चन्द्रादि°। ३ ख. ग. °द्धात्मका°। ४ ख. ग. °द्धिसहा°। ५ ख. °नामसुरा दूं। ग. °नारसदूर्वा प्रापासा°। ६ ख. पोच्छुलीम्। ग. पाच्छुलीम्। ७ ख. ग. °म्। कृतौ°। द्वौदु। ८ घ. °वद्धुत्वा प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादप्रतिष्ठा

ईश्वर उवाच

प्रासादस्थापनं वक्ष्ये तच्चैतन्यसुयोगतः[१]। शुकनाशासमाप्तौ[२] तु[३] पर्ववेद्याश्च मध्यतः ।।१।।
आधारशक्तितः पद्मे विन्यस्ते[४] प्रणवेन च। स्वर्णाद्येकतमोद्भूतं पञ्चगव्येन संयुतम् ।।२।।
मधुक्षीरयुतं कुम्भं न्यस्तरत्नादिपञ्चकम्। सवस्त्रं गन्धलिप्तं च गन्धवत्पुष्पधूपितम्[५] ।।३।।
चूतादिपल्लवानां च[६] कृती कृत्यं च विन्यसेत्। पूरकेण समादाय सकलीकृतविग्रहः[७] ।।४।।
सर्वात्माभिन्नमात्मानं[८] स्वाणुना स्वान्तमारुतः। आज्ञायाऽऽरोधयेच्छंभौ[९] रेचकेन ततो गुरुः ।।५।।
द्वादशान्तात्समादाय स्फुरवह्निकणोपमम्। निक्षिपेत् कुम्भगर्भे च न्यस्ततन्त्रातिवाहिकम् ।।६।।
विग्रहं तद्गुणानां च बोधकं च कलादिकम्। क्षान्तं वागीश्वरं[१०] तत्तु त्रातं[११] तत्र निवेशयेत् ।।७।।
दशनाडीर्दश प्राणानिन्द्रियाणि त्रयोदश। तदधिपांश्च संयोज्य प्रणवाद्यैः स्वनामभिः ।।८।।

अध्याय १०१

प्रासादप्रतिष्ठा-विधि

महेश्वर बोले–अब मैं मन्दिर स्थापना और उसमें चैतन्य के आधान की विधि बतलाऊँगा। जहाँ मन्दिर के गुम्बज की समाप्ति होती है, वहीं पूर्व वेदी के मध्य भाग में आधार-शक्ति का चिन्तन करके प्रणव-मन्त्र से पद्म-मण्डल का न्यास करके सुवर्ण आदि धातुओं में से किसी एक का बना हुआ कलश पञ्चगव्य, मधु और दूध से भरकर स्थापित करे। उसमें पाँच प्रकार के रत्नों को डालकर चन्दन का लेप लगाकर गले में वस्त्र बाँध दे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, आम्रपल्लव आदि से उसे सुसज्जित करके कार्य प्रारम्भ करे। पहले शरीर के द्वारा सकलीकरण क्रिया सम्पादन करके पूरक प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को ऊपर खींचे, पुनः अपने मन्त्र से परमात्मा से आत्मा की अभिन्नता का ध्यान करते हुए कुम्भक प्राणायाम के द्वारा वायु को शम्भु की आज्ञा से रोक दे ।।१-५।। तत्पश्चात् रेचक प्राणायाम के द्वारा मस्तक-स्थित द्वादश-दल कमल से अग्निकोण के समान चमकती हुई वायु को उस घड़े में छोड़े और उसमें अतिवाहिक शरीर का न्यास करे। तदनन्तर उस विग्रह में उसके गुणों को उसके बोधक कला आदि के तथा पृथ्वी से लेकर ईश्वरपर्यन्त तत्त्व समूह को, दस नाड़ियों, दस प्राणों, तेरह इन्द्रियों तथा उनके अधिदेवों का प्रणव आदि मन्त्रों से प्रत्येक का नाम लेकर उनका न्यास करना चाहिए। उसके बाद कार्य और कारणभाव से

---

१ घ. °तन्यं स्वयो°। २ च. °नासास°। ३ क. ङ. च. तु पूर्व°। ४ ख. ग. °न्यसेत्प्रण°। ङ.°न्यस्य प्र°। ५ घ. °म्। स्त्रग्रवस्त्रम्°। ६ क. ङ. च. चक्रीकृत्य युवस्पृशेत्। ङ. च. वकीकृत्यमुपस्पृशेत्। ७ क. ख. ग. ङ. च. °कृत्यवि°। ८ घ. र्वात्मभि°। ९ क. ङ. च. आज्ञामारोपयेद्धस्तौ रे°। घ. आज्ञया बोध°। १० ख. ग. वामेश्वरं। ११ घ. व्रातं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वकार्यकारणत्वेन मायाकाशनियामिकाः[1] । विद्येशान्प्रेरकाञ्शंभुं व्यापिनं च सुसंवरैः ।।९।।
अङ्गानि च विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्रोधमुद्रया । सुवर्णाद्युद्भवं यद्वा पुरुषं पुरुषानुगम् ।।१०।।
पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत्संस्कृतं ततः । शय्यायां कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिम् ।।११।।
तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् । संनिधानाय होमं च प्रोक्षणं स्पर्शनं जपम् ।।१२।।
सान्निध्यबोधनं[2] सर्वं भागत्रयविभागतः । विधायैवं प्रकृत्यन्ते कुम्भे तं विनिवेशयेत् ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादप्रतिष्ठावर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०१।।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणम्

ईश्वर उवाच

चूलके ध्वजदण्डे च ध्वजे देवकुले तथा । प्रतिष्ठा च यथोद्दिष्टा तथा स्कन्द वदामि ते[3] ।।१।।
(कू[4]) कभागार्धप्रवेशाद्वा यद्वा सर्वार्धवेशनात् । ऐष्टके दारुजः शूलः शैलजे धाम्नि शैलजः ।।२।।

सम्बद्ध माया, कला, नियति, विद्यापति, प्रेरक, व्यापक शिव तथा अङ्ग-देवताओं का संवर-मन्त्रों से न्यास कर रोधमुद्रा से उन्हें वहीं रोक दे। सोने आदि का पुरुष की आकृति पुतला बनाकर उसे पुरुष-तत्त्व से युक्त कर देना चाहिए। फिर पञ्चगव्य तथा कषाय आदि से पहले की भाँति उसका संस्कार करके आसन पर रखकर उमापति रुद्र का ध्यान करते हुए उसमें शिवमन्त्र से व्यापक रूप से ध्यान करे ।।६-११$\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् देवता का सामीप्य प्राप्त करने के लिए हवन, शरीर-शुद्धि, स्पर्श तथा जप करे। फिर आवाहन और जागरण आदि कर्मों को तीन भागों में विभक्त करके प्रकृतिपर्यन्त न्यास का सारा विधान पूर्णकर उस पुरुष को पूर्वोक्त कलश में स्थापित कर दे ।।१२-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रासादप्रतिष्ठाविधि-वर्णन नामक एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ।।१०१।।

अध्याय १०२

ध्वजारोपण-विधि

महेश्वर बोले-हे स्कन्द! अब तुमसे चूलक, ध्वजदण्ड, ध्वज और देवकुल की प्रतिष्ठा जिस प्रकार से बतायी है, उसे मैं बतलाऊँगा। शिखर के आधे भाग में शूल का प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण शूल के आधे भाग का शिखर में प्रवेश कराकर प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जहाँ पर देवालय ईंट का बना हुआ हो उसके ऊपर लकड़ी का बना हुआ शूल होना चाहिए, किन्तु पत्थर से बने हुए देवालय के ऊपर पत्थर का ही शूल होना चाहिए। वैष्णव इत्यादि के

---

१ ख. ग. °यामकाः। २ क. घ. ङ. च. °निध्याबो°। ३ घ. ते। तडागा°। ४ कभागार्धप्रवेशाद्वा…शैलजः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैष्णवादौ च चक्राद्यः[१] कुम्भः स्यान्मूर्तिमानतः । स च त्रिशूलयुक्तस्तु अग्रचूलाभिधो मतः ।।३।।
ईशशूलः समाख्यातो मूर्ध्नि लिङ्गसमन्वितः । बीजपूरकयुक्तो वा शिवशास्त्रेषु तद्विधः ।।४।।
चित्रो ध्वजश्च जङ्घातो[२] यथा जङ्घार्धतो भवेत् । भवेद्वा दण्डमानस्तु यदि वा तद्यदृच्छया ।।५।।
महाध्वजः समाख्यातो यस्तु पीठस्य वेष्टकः । शक्रैर्ग्रहै रसैर्वाऽपि हस्तैर्दण्डस्तु संमितः ।।६।।
उत्तमादिक्रमेणैव विज्ञेयः सूरिभिस्ततः । वंशजः[३] शालजादिर्वा स दण्डः सर्वकामदः ।।७।।
अयमारोप्यमाणस्तु भङ्गमायाति वै यदि । राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा ।।८।।
मन्त्रेण बहुरूपेण पूर्ववच्छान्तिमाचरेत् । द्वारपालादिपूजां च मन्त्राणां तर्पणं तथा ।।९।।
विधाय चूलकं[४] दण्डं स्नापयेदस्त्रमन्त्रतः । अनेनैवोक्तमन्त्रेण ध्वजं संप्रोक्ष्य देशिकः ।।१०।।
मृत्कषायादिभिःस्नानं प्रासादं कारयेत्ततः । विलिप्य[५] रसमाच्छाद्य शय्यायां न्यस्य पूर्ववत् ।।११।।
चूलके[६] लिङ्गवन्न्यासो न[७] च ज्ञानं न च क्रिया । विशेषार्था चतुर्थी च न[८] च कुण्डस्य[९] कल्पना ।।१२।।
दण्डे तथाऽर्थतत्त्वं[१०] च विद्यातत्त्वं द्वितीयकम् । सद्योजातादिवक्त्राणि[११] शिवतत्त्वं पुनर्ध्वजे ।।१३।।
निष्कलं च शिवं तत्र न्यस्याङ्गानि प्रपूजयेत् । चूलके[१२] च ततो मन्त्री सांनिध्ये[१३] संहिताणुभिः ।।१४।।

मन्दिर में जो कलश रखा जाता है वह चक्र से सुशोभित होता है क्योंकि वह विष्णु का अपना चिह्न है। जिस मन्दिर में शिवलिङ्ग की स्थापना रहती है वह अग्रचूर नामक त्रिशूल से युक्त होता है। शिवशास्त्रों में बीजपूरकयुक्त कलश का भी विधान है। चित्रध्वज को मन्दिर के जङ्घा के बराबर अथवा उसके आधे के बराबर होना चाहिए। उसकी लम्बाई दण्ड के परिमाण के बराबर अथवा इच्छानुसार भी हो सकती है ।।१-५।। मन्दिर के पीठ को आवेष्टित करनेवाला ध्वज महाध्वज कहलाता है और वह जिस दण्ड में लगाया जाता है उसकी लम्बाई चौदह, नौ अथवा छह हाथ हुआ करती है। विद्वानों के द्वारा यह दण्ड अपनी लम्बाई के अनुसार क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम माना जाता है। बाँस या साखू आदि का बना हुआ दण्ड सभी कामनाओं को देनेवाला हुआ करता है। यदि दण्ड का आरोपण करने के बाद वह टूट जाय तो राजा अथवा यजमान का अनिष्ट हुआ करता है। इसकी शान्ति के लिए पहले के समान बहुरूपमन्त्र का पाठ करना चाहिए और द्वारपालादि का पूजन तथा मन्त्रों का तर्पण भी करना चाहिए। ध्वज के दण्ड में चूलक बनाकर गुरु को अस्त्र-मन्त्र से प्रोक्षित करे। इसी मन्त्र से आचार्य को ध्वज-दण्ड का भी प्रोक्षण करना चाहिए ।।६-१०।। इसके बाद मिट्टी तथा कसैले पदार्थों से मिले जल से मन्दिर को स्नान करावे। तदुपरान्त चूलक में गन्धादि का लेप करके उस वस्त्र से आच्छादित करे। फिर पूर्ववत् उसे शय्या पर रखकर उसमें लिङ्ग की भाँति न्यास करना चाहिए, किन्तु यहाँ पर ज्ञान और क्रियाशक्ति का न्यास नहीं होता। यहाँ विशेषार्थ बोधिका चतुर्थी का भी विधान नहीं है और न उसके लिए कुण्ड की रचना ही करनी पड़ती है। दण्ड में आत्म-तत्त्व का, विद्यातत्त्व का 'सद्योजात' आदि पाँच मुखों का न्यास करे। ध्वज में शिवतत्त्व का न्यास करे। वहाँ निष्कल शिव का न्यास कर हृदय आदि अङ्गों का पूजन करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ गुरुध्वज

---

१ क. ङ. चक्रादौ। ख. ग. चक्राद्यः। २ चैत्राद्यः। क. जङ्घाता। ख. ग. संगाता नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. °जः साल°। ४ क. ङ. च. चूलकं। ख. धूलकं। ५ क. ङ. च. °प्य च समासाद्य। ६ घ. चूडके। ७ ख. ग. न चाज्ञानं च सत्क्रिया। ८ क. ङ. च. नवचण्ड°। ९ ग. कुम्भस्य। १० क. ङ. च. तथाऽऽत्मत°। घ. तयाऽर्थ°। ११ ख. ग. °तानि चक्राणि। घ. तानि °वक्राणि। १२ क. ङ. च. चूतके। घ. चूडके। १३ क. °निध्येऽङ्गदितात्मभिः। ङ. च.° निध्योङ्गहितात्मभिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होमयेत्प्रतिभागं च ध्वजे तैस्तु फडन्तकैः । अन्यथाऽपि कृतं यच्च ध्वजसंस्कारणं क्वचित् ।।१५।।
अस्त्रयागविधावेवं[1] तत्सर्वमुपदर्शितम् । प्रासादे कारितस्थाने[2] स्रग्वस्त्रादिविभूषिते ।।१६।।
जङ्घा वेदी तदूर्ध्वे तु त्रितत्त्वादि निवेश्य च । होमादिकं विधायाथ शिवं सम्पूज्य पूर्ववत् ।।१७।।
सर्वतत्त्वमयं ध्यात्वा शिवं च व्यापकं न्यसेत् । अनन्तं कालरुद्रं च विभाव्य च पदाम्बुजे ।।१८।।
कूष्माण्डहाटकौ पीठे पातालनरकैः सह । भुवनैर्लोकपालैश्च शतरुद्रादिभिर्वृतम् ।।१९।।
ब्रह्माण्डकमिदं ध्यात्वा जङ्घायां च विभावयेत् । वारितेजोऽनिलव्योमपञ्चाष्टकसमन्वितम् ।।२०।।
सर्वावरणसंज्ञं च [3]बुद्धियोन्यष्टकान्वितम् । योगाष्टकसमायुक्तं नाशावधि गुणत्रयम् ।।२१।।
पटस्थं[4] पुरुषं सिंहं वामं[5] च परिभावयेत् । मञ्जरी वेदिकायां च विद्यादिकचतुष्टयम् ।।२२।।
कण्ठे मायां[6] सरुद्रां च विद्याश्चामलसारके । कलशे चेश्वरं विन्दुं विद्येश्वरसमन्वितम् ।।२३।।
जटाजूटं च तं विद्याच्छूलं चन्द्रार्धरूपकम् । शक्तित्रयं च तत्रैव दण्डे नादं विभाव्य च ।।२४।।
ध्वजे च कुण्डलीशक्तिमिति धाम्नि विभावयेत् । जगत्यां[7] वाऽथ संधाय लिङ्गं[8] पिण्डिकयाऽथ वा ।।२५।।
समुत्थाप्य[9] सुमन्त्रैश्च विन्यस्ते[10] शक्तिपङ्कजे । न्यस्तरत्नादिके तत्र स्वाधारे विनिवेशयेत् ।।२६।।
यजमानो ध्वजे लग्ने[11] बन्धुमित्रादिभिः सह । धामं[12] प्रदक्षिणीकृत्य लभते फलमीहितम् ।।२७।।

तथा ध्वजाग्रभाग में सन्निधीकरण के लिए फडन्त संहिता मन्त्रों से प्रत्येक भाग में होम करे। ध्वज-संस्कार की इससे भिन्न भी विधि है, उसको अस्त्रयाग-विधि में बताया जा चुका है ।।१०-१५$\frac{1}{2}$।। मन्दिर को नहलाकर पुष्पहार और वस्त्र आदि से अलंकृत कर जङ्घा वेदी के ऊपरी भाग में त्रितत्त्व आदि का न्यास, होम आदि का विधान कर शिव का पूर्ववत् पूजन करे। मन्दिर को सभी देवताओं के तत्त्व से व्याप्त समझना चाहिए और उसमें सर्वव्यापक शिव का न्यास करना चाहिए। मन्दिर के पाद (अथवा आधार) में अनन्त और काल-रुद्र की भावना करनी चाहिए। पीठ में कूष्माण्ड हाटक तथा पाताल, नरक, भुवन और लोकपाल तथा शतरुद्रादि से युक्त ब्रह्माण्ड की भावना मन्दिर की जङ्घा में करनी चाहिए। यहीं पर जल, तेज, वायु, आकाश, पञ्चाष्टक, सर्वावरण संज्ञक, बुद्धियोग्यष्टक, योगाष्टक, प्रलयपर्यन्त रहनेवाले त्रिगुण, पटस्थ पुरुष और वाम सिंह आदि की भावना करे ।।१६-२१$\frac{1}{2}$।। मञ्जरी वेदिका के ऊपर विद्या आदि चार तत्त्वों का, कण्ठ में रुद्र के सहित माया की और अमलसारक के ऊपर विद्याओं की भावना करनी चाहिए। कलश के ऊपर विन्दु, जटाजूट, त्रिशूल और चन्द्रार्ध की कल्पना करनी चाहिए और दण्ड में नाद की कल्पना करनी चाहिए। ध्वज में कुण्डली शक्ति की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार मन्दिर के विभिन्न भागों तथा देवप्रतिमा को उपर्युक्त देवताओं से व्याप्त समझना चाहिए। मन्दिर के नीचे अथवा पीठिका की मिट्टी से लिङ्ग का निर्माण करना चाहिए। इस समय सुमन्त्रों के द्वारा रत्नादिकों से पूरित शक्तिपङ्कज में लिङ्ग का विनिवेश करना चाहिए। ध्वज के लग जाने पर यजमान बन्धु और मित्रादि के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करके अभीष्ट फल की

---

१ ख. ग. °यागं विधायैवं। २ घ. °रिते स्था°। ३ ग. च. वृद्धि यो°। घ. च. वृद्धयो°। ४ ङ. च. पुटस्थं। ५ क. ङ. च. रागं। ६ क. ङ. च. मायाधवक्रं च। ७ ख. °त्या चाथ। ८ क. ङ. च. लिङ्गपि°। ९ ख. ग. समुत्थाय। १० ख. ग. °न्यसेच्छक्ति°। ११ क. ख. ग. ङ. च. लग्नौ। १२ क. ङ. च. वाम। ख. ग. वामे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुः[1] पाशुपतं ध्यायन्स्थिरमन्त्राधिपैर्युतम्[2]। अधिपाञ्शस्त्रयुक्तांश्च रक्षणाय निबोधयेत् ।।२८।।
ऊनादिदोषशान्त्यर्थं हुत्वा दत्त्वा च दिग्बलिम्। गुरवे दक्षिणां दद्याद्यजमानो दिवं व्रजेत् ।।२९।।
प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावन्तः परमाणवः। तावद्युगसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम् ।।३०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्वजारोपणादिविधिकथनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०२।।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधिः

ईश्वर उवाच

जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारं विधिना वदे। लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा ।।१।।
सम्पुटं सम्पुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकम्। इत्यादिदुष्टलिङ्गानां त्याज्या[3] पिण्डी तथा वृषः ।।२।।
चालितं चलितं[4] निम्नमत्यर्थं विषमस्थितम्। दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थं पतितं तथा ।।३।।
एवं विधं च संस्थाप्य निर्व्रणं च भवेद्यदि[5]। नादेयेन प्रवाहेण तदपाक्रियते यदि ।।४।।

प्राप्ति कर लेता है। गुरु को मन्त्रादिकों से युक्त पाशुपत-मन्त्र का ध्यान करते हुए अपनी रक्षा के लिए शस्त्रयुक्त लोकपालों को सम्बोधित करना चाहिए ।।२२-२८।। इस कार्य में न्यूनत्व आदि दोषों के परिहार के लिए आहुति और दिशाओं में बलि देकर गुरु को दक्षिणा देनेवाला यजमान स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसका अनुष्ठान करनेवाला हजारों युगों तक उतने ही फलों को प्राप्त करता है जितने की प्रतिमा लिङ्ग अथवा वेदी में परमाणु हुआ करते हैं ।।२९-३०।।

श्री अग्निमहापुराण में ध्वजारोपणादि विधि-वर्णन नामक एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ।।१०२।।

अध्याय १०३

जीर्णोद्धारविधि

शिव बोले–अब मैं जीर्ण आदि शिवलिङ्गों के उद्धार करने की विधि बतला रहा हूँ। जो शिवलिङ्ग (शास्त्रोचित) लक्षणों से रहित हो जाय या टूट जाय या मोटा हो जाय या वज्रहत हो जाय, सम्पुटित हो जाय या विकृताङ्ग हो जाय तो उसे त्याग देना चाहिए और ऐसी स्थिति में उसकी पिण्डिका तथा नान्दी को भी हटा देना चाहिए। यदि शिवलिङ्ग विचलित कर दिया गया हो या स्वयं विचलित हो गया हो या अत्यन्त झुक गया हो या विषम प्रकार से स्थित हो गया हो या प्रतिकूल दिशा में हो गया हो या गिरा दिया गया हो या स्वयं गिर पड़ा हो या मध्यस्थित हो गया हो तो उसे पुनः ठीक से स्थापित कर देना चाहिए। यदि शिवलिङ्ग में उपर्युक्त कोई दोष नहीं हो, नदी की धारा से मन्दिर के कट जाने की

---

१ ख. ग. गुरुं। २ ख. °न्त्रादिभिर्यू°। ३ घ. योज्या। ४ घ. तं लिङ्गम°। ङ. °तं चैवम°। ५ घ. °दि। नद्यादिक प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्य विधिदृष्टेन कर्मणा । सुस्थितं[1] चास्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् ।।५।।
शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् । पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ।।६।।
याम्ये मण्डपमीशे च[2] प्रत्यग्द्वारैकतोरणम् । विधाय द्वारपूजादि स्थण्डिले[3] मन्त्रपूजनम् ।।७।।
दिग्बलिं च बहिर्गत्वा समाचम्य स्वयं गुरुः । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शंभुं विज्ञापयेत्ततः ।।८।।
दुष्टं लिङ्गमिदं शम्भो शान्तिरुद्धरणस्य चेत् । रुचिस्तवास्ति[4] विधिना अधितिष्ठ[5] च मां शिव ।।९।।
एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् । मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतम् ।।१०।।
ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेत्स्थण्डिले तथा । [6]ॐ व्यापकेश्वरायेति[7] तत्त्वेनात्यन्तवादिना ।।११।।
ॐ व्यापकेश्वराय[8] हृदयायः नमः । ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे नमः। इत्याद्याङ्गमन्त्राः[9] ।।१२।।
ततस्तत्राऽऽश्रितं[10] तत्त्वं [11]श्रापयेदस्त्रमन्त्रतः[12] । सत्त्वः कोऽपीह यः[13] कश्चिल्लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ।।१३।।
लिङ्गं त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु । विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः[14] शम्भुरत्र भविष्यति ।।१४।।
सहस्रं प्रतिभागे (गं) च ततः पाशुपताणुना । हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः ।।१५।।
दत्त्वार्घं (र्घ्यं) च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्ततः[15] । [16]अष्टमूर्तीश्वराल्लिङ्गपिण्डिकासंस्थितान्गुरुः ।।१६।।

सम्भावना दिखायी पड़ती हो तो उसे शास्त्रोक्त विधि से अन्यत्र स्थापित कर देना चाहिए। सुस्थित तथा दुःस्थित शिवलिङ्ग को चलायमान नहीं करना चाहिए ।।१-५।। सौ बार हवन करके शिवलिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए और हजार बार हवन करके उसे (पूर्वोक्त स्थिति में स्थानान्तरित करने के लिए) उखाड़ना चाहिए। जीर्ण लिङ्ग की भी यदि पूजा होती रहती है तो वह 'सुस्थित' है। यदि पूजा नहीं होती है तो नया भी 'दुःस्थित' है। गुरु दक्षिण दिशा में मण्डप बनावे। ईशानकोण में पश्चिम द्वारवाला एक फाटक लगा दे। द्वारपूजा आदि करके स्थण्डिल में मन्त्रपूजन-तर्पण करके वास्तु-देवता की पूर्ववत् पूजा करे तथा बाहर जाकर दिशाओं को बलि समर्पित कर दे। तदनन्तर आचमन करके ब्राह्मणों को भोजन खिलाकर शिव से निवेदन करे कि-"हे शम्भो! यह शिवलिङ्ग दूषित हो गया है इसलिए इसका उद्धार तथा इसकी शान्ति करने में यदि आपकी रुचि हो तो आप (कुछ देर के लिए) मुझमें विराजिये।" इस प्रकार निवेदन कर मधु, घी, दूध तथा दूब से मूल-मन्त्र के द्वारा एक सौ आठ बार शान्ति होम करे ।।६-१०।। तदनन्तर शिवलिङ्ग को स्थापित करके स्थण्डिल पर 'ॐ व्यापकेश्वराय शिवाय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करे। अङ्गपूजा और अङ्गन्यास के मन्त्र इस प्रकार हैं-'ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः', ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा' इत्यादि। तत्पश्चात् लिङ्गाश्रित तत्त्व को अस्त्र-मन्त्र के द्वारा यह सुनाये कि-'जो कोई जीव इस लिङ्ग के आश्रय में रहता हो, वह शिव की आज्ञा से उसे छोड़कर जहाँ इच्छा हो चला जाय, क्योंकि विद्या और विद्येश्वरों के साथ शिव यहाँ वास करेंगे' ।।११-१४।। तदनन्तर प्रत्येक भाग में पाशुपत-मन्त्र से एक-एक सहस्र बार हवन करके उसके ऊपर शान्ति जल छिड़ककर कुशों से उसका स्पर्श करे। तत्पश्चात् तत्त्वों और तत्त्वाधिपों को विलोम भाव से अर्घ्य

---

१ क. च. °तं घटितं। घ. °तं दुःस्थितं। ङ. °तं दूषितं। २ घ. वा। ३ क. च. °लेयं प्रपू°। ख. ग. °लेशप्रपू°। ङ. ले यन्त्र°। ४ घ. °वादिवि°। ५ घ. °ष्ठस्व मां। ६ ॐ व्यापकेश्वरायेति...वादिना क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ घ. °ति नात्यन्तं शिववा°। ८ घ. °पकं हृदयेश्वराय न°। ९ ख. ग. इत्यभ्यङ्ग°। १० ख. ग. °तं मन्त्रं धारये°। ११ घ. °मस्ततः। १२ ख. ग. °तः। मत्तः कोऽ°। १३ क. ग. ङ. च. यः कोऽपि लिङ्ग°। १४ ख. घ. ङ. च. °क्तः स भवोऽत्र। १५ ख. ग. °तः। मूर्तिम्°। १६ ख. ग. °लिङ्गे पि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्थया तथा । रज्ज्वा बद्ध्वा तथा नीत्वा शिवमन्त्रं गृणञ्जनैः ।।१७।।
तज्जले निक्षिपेन्मन्त्री पुष्ट्यर्थं जुहुयाच्छतम् । तृप्तये दिक्पतीनां च वास्तुशुद्ध्यै[1] शतं शतम् ।।१८।।
रक्षां विधाय तद्धाम्नि[2] महापाशुपतास्त्रतः । लिङ्गमन्यत्ततस्तत्र विधिवत्स्थापयेद्गुरुः ।।१९।।
असुरैर्मुनिभिर्गोत्रैस्तन्त्रविद्भिः[3] प्रतिष्ठितम् । जीर्णं वाऽप्यथ वा भग्नं विधिनाऽपि न चालयेत् ।।२०।।
एष एव विधिः कार्यो जीर्णधामसमुद्धृतौ । खड्गे[4] मन्त्रगणं[5] न्यस्य[6] कारयेन्मन्दिरान्तरम् ।।२१।।
संकोचे मरणं प्रोक्तं विस्तारे तु धनक्षयः । तद्द्रव्यं श्रेष्ठव्यं वा तत्कार्यं तत्प्रमाणकम् ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जीर्णोद्धारविधिकथनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०३।।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादलक्षणम्

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये प्रासादसामान्यलक्षणं[7] ते शिखिध्वज । चतुर्भागीकृते क्षेत्रे भित्तेर्भागेन विस्तरात् ।।१।।
अद्रिभागेन[8] (ण) गर्भः स्यात् पिण्डिका पादविस्तरात् । पञ्चभागीकृते[9] चापि मध्यभागे तु पिण्डिका ।।२।।

देकर लिङ्ग पिण्डिका पर अवस्थित अष्टमूर्तीश्वरों का विसर्जन करके स्वर्णपाश तथा नान्दी के कन्धे पर रखी हुई रस्सी से उन्हें बाँधकर कतिपय व्यक्तियों के साथ शिवमन्त्रों का उच्चारण करते हुए जल में फेंक दे। उसके बाद यजमान की पुष्टि, दिक्पतियों की तृप्ति और वास्तु की शुद्धि के लिए सौ-सौ बार हवन करने के बाद महापाशुपत मन्त्र से मन्दिर की रक्षा करके दूसरे शिवलिङ्ग को विधिवत् स्थापित कर दे। किन्तु असुरों, मुनियों और महान् तान्त्रिकों के द्वारा स्थापित किया हुआ शिवलिङ्ग चाहे वह जीर्ण हो या भग्न, उसे विचलित नहीं करना चाहिए ।।१५-२०।। यही विधि जीर्ण मन्दिर के उद्धार में भी समझनी चाहिए। खड्ग में मन्त्र समूह का न्यास करके दूसरे मन्दिर की रचना करनी चाहिए।। परन्तु पूर्व मन्दिर की अपेक्षा नया मन्दिर संकीर्ण या विस्तृत नहीं होना चाहिए, क्योंकि संकीर्ण करने से जीर्णोद्धार करनेवाले की मृत्यु होगी तथा विस्तार करने से उसके धन का नाश होगा। अतः प्राचीन मन्दिर के द्रव्य को लेकर अथवा और कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर पहले के मन्दिर के बराबर ही उस स्थान पर नवीन मन्दिर का निर्माण करना चाहिए ।।२१-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में जीर्णोद्धार-विधिवर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ।।१०३।।

अध्याय १०४

प्रासाद-लक्षण

महादेव बोले-हे शिखिध्वज (मयूरचिह्नित पताकावाले स्कन्द!) अब मैं तुमसे प्रासाद का सामान्य लक्षण बतलाऊँगा। सर्वप्रथम एक वर्गाकार भूभाग को चार आयताकार भागों में विभक्त कर लेना चाहिए। दीवारों की चौड़ाई इस प्रकार के वर्ग के क्षेत्रफल के चतुर्थांश के बराबर होनी चाहिए और उसमें गर्भ होना चाहिए, उसके आठवें भाग के बराबर, जबकि पिण्डिका का विस्तार केवल एक पाद होना चाहिए। पिण्डिका का आकार सम्पूर्ण वर्ग के पञ्चमांश

---

१ घ. °शुद्धौ श°। २ ख. ग. तन्नाम्नि। ३ ख. ग. °भिर्देवैस्तत्त्वविं°। ४ क. ङ. च. खड्गम°। ५ ख. ग. मन्त्रागतं न्य°। ६ क. ङ. च. व्याप्य। ७ ख. ग. °दनानस्य ल°। ८ अद्रिभागेन…पादविस्तरात् ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। ९ घ. °ते क्षेत्रेऽन्तर्भाग।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुषिरं भागविस्तीर्णं भित्तयो भागविस्तरात् । भागौ द्वौ मध्यमे[1] गर्भे ज्येष्ठे भागद्वयेन तु ।।३।।
त्रिभिस्तु [2]कन्यासो[3](?)गर्भः शेषभित्तिरिति क्वचित् । षोढा भक्तेऽथ वा क्षेत्रे भित्तिर्भागैकविस्तरात् ।।४।।
गर्भो भागेन विस्तीर्णो भागद्वयेन पिण्डिका । विस्तारादिद्विगुणो वाऽपि सपादद्विगुणोऽपि वा ।।५।।
अर्धार्धद्विगुणो[4] वाऽपि त्रिगुणः क्वचिदुच्छ्रयः । जगती विस्तरार्धेन त्रिभागेन (ण) क्वचिद्भवेत्[5] ।।६।।
नेभिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः । परिधिस्त्र्यंशको मध्यो रथकांस्तत्र कारयेत् ।।७।।
चामुण्डभैरवं तेषु नाट्येशं च निवेशयेत् । प्रासादार्धेन देवानामष्टौ वा चतुरोऽपि वा ।।८।।
प्रदक्षिणावहाः[6] कु(हान्कु)र्यात्प्रासादादिषु[7] वानराः[8](न्) । आदित्याः पूर्ववत्स्थाप्याः स्कन्दोऽग्निर्वायुगोचरे ।।९।।
एवं यमादयो न्यस्याः स्वस्यां दिशि स्थिताः । चतुर्धा शिखरं कृत्वा शुकनासा द्विभागिकाः ।।१०।।
तृतीये वेदिका[9] त्वग्ने सकण्ठोऽमलसारकः[10] । वैराजः पुष्पकश्चान्यः कैलासो मणिकस्तया ।।११।।
त्रिविष्टपञ्च[11] पञ्चैव मेरुमूर्धनि संस्थितः । चतुरस्त्रस्तु तत्राऽऽद्यो द्वितीयोऽपि तदायतः ।।१२।।
वृत्तो वृत्तायतश्चान्यो ह्यष्टास्त्रश्चापि पञ्चमः । पुकैको नवधा भेदैश्त्वारिंशच्च पञ्च च ।।१३।।

के बराबर ही हो सकता है। दीवालों का विस्तार भी इतना ही होना चाहिए जिसमें छिद्रों का होना भी आवश्यक है। सम्पूर्ण आग्रताकार भू-खण्ड के दो भागों को गर्भ के बीच में होना चाहिए। गर्भ के ऊपर बनी हुई छत के द्वारा सम्पूर्ण भू-भाग के तीन चौथाई भागों को आच्छादित होना चाहिए और शेष भाग को दीवारों के द्वारा आवेष्टित रहना चाहिए। जहाँ पर मन्दिर का निर्माण-स्थल छह समान आयताकार खण्डों में विभक्त हो वहाँ पर दीवालों की चौड़ाई एक खण्ड के बराबर होनी चाहिए और उतना ही चौड़ा गर्भ भी होना चाहिए। पीठिका की चौड़ाई ऐसे-ऐसे दो खण्डों के बराबर होनी चाहिए। मन्दिर की ऊँचाई पीठिका की चौड़ाई से दुगुनी, उससे भी अधिक अथवा उससे तीन गुनी हो सकती है। कहीं-कहीं पर मन्दिरों की ऊँचाई उसकी चौड़ाई से सवा दो गुनी भी होती है अथवा वह प्रासाद अपने निर्माण-स्थल के क्षेत्रफल के आधे अथवा तिहाई ऊँचा भी हो सकता है। मन्दिर की अन्तरिक्ष परिधि भूभाग के विस्तार से चतुर्थांश कम होती है और बाह्य परिधि सम्पूर्ण क्षेत्रफल के तृतीयांश के बराबर होती है, जिसमें द्वार बने हुए रहते हैं। मन्दिर के मध्य में भैरव, चामुण्ड, नटराज तथा चार अथवा आठ अन्य देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं ।।१-८।। मन्दिर के चारों ओर एक प्रदक्षिणा-मार्ग का भी निर्माण होना चाहिए। मन्दिर के पूर्व की ओर आदित्यों, पश्चिमोत्तर की ओर स्कन्द और अग्नि तथा यमराज और अन्य देवताओं की स्थापना तत्तद् देवताओं की दिशा में करनी चाहिए। शिखर के चार भाग करके और शुकनास के दो भाग करके उपर्युक्त देवताओं की स्थापना तृतीय भाग में करनी चाहिए। वेदी अग्नि देवता से सम्बद्ध होती है, जिसके ऊपर कण्ठ से युक्त अमलसारक की स्थापना होनी चाहिए। पाँच प्रकार के मन्दिर होते हैं—वैराज, पुष्पक, कैलास, मणिक तथा त्रिविष्टप। इनमें से पहले प्रकार का मन्दिर चौकोर और दूसरे प्रकार का भी वैसे ही होता है, तीसरे प्रकार का मन्दिर गोलाकार, चौथे प्रकार का मन्दिर वृत्ताकार तथा पाँचवें प्रकार का मन्दिर अष्टभुजाकार होता है। उपर्युक्त पाँचों प्रकार के मन्दिरों के प्रकार की कुल संख्या पैंतालीस हो जाती है ।।९-१३।।

---

१ क. ङ. च. °ध्ययो गर्भोह्येष भा°। ख. ग. °ध्यमो गर्भोज्ये°। २ घ. कन्यसा ग°। ३ क. ङ. च. °न्यासा ग°। ४ क. ङ. च. अध्यर्ध°। ५ ख. ग. °चित्क्वचित्। ६ ख. ग. घ. °क्षिणां बहिः कु°। ७ ख. °दिक्षु वा°। ८ घ. वा न बा। आ°। ९ क. ङ. च. ° बिप्रे स°। ख. ग. का त्वग्रे स°। १० ख. °मरसा°। ११ क. घ. ङ. च. ष्टपं च प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रासादः प्रथमो मेरुर्द्वितीयो मन्दरस्तथा। विमानं च तथा भद्रः सर्वतोभद्र एव च ।।१४।।
चरुको नन्दको[1] नन्दिर्वर्धमानस्तथाऽपरः। श्रीवत्सश्चेति वैराजान्ववाये च समुत्थिताः[2] ।।१५।।
वलभी गृहराजश्च शालागृहं च मन्दिरम्। विशालश्चमसो[3] ब्रह्ममन्दिरम् भुवनं तथा ।।१६।।
प्रभवः शिविका वेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः। वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मक एव च[4] ।।१७।।
वर्धनी वान्य उष्णीषः शङ्खश्च कलशस्तथा। खवृक्षश्च तथाऽप्येते वृत्ताः कैलाससंभवाः ।।१८।।
गजोऽथ वृषभो हंसो गरुत्मानृक्षनायकः। भूषणो भूधरश्चान्यः श्रीजयः पृथिवीधराः ।।१९।।
वृत्तायतात्समुद्भूता नवैते मणिकाह्वयात्। वज्रं चक्रं तथा चान्यत्स्वस्तिकं [5]वज्रस्वस्तिकम्[6] ।।२०।।
चित्रं[7] स्वस्तिकखड्गं च गदा श्रीकण्ठ एव च। विजयो नामतश्चैते त्रिविष्टपसमुद्भवाः ।।२१।।
नगराणामिमाः संज्ञा लाटादीनामिमास्तथा। ग्रीवार्धेनोन्नतं चूलं[8] पृथुलं[9] स्वत्रिभागतः ।।२२।
दशधा वेदिकां कृत्वा पञ्चभिः स्कन्धविस्तरः। त्रिभिः कण्ठं तु कर्त्तव्यं चतुर्भिस्तु प्रचण्डकम्[10] ।।२३।।
दिक्षु द्वाराणि कार्याणि न विदिक्षु कदाचन। पिण्डिका कोणविस्तीर्णा मध्यमान्ता ह्युदाहृता ।।२४।।
क्वचित्पञ्चमभागेन महतां[11] गर्भपादतः। उच्छ्रायो[12] द्विगुणस्तेषामन्यथा वा निगद्यते ।।२५।।
षष्ट्याऽधिकात्समारभ्य अङ्गुलानां शतादिह। उत्तमान्यपि चत्वारि द्वाराणि दशहानितः ।।२६।।

वैराज वर्ग के नव मन्दिरों को मरु, मन्दर, विमानभद्र, सर्वतोभद्र, चरुक, नन्दिक, नन्दि, वर्धमान और श्रीवत्स कहा जाता है। पुष्पक वर्ग के मन्दिरों में जिनकी गणना होती है, उनके नाम हैं–वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशाल, ब्रह्ममन्दिर, भुवन, प्रभव और शिविकावेश आदि। वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, वर्धनी, उष्णीष, शङ्ख, कलश और खवृक्ष कैलास वर्ग के वृत्ताकार नौ मन्दिर हैं। मणिक वर्ग के मन्दिरों के भेद हैं–गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, नृक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय तथा पृथ्वीधर इत्यादि। ये वृत्तायत वर्ग आकारवाले होते हैं ।।१४–१९$\frac{१}{२}$।। त्रिविष्टप वर्ग से उत्पन्न होनेवाले नव प्रकार के मन्दिरों के नाम हैं–वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक, चित्र, स्वस्तिकखड्ग, गदा, श्रीकण्ठ, विजय। इसी प्रकार लाट इत्यादि नगरों के नाम भी हुआ करते हैं। मन्दिर के चूल को उसकी ग्रीवा की आधी ऊँचाई के बराबर ऊँचा और उसके तिहाई मोटा होना चाहिए। ऊपर की वेदिका को दस भागों में विभक्त कर, उनके तीन भागों के बराबर कण्ठ और चार भागों के बराबर प्रचण्डक का निर्माण करना चाहिए। द्वारों का निर्माण दिशाओं की ओर ही होना चाहिए, विदिशाओं की ओर नहीं। पिण्डिका को कोणों तक विस्तीर्ण तथा गर्भान्त तक होना चाहिए। कुछ पिण्डिकाएँ ऐसी भी बनायी जाती हैं जो कोण से गर्भ के पञ्चम भाग तक विस्तृत होती हैं और उनकी ऊँचाई उनकी लम्बाई की दूनी होती है ।।२०–२५।। पिण्डिका की लम्बाई एक सौ छह अंगुल होनी चाहिए। उसके चारों ओर उत्तमादि द्वारों के निर्माण के लिए दस-दस अंगुल छोड़ देना चाहिए। मध्यम और लघु वर्ग के द्वारों

---

१ ख. ग. नन्दनो। घ. नन्दिको। २ ख° ताः। बलभीगृह°। ३ घ. ङ.° °श्चसमो ब्र°। ४ क. ङ. च. च.। पक्वाली वान्यदुष्टाश्चः खड्गाश्च क°। ख. ग. च. सकुली बाल्यवक्रीशः शृंगाक्षः क°। ५ ख. ग.° °ग्रहस्तक°। ६ ख. ग. °म्। चक्रस्व°। ७ चित्रं°°°एव च नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ८ क. ङ. च. चूर्ण। ९ क. च. °लं च त्रि°। घ. °लं च विभा°। १० ख. ग. तदण्डकम्। ११ ख. महती। १२ घ. उच्छ्राया।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रीण्येव मध्यमानि स्युस्त्रीण्येव कन्यसान्यधः[१] । उच्छ्रयार्धेन विस्तारो ह्युच्छ्रायो[२] ह्यधिकस्त्रिधा[३] ।।२७।।
चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि दशभिर्वाऽङ्गुलैः[४] शुभः । उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णाः[५] शाखास्तद्वदुदुम्बरौ (रे)[६] ।।२८।।
विस्तारार्धेन बाहुल्यं सर्वेषामेव कीर्तितम्[७] । त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्टदम्[८] ।।२९।।
अधः शाखाचतुर्थांशे प्रतीहारौ निवेशयेत् । मिथुनैः पादवर्णाभिः शाखाशेषं विभूषयेत् ।।३०।।
स्तम्भविद्धे भृत्यता स्याद्वृक्षविद्धे त्वभूतिता । कूपविद्धे भयं द्वारे क्षेत्रविद्धे धनक्षयः ।।३१।।
प्रासादगृहशालादिमार्गविद्धेषु[९] बन्धनम् । सभाविद्धेन[१०] दारिद्र्यं[११] वर्णविद्धै निराकृतिः ।।३२।।
उलूखलेन दारिद्र्यं शिलाविद्धेन[१२] शत्रुता । छायाविद्धेन दारिद्र्यं वेधदोषो न जायते ।।३३।।
छेदादुत्पाटनाद्वाऽपि तथा प्राकारलक्षणात् । सीमाया द्विगुणत्यागाद्वेधदोषो न जायते ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यप्रासादलक्षणकथनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।।१०४।।

की संख्या तीन-तीन होती है। पिण्डिका की चौड़ाई उसकी ऊँचाई की आधी होती है या उसकी ऊँचाई के तृतीय भाग से अधिक होनी चाहिए। द्वार के ऊपर बनी हुई सुन्दर आकृतियाँ चार, आठ, बारह अंगुल की होनी चाहिए। उनकी ऊँचाई द्वारों की चौड़ाई के बराबर ही होनी चाहिए। इस प्रकार के दो, पाँच, सात अथवा नव शाखाओं से द्वार को विभूषित करना चाहिए। द्वारों के ऊपर उनके नीचे की ओर चतुर्थांश में द्वारपालों का चित्रण होना चाहिए और द्वार पर बनी हुई शाखाओं के अन्त में दो प्रतिहारियों को चित्रित करना चाहिए ।।२६-३०।। जिस मन्दिर के स्तम्भ में वेध उत्पन्न हो जाता है, उसका निर्माता सदा दास बना रहता है। जो स्तम्भ भूमि से वृक्ष की उत्पत्ति में बाधा पहुँचाता है, वह निर्धनता को उत्पन्न करनेवाला होता है। जो मन्दिर कुएँ का अवरोध करता है वह भय को उत्पन्न कराता है जबकि अपने क्षेत्र का अवरोध करनेवाला मन्दिर धन का नाश करनेवाला होता है। प्रासाद तथा गृह आदि के भागों का अवरोध होने से उसका निर्माता बन्धन में पड़ता है और सभा में अवरोध उत्पन्न होने पर दारिद्र्य की प्राप्ति होती है। किसी शिला अथवा उलूखल से अवरुद्ध मन्दिर अथवा वह जो किसी दूसरे मन्दिर की छाया में आता हो वह शत्रुता, दारिद्र्य, अपमान को लानेवाला होता है। वेध का दोष कभी नष्ट नहीं होता है और वृक्ष को काटकर अथवा शिला को गिराकर भी उसको दूर नहीं किया जा सकता है और मन्दिर की सीमा के दुगुने क्षेत्र का दान देने से भी वेध-दोष दूर नहीं होता है ।।३१-३४।।

श्री अग्निमहापुराण में सामान्य प्रासादलक्षण-वर्णन नामक एक सौ चारवाँ अध्याय समाप्त ।।१०४।।

---

१ क. ङ. च. कलशान्य°। ख. ग. कलशान्य°। २ घ. °च्छ्रायोऽभ्यधि। ३ ख. ग. °कस्तथा। च°। ४ क. ङ. च. °ङ्गुलैस्ततः। उ°। ५ घ. °स्तीर्णा विशा°। ६ घ. °स्तदुदुम्बरे। वि°। ७ घ. भ°। द्विप°। ८ क. ङ. च. °ष्टहम्। ९ ख. ग. °र्गवेधैश्च ब°। १० ख. ग. °भावेधेन। ११ ख. ग. द्र्यं चुल्लीवि°। १२ क. ङ. च. °विद्धेऽश्ममूत्रता। ख. °विद्वेऽन्यमूत्रता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

गृहादिवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच

नगरग्रामदुर्गादौ[१] गृहप्रासादवृद्धये । एकाशीतिपदै[२] र्वास्तुं[३] पूजयेत्सिद्धये ध्रुवम् ।।१।।
प्रागास्या दशधा नाड्यस्तासां नामानि च ब्रुवे । शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ।।२।।
सती वसुमती नन्दा सुभद्राऽथ मनोरमा । उत्तरस्या [४]दशान्याश्च एकाशीत्यङ्घ्रिकारिका[५] ।।३।।
हरिणी सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया । जया ज्वाला विशोका च स्मृतास्ताः[६] सूत्रपाततः ।।४।।
ईशाद्यष्टकं दिक्षु यजेदीशं धनञ्जयम् । शक्रमर्कं तथा सत्यं भृत्यं[७] व्योम च पूर्वतः ।।५।।
हव्यवाहं च पूषाणं वितथं भौममेव च । कृतान्तमथ गन्धर्वं भृङ्गं मृगं च दक्षिणे ।।६।।
पितरं द्वारपालं च सुग्रीवं पुष्पदन्तकम् । वरुणं दैत्यशेषौ च यक्ष्माणं पश्चिमे सदा ।।७।।
रोगाहिमुख्यो भल्लाटः सौभाग्यमदितिर्दितिः । [८]नवान्तः[९] पदगो ब्रह्मा पूज्योऽर्धे च षडङ्घ्रिगाः ।।८।।
ब्रह्मेशान्तरकोष्ठस्थमायाख्यं[१०] तु पदद्वये । तदधश्चापवत्साख्यं केन्द्रान्तरेषु षट्पदे ।।९।।

अध्याय १०५

गृह आदि वास्तु-विधि-वर्णन

महेश्वर बोले–नगर, ग्राम तथा दुर्ग आदि में गृह तथा महल की वृद्धि के निमित्त इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त वास्तुदेव की आकृति का पूजन करना चाहिए। उस वास्तुदेव की दशपूर्वाभिमुखी नाड़ियों के नाम मैं बताता हूँ जो ये हैं–शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, वसुमती, नन्दा, सुभद्रा और मनोरमा। इसके अतिरिक्त दस अन्य नाड़ियाँ भी हैं, जो इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त तथा उत्तराभिमुखी हैं। इनके नाम हैं–हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, ज्वाला, विशोका और स्मृता ।।१-४।। ईश आदि आठ-आठ देवताओं का सब दिशाओं में पूजन करना चाहिए। ईश, धनञ्जय, शक्र, अर्क, सत्य, भृश तथा व्योम की पूजा पूर्व दिशा में करनी चाहिए। हव्यवाह, पूषा, वितथ, भौम, कृतान्त, गन्धर्व, भृङ्ग तथा मृग की पूजा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए। रोग, अहि (नाग), मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल (ऋषि), अदिति तथा दिति की उत्तर दिशा के पदों में पूजा होनी चाहिए और बीच के नव प्रकोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए। शेष अड़तालीस पदों में से आधे में अर्थात् चौबीस पदों में वे देवता पूजनीय हैं, अकेले छह पदों में अधिकार रखते हैं। (प्रासाद के चारों ओर एक-एक करके चारों देवता षट्पदगामी हैं–जैसे पूर्व में मरीचि (या अर्यमा), दक्षिण में विवस्वान्, पश्चिम में मित्र तथा उत्तर में पृथ्वीधर।) ब्रह्मा जी तथा ईश के मध्यवर्ती दो पदों में 'आप' की तथा उससे नीचेवाले दो पदों में 'आपवत्स' की पूजा करनी

---

१ घ. ङ. च. °र्गाद्या गृ°। २ घ. °दैर्वस्तु। ३ क. ङ. च. °र्वास्तु पू°। ४ क. घ. ङ. च.° ग द्वाद°। ५ क. ङ. च. °शीत्यक्षिकाऽधिका। ६ घ. तास्तत्सूत्र°। ७ घ. भृशं। ८ क. ङ. च. °वान्तप°। ९ ख. ग. °न्तः पाद°। १० घ.° याख्यां तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मरीचिकाऽग्निमध्ये तु सविता द्विपदस्थितः । सावित्री तदधो द्व्यंशे विवस्वान्षट्पदे त्वधः ।।१०।।
पितृब्रह्मान्तरे विष्णुमिन्दुमिन्द्रं त्वधो जयम् । वरुणब्रह्मणोर्मध्ये मित्राख्यं षट्पदे यजेत् ।।११।।
रोगब्रह्मान्तरे नित्यं[1] विष्णुं च रुद्रदासकम् । तदधो द्व्यङ्घ्रिगं यक्ष्म[2] षट्सौम्येषु धराधरम्[3] ।।१२।।
चरकीं[4] स्कन्दविकटं विदारीं पूतनां क्रमात् । जम्भं[5] पापं पिलिपिच्छं यजेदीशादिबाह्यतः ।।१३।।
एकाशीतिपदं वेश्म मण्डपश्च शताङ्घ्रिकः । पूर्ववद्देवताः पूज्या ब्रह्मा[6] तु षोडशांशके ।।१४।।
मरीचिश्च विवश्वांश्च मित्रं पृथ्वीधरस्तथा । दशकोष्ठस्थिता दिक्षु त्वन्ये चेशादिकोणगाः ।।१५।।
दैत्यमाता[7] तथेशाग्नी मृगाख्यौ पितरौ तथा । [8]पापयक्ष्मानिलौ देवाः सर्वे सार्धाङ्घ्रिके[9] स्थिताः[10] ।।१६।।
य[11](प?)त्याद्योकः[12]प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण क्रमाद्गुह[13] । सदिग्विंशत्करैर्दैर्घ्यादष्टाविंशतिविस्तरात् ।।१७।।
[14]शिवाश्रयः[15] शिवाख्यश्च[16] रुद्रहीनः सदोभयोः । रुद्रद्विगुणितानाहाः पृथुष्णोभिर्विना (?) त्रिभिः ।।१८।।
स्याद्गृहद्विगुणं दैर्घ्यात्तिथिभिश्चैव[17] विस्तरात् । सावित्र्यः सालयः कुड्या अन्येषां पृथक्त्रिशांशतः ।।१९।।
कुड्यपृथूपजङ्घोच्चात्कुड्यं[18] तु त्रिगुणोच्छ्रयम् । कुड्यसूत्रसमा पृथ्वी[19] वीथीभेदादनेकधा ।।२०।।

चाहिए। अग्नि तथा मरीचि के बीच दो कोष्ठों में सावित्री देवी और उससे भी नीचे छह कोष्ठों में सूर्य की पूजा करनी चाहिए। पितर और ब्रह्मा के बीच में विष्णु, चन्द्रमा तथा इन्द्र की, उससे नीचे जय की पूजा करनी चाहिए। वरुण और ब्रह्मा के मध्य में छह प्रकोष्ठों में मित्र नामक देव की पूजा करनी चाहिए। रोग और ब्रह्मा के बीच विष्णु तथा रुद्रदास की पूजा करनी चाहिए। उसके नीचे दो कोष्ठों में यक्ष्मा और छह कोष्ठों में धराधर की पूजा करनी चाहिए। हे स्कन्द! तदनन्तर ईश आदि के कोष्ठों से बाहर चरकी, स्कन्द, विकट, विदारी, पूतना, जम्भ, पापदेव पिलिपिच्छ की पूजा करनी चाहिए ।।५-१३।। सामान्य गृह के निर्माण वास्तुदेव की आकृति इक्यासी कोष्ठों से युक्त होनी चाहिए और मण्डप में सौ कोष्ठ होने चाहिए। वहाँ पहले की भाँति देवताओं की पूजा करनी चाहिए। सोलह कोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा और ईशान आदि कोणों में स्थित दस कोष्ठों में मरीचि, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर की पूजा करनी चाहिए। दैत्यमाता, ईश, अग्नि, मृग नामक दो पितर, पाप, यक्ष्मा तथा वायु के देवताओं की पूजा डेढ़-डेढ़ कोष्ठ में करनी चाहिए ।।१४-१६।। अये स्कन्द! अब मैं संक्षेप में यति आदि के गृहों का वर्णन करूँगा। घर की लम्बाई चौबीस हाथ और चौड़ाई अट्ठाईस हाथ होनी चाहिए। इसकी सम्पूर्ण परिधि बाईस हाथ और दीवार की चौड़ाई नौ हाथ होनी चाहिए। इस प्रकार का माप, शिवाश्रय, शिवाख्य, रुद्रहीन और सदोभय नामक मण्डपों के लिए अच्छा होगा। सविता के मण्डप की लम्बाई अट्ठारह हाथ और चौड़ाई पन्द्रह हाथ होनी चाहिए। दीवार की चौड़ाई आठ हाथ होनी चाहिए। ऊँचाई चौड़ाई से दुगुनी होती है। कुड्य सूत्रों के समान पृथ्वी वीथिकाओं के

---

१ क. घ. ङ. च. °त्यं द्रिपञ्च रु°। २ क. ङ. च. यस्मात्षट्°। ३ क. ङ. च. चराचरम्। ४ चरकीं°°°क्रमात् नास्ति क. ङ च. पुस्तकेषु। ५ ख. जृम्भं। ६ ख ग. °ह्यान्ताः षो°। ७ क. ङ. च. °ता हरेखाश्रीमृ°। ख. ग. °ता हरों खड्गी मृ°। ८ पापयक्ष्मा°°°स्थिताः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति ९ घ. सार्धांशके। १० क ङ. च. °ताः। प्रत्यार्धकः। ११ ग यत्पाद्याकः। घ. यत्पाद्यो°। १२ ख. °त्याद्याकः। १३ क. ङ. च. °ह। दिग्विंशत्कुरवो दैर्घ्या°। १४ घ. शिशिराश्रयः। १५ क. ङ. च. °श्रमः शि°। १६ क. ङ. च. °ख्यस्य रुद्रद्वि गुणभावहाः। स्याद्गृ°। ख. ग. °ख्यस्य रु°। १७ क. ङ. च. र्ध्या नृषिभिश्चैव विस्तरात्। कुड्यसू°। १८ ख. ग. °ड्यपिष्टप। १९ क. ङ. च. वीथी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भद्रे तुल्यं च वीथीभिर्द्वारवीथी विनाग्रतः । श्रीजयं पृष्ठतो हीनं भद्रोऽयं पार्श्वयोर्विना ।।२१।।
गर्भपृथुसमा वीथी तदर्धार्धेन वा क्वचित् । वीथ्यर्धेनोपवीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम् ।।
वीथ्यर्धेनोपवीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम् ।।२२।।
सामान्यान्यगृहं[1] वक्ष्ये सर्वेषां सर्वकामदम् । एकंद्वित्रिचतुःशालमष्टशालं यथाक्रमम् ।।२३।।
एकं याम्ये च सौमास्यं द्वे चेत्पश्चात्पुरोमुखम् । चतुःशालं तु सांमुख्यात्तयोरिन्द्रेन्द्रमुक्तयोः[2] ।।२४।।
शिवास्यमम्बुपास्यैष (?) इन्द्रास्ये यमसूर्यकम् । प्राक्सौम्यस्थे च दण्डाख्यं प्राग्याम्ये[3] वातसंज्ञकम् ।।२५।।
आप्येन्दौ[4] गृहवल्याख्यं त्रिशूलं तद्विनार्धिकृत्[5] । पूर्वशालाविहीनं स्यात्सुक्षेत्रं वृद्धिदायकम् ।।२६।।
याम्ये हीनं भवेच्छूली[6] त्रिशालं[7] वित्तकृत्परम् । पक्षघ्नं[8]जलहीनौकः सुतघ्नं बहुशत्रुकृत् ।।२७।।
इन्द्रादिक्रमतो वच्मि ध्वजाद्यष्टौ गृहाण्यहम्[9] । [10]प्रक्षालानुस्त्रगावासमग्नौ[11] तस्य महानसम् ।।२८।।
याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षसि । धनभुक्त्यम्बुपेशाख्ये[12] सम्यगन्धौ (?) च मारुते ।।२९।।

भेद से अनेक भेदवाली हो जाती है। भद्र श्रेणी के मन्दिर में अग्रभाग को छोड़कर तीन और मार्ग बनाना चाहिए। श्रीजय श्रेणी के मन्दिर में पृष्ठभाग छोड़कर मार्ग बनाना चाहिए, किन्तु भद्रश्रेणी के मन्दिर के दोनों पार्श्वों में भी मार्ग नहीं बनाना चाहिए। मार्ग उतना चौड़ा होना चाहिए, जितना बड़ा भू-गर्भ हो या भू-गर्भ का आधा होना चाहिए। वहाँ एक, दो या तीन कमरे भी होने चाहिए ।।१७-२२।। अब मैं सामान्य तथा विशेष गृह (मन्दिर आदि) के विषय में कहूँगा, जो सबके लिए वांछित फल को देनेवाला है। घर में एक, दो, तीन, चार या आठ कमरे होने चाहिए। चार कमरेवाले घर में एक दक्षिण की ओर, एक उत्तर की ओर, दो पूरब-पश्चिम की ओर मुखवाले कमरे होने चाहिए। वरुण देवता के लिए बनाया जानेवाला मन्दिर उत्तर-पूर्व की ओर और सूर्य तथा यम के निमित्त बनाये जानेवाले मन्दिर पूर्वाभिमुख होने चाहिए। क्षेत्र के उत्तरी तथा पूर्वी भाग में बनाया हुआ मन्दिर 'दण्ड' कहलाता है। पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में बनाये गये मन्दिर को 'वात' कहते हैं। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भागों में बनाया गया मन्दिर 'गृहबली' कहलाता है। पश्चिमी भाग में कमरे से रहित मन्दिर को 'त्रिशूल' कहते हैं, जो बनानेवाले के लिए सम्पत्तिदायक होता है। जो मन्दिर पूर्वी भाग में कमरे से विहीन हो, उसे सुक्षेत्र कहते हैं और वह वृद्धि करनेवाला होता है ।।२३-२६।। उत्तरी भाग में कमरे से शून्य मन्दिर 'शूली' कहलाता है, उससे धन की वृद्धि होती है। पश्चिमी भाग में कमरे से रहित मन्दिर 'त्रिशाल' कहलाता है। उससे पक्ष का नाश, पुत्र की मृत्यु और बहुत से शत्रुओं की वृद्धि होती है। अब मैं क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में बनाये जानेवाले 'ध्वज' आदि नामों से प्रख्यात आठ प्रकार के गृह-कक्षों का वर्णन करूँगा, जिनका उपयोग कपड़ा धोने, सुवासित करने तथा भोजन बनाने आदि कार्यों में किया जाता है। पाठशाला घर के दक्षिण-पूर्व कोने में होनी चाहिए। शयनकक्ष तथा अस्त्रागार भी दक्षिण दिशा में बनाने चाहिए। उत्तम धन अम्बुपेश नामक देवता के नाम से प्रसिद्ध कक्ष में रखना चाहिए। सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पमाला आदि चीजें पश्चिम

---

१ घ॰न्यानाथगृ॰। २ क. ङ. च.॰ योः सिद्धार्थसंख्याम्येव इन्द्राप्येषसमूहकम्। ख. ग. ॰योः। सिद्धार्थमभ्युपासे च इन्द्रा॰। ३ ख ग ग्यम्योर्वात॰। इदमर्धं नास्ति क ङ। ४ ख. ग. आदौ च मूलं च वृन्दाख्यं। ५ ख तद्वन॰। ६ क. ङ. च. वेच्चुल्ली त्रि॰। ख॰ वेच्छन्दी त्रि॰। ७ क. ङ. च. ॰लंक्षति कृ॰। घ ॰लं वृद्धिक॰। ८ घ. यक्षघ्नं। ९ क ॰म्। प्राक्षा॰। १० ख ॰गावोस॰। ११ ख ॰ग्नौ भस्मस्य मक्षये। या॰। १२ ख ॰शाख्यं स॰।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौम्ये धनपशू कुर्यादीशे दीक्षावरालयम्[1] । स्वामिहस्तमितं वेश्म विस्तारायामिपिण्डिकम् ।।३०।।
त्रिगुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वाऽष्टांशैर्हृतं तथा । तच्छेषोऽयं स्थितस्तेन वायसान्तं ध्वजादिकम् ।।३१।।
त्रयः पक्षाग्निवेदेषु रसर्षिवसुतो भवेत् । सर्वनाशकरं वेश्म मध्ये चान्ते च संस्थितम् ।।३२।।
तस्माच्च नवमे भागे शुभकृन्निलयो मतः । तन्मध्ये मण्डपः शस्तः समो वा द्विगुणायतः[2] ।।३३।।
प्रत्यगाप्ये[3] चेन्दुयमे[4] हट्ट[5] एव गृहावली । एकैकभुवनाख्यानि दिक्ष्वाष्टाक संख्यया[6] ।।३४।।
ईशाद्यदितिकान्तानि फलान्येषां यथाक्रमम् । भयं नारीचलत्वं च जयो वृद्धिः प्रतापकः[7] ।।३५।।
धर्मः कलिश्च नैस्व्यं च प्राग्द्वारेष्वष्टसु ध्रुवम् । दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो मृतिर्धनम् ।।३६।।
शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकम् । आयुष्प्राव्राज्यसस्यानि धनशान्त्यर्थसंक्षयः ।।३७।।
शोषं (ष) भोगं चापत्यं च जलद्वारफलानि च । रोगो मदार्तिमुख्यत्वं चार्थायुः[8] कृशतामतिः ।।३८।।
मानश्च द्वारतः पूर्व उत्तरस्यां दिशि क्रमात् ।।३९।।

इत्याग्नेये महापुराणे नगरगृहादिवास्तुप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम पञ्चाधिकशततमोध्यायः ।।१०५।।

कोने में बनाये हुए कमरे में रखनी चाहिए। पशुओं को रहने के लिए उत्तर दिशा में कमरा होना चाहिए। दीक्षा ग्रहण करने का कमरा पूर्व दिशा में होना चाहिए। घर की लम्बाई तथा लम्बाई का नाप गृहपति के अपने हाथ से होना चाहिए। जितने हाथ नापे, उसको तिगुना करके आठ भागों में बाँट दे, जो शेष बचे, वही माप ध्वज आदि कमरों का समझना चाहिए। वे कमरे चौदह हाथ तक बढ़ाये जा सकते हैं। मैदान के दूसरे, तीसरे, चौथे, छठें, आठवें भाग में या मध्य तथा अन्त में बनाया हुआ घर सर्वनाश का कारण होता है। इसलिए मैदान के नवम में घर बनाना चाहिए, जो शुभ माना गया है। उसके बीच में मण्डप बनाना चाहिए, जिसकी चौड़ाई घर की चौड़ाई से दूनी या उसके बराबर होती है ।।२७-३३।। उसकी पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी सीमा पर पंक्तिबद्ध कमरे इस प्रकार बनाने चाहिए, जिस प्रकार बाजार में दुकानों की पंक्ति होती है। घर की चारों दिशाओं में ईश से लेकर अदिति तक आठ-आठ भुवन नामक द्वारों के शुभाशुभ फल इस प्रकार होते हैं-पूर्व के आठ द्वारों के फल हैं-भय, नारी का अपहरण, विजय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, नास्तिकता और दरिद्रता। दक्षिण के आठ द्वारों के फल हैं-दाह, दुःख, बन्धुनाश, धननाश, मृत्यु, धन, शिल्प तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशावर्ती आठ द्वारों के फल हैं-आयु, अच्छी फसल, धन, शान्ति, अर्थनाश, शोषण, भोग और सन्तान की प्राप्ति। उत्तर दिशा के आठ दरवाजों के फल हैं-रोग, पद, मुख्यता, अर्थ, आयु, कृशता, मति और मान की प्राप्ति ।।३४-३९।।

श्री अग्निमहापुराण में नगर गृह आदि वास्तुप्रतिष्ठा-विधि-वर्णन नामक
एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।१०५।।

---

१ ख ग दीर्घाम्बरा°। २ क. ख. ग. ङ. च. °त। प्रागां। ३ क. ङ. च. °प्ये चन्द्रयामे वा हृद ए°। ४ ख. ग. °न्दुयमि वा हृद ए°। ५ क. ङ. च. हस्त। ६ ख. ग. दिश्यष्टा°। ७ क. ङ. च. प्रजायकः। ख. प्रपातकः। ८ ख. चाऽऽत्मायुः°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

नगरादिकवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच

नगरादिकवास्तुं[1] च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये। योजनं योजनार्धं वा तदर्धं स्नानमाश्रयेत् ।।१।।
अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराद्यं तु कारयेत्। ईशादि त्रिंशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ।।२।।
गन्धर्वाभ्यां[2] दक्षिणे[3] स्याद्वारुण्ये पश्चिमे तथा। सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या हट्टास्तु विस्तराः[4] ।।३।।
येनेभादिसुखं गच्छेत्कुर्याद्द्वारं तु षट्करम्। [5]छिन्नकर्णं विभिन्नं च चन्द्रार्धाभ पुरं न हि ।।४।।
वज्रसूचीमुखं नेष्टं सकृद्द्वित्रिसमागमम्। चापाभं वज्रनागाभं पुरारम्भे हि शान्तिकृत् ।।५।।
प्राच्यं विष्णुहरार्कादीन्नत्वा[6] दद्याद्बलिं बली। आग्नेये स्वर्णकर्मारान्पुरस्य विनिवेशयेत् ।। ६।।
दक्षिणे नृत्यवृत्तीनां वेश्यास्त्रीणां गृहाणि च। नटानां चक्रिकादीनां[7] कैवर्तादेश्च नैर्ऋते ।।७।।
रथानामायुधानां च कृपाणानां च वारुणे। शौण्डिकाः कर्माधिकृता वायव्ये परिकर्मिणः ।।८।।

अध्याय १०६

नगर आदि वास्तु-विधि-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं राज्य आदि की वृद्धि के लिए नगर आदि की वास्तु विधि बतलाऊँगा। नगर बसाने के लिए चार कोस, दो कोस या एक कोस तक का स्थान चुनना चाहिए। वहाँ नगर वास्तुदेव की पूजा करके परकोटा खिंचवा देना चाहिए। पूर्व दिशा का फाटक, जिसके साथ ईशादि देवताओं के तीस पद रहेंगे सूर्य पद के सम्मुख रहना चाहिए। दक्षिण दिशा का फाटक गन्धर्व पद में, पश्चिम दिशा का फाटक वरुण पद में और उत्तर दिशा का फाटक सोम पद में रहना चाहिए। (नगर में) बड़े-बड़े बाजार होने चाहिए। नगर में छह हाथ चौड़े तथा इतने बड़े-बड़े फाटक बनवाने चाहिए कि जिसमें से हाथी आदि भी सरलता से प्रवेश कर जायँ। नगर को तितर-बितर नहीं बसाना चाहिए और उसका आकार अर्धचन्द्र जैसा भी नहीं होना चाहिए। ऐसा नगर जिसका मुख्य द्वार वज्रसूची के समान हो और जिसमें दो-तीन मार्गों से आवागमन हो सके, अशुभ माना जाता है। जिस नगर का अग्रभाग धनुष या वज्रनाग के समान हो, वह शान्तिकारक हुआ करता है ।।१-५।। (नगर-निर्माण के पूर्व) उस क्षेत्र में विष्णु, शंकर तथा सूर्य का पूजन तथा नमस्कार करके बलि चढ़ानी चाहिए। नगर के दक्षिण-पूर्व प्रदेश में स्वर्णकारों और लोहारों को बसाना चाहिए। (नगर के) दक्षिण ओर वेश्या आदि नर्तकियों के घर बनवाने चाहिए। दक्षिण-पश्चिम की ओर नट, भाँट, मल्लाह आदि को, रथ, आयुध तथा तलवार चलानेवालों को पश्चिम दिशा में, कलवारों, (राज्य के) कार्याधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों को पश्चिमोत्तर की ओर और ब्राह्मणों, यतियों, सिद्धों तथा तपस्वियों को

---

१ क. च. °वास्तव्यं व°। २ क. ङ. च. °न्धर्वौ द°। ३ क. ङ. च. °णे पश्चाद्वा। ४ क. ङ. च. °राः। पतितापिमुखं। ५ छिन्नकर्णं...न हि क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ क. ङ. च. °दीन्हुत्वा। ७ क. ङ. च. ब (बा) ह्लीकादीनां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च[1] चोत्तरे । फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः ।।९।।
पूर्वतश्च बलाध्यक्षा आग्नेये विविधं बलम् । स्त्रीणामादेशिनो दक्षे काण्डारान्नैर्ऋते न्यसेत् ।।१०।।
पश्चिमे च महामात्यान्कोषपालांश्च[2] कारुकान्[3] । उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसंकुलान्[4] ।।११।।
पूर्वतः क्षत्रियान्दक्षे वैश्याञ्शूद्रांश्च पश्चिमे । दिक्षु वैद्यान्वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशम् ।।१२।।
पूर्वेण चरलिङ्ग्यादीञ्श्मशानादीनि[5] दक्षिणे । [6]पश्चिमे गोधनाद्यं च कृषिकर्तृस्तथोत्तरे ।।१३।।
न्यसेन्मूलेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितिम्[7] । श्रियं वैश्रवणं द्वारि पूर्वे तौ पश्यतां श्रियम् ।।१४।।
देवादीनां पश्चिमतः ([8]पूर्वास्यानि गृहाणि हि । पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननाम्[9] (?) ।।१५।।
नाकेशविष्णवादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च) । निर्दैवतं तु नगरग्रामदुर्गगृहादिकम् ।।१६।।
भुज्यते तत्पिशाचाद्यै रोगाद्यैः परिभूयते । नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ।।१७।।
पूर्वायां(र्वस्यां) श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां वै महानसम् । शयनं दक्षिणस्यां तु नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ।।१८।।
भोजनं पश्चिमायां तु वायव्यां धान्यसंग्रहः । उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ।।१९।।
चतुःशालं त्रिशालं वा द्विशालं चैकशालकम् । चतुःशालगृहाणां तु शालालिन्दकभेदतः[10] ।।२०।।

(नगर के) उत्तर की ओर बसाना चाहिए। फल तथा अन्य खाद्य-पदार्थ बेचनेवालों को (नगर के) पूर्वोत्तर में, सेनापतियों को पूर्व दिशा में तथा विविध प्रकार की सेना को दक्षिण-पूर्व की ओर बसाना चाहिए। अन्तःपुर के अध्यक्षों को दक्षिण दिशा में और काण्डार नामक (राजकीय कैम्प लगानेवाली) जाति को दक्षिण-पश्चिम की ओर बसाना चाहिए ।।६-१०।। प्रधान सचिवों, कोश-रक्षकों तथा शिल्पियों को पश्चिम दिशा में, दण्डाध्यक्षों, सरदारों तथा ब्राह्मणों को उत्तर दिशा में, क्षत्रियों को पूर्व दिशा में, वैश्यों को दक्षिण दिशा में और शूद्रों को पश्चिम दिशा में बसाना चाहिए। वैद्यों, घुड़सवारों तथा (अन्य) सिपाहियों को (नगर के) चारों तरफ बसाना चाहिए। गुप्तचरों को पूर्व दिशा में तथा श्मशान और गोशाला का निर्माण क्रमशः दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में करना चाहिए। किसानों को उत्तर दिशा में और म्लेच्छों को (चारों) कोने में बसाना चाहिए। यही स्थिति गाँवों के निर्माण में भी रहती है। नगर के पूर्वी फाटक के दोनों ओर लक्ष्मी तथा कुबेर की मूर्तियों को आमने-सामने स्थापित करना चाहिए। नगर की रक्षा के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की मूर्तियों की (भी) स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि जिस नगर या गाँव या किले या घर में देवताओं की मूर्तियाँ नहीं रहती हैं वहाँ पिशाच आदि निवास करने लगते हैं और वहाँ पर रोग आदि का आक्रमण होता रहता है। इसके विपरीत जो नगर आदि देवताओं की (प्रतिमाओं) से युक्त होते हैं, वे विजय, भोगविलास और मोक्षदायक हुआ करते हैं ।।११-१७।। राजमहल में पूर्व की ओर कोशागार, दक्षिण-पूर्व की ओर पाकशाला, दक्षिण की ओर शयनकक्ष, दक्षिण-पश्चिम की ओर अस्त्रागार, पश्चिम की ओर भोजनालय, पश्चिमोत्तर की ओर धान्यागार, उत्तर की ओर द्रव्यागार तथा पूर्वोत्तर की ओर देवालय का निर्माण करना चाहिए। राजमहल को चतुःशाल, (एक-दूसरे के सामने स्थित चार घरोंवाला महल) त्रिशाल, द्विशाल या एकशाल बनाना चाहिए। शाला तथा अलिन्दक

---

१ क. ङ. च. °वणस्तिथोत्त°। २ क. ङ. च. °हाभागान्को°। ३ क. ङ. च. कारका°। ४ क. ङ. च. °जसङ्गणान्। ५ क. ङ. च. °लिङ्गादी°। ६ पश्चिमे…तथोत्तरे नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ७ क. ङ च. स्थितम्। ८ पूर्वास्यानि…नगरस्य च क. ङ. च. पुस्तकेषु त्रुटितम्। ९ ग. °त्तरेण वा। ना°। १० क. ङ. च. °लानिनवभे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शतद्वयं तु जायन्ते पञ्चाशत्पञ्च तेष्वपि। त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चधा ।।२१।।
एकशालानि चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च। अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च ।।२२।।
चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु। षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश (?) एव हि ।।२३।।
अष्टालिन्दं भवेदेवं नगरादौ गृहाणि हि ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नगरादि वास्तुकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।।१०६।।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

स्वायंभुवसर्गकथनम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये भुवनकोषं च पृथ्वीद्वीपादिलक्षणम्। अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।।१।।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च। ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।।२।।
प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्तद्वीपान्ददौ पिता। जम्बूद्वीपमथाग्नीध्रे प्लक्षं मेधातिथेर्ददौ ।।३।।
वपुष्मते शाल्मलं च ज्योतिष्मते कुशाह्वयम्। क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ।।४।।
पुष्करं सवनायादादग्नीध्रौऽदात्सुते[1] शतम्। जम्बूद्वीपं पिता लक्षं नाभेर्दत्तं[2] हिमाह्वयम् ।।५।।
हेमकूटं किंपुरुषे हरिवर्षाय नैषधम्। इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितम् ।।६।।

(बरामदा) आदि के भेद से चतुःशाल भवन दो सौ प्रकार के हो जाते हैं और उनमें से प्रत्येक के पचपन-पचपन भेद बतलाये गये हैं। त्रिशाल भवन के चार भेद, द्विशाल के पाँच भेद और एकशाल के चार भेद होते हैं। गृह तथा नगर में अलिन्दों (बरामदा) की संख्या अट्ठाईस, चार, सात, पचपन, छह, बीस या आठ हो सकती है ।। १८-२४ ।।

श्री अग्निमहापुराण में नगर आदि वास्तुप्रतिष्ठा-विधि-वर्णन नामक एक सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।।१०६।।

अध्याय १०७

स्वायम्भुव-सर्ग-वर्णन

अग्निदेव बोले-अब मैं भुवनकोश तथा पृथ्वी के द्वीप आदि का लक्षण बतलाऊँगा। महाराज प्रियव्रत के दस पुत्र थे-अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, ज्योतिष्मान् और सत्य। इनमें से पिता ने सात को सात द्वीप दे दिया। अग्नीध्र को जम्बूद्वीप और मेधातिथि को प्लक्षद्वीप दिया गया ।।१-३।। वपुष्मान् को शाल्मल, ज्योतिष्मान् को कुशाह्वय, द्युतिमान् को क्रौञ्च, भव्य को शाक और सवन को पुष्कर द्वीप दिये गये। तत्पश्चात् अग्नीध्र ने अपने पुत्रों में द्वीपों का विभाजन इस प्रकार किया। पिता ने लक्ष नामक पुत्र को जम्बूद्वीप, नाभि को हिमाह्वय, किंपुरुष को हेमकूट, हरिवर्ष को नैषध, इलावृत को मेरुमध्य, रम्य को नीलाचल, हिरण्वान् को श्वेतवर्ष, कुरु को

---

१ घ. °ग्नीध्रेऽदा°। २ क. ङ. च. नाभिदत्तं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ। भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमम् ।।७।।
मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिषिच्य ययौ वनम्। शालग्रामे[2] तपस्तप्त्वा ययौ विष्णवालयं[3] नृपः ।।८।।
यानि किं पुरुषाद्यानि ह्यष्ट वर्षाणि सत्तम। तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।।९।।
जरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम्। नाधमं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्त नाभितः।।१०।।
ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत्। ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिं गतः ।।११।।
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत्। भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिं गतः ।।१२।।
स योगी [4]योगप्रस्थाने[4] वक्ष्ये तच्चरितं पुनः। सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ।।१३।।
परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः। ([6]प्रतीहारात्प्रतीहर्ता प्रतिहर्त्तुर्भुवस्ततः ।।१४।।
उद्गीतोऽथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः)। पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः[7] सुतः ।।१५।।
[8]नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः। तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ।।१६।।
महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्यस्तस्य[9] चाऽऽत्मजः। त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रज (जा) स्तस्याप्यभूत्सुतः ।।१७।।

कुरुदेश, भद्राश्व को भद्राश्व और केतुमाल को मेरु का पश्चिम प्रदेश दे दिया। महाराज प्रियव्रत पुत्रों का राज्याभिषेक करके वन को चले गये। महाराज प्रियव्रत शालग्राम (नामक वन) में तपस्या करके स्वर्गलोक को चले गये ।।४-८।। अये पुरुषश्रेष्ठ! किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष (देश) बताये गये हैं, उनमें यह स्वाभाविक सिद्धि है कि वहाँ बिना प्रयत्न के ही सुख प्राप्त हो जाता है। वहाँ न तो वृद्धावस्था का भय है न मृत्यु का भय है, और वहाँ न तो धर्म-अधर्म है और न युग इत्यादि ही। वहाँ न तो कोई अधम कोटि का है और न कोई मध्यम कोटि का है, अपितु सभी तुल्य हैं। महाराज नाभि ने मेरुदेवी से ऋषभ नामक पुत्र प्राप्त किया। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई। (राज्य का) ऐश्वर्य अपने पुत्र (भरत) को सौंपकर ऋषभ ने शालग्राम वन में तपस्या करके विष्णुलोक को प्राप्त कर लिया। भरत के नाम पर (इस देश का नाम) भारतवर्ष प्रचलित हुआ है। (कालान्तर) में भरत से सुमति नामक पुत्र का जन्म हुआ। भरत ने (भी) पुत्र को राज्यलक्ष्मी देकर शालग्राम वन में तपस्या करके भगवान् विष्णु को प्राप्त कर लिया ।।९-१२।। सुमति योगी था। उसके चरित्र का वर्णन मैं योग-प्रस्थान के प्रसंग में पुनः करूँगा। सुमति से तेजस् और तेजस् से इन्द्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई। इन्द्रद्युम्न से परमेष्ठी और परमेष्ठी से प्रतीहार का जन्म हुआ, जिससे वंश-परम्परा चल पड़ी। प्रतीहार से प्रतीहर्ता, प्रतीहर्ता से भुव, भुव से उद्गीथ, उद्गीथ से प्रस्तार और प्रस्तार से विभु का जन्म हुआ। विभु से पृथु, पृथु से नक्त और नक्त से गय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। गय का पुत्र हुआ नर और नर का पुत्र विराट् हुआ। विराट् का पुत्र महावीर्य और उसका पुत्र धीमान् हुआ ।।१३-१६।। धीमान् का पुत्र महान्त और महान्त से मनस्य नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। मनस्य से त्वष्टा, त्वष्टा से विरजस्, विरजस् से रजस् और उससे

---

१ हिरण्वते...ददौ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ क. ङ. च. शालाग्रामे। ३ ख. ग. घ. विष्णोर्लयं। ४ क. ङ. च. °ग विस्तारे व°। ५ घ. °प्रस्तावे व°। ६ प्रतीहारात्...सुतः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ७ ङ. यशः। च. शयः। ८ ङ. नगो। च. नवो। ९ क. ङ. च. न्मनः °प्राप्तस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सत्यजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने। विश्वज्योतिः प्रधानास्ते भारतं तैर्विवर्धितम् ।।१८।।
कृतत्रेतादिसर्गेण सर्गः स्वायम्भुवः स्मृतः ।।१९।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये स्वायम्भुवसर्गकथनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।।१०७।।

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशकथनम्

अग्निरुवाच

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो महान्। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ।।१।।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ।।२।।
जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः। चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्ठः षोडशाद्रिराट् ।।३।।
द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तारात्षोडशाधः सहस्रवान्। भूयस्तस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ।।४।।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।।५।।
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथाऽपरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।।६।।

सत्यजित् की उत्पत्ति हुई। अये मुनिराज! सत्यजित् के सौ पुत्र थे जिनमें ज्येष्ठ पुत्र था विश्वज्योति। इन्हीं सब भाइयों से सतयुग, त्रेता आदि युगों में भारतवर्ष की वृद्धि होती रही। उनकी इस सृष्टि को ही स्वायम्भुव सृष्टि कहते हैं ।।१७-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में स्वायम्भुवसर्ग-वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।।१०७।।

अध्याय १०८

भुवनकोश-वर्णन

अग्निदेव बोले-जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर-ये सातों महाद्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। ये सातों सागर-लवण, ईख, मद्य, घी, दही, दूध और जल के सागर हैं। जम्बूद्वीप इन सब द्वीपों के बीच में पड़ता है। उसके मध्य में चौरासी हजार योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है जो सोलह पर्वतों का राजा है। उसका शिखर बत्तीस हजार योजन चौड़ा है और उसकी नींव एक हजार योजन गहराई में है। वह पर्वत कर्णिका के आकार में स्थित है। उसके दक्षिण की ओर हिमवान्, हेमकूट तथा निषध पर्वत स्थित हैं और उत्तर की ओर नील, श्वेत तथा शृंगी पर्वत हैं। इन पर्वतों को वर्षपर्वत कहते हैं। उनमें दो पर्वत बीच में एक-एक लाख योजन लम्बे हैं और अन्य पर्वत उनसे दस-दस हजार योजन कम हैं। उनकी ऊँचाई दो हजार योजन है और चौड़ाई भी उतनी ही है ।।१-६।। अये ब्राह्मण! वर्षों में पहला भारतवर्ष है, दूसरा किंपुरुष और तीसरा हरिवर्ष। इसी तरह अन्य वर्षों को भी समझना

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किं पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं[1] तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ।।७।।
([2]रम्यकं चोत्तरे वर्षं तथैवान्यद्धिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ।।८।।
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम । इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ।।९।।
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम् । इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ।।१०।।
विष्कम्भा[3] रचिता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः । पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।।११।।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः । कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ।।१२।।
एकादशशतायामाः पादपाः गिरिकेतवः । जम्बूद्वीपेति संज्ञास्यात् फलं जम्ब्वा गजोपमम् ।।१३।।
जम्बूनदी रसेनास्यास्त्विदं जाम्बूनदं परम् । भद्राश्वः[4] पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे ।।१४।।
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः । वैभ्राजं पश्चिमे सौम्ये नन्दनं च सरांस्यथ ।।१५।।
अरुणोदं महाभद्रं[5] शीतोदं मानसं तथा । सिताम्भश्चक्रमुञ्जाद्याः पूर्वतः केशराचलाः[6] ।।१६।।
दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः [7]शिखिवास-[8]मुखा[9]जले । शङ्खकूटादयः सौम्ये मेरौ च ब्रह्मणः पुरी ।।१७।।
चतुर्दश सहस्राणि योजनानां च दिक्षु च । इन्द्रादिलोकपालानां समन्ताद्ब्रह्मणः पुरः ।।१८।।
विष्णुपादात्प्लावयित्वा चन्द्रं स्वर्गात्पतत्यपि[10] । पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाद्गताऽर्णवम्[11] ।।१९।।

चाहिए। ये वर्ष मेरु पर्वत से दक्षिण की ओर रम्यक, हिरण्य तथा उत्तर कुरुवर्ष स्थित हैं। अये मुनिश्रेष्ठ! इनमें प्रत्येक का प्रमाण (माप) नौ-नौ हजार योजन है। इलावृत वर्ष सबके बीच में है जो अत्यन्त ऊँचे स्वर्ण निर्मित मेरु पर्वत के चारों ओर नौ हजार योजन में फैला हुआ है। अये महात्मन्! वहाँ दस-दस हजार योजन में फैले हुए चार पर्वत हैं जो मेरु पर्वत की अर्गला के रूप में फैले हुए हैं ।।७-१०$\frac{1}{2}$।। सुमेरु पर्वत के पूर्व की ओर मन्दराचल, दक्षिण की ओर गन्धमादन, पश्चिम की ओर विपुल और उत्तर की ओर सुपार्श्व पर्वत विद्यमान हैं। उन पर्वतों के ऊपर कदम्ब, जामुन, पीपल तथा वट के वृक्ष ग्यारह-ग्यारह सौ योजन लम्बे होने के कारण (सुमेरु) पर्वत की पताका से प्रतीत होते रहते हैं। उसी जामुन के वृक्ष से ही इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ गया है। उस जामुन का फल हाथी के बराबर होता है। उस (फल) के रस से निकलकर बहनेवाली नदी जम्बू नदी कहलाती है और जम्बू नदी से उत्पन्न होने के कारण ही इसे (सोने को) जम्बूनद कहा जाता है। मेरु से पूर्व की ओर भद्राश्व और पश्चिम की ओर केतुमाल नामक पर्वत हैं ।।११-१४।। मेरु के पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन वन है। वहाँ पर बहुत से सरोवर भी हैं, जिनके नाम हैं-अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस और सिताम्भ। मेरु पर्वत के पूर्व की ओर चक्र और मुञ्ज आदि केशराचल, दक्षिण की ओर त्रिकूट आदि, पश्चिम की ओर शिखिवास आदि और उत्तर की ओर शंखकूट आदि पर्वत विद्यमान हैं। मेरु के ऊपर की नगरी तथा उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों का निवास है, जो सभी दिशाओं में चौदह हजार योजन में फैले हुए हैं। (आकाशगङ्गा की चौथी धारा) विष्णु के चरण से निकली है। वह स्वर्ग से गिरकर चन्द्रलोक को जलप्लावित करती हुई मेरु के पूर्व भद्राश्व नामक पर्वत

---

१ क. ङ. च. °मनः प्राप्तस्य। २ रम्यकं...पर्वतावुभौ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. पुस्तकयोरिदमर्धमत्र नास्ति किं चोत्तरश्लोक पूर्वार्धोत्तरं विद्यते। ४ सुपार्श्वरिति पाठान्तरम्। ५ घ. °द्रं संशितीदं समानसम्। शिता°। ६ ख. शिशिराचलाः। ७ क. ङ. च. शिशिवा°। ८ ग. बासुमु°। ९ ग. °खानले। १० घ. तन्त्यपि। ११ ग. °द्राश्वं शैला°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथैवालकनन्दाऽपि दक्षिणेनैव भारतम् । प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाऽथ पश्चिमम् ।।२०।।
अब्धिं च चक्षुः सौम्याऽब्धिं भद्रोत्तरकुरूनपि । आनीलनिषधा यामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ।।२१।।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।।२२।।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः । जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।।२३।।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ । गन्धमादनकैलासौ[1] पूर्वच्चाऽऽयतावुभौ ।।२४।।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ । निषधः पारियात्रश्च[2] मर्यादापर्वतावुभौ ।।२५।।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ । त्रिशृङ्गो[3] रुधिरश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ।।२६।।
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ[4] । जाठराद्याश्च मर्यादाशैलामेरोश्चतुर्दिशम् ।।२७।।
केशरादिषु[5] याः श्रेण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि । लक्ष्मीविष्ण्वाग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ।।२८।।
भौमानां स्वर्गधर्माणां[6] न पापास्तत्र यान्ति च । भद्राश्वेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके ।।२९।।
भारते कूर्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि । विश्वरूपेण सर्वत्र पूज्यते भगवान्हरिः[7] ।।३०।।
(‘किं पुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं[8] न च । चतुर्विंशति साहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः) ।।३१।।

से दूसरे पर्वत पर होती हुई सागर में गिर जाती है। उसी तरह अलकनन्दा भी मेरु के दक्षिण से भारत में आकर और सात धाराओं में विभक्त होकर समुद्र में मिल जाती है। पश्चिम में वह अब्धि, चक्षुष्, सौम्याब्धि, भद्र, उत्तरकुरु, आनील तथा निषध देशों से होकर जाती है। माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत क्रमशः आनील तथा निषध देश के बराबर फैले हुए हैं ।।१५-२१।। उन दोनों के बीच में मेरु पर्वत कर्णिका के ही समान खड़ा हुआ है। मेरु रूपी कर्णिका से युक्त यह लोक ही पद्म है। इसके पत्र हैं—भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा उत्तर कुरुदेश। मर्यादापर्वतों के बाहर तक उसकी सीमा है। मर्यादापर्वत दो हैं—जठर तथा देवकूट। ये दोनों पर्वत दक्षिण से उत्तर की ओर आनील तथा निषध देशों को पार कर गये हैं। गन्धमादन तथा कैलास पर्वत का विस्तार भी इन्हीं के बराबर है। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैले हुए निषध तथा पारियात्र नामक दो पर्वत अस्सी योजन तक फैले हुए हैं। मेरु के पश्चिम से पूर्व तक त्रिशृङ्ग और रुधिर नामक दो पर्वत खड़े हुए हैं ।।२२-२६।। उनके उत्तर की ओर दो वर्षपर्वत (और) हैं, जो पूर्वीय और पश्चिमीय सागरों के बीच फैले हुए हैं। मेरु पर्वत के चारों ओर जाठर आदि मर्यादापर्वत फैले हुए हैं। अये मुनिश्रेष्ठ! केशर आदि पर्वतों के शिखरों पर लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि तथा सूर्य आदि देवता निवास करते हैं। पृथ्वी पर स्वर्ग के धर्म का आचरण करनेवाले निवासियों में जो पाप कर्म करनेवाले हैं, वह यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं। भगवान् हरि की पूजा हयग्रीव के रूप में होती है। केतुमाल देश में वराह रूप में, भारत देश में कूर्म रूप में, कुरु देश में मत्स्य रूप में तथा अन्य सब देशों में विष्णु की अर्चना विश्वरूप में की जाती है। किन्नर आदि आठ देशों में भूख, भय तथा शोक आदि (का अनुभव) नहीं हुआ करता है। वहाँ चौबीस हजार प्रजाएँ आरोग्यपूर्ण जीवन बिता रही हैं। वहाँ कृतयुग आदि के रूप में युगों की कल्पना नहीं हुआ करती है। वहाँ जल, भूमि से ही

---

१ ग. °र्वपश्चाय°। २ ख. ग. °रिभद्रश्च। ३ त्रिशृङ्गो···वर्षपर्वतौ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ ग. च. °तौ। जठ°। ५ घ. °षु या द्रोण्य°। ६ क. घ. ङ. मुद्गधर्माणां। ७ ख. ग. °रिः। भूषु कि° पुरुषाद्य सु क्षु°। ८ किं पुरुषा···जीवन्त्यनामयाः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ९ ख. ग. °द्भीशो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृतादिकल्पना नास्ति भौमान्यम्भांसि नाम्बुदाः । सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ।।३२।।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे । भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशकथनं नाम अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०८।।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्यम्

[1]अग्निरुवाच

माहात्म्यं सर्वतीर्थानां वक्ष्ये यद्भुक्तिमुक्तिदम् । यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।।१।।
विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते । प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।।२।।
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत् । अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यभिगम्य च ।।३।।
अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते । तीर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यज्ञेनाऽऽप्यते फलम् ।।४।।
पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि त्रिसंध्यकम् । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ।।५।।
ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः । देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नाताः पितृसुरार्चकाः ।।६।।

उत्पन्न हो जाता है, (केवल) मेघ ही जल प्रदान करनेवाले नहीं हैं। उपर्युक्त वर्षों में (महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र नाम के) सात-सात कुलपर्वत हैं। उनसे सैकड़ों नदियाँ निकली हैं जो (पवित्रता के कारण) तीर्थों के समान हैं। अब मैं तुमसे उन तीर्थों का वर्णन करूँगा जो भारतवर्ष में (विद्यमान) हैं ।।२७-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में भुवनकोश-वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।।१०८।।

अध्याय १०९

तीर्थ-माहात्म्य

अग्निदेव बोले-(अब) मैं सभी तीर्थों के उस माहात्म्य को बतलाऊँगा जो (इस लोक में) भोग और (परलोक) में मोक्ष प्रदान करनेवाला है। तीर्थों का फल उसी को प्राप्त होता है जिसके हाथ, पाँव तथा मन (आदि इन्द्रियाँ) सुसंयत हैं और जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् है। वह तीर्थयात्री सभी यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है, जो दान आदि नहीं लेता है और स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा निष्पाप हुआ करता है। जिसने कभी तीन रात उपवास नहीं किया, तीर्थयात्रा नहीं की तथा सुवर्ण और गायों का दान नहीं किया वह निश्चय ही (दूसरे जन्म में) दरिद्र होता है। (यही नहीं) तीर्थयात्रा से वही फल प्राप्त होता है, जो साधारणतया यज्ञों से प्राप्त होता है ।।१-४।। अये ब्राह्मण देव! पुष्कर तीर्थ सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है। (कम-से-कम) तीन संध्याओं तक उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए; क्योंकि पुष्कर तीर्थ में दस करोड़ सहस्र तीर्थ रहा करते हैं। वहाँ सभी देवताओं के साथ ब्रह्मा तो रहते ही हैं, सभी प्रकार की इच्छा करनेवाले मुनिजन भी वहाँ निवास करते हैं। पुष्कर तीर्थ में स्नान करके पितरों और देवताओं की पूजा करनेवाले

---

१ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते। कार्तिक्यामन्नदानाच्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ।।७।।
पुष्करे दुष्करं गन्तुं पुष्करे दुष्करं तपः। दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ।।८।।
तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात्कुलानां शतमुद्धरेत्। जम्बूमार्गं च तत्रैव तीर्थं[1] तण्डुलिकाश्रमम् ।।९।।
कण्वाश्रमं[2] कोटितीर्थं नर्मदा चार्बुदं परम्। तीर्थं चर्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकम् ।।१०।।
सरस्वत्यब्धिसङ्गश्च सागरं तीर्थमुत्तमम्। पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ।।११।।
भूमितीर्थं[3] ब्रह्मतुङ्गं तीर्थं पञ्चनदं परम्। भीमतीर्थं गिरीन्द्रश्च[4] देविका पापनाशिनी ।।१२।।
तीर्थं विनाशनं[5] पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनम्। तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ।।१३।।
कुरुक्षेत्रे[6] गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्। य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमलः प्राप्नुयाद्दिवम् ।।१४।।
तत्र विष्ण्वादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं व्रजेत्। सरस्वत्यां संनिहित्यां स्नानकृद्ब्रह्मलोकभाक् ।।१५।।
पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे[7] नयन्ति परमां गतिम्। धर्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमम् ।।१६।।
तीर्थं कनखलं पुण्यं भद्रकर्णह्रदं तथा। गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघार्दनम् ।।१७।।
भृगुतुङ्गं च कुब्जाभ्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकम्। वाराणसी वरं तीर्थमविमुक्तमनुत्तमम् ।।१८।।
कपालमोचनं तीर्थं तीर्थराजं प्रयागकम्। गोमतीगङ्गयोः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ।।१९।।

देवताओं ने सिद्धि प्राप्त की थी। इसमें स्नान करनेवाले (प्राणी) अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करके ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं। वहाँ कार्तिक के महीने में अन्नदान करनेवाला व्यक्ति भी पवित्र होकर ब्रह्मलोक का अधिकारी हो जाता है। पुष्कर की यात्रा तो कठिन है ही, वहाँ तपस्या करना, दान देना तथा निवास करना और भी कठिन है ।।५-८।। वहाँ पर निवास करने से, जप करने से और श्राद्ध करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। वहीं जम्बूमार्ग नामक तीर्थ है। वहाँ ये तीर्थ भी हैं–तण्डुलिकाश्रम, कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, नर्मदातीर्थ, श्रेष्ठ अर्बुद तीर्थ, चर्मण्वती, सिन्धु, सोमनाथ, प्रभास, सरस्वती और समुद्र का संगम, सागर तीर्थ, पिण्डारक, द्वारका, सकलसिद्धिदायिनी गोमती, भूमितीर्थ, ब्रह्मतुङ्ग तीर्थ, श्रेष्ठ पञ्जनद तीर्थ, भीमतीर्थ, गिरीन्द्र, पापनाशिनी देविका, पवित्र विनाशन तीर्थ, पापों का नाश करनेवाला नागोद्भेद तीर्थ और कुमारकोटि। ये सभी तीर्थ (उत्तर फलों का) दान करनेवाले हैं ।।९-१३।। जो निरन्तर यह कहता रहता है कि 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा', 'मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा'–वह पवित्र होकर स्वर्ग चला जाता है। कुरुक्षेत्र में विष्णु आदि देवता रहते हैं अतः वहाँ निवास करनेवाला विष्णु के पास पहुँच जाता है। जो मनुष्य सरस्वती तीर्थ में जाकर स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक का भागी होता है। कुरुक्षेत्र के धूलिकण भी मनुष्य को सद्गति प्राप्त करा दिया करते हैं। इसी तरह धर्मतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, परमोत्तम गङ्गाद्वार (हरिद्वार), कनखलतीर्थ, पवित्र भद्रकर्ण सरोवर, गङ्गा-सरस्वती का सङ्गम, ब्रह्मावर्त, अघार्दन, भृगुतुङ्ग, कुब्जाभ्र, गङ्गोद्भेद, अघान्तक, वाराणसी–सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त तीर्थ, कपालमोचन तीर्थ, तीर्थराज प्रयाग, गोमती-गङ्गा का सङ्गम तथा गङ्गा सर्वत्र स्वर्ग प्रदान करनेवाली हैं ।।१४-१९।। पवित्र राजगृह तीर्थ, पापनाशक

---

१ ख. ग. °र्थं मण्डलि°। २ ख. ग. कण्ठाश्रमं। घ. कर्णाश्रमं। ३ ख. ग. कृमितीर्थं। ४ घ. °रीन्द्र च दे°। ५ ग. विनाश°।
६ ग °क्षेत्रे ग°। ७ ख. ग. त्रे ते यान्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तीर्थं[1] राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकम्। वटेशं वामनं तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमम् ।।२०।।
लौहित्यं करतोयाख्यं शोणं चार्थर्षभं परम्। श्रीपर्वतं [2]कोल्लगिरिः [3]सह्याद्रिर्मलयो गिरिः ।।२१।।
गोदावारी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी। तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमम् ।।२२।।
कालंजरं मुञ्जवटं तीर्थं सूर्पारकं परम्। मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गवेरपुरं परम् ।।२३।।
अवन्ती परमं तीर्थमयोध्या पापनाशिनी। नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०९।।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा। येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः ।।१।।
गतिर्गङ्गा तु भूतानां गतिमन्वेषतां[4] सदा। गङ्गा तारयते[5] चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ।।२।।
चान्द्रायणसहस्राच्च गङ्गाम्भः पानमुत्तमम्। गङ्गा मासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं[6] लभेत् ।।३।।
सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी। यावदस्थि च गङ्गायां तावत्स्वर्गे स तिष्ठति ।।४।।

शालग्राम तीर्थ, वटेश तीर्थ, वामन तीर्थ, उत्तम कालिका संग तीर्थ, लौहित्य तीर्थ, करतोया, शोण, उत्कृष्ट ऋषभ तीर्थ, श्रीपर्वत, कोल्लगिरि, सह्यपर्वत, मलयगिरि, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, वरदा नदी, तापी, पयोष्णी, रेवा, उत्कृष्ट दण्डकारण्य, कालञ्जर, मुञ्जवट तीर्थ, श्रेष्ठ सूर्पारक तीर्थ, मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृंगवेरपुर, अवन्तिकानगरी, पापनाशिनी अयोध्या और नैमिषारण्य–से सभी तीर्थ (इस लोक में) भोग और (परलोक में) मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ।।२०–२४।।

श्री अग्निमहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ।।१०९।।

अध्याय ११०

गङ्गा-माहात्म्य

अग्निदेव ने कहा–अब मैं गङ्गा-माहात्म्य का वर्णन करूँगा। भोग और मोक्ष को देनेवाली गङ्गा जी (सदैव) सेवनीय हैं। जिन-जिन देशों से होकर गङ्गा जी बहती हैं, वे देश पवित्र और श्रेष्ठ हैं। (सद्) गति चाहनेवाले प्राणियों को गङ्गा जी सद्गति प्रदान किया करती हैं। नित्य सेवन करने से गङ्गा जी दोनों कुलों (मातृकुल तथा पितृकुल) को तार देती हैं। गङ्गाजल पीना सहस्रों चान्द्रायण व्रतों से उत्तम है। एक मास तक गङ्गा जी की सेवा करने से सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। वह देवी (गङ्गा) समस्त पापों का नाश करनेवाली तथा स्वर्गलोक को देनेवाली है। जब तक मनुष्य की अस्थि (मात्र) गङ्गा में रहती है, तब तक वह स्वर्ग में निवास करता रहता है। अन्धे आदि

---

१ ख. तीर्थ रा°। २ घ. कोल्वगिरि°। ३ क. ङ. च. °रिः सिंहाद्रि°। ४. क. ङ. च. °तिर्गतिमतां°। ५ क. ङ. च. पावयते। ६ क. ङ. च. °र्वज्ञस्य फ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्धादयस्तु तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम् । गङ्गातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत् ।।५।।
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेतिकीर्तनात् । पुनाति पुण्यपुरुषाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११०।।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग माहात्म्यम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् । प्रयागे ब्रह्मविष्णवाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ।।१।।
सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ।।२।।
वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।।३।।
गङ्गायमुनयोर्मध्यं[1] पृथिव्या जघनं स्मृतम् । प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः ।।४।।
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ।।५।।

(विकलाङ्ग) भी गङ्गा का सेवन करने से देवताओं की समता प्राप्त कर लेते हैं। जो व्यक्ति गङ्गातीर्थ से मिट्टी खोदकर ले जाता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और वह सूर्य के समान (तेजस्वी) हो जाता है। गङ्गा के दर्शन, स्पर्श, पान तथा नाम के संकीर्त्तन से मनुष्य सैकड़ों-हजारों पूर्वजों को पवित्र कर देता है ।।१-६।।

श्री अग्निमहापुराण में गङ्गामाहात्म्य-वर्णन नामक
एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ।।११०।।

अध्याय १११

प्रयाग-माहात्म्य

अग्निदेव बोले-(अब) मैं उस प्रयागराज का माहात्म्य बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष दोनों को प्रदान करनेवाला है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा श्रेष्ठ मुनिजन प्रयाग में ही निवास करते हैं। वहाँ (सभी) नदियाँ, समुद्र, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीच में जह्नुकन्या (गङ्गा जी) बहती रहती है। वे अत्यन्त वेगवती हैं तथा सभी तीर्थों के आगे रहनेवाली हैं। वहाँ तीनों लोकों में प्रसिद्ध सूर्यपुत्री यमुना भी हैं। गङ्गा और यमुना का मध्य भाग पृथ्वी देवी की जङ्घा है तथा इन दोनों नदियों के बीच में स्थित प्रयाग योनि है-ऐसा ऋषियों ने माना है। प्रयाग के साथ (मिला हुआ) है प्रतिष्ठानपुर (आधुनिक झूँसी)। प्रयाग में कम्बल तथा अश्वतर नामक दो तीर्थ और हैं। वहाँ भोगवती नामक तीर्थ है, जो ब्रह्मा की वेदी कहलाता है ।।१-५।। प्रयाग में

---

१ क. ङ. च. °र्मध्ये पृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके[1] । स्तवनादस्य तीर्थस्य मामसंकीर्तनादपि ।।६।।
मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं[2] जप्यादि चाक्षयम् ।।७।।
न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ।।८।।
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः । तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः ।।९।।
वासुकेर्भोगवत्यत्र[3] हंसप्रपतनं परम् । गवां कोटिप्रदानाद्यत्त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ।।१०।।
प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्नानेषु दुर्लभा ।।११।।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ।।१२।।
वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत् । उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा ।।१३।।
कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम् । मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं[4] परम् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।१११।।

(सभी) वेद तथा यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं। प्रयाग की स्तुति करने से, उसका नाम-संकीर्त्तन करने से तथा वहाँ की मिट्टी लेने मात्र से ही (प्राणी) सभी पापों से मुक्त हो जाता है। प्रयाग में सङ्गम पर किये हुए दान, श्राद्ध तथा जप आदि का अक्षय फल मिलता है। अये ब्राह्मणराज! प्रयाग में मरने का विचार न तो वेद वचनों से ही छोड़ा जा सकता है और न लोकवचनों से ही। केवल दस हजार ही क्या, साठ करोड़ तीर्थों का सान्निध्य (भी) प्रयागराज को प्राप्त है। इसलिए प्रयाग तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ नागराज वासुकि का भोगवती तीर्थ तथा हंसप्रपतन तीर्थ भी है। इनमें तीन दिन स्नान करने का उतना ही फल होता है जितना कि करोड़ों गायों का दान करने से होता है ।।६-१०।। विद्वानों का मत तो यह है कि माघ मास में प्रयाग में स्नान करने से भी यही फल प्राप्त होता है। गङ्गा सब स्थानों पर सुलभ हैं, किन्तु तीन स्थानों की गङ्गा जी दुर्लभ हैं। वे स्थान हैं-गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग तथा गङ्गासागर-सङ्गम। यहाँ पर दान करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है तथा (दूसरे जन्म में) राजाधिराज होता है। प्रयाग स्थित वटवृक्ष के नीचे तथा सङ्गम आदि स्थानों में मृत्यु होने से विष्णुधाम की प्राप्ति होती है। प्रयाग में जो अन्य तीर्थ हैं उनके नाम हैं-उर्वशीपुलिन, सन्ध्यावट, कोटितीर्थ, अश्वमेध, गङ्गायमुन, निर्मल मानसतीर्थ और श्रेष्ठ वासरक तीर्थ ।।११-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक
एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१११।।

---

१ क. ङ. च. °के। श्रवणाद°। २ क. ङ. च. श्राद्धवर्ज्यादि। ३ क. ङ. °के भोग°। ४ क. ङ. च. वानर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच

वाराणसी परं तीर्थं गौर्यै प्राह महेश्वरः। भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम् ।।१।।

रुद्र उवाच

गौरि क्षेत्रं[1] न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम्। जप्तं तप्तं हुतं दत्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ।।२।।
अश्मना चरणौ हत्वा[2] वसेत्काशीं नहि त्यजेत्। हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ।।३।।
जप्येश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा। महालयं परं गुह्यं भूमिचण्डेश्वरं तथा ।।४।।
केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविमुक्तके। गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तं परं मम ।।५।।
द्वियोजनं तु पूर्वं स्याद्योजनार्धं तदन्यथा। वरणा च नदी नासी[3] मध्ये वाराणसी तयोः ।।६।।
अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनम्। श्राद्धं दानं निवासश्च यद्यत्स्याद्भुक्तिमुक्तिदम्[4] ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाराणसीमाहात्म्यकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११२।।

अध्याय ११२

वाराणसी-माहात्म्य

अग्निदेव बोले–शिव ने पार्वती जी को बतलाया कि वाराणसी तीर्थ श्रेष्ठ तीर्थ है। जो लोग वहाँ पर निवास करते हुए विष्णु नाम का संकीर्त्तन करते हैं उनके लिए यह श्रेष्ठ तीर्थ भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला हुआ करता है ।।१।।

रुद्र ने कहा–अयि गौरि! वाराणसी क्षेत्र अविमुक्त कहलाता है क्योंकि मैं उसे कभी छोड़ता नहीं हूँ। अविमुक्त क्षेत्र में किये हुए हवन, जप, तप तथा दान का फल अक्षय हुआ करता है। (वाराणसी के घाटों की सीढ़ियों से) पैरों को तोड़कर भी काशी को छोड़ नहीं देना चाहिए (अपितु वहीं पर निवास करते रहना चाहिए) काशी में हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्रीपर्वत, महालय, भूमि, चण्डेश्वर और केदार–ये आठों तीर्थ अत्यन्त गुह्य (गोपनीय) तीर्थ हैं परन्तु मेरा अविमुक्त क्षेत्र तो सबसे अधिक गुप्त है। यह क्षेत्र पूर्व की ओर दो योजन तक और उसके विपरीत (पश्चिम) दिशा में आधे योजन तक फैला हुआ है। वरणा और नासी (असी) नामक दो नदियों के बीच में बसी होने के कारण इस नगरी को वाराणसी कहते हैं। यहाँ स्नान, जप, होम, मरण, देवपूजन, श्राद्ध, दान और निवास आदि जो-जो किया जायगा, वह सब भोग और मोक्ष को प्रदान करनेवाला ही होगा ।।२-७।।

श्री अग्निमहापुराण में वाराणसीमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११२।।

---

१ क. च क्षेत्रेण मु°। २ क. ग. हुत्वा। ३ क. ख. ग. ङ. च. °सी तयोर्मध्ये वाराणसी। अ°। ४ क. ङ. च. यज्ञः स्याद्भुक्तिमुक्तिदः। इ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच

नर्मदादिकमाहाम्यं वक्ष्येऽहं नर्मदां पराम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनाद्वारि नार्मदम् ।।१।।
विस्तराद्योजनशतं योजनद्वयमायतम् । षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः ।।२।।
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके । कावेरीसङ्गमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ।।३।।
गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामब्रवीद्धरिः[1] । अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म नाम्ना[2] श्रीपर्वतस्तव ।।४।।
समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति । अत्र दानं ततो जप्यं श्राद्धं सर्वमथाक्षयम् ।५।।
मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमम् । हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ।।६।।
तपस्तप्त्वा बली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन् ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नर्मदामाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११३।।

अध्याय ११३

नर्मदा-माहात्म्य

अग्निदेव बोले–अब मैं नर्मदा नदी का माहात्म्य बतलाऊँगा। नर्मदा अत्यन्त उत्कृष्ट नदी है। गंगाजल (स्पर्श से) ही सद्यः पवित्र कर देता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शनमात्र से (ही) पवित्र कर दिया करता है। नर्मदा तटवर्ती पर्वत के चारों ओर दो भागों में विभक्त साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ हैं। ये सौ योजनों में फैले हुए तथा दो योजन चौड़े हैं। अमरकण्टक में नर्मदा तथा कावेरी का पवित्र सङ्गम होता है। इसके बाद श्रीपर्वत के सम्बन्ध में सुनो। (एक बार) पार्वती लक्ष्मी का रूप धारण करके वहाँ तपस्या कर रही थीं। उस समय भगवान् विष्णु ने उनसे कहा था–'(यहाँ तपस्या करने से) तुम्हें अध्यात्म ज्ञान प्राप्त हो सकेगा और यह पर्वत तुम्हारे ही नाम पर श्रीपर्वत कहलायेगा। इसके चारों ओर सौ योजन तक फैला हुआ स्थान महान् पुण्य देनेवाला होगा। यहाँ पर दान, तप तथा श्राद्ध आदि जो कुछ भी किया जायगा, उसका फल अक्षय होगा ।।१-५।। यहाँ पर होनेवाली मृत्यु शिवलोक को देनेवाली होगी। यह तीर्थ परम पवित्र तथा सब-कुछ देनेवाला होगा। यहाँ गौरी के साथ भगवान् शंकर क्रीड़ा किया करते हैं। यहीं तपस्या करके हिरण्यकशिपु बलवान् हो गया था और (यहीं तपस्या करके) मुनियों ने सिद्धि प्राप्त कर ली थी ।।६-७।।

श्री अग्निमहापुराण में नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।११३।।

---

१ क. ङ. च. °द्धरः। अ°। २ क. ङ. च. राज्ञा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच

गयामाहात्म्यमाख्यास्ये गया तीर्थोत्तमोत्तमम् । गयासुरस्तपस्तेपे तत्तपस्तापिभिः[१] सुरैः ।।१।।
उक्तः क्षीराब्धिगो विष्णुः पालयास्मान्गयासुरात् । तथेत्युक्त्वा हरिर्दैत्यं वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ।।२।।
दैत्योऽब्रवीत्पवित्रोऽहं भवेयं सर्वतीर्थतः । तथेत्युक्त्वा गतो विष्णुर्दैत्यं दृष्ट्वा नरा[२] हरिम् ।।३।।
गताः शून्या मही स्वर्गे देवा ब्रह्मादयः सुराः[३] । गता ऊचुर्हरिं देव[४] शून्या भूस्त्रिदिवं हरे ।।४।।
दैत्यस्य दर्शनादेव ब्रह्माणं चाब्रवीद्धरिः । यागार्थं दैत्यदेहं त्वं प्रार्थय त्रिदशैः सह ।।५।।
तच्छ्रुत्वा ससुरो ब्रह्मा गयासुरमथाब्रवीत् । अतिथिः प्रार्थयामि त्वां तेहं यागाय पावनम् ।।६।।
गयासुरस्तथेत्युक्त्वाऽपतत्तस्य शिरस्यथ । यागं चकार चलिते देहे[५] पूर्णाहुतिं विभुः[६] ।।७।।
पुनर्ब्रह्माऽब्रवीद्विष्णुं [७]पूर्णाकालेऽसुरोऽचलत्[८] । विष्णुधर्ममथाऽऽहूय प्राह देवमयीं शिलाम् ।।८।।
धारयस्व[९] सुराः सर्वे[१०] तस्यामुपरि सन्तु ते । गदाधारो मदीयाऽथ मूर्तिः स्थास्यति[११] साऽमरैः ।।९।।

अध्याय ११४

गया-माहात्म्य

अग्निदेव बोले–अब मैं गया का माहाम्त्य बतलाऊँगा। गया में गय नामक राक्षस तप किया करता था। उसके तप से व्यथित होकर देवता, क्षीरसागर में शयन करनेवाले भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रार्थना करने लगे। (अये भगवन्) हम लोगों को गयासुर से बचाइये। भगवान् विष्णु ने कहा–'ऐसा ही होगा।' तदनन्तर उन्होंने जाकर दैत्य से कहा–'मुझसे वर माँग लो।' दैत्य ने कहा–मैं समस्त तीर्थों के जल से पवित्र हो जाऊँ (यही वर दीजिये)। विष्णु ने कहा–'ऐसा ही होगा' और यह कहकर वह चले गये। तदनन्तर दैत्य को देखकर (उसके डर के कारण) सभी मनुष्य भगवान् विष्णु की शरण में गये। इससे पृथ्वी खाली हो गयी। ब्रह्मा आदि देवता स्वर्ग में विष्णु के समीप जाकर कहने लगे–'अये भगवन् विष्णु! उस दैत्य के दर्शनमात्र से पृथ्वी और स्वर्ग शून्य हो गये हैं।' यह सुनकर विष्णु ने ब्रह्मा से कहा–'तुम देवताओं के साथ जाकर यज्ञ के लिए उसके शरीर की याचना करो' ।।१-५।। यह सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं के साथ जाकर गयासुर के निकट पहुँचकर कहा–'मैं अतिथि होकर तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ कि यज्ञ के लिए तुम अपना पवित्र शरीर दे दो।' गयासुर ने कहा–'ऐसा ही होगा' और इतना कहकर वह गिर पड़ा। उसके सिर के ऊपर ब्रह्मा ने यज्ञ किया किन्तु पूर्णाहुति के समय उसका शरीर चञ्चल हो गया। (यह देखकर) ब्रह्मा ने पुनः विष्णु से कहा–'उसका शरीर तो पूर्णाहुति के पहले ही चल पड़ा।' तदनन्तर विष्णु ने धर्मराज को बुलाकर कहा–'तुम यहाँ देवमयी शिला को पकड़ लो जिसके ऊपर सभी देवता लोग खड़े होंगे और देवताओं के साथ मेरी गदाधर मूर्ति भी रहेगी' ।।६-९।।

---

१ क. ङ. च. °पितैः सु°। २ घ. नवा। ३ क. ङ. च. पुनः। ४ घ. देवाः। ५ क. घ. ङ. च. देहि। ६ क. ङ. च. भुवि। ७ पूर्णका°। ८ ग. °रोज्ज्वल°। ९ घ. धारयध्वं। १० घ. °र्वेयस्या°। ११ क. च. °ति संवरैः। ग. °ति सा सुरैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मः शिलां देवमयीं तच्छ्रुत्वाऽधारयत्पराम् । या धर्माद् धर्मवत्यायां च जाता धर्मव्रता सुता ।।१०।।
मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तामुवाह तपोन्विताम् । यथा हरिः श्रिया रेमे गौर्यां शम्भुस्तथा तया ।।११।।
कुशपुष्पाद्यरण्याच्च आनीयातिश्रमान्वितः । भुक्त्वा धर्मव्रता प्राह पादसंवाहनं कुरु ।।१२।।
विश्रान्तस्य मुनेः पादौ तथेत्युक्त्वा प्रियाऽकरोत् । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनौ सुप्ते[1] समागतः ।।१३।।
धर्मव्रताऽचिन्तयच्च किं ब्रह्माणं समर्चये । पादसंवाहनं कुर्वे ब्रह्मा पूज्यो गुरोर्गुरुः ।।१४।।
विचिन्त्य पूजयामास ब्रह्माणं चार्हणादिभिः । मरीचिस्तामपश्यन्स[2] शशापोक्तिव्यतिक्रमात् ।।१५।।
शिला भविष्यसि क्रोधाद्धर्मव्रताऽब्रवीच्च तम् । पादाभ्यङ्गं परित्यज्य त्वद्गुरुः पूजितो मया ।।१६।।
अदोषाऽहं यतस्त्वं हि शापं प्राप्स्यसि शंकरात् । धर्मव्रता पृथक्शापं धारयित्वाऽग्निमध्यगात् ।।१७।।
तपश्चचार वर्षाणां सहस्राण्ययुतानि च । ततो विष्ण्वादयो देवा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् ।।
धर्मव्रताऽब्रवीद्देवाञ्शापं निर्वर्तयन्तु मे ।।१८।।

देवा ऊचुः

दत्तो मरीचिना शापो भविष्यति न चान्यथा । शिला पवित्रा देवाङ्घ्रिलक्षिता त्वं भविष्यसि ।।१९।।
देवव्रता देवशिला सर्वदेवादिरूपिणी । सर्वदेवमयी[3] पुण्या निश्चला(नैश्चल्या)यासुरस्यहि ।।२०।।

यह सुनकर धर्मराज ने उस देवमयी शिला को उठा लिया। वही शिला धर्म और धर्मवती से धर्मव्रता कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। ब्रह्मा के एक पुत्र थे मरीचि। उन्होंने इस तपस्विनी कन्या से विवाह कर लिया। जैसे भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ और भगवान् शंकर पार्वती के साथ रमण करते हैं, उसी प्रकार मरीचि उस (धर्मव्रता) के साथ रमण करते रहे। (एक दिन) वन से कुश, पुष्प आदि लाने के कारण अत्यन्त थके हुए मरीचि ने भोजन करके धर्मव्रता से कहा–'अयि! मेरे पैर दबा दो।' पत्नी (धर्मव्रता) 'अच्छा' कहकर थके हुए मुनि के पैर दबाने लगी। इसी बीच मुनि के सो जाने पर ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। धर्मव्रता सोचने लगी–'क्या मैं ब्रह्मा का आतिथ्य करूँ या पति के पैरों को ही दबाती रहूँ? ब्रह्मा तो मेरे (गुरु) पति के भी गुरु और पूज्य हैं' ऐसा सोचकर वह अर्घ्य आदि से ब्रह्मा की पूजा करने में लग गयी। इधर मरीचि ने उसे न देखकर आज्ञोल्लंघन के अपराध से उसे शाप दे दिया कि 'तू पत्थर हो जा।' इस पर धर्मव्रता ने क्रोध में आकर मुनि से कहा–"मैंने तुम्हारे पैरों की मालिश करना छोड़कर उनकी पूजा की है जो आपके भी पूज्य हैं। इसलिए मैं निर्दोष हूँ। (मुझे शाप देने के कारण) तुम्हें भी शंकर का शाप मिलेगा' ।।१०-१६।। तदनन्तर धर्मव्रता ने शाप को अङ्गीकार करके अग्नि के बीच में बैठकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की। (यह देखकर) विष्णु आदि देवताओं ने उससे वर माँगने को कहा। धर्मव्रता ने देवताओं से प्रार्थना की कि 'मेरा शाप शान्त हो जाय' ।।१७-१८।।

देवताओं ने कहा–मरीचि का दिया हुआ शाप व्यर्थ नहीं हो सकता है, इसलिए तुम देवताओं के चरणों से चिह्नित एक पवित्र शिला बन जाओगी। वह देवशिला समस्त देवताओं की आदिरूप, सर्वदेवमयी, पुण्यदायिनी तथा गयासुर को निश्चल रखनेवाली होगी ।।१९-२०।।

---

१ ख. ग. घ. °प्ते तथाऽऽग°। २ घ. °श्यत्स सशा°। ३ क. ङ. च. °र्वतीर्थम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवव्रतोवाच

यदि तुष्टाःस्थ मे सर्वे मयि तिष्ठन्तु सर्वदा। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राद्या गौरी लक्ष्मीमुखाः सुराः ।।२१।।

अग्निरुवाच

देवव्रतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा दिनं गताः। सा धर्मेणासुरस्यास्य धृता देवमयी शिला ।।२२।।
सशिलश्चलितो दैत्यः स्थिता रुद्रादयस्ततः। सदेवश्चलितो दैत्यस्ततो देवैः प्रसादितः ।।२३।।
क्षीराब्धिगो हरिः प्रादात्स्वमूर्तिं श्रीगदाधरम्। [1]गच्छन्तु भोः स्वयं यास्ये मूर्त्या वै देवगम्यया ।।२४।।
स्थितो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तोभयात्मकः। निश्चला (नैश्चल्या) र्थं स्वयं देवः स्थित आदिगदाधरः ।।२५।।
गदो नामासुरो रौद्रः[2] स हतो विष्णुना पुरा। तदस्थिनिर्मिता[3] चाऽऽद्या गदा या विश्वकर्मणा ।।२६।।
आद्यया गदया हेतिप्रमुखा राक्षसा हताः। [4]गदाधरेण देवेन तस्मादादि गदाधरः ।।२७।।
देवमय्यां शिलायां च स्थिते चाऽऽदिगदाधरे। गयासुरे निश्चलेऽथ ब्रह्मा पूर्णाहुतिं ददौ ।।२८।।
गयासुरोऽब्रवीद्देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम्। विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्ययम् ।।२९।।
आक्रान्तो यद्यहं देवा दातुमर्हत मे वरम् ।।३०।।

देवव्रता ने कहा–यदि आप लोग मुझसे सन्तुष्ट हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गौरी तथा लक्ष्मी आदि देवगण सदा मेरे ऊपर निवास करते रहें ।।२१।।

अग्निदेव बोले–देवव्रता की बात सुनकर देवता लोग 'ऐसा ही हो' कहकर स्वर्ग को लौट गये। धर्मराज ने उसी देवमयी शिला को असुर को रोकने के लिए उठाया था। जब वह दैत्य शिला सहित चलने लगा तब रुद्र आदि देवता उस पर चढ़ गये; किन्तु जब देवताओं को लेकर भी वह दैत्य चलता ही रहा तब देवताओं ने क्षीरसागर में रहनेवाले भगवान् विष्णु की आराधना की। भगवान् विष्णु ने (देवताओं को) अपनी गदाधर मूर्ति प्रदान की और कहा–'आप लोग जाइये' इस देवगम्या मूर्ति के साथ मैं स्वयं चला आऊँगा। तभी से भगवान् आदि गदाधर व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों में उस असुर को स्थिर करने के लिए उसके ऊपर बैठे हुए हैं ।।२२-२५।। प्राचीनकाल में गद नाम का एक भयंकर असुर था। उसे भगवान् विष्णु ने मार डाला था। विश्वकर्मा ने उसकी हड्डियों से पहले पहल जिस गदा का निर्माण किया उससे गदाधर देव (भगवान् विष्णु) ने हेति आदि राक्षसों का वध किया था। इसलिए वे (भगवान् विष्णु) आदि गदाधर कहलाते हैं। इधर, जब देवमयी शिला के ऊपर आदि गदाधर (भगवान् विष्णु) बैठ गये और जब गयासुर अचल हो गया तब ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दी। गयासुर ने देवताओं से पूछा–'आप लोगों ने मेरे साथ छल क्यों किया ? क्या मैं विष्णु के कह देने भर से ही निश्चल नहीं हो सकता था ? अये देवताओ! आप लोगों ने मेरे ऊपर आक्रमण किया है, इसलिए आप मुझे वरदान दीजिये' ।।२६-३०।।

---

१ गच्छन्तु ...गम्यया नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ घ. दैत्यः। ३ क. ङ. च. °दङ्गान्निर्मि°। ४ घ. °ण विधिवत्तस्मा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवा ऊचुः

तीर्थस्य करणे यत्त्वमस्माभिर्निश्चलीकृतः । विष्णोः शम्भोर्ब्रह्मणश्च क्षेत्रं तव भविष्यति ।।३१।।
प्रसिद्धं सर्वतीर्थेभ्यः पित्रादेर्ब्रह्मलोकदम् । इत्युक्त्वा ते स्थिताः देवा देव्यस्तीर्थादयः स्थिताः ।।३२।।
यागं कृत्वा ददौ ब्रह्मा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणास्तदा । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं पञ्चाशत्पञ्च चार्पये (चाऽऽर्पय) त् ।।३३।।
ग्रामान्स्वर्णगिरीन्कृत्वा नदीर्दुग्धमधुश्रवाः । सरोवराणि दध्याज्यैर्बहूनन्नादिपर्वतान् ।।३४।।
कामधेनुं कल्पतरुं स्वर्णरूप्यगृहाणि च । न याचयन्तु विप्रेन्द्रा अल्पानुक्त्वा ददौ प्रभुः ।।३५।।
धर्मयागे प्रलोभस्तु प्रतिगृह्य धनादिकम् । स्थिता यदा गयायां ते शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा ।।३६।।
विद्या विवर्जिता यूयं तृष्णायुक्ता भविष्यथ । दुग्धादिवर्जिता नद्यः शैलाः पाषाणरूपिणः ।।३७।।
ब्रह्माणं ब्राह्मणाश्चोचुर्नष्टं शापेन चाखिलम् । जीवनाय प्रसादं नः कुरु विप्रांश्च सोऽब्रवीत् ।।३८।।
तीर्थोपजीविका यूयं सचन्द्रार्कं भविष्यथ । ते युष्मान्पूजयिष्यन्ति गयायामागता नराः ।।३९।।
हव्यकव्यैर्धनैः श्राद्धैस्तेषां कुलशतं व्रजेत्[1] । नरकात्स्वर्गलोकाय स्वर्गलोकात्परां गतिम् ।।४०।।
गयोऽपि चाकरोद्यागं वह्वन्नं बहुदक्षिणम् । गयापुरी तेन नाम्ना पाण्डवा ईजिरे हरिम् ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११४।।

देवतागण बोले–'हम लोगों ने तीर्थ निर्माण करने के लिए ही तुम्हें स्थिर कर दिया है। अतः तुम्हारा शरीर विष्णु, शिव और ब्रह्मा का क्षेत्र होगा। वह क्षेत्र समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ तथा पितरों को ब्रह्मलोक तक पहुँचानेवाला होगा।' इतना कहकर सभी देव, देवियाँ तथा तीर्थ वहीं बैठ गये। तदनन्तर ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान करके ऋत्विजों को दक्षिणा दी। जिसमें पाँच कोस गया क्षेत्र, पचपन गाँव, सोने के पहाड़, दूध तथा मधु को प्रवाहित करनेवाली नदियाँ, दही और घी के सरोवर, प्रचुर अन्न आदि के पर्वत, कामधेनु, कल्पवृक्ष, सोना और चाँदी तथा घर थे। तदनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों को सम्बोधित करके कहा–'अये ब्राह्मणो! इसके बाद कहीं अन्यत्र याचना मत करना ।।३१-३५।। (एक बार) लोभवश जब वे ही ब्राह्मण (अन्यत्र) धर्मयाग में दान लेकर गया में पहुँचे तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दे दिया कि 'तुम लोग विद्याविहीन और तृष्णा से युक्त रहोगे। यह नदियाँ दुग्ध आदि से शून्य हो जायँगी और पर्वत पत्थर होकर रह जायँगे' ।।३६-३७।। (ब्रह्मा का शाप सुनकर) ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से कहा–'आपके शाप से हमारा सर्वस्व नष्ट हो गया है। अब जीविका के लिए हमारे ऊपर कृपा कीजिये।' ब्रह्मा ने ब्राह्मणों से कहा–'जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तब तक तुम लोगों की जीविका तीर्थों से ही चलेगी। गया में आये हुए मनुष्य तुम्हारा पूजन करेंगे और यहाँ हव्य (देवताओं के निमित्त अन्न), कव्य (पितरों के निमित्त अन्न) तथा धन आदि से श्राद्ध करने से उन यजमानों के सौ कुल नरक से स्वर्ग चले जायँगे और यदि स्वर्ग में होंगे तो परम गति को प्राप्त कर लेंगे। गय ने भी बहुत-सा अन्न तथा बहुत-सी दक्षिणा से युक्त यज्ञ किया। उस (गय) के नाम पर ही यह नगरी गया के नाम से प्रसिद्ध हो गयी है। यहीं पर पाण्डवों ने भगवान् विष्णु की आराधना की थी ।।३८-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में गया-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।११४।।

---

१ क. ङ. च. महत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच

उद्यतश्चेद्गयां यातुं[1] श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कार्पटीवेशं (षं) ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम् ।।१।।
कृत्वा प्रतिदिनं गच्छेत्संयतश्चाप्रतिग्रही। गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमनं प्रति ।।२।।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां तु पदे पदे। ब्रह्मज्ञाने किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ।।३।।
किं कुरुक्षेत्रवासेन यदा पुत्रो गयां व्रजेत्। गयां प्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत्[2] ।।४।।
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किंन दास्यति। ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।।५।।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा। काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रं नरकाद्भयभीरवः ।।६।।
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति। मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ।।७।।
न कालादि गयातीर्थे दद्यात्पिण्डांश्च नित्यशः। पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।८।।
[3]अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां मृतवासरे। अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ।।९।।

अध्याय ११५

गया-यात्रा-विधि

अग्निदेव बोले–गया-यात्रा के लिए उद्यत व्यक्ति को विधिपूर्वक श्राद्ध करके काषाय वस्त्र धारण करना चाहिए। फिर उसे गाँव की प्रदक्षिणा करके प्रत्येक दिन चलते रहना चाहिए, और इस बीच उसे कहीं दान नहीं लेना चाहिए। उसे संयम से रहना चाहिए। जिस समय से मनुष्य गया-यात्रा के लिए घर से निकल पड़ता है तब से उसके एक-एक पद पर पितरों को स्वर्गारोहण का सोपान प्राप्त होता रहता है। जिसका पुत्र गया-यात्रा कर ले उसके लिए ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता ही क्या ? उसे गौ के घर में भी मरने से क्या लाभ ? अथवा कुरुक्षेत्र में निवास करने से ही क्या प्रयोजन ? (क्योंकि वह व्यक्ति तो पुत्र की गया-यात्रा से ही मुक्त हो जाता है।) इसीलिए पुत्र की गया-यात्रा को देखकर पितृगण उल्लास मनाने लगते हैं ।।१-४।। (वे सोचने लगते हैं) 'क्या यह अपने पैरों से भी छूकर हमें जल नहीं देगा ?' मोक्ष चार प्रकार से होता है–ब्रह्मज्ञान से, गयाश्राद्ध से, गौ के घर में मरण से तथा कुरुक्षेत्र में निवास करने से। नरक के भय से भयभीत होने के कारण पितृगण पुत्र की कामना करते हैं। वे सोचते हैं कि (नरक से) हमारी रक्षा वही पुत्र कर सकेगा जो गया-यात्रा करेगा। सभी तीर्थों में (जाकर वहाँ) मुण्डन तथा उपवास करने का नियम है, किन्तु गया तीर्थ के लिए काल (विशेष) आदि का कोई नियम नहीं है। वहाँ तो नित्य पिण्डदान करना चाहिए। वहाँ पर तीन पक्ष तक निवास करनेवाला अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है। पिता आदि नौ देवतावाले तथा बारह देवतावाले अष्टकाश्राद्ध (सप्तमी आदि तीन दिनों में किया जानेवाला श्राद्ध), नान्दी श्राद्ध (पुत्र आदि के शुभ संस्कार के दिन किया जानेवाला श्राद्ध), गया श्राद्ध और मृत्यु दिवसीय श्राद्ध में माता का श्राद्ध उसके पति (अर्थात् अपने पिता) से पृथक् करना चाहिए। अन्यत्र पति के साथ ही श्राद्ध कर लेना चाहिए ।।५-९।।

---

१ क. ङ. च. गन्तु°। २ क. ङ. च. °त्। पुत्रे मयि ज°। ३ क. ङ. च. अन्वाष्टकासु वृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पित्रादिनवदैवत्यं[1] तथा द्वादशदैवतम् । प्रथमे दिवसे स्नायात्तीर्थे ह्युत्तरमानसे ।।१०।।
उत्तरे मानसे पुण्य आयुरारोग्यवृद्धये । सर्वाघौघविघाताय स्नानं कुर्याद्विमुक्तये ।।११।।
सन्तर्प्य देवत्रादीञ्श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत् । दिव्यान्तरिक्षभौमस्था[2](भूमिष्ठा)न्देवान्संतर्पयाम्यहम् ।।१२।।
दिव्यान्तरिक्षभौमादि पितृमात्रादि तर्पयेत् । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।।१३।।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही । मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातामहः ।।१४।।
तेभ्योऽन्येभ्य[3] इमान्पिण्डानुद्धाराय ददाम्यहम् । ॐ नमः सूर्यदेवाय सोम भौमज्ञरूपिणे ।।१५।।
जीवशुक्रशनैश्चारि राहुकेतुस्वरूपिणे । उत्तरे मानसे स्नात उद्धरेत्सकलं कुलम् ।।१६।।
सूर्यं नत्वा ब्रजेन्मौनी नरो[4] दक्षिणमानसम् । दक्षिणे मानसे स्नानं करोमि [5]पितृतृप्तये ।।१७।।
गयायामागतः स्वर्गं यान्तु मे पितरोऽखिलाः । श्राद्धं पिण्डं ततः कृत्वा सूर्यं नत्वा वदेदिदम् ।।१८।।
ॐ नमो भानवे भर्त्रे भवाय भव मे विभो । भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्वपितॄणां भव भावितः ।।१९।।
[6]कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा । अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः पितृदेवताः ।।२०।।
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह । मदीयाः पितरो ये च मातृमातामहादयः ।।२१।।
तेषां [7]पिण्डप्रदाताऽहमागतोऽस्मि गयामिमाम् । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणपूजितम्[8] ।।२२।।

गया में पिता आदि के क्रम 'नवदेवताक' अथवा 'द्वादशदेवताक' श्राद्ध करना आवश्यक है। गयायात्री को पहले दिन वहाँ के उत्तर मानस तीर्थ में स्नान करना चाहिए। पवित्र उत्तर मानस तीर्थ में स्नान इसलिए करना चाहिए जिससे आयु तथा आरोग्य की वृद्धि हो, सम्पूर्ण पापों का विनाश हो, और मोक्ष की प्राप्ति हो ।।१०-११।। (स्नानान्तर) देवताओं और पितरों को तर्पण करके ही श्राद्ध और पिण्डदान का अधिकार प्राप्त होता है। तर्पण करते समय यह कहना चाहिए कि 'मैं स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर स्थित देवों के लिए तर्पण कर चुकने के बाद पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह तथा अन्य सम्बन्धियों के लिए तर्पण कर रहा हूँ। तदनन्तर मैं (अपने पितरों का) उद्धार करने के लिए पिण्डदान कर रहा हूँ' ऐसा कहकर उन सबको पिण्डदान देना चाहिए। तदनन्तर 'चन्द्र, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, बुध, राहु और केतु रूपी सूर्य को नमस्कार है।' ऐसा कहना चाहिए। उत्तर मानस में स्नान करनेवाला अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है ।।१२-१६।। सूर्य नमस्कार कर लेने के बाद मौन धारण करके दक्षिण मानस की ओर जाना चाहिए। (इस समय उसे यह सोचना चाहिए कि) 'मैं पितरों की तृप्ति के लिए ही दक्षिण मानस में स्नान करता हूँ।' उसे यह भी सोचते रहना चाहिए कि 'मैं गया में आया हूँ, इसलिए मेरे सभी पितृगण स्वर्ग में पहुँच जायँ।' तदनन्तर श्राद्ध, पिण्डदान और सूर्य नमस्कार करके यह कहना चाहिए–'भरण-पोषण करनेवाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है। अये विभो! मेरी रक्षा कीजिये और मेरे पितरों के ऊपर कृपा करके उन्हें भुक्ति-मुक्ति प्रदान कीजिये। कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद तथा (अन्य) आज्य भक्षण करनेवाले पितृदेवताओ! अये महाभाग! आप लोग आइये। आप लोगों ने मेरे जिन माता, मातामह आदि पितरों की रक्षा (अभी तक) की है, मैं उन्हीं को पिण्डदान देने के लिए गया में आया हूँ ।।१७-२१½।। गया में मुण्डपृष्ठ से उत्तर की ओर कनखल नामक एक तीर्थ है। देवता

---

१ क. ङ. च. °दिमेकर्द°। २ दिव्यान्तरिक्षमभौमस्था°°°सन्तर्पयाम्यहम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ क. ङ. च. तेभ्यस्तेभ्य। ४ क. ङ. च. ततो। ५ क. ङ. च. तृदैवते। ग°। ६ घ. °वाहान°। ७ क. ङ. च. °ण्डयुतानां° च आग°। ८ क. ङ. च. °वतागणसेवित°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयङ्करैः ।।२३।।
लेलिहानैर्महानागै रक्ष्यते चैव नित्यशः। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति क्रीडन्ते(न्ति) भुवि मानवाः ।।२४।।
फल्गुतीर्थं ततो गच्छेन्महानद्यां स्थितं परम्। नागाज्जनार्दनात्कूपादूराच्चोत्तरमानसात् ।।२५।।
एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते। मुण्डपृष्ठं[1] नगा द्यौश्च सारात्सारमथान्तरम् ।।२६।।
यस्मिन्फलति श्रीगौर्वा कामधेनुर्जलं मही। [2]दृष्टिरम्यादिकं यस्मात्फल्गुतीर्थं न फल्गुवत् ।।२७।।
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्। एतेन किं न पर्याप्तं नृणां सुकृतकारिणाम् ।।२८।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्सरांसि च। फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिनेदिने ।।२९।।
फल्गुतीर्थे तीर्थराजे करोति स्नानमादृतः। पितॄणां ब्रह्मलोकाप्त्या आत्मनो भुक्तिमुक्तये ।।३०।।
स्नात्वा श्राद्धी पिण्डदोऽथ नमेद्देवं पितामहम्। कलौ माहेश्वरा लोका अत्र देवो गदाधरः ।।३१।।
पितामहो लिङ्गरूपी तं नमामि महेश्वरम्। गदाधरं बलं काममनिरुद्धं नरायणम् ।।३२।।
ब्रह्मविष्णुनृसिंहाख्यं वराहादीन्नमाम्यहम्। ततो गदाधरं दृष्ट्वा कुलानां शतमुद्धरेत् ।।३३।।
धर्मारण्यं द्वितीयेऽह्नि मतङ्गस्याऽऽश्रमे वरे। मतङ्गवाप्यां संस्नाप्य श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत् ।।३४।।

और ऋषि लोग उसकी पूजा किया करते हैं। वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उसकी रक्षा प्रतिदिन जिह्वा को लपलपाते हुए वे सर्प करते हैं जो सिद्ध जनों के लिए आनन्द प्रदान करनेवाले किन्तु पापियों के लिए भयङ्कर हैं। उसमें स्नान करनेवाले मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं और (इस लोक में आने पर) पृथ्वी पर आनन्द से क्रीड़ा किया करते हैं ।।२२-२४।। कनखल तीर्थ के बाद तीर्थयात्री को नागजनार्दन कूप, वट, उत्तरमानस सभी तीर्थों में होते हुए फल्गुतीर्थ में जाना चाहिए—जो महानदी में स्थित है। यह जो फल्गुतीर्थ है, वह गयासुर का सिर कहा गया है। इसी प्रकार मुण्डपृष्ठ, नग और द्यौ—एक से बढ़कर एक उत्तम तीर्थ हैं। फल्गुतीर्थ जल और उसकी भूमि लक्ष्मी और कामधेनु का फल देनेवाली है। यह देखने में भी रमणीय है अतः फल्गुतीर्थ का फल किसी प्रकार भी फल्गु (तुच्छ) नहीं है। फल्गुतीर्थ में स्नान करके भगवान् गदाधर (विष्णु) देव का दर्शन कर लेनेवाले पुण्यात्मा मनुष्यों के लिए करना ही क्या रह जाता है ? समुद्र से लेकर सरोवर तक इस पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे प्रतिदिन एक बार फल्गुतीर्थ अवश्य जाते हैं। तीर्थराज फल्गुतीर्थ में श्रद्धापूर्वक स्नान करनेवाला व्यक्ति पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाकर स्वयं भोग और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। गया-यात्री को उसमें स्नान करके, पितरों के लिए श्राद्ध और पिण्डदान करते हुए यह कहते हुए भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करना चाहिए—'कलियुग में लोग महेश्वर के भक्त हुआ करते हैं किन्तु यहाँ तो केवल गदाधर (भगवान् विष्णु ही एकमात्र) देवता हैं और पितामह लिङ्गरूपी हैं। इसलिए महेश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं गदाधर (भगवान् विष्णु), बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह तथा वराह आदि को (भी) नमस्कार करता हूँ। तदनन्तर गया-यात्री को गदाधर (भगवान् विष्णु) का दर्शन करके अपने सौ कुलों का उद्धार करना चाहिए ।।२५-३३।। दूसरे दिन गया-यात्री मतङ्ग के श्रेष्ठ आश्रम में स्थित धर्मारण्य तीर्थ में जाय। वहाँ मतङ्ग-

---

१ ख. ग. घ. °पृष्ठनगाद्याश्च। २ दृष्टिरम्यादिकं...फल्गुवत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मतङ्गेशं सुसिद्धेशं नत्वा चेदमुदीरयेत् । प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ।।३५।।
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितॄणां निष्कृतिः कृता । स्नानतर्पणश्राद्धादि ब्राह्मतीर्थेऽथ कूपके ।।३६।।
तत्कूपयूपयोर्मध्ये[1] श्राद्धं कुलशतोद्धृतौ । महाबोधितरुं नत्वा धर्मवान्स्वर्गलोकभाक् ।।३७।।
तृतीये ब्रह्मसरसि स्नानं कुर्याद्यतव्रतः[2] । स्नानं ब्रह्मसरस्तीर्थे करोमि ब्रह्मभूतये ।।३८।।
पितॄणां ब्रह्मलोकाय ब्रह्मर्षिगणसेविते । तर्पणं श्राद्धकृत्पिण्डं प्रदद्यात्तु प्रसेचनम् ।।
कुर्याच्च वायपेयार्थी ब्रह्मयूपप्रदक्षिणम् ।।३९।।

एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति ।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरीप्रसिद्धा ।।४०।।

ब्रह्माणं च नमस्कृत्य[3] कुलानां शतमुद्धरेत् । फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम् ।।४१।।
कृत्वा श्राद्धं सपिण्डं च गयाशिरसि कारयेत् । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ।।४२।।
तत्र पिण्डप्रदानेन कुलानां शतमुद्धरेत् । पुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ।।४३।।
मुण्डपृष्ठे शिरः साक्षाद्गयाशिर उदाहृतम् । साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रमं[4] कृतम् ।।४४।।
अमृतं तत्र वहति पितॄणां दत्तमक्षयम् । स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम् ।।४५।।

वापी में स्नान करके ही उसे श्राद्ध और पिण्डदान करना चाहिए। तदनन्तर सिद्धेश्वर मतङ्गेश को नमस्कार करते हुए यह कहना चाहिए–'समस्त देवता प्रमाण हैं और ये लोकपाल साक्षी हैं कि मैंने इस मतङ्ग-तीर्थ में आकर पितरों का उद्धार कर दिया है।' तत्पश्चात् ब्राह्मतीर्थ में एक छोटे-से कुएँ के समीप स्नान, तर्पण तथा श्राद्ध आदि कर्म करे। उस कुएँ तथा वहाँ पर स्थित यूप के बीच में श्राद्ध करने से (श्राद्ध करनेवाले के) सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। गया में महाबोधि वृक्ष को नमस्कार करके धर्मात्मा व्यक्ति स्वर्ग का भागी बन जाता है ।।३४-३७।। तीसरे दिन गयायात्री नियमपूर्वक ब्रह्मसर में स्नान करे और स्नान करते हुए यह ध्यान करता रहे–"मैं ब्रह्मा तथा ऋषियों से सेवित इस ब्रह्म सरोवर नामक तीर्थ में स्नान करता हूँ, जिससे मुझे ब्रह्मविभूति की प्राप्ति हो जाय, और मेरे पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाय।" तदनन्तर तर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान करना चाहिए। वाजपेय यज्ञ करने के इच्छुक को ब्रह्मयूप की प्रदक्षिणा तथा उसके ऊपर जल का सिञ्चन करना चाहिए। मुनि अपने हाथ में जल से भरा हुआ घड़ा और कुश लेकर आम्र वृक्ष की जड़ में पानी डाल रहा है। इससे आम्रवृक्ष भी सींचे जा रहे हैं और पितर भी तृप्त हो रहे हैं। इसलिए यह प्रसिद्ध है कि एक कर्म दो फलों को देनेवाला भी हुआ करता है ।।३८-४०।। वहाँ पर भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करके मनुष्य सौ कुलों का उद्धार कर देता है। चौथे दिन गयायात्री फल्गुतीर्थ में स्नान तथा देवताओं आदि का तर्पण करके गयाशिर नामक स्थान में पिण्डदान के साथ श्राद्ध कर्म कराये। गयाक्षेत्र पाँच कोस तक और गयाशिर एक कोस तक (फैला हुआ) है। वहाँ (गयाशिर में) पिण्डदान करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। मुण्डपृष्ठ में बुद्धिमान् भगवान् शङ्कर ने अपना पैर रखा था और वहीं पर गयासुर का सिर भी रखा गया था। इसलिए उस स्थान को गयाशिर कहते हैं। वहीं पर फल्गुतीर्थ-आश्रम भी बना हुआ है। वहाँ अमृत (के समान जल) बहता रहता है, जिसमें तर्पण करने से पितरों को अक्षय जल प्राप्त होता है। तदनन्तर दशाश्वमेध में स्नान करके, भगवान् ब्रह्मा का दर्शन करके और भगवान् शङ्कर के चरणों का स्पर्श करके मनुष्य बार-बार यहाँ जन्म नहीं लिया करता हैं ।।४१-४५।।

---

१ क. ङ. च. °पपृष्ठयो°। २ क. ङ. च. °र्याच्च सद्व्रतः। ३ क. ख. ग. घ. पुरस्कृत्य। ४ क. ङ. च. °श्रयं कृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा नेह भूयोऽभिजायते। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं[1] दत्त्वा गयाशिरे ।।४६।।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः। पायसेनाथ पिष्टेन सक्तुना चरुणा तथा ।।४७।।
पिण्डदानं तण्डुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः। पिण्डं दत्त्वा रुद्रपते कुलानां शतमुद्धरेत् ।।४८।।
तथा विष्णुपदे श्राद्धपिण्डदो ह्यृणमुक्तिकृत्। पित्रादीनां शतकुलं स्वात्मानं[2] तारयेन्नरः ।।४९।।
तथा ब्रह्मपदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्। दक्षिणाग्निपदे तद्वद्गार्हपत्यपदे तथा ।।५०।।
पदे[3] चाऽऽहवनीयस्य श्राद्धी यज्ञफलं लभेत्। आवसथ्यस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य च गणस्य च ।।५१।।
अगस्त्यकार्तिकेयस्य [4]श्राद्धी तारयते कुलम्। आदित्यस्य रथं नत्वा कर्णादित्यं नमेन्नरः ।।५२।।
कनकेशपदं[5] नत्वा गया केदारकं नमेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ।।५३।।
विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान्। विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् ।।५४।।
कथं पुत्रादयः स्युर्मे द्विजा ऊचुर्विशालकम्। गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ।।५५।।
विशालोऽपि गयाशीर्षे पितृपिण्डान्ददौ ततः[6]। दृष्ट्वाऽऽकाशे सितं रक्तं पुरुषांस्तांश्च पृष्टवान् ।।५६।।
के यूयं तेषु चैवैकः सितां प्रोचे विशालकम्। अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात् ।।५७।।

गयाशिर में शमीपत्र के बराबर पिण्डदान देने से नरक में रहनेवाले पितर स्वर्ग चले जाते हैं और स्वर्ग में निवास करनेवाले पितरों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। खीर, पिसान, सत्तू, चरु, तण्डुल तथा तिलमिश्रित गेहूँ का पिण्ड (बनाकर उसका) दान करना चाहिए। भगवान् रुद्र के चरणों में इस प्रकार से बनाये गये पिण्ड का दान करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है ।।४६-४८।। उसी प्रकार भगवान् विष्णु के चरणों में पिण्ड अर्पित करने से (पितृ, देव और ऋषि) ऋणों से छुटकारा पाकर मनुष्य अपने पिता आदि के सौ कुलों का उद्धार तो कर ही देता है, अपना भी निस्तार कर लेता है। भगवान् ब्रह्मा के चरणों में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि में श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति (सभी) यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है। आवसथ्याग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, गणपति, अगस्त्य तथा कार्तिकेय के निमित्त श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अपने कुल का उद्धार कर देता है। गयायात्री पहले सूर्य के रथ को नमस्कार करके बाद में कर्णादित्य को नमस्कार करे। तदनन्तर उसे कनकेश्वर तथा गया-केदार नामक तीर्थों का नमस्कार करना चाहिए। ऐसा करनेवाला व्यक्ति सभी पापों से छुटकारा पाकर पितरों को ब्रह्मपुर में पहुँचा देता है ।।४९-५३।। गया में पिण्डदान करने से विशाल नामक (विदिशा के) राजा ने भी पुत्र प्राप्त कर लिया था (उसकी कथा इस प्रकार है)-विशाला नामक नगरी में एक राजकुमार था-विशाल। (एक बार) उसने ब्राह्मणों से पूछा, 'मुझे पुत्रादि की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?' ब्राह्मणों ने उत्तर दिया-'गया में पिण्डदान करने से तुम्हें सब-कुछ प्राप्त हो सकेगा' ।।५४-५५।। तदनन्तर विशाल ने गया में (जाकर) पिण्डदान किया। उसने आकाश में श्वेत और रक्त (आदि) वर्णवाले पुरुषों को देखकर उनसे प्रश्न किया कि 'तुम लोग कौन हो ?' उनमें से एक पुरुष, जो श्वेत था, विशाल से बोला-'मैं श्वेतवर्णवाला तुम्हारा पिता हूँ। मैंने शुभ कर्मों से इन्द्रलोक को प्राप्त कर लिया है। अये पुत्र! ये

---

१ क. ङ. च. शिला°। २ क. ङ. च. स्वात्मनोत्तार°। ३ ख. ग. घ. °दे वाऽऽह°। ४ क. ङ. च. श्राद्धं। ५ क. ङ. च. °पदान्यच्च ग°। ख. ग. °पदान्यत्र ग°। ६ क. ङ. च. गतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मम रक्तः पिता पुत्र[1] कृष्णश्चैव पितामहः[2] । अब्रवीन्नरकं प्राप्तास्त्वया[3] मुक्तीकृता[4] वयम् ।।५८।।
पिण्डदानाद्ब्रह्मलोकं ब्रजाम इति ते गताः । विशालः प्राप्तपुत्रादी राज्यं कृत्वा हरिं ययौ ।।५९।।
प्रेतराजः स्वमुक्त्यै च वणिजं चेदमब्रवीत् । प्रेतैः सर्वैः सहाऽऽर्तः सन्सुकृतं भुज्यते फलम् ।।६०।।
श्रवणद्वादशीयोगे कुम्भः सान्नश्च सोदकः । दत्तः[5] पुरा स मध्याह्ने जीवनायोपतिष्ठते ।।६१।।
धनं गृहीत्वा मे गच्छ गयायां पिण्डदो भव । वणिग्धनं गृहीत्वा तु गयायां पिण्डदोऽभवत् ।।६२।।
प्रेतराजः सह प्रेतैर्मुक्तो नीतो हरेः पुरम् । गयाशीर्षे पिण्डदानादात्मानं स्वपितॄंस्तथा ।।६३।।
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ।।६४।।
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ।।६५।।
विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।६६।।
ये केचित्प्रेतरूपेण तिष्ठन्ति पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ।।६७।।
पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वे कुलतारकैः । आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता ।।६८।।
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नायान्मन्त्रेण बुद्धिमान् । गदाप्रक्षालने तीर्थे गदालोलेऽतिपावने ।।६९।।

रक्तवर्णवाले मेरे पितामह हैं। हम सब नरक में पड़े हुए थे। तुमने हम लोगों का उद्धार कर दिया है। तुम्हारे पिण्डदान से हम लोग ब्रह्मलोक को जा रहे हैं'–इतना कहकर वे लोग चले गये। महाराज विशाल ने पुत्र आदि को प्राप्त करके राज्य का भोग करते हुए (अन्त में) विष्णु (धाम) को प्राप्त कर लिया ।।५६-५९।। एक समय प्रेतराज ने अपनी मुक्ति के लिए एक वणिक् से कहा–'मैं दुःखी होकर सभी प्रेतों के साथ अपना कर्मफल भोग रहा हूँ। पूर्वकाल में मैंने श्रवणद्वादशी योग में अन्न और जल से भरा हुआ एक घड़ा दान दिया था। वही मध्याह्न में मेरी जीविका का साधन बन जाता है। तुम मेरा धन लेकर गया में जाकर पिण्डदान कर दो।' बनिये ने धन लेकर गया में जाकर पिण्डदान कर दिया। इससे वह प्रेतराज मुक्त होकर समस्त प्रेतों के साथ वैकुण्ठ चला गया। इसलिए जो व्यक्ति गया में पिण्डदान करता है, वह अपने पितरों को तथा स्वयं अपने-आपको मुक्त कर देता है ।।६०-६३।। (गया में पिण्डदान करते समय यह ध्यान करते रहना चाहिए)'मेरा दिया हुआ महापिण्ड उन लोगों को अक्षय रूप से प्राप्त होता रहे जो मेरे पितृ तथा मातृकुल में मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, जो मेरे श्वशुर, बन्धु तथा बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, स्त्री-पुत्र से हीन होने के कारण मेरे कुल के जो लोग पिण्डों के अधिकारी नहीं रह गये हैं, जो (यज्ञादि) क्रियाओं से भ्रष्ट हो चुके हैं तथा जो पितृगण जन्मान्ध, पंगु, विरूप, गर्भभ्रष्ट, ज्ञात तथा अज्ञात रूप से मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। प्रेतयोनि में रहनेवाले मेरे पितृगण भी मेरे पिण्डदान से सदा तृप्त होते रहें। कुल का उद्धार करनेवाले (अपने) सभी (पितरों) को पिण्डदान देना चाहिए। जो अक्षय लोक की कामना करते हों उन्हें स्वयं अपने लिये (जीवनकाल में ही) पिण्डदान करना चाहिए ।।६४-६८।। पाँचवें दिन गयायात्री गदालोल नामक तीर्थ में इस मन्त्र को पढ़ते हुए स्नान करे–'अये जनार्दन! सांसारिक ताप की शान्ति के लिए मैं अत्यन्त पवित्र उस गदालोल नामक तीर्थ में स्नान करता

---

१ क. ङ. च. °त्र हृष्टश्चै°। २ ख. ग. °हः। अवीचिनं °र°। ३ क. ङ. च. प्राप्तौ त्वया। ४ ख. ग. मुक्ताः कृ°।
१ क. ङ. च. मोदः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नानं करोमि संसारगदशान्त्यै जनार्दन। नमोऽक्षयवटायैव[1] अक्षय्यस्वर्गदायिने[2] ।।७०।।
पित्रादीनामक्षयाय सर्वपापक्षयाय च। श्राद्धं वटतले कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् ।।७१।।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता। किं पुनर्बहुभिर्भुक्तैः पितॄणां दत्तमक्षयम् ।।७२।।
गयायामन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः। वटं वटेश्वरं नत्वा पूजयेत्प्रपितामहम् ।।७३।।
अक्षयांल्लभते लोकान्कुलानां शतमुद्धरेत्। क्रमातोऽक्रमतो वाऽपि गयायात्रा महाफला ।।७४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयायात्राविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११५।।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच

गायत्र्यैव महानद्यां स्नातः[3] सन्ध्यां समाचरेत्। गायत्र्यां[4] अग्रतः प्रातः श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ।।१।।
मध्याह्ने चोद्यदि[5] स्नात्वा गीतवाद्यैर्ह्युपाश्य[6] च। सावित्रीं[7] पुरतः सन्ध्यां पिण्डदानं च तत्तटे ।।२।।

हूँ जहाँ गदा धोयी गयी थी। उस अक्षयवट को नमस्कार है जो अक्षय स्वर्ग देनेवाला है। वही पितरों को अक्षय (लोक प्रदान) करनेवाला और पापों का सर्वनाश करनेवाला है।' तत्पश्चात् वट वृक्ष के नीचे श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।।६९-७१।। वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है। यदि वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से पितरों को अक्षय लोक की प्राप्ति हो जाती है तो (अन्यत्र) बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता ही क्या ? वही पिता पुत्रवान् है जिसका पुत्र गया में अन्नदान किया करता है। गया में वट तथा वटेश्वर लिङ्ग को नमस्कार और भगवान् ब्रह्मा की पूजा करनेवाला (स्वयं तो) अक्षय लोक में चला ही जाता है, अपने सौ कुलों का उद्धार भी कर देता है। गया-यात्रा चाहे विधानपूर्वक की जाय या बिना विधान के ही हो, बड़े-बड़े फलों को देनेवाली हुआ करती है ।।७२-७४।।

श्री अग्निमहापुराण में गयायात्रा विधि वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।११५।।

अध्याय ११६

गया-यात्रा-विधि

अग्निदेव बोले-गायत्री-मन्त्र से महानदी में स्नान करके सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। प्रातःकाल गायत्री-मन्त्र से ही आगे की ओर श्राद्ध तथा पिण्डदान करना चाहिए। दोपहर के समय स्नान करके महानदी के तट पर सन्ध्योपासन के बाद गीतवाद्यों के साथ सावित्री मन्त्र से अर्चना करके पूर्व की ओर पिण्डदान करना चाहिए। फिर

---

१ क. ङ च. °व सर्वपापक्षयाय च। पि°। २ घ. °क्षयस्व°। ३ क. ङ. च. प्रातः। ४ क. ङ. च. °त्र्यामुग्र°। ५ क. ङ. च. वेद्यति। ६ क. ङ. च. °द्यैर्ह्युयास्य। ७ क. ङ. च. °वित्रीप्लवतः। घ. छ. °वित्रीपु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अगस्त्यस्य पदे कुर्याद्योनिद्वारं प्रविश्य च। निर्गतो न पुनर्योनिं प्रविशेन्मुच्यते भवात् ।।३।।
बलिं काकशिलायां च कुमारं च नमेत्ततः। स्वर्गद्वार्यां सोमकुण्डे वायुतीर्थेऽथ पिण्डदः ।।४।।
भवेदाकाशगङ्गायां कपिलायां च पिण्डदः। कपिलेशशिवं नत्वा रुक्मिकुण्डे[1] च पिण्डदः ।।५।।
कोटितीर्थे च कोटीशं नत्वाऽमोघपदे नरः। गदालोले[2] वानरके गोप्रचारे च पिण्डदः ।।६।।
नत्वा गावं[3] (गां वै) वैतरण्यामेकविंशकुलोद्धृतिः। श्राद्धपिण्डप्रदाता स्यात्क्रौञ्चपादे च पिण्डदः ।।७।।
तृतीयायां विशालायां[4] निश्चिरायां च पिण्डदः। ऋणमोक्षे पापमोक्षे भस्मकुण्डेऽथ भस्मना ।।८।।
स्नानकृन्मुच्यते पापान्नमेद्देवं जनार्दनम्। एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ।।९।।
परलोकगते[5] मह्यमक्षय्यमुपतिष्ठताम्। गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ।।१०।।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात्। मार्कण्डेयेश्वरं नत्वा नमेद्गृध्रेश्वरं नरः ।।११।।
मूलक्षेत्रे महेशस्य धारायां पिण्डदो भवेत्। गृध्रकूटे गृध्रवटे धौतपादे च पिण्डदः ।।१२।।
पुष्करिण्यां कर्दमाले [6]रामतीर्थे च पिण्डदः। प्रभासेशं नमेत्प्रेतशिलायां पिण्डदो भवेत् ।।१३।।
दिव्यान्तरिक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः। प्रेतादिरूपा मुक्ताः स्युः पिण्डैर्दत्तैर्मयाऽखिलाः ।।१४।।

(महामुनि) अगस्त्य के चरणों में पिण्डदान करके योनिद्वार (नामक स्नान-स्थान) में प्रवेश करके निकल जाना चाहिए। ऐसा करने से गर्भ में पुनः नहीं जाना पड़ता है और संसार से मुक्ति मिल जाती है ।।१-३।। तदनन्तर काकशिला में बलि चढ़ाकर कुमार (कार्तिकेय) को नमस्कार करना चाहिए। तत्पश्चात् स्वर्गद्वार, सोमकुण्ड तथा वायुतीर्थ में पिण्डदान करके आकाशगंगा और कपिला में पिण्डदान करना चाहिए। उसके बाद कपिलेश शिव को नमस्कार करके रुक्मिकुण्ड में पिण्डदान करना चाहिए। इसके बाद कोटितीर्थ में कोटीश को नमस्कार कर अमोघपद, गदालोल, वानरक तथा गोप्रचार तीर्थों में पिण्ड देना चाहिए। तदनन्तर गौ को प्रणाम करके वैतरणी में श्राद्ध और पिण्डदान करने से इक्कीस कुलों का उद्धार हो जाता है ।।४-६ $\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् क्रौञ्चपाद, तृतीया, विशाला, निश्चरा, ऋणमोक्ष तथा पापमोक्ष तीर्थों में पिण्डदान करना चाहिए। भस्मकुण्ड तीर्थ में भस्म से स्नान करने पर मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है। उसके बाद जनार्दन (भगवान् विष्णु) को यह कहते हुए प्रणाम करना चाहिए-"हे जनार्दन! यह पिण्ड मैं आपके हाथ में दे रहा हूँ। परलोक ज़ाने पर यही पिण्ड मुझे अक्षय रूप से प्राप्त हो जाय।" गया में स्वयं जनार्दन (भगवान् विष्णु) ही पितृरूप में निवास करते हैं। उन पुण्डरीकाक्ष के दर्शन करने से मनुष्य तीन (पितृ, ऋषि और देव) ऋणों से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मार्कण्डेयेश्वर तथा गृध्रेश्वर को नमस्कार करना चाहिए ।।७-११।। महेश के मूलक्षेत्र में और धाराक्षेत्र में पिण्डदान करना चाहिए। उसके बाद गृध्रकूट, गृध्रवट, धौतपाद, पुष्करिणी, कर्दमाल और रामतीर्थ में पिण्डदान करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रभासेश को नमस्कार करके प्रेतशिला में पिण्डदान करते हुए यह कहना चाहिए-'जो मेरे पितृगण तथा बान्धव प्रेतरूप में आकाश, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर निवास करते हैं वे सभी मेरे दिये हुए पिण्डों को पाकर मुक्त हो जायँगे' ।।१२-१४।। प्रेतशिला,

---

१ क. ङ. च. रुक्मदण्डे। २ ङ. च. °ले च न°। ३ ख. गावो। ४ क. ङ. च. °यां ग्रीवायां च स पि°। ५ परलोकगते...जनार्दनः नास्ति क. ङ. च. ग्रन्थेषु। ६ क. ङ. च. नामतीर्थे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानत्रये प्रेतशिला गयाशिरसि पावनी। प्रभासे प्रेतकुण्डे च पिण्डदस्तारयेत्कुलम् ।।१५।।
वसिष्ठेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत्। ([1]गयानाभौ सुषुम्नायां महाकोष्ठ्यां च पिण्डदः ।।१६।।
गदाधराग्रतो मुण्डपृष्ठे देव्याश्च संनिधौ। मुण्डपृष्ठं नमेदादौ क्षेत्रपालादिसंयुतम् ।।१७।।
पूजयित्वा भयं न स्याद्विषरोगादिनाशनम्। ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्कुलम् ।१८।।
सुभद्रां बलभद्रं च प्रपूज्य पुरुषोत्तमम्)। सर्वकामसमायुक्तः कुलमुद्धृत्य नाकभाक्[2] ।।१९।।
[3]हृषीकेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत्। [4]माधवं पूजयित्वा च देवो वैमानिको भवेत् ।।२०।।
महालक्ष्मीं प्रार्च्य गौरीं[5] मङ्गलां[6] च सरस्वतीम्। पितॄनुद्धृत्य स्वर्गस्थो भुक्तभोगोऽत्र शास्त्रधीः ।।२१।।
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य वह्निं रेवन्तमिन्द्रकम्[7]। रोगादिमुक्तः[8] स्वर्गी स्याच्छ्रीकपर्दिविनायकम् ।।२२।।
प्रपूज्य कार्तिकेयं च निर्विघ्नः सिद्धिमाप्नुयात्। सोमनाथं च कालेशं केदारं प्रपितामहम् ।।२३।।
सिद्धेश्वरं च रुद्रेशं रामेशं ब्रह्मकेश्वरम्। अष्टलिङ्गानि गुह्यानि पूजयित्वा तु सर्वभाक् ।।२४।।
नारायणं वराहं च [9]नारसिंहं नमेच्छ्रिये। ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं[10] त्रिपुरघ्नमशेषदम् ।।२५।।
सीतारामं च गरुडं वामनं सम्प्रपूज्य च। सर्वकामानवाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।२६।।

गयाशिर तथा प्रभासस्थित प्रेतकुण्ड–इन तीनों स्थानों में पिण्डदान करनेवाला अपने कुल का उद्धार कर देता है ।।१५।। तदनन्तर वसिष्ठेश को नमस्कार करके उनके सामने पिण्डदान करना चाहिए। बाद में गयानाभि, सुषुम्ना, महाकोष्ठी तथा गदाधर के सामने और मुण्डपृष्ठ में देवी के निकट पिण्डदान करना चाहिए। पहले क्षेत्रपाल आदि के साथ मुण्डपृष्ठ को नमस्कार और उनकी पूजा कर लेनी चाहिए। इससे विष, रोग आदि का नाश और अभय की प्राप्ति होती है। भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करने से पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सुभद्रा तथा पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णु) की पूजा करने से मनुष्य अपने कुल का उद्धार करके सम्पूर्ण कामनाओं को पूराकर स्वर्गलोक का अधिकारी बन जाता है ।।१६-१९।। तत्पश्चात् भगवान् हृषीकेश को नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान करना चाहिए। (यहाँ) माधव (भगवान् कृष्ण) की पूजा करने से मनुष्य विमान विहारी बन जाता है। तदनन्तर महालक्ष्मी, गौरी, मङ्गला तथा सरस्वती का पूजन करने से मनुष्य पितरों का उद्धार करके स्वर्ग प्राप्त कर लेता है और वहाँ का भोग, भोग चुकने के बाद इस लोक में (आकर) शास्त्रों में प्रबुद्ध हो जाता है। उसके बाद द्वादशादित्य, अग्नि, रेवन्त तथा इन्द्र की पूजा करने से मनुष्य रोग आदि से मुक्त होकर स्वर्ग को चला जाता है। भगवान् श्री कपर्दिविनायक तथा कार्तिकेय की पूजा करने से मनुष्य निर्विघ्न रूप से सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।।२०-२२$\frac{1}{2}$।। सोमनाथ, कालेश, केदार, प्रपितामह, सिद्धेश्वर, रुद्रेश, रामेश तथा ब्रह्मकेश्वर नामक आठ गुह्य-लिङ्गों की पूजा करने से मनुष्य सब-कुछ प्राप्त कर लेता है ।।२३-२४।। उसके बाद श्रीप्राप्ति के लिए (भगवान्) नारायण, वराह तथा नृसिंहदेव को नमस्कार करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सर्वदायक त्रिपुरघ्न, सीता, राम, गरुड़ तथा वामन की सम्यक्रूप से पूजा करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाता है ।।२५-२६।। सभी देवताओं

---

१ गयानाभौ…पुरुषोत्तमम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ क. ङ. च. लोकभाक्। ३ हृषीकेशं…पिण्डदो भवेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ क. ङ. च. साधनं। ५ ङ. °र्रीं देवीं च मुकुलां तथा। पि°। ६ क. ङ. च. मुकुलां। ७ क. ङ. च. °मिन्दुकं। ८ रोगादि मुक्तः…विनायकम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ९ क. ङ. च. नरसिंहं। १० क. ङ. च. °ख्यं त्रैपुरुषमथौषधम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवैः सार्धं सम्प्रपूज्य देवमादिगदाधरम् । ऋणत्रयविनिर्मुक्तस्तारयेत्सकलं कुलम् ।।२७।।
देवरूपा शिला पुण्या [1]तस्माद्देवमयी शिला । गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।।२८।।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्[2] । फल्वीशं फल्गुचण्डीं च प्रणम्याङ्गारकेश्वरम् ।।२९।।
मतङ्गस्य पदे श्राद्धी भरताश्रमके भवेत् । हंसतीर्थे कोटितीर्थे यत्र पाण्डुशिलानदः[3] ।।३०।।
तत्र स्यादग्निधारायां [4]मधुश्रवसि पिण्डदः । इन्द्रेशं[5] किलिकिलेशं नमेद्वृद्धिविनायकम् ।३१।।
पिण्डदो धेनुकारण्ये पदे धेनोर्नमेच्च गाम् । सर्वान्पितॄंस्तारयेच्च सरस्वत्यां च पिण्डदः ।।३२।।
सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने नमेद्देवीं सरस्वतीम् । त्रिसन्ध्याकृद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ।।३३।।
गयां प्रदक्षिणीकृत्य गयाविप्रान्प्रपूज्य च । अन्नदानादिकं सर्वं कृतं तन्नाक्षयं भवेत् ।।३४।।
स्तुत्वा सम्प्रार्थयेदेवमादिदेवं[6] गदाधरम् । गदाधरं गयावासं पित्रादीनां गतिप्रदम् ।।३५।।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं योगदं प्रणमाम्यहम् । देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम्[7] ।।३६।।
[8]नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यं[9] ब्रह्म नमाम्यहम् । आनन्दमद्वयं देवं देवदानववन्दितम् ।।३७।।
देवदेवीवृन्दयुक्तं सर्वदा प्रणमाम्यहम् । कलिकल्मषकालार्तिदमनं वनमालिनम् ।।३८।।

तथा भगवान् आदि गदाधरदेव की पूजा करने से मनुष्य (पितृ, देव, ऋषि) तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है। गया-स्थित देवमयी शिला देवताओं से युक्त होने के कारण अत्यन्त पवित्र है। गया में तो ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ (कोई-न-कोई) तीर्थ न हो ।।२७-२८।। वहाँ पर जिसके नाम से पिण्ड दिया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्म के समीप पहुँचा दिया जाता है। उसके बाद फल्वीश, पल्गुचण्डी तथा अङ्गारकेश्वर को प्रणाम कर मतङ्ग पद में श्राद्ध करना चाहिए। तदनन्तर भरताश्रम, हंसतीर्थ, कोटितीर्थ, पाण्डुशिलानद, अग्निधारा तथा मधुश्रव में पिण्डदान करना चाहिए। तत्पश्चात् इन्द्रेश, किलिकिलेश तथा बुद्धिविनायक को नमस्कार कर धेनुकारण्य में पिण्डदान और धेनुपद में गौ को प्रणाम करना चाहिए। सरस्वती तीर्थ में पिण्डदान करनेवाला सभी पितरों का उद्धार कर लेता है। वहाँ सन्ध्योपासन करके सायंकाल सरस्वती देवी को नमस्कार करना चाहिए। यहाँ पर त्रिकाल सन्ध्यावन्दन करनेवाला ब्राह्मण वेद, वेदाङ्ग में पारङ्गत हो जाता है ।।२९-३३।। अन्त में गया की प्रदक्षिणा करके और गया में रहनेवाले ब्राह्मणों की पूजा करके जो कुछ भी अन्नदान किया जाता है, अक्षय (फलवाला) हो जाता है। तदनन्तर आदिदेव गदाधर की स्तुति करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि 'मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए गया में निवास करनेवाले और पितरों को (सद्) गति प्रदान करनेवाले योगीश्वर भगवान् गदाधरदेव को प्रणाम करता हूँ। मैं उस ब्रह्म को (भी) नमस्कार करता हूँ जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से रहित, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और सत्यस्वरूप है। मैं उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ जो आनन्द रूप, अद्वैत, देव-दानवों से वन्दित और देवताओं तथा देवियों से युक्त है। मैं उस ब्रह्म (स्वरूप) भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहा हूँ जो कलिकाल के पापों को शान्त करनेवाले, काल की पीड़ा का दमन करनेवाले, वनमाला को धारण

---

१ क. ङ. च. तस्यां देव°। २ क. च. °म्। कर्णीशं कर्णचण्डीं। ३ ख. ग. घ. छ. °लान्नादः। ४ क. ङ. च. मध्ये श्र°। ५ घ. छ. रुद्रेशं। ६ क. ङ. च. °येद्देव°। ७ क. ङ. च. °द्धिमनोहं°। ८ घ. छ. °शुद्धं बुद्धियुक्त° स°। ९ ख. ग. °बुद्धिमु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पालिताखिललोकेशं कुलोद्धरणमानसम्। [1]व्यक्ताव्यक्तविभक्तात्माविभक्तात्मानमात्मनि ।।३९।।
[2]स्थितं स्थिरतरं सारं वन्दे घोराघमर्दनम्। आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर ।।४०।।
त्वं मे साक्षी भवाद्येह अनृणोऽहमृणत्रयात्। साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ।।४१।।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता। गयामाहात्म्यपठनाच्छ्राद्धादौ ब्रह्मलोकभाक् ।।४२
पितॄणामक्षयं श्राद्धमक्षयं ब्रह्मलोकदम् ।।४३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयायात्राविधिकथनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११६।।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

अग्निरुवाच

कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे। गयादौ श्राद्धं कुर्वीत संक्रान्त्यादौ विशेषतः ।।१।।
काले[3] चापरपक्षे च चतुर्थ्यामूर्ध्वमेव वा। सम्पाद्य[4] च पदर्क्षे च पूर्वेद्युश्च निमन्त्रयेत् ।।२।।

करनेवाले, सम्पूर्ण लोकों का पालन करनेवाले और (पिण्डदान करनेवालों के) कुल के उद्धार में दत्तचित्त है। मैं उस ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ, जो व्यक्त और अव्यक्त, विभक्तात्मा और अविभक्तात्मा, आत्मा में स्थित, स्थिततर, साररूप तथा घोर पापों का विनाश करनेवाला है ।।३४-३९$\frac{1}{2}$।। भगवान् गदाधर! मैं पितृकर्म करने के लिए गया आया हूँ। आप मेरे साक्षी हैं, आज से मैं यहाँ तीनों प्रकार के (देव, ऋषि, पितृ) ऋणों से उऋण हो गया हूँ। ब्रह्मा, महेश, अनादि (विष्णु) आदि देवता मेरे साक्षी हों; मैंने गया में आकर पितरों का उद्धार कर दिया है। श्राद्ध के आदि में 'गयामाहात्म्य' पाठ करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और (गया में किया हुआ श्राद्ध) अविनश्वर ब्रह्मलोक को प्रदान करनेवाला होता है ।।४०-४३।।

श्री अग्निमहापुराण में गयायात्राविधि-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।११६।।

अध्याय ११७

श्राद्धकल्प

अग्निदेव बोले-जिस प्रकार कात्यायन ने मुनियों को श्राद्ध के सम्बन्ध में बतलाया था, उसी प्रकार मैं आप लोगों से बतलाता हूँ। गया आदि में वैसे तो श्राद्ध करना ही चाहिए, किन्तु सङ्क्रान्ति आदि में उसे विशेष रूप से करना चाहिए। शुक्लपक्ष की चतुर्थी या पंचमी तिथि की रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध से पहले दिन यतियों,

---

१ अस्य श्लोकस्यार्धभागं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ क. ङ. च. स्थिरं। ३ ख. ग. घ. छ. °ले वाऽप°। ४ क. ङ. च. संपद्ये च यदाज्ञा च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यतीन्गृहस्थसाधून्वा स्नातकाञ्श्रोत्रियान्द्विजान् । अनवद्यान्कर्मनिष्ठाञ्शिष्टानाचारसंयुतान् ।।३।।
वर्जयेच्छ्वित्रिकुष्ठा(ष्ठ्या) दीन्न गृह्णीयान्निमन्त्रितान् । [1]स्नाताञ्शुचींस्तथाऽऽचान्तान्प्राङ्मुखान्देवकर्मणि ।।४।।
उपवेशयेत्त्रीन्पित्र्यानेकैकमुभयत्र[2] वा । एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ।।५।।
तदह्नि ब्रह्मचारी स्यादकोपोऽत्वरितो मृदुः । सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्च वाग्यतः ।।६।।
सर्वांश्च पंक्तिमूर्धन्यान्पृच्छेत्प्रश्ने तथाऽऽसने । दर्भानास्तीर्य द्विगुणान्पित्र्ये दैवादिकं चरेत् ।।७।।
विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च । विश्वे देवास आवाह्य विकीर्याथ यवाञ्जपेत् ।।८।।
विश्वेदेवाः शृणुतेमं [3]पितृनावाहयिष्येति[4] । पृच्छेदावाहयेत्युक्त उशन्तस्त्वा समाह्वयेत् ।।९।।
तिलान्विकीर्याथ जपेदापस्त्वित्यादि[5] पात्रके । सपवित्रे[6] निषिञ्चेद्वा शं नो [7]देवीरिति[8] तृ (ह्व) चा ।।१०।।
यवोऽसीति यवान्दत्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान् । तिलोऽसि[9] सोमदेवत्यो गोसवे[10] देवनिर्मितः ।।११।।
प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृ (निमा) ल्लोकान्प्रीणया हि नः स्वधेति ।
श्रीश्चतेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते ।।१२।।
औदुम्बरे वा खड्गे वा पूर्णपात्रे प्रदक्षिणम् । देवानामपसव्यं तु पितृणां सव्यमाचरेत् ।।
([11]एकैकस्य एकैकेन सपवित्रकरेषु च ।।१३।।

गृहस्थों, साधुओं, स्नातकों, अनिन्द्य कर्म करनेवालों, कर्मनिष्ठों, शिष्यों तथा आचारवान् श्रोत्रिय ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए ।।१-३।। श्वेत तथा अन्य प्रकार के कुष्ठरोग के रोगियों को तथा ऐसे लोगों को जो कहीं निमन्त्रित हो चुके हैं, छोड़ देना चाहिए। देवकर्म में स्नान तथा आचमन से पवित्र ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख करके बिठाना चाहिए। पितृकर्म में तीन ब्राह्मणों को या दोनों कर्मों में एक-एक ब्राह्मण को ही निमन्त्रित करना चाहिए। मातामह आदि के श्राद्ध के लिए कुछ न हो तो शाक आदि से ही उसे सम्पन्न कर देना चाहिए ।।४-५।। श्राद्ध के दिन श्राद्ध करनेवाले को क्रोध, शीघ्रता, असावधानी, यात्रा तथा स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, अपितु उसे वाक्संयमी, मृदु, सत्यभाषी तथा ब्रह्मचारी रहना चाहिए। पंक्तिपावन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कुशासन पर बैठाकर उनका कुशलक्षेम पूछना चाहिए। पितरों के लिए ब्राह्मणों से दूने कुशासनों को बिछाना चाहिए। देवकर्म से श्राद्ध प्रारम्भ करना चाहिए। श्राद्ध करनेवाला–"मैं सभी देवताओं का आवाहन करूँगा" इस प्रकार (पुरोहित से) पूछे और उसके द्वारा 'बुलाइये' इस प्रकार अनुमति प्राप्त करके सभी देवताओं का आवाहन करना चाहिए। इस समय यव को भी बिखेरना चाहिए ।।६-८।। 'विश्वेदेवाः शृणुतेमं···बर्हिषि मादयध्वम्' इस मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् पितृकर्म में नियुक्त ब्राह्मणों से पूछे–'मैं पितरों का आवाहन करूँगा।' ब्राह्मण कहें–'आवाहन करो।' तब 'उशन्तस्त्वा०' इस मन्त्र का पाठ करते हुए आवाहन करे। फिर 'अपहता असुरा०' इस मन्त्र से तिल बिखेरकर 'आयान्तु नः' इत्यादि मन्त्र का जप करे। इसके बाद पवित्रक सहित अर्घ्यपात्र में 'शं नो देवी०' इस मन्त्र से जल डाले ।।९-१०।। उसके बाद 'यवोऽसि०' इस मन्त्र से सभी देवताओं को यव प्रदान करे। पितरों को 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो०' इस मन्त्र का पाठ करते हुए सर्वत्र तिल ही दान करना चाहिए। 'श्रीश्चते०' इस मन्त्र से सोने या चाँदी के पात्र में फूलों को चढ़ाना चाहिए ।।११-१२।। तदनन्तर गूलर की लकड़ी के पात्र में या तलवार में या पत्तों के बने हुए दोने में पितरों का ध्यान करके उस पात्र की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। देवकर्म में

---

१ ख. ग. घ. छ. °स्तथा दान्ता°। २ क. ङ. च. °न्पित्र्य एकै°। घ. छ. °पित्र्यादीने°। ३ क. ङ. च. °यिष्यति। ४ घ. छ. °ष्ये च। पृ°। ५ ख. ग. °दाहन्वित्या°। घ. छ. °दायान्त्वित्यादि पित्र°। ६ क. ङ. च. समयेऽथ नि°। ७ घ. छ. °वीरभितृ°। ८ क. °तिद्वृचा। ९ क. ङ. च. °सि पितृ दे°। १० क. ङ. च. गोसवो। ११ एकैकस्य···संस्त्रवान्प्रथमे चरेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्षा (क्ष्या) उत पार्थिवीर्याः ।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः[1] शँ स्योना भवन्तु ।।१४।।
विश्वेदेवा एव वोऽर्घः स्वाहा च पितरेष ते । स्वधैवं पितामहादेः संस्त्रवान्प्रथमे चरेत् ।।१५।।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः । अत्र[2] गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनदानकम् ।।१६।।
घृताक्तमन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्येति । कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातौ जुहुयात्साग्निकोऽनले ।।१७।।
अनग्निकः पितृहस्ते सपवित्रे तु मन्त्रतः । अग्नये कव्यवाहनाथ स्वाहेति प्रथमाऽऽहुतिः ।।१८।।
सोमाय पितृमतेऽथ यमायाङ्गिरसेऽपरे । हुतशेषं[3] चान्नं पात्रे दत्त्वा पात्रे समालभेत् ।।१९।।
पृथिवी ते पात्रं[4] द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्यमुखेऽमृतेऽमृतंजुहोमि स्वाहेति ।
जप्त्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ।।२०।।
अपहतेति तिलान्विकीर्यान्नं प्रदापयेत् । जुषध्वमिति चोक्त्वाऽथ गायत्र्यादि ततो जपेत् ।।२१।।
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै[5] स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ।।२२।।
[6]तृप्ताञ्ज्ञात्वाऽन्नं[7] विकिरेदपो दद्यात्सकृत्सकृत् । गायत्रीं पूर्ववज्जप्त्वा मधु[8] वातेति वै जपेत् ।।२३।।
तृप्ताः स्थ इति सम्पृच्छेत्तृप्ताः स्म इति वै वदेत् । शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ।।२४।।

यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर रखना चाहिए। तत्पश्चात् पवित्री पहने हुए हाथ पर एक-एक पात्र (दोना) में जल रखकर 'या दिव्या आपः०' मन्त्र से सभी देवताओं को अर्घ्य प्रदान करे। (इसी मन्त्र में) 'पितरेष ते स्वधा' जोड़कर पितरों को भी अर्घ्य देना चाहिए ।।१३-१५।। उसके बाद 'पितृभ्यः स्थानमसि०' कहकर पात्र को टेढ़ा करके नीचे रख देना चाहिए। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वस्त्र का दान करना चाहिए। तत्पश्चात् घृत मिश्रित अन्न उठाकर पुरोहित से पूछना चाहिए-'क्या मैं इससे हवन करूँ ?' पुरोहित के द्वारा 'करो' इस अनुज्ञा को प्राप्त कर लेने पर यदि श्राद्धकर्त्ता साग्निक (अग्निहोत्री) हो तो उसे हवन करना चाहिए। यदि निरग्नि (अनग्निहोत्री) हो तो पितर के पवित्रीयुक्त हाथ में अर्थात् (पितृपात्र में) मन्त्रपूर्वक उस (घृतमिश्रित अन्न को) छोड़ देना चाहिए। 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्र से पहली आहुति देनी चाहिए ।।१६-१८।। 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इससे दूसरी आहुति और 'यमाय अङ्गिरसे स्वाहा' इससे तीसरी आहुति देनी चाहिए। हवन से अवशिष्ट अन्न को पात्र में रखकर उसका स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर 'पृथिवी ते पात्रं०' मन्त्र पढ़कर 'इदं विष्णुः०' कहते हुए अन्न के ऊपर ब्राह्मण का अँगूठा रखवाना चाहिए। फिर 'अपहता०' इस मन्त्र से तिल बिखेरकर अन्न दिलवाना चाहिए। तत्पश्चात् 'जुषध्वम्' कहकर गायत्री आदि का जप करना चाहिए ।।१९-२१।। उसके बाद 'देवताभ्यः०' मन्त्र का पाठ करना चाहिए। पितरों को तृप्त समझकर अन्न बिखेरते हुए बारी-बारी से (सबको) जल प्रदान करना चाहिए। फिर पूर्ववत् गायत्री का जप करके 'मधुवाता०' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए और पूछना चाहिए-'आप तृप्त तो हो गये हैं ?' और स्वयं यह उत्तर भी देना चाहिए-'हाँ, हम तृप्त हो गये हैं।' तत्पश्चात् शेष अन्न

---

१ घ. छ. °पः शिवाः संश्योना सुहवा भ°। २ क. ङ. च. अन्नं गा°। ३ क. ङ. च. °शेषमथो ह्यन्नं कर्ता सर्वं स°। ४ घ. छ. °त्रं द्यौः पि°। ५ छ. °मः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते। तृ°। ६ ख. ग. °त्वाऽथविकिरे दर्भे द°। ७ घ. ङ. च. °न्नं प्रकि°। ८ ख. ग. घ. छ. °धुमध्विति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उद्धृत्योच्छिष्ट पार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनम् । दद्यात्कुशेषु त्रीन्पिण्डानाचान्तेषु परे जगुः ।।२५।।
आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत् । अक्षय्योदकमेवाथ आशिषः प्रार्थयेन्नरः[1] ।।२६।।
अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्धतां सदा । दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।।२७।।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति । अन्नं च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि ।।२८।।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन । स्वधावाचनीयान्कुशानास्तीर्य सपवित्रकान् ।।२९।।
स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यताम् । पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ।।३०।।
स्वधोच्यतामस्तु स्वधा[2] उच्यमानस्तथैव च । अपो निषिञ्चेदुत्तानं पात्रं कृत्वाऽथ दक्षिणाम् ।।३१।।
यथाशक्ति प्रदद्याच्च दैवे[3] पित्रेऽ(त्र्येऽ)थ वाचयेत् । विश्वेदेवाः प्रीयन्तां च वाजे वाजे विसर्जयेत् ।।३२।।
आ मा वाजस्येत्यनुव्रज्य कृत्वा विप्रान्प्रदक्षिणम् । गृहे[4] विशेदमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ।।३३।।
एकोद्दिष्टं प्रवक्ष्यामि श्राद्धं पूर्ववदाचरेत् । एकं पवित्रमेकार्घमेकं पिण्डं प्रदापयेत् ।।३४।।
नावाहनाग्नौकरणं विश्वेदेवा न चात्र हि । तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति वदेत्सुस्वदितं द्विजः ।।३५।।
उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरम्यताम् । अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्ववदाचरेत् ।।३६।।

भी दे करके सब अन्न को एक जगह उठाकर रख देना चाहिए और उस स्थान में अवनेजन (पहले से पिण्डिका के समीप एक पात्र में रखा हुआ सुरक्षित जल) छिड़क देना चाहिए। दूसरे आचार्यों का मत है कि पहले कुशों के ऊपर तीन पिण्डों को रखकर तब आचमन करना चाहिए। ।।२२-२५।। आचमन के बाद जल, पुष्प, अक्षत तथा अक्षय्य उदक प्रदान करके पितरों से आशीर्वाद के लिए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए–'हमारे पितर सौम्य हों, हमारा गोत्र सदा बढ़ता रहे, हमारे वंश में दानियों, वेदों तथा सन्तान की (सदैव) वृद्धि होती रहे। हमारी श्रद्धा कभी नष्ट न हो, हमारे पास प्रचुर मात्रा में देय वस्तुएँ हों, हमारे पास धन भी बहुत हो जिससे हम अतिथियों को प्राप्त करते रहें। हमसे याचना करनेवाले बहुत हों, किन्तु हम किसी से कुछ भी याचना न करें ।।२६-२८$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर जिनके ऊपर 'स्वधा' पाठ किया जायगा, ऐसे कुशों को पवित्री के साथ बिछाकर यह कहना चाहिए कि 'मैं स्वधा का पाठ करूँगा।' 'पाठ करो'–इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करके 'पितृभ्यः स्वाहा, पितामहेभ्यः स्वाहा, प्रपितामहेभ्यः स्वाहा' इस प्रकार पाठ करना चाहिए। तदनन्तर जल छिड़ककर पात्र को उलटा करके यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। देवकर्म और पितृकर्म में प्रत्येक श्राद्ध में 'विश्वेदेव प्रसन्न हों' यह कहकर उनका विसर्जन करना चाहिए। तदनन्तर 'आ मा वाजस्य०' इस मन्त्र से ब्राह्मणों के पीछे-पीछे चलकर उनकी परिक्रमा करके घर में प्रवेश करना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि में श्राद्ध करना चाहिए ।।२९-३३।। अब मैं (मृत प्राणि-विशेष के लिए अनुष्ठित) एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध की विधि बतलाऊँगा। यह श्राद्ध पहले ही की तरह करना चाहिए। इसमें एक पवित्री, एक अर्घ तथा एक ही पिण्ड दिलाना चाहिए। किन्तु इसमें आवाहन, अग्न्याहुति तथा विश्वेदेव का पूजन नहीं करना चाहिए और तृप्ति के प्रश्न में ब्राह्मण को 'स्वदितम्' तथा 'सुस्वदितम्' कहना चाहिए। अक्षय्य जल आदि प्रदान करते समय 'उपतिष्ठताम्' और विसर्जन के समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिए। अन्य आचार्यों के अनुसार इसमें 'अभिरताः स्म' कहना चाहिए। शेष कर्म पहले के समान ही करना चाहिए ।।३४-३६।।

---

१ क. ङ. च. येत्ततः। अ°। २ ख. ग. °धा तस्य चानन्तरेषु च। अ°। च °धा स्तव्यमा°। ३ क. ख. °वे विप्रेऽथ। च. °वे पित्रे तथाऽर्चये°। ४ क. ङ. च. गृहं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यतोऽपि वा। पितृणां त्रीणि पात्राणि एकं प्रेतस्य पात्रकम् ।।३७।।
सपवित्राणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च। गन्धोदकेन युक्तानि पूरयित्वाऽभिषिञ्चति ।।३८।।
प्रेतपात्रं पितृपात्रे ये सम (मा) ना इतिद्वयात्। पूर्ववत् पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत् ।।३९।।
अथाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्व तु पूर्ववत्। जपेत्पितृमन्त्रवर्जं[1] पूर्वाह्णे तत्प्रदक्षिणम् ।।४०।।
उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थैश्च यवैरिह। तृप्तिप्रश्नस्तु सम्पन्नं सुसम्पन्नं वदेद्द्विजः ।।४१।।
दध्यक्षतवदराद्याः पिण्डा नान्दिमुखान्पितॄन्। आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयतामिति चाक्षये ।।४२।।
नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति। नान्दीमुखान्पितृगणान्प्रीयन्तामित्यथो वदेत् ।।४३।।
नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः। मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः ।।४४।।
स्वधाकारान्न[2] युञ्जीत युग्मान्विप्रांश्च भोजयेत्। तृप्तिं वक्ष्ये पितॄणां च ग्राम्यैरोषधिभिस्तथा ।।४५।।
मासं तृप्तिस्तथाऽऽरण्यैः कन्दमूलफलादिभिः। मत्स्यैर्मासद्वयं [3]मार्गैस्त्रयं वै शाकुनेन च ।।४६।।
चतुरो रौरवेणाथ पञ्च षट्छागलेन तु। कूर्मेण सप्त चाष्टौ च वाराहेण नवैव तु ।।४७।।
मेषमांसेन दश च माहिषैः [4]पार्षतैः शिवैः। संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ।।४८।।

अब मैं सपिण्डीकरण श्राद्ध बतलाऊँगा। यह श्राद्ध वर्ष के अन्त में या वर्ष के बीच में ही करना चाहिए। इसमें तीन पात्र पितरों के लिए और एक छोटा-सा पात्र प्रेत के लिए हुआ करता है। तिल, पुष्प और पवित्री से युक्त चारों पात्रों को गन्ध तथा जल से भरकर 'ये समाना०' इत्यादि मन्त्र से प्रेतपात्र तथा पितृपात्र का अभिषेक करके पहले की तरह पिण्डदान आदि करना चाहिए। इससे प्रेत पितृवत् हो जाते हैं ।।३७-३९।। अब मैं आभ्युदयिक श्राद्ध की विधि बतलाऊँगा। इसमें सब-कुछ पहले की तरह ही होता है। किन्तु (इसमें) पितृमन्त्र को छोड़कर (अन्य) मन्त्रों का जप करना चाहिए। पूर्वाह्ण में पितरों की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। अन्य क्रियाओं को सीधे कुशों, तिल तथा यव से करना चाहिए और तृप्तिप्रश्न के लिए ब्राह्मण को 'सम्पन्न' तथा 'सुसम्पन्न' शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। नान्दीमुख पितरों को दही, अक्षत तथा बेर आदि के पिण्ड देने चाहिए। 'मैं आवाहन करूँगा'-ऐसे प्रश्न पूछना चाहिए तथा अक्षय वस्तु समर्पण करते समय 'तृप्त होइये'-ऐसा कहना चाहिए। फिर 'नान्दीमुख पितरों से निवेदन करूँगा'-यह पूछना चाहिए और 'नान्दीमुख पितर, उनके पिता, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह तृप्त हों' यह कहना चाहिए। इस श्राद्ध में 'स्वधा' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा युग्म (जैसे दो-चार आदि) ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।।४०-४४$\frac{1}{2}$।। अब मैं पितरों को तृप्ति देनेवाली ग्राम्य वस्तुओं तथा ओषधियों का वर्णन करूँगा। जंगली कन्द, मूल तथा फल आदि प्रदान करने से पितरों की तृप्ति एक मास तक होती है। मछली से दो मास, हरिण के मांस से तीन मास, पक्षियों के मांस से चार मास, रुरु (मृग) के मांस से पाँच मास, बकरे के मांस से छह मास, कछुए के मांस से सात मास, सुअर के मांस से नौ मास और भैंसे, भेंड़े तथा सियार के मांस से श्राद्ध करने से दस मास तक के लिए तृप्ति हो जाती है। गाय के दूध या खीर से श्राद्ध करने पर एक वर्ष तक तृप्ति होती है ।।४५-४८।।

---

१ च. °र्जं कृतद°। २ च °कारं नियु°। ३ क. ङ. च. मासत्रयं। ४ च. पार्वतैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]वाध्रीनसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी । खड्गमांसं कालशाकं लोहितच्छागलो मधु ।।४९।।
महाशल्काश्च वर्षासु मघाश्राद्धमथाक्षयम् । मन्त्राध्याय्यग्निहोत्री च शाखाध्यायी षडङ्गवित् ।।५०।।
तृणाचिकेतस्त्रिमधुर्धर्मद्रोणस्य[2] पाठकः । त्रिषु(सु)पर्णज्येष्ठसामज्ञानी स्युः पङ्क्तिपावनाः ।।५१।।
काम्यानां कल्पमाख्यास्ये प्रतिपत्सु धनं बहु । स्त्रियः परा द्वितीयायां चतुर्थ्यां [3]धर्मकामदः ।।५२।।
पञ्चम्यां पुत्रकामस्तु षष्ठ्यां च श्रयैष्ठ्यभागपि । कृषिभागी च सप्तम्यामष्टभ्यामर्थलाभकः ।।५३।।
नवम्यां च एकसफा दशम्यां गोगणो भवेत् । एकादश्यां परीवारो द्वादश्यां धनधान्यकम् ।।५४।।
ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां च शस्त्रतः । मृतानां श्राद्धं सर्वाप्तममावस्यां समीरितम् ।।५५।।
सप्तव्याधा [4]दशारण्ये मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ।।५६।।
तेऽपि[5] जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ।।५७।।
श्राद्धादौ पठिते श्राद्धं पूर्णं स्याद्ब्रह्मलोकदम् । श्राद्धं कुर्याच्च पुत्रादिः पितुर्जीवति तत्पितुः ।।५८।।
तत्पितुस्तत्पितुः कुर्याज्जीवति प्रपितामहे । पितुः पितामहस्याथ परस्य प्रपितामहात् ।।५९।।

वाध्रीनस (परिपक्व बकरे) के मांस से बारह वर्षों तक तृप्ति होती है। वर्षा ऋतु और मघा नक्षत्र में गैंडे के मांस, कालशाक (श्राद्ध के लिए प्रसिद्ध एक साग) लाल रंग के बकरे, मधु और महाशल्क (बड़ी मछली–बोआर, रोहू आदि) से किया जानेवाला श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करनेवाला हुआ करता है। मन्त्रों का अध्ययन करनेवाला अग्निहोत्री, वेद की शाखाओं का अध्ययन करनेवाला, ऋग्वेद की 'मधुवाता०' आदि तीन ऋचाओं का ज्ञाता, धर्मद्रोण का पाठक, त्रिसुपर्ण और ज्येष्ठ मास का ज्ञाता ये ब्राह्मण पंक्तिपावन ब्राह्मण कहे जाते हैं ।।४९-५१।। अब मैं काम्यकल्प का (अर्थात् जिस-जिस दिन श्राद्ध करने से जो-जो कामनाएँ पूरी होती हैं उनका) वर्णन करूँगा। प्रतिपदा को श्राद्ध करने से बहुत धन मिलता है। द्वितीया को श्राद्ध करने से सुन्दर स्त्रियाँ मिलती हैं। चतुर्थी तिथि के दिन श्राद्ध करने से धर्म और काम की प्राप्ति होती है। पुत्र की कामना करनेवाला पंचमी को, श्रेष्ठता चाहनेवाला षष्ठी को, खेती में उन्नति चाहनेवाला सप्तमी को और अर्थ चाहनेवाले व्यक्ति को अष्टमी के दिन श्राद्ध करना चाहिए। नवमी को श्राद्ध करने से एक खुरवाले (घोड़े आदि) पशुओं की प्राप्ति होती है तथा दशमी को श्राद्ध करने से गायों की वृद्धि होती है। एकादशी को श्राद्ध करने से परिवार की वृद्धि होती है और द्वादशी को श्राद्ध करने से धनधान्य की वृद्धि होती है। त्रयोदशी को श्राद्ध करने से बन्धुओं में श्रेष्ठता आती है और चतुर्दशी को श्राद्ध करने से शस्त्रों से रक्षा होती है। अमावस्या का श्राद्ध मृतकों को सब-कुछ दिलानेवाला कहा गया है ।।५२-५५।। 'दशारण्य के रहनेवाले सात व्याध, कालंजर पर्वत के रहनेवाले मृग, शरद्वीप के रहनेवाले हंसों ने कुरुक्षेत्र में वेदों में पारङ्गत ब्राह्मणों के रूप में जन्म प्राप्त किया। वे बहुत लम्बे मार्ग पर चलते रहे। आप लोग भी उनके साथ चलते रहें'–श्राद्ध के प्रारम्भ में इन वाक्यों का पाठ करने से श्राद्ध पूर्ण तथा ब्रह्मलोक को प्रदान करनेवाला होता है। पिता के जीवन-काल में पुत्र को अपने पितामह का श्राद्ध करना चाहिए। पितामह के जीवित रहते हुए प्रपितामह का श्राद्ध करना चाहिए, प्रपितामह के जीवनकाल में उसके पिता का श्राद्ध करना चाहिए।

---

१ घ. छ. वार्धीनसस्य। २ क. च. °ध्रुर्वलद्रो°। ३ क. कर्मकादयः। ४. घ. छ. दशार्णेषु। ५ घ. छ. तेऽभिजा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके। श्राद्धकल्पं पठेद्यस्तु स लभेच्छ्राद्धकृत्फलम् ।।६०।।
तीर्थे युगादौ मन्वादौ श्राद्धं दत्तमथाक्षयम्। अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।।६१।।
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च। फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।।६२।।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी। श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तवाऽऽषाढे च पूर्णिमा ।।६३।।
कार्तिकी फाल्गुनी तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी [1]सिता। स्वायंभुवाद्या मनवस्तेषामाद्याः किलाक्षयः ।।६४।।
गया प्रयागो गङ्गा च कुरुक्षेत्रं च नर्मदा। श्रीपर्वतः प्रभासश्च शालग्रामो वाराणसी ।।६५।।
गोदावरी तेषु श्राद्धं श्रीपुरुषोत्तमादिषु ।।६६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११७।।

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनम्

अग्निरुवाच

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद्भारतं नाम नवसाहस्रविस्तृतम् ।।१।।

इसी प्रकार मातामह आदि का श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध-कल्प का पाठ करनेवाले को भी श्राद्ध करने का (ही) फल प्राप्त होगा ।।५६-६०।। तीर्थ स्थान में, युगादि और मन्वादि में किया हुआ श्राद्ध अक्षय फल देनेवाला हुआ करता है। आश्विन शुक्ल की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भाद्रपद की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक तथा फाल्गुन की पूर्णिमा, ज्येष्ठ की पञ्चदशी और स्वायम्भुव आदि मनु अक्षय फल को प्रदान करनेवाले श्राद्ध के लिए उपयुक्त माने गये हैं। गया, गङ्गा, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, श्रीपर्वत, प्रभास, शालग्राम, काशी, गोदावरी और पुरी आदि स्थानों में श्राद्ध करने का बड़ा महत्त्व माना गया है ।।६१-६६।।

श्री अग्निमहापुराण में श्राद्ध-कल्प वर्णन नामक एक सौ सतरहवाँ अध्याय समाप्त ।।११७।।

अध्याय ११८

भारतवर्ष-वर्णन

अग्निदेव बोले–समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण की ओर जो वर्ष है, उसी का नाम भारत है। वह नौ सहस्र योजन में फैला हुआ है। स्वर्ग तथा मोक्ष पानेवालों के लिए यह भारतवर्ष (कर्मभूमि) है। यहाँ सात कुल-

---

१ च. तथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान्हे (न्हि ?) मपर्वतः ।।२।।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः । इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।।३।।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।।४।।
योजनानां सहस्राणि द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् । नव भेदा भारतस्य मध्यभेदेऽथ पूर्वतः ।।५।।
किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः । वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवास्तथा ।।६।।
विन्ध्याच्च नर्मदाद्याः स्युः सह्यात्तापी पयोष्णिका । गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणादिकास्तथा ।।७।।
मलयात्कृतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः । कुमाराद्याः शुक्तिमत्तो हिमाद्रेश्चन्द्रभागका ।।
पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारतवर्षवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११८।।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाद्वीपादिवर्णनम्

अग्निरुवाच

लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं समावृतम् । लक्षयोजनमानेन [1]क्षारोदेन समन्ततः ।।१।।
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः । सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरास्तथा ।।२।।

पर्वत हैं; जिनके नाम हैं–महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हिमालय, विन्ध्य और पारियात्र। इन्द्र, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गान्धर्व और वारुण द्वीपों में ही नवम द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है। दक्षिण से उत्तर तक यह द्वीप हजारों योजन फैला हुआ है। भारत के नौ विभाग हैं ।।१-५।। मध्य विभाग में पूर्व की ओर किरात, यवन तथा श्रौत और स्मार्त ब्राह्मण निवास करते हैं। यहाँ पारियात्र पर्वत से निकलनेवाली कई नदियाँ हैं। विन्ध्याचल से नर्मदा आदि, सह्यपर्वत से तापी पयोष्णिका, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा और वेणी, मलय पर्वत से कृतमाला आदि, महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा आदि, शुक्तिमान् से कुमारा आदि और हिमालय से चन्द्रभागा आदि नदियाँ निकली हुई हैं। पश्चिम में कुरु, पाञ्चाल तथा मध्यदेश आदि स्थित हैं ।।६-८।।

श्री अग्निमहापुराण में भारतवर्ष-वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११८।।

अध्याय ११९

महाद्वीप आदि का वर्णन

अग्निदेव बोले–जम्बू द्वीप एक लाख योजन विस्तृत है। वह चारों ओर से उतने ही योजन लम्बे खारे सागर से घिरा हुआ है। (उसी तरह) क्षार समुद्र को घेरकर प्लक्ष द्वीप स्थित है। मेधातिथि के सात पुत्र थे–शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव। यही प्लक्ष द्वीप के स्वामी हैं। उन्हीं के नाम पर वर्षों के नाम हैं। गोमेध,

---

१ घ. छ. क्षीरोदेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्याच्छान्तभयः शिशिरः सुखोदय इतः परः। आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नाम वर्षकम् ।।३।।
मर्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो[1] नारददुन्दुभी। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तर्जनाः शुभाः ।।४।।
नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाकान्तिकेषु च। जीवनं पञ्चसाहस्रं धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।।५।।
आर्यकाः कुरवश्चैव विविंशा[2] भाविनश्च[3] ते। विप्राद्यास्तैश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चैव[4] प्लक्षकः ।।६।।
मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशाल्मलः। वपुष्मतः सप्तपुत्राः शाल्मलेशास्तथाऽभवन् ।।७।।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात्। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम वर्षकः ।।८।।
द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः। कुमुदश्चानलश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः ।।।९।।
द्रोणः कङ्कोऽथ महिषः ककुद्मान्सप्तनिम्नगाः। कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः ।।१०।।
वायुरूपं यजन्तिस्म[5] सुरोदेनायमावृतः[6]। ज्योतिष्मतः कुशेशाः स्युरुद्भिदो[7] वेणुमान्सुतः ।।११।।
[8]द्वैरथी लम्बनी धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः। विप्राद्या दमिमुख्यास्तु[9] ब्रह्मरूपं यजन्ति ते ।।१२।।
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा। कुशेशयो हरिः शैलो वर्षार्थं मन्दराचलः ।।१३।।
वेष्टितोऽयं घृतोदेन क्रौञ्चद्वीपेन सोऽप्यथ। क्रौञ्चेश्वरा द्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः ।।१४।।
([10]कुशलो[11] मनोनुगश्चोष्णः[12] प्रधानोऽथान्धकारकः। मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः) ।।१५।।

चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमनस, वैभ्राज, तर्जन–ये प्लक्षद्वीप के सीमा पर्वत हैं। प्लक्षद्वीप में सात प्रधान नदियाँ हैं। वहाँ जीवनकाल पाँच हजार वर्षों का होता है और वर्णाश्रम धर्म का पालन किया जाता है। वहाँ की आर्यक, कुरु, विविंश तथा भाविन् नामक ब्राह्मण इत्यादि जातियाँ चन्द्रमा की उपासना करती हैं। प्लक्षद्वीप का क्षेत्रफल दो लाख योजन है। वह उतने ही विस्तारवाले गन्ने के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप से दुगुना बड़ा शाल्मल द्वीप है ।।१-६$\frac{1}{2}$।। वपुष्मान् के सात पुत्र थे–श्वेत, हरित, जीमूत, लोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ। यही शाल्मल द्वीप के स्वामी हैं। वहाँ के वर्षों के नाम इन्हीं के नामों पर पड़े हैं। वह द्वीप अपने से दुगुने विस्तारवाले सुरा के समुद्र से घिरा हुआ है। वहाँ पर सात पर्वत हैं–कुमुद, अनल, बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष और ककुद्मान्। वहाँ पर कपिला, अरुणा, पीता और कृष्णा आदि सात नदियाँ हैं। वहाँ ब्राह्मण आदि जातियाँ वायु-देवता की उपासना करती हैं। (जैसे कि पहले कहा जा चुका है) यह चारों ओर से सुरासागर से घिरा हुआ है ।।७-१०$\frac{1}{2}$।। ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हैं–उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथी, लम्बनी, धैर्य, कपिल और प्रभाकर। ये सभी कुशद्वीप के स्वामी हैं। वहाँ धर्म आदि ब्राह्मण जातियाँ ब्रह्मा की उपासक हैं। कुशद्वीप में विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवत्, कुशेशय, हरिशैल और मन्दराचल–ये सात पर्वत हैं। वह द्वीप घी के समुद्र से घिरा हुआ है और उस समुद्र को घेरे हुए है क्रौञ्चद्वीप। क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हैं। उन्हीं के नामों से वहाँ के वर्ष प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम हैं–कुशल, मनोनुग, उष्ण, प्रधान, अन्धकारक, देवावृत्, पुण्डरीक, दुन्दुभि और द्विगुण नामक सात पर्वत और सात नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त

---

१ क. ग. °मेरुश्च°। २ क. निविंशा। च. विदिशो। ३ च. भापिनिश्चिते। ४ घ. छ. क्षश्चाब्धिलक्ष°। ५ च. भजन्ति। ६ च. °देन समा°। ७ घ. छ. °रुद्गजो धेनुमा°। ८ क. द्वैरथो। ९ घ. छ. दधिमु°। १० कुशलो…निम्नगाः क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति। ११ ख. ग. लो मुन्नटश्चो°। च. °लोमानु°। १२ ख. ग. च. °ष्णः पीवरोऽप्यन्ध°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः । देवावृत्पुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो[1] मिथः ।।१६।।
द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा । पुष्कराः पुष्कलः[2] धन्याः[3] तिथ्यां[4] विप्रादयो हरिम् ।।१७।।
यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः । संवृतः शाकद्वीपेन[5] भव्याच्छाकेश्वराः सुता ।।१८।।
जलदश्च[6] कुमारश्च सुकुमारो [7]मणीचकः । कुशोत्तरथो[8] (रोऽथ) मोदाकी द्रुमस्तन्नामवर्षकाः ।।१९।।
उदयाख्यो जलधरो रैवतः [9]श्यामकोद्रकौ[10] । आम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी सप्तनिम्नगाः ।।२०।।
मगा मगधमानस्यामन्दगाश्च द्विजातयः । यजन्ति सूर्यरूपं तु शाकः क्षीराब्धिनाऽऽवृतः ।।२१।।
पुष्करेणाऽऽवृतः सोऽपि द्वौ पुत्रौ सवनस्य च । महावीतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिह्निते ।।२२।।
एकोऽद्रिर्मानसाख्योऽत्र मध्यतो बलयाकृतिः । योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतः समः ।।२३।।
जीवनं दशसाहस्रं सुरैर्ब्रह्माऽत्र पूज्यते । स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ।।२४।।
ऊनातिरिक्तता चापां समुद्रेषु न जायते । उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।२५।।
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि वै । अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ।।२६।।
स्वादूदकात्तु[11] द्विगुणा[12] भूर्हैमी जन्तुवर्जिता । लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ।।२७।।

और भी द्वीप हैं, जिनमें द्वीपों के अनुसार पर्वत भी हैं। इन द्वीपों में बहुत से श्रेष्ठ तालाब भी हैं। वहाँ ब्राह्मण आदि जातियाँ भगवान् विष्णु की उपासना किया करती हैं ।।११-१७।। क्रौञ्चद्वीप तक के समुद्र से घिरा हुआ है और वह समुद्र भी शाकद्वीप से आवेष्टित है। भव्य के पुत्र थे–जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्रुम। यही इस शाकद्वीप के स्वामी हैं। उन्हीं के नामों पर वहाँ के वर्षों के नाम पड़े हैं। उस द्वीप में उदय, जलधर, रैवत, श्याम, कोद्रक, आम्बिकेय तथा केशरी नामक सात पर्वत हैं और मगा, मगधमानस्या तथा मन्दगा आदि नामोंवाली सात नदियाँ हैं। वहाँ की द्विजातियाँ सूर्य की उपासना करती हैं। शाकद्वीप दूध के समुद्र से घिरा हुआ है ।।१८-२१।। वह समुद्र पुष्करद्वीप से आवेष्टित है। पुष्कर द्वीप के स्वामी सवन के दो पुत्र हैं–महावीत और धातकि। उनके नामों से चिह्नित दो वर्ष हैं। वहाँ मानस नामक एक पर्वत भी है, जिसका मध्यभाग वलय (कड़ा) के समान है। वह हजारों योजन लम्बा और उतना ही ऊँचा है। वहाँ के निवासियों की आयु दस हजार वर्षों की होती है। वहाँ पर देवता लोग ब्रह्मा की पूजा किया करते हैं। वह द्वीप स्वादिष्ट जल के समुद्र से घिरा हुआ है। उस समुद्र का जल घटता-बढ़ता नहीं है। अये मुनिराज! जिस प्रकार शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त होने पर दूसरे समुद्रों का जल पचास अँगुलियों के बराबर बढ़ता-घटता रहता है, उसी प्रकार इस समुद्र का जल बढ़ता-घटता नहीं है। उस समुद्र के बाद उससे दुगुनी सोने की भूमि

---

१ क. ङ. °गुणामि°। २ क. ङ. °ष्करावश्यां तिथ्यां। च. °ष्करावत्यां तिथ्यां। ३ घ. छ. °न्यास्तीर्था वि°। ४ ख. ग. °स्तिथ्या वि°। ५ घ. छ. °न हव्या°। ६ च. °लजश्च। ७ घ. छ. °णीवकः। ८ क. ङ. कुसुमोत्तरः ससोदाकिर्द्रुम°। ख. ग. कुसुमोत्तरः समोदाकिर्द्रुम°। ९ क. °मकेदकौ। १० ख. ग. °कोद्दकौ। ११ घ. छ. °दका बहुगु°। १२ ख. ग. त्रिगुणा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लोकालोकस्तु तमसाऽऽवृतोऽथाण्डकटाहतः। भूमिः साऽण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ।।२८।।

इत्याग्नेये महापुराणे महाद्वीपादिवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।११९।।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

अग्निरुवाच

विस्तारस्तु स्मृतो[1] भूमेः सहस्राणि च सप्ततिः। उच्छ्रायो दशसाहस्रं पातालं चैकमेककम् ।।१।।
अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत्। महाग्र्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ।।२।।
कृष्णपीतारुणाः शुक्लशर्कराः शैलकाञ्चनाः। भूमयस्तेषु रम्येषु सन्ति दैत्यादयः सुखम् ।।३।।
पातालानामधश्चाऽऽस्ते शेषो विष्णुश्च तामसः। गुणानन्त्यात्स चानन्तः शिरसा धारयन्महीम् ।।४।।
भुवोऽधो[2] नरका नैके न पतेत्तत्र वैष्णवः। रविणा भासिता पृथ्वी यावत्तावन्नभो मतम् ।।५।।
भूमेर्योजनलक्षं तु वशिष्ठरविमण्डलम्। रवेर्लक्षेण चन्द्रश्च लक्षान्नाक्षत्रमिन्दुतः ।।६।।

है, जिस पर कोई जन्तु नहीं रहता है। उसके बाद दस हजार योजन विस्तृत लोकालोक पर्वत है जो ब्रह्माण्ड तक अन्धकार से आच्छन्न है। वहाँ की पचास करोड़ योजन में विस्तृत भूमि ब्रह्माण्ड से घिरी हुई है ।।२२-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में महाद्वीप आदि का वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।११९।।

अध्याय १२०

भुवनकोश-वर्णन

अग्निदेव बोले–भूमि का विस्तार सत्तर हजार योजन और उसकी ऊँचाई दस हजार योजन मानी जाती है। उसके नीचे एक के बाद एक करके सात पाताल हैं, जिनके नाम अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महाग्र्य, सुतल और अग्र्य हैं। उन पातालों की भूमि काली, पीली तथा लाल है। वहाँ के कङ्कण शुभ्र और पर्वत सुवर्णमय होते हैं। उन रमणीय भूमियों पर दैत्य लोग सुखपूर्वक निवास करते हैं। समस्त पातालों के नीचे शेषनाग के रूप में तमोगुण से युक्त भगवान् विष्णु निवास करते हैं ।।१-३$\frac{1}{2}$।। उनमें अनन्त गुण होने के कारण ही वे अनन्त कहलाते हैं। वह अपने सिर पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। पृथ्वी के नीचे अनेक नरक हैं जिनमें भगवान् विष्णु के भक्तों को गिरना नहीं पड़ता है। हे वशिष्ठ! आकाश को नभ इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह सूर्य की किरणों से भासमान् रहा करता है। सूर्य का मण्डल पृथ्वी से एक लाख योजन की दूरी पर स्थित है। सूर्य से एक लाख योजन की दूरी पर चन्द्रमा और चन्द्रमा से भी एक लाख योजन की दूरी पर नक्षत्र-मण्डल है ।।४-६।। नक्षत्र से दो लाख योजन की दूरी पर शुक्र, शुक्र से दो लाख योजन की

---

१ क. ङ. च. श्रुतो। २ अस्य श्लोकस्यार्धभागं नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विलक्षाद्भाद्बुधश्चाऽऽस्ते बुधाच्छुक्रो द्विलक्षतः । द्विलक्षेण कुजः शुक्राद्भौमाद्द्विलक्षतो गुरुः ।।७।।
गुरोर्द्विलक्षतः सौरिर्लक्षात्सप्तर्षयः शनेः । लक्षाद्ध्रुवो ह्यृषिभ्यस्तु त्रैलोक्यं[1] चोच्छ्रयेण च ।।८।।
ध्रुवात्कोट्या महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । जनो द्विकोटितस्तस्माद्यत्राऽऽसन्सनकादयः ।।९।।
जनात्तपश्चाष्टकोट्या वैराजा यत्र देवताः । षण्णवत्या तु कोटीनां तपसः सत्यलोककः ।।१०।।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः । पादगम्यस्तु भूर्लोको भुवः सूर्यान्तरः स्मृतः ।।११।।
स्वर्गलोको ध्रुवान्तस्तु नियतानि[2] चतुर्दश । एतदण्डकटाहेन वृतो ब्रह्माण्डविस्तरः ।।१२।।
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः । वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ।।१३।।
दशोत्तराणि शेषाणि एकैकस्मान्महामुने । महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ।।१४।।
अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं[3] नापि विद्यते । हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ।।१५।।
असंख्यातानि चाण्डानि तत्र जातानि चेदृशाम्[4] । दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानिति ।।१६।।
प्रधाने च स्थितो व्यापी[5] चेतनात्माऽऽत्मवेदनः[6] । प्रधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया ।।१७।।
विष्णुशक्त्या महाप्राज्ञ वृतौ संश्रयधर्मिणौ । तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च ।।१८।।
क्षोभकारणभूतश्च सर्गकाले महामुने । यथा शैत्यं जले वातो बिभर्ति कणिकागतम् ।।१९।।

दूरी पर मंगल, मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से दो लाख योजन की दूरी पर शनि की स्थिति है। शनि से एक लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षि और सप्तर्षि से एक लाख योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है, जो ऊँचाई में त्रैलोक्य का स्थान ग्रहण करता है। ध्रुव से एक करोड़ योजन की दूरी पर महर्लोक स्थित है, जहाँ एक कल्प तक निवास करनेवाले प्राणी रहते हैं। महर्लोक से दो करोड़ योजन की दूरी पर जनलोक की स्थिति है, जिसमें सनक आदि निवास करते हैं। जनलोक से आठ करोड़ योजन की दूरी पर तपोलोक स्थित है, जिसमें वैराज नामक देवता निवास करते हैं। तपोलोक से छियानबे करोड़ योजन की दूरी पर सत्यलोक है ।।७-१०।। ब्रह्मलोक उसे कहते हैं, जहाँ पर लोगों की मृत्यु ही नहीं होती है। भूर्लोक एक पादगम्य है अर्थात् उसका परिमाण सम्पूर्ण सूर्यमण्डल का चतुर्थांश है। भुवर्लोक सूर्यमण्डल के अन्दर ही स्थित है। स्वर्गलोक ध्रुव की सीमा तक फैला हुआ है और उसका परिमाण एक लाख चालीस हजार योजन है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड से सम्पूर्ण जगत् घिरा हुआ है। वह ब्रह्माण्ड अपने से दसगुने महाभूतों–जल, अग्नि, वायु और आकाश से घिरा हुआ है। अये मुनिराज! वे महाभूत, जो क्रमशः एक-दूसरे से दसगुने बड़े हैं, परस्पर एक-दूसरे से घिरे हुए हैं। अन्तिम महाभूत (आकाश) महत् (तत्त्व) से घिरा हुआ है और महत् को घेरकर प्रधान (प्रकृति) अवस्थित है ।।११-१४।। हे मुनिराज! उस अनन्त (आकाश) का न अन्त है और न उसकी संख्या ही की जा सकती है। वह सबका हेतु (कारण) है और उसे परा प्रकृति कहते हैं। यह असंख्य ब्रह्माण्ड उसी से उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे लकड़ी में आग और तिल में तेल व्याप्त रहता है वैसे ही प्रकृति में (चेतनात्मा) पुरुष व्याप्त रहता है। अये महाबुद्धिमान्! सकलभूतों के आत्मरूप विष्णु शक्ति के द्वारा आश्रम धर्मवाले प्रधान और पुरुष से आवृत हैं अर्थात् उन दोनों की एकता विष्णुशक्ति से स्थापित है। उन दोनों के मिलने तथा पृथक् होने में भी वही शक्ति कारण है। महामुने! सृष्टिकाल में (सत्त्वादि गुणों में) क्षोभ उत्पन्न होने का कारण भी वही शक्ति है जैसे जल-विन्दु की शीतलता को वायु

---

१ घ. छ. °लोक्याच्चोच्छ्र°। २ च. अयुतानि। ३ क. ङ. च. °न नैव वि°। ४ क. ङ. च. °दृशाः। दा°। ५ °पी तन्नामाक सुप्रवे। ६ ख. ग. °नान्नाऽऽत्म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानप्रतिपादिकाम्[१]। विष्णुशक्तिं समासाद्य देवाद्याः सम्भवन्ति हि ।।२०।।
स च विष्णुः स्वयं ब्रह्म[२] यतः सर्वमिदं जगत्। योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव ।।२१।।
ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम। सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै ।।२२।।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्। त्रिनाभिमतिपञ्चारं(१)षण्नेमि[३] द्व्यायनात्मकम् ।।२३।।
संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्। चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो विवस्वतः ।।२४।।
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते। अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्धयोः ।।२५।।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धं च ध्रुवाधारं रथस्य वै। हयाश्च सप्तच्छन्दांसि गायत्र्यादीनि सुव्रत ।।२६।।
उदयास्तमनं ज्ञेयं दर्शनादर्शनं रवेः। यावन्मात्रप्रदेशे तु वशिष्ठावस्थितो[४] ध्रुवः ।।२७।।
स्वयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसंप्लवम्[५]। ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ।।२८।।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्। निर्धूतदोषपङ्कानां (णां) यतीनां स्थानमुत्तमम् ।।२९।।
ततो गङ्गा प्रभवति[६] स्मरणात्पापनाशिनी। दिवि रूपं हरेर्ज्ञेयं शिशुमाराकृति [७]प्रभो ।।३०।।
स्थितः पुच्छे ध्रुवस्तत्र भ्रमन्भ्रामयति ग्रहान्। ([८]स रसोऽधिष्ठितो[९] देवैरादित्यैर्ऋषिभिर्वरैः[१०] ।।३१।।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः)। हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवानविः ।।३२।।

धारण करती है उसी प्रकार जगत् को विष्णुशक्ति धारण किये रहती है। उसी प्रधान प्रतिपादिका विष्णुशक्ति का आश्रय लेकर देवता आदि उत्पन्न होते हैं। वे विष्णु ही स्वयं ब्रह्म हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। अये मुनिदेव! सूर्यदेव के रथ का परिमाण नौ हजार योजन है ।।१५-२१।। अये मुनिश्रेष्ठ! उस रथ का ईशादण्ड (हरीश) उससे दूना है। उसकी धुरी का परिमाण एक करोड़ पचास लाख सत्तर हजार योजन है। उस रथ में एक चक्र है जिसमें तीन नाभि, पाँच अरे और छह नेमियाँ (जिस पर हल चढ़ायी जाती है) हैं। (उत्तरायण और दक्षिणायन भेद से) उसके दो मार्ग हैं। यह कालचक्र समस्त संवत्सर से युक्त है। अये महामते! विवस्वान् (सूर्य) के रथ की दूसरी धुरी चालीस हजार और साढ़े पाँच (योजन) है। उन दोनों युगों के अर्ध भाग का परिमाण भी धुरी के बराबर ही है। उस रथ की धुरी का आधार तथा छोटी धुरी का परिमाण युगार्ध के बराबर होता है ।।२२-२५$\frac{१}{२}$।। उत्तमव्रतधारिन्! गायत्री आदि सात छन्द ही उस रथ के घोड़े हैं। सूर्य का उदय और अस्त ही उसके दिखायी देने और न दिखायी देने का कारण है। जितने प्रदेश में वसिष्ठ के साथ ध्रुव अवस्थित रहते हैं उतने प्रदेश में प्रलय होता है। सप्तर्षियों से ऊपर उत्तर की ओर जहाँ पर ध्रुव की स्थिति है, वह आकाश में तीसरा तेजोमय दिव्यलोक है। निर्दोष और निष्पाप यतियों का वही उत्तम स्थान है। वहाँ से गङ्गा निकलती हैं, जो स्मरणमात्र से ही पापों का सर्वनाश कर दिया करती हैं। वहाँ भगवान् विष्णु मगर के रूप में विद्यमान रहते हैं ।।२६-३०।। उस मगर की पूँछ पर स्थित होकर ध्रुव स्वयं घूमता है और अन्य ग्रहों को भी घुमाता रहता है। वहाँ देवता, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, नाग तथा राक्षस रथ पर आरूढ़ रहा करते हैं। सर्दी, गर्मी तथा वर्षा

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °पादकम्। २ क. ङ. च. ब्रह्म। ३ क. ङ. °मिन्यक्षयार्थके। सं०। ख. ग. °मिध्यक्षयात्मके। सं०। ४ क. ङ. च. °तो बुधः। क्षय°। ५ ख. ग. घ. छ. °प्लवे। ज°। ६ च. °ति सर्वपापप्रणाश°। ७ ख. ग. घ. छ. प्रभो। ८ स रथोऽधिष्ठितो…सर्पराक्षसैः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ९ च. °तो दैत्यैरा°। १० च. °भिर्भटैः। ग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋग्वेदादिमयो विष्णुः स शुभाशुभकारणम् । रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।।३३।।
वाम दक्षिणतो युक्ता दश युतेन चरत्यसौ । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।।३४।।
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवाः पिबन्ति क्षणदाकरम्[1] । एकां कलां च पितर एकामारश्मिसंस्थिताः ।।३५।।
वाय्वग्निद्रव्यसंभूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च । अष्टाभिस्तुरगैर्युक्तो बुधस्तेन चरत्यपि ।।३६।।
शुक्रस्यापि रथोऽष्टाश्वो भौमस्यपि रथस्तथा । बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः शनेश्चाष्टाश्वको रथः ।।३७।।
स्वर्भानोश्च रथोऽष्टाश्वः केतोश्चाष्टाश्वको रथः[2] । यदद्य वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा ।।३८।।
पद्माकारा समुद्भूता पर्वताद्यादि संयुता । ज्योतिर्भुवननद्यद्रिसमुद्रवनकं हरिः ।।३९।।
यदस्ति नास्ति तद्विष्णुर्विष्णुज्ञानविजृम्भितम् । न विज्ञानमृते किंचिज्ज्ञानं विष्णुः परं पदम् ।।४०।।
तत् कुर्याद्येन विष्णुः स्यात्सत्यं ज्ञानमनन्तकम् । पठेत्भुवनकोशं हि यः सोऽवाप्तसुखात्मभाक् ।।४१।।
ज्योतिः शास्त्रादिविद्याश्च[3] शुभाशुभाधिपो हरिः ।।४२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२०।।

(आदि ऋतुओं) का कारण भगवान् सूर्य ही हैं। भगवान् विष्णु ऋग्वेदादि के स्वरूप हैं और वही शुभाशुभ (कर्मों) के कारण हैं। चन्द्रमा के रथ में तीन पहिये हैं। उसमें कुन्द-पुष्प के समान शुभ्र दस घोड़े बायीं और दाहिनी ओर जुते हुए हैं। यह चन्द्रमा उसी रथ से सञ्चरण करता है। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस देवता चन्द्रकला का पान किया करते हैं। उसकी एक कला का पान वे पितृगण किया करते हैं जो उसकी रश्मि तक पहुँच चुके हैं ।।३१-३५।। बुध का रथ वायु और अग्नि तत्त्वों से बना हुआ है। उसमें आठ घोड़े जुते हुए हैं। उसी प्रकार बृहस्पति, शनि, राहु और केतु के रथों में भी आठ-आठ घोड़े जुतते हैं। हे ब्राह्मणदेव! पर्वत आदि से संयुक्त और पद्म के आकारवाली यह पृथिवी भगवान् विष्णु के शरीर से ही उत्पन्न हुई है। ज्योति, भुवन, नदी, पर्वत, समुद्र तथा वन विष्णु से ही उत्पन्न हुए हैं। (इस संसार में) जो कुछ है और जो नहीं है, वह सब विष्णु (मय) ही है और विष्णु के ज्ञान से ही विकसित हुआ है। (विष्णु के) विशिष्ट ज्ञान के बिना कोई ज्ञान ही नहीं होता है। विष्णु उत्कृष्टतम स्थान (परमपद) हैं। इसलिए वही कार्य करना चाहिए, जिससे विष्णु की सत्य, ज्ञान और अनन्त रूप सत्ता बनी रहे। जो व्यक्ति भुवनकोश और ज्योतिः-शास्त्र आदि विद्याओं को पढ़ेगा, उसे आत्म-सुख की प्राप्ति होगी। (समस्त) शुभाशुभ कर्मों के स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं ।।३६-४२।।

श्री अग्निमहापुराण में भुवनकोशवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२०।।

---

१ घ. °दाचर°। २ ख. ग. °थः। एतद्धि वै°। ३ ख. °शुभधियां ह°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ज्योतिःशास्त्रकथनम्

अग्निरुवाच

ज्योतिःशास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम् । चातुर्लक्षस्य सारं यत्तज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ।।१।।
षट्काष्टके[1] विवाहो न नच द्विर्द्वादशे स्त्रियाः । न त्रिकोणे ह्यथ प्रीतिः शेषे च समसप्तके ।।२।।
द्विर्दादशे त्रिकोणे च मैत्री क्षेत्रपयोर्यदि । भवेदेकाधिपत्यं च ताराप्रीतिरथापि वा ।।३।।
तथाऽपि कार्यः संयोगो न तु षट्काष्टके पुनः । जीवे भृगौ चास्तमिते म्रियते च पुमान्स्त्रियाः[2] ।।४।।
गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्यक्षेत्रगते गुरौ । विवाहं न प्रशंसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत् ।।५।।
अतिचारे त्रिपक्षं स्याद्वक्रे मासचतुष्टयम् । व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत गुरोर्वक्रा (र्वाक्या) तिचारयोः ।।६।।
चैत्रे पौषे न[3] रिक्तासु[4] हरौ सुप्ते कुजे रवौ । चन्द्रक्षये चाशुभं स्यात्सन्ध्याकालः शुभावहः ।।७।।

अध्याय १२१

ज्योतिःशास्त्र-वर्णन

अग्निदेव बोले–अब मैं शुभ और अशुभ बातों को बतानेवाले ज्योतिःशास्त्र का वर्णन करूँगा। चार लाख श्लोकों में निबद्ध ज्योतिःशास्त्र का सार जान लेने से सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है ।।१।। स्त्री के विवाह के सम्बन्ध में षडष्टक, द्विर्द्वादश एवं त्रिकोण नवपञ्चक दोष में विवाह नहीं करना चाहिए। शेष में विवाह शुभ होता है। कन्या की राशि से वर की राशि छह या आठ या वर की राशि से कन्या की छह या आठ हो तो षडष्टक दोष होता है। इसी वर या कन्या की राशि से दो या बारह हो तो द्विर्द्वादश दोष होता है एवं वर या कन्या की राशि से एक की नव या पाँच हो तो त्रिकोण नवपञ्चक दोष होता है। अतः इनमें विवाह नहीं करना चाहिए। शेष में दस, ग्यारह, चार, दस तथा समसप्तक में विवाह होने से दम्पति में प्रेम रहता है ।।२।। यदि वर और वधू के राशिस्वामियों में परस्पर मित्रता हो या दोनों के राशिपति एक ही हों या तारा-मैत्री हो तो द्विर्द्वादश और त्रिकोण स्थान में भी विवाह-सम्बन्ध करना चाहिए। क्योंकि ऐसे सम्बन्ध का प्रभाव अच्छा होता है, चाहे ग्रहों में परस्पर मित्रता ही क्यों न हो। जहाँ पर वर-वधू के षडष्टकदोष हों वहाँ सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। बृहस्पति तथा शुक्र के अस्त होने पर विवाह-सम्बन्ध करने से स्त्री-पुरुष दोनों की मृत्यु हो जाती है ।।३-४।। बृहस्पति के क्षेत्र में सूर्य और सूर्य के क्षेत्र में बृहस्पति के जाने पर विवाह करना अशुभ है, क्योंकि ऐसा विवाह कन्या के लिए वैधव्यकारक है ।।५।। अतिचार होने पर तीन पक्षों तक और वक्र होने पर चार महीनों तक विवाह स्थगित कर देना चाहिए। बृहस्पति के वक्र और अतिचारी होने पर व्रत (उपनयन) तथा विवाह नहीं करना चाहिए ।।६।। चैत्र तथा पौष के महीनों में रिक्ता (चतुर्थी, चतुर्दशी, नवमी) तथा अमावस्या तिथियों में मङ्गल तथा सूर्यवारों में और विष्णु के सो जाने पर (आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त) विवाह करना अशुभ है। विवाह के लिए सन्ध्याकाल का समय शुभकारक है ।।७।।

---

१ घ. छ. षडष्टके। २ घ. छ. °न्स्त्रिया। गु°। ३ ख. ग. तु। ४ घ. छ. रक्तासु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रोहिणी चोत्तरा मूलं स्वाती हस्तोऽथ रेवती। तुले च [1]मिथुने शस्तो विवाहः परिकीर्तितः ।।८।।
विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा। प्राशने चाऽऽद्यचूडायां विद्धर्क्षं[2] च विवर्जयेत् ।।९।।
श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्यमङ्गलजीवके। कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्म पुंसवनं स्मृतम् ।।१०।।
हस्ते मूले मृगे पौष्णे बुधे शुक्रे च निष्कृतिः। अर्केन्दुजीवभृगुजे मूले ताम्बूलभक्षणम् ।।११।।
अन्नस्य प्राशनं शुक्रे जीवे मृगे च मीनके। हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादित्रये तथा ।।१२।।
अश्विन्यामथ रेवत्यां नवान्नफलभक्षणम्। पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा रोहिणी श्रवणाश्विनी ।।१३।।
स्वातिसौम्ये च भैषज्यं कुर्यादन्यत्र वर्जयेत्। पूर्वात्रयं मघा याम्यं पावनं श्रवणत्रयम् ।।१४।।
भौमादित्यशनेर्वारे स्नातव्यं [3]रोगमुक्तितः। पार्थिवे चाष्टह्रींकारं मध्ये नाम च दिक्षु च ।।१५।।
[4]ह्रीपुटं पार्थिवे दिक्षु ह्रीं विदिक्षु लिखेद्वसून्। गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे वस्त्रे गले धृतम् ।।१६।।
शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितम्। श्रीं ह्रीं सम्पुटं नाम श्रीं ह्रीं (च) पत्राष्टके क्रमात् ।।१७।।
गोरोचनाकुङ्कुमेन [5]भूर्जेऽथ[6] सुभगावृते। गोमध्यवागमः[7] पत्रे हरिद्राया रसेन च[8] ।।१८।।
शिलापट्टेऽरीन्स्तम्भयति भूमावधोमुखीकृतम्[9]। ॐ हूं[10] सः सम्पुटं[11] नाम ओं हूं[12] सः पत्राष्टके क्रमात् ।।१९।।

रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, हस्त तथा रेवती नक्षत्रों में तथा तुला और मिथुन लग्न में विवाह करना उत्तम है ।।८।। विवाह, कर्णवेध, पुंसवन, अन्नप्राशन तथा प्रथम चूड़ाकरण संस्कार में वेधयुक्त नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए ।।९।। श्रवण, मूल, पुष्य, रविवार, मङ्गल तथा बृहस्पति एवं कुम्भ, सिंह और मिथुन में पुंसवन कर्म करना चाहिए ।।१०।। हस्त, मूल, मृगशिर, रेवती, बुध और शुक्र को निष्कासन करना चाहिए। रविवार, सोमवार, बृहस्पतिवार एवं शुक्रवार को मूलनक्षत्र में ताम्बूल-भक्षण करना चाहिए ।।११।। शुक्र तथा बृहस्पतिवारों में मकर और मीन लग्न में हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, कृत्तिका, पुष्य तथा रोहिणी, मृगशिर नक्षत्रों में शिशु का अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए ।।१२।। अश्विनी, रेवती, पुष्य, हस्त तथा ज्येष्ठा, रोहिणी तथा श्रवण नक्षत्रों में नया अन्न तथा नवीन फल खाना चाहिए ।।१३।। स्वाती तथा मृगशिर नक्षत्र में ओषधि सेवन करना चाहिए। पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, मघा, भरणी, श्रवण, स्वाती, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में तथा शनि, रवि, मङ्गलवारों में रोगविमुक्त व्यक्ति को स्नान करना चाहिए ।।१४-१४$\frac{1}{2}$।। मङ्गल के दिन मिट्टी के चौकोर पट्ट पर या भोजपत्र पर गोरोचन तथा कुंकुम से दिशाओं में आठ 'ह्री' (मन्त्र) लिखकर मध्य में शत्रु का नाम लिखकर उस यन्त्र को वस्त्र में लपेटकर गले में धारण करना चाहिए ।।१५-१६।। ऐसा करने से शत्रु निःसन्देह वशीभूत हो जाता है। श्रीं ह्रीं मन्त्र से सम्पुटित नाम को आठ भोजपत्र पर लिखकर गाड़ दे तो विदेश गया हुआ व्यक्ति आ जाता है। इसी यन्त्र को हल्दी के रस से पत्थर पर लिखकर उलटा करके भूमि पर रख दे तो शत्रु का स्तम्भन होता है। 'ॐ हूं सः' इस मन्त्र से सम्पुटित नाम को भोजपत्र पर गोरोचन और कुङ्कुम से आठ पत्रों पर लिखकर धारण करने से मृत्यु का निवारण होता है। इसी मन्त्र को एक, पाँच या नव

---

१ ख. ग. तु। घ. छ. न। २ क. ङ. च. °द्धमृक्षं विव°। ३ क. ङ. च. °क्तिदः। पा°। ४ क. ङ. च. °पुटे पा°। ५ भूर्जेऽथ...गोरोचनाकुङ्कुमेन नास्ति च. पुस्तके। ६ क. ङ. °र्जेऽथाक्षतगोघृते। ७ क. ङ. °ध्यरामगः प°। ८ क. ङ. च. ॐ। ९ क. °म्। ओमों शः सं। १० ख. ग. ॐ भूं सः। ११ क. °म श्रीम्, ॐ सं जुसः। ङ. °म श्रीम्, ॐ जुसः। १२ ख. ग. भूः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोरोचनाकुङ्कुमेन) भूर्जे मृत्युनिवारणम्। एकपञ्चनवप्रीत्यै द्विषड्द्वादश योगकाः[1] ।।२०।।
त्रिसप्तैकादशे लाभो वेदाष्टद्वादशे रिपुः। तनुर्धनं च सहजः सुहृत्सुतौ रिपुस्तथा ।।२१।।
जायानिधनधर्मौ च कर्माऽऽयव्ययकं क्रमात्। स्फुटं मेषादिलग्नेषु नवताराबलं वदेत् ।।२२।।
जन्म सम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधकः क्रमात्। निधनं मित्रपरममित्रं ताराबलं विदुः ।।२३।।
वारे ज्ञगुरुशुक्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा। माघादिमासषट्के तु क्षौरमाद्यं प्रशस्यते ।।२४।।
कर्णवेधो बुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः। पञ्चमेऽब्दे[2] चाध्ययनं षष्ठीप्रतिपदं त्यजेत् ।।२५।।
रिक्तां पञ्चदशीं भौमं प्रार्च्य वाणीं हरिं श्रियम्। माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं शुभम् ।।२६।।
[3]चूडाकरणमाद्यं च श्रावणादौ न शस्यते। अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ।।२७।।
उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिर्दिशेत्। क्षौरर्क्षे शुभवारे च समावर्तनमिष्यते ।।२८।।
शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च। अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च ।।२९।।
पुनर्वसौ च पुष्ये च धनुर्वेदः प्रशस्यते। भरण्यार्द्रा मघाऽश्लेषा वह्निभगर्क्षयोस्तथा ।।३०।।
जिजीविषुर्न कुर्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः। गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं विवाहादौ न भादिकम् ।।३१।।
रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिषु च पञ्चसु। शङ्खविद्रुमरत्नानां परिधानं प्रशस्यते ।।३२।।

बार लिखने से परस्पर प्रेम होता है। दो, छह या बारह बार लिखने से बिछुड़े हुए का मेल होता है। तीन, सात या ग्यारह बार लिखने से लाभ होता है और चार, आठ या बारह बार लिखने से शत्रुता होती है ।।१७-२०$\frac{1}{2}$।। मेषादि लग्नों में द्वादश भावों के नाम तनु, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय होते हैं। नवताराओं के नाम जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, निधन, मित्र और परममित्र हैं। रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र इन पाँच वारों में तथा माघ से प्रारम्भ करके छह मासों में बालक का प्रथम क्षौरकर्म करना उत्तम है ।।२१-२४।। बुध तथा बृहस्पति वारों में और पुष्य, श्रवण तथा चित्रा नक्षत्रों में कर्णवेध संस्कार करना चाहिए। पाँचवें वर्ष शिशु को सरस्वती, विष्णु तथा लक्ष्मी के पूजनपूर्वक अक्षराम्भ करना चाहिए। षष्ठी, प्रतिपदा तथा रिक्ता (चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी) और पञ्चदशी तिथियाँ तथा मङ्गल दिन विद्यारम्भ के लिए वर्जित हैं। माघ आदि छह मासों में मेखला बन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार करना शुभ है ।।२५-२६।। श्रावण आदि महीनों के प्रथम चूड़ाकरण होने पर और चन्द्रमा के क्षीण होने पर यदि ब्राह्मण का उपनयन किया जाय तो उसकी मृत्यु या जड़ता होती है। क्षौरकर्म के नक्षत्र में तथा शुभ दिन में समावर्तन-संस्कार करना चाहिए ।।२७-२८।। शुभग्रह की लग्न हो, लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों या देखते हों तथा अश्विनी, भरणी, मघा, चित्रा, स्वाती, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफाल्गुनी, पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्रों में धनुर्वेद प्रारम्भ करना शुभ होता है। जीवन की इच्छा होने पर भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिका और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए। गुरु, शुक्र और बुध वारों में वस्त्र धारण करना शुभ है। किन्तु विवाहादि विशेष अवसर पर नक्षत्र तथा दिन का विचार करना आवश्यक नहीं है ।।२९-३१।। रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों में शङ्ख, मूँगा तथा रत्न धारण करना उत्तम है ।।३२।। भरणी,

---

१ क. योक्यकाः। ङ. योस्वकाः। च. दोषकः। २ क. °द्वे भावप (फ) लं ष°। ङ. °ब्दे भाव्यफलं ष°। ३ क. घ. छ. °णकाद्यं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

याम्यसार्प[1] धनिष्ठासु त्रिषु [2]पूर्वेषु [2]वानने (चानले)। क्रीतं हानिकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ।।३३।।
अश्विनीस्वातिचित्रासु रेवत्यां वारुणे हरौ। क्रीतं लाभकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ।।३४।।
भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषामघानिलाः। वह्निज्येष्ठाविशाखासु स्वामिनो नोपतिष्ठते[4] ।।३५।।
द्रव्यं दत्तं प्रयुक्तं वा यत्र निक्षिप्यते धनम्[5]। उत्तराश्रवणे शाक्रे कुर्याद्राजाभिषेचनम् ।।३६।।
चैत्रं ज्येष्ठं तथा भाद्रमाश्विनं पौषमेव च। माघं चैव परित्यज्य शेषमासे गृहं शुभम् ।।३७।।
अश्विनी रोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्। स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ।।३८।।
आदित्यभौमवर्जं तु वापीप्रासादके तथा। सिंहराशिगते[6] जीवे गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ।।३९।।
बाले वृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्मविवर्जयेत्। अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षतिः ।।४०।।
संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके। गृहेप्रवेशनं कुर्याद्धनिष्ठोत्तरवारुणे ।।४१।।
नौकाया घटने द्वित्रिपञ्चसप्तत्रयोदशी। नृपदर्शो धनिष्ठासु [7]हस्तपौष्णाश्विनीषु च ।।४२।।
पूर्वात्रयं धनिष्ठाऽऽर्द्रा वह्निः सौम्यविशाखयोः। आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रासिद्धिस्तु[8] सम्पदा ।।४३।।
त्रिषूत्तरेषु[9] रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी। श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैवाष्टमी तथा ।।४४।।

अश्लेषा, धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और कृत्तिका नक्षत्रों में वस्तुओं के खरीदने से घाटा और बिक्री से लाभ होता है ।।३३।। अश्विनी, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा तथा श्रवण नक्षत्रों में वस्तुओं के खरीदने से लाभ और बिक्री से घाटा होता है ।।३४।। भरणी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा नक्षत्रों में (किसी काम के लिए) स्वामी (या अधिकारी आदि) से नहीं मिलना चाहिए। इन्हीं नक्षत्रों में द्रव्य देना, कालान्तर में द्रव्य देना, थाती या धरोहर के रूप में रखना नहीं चाहिए। तीनों उत्तरा, श्रवण और ज्येष्ठा नक्षत्र में राज्याभिषेक करना चाहिए ।।३५-३६।। चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, आश्विन, पौष तथा माघ को छोड़कर अन्य मासों में गृहारम्भ करना शुभ है ।।३७।। अश्विनी, रोहिणी, मूल, उत्तराषाढ़, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, मृगशिर, स्वाती, हस्त तथा अनुराधा ये नक्षत्र गृहारम्भ के लिए शुभ माने गये हैं ।।३८।। बावली खोदवाने तथा मकान बनवाने में रविवार और मङ्गलवार वर्जित हैं। सिंह राशि पर गुरु होने पर, धेनु और मीन राशि पर सूर्य, मलमास में और शुक्र के बाल, वृद्ध तथा अस्त होने पर गृह-कार्य नहीं करना चाहिए ।।३९-३९ $\frac{1}{2}$।। श्रवणपञ्चक (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती) नक्षत्रों में घास तथा लकड़ियों का संग्रह करने से अग्निदाह, भय, रोग, राज-पीड़ा तथा धनक्षति होती है। धनिष्ठा, तीनों उत्तरा तथा शतभिषा नक्षत्रों में गृह-प्रवेश करना चाहिए ।।४०-४१।। द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी तिथियों में नौका बनवानी चाहिए। राजदर्शन के लिए धनिष्ठा, हस्त, रेवती तथा अश्विनी नक्षत्र उत्तम होते हैं ।।४२।। पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा, श्लेषा तथा अश्विनी नक्षत्रों में युद्ध-यात्रा सिद्धि देनेवाली होती है ।।४३।। उत्तराफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद और उत्तराषाढ़, रोहिणी, श्रवण, हस्त तथा चित्रा नक्षत्रों में और अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी तिथियों में गोयात्रा तथा गोगृह-प्रवेश

---

१ क. ङ. च. °र्प विशाखासु। २ क. ख. ग. ङ. च. पूर्वासु। ३ घ. छ. वारुणे। ४ क. ख. ग. ङ. च. °ष्ठति। द्र°। ५ च. फलम्। ६ च. °ते चैव गु°। ७ ग. घ. च. छ. हस्तापौ°। ८ ख. °द्धिस्चतुष्पदे। त्रि°। ९ क. ख. ग. ङ. च. °त्तरासु रो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोषु[1] यात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कायरेत्। अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ।।४५।।
पुष्यश्रवणहस्तेषु कृषिकर्मसमाचरेत्। पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे ।।४६।।
गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे[2] च सोमभास्वतोः। वृषलग्ने च[3] कर्तव्यं कन्यायां मिथुने तथा[4] ।।४७।।
द्विपञ्चदशमी सप्ततृतीया च त्रयोदशी। रेवती [5]रोहिणीन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु च[6] ।।४८।।
मन्दारवर्जं बीजानि वापयेत्सम्पदर्थ्यपि। रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमैत्रयोः ।।४९।।
पितृदैवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदं मृगोदये। हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये ।।५०।।
स्थिरे लग्ने गुवोवरिऽथ[7] वा भार्गवसौम्ययोः। याम्यादितिमघाज्येष्ठासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ।।५१।।
ॐ[8] धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा। ॐ नवे हर्षे[9] इलादेवि लोकसंवर्धिनि
कामरूपिणि[10] देहि मे धनं स्वाहा ।।५२।।
पत्रस्थं[11] लिखितं धान्यराशिस्थं धान्यवर्धनम्। त्रिपूर्वासु विशाषायां धनिष्ठावारुणेऽपि च ।।५३।।
एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः। देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ।।५४।।
मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद्द्वादशी तिथिः। सदा तत्रैव कर्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः (?) ।।५५।।
सिंहतौलिगते चार्के दर्शाद्यद्द्वादशीद्वयम्। आदाविन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ।।५६।।

नहीं करना चाहिए ।।४४-४४$\frac{1}{2}$।। स्वाती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और हस्त नक्षत्र में कृषिकार्य करना चाहिए। पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, ज्येष्ठा और शतभिष नक्षत्रों में द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी, तृतीया और त्रयोदशी तिथि में बृहस्पति, शुक्र, सोम तथा रविवारों में वृष, कन्या तथा मिथुन लग्नों में खेती का काम आरम्भ करना चाहिए ।।४५-४७$\frac{1}{2}$।। सम्पत्ति का अभिलाषी व्यक्ति द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी, तृतीया, त्रयोदशी तिथियों में तथा रेवती, रोहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में केवल शनिवार को छोड़कर सब प्रकार का बीज बोना चाहिए। रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, भरणी तथा मृगशिरा नक्षत्रों में धान्य (अनाज) काटना चाहिए। हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, भरणी, मघा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़, उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों में, स्थिर लग्न में और बृहस्पति, शुक्र तथा सोमवारों में (बखार) में धान्य एकत्र करना चाहिए। पत्ते पर 'ॐ धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा', 'ॐ नवे हर्षे इलादेवि लोक-संवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा' इन दोनों मन्त्रों को लिखकर धान्यराशि के ऊपर रख देने से धान्य की वृद्धि होती है। पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में (बखार) से धान निकालना चाहिए ।।४९-५३$\frac{1}{2}$।। देवता, बगीचा और बावली आदि की प्रतिष्ठा सूर्य के उत्तरायण होने पर करनी चाहिए। सूर्य के मिथुन राशि पर जाने पर शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में हरिशयन कराना चाहिए। सिंह और तुला राशिस्थ सूर्य होने पर शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में क्रम से सिंह के सूर्य में पार्श्वपरिवर्तन (करवट लेना) तथा तुला के सूर्य में प्रबोधोत्सव (जगाना) चाहिए ।।५४-५६।। सूर्य के कन्या राशि में

---

१ घ. छ. गोष्ठया°। २ च. °रे सोमसुतस्य च। वृ°। ३ च. न। ४ च. °था। त्रिप°। ५ च. °न्द्राश्विह°। ६ ख. ङ. च. मैत्रं च व°। ७ ख. ग. घ. छ °वरि अथ भा°। ८ च. ॐ श्रीध°। ९ घ. छ. वर्षे। १० क. ङ. कामरूपिणो। ११ क. ख. ग. ङ. यत्रस्थं। च. यन्त्रस्थं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी । त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ।।५७।।
भौमादित्यशनैश्चारी[1] (?) विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् । सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः[2] ।।५८।।
जन्माश्रितस्त्रिषष्ठश्च सप्तमी दशमस्तथा । एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभं वदेत् ।।५९।।
शुक्लपक्षे द्वितीयश्च पञ्चमो नवमः शुभः । मित्रातिमित्रसाधकसंपत्क्षेमादितारकाः ।।६०।।
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम् । प्रत्यरौ मरणं विद्यान्निधने याति पञ्चताम् ।।६१।।
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमी दिनम् । तावत्कालं शशी क्षीणः पूर्णस्तत्रोपरि स्मृतः ।।६२।।
वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदैवते । पौर्णमासीगुरोवरि महाज्यैष्ठी[3] प्रकीर्तिता ।।६३।।
ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा । पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य [4]महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ।।६४।।
स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे[5] शुक्रस्योत्थापयेद्ध्वजम् । हर्यृक्षपादे[6] चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ।।६५।।
सर्वं हेमसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।।६६।।
ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी[7] तिला । राक्षसी च क्रमेणार्कात्सङ्क्रान्तिर्नामभिः स्मृता ।।६७।।
बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि । उत्तिष्ठन्सङ्क्रमत्यर्कस्तदा लोकः सुखी भवेत् ।।६८।।

जाने पर (शुक्लपक्ष की) अष्टमी तिथि में दुर्गा को जगाना चाहिए। त्रिपाद नक्षत्र में कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रों में मङ्गल, रवि तथा शनिवारों में भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) तिथि पड़ने पर त्रिपुष्कर योग होता है, रवि, चन्द्रमा और नक्षत्र की शुद्धि (शुभस्थान में होना) सब कर्मों में उपादेय है ।।५७-५८।। जिसकी जन्म-राशि से तीसरे, छठें, सातवें, दसवें और ग्यारहवें चन्द्रमा हों उसे शुभ कहना चाहिए। शुक्लपक्ष में दूसरा, पाँचवाँ तथा नवम चन्द्रमा भी शुभ होता है। मित्र, अतिमित्र आदि तारा कही गयी हैं। इनमें जन्मतारा में मृत्यु, विपत् नामक तारा में धन का नाश और प्रत्यरि तथा निधन नामक तारा से मृत्यु होती है ।।५९-६१।। कृष्णपक्ष की अष्टमी से लेकर शुक्लपक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा क्षीण रहता है और उसके बाद बढ़ता है, पूर्ण चन्द्र होता है। वृष या मिथुन राशि पर सूर्य के होने पर मृगशिर या ज्येष्ठा नक्षत्र में गुरु हों तो बृहस्पतिवार को जो पूर्णिमा पड़ती है, उसे महाज्येष्ठी पूर्णिमा कहते हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त गुरु और चन्द्र हों, रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य हों, ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा हो तो ज्येष्ठी पूर्णिमा कहलाती है ।।६२-६४।। स्वाती नक्षत्र के पूर्व नक्षत्र में यन्त्र पर इन्द्रदेव की पूजा करके इन्द्र की ध्वजा का उत्थापन करना चाहिए और उससे एक सप्ताह के बाद या श्रवण या अश्विनी नक्षत्र में उसका विसर्जन कर देना चाहिए ।।६५।। सूर्य के राहु ग्रस्त होने पर (अर्थात् ग्रहण लगने पर) सब प्रकार का दान सुवर्ण-दान के समान, सब द्विज ब्राह्मण (ब्रह्म) के समान और सब जल गङ्गाजल के समान हो जाता है ।।६६।। सूर्य की सङ्क्रान्ति क्रमशः रवि आदि वारों में ध्वाङ्क्षी, महोदरी, घोरा, मन्दा, मन्दाकिनी, तिला एवं राक्षसी नामों से पुकारी जाती है ।।६७।। जब सूर्य बालव, कौलव, नाग और तैतिल नामक करणों में सङ्क्रमण करते हैं तब लोग सुखी होते हैं। जब गर, बव, वणिक्, विष्टि, किंस्तुघ्न तथा शकुनि नामक

---

१ घ. छ. °श्चारिवि°। २ च. °न्द्रसूर्ययोः। ३ ख. ग. च. महाज्येष्ठी। ४ ख. ग. च. महाज्येष्ठी। ५ क. ङ. °निर्थि पश्चादुत्था°। ६ क. ङ. च. हर्यश्वपादे। ख. ग. हर्याद्यपादे। ७ घ. छ. °नीद्विजाः। रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]गरे बवे वणिग्विष्टौ किंस्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत् । राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते[2] सम्पदा समम् ।।६९।।
चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः सङ्क्रमेद्रविः । दुर्भिक्षं राजसङ्ग्रामो दम्पत्योः संशयो भवेत् ।।७०।।
कृत्तिकायां नवदिनं[3] त्रिरात्रं रोहिणीषु च । मृगशिरः पञ्चरात्रमार्द्रासु प्राणनाशनम् ।।७१।।
पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते । नवरात्रं तथाऽश्लेषां श्मशानान्तं मघासु च ।।७२।।
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् । हस्ते तु दृश्यते चित्रास्वर्धमासं[4] तु पीडनम् ।।७३।।
मासद्वयं तथा स्वातिविशाखा[5] वशतिर्दिनम् (?) । मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्धमासकम् ।।७४।।
मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपञ्चकम् । उत्तरा दिनविंशत्या द्वौ मासौ [6]श्रवणेन च ।।७५।।
धनिष्ठा चार्धमासं च वारुणे च दशाहकम् । नव[7] भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् ।।७६।।
रेवती दशरात्रं च अहोरात्रं तथाऽश्विनी । भरण्यां प्राणहानिः स्याद्गायत्री होमतः शुभम् ।।७७।।
पञ्चधान्यतिलाज्याद्यैर्धेनुदानं[8] द्विजे[9] शमम् । दशा सूर्यस्य[10] चाष्टाब्दा इन्दोः पञ्चदशैव तु ।।७८।।
अष्टौ वर्षाणि भौमस्य दशसप्त दशा बुधे । दशाब्दानि दशा पङ्गोरूनविंशद्गुरोर्दशा ।।
राहोर्द्वादशवर्षाणि भार्गवस्यैकविंशतिः ।।७९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ज्योतिःशास्त्रकथनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२१।।

करणों में सूर्य जाते हैं तब राजा के दोष से लोक में धन-जन का नाश होता है ।।६८-६९।। चतुष्पाद, विष्टि एवं नागकरण में सूर्य संक्रमण करे तो दुर्भिक्ष, राजाओं में संग्राम, पति-पत्नी में भी कलह-वृद्धि होती है। अब कृत्तिकादि नक्षत्रों में रोग होने पर जिसका जितने दिनों तक जो कष्ट होता है, वह बताया जा रहा है—कृत्तिका नक्षत्र में रोग होने से तीन रात, मृगशिर नक्षत्र में रोग होने पर पाँच रात्रि, आर्दा नक्षत्र में रोग होने से मृत्यु, पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र में रोग होने से सात रात्रि कष्ट होता है। अश्लेषा नक्षत्र में नौ रात, मघा नक्षत्र में मृत्यु तक, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में दो मास और उत्तराफाल्गुनी में रोग होने से पन्द्रह दिनों तक कष्ट रहता है। हस्त तथा चित्रा नक्षत्रों में पन्द्रह दिन, स्वाती नक्षत्र में दो मास, विशाखा नक्षत्र में बीस दिन, अनुराधा नक्षत्र में दस दिन और ज्येष्ठा नक्षत्र में रोग होने से पन्द्रह दिनों तक कष्ट होता है ।।७०-७४।। मूल नक्षत्र में रोग होने से दुःख से छुटकारा मिलता है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पन्द्रह दिन, उत्तराषाढ़ में बीस दिन, श्रवण नक्षत्र में दो मास, धनिष्ठा में आधे मास और शतभिषा नक्षत्र में रोग होने से दस दिनों तक कष्ट होता है। पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में रोग होने से मुक्ति नहीं मिलती है। रेवती नक्षत्र में दस रात, अश्विनी नक्षत्र में एक रात और एक दिन का कष्ट होता है। भरणी नक्षत्र में रोग होने से प्राणनाश होता है। इन अशुभों का शमन करना हो तो गायत्री मन्त्र पढ़कर पञ्चधान्य, तिल, घी आदि के हवन करना चाहिए और ब्राह्मण को गो-दान करना चाहिए। सूर्य की दशा आठ वर्ष, चन्द्रमा की दशा पन्द्रह वर्ष, मङ्गल की दशा आठ वर्ष, बुध की दशा सत्रह वर्ष, केतु की दशा दस वर्ष, बृहस्पति की दशा उन्नीस वर्ष, राहु की दशा बारह वर्ष तथा शुक्र की दशा इक्कीस वर्ष तक रहती है। यह अष्टोत्तरी दशा है ।।७५-७९।।

श्री अग्निमहापुराण में ज्योतिःशास्त्र-कथन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२१।।

---

१ अस्य श्लोकस्यार्धभागो नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ क. ख. ङ. च. °वे सपदा समः च.। ३ च° द्विरात्रं। ४ घ. छ. °त्रा अर्ध°। ५ घ. छ. °तिर्विशा°। ६ च. श्रवणस्य। ७ घ. ङ. छ. न च भा°। ८ क. ङ. च. °न निजैः सम°। ९ ख. ग. °जेशयः। द°। १० घ. छ. °स्य षष्ठाब्दा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालगणनम्

अग्निरुवाच

कालः समागणो वक्ष्ये गणितं [१]कालबुद्धये । कालः समागणोऽर्कघ्नो [२]मासैश्चैत्रादिभिर्युतः ।।१।।
द्विघ्नो द्विष्ठः सवेदः स्यात्पञ्चाङ्गाष्टयुतो[३] गणः । त्रिष्ठो[४] मध्यो वसुगणः पुनर्वेदगणश्च सः ।।२।।
अष्टरन्ध्राग्निहीनः स्यादधः सैकरसाष्टकैः । मध्यो हीनः षष्टिहतो[५] लब्धयुक्तस्तथोपरि ।।३।।
न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाडयः[६] । सगुणो [७]द्विगुणश्चोर्ध्वं[८] त्रिभिरूनो गुणः पुनः ।।४।।
अधः खरामसंयुक्तो[९] रसार्काष्टकलैर्युतः । [१०]अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या[११] अधः स्थितः[१२] ।।५।।

अध्याय १२२

काल-गणना

अग्निदेव बोले–अब मैं काल-गणना के सम्बन्ध में बतलाऊँगा और इस काल-ज्ञान के लिए गणित का भी वर्णन करूँगा। वर्ष, शक समुदाय की संख्या को बारह से गुणा करना चाहिए और इस प्रकार से आयी हुई संख्या में चैत्रादि मासों को जोड़ देना चाहिए। उसे दो से गुणा करके दो स्थानों में रखना चाहिए। पहले स्थान में चार और दूसरे स्थान में आठ सौ पैंसठ (८६५) मिलाये। इस प्रकार से प्राप्त संख्या को सगुण कहा जाता है। इन संख्याओं को तीन स्थानों में रखकर बीच की संख्या को आठ से गुणा करके उसे पुनः चार से गुणा करना चाहिए। इस प्रकार मध्य संख्या का संस्कार करके क्रम से रखी हुई तीन संख्याओं को यथास्थान समन्वित कर देना चाहिए। इस प्रकार उनमें प्रथम, बीच के और तृतीय स्थानों का नाम क्रमशः ऊर्ध्व, मध्य और अधः रखा जाता है। अधः स्थान में रहनेवाली संख्या में तीन सौ अठासी (३८८) और मध्यस्थानीय संख्या से सत्तासी (८७) घटाना चाहिए। तदनन्तर उसे साठ (६०) से विभाजित करना चाहिए। इस प्रकार तीन स्थानों में रखे हुए अंकों में से प्रथम स्थान में रखे हुए अंक को सात (७) से विभक्त करने पर शेष की संख्या के अनुसार रविवार इत्यादि दिन निकलते हैं। शेष दो स्थानों का अंक तिथि का ध्रुव होता है। सगुण को दो (२) से गुणा करके उसमें तीन (३) घटाकर और उसके नीचे सगुण को लिखकर उसमें तीस (३०) पुनः जोड़ देना चाहिए। तदनन्तर छह, बारह और आठ पलों को भी तीनों स्थानों में सम्मिलित कर देना चाहिए। उस संख्या को साठ से विभाजित करके प्रथम स्थान में अट्ठाईस (२८) से भाग देकर शेष के नीचे उपर्युक्त तिथि ध्रुवा को लिखने से ध्रुवा बन जाता है।

---

१ क. ङ. कालयुद्धये। ख. ग. कालवृद्धये। च. कालसिद्धये। २ ख. ङ. मासश्चै°। ३ क. ङ. च. °ङ्गाप्तयु°। ४ क. ङ. त्रिष्वे म°। ५ क. च. °ष्टिकृतो। ६ क. ङ. °थिवाहनः। स°। ७ च. °गुणैः सार्थं त्रिभिर्गुणकगणः। ८ क. ङ. °णश्चार्थं त्रि°। ९ क. °क्तो वसर्कोऽष्ट°। १० क. ङ. °र्विंशःशेष°। ११ क. ङ. °नाथादधः। १२ क. ख. ग. ङ. °तः। गण°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुणस्तिसृभिरूनोऽर्धं[१] द्वाभ्यां च[२] गुणयेत्पुनः। मध्ये रुद्रगुणः[३] कार्यो ह्यधः सैको नवाग्निभिः[४] ।।६।।
लब्धहीनो भवेन्मध्यो[५] द्वाविंशतिविवर्जितः। षष्टिशेष[६]ऋणं ज्ञेयं लब्धमूर्ध्वं[७](र्ध्वं (?) विनिक्षिपेत् ।।७।।
सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः। मासि मासि क्षिपेद्वारं द्वात्रिंशद्घटिकास्तिथौ ।।८।।
द्वे पिण्डे द्वे नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यृणे। वारस्थाने तिथिं दद्यात्सप्तभिर्भागमाहरेत् ।।९।।
शेषवाराश्च सूर्याद्या घटिकासु च पातयेत्। पिण्डकेषु तिथिं "दद्याद्धरेच्चैव[९] चतुर्दश[१०] ।।१०।।
[११]ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज्ज्ञेयं चतुर्दश[१२]। प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश ।।११।।
पञ्चदश तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतम्। चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः ।।१२।।
पञ्चमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः[१३]। षष्ठाष्टमे[१४] त्वखण्डाः स्युश्चतुर्शिर्वितरेव च ।।१३।।
सप्तमे पञ्च विंशः स्यात्खण्डशः[१५] पिण्डकाद्भवेत्। कर्कटादौ हरेद्राशिमृतुवेदत्रयैः क्रमात् ।।१४।।
तुलादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात्। मकरादौ दीयते(न्ते)(?)च रसवेदत्रयः क्रमात् ।।१५।।
मेषादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात्। खेषवः[१६] खयुगा मैत्रं मेषादौ विकला धनम् ।।१६।।
कर्कटे प्रातिलोम्यं स्यादृणमेतत्तुलादिके। चतुर्गुणा तिथिर्ज्ञेया विकलाश्चेह सर्वदा ।।१७।।

पहलीवाली सगुण संख्या के आधे से तीन घटाकर बची हुई संख्या को दो में गुणा करना चाहिए। बीच की संख्या को ग्यारह (११) से गुणा करके नीचे की संख्या में जोड़ देना चाहिए। दूसरे स्थान की संख्या को उनतालीस (३९) से भाग देकर भजनफल को प्रथम स्थान में घटाने से 'मध्य' बन जाता है। मध्य में बाईस (२२) घटाकर और बची हुई संख्या को ६० से भाग देने पर जो शेष बचता है वह नक्षत्र तथा योग का ध्रुवा हो जाता है ।।१-७।। अब तिथि तथा नक्षत्र की मासिक ध्रुवा के सम्बन्ध में बताया जा रहा है। तिथि ध्रुवा और नक्षत्र ध्रुवा को प्रत्येक मास में जोड़कर वार स्थान में सात से भाग देने पर जो शेष बचता है वही तिथि का दण्ड-पल समझा जाता है। नक्षत्र-ज्ञान के लिए सत्ताईस से भाग देकर अश्विनी से शेष संख्या के नक्षत्र का दण्ड आदि जाना जाता है। चतुर्दशी आदि तिथियों में कही हुई घड़ियों को क्रमशः जोड़ना, घटाना तथा घटाना, जोड़ना चाहिए। यथा चतुर्दशी में शून्य घड़ी तथा त्रयोदशी और प्रतिपदा में पाँच घड़ियों को क्रमशः जोड़ना तथा घटाना चाहिए, इसी प्रकार द्वादशी और द्वितीया में दस घड़ियों में जोड़ना-घटाना चाहिए। तृतीया तथा एकादशी में पन्द्रह घड़ियाँ, चतुर्थी तथा दशमी में उन्नीस घटी, पञ्चमी और नवमी में बाईस घड़ियों तथा सप्तमी में पचीस घड़ियों में जोड़ना-घटाना चाहिए। यह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथियों में किया जाता है। कर्क आदि तीन राशियों में छह, चार, तीन तथा तुला इत्यादि तीन राशियों में इसके विपरीत तीन, चार, छह संस्कार करने पर अखण्ड कहलाता है। पचास, चालीस और बारह को मेष आदि तीन राशियों में जोड़ना चाहिए। इसके विपरीत कर्क इत्यादि राशियों में बारह, चालीस और पचास का योग करना चाहिए। किन्तु तुला इत्यादि छह राशियों में इन संख्याओं को घटा देना चाहिए। चौगुनी तिथि में विकलात्मक संस्कार हुआ करता है ।।८-१७।।

---

१ क. ङ. गुणः श्रेष्ठस्त्रिरूर्ध्वेऽथ द्वा°। २ क. ख. ग. ङ. च. गण°। ३ क. ख. ग. ङ. रुद्रगणः। ४ ख. ग. नराग्नि°। ५ क. ङ. °न्मध्ये द्वा°। ६ क. ङ. °शेषो त्वृणं। ७ क. ङ. लब्धः पूर्व विं°। ८ ख. °द्याद्वारे दैव। ९ क. ङ. °द्वारश्चैव। १० ख. °श। धनमृणं ध°। ११ अस्यश्लोकस्यार्धभागः क. ग. ङ. पुस्तके नास्ति। १२ घ. छ. °र्दशे। प्र०। १३ क. ख. ग. ङ. च. द्वात्रिंश°। १४ अस्यार्धभागः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। १५ क. ङ. °स्यात्यषण्डकः पि°। १६ ख. मेखतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]हन्याल्लिप्ता गतागामिपिण्डसंख्याफलान्तरैः । षष्ट्याऽऽप्तं[2] प्रथमोच्चार्ये[3] हानौ देयं धने धनम् ।।१८।।
द्वितीयोच्चरिते वर्गे[4] वैपरीत्यमिति स्थितिः । तिथिर्द्विगुणिता कार्या षड्भागपरिवर्जिताः[5] ।।१९।।
रविकर्मविपरीता तिथिनाडी समायुता । ऋणे शुद्धे तु नाड्यः स्युर्ऋणं शुध्येत नो यदा ।।२०।।
सषष्टिकं प्रदेयं तत्षट्याधिक्ये च तत्त्यजेत् । नक्षत्रं तिथिमिश्रं स्याच्चतुर्भिर्गुणितः तिथिः ।।२१।।
तिथिस्त्रिभागं संयुक्ता ऋणेन च तथान्विता । [6]तिथिरत्र[6] चिता कार्या[7] तद्वेदाद्योगशोधनम्[8] ।।२२।।
रविचन्द्रौ समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः । एकोना तिथिर्द्विगुणा सप्तभिन्नाकृतिर्द्विधा[9] ।।२३।।
तिथिश्च द्विगुणैकोना कृताङ्गैः करणं निशि । कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदम् ।।
प्रथमे तिथ्यर्धतो हि किंस्तुघ्नं प्रतिपन्मुखे ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कालगणनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२२।।

पहले गत तथा ऐष्य खण्डाओं के अन्तर से कला को गुणा करके तदनन्तर उसे साठ (६०) से भाग देना चाहिए। और भजनफल को प्रथमोच्चार में ऋण फल रहने पर धन और धनफल रहने पर भी धन ही करना चाहिए किन्तु द्वितीयोच्चारित में इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिए। पहले तिथि को दुगुना करके योगफल से घटा देना चाहिए ।।१८-१९।। सूर्यसंस्कार के विपरीत तिथिदण्ड को मिलाना चाहिए। ऋणफल को घटाने पर स्पष्ट रूप से तिथि का दण्ड इत्यादि मान होता है। यदि ऋणफल न घटे तो उसमें साठ (६०) का योग कर देना चाहिए। यदि फल ही साठ से अधिक हो तो उसमें साठ घटाकर शेष का संस्कार करना चाहिए। इससे तिथि के साथ-साथ नक्षत्र का भी मान निकल आयेगा। उसके बाद चौगुनी तिथि में तिथि का त्रिभाग मिलाकर उसमें ऋणफल निकाल देना चाहिए ।।२०-२१$\frac{1}{2}$।। तिथि का मान तो स्पष्ट ही है। सूर्य और चन्द्रमा को योग करके भी योग का मान निकल आता है। तिथि की संख्या से एक घटाकर उससे दूना करके फिर गुणनफल से एक घटाने पर चर इत्यादि करण बन जाते हैं। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध से शकुनि, चतुष्पद, किंस्तुघ्न और नाग नामक स्थिर करण बनते हैं। इस प्रकार शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में किंस्तुघ्न करण होता है ।।२२-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में कालगणना नामक एक सौ बाईसवाँ
अध्याय समाप्त ।।१२२।।

---

१ घ. च. छ. °प्ता मता। २ ख. ग. °ष्ट्यात्सप्रथमोच्चार्य हा°। ३ क. °थमे द्वार्ये (हार्ये) हा०। ४ क. वहेर्पैप°। ५ च. °ता। पारिक°। ६ क. ङ. °थिवद्रजिता। ख. °थिवद्रुटिता। ६ ग. °रत्रोचि°। ७ क. ङ. °र्या भवेदा। ८ ख. तच्छेदा°। ९ क. ङ. च. °प्तच्छिन्ना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये जयशुभाद्यर्थं सारं युद्धजयार्णवे । अ इ उ ए [1]ओ स्वराः स्युः क्रमान्नन्दादिका तिथिः ।।१।।
कादिहान्ता[2] भौमरवी ज्ञसोमौ गुरुभार्गवौ[3] । शनिर्दक्षिणनाड्यां तु [4]भौमार्कशनयः [5]परे ।।२।।
रवार्णवः खरसैर्गुण्यो रुद्रैर्भागं समाहरेत्[6] । रसाहतं[7] तु तत्कृत्वा पूर्वभागेन (ण) भाजयेत् ।।३।।
वह्निभिश्चाऽऽहतं कृत्वा रूपं तत्रैव निक्षिपेत् । स्पन्दनं नाड्याः पलानि सप्रमाणस्पन्दनं पुनः ।।४।।
अनेनैव तु मानेन उदयन्ति दिने दिने । स्फुरणैस्त्रिभिरुच्छ्वास उच्छ्वासैस्तु पलं स्मृतम् ।।५।।
षष्टिभिश्च पलैर्लिप्ता लिप्ताषष्टिस्त्वहर्निशम् । पञ्चमार्धोदये बालकुमारयुववृद्धकाः ।।६।।
[8]मृत्युर्येनोदयस्तेन[9] चास्तमेकादशांशकैः । कुलागमे भवेद्भङ्गः समृत्युः पञ्चमोऽपि वा ।।७।।

अध्याय १२३

यृद्धजयार्णव आदि अनेक योगाभिधान-वर्णन

अग्निदेव बोले–अब मैं स्वरोदय चक्र का वर्णन करूँगा, जिसकी सहायता से युद्ध में विजय और शुभ आदि का ज्ञान किया जा सकता है। अलग-अलग कोष्ठकों में अ, इ, उ, ए, ओ-स्वरों को लिखकर नीचे क्रमशः नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी) आदि तिथियाँ लिखनी चाहिए ।।१।। फिर क से ह तक व्यञ्जनवर्णों को लिखकर उनके नीचे मङ्गल, रवि, बुध, सोम, गुरु, शुक्र तथा शनि लिखना चाहिए । किन्तु शनि, मङ्गल तथा सूर्य को चक्र के दाहिनी ओर रखना चाहिए। चालीस को साठ से गुणा करके ग्यारह से भाग दे, लब्धि छह से गुणा करके पुनः ग्यारह से भाग दे, लब्धि को तीन से गुणा करके एक जोड़ दे तो उतने ही बार नाड़ी का स्फुरण पल होता है। इसी प्रकार नाड़ी का स्फुरण होता रहता है। तीन स्फुरणों से उच्छ्वास होता है, छह उच्छ्वासों के पल कहे जाते हैं। साठ पलों से लिप्त दण्ड और साठ दण्डों से रात-दिन होते हैं। अ, इ आदि पाँचों स्वरों की क्रम से बाल, कुमार, युवा, वृद्ध एवं मृत्यु संज्ञाएँ होती हैं। एक स्वर के उदय के बाद दूसरे स्वर का उदय पाँचवें स्वर पर होता है, जो स्वर उदय काल में रहता है, वही स्वर अस्त काल में भी रहता है। उदय और अस्त काल एकादशांश के तुल्य होता है, जब मृत्यु स्वर का उदय हो तो उस समय युद्ध-यात्रा करने से मृत्यु होती है। तीन स्फुरण का एक उच्छ्वास होता है, छह उच्छ्वास का एक पल होता है, साठ पल का दण्ड (घटी) होता है। साठ (६०) दण्ड का एक अहोरात्र होता है। अर्धयाम बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्युसंज्ञक होते हैं। जिनका उदय होता है उसी का अस्त होता है। स्वरों का मान एकादशांश के तुल्य होता है, कुल आगम में यात्रा करने से पराजित होना पड़ता है और मृत्यु स्वर के उदय में युद्ध करने पर मृत्यु के साथ पराजय होती

---

१ क. ङ. ए तु स्व°। ख. ग. ए ओ मो °स्ब°। च. ए उ उ स्व°। २ क. ङ. दि तास्ता भौ°। ३ ख °भास्करौ। श°। ४ क. ङ. °र्कमनयोः प°। ५ क. च. °रे। खतुरः षरसौम्येन रु°। ६ क. ङ. °त्। जप ॐ र°। ख. ग. त्। जयद ओन र°। ७ क. सायनं° तु। ८ च. °दयास्ते°। ९ क. ङ. °स्तेषां वास्तुमे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरोदयचक्रम्

शनिचक्रे चार्धमासं ग्रहाणामुदयः क्रमात्। त्रिभागैः पञ्चदशभिः शनिभागस्तु मृत्युदः ।।८।।

शनिचक्रम्

दशकोटिसहस्राणि [1]अर्बुदं न्यर्बुदं हरेत[2]। त्रयोदश[3] च लक्षाणि प्रमाणं कूर्मरूपिणः ।।
मघादौ कृत्तिकाद्यन्तस्तद्देशान्तः शनिस्थितौ ।।९।।

कूर्मचक्रम्

राचहुचक्रे च सप्तोर्ध्वमधः सप्त च संलिखेत्। वाय्वग्न्योश्चैव नैर्ऋत्ये पूर्णिमाऽऽग्नेय भागतः ।।१०।।
अमावस्यां वायवे च राहुर्वैतिथिरूपकः। रकारं[4] दक्षभागे तु हकारं वायवे लिखेत् ।।११।।
प्रतिपदादौ ककारादीन्सकारं नैर्ऋते पुनः। राहोर्मुखे तु भङ्गः स्यादिति[5] राहुरुदाहृतः ।।१२।।
विष्टिरग्नौ पौर्णमास्यां करालीन्द्रे[6] तृतीयकम्[7]। घोरा याम्यां तु सप्तम्यां दशम्यां रौद्रसौम्यगा ।।१३।।
चतुर्दश्यां तु वायव्ये चतुर्थ्यां वरुणाश्रये[8]। शुक्लाष्टम्यां दक्षिणे च एकादश्यां भृशं त्यजेत् ।।१४।।
रौद्रश्चैव तथा श्वेतो मैत्रः सारभटस्तथा। सावित्रो[9] विरोचनश्च जयदेवोऽभिजित्तथा ।।१५।।
रावणो[10] विजयश्चैव नन्दी वरुण एव च। यमसौम्यौ भवश्चान्ते दश पञ्च मुहूर्तकाः ।।१६।।
रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत श्वेते स्नानादिकं चरेत्। मैत्रे कन्याविवाहादि शुभं सारभटे चरेत् ।।१७।।

है ।।२-७।। शनिचक्र में ग्रहों का उदय क्रमशः पन्द्रह भागों में विभक्त होकर आधे मास होता है। इनमें शनि का भाग मृत्युदायक कहा जाता है ।।८।। कूर्मरूप का प्रमाण है दस करोड़, हजार, अरब, खरब और तेरह लाख। मघा नक्षत्र के आदि चरण से कृत्तिका नक्षत्र तक, उस देश में शनि की स्थिति होती है। मघा से कृत्तिका तक शनिक्षेत्र है ।।९।। राहुचक्र के लिए सात खड़ी रेखा एवं सात पड़ी रेखा बनानी चाहिए। उसमें वायुकोण से नैर्ऋत्य को लिये हुए अग्निकोण तक शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों को लिखना चाहिए एवं अग्निकोण से ईशान को लिये हुए वायुकोण तक कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियों को लिखना चाहिए। इस तरह तिथिरूप राहु का न्यास होता है। रकार को दक्षिण दिशा में लिखे और 'ह' कार को वायुकोण में लिखे। प्रतिपदादि तिथियों के सहारे 'क' कारादि अक्षरों को भी लिखे। नैर्ऋत्यकोण में 'सकार' लिखे। इस तरह राहुचक्र तैयार हो जाता है। राहु-मुख में यात्रा करने से यात्रा-भङ्ग होता है ।।१०-१२।। अग्निकोण में 'विष्टि' नाम की तथा पौर्णमासी की पूर्व दिशा में 'कराली' नाम की तृतीया, दक्षिण दिशा में 'घोरा' नाम की सप्तमी तथा दशमी, ईशानकोण में दशमी को, वायव्यकोण में चतुर्दशी को, पश्चिम दिशा में चतुर्थी को और दक्षिण दिशा में शुक्लपक्ष की अष्टमी तथा एकादशी को (भद्रा) रहती है। इसका प्रत्येक शुभ कार्यों में सर्वथा त्याग करना चाहिए ।।१३-१४।। रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, जयदेव, अभिजित्, रावण, विजय, नन्दी, वरुण, यम, सौम्य, भव ये पन्द्रह मुहूर्त लिखना चाहिए। मैत्र में कन्या-विवाह आदि कार्य और सारभट में (साधारण) शुभ कार्य करना चाहिए ।।१५-१७।। सावित्र में स्थापनादि कार्य और विरोचन

---

१ ख. ग. घ. छ. °र्बुदान्य°। २ च. क्रमात्। ३ ख. ग. छ. °दशे च। ४ क. पकारं। ख. ग. दकारं। च. एकारं। ५ क. स्यात्तिथीनां तु उदा°। ६ ख. ग. छ. °राणीन्द्रे। ७ क. ङ. च. °यकाः। घो°। ८ च. श्रवणात्रये। ९ च. सरितो। १० ङ. च. वारुणो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सावित्रे स्थापनाद्यं वा विरोचने नृपक्रिया। जयदेवे जयं कुर्याद्रावणे[1] रणकर्म च ।।१८।।
विजये कृषिवाणिज्यं पटबन्धं च नन्दिनि। वरुणे च तडागादि नाशकर्म यमे चरेत् ।।१९।।
सौम्ये सौम्यादि कुर्वीत भवेल्लग्नमहर्दिवा। योगा नाम्नाऽविरुद्धाः स्युर्योगा नाम्नैव शोभनाः ।।२०।।
राहुरिन्द्रात्समीरं च वायोर्दक्षं यमाच्छिवम्। शिवादाप्यं जलादग्निरग्नेः सौम्यं ततस्त्रयम् ।।२१।।
ततश्च संक्रमं हन्ति चतस्रो घटिका भ्रमन् ।।२२।।

राहुचक्रम्

चण्डीन्द्राणी [2]वाराही च मुशली गिरिकर्णिका। बला चातिबला [3]क्षीरी मल्लिकाजातियूथिकाः ।।२३।।
यथालाभं धारयेत्ताः श्वेतार्कश्च शतावरी। गुडूची वागुरी दिव्या ओषध्यो धारिता [4]जये ।।२४।।
ॐ नमो भैरवाय [5]खड्गपरशुहस्ताय ॐ[6] हूरूं विघ्नविनाशाय ॐ हूरूं[7] फट् ।।२५।।
अनेनैव तु मन्त्रेण शिखाबन्धादिकृज्जये[8]। [9]तिलकं चाञ्जनं चैव धूपलेपनमेव च ।।२६।।
स्नानपानानि तैलानि योगधूलिमतः शृणु। सुभगा मनःशिला तालं लाक्षारससमन्वितम् ।।२७।।
तरुणीक्षीर संयुक्तो ललाटे तिलको वशे। विष्णुक्रान्ता च सर्पाक्षी सहदेवी[10] च रोचना ।।२८।।
अजादुग्धेन[11] संपिष्टं तिलको वश्यकारकः। प्रियंगुकुङ्कुमं कुष्ठं मोहनी तगरं घृतम् ।।२९।।

में राजकार्य करना चाहिए। जयदेव में विजय सम्बन्धी कार्य और रावण में युद्धकार्य करना चाहिए ।।१८।। विजय में खेती-व्यापार, नन्दी में वस्त्र-गृह-निर्माण, वरुण में तालाब आदि खोदने का कार्य, यम में नाशकार्य और सौम्य में सौम्यकार्य करना चाहिए। क्योंकि इन मुहूर्तों में लग्न रात-दिन रहता है। योग नाम से अविरुद्ध होते हैं और नाम से ही वे सुन्दर होते हैं ।।१९-२०।। राहु इन्द्रदिशा से वायुदिशा में, वायुदिशा से यमदिशा में, यमदिशा से शिवदिशा में, शिवदिशा से जलदिशा में, जलदिशा से अग्निदिशा में, अग्निदिशा से सौम्यदिशा में तीन-तीन दिशा करके चार घटिकाओं का भ्रमण करके सङ्क्रम का नाश करता है ।।२१-२२।। चण्डी, इन्द्राणी, वाराही (बिलाई कन्द), मुशली, गिरिकर्णिका (विष्णुक्रान्ता), बला (बलिआरा), अतिबला, क्षीरी, मल्लिका, यूथिका, जाती, श्वेत अर्क, शतावरी, गुडूची, वागुरी- इन दिव्य ओषधियों को धारण करके संग्राम में जाने से विजय प्राप्त होती है ।।२३-२४।। "ॐ नमो भैरवाय खड्गपरशुहस्ताय", "ॐ हूं विघ्नविनाशाय ॐ हूं फट्" इस मन्त्र से शिखा बाँधकर संग्राम करे तो विजय प्राप्त होती है। अब तिलक, अञ्जन, धूपलेपन, स्नान-पान, तेल और योगधूलि का विवरण सुनो ।।२५-२६ $\frac{1}{2}$।। सुभगा (नीलदूर्वा), मनःशिला, कैवर्ती, मोथा तथा हरिताल को लाक्षारस और युवती स्त्री के दूध के साथ पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से वशीकरण होता है। विष्णुक्रान्ता, सर्पाक्षी (महिषकन्द), सहदेवी तथा गोरोचन को बकरी के दूध के साथ पीसकर तैयार किया हुआ तिलक वशीकरण करनेवाला होता है ।।२७-२८ $\frac{1}{2}$।। प्रियंगु, कुङ्कुम, कुष्ठ (कूट), मोहनी, तगर तथा घी से तैयार किये हुए

---

१ च. °र्याद्वारणे। २ च. वाराही। ३ च. क्षीरा। ४ ख. च. जपेत्। ५ घ. छ. खण्डप°। ६ क. ङ. च. हूं। ७ क. ङ. च. हूं। ८ क. ङ. च. ज्जपेत्। ति°। ९ क° कं वा जलं चै°। १० क. °गवृत्तिम°। ११ क. ङ. च. महादेवी। घ. छ. सहदेव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिलको वश्यकृच्चैव रोचना रक्तचन्दनम् । निशा मनःशिला तालं प्रियंगुः सर्षपास्तथा ।।३०।।
मोहनी हरिता कान्ता सहदेवी शिखा तथा । मातुलुङ्गरसैः [1]पिष्टं ललाटे तिलको वशे ।।३१।।
सेन्द्राः सुरा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः । मञ्जिष्ठा चन्दनं रक्तं कटुकन्दा विलासिनी ।।३२।।
पुनर्नवासमायुक्तो लेपोऽयं [2]भास्करो वशे । चन्दनं नागपुष्पं च मञ्जिष्ठा तगरं वचा ।।३३।।
लोध्रं प्रियंगुरजनी मांसीतैलं वशंकरम् ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२३।।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारः

अग्निरुवाच

ज्योतिःशास्त्रादिसारं च वक्ष्ये युद्धजयार्णवे[3] । वेलामन्त्रौषधाद्यं च यथोमामीश्रोऽब्रवीत्[4] ।।१।।

देव्युवाच

देवैर्जिता दानवाश्च येनोपायेन तद्वद । शुभाशुभविवेकाद्यं [5]ज्ञानं[6] युद्धजयार्णवम् ।।२।।

तिलक में वशीकरण की शक्ति रहती है। गोरोचन, रक्तचन्दन, निशा (हरिद्रा), मनःशिला, हरिताल, प्रियंगु, सरसों, मोहनी, हरिता, कान्ता, सहदेवी और शिखा को विजौरा नींबू के रस में पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से इन्द्र आदि देवता भी वशीभूत हो जाते हैं, छुद्र मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? ।।२९-३१$\frac{1}{2}$।। मजीठ, रक्तचन्दन, कटुकन्दा, विलासिनी और पुनर्नवा को पीसकर लेप करने से सूर्य भी वश में होते हैं। चन्दन, नागपुष्प, मजीठ, तगर, बच, लोध, प्रियंगु, रजनी तथा जटामासी का तेल, वशीकरण के लिए उपयुक्त होता है ।।३२-३४।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णवीय नामक अनेक योगों का अभिधान-वर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२३।।

अध्याय १२४

युद्धजयार्णवीय ज्योतिःशास्त्र

अग्निदेव बोले–अब मैं तुमसे युद्धजयोत्सव सम्बन्धी ज्योतिःशास्त्र का तत्त्व, समय, मन्त्र तथा ओषधि का विवरण बताऊँगा, जैसा कि शिव ने पार्वती से बताया था ।।१।।

देवी बोलीं–जिस उपाय से देवताओं ने दानवों पर विजय प्राप्त की थी वह उपाय तथा शुभाशुभ का विवेक उत्पन्न करनेवाली युद्धजयार्णवीय विद्या मुझे बताइये ।।२।।

---

१ क. ङ. च. अजलिङ्गरसैः पि°। २ ख. ग. च. पिण्ड°। ३ घ. छ. °वे। बिना म°। ४ क. ङ. च. °त्। उमोवा°। ५ क. ङ. च. ज्ञानयुद्धं ज°। ६ ख. ग. °नं सुदुर्जयं तु वै। ई°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ईश्वर उवाच

मूलदेवेच्छया जाता शक्तिः पञ्चदशाक्षरा। चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित् ।।३।।
मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसमुद्भवम्। ते मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिताः ।।४।।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यवेदमन्त्राः क्रमेण ते। सद्योजातादयो मन्त्रा [1]ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः ।।५।।
ईशः सप्तशिखा देवाः[2]शब्दाद्याः पञ्च च स्वराः। अ इ उ ए ओं [3]कलाश्च मूलं ब्रह्मेतिकीर्तितम् ।।६।।
काष्ठमध्ये यथा वह्निरप्रवृद्धो[4] न दृश्यते। विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न[5] दृश्यते ।।७।।
आदौ शक्तिः समुत्पन्ना ओंकारस्वरभूषिता। ततो विन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ।।८।।
जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः। अर्धचन्द्र इकारस्तु मोक्षमार्गस्य बोधकः ।।९।।
अकारोऽव्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः। अकार ऐश्वरे भूमिर्निवृत्तिश्च कला स्मृता ।।१०।।
गन्धो[6] न बीजः प्राणाख्य इडा शक्तिः स्थिरा स्मृता। इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसोयानश्च[7] पिङ्गला[8] ।।११।।
क्रूरा[9]शक्तिरीबीजः [10]स्याद्धरबीजोऽग्निरूपवान्। विद्यासमाना गान्धारी शक्तिश्च[11] दहनी स्मृता ।।१२।।
ए शान्तिर्वार्युपस्पर्शो यश्चोदानश्चला क्रिया। ओंकारः शान्त्यतीताख्यः[12] खशब्दयूथपालिनः[13] ।।१३।।

ईश्वर बोले–आदि देव (ब्रह्मा) की इच्छा से पन्द्रह अक्षरोंवाली एक शक्ति उत्पन्न हुई, जिससे चराचर जगत् की सृष्टि हुई और जिसकी आराधना कर मैं सर्वज्ञ हुआ हूँ। मैं तुमको मन्त्रपीठ का विवरण दे रहा हूँ, जिसकी उत्पत्ति पाँच मन्त्रों से हुई है और वे मन्त्र क्रमशः ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्व नाम के वेद मन्त्र हैं। सद्योजात आदि मन्त्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सप्तशिखा, देव शब्द आदि पञ्चतन्मात्राएँ अ, इ, उ, ए, ओं–स्वर और कलाएँ इन सबका मूल ब्रह्म है ।।३-६।। जैसे लकड़ी के भीतर स्थित सूक्ष्म अग्नि बिना जले दृष्टिगोचर नहीं होती है, वैसे ही देह में विद्यमान शिवशक्ति दिखायी नहीं पड़ती है ।।७।। अयि, महादेवि! पहले ॐकार शब्द से भूषित शक्ति उत्पन्न हुई फिर एकार से युक्त विन्दु की उत्पत्ति हुई ।।८।। तत्पश्चात् नाद से उकार उत्पन्न हुआ, जो हृदय में स्थित होकर शब्द करता है। तदनन्तर अर्धचन्द्राकार इकार की उत्पत्ति हुई, जो मोक्षमार्ग का बोधक है ।।९।। तदनन्तर भोग-मोक्ष-दायक अव्यक्त अकार उत्पन्न हुआ। वह अकार ब्रह्म का ऐश्वर्य और निवृत्ति कला है ।।१०।। गन्ध रूप में अकार की इडा शक्ति स्थिर शक्ति है। वह अकार प्राणस्वर बीजमन्त्र है। इकार की संज्ञा प्रतिष्ठा है। वह क्रूर शक्ति पिङ्गला तथा अपान वायु का आश्रय है, रस रूप में उसका बीजमन्त्र इकार है ।।११।। शिव का बीजमन्त्र अग्निस्वरूप है। इसकी शक्तियों के नाम विद्या, समाना, गान्धारी तथा दहनी हैं। एकार को शान्ति जल का आचमन और यकार को उदान वायु तथा चलन क्रिया समझना चाहिए। ओंकार ब्रह्म का स्वरूप शान्ति अतीत नामक है ।।१२-१३।। जिन स्वरवर्ण

---

१ क. ङ. ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। ई°। २ घ. छ. शक्राद्याः। ३ घ. छ. ओ। ४ क. ङ. हिंदुग्धमध्ये यथावृतम्। वि°। ५ क. ङ. शिवे भक्ति°। ६ ख. °न्धो वीचजः प्रा°। ७ क. ङ. रम्येपालश्च। घ. छ. शक्तोऽथ बी°। ८ ख. °ला। कुर्याच्छत्तिर्हि बी°। ९ क. ङ. शक्तोऽथ बी°। १० क. ङ. स्याधर°। ११ क. ङ. शक्तीश्वरमही स्मृ°। १२ क. ख. ङ. °ख्यः स्वंश°। ग. °ख्यः सश°। १३ घ. छ. °पाणिनः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]पञ्च वर्गाः [2]स्वरा [3]जातः कुजज्ञगुरुभार्गवाः । शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वधः स्थिताः ।।१४।।
एतन्मूलमतः सर्वं ज्ञायते सचराचरम् । विद्यापीठं प्रवक्ष्यामि प्रणवः [4]शिव ईरितः ।।१५।।
उमा सोमः स्वयं शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्र्यपि । ब्रह्मा विष्णुः क्रमाद्रुद्रो[5] गुणाः सर्गादयस्त्रयः ।।१६।।
रत्नानाडीत्रयं चैव स्थूला सूक्ष्मः परोऽपरः । चिन्तयेच्छ्वेतवर्ण[6] तं मुञ्चमानं परामृतम्[7] ।।१७।।
प्लाव्यमानं यथाऽऽत्मानं चिन्तयेत्तं दिवानिशम् । अजरत्वं भवेद्देवि[8] शिवत्वमुपगच्छति[9] ।।१८।।
अंगुष्ठादौ न्यसेदङ्गान्नेत्रमध्येऽथ[10] देहके । मृत्युञ्जयं ततः प्रार्च्य रणादौ विजयी भवेत् ।।१९।।
शून्यो निरालयः शब्दः [11]स्पर्शस्तिर्यङ्नतं[12] स्पृशेत् । रूपस्योर्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ।।२०।।
सर्वस्थानविनिर्मुक्तो[13] गन्धो मध्ये च मूलकम् । नाभिमूले स्थितं कन्दं[14] शिवरूपं तु मण्डितम् ।।२१।।
शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः । दशवायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितम् ।।२२।।
कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकम् । तज्जीवं जीवलोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ।।
तस्मिन्नष्टे मृतं मन्ये मन्त्रपीठेऽनिलात्मकम् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारवर्णनं नाम
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२४।।

के स्वामी पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं जो क्रमशः मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि के लाक्षणिक रूप हैं। ककार आदि वर्ण अधोवर्ती हैं। यह शब्द ब्रह्म सबका मूल है। इसी से सम्पूर्ण चराचर जगत् का ज्ञान होता है ।।१४-१४ $\frac{1}{2}$ ।। अब मैं विद्यापीठ का वर्णन करूँगा। शिव द्वारा प्रतिपादित प्रणव में उमा, सोम, शक्ति, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों गुण सत्त्व, रज और तम, तीनों प्रमुख नाड़ियाँ इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना और स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा अपर रूप विद्यमान है ।।१५-१६ $\frac{1}{2}$ ।। अयि देवि! प्रणव का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उसका वर्ण श्वेत है, उससे अमृत टपक रहा है और उस अमृत में मैं बह रहा हूँ। दिन-रात ऐसा ध्यान करने से मनुष्य अजर होकर शिवत्व को प्राप्त कर लेता है ।।१७-१८।। नेत्र के भीतर मृत्युञ्जय (शिव) का ध्यान करके अङ्गुष्ठ आदि में अङ्गन्यास करने से मनुष्य सङ्ग्राम आदि में विजयी होता है ।।१९।। पञ्चतन्मात्राओं में शब्द की गति शून्य और निरालय होती है। स्पर्श की गति तिरछी और झुकी हुई होती है। रूप की गति ऊर्ध्व, जल की गति निम्न और गन्ध की गति सब स्थानों से मुक्त होती है। नाभिमूल में स्थित कन्द शिवरूप है और वहाँ शक्तिव्यूह के साथ सूर्य, चन्द्र तथा हरि अवस्थित रहते हैं ।।२०-२१ $\frac{1}{2}$ ।। उनके मध्य में दस प्रकार की वायुओं से युक्त, पञ्चतन्मात्राओं से विभूषित और कालाग्नि के समान जाज्वल्यमान शिवरूप प्रणव की अवस्थिति रहती है। वह जीवलोक का जीव है तथा चराचर जगत् का आधार है। मन्त्रपीठ से उसके हट जाने पर वायुरूप जीव नष्ट हो जाता है ।।२२-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णवीय ज्योतिःशास्त्र वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२४।।

---

१ क. ङ. °ञ्चरक्षाः स्व°। २ क. ङ. °राज्जाताः। ३ ख. ग. ज्ञाताः। ४ क. ङ. सित। च. स्थिर। ५ क. ख. ङ. च. °णाः स्वर्गा°। ६ च. °येच्छुभव°। ७ ङ. °म्। पृच्छ्यमानं यदाऽऽत्मा°। च. °म्। प्रार्च्यमानं तथाऽऽ°। ८ च. °वेद्वाऽपि शि°। ९ च. °त्वमधिग°। १० ख. ग. घ. छ. °न्नेत्रं म°। ११ ख. घ. स्पर्श तिर्य°। १२ ख. ग. च. °र्यगतं। १३ क. ङ. °र्वकालवि°। च. र्वज्ञानं। १४ क. ङ. गन्धं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानाचक्राणि

[1]ईश्वर उवाच

ॐ [2]ह्रीं[3] कर्णमोटनि[4] बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ॐ हः, ॐ ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त च्छक च्छक हूं फट्, नमः ।।१।।
पठ्यमानो ह्ययं मन्त्रः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । मारणे पातने वाऽपि मोहनोच्चाटने भवेत् ।।
कर्णमोटी महाविद्या सर्ववर्णेषु रक्षिका ।।२।।

(इति) नानाविद्या (द्याः)

पञ्चोदयं प्रवक्ष्यामि स्वरोदय समाश्रितम् । नाभिहृदन्तरं[5] यावत्तावच्चरति मारुतः ।।३।।
उच्चाटयेद्रणादौ तु कर्णाक्षीणि प्रभेदयेत् । करोति साधकः क्रुद्धो जपहोमपरायणः ।।४।।
हृदयात्पायुकं कण्ठं ज्वरदाहारिमारणे । कण्ठोद्भवो रसो वायुः शान्तिकं पौष्टिकं रसम्[7] ।।५।।
दिव्यं स्तम्भं समाकर्षं गन्धो [8]नासान्तिको [9]भ्रुवः । गन्धलीनं मनः कृत्वा स्तम्भयेन्नात्र संशयः ।।६।।
स्तम्भनं कीलनाद्यं च करोत्येव हि साधकः । चण्डघण्टा कराली च सुमुखी दुर्मुखी तथा ।।७।।

अध्याय १२५

युद्धजयार्णवीय नाना चक्र

महेश्वर बोले–'ॐ ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ॐ हः, ॐ ग्रस ग्रस कृन्त च्छक च्छक हूं फट्, नमः'–आँखें लालकर क्रोधूर्वक इस मन्त्र का जप करने से मारण–मोहन–उच्चाटन तथा पातन (पदच्युति) क्रियाएँ सिद्ध होती हैं। यह सर्ववर्णरक्षिका, कर्णमोटी, महाविद्या का मन्त्र है ।।१–२।। नाना प्रकार की विद्याएँ समाप्त हुईं। अब मैं स्वरोदय सहित पञ्चोदय का वर्णन करूँगा। नाभि से हृदय तक जितना स्थान है, उतने स्थान में वायु का सञ्चरण होता है ।।३।। कुछ साधक को जप और होम करते हुए रण के आदि में उच्चाटन और कान तथा आँखों का भेदन करना चाहिए। जिस समय वायु का सञ्चार हृदय से कण्ठ की ओर हो रहा हो, उस समय शत्रु के ज्वर, दाह और मारण का प्रयत्न करना चाहिए। जिस समय साधक की वायु कण्ठ से उत्पन्न हो रही हो, उस समय शान्तिक और पौष्टिक कर्मों को करना चाहिए ।।४–५।। गन्ध का स्थान नासिका के अन्त में भ्रू तक हो तो साधक को स्तम्भन तथा आकर्षण करते समय मन को गन्ध में ही लगा देना चाहिए। इस प्रकार से किया गया स्तम्भन अवश्य ही अभीष्ट फल देनेवाला हुआ करता है, इसमें कोई संशय नहीं है। इसी प्रकार साधक को स्तम्भन और कीलन आदि का अनुष्ठान करना चाहिए। चण्डघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा, घोरा–इन देवियों की पूजा वायुचक्र में करनी

---

१ च. अग्निरुवाच। २ च. हूं। ३ ख. ग. °र्णघाटैनवेदरूपे दंष्ट्रे हूं फट्, अहः, असकृत्कृतच्छकत हूं फट्, नमः। ४ क. °मोटे लङ्के क्रूररूपे दंष्ट्रे हुं फट्, फट्, हां हां ग्र°। ५ क. ङ. °हृद्यन्त°। घ. छ. °हृदान्त°। ६ ख. ग. °त्पादुकं। ७ क. ङ. रसः। ख. वशम्। ८ ख. नाशान्ति°। ९ क. ङ. भवः। ख. च. घ्रुवः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रेवती प्रथमा घोरा वायुचक्रे[1] तु ता यजेत् । उच्चाटकारिका देव्यः स्थितास्तेजसि संस्थिताः ।।८।।
सौम्या च भीषणी देवी जया च विजया तथा । अजिता चापराजिता महाकोटी च रौद्रया ।।९।।
शुष्ककाया प्राणहरा रसचक्रे स्थिता अमूः । विरूपाक्षी परा दिव्यास्तथा चाऽऽकाशमातरः ।।१०।।
[2]संहारी जातहारी च [3]दंष्ट्राला [4]शुष्करेवती । [5]पिपीलिका [6]पुष्टिहरा महापुष्टिप्रवर्धना ।।११।।
भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका । [7]स्थिरा च निष्ठुरा दिव्या निष्कम्पा गदिनी तथा ।।१२।।
द्वात्रिंशन्मातरश्चक्रे अष्टाष्टक्रमशः स्थिताः । एक एव रविश्चन्द्र [8]एकश्चैकैकशक्तिका ।।१३।।
भूतभेदेन [9]तीर्थानि यथा तोयं महीतले । प्राण एको मण्डलैश्च भिद्यते [10]भूतपञ्जरे ।।१४।।
वामदक्षिणयोगेन दशधा सम्प्रवर्तते । [11]वि(बि)न्दुमुण्डविचित्रं च तत्त्ववस्त्रेण वेष्टितम् ।।१५।।
ब्रह्माण्डेन कपालेन [12]पिबेत् परमामृतम् । पञ्चवर्गबलाद्युद्धे जपो भवति तच्छृणु ।।१६।।
अआकचटतपयाः श आद्यो वर्ग ईरितः । इईखछठथफराः षो वर्गश्च द्वितीयकः ।।१७।।
उऊगझडदबलाः सो वर्गश्च तृतीयकः । एऐघझढधभवा हो वर्गश्च चतुर्थकः ।।१८।।
ओ औ अं अः, ङञणना मो वर्गः पञ्चमो भवेत् । वर्णाश्चाभ्युदये नृणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ।।१९।।
बालः कुमारो युवा स्याद् वृद्धो मृत्युश्च नामतः । आत्मपीडाशोषकः स्यादुदासीनश्च कालकः ।।२०।।
[13]कृत्तिका प्रतिपद्भौम[14] आत्मनो लाभदः स्मृतः । षष्ठी भौमो मघा पीडा आर्द्रा चैकादशी कुजः ।।२१।।

चाहिए। उच्चाटन करनेवाली देवियों का तेजश्चक्र निवास-स्थान है और उनके नाम हैं–विरूपाक्षी, परा, दिव्या, आकाशमाता, संहारी, जातहारी, दंष्ट्राला, शुष्करेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टिप्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, निष्कम्पा तथा गदिनी ।।६-१२।। ये बत्तीस देवियाँ आठ-आठ करके निवास करती हैं, उनमें से सूर्य-चन्द्र एक ही शक्ति है। उनकी शक्तियाँ भूतभेद से एक ही हैं। जैसे भूतल पर नदी के जलों के स्थान-भेद से तीर्थ संज्ञा होती है; उसी प्रकार प्राण एक ही होते हुए कई मण्डलों में विभक्त हो जाता है। वह वाम, दक्षिण के योग से दस प्रकार का होता है। ये देवियाँ पञ्चमहाभूतरूपी वस्त्र से वेष्टित विन्दु रूपी मुण्ड से टपकते हुए परमामृत को ब्रह्माण्डरूपी कपाल में रख करके पान करती हैं ।।१३-१५½।। पञ्चवर्ग के बल से युद्ध में जिस प्रकार विजय प्राप्त होती है, वह सुनो। अ, आ, क, च, ट, त, प, य और श–यह पहला वर्ग है। इ, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र और ष–यह दूसरा वर्ग है। उ, ऊ, ग, झ, ड, द, ब, ल और स–यह तीसरा वर्ग है। ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व और ह यह चौथा वर्ग है। ओ, औ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न और म–यह पाँचवाँ वर्ग है। ये पैंतालीस अक्षर मनुष्यों के लिए कल्याणकारक होते हैं। इनके अनुसार मनुष्य, बालक, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु ये पाँच नाम हैं। आत्मपीड़ा, शोषक तथा उदासीन ये तीन काल हैं ।।१६-२०।। कृत्तिका नक्षत्र, प्रतिपदा तिथि और

---

१ ख. घ. छ. °क्रेषु ता। २ क. ङ. °हारा जिनहा°। ३ क. ख. ग. ङ. दंष्ट्राणी। ४ क. ख. ग. ङ शुकरे°। ५ क. ङ. पिलि°। ६ क. °ष्टिहारा च. म°। ७ स्थिरा····गदिनी तथा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ८ क. ख. ङ. °श्चैके सशक्तिकाः। भू°। ९ क. ङ. भिन्नानि। १० क. ङ. °पञ्च च। वा°। ११ क. ङ. विष्णुमण्डविचित्रं च तत्त्वै व°। १२ क. ङ. °वेत्परमयाऽम्। १३ क. ङ. कार्तिकी। १४ क. ङ. °म अश्वारोहादयः स्मृताः। ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृत्युर्मघा द्वितीया ज्ञो[1] लाभश्चाऽऽर्द्रा च सप्तमी । [2]बुधोऽहनि भरणीज्ञः श्रवणं काल ईदृशः ।।२२।।
जीवो लाभाय च भवेत्तृतीया पूर्वफाल्गुनी । जीवोष्टमी धनिष्ठाऽऽर्द्रा जीवोऽश्लेषा त्रयोदशी ।।२३।।
मृत्यौ शुक्रश्चतुर्थी स्यात् पूर्वभाद्रपदा[3] श्रिये । पूर्वाषाढा च नवमी शुक्रः पीडाकरो भवेत् ।।२४।।
भरणी[4] भूतजा शुक्रो यमदण्डो हि [5]हानिकृत् । कृत्तिका पञ्चमी मन्दो लाभाय तिथिरीरिता ।।२५।।
आ (अ) श्लेषा दशमी मन्दो[6] योगः पीडाकरो भवेत् । मघा शनिः पूर्णिमा च योगो मृत्युकरः स्मृतः।।२६।।

इति तिथियोगः (गाः)

[7]पूर्वोत्तराग्निनैर्ऋत्यदक्षिणानिलचन्द्रगाः[8] । [9]ब्रह्माद्याः [10]स्युर्दृष्टयः स्युः प्रतिपन्नवमीमुखाः ।।२७।।
राशिभिः सहिता दृष्टा ग्रहाद्याः सिद्धये स्मृताः । मेषाद्याश्चतुरः कुम्भा[11] जयः[12] पूर्णेऽन्यथा मृतिः ।।२८।।
सूर्यादि रिक्ता पूर्णा च क्रमादेवं प्रदापयेत् । रणे सूर्ये [13]फलं नास्ति सोमे भङ्गः प्रशाम्यति ।।२९।।
कुजेन कलहं विद्याद्बुधः कामाय वै गुरुः । जयाय [14]मनसे शुक्रो मन्दे भङ्गो रणे भवेत् ।।३०।।
देयानि पिङ्गलाचक्रे सूर्यगानि (णि) च भानि हि । मुखे नेत्रे ललाटेऽथ शिरोहस्तोरुपादके ।।३१।।

मङ्गलवार का योग लाभकारक होता है। मघा नक्षत्र, षष्ठी तिथि और मङ्गलवार का योग पीड़ाकारक होता है। मङ्गलवार, एकादशी तिथि, आर्द्रा नक्षत्र मृत्युकारक होता है ।।२१।। मघा नक्षत्र, द्वितीया तिथि और बुधवार का योग, आर्द्रा नक्षत्र, सप्तमी तिथि, बुधवार का योग लाभकारक होता है। भरणी नक्षत्र बुधवार को हानिकारक होता है, श्रवण नक्षत्र बुधवार का योग कालसंज्ञक होता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र, तृतीया तिथि और बृहस्पतिवार का योग लाभकारक होता है। गुरुवार को धनिष्ठा और आर्द्रा नक्षत्र, अष्टमी तिथि, आश्लेषा नक्षत्र, त्रयोदशी तिथि और बृहस्पतिवार का योग मृत्युकारक होता है। पूर्वभाद्रपद नक्षत्र, चतुर्थी तिथि और शुक्रवार का योग श्रीवर्धक होता है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, नवमी तिथि और शुक्रवार का योग पीड़ाकारक होता है। भरणी नक्षत्र, चतुर्दशी तिथि और शुक्रवार का योग यम से दण्ड दिलानेवाला तथा हानिकारक होता है। कृत्तिका नक्षत्र, पञ्चमी तिथि तथा शनिवार का योग लाभकारक होता है। आश्लेषा नक्षत्र, दशमी तिथि और शनिवार का योग पीड़ाकारक होता है। मघा नक्षत्र, पूर्णिमा तिथि तथा शनिवार का योग मृत्युकारक होता है ।।२२-२६।। पूर्व दिशा, उत्तर दिशा, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, दक्षिण दिशा, वायव्य, पश्चिम दिशा और ईशानकोण की ओर हो और सभी ग्रह राशियों के साथ देखे जायँ, तो वे सिद्धि प्रदान करनेवाले कहे गये हैं। मेघ, वृष, मिथुन, कर्क तथा कुम्भ राशि यदि पूर्णातिथि (पञ्चमी, दशमी, अमावस्या) के साथ रहें, तो विजय प्रदान करानेवाली होती है, अन्यथा मृत्यु होती है ।।२७-२८।। इसी प्रकार रविवार को रिक्ता (नवमी, चतुर्थी, चतुर्दशी) तथा पूर्णातिथि पड़ जाने से विजय होती है। युद्ध में सूर्य कोई फल नहीं देता है, चन्द्रमा अशुभ फल का शमन करता है। मङ्गल कलह को बढ़ाता है, बुध अभीष्ट सिद्ध करता है, बृहस्पति विजय दिलाता है तथा शुक्र उत्साह और शनि पराजय उत्पन्न करता है ।।२९-३०।। (पिङ्गला (पक्षि) चक्र से शुभाशुभ कहते हैं-) एक पक्षी का आकार लिखकर

---

१ क. ङ. °ज्ञो भवाद्रातिथिस°। २ घ. छ. बुधे हानिर्भ°। ३ क. ङ. °दाश्च ये। ४ क. ङ. मृतजा। ५ घ. छ. हानिकम्। ६ क. ङ. मन्त्रो। ७ क. ङ. °र्ऋत्ये द°। ८ क. घ. छ. °न्द्रमाः। व्र। ९ ख. °ह्मा (द्या) स्त्रिषु पृष्ठे स्युः। १० क. ङ. °स्युस्त्रिदण्डी स्युः। ११ क. ङ. म्भा यजेत्पूर्णोऽन्य°। १२ ख. जयपू°। १३ क. ङ. लं भाति सो°। १४ क. ङ. शनये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]पादे मृतिस्त्रिऋक्षे स्यात्त्रीणि पक्षेऽर्थनाशनम् । मुखस्थे च भवेत्पीडा शिरःस्थे कार्यनाशनम् ।।३२।।
कुक्षिस्थिते फलं स्याच्च राहुचक्रं वदाम्यहम् । इन्द्राच्च नैर्ऋतं गच्छेन्नैर्ऋतात्सोममेव च ।।३३।।
सोमाद्धुताशनं वह्नेरप्यामाप्याच्छिवालयम् । रुद्राद्यमं यमाद्वायुं वायोश्चन्द्रं व्रजेत्पुनः ।।३४।।
[2]भुङ्क्ते चतस्रो नाड्य(डी)स्तु[3] राहुः [4]पृष्ठे जयो रणे । [5]अग्रतो मृत्युमाप्नोति तिथिराहुं वदामि ते ।।३५।।
[6]आग्नेयादि शिवान्तं च पूर्णिमाम्पदितः प्रिये । पूर्वे कृष्णाष्टमीं यावद्राहुदृष्टौ[7] जयो[8] भवेत् ।।३६।।
ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्ये फणिराहुकः । मेषाद्या दिशि पूर्वादौ यत्राऽऽदित्योऽग्रतो[9] मृतिः ।।३७।।
तृतीया कृष्णपक्षे तु सप्तमी दशमी तथा । चतुर्दशी तथा शुक्ले चतुर्थ्येकादशी तिथिः ।।३८।।
पञ्चदशी विष्टयः स्युः पूर्णिमाऽऽग्नेयवायवे । अकचटतपयशा वर्गाः सूर्योदयोग्रहाः ।।३९।।
गृध्रोलूकश्येनकाश्च पिङ्गलः कौशिकः क्रमात् । सारसश्च मयूरश्च [10]गोवत्सः पक्षिणः स्मृताः ।।४०।।
आदौ साध्यो [11]हुतो मन्त्र उच्चाटे पल्लवः स्मृतः । वश्ये ज्वरे तथाऽऽकर्षे प्रयोगः सिद्धिकारकः ।।४१।।
शान्तौ प्रीतौ नमस्कारो वौषट्पुष्टौ[1] वशादिषु । हुं[2] मृत्यौ प्रीतिसंनाशे विद्वेषोच्चाटने च फट् ।।४२।।

उसके मुख, नेत्र, ललाट, सिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पङ्ख में सूर्य के नक्षत्र से तीन-तीन नक्षत्र लिखे। पैरवाले तीन नक्षत्रों में रण करने से मृत्यु होती है तथा पङ्खवाले तीन नक्षत्रों में धन का नाश होता है। मुखवाले तीन नक्षत्रों में पीड़ा होती है और सिरवाले तीन नक्षत्रों में कार्य का नाश होता है। कुक्षिवाले तीन नक्षत्रों में रण करने से उत्तम फल होता है ।।३१-३२$\frac{1}{2}$।। अब मैं राहु-चक्र का वर्णन कर रहा हूँ। राहु पूर्व दिशा से नैर्ऋतकोण, नैर्ऋतकोण से उत्तर दिशा, उत्तर दिशा से अग्निकोण, अग्निकोण से पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा से ईशानकोण, ईशानकोण से दक्षिण दिशा, दक्षिण दिशा से वायुकोण और वायुकोण से पुनः उत्तर दिशा में आ जाता है, परन्तु वह प्रत्येक दिशा में चार घड़ी तक ही ठहरता है। यदि राहु की स्थिति रणयात्री की पृष्ठदिशा में हो, तो उसे विजय-लाभ होता है और यदि वह रणयात्री के सामने की ओर हो, तो उसकी मृत्यु होती है। अब मैं तिथियों के साथ राहु के सम्पर्क के विषय में बता रहा हूँ ।।३३-३५।। हे प्रिये! अग्निकोण से प्रारम्भ करके और पूर्वोत्तर कोणों तक जितने भी दिक्भाग हैं, उन्हें पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से राहु के समान अशुभ समझना चाहिए। इसलिए उस दिन इन दिशाओं की ओर की गयी यात्रा अजयप्रद होती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन पूर्व दिशा राहु-युक्त मानी जाती है। उस दिन पूर्वोत्तर, दक्षिण-पूर्व, पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पश्चिम में केतु राहु के समान कार्य करता है। मेष राशि में पूर्व की ओर की गयी यात्रा अत्यन्त अशुभ मानी गयी है ।।३६-३७।। कृष्णपक्ष की तृतीया, सप्तमी और दशमी, चतुर्दशी तिथियाँ, शुक्लपक्ष की चतुर्थी और एकादशी, पूर्णिमा और अष्टमी तिथियाँ भद्रासंज्ञक अशुभ मानी गयी हैं। जो दक्षिण-पूर्व और पश्चिमोत्तर दिशाओं को प्रभावित करती हैं। अ, क, च, ट, त, प, य और श वर्ग सूर्यादि ग्रहों के हैं। इन चक्रों में जो पक्षी कहे गये हैं, वे हैं गृध्र, उलूक, श्येन, पिङ्गल, कौशिक, सारस, मयूर और गोवत्स। पहले होम के बाद सिद्ध करना चाहिए। मन्त्र शान्ति, वशीकरण ज्वर और आकर्षण में नमः सिद्धिकारक माना गया है किन्तु पल्लवयुत मन्त्र उच्चाटन करने में, शान्ति और प्रीतिकर्मों में नमस्कार मन्त्र, पुष्टि और

---

१ पादे…पक्षेऽर्थनाशनम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ ख. भुजे। ३ ख. राहु पृ°। ४ क. °पृष्ठे ज°। ५ अग्रतो…वदामि ते नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ६ क. ङ. °नेय्यां दिशि वाऽन्ते च। ७ क. ङ. °हु पुष्टे ज°। ८ ख. ग. घ. छ. भयो। ९ ख. ग. °त्यो गतो। १० घ. छ. गोरङ्कुः। ११ क. ङ. भृतो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[३]वषट्सुते च [४]दीप्त्यादौ मन्त्राणां जातयश्च षट् । ओषधीः सम्प्रवक्ष्यामि महारक्षाविधायिनीः ।।४३।।
महाकाली तथा चण्डी[५] वाराही चेश्वरी तथा । सुदर्शना तथेन्द्राणी गात्रस्था रक्षयन्ति तम् ।।४४।।
बला चातिबला भीरुर्मुसली[६] सहदेव्यपि । जाती च मल्लिका यूथी गारुडी भृङ्गराजकः ।।४५।।
चक्ररूपा महौषध्यो धारिता विजयादिदाः । ग्रहणे च महादेवि उद्धृताः शुभदायिकाः ।।४६।।
मृदा च कुञ्जरं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम् । [७]तस्य पादतले कृत्वा स्तम्भयेच्छत्रुमात्मनः ।।४७।।
[८]नासाग्रे चैकवृक्षे च वज्राहतप्रदेशके । वल्मीकमृदमाहृत्य मातरौ योजयेत्ततः ।।४८।।
ॐ नमो महाभैरवाय[९] विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय । [१०]पिङ्गलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट् ।।४९।।
पूजयेत्कर्दमां [११]देवीं स्तम्भयेच्छस्त्रजालकम् । अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि रणादौ जयवर्धनम् ।।५०।।
श्मशाने निशि काष्ठाग्नौ नग्नो मुक्तशिखो नरः । दक्षिणास्यस्तु जुहुयान्नृमांसं रुधिरं विषम् ।।
[१२]तुषास्थिखण्डमिश्रं तु शत्रुनाम्ना शताष्टकम् ।।५१।।
ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल[१३] लालय लालय घण्टादेवि, अमुकं[१४] मारय मारय सहसा
नमोऽस्तु ते[१५] भगवति विद्ये[१६] स्वाहा ।।५२।।
अनया विद्यया [१७]होमान्धत्वं[१८] जायते रिपोः ।।५३।।
ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल पिङ्गल करालवदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व

वशीकरण आदि में वौषट् मन्त्र, मृत्यु और प्रीति नाश में 'हुं' मन्त्र, विद्वेष और उच्चाटन में फट् मन्त्र तथा दीप्ति आदि में वषट् मन्त्र प्रयुक्त होता है। इस प्रकार मन्त्रों की छह जातियाँ हैं ।।३८-४२ $\frac{1}{2}$।। अब मैं अत्यन्त रक्षा करनेवाली ओषधियों का वर्णन कर रहा हूँ। महाकाली, चण्डी, वाराही, ईश्वरी, सुदर्शना तथा इन्द्राणी को शरीर में धारण करने से शरीर की रक्षा होती है। अयि महादेवि! बला (बरिअण), अतिबला, भीरु (शतावरि), मुशली, सहदेवी, जाती, मल्लिका, यूथी, गारुडी, भृङ्गराज और चक्ररूपा–इन ओषधियों को ग्रहण के दिन उखाड़कर धारण करने से विजय आदि का लाभ होता है ।।४३-४६।। समस्त लक्षणों से युक्त मिट्टी का हाथी बनाकर उसके पैर के नीचे शत्रु की मूर्ति को दबा देने से शत्रु का स्तम्भन होता है। पर्वत के ऊपर अथवा एक वृक्षवाले स्थान में या बिजली से आहत प्रदेश में वल्मीक से मिट्टी लेकर दो माताओं का आवाहन करे ।।४७-४८।। तदनन्तर 'ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय, पिङ्गलाक्षाय त्रिशूल खड्गधराय वौषट्'–इस मन्त्र का जप करके कर्दमा देवी की पूजा करने से शत्रु के अस्त्रों का स्तम्भन होता है ।।४९-४९ $\frac{1}{2}$।। अब मैं उस अग्नि का कार्य बताऊँगा, जिससे युद्ध आदि में जय की वृद्धि होती है। रात्रि में श्मशान में जाकर नग्न होकर चोटी खोलकर दक्षिण की ओर उन्मुख बैठकर लकड़ी की अग्नि में मनुष्य के मांस, शोणित, अस्थि, विष तथा भूसी से शत्रु के नाम पर एक सौ आठ बार 'ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल·····भगवति विद्ये स्वाहा' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। ऐसा करने से शत्रु अन्धा हो जाता है ।।५०-५३।। 'ॐ वज्रकाय

---

१ क. ङ. °षडष्टौ। २ ख. ह्रू। ३ क. ङ. °षट्, लाभे च ग्रीष्मादौ। ४ ख. दिष्ट्यादौ। ५ क. ङ. च. दण्डी। ६ क. ङ. °र्मुशली। ७ क. ङ. भस्म। ८ क. ङ. नागाग्रे। ९ क. ङ. च. भैरवाय। १० क. ङ. च. पिङ्गाक्षाय। ११ क. ङ. च. °य खड्गखट्वाङ्गबन्धाय। १२ ख. ग. घ. छ. °र्दमं देवि स्त°। १३ क. °ल प्रेतुक प्रेतुक ला°। १४ क. ङ. °कं तारय तारय स। १५ क. ङ. भवति। १६ क. ङ. बेधे। १७ क. ङ. होमोद्दत्तत्वं। १८ ख. ग. °दधत्व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कह[1] [2]करालिन् [3]महादृढप्रहार[4] लङ्केश्वर [5]सेतुबन्ध[6] शैलप्रवाह गगनचर, एह्येहि भगवन्महावलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति, एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गूलेन, अमुकं वेष्टय[7] वेष्टय[8] जम्भय जम्भय[9] खन खन वैते हूं फट् ।।५४।। अष्ट (ष्टा) त्रिंशच्छतं देवि हनुमान्सर्वकर्मकृत्[10] । [11]पठेह (द्ध) नुमत्संदेशाद्भङ्गमायान्ति[12] शत्रवः ।।५५।। इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानाचक्रप्रतिपादनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२५।।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रनिर्णयः

ईश्वर उवाच

वक्ष्याम्यृक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविवृद्धये । यस्मिन्नृक्षे भवेत्सूर्यस्तदादौ त्रीणि मूर्धनि ।।१।। एकं मुखे द्वयं नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयम् । हृदि पञ्च[13] सुते जानौ[14] आयुर्वृद्धिं विचिन्तयेत् ।।२।। शिरःस्थे तु भवेद्राज्यं पिण्डतो वक्त्रयोगतः । नेत्रयोः कान्तिसौभाग्यं हृदये द्रव्यसंग्रहः ।।३।।

वज्रतुण्ड····'वैते हूं फट्'–इस मन्त्र का अड़तीस सौ बार जप करने से निखिलकर्मकर्त्ता हनुमान् के प्रभाव से शत्रुओं का नाश हो जाता है ।।५४-५५।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्थ नानाचक्र-प्रतिपादन नामक
एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२५।।

अध्याय १२६

नक्षत्र-निर्णय

महादेव बोले–अब मैं शुभ और अशुभ की वृद्धि के लिए नक्षत्रों के पिण्ड का वर्णन करूँगा। जिस नक्षत्र में सूर्य की स्थिति हो, उससे प्रारम्भ करके तीन नक्षत्रों तक (मनुष्याकार) नक्षत्र पिण्ड के मस्तक, उत्तरोत्तर एक नक्षत्र मुख, दो नक्षत्र नेत्र, चार नक्षत्र हाथ-पैर और पाँच नक्षत्र हृदय, भुजा तथा घुटना समझना चाहिए। अब यदि यात्रोत्सुक मनुष्य का जन्म नक्षत्र उस पिण्ड के मस्तक स्थान में पड़े तो उसे राज्य-लाभ समझना चाहिए, मुख तथा नेत्र के स्थान में जन्म-नक्षत्र पड़ने से कांति तथा सौभाग्य की वृद्धि होती है। हृदय-स्थान में पड़ने से द्रव्य-

---

१ ख. ग. °हत्करा°। २ क. ङ. कहकरा°। ३ क. ख. ग. ङ. °लिनि महा°। ४ क. ङ. °हादंष्ट्रप्र°। ५ ख. ग. °प्रकार। ६ ख. ग. केतुबन्ध। ७ क. ङ. °तुरथशै°। ८ घ. छ. °य ज°। ९ क. ङ. °य षड्गय षड्गय रोम हूं हूं फ°। १० क. ङ. °त्। फट्, ह। ११ घ. छ. पटे हनुमत्संदर्श-नाद्भ°। १२ ख. ग. त्संदर्शनाद्भ°। १३ क. ङ. °ञ्चयुते भानौ ह्यायु°। १४ ख. ग. च. जातौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हस्ते धृतं तस्करत्वं गतासुरध्वगः[1]पदे । कुम्भाष्टके भानि लिख्य[2] सूर्यकुम्भस्तु रिक्तकः ।।४।।
अशुभः [3]सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्वादिसंस्थितः । [4]फणिराहुं प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदम् ।।५।।
अष्टाविंशल्लिखे(?)द्विन्दून्पुनर्भाज्यास्त्रिभिस्त्रिभिः । अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तत्रैव दापयेत् ।।६।।
यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्तदृक्षं फणिमूर्धनि । [5]तदादि विन्यसेद्भानि सप्तविंशत्क्रमेण (?) तु[6] ।।७।।
वक्त्रे सप्तगत ऋक्षे म्रियते सर्व आहवे । स्कन्धे भङ्गं [7]वियानीयात्सप्तभेषु[8] च मध्यतः ।।८।।
[9]उदरस्थेन पूजा च जयश्चैवाऽऽत्मनस्तथा । कटिदेशे स्थिते योध आहवे हरते परान् ।।९।।
[10]पुच्छस्थितेन कीर्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः । पुनरन्यं प्र (त्यत्र) वक्ष्यामि रविराहुबलं तव ।।१०।।
रविः शुक्रो बुधश्चैव सोमः सौरिर्गुरुस्तथा । लोहितः सैंहिकश्चैव एते यामर्धभागिनः ।।११।।
सौरिं रविं च राहुं च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः । स जयेत्सैन्यसंघातं द्यूतमध्वानमाहवम् ।।१२।।
रोहिणी चोत्तरास्त्रिस्त्रो मृगः पञ्चस्थिराणि हि । अश्विनी रेवती स्वाती धनिष्ठा शततारका ।।१३।।
क्षिप्राणि पञ्च भान्येव यात्रार्थी चैव योजयेत् । अनुराधा हस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ।।१४।।

संग्रह होता है। हस्त-स्थान में पड़ने से चोरी करने की सम्भावना होती है और चरण-स्थान में पड़ने से मार्ग में प्राण जाने का भय समझना चाहिए। जिस नक्षत्र में सूर्य स्थित हो, उससे प्रारम्भ करके आठ नक्षत्रों को सूर्य आदि ग्रहों के नाम से रखे हुए आठ घड़ों के ऊपर लिखकर पूर्व आदि दिशाओं में स्थापित कर देना चाहिए। उनमें सूर्यकुम्भ का नाम 'रिक्तक' है। यात्रा-काल में वह जिसके जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़ेगा उसके लिए अशुभ होगा किन्तु दूसरे कुम्भ शुभदायक होंगे। अब मैं जय और पराजय का विवेक उत्पन्न करनेवाले फणिराहु का वर्णन करूँगा ।।१-५।। अट्ठाईस विन्दुओं को बनाकर उसे तीन से विभक्त कर देना चाहिए। फिर चार नक्षत्र बनाकर चार रेखाएँ खींचनी चाहिए। जिस नक्षत्र में राहु स्थित हो, उसे सर्प का मस्तक समझना चाहिए। उस नक्षत्र से प्रारम्भ करके पुनः क्रमशः सत्ताईसवें नक्षत्रों का नाम लिखना चाहिए ।।६-७।। यदि मुख्य स्थानीय सात नक्षत्रों में से कोई भी नक्षत्र किसी युद्ध-यात्री के जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो संग्राम में उसकी मृत्यु समझनी चाहिए। स्कन्धस्थानीय सात नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र जन्म के अनुसार पड़े तो भङ्ग-पराजय समझनी चाहिए। उदरस्थानीय नक्षत्र यदि जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो सम्मान तथा विजय समझना चाहिए। कटिस्थानीय नक्षत्र यदि जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो वह युद्ध में दूसरों का प्राण हरण करनेवाला होता है ।।८-९।। यदि पुच्छस्थानीय नक्षत्र जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो कीर्ति बढ़ती है और उस नक्षत्र पर राहु की दृष्टि पड़ जाने से वह मृत्युकारक बन जाता है। अब मैं तुम्हें सूर्य और राहु का बल बताऊँगा ।।१०।। रवि, शुक्र, बुध, सोम, शनि, बृहस्पति, मङ्गल और राहु को यत्नपूर्वक पृष्ठभाग में करके जो यात्रा करता है, वह सैन्य-समूह को जीत लेता है। इन ग्रहों को पृष्ठभाग में करके यात्रा करने से द्यूत, मार्ग तथा संग्राम में सफलता मिलती है। रोहिणी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा—ये पाँच नक्षत्र स्थिरसंज्ञक

---

१ क. ङ. °तायुर°। २ क. ङ. °ख्य पूर्वकु°। ३ क. ङ. पूर्वकुम्भः। ४ क. ङ. पाणिनास्तं। ख. ग. फलिराहुं। ५ तदादि°°°सप्तविंशत्क्रमेण तु नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ६ क. ङ. तु। चक्रे सप्तगते राहुः क्रिय°। ७ क. ङ. °त्सप्ताहेषु। ८ क. प्तमेषु। ग. °प्तमेषु च मध्यमः। उ°। ९ क. ङ. °दयस्थे°। १० क. ङ. प्रत्युत्थितेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वकार्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखया । [1]पूर्वास्तिस्रोऽग्निर्भरणी मघार्द्राश्लेषा दारुणाः ।।१५।।
स्थावरेषु स्थिरं ह्यृक्षं यात्रायां क्षिप्रमुत्तमम् । [2]सौभाग्यार्थे मृदून्येव उग्रेषूग्रं तु कारयेत् ।।१६।।
दारुणे दारुणं कुर्याद्वक्ष्ये चाधोमुखादिकम् । कृत्तिका भरण्या(ण्य)श्लेषा विशाखा[3] पित्तनैर्ऋतम् ।।१७।।
पूर्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म चाधोमुखं चरेत् । एषुकूपतडागादि विद्याकर्म भिषक्क्रिया ।।१८।।
स्थापनं नौकाकूपादि विधानं खननं तथा । रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वा(स्तस्वा)ती पुनर्वसुः ।।१९।।
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वै पार्श्वतोमुखाः । एषु राज्याभिषेकं च पबट्टन्धं गजाश्वयोः ।।२०।।
आरामगृहप्रासादं प्राकारं क्षेत्रतोरणम् । ध्वजचिह्नपताकाश्च सर्वानेतांश्च कारयेत् ।।२१।।
द्वादशी सूर्वदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा । भौमेन दशमी दग्धा[4] तृतीया वै बुधेन च ।।२२।।
षष्ठी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा । सप्तमी सूर्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ।।२३।।
द्वितीया[5] द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया । रविर्भौमस्तथा सौरिः षडेतास्तु(ते तु)त्रिपुष्कराः ।।२४।।
विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुनर्वसुः । पूर्वभाद्रपदा चैव षडेते तु त्रिपुष्कराः ।।२५।।
लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च । नष्टं भ्रष्टं[6] विनष्टं वा तत्सर्वं त्रिगुणं भवेत् ।।२६।।

हैं। अश्विनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा और शततारका ये पाँच नक्षत्र 'क्षिप्र' संज्ञक हैं। यात्री को इनका लाभ उठाना चाहिए। अनुराधा, हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, चित्रा और विशाखा–ये नक्षत्र सभी कार्यों के लिए शुभ माने गये हैं। पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्रा, अश्लेषा ये नक्षत्र 'दारुण' कहलाते हैं ।।११-१५।। स्थिरता सम्बन्धी कार्य में स्थिरसंज्ञक नक्षत्र और यात्रा में क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र उत्तम होते हैं। सौभाग्य के कार्य में मृदुसंज्ञक नक्षत्र, उग्रता के कार्य में उग्रसंज्ञक नक्षत्र और भयङ्कर कार्यों में दारुणसंज्ञक नक्षत्र उत्तम होते हैं ।।१६-१७।। अब मैं उन कार्यों को बताऊँगा जो अधोमुख नक्षत्र हैं। कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा, विशाखा, भरणी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी ने नक्षत्र अधोमुखसंज्ञक नक्षत्रों में कुआँ, तालाब आदि की प्रतिष्ठा, शिक्षारम्भ, चिकित्सारम्भ, स्थापनाकार्य, नौका और कूपादि का निर्माण तथा खोदाई का कार्य करना चाहिए। अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती और पुनर्वसु इन नौ नक्षत्रों में पार्श्वमुख कहे जाते हैं (तिर्यक्) कार्य करना चाहिए। इनमें राज्याभिषेक, हाथी, घोड़े का पट्टबन्धन, बगीचा, गृह, प्रासाद (महल), चहारदीवारी, खेत की मेंड़ और ध्वजा-पताकादि वस्तुओं का निर्माण करना चाहिए ।।१८-२१।। रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मङ्गलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार को सप्तमी तिथियाँ दग्धतिथियाँ मानी जाती हैं। द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, रविवार, मङ्गलवार तथा शनिवार इनको मिलाकर त्रिपुष्कर योग होता है ।।२२-२४।। विशाखा, कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, पूर्वभाद्रपद-ये छहों नक्षत्र

---

१ पूर्वास्तिस्रो…दारुणाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ सौभाग्यार्थे…कारयेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. °शाखाऽपि च नै°। ४ क. ङ. प्रोक्ता। ५ क. ङ. तृतीया। ६ क. ङ. दृष्टं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च। स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ।।२७।।
एतानि दृढचक्षूंषि पश्यन्ति च दिशो दश। यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुण्यगोचरे[1] ।।२८।।
[2]आषाढे रेवती चित्रा केकराणि पुनर्वसुः। एषु पञ्चसु ऋक्षेषु निर्गतस्याऽऽगमो भवेत् ।।२९।।
कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी मघा तथा। मूलं ज्येष्ठाऽनुराधा च घनिष्ठा शततारकाः ।।३०।।
पूर्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि। अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवाऽऽगमो भवेत् ।।३१।।
हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राऽऽषाढा तथैव च। नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते सङ्ग्रामो नैव विद्यते ।।३२।।
पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम्। रेवत्यन्ते(न्तं) चतुष्कं[3] तु अश्विन्यादि चतुष्टयम् ।।३३।।
उभयोर्याममात्रं[4] तु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः। अश्लेषान्ते मघादौ तु [5]घटिकानां चतुष्टयम् ।।३४।।
द्वितीयं गण्डमाख्यातं तृतीयं भैरवि शृणु। ज्येष्ठामूलभयोर्मध्य[6] उग्ररूपं तु यामकम् ।।३५।।
न कुर्याच्छुभकर्माणि यदीच्छेदात्मजीवितम्। दारके जातकाले च म्रियेते पितृमातरौ ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रनिर्णयप्रतिपादनं नाम
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२६।।

त्रिपुष्करसंज्ञक कहलाते हैं। पूर्वोक्त तिथिवार नक्षत्र के योग से त्रिपुष्कर योग होता है। इस योग में लाभ, हानि, वृद्धि, पुत्र-जन्म, नाश, विनाश तथा भ्रष्टता ये सभी तिगुनी हो जाती हैं ।।२५-२६।। अश्विनी, भरणी, अश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा और श्रवण–ये सात नक्षत्र दृढ़ नेत्रवाले हैं, जो दसों दिशाओं को देखते हैं। इन नक्षत्रों में खोया हुआ तथा यात्रा करनेवाला बड़े पुण्य से ही लौटता है ।।२७-२८।। दोनों आषाढ़ नक्षत्र, रेवती, चित्रा, पुनर्वसु ये पाँच नक्षत्र 'केकर' हैं, अर्थात् 'मध्याक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु विलम्ब से मिलती है। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद–ये नक्षत्र 'चिपिटाक्ष' अर्थात् 'मन्दाक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु तथा मार्ग चलनेवाला व्यक्ति कुछ ही विलम्ब में लौट आता है ।।२९-३१।। हस्त, उत्तरभाद्रपद, आर्द्रा तथा आषाढ़ा नक्षत्रों में यात्रा करने से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती है तथा इनमें प्रारम्भ किया हुआ संग्राम भी टिकता नहीं है। अब मैं गण्डान्त-दोष के विषय में कहूँगा जो नक्षत्रों के बीच में पड़ता है। रेवती नक्षत्र में अन्त के दो दण्ड का समय और अश्विनी नक्षत्र में आदि के दो दण्ड के समय का यत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए (यह प्रथम गण्डान्त-दोष है)। अश्लेषा नक्षत्र में अन्त के दो दण्डों का समय और मघा नक्षत्र में आदि के दो दण्डों का समय दूसरा गण्डान्त-दोष कहलाता है। अयि भैरवि! तीसरा गण्डान्त-दोष सुनो, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में मध्य के दो दण्डों का समय उग्र रूप धारण करता है अर्थात् गण्डान्त-दोष कहलाता है। इसलिए यदि जीवन की अभिलाषा हो तो इस गण्डान्त योग में शुभकर्म नहीं करना चाहिए। इस योग में जिस शिशु का जन्म होता है उसके माता-पिता मर जाते हैं ।।३२-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में नक्षत्र-निर्णय का प्रतिपादन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२६।।

---

१ क. ङ. °ण्यचोत्तरे। २ क. ङ. आषाढ़ा। ३ घ. छ. °तुर्नाडो अ°। ४ क. ङ. °र्यानमा°। ५ घ. छ. °ष्ठाभमूलयो°। ६ मध्यम पदलोपी समासः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाबलानि

ईश्वर उवाच

विष्कम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च विवर्जयेत् । [1]षट्षड्गण्डेऽतिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः ।।१।।
परिघे च व्यतीपात उभयोरपि [2]तद्दिनम् । वैधृते (तौ) तद्दिनं चैव यात्रायुद्धादिकं त्यजेत् ।।२।।
ग्रहैः शुभाशुभं वक्ष्ये देवि मेषादिराशितः । चन्द्रशुक्रौ च जन्मस्थौ वर्जितौ शुभदायकौ ।।३।।
द्वितीयो मङ्गलोऽथार्कः सौरिश्चैव तु सैंहिकः । द्रव्यनाशमलाभं च आहवे भङ्गमादिशेत् ।।४।।
सोमो बुधो [3]भृगुर्जीवो द्वितीयस्थाःशुभावहाः । तृतीयस्थो यदा भानुः शनिभौमो भृगुस्तथा ।।५।।
बुधश्चैवेन्दू [4]राहुश्च सर्वे ते फलदा ग्रहाः । बुधशुक्रौ चतुर्थौ च शेषाश्चैव भयावहाः ।।६।।
पञ्चमस्थो यदा जीवः शुक्रः सौम्यश्च चन्द्रमाः । ददेत चेप्सितं लाभं षष्ठे स्थाने [5]शुभो रविः ।।७।।
चन्द्रः सौरिर्मङ्गलश्च ग्रहा देवि स्वराशितः । बुधश्च शुभदः षष्ठे त्यजेत्षष्ठं[6] गुरुं भृगुम् ।।८।।
सप्तमोऽर्कः शनिर्भौमो राहुर्हान्यै सुखाय च । जीवो भृगुश्च सौम्यश्च ज्ञशुक्रौ चाष्टमौ शुभौ ।।९।।

अध्याय १२७

नाना-बल-वर्णन

महेश्वर बोले–विष्कम्भ योग में तीन घड़ी, शूल योग में पाँच घटी, गण्ड योग में छह घट, अतिगण्ड योग में छह घट, व्याघात और वज्र योग में नव घटी, वैधृत, व्याघात, वज्र, परिघ और व्यतीपात योग में उस (एक) दिन तक यात्रा तथा युद्ध आदि कार्य नहीं करना चाहिए ।।१-२।। अयि देवि! अब मैं मेष आदि राशियों के अनुसार ग्रहों द्वारा मिलनेवाले शुभाशुभ कर्मों का वर्णन करूँगा। जन्मराशि में स्थित चन्द्रमा और शुक्र शुभदायक होते हैं। मङ्गल, रवि, शनि तथा राहु के दूसरे स्थान में पड़ने से द्रव्य का नाश अथवा अलाभ होता है और रण में पराजय होती है ।।३-४।। सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र के दूसरे स्थान में रहने से शुभ फल मिलता है। यदि सूर्य, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, सोम तथा राहु की स्थिति तृतीय स्थान में हो तो वे शुभ फल देनेवाले होते हैं। चौथे स्थान में बुध और शुक्र सुन्दर फल देते हैं और शेष ग्रह भयानक फल देते हैं ।।५-६।। पाँचवें स्थान में बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। छठे स्थान में सूर्य शुभ होता है ।।७।। अयि देवि! यात्रा करनेवाले मनुष्य की राशि से छठे स्थान में यदि चन्द्रमा, शनि, मङ्गल तथा बुध ग्रह पड़ें तो शुभ फल होता है। छठे स्थान में गुरु तथा शुक्र वर्जनीय हैं ।।८।। सातवें स्थान में शनि, मङ्गल तथा राहु हानिकारक होते हैं, जबकि इसी स्थान में गुरु, शुक्र तथा बुध का आना सुखदायक होता है। आठवें स्थान में बुध तथा शुक्र शुभदायक होते हैं और शेष ग्रहों का

---

१ क. ङ. षट् च गण्डातिगण्डेति न°। २ क. ङ. °तत्क्षणम्। ३ च. °वो भानुश्चैव शनिस्तथा। द्वितीयस्थो यदा राहुः सर्वे। ४ क. ङ. °श्च ग्रहादेव स्वराशितः। बु°। ५ क. ङ. शुभै। ६ क. ङ. °जेयुश्च गु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]शेषा ग्रहास्तथा हान्यै ज्ञभृगू नवमौ शुभौ। शेषा हान्यै च लाभाय दशमौ भृगुभास्करौ[2] ।।१०।।
शनिर्भौमश्च राहुश्च चन्द्रः सौम्यः शुभावहः। शुभाश्चैकादशे सर्वे वर्जयेद्दशमं[3] गुरुम् ।।११।।
बुधशुक्रौ द्वादशस्थौ[4] शेषान्द्वादशागांस्त्यजेत्। अहोरात्रे द्वादश स्यू राशयस्तान्वदाम्यहम् ।।१२।।
मीनो मेषोऽथ मिथुनं चतस्रो नाडयो (?) वृषः। [5]षट्कषट्कर्कसिंहकन्याश्च तुलापञ्च च वृश्चिकः ।।१३।।
धनुर्नक्रो घटश्चैव सूर्यगो [6]राशिराद्यकः। चरस्थिरद्विस्वभावा मेषाद्याः स्युर्यथाक्रमम् ।।१४।।
कुलीरो मकरश्चैव तुलामेषादयश्चराः। चरकार्यं जयं काममाचरेच्च शुभाशुभम् ।।१५।।
स्थिरो वृषो हरिः कुम्भो वृश्चिकः स्थिरकार्यके। शीघ्रः[7] समागमो नास्ति रोगार्तो नैव मुच्यते ।।१६।।
मिथुनं कन्यका मीनो धनुश्च द्विस्वभावकः। द्विस्वभावाः शुभाश्चैते सर्वकार्येषु नित्यशः ।।१७।।
यात्रा वाणिज्य सङ्ग्रामे विवाहे राजदर्शने। वृद्धिं जयं तथा लाभं युद्धे जयमवाप्नुयात् ।।१८।।
अश्विनी[8] त्रिंशत्ताराश्च (राच) तुरगस्याऽऽकृतिर्यथा। यदत्र कुरुते वृष्टिमेकरात्रं[9] प्रवर्षति ।।
यमभे तु यदा वृष्टिः पक्षमेकं तु वर्षति ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाबलवर्णनं नामसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२७।।

फल अनिष्ट होता है। नवम स्थान में बुध तथा शुक्र शुभकारक होते हैं और शेष ग्रह हानिकारक होते हैं। दशम स्थान में शुक्र तथा सूर्य लाभदायक होते हैं और शनि, मङ्गल, राहु, चन्द्रमा तथा बुध शुभ फल देनेवाले होते हैं। दशम स्थान में बृहस्पति त्याज्य है। एकादश स्थान में सभी ग्रह शुभ होते हैं। बारहवें स्थान में बुध और शुक्र ग्राह्य तथा अन्य ग्रह वर्जनीय हैं ।।९-११½।। अहोरात्र में बारह राशियाँ होती हैं। अब मैं उन्हें बताऊँगा ।।१२।। मीन, मेष, मिथुन इन लग्नों का मान चार घटी, वृष, कर्क, सिंह, कन्या और तुला इन लग्नों का मान छह-छह घटी तथा वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ लग्न का मान पाँच-पाँच घटी है। सूर्य से मेषादि राशियाँ हैं। मेषादि राशियों का स्वभाव चल, अचल तथा चलाचल होते हैं ।।१३-१४।। इनमें कर्क, मकर, तुला तथा मेष राशियाँ चर स्वभाव की होती हैं। अतः इनमें चरकार्य, विजय तथा शुभाशुभ कर्म करना चाहिए। वृष, सिंह, कुम्भ तथा वृश्चिक अचल स्थिर स्वभाव की होती हैं। अतः इनमें स्थिर कार्य करना चाहिए। इनमें यात्रा करने से शीघ्र समागम नहीं होता है और चिकित्सा प्रारम्भ करने से रोग से मुक्ति नहीं मिलती है ।।१५-१६।। मिथुन, कन्या, मीन तथा धनु राशियाँ दोनों स्वभाववाली होती हैं। इनमें किये जानेवाले सभी कामों में सफलता मिल जाती है। द्विस्वभाववाली राशियों में यात्रा, व्यापार, संग्राम, विवाह तथा राज-दर्शन करने में सफलता, लाभ, वृद्धि तथा जय आदि की प्राप्ति होती है ।।१७-१८।। अश्विनी नक्षत्र तीस ताराओं से संवलित है। इसकी आकृति घोड़े के समान होती है। इसमें प्रारम्भ होनेवाली वर्षा एक पक्ष तक बरसती है ।।१९।।

श्री अग्निमहापुराण में नाना-बल-वर्णन नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२७।।

---

१ शेषा…शुभौ नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ क. ङ. °रौ। गतिर्भौ°। ३ घ. छ. °शमे गु°। ४ क. ङ. °दशोऽग्नौ शे°। ५ 'षट्षट्कर्कसिंहकन्यास्तुला' इति पाठो युक्तः। ६ क. ङ. रात्रिराद्यकम्। च°। ७ क. ङ. शीघ्रागमो यमो। ८ ख. ग. घ. छ. °नी विंशतारा। ९ क. ङ. वृष्टिः पक्ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोटचक्रम्

ईश्वर उवाच

कोटचक्रं प्रवक्ष्यामि चतुरस्त्रं पुरं लिखेत्। चतुरस्त्रं पुनर्मध्ये तन्मध्ये चतुरस्त्रकम् ।।१।।
नाडीत्रितयचिह्नाद्यं मेषाद्याः पूर्वदिङ्मुखाः। कृत्तिका पूर्वभागे तु अश्लेषाऽऽग्नेयगोचरे ।।२।।
भरणी दक्षिणे देया विशाखा नैर्ऋते न्यसेत्। अनुराधां पश्चिमे च श्रवणं वायुगोचरे ।।३।।
धनिष्ठां चोत्तरे न्यस्य ऐशान्यां रेवती तथा। बाह्यनाड्यां स्थितान्येव अष्टौ ह्यृक्षाणि [1]यत्नतः ।।४।।
रोहिणी पुष्यफल्गुन्यः स्वाती ज्येष्ठा क्रमेण तु। अभिजिच्छततारा तु अश्विनी मध्यनाडिका ।।५।।
कोटमध्ये तु या नाडी कथयामि प्रयत्नतः[2]। मृगश्चाभ्यन्तरे पूर्वं तस्याऽऽग्नेये पुनर्वसुः ।।६।।
उत्तराफल्गुनी याम्ये चित्रानैर्ऋतसंस्थिता। मूलं तु पश्चिमे [3]न्यस्योत्तराषाढां तु वायवे ।।७।।
पूर्वभाद्रपदा सौम्ये रेवती ईश गोचरे। कोटस्याभ्यन्तरे नाडी ह्यृक्षाष्टकसमन्विता ।।८।।

अध्याय १२८

कोटचक्र-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं कोटचक्र का वर्णन करूँगा। सर्वप्रथम एक चौकोर चित्र बनाना चाहिए। इसके बीच में एक और चौकोर चित्र बनाकर उसके अन्दर तक एक और चौकोर चित्र बना लेना चाहिए ।।१।। उसे तीन नाड़ियों के चिह्नों से चिह्नित करके पूर्व दिशा की ओर मेषादि का चित्रण करना चाहिए। पूर्व की ओर कृत्तिका और आग्नेयकोण की ओर अश्लेषा का चित्रण करना चाहिए। दक्षिण की ओर भरणी और नैर्ऋत्यकोण में विशाखा का सन्निवेश करना चाहिए। पश्चिम की ओर अनुराधा और वायव्यकोण में श्रवण नक्षत्र का अङ्कन करना चाहिए ।।२-३।। उत्तर की ओर धनिष्ठा और ईशानकोण में रेवती को चित्रित कर देना चाहिए। इस प्रकार बाह्य नाड़ी में यत्नपूर्वक आठ नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए, जिनके नाम हैं–रोहिणी, पुष्य, फल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, अभिजित् और शतातारा। मध्यवर्ग में अश्विनी का चित्रण करना चाहिए ।।४-५।। अब मैं यत्नपूर्वक उस नाड़ी का वर्णन करूँगा जो कोट के बीच में होती है। उसके बीच में मृगशिरा और आग्नेयकोण में पुनर्वसु नक्षत्र रहते हैं। दक्षिण दिशा की ओर उत्तराफाल्गुनी और नैर्ऋतकोण में चित्रा नक्षत्र रहता है। पश्चिम की ओर मूल नक्षत्र का न्यास करके वायव्यकोण में उत्तराषाढ़ नक्षत्र का अङ्कन करना चाहिए ।।६-७।। उत्तर दिशा की ओर पूर्वाभाद्रपद और ईशानकोण में रेवती का चित्रण करना चाहिए। कोट के आभ्यन्तर की नाड़ी भी आठ नक्षत्रों से युक्त होती है, जिनके नाम हैं–आर्द्रा, हस्त, आषाढ़ और

---

१ क. ङ. पादतः। २ क. ङ. °तः। मूलाश्चा°। ३ क. ख. ग. ङ. च. न्यस्य उत्तराषाढां वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्द्राहस्तस्तथाऽऽषाढा[1] चतुष्कं चोत्तरात्रिकम्। ([2]मध्येस्तम्भचतुष्कं तु दद्यात्कोटस्य कोटरे ।।९।।
एवं दुर्गस्य विन्यासं [3]बाह्ये स्थानं [4]दिशाधिपात्)। आगन्तुको यदा योद्धा ऋक्षवान्स्यात्फलान्वितः ।।१०।।
कोटमध्ये ग्रहाः सौम्या यदा ऋक्षान्विताः पुनः। जयं मध्येस्थितानां तु भङ्गमागामिनो विदुः ।।११।।
प्रवेशभे प्रवेष्टव्यं निर्गमभे च निर्गमे (च्छे) त्। भृगुः सौम्यस्तथा भौम ऋक्षान्तं सकलं यदा ।।१२।।
तदा भङ्गं विजानीयाज्जयमागन्तुकस्य च। प्रवेशर्क्षचतुष्के तु संग्रामं[5] चाऽऽरमेद्यदा ।।
तदा सिध्यति तद्दुर्गं न कुर्यात्तत्र विस्मयम् ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कोटचक्रवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२८।।

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्घकाण्डम्

ईश्वर उवाच

([6]अर्घमानं प्रवक्ष्यामि उल्कापातोऽथ भूश्चला[7])। निर्घातो ग्रहणं वेशो[8] दिशां दाहो भवेद्यदा ।।१।।

तीन प्रकार के उत्तरा नक्षत्र। इस प्रकार से दुर्ग का निर्माण करना चाहिए। नक्षत्र-विशेष के नाम के दिन में आनेवाला विजयार्थी यदि कोट के मध्य में आकर उस नक्षत्र से चिह्नित दिशा से आक्रमण करता है तो वह निश्चय ही विजय को प्राप्त करता है। ज्योतिर्विद् व्यूहादि के मध्य में पड़े हुए उन वीरों की भी विजय को निश्चित बतलाते हैं,जबकि आक्रमणकारी शत्रु की स्थिति और उनके आगमन की दिशा शुभ नक्षत्रों से सम्बद्ध रहा करती है ।।८-११।। जब कोई अच्छा नक्षत्र अपने ग्रह में प्रवेश करता है उस समय दुर्ग में प्रवेश करना चाहिए और जिस समय वह अपने ग्रह से निर्गमन करता है उस समय दुर्ग से निर्गमन करना चाहिए। जिस समय बृहस्पति, सोम तथा मङ्गल अपने ग्रह में प्रवेश करते हैं उस समय आक्रमण करने से आगन्तुक योद्धा की विजय निश्चित है। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए शुभ माने जानेवाले नक्षत्रों के समय में युद्ध का आरम्भ करने पर दुर्ग में सफलता निश्चित है, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।।१२-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में कोटचक्र-वर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२८।।

अध्याय १२९

अर्धकाण्ड-वर्णन

महेश्वर बोले-अब मैं अर्घमान (वस्तुओं के भाव) के सम्बन्ध में बताऊँगा। जिस मास में उल्कापात, भूकम्प, तूफान, ग्रहण, वेश (सूर्य चन्द्रमा के मण्डल) तथा दिग्दाह होता है, उस मास में वस्तुओं के भाव में वृद्धि समझनी

---

१ क. ङ. °ढा मूलाद्यं चोत्तरान्तिक°। २ मध्य°°°दिशाधिपात् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ३ ख. ग. वाह्याटालदि°। ४ ख. ग. °पान्। आ°। ५ क. ङ. °मं कारयेद्य°। ६ अर्घमानं°°°भूश्चला नास्ति ख. पुस्तके। ७ क. ङ. भूतलम्। नि°। ८ क. ङ. वेगो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लक्षयेन्मासि मास्येवं यद्येते स्युश्च चैत्रके। अलंकारादि संगृह्य षड्भिर्मासैश्चतुर्गुणम् ।।२।।
वैशाखे चाष्टमे मासि षड्गुणम् सर्वसङ्ग्रहम्। ज्येष्ठे मासि तथाऽऽषाढ़े यवगोधूमधान्यकैः ।।३।।
श्रावणे घृततैलाद्यैराश्विने वस्त्रधान्यकैः। कार्तिके धान्यकैः क्रीतैर्मासे स्यान्मार्गशीर्षके ।।४।।
पुष्ये(पौषे)कुङ्कुमगन्धाद्यैर्लाभो धान्यैश्च माघके। गन्धाद्यैः फाल्गुने क्रीतैरर्घकाण्डमुदाहृतम् ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्घकाण्डप्रतिपादनं नामैकोनत्रिंशतधिकशततमोऽध्यायः ।।१२९।।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलादिकथनम्

ईश्वर उवाच

मण्डलानि[1] प्रवक्ष्यामि चतुर्धा विजयाय हि। कृत्तिका च मघा पुष्यं पूर्वा चैव तु फल्गुनी ।।१।।
विशाखा भरणी चैव पूर्वभाद्रपदा तथा। आग्नेयं मण्डलं भद्रे तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ।।२।।
यद्यत्र चलते वायुर्वेष्टनं शशिसूर्ययोः। [2]भूमिकम्पोऽथ निर्घातो ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।।३।।

चाहिए। चैत्र के महीने में इन उत्पातों के होने पर चैत्र से लेकर छह मासों तक आभूषण आदि के भाव में चतुर्गुण वृद्धि होती है। वैशाख में इन उत्पातों के होने पर आठ महीनों तक सब वस्तुओं का भाव छह गुना बड़ जाता है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ में इन उपद्रवों के होने पर यव, गेहूँ तथा धान्य के भाव में वृद्धि होती है। श्रावण में घी, तेल का भाव और आश्विन में वस्त्र-धान्य का भाव उपरिवर्णित उपद्रवों से बढ़ जाता है। कार्तिक और अग्रहायण में इन उपद्रवों के होने पर धान्यों का भाव बढ़ता है। पौष में इन उपद्रवों के होने पर कुङ्कुम और गन्ध आदि का तथा माघ में अन्न मात्र का भाव बढ़ जाता है। फाल्गुन में इन उपद्रवों के होने पर गन्ध आदि के भाव में वृद्धि होती है। यही अर्घ (मूल्य) काण्ड का निरूपण है ।।१-५।।

श्री अग्निमहापुराण में अर्घकाण्डप्रतिपादन नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२९।।

अध्याय १३०

मण्डलादि-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं विजय प्राप्त करानेवाले चार प्रकार के मण्डलों का वर्णन करूँगा। कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, भरणी तथा पूर्वभाद्रपदा–इतने नक्षत्रों को मिलाकर आग्नेय-मण्डल बनता है। अयि भद्रे! मैं उस मण्डल का लक्षण बता रहा हूँ ।।१-२।। इस मण्डल में प्रचण्ड वायु चलने पर, सूर्य-चन्द्र के ऊपर मण्डल

---

१ च. नक्षत्राणि। २ भूमिकम्पोऽथ...चन्द्रसूर्ययोः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धूमज्वाला दिशां दाहः केतोश्चैव प्रदर्शनम् । रक्तवृष्टिश्चोपतापः पाषाणपतनं तथा ।।४।।
नेत्रोरोगोऽतिसारश्च अग्निश्च प्रबलो भवेत् । स्वल्पक्षीरास्तथा गावः स्वल्पपुष्यफला द्रुमाः ।।५।।
विनाशश्चैव शस्यानां स्वल्पवृष्टिं विनिर्दिशेत् । [1]चतुर्विधाः प्रपीड्यन्ते क्षुधार्ता अखिला नराः ।।६।।
सैन्धवा यामुनाश्चैव गुर्जरा भोजबाह्लिकाः । जालंधरं च काश्मीरं सप्मं चोत्तरापथम् ।।७।।
देशाश्चैते विनश्यन्ति तस्मन्नुत्पातदर्शने । हस्तचित्रामघास्वाती मृगो वाऽथ पुनर्वसुः ।।८।।
उत्तराफल्गुनी चैव अश्विनी च तथैव च । [2]यदाऽत्र भवते किंचिद्वायव्यं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ।।९।।
[3]नष्टभूताः प्रजाः सर्वा हाहाभूता विचेतसः । ([4]डाहलः[5]कामरूपं च(पश्च)कलिङ्गः कोशलस्तथा[6] ।।१०।।
अयोध्या च अवन्ती च नश्यन्ते (न्ति) कोङ्कणान्ध्रकाः । अश्लेषा चैव मूलं तु पूर्वाषाढा तथैव च ।।११।।
रेवती वारुणं[7] ह्यृक्षं तथा भाद्रपदोत्तरा । यदाऽत्र चलते किंचिद्वारुणं[8] तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ।।१२।।
बहुक्षीरघृता गावो बहुपुष्पफला द्रुमाः । आरोग्यं तत्र जायेत बहुशस्या च मेदिनी ।।१३।।
धान्यानि च समर्घाणि सुभिक्षं पार्थिवं भवेत् । परस्परं नरेन्द्राणां सङ्ग्रामो दारुणो भवेत् ।।१४।।
ज्येष्ठा च रोहिणी चैव अनुराधा च वैष्णवम् । धनिष्ठा चोत्तराषाढ़ा अभिजित् सप्तमं तथा ।।१५।।

बन जाने पर, भूकम्प आने पर, तूफान आने पर, चन्द्र-सूर्य ग्रहण होने पर, तारा टूटने पर व दिग्दाह होने पर, केतु ग्रह दिखायी पड़ने पर यह समझना चाहिए कि रक्त की वृष्टि होगी, सूखा पड़ेगा, पत्थर गिरेगा, नेत्र-रोग तथा आँव की बीमारी बढ़ेगी, अग्नि का उत्पात होगा, गायें थोड़ा दूध देंगी, वृक्षों में थोड़े फल लगेंगे। अनाज का विनाश होगा, वृष्टि कम होगी और चारों वर्णों के लोग भुखमरी से पीड़ित होंगे ।।३-६।। उस प्रकार के उत्पात दिखायी देने पर सिन्ध, यामुन, गुर्जर (गुजरात), भोज, बाह्लिक (आधुनिक बल्ख), जलंधर, काश्मीर और उत्तरापथ-इन देशों को क्षति पहुँचेगी ।।७-७$\frac{1}{2}$।। हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरफाल्गुनी और अश्विनी नक्षत्र को मिलाकर वायव्य मण्डल बनता है। इस मण्डल में भी यदि उपर्युक्त घटनाएँ घटित होती हैं तो प्रजाओं में हाहाकार मच जाता है और डाहल, कामरूप, कलिङ्ग, कोशल, अयोध्या, अवन्ती, कोङ्कण तथा आन्ध्र देशों और नगरों को भारी क्षति पहुँचती है ।।८-१०$\frac{1}{2}$।। अश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़, रेवती, शतभिषा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों को मिलाकर वारुण-मण्डल बनता है। इस मण्डल में उपर्युक्त घटनाएँ घटित होने पर गौएँ बहुत अधिक दूध देती हैं, वृक्ष खूब फलते-फूलते हैं, मनुष्य नीरोग रहते हैं, पृथ्वी धन-धान्य से सम्पन्न होती है, देश में सुभिक्ष रहता है किन्तु राजाओं में परस्पर महासङ्ग्राम होता है ।।११-१४।। ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ तथा अभिजित् नक्षत्र मिलाकर माहेन्द्र-मण्डल बनता है। इस मण्डल में उपर्युक्त घटनाएँ घटित होने पर

---

१ ख. ग. घ. छ. चातुर्वर्णाः। २ क. ङ. यद्यत्र। ३ ख. ग. घ. छ. नष्टधर्माः। ४ डाहलः····कोङ्कणान्ध्रकाः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ५ ख. इहालं। ग. डाहालं। ६ च. कोकणं तथा। ७ क. ङ. °णं स्कन्द त°। ८ क. ङ. °चिच्चारू (रु) शत (तं) वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदात्र चलते किंचिन्माहेन्द्रं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् । प्रजाः समुदितास्तस्मिन्सर्वरोगविवर्जिताः ।।१६।।
सन्धिं कुर्वन्ति राजानः सुभिक्षं पार्थिवं शुभम् । ग्रासस्तु विविधो[1] ज्ञेयो मुखपुच्छकरो महान् ।।१७।।
चन्द्रो राहुस्तथाऽऽदित्य एकाराशौ यदि स्थितः । मुखग्रासस्तु[2] विज्ञेयो जामित्रे पुच्छ उच्यते ।।१८।।
भानोः पञ्चदशे ह्यृक्षे यदा चरति चन्द्रमाः । तिथिच्छेदे[3] तु सम्प्राप्ते सोमग्रासं[4] विनिर्दिशेत् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलादिकथनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३०।।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

घातचक्रादि

ईश्वर उवाच

प्रदक्षिणमकारादीन्स्वरान्पूर्वादितो लिखेत् । चैत्राद्यं भ्रमणाच्चक्रं प्रतिपत्पूर्णिमातिथिः ।।१।।
त्रयोदशी चतुर्दशी अष्टम्येका च सप्तमी । प्रतिपत्त्रयोदश्यन्तास्तिथयो द्वादश स्मृताः ।।२।।
चैत्रचक्रे तु संस्पर्शाज्जयलाभादिकं विदुः । विषमे तु शुभं ज्ञेयं समे चाशुभमीरितम् ।।३।।

सम्पूर्ण प्रजाएँ रोगों से मुक्त होती हैं, राजा लोग आपस में सन्धि करते हैं और देश में सुभिक्ष होता है ।।१५-१६$\frac{1}{2}$।। ग्रास (ग्रहण) विविध प्रकार के होते हैं जिनमें मुखग्रास और पुच्छग्रास महान् होते हैं। जब चन्द्रमा, राहु तथा सूर्य एक राशि पर स्थित होते हैं तब मुखग्रास होता है किन्तु जब वे राहु से सातवें होते हैं तब पुच्छग्रास होता है। जब चन्द्रमा सूर्य आक्रान्त नक्षत्र से पन्द्रहवें नक्षत्र पर सञ्चरण करता है और तिथि पूर्णिमा प्राप्त रहती है, तब सोमग्रास (चन्द्रग्रहण) होता है ।।१७-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में मण्डलादि-कथन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३०।।

अध्याय १३१

घातचक्र-वर्णन

महेश्वर बोले-इस (घात) चक्र के ऊपर चारों ओर पूर्व आदि दिशा से प्रारम्भ करके अकार इत्यादि स्वरों को लिखना चाहिए। इसमें चैत्र प्रतिपदा, पूर्णिमा, त्रयोदशी, चतुर्दशी तिथियों तथा शुक्लपक्ष की सप्तमी, अष्टमी का चक्र में उल्लेख करना चाहिए। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके त्रयोदशी तक अष्टमीरहित तिथियाँ लिखनी चाहिए ।।१-२।। चैत्रचक्र का स्पर्श करके (रण में) जय, लाभ इत्यादि जाना जा सकता है। युद्धकाल में जिसका नाम पुकारा जाता है, उसमें यदि विषम दिशा होती है तो शुभ और यदि सम दिशा होती है तो अशुभ माना जाता है ।।३।। जिस व्यक्ति का नाम दीर्घ अक्षर से प्रारम्भ होता है, वह विजय को प्राप्त करता है किन्तु जिसके नाम के

---

१ घ. छ. द्विविधो। २ घ. छ. °ग्रामस्तु। ३ क. ङ. °थिभेदे। ४ घ. छ. °ग्रामं वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

युद्धकाले[१] समुत्पन्ने यस्य नाम ह्युदाहृतम् । मात्रारूढं तु यन्नाम आदित्यो गुरुरेव च ।।४।।
जयस्तस्य[२] सदाकालं सङ्ग्रामे चैव भीषणे[३] । ह्रस्वनाम[४] (मा) यदा योधो म्रियते ह्यनिवारितः[५] ।।५।।
प्रथमो दीर्घ आदिस्थो द्वितीयो मध्ये[६] अन्तकः । (?)द्वौ मध्ये न प्रथमान्तौ जायेते[७] (?)नात्र संशयः ।।६।।
पुनश्चान्ते यदा चाऽऽदौ स्वरारूढं तु दृश्यते । ह्रस्वस्य मरणं विद्याद्दीर्घस्यैव जयो भवेत् ।।७।।
नरचक्रं प्रवक्ष्यामि ह्यृक्षपिण्डात्मकं यथा । प्रतिमामालिखेत्पूर्वं पश्चादृक्षाणि विन्यसेत् ।।८।।
शीर्षे त्रीणि मुखे चैकं द्वे ऋक्षे नेत्रयोर्न्यसेत् । वेदसंख्यानि हस्ताभ्यां कर्णऋक्षद्वयं पुनः ।।९।।
हृदये भूतसंख्यानि षड्ऋक्षाणि तु पादयोः । नामऋक्षं[८] स्फुटं कृत्वा चक्रमध्ये तु विन्यसेत् ।।१०।।
नेत्रे शिरोदक्षकर्णे याम्यहस्ते च पादयोः । हृद्ग्रीवावामहस्ते तु पुनर्गुह्ये तु पादयोः ।।११।।
यस्मिन्नृक्षे स्थितः सूर्यः सौरिभौमस्तु सैंहिकः । तस्मिन्स्थाने स्थिते[९] विद्याद्घातमेव न संशयः ।।१२।।
जयचक्रं[१०] प्रवक्ष्यामि आदिहान्तांश्च वै लिखेत् । रेखास्त्रयोदशाऽऽलिख्य[११] षड्रेखास्तिर्यगालिखेत् ।।१३।।
दिग्ग्रहा मुनयः सूर्या ऋत्विग्रुद्रस्तिथिः[१२] क्रमात् । मूर्छनास्मृतिवेदर्क्षजिना अकऽमा[१३] ह्यधः ।।१४।।
आदित्याद्याःसप्तकृते[१४] नामान्ते बलिनो ग्रहाः । आदित्यसौरिभौमाख्या जये सौम्याश्च संधये ।।१५।।
रेखा द्वादश चोद्धृत्य षट् च याम्यास्तथोत्तराः । मनुश्चैव[१५] तु ऋक्षाणि नेत्रे च रविमण्डलम् ।।१६।।

पूर्व में ह्रस्व अक्षर होता है, उसकी पराजय होती है। जिस नाम के आदि में दीर्घ स्वर होता है वह उत्तम, जिसके बीच में मध्यम स्वर रहता है वह मध्यम और जिसके अन्त में दीर्घ रहता है वह भाग्य की दृष्टि से अधम माना जाता है। जिस योद्धा का नाम दीर्घ स्वर से प्रारम्भ होकर दीर्घ स्वर से ही समाप्त होता है, वह विजय को तथा जिसके नाम के आदि और अन्त में ह्रस्व स्वर होते हैं वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त करता है ।।४-७।। अब मैं नरचक्र के विषय में बतलाऊँगा। यह नक्षत्रों से युक्त होता है। पहले मनुष्य की प्रतिमा का चित्रण करके तदनन्तर उसमें नक्षत्रों का न्यास करना चाहिए ।।८।। नरचक्र के शीर्ष में तीन, मुख में एक, नेत्रों में दो, हाथों में चार, कानों में दो, हृदय में पाँच और पैरों में छह नक्षत्रों का न्यास करना चाहिए। नक्षत्रों की स्फुट गणना करके उन्हें नरचक्र के ऊपर इस प्रकार से रखना चाहिए जिससे वह नेत्रों, सिर, दाहिने कान, दाहिने हाथ, चरण, ग्रीवा, बाँहें, हाथ, भुजाओं और पैरों को आच्छादित कर ले। घात उन स्थानों पर होता है, जहाँ पर सूर्य, शनि, मङ्गल अथवा राहु नक्षत्र चित्रित रहते हैं ।।९-१२।। अब मैं जयचक्र के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो किसी कार्य की सफलता को सूचित करनेवाला हुआ करता है। पहले धरातल पर तेरह रेखाओं को खींचकर उनको काटती हुई छह तिरछी रेखाओं को खींचना चाहिए ।।१३।। इस प्रकार की बनी रेखाओं के कोष्ठकों में दस, नव, सात, बारह, चार, ग्यारह, पन्द्रह, चौबीस, अठारह, चार, सत्ताईस, नव, चौबीस इन अङ्कों को लिखे। इसके बाद अ, क, ट, प आदि अक्षरों को लिखे। शत्रु के नामाक्षर व्यंजन और अङ्क को जोड़कर सात से भाग देने पर सूर्य आदि सात वार बन जाते हैं। यदि सूर्य, शनि, मङ्गल ग्रह

---

१ क. ङ. गन्धर्वाणि। २ क. ङ. °स्य तदा°। ३ क. ङ. भाषणे। ४ क. ङ. क्रुध्यमानो। ५ क. ङ. ह्यविचारतः। ६ क. ख. ग. ङ. च. मध्य अ°। ७ क. ग. ङ. जायते। ख. जयते। ८ घ. छ. °म ह्यृक्षं। ९ क. ङ. हृतं। १० क. ङ. उपचक्रं। ११ छ. षड्लेखा। १२ क. ङ. °स्तिथिक्र°। १३ क. ङ. °कहमाज्यवः। आ°। १४ घ. छ. °प्तहृते। १५ क. ङ. मन्त्रश्च वसतुर्ग्राणि। ख. ग. मरुतश्चैव ऋ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिथयश्च रस वेदा अग्निः सप्तदशाथ वा । वसुरन्ध्राः समाख्याता अकटपानधो[1] न्यसेत् ।।१७।।
एकैकमक्षरं न्यस्त्वा (स्य) शेषाण्येवं क्रमान्न्यसेत् । नामाक्षरकृतं पिण्डं वसुभिर्भाजयेत्ततः ।।१८।।
वायसान्मण्डलेऽत्युग्रो मण्डलाद्रासभो वरः । रासभीद्वृषभः श्रेष्ठो वृषभात्कुञ्जरो वरः ।।१९।।
कुञ्जराच्च पुनः सिंहा [2]सिंहाच्चैव खरुर्वरः[3] । खरोश्चैव बली धूम्र एवमादि बलाबलम् ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये घातचक्रादि वर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३१।।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सेवाचक्रादि

ईश्वर उवाच

सेवाचक्रं प्रवक्ष्यामि लाभालाभार्थसूचकम् । पिता माता तथा भ्राता दम्पती च विशेषतः[4] ।।१।।
तस्मिंश्चक्रे तु विज्ञेयं यो यस्माल्लभते फलम् । षडूर्ध्वाः स्थापयेद्रेखा भिन्नाश्चाष्टौ तु तिर्यगाः (ग्गाः) ।।२।।
कोष्ठकाः पञ्चत्रिंशच्च तेषु[5] वर्णान्समालिखेत् । स्वरान्पञ्च समुद्धृत्य स्पर्शान्पश्चात्समालिखेत् ।।३।।
ककारादिहकारान्तान्हीनाङ्गांस्त्रीन्विवर्जयेत्[6] । सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च अरिर्मृत्युश्च नामतः ।।४।।

में पड़े तो विजय, बुध, गुरु, शुक्र और सोम में पड़े तो सन्धि होगी। पूर्व से पश्चिम तक बारह रेखाएँ खींचकर छह रेखाएँ दक्षिणोत्तर लिखें, उसमें प्रथम ऊपरवाले कोष्ठ में १४, २७, २, १२, १५, ६, ४, ३, १७, ८ और ८ अङ्कों को लिखें। अ से ह तक के अक्षरों को नीचे के कोष्ठ में लिखे, नाम से बने हुए अक्षरों के द्वारा बने हुए पिण्ड में आठ से भाग देकर एक आदि शेष के अनुसार वायस, रासभ, वृषभ, कुञ्जर, सिंह, रवर, धूम्र आठ मण्डल होते हैं, इसमें वायस-मण्डल से प्रबल रासभ होता है। इसमें उत्तरोत्तर मण्डल बलवान् होते हैं ।।१४-२०।।

श्री अग्निमहापुराण में घातचक्रादि-वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३१।।

अध्याय १३२

सेवाचक्रादि-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं लाभालाभ सूचक सेवा-चक्र के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। इस चक्र के द्वारा पिता, माता, भाई और दम्पती को एक-दूसरे से प्राप्त होनेवाली सेवा का ज्ञान हो सकता है। पहले छह ऊर्ध्व रेखाओं को खींचकर उसके बाद उन्हें काटनेवाली आठ तिर्यक् रेखाओं को खींचना चाहिए ।।१-२।। इस प्रकार पैंतीस कोष्ठक बन जाते हैं। इन कोष्ठकों में पाँच स्वरों, स्पर्शवर्णों को लिख देना चाहिए। यह स्पर्शवर्ण क से लेकर ह तक होते हैं। किन्तु इनमें तीन अङ्कों को वर्जित कर देना चाहिए। इन अक्षरों को सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु और मृत्युवर्णों में निबद्ध

---

१ क. ङ. °करयान°। २ क. ख. ग. ङ. °वतरु°। च. °व रुरु°। ३ क. ख. ग. ङ. च. °रः। तरो°। ४ क. ङ. °तः। यस्मि°। ५ क. ङ. तेष्ववं°। ६ क. ख. ग. ङ. च. °स्त्रीणि व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकर्मसु । (एषां[2] मध्ये यदा नाम लक्षयेत्तु प्रयत्नतः ।।५।।
आत्मपक्षे स्थिताः सत्त्वाः सर्वे ते शुभदायकाः । द्वितीयः पोषकश्चैव तृतीयश्चार्थदायकः ।।६।।
आत्मनाशश्चतुर्थस्तु पञ्चमो मृत्युदायकः । स्थानमेवार्थलाभाय मित्रभृत्यादिबान्धवाः ।।७।।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च सर्वे ते फलदायकाः । अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकर्मसु) ।।८।।
अकारान्तं यथा प्रोक्तम् इ उ ए[3] विदुस्तथा[4] । पुनश्चैवांशकान्वक्ष्ये[5] वर्गाष्टकसुसंस्कृतान् ।।९।।
देवाः अकारवर्गे तु दैत्याः कवर्गमाश्रिताः । नागाश्चैव चवर्गाः (र्गे) स्युर्गन्धर्वाश्च टवर्गजाः ।।१०।।
तवर्ग ऋषयः प्रोक्ता पवर्गे राक्षसाः स्मृताः । पिशाचाश्च यवर्गे च शवर्गे मानुषाः स्मृताः ।।११।।
देवेभ्यो बलिनो दैत्या दैत्येभ्यः पन्नगास्तथा । पन्नगेभ्यश्च गन्धर्वा गन्धर्वादृषयो वराः ।।१२।।
ऋषिभ्यो राक्षसाः शूरा राक्षसेभ्यः पिशाचकाः । पिशाचेभ्यो मानुषाः स्युर्दुर्बलं वर्जयेद्बली ।।१३।।
पुनर्मैत्रविभागं[6] तु ताराचक्रं क्रमाच्छृणु । नामाद्यक्षरमृक्षं तु स्फुटं कृत्वा तु पूर्वतः[7] ।।१४।।
ऋक्षे तु संस्थितास्तारा नवत्रिका यथाक्रमात् । जन्मसम्पद्विपत्क्षेमं नामार्क्षात्तारका इमाः ।।१५।।
प्रत्यरा धनदा[8] षष्ठी नैधनामैत्रके परे । परमै (त्रि) त्राऽन्तिमा तारा जन्मतारा[9] तु शोभना ।।१६।।

कर लेना चाहिए। अरि और मृत्यु इन दोनों वर्णों को सभी कर्मों में वर्जित कर देना चाहिए ।।३-४$\frac{1}{2}$।। इनके बीच में यत्नपूर्वक नाम का लक्षण करना चाहिए। अपने पक्ष में रहनेवाले सभी सत्त्व शुभ फल प्रदान करनेवाले होते हैं। उससे दूसरे और तीसरे सत्त्व पोषक और अर्थदायक होते हैं ।।५-६।। चौथा सत्त्व आत्म-नाशक और पाँचवाँ मृत्युदायक होता है। मित्र, भृत्य और बान्धव अक्षरों से युक्त कोष्ठक धन प्रदान करनेवाले होते हैं ।।७।। सिद्ध, साध्य और सुसिद्ध कोष्ठकों में रहनेवाले अक्षर फलदायक होते हैं। सभी कर्मों में अरि और मृत्यु कोष्ठकों को वर्जित करना चाहिए ।।८।। इस सन्दर्भ में अकारान्त अक्षरों के अन्तर्गत इ, उ और ए को भी समझना चाहिए। अब मैं उन विभिन्न अंशों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जिनके लिए अक्षरों के विभिन्न वर्गों का प्रयोग होता है ।।९।। अकार वर्ण से देवता, कवर्ग से दैत्य, चवर्ग से नाग, टवर्ग से गन्धर्व, तवर्ग से ऋषि, पवर्ग से राक्षस, यवर्ग से पिशाच और शवर्ग से मनुष्य समझे जाते हैं ।।१०-११।। देवताओं से बलवान् दैत्य हैं, दैत्यों से बलवान् सर्प, सर्पों से गन्धर्व और गन्धर्वों से श्रेष्ठ ऋषि होते हैं। इसी प्रकार ऋषियों से राक्षस, राक्षसों से पिशाच और पिशाचों से बलवान् मनुष्य होते हैं। बलवान् के द्वारा दुर्बल को वर्जित होना चाहिए ।।१२-१३।। अब मुझसे क्रमशः मित्र-विभाग और ताराचक्र के विषय में सुनिये। नक्षत्र के नाम के आदि अक्षर को पूर्ववत् स्पष्ट करके इन नक्षत्रों को तारा कहते हैं जो नौ, नौ, नौ करके तीन बार त्रिकों में रहा करते हैं। इन त्रिकों के नाम हैं-जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यर, धनद, नैधन, मित्र और परमित्र। मनुष्यों को सभी कार्यों में जन्म तारा शुभ, सम्पत् तारा महाश्रेष्ठ और विपत् तारा निष्फल माना गया है।

१ एषां...वर्जयेत्सर्वकर्मसु नास्ति ख. पुस्तके। २ क. ङ. ए. ओ० वि°। ३ ख. ग. ए ऐ वि° वि°। ४ ख. ग. °दुत्तमाः। पु°। ५ क. ख. ग. घ. छ. °नर्मित्र°। ६ क. ङ. °तः। स्वर्गेषु सं°। ७ क. ङ. बलदा। ८ घ. छ. °रा त्वशो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पत्तारा महाश्रेष्ठा विपत्तारा तु निष्फला। क्षेमतारा सर्वकार्ये प्रत्यरा अर्थनाशिनी ।।१७।।
धनदा राज्यलाभादि (य) नैधना[1] कार्यनाशिनी। मैत्रतारा च मित्राय परमित्रा हितावहा ।।१८।।

ताराचक्रम्

[2]मात्रा[3] वै[4] स्वरसंज्ञा स्यान्नाममध्ये क्षिपेत्प्रिये। विंशत्या च हरेद्भागं यच्छेषं तत्फलं भवेत्[5]।।१९।।
उभयोर्नाममध्ये तु लक्षयेच्च धनं ह्यृणम्। हीनमात्रा ह्यृणं ज्ञेयं धनं मात्रादिकं पुनः ।।२०।।
धनेन मित्रता नृणामृणेनैव ह्युदास (सि) ता। सेवाचक्रमिदं प्रोक्तं लाभालाभादिदर्शकम् ।।२१।।
मेषमिथुनयोः प्रीतिर्मैत्री मिथुनसिंहयोः। तुलासिंहौ महामैत्री एवं धनुर्घटे पुनः ।।२२।।
[6]मित्रसेवां न कुर्वीत मित्रौ (त्रे) मीनवृषौ मतौ। वृषकर्कटयोर्मैत्री कुलीरघटयोस्तथा ।।२३।।
कन्यावृश्चिकयोरेवं तथा मकरकीटयोः। मीनमकरयोर्मैत्री तृतीयैकादशे स्थिता ।।२४।।
तुलामेषौ महामैत्री विद्विष्टो वृषवृश्चिकौ। मिथुनधनुषोः प्रीतिः ([7]कर्कटमकरयोस्तथा ।।
मृगकुम्भकयोः प्रीतिः) कन्यामीनौ तथैव च ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सेवाचक्रादिवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३२।।

क्षेम तारा सभी कार्यों में शुभ और प्रत्यर अर्थनाशक कहा गया है ।।१४-१७।। इसी प्रकार धनद तारा राज्य लाभ करानेवाला, नैधन तारा कार्यनाशक, मैत्र तारा मित्रों के लिए शुभ और परमित्र तारा हितकारी कहा गया है ।।१८।। अयि प्रिये! किसी प्रकार से सम्बद्ध दो व्यक्तियों के नामों में रहनेवाले स्वरों की संख्या के बराबर मात्राओं की संख्या की गणना करके उसे बीस की संख्या से भाग देना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त होनेवाले भजनफल से ऋण अथवा धन की गणना करनी चाहिए। कम मात्राओं से ऋण और अधिक मात्राओं से धन समझना चाहिए ।।१९-२०।। धन से मनुष्यों में मित्रता और ऋण से उदासीनता होती है। इसी को लाभालाभ सूचक सेवाचक्र कहा गया है। मेष, मिथुन राशिवाले पुरुषों में प्रीति होती है, मिथुन और सिंह राशिवालों में मैत्री तथा तुला और सिंह राशिवालों में धन तथा कुम्भ राशिवाले पुरुषों में महामैत्री होती है ।।२१-२२।। (इन सब बातों के ज्ञान के बिना) मित्रता नहीं करनी चाहिए। मीन और वृष राशिवालों में भी मित्रता मानी गयी है। इसी प्रकार वृष और कर्क राशिवालों, कन्या और वृश्चिक राशिवालों, मकर और कर्क राशिवालों तथा मीन और मकर राशिवाले पुरुषों में मैत्री रहती है। तुला और मेष राशिवालों में महामैत्री होती है, किन्तु वृष और वृश्चिक राशिवालों में द्वेष रहा करता है। इसी प्रकार मिथुन और धनु राशिवालों, कर्क और मकर राशिवालों, मृग और कुम्भ राशिवालों तथा कन्या और मीन राशिवालों में प्रीति रहा करती है ।।२३-२५।।

श्री अग्निमहापुराण में सेवाचक्रादि-वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३२।।

---

१ ख. ग. निधना। २ एतदध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नास्ति च. पुस्तके। ३ क. ङ. °त्रा चेश्वर°। ४ ख. ग. वै सुर°। ५ क. ङ. लभेत्। ६ क. ङ. मित्राशिवां। ७ कर्कटमकरयोः...प्रीतिः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नाना बलानि

ईश्वर उवाच

गर्भजातस्य वक्ष्यामि क्षेत्राधिपस्वरूपकम्। नातिदीर्घः कृशः स्थूलः समाङ्गो गौरपैत्तिकः ।।१।।
रक्ताक्षो गुणवाञ्शूरो गृहे सूर्यस्य जायते। सौभाग्यो(सुभगो)मृदुसारश्च जातश्चन्द्रगृहोदये ।।२।।
[1]वाताधिकोऽतिलुब्धादिर्जातो भूमिभुवो गृहे। बुद्धिमान्सुभगो मानी जातः सौम्यगृहोदये ।।३।।
बृहत्क्रोधश्च सुभगो जातो गुरुगृहे नरः। त्यागी भोगी च सुभगो जातो भृगुगृहोदये ।।४।।
बुद्धिमान्सुभगो मानी जातश्चाऽऽर्किगृहे नरः। सौम्यलग्ने तु सौम्यः स्यात्क्रूरः स्यात्क्रूरलग्नके ।।५।।
दशाफलं गौरि वक्ष्ये नामराशौ तु संस्थितम्। गजाश्वधनधान्यानि राज्यश्रीर्विपुला भवेत् ।।६।।
पुनर्धनागमश्चापि दशायां भास्करस्य तु[2]। द्रव्यस्त्रीदा चन्द्रदशा भूमिलाभः सुखं कुजे ।।७।।

अध्याय १३३

नाना-बल-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं गर्भ से सद्यः प्रसूत शिशु के क्षेत्राधिप–ग्रहों के स्वामियों के (कुण्डली में स्थित राशि के अनुकूल ग्रहों के स्वामी) के स्वरूप को बतलाऊँगा। जिसके घर में (अर्थात् कुण्डली स्थित लग्न में) सूर्य का क्षेत्र सिंह लग्न हो तो वह बालक न तो बहुत लम्बा, न बहुत पतला और न बहुत मोटा होता है बल्कि उसके सब अङ्ग समान (सुडौल) होते हैं। उसका वर्ण कुछ–कुछ पीतिमा लिये हुए गौर होता है। उसकी आँखें लाल होती हैं। वह गुणी तथा शूरवीर हुआ करता है। जिसकी कुण्डली में ग्रहपति चन्द्रमा होता है वह सौभाग्यशाली तथा कोमल (हृदय) हुआ करता है ।।१–२।। जिसकी (कुण्डली) में गृह स्वामी मङ्गल होता है, वह अत्यन्त लोभी तथा अधिक वायु (प्रकृति) वाला होता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली का गृहपति बुध होता है, वह बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी हुआ करता है। जिसका गृहपति बृहस्पति होता है वह महाक्रोधी और सुन्दर होता है, जिसके गृहपति शुक्र होते हैं, वह त्यागी, भोगी व भाग्यवान् होता है। जिसके घर का स्वामी शनि होता है, वह बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी हुआ करता है। जिस मनुष्य के लग्न में (सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र) ये सौम्यग्रह पड़ते हैं वह सौम्य स्वभाव का होता है और जिसके लग्न में (मङ्गल, शनि, राहु और केतु आदि) क्रूरग्रह पड़ते हैं, वह क्रूर स्वभाववाला हुआ करता है ।।३–५।। अयि गौरि! अब मैं मनुष्यों की नाम राशियों के अनुसार ग्रह दशाओं का फल बतलाऊँगा। सूर्य ग्रह की दशा आने पर मनुष्य को हाथी, घोड़े, धन-धान्य, विपुल राज्यश्री तथा बार–बार धन की प्राप्ति होती रहती है ।।६।। चन्द्रमा की दशा में (नाना प्रकार के) द्रव्य तथा स्त्री की प्राप्ति होती है। मङ्गल की दशा सुख और भूमिलाभ करानेवाली हुआ करती है ।।७।। बुध की दशा में धन-

---

१ एतदाद्यध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नास्ति च. पुस्तके। २ घ. छ. तु। दिव्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूमिर्धान्यं धनं बौधे गजास्वादिधनं गुरौ[1] । खाद्यपानधनं शुक्रे शनौ व्याध्यादि संयुतः[2] ।।८।।
स्थानसेवा दिवाध्यानं वाणिज्यं राहुदर्शने । वामनाडीप्रवाहे स्यान्नाम चेद्विषमाक्षरम् ।।९।।
तदा जयति संग्रामे शनिभौमस(सु?) सैंहिकाः । दक्षनाडीप्रवाहेऽर्के वाणिज्ये(ज्यं) चैव निष्फलम्[3] ।।१०।।
संग्रामे जयमाप्नोति समनामा नरो ध्रुवम् । अधश्चारे जयं विद्यादूर्ध्वचारे रणे मृतिम् ।।११।।
ॐ[4] हूम्[5], ॐ ह्रम्, ॐ स्फेम्, अस्त्रं[6] मोटय, ॐ चूर्णय[7] चूर्णय, ॐ सर्वशत्रुं मर्दय मर्दय,[8]
ॐ ह्रूम्, ॐ ह्रः फट् ।।१२।।
सप्तवारं न्यसेन्मन्त्रं ध्यात्वाऽऽत्मानं तु भैरवम् । चतुर्भुजं दशभुजं विंशद्बाह्वात्मकं[9] शुभम् ।।१३।।
शूलखट्वाङ्गहस्तं तु खड्गकट्टारिकोद्यतम् । भक्षणं (कं) परसैन्यानामात्मसैन्यपराङ्मुखम् ।।१४।।
सम्मुखं शत्रुसैन्यस्य शतमष्टोत्तरं जपेत् । [10]जपाड्डमरुकाच्छब्दाच्छस्त्रं त्यक्त्वा पलायते ।।१५।।
परसैन्यं (न्ये) शृणु भङ्गं प्रयोगेण पुनर्वदे । श्मशानाङ्गारमादाय विष्ठां चोलूककाकयोः ।।१६।।
कर्पटे प्रतिमां लिख्य[11] साध्यस्यैवाक्षरं यथा । नामाथ नवधाऽऽलिख्य रिपोश्चैव यथाक्रमम् ।।१७।।
मूर्ध्नि वक्त्रे ललाटे च हृदये गुह्यपादयोः । पृष्ठे तु बाहुमध्ये तु नाम वै नवधा लिखेत् ।।१८।।

धान्य और बृहस्पति की दशा में हाथी, घोड़े आदि धन की प्राप्ति होती है। शुक्र की दशा में खाने-पीने की वस्तुओं और धन का लाभ होता है। शनि की दशा रोग आदि के साथ आती है ।।८।। राहु की दशा आने पर स्थान-सेवा (नौकरी आदि), दिवा-ध्यान (धर्म-कर्म) तथा वाणिज्य का लाभ होता है। जिस व्यक्ति के नाम में अक्षरों की संख्या विषम होती है और वाम नाड़ी (स्वर) में यात्रा हो वह संग्राम में विजयी होता है और वह समय शनि, मङ्गल तथा राहु ग्रह का है ।।९-९$\frac{1}{2}$।। जिस व्यक्ति की दाहिनी नाड़ी दाहिना स्वर चले वह समय सूर्य का है, इस समय व्यापारादि निष्फल होता है। किन्तु जिस व्यक्ति के नाम में यदि अक्षरों की संख्या सम होती है तो वह व्यक्ति संग्राम में निश्चय ही विजयी हुआ करता है। पैदल यात्री की मृत्यु एवं सवारीवाले रणयात्री की मृत्यु होती है ।।१०-११।। 'ॐ हूम्, ॐ ह्रम्, ॐ स्फेम्, अस्त्रं मोटय, ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ सर्वशत्रुं मर्दय मर्दय, ॐ ह्रूम्, ॐ ह्रः फट्' इस मन्त्र का पाठ करके सात बार हृदय का स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर भैरव रूप में अपनी कल्पना करते हुए यह सोचना चाहिए कि 'मेरे चार भुजाएँ, दस भुजाएँ या बीस भुजाएँ हैं, मेरे हाथों में त्रिशूल, खट्वाङ्ग (अस्थि-पञ्जर), तलवार तथा कटार विद्यमान है। मैं शत्रु की सेना का भक्षण करनेवाला तथा अपनी सेना की रक्षा करनेवाला हूँ।' तदनन्तर शत्रु-सेना के सामने इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके डमरू बजाना चाहिए, ऐसा करने से शत्रु शस्त्र छोड़कर भाग जाता है ।।१२-१५।। अब मैं शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करने के लिए एक प्रयोग बतला रहा हूँ, उसे सुनो! श्मशान के कोयले और उल्लू तथा कौए की बीट को लाकर उनसे एक चिथड़े के ऊपर शत्रु का चित्र बनाये। चित्र के सिर, मुख, ललाट, हृदय, गुप्ताङ्ग, पैर, पीठ तथा बाहुमध्य में नौ बार शत्रु का नाम लिखे ।।१६-१८।। तदनन्तर युद्ध-

---

१ ख. ग. °रौ। स्थानयानं ध°। २ घ. छ. °तः। स्नानसेवादिनाध्या°। ३ क. घ. ङ. छ. °ष्फला। स°। ४ ख. ग. ॐ ह्रूम्, ॐ ह्रूम्, ॐ स्फे°। ५ क. ङ. च. °म्, स्फे°। ६ क. ङ. च. °स्त्रं कोटय चू°। ७ क. ङ. च. °य स°। ८ क. ङ. ॐ ह्रूः फ°। ख. ग. च. ॐ हः फ°। ९ क. ख. ग. ङ. च. °द्बाहूथवा शतम्। १० क. ङ जप्त्वा डमरुकास्नातशस्त्रं। ११ क. ङ. °ख्य रि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]मोटयेद्युद्धकाले तु उच्चरित्वा(समुच्चार्य)तु विद्यया । तार्क्ष्यचक्रं प्रवक्ष्यामि जयर्थं त्रिमुखाक्षरम् ।।१९।।
क्षिप ॐ स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत्[2] । दुष्टभूतग्रहार्तस्य व्याधितस्याऽऽतुरस्य च ।।२०।।
करोति यादृशं कर्म तादृशं सिध्यते खगात् । स्थावरं जङ्गमं चैव लूताश्च कृत्रिमं विषम् ।।२१।।
तत्सर्वं नाशमायाति साधकस्यावलोकनात् । पुनर्ध्यायेन्महातार्क्ष्यं द्विपक्षं मानुषाकृतिम् ।।२२।।
द्विभुजं वक्रचञ्चुं[3] च [4]गजकूर्मधरं प्रभुम् । असंख्योरगपादस्थमागच्छन्तं खमध्यतः ।।२३।।
ग्रसन्तं चैव खादन्तं तुदन्तं चाऽऽहवे रिपून् । चञ्च्वा हताश्च द्रष्टव्याः केचित्पादैश्च चूर्णिताः ।।२४।।
पक्षपातैश्चूर्णिताश्च केचिन्नष्टा दिशो दश । तार्क्ष्यध्यानान्वितो यश्च त्रैलोक्ये ह्यजयो भवेत् ।।२५।।
पिच्छिकां तु प्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनजां क्रियाम् ।।२६।।
ॐ हूरुं पक्षिन्क्षिप, ॐ हूं सः, महाबलपराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय भक्षय, ॐ मर्दय मर्दय,
ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ विद्रावय विद्रावय, ॐ हूं खः, ॐ भैरवो ज्ञापयति स्वाहा ।।२७।।
अमुं (स्य) चन्द्रग्रहणे तु जपं कृत्वा तु पिच्छिकाम् । मन्त्रयेद्भ्रामयेत्सैन्यं सम्मुखं गजसिंहयोः ।।२८।।
ध्यानाद्रवान्मर्दयेच्च सिंहारूढो मृगाविकान्[5] । शब्दाद्भङ्गं प्रवक्ष्यामि दूरं[6] मन्त्रेण बोधयेत् ।।२९।।

काल में उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर मोड़कर रख ले। अब मैं युद्ध में विजय के लिए गरुड़-चक्र का वर्णन करूँगा। 'क्षिप ॐ स्वहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत्' यह त्रिमुखाक्षर मन्त्र है। यह गरुड़ का आत्मस्वरूप और शत्रु, रोग और विषाद का विनाश करनेवाला है। इस मन्त्र का जप करने से दुष्ट भूतों और ग्रहों से पीड़ित, व्याधिग्रस्त या रोगी व्यक्ति की पीड़ा दूर हो जाती है। साधक जैसा कर्म करता है, उसे गरुड़ से वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। सब प्रकार का विष, चाहे वह स्थावर हो चाहे जङ्गम से उत्पन्न हो या कृत्रिम हो, गरुड़-मन्त्र के साधक को देखते ही नष्ट हो जाता है। तदनन्तर महागरुड़ का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उनके दो पंख हैं, उनकी आकृति मनुष्य जैसी है, उनके दो भुजाएँ हैं, उनकी चोंच टेढ़ी है, उन्होंने हाथी और कछुए को धारण कर रखा है। वे शक्तिमान् हैं। वे असंख्य सर्पों को अपने चरणों में दबाये हुए आकाश के बीच से आ रहे हैं। संग्राम में शत्रुओं को क्षत-विक्षत करते हुए निगल रहे हैं, उन्हें खा रहे हैं तथा उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दे रहे हैं। कुछ शत्रु उनकी चोंच से हताहत दिखायी पड़ रहे हैं, तो कोई उनके चरणों में चूर्ण-चूर्ण किये जा चुके हैं। कुछ उनके पक्षों के आघात से चूर-चूर और नष्टभ्रष्ट होकर दशों दिशाओं में भाग रहे हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार गरुड़ का ध्यान करता है, वह त्रैलोक्य-विजयी होता है ।।१९-२५।। अब मैं मन्त्र की साधना से उत्पन्न पिच्छिका-क्रिया (मोर की पूँछ से की जानेवाली क्रिया) का वर्णन करूँगा। चन्द्र-ग्रहण के समय 'ॐ हूं पक्षिन्क्षिप····भैरवो ज्ञापयति स्वाहा' इस मन्त्र से मोर की पूँछ को अभिमन्त्रित करके हाथी-घोड़े के सम्मुख सेना के ऊपर घुमा देना चाहिए। फिर मन्त्र का ध्यान करते हुए वह शीघ्र ही सेना का संहार उसी प्रकार से कर डालता है, जिस प्रकार सिंह हिरनों और भेंड़ों का (सर्वनाश) कर देता है। अब मैं इस मन्त्र का प्रयोग बतलाऊँगा जिसके शब्दों को दूर ही से सुनने पर शत्रु तितर-बितर हो जाते हैं ।।२६-२९।। मातृकादेवियों

---

१ क. ख. ङ. च. मोचये°। २ क. ङ. °दिकृत्। ३ क. ङ. वज्रचक्रं। ४ क. ङ. वज्रचर्मवहं। ५ ख. °गादिका°। ६ ङ. नूनं। ख. ग. हर।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मातृणां चरकं दद्यात्कालरात्र्या विशेषतः। श्मशानभस्मसंयुक्तं मालती चामरी तथा ।।
कर्पास[1] मूलमात्रं तु तेन दूरं तु बोधयेत् ।।३०।।
ॐ, अहे हे महेन्द्रि, अहे महेन्द्रि भञ्ज हि। ॐ जहि मसानं हि खाहि खाहि किलि किलि,
ॐ हुं फट् ।।३१।।
[2]अरेर्नाशं दूरशब्दाज्जप्तया भङ्गविद्यया। अपराजिता च धत्तूरस्ताभ्यां तु तिलकेन हि ।।३२।।
ॐ किलि[3] किलि विकिलि, इच्छाकिलि भूतहनि शङ्खिनि, उमे दण्डहस्ते रौद्रि माहेश्वरि,
उल्कामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णे शुष्कजङ्घेऽलम्बुषे हर हर सर्वदुष्टान्खन[4] खन,
ॐ यन्मां निरीक्षयेद्देवि तांस्तान्मोहय, ॐ रुद्रस्य हृदये स्थिता रौद्रि सौम्येन भावेनाऽऽत्मरक्षां
ततः कुरु स्वाहा ।।३३।।
बाह्यतो मातृः संलिख्य सकलाकृतिवेष्टिताः। नागपत्रे[5] लिखेद्विद्यां सर्वकामार्थसाधिनीम् ।।३४।।
हस्ताद्यैर्धारिता पूर्वं ब्रह्मरुद्रेन्द्रविष्णुभिः[6]। गुरुसंग्रामकाले तु विद्यया रक्षिताः सुराः ।।३५।।
रक्षया नारसिंह्या[7] च भैरव्या शक्तिरूपया। सर्वे (र्व) त्रैलोक्यमोहिन्या गौर्या देवासुरे रणे[8] ।।३६।।
बीजसम्पुटितं नाम कर्णिकायां दलेषु च। पूजाक्रमेण चाङ्गानि रक्षायन्त्रं स्मृतं शुभे ।।३७।।
मृत्युञ्जयं प्रवक्ष्यामि नामसंस्कारमध्यगम्। [9]कलाभिवेष्टितं पश्चात्सकारेण निबोधितम् ।।३८।।

को और विशेषतया कालरात्रि देवी को श्मशान की भस्म, मालतीपुष्प, चामर तथा कपास की जड़ के साथ चरु देकर दूर से ही 'ओम् अहे हे महेन्द्रि·····ॐ हुं फट्' इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए। इस मन्त्र को भङ्गविद्या कहते हैं। अपराजिता पुष्प और धत्तूरे का तिलक लगाकर उच्चस्वर से इसका पाठ करने से शत्रु का नाश हो जाता है ।।३०-३२।। 'ॐ किलि किलि····ततः कुरु स्वाहा' नागपत्र (पान) के ऊपर सब प्रकार की आकृतियों से युक्त मातृदेवियों के साथ इस विद्या (मन्त्र) को लिखकर पहनने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।।३३-३४।। प्राचीनकाल में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा विष्णु ने इस मन्त्र को भुजा इत्यादि अङ्गों पर धारण किया था, जिससे उन्होंने देवताओं को घोर संग्राम से बचा लिया था। देवासुर संग्राम में (इस मन्त्र के प्रभाव से) रक्षा, नारसिंही, भैरवी, शक्तिरूपा, त्रैलोक्यमोहिनी तथा गौरी ने देवताओं की रक्षा की थी ।।३५-३६।। अयि सुन्दरि! रक्षा यन्त्र धारण करने का विधान यह है कि कमल-पत्र और कर्णिका के ऊपर बीज-मन्त्र के साथ अपना नाम लिखकर गौण देवताओं के साथ देवी की पूजा करके उसे पहन लेना चाहिए ।।३७।। अब मैं मृत्युञ्जय-यन्त्र का निरूपण करूँगा। (कमलपत्र के ऊपर) कला मन्त्र से आवेष्टित नाम को संस्कारों के बीच (अर्थात् संस्कारयुक्त) करके उसके पश्चात् 'स' अक्षर लिखना चाहिए। फिर

---

१ क. ङ. °सस्य मू°। २ क. ङ. अनन्ता शब्द न शब्दाजप्तपा दञ्चवि°। ३ ग. ङ. किणि किणि इच्छाकिणि भू°। ४ ख. ङ. °ष्टशन्खादय खादय, ॐ। ५ क. ङ. °गयन्त्रे लि°। ६ क. ङ. °भिः। शुना संग्रामकाले तु विश्वधाराक्षि°। ७ क. ङ. °सिंहाश्चोद्भेरुच्या श°। ८ क. ङ. °णे। कार्णिका पुटिकां ना°। ९ कलाभिवेष्टितं····निबोधितम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जकारं विन्दुसंयुक्तमोंकारेण समन्वितम्। धकारोदरमध्यस्थं वकारेण निबोधितम्[१] ।।३९।।
चन्द्रसम्पुटमध्यस्थं सर्वदुष्टविमर्दकम्[२]। अथवा कर्णिकायां च लिखेन्नाम च कारणम् ।।४०।।
पूर्वे दले तथोंकारं स्वदक्षे[३] चोत्तरे लिखेत्। आग्नेयादौ च[४] हूंकारदले षोडशके स्वरान् ।।४१।।
चतुस्त्रिंशद्दले कद्यान्बाह्ये[५] मन्त्रं च मृत्युजित्। लिखेद्वै भूर्जपत्रे तु रोचनाकुङ्कुमेन च ।।४२।।
[६]कर्पूरचन्दनाभ्यां च श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत्। [७]सिक्थकेन परिच्छाद्य कलशोपरि पूजयेत् ।।४३।।
यन्त्रस्य धारणाद्रोगाः शाम्यन्ति रिपवो मृतिः। विद्यां तु भेलखीं[८] वक्ष्ये[९] विप्रयोगमृतेर्हरीं (रा) म् ।।४४।।
आं (ॐ) वातले वितले विडालमुखि, इन्द्रपुत्रि, उद्भवो वायुदेवेन खीलि, आः, जी हाजा मयि
वाह, इत्यादि,[१०] दुःखनित्यकण्ठोच्चैर्मुहूर्तान्वया, अह मां यस्महमुपाडि, ॐ भेलखि, ॐ स्वाहा[११] ।।४५।।
नवदुर्गासप्तजप्तान्मुखस्तम्भो मुखस्थितात्। ॐ चण्डि, ॐ हूं फट् स्वाहा ।।४६।।
गृहीत्वा सप्तजप्तं तु खड्गयुद्धेऽपराजितः ।।४७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवे नानाबलवर्णनं नाम
त्रयत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३३।।

विन्दु संयुक्त जकार तथा ॐकार लिखकर बीच में धकार एवं चन्द्र विन्दु सम्पुटित वकार लिखना चाहिए। इस प्रकार बनाया हुआ मृत्युञ्जय यन्त्र समस्त दुष्टों का विनाश करनेवाला हुआ करता है। अथवा कमल की कर्णिका के ऊपर यन्त्र धारण करनेवाले का नाम तथा (धारण करने का) प्रयोजन लिख देना चाहिए ।।३८-४०।। फिर अपनी दाहिनी तथा बायीं तरफ पूर्व दिशा में कमल-पत्र बनाकर उसके ऊपर ओंकार, दक्षिण-पूर्व आदि कोणों में बनाये दलों के ऊपर हूंकार, सोलह दलों के ऊपर स्वर वर्ण, चौंतीस दलों के ऊपर 'क' आदि व्यञ्जक वर्ण और बाह्यपत्र पर मृत्युञ्जय मन्त्र लिखना चाहिए। इस मन्त्र में गोरोचना, कुंकुम, कपूर तथा चन्दन से भोजपत्र पर लिखकर उसे सफेद तागे से लपेट देना चाहिए। तदनन्तर उसके ऊपर मोम चढ़ाकर उसे कलश के ऊपर रखकर उसकी पूजा करनी चाहिए। इस यन्त्र को पहनने से रोग शान्त होते हैं तथा शत्रुओं की मृत्यु होती है ।।४१-४३½।। अब मैं भेलखी विद्या (मन्त्र) का निरूपण करूँगा, जो वियोग तथा असामयिक मृत्यु का नाश करनेवाली है-मन्त्र यह है 'ॐ वातले-वातले····ॐ भेलखि, ॐ स्वाहा' इस नव दुर्गा मन्त्र को सात बार अपने मुख में ही जपने से शत्रु का मुँह बन्द हो जाता है। 'ॐ चण्डि, ॐ हूं फट् स्वाहा' इस मन्त्र को सात बार जपने से मनुष्य खड्गयुद्ध में पराजित नहीं हुआ करता है ।।४४-४७।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णव में नानाबल-वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३३।।

---

१ च. °म्। मन्त्रसं°। २ क. ङ. °दुखवि°। ३ क. संदले। ख. संदक्षे। च. सदक्षे। ४ ख. ग. च. हरूं का। ५ च. °द्यान्वक्ष्ये म°। ६ कर्पूरचन्दनाभ्यां···वेष्टयेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ क. ङ. शिक्यकेन। घ. सिष्ठके°। ८ क. ङ. भैरवीं°। ९ क. °क्ष्ये रिपुरोग°। १० घ. इहादि। ११ क. ङ. °हा। वनमुक्तान्सप्त।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यविजयविद्या

ईश्वर उवाच

त्रैलोक्यविजयां[1] वक्ष्ये सर्वयन्त्रविमर्दिनीम्[2] ।।१।।

ॐ हूं क्षूं ह्रूं, ॐ नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि रक्तनेत्रे किलि किलि महानिस्वने कुलु, ॐ निर्मांसे कट कट गोनसाभरणे चिलि चिलि शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्द्रचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नित्यासिलताधारिणि भृकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदो विलिप्तगात्रे कह कह, ॐ हस हस क्रुद्ध, क्रुद्ध, ॐ नीलजीमूतवर्णेऽभ्रभालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ घण्टारवावकीर्णदेहे, ॐ सिंसिस्थेऽरुणवर्णे, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रं रौद्ररूपे हूं ह्रीं क्लीम्, ॐ, ह्रीं ह्रूमोमाकर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे हः खः, वज्रिणि[3] भिन्द, ॐ महाकाये छिन्द ॐ करालिनि किटि किटि महाभूतमातः सर्वदुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा ।।२।।

नीलवर्णां प्रेतसंस्थां विंशहस्तां यजेज्जये । न्यासं कृत्वा तु पञ्चाङ्गं रक्तपुष्पाणि होमयेत् ।।

सङ्ग्रामे सैन्यभङ्गः स्यात्त्रैलोक्यविजयापठात्[4] ।।३।।

ॐ बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय, ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रून्द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ओमिन्द्रं टालय, ॐ पर्वतांश्चालय, ॐ सप्तसागराञ्शोषय, ॐ छिन्द च्छिन्द बहरूपाय नमः ।।४।।

भुजंगं नाममृन्मूर्तिसंस्थं विद्यादरिं ततः ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयत्रैलोक्यविजयविद्यावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३४।।

अध्याय १३४

त्रैलोक्यविजयविद्या-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं सम्पूर्ण यन्त्रों को नष्ट करनेवाली विद्या का वर्णन करूँगा। 'ॐ हूं क्षूं ह्रूम्'.....ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा' जय-प्राप्ति के लिए इस मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करके नीलवर्णवाली, प्रेत पर आरूढ़ और बीस भुजाओंवाली देवी की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर लाल फूलों से हवन करना चाहिए। उपर्युक्त त्रैलोक्य विजय विद्या का पाठ करने से सङ्ग्राम में शत्रु-सेना तितर-बितर हो जाती है ।।१-३।। 'ॐ बहुरूपाय स्तम्भय.....छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः' इस मन्त्र का जप करते हुए मिट्टी की बनी शत्रु की मूर्ति के ऊपर बैठे हुए साँप का ध्यान करना चाहिए ।।४-५।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णवीय त्रैलोक्यविजयविद्या-वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३४।।

---

१ क. ङ. जयं व°। २ क. ङ. °मर्दनम्। ३ घ. °णि ह्रूं क्षूं क्षां क्षोभरूपिणि प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल, ॐ भीमभीषणे भि°। ४ ख. ग. °पदात्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयविद्या

ईश्वर उवाच

सङ्ग्रामविजयां विद्यां पदमालां[1] वदाम्यहम् ।।१।।

ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानसमाकुले कालरात्रि महागणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणि (हस्ते), अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ हूं फट्, दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि, ॐ ललज्जिह्वे, ॐ भीं भृकुटिमुखि हुंकारभयत्रासनि कपालमालावेष्टितजटामुकुटशशाङ्कधारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ ह्रूं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्वविघ्नविनाशिनि, इदं कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्, ओमङ्कुशेन शमय, प्रवेशय, ॐ रङ्ग रङ्ग कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओमनुक्रमय, ॐ वज्रशरीरं पातय, ॐ त्रैलोक्यगतं दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने करङ्किणि[2] दह, ॐ पच पच, ॐ गृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येनर्षिसत्येनाऽऽवेशय, ॐ किलि किलि ॐ खिलि खिलि विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रू भङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज, ॐ ज्वालामुखि स्वन[3], ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि घूर्णय भूमिं पातय, ॐ शिरो गृह्ण चक्षुर्मीलय, हस्तपादौ गृह्ण मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ दण्डेन ताडय ताडय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्तया भेदय दंष्ट्रया कीलय, ॐ कर्णिकया[4] पाटय, ओमङ्कुशेन गृह्ण, ॐ [5]शिरोक्षिज्वरमैकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान्मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूमि पातय, ॐ गृह्ण, ॐ [6]ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि (ॐ) कौमार्येहि ॐ

अध्याय १३५

संग्रामविजयविद्या-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं पदसमूह रूप संग्राम विजया नामक विद्या का वर्णन करता हूँ ।।१।। 'ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि····विच्चे हुं फट् स्वाहा' यह जया नाम की पदमाला सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि करनेवाली है।

---

१ क. ङ. पट्टमा°। २ ख. ध. °णि, ॐ करङ्कमालाधारिणि द°। ३ क. ख. ग. खल। ४ क. ख. ग. च. कर्तृक°। ५ क. ख. ग. शिरर्तिज्व°। ६ क. ङ. ॐ सूतकब्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि, ॐ चामुण्ड एहि, ॐ रेवत्येहि, ओमाकाशरेवत्येहि, ॐ हिमवच्चारिण्येहि[1], ॐ रुरुमर्दिन्यसुर क्षयंकर्याकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट समयं तिष्ठ, ॐ मण्डलं प्रवेशय, ॐ गृह्ण मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध हस्तपादौ च बन्ध दुष्टग्रहान्सर्वान्बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो बन्ध, अधास्ताद्बन्ध, ॐ सर्वं बन्ध, भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ [2]विच्चे हुं फट् स्वाहा ।।२।।

पदमाला जयाख्येयं सर्वकर्मप्रसाधिका । सर्वदा होमजप्याद्यैः पाठाद्यैश्च रणे जयः ।।३।।

अष्टाविंशभुजा ध्येया असिखेटकषट्करौ । गदादण्डयुतौ चान्यौ शरचापधरौ परौ ।।४।।

मुष्टिमुगदरयुक्तौ च शङ्खखड्गयुतौ परौ । ध्वजवज्रधरौ चान्यै सचक्रपरशू परौ ।।५।।

डमरुदर्पणाढ्यौ च शक्तिकुन्तधरौ परौ । हलेन मुसलेनाऽऽढ्यौ पाशतोमरसंयुतौ ।।६।।

ढक्कापणव संयुक्तावभयौ मुष्टिकान्वितौ । तर्जयन्ती च महिषं घातनी होमतोऽरिजित् ।।

त्रिमध्वाक्ततिलैर्होमो न देया यस्य कस्यचित् ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवे सङ्ग्रामविजयाविद्यावर्णनं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३५।।

इसके सदैव हवन, जप तथा पाठ आदि करने से रण में विजय होती है ।।२-३।। उपर्युक्त मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उनके अट्ठाईस भुजाएँ हैं, जिनके दो-दो हाथों में क्रमशः तलवार तथा खेटक अस्त्र, गदा तथा दण्ड, बाण तथा धुनष, मुष्टिक अस्त्र तथा मुद्गर, शङ्ख तथा खड्ग, ध्वज तथा वज्र, चक्र तथा परशु, डमरू तथा दर्पण, शक्ति तथा माला, हल तथा मुशल, पाश तथा तोमर, ढक्वा तथा पणव और अभय अस्त्र तथा मुष्टिक अस्त्र विद्यमान हैं। वे महिषासुर का ताड़न कर रही हैं तथा (उसका) हनन करनेवाली हैं। उनके मन्त्र से हवन करने से मनुष्य शत्रु-विजयी हो जाता है। हवन त्रिमधु (घी, चीनी और मधु) से सने हुए तिल से करना चाहिए। यह मन्त्र जिस किसी को ही नहीं देना चाहिए ।।४-७।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णवीय संग्रामविजयविद्या वर्णन नामक
एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३५।।

---

१ क. छ. ॰वन्तधारि॰। २ क. ङ. च. विद्येहु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रचक्रम्

ईश्वर उवाच

अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि यात्रादौ च फलप्रदम्। अश्विन्यादौ लिखेच्चक्रं त्रिनाडीपरिभूषितम् ।।१।।
अश्विन्यार्द्रादिभिः पूर्वा ततश्चोत्तरफाल्गुनी। [1]हस्ता (स्तो) ज्येष्ठा तथा मूलं वारुणं[2] चाप्यजैकपात् ।।२।।
नाडीयं प्रथमा चान्या याम्यं मृगशिरस्तथा। पुष्यं भाग्यं तथा चित्रा मैत्रं चाऽऽप्यं[3] च वासवम् ।।३।।
अहिर्बुध्नं[4] तृतीयाऽथ कृत्तिका रोहिणी ह्यहिः। चित्रा[5] स्वाती विशाखा च[6] श्रवणा रेवती च भम् ।।४।।
नाडीत्रितयसंजुष्टग्रहाज्ज्ञेयं[7] शुभाशुभम्। चक्रं फणीश्वरं[8] तत्तु त्रिनाडीपरिभूषितम्[9] ।।५।।
[10]रविभौमार्कराहुस्थमशुभं[11] स्याच्छुभं परम्। देशग्रामयुता[12] भ्रातृभार्याद्या [13]एकशः शुभाः ।।६।।
अ भ कृ रो मृ आ पु पु आ म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे ।।७।।
अत्रसप्तविंशति नक्षत्राणि ज्ञेयानि ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रचक्रवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३६।।

अध्याय १३६

नक्षत्रचक्र-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं यात्रा आदि काल में फल प्रदान करनेवाले चक्र का वर्णन करूँगा। तीन नाड़ियों (रेखाओं) का एक चक्र बनाकर उसके भीतर अश्विनी आदि नक्षत्रों के प्रथम अक्षर लिखने चाहिए। पहली रेखा के अन्दर अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा मूल, शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपद नक्षत्रों को लिखना चाहिए। दूसरी रेखा के अन्दर भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, ज्येष्ठा तथा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों के नाम लिखने चाहिए। तीसरी रेखा के अन्दर कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, स्वाती, विशाखा, श्रवण तथा रेवती नक्षत्रों का नाम लिखना चाहिए ।।१-४।। तीन रेखाओं का एक फणीश्वर चक्र होता है, जिसके ग्रहों द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान होता है। इस चक्र में सूर्य, मङ्गल, शनि तथा राहु द्वारा किया जानेवाला अशुभवाद में शुभ हो जाता है। इससे देश, ग्राम, भ्रातृ-स्नेह तथा पत्नी-प्रेम का लाभ हुआ करता है। फणीश्वर-चक्र के सत्ताईसों नक्षत्र इस प्रकार समझना चाहिए–अ भ कृ रो मृ आ पु पु आ म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे ।।५-८।।

श्री अग्निमहापुराण में नक्षत्रचक्र-वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३६।।

---

१ क. ख. ग. ङ. हस्तज्ये°। २ क. ख. ग. ङ. °णं वाऽप्य। ३ क. ङ. चाग्यं सवा°। ४ क. ॰ बुध्नतृ°। ५ ग. मित्रः। ६ क. ङ. च. श्रवणं रेवती तु च। ना°। ७ क. ङ. °संदुष्टग्रहैर्ज्ञेयं। ८ क. ङ. °रं तद्वत्त्रिना°। ९ क. ङ. °रिदिषि°। १० रविभौमार्क...परम् ग. पुस्तके नास्ति। ११ क. ङ. °हुस्था अशुभस्था शुभावहा। दे°। १२ क. ङ. °मसुता। १३ क. ङ. एकगा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महामारीविद्याकथनम्

ईश्वर उवाच

महामारीं प्रवक्ष्यामि विद्यां शत्रुविमर्दिनीम् ।।१।।

ॐ ह्रीं[1] महामारि [2]रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याऽऽज्ञाक (का) रिणि सर्वभूतसंहारकारिणि, अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच पच, ॐ छिन्द च्छिन्द, ॐ मारय मारय, ओमुत्सादयोत्सादय, ॐ सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वकायिके हुं फट् स्वाहेति ।।२।।

ॐ मारि हृदयाय नमः ॐ महामारी शिरसे स्वाहा । ॐ कालरात्रि शिखायै वौषट् । ॐ कृष्णवर्णे खः कवचाय हुम् । ॐ तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयङ्करि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु[3] हं त्रिनेत्राय वषट् । ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महाकालि, अस्त्राय हुं फट् ।।३।।

एष न्यासो महादेवि कर्त्तव्यः साधकेन तु[4] । शवादि वस्त्रमादाय चतुरस्त्रं त्रिहस्तकम् ।।४।।

कृष्णवर्णां त्रिवक्त्रां[5] च चतुर्बाहुं समालिखेत् । पटे विचित्रवर्णैश्च धनुः शूलश्च कर्तृकाम्[6] ।।५।।

खट्वाङ्गं धारयन्ती च कृष्णाभं पूर्वमाननम् । तस्य दृष्टिनिपातेन भक्षयेदग्रतो नरम् ।।६।।

द्वितीयं याम्यभागे तु रक्तजिह्वं भयानकम् । [7]लेलिहानं करालं च दंष्ट्रोत्कटभयानकम् ।।७।।

अध्याय १३७

महामारी विद्या-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं शत्रु को कुचलनेवाली महामारी विद्या (मन्त्र) का वर्णन करूँगा ।।१।। 'ॐ ह्रीं महामारि····हुं फट् स्वाहेति' यह महामारी मन्त्र है। अयि महादेवि! साधक को 'ॐ मारि हृदयाय नमः·····अस्त्राय हुं फट्' इन मन्त्रों को पढ़कर (विभिन्न अङ्गों का) स्पर्श करना चाहिए ।।२-३½।। तदनन्तर शव आदि का वस्त्र लेकर उसे तीन हाथ लम्बा और चौकोर बनाकर उसके ऊपर (देवी का) एक चित्र बनाना चाहिए। उस चित्र का वर्ण काला हो, तीन मुख हों और चार भुजाएँ हों। उसे वस्त्र के ऊपर विभिन्न रङ्गों में धनुष, शूल, कर्तृका आदि अस्त्र तथा अस्थिपञ्जर को लिये हुए देवी का चित्रण करना चाहिए। उसका एक मुख काला तथा पूर्व दिशा की ओर झुका हुआ होना चाहिए! उस (मुख) में सामने के मनुष्य को देखते ही चट कर जाने का-सा भाव अङ्कित होना चाहिए ।।४-६।। दूसरा मुख दक्षिण दिशा की ओर झुका, भयानक, लाल और लपलपाती जिह्वा से युक्त तथा उत्कट दंष्ट्राओं के कारण देखने में भयंकर होना चाहिए। उसमें इस प्रकार का भाव अंकित होना चाहिए कि वह घोड़े आदि

---

१ ख. ग. क्लीं। २ ख. ग. °हाविर°। ३ क. ग. ॐ। ४ क. ग. ङ. तु। सर्वादि°। ५ ख. ग. त्रिरक्तां च। ६ क. ग. ङ. कार्तिका°। ७ लेलिहानं····भयानकं च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]तस्य दृष्टिनिपातेन भक्ष्यमाणं हयादिकम् । तृतीयं च मुखं देव्याः [2]श्वेतवर्णं गजादिनुत् ।।८।।
गन्धपुष्पादिमध्वाज्यैः पश्चिमाभिमुखं यजेत्[3] । मन्त्रस्मृतेरक्षिरोगः शिरोरोगादि नश्यति ।।९।।
वश्याः स्युर्यक्षरक्षाश्च (क्षांसि) नाशमायान्ति शत्रवः । समिधो निम्बवृक्षस्य ह्यजारक्तविमिश्रिताः ।।१०।।
[4]मारयेत्क्रोधसंयुक्तो होमादेव न संशयः । परसैन्यमुखो भूत्वा सप्ताहं जुहुयाद्यदि ।।११।।
व्याधिभिर्गृह्यते[5] सैन्यं भङ्गो भवति वैरिणः । समिधोऽष्टसहस्रं तु यस्य नाम्ना तु होमयेत् ।।१२।।
अचिरान्म्रियते सोऽपि ब्रह्मणा यदि रक्षितः । उन्मत्तसमिधो रक्तविषयुक्तं सहस्रकम् ।।१३
दिनत्रयं ससैन्यश्च नाशमायाति वै रिपुः । राजिकालवणैर्होमाद्भङ्गोऽरेः स्याद्दिनत्रयम् ।।१४।।
खररक्तसमायुक्तहोमादुच्चाटयेद्रिपुम् । [6]काकरक्त समायोगाद्धोमादुस्सादनं ह्यरेः ।।१५।।
वधाय कुरुते सर्वं यत्किंचिन्मनसेप्सितम् । अथ सङ्ग्रामसमये गजारूढस्तु साधकः ।।१६।।
कुमारीद्वयसंयुक्तो मन्त्रसंनद्धविग्रहः । दूरशङ्खादिवाद्यानि विद्यया ह्यभिमन्त्रयेत् ।।१७।।
महामायापटं[7] गृह्य[8] उच्छेत्तव्यं रणाजिरे । परसैन्यमुखो भूत्वा दर्शयेत्तं महापटम् ।।१८।।
कुमारीर्भोजयेत्तत्र पश्चात्पिण्डीं[9] च भ्रामयेत् । [10]साधकश्चिन्तयेसैन्यं पाषाणमिव निश्चलम् ।।१९।।

को देखते-देखते ही निगल जायगा। देवी का तीसरा मुख उज्ज्वल तथा (शत्रु के) हाथी को नष्ट कर देनेवाला होना चाहिए ।।७-८।। साधक पश्चिमाभिमुख होकर गन्ध, पुष्प, मधु, घी आदि से देवी की पूजा करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करे। ऐसा करने से नेत्र-रोग और शिरोरोग आदि नष्ट हो जाते हैं। (इसका जप करने से) यक्ष तथा राक्षसगण वशीभूत हो जाते हैं और शत्रुओं का सर्वनाश हो जाता है। नीम की लकड़ियों में बकरे का रक्त मिलाकर उपर्युक्त मन्त्र से क्रोधपूर्वक हवन करने से निःसन्देह शत्रु की मृत्यु हो जाती है। शत्रु सेना के अभिमुख होकर एक सप्ताह तक इस प्रकार का हवन करने से शत्रु-सेना व्याधियों से ग्रस्त हो जाती है तथा शत्रु का विनाश हो जाता है ।।९-११$\frac{1}{2}$।। नीम की ही आठ हजार समिधाओं से जिस किसी का नाम लेकर हवन किया जाता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, फिर चाहे उसकी रक्षा करनेवाले स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हों। धतूरे की समिधाओं में रक्त और विष मिलाकर तीन दिन तक एक-एक हजार आहुतियाँ डालने से सेना सहित शत्रु का नाश हो जाता है। राजसरसों तथा लवण से तीन दिन तक हवन करने से शत्रु का सर्वनाश हो जाता है ।।१२-१४।। गधे का रक्त मिलाकर हवन करने से शत्रु का (उच्छेद) नाश होता है। उक्त मन्त्र से शत्रु वध के निमित्त जो कुछ भी किया जायगा, उसी में सफलता प्राप्त होगी ।।१५-१५$\frac{1}{2}$।। युद्ध-काल में साधक उक्त मन्त्र से अपने शरीर की रक्षा करके दो कुमारियों के साथ हाथी पर चढ़कर उसी मन्त्र को उच्च-स्वर से पढ़ता हुआ शङ्ख आदि वाद्यों का आमन्त्रण करे। फिर महामाया भगवती का वस्त्र लेकर उसे रणाङ्गण में छोड़ देना चाहिए। तदनन्तर उस महापट को शत्रु सेना की ओर मुख करके दिखाना चाहिए और वहीं कुमारियों को खिलाकर चक्र घुमाना चाहिए। उस समय साधक अपने मन में यह विचार करता रहे

---

१ तस्य…हयादिकम् ग. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. शुभदन्तं। ३ ख. ग. त्यजेत्। ४ ङ. °रयन्क्रोध°। ५ क. ङ. °धिभिः पूर्यते। ६ काकरक्त…ह्यरेः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ क. ङ. °पद° गृ°। ८ अस्मिन् श्लोके गृह्येति पदमार्षम्। ९ क. ङ. °त्पिच्छी च°। १० साधकश्चिन्तयेत्…निश्चलम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निरुत्साहं विभग्नं च मुह्यमानं च [1]भावयेत् । एष स्तम्भो मया प्रोक्तो न देयो यस्य कस्यचित् ।।२०।।
त्रैलोक्यविजया माया दुर्गैवं भैरवी तथा । [2]कुञ्जिका भैरवी रुद्रो नारसिंह (?) पटादिना ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महामारीविद्यावर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३७।।

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्कर्माणि

ईश्वर उवाच

षट्कर्माणि प्रवक्ष्यामि सर्वमन्त्रेषु तच्छृणु । आदौ साध्यं लिखेत्पूर्वं चान्ते मन्त्रसमन्वितम् ।।१।।
पल्लवः स तु विज्ञेयो महोच्चाटकरः परः । आदौ मन्त्रस्ततः साध्यो मध्ये साध्यः पुनर्मनुः ।।२।।
योगाख्यः सम्प्रदायोऽयं कुलोत्सादेषु योजयेत् । आदौ मन्त्रपदं दद्यान्मध्ये साध्यं नियोजयेत् ।।३।।
पुनश्चान्ते लिखेन्मन्त्रं साध्यं मन्त्रपदं पुनः[3] । रोधकः सम्प्रदायस्तु स्तम्भनादिषु योजयेत् ।।४।।
[4]अधोऽर्धं याम्यवामे तु मध्ये साध्यं तु योजयेत् । [5]संपुटः स तु विज्ञेयो वश्याकर्षेषु योजयेत् ।।५।।

कि शत्रु सेना पाषाणवत् निश्चल, निरुत्साह, विमुग्ध और नष्ट हो चुकी है ।।१६-१९½।। मैंने जिस (शत्रु) स्तम्भन (मन्त्र) को बताया है, उसे हर किसी को नहीं बताना चाहिए। उपर्युक्त महापट के ऊपर त्रैलोक्य विजया, माया, दुर्गा, भैरवी, कुञ्जिका, रुद्र तथा नरसिंह–इन नामों को भी लिख देना चाहिए ।।२०-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में महामारीविद्या-वर्णन नामक एक सौ सैंतींसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३७।।

अध्याय १३८

षट्-कर्म वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं सब मन्त्रों से किये जानेवाले मारण, मोहन आदि षट्कर्मों का वर्णन करूँगा, उसे सुनो। पहले आदि में साध्य (सिद्ध करने योग्य लक्ष्य) को लिखकर अन्त में मन्त्र लिखना चाहिए ।।१।। इस (विधि) को पल्लव कहते हैं। इससे महान् उच्चाटन होता है। आदि में मन्त्र, उसके बाद साध्य, फिर मध्य में साध्य और पुनः अन्त में मन्त्र लिखना चाहिए ।।२।। इसे योग नामक सम्प्रदाय कहते हैं। इसका प्रयोग कुल का नाश करने में करना चाहिए। आदि में मन्त्र, मध्य में साध्य, अन्त में पुनः मन्त्र, फिर साध्य और पुनः मन्त्र लिखना चाहिए। इसको रोधक सम्प्रदाय कहते हैं। इसका प्रयोग स्तम्भन आदि कार्यों में करना चाहिए ।।३-४।। साध्य को मध्य में रखकर उसके नीचे-ऊपर तथा दायें-बायें भाग में मन्त्र लिखना चाहिए। इसको सम्पुट विधि कहते हैं। इसका प्रयोग वशीकरण

---

१ ख. भीषयेत्। २ क. ङ. कुम्भिका। ३ ख. ग. च. °नः। बोध°। ४ अधोऽर्धं…योजयेत् ग. च. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ संपुट…प्रथमः ग. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्राक्षरं यदा साध्यं प्रथितं चाक्षराक्षरम्। प्रथमः) सम्प्रदायः स्यादाकृष्टिवशकारकः[1] ।।६।।
मन्त्राक्षरद्वयं लिख्य एकं साध्याक्षरं पुनः। विदर्भः सतु विज्ञेयो[2] वश्याकर्षेषु योजयेत् ।।७।।
आकर्षणादि यत्कर्म वसन्ते चैव कारयेत्। तापज्वरे तथा [3]वश्ये स्वाहा चाऽऽकर्षणे शुभम् ।।८।।
नमस्कारपदं[4] चैव शान्तिवृद्धौ प्रयोजयेत्। पौष्टिकेषु वषट्कारमाकर्षे वशकर्मणि ।।९।।
विद्वेषोच्चाटने मृत्यौ फट्स्यात्खण्डी कृतोऽशुभे। लाभादौ मन्त्रदीक्षादौ वषट्कारस्तु सिद्धिदः ।।१०।।
यमोऽसि यमराजोऽसि कालरूपोऽसि धर्मराट्। मयादत्तमिमं शत्रुमचिरेण निपातय ।।११।।
निपातयामि यत्नेन निवृत्तो भव साधक। संहृष्टमनसा ब्रूयाद्देशिको[5]ऽरिप्रसूदनः[6] ।।१२।।
पद्मे शुक्ले यमं प्रार्च्य होमादेतत्प्रसिध्यति। आत्मानं भैरवं ध्यात्वा ततो मध्ये कुलेश्वरीम् ।।१३।।
रात्रौ वार्ता विजानाति आत्मनश्च परस्य च। दुर्गे दुर्गरक्षणीति दुर्गां प्रार्च्यारिहा भवेत् ।।
जप्त्वा हसक्षमलवरयुं भैरवीं घातयेदरिम् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षट्कर्मकथनं नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३८।।

तथा आकर्षण में करना चाहिए ।।५।। जहाँ पर मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के साथ-साथ साध्य (लक्ष्य) का एक-एक अक्षर लिखा जाता है, उसे प्रथम सम्प्रदाय कहते हैं। यह प्रयोग आकर्षण और वशीकरण के लिए किया जाता है। इसी प्रकार जहाँ मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखकर साध्य का एक-एक अक्षर लिखा जाता है, उसे विदर्भ कहते हैं। इसका भी प्रयोग वशीकरण और आकर्षण में किया जाता है ।।६-७।। आकर्षण आदि कर्मों का प्रयोग वसन्त ऋतु में ही करना चाहिए। ताप-ज्वर की शान्ति, वशीकरण तथा आकर्षण कार्य में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शान्ति और वृद्धि के कार्य में 'नमस्कार' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। पौष्टिक (श्रेयस्कर) कार्यों में वषट्कार का प्रयोग और आकर्षक, वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन तथा मारण सम्बन्धी अशुभ कार्यों में 'फट्' का प्रयोग करना चाहिए। लाभ तथा मन्त्र-दीक्षा आदि कार्यों में 'वषट्कार' शब्द सिद्धिदायक हुआ करता है ।।८-१०।। साधक को कहना चाहिए-'तुम यम हो, यमराज हो, कालरूप हो और धर्मराज हो। मेरे दिये हुए इस शत्रु को शीघ्र गिरा दो।' तदनन्तर शत्रुनाशक गुरु को प्रसन्नचित्त से कहना चाहिए-'अये! साधक! तुम आराम करो। मैं यत्नपूर्वक इसे गिरा रहा हूँ ।।११-१२।। इस प्रकार श्वेतकमल पर यम की पूजा करके हवन करने से इस कार्य की सिद्धि होती है। रात्रि में अपने को भैरव के रूप में तथा मध्य में कुलेश्वरी का ध्यान करने से इस अपना तथा दूसरों का समाचार ज्ञात हो जाता है। 'दुर्गे दुर्गरक्षिणि' इस मन्त्र से दुर्गा की पूजा करने से मनुष्य शत्रु का संहार करनेवाला हो जाता है। 'ह स क्ष म ल व र यु' इन अक्षरों से भैरवी मन्त्र का जप करने से मनुष्य अपने शत्रु को नष्ट कर डालता है ।।१३-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में षट्कर्मकथन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३८।।

---

१ क. ङ. ष्टिरसका°। २ च. °यो रष्टावर्षे°। ३ क. ङ. वक्ष्ये। ४ क. ङ. परं चै°। ५ च. °को रिपुसूदनम्। अग्निस्वर्णमयं प्रा°। ६ क. ङ. °नः। अग्नि स्वर्णमयं प्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षष्ठिः संवत्सराः

ईश्वर उवाच

षष्ट्यब्दानां प्रवक्ष्यामि शुभाशुभमतः शृणु । प्रभवे यज्ञकर्माणि विभवे सुखिनो जनाः ।।१।।
शुक्ले तु सर्वसस्यानि प्रमोदेन प्रमोदिताः । प्रजापतौ प्रवृद्धिः स्यादङ्गिरा भोगवर्धनः ।।२।।
श्रीमुखे वर्धते लोको भावे भावः प्रवर्धते[1] । युना च प्लवते शक्रो धाता सर्वौषधीकरः ।।३।।
ईश्वरे क्षेममारोग्यं बहुधान्यः सुभिक्षदः । प्रमाथी मध्यवर्षस्तु विक्रमे सस्यसम्पदः ।।४।।
वृषो वृष्यति सर्वाश्च चित्रभानुश्च चित्रताम् । सुभानुः (नौ) क्षेममारोग्यं तारणे जलदाः शुभाः ।।५।।
पार्थिवे सस्यसम्पत्तिरतिवृष्टिस्तथा व्यये । सर्वजित्युत्तमा वृष्टिः सर्वधारी सुभिक्षदः ।।६।।
विरोधी जलदान्हन्ति विकृतिश्च भयङ्करः । खरे भवेत्पुमान्वीरो नन्दने नन्दते (ति) प्रजा ।।७।।
[3]विजयः शत्रुहन्ता च शत्रु (ज्यो) रोगादि मर्दयेत् । ज्वरार्त्तो मन्मथे लोको दुष्करे दुष्कराः प्रजा (?) ।।८।।

अध्याय १३९

साठ संवत्सर-वर्णन

महेश्वर बोले–अब मैं साठ वर्षों का शुभाशुभ फल बताऊँगा, उसे सुनो। प्रभव नामक संवत्सर में यज्ञकर्म अधिक होते हैं। विभव नामक संवत्सर में प्रजा सुखी रहती है ।।१।। शुक्ल नामक संवत्सर में सस्यों की वृद्धि होती है। प्रमोद नाम वर्ष में प्रजाएँ आनन्दित रहती हैं। प्रजापति नामक संवत्सर में प्रजा की वृद्धि होती है। अङ्गिरा नामक वर्ष में भोगों की वृद्धि होती है। श्रीमुख वर्ष में प्रजाओं की वृद्धि होती है। भाव-संवत्सर में भावुकता बढ़ती है। युवा नामक संवत्सर में इन्द्र प्रसन्न होते हैं तथा 'धाता' संवत्सर में सभी ओषधियाँ फलती-फूलती हैं ।।२-३।। ईश्वर-संवत्सर में क्षेम तथा आरोग्य की वृद्धि होती है। बहुधान्य-संवत्सर सुभिक्ष उत्पन्न करता है। मध्यवर्ष पीठाकार होता है। विक्रम-संवत्सर सस्यसम्पत्तिवर्धक होता है। वृष-संवत्सर सब वस्तुओं की वर्षा करता है। चित्रभानु संवत्सर विचित्रता उत्पन्न करता है। सुभानु-संवत्सर क्षेम तथा आरोग्य बढ़ाता है। तारण संवत्सर में बादल अच्छे होते हैं। पार्थिव संवत्सर में सस्यसम्पत्ति बढ़ती है। व्यय संवत्सर में अतिवृष्टि होती है। सर्वजित् संवत्सर में उत्तम वृष्टि होती है। सर्वधारी संवत्सर में सुभिक्ष उत्पन्न होता है ।।४-६।। विरोधी-संवत्सर बादलों को नष्ट करता है। विकृति संवत्सर भयानक होता है। खर-संवत्सर में पुरुष वीर हुआ करते हैं। नन्दन वर्ष में प्रजा आनन्दित होती है ।।७।। विजय-वर्ष शत्रु और रोग आदि का नाश किया करता है। मन्मथ वर्ष में लोग ज्वर पीड़ित होते हैं। दुष्कर वर्ष में प्रजा को कठिनाइयाँ होती हैं ।।८।।

---

१ घ. °ते। पूरणो पूरणो श°। २ क. ख. ङ. °वर्ष तु वि°। ३ ख. ग. विषयः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दुर्मुखे दुर्मुखो लोको हेमलम्बेन सम्पदः। [1]संवत्सरो महादेवि विलम्बस्तु सुभिक्षदः ।।९।।
विकारी शत्रुकोपाय विजये (शार्वरी) सर्वदा क्वचित्। प्लवे प्लवन्ति तोयानि शोभने शुभकृत्प्र
(शुभकृच्छोभनेप्र) जा ।।१०।।
[2]राक्षसे निष्ठुरो लोको विविधं धान्यमानने (ले)। सुवृष्टिः पिङ्गले क्वापि काले ह्युक्तो (लयुक्ते)
धनक्षयः ।।११।।
सिद्धार्थे सिध्यते (ति) सर्वं रौद्रे रौद्रं प्रवर्तते। दुर्मतौ मध्यमा वृष्टिर्दुन्दुभिः क्षेमधान्यकृत् ।।१२।।
स्रवन्ते (ति) रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः (क्षे) क्रोधनो (ने) जयः। क्षये क्षीणधनो लोकः
षष्टिसंवत्सराणि तु ।।१३।।
इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवे षष्टिसंवत्सरवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३९।।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वश्यादियोगाः

ईश्वर उवाच

वश्यादियोगान्वक्ष्यामि लिखेद्द्व्यष्टपदे त्विमान। भृङ्गराजः सहदेवी मयूरस्य शिखा तथा ।।१।।

दुर्मुख वर्ष में प्रजाएँ कटुवादिनी होती हैं। हेमलम्ब वर्ष में सम्पत्तियाँ बढ़ती हैं। अयि महादेवि! विलम्ब नामक संवत्सर सुभिक्ष उत्पन्न करता है। विकारी वर्ष शत्रु को कुपित करता है। शार्वरी वर्ष कभी-कभी ही विजय दिलाता है। प्लव संवत्सर में वृष्टि अधिक होती है। शोभन वर्ष में प्रजा शुभ कर्म करनेवाली हुआ करती है ।।९-१०।। राक्षस वर्ष में लोग निष्ठुर होते हैं। आनन वर्ष में विविध प्रकार का धान्य होता है। पिङ्गल वर्ष में सुवृष्टि और कालवर्ष में धनक्षय होता है। सिद्धार्थ वर्ष में सभी कार्य सिद्ध होते हैं। रौद्र वर्ष में क्रोध बढ़ता है। दुर्मति वर्ष में वृष्टि मध्यम होती है और दुन्दुभि वर्ष में धान्य और कल्याण की वृष्टि होती है ।।११-१२।। स्रवन्त वर्ष में रक्तपात तथा क्रोधन वर्ष में विजय होती है। क्षय वर्ष में प्रजाओं के धन का क्षय होता है। यही साठ संवत्सर और उनके फल हैं ।।१३।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धजयार्णवीय षष्टिसंवत्सर-वर्णन नामक
एक सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१३९।।

अध्याय १४०

वश्यादियोग-वर्णन

ईश्वर बोले-अब मैं वशीकरण आदि के प्रयोगों का वर्णन करूँगा। इन योगों को सोलह कोष्ठों (खानों) में

---

१ क. ख. ङ. °त्सरे म°। २ क्रोध्याद्यानन्दान्तैकादशसंवत्सरफलप्रतिपादकाः श्लोकास्त्रुटिताः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुत्रं जीवकृतं[1] जाली ह्यधः पुष्पा रुदन्तिका । कुमारी रुद्रजटा स्याद्विष्णुक्रान्ता शि (सि) तोऽर्ककः ।।२।।
लज्जालुका मोहलता कृष्णधत्तूरसंज्ञिता[2] । गोरक्षः कर्कटी चैव मेषशृङ्गी स्नुही तथा ।।३।।
ऋत्विजो वह्नयो नागाः पक्षौ मुनिमनू शिवः । वसवो दिग्रसा वेदा ग्रहर्तुरविचन्द्रमाः ।।४।।
तिथयश्च क्रमाद्भागा ओषधीनां प्रदक्षिणम् । प्रथमेन चतुष्केण[3] धूपश्चोद्वर्तनं परम् ।।५।।
तृतीयेनाञ्जनं कुर्यात्स्नानं कुर्याच्चतुष्कतः । भृङ्गराजानुलोमाच्च चतुर्धा लेपनं स्मृतम् ।।६।।
मुनयो दक्षिणे पार्श्वे युगाद्याश्चोत्तराः स्मृताः । भुजगाः पादसंस्थाश्च ईश्वरा मूर्ध्नि संस्थिताः ।।७।।
मध्येन सार्कशशिभिर्धूपः स्यात् सर्वकार्यके । एतैर्विलिप्तदेहस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते ।।८।।
[4]धूपस्तु षोडशाद्यस्तु[5] गृहाद्युद्वर्तने स्मृतः । युगाद्याश्चाञ्जने प्रोक्ता[6] वाणाद्याः स्नानकर्मणि ।।९।।
रुद्राद्या भक्षणे प्रोक्ताः पक्षाद्याः पानके[7] स्मृताः । ऋत्विग्वेदर्तुनयनैस्तिलकं लोकमोहनम् ।।१०।।
सूर्यत्रिदशपक्षैश्च शैलैः स्त्री लेपतो वशा । चन्द्रेन्द्रफणिरुद्रैश्च योनिलेपाद्वशाः स्त्रियः ।।११।।
तिथिदिग्युगबाणैश्च गुटिका तु वशंकरी । भक्ष्ये भोज्ये तथा पाने दातव्या गुटिका वशे ।।१२।।

लिखना चाहिए। फिर भृङ्गराज, सहदेवी, मयूरशिखा, पुत्रक, जीवकृत जाली, अधः पुष्पा, रुदन्तिका, कुमारी, रुद्रजटा, विष्णुक्रान्ता, श्वेतअर्क, लाजवन्ती, मोहलता, काला धतूरा, गोरक्ष, कर्कटी, मेषशृङ्गी तथा स्नुही नामक ओषधियों के नाम लिखकर उनके चारों ओर ४, ३, ८, २, ७, १४, ११, ८, ४, ६, ४, ९, ६, ११, १५–इतनी संख्या लिखनी चाहिए। तदनन्तर तिथियों और ओषधियों के भागों को लिखकर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए। पहले की चार ओषधियों का धूप तथा उबटन बनाकर सेवन करना चाहिए ।।१-५।। तीसरी ओषधि (मयूरशिखा) का अञ्जन बनाना चाहिए और चौथी ओषधि पुत्रक से स्नान करना चाहिए। भृङ्गराज से लेकर चार ओषधियों (भृङ्गराज, सहदेवी, मयूरशिखा, पुत्रक) का लेप करना चाहिए। सातवीं संख्यावाली ओषधि (अधः पुष्पा) को दाहिनी ओर, चौथी आदि संख्यावाली (पुत्रक आदि) ओषधियों को बायीं ओर तथा पहली संख्यावाली (भृङ्गराज) ओषधियों को भुजा, पैर और सिर पर धारण करना चाहिए ।।६-७।। मध्य-स्थित एक-एक संख्यावाली ओषधियों के धूप का सेवन सभी कार्यों में करना चाहिए। शरीर में उपर्युक्त ओषधियों का लेप लगानेवाला व्यक्ति देवताओं से भी सम्मानित हुआ करता है ।।८।। सोलहवीं संख्यावाली ओषधि का धूप तथा उबटन बनाना चाहिए। चौथी आदि संख्यावाली ओषधियों का अञ्जन बनाना चाहिए। पाँचवीं आदि संख्यावाली ओषधियों का प्रयोग स्नान कर्म में करना चाहिए ।।९।। ग्यारहवीं आदि संख्यावाली ओषधियों का उपयोग भोजन में और दूसरी आदि संख्यावाली ओषधियों का उपयोग पीने में करना चाहिए। चौथी, छठी तथा दूसरी संख्यावाली ओषधियों का तिलक लोगों को मोहित कर लिया करता है ।।१०।। बारहवीं, तीसरी, दसवीं, दूसरी तथा सातवीं संख्यावाली ओषधियों का प्रयोग करने से स्त्री वशीभूत होती है। योनि के ऊपर पहली, आठवीं तथा ग्यारहवीं संख्यावाली ओषधि का लेप करने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं ।।११।। पन्द्रहवीं, चौथी, दूसरी तथा पाँचवीं संख्यावाली ओषधियों की गोली (सभी को) वश में करनेवाली हुआ करती हैं। खाने-पीने की सामग्री के साथ इस गोली को देने से वशीकरण होता है ।।१२।। चौथी, नौवीं, दूसरी तथा सातवीं संख्यावाली ओषधियों

---

१ ग. °कृता जा°। २ ग. घ. ङ. °ष्णधूस्तुर°। ३ क. ङ. °ण वृषश्चो°। ४ धूपस्तु···· स्मृतः च. पुस्तके नास्ति। ५ ख. ग. °शापास्तु। ६ क. ख. ग. °क्त रणाद्याः स्थान°। ७ क. ङ. पारके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋत्विग्ग्रहाक्षिशैलैश्च शस्त्रस्तम्भे मुखे धृता[1] । शैलेन्द्रवेदरन्ध्रैश्च अङ्गलेपाज्जले वसेत् ।।१३।।
बाणाक्षिमनुरुद्रैश्च गुटिका क्षुत्तुषादिनुत् । त्रिषोडशदिशाबाणैर्लेपात्स्त्री दुर्भगा शुभा ।।१४।।
त्रिदशाक्षि[2] दिशानेत्रैर्लेपात्क्रीडेच्च पन्नगैः । त्रिदशाक्षेशधुजगैर्लेपात्स्त्री सूयते सुखम् ।।१५।।
([3]सप्तदिङ्मुनिरन्ध्रैश्च[4] द्यूतजिद्वस्त्रलेपतः । त्रिदशाक्ष्यब्धिमुनिभिर्ध्वजलेपाद्रतौ सुतः) ।।१६।।
[5]ग्रहाब्धिसर्प्यत्रिदशैर्गुटिका स्याद्वशंकरी । ऋत्विग्पदस्थितौलष(तौष)ध्याः प्रभावः प्रतिपादितः ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वश्यादियोगवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४०।।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्त्रिंशत्पदज्ञानम्

ईश्वर उवाच

षट्त्रिंशत्यसंस्थानामोषधीनां वदे फलम् । अमरीकरणं नृणां ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितम् ।।१।।
हरीतक्यक्ष्य (क्ष) धात्र्यश्च मरीचं पिप्पली शिफा[6] । वह्निः शुण्ठी पिप्पली च गुडूची[7] वचनिम्बकाः ।।२।।

की गोली मुँह में रखने से शत्रुओं के शस्त्रों का स्तम्भन होता है। सातवीं, पहली, चौथी तथा नवीं संख्यावाली ओषधियों का लेप लगाकर कोई जल में निवास कर सकता है ।।१३।। पाँचवीं, दूसरी, चौदहवीं तथा ग्यारहवीं संख्यावाली ओषधियों की गुटिका भूख, प्यास आदि को नष्ट कर देती है। तीसरी, सोलहवीं, चौथी तथा पाँचवीं संख्यावाली ओषधियों का लेप लगाने से असुन्दरी स्त्री भी सुन्दर हो जाती है ।।१४।। तीसरी, दसवीं, दूसरी तथा चौथी संख्यावाली ओषधियों का लेप लगाने से मनुष्य साँपों के साथ खेल सकता है। तीसरी, दसवीं, दूसरी, ग्यारहवीं तथा आठवीं संख्यावाली ओषधियों का लेप लगाने से स्त्री सुख से प्रसव करती है ।।१५।। सातवीं, चौथी, नवीं संख्यावाली ओषधियों का लेप लगाकर सम्भोग करने से पुत्रोत्पत्ति होती है। नवीं, चौथी, आठवीं, तीसरी तथा दसवीं संख्यावाली ओषधियों की गोली से वशीकरण होता है। चौथी तथा दूसरी संख्यावाली ओषधियों का प्रभाव तो (पहले) ही बताया जा चुका है ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में वश्यादियोग-वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४०।।

अध्याय १४१

षट्त्रिंशत्पदज्ञान-वर्णन

ईश्वर बोले-अब मैं छत्तीस कोष्ठों में स्थित ओषधियों का फल बतला रहा हूँ। ये ओषधियाँ मनुष्यों को अमर बनानेवाली हैं, इसीलिए ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्र ने (भी) इनका सेवन किया है ।।१।। हरीतकी (हर्रे), बहेड़ा, आँवला, मरीच, पिप्पली, शिफा (बरगद आदि का लटकनेवाला मूल), वह्नि (चित्रक वृक्ष), सोंठ, गुरुच, बच, नीम,

---

१ क. ङ. च. धृतम्। २ क. ङ. °शाहिदशनेत्रैस्तेयात्पीडावप°। ३ सप्तदिङ्°°°सुतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ग. °श्चद्युतजिद्धस्तलेपनः। त्रि°। ५ ख° ग. हात्रि र्यंत्रि°। ६ क. ङ. शफाः। ७ क. ख. ङ. °ची चव्यनि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वासकः शतमूली च सैन्धवं सिन्धुवारकम् । कण्टकारी मो (गो) क्षुरका[1] बिल्वं पौनर्नवं बला ।।३।।
एरण्डमुण्डीरुचको भृङ्गः क्षारोऽथ पर्पटः । धन्याको जीरकश्चैव शतपुष्पी ज[2] (य) वाणि (नि) का ।।४।।
विडङ्गः खदिरश्चैव कृतमालो हरिद्रया । वचा सिद्धार्थ एतानि षट्त्रिंशत्पदगानि हि ।।५।।
क्रमादेकादिसंज्ञानि ह्योषधानि महान्ति हि । [3]सर्वरोगहराणि स्युरमरीकरणानि च ।।६।।
वलीपलितभेतृणि सर्वकोष्ठगतानि तु । एषां चूर्णं च वटिका रसेन परिभाविता ।।७।।
अवलेहः कषायो वा मोदको गुडखण्डकः । [4]मधुतो [5]घृततो वाऽपि घृतं तैलमथापि वा ।।८।।
सर्वात्मनोपयुक्तं[6] हि मृतसंजीवनं भवेत् । कर्षार्धं कर्षमेकं वा पलार्धं पलमेककम् ।।९।।
[7]यथेष्टाचारनिरतो जीवेद्वर्षशतत्रयम् । मृतसंजीवनीकल्पे[8] योगो नास्मात्परोऽस्ति हि ।।१०।।
प्रथमान्नवकाद्योगात्सर्वरोगैः प्रमुच्यते । द्वितीयाच्च तृतीयाच्च चतुर्थान्मुच्यते रुजः ।।११।।
एवं षट्काच्च प्रथमाद्द्वितीयाच्च तृतीयतः । चतुर्थात्पञ्चमात्षष्ठास्तथा नव चतुष्कतः ।।१२।।
एकद्वित्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टमतोऽनिलात् । अग्निभास्करषड्विंशसप्तविंशैश्च पित्ततः ।।१३।।
बाणर्तुशैलव[9] सुभिस्तिथिभिर्मुच्यते कफात् । वेदाग्निभिर्बाणगुणैः षड्गुणैः स्याद्वशे धृते ।।१४।।

वासक (रुसा), शतमूली, सैन्धव, सिन्धुतारक (म्योड़ी), कण्टकारि (भटकैया), गोक्षुरका (गोखरू), बिल्व, पुनर्नवा, बला (बरिआरा), रेंड़ी, मुण्डी, रुचक (विजौरा नींबू), भृङ्गराज, क्षार, पर्पट, धनिया, जीरा, सौंफ, अजवायन, बायविडङ्ग, खदिर (खैर), कृतमाल (अमलतास), हल्दी, सफेद सरसों–ये छत्तीस कोष्ठोंवाली ओषधियाँ हैं ।।२-५।। इनकी संख्या क्रमशः एक-दो आदि हैं। ये महती ओषधियाँ समस्त रोगों का हरण करनेवाली तथा (मनुष्य को) अमर बनानेवाली हैं। इनमें से प्रत्येक कोष्ठ की ओषधि बालों की सफेदी तथा अङ्गों की झुर्रियाँ दूर करने में समर्थ हैं। इनका चूर्ण, रस में भिगोयी हुई इनकी वटी, अवलेह (चटनी), काढ़ा, लड्डू, गुड़, शक्कर, मधु-घी या घी-तेल के साथ सेवन करने से मुर्दे में भी जान आ जाती है। इन ओषधियों का आधे, एक-दो या चार तोले की नाप से नित्य सेवन करनेवाला मनुष्य यथेच्छ आहार-विहार करने पर भी तीन सौ वर्षों तक जीवित रह सकता है। मृतसंजीवनी ओषधियों की कोटि में इनसे बढ़कर कोई ओषधि ही नहीं है ।।६-१०।। प्रथम तथा नवम संख्या की ओषधियाँ रोगों को दूर करनेवाली हैं। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं तथा छठीं संख्या की ओषधियों से भी रोगों का निवारण होता है ।।११।। पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठीं, सातवीं तथा आठवीं संख्या की ओषधियाँ वायु रोग को दूर करती हैं। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं संख्यावाली ओषधियाँ पित्त-विकार को दूर करती हैं ।।१२-१३।। पाँचवीं, छठीं, सातवीं, आठवीं तथा पन्द्रहवीं संख्या की ओषधियाँ कफ के विकार को दूर करती हैं। चौथी, तीसरी, पाँचवीं तथा छठी संख्या की ओषधियों का सेवन करने से वशीकरण

---

१ क. ङ. °काविडङ्गो नर्तकं ब°। २ क. ङ. समानिका। ३ सर्वरोग°°°करणानि च क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति। ४ क. सयुतो। ५ क. °तोयाम्भोघृ। ६ क. ङ. °नोययुक्तं। ७ क. ङ. °ष्टा वाचिनि। ८ क. ङ. °नी कोन्यो यो°। ९ क. ङ. °शैववसुतिस्ति°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रहादिग्रहणान्तैश्च[1] सर्वैरेव विमुच्यते। [2]एकद्वित्रिरसैः शैलेर्वसुग्रहशिवैः क्रमात् ।।१५।।
द्वात्रिंशत्तिथिसूर्यैश्च नात्र कार्या विचारणा। षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं[3] न देयं यस्य कस्यचित् ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षट्त्रिंशत्पदकज्ञानाख्यानं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४१।।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्त्रौषधादि

ईश्वर उवाच

मन्त्रौषधानि चक्राणि वक्ष्ये सर्वप्रदानि च। चौरनाम्नो वर्णगुणो[4] विघ्नो मात्राश्चतुर्गुणाः ।।१।।
[5]नाम्ना [6]हृते भवेच्छेषश्चौरोऽथ जातकं वदे। प्रश्ने ये विषमा वर्णास्ते गर्भे पुत्रजन्मदाः ।।२।।
नामवर्णैः समैः काणो वामेऽक्षिण विषमैः पुनः। दक्षिणाक्षि भवेत्काणं[7] स्त्रीपुंनामाक्षरस्य च ।।३।।
मात्रावर्णाश्चतुर्निघ्ना[8] वर्णपिण्डे गुणे कृते। समे स्त्री विषमे ना [9]स्याद्विशेषे च मृतिः स्त्रियाः[10] ।।४।।

की सिद्धि होती है। एक, दो, तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह, बत्तीस, पन्द्रह तथा बारह संख्यावाली ओषधियों का सेवन करने से ग्रह से लेकर ग्रहण तक सभी दोषों से छुटकारा मिल जाता है, इसमें कुछ संशय नहीं है। इन छत्तीस ओषधियों का ज्ञान हर किसी को ही नहीं कराना चाहिए ।।१४-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में षट्त्रिंशत्पदज्ञान-वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४१।।

अध्याय १४२

मन्त्रौषध-वर्णन

ईश्वर बोले-अब मैं मन्त्र और औषध आदि चक्रों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो सभी फलों को देनेवाले होते हैं। चोर के नाम के वर्णों का द्विगुणित करके उन्हें उसमें रहनेवाली चौगुनी मात्राओं के साथ जोड़ देना चाहिए। इस प्रकार जो योग प्राप्त होता है उसे सम्भावित चोर के नाम के अक्षरों से विभक्त कर देना चाहिए। इस प्रकार जो शेष बचता है, उससे चोर का पता लगाना चाहिए ।।१-२।। अब मैं जातकर्म के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ। सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न में अदि अक्षरों की संख्या विषम होती हैं, तो पुत्र की प्राप्ति होती है। नाम के अक्षरों में समान अक्षर होने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह बायीं आँख से कानी होती है। विषम संख्या होने से कणत्व दोष दाहिनी आँख में रहता है। स्त्री और पुरुष के नामों के अक्षरों को उसमें रहनेवाली मात्राओं से गुणा करके गुणनफल को चार से विभाजित कर देना चाहिए। यदि भजनफल सम होगा तो पुत्र अन्यथा पुत्री उत्पन्न होगी। उपर्युक्त रीति से भाग करने पर जहाँ भजनफल तो विषम ही होता है, किन्तु कुछ शेष भी बच रहता है, वहाँ

---

१ क. ङ. °श्च कुष्ठै रे°। ग. °श्च कुष्ठं रे°। २ क. ङ. °रथैः शैलेर्धनुग्रहशिरैः क्र°। ३ ग. °श प्रकटज्ञा°। ४ क. ङ. °गुणाद्विद्यामा°। ५ नाम्ना°°वदे क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ६ ख. कृते। ७ क. ग. °वेत्कोणः स्त्री°। ८ क. ख. ङ. तुर्विग्नावर्णपिण्डैर्गुणैर्हृते। ९ क. ख. ङ. °शेषै (षेऽ) थ मृ°। १० क. ख. ङ. स्त्रियाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथमं रूपशून्येऽथ प्रथमं म्रियते पुमान्। [1]प्रश्नं सूक्ष्माक्षरैर्गृह्य द्रव्यैर्भोगेऽखिले मतम् ।।५।।
शनिचक्रं प्रवक्ष्यामि तस्य दृष्टिं परित्यजेत्। राशिस्थः सप्तमे दृष्टिश्चतुर्दशशतेऽर्धिका ।।६।।
एकद्व्यष्टद्वादशमः पाददृष्टिश्च[2] तत्त्यजेत्। दिनाधिपः प्रहरभाक्शेषा[3] यामार्धभागिनः ।।७।।
शनिभागं त्यजेद्युद्धे दिनराहुं वदामि ते। रवौ पूर्वेऽनिले मन्दे गुरौ याम्येऽनले भृगौ ।।८।।
अग्नौ कुजे[4] भवेत्सौम्ये स्थिते राहुर्बुधे[5] सदा[6]। फणिराहुस्तु प्रहरमैशे वह्नौ च राक्षसे ।।९।।
[7]वायौ संवेष्टयित्वा च शत्रुं हन्तीशसम्मुखम्। तिथिराहुं प्रवक्ष्यामि पूर्णिमाऽऽग्नेयगोचरे ।।१०।।
अमावास्यां वायवे च राहुः सम्मुखशत्रुहा[8]। काद्या जान्ताः सम्मुखे[9] स्युर्झाद्या दान्ताश्च दक्षिणे ।।११।।
[10]शुक्ले त्यजेत्कुज[11] गुणान्धाद्या मान्ताश्च पूर्वतः। याद्या हान्ता उत्तरे स्युस्तिथिदृष्टं विवर्जयेत् ।।१२।।

स्त्री की मृत्यु पति के पूर्व हो जाती है। किन्तु जहाँ इस प्रकार से किये गये भाग में भजनफल सम होता है और कुछ शेष भी बचा रहता है, वहाँ पति की मृत्यु पहले होती है। सूक्ष्म अक्षरों से प्रश्न करने पर अखिल भोग की प्राप्ति होती है ।।३-५।। अब मैं शनि-चक्र का वर्णन करूँगा। उसकी दृष्टि का सर्वत्र त्याग करना है। किसी मास में किसी राशि में रहनेवाला शनि दिन के दूसरे, सातवें, आठवें और दसवें भाग के ऊपर अपनी दृष्टि डालता है तथा उसके चौथे और ग्यारहवें भागों के ऊपर आधी दृष्टि डालता है। शनि की वक्र-दृष्टि को यत्नपूर्वक बचाते रहना चाहिए। दिनाधिप नक्षत्र उस दिन के तीन घण्टों को प्रभावित करता है और शेष नक्षत्र दिन के आधे-आधे याम में अपना प्रभाव डालते हैं। युद्ध में शनि से प्रभावित दिनांश को बचा देना चाहिए। अब मैं आपसे सप्ताह के विभिन्न दिनों में परिवर्तित होनेवाली राहु की दशा का भी वर्णन करूँगा। रविवार को राहु की दृष्टि पूर्व की ओर, शनिवार को वायव्य की ओर, बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर, शुक्र और मङ्गल को अग्निकोण की ओर तथा बुधवार को उत्तर की ओर रहती है। जबकि फणि राहु की दृष्टि ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायव्यकोण में एक-एक प्रहर रहती है और अपने सामने खड़े हुए शत्रु को आवेष्टित करके मार डालते हैं ।।६-९$\frac{1}{2}$।। अब मैं भिन्न-भिन्न तिथियों में राहु की स्थिति का वर्णन करूँगा। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन राहु की दृष्टि क्रमशः दक्षिण-पूर्व और पश्चिमोत्तर रहती है। उस समय अपनी ओर यात्रा करनेवाले शत्रु का राहु निश्चय ही नाश कर देता है। पश्चिम से पूर्व की ओर तीन खड़ी रेखाएँ खींचे और फिर इन मूलभूत रेखाओं का भेदन करते हुए दक्षिण से उत्तर की ओर तीन पड़ी रेखाएँ खींचे। इस तरह प्रत्येक दिशा में तीन-तीन रेखाग्र होंगे। सूर्य जिस राशि पर स्थित हों, उसे सामनेवाली दिशा में लिखकर क्रमशः बारहों राशियों को प्रदक्षिण-क्रम से उन रेखाग्रों पर लिखे। तत्पश्चात् 'क' से लेकर 'ज' तक के अक्षरों को सामने की दिशा में लिखे। 'झ' से लेकर 'द' तक के अक्षर दक्षिण-दिशा मे स्थित रहें, 'ध' से लेकर 'म' तक के अक्षर पूर्व दिशा में लिखे जायँ। 'य' से लेकर 'ह' तक के अक्षर उत्तर दिशा में अङ्कित हों। ये राहु के गुण या चिह्न हैं। शुक्लपक्ष में इनका त्याग करे तथा तिथि-राहु की सम्मुख दृष्टि का भी त्याग करे ।।१०-१२।। अब मैं विष्टि

---

१ प्रश्नं...मतम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।२ क. ख. ङ. °श्च तं त्यजे°। ३ क. ङ. भाङ्मेषाया°। ४ ख. ग. कुण्डे क. ङ. ध्वजे। ५ क. ङ. श्रिये। ६ ख. ग. °दा। यातिरा°। ७ ख. ग. वायो स वेष्टयित्वाङ्ग शत्रुं हस्ती सं°। ८ च. °हा। व्याघाताद्याः पञ्चमेस्युः सीधादा°। ९ क. ङ. पश्चिमे। १० शुक्ले...पूर्वतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ११ ख. ग. °जेद्ध्वज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वाश्च दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै मूलभेदके। सूर्यराश्यादि संलिख्य दृष्टौ हानिर्जयोऽन्यथा ।।१३।।
[1]विष्टिराहुं प्रवक्ष्यामि अष्टौ रेखास्तु पातयेत्। शिवाद्यमं यमाद्वायुं वायोरिन्द्रं ततोऽम्बुपम् ।।१४।।
नैर्ऋताच्च नयेच्चन्द्रं चन्द्रादग्निं ततो जले। जलादीशे चरेद्राहुर्विष्ट्या[2] सह महाबलः ।।१५।।
ऐशान्यां च तृतीयादौ सप्तम्यादौ च [3]याम्यके। एवं [4]कृष्णे सिते पक्षे वायौ राहुश्च हन्त्यरीन् ।।१६।।
इन्द्रादीन्भैरवादींश्च ब्रह्माण्यादीन्ग्रहादिकान्। अष्टाष्टकं च पूर्वादौ याम्यादौ वातयोगिनीम् ।।१७।।
यां दिशं वहते वायुस्तत्रस्थो घातयेदरीन्। दृढीकरणमाख्यास्ये [5]कण्ठे बाह्वादिधारिता ।।१८।।
पुष्पोद्धता काण्डलक्ष्यं[6] वारयेच्छरपुङ्खिका। तथाऽपराजितापाठाद्द्वाभ्यां खड्गं निवारयेत् ।।१९।।

ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ओम् [7]अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, दक्षिणां दिशि बन्ध बन्ध ओमुत्तरां दिशि बन्ध बन्ध, पश्चिमां दिशि बन्ध बन्ध [8](नागान्बन्ध बन्ध नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ओमसुरान्बन्ध बन्ध ॐ) यक्ष-राक्षसपिशाचान्बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ओमूर्ध्वं रक्ष रक्ष, अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले घटि घटि, ॐ मोटि मोटि सटावलिवज्राग्निवज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं हूं श्रीं फट्, ह्रीं हः, फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष रक्ष ।।२०।।

ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत् ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रौषधादिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४२।।

राहु का वर्णन करूँगा। आठ रेखाओं को खींचकर राहु की स्थिति का ज्ञान इस प्रकार करना चाहिए। विष्टि राहु पूर्वोत्तर से दक्षिण की ओर, दक्षिण से पश्चिमोत्तर की ओर, पश्चिमोत्तर से पूर्व की ओर, पूर्व से दक्षिण-पश्चिम होता हुआ उत्तर की ओर जाता है। उत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर और वहाँ से पश्चिम की ओर होता हुआ पूर्वोत्तर की ओर जाता है। महाबली राहु विष्टि के साथ उपर्युक्त रीति से तृतीया के दिन पूर्वोत्तर दिशा में स्थित हो जाता है। सप्तमी को दक्षिण दिशा में चला जाता है। इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण पक्षों में राहु वायव्यकोण में अपने शत्रुओं का वध करता है। इन्द्रादि, भैरवादि, ब्रह्म आदि और ग्रहादि को पूर्व इत्यादि दिशाओं में तथा वातयोगिनी को दक्षिण आदि दिशाओं में और जिस दिशा में वायु चलती है, उधर यह शत्रुओं का वध करता है ।।१३-१७½।। अब मैं दृढ़ीकरण का वर्णन करूँगा। इस यन्त्र को कण्ठ अथवा बाहु के ऊपर धारण करना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में कण्डूलाक्ष्य को कुचलकर अपराजिता मन्त्र पढ़ने से खड्ग की शक्ति क्षीण हो जाती है। अपराजिता मन्त्र यह है–'ॐ नमो भगवति वज्रशृंखले·····ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष रक्ष' इस मन्त्र का विनियोग ग्रहज्वरादि सभी कर्मों में करना चाहिए ।।१८-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में मन्त्रौषध-वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४२।।

---

१ क. ख. ङ. दृष्टिराहुं। २ क. ङ. °र्विध्या स°। ३ क. ङ. °यामके। ४ क. ङ. कृष्णशते ज्याप्ये वा°। ५ क. ङ. कण्ठबाह्वादिवारिवा। पु°। ६ क. ङ. लक्षधारयेच्छरपुंषिका त°। ७ ग. च. अहे। ८ 'नागान्बन्ध····ओमसुरान्बन्ध बन्ध ॐ' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

ईश्वर उवाच

कुब्जिकाक्रमपूजां च वक्ष्ये सर्वार्थसाधनीम् । ययाऽसुरा जिता देवैः शस्त्राद्यै राज्यसंयुतैः ।।१।।
मायाबीजं च गुह्याङ्गे षट्कमस्त्रं करे न्यसेत् । काली [1]कालीति हृदयं दुष्टचाण्डालिका शिरः ।।२।।
ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः शिखा । भेलखी कवचं दूतीनेत्राख्या रक्तचण्डिका ।।३।।
ततो गुह्यकुब्जिकास्त्रं मण्डले स्थानके यजेत् । [2]अग्नौ कूर्चशिरो रुद्रे नैर्ऋत्येऽथ शिखाऽनिले ।।४।।
कवचं मध्यतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु च मण्डले । [3]द्वात्रिंशता कर्णिकायां स्त्रों हसक्षमलनववषट्सचात्ममन्त्रबीजकम् ।।५।।
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिकेन्द्रकात् ।।६।।
[4]यजेद्रवलकसहाञ्शिवेन्द्राग्नियमेऽग्निपे । जले तु कुसुममालामद्रिकाणां च पञ्चकम् ।।७।।
जालंधरं पूर्णगिरिं कामरूपं क्रमाद्यजेत् । [5]मरुदीशाग्निनैर्ऋत्ये मध्ये वै वज्रकुब्जिकाम् ।।८।।

अध्याय १४३

कुब्जिका-पूजा

ईश्वर बोले–अब मैं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाली कन्या की क्रम-पूजा का वर्णन करूँगा, जिसके प्रभाव से देवताओं ने आज्य लगे हुए शास्त्रास्त्रों द्वारा असुरों को जीत लिया था ।।१।। साधक को मायाबीज मन्त्र से गुप्ताङ्गों का न्यास, छह अस्त्रमन्त्रों से करन्यास, 'काली-काली' शब्दोच्चारण से हृदयन्यास, 'दुष्टचाण्डालिका' शब्दोच्चारण से मस्तकन्यास करना चाहिए। 'ह्री स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः'– इस मन्त्र से शिखा का न्यास करना चाहिए। भेलखी देवी को कवच समझना चाहिए। रक्तचण्डिका तथा दूती देवी का ध्यान आँख की पुतली के ऊपर करना चाहिए। तदनन्तर गुह्यकुब्जिकास्त्र नामक मन्त्र से मण्डल स्थल में पूजा करनी चाहिए। फिर दक्षिण-पूर्व, पूर्वोत्तर तथा दक्षिण-पश्चिम कोण में कूर्चशिर मन्त्र का और पश्चिमोत्तर कोण में शिखा मन्त्र का पूजन करना चाहिए। मण्डल के बीच में कवच मन्त्र और दिशाओं में नेत्रास्त्र मन्त्र से पूजन करना चाहिए। बत्तीस पत्तों से युक्त कमल के ऊपर ह स क्ष म ल न व वषट् स च अक्षरों से युक्त आत्मबीज मन्त्र की पूजा करनी चाहिए ।।२-५।। तत्पश्चात् पूर्व दिशा में ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका की पूजा करके पूर्वोत्तरकोण, पूर्व दिशा, दक्षिण-पूर्व कोण तथा दक्षिण दिशा में कुसुममाला देवी तथा जालंधर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि पाँच पर्वतों की पूजा करनी चाहिए ।।६-७$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर पश्चिमोत्तर कोण, पूर्वोत्तर कोण, दक्षिण-पूर्व कोण, दक्षिण-पश्चिम कोण तथा मध्य में

---

१ ख. ग. °ति क्रुद्भूतीदु°। २ क. ङ. °ग्नौ कृत्वा शि°। ३ क. ख. ग. ङ. °त्रिंशार्णाक°। ४ यजेद्रवल…पञ्चकम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ५ मरुदीशान…गणपं यजेत् ङ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनादि विमलः पूज्यः[1] सर्वज्ञविमलस्ततः । [2]प्रसिद्धविमलश्चाथ संयोगविमलस्ततः ।।९।।
समयाख्योऽथ विमल एतद्विमलपञ्चकम् । मरुदीशाननैर्ऋत्ये वह्नौ चोत्तरशृङ्गके ।।१०।।
कुब्जार्थं खिङ्खिनी षष्ठी[3] सोपन्ना सुस्थिरा तथा । रत्नसुन्दरी चैशाने शृङ्गे चाऽऽष्टादिनाथकाः ।।११।।
मित्र[4] औडीशषष्ठ्याख्यौ वर्षा अग्न्यम्बुपेऽनिले । भवेद्गगनरत्नं स्याच्चाऽऽप्ये कवचरत्नकम् ।।१२।।
[5]ब्रुं मर्त्यः पञ्चनामाख्यो मरुदीशानवह्निगः[6] । याम्याग्नेये पञ्चरत्नं ज्येष्ठा रौद्री तथाऽन्तिका ।।१३।।
तिस्रो ह्यासां महावृद्धाः पञ्चप्रणवतोऽखिलाः । सप्तविंशत्यष्टाविंशभेदात्संपूजनं द्विधा ।।१४।।
ॐ एं गूं [7]क्रमगणपतिं प्रणवं बटुकं यजेत् । चतुरस्रे मण्डले च दक्षिणे गणपं यजेत्) ।।१५।।
वामे च बटुकं कोणे गुरून् षोडशनाथकान् । वायव्यादौ चाष्ट (ष्टा) दश [8]प्रतिषट्कोणके ततः ।।१६।।
ब्रह्माद्याश्चाष्ट परितस्तन्मध्ये न नवात्मकः । कुब्जिका कुलटा[9] चैव क्रमपूजा तु सर्वदा ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं
नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४३।।

वज्रकुब्जिका की पूजा करके अनादिविमल, सर्वज्ञविमल, प्रसिद्धविमल, संयोगविमल और समयविमल इन पाँच विमलों की पूजा करनी चाहिए ।।८-९ $\frac{१}{२}$।। तत्पश्चात् पश्चिमोत्तर कोण, पूर्वोत्तर कोण, दक्षिण-पश्चिम कोण, दक्षिण-पूर्व कोण तथा मण्डल के उत्तरीय भाग में कुब्जा, खिङ्खिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा, रत्नसुन्दरी की पूजा करके पूर्वोत्तर कोण में आठ आदिनाथों की पूजा करनी चाहिए ।।१०-११।। तदनन्तर दक्षिण-पूर्व कोण, पश्चिमोत्तर कोण और पश्चिम दिशा में मित्र, औडीश, षष्ठी तथा वर्षा की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर पश्चिम दिशा में गगनरत्न तथा कवचरत्न की पूजा करनी चाहिए। उसके बाद मनुष्य को पश्चिमोत्तर, पूर्वोत्तर और दक्षिण-पूर्व कोणों में 'ब्रुं' अक्षर तथा पञ्चजन की पूजा करके दक्षिण-दिशा और दक्षिण-पूर्व कोण में पञ्चरत्न, ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका की पूजा करनी चाहिए। इन देवियों के साथ प्रणवसहित पाँच महावृद्धों की भी पूजा करनी चाहिए। सत्ताईस और अट्ठाईस के भेद से पूजन दो प्रकार का होता है। 'ॐ एं गूं' इस मन्त्र से गणपति, प्रणव तथा बटुक की पूजा करनी चाहिए। फ़िर दक्षिण दिशा में चौकोर मण्डल के ऊपर गणेश की पूजा करनी चाहिए ।।१२-१५।। वाम भाग में बटुक और कोण में गुरु तथा सोलह नाथों की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् पश्चिमोत्तर आदि दिशाओं में प्रत्येक छठे कोण में अठारह गुरुओं की पूजा करके मण्डल के बाहरी आठ कोष्ठों में ब्रह्मा आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए। कुब्जिका तथा कुलटा देवी की पूजा सदैव कर लेनी चाहिए ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में कुब्जिका-पूजा वर्णन नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४३।।

---

१ ख. ग. पृष्टः। २ प्रसिद्ध…ततः क. च. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ ख. ग. घ. पृष्ठा। ४ ग. °त्रतुद्रीश°। ५ ख. ग. त्रूं। ६ ख. ग. °ह्निगम्। या°। ७ च हूं। ८ क. ङ. °तिपक्षोंऽशके। ९ क. ङ. कुटिलास्फोकं क°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

ईश्वर उवाच

श्रीमतीं कुब्जिकां वक्ष्ये धर्मार्थादिजयप्रदाम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण परिवारयुतेन वा ।।१।।
ओम् ऐं ह्रौं श्रीं खैं ह्रें हसक्षमलचवयं भगवति, अम्बिके ह्रांह्रीं क्ष्रीं क्ष्रौं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्राम, ॐ ङ ञ न ण मेऽघोरमुखि व्रां छ्रां छीं किलि किलि क्ष्रौं विच्चे ख्यों श्रीं क्रोम्, ओं ह्रोम ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि [1]ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि, ऐं ह्रीं क्ष्रौम्, ऐं ह्रीं श्रीं फें क्ष्रौं नमो भगवति क्ष्रौं कुब्जिके ह्रों ह्रों क्रैं ङञणनमेऽघोरमुखि छ्रां छां विच्चे, ॐ किलि किलि ।।२।।
कृत्वा कराङ्गन्यासं च सन्ध्यावन्दनमाचरेत् । वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री सन्ध्यात्रयमनुक्रमात् ।।३।।
कुलवागीशि विद्महे । महाकालीति धीमहि । तन्नः कौली प्रचोदयात् ।।४।।
मन्त्राः पञ्च प्रणवाद्याः पादुकां पूजयामि च । मध्ये नाम चतुर्थ्यन्तं द्विनवात्मकबीजकाः ।।५।।
नमोन्ता [2]वाऽथ षष्ट्या तु सर्वे ज्ञेया वदामि तान् । कौलीशनाथः सुकला जन्मतः कुब्जिका ततः ।।६।।
श्रीकण्ठनाथः कौलेशो गगनानन्दनाथकः । चटुला देबी मैत्रीशी कराली[3] तूर्णनाथकः ।।७।।
[4]अतलदेवी श्रीचन्द्रा देवीत्यन्तास्ततस्त्विमे[5] । [6]भगात्मपुंगणदेवमोहिनीं पादुकां यजेत् ।।८।।

अध्याय १४४

कुब्जिका-पूजा

ईश्वर बोले–अब मैं धर्म, अर्थ तथा विजय प्रदान करनेवाली श्रीसम्पन्न कुब्जिका देवी की पूजा का वर्णन करूँगा। पूजा मूल-मन्त्र से या (उनके) परिवार के मन्त्रों से करनी चाहिए। 'ॐ ऐं ह्रौं श्रीं खैं ह्रें····ॐ किलि किलि' यह (मूल) मन्त्र हैं ।।१-२।। करन्यास तथा अङ्गन्यास करके क्रमशः वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री नामक तीन प्रकार की सन्ध्योपासना करनी चाहिए। इस संध्या का गायत्री मन्त्र इस प्रकार है–'कुलवागीशि विद्महे, महाकालीति धीमहि। तन्नः कौली प्रचोदयात्' ।।३-४।। प्रस्तुत पूजा में प्रणव आदि मन्त्रों की संख्या पाँच है। 'मैं पादुका की पूजा करूँगा' यह कहकर आदरपूर्वक पूजा का उपक्रम करे। पादुकाओं की पूजा पीठ के मध्य में करनी चाहिए। उनके नामों के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में नमस्' शब्द से युक्त ग्यारह बीजमन्त्रों से सबकी पूजा करनी चाहिए। पादुकाओं के नाम ये हैं–कौलीशनाथ, सुकला, कुब्जिका, श्रीकण्ठनाथ, कौलेश, गगनानन्दनाथक, चटुला, देवी, मैत्रीशी, कराली, तूर्णनाथक,

---

१ क. ङ. क्यहर्षि°। २ क. ङ. °वाक्कायवान्ता स°। ३ क. ङ. दुष्टनाथकः। ४ ख. अतुलादेविश्रीचन्द्रे दे°। ५ ख. ग. °मे। गर्ताच्चायुक्कणं दे°। ६ क. ङ. °गार्था मुकपांदेवग्रहणी पा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां यजेत्। ब्रह्मज्ञानाऽथ कमला परमा विद्यया सह ।।९।।
विद्या[1] देवी गुरुशुद्धिस्त्रिशुद्धिं प्रवदामि ते। गगनश्चटुली चाऽऽत्मा पद्मानन्दो मणिः कला ।।१०।।
[2]कमलो माणिक्यकण्ठो गगनः कुमुदस्ततः। श्रीपद्मो भैरवानन्दो देवः कमल इत्यतः ।।११।।
शिवो भवोऽथ कृष्णश्च नव सिद्धाश्च षोडश। [3]चन्द्रपूरोऽथ गुल्मश्च शुभः कामोऽतिमुक्तकः[4] ।।१२।।
[5]कण्ठो वीरः प्रयोगोऽथ [6]कुशलो देवभोगकः। विश्वदेवः [7]खड्गदेवो रुद्रो धाताऽसिरेव च ।।१३।।
मुद्रास्फोटो वंशपूरो भोजः षोडश सिद्धकाः। [8]समयान्यस्तु देहस्तु षोढान्यासेन यन्त्रितः ।।१४।।
प्रक्षिप्य मण्डले पुष्पं मण्डलान्यथ पूजयेत्। अनन्तं च [9]महान्तं च सर्वदा शिवपादुकाम् ।।१५।।
महाव्याप्तिं च शून्यं च पञ्चतत्त्वात्ममण्डलम्। श्रीकण्ठनाथपादुकां शंकरानन्तकौ[10] यजेत् ।।१६।।
सदाशिवः पिङ्गलश्च भृग्वानन्दश्च नाथकः। लाङ्गूलानन्दसंवर्तौ [11]मण्डलस्थानके यजेत् ।।१७।।
नैर्ऋत्ये श्रीमहाकालः पिनाकी च महेन्द्रकः। खड्गो भुजङ्गो बाणश्च अघासिः शब्दको वशः ।।१८।।
आज्ञापरूपो नन्दरूपो बलिं दत्त्वा क्रमं यजेत् ।।१९।।

ह्रीं खं खं हूं सौं बटुकाय, अरु अरु, अर्धं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम्[12] ॐ ह्रां ह्रीं हूं क्षें क्षेत्रपालायावतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख, एह्येहि गन्धपुष्पबलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः, ॐ कः, ॐ लः, ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा ।।२०।।

अतलदेवी, श्रीचन्द्रा, अत्यन्ता, भगा, आत्मपुंगण, देवमोहिनी, अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्या, ब्रह्मज्ञाना, कमला और परम विद्या ।।५-९।। अब मैं तीन प्रकार की शुद्धियों–विद्याशुद्धि, देवीशुद्धि, गुरुशुद्धि का वर्णन करता हूँ। छह प्रकार के न्यास के द्वारा साधक अपने हृदय में गगन, चटुली, आत्मा, पद्मानन्द, मणिकला, कमल, माणिक्यकण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म, भैरवानन्द, देव, कमल, शिव, भव तथा कृष्ण नामक देवताओं और चन्द्रपूर, गुल्म, शुभ, काम, अतिमुक्तक, कण्ठ, वीर, प्रयोग, कुशल, देवभोगक, विश्वदेव, खड्गदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रा-स्फोट, वंशपूर, भोज और समयान्य नामक सिद्धों की स्थापना करे। तदनन्तर मण्डल के ऊपर पुष्पों को चढ़ाकर उसकी पूजा कर लेने के पश्चात् अनन्त तथा महान् नामक शिवपादुका, महाव्याप्ति, शून्य और पञ्चतत्त्व नामक आत्ममण्डल की पूजा करनी चाहिए ।।१०-१५½।। फिर श्रीकण्ठनाथ की शंकर और अनन्त नामक पादुकाओं का पूजन करके मण्डल-स्थान में सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथक, लाङ्गूलानन्द और संवर्त की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दक्षिण-पश्चिम में श्री महाकाल, पिनाकी, महेन्द्रक, खड्ग, भुजङ्ग, बाण, अघासि, शब्दक, वश, आज्ञारूप तथा नन्दरूप को एक मन्त्र से बलि देकर क्रमशः उनका पूजन करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है–'ह्रीं खं खं हूं·····ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा' ।।१६-२०।। बलि समर्पण के पश्चात् 'ह्रीं हूं हां श्रीं वैं' इस त्रिकूट मन्त्र का पूजन करके

---

१ क. ङ. गुरुं सिद्धि°। २ क. ङ. °मलौ माणिक्यकण्ठा गगनं कुमुदेस्त°। ३ क. ङ. °न्द्र प्रभोऽथ। ४ क. ख. ग. ङ. °मोऽथ मु°। ५ क. ख. ग. ङ. वटो। ६ क. ङ. भोगदायकः। ७ ख. ग. °ड्गदो वा रु°। ८ क. ङ. °मजात्यस्तु। ९ क. ङ. महोत्साऽथ सर्वथा शिवपादुकाः। म°। १० क. ख. ग. ङ. °न्तको य°। ११ क. ख. ङ. च. °ण्डले स्था°। १२ ख. ग. ॐ हूं ह्रीं हैं क्षें°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बलिशेषेऽथ यजेद्ध्रीं ह्रूं हां श्रीं वै त्रिकूटकम् । वामे च दक्षिणे ह्यग्रे याम्ये निशानाथपादुकाः ।।२१।।
([1]दक्षे तमोरिनाथस्य[2] ह्यग्रे कालाननस्य च । उड्डियाणं जालंधरं पूर्णं वै कामरूपकम् ।।२२।।
गगनानन्ददेवं[3] च स्वर्गानन्दं सवर्गकम् । [4]परमानन्ददेवं च सत्यानन्दस्य पादुकाम्) ।।२३।।
नागानन्दं च वर्गाख्यमुक्तं ते रत्नपञ्चकम् । सौम्ये शिवे यजेत्षट्कं सुरनाथस्य पादुकाम् ।।२४।।
श्रीमत्समयकोटीशं विद्याकोटीश्वरं यजेत् । कोटीशं विन्दुकोटीशं सिद्धकोटीश्वरम् तथा ।।२५।।
सिद्धचतुष्कमाग्नेय्याममरीशेश्वरं[5] यजेत् । [6]चक्रीशनाथं कुरङ्गेशं वृत्रेशं चन्द्रनाथकम् ।।२६।।
यजेद्गन्धादिभिश्चैतान्याम्ये विमलपञ्चकम् । यजेदनादिविमलं सर्वज्ञविमलं ततः ।।२७।।
यजेद्योगीशविमलं सिद्धाख्यं समयाख्यकम् । नैर्ऋत्ये[7] चतुरो[8] देवान्यजेत्कन्दर्पनाथकम् ।।२८।।
[9]पूर्वा शक्तीश्च सर्वाश्च कुब्जिकापादुकां यजेत् । नवात्मकेन मन्त्रेण पञ्चप्रणवकेन वा ।।२९।।
[10]सहस्राक्षमनवद्यं विष्णुं शिवं सदा यजेत् । पूर्वाच्छिवान्तं ब्रह्मादि ब्रह्माणी च महेश्वरी ।।३०।।
कौमारी वैष्णवी चैव वाराही शक्रशक्तिका । चामुण्डा च महालक्ष्मीः पूर्वादीशान्तमर्चयेत्[11] ।।३१।।
डाकिनी राकिनी पूज्या लाकिनी काकिनी तथा । शाकिनी याकिनी पूज्या वायव्यादुग्रषट्सु च ।।३२।।
यजेद्ध्यात्वा ततो देवीं द्वात्रिंशद्वर्णकात्म (त्मि) काम् । पञ्चप्रणवकेनापि[12] ह्रींकारेणाथ वा यजेत् ।।३३।।

साधक अपने बायें तथा दाहिने हाथ में, सामने और दक्षिण दिशा में निशानाथ की पादुकाओं का पूजन करे। तदनन्तर दक्षिण भाग में तमोऽरिनाथ (सूर्य) और सामने कालानल की पूजा करनी चाहिए। फिर उड्डियाण, जालंधर, पूर्ण, कामरूपक, गगनान्ददेव, वर्गसहित, स्वर्गानन्द, परमानन्ददेव, सत्यानन्द की पादुका, नागानन्द और वर्ग नामक रत्नपञ्चक की पूजा करनी चाहिए। उत्तर दिशा तथा पूर्वोत्तर कोण में छह सुरनाथों की पादुका, श्रीमत्सकोटीश तथा विद्याकोटीश्वर की पूजा करनी चाहिए। यही चार सिद्ध कहलाते हैं। तदनन्तर सुगन्धित पदार्थ इत्यादि से चक्रीशनाथ, कुरङ्गेश, वृत्रेश तथा चन्द्रनाथ की पूजा करनी चाहिए ।।२१-२६।। उसके बाद दक्षिण दिशा में अनादिविमल, सर्वज्ञविमल, योगीशविमल, सिद्धविमल, समयविमल–इन पाँच विमलों की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दक्षिण-पश्चिम कोण में कन्दर्पनाथ, पूर्वशक्ति, सर्वशक्ति तथा कुब्जिका पादुका–इन चार देवताओं की पूजा करनी चाहिए। नवात्मक मन्त्र या पञ्चप्रणवक मन्त्र से इन्द्र, निष्कलुष विष्णु तथा शिव की पूजा करनी चाहिए ।।२७-२९$\frac{1}{2}$।। फिर पूर्व दिशा से पूर्वोत्तर कोण तक ब्रह्मा, ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, शक्रशक्तिका, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी की पूजा करके पश्चिमोत्तर कोण से लेकर (मण्डल के) छह कोणों तक डाकिनी, राकिनी, पूज्या, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर बत्तीस वर्णोंवाली देवी का ध्यान करके पञ्चप्रणव मन्त्र से या ह्रींकार मन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिए ।।३०-३३।। पूजन करते समय कुब्जिका देवी का ध्यान इस प्रकार करना

---

१ दक्षे…पादुकाम् पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °स्य अग्ने का°। ३ क. ङ. च. मर्त्यनिन्दस्य पादुकाम्। ४ परमानन्ददेवं…पादुकाम्। क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति। ५ ग. शेखरं°। ६ चक्रशनाथं…चन्द्रनाथकम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ क. ङ. °त्ये च यजेद्देवा°। ८ ख. °रो वेदान्य°। ९ क. पूर्वान्सशक्ती न्सर्वा°। १० क. ख. ग. ङ. °हक्षमलरलयं वि°। ११ क. ङ. °दीशां तु अ°। १२ ख. ग. °पि क्षीं का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नीलोत्पलदलश्यामा षड्वक्त्रा षट्प्रकारिका[1] । चिच्छक्तिरष्टादशाख्या बाहुद्वादशसंयुता ।।३४।।
सिंहासनसुखासीना प्रेतपद्मोपरि स्थिता । कुलकोटिसहस्राद्या[2] कर्कोटो मेखलास्थितः ।।३५।।
तक्षकेणोपरिष्टाच्च गले हारश्च वासुकिः । कुलिकः कर्णयोर्यस्याः कूर्मः कुण्डलमण्डलः ।।३६।।
[3]भ्रुवोः पद्मो महापद्मो वामे नागः कपालकः । अक्षसूत्रं च खट्वाङ्गं शङ्खं पुस्तं च दक्षिणे ।।३७।।
त्रिशूलं दर्पणं खड्गं रत्नमालाऽङ्कुशं धनुः । श्वेतमूर्ध्वं मुखं देव्या ऊर्ध्वश्वेतं तथाऽपरम् ।।३८।।
पूर्वास्यं [4]पाण्डरं क्रोधि दक्षिणं कृष्णवर्णकम् । हिमकुन्देन्दुभं सौम्यं ब्रह्मा पादतले स्थितः ।।३९।।
विष्णुस्तु जघने रुद्रो हृदि कण्ठे तथेश्वरः । सदाशिवो ललाटे स्याच्छिवस्तस्योर्ध्वतः स्थितः ।।४०।।
आघूर्णिका कुब्जिकैवं ध्येया पूजादिकर्मसु ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मालिनीमन्त्राः

ईश्वर उवाच

नानामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि षोढान्यासपुरःसरम् । न्यासस्त्रिधा तु षोढा स्युः शाक्तशांभवयामलाः ।।१।।

चाहिए कि उनका वर्ण नीलकमल के समान श्याम है। उनके छह मुख, छह प्रकारिकाएँ, अट्ठारह चिच्छक्तियाँ और बारह भुजाएँ हैं। वे सिंहासन पर सुखपूर्वक प्रेतपद्म लगाकर बैठी हुई हैं। वे सहस्र करोड़ कुल से सम्पन्न हैं। उनकी मेखला में कर्कोट (साँप) बँधा हुआ है, ऊपर से तक्षक पड़ा हुआ है। गले में वासुकि सर्प का हार है। कानों में कुलिक साँप हैं। कूर्म का कुण्डल बना हुआ है। भौंहों पर पद्म तथा महापद्म साँप बैठे हुए हैं। बायें हाथ में कपालक नाग, अक्षसूत्र, अस्थिपञ्जर, शङ्ख तथा पुस्त (शिल्प आदि बतानेवाला ग्रन्थ) और दायें हाथ में त्रिशूल, दर्पण, खड्ग, रत्नमाला, अंकुश तथा धनुष लिये हुए हैं। पूर्व दिशा का मुख श्वेत और क्रोध से युक्त है। दक्षिण दिशा का मुख काले रंग का है और उत्तर दिशा की ओर का मुख हिम, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण का है। ब्रह्मा उनके चरणों के नीचे, विष्णु जघनस्थल में, रुद्र हृदय में, ईश्वर कण्ठ में, सदाशिव मस्तक में और शिव उनके ऊपर (सिर में) रहते हैं। पूजा इत्यादि कर्मों में आघूर्णिका (घूमनेवाली) कुब्जिका देवी (कन्या) का ध्यान इसी रूप में करना चाहिए ।।३४-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में कुब्जिका-पूजा वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४४।।

अध्याय १४५

मालिनी-मन्त्र

ईश्वर बोले-अब मैं षोडशन्यासपूर्वक नाना प्रकार के मन्त्रों का वर्णन करूँगा। शाक्त, शाम्भव और यामल

---

१ क. ङ. °काशका। ग. °काशिका। २ क. ङ. °स्त्राख्या क°। ख. ग. च. स्त्राद्या क°। ३ क. ङ. तरोः। ख. ग. भ्रुवः। च. तयोः। ४ क. ङ. पाण्डुरं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शांभवे शब्दराशिः षट्षोडशग्रन्थिरूपवान् । ([1]त्रिविद्या तद्ग्रहो न्यासस्त्रितत्त्वात्माभिधानकः ।।२।।
[2]चतुर्थी वनमालायाः श्लोक द्वादश रूपवान्) । ([3]पञ्चमो रत्नपञ्चात्मा नवात्मा षष्ठ[4] ईरितः ।।३।।
शाक्ते पक्षे च मालिन्यास्त्रिविद्यात्मा द्वितीयकः[5] । अघोर्यष्टकरूपोऽन्यो द्वादशाङ्गश्चतुर्थकः ।।४।।
पञ्चमस्तु षडङ्गः स्याच्छक्तिश्चान्याऽस्त्रचण्डिका) । क्लीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट् त्रयं स्यात्तूर्याख्यं सर्वसाधकम् ।।५।।
मालिन्या [6]नादिफान्तं स्यान्नादिनी च शिखा स्मृता[7] । अग्रसनी शिरसि स्याच्छिरोमालानिवृत्तिः शः ।।६।।
ट शान्तिश्च शिरो भूयाच्चामुण्डा च त्रिनेत्रगा । ढ [8]प्रियदृष्टिर्द्विनेत्रे च नासागा गुह्यशक्तिनी ।।७।।
न नारायणी द्विकर्णे च दक्षकर्णे[9] त मोहिनी । ज प्रज्ञा[10] वामकर्णस्था वक्त्रे च वज्रिणी स्मृता ।।८।।
क कराली[11] दक्षदंष्ट्रा[12] वामांसा ख कपालिनी[13] । ग शिवा ऊर्ध्वदंष्ट्रा स्याद् घ घोरा वामदंष्ट्रिका ।।९।।
उ शिखा दन्तविन्यासा[14] ई माया जिह्वया स्मृता[15] । अ स्यान्नागेश्वरी वाचि व कण्ठे शिखिवाहिनी ।।१०।।
भ भीषणी दक्षस्कन्धे वायुवेगा म वामके । ड नामा दक्षबाहौ तु ढ वामे च विनायका ।।११।।
प पूर्णिमा द्विहस्ते[16] तु ओंकाराद्यङ्गुलीयके । अं दर्शनी वामाङ्गुल्य (?) अः स्यात्सञ्जीवनी करे ।।१२।।
ट कपालिनी कपालं शूलदण्डे[17] त दीपनी । त्रिशूले च जयन्ती स्याद् [18]वृद्धिर्यः साधनी स्मृता ।।१३।।

मन्त्रों का तीन प्रकार का न्यास होता है। शाम्भव षोडशन्यास में सोलह ग्रन्थियों से शब्दराशि समन्वित रहती है। तीन विद्याएँ होती हैं, इसलिए उसका न्यास भी त्रितत्त्वात्मक कहा गया है ।।१-२।। वनमाला रूप चतुर्थी पूजा में बारह श्लोक होते हैं तथा पाँचवीं और छठी पूजाएँ पञ्चरत्नात्मक और नवात्मक कही गयी हैं। शाक्त-पूजन में न्यास त्रिविद्यात्मक होता है, किन्तु दूसरे शाम्भव पूजन में अघोर्यष्टक नामक शिव की आठ उपाधियों का न्यास हृदय, ग्रीवा, पार्श्व, कक्ष, वक्षःस्थल और पृष्ठ पर करना चाहिए। चतुर्थन्यास द्वादशाङ्ग और पाँचवाँ षडङ्ग होता है। 'क्लीं ह्रीं श्रीं क्रूं फट्' यह मन्त्र सर्वसाधक होता है ।।३-५।। न से फ पर्यन्त अक्षरमालिनी मन्त्र में होते हैं। नादिनी को शिखा कहा गया है, जबकि सिर के ऊपर रहनेवाली अक्षरमाला श वर्ण से समाप्त होती है। न्यास इस प्रकार करना चाहिए–शान्ति का प्रतीक 'ट' मेरे सिर पर स्थित हो और चामुण्डा मेरे तीनों नेत्रों के ऊपर, प्रिय दृष्टि 'ढ' दोनों नेत्रों में और गुह्यशक्तिनी नासिका पर निवास करे ।।६-७।। नारायणी देवी का प्रतीक 'न' दोनों कानों में तथा मोहिनी का प्रतीक 'त' मेरे दक्षिण कर्ण में रहे। प्रज्ञा का प्रतीक 'ज' वामकर्ण में तथा वज्रिणी का प्रतीक 'च' मुख में निवास करे। कराली का प्रतीक 'क' दाहिनी दाढ़ में, घोरा का प्रतीक 'घ' बायीं दाढ़ में, शिखा का प्रतीक 'उ' दाँतों में, मात्रा का प्रतीक 'ई' जिह्वा में, नागेश्वरी का प्रतीक 'अ' वाणी में, शिखिवाहिनी का प्रतीक 'व' कण्ठ में रहता है ।।८-१०।। भीषणी का प्रतीक 'भ' दाहिने कन्धे पर, वायुवेगा का प्रतीक 'म' बायें कन्धे पर, 'ड' दक्षिण बाहु पर, विनायका का प्रतीक 'ढ' बायीं भुजा पर, पूर्णिमा का प्रतीक दोनों हाथों पर, 'ॐ' अँगुलियों पर, दर्शनी का प्रतीक 'अ' बायीं अँगुली पर, संजीवनी का प्रतीक 'अः' हाथ में, कपालिनी का प्रतीक 'ट' कपाल पर, दीपिनी का प्रतीक 'हा' शूलदण्ड

---

१ त्रिविद्या···रूपवान् नास्ति ग. पुस्तके। २ क. ख. ङ. च. °तुर्थो व°। ३ पञ्चमो···चान्याऽस्त्रचण्डिका पुस्तके नास्ति। ४ क. ङ. °ष्ठ्याऽन्वितः। ५ क. ङ. °कः। आद्याप्याष्ट°। ६ ख. नाटिकान्तं। ७ क. ङ. °ता। षड्रनाशि°। ८ ख. ग. धः। ९ ख. °णे न मो°। १० क. ङ. °ज्ञा रासक°। ११ क. ङ. °रानी दण्डदं°। १२ क. ङ. ष्ट्रा रामासाखादिपा°। १३ च. °नी। सशि°। १४ क. ख. ग. च. °विन्यस्या ई। १५ क. ङ. °ता। आस्येन्ना। १६ ख. ग. °स्ते रुंरुकारी ह्यङ्गु°। १७ °ण्डे नदी°। १८ क. ङ. च. र्यः पावनी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीवे श[1] परमाख्याद्ध प्राणे च अम्बिका स्मृता । दक्षस्तने छ[2] शरीरा न वामे पूतना स्तने ।।१४।।
अ स्तनक्षीर आ [3]मोटो लम्बोदर्युदरे च थ । नाभौ संहारिका क्ष स्यान्महाकाली नितम्ब[4] (?) म ।।१५।।
गुह्ये स कुसुममाला[5] ष शुक्रे शुक्रदेविका । उरुद्वये त तारा स्याद्ज्ञाना दक्षजानुनि ।।१६।।
वामे स्यादौ क्रिया शक्तिरो गायत्री च जङ्घगा । ओ[6] सावित्री वामजङ्घा दक्षे दो दोहनी पदे ।।१७।।
फ फेत्कारी वामपादे नवात्मा मालिनी मनुः । अ श्रीकण्ठः शिखायां स्यादा वक्त्रे स्यादनन्तकः ।।१८।।
इ सूक्ष्मो दक्षनेत्रे स्यादी त्रिमूर्तिस्तु वामके । उ दक्षकर्णेऽमरीश ऊ कर्णेऽर्धांशकोऽपरे ।।१९।।
ऋ भावभूतिर्नासाग्रे वामनासा तिथीश ॠ । ([7]ऌ स्थाणुर्दक्षगण्डे स्याद्वामगण्डे हरश्च ॡ ।।२०।।
कटीशो दन्तपङ्क्तावे भूतीशश्चोर्ध्वदन्त ऐ । सद्योजात ओ अधर ऊर्ध्वोष्ठेऽनुग्रहीश औ) ।।२१।।
अं क्रूरो [8]घाटकायां स्यादः, महासेनजिह्वया । क क्रोधीशो दक्षस्कन्धे खश्चण्डीशश्च बाहुषु ।।२२।।
पञ्चान्तकः कूर्परे गो (ग) घ शिखी दक्षकङ्कणे । ङ एकपादश्चाङ्गुल्यो[9] वामस्कन्धे च कूर्मकः ।।२३।।
छ एकनेत्रो बाहौ स्याच्चतुर्वक्त्रो ज कूर्परे । ([10]झ राजसः कङ्कणगो ञ[11] सर्वकामदोऽङ्गुली ।।२४।।

पर, जयन्ती का प्रतीक 'च' त्रिशूल पर और साधनी का प्रतीक 'श' जीव में, अम्बिका का प्रतीक 'ह' प्राण में, शरीरा का प्रतीक 'छ' दाहिने स्तन पर, पूतना का प्रतीक 'न' वाम स्तन पर, 'अ' स्तन के दुग्ध में और लम्बोदरी का प्रतीक 'आ' उदर में, संहारिका का प्रतीक नाभि में, महाकाली का प्रतीक नितम्ब में रहता है ।।११-१५।। कुसुममाला का प्रतीक 'स' गुह्यस्थान में, शुक्रदेविका का प्रतीक 'त' दोनों जङ्घाओं में, ज्ञाना का प्रतीक 'द' दाहिने घुटने पर, क्रियाशक्ति का प्रतीक 'औ' बायें घुटने पर, गायत्री का प्रतीक 'ओ' जङ्घा पर, सावित्री का प्रतीक 'ओ' बायीं जङ्घा पर, दोहनी का प्रतीक 'द' दाहिनी जङ्घा पर और फेत्कारी का प्रतीक 'फ' वामपाद में रहता है। अब मैं नवात्ममालिनी मन्त्रों के व्यास को बतलाऊँगा, जो इस प्रकार है–श्रीकण्ठ का प्रतीक 'अ' शिखा में, अनन्तक का प्रतीक 'आ' मुख में, सूक्ष्म 'इ' दाहिने नेत्र में, त्रिमूर्ति का प्रतीक 'ई' बायें नेत्र में, अमरीश का प्रतीक 'उ' दाहिने कान में, अर्धांशक का प्रतीक 'ऊ' कान में रहता है ।।१६-१९।। भावभूति का प्रतीक 'ऋ' नासिका के अग्र भाग पर, तिथीश 'ॠ' वाम नासिका पर, स्थाणु का प्रतीक 'ऌ' दाहिने कपोल पर, हर का प्रतीक ॡ बायें कपोल पर, कटीश 'ए' दन्तपंक्ति में, भूतीश का प्रतीक 'ऐ' ऊर्ध्वदन्त में, सद्योजात का प्रतीक 'ओ' अधर में, अनुग्रहीश का प्रतीक 'औ' ऊर्ध्व ओष्ठ में, क्रूर का प्रतीक 'अं' घटिका में, महासेन का प्रतीक 'अः' जिह्वा में, क्रोधीश 'क' दाहिने कन्धे पर, चण्डीश 'ख' बाहुओं पर, पञ्चान्तक का प्रतीक 'ग' कूर्पर में, शिखी का प्रतीक 'घ' दाहिने कन्धे पर, एक पाद 'ङ' अँगुलियों में, कूर्पर का प्रतीक 'च' बायें कन्धे पर, एक नेत्र का प्रतीक 'छ' बाहु में, चतुरानन का प्रतीक 'ज' कूर्पर में, राजस 'झ' कङ्कण में, सर्वकामद 'ञ' अँगुली में रहता है ।।२०-२४।। सोमेश 'ट' नितम्ब में, दक्ष का प्रतीक 'ठ' जङ्घाओं में, दारुक

---

१ क. ङ. स। २ क. ङ. च. छ. छ करी°। ३ ख. ग. ङ. च. मोटी। ४ च. °म्ब सः। गु°। ५ क. ख. ग. ङ. °ला अ शु°। ६ ख. ग. ङ. च. ओ°। ७ ऌ स्थाणुर्दक्षगण्डे…ऊर्ध्वोष्ठेऽनुग्रहीश औ' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ८ क. ङ. मुण्डिकायां। च. कण्ठिकायां। ९ ख. ग. °ङ्गुले बा°। १० झ राजसः…लाङ्गली क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ११ ख. ग. च. °ञ अशनं वाम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ट सोमेशो नितम्बे स्याद्दक्ष ऊरुर्ट (रौ ठ) लाङ्गली) । ड दारुको दक्षजानौ जङ्घा ढोऽर्धजलेश्वर ।।२५।।
ण उमाकान्तकोऽङ्गुल्यस्त आषाढी नितम्बके । थ दण्डी वाम ऊरौ स्याद् भिदो वामजानु ।।२६।।
ध मीनो वामजङ्घायां न मेषश्चरणाङ्गुली । प लोहित दक्षकुक्षौ फ शिखी वामकुक्षिगः ।।२७।।
ब गलण्डः पृष्ठवंशे भो (भ) नाभौ च द्विरण्डकः । म महाकालो हृदये य वाणीशस्त्वविस्मृतः[1] ।।२८।।
र रक्ते स्याद्भुजङ्गेशो ल पिनाकी च मांसके । व खड्गीशः स्वात्मनि स्याद्वकश्चास्थिनि शः स्मृतः ।।२९।।
ष श्वेतश्चैव मज्जायां स भृगुः शुक्रधातुके । प्राणे हो नकुलीशः स्यात्क्ष संवर्तश्च कोषगः ।।
रुद्रशक्तीः प्रपूज्य ह्रीं बीजेनाखिलमाप्नुयात् ।।३०।।
इत्यादिमहापुराण आग्नेये मालिनीमन्त्रादिन्यासविधिकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४५।।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अष्टाष्टकदेव्यः

ईश्वर उवाच

त्रिखण्डीं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरीम् ।।१।।

का प्रतीक 'ड' दाहिनी जङ्घा में, अर्धजलेश्वर 'ढ' जङ्घा में, उमाकान्तक 'ण' अँगुली पर, आषाढ़ी का प्रतीक 'व' नितम्ब पर, दण्डी का प्रतीक 'थ' बायीं ऊरू पर, भयदायक 'द' बायें घुटने पर, मीन का प्रतीक 'ध' बायीं जङ्घा पर, मेष का प्रतीक 'न' पैरों की अँगुलियों पर, लोहित वर्ण का 'प' दाहिनी कुक्षि पर, शिखि का प्रतीक 'फ' बायीं कुक्षि में, गलण्ड का प्रतीक 'ब' पुष्टि के ऊपर, विरन्दक का प्रतीक 'भ' नाभि में, महाकाल का प्रतीक 'म' हृदय में और 'य' वाणीश के रूप में रहता है। भुजङ्गेश का प्रतीक 'र' रक्त में, पिनाकी का प्रतीक 'ल' मांस में, खड्गीश का प्रतीक 'व' आत्मा में, वक्र का प्रतीक 'श' अस्थि में, श्वेत का प्रतीक 'ष' मज्जा में, भृगु का प्रतीक 'स' शुभ्रधातु में, नकुलीश 'ह' प्राण में और संवर्त का प्रतीक 'क्ष' कोष में रहता है। ह्रीं बीज से रुद्रशक्तियों का पूजन करके सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त किया जा सकता है ।।२५-३०।।

श्री अग्निमहापुराण में मालिनी मन्त्र-न्यास विधि वर्णन नामक
एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४५।।

अध्याय १४६

अष्टाष्टक देवी-कथन

ईश्वर बोले–अब मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध त्रिखण्डी मन्त्रों का वर्णन करूँगा ।।१।। ॐ नमो भगवते

---

१ ख. ग. °स्त्वरिः स्मृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। नमश्चामुण्डे नमश्चाऽऽकाशमातृणां सर्वकामार्थसाधनीनाम-जरामरीणां सर्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपरूपपरिवर्तनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्त-कर्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातृणां वचनं शुभम् ।।२।।

ब्रह्मखण्डपदे रुद्रैरेकाविंशाधिकं शतम् ।।३।।

तद्यथा–ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि, [1]अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा।

ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि, अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा।

ॐ[2] नमश्चामुण्ड ईशानि अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा ।।४।।

यथाक्षरपदानां हि विष्णुखण्डं द्वितीयकम् ।।५।।

[3]ॐ नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे [4]तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणितसुरासवप्रिये हस हस, ॐ नृत्य नृत्य, ॐ विजृम्भय विजृम्भय, ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनामों बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट [5]चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि, ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे ।।६।।

एकत्रिंशत्पदं शम्भोः शतमन्त्रैकसप्ततिः। हे घौं[6] पञ्चप्रणवाद्यन्तां त्रिखण्डीं च जपेद्यजेत् ।।७।।

हे घौं श्रीकुब्जिकाहृदयं पदसंधौ तु योजयेत्। अकुलादि त्रिमध्यस्थं कुलादेश्च त्रिमध्यगम् ।।८।।

मध्यमादि त्रिमध्यस्थं पिण्डं पादे त्रिमध्यगम्। त्रयार्धमात्रा संयुक्तं प्रणवाद्यं शिखा शिवाम् ।।९।।

ॐ क्ष्रौं शिखा भैरवाय नमः (स्खां स्खीं स्खें स बीजत्र्यक्षरः) ।।१०।।

रुद्राय नमः, नमश्चामुण्डे। आकाश की माताओं, सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली, अजर, अमर, सर्वत्र अप्रतिहत गतिवाली, सभी प्राणियों के वशीकरण का विनाश करनेवाली, सभी कर्मों में प्रवृत्त मातृकाओं का सभी मातृकाओं में गुह्य, हृदयरूप परमसिद्ध, दूसरे के कर्मों को नष्ट करनेवाला, अत्यन्त सिद्ध को उत्पन्न करनेवाला वचन शुभ माना गया है ।।२।। ब्रह्मखण्ड पद में रुद्रों के द्वारा जपे हुए एक सौ इक्कीस अक्षर पद शुभ माने गये हैं वे हैं–'ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि···विच्चे स्वाहा ।।३-४।। अक्षर पदों के अनुसार दूसरा विष्णु खण्ड है, जिसके मन्त्र हैं–'ॐ नमश्चामुण्डे···· मातृगणाय नमो नमो विच्चे।' शम्भु के इकतीस पदोंवाले एक सौ इकहत्तर मन्त्र होते हैं। त्रिखण्डीमन्त्र का जप 'हे घौं' के आदि और अन्त में पाँच-पाँच बार पाठ करना चाहिए ।।५-७।। इस त्रिखण्डी-मन्त्र के आदि और अन्त में 'हे घौं' तथा पाँच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिए। 'हे घौं श्रीकुब्जिकायै नमः' इस मन्त्र को त्रिखण्डी के पदों की संधियों में जोड़ना चाहिए। अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग–ये चार प्रकार के मन्त्र-पिण्ड हैं। साढ़े तीन मात्राओं से युक्त प्रणव को आदि में लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिए। तदनन्तर भैरव के शिखा-मन्त्र का जप एवं पूजन करे–ॐ क्ष्रौं शिखा भैरवाय नमः, 'स्खां स्खीं स्खें' ये तीन सबीज अक्षर हैं ।।८-१०।। 'ह्रां ह्रीं ह्रैं' ये निर्बीज अक्षर हैं। विलोमक्रम से 'क्ष' से लेकर 'क' तक के बत्तीस

१ ग. °मोघव°। २ क. ख. ग. ङ. च. ऐं। ३ क. ख. ग च. ऐं। ४ क. ङ. °काक्षः पि°। ५ क. ङ. चिरण्डि चिरण्डि हि°। ६ क. ङ. स्त्रै°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्रां ह्रीं ह्रैं निर्बीजं त्र्यर्णं द्वात्रिंशद्वर्णकं परम्[1] । क्षादयश्च ककारान्ता अकुला च कुलक्रमात्[2] ।।११।।
शशिनी भानुनी चैव पावनी शिव इत्यतः । गान्धारी णश्च पिण्डाक्षी चपला[3] गजजिह्विका[4] ।।१२।।
म मृषा भयसारा स्यान्मध्यमा फोऽजराय च । ([5]कुमारी कालरात्री न[6] संकटा द ध कालिका ।।१३।।
फ शिवा भवघोरा ण ट बीभत्सा त विद्युता[7] । उ विश्वम्भरा शंसिन्या ढ ज्वालामालया तथा) ।।१४।।
कराली दुर्जया[8] रङ्गी वामा ज्येष्ठा च रौद्र्यपि । ख काली क कुलालम्बी अनुलोमा द पिण्डिनी ।।१५।।
आवेदिनी[9] इरुषी वै शान्तिमूर्तिः कलाकुला । [10](ऋ खड्गिनी[11] उ बलिता ऌ कुला ॡ तथा यदि ।।१६।।
सुभगा (गे) वेदनादिन्या [12]कराली, अं च मध्यमा । अः अपेतरयाः[13] पीठे पूज्याश्च शक्तयः क्रमात् ।।१७।।
स्खां[14] स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः ।।१८।।
अक्षोद्या ह्यृक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणक्षया) । पिङ्गाक्षी चाक्षया क्षेमा ब्रह्माण्यष्टकसंस्थिताः ।।१९।।
इला लीलावती नीला लङ्का लङ्केश्वरी तथा । लालसा विमला माला माहेश्वर्यष्टके स्थिताः ।।२०।।
हुताशना विशालाक्षी हूंकारी वडवामुखी । हाहारवा तथा क्रूरा क्रोधा बाला खरानना ।।२१।।
कौमार्या[15] देहसम्भूताः पूजिताः सर्वसिद्धिदाः । सर्वज्ञा तरला[16] तारा ऋग्वेदा च हयानना ।।२२।।
[17]सारासारस्वयंग्राहा शाश्वती वैष्णवीकुले । तालुजिह्वा च रक्ताक्षी विद्युज्जिह्वा करङ्किणी ।।२३।।

अक्षरों की वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम-क्रम से गणना होने पर वह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिवगान्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला, गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'य' कुमारी, 'न' कालरात्री, 'द' सकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' बीभत्सा, 'त' विद्युता, 'ठ' विश्वम्भरा और शंसिनी अथवा 'उ' विश्वम्भरा, 'आ' शंसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रङ्गी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डिनी, 'आ' वेदिनी, 'इ' रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति एवं कलाकुला, 'ऋ' खड्गिनी, 'उ' वलिता, 'ऌ' कुला, 'ॡ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियों का योगपीठ पर क्रमशः पूजन करना चाहिए। 'स्खां स्खीं स्खौं' महाभैरवाय नमः—यह भैरव के पूजन का मन्त्र है ।।११-१८।। (ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियों के साथ पृथक्-पृथक् आठ-आठ शक्तियाँ और हैं, जिन्हें अष्टक कहा गया है। उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।) अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा—ये ब्रह्माणी के अष्टक-दल में स्थित होती हैं। इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये माहेश्वरी-अष्टक में स्थित हैं। हुताशना, विशालाक्षी, हूंकारी, वडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा, खरानना, बाला ये आठ कौमारी के शरीर से प्रकट हुई हैं। इनका पूजन करने पर ये सम्पूर्ण सिद्धियाँ देनेवाली हैं ।।१९-२१$\frac{1}{2}$।। सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारासार, स्वयंग्राहा और शाश्वती ये वैष्णवी कुल में हैं। वाराही कुल में उत्पन्न होनेवाली शक्तियाँ हैं—तालुजिह्वा,

---

१ क. ङ. च म्। कादं°। २ च. त्। शाक्तिनी मातुनी चैव यावनी सर्वकारुतः। ३ क. ङ. च. °ला नागजि°। ४ ख. °का। मयूखभयमाख्यानमध्य°। ५ कुमारी…ज्वालामालया तथा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ६ ख. च. च। ७ ख. ग. ता। ठविशं भगशिन्याटं ढ°। ८ क. ग. नङ्गा। ९ ख. ग. च. °नी हूं। १० ऋ खड्गिनी…क्षपणक्षया क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ११ ख. °नील-वलितात्हत्कुलानन्दयोषिते। सु°। १२ ग. °दवादि°। १३ ख. ग. अद्यवचा पी°। १४ एतद्गद्यस्य पाठः ख. ग. च. पुस्तकेषु नास्ति। १५ क. ङ. °मारीदे°। १६ क. ङ. तबला नाभा ऋ°। १७ सारासारस्वयंग्राहा…सम्भवाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी कलिप्रिया। वाराहीकुलसम्भूताः पूजनीया जयार्थिना[1] ।।२४।।
चम्पा चम्पावती चैव प्रचम्पा ज्वलितानना। पिशाची पिचुवक्त्रा च लोलुपा ऐन्द्रीसम्भवाः) ।।२५।।
पावनी याचनी चैव वामनी दमनी तथा। विन्दुवेला बृहत्कुक्षी विद्युता विश्वरूपिणी ।।२६।।
चामुण्डाकुलसम्भूता मण्डले पूजिता जये। यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च यमान्तिका ।।२७।।
विडाली रेवती चैव जया च विजया तथा। महालक्ष्मी कुले जाता अष्टाष्टकमुदाहृतम् ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽष्टाष्टकदेवीकथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४६।।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्वरिता-पूजादि

ईश्वर उवाच

ॐगुह्यकुब्जिके हुंफट्, मम सर्वोपद्रवान्यन्त्रमन्त्रन्तन्त्र चूर्णप्रयोगादिकं[2] येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान्सर्वान्हन हन दंष्ट्राकरालिनि ह्रैं[3] ह्रीं ह्रूं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौम्, ॐ खे वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ।।१।।
ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ततः। ॐ खे ख्यां सर्वजनवशंकरी तथा स्याज्जनमोहिनी[4] ।।२।।
ॐ ख्यौं सर्वजनस्तम्भनी ऐं खं खां क्षोभणी तथा। ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी तथा ।।३।।

रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनाद, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी और कलिप्रिया। इनका पूजन विजयाभिलाषी के द्वारा किया जाता है। ऐन्द्री सम्भूत शक्तियाँ हैं–चम्पा, चम्पावती, प्रचप्पा, ज्वलितानना, पिशाची, पिचुवक्त्रा और लोलुपा। चामुण्डा-कुल में सम्भूत तथा विजयकाल में मण्डल के अन्तर्गत पूज्या शक्तियाँ हैं–पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, बृहत्कुक्षी, विद्युता और विश्वरूपिणी। महालक्ष्मी के कुल में उत्पन्न शक्तियाँ हैं–यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, विडाली, रेवती, जया और विजया। इस प्रकार शक्तियों के आठ अष्टक कहे गये हैं ।।२२-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में अष्टाष्टक देवीकथन नामक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४६।।

अध्याय १४७

त्वरितापूजादि

ईश्वर बोले–अयि दंष्ट्राकरालिनि! जिस व्यक्ति ने मेरे लिए सभी प्रकार के उपद्रवों यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र चूर्णप्रयोगादि किया है, जिसके द्वारा करवाया गया है, जो करता है, जो करेगा या जो इन सब कर्मों को करायेगा, उन सबको मार डालिये–मार डालिये--'ॐ गुह्यकुब्जिके हुं फट् ह्रैं ह्रीं ह्रूं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौम्, ॐ खें वों गुह्यकुब्जिकायै नमः' ।।१।। 'ह्रीं सर्वजनक्षोभणी·····क्षे क्षो ह्रीं फट्' ये नव (९) त्वरिता शक्तियाँ कही गयी हैं जिनका

---

१ ख. ज. °ना। पञ्चा पञ्चावती चैव प्रचण्डा ज्व°। २ ख. °न्त्रपूर्ण°। ३ क. ङ. फे°। ४ ग. च. मोहिनी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

फं श्रीं क्षीं श्रीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे हूं फट् ह्रीं नमः । ॐ ह्रां क्षे वच्छे क्षे क्षो ह्रीं फट् ।।४।।
नवेयं त्वरिता (प्रोक्ता) पुनर्ज्ञेयाऽर्चिता जये । ह्रौं सिंहायेत्यासनं स्याद्ध्रीं क्षे हृदयमीरितम् ।।५।।
वच्छेऽथ शिरसे स्वाहा त्वरितायाः शिवः स्मृतः[1] । क्षें ह्रीं शिखायै वौषट् स्याद्भवेत्क्षें कवचाय हुम् ।।६।।
हूं नेत्रत्रयाय वौषड्ह्रींमन्तं च फडन्तकम् । ह्रींकारी खेचरी चण्डा छेदनी क्षोभणी क्रिया ।।७।।
क्षेमकारी च ह्रींकारी फट्कारी नव शक्तयः । अथ दूतीः[2] प्रवक्ष्यामि पूज्या इन्द्रादिगाश्च ताः ।।८।।
ह्रीं नले[3] बहुतुण्डे चखगे ह्रीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ च्छे शवविभीषणे च च्छे चण्डे
छेदनि करालि ख खे छे खे खरहाङ्गी ह्रीं क्षे वक्षे कपिले ह क्षे ह्रूं क्रूं तेजीवति रौद्रि मातः
ह्रीं फे बे फेफे वक्त्रे वरी के पुटि पुटि घोरे हूं फट् ब्रह्म वेतालि मध्ये ।।९।।
गुप्ताङ्गानि च तत्त्वानि त्वरितायाः पुनर्वदे । ह्रौं हूं हः हृदये प्रोक्तं ह्रीं ह्रश्च शिरः स्मृतम् ।।१०।।
फां ज्वल ज्वलेति च शिखा वर्म[4] इले ह्रं हुं हुम् । क्रों क्षूं श्रीं नेत्रमित्युक्तं क्षौमस्त्रं त्रै ततश्च फट् ।।
हुं खे वच्छे क्षेः, ह्रीं क्षें हुं फट् वा ।।११।।
हुं शिरश्चैवमध्ये स्यात्पूर्वादो खे सदा शिवे । व ईशश्छे मनोन्मानी[5] मक्षे तार्क्षो ह्रीं च माधवः ।।
क्षें ब्रह्मा हुं तथाऽऽदित्यो दारुणं फट् स्मृताः सदा ।।१२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजादिविधिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४७।।

ज्ञान और अर्चन विजय-काल में होना चाहिए। 'ॐ ह्रौं सिंहाय' इस मन्त्र से आसन तथा 'ध्रीं क्षे' इत्यादि मन्त्र से हृदय का पूजन कहा गया है ।।२-५।। अब मैं उन देवताओं का नाम बतला रहा हूँ जिनकी पूजा त्वरिता शक्ति के साथ मण्डल के विभिन्न कोणों पर होती है। उनके पूजन के विभिन्न मन्त्र हैं। शिखा के लिए मन्त्र है–'क्षें ह्रीं वौषट्' कवच के लिए मन्त्र हैं 'क्षे हुम्' नेत्रत्रय का मन्त्र है 'ह्रूं वौषट्' इन मन्त्रों के अन्त में 'ह्रीं और फट्' का भी प्रयोग किया जाता है। नौ शक्तियाँ हैं–ह्रींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया, क्षेमकारी, ह्रींकारी और फट्कारी। अब मैं त्वरिता की दूतियों का वर्णन करूँगा जो कि पूर्व इत्यादि दिशाओं में पूज्य हैं। इनके मन्त्र हैं–'ह्रीं नले बहुतुण्डे·····ब्रह्मवेतालि मध्ये' ।।६-९।। अब मैं त्वरिता के गुह्याङ्गों और तत्त्वों का वर्णन करूँगा–'ह्रीं हूं हः' मन्त्र हृदय पर कहा जाता है। 'ह्रीं ह्रः' मन्त्र का प्रयोग सिर में किया जाता है। शिखा का मन्त्र है–'हां ज्वल ज्वल'। कवच का मन्त्र है–'इले ह्रं हुं हुम्'। नेत्र का मन्त्र है 'क्रौं क्षूं श्रीं'। अस्त्र के मन्त्र हैं–'क्षौं फट् हुं खे वच्छे क्षेः ह्रीं क्षें हम् फट्।' सिर और मध्य में हं पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः 'खे सदाशिवे, व ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षे तार्क्षः, ह्रीं माधवः, क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्' का उल्लेख एवं पूजन करे। ये आठ दिशाओं में पूजनीय देवता बताये गये हैं ।।१०-१२।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरिता पूजा विधि वर्णन नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४७।।

---

१ क. ङ. च. स्मृतम्। २ क. ङ. हन्तीः। च. आहुतीः। ख. ग. भूतिः। ३ क. ङ. ह्रीं। ४ ख. ग. धर्म। च. चर्म। ५ क. ख. ग. ङ. च. °नोन्मनी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयपूजा

ईश्वर उवाच

(१ॐ डे ख ख्यां सूर्याय) सङ्ग्रामविजयाय नमः। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रः ।।१।।
षडङ्गानि तु सूर्यस्य सङ्ग्रामे जयदस्य हि ।।२।।
ॐ हं खं खल्लौल्काय स्वाहा। (२स्फूं ह्रूं हुं क्रूम, ॐ ह्रों क्रेम ।।३।।
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।) धर्मं ज्ञानं च वैरोग्यमैश्वर्याद्यष्टकं यजेत् ।।४।।
अनन्तासनं सिंहासनं पद्मासनमतः परम्। कर्णिका केशराण्येव सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ।।५।।
दीप्ता सूक्ष्मा[३] जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा। अमोघा विद्युता पूज्या नवमी सर्वतोमुखी ।।६।।
सत्त्वं रजस्तमश्चैवं प्रकृतिं पुरुषं तथा। आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमर्चयेत् ।।७।।
[४]सर्वे सिन्धुसमायुक्ता मायानिलसमन्विताः। उषा प्रभा च सन्ध्या च साया माया बलान्विताः ।।८।।
विन्दुविष्णुसमायुक्ता द्वारपालास्तथाऽष्टकम्। सूर्यं चण्डं प्रचण्डं च पूजयेद्गन्धकादिभिः ।।
पूजया जपहोमाद्यैर्युद्धादौ विजयो भवेत् ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सङ्ग्रामविजयपूजाकथनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४८।।

अध्याय १४८

संग्राम विजय-पूजा

ईश्वर बोले–सङ्ग्राम में विजय प्रदान करनेवाले सूर्य के छह अङ्ग हैं। उनके मन्त्र हैं–ॐ डे ख ख्यां सूर्याय सङ्ग्राम विजयाय नमः। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रः। ॐ हं खं खशोल्काय स्वाहा। ॐ स्फूं ह्रूं हुं क्रूम् ॐ ह्रों क्रेम्। प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परमसुख, धर्म, ज्ञान और वैराग्य–इस ऐश्वर्याद्यष्टक का पूजन करना चाहिए ।।१-४।। इसके बाद अनन्तासन, सिंहासन, पद्मासन, कर्णिका, केशर, सूर्य, सोम और अग्निमण्डल का यजन करना चाहिए। दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी शक्तियाँ भी पूज्य हैं। इसके अनन्तर सत्त्व, रजस्, तमस्, प्रकृति, पुरुष, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा का पूजन करना चाहिए। सिन्धु से युक्त समी पदार्थ, माया और वायु से सम्बद्ध सभी पदार्थ, उषा, प्रभा, सन्ध्या, साया, माया, बलान्विता, विन्दु और विष्णु से युक्त सभी पदार्थ, द्वारपाल, सूर्य, चण्ड और प्रचण्ड का पूजन सुगन्धित पदार्थ इत्यादि से करना चाहिए। इस प्रकार की पूजा, जप, तप और होम इत्यादि से युद्धादि में विजय होती है ।।५-९।।

श्री अग्निमहापुराण में संग्राम विजय पूजा वर्णन नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१४८।।

---

१ ॐ डे ख···सूर्याय क. ख. ग. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ स्फूं ह्रूं···परमं सुखम् क. ङ. पुस्कयोर्नास्ति। ३ क. ङ. धूमा। ४ क. ख. ग. घ. ङ. °र्वे बिन्दु स°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्षकोटिहोमः

ईश्वर उवाच

होमाद्रणादौ विजयो राज्याप्तिर्विघ्ननाशनम् । कृच्छ्रेण शुद्धिमुत्पाद्य प्राणायामशतेन च ।।१।।
अन्तर्जले च गायत्रीं[1] जप्त्वा[2] षोडशधाऽऽचरेत् । प्राणायामांश्च पूर्वाह्णे जुहुयात्पावके हविः ।।२।।
भैक्ष्ययावकभक्षी[3] च फलमूलाशनोऽपि वा । क्षीरश (स) क्तुघृताहार एकमाहारमाश्रयेत् ।।३।।
यावत्समाप्तिर्भवति लक्षहोमस्य पार्वति । दक्षिणा लक्षहोमान्ते गावो वस्त्राणि काञ्चनम् ।।४।।
सर्वोत्पातसमुत्पत्तौ पञ्चभिर्दशभिर्द्विजैः । नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन[4] न शाम्यति ।।५।।
मङ्गल्यं परमं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते । कोटिहोमं तु यो राजा कारयेत्पूर्ववद्द्विजैः ।।६।।
न तस्य शत्रवः संख्ये जातु तिष्ठन्ति कर्हिचित्[5] । अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ।।७।।
राक्षसाद्याश्च शाम्यन्ति सर्वे च रिपवो[6] रणे । कोटिहोमे तु वरयेद्ब्राह्मणांन्विंशतिस्तथा ।।८।।
शतं चाथ सहस्रं वा यथेष्टां[7] भूतिमाप्नुयात् । कोटिहोमं तु यः कुर्याद्द्विजो भूपोऽथ वा च विट् ।।९।।

अध्याय १४९

लक्षकोटिहोमवर्णन

ईश्वर बोले–होम से युद्धादि में विजय, राज्य-प्राप्ति, विघ्ननाश होता है। आयासपूर्वक सौ बार प्राणायाम करके अपने-आपको शुद्ध करके जल में सोलह बार गायत्री का जप करके प्राणायाम करना चाहिए और पूर्वाह्ण में अग्नि में हवि की आहुति देनी चाहिए ।।१-२।। इस कर्म में भिक्षा से प्राप्त जौ, फल, मूल, दुग्ध और सत्तू का एक बार भोजन करना चाहिए। अयि पार्वति! एक लाख होमों की समाप्ति तक यही विधि होनी चाहिए। एक लाख होम के बाद गायें, वस्त्र, सोना दक्षिणा में देना चाहिए ।।३-४।। सभी उत्पातों के उत्पन्न होने पर पाँच अथवा दस ब्राह्मणों को इस प्रकार की दक्षिणा देनी चाहिए। संसार में कोई भी ऐसा उत्पात नहीं है जो इससे शान्त न हो जाता हो और न तो कोई ऐसा माङ्गल्य कर्म ही है जो इससे बढ़कर हो। जो राजा ब्राह्मणों के द्वारा पूर्ववत् कोटि होम कराता है उसके शत्रु सङ्ग्राम में तनिक भी स्थिर नहीं रह पाते हैं। अतिवृष्टि अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक और राक्षस इत्यादि तो शान्त ही हो जाते हैं, युद्धस्थल में शत्रु भी शान्त हो जाते हैं ।।५-७ $\frac{1}{2}$।। कोटि होम में यथाशक्ति बीस, सौ अथवा एक हजार ब्राह्मणों का वरण करना चाहिए। इससे कल्याण की प्राप्ति होती है। कोई भी ब्राह्मण, राजा अथवा वैश्य को कोटि होम करने से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है और वह सशरीर स्वर्गलोक को पहुँच जाता है ।।८-९ $\frac{1}{2}$।। गायत्री,

---

१ अत्रेडभाव आर्षः। २ क. ङ. च. दृष्ट्या। ३ क. ङ. भैक्षयावकभैक्षी। ४ क. ङ. °नेनानुशा°। ५ कर्हिचित् एतदग्रे न तस्य मास्कोदेशे व्याधिर्वा जायते क्वचित् इत्यधिकं क. ग. घ. ङ. च. पुस्तकेषु। ६ क. ङ. च. परितो। ७ क. ङ. °ष्टा° धृतिमा मा° च ष्टाँ भुं (भू) मिस्त।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदिच्छेत्प्राप्नुयात्तत्तत्सशरीरो दिवं व्रजेत्। गायत्र्या ग्रहमन्त्रैर्वा[1] कूष्माण्डैर्जातवेदसैः ।।१०।।
ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्याग्नेयैश्च[2] वैष्णवैः। शाक्तेयैः शाम्भवैः सौरैर्मन्त्रैर्होमार्चनात्ततः ।।११।।
अयुतेनाल्पसिद्धिः स्याल्लक्षहोमोऽखिलार्तिनुत्। सर्वपीडादि(वि)नाशाय कोटिहोमोऽखिलार्थदः ।।१२।।
यवब्रीहितिलक्षीरघृतकुशप्रसातिकाः[3] । पङ्कजोशीरबिल्वाम्रदला [4]होमे प्रकीर्तिताः ।।१३।।
अष्टहस्तप्रमाणेन कोटिहोमेषु खातकम्। तस्यादर्धप्रमाणेन लक्षहोमे विधीयते ।।१४।।
होमोऽयुतेन लक्षेण कोट्याद्याज्यैः प्रकीर्तितः ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमकथनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४९।।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्वन्तराणि

अग्निरुवाच

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्यः स्वायंभुवो मनुः। आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः ।।१।।
और्वाद्याश्च सप्तर्षय इन्द्रश्चैव शतक्रतुः। पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ।।२।।

ग्रह, कूष्माण्ड, जातवेदस, ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शाक्त और सौरमन्त्रों से पूजन करने के बाद दस सहस्र होम करने से अल्प सिद्धि प्राप्त होती है और लक्ष-होम से सभी विपत्तियों का नाश होता है, कोटि होम सभी पीड़ाओं का नाशक तथा सभी सिद्धियों को देनेवाला है। इस होम में प्रयुक्त होनेवाली सामग्रियाँ हैं जौ, धान, तिल, दूध, घी, कुश, पसई (चावल), कमल, खस, बिल्व और आम्रपत्र। कोटि होमों में आठ हाथ लम्बा गड्ढा खोदा जाता है और लक्ष होम में उसके आधे परिमाण का। आज्य इत्यादि से दस हजार एक लाख तथा एक करोड़ हवनों का विधान किया गया है ।।१०-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में अयुतलक्ष कोटि वर्णन नामक
एक सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।।१४९।।

अध्याय १५०

मन्वन्तर-वर्णन

अग्निदेव बोले-अब मैं मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा। स्वायम्भुव मनु आदि मनु थे। आग्नीध्र आदि उसके पुत्र थे और उस समय के देवता यम इत्यादि थे। सप्तर्षि थे और्व इत्यादि और इन्द्र थे शतक्रतु। स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और सतुषित देवता थे। उस समय के देवेन्द्र थे विपश्चित् और ऊर्ज इत्यादि तत्कालीन द्विज थे। चैत्र

---

१ घ. °ष्माण्डीर्जा°। २ क. ङ. °यव्यां याम्यान्ते याश्च वैष्णवी। शा°। ३ क. ङ. प्रकाशिकाः। ४ ख. ग. °दशहो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]विपश्चित्तत्र देवेन्द्र [2]ऊर्जस्तस्मादयो द्विजाः । चैत्रकिंपुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ।।३।।
सुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च सुधामाद्या वशि(सि)ष्ठजाः । [3]सप्तर्षयोऽजाद्याः [4]पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ।।४।।
स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखरि[5](री)न्द्रः सुरेश्वरः । [6]ज्योतिर्होमादयो विप्राः नव ख्यातिमुखाः सुताः[7] ।।५।।
रैवते वितथश्चेन्द्रो अमिताभास्तथा सुराः । हिरण्यरोमाद्या मुनयो बलबन्धादयः सुताः ।।६।।
[8]मनोजवश्चाक्षुषेऽथ[9] इन्द्रः स्वात्यागयः सुताः । [10]सुमेधाद्याः महर्षयः पुरुप्रभृतयः सुताः ।।७।।
विवस्वतः सुतो विप्रः श्राद्धदेवो मनुस्ततः । आदित्यवसुरुद्राद्या देवा[11] इन्द्रः पुरन्दरः ।।८।।
वशि (सि) ष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगोतमः । विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त साम्प्रतम् ।।९।।
इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत् । स्वायंभुवे मानसोऽभूदजितस्तदनन्तरे[12] ।।१०।।
सत्योहरिर्देववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात् । [13]छायाजः सूर्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ।।११।।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिर्भविताऽष्टमः । सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः ।।१२।।
मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः । [14]नवमो दक्षसावर्णिः पाराद्याश्च तदा सुराः ।।१३।।
इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः । घृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ।।१४।।

आदि किन्नर दूसरे मनु के वंशज थे। तीसरे मनु थे उत्तम ।।१-३।। उस समय इन्द्र थे सुशान्ति और देवता थे सुधाम इत्यादि। वशिष्ठ पुत्र इत्यादि सप्तर्षि थे और इस मनु के पुत्र थे अज आदि। चौथे मनु थे तामस। उस समय के देवता थे स्वरूप इत्यादि और देवेन्द्र थे शिखरीन्द्र। ज्योतिर्होम इत्यादि नव विप्र थे और उसके पुत्र थे ख्यातिमुख इत्यादि। रैवत मनु के समय में इन्द्र थे वितथ, मनु पुत्र थे अमिताभ, हिरण्यरोम आदि मुनि थे और बलबन्ध इत्यादि पुत्र थे ।।४-६।। चाक्षुष मनु के समय मनोजव इन्द्र थे, स्वाति इत्यादि पुत्र, सुमेध आदि महर्षि और पुरु इत्यादि पुत्र थे। वैवस्वत मनु उसके बाद हुए जो ब्राह्मण और श्राद्ध देवता थे। उस समय देवता थे आदित्य, वसु और रुद्र इत्यादि तथा इन्द्र थे पुरन्दर। वशिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज इस समय के सात ऋषि हैं ।।७-९।। इक्ष्वाकु इत्यादि उनके पुत्र थे जिनके अंश से विष्णु इत्यादि उत्पन्न हुए। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु के समय मानस वंश उत्पन्न हुआ जिसके बाद अजित, सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ और वामन देव भी उत्पन्न हुए। सूर्य और छाया से उत्पन्न होनेवाले आठवें मनु थे। यह मनु अपने पूर्वज के सवर्ण थे इसलिए उन्हें सावर्णि भी कहा गया है। उसके समय में सुतप इत्यादि देवगण तथा तेजस्वी द्रोणिक इत्यादि मुनि थे। इन्द्र थे बलि और पुत्र थे विरज इत्यादि। नवें मनु दक्ष सावर्णि थे जिनके समय में पार आदि देवता थे ।।१०-१३।। इन्द्र थे अद्भुत और सवनादि ब्राह्मण तथा घृतकेतु इत्यादि पुत्र थे। उसके पश्चात् ब्रह्मसावर्णि नामक मनु हुए जिनके देवगण थे सुख इत्यादि, इन्द्र थे शान्ति,

---

१ विपश्चित्तत्र…द्विजाः च. पुस्तके नास्ति। २ ख. °र्जस्वन्ताद°। ३ सप्तर्षयो…मनुः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. °योजिद्याः पु°। ५ क. ख. ग. ङ. च. शिखिरि°। ६ क. ख. ग. ङ. च. °तिधामा°। ७ क. ङ. च. °ताः। दैवतै वि°। ८ मनोजवः…सुताः च. पुस्तके नास्ति। ९ क. ङ. °थ पुरुप्रभृतयः। १० सुमेधाद्या…सुताः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ११ क. ङ. देव इन्द्रः प्रवर्धनः व°। १२ क. ङ. न्तरम्। स°। १३ छायाजः…मनुः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। १४ नवमो…सुराः क. ङ. चः पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुखादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः। हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ।।१५।।
धर्मसावर्णिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः। गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ।।१६।।
सर्वत्र गाद्या रुद्राख्यः सावर्णिर्भविता मनुः। ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ।।१७।।
[1]तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः। मनुस्त्रयोदशो रौच्यः सूत्रामाणादयः सुराः ।।१८।।
इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादि विमर्दनः। निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ।।१९।।
मनुश्चतुर्दशो भौत्यः शुचिरिन्द्रो भविष्यति। चाक्षुषाद्याः सुरगणाः अग्निबाह्वादयो द्विजाः ।।२०।।
चतुर्दशस्य भौत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः। प्रवर्तयन्ति वेदांश्च भुवि सप्तर्षयो दिवः[2] ।।२१।।
देवा यज्ञभुजस्ते तु (स्तैस्तु) भूः (स्व) पुत्रैः परिपाल्यते। ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ।।२२।।
मन्वाद्याश्च हरिर्वेदं द्वापरान्ते बिभेद सः। आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः ।।२३।।
एकश्चाऽऽसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्। आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्हौत्रं तथा मुनिः ।।२४।।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः। प्रथमं व्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः ।।२५।।
[3]इन्द्रः प्रमतये प्रादाद्वाष्कलाय च संहिताम्। [4]बौध्यादिभ्यो ददौ सोऽपि चतुर्धा निजसंहिताम् ।।२६।।
यजुर्वेदतरोः शाखा सप्तविंशन्महामतिः। वैशम्पायननामाऽसौ व्यासशिष्यश्चकार वै ।।२७।।

मुनि हविष्य इत्यादि और पुत्र थे सुक्षेत्र इत्यादि। तदनन्तर धर्मसावर्णिक नामक मनु हुए। उनके समय में देवता थे विहंग इत्यादि, इन्द्र थे गण, मुनि थे निश्चरादि और पुत्र थे सर्वत्रग इत्यादि। फिर रुद्र सावर्णि नामक मनु हुए जिनके समय में इन्द्र थे ऋतधामा और देवता थे हरित आदि ।।१४-१७।। सप्तर्षि थे तपस्या आदि और पुत्र थे देववत् इत्यादि। तेरहवें मनु थे रौच्य। उनके समय में सूत्रमाणादि देवता थे, इन्द्र थे दिवस्पति जो दानव आदि के नाशक थे। उस समय सप्तर्षि थे निर्मोह आदि और पुत्र थे चित्रसेन इत्यादि। चौदहवें मनु थे भौत्य जिनके समय में शुचि नामक इन्द्र थे। उस समय देवता थे चाक्षुष इत्यादि और द्विज थे अग्निबाह्वादि। चौदहवें मनु भौत्य के पुत्र ऊरुमुख थे जो पृथ्वी पर वेदों का प्रचार करनेवाले थे। दिव इत्यादि सप्तर्षि थे। वे सभी देवता यज्ञभोगी थे और उन मनु के पुत्रों द्वारा पृथ्वी की रक्षा की जाती थी। अये ब्रह्मन्! ब्रह्मा के दिन में चौदह मनु हुए हैं ।।१८-२२।। द्वापर के अन्त में विष्णु ने मनु आदि और वेद का विभाजन किया था। आदि वेद के चार पाद हैं जिसमें एक लाख मन्त्र हैं। एक वेद था यजुर्वेद, जिसके चार भेद किये गये। यजुर्वेद के मन्त्रों को आध्वर्यव, ऋग्वेद के मन्त्रों को हौत्र, सामवेद के मन्त्रों को औद्गात्र और अथर्ववेद के मन्त्रों को ब्रह्म कहा जाता है। व्यास के प्रथम शिष्य पैल ऋग्वेद में पारङ्गत थे ।।२३-२५।। इन्द्र ने बुद्धिमान् वाष्कल को एक संहिता प्रदान की जिसने अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त करके बौध्य इत्यादि को दे दिया। व्यास के शिष्य बुद्धिमान् वैशम्पायन ने यजुर्वेद वृक्ष की सत्ताईस शाखाएँ कर दीं। इन्हीं शाखाओं को याज्ञवल्क्य इत्यादि ऋषियों ने काण और वाजसनेयी आदि कहा है। व्यास के शिष्य जैमिनि ने

---

१ क. ङ. च. °पसाद्याः स°। २ क. ङ. च. द्विजाः। ३ इन्द्र°°°संहिताम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ बौध्यादिभ्यो°°°निज-संहिताम् च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः । सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ।।२८।।
सुमन्तुश्च[1] सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः । गृह्णते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ।।२९।।
सुमन्तुश्चाथर्वतरुं व्यासशिष्यो विभेद तम् । शिष्यानध्यापयामास पैप्पलादीन्सहस्रशः ।।३०।।
पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्वन्तरवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५०।।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वर्णेतरधर्माः

अग्निरुवाच

मन्वादयो भुक्ति मुक्ति (क्ती) [2]धर्मांश्चीर्त्वाऽऽप्नुवन्ति यान् ।
प्रोचे परशुरामाय वरुणोक्तं तु (क्तांस्तु) पुष्करः ।।१।।

पुष्कर उवाच

वर्णाश्रमेतराणां ते धर्मान्वक्ष्यामि[3] सर्वदान् । मन्वादिभिर्निगदितान्वासुदेवादितुष्टिदान् ।।२।।
अहिंसा सत्यवचनं दया भूतेष्वनुग्रहः । [4]तीर्थानुसरणं दानं ब्रह्मचर्यममत्सरः ।।३।।

सामवेद की शाखाओं का विभाजन किया था। सुमन्तु और सुकर्मा ने एक-एक संहिता को लेकर उसे हजार शाखाओं में विभक्त कर दिया। व्यास-शिष्य सुमन्तु ने अथर्ववेद तरु को शाखाओं में विभक्त करके पैप्पल आदि सहस्रों शिष्यों को उनका अध्यापन करा दिया। व्यास की कृपा से सूत ने पुराण-संहिता की रचना की ।।२६-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में मन्वन्तर वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।।१५०।।

अध्याय १५१

वर्णेतर धर्मों का वर्णन

अग्निदेव बोले–मनु इत्यादि भुक्ति, मुक्ति और धर्मों को कहकर जिन धर्मों को प्राप्त करते हैं उन वर्णोक्त धर्मों को पुष्कर ने परशुराम से कहा था।

पुष्कर बोले–मैं तुमसे वर्णाश्रम धर्मों से भिन्न उन धर्मों को कहूँगा जो सब-कुछ देनेवाले, मनु इत्यादि के द्वारा कहे हुए और वासुदेव इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करनेवाले हैं। अये भृगूत्तम! ये धर्म हैं–अहिंसा, सत्य, दया, प्राणियों पर अनुग्रह, तीर्थाटन, दान, ब्रह्मचर्य, अमत्सर, देवता, द्विज और गुरुजनों की सेवा, सभी धर्मों का श्रवण, पितृपूजन,

---

१ क. ङ. सुनामा। २ क. ङ. °धर्माश्चान्ताष्ट्रवद्विपान्। प्रो°। ३ क. ङ. च. °न्वक्ष्येऽथ स°। ४ तीर्थानुसरणं°°°मत्सरः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवद्विजातिशुश्रूषा गुरूणां च भृगूत्तम। श्रवणं सर्वधर्माणां पितॄणां पूजनं तथा ।।४।।
भक्तिश्च नृपतौ नित्यं तथा सच्छास्त्रनेत्रता। ([1]आनृशंस्यं तितिक्षा च तथा चाऽऽस्तिक्यमेव च ।।५।।
वर्णाश्रमाणां सामान्यं धर्माधर्मं समीरितम्)। ([2]यजनं याजनं दानं वेदाद्यध्यापनक्रिया ।।६।।
प्रतिग्रहं चा (हश्चा) ध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत्)। दानमध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ।।७।।
क्षत्रियस्य सवैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम्। क्षत्रियस्य विशेषेण पालनं दुष्टनिग्रहः ।।८।।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम्। शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्व शिल्पानि वाऽप्यथ ।।९।।
मौञ्जी बन्धनतो जन्म विप्रादेश्च द्वितीयकम्। अनुलोम्येन वर्णानां जातिर्मातृसमा स्मृता ।।१०।।
चण्डालो ब्राह्मणीपुत्रः शूद्राश्च प्रतिलोमतः[3]। ([4]सूतस्तु क्षत्रियाज्जातो वैश्याद्वै देवलस्तथा ।।११।।
पुक्कसः क्षत्रियापुत्रः शूद्रात्स्यात्प्रतिलोमजः।) मागधः स्यात्तथा वैश्याच्छूद्रादायोगवो भवेत् ।।१२।।
[5]वैश्यायां प्रतिलोमेभ्यः प्रतिलोमाः सहस्रशः। विवाहः सदृशैस्तेषां नोत्तमैर्नाधमैस्तथा ।।१३।।
[6]चण्डालकर्म निर्दिष्टं वध्यानां घातनं तथा। स्त्रीजीवनं तु तद्रक्षा प्रोक्तं वैदेहकस्य च ।।१४।।
[7]सूतानामश्वसारथ्यं पुक्कसानां च व्याधता[8]। स्तुतिक्रिया मागधानां तथा चाऽऽयोगवस्य च ।।१५।।
रङ्गावतरणं प्रोक्तं तथा शिल्पैश्च जीवनम्। बहिर्ग्राम विवासश्च मृतचेलस्य धारणम् ।।१६।।
न संस्पर्शस्तथैवान्यैश्चण्डालस्य विधीयते। ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽत्र यः कृतः ।।१७।।

राजा में निरन्तर भक्ति, अच्छे-अच्छे शास्त्रों का चिन्तन, आनृशंस्य, तितिक्षा और आस्तिक्य। इस प्रकार वर्णाश्रमों के सामान्य धर्म और अधर्म को कहा गया है ।।२-५$\frac{1}{2}$।। यजन, याजन, दान, वेदादि अध्ययन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये ब्राह्मणों के धर्म हैं। क्षत्रिय और वैश्य का सामान्य कर्म है दान, अध्ययन और यथाविधि यजन ।।६-७$\frac{1}{2}$।। क्षत्रिय का विशेष धर्म है प्रजा का पालन और दुष्ट-निग्रह। वैश्य का विशेष कर्म है कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य। शूद्र का कर्म है द्विजों की सेवा अथवा सभी प्रकार के शिल्प ।।८-९।। ब्राह्मण आदि का मौञ्जी बन्धन से दूसरा जन्म होता है। अनुलोम विवाह से उत्पन्न होने पर वर्णों की जाति माता के समान होती है। शूद्र पुरुष और ब्राह्मणी पत्नी के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न होनेवाला पुत्र चाण्डाल कहलाता है। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न पुत्र 'देवल' कहलाता है। शूद्र पुरुष और क्षत्रियजातीया स्त्री के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र पुक्कस कहलाता है। शूद्र पुरुष और वैश्यजातीया स्त्री से उत्पन्न पुत्र मागध कहलाता है ।।१०-१२।। वैश्यजातीया स्त्री में प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हजारों प्रतिलोम सम्भव हैं इसलिए समान वर्णों में ही विवाह होना चाहिए, उत्तम तथा अधम जातिवालों में परस्पर विवाह नहीं होना चाहिए। चाण्डाल का कर्म वध्यों का वध करना बताया गया है। वैदेहक का कर्म है स्त्रियों का जीवन और उनकी रक्षा सूतों का कर्म है। अश्वों का सारथ्य पुक्कसों का कर्म है, आखेट मागधों का कर्म है स्तुति क्रिया और आयोगव का कर्म रङ्गावतरण तथा शिल्प से जीवनयापन करना है ।।१३-१५$\frac{1}{2}$।। उन्हें गाँव के बाहर रहकर मृतकों के वस्त्रों को धारण करना चाहिए। चाण्डाल का स्पर्श दूसरों के द्वारा नहीं होना चाहिए। ब्राह्मणों के लिए अथवा गायों के लिए जो शरीर-

---

१ आनृशंस्यं...समीरितम् पुस्तके नास्ति। २ वजनं...निर्दिशेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. °तः। शूद्रस्य क्ष°। ४ सूतस्तु...प्रतिलोमजः पुस्तके नास्ति। ५ क. ङ. °यां प्रति°। ६ चण्डालकर्म...तथा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ सूतानाम्...व्याधता। क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति। ८ च. वध्यता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्त्रीबालाद्युपपत्तौ वा बाह्यानां सिद्धिकारणम् । संकरे जातयो ज्ञेयाः पितुर्मातुश्च कर्मतः ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णेतरधर्मवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५१।।

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

गृहस्थवृत्तिः

पुष्कर उवाच

आजीवं तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । क्षत्रविट्शूद्रधर्मेण जीवन्नेव तु शूद्रजात् ।।१।।
कृषिवाणिज्यगौरक्ष्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् । गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ।।२।।
भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा हत्वाकीटपिपीलिकान् । पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षकादेवपूजनात् ।।३।।
[1]हलमष्टगवं धर्मं षड्गवं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघाटिनाम् ।।४।।
ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गृहस्थवृत्तिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५२।।

त्याग किया जाता है अथवा जो देह त्याग स्त्री और बालक इत्यादि की रक्षा के लिए किया जाता है वह सिद्धियों का कारण होता है। माता और पिता के कर्म से वर्ण-सङ्कर जातियाँ उत्पन्न होती हैं ।।१६-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में वर्णेतरधर्म वर्णन नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५१।।

अध्याय १५२

गृहस्थवृत्ति

पुष्कर बोले–ब्राह्मण को अपनी जीविका का निर्वाह उपर्युक्त ब्राह्मणों के कर्मों के द्वारा ही करना चाहिए। अथवा उसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्मों से भी निर्वाह करना चाहिए, किन्तु कभी भी केवल शूद्रों का कर्म नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण के द्वारा कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और लेन-देन तो करना चाहिए किन्तु गोरस, गुड़, लवण, लाक्षारस और मांस का परित्याग कर देना चाहिए ।।१-२।। भूमि को तोड़ने में, वनस्पतियों को काटने से कीड़ों और चींटियों की जो हत्या होती है, उसकी पवित्रता के लिए यज्ञ कराना चाहिए। किसान देव-पूजन से ही इन पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हल में आठ बैलों को जोतना धर्म है, छह बैलों को जीविकोपार्जन करनेवालों के द्वारा जोता है। क्रूर जनों के द्वारा चार बैलों को हल में जोता जाता है। धर्म का हनन करनेवालों के द्वारा हल में केवल दो बैल ही जोते जाते हैं। ऋत और अमृत के द्वारा ही जीवित रहना चाहिए अथवा मृत, प्रमृत, सत्य और अनृत के द्वारा भी जीविकोपार्जन किया जा सकता है किन्तु कुत्ते के समान कभी भी जीवनयापन नहीं करना चाहिए ।।३-५।।

श्री अग्निमहापुराण में गृहस्थवृत्ति-वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५२।।

---

१ हलमष्टगवं···जीवितार्थिनाम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः

पुष्कर उवाच

धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणामाद्यास्तिस्त्रस्तु गर्हिताः ।।१।।
ब्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी [1]कर्माऽऽधानिकमिष्यते। गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने[2] सवनं स्पन्दनात्पुरा ।।२।।
षष्ठेऽष्टमे वा [3]सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभम्। अच्छिन्ननाड्यां कर्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ।।३।।
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते। शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।।४।।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः। बालं निवेदयेद्भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ।।५।।
यथाकुलं तु चूड़ाकृद्ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भाष्टमोऽष्टमे वाऽब्दे गर्भादेकादशे नृपे ।।६।।
गर्मात्तु द्वादशे वैश्ये षोडशाब्दादितो नहि। मुञ्जानां वल्कलानां तु क्रमान्मौञ्ज्यः प्रकीर्तिताः ।।७।।
मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि व्रतचारिणाम्। पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ।।८।।
केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु। अवक्राः सत्वचः सर्वे [4]नाग्निप्लुष्टास्तु दण्डकाः ।।९।।
वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम्। आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।।१०।।

अध्याय १५३

ब्रह्मचर्यादि आश्रम धर्मों का वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं आश्रमों में रहनेवाले मनुष्यों के उस धर्म को बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष देनेवाला है, उसे सुनो। स्त्रियों के ऋतुकाल से सोलह रात्रियाँ (गर्भाधान के लिए) शुभ मानी गयी हैं किन्तु प्रथम तीन रात्रियाँ (सहवास के लिए) निन्दित बतायी गयी हैं ।।१।। पुत्रकामी को युग्म रात्रियों में सहवास करना चाहिए। अब (गर्भाधान) कर्म के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है। गर्भ के स्पष्ट ज्ञान होने पर उसके स्पन्दन के अनुभव होने के पूर्व ही पुंसवन–संस्कार करना चाहिए ।।२।। छठें तथा आठवें मास में सीमन्तोन्नयन शुभ माना गया है। विद्वानों के द्वारा जातकर्म नाल कटने के पहले ही होना चाहिए ।।३।। अशौच के समाप्त होने पर नामकरण–संस्कार किया जाता है। ब्राह्मण के नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय के नाम के अन्त में 'वर्मा' तथा वैश्य और शूद्र के नामों के अन्त में क्रमशः 'गुप्त' और 'दास' शब्दों का प्रयोग होता है ।।४–४ $\frac{1}{2}$ ।। तदनन्तर यह 'तुम्हारा पुत्र है' ऐसा कहकर पति को पुत्र का समर्पण करना चाहिए। तदनन्तर कुलरीति के अनुसार चूड़ाकर्म होना चाहिए। ब्राह्मण का उपनयन–संस्कार गर्भाधान अथवा जन्म के आठवें वर्ष में कर देना चाहिए। क्षत्रिय का उपनयन गर्भाधान के ग्यारहवें वर्ष में होना चाहिए ।।५–६।। वैश्य का उपनयन बारहवें वर्ष में किन्तु उसे सोलहवें वर्ष के बाद तक कभी भी स्थगित नहीं करना चाहिए। मेखलाएँ वर्णों के क्रम से मुञ्ज अथवा वल्कल आदि की बतायी गयी हैं ।।७।। चर्म क्रमशः मृग अथवा व्याघ्र इत्यादि के बताये गये हैं। ब्रह्मचारियों के दण्ड वर्णानुसार पर्ण, पीपल और बेल के बताये गये हैं। इन दण्डों की लम्बाई वर्णानुक्रम से केश–स्थान, ललाट अथवा मुख तक होती है। दण्डों को सीधा छाल–युक्त और अग्नि के द्वारा बिना जला हुआ होना चाहिए। वर्णानुक्रम से वस्त्र और उपवीत, कपास, रेशम और ऊन का होना चाहिए। ब्रह्मचर्यों के द्वारा भिक्षाटन में 'भवत्' शब्द का प्रयोग क्रमशः आदि, मध्य और अन्त में होना चाहिए ।।८–१०।।

१ क. ङ. कर्मभावकभि°। २ क. ङ. °तास्थाने वमनस्यंदना°। ३ क. ङ. मन्तक्षत्रियं। ४ ख. ग. घ. नाविप्लु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षां ध्रुवं भवेत् । स्त्रीणाममन्त्रतस्तानि[1] विवाहस्तु समन्त्रकः ।।११।।
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः । आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ।।१२।।
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्त ऋतं भुङ्क्त उदङ्मुखः ।।१३।।
[2]सायं प्रातश्च जुहुयान्नामेध्यं व्यस्तहस्तकम् । मधुमांसं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत् ।।१४।।
हिंसां परापवादं वा [3]अश्लीलं च विशेषतः । दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वाऽन्यधारणम् ।।१५।।
वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः । नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्तं निवसेद्गुरौ ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मचर्याद्याश्रमवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

विवाहः

पुष्कर उवाच

विप्रश्चतस्त्रो विन्देत भार्यास्तिस्त्रस्तु भूमिपः । द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्यैकामपि चान्त्यजः ।।१।।
धर्मकार्याणि सर्वाणि न कार्याण्यसवर्णया । पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ।।२।।

सर्वप्रथम भिक्षा वहीं माँगनी चाहिए जहाँ उसकी प्राप्ति निश्चित हो। स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार न होने से उनका उपनयन-संस्कार नहीं होता है किन्तु उनका विवाह-संस्कार वैदिक मन्त्रों से युक्त होता है। शिष्य को उपनीत करके गुरु को उसे आरम्भ से शौच की शिक्षा देनी चाहिए, साथ ही उसे आचार, अग्निकर्म और सन्ध्योपासन की भी शिक्षा देनी चाहिए। पूर्वाभिमुख होकर यज्ञ करने से आयुष्य, दक्षिणाभिमुख यज्ञ से यश, पश्चिमाभिमुख यज्ञ से ऐश्वर्य और उत्तराभिमुख यज्ञ से ऋत की प्राप्ति होती है ।।११-१३।। ब्रह्मचारी को सायं-प्रातः हवन करना चाहिए। किन्तु अग्नि में किसी अपवित्र वस्तु को नहीं डालना चाहिए। ब्रह्मचारी को मधु, मांस, गीत, नृत्य और मनुष्यों का साथ छोड़ देना चाहिए। उसे हिंसा, परापवाद और अश्लीलता का परित्याग विशेष रूप से कर देना चाहिए। यदि दण्ड किसी कारण नष्ट हो जाय तो उसे जल में फेंककर उसके स्थान पर दूसरा दण्ड धारण कर लेना चाहिए। वेदाध्ययन करने के बाद स्नान करके ब्रह्मचारी को गुरुदक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरु के शरीर त्याग पर्यन्त उसके समीप रहा करता है ।।१४-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मचर्यादि आश्रम वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५३।।

अध्याय १५४

विवाह-कथन

पुष्कर बोले-ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक स्त्री अपनी इच्छानुसार रख सकते हैं। सभी धर्मकार्य असवर्ण जाति की स्त्री के साथ नहीं हो सकते हैं। पाणिग्रहण सवर्ण स्त्रियों में ही होना चाहिए। विवाहान्तर क्षत्रिय स्त्री को बाण, वैश्य को प्रतोद (चाबुक) और शूद्रजातीया स्त्री को अपने हाथ में सूत की डोरी धारण करना

---

१ च. °नि वारिहस्तस°। २ सायं···वै त्यजेत् ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. जटिलं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैश्या प्रतोदमादद्याद्दशां वै चान्त्यजा तथा। सकृत्कन्या प्रदातव्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ।।३।।
अपत्यविक्रयासक्ते निष्कृतिर्न विधीयते। कन्यादानं शचीयोगो विवाहोऽथ चतुर्थिका ।।४।।
विवाहमेतत्कथितं नाम कर्मचतुष्टयम्। नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे[1] च पतिते पतौ ।।५।।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया ।।६।।
[2]पूर्वात्रितयमाग्नेयं वायव्यं चोत्तरात्रयम्। रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ।।७।।
[3]नैकगोत्रां तु वरयेन्नैकार्षेयां च भार्गव। पितृतः सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा ।।८।।
आहूय दानं ब्राह्मः स्यात्कुलशीलयुताय तु। [4]पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्याप्रदानतः ।।९।।
तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्ष उच्यते। प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृत् ।।१०।।
शुल्केन चाऽऽसुरो मन्दो गान्धर्वो वरणान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ।।११।।
[5]वैवाहिकेऽह्नि कुर्वीत कुम्भकारमृदा शचीम्। [6]जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यैः स्त्रीं (स्त्री?) गृहं नयेत् ।।१२।।
प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्य एव हि। पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ।।१३।।

चाहिए। कन्या को विवाह में एक ही बार देना चाहिए। कन्या का अपहरण करनेवाला चोरी के दण्ड का भागी होता है ।।१-३।। अपनी सन्तान का विक्रय करनेवाले का कभी उद्धार नहीं होता है। सभी गृहस्थों के द्वारा चार संस्कारों का अनुष्ठान आवश्यक है। वे हैं–शची, योग, विवाह और नामकरण संस्कार। स्त्रियों को पाँच प्रकार की विपत्तियों में दूसरा पति करने का अधिकार है। पति का नाश, उसकी मृत्यु, उसका संन्यासी हो जाना, उसकी नपुंसकता और उसका पतित हो जाना। पति के मर जाने पर स्त्री के द्वारा देवर का वरण किया जाना चाहिए किन्तु देवर की अनुपस्थिति में स्त्री अपनी इच्छा से किसी को पतिरूप में वरण कर सकती है ।।४-६।। जिन नक्षत्रों में विवाह सदैव शुभ माना जाता है वे नक्षत्र हैं–तीनों पूर्वा, आग्नेय, वायव्य और रोहिणी। अये भार्गव! न तो समान गोत्रवाली स्त्री का वरण करना चाहिए और न समान ऋषिवाली स्त्री का। पिता की ओर से सात पीढ़ी और माता की ओर से पाँच पीढ़ी पूर्व से सम्बद्ध स्त्री और पुरुष में विवाह हो सकता है ।।७-८।। कुलीन और शीलवान् वर को बुलाकर कन्यादान करना ब्राह्मविवाह कहा गया है। इस कन्यादान से उत्पन्न तेज नित्य पुरुषों का तारण करनेवाला होता है। गायों के एक जोड़े को दान में देकर जो विवाह किया जाता है उसे आर्ष विवाह कहा जाता है। जिस विवाह में पुरुष के द्वारा याचना की जाने पर उसे कन्या दी जाती है उस विवाह को प्राजापत्य विवाह कहते हैं। यह धार्मिक विवाह कहा जाता है। शुल्क लेकर जिस विवाह में कन्या का दान होता है उसे आसुर विवाह कहते हैं, जो मन्द कोटि का माना गया है। जहाँ पर वर और कन्या परस्पर एक-दूसरे का वरण करते हैं उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं। युद्ध इत्यादि के द्वारा कन्यापहरण को राक्षस विवाह कहा गया है। जिस विवाह में कन्या को छल के द्वारा प्राप्त किया जाता है, उसे पैशाच विवाह कहते हैं ।।९-११।। विवाह के दिन कुम्भकार की मिट्टी से शची की प्रतिमा का निर्माण करके जलाशय के निकट उसकी पूजा करके वाद्यादि के साथ स्त्री को घर ले जाना चाहिए। केशव के शयन करने के बाद, पौष और चैत्र मासों में मङ्गल के दिन तथा रिक्ता और विष्टि तिथियों में विवाह नहीं करना चाहिए ।।१२-१३।।

---

१ क. ख. ग. ङ. क्लीवेऽथ प°। २ क. ङ. °र्वादित्रयमा°। ३ नैकगोत्रां····भार्गव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ पुरुषांस्तारये····कन्याप्रदानतः क. ङ. पुस्तकयोनास्ति। ५ क. ङ. च. °केऽब्दे कु°। ६ क. ङ. शयं हृतामृज्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहादिते । अर्कार्कि भौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ।।१४।।
सौम्यं पित्र्यं च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा । उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभम् ।।१५।।
[1]मानुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषाख्यांशकः शुभः । तृतीये च तथा[2] षष्ठे दशमैकादशेऽष्टमे ।।१६।।
अर्कार्किचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः । सप्तान्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ।।१७।।
तेषामपि तथा मध्यात्षष्ठः शुक्रो न शस्यते । वैवाहिके भे कर्तव्या तथैव च चतुर्थिका ।।१८।।
न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः । [3]पर्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत्सत्या दत्ता सदा रतिः ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विवाहभेदकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५४।।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आचारः

पुष्कर उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय विष्णवादीन्दैवतान्स्म (दिदेवताः स्म) रेत् ।
([4]उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।।१।।

जिस समय शुक्र अथवा मङ्गल अस्त हों, चन्द्रमा ग्रहों से पीड़ित हो या सूर्य अन्य ग्रहों के संयोग में हो अथवा व्यतीपात योग हो, उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिए। विवाह में जो नक्षत्र शुभ माने गये हैं वे–सौम्य, पित्र्य, वायव्य, सावित्री, रोहिणी, उत्तरा, मूल, मैत्र और पौष्ण हैं। मनुष्य तथा मनुष्य के अंशवाली लग्न विवाह के लिए शुभ मानी गयी है ।।१४-१५ $\frac{१}{२}$।। सूर्य, शनि, चन्द्रमा और बुध तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश और अष्टम स्थानों में शुभ माने गये हैं किन्तु अष्टम स्थान में रहनेवाला मङ्गल शुभ नहीं माना गया है। शेष ग्रह सातवें, अन्तिम और आठवें वर्गों में रहने पर शुभ माने जाते हैं, उनमें भी छठें स्थान में रहनेवाला शुक्र शुभ नहीं माना जाता है। वैवाहिक कर्म में चतुर्थी तिथि शुभ मानी गयी है। जिस तिथि में चार ग्रहों का एक साथ योग हो, उस दिन कन्यादान नहीं करना चाहिए। पर्व को छोड़कर स्त्री सहवास करना चाहिए–यही उत्तम रति कही जाती है ।।१६-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में विवाह भेद-कथन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५४।।

अध्याय १५५

आचार-वर्णन

पुष्कर बोले–ब्राह्ममुहूर्त में उठकर विष्णु इत्यादि देवताओं का स्मरण करना चाहिए। दिन में मल और मूत्र का त्याग उत्तर की ओर मुँह करके करना चाहिए ।।१।। रात्रि के समय इन कर्मों को दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिए

---

१ मानुषाख्य···शुभः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. षष्ठं। च. शेषे। ३ ख. ग. च. °वर्जस्त्रियो ग°। क. ङ. °वज्रः स्त्रि°। ४ उभे मूत्रपुरीषे···सदाऽऽचरेत् पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा। [1]न मार्गादौ जले वीथ्यां सतृणायां सदाऽऽचरेत्) ।।२।।
शौचं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।।३।।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढास्नानं प्रकीर्तितम्। अस्नातस्याफलं कर्म प्रातः स्नानं चरेत्ततः ।।४।।
भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्। ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ।।५।।
[2]तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः। संशोधितमलः[3] पूर्वं निमग्नश्च जलाशये ।।६।।
[4]उपस्पृश्य ततः कुर्यादम्भसः परिमार्जनम्। हिरण्यवर्णास्तिसृभिः शं नो देवीति चाप्यथ ।।७।।
आ पो हि ष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव च। ततो जलाशये मग्नः कुर्यादन्तर्जलं जपम् ।।८।।
तत्राऽऽघमर्षणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत्। ([5]युञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाऽप्यथ पौरुषम् ।।९।।
गायत्रीं तु विशेषेण अघमर्षणसूक्तके। देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्चैवाघमर्षणः ।।१०।।
छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः। [6]आपीडमानः शाटीं तु देवतापितृतर्पणम्) ।।११।।
पौरुषेण तु सूक्तेन ददेच्चैवोदकाञ्जलिम्। ततोऽग्निहवनं कुर्याद्दानं दत्त्वा तु शक्तितः ।।१२।।
ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम्। आसनं शयनं [7]यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ।।१३।।

और दोनों सन्ध्याओं में इन कर्मों को दिन के ही समान करना चाहिए। मार्ग इत्यादि में, जल में तथा गली में मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए, किन्तु तिनकों से आच्छादित भूमि पर सदा करना चाहिए ।।२।। शौच करने के बाद मिट्टी से आचमन करके दातून करना चाहिए। उसके बाद नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों को करना चाहिए जिससे सभी प्रकार के मलों का नाश हो जाता है। मनुष्य का छठा कर्म है नित्यस्नान जिसे क्रियास्नान कहते हैं जो छह प्रकार का होता है। बिना स्नान के कोई कार्य फल नहीं प्रदान करता है, इसलिए प्रातःकाल स्नान करना चाहिए। भूमि को खोदकर निकाले गये जल से झरने का जल उत्तम होता है। उससे भी अच्छा जल झील का होता है और नदी का जल तो उससे भी अच्छा होता है ।।३-५।। इससे अच्छा होता है तीर्थों का जल और गङ्गाजल तो सभी जलों से अच्छा होता है। पहले अपने शरीर के सारे मल को साफ करके जलाशय में डुबकी लगाना चाहिए ।।६।। तदनन्तर आचमन करके जल से परिमार्जन करना चाहिए। उस समय 'हिरण्यवर्ण' इत्यादि तीन मन्त्र, 'शं नो देवी', 'आ पो हि ष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्र और 'इदमापः' मन्त्रों को पढ़ना चाहिए। तालाब में प्रवेश करके जल में जप करना चाहिए और अघमर्षण मन्त्र का पाठ करना चाहिए अथवा 'द्रुपद,' 'पुरुष' और 'युञ्जते मनः' इत्यादि सूक्त का भी पाठ किया जा सकता है ।।७-९।। इसके अतिरिक्त अघमर्षण सूक्त में आनेवाले गायत्री मन्त्र को भी पढ़ा जा सकता है। अघमर्षण मन्त्रों के देवता हैं। भाववृत देवता भगवान् विष्णु को कहा गया है। तदनन्तर अपने वस्त्रों को निचोड़कर देवताओं और पितरों का तर्पण करना चाहिए ।।१०-११।। पुरुष सूक्त के द्वारा जलाञ्जलि देकर अग्नि में हवन करके यथाशक्ति दान देना चाहिए। अपने योग और क्षेम के लिए ईश्वर में लीन होना चाहिए। अपने आसन, शयन, यान,

---

१ न मार्गादौ···सदाऽऽचरेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ तीर्थतोयं···सर्वतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. च. °मनाः पू°। ४ क. ङ. °पविश्य। ५ युञ्जते···तर्पणम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ६ आपीडमानः···पितृतर्पणम् च. पुस्तके नास्ति। ७ क. ङ. पात्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मनः (शुचिरे, चीन्ये) तानि परेषां न शुचिर्भवेत् (चीनि वै)।
भाराक्रान्तस्य गुर्विण्याः पन्था देयो गुरुष्वपि ।।१४।।
([1]न पश्येच्चार्कमुद्यन्तं नास्तं यान्तं न चाम्भसि। नेक्षेन्नग्नां स्त्रियं कूपं[2] शूनास्थानमघौघिनम् ।।१५।।
कार्पासास्थि तथा भस्म नाऽऽक्रामेद्यच्च कुत्सितम्)। अन्तःपुरं वित्तगृहं [3]परदौत्यं व्रजेन्न हि ।।१६।।
नाऽऽरोहेद्विषमां नावं न वृक्षं न च पर्वतम्। अर्थायतनशास्त्रेषु तथैव स्यात् कुतूहली ।।१७।।
[4]लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति। मुखादिवादनं नेहेद्विना दीपं न रात्रिगः ।।१८।।
नाद्वारेण विशेद्वेश्म न च वक्त्रं विरागयेत्। कथाभङ्गं न कुर्वीत न च वासोविपर्ययम् ।।१९।।
भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्नानिष्टं कीर्तयेत्क्वचित्। पालाशमाशनं वर्ज्यं देवादिच्छायया व्रजेत् ।।२०।।
न मध्ये पूज्ययोर्यायान्नोच्छिष्टस्तारकादिदृक्। नद्यां नान्यां नदीं ब्रूयान्न कण्डूयेद्वि (द्वि) हस्तकम् ।।२१।।
असन्तर्प्य पितृन्देवान्नदीपारं च न व्रजेत्। मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः स्नानमाचरेत् ।।२२।।
[5]ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम्। स्रजं नाऽऽत्मनाऽपनयेत्खरादिकरजस्त्यजेत् ।।२३।।

अपनी स्त्री, अपना पुत्र और अपना कमण्डलु पवित्र होता है किन्तु दूसरों की ये वस्तुएँ अपवित्र होती हैं। मार्ग में आमने-सामने पड़ने पर भारवहन करनेवाले, गर्भिणी स्त्री और गुरुजनों के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए ।।१२-१४।। उदय होते हुए, अस्त होते हुए और जल में प्रतिबिम्बित होनेवाले सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए और न तो नग्न स्त्री को ही देखना चाहिए। कुएँ, वध्यस्थान, चक्की, सूत्र, हड्डी, भस्म और किसी भी कुत्सित वस्तु को लाँघना नहीं चाहिए। मनुष्य को अन्तःपुर, (दूसरे के) कोषागार और दौत्य कर्म में नहीं जाना चाहिए ।।१५-१६।। ऊँची-नीची नाव के ऊपर, वृक्ष के ऊपर और पर्वत के ऊपर आरोहण नहीं करना चाहिए। अर्थोपार्जन एवं शास्त्र के प्रति सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। लोष्ठ को तोड़नेवाला, तिनके को काटनेवाला, नाखून को चबानेवाला शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। न तो मुखादि को ही बजाना चाहिए और न रात्रि में ही कहीं जाना चाहिए। भवन में बिना द्वार के प्रवेश नहीं करना चाहिए। न किसी को मुँह मटकाना चाहिए। कथा को बीच में ही भङ्ग नहीं करना चाहिए और न तो वस्त्रों को ही उलटा धारण करना चाहिए। सदैव कल्याणकारी बातों को ही करना चाहिए और कहीं पर अनिष्ट भाषण नहीं करना चाहिए। पत्तों की शय्या का वर्जन करना चाहिए तथा देवता इत्यादि की छाया के साथ-साथ चलना भी नहीं चाहिए ।।१७-२०।। दो पूज्य व्यक्तियों के बीच में नहीं चलना चाहिए और न जूठे मुँह नक्षत्र इत्यादि का दर्शन करना चाहिए। एक नदी में दूसरी नदी का नाम नहीं लेना चाहिए। और न तो दोनों हाथों से खुजलाना चाहिए। पितरों और देवताओं के तर्पण के बिना नदी के पार नहीं जाना चाहिए। न तो नदी में मल इत्यादि फेंकना चाहिए। नंगा होकर स्नान नहीं करना चाहिए। तदनन्तर योग-क्षेम के लिए ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य को अपने-आप अपनी माला नहीं उतारनी चाहिए और गदहे आदि की धूल से बचे। अपने से हीनों का उपहास नहीं करना चाहिए और न उनके साथ विदेश में ही

---

१ न पश्येत्...कुत्सितम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ख. °पं सूतिरथा°। ३ क. ङ. च. °रभूतं व्रं। ४ लोष्टमर्दी...रात्रिगः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ ततः...मीश्वरम् नास्ति ग. पुस्तके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हीनान्नावहसेत्कृच्छ्रेन्नादेशे (?) निवसेच्च तैः। वैद्यराजनदीहीने म्लेच्छस्त्रीबहुनायके ।।२४।।
रजस्वलादिपतितैर्न भाषेत्केशवं स्मरेत्। नासंवृतमुखः कुर्याद्धासं जृम्भां तथा क्षुतम् ।।२५।।
प्रभोरप्यवमानं[1] स्वं गोपयेद्वचनं बुधः। इन्द्रियाणां नानुकूली वेगरोधं न कारयेत् ।।२६।।
नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्रिपुरल्पोऽपि भार्गव। रथ्यातिगः [2]सदाऽऽचामेद्बिभृयान्नाग्निवारिणी ।।२७।।
न हुं कुर्याच्छिवं पूज्यं पादं पादेन नाऽऽक्रमेत्। प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा कस्यचिन्नाप्रियं वदेत् ।।२८।।
वेदशास्त्रनरेन्द्रर्षिदेवनिन्दां विवर्जयेत्। स्त्रीणामीर्षा[3] (र्ष्या) न कर्तव्या विश्वासं तासु वर्जयेत् ।।२९।।
धर्मश्रुतिं देवरतिं कुर्याद्धर्मादि नित्यशः। सोमस्य पूजां जन्मर्क्षे विप्रदेवादिपूजनम् ।।३०।।
षष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा। दूराद्गृहान्मूत्रविष्ठे नोत्तमैर्वैरमाचरेत् ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आचारकथनं नाम
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५५।।

रहना चाहिए। ऐसे स्थान में भी निवास नहीं करना चाहिए जहाँ कोई वैद्य या नदी न हो अथवा जहाँ के स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा बहुत से मनुष्य हों। रजस्वला तथा पतितों के साथ कुछ भी सम्भाषण नहीं करना चाहिए। सदा भगवान् का स्मरण करना चाहिए। बिना मुँह ढके हुए न तो हँसना चाहिए, न जम्हाई लेना चाहिए ।।२१-२५।। अपने स्वामी के द्वारा किये गये अपने अपमान को भी नहीं प्रकट करना चाहिए। मनुष्य को न तो अपनी इन्द्रियों के वश में ही होना चाहिए, न उनके वेग का अवरोध ही करना चाहिए। अये भार्गव! व्याधि और शत्रु चाहे जितने छोटे हों उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। गली में लाँघने पर सदैव आचमन करना चाहिए और अग्नि तथा जल को साथ-साथ नहीं ले जाना चाहिए। पूज्य शिव के सम्मुख हुंकार नहीं करना चाहिए। पैर से पैर को न दबावे। प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी को अप्रिय वचन नहीं बोलने चाहिए। वेद, शास्त्र, राजा, ऋषि और देवता की निन्दा करना सर्वथा वर्ज्य है। स्त्रियों से न तो ईर्ष्या ही करनी चाहिए और न तो उनका विश्वास ही करना चाहिए ।।२६-२९।। नित्य धर्म-श्रवण, देवभक्ति और धर्मादि करते रहना चाहिए। जन्म के नक्षत्र में सोम, ब्राह्मण और देवता इत्यादि की पूजा करनी चाहिए। षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशी को तेल की मालिश नहीं करनी चाहिए। मल-मूत्र घर से दूर करना चाहिए। और कभी भी उत्तम जनों के साथ वैर नहीं करना चाहिए ।।३०-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में आचार-कथन नामक एक सौ
पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५५।।

---

१ ख. ग. °मानेषु गो°। २ ख. ग. °मेद्विलूयान्ना°। ३ ख. ग. °णामि च्छा न।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रव्यशुद्धिः

पुष्कर उवाच

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि पुनः पाकेन मृण्मयम्। शुध्येन्मूत्रपुरीषाद्यैः स्पृष्टं ताम्रं सुवर्णकम् ।।१।।
आवर्तितं चान्यथा तु वारिणाम्लेन[1] ताम्रकम्। क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ।।२।।
अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च। शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च ।।३।।
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि। उष्णाम्बुना सस्नेहानां शुद्धिः सम्मार्जनाद्गृहे ।।४।।
शोधनान्प्रक्षणाद्वस्त्रे[2] मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम्। [3]बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च तत्क्षणात् ।।५।।
प्रोक्षणात्संहतानां तु द्रवाणां च तथोत्प्लवात्। शयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ।।६।।
[4]शुद्धिः संप्रोक्षणाज्ज्ञेया पलालेन्धनयोस्तथा। सिद्धान्नकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ।।७।।

अध्याय १५६

द्रव्य-शुद्धि

पुष्कर बोले–अब मैं द्रव्यशुद्धि के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। मल-मूत्र से अशुद्ध हो जानेवाली मिट्टी, ताँबा और सुवर्ण के पात्रों को पुनः आग में पकाकर शुद्ध कर लेना चाहिए ।।१।। अन्य किसी प्रकार से अपवित्र हो जानेवाले ताम्रपत्र को अम्लमिश्रित जल से शुद्ध कर लेना चाहिए। काँसे और लोहे के पात्रों को क्षार से तथा मोती आदि को पानी से धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए ।।२।। सीप के बने बर्तनों, पत्थर के बने बर्तन तथा शाक, रज्जु, मूल, फल और दालों की शुद्धि केवल धोने से हो जाती है। यज्ञकर्म में यज्ञपात्रों की शुद्धि केवल हाथों से रगड़कर हो जाती है। चिकनाहटवाले पदार्थों के ऊपर गर्म जल डालने से ही उनकी शुद्धि हो जाती है और घर की शुद्धि झाड़ू से झाड़ देने पर हो जाती है। धोकर शुद्ध किये गये वस्त्र के ऊपर मिट्टी मिले जल को छिड़ककर उससे और भी पवित्र कर लेना चाहिए। यदि बहुत से वस्त्रों की ढेरी ही किसी अस्पृश्य वस्तु से छू जाय तो उस पर जल छिड़क देने मात्र से उसकी शुद्धि मानी गयी है। काष्ठ के बने हुए पात्रों की शुद्धि काटकर छील देने से होती है ।।३-५।। शय्या आदि संहत वस्तुओं के उच्छिष्ट आदि से दूषित होने पर प्रोक्षण (सींचने) मात्र से उनकी शुद्धि हो जाती है। घी, तेल आदि की शुद्धि दो कुशपात्रों से उत्प्लवन (उछालने) मात्र से हो जाती है। शय्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ी की शुद्धि भी सींचने से ही जाननी चाहिए। सींग और दाँत की बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि पीली सरसों को पीसकर लगाने से होती है। नारियल और तूँबी आदि फल निर्मित पात्रों की शुद्धि गोपुच्छ के बालों द्वारा रगड़ने से होती है। शंख आदि पात्रों की शुद्धि सींग के समान ही पीली सरसों के लेप से

१ च. °णां स्नानता°। २ क. ङ. °नात्प्रोक्षणा°। ३ ख. ङ. चतुरस्त्रे। ४ शुद्धि°°°पलालेन्धनयोस्तथा छ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]गोबालैः पलपात्राणामस्थ्नां स्याच्छुङ्गक्तथा। निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात् ।।८।।
[2]कुसुम्भकुसुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा। शुद्धं नदीगतं तोयं [3]पण्यं तद्वत्प्रसारितम् ।।९।।
मुखवर्जं च गौः शुद्धा शुद्धमश्वाजयोर्मुखम्। नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखम् ।।१०।।
मुखैः प्रस्त्रवणे वृत्ते मृगयायां सदा शुचि। भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ।।११।।
रथ्यामाक्रम्य चाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च। मार्जारश्चङ्क्रमाच्छुद्धश्चतुर्थेऽह्नि रजस्वला ।।१२।।
स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि। पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ।।१३।।
एकां लिङ्गे मृदं दद्यात्करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः। ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ।।१४।।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः। शुद्धिः [4]पर्युक्ष्य तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्तिता ।।१५।।
पुष्पाणां च फलानां च प्रोक्षणाज्जलतोऽखिलम् ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्रव्यशुद्धिकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५६।।

होती है। गोंद, गुड़, नमक, कुसुम्भ के फूल, ऊन और कपास की शुद्धि धूप में सुखाने से होती है। नदी का जल सदा शुद्ध रहता है। बाजार में बेचने के लिए फैलायी हुई वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है ।।६-९।। गौ के मुँह को छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं। घोड़े और बकरे के मुँह शुद्ध माने गये हैं। स्त्रियों का मुँह (रतिकाल में) शुद्ध है। दूध दुहने के समय बछड़ों का, पेड़ों से फल गिराते समय पक्षियों का, शिकार खेलते समय कुत्तों का मुख भी शुद्ध माना गया है। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने, सड़क पर घूमने और वस्त्र पहनने के बाद अवश्य आचमन करना चाहिए। बिलाव घूमने-फिरने से ही शुद्ध होता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतुस्नाता स्त्री पाँचवें दिन देवता और पितरों के पूजन-कार्य में सम्मिलित होने योग्य होती है। शौच के बाद पाँच बार गुदा में, दस बार बायें हाथ में, फिर सात बार दोनों हाथों में, एक बार लिङ्ग में तथा दो-तीन बार हाथों में मिट्टी लगाकर धोना चाहिए। यह गृहस्थों के लिए शौच का विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियों के लिए गृहस्थ की अपेक्षा चौगुने शौच का विधान है ।।१०-१४।। तसर के कपड़ों की शुद्धि बेल के फल के गूदे से होती है-अर्थात् उसे पानी में घोलकर उसमें वस्त्र को डुबो दे और फिर साफ पानी से धो दे। क्षौम आदि के वस्त्र को पीली सरसों के चूर्ण से साफ करना चाहिए। मृगचर्म या मृग के रोमों से बने हुए आसन आदि की शुद्धि उस पर जल का छींटा देने मात्र से बतायी गयी है। फूलों और फलों की भी पूर्णतः शुद्धि उन पर जल छिड़कने मात्र से हो जाती है ।।१५-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में द्रव्यशुद्धिकथन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५६।।

---

१ क. ङ. °लैः फलमात्रा°। २ ख. घ. कुशुम्भ°। ३ ख. ग. घ. पुण्यं। ४ क. ख. ग. च. पद्माक्षतो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शावाशौचादि

पुष्कर उवाच

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि[1] सूतिकाशुद्धिमेव च। दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।।१।।
जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम। द्वादशाहेन राजन्यः पक्षाद्वैश्योऽथ मासतः ।।२।।
([2]शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यं त्वशौचकम्। षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु) ।।३।।
ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्तु तथैव च। विट्शूद्रयोनिः शुद्धिः (द्धः) स्यात्क्रमात्परशुरामकः ।।४।।
षड्रात्रेण त्रिरात्रेण षड्भिः शूद्रे तथा विशः। आदन्तजननात्सद्य आचूडान्नैशिकी श्रुतिः ।।५।।
त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्। [3]ऊनत्रैवार्षिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते ।।६।।
द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये। [4]गतैः संवत्सरैः षड्भिः शुद्धिर्मासेन कीर्तिता ।।७।।
स्त्रीणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता। तथा च कृतचूडानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ।।८।।

अध्याय १५७

प्रेतशुद्धि-वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं प्रेतशुद्धि और सूतिका शुद्धि के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। मृत्यु से उत्पन्न होनेवाला अशौच सपिण्डों में दस दिनों तक रहता है ।।१।। जननाशौच भी ब्राह्मणों के लिए दस दिन का ही होता है। क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होते हैं। यहाँ उस शूद्र के लिए कहा गया है जो अनुलोमज हों अर्थात् जिसका जन्म उच्चजातीय अथवा सजातीय पिता से हुआ हो। स्वामी को अपने घर में जितने दिन का अशौच लगता है, सवेक को भी उतने ही दिनों का लगता है। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का भी जननाशौच दस दिन का ही होता है ।।२-३।। परशुराम जी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इसी क्रम से शुद्ध होते हैं। (किसी-किसी के मत में) वैश्य तथा शूद्र के जननाशौच की निवृत्ति पन्द्रह दिनों में होती है। यदि बालक दाँत निकलने के पहले मर जाय तो उसके जननाशौच की सद्यः शुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलने के बाद चूड़ाकरण से पहले तक की मृत्यु में एक रात का अशौच होता है। यज्ञोपवीत से पहले तक तीन रात का तथा उसके बाद दस रात का अशौच बताया गया है। तीन वर्ष से कम का शूद्र बालक यदि मृत्यु को प्राप्त हो तो पाँच दिनों के बाद उसके अशौच की निवृत्ति होती है। तीन वर्ष के बाद मृत्यु होने पर बारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छह वर्ष व्यतीत होने पर उसके मरण का अशौच एक मास के बाद निवृत्त होता है। कन्याओं में जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौच की शुद्धि एक रात्रि में मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होने पर उनके बन्धु-बान्धव तीन

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °मि मृत्तिकाशु°। २ शूद्रोऽनुलोमतो···शूद्रयोनिषु क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. °नत्रिपाक्षिके शू°। ४ क. ङ. मृतैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विवाहितासु नाऽऽशौचं पितृपक्षे विधीयते। पितृगृहे प्रसूतानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।।९।।
सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नेति नान्यथा। विवाहिता हि चेत्कन्या म्रियते पितृवेश्मनि ।।१०।।
तस्यास्त्रिरात्राच्छुध्यन्ति बान्धवा नात्र संशयः। समानं लघ्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ।।११।।
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा। देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुल्यानां मरणोद्भवौ ।।१२।।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्। अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।।१३।।
[1]तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुध्यति। म (मा) तामहे तथाऽतीत आचार्ये च तथामृते ।।१४।।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशोधनम्। सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ।।१५।।
दशरात्रेण शुध्यन्ति द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ।।१६।।
[2]उच्छिष्टसंनिधावेकं तथा पिण्डं निवेदयेत्। कीर्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ।।१७।।
भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु [3]धनेन च। विसृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्तनैः ।।१८।।
[4]चतुरङ्गुलविस्तारं तत्खातं तावदन्तरम्। वितस्तिदीर्घं कर्त्तव्यं विकर्षूणां तथा त्रयम् ।।१९।।
विकर्षूणां समीपे च ज्वालयेज्ज्वलनत्रयम्। [5]सोमाय वह्नये राम यमाय च समासतः ।।२०।।

दिन बाद शुद्ध होते हैं ।।४-८।। जिन कन्याओं का विवाह हो चुका है, उनकी मृत्यु का अशौच पितृकुल को नहीं प्राप्त होता है। जो स्त्रियाँ पिता के घर में सन्तान को जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौच की शुद्धि एक रात में होती है। किन्तु स्वयं सूतिका दस रात में ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहिता कन्या पिता के घर में मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रात में शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौच को पहले निवृत्त करना चाहिए और असमान अशौच को बाद में, ऐसा ही धर्मराज का वचन है। परदेश में रहनेवाला पुरुष यदि अपने कुल में किसी के जन्म या मरण होने का समाचार सुने तो दस रात में जितना समय शेष हो, उतने ही समय तक उसे अशौच लगता है। यदि दस दिन व्यतीत होने पर उसे उक्त समाचार का ज्ञान हो, तो वह तीन रात तक अशौच युक्त रहता है तथा यदि वर्ष व्यतीत होने के बाद उपर्युक्त बातों की जानकारी हो तो केवल स्नानमात्र से शुद्धि हो जाती है। नाना और आचार्य के मरने पर भी तीन रात तक अशौच रहता है ।।९-१४।। परिवार में गर्भपात हो जाने पर अशौच उतने ही दिनों तक रहता है, जितने मास का गर्भ होता है। अये भार्गव! सपिण्ड की मृत्यु होने पर ब्राह्मण का अशौच दस दिनों तक, क्षत्रिय का बारह दिनों तक, वैश्य का पन्द्रह दिनों तक तथा शूद्र का एक मास तक रहता है। उच्छिष्ट के निकट ही पिण्डदान करते हुए जिसके निमित्त पिण्डदान किया जा रहा हो, उसके नाम और गोत्र का संकीर्त्तन ध्यानावस्थित होकर करना चाहिए ।।१५-१७।। ब्राह्मणों को भोजन कराकर तथा धन से उनका आदर करके मृतक के गोत्र और नाम का उच्चारण करते हुए अक्षत और जल फेंकना चाहिए। तदनन्तर चार-चार अंगुल की दूरी पर तीन विकर्षुओं का खनन करना चाहिए, जिनकी लम्बाई एक बालिश्त और चौड़ाई चार अंगुल हो। हे परशुराम! विकर्षुओं के समीप सोम, अग्नि और यम के लिए तीन ज्वालाओं को प्रज्वलित करना चाहिए।

---

१ तथा संवत्सरेऽतीते···तथा मृते क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. च. °च्छिन्नसं°। ३ क. ङ. वनेषु। ग. धनेषु। ४ क. ङ. °रभ्यानविस्तारं तत्ख्यातं वदतां वरम्। वि°। ५ सोमाय···समासतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जुहुयादाहुतीः सम्यक्सर्वत्रैव चतुस्त्रयः । (?) पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्प्राग्वदेव पृथक्पृथक् ।।२१।।
अन्नेन दध्ना मधुना तथा मांसेन पूरयेत् । मध्ये चेदधिमासः स्यात्कुर्यादभ्यधिकं तु तत् ।।२२।।
अथवा द्वादशाहेन सर्वमेतत्समापयेत् । संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ।।२३।।
तथा द्वादशके श्राद्धे कार्यं तदधिकं भवेत् । [1]संवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ।।२४।।
प्रेताय तत ऊर्ध्वं च तस्यैव पुरुषत्रये । पिण्डान्विनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ।।२५।।
सम्पूज्य दत्त्वा पृथिवी समाना[2] इति चाप्यथ । योजयेत्प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ।।२६।।
प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् । पृथक्पृथक्प्रकर्तव्यं कर्मैतत्कर्मपात्रके ।।२७।।
मन्त्रवर्जमिदं कर्म शूद्रस्य तु विधीयते । सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्यमेवं तदा भवेत् ।।२८।।
श्राद्धं कुर्याच्च प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भान्नमब्दकम् । गङ्गायाः सिकता धारा यथा वर्षति वासवे ।।२९।।
शक्या गणयितुं लोके न त्वतीताः पितामहाः । काले सततगस्थैर्य[3] नास्ति तस्मात्क्रियां चरेत् ।।३०।।
देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं [4]लभेत् । नोपकुर्यान्नरः शोचन्प्रेतस्याऽऽत्मन एव वा ।।३१।।
भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् । पतितानां च नाऽऽशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये ।।३२।।

सर्वत्र बारह आहुतियाँ देनी चाहिए और पहले के समान अलग-अलग पिण्डदान भी करना चाहिए ।।१८-२१।। इन पात्रों को अन्न, दही, मधु तथा मांस से भर देना चाहिए, किन्तु यदि बीच में अधिकमास पड़ जाय तो एक आहुति अधिक देनी चाहिए अथवा इन सभी कृत्यों को बारहवें दिन भी किया जा सकता है। वर्ष के बीच में अधिक मास आ जाने से बारहवें मास में एक श्राद्ध अधिक करना चाहिए, अन्यथा बारह दिनों में ही इस समस्त कार्य को समाप्त कर देना चाहिए। बारहवें श्राद्ध में ही अधिक श्राद्ध कर दिया जाता है। वर्ष की समाप्ति पर पहले के समान ही श्राद्ध करना चाहिए ।।२२-२४।। जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, उसकी तीन पीढ़ियों के लिए तीन पिण्डों का निर्वाप करके चौथे पिण्ड का निर्वाप उसके लिए किया जाता है। उसके पूजन करके 'पृथिवी समाना' इत्यादि मन्त्र से प्रेतपिण्ड को अन्य पिण्डों में मिलाना चाहिए। इसी प्रकार प्रेतपात्र को भी अन्य पात्रों में मिला देना चाहिए। अलग-अलग पात्रों में अलग-अलग कर्मों को करना चाहिए ।।२५-२७।। शूद्र को यह कर्म बिना मन्त्र के ही करना चाहिए। स्त्रियों का भी सपिण्डीकरण करना चाहिए। प्रत्येक वर्ष यह श्राद्ध करना चाहिए और प्रतिवर्ष अन्न से परिपूर्ण घड़ा भी पितरों को अर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार गङ्गा की रेती अथवा वर्षा से बढ़ी हुई धारा के विन्दुओं की गणना नहीं की जा सकती है उसी प्रकार इस लोक में मरे हुए पितरों की भी गणना नहीं की जा सकती है। इसलिए जितनी जल्दी-जल्दी सम्भव हो, श्राद्ध करना चाहिए जिससे पितरों को प्रेतलोक में किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। मनुष्य को श्राद्ध करते समय शोक नहीं करना चाहिए ।।२८-३१।। पर्वत से कूदकर, अग्नि, पाश, जल से आत्महत्या करनेवालों तथा विद्युत् और शस्त्रों से मृत्यु होने पर कुटुम्बियों

---

१ संवत्सरे····श्राद्धवदाचरेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. हुति। ३ क. ङ. °तगाम्भीर्ये ना°। ४ क. ङ. चरेत्। ख. भवेत्। ग. जपेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः । ([1]राजाज्ञाकारिणो ये च स्नायाद्वै प्रेतगाम्यपि[2] ।।३३।।
मैथुने कूटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते)। द्विजं न निर्हरेत्प्रेतं शूद्रेण तु कथञ्चन ।।३४।।
न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते। अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात्स्वर्गलोकभाक् ।।३५।।
सङ्ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः। संकल्प्य बान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिम् ।।३६।।
परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्युः सर्वे सवाससः। प्रेताय च तथा दद्युस्त्रींस्त्रींश्चैवोदकाञ्जलीन् ।।३७।।
द्वार्यश्मनि पदं दत्त्वा प्रविशेयुस्तथा गृहम्। अक्षतान्निक्षिपेद्वह्नौ निम्बपत्रं विदश्य च ।।३८।।
[3]पृथक् शयीरन्भूमौ च क्रीतलघ्वा (घ्व) शनो भवेत्। एकः पिण्डः दशाहे तु श्मश्रुकर्मकरः शुचिः ।।३९।।
सिद्धार्थकैस्तिलैर्विद्वान्मज्जेद्वासोऽपरं दधत्। अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भश्रुते तथा ।।४०।।
कार्यो नैवाग्निसंस्कारो नैव चास्योदकक्रिया। चतुर्थे च दिने कार्यस्तथाऽस्थ्नां चैव संचयः ।।४१।।
अस्थिसंचयनातूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ।।४२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शावाशौचकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५७।।

को अशौच नहीं होता है। शव के साथ जानेवाले यती, व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, शिल्पी, दीक्षित तथा राजकर्मचारियों को (शवदाह के पूर्व ही) स्नान कर लेना चाहिए। मैथुन के बाद तथा चिता का धुआँ लगने के बाद तुरन्त ही स्नान करना चाहिए। ब्राह्मण के शव को शूद्रों को नहीं ले जाना चाहिए तथा शूद्र के शव को ब्राह्मणों के द्वारा नहीं ले जाना चाहिए क्योंकि इससे दोनों को दोष होता है किन्तु अनाथ ब्राह्मण के शव को ले जाने से शूद्र स्वर्ग का भागी हो जाता है ।।३२-३५।। अनाथ व्यक्ति के मर जाने पर उसकी चिता में लकड़ी लगानेवाले को संग्राम में विजय प्राप्त होती है। चिता में आग लगाकर मृतक के बान्धवों को अपनी बायीं ओर से चिता की परिक्रमा करके वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। शव-दाह के समय उपस्थित लोगों में से प्रत्येक को मृतक के लिए तीन-तीन जलाञ्जलियाँ देनी चाहिए। श्मशान-स्थल से घर पहुँचकर पहले द्वार पर पत्थर से अपने चरण-तल को रगड़कर घर में प्रवेश करना चाहिए। पहले नीम की पत्तियों को चबाकर अक्षतों को जल मे फेंक देना चाहिए। रात में (स्त्री से) अलग सोकर नित्य खरीदा हुआ तथा सूक्ष्म आहार करना चाहिए। दसवें दिन पिण्डदान तथा क्षौर कर्म करने से शुद्धि होती है। विद्वान् व्यक्ति को सफेद सरसों और तिलों के साथ दूसरा वस्त्र धारण करके मज्जन करना चाहिए। जिस बालक की मृत्यु दाँत निकलने से पहले होती है अथवा जिसका गर्भपात हुआ हो ऐसे शिशु का न तो दाह-संस्कार ही होता है और न तो उसे जलाञ्जलि ही दी जाती है। चौथे दिन मृतक की अस्थियों का सञ्चय करना चाहिए। अस्थिसञ्चय के बाद अङ्गस्पर्श का विधान बताया गया है ।।३६-४२।।

श्री अग्निमहापुराण में शावाशौच-कथन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५७।।

---

१ राजाज्ञाकारिणो···विधीयते क. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °तशाम्यति। मैं। ख. ग. °तमास्पति । मैं°। ३ पृथक्···शुचिः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

स्त्रावाद्यशौचम्

पुष्कर उवाच[1]

स्त्रावाशौचं प्रवक्ष्यामि मन्वादिमुनिसंमतम् । रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे त्र्यहेण वा ।।१।।
चातुर्मासिकपातान्ते दशाहं पञ्चमासतः । राजन्ये च चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ।।२।।
अष्टाहेन तु शूद्रस्य द्वादशाहादतः परम् । स्त्रीणां विशुद्धिरुदिता स्नानमात्रेण वै पितुः ।।३।।
न स्नानं हि सपिण्डे स्यात्त्रिरात्रं सप्तमाष्टयोः । (?) सद्यः शौचं सपिण्डानामादन्तजननात्तथा ।।४।।
आचूडादेकरात्रं स्यादाव्रताच्च त्रिरात्रकम् । दशरात्रं भवेदस्मान्मातापित्रोस्त्रिरात्रकम्[2] ।।५।।
अजातदन्ते तु मृते कृतचूडेऽर्भके तथा । प्रेते न्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ।।६।।
[3]द्व्यहेन क्षत्रिये शुद्धिस्त्रिभिर्वैश्ये मृते तथा । शुद्धिः शूद्रे पञ्चभिः स्यात्प्राग्विवाहाद्द्विषट् त्वहः ।।७।।

अध्याय १५८

स्त्रावाशौच-कथन

पुष्कर बोले–अब मैं गर्भपात से उत्पन्न अशौच के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो कि मनु इत्यादि मुनियों के द्वारा कहा गया है। यदि गर्भपात चौथे महीने में हो तो अशौच-काल केवल तीन दिनों तक रहता है, किन्तु यदि इसके बाद यह दुर्घटना घटित हो तो अशौच दस दिन तक रहता है। उपर्युक्त स्थिति में क्षत्रिय के लिए चार और वैश्य के लिए पाँच दिनों तक अशौच रहता है। ऐसी स्थिति में शूद्रों का अशौच आठ दिनों तक रहता है। गर्भपात से स्त्री का अशौच तो बारह दिन तक चलता है, किन्तु पिता स्नानमात्र से ही शुद्ध हो जाता है ।।१-३।। पिता के सपिण्डों को स्नान की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु उसकी सात या आठ पीढ़ियों के व्यक्तियों को तीन रातों तक अशौच रहता है। जिस बच्चे के दाँत नहीं निकलते हैं, उसकी मृत्यु पर सपिण्डों का अशौच तुरन्त ही समाप्त हो जाता है, चूड़ाकरण संस्कार के पहले मृत्यु होने से एक रात्रि तक और ब्रह्मचर्य आश्रम में जाने से पूर्व मृत्यु होने पर अशौच तीन रात्रियों तक रहता है। सामान्य रूप से बालक की मृत्यु पर माता-पिता का अशौच दस रात तक रहता है, किन्तु चूड़ाकरण संस्कार के बाद भी यदि बालक की मृत्यु दाँत निकलने के पहले हो जाती है तो यह अशौच तीन रातों में ही समाप्त हो जाता है। तीन वर्ष से कम अवस्थावाले बालक की मृत्यु पर एक रात में ही शुद्धि हो जाती है ।।४-६।। क्षत्रिय बालक के मरने पर उसके सपिण्डों की शुद्धि दो दिन पर, वैश्य बालक के मरने पर उसके सपिण्डों की तीन दिन पर, तथा शूद्र बालक की मृत्यु हो तो उसके सपिण्डों की पाँच दिनों पर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाह के पहले मर जाय तो उसे बारह दिनों का अशौच लगता है। जिस अवस्था में

---

१ क. ख. ग. च. °च। शावा°। २ ग. °म्। सजा°। ३ क. ग. च. त्र्यहेन (ण)।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(यत्र त्रिरात्रं विप्राणामशौचं संप्रदृश्यते। तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्नवक्षत्रवैश्ययोः ।।८।।
द्व्यब्दे नैवाग्निसंस्कारो मृते तं निखनेद्भुवि। न चोदकक्रिया तस्य नाम्नि चापि कृते सति ।।९।।
जातदन्तस्य वा कार्या स्यादुपनयनाद्दश। एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।।१०।।
हीने हीनतरे चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा। पञ्चाहे नाग्निहीनस्तु दशाहाद्ब्राह्मणब्रुवः ।।११।।
क्षत्रियो नवसप्ताहाच्छुध्येद्विप्रो गुणैर्युतः। दशाहात्सगुणो वैश्यो विंशाहाच्छूद्र एव च ।।१२।।
दशाहाच्छुध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ।।१३।।
गुणोत्कर्षे दशाहाप्तौ त्र्यहमेकाहकं त्र्यहे। एकाहाप्तौ सद्यः[1] शौचं सर्वत्रैवं समूहयेत् ।।१४।।
दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः। स्वामितुल्यमशौचं स्यान्मृते[2] पृथक्पृथग्भवेत् ।।१५।।
मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निभिः। दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः ।।१६।।

ब्राह्मण को तीन रात का अशौच लगता है, उसी में शूद्र के लिए बारह दिन का अशौच लगता है। क्षत्रिय के लिए छह दिन, वैश्य के लिए नौ दिनों का अशौच लगता है। दो वर्ष के बालक का अग्नि द्वारा दाहसंस्कार नहीं होता, उसकी मृत्यु होने पर उसे धरती में गाड़ देना चाहिए। उसके लिए बान्धवों को उदक-क्रिया (जलाञ्जलि-दान) नहीं करनी चाहिए। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके दाँत निकल आये हों, उसका दाहसंस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दान करना चाहिए। उपनयन के पश्चात् बालक की मृत्यु हो तो दस दिन का अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदों का स्वाध्याय करता है, ऐसा ब्राह्मण एक दिन में ही शुद्ध हो जाता है। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेद का स्वाध्याय करनेवाला है, उसके लिए तीन एवं चार दिन में शुद्ध होने का विधान है। जो अग्निहोत्र कर्म से रहित है, वह पाँच दिन में शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता) वह दस दिन में शुद्ध होता है ।।७-११।। गुणवान् ब्राह्मण सात दिन में शुद्ध होता है। गुणवान् क्षत्रिय नौ दिन में, वैश्य दस दिन में तथा शूद्र बीस दिन में शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दस दिन में, साधारण क्षत्रिय बारह दिन में, साधारण वैश्य पन्द्रह दिन में और साधारण शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। गुणों की अधिकता होने पर यदि दस दिन का अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिन तक रहता है, तीन दिनों तक का अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक ही दिन का अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल की शुद्धि का विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिए। दास, छात्र, भृत्य और शिष्य-ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरु के साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामी की मृत्यु होने पर इन सब को स्वामी एवं गुरु के कुटुम्बीजनों के समान ही पृथक्-पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्नि से संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिण्ड पुरुषों की मृत्यु होने के बाद ही तुरन्त अशौच लगता है, परन्तु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्र का अनुष्ठान होता हो, उस पुरुष को किसी कुटुम्बी या जातिबन्धु की मृत्यु होने पर जब उसका दाह-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उनके बाद अशौच प्राप्त होता है ।।१२-१६।। सभी वर्ण के लोगों का अशौच एक तिहाई समय बीत

---

१ ङ. सदा। २ क. ङ. °ते वाऽपि पृथक्-पृथक्। म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वेषामेव वर्णानां त्रिभागात्स्पर्शनं[1] भवेत् । त्रिचतुष्पञ्चदशभिः स्पृश्यवर्णाः क्रमेण तु ।।१७।।
चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं वर्णानामनुपूर्वशः ।।१८।।
अहस्त्वदत्तकन्यासु प्रदत्तासु त्र्यहं भवेत् । पक्षिणी संस्कृतास्वेव स्वस्त्रादिषु विधीयते ।।१९।।
पितृगोत्रं कुमारीणां व्यूढानां भर्तृगोत्रता[2] । जलप्रदानं पित्रे च उद्वाहे चोभयत्र तु ।।२०।।
दशाहोपरि पित्रोश्च दुहितुर्मरणे त्र्यहम् । सद्यः शौचं सपिण्डानां पूर्वं चूडाकृतेर्द्विज ।।२१।।
एकाहतो ह्या विवाहादूर्ध्वं हस्तोदकात्त्र्यहम् । पक्षिणी भ्रातृपुत्रस्य सपिण्डानां च सद्यतः (?) ।।२२।।
दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरहै (ह्नै) केन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ।।२३।।
एतज्ज्ञेयं सपिण्डानां वक्ष्ये चानौरसादिषु । अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।।२४।।
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते । वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ।।२५।।

जाने पर शारीरिक स्पर्श का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नियम के अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन-चार, पाँच तथा दस दिन के अनन्तर स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णों का अस्थिसञ्चय क्रमशः चार, पाँच, सात तथा नौ दिनों पर करना चाहिए ।।१७-१८।। जिस कन्या का वाग्दान नहीं किया गया है, यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवों को एक दिन का अशौच लगता है। जिसका वाग्दान हो गया है, किन्तु विवाह नहीं हुआ है, उस कन्या के मरने पर तीन दिन का अशौच लगता है। यदि ब्याही हुई बहन या पुत्री आदि की मृत्यु हो तो दो दिन एक रात का अशौच लगता है। कुमारी कन्याओं का वही गोत्र है, जो पिता का है। जिनका विवाह हो गया है, उन कन्याओं का गोत्र वह है जो उनके पति का है। विवाह हो जाने पर कन्या की मृत्यु हो तो उसके लिए जलाञ्जलि-दान का कर्त्तव्य पिता पर भी लागू होता है, पति पर तो है ही। तात्पर्य यह कि विवाह होने पर पिता और पति-दोनों कुलों में जल-दान की क्रिया प्राप्त होती है। यदि दस दिनों के बाद और चूड़ाकरण के पहले कन्या की मृत्यु हो तो माता-पिता को तीन दिन का अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषों की तत्काल ही शुद्धि होती है। चूड़ाकरण के बाद वाग्दान के पहले तक उन्हें तीन दिन का अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्या के भतीजों को दो दिन एक रात का अशौच रहता है, किन्तु अन्य सपिण्ड पुरुषों की तत्काल शुद्धि होती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषों के यहाँ जन्म-मरण में सम्मिलित हो तो दस दिन में शुद्ध होता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के यहाँ जन्म-मृत्यु में सम्मिलित होने पर क्रमशः छह, तीन तथा एक दिन में शुद्ध होता है ।।१९-२३।। यह जो सपिण्ड सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषों से ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिए। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदि के विषय में बताऊँगा। औरस-भिन्न क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्रों के मरने पर तथा जिसने अपने को छोड़कर दूसरे पुरुष से सम्बन्ध जोड़ लिया हो अथवा जो दूसरे पति को छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती हो, ऐसी स्त्री के मरने पर तीन रात में अशौच की निवृत्ति होती है। स्वधर्म का त्याग करने के कारण जिनका जन्म व्यर्थ हो गया है, जो वर्णसंकर सन्तान हो अर्थात् नीचवर्ण के पुरुष और उच्चवर्ण की स्त्री से जिसका जन्म

---

१ ख. °थक्स्वकं भवे°। २ ख. ग. °त्रकम्। ज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया। मात्रैकया द्विपितरौ भ्रातरावन्यगामिनौ ।।२६।।
एकाहः सूतके तत्र [1]मृतके तु द्व्यहो (हं) भवेत्। सपिण्डानामशौचं हि समानोदकतां[2] वदे ।।२७।।
बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते। सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ।।२८।।
दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके। त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नानाच्छुध्यन्ति गोत्रिणः ।।२९।।
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु निवर्तेताऽऽचतुर्दशात् ।।३०।।
जन्मनामस्मृते वै तत्तत्परं गोत्रमुच्यते। विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्[3] ।।३१।।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्। अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।।३२।।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति। मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।।३३।।
मृते[4] जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते। श्यालके तत्सुते चैव स्नानमात्रं विधीयते ।।३४।।
मातामह्यां तथाऽऽचार्ये मृते मातामहे त्र्यहम्। दुर्भिक्षे राष्ट्रसम्पाते आगतायां तथाऽऽपदि ।।३५।।
उपसर्गमृतानां च दाहे ब्रह्मविदां तथा। सत्रिव्रति ब्रह्मचारिसङ्ग्रामे देशविप्लवे ।।३६।।

हुआ हो, जो संन्यासी बनकर इधर-उधर घूमते-फिरते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधि से विधि-बन्धन आदि के द्वारा प्राण-त्याग कर चुके हों, ऐसे लोगों के निमित्त बान्धवों को जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिए, उनके लिए उदक-क्रिया निवृत्त हो जाती है। एक ही माता द्वारा दो पिताओं से उत्पन्न जो दो भाई हों, उनके जन्म में सपिण्ड पुरुषों को एक दिन का अशौच लगता है और मरने पर दो दिन का। यहाँ तक सपिण्डों का अशौच बताया गया है। अब 'समानोदक' का बता रहा हूँ ।।२४-२७।। दाँत निकलने से पहले बालक की मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तर में रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुष की मृत्यु हो जाय तो इन सब अवस्थाओं में (नियत अशौच का काल बिताकर) वस्त्र सहित जल में डुबकी लगाने पर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्म के अवसर पर सपिण्ड पुरुष दस दिनों में शुद्ध होते हैं। एक कुल के असपिण्ड पुरुष तीन रात में शुद्ध होते हैं और एक गोत्रवाले पुरुष स्नान करने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ी में सपिण्ड भाव की निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ी तक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसी के मत में जन्म और नाम का स्मरण न रहने पर अर्थात् हमारे कुल में अमुक पुरुष हुए थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनों का ज्ञान न रहने पर समानोदक भाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्र का सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह बीतने के पूर्व परदेश में रहनेवाले किसी जाति-बन्धु की मृत्यु का समाचार सुन लेता है, उसे दशाह में जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिन का अशौच लगता है। दशाह बीत जाने पर उक्त समाचार सुने तो तीन रात का अशौच प्राप्त होता है ।।२८-३२।। मृत्यु का समाचार एक वर्ष बाद प्राप्त होने पर जल का स्पर्श करके ही शुद्धि हो जाती है। माता, बहन, शिष्य, ऋत्विग् और बान्धवों की मृत्यु पर अशौच-काल एक रात तक ही रहता है। जामाता, नाती, भाञ्जे, साले और साले के पुत्र की मृत्यु पर शुद्धि के लिए केवल स्नान का ही विधान किया गया है। नाना और नानी की मृत्यु पर अशौच तीन दिनों तक चलता है। दुर्भिक्ष के समय, राष्ट्र के नष्ट हो जाने पर, विपत्ति आने से, बीमारी से, जलकर मरने से, ब्रह्मविद् की मृत्यु पर सत्र करनेवाले, व्रती और ब्रह्मचारी की मृत्यु पर, युद्ध में देश

---

१ ङ. °के न तथा भ°। २ ख. ग. °कजं व°। ३ ङ. ह्यहर्निशः। ४ ङ. मित्रे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दाने यज्ञे विवाहे च सद्यः शौचं विधीयते । विप्रगोनृपहन्तृणामनुक्तं चाऽऽत्मघातिनाम् ।।३७।।
असाध्यव्याधियुक्तस्य स्वाध्याये चाक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्नितोयप्रवेशनम् ।।३८।।
अपमानात्तथा क्रोधात्स्नेहात्परिभवाद्भयात् । उद्बध्य म्रियते नारी पुरुषो वाककथंचन ।।३९।।
आत्मघाती चैकलक्षं वसेत्स नरकेऽशुचौ । वृद्धः[1] श्रौतस्मृतेर्लुप्तः परित्यजति यस्त्वसून्(:) ।।४०।।
त्रिरात्रं तत्र चाशौचं द्वितीयेचास्थिसंचयम्(:) । तृतीये तूदकं कार्यं चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ।।४१।।
विद्युदग्निहतानां च त्र्यहं शुद्धिः सपिण्डके । पाषण्डाश्रिता भर्तृघ्न्यो नाशौचोदकगाः स्त्रियः ।।४२।।
पितृमात्रादिपाते तु आर्द्रवासा ह्युपोषितः । अतीतेऽब्दे प्रकुर्वीत प्रेतकार्यं यथाविधि ।।४३।।
यः कश्चित्तु हरेत्प्रेतमसपिण्डं कथंचन । स्नात्वा सचैलं स्पृष्टाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ।।४४।।
यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति । अनदन्नन्नमह्नैव न वै तस्मिन्गृहे वसेत् ।।४५।।
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः । पदे पदे यज्ञफलं शुद्धिः स्यात्स्नानमात्रतः ।।४६।।
प्रेतीभूतं द्विजः शूद्रमनुगच्छंस्त्र्यहाच्छुचिः । मृतस्य बान्धवैः सार्धं कृत्वा च परिदेवनम् ।।४७।।
वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकामतः । शूद्रायाः प्रसवो गेहे शूद्रस्य मरणं तथा ।।४८।।

में विप्लव होने पर तथा दान, यज्ञ या विवाह में मृत्यु होने पर तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है। गोहत्वा करनेवाले, राजहत्या करनेवाले, ब्रह्महत्या करनेवाले और आत्महत्या करनेवाले की मृत्यु होने पर किसी प्रकार अशौच नहीं लगता है ।।३३-३७।। असाध्य व्याधि से युक्त और स्वाध्याय में असमर्थ व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त है–अग्नि तथा जल में प्रवेश। अपमान के कारण, क्रोध के कारण, स्नेह के कारण और पराजय के कारण जो स्त्री अथवा पुरुष फाँसी लगाकर आत्महत्या करता है, वह एक लाख वर्ष तक अपवित्र नरक में रहता है। वृद्ध तथा श्रौत और स्मार्त कर्मों से रहित व्यक्ति की मृत्यु पर तीन रातों तक अशौच रहता है। इनके लिए दूसरे दिन अस्थि-संचय, तीसरे दिन जलक्रिया और चौथे दिन श्राद्धकर्म करना चाहिए ।।३८-४१।। विद्युत् और अग्नि से किसी की मृत्यु होने पर सपिण्ड तीन दिनों में शुद्ध हो जाता है। पाखण्डिनी, अपने पतियों का हनन करनेवाली स्त्रियों की मृत्यु पर किसी प्रकार का अशौच नहीं लगता है। पिता और माता के द्वारा परित्यक्त पुत्र उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर स्नान करने से ही पवित्र हो जाता है और ऐसे पुत्र के द्वारा अपने माता-पिता का श्राद्ध एक वर्ष बाद करना चाहिए। जो व्यक्ति किसी असपिण्ड व्यक्ति के शव का वहन करता है वह वस्त्रों के सहित स्नान करने से और घृत चखने से ही शुद्ध हो जाता है ।।४२-४४।। मृतक के घर में अन्नग्रहण करनेवाले दस दिनों में शुद्ध होते हैं और जो लोग उसके यहाँ अन्न नहीं खाते वे एक ही दिन में शुद्ध हो जाते हैं। किन्तु उन लोगों को मृतक के घर नहीं रहना चाहिए। अनाथ ब्राह्मण के शव को वहन करनेवाले ब्राह्मण पद-पद पर यज्ञ फल प्राप्त करते हैं और उनकी शुद्धि स्नानमात्र से ही हो जाती है। शूद्र के शव के पीछे चलनेवाला ब्राह्मण तीन दिनों में शुद्ध होता है और मृतक के बान्धवों के साथ विलाप करनेवाला भी तीन दिनों में शुद्ध होता है। अगर किसी ब्राह्मण के घर में शूद्रा को प्रसव होता है अथवा उसके घर में किसी शूद्र की मृत्यु होती है तो उसे उस रात और दिन में दान और श्राद्धादि का वर्जन करना चाहिए। इन परिस्थितियों

---

१ ग. °द्धः शोचस्मृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भाण्डानि तु परित्यज्य त्र्यहाद्भूलेपतः शुचिः। न विप्रं श्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्[1] ।।४९।।
([2]नयेत्प्रेतं स्नापितं च पूजितं कुसुमैर्दहेत्। नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिद्देहं परित्यजेत् ।।५०।।
गोत्रजस्तु गृहीत्वा तु चितां चाऽऽरोपयेत्तदा। आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः) ।।५१।।
अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरस्तथा। अस्मात्त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।।५२।।
असौ स्वर्गाय लोकाय मुखाग्निं प्रददेत्सुतः। सकृत्प्रसिञ्चत्यु(न्त्यु)दकं नामगोत्रेण बान्धवाः ।।५३।।
एवं मातामहाचार्यप्रेतानां चोदकक्रिया। कामोदकं सखीप्रेतस्वस्त्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ।।५४।।
अपानः शोशुचदयं दशाहं च सुतोऽर्पयेत्। ब्राह्मणे दश पिण्डाः स्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ।।५५।।
वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ता शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः। पुत्रो वा पुत्रिकाऽन्यो वा पिण्डं दद्याच्च पुत्रवत् ।।५६।।
विदश्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः। आचम्य चाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् ।।५७।।
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः। अक्षारलवणन्नाः[3] स्युर्निर्मांसा भूमिशायिनः ।।५८।।
[4]क्रीतलब्धाशनाः स्नाता आदिकर्त्ता दशाहकृत्। अभावे ब्रह्मचारी तु कुर्यात्पिण्डोदकादिकम् ।।५९।।

में बरतनों को फेंककर भूमि को लीप देने से ही तीन दिनों में शुद्धि होती है। ब्राह्मण के सजातीय लोगों के रहने पर उसके शव का वहन शूद्रों द्वारा नहीं करना चाहिए ।।४५-४९।। शव को स्नान कराकर और पुष्प इत्यादि से उसकी पूजा करके उसका दाह करना चाहिए। शव को बिल्कुल नङ्गा करके दाह करना चाहिए और दाह के समय कुछ शरीर को छोड़ देना चाहिए। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर सगोत्र उसे ले जाकर चिता पर रख देता है और वह चिता आहिताग्नि, अनाहिताग्नि और लौकिकाग्नि नामक तीन अग्नियों से जला दी जाती है। मृतक के पुत्र को मुख में सबसे पहले यह कहते हुए आग लगानी चाहिए कि 'तुम इसी से उत्पन्न हुए हो, तुम इसी में पुनः मिल जाओ। यह अग्नि तुम्हें स्वर्गलोक ले जाय।' तदनन्तर मृतक के बान्धवों को मृतक का नाम तथा उसके गोत्र का नाम लेकर उसके ऊपर जल छिड़क देना चाहिए ।।५०-५३।। इस प्रकार नाना और आचार्य की मृत्यु पर जलाञ्जलि दी जाती है। इसके अतिरिक्त मित्र, बहन के श्वशुर और ऋत्विजों की मृत्यु पर भी तर्पण किया जाता है। तर्पण करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए कि 'जल इसे पवित्र करे,' 'मैं अमुक का पुत्र हूँ।' ब्राह्मण के लिए दस और शूद्र के लिए तीस पिण्डों का विधान है। पिण्डदान पुत्र या पुत्रिका आदि पुत्र की तरह कर सकते हैं। दाहकर्म करने के बाद मृतक के पुत्रों तथा बान्धवों को घर लौटकर द्वार पर नीम के पत्तों को चबाकर अग्नि, जल, गोबर और सफेद सरसों का स्पर्श करके तथा धीरे से किसी पत्थर के ऊपर अपने पैर रगड़कर घर में प्रवेश करना चाहिए। मृतक के सम्बन्धियों को क्षार और लवण से रहित तथा निरामिष भोजन करना चाहिए तथा भूमि पर शयन करना चाहिए ।।५४-५८।। नित्य खरीदकर भोजन करना चाहिए और स्नान करना चाहिए। यह कर्म दस दिनों तक चलता है। जिस व्यक्ति ने

---

१ ग. नार्चये°। २ नयेत्प्रेतं°°°°व्यस्त्रिभिरग्निभिः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ ग. °पार्थाः स्युः°। ४ क्रीतलब्धाशनाः°°° दशाहकृत् च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते। जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ।।६०।।
([1]सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोश्च सूतकम्। मातुकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ।।६१।।
पुत्रजन्मदिनेश्राद्धं कर्तव्यमिति निश्चितम्। तदहस्तत्प्रदानार्थं गोहिरण्यादिवाससाम् ।।६२।।
मरणं मरणेनैव सूतकं सूतकेन तु। उभयोरपि यत्पूर्वं तेनाऽऽशौचेन शुध्यति ।।६३।।
सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम्। तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम् ।।६४।।
समानं लध्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत्। असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ।।६५।।
शावान्तः शाव आयाते पूर्वाशौचेन शुध्यति। गुरुणा लघु बाध्येत लघुना नैव तद्गुरु ।।६६।।
मृतके सूतके वाऽपि रात्रि मध्येऽन्यदापतेत्। तच्छेषेणैव शुध्येरन् रात्रिशेषे द्व्यहाधिकात् ।।६७।।
प्रभाते यद्यशौचं स्याच्छुध्येरंश्च त्रिभिर्दिनैः। उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।।६८।।

चिता में आग लगायी हो, उसी को दसवें दिन श्राद्ध कर्म करना चाहिए। यदि श्राद्ध के उपयुक्त सामग्री का अभाव हो तो ब्रह्मचर्य रखकर पिण्डदान तथा तर्पण क्रिया कर देनी चाहिए। सपिण्डों में जो अशौच मृत्यु से होता है, वही जन्म से भी होता है। कम-से-कम विशेष शुद्धि की इच्छा करनेवालों को तो इस प्रकार के अशौच को मानना ही चाहिए। मृत्यु से उत्पन्न होनेवाला अशौच सभी कुटुम्बियों को होता है, किन्तु जन्म से उत्पन्न अशौच माता-पिता को ही लगता है। पिता की शुद्धि आचमन करने से ही हो जाती है। पुत्र-जन्म के दिन निश्चित रूप से श्राद्ध करना चाहिए और उस दिन ब्राह्मणों आदि के लिए गो, स्वर्ण और वस्त्रादि का दान करना चाहिए। मरण का अशौच मरण के साथ और सूतक का सूतक के साथ निवृत्त होता है। दोनों में जो पहला अशौच है, उसी के साथ दूसरे की भी शुद्धि होती है ।।५९-६३।। जननाशौच में मरणाशौच हो अथवा मरणाशौच में जननाशौच हो जाय तो मरणाशौच के अधिकार में जननाशौच को भी निवृत्त मानकर अपनी शुद्धि का कार्य करना चाहिए। जननाशौच के साथ मरणाशौच की निवृत्ति नहीं होती। यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्मसूतक में जन्मसूतक और मरणाशौच में मरणाशौच पड़ जाय) तो प्रथम अशौच के साथ दूसरे को भी समाप्त कर देना चाहिए और यदि असमान अशौच हो (अर्थात् जननाशौच में मरणाशौच और मरणाशौच में जननाशौच हो) तो द्वितीय अशौच के साथ प्रथम को निवृत्त करना चाहिए, ऐसा धर्मराज का वचन है। मरणाशौच के भीतर दूसरा मरणाशौच आने पर वह पहले अशौच के साथ निवृत्त हो जाता है। गुरु अशौच से लघु अशौच बाधित होता है, लघु से गुरु अशौच का बाध नहीं होता है। मृतक अथवा सूतक में यदि अन्तिम रात्रि के मध्यभाग में दूसरा अशौच आ पड़े तो उस शेष समय में ही उसकी भी निवृत्ति हो जाने के कारण सभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। यदि रात्रि के अन्तिम भाग में दूसरा अशौच आवे तो दो दिन अधिक बीतने पर अशौच की निवृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि बिताकर अन्तिम दिन के प्रातःकाल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतने पर सपिण्डों की शुद्धि होती है। दोनों ही प्रकार के अशौचों में दस दिनों तक उस कुल का अन्न नहीं खाया जाता है। अशौच में दान आदि का भी अधिकार नहीं रहता। अशौच में किसी

---

१ सर्वेषां...महोऽन्य (हरन्य) था क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दानादि विनिवर्तेत भोजने कृत्यमाचरेत्। अज्ञाते पातकं नाऽद्ये भोक्तुरेकमहोऽन्य (हरन्य) था ।।६९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शावाशौचकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५८।।

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

असंस्कृतादिशौचम्

पुष्कर उवाच

संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः। अस्थ्नां गङ्गाम्भसि क्षेपात्प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ।।१।।
गङ्गातोये नरस्यास्थि [1]यावतावद्दिविस्थितिः। आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ।।२।।
तेषामपि तथा [2]गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितम्। तेषां दत्तं जलं चान्नं गगने तत्प्रलीयते ।।३।।
अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च। नारायणबलिः [3]कार्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ।।४।।
अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तत्र दत्तं न नश्यति। पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रं जनार्दनः[4] ।।५।।
पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम्। दृष्ट्वा लोकान्म्रियमाणान्सहायं धर्ममाचरेत् ।।६।।

के यहाँ भोजन करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। अनजान में भोजन करने पर पातक नहीं लगता, जान-बूझकर खानेवालों को एक दिन का अशौच प्राप्त होता है ।।६४-६९।।

श्री अग्निमहापुराण में स्त्रावाशौच कथन नामक एक सौ अठावनवाँ अध्याय समाप्त ।।१५८।।

अध्याय १५९

असंस्कृतादि-शौच

पुष्कर बोले-संस्कृत अथवा असंस्कृत दोनों को हरिस्मरण से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। गङ्गाजल में मृतक की अस्थियों को फेंकने से उसकी अभ्युन्नति होती है। मनुष्य की अस्थियाँ जब तक गङ्गाजल में रहती हैं तब तक उसकी स्थिति स्वर्गलोक में बनी रहती है। आत्महत्या करनेवालों तथा पतितों के लिए इन क्रियाओं को नहीं करना चाहिए, तथापि गङ्गाजल में उनकी अस्थियों के रहने से उनका हित तो होता ही है, उनके लिए दिया गया अन्न और जल आकाश में विलीन हो जाता है ।।१-३।। पतित मृतक के लिए नारायणबलि करनी चाहिए, क्योंकि नारायण के महान् अनुग्रह से उसे उसका कुछ अंश प्राप्त हो जाता है। भगवान् पुण्डरीकाक्ष अक्षय हैं, अतः उन्हें जो भी दिया जाता है उसका (भी) नाश नहीं होता है। जनार्दन को पात्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह (पापों में) गिरने से रक्षा किया करते हैं। निश्चय ही केवल भगवान् विष्णु ही पतितों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। लोक को नष्ट होता हुआ देखकर सहायता रूप धर्म का आचरण करना चाहिए ।।४-६।।

---

१ क. ङ. यावानार्वङ्गिरःस्थि°। २ क. ङ. °था गङ्गातोये ह्यापतनं हि°। ३ क. ङ. कार्यः स्नेहानु°। ४ क. °नः। प्रेतनं भुक्तिमुक्ती हि पदमेको।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम् । जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ।।७।।
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम् । श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम् ।।८।।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् । [1]क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ।।९।।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति । न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ।।१०।।
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् । नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।।११।।
कुशाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति । औषधानि न मन्त्राद्यास्त्रायन्ते मृत्युनाऽन्वितम् ।।१२।।
वत्सवत्प्राकृतं कर्म कर्तारं विन्दति ध्रुवम् । अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ।।१३।।
कौमारादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः । नवमन्यद्यथा वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकम् ।।
[2]देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोकं ततस्त्यजेत् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽसंस्कृतादिशौचकथनं
नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१५९।।

मरे हुए व्यक्ति का अनुगमन उसके बान्धव मरकर भी नहीं कर सकते हैं। जाया को छोड़कर सभी के लिए यम के मार्ग भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। केवल धर्म ही मनुष्य का अनुगमन करता है, फिर वह चाहे कहीं भी (नरक या स्वर्ग) जानेवाला हो। अतः जो (धर्म) कल होनेवाला है उसे आज ही कर लेना चाहिए और जिसे अपराह्ण में करना हो उसे पूर्वाह्ण में ही कर डालना श्रेयस्कर है। मृत्यु किसी के लिए यह प्रतीक्षा नहीं करती है कि उसने यह कर्म किया है अथवा नहीं। चाहे कोई व्यक्ति खेत, दुकान या घर में आसक्त हो अथवा अन्यत्र मन लगाया हुआ हो, मृत्यु आकर उसे उसी प्रकार उठा ले जाती है, जैसे भेड़िया भेड़ को उठा ले जाता है। मृत्यु के लिए न कोई शत्रु है न मित्र ।।७-१०।। अतः वह आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर हठात् मनुष्य का अपहरण कर ले जाती है। जिसकी मृत्यु नहीं है वह सैकड़ों बाणों से बींधे जाने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता है, किन्तु जिसका काल आ गया है वह कुशाग्र के स्पर्श से भी जीवित नहीं रहता है। मृत्यु से ग्रसित मनुष्य की न तो ओषधि ही रक्षा कर सकती है और न मन्त्र इत्यादि। किया हुआ कर्म (गाय के पीछे दौड़नेवाले) बछड़े के समान कर्त्ता के पीछे लगा रहता है। संसार केवल मध्य में ही व्यक्त है, उसका आदि और अन्त तो अव्यक्त ही रहता है। शरीर में जिस प्रकार कौमार्य आदि अवस्थाएँ हैं वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त करना (मृत्यु) है। आत्मा नवीन वस्त्र की भाँति दूसरा शरीर ग्रहण करनेवाली हुआ करती है, क्योंकि वह स्वयं तो नित्य और अवध्य है। अतएव मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए ।।११-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में असंस्कृतादिशौचवर्णन नामक
एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१५९।।

---

१ क. ङ. क्षेत्रपरगृ°। २ देही····ततस्त्यजेत् ङ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमः

पुष्कर उवाच

वानप्रस्थयतीनां च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु। जटित्वमग्निहोत्रित्वं[1] भूशय्याऽजिनधारणम् ।।१।।
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता। प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिः स्नानं ब्रह्मचारिता ।।२।।
देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः। गृही ह्यपत्यापत्यं च दृष्ट्वाऽरण्य समाश्रयेत् ।।३।।
तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभार्यकः। ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं वर्षास्वभ्रावकाशिकाः ।।४।।
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रं चरेद्बली। अपरावृत्तिमास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वानप्रस्थाश्रमकथनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्ययः ।।१६०।।

अध्याय १६०

वानप्रस्थाश्रम

पुष्कर बोले–अब मैं वानप्रस्थियों के धर्म को कह रहा हूँ, उसे सुनो! उसे जटाधारी, अग्निहोत्र करनेवाला, भूशायी और मृगचर्म धारण करनेवाला होना चाहिए। उसे वन में रहकर जल, मूल, नीवार और फलों के ऊपर जीवन-यापन करना चाहिए। उसे प्रतिग्रह का अधिकार नहीं होता है। वह तीन बार स्नान करनेवाला और ब्रह्मचारी होता है। वानप्रस्थी का धर्म है देवता और अतिथि की पूजा। गृहस्थ को पुत्र के पुत्र (पौत्र) का मुख देखकर आयु के तीसरे भाग में वानप्रस्थ लेना चाहिए। वह अकेले अथवा सपत्नीक वानप्रस्थ ले सकता है। उसे ग्रीष्म में निरन्तर पञ्चाग्नि का सेवन करना चाहिए। वर्षा में खुले आकाश के नीचे रहना चाहिए और हेमन्त में गीले वस्त्र धारण करना चाहिए। इस प्रकार उसे उग्र तपस्या करनी चाहिए। उसे अपरावृत्ति में रहकर सरल भाव से दिशाओं में चला जाना चाहिए ।।१-५।।

श्री अग्निहापुराण में वानप्रस्थाश्रम वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६०।।

---

१ क. ङ. °होतृत्व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

यतिधर्माः

पुष्कर उवाच

यतिधर्मं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शकम् । चतुर्थमायुषो [1]भागं प्राप्य सङ्गात्परिव्रजेत् ।।१।।
यदह्नि विरजेद्धीरस्तदह्नि च परिव्रजेत् । प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।।२।।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य प्रव्रजेद् ब्राह्मणो गृहात् । एक एव चरेन्नित्यं ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।।३।।
[2]उपेक्षकोऽसंचयि (य) को मुनिर्ज्ञानसमन्वितः । [3]कपालं वृक्षमूलं च कुचेलमसहायता ।।४।।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनम् ।।५।।
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा । दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।।६।।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् । अलाबुदारुपत्राणि मृण्मयं वैष्णवं यतेः ।।७।।
[4]विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ।।८।।
माधूरकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ।।९।।

अध्याय १६१

यतिधर्म-वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं यतियों के धर्म के विषय में बतला रहा हूँ जो ज्ञान और मोक्ष का दर्शन करानेवाला है। आयु के चतुर्थ भाग में पहुँचकर आसक्ति से संन्यास ले लेना चाहिए। ब्राह्मण को सभी वेदों से युक्त प्राजापत्य इष्टि का निरूपण करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अपने-आपमें अग्नि को आरोपित करके घर से निकल जाना चाहिए। नित्य अकेले भ्रमण करते हुए संन्यासी को भोजनार्थ गाँव में जाना चाहिए ।।१-३।। उसे संसार की उपेक्षा करनेवाला, असंग्रही और ज्ञानवान् होना चाहिए। संन्यासी के लक्षण हैं–कपाल (धारण करना), वृक्षमूल, मोटे वस्त्र, एकाकीपन और सब में समान दृष्टि। उसे न तो जीवन से मोह होता है और न मृत्यु से। जिस प्रकार सेवक अपने स्वामी की प्रतीक्षा किया करता है उसी प्रकार संन्यासी को काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसे देख-देखकर भूमि पर पैर रखना चाहिए तथा छानकर जल पीना चाहिए ।।४-६।। सत्य से युक्त वाणी बोलना चाहिए तथा इस प्रकार का आचरण करना चाहिए जिसके लिए मन समर्थन करे। यति का पात्र लौकी, लकड़ी, मिट्टी और बाँस का होना चाहिए। यति को भिक्षा माँगने के लिए उस समय निकलना चाहिए जब रसोई का धुआँ समाप्त हो चुका हो, मुसल को उपयोग के बाद छोड़ दिया गया हो, आग ठण्डी पड़ गयी हो, सारे बर्तनों को उलटकर रख दिय गया हो। भिक्षा पाँच प्रकार की बतलायी गयी है–मधुकरी, असंक्लृप्त, प्राक्प्रणीत, अयाचित और तात्कालिक। यति को या तो करपात्री

---

१ क. ङ. °गं त्यक्त्वा सं°। २ क. ङ. उत्पक्षको मुनिर्ज्ञानं तथा चैवस°। ३ क. ङ. कथान° वृक्षमूलानि कुवेर म°। ४ ख. ग. °मे सन्नमु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाणिपात्री भवेद्वाऽपी पात्रे पात्रात्समाचरेत् । अवेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवाम् ।।१०।।
शुद्धभावश्चरेद्धर्मं यत्र तत्राऽऽश्रमे रतः । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।।११।।
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ।।१२।।
[1]अजिह्मः पण्डकः पङ्गुरन्धो बधिर एव च[2] । सद्भिश्च मुच्यतेऽसद्भिरज्ञानात्संसृतो द्विजः ।।१३।।
अह्नि रात्र्यां च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः । तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ।।१४।।
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ।।१५।।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ।।१६।।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । ह्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।१७।।
चतुर्विधं भैक्षवस्तु कुटीचकबहूदकौ । हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ।।१८।।
एकदण्डी त्रिदण्डी वा योगी मुच्येत बन्धनात् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।।१९।।
यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं सन्तोषणं तपः । स्वाध्यायेश्वरपूजा च पद्मकाद्यासनं यतेः ।।२०।।
प्राणायामस्तु द्विविधः सगर्भोऽगर्भ एव च । जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वगर्भकः ।।२१।।

होना चाहिए अथवा दिये गये बर्तन से अपने बर्तन में भिक्षा को ग्रहण करना चाहिए। उसे कर्म से उत्पन्न होनेवाली मनुष्यों की गति का निर्विघ्न निरीक्षण करते हुए शुद्ध भाव से अपने आश्रम के अनुसार आचरण करना चाहिए ।।७-१०$\frac{1}{2}$।। उसे सभी प्राणियों में समदृष्टि होना चाहिए क्योंकि केवल चिह्न ही धर्म का कारण नहीं हो सकता है। यद्यपि कतक वृक्ष का फल जल को स्वच्छ करनेवाला हुआ करता है, किन्तु उसके नाम के ग्रहण मात्र करने से ही जल की शुद्धि नहीं होती है। संन्यासी को सरल, नपुंसक, पङ्गु, अन्धे और बहरे की सेवा में निरत रहना चाहिए। उसे सज्जनों की संगति में रहकर दुर्जनों का साथ छोड़ देना चाहिए। रात्रि अथवा दिन में अज्ञानवश यति जिन जन्तुओं की हिंसा कर डालता है, उसकी शुद्धि के लिए उसे स्नान करके छह प्राणायामों का आचरण करना चाहिए ।।११-१४।। संन्यासी को अपने शरीर के सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि वह एक अस्थि-पञ्जर है जो स्नायुओं से युक्त, मांस और रक्त से सना हुआ, चमड़े से ढका हुआ, दुर्गन्धयुक्त, मल-मूत्र से भरा हुआ, वृद्धावस्था और शोक से समन्वित रोगों का आगार, दुःखी और मलिन तथा अनित्य है। इसलिए उसका परित्याग कर देना चाहिए ।।१५-१६।। धर्म के दस लक्षण हैं—धैर्य, क्षमा, इन्द्रियदमन, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, लज्जा, विद्या, सत्य और अक्रोध। भिक्षु चार प्रकार के कहे गये हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें पूर्व की अपेक्षा उत्तरवर्ती कोटि के संन्यासी श्रेष्ठ कहे गये हैं ।।१७-१८।। एकदण्डी अथवा त्रिदण्डी योगी बन्धन से छुटकारा पा जाते हैं। पाँच यम हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह और पाँच नियम हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजा। पद्मासन आदि यतियों के आसन कहे गये हैं। प्राणायाम दो प्रकार का है—सगर्भ और अगर्भ। जप और ध्यान

---

१ ख. °ह्यः खञ्जकः। २ ख. च। षड्भिश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः। पूरणात्पूरको वायोर्निश्चलत्वाच्च कुम्भकः ।।२२।।
रेचनाद्रेचकः प्रोक्तो मात्राभेदेन च त्रिधा। द्वादशस्तु चतुर्विंशः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽपरः ।।२३।।
तालो लघ्वक्षरो मात्रा प्रणवादि चरेच्छनैः। प्रत्याहारो जापकानां ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ।।२४।।
मनोधृतिर्धारणा स्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः। अयमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।।२५।।
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमस्यहमस्मि तत्। परं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ।।२६।।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम्। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ।।२७।।
नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिरक्षरं सर्वगं हरिः ।।२८।।
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम्। सर्वारम्भपरित्यागी समदुःखसुखः क्षमी ।।२९।।
भावशुद्धश्च ब्रह्माण्डं भित्त्वा ब्रह्म भवेन्नरः। आषाढ्यां पौर्णमास्यां च चातुर्मास्यं व्रतं चरेत् ।।३०।।
ततो व्रजेन्नवम्यादौ ह्यृतुसंधिषु वापयेत्। प्रायश्चित्तं यतीनां च ध्यानं वायुयमस्तथा ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यतिधर्मकथनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६१।।

से युक्त गर्भ तथा उससे विपरीत अगर्भ कहा गया है। पूरक, कुम्भक, रेचक से उसमें से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते हैं। वायु को अपने अन्दर भरना पूरक कहलाता है, उसको रोकना कुम्भक है और उसे छोड़ना रेचक कहलाता है ।।१९-२२।। मात्रा भेद से इनके भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं। पहला द्वादशमात्रा, दूसरा चतुर्विंश मात्रा और तीसरा छत्तीस मात्रावाला कहा गया है। एक मात्रा काल वह है जो एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में लगता है। प्रणव आदि मन्त्रों के उच्चारण के साथ जापक को प्रत्याहार का उच्चारण करना चाहिए। ध्यान कहते हैं मन को धारण करने को। ब्रह्म में स्थिति समाधि कहलाती है। यह आत्मा ही परब्रह्म है। वह सत्य, ज्ञान और अनन्त भी है ।।२३-२५।। विशेष ज्ञान को ही ब्रह्मानन्द कहते हैं, जो इस प्रकार है-'तत्त्वमसि' 'अहमस्मि तत्' यह आत्मा परब्रह्म है, ज्योतिरूप है, वासुदेव-स्वरूप है और यह मुक्त भी है। ब्रह्म वह है जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कार से रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्थाओं से मुक्त रहा करता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द और अद्वैत है। संन्यासी को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि-'ॐ मैं परब्रह्म हूँ जो कि ज्योतिरूप, अक्षर, सर्वव्यापक और विष्णुरूप है। यह जो आदित्य पुरुष है, वही मैं हूँ।' मनुष्य सभी कुछ छोड़कर सुख-दुःख में समान रहकर क्षमाशील और भावशुद्ध होकर ब्रह्माण्ड का भेदन करके ईश्वर (मय) हो जाता है। आषाढ़ की पूर्णमासी में चातुर्मास्य व्रत का आचरण करना चाहिए। तदनन्तर ऋतुओं के सन्धिकाल में नवमी आदि तिथियों में पुनः भ्रमण के लिए निकल पड़ना चाहिए। यतियों का प्रायश्चित्त है-ध्यान और प्राणायाम ।।२६-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में यतिधर्म कथन नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६१।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धर्मशास्त्रकथनम्

पुष्कर उवाच

मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्क्यो[1] हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः। वशिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ।।१।।
आपस्तम्बोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती। गौतमः शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ।।२।।
तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।।३।।
काम्यं कर्म प्रवृत्तं स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकम्। वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।।४।।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्। सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।।५।।
[2]तच्चाग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः। सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।।६।।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति। आत्मज्ञाने स (श) मे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ।।७।।
एतद्द्विजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः। वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राऽऽश्रमे वसन् ।।८।।
इहैव लोके तिष्ठन्हि ब्रह्मभूयाय कल्पते। स्वाध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन तु ।।९।।
[3]हस्ते चौषधिवारे च पञ्चम्यां श्रावणस्य च। [4]पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ।।१०।।

अध्याय १६२

धर्मशास्त्रकथन

पुष्कर बोले–अब मैं संक्षेप में उस धर्म के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जिसे पहले मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरस, वशिष्ठ, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम और शङ्खलिखित ने बताया था, उसे सुनिये। वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं–प्रवृत्त कर्म और निवृत्त कर्म ।।१-३।। प्रवृत्त कर्म को 'काम्य' भी कहते हैं और निवृत्त वह है जिसे ज्ञानपूर्वक किया जाता है। वेदाभ्यास, तपस्या, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा और गुरुसेवा परम निःश्रेयस्कर कर्म हैं। इन सबमें आत्मज्ञान श्रेष्ठ माना गया है ।।४-५।। वह सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है क्योंकि उससे अमरत्व की प्राप्ति होती है। सभी प्राणियों में अपने-आपको और अपने में सभी प्राणियों को समान रूप से देखनेवाला, आत्मयाजी, स्वराज्य को प्राप्त कर लेता है। आत्मज्ञान की इच्छा के शान्त हो जाने पर वेदाभ्यास में यत्न करना चाहिए। यह सामान्य रूप से द्विजातियों का तथा विशेष रूप से ब्राह्मणों का सामर्थ्य है। जो व्यक्ति वेद और शास्त्रों के अर्थों के तत्त्वज्ञानियों के आश्रम में रहता है, वह इस लोक में रहते हुए ही ब्रह्म के समान हो जाता है ।।६-८$\frac{1}{2}$।। स्वाध्याय का उपाकर्म श्रावणी के दिन श्रवण नक्षत्र में, हस्त नक्षत्र में, चन्द्रवार के दिन अथवा श्रावण की पञ्चमी के दिन होना चाहिए। यह कर्म पौष मास में रोहिणी नक्षत्र में और अष्टमी के

---

१ च. °ल्क्यो मरीचोऽत्रि°। २ क. ङ. तत्त्वाश्रीस°। ३ ख. ग. °स्ते वौषधिभावे वा प°। ६ ग. °माघस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः[1] । त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ।।११।।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा । सन्ध्यागर्जितनिर्घाते भूकम्पोल्कानिपातने ।।१२।।
समाप्तवेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च । पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ।।१३।।
ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च । पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः ।।१४।।
कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये । श्वक्रोष्टुगर्दभोलूक[2] मासवाणर्तुनिस्वने ।।१५।।
अमेध्य शवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके । अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसम्प्लवे ।।१६।।
भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते । पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु ।।१७।।
धावतः प्राणिबाधे च विशिष्टे गृहमागते । खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे ।।
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धर्मशास्त्रवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६२।।

दिन भी किया जा सकता है। जलाञ्जलि के बाद विधिवत् छन्दों का उत्सर्ग करना चाहिए। शिष्य, ऋत्विग्, गुरु और बन्धु की मृत्यु पर तीन दिन तक अनध्याय रहता है ।।९-११।। उपाकर्म में अपनी शाखा के श्रोत्रिय के निधन होने पर, सन्ध्या-काल में मेघों की गर्जना, भूकम्प तथा उत्कापात के समय, वेद की समाप्ति, आरण्यकों के अध्ययन के पश्चात् अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी, राहु-सूतक के समय, ऋतुओं की सन्धियों में भोजन करके, श्राद्ध ग्रहण करके, पशुओं, मेंढक, नेवले, कुत्ते, सर्प, बिल्ली और शूकरों के द्वारा रास्ता काट जाने पर, इन्द्रध्वज की पताका उतारने तथा फहराने के दिन, कुत्ते, गीदड़, गर्दभ, उल्लू के शब्द करने पर, अमेध्य, शव, शूद्र, श्मशान और पतित के संसर्ग में, अशुभ नक्षत्रों में, विद्युत्गर्जन होने पर भोजन करके गीले हाथ जल में, अर्ध रात्रि में, आँधी चलने पर, बवण्डर उठने पर, दिशाओं के जलने पर, सन्ध्या-काल में, नीहारिकाओं के भय उत्पन्न होने पर, दौड़ते हुए प्राणियों की बाधा उत्पन्न होने पर, विशिष्ट व्यक्ति के घर आने पर और गधे, ऊँट, सवारी, हाथी, घोड़े, नाव तथा वृक्षादि पर चढ़ने के बाद इन सैंतीस प्रकार की स्थितियों में अनध्याय करना चाहिए, ऐसा विद्वानों का विचार है ।।१२-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में धर्मशास्त्र वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६२।।

---

१ क. ङ. °हिः। अहं ज्योतिरनाध्यायशिष्यत्वं क्रतबु°। २ ख. ग. °कसामवाणार्तनि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पकथनम्

पुष्कर उवाच

श्राद्धकल्पं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। निमन्त्र्य विप्रान्पूर्वेद्युः स्वागतेनापराह्णतः ।।१।।
प्राच्योपवेशयेत्पीठे युग्मान्दैवेऽथ पित्र्यके। अयुग्मान्प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन्पित्र्ये चैकमेव वा ।।२।।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्। पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।।३।।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा। यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।।४।।
शं नो देव्याः पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा। या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ।।५।।
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपकम्। अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।।६।।
द्विगुणांस्तु कुशान्कृत्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्। आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ।।७।।
[1]यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत्। दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवाञ्शेषान्पात्रे कृत्वा विधानतः ।।८।।
([2]पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः। अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।।९।।

अध्याय १६३

श्राद्धकल्प का वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं श्राद्धकल्प के विषय में बतलाऊँगा, उसे सुनो। यह कल्प भोग और मोक्ष देनेवाला है। (श्राद्ध के) एक दिन पूर्व ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए और दूसरे दिन अपराह्ण से उनका स्वागत–पूजन करके उन्हें एक आसन पर बिठलाना चाहिए। दैव श्राद्ध–कल्प में युग्म संख्या में तथा पितृ–श्राद्ध में अयुग्म संख्या में ब्राह्मणों को बैठाना चाहिए। देव पितृ–कर्मो में ब्राह्मणों को प्राङ्मुख बैठाना चाहिए। पितृ–कर्म में ब्राह्मणों की संख्या एक अथवा तीन हो सकती है ।।१–२।। यही कर्म मातामह के श्राद्ध में और वैश्वदेविक कर्म में भी है। ब्राह्मणों के हाथों को धुलाकर आसन के लिए कुशों को बिछाकर 'विश्वेदेवास' इत्यादि ऋचा से पितरों का आवाहन करना चाहिए। जौ को उन पात्रों के ऊपर बिखेर देना चाहिए जिनमें पवित्रक रखे हों। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र से जल छिड़ककर 'यवोऽसीति' मन्त्र से जौ बिखेरना चाहिए तथा 'या देव्या' इत्यादि मन्त्र से अर्घ को हाथ में ग्रहण करना चाहिए। जल, गन्ध, माल्य, धूप और दीप का दान करके श्राद्धकर्म करनेवाले को बायीं से दायीं ओर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए। पितरों के लिए दूनी संख्या में कुशों को बिछाकर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि ऋचा से पितरों का आवाहन करना चाहिए और 'आयान्तु नः' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए ।।३–७।। यहाँ पर जौ के स्थान पर तिल का प्रयोग करना चाहिए तथा अन्य अर्घ्य इत्यादि कर्म को पूर्ववत् करना चाहिए। तदनन्तर अर्घ्य देकर पात्र को उलट देना चाहिए

---

१ ख. ग. °वाद्यैस्तु। २ पितृभ्य°°°विशेषतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हुत्त्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् । हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ।।१०।।
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः) । दत्त्वाऽन्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ।।११।।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् । सव्याहृतिकां गायत्रीं मधु वाता इति त्र्यृ(तृ)चम् ।।१२।।
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः । अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकम् ।।१३।।
अन्नामादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवान्नमस्य[1] च । तदन्नंविकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ।।१४।।
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ।।१५।।
मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः । स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।।१६।।
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् । वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यताम्[2] ।।१७।।
कुर्युरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् । प्रीयन्तामिति वा दैवं विश्वेदेवा जलं ददेत्[3] ।।१८।।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ।।१९।।
इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । वाजे वाज इति [4]प्रीतपितृपूर्वं विसर्जनम् ।।२०।।

तथा इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए कि 'आप मेरे पितरों के स्थान हैं।' तदनन्तर घृत में भीगे हुए अन्न को लेकर 'क्या मैं यह करूँ' ऐसा पूछता है और 'ऐसा कीजिये' इस अनुज्ञा के प्राप्त होने पर पितृ-यज्ञ के समान अग्नि में आहुतियाँ देकर, ध्यानावस्थित होकर बचे हुए हविष् को बर्तनों में डाल देना चाहिए। बर्तन जैसे भी प्राप्त हो सके, वैसे हो सकते हैं, किन्तु चाँदी के पात्रों की विशेषता हुआ करती है। अन्न देकर 'पृथ्वीपात्रम्' इत्यादि मन्त्र से पात्रों का अभिमन्त्रण करना चाहिए ।।८-११।। यह कहने के बाद 'इदं विष्णुं' इत्यादि मन्त्र से अन्न में अँगूठे को गड़ाना चाहिए और व्याहृतियों के साथ 'मधुवाता' इत्यादि तीन गायत्री मन्त्रों को पढ़ना चाहिए। इस मन्त्र का जप करके तथा बिना कुछ बोले हुए स्वयं भी उसके शेष का भक्षण करना चाहिए और मन्त्र का जप करते हुए अभीष्ट अन्न और पवित्रक का दान करना चाहिए। 'उस अन्न को लेकर तथा बचे हुए अन्न को भी लेकर तृप्त हो जाइये।' इत्यादि कहकर अन्न को पृथ्वी पर बिखेर देना चाहिए और बार-बार जल भी डालते रहना चाहिए। तिल के साथ सभी अन्न को लेकर, दक्षिणाभिमुख होकर, पितृ-यज्ञ के समान पहले के स्थान में पिण्डदान करना चाहिए ।।१२-१५।। इसी प्रकार मातामहों का भी पिण्डदान करना चाहिए। तत्पश्चात् आचमन, स्वस्तिवाचन तथा अक्षय्योदक आदि क्रियाएँ करनी चाहिए और यथाशक्ति दक्षिणा देकर 'स्वधा' का उच्चारण करना चाहिए। 'उच्चारण कीजिये'-इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करके अपने पितरों के लिए स्वधा का उच्चारण करना चाहिए तथा 'अस्तु स्वधा' का उच्चारण करके पृथ्वी पर जल छिड़क देना चाहिए अथवा 'प्रीयन्ताम्' इत्यादि कहकर विश्वेदेवताओं के लिए जल देना चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मणों के द्वारा इस प्रकार आशीर्वचन बोलने पर कि 'हम लोगों के दानदाताओं की वृद्धि हो, उनके वेदों और सन्तानों की भी वृद्धि हो, हम लोगों में उनकी श्रद्धा का नाश न हो तथा वे हमें बहुत-कुछ दे सकें' ब्राह्मणों को प्रणाम करके विसर्जन करना चाहिए। 'वाजे वाज' इत्यादि मन्त्र का पाठ करते हुए प्रीतिपूर्वक ब्राह्मणों का विसर्जन करना चाहिए ।।१६-२०।। पहले जिस अर्घपात्र में अन्न

---

१ क. ख. ङ. °वानुमान्य च। २ क. °म्। ब्रूगुर°। ३ ग. ङ. ददत्। ४ ख. प्रीत्या पि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यस्मिंस्तु संस्रवाः पूर्वमर्घपात्रे निपातिताः। पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ।।२१।।
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितम्। ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ।।२२।।
एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान्पितॄन्। यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान्पिण्डान्यवैः क्रियाः ।।२३।।
एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ।।२४।।
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने पितृविसर्जने। अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ।।२५।।
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम्। अर्घार्थपितृपात्रेषु[1] प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ।।२६।।
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्। एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह ।।२७।।
अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्। तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ।।२८।।
मृताहनि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रति संवत्सरं कार्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ।।२९।।
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ।।३०।।
ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्याऽभितृप्यन्ति दत्तैरेव पितामहाः ।।३१।।
खड्गामिषं महाशल्कं मधुयुक्तान्नमेव च। लोहामिषं कालशाकं मांसं वार्धीनसस्य च ।।३२।।

को डाला गया था, उस पितृ-पात्र को सीधा करके ब्राह्मणों को विसर्जित करना चाहिए। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके तथा पितरों के भोजन से बचे हुए अंश का भोजन करके ब्राह्मणों के साथ उस रात ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। वृद्ध श्राद्ध में इस प्रकार से परिक्रमा करके नान्दीमुख आदि पितरों को दही और बेर से मिले हुए पिण्डों का दान करके शेष क्रियाएँ जौ से करनी चाहिए। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्वदेव के तथा एक अर्घ्य और एक पवित्रक से युक्त होता है। यह श्राद्ध आवाहन तथा अग्निकरण क्रियाओं से रहित हुआ करता है और इसमें जनेऊ को अपसव्य रखना पड़ता है ।।२१-२४।। पितरों को विसर्जित करते समय अक्षय्य स्थान के ऊपर 'उपतिष्ठताम्' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए। यजमान को ब्राह्मणों को सम्बोधित करके कहना चाहिए कि 'आप सन्तुष्ट हों' और ब्राह्मणों को उसका उत्तर देते हुए यह कहना चाहिए कि 'हम सन्तुष्ट हैं।' चार बर्तनों का सुगन्धित जल तथा तिलों से भर-भरकर रखना चाहिए। अर्घ्य देने के लिए प्रेतपात्र को पितृपात्रों के ऊपर धोना चाहिए और उस समय 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। यही एकोद्दिष्ट है और इसमें बताये गये पिण्डदान के नियमों का पालन मृत स्त्रियों के सम्बन्ध में भी करना चाहिए। इसके बाद एक वर्ष के अन्दर सपिण्डीकरण संस्कार करना चाहिए। इसमें भी ब्राह्मण जाति के लिए जल से भरा हुआ घड़ा और पिण्डों का दान किया जाता है ।।२५-२८।। यह श्राद्ध प्रत्येक वर्ष उसी महीने और दिन में करना चाहिए जिस दिन मृत्यु होती है। मासिक श्राद्ध के समान इसे भी प्रत्येक वर्ष करना चाहिए, किन्तु मासिक श्राद्ध हविष्यान्न से किया जाता है और वार्षिक श्राद्ध खीर से। यह श्राद्ध क्रमशः मछली, हिरन का मांस, कौरभ पक्षी का मांस, बकरे का मांस, हिरन-विशेष का मांस, सुअर का मांस तथा खरहे के मांस से किया जाता है। इस प्रकार मांस की बलि देने से पितामह सन्तुष्ट होते हैं ।।२९-३१।। गया में अपने पितरों को गैंडे का मांस, मछली का मांस, शहदयुक्त अन्न, बुड्ढे बकरे का मांस और कालशाक आदि की बलि देनेवाले अपने

१ ग. °र्थमभिपा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ।।३३।।
कन्यां प्रजां बन्दिनश्च पशून्मुख्यान्सुतानपि । घृतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफं तथा ।।३४।।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ।।३५।।
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ।।३६।।
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्रश्रैष्ठ्यं ससौभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ।।३७।।
प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान्वाणिज्यं प्रभुतां तथा । अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ।।३८।।
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ।।३९।।
कृत्तिकादिभरण्यन्ते स कामनाप्नुयादिमान् । वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।।४०।।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृञ्श्राद्धेन तर्पिताः । आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।।४१।।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ।।४२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६३।।

पितरों को अनन्तकाल के लिए सुखी और निश्चिन्त कर देते हैं। इसी प्रकार वर्षा ऋतु की त्रयोदशी और मघा नक्षत्र में किया गया श्राद्ध भी पितरों को सुख देनेवाला होता है। श्राद्ध करनेवाले सदा कन्या, प्रजा, बन्दी, पशु, पुत्र, घृत, कृषि, वाणिज्य, दो खुरवाले (बकरे आदि) पशु, एक खुरवाले (घोड़े आदि), ब्रह्मवर्चस् से युक्त पुत्रों, सोने, चाँदी, जातियों में श्रेष्ठता और सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।।३२-३५।। जो लोग आयुधों के द्वारा मारे जाते हैं, उनको छोड़कर अन्य लोगों का श्राद्ध प्रतिपदा और चतुर्दशी के दिन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति विधिवत् श्राद्ध करता है वह स्वर्ग, सन्तान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्रों में श्रेष्ठता, सौभाग्य, वाणिज्य, प्रभुता, आरोग्य, यश, वीतशोकता, परमगति, धन, विद्या, आयुर्वेद में सिद्धि, चाँदी, गाय, बकरे, भेंड़, अश्व और आयु को प्राप्त कर लेता है। कृत्तिका में प्रारम्भ करके भरणी तक श्राद्ध करनेवालों की सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। श्राद्ध देवता हैं–वसु, रुद्र, आदित्य और पितर–ये मनुष्यों के द्वारा किये हुए पितृश्राद्ध से प्रसन्न हो जाते हैं तथा पितरगण श्राद्ध करनेवालों को आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं ।।३६-४२।।

श्री अग्निमहापुराण में श्राद्धकल्पवर्णन नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६३।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहहोमः

पुष्कर उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्। दृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः ।।१।।
सूर्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चाथ बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ।।२।।
ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ । रजतादयशः सीसाद्ग्रहाः कार्याः क्रमादिमे ।।३।।
सुवर्णैर्वा यजेल्लिख्य गन्धमण्डलकेषु वा। यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ।।४।।
गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयस्तु गु(गौ)ग्गुलः। कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम् ।।५।।
आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत्। उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः ।।६।।
बृहस्पते अतियदर्यस्तथैवाल्पात्परिश्रुतः। शं नो देवीस्तथा काण्डात्सेतुं कृण्वन्निमास्तथा ।।७।।
([1]अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः। उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ।।८।।
एकैकस्याम(स्यअ)ष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा)। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ।।९।।
गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरयष्टिकम्[2]। दध्योदनं हविः पूपान्मांसं चित्रान्नमेव च ।।१०।।

अध्याय १६४

नवग्रह-होम

पुष्कर बोले–ऐश्वर्य, शान्ति, दृष्टि, आयु और पुष्टि की इच्छा करनेवाले तथा अभिचार कर्म करनेवाले को ग्रहों का यजन करना चाहिए। ग्रह ये हैं–सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु। इन ग्रहों का निर्माण क्रमशः ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, चाँदी, लोहा और सीसा से करना चाहिए अथवा सभी ग्रहों का निर्माण सोने से किया जा सकता है। गन्धमण्डलों में ग्रहों का चित्रण करके उनका यजन करना चाहिए। ग्रहों के लिए उनके वर्णों के अनुसार वस्तुओं तथा पुष्पों को समर्पित करना चाहिए ।।१-४।। ग्रहों के लिए गन्ध, कङ्कण और गुग्गुल का धूपदान करना चाहिए। प्रत्येक देवता के लिए मन्त्रों से युक्त चरु का सम्पादन करना चाहिए। उस समय क्रमशः जिन मन्त्रों को पढ़ा जाता है वे हैं–'आकृष्णेन', 'इमं देवा', 'अग्निमूर्धा दिवः ककुत्', 'उद्बुध्यस्व', 'बृहस्पते अति यदर्य', 'शं नो देवी', 'काण्डात्' तथा 'केतुं कृण्वन्न' इत्यादि ।।५-७।। इन ग्रहों के लिए क्रमशः अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशाओं की समिधाएँ होती हैं। प्रत्येक देवता के लिए एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ मधु, घृत और दही से देनी चाहिए। ग्रहों के क्रम से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, जिसमें गुड़-भात, खीर, हविष्य, मलाई, दही-चावल, हवि, पुआ, मास (उड़द) तथा खिचड़ी का प्रयोग होना

---

१ अर्क···विंशतिरेव वा पुस्तके नास्ति। २ ख. °रषष्टि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।११।।
धेनुः शङ्खस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयस्तथा । कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ।।१२।।
यश्च यस्य यदा दूष्यः[1] स तं यत्नेन पूजयेत् । ब्रह्मणैषां वरो दत्तः[2] पूजिताः पूजितस्य च ।।१३।।
ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवग्रहहोमवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ।।१६४।।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाधर्माः

अग्निरुवाच

ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः । अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिः (द्धिं) स्मृतीन्द्रियम् ।।१।।
श्राद्धं तु ध्यायिने देयं गव्यं दधि घृतं पयः । प्रियंगवो मसूराश्च वार्ताकुः कोद्रवो नहि ।।२।।
सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसंधिषु । हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ।।३।।
पित्रे (त्र्ये) चैव यदा सोमो हंसे चैव करे स्थिते । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ।।४।।

चाहिए। यथाशक्ति और यथालाभ ब्राह्मणों का विधिपूर्वक सत्कार करके (ग्रहों के क्रम से) ब्राह्मणों को गाय, शङ्ख, बैल, सोना, वस्त्र, अश्व, काली गाय, लोहा और बकरा दक्षिणा में देना चाहिए ।।८-१२।। जो ग्रह जिसके लिए दूषित हो, उसे उसी ग्रह का पूजन करना चाहिए। ब्रह्मा के द्वारा ग्रहों को यह वर दिया गया है। राजाओं के उत्थान-पतन तथा संसार का अस्तित्व और अनस्तित्व ग्रहों के अधीन है, इसलिए ये ग्रह सबसे अधिक पूज्य हैं ।।१३-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में नवग्रहहोम वर्णन नामक एक सौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६४।।

अध्याय १६५

नाना-धर्म

अग्निदेव बोले-मनुष्य को निरन्तर अपनी आत्मा का ध्यान करते रहना चाहिए। वह हृदय में दीपवत् तथा प्रभविष्णु रूप से विद्यमान रहा करती है। मन को बुद्धि, स्मृति और इन्द्रियों को अनन्य भाव से स्थिर कर लेना चाहिए ।।१।। इस प्रकार ध्यान करनेवाले व्यक्ति को श्राद्ध के रूप में द्रव्य, दही, घृत और दूध देना चाहिए। किन्तु प्रियंगु, मसूर, वार्ताकु और कोदो देना चाहिए। यदि पर्व की सन्धियों में राहु के द्वारा सूर्य को ग्रस लिया जाता है तो उसे 'हस्तिच्छाया' योग कहते हैं और उस समय दिया गया श्राद्ध और दान इत्यादि अक्षय होता है ।।२-३।। जब चन्द्रमा पित्र्य, हंस और कर की स्थिति में रहता है उस समय हस्तिच्छाया 'वैवस्वती' कहलाती है।

---

१ ख. दुष्टः। २ ख. ग. ङ. च. दत्तो यत्नेन पूजयिष्यथ। ग्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद् वैश्वदेविके। अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ।।५।।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा। बलात्कारोपभुक्ता [1]चेद्वैरिहस्तगताऽपि वा ।।६।।
संत्यजेद्दूषितां नारीमृतुकालेन शुध्यति। य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति ।।७।।
ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चाऽऽत्मरतोऽमलः। विषयेन्द्रियसंयोगात्केचिद्योगं वदन्ति वै ।।८।।
अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः। आत्मनो मनसश्चैव संयोगं च तथाऽपरे ।।९।।
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि। एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः[2] ।।१०।।
कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः। देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते ।।११।।
बहिर्मुखानि (णि) सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै। मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चाऽऽत्मनि योजयेत् ।।१२।।
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत्। एतज्ज्ञानं च ध्यानं च [3]शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ।।१३।।
यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते। कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ।।१४।।
स्वयंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा। अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि घटं यथा ।।१५।।
संन्यसन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः। एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१६।।
उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थं फलं तपः। द्विजसम्पादनं चैव सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ।।१७।।

अग्निकरण वैश्वदेव अग्नि में नहीं करना चाहिए। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के दाहिने हाथ में दक्षिणा देनी चाहिए ।।४-५।। ब्राह्मण वेदोक्त कर्म से तथा पर पुरुष के द्वारा बलात् सम्भोग किये जाने पर अथवा शत्रुओं के हाथ में पड़ी हुई स्त्री दूषित नहीं होती है। इस प्रकार की दूषित स्त्री की परिशुद्धि ऋतुकाल से हो जाती है। इस संसार में अपने से भिन्न किसी को न देखनेवाला योगी आत्मा में लीन अमल तथा ब्रह्ममय कहलाता है। कुछ लोग विषय और इन्द्रिय के संयोग को योग कहते हैं, किन्तु अब्राह्मणों के द्वारा धर्मबुद्धि से वह अधर्म समझा जाता है। अन्य आचार्य आत्मा और मन के संयोग को 'योग' कहते हैं ।।६-९।। क्षेत्रज्ञ मन को वृत्तिहीन तथा एकाग्र करके परमात्मा में लगा देना चाहिए क्योंकि यही उत्तम योग है। मन आदि पाँच इन्द्रिय-समूहों से छठा आत्मा महान् हुआ करता है क्योंकि देवता, दैत्य अथवा मनुष्यों से उसे जीता नहीं जा सकता है। सभी बहिर्मुखी इन्द्रियों को आत्मा के अभिमुख करके उन्हें मन में तथा मन को आत्मा को लीन करना चाहिए ।।१०-१२।। सभी भावनाओं से विनिर्मुक्त क्षेत्रज्ञ मन को आत्मा में लीन करना चाहिए। यही ज्ञान है और यही ध्यान है, शेष सब-कुछ ग्रन्थ-विस्तार ही है। यह आत्मा अदृश्य है, अतः इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में कहने में विरोध प्रतीत होता है तथा वह किसी के मन को प्रभावित भी नहीं करता है। ब्रह्म स्त्री-सुख के समान स्वसंवेद्य है, किन्तु जिस प्रकार उस स्त्री-सुख का ज्ञान कुमारी को नहीं प्राप्त हो सकता है और उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान भी सबको नहीं प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार जन्म से अन्धा व्यक्ति घड़े को नहीं जानता है, उसी प्रकार अयोगी ब्रह्म को नहीं जानता है। संन्यस्त द्विज को देखकर सूर्य भी अपने स्थान से विचलित हो जाता है और वह मेरे मण्डल का भेदन करके ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।।१३-१६।। उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ, तपस्या तथा उपनयन संस्कार सम्पन्न किये जाने पर अपना फल प्रदान करते हैं। एकाक्षर (ॐ) परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है और सावित्री मन्त्र से बढ़कर पवित्र

---

१ क. च. चेच्चौरह°। २ च. °मः। कूटस्थैः पञ्चभिर्गामैः सद्योगश्चथाऽपरे। दे°। ३ ग. शेषान्ये ग्रन्थविस्तराः। य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः। सावित्र्यासु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ।।१८।।
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः। भुञ्जते मानुषाः पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ।।१९।।
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते। अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ।।२०।।
निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुध्यते ततः। ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।।२१।।
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुध्यति। आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ।।२२।।
अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः। आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ।।२३।।
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा। ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां बीजसंततिः ।।२४।।
विदुरा नाम चाण्डाला जायन्ते नात्र संशयः। शतिको म्रियते गृध्रः श्वासी द्वादशिकस्तथा ।।२५।।
चापो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा। अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ।।२६।।
ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः। ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ।।२७।।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः। प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ।।
योगमेव निषेवेत[1] नान्यं मन्त्रमघापहम् ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाधर्मवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६५।।

करनेवाला भी कुछ नहीं है। स्त्रियों का भोग पहले देवताओं के द्वारा किया जाता है, तदनन्तर सोम, गन्धर्व और अग्नि के द्वारा और उसके बाद उनका भोग मनुष्यों के द्वारा किया जाता है किन्तु यह किसी से भी दूषित नहीं होती है। स्त्री की योनि में असवर्ण पति द्वारा गर्भाधान हो जाने पर स्त्री तब तक अशुद्ध रहती है जब तक गर्भ का प्रसव नहीं हो जाता है ।।१७-२०।। तदनन्तर गर्भ का प्रसव होने के बाद पुनः रजोदर्शन होने पर शुद्धि हो जाती है। ध्यान से बढ़कर पापकर्मों को शुद्ध करनेवाला कुछ भी नहीं होता है। चाण्डालों के साथ भोजन करने पर भी मनुष्य ध्यान के द्वारा शुद्ध हो जाता है। आत्मा ध्यान करनेवाला, मन ध्यान, विष्णु ध्येय और फल हरि हैं। अक्षय विष्णु के लिए शब्द से ही यति पंक्ति-पावनों में पवित्र हो जाता है। जो ब्राह्मण अपने नैष्ठिक धर्म से च्युत हो जाता है, उससे उसे मुक्ति दिलानेवाला कोई प्रायश्चित्त मुझे ज्ञात नहीं है, जिससे वह आत्मघाती शुद्ध हो सके ।।२१-२३ $\frac{1}{2}$।। जो संन्यासी स्त्री-सम्भोग के द्वारा गर्भाधान करता है, उनसे विदुर नामक चाण्डालों की उत्पत्ति होती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ये संन्यासी मरने पर सौ वर्षों तक गृध्र, बारह वर्षों तक कुत्ता, बीस वर्षों तक कौआ तथा दस वर्षों तक शूकर के रूप में रहा करते हैं। तत्पश्चात् वे पुष्प और फलरहित तथा काँटों से घिरे हुए वृक्षों के रूम में उत्पन्न होते हैं ।।२४-२६।। तत्पश्चात् दावाग्नि से भस्म होकर वे पर्वत की चोटी पर स्थान बनकर रह जाते हैं। उसके बाद एक सौ दस वर्षों तक उन्हें निर्जीव होकर रहना पड़ता है और एक हजार वर्ष पूर्ण हो जाने पर वे ब्रह्मराक्षस हो जाते हैं। तदनन्तर बन्दर के रूप में उत्पन्न होने पर अथवा मूल कुल के नाश होने पर वे पुनः मनुष्य-जन्म को प्राप्त करते हैं। सदैव योग का ही अभ्यास करते रहना चाहिए। क्योंकि पापों को नाश करनेवाला उसके अतिरिक्त और कोई साधन है ही नहीं ।।२७-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में नानाधर्म-वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६५।।

---

१ ङ. नान्योपायम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वर्णधर्मादिकथनम्

पुष्कर उवाच

वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतम् । वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ।।१।।
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु । यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः संविधीयते ।।२।।
उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा । उभयेन निमित्तेन यो विधिः संप्रवर्तते ।।३।।
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा । ब्रह्मचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ।।४।।
उक्त आश्रमधर्मस्तु धर्मः स्यात्पञ्चधाऽपरः । षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः ।।५।।
स त्रेधा मन्त्रयागाद्य दृष्टार्थं इति मानवाः । उभयार्थो व्यवहारस्तु दण्डधारणमेव च ।।६।।
तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद्यागमूलः प्रकीर्तितः । वेदे तु विहितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव च ।।७।।
अनुवादं स्मृतिः सूते कार्यार्थमिति मानवाः । गुणार्थः परिसंख्यार्थो वाऽनुवादो विशेषतः ।।८।।
विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थ इति मानवाः । स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ।।९।।
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः । जातकर्म नामकृतिरन्नप्राशनचूडकम् ।।१०।।

अध्याय १६६

वर्ण-धर्म आदि का कथन

पुष्कर बोले–अब मैं वेदों और स्मृतियों में कहे हुए धर्म के विषय में बतला रहा हूँ जो कि पाँच प्रकार का हुआ करता है और जिसे क्रमशः प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–इन तीन जातियों में होनेवाला उपनयन संस्कार उनका वर्णधर्म है ।।१-२।। आश्रमों के अनुसार किया जानेवाला धर्म 'आश्रम-धर्म' कहलाता है; जैसे भिन्न-पिण्डादि क्रियाएँ। (लौकिक तथा पारलौकिक) दोनों निमित्तों से जो विधि की जाती है उसे 'नैमित्तिक-विधि' कहते हैं, जैसे– प्रायश्चित्त विधि। आश्रम-धर्म पाँच प्रकार का होता है, जो कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा राजा के लिए हुआ करता है। षाड्गुण्य के अभिधान में जिसकी प्रवृत्ति होती है उसे 'दृष्टार्थ' कहते हैं ।।३-५।। उसके तीन भेद होते हैं। मन्त्र यश-प्रभृति 'अदृष्टार्थ' हैं, ऐसा मनु आदि कहते हैं। इसके सिवा 'उभयार्थक-व्यवहार', 'दण्डधारण' और 'तुल्यार्थ-विकल्प' ये भी यज्ञमूलक धर्म के अंग कहे गये हैं। वेद में धर्म का जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृति में भी उसी प्रकार है। कार्य के लिए स्मृति वेदोक्त धर्म का अनुवाद करती है–ऐसा मनु आदि का मत है। इसलिए स्मृतियों में उक्त धर्म वेदोक्त धर्म का गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनु का सिद्धान्त है ।।६-८$\frac{1}{2}$।। निम्नलिखित अड़तालीस संस्कारों से सम्पन्न मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है–(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चूड़ाकर्म, (८) उपनयन-संस्कार, (९-१२) चार वेद-व्रत (वेदाध्यन),

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कारश्चोपनयनं वेदव्रतचतुष्टयम् । स्नानं स्वधर्मचारिण्या योगः स्याद्यज्ञपञ्चकम् ।।११।।
देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ । ब्रह्मयज्ञः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः पुरोष्टकाः ।।१२।।
पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि । आश्वयुजी सप्तहविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः ।।१३।।
अग्न्याधेयमग्निहोत्रं[1] दर्शः स्यात्पौर्णमासकः । चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः ।।१४।।
सौत्रामणिः सप्तसोमसंस्थाऽग्निष्टोम आदितः । अत्यग्निष्टोम [2]उक्थ्यश्च षोडशी वाजपेयकः ।।१५।।
अतिरात्रोऽथाप्तोर्यामो ह्यष्टौ चाऽऽत्मगुणास्ततः । दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलम् ।।१६।।
अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स परं व्रजेत् । प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ।।१७।।
स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् । पुनर्दानं[3] पृथक्पाकं सामिषं पयसाऽन्वितम् ।।१८।।
दन्तच्छेदनमुष्णं[4] च सप्त शत्रुषु वर्जयेत् । स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयाद्देवायोग्यं तदीरितम् ।।१९।।
अन्यगोत्रोऽप्यसम्बद्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समापयेत् ।।२०।।
उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च । एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ।।२१।।
पञ्चप्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठयोगतः ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णधर्मादिवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६६।।

---

(१३) स्नान (समावर्तन), (१४) सहधर्मिणी संयोग (विवाह), (१५-१९) पञ्चयज्ञ-देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२२-२६) सातपाक-यज्ञ-संस्था, (२७-३४) अष्टका-अष्टका सहित तीन पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (३५-४१) सात हविर्यज्ञ सस्था-अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढ पशुबन्ध एवं सौत्रामणि, (४२-४८) सात सोम संस्था-अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम। आठ आत्मगुण हैं-दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, मांगल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा तथा शौच। जो इन गुणों से युक्त होता है, वह परमधाम (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ।।९-१६$\frac{1}{2}$।। मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन-इन छह कार्यों को करते समय मौन धारण करना चाहिए। दान की हुई वस्तु का पुनः दान, पृथक्पाक, घृत के साथ जल पीना, दूध के साथ जल पीना, रात्रि में जल पीना, दाँत से नख आदि काटना एवं बहुत गरम जल पीना-इन बातों का परित्याग कर देना चाहिए। स्नान के पश्चात् पुष्पचयन न करें, क्योंकि वे पुष्प देवता के चढ़ाने योग्य नहीं माने गये हैं। यदि कोई अन्यगोत्रीय असम्बन्धी पुरुष किसी मृतक का अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दस दिन तक पिण्ड तथा उदक-दान का कार्य भी पूर्ण करना चाहिए। जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग-इनको बीच में रखकर जाने से पङ्क्तिदोष नहीं माना जाता। भोजन के पूर्व अनामिका और अङ्गुष्ठ के संयोग से पञ्चप्राणों को आहुतियाँ देनी चाहिए ।।१७-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में वर्णधर्मादि-वर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६६।।

---

१ घ. °हारस्तु द°। २ घ. उक्थश्च। ३ ख. ग. घ. °क्यानमाज्येन पयसा निशि। द°। ४ क. ङ. °मुष्ट°च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अयुतलक्षकोटिहोमः

अग्निरुवाच

श्रीशान्तिविजयाद्यर्थं ग्रहयज्ञं पुनर्वदे। ग्रहयज्ञोऽयुतहोमलक्षकोट्यात्मकस्त्रिधा ।।१।।
वेदेरैशे ह्यग्निकुण्डाद्ग्रहनावाह्य मण्डले। सौम्ये गुरुर्बुधश्चैशे शुक्रः पूर्वदले शशी ।।२।।
आग्नेये दक्षिणे भौमो मध्ये स्याद्भास्करस्तथा। शनिराप्येऽथ नैर्ऋत्ये राहुः केतुश्च वायवे ।।३।।
ईशश्चोमा गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रौ यमकालकौ। चित्रगुप्तश्चाधिदेवा अग्निरापः क्षितिर्हरिः ।।४।।
इन्द्र ऐन्द्री देवता च प्रजेशोऽहिर्विधिः क्रमात्। एते प्रत्यधिदेवाश्च गणेशो दुर्गयाऽनिलः ।।५।।
खमश्विनौ च सम्पूज्य यजेद्बीजैश्च वेदजैः। अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः ।।६।।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्। मध्वाज्यदधिसंमिश्रा होतव्याश्चाष्टधा शतम् ।।७।।
एकाष्टचतुरः कुम्भान्पूर्य[1] पूर्णाहुतिं तथा। वसोर्धारां ततो दद्याद्दक्षिणां च ततो ददेत् ।।८।।
यजमानं चतुर्भिस्तैरभिषिञ्चेत्समन्त्रकैः। सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।९।।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणः प्रभुः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।।१०।।
अखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै नैर्ऋतस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।।११।।

अध्याय १६७

अयुतलक्षकोटि-होम

अग्निदेव बोले–अब मैं ऐश्वर्य, शान्ति और विजय इत्यादि के लिए ग्रहयज्ञ का वर्णन कर रहा हूँ। यह ग्रहयज्ञ तीन प्रकार का होता है जिसमें दस हजार, एक लाख और एक करोड़ आहुतियाँ दी जाती हैं ।।१।। वेदी के मध्य में अग्निकुण्ड से ग्रहों को मण्डल में आहूत करके पश्चिम दिशा में बृहस्पति, ईशानकोण में बुध, पूर्वदल के ऊपर शुक्र, आग्नेयकोण में चन्द्रमा, दक्षिण की ओर मङ्गल, मध्य में सूर्य, पश्चिम में शनि, नैर्ऋत्य में राहु और वायव्यकोण में केतु की स्थापना करनी चाहिए। ईश, उमा, गुह, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल, चित्रगुप्त, अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, प्रजेश, सर्प और ब्रह्मा–ये देवता तथा गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारों का पूजन करके वेदों के बीज मन्त्रों से उनका यजन करना चाहिए ।।२-५½।। अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा, कुश और समिधाओं को क्रमशः शहद, घी तथा दही में डुबोकर एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। तेरह घड़ों को भरकर वसुधारा के रूप में पूर्णाहुति और उसके पश्चात् दक्षिणा देनी चाहिए ।।६-८।। यजमान का चार घड़ों के जल से मन्त्रों के साथ अभिषेक करना चाहिए। मन्त्र यह है कि–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वासुदेव, जगन्नाथ, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध–ये देवता आपका अभिषेक करके आपकी विजय करते रहें। इन्द्र, अग्नि, भगवान्, यम,

---

१ क. ङ. न्यूज्य पृष्टास्ततो ददेत्। व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।।१२।।
बुद्धिर्लज्ज्ञा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ।।१३।।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।।१४।।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।।१५।।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः । अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।।१६।।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।।१७।।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये । अलङ्कृतस्ततो दद्याद्धेमगोऽन्नभुवादिकम् ।।१८।।
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयाऽसि रोहिणि । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।।१९।।
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२०।।
धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२१।।
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२२।।
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२३।।
विष्णुस्त्वं मत्स्यरूपेण यस्मादमृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२४।।
यस्मात्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२५।।

नैर्ऋत, वरुण, पवन, कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेष, दिक्पाल आपकी सदा रक्षा करते रहें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, लज्जा, शान्ति, तुष्टि और कान्ति ये माताएँ हैं। ये धर्मपत्नियाँ आकर आपका अभिषेक करें ।।९-१३।। आदित्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि, राहु और केतु सन्तुष्ट होकर आप लोगों का अभिषेक करते रहें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौयें, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराएँ, अस्त्र, शस्त्र, राजा, वाहन, ओषधियाँ, रत्न, कालविभाग, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थ, मेघ और नद ये सब लोग सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए आपका अभिषेक करें। इस प्रकार अलंकृत होकर स्वर्ण, गो, अन्न और भूमि आदि का दान करना चाहिए ।।१४-१८।। अयि कपिले! अयि रोहिणी, आप सभी देवताओं के पूज्य हैं। आप तीर्थों और देवताओं से युक्त हैं, इसलिए आप हमें शान्ति प्रदान करें। हे धर्म! आप वृष रूप से संसार को आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। आप अष्टमूर्ति के स्थान हैं, इसलिए आप हमें शान्ति प्रदान कीजिये। हे शङ्ख, आप पुण्यों के पुण्य और मङ्गलों के मङ्गल हैं, आपको विष्णु निरन्तर धारण किये रहते हैं, इसलिए आप मेरी रक्षा करें। हे हेम, आप हिरण्यगर्भ के गर्भ में स्थित रहनेवाले, सूर्य के बीज और अनन्त पुण्य फलों को देनेवाले हैं, इसलिए आप हमें शान्ति प्रदान कीजिये। पीताम्बर का जोड़ा भगवान् वासुदेव को प्रिय है और उसके दान से विष्णु प्रसन्न होते हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये ।।१९-२३।। हे विष्णु, आप मत्स्य रूप में अमृत से उत्पन्न होनेवाले तथा चन्द्रमा और सूर्य को नित्य वहन करनेवाले हैं, अतः आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। हे पृथ्वी, आप भगवान् विष्णु के समान कामनाओं को पूर्ण करनेवाली और नित्य सभी पापों को नष्ट करनेवाली हैं। अतः आप मुझे शान्ति प्रदान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२६।।
[1]यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।२७।।
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात्तस्माच्छिवं मे यादिहलोके परत्र च ।।२८।
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च। शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ।।२९।।
तथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ।।३०।।
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ।।३१।।
ग्रहयज्ञोऽयुतहोमो दक्षिणाभी रणे जितिः। विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।।३२।।
सर्वकामाप्तये लक्षकोटिहोमद्वयं मतम्। गृहदेशे मण्डपेऽथ अयुते हस्तमात्रकम् ।।३३।।
मेखलायोनिसंयुक्तं कुण्डं चत्वार ऋत्विजः। स्वयमेकोऽपि वा लक्षे सर्वं दशगुणं हि तत् ।।३४।।
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा तार्क्ष्यं चात्राधिकं यजेत्। सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।।३५।।
विषयापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे। पूर्ववत्कुण्डमामन्त्र्य लक्षहोमं समाचरेत् ।।३६।।
वसोर्धारां ततो दद्याच्छय्याभूषादिकं ददेत्। तत्रापि दश चाष्टौ च लक्षहोमे तथर्त्विजः ।।३७।।
([2]पुत्रान्नराज्यविजयभुक्तिमुक्त्यादि[3]चाऽऽप्नुयात्। दक्षिणाभिः फलेनास्माच्छत्रुघ्नः कोटिहोमकः ।।३८।।

कीजिये। लोहे के जितने भी कर्म हैं, वे सब आपके अधीन रहते हैं और हल इत्यादि आपके आयुध हैं, इसलिए आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। आप सभी यज्ञों के अङ्ग रूप में व्यवस्थित रहनेवाले तथा सूर्य के उत्पत्ति-स्थान हैं, इसलिए आप मुझे नित्य शान्ति प्रदान कीजिये ।।२४-२७।। गायों के अङ्गों में चौदह भुवन रहा करते हैं, इसलिए इस लोक और परलोक में मेरा कल्याण हो। विष्णु और शिव की शय्या सदैव अशून्य रहा करती है, इसलिए प्रत्येक जन्म में दान की हुई शय्या मेरे लिये अशून्य रहे। सभी रत्नों में सभी देवता प्रतिष्ठित रहा करते हैं, इसलिए वे देवता रत्नदान से मुझे शान्ति प्रदान करें। अन्नदान भूदान के सोलहवें अंश को भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं, इसलिए इस लोक में भूदान से मेरी शान्ति हो ।।२८-३१।। ग्रह-यज्ञ, अयुत होम और दक्षिणाओं से रण में विजय तथा विवाहोत्सव आदि यज्ञों में और (देव) प्रतिष्ठादि कर्मों में सफलता प्राप्त होती है। सभी कर्मों की प्राप्ति के लिए लक्ष और कोटि होम माने गये हैं। अयुत होम में गृहदेश स्थित मण्डल में एक हाथ लम्बा तथा मेखला और योनि से युक्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। चार ऋत्विज होते हैं, किन्तु लक्ष होम में स्वयं एक ऋत्विज भी रह सकता है जो दस गुणों से युक्त रहा करता है। इसमें चार अथवा दो हाथ लम्बे गरुड़ की आकृति का निर्माण करके उसका यजन करना चाहिए और पूर्ववत् कुण्ड को आमन्त्रित करके लक्ष होम का अनुष्ठान करना चाहिए। आमन्त्रण मन्त्र यह है-'आपका शरीर सामध्वनि का है, आप विष्णु के वाहन हैं, 'आप सांसारिक विषयों का अपहरण करनेवाले हैं, इसलिए आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये' ।।३२-३६।। तदनन्तर वसुधारा तथा शय्या और भूषण आदि का दान करना चाहिए। लक्ष होम में अट्ठारह ऋत्विज होते हैं। इससे पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। दक्षिणा के द्वारा कोटिहोम शत्रुओं का नाशक होता है। कोटि होम में कुण्ड चार अथवा आठ हाथ का होता है जिसमें बारह,

---

१ यस्मात्त्वं...व्यवस्थितः ग. पुस्तके नास्ति। २ पुत्रान्नराज्य...गच्छति च पुस्तके नास्ति। ३ ख. °त्रान्स्वरा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्हस्तं चाष्टहस्तं कुण्डं द्वादश च द्विजाः। पञ्चविंशं षोडशं वा पटे द्वारे चतुष्टयम् ।।३९।।
कोटिहोमी सर्वकामी विष्णुलोकं स गच्छति। होमस्तु ग्रहमन्त्रैर्वा गायत्र्या वैष्णवैरपि ।।४०।।
जातवेदोमुखैः शैवैर्वैदिकैः प्रथितैरपि। तिलैर्यवैर्घृतैर्धान्यैरश्वमेधफलादिभाक् ।।४१।।
विद्वेषणाभिचारेषु[1] त्रिकोणं कुण्डमिष्यते। समिधो वामहस्तेन श्येना[2] स्थ्यनलसंयुताः ।।४२।।
[3]रक्तभूषैर्मुक्तकेशैर्ध्यायद्भिरशिवं रिपोः। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुंभडिति च ।।४३।।
छिन्द्यात्क्षुरेण प्रतिमां पिष्टरूपं रिपुं [4]हनेत्। यजेदेकं पीडकं वा यः स कृत्वा दिवं व्रजेत् ।।४४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६७।।

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महापातकादिकथनम्

पुष्कर उवाच

दण्डं कुर्यान्नृपो नृणां प्रायश्चित्तमकुर्वताम्। कामतोऽकामतो वाऽपि प्रायश्चित्तं कृतं चरेत् ।।१।।

पचीस या सोलह ब्राह्मण रहा करते हैं। कोटिहोम करनेवाला सभी कामनाओं को प्राप्त करके विष्णुलोक को चला जाता है ।।३७-३९ ½।। इस होम में ग्रह मन्त्रों अथवा गायत्री छन्द में निबद्ध विष्णु, अग्नि, शिव आदि वैदिक मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। तिल, यव, घृत और धान्य से हवन करने पर अश्वमेध इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है। विद्वेष अथवा अभिचार कर्मों में कुण्ड का आकार त्रिकोण के समान होता है, जिसमें बायें हाथ से श्येन की अस्थियों तथा अग्नि से युक्त समिधाओं को देकर रक्त आभूषणों और छिटके हुए केशों को धारण करके शत्रु के अमङ्गल का ध्यान इस मन्त्र से करना चाहिए–जो मुझसे द्वेष करता है, उसका नाश हो, 'हुं फट्'। तदनन्तर छुरे से अपने शत्रु की प्रतिमा को काटकर, पीठे से बनी शत्रु की आकृति को दो भागों में काट देना चाहिए अथवा एक ही पीडक कर्म को किया जा सकता है, जिसके करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पहुँच जाता है ।।४०-४४।।

श्री अग्निमहापुराण में कोटिहोम वर्णन नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६७।।

अध्याय १६८

महापातकादि-कथन

पुष्कर बोले–राजा को प्रायश्चित्त न करनेवाले मनुष्यों को दण्ड देना चाहिए। कोई भी दुष्कर्म चाहे इच्छा से किया गया हो अथवा अनिच्छा से, उसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए ।।१।। मत्त, क्रुद्ध और रोगियों के अन्न का भक्षण

---

१ ग. °णातिचा°। २ ख. ङ. °नास्थिलक्षसं°। ३ ग. भूमौ मुक्त°। ४ क. ङ. हरेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन। महापातकिना स्पृष्टं यच्च स्पृष्टमुदक्यया ।।२।।
गणान्नं गणिकान्नं च वार्धुषेर्गायकस्य च। अभिशप्तस्य [1]षण्डस्य [2]यस्याश्चोपपतिर्गृहे ।।३।।
रजकस्य नृशंसस्य बन्दिनः कितवस्य च। ([3]मिथ्यातपस्विनश्चैव चौरदण्डिकयोस्तथा ।।४।।
कुण्डगोलस्त्रीजितानां वेदविक्रयिणस्तथा। शैलूषतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ।।५।।
कर्मारस्य निषादस्य चेलनिर्णेजकस्य च)। मिथ्याप्रव्रजितस्यान्नं पुंश्चल्यास्तैलिकस्य च ।।६।।
आरूढपतितस्यान्नं विद्विष्टान्नं न वर्जयेत्। तथैव ब्राह्मणस्यान्नं ब्राह्मणेनानिमन्त्रतः ।।७।।
ब्राह्मणान्नं च शूद्रेण नाद्याच्चैव निमन्त्रितः। एषामन्यतमस्यान्नममत्या वा त्र्यहं क्षिपेत् ।।८।।
मत्या भुक्त्वाऽऽचरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च। चण्डालश्वपचान्नं तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।९।।
अनिर्दशं च प्रेतान्नं गवाऽऽघ्रातं तथैव च। शूद्रोच्छिष्टं शुनोच्छिष्टं पतितान्नं तथैव च ।।१०।।
तप्तकृच्छ्रं प्रकुर्वीत अशौचे कृच्छ्रमाचरेत्। अशौचे यस्य यो भुङ्क्ते सोऽप्यशुद्धस्तथा भवेत् ।।११।।
मृतपञ्चनखात्कूपादमेध्येन सकृद्युतात्। अपः पीत्वा त्र्यहं तिष्ठेत्सोपवासो द्विजोत्तमः ।।१२।।
सर्वत्र शूद्रे पादः स्याद्द्वित्रयं वैश्यभूपयोः। विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ।।१३।।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्। शुष्काणि जग्ध्वा मांसानि प्रेतान्नं करकाणि च ।।१४।।

नहीं करना चाहिए तथा महापातकियों और ऋतुमती स्त्रियों के द्वारा जिस अन्न का स्पर्श किया गया हो, उसे भी नहीं खाना चाहिए। सामूहिक अन्न, गणिकान्न, गायक, अभिशप्त, नपुंसक तथा उपपति के साथ रहनेवाली स्त्री के द्वारा पकाये गये भोजन को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए ।।२-३।। इसी प्रकार धोबी, क्रूर, बन्दी, छली, मिथ्यातपस्वी, चोर, दण्ड देनेवाले, झगड़ालू, स्त्रियों को जीतनेवाले, वेदविक्रयी, नट, जुलाहा, कृतघ्न, कुम्हार, निषाद, मिथ्यासंन्यासी, पुंश्चली स्त्री, तेली, पतित और शत्रु के अन्न को वर्जित करना चाहिए ।।४-६$\frac{1}{2}$।। ब्राह्मण के द्वारा निमन्त्रित न किये जाने पर उसका (ब्राह्मण को) अन्न नहीं खाना चाहिए। निमन्त्रित किये जाने पर भी शूद्र को ब्राह्मण का अन्न नहीं खाना चाहिए। इनमें से किसी का भी अन्न खाने पर ब्राह्मण को तीन दिनों तक व्रत रखना चाहिए ।।७-८।। अन्य लोगों को कृच्छ्र चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। चाण्डाल का अन्न रेतस्, मल और मूत्र के समान है, जिसे खाकर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। प्रेत-अन्न, गाय के द्वारा सूँघा हुआ, शूद्र का जूठा, कुत्ते का जूठा तथा पतितों का अन्न खाने से तप्तकृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिए। यही कर्म यदि अशौच की स्थिति में हो तो कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। जिसके अशौच में कोई भोजन करता है, वह भी उसके जैसा अशुद्ध हो जाता है ।।९-११।। जिस कुएँ में पञ्चनखपशु मरे हों अथवा अमेध्य-पदार्थों से युक्त हो, उसका जल पीकर श्रेष्ठ ब्राह्मण को तीन दिनों तक उपवास करना चाहिए। शूद्र को (ब्राह्मण की अपेक्षा) चतुर्थांश और वैश्य तथा राजा को क्रमशः आधे और तीन-चौथाई अंशों का पाप लगता है। मूषक, शूकर, गधा, ऊँट, गीदड़, बन्दर और कौए को खाने से मल-मूत्र भक्षण करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ।।१२-१३$\frac{1}{2}$।। शुष्क मांस, प्रेतान्न, करक नामक पक्षी, मांस खानेवाले पक्षियों, शूकर, उष्ट्र, गोमय, बन्दर, कौए, गाय, मनुष्य, गदहा, घोड़ा, ग्रामीण, कुक्कुट और हाथी का मांस खाने पर तप्तकृच्छ्र

---

१ क. ङ. खण्डस्य। २ क. ख. ग. ङ. च. यस्य चोप°। ३ मिथ्यातपस्विनश्चैव···चेलनिर्णेजकस्य च, क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः । गोनराश्वखरोष्ट्राणां छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ।।१५।।
मांसं जग्ध्वा कुञ्जरस्य तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा ब्रह्मचारी मधु त्वदन् ।।१६।।
लशुनं गृञ्जनं चाद्यात्प्राजापत्यादिना शुचिः । भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्यान्मां(न्मा)सं[1]चाऽऽत्मकृतं तथा[2] ।।१७।।
पेलुगव्यं च पेयूषं तथा श्लेष्मातकं मृदम् । वृथा कृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ।।१८।।
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च । गवां च महिषीणां च वर्जयित्वा तथाऽप्यजाम् ।।१९।।
सर्वक्षीराणि वर्ज्यानि तासां चैवाप्यनिर्दशम् । शशकः शल्यकी गोधा खड्गः कूर्मस्तथैव च ।।२०।।
भक्ष्याः पञ्चनखाः प्रोक्ताः परिशेषाश्च वर्जिताः । पाठीनरोहितान्मत्स्यन्सिंहतुण्डाश्च भक्षयेत् ।।२१।।
([3]यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः[4] । वागषाड्गवचक्रादीन्सस्नेहमुषितं तथा ।।२२।।
अग्निहोत्रपरीद्धाग्निर्ब्राह्मणः कामचारतः । चान्द्रायणं चरेन्मासं [5]वीरहत्यासमं हि तत्) ।।२३।।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुः [6]संयोगश्चैव तैः सह ।।२४।।
अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानं ब्रह्महत्यया[7] ।।२५।।
ब्रह्मोज्झ्यवेदनिन्दा च कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ।।२६।।
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्[8] ।।२७।।

व्रत से शुद्धि होती है। आमश्राद्ध के बाद ब्रह्मचारी यदि मदिरापान कर ले, लहसुन खा ले या चुकन्दर खा ले, तो वह प्राजापत्यादि कर्मों से शुद्ध होता है, किन्तु यदि उपर्युक्त पशुओं का मांस जान-बूझकर खा ले तो चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए ।।१४-१७।। पेलुगव्य (अण्डकोष का मांस), पेयूष (प्रसूता गौ आदि का सात दिन के अन्दर का दूध), श्लेष्मातक, मिट्टी, दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर, पूआ, पूरी, संस्काररहित मांस, देवान्न और हवि खाने पर चान्द्रायण-व्रत करे। गाय, भैंस और बकरी का दूध छोड़कर अन्य पशु का दूध नहीं पीना चाहिए। खरगोश, साही, घड़ियाल, गैंड़ा और कछुआ-ये पाँच नाखूनोंवाले भक्ष्य कहे गये हैं। शेष पशुओं का भक्षण वर्जित है। पहिना, रोहू और सिंही मछलियों को खाना चाहिए ।।१८-२१।। अग्निहोत्री को कोई ऐसा पदार्थ नहीं खाना चाहिए, जो गेहूँ, जौ, जमे हुए दूध अथवा वच से बना हो, इसी प्रकार ऐसे पदार्थों का, जिनका कि चिकनाहट नष्ट हो गया हो, भक्षण नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त मछलियों को जान-बूझकर खानेवाले अग्निहोत्री ब्राह्मण को एक मास तक बद्धवीरासन लगाकर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नी-समागम करना तथा ऐसे व्यक्तियों के साथ सयोग-ये पाँच महापातक कहे गये हैं। असत्य का समुत्कर्ष, राजा के पास चुगली और गुरु पर मिथ्या दोषारोपण-ब्रह्महत्या के समान हैं ।।२२-२५।। ब्रह्म का परित्याग, वेदनिन्दा, कूटसाक्ष्य, मित्रवध, किसी निन्दनीय व्यक्ति के अन्न और मक्खन को खाना सुरापान के समान है। धरोहर का अपहरण तथा मनुष्य, अश्व, चाँदी, पृथ्वी, वज्र और मणियों का अपहरण सोने की चोरी के समान माना जाता है। अपने से सम्बद्ध स्त्रियों, कुमारियों,

---

१ ख. ग. ङ. °सं क्रव्यभुजस्तथा। २ ख. ङ. °था। शेलुं ग°। ३ यवगोधूमजं···हि तत् च. पुस्तके नास्ति। ४ क. ख. ग. ङ. °याः। रागखाण्डवचूकादी। ५ ख. ग. घ. °खध्यास°। ६ ख. ग. °योगाश्चै°। ७ ख. °या। ब्रह्मोज्ञ वे°। ८ क. ङ. °मृ। रजकाश्मकयो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च। सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ।।२८।।
गोवधोऽयाज्यसंयाज्यं पारदार्यात्मविक्रयः। गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ।।२९।।
[1]परिवेत्ता चानुजेन परिवेदनमेव च। तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।।३०।।
कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्। तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ।।३१।।
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृताध्यापनमेव च। भृताच्चाध्ययनादानमविक्रेयस्य विक्रयः ।।३२।।
सर्वाकारेष्वधीकारो[2] महायन्त्रप्रवर्तनम्[3]। [4]हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवः क्रियालङ्घनमेव च[5] ।।३३।।
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणां चैव पातनम्। योषितां ग्रहणं चैव स्त्रीनिन्दकसमागमः ।।३४।।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा। [6]अनाहिताग्नितास्तेयमृतानां चाऽऽतपक्रिया ।।३५।।
[7]असच्छास्त्राधिगमनं दौःशील्यं व्यसनक्रिया। धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यस्त्रीनिषेवणम् ।।३६।।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम्। ब्राह्मणस्य रुजः कृत्यं घ्रातिरघ्न्येयमद्ययोः[8] ।।३७।।
भैक्ष्यं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं स्मृतम्। श्वखरोष्ट्रमृगेन्द्राणामजाव्योश्चैव मारणम् ।।३८।।
संकीर्णकरणं ज्ञेयं मीनाहिनकुलस्य च। निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।।३९।।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्। कृमिकीटकयोर्हत्या मद्यानुगतभोजनम् ।।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ।।४०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महापातकादिवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६८।।

अन्त्यज जाति की स्त्रियों, मित्र-स्त्री और पुत्र की स्त्री के साथ किया गया सहवास, गुरुपत्नी के साथ किये हुए सहवास के समान है ।।२६-२८।। गोहत्या, अयोग्य को यजन करना, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, गुरु, माता, पिता, स्वाध्याय, अग्नि और पुत्र का परित्याग, बड़े भाई के रहते हुए छोटे भाई का विवाह, ऐसे व्यक्ति के साथ कन्या का विवाह, ऐसे व्यक्ति को यजन करना, कन्यादूषण, व्रतलोप, तालाब, आराम, स्त्रियों-पुत्रों का विक्रय, व्रात्यता, बान्धवत्याग, भृताध्यापन, भृत से अध्ययन अथवा दान लेना, अविक्रेय वस्तु को बेचना, सुवर्ण आदि की खान का काम करना, विशाल यन्त्र चलाना, ओषधियों का विनाश, स्त्रियों के ऊपर जीवन-निर्वाह, अपने कार्य का उल्लंघन (ये सभी जाति से च्युत करानेवाली क्रियाएँ हैं) ।।२९-३३।। ईंधन के लिए हरे वृक्षों का काटना, स्त्रियों का ग्रहण, स्त्रीनिन्दकों के साथ समागम, केवल अपने स्वार्थ के लिए किसी कार्य को करना, निन्द्य अन्न का ग्रहण करना, अनाहिताग्नि होना, चोरी, सन्तप्त करना, असत् शास्त्र का अध्ययन, दुश्शीलता, व्यसनक्रिया, धान्य, धातु और पशु की चोरी, मद्यपान करनेवाली स्त्रियों के साथ समागम, स्त्री, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय का वध, नास्तिक्य, उपपातक, ब्राह्मण को सताना, मद्यादि का बेचना, भिक्षाटन और पुरुषों के साथ मैथुन (ये सभी जाति से च्युत करनेवाली क्रियाएँ हैं) ।।३४-३७$\frac{1}{2}$।। इसी प्रकार कुत्ते, गधे, ऊँट, सिंह, बकरे और भेंड़ का मारना, संकीर्ण कृत्य, मछली, सर्प और नेवले को मारना, निन्दितों से धान्य का ग्रहण करना, वाणिज्य, शूद्रों की सेवा, मिथ्याभाषण, कृमि और कीटों की हत्या, मद्यपान के साथ भोजन करना, फल, ईंधन, पुष्पों का चुराना, अधीरता और मलिनता भी अपात्रीकरण के कारण हैं ।।३८-४०।।

श्री अग्निमहापुराण में महापातकादि वर्णन नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६८।।

---

१ क. ङ. रिवृत्ता अनु°। २ च. °कारायुधाका°। ३ ख. ग. च. °हामन्त्र°। ४ क. ङ. हिंस्त्रौषधीनां स्त्रीजी°। ५ क. च. °यालम्बन°। ६ अनाहिताग्निनतः...चाऽऽतपक्रिया इत्यत्र "अनाहिताग्निनतास्तेयमृणानां चानयक्रिया" इत्यर्धं वर्तते। ७ क. ङ. °नं कौशाढ्यं वामन°। ८ क. ङ. °योः। ब्राह्मयं पुं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच

एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते। ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।।१।।
भिक्षेताऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्। [1]प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्रिरवाक्शिराः ।।२।।
यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा। जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।।३।।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत्। व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।।४।।
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्। कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ।।५।।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्। गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ[2] नियतेन्द्रियः ।।६।।
दिवाऽनुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्। वृक्षभैकादशा गास्तु दद्याद्विचरतिव्रतः ।।७।।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्। पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ।।८।।
योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने। कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ।।९।।

अध्याय १६९

प्रायश्चित्त-वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं इन पापों का प्रायश्चित्त बतला रहा हूँ। ब्रह्महत्या करनेवालों को वन में कुटी बनाकर बारह वर्षों तक रहना चाहिए ।।१।। उस व्यक्ति की आत्मशुद्धि के लिए कपाल को लेकर भिक्षा माँगनी चाहिए अथवा अग्नि मे कूद पड़ना चाहिए अथवा उसे अश्वमेध या गोमेध यज्ञ करना चाहिए और किसी एक वेद का जप करते हुए सौ योजन (अपने घर से दूर) निकल जाना चाहिए ।।२-३।। अथवा उसे वेदविद् ब्राह्मण के लिए सर्वस्व दान करना चाहिए। इन व्रतों से महापातकियों के मल का नाश हो जाता है। गोहत्या के उपपातक से युक्त व्यक्ति को एक मास तक यव के जल का पान करना चाहिए और उसे गोचर्म को धारण करके गोशाला में निवास करना चाहिए ।।४-५।। चतुर्थकाल में उसे थोड़ा-सा भोजन करना चाहिए, जिसमें न तो क्षार हो और न लवण। उसे दो मास तक इन्द्रियों को वश में करके गोमूत्र से स्नान करना चाहिए। उसे दिन में गायों के पीछे चलकर उनके द्वारा उड़ायी गयी धूलि का सेवन करना चाहिए। तदनन्तर व्रत समाप्त होने पर उसे ग्यारह बैल और इतनी ही गायों का दान करना चाहिए ।।६-७।। यदि इतना न कर सके तो उसके पास जो कुछ भी हो, उसे ही वेदविद् ब्राह्मणों को दान करना चाहिए। यदि जिस गाय की हत्या की गयी है, वह गोशाले में बँधी हो तो उपर्युक्त व्रत के चतुर्थांश का आचरण करना चाहिए। जब अपने खूँटे में बँधी हुई गाय की हत्या हो जाय तो उपर्युक्त व्रत के अर्धांश का आचरण करना चाहिए। जहाँ जुते हुए बैल की हत्या हो, वहाँ तीन-चौथाई व्रत करना चाहिए और साधारण रूप से उसकी हत्या करने में सम्पूर्ण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। वनों, दुर्गों, विषम स्थानों तथा विपत्ति में पड़े हुए पशुओं

---

१ च. प्राणेदातारम°। २ ख. ग. यामौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते। घण्टाभरणदोषेण तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ।।१०।।
दमने [1]दामने रोधे शकटस्य नियोजने। स्तम्भशृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ।।११।।
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा। यावकं[2] तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गौर्भवेत् ।।१२।।
गोमतीं च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत्। एका चेद्बहुभिर्दैवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ।।१३।।
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक्। उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ।।१४।।
एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनस्तथा। अवकीर्णी च शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ।।१५।।
अवकीर्णी तु कालेन गर्दभेन चतुष्पथे। पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ।।१६।।
कृत्वाऽग्निं विधिवद्धीमानन्ततस्तु समित्यृचा। चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतिम् ।।१७।।
अथवा गार्दभं चर्म वसित्वाऽब्दं चरेन्महीम्। हत्वा गर्भमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।।१८।।
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णासुरां पिबेत्। गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।।१९।।
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु। [3]स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ।।२०।।

की हत्या होने पर व्रत के चतुर्थांश का ही अनुष्ठान करना चाहिए। यदि गाय अथवा बैल की हत्या घण्टा तथा अन्य आभूषणों के कारण हो जाय तो आधे व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ।।८-१०।। यदि गाय या बैल की हत्या उस समय हो जाय, जब उसे जोता जा रहा हो, या वह अपने निश्चित स्थान की ओर ले जाया जा रहा हो तो तीन-चौथाई व्रत करना चाहिए। गाय की सींग, हड्डियों अथवा दुम के टूट जाने पर तब तक जौ का जल पीते रहना चाहिए, जब तक कि गाय स्वस्थ न हो जाय। ऐसे व्यक्ति को गोमती का जप और स्मरण तथा गाय की स्तुति करनी चाहिए। यदि गायों का एक झुण्ड ही दैवयोग से नष्ट हो जाय तो प्रत्येक गाय के लिए उपर्युक्त व्रत के चतुर्थांश का अनुष्ठान करना चाहिए। किन्तु यदि गाय की हत्या उस समय हो जाय जब कोई ऐसा कार्य किया जा रहा हो जिससे उसका उपकार ही होना चाहिए तो कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है ।।११-१४।। यही प्रायश्चित्त उन्हें भी करना चाहिए, जो उपपातकी हों अथवा जिन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को भंग किया हो। इन लोगों को अपनी शुद्धि के लिए चान्द्रायण-व्रत भी करना चाहिए। अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेवाले व्यक्ति को चौराहे पर गर्दभ के द्वारा तथा पाक-यज्ञविधान से रात्रि में निर्ऋति का यजन करना चाहिए ।।१५-१६।। बुद्धिमान् व्यक्ति को विधिवत् अग्नि-समिन्धन करके चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि के लिए आज्याहुतियाँ देनी चाहिए अथवा उसे गदहे के चर्म को पहनकर एक वर्ष तक पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए। अज्ञान में गर्भ का हनन करनेवाले को ब्रह्महत्या के व्रत का पालन करना चाहिए ।।१७-१८।। यदि कोई ब्राह्मण मोहवश मदिरा का पान कर ले तो उसे अग्निवर्ण सुरा का, अग्नि के समान वर्णवाले गोमूत्र अथवा केवल जल का पान करना चाहिए। सोने की चोरी करनेवाले ब्राह्मण को राजा के समीप जाकर अपने कर्म की सूचना देते हुए यह कहना चाहिए कि 'आप मुझे आज्ञा दें।' राजा को दूसरे के हाथ से एक मूसल लेकर

---

१ क. ङ. च. वामने। २ क. ङ. पावकं। ३ स्वकर्म····भवाननुशास्त्विति क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गृहीत्वा मुशलं राजा सकृद्धन्यात्स्वयं गतम्। [1]वधेन शुध्यते [2]स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ।।२१।।
गुरुतल्पो निकृत्यैव शिश्नं च वृषणं स्वयम्। निधाय चाञ्जलौ गच्छेदानिपाताच्च नैर्ऋतिम् ।।२२।।
[3]चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यसेन्नियतेन्द्रियः। जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतममिच्छया ।।२३।।
चरेच्छां (त्सां) तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया। संकरीपात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।।२४।।
मलिनीकरणीयेषु तप्तं स्याद्यावकं त्र्यहम्। तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।।२५।।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः। मार्जारनकुलौ [4]हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ।।२६।।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। चतुर्णामपि वर्णानां नारीं [5]हत्वाऽनवस्थिताम् ।।२७।।
अमत्यैव प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। [6]सर्पादीनां वधे नक्तमनस्थ्नां वायुसंयमः ।।२८।।
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः। चरेच्छां (त्सां) तपनं कृच्छ्रं व्रतं निर्वाप्य शुध्यति ।।२९।।
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च। पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ।।३०।।
तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च[7]। चेलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ।।३१।।

उसे एक ही प्रहार में मार डालना चाहिए, क्योंकि चोर वध से शुद्ध होता है और ब्राह्मण तपस्या से शुद्ध होता है ।।१९-२१।। गुरुपत्नी से समागम करनेवाले को स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोश को काटकर अपनी अञ्जलि में रखकर नैर्ऋत्य दिशा की ओर तब तक जाना चाहिए जब तक वह गिर न जाय अथवा उसे अपनी इन्द्रियों को वश में करके तीन मास तक चान्द्रायण-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। ऐसा कर्म करके जिससे मनुष्य जाति से भ्रष्ट हो जाय, 'सान्तपन' नामक व्रत करना चाहिए। अनिच्छा से यह कर्म करने पर 'प्राजापत्य' व्रत करना चाहिए ।।२२-२३$\frac{1}{2}$।। 'इन्दु' व्रत नामक तपस्या उस पाप के प्रायश्चित्तस्वरूप करना चाहिए जो विजातीय स्त्री-पुरुष के विवाह के समय उपस्थित रहने से होता है। ऐसे कर्मों में जिनसे मनुष्य मलिन हो जाते हैं, तीन दिन तक 'यावक' नामक व्रत करना चाहिए। ब्रह्महत्या के पाप का चतुर्थांश पाप क्षत्रिय के वध करने से, उसका आठवाँ भाग वैश्य की हत्या करने से, सोलहवाँ भाग शूद्र की हत्या करने से होता है। बिल्ली, नेवले, गौरैया, मेंढक, कुत्ते, गो, उलूक और कौए की हत्या करने पर शूद्र की हत्या के समान व्रत करना चाहिए ।।२४-२६$\frac{1}{2}$।। चारों में से किसी वर्ण की हत्या होने पर शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करे। स्त्री की अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करे। सर्पादि का वध होने पर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवों की हत्या होने पर 'प्राणायाम' करे। दूसरे के घर से थोड़े मूल्य की वस्तुओं के चुरानेवाले को 'कृच्छ्रसान्तपन व्रत' करना चाहिए ।।२७-२९।। भोज्य पदार्थों, शय्या, यान, आसन, पुष्प, कन्द और फलों को चुरानेवाले की शुद्धि पञ्चगव्य का भक्षण (करके) करना चाहिए। तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड़, वस्त्र, चर्म और मांस चुरानेवाले के लिए तीन रात्रियों तक भोजन न करना ही प्रायश्चित्त है ।।३०-३१।। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा,

---

१ क. ङ. बन्धेन। २ ग. घ. ङ. च. स्तेयो। ३ ख. °यणं वा त्री°। ४ क. ङ. °त्वा वार्षम°। च. °त्वा वर्षमन्त्रक°। ५ ग. °त्वा व्रतस्थि°। ६ ग. च. सर्वादीनां। ७ क. ङ. च.। वेणु च°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं[1] कणान्नभुक् ।।३२।।
कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनां तु[2] रज्ज्वा चैव त्र्यहं पयः ।।३३।।
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ।।३४।।
पितृष्वस्त्रेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।३५।।
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।३६।।
मैथुनं वा समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः । गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ।।३७।।
चाण्डालान्त्यस्त्रियोर्गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ।।३८।।
विप्रदुष्यं स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तदेनां चारयेद्व्रतम् ।।३९।।
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत सदृशेनोपमन्त्रिता । कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ।।४०।।
यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । तद्भैक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६९।।

चाँदी, लोहा, काँसा अथवा पत्थर की चोरी करनेवाला बारह दिन तक अन्न का कणमात्र खाकर रहे। कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुरवाले बैल आदि, एक खुरवाले घोड़े आदि पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, औषध अथवा रस्सी चुरानेवाला तीन दिन तक दूध पीकर रहे। मित्र-पत्नी, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डाली में वीर्यपात करके गुरुपत्नीगमन का प्रायश्चित्त करे। फुफेरी बहन, मौसेरी बहन और सगी ममेरी बहन से गमन करनेवाला चान्द्रायण-व्रत करे ।।३२-३५।। मनुष्येतर योनि में, रजस्वला स्त्री में, योनि के सिवा अन्य स्थान में अथवा जल में वीर्यपात करनेवाला मनुष्य 'कृच्छ्र-सान्तपन-व्रत' करे। पुरुष अथवा स्त्री के साथ बैलगाड़ी पर, जल में या दिन में मैथुन करके ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करे ।।३६-३७।। चाण्डाल और अन्त्यज जाति की स्त्री के साथ सहवास करनेवाला, उसके साथ भोजन करनेवाला अथवा उससे किसी वस्तु को ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण यदि अज्ञान में ऐसा करता है तो पतित हो जाता है। यदि जान-बूझकर ऐसा करता है तो वह उसके समान हो जाता है। दुष्ट स्त्री को उसका पति एकान्त घर में रखता है और परस्त्रीगामी पुरुष से उसे शिक्षा दिलवाता है। यदि वह स्त्री इस प्रकार व्रत की शिक्षा दिये जाने के बाद भी वैसा ही कार्य करे तो वह 'कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत' करके ही पवित्र हो सकती है। जो ब्राह्मण एक रात में रजस्वला कुमारी के साथ सहवास करता है वह तीन वर्षों तक भिक्षान्न खाकर और उपयुक्त मन्त्र का जप करके शुद्ध होता है ।।३८-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१६९।।

---

१ क. ङ. °हं गणा°। २ गै. तु लाजाश्चैव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच

[1]महापापानुयुक्तानां प्रायश्चित्तानि वच्मि ते । संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् ।।१।।
[2]याजनाध्यापनाद्यौनान्न[3] तु यानाशनासनात् । यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।।२।।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गस्य शुद्धये । पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह ।।३।।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ । दासीघटमपां पूर्णं[4] पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।।४।।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह । निवर्तयेरंस्तस्मात्तु[5] ज्येष्ठांशं भाषणादिके ।।५।।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः । प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम् ।।६।।
तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्यजलाशये । एवमेव विधिं कुर्युर्योषित्सु पतितास्वपि ।।७।।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके । तेषां द्विजानां सावित्री नानूद्येत यथाविधि ।।८।।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् । विकर्मस्थाः परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ।।९।।

अध्याय १७०

प्रायश्चित्त-वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं तुमसे महापापियों के प्रायश्चित्तों को कह रहा हूँ। एक वर्ष तक किसी पतित व्यक्ति के संसर्ग में रहनेवाला स्वयं पतित हो जाता है ।।१।। यहाँ पर संसर्ग का अभिप्राय है यज्ञ कराना, पढ़ाना और यौन-सम्बन्ध रखना। जो मनुष्य जिस पतित का संसर्ग करता है, वह उसके संसर्गजनति दोष की शुद्धि के लिए उस पतित के लिए विहित प्रायश्चित्त करे। पतित व्यक्ति के सपिण्ड और बन्धुओं को उसकी शुद्धि के लिए उदकक्रिया करनी चाहिए ।।२-३।। पतित के सपिण्ड और बान्धवों को एक साथ निन्दित दिन में, सन्ध्या के समय, जाति भाई, ऋत्विक् और गुरुजनों के निकट, पतित पुरुष की जीवितावस्था में ही उसकी उदकक्रिया करनी चाहिए। तत्पश्चात् जल से भरे हुए घड़े को दासी द्वारा लात से फेंकवा दे। पतित के सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन-रात अशौच मानें। उसके बाद वे पतित के साथ सम्भाषण न करें और धन में उसे ज्येष्ठांश भी न दें। पतित का छोटा भाई गुणों में श्रेष्ठ होने के कारण ज्येष्ठांश का अधिकारी होता है। यदि पतित बाद में प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशय में स्नान करके जल से भरे हुए नवीन कुम्भ को जल में फेंक दें। पतित स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही कार्य करें, परन्तु उसको अन्न, वस्त्र और घर के समीप रहने का स्थान देना चाहिए ।।४-७ $\frac{1}{2}$।। जिन ब्राह्मणों को समय पर विधि के अनुसार गायत्री उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे।

---

१ ख. ग. °पापोपपापानां। २ ख. ग. °नाध्ययनादौ वा न तु। ३ क. ङ. °नादीनामनुया°। ४ क. ङ. °र्ण प्रयस्ये। ५ क. ङ. °त्तु श्रेष्ठसंभाषणादिकम्। ज्ये°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः। मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्परिग्रहात् ।।१०।।
व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनानां त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ।।११।।
शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः। संवत्सरं यताहारस्तत्पापमपसेधति ।।१२।।
श्वश्रृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्यादिभिरेव च[1]। नरोष्ट्राश्वैर्वराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति ।।१३।।
स्नातकव्रतलोपे च कर्मत्यागो ह्यभोजनम्। हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ।।१४।।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत्। [2]अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।।१५।।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्। चाण्डालादिरविज्ञातो यस्य तिष्ठेत वेश्मनि ।।१६।।
सम्यग्ज्ञातस्तु कालेन तस्य कुर्वीत शोधनम्। चान्द्रायणं पराकं वा द्विजानां तु विशोधनम् ।।१७।।
प्राजापत्यं तु शूद्राणां शेषं तदनुसारतः। गुडं कुसुम्भं लवणं तथा धान्यानि यानि च ।।१८।।
कृत्वा गृहे ततो द्वारि तेषां दद्याद्धुताशनम्। मृण्मयानां तु भाण्डानां त्याग एव विधीयते ।।१९।।
द्रव्याणां परिशेषाणां द्रव्यशुद्धिर्विधीयते। कूपैकपानसक्ता ये [3]स्पर्शात्संकल्पदूषिताः ।।२०।।
शुध्येयुरुपवासेन पञ्चगव्येन वाऽप्यथ। यस्तु संस्पृश्य चण्डालमश्नीयाच्च स्वकामतः ।।२१।।

निषिद्ध कर्मों का आचरण करने से जिन ब्राह्मणों का परित्याग कर दिया गया हो, उनके लिए भी इसी प्रकार का उपदेश करे। ब्राह्मण संयत-चित्त होकर तीन सहस्र गायत्री का जप करके गौशाला में एक मास तक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रह के पापग्रह से छूट जाता है। संस्कारहीन मनुष्यों का यज्ञ कराकर गुरुजनों के सिवा दूसरों का अन्त्येष्टि कर्म, अभिचार कर्म अथवा अहीनयज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य व्रत करने पर शुद्ध होता है। जो द्विज शरणागत का परित्याग करता है और अनधिकारी को वेद का उपदेश करता है, वह एक वर्ष तक नियमित आहार करके उस पाप से मुक्त हो जाता है ।।८-१२।। कुत्ते, गीदड़, गधे, ग्राम्य, मांसभक्षी पशुओं, मनुष्य, ऊँट और घोड़े के द्वारा जिस व्यक्ति को काट लिया गया हो, वह प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है ।।१३।। व्रत-भङ्ग होने पर और कर्म का परित्याग करने पर उपवास करना चाहिए। ओंकार का उच्चारण करनेवाले ब्राह्मण का उपहास करनेवाले ब्राह्मण को स्नान और उपवास करके और दिन के शेष भाग में उपहसित ब्राह्मण का अभिवादन करके उसे प्रसन्न करना चाहिए। ब्राह्मण का रक्त निकालने पर 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' नामक व्रत करना चाहिए। जिस व्यक्ति के घर में अज्ञान से चाण्डाल रहता है उसे 'पराक' नामक व्रत करना पड़ता है किन्तु यदि वह चाण्डाल जान-बूझकर ब्राह्मण के घर रह जाय तो उस ब्राह्मण को चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए ।।१४-१७।। इन्हीं परिस्थितियों में शूद्र को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। उस समय घर में नमक, गुड़, कुसुम्भ का पुष्प अथवा अन्य जो भी धान्य हों उन्हें पहले द्वार पर रखकर फिर अग्नि में डाल देना चाहिए किन्तु मिट्टी के बर्तनों का त्याग ही करना चाहिए। अन्य द्रव्यों की शुद्धि द्रव्य शुद्धि के नियमों के अनुसार करनी चाहिए। चाण्डाल के साथ एक ही कुएँ का जल पीने से अशुद्धि से दूषित मनुष्य एक दिन के उपवास अथवा पञ्चगव्य पान से शुद्ध होता है। जो व्यक्ति चाण्डाल का स्पर्श करके जान-बूझकर कुछ खा लेता है उसे चान्द्रायण अथवा तप्तकृच्छ्र नामक व्रत

---

१ क. ख. च. नानाश्वोष्ट्रैर्वा। २ क. ङ. °वगूह्य च°। ३ ख. च. स्पर्शसंक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विजश्चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा । भाण्डसंकुलसङ्कीर्णश्चाण्डालादिजुगुप्सितैः ।।२२।।
भुक्त्वा पीत्वा तथा तेषां षड्रात्रेण विशुध्यति । अन्त्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ।।२३।।
व्रतं चान्द्रायणं कुर्युस्त्रिरात्रं शूद्र एव तु । चण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलम् ।।२४।।
द्विजः शान्त(सांत)पनं कुर्याच्छूद्रश्चोपवसेद्दिनम् । चण्डालेन तु संस्पृष्टो यस्त्वपः पिबते द्विजः ।।२५।।
त्रिरात्रं तेन कर्त्तव्यं शूद्रश्चोपवसेद्दिनम् । उच्छिष्टेन यदि स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।।२६।।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति । वैश्येन क्षत्रियेणैव स्नानं नक्तं समाचरेत् ।।२७।।
अध्वानं प्रस्थितो विप्रः कान्तारे यद्यनूदके । पक्वान्नेन गृहीतेन मूत्रोच्चारं करोति वै ।।२८।।
अनिधायैव तद्द्रव्यमङ्गे कृत्वा तु संस्थितम् । शौचं कृत्वाऽन्नमभ्युक्ष्य अर्कस्याग्नेश्च दर्शयेत् ।।२९।।
[1]म्लेच्छै[1]र्गतानां चौरैर्वा कान्तारे वा प्रवासिनाम् । भक्ष्याभक्ष्यविशुद्ध्यर्थं तेषां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ।।३०।।
पुनः प्राप्य स्वदेशं च वर्णानामनुपूर्वशः । कृच्छ्रस्यान्ते ब्राह्मणस्तु पुनः संस्कारमर्हति ।।३१।।
पादोनान्ते क्षत्रियश्च अर्धान्ते वैश्य एव च । पादं कृत्वा तथा शूद्रो दानं दत्त्वा विशुध्यति ।।३२।।
उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया । तस्मिन्नेवाहनि स्नाता शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ।।३३।।
रजस्वला तु नाश्नीयात्संस्पृष्टा हीनवर्णया । [2]यावन्न शुद्धिमाप्नोति शुद्धिस्नानेन शुध्यति ।।३४।।

करना पड़ता है ।।१८-२१½।। जो व्यक्ति चाण्डाल इत्यादि के स्पर्श से दूषित पात्रों में खाता है वह छह रात्रों तक अपवित्र रहता है। अन्त्यजों के खाने से बचे हुए भोजन को खानेवाले द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। किन्तु इन्ही परिस्थितियों में शूद्र त्रिरात्र व्रत से ही शुद्ध हो जाता है। चाण्डाल के कुएँ अथवा बर्तनों का अज्ञानवश जल पीनेवाले द्विज को सान्तपन व्रत करना चाहिए ।।२२-२४½।। जो द्विज चाण्डाल का स्पर्श करके जल पीता है, उसे 'त्रिरात्र व्रत' करना चाहिए और ऐसा करनेवाले शूद्र को एक दिन का उपवास करना चाहिए। ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्र का स्पर्श कर दे तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है ।।२५-२६½।। वैश्य अथवा क्षत्रिय का स्पर्श होने पर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्ग में चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जलरहित प्रदेश में पक्वान्न हाथ में लिये मल-मूत्र का त्याग कर देता है, तो उस द्रव्य को अलग न रखकर अपने अङ्ग में रखे हुए ही आचमन आदि से पवित्र होकर अन्न का प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्नि को प्रदर्शित करे ।।२७-२९।। जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरों के निवासभूत देश अथवा वन में भोजन कर लेते हैं, उनकी भक्ष्याभक्ष्य विषयक शुद्धि का उपाय वर्ण-क्रम से बतलाता हूँ। ऐसा करनेवाले ब्राह्मण को अपने गाँव में आकर पूर्ण कृच्छ्र, क्षत्रिय को तीन चरण और वैश्य को आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिए। एक चौथाई व्रत करके दान देने से शूद्र की भी शुद्धि होती है ।।३०-३२।। यदि किसी स्त्री का समान वर्णवाली रजस्वला स्त्री से स्पर्श हो जाता है तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपने से निकृष्ट जातिवाली रजस्वला का स्पर्श करके रजस्वला स्त्री को तब तक भोजन नहीं करना चाहिए जब तक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिन के शुद्धि-स्नान से हो जाती है। यदि कोई द्विज मूत्र-त्याग करके

---

१ क. ग. ङ. म्लेच्छैः कृता°। २ °यावन्न°°°शुध्यति° इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोः °यावच्छुद्धिमवाप्नोति तावत्स्नागेन शुध्यति° इति दृश्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूत्रं कृत्वा व्रजन्वर्त्म स्मृतिभ्रंशाज्जलं पिबेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।३५।।
([1]मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः । मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुध्यति ।।३६।।
ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यादिबलात्तथा । अनाशकनिवृत्ताश्च तेषां शुद्धिः प्रचक्ष्यते ।।३७।।
चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा । जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कुर्यात्तं तथा पुनः ।।३८।।
उपानहममेध्यं च यस्य संस्पृशते मुखम् । मृत्तिकागोमये तत्र पञ्चगव्यं च शोधनम् ।।३९।।
वापनं विक्रयं चैव नीलवस्त्रादिधारणम् । [2]तपनीयं हि विप्रस्य त्रिभिर्कृच्छ्रैर्विशुध्यति ।।४०।।
अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा स्त्री रजस्वला । चतुर्थेऽहनि शुद्धा सा त्रिरात्रं तत्र आचरेत् ।।४१।।
चाण्डालश्वपचौ स्पृष्ट्वा तथा[3] पूयं च सूतिकाम् । शवं तत्स्पर्शिनं स्पृष्ट्वा सद्यः स्नानेन शुध्यति ।।४२।।
[4]नारं स्पृष्ट्वास्थि तु सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । रथ्याकर्दमतोयेन अधो नाभेर्मृदोदकैः ।।४३।।
वान्तो विविक्तः[5] स्नात्वा तु घृतं[6] प्राश्य विशुध्यति । स्नानात्क्षुरकर्मकर्त्ता कृच्छ्रकृद्ग्रहणेऽन्नभुक् ।।४४।।
अपाङ्क्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः । कृमिदष्टश्चाऽऽत्मघाती [7]कृच्छ्राज्जप्याच्च होमतः ।।४५।।
होमाद्यैश्चानुपातेन पूयन्ते पापिनोऽखिलाः) ।।४६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७०।।

मार्ग में चलता हुआ जल पी ले तो वह एक रात और दिन उपवास रखकर पञ्चगव्य के पान से शुद्ध होता है। जो मूत्र-त्याग करने के पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोहवश भोजन कर लेता है, वह तीन दिन तक यवपान करने से शुद्ध होता है ।।३३-३६।। जो ब्राह्मण संन्यास आदि की दीक्षा लेकर गृहस्थाश्रम का परित्याग कर चुके हों और पुनः संन्यासाश्रम से गृहस्थाश्रम में लौटना चाहते हों, उनकी शुद्धि के विषय में कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चन्द्रायण-व्रत' कराने चाहिए। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिए ।।३७-३८।। जिसके मुख से जूते या किसी अपवित्र वस्तु का स्पर्श हो जाय, उसकी मिट्टी और गोबर के लेपन तथा पञ्चगव्य के पान से शुद्धि होती है। नील की खेती विक्रय और नीले वस्त्र आदि का धारण-ये ब्राह्मण का पतन करनेवाले हैं। इन दोषों से युक्त ब्राह्मण की तीन 'प्राजापत्य' व्रत करने से शुद्धि होती है। यदि रजस्वला स्त्री को अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'त्रिरात्र-व्रत' करने से चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है ।।३९-४१।। चाण्डाल, श्वपच, मज्जा, सूतिकास्त्री, शव और शव का स्पर्श करनेवाले मनुष्य को छूने पर तत्काल स्नान करने से शुद्धि होती है। मनुष्य की अस्थि का स्पर्श होने पर तैल लगाकर स्नान करने से ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गली के कीचड़ के छींटे लग जाने से नाभि के नीचे का भाग मिट्टी और जल से धोकर स्नान करने से शुद्धि होती है। वमन अथवा विरेचन के बाद स्नान करके घृत का प्राशन करने से शुद्धि होती है ।।४२-४३$\frac{1}{2}$।। स्नान के बाद क्षौरकर्म करनेवाला 'प्राजापत्य-व्रत' करने से शुद्ध होता है। पंक्तिदूषक मनुष्यों के साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते अथवा कीट से दंशित मनुष्य पञ्चगव्य के पान से शुद्धि प्राप्त करता है। आत्महत्या की चेष्टा करनेवाले मनुष्य की 'प्राजापत्यव्रत', जप एवं होम से शुद्धि होती है। होमादि के अनुष्ठान एवं पश्चात्ताप से सभी प्रकार के पापियों की शुद्धि होती है ।।४५-४६।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१७०।।

---

१ मूत्रोच्चारं…पापिनोऽखिलाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ख. ग. च. पतनीयं। ३ ख. ग. °थाऽष्टपं च। च. °थाऽऽस्पृश्य च। ४ च. नावं स्पृष्ट्वाऽस्थि स°। ५ घ. च. विविक्तः। ६ च. घृतस्नानेन शु°। ७ ख. °च्छ्राज्जाप्याच्च काम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच

प्रायश्चित्तं रहस्यादि वक्ष्ये शुद्धिकरं परम् । पौरुषेण तु सूक्तेन मासं जप्यादिनाऽघहा ।।१।।
मुच्यते पातकैः सर्वैर्जप्त्वा त्रिरघमर्षणम् । [1]वेदजप्याद्वायुयमाद्गायत्र्या व्रततोऽघहा ।।२।।
[2]मुण्डनं सर्वकृच्छ्रेषु स्नानं होमो हरेर्यजिः । उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा निशि ।।३।।
एतद्वीरासनं प्रोक्तं कृच्छ्रकृत्तेन पापहा । अष्टभिः प्रत्यहं ग्रासैर्यतिचान्द्रायणं स्मृतम् ।।४।।
प्रातश्चतुर्भिः सायं च शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् । यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।।५।।
मासेन भक्षयेदेतत्सुरचान्द्रायणं चरेत् । त्र्यहमुष्णं पिबेदा (द) पस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।।६।।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षी भवेत्त्र्यहम् । तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्तितम् ।।७।।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।।८।।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् । [3]एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतम् ।।९।।

अध्याय १७१

प्रायश्चित्त-वर्णन

पुष्कर बोले–अब मैं रहस्यभूत प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जो अत्यन्त शुद्धिकारक है। एक मास तक पुरुष सूक्त का जप करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, किन्तु अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। वेदमन्त्रों का जप करने से, वायुमन्त्रों का जप करने से, यममन्त्रों का जप करने से और गायत्री के जप से भी यही फल प्राप्त होता है ।।१-२।। सभी कृच्छ्रव्रतों में मुण्डन, स्नान और हवन के बाद भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। इस व्रत के अनुष्ठाता को दिन खड़े-खड़े और रात्रियाँ बैठे-बैठे व्यतीत करना चाहिए ।।३।। यही वीरासन कहलाता है। इस प्रकार से कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करनेवाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यति चान्द्रायण-व्रत में प्रतिदिन आठ ग्रासों को ग्रहण करना कहा गया है और शिशु चन्द्रायण-व्रत में प्रातः-सायं चार-चार ग्रासों का ग्रहण करना बतलाया गया है। सुरचान्द्रायण-व्रत के अनुष्ठाता को एक मास में दो सौ चालीस पिण्डों को ग्रहण करना चाहिए ।।४-५$\frac{1}{2}$।। तप्तकृच्छ्रव्रत उसे कहते हैं जिसमें व्रती पहले तीन दिन उष्णजल का पान करता है, उसके बाद तीन दिन दूध पीता है, फिर तीन दिन घृत पीता है और अन्तिम तीन दिन वायु का भक्षण करके रहता है। जब यह व्रत शीतकाल में किया जाय तब इन सब वस्तुओं को शीतल रूप में ही ग्रहण करना चाहिए ।।६-७।। कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत में इक्कीस दिनों तक जल, गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक का पान किया जाता है। जिस व्रत में एक रात्रि उपवास रखा जाता है उसे कृच्छ्रसान्तपन कहा जाता है। जिसमें एक दिन तक अभ्यास रूप में उपवास किया जाता है उसे महासान्तपन कहते हैं ।।८-९।। यदि यही उपवास लगातार

---

१ वेदजप्या···व्रततोऽघहा क. ङ. पुस्तकोर्नास्ति। २ ग. मण्डलं। ३ ग. एकभक्तं त्र्यहा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]त्र्यहाभ्यस्तमथैकैमतिसान्तपनं स्मृतम् । कृच्छ्रं पराकसंज्ञं स्याद्द्वादशाहमभोजनम् ।।१०।।
एकभक्तं त्र्यहाभ्यस्तं क्रमान्नक्तमयाचितम् । प्राजापत्यमुपोष्यान्ते पादः स्यात्कृच्छ्रपादकः ।।११।।
फलैर्मासं फलं कृच्छ्रं बिल्वैः श्रीकृच्छ्र ईरितः । पद्माक्षैः स्यादामलकैः पुष्पकृच्छ्रं तु पुष्पकैः ।।१२।।
पत्रकृच्छ्रं तथा पत्रैस्तोयकृच्छ्रं जलेन तु । मूलकृच्छ्रं तथा मूलैर्दध्ना क्षीरेण तक्रतः ।।१३।।
मासं वायव्यकृच्छ्रं स्यात्पाणिपूरान्नभोजनात् । तिलैर्द्वादशरात्रेण कृच्छ्रमाग्नेयमार्तिनुत् ।।१४।।
[2]पक्षं प्रसृत्या लाजानां [3]ब्रह्मकूर्चं तथा भवेत् । उपोषितश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यामनन्तरम् ।।१५।।
पञ्चगव्यं समश्नीयाद्धविष्याशीत्यनन्तरम् । मासेन द्विर्नरः कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१६।।
श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामोऽघनष्टये । देवताराधनपरः कृच्छ्रकारी स सर्वभाक् ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रहस्यादिप्रायश्चित्तवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ।।१७१।।

तीन दिनों तक चलता रहे तो उसे अतिसान्तपनव्रत कहा जाता है। पराक नामक कृच्छ्र में बारह दिनों तक उपवास करना पड़ता है। प्राजापत्यव्रत में व्रती को तीन दिनों तक लगातार एक समय भोजन करना चाहिए और रात में ही उसे ग्रहण करना चाहिए जो बिना माँगे प्राप्त हो जाय। इसी के एक चरण का अनुष्ठान कृच्छ्रपाद कहलाता है ।।१०-११।। एक मास तक फलाहार करने को फलकृच्छ्रव्रत कहते हैं, एक मास तक बेल को खाकर रहने से श्रीकृच्छ्र कहा गया है, आमले खाकर किया जानेवाला व्रत पद्माक्ष कहलाता है और पुष्पाहार से किये जानेवाले व्रत को पुष्पकृच्छ्र कहते हैं। इतने समय तक पत्तों को खाकर किया जानेवाला व्रत पत्रकृच्छ्र और जल पीकर किया जानेवाला व्रत 'तोयकृच्छ्र' कहा जाता है। मूलों को खाकर किया जानेवाला व्रत 'मूलकृच्छ्र' कहलाता है। इस व्रत में दही, दूध, मट्ठा भी लिया जाता है। एक मास तक अञ्जलिभर अन्न का भोजन करने से वायव्यकृच्छ्र व्रत किया जाता है। आग्नेय व्रत उसे कहते हैं जिसमें बारह रातों तक तिल का भक्षण किया जाता है। यह व्रत सभी दुःखों का नाशक है ।।१२-१४।। ब्रह्मकूर्च व्रत में एक पक्ष तक खीरों का भोजन करना चाहिए। चौदह दिनों तक उपवास रखने के बाद पन्द्रहवें दिन पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए। तत्पश्चात् सामिष भोजन नहीं करना चाहिए। एक मास में दो बार व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला, पुष्टि की इच्छा करनेवाला और स्वर्ग की इच्छा करनेवाला, पापों का नाश करने के लिए, देवताओं की आराधना करते हुए कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करने से सब-कुछ प्राप्त कर लेता है ।।१५-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में रहस्यादि प्रायश्चित्त-वर्णन नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७१।।

---

१ त्र्यहाभ्यस्त…स्मृतम् ग. च. पुस्तकयोर्नास्ति। २ 'पक्षं…भवेत्' इत्यत्र 'गव्यं प्रमृज्य लाजानां ब्रह्मकृच्छ्रं तदा चरेत्' इति दृश्यते। ग. घ. पाक्षं। ३ ब्रह्मकृच्छ्रं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सर्वपापप्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच

परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा । प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा ।।१।।
विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः । नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं[1] हरिम् ।।२।।
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् । विष्णुमीड्यमशेषेण ह्यनादिनिधनं विभुम् ।।३।।
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे [2]विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् । [3]यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ।।४।।
करोति[4] कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च । तत्पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ।।५।।
ध्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् । तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ।।६।।
[5]जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः । हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ।।७।।
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज । हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ।।८।।
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव । दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तु ते ।।९।।
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना । [6]अकार्य (र्यं) महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ।।१०।।

अध्याय १७२

सर्वपापप्रायश्चित्त-वर्णन

पुष्कर बोले–जब-जब मनुष्यों का चित्त परस्त्री, परधन या जीवहिंसा आदि में प्रवृत्त हो तब-तब प्रायश्चित्त स्तुति करना चाहिए ।।१।। विष्णु को नमस्कार है, विष्णु को नमस्कार है तथा नित्य विष्णु की वन्दना करता हूँ। मैं विष्णु को नमस्कार करता हूँ, चित्तस्थ तथा अहंकारगत विष्णु को नमस्कार है ।।२।। मैं उन विष्णु की वन्दना करता हूँ जो चित्त में रहनेवाले, ईश्वर, अव्यक्त, अनन्त, अपराजित, स्तुत्य, अनादि, अनन्त और विभु हैं। जो विष्णु मेरे चित्त में विद्यमान हैं, जो विष्णु मेरी बुद्धि में स्थित हैं, जो विष्णु अहंकार में स्थित हैं और जो विष्णु मुझमें स्थित हैं और जो चराचर के कर्मों को करता है उसके चिन्तन से मेरे पापों का नाश हो ।।३-५।। उन विष्णु के ध्यान से पापों का नाश होता है और स्वप्न में उनका दर्शन भी पापों का नाश करता है। मैं उपेन्द्र, प्रणतार्तिहर भगवान् विष्णु की वन्दना करता हूँ ।।६।। इस निराधार संसार में अन्धकार में निमज्जित होनेवाले के लिए भगवान् विष्णु ही एकमात्र अवलम्ब हैं, अतः मैं परात्पर भगवान् विष्णु की वन्दना करता हूँ। अये सर्वेश्वरेश्वर, विभो, परमात्मन्, अधोक्षज, हृषीकेश, हृषीकेश, हृषीकेश! आपको नमस्कार है ।।७-८।। अये नृसिंह, अनन्त, गोविन्द, भूतभावन, केशव, मेरे जो भी दुरुक्त, दुष्कृत और चिन्तित पाप हैं, उन्हें शान्त कर दीजिये। आपको नमस्कार है। ।।९।। केशव! अपने मन के वश में होकर मैंने जो न करने योग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिये ।।१०।।

---

१ घ. °गति° ह°। २ छ. विष्णुः शुद्धमनः (नाः) स्वयम्। य°। ३ यच्चाहंकारगो…संस्थितः क. ङ. पुस्तकयोर्न दृश्यते।
४ ख. ग. च. कर्तृ भू°। ५ च. °त्यस्मिंस्त्रिधाकारे म°। ६ क. ङ. °कार्षम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण। जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ।।११।।
यथाऽपराह्णो सायाह्ने मध्याह्ने च यथा निशि। कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ।।१२।।
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। नामत्रयोच्चारणतः[1] पापं यातु मम क्षयम् ।।१३।।
शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव[2]। पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं[3] मम माधव ।।१४।।
यद्भुञ्जन्यत्स्वपंस्तिष्ठन्गच्छञ्जाग्रद्यदा स्थितः। [4]कृतवान्पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ।।१५।।
यत्स्वल्पमपि यत्स्थूलं कुयोनिनरकावहम्। तद्यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ।।१६।।
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्। तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु ।।१७।।
यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम्। सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं शमयत्वघम् ।।१८।।
पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि। शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ।।१९।।
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्। [5]तस्मात्पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ।।२०।।
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम्। प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ।।
ततः कार्याणि संसिद्ध्यै तानि वै भुक्तिमुक्तये ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वपापप्रायश्चित्ते पापनाशनस्तोत्रवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७२।।

अये ब्रह्मण्यदेव, गोविन्द, परमार्थपरायण, जगन्नाथ, जगद्धर, अच्युत, आप मेरे पाप को नष्ट कर दें ।।११।। अपराह्ण, सायं, मध्याह्न और रात्रि में शरीर, मन और वचन से मैंने जाने-अनजाने जो कुछ पाप किया है वह हृषीकेष, पुण्डरीकाक्ष, माधव-इन तीनों नामों के उच्चारण से शान्त हो जाय ।।१२-१३।। अये हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, माधव! आप मेरे शारीरिक पापों को नष्ट कर दीजिये। माधव! आप मेरे वाचिक पापों को शान्त कर दीजिये ।।१४।। भोजन करते हुए, सोते हुए, खड़े हुए, जाते हुए, जगते हुए जब भी मैंने मन-वचन-कर्म से जो भी पाप किया है, मैंने थोड़ा-बहुत जो भी पाप किया हो जिससे मैं निम्नकोटि की योनि में अथवा नरक में गिर सकूँ, अये वासुदेव! अपने सङ्कीर्त्तन से आप सम्पूर्ण पाप को नष्ट कर दीजिये ।।१५-१६।। परमब्रह्म, परमधाम, परमपवित्र भगवान् विष्णु के संकीर्त्तन से सभी पापों का नाश हो जाय। विष्णु का वह स्थान जो गन्ध-स्पर्शादि से वर्जित है और जहाँ जाकर लौटना नहीं होता है वह मेरे पापों को नष्ट कर दे ।।१७-१८।। जो व्यक्ति इस पापनाशक स्तोत्र को पढ़ता अथवा सुनता है वह सभी कायिक, वाचिक, मानसिक पापों से मुक्त हो जाता है। इस सर्वाघमर्दन स्तोत्र का जप करने से मनुष्य सभी ग्रहों से मुक्त होकर विष्णु के परमधाम को प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्र और व्रत के करने से पाप-समूहों का नाश हो जाता है। प्रायश्चित्तों, स्तोत्रों, जपों और व्रतों से पापों का नाश हो जाता है। इसीलिए सिद्धि, भोग और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए इन स्तोत्रों और व्रतों को करना चाहिए ।।१९-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वपापप्रायश्चित्त वर्णन में पापनाशनस्तोत्र वर्णन
नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७२।।

---

१ क. ग. घ. °तः स्वप्ने या°। २ च. मानसम्। ३ क. ङ. संचित। ४ क. ङ. कृतं वा पापमर्थार्थं का°। च. कृतं वा पापमन्नार्थं का°। ५ तस्मात्पापे····भुक्तिमुक्तये च. पुस्तके न दृश्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तम्

अग्निरुवाच

प्रायश्चित्तं ब्रह्मणोक्तं वक्ष्ये पापोपशान्तिदम् । स्यात्प्राणवियोगफलो व्यापारो हननं स्मृतम् ।।१।।
रागाद्द्वेषात्प्रमादाच्च स्वतः परत एव वा । ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः ।।२।।
बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणाम् । यद्येको घातकस्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः ।।३।।
आक्रोशितस्ताडितो वा[1] धनैर्वा[2] परिपीडितः । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।४।।
औषधाद्युपकारे तु न पापं स्यात्कृते मृते । पुत्रं शिष्यं तथा भार्यां शासतो न मृते ह्यघम् ।।५।।
देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः । प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ।।६।।
गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।७।।
शिरः कपाली ध्वजवान्भैक्षाशी कर्म वेदयन् । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात् ।।८।।

अध्याय १७३

प्रायश्चित्त-वर्णन

अग्निदेव बोले–अब मैं उस प्रायश्चित्त को बतलाऊँगा जो ब्रह्मा के द्वारा कहा गया है और जो सभी पापों को शान्त करनेवाला है। हनन उस व्यापार को कहते हैं जिसका फल है प्राणों का वियोग ।।१।। ब्रह्मघातक उसे कहते हैं, जो राग, द्वेष अथवा प्रमाद से स्वयं ब्राह्मण की हत्या करता है या किसी अन्य से करवाता है ।।२।। यदि बहुत से शस्त्रधारी व्यक्तियों का एक ही उद्देश्य हो और उनमें से कोई एक ब्रह्महत्या कर दे तो सभी ब्रह्मघातक माने गये हैं ।।३।। आक्रोशित, ताडित अथवा धन से भलीभाँति परिपीड़ित होकर ब्राह्मण जिसके माध्यम से प्राणों का परित्याग करता है उसे ब्रह्मघाती कहा गया है.।।४।। औषध इत्यादि के द्वारा ब्राह्मण का उपकार किये जाने पर यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो भी पाप नहीं लगता है। इसी प्रकार पुत्र, शिष्य तथा स्त्री को दण्ड देने पर यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो भी पाप नहीं लगता है ।।५।। देश, काल, अवस्था, शक्ति और किये हुए पाप को ध्यान में रखकर यत्नपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिए, क्योंकि उसके बिना (पाप से) छुटकारा नहीं मिलता है ।।६।। गोहत्या अथवा ब्रह्महत्या करनेवाले को तुरन्त ही अपने प्राणों का परित्याग कर देना चाहिए अथवा अपने आप को अग्नि में झोंक देना चाहिए। इससे ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल जाती है ।।७।। ब्रह्महत्या करनेवाले को बारह वर्षों तक अपने कर्म को जानते हुए, कपाल और दण्ड धारण करके, भिक्षान्न का भक्षण करते हुए मितभोगी होना चाहिए, इससे वह शुद्ध हो जाता है ।।८।। यदि अनिच्छा से ब्राह्मणहत्या हो जाय तो छह वर्षों

---

१ क. ङ. वा बन्धैर्वा। २ च. °र्वाऽपि वियोजितः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षड्भिर्वर्षैः[1] शुद्धचारी ब्रह्महा पूयते नरः। विहितं यदकामानां कामात्तु द्विगुणं स्मृतम् ।।९।।
प्रायश्चित्तं प्रवृत्तस्य वधे स्यात्तु त्रिवार्षिकम्[2]। [3]ब्रह्मघ्नि क्षत्रे द्विगुणं विट्शूद्रे द्विगुणं त्रिधा ।।१०।।
अन्यत्र विप्रे सकलं पादोनं क्षत्रिये मतम्। वैश्येऽर्धपादं [4]क्षत्रे स्याद्वृद्धस्त्रीबालरोगिषु ।।११।।
तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतम् (:)। वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ।।१२।।
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। पञ्चगव्यं पिवेद्गोघ्नो मासमासीत संयतः[5] ।।१३।।
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति। कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं वा पादह्रासो नृपादिषु ।।१४।।
अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम्। हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्ध[6] व्रतं द्विजः ।।१५।।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेमतिलादिकम्। मुष्टिचपेटकीलेन तथा शृङ्गादिमोटने ।।१६।।
लगुडादिप्रहारेण गोवधं[7] तं विनिर्दिशेत्। दमने दामने चैव शकटादौ च योजने[8] ।।१७।।
स्तम्भशृङ्खलापाशैर्वा मृते पादोनमाचरेत्। काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्ठके ।।१८।।
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम्। मार्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः ।।१९।।

तक इसी प्रकार शुद्ध आचरण करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है, किन्तु यदि वह यही कर्म इच्छा से करता है, तो उसे दुगुना प्रायश्चित्त करना पड़ता है ।।९।। जो व्यक्ति प्रायश्चित्त में प्रवृत्त होता है (किन्तु वास्तव में ब्रह्महत्या नहीं करता है) उसे ब्राह्मण होने पर तीन वर्ष तक, क्षत्रिय होने पर छह वर्ष तक, वैश्य होने पर बारह वर्ष तक और शूद्र होने पर अठारह वर्ष तक प्रायश्चित्त करना पड़ता है ।।१०।। ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय का वध करने से प्रायश्चित्त की अवधि एक चौथाई भाग कम हो जाती है। वैश्य के वध में अष्टमांश प्रायश्चित्त कम होता है और शूद्र के वध में यह षोडशांश कम हो जाता है। अनपराधिनी स्त्री का वध करने से शूद्र-हत्या के समान प्रायश्चित्त करना चाहिए। गोहत्या करनेवाले को पञ्चगव्य पीकर एक मास तक संयमपूर्वक रहना चाहिए ।।११-१३।। उसे गोशाला में शयन करना चाहिए, गायों का अनुगमन करना चाहिए और गायों का दान करना चाहिए। इससे वह शुद्ध हो जाता है। उसे कृच्छ्र अथवा अतिकृच्छ्र नामक व्रत भी करना चाहिए। यही पाप राजा के द्वारा किये जाने पर प्रायश्चित्त चतुर्थांश कम हो जाता है ।।१४।। अतिवृद्धा, अतिकृश, अत्यन्त छोटी और रोगिणी गाय की हत्या करके ब्राह्मण को पूर्वोक्त विधि से आधा व्रत करना चाहिए ।।१५।। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और यथाशक्ति सोना तथा तिल आदि दान में देना चाहिए। गोवध उसे कहते हैं जिसमें घूँसे, चाँटे, कील और लाठी आदि के प्रहार से गाय की हत्या हो जाती है अथवा उसके सींग आदि को मोड़ दिया जाता है। यदि गाय की हत्या उस समय हो जब उसे सँभाला जा रहा हो अथवा उसे गाड़ी आदि में जोता जा रहा हो अथवा उसकी हत्या स्तम्भ शृंखला और जाल आदि के द्वारा हो जाय तो प्रायश्चित्त की मात्रा कम हो जाती है ।।१६-१७$\frac{1}{2}$।। लकड़ी के द्वारा गोहत्या होने पर सान्तपन और लोष्ठ से हत्या होने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। इसी प्रकार पत्थर और शस्त्र से गोहत्या होने पर क्रमशः तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक व्रतों का अनुष्ठान करना चाहिए ।।१८-१८$\frac{1}{2}$।। बिल्ली, गोह, नेवले, मेंढक, कुत्ते और पक्षी की

---

१ क. ख. °र्षैः कृच्छ्रचा°। २ क. ङ. °र्षिके। ब्र°। ३ 'ब्रह्मघ्नि'''त्रिधा' इत्यत्र 'ब्रह्मघ्नक्षत्रद्विगुणविट्छूद्रे त्रिगुणं द्विधा' क. ङ. पुस्तकयोर्दृश्यते। ४ क. ङ. च. शूद्रे। ५ ग. संयुतः। ६ च. °रेदेकं व्रत° च यत्। ब्रा°। ७ घ. °घं तत्र नि°। ८ क. ङ. च. योजिते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् । व्रतं रहस्ये रहसि प्रकाशेऽपि प्रकाशकम् ।।२०।।
प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुपत्तये । पानकं द्राक्षमधुकं खार्जूरं तालमैक्षवम् ।।२१।।
माध्वीकं टङ्कमाधी (ध्वी) कं गैरेयं नारिकेलजम् । न[1] मद्यान्यपि मद्यानि पैष्टी मुख्या सुरा स्मृता ।।२२।।
त्रैवर्णस्य[2] निषिद्धानि पीत्वा तप्तं ह्ययः शुचिः । कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।।२३।।
सुरापानापनुत्त्यर्थं [3]वनवासी जटा ध्वजी । अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।।२४।।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः । मद्यभाण्डस्थिताश्चापः पीत्वा सप्तदिनं व्रती ।।२५।।
चाण्डालस्य तु पानीयं पीत्वास्यात्षड्दिनं व्रती । चण्डालकूपभाण्डेषु पीत्वा सान्तपनं चरेत् ।।२६।।
पञ्चगव्यं त्रिरात्रान्ते पीत्वाऽन्त्यजजलं द्विजः । मत्स्यकण्टकशम्बूकशङ्खशुक्तिकपर्दिकान् ।।२७।।
[5]पीत्वा नवोदकं चैव पञ्चगव्येन शुध्यति । [4]शवकूपोदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ।।२८।।
अन्त्यावसायिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । आपात्काले शूद्रगृहे मनस्तापेन शुध्यति ।।२९।।
शूद्रभाजनभुग्विप्रः पञ्चगव्यादुपोषितः । [6]कटुपक्वं स्नेहपक्वं स्नेहं च दधिसक्तवः ।।३०।।

हत्या हो जाने पर तीन दिनों तक दुग्ध पीकर कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। उपर्युक्त पाप यदि एकान्त में हो तो उसके प्रायश्चित्त के लिए किये गये व्रत का अनुष्ठान भी एकान्त में होना चाहिए। किन्तु यदि ये कार्य (पाप) सबके सामने हों तो व्रत का अनुष्ठान भी सबके सामने होना चाहिए। सभी पापों की शान्ति के लिए सौ बार प्राणायाम करना चाहिए ।।१९-२०$\frac{1}{2}$।। अंगूर, मधु, खजूर, ताल और गन्ने से बनी हुई मदिरा, माध्वीक, टङ्कमाध्वीक, गैरेय और नारियल से बनी हुई मदिराएँ मदिराएँ नहीं हैं। मुख्य मदिरा पैष्टी मानी गयी है। तीन उच्चवर्णों के लिए मदिरापान निषिद्ध है किन्तु यदि वे उसका पान कर ही लें तो वे व्रत और स्नान से इस पाप से निवृत्त हो जाते हैं। उसे या तो एक वर्ष तक किनकी खाना चाहिए या रात्रि में एक बार पिन्नी खाकर रहना चाहिए ।।२१-२३।। सुरापान से उत्पन्न पाप को नष्ट करने के लिए ध्वजा और जटाओं को धारण करके वनवास ग्रहण करना चाहिए। अज्ञानवश मदिरा अथवा मलमूत्र के सम्पर्क में आये हुए पदार्थ का भक्षण करने पर तीनों वर्णों के द्विजातियों को पुनः वही संस्कार करने से सात दिनों तक व्रत करना चाहिए। चाण्डाल के द्वारा पीने योग्य जल का पान करने से छह दिनों तक व्रत करना चाहिए किन्तु चण्डाल के कुएँ और पात्रों का जल पीने से सान्तपन व्रत का आचरण करना चाहिए ।।२४-२६।। अन्त्यज के जल को पीनेवाले ब्राह्मण को तीन रातों के बाद पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। मछली, काँटे, घोंघे, शङ्ख, शुक्ति और कीचड़ से मिले हुए तुरन्त एकत्रित जल का पान करने से पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है। शव से युक्त कुएँ के जल को पीकर त्रिरात्र व्रत से शुद्धि होती है ।।२७-२८।। अन्त्यावसायि (निषादस्त्री और चण्डाल पुरुष से उत्पन्न सन्तान) के अन्न का भक्षण करके चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। आपत्तिकाल में शूद्र के घर में भोजन करके मनस्ताप से ही शुद्धि हो जाती है ।।२९।। शूद्र के पात्रों में भोजन करनेवाला ब्राह्मण पञ्चगव्य से ही शुद्ध हो जाता है। किन्तु तेल और मक्खन में पके हुए

---

१ ख. ग. न सेव्यान्य°। २ क. ख. बालवासा। ३ क. ख. बालवासा। ४ च° ककीटास्थिशङ्ख°। ५ च. शवोदकं गृहीत्वा तुत्रि°। ६ कटुपक्वं...दधिसक्तवः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शूद्रादनिन्द्यान्येतानि गुडक्षीररसादिकम् । अस्नातभुक्चोपवासी दिनान्ते तु जपाच्छुचिः ।।३१।।
मूत्रोच्चार्यशुचिर्भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति । केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टं च कामतः ।।३२।।
भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं वाऽप्युदक्यया । काकाद्यैरवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ।।३३।।
गवाद्यैरन्नमाघ्रातं भुक्त्वा त्र्यहमुपावसेत् । रेतो विण्मूत्रभक्षी तु प्राजापत्यं समाचरेत् ।।३४।।
चान्द्रायण नवश्राद्धे पराको मासिके मतः । पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ।।३५।।
आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके । पूर्वेद्युर्वार्षिकं श्राद्धं परेद्युः पुनराब्दिकम् ।।३६।।
निषिद्धभक्षणे भुक्ते प्रायश्चित्तमुपोषणम् । भूस्तृणं लशुनं भुक्त्वा शिग्रुकं[1] कृच्छ्रमाचरेत् ।।३७।।
अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं पयः पिबेत् ।।३८।।
मधु मांसं च योऽश्नीयाच्छावं सूतकमेव वा । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मचारी यतिर्व्रती ।।३९।।
अन्यायेन परस्वापहरणं स्तेयमुच्यते । मुसलेन हतो राज्ञा स्वर्णस्तेयी विशुध्यति ।।४०।।
अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः । एककालं समश्नानो द्वादशाब्दे विशुध्यति ।।४१।।
रक्मस्तेयी पुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्तेयं कृत्वा सुरां पात्वा कृच्छ्रं चाब्दं चरेन्नरः ।।४२।।

पदार्थ, दही, सत्तू, गुड़, दुग्ध और रस इत्यादि यदि शूद्र के भी हों तो प्रशस्त होते हैं ।।३०-३१।। मलमूत्र-त्याग करने के बाद अशौचावस्था में बिना पवित्र हुए भोजन करने से त्रिरात्र-व्रत से शुद्धि होती है। ऐसे अन्न को खाने से जो केश और कीड़ों से युक्त हो, जिसे पैरों के द्वारा छुआ गया हो, जो भ्रूण हत्या करनेवाले के द्वारा देखा गया हो, जिसे वाराङ्गना ने स्पर्श किया हो, जिसे कौवे आदि द्वारा चाटा गया हो, जिसे कुत्ते ने छू लिया हो और गो आदि ने जिसे सूँघ लिया हो उस अन्न को खाकर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। रेतस्, मल और मूत्र भक्षण करनेवाले को प्राजापत्य व्रत का आचरण करना चाहिए ।।३२-३४।। नव दिन के श्राद्ध में 'चान्द्रायण' और मासिक श्राद्ध में 'पारक' नामक व्रत माना गया है। तीन पक्ष के श्राद्ध में 'अतिकृच्छ्र' और छमाही के श्राद्ध में 'कृच्छ्र' नामक व्रत का आचरण करना चाहिए। वार्षिक श्राद्ध में 'पादकृच्छ्र' और पुनराब्दिक श्राद्ध में 'एकाह व्रत' करना चाहिए। पहले दिन का श्राद्ध वार्षिक और दूसरे दिन का श्राद्ध पुनराब्दिक कहलाता है ।।३५-३६।। निषिद्ध भक्षण करने का प्रायश्चित्त उपवास है। भूस्तृण और लहसुन खाकर 'शिशुक' नामक कृच्छ्र-व्रत का आचरण करना चाहिए। अभोज्यों के अन्न को खाकर स्त्री और शूद्रों के उच्छिष्ट तथा मांस और अभक्ष्य का भक्षण करके सात रात दुग्धपान करके रहना चाहिए। मृत्यु से उत्पन्न सूतक के समय जो मधु और मांस का सेवन करता है उसे प्राजापत्य नामक 'कृच्छ्र-व्रत' का आचरण करना चाहिए तथा उसे ब्रह्मचारी, यति और व्रती के रूप में रहना चाहिए ।।३७-३९।। अन्याय से दूसरों के धन का अपहरण करना चोरी कहलाता है। सोने को चुरानेवाला व्यक्ति राजा के द्वारा मूसल से ताड़ित होने पर शुद्ध हो जाता है ।।४०।। उसे भूमि पर सोना चाहिए, जटाओं को धारण करना चाहिए, जड़ों और फलों का भोजन करना चाहिए अथवा उसे एक समय ही भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से वह बारह वर्ष में शुद्ध हो जाता है ।।४१।। सोना चुरानेवाला, मदिरा पान करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुपत्नी के साथ समागम करनेवाला, चोरी करनेवाले और मदिरा

---

१ ग. शिशुक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक् ।।४३।।
मनुष्याणां तु हरणे[1] स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च । वापीकूपतडागानां शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ।।४४।।
भक्ष्यभोज्यापहरणे[2] यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ।।४५।।
तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ।।४६।।
पितुः पत्नीं च भगिनीमाचार्यतनयां तथा । [3](आचार्याणीं[4](नीं)सुतांस्वांचगच्छंश्चगुरुतल्पगः ।।४७।।
गुरुतल्पेऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वर्णाद्ययोमये । सूर्मीं ज्वलन्तीं चाऽऽश्लिष्य मृत्युना स विशुध्यति ।।४८।।
चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यस्य गुरुतल्पगः) । एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।।४९।।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां कारयेद्व्रतम् । रेतः सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीषु सुतासु च ।।५०।।
सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते । यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं[5] द्विजः ।।५१।।
तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा ।।५२।।
चाण्डालीं पुक्कसीं[6] वाऽपि स्नुषां च भगिनीं सखीम् । मातुः पितुः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् ।।५३।।
मातुलानीं स्वसारं च सगोत्रामन्यमिच्छतीम् । शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।५४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७३।।

पीनेवाले को एक वर्ष तक कृच्छ्र-व्रत का आचरण करना चाहिए। मणि, मोती मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और पत्थर चुरानेवाले को बारह दिन तक किनकी खाकर रहना चाहिए। मनुष्यों, स्त्रियों, खेतों, घरों, बावलियों और तालाबों का अपहरण करनेवाले की शुद्धि चान्द्रायण-व्रत से मानी गयी है ।।४२-४४।। भक्ष्य, भोजन, सवारी, शय्या, आसन, पुष्पकन्द और फलों को चुरानेवाले की शुद्धि पञ्चगव्य से हो जाती है ।।४५।। तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा और मांस चुरानेवाले को तीन रातों तक बिना भोजन किये रहना चाहिए। माता, बुआ, आचार्य-पुत्री, आचार्य-पत्नी और अपनी पुत्री से सहवास करनेवाला गुरुतल्पग कहलाता है। इस प्रकार के व्यक्ति को जलते हुए लाल-लाल लोहे से बनी हुई स्त्री-मूर्ति का आलिङ्गन करके आत्मदाह करना चाहिए अथवा उसे तीन महीने तक चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए ।।४६-४८ $\frac{1}{2}$।। यही नियम पतित स्त्रियों के साथ सहवास करनेवाले के लिए भी है। जो व्यक्ति परपत्नी के साथ सहवास करता है उसे उस स्त्री से उपर्युक्त व्रत को करवाना चाहिए। कुमारी, चाण्डाल-कन्या, सगोत्र स्त्री और अपनी पुत्री के साथ सहवास करनेवाले के लिए आत्महत्या का विधान है। एक रात्रि शूद्रा के साथ सहवास करनेवाला ब्राह्मण भिक्षान्न खाकर अथवा तीन वर्षों तक अपने मन्त्र का जप करने से शुद्ध होता है ।।४९-५१ $\frac{1}{2}$ ।। चाची, भाई की स्त्री, चाण्डाली, बुआ, बहन की सखी, मौसी, शरण आयी हुई स्त्री, मामी, सगोत्र स्त्री, शिष्यपत्नी, गुरुपत्नी और जिसकी इच्छा न हो ऐसी स्त्री के साथ सहवास करनेवाले को चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए ।।५२-५४।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७३।।

---

१ च. °णे यानशय्यासनस्य। २ क. ख. णे परिश°। ३ आचार्याणीं···गुरुतल्पगः क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति। ४ च. °चार्यस्य स्नुषां चैव ग°। ५ क. ख. ग. ङ. °वनाद्द्विजः। ६ क. ख. ग. ङ. °सीं व्याधीं °स्नु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

अग्निरुवाच

[1]देवाश्रमार्चनादीनां प्रायश्चित्तं[2] तु लोपतः। पूजालोपे चाष्टशतं जपेद्द्विगुणपूजनम् ।।१।।
पञ्चोपनिषदै [3]र्मन्त्रैर्हुत्वा ब्राह्मणभोजनम्। सूतिकान्त्यजकोदक्यास्पृष्टे देवे शतं जपेत् ।।२।।
पञ्चोपनिषदैः पूजां द्विगुणं[4] स्नानमेव च। विप्रभोज्यं होमलोपे होमस्नानं तथाऽर्चनम् ।।३।।
होमद्रव्ये मूषिकाद्यैर्भक्षिते कीटसंयुते। तावन्मात्रं परित्यज्य प्रोक्ष्य[5] देवादि पूजयेत् ।।४।।
अंकुरार्पणमात्रं तु च्छिन्नं भिन्नं परित्यजेत्[6]। अस्पृश्यैश्चैव संस्पृष्टे अन्यपात्रे तदर्पणम् ।।५।।
देवमानुषविघ्नघ्नं[7] पूजाकाले तथैव च। मन्त्रद्रव्यादिव्यत्यासे[8] मूलं जप्त्वा पुनर्जपेत्[9] ।।६।।
कुम्भे नष्टे शतजपो देवे तु पतिते करात्। भिन्ने नष्टे चोपवासः शतहोमाच्छुभं[10] भवेत् ।।७।।
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते। प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ।।८।।

अध्याय १७४

प्रायश्चित्त

अग्निदेव बोले–किसी देवता आदि के पूजन के छूट जाने पर प्रायश्चित्तस्वरूप उसी देवता के मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए और देवता का पूजन दो बार करना चाहिए ।।१।। पञ्चोपनिषद् मन्त्रों से हवन करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। यदि मूर्ति का स्पर्श गणिका, प्रसूता स्त्री अथवा अन्त्यज जाति के व्यक्ति के द्वारा हो जाय तो उस देवता से सम्बद्ध मन्त्रों का सौ बार जप करना चाहिए ।।२।। यदि असावधानी से कोई होम कार्य करने से रह जाय तो पञ्चोपनिषद् मन्त्रों से दुगुनी पूजा करके होम-स्नान, देवार्चन और ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। यदि होम की सामग्री को चूहे आदि खा लें या उसमें कीड़े लग जायँ तो उतने अंश को निकालकर और सामग्री को धोकर देवता का पूजन करना चाहिए ।।३-४।। जहाँ देवता को अंकुरमात्र अर्पण करना हो वहाँ उसके छिन्न-भिन्न भाग को छोड़ देना चाहिए। यदि अछूतों के द्वारा उसका स्पर्श हो जाय तो उसे अन्य पात्र में रखकर देवता को अर्पित करना चाहिए। पूजा के समय देवताओं तथा मनुष्यों से उत्पन्न होनेवाले विघ्नों का नाश करने के लिए और मन्त्र तथा द्रव्यादि के उलट जाने पर मूल मन्त्र का पुनः-पुनः जप करना चाहिए ।।५-६।। कलश के नष्ट हो जाने पर मन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए। देवता की मूर्ति हाथ से गिर जाने पर, उसके टूट जाने पर और उसके नष्ट हो जाने पर उपवास और सौ बार होम करने पर शुभ होता है ।।७।। किसी पाप के हो जाने पर जिस मनुष्य को उसका पश्चात्ताप होता है उसके लिए एकमात्र हरि-स्मरण ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ।।८।।

---

१ ख. ग. °श्रयार्च°। २ ख. ग. °श्चित्तमशेषतः। ३ °च. °त्रैर्दत्त्वा ब्रा°। ४ ग. द्विगुणां। ५ ग. प्रेक्ष्य। ६ क. ङ. °त्। स्पृशेच्चैव तु सं°। ७ क. ङ. °विप्रघ्नं। ८ ख. ग. °दि चाभ्यासे। ९ च. °नर्यजेत्। १० क. ङ. शत° होमो विभावसौ। कृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चान्द्रायणं पराको वा प्राजापत्यमघौघनुत् । सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्रजप्यमघौघनुत् ।।९।।
गायत्री प्रणवस्तोत्रमन्त्रजप्यमघान्तकम् । काद्यैराबीजसंयुक्तैराद्यैराद्यै [1]स्तदन्तकैः ।।१०।।
सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्राः कोट्यधिकाः पृथक् । ॐ ह्रीमाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नामोन्ताः सर्वकामदाः ।।११।।
[2]नृसिंहद्वादशाष्टार्णमालामन्त्राद्यघौघनुत्[3] । आग्नेयस्य पुराणस्य पठनं श्रवणादिकम् ।।१२।।
[4]द्विविद्यारूपको विष्णुरग्निरूपस्तु गीयते । परमात्मा[5] देवमुखं सर्ववेदेषु गीयते ।।१३।।
[6]प्रवृत्तौ तु निवृत्तौ तु इज्यते भुक्तिमुक्तिदः । अग्निरूपस्य विष्णोर्हि हवनं ध्यानमर्चनम् ।।१४।।
जप्यं स्तुतिश्च प्रणतिः शरीरस्थाद्यघौघनुत्[7] । [8]दश स्वर्णानि दानानि धान्यद्वादशमेव च ।१५।।
तुलापुरुषमुख्यानि (णि) महादानानि षोडश । अन्नदानानि मुख्यानि सर्वाण्यघहराणि हि ।।१६।।
तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकालके[9] । व्रतादि सूर्येशशक्तिश्रीशादेरघघातनम् ।।१७।।
गङ्गा गया प्रयागश्च काश्ययोध्या ह्यवन्तिका । कुरुक्षेत्रं पुष्करं च नैमिषं पुरुषोत्तमः ।।१८।।
शालग्रामप्रभासाद्यं तीर्थं चाघौघघातकम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिरिति ध्यानमघौघनुत् ।।१९।।
पुराणं ब्रह्म चाऽऽग्नेयं ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । अवताराः सर्वपूजाः प्रतिष्ठाप्रतिमादिकम् ।।२०।।

चान्द्रायण, पराक और प्राजापत्य व्रत पापसमूह को नष्ट करनेवाले हैं। सूर्य, ईश्वर, शक्ति और विष्णु आदि के मन्त्रों के जाप भी पापपुञ्ज को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार गायत्री और प्रणवस्तोत्र मन्त्रों का जप भी पापों का नाशक होता है। सूर्य, ईश्वर और नारायण आदि के मन्त्र तथा वे मन्त्र जो 'क' से प्रारम्भ होकर 'र' से अन्त होते हैं सभी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाले हैं किन्तु इन मन्त्रों के आदि में 'ॐ ह्रीं' आना चाहिए। तदनन्तर चतुर्थी एक वचन में देवता के नाम का प्रयोग करके अन्त में 'नमः' पद का प्रयोग करना चाहिए। नृसिंह के लिए पढ़े गये द्वादशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्रादि पापसमूह को नष्ट करनेवाले होते हैं। उसी प्रकार अग्निपुराण का पाठ और श्रवण भी पापों का नाशक होता है ।।९-१२।। द्विविद्यारूप विष्णु अग्निरूप होता है। जिसका गान सभी वेदों में परमात्मा और देवमुख के रूप में भी किया जाता है। अग्निरूप विष्णु का हवन, ध्यान और अर्चन प्रवृत्ति कर्म और निवृत्ति कर्म में भोग और मोक्ष को प्रदान करनेवाला होता है। अग्नि के मन्त्रों का जप करना, उसकी स्तुति करना अथवा उसको प्रणाम करना सभी शरीरस्थ पापों का नाश कर देता है ।।१३-१४$\frac{1}{2}$।। सोने का दस प्रकार का दान, बारह प्रकार का धान्यों का दान, तुलादान, सोलह प्रकार के महादान और मुख्य अन्नदान सभी प्रकार के पापों का नाश करनेवाले हैं ।।१५-१६।। सूर्य, ईश, शक्ति और नारायण आदि के वे व्रतादि जो शुभ तिथि, वार, नक्षत्र, सङ्क्रान्ति और मन्वादि काल में किये जाते हैं, सभी पापों के नाशक होते हैं ।।१७।। गङ्गा, गया, प्रयाग, काशी, अयोध्या, अवन्तिका, कुरुक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र, नैमिषक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम और प्रभासादि तीर्थ पाप-पुञ्ज के नाशक हैं। 'अहं ब्रह्म परं ज्योतिः' इस मन्त्र का जप सभी पापों का नाशक है ।।१८-१९।। अग्निपुराण, ब्रह्मपुराणं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, विष्णु के सभी अवतार,

---

१ क. ङ. काष्ठै रात्राञ्जसं°। २ च. °दशस्तोत्रमा°। ३ क. ग. ङ. °शार्णं तु मा°। ४ 'द्विविद्यारूपको···गीयते' इत्यत्र च. पुस्तके ''मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यग्निरप्यत्र गीयते'' इतीदं दृश्यते। ५ क. ङ. °त्मा सर्वमु°। ६ क. ङ. °वृत्तैस्तु निवृत्तैस्तु भुज्य°। ७ च. °त्। शतस्वर्णादिपानानि धान्यानि द्वा°। ८ 'दशस्वर्णानि···धान्यद्वादशमेव च' इत्यत्र ''यदा स्वर्णादिदानादिध्यानाद्या दश मेखलाः।'' इति क. ङ. पुस्तकयोर्वर्तते। ९ ख. ग. °दिलग्नके। व्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्योतिःशास्त्रपुराणानि स्मृतयस्तु तपो व्रतम्। अर्थशात्रं च सर्गाद्या आयुर्वेदो धनुर्मतिः ।।२१।।
शिक्षा छन्दो व्याकरणं निरुक्तं चाभिधानकम्। कल्पो न्यायश्च मीसांसा ह्यन्यत्सर्वं हरिः प्रभुः ।।२२।।
एको द्वयोर्यतो यस्मिन्यः सर्वमिति वेद यः। तं दृष्ट्वाऽन्यस्य पापानि विनश्यन्ति हरिश्च सः ।।२३।।
विद्याष्टादशरूपश्च[1] सूक्ष्मः स्थूलोऽपरो हरिः। ज्योतिः सदक्षरं ब्रह्म परं विष्णुश्च निर्मलः ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७४।।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपरिभाषा

अग्निरुवाच

तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्क संक्रमे[2]। ([3]नृस्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वशिष्ठ शृणु तत्क्रमात् ।।१।।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्। नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः) ।।२।।
व्रतं हि कर्तृसंतापात्तप इत्यभिधीयते। इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ।।३।।
अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते। व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विजः (जाः) ।।४।।

उनकी प्रतिमाएँ, ज्योतिःशास्त्र, पुराण, स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सर्ग इत्यादि, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दस्, व्याकरण, निरुक्त, कोश, कल्प, न्याय, मीमांसा इत्यादि भगवान् हरि के विभिन्न रूप हैं ।।२०-२२।। जो व्यक्ति परमात्मा को जानता है, यह जानता है कि यह प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं और किसमें लीन होंगे। उसके दर्शन से ही सारे पापों का नाश होता है क्योंकि वह हरिरूप ही होता है। हरि अष्टादश विद्याओं का रूप है, वह सूक्ष्म, स्थूल और अपर है। वही ज्योति है, वही सत् है, वही अक्षर है। वही परब्रह्म है और वही निर्मल विष्णु है ।।२३-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रायश्चित्त कथन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७४।।

अध्याय १७५

व्रत-परिभाषा

अग्निदेव बोले-वशिष्ठ! अब मैं तिथि, दिन, नक्षत्र, मास, ऋतु, वर्ष तथा अयनों में किये जानेवाले स्त्री-पुरुषों के व्रत आदि का क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ।।१।। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत है। उसी को तप भी कहते हैं। दम आदि तो इसी व्रत के विशेष नियम हैं। व्रत करने में कष्ट होने के कारण इन्हें तप कहा जाता है और इनके द्वारा इन्द्रिय-समूहों का नियमन करने से यह नियम भी कहलाते हैं ।।२-३।। अये ब्राह्मणो! जो ब्राह्मण अग्न्याधान इत्यादि नहीं करते हैं, उनका कल्याण व्रत, उपवास, नियम तथा विविध (प्रकार से) दोनों से हुआ करता है। देवता लोग ऐसे ब्राह्मणों

---

१ ग. च. श्च मूर्तस्थू°। २ च. मे°। राज्य व्र°। ३ नृस्त्रीव्रतादि...दमादयः पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः । उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ।।५।।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः । [1]कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकम् ।।६।।
शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् । पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।।७।।
उपवासे न शस्यन्ति[2] दन्तधावनमञ्जनम् । दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतं चरेत् ।।८।।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् । उपवासः प्रदुष्येत दिवा स्वप्नाच्च[3] मैथुनात् ।।९।।
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ।।१०।।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः । पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ।।११।।
नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः । क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ।।१२।।
तिलमुद्गादृते[4] शस्यं शस्ये गोधूमकोद्रवौ । चीनकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम्[5] ।।१३।।
शितधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः । ब्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ।।१४।।
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः । कूष्माण्डालाबुवार्ताकान्पालङ्की पूतिकां त्यजेत् ।।१५।।
चरुभैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधिघृतं पयः । श्यामाकशालिनीवाराय(या)बकं मूलतण्डुलम् ।।१६।।
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् । मधु मांसं बिहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम् ।।१७।।

से प्रसन्न होकर भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। पापों से विमुख होकर गुणों (धर्मों) के संसर्ग में रहने को ही उपवास कहा जाता है ।।४-५।। इसमें सभी भोगों का परित्याग कर देना पड़ता है। उपवास के दिन कांस्यपात्र, मांस, मसूर की दाल, चना, कोदो, शाक, मधु, परान्न, स्त्री, पुष्प, अलङ्कार, वस्त्र, धूप, गन्ध, लेप, दन्तधावन तथा अञ्जन का व्यवहार नहीं करना चाहिए। अपितु प्रातःकाल दातून के बदले पञ्चगव्य से मुँह धोकर व्रत का आचरण करना चाहिए ।।६-८।। बार-बार जलपान करने, ताम्बूल भक्षण करने से, दिन में सोने से तथा मैथुन करने से उपवास नष्ट हो जाता है ।।९।। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्न्याधान, सन्तोष और अस्तेय-इन दस धर्मों का सभी व्रतों में समान रूप से निर्वाह करना चाहिए ।।१०-१०½।। उस दिन पवित्र मन्त्रों का जप और यथाशक्ति हवन करना चाहिए। नित्यस्नान, अल्पाहार और गुरु, देवता तथा द्विजों का पूजन तो करना ही चाहिए। खारी वस्तुएँ, शहद, लवण, मदिरा तथा मांस का परित्याग कर देना चाहिए ।।११-१२।। तिल, मूँग के अतिरिक्त सभी धान्य, गेहूँ, कोदो, चना, देवधान्य, शमीधान्य (उड़द), गुड़, साँवाँ, बाजार की वस्तुएँ तथा मूल इनकी गणना क्षार समूह में होती है। व्रीहि, षष्टिक, मूँग, मटर, तिल, जौ, साँवाँ, नीवार (फसही के धान) तथा गेहूँ आदि अन्न व्रत में ग्राह्य हैं ।।१३-१४।। कद्दू, बैगन, लौकी, पालक और पोय ये वस्तुएँ अग्राह्य हैं। चरु, भिक्षान्न, सत्तू, शाक, दही, घी, दूध, साँवाँ, चावल, फसही के चावल, जौ का सत्तू, मूल तण्डुल (धान्य-विशेष) तथा हविष्य-ये वस्तुएँ रात्रिव्रत और अग्निकार्य आदि में ग्राह्य हुआ करती हैं ।।१५-१६½।। मधु और मांस को छोड़कर प्रायः अन्य वस्तुएँ व्रत में हितकारक ही मानी जाती हैं। प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करनेवाले

---

१ ख. ग. °स्यं माषं म°। २ ग. दुष्यन्ति। ३ ख. ग. °प्नाक्षमै°। ४ क. ङ. °ते शाम्बं मत्स्यगो°। ५ ख.ग.°म्। स्विन्नं धा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् । [1]त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ।।१८।।
([2]एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ।।१९।।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं[3] स्मृतम् ।।२०।।
पृथक्सान्तपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः । सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनोऽघहा ।।२१।।
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा । महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः) ।।२२।।
पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः[4] । एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ।।२३।।
कपिलागोः पलं मूत्रमर्धाङ्गुष्ठं च गोमयम् । क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम् ।।२४।।
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् । गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।।२५।।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्येति कुशोदकम् ।।२६।।
ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हि ष्ठेत्यृचं जपेत् । अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा ।।२७।।
पीत्वा[5] सर्वाघनिर्मुक्तो[6] विष्णुलोकी ह्युपोषितः । उपवासी सायंभोजी[7] यतिः षष्ठात्मकालवान् ।।२८।।

द्विज को तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सांयकाल और तीन दिन बिना माँगे ही मिले हुए अन्न का भोजन करना चाहिए ।।१७-१८।। तदनन्तर तीन-तीन दिन तक बिना भोजन किये ही रहना चाहिए। 'अतिकृच्छ्र' नामक व्रत का अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन तक एक-एक ग्रास भोजन करे, तीन दिन पूर्ववत् भोजन करे और अन्त में तीन दिन उपवास करे। 'कृच्छ्रसान्तपन' नामक व्रत गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी तथा कुशों को धोनेवाला जल पी करके एक रात उपवास करना चाहिए ।।१९-२०।। पृथक् सान्तपन व्रत में उक्त वस्तुओं का उपयोग करते हुए छह दिनों तक उपवास करना होता है। पापनाशक महासान्तपन व्रत में सात दिन तक उपवास करना पड़ता है। बारह दिनों तक उपवास करने से सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला 'पराक' नामक व्रत सम्पन्न होता है और छत्तीस दिन तक उपवास करने से 'महापराक' व्रत निष्पन्न होता है ।।२१-२२।। चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान एक मास तक किया जाता है। इसमें पूर्णिमा के दिन पन्द्रह कवल खाकर उसके बाद प्रतिदिन एक-एक कवल घटाते-घटाते अमावस्या के दिन बिल्कुल भोजन नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए अगली पूर्णिमा को व्रत समाप्त कर देना चाहिए ।।२३।। कपिला गाय का मूत्र एक पल, गोबर आधे अँगूठे के बराबर, दूध सात पल, दही दो पल, घी एक पल और कुशों को धोनेवाला जल एक पल लेना चाहिए। गायत्री मन्त्र से कपिला गौ का मूत्र 'गन्धद्वारा' मन्त्र से गोबर, 'आप्यायस्व' मन्त्र से दूध, 'दधिक्राव्णो' मन्त्र से दही, 'तेजोऽसि' मन्त्र से घी और 'देवस्य' मन्त्र से कुशोदक इकट्ठा करना चाहिए। इस प्रकार से ब्रह्मकूर्च (व्रत) का अनुष्ठान करना चाहिए। तदनन्तर 'अघमर्षण' सूक्त और प्रणव से युक्त 'आपो हि ष्ठा' ऋचा का जप करना चाहिए। इस प्रकार से बनाये हुए पञ्चगव्य का पान करके और उक्त प्रकार से उपवास करके मनुष्य विष्णुलोक में पहुँच जाता है ।।२४-२७$\frac{१}{२}$।। उपवास करनेवाला और सायंकाल भोजन करनेवाला यति, मांस का भक्षण न करनेवाला, अश्वमेधयाग करनेवाला और सत्यवादी मनुष्य

---

१ ख. ग. त्र्यहमन्नं च। २ एकैकं...प्रकीर्तितः नास्ति च. पुस्तके। ३ ख. ग. चान्द्रायणं। ४ क. °वास्यामभो°। ५ च. नीत्वा। ६ °क्तो ब्रह्मलो°। ७ ख. ग. °जी यश्च षष्ठान्नका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिवं व्रजेत् । अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ।।२९।।
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ।।३०।।
दर्शाद्दर्शस्तु चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहश्चैव सावनः । मासः सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ।।३१।।
सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः । आब्दिके पित्रकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ।।३२।।
आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः । कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः कन्यां[1] गच्छतु वा न वा ।।३३।।
मासि संत्वत्सरे चैव तिथिद्वैधं[2] यदा भवेत् । तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ।।३४।।
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः । दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ।।३५।।
युग्माग्निकृतभूतानि- षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याऽथ पूर्णिमा ।।३६।।
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं [3]महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।३७।।
नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु । सद्यः शौचं समाख्यातं कान्तारापदि संसदि[4] ।।३८।।
आरब्धदीर्घतपसां न[5] राजा व्रतहा स्त्रियाः । गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ।।३९।।

स्वर्गगामी हुआ करता है। मलमास में अग्न्याधान, देवादिप्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूड़ाकरण, मेखला (मौञ्जीबन्धन), मांगलिकोत्सव तथा राज्याभिषेक नहीं करना चाहिए ।।२८-३०।। अमावस्या से अमावस्या तक चान्द्रमास कहलाता है। तीन दिनों का सावन मास होता है, सङ्क्रान्ति के अनुसार जिसकी गणना की जाती है वह सौर मास कहलाता है और नक्षत्र के अनुसार जो मास चलता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। विवाह आदि में सौर मास, यज्ञ आदि में सावन मास और वार्षिक श्राद्ध में चान्द्रमास प्रशस्त माने गये हैं ।।३१-३२।। आषाढ़ी पूर्णिमा को अवधि मानकर उससे आगे आनेवाले पाँचवें पक्ष (अर्थात् आश्विन कृष्णपक्ष) में पार्वण श्राद्ध करना चाहिए; चाहे सूर्य कन्या राशि में जाय या न जाय। मास तथा वर्ष की तिथियों में द्विविधा पड़ने पर बाद की तिथि ही उत्तम समझनी चाहिए, पूर्व तिथि तो अधम मानी गयी है ।।३३-३४।। जिस नक्षत्र में सूर्य अस्त हो, उसी नक्षत्र में उपवास करना चाहिए। दिन में किये जानेवाले व्रतों के लिए तिथियाँ दिन में ही पुण्य मानी जाती हैं; किन्तु रात्रि के व्रतों में रात्रि की तिथियाँ ही पुण्य हुआ करती हैं ।।३५।। साथ-साथ पड़नेवाली द्वितीया और तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी, अष्टमी और नवमी, एकादशी और द्वादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तथा अमावस्या और प्रतिपदा तिथियाँ तो महान् फल देनेवाली हुआ करती हैं; किन्तु अलग-अलग आने पर ये तिथियाँ महाभयङ्कर तथा पूर्व पुण्यों का नाश करनेवाली हुआ करती है ।।३६-३७।। राजाओं, मन्त्रियों और व्रतों का आचरण करनेवालों के लिए विवाह, उपद्रव, वन और आपत्तिकाल में सद्यः (एक ही दिन के लिए) शौच लगता है। अशौच के कारण ही यदि कोई राजा गर्भिणी, नव प्रसूता, रजस्वला स्त्री तथा (रजस्वला) कुमारी-किसी ऐसे व्रत को न कर सकें जो देर में फलदायक हुआ करता है, तो उसे व्रत-भङ्ग का दोष नहीं लगता है। इस प्रकार की स्त्री अथवा ऐसे पुरुष को किसी अन्य से व्रत करा लेना चाहिए ।।३८-३९½।।

---

१ ख. ग. कन्यागर्भे तु। २ ख. ग. °द्वैत° य°। ३ क. ग. °हादोषं ह°। ४ क. ङ. संयति। ग. घ. संपदि। ५ क. ख. न राजो व्रतहं स्त्रि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत क्रियाः सदा। क्रोधत्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।।४०।।
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा। असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयेत्सुतम् ।।४१।।
सूतके मृतके कार्यं प्रारब्धं[1] पूजनोज्झितम्। व्रतस्थं मूर्च्छितं दुग्धपानाद्यैरुद्धरेद्गुरुः ।।४२।।
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ।।४३।।
कीर्तिसन्ततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये। नैर्मल्यभुक्तिमुक्त्यर्थं कुर्वे व्रतपते व्रतम् ।।४४।।
इदं व्रतं मया श्रेष्ठं गृहीतं पुरतस्तव। निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ।।४५।।
गृहीतेऽस्मिन्व्रतवरे यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम्। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ।।४६।।
व्रतमूर्तिं जगद्भूतिं मण्डले सर्वसिद्धये। [2]आवाहये नमस्तुभ्यं संनिधौ भव केशव[3] ।।४७।।
मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यजलैः शुभैः। पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वमेव भव पापहा ।।४८।।
गन्धपुष्पोदकैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते शुभम्। गृहाण पाद्यमाचाममर्घ्यार्हं कुरु मां सदा ।।४९।।
वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा। भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यैश्छादितं व्रतसत्पते ।।५०।।
सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते गृहाण वै। पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकम् ।।५१।।
पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा। पुष्पगन्धं सुविमलमायुरारोग्यवृद्धये ।।५२।।

क्रोध, प्रमाद या लोभ से व्रतभङ्ग हो जाने पर तीन दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए, अथवा अपना सिर मुँड़ा देना चाहिए। व्रत करनेवाले व्यक्ति को अपनी असमर्थता में अपनी पत्नी या पुत्र से व्रत करा लेना चाहिए ।।४०-४१।। जननाशौच तथा मरणाशौच के कारण बीच में छूटे हुए पूर्व प्रारम्भ कर्म का उद्धार (व्रती का) गुरु दुग्धपान से कर देता है। मूर्च्छा (इत्यादि अनिच्छा) से छूटे हुए व्रत के लिए ये आठ वस्तुएँ व्रतभङ्ग करनेवाली नहीं मानी गयी हैं—जल, मूल, फल, दूध, हवि, ब्राह्मण की इच्छा, गुरु की आज्ञा और ओषधि ।।४२-४३।। (व्रत करनेवाले को भगवान् विष्णु की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए) 'अये व्रतपते! मैं कीर्ति, सन्तति, विद्या, सौभाग्य, आरोग्य, नैर्मल्य तथा भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्रत कर रहा हूँ ।।४४।। अये जगत्पते! आपके सामने मैं यह उत्तम व्रत करने का संकल्प कर रहा हूँ। आपकी कृपा से यह निर्विघ्न रूप से समाप्त हो जाय ।।४५।। अये सत्पते! यदि मैं इस संकल्पित व्रत को पूर्ण किये बिना ही मर जाऊँ तो भी यह आपकी प्रसन्नता से सम्पन्न ही समझा जाय ।।४६।। अये केशव! सभी सिद्धियों के लिए मैं इस मण्डल में व्रतमूर्ति और जगद्विभूति रूप आपका आवाहन कर रहा हूँ। आपको नमस्कार है ।।४७।। आप यहाँ पधारिये। मैं मन से कल्पित पञ्चगव्य, शुद्ध जल तथा पञ्चामृत से भक्तिपूर्वक आपको स्नान करा रहा हूँ। आप मेरे पापों का सर्वनाश कर डालिये। अये अर्घ्यपते! इस गन्ध, पुष्प और जल से बने हुए अर्घ्य को स्वीकार कीजिये और सदा मुझे अर्घ्य देने योग्य बनाइये ।।४८-४९।। अये वस्त्रपते! अये व्रतसत्पते! इस पवित्र वस्त्र को ग्रहण कीजिये और मुझे सदा वस्त्र और आभूषण आदि से सज्जित करते रहिये ।।५०।। अये गन्धपते! आप मेरे इन सुगन्धित निर्मल पदार्थों को लीजिये और मुझे इस तरह पवित्र कर दीजिये कि पाप की गन्ध भी न रह जाय। मेरे दिये हुए पुष्पों को स्वीकार कीजिये और मुझे सदा पुष्पादि से परिपूर्ण रखिये, क्योंकि निर्मल पुष्प, गन्ध, आयु और आरोग्यवर्धक हुआ करता है ।।५१-५२।। अये सत्पते! गुग्गुल तथा

---

१ ख. °ब्धं च न चोज्झति। व्र°। २ आवाहये···केशव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ च. सिद्धये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दशाङ्गं[1] गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै । स (सु) धूपधूपितं मां त्वं कुरु धूपित सत्पते ।।५३।।
दीपमूर्ध्वशिखं दीप्तं गृहाणाखिलभासकम् । दीपमूर्ते प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्ध्वगतिं कुरु ।।५४।।
अन्नादिकं च नैवेद्यं गृहाणान्नादिसत्पते । अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकम् ।।५५।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मया प्रभो । यत्पूजितं व्रतपते परिपूर्णं तदस्तु मे ।।५६।।
धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसन्ततिम् । कीर्तिं विद्यां देहि चाऽऽयुः स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।।५७।।
इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा व्रज साम्प्रतम् । पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ।।५८।।
स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः । पूज्याः सुवर्णजास्ता वै शक्त्या वै भूमिशायिना ।।५९।।
जपो होमश्च सामान्य व्रतान्ते दानमेव च । चतुर्विंशाद्वादश वा (शतिर्द्वादश) पञ्च वा त्रय एककः[2] ।।६०।।
विप्राः प्रपूज्या गुरवो भोज्याः शक्त्या तु दक्षिणा । देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक् ।।६१।।
जलपात्रं[3] चान्नपात्रमृत्तिकाछत्रमासनम् । शय्यावस्त्रयुगं कुम्भाः परिभाषेयमीरिता ।।६२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतपरिभाषावर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७५।।

घृत युक्त दशाङ्ग धूप स्वीकार कीजिये और मुझे भी अच्छी-अच्छी धूपों से धूपित (सुगन्धित) कर दीजिये। अये दीपमूर्ते! आप मेरे इस दीपक को स्वीकार कीजिये जो सबको प्रकाशित करनेवाला और ऊर्ध्व शिखावाला है। इसे लेकर मुझे भी तेजोमय तथा ऊर्ध्वगतिवाला बना दीजिये ।।५३-५४।। अये अन्नादिस्वामिन्! नैवेद्य से चढ़ाये हुए अन्न आदि को स्वीकार करके मुझे ऐसा बना दीजिये कि मैं अन्नादि से भरपूर रहूँ और सदा अन्नदान करता रहूँ। अये प्रभो! मैंने बिना मन्त्रों के, बिना विधि-विधान के और बिना भक्ति के आपकी जो कुछ भी पूजा की है, वह सब आपकी कृपा से परिपूर्ण हो ।।५५-५६।। अये व्रतपते! मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिये, कीर्ति दीजिये, सौभाग्य दीजिये, गुणी सन्तान दीजिये, विद्या दीजिये तथा स्वर्ग और मोक्ष भी दीजिये। अये विभो! मेरी इस पूजा को स्वीकार करके आप इस समय तो जाइये किन्तु पुनः आकर मुझे दीजियेगा ।।५७-५८।। समस्त व्रतों में व्रती को चाहिए कि वह स्नान करके स्वर्णनिर्मित व्रतमूर्ति (आराध्यदेव की प्रतिमा) का पूजन करे, भूमि पर शयन करे और व्रत के अन्त में जप और होम करे। शक्ति के अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन या एक ही ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा करे और उन्हें भोजन कराकर दक्षिणा में गाय, सोना, खड़ाऊँ, जूते, जल-पात्र, अन्न-पात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र तथा घड़ा प्रदान करे। यही व्रतों की परिभाषा बतायी गयी है ।।५९-६२।।

श्री अग्निमहापुराण में व्रतपरिभाषा-वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७५।।

---

१ 'मधु मुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम्। सरलं सिद्धसिद्धार्थं दशाङ्गो धूप उच्यते।' २ क. ग. ङ. एव वा। वि°।
३ क. ङ. °त्रं च मुद्रां च मुद्रिकाद्रवमां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिपद्व्रतानि

अग्निरुवाच

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतान्यखिलदानि ते। कार्तिकाश्वयुजे चैत्रे प्रतिपद्ब्रह्मणस्तिथिः ।।१।।
पञ्चदश्यां निराहारः प्रतिपद्यर्चयेदजम्। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमो गायत्र्या वाऽब्दमेककम् ।।२।।
अक्षमालां स्रुवं दक्षे [1]वामे स्रुच (चं) कमण्डलुम्। लम्बकूर्चं च जटिलं हैमं ब्रह्माणमर्चयेत् ।।३।।
शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतामिति। निर्मलो भोगभुक्स्वर्गे भूमौ विप्रो धनी भवेत् ।।४।।
धन्यं व्रतं प्रवक्ष्यामि अधन्यो धन्यतां व्रजेत्। मार्गशीर्षे प्रतिपदि नक्तं[2] हुत्वाऽप्युपोषितः ।।५।।
अग्नये नम इत्यग्निं प्रार्च्याब्दं सर्वभाग्भवेत्। प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ।।६।।
वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिपद्व्रतवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७६।।

अध्याय १७६

प्रतिपद्-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं तुम्हें प्रतिपदा (तिथियों) के व्रत बतलाऊँगा, जो सभी कुछ देनेवाले हैं। आश्विन, कार्तिक तथा चैत की प्रतिपदा ब्रह्मा की तिथि मानी गयी है ।।१।। उसमें व्रत करने के लिए पञ्चदशी (पूर्णिमा तथा अमावस्या) को उपवास करके प्रतिपदा के दिन ब्रह्मा का पूजन करना चाहिए। ब्रह्मा की ऐसी स्वर्णमयी प्रतिमा बनानी चाहिए जिसके दाहिने हाथ में रुद्राक्ष की माला तथा स्रुव और बायें हाथ में स्रुक् तथा कमण्डलु हो, जिसकी दाढ़ी लम्बी हो और जो जटाओं से युक्त हो। 'ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः' अथवा गायत्री मन्त्र से उस मूर्ति की पूजा करनी चाहिए। फिर 'अये ब्रह्मन्! आप मुझ पर प्रसन्न होइये' यह कहकर उस मूर्ति के ऊपर यथाशक्ति दूध चढ़ाना चाहिए। इस प्रकार से व्रत तथा पूजन करनेवाला स्वर्ग में उत्तम भोगों का भोग करके तदनन्तर पृथ्वी पर धनी ब्राह्मण होकर जन्म लेता है ।।२-४।। अब मैं एक धन्य (उत्तम) व्रत बताता हूँ, जिसे करने से अभागा भी भाग्यवान् बन जाता है। मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को दिन में उपवास करके रात्रि में 'अग्नये नमः' कहकर अग्नि की पूजा तथा उसी के लिए हवन करना चाहिए। उस दिन केवल एक अन्न का भोजन करना चाहिए और व्रत की समाप्ति कर कपिला गाय का दान करना चाहिए। ऐसा करने से वैश्वानर (सूर्य) लोक की प्राप्ति होती है। इस व्रत को शिखिव्रत (अग्नि का व्रत) कहा गया है ।।५-७।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रतिपदा व्रत वर्णन नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७६।।

---

१ क. ङ. °मे दण्डक°। २ क. ङ. ग. क्तं °कृत्वाऽ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतानि

अग्निरुवाच

द्वितीयाव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिदायकम् । पुष्पाहारो द्वितीयायामश्विनौ पूजयेत्सुरौ ।।१।।
अब्दं स्वरूपसौभाग्यं स्वर्गभाग्जायते व्रती । कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां यमं यजेत् ।।२।।
अब्दमुपोषितः स्वर्गं गच्छेन्न नरकं व्रती । अशून्यशयनं वक्ष्ये अवैधव्यादिदायकम् ।।३।।
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणस्य चरेदिदम् । श्रीवत्सधारिञ्श्रीकान्त श्रीधामञ्श्रीपतेऽव्यय ।।४।।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् । अग्नयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः ।।५।।
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्यते देवो न कदाचिद्यथा भवान् ।।६।।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे विभिद्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं विभो ।।७।।
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथैव मधुसूदन । लक्ष्मीं विष्णुं यजेदब्दं दद्याच्छय्यां फलानि च ।।८।।
प्रतिमासं च सोमाय दद्यादर्घ्यं समन्त्रकम् । गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ।।९।।

अध्याय १७७

द्वितीया-व्रत

अग्निदेव बोले–मैं भोग और मोक्ष को देनेवाले द्वितीया व्रत के विषय में बताऊँगा। द्वितीया[१] में व्रत करनेवाले को केवल पुष्पाहार करना चाहिए तथा अश्विनीकुमार नामक दो देवताओं का पूजन करना चाहिए ।।१।। एक वर्ष ऐसा करने से व्रती को सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया में यम की पूजा करनी चाहिए। एक वर्ष उपवास रहकर ऐसा करने से व्रती स्वर्ग को जाता है, नरक को नहीं। अब मैं अवैधव्य आदि (फलों को) देनेवाले अशून्यशयन नामक व्रत के सम्बन्ध में बताऊँगा ।।२-३।। यह व्रत श्रावण कृष्ण द्वितीया में किया जाता है। उस दिन पहले भगवान् की इस प्रकार से प्रार्थना करे–'श्रीवत्सधारिन्! श्रीकान्त! श्रीधामन्! श्रीपते! अव्यय! धर्म, अर्थ और काम को देनेवाला मेरा यह गार्हस्थ्य (जीवन) कभी नष्ट न हो। तीनों अग्नि (दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि) कभी बुझने न पायें। हमारे दाम्पत्य के नष्ट होने से देवताओं (के कर्मों) का नाश न होने पाये और न पितरों (के कर्म) का ही नाश हो। अये देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते हैं वैसे मेरे स्त्री-सम्बन्ध को कभी नष्ट न होने दीजिये ।।४-६ $\frac{1}{2}$।। अये वरद! अये विभो मधुसूदन! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मी से शून्य नहीं होती है वैसे मेरी भी शय्या कभी सूनी न होने पाये। तदनन्तर एक वर्ष तक लक्ष्मी और विष्णु का पूजन करते हुए शय्या और फल का दान करना चाहिए ।।७-८।। प्रत्येक मास में चन्द्रमा को यह कहते हुए अर्घ्य देना चाहिए–'अये गगन रूपी प्राङ्गण के दीपक! क्षीरसागर से उत्पन्न होनेवाले! अपनी आभा से

---

१ इससे अव्यवहित उत्तर कार्तिक का नाम आया है। आत्साहचर्यात् यहाँ द्वितीया से आश्विन की द्वितीया का अर्थ लेना चाहिए।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]भाभासितादिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते। ॐ[2] श्रं श्रीधराय नमः सोमात्मानं हरिं यजेत् ।।१०।।
घं टं हं सं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने। घृतेन होमो नक्तं च शय्यां दद्याद्द्विजातये[3] ।।११।।
दीपान्नभाजनैर्युक्तं छत्रोपानहमासनम्। सोदकुम्भं च प्रतिमां विप्रायाथ च पात्रकम् ।।१२।।
यत एवं च कुरुते भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्[4]। कान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि कार्तिकस्य सिते चरेत् ।।१३।।
नक्तभोजी द्वितीयायां पूजयेद्बलकेशवौ। वर्षं प्राप्नोति वै कान्तिमायुरारोग्यकादिकम् ।।१४।।
अथ विष्णुव्रतं वक्ष्ये मनोवाञ्छितदायकम्। पौषशुक्लद्वितीयादि कृत्वा दिनचतुष्टयम् ।।१५।।
([5]पूर्वं सिद्धार्थकैः स्नानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतम्। वचया च तृतीयेऽह्नि सर्वौषध्या चतुर्थके ।।१६।।
मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्)। सटी चम्पकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः ।।१७।।
नाम्ना कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति पूजयेत्। पादे नाभ्यां चक्षुषि च क्रमाच्छिरसि पुष्पकैः ।।१८।।
शशिचन्द्रशशाङ्केन्दुसंज्ञाभिश्चार्घ्य इन्दवे। नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।।१९।।
[6]षण्मासं पारणं[7] चाब्दं प्राप्नुयात्सकलं व्रती। एतद्व्रतं नृपैः स्त्रीभिः कृतं पूर्वं सुरादिभिः ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वितीयाव्रतकथनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७७।।

दिग्दिगन्त को आलोकित करनेवाले! लक्ष्मी के अनुज! आपको नमस्कार है। 'ॐ श्रं श्रीधराय नमः' कहते हुए चन्द्रात्मा भगवान् विष्णु का यजन करना चाहिए ।।९-१०।। 'घं टं हं सं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने' इस मन्त्र से रात्रि में घी से हवन करना चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मण को शय्या, दीप, अन्न से भरा हुआ पात्र, छाता, जूता, जलपूर्ण घट, पात्र तथा प्रतिमा प्रदान करना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा करता है उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। अब मैं कान्तिव्रत बतला रहा हूँ। कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया में इसका अनुष्ठान करना चाहिए। उस दिन (केवल) रात्रि में भोजन करके बलभद्र तथा कृष्ण की पूजा करनी चाहिए ।।११-१३½।। एक वर्ष ऐसा करने से कान्ति, आयु तथा आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार मनोवांछित फल देनेवाले विष्णु-व्रत को भी बतलाऊँगा। पौष शुक्ल द्वितीया से लेकर चार दिनों तक विशेष स्नान करे। पहले दिन सफेद सरसों से, दूसरे दिन काले तिल से, तीसरे दिन बच से और चौथे दिन सर्वौषध से स्नान करना चाहिए। मुरा, जटामासी, बच, कुष्ठ (कूट), शैलेय, दोनों प्रकार की रजनी, सटी, चम्पक तथा मुस्ता (मोथा) इनकी गणना सर्वोषधि में की जाती है ।।१४-१७।। तदनन्तर 'कृष्ण, अच्युत, अनन्त, हृषीकेश'-इन नामों से भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए और क्रमशः उनके चरण, नाभि, नेत्र तथा सिर के ऊपर पुष्पों को चढ़ाना चाहिए। फिर शशि, चन्द्र, शशाङ्क तथा इन्दु नामों से चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करे। विष्णु-व्रत के व्रती को रात्रि में चन्द्रमा के रहते ही भोजन कर लेना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष और छह महीने व्रत करने से व्रती की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। प्राचीनकाल में राजा, स्त्रियाँ तथा देवता इस व्रत का अनुष्ठान किया करते थे ।।१८-२०।।

श्री अग्निमहापुराण में द्वितीया-व्रत-कथन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७७।।

---

१ ग. भासा सि°। २ ख. ग. श्री°। ३ ख. ग. °द् द्वितीयके। दी°। ४ ख. °त्। ऊर्जव्र°। ५ पूर्वं...रजनीद्वमम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ६ क. ख. ङ. °ण्मासात्पार°। ७ च. °णं कृत्वा प्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयाव्रतानि

अग्निरुवाच

तृतीयाव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते। ललितायां तृतीयायां मूलगौरीव्रतं[1] शृणु ।।१।।
तृतीयायां चैत्रशुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि। तिलस्नातोऽर्चयेच्छंभुं गौर्या[2] हैमफलादिभिः ।।२।।
नमोऽस्तु पाटलायै च पादौ देव्याः[3] शिवस्य च। शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्यजेत् ।।३।।
त्रिपुरघ्नाय रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्द्वयोः। [4]शिवं रुद्रायेश्वराय विजयायै च जानुनी ।।४।।
ईशायेति कटिं देव्याः शंकरायेति शंकरम्। कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये ।।५।।
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत्। सर्वात्मने नमो रुद्रमैशान्यै च कुचद्वयम् ।।६।।
[5]शिवं देवात्मने तद्वत्हृदिन्यै कण्ठमर्चयेत्। महादेवाय च शिवमनन्तायै करद्वयम् ।।७।।
त्रिलोचनायेति हरं[6] बाहुं कालानलप्रिये। सौभाग्यायै महेशाय भूषणानि प्रपूजयेत् ।।८।।
अशोकमधुवासिन्यै ईश्वरायेति चोष्ठकौ। चतुर्मुखप्रिया चाऽऽस्यं हराय स्थाणवे नमः ।।९।।

अध्याय १७८

तृतीया-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं तृतीया के व्रतों का वर्णन करूँगा। ये व्रत भोग और मोक्ष दिलानेवाले हुआ करते हैं। ललिता नामक तृतीया में मूलगौरी व्रत किया जाता है ।।१।। चैत्र शुक्लपक्ष की तृतीया में भगवान् शिव ने गौरी से विवाह किया था। अतः उस दिन तिल से स्नान कर सुवर्ण तथा फल आदि से गौरी और शंकर की अर्चना करनी चाहिए ।।२।। 'पाटलायै नमः' कहकर देवी के तथा 'शिवाय नमः' कहकर महादेव के चरणों की पूजा करे। 'जयायै नमः' से देवी के तथा 'त्रिपुरघ्नाय नमः' से शिव के गुल्फों (टखनों) की पूजा करे। 'भवान्यै नमः' से गौरी की तथा 'रुद्राय नमः' से शिव की जङ्घाओं का पूजन करे। 'विजयायै नमः' से पार्वती के और 'रुद्रायेश्वराय नमः' से शिव के घुटनों की पूजा करनी चाहिए ।।३-४।। 'ईशाय नमः' से देवी की तथा 'शंकराय नमः' से शंकर के कटिप्रदेश का पूजन करे। 'कोटव्यै नमः' से देवी की और 'शूलपाणये नमः' से देव की कुक्षियों का पूजन करे। 'मंगलायै नमः' से गौरी के और 'सर्वात्मने नमः' से शिव के उदर की पूजा करे। 'ऐशान्यै नमः' से देवी के कुचों का और 'ईशानाय नमः' से शम्भु का पूजन करे। 'हृदिन्यै नमः' से देवी की तथा 'देवात्मने नमः' से शम्भु की पूजा करे ।। ५-६$\frac{1}{2}$।। 'अनन्तायै नमः' से गौरी की और 'महादेवाय नमः' से शिव के हाथों का पूजन करे। 'कालानलप्रियायै नमः' से देवी की तथा 'त्रिलोचनाय नमः' से भगवान् शंकर की भुजाओं की अर्चना करे। 'सौभाग्यायै नमः' से पार्वती के और 'महेशाय नमः' से शङ्कर के आभूषणों का पूजन करना चाहिए ।।७-८।। 'अशोकमधुवासिन्यै नमः' से देवी के और 'ईश्वराय नमः' से शम्भु के ओष्ठों की पूजा करे। 'चतुर्मुखप्रियायै नमः' से देवी के और 'हराय स्थाणवे

---

१ ग. मूलागौ°। क. ङ. मूलंगौ। २ क. ङ.'र्या हेमफलार्थिभिः। ३ क. ङ. देव्यै। ४ च. °वं भद्रायै°। ५ क. ख. ग. ङ. च. वं वेदार्थतत्त्वज्ञं रुपिण्यै क°। ६ क. ङ. °रं चान्तका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नमोऽर्धनारीशहरममिताङ्ग्यै च नासिकाम्। नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ।।१०।।
शर्वाय पुरहन्तारं वासन्त्यै[1] चैव तालुकम्। नमः श्रीकण्ठनाथायै[2] शितिकण्ठाय केशकम् ।।११।।
भीमोग्राय सुरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः। मल्लिकाशोककमलकुन्दं तगरमालती ।।१२।।
कदम्बं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम्। सिन्धुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ।।१३।।
उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः। स्थापयेद्घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीर [3]जीरकम्[4] ।।१४।।
तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बरुमथाष्टकम्। चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत् ।।१५।।
प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य[5] विप्रदाम्पत्यमर्चयेत्। तदष्टकं द्विजे दद्याल्ललिता प्रीयतां मम[6] ।।१६।।
शृङ्गोदकं गोमयं च मन्दारं बिल्वपत्रकम्। कुशोदकं दधिक्षीरं कार्तिके पृषदाज्यकम् ।।१७।।
गोमूत्राज्यं कृष्णतिलं पञ्चगव्यं[7] क्रमाशनम्। ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ।।१८।।
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती। चैत्रादौ दानकाले च प्रीयतामिति वाचयेत् ।।१९।।
फलमेकं परित्याज्यं व्रतान्ते[8] शयनं ददेत्। उमामहेश्वरं[9] हैमं वृषभं च गवा सह ।।२०।।
गुरुं च मिथुनान्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक्। सौभाग्यारोग्यरूपायुः सौभाग्यशयनव्रतात् ।।२१।।

नमः' से महादेव जी के मुखों की अर्चना करनी चाहिए ।।९।। 'अमिताङ्ग्यै नमः' से गौरी की और 'अर्धनारीश्वराय नमः' से शिव की नासिका की पूजा करे। 'ललितायै नमः' से पार्वती की और 'उग्राय नमः' से शिव की भौंहों का पूजन करे ।।१०।। 'वासन्त्यै नमः' से देवी के तथा 'शर्वाय नमः' से महादेव के तालु का पूजन करे। 'श्रीकण्ठनाथायै नमः' से उमा के और 'शितिकण्ठाय नमः' से शिव के केशों की पूजा करे। 'सुरूपिण्यै नमः' से देवी के और 'भीमोग्राय सर्वात्मने नम' से महादेव जी के सिर की अर्चना करे ।।११-११$\frac{1}{2}$।। पुनः मालती, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, कदम्ब, करवीर, बाण, आमला, कुंकुम तथा सिन्धुवार से उमा-महेश्वर की पूजा करके उसके आगे घी, निष्पाव (राजभाष), कुसुम्भ (कुसुम), क्षीर, जीर, ताल, इक्षुलवण और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ)-इन आठ शुभ पदार्थों को रखना चाहिए। तदनन्तर शृङ्गोदक पीकर उमा-महेश्वर के समीप सोवे ।।१३-१५।। प्रातःकाल स्नानकर गौरीशंकर की पूजा करके विप्र-दम्पती की पूजा करे। 'ललिता' देवी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें, यह कहकर उन्हें उक्त आठ वस्तुएँ प्रदान करे ।।१६।। कार्तिक मास में क्रमशः शृङ्गोदक, दधि, क्षीर, दही, घी, गोमूत्र-घी, कृष्णतिल तथा पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। चैत्र आदि मासों में उक्त वस्तुओं को देते समय यह पढ़ना चाहिए कि 'ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती मुझसे प्रसन्न हों ।।१७-१९।। उस व्रत में किसी एक फल का त्याग करना पड़ता है। व्रत की समाप्ति पर गुरु तथा गुरु-पत्नी की पूजा करके उन्हें शय्या, वस्त्र; उमा-महेश्वर की स्वर्ण प्रतिमा और गाय-बैल देना चाहिए। इस प्रकार उक्त व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य को सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।२०-२१।। भाद्रपद, वैशाख तथा मार्गशीर्ष

---

१ ख. ग. च. °न्त्यैच तथाऽलकं। २ ख. ग. च. 'थाय सितकेशाय दोहयेत्। भी°। ३ ग. घ. °जीवक°। ४ क. ङ. °म्। पञ्चरा°। ५ क. ङ. °र्च्य पूजयेच्चापि कुम्भकम्। त°। ६ क. ङ. कूपोद°। ७ क. च. °व्यं कुशासन°। ८ ख. ग. °न्ते तर्पणं चरेत्। ९ ख. ग. °श्वरौ हैमी वृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नभस्ये वाऽथ वैशाखे कुर्यान्मार्गशिरस्यथ । शुक्लपक्षे तृतीयायां ललितायै नमो यजेत् ।।२२।।
प्रतिपक्षं ततः प्रार्च्य व्रतान्ते मिथुनानि च । चतुर्विंशतिमभ्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।२३।।
उक्तो मार्गो द्वितीयोऽयं सौभाग्यव्रतमावदे । फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् ।।२४।।
समाप्ते शयनं दद्याद्गृहं चोपस्करान्वितम्[1] । सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति ।।२५।।
[2]सौभाग्यार्थं तृतीयोक्ता गौरीलोकादिदायिनी । माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीयाव्रतकृत्तथा ।।२६।।
[3]दमनकतृतीयाकृच्चैत्रे दमनकैर्यजेत् । आत्मतृतीया[4] मार्गस्य प्रार्च्येच्छाभोजनादिना ।।२७।।
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती । वैष्णवी लक्ष्मीः प्रकृतिः शिवा नारायणी क्रमात् ।।
मार्गतृतीयामारभ्य सौभाग्यं स्वर्गमाप्नुयात् ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तृतीयाव्रतकथनं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७८।।

के शुक्लपक्ष की तृतीया में, 'ललितायै नमः' कहते हुए ललिता देवी की अर्चना करनी चाहिए और उस दिन व्रत रखकर चौबीस ब्राह्मण-पतियों को वस्त्रादि से सम्मानित करना चाहिए। ऐसा व्रत करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।२२-२३।। अब मैं इस सौभाग्य-व्रत का दूसरा ढंग बतलाऊँगा। फाल्गुन कृष्णपक्ष की तृतीया में नमक छोड़कर व्रत करना चाहिए और व्रत समाप्ति पर विप्रदम्पती का पूजन करके 'गौरी मेरे ऊपर प्रसन्न हों' इस प्रकार कहते हुए उन्हें शय्या तथा अन्य घरेलू और साज-सज्जा की सामग्री देनी चाहिए ।।२४-२५।। यह तृतीया सौभाग्य तथा गौरीलोक को दिलानेवाली है। माघ, भाद्रपद, वैशाख तथा चैत्र की तृतीया का नाम दमनक है। अतः उस दिन दमनकों (कुन्द-पुष्पों) से पूजन करना चाहिए। मार्गशीर्ष की तृतीया का नाम आत्मतृतीया है। उस दिन ब्राह्मण-दम्पती को यथेष्ट भोजन आदि से प्रसन्न करके क्रमशः गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा तथा नारायणी की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।२६-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में तृतीया-व्रत कथन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ।।१७८।।

---

१ क. ङ. °म्। अलङ्काराणि सर्वाणि भ°। २ सौभाग्यार्थं...स्वर्गमवाप्नुयात् च. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. °नस्य तृतीया च चैत्रे। ४ क. ङ. °या मद्राक्षे प्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्थीव्रतानि

अग्निरुवाच

चतुर्थीव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते। माघे शुक्लचतुर्थ्यां तु उपवासी [1]यजेद्गणम् ।।१।।
पञ्चम्यां च तिलान्नादी [2]वर्षान्निर्विघ्नतः सुखी। गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गामाद्यं हृदयादिकम् ।।२।।
आगच्छोल्काय चाऽऽवाह्य गच्छोल्काय विसर्जनम्। ऊल्कान्तैर्गादिगन्धाद्यैः पूजयेन्मोदकादिभिः ।।३।।
ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।।
मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थीकृच्छ्रवं व्रजेत् ।।४।।
चतुर्थ्यङ्गारकेऽभ्यर्च्य गणं सर्वमवाप्नुयात्। चतुर्थ्यां फाल्गुने नक्तमविघ्नाख्या चतुर्थ्यपि ।।५।।
चतुर्थ्यां दमनैः पूज्य चैत्रे प्रार्च्य गणं सुखी ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुर्थीव्रतकथनं नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७९।।

अध्याय १७९

चतुर्थी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं तुमको भुक्ति-मुक्तिदायक चतुर्थी-व्रत बताऊँगा। माघ शुक्लपक्ष की चतुर्थी में गणेश जी की आराधना करनी चाहिए ।।१।। पञ्चमी में तिल भोजन से मनुष्य सुखी हो जाता है तथा विघ्न-बाधा से रहित हो जाता है। 'गं स्वाहा' यह गणेश जी का मूलमन्त्र है। 'गां' का उच्चारण करके हृदयादिन्यास करना चाहिए ।।२।। 'आगच्छोल्काय' कहकर आवाहन तथा 'गच्छोल्काय' कहकर (गणेश का) विसर्जन करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, मोदक आदि से गणेश का पूजन कर 'ॐ महोल्काय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' इस मन्त्र (गायत्री) से जप करना चाहिए ।।३-३$\frac{१}{२}$।। भादों की चतुर्थी में गणपति की पूजा और व्रत करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। फाल्गुन की चतुर्थी का नाम अविघ्ना है। उस दिन रात्रि में गणेश-पूजन करना चाहिए। चैत्र की चतुर्थी में कुन्दपुष्पों से गणेश की पूजा करने से मनुष्य सुखी होता है ।।५-६।।

श्री अग्निमहापुराण में चतुर्थी-व्रत कथन नामक एक सौ उन्यासीवाँ
अध्याय समाप्त ।।१७९।।

---

१ क. ङ. °जेद्गुरुम्। प°। २ क. ङ. वर्षं निर्वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चमीव्रतानि

अग्निरुवाच

[1]पञ्चमीव्रतकं वक्ष्ये आरोग्यस्वर्गमोक्षदम् । नभोनभस्याश्विने च कार्तिके शुक्लपक्षके ।।१।।
वासुकिस्तक्षकः [2]पूज्यः कालीयो मणिभद्रकः । [3]ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ ।।२।।
एते प्रयच्छन्त्यभयमायुर्विद्यायशः[4] श्रियम् ।।३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चमीव्रतकथनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८०।।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

षष्ठी व्रतानि

अग्निरुवाच

षष्ठी व्रतानि वक्ष्यामि कार्तिकादौ समाचरेत् । षष्ठ्यां फलाशनोऽर्घ्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१।।

अध्याय १८०

पञ्चमी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं पञ्चमी-व्रत का वर्णन करूँगा जो आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है। श्रावण, भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक के शुक्लपक्ष की पञ्चमी में वासुकि, तक्षक, कालीय तथा धनञ्जय (नामक सर्पों) की पूजा करनी चाहिए। इससे ये (सर्प) अभय, आयु, विद्या, यश तथा ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं ।।१-३।।

श्री अग्निमहापुराण में पञ्चमी-व्रत नामक एक सौ अस्सीवाँ
अध्याय समाप्त ।।१८०।।

अध्याय १८१

षष्ठी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं षष्ठी-व्रत बतलाऊँगा। कार्तिक आदि मास की षष्ठी में फलाहार करके सूर्य को अर्घ्य आदि का समर्पण करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। भादों की षष्ठी में अक्षयस्कन्दषष्ठीव्रत का वर्णन

---

१ च. °तमाख्यास्ये आ°। २ क. ङ. °ज्यः सर्वसौख्यप्रदायकः। ३ ऐरावतो°°°धनञ्जयौ नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ च. °मात्मविद्या°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्कन्दषष्ठीव्रतं प्रोक्तं भाद्रे षष्ठ्यामथाक्षयम्। कृष्णषष्ठीव्रतं वक्ष्ये मार्गशीर्षे चरेच्च तत्।।
अनाहारो वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षष्ठीव्रतकथनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८१।।

अथद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतानि

अग्निरुवाच

सप्तमीव्रतकं वक्ष्ये सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम्। माघमासेऽब्जके [1]शुक्ले सूर्यं प्रार्च्य विशोकभाक् ।।१।।
सर्वावाप्तिस्तु सप्तम्यां मासि भाद्रेऽर्कपूजनात्। पौषे मासि सितेऽनश्नन्प्रार्च्यार्कं पापनाशनम् ।।२।।
कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी। फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात् ।।३।।
[2]मार्गशोर्षे सिते प्रार्च्य सप्तमी चापराजिता। मार्गशीर्षे सिते चाब्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः ।।४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सप्तमीव्रतकथनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८२।।

किया गया है। मार्गशीर्ष में कृष्णपक्ष की षष्ठी का व्रत करना चाहिए। एक वर्ष निराहार रहकर यह व्रत करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।१-२।।

श्री अग्निमहापुराण में षष्ठी-व्रत कथन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८१।।

अध्याय १८२

सप्तमी-व्रत

अग्निदेव बोले-अब मैं सप्तमी-व्रत बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। माघ-शुक्ल की सप्तमी में कमल से सूर्य की अर्चना करने से मनुष्य शोकरहित हो जाता है ।।१।। भादों की सप्तमी में सूर्य-पूजन करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। पौष-शुक्ल सप्तमी में उपवास करके सूर्य की पूजा करने से पाप नष्ट हो जाते हैं ।।२।। माघ कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं। फाल्गुन शुक्लपक्ष की सप्तमी का नाम नन्दा है। उसमें सूर्य की पूजा करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की सप्तमी का नाम अपराजिता है। उसमें सूर्य-पूजन करने से पराजय नहीं होती है। उक्त सप्तमी में सूर्य का पूजन करने से स्त्रियाँ पुत्रवती हुआ करती हैं ।।३-४।।

श्री अग्निमहापुराण में सप्तमी-व्रत कथन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८२।।

---

१ च. °से कुजे शु°। ख. ग. °से शुक्लपक्ष सू°। २ मार्गशीर्षे…°चापरा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि

अग्निरुवाच

वक्ष्ये व्रतानि चाष्टम्यां रोहिण्यां प्रथमं व्रतम् । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां[1] रोहिण्यामर्धरात्रके ।।१।।
[2]कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते चोपवासतः ।।२।।
कृष्णपक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणीयुते । उपोषितोऽर्चयेत्कृष्णं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।३।।
[3]आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम् । वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते ।।४।।
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः । योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।।५।।
([4]स्नानं कृष्णाय दद्यात्तु अर्घ्यं चानेन दापयेत् । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञानां पतये नमः ।।६।।
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः) । गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ।।७।।
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित । धूपधूपित धूपत्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ।।८।।
सुगन्ध (न्धि) धूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे । दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा ।।९।।

अध्याय १८३

अष्टमी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं रोहिणी नक्षत्र में अष्टमी-व्रत का वर्णन करूँगा। भाद्रपद की अष्टमी में जब रोहिणी नक्षत्र था, अर्धरात्रि के समय (भगवान्) कृष्ण अवतरित हुए थे। अतः उस (अष्टमी) में (कृष्ण) जयन्ती मनायी जाती है। उसमें उपवास करने से सात जन्मों के पापों का नाश हो जाता है ।।१-२।। रोहिणी नक्षत्र की भाद्र कृष्णपक्ष की अष्टमी में उपवास करके भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले (भगवान्) कृष्ण, बलभद्र, देवकी, वसुदेव, यशोदा तथा गायों का आवाहन कर रहा हूँ। मैं उनकी पूजा कर रहा हूँ। आप सबको नमस्कार है ।।३-४।। 'योग, योगपति तथा योगेश को बार-बार नमस्कार है। योग आदि के कारण गोविन्द (कृष्ण) को बार-बार नमस्कार है।' यह कहते हुए भगवान् कृष्ण को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। यज्ञ, यज्ञेश्वर, यज्ञाधिपति तथा यज्ञ के कारणभूत गोविन्द को नमस्कार है। हे देव! इन पुष्पों को स्वीकार करें जो सुगन्धित और आपको अत्यन्त प्रिय हैं ।।५-७।। हे देवताओं के द्वारा वन्दित देव! मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर दीजिये। धूपों से सुवासित मेरा धूप स्वीकार कीजिये और हे हरे! मुझे भी सदा सुगन्धित धूपों से सुवासित करते रहिये। दीपों से प्रकाशित! दीपों को ज्योति प्रदान करनेवाले! मेरे द्वारा अर्पित इस महादीप को स्वीकार कीजिये और मुझे ऊर्ध्व गति प्रदान कर दीजिये ।।८-९$\frac{1}{2}$।।

---

१ च. °दे कृष्णो रो°। २ कृष्णो जातो···चोपवासतः नास्ति च. पुस्तके। ३ 'आवाहयाम्यहं···देवकीम्' ग. पुस्तके नास्ति। ४ स्नानं···नमो नमः' क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम्। विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः ।।१०।।
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम्। धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ।।११।।
धर्मादिसम्भवायै गोविन्द शयनं कुरु। सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः ।।१२।।
सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय च पावनम्। क्षीरोदार्णवसम्भूत अग्निनेत्रसमुद्भव[1] ।।१३।।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम। स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं यजेत् ।।१४।।
देवकीं वसुदेवं च यशोदां बन्दकं नलम्। अर्धरात्रे पयोधाराः पातयेद्गुडसर्पिषा ।।१५।।
वस्त्रहेमादिकं दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्व्रती। जन्माष्टमीव्रतकरः पुत्रवान्विष्णुलोकभाक् ।।१६।।
वर्षे वर्षे तु यः कुर्यात्पुत्रार्थी वेत्ति नो भयम्। पुत्रान्देहि धनं देहि [2]आयुरारोग्य [3]संततिम् ।।१७।।
धर्मं कामं च सौभाग्यं स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जयन्त्यष्टमीव्रतकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८३।।

विश्वरूप, विश्वपति तथा विश्वेश को बार-बार नमस्कार है। विश्व के आदि कारण गोविन्द (कृष्ण) को मेरा सब-कुछ समर्पित है। धर्मरूप, धर्मपति, धर्मेश तथा धर्म के आदि कारण को बार-बार नमस्कार है। गोविन्द! (अब) आप शयन कीजिये। सर्वस्वरूप, सर्वपति, सर्वेश, सर्वसम्भव गोविन्द को नमस्कार है ।।१०-१२।। क्षीर-समुद्र में उत्पन्न होनेवाले! शशाङ्क! रोहिणी के साथ आप मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिये। तदनन्तर एक चबूतरे के ऊपर रोहिणी के साथ चन्द्रमा, कृष्ण, देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द तथा बलराम की स्थापना करके उनकी पूजा करनी चाहिए। आधी रात के समय गुड़ तथा घी मिलाये हुए दूध की धारा छोड़ते हुए उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि समर्पण करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए ।।१३-१५½।। जन्माष्टमी का व्रत करनेवाला पुत्रवान् और वैकुण्ठगामी हुआ करता है। 'हे भगवन्! मुझे पुत्र दीजिये, सन्तान दीजिये, धर्म दीजिये, काम (पुरुषार्थ) दीजिये, सौभाग्य दीजिये, स्वर्ग दीजिये और मोक्ष दीजिये' इस प्रकार कहते हुए जो पुत्रकामी प्रतिवर्ष अष्टमी-व्रत करता है, उसे (किसी प्रकार का) भय नहीं रह जाता ।।१६-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में जयन्त्यष्टमी-व्रत कथन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८३।।

---

१ ख. च. °येद्घृतस°। २ ख. ग. °ग्यसन्मति°। ३ च. ङ. °म्। आयुर्धर्मं च। क. ङ. °म्। कामं भोगं च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि

[1]अग्निरुवाच

ब्रह्मादिमातृयजनाज्जपेन्मातृगणाष्टमीम् । कृष्णाष्टम्यां चैत्रमासे पूज्याब्दं कृष्णमर्थभाक् ।।१।।
कृष्णाष्टमीव्रतं वक्ष्ये मासे मार्गशिरे (शीर्षे) चरेत् । नक्तं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ।।२।।
भूमिशायी निशायां च शंकरं पूजयेद्व्रती । पौषे शम्भुं घृतं प्राश्य माघे क्षीरं महेश्वरम् ।।३।।
महादेवं फाल्गुने च तिलाशी समुपोषितः । चैत्रे स्थाणुं यवाशी च वैशाखेऽथ [2]शिवं यजेत् ।।४।।
[3]कुशोदाशी पशुपतिं ज्येष्ठे शृङ्गोदकाशनः । आषाढे गोमयाश्युग्रं[4] श्रावणे[5] सर्वकर्मभुक् ।।५।।
त्र्यम्बकं च भाद्रपदे बिल्वपत्राशनो निशि । तण्डुलाशी चाऽऽश्वयुजे ईशं रुद्रं तु कार्तिके ।।६।।
दध्याशी होमकारी स्याद्वर्षान्ते मण्डले यजेत् । गोवस्त्रहेमं गुरवे दद्याद्विप्रेभ्य ईदृशम् ।।७।।
प्रार्थयित्वा द्विजान्भोज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । ([6]नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते च धेनुदः ।।८।।
पौरन्दरं पदं याति[7] स्वर्गतिव्रतमुच्यते) । अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा ।।९।।

अध्याय १८४

अष्टमीव्रत

अग्निदेव बोले–चैत्र मास की कृष्णाष्टमी में आठ मातृकाओं का जप करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा आदि ने भी मातृकाओं की पूजा की थी। कृष्ण की पूजा करने से धन की प्राप्ति होती है ।।१।। अब मैं कृष्णाष्टमी व्रत का वर्णन करूँगा। (इसका विधान यह है कि) मार्गशीर्ष की अष्टमी को दिनभर उपवास रखकर रात्रि में गोमूत्र पान करे, भूमि पर सोये और शंकर का पूजन करे। पौष मास की अष्टमी में घी पीना चाहिए और भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिए। माघ में दुग्धपान तथा महेश्वर का पूजन करना चाहिए ।।२-३।। फाल्गुन में तिलभोजन, शिवपूजन करना चाहिए। चैत्र में यवभक्षण तथा शंकर जी की पूजा करे। वैशाख में कुशोदक पान करके महेश्वर का पूजन करे ।।४।। ज्येष्ठ में शृङ्गोदक पानकर पशुपति की अर्चना करे। आषाढ़ में गोबर खाकर त्रिशूली (शंकर) का यजन करे। श्रावण में सभी कर्मों का भोग करते हुए त्र्यम्बक (शिव जी) की पूजा करे। भाद्रपद में बिल्वपत्र खाकर रात्रि में शंकर की पूजा करे। आश्विन में चावल खाकर शंकर जी की अर्चना करे। कार्तिक में दही खाकर रुद्र का पूजन करना चाहिए। वर्षान्त (कार्तिक) में मण्डल बनाकर हवन तथा गुरु और ब्राह्मणों को गाय, वस्त्र तथा सुवर्ण का दान करना चाहिए ।।५-७।। तदनन्तर ब्राह्मणों की प्रार्थना करके उन्हें भोजन कराना चाहिए। ऐसा करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। वर्ष की सभी अष्टमियों में रात्रि को भोजन करनेवाला और ब्राह्मणों को गायों का दान देनेवाला इन्द्रलोक को प्राप्त कर लेता है। इस व्रत को स्वर्गदायक व्रत भी कहते हैं। दोनों पक्षों की अष्टमी में

---

१ ख. °च-ब्राह्म्यादि। २ क. ङ. विधुं। ३ कुशोदाशी…शृङ्गोदकाशनः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. °ग्रयं क्षौद्रं श्रा°। ५ च. °णे शर्कराज्य भु°। ६ नक्ताशी…व्रतमुच्यते' नास्ति च. पुस्तके। ७ क. ङ. °ति सुशान्ति व्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तदा व्रतं प्रकुर्वीत अथ वा सगुडाशिता। तस्यां नियमकर्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ।।१०।।
तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलीद्वयम्। भक्तं[1] कृत्वा चाऽऽम्रपुटे सकुशे सकुलाम्बिकाम् ।।११।।
सात्त्विकं पूजयित्वाङ्गं भुञ्जीत च कथाश्रवात्। शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्कटीतण्डुलान्विताम् ।।१२।।
धीरो द्विजोऽस्य भार्याऽस्ति रम्भा पुत्रस्तु कौशिकः। दुहिता विजया तस्य धीरस्य धनदो वृषः ।।१३।।
कौशिकस्तं गृहीत्वा तु गोपालैश्चारयन्वृषम्। गङ्गायां स्नानकृत्येऽथ नीतश्चौरैर्वृषस्तदा ।।१४।।
स्नात्वा वृषमपश्यन्स वृषं मार्गितुमागतः। विजयाभगिनीयुक्तो ददर्श स सरोवरे ।।१५।।
दिव्यस्त्रीयोषितां वृन्दमब्रवीद्देहि भोजनम्। स्त्रीवृन्दमूचे व्रतकृद्भुङ्क्ष्व त्वमतिथिर्यतः ।।१६।।
व्रतं कृत्वा स बुभुजे प्राप्तवान्वनपालकम्। गतो धीरः स वृषभो विजया सहितस्तदा ।।१७।।
धीरेण विजया दत्ता यमायान्तरितः पिता। व्रतप्रभावात्कौशिकोऽपि ह्ययोध्यायां नृपोऽभवत् ।।१८।।
पित्रोऽस्तु नरके दृष्ट्वा विजयाऽऽर्ति यमे गता। मृगयामागतं प्रोचे मुच्यते नरकात्कथम् ।।१९।।
व्रतद्वयाश्रमः प्रोचे प्राप्य तत्कौशिको ददौ। बुधाष्टमीद्वयफलं स्वर्गतौ पितरौ ततः ।।२०।।

से कोई भी यदि बुधवार के दिन पड़े तो उस दिन या तो व्रत करना चाहिए या गुड़ खाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य की सम्पत्ति का नाश नहीं होता है ।।८-१०।। आठ मुट्ठी चावल में से दो अंगुल प्रमाण छोड़कर भात पकाना चाहिए। उस भात को कुशयुक्त आम्रपात्र के दोने में रखकर सात्त्विक अंग देवता का पूजन करके कथाश्रवण के बाद खाना चाहिए। तदनन्तर कर्कटी (छोटे आँवले) तथा तण्डुल के साथ यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए ।।११-१२।। प्राचीनकाल में धीर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम रम्भा, पुत्र का नाम कौशिक, पुत्री का नाम विजया और बैल का नाम धनद था ।।१३।। एक बार कौशिक ग्वालबालों के साथ अपने बैल को गंगातट पर चराने ले गया। जब वह गंगा में स्नान कर रहा था उसी समय चोर उसके बैल को चुरा ले गये। स्नान करने के बाद जब उसने बैल को वहाँ नहीं देखा तब अपनी बहन विजया को साथ लेकर उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा। मार्ग में उसने एक सरोवर में अनेक दिव्य रमणियों को देखा। उसने उनसे भोजन के लिए प्रार्थना की ।।१४-१५ $\frac{1}{2}$।। स्त्रियों ने उत्तर दिया–'तुम हमारे अतिथि हो, इसलिए (आज अष्टमी) व्रत करके भोजन करो।' कौशिक ने व्रत करके भोजन किया। उस व्रत के प्रभाव से उसे बैल मिल गया। तब वह बैल को लेकर विजया के साथ अपने पिता धीर के पास पहुँचा ।।१६-१७।। धीर ने विजया का विवाह यम के साथ कर दिया और वह मर गया। व्रत के प्रभाव से कौशिक भी अयोध्या का राजा हुआ ।।१८।। (एक समय) विजया अपने माता-पिता को नरक में देखकर बड़ी दुःखी हुई। उस समय यम शिकार खेलने गये थे। लौटने पर उनसे विजया ने पूछा कि नरक से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है ? यम ने कहा–नरक से मुक्ति दो व्रतों से होती है तथा कौशिक ने अपने बुध और अष्टमी दोनों व्रतों का फल अपने माता-पिता को दे दिया। इससे माता-पिता स्वर्ग में पहुँच गये ।।१९-२०।।

---

१ ख. च. भुक्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विजया हर्षिता चक्रे व्रतं भुक्त्यादिसिद्धये। अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।।२१।।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः। त्वामशोकहराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।।२२।।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु। चैत्रादौ मातृपूजाकृदष्टम्यां जयते रिपून् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽष्टमीव्रतकथावर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८४।।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नवमीव्रतानि

अग्निरुवाच

नवमीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिसिद्धिदम्। देवीं पूज्याऽऽश्विने शुक्ले गौर्याख्यानवमीव्रतम्(ते) ।।१।।
पिष्टकाख्या तु नवमी पिष्टाशी देविपूजनात्। अष्टम्यामाश्विने शुक्ले कन्यार्के मूलभे यदा ।।२।।
अघार्दना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता। दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिताऽथवा ।।३।।
पूजिताऽष्टादशभुजा शेषाः षोडशसत्कराः। शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं तथा ।।४।।

(उसी समय से) प्रसन्न होकर विजया भी भोगादि की प्राप्ति के लिए व्रत करने लगी। जो व्यक्ति पुनर्वसु नक्षत्र में चैत्र-शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन आठ अशोक-कलियों के रस का पान करते हैं, वे कभी शोक को प्राप्त नहीं होते हैं। अशोक-कलिकाओं के रसपान के समय यह कहना चाहिए कि 'अये मधुमास में उत्पन्न होनेवाले तथा शंकर के प्रिय अशोक! मैं शोक-सन्तप्त होकर तुम्हारा पान कर रहा हूँ। तुम मुझे सदा शोकरहित बनाये रखो।' चैत्रमास की अष्टमी के दिन मातृकाओं की पूजा करनेवाला व्यक्ति शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है ।।२१-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में अष्टमी-व्रत-कथा वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८४।।

अध्याय १८५

नवमी-व्रत

अग्निदेव बोले-अब मैं उस नवमी व्रत का वर्णन करूँगा जो भोग और मोक्ष दोनों को दिलानेवाला है। आश्विन-शुक्लपक्ष की नवमी का नाम गौरी है, उस दिन देवी का पूजन करना चाहिए ।।१।। आश्विन-शुक्लपक्ष की अष्टमी को जब सूर्य कन्याराशि तथा मूल नक्षत्र में रहे तब पिष्टका नवमी व्रत करना चाहिए। इसे पिष्टका इसलिए कहते हैं कि उस दिन पिष्टी (पित्री) खाकर ही देवी का पूजन किया जाता है ।।२।। सभी नवमी-व्रतों में श्रेष्ठतम नवमी व्रत है जिसे अघार्दना कहते हैं। उस दिन नवगृहों में स्थित या एक गृह में स्थित देवी की पूजा करनी चाहिए ।।३।। मध्य में अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्वों में शेष दुर्गाओं का पूजन करना चाहिए। अञ्जन एवं डमरू के साथ निम्नलिखित क्रम से नवदुर्गाओं की स्थापना करनी चाहिए-रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती पूज्या चण्डरूपाऽतिचण्डिका ।।५।।
क्रमान्मध्ये चोग्रचण्डा दुर्गा महिषमर्दिनी । [1]ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा, दशाक्षरो मन्त्रः ।।६।।
[2]दीर्घाकारादिमन्त्रादिर्नवनेत्रो नमोऽन्तकः । षड्भिः पदैर्नमः स्वधावषट्कारहृदादिकम् ।।७।।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्त न्यस्याङ्गानि जपेच्छिवाम् । एवं जपति यो गुह्यं नासौ केनापि बाध्यते ।।८।।
कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः । ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु विभ्रतीम् ।।९।।
शक्तिमुद्गरशूलानि वज्रं खड्गं च कुन्तकम् । शंखं चक्रं शलाकां च आयुधानि च पूजयेत् ।।१०।।
पशुं च काली कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् । कालि कालि व्रजेश्वरि लौहदण्डायै नमः ।।११।।
तदुत्थं रुधिरं मांसं पूतनायै च नैर्ऋते । वायव्यां पापराक्षस्यै चरक्यै नम ईश्वरे ।।१२।।
विदारिकायै चाऽऽग्नेय्यां महाकौशिकमग्नये[3] । तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं पिष्टमयं हरेत् ।।१३।।
दद्यात्स्कन्दविशाखाभ्यां ब्राह्माद्या निशि ता यजेत् । जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।।१४।।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते । देवीं पञ्चामृतैः स्नाप्य पूजयेच्चार्हणादिना ।।
ध्वजादिरथयात्रादिबलिदानं वरादिकृत्[4] ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवमीव्रत कथनं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८५।।

चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्य भाग में अष्टादशभुजा, उग्रचण्डा, महिषमर्दिनी दुर्गा का पूजन करना चाहिए। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा, यह दशाक्षर-मन्त्र है ।।४-६।। जो मनुष्य इस विधि से पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्र का जप करता है, वह किसी से बाधा नहीं प्राप्त करता है। भगवती दुर्गा अपने वाम करों में कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करों में शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, भाला, अंकुश, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधों की भी अर्चना करे ।।७-१०।। तत्पश्चात् 'कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः' कहकर और 'कालि कालि' का जप करते हुए खड्ग से पशु को काटना चाहिए। पशु के रक्त और मांस को पश्चिम-दक्षिण दिशा में पूतना को, पश्चिमोत्तर दिशा में पापराक्षसी को, पूर्वोत्तर दिशा में चरकी को, दक्षिण-पूर्व दिशा में विदारिका को अर्पित करना चाहिए। महाकौशिक (या महामांस) नामक मांस अग्निदेवता को अर्पित कर देना चाहिए। तदनन्तर राजा को (देवी की प्रतिमा के) आगे स्नान करना चाहिए और शत्रु की पिष्टमयी प्रतिमा को लेकर उसे काटकर स्कन्द और विशाखा को समर्पित कर देना चाहिए। रात्रि में ब्राह्मी आदि का पूजन करना चाहिए ।।११-१३½।। 'जयन्ती मङ्गला काली···स्वधा नमोऽस्तु ते' इस मन्त्र से पूजा करने के बाद पञ्चामृत से देवी का स्नान कराकर योग्य सामग्रियों से उनका पूजन करना चाहिए। ध्वजारोपण, बलिदान तथा रथयात्रोत्सव आदि करना भी श्रेयस्कर हुआ करता है ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में नवमी-व्रत कथन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८५।।

---

१ ॐ दुर्गे···मन्त्रः ग. पुस्तके नास्ति। २ दीर्घाकारादि···जपेच्छिवाम्' क. ग. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ख. ग. °कमाश्रये। ४ एवं कृत्वा विधानेन नवमीव्रतमाचरेत्। इत्यर्धमधिकं क. पुस्तके दृश्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दशमीव्रतम्

अग्निरुवाच

दशमीव्रतकं वक्ष्ये धर्मकामादिदायकम् । दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः ।।
दिशश्च काञ्चनीर्दद्याद्ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत्[1] ।।१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दशमीव्रतकथनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८६।।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशीव्रतम्

अग्निरुवाच

एकादशी व्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दशम्यां नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः ।।१।।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । द्वादश्येकादशी यत्र तत्र संनिहितो हरिः ।।२।।

अध्याय १८६

दशमी-व्रत

अग्निदेव बोले–मैं धर्म और काम आदि (फलों) को प्रदान करनेवाले दशमी व्रत को बतलाऊँगा। दशमी के दिन व्रती को एक बार भोजन करके व्रत समाप्ति पर दस गायों का दान करना चाहिए। ब्राह्मणों को दक्षिणा में सुवर्ण देना चाहिए। ऐसा करने से (व्रत करनेवाला) ब्राह्मणाधिपति हो जाता है ।।१।।

श्री अग्निमहापुराण में दशमी-व्रत कथन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८६।।

अध्याय १८७

एकादशी-व्रत

अग्निदेव बोले–(अब) मैं एकादशी व्रत का वर्णन करूँगा जो भोग और मोक्ष को देनेवाला है। दशमी के दिन व्रती को नियमित आहार-विहार करना चाहिए। इस दिन मांस और मैथुन का परित्याग कर देना चाहिए ।।१।। दोनों पक्ष की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिए। एकादशी में द्वादशी का योग पड़ जाने से भगवान् विष्णु का सामीप्य प्राप्त हो जाता है ।।२।। उसमें व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से सौ यज्ञों का फल (पुण्य) होता है।

---

१ एवं कृत्वा तु विधिना दशमीव्रतमाचरेत्। इत्यर्धमधिकं क. पुस्तके वर्तते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र क्रतुशतं [1]पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे। [2]एकादशीकला यत्र परतो द्वादशी गता ।।३।।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे। दशम्येकादशीमिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा ।।४।।
एकादश्यां निराहारो भुक्त्वा चैवापरेऽहनि। भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।।५।।
एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं तु यदा भवेत्। सोपोष्याऽक्षय्यफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी ।।६।।
एकादशी द्वादशी या श्रवणेन च संयुता। विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ।।७।।
एषैव फाल्गुने मासि पुष्यर्क्षेण च संयुता। विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा[3] ।।८।।
एकादश्यां विष्णुपूजा कार्या सर्वोपकारिणी। धनवान्पुत्रवांल्लोके विष्णुलोके महीयते ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकादशीव्रतकथनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८७।।

जिस दिन एक कला तक एकादशी रहने के बाद द्वादशी लग जाती है ।।३।। उस दिन व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से भी सौ यज्ञों का फल प्राप्त होता है। एकादशी यदि दशमी से मिश्रित हो तो उसमें उपवास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह नरक को देनेवाली होती है ।।४।। एकादशी में निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करते समय भगवान् से यह कहना चाहिए–'हे पुण्डरीकाक्ष! अच्युत! मैं आपके शरणागत हूँ, अनुमति दीजिये कि मैं भोजन करूँ' ।।५।। शुक्लपक्ष की एकादशी में यदि पुष्यनक्षत्र हो तो उसमें अवश्य उपवास करना चाहिए, क्योंकि वह पापनाशिनी तथा अक्षयफलदायिनी हुआ करती है ।।६।। जो एकादशी या द्वादशी श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है, उसका नाम विजया है। वह भक्तों को विजय देनेवाली हुआ करती है ।।७।। वही तिथि यदि फाल्गुन मास में पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो भी विजया कहलाती है। विद्वान् लोग उसे पूर्वोक्त तिथि की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक फल देनेवाली बतलाते हैं। एकादशी में विष्णु की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह सबके लिए उपकारक है। इससे मनुष्य को (इस लोक में) धन, पुत्र तथा वैकुण्ठ में महत्ता की प्राप्ति होती है ।।८-९।।

श्री अग्निमहापुराण में एकादशी-व्रत कथन नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८७।।

---

१ क. ग. ङ. °ण्यं द्वादश्यां पारणै कृते। ए°। २ एकादशी…गता ख. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. °टिफलप्रदा। ए°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशीव्रतानि

अग्निरुवाच

द्वादशीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।।१।।
[1]उपवासेन भैक्ष्येण[2] चैवं द्वादशिकव्रती । चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम् ।।२।।
([3]पूज्येद्भुक्तिमुक्त्यर्थी मदनद्वादशीव्रती । माघशुक्ले तु द्वादश्यां भीमद्वादशिकव्रती ।।३।।
नमो नारायणायेति यजेद्विष्णुं ससर्वभाक् । फाल्गुने च सिते पक्षे गोविन्दद्वादशीव्रती ।।४।।
विशोकद्वादशीकारी यजेदाश्वयुजे हरिम्) । लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यर्च्य यो नरः ।।५।।
ददाति शुक्लद्वादश्यां स सर्वरसदायकः । गोवत्सं पूजयेद्भाद्रे गोवत्सद्वादशीव्रती ।।६।।
माध्यां तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता । द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी ।।७।।
तिलैः स्नानं तिलैर्होमो नैवेद्यं तिलमोदकम् । दीपश्च तिलतैलेन तथा देयं तिलोदकम् ।।८।।

अध्याय १८८

द्वादशी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भुक्तिमुक्तिदायक द्वादशी-व्रत के सम्बन्ध में बता रहा हूँ। द्वादशी का व्रत इस प्रकार से करना चाहिए कि उस दिन या तो केवल रात में ही बिना माँगा हुआ भोजन करना चाहिए या उपवास करना चाहिए या भिक्षान्न ग्रहण करना चाहिए ।।१।। चैत्र मास में शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन मदन द्वादशी व्रत किया जाता है। उस दिन (इस संसार में) भोग और बाद में मोक्ष के इच्छुक को मदन गोपाल की पूजा करनी चाहिए ।।२-२$\frac{1}{2}$।। माघशुक्ल द्वादशी में भीम द्वादशी व्रत करनेवाला व्यक्ति 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र से विष्णु का यजन करे। इससे सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। फाल्गुन शुक्लपक्ष में गोविन्दद्वादशी व्रत करना चाहिए ।।३-४।। आश्विन में विशोक द्वादशी व्रत करके भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। मार्गशीर्ष-कृष्णपक्ष की द्वादशी में कृष्ण की पूजा करके और उसी मास की शुक्ल द्वादशी में लवण दान करने से व्रत करनेवाले को सभी रसों के दान का फल मिलता है ।।५-५$\frac{1}{2}$।। भाद्रपद में गोवत्सद्वादशी-व्रत करनेवाले व्यक्ति को गाय के बछड़े का पूजन करना चाहिए। माघ-कृष्णपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह तिल द्वादशी कहलाती है ।।६-७।। उस दिन तिल से स्नान तथा होम करना चाहिए और तिल के बने हुए लड्डुओं का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए, तिल के तेल से दीपक जलाना चाहिए, तिलोदक दान करना चाहिए और ब्राह्मणों को तिल तथा फल दान में देना चाहिए।

---

१ उपवासेन…द्वादशिकव्रती च पुस्तके नास्ति। २ क. ख. ग. ण नैव द्वादशिको भवेत्। चै°। ३ 'पूजयेद्भुक्ति…हरिम्' पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिलाश्च देया विप्रेभ्यः[1] फलं होमोपवासतः। ॐ नमो भगवतेऽथो वासुदेवाय वै यजेत् ।।९।।
सकुलः स्वर्गमाप्नोति षट्तिलद्वादशी[2] व्रती। मनोरथद्वादशीकृत्फाल्गुने तु सितेऽर्चयेत् ।।१०।।
नामद्वादशीव्रतकृत्केशवाद्यैश्च नामभिः। वर्षं यजेद्धरिं स्वर्गी न भवेन्नारकी नरः ।।११।।
फाल्गुनस्य सितेऽभ्यर्च्य सुमतिद्वादशी व्रती। मासि भाद्रपदे शुक्ले अनन्तद्वादशीव्रती ।।१२।।
[3]आश्लेषर्क्षे तु मूले वा माघे कृष्णाय वै नमः। यजेत्तिलांश्च जुहुयात्तिलद्वादशीकृन्नरः ।।१३।।
सुमतिद्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत्। जय कृष्ण नमस्तुभ्यं वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिगः ।।
पौषशुक्ले तु द्वादश्यां संप्राप्तिद्वादशीव्रती ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाद्वादशीव्रतकथनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८८।।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतानि

अग्निरुवाच

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये मासि भाद्रपदे सिते। श्रवणेन[4] युता श्रेष्ठा महती सा ह्युपोषिता ।।१।।

(उस दिन) होम तथा उपवास भी करना चाहिए। तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र से भगवान् वासुदेव की पूजा करनी चाहिए ।।८-९।। इस प्रकार छह 'तिल द्वादशी' व्रत करनेवाला व्यक्ति अपने वंशजों के साथ स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। फाल्गुन-शुक्लपक्ष की द्वादशी का नाम मनोरथद्वादशी, सुमतिद्वादशी तथा नामद्वादशी है। उस दिन केशव आदि नामों से भगवान् की पूजा करनेवाला व्यक्ति स्वर्ग चला जाता है, नरक में कभी भी नहीं जाता है ।।१०-११।। फाल्गुन के शुक्लपक्ष में 'सुमतिद्वादशी' का व्रत करके विष्णु का पूजन करे। भाद्र-शुक्लपक्ष में 'अनन्तद्वादशी व्रत' करना चाहिए। अश्लेषा तथा मूल नक्षत्र से युक्त माघ में तिलद्वादशी व्रत करनेवाला व्यक्ति 'कृष्णाय नमः' कहकर तिल का हवन करे ।।१२-१३।। फाल्गुन-शुक्लपक्ष में 'सुमतिद्वादशी व्रत' करनेवाले व्यक्ति को 'जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्' कहकर पूजा करनी चाहिए। इससे (इस संसार में) भोग और (बाद में) मोक्ष की प्राप्ति होती है। पौष मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को सम्प्राप्ति द्वादशी व्रत करना चाहिए ।।१४।।

श्री अग्निमहापुराण में अनेक द्वादशी व्रत कथन नामक
एक सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८८।।

अध्याय १८९

श्रवणद्वादशी-व्रत

अग्निदेव बोले-अब मैं श्रवण द्वादशी व्रत बतलाऊँगा। भाद्र-शुक्लपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह अत्यन्त पुण्यदायिनी हुआ करती है। उसमें उपवास करना चाहिए ।।१।। नदियों के संगम में स्नान करने

---

१ ग. °भ्यस्तिलहो°। २ क. ङ. °ट्कुलं द्वादशी व्रतम्। म°। ३ क. ङ. आषाढर्क्षेषु मू°। ४ क. ङ. च. °न समायुक्ता म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संगमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशी फलम्[1] । बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला ।।२।।
निषिद्धमपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् । द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम् ।।३।।
उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम् । आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम् ।।४।।
सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके । स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः ।।५।।
छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः । अर्घ्यं ददानि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदाऽर्चितः ।।६।।
भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु । वामनाय नमो गन्धं होमोऽनेनाष्टकं शतम् ।।७।।
ॐ नमो वासुदेवाय शिरः सम्पूजयेद्धरेः । श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठे कृष्णाय वै नमः ।।८।।
नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमो नाभिं वामनाय नमः कटिम् ।।९।।
त्रैलोक्य [2]जननायेति मेढ्रं जङ्घे यजेद्धरेः । सर्वाधिपतये पादौ विष्णोः सर्वात्मने नमः ।।१०।।
घृतपक्वं च नैवेद्यं दद्याद्दध्योदनैर्घटान् । रात्रौ च जागरं कृत्वा प्रातः स्नात्वा च संगमे ।।११।।
गन्धपुष्पादिभिः पूज्य वदेत्पुष्पाञ्जलिस्त्विदम् । नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञितः ।।१२।।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव । प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ।।१३।।

से श्रवण द्वादशी व्रत करने का फल प्राप्त होता है। बुध दिन तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त उक्त द्वादशी में दान आदि करने से महान् फल प्राप्त होता है ।।२।। त्रयोदशी में पारण निषिद्ध होने पर भी इस व्रत के लिए वही विहित है। द्वादशी में निराहार रहकर जल से भरे हुए घड़े के ऊपर यह कहते हुए स्वर्णमय भगवान् वामन की पूजा करनी चाहिए कि मैं भगवान् वामन की पूजा कर रहा हूँ, (इसके लिए) मैं शङ्ख-चक्र धारण करनेवाले वामन रूपधारी भगवान् विष्णु का आवाहन कर रहा हूँ। फिर त्रयोदशी में पारण करना चाहिए ।।३-४।। यह भी कहना चाहिए कि 'मैं एक जोड़े शुक्ल वस्त्र से आच्छादित और छत्र तथा पादुका से युक्त (इस) घड़े के ऊपर शङ्ख-चक्रधारी (भगवान्) वामन का आवाहन कर पञ्चामृत आदि पवित्र जल से उनको स्नान करा रहा हूँ ।।५।। छत्र तथा दण्ड धारण करनेवाले वामन (भगवान्) विष्णु को बार-बार नमस्कार है। देवाधिदेव! अर्घ्य आदि उपयुक्त सामग्री से आपकी पूजा की जा चुकी है ।।६।। अब मुझे भुक्ति, मुक्ति, प्रजा, कीर्ति तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भरपूर कर दीजिये। फिर 'वामनाय नमः' कहकर एक सौ आठ बार सुगन्धित द्रव्य से हवन करे। 'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र से विष्णु के सिर की, 'कृष्णाय नमः' से कण्ठ की पूजा करनी चाहिए ।।७-८।। 'श्रीपतये नमः' से वक्षःस्थल की, 'सर्वास्त्रधारिणे नमः' से भुजाओं की, 'व्यापकाय नमः' से नाभि की, 'वामनाय नमः' से कटि की, 'त्रैलोक्य-जननाय नमः' से लिङ्ग की, 'सर्वाधिपतये नमः' से जङ्घा की और 'सर्वात्मने नमः' से चरणों की पूजा करनी चाहिए ।।९-१०।। घी के पकवान तथा दही और भात के नैवेद्य चढ़ाना चाहिए तथा रात्रि में जागरण करके प्रातःकाल संगम में स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् गन्ध, पुष्प आदि से भगवान् की पूजा करके यह कहते हुए पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए कि हे गोविन्द! बुध और श्रवण कहलानेवाले आपको नमस्कार है ।।११-१२।। आप मेरे पाप-पुञ्ज को भस्म करके मुझे सम्पूर्ण सुख प्रदान कीजिये। हे देवेश! हे जनार्दन! आप सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। वामन बुद्धि देनेवाले हैं। वे स्वयं द्रव्यों में रहते

---

१ ख. ग. °नाद्द्वादशद्वा°। २ क. ङ. °नकाये°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम्। वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ।।१४।।
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः। प्रदत्तदक्षिणो विप्रान्संभोज्यान्नं स्वयं चरेत् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रवणद्वादशीव्रतकथनं नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८९।।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतम्

[1]अग्निरुवाच

अखण्डद्वादशीं वक्ष्ये व्रतसम्पूर्णताकृतम्। मार्गशीर्षे सिते विष्णुं द्वादश्यां समुपोषितः ।।१।।
पञ्चगव्यजले स्नातो यजेत्तत्प्राशनो व्रती। यवव्रीहियुतं पात्रं द्वादश्यां हि द्विजेऽर्पयेत् ।।२।।
सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डं व्रतं कृतम्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ।।३।।
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम। तथाऽखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ।।४।।
एवमेवानुमासं च चातुर्मास्यो विधिः स्मृतः। अन्यच्चैत्रादिमासेषु सक्तुपात्राणि चार्पयेत् ।।५।।

हैं। वे (पूजा इत्यादि) ग्रहण करते हैं तथा (सुख-सम्पत्ति) देते हैं। ऐसे द्रव्य स्थित वामन को मेरा बार-बार नमस्कार है। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए और स्वयं भी भोजन करना चाहिए ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में श्रवण द्वादशी व्रत कथन नामक
एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८९।।

अध्याय १९०

अखण्डद्वादशी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं अखण्डद्वादशी व्रत बतलाऊँगा जो सभी व्रतों को पूर्ण करनेवाला हुआ करता है। मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष की द्वादशी में उपवास कर विष्णु का पूजन करना चाहिए ।।१।। व्रत करनेवाले को पञ्चगव्यमिश्रित जल में स्नान करके उस (पञ्चगव्य) का पान भी करना चाहिए और द्वादशी को ही यव तथा धान से भरा हुआ पात्र ब्राह्मण को देना चाहिए। तदनन्तर भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए–'हे भगवन् ! सात जन्मों में मैंने जिन खण्डित व्रतों का अनुष्ठान किया है, वे व्रत आपकी कृपा से परिपूर्ण हो जायँ' ।।२-३।। अये पुरुषोत्तम! अखण्ड जगत् आप ही हैं। इसलिए मेरे सब व्रत भी अखण्ड हो जायँ। इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करके चातुर्मास्य व्रत सम्पन्न करना चाहिए। चैत्र आदि मासों में सत्तू से भरे पात्र का दान करना चाहिए ।।४-५।।

---

१ अयमध्यायो नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रावणादिषु चाऽऽरभ्य कार्तिकान्तेषु पारणम् । सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सफलं कृते ।।
आयुरारोग्यसौभाग्यराज्यभोगादिमाप्नुयात् ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽखण्डद्वादशीव्रतकथनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९०।।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतानि

अग्निरुवाच

त्रयोदशीव्रतानीह सर्वदानि वदामि ते । अनङ्गेन कृतामादौ वक्ष्येऽनङ्गत्रयोदशीम् ।।१।।
त्रयोदश्यां मार्गशीर्षे शुक्लेऽनङ्गहरं[1] यजेत् । मधु संप्राशयेद्रात्रौ घृतहोमस्तिलाक्षतैः ।।२।।
पौषे योगेश्वरं प्रार्च्य चन्दनाशी[2] कृताहुतिः । [3]महेश्वरं[4] मौक्तिकाशी माघेऽभ्यर्च्य दिवं व्रजेत् ।।३।।
काकोलं प्राश्य नीरं[5] तु फाल्गुने पूजयेद्व्रती । कर्पूराशी स्वरूपं च चैत्रे सौभाग्यवान्भवेत् ।।४।।
महारूपं तु वैशाखे यजेज्जातीफलाश्यपि । लवङ्गाशी [6]ज्येष्ठमासे प्रद्युम्नं पूजयेद्व्रती ।।५।।

श्रावण से प्रारम्भ कर कार्तिक के अन्त में व्रत समाप्त करना चाहिए। इस व्रत के करने से सात जन्मों में किये हुए व्रतों की अपूर्णता सफल हो जाती है और इससे आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य तथा भोग आदि की प्राप्ति होती है ।।६।।

श्री अग्निमहापुराण में अखण्डद्वादशी व्रत कथन नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९०।।

अध्याय १९१

त्रयोदशी-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं तुमसे त्रयोदशी व्रत बतलाऊँगा जो सब-कुछ देनेवाला है। सर्वप्रथम इसका अनुष्ठान अनङ्ग (कामदेव) ने किया था, इसीलिए इसका नाम अनङ्ग त्रयोदशी पड़ा ।।१।। मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिए। उस दिन रात्रि में शहद खाकर घी, तिल और अक्षत से हवन करना चाहिए ।।२।। पौष मास की त्रयोदशी में योगेश्वर (कृष्ण) की पूजा तथा हवन करके चन्दन का भक्षण करना चाहिए। माघ मास (की त्रयोदशी) में महेश्वर की अर्चना करके मोती खाने से (व्रत करनेवाला) स्वर्गगामी होता है ।।३।। फाल्गुन (मास की त्रयोदशी) में केवल जल पीकर काकोल (शेष भगवान्) का पूजन करना चाहिए । चैत्र (मास की त्रयोदशी) में कपूर खाकर महेश्वर की पूजा करने से व्रत करनेवाला सौभाग्यवान् होता है। वैशाख (मास की त्रयोदशी) में महारूप शंकर की अर्चना करके जातीफल का भक्षण करना चाहिए। ज्येष्ठ मास (की त्रयोदशी) में तिल और जल खाकर प्रद्युम्न का पूजन करना चाहिए ।।४-५।। आषाढ़ (की त्रयोदशी)

---

१ क. ङ. च. हरि°। २ क. ख. ग. ङ. °शी हुता°। ३ 'महेश्वरं'''व्रजेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ च. नाद्येश्वरं। ५ क. ङ. च. चीनं। ६ ख. ग. घ. °ष्ठदिने प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिलोदाशी तथाऽऽषाढे उमाभर्तारमर्चयेत्। श्रावणे गन्धतोयाशी पूजयेच्छूलपाणिनम् ।।६।।
सद्योजातं भाद्रपदे प्राशिता गुरुमर्चयेत्। सुवर्णवारि सम्प्राश्य आश्विने त्रिदशाधिपम् ।।७।।
विश्वेश्वरं कार्तिके तु मदनाशी यजेद्व्रती। शिवं हैमं तु वर्षान्ते संछाद्याऽम्रदलेन तु ।।८।।
वस्त्रेण पूजयित्वा तु दद्याद्विप्राय गां तथा। शयनं छत्रकलशान्पादुकारसभाजनम् ।।९।।
त्रयोदश्यां सिते चैत्रे रतिप्रीतियुतं स्मरन्। अशोकाख्यं नगं लिख्य सिन्दूररजनीमुखैः ।।१०।।
अब्दं यजेत्तु कामार्थी कामत्रयोदशीव्रतम् ।।११।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रयोदशीव्रतकथनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९१।।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्दशीव्रतानि

अग्निरुवाच

व्रतं वक्ष्ये चतुर्दश्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। कार्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम् ।।१।।
([1]वर्ष भोगधनायुष्मान्कुर्वञ्शिवचतुर्दशीम्। [2]मार्गशीर्षे सितेऽष्टम्यां तृतीयायां मुनिव्रतः ।।२।।
द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां फलाहारो यजेत्सुरम्। त्यक्त्वा फलानि दद्यात्तु कुर्वन्फलचतुर्दशीम् ।।३।।

में गन्धजल पीकर शूलपाणि (शंकर) की पूजा करनी चाहिए। भादों मास (की त्रयोदशी) में केवल जल पीकर सद्योजात (शिव) की आराधना करनी चाहिए। आश्विन (मास की त्रयोदशी) में सुवर्ण जल पीकर देवेश्वर (शिव) की पूजा करनी चाहिए ।।६-७।। कार्तिक (की त्रयोदशी) में मदन (सोमरस) पीकर विश्वेश्वर का पूजन करे। इस प्रकार वर्ष भर व्रत करके अन्त में भगवान् शिव की स्वर्णप्रतिमा को आम्रपत्र तथा वस्त्र से ढँककर उसका पूजन करना चाहिए तथा ब्राह्मण को गाय, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपात्र दान करना चाहिए ।।८-९।। अपनी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले व्यक्ति को चैत्र-शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में कामदेव का स्मरण करते हुए सिन्दूर से अशोक वृक्ष का चित्र बनाकर एक वर्ष तक 'कामत्रयोदशीव्रत' करना चाहिए ।।१०-११।।

श्री अग्निमहापुराण में त्रयोदशी व्रत कथन नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९१।।

अध्याय १९२

चतुर्दशी-व्रत

अग्निदेव बोले-अब मैं भुक्ति-मुक्ति को देनेवाला चतुर्दशी व्रत बतलाऊँगा। कार्तिक की चतुर्दशी में निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिए ।।१।। एक वर्ष तक शिवचतुर्दशी व्रत करने से भोग, धन और आयु की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष की अष्टमी, द्वादशी तथा चतुर्दशी में फलाहार करके व्रती को देवयजन करना चाहिए। फल-चतुर्दशी करनेवाले व्यक्ति को फलों का दान करना चाहिए ।।२-३।। शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी

---

१ वर्ष...यष्टिसु क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ मार्गशीर्षे इत्यारभ्य फलचतुर्दशीमित्यन्तः ख. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । अनश्नन्पूजयेच्छंभुं स्वर्ग्युभयचतुर्दशीम् ।।४।।
कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन तथा कृष्णचतुर्दशीम् । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ।।५।।
कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां स्नानकृत्सुखी । आराधिते महेन्द्रे तु ध्वजाकारासु यष्टिषु) ।।६।।
ततः शुक्लचतुर्दश्यामनन्तं पूजयेद्धरिम् । कृत्वा दर्भमयं चैव वारिधानी समन्वितम् ।।७।।
शालिप्रस्थस्य पिष्टस्य पूपनाम्नः कृतस्य च । अर्धं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि योजयेत्[1] ।।८।।
कर्तव्यं सरितां चान्ते कथां कृत्वा हरेरिति । अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव ।।९।।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय[2]नमो नमस्ते । अनेन पूजयित्वाऽथ सूत्रं बद्ध्वा तु मन्त्रितम् ।।
स्वके करे वा कण्ठे वा त्वनन्तव्रतकृत्सुखी ।।१०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाचतुर्दशीव्रतकथनं नाम
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९२।।

तथा अष्टमी में बिना कुछ खाये शम्भु की अर्चना करनी चाहिए। दोनों पक्षों की चतुर्दशी स्वर्ग को देनेवाली हुआ करती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी में रात्रि में व्रत रखने से इस लोक में भोग तथा परलोक में शुभ गति की प्राप्ति होती है ।।४-५।। कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में स्नानकर ध्वजाकार यष्टियों (स्तम्भों) में महेन्द्र की आराधना करने से सुख प्राप्त होता है। भाद्र-शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में अनन्त भगवान् की पूजा करनी चाहिए। (उस दिन) कुश की अनन्त प्रतिमा बनाकर उसे कलश पर स्थापित करके पूजा करनी चाहिए ।।६-७।। पिसे हुए चावलों का पुआ बनाकर नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। तत्पश्चात् नैवेद्य का आधा भाग ब्राह्मणों को देकर आधा भाग स्वयं ग्रहण करना चाहिए ।।८।। अनन्त की पूजा तथा उनकी कथा नदी-तट पर करनी चाहिए। तदनन्तर-'अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव। अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते।।' इस मन्त्र से अनन्तदेव की पूजा करके अभिमन्त्रित किया हुआ अनन्त का डोरा भुजा या कण्ठ में बाँधना चाहिए। इस प्रकार अनन्तव्रत करनेवाला व्यक्ति सुखी होता है ।।९-१०।।

श्री अग्निमहापुराण में चतुर्दशी-व्रत कथन नामक एक सौ बानबेवाँ
अध्याय समाप्त ।।१९२।।

---

१ ख. ग. भोजयेत्। क. ङ. च. भोजनम्। २ क. ङ. °न्तसूत्राय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतम्

अग्निरुवाच

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।।१।।
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती। शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ।।२।।
रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती। आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।३।।
नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते। नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ।।४।।
[1]सौभाग्यारोग्य [2]विद्यार्थं स्वर्गमार्गप्रदायिने। धर्मं देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ।।५।।
गुणकीर्तिसुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे। लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापीसुन्दरसेनकः ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवरात्रिव्रतकथनं नाम
त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९३।।

अध्याय १९३

शिवरात्रि-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भोग और मोक्ष देनेवाला शिवरात्रि-व्रत बतलाऊँगा, उसे सुनो। माघ और फाल्गुन के बीच में पड़नेवाली कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में (किसी बात की) कामना करनेवाले व्यक्ति को (इस दिन) उपवास तथा रात्रि में जागरण करना चाहिए। उसे यह कहना चाहिए कि मैं चतुर्दशी में बिना भोजन किये शिवरात्रि व्रत करूँगा, मैं व्रत कर रहा हूँ अतः रात्रि में जागरण करते हुए भगवान् शंकर का आवाहन कर रहा हूँ जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं ।।१-३।। हे शिव! आप नरक के सागर से उद्धार कराने के लिए नौका रूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रजा तथा राज्य को दिलानेवाले भगवान् शंकर को नमस्कार है। सौभाग्य, आरोग्य, विद्या और स्वर्ग को प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। आप मुझे धर्म, धन, काम, भोग, गुण, कीर्ति, सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान कीजिये। पूर्व काल में सुन्दरसेन नामक पापी व्याध ने (भी) इस व्रत के प्रभाव से सद्गति को प्राप्त कर लिया था ।।४-६।।

श्री अग्निमहापुराण में शिवरात्रि-व्रत कथन नामक
एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९३।।

---

१ सौभाग्यारोग्य···प्रदायिने क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ख. ग. °द्यान्नस्व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अशोकपूर्णिमादिव्रतम्

अग्निरुवाच

अशोकपूर्णिमां वक्ष्ये भूधरं च भुवं यजेत् । फाल्गुन्यां सितपक्षायां वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।१।।
कार्तिक्यां तु बृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं परम् ।।२।।
पित्र्या याऽमावसी (स्या) तस्यां पितृणां दत्तमक्षयम् । उपोष्याब्दं पितृनिष्ट्वा निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ।।३।।
पञ्चदश्यां च माघस्य पूज्याजं स्वर्गमाप्नुयात् । वक्ष्ये सावित्र्यमावास्यां भुक्तिमुक्तिकरीं शुभाम् ।।४।।
पञ्चदश्यां व्रती ज्येष्ठे वटमूले महासतीम् । त्रिरात्रोपोषिता नारी सप्तधान्यैः प्रपूजयेत् ।।५।।
प्ररूढैः कण्ठसूत्रैश्च रजन्यां कुङ्कुमादिभिः । वटावलम्बनं कृत्वा नृत्यगीतैः प्रभातके ।।६।।
नमः सावित्र्यै सत्यवते नैवेद्यं चार्पयेद्द्विजे । वेश्म गत्वा द्विजान्भोज्य स्वयं भुक्त्वा विसर्जयेत् ।।७।।
सावित्री प्रीयतां देवी सौभाग्यादिकमाप्नुयात् ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिथिव्रतवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९४।।

अध्याय १९४

अशोकपूर्णिमादि-व्रत

अग्निदेव बोले–(अब) मैं अशोकपूर्णिमा व्रत बतलाऊँगा। इसमें पर्वत तथा पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए। फाल्गुन की पूर्णिमा में एक वर्ष तक यह व्रत करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।१।। कार्तिक की पूर्णिमा में वृषभ (बैल) का दान करके रात्रिव्रत करना चाहिए। इस व्रत का नाम वृषव्रत है। इसके करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। (आश्विन कृष्ण की) पितृविसर्जनी अमावस्या में पितरों का यजन करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग को चला जाता है। माघ की अमावस्या (पंचदशी) या पूर्णिमा में ब्रह्मा की पूजा करने से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है ।।२-४।। अब मैं भोग और मोक्ष को दिलानेवाली सावित्री अमावस्या के विषय में बतलाऊँगा। तीन रात उपवास करके ज्येष्ठ मास की अमावस्या के दिन प्रातःकाल स्त्री को वट वृक्ष के मूल में सप्तधान्य, लम्बे कण्ठसूत्र तथा कुंकुम आदि से महासती गौरी का पूजन करके वटस्पर्श तथा नृत्य-गीत करना चाहिए और 'नमः सावित्र्यै सत्यवते' कहकर ब्राह्मणों को नैवेद्य देना चाहिए। बाद में घर जाकर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए और 'सावित्री देवी प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करना चाहिए। इस व्रत को करने से सौभाग्य आदि की प्राप्ति होती है ।।५-८।।

श्री अग्निमहापुराण में तिथिव्रत-वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९४।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वारव्रतानि

अग्निरुवाच

वारव्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि। [1]करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ।।१।।
श्राद्धी चाऽऽदित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक्। सङ्क्रान्तौ सूर्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ।।२।।
कृत्वा हस्ते सूर्यवारं नक्तेनाब्दं स सर्वभाक्। चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ।।३।।
स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यार्तिवर्जितः। विशाखायां बुधं गृह्य[2] सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।।४।।
अनुराधे देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत्। शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।।
मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वारव्रतवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९५।।

अध्याय १९५

वार-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले दिन-व्रतों के सम्बन्ध में कहूँगा। हस्त तथा पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रविवार के दिन 'सर्वौषधि' से स्नान करना चाहिए ।।१।। रविवार को श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति सात जन्म तक नीरोग रहता है। संक्रान्ति में पड़नेवाला रविवार सूर्य का शुभ हृदय माना गया है। हस्त नक्षत्र के रविवार को रात्रिव्रत करने से मनुष्य की सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। चित्रा नक्षत्र के सात सोमवारों को व्रत करने से सुख की प्राप्ति होती है ।।२-३।। स्वाती नक्षत्र के सात मंगलवारों को व्रत करने से पीड़ाशान्ति होती है। विशाखा नक्षत्र के सात बुधवारों को व्रत करने से ग्रहशान्ति होती है। अनुराधा नक्षत्र के सात बृहस्पतिवारों को, ज्येष्ठा नक्षत्र के सात शुक्रवारों को और मूल नक्षत्र के सात शनिवारों को व्रत करने से ग्रहों की पीड़ा शान्त हो जाती है ।।४-५।।

श्री अग्निमहापुराण में वार-व्रत वर्णन नामक एक सौ पञ्चानबेवाँ
अध्याय समाप्त ।।१९५।।

---

१ ग. घ. कर°। २ ग. ङ. पूज्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रव्रतानि

अग्निरुवाच

नक्षत्रव्रतकं वक्ष्ये भे हरिः पूजितोऽर्थदः । नक्षत्रपुरुषं चाऽऽदौ चैत्रमासे हरिं यजेत् ।।१।।
मूले पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीष्वर्चयेद्धरिम् । जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढासूरसंज्ञके ।।२।।
मेढ्रं पूर्वोत्तराष्वेव कटिं वै कृत्तिकासु च । पार्श्वे भाद्रपदाभ्यां तु कुक्षिं वै रेवतीषु च ।।३।।
स्तनौ चैवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकम् । भुजौ पूज्यौ विशाखासु पुनर्वस्वङ्गुलीर्यजेत् ।।४।।
आश्लेषासु नखान्पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् । श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुण्ये हरेर्यजेत् ।।५।।
यजेत्स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणभेऽर्चयेत् । मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकम् ।।६।।
चित्रासु चाऽऽर्द्रासु [1]कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिम् । गुडपूर्णे घटेऽभ्यर्च्य शय्यागोर्थादि दक्षिणा ।।७।।
नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः । शांभवनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिम् ।।८।।
कार्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृगास्यके । नामभिः केशवाद्यैस्तु अच्युताय नमोऽपि वा ।।९।।

अध्याय १९६

नक्षत्र-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं नक्षत्र-व्रत बतलाऊँगा। (किसी भी) नक्षत्र में विष्णु की पूजा करने (सभी) से कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। चैत्रमास में पहले नक्षत्रपुरुष भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए ।।१।। मूल नक्षत्र में उनके चरणों की, रोहिणी में जङ्घाओं की, अश्विनी में जानुओं की, आषाढ़ (भरणी) में ऊरुओं की, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ में लिंग की, कृत्तिका में कटि की, भाद्रपद में पार्श्व की, रेवती में कुक्षि की, अनुराधा में स्तनों की, धनिष्ठा में पीठ की, विशाखा में भुजाओं की, पुनर्वसु में अँगुलियों की, आश्लेषा में नाखूनों की, ज्येष्ठा में कण्ठ की पूजा करनी चाहिए ।।२-४½।। श्रवण में कानों की, पुष्य में मुख की, स्वाती में दाँतों की, शतभिषा में मुख की, मघा में नासिका की, मृगशिरा में ललाट की, चित्रा और आर्द्रा में केशों की पूजा करनी चाहिए। वर्ष के अन्त में गुड़ से भरे हुए घड़े पर विष्णु की स्वर्णप्रतिमा की अर्चना करके शय्या, गाय, द्रव्य तथा दक्षिणा दान करना चाहिए ।।५-७।। नक्षत्रपुरुष विष्णु का पूजन शिवरूप समझकर करना चाहिए। शांभवनीय व्रत करनेवाले व्यक्ति को मास नक्षत्र में हरि का पूजन करना चाहिए ।।८।। कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र में और मार्गशीर्ष में मृगशिरा नक्षत्र में केशव आदि नामों से अच्युत (भगवान् विष्णु) को नमस्कार करना चाहिए ।।९।।

---

१ ख. ग. कराब्दा'°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम्। शांभवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ।।१०।।
केशवादि महामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम्। आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ।।११।।
कार्तिकादौ सदा देयमन्नं मासचतुष्टयम्। फाल्गुनादौ च कृशरमाषाढादौ च पायसम् ।।१२।।
देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तं नैवेद्यमाशयेत्। पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ।।१३।।
अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते। विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ।।१४।।

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु, पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम्।
ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे, क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ।।१५।।
यथाऽच्युतस्त्वं परतः परस्तात्, स ब्रह्मभूतः परतः परात्मन्।
तथाऽच्युतं त्वं कुरु वांछितं मे, मया कृतं पापहराप्रमेय ।।१६।।

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद[1] यदभीप्सितम्। अक्षयं माममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ।।१७।।
सप्तवर्षाणि सम्पूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। अनन्तव्रतमाख्यास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदम् ।।१८।।
मार्गशीर्षे मृगशिरे (शीर्षे) गोमूत्राशी यजेद्धरिम्। अनन्तं सर्वकामानामनन्तो भगवान्फलम् ।।१९।।
[2]ददात्यनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि। अनन्तपुण्योपचयं करोत्येतन्महाव्रतम् ।।२०।।

कार्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र में मासों और नक्षत्रों में व्याप्त रहनेवाले भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। पहले 'मैं भुक्ति-मुक्तिदायक शांभवनीय व्रत करूँगा' यह संकल्प करे ।।१०।। तदनन्तर 'आयु, आरोग्य और सौभाग्यवर्द्धक तथा सब-कुछ देनेवाले केशव आदि महामूर्तिरूप विष्णु भगवान् का आवाहन करता हूँ।' कहकर आवाहन करना चाहिए। कार्तिक आदि चार मासों में सदा अन्नदान करना चाहिए। फाल्गुन आदि में कृशर (खिचड़ी) तथा आषाढ़ आदि में खीर से देवता तथा ब्राह्मणों का भोग लगाना चाहिए ।।११-१२$\frac{1}{2}$।। व्रत के दिन पञ्चगव्य मिश्रित जल से स्नान करने तथा उसी जल का पान करनेवाला (व्यक्ति) पवित्र होता है। पूजा समाप्त होने के पूर्व चढ़ायी हुई वस्तु नैवेद्य कहलाती है तथा जगन्नाथ (विष्णु) का विसर्जन कर देने के पश्चात् दिया हुआ नैवेद्य निर्माल्य हो जाता है ।।१३-१४।। नैवेद्य का भोग लगाने के बाद भगवान् की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए-'हे अच्युत! आपको नमस्कार है। आपकी कृपा से मेरे पाप का नाश तथा धर्म की वृद्धि होती रहे। मुझे ऐश्वर्य तथा धन आदि अक्षय रूप से प्राप्त होते रहें। मेरी सन्तान कभी नष्ट न हों। जैसे आप कभी नष्ट न होनेवाले, श्रेष्ठतम, ब्रह्मभूत तथा परमात्मा हैं, उसी प्रकार मुझे अधःपतन से रहित और सफल मनोरथ कर दीजिये। हे अप्रमेयात्मन्! मेरे पापों का हरण कीजिये। अच्युत! अनन्त! गोविन्द! कृपा कीजिये। मेरी कामनाओं को सफल कीजिये। पुरुषोत्तम! मुझे अविनश्वर बना दीजिये।' इस प्रकार सात वर्ष भगवान् की आराधना करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।१५-१७$\frac{1}{2}$।। अब मैं नक्षत्र व्रत से सम्बन्ध रखनेवाले और मनोरथों को पूर्ण करनेवाले व्रत को बताऊँगा। मार्गशीर्ष के मृगशिरा नक्षत्र में गोमूत्र पानकर अनन्त भगवान् की आराधना करे। ऐसा करने से अनन्त भगवान् अनेक जन्मों में महान् और अनन्तफल देनेवाले होते हैं। यह महाव्रत अनन्त पुण्य की वृद्धि तथा अभीष्ट प्राप्ति को अक्षय कर देता है ।।१८-२०$\frac{1}{2}$।। इस व्रत में

---

१ ग. °द पदमीप्सि°। क. ङ. °द परमेश्वर। अ°। २ 'ददात्यनन्तं'''जन्मनि' इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोः 'वेदे द्वे लक्षजन्मानिपुनरात्मानमात्मनि' इति दृश्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यथाभिलषितप्राप्तिं करोत्यक्षयमेव च। ([1]पादादि पूज्य नक्ते तु भुञ्जीयात्तैल वर्जितम् ।।२१।।
घृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयम्। चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु) ।।२२।।
मान्धाताऽभूद्युवनाश्वादनन्तव्रतकात्सुतः ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रव्रतवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९६।।

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दिवसव्रतानि

अग्निरुवाच

दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे। यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ।।१।।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत्स याति परमं पदम्। त्र्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ।।२।।
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतम्। दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं[2] महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ।।३।।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रगः स्याद्दिवाव्रती। पक्षे पक्षे त्रिरात्रं तु भक्तेनैकेन यः क्षपेत् ।।४।।
विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृद्दिनम्। मासे मासे त्रिरात्राशी [3]एकभक्ती गणेशताम् ।।५।।

एकाहार, भगवान् के चरण आदि का पूजन तथा तेलरहित भोजन किया जाता है। अनन्त देव के उद्देश्य से चार मास तक घृत से हवन करना चाहिए। चैत्र आदि मासों में चावल से और श्रावण आदि मासों में खीर से हवन करना चाहिए। पूर्वकाल में इसी अनन्त व्रत के प्रभाव से युवनाश्व को मान्धाता नामक पुत्र प्राप्त हुआ था ।।२१-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में नक्षत्रव्रत-वर्णन नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९६।।

अध्याय १९७

दिवस-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं दिवसव्रत बतलाऊँगा, इसलिए सर्वप्रथम धेनुव्रत (ही) बता देता हूँ। जो व्यक्ति एक दिन केवल दूध पीकर रहता है तथा (मुख और पूँछ) दोनों ओर बहुत से सोने से युक्त गाय का दान करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है। तीन दिन केवल दुग्धपान कर स्वर्ण-निर्मित कल्पवृक्ष दान करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। इसे कल्पवृक्ष व्रत कहते हैं ।।१-२$\frac{1}{2}$।। एक दिन दुग्धाहार करते हुए बीस पल (८० तोले) सोने की बनी हुई पृथ्वी (की प्रतिमा) दान करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। प्रत्येक पक्ष में तीन रातें एकाहार करके बिता देने से विपुल धन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक मास में तीन रात तक एकाहार करने से गणेशत्व की प्राप्ति हो जाती है ।।३-५।।

---

१ 'पादादि'''तैलवर्जितम्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ च. °द्याद्विसर्जनादू°। ३ ख. ग. °कभुक्तिगणेश्वरम्। य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यस्त्रिरात्रव्रतं कुर्यात्समुद्दिश्य जनार्दनम् । कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ।।६।।
[1]नवम्यां च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ । प्रारभेत त्रिरात्राणां [2]व्रतं तु [3]विधिवद्व्रती ।।७।।
[4]ॐ नमो [5]वासुदेवाय सहस्रं वा शतं जपेत् । अष्टम्यामेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ।।८।।
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं [6]कार्तिके कारयेद्व्रतम् । विप्रान्संभोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ।।९।।
छत्रोपवीतपात्राणि [7]ददत्संप्रार्थयेद्द्विजान् । व्रतेऽस्मिन्दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ।।१०।।
भवद्भिस्तदनुज्ञातं परिपूर्णं भवत्विति । भुक्तभोगो व्रजेद्विष्णुं त्रिरात्रव्रतकव्रती[8] ।।११।।
कार्तिकव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः ।।१२।।
([9]कार्तिकस्य सितेऽभ्यर्च्य विष्णुं देवो विमानगः । चैत्रे त्रिरात्रं नक्ताशी[10] अजापञ्चप्रदः सुखी ।।१३।।
त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्त्र्यहम्) । षष्ठ्यादि कार्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ।।१४।।
पञ्चरात्रं पयःपीत्वा दध्याहारो ह्युपोषितः । एकादश्यां कार्तिके तु कृच्छ्रोऽयं भास्करोऽ[11]र्थदः ।।१५।।
यवागूं यावकं शाकं दधि क्षीरं घृतं जलम् । पञ्चम्यादि सिते पक्षे कृच्छ्रः सान्तपनः स्मृतः ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिवसव्रतकथनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९७।।

जो मनुष्य जनार्दन (भगवान् विष्णु) के उद्देश्य से त्रिरात्र-व्रत करता है, वह सौ पीढ़ियों का उद्धार करके वैकुण्ठ को चला जाता है। मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष की नवमी में विधिपूर्वक त्रिरात्र-व्रत करना चाहिए ।।६-७।। व्रत के दिन 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र का सौ बार या सहस्र बार जप करना चाहिए। अष्टमी में एकाहार रहकर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। द्वादशी के दिन विष्णु का पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत तथा पात्र दान करके यह प्रार्थना करनी चाहिए-'इस कठिन व्रत में जो कुछ भी न्यूनता रह गयी हो वह आपकी अनुज्ञा से परिपूर्ण हो जाय ।।८-१०$\frac{1}{2}$।। अनन्तर मैं भुक्ति-मुक्तिदायक कार्तिक व्रत का वर्णन करूँगा। कार्तिक-शुक्लपक्ष की दशमी में पञ्चगव्य का पान करना चाहिए और एकादशी में उपवास करके भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए ।।११-१२।। ऐसा करने से मनुष्य विमान में बैठकर वैकुण्ठ को चला जाता है। चैत्र में त्रिरात्र व्रत तथा पाँच बकरियों का दान करने से मनुष्य सुखी हो जाता है। तीन रात तक दुग्धपान और बाद में तीन दिन तक उपवास करके कार्तिक-शुक्लपक्ष की षष्ठी आदि में कृच्छ्र माहेन्द्र नामक व्रत किया जाता है ।।१३-१४।। पाँच रात दुग्धपान तथा दही का भोजन करके कार्तिक की एकादशी में उपवास करके कृच्छ्र भास्कर नामक व्रत किया जाता है, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला हुआ करता है। उसी मास में शुक्लपक्ष की पञ्चमी आदि तिथियों में कृच्छ्रसान्तपन नामक व्रत किया जाता है। इसमें यवागू (माँड़), यावक (जौ का सत्तू), शाक, दही, दूध, घी तथा जल ग्रहण करना चाहिए ।।१५-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में दिवस-व्रत कथन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९७।।

---

१ क. ख. ग. °म्यां चाऽऽदिमे प°। २ ख. ग. च. शतं। ३ ग. विधिरब्रवीत्। ४ 'ॐ नमो····शतं जपेत्' नास्ति च. पुस्तके। ५ ख. ग. मो भगवते वा°। ६ क. ङ. °र्तिक्यां पार°। ७ क. ङ. दश संप्रा°। ८ क. ख. °त्रशत°। ९ कार्तिकस्य····अहम्' पुस्तके नास्ति। १० ख. ग. °शी स्रजा° प°। ११ च. °रोऽन्द।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मासव्रतानि

अग्निरुवाच

मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेत्सुधीः[1] ।।१।।
वैशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् । गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ।।२।।
आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी च विष्णुगः । माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ।।३।।
गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती । मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णुलोकभाक् ।।४।।
एकभक्तव्रती तद्वद्द्वादशीव्रतकं पृथक् । फलव्रती चतुर्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ।।५।।
श्रावणादिचतुर्मासं व्रतैः सर्वं लभेद्व्रती । आषाढस्य सिते पक्ष एकादश्यामुपोषितः ।।६।।
चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् । [2]आषाढ्यां चाथ संक्रान्तौ कर्कटस्य हरिं यजेत् ।।७।।
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव ।।८।।

अध्याय १९८

मास-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भोग और मोक्ष को देनेवाला मास-व्रत बतलाऊँगा। (मास-व्रत करनेवाले) बुद्धिमान् मनुष्य को आषाढ़ आदि चार मासों में शरीर में उबटन नहीं लगाना चाहिए ।।१।। वैशाख में पुष्प तथा लवण का त्याग करके गोदान करनेवाला व्यक्ति राजा होता है। एक मास तक उपवास तथा गोदान करनेवाला भीमव्रती विष्णु (सायुज्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता) है ।।२।। आषाढ़ से लेकर चार मास तक प्रातःस्नान करनेवाला व्यक्ति विष्णुलोक में पहुँच जाता है। माघ तथा चैत्र मास गुड़, धेनु का दान करनेवाला भी उसी लोक में पहुँच जाता है ।।३।। तृतीया में गुड़ का व्रत करनेवाला महाव्रती साक्षात् शिव हो जाता है। मार्गशीर्ष आदि मासों में रात्रिव्रत करनेवाला विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है ।।४।। इसी प्रकार एकाहार रहकर द्वादशी व्रत करनेवाला भी वैकुण्ठगामी होता है। फलव्रती अर्थात् फल का व्रत करनेवाले को चार मास तक फल त्यागकर अन्त में ब्राह्मणों को फलों का ही दान करना चाहिए ।।५।। श्रावण आदि चार मासों में व्रत करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास करने से चातुर्मास्य व्रत करने का फल होता है। आषाढ़ की पूर्णिमा तथा कर्क राशि की सङ्क्रान्ति में विष्णु का पूजन करना चाहिए ।।६-७।। अनन्तर यह प्रार्थना करनी चाहिए–'हे देव! मैंने आपके सामने यह व्रत करने का संकल्प लिया है। केशव! आपकी कृपा से यह निर्विघ्न समाप्त हो जाय ।।८।। हे जनार्दन! यदि मैं इस संकल्पित

---

१ ख. ग. °त्सुखी। वै°। २ क. ङ. °द्यां वृषसं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ।।९।।
[1]मांसादि त्यक्त्वा विप्रः स्यात्तैलत्यागी हरिं यजेत् । एकान्तरोपवासी च[2] त्रिरात्री विष्णुलोकभाक् ।।१०।।
चान्द्रायणी विष्णुलोकी मौनी स्यान्मुक्तिभाजनम् । प्राजापत्यव्रती स्वर्गी सक्तुयावकभक्षकः ।।११।।
दुग्धाद्याहारवान्स्वर्गी पञ्चगव्याम्बुभुक्तथा । शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।।१२।।
([3]मांसवर्जी यवाहारो रसवर्जी हरिं व्रजेत् । कौमुदव्रतमाख्यास्ये आश्विने समुपोषितः ।।१३।।
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः । घृतेन तिलतैलेन दीपनैवेद्यमर्पयेत् ।।१४।।
ॐ नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् । धर्मकामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात्कौमुदव्रती ।।१५।।
सर्वलभेद्धरिं प्रार्च्य मासोपवासकव्रती) ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मासव्रतकथनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९८।।

व्रत को समाप्त करने के पहले ही मर जाऊँ तो भी आपकी कृपा से यह परिपूर्ण हो जाय।' ब्राह्मण को मांस, तेल आदि का परित्याग करके ही भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए। तीन रात लगातार उपवास करके व्रती विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है ।।९-१०।। चान्द्रायणी अर्थात् चान्द्रायण व्रत करनेवाले वैकुण्ठगामी होते हैं और मौनी मुक्ति प्राप्त करता है। प्राजापत्यव्रती स्वर्ग प्राप्त करता है। केवल सत्तू, हलुवा, दूध, पंचगव्य, शाक, मूल तथा फल का आहार करनेवाला व्यक्ति विष्णुपुरी चला जाता है ।।११-१२।। मांस तथा रस का त्याग करके (केवल) जौ का आहार करनेवाला व्रती विष्णु को प्राप्त कर लेता है। अब मैं कौमुदव्रत का वर्णन करूँगा। यह व्रत आश्विन में किया जाता है। (आश्विन) मास की द्वादशी में उपवास करके कमल पुष्प आदि से विष्णु का पूजन करना चाहिए। घृत तथा तिल के तेल से दीपक जलाकर नैवेद्य देना चाहिए। तदनन्तर मालती की माला पर 'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार कौमुद-व्रत करनेवाले को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। एक मास तक उपवास रखकर विष्णु का पूजन करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।।१३-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में मासव्रत कथन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९८।।

---

१ ख. °मांसत्यागी तु वि°। २ घ. °रात्रं वि°। ३ 'मासवर्जी...मासोपवासकव्रती' पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाव्रतानि

अग्निरुवाच

ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते। इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादि चतुरो ह्यतून् ।।१।।
घृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत्। कृत्वा मौनं तु सन्ध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ।।२।।
तिलघण्टा वस्त्रदाता[1] सुखी सारस्वतव्रती। पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वाऽब्दं धेनुदो नृपः ।।३।।
एकादश्यां तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत्। हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ।।४।।
[2]पायसाशी गोयुगदः श्रीभाग्देवीव्रती भवेत्। निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ।।५।।
वर्षव्रतानि चोक्तानि संक्रान्तिव्रतकं वदे। संक्रान्तौ स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्नरः ।।६।।
अमावस्यां तु संक्रान्तौ शिवार्कयजनात्तथा। उत्तरे त्वयने चेज्यः प्रातःस्नानेन केशवः ।।७।।
द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते। घृतक्षीरादिनाऽऽस्नाप्य प्राप्नोति विषुवादिषु ।।८।।
स्त्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च। गौरी महेश्वरं चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात् ।।९।।

अध्याय १९९

नाना-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भुक्ति-मुक्ति देनेवाले ऋतुओं के व्रतों का वर्णन करूँगा। अग्निव्रत करनेवाले ब्राह्मण को चाहिए कि वह वर्षा आदि चार मासों में ईंधन तथा व्रतान्त में घृतधेनु का दान करे। सारस्वतव्रती को सन्ध्या काल में मौन धारण करना चाहिए और मासान्त में सुख प्राप्त करने हेतु घृतपूर्ण कुम्भ, तिल, वस्त्र और घण्टा का दान करना चाहिए ।।१-२$\frac{1}{2}$।। राजा को एक वर्ष तक पञ्चामृत से स्नान करके अन्त में गोदान करना चाहिए। चैत्र में रात्रिव्रत करनेवाला व्यक्ति एकादशी के दिन भगवान् विष्णु को भात का नैवेद्य समर्पित करे तथा मासान्त में ब्राह्मण को विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा का दान दे। ऐसा करने से उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति पितृदेवों को भोग लगाकर भोजन करता है, वह राजा होता है ।।३-५।। वर्षव्रत तो बताये जा चुके हैं। अब मैं संक्रान्ति-व्रत बतला रहा हूँ। संक्रान्ति में रात्रि भर जागरण करने से मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है। अमावस्या तथा संक्रान्ति में शिव और सूर्य पूजन करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उत्तरायण में प्रातःकाल स्नान करके बत्तीस पल (तिल-पुष्पादि से) केशव की पूजा करने से सभी पापों का नाश होता है ।।६-७$\frac{1}{2}$।। अयनादि में घी, दूध आदि से शिव को स्नान कराने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। तृतीया और अष्टमी में उमा का पूजन करने से स्त्रियों को श्री की प्राप्ति होती है। गौरी और शंकर की अर्चना करने से भी सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।।८-९।। उमा-

---

१ क. ख. ङ. सुधीः। २ पायसाशी····भवेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उमामहेश्वरौ प्रार्च्य अवियोगादि चाऽऽप्नुयात्। मूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ।।१०।।
सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ।।११।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाव्रतवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९९।।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

दीपदानव्रतम्

अग्निरुवाच

दीपदानव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ।।१।।
चा(च)तुर्मासे(सं)विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि। दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।।२।।
दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम्। सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।।३।।
विदर्भराजदुहिता ललिता [1]दीपदानभाक्। चारुधर्मक्ष्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ।।४।।
ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती। पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीभ्य उवाच ह ।।५।।

महेश्वर की आराधना करने से विरहजन्य दुःख नहीं हुआ करता है। जो स्त्री सूर्य की भक्ति करती है, वह निःसन्देह अग्रिम जन्म में पुरुष होती है ।।१०-११।।

श्री अग्निमहापुराण में नानाव्रत-वर्णन नामक एक सौ निन्यानबेवाँ
अध्याय समाप्त ।।१९९।।

अध्याय २००

दीपदान-व्रत

अग्निदेव बोले-अब मैं भोग और मोक्ष देनेवाला दीपदानव्रत बतलाऊँगा। देवता तथा द्विजाति के घर में एक वर्ष तक दीपदान करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।।१।। चातुर्मास्य और विशेष करके कार्तिक में दीपदान करने से विष्णुलोक और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।। दीपदान से बढ़कर न तो कोई दान हुआ करता है और न होगा ही ।।२।। दीपदान से मनुष्य आयु, नेत्र, लक्ष्मी, पुत्र तथा सौभाग्य आदि प्राप्त करके स्वर्गलोक में भी पूज्य हो जाता है ।।३।। विदर्भराज की एक कन्या थी-ललिता। वह महाराज चारुधर्म की पत्नी थी। वह इसी दीपदान के प्रभाव से महाराज चारुधर्म की सौ पत्नियों में से सर्वप्रथम (अर्थात् राजमहिषी) बन गयी थी। उसने विष्णु-मन्दिर में एक हजार दीपों का दान किया था और सपत्नियों द्वारा (अपनी महनीयता का रहस्य) पूछने पर दीपदान का माहात्म्य इस प्रकार बतलाया था ।।४-५।।

---

१ क. ङ. °दार्थभा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ललितोवाच

सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत्पुरोहितः । तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ।।६।।
कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः संप्रेरितो मया । वक्त्रप्रान्तन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ।।७।।
निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्या मूषिकया तदा । मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ।।८।।
असंकल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत्कृतं मया । विष्णवायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ।।९।।
जातिस्मरा ह्यतो दीपान्प्रयच्छामि त्वहर्निशम् । एकादश्यां दीपदो वै विमाने दिवि मोदते ।।१०।।
जायते दीपहर्ता तु मूको वा जड़ एव च । अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ।।११।।
विक्रोशमानांश्च नरान्यमकिंकर आह तान् । विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलम् ।।१२।।
यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः । जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्यो ह्येकस्मिन्मानुषो यदि ।।१३।।
तत्राप्यतिमूढात्मा किं भोगानभिधावति । [1]स्वहितं विषयास्वादैः क्रन्दनं तदिहाऽऽगतम् ।।१४।।
भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्किं वो न चिन्तितम् । परस्त्रीषु कुचाभ्यङ्गं प्रीतये दुःखदं हि वः ।।१५।।
मुहूर्तविषयास्वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः । परस्त्रीहारि यद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ।।१६।।

ललित ने कहा–प्राचीनकाल में सौवीरराज के एक पुरोहित थे मैत्रेय। उसकी प्रेरणा से राजा ने देविका नदी के तट पर विष्णु का एक मन्दिर बनवाया था। मेरे कहने पर राजा ने कार्तिक मास में उस मन्दिर में दीपदान किया था ।।६-६$\frac{1}{2}$।। परन्तु बिलाव के डर से एक चुहिया ने उस दीप की बत्ती को काट दिया जिससे वह दीप बुझ गया। तो भी उस दीप के लिए जो मैंने प्रेरणा की थी, उसका यह फल हुआ कि इस जन्म में मैं राजकुमारी होकर राजा की सौ पत्नियों में सबसे श्रेष्ठ बन गयी हूँ ।।७-८।। इस प्रकार मेरे द्वारा बिना सोचे-समझे जो विष्णु-मन्दिर के दीपक की वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्य का फल मैं भोग रही हूँ। इसी से मुझे अपने पूर्वजन्म का स्मरण भी है। इसलिए मैं सदा दीपदान करती हूँ। एकादशी को दीपदान करनेवाला स्वर्गलोक में विमान पर आरूढ़ होकर प्रमुदित होता है। दीपक को चुरानेवाला मनुष्य गूँगा और जड़ हो जाता है। वह दुस्तर और अन्धकार से परिपूर्ण नरक में गिर जाता है ।।९-११।। वहाँ चिल्लाते हुए जीवों से यमदूत पूछता है–'तुम लोग क्यों विलाप कर रहे हो ? अब विलाप करने से क्या होगा ? जबकि पहले ही तुमने प्रमादवश धर्म की उपेक्षा कर दी थी। जीव को हजारों जन्मों के बाद मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ करता है, फिर भी वह अत्यन्त मूढ़ जीव भोग के पीछे ही दौड़ता रहता है ।।१२-१३$\frac{1}{2}$।। तुमने तो विषयों का रसास्वादन करने में ही अपना कल्याण समझा था। अब यहाँ क्यों रो रहे हो ? क्या तुमने यह नहीं सोचा था कि पहले ही किया हुआ कर्म इस जन्म में प्रतिफलित हो जाता है। परस्त्रियों का कुचमर्दन पहले जितना सुखकर होता है बाद में उतना ही दुःखद होता है ।।१४-१५।। एक क्षण तक किया जानेवाला विषयास्वाद करोड़ों वर्षों तक दुःख दिया करता है। परस्त्रीहरण के समय तुमने जो गीत गाया था, वही इस समय हाय! माँ! के विलाप

---

१ क. ङ. हसितं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोऽतिभारो हरेर्नाम्नि जिह्वया परिकीर्तने। [1]वर्तितैलेऽल्पमूल्येऽपि यदग्निर्लभ्यते सदा ।।१७।।
दानाशक्तैर्हरिर्दीपो हृतस्तद्वोऽतिदुःखदम्। इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ।।१८।।

अग्निरुवाच

ललितोक्तं च ताः श्रुत्वा दीपदानाद्दिवं ययुः। तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलम् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दीपदानवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ।।२००।।

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नवव्यूहार्चनम्

अग्निरुवाच

नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये नारदाय हरीरितम्। मण्डलेऽब्जेऽर्चयेन्मध्ये अबीजं वासुदेवकम् ।।१।।
आबीजं च संकर्षणम् प्रद्युम्नं च दक्षिणे। अः अनिरुद्धं नैर्ऋते ॐ नारायणमप्सु च ।।२।।
तत्सद्ब्रह्माणमनिले [2]ह्रूं विष्णुं क्षौं नृसिंहकम्। उत्तरे [3]भूर्वराहं च ईशे द्वारि च पश्चिमे ।।३।।

में परिणत हो रहा है। जिह्वा से विष्णु के नाम का संकीर्त्तन करने में कौन-सा बड़ा भार पड़ता था ? थोड़े-से मूल्य के दीया-बत्ती से सदा अग्नि प्राप्त हुआ करती है ।।१६-१७।। तुम लोगों ने दीपदान करना तो दूर रहा, (उलटे) दूसरों के दिये हुए दीपों को चुराया था। उसी का प्रतिफल इस समय मिल रहा है। इसलिए विलाप करने से क्या लाभ ? जो आ पड़ा है, उसे सहन करो ।।१८।।

अग्निदेव बोले–ललिता के मुँह से दीपदान का माहात्म्य सुनकर सभी स्त्रियाँ स्वर्गलोक पहुँच गयीं। इसलिए दीपदान करने से व्रतों का और अधिक फल प्राप्त होता है ।।१९।।

श्री अग्निमहापुराण में दीपदान-वर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त ।।२००।।

अध्याय २०१

नवव्यूह-अर्चन

अग्निदेव बोले–अब मैं नवव्यूह-पूजन की विधि बतलाऊँगा जिसे भगवान् विष्णु ने नारद से कहा था। कमलाकार चक्र के बीच में वासुदेव (कृष्ण) और संकर्षण (बलराम) का पूजन (क्रमशः) 'अ' और 'आ' बीजमन्त्रों से करना चाहिए। दक्षिण में प्रद्युम्न, दक्षिण-पश्चिम में 'अः' बीजमन्त्र से अनिरुद्ध, पश्चिम में 'ॐ' मन्त्र से नारायण का पूजन करना चाहिए ।।१-२।। पश्चिमोत्तर में 'तत् सत्' मन्त्र से ब्रह्मा, उत्तर में 'ह्रूं' मन्त्र से विष्णु और 'क्षौं' मन्त्र से नृसिंह तथा पूर्वोत्तर में भूः मन्त्र से वाराह भगवान् का पूजन करना चाहिए। (चक्र के) पश्चिम द्वार देश

---

१ वर्तितैले…सदा च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. हूं। ३ क. ङ. °राहश्च हस्ते वामे च प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]कं टं सं शं गरुत्मन्तं पूर्ववक्त्रं च [2]दक्षिणे । खं छं वं हुं फडिति च खं ठं फं शं गदां विधौ[3] ।।४।।
बं णं मं क्षं कोणे शं च धं दं भं हं श्रियं यजेत् । दक्षिणे चोत्तरे पुष्टिं गं डं बं शं स्वबीजकम् ।।५।।
पीठस्य पश्चिमे धं वं वनमालां च पश्चिमे । श्रीवत्सं चैव सं हं लं छं तं यं कौस्तुभं जले ।।६।।
[4]दशमाङ्गक्रमाद्विष्णोर्नमोऽनन्तमधोऽर्चयेत् । दशाङ्गादिमहेन्द्रादीन्पूर्वादौ चतुरो घटान् ।।७।।
तोरणानि वितानं च अग्न्यनिलेन्दुबीजकैः । मण्डलानि क्रमाद्ध्यात्वा [5]तनुं वन्द्य ततः प्लवेत् ।।८।।
[6]अम्बरस्थं ततो ध्यात्वा सूक्ष्मरूपमथाऽऽत्मनः । सितामृते निमग्नं च चन्द्रबिम्बात्स्रुतेन च ।।९।।
तदैव चाऽऽत्मनो बीजममृतं प्लवसंस्कृतम् । उत्पद्यमानं पुरुषमात्मानमुपकल्पयेत् ।।१०।।
उत्पन्नोऽस्मि स्वयं विष्णुर्बीजं द्वादशकं न्यसेत् । हृच्छिरस्तु शिखा चैव कवचं चास्त्रमेव च ।।११।।
वक्षोमूर्धशिखापृष्ठलोचनेषु न्यसेत्पुनः । अस्त्रं करद्वये न्यस्य ततो दिव्यतनुर्भवेत् ।।१२।।
यथाऽऽत्मनि तथा देवे शिष्यदेहे न्यसेत्तथा । अनिर्माल्या स्मृता पूजा यद्धरेः पूजनं हृदि ।।१३।।
सनिर्माल्या मण्डलादौ बद्धनेत्राश्च शिष्यकाः । पुष्पं क्षिपेयुर्यन्मूर्तौ तस्य तन्नाम कारयेत् ।।१४।।

में 'कं टं सं शं' मन्त्र से पूर्वाभिमुख गरुड़, दक्षिण में 'खं छं वं हुं फट्', 'खं ठं फं शं' मन्त्र से गदा, पूर्व में 'बं णं मं क्षं शं धं दं भं हं' मन्त्र से लक्ष्मी और दक्षिणोत्तर में 'गं डं बं शं' मन्त्र से पुष्टि का पूजन करना चाहिए ।।३-५।। पीठ के पश्चिम भाग में 'धं वं' मन्त्र से वनमाला तथा श्रीवत्स और 'सं हं लं चं तं यं' मन्त्र से जल में कौस्तुभ की पूजा करनी चाहिए। क्रमशः भगवान् विष्णु का दशविध अङ्गपूजन करना चाहिए। 'नमोऽनन्तम्' मन्त्र से मण्डल के नीचे की ओर भगवान् अनन्त देव का पूजन करना चाहिए। फिर क्रमशः महेन्द्र आदि देवताओं तथा उनका दशविध अङ्गपूजन करना चाहिए। (मण्डल के) पूर्व आदि चारों द्वारों पर चार घड़ों को रखकर देवार्चन करना चाहिए। मण्डल के चारों द्वारों तथा उसके ऊपर वितान (रूप में फैले हुए आकाश) को अग्नि, वायु और चन्द्र बीजों से व्याप्त समझना चाहिए ।।६-८।। तदनन्तर आचार्य को सम्पूर्ण विश्व में अपनी आत्मा को व्याप्त समझना चाहिए। उसे आत्म-बीज का भी ध्यान करना चाहिए। जो चन्द्रकिरण से निकलनेवाला, अमृत के स्वच्छ विन्दुओं से युक्त और ऊपर से उसके शरीर में व्याप्त हो रहा है। तत्पश्चात् उसे अपने-आपको बीज से उत्पन्न पूर्ण पुरुष और विष्णु का रूप समझना चाहिए। बीजमन्त्र से हृदय, सिर, शिखा, कवच और अस्त्र का न्यास करके पुनः वक्षःस्थल, मूर्धा, शिखा, पृष्ठ और नेत्रों का न्यास करना चाहिए। अस्त्र और दोनों हाथों का न्यास करके (आचार्य) सुन्दर शरीरवाले हो जाते हैं ।।९-१२।। अपने समान ही देवता तथा शिष्य के शरीर का न्यास करना चाहिए। हृदय में हरि की पूजा की जाती है, वह अनिर्माल्य (अनुच्छिष्ट) होती है और मण्डलादि में (की हुई पूजा) सनिर्माल्य (सोच्छिष्ट) हुआ करती है। शिष्य आँखें मूँदकर जिस मूर्ति के ऊपर फूल चढ़ायें उनसे उसके नाम का उच्चारण करवाना चाहिए ।।१३-१४।। तदनन्तर आचार्य अपने

---

१ क. ङ. कं ठं च सं गुरुं सत्त्वं पूर्वचक्रं च। २ क. ङ. °णे। जं लं सं हं फ°। ३ क. ङ. °धौ। चन्द्रपक्षं क्षौणसुखं त्वं ढं भं। ४ क. ख. ङ. °मार्ग° क्र°। ५ क. ख. ग. तरुं दग्ध्वा त°। ६ च. अनवस्थं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निवेश्य वामतः शिष्यांस्तिलव्रीहिघृतं हुनेत्। शतमष्टोत्तरं हुत्वा सहस्रं कण्यशुद्धये[1] ।।१५।।
नवव्यूहस्य मूर्तीनामङ्गानां च शताधिकम्। पूर्णान्दत्त्वा दीक्षयेत्तान्गुरुः पूज्यश्च तैर्धनैः ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवव्यूहार्चनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०१।।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पवर्गकथनम्

अग्निरुवाच

पुष्पगन्धधूपदीपनैवेद्यैस्तुष्यते हरिः। पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ।।१।।
पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान्। मल्लिका सर्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ।।२।।
अतिमुक्तमयं तद्वत्पाटला विष्णुलोकदा। करवीरैर्विष्णुलोकी जपापुष्पैश्च पुण्यवान् ।।३।।
[2]पावन्तीकुब्जकाद्यैश्च तगरैर्विष्णुलोकभाक्। कर्णिकारैर्विष्णुलोकः [3]कुरुण्ठैः पापनाशनम् ।।४।।
पद्मैश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पैः परा गतिः। बाणपुष्पैर्बर्बराभिः कृष्णाभिर्हरिलोकभाक् ।।५।।

शिष्यों को अपने वाम भाग में बिठाकर तिल, व्रीहि तथा घी से एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। शरीर-शुद्धि के लिए एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिए। नवव्यूह की मूर्तियों को प्रसन्न करने के लिए एक सौ आहुतियाँ और देनी चाहिए। तदनन्तर आचार्य (सम्यक् प्रकार से पूर्ण उन) शिष्यों को दीक्षा दे और शिष्यों को चाहिए कि वे धन से अपने गुरु का सम्मान करें ।।१५-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में नवव्यूहार्चन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ।।२०१।।

अध्याय २०२

पुष्पवर्ग-कथन

अग्निदेव बोले-पुष्प, गन्ध, धूप, दीप तथा नैवेद्य से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। इसलिए मैं तुम्हें यह बता रहा हूँ कि कौन से पुष्प देवताओं के अनुकूल होते हैं ।।१।। मालती पुष्प सर्वश्रेष्ठ हुआ करता है। तमाल भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है। मल्लिका सम्पूर्ण पापों का संहार करनेवाली है। जूही विष्णुलोक को पहुँचानेवाली है ।।२।। अतिमुक्त (वासन्ती लता) तथा पाटल भी वैकुण्ठलोक देनेवाले हैं। करवीर (पुष्प) से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है और जपापुष्प (गुड़हल) से पुण्य मिलता है। पावन्ती, कुब्जक, तगर तथा कनेर आदि से वैकुण्ठ मिलता है। कुरुण्ठ से पापों का सर्वनाश होता है। कमल, केतकी तथा कुन्द-पुष्पों से सद्गति मिलती है। बाणपुष्प तथा काले बर्बरों से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है ।।३-५।। अशोक, तिलक तथा आटरूष से मुक्ति

---

१ क. ङ. कार्यमुद्वहेत्। न°। २ च. पाटलाकुब्जका°। ३ ख. कुरवैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अशोकैस्तिलकस्तद्वदाटरूषभवैस्तथा । मुक्तिभागी बिल्वपत्रैः शमीपत्रैः परा गतिः ।।६।।
विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा । तुलसी कृष्णगौराख्या कह्लारोत्पलकानि च ।।७।।
पद्मं कोकनदं पुण्यं शताब्जमालया हरिः । नीपार्जुनकदम्बैश्च बकुलैश्च सुगन्धिभिः ।।८।।
किंशुकैर्मुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागकर्णकैः । सन्ध्यापुष्पैर्बिल्वतकैरञ्जनीकेतकीभवैः ।।९।।
कूष्माण्डतिमिरोत्थैश्च कुशकाश[1] शरोद्भवैः[2] । द्यूतादिभिर्मरुबकैः पत्रैरन्यैः सुगन्धकैः ।।१०।।
भुक्तिर्मुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वैस्तु तुष्यति । स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिका ।।११।।
स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं[3] वनजैः फलम् । विशीर्णैर्नार्चयेद्विष्णुं नाधिकाङ्गैर्न मोटितैः ।।१२।।
काञ्चनारैस्तथोन्मत्तैर्गिरिकर्णिकया तथा । कुटजैः शाल्मलीयैश्च शिरीषैर्नरकादिकम् ।।१३।।
सुगन्धैर्ब्रह्मपद्मैश्च पुष्पैर्नीलोत्पलैर्हरिः । अर्कमन्दारधत्तूरकुसुमैरर्च्यते हरः ।।१४।।
कुटजैः कर्कटीपुष्पैः केतकीं न शिवे ददेत् । कूष्माण्डनिम्बसम्भूतं पैशाचं गन्धवर्जितम् ।।१५।।
अहिंसा इन्द्रियजयः क्षान्तिर्ज्ञानं दया श्रुतम् । भावाष्टपुष्पैः सम्पूज्य देवान्स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।१६।।
([4]अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वपुष्पं दयाभूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ।।१७।।
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम् । सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ।।१८।।

मिलती है। बिल्वपत्र तथा शमीपत्र से उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।।६।। भृङ्गराज, तमालपत्र, तुलसीपत्र, कृष्णगौर, रक्तकमल, नीलकमल, श्वेतकमल, कोकनद तथा शताब्ज की माला से भगवान् विष्णु की प्राप्ति होती है। नीप, अर्जुन, कदम्ब, बकुल, किंशुक, अगस्त्य, गोकर्ण, नागकर्ण, सन्ध्या पुष्प, बिल्वतक, रञ्जनी आदि पुष्पों तथा कूष्माण्ड, तिमिर, कुश, काश, सरपत, द्यूत और मरुबक आदि के सुगन्धित पत्रों से भोग और मोक्ष मिलता है तथा पापों का नाश होता है। भक्तिपूर्वक (दी हुई) सभी वस्तुओं से भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं ।।७-१०$\frac{१}{२}$।। एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करने की अपेक्षा भगवान् के ऊपर चढ़ाये गये एक पुष्प का फल अधिक हुआ करता है और पुष्पमाला चढ़ाने का फल तो करोड़ गुना अधिक होता है। अपनी वाटिका या दूसरे की वाटिका के पुष्पों की अपेक्षा वन्य पुष्पों (को अर्पित करने) का तिगुना फल होता है। गिरे हुए, न्यूनाधिक या कटे-फटे पुष्पों से विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिए। कचनार, धतूरे, गिरिकर्णिका, कुटज, शाल्मली तथा शिरीष के पुष्पों से भूत-प्रेत आदि की पूजा करनी चाहिए। सुगन्धित ब्रह्मपद्म, नीलकमल, अर्क, मन्दार तथा धतूरे के पुष्पों से शिव की पूजा होती है ।।११-१४।। कुटज, कर्कटीपुष्प तथा केतकी शिव जी के ऊपर नहीं चढ़ाना चाहिए। कूष्माण्ड, निम्ब तथा और भी गन्धहीन पुष्प पिशाचों के लिए हुआ करते हैं। अहिंसा, इन्द्रियजय, क्षमा, ज्ञान, दया, वेदाध्ययन तथा भाव-इन आठों पुष्पों से देवताओं की पूजा करके मनुष्य भुक्ति-मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।।१५-१६।। प्रथम पुष्प अहिंसा, दूसरा पुष्प इन्द्रियनिग्रह, तीसरा प्राणियों पर दया, चौथा शान्ति, पाँचवाँ शम, छठा तप, सातवाँ ध्यान और आठवाँ पुष्प सत्य है। इन्हीं आठ पुष्पों से पूजा करने से भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं ।।१७-१८$\frac{१}{२}$।। अये पुरुषश्रेष्ठ! इनसे अतिरिक्त

---

१ क. ङ. °शतोद्भ°। २ ख. ग. °वैः। कृतारामैश्च मरुकैः। ३ क. ङ. °णं च निजैः। ४ अहिंसा···परितुष्यति ख. ग. च. पुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः। पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम ।।१९।।
भक्त्यादयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति)। [1]वारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ।।२०।।
प्राजापत्यं तथाऽन्नादि आग्नेयं धूपदीपकम्। फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम् ।।२१।।
पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनम्। श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पं च सर्वदा चाष्टपुष्पिका ।।२२।।
आसनं मूर्तिपञ्चाङ्गं विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः (का)। विष्णोस्तु वासुदेवाद्यैरीशानाद्यैः शिवस्य वा ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पवर्गवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०२।।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकस्वरूपम्

अग्निरुवाच

पुष्पाद्यैः पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे। [2]आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते ।।१।।
जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः। निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ।।२।।
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मभिः। भुङ्क्तेऽथ पापकृद्दुःखं सुखं धर्माय संगतः ।।३।।

पुष्प तो केवल दिखावटी हैं। (भूतों पर) दया करनेवाले व्यक्तियों के द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करने से भगवान् विष्णु परितुष्ट हो जाते हैं ।।१९-१९ $\frac{1}{2}$।। वरुण के लिए पुष्प और जल, चन्द्रमा के लिए घी, दूध, दही, प्रजापति के लिए अन्नादि, अग्नि के लिए धूपदीप, वनस्पति के लिए फल-पुष्प आदि, पृथ्वी के लिए कुश और मूल आदि, वायु के लिए गन्ध और चन्दन तथा विष्णु के लिए श्रद्धा-पुष्प (अभीष्ट हुआ करते हैं।) सदैव इन आठ पुष्पों से विष्णु की पूजा करनी चाहिए। उनकी मूर्ति को आसन पर सुप्रतिष्ठित करके वासुदेव आदि नामों से उनका पूजन करना चाहिए, किन्तु शिव की पूजा ईशान आदि नामों से करनी चाहिए ।।२०-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में पुष्पवर्ग-वर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त ।।२०२।।

अध्याय २०३

नरक-स्वरूप

अग्निदेव बोले-पुष्प आदि से भगवान् विष्णु की पूजा करने से नरकों में नहीं जाना पड़ता है। आयु समाप्त होने पर मनुष्य न चाहते हुए भी प्राणों से मुक्त हो जाता है ।।१।। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, क्षुधा, व्याधि तथा पर्वतों से गिरना-इनमें से किसी को निमित्त बनाकर मनुष्य प्राणों का त्याग कर देता है ।।२।। अनन्तर दूसरे शरीर को प्राप्त करता है और कर्मानुसार यातनाओं का भोग प्राप्त करता है। उसमें पापी दुःख भोगता है किन्तु धर्मवान् व्यक्ति सुख

---

१ ख. °णं वाऽनिलं। २ आयुषोऽन्ते…मुच्यते च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नीयते यमदूतैस्तु यमं प्राणिभयंकरैः । कुपथे दक्षिणद्वारि धार्मिकः पश्चिमादिभिः ।।४।।
यमाज्ञप्तैः किंकरैस्तु पात्यते नरकेषु च । स्वर्गे तु नीयते धर्माद्वशिष्ठाद्युक्तिसंश्रयात् ।।५।।
गोधाती तु [1]महावीच्यां वर्षलक्षं तु पीड्यते । ताम्रकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा[2] भूमिहारकः ।।६।।
महाप्रलयकं यावद्रौरवे पीड्यते शनैः । स्त्रीबालवृद्धहन्ता तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।७।।
महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः । दह्यते कल्पमेकं स चौरस्तामिस्त्रके पतेत् ।।८।।
नैककल्पं तु शूलाद्यैर्भिद्यते यमकिंकरैः । महातामिस्त्रके [3]सर्पजलौकाद्यैश्च पीड्यते ।।९।।
यावद्भूमिर्मातृहाद्या असिपत्रवनेऽसिभिः । नैककल्पं तु नरके करम्भवालुकासु च ।।१०।।
येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते वालुकादिभिः । काकोले कृमिविष्ठाशी एकाकी मिष्टभोजनः ।।११।।
कुट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः । [4]सुदुर्गन्धे रक्तभोजी भवेच्चाभक्ष्यभक्षकः ।।१२।।
तैलपाके तु तिलवत्पीड्यते परपीडकः । [5]तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ।।१३।।
निरुच्छ्वासे दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे । नाम्ना वज्रकटाहे[6] च महापाते तदाऽनृती ।।१४।।

भोगता है। प्राणियों के लिए भयावह यमदूत दक्षिण दिशावाले कुमार्ग से पापी को यमराज के पास ले जाता है किन्तु धर्मात्मा को पश्चिम आदि सन्मार्गों से। यमराज की आज्ञा से यमदूत पापियों को नरकों में डाल देते हैं किन्तु सत्कर्मी को वशिष्ठ आदि के कथनानुसार स्वर्ग में पहुँचा देते हैं ।।३-५।। गोहत्या करनेवाला जीव एक लाख वर्ष तक महावीची (नामक) नरक में घोर दुःख भोगता रहता है। ब्रह्मघाती तथा भूमि का अपहरण करनेवाला जीव अत्यन्त दहकते हुए ताम्रकुम्भ नामक नरक में जाता है। स्त्री, बालक और वृद्धों का हनन करनेवाला महाप्रलय तक अथवा चौदह इन्द्रों की राज्य-समाप्ति तक रौरव नामक नरक में धीरे-धीरे पीड़ा पाता है। घर तथा खेत आदि को जलानेवाला घोर महारौरव नामक नरक में एक कल्प तक गलाया जाता है। चोर तामिस्त्र नामक नरक में गिरता है ।।६-८।। उस महातामिस्त्र नामक नरक में वे अनेक कल्पों तक यमदूतों के द्वारा भालों इत्यादि से छेदे जाते हैं तथा सर्प और अन्य जल-जन्तुओं से पीड़ित होते हैं ।।९।। माता की हत्या करनेवाला असिपत्रवन (नामक) नरक में तलवार से पीड़ित किया जाता है और अनेक कल्पों तक कीचड़ और बालू में पड़ा रहता है जिसने प्राणी को जलाया है वह वहाँ पर बालू इत्यादि में जलाया जाता है (सबके सामने) अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवाला व्यक्ति 'काकोल' नामक नरक में कीड़े और विष्ठा खाता है ।।१०-११।। जो मनुष्य पञ्चमहाभूत यज्ञ नहीं करता है उसे कुट्टल नामक नरक में मूत्र तथा रक्तपान करना पड़ता है। अभक्ष्य भक्षण करनेवाला अतिदुर्गन्ध नरक में रक्तपान करता है। दूसरों को पीड़ा पहुँचानेवाला तैलपाक नरक में तिल की तरह पेरा जाता है और शरणागत की हिंसा करनेवाला तैलपाक नरक में पकाया जाता है ।।१२-१३।। दाननाशक व्यक्ति निरुच्छ्वास नामक नरक में गिरता है और रस-विक्रेता अध्वर नामक नरक में गिरता है। मिथ्यावक्ता वज्रकटाह नामक नरक में, पापबुद्धिवाला महाज्वाल नामक नरक में, कुपथगामी क्रकच

---

१ क. ङ. °हावाप्यां व°। २ क. ङ. °ह्यस्वकृमिहा°। ३ क. ङ. °सद्योज°। ४ सुदुर्गन्धे····भक्ष्यभक्षकः इत्यत्र 'चर्मकुम्भे रक्तभोजी भवेद्वा रक्तभोजनः' इति च. पुस्तके वर्तते। ५ तैलपाके····शरणागतघातकः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ६ घ. च. °कवाटेन म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महाज्वाले पापबुद्धिः क्रकचेऽगम्यगामिनः । संकरीगुडपाके च प्रतुदेत्परमर्मकृत् ।।१५।।
[1]क्षारह्रदे [2]प्राणिहन्ता क्षुरधारे च भूमिहृत् । अम्बरीषे गोस्वर्णहृद्द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके ।।१६।।
मधुहर्ता परीतापे कालसूत्रे [3]परार्थहृत् । कश्मलेऽत्यन्तमांसाशी उग्रगन्धे[4] ह्यपिण्डदः ।।१७।।
दुर्धरे ह्युत्कोचभक्षी बन्दिग्राहरताश्च[5] ये । [6]मञ्जूषे नरके लोहेऽप्रतिष्ठे श्रुतिनिन्दकः[7] ।।१८।।
पूतवक्त्रे कूटसाक्षी परिलुण्ठे धनापहा । बालस्त्रीवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणार्तिकृत् ।।१९।।
([8]विलेपे मद्यपो विप्रो महाप्रेते तु भेदिनः । तथाऽऽक्रम्य पारदाराञ्ज्वलन्तीमायसीं शिलाम्) ।।२०।।
शाल्मलाख्ये तमालिङ्गेन्नारी बहुनरंगमा । आस्फोटजिह्वोद्धरणं स्त्रीक्षणान्नेत्रभेदनम् ।।२१।।
अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः । चौराः क्षुरैश्च भिद्यन्ते स्वमांसाशी च मांसभुक् ।।२२।।
मासोपवासकर्ता वै न याति नरकं नरः । एकादशीव्रतकरो भीष्मपञ्चकसद्व्रती ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकस्वरूपवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०३।।

नामक नरक में, दूसरे का मर्मवेध करनेवाला गुडपाक में, प्राणियों की हत्या करनेवाला क्षारह्रद में, भूमि का हरण करनेवाला क्षुरधार में, गाय तथा सोना चुरानेवाला अम्बरीष में तथा वृक्ष काटनेवाला वज्रशस्त्रक नामक नरक में पड़ता है ।।१४-१६।। मधु चुरानेवाला परीताप में, दूसरे का धन चुरानेवाला कालसूत्र में, अत्यन्त मांस खानेवाला कश्मल में, पितरों को पिण्ड न देनेवाला उग्रगन्ध में, उत्कोच लेनेवाला दुर्धर में, निरपराध को बन्दी बनानेवाला मञ्जूष में, वेदनिन्दक अप्रतिष्ठ में, झूठी गवाही देनेवाला पूतिवक्त्र में, धनापहरण करनेवाला परिलुण्ठ में, बालक, स्त्री तथा वृद्ध की हत्या करनेवाला और ब्राह्मण को सतानेवाला कराल में पड़ता है ।।१७-१९।। मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण विलेप में और दूसरों में भेद डालनेवाला महाप्रेत नामक नरक में पड़ता है। परस्त्रीगामी को जलती हुई लौहमयी नारी के साथ सम्भोग करना पड़ता है वैसे ही बहुपुरुषगामिनी स्त्री को भी 'शाल्मल' नामक नरक में जलते हुए लौहमय पुरुष का आलिंगन करना पड़ता है। जो (परस्त्री के विषय में) बुरी बातें करते हैं, उनकी जिह्वा काट ली जाती है और जो उसकी ओर कुदृष्टि से देखता है, उसकी आँखें फोड़ दी जाती हैं। माता तथा पुत्री आदि के साथ गमन करनेवाला अंगार के ढेर में फेंक दिया जाता है। चोरों का छुरों से भेदन किया जाता है। मांस-भक्षी को अपना ही मांस खाना पड़ता है। जो व्यक्ति मासोपवास, एकादशी व्रत तथा भीष्मपञ्चक व्रत करता है, उसे नरक नहीं जाना पड़ता है ।।२०-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में नरकस्वरूप-वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ।।२०३।।

---

१ च. °रकूपे प्रा°। २ क. ङ. प्राणहर्ता। ३ च. °रान्नह°। ४ च. °गर्ते ह्य°। ५ क. ङ. °हवनाश्च। ६ क. ङ. मञ्जिष्ठे। ७ क. ङ. °कः। यतिवृक्षे कू°। ८ विलेपे…शिलाम् च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

मासोपवासव्रतम्

अग्निरुवाच

व्रतं मासोपवासं[1] च सर्वोत्कृष्टं वदामि ते। कृत्वा तु वैष्णवं यज्ञं गुरोराज्ञामवाप्य च ।।१।।
कृच्छ्राद्यैः स्वबलं बुद्ध्वा कुर्यात्मासोपवासकम्। वानप्रस्थो यतिर्वाऽथ नारी वा विधवा मुने ।।२।।
आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः। व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।।३।।
अद्य प्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव। अर्चये त्वामनश्नन्हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।।४।।
कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव। प्रिये यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत् ।।५।।
त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं त्रिःस्नातो गन्धपुष्पकैः। विष्णोर्गीतादिकं जप्यं ध्यानं कुर्याद्व्रतो नरः ।।६।।
वृथावादं परिहरेदर्थाकाङ्क्षां[2] विवर्जयेत्। नाव्रतस्थं स्पृशेत्कंचिद्विकर्मस्थान्न चालयेत् ।।७।।
देवतायतने तिष्ठेद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु। द्वादश्यां पूजयित्वा तु भोजयित्वा द्विजान्व्रती ।।८।।
समाप्य दक्षिणां दत्त्वा पारणं तु समाचरेत्। भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति[3] कल्पांश्चैव त्रयोदश ।।९।।

अध्याय २०४

मासोपवास-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं तुम्हें सर्वोत्कृष्ट मासोपवास व्रत बतला रहा हूँ। विष्णुयज्ञ करके और गुरु से आज्ञा प्राप्तकर कृच्छ्र आदि व्रतों से अपने बल की परीक्षा करके मासोपवास व्रत करना चाहिए ।।१-१$\frac{1}{2}$।। हे मुने! विधवा स्त्री या वानप्रस्थी या संन्यासी को आश्विन-शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास करके तीस दिनों तक यह व्रत करने का संकल्प इस प्रकार करना चाहिए–'हे विष्णो! आज से लेकर आपके उत्थान के दिन (देवोत्थानी एकादशी) तक मैं बिना कुछ खाये तीस दिनों तक आपकी पूजा करता रहूँगा। भगवन्! आश्विन और कार्तिक के बीच आज से लेकर आपके जागरण-दिवस के पूर्व तक यदि मैं मर भी जाऊँ तो भी मेरा व्रत-भंग न हो' ।।२-५।। व्रती को त्रिकाल-स्नान करके गन्ध-पुष्पादि से तीनों कालों में विष्णु का पूजन करना चाहिए। विष्णु का ध्यान, मन्त्र, जप तथा (इनसे सम्बद्ध) गीत आदि भी गाना चाहिए। व्रत करनेवाले को व्यर्थ विवाद तथा धन-लिप्सा का परित्याग कर देना चाहिए। जो उस व्रत का अनुष्ठान नहीं कर रहा है, उसका स्पर्श नहीं करना चाहिए ।।६-७।। (व्रतकाल में) तीस दिन तक उसे देवालय में ही रहना चाहिए। द्वादशी में व्रत समाप्त करके ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक भोजन कराना चाहिए और उन्हें दक्षिणा देकर (स्वयं भी) पारण करना चाहिए ।।८-८$\frac{1}{2}$।। ऐसा करनेवाला

---

१ क. ङ. °वासाख्यं स°। २ ग. °रेदन्नाका°। ३ क. ग. ङ. °ति कुर्यात्तां° तु त्रयोदशीम्। का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कारयेद्वैष्णवं यज्ञं यजेद्विप्रांस्त्रयोदश । तावन्ति वस्त्रयुग्मानि (णि) भाजनान्यासनानि च ।।१०।।
छत्राणि सपवित्राणि तथोपानद्युगानि च । योगपट्टोपवीतानि दद्याद्विप्राय तैर्मतः ।।११।।
अन्यविप्राय शय्यायां हैमं विष्णुं प्रपूज्य च । आत्मनश्च तथा मूर्तिं वस्त्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ।।१२।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो [1]विप्रविष्णुप्रसादतः । विष्णुलोकं गमिष्यामि विष्णुरेव भवाम्यहम् ।।१३।।
व्रज-व्रज देवबुद्धे विष्णोः स्थानमनामयम् । विमानेनामलस्तत्र तिष्ठ विष्णुस्वरूपधृक् ।।१४।।
[2]द्विजानुक्त्वाऽथ तां शय्यां गुरवेऽथ निवेदयेत् । कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद्व्रती ।।१५।।
मासोपवासी यद्देशे स देशो निर्मलो भवेत् । किं पुनस्तत्कुलं सर्वं यत्र मासोपवासकृत् ।।१६।।
व्रतस्थं मूर्च्छितं दृष्ट्वा क्षीराज्यं चैव पाययेत् । नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्विप्रानुमोदितम् ।।१७।।
क्षीरं गुरोर्हितो (तौ) षध्य आपोमूलफलानि च । विष्णुर्महौषधं कर्ता व्रतमस्मात्समुद्धरेत् ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मासोपवासव्रतकथनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०४।।

व्रती तेरह कल्पों तक भोग और मोक्ष प्राप्त करता है। उसे विष्णु यज्ञ कराना चाहिए और तेरह ब्राह्मणों को उनकी अनुमति से उतने ही जोड़े वस्त्र, बर्तन, आसन, छत्र, पवित्र (अँगूठी), जूते, योगपट्ट तथा यज्ञोपवीत देना चाहिए ।।१०-११।। शय्या के ऊपर विष्णु की स्वर्ण-प्रतिमा अथवा अपनी प्रतिमा का वस्त्र आदि से पूजन करके उसे दूसरे ब्राह्मण को दे देना चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मणों से यह निवेदन करना चाहिए कि 'मैं ब्राह्मणों तथा विष्णु की कृपा से सब प्रकार के पापों से रहित होकर विष्णुलोक जाऊँगा और विष्णु ही हो जाऊँगा' ।।१२-१३।। ब्राह्मणों को यह कहना चाहिए कि 'शुद्धबुद्धे! तुम निर्मल होकर विमान द्वारा विष्णु के निरापद स्थान को चले जाओ और वहाँ विष्णु के समान रूप धारण करके रहते रहो।' ब्राह्मणों से इस प्रकार कहकर वह शय्या गुरु को देनी चाहिए। ऐसा करनेवाला व्रती अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार कर उन्हें वैकुण्ठ में पहुँचा देता है ।।१४-१५।। मासोपवासी जिस देश में रहता है, वह देश पवित्र हो जाता है, फिर उस कुल का क्या कहना है, जिसमें ऐसा व्रती हो! व्रती यदि उपवास करते-करते मूर्च्छित हो जाय तो उसे दूध-घी पिला देना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण तथा गुरु की आज्ञा से दिये हुए हविष्, क्षीर, औषध तथा फल-मूल से व्रतभंग नहीं होता है। व्रत के विघ्नों को दूर करने के लिए विष्णु ही महौषध हैं। इसलिए व्रती को उन्हीं की शरण में जाना चाहिए ।।१६-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में मासोपवास-व्रत-कथन नामक दो सौ चार अध्याय समाप्त ।।२०४।।

---

१ क. ङ. विष्णुव्रतप्र°। २ ख. °जान्नत्वाऽथ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतम्

अग्निरुवाच

भीष्मपञ्चकमाख्यास्ये व्रतराजं तु सर्वदम् । कार्तिकस्यामले पक्ष एकादश्यां समाचरेत् ।।१।।
दिनानि पञ्च त्रिःस्नायी[1] पञ्चव्रीहितिलैस्तथा । तर्पयेद्देवपित्रादीन्मौनी सम्पूजयेद्धरिम् ।।२।।
पंचगव्येन संस्नाप्य देवं पञ्चामृतेन च । चन्दनाद्यैः समालिप्य गुग्गुलं सघृतं दहेत् ।।३।।
दीपं दद्याद्दिवारात्रौ नैवेद्यं परमान्नकम् । ॐ नमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।४।।
जुहुयाच्च घृताभ्यक्तांस्तिलव्रीहींस्ततो व्रती । षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ।।५।।
कमलैः पूजयेत्पादौ द्वितीये बिल्वपत्रकैः । जानुसक्थि तृतीयेऽथ नाभिं भृङ्गरजेन तु ।।६।।
बाणबिल्वजपाभिस्तु चतुर्थे पञ्चमेऽहनि । मालत्या भूमिशायी स्यादेकस्यां तु गोमयम् ।।७।।
गोमूत्रं दधि दुग्धं च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् । पौर्णमास्यां चरेन्नक्तं भुक्तिं मुक्तिं लभेद्व्रती ।।८।।
भीष्मः कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव भीष्मपञ्चकम् । ब्रह्मणः पूजनात्पञ्च उ(को)पवासादि(त्म)कंव्रतम् ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भीष्मपञ्चकव्रतकथनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०५।।

अध्याय २०५

भीष्मपञ्चक-व्रत

अग्निदेव बोले–अब मैं भीष्मपञ्चक नामक व्रतराज का वर्णन करूँगा जो सब-कुछ देनेवाला है। यह व्रत कार्तिक शुक्लपक्ष की एकादशी को करना चाहिए ।।१।। पाँच दिनों तक त्रिकाल स्नान करके पंचव्रीहि तथा तिल से देवता और पितरों आदि का तर्पण करना चाहिए। अनन्तर मौन रहकर भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।।२।। पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से भगवान् को स्नान करवाकर उन्हें चन्दन आदि का लेप लगाकर घी और गुग्गुल की धूप देनी चाहिए ।।३।। दिन-रात दीपदान करना चाहिए और खीर का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। एक सौ आठ बार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करना चाहिए ।।४।। तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिल और व्रीहि से हवन करना चाहिए। षडक्षर मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' जोड़कर आहुति देनी चाहिए। पहले दिन कमलों से भगवान् के चरणों की, दूसरे दिन बिल्वपत्रों से उनके घुटनों तथा जङ्घाओं की, तीसरे दिन भृङ्गराज से नाभि की पूजा करनी चाहिए ।।५-६।। चौथे दिन बाणपुष्प, बिल्वपत्र तथा जपाकुसुम से तथा पाँचवें दिन मालती से (सर्वाङ्ग शरीर की) अर्चना करनी चाहिए। व्रती को भूमि पर सोना चाहिए। उसे पहले दिन गोबर, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दूध और पाँचवें दिन पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। व्रती को पौर्णमासी में रात को व्रत तोड़ना चाहिए। ऐसा करने से उसे मुक्ति तथा भुक्ति की प्राप्ति होती है ।।७-८।। भीष्म ने यह व्रत करके वैकुण्ठ प्राप्त कर लिया था। इसलिए इसको भीष्मपञ्चक व्रत कहते हैं। ब्रह्मा (विष्णु) का पूजन और पाँच दिनों का उपवास यही इस व्रत का सार है ।।९।।

श्री अग्निमहापुराण में भीष्मपञ्चक-व्रत-कथन नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।२०५।।

---

१ ख. ङ. °यी यवव्री°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

अगस्त्यार्घ्यदानकथनम्

अग्निरुवाच

अगस्त्यो भगवान्विष्णुस्तमभ्यर्च्याऽऽप्नुयाद्धरिम्[1] । अप्राप्ते भास्करे कन्यां सत्रिभागैस्त्रिभिर्दिनैः ।।१।।
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय पूजयित्वा ह्युपोषितः । काशपुष्पमयीं मूर्तिं प्रदोषे विन्यसेद्घटे[2] ।।२।।
मुनेर्यजेत्तां कुम्भस्थां रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् । अगस्त्यमुनिशार्दूल तेजोराशे महामते[3] ।।३।।
इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह । आवाह्यार्घ्यं च सांमुख्यं प्रार्चयेच्चन्दनादिना ।।४।।
जलाशयसमीपे तु प्रातर्नीत्वाऽर्घ्यमर्पयेत् । काशपुष्पप्रतीकाश[4] अग्निमारुतसंभव ।।५।।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते । [5]आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः ।।६।।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः संमुखोऽस्तु मे । अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा ।।७।।
अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं[6] परलोकाभिकाङ्क्षया । द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम् ।।८।।

अध्याय २०६

अगस्त्यार्घ्यदान-कथन

अग्निदेव बोले–अगस्त्य जी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं, अतः उनकी अर्चना करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। सूर्य के कन्या राशि में जाने के पूर्व तीन दिनों तक उपवास रखकर तीन कालों में अगस्त्य का पूजन करके उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। प्रदोषकाल में घट के ऊपर अगस्त्य की काशपुष्पमयी मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए ।।१-२।। उस कुम्भ पर स्थित मुनि की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर रात्रि में जागरण करना चाहिए। 'मुनिवर! अगस्त्य! तेजोराशे! महामते! आप अपनी पत्नी (लोपामुद्रा) के साथ मेरी पूजा स्वीकार कीजिये।' इस प्रकार आवाहन करके अर्घ्य देकर तथा चन्दनादि से उनकी पूजा करनी चाहिए ।।३-४।। प्रातःकाल जलाशय के समीप जाकर यह कहते हुए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। 'काशपुष्प के समान वर्णवाले! अग्निमारुत से उत्पन्न! मित्रावरुण के पुत्र! कुम्भयोने! आपको नमस्कार है' ।।५।। आतापि तथा वातापि नामक महासुरों का भक्षण करनेवाले और समुद्र का शोषण करनेवाले अगस्त्य मेरे सम्मुख हों। मैं मनसा-वाचा-कर्मणा अगस्त्य की प्रार्थना करता हूँ ।।६-७।। स्वर्ग की अभिलाषा से द्वीपान्तर में उत्पन्न होनेवाले, देवों के परमप्रिय तथा सम्पूर्ण वृक्षों के राजा मैत्र (अगस्त्य) की पूजा करता हूँ।

---

१ घ. °भ्यर्च्य स्तुया°। २ ख. ग. °टे। निमज्जयेत्तां। घ. ङ. °टे। मूले यजे°। ३ क. ङ. °हाद्युते। ४ क. ङ. °शवह्निमा°। ५ आतापि°°°संमुखोऽस्तु मे इत्यत्र ''वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा। विंध्यवृद्धिक्षयकरः सोऽगस्त्यः प्रमुखोऽस्तु मे'' क. ङ. पुस्तकयोः वर्तते। ६ क. ङ. मन्त्रैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी ।।९।।
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम् । धूपोऽयं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।।१०।।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभां गतिम्[1] । सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद ।।११।।
वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं मया । अगस्त्यं बोधयिष्यामि[2] यन्मया मनसोद्धृतम्[3] ।।१२।।
फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने । अगस्त्य एवं खननाद्धरित्रीं पूजामपत्यं बलमीहमानः ।।
[4]उभौ कर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो वै जगाम ।।१३।।
राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते। अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि ।।१४।।
पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितम् । [5]सप्तधान्यवृतं[6] पात्रं दधिचन्दनसंयुतम् ।।१५।।
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय स्त्रीशूद्राणामवैदिकम् । अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वद ।।१६।।
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये[7] । त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् ।।१७।।
ततोऽन्नं भोजयेद्विप्रान्घृतपायसमोदकान्[8] । गां वासांसि सुवर्णं च तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।।१८।।

हे देव! चन्दन स्वीकार कीजिये। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देनेवाली, पापों का नाश करनेवाली और सौभाग्य, आरोग्य तथा ऐश्वर्य को प्रदान करनेवाली यह पुष्पमाला भी स्वीकार कीजिये ।।८-९$\frac{1}{2}$।। हे देव! यह धूप ग्रहण कीजिये और मेरी भक्ति को अचल कर दीजिये। मुझे वांछित वर तथा मृत्यु के पश्चात् सद्गति प्रदान कीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करनेवाले! सुर और असुरों ने वस्त्र, व्रीहि, फल तथा सुवर्ण के साथ आपको अर्घ्य प्रदान किया है। मैं भी उसी अर्घ्य को दे रहा हूँ। हे महामुने! इसे स्वीकार कीजिये। मैंने अपने मन में जो कुछ विचार किया है, उसे महामुनि अगस्त्य को निवेदित करूँगा ।।१०-१२।। हे मुनिराज! मैं फलों के साथ यह अर्घ्य आपको समर्पित करूँगा, इसे स्वीकार कीजिये। (इस समय 'अगस्त्य····वै जगाम') यह श्लोक पाठ करते हुए विचार करना चाहिए ।।१३।। अनन्तर मुनिपत्नी (लोपामुद्रा) को यह कहते हुए अर्घ्य देना चाहिए–'अयि राजपुत्रि! महाव्रते! मुनिपत्नि! देवेशि! यशस्विनि! लोपामुद्रे! आपको नमस्कार है। आप मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिये' ।।१४।। अगस्त्य को पञ्चरत्न, सुवर्ण, चाँदी, सप्तधान्य, दही तथा चन्दन से युक्त अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। स्त्री और शूद्रों को अवैदिक रीति से अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्य देने के पश्चात् यह कहते हुए अगस्त्य का विसर्जन करना चाहिए–'हे अगस्त्य! हे मुनिवर। हे तेजोराशे! अखिलदायक! मेरी यह पूजा स्वीकार करके आप (मेरी) शान्ति के लिए चले जाइये' ।।१५-१६$\frac{1}{2}$।। उस दिन से अगस्त्य के उद्देश्य से कोई एक धान्य, फल तथा रस छोड़ देना चाहिए। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को घी, खीर तथा लड्डू खिलाकर उन्हें गाय, वस्त्र और सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए।

---

१ क. ङ. °म्। प्रशस्त वै मुनि°। २ क. ख. ङ. वाचयिष्यामि। ३ क. ङ. °नसेप्सित°। ४ क. ख. ङ. °भौ वर्णा°। ५ क. ङ. °धान्यं घृतं। ६ ख. ग. °न्यमृतं। ७ ग. व्रतशा°। ८ ग. °न्। प्रतिमां च सु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घृतपायसयुक्तेन पात्रेणाऽऽच्छादिताननम् । सहिरण्यं च तं कुम्भं ब्राह्मणायोपकल्पयेत्[1] ।।१९।।
सप्तवर्षाणि दत्त्वाऽर्घ्यं सर्वे सर्वमवाप्नुयुः । नारी पुत्रांश्च सौभाग्यं पतिं कन्यां नृपो भुवम् ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽगस्त्यार्घ्यदानकथनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०६।।

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

कौमुदव्रतम्

अग्निरुवाच

कौमुदाख्यं मयोक्तं च चरेदाश्वयुजे सिते । हरिं यजेन्मासमेकमेकादश्यामुपोषितः ।।१।।
आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन् । मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतम् ।।२।।
उपोष्य विष्णुं द्वादश्यां यजेद्देवं[2] विलिप्य च । चन्दनागुरुकाश्मीरैः कमलोत्पलपुष्पकैः ।।३।।
कह्लारैर्वाऽथ मालत्या दीपं तैलेन वाग्यतः । अहोरात्रं च नैवेद्यं पायसायूपमोदकैः ।।४।।
ॐ नमो वासुदेवाय विज्ञाप्याथ क्षमापयेत् । भोजनादि द्विजे दद्याद्यावद्देवः प्रबुध्यते ।।५।।

घी तथा खीर से पूर्ण पात्र से उस घड़े को ढँककर किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिए ।।१७-१९।। सात वर्ष इस तरह अगस्त्य को अर्घ्य देने से सबको सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। स्त्री, पुत्र और सौभाग्य को प्राप्त कर लेती है, कन्या को पति मिल जाता है और राजा को पृथ्वी का लाभ होता है ।।२०।।

श्री अग्निमहापुराण में अगस्त्यार्घ्यदान-कथन नामक दो सौ छठाँ
अध्याय समाप्त ।।२०६।।

अध्याय २०७

कौमुद-व्रत

अग्निदेव बोले-मनुष्य को मेरा बताया हुआ कौमुद व्रत आश्विन-शुक्लपक्ष की एकादशी में करना चाहिए। उस दिन उपवास करके भगवान् विष्णु की अर्चना करनी चाहिए। यह संकल्प करे कि 'मैं आश्विन-शुक्लपक्ष में एकाहारी रहकर विष्णु-मन्त्र का जप करता हुआ भोग और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए एक मास तक कौमुद-व्रत करूँगा' ।।१-२।। तदनन्तर दूसरे दिन द्वादशी में भगवान् के ऊपर चन्दन, अगर, कुंकुम आदि का लेप लगाकर (श्वेत) कमल, नीलकमल, रक्तकमल तथा मालती के पुष्पों से उनकी पूजा करनी चाहिए। वाणी का संयम करना चाहिए। तेल का दीपक जलाना चाहिए। रात-दिन खीर, पूआ, लड्डू आदि का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए ।।३-४।। 'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र का जप करके क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए तथा भगवान् के उठने तक (अर्थात् देवोत्थानी

---

१ क. ङ. पपादये°। २ ग. °जेदेवं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तावन्मासोपवासः स्यादधिकं [1]फलमप्यतः[2] ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कौमुदव्रतकथनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०७।।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्रतदानादिसमुच्चयः

अग्निरुवाच

व्रतदानानि सामान्यं प्रवदामि समासतः । तिथौ प्रतिपदादौ च सूर्यादौ कृत्तिकासु च ।।१।।
विष्कु(ष्क)म्भादौ च मेषादौ काले च ग्रहणादिके । यत्काले यद्व्रतं दानं यद्द्रव्यं नियमादि यत् ।।२।।
तद्द्रव्याख्यं च कालाख्यं सर्वं वै विष्णुदैवतम् । रवीशब्रह्म[3] लक्ष्म्याद्याः सर्वे विष्णोर्विभूतयः ।।३।।
तमुद्दिश्य व्रतं दानं पूजादि स्यात्तु सर्वदम् । जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम् ।।४।।
मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम् । पुष्पं धूपश्च दीपश्च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते ।।५।।
इति पूजाव्रते दाने दानवाक्यं समं शृणु । अद्यामुकसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ।।६।।

एकादशी तक) ब्राह्मण को भोजन देते रहना चाहिए। ऐसा करने से मासोपवास से भी अधिक फल प्राप्त होता है ।।५-६।।

श्री अग्निमहापुराण में कौमुद-व्रत कथन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।।२०७।।

अध्याय २०८

व्रतदानादि-समुच्चय

अग्निदेव बोले–अब मैं संक्षेप में सामान्य व्रत और दानों का वर्णन करूँगा। प्रतिपदा आदि तिथियों में, रविवार आदि दिनों में, कृत्तिका आदि नक्षत्रों में, विष्कुम्भ आदि योगों में, मेषादि राशि में और ग्रहण-काल में जो व्रत, दान आदि तथा नियमादि किये जाते हैं वे सब विष्णु देवता से ही सम्बद्ध हुआ करते हैं ।।१-२।। सूर्य, शिव, ब्रह्मा तथा लक्ष्मी आदि सभी देव-देवियाँ विष्णु की ही विभूतियाँ हैं। इसलिए उनके (विष्णु के) उद्देश्य से किया हुआ व्रत, दान तथा पूजन आदि सब-कुछ देनेवाला हुआ करता है। पूजा आदि में भगवान् विष्णु से यह कहना चाहिए–'हे जगत्पते! आइये और आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है ।।३-५।। पूजा, व्रत तथा दान आदि में दानवाक्य समान ही हैं। उसे इस तरह कहना चाहिए–'आज अमुक गोत्रवाले अमुक शर्मा विप्र को विष्णुदेव को प्रसन्न करने के लिए, समस्त पापों की

---

१ क. ङ. °लमाप्यते। इ°। २ एतदग्रे–''सर्वान्कामानवाप्नोति कौमुदव्रतमाचरन्'' इत्यधिकं क. पुस्तके। ३ ख. ग. ह्यलोकाद्याः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एतद्द्रव्यं विष्णुदैवं सर्वपापोपशान्तये। आयुरारोग्यवृद्ध्यर्थं सौभाग्यादिविवृद्धये ।।७।।
गोत्रसंततिवृद्ध्यर्थं विजयाय धनाय च। धर्मायैश्वर्यकामाय तत्पापशमनाय च ।।८।।
संसारमुक्तये दानं तुभ्यं संप्रददे ह्यहम्। [1]एतद्दानप्रतिष्ठार्थं तुभ्यमेतद्ददाम्यहम् ।।९।।
एतेन प्रीयतां नित्यं सर्वलोकपतिः प्रभुः। यज्ञदानव्रतपते विद्याकीर्त्यादि देहि मे ।।१०।।
धर्मकामार्थमोक्षांश्च देहि मे मनसेप्सितम्। यः पठेच्छृणुयान्नित्यं व्रतदानसमुच्चयम् ।।११।।
स प्राप्तकामो विमलो भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकं व्रतम् ।।
नैकधा वासुदेवादेर्नियमात्पूजनाद्भवेत् ।।१२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतदानसमुच्चयकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०८।।

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानपरिभाषाकथनम्

अग्निरुवाच

दानधर्मान्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदाञ्शृणु। दानमिष्टं तथा पूर्तं धर्म्मं कुर्वन्हि सर्वभाक् ।।१।।
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं धर्मं च मुक्तिदम् ।।२।।

शान्ति के लिए, आयु, आरोग्य, सौभाग्य, गोत्र तथा संतान की वृद्धि के लिए, विजय, धर्म, ऐश्वर्य तथा काम-प्राप्ति के लिए, पापों के शमन के लिए और संसार से मुक्ति के लिए यह द्रव्य समर्पित कर रहा हूँ ।।६-८$\frac{1}{2}$।। अये ब्राह्मण! इस दान की प्रतिष्ठा के लिए (ही) मैं आपको यह दे रहा हूँ। इससे अखिलभुवननायक भगवान् विष्णु प्रसन्न हों। हे यज्ञ, दान तथा व्रतों के स्वामी! आप मुझे विद्या, कीर्ति आदि प्रदान कीजिये ।।९-१०।। धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष तथा (अन्य) अभीष्ट फल प्रदान कीजिये। जो व्यक्ति इस व्रत-दान समुच्चय का नित्य पाठ या श्रवण करता है, वह सफल मनोरथ और निर्मल होकर भोग और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग तथा मन्वन्तर आदि के व्रत वासुदेव के एक बार के पूजन की समता नहीं कर सकते हैं ।।११-१२।।

श्री अग्निमहापुराण में व्रत दान समुच्चय कथन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।।२०८।।

अध्याय २०९

दानपरिभाषाकथन

अग्निदेव बोले-अब मैं भुक्ति-मुक्ति देनेवाले दान धर्मों को बता रहा हूँ, उन्हें सुनो। इष्ट तथा पूर्त आदि दान करनेवाला मनुष्य सब-कुछ प्राप्त कर लेता है ।।१।। बावली, कूप तथा तालाब खोदवाना, देवालय बनवाना, अन्नदान करना तथा सार्वजनिक बगीचा लगवाना-यह पूर्त धर्म कहलाता है और मुक्ति दिलानेवाला हुआ करता है ।।२।।

---

१ एतद्दान···ददाम्यहम्। क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च प्राहुरिष्टं च नाकदम्[1] ।।३।।
ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्यसंक्रमणेषु च । द्वादश्यादौ च यद्दानं पूर्तं तदपि नाकदम् ।।४।।
देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत् । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।।५।।
युगादिषु च संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च । सितपञ्चदशीसर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ।।६।।
यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु । वैधृते दृष्टदुःस्वप्ने द्रव्यब्राह्मणलाभतः ।।७।।
श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते । अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः ।।८।।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च सङ्क्रान्त्यो द्वादशोत्तमाः । कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ।।९।।
षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः । अतीतानागते पुण्ये उदग्दक्षिणायने ।।१०।।
त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशती[2] स्मृताः । वर्तमाने तुलामेषे नाड्यास्तूभयतो दश ।।११।।
षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः । पुण्याख्या विष्णुपद्यां च प्राक्पश्चादपि षोडश ।।१२।।
श्रवणाश्विधनिष्ठासु नागदैवतमस्तके । यदा स्याद्रविवारेण व्यतीपातः सः उच्यते ।।१३।।
नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात्कृतम् । त्रेतासिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ।।१४।।
दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके । कृष्णे कलिं विजानीयाज्ज्ञेया मन्वन्तरादयः ।।१५।।

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदानुसरण, आतिथ्य तथा वैश्वदेव–यह इष्ट धर्म कहलाता है और स्वर्गदायक हुआ करता है। ग्रहणकाल, सूर्यसंक्रमण काल (संक्रान्ति) तथा द्वादशी आदि में दिया जानेवाला दान पूर्त धर्म कहलाता है और स्वर्गप्रद होता है ।।३–४।। (उचित) देश, काल तथा पात्र में दिया हुआ दान करोड़ों गुना अधिक फलदायक होता है। अयन, विषुव, पुण्यपर्व, व्यतीपात, दिनक्षय, युगादि, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल पंचदशी (पूर्णिमा), सर्वद्वादशी, अष्टकाकृत्य, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मन्वन्तर तथा वैधृत योग में दुःस्वप्न देखने पर दान करना चाहिए। दान तो जिस दिन श्रद्धा हो उसी दिन या सदा करना चाहिए ।।५–७$\frac{1}{2}$।। दो अयन, दो विषुव, चार षडशीतियाँ, चार विष्णुपदियाँ और बारह संक्रान्तियाँ दान के लिए उत्तम हैं। कन्या, मिथुन, मीन तथा धनु राशि में सूर्य की गति षडशीतिमुख कहलाती है। उसमें दान करने से (अन्य समय के दान की अपेक्षा) छियासी गुना अधिक फल होता है। अतीत और अनागत दो पुण्य होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन–ये दो अयन हैं। ।।८–१०।। कर्क राशि में सूर्य के प्रवेश करने पर तीस घड़ी तक पुण्यकाल रहता है, मकर में बीस घड़ी तक और तुला तथा मेष में दस–दस घड़ी तक। षडशीति के बीत जाने पर साठ घड़ी तक पुण्यकाल माना गया है। विष्णुपदी के पूर्व और पश्चात् भी सोलह घड़ी तक पुण्यकाल होता है। श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा तथा आश्लेषा में जब रविवार पड़ता है तब व्यतीपात योग होता है ।।११–१३।। कार्तिक–शुक्लपक्ष की नवमी में सत्ययुग, वैशाख–शुक्लपक्ष की तृतीया में त्रेता, माघ की अमावस्या में द्वापर और भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी में कलियुग का प्रारम्भ हुआ था। इन दिनों को मन्वन्तर कहते हैं ।।१४–१५।।

---

१ ख. ग. °म्। महो°। २ क. ख. ग. घ. °शतिः स्मृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा । तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च ।।१६।।
फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्येकादशी तथा । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ।।१७।।
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा । कार्तिके फाल्गुने तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी तथा ।।१८।।
[1]ऊर्ध्वे चैवाऽऽग्रहायण्या अष्टकास्तिस्र ईरिताः । अष्टकाख्या चाष्टमी स्यादासु दानादि चाक्षयम् ।।१९।।
गयागंगाप्रयागादौ तीर्थे देवालयादिषु । अप्रार्थितानि दानादि विद्यान्न कन्यकानि(?)हि ।।२०।।
दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः । आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ।।२१।।
नामगोत्रं समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चाऽऽत्मनः । सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम् ।।२२।।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य व्याहृतिभिर्दद्याद्दानं तु सोदकम् । कनकाश्वतिला नागादासीरथमहीगृहाः।।२३।।
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश । श्रुतशौर्यतपः कन्यायाज्यशिष्यादुपागतम् ।।२४।।
शुल्कं धनं हि [2]सकलं [3]शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः । कुसीदकृषिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः[4] ।।२५।।
पाशकद्यूतचौर्यादिप्रतिरूपकसाहसैः । व्याजेनोपार्जितं कृत्स्नं त्रिविधं त्रिविधं फलम् ।।२६।।
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च[5] प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।।२७।।
ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात् । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौगृहं शयनं स्त्रियः[6] ।।२८।।

आश्विन-शुक्लपक्ष की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भादों की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण की अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन, ज्येष्ठ तथा मार्गशीर्ष की पञ्चदशी में भी दान करने से मन्वन्तर में दान करने के समान फल मिलता है। पौष, माघ तथा फाल्गुन की अष्टमियों को अष्टका कहते हैं। इनमें दान करने से भी अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।।१६-१९।। गया, गङ्गा, प्रयाग आदि तीर्थों में तथा देवालय आदि में बिना माँगे जो मिल जाय वह ले लेना चाहिए, किन्तु कन्यादान में यह नियम नहीं है। पूर्व मुँह करके दान देना चाहिए और उत्तराभिमुख दान लेना चाहिए। ऐसा करने से देनेवाले की आयु बढ़ती है और लेनेवाले की भी घटती नहीं है ।।२०-२१।। (दान देनेवाले को) अपने तथा दान लेनेवाले के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके दान देना चाहिए। कन्यादान में तीनों (दाता, देय, सम्प्रदान) के नाम और गोत्रों का उच्चारण करना चाहिए। सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ, पृथ्वी, गृह, कन्या तथा कपिला गौ—ये दस महादान कहलाते हैं ।।२२-२३$\frac{1}{2}$।। वेद (के अध्यापन), शौर्य, तप, कन्या के पाणिग्रहण, पौरोहित्य और शिष्य से प्राप्त दान शुल्क कहलाता है। इसी प्रकार व्यवसाय, ब्याज, कृषि, वाणिज्य तथा दूसरे के उपकार से प्राप्त धन भी शुल्क ही कहलाता है। पासे तथा अन्य प्रकार के द्यूतकर्म, चोरी तथा अन्य साहस के कार्यों से प्राप्त अथवा ब्याज से उपार्जित धन का फल तीन प्रकार का हुआ करता है ।।२४-२६।। स्त्री धन छह प्रकार का होता है। अध्यग्नि (वह धन जो स्त्री को अग्नि के निकट दिया जाता है), अध्यावाहनिक (वह धन जो स्त्री को पितृकुल छोड़ते समय दिया जाता है), प्रीतिकर्म में (पति या मित्रों) से प्राप्त धन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का धन उनके अनुग्रह से शूद्र का भी हो जाता है। गाय, घर, शय्या और स्त्रियाँ दान में बहुत से व्यक्तियों को नहीं देना चाहिए ।।२७-२८।।

---

१ ख. ग. ऊर्जे चै°। २ क. ख. ग. शबलं। ३ ख. ग. शुल्कशिष्यार्थं वृ°। ४ ख. ग. °तः। प्रार्थिकद्यू। क. ङ. तः। प्रार्थकद्यू। ५ ख. ग. च. प्रति°। ६ ख. ग. यः। फला°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुलानां तु शतं हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम् । देवानां च गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च ।।२९।।
पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चार्जितं क्वचित् । प्रतिलाभेच्छया दत्तं यद्धनं तदपार्थकम् ।।३०।।
श्रद्धया साध्यते धर्मो दत्तं वार्यपि चाक्षयम् । ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीडाबहिष्कृतः ।।३१।।
अज्ञानां पालनात्त्राणात्तत्पात्रं परमं स्मृतम् । मातुः शतगुणं दानं सहस्त्रं पितुरुच्यते ।।३२।।
अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम् । अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलम् ।।३३।।
वर्णसंकरे द्विगुणं शूद्रे दानं चतुर्गुणम् । वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोडशत्वं (कं) द्विजब्रुवे ।।३४।।
वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके । पुरोहिते याजकादौ दानमक्षयमुच्यते ।।३५।।
श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं च यज्वनि । अतपस्व्यनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।।३६।।
अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति । स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात्प्रयतः शुचिः ।।३७।।
प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्तयेत् । ततस्तु कीर्तयेत्सार्धं द्रव्येण सह दैवतम् ।।३८।।
प्रतिग्राही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् । मन्दं पठेत्क्षत्रियात्तु उपांशु च तथा विशः ।।३९।।
मनसा च तथा शूद्रात्स्वस्तिवाचनकं तथा । अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता ।।४०।।
कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः । प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ।।४१।।

(दान की) प्रतिज्ञा करके न देनेवाले को सौ कुलों के नाश करने का पाप लगता है। देवता, गुरु तथा माता-पिता को प्रयत्न करके पुण्य देना चाहिए फिर वह पुण्य चाहे जहाँ कहीं से भी उपार्जित क्यों न किया गया हो। बदले में लाभ की इच्छा से दिया गया धन व्यर्थ हो जाता है ।।२९-३०।। श्रद्धापूर्वक (दान) देने से ही धर्म होता है। श्रद्धा से दिया हुआ जल भी अक्षय (फल देता) है। दान का पात्र वही हुआ करता है, जो ज्ञानी, शीलवान्, दूसरे को कष्ट न देनेवाला और अज्ञानियों की रक्षा करनेवाला है। माता को दिया हुआ दान सौ गुना, पिता को दिया हुआ हजार गुना, पुत्री को दिया हुआ अनन्त गुना और सहोदर (भाई) को दिया हुआ दान अक्षय फल प्रदान करता है। मनुष्येतर को दान देने से साधारण फल और पापी को दान देने से महाफल प्राप्त होता है। वर्णसंकर को दान देने से दूना, शूद्र को देने से चौगुना, वैश्य को देने से आठ गुना और द्विजबन्धु को दान देने से सोलह गुना फल प्राप्त होता है। वेदाध्यायी को देने से सौगुना, वेदाध्यापक को देने से अनन्त गुना और पुरोहित तथा यज्ञ करनेवाले आदि को देने से अक्षय फल प्राप्त होता है ।।३१-३५।। दीन तथा यज्ञ करनेवाले को दान देने से अनन्त फल होता है। जो द्विज तपस्या तथा वेदाध्ययन से वंचित है और सदा दान प्रप्त करने की कामना किया करता है, वह जल में पत्थर की तरह उसी के साथ डूब मरता है। दान लेनेवाले को स्नान करके सम्यक् प्रकार से आचमन के द्वारा पवित्र होकर दान लेना चाहिए ।।३६-३७।। प्रतिग्रहीता को सदा सावित्री का जप करना चाहिए। तत्पश्चात् द्रव्य के साथ देवता का संकीर्त्तन (गुणगान भी) करना चाहिए ।।३८।। दान लेनेवाले को श्रेष्ठ ब्राह्मण से दान लेकर जोर-जोर से मन्त्र पढ़ना चाहिए। क्षत्रिय से दान लेते समय धीरे-धीरे, वैश्य से दान लेते समय उपांशु (जिसमें केवल ओष्ठ हिलें) और शूद्र से दान लेने के समय मन-ही-मन मन्त्र पढ़ना चाहिए। तदनन्तर स्वस्तिवाचन करना चाहिए। अभय सभी देवताओं से मिलता है ।।३९-४०।। कन्या, हाथी,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा चैकशफं सर्वं याम्यश्च महिषस्तथा । उष्ट्रश्च नैर्ऋतो धेनू रौद्री छागोऽनलस्तथा ।।४२।।
आप्यो मेषो हरिः क्रोड आरण्याः पशवोऽनिलाः । जलाशयं वारुणं स्याद्वारिधानी घटादयः ।।४३।।
समुद्रजानि रत्नानि हेमलौहानि चानलः । प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपिसत्तम ।।४४।।
गान्धर्वं गन्धमित्याहुर्वस्त्रं बार्हस्पतं स्मृतम् । वायव्याः पक्षिणः सर्वे विद्या ब्राह्मी तथाऽङ्गकम् ।।४५।।
सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्मा तु शिल्पके । वनस्पतिर्द्रुमादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः ।।४६।।
छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च । उपानहौ तथा यानमुत्तानाङ्गिर ईरितम् ।।४७।।
[1]रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदैवतम् । गृहं च सर्वदैवत्यं सर्वेषां विष्णुदेवता ।।४८।।
शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यतोऽस्ति हि । द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्ददामीति तथा वदेत् ।।४९।।
तोयं दद्यात्ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः । विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णामि वै वदेत् ।।५०।।
सवस्तिप्रतिग्रहं धर्मं भुक्तिमुक्तीफलद्वयम् । गुरून्भृत्यानुज्जिहीर्षुरर्चिष्यन्देवताः पितॄन् ।।५१।।
सर्वतः प्रतगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः । शूद्रीयं न नु यज्ञार्थं धनं शूद्रस्य तत्फलम् ।।५२।।
गुडतक्ररसाद्याश्च शूद्राद्ग्राह्या[2] निवर्तिना । सर्वतः प्रतिगृह्णीयादवृत्त्या कर्षितो द्विजः ।।५३।।
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणां ज्वलनार्कसमा हि ते ।।५४।।

दास तथा दासी प्रजापति से सम्बद्ध हैं। अश्व तथा एक खुरवाले जीव के देवता यम, महिष तथा ऊँट के नैर्ऋत, गाय के रुद्र, बकरे के अग्नि, भेड़ के वरुण, सिंह, सुअर तथा जंगली पशुओं के वायु, जलाशय, वारिधानी तथा वट आदि के वरुण, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण तथा लोहे आदि के अग्नि, शस्य तथा पक्वान्न के प्रजापति, गन्ध के गान्धर्व, वस्त्र के बृहस्पति देवता हैं ।।४१-४४ $\frac{1}{2}$ ।। पक्षियों के वायु, विद्या, पुस्तक आदि के सरस्वती, शिल्प के विश्वकर्मा, वृक्ष आदि के वनस्पति, द्रव्यों के विष्णु और शरीर छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, जूते तथा यान (सवारी) के देवता उत्तानाङ्गिर हैं ।।४५-४७।। युद्धोपकरण-शस्त्र, ध्वजा आदि और गृह के देवता सभी हैं। और सबके देवता विष्णु या शिव हैं क्योंकि कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है जो उनसे अतिरिक्त हो। दान देने के समय द्रव्य का नाम तथा 'मैं दे रहा हूँ'-यह कहना चाहिए ।।४८-४९।। तदनन्तर दान देनेवाले के हाथ में जल देना चाहिए-यही दान का विधान है। प्रतिग्रहीता को यह कहकर दान लेना चाहिए कि विष्णु ही दाता हैं और विष्णु ही द्रव्य हैं ।।५०।। प्रतिग्रह (दान) धर्म तथा कल्याणकारक और भुक्तिमुक्तिदायक हुआ करता है। देवता तथा पितरों के पूजन करनेवाले ब्राह्मण को गुरु, भृत्य तथा चोरों से भी दान लेना चाहिए। दान सबसे लेना चाहिए, इससे कभी भी तृप्त नहीं होना चाहिए। शूद्र का धन यज्ञ से भिन्न कार्यों के लिए लेना चाहिए, क्योंकि यज्ञ के लिए वह धन लेने से उस यज्ञ का फल शूद्र को ही प्राप्त हो जायगा ।।५१-५२।। शूद्र से गुड़, तक्र, रस आदि लेना चाहिए। जीविकाहीन द्विज को सभी से दान लेना चाहिए। पढ़ाने, यज्ञ कराने तथा निन्दित दान लेने से विप्रों को दोष नहीं लगता है क्योंकि वे ब्रह्मतेज से सूर्य

---

१ ग. रसोप°। २ ख. ग. °द्राद्भोज्यं नि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृते तु दीयते गत्वा त्रेतास्वानीय दीयते । द्वापरे याचमानाय कलौ[1] त्वनुगमान्विते ।।५५।।
मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत् । विद्यते सागरस्यान्तो नान्तो दानस्य विद्यते ।।५६।।
अद्यसोमार्कग्रहणसंक्रान्त्यादौ च कालके । गङ्गागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणे ।।५७।।
तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्मणे । वेदवेदाङ्गयुक्ताय पात्राय सुमहात्मने ।।५८।।
यथानाम महाद्रव्यं विष्णुरुद्रादिदैवतम् । पुत्रपौत्रगृहैश्वर्यपत्नीधर्मार्थसद्गुणाः ।।५९।।
कीर्तिविद्यामहाकामसौभाग्यारोग्यवृद्धये । सर्वपापोपशान्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ।।६०।।
एतत्तुभ्यं सम्प्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः । दिव्यान्तरिक्षभौमादिसमुत्पातौघघातकृत् ।।६१।।
धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे । यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ।।६२।।
एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां ददे । अनेन दानवाक्येन सर्वदानानि वै ददेत्[2] ।।६३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दानपरिभाषावर्णनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०९।।

के समान जाज्वल्यमान रहते हैं ।।५३-५४।। सत्ययुग में लोग स्वयं ब्राह्मणों के घर जाकर दान देते हैं, त्रेता में अपने यहाँ बुलाकर दान दिया जाता है, द्वापर में माँगने पर और कलियुग में अनुगमन (खुशामद) करने से दान दिया जाता है। मन में (दान के) पात्र के उद्देश्य से भूमि पर जल गिराना चाहिए। सागर का अन्त हो सकता है किन्तु दान का (कोई) अन्त नहीं है ।।५५-५६।। दान देने के समय यह कहना चाहिए-'मैं सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण या संक्रान्ति आदि काल में और गङ्गा, प्रयाग आदि महागुणशाली तीर्थ में अमुक गोत्रवाले, अमुक नामवाले, वेदवेदाङ्गों का ज्ञान रखनेवाले महात्मा पात्र (तुम विप्र) को अमुक नामवाला तथा विष्णु, रुद्र आदि देवतावाला, यह द्रव्य दे रहा हूँ; जिससे मेरे पुत्र, पौत्र, गृह, ऐश्वर्य, पत्नी, धर्म, अर्थ, सद्गुण, कीर्ति, विद्या, महाकाम, सौभाग्य, आरोग्य की वृद्धि, सकल पापों की शान्ति, स्वर्ग तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति हो ।।५७-६०।। यह तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। मेरे ऊपर विष्णु और शिव प्रसन्न रहें। भगवान् विष्णु आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी आदि पर मेरे समस्त उत्पातों का विध्वंस करते रहें। वे मुझे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा ब्रह्मलोक प्रदान करें। इसके बाद यह कहकर दक्षिणा देनी चाहिए-'इस दान की प्रतिष्ठा के लिए मैं अमुक गोत्रवाले, अमुक शर्मा विप्र को सुवर्ण दक्षिणा में दे रहा हूँ।' इसी प्रकार समस्त दानों में दान-वाक्य पढ़कर दान देना चाहिए ।।६१-६३।।

श्री अग्निमहापुराण में दानपरिभाषा-वर्णन नामक दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त ।।२०९।।

---

१ गङ्गाप्रयाग...महागुणे क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. वदेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादानानि

अग्निरुवाच

सर्वदानानि वक्ष्यामि महादानानि षोडश। तुलापुरुष आद्यं तु हिरण्यगर्भदानकम् ।।१।।
ब्रह्माण्डं कल्पवृक्षश्च गोसहस्रं च पञ्चमम्। हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वश्च सप्तमम्[1] ।।२।।
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा। [2]पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ।।३।।
विश्वचक्रं कल्पलता सप्तसागरकं परम्[3]। रत्नधनुर्महाभूतघटं शुभदिनेऽर्पयेत् ।।४।।
मण्डपे मण्डले दानं देवान्प्राच्यार्पयेद्द्विजे[4]। मेरुदानानि पुण्यानि मेरवो दर्श[5] ताञ्शृणु ।।५।।
धान्यद्रोणसहस्रेण उत्तमोऽर्धार्धतः परौ। उत्तमः षोडशद्रोणः कर्तव्यो लवणाचलः ।।६।।
दशभारैर्गुडाद्रिः स्यादुत्तमोऽर्धार्धतः परौ। उत्तमः पलसाहस्रैः[6] स्वर्णमेरुस्तथा[7] परौ ।।७।।
दशद्रोणैस्तिलाद्रिः स्यात्पञ्चाभिश्च त्रिभिः क्रमात्। कार्पासपर्वतो विंशभारैश्च दशपञ्चभिः ।।८।।

अध्याय २१०

महादान

अग्निदेव बोले–अब मैं सम्पूर्ण दानों का वर्णन करूँगा, जिनमें महादान सोलह प्रकार के हैं–पहला तुलापुरुषदान, दूसरा हिरण्यगर्भदान, तीसरा ब्रह्माण्डदान, चौथा कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ गोसहस्रदान, छठा सुवर्णकामधेनुदान, सातवाँ हिरण्याश्वदान, आठवाँ सुवर्णाश्वयुक्त रथदान, नवाँ स्वर्णगजयुक्त रथदान, दसवाँ पाँच लाङ्गल (हर) दान, ग्यारहवाँ पृथ्वीदान, चौदहवाँ सप्तसागरदान, पन्द्रहवाँ रत्नधेनुदान और सोलहवाँ महाभूतघटदान हैं। किसी शुभ दिन में मण्डल की रचना करके उसके ऊपर देवपूजन करके ब्राह्मण को दान देना चाहिए ।।१-४½।। पवित्र मेरुदान भी दस प्रकार के हुआ करते हैं। उन्हें सुनो! एक सहस्र द्रोण (४०० अढ़ैया) परिमित धान्य का बना धान्यपर्वत उत्तम होता है। उसके आधे से बना हुआ मध्यम और उससे भी आधे से बना हुआ अधम माना गया है। (इसी तरह) सोलह द्रोण (६४ अढ़ैया) लवण से बना लवणाचल उत्तम होता है ।।५-६।। दस भार गुड़ से बना गुड़ पर्वत उत्तम और उसके आधे-आधे से बना हुआ पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम माना जाता है। एक हजार पल सुवर्ण से बना स्वर्ण पर्वत उत्तम तथा उसके आधे-आधे से बना हुआ क्रमशः मध्यम और अधम हुआ करता है। दसद्रोण (४० अढ़ैया) तिल से बना तिल पर्वत उत्तम, पाँच द्रोण से बना हुआ मध्यम और तीन द्रोण तिल से बना हुआ पर्वत अधम माना जाता है। बीस भार कपास से बना कार्पास पर्वत उत्तम और दस तथा पाँच भार कपास से बना पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम माना जाता है ।।७-८।। बीस घड़े

---

१ क. ख. ङ. सप्तमः। २ क. ङ. °ञ्च शार्ङ्गल°। ३ ख. ग. वरम्। ४ क. ङ. °र्च्याथ विक्षिपेत्। मे°। ५ क. ङ. °शधा शृणु। ६ ख. ग. °ह स्रः स्व°। ७ ख. ग. परः। द°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विंशत्या घृतकुम्भानुमुत्तमः स्याद्घृताचलः । दशाभिःपलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः ।।९।।
अष्टभारै शर्कराद्रिमध्यो मन्दोऽर्धतोऽर्धतः । दशधेनूः प्रवक्ष्यामि या दत्त्वा मुक्तिभुक्तिभाक् ।।१०।।
प्रथमा गुडधेनुः स्याद्घृतधेनुस्तथाऽपरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलधेनुका ।।११।।
क्षीरधेनुर्मधुधेनुः शर्करादधिधेनुके । रसधेनुः स्वरूपेण दशमीविधिरुच्यते ।।१२।।
कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितराशां तु राशयः । कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ।।१३।।
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः । लघ्वैणकाजिनं तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत् ।।१४।।
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् । उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयात् ।।१५।।
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता । अर्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ।।१६।।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गुणपित्तानुसारतः । पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ।।१७।।
पलं सुवर्णाश्चत्वारस्तुला पलशतं स्मृतम् । स्यात्भारो विंशतितुला द्रोणस्तु चतुराढकः ।।१८।।
धेनुवत्सौ गुडस्योभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ।।१९।।
सितसूत्रशिरालौ[1] च सितकम्बलकम्बलौ । [2]ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ।।२०।।

घी से बना हुआ पर्वत उत्तम हुआ करता है। दस हजार पल चाँदी से बना हुआ रजताचल उत्तम हुआ करता है। आठ भार शक्कर से बना हुआ शर्कराचल उत्तम और उसके आधे से बना हुआ पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम हुआ करता है ।।९-१०।। अब मैं दस धेनुओं का वर्णन करूँगा, जिनका दान करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। पहली गुड़ धेनु है, दूसरी घृतधेनु है, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रत्नधेनु और दसवीं साक्षात् धेनु है ।।११-१२।। पिघलनेवाली (वस्तुओं से बनी हुई) धेनुओं के लिए राशि का व्यवहार करना चाहिए। (धेनुदान करने का विधान यह है-) गोबर से लिपी हुई भूमि पर अच्छी तरह कुशों को बिछाकर उसके ऊपर चार हाथ लम्बे कृष्णमृगचर्म को पूर्वाभिमुख करके बिछाना चाहिए। उसी प्रकार छोटे हरिण का चर्म भी रखना चाहिए ।।१३-१४।। उसके ऊपर (उपर्युक्त पदार्थों से) एक गाय की रचना करनी चाहिए, जिसका मुख पूर्व की ओर और पैर उत्तर की ओर हों, तथा जिसके साथ एक बच्चा भी हो। चार भार गुड़ से बनी हुई धेनु उत्तम हुआ करती है। इस (उत्तम धेनु) का बच्चा एक भार (गुड़ से बना) होना चाहिए। दो भार से बनी हुई धेनु मध्यम होती है, जिसका बछड़ा आधे भार से बनाना चाहिए। एक भार से बनी धेनु अधम होती है ।।१५-१६।। उसका बछड़ा एक भार के चतुर्थांश से बनाना चाहिए। वित्त (सामर्थ्य) के अनुसार गुड़धेनु आदि की रचना करनी चाहिए। पाँच कृष्ण (गुञ्जा) का एक माष (माशा), सोलह माष का एक सुवर्ण, चार सुवर्ण का एक पल (चार तोले), सौ पल का एक तुला, बीस तुला का एक भार और चार आढक (अढ़ैया) का एक द्रोण होता है ।।१७-१८।। गुड़ की धेनु तथा वत्स दोनों को स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र से ढँक देना चाहिए। दोनों के कान सीप के, पैर ईख के, आँखें स्वच्छ मोतियों की, भाल श्वेत सूत्र का, गलकँवरिया शुक्ल कम्बल की, गड्डुक

---

१ क. ङ. °रालेभ्य असिक°। २ ख. ग. गडुक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ।।२१।।
सुवर्णशृङ्गाभरणौ[1] रजतक्षुरसंयुतौ । नानाफलमया दन्ता गन्धघ्राणप्रकल्पितौ ।।२२।।
रचयित्वा यजेद्धेनुमिमैर्मन्त्रैर्द्विजोत्तम । या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।।२३।।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु । देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया ।।२४।।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु । विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।।२५।।
चन्द्रार्कऋक्षशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये । चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।।२६।।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे । स्वधात्वं पितृमुख्यानां (णां) स्वाहा यज्ञभुजां यतः ।।२७।।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे । एवमामन्त्रितां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।२८।।
समानं सर्वधेनूनां विधानं चैतदेव हि । सर्वयज्ञफलं प्राप्य निर्मलो भुक्तिमुक्तिभाक् ।।२९।।
स्वर्णशृङ्गी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता । कांस्योपदेहा दातव्या क्षीरिणी गौःसदक्षिणा ।।३०।।
दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान्रोमसम्मितान् । कपिला चेत्तारयति भूयश्चाऽऽसप्तमं कुलम् ।।३१।।
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् । शक्तितो दक्षिणायुक्तां दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।३२।।

(डील) और पीठ ताँबे के, रोम श्वेत चामर के, भौंहें विद्रुम (मूँगे) की, स्तन मक्खन के, पूँछें रेशमी वस्त्र की, थन काँसे के, आँखों की पुतलियाँ इन्द्रनीलमणि की, सींग सोने की, खुर चाँदी के, दाँत अनेक फलों के और नाकें गन्ध (घिसे चन्दन आदि) की बनी हुई होनी चाहिए ।।१९-२२।। हे द्विजोत्तम! इस प्रकार धेनु की रचना करके यह कहते हुए स्तुति करनी चाहिए कि जो समस्त प्राणियों की लक्ष्मी है तथा देवताओं में विराजमान है, वह देवी धेनु रूप से मुझे शान्ति प्रदान करती रहे। जो साक्षात् भगवान् शंकर की प्रियतमा रुद्राणी है, वह धेनुरूप देवी मेरे पापों का सर्वनाश करती रहे ।।२३-२४$\frac{1}{2}$।। जो विष्णु के वक्षःस्थल पर लक्ष्मी रूप से रहती है, अग्नि में स्वाहा रूप से रहती है और सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रों में शक्ति रूप से रहती है, वह धेनुरूपी देवी धन प्रदान करती रहे। जो ब्रह्मा, कुबेर तथा लोकपालों की लक्ष्मी है, वह धेनु रूप देवी मुझे वर प्रदान करती रहे। वह पितरों की स्वधा, यज्ञभोक्ताओं की स्वाहा और सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाली है, अतएव धेनु रूप से मुझे (भी) शान्ति प्रदान करे। इस प्रकार मन्त्रों से अभिमन्त्रित वह धेनु ब्राह्मण को दे देना चाहिए ।।२५-२८।। सभी धेनुओं के दान करने का विधान समान ही है। जो व्यक्ति उक्त प्रकार से धेनु दान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करके निर्मल हो जाता है और भुक्ति-मुक्ति भी प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य सुन्दर स्वभाववाली तथा खूब दूध देनेवाली गौ के सींगों में सोना तथा खुरों में चाँदी मढ़कर, स्तन में काँसे (दोहन) का पात्र लगाकर और ऊपर से वस्त्र ढककर दक्षिणा सहित दान करता है, वह उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है जितने उस धेनु के शरीर में रोयें होते हैं। यदि इस प्रकार दान की गयी धेनु कपिला हो तो उसके दान करने से दाता के सात कुलों का उद्धार हो जाता है। जो सोने के सींग, चाँदी के खुर तथा काँसे के (दोहन) पात्र के साथ गोदान करता है तथा अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देता है, उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।२९-३२।। जो पूर्वोक्त विधि के अनुसार

---

१ ख. ग. °णौराज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सवत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम् । दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना दहेत् ।।३३।।
आसन्नमृत्युना देया सवत्सा गौस्तु पूर्ववत् । यमद्वारे महाघोरे तप्ता[1] वैतरणी नदी ।।
तां तर्तुं च ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीं च गाम् ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महादानवर्णनं नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१०।।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानादानानि

अग्निरुवाच

एकां गां दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती । शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ।।१।।
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः ।।२।।
गवां शतप्रदानेन मुच्यते नरकार्णवात् । दत्त्वा वत्सतरीं चैव स्वर्गलोके महीयते ।।३।।
गोदानादायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् । इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।।४।।

दोनों ओर मुखवाली (अर्थात् सवत्सा गौ) दान करता है, वह उतने ही वर्षों तक स्वर्गवास करता है, जितने उस गाय तथा बछड़े के शरीर में रोयें होते हैं। जिसकी मृत्यु निकट है उसे पूर्वोक्त रीति से यह कहते हुए बछड़ेवाली गाय का दान करना चाहिए कि महाभयंकर यममार्ग में उलझती हुई वैतरणी नदी को पार करने के लिए मैं इस कृष्णा गौ का दान कर रहा हूँ ।।३३-३४।।

श्री अग्निमहापुराण में महादान-वर्णन नामक दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१०।।

अध्याय २११

नाना-दान

अग्निदेव बोले–जिसके पास दस गायें हैं उसे एक गाय दान करना चाहिए। जिसके पास सौ गायें हैं उसे दस गायें और जिसके पास एक हजार गायें हैं उसे सौ गायें दान करना चाहिए। इन सबका फल बराबर ही होता है ।।१।। सहस्र गोदान करनेवाला उस लोक को चला जाता है, जहाँ सोने के भवन बने हुए हैं, सम्पत्तियों की धारा बहती रहती है और गन्धर्व और अप्सराएँ रहती हैं। सौ गायों का दान करने से नरक के सागर से छुटकारा मिल जाता है और बछिया का दान करने से स्वर्ग में पूजित होता है ।।२-३।। गोदान करने से आयु, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। भैंस का दान करते समय यह कहना चाहिए–'इन्द्र आदि लोकपालों की राजमहिषी

---

१ क. ङ. घोरा। ख. ग. कष्टा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वकामदा। धर्मराजस्य[1] साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।।५।।
महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम। [2]महिषीदानाच्च सौभाग्यं वृषदानाद्दिवं व्रजेत् ।।६।।
संयुक्तहलपङ्क्त्याख्यं दानं सर्वफलप्रदम्। पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता ।।७।।
सौवर्णपट्टसंनद्धा दत्त्वा स्वर्गे महीयते। दशानां कपिलानां तु दत्तानां ज्येष्ठपुष्करे ।।८।।
तत्फलं चाक्षयं प्रोक्तं वृषभस्य तु मोक्षणे। धर्मोऽसि त्वं चतुष्पादश्चतस्रस्ते प्रिया इमाः ।।९।।
नमो ब्रह्मण्य देवेश पितृभूतर्षिपोषक। त्वयि[3] मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु निरामयाः ।।१०।।
मा मे ऋणोऽस्तु दैवत्यो भौतः पैत्रोऽथ मानुषः। धर्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः साऽस्तु मे ध्रुवा ।।११।।
अङ्कयेच्चक्रशूलाभ्यां मन्त्रेणानेन चोत्सृजेत्। एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।।१२।।
मुच्यते प्रेतलोकात्तु षण्मासे चाब्दिकादिषु। दशहस्तेन दण्डेन[4] त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम् ।।१३।।
तान्येव दशविस्ताराद्गोचर्मैतत्प्रदोऽघभित्। गोभूहिरण्यसंयुक्तं कृष्णाजिनं तु योऽर्पयेत् ।।१४।।
सर्वदुष्कृतकर्माऽपि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत्। भाजनं तिलसम्पूर्णं मधुना पूर्णमेव च ।।१५।।
दद्यात्कृष्णतिलानां च प्रस्थमेकं च मागधम्। शय्यां दत्त्वा तु सगुणां भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१६।।

इस भैंस के प्रभाव से मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करती रहे। इस भैंस का पुत्र धर्मराज की सहायता करता है। जो महिषासुर की माता है वह मुझे वर प्रदान करे।' भैंस का दान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है और बैल का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।४-६।। 'संयुक्तहलपङ्क्ति' नामक दान करने से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। (इस दान में) काठ के बने दस पाद लम्बे हल में बैलों को जोतकर और उसे सोने से मढ़कर दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।७-७$\frac{1}{2}$।। पुष्कर नामक तीर्थ में दस कपिला गायों का दान करने और एक बैल को मुक्त करने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है। (एकादशाह श्राद्ध में बैल को चक्र और शूल से अंकित करके छोड़ा जाता है) अंकित करते समय यह प्रार्थना करनी चाहिए कि-ब्रह्मण्य! देवेश! पितरों तथा ऋषियों के पोषक तुम धर्मस्वरूप हो। तुम्हें नमस्कार है। ये चारों (बछिया) तुम्हारी प्रिया हैं। तुम्हें मुक्त कर देने पर मेरे सम्पूर्ण लोक मङ्गलमय तथा अविनश्वर हों ।।८-१०।। मेरे ऊपर देवता, पितृ, भूत तथा मनुष्य किसी का भी ऋण न रहने पाये। तुम धर्म हो। जो गति तुम्हारे भक्तों को मिलती है, वही निश्चय ही मुझे मिले। इस प्रकार जिस प्रेत के एकादशाह में बैल छोड़ा जाता है, वह छह मास या एक वर्ष में अवश्य प्रेतलोक से छुटकारा पा जाता है। दस हाथ का परिमाण एक दण्ड कहलाता है, तीस दण्डों का निवर्तन होता है ।।११-१३।। दस निवर्तनों का एक गोचर्म माना गया है। उस एक गोचर्म का दान करने से बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति गाय, भूमि और सोने के साथ कृष्णमृगचर्म का दान करता है, वह पापी होने पर भी ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो तिलपूर्ण पात्र, मधुपूर्ण पात्र, एक प्रस्थ (सेर) तिल तथा मागध और सजी हुई शय्या का दान करता है, उसे भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।१४-१६।। स्वर्ण की प्रतिमा का दान करने

---

१ ग. °स्य माहात्म्याद्यस्याः। २ क. ङ. °षीसर्वसौ°। ३ ग° यि दत्तेऽक्ष°। ४ च. °न त्रिदण्डेन निव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैमीं प्रतिकृतिं कृत्वा दत्त्वा स्वर्गस्तथाऽऽत्मनः । विपुलं तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।१७।।
गृहं मठं सभां स्वर्गी दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम् । दत्त्वा कृत्वा गोगृहं च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ।।१८।।
([1]यममाहिषदानात्तु निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् । ब्रह्मा हरो हरिर्देवैर्मध्ये च यमदूतकः ।।१९।।
पार्शी तस्य शिरश्छित्त्वा तं दद्यात्स्वर्गभाग्भवेत् ।) त्रिमुखाख्यमिदं दान गृहीत्वा तु द्विजोऽघभाक् ।।२०।।
[2]चन्द्रं रूपमयं कृत्वा[3] के धृत्वा[4] तत्प्रदापयेत्[5] । होमयुक्तं द्विजायैतत्कालचक्रमिदं महत् ।।२१।।
आत्मतुल्यं तु यो लौहं ददेन्न नरकं व्रजेत् । पञ्चाप(श)त्पलसंयुक्तं लौहदण्डं तु योऽर्पयेत् ।।२२।।
वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य विप्राय यमदण्डो न विद्यते । मूलं फलादि वा द्रव्यं संहतं वाऽथ चैकशः ।।२३।।
मृत्युञ्जयं समुद्दिश्य दद्यादायुर्विवृद्धये[6] । पुमान्कृष्णतिलैः कार्यो रौप्यदन्तः[7] सुवर्णदृक् ।।।२४।।
खड्गोद्यतकरो दीर्घो जपाकुसुममण्डलः । रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ।।२५।।
उपानद्युगयुक्ताङ्घ्रिः [8]कृष्णकम्बलपार्श्वकः । गृहीतमांसपिण्डश्च वामे वै कालपूरुषः ।।२६।।
सम्पूज्य तं च गन्धाद्यैर्ब्राह्मणायोपपादयेत् । मरणव्याधिहीनः स्याद्राजराजेश्वरो भवेत् ।।२७।।
गोवृषौ तु द्विजे दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्[9] । हेमन्ताधिष्ठितं चाश्वं हैमं दत्त्वा न मृत्युभाक्[10] ।।२८।।

से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। बड़ा-सा घर बनाकर उसका दान करने से तथा धर्मशाला और गोशाला बनवाने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग चला जाता है ।।१७-१८।। भैंसा दान करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु के मध्य में यमदूत की प्रतिमा रखकर उसका सिर काटकर दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस दान को त्रिमुखाख्य दान कहते हैं। इसको लेनेवाला द्विज पाप का भागी होता है ।।१९-२०।। चाँदी का चन्द्रमा बनाकर उसे जल में रखकर सोने के साथ ब्राह्मण को देना चाहिए, इसका नाम कालचक्र है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। जो अपने बराबर लौहदान करता है, उसे नरक नहीं जाना पड़ता है। जो पचास पल लौहदण्ड को वस्त्र से ढँककर ब्राह्मण को दान करता है, उसे यमदण्ड का भय नहीं रह जाता है। जो फल, मूल आदि द्रव्यों को एक साथ या अलग-अलग मृत्युञ्जय (शिव) के उद्देश्य से दान करता है, उसकी आयु बढ़ती है ।।२१-२३$\frac{1}{2}$।। काले तिलों की एक पुरुष प्रतिमा बनानी चाहिए। उसके दाँत चाँदी के और नेत्र सोने के होने चाहिए। उसके हाथ में एक तलवार होनी चाहिए, उसका आकार लम्बा तथा मण्डल जपाकुसुम से सुशोभित होना चाहिए। उस लाल वस्त्र, पुष्पमाला तथा शंखमाला से विभूषित होना चाहिए। वह पैरों में जूते पहने हुए हो। उसके पार्श्व में काला कम्बल पड़ा होना चाहिए। उसे मांसपिण्ड लिये हुए होना चाहिए। सुगन्धित पदार्थों से उसका पूजन करके ब्राह्मण को दे देना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य मृत्यु और व्याधि से रहित होकर राजराजेश्वर बन जाता है ।।२४-२७।। ब्राह्मण को गाय तथा बैल देने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। हेमन्त ऋतु में अश्व की स्वर्ण प्रतिमा का दान करने

---

१ 'यममाहिषदानात्तु'''स्वर्गभाग्भवेत्' पुस्तके नास्ति। २ घ. चक्रं। ३ च. °त्वा व्यापकत्वात् प्र°। ४ ग. भृत्वा। ५ च. °त्। हेम°। ६ क. ख. ग. ङ. °विवर्धते। पु०। ७ क. ङ. °दण्डः सु°। ८ ख. ग. कृष्णः कमलपा°। ९ ग. घ. च. °त्। रेवन्ता°। १० क. ङ. °क्। जप्यादि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घण्टादिपूर्णमप्येकं दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् । सर्वान्कामानवाप्नोति यः प्रयच्छति काञ्चनम् ।।२९।।
सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यते । अन्येषामपि दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता ।।३०।।
सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च । नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतददक्षिणम् ।।३१।।
रजतं दक्षिणा पित्रे (त्र्ये) धर्मकामार्थसाधनम् । सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिमुक्तावसूनि च ।।३२।।
सर्वमेतन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधां ददत् । पितृश्च पितृलोकस्थान्देवस्थाने च देवताः ।।३३।।
सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धराम् । खर्वटं खेटकं वाऽपि ग्रामं वा [1]सस्यशालिनाम् ।।३४।।
निवर्तनशतं वाऽपि तदर्धं वा गृहादिकम् । अपि गोचर्ममात्रां वा दत्त्वोर्वीं सर्वभाग्भवेत् ।।३५।।
तैलबिन्दुर्यथा चाप्सु प्रसर्पेद्भूगतं तथा । सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ।।३६।।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक् ।।३७।।
गजं सदक्षिणं दत्त्वा निर्मलः स्वर्गभाग्भवेत् । अश्वं दत्त्वाऽयुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् ।।३८।।
दासीं दत्त्वा द्विजेन्द्राय अप्सरोलोकमाप्नुयात् । दत्त्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः[2] ।।३९।।
अर्धैस्तदर्धैरर्धैर्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । शकटं वृषसंयुक्तं दत्त्वा यानेन नाकभाक् ।।४०।।
वस्त्रदानाल्लभेदायुरारोग्यं स्वर्गमक्षयम् । धान्यगोधूमकलमयवादीन्स्वर्गभाग्ददत् ।।४१।।

से अपमृत्यु नहीं होती है। जो घण्टा आदि से युक्त एक भी (अश्व की) स्वर्ण प्रतिमा का दान करता है, उसे भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। सुवर्ण दान करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।।२८-२९।। सुवर्ण का दान करने पर चाँदी की दक्षिणा देनी चाहिए तथा अन्य (वस्तुओं) का दान करने से भी सोने की ही दक्षिणा देनी चाहिए। सोना, चाँदी, ताँबा, चावल तथा (अन्य) धान्य के दान और नित्य श्राद्ध तथा देवपूजन दक्षिणा के बिना ही होने चाहिए ।।३०-३१।। पितृकर्म में चाँदी की दक्षिणा देने से धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। पृथ्वी के दान में बुद्धिमान् मनुष्य को सोना, चाँदी, ताँबा, मणि, मुक्ता तथा धन की दक्षिणा देनी चाहिए। जो शान्तात्मा व्यक्ति वसुन्धरा का दान करता है वह पितृलोक में पितरों को तथा देवलोक में देवताओं को तृप्त कर देता है ।।३२-३३$\frac{1}{2}$।। खर्वट, खेटक, सस्यसम्पन्न गाँव, सौ-पचास निवर्तन, परिमित गृह आदि और एक गोचर्म परिमित पृथ्वी का दान करने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ।।३४-३५।। तेल की बूँद जैसे जल में गिरने से फैलने लगती है (उसी तरह कहीं भी किया गया दान अवश्य ही फल प्रदान करता है)। सब दानों का फल तो एक जन्म तक ही मिलता है, परन्तु सुवर्ण, पृथ्वी तथा कन्यादान का फल सात जन्मों तक प्राप्त होता रहता है। कन्यादान करनेवाला अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके ब्रह्मलोक को चला जाता है ।।३६-३७।। दक्षिणा के साथ गजदान करनेवाला व्यक्ति निर्मल होकर स्वर्ग को चला जाता है। अश्वदान करने से आयु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दासी का दान करने से अप्सरालोक की प्राप्ति होती है। पाँच सौ, ढाई सौ या सवा सौ पल ताँबे की बनी हुई थाली का दान करने से भोग और मोक्ष मिलता है। बैल से युक्त गाड़ी का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।३८-४०।। वस्त्र के दान से आयु, आरोग्य तथा अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (कोई भी) धान्य (जैसे) गेहूँ, कलम (धान्य-भेद) और यव आदि का दान करने से स्वर्ग

---

१ क. ङ. °स्यमालि°। २ ख. °तैः। अर्धस्तदर्धैर्युक्ता वा भु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आसनं तैजसं पात्रं लवणं गन्धचन्दनम् । धूपं दीपं च ताम्बूलं लोहं रूप्यं च रत्नकम्[1] ।।४२।।
([2]दिव्यानि नानाद्रव्याणि दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् । तिलांश्च तिलपात्रं च दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।।४३।।
अन्नदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । हस्त्यश्वरथदानानि दासीदासगृहाणि च ।।४४।।
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । कृत्वाऽपि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ।।४५।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चाक्षयान् । ([3]पानीयं च प्रपां दत्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।४६।।
अग्निं काष्ठं च मार्गादौ दत्त्वा दीप्त्यादिमाप्नुयात्) । देवगन्धर्वनारीभिर्विमाने सेव्यते दिवि ।।४७।।
घृतं तैलं च लवणं दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । क्षत्रोपानहकाष्ठादि दत्त्वा स्वर्गे सुखी वसेत् ।।४८।।
प्रतिपत्तिथिमुख्येषु विष्कम्भादिषु योगके । चैत्रादौ वत्सरादौ च अश्विन्यादौ हरिं हरम् ।।४९।।
ब्रह्माणं लोकपालादीन्प्रार्च्य दानं महाफलम् । वृक्षारामान्भोजनादीन्मार्गसंवाहनादिकान् ।।५०।।
पादाभ्यङ्गादिकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । त्रीणि तुल्यफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ।।५१।।
ब्राह्मीं सरस्वतीं दत्त्वा निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् । सप्तद्वीपमहीदः स ब्रह्मज्ञानं ददाति यः ।।५२।।
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दद्यात्सर्वभाङ्नरः । पुराणं भारतं वाऽपि रामायणमथाऽपि वा ।।५३।।
लिखित्वा पुस्तकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । वेदशास्त्रं नृत्यगीतं योऽध्यापयति नाकभाक् ।।५४।।

की प्राप्ति होती है। आसन, घी, पात्र, लवण, गन्ध, चन्दन, धूप, दीप, ताम्बूल, लोहा, चाँदी, रत्न तथा विविध प्रकार के सुन्दर द्रव्यों का दान करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। तिल तथा तिलपात्र दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।४१-४३।। अन्नदान से बढ़कर कोई दान न हुआ है, न होगा। हाथी, घोड़े, रथ, दासी, दास तथा गृह का दान अन्नदान की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकता। महापाप करनेवाला भी अन्नदान कर देने से समस्त पापों से मुक्त होकर अक्षय लोक को चला जाता है। जल तथा प्याऊ का दान करने से भोग और मोक्ष मिलता है ।।४४-४६।। अग्नि और लकड़ी का दान करने से तथा मार्ग आदि में दीपक जलाने से मनुष्य स्वर्गलोक को चला जाता है, जहाँ देवता तथा गन्धर्वों की स्त्रियाँ उसकी परिचर्या किया करती हैं। घी, तेल तथा लवण दान करने से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। छाता, जूता और खड़ाऊँ आदि का दान करने से स्वर्गलाभ होता है ।।४७-४८।। प्रतिपदा आदि तिथियों में, विष्कम्भ आदि योगों में, चैत्र आदि मासों में और अश्विनी आदि नक्षत्रों में हरि, हर, ब्रह्मा तथा लोकपाल आदि देवताओं का पूजन करके, दान देने से महाफल प्राप्त होता है। वृक्ष, उपवन, भोजन, मार्ग-संवाहन (पाथेय) तथा पादाभ्यङ्ग (जूता) आदि का दान करने से भुक्ति-मुक्ति प्राप्ति होती है ।।४९-५०$\frac{1}{2}$।। गौ, पृथ्वी तथा विद्या-इन तीनों के दान का फल समान हुआ करता है। विद्यादान करनेवाला व्यक्ति निर्मल होकर ब्रह्मलोक को चला जाता है। जो ब्रह्मविद्या का दान करता है उसे सातों द्वीप की पृथ्वी दान करने का फल प्राप्त होता है। जो समस्त प्राणियों को अभयदान देता है उसे सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं ।।५१-५२$\frac{1}{2}$ ।। जो व्यक्ति पुराण, महाभारत या रामायण लिखकर दान करता है, वह भुक्ति-मुक्ति का भागी होता है। वेदशास्त्र तथा नृत्यगीत का अध्ययन करानेवाला स्वर्गगामी होता है ।।५३-५४।। धर्म, काम आदि का

---

१ क. ख. ग. °म्। विद्यादिनां। २ 'दिव्यानि'''स्वर्गमवाप्नुयात्' पुस्तके नास्ति। ३ 'पानीयं'''दीप्त्यादिमाप्नुयात्' नास्ति च. पुस्तके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्तिं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकम् । किमदत्तं भवेत्तेन धर्मकामादिदर्शिना ।।५५।।
वाजपेयसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं सर्वमाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ।।५६।।
शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा । सर्वदानप्रदः स स्यात्पुस्तकं वाचयेत्तु यः ।।५७।।
त्रैलोक्येचतु(त्वा)रोवर्णाश्चत्वारश्चाऽऽश्रमाःपृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ।।५८।।
विद्याकामदुधा[1] धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमम् । उपवेदप्रदानेन गन्धर्वैः सह मोदते ।।५९।।
वेदाङ्गानां च दानेन स्वर्गलोकमवाप्नुयात् । धर्मशास्त्रप्रदानेन धर्मेण सह मोदते ।।६०।।
सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षमाप्नोत्यसंशयम् । विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात्पुस्तकस्य तु ।।६१।।
शास्त्राणि च पुराणानि दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । शिष्यांश्च शिक्षयेद्यस्तु पुण्डरीकफलं लभेत् ।।६२।।
येन जीवति तद्दत्त्वा फलस्यान्तो न विद्यते । लोके श्रेष्ठतमं[2] सर्वमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ।।६३।।
सर्वं पितृणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना । विष्णुं रुद्रं पद्मयोनिं देवी विघ्नेश्वरादिकान् ।।६४।।
पूजयित्वा प्रदद्याद्यः पूजाद्रव्यं स सर्वभाक् । देवालयं च प्रतिमां कारयन्सर्वमाप्नुयात् ।।६५।।
संमार्जनं चोपलेपं कुर्वन्स्यान्निर्मलः पुमान् । नानामण्डलकार्यग्रे मण्डलाधिपतिर्भवेत् ।।६६।।
गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम् । घण्टाध्वजवितानं च प्रोक्षणं वाद्यगीतकम् ।।६७।।

मर्म समझनेवाले जिस व्यक्ति ने आचार्य को वृत्ति दी और छात्रों को भोजन आदि दिया, उसने सब-कुछ दे डाला। सम्यक् प्रकार से एक हजार वाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल विद्यादान करने से प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ।।५५-५६।। शिवालय, विष्णुमन्दिर तथा सूर्यमन्दिर में पुस्तक का पाठ करवानेवाला, सब-कुछ दान करनेवाला (माना जाता) है। त्रैलोक्य में जो कुछ भी है—चार वर्ण, चार आश्रम तथा ब्रह्मा आदि देवता—यह विद्यादान में ही प्रतिष्ठित हैं। विद्या कामधेनु है, वही सर्वोत्तम नेत्र है। उपवेदों का दान करने से गन्धर्वों के साथ आनन्दोपभोग का अवसर मिलता है ।।५७-५९।। वेदाङ्ग के दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। धर्मशास्त्र का दाता धर्म के साथ आनन्दित होता रहता है। सिद्धान्तों का दाता मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। पुस्तक दान करने से विद्यादान का फल मिलता है। शास्त्र और पुराणों का दान करने से सभी पदार्थों की प्राप्ति होती है। जो शिष्यों को शिक्षा देता है, उसको वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है ।।६०-६२।। अपनी जीविका के साधन को दान कर देनेवाले के फलों का अन्त ही नहीं होता है। लोक में जो वस्तु सबसे उत्तम तथा अपनी प्रिय हो, उसे पितरों को दान करना चाहिए। इससे वे वस्तुएँ अक्षय होकर (पुनः दाता को) प्राप्त होती हैं। विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, देवी, गणेश आदि का पूजन करके पूजा की वस्तु ब्राह्मण को समर्पित कर देनेवाला सब-कुछ प्राप्त कर लेता है। देवालय बनवाने तथा प्रतिमा स्थापित कराने से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं ।।६३-६५।। देवमन्दिरों में झाड़ू लगाने तथा लीपने से मनुष्य (स्वयं) निर्मल हो जाता है। देवालय के आगे विविध प्रकार के मण्डलों का निर्माण करानेवाला मनुष्य मण्डलाधिपति हो जाता है ।।६६।। देवता को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा. घण्टा, पताका, वितान, दर्पण,

---

१ ख. ग. कामोद्वहा धे°। २. क. ङ. °मं यच्च आत्म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वस्त्रादि दत्त्वा देवाय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । कस्तूरिकां सिंहलकं च श्रीखण्डमगुरुं तथा ।।६८।।
कर्पूरं च तथा मुस्तं गुग्गुलं विजयं [1]ददेत् । घृतप्रस्थेन संस्नाप्य संक्रान्त्यादौ स सर्वभाक् ।।६९।।
स्नानं पलशतं [2]ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः । पलानां तु सहस्रेण महास्नानं प्रकीर्तितम् ।।७०।।
दशापराधास्तोयेन क्षीरेण स्नापनाच्छतम् । सहस्रं पयसा दध्ना घृतेनायुतमिष्यते ।।७१।।
दासीदासमलङ्कारं गोभूमश्वगजादिकम् । देवाय दत्त्वा सौभाग्यं धनायुष्मान्व्रजेद्दिवम् ।।७२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानादानमहिमवर्णनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२११।।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मेरुदानानि

अग्निरुवाच

काम्यदानानि वक्ष्यामि सर्वकामप्रदानि ते । नित्यपूजां मासि मासि [3]कृत्वाऽथो काम्यपूजनम् ।।१।।
व्रतार्हणं गुरोः पूजा वत्सरान्ते महार्चनम् । अश्वं वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवम् ।।२।।
शिवाय पूज्य दद्यात् सूर्यलोके चिरं वसेत् । गजं पौषे पिष्टमयं त्रिसप्तकुलमुद्धरेत् ।।३।।

वाद्य, गीत, वस्त्र आदि समर्पण करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। कस्तूरी, सिंहलक (सुगन्धित द्रव्य), श्रीखण्ड, अगर, कपूर, मुस्ता तथा गुग्गुल समर्पित करने से विजय लाभ होता है। संक्रान्ति आदि में घी से देवता को स्नान कराने से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है ।।६७-६९।। एक पल परिमित घी का स्नान, स्नान होता है। पचीस पल से अभ्यङ्ग और एक हजार पल से महास्नान कहा गया है ।।७०।। देवताओं को जल के स्नान कराने से दस पापों की शान्ति होती है, दुग्धस्नान से सौ पापों की, दूध-दही से हजार पापों की और घृत से दस हजार पापों की शान्ति होती है। जो देवता को दासी, दास, आभूषण, गाय, भूमि, घोड़े, हाथी आदि का दान करता है वह सौभाग्य, धन तथा आयु प्राप्त करके स्वर्ग को जाता है ।।७१-७२।।

श्री अग्निमहापुराण में नाना दान-वर्णन नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।२११।।

अध्याय २१२

मेरुदान

अग्निदेव बोले-अब मैं कामनाओं को पूर्ण करनेवाले काम्यदानों के सम्बन्ध में कहूँगा। इष्ट देवता अथवा गुरु की पूजा नित्यपूजा हुआ करती है और व्रत आदि का अनुष्ठान प्रतिमास हुआ करता है। मार्गशीर्ष में शिवपूजन करके पिष्ट (तण्डुल चूर्ण) का बना अश्व तथा कमल दान करनेवाला व्यक्ति चिरकाल तक सूर्यलोक में निवास करता है ।।१-२½।। पौष मास में पिष्टमय गज दान करने से इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार होता है। माघ मास में पिष्ट का बना हुआ

---

१ क. ङ. दहेत्। २ ग. ज्ञेयं मङ्गलं प°। ३ क. ङ. कृत्यार्थे का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

माधे चाश्वरथं पैष्टं दत्त्वा न नरकं व्रजेत् । फाल्गुने तु वृषं पैष्टं स्वर्गभुक्त्यान्महीपतिः ।।४।।
चैत्रे[1] चेक्षुमयागारं दासदासीसमन्विनम् । दत्त्वा स्वर्गे चिरं स्थित्वा तदन्ते स्यान्महीपतिः ।।५।।
सप्तव्रीहींश्च वैशाखे दत्त्वा शिवमयो भवेत् । वलिमण्डलकं[2] चान्नैः कृत्वाऽऽषाढे शिवो भवेत् ।।६।।
विमानं श्रावणे पौष्पं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः । शतद्वयं फलानां तु दत्त्वोद्धृत्य कुलं नृपः ।।७।।
गुग्गुलादि दहेद्भाद्रे स्वर्गी स स्यात्ततो नृपः । क्षीरसर्पिर्भृतं पात्रमाश्विने स्वर्गदं भवेत् ।।८।।
कार्तिके गुडखण्डाज्यं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः । मेरुदानं द्वादशकं वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ।।९।।
मेरुव्रते तु कार्तिक्यां रत्नमेरुं ददेद्द्विजे । सर्वेषां चैव मेरूणां प्रमाणं क्रमशः शृणु ।।१०।।
वज्रपद्ममहानीलनीलस्फटिकसंज्ञितः । पुष्पं मरकतं मुक्ता प्रस्थमात्रेण चोत्तमः ।।११।।
मध्योऽर्धः स्यात्तदर्धोऽधो वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । कर्णिकायां न्यसेन्मेरु ब्रह्मविष्णवीशदैवतम् ।।१२।।
[3]माल्यवान्पूर्वतः पूज्यस्तत्पूर्वे भद्रसंज्ञितः । अश्वरक्षस्ततः प्रोक्तो निषधो मेरुदक्षिणे ।।१३।।
हेमकूटोऽथ हिमवांस्त्रयं सौम्ये तथा त्रयम् । नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च पश्चिमे गन्धमादनः[4] ।।१४।।

अश्व और रथ दान करने से नरक में नहीं जाना पड़ता है। फाल्गुन में पिष्टमय (पीठ के) बैल का दान करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करके (अन्त में) राजा होकर जन्म लेता है ।।३-४।। चैत्र में ईख का बना हुआ घर तथा दास-दासियाँ दान करने से मनुष्य स्वर्ग में चिरकाल तक निवास करके अन्त में महीपति होता है। वैशाख में सप्तधान दान करने से दाता शिवमय हो जाता है। आषाढ़ में अन्न का बलि मण्डल बनाकर दान करने से मनुष्य शिव (ही) हो जाता है ।।५-६।। श्रावण मास में पुष्पविमान दान करने से मनुष्य स्वर्ग-लाभ करके अन्त में नृपति होता है। उसी मास में सौ फलों का दान करने से (दाता अपनी) इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके अन्त में भूपति होता है। भाद्रपद में (देवता के सम्मुख) गुग्गुल आदि सुलगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। आश्विन में घी से भरा पात्र दान करनेवाला स्वर्ग को चला जाता है। कार्तिक मास में गुड़, खाँड़, घी से भरा पात्र दान करनेवाला स्वर्ग को चला जाता है तथा (कालान्तर में) राजा होता है। अब मैं बारह प्रकार का मेरुदान बतलाता हूँ; जो भोग और मोक्ष दिलानेवाला हुआ करता है ।।७-९।। कार्तिकी पूर्णिमा में मेरुव्रत में ब्राह्मण को रत्न का मेरुपर्वत देना चाहिए। अब क्रमशः सभी मेरुओं का प्रमाण सुनो ।।१०।। वज्र, पद्म, महानील, नील, स्फटिक, पुखराज, मरकत, मुक्ता-इन सबसे मेरु बनता है। सेर भर द्रव्य से बना मेरु उत्तम होता है। आधे सेर से बना मध्यम और पाव भर से बना हुआ मेरु अधम हुआ करता है। (मेरुदान में) धन की शठता (कृपणता) का परित्याग कर देना चाहिए। (पूर्ववर्णित कमल चक्र की) कर्णिका के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवताओं से सम्बद्ध मेरु का न्यास करना चाहिए ।।११-१२।। उसकी पूर्व दिशा में माल्यवान् और मल्यवान् के पूर्व की ओर भद्र और अश्वरक्ष पर्वतों की पूजा करनी चाहिए। मेरु के दक्षिण की ओर हेमकूट, हिमवान् तथा निषध, उत्तर की ओर नील, श्वेत, शृंगी तथा पश्चिम की ओर गन्धमादन, केतुमाल और वैकङ्क नामक पर्वतों की पूजा करनी चाहिए। उस दिन उपवास करते

---

१ घ. च. °मयी° गावं दा°। २ ख. ग. °कं रात्रौ कृ°। ३ ग. °वान्पर्व°। ४ क. ङ. °नः। वौषट्कं के°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैकङ्कः केतुमालः स्यान्मेरुर्द्वादशसंयुतः । सोपवासोऽर्चयेद्विष्णुं शिवं वा स्नानपूर्वकम् ।।१५।।
देवाग्रे प्रार्च्य मेरुं च मंत्रैर्विप्राय वै ददेत् । विप्रायामुकगोत्राय मेरुं द्रव्यमयं परम् ।।१६।।
भुक्त्यै मुक्त्यै निर्मलत्वे विष्णुदैवं ददामि ते । इन्द्रलोके ब्रह्मलोके शिवलोके हरेः पुरे ।।१७।।
कुलमुद्धृत्य क्रीडेत विमाने [1]देवपूजितः । अन्येष्वपि च कालेषु संक्रान्त्यादौ प्रदापयेत् ।।१८।।
पलानां तु सहस्रेण[2] महामेरुं प्रकाल्पयेत् । शृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितम् ।।१९।।
एकैकं पर्वतं तस्य शतैकैकेन कारयेत् । मेरुणा सह शैलास्तु ख्यातास्तत्र त्रयोदश ।।२०।।
अयने ग्रहणादौ च विष्ण्वग्रे हरिमर्च्य च । स्वर्णमेरुं द्विजायाऽऽर्प्य विष्णुलोके चिरं वसेत् ।।२१।।
परमाणवो यावन्त इह राजा भवेच्चिरम् । रौप्यमेरुं द्वादशाद्रियुतं संकल्पतो ददेत् ।।२२।।
प्रागुक्तं च फलं तस्य विष्णुं विप्रं प्रपूज्य च । भूमिमेरुं च विषयं मण्डलं ग्राममेव च ।।२३।।
परिकल्प्याष्टमांशेन शेषांशाः पूर्ववत्फलम् । द्वादशाद्रिसमायुक्तं हस्तिमेरुस्वरूपिणम् ।।२४।।
ददेत्त्रिपुरुषैर्युक्तं दत्त्वाऽनन्तफलं लभेत् । त्रिपञ्चाश्वैरश्वमेरुं हयद्वादशसंयुतम् ।।२५।।
विष्ण्वादीन्पूज्य तं दत्त्वा भुक्तभोगो नृपो भवेत् । अश्वसंख्याप्रमाणेन गोमेरुं पूर्ववद्ददेत् ।।२६।।
[3]पट्टवस्त्रैर्भारमात्रैर्वस्त्रमेरुश्च मध्यतः । शैलैर्द्वादशवस्त्रैश्च दत्त्वा तं चाक्षयं फलम् ।।२७।।

हुए स्नानपूर्वक विष्णु अथवा शिव का पूजन करना चाहिए ।।१३-१५।। तदनन्तर देवताओं के सम्मुख मन्त्रों से मेरु की पूजा करके उसे ब्राह्मण को दे देना चाहिए। "मैं निष्पाप होकर भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के लिए विष्णु देवता से सम्बद्ध यह द्रव्यमय मेरु अमुक गोत्रवाले विप्र को समर्पण कर रहा हूँ।" इस प्रकार मेरुदान करनेवाला व्यक्ति अपने कुल का उद्धार कर देवताओं का पूज्य हो जाता है तथा इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक और गोलोक में विमान पर क्रीड़ा करता है। संक्रान्ति आदि अन्य कालों में भी मेरुदान करना चाहिए ।।१६-१८।। सहस्र पल परिमित सोने का बड़ा-सा मेरु बनाना चाहिए। उसके तीनों शिखरों को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर से युक्त होना चाहिए। उस महामेरु का एक-एक पर्वत सौ-सौ पल का होना चाहिए। मेरु को मिलाकर उन पर्वतों की संख्या तेरह होनी चाहिए। अयनों में तथा ग्रहण आदि में विष्णु के आगे पूजा करके स्वर्णमेरु ब्राह्मण को दे देना चाहिए। ऐसा करनेवाला चिरकाल तक विष्णुलोक में निवास करता है ।।१९-२१।। तदनन्तर इस लोक में उतने वर्षों तक राज्य करता है, जितने यहाँ परमाणु हैं। विष्णु तथा विप्र की पूजा कर चाँदी के बारह पर्वतों के साथ एक रजतमेरु दान करने से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। आठ राज्य मण्डल (जिला) तथा नगरों से युक्त भूमिमेरु का दान करने से भी उक्त फल प्राप्त होता है। बारह पर्वतों से युक्त हस्तिमेरु दान करने से मनुष्य तीन पीढ़ियों का उद्धार करके अनन्त फल प्राप्त कर लेता है ।।२२-२४$\frac{1}{2}$।। विष्णु आदि देवताओं की पूजा करके बारह अश्वों के साथ पन्द्रह अश्वों का बना अश्वमेरु दान करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करता हुआ (अनेक जन्मों में) राजा होता है। अश्वमेरु (दान में दिये गये अश्वों) की संख्या के अनुसार गोमेरु दान करना चाहिए ।।२५-२६।। भारमात्र रेशमी वस्त्रों का वस्त्रमेरु का दान मध्यम कोटि का होता है। बारह वस्त्रों के साथ वस्त्रमेरु दान करने से अक्षयफल प्राप्त होता है। पाँच हजार

---

१ क. ङ. देवपूजिते। २ घ. °ण हेममे°। ३ 'पट्टवस्त्रै'''मध्यतः' इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोरेतद्दृश्यते-'यद्भवेद्भारगात्रैस्तु वसुमेरुं च मध्यतः।' इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घृतपञ्चसहस्रैश्च पलानामाज्यपर्वतः । शतैः पञ्चभिरेकैकः पर्वतेऽस्मिन्हरिं यजेत् ।।२८।।
विष्ण्वग्रे ब्रह्मणायाऽऽर्घ्यं सर्वं प्राप्य हरिं व्रजेत् । एवं च खण्डमेरुं च कृत्वा दत्त्वाऽऽप्नुयात्फलम् ।।२९।।
धान्यमेरुः पञ्चखारोऽपर एकैकखारकाः । स्वर्णत्रिशृङ्गकाः सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।।३०।।
सर्वेषु पूज्य विष्णुं वा विशेषादक्षयं फलम् । एवं दशांशमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् ।।३१।।
शृङ्गाणि पूर्ववत्तस्य तथैवान्यनगेषु च । तिलमेरुं प्रदायाथ[1] बन्धुभिर्विष्णुलोकभाक् ।।३२।।
नमो विष्णुस्वरूपाय धराधराय वै नमः । ब्रह्मविष्ण्वीशशृङ्गाय धरानाभिस्थिताय च[2] ।।३३।।
नगद्वादशनाथाय सर्वपापापहारिणे । विष्णुभक्ताय शान्ताय त्राणं मे कुरु सर्वदा ।।३४।।
निष्पापः पितृभिः सार्धं विष्णुं गच्छामि ॐ नमः । त्वं हरिस्तु हरेरग्रे अहं विष्णुश्च विष्णवे ।।
निवेदयामि भक्त्या तु भुक्तिमुक्त्यर्थहेतवे ।।३५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मेरुदानवर्णनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।११२।।

पल घी का आज्यपर्वत होता है। उसका प्रत्येक उपपर्वत पाँच-पाँच सौ पल घी का होना चाहिए। उसके ऊपर भगवान् विष्णु की पूजा करके और भगवान् विष्णु के सामने ही ब्राह्मण को यह पर्वत दान कर देने से विष्णु (लोक) की प्राप्ति होती है ।।२७-२८ ½।। इसी प्रकार खाँड़ का मेरु बनाकर उसका दान करने से (अभीष्ट) फल की प्राप्ति होती है। पाँच खार (मन) का धान्यमेरु हुआ करता है। उसका प्रत्येक उपपर्वत एक-एक मन का होना चाहिए। उन सब के तीन-तीन सोने के शिखर होने चाहिए जिनके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। धान्यमेरु के दशांश परिमाण से तिलमेरु की रचना करनी चाहिए ।।२९-३१।। उसके शिखर पूर्ववत् हों, जिनके ऊपर पूर्ववत् विष्णु आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए। तिलमेरु का दान करने से मनुष्य अपने बन्धुओं के साथ विष्णुलोक को जाता है ।। ३२।। मेरुओं की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिए-'विष्णुरूप मेरु को नमस्कार है। भूधर को नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को, शिखरों पर धारण करनेवाले (पर्वतों) को नमस्कार है। बारह पर्वतों के स्वामी (इन पर्वतों) को नमस्कार है। सफल पापों को अपहरण करनेवाले को नमस्कार है। मैं विष्णुभक्त तथा शान्त हूँ। सब प्रकार से मेरी रक्षा कीजिये। मैं निष्पाप होकर पितरों के साथ विष्णुलोक को जा रहा हूँ, ॐ को नमस्कार है। तुम विष्णु हो, मैं विष्णु के समक्ष विष्णु हूँ और भुक्ति-मुक्ति पाने के लिए मैं भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहा हूँ ।।३३-३५।।

श्री अग्निमहापुराण में मेरुदान वर्णन नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१२।।

---

१ क. ङ. च. °भिर्ब्रह्मलो°। २ क. ङ. च। दशद्वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पृथ्वीदानानि

अग्निरुवाच

पृथ्वीदानं प्रवक्ष्यामि पृथिवी त्रिविधा मता। शतकोटिर्योजनानां सप्तद्वीपा[1] ससागरा ।।१।।
जम्बूद्वीपावधिः सा च उत्तमा[2] मेदिनीरिता। उत्तमा पञ्चभिर्भारैः काञ्चनैश्च प्रकल्पयेत् ।।२।।
तदर्धान्तरजं कूर्मं तथा पद्मं समादिशेत्। उत्तमा कथिता पृथ्वी द्व्यंशेनैव तु मध्यमा ।।३।।
कन्यसा च त्रिभागेन (ण) त्रिहान्या कूर्मपङ्कजे। पलानां तु सहस्रेण कल्पयेत्कल्पपादपम् ।।४।।
मूलदण्डं सपत्रं च फलपुष्पसमन्वितम्। पञ्चस्कन्धं तु संकल्प्य पञ्चानां दापयेत्सुधीः ।।५।।
एतद्दाता ब्रह्मलोके पितृभिमादते चिरम्। विष्णवग्रे कामधेनुं तु पलानां पञ्चभिः शतैः ।।६।।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा धेनौ व्यवस्थिताः। धेनुदानं सर्वदानं सर्वदम् ब्रह्मलोकदम् ।।७।।
विष्णवग्रे कपिलां दत्त्वा तारयेत्सकलं कुलम्। अलंकृत्य स्त्रियं दद्यादश्वमेधफलं लभेत् ।।८।।
भूमिं दत्वा सर्वभाक्स्यात्सर्वसस्यप्ररोहिणीम्। ग्रामं वाऽथ पुरं वाऽपि खेटकं च ददत्सुखी ।।९।।
कार्तिक्यादौ वृषोत्सर्गं कुर्वस्तारयते कुलम् ।।१०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पृथ्वीदानवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१३।।

अध्याय २१३

पृथ्वीदान

अग्निदेव बोले–अब मैं पृथ्वीदान के सम्बन्ध में कहूँगा। सौ करोड़ योजनों में विस्तृत पृथ्वी, जिसमें सातों द्वीप और सागर भी आ जाते हैं, तीन प्रकार की कही गयी है। उनमें जम्बूद्वीप तक सीमित पृथ्वी उत्तमा पृथ्वी है। (दान करने के लिए) उत्तमा पृथ्वी को पाँच भार सुवर्ण से बनाना चाहिए। इस प्रकार निर्मित पृथ्वी उत्तम हुआ करती है ।।१-२।। इसके आधे से बनी हुई पृथ्वी मध्यम होती है तथा उसके भी तिहाई भाग से बनी हुई पृथ्वी अधम कोटि की होती है जिस पर तिहाई भाग से कूर्म और पद्म बने रहते हैं। एक हजार पल (सुवर्ण) से कल्पवृक्ष की रचना करनी चाहिए ।।३-४।। उसमें मूल, दण्ड, पत्र, पुष्प तथा पाँच शाखाएँ होनी चाहिए। इस प्रकार की पृथ्वी दान करनेवाला बुद्धिमान् पितरों के साथ चिरकाल तक ब्रह्मलोक में आनन्द प्राप्त करता है ।।५-५½।। विष्णु के समक्ष पाँच सौ पल सुवर्ण की बनी हुई कामधेनु का दान करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता गाय में निवास किया करते हैं। वह सब-कुछ देनेवाला और ब्रह्मलोक को प्रदान करनेवाला है ।।६-७।। भगवान् विष्णु के समक्ष कपिला गौ दान करनेवाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है। अलङ्कारों से अलङ्कृत स्त्री का दान करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ।।८।। सब प्रकार के अन्न से युक्त भूमि का दान करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। गाँव, नगर तथा खेटक (छोटा गाँव) दान करनेवाला सुखी रहता है। कार्तिकी पूर्णिमा आदि में साँड़ छोड़नेवाला अपने कुल का उद्धार कर देता है ।।९-१०।।

श्री अग्निमहापुराण में पृथ्वीदान-वर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१३।।

---

१ ख. च. पावसानतः ज°। २ ख. °माद्रिः समीरि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नाडीचक्रकथनम्

अग्निरुवाच

नाडीचक्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञानाज्ज्ञायते हरिः । नाभेरधस्ताद्यत्कन्दमङ्कुरास्तत्र निर्गताः ।।१।।
द्वासप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः । तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव व्याप्तं ताभिः समन्ततः ।।२।।
चक्रवत्संस्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तथैव च ।।३।।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पृथा[1] चैव यशा तथा । अलम्बुषा[2] हुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ।।४।।
दशप्राणवहा ह्येता नाडयः परिकीर्तिताः । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।।५।।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः । प्राणस्तु प्रथमो वायुर्दशानामपि स प्रभुः ।।६।।
प्राणः प्राणायते प्राणं विसर्गात्पूरणं प्रति । नित्यमापूरयत्येष प्राणिनामुरसि स्थितः ।।७।।
निःश्वासोच्छ्वासकासैस्तु[3] प्राणो जीवसमाश्रितः । ([4]प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणः प्रकीर्तितः ।।८।।
अधो नयत्यपानस्तु आहारस्तु नृणामधः । मूत्रशुक्रवहो वायुरपानस्तेन कीर्तितः ।।९।।

अध्याय २१४

नाड़ीचक्र-कथन

अग्निदेव बोले–अब मैं नाड़ीचक्र को बतलाऊँगा, जिसे जान लेने से भगवान् विष्णु का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नाभि के नीचे जो कन्द है, उससे अंकुर निकलते हैं ।।१।। नाभि के मध्य में बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थित हैं जो ऊपर, नीचे तथा तिरछे फैलकर चारों ओर व्याप्त हो गयी हैं। उनकी स्थिति चक्राकार है। उनमें प्रधान दस नाड़ियाँ हैं जिनका नाम–इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, हुहु तथा शङ्खिनी है ।।२-४।। उन नाड़ियों में दस प्राणों का संचार होता रहता है, जिनके नाम हैं–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय। उन दसों में प्राणवायु सर्वप्रथम है और सबका स्वामी है ।।५-६।। प्राणवायु प्राण को विसर्ग (त्याग=अपान वायु) से हटाकर पूर्णता की ओर ले जाता है। अर्थात् वह प्राणियों के उर (हृदय) में नित्य रहता हुआ (श्वास को) पूर्ण करता है। निःश्वासोच्छ्वास के द्वारा प्राण जीव से मिलता है। क्योंकि यह (एक निश्चित अवधि के बाद शरीर से) प्रयाण करता है इसलिए इसका नाम 'प्राण' पड़ा है ।।७-८।। अपान वायु मनुष्यों के आहार को नीचे ले जाता है और सूत्र तथा वीर्य को प्रवाहित करता है; इसलिए उसका नाम अपान पड़ा है। समान वायु पिये हुए, खाये हुए तथा सूँघे हुए पदार्थों को और रक्त, पित्त, कफ तथा वायु को समान रूप से शरीर के अङ्गों

---

१ क. ङ. पूषा। २ क. ख. ङ. °षाकुहूश्चै°। ३ क. ङ. °स्तु जीवनो नाममारुतः। ४ प्रयाणं°°°मारुतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलम् । समं नयति गात्रेषु समानो नाम मारुतः) ।।१०।।
स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनम् । उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः ।।११।।
व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः । प्रतिदानं यथा कण्ठाद्व्यानाद्व्यान उच्यते ।।१२।।
उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्मश्चोन्मीलने स्थितः । कृकरो भक्षणे चैव देवदत्तो विजृम्भते ।।१३।।
धनञ्जयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति । जीवः प्रयाति दशधा नाडीचक्रं हि तेन तत् ।।१४।।
सङ्क्रान्तिर्विषुवं चैव अहोरात्रायनानि च । अधिमास ऋणं चैव ऊनरात्रधनं तथा ।।१५।।
ऊनरात्रं भवेद्धिक्का अधिमासो विजृम्भिका । ऋणं चात्र भवेत्कासो निःश्वासो धनमुच्यते ।।१६।।
उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसंज्ञितम् । मध्ये तु विषुवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिःसृतम् ।।१७।।
संक्रान्तिः पुनरस्यैव स्वस्थानात्स्थानयोगतः । सुषुम्णा मध्यमे ह्यङ्गः इडा वामे प्रतिष्ठिता ।।१८।।
पिंगला दक्षिणे विप्र ऊर्ध्वं प्राणो ह्यहः स्मृतम् । अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुर्दशात्मकः[1] ।।१९।।
आयामो देहमध्यस्थः सोमग्रहणमिष्यते । [2]देहातितत्त्वमायाममादित्यग्रहणं विदुः ।।२०।।
उदारं पूरयेत्तावद्वायुना यावदीप्सितम् । प्राणायामो भवेदेष पूरको देहपूरकः ।।२१।।
पिधाय सर्वद्वाराणि निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः । सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्प्राणायामः स कुम्भकः ।।२२।।

में पहुँचाता है, इसलिए उसका नाम समान है। उदान वायु अधर और मुख में स्पन्दन उत्पन्न करता है, नेत्रों में रक्तिमा लाता है और मर्मों को उद्विग्न करता है, इसलिए उसे उदान कहते हैं ।।९-११।। व्यान वायु अङ्गों को झुकाता है, व्याधियों को बढ़ाता है, कण्ठ में वायु को रोकता है और सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। डकार लाने का काम नागवायु करता है; (नेत्रों को) खोलने का काम कूर्मवायु का है; भक्षण करने में कृकरवायु और जँभाई लेने में देवदत्त-वायु काम किया करता है। धनञ्जय नामक वायु घोष (ध्वनि) में स्थित रहता है और वह मरने पर भी नहीं छोड़ती है ।।१२-१३ $\frac{1}{2}$ ।। इन दसों द्वारा जीव प्रयाण करता है, इसलिए प्राणभेद से नाड़ीचक्र के भी भेद हैं। संक्रान्ति, विषुव, दिन, रात, अयन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र एवं धन–ये सूर्य की गति से होनेवाली दस दशाएँ शरीर में भी होती हैं। इस शरीर में हिक्का (हिचकी), ऊनरात्र, विजृम्भिका (जँभाई), अधिमास, कास (खाँसी), ऋण और निःश्वास 'धन' कहा जाता है ।।१४-१६।। शरीर के दक्षिण भाग को उत्तर और बायें भाग को दक्षिण कहते हैं। मध्य में विष्णु कहा गया है, जो दोनों नासिकापुटों से निकलता है। उसी को संक्रान्ति भी कहते हैं, जो अपने स्थान से दूसरे स्थान को जाता रहता है। सुषुम्णा मध्य भाग में, इड़ा वाम भाग में, पिङ्गला दक्षिण भाग में और प्राण ऊपर के भाग में प्रतिष्ठित रहते हैं उसी को दिन कहा गया है ।।१७-१८ $\frac{1}{2}$।। अपान को रात्रि कहते हैं। इस प्रकार एक ही वायु दस प्रकार का हुआ करता है। देह के मध्य में स्थित आयाम को चन्द्रग्रहण कहते हैं; और वही जब देह से निकल जाता है तब उसे (योग की भाषा में) सूर्यग्रहण कहने लगते हैं ।।१९-२०।। साधक अपने उदर में जितनी वायु भरी जा सके, भर ले। यह देह को पूर्ण करनेवाला 'पूरक' प्राणायाम है। श्वास निकलने के सभी द्वारों को रोककर, श्वासोच्छ्वास

---

१ क. ङ. वा स्वर्गचार्थकः। २ क. ङ °हातीतभ्रमा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुञ्चेद्वायुं[३] ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित्। उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ।।२३।।
उच्चरति स्वयं यस्मात्स्वदेहावस्थितः शिवः। तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ।।२४।।
अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च। अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्यां करोति सः ।।२५।।
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरौ। अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ।।२६।।
चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलिनी मता। हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ।।२७।।
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात्। स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ।।२८।।
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः। हंस हंसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ।।२९।।
तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः। पुरुषस्य तथा देहे सबाह्याभ्यन्तरं स्थितः ।।३०।।
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः। तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ।।३१।।
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम्। पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फ(ष्क)लः ।।३२।।
प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि। षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ।।३३।।
गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत्। अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ।।३४।।
स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया। ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ।।३५।।

की क्रिया से शून्य हो परिपूर्ण कुम्भ की भाँति स्थित हो जाय–इसे 'कुम्भक' कहते हैं। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपर की ओर एक ही नासारन्ध्र से वायु को निकाले। इस प्रकार उच्छ्वास योग से युक्त हो वायु का ऊपर की ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है) ।।२१–२३।। (मनुष्यों के) शरीर में रहनेवाला शिव ही (हृदय स्पन्दन के समय हंसः–हंसः के रूप में) उच्चारण किया करता है, इसीलिए तत्त्ववेत्ता (योगी) लोग उसे जप कहते हैं। उच्चकोटि के योगीगण एक रात–दिन में इक्कीस हजार छह सौ बार उसका जप करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध गायत्री का नाम अजपा है। जो इस अजपा का जप करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ।।२४–२६।। चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्य से संयुक्त आधा शक्ति कुण्डलिनी कहलाती है। वह अंकुर रूप हृदय–देश में रहा करती है। सम्पूर्ण सृष्टि का न्यास सृजन अवलम्ब है। श्रेष्ठ सात्त्विक साधक को सदैव यह चिन्ता करते रहना चाहिए कि उस कुण्डलिनी से अमृत टपक रहा है। जो देह में रहता है, वह सकल (पूर्ण) है और जो उससे अलग है वह निष्कल (अपूर्ण) है। जो हंसः–हंसः कहा जाता है, वह हंसः सदाशिव का ही है ।।२७–२९।। जैसे तिल में तेल और पुष्प में गन्ध व्याप्त है, उसी तरह पुरुष के शरीर में बाहर–भीतर सर्वत्र वह हंसः व्याप्त रहता है। ब्रह्मा का स्थान हृदय में है तथा विष्णु कण्ठ में हैं, रुद्र तालु में और महेश्वर ललाट में निवास किया करते हैं। प्राणाग्र में शिव और उसके भी अन्त में परापर (ब्रह्म) का स्थान है। सकल पाँच प्रकार का है और निष्कल उसका विपरीत होता है ।।३०–३२।। जो व्यक्ति छह मास तक योगयुक्त होकर प्रासाद नामक नाद को उठाकर शततन्तु का नित्य जप करता है, उसे निःसन्देह सिद्धि प्राप्त हो जाती है। गमनागमन (आने–जानेवाले) वायु का ज्ञान प्राप्त होने से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को छह मास के भीतर अणिमा आदि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं ।।३३–३४।। स्थूल, सूक्ष्म तथा पर नामक प्रासाद (ध्वनियों) को तो मैं बता चुका हूँ। इसके तीन

---

३ क. ङ. °ञ्चेच्छ्वासं त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् । आप्यायने प्लुतश्चेति मूर्ध्नि विन्दुविभूषितः ।।३६।।
आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणे हितः । आदावन्ते च हृदयमाकृष्टौ संप्रकीर्तितम् ।।३७।।
देवस्य दक्षिणां मूर्ति पञ्चलक्षं स्थितो जपेत् । जपान्ते घृतहोमस्तु दशसाहस्त्रिको भवेत् ।।३८।।
एवमाप्यायितो मन्त्रो वश्योच्चाटादि कारयेत् । उर्ध्वे शून्यमधः शून्यं मध्ये शून्यं निरामयम् ।।३९।।
त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः । प्रासादं यो न जानाति पञ्चतन्त्रमहातनुम् ।।४०।।
अष्टत्रिंशत्कलायुक्तं न स आचार्य उच्यते । तथोंकारं च गायत्रीं रुद्रादीन्वेत्त्यसौ गुरुः ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नाडीचक्रकथनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१४।।

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सन्ध्याविधिः

अग्निरुवाच

ओङ्कारं यो विजानाति स योगी स हरिः पुमान् । ओङ्कारमभ्यसेत्तस्मान्मन्त्रसारं तु सर्वदम् ।।१।।
सर्वमन्त्रप्रयोगेषु प्रणवः प्रथमः स्मृतः । तेन संपरिपूर्णं यत्तत्पूर्णं यत्तत्पूर्णं कर्म नेतरत् ।।२।।

लक्षण हैं–ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व पापों को जलाता है, दीर्घ मोक्ष प्रदान करता है और प्लुत मस्तक में विन्दु भूषित होकर आप्यायन (वृद्धि) करता है ।।३५-३६।। (मन्त्र के) आदि और अन्त में ह्रस्व फट् जोड़ देने से मारण क्रिया का प्रयोग सफल होता है। (मन्त्र) के आदि और अन्त में हृदय जोड़ने से आकर्षण सिद्ध होता है। देवता की दक्षिणामूर्ति का पूजन कर पाँच लाख मन्त्र का जप करना चाहिए। जपान्त में घी से दस हजार बार हवन करना चाहिए ।।३७-३८।। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध करने से वशीकरण, उच्चाटन आदि सब सफल होते हैं। ऊपर शून्य है, नीचे शून्य है और मध्य में शून्य है। जो ऐसे त्रिशून्य निरामय ब्रह्म को जानता है, वह निश्चय ही संसार से मुक्त हो जाता है। जो पाँच मन्त्रों के महातनु (मुख्य अङ्ग) तथा अड़तीस कलाओं से युक्त प्रासाद को नहीं जानता है, वह आचार्य कहलाने योग्य नहीं है। उसी तरह जो ओंकार, गायत्री तथा रुद्र आदि को जानता है, उसे गुरु कहना चाहिए ।।३९-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में नाड़ीचक्र कथन नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१४।।

अध्याय २१५

सन्ध्या-विधि

अग्निदेव बोले–जो मनुष्य ओंकार को भलीभाँति जानता है, वह योगी है, वह विष्णु है। इसलिए ओंकार का अभ्यास (जप) करना चाहिए; क्योंकि यह सब मन्त्रों का सार है। इससे सकल कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।।१।। सभी मन्त्रों के प्रयोग में प्रणव (ॐ) पहले ही आता है। जो कर्म ओंकार से युक्त रहता है, वही पूर्ण होता है, दूसरा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओंकारपूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्रीविज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ।।३।।
योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि [1]वर्णाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ।।४।।
एकाक्षरं परब्रह्म प्राणायामः[2] परं तपः। सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ।।५।।
सप्तावर्ता पापहरा दशभिः प्रापयेद्दिवम्। विंशावर्ता तु सा देवी नयते हीश्वरालयम् ।।६।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तीर्णः संसारसागरात्। रुद्रकूष्माण्डजप्येभ्यो गायत्री तु विशिष्यते ।।७।।
न गायत्र्याः परं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम्। गायत्र्याः पादमप्यर्धमृगर्धमृचमेव वा ।।८।।
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च। गुरुदारागमश्चैव जप्येनैव पुनाति सा ।।९।।
पापे कृते तिलैर्होमो गायत्री जप ईरितः। जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या उपवासी स पापहा ।।१०।।
गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्महा गुरुतल्पगः। ब्रह्मघ्न स्वर्णहारी च सुरापो लक्षजप्यतः ।।११।।
शुध्यते वाऽथ वा स्नात्वा शतमन्तर्जले जपेत्। अपः शतेन पीत्वा तु गायत्र्याः पापहा भवेत् ।।१२।।
शतं जप्ता तु गायत्री पापोपशमनी स्मृता। सहस्रं जप्ता सा देवी उपपातकनाशिनी ।।१३।।
अभीष्टदा कोटिजप्ता देवत्वं राजतामियात्। ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।।१४।।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैवमुदाहृतम्। विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्रं सविता तथा ।।१५।।

नहीं। ओंकार पूर्वक तीनों महाव्याहृतियाँ (भूर्भुवः स्वः) अव्यय हैं। त्रिपदा (गायत्री) सावित्री ब्रह्मा का मुख है ।।२-३।। जो मनुष्य तीन वर्षों तक आलस्यरहित होकर प्रतिदिन महाव्याहृतियों (गायत्री) का अध्ययन (जप) करता है, वह वायु तथा आकाश (शून्य) होकर परब्रह्म में लीन हो जाता है। सावित्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। मौन रहने से सत्य बोलना अच्छा है ।।४-५।। सात बार गायत्री का जप करने से पापों का नाश हो जाता है। दस बार जप करने से स्वर्ग की और बीस बार जप करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। एक सौ आठ बार जप करने से संसार-सागर से उद्धार हो जाता है। रुद्र कुष्माण्ड आदि मन्त्रों से गायत्री उत्तम है ।।६-७।। न तो गायत्री के समान कोई मन्त्र है और न व्याहृति के समान कोई हवन है। गायत्री के एक पाद, आधा पाद, आधी ऋचा या एक ऋचा का जप करने से ब्रह्महत्या, मद्यपान, सुवर्णस्तेय तथा गुरुपत्नीगमन आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ।।८-९।। पाप करने पर (उसके प्रायश्चित्त के लिए) तिल से होम तथा गायत्री का जप बताया गया है। एक हजार गायत्री का जप करके उपवास करने से पापों का नाश हो जाता है। गोघाती, पितृघाती, मातृघाती, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, सुवर्णहारी तथा मद्यपान करनेवाला मनुष्य एक लाख गायत्री जप करने से भी शुद्ध हो जाता है। अथवा स्नानोपरान्त जल के भीतर एक सौ बार गायत्री जप करने से भी शुद्ध हो जाता है। सौ बार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से पापों का नाश होता है ।।१०-१२।। सौ बार गायत्री का जप करने से वह पाप को नष्ट करती है। हजार बार जप करने से उपपातकों का शमन करती है। एक करोड़ गायत्री का जप करने से इच्छाएँ पूर्ण होती हैं और उसका जप करनेवाला देवत्व और राजत्व को प्राप्त कर लेता है। पूर्व में ओंकार तथा भूर्भुवः स्वः का उच्चारण करना चाहिए ।।१३-१४।। इसके ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री, देवता सविता हैं। इसका विनियोग उपनयन जप तथा हवन

---

१ घ. छ. °तन्त्रितः। २ छ. °यामप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवतोपनये जप्ये विनियोगी हुते तथा। अग्निर्वायू रविर्विद्युद्यमो जलपतिर्गुरुः ।।१६।।
पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्वः पूषा च तदनन्तरम्। मित्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा वसवो मरुतः शशी ।।१७।।
अङ्गिरा विश्वनासत्यौ कस्तथा सर्वदेवताः। रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च क्रमशोऽक्षरदेवताः ।।१८।।
गायत्र्या जपकाले तु कथिताः पापनाशनाः। पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च नलकौ जानुनी तथा ।।१९।।
जङ्घे शिश्नश्च वृषणौ कटिर्नाभिस्तथोदरम्। स्तनौ च हृदयं ग्रीवा मुखं तालु च नासिका[1] ।।२०।।
चक्षुषी च भ्रुवोर्मध्यं ललाटं पूर्वमाननम्। दक्षिणोत्तरपार्श्वे द्वे शिर आस्यमनुक्रमात् ।।२१।।
पीतः श्यामश्च कपिलो[2] मारकतोऽग्निसंनिभः। रुक्मविद्युद्धूम्रकृष्णरक्तगौरेन्द्रनीलभाः ।।२२।।
स्फाटिकस्वर्णपाण्ड्वाभाः पद्मरागोऽखिलद्युतिः। हेमधूम्ररक्तनीलरक्तकृष्णसुवर्णभाः ।।२३।।
शुक्लकृष्णपलाशाभा गायत्र्या वर्णकाः क्रमात्। ध्यानकाले पापहरा हुतैषा सर्वकामदा ।।२४।।
गायत्र्या तु तिलैर्होमः सर्वपापप्रणाशनः। शान्तिकामो यवैः कुर्यादायुष्कामो घृतेन च ।।२५।।
सिद्धार्थकैः कर्मसिद्ध्यै पयसा ब्रह्मवर्चसे। पुत्रकामस्तथा दध्ना धान्यकामस्तु शालिभिः ।।२६।।
क्षीरिवृक्षसमिद्भिस्तु ग्रहपीडोपशान्तये। धनकामस्तथा बिल्वैः श्रीकामः कमलैस्तथा ।।२७।।
आरोग्यकामो दूर्वाभिर्गुरूत्पाते स एव हि। सौभाग्येच्छुर्गुग्गुलुना विद्यार्थी पायसेन (च) ।।२८।।
अयुतेनोक्तसिद्धिः स्याल्लक्षेण मनसेप्सितम्। कोट्या ब्रह्मवधान्मुक्तः कुलोद्धारी हरिर्भवेत् ।।२९।।

में किया जाता है। गायत्री के जपकाल में अग्नि, वायु, रवि, विद्युत्, यम, जलपतिगुरु (?), पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, पूषा, मित्र, वरुण, त्वष्टा, वसु, मरुत, शशी, अंगिरा, विश्व, नासत्य, रुद्र, ब्रह्मा तथा विष्णु क्रमशः इन देवताओं का नाम लेने से पापों का नाश हो जाता है ।।१५-१८$\frac{१}{२}$।। (गायत्री के जप करने में) चरण, अंगुष्ठ, गुल्फ (टखने), नलक, घुटने, जङ्घा, शिश्न, अण्डकोष, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, ग्रीवा, मुख, तालु, नासिका, चक्षु, भ्रूमध्य, ललाट, वाम दक्षिण पार्श्व, सिर तथा मुख–इन अङ्गों का न्यास करना चाहिए। गायत्री का वर्ण पीत, श्याम, कपिल, मरकतमणि, सोना तथा विद्युत् के समान धूम्र कृष्ण, रक्त, गौर, इन्द्रनील मणि के समान, स्फटिक के समान, पाण्डु, पद्मरागमणि के समान शुक्ल, कृष्ण और हरा हुआ करता है। गायत्री का ध्यान करने से सभी पापों का नाश हो जाता है, इससे हवन करने से सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं ।।१९-२४।। गायत्री पढ़कर तिल से हवन करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। शान्ति का इच्छुक व्यक्ति यव से, आयु का इच्छुक घी से, कार्य में सिद्धि चाहनेवाला सफेद सरसों से, ब्रह्मवर्चस् का इच्छुक दूध से, पुत्राभिलाषी दही से, अन्नाभिलाषी चावल से, ग्रहपीड़ा का शान्ति चाहनेवाला गूलर की समिधा से, धन का इच्छुक बिल्व से, लक्ष्मी का इच्छुक कमल से, आरोग्यकामी दूर्वा से, भयङ्कर उत्पात की शान्ति चाहनेवाला दूर्वा से, सौभाग्यकामी गुग्गुल से और विद्यार्थी को खीर से हवन करना चाहिए ।।२५-२८।। दस हजार बार (गायत्री पढ़कर) हवन करने से उपर्युक्त वस्तुओं की सिद्धि होती है। एक लाख बार हवन करने से मनोकामना पूरी होती

---

१ ख. ग. घ. छ. नासिके। २ क. ङ. °पिलः कबरः शिवसं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रहयज्ञमुखो वाऽपि होमोऽयुतमुखोऽर्थकृत्। आवाहनं च गायत्र्यास्तत ओङ्कारमभ्यसेत् ।।३०।।
स्मृत्वोङ्कारं तु गायत्र्या निबध्नीयाच्छिखां ततः। पुनराचम्य हृदयं नाभिं स्कन्धौ च संस्पृशेत् ।।३१।।
प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द एव च। देवोऽग्निः परमात्मा स्याद्योगो वै सर्वकर्मसु ।।३२।।
शुक्ला चाग्निमुखी दिव्या कात्यायनसगोत्रजा। त्रैलोक्यवरणा दिव्या पृथिव्याधारसंयुता ।।
अक्षसूत्रधरादेवी पद्मासनगता शुभा ।।३३।।
ॐ तेजोऽसि [1]सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामाऽसि।
विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरोमभिः भूः ।।३४।।
आगच्छ वरदे देवि जप्ये (पे) मे संनिधौ भव। गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृताः ।।३५।।
व्याहृतीनां तु सर्वासामृषिरेव प्रजापतिः। व्यस्ताश्चैव समस्ताश्च ब्राह्ममक्षरमोमिति ।।३६।।
विश्वामित्रो जमदग्नि[2] र्भरद्वाजोऽथ गौतमः[3]। ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च काश्यपश्य यथाक्रमम् ।।३७।।
अग्निर्वायू रविश्चैव) वाक्पतिर्वरुणस्तथा। इन्द्रो विष्णुर्व्याहृतीनां दैवतानि यथाक्रमम् ।।३८।।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पङ्क्तिरेव च। त्रिष्टुप् जगति चेति च्छन्दांस्याहुरनुक्रमात् ।।३९।।
विनियोगी व्याहृतीनां प्राणायामे च होमके। आपो हि ष्ठेत्यृचा चापोद्रुपदादीति वा स्मृता ।।४०।।

है। करोड़ बार गायत्री मन्त्र से हवन करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त होकर अपने कुल का उद्धार कर विष्णुसायुज्य प्राप्त कर लेता है। ग्रह-शान्ति के लिए तथा यज्ञ में हवन करना चाहिए। दस हजार होम करने से अर्थसिद्धि होती है। पहले गायत्री का आवाहन करके तदनन्तर ओङ्कार का ध्यान करना चाहिए ।।२९-३०।। ओङ्कार का स्मरण करके तत्पश्चात् गायत्री से शिखा बाँधनी चाहिए। पुनः आचमन कर हृदय, नाभि और स्कन्धों का स्पर्श करना चाहिए। प्रणव का ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता अग्नि और परमात्मा तथा विनियोग सभी कर्मों से हुआ करता है ।।३१-३२।। गायत्री का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए-'वह शुक्लवर्ण है, अग्नि के समान देदीप्यमान उसका मुख है, वह दिव्यरूपा है, कात्यायन गोत्र से उत्पन्न हुई है। वह अपने तेज से तीनों लोकों को भासित करनेवाली है, पृथिवी उसका आधार है। वह रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए पद्मासन पर बैठी हुई तथा अत्यन्त सुन्दरी है ।।३३।। तदनन्तर यह कहकर गायत्री का आवाहन करना चाहिए-'देवि! तुम तेज हो, समृद्धि हो, बल हो, कान्ति हो, देवों का ओज हो, विश्व हो, विश्वायु हो, सब हो, सर्वायु हो और तुमसे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त है ।।३४।। देवि! वरदायिनि! आओ, मेरे जपकाल में उपस्थित रहो। तुम अपने गानेवाले का त्राण करती हो, इसलिए तुम्हारा नाम गायत्री है।' ब्राह्म अक्षर ओङ्कार अलग-अलग व्याहृतियों के साथ-साथ रहते हुए भी आता है ।।३५-३६।। व्याहृतियों के देवता क्रमशः ये हैं-विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अग्नि, वायु, रवि, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र तथा विष्णु। व्याहृतियों के छन्द क्रमशः इस प्रकार हैं-गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती। व्याहृतियों का विनियोग प्राणायाम तथा हवन में किया जाता है ।।३७-३९ $\frac{1}{2}$।। 'आपो हिष्ठा', 'आपो द्रुपदादि' तथा 'हिरण्यवर्णाभिः', 'पावमानीभिः'-इन मन्त्रों को पढ़कर आठ

---

१ घ. छ. °सि महोऽ°। च. °सि ब°। २ भरद्वाजोऽथ...रविश्चैव च. पुस्तके नास्ति। ३ घ. गोतमः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरन्ततः। विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वमाजन्मकृतपापजित् ।।४१।।
अन्तर्जलं ऋतं चेति ज्योत्रिरघमर्षणम्। आपो [1]हिष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः स्मृतः ।।४२।।
[2]ब्राह्मस्नानाय च्छन्दोऽस्य गायत्री देवता जलम्। मार्जने विनियोगोऽस्य[3] हयावभृथके क्रतोः ।।४३।।
अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणम् (णः)। अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तस्तु[4] दैवतम् ।।४४।।
आपो ज्योतीरस इति गयात्र्यास्तु शिरः स्मृतम्। ऋषिः प्रजापतिस्तस्य च्छन्दोहीनं यजुर्यतः ।।४५।।
ब्रह्माग्निवायुसूर्याश्च देवताः परिकीर्तिताः। प्राणरोधात्तु वायुः स्याद्वायोरग्निश्च जायते ।।४६।।
अग्नेरापस्ततः शुद्धिस्ततश्चाऽऽचमनं चरेत्। अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु ।।४७।।
ततो यज्ञो वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्। उदुत्यं जातवेदसमृषिः प्रस्कण्व[5] उच्यते ।।४८।।
गायत्री छन्द आख्यातं सूर्यश्चैव तु दैवतम्। अतिरात्रे नियोगः स्यादग्नीषोमो(ग्निष्टोमो)नियोगकः ।।४९।।
[6]चित्रं देवेति च ऋच ऋषिः कौत्स उदाहृतः। त्रिष्टुप्छन्दो दैवतं च सूर्योऽस्याः परिकीर्तितम् ।।५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सन्ध्याविधिकथनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१५।।

बार जलविन्दुओं को ऊपर की ओर छिड़ककर मार्जन करना चाहिए। ऐसा करने से जन्म भर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। फिर जल के भीतर 'ऋतं च' इत्यादि अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिए। 'आपो हिष्ठा' से प्रारम्भ होनेवाली तृच का ऋषि सिन्धुद्वीप कहा गया है। ब्रह्मज्ञान साधक गायत्री इसका छन्द है और जल देवता है। अवभृथ स्नान में इसका विनियोग किया जाता है ।।४०-४३।। 'अघमर्षणसूक्त' का ऋषि अधमर्षण है, छन्द अनुष्टुप् है और देवता भाववृत्त है। 'आपो ज्योतीरसः' यह गायत्री का सिर है। इसका ऋषि प्रजापति है और इसका छन्द कोई भी नहीं है, क्योंकि यह यजुष् (गद्य) है। इसके देवता ब्रह्मा, अग्नि, वायु और सूर्य कहे गये हैं। प्राण निरोध करने से वायु की उत्पत्ति होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होता है ।।४४-४६।। अग्नि से जल उत्पन्न होता है। जल से शुद्धि तथा आचमन करना चाहिए। उसका मन्त्र है- 'उदुत्यं जातवेदसम्' मन्त्र का ऋषि प्रस्कण्व, छन्द गायत्री और देवता सूर्य कहा गया है। इसका विनियोग अतिरात्र तथा अग्निष्टोम यज्ञ में है। 'चित्रं देवेति' ऋचा का ऋषि कौत्स, छन्द त्रिष्टुप् और देवता सूर्य कहा गया है ।।४७-५०।।

श्री अग्निमहापुराण में सन्ध्याविधि-कथन नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१५।।

---

१ छ. ष्ठेत्यृचोऽस्याश्च सि°। २ ख. ग. ब्रह्मज्ञानाय। ३ घ. छ. °योगस्य। ४ क. ख. ग. ङ. °वृत्तं च दै०। ५ क. ङ. च. प्रख्यश्च उ°। घ. छ. प्रष्कन्न। ६ घ. छ. °तिऋचकऋ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच

एवं सन्ध्याविधिं कृत्वा गायत्रीं च जपेत्स्मरेत् । गायञ्शिष्यान्यतस्त्रायेत्कायः[1] (यं) प्राणांस्तथैव च ।।१।।
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्रीयं ततो यतः । प्रकाशनात्मा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती ।।२।।
तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् । भा दीप्ताविति रूपं हि भ्रस्जः पाकेऽथ तत्स्मृतम् ।।३।।
ओषध्यादिकं पचति भ्राजृदीप्तौ तथा भवेत् । भर्गः स्याद्भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितम् ।।४।।
वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् । स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ।।५।।
वृणोतेर्वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् । नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ।।६।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि (?) विमुक्तये । तज्ज्योतिर्भगवान्विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ।।७।।
शिवं केचित्पठन्ति स्म शक्ति रूपं पठन्ति च । केचित्सूर्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ।।८।।
अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते । तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ।।९।।

अध्याय २१६

गायत्री-निर्वाण

अग्निदेव बोले–इस प्रकार सन्ध्याविधि करके गायत्री का जप और ध्यान करना चाहिए। इसको गाते हुए मनुष्य शिष्यों की, अपने शरीर की तथा अपने प्राणों की रक्षा करता है, इसलिए उसे गायत्री कहा गया है। यह सविता का प्रकाश रूप होने से सरस्वती भी कही जाती है ।।१-२।। ज्योति परब्रह्म है और उन्हीं का तेज है। यह 'भा दीप्तौ' तथा 'भ्रस्ज पाके' धातु का रूप है। यह स्वयं दीप्ति है तथा ओषधि आदि को पकाती है। 'भाजृ दीप्तौ' धातु से 'बहुलं छन्दसि' नियम के अनुसार 'भ्राजते' शब्द बनता है जिसके कारण यह भर्ग कहलाती है; यह सब तेजों में श्रेष्ठ तथा परम पद है। स्वर्गकामी तथा मोक्षकामी के द्वारा उसका सदैव वरण किया जाना चाहिए ।।३-५।। 'वरेण्य' शब्द वरणार्थक वृज् धातु से निष्पन्न होता है। (इसीलिए ब्रह्म वरेण्य है क्योंकि) वह जागृति और स्वप्न आदि अवस्थाओं से परे है। वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, अद्वितीय, सत्य और सर्वशक्तिमान् है। इसका साधक मन में यह चिन्तन करता रहे कि 'मैं अपनी मुक्ति के लिए परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करता रहूँ।' वह ज्योति है, भगवान् विष्णु, जो संसार के जन्म आदि का कारण है ।।६-७।। उसे कोई शिव कहते हैं कोई शक्ति। कोई वेदवेत्ता सूर्य समझते हैं, कोई अग्निहोत्री उसे अग्नि मानते हैं। अग्नि आदि रूपों में रहनेवाला ही वेद आदि शास्त्रों में ब्रह्म कहा गया है। उस विष्णु का परमपद ही सवितृ देवता का भी परमपद कहा गया है ।।८-९।। स्वयं ज्योतिरूप भगवान् विष्णु से

---

१ ख. ग. घ. छ. °येद्भार्यां प्रा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महदाद्यं सूयते हि स्वयं ज्योतिर्हरिः प्रभुः । पर्जन्यो वायुरादित्यः शीतोष्णाद्यैश्च पाचयेत् ।।१०।।
अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।११।।
दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि । नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः ।।१२।।
चोदयात्प्रेरयेद्बुद्धिर्भोक्तृणां सर्वकर्मसु । दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्याग्निरूपवान् ।।१३।।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा । ईशावास्यमिदं सर्वं महदादि जगद्धरिः[1] ।।१४।।
स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः । आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ।।१५।।
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च । ध्यानेन पुरुषोऽयं च द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले ।।१६।।
तत्त्वं सदसि चिद्ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् । देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकम् ।।१७।।
देहादिजाग्रदाब्रह्म[2] अहं ब्रह्मेति धीमहि । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमनन्तओम्[3] ।।
ज्ञानानि शुभकर्मादीन्प्रवर्तयति यः सदा ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणकथनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१६।।

ही महत् आदि (तत्त्व) उत्पन्न होते हैं। पर्जन्य, वायु, आदित्य ही सर्दी, गर्मी से (अन्नादि को) पकाते हैं। अग्नि में सम्यक् प्रकार से डाली हुई आहुतियाँ सूर्य को प्राप्त होती हैं। सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है ।।१०-११।। 'धीमहि' शब्द की व्युत्पत्ति धारण करने के अर्थ में 'धा' धातु से भी हो सकती है। इस प्रकार मन्त्र का अर्थ हुआ हम मन से धारण करें। जिससे वह हमारी तथा समस्त प्राणियों की बुद्धि को सत्कर्म में प्रेरित करें (क्योंकि यह सिद्धान्त है कि) सूर्य तथा अग्नि रूपी विष्णु से सम्पूर्ण कर्मों में तथा उनके दृष्ट और अदृष्ट परिणामों में निखिल जीवों की बुद्धि को प्रेरणा मिलती है ।।१२-१३।। ईश्वर से प्रेरित होकर जीव स्वर्ग या नरक को जाता है। महत् तत्त्वादि विशिष्ट सम्पूर्ण जगत् ईश (परमात्मा) का निवास-स्थान है। वह 'हंस' पुरुष स्वर्ग आदि बनाकर क्रीड़ा करता है। सूर्य के अन्तर्गत जो तेज है, वह उसी का है। मुमुक्षुओं को जन्म-मृत्यु और त्रिविध पापों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) से छुटकारा पाने के लिए सूर्यमण्डल में उसी हंस का ध्यान करना चाहिए ।।१४-१६।। साधक मन में यह चिन्तन करता रहे कि जो तत्, सत्, चित् विष्णु का परमपद तथा सविता देव का तुरीय श्रेष्ठ तेज है, वही मैं हूँ और उसी ब्रह्म का मैं ध्यान करता हूँ। आदित्य मण्डल में जो ज्ञान तथा शुभ कर्मों का सदा प्रवर्तक है, वही अनन्त और ओंकार मैं हूँ ।।१७-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में गायत्रीनिर्वाण-कथन नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१६।।

---

१ क. ङ. °द्धरेः। स्व°। २ ङ. °दास्वर्गमहं। ३ क. ङ. °म्। यज्ञादिशु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच

लिङ्गमूर्ति शिवं स्तुत्वा गायत्र्या योगमाप्तवान् । निर्वाणं परमं ब्रह्म[1] वशिष्ठोऽन्यश्च शंकरात् ।।१।।
नमः कनकलिङ्गाय वेदलिङ्गाय वै नमः । नमः परमलिङ्गाय[2] व्योमलिङ्गाय वै नमः ।।२।।
नमः सहस्रलिंगाय वह्निलिङ्गाय वै नमः । नमः पुराणलिङ्गाय श्रुतिलिङ्गाय वै नमः ।।३।।
नमः पाताललिङ्गाय ब्रह्मलिङ्गाय वै नमः । नमो रहस्यलिङ्गाय सप्तद्वीपोर्ध्वलिङ्गिने ।।४।।
नमः सर्वात्मलिङ्गाय सर्वलोकाङ्गलिङ्गिने । नमस्त्वव्यक्तलिङ्गाय बुद्धिलिङ्गाय वै नमः ।।५।।
नमोऽहङ्कारलिङ्गाय भूतलिङ्गाय वै नमः । नमः इन्द्रियलिङ्गाय नमस्तन्मात्रलिङ्गिने ।।६।।
नमः पुरुषलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः । नमो रजोर्धलिङ्गाय सत्त्वलिङ्गाय वै नमः ।।७।।
नमस्ते भवलिङ्गाय नमस्त्रैगुण्यलिङ्गिने । नमोऽनागतलिङ्गाय तेजोलिङ्गाय वै नमः ।।८।।
नमो [3]वायूर्ध्वलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः । नमस्तेऽथर्व[4] लिङ्गाय[5] सामलिङ्गाय वै नमः ।।९।।
नमो यज्ञाङ्गलिङ्गाय यज्ञलिङ्गाय वै नमः । नमस्ते[6] तत्त्वलिङ्गाय देवानुगतलिङ्गिने ।।१०।।

अध्याय २१७

गायत्री-निर्वाण

अग्निदेव बोले–लिङ्गमूर्ति शिव की स्तुति करने से वशिष्ठ तथा अन्य उपासक गायत्री योग और निर्वाण रूप परब्रह्म को प्राप्त हुए थे। वशिष्ठ ने शिवलिङ्ग की स्तुति इस प्रकार की थी–सुवर्णमय लिङ्ग को नमस्कार है। वेदलिङ्ग को नमस्कार है। परमलिङ्ग को नमस्कार है। आकाशलिङ्ग को नमस्कार है ।।१-२।। सहस्रलिङ्ग को नमस्कार है। वह्निलिङ्ग को नमस्कार है। पुराणलिङ्ग को नमस्कार है। श्रुतिलिङ्ग को नमस्कार है। पाताललिङ्ग को नमस्कार है। ब्रह्मलिङ्ग को नमस्कार है। रहस्यलिङ्ग को नमस्कार है। सातों द्वीपों से ऊर्ध्व (बहिर्भूत) लिङ्ग को नमस्कार है। सर्वात्मलिङ्ग को नमस्कार है। समस्त लोकों के अङ्गभूत लिङ्ग को नमस्कार है। अव्यक्तलिङ्ग को नमस्कार है। बुद्धिलिङ्ग को नमस्कार है ।।३-५।। अहङ्कारलिङ्ग को नमस्कार है। भूतलिङ्ग को नमस्कार है। इन्द्रियलिङ्ग को नमस्कार है। तन्मात्ररूप लिङ्ग को नमस्कार है। पुरुषलिङ्ग को नमस्कार है। भावलिङ्ग को नमस्कार है। रजोलिङ्ग को नमस्कार है। सत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है। भवलिङ्ग को नमस्कार है। त्रैगुण्यलिङ्ग को नमस्कार है। अनागतलिङ्ग को नमस्कार है। तेजोलिङ्ग को नमस्कार है ।।६-८।। वायु से ऊपर जानेवाले लिङ्ग को नमस्कार है। भावलिङ्ग को नमस्कार है। अथर्वलिङ्ग को नमस्कार है। सामलिङ्ग को नमस्कार है। यज्ञाङ्गलिङ्ग को नमस्कार है। यज्ञलिङ्ग को नमस्कार है। तत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है। देवपूज्य लिङ्ग को नमस्कार है ।।९-१०।। देव!

---

१ ख. च. °ष्ठोऽप्येवशं°। २ क. ङ. पवनलि°। ३ क. ङ. वागूर्ध्व°। ४ ग. °स्ते सर्व°। ५ ङ. °य श्रुतिलि°। ६ ङ. °स्तेभवलि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दिशः नः परमं योगमपत्यं मत्समं तथा। ब्रह्म चैवाक्षयं देव शमं चैव परं विभो ।।११।।
अक्षयत्वं च वंशस्य धर्मे च मतिमक्षयाम् ।।१२।।

अग्निरुवाच

वशिष्ठेन स्तुतः शम्भुस्तुष्टः श्रीपर्वते पुरा। वशिष्ठाय वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोध्यायः ।।२१७।।

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राज्याभिषेककथनम्

अग्निरुवाच

पुष्करेण च रामाय राजधर्मं हि पृच्छते। यथाऽऽदौ कथितं तद्वद्वशिष्ठ कथयामि ते ।।१।।

पुष्कर उवाच

राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्माद्राजधर्मतः। [1]राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापालः [2]सुदण्डवान् ।।२।।
[3]पालयिष्यामि वः सर्वान्धर्मस्थान्व्रतमाचरेत्। संवत्सरं स वृणुयात्पुरोहितमथ[4] द्विजम् ।।३।।

मुझे परम योग का उपदेश दीजिये। (मुझे) मेरे समान सन्तान दीजिये। अक्षय ब्रह्म (विद्या) दीजिये। शान्ति दीजिये। जिस वंश का नाश न हो, ऐसा वंश दीजिये। धर्म में दृढ़ बुद्धि प्रदान कीजिये ।।११-१२।।

अग्निदेव बोले–पूर्वकाल में श्रीपर्वत पर वशिष्ठ द्वारा (इस तरह) स्तुति किये जाने पर भगवान् शङ्कर वशिष्ठ को वरदान देकर अन्तर्धान हो गये ।।१३।।

श्री अग्निमहापुराण में गायत्री निर्वाण-कथन नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१७।।

अध्याय २१८

राज्याभिषेक-कथन

अग्निदेव बोले–हे वशिष्ठ! प्राचीनकाल में राम के प्रश्न करने पर पुष्कर ने जिस प्रकार राजधर्म का वर्णन किया था, वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ।।१।।

पुष्कर बोले–मैं राजा के अन्य कर्त्तव्यों से भिन्न राजधर्म को बतला रहा हूँ। राजा को शत्रुनाशक, प्रजापालक तथा (अपराधियों को) दण्ड देनेवाला होना चाहिए। उसे यह संकल्प करना चाहिए–'मैं धर्म पर आरूढ़ प्रजाओं का पालन करूँगा।' उसे ज्योतिष शास्त्रवेत्ता, विप्र पुरोहित तथा नीतिनिपुण मन्त्रियों और धर्म को जाननेवाली (पतिव्रता)

---

१ क. ख. ग. घ. ङ. च. °जा हरिः शत्रु°। २ क. ख. ग. घ. ङ. च. सदण्डवान्। ३ घ. छ. पालयिष्यति।
४ क. ख. ग. ङ. च. °थर्त्विज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रिणश्चाखिलात्मज्ञान्महिषीं धर्मलक्षणाम् । सांवत्सरं नृपः काले ससंभारोऽभिषेचनम् ।।४।।
कुर्यान्मृते नृपे नात्र कालस्य नियमः स्मृतः । तिलैः सिद्धार्थकैः स्नानं साम्वत्सरपुरोहितैः ।।५।।
घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः । अभयं [1]घोषयेद्बद्धान्मोचयेद्राज्य पालके[2] ।।६।।
पुरोधसाऽभिषेकात्प्राक्कार्यैन्द्री शान्तिरेव च । उपवास्याभिषेकाहे वेद्यग्नौ जुहुयान्मनून् ।।७।।
वैष्णवानैन्द्रमन्त्रांस्तु सावित्रान्वैश्वदैवतान् । सौम्यान्स्वस्त्ययनं शर्म आयुष्याभयदान्मनून् ।।८।।
अपराजितां च कलशं वह्नेर्दक्षिणपार्श्वगम् । संपातवन्तं हैमं च पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ।।९।।
प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः । ([3]रथौघमेघनिर्घोषो विधूमश्च हुताशनः ।।१०।।
अनुलोमः सुगंधिश्च स्वस्तिकाकारसंनिभः) । प्रसन्नार्चिर्महाज्वालः स्फुलिङ्गरहितो हितः ।।११।।
न व्रजेयुश्च मध्येन मार्जारमृगपक्षिणः । पर्वताग्रमृदा तावन्मूर्धानं शोधयेन्नृपः ।।१२।।
वल्मीकाग्रमृदा कर्णौ वदनं केशवालयात् । इन्द्रलयमृदा ग्रीवां हृदयं तु नृपाजिरात् ।।१३।।
करिदन्तोद्धृतमृदा दक्षिणं तु तथा भुजम् । वृषशृङ्गोद्धृतमृदा वामं चैव तथा भुजम् ।।१४।।
[4]सरोमृदा तथा पृष्ठमुदरं संगमान्मृ (ममृ) दा । नदीतटद्वयमृदा पार्श्वे संशोधयेत्तथा ।।१५।।
वेश्याद्वारमृदा राज्ञः कटिशौचं विधीयते । यज्ञस्थानात्तथैथोरु गोस्थानाज्जानुनी तथा ।।१६।।

स्त्री को रानी के रूप में वरण करना चाहिए। राज्य-प्राप्ति के एक वर्ष बाद राजा का अभिषेक बड़े समारोह के साथ मनाना चाहिए ।।२-४।। एक राजा के मर जाने पर दूसरे को राजा बना देना चाहिए, इसमें काल का नियम नहीं है। राजा को श्वेत सरसों तथा तिल (मिश्रित जल) से स्नानकर भद्रासन पर बैठना चाहिए। तदनन्तर पुरोहित को राजा का जयघोष करना चाहिए। राजा को (प्रजा को) अभयदान देना चाहिए और बन्दियों को बन्धनमुक्त कर देना चाहिए ।।५-६।। अभिषेक से पूर्व पुरोहित को इन्द्रशान्ति का आयोजन करना चाहिए। अभिषेक के दिन राजा को उपवास करके वेदी की अग्नि में वैष्णव मन्त्र, ऐन्द्र मन्त्र, सावित्र मन्त्र, वैश्वदेव मन्त्र, सौम्य मन्त्र तथा कल्याण, आयु और अभय देनेवाले मन्त्रों से हवन करना चाहिए। अग्नि के दक्षिण भाग में अपराजिता (लता-विशेष) से वेष्टित तथा आम्रपल्लव युक्त स्वर्णकलश की स्थापना कर गन्ध, पुष्प आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए ।।७-९।। अग्नि की प्रभा तप्त सुवर्ण के समान हो तथा उसकी शिखा (लपटें) घूमनेवाली हों। उसका शब्द रथसमूह तथा मेघ के गर्जन के समान होना चाहिए। उसमें धुआँ नहीं होना चाहिए। वह अनुलोम (सीधा) हो, सुगन्धयुक्त हो तथा उसकी आकृति स्वस्तिक के समान हो, उसमें चमक हो, बड़ी-बड़ी ज्वालाएँ हों और चिनगारियाँ न निकलती हों। उसके बीच से होकर बिलाव और पशु-पक्षी न निकलने पायें। राजा को पर्वत के शिखर की मिट्टी से अपने मस्तक को शुद्ध करना चाहिए ।।१०-१२।। वल्मीक की मिट्टी से कानों को, विष्णु मन्दिर की मिट्टी से मुख को, इन्द्रालय की मिट्टी से ग्रीवा को, राजा के चतुःशाल की मिट्टी से हृदय को, हाथी के सूँड़ से उखाड़ी हुई मिट्टी से बायीं भुजा को, सरोवर की मिट्टी से पीठ को, नदियों के संगम की मिट्टी से उदर को, नदी के दोनों तटों की मिट्टी से दोनों पार्श्वों को शुद्ध करना चाहिए ।।१३-१५।। वेश्यागृह की मिट्टी से कमर को, यज्ञस्थल की मिट्टी से उरुओं को, गोशाला की मिट्टी से घुटनों को, अश्वशाला की मिट्टी से जङ्घाओं को, रथचक्र की मिट्टी से चरणों को

---

१ छ. °येद्दुर्गान्मो°। २ क. ङ. च. °ज्यकालिके। ३ 'रथौघमेघ°°°संनिभः' ग. पुस्तके नास्ति। ४ ख. ग. सदोमृदा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अश्वस्थानात्तथा जङ्घे रथचक्रमृदाऽङ्घ्रिके । मूर्धानं पञ्चगव्येन भद्रासनगतं नृपम् ।।१७।।
अभिषिञ्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः । पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णेन ब्राह्मणः ।।१८।।
रुप्यकुम्भेन (ण) याम्ये च क्षीरपूर्णेन क्षत्रियः । दध्ना च ताम्रकुम्भेन (ण) वैश्यः पश्चिमगेन च ।।१९।।
मृण्मयेन जलेनोदक्शूद्रामात्योऽभिषेचयेत् । ततोऽभिषेकं नृपतेर्बह्वृचप्रवरो द्विजः ।।२०।।
कुर्वीत मधुना विप्रश्छन्दोगश्च कुशोदकैः । संपातवन्तं कलशं तथा गत्वा पुरोहितः ।।२१।।
विधाय वह्निरक्षां तु सदस्येषु यथाविधि । राजश्रियाऽभिषेके च ये मन्त्रा परिकीर्तिताः ।।२२।।
तैस्तु दद्यान्महाभाग ब्रह्मणानां स्वनैस्तथा । ततः पुरोहितो गच्छेद्वेदिमूलं तदेव तु ।।२३।।
शतच्छिद्रेण पात्रेण सौवर्णेनाभिषेचयेत् । या ओषधीत्योषधीभीरथेत्युक्त्वेति[1] गन्धकैः ।।२४।।
पुष्पैः पुष्पवतीत्येव ब्राह्मणेति च [2]बीजकैः । रत्नैराशुः शिशानाश्च ये देवाश्च कुशोदकैः ।।२५।।
यजुर्वेद्यथर्ववेदी गन्धद्वारेति संस्पृशेत् । शिरः कण्ठं रोचनया सर्वतीर्थोदकैर्द्विजाः ।।२६।।
गीतवाद्यादिनिर्घोषैश्चामरव्यजनादिभिः । सर्वोषधिमयं कुम्भं धारयेयुर्नृपाग्रतः ।।२७।।
तं पश्येद्दर्पणं राजा घृतं वै मङ्गलादिकम् । अभ्यर्च्य विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान् ।।२८।।
व्याघ्रचर्मोत्तरां शय्यामुपविष्टः पुरोहितः । मधुपर्कादिकं दत्त्वा पट्टबन्धं प्रकारयेत् ।।२९।।

और पञ्चगव्य से मस्तक को शुद्ध करना चाहिए। तदनन्तर अमात्यगण (भद्रासन पर बैठे हुए) राजा को चार प्रकार के घड़ों (के जल) से स्नान करायें। पूर्व की ओर से ब्राह्मण घृतपूर्ण स्वर्णकलश से राजा का अभिषेक करें ।।१६-१८।। दक्षिण भाग से क्षत्रिय दूध से भरे चाँदी के घड़े से राजा का अभिषेक करें। पश्चिम भाग से वैश्य दधिपूर्ण ताम्रघट से (राजा का) अभिषेक करें। उत्तर भाग से शूद्र अमात्य जलपूर्ण मिट्टी के घड़े से (राजा का) अभिषेक करें। तदनन्तर ऋग्वेदी ब्राह्मण मधु से और सामवेदी ब्राह्मण कुशोदक से राजा का अभिषेक करें। तत्पश्चात् पुरोहित को सभासदों पर वह्निरक्षा का भार छोड़कर स्वयं आम्रपल्लव हाथ में लेकर (पहले से) स्थापित कलश के जल से राजा को स्नान कराना चाहिए। राज्याभिषेक के समय जो मन्त्र बताये गये हैं, उन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पुरोहित ब्राह्मण का (मङ्गल) ध्वनि के साथ (राजा का) अभिषेक करे ।।१९-२२$\frac{1}{2}$।। तत्पश्चात् पुरोहित वेदी के समीप जाकर सौ छिद्रों से युक्त स्वर्णपात्र से (राजा का) अभिषेक करे। 'या ओषधी' इस मन्त्र को पढ़ते हुए ओषधियों से, 'रथेत्युक्त्वा' पढ़कर गन्धों से, 'पुष्पवती' पढ़कर पुष्पों से, 'ब्राह्मणेति' पढ़कर बीजों से, 'आशुः शिशानः' पढ़कर रत्नों से और 'ये देवाश्च' पढ़कर कुशोदक से अभिषेक करना चाहिए ।।२३-२५।। तदनन्तर यजुर्वेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मण को 'गन्ध द्वारा' मन्त्र को पढ़ते हुए गोरोचन से राजा के सिर तथा कण्ठ का स्पर्श करना चाहिए। पश्चात् ब्राह्मणों को समस्त तीर्थों के जल और सर्वोषधियों से परिपूर्ण घट को राजा के आगे रख देना चाहिए। उस समय गाना-बजाना, जयनाद आदि होते रहना चाहिए तथा चामर और पङ्खा आदि झलते रहना चाहिए ।।२६-२७।। तब राजा को कलश, दर्पण, घी तथा मांगलिक वस्तुओं को देकर विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा ग्रहेश्वरों की अर्चना करनी चाहिए। तदनन्तर व्याघ्रचर्म से ढँकी हुई शय्या पर बैठे हुए पुरोहित को राजा को

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °थे अक्षेति। २ ग. जीवकैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राज्ञो मुकुटबन्धश्च [1]पञ्चचर्मोत्तरं ददेत्। ध्रुवाद्यैरिति च विशेद्वृषजं वृषभांशजम्[2] ।।३०।।
द्वीपिजं सिंहजं व्याघ्रजातं चर्म तदासने। अमात्यसचिवादींश्च प्रतिहारः प्रदर्शयेत् ।।३१।।
गोजाविगृहदानाद्यैः सावत्सरपुरोहितौ। पूजयित्वा द्विजान्प्रार्च्य ह्यन्यान्भूगोन्नमुख्यकैः ।।३२।।
वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं नत्वाऽथ पृष्ठतः। वृषमालभ्य गां वत्सं पूजयित्वाऽथ मन्त्रितम् ।।३३।।
अश्वमारुह्य नागं च पूजयेत्तं समारुहेत्। परिभ्रमेद्राजमार्गे बलयुक्तः प्रदक्षिणम् ।।३४।।
पुरं विशेच्च दानाद्यैः[3] प्रार्च्य सर्वान्विसर्जयेत्[4] ।।३५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राज्याभिषेककथनं नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१८।।

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिषेकमन्त्राः

पुष्कर उवाच

राजदेवाद्यभिषेकमन्त्रान्वक्ष्येऽघमर्दनान्। कुम्भात्कुशोदकैः सिञ्चेत्तेन सर्वं हि सिद्ध्यति ।।१।।

मधुपर्क आदि देकर उसके ऊपर पगड़ी तथा मुकुट आदि बाँधना चाहिए ।।२८-२९½।। 'ध्रुवाद्यैः' इस मन्त्र को पढ़ते हुए राजा को पञ्चचर्मावृत आसन प्रदान करना चाहिए। ये पाँच चर्म वृष, मृग, हाथी, सिंह तथा व्याघ्र के होने चाहिए। तत्पश्चात् पुरोहित को चाहिए कि वह राजा से द्वारपाल, अमात्य, सचिव आदि को मिलाये। राजा को गाय, बकरा, भेंड़ा, भवन आदि का दान करके ज्योतिषी तथा पुरोहित का पूजन करना चाहिए। अन्य ब्राह्मणों को भी भूमि, गौ, अन्न आदि देना चाहिए ।।३०-३२।। तदनन्तर अग्नि की प्रदक्षिणा करके गुरु को प्रणाम करना चाहिए तथा पृष्ठ भाग से वृष का आलम्भन कर जबड़े सहित गौ का पूजन करना चाहिए। फिर घोड़े तथा हाथी की पूजा करके उन पर सवारी करनी चाहिए। तदनन्तर दल-बल के साथ राजमार्ग से नगर भर का चक्कर लगाते हुए लोगों को दान आदि से सन्तुष्ट करके विदा करना चाहिए ।।३३-३५।।

श्री अग्निमहापुराण में राज्याभिषेक कथन नामक दो सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।२१८।।

अध्याय २१९

अभिषेक-मन्त्र

पुष्कर बोले-अब मैं राजा तथा देवताओं के अभिषेक मन्त्रों को बतलाऊँगा, जो पापों का नाश करनेवाले हुआ करते हैं। घड़े से कुशोदक लेकर (राजा तथा देवता को) स्नान कराने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। अभिषेक के समय

---

१ क. ङ. च. ञ्चवर्मोत्तरच्छदे। ध्रु°। २ घ. छ. वृषदंशजम्। ३ क. ङ. प्रार्थ्य। ४ क. पुस्तके श्लोकार्धमधिकं तद्यथा--"एवं कृत्वा तु विधिवद्राज्याभिषेकमाचरेत्" इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।।२।।
भवन्तु विजयायैत इन्द्राद्या दश दिग्गजाः । रुद्रो धर्मो मनुर्दक्षो रुचिः श्रद्धा च सर्वदा ।।३।।
भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च सनकश्च सनन्दनः । सनत्कुमारोऽङ्गिराश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।।४।।
मरीचिः कश्यपः[1] पातु[2] प्रजेशं [3]पृथिवीपतिम् । प्रभासुरा बर्हिषद अग्निष्वात्ताश्च पान्तु ते ।।५।।
क्रव्यादाश्चोपहूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः । अग्निभिश्चाभिषिञ्चन्तु लक्ष्म्याद्या धर्मवल्लभाः ।।६।।
आदित्याद्याः कश्यपस्य[4] बहुपुत्रस्य वल्लभाः । कृशाश्वस्याग्निपुत्रस्य भार्याश्चारिष्टनेमिनः ।।७।।
अश्विन्याद्याश्च चन्द्रस्य [5]पुलहस्य तथा प्रियाः । भूता च कपिशा दंष्ट्री सुरसा सरमा दनुः ।।८।।
श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा[6] । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु अरुणश्चार्कसारथिः ।।९।।
आयतिर्नियती रात्रिर्निद्रा लोकस्थितौ स्थिताः । उमा मेना शची पान्तु धूमोर्णा निर्ऋतिर्जया ।।१०।।
गौरी शिवा च ऋद्धिश्च वेला या चैव नड्वला । असिक्नी च तथा ज्योत्स्ना देवपत्न्यो वनस्पतिः ।।११।।
महाकल्पश्च कल्पश्च मन्वन्तरयुगानि च । संवत्सराणि वर्षाणि पान्तु त्वामयनद्वयम् ।।१२।।
ऋतवश्च तथा मासाःपक्षा रात्र्यहनी तथा । सन्ध्यातिथिमुहूर्ताश्च कालस्यावयवाश्च[7] ये ।।१३।।
सूर्याद्याश्च ग्रहाःपान्तु मनुः स्वायंभुवादिकः । स्वयम्भुवः स्वारोचिष[8] उत्तमस्तामसो मनुः ।।१४।।
रैवतश्चाक्षुषः षष्ठो वैवस्वत इहेरितः । [9]सावर्णिब्रह्मपुत्रश्च धर्मपुत्रश्च रुद्रजः ।।१५।।
दक्षजो रौच्यभौत्यौ च मनवस्तु चतुर्दश । विश्वभुक्च विपश्चिच्च सुचितिश्च शिखी विभुः ।।१६।।

यह कहना चाहिए कि–देवगण तुम्हारा अभिषेक करें। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा इन्द्र आदि दस दिक्पाल तुम्हारी विजय के साधक बनें ।।१-२$\frac{1}{2}$।। रुद्र, धर्म, मनु, दक्ष, रुचि, श्रद्धा, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, सनक, सनत्कुमार, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि तथा कश्यप तुम्हारी रक्षा करते रहें। आप प्रजा के स्वामी तथा पृथिवीपति हैं। प्रभासुर, बर्हिषद तथा अग्निष्वात्त तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।३-५।। क्रव्याद, उपहूत, आज्यपान करनेवाले, सुकालि, अग्नियों के साथ तुम्हारा अभिषेक करें। लक्ष्मी आदि धर्म की पत्नियाँ, अदिति आदि बहुपुत्र, कश्यप की पत्नियाँ, अरिष्टनेमि आदि अग्निपुत्र, कृशाश्व पत्नियाँ, अश्विनी आदि चन्द्रमा की पत्नियाँ और भूता, कपिशा, दंष्ट्री, सुरसा, सरमा, दनु, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री, शुकी आदि पुलह की पत्नियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। तथा सूर्य-सारथि अरुण तुम्हारी रक्षा करें ।।६-९।। आयति, नियति, रात्रि, निद्रा, उमा, मेना, शची, धूमा, ऊर्णा, निर्ऋति, जया, गौरी, शिवा, ऋद्धि, वेला, नड्वला, असिक्नी, ज्योत्स्ना, देवपत्नियाँ, वनस्पति, महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर तथा वर्ष, तुम्हारी रक्षा करते रहें। दोनों अयन, ऋतु, मास, पक्ष, रात्रि, दिन, सन्ध्या, तिथि, मुहूर्त्त तथा कालावयव, सूर्यादि ग्रह तथा स्वायंभुव आदि मनु तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।१०-१३$\frac{1}{2}$।। स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मपुत्र, धर्मपुत्र, रुद्रज, दक्षज, रौच्य, भौत्य–ये चौदहों मनु, विश्वभुक्, विपश्चित्, सुचित्ति, शिखी, विभु, मनोजव, ओजस्वी, बली, अद्भुत, शान्ति,

---

१ छ. पान्तु। २ छ. प्रजेशाः। ३ छ. पृथिवीपतिः। ४ च. देवपुत्रस्य। ५ क. ङ. च. पुलस्त्यस्य। ६ ख. ग. ङ. छ. °था पत्न्यस्त्वा°। ७ क. ङ. घ. छ.° वाकृतिः। सू°। ८ ख. ग. घ. छ. °ष औत्तमिस्ता°। ९ क. ख. ग. घ. ङ. छ.° वर्णो ब्रह्म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनोजवस्तथौजस्वी बलिरद्भुतशान्तयः । वृषश्च ऋतधामा च दिवस्पृक्कविरिन्द्रकः ।।१७।।
रैवन्तश्च कुमारश्च तथा वत्सविनायकः । वीरभद्रश्च नन्दी च विश्वकर्मा पुरोजवः ।।१८।।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सुरमुख्याः समागताः । नासत्यौ देवभिषजौ ध्रुवाद्या वसवोऽष्ट च ।।१९।।
दश चाङ्गिरसो[1] वेदास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु सिद्धये । आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्राणस्तथैव च ।।२०।।
हविष्मांश्च गरिष्ठा च ऋतः सत्यश्च पान्तु वः । क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः[2] कालकामो धुरिर्जये ।।२१।।
पुरूरवा[3] अद्रिवाश्च विश्वेदेवाश्च रोचनः । अङ्गारकाद्याः सूर्यस्त्वां निर्ऋतिश्च तथा यमः ।।२२।।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो धूमकेतुश्च रुद्रजाः[4] । भरतश्च तथा मृत्युः कापालिरथ किङ्किणिः ।।२३।।
भवनो भावनः पान्तु स्वजन्यः स्वजनस्तथा । क्रतुश्रवाश्च मूर्धा च याजनोऽभ्युशनास्तथा ।।२४।।
प्रसवश्चाव्ययश्चैव दक्षश्च भृगवः सुरा । मनोनुमन्ता प्राणश्च नवोऽपानश्च[5] वीर्यवान् ।।२५।।
वीतिहोत्रो नयः सांध्यो हंसो नारायणोऽवतु । विभुश्चैव प्रभुश्चैव [6]देवश्रेष्ठा जगद्धिताः ।।२६।।
धाता मित्रोऽर्मया पूषा शक्रोऽथ वरुणो भगः । त्वष्टा विवस्वान्सविता विष्णुर्द्वादशभास्कराः ।।२७।।
एकज्योतिश्च द्विज्योतिस्त्रिश्च (च) तुर्ज्योतिरेव च । एकशक्रो द्विशक्रश्च त्रिशक्रश्च महाबलः ।।२८।।
इन्द्रश्च मेत्यादिशतु ततः प्रतिमकृत्तथा । मितश्च संमितश्चैव अमितश्च महाबलः ।।२९।।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा । अतिमित्रोऽनुमित्रश्च पुरुमित्रोऽपराजितः ।।३०।।
ऋतश्च ऋतवाग्धाता विधाता धारणो ध्रुवः । विधारणो महातेजा वासवस्य परः सखा ।।३१।।
ईदृक्षश्चाप्यदृक्षश्च एतादृगमिताशनः । क्रीडितश्च सदृक्षश्च सरभश्च महातपाः ।।३२।।
धर्ता धुर्यो धुरिर्भीम(?) अभिमुक्तोऽक्षपात्सहः । धृतिर्वसुरनाधृष्यो रामः कामो जयो विराट् ।।३३।।

वृष, ऋतधामा, दिवस्पृक्, कवि, इन्द्र, रैवन्त, कुमार, वत्सविनायक, वीरभद्र, नन्दी, विश्वकर्मा तथा पुरोजव आदि यहाँ पर आये हुए प्रमुख देवगण तुम्हारा अभिषेक करें ।।१४-१८$\frac{1}{2}$।। नासत्य, अश्विनीकुमार, ध्रुव आदि आठों वसु, दस अङ्गिरस और (चारों) वेद तुम्हारा अभिषेक करें। आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, हविष्मान्, गरिष्ठ, ऋतु तथा सत्य तुम्हारी रक्षा करते रहें। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, धुरि, जय, पुरूरवा, आद्रव, विश्वेदेव, रोचन, अंगारक, सूर्य, निर्ऋति, यम, अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, धूमकेतु, रुद्रज, भरत, मृत्यु, कापालि, किंकिणि, भवन, भावन, स्वजन्य तथा स्वजन तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।१९-२३$\frac{1}{2}$।। क्रतुश्रव, मूर्धा, याजन, उशना, प्रसव, अव्यय, दक्ष, भृगु, सूर, मन, अनुमन्ता, प्राण, नव, अपान, वीर्यवान्, वीतिहोत्र, नय, साध्य, हंस तथा नारायण तुम्हारी रक्षा करें ।।२४-२५$\frac{1}{2}$।। विभु, प्रभु, देवश्रेष्ठ, जगद्धित, धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, विष्णु, बारहों आदित्य, एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशक्र, द्विशक्र, त्रिशक्र, महाबल, इन्द्र, प्रतिमकृत्, मित, संमित, अमित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अनुमित्र, पुरुमित्र, अपराजित, ऋत, ऋतवाक्, धाता, विधाता, धारण, ध्रुव, विधारण, महातेजा, इन्द्रमित्र, ईदृक्ष, अदृक्ष, एतादृक्, अमिताशी, क्रीडित, सदृक्ष, सरभ, महातप, धर्ता, धुर्य, धुरि, अभिमुक्त, अक्षपान, सह, धृति, अनाधृष्य, राम, काम, जय, विराट्, देवगण और उनचासों वायु तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।२६-३३$\frac{1}{2}$।।

---

१ क. ख. ग. ङ.° सो देवास्त्वाऽ°। २ क. ङ. कालः का°। ३ क. ङ. घ. छ. °वा माद्रवा°। ४ क. ङ. रुद्रकाः। ५ क. ख. ग. घ. ङ. नरोऽपा°। ६ ग. देवज्येष्ठा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतस्त्वामवन्तु ते । चित्राङ्गदश्चित्ररथश्चित्रसेनश्च वै कलिः ।।३४।।
ऊर्णायुरुग्रसेनश्च धृतराष्ट्रश्च नन्दकः । हाहाहूहूर्नारदश्च विश्वावसुश्च तुम्बुरुः ।।३५।।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु गन्धर्वा विजयायते । पान्तु ते [1]मुनयो मुख्या दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ।।३६।।
अनवद्या सुकेशी च मेनका सहजन्यया । क्रतुस्थला घृताची च विश्वाची पुञ्जिकस्थला ।।३७।।
प्रम्लोचा चोर्वशी रम्भा पञ्चचूडा तिलोत्तमा । चित्रलेखा लक्ष्मणा च पुण्डरीका च वारुणी ।।३८।।
प्रह्लादो विरोचनोऽथ बलिर्बाणोथ [2]तत्सुतः । एते चान्येऽभिषिञ्चन्तु दानवा राक्षसास्तथा ।।३९।।
हेतिश्चैव प्रहेतिश्च विद्युत्स्फूर्जथुरग्रकाः । यक्षः सिद्धात्मकः पातु मणिभद्रश्च नन्दनः ।।४०।।
पिङ्गाक्षो द्युतिमांश्चैव पुष्पवन्तो जयावहः । शङ्खः पद्मश्च मकरः कच्छपश्च निधिर्जये ।।४१।।
पिशाचा ऊर्ध्वकेशाद्या भूता भूम्यादिवासिनः । महाकालं पुरस्कृत्य नरसिंहं च मातरः ।।४२।।
गुहः स्कन्दो विशाखस्त्वां नैगमेयोऽभिषिञ्चतु । डाकिन्यो याश्च योगिन्यः खेचराभूचराश्च याः ।।४३।।
गरुडश्चारुणः पान्तु संपातिप्रमुखाः खगाः । अनन्ताद्या महानागाः शेषवासुकितक्षकाः ।।४४।।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ । शङ्खः कर्कोटकश्चैव धृतराष्ट्रो धनञ्जयः ।।४५।।
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकाञ्जनो नागाः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ।।४६।।
पैतामहस्तथा हंसो वृषभः शंकरस्य च । दुर्गासिंहश्च पान्तु त्वां यमस्य महिषस्तथा ।।४७।।
उच्चैःश्रवाश्चाश्वपतिस्तथा धन्वन्तरिः सदा । कौस्तुभः[3] शङ्खराजश्च व्रजं शूलं च चक्रकम् ।।४८।।
नन्दकोऽस्त्राणि रक्षन्तु धर्मश्च व्यवसायकः । चित्रगुप्तश्च दण्डश्च पिङ्गलो मृत्युकालकौ ।।४९।।
बालखिल्यादिमुनयो व्यासवाल्मीकिमुख्यकाः । पृथुर्दिलीपो भरतो दुष्यन्तः [4]शत्रुजिद्बली ।।५०।।

चित्राङ्गद, चित्ररथ, चित्रसेन, कलि, ऊर्णायु, उग्रसेन, धृतराष्ट्र, नन्दक, हाहा, हूहू, नारद, विश्वावसु तथा तुम्बुरु तुम्हारा अभिषेक करें। गन्धर्व तुम्हें विजय प्रदान करें ।।३४-३५$\frac{1}{2}$।। प्रमुख मुनिगण, अनवद्या, सुकेशी, मेनका, सहजन्या, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पुंजिकस्थला, प्रम्लोचा, उर्वशी, रम्भा, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, चित्रलेखा, लक्ष्मणा, पुण्डरीका, वारुणी–ये दिव्य अप्सराएँ, प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण, बाणपुत्र–ये तथा अन्य दानव और राक्षस तुम्हारा अभिषेक करें ।।३६-३९।। हेति, प्रहेति, विद्युत्, स्फूर्जथु, अग्रक, यक्ष, सिद्धात्मक, मणिभद्र, नन्दन, पिंगाक्ष, द्युतिमान्, पुष्पवान्, जयावह, शंख, पद्म, मकर, कच्छप, निधि, पिशाच, ऊर्ध्वकेश, आदिभूत, भूमि आदि पर निवास करनेवाले जीव, महाकाल, नरसिंह, मातृगण, गुह, स्कन्द, विशाख तथा नैगमेय तुम्हारा अभिषेक करें ।।४०-४२$\frac{1}{2}$।। डाकिनी, योगिनी, खेचर, भूचर, गरुड़, अरुण, संपाति आदि पक्षी, अनन्त, शेष, वासुकि, तक्षक आदि महानाग, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, शंख, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, धनञ्जय, कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन आदि गज तुम्हारी सब ओर से रक्षा करते रहें ।।४३-४६।। ब्रह्मा का हंस, शंकर का वृष, दुर्गा का सिंह, यम का महिष, अश्वपति, उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि, कौस्तुभ, शंखराज, वज्र, शूल, चक्र, नन्दक तथा अस्त्र तुम्हारी रक्षा करते रहें। धर्म, व्यवसायक, चित्रगुप्त, दण्ड, पिङ्गल, मृत्यु, काल, बालखिल्य, व्यास, वाल्मीकि आदि मुनि, पृथु, दिलीप, भरत, दुष्यन्त, शत्रुजित्,

---

१ ख. च. कुरवो। ग. कुरुवा। घ. छ. कुरूपा। २ ख. ग. घ. छ. °त्सुताः। ए°। ३ क. ङ. च.° भः पाञ्चजन्यश्च। ४ घ. छ. शक्रजि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]मनुः ककुत्स्थश्चानेना [2]युवनाश्वो जयद्रथः। मान्धाता मुचकुन्दश्च पान्तु त्वां च पुरूरवाः ।।५१।।
[3]वास्तुदेवाः पञ्चविंशत्तत्त्वानि विजयाय ते। रुक्मभौमः शिलाभौमः पातालो नीलमूर्तिकः ।।५२।।
पीतरक्तः क्षितिश्चैव श्वेतभौमो रसातलम्। भूर्लोकोऽथ भुवर्मुख्या [4]जम्बूद्वीपादयः श्रिये ।।५३।।
उत्तराः कुरवः पान्तु रम्यो हिरण्यकस्तथा। भद्राश्वः केतुमालश्च वर्षश्चैव बलाहकः ।।५४।।
हरिवर्षः किंपुरुष इन्द्रद्वीपः कशेरुमान्। ताम्रवर्णो गभस्तिमान्नागद्वीपश्च सौम्यकः ।।५५।।
गान्धर्वो वारुणो यश्च नवमः पातु राज्यदः। हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नील एव च ।।५६।।
श्वेतश्च शृङ्गवान्मेरुर्माल्यवान्गन्धमादनः। महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवान्गिरिः ।।५७।।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च गिरयः शान्तिदास्तु ते। ऋग्वेदाद्याः षडङ्गानि इतिहासपुराणकम् ।।५८।।
आयुर्वेदश्च गान्धर्वधनुर्वेदोपवेदकाः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः ।।५९।।
छन्दोऽङ्गानि च वेदाश्च मीमांसा न्यायविस्तरः। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याह्येताश्चतुर्दश ।।६०।।
सांख्यं योगः पाशुपतं वेदा वै पञ्चरात्रकम्। कृतान्तपञ्चकं ह्येतद्गायत्री च शिवा तथा ।।६१।।
दुर्गा विद्या च गान्धारी पान्तु त्वां शान्तिदाश्च ते। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धयः ।।६२।।
चत्वारः सागराः पान्तु तीर्थानि विविधानि च। पुष्करश्च प्रयागश्च प्रभासो नैमिषः परः ।।६३।।
गयाशीर्षो ब्रह्मशिरस्तीर्थमुत्तरमानसम्। कालोदको नन्दिकुण्डतीर्थं पञ्चनदस्तथा ।।६४।।
भृगुतीर्थं प्रभासं च तथा चामरकण्टकम्। जम्बूमार्गश्च विमलः कपिलस्य तथाऽऽश्रमः ।।६५।।
गङ्गाद्वारकुशावर्तौ विन्ध्यको नीलपर्वतः। वराहपर्वतश्चैव तीर्थं कनखलं तथा ।।६६।।
कालंजरश्च केदारो रुद्रकोटिस्तथैव च। वाराणसी महातीर्थं बदर्याश्रम एव च ।।६७।।

बली, मनु, ककुत्स्थ, अनेना, युवनाश्व, जयद्रथ, मान्धाता, मुचकुन्द तथा पुरूरवा तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।४७-५१।। वास्तुदेव तथा पचीस तत्त्व तुम्हारी विजय के लिए हों। रुक्मभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलमूर्तिक, पीतरक्त, क्षिति, श्वेतभौम, रसातल, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा जम्बूद्वीप आदि तुम्हारा कल्याण करते रहें। उत्तरकुरु तुम्हारी रक्षा करते रहें। रम्य, हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, वर्ष, बलाहक, हरिवर्ष, किंपुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यक, गान्धर्व तथा वारुण तुम्हारी रक्षा करते रहें ।।५२-५५½।। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, मेरु, माल्यवान्, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य, पारियात्र आदि पर्वत तुम्हें शान्ति प्रदान करें। इतिहास, पुराण, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्दस्, वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र–ये चौदहों विद्याएँ और सांख्य, योग, पाशुपत (तन्त्र), पञ्चरात्र, कृतान्तपञ्चक, गायत्री, शिवा, दुर्गा, विद्या तथा गान्धारी तुम्हारी रक्षा करती रहें ।।५६-६१½।। लवण, इक्षु, मद्य, घी, दही, दूध तथा जल के समुद्र, चार सागर, विविध तीर्थ–पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिष, गयाशीर्ष, ब्रह्मशिर, उत्तरमानस, कालोदक, नन्दिकुण्ड, पञ्चनद, भृगुतीर्थ, प्रभास, अमरकण्टक, जम्बूमार्ग, विमल, कपिलाश्रम, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्यक, नीलपर्वत, वराहपर्वत, कनखल, कालञ्जर, केदार, रुद्रकोटि, वाराणसी, महातीर्थ बदरिकाश्रम तुम्हारा अभिषेक करें एवं तुम्हारी रक्षा करें ।।६२-६७।।

---

१ घ. छ. मल्लः। २ ङ. पावनाश्वो। ३ क. ङ. वासुदेवः। ४ ग. °दयश्च ये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वारकाश्रीगिरिस्तीर्थं तीर्थं च पुरुषोत्तमः । शालग्रामोऽथ वाराहः सिन्धुसागरसंगमः ।।६८।।
फल्गुतीर्थं विन्दुसरः करवीराश्रमस्तथा । नद्यो गङ्गासरस्वत्यः शतद्रुर्गण्डकी तथा ।।६९।।
अच्छोदा च विपाशा च वितस्ता देविका नदी । कावेरी [1]वरुणा चैव निश्चिरा गोमती नदी ।।७०।।
[2]पारा चर्मण्वती रूपा मन्दाकिनी महानदी । तापी पयोष्णी वेणा च गौरी वैतरणी तथा ।।७१।।
गोदावरी भीमरथी तुङ्ग [3]भद्राऽरणी तथा । चन्द्रभागा शिवा गौरी अभिषिञ्चन्तु पान्तु[4] च ।।७२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिषेकमन्त्रकथनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।२१९।।

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सहायसम्पत्तिः

पुष्कर उवाच

सोऽभिषिक्तः सहामात्योजयेच्छत्रून्नृपोत्तमः । राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ वा ।।१।।
कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतिहारश्च नीतिवित् । दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिबलान्वितः ।।२।।
ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तः[4] क्लेशसहप्रियः । सांधिविग्रहिकः कार्यः षाड्गुण्यादिविशारदः ।।३।।

द्वारका, श्रीगिरि, पुरुषोत्तम, शालग्राम, वाराह, सिन्धुसागरसंगम, फल्गुतीर्थ, विन्दुसर, करवीराश्रम, गंगा, सरस्वती, शतद्रु, गण्डकी, अच्छोदा, विपाशा, वितस्ता, देविका नदी, कावेरी, वरुणा, निश्चिरा, गोमती नदी, पारा, चर्मण्वती, रूपा, मन्दाकिनी, महानदी, तापी, पयोष्णी, वेणा, गौरी, वैतरणी, गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, अरणी, चन्द्रभागा, शिवा तथा गौरी तुम्हारा अभिषेक करें और तुम्हारी रक्षा करती रहें ।।६८-७२।।

श्री अग्निमहापुराण में अभिषेक मन्त्र-कथन नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१९।।

अध्याय २२०

सहायसम्पत्ति

पुष्कर बोले–इस प्रकार अभिषिक्त होकर श्रेष्ठ राजा को मन्त्री के साथ शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करना चाहिए। राजा, ब्राह्मण या क्षत्रिय को अपना सेनापति बनाये ।।१।। राजा का द्वारपाल कुलीन, नीतिशास्त्रज्ञाता तथा (राज) नीति जाननेवाला होना चाहिए। दूत को प्रियवक्ता, बलवान् और हृष्ट-पुष्ट होना चाहिए। ताम्बूल वहन करने के लिए पुरुष या स्त्री होनी चाहिए, परन्तु उसे (राजा की) भक्त, प्रिय और क्लेश को सहन करनेवाली होना चाहिए। सांधि-विग्रहिक को सन्धिविग्रह आदि छह गुणों से सम्पन्न होना चाहिए ।।२-३।। रक्षक को

---

१ क. ङ वरदा। २ ग. परा। ३ ग. घ. छ. °द्राऽग्रणी। ४ ग. घ. छ. वः। ४ क. ङ. भुक्तः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खड्गधारी रक्षकः स्यात्सारथिः स्याद्बलादिवित् । सूदाध्यक्षो हितो विज्ञो महानसगतो हि सः ।।४।।
सभासदस्तु धर्मज्ञा [1]लेखकोऽक्षरविद्धितः । आह्वानकालविज्ञाः स्युर्हिता दौवारिका जनाः ।।५।।
रत्नादिज्ञो धनाध्यक्षो[2] ह्यर्थद्वारे हितो नरः । स्यादायुर्वेदविद्वैद्यो गजाध्यक्षोऽथ हस्तिवित् ।।६।।
जितश्रमो गजारोहो हयाध्यक्षो हयादिवत् । दुर्गाध्यक्षो हितो [3]धीमान्स्थपतिर्वास्तुवेदवित् ।।७।।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते अमुक्ते मुक्तधारिते । अस्त्राचार्यो नियुद्धे च कुशलो नृपतेर्हितः ।।८।।
वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वार्षिकाः स्त्रियः । सप्तत्यब्दास्तु पुरुषाश्चरेयुः सर्वकर्मसु ।।९।।
जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वा वृत्तिर्विधीयते । उत्तमाधममध्यानि ([4]बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ।।१०।।
उत्तमाधममध्यानि) पुरुषाणि (न्वि) नियोजयेत् । जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानान[5]येद्धितान् ।।११।।
धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रामकर्मसु । निपुणा[6]नर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथा शुचीन् ।।१२।।
स्त्रीषु षण्ढाग्नियुञ्जीत तीक्ष्णान्दारुणकर्मसु । यो यत्र[7] विदितो राज्ञा शुचित्वेन तु तं नरम् ।।१३।।
धर्मे चार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् । राजायथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ।।१४।।

खड्गधारी तथा सारथी को सेना आदि का ज्ञाता होना चाहिए। भण्डारी को (राजा का) हितचिन्तक, (पाकशास्त्र का) ज्ञाता तथा रसोई में रहनेवाला होना चाहिए। सभासद (सदस्य) को धर्मज्ञ होना चाहिए। लेखक सुन्दर और शुद्ध लिखनेवाला तथा हितैषी होना चाहिए। द्वारपाल (राजा का) शुभचिन्तक तथा ऐसा होना चाहिए जिसे यह ज्ञात हो कि उसे कब बुलाया जा सकता है ।।४-५।। धनाध्यक्ष (खजाञ्ची) रत्न आदि को परखनेवाला और खजाने का रक्षक (राजा का) हितैषी होना चाहिए। वैद्य आयुर्वेद का ज्ञाता हो और गजाध्यक्ष हाथियों (के स्वभाव) की जानकारी रखनेवाला हो। महावत परिश्रमी होना चाहिए। अश्वाध्यक्ष अश्वों का ज्ञाता होना चाहिए। दुर्ग का अध्यक्ष हितचिन्तक तथा बुद्धिमान् होना चाहिए। स्थपति (कारीगर) को वास्तुवेद (भवन निर्माण-कला) का ज्ञाता होना चाहिए ।।६-७।। जिसे यन्त्रों (मशीनों), धनुष-बाणों तथा खड्ग आदि से युद्ध करना आता हो ऐसा अस्त्राचार्य राजा के लिए हितकारक हुआ करता है। अन्तःपुर का अधिकारी वृद्ध होना चाहिए। यदि वह स्त्री हो तो पचास वर्ष की और यदि पुरुष हो तो सत्तर वर्ष का होना चाहिए। ये लोग सभी काम किया करते हैं ।।८-९।। अस्त्रागार के रक्षक को सतत जागरूक रहना चाहिए जो (अवसर) जानकर कार्य कर सके। राजा को उत्तम, मध्यम और अधम कार्यों की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के मनुष्यों को नियुक्त करना चाहिए। पृथ्वी को जीतने की इच्छा करनेवाले राजा को हितैषी सहायकों की नियुक्ति करनी चाहिए। धर्मनिष्ठों को धर्मकार्य में, शूरों को संग्राम कार्य में, चतुरों को अर्थ कार्य में और निष्कपटों को सभी कार्यों के लिए नियुक्त करना चाहिए ।।१०-१२।। स्त्रियों के लिए नपुंसकों को और कठोर कर्मों के लिए तीक्ष्ण पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए। जो जिस कार्य के योग्य हो उसको उसी में लगाना चाहिए। परन्तु नियुक्ति से पहले नियोज्यों के धर्म आदि की परीक्षा कर लेनी चाहिए। हाथियों के वन का अध्यक्ष वनचरों

---

१ क. ङ. °को रक्षको हितः। २ घ. छ. °ध्यक्ष अ (स्व) नुद्वा°। ३ क. ङ. मान्स्थाप्यते वास्तु°। ४ 'बुद्ध्वा····मध्यानि' क. ङ. पुस्तकयोः नास्ति। ५ क. ङ. च. °यान्मानयेद्विद्वजान्। ६ क. ङ. °णान्गृहकृ°। ७ क. ङ. विहितो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समन्त्री च यथान्यायात्कुर्याद्धस्तिवनेचरान् । तत्पदान्वेषणे यत्तानध्यक्षांस्तत्र कारयेत् ।।१५।।
यस्मिन्कर्मणि कौशल्यं यस्य तस्मिन्नियोजयेत् । पितृपैतामहान्भृत्यान्सर्वकर्मसु योजयेत् ।।१६।।
विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि [1]सभा मताः । परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनान्संश्रयकाम्यया ।।१७।।
दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान्संश्रयेत प्रयत्नतः । दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन्न तद्वृत्तिं वर्तयेद्वशे ।।१८।।
[2]देशान्तरागतान्पार्श्वेचारैर्ज्ञात्वा हि पूजयेत् । शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंशमपि चैकतः ।।१९।।
भृत्यं विशिष्टं विज्ञेयाः कुभृत्याश्च तथैकतः । चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदा चरान् ।।२०।।
जनस्याविहितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परस्परम् । वणिजो मन्त्रकुशलान्सांवत्सरचिकित्सकान् ।।२१।।
तथा प्रव्रजिताकारान्बलाबलविवेकिनः । नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्छ्रद्दध्याद्बहुवाक्यतः ।।२२।।
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् । शुभानामशुभानां च ज्ञानं कुर्याद्वशाय च ।।२३।।
अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद्विरागजम् । जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनरञ्जनात् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सहायसम्पत्तिवर्णनं नाम विंशत्यधिकद्विशततमोध्यायः ।।२२०।।

में से किसी एक दक्ष वनचर को बनाना चाहिए ।।१३-१५।। जो जिस कार्य में निपुण हो उसे उसी कार्य में लगाना चाहिए। पितृ-पितामह से चले आनेवाले नौकरों तथा दाय आदि के विवादों को छोड़कर अन्य सभी कामों में लगाना चाहिए। दूसरे राज्य को छोड़कर शरण पाने की इच्छा से आया हुआ व्यक्ति चाहे दुर्जन हो या सज्जन उसे आश्रय अवश्य देना चाहिए। यदि शरणार्थी दुष्ट हो तो उसका विश्वास न करे, अपितु उसकी जीविका को अपने अधीन रखे ।।१६-१८।। देशान्तर से आये हुए के विषय में गुप्तचर द्वारा पता लगाकर यथावत् व्यवहार करना चाहिए। दुष्ट सेवक एक साथ शत्रु, अग्नि, विष, सर्प तथा तलवार है। राजा को गुप्तचरों की दृष्टि से देखना चाहिए। इसके लिए उसे ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करना चाहिए जो मनुष्य से अज्ञात रहें। बनिये, मन्त्र-तन्त्र करनेवालों, ज्योतिषियों, चिकित्सकों, संन्यासी के वेश में रहनेवालों और बलाबल की परीक्षा करनेवालों के ऊपर एक आदमी के कहने से ही राजा को विश्वास नहीं कर लेना चाहिए, अपितु बहुत आदमियों के कहने से ही उन पर श्रद्धा करनी चाहिए ।।१९-२२।। उसे सेवकों के अनुराग-विराग, प्रजा के गुण-अवगुण तथा शुभ-अशुभ कर्मों का ज्ञान रखना चाहिए। राजा को ऐसा ही कार्य करना चाहिए जिससे लोगों का अनुराग बढ़े। ऐसा कर्म जिससे प्रजा में विराग उत्पन्न हो, छोड़ देना चाहिए। राज्यलक्ष्मी वही है जो जनता का अनुरञ्जन करती रहे और उसी (जन-रञ्जन) से राजा राजा कहलाता है ।।२३-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में सहाय सम्पत्ति वर्णन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२०।।

---

१ घ. छ. समागताः। २ क. ख. ग. ङ. च. °न्तरग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुजीविवृत्तम्

पुष्कर उवाच

भृत्यः कुर्यात्तु राजाज्ञां [1]शिष्यवत्सु स्त्रियः [2]पतेः(त्युः)। न क्षिपेद्वचनं राज्ञो अ (ह्य) नुकूलं प्रियं वदेत् ।।१।।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्। न नियुक्तो हरेद्वित्तं नोपेक्षेत्तस्य[3] मानकम् ।।२।।
राज्ञश्च न तथा कार्यं वेशभाषाविचेष्टितम्। अन्तःपुरचराध्यक्षो[4] वैरभूतैर्निराकृतैः ।।३।।
संसर्गं न व्रजेद्भृत्यो राज्ञो गुह्यं च गोपयेत्। प्रदर्श्य कौशलं किंचिद्राजानं तु[5] विशेषयेत् ।।४।।
राज्ञा यच्छ्रावितं गुह्यं न तल्लोके प्रकाशयेत्। आज्ञाप्यमाने वाऽन्यस्मिन्किं करोमीति वा वदेत् ।।५।।
[6]वस्त्रं रत्नमलङ्कारं राज्ञा दत्तं च धारयेत्। [7]नानिर्दिष्टो द्वारि विशेन्नायोग्ये (ग्य) भुविराजदृक् ।।६।।
जृम्भा निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यङ्किकाश्रयम्[8]। भृकुटीं वातमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत् ।।७।।
स्वगुणाख्यापने युक्त्या परानेव नियोजयेत्। शाठ्यं लौल्यं सपेशून्यं (शु) नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ।।८।।

अध्याय २२१

अनुजीविवृत्त

पुष्कर बोले–सेवक को राजा की आज्ञा का पालन उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार शिष्य गुरु की और पतिव्रता स्त्री पति की आज्ञा का पालन करती है। उसे राजा का वचन भंग नहीं करना चाहिए तथा उसे सदैव राजा के अनुकूल रहकर प्रिय बोलना चाहिए ।।१।। जब राजा एकान्त में हो तब अप्रिय बात भी कही जा सकती है, यदि वह हितकर हो। (कोष में) नियुक्त होने पर धन का अपहरण नहीं करना चाहिए और न तो राजा के सम्मान के विरुद्ध ही कोई कर्म करना चाहिए ।।२।। अन्तःपुर के अधिकारी को उस व्यक्ति के साथ सम्पर्क नहीं करना चाहिए और न राजा के सम्मान के विरुद्ध ही कोई कार्य करना चाहिए। राजा के वेश–भाषा तथा चाल–ढाल का अनुकरण नहीं करना चाहिए ।।३।। अन्तःपुर के अधिकारी को उस व्यक्ति के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहिए जो राजा से उपेक्षित हो तथा उससे वैर रखता हो। सेवक को राजा की गुप्त बात को छिपाये रखना चाहिए। उसे अपने कौशल से राजा को विशेषता प्रदान करनी चाहिए। राजा के द्वारा कही हुई बात को जनता में प्रकट नहीं करना चाहिए ।।४–५।। राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर उसे तुरन्त कहना चाहिए कि मैं क्या करूँ ? उसे राजा के दिये हुए वस्त्र, रत्न तथा आभूषण को धारण करना चाहिए। उसे अनिर्दिष्ट द्वार से प्रवेश नहीं करना चाहिए और जो स्थान जाने योग्य नहीं है वहाँ जाना भी नहीं चाहिए। राजा के समीप जँभाई लेना, थूकना, खाँसना, क्रोध करना, पलँग पर लेटना, त्यौरी चढ़ाना, अपानवायु छोड़ना और डकारना (आदि) नहीं करना चाहिए ।।६–७।। उसे युक्तिपूर्वक दूसरों को अपने गुणों की प्रशंसा में लगाना चाहिए। राजा के सेवक को सदैव शठता,

---

१ घ. छ. °वत्सच्छ्रियः। २ क. ङ. °तेः। नाऽऽक्षिपे°। ३ क. ङ. °क्षेन्नास्य। ४ क. ङ. °क्षो वरैर्भृत्यैर्नि°। ५ क. ङ. न। ६ क. ङ. °स्त्रं पत्रम्°। ७ क. ङ. °र्दिष्टे द्वा°। ८ ख. घ. छ. °र्यन्तिका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राजानुजीविना । श्रुतेन विद्याशिल्पैश्च संयोज्याऽऽत्मानमात्मना ।।९।।
राजसेवां ततः कुर्याद्भूतये भूतिवर्धनः । नमस्कार्या सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।।१०।।
सचिवैर्नास्य विश्वासो राजचित्तप्रियं चरेत् । त्यजेद्विरक्तं रक्तात्तु वृत्तिमीहेत राजवित् ।।११।।
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात्कामं[1] कुर्यात्तथाऽऽपदि । प्रसन्नो वाक्यसंग्राही रहस्ये न च शङ्कते ।।१२।।
कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चाऽऽसनम् । तत्कथाश्रवणाद्धृष्टो अ(ह्य)प्रियाण्यपि नन्दते ।।१३।।
अल्पं दत्तं प्रगृह्णाति स्मरेत्कथान्तरेष्वपि । [2]इति रक्तस्य कर्तव्या[3] सेवाऽन्यस्यविवर्जयेत् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽनुजीविवृत्तकथनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२१।।

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दुर्गसम्पत्तिः

पुष्कर उवाच

दुर्गसम्पत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः । वैश्यशूद्रजनप्रायो ह्यनाहार्यस्तथा परैः ।।१।।

लोभ, पिशुनता, नास्तिकता, क्षुद्रता तथा चपलता का परित्याग कर देना चाहिए। उसे श्रुत, वेद, शास्त्र, विद्या और शिल्प में निपुण होना चाहिए ।।८-९।। तत्पश्चात् राजा की नौकरी करनी चाहिए क्योंकि ऐसा व्यक्ति राजा के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला हुआ करता है। उसे राजा के पुत्रों, मित्रों तथा मन्त्रियों को नमस्कार करना चाहिए। उसे सचिवों पर विश्वास न करके सदैव राजा के मन को रुचिकर लगनेवाला कार्य करना चाहिए। जो (राजा से) विरक्त हों उनका परित्याग करना चाहिए तथा (राजा में) अनुरक्त रहनेवाले से व्यवहार (ज्ञान) की इच्छा करनी चाहिए। उसे बिना पूछे कुछ बोलना नहीं चाहिए और विपत्ति में (अपनी) इच्छा से कार्य करना चाहिए। उसे प्रसन्नचित्त और वाक्यसंयमी होना चाहिए तथा एकान्त में सशंकित नहीं रहना चाहिए ।।१०-१२।। आसन पर बैठ जाने के बाद उसे राजा से कुशलमंगल पूछना चाहिए। राजा का समाचार सुनकर आनन्दित होना चाहिए और उसकी अप्रिय बातों से भी अप्रसन्न नहीं होना चाहिए। राजा थोड़ा-बहुत जो कुछ दे उसे ले लेना चाहिए और बातचीत में उसका स्मरण करते रहना चाहिए। इस प्रकार से (अपने में) अनुरक्त राजा की सेवा करनी चाहिए तथा अपने से विरक्त राजा की सेवा को छोड़ देना चाहिए ।।१३-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में अनुजीविवृत्त-कथन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२१।।

अध्याय २२२

दुर्गसम्पत्ति

पुष्कर बोले-अब मैं दुर्ग (किले) की सम्पत्ति के विषय में कहूँगा। राजा को दुर्ग में निवास करना चाहिए।

---

१ क. ङ. °मं ब्रूयाद्यथाविधि। प्र°। २ इति…विवर्जयेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ घ. छ. °र्तव्यं सेवामान्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

किंचिद्ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्मकरस्तथा। अदेवमातृको [1]भक्तजलो देशः प्रशस्यते ।।२।।
परैरपीडितः पुष्पफलधान्यसमन्वितः। अगम्यः परचक्राणां [2]व्यालतस्करवर्जितः ।।३।।
षण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद्बली। धुनुर्दुर्गं [3]महीदुर्गं नरदुर्ग[4] तथैव च ।।४।।
([5]वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च भार्गव। सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभेदनम्) ।।५।।
पुरं तत्र च हट्टाद्यं देवतायतनादिकम्। ([6]अनुयन्त्रायुधोपेतं सोदकं दुर्गमुत्तमम् ।।६।।
राजरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विषादितः। पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विषार्दनः ।।७।।
शतावरी छिन्नरुहा विषघ्नी तण्डुलीयकम्। कोषातकी च कह्लारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ।।८।।
मण्डूकपर्णी वाराही धात्र्यानन्दकमेव च। उन्मादिनी सोमराजी विषघ्नं रत्नमेव च ।।९।।
वास्तुलक्षणसंयुक्ते वसन्दुर्गे सुरान्यजेत्)। प्रजाश्च पालद्दुष्टाञ्जयेद्दानानि दापयेत् ।।१०।।
देवद्रव्यादिहरणात्कल्पं तु नरकं वसेत्। देवालयानि कुर्वीत देवपूजारतो नृपः ।।११।।
सुरालयाः पालनीयाः स्थापनीयाश्च देवताः। मृण्मयाद्दारुजं पुण्यं दारुजादिष्टकामयम् ।।१२।।
ऐष्टकाच्छैलजं पुण्यं शैलजात्स्वर्णरत्नजम्। क्रीडन्सुरगृहं कुर्वन्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१३।।

दुर्गदेश में वैश्य और शूद्रों की अधिकता होनी चाहिए और ऐसा होना चाहिए जिससे शत्रुओं से अपहरण न हो सके। वहाँ ब्राह्मणों को कम किन्तु शिल्पकारों को अधिक संख्या में होना चाहिए। वह देश प्रशंसनीय हुआ करता है जिसमें जल का समुचित वितरण हो और (जो जल के लिए) देवताओं के ऊपर निर्भर न हो ।।१-२।। उसे शत्रु से सुरक्षित तथा पुष्प, फल और अन्न से समृद्ध होना चाहिए। उसे शत्रु-समूह से अगम्य तथा सर्प और चोर आदि से रहित होना चाहिए ।।३।। बलवान् राजा को छह दुर्गों में से कोई एक दुर्ग बनवाकर उसके अन्दर निवास करना चाहिए। अये भृगुपुत्र! उक्त छह दुर्गों के नाम ये हैं-धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, रक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा गिरिदुर्ग। इनमें सर्वश्रेष्ठ गिरिदुर्ग होता है क्योंकि वह स्वयं अभेद्य होता हुआ दूसरे का भेदन करनेवाला हुआ करता है। वहाँ पुर, हाट तथा देवालय होने चाहिए, यन्त्रों तथा आयुधों से युक्त जलदुर्ग अच्छा होता है ।।४-६।। अब मैं राजा के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। राजा की रक्षा विष आदि से करनी चाहिए। मूत्र में पिसा हुआ पञ्चाङ्ग (पत्र, मूत्र, फल, फूल तथा छाल से युक्त) शिरीष विष का नाशक है। शतावरी, छिन्नरुहा, तण्डुलीयक, कोषातकी, कह्लारी, ब्राह्मी, चित्रपटोलिका, मण्डूकपर्णी, वाराही, धात्री, आनन्दक, उन्मादिनी, सोमराजी-ये ओषधियाँ तथा रत्न भी विषनाशक हैं। वास्तुविद्या के लक्षणों से युक्त दुर्ग में रहते हुए राजा को दुष्टों पर विजय प्राप्त करना चाहिए तथा दान दिलाना चाहिए ।।७-१०।। देवता के द्रव्य आदि का अपहरण करने से एक कल्प तक नरक में निवास करना पड़ता है। राजा को देवालयों का निर्माण तथा देवपूजन करते रहना चाहिए। उसे देवालयों की रक्षा तथा देवताओं की स्थापना करनी चाहिए। मिट्टी के बने हुए देवालय से लकड़ी का बनवाया हुआ मन्दिर (अधिक) पुण्यवान् होता है। लकड़ी की अपेक्षा ईंटों का, ईंटों की अपेक्षा पत्थर का और पत्थर की अपेक्षा सोने और रत्नों का बनवाया हुआ मन्दिर (अधिक) पुण्य देनेवाला हुआ करता है। खेल-खेल में देवालय बनवाने से (भी) भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।११-१३।। (देवालय

---

१ ङ. भुक्तजनो। २ क. ङ. °लसूकर°। ३ ग. महादुर्गं। ४ क. ङ. नखदुर्गं। ५ वार्क्षं...चान्यभदेनम्, पुस्तके नास्ति। ६ अनुयन्त्रायुधोपेतं...सुरान्यजेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्रकृद्गीतवाद्यादिप्रेक्षणीयादिदानकृत् । तैलाज्यमधुदुग्धाद्यैः स्नाप्य देवं दिवं व्रजेत् ।।१४।।
पूजयेत्पालयेद्विप्रान्द्विजस्वं न हरेन्नृपः । सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येकमङ्गुलम् ।।१५।।
हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् । दुराचारं न द्विषेच्च सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।।१६।।
नैवास्ति ब्राह्मणवधात्पापं गुरुतरं क्वचित् । अदैवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्दैवमदैवतम् ।।१७।।
ब्राह्मणा हि [1]महाभागास्तान्नमस्येत्सदैव तु । ब्राह्मणी रुदती हन्ति कुलं राज्यं प्रजास्तथा ।।१८।।
साध्वीस्त्रीणां पालनं च राजा कुर्याच्च धार्मिकः । स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यैकदक्षया ।।१९।।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये च मुक्तहस्तया । यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां शुश्रूषेत्तं पतिं सदा ।।२०।।
मृते भर्तरि स्वर्यायाद्ब्रह्मचर्ये स्थिताऽङ्गना । परवेश्मरुचिर्न स्यान्न स्यात् कलहशालिनी ।।२१।।
मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका । देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्तृहिते रता ।।२२।।
धारयेन्मङ्गलार्थाय किंचिदाभरणं तथा । भर्त्राग्निं या विशेन्नारी साऽपि स्वर्गमवाप्नुयात् ।।२३।।
श्रियः सम्पूजनं कार्यं गृहसम्मार्जनादिकम् । द्वादश्यां कार्तिके विष्णुं गां सवत्सा ददेत्तथा ।।२४।।

में) चित्रकारी, गीत, वाद्य, प्रदर्शनी तथा दान करने से और तेल, घी, मधु आदि से (देवताओं को) स्नान कराने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। राजा को विप्रों का पालन और सम्मान करना चाहिए, और उनके धन का अपहरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि (ब्राह्मण की) एक भी स्वर्ण मुद्रा, एक भी गौ तथा एक अंगुल भी भूमि का अपहरण करने से आकल्पान्त नरक वास करना पड़ता है। ब्राह्मण चाहे दुराचारी हो या महापापी, उससे द्वेष नहीं करना चाहिए ।।१४-१६।। ब्राह्मण हत्या से बढ़कर कोई पाप होता ही नहीं है। ब्राह्मण दुर्भाग्य को सौभाग्य और सौभाग्य को दुर्भाग्य बना सकता है। महाभाग्यशाली ब्राह्मणों को सदैव प्रणाम करना चाहिए। रोती हुई ब्राह्मणी कुल, राज्य तथा प्रजा का नाश कर देती है ।।१७-१८।। धार्मिक राजा को पतिव्रता स्त्रियों का पालन करना चाहिए। स्त्री को प्रसन्नचित्त, गृहकार्य में निपुण, शरीर और गृहस्थी के सामान को साफ-सुथरा तथा सुन्दर ढंग से रखनेवाली और मितव्ययिनी होना चाहिए, (स्त्री का) पिता उसे जिसे दे दे, उस पति की सदा सेवा करनी चाहिए ।।१९-२०।। पति के मर जाने पर स्त्री को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। इससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसे दूसरे के घर में रुचि नहीं करनी चाहिए और झगड़ालू भी नहीं होना चाहिए। जिसका पति परदेश में हो उसे शृंगार छोड़ देना चाहिए। उसे अपने पति के कल्याण की कामना से देवाराधन में तत्पर रहना चाहिए। मंगल (की सूचना) के लिए कुछ आभूषण अवश्य पहने रहना चाहिए ।।२१-२२$\frac{1}{2}$।। जो स्त्री अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाती है, उसे भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्त्री को पूजा करनी चाहिए तथा झाड़ू आदि से घर को साफ रखना चाहिए। कार्तिक मास में द्वादशी को भगवान् विष्णु की पूजा करके बछड़े के साथ गोदान करना चाहिए। क्योंकि सत्याचरण-व्रत के प्रभाव से ही सावित्री ने अपने पति की रक्षा कर ली थी ।।२३-२४$\frac{1}{2}$।।

---

१ च. °न्न हिंस्यात्स°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सावित्र्या रक्षितो भर्ता [1]सत्याचारव्रतेन च। सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाकरम् ।।२५।।
पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दुर्गसम्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२२।।

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामाधिपं नृपः। शतग्रामाधिपं चान्यं तथैव विषयेश्वरम् ।।१।।
तेषां भोगविभागश्च भवेत्कर्मानुरूपतः। नित्यमेव तथा कार्यं तेषां चारैः परीक्षणम् ।।२।।
ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान्ग्रामेशः प्रशमं नयेत्। अशक्यो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत् ।।३।।
श्रुत्वाऽपि दशपालोऽपि तत्र युक्तिमुपाचरेत्। वित्ताद्याप्नोति राजा वै विषयात्तु सुरक्षितात् ।।४।।
धनवान्धर्ममाप्नोति धनवान्काममश्नुते। उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः क्रिया ग्रीष्मे सरिद्यथा ।।५।।
विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च। पतितान्नतु गृह्णाति दरिद्रो न प्रयच्छति ।।६।।

मार्गशीर्ष में शुक्लपक्ष की सप्तमी में सूर्य की पूजा करनेवाली स्त्री पुत्रों को प्राप्त करती है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए ।।२५-२६।।

श्री अग्निमहापुराण में दुर्गसम्पत्ति-वर्णन नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२२।।

अध्याय २२३

राजधर्म

पुष्कर बोले–राजा को एक गाँव का, दस ग्रामों का, सौ ग्रामों का और सम्पूर्ण राज्य का एक मुखिया नियुक्त करना चाहिए। इन्हें क्रमशः ग्रामाधिपति, दशग्रामाधिपति, शतग्रामाधिपति और विषयेश्वर कहा जाता है ।।१।। वेतन उनके कार्य के अनुरूप ही होना चाहिए। गुप्तचरों के द्वारा नित्य ही उनकी परीक्षा करते रहना चाहिए। गाँव में होनेवाले उत्पातों को ग्रामाधिपति को शान्त करना चाहिए। यदि वह इसमें असमर्थ हो तो उसे दशग्रामाधिपति को शान्त करना चाहिए ।।२-३।। दशग्रामाधिपति को भी सुनते ही उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए क्योंकि यदि राज्य सुरक्षित रहता है तो राजा को उससे धन आदि का लाभ रहता है और धनवान् व्यक्ति को धर्म तथा सुख की प्राप्ति होती है। धन के बिना सभी क्रियाएँ उसी प्रकार से नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ। लोक में पतित और निर्धन में कोई अन्तर नहीं हुआ करता है, क्योंकि पतित से कोई (दान) लेता नहीं है और दरिद्र (कुछ) दे ही नहीं सकता है ।।४-६।। धनहीन की स्त्री भी उसके वश में

---

१ क. ङ. सत्यवान्सुब्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धनहीनस्य भार्याऽपि नैव [1]स्याद्वशवर्तिनी । राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरम् ।।७।।
नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणी सहधर्मिणी । यथा स्वं [2]सुखमुत्सृत्य गर्भस्य सुखमावहेत् ।।८।।
किं यज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा [2]यस्य न रक्षिताः । सुरक्षिताः प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः ।।९।।
अरक्षिताः प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम् । [3]राजा षड्भागमादत्ते सुकृताद्दुष्कृतादपि ।।१०।।
([4]धर्मागमो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात् । सुभगा विटभीतेव राजवल्लभतस्करैः ।।११।।
भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याः कायस्थैश्च विशेषतः । रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा ।।१२।।
अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनम् । दुष्टसंमर्दनं कुर्याच्छास्त्रोक्तं करमादरेत्) ।।१३।।
([5]कोषे प्रवेशयेदर्धं नित्यं चार्धं द्विजे ददेत् । निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात्सकलं तथा ।।१४।।
चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं (कं) द्विजः । वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे तु धर्मतः ।।१५।।
अनृतं तु वदन्दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम् । प्रणष्टस्वामिकमृक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।।१६।।
अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् । ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽर्थयुक्तो यथाविधि ।।१७।।
संपाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति । बालदायादिकमृक्थं तावद्राजाऽनुपालयेत् ।।१८।।

नहीं हुआ करती है। राष्ट्र को पीड़ा पहुँचानेवाला राजा चिरकाल तक नरक में निवास करता है। राजा को (प्रजा के प्रति) वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसे कि गर्भवती स्त्री अपने सुख की चिन्ता को छोड़कर गर्भ के सुख का ध्यान रखती है ।।७-८।। उस राजा के यज्ञ और तप से क्या लाभ, जिसकी प्रजा (ही) सुरक्षित नहीं है। जिसकी प्रजा सुखी है उसके लिए घर ही स्वर्ग है; परन्तु जिसकी प्रजा दुःखी है, उसके लिए घर ही नरक है। राजा, प्रजा के पुण्य और पाप दोनों के षष्ठांश का भागी हुआ करता है। प्रजा की रक्षा करने से राजा को धर्मलाभ होता है और रक्षा न करने से उसे पाप का भागी होना पड़ता है। विटों से संत्रस्त सुन्दरी स्त्री के समान राजकर्मचारियों, चोरों तथा विशेषकर कायस्थों से सतायी जानेवाली प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। उनके भय से मुक्त प्रजा ही वास्तव में राजा की प्रजा हुआ करती है ।।९-१२।। अरक्षित प्रजा तो उन दुष्टों का भोजनमात्र बनकर रह जाती है। इसलिए राजा को दुष्टों का दमन करना चाहिए और शास्त्रानुकूल प्रजा से कर लेते रहना चाहिए और आधा भाग ब्राह्मणों को दान में दे देना चाहिए। श्रेष्ठ ब्राह्मण को राजा से प्राप्त सम्पूर्ण निधि को लेकर उसके चौथे, आठवें तथा सोलहवें भाग को वर्णक्रम से सुपात्रों में न्यायपूर्वक बाँट देना चाहिए। मिथ्या बोलनेवाले पर उसके धन का अष्टमांश दण्ड देना चाहिए। जिस धन का स्वामी नष्ट हो गया हो उस धन को राजा को तीन वर्ष तक अपने पास धरोहर के रूप में रखना चाहिए ।।१३-१६।। यदि उसके पहले ही उस धन का कोई अधिकारी राजा से आकर निवेदन करे कि 'यह धन मेरा है' तथा उसका रूप, संख्या आदि चिह्न का पता बताये तो राजा को उसे वह धन लौटा देना चाहिए। जिस सम्पत्ति का अधिकारी बालक हो, देख-रेख राजा को तब तक करना चाहिए जब तक वह बालक योग्य न हो जाय अथवा उसका शैशव समाप्त न हो जाय ।।१७-१८$\frac{1}{2}$।।

---

१ ग. घ. छ. स्यादुपव°। २ क. ङ. येन। ३ 'राजा···तस्करैः' पुस्तके नास्ति। ४ 'धर्मागमो···करमाददेत्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ 'कोषे···दद्यात्स्वयं' पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वाऽतीतशैशवः । बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।।१९।।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च । जीवन्तीनां तु तासां ये संहरेयुश्च बान्धवाः ।।२०।।
ताञ्शिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः । सामान्यतो हृतं चौरैस्तद्वै दद्यात्स्वयं) नृपः ।।२१।।
चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात् । अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः ।।२२।।
न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद्गृहगैर्हृतम् । स्वराष्ट्रपण्यादादद्याद्राजा विंशतिमं द्विज ।।२३।।
शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकम् । ज्ञात्वा संकल्पयेच्छुल्कं लाभं वणिग्यथाऽऽप्नुयात् ।।२४।।
विंशांशं लाभमादद्याद्दण्डनीयस्ततोऽन्यथा । स्त्रीणां प्रव्रजितानां च तरशुल्कं विवर्जयेत् ।।२५।।
तरेषु दासदोषेण नष्टं दासस्तु[1] दापयेत् । शूकधान्येषु षड्भागं शिम्बधान्ये तथाऽष्टमम् ।।२६।।
राजावन्यार्थमादद्याद्देशकालानुरूपकम् । पञ्चषड्भागमादद्याद्राजा पशुहिरण्ययोः ।।२७।।
गन्धौषधिरसानां च [2]पुष्पमूलफलस्य च । पत्रशाकतृणानां च वंशवैणवचर्मणाम् ।।२८।।
वैदलानां च भाण्डानां सर्वश्याश्ममयस्य च । षड्भागमेव चाऽऽदद्यान्मधुमांसस्य सर्पिषः[3] ।।२९।।
प्रियं चापि न वाऽऽदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा करम् । यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ।।३०।।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः । श्रुतं वित्तं च विज्ञाय वृत्तिं तस्य प्रकल्पयेत् ।।३१।।

इसी प्रकार जिस स्त्री का पुत्र छोटा हो अथवा जिसके कुल में कोई हो ही नहीं, जो विधवा हो, दुःखी हो और पतिव्रता हो उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। धार्मिक राजा को चाहिए कि इन (स्त्रियों के) जीवनकाल में ही उनकी सम्पत्ति का अपहरण करनेवालों को चोरों की भाँति दण्ड दे। सामान्यतः यदि उनका धन चोरों के द्वारा चुरा लिया जाय तो राजा को अपनी ओर से (इन्हें) उतना धन देना चाहिए ।।१९-२१।। घर में घर के ही किसी व्यक्ति के द्वारा चुरायी गयी वस्तु के लिए राजा को (कुछ) नहीं देना चाहिए। अये द्विज! अपने राष्ट्र की विक्रेय वस्तुओं का बीसवाँ भाग राजा को कर के रूप में लेना चाहिए। बाहर से आये हुए विक्रेय वस्तु के कर-निर्धारण में उनके निर्माण के मूल्य, आवागमन में टूट-फूट और व्यापारी के द्वारा प्राप्त लाभ को ध्यान में रखना चाहिए ।।२२-२४।। किसी भी दशा में यह कर बीसवें भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें विघ्न डाल देना चाहिए। स्त्रियों और संन्यासियों से कर नहीं लेना चाहिए ।।२५।। शुक धान्य और शिमि धान्य में व्यापार करनेवाले सेवकों के द्वारा घाट या सीमा का कर छिपाये जाने पर राजा को उक्त धान्य का क्रमशः षष्ठांश और अष्टमांश ले लेना चाहिए। राजा को वन्य सम्पत्ति पर देशकाल के अनुरूप कर लगाना चाहिए। राजा को पशुधन और सुवर्ण पर क्रमशः पञ्चमांश और षष्ठांश कर लेना चाहिए ।।२६-२७।। सुगन्धित पदार्थों, ओषधि, रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बाँस, चर्म, बाँस के पात्र पर षष्ठांश कर लेना चाहिए। मधु, मांस तथा घी का भी छठा भाग कर रूप में लेना चाहिए। ब्राह्मणों से कर कभी नहीं लेना चाहिए, चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो। जिस राजा के राज्य में श्रोत्रिय ब्राह्मण भूख से पीड़ित रहा करते हैं उसके राज्य में दुर्भिक्ष, व्याधि तथा चोरों का उपद्रव हुआ करता है ।।२८-३०½।। श्रोत्रिय ब्राह्मण का समाचार पाकर उनकी जीविका का प्रबन्ध कर देना चाहिए।

---

१ घ. छ. दासांस्तु दा°। २ क. ङ. फलपुष्पौषधीषु। ३ ख. ग. घ. छ. षः। प्रियन्नपि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्षेच्च सर्वतस्त्वेनं पिता पुत्रमिवौरसम् । संरक्ष्यमाणो राज्ञा यः कुरुते धर्ममन्वहम् ।।३२।।
तेनाऽऽयुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च । कर्म कुर्युर्नरेन्द्रस्य मासेनैकं च शिल्पिनः ।।३३।।
भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२३।।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच

वक्ष्येऽन्तः पुरचिन्तां च धर्माद्याः पुरुषार्थकाः । अन्योन्यरक्षया तेषां सेवा कार्या स्त्रिया नृपैः ।।१।।
धर्ममूलोऽर्थविटपस्तथा[1] कामफलो महान् । त्रिवर्गपादपस्तत्र रक्षया फलभाग्भवेत् ।।२।।
[2]कामाधीनाः स्त्रियो राम तदर्थं रत्नसंग्रहः । सेव्यास्ता नातिसेव्याश्च भूभुजा विषयैषिणः ।।३।।
आहारो मैथुनं निद्रा सेव्या नाति हि रुग्भवेत्[3] । मञ्चाधिकारे कर्तव्याः स्त्रियः सेव्याः स्वरात्मिका[4] ।।४।।

राजा को ब्राह्मण की रक्षा उसी प्रकार से करनी चाहिए जिस प्रकार से पिता अपने औरस-पुत्र की रक्षा करता है। राजा की देख-रेख में जो श्रोत्रिय ब्राह्मण प्रतिदिन धर्माचरण किया करते हैं उससे राजा की आयु बढ़ती है, उसका धन बढ़ता है और उसका राष्ट्र भी बढ़ता है। कारीगरों को मास में राजा का एक कार्य (बिना पारिश्रमिक के) कर देना चाहिए और जो व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने शरीर पर आश्रित रहना पड़ता है, उन्हें केवल भोजन से राजा का कार्य करना चाहिए ।।३१-३४।।

श्री अग्निमहापुराण में राजधर्म कथन नामक दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२३।।

अध्याय २२४

राजधर्म

पुष्कर बोले-अब मैं अन्तःपुर के नियमों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। धर्म, अर्थ आदि पुरुषार्थों की एक-दूसरे के द्वारा रक्षा करते हुए स्त्री सहित राजाओं को इनका सेवन करना चाहिए। क्योंकि त्रिवर्ग वृक्ष का मूल धर्म है, शाखा अर्थ है और महान् फल काम है। अतएव उस वृक्ष की रक्षा करने से फल की प्राप्ति होती है ।।१-२।। हे राम! स्त्रियाँ काम के अधीन हुआ करती हैं। इसलिए उनके लिए रत्न (आदि धन) का संग्रह करना चाहिए। विषयाभिलाषी राजा को उन कामिनियों का सेवन तो करना चाहिए परन्तु अत्यधिक सेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि आहार, निद्रा और मैथुन का अत्यधिक सेवन करने से रोग उत्पन्न होता है। राजा को शय्या का अधिकार अपनी परमप्रिय

---

१ ग. घ. छ. कर्मफलो। २ क. ङ. कामाधाराः। ३ क. ङ. °त्। नवाधि°। ख. °त्। न चाधि°। च. °त्। न चाभिचारे। ४ छ. स्वरामिकाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दुष्टान्याचरते या तु नाभिनन्दति तत्कथाम्। ऐक्यं द्विषद्भिर्व्रजति गर्वं वहति चोद्धता ।।५।।
चुम्बिता मार्ष्टि वदनं दत्तं न बहु मन्यते। स्वपित्यादौ प्रसुप्ताऽपि तथा पश्चाद्विबुध्यते ।।६।।
स्पृष्टा धुनोति गात्राणि गात्रं च विरुणद्धि या। ईषच्छृणोति वाक्यानि प्रियाण्यपि पराङ्मुखी ।।७।।
न पश्यत्यग्रदत्तं तु जघनं च निगूहति। दृष्टे विवर्णवदना मित्रेष्वथ पराङ्मुखी ।।८।।
तत्कामितासु च स्त्रीषु मध्यस्थेव च लक्ष्यते। ज्ञातमण्डनकालाऽपि न करोति च मण्डनम् ।।९।।
या सा विरक्ता तां त्यक्त्वा सानुरागां स्त्रियं भजेत्। दृष्ट्वैव हृष्टा भवति वीक्षते[1] च पराङ्मुखी ।।१०।।
दृश्यमाना तथाऽन्यत्र दृष्टिं क्षिपति चञ्चलाम्। तथाऽप्युपावर्तयितुं नैव शक्नोत्यशेषतः ।।११।।
विवृणोति तथाऽङ्गानि स्वस्या गुह्यानि भार्गव। गर्हितं च तथैवाङ्गं प्रयत्नेन निगूहति ।।१२।।
तद्दर्शने च कुरुते बालालिङ्गनचुम्बनम्[2]। आभाष्यमाणा भवति सत्यवाक्या तथैव च ।।१३।।
स्पृष्टा पुलकितैरङ्गैः[3] स्वेदेनैव च भज्यते। करोति च तथा राम सुलभद्रव्ययाचनम् ।।१४।।
ततः स्वल्पमपि प्राप्य करोति परमां मुदम्। नामसंकीर्तनादेव मुदिता बहु मन्यते ।।१५।।
करजाङ्काङ्कितान्यस्य फलानि प्रेषयत्यपि। तत्प्रेषितं च हृदये विन्यसत्यपि चाऽऽदरात् ।।१६।।
आलिङ्गनैश्च गात्राणि लिम्पतीवामृतेन या। सुप्ते स्वपित्यथाऽऽदौ च तथा तस्य विबुध्यते ।।१७।।

स्त्री को ही देना चाहिए ।।३-४।। जो कामिनी दुष्ट आचरण करती है, उसकी (राजा की) प्रशंसा नहीं करती, उसके विरोधियों से नाता जोड़ती है, उच्छृंखलतापूर्वक गर्व करती है, चुम्बन करने पर मुँह पोंछ लेती है, (दान) देने पर कुछ नहीं समझती है, (राजा के) पहले ही सो जाती है तथा सोने पर भी बाद में उठती है ।।५-६।। जो स्पर्श करने पर अङ्गों को झिटक देती है तथा अङ्गों को छिपा लेती है, प्रिय बातों को भी पराङ्मुख होकर कम सुनती है, सामने दी हुई चीज की ओर देखती नहीं है, जघन को छिपा लेती है, देखने पर उसका मुख पीला पड़ जाता है, (पति के) मित्रों से पराङ्मुख रहती है, मित्रों की कामिनियों के बीच मध्यस्थ की भाँति प्रतीत होती है, शृंगार का समय जानती हुई भी शृंगार नहीं करती है और विरक्त रहती है–ऐसी स्त्री का परित्याग करके राजा को उस स्त्री का सेवन करना चाहिए जो उसमें अनुरक्त हो ।।७-९$\frac{1}{2}$।। जो (राजा को) देखते ही प्रसन्न हो उठती है, दूसरी ओर से पराङ्मुख होकर उसे देखने लगती है, देखी जाने पर अपनी चञ्चल दृष्टि दूसरी ओर घुमा लेती है, किन्तु (अनुरागातिरेक के कारण) पूर्णरूप से उसकी ओर से विमुख नहीं हो सकती है, जो अपने गुप्ताङ्गों को प्रकट कर देती है किन्तु अपने दूषित अङ्गों को यत्नपूर्वक छिपा लेती है ।।१०-१२।। पति को देखने पर उसका आलिङ्गन-चुम्बन करती है, बातचीत में सच बोलती है और थोड़ी भी अभीष्ट वस्तु प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित हो उठती है, नाम लेने से ही प्रसन्न होकर अपने को धन्य समझने लगती है, नखचिह्न से चिह्नित फलों को भेजने पर भी उसको सम्मानपूर्वक हृदय से लगा लेती है। शरीर का आलिंगन इस प्रकार से करती है मानो उसके ऊपर अमृत का लेप कर रही हो, (पतिदेव के) सोने के बाद सोती है और उसके पहले ही जाग उठती है। जङ्घाओं का स्पर्श करके सोये हुए पति

---

१ ख. छ. वीक्षिते। २ क. ङ. °म्बने। आ°। ३ क. ङ. ङ्गैः सा स्वेदैर्न च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऊरू स्पृशति चात्यर्थं सुप्तं चैनं विबुध्यते । कपित्थचूर्णयोगेन तथा दध्नः स्रजा तथा ।।१८।।
घृतं सुगन्धि भवति दुग्धैः क्षिप्तैस्तथा यवैः । भोज्यस्य कल्पनैवं स्याद्गन्धमुक्तिः प्रदर्श्यते ।।१९।।
[1]शौचमाचमनं राम तथैव च विरेचनम् । भावना चैव पाकश्च[2] बोधनं धूपनं तथा ।।२०।।
वासनं चैव निर्मृष्टं कर्माष्टकमिदं स्मृतम् । कपित्थबिल्वजम्ब्वाम्रकरवीरकपल्लवैः ।।२१।।
कृत्वोदकं तु यद्द्रव्यं शौचितं शौचनं तु तत् । एषामभावे शौचं तु मृगदर्पाम्भसा भवेत् ।।२२।।
नखं कुष्ठं घनं मांसी स्पृक्कशैलेयजं जलम् । तथैव कुङ्कुमं लाक्षा चन्दनागुरुनीरदम् ।।२३।।
सरलं देवकाष्ठं च कर्पूरं कान्तया सह । बालः [3]कुन्दुरुकश्चैव गुग्गुलु श्रीनिवासकः ।।२४।।
सह सर्जरसेनैवं धूपद्रव्यैकविंशतिः । धूपद्रव्यगणादस्मादेकविंशाद्यथेच्छया ।।२५।।
द्वे द्वे द्रव्ये समादाय[4] सर्जभागैर्नियोजयेत् । नखपिण्याकमलयैः संयोज्य मधुना तथा ।।२६।।
धूपयोगा भवन्तीह यथावत्स्वेच्छया कृताः । [5]त्वचं नाडीं फलं तैलं कुंकुमं [6]ग्रन्थिपर्वकम् ।।२७।।
शैलेयं तगरं क्रान्तां चोलं कर्पूरमेव च । मांसीं सुरां च कुष्ठं च स्नानद्रव्याणि निर्दिशेत् ।।२८।।
एतेभ्यस्तु समादाय द्रव्यत्रयमथेच्छया । मृगदर्पयुतं स्नानं कार्यं कन्दर्पवर्धनम् ।।२९।।
त्वङ्मुरानलदैस्तुल्यैर्बालकार्धसमायुतैः । स्नानमुत्पलगन्धि स्यात्सतैलं कुङ्कुमायते ।।३०।।

को जगा लेती है ।।१३-१७$\frac{1}{2}$।। राम! दही के साथ थोड़ा-सा कपित्थ (कैंथ) का चूर्ण मिला देने से जो घी तैयार होता है, उसकी गन्ध उत्तम होती है। घी, दूध आदि के साथ जौ, गेहूँ आदि के आटे का मेल होने से उत्तम खाद्य-पदार्थ तैयार होता है। अब भिन्न-भिन्न द्रव्यों में गन्ध छोड़ने का प्रकार दिखलाया जाता है। शौच, आचमन, विरेचन, भावना,पाक, बोधन, धूपन और वासन– ये आठ प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं ।।१८-२०$\frac{1}{2}$।। कपित्थ, बिल्व, जामुन, आम और करवीर के पल्लवों से जल को शुद्ध करके उसके द्वारा जो किसी द्रव्य को धोकर या अभिषिक्त करके पवित्र किया जाता है, वह उस द्रव्य का शौचन (शोधन अथवा पवित्रीकरण) कहलाता है। इन पल्लवों के अभाव में कस्तूरी मिश्रित जल के द्वारा द्रव्यों की शुद्धि होती है ।।२१-२२।। नख, कूट, घन (नागरमोथा), जटामांसी, स्पृक्क, शैलेयज (शिलाजीत), जल, कुंकुम (केसर), लाक्षा (लाह), चन्दन, अगुरु, नीरद, सरल, देवदारु, कपूर, कान्ता, बाल (सुगन्धबाला), कुन्दुक, गुग्गुल, श्रीनिवास और करायल–ये धूप के इक्कीस द्रव्य हैं। इन इक्कीस धूप द्रव्यों में से अपनी इच्छा के अनुसार दो-दो द्रव्य लेकर उनमें करायल मिलावे। फिर सबमें नख (एक प्रकार का सुगन्ध द्रव्य), पिण्याक (तिल की खली) और मलय चन्दन का चूर्ण मिलाकर सबको मधु से युक्त करे ।।२३-२६।। त्वक्, नाडी, फल, तेल, कुंकुम, ग्रन्थिपर्व, शैलेय, तगर, क्रान्ता, चोल, कर्पूर, जटामांसी, सुरा और कुष्ठ–ये स्नान के द्रव्य बताये गये हैं ।।२७-२८।। इनमें से इच्छापूर्वक तीन-तीन द्रव्यों को लेकर उनमें कस्तूरी मिलाकर स्नान करने से (कन्दर्प) काम बढ़ता है। त्वक्, मुर, अनलद तथा बाल के चूर्ण मिले हुए जल से स्नान करने से कमल की-सी सुगन्धि निकलती है और उसमें तेल मिलाकर स्नान करने से केसर की-सी सुगन्धि आती है ।।२९-३०।। पुनः उसमें

---

१ ङ. शौचं च वमनं। २ क. ङ. °कस्यबो°। ३ क. कुरुन्दक°। ४ च. सर्वगन्धैर्नि°। ५ क. ङ. °चं जातीफ°। ६ क. ग्रन्थिजन्तुकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जातीपुष्पसुगन्धि स्यात्तगरार्धेन योजितम्। सद्धयामकं स्याद्बकुलैस्तुल्यगन्धि मनोहरम् ।।३१।।
मञ्जिष्ठा तगरं चोलं त्वचं व्याघ्रनखं नखम्। गन्धपत्रं च विन्यस्य गन्धतैलं भवेच्छुभम् ।।३२।।
तैलं निपीडितं राम तिलैः पुष्पाधिवासितैः। वासनात्पुष्पसदृशं गन्धेन तु भवेद् ध्रुवम् ।।३३।।
एलालवंगकक्कोलजातीफलनिशाकराः। जातीपत्रिकया सार्धं स्वतन्त्रा मुखवासकाः ।।३४।।
कर्पूरं कुङ्कुमं कान्ता मृगदर्पं हरेणुकम्। कक्कोलैलालवङ्गं च जातीकोशकमेव च ।।३५।।
त्वक्पत्रं त्रुटिमुस्तौ च लतां कस्तूरिकां तथा। कण्टकानि लवंगस्य फलपत्रे च जातितः ।।३६।।
कटुकं च फलं राम कार्षिकाव्युपकल्पयेत्। तच्चूर्णे खदिरं सारं दद्यात्तुर्यं तु वासितम् ।।३७।।
सहकाररसेनास्य कर्तव्या गुटिकाः शुभाः। मुखन्यस्ताः सुगन्धास्ता मुखरोगविनाशनाः ।।३८।।
पूगं प्रक्षालितं सम्यक्पञ्चपल्लववारिणा। शक्त्या तु गुटिकाद्रव्यैर्वासितं मुखवासकम् ।।३९।।
कटुकं दन्तकाष्ठं च गोमूत्र वासितं त्र्यहम्। कृतं च पूगवद्राम मुखसौगन्धि (न्ध्य) कारकम् ।।४०।।
त्वक्पथ्ययोः समावंशौ शशिभागार्धसंयुतौ। नागवल्लीसमो भाति मुखवासो मनोहरः ।।४१।।
एवं कुर्यात् सदा स्त्रीणां रक्षणं पृथिवीपतिः। न चाऽऽसां विश्वसेज्जातु पुत्रमातुर्विशेषतः ।।
न स्वपेत्स्त्रीगृहे रात्रौ विश्वासः कृत्रिमो भवेत् ।।४२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२४।।

तगर का चूर्ण मिला देने से शरीर से मालती पुष्प की-सी सुगन्धि निकलने लगती है। मौलश्री मिलाने से उसी की-सी सुगन्धि निकलने लगती है। मँजीठ, तगर, चोल, त्वक्, व्याघ्रनख, नख तथा गन्धपत्र रख देने से तेल सुगन्धित हो जाता है ।।३१-३२।। अये राम! पुष्पों से सुवासित तिलों को पेरने से तेल से उस पुष्प की सुगन्धि आने लगती है ।।३३।। मुख को सुवासित करने के लिए इलायची, लवंग, कक्कोल, जायफल, कपूर तथा जातीपत्र का व्यवहार करना चाहिए। कर्पूर, कुंकुम, कान्ता, कस्तूरी, हरेणुक, कक्कोल, इलायची, लवंग, जातीकोश, त्वक्पत्र, त्रुटि, मुस्ता, लता, कण्टक तथा कटुक में खैर और आम का रस मिलाकर गोली बनाना चाहिए। उस गोली को मुख में रखने से मुख सुगन्धित तथा रोगरहित हो जाता है ।।३४-३८।। पूर्वोक्त पञ्चपल्लवों के जल से अच्छी तरह सिक्त की हुई सुपारी के साथ उक्त गोली मिलाकर खाने से मुख सुवासित रहता है। कटुक तथा दन्तकाष्ठ को तीन दिनों तक गोमूत्र में छोड़कर उसे सुपारी से सुवासित करके व्यवहार करने से मुख की सुगन्धि बढ़ती है ।।३९-४०।। समान अंश में त्वक् और पथ्य लेकर उनमें आधा भाग कपूर मिलाकर सेवन करने से मुख से पान की-सी सुगन्धि आने लगती है। इस प्रकार राजा को स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। स्त्रियों का तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिए। राजा को रात्रि में स्त्री के कक्ष में नहीं सोना चाहिए अपितु उसके प्रति विश्वास दिखावटी ही होना चाहिए ।।४१-४२।।

श्री अग्निमहापुराण में राजधर्म-कथन नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२४।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच

राजपुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता। धर्मार्थकामशास्त्राणि[1] धनुर्वेदं च शिक्षयेत् ।।१।।
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनमाप्तैर्मिथ्याप्रियंवदैः। शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ।।२।।
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः। अशक्यं तु गुणाधानं कर्तुं तं बन्धयेत्सुखः ।।३।।
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत्। मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशांस्त्यजेन्नृपः ।।४।।
दिवास्वप्नं वृथाट्यां[2] च वाक्यपारुष्यं विवर्जयेत्। निन्दां च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत् ।।५।।
आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया। अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ।।६।।
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च। अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ।।७।।
कामं क्रोधं मदं मानं लोभं [3]दर्पं च वर्जयेत्। ततो भृत्यजयं कृत्वा पौरजानपदं जपेत् ।।८।।
जयेद्बाह्यानरीन्पश्चाद्बाह्याश्च त्रिविधारयः। गुरवस्ते यथापूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः ।।९।।

अध्याय २२५

राजधर्म

पुष्कर बोले–राजा को राजकुमार की रक्षा करनी चाहिए। उसे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, धनुर्वेद तथा शिल्प की शिक्षा विश्वासपात्र लोगों द्वारा दिलानी चाहिए, न कि मिथ्या प्रिय बोलनेवालों से। उसकी शरीर-रक्षा के व्याज से रक्षकों की नियुक्ति करनी चाहिए ।।१-२।। उसे क्रोधी, लोभी तथा पतितों का साथ नहीं करने देना चाहिए। यदि वह गुणों को ग्रहण कर सकने में असमर्थ हो तो उसे सुखों से बाँध देना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह विनयशील राजकुमार को सभी अधिकारों में नियुक्त करे। शिकार, मद्यपान और जुआ–ये सब राज्यनाशक हैं, अतः राजा को इनका परित्याग कर देना चाहिए ।।३-४।। उसे दिन में शयन, व्यर्थ में भ्रमण, कठोर वचन, निन्दा, कठोर दण्ड तथा अर्थ-दोष का परित्याग कर देना चाहिए ।।५।। खानों का विध्वंस तथा अनियमित ढंग से दुर्ग-निर्माण अर्थदोष कहलाता है। उसी को विप्रकीर्णत्व भी कहते हैं। अनुचित स्थान में, अनुचित समय में तथा अनुचित पात्र में जो दान दिया जाता है उसे अर्थदोष कहते हैं और उससे असत् कार्यों की उत्पत्ति होती है। राजा को काम, क्रोध, मद, मान, लोभ का परित्याग कर देना चाहिए। उसे पहले सेवकों को अपने वश में करके पुरवासियों तथा देशवासियों को (भी) वश में कर लेना चाहिए ।।६-८।। तदनन्तर उसे बाह्य शत्रुओं को जीतना चाहिए। बाह्य शत्रु तीन प्रकार के होते हैं–कुलक्रमागत,

---

१ क. ङ. °मसूत्राणि। २ ख. ग. °थावाचं वा°। ३ क. ङ. हर्ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पितृपैतामहं मित्रं सामन्तश्च तथा रिपोः। कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते ।।१०।।
स्वाम्यमात्यो जनपदा दुर्गो दण्डस्तथैव च। कोषो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।।११।।
मूलं स्वामी स वै रक्ष्यस्तस्माद्राज्यं विशेषतः। राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात्काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत् ।।१२।।
एवं लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हासं विवर्जयेत्। भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षणसत्कथम् ।।१३।।
लोकसंग्रहणार्थाय [1]कृतकव्यसनो भवेत्। स्मितपूर्वाभिभाषी स्याल्लोकानां रञ्जनं चरेत् ।।१४।।
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत्। रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।।१५।।
अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते। गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नाऽऽपदो गुप्तमन्त्रतः ।।१६।।
ज्ञायते हि कृतं कर्म नाऽऽरब्धं तस्य राज्यकम्। आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।।१७।।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः। नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं न राजा बहुभिः सह ।।१८।।
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रान्पृथक् पृथक्। मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्री मन्त्रप्रकाशनम् ।।१९।।
क्वापि कस्यापि विश्वासो भवतीह सदा नृणाम्। निश्चयश्च तथा मन्त्रे कार्य एकेन सूरिणा ।।२०।।
नश्येदविनयाद्राजा राज्यं[2] च विनयाल्लभेत्। त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।।२१।।
आन्वीक्षिकीं चार्थविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।।२२।।

जातिक्रमागत और कृत्रिम। अये महाभाग! उसी प्रकार राजा के मित्र भी त्रिविध हुआ करते हैं–पिता–पितामह के मित्र, सामन्त और कृत्रिम ।।९–१०।। अये धर्मज्ञ! राज्य के सात अंग हुआ करते हैं–स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोष और मित्र। परन्तु सबका मूल राजा ही है। इसलिए राजा की और उससे भी बढ़कर राज्य की रक्षा करनी चाहिए। जो व्यक्ति राज्य के उक्त सातों अंगों से द्रोह करता है, उसे मार डालना चाहिए। राजा को समयानुसार कठोर तथा कोमल होना चाहिए। ऐसा करने से राजा के दोनों लोक बन जाते हैं। राजा को सेवकों के साथ हास–परिहास नहीं करना चाहिए। हास–परिहास करने से नौकर–चाकर उसके अनुशासन में नहीं रहते हैं। लोगों को प्रसन्न करने के लिए सेवकों के साथ बनावटी व्यसन में लगे रहना चाहिए, उसे बोलने से पहले मुस्करा देना चाहिए, जिससे लोकानुरञ्जन होता रहे ।।११–१४।। देर से कार्य करनेवाले राजा की कार्यहानि निश्चित रूप से होती है; क्योंकि दीर्घसूत्रता, राग, दर्प, मान, द्रोह, पाप तथा अप्रिय वचन में ही प्रशंसनीय हुआ करती है (अन्यथा नहीं)। राजा को गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिए, क्योंकि गुप्त विचार करने से विपत्तियाँ नहीं आती हैं। कार्य इस प्रकार से करना चाहिए कि वह सम्पन्न होने पर ही ज्ञात हो सके, न कि आरम्भ में ही। आकृति, इङ्गित, गति, चेष्टा, भाषण, नेत्र तथा मुख के विकार से मन की बात जान ली जाती है। राजा को पृथक्–पृथक् (मन्त्री) के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए। एक मन्त्री को भी बहुत से मन्त्रियों से मन्त्रणा को प्रकाशित नहीं करना चाहिए ।।१५–१९।। मनुष्य का विश्वास किसी–न–किसी पर होता ही है, इसलिए किसी एक बुद्धिमान् (मन्त्री) के साथ मन्त्रणा करके निश्चय कर लेना चाहिए। अविनय से राजा के राज्य का नाश हो जाता है किन्तु विनय से राज्य की वृद्धि होती है। त्रैविद्यों (तीन विद्याओं के जानकारों) से शाश्वती, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी तथा अर्थनीति की शिक्षा लेनी चाहिए। बातचीत का ढंग संसार से सीखना चाहिए। जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को अपने वश में कर लेता है। राजा को देवता और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए।

---

१ ख. भृतकव्यसनो। २ क. वृद्धिं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूज्या देव द्विजाः सर्वे दद्याद्दानानि तेषु च । द्विजे दानं चाक्षयोऽयं निधिः कैश्चिन्न नाश्यते ।।२३।।
संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् । दानानि ब्राह्मणानां च राज्ञो निःश्रेयसं परम् ।।२४।।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् । योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत् ।।२५।।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्यं तापसपूजनम् । न विश्वसेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत् ।।२६।।
विश्वासयेच्चापि परं तत्त्वभूतेन हेतुना । बकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ।।२७।।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् । दृढप्रहारी च भवेत्तथा शूकरवन्नृपः ।।२८।।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तिस्थाऽश्ववत् । भवेच्च मधुराभाषी तथा कोकिलवन्नृपः ।।२९।।
काकशङ्की [1]भवेन्नित्यमज्ञातां वसतिं वसेत् । नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं स्पृशेत् ।।३०।।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नाज्ञातं नावमारुहेत् । राष्ट्रकर्षी भ्रश्यते च राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ।।३१।।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् । तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ।।३२।।
सर्वेकर्मेदमायत्तं विधाने दैव पौरुषे । तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ।।
जनानुरागप्रभवा राज्ञो राज्यमहीश्रियः ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२५।।

ब्राह्मणों को दान देने से धन अक्षय हो जाता है जिससे कोई भी कोष का नाश नहीं कर सकता है ।।२०-२३।। संग्राम में मुँह न मोड़ना, प्रजा का सम्यक् रूप से पालन करना और ब्राह्मणों को दान देना-ये तीन कार्य राजा के लिए कल्याणकारक हुआ करते हैं। राजा को कृपण (दीन), अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओं का योग-क्षेम करना चाहिए और उनकी जीविका का प्रबन्ध करना चाहिए। उसे वर्णाश्रम की व्यवस्था और तपस्वियों का सम्मान करना चाहिए। सबका विश्वास नहीं करना चाहिए किन्तु तपस्वियों में विश्वास करना (ही) चाहिए ।।२४-२६।। राजा को अपने चरित्र से दूसरों का भी विश्वासपात्र बनना चाहिए। उसे बगुले की भाँति धनोपार्जन की चिन्ता करनी चाहिए, सिंह की भाँति पराक्रम करना चाहिए, भेड़िये की भाँति (छिपकर) आक्रमण करना चाहिए, खरहे की तरह भागना चाहिए, शूकर की तरह दृढ़ प्रहार करना चाहिए, मयूर की तरह नाना प्रकार का रूप धारण करना चाहिए, अश्व की तरह (दृढ़) भक्ति करनी चाहिए तथा कोयल की भाँति मधुरभाषी होना चाहिए ।।२७-२९।। कौवे की तरह सशंकित रहना चाहिए। उसे अज्ञात स्थान में निवास करना चाहिए। बिना पहले परीक्षा किये (दूसरे के दिये हुए) भोजन तथा शय्या का स्पर्श नहीं करना चाहिए। अनजान स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिए और न अज्ञात नाव पर बैठना चाहिए। राष्ट्र को चूसनेवाला राजा राज्य तथा जीवन दोनों से भ्रष्ट हो जाता है। अये महाभाग! जैसे बछड़े का जितना भरण-पोषण किया जाता है उतना ही वह बलवान् और (भार) वहन करने योग्य बनता है, वैसे ही राष्ट्र का जितना भरण-पोषण किया जाता है उतना ही वह दृढ़ और उन्नतिशील बनता है। संसार के जितने भी कार्य हैं सब भाग्य और पौरुष के अधीन हैं। उनमें दैव तो अचिन्त्य है, किन्तु पौरुष से कार्य की सिद्धि होती है। राजा की राज्यश्री प्रजा का अनुरंजन करने से बढ़ती रहती है ।।३०-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में राजधर्म-कथन नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२५।।

---

१ ख. ग. °न्नित्यं नाज्ञा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामाद्युपायकथनम्

पुष्कर उवाच

स्वयमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्। तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।।१।।
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते। सात्त्विकात्कर्मणः पूर्वात्सिद्धिः स्यात्पौरुषं विना ।।२।।
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति भार्गव। दैवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसः फलावहम् ।।३।।
कृषेर्वृष्टिसमायोगात्काले स्युः फलसिद्धयः। सधर्मं पौरुषं कुर्यान्नालसो न च दैववान् ।।४।।
सामादिभिरुपायैस्तु सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः। साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथाऽपरौ ।।५।।
मायोपेक्षेन्द्रजालं च उपायाः सप्त ताञ्शृणु। द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च ।।६।।
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते। महाकुलीना ह्यृजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ।।७।।
सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि। तथा तदुपकाराणां[1] कृतानां[2] चैव वर्णनम्[3] ।।८।।
परस्परं तु ये द्विष्टाः क्रुद्धभीतावमानिताः। तेषां भेदं प्रयुञ्जीत परमं दर्शयेद्भयम् ।।९।।

अध्याय २२५

सामाद्युपाय-कथन

पुष्कर बोले–पूर्व जन्म में सञ्चित अपने कर्म को ही दैव (भाग्य) समझिये। इसलिए मनुष्यों ने (दैव की अपेक्षा) पौरुष को ही श्रेष्ठ बतलाया है। दैव यदि प्रतिकूल भी हो तो भी पुरुषार्थ करने से उसका निराकरण हो सकता है। हाँ, यदि पूर्व जन्म में कोई सात्त्विक कर्म किया गया हो तो बिना पुरुषार्थ के भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।।१-२।। अये भृगुपुत्र! समय आने पर दैव के बल से पुरुषार्थ फलित हुआ करता है। मनुष्य के लिए दैव और पुरुषार्थ दोनों ही फलित हुआ करता है ।।३।। कृषि (पुरुषार्थ) और वृष्टि (दैव) के योग से समय पर फल प्रदान करते हैं। इसलिए (सदैव) धर्म से युक्त पुरुषार्थ करना चाहिए, न तो आलसी होना चाहिए और न भाग्यवादी। साम आदि उपायों से सब कार्य सिद्ध होते हैं। उपाय सात हैं–साम, दान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल। इनके विषय में सुनिये। साम दो प्रकार के होते हैं–तथ्य और अतथ्य ।।४-६।। उनमें अतथ्य तो सज्जनों के लिए निन्दास्पद है। महाकुलीन, सीधे-सादे, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय (तथ्य) साम (उपाय) के द्वारा अनुकूल बनाये जा सकते हैं। अतथ्य साम से राक्षसों को वशीभूत किया जाता है। सज्जनों के लिए उनके किये उपकारों का वर्णन करना ही पर्याप्त है। जो मनुष्य परस्पर द्वेष करते हों, क्रोधित हों, भयभीत हों तथा अपमानित हों, उनमें (परस्पर) फूट डालकर उन्हें भारी भय दिखाना चाहिए ।।७-९।। तदनन्तर अपनी ओर से आश्वासन प्रदान करना चाहिए। शत्रु

---

१ क. ङ. °दुक्तका°। २ क. ङ. कृतीनां। ३ क. ङ. वर्तनम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मीयां दर्शयेदाशां येन दोषेण बिभ्यति । परास्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वै ज्ञातिभेदकः ।।१०।।
[1]सामन्तकोपो बाह्यस्तु मन्त्रामात्यात्मजादिकः । [2]अन्तःकोषं चोपशाम्यं कुर्वञ्शत्रोश्च तं जपेत् ।।११।।
उपायश्रेष्ठं दानं स्याद्दानादुभयलोकभाक् । न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते ।।१२।।
दानवानेव शक्नोति सहतान्भेदितुं परान् । त्रयासाध्यं साधयेत्तं दण्डेन च कृतेन च ।।१३।।
दण्डे सर्वं स्थितं दण्डी नाशयेद्दुष्प्रणीकृतः[3] । अदण्ड्यान्दण्डयन्नश्येद्दण्ड्यान्राजाऽप्यदण्डयन् ।।१४।।
देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः । उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान्न पालयेत् ।।१५।।
यस्माददान्तान्दमयत्यदण्ड्यान्दण्डयत्यपि । दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ।।१६।।
तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः । लोकप्रसादं[4] गच्छेत दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ।।१७।।
जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजा समीरणः । दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ।।१८।।
यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः । यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ।।१९।।
घनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः । क्षमया धारयँल्लोकान्पार्थिवः पार्थिवो भवेत्।।
उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामाद्युपायकथनं नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२६।।

जिस दोष से डरते हों, उसी दोष का उद्घाटन कर उनमें फूट डाल देना चाहिए। राजा को उस भेदक की सदैव रक्षा करनी चाहिए (जो राजा की ओर से शत्रुओं में फूट डालता है)। शत्रुओं के सामन्त, मन्त्री, अमात्य तथा पुत्र आदि जिस प्रकार उनसे (शत्रुओं से) क्रुद्ध हों, ऐसा उपाय करना चाहिए। राजा को उन शत्रुओं के कोष (खजाने) को भी बर्बाद कर देना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ उपाय है दान क्योंकि दान से दोनों लोकों की प्राप्ति हो जाती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे दान से वशीभूत नहीं किया जा सकता है ।।१०-१२।। (वस्तुतः) दान देनेवाला ही संगठित शत्रुओं में फूट डलवा सकता है। तीनों उपायों से (शत्रु को) वशीभूत न कर सकने पर उसे दण्ड और उपकार से वश में करना चाहिए। दण्ड सबका आधार है, किन्तु अनुचित ढंग से प्रयुक्त दण्ड (राजा का ही) नाश कर देता है। जो राजा अदण्ड्य को दण्ड देता है और दण्ड्य को दण्ड नहीं देता है, उसका नाश हो जाता है। यदि दण्ड का सदुपयोग न किया जाय तो देव, दैत्य, नाग, मनुष्य, सिद्ध, भूत तथा पशु-पक्षी अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़ दिया करते हैं ।।१३-१५।। अदान्त का दमन और अदण्ड्य को दण्डित करने के कारण ही विद्वान् लोग उसे दण्ड कहते हैं। राजा अपने तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य होता है। इसलिए वह सूर्य के समान हुआ करता है। वह अपने दर्शन से लोगों को आह्लादित करता है, अतः चन्द्रमा के तुल्य हुआ करता है ।।१६-१७।। वह सम्पूर्ण संसार में अपने गुप्तचरों से व्याप्त रहता है, अतः वायु है। वह दुष्टों को दण्ड देता है, अतः यमराज है। वह दुर्बद्धि को जलाता है, अतः अग्नि है। वह द्विजातियों को दान देता है, अतः कुबेर है। देवता आदि के ऊपर धाराप्रवाह (घन) की वृष्टि करता है, अतः वरुण कहा गया है। क्षमापूर्वक प्रजा को धारण करता है, अतः राजा पार्थिव (पृथ्वी से उत्पन्न) हुआ करता है। वह उत्साह, शक्ति, मन्त्र आदि से (प्रजा) की रक्षा करता है, अतः हरि है ।।१८-२०।।

श्री अग्निमहापुराण में सामाद्युपाय-कथन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२६।।

---

१ सामन्तकोपो…मजादिकः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. अन्तकोपं। ३ क. ख. ग. ङ. °णीतकः। ४ क. ङ. °सादमिच्छे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दण्डप्रणयनम्

पुष्कर उवाच

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः। [1]त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत् ।।१।।
कृष्णलानां तथा षष्ट्या कर्षार्धं रामकीर्तितम्। सुवर्णश्च विनिर्दिष्टो राम षोडशमाषकः ।।२।।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारो धरणं दशभिस्तु तैः। ताम्ररूप्यसुवर्णानां मानमेतत्प्रकीर्तितम् ।।३।।
[2]ताम्रिकैः कार्षिको राम प्रोक्तः कार्षापणो बुधैः। पणानां द्वे शते सार्धं प्रथमः साहसः स्मृतः ।।४।।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रमपि चोत्तमः। चौरैरमूषितो यस्तु मूषितोऽस्मीति भाषते ।।५।।
तत्प्रदातरि भूपाले स दण्ड्यस्तावदेव तु। ([3]यो यावद्विपरीतार्थं मिथ्या वा यो वदेत्तु तम् ।।६।।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम्)। कू(कौ)टसाक्ष्यं तु कुर्वाणां स्त्रीन्वर्णांश्च प्रदापयेत् ।।७।।
विवासयेद्ब्राह्मणं तु भोज्यो (अन्यो) विधिर्न हीरितः। निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक्तया ।।८।।
वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते। यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।।९।।

अध्याय २२७

दण्डप्रणयन

पुष्कर बोले–अब मैं दण्डविधान बतलाता हूँ, जिसके पालन करने से राजा को उत्तम गति मिलती है। तीन यव के बराबर एक कृष्णल (परिमाण) होता है। पाँच कृष्णलों का एक माष (माशा) और साठ कृष्णलों का आधा कर्ष होता है। अये राम! सोलह माषों का एक सुवर्ण, चार सुवर्णों का एक निष्क और दस निष्कों का एक धरण होता है। यह सोने, चाँदी तथा ताँबे का परिमाण कहा गया है ।।१-३।। अये राम! ताँबे का काम करनेवाले कार्षिक को ही कार्षापण कहते हैं। कार्षापणों का प्रथम साहस, पाँच सौ मध्यम और एक हजार (कार्षापणों) का उत्तम साहस कहा गया है। चोरों के द्वारा चोरी न किये जाने पर भी जो व्यक्ति कहता है कि 'मेरे यहाँ चोरी हो गयी है' और राजा से उतना धन प्राप्त कर लेता है, उसका पता लग जाने पर वह राजा के द्वारा उतने ही दण्ड का भागी होता है जितने की वह माँग करता है। जो (जितने धन के लिए) उल्टा-पुल्टा या मिथ्या बोलता है, उन दोनों अधर्मियों को राजा द्विगुणित दण्ड देता है ।।४-६$\frac{1}{2}$।। झूठी गवाही देनेवाले तीन वर्णों को तो उक्त दण्ड देना चाहिए और ब्राह्मण को देश से निष्कासित कर देना चाहिए क्योंकि उसके लिए और दूसरा विधान ही नहीं है। वस्त्र आदि के निक्षेप (धरोहर) का उपभोग कर लेने पर निक्षेप के मूल्य के बराबर दण्ड देना चाहिए, क्योंकि इसमे धर्म की हानि नहीं होती है। जो निक्षेप को मार देता है और जो बिना निक्षेप

---

१ 'त्रियवं····पञ्चकं भवेत्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ताम्रिकैः····स्मृतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ यो यावद्····दमम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमम् । अज्ञानाद्यः पुमान्कुर्यान्परद्रव्यस्य विक्रयम् ।।१०।।
निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चौरवद्दण्डमर्हति । मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद्दण्ड्य एव सः ।।११।।
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः । भृतिं गृह्य न कुर्याद्यः कर्माष्टौ कृष्णला दमः ।।१२।।
अकाले तु त्यजन्भृत्यं दण्ड्यः स्यात्तावदेव तु । क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।।१३।।
सोऽन्तर्दशाहात्तत्स्वामी दद्याच्चैवाऽऽददीत च । परेण तु दशाहस्य नाऽऽदद्यान्नैव दापयेत् ।।१४।।
आददद्धि ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् । वरदोषानविख्याप्य यः कन्यां वरयेदिह ।।१५।।
दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम् । प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति ।।१६।।
दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः । सत्यंकारेण वाचा च युक्तं पुण्यमसंशयम् ।।१७।।
लुब्धोऽन्यत्र च विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति । दद्याद्धेनुं न यः पालो गृहीत्वा[1] भक्तवेतनम् ।।१८।।
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं वाऽप्यरक्षिता । धनुः शतं परीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः ।।१९।।
द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नगरस्य च कल्पयेत् । वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ।।२०।।
तत्रापरिवृते धान्ये हिंसिते नैव दण्डनम् । गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।।२१।।

किये ही उसकी माँग करता है वे दोनों ही चोर की भाँति द्विगुणित दण्ड के भागी हुआ करते हैं ।।७-९$\frac{1}{2}$।। जो व्यक्ति अज्ञान से दूसरे के द्रव्य को बेच देता है वह निर्दोष है, किन्तु जो जान-बूझकर ऐसा करता है, वह चोर की भाँति दण्डनीय हुआ करता है। जो मूल्य लेकर (भी) वस्तु नहीं देता है वह भी दण्ड का भागी हुआ करता है। जो किसी वस्तु को देने की प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता है उसे सुवर्ण का दण्ड देना चाहिए। जो वेतन लेकर भी काम नहीं करता है उसे आठ कृष्णलों का दण्ड देना चाहिए। (इसी प्रकार) असमय में ही सेवक को छुड़ा देनेवाले को भी आठ कृष्णल दण्ड देना चाहिए। जिसे किसी वस्तु को खरीदकर या बेचकर पश्चात्ताप होता है उसे दस दिनों के अन्दर ही लौटा देना चाहिए या ले लेना चाहिए ।।१०-१३$\frac{1}{2}$।। किन्तु, दस दिनों के बाद न तो लिया जा सकता है और न लौटाया जा सकता है। जो वर के दोषों को छिपाकर कन्या का विवाह कर लेता है, वह दो सौ मुद्राओं के दण्ड का भागी हुआ करता है और (कन्या, विवाह में) प्रदत्त होकर भी अदत्त ही रहती है। जो किसी एक को कन्या दे देने के पश्चात् उसे दूसरे को दे देता है उसे भी राजा को एक हजार पण दण्ड रूप में देना चाहिए ।।१४-१६$\frac{1}{2}$।। जो सत्यता और धर्मपूर्वक किसी एक को (वस्तु बेचने का) वचन देकर लोभवश किसी दूसरे के हाथ उसे बेच डालता है, वह भी छह सौ (मुद्राओं के) दण्ड का भागी हुआ करता है। जो गौ का पालन करने के लिए वेतन लेकर भी गौ को (उसके स्वामी को) लौटाता नहीं है, उसे राजा को सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिए, और यदि उसने गाय की रक्षा भी (उचित रीति से) नहीं की हो तो उसके ऊपर राजा सुवर्ण तक दण्ड कर सकता है। गाँव का विस्तार सौ धनुषों के बराबर होना चाहिए, किन्तु नगर का विस्तार उससे दुगुना, तिगुना होना चाहिए। उसकी चहारदीवारी इतनी ऊँची होनी चाहिए जिसके ऊपर से ऊँट भी न झाँक सके ।।१७-२०।। जिस गाँव में चहारदीवारी नहीं है, वहाँ यदि पशु आदि धान्य को खा ले तो दण्ड नहीं देना चाहिए। जो किसी को डरा-धमकाकर उसके घर, तालाब, उपवन

---

१ क. त्वा भुक्त।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्विशतो दमः । मर्यादाभेदकाः सर्वे दण्ड्याः प्रथमसाहसम् ।।२२।।
शतं ब्राह्मणमानस्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्यश्च द्विशतं राम शूद्रश्च बन्धमर्हति ।।२३।।
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दम्यः क्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्ये वाऽप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ।।२४।।
क्षत्रियस्याऽऽप्नुयाद्वैश्यः साहसं पूर्वमेव तु । शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाछेदनमाप्नुयात् ।।२५।।
धर्मोपदेशं विप्राणां शूद्रः कुर्वश्च दण्डभाक् । श्रुतदेशादिवितथी दाप्यो द्विगुणसाहसम् ।।२६।।
उत्तमः साहसस्तस्य यः पापैरुत्तमान्क्षिपेत् । प्रमादाद्यैर्मया प्रोक्तं प्रीत्या दण्डाऽर्धमर्हति ।।२७।।
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् । आक्षारयञ्शतं दण्ड्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ।।२८।।
अन्त्यजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात् । तदेवच्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ।।२९।।
अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अपमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदम् ।।३०।।
उत्कृष्टासनसंस्थस्य नीचस्याधो निकृन्तनम् । यो यदङ्गं च रुजयेत्तदङ्गं तस्य कर्तयेत् ।।३१।।
अर्धपादकराः कार्या गोगजाश्वोष्ट्रघातकाः । वृक्षं तु विफलं कृत्वा सुवर्णं दण्डमर्हति ।।३२।।
द्विगुणं दापयेच्छिन्ने पथि सीम्नि जलाशये । द्रव्याणि यो हरेद्यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।।३३।।

तथा खेत का अपहरण कर लेता है उसे पाँच सौ दण्ड देना चाहिए। किन्तु जो अनजान में ऐसा करता है उसे दो सौ दण्ड देना चाहिए। मर्यादा-भंग करनेवाले एक हजार दण्ड के भागी हुआ करते हैं। अये राम! ब्राह्मण का अपमान करनेवाला क्षत्रिय सौ मुद्रा दण्ड का भागी होता है, वैश्य दो सौ के दण्ड का भागी होता है और शूद्र कारागार (जेल) के दण्ड का भागी होता है ।।२१-२३।। इसके विपरीत ब्राह्मण, क्षत्रिय का वध करने पर पचास, वैश्य का वध करने पर पचीस और शूद्र का वध करने पर बारह (मुद्राओं के) दण्ड का भागी हुआ करता है। क्षत्रिय का अपमान करनेवाला वैश्य ढाई सौ (पण के) दण्ड का भागी होता है और यदि क्षत्रिय के प्रति शूद्र अपशब्दों का प्रयोग करे तो उसकी जिह्वा (ही) काट लेनी चाहिए। यदि शूद्र ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करे तो उसे दण्ड देना चाहिए ।।२४-२५$\frac{1}{2}$।। वेदादि का अनुचित उपदेश करनेवाला दुगुने दण्ड का भागी होता है। जो उत्तम पुरुषों के साथ पापाचरण करता है, वह एक हजार पण दण्ड का भागी होता है। यदि यह कार्य प्रमादवश हुआ हो तब दण्ड वही है जो मैंने बताया है, किन्तु प्रीतिवश ऐसा अपराध होने पर दण्ड आधा हो जाता है। माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, श्वशुर तथा गुरु को अनुचित बात कहनेवाला और गुरु को मार्ग न देनेवाला भी सौ (पण के) दण्ड का भागी हुआ करता है। जिस अंग से शूद्र द्विजों के प्रति अपराध करे उसका वही अंग कटवा देना चाहिए, इसमें किसी विचार की आवश्यकता नहीं है ।।२६-२९।। राजा को दर्प से ब्राह्मण के ऊपर थूक देनेवाले के दोनों ओष्ठों को कटवा डालना चाहिए। ब्राह्मण के ऊपर अपान वायु तथा मूत्र का विसर्जन करनेवाले की गुदा और लिङ्ग को काट देना चाहिए। (अपने से ऊँचे व्यक्ति के सामने) उत्कृष्ट आसन पर बैठे हुए नीच व्यक्ति का अधोभाग कटवा देना चाहिए। जो जिस अंग से पीड़ा पहुँचाये उसका वही अंग काट देना चाहिए। गाय, हाथी, घोड़ा तथा ऊँट की हत्या करनेवाले का आधा पैर और आधा हाथ कटवा देना चाहिए। सामान्य वृक्ष को काटनेवाला एक सुवर्ण दण्ड का भागी होता है ।।३०-३२।। मार्ग, सीमा तथा जलाशय के वृक्ष को काटनेवाले को इसका दुगुना दण्ड देना चाहिए। जो जाने-अनजाने दूसरों के द्रव्यों का अपहरण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स तस्योत्पाद्य तुष्टिं तु राज्ञे दद्यात्ततो दमम् । यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेच्छिन्द्याच्च तां प्रपाम् ।।३४।।
स दण्डं प्राप्नुयान्मासं दण्ड्यः स्यात्प्राणिताडने । धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोभ्यधिकं वधः ।।३५।।
शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् । सुवर्णरजतादीनां नृस्त्रीणां हरणे वधः ।।३६।।
येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते । तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ।।३७।।
ब्राह्मणः शाकधान्यादि ह्यल्पं गृह्णन्न दोषभाक् । गोदेवार्थं हरंश्चापि हन्याद्दुष्टं वधोद्यतम् ।।३८।।
गृहक्षेत्रापहर्तारं तथा पत्न्यभिगामिनम् । अग्निदं गरदं हन्त्यात्तथा चाभ्युद्यतायुधम् ।।३९।।
राजा गवाभिचारेभ्यो हन्याच्चैवाऽऽततायिनः । परस्त्रियं न भाषेत प्रतिषिद्धो विशेन्न हि ।।४०।।
अदण्ड्यास्त्री भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् । उत्तमां सेवमानं स्त्रीं जघन्यो वधमर्हति ।।४१।।
भर्तारं लङ्घयेद्यातां श्वभिः संघातयेत्स्त्रियम् । सवर्णदूषितां कुर्यात्पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।।४२।।
ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् । वैश्यागमे तु विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे ।।४३।।
क्षत्रियः प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमो भवेत् । गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति ।।४४।।
वेतनं द्विगुणं दद्याद्दण्डं च द्विगुणं तथा । भार्या पुत्राश्च दासाश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ।।४५।।

करता है, उसे द्रव्य के स्वामी को सन्तुष्ट करके राजा को दण्ड देना चाहिए। कुएँ से रस्सी तथा घड़ा चुरानेवाला और प्याऊ को तोड़नेवाला एक मास दण्ड का भागी हुआ करता है। प्राणियों को पीटनेवाला भी दण्डनीय हुआ करता है। दस घड़ों से अधिक अन्न चुरानेवाले का वध कर देना चाहिए ।।३३-३५।। (यदि वध न किया जाय तो) जितना अन्न चुराया गया है, उससे ग्यारह गुना अधिक अन्न दण्ड देना चाहिए। सोना, चाँदी, पुरुष, स्त्री आदि का अपहरण करनेवाला भी वध्य हुआ करता है। चोर जिस अङ्ग से मनुष्यों का अपकार किया करता है उसके उसी अङ्ग को काट देना चाहिए। ब्राह्मण यदि थोड़ा-सा शाक धान्य आदि चुरा ले तो वह दोष का भागी नहीं हुआ करता है। गौ तथा देवता के लिए थोड़ी-सी चोरी करने से दोष नहीं लगता है। वध करने के लिए उद्यत दुष्ट (ही) का वध करवा देना चाहिए ।।३६-३८।। राजा को घर तथा खेल का अपहरण करनेवाले, परस्त्रीगमन करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, किसी को मारने के लिए अस्त्र उठानेवाले तथा गोहत्या करनेवाले आततायियों को मरवा डालना चाहिए। मना किये जाने पर परस्त्री से बातचीत न करना चाहिए और न सहवास करना चाहिए। अपनी इच्छा से पति का वरण करनेवाली स्त्री दण्ड की भागी नहीं होती है, किन्तु अपने से उत्तम (कुल की) स्त्री से सम्भोग करनेवाला पापी वध के योग्य हुआ करता है ।।३९-४१।। जो स्त्री अपने पति का उल्लंघन करती है उसे कुत्तों से कटवा डालना चाहिए। समान वर्ण के पुरुष के द्वारा दूषित की गयी स्त्री को पिण्ड मात्र भोजन पर जीवनयापन करने का दण्ड देना चाहिए। उत्तम वर्ण के पुरुष से दूषित स्त्री के केश कटवा देना चाहिए। वैश्य कुल की स्त्री के साथ समागम करनेवाले ब्राह्मण, शूद्रा के साथ समागम करनेवाले क्षत्रिय के लिए भी यही दण्ड है। शूद्रा के साथ व्यभिचार करनेवाले क्षत्रिय और वैश्य के ऊपर ढाई सौ पण दण्ड करना चाहिए। एक से वेतन लेकर लोभवश दूसरे के पास जानेवाली वेश्या को (वेतन से) दुगुना दण्ड देना चाहिए ।।४२-४४ $\frac{१}{२}$ ।। भार्या, पुत्र, दास, शिष्य, भ्राता तथा सहोदर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृतापराधास्ताड्याः स्युः रज्ज्वा बेणुदलेन वा । पृष्ठेन मस्तके हन्याच्चौ(च्चो)रस्याप्नोति किल्बिषम् ।।४६।।
रक्षार्थाधिकृतैर्यैस्तु प्रजाभ्योऽर्थो विलुप्यते । तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ।।४७।।
([1]ये नियुक्ता स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कर्मिणाम् । निर्घृणाः क्रूरमनसस्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ।।४८।।
अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा । तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्) ।।४९।।
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेयेषु श्वपदं विद्याद्ब्रह्महत्या(घाते)शिरः पुमान् ।।५०।।
शूद्रादीन्घातयेद्राजा पापान्विप्रान्प्रवासयेत् । महापातकिनां वित्तं वरुणायोपपादयेत् ।।५१।।
ग्रामेष्वपि च ये केच्चिच्चौराणां भक्तदायकाः । भाण्डारकोषदाश्चैव सर्वास्तानपि घातयेत् ।।५२।।
राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृतान्सामन्तान्पापिनो हरेत् । संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।।५३।।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् । तडागदेवतागारभेदकान्घातयेन्नृपः ।।५४।।
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तममेध्यं च शोधयेत् ।।५५।।
प्रतिमासंक्रमभिदो दद्युः पञ्चशतानि ते । समैश्च विषमं यो वा चरते मूल्यतोऽपि वा ।।५६।।
समाप्युयान्नर पूर्वं दमं मध्यममेव वा । द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ।।५७।।

भाई यदि अपराध करे तो उसे रस्सी या बाँस के फट्टे से पीटना चाहिए परन्तु चाहे चोर ही क्यों न हो पीठ पर (ही) पीटना चाहिए सिर पर नहीं क्योंकि ऐसा करनेवाला पाप का भागी होता है। प्रजा की रक्षा के निमित्त नियुक्त किये गये अधिकारियों के द्वारा प्रजा के धन का अपहरण कर लिये जाने पर उनका सब-कुछ छीनकर उन्हें देश से निकाल देना चाहिए। किसी कार्य को करने के लिए नियुक्त किये गये मनुष्य यदि उस कार्य को न करके लोगों से घृणा और दुष्टता करने लगें तो राजा को चाहिए कि इन्हें धनहीन कर दे ।।४५-४८।। वह मन्त्री या प्राड्विवाक (न्यायाधीश) जो कार्य को बिगाड़ देता है उसका सर्वस्व छीनकर उसे निर्वासित कर देना चाहिए। गुरुपत्नीगामी के शरीर में योनि का चिह्न बना देना चाहिए, मद्यपान करनेवाले के शरीर में मदिरालय की ध्वजा का, चोरी करनेवाले की देह में कुत्ते के पैर का और ब्रह्महत्या करनेवाले की देह में मनुष्य के सिर का चिह्न बनवा देना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह पापकर्म करनेवाले शूद्रों को मरवा डाले, ब्राह्मणों को देश से निकाल दे और महापापियों के धन को वरुण देवता की आराधना में लगा दे ।।४९-५१।। ग्रामों में भी जो लोग चोरों की सहायता करते हैं या उन्हें भाण्डार तथा कोष (आदि) देते हैं, उन सबको भी मरवा डालना चाहिए। राज्याधिकारी तथा सामन्त आदि यदि पापकर्म करें तो उनका भी सर्वस्व छीन लेना चाहिए। जो चोर रात्रि में सेंध काटकर चोरी करते हैं, उनके दोनों हाथों को कटवाकर उन्हें शूली पर चढ़ा देना चाहिए। राजा को चाहिए कि तालाब और देवालय तोड़नेवालों को मृत्यु दण्ड दे ।।५२-५४।। जो बिना आपत्तिकाल के राजमार्ग में अपवित्र वस्तु डालता है, उसे एक कार्षापण दण्ड देकर उसी से अपवित्र वस्तु की शुद्धि करवानी चाहिए। प्रतिमा तथा पुल (आदि) को भङ्ग करनेवाले पर पाँच सौ कार्षापण दण्ड करना चाहिए। ईमानदार लोगों के साथ वस्तु के गुण या मूल्य को अधिक बतलाकर व्यापार करनेवालों के ऊपर ढाई सौ या पाँच सौ दण्ड करना चाहिए और (उन) व्यापारियों के द्रव्य को लेकर बिना

---

१ ये नियुक्ता···विप्रवासयेत् च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजा पृथक्पृथक्कुर्याद्दण्डमुत्तमसाहसम् । द्रव्याणां दूषको यश्च प्रतिच्छन्दकविक्रयी ।।५८।।
मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम् । कलहापकृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ।।५९।।
अभक्ष्यभक्ष्ये विप्रे वा शूद्रे वा कृष्णलो दमः । तुलाशासनकर्ता च कूटकृन्नाशकस्य च ।।६०।।
एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम् । विषाग्निदां पतिगुरुविप्रापत्यप्रमापिणीम्[1] ।।६१।।
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रवासयेत् । क्षेत्रवेश्मग्रामवनविदारकास्तथा नराः ।।६२।।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना । ऊनं वाऽप्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् ।।६३।।
पारजायिकचौरौ च मुञ्चतो दण्ड उत्तमः । राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तम साहसः ।।६४।।
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः । तमायान्तं[2] पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ।।६५।।
आह्वानकारी वध्यः स्यादनाहूतमथाऽऽह्वयन् । दाण्डिकस्य च यो हस्ताभिमुक्तः पलायते ।।६६।।
हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याद्दाण्डिको धनम् ।।६७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दण्डप्रणयनकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२७।।

मूल्य के ही अपने अधिकार में कर लेना चाहिए ।।५५-५७।। राजा को (अलग-अलग अपराधों के लिए) पृथक्-पृथक् साहस अथवा उत्तम दण्ड देना चाहिए। जो (व्यापारिक दृष्टि से भाव घटाने या बढ़ाने के लिए) चीजों को बिगाड़ देता है या उनकी नकल करता है उसे पाँच सौ पण का दण्ड देना चाहिए। लोगों के साथ छल करनेवाले के ऊपर एक सहस्र पण का दण्ड देना चाहिए। झगड़ा करके अपकार करनेवाले के ऊपर दुगुना (दो हजार पण) दण्ड होना चाहिए। अभक्ष्य का भक्षण करनेवाले ब्राह्मण या शूद्र के ऊपर एक कृष्णल दण्ड करना चाहिए। धूर्त व्यापारी, ठगनेवाले तथा हत्या करनेवाले के साथ जो व्यवहार करता है, उसे एक उत्तम (सहस्र पण) दण्ड देना चाहिए ।।५८-६०$\frac{1}{2}$।। जो स्त्री किसी को विष दे या अग्नि दे या पति, गुरु, सन्तान तथा ब्राह्मण की हत्या करे, उसके कान, नाक, ओष्ठ और हाथ काटकर देश से निकाल देना चाहिए। राजाज्ञा को घटा-बढ़ाकर लिखनेवाले तथा लम्पट और चोर को (बिना दण्ड दिये हुए) छोड़ देनेवाले के ऊपर एक सहस्र पण दण्ड करना चाहिए। राजा के आसन तथा उसकी सवारी पर बैठनेवाला उत्तम साहस (एक हजार पण) के दण्ड का भागी हुआ करता है ।।६१-६४।। जो न्यायतः पराजित हो जाने पर अपनी हार न माने, उसके पराजय की घोषणा करके दुगुना (दो हजार पण) दण्ड देना चाहिए। लड़ाई न चाहनेवाले को ललकारनेवाले को मृत्युदण्ड देना चाहिए। यदि (कोई अपराधी) दण्ड देनेवाले के हाथ से निकल जाय तो उस दण्ड देनेवाले को शक्ति से हीन समझना चाहिए और उसके ऊपर धन का दण्ड करना चाहिए ।।६५-६७।।

श्री अग्निमहापुराण में दण्डप्रणयन-कथन नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२७।।

---

१ क. ङ. °माथिनीम्। २ घ. °न्तं पराजित्य द°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

युद्धयात्रा

पुष्कर उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा। पार्ष्णिग्राहोऽभिभूतो मे तदा यात्रां प्रयोजयेत् ।।१।।
पुष्टा योधा भृता भृत्याः प्रभूतं च बलं मम। मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तैर्वृत्वा शिविरे व्रजेत् ।।२।।
शत्रोर्वा व्यसने यायाद्दैवाद्यैः पीडितं परम्[1]। भूकम्पो यां दिशं याति यां च केतुर्व्यदूषयत् ।।३।।
विद्विष्टनाशकं सैन्यं संभूतान्तः प्रकोपनम्। शरीरस्फुरणे धन्ये तथा सुस्वप्नदर्शने ।।४।।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्। पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ।।५।।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम्। चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरन्मुखे ।।६।।
सेना पदातिबहुला शत्रूञ्जयति सर्वदा। अङ्गदक्षिणभागे तु शस्त्रं प्रस्फुरणं भवेत् ।।७।।

अध्याय २२८

युद्ध-यात्रा

पुष्कर बोले–राजा को युद्ध-यात्रा तब करनी चाहिए जब वह यह समझे कि मेरा मित्र बलवती सेना के द्वारा हार चुका है ।।१।। (राजा को यह विचार करना चाहिए कि) 'मेरे योद्धा हृष्ट-पुष्ट हैं, सेवकों का (भलीभाँति) भरण-पोषण किया गया है, मेरे पास बहुत-सा सैन्यदल है, अतएव मैं अपनी निधि की रक्षा करने में समर्थ हूँ।' तदनन्तर इस प्रकार के योद्धाओं, सेवकों और सेना से घिरकर उसे शिविर में प्रवेश करना चाहिए ।।२।। (युद्ध के लिए) तभी जाना चाहिए जब शत्रु दुर्व्यसन में फँसा हो या दैव आदि (के प्रकोप) से पीड़ित हो। जिस दिशा में भूकम्प हुआ हो तथा पुच्छल तारा दिखायी पड़ा हो उसी दिशा में यात्रा करनी चाहिए। जब शत्रु को नष्ट करने के लिए सैन्य पर्याप्त हो, उसके ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा हो, शरीर में शुभ स्फुरण हो रहा हो, सुन्दर स्वप्न तथा मंगलकारी शकुन हो रहा हो, तब शत्रु के नगर की ओर यात्रा करनी चाहिए ।।३-५।। वर्षा ऋतु में (सेना में) पदातियों तथा हाथियों की अधिकता होनी चाहिए। हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में (सेना में) रथों और घोड़ों की बहुलता होनी चाहिए। वसन्त अथवा शरद् में चतुरिङ्गणी (हाथी, घोड़े, रथ, पदाति से युक्त) सेना की प्रचुरता होनी चाहिए। जिसमें पैदल सेना की अधिकता हो वह (सेना) सदैव शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त कर लेती है। (पुरुष के) अङ्ग के दाहिने भाग का फड़कना शुभ हुआ करता है ।।६-७।। वाम भाग का

---

१ ख. पुरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न शस्तं तु तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च। लाञ्छनं पिटकं चैव विज्ञेयं स्फुरणं तथा ।।
विपर्ययेणाभिहितं सव्ये स्त्रीणां शुभं भवेत् ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धयात्रावर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२८।।

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनम्

पुष्कर उवाच

स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणं तथा। नाभिं विनाऽन्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ।।१।।
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा। मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ।।२।।
उच्चात्प्रपतनं चैव विवाहो गीतमेव च। तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ।।३।।
अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणम्। रक्तपुष्पद्रुमाणां च चण्डालस्य तथैव च ।।४।।
वराहश्वखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया। भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च ।।५।।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च। शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।।६।।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम्। देवद्विजातिभूपानां[1] गुरूणां कोष एव च ।।७।।

फड़कना अशुभ का सूचक हुआ करता है। इसी प्रकार पीठ तथा हृदय के ऊपर तिल का होना तथा फड़कना (भी) अशुभ हुआ करता है। इसके विपरीत स्त्रियों के वाम भाग का फड़कना ही शुभ हुआ करता है ।।८।।

श्री अग्निमहापुराण में युद्धयात्रा-वर्णन नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२८।।

अध्याय २२९

स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरण-कथन

पुष्कर बोले–अब मैं शुभाशुभ का विवेचन करूँगा तथा दुःस्वप्न का उपाय भी बतलाऊँगा। नाभि को छोड़कर तृण और वृक्षों का उगना अशुभसूचक है ।।१।। मस्तक पर कांस्यपात्रों का टूटना, मुण्डन कराना, नग्न होना, मलिन वस्त्र पहनना, शरीर में उबटन लगाना, कीचड़ में फँसना, ऊँचाई से गिरना, विवाह देखना या करना, गीत गाना या सुनना, वीणा बजाना, विनोद करना, झूले पर चढ़ना, कमल तथा लोहा प्राप्त करना, साँपों को मारना, लाल पुष्पों के वृक्षों को देखना, चाण्डाल को देखना, शूकर, कुत्ते, गधे तथा ऊँट पर सवारी करना, पक्षियों का मांस, तेल तथा खिचड़ी खाना, माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्रध्वज और सूर्य-चन्द्र का गिरना (स्वप्न अशुभसूचक हैं) ।।२-६।। आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर उत्पातों को देखना, देवता तथा ब्राह्मण, राजा तथा गुरु का क्रोध, नृत्य तथा हास्य करना

---

१ ख. ग. छ. °भूतानां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च। तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम् ।।८।।
स्त्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा। पङ्कोदकेन च तथा मशी (षी) तोयेन वाऽप्यथ ।।९।।
आलिङ्गनं कुमारीणां[1] पुरुषाणां च मैथुनम्। हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ।।१०।।
दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा। फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ।।११।।
गृहाणां चैव पतनं गृहसंमार्जनं तथा। क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ।।१२।।
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः। काषायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा ।।१३।।
स्नेहपानावगाही च रक्तमाल्यानुलेपनम्। इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभम् ।।१४।।
([2]भूयश्च स्वपनं तद्वत्कार्यं स्नानं द्विजार्चनं। तिलैर्होमो हरिब्रह्मशिवार्कगणपूजनम् ।।१५।।
तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा। स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ।।१६।।
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिकाः। चतुर्थे त्वर्धमासेन दशाहादरुणोदये ।।१७।।
एकस्यामथ चेद्रात्रो शुभं वा यदि वाऽशुभम्। पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत् ।।१८।।
तस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते। शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ।।१९।।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च यथा द्विज। द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च बहुबाहुता ।।२०।।

या देखना, संगीत सुनना या गाना, तन्त्रीवाद्यों से रहित अन्य बाजों का बजाना, नीचे की ओर बहती हुई जलधारा को देखना, गोबर या पङ्क या स्याही मिले हुए जल से स्नान करना, कुमारियों का आलिंगन करना, पुरुषों के साथ मैथुन करना, अपने अङ्गों का हानि देखना, विरेचन या वमन होना, दक्षिण दिशा में यात्रा करना, रोगग्रस्त होना, फलों की बर्बादी देखना, धातुओं में छिद्र देखना, ग्रहों का पतन देखना, घर में झाड़ू देना, पिशाच, राक्षस, वानर तथा चाण्डालों के साथ क्रीड़ा करना, शत्रु से पराजित होना, दुर्व्यसन में फँसना, कषाय वस्त्र धारण करना, कषाय वस्त्रों से खेल करना, तेल पीना या उससे स्नान करना, रक्तमाला पहनना, रक्त चन्दन लगाना–ये सब अशुभ स्वप्न हैं। इनका न कहना ही शुभ हुआ करता है ।।७-१४।। इनके देखने पर पुनः सो जाना चाहिए। पश्चात् स्नान, द्विजपूजन, तिल से हवन, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, सूर्य तथा गणपति की पूजा, स्तुतिपाठ तथा पुरुषसूक्त आदि का जप करना चाहिए। रात्रि के पहले पहर में स्वप्न देखने से उसका फल एक वर्ष में मिलता है, दूसरे पहर में स्वप्न देखने से छह मास में, तीसरे पहर में स्वप्न देखने से तीन मास में, चौथे पहर में स्वप्न देखने से पन्द्रह दिनों में और अरुणोदय काल में स्वप्न देखने से उसका फल दस दिनों में मिल जाता है। एक ही रात्रि में यदि अच्छा-बुरा दोनों प्रकार का स्वप्न दिखायी पड़े तो जो स्वप्न पीछे दिखायी देता है उसी के अनुसार फल मिलता है ।।१५-१८।। अतः सुन्दर स्वप्न दिखायी पड़ने पर बाद में सोना नहीं चाहिए। स्वप्न में पर्वत, प्रासाद, हाथी, घोड़ा तथा बैल पर चढ़ना शुभ हुआ करता है। आकाश में श्वेत पुष्प तथा वृक्षों का देखना, नाभि में तृण, वृक्षों का उत्पन्न होना, अनेक भुजाओं तथा

---

१ च. °णां तासामेव च। २ भूयश्च°°°°वाऽशुभम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च। सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ।।२१।।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च। शक्रध्वजालिङ्गनं च ध्वजोच्छ्राय क्रिया तथा ।।२२।।
भूम्यम्बुधाराग्रहणं शत्रूणां चैव विक्रिया। जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ।।२३।।
भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां पायसस्य च भक्षणम्। दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।।२४।।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाऽप्यथ। अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।।२५।।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषाणां तथा गवाम्। सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च ।।२६।।
[1]प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज। अम्भसा चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ।।२७।।
[2]चन्द्राद्भ्रष्टेन वा राम ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत्। राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ।।२८।।
[3]मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु। लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ।।२९।।
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयम्। हिरण्यं वृषभं गां च [4]कुटुम्बस्तस्य वर्धते ।।३०।।
वृषेभगृहशैलाग्रवृक्षारोहणरोदनम्। घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनं
नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२९।।

सिरों का होना, बाल पकना, शुक्ल माला धारण करना, शुक्ल वस्त्र पहनना, सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराओं को पकड़ना तथा परिमार्जन करना, इन्द्रध्वज का आलिङ्गन करना, ध्वजा फहराना, पृथ्वी पर जलधारा को पकड़ना (रोकना), शत्रुओं को परास्त करना, विवाद, द्यूत तथा संग्राम में विजय प्राप्त करना शुभसूचक स्वप्न हैं ।।१९-२३।। ताजा मांस खाना, खीर खाना, शोणित देखना या शोणित से नहाना, सुरा, रुधिर, दूध और मद्यपान करना, पृथ्वी पर अस्त्र चलाना, निर्मल आकाश देखना, गाय, भैंस, शेरनी, हस्तिनी तथा घोड़ी को मुँह से दुहना, देव, ब्राह्मण तथा गुरु को प्रसन्न देखना, गौ के सींग या चन्द्रमा से गिरते हुए जल से अभिषेक करना, राज्याभिषेक तथा शिरश्छेदन देखना, मृत्यु, अग्नि-प्रवेश, गृहादि में अग्निदाह तथा राजा के छत्र, चामर आदि चिह्नों को देखना और वीणा बजाकर किसी को अभिवादन करते हुए देखना शुभ माना गया है। चन्द्रमा से गिरे हुए जल से अभिषेक देखने से राज्य की प्राप्ति होती है। स्वप्नान्त में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, बैल तथा गाय को देखनेवाले का परिवार बढ़ता है। बैल, हाथी, घर, पर्वत की चोटी तथा वृक्ष पर चढ़ना, रोना, घी अथवा विष्ठा का लेप लगाना और अगम्यागमन करना शुभ हुआ करता है ।।२४-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में स्वप्नशुभाशुभ दुःस्वप्न हरण-कथन नामक
दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२९।।

---

१ क. ङ. प्रासादे। २ क. ङ. चन्द्रदृष्टे°। ३ ङ. °णं च हि लोभं। ४ क. ङ. °टुम्बं तस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच

सितवस्त्रं प्रसन्नाम्भः फलीवृक्षो नभोऽमलम्। औषधानि च युक्तानि धान्यं कृष्णमशोभनम् ।।१।।
कार्पासं तृणशुष्कं च गोमयं वै धनानि च। अङ्गारं [1]गृहसर्जौ च मुण्डाभ्यक्तं च नग्नकम् ।।२।।
अयः पङ्कं चर्मकेशावुन्मत्तं च नपुंसकम्। चण्डालश्वपचाद्याश्च नरा बन्धनपालकाः ।।३।।
गर्भिणी स्त्री [2]च विधवाः पिण्याकादीनि वै मृतम्। तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डमशस्तकम् ।।४।।
अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवझर्झरः[3]। एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः ।।५।।
गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽग्र्यः पुरस्तात्तु विगर्हितः। क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य च ।।६।।
अनिष्टशब्दा [4]मृत्यर्थं क्रव्यादश्च ध्वजादिगः। स्खलनं वाहनानां च[5] शस्त्रभङ्गस्तथैव च ।।७।।
शिरोघातश्च हाराद्यैश्छत्रवासादिपातनम्। हरिमभ्यर्च्य संस्तुत्य स्यादमङ्गल्यनाशनम् ।।८।।
द्वितीयं तु ततो दृष्ट्वा विरुद्धं प्रविशेद्गृहम्। श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भो महोत्तमः ।।९।।
मांसं मत्स्या दूरशब्दा वृद्ध एकः पशुस्त्वजः। गावस्तुरङ्गमा नागा देवाश्च ज्वलितोऽनलः ।।१०।।

अध्याय २३०

शकुन-वर्णन

पुष्कर बोले–श्वेत वस्त्र, निर्मल जल, फल से युक्त वृक्ष, निर्मल आकाश तथा ओषधियाँ–ये शुभ शकुन हैं। कपास, सूखा तृण, गोबर, धन, अंगार, गुड़, शालवृक्ष, मुण्डित, तेल लगाये या नंगे मनुष्य को देखना अशोभनीय होता है ।।१-२।। लोहा, कीचड़, चमड़ा, केश, उन्मत्त, नपुंसक, चाण्डाल आदि कारागार के रक्षक, गर्भिणी स्त्री, विधवा स्त्री, शव, भूसी, भस्म, कपाल, हड्डी, फूटे बर्तन, खली, इनका देखना अशुभ हुआ करता है। भैरवझल्लरी को छोड़कर (अन्य) बाजों का शब्द–अपशकुन हुआ करता है। 'आइये-आइये' शब्द सामने से सुनायी पड़ना अच्छा है परन्तु पीछे से सुनायी पड़ना अशुभ है ।।३-५।। 'कहाँ जा रहे हैं', 'खड़े रहिये', 'मत जाइये', 'वहाँ आपके जाने से क्या लाभ'– इस प्रकार के शब्द अनिष्ट और जानेवाले की मृत्यु के सूचक हुआ करते हैं। मांसभक्षी पक्षियों का ध्वजा के ऊपर गिरना, वाहन का लड़खड़ाना, शस्त्रभङ्ग, सिर में चोट लगना, हार आदि के साथ छाते और वस्त्र आदि का गिरना–ये सब अपशकुन हैं और इनके अमंगल का नाश भगवान् विष्णु की पूजा और स्तुति से हुआ करता है ।।६-८।। दूसरा उपाय यह है कि इस प्रकार के विरुद्ध शकुन को देखकर घर लौट जाय। श्वेत पुष्प श्रेष्ठ हुआ करते हैं, पूर्ण कुम्भ अत्यन्त शुभ है, मांस, मछली, दूर का शब्द, एक वृद्ध, बकरा, गायें, घोड़े, हाथी, देवप्रतिमाएँ, प्रज्वलित अग्नि,

---

१ क. ङ. गुडसर्जौ। घ. गुडसर्पौ। २ क. ख. ग. ङ. च. वधकाः। ३ घ. °वभुर्भुरः। ४ ङ. मृ पूर्व। ५ ख. ग. च. च वस्त्र।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]दूर्वाऽऽर्द्रगोमयं वेश्या स्वर्णं रूप्यं च रत्नकम् । वचासिद्धार्थकौषध्यो [2]मुद्ग आयुधखड्गकम् ।।११।।
छत्रं पीठं राजलिंगं शवं रुदितवर्जितम् । फलं घृतं दधि पयो अ (ह्य) क्षतादर्शमाक्षिकम् ।।१२।।
शङ्ख इक्षुः शुभं वाक्यं भक्तवादित्रगीतकम् । गम्भीरमेघस्तनितं तडित्तुष्टिश्च मानसो ।।
एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३०।।

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच

तिष्ठतो गमने प्रश्ने पुरुषस्य शुभाशुभम् । निवेदयन्ति शकुना देशस्य नगरस्य च ।।१।।
सर्वः पापफलोदीप्तो निर्दिष्टो दैवचिन्तकैः । शान्तः शुभफलश्चैव देवज्ञैः समुदाहृतः ।।२।।
षट्प्रकारा विनिर्दिष्टाः शकुनानां च दीप्तयः । वेलादिग्देशकरणरुतजातिविभेदतः ।।३।।
पूर्वा पूर्वा च विज्ञेया सा तेषां बलवत्तरा । दिवाचरो रात्रिचरस्तथा रात्रौ (त्रि) दिवाचरः ।।४।।
क्रूरेषु दीप्ता विज्ञेया ऋक्षलग्नग्रहादिषु । धूमिता सा तु विज्ञेया यां गमिष्यति भास्करः ।।५।।

दूर्वा, ताजा गोबर, वेश्या, सोना,चाँदी, रत्न, बच तथा सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) आदि ओषधियाँ, मूँग, तलवार आदि अस्त्र, छत्र, आसन, राजा का चिह्न, रोदनवर्जित शव, फल, घी, दही, जल, अक्षत, दर्पण, मधु, शंख, ईख, शुभवाक्य, स्वामिभक्त, बाजा बजानेवालों का गीत, गम्भीर मेघगर्जन, विद्युत् और मानसिक प्रसन्नता–ये सब शुभ शकुन हुआ करते हैं। एक मानसिकता प्रसन्नता ही (सभी) शकुनों से बढ़कर है ।।९-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में शकुन-वर्णन नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३०।।

अध्याय २३१

शकुन-वर्णन

पुष्कर बोले–देश तथा नगर में रहनेवाले अथवा वहाँ से जानेवाले पुरुष का शुभाशुभ पक्षी बतला दिया करते हैं। दैवज्ञों ने पक्षियों के उच्च स्वर को पापफलवाला और धीमे स्वर को शुभफलवाला कहा है। समय, दिशा, देश, करण, रुत (शब्द) तथा जाति के भेद से पक्षियों का स्वर छह प्रकार का हुआ करता है ।।१-३।। इनमें पूर्व-पूर्व का स्वर उत्तरोत्तर स्वर की अपेक्षा अधिक बलवान् हुआ करता है। दिन में दिखायी पड़नेवाला पक्षी यदि रात्रि में शब्द करे और रात्रि में दिखायी देनेवाला दिन में शब्द करे तो यह समझना चाहिए कि वह क्रूर नक्षत्र, लग्न और ग्रह आदि से प्रभावित हैं। जिस दिशा में सूर्य जायगा

---

१ ग. °र्वाऽऽर्द्रा गो°। २ क. ङ. मृद।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यस्यां स्थितः सा ज्वलिता मुक्ता चाङ्गारिणी मता । एतास्तिस्रः स्मृता दीप्ताः पञ्च शान्तास्तथाऽपराः ।।६।।
दीप्तायां दिशि दिग्दीप्तं शकुनं परिकीर्तितम् । ग्रामेऽरण्यावने ग्राम्यास्तथा निन्दितपादपः ।।७।।
देशे चैवाशुभे ज्ञेयो देशदीप्तो द्विजोत्तम । क्रियादीप्तो विनिर्दिष्टः स्वजात्यनुचितक्रियः ।।८।।
रुतदीप्तश्च कथितो भिन्नभैरवनिःस्वनः । जातिदीप्तस्तथा ज्ञेयः केवलं मांसभोजनः ।।९।।
दीप्ताच्छान्तो विनिर्दिष्टः सर्वैर्भेदैः प्रयत्नतः । मिश्रैर्मिश्रो विनिर्दिष्टस्तस्य वाच्यं फलाफलम् ।।१०।।
गोश्वोष्ट्रगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका । चटका भासकूर्माद्याः कथिता ग्रामवासिनः ।।११।।
अजाविशुकनागेन्द्राः कोलो महिषवायसौ । ग्राम्यारण्या विनिर्दिष्टाः सर्वेऽन्ये वनगोचराः ।।१२।।
मार्जारकुक्कुटौ ग्राम्यौ तौ चैव वनगोचरौ । तयोर्भवति विज्ञानं नित्यं वै रूपभेदतः ।।१३।।
गोकर्णशिखिचक्राह्वखरहारीतवायसाः । कुलाहकुक्कुभश्येनफेरुखञ्जनवानराः ।।१४।।
शतघ्नचटकश्यामचास (ष) श्येनकपिञ्जलाः । तित्तिरिः शतपत्रश्च कपोतश्च तथा त्रयः ।।१५।।
खञ्जरीटकदात्यूहशुकराजीवकुक्कुटाः । भारद्वाजश्च सारङ्ग इति ज्ञेया दिवाचराः ।।१६।।
वागुर्युलूकशरभक्रौञ्चाः शशककच्छपाः । लोमासिकाः पिङ्गलिकाः कथिता रात्रिगोचराः ।।१७।।
हंसाश्च मृगमार्जारनकुलर्क्षभुजंगमाः । वृकारिसिंहव्याघ्रोष्ट्रग्रामशूकरमानुषाः ।।१८।।
श्वाविद्वृषभगोमायुवृककोकिलसारसाः[1] । तुरंगकौ पीननरा (?) गोधा ह्युभयचारिणः ।।१९।।

उसे धूमिता कहते हैं ।।४-५।। जिसमें वह स्थित है उसे ज्वलिता कहते हैं और जिस दिशा को वह छोड़ आया है उसे अंगारिणी कहते हैं। इन तीन दिशाओं को दीप्त और शेष पाँच दिशाओं को शान्त कहते हैं। दीप्त दिशा में शब्द करनेवाला पक्षी दिग्दीप्त कहलाता है। जहाँ गाँव में जंगली पशु हों तथा वन में ग्राम्य पशु हों, वह देश निन्दित है। इसी प्रकार जहाँ निन्दित वृक्ष हों वह भी अशुभ है। अये द्विजोत्तम! अशुभ देश में शब्द करनेवाला पक्षी भी देश फल को प्राप्त करता है। अपने स्वभाव से अनुचित व्यवहार करनेवाला पक्षी अशुभ क्रियावाला कहलाता है ।।६-८।। भैरव शब्द करनेवाला पक्षी अपने शब्द के कारण अशुभ माना जाता है। केवल मांस का आहार करनेवाले पक्षी स्वभाव से अशुभ हुआ करते हैं। सभी प्रकार के भेदों से प्रयत्नपूर्वक उच्च ध्वनि (वाले पक्षी) से शान्त ध्वनि (वाले पक्षी) का निर्देश कर दिया गया है। अब उसके फलाफल को कहना है। गाय, घोड़ा, ऊँट, गधा, कुत्ता, मैना, छिपकली, गौरैया, भास (पक्षी-विशेष) तथा कछुये आदि ग्रामवासी जीव कहलाते हैं ।।९-११। बकरी, भेंड़ा तोता, हाथी, सूकर, महिष, कौआ-ये (जीव) ग्राम्य और आरण्य दोनों कहलाते हैं। (इनके अतिरिक्त) अन्य जीव वन्य हैं। बिलाड़ और मुर्गा ग्राम्य होते हुए वन में भी देखे जाते हैं। रूपभेद से उनकी पहचान का निश्चय हो जाता है ।।१२-१३।। साँप, मयूर, चक्रवाक, गधा, हारिल, कौआ, कुलाह, जंगली मुर्गा, बाज, गीदड़, खंजन, बन्दर, (मादा) बिच्छू, गौरैया, श्यामा, नीलकण्ठ, चातक, कठफोड़वा, कबूतर, खंजरीट, जलकाक, तोता, सारस, कुक्कुट, शरदूलपक्षी और सारङ्ग-ये दिवाचर जीव हैं ।।१४-१६।। वागुरि, उलूक, शरभ, क्रौञ्च, शशक, कच्छप, शृगाली, पिंगरिक-ये रात्रिचर (जीव) हैं ।।१७।। हंस, मृग, बिलाड़, नेवला, रीछ, सर्प, कुत्ता, सिंह, बाघ, ऊँट, ग्राम्यशूकर, मनुष्य, साही, बैल, गीदड़, भेड़िया, कोयल, सारस, पीननर और गोह-ये उभयचर हैं ।।१८-१९।।

---

१ क. ङ. °साः। कुरङ्गगोपीततरा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]बलप्रस्थानयोः सर्वे पुरस्तात्संघचारिणः । जयावहा विनिर्दिष्टाः पश्चान्निधनकारिणः ।।२०।।
गृहाद्गम्य यदा चासो (षो)[2] व्याहरन्पुरतः स्थितः । नृपावमानं वदति वामः कलहभोजने ।।२१।।
याने तद्दर्शनं शस्तं सव्यमङ्गस्य वाऽप्यथ । चौरैर्मोघमथाऽऽख्याति मयूरो भिन्न निःस्वनः ।।२२।।
प्रयातस्याग्रतो राम मृगः प्राणहरो भवेत् । ऋक्षाखुजम्बुकव्याघ्रसिंहमार्जारगर्दभाः ।।२३।।
प्रतिलोमास्तथा राम खरश्च विकृतस्वनः । वामः कपिञ्जलः श्रेष्ठस्तथा दक्षिणसंस्थितः ।।२४।।
पृष्ठतो निन्दिफलस्तित्तिरस्तु न शस्यते । [3]एणा वराहाः पृषता वामा भूत्वा तु दक्षिणाः ।।२५।।
भवन्त्यर्थकरा नित्यं विपरीता विगर्हिताः । वृषाश्वजम्बुकव्याघ्राः सिंहमार्जारगर्दभाः ।।२६।।
वाञ्छितार्थ करा ज्ञेया दक्षिणाद्वामतो गताः । शिवा श्यामाननाच्छुच्छूः पिङ्गलाः गृहगोधिका ।।२७।।
शूकरी परिपुष्टा च पुंनामानश्च वामतः । स्त्रीसंज्ञाभासकारूषकपिश्रीकर्णाच्छित्करः ।।२८।।
कपिश्रीकर्णपिप्पीका रुरुश्येनाश्च दक्षिणाः । जातोक्षाहिशशक्रोडगोधानां कीर्तनं शुभम् ।।२९।।
ततः संदर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः । कार्यकृद्बली शकुनः प्रस्थितस्य हि योऽन्वहम् ।।३०।।
भवेत्तस्य फलं वाच्यं तदेव दिवसं बुधैः । मत्ता भक्ष्यार्थिनी बाला वैरसक्तास्तथैव च ।।३१।।

रण में या यात्रा-काल में यदि ये उपर्युक्त जीव आगे झुण्ड बनाकर निकलते हुए दिखायी दें तो विजय प्राप्त होती है और यदि पीछे से निकलते दिखायी पड़ें तो (मृत्यु) क्षति करनेवाले हुआ करते हैं। घर से निकलते ही यदि सामने बोलता हुआ नीलकण्ठ दिखयी दे तो राजा से अपमान होता है। यदि वही वाम भाग में बैठकर बोलता हुआ नीलकण्ठ दिखायी पड़े तो भोजन में कलह होता है ।।२०-२१।। सवारी पर बैठ चुकने पर यदि बायें या सामने की ओर मोर दिखायी दे तो शुभ हुआ करता है। यात्रा-काल में टूटे-फूटे शब्दोंवाला मयूर चोरों के आक्रमण को बतलाता है। हे राम! यात्रा करनेवाले के आगे की ओर (दिखलायी पड़नेवाला) मृग प्राणों का नाश करनेवाला हुआ करता है। रीछ, चूहा, सियार, बाघ, सिंह, बिलाड़ तथा गधा यदि प्रस्थान के समय सामने दिखायी पड़ें तो अशुभ फल होता है। गधे का रेंकना भी अशुभ हुआ करता है। बायें और दायें भाग में दिखायी पड़नेवाला कपिञ्जल पक्षी शुभ हुआ करता है परन्तु पीछे की ओर दिखायी पड़नेवाला निन्दित फल प्रदान करता है। तीतर का किसी भाग में दिखलायी पड़ना शुभ नहीं हुआ करता है। हिरन तथा सुअर आदि बायें भाग से दाहिनी ओर जायँ तो धन की प्राप्ति होती है किन्तु इसके विपरीत होने पर निन्दित फल मिलता है ।।२२-२५$\frac{1}{2}$।। बैल, घोड़ा, गीदड़, बाघ, सिंह, बिलाड़ तथा गधा यदि दायें से बायें की ओर जायँ तो अभीष्ट फल प्राप्त होता है। शृगाली, मयूरी, छुछुन्दरी, जाति-विशेष का उलूक, छिपकली, शूकरी तथा कोकिला का बायें से दाहिनी ओर जाना-ये सब पुँल्लिंग शकुन माने गये हैं। भास, कारुष, कपिश्रीकर्ण, पिप्पीक, रुरु तथा श्येन का दायीं से बायीं ओर जाना शुभ हुआ करता है। यात्रा-काल में जातिक, सर्प, खरहा, शूकर तथा गोधा का शब्द शुभ माना गया है ।।२६-२९।। वानर और रीछ का विपरीत दिशा में दिखायी पड़ना शुभ नहीं होता है। पशु-पक्षियों के द्वारा निर्दिष्ट शकुन बलवान् हुआ करते हैं और उसी दिन फल प्रदान कर देते हैं जिस दिन वे होते हैं। अये ब्राह्मण! यात्रा-काल में किसी पशु के कंकाल को खाती हुई, शब्द करती हुई

---

१ क. ङ. रणप्रस्थानयोः। ख. ग. रथप्रस्थानयोः। २ छ. °हरेत्पुर°। ३ क. ख. शशा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सीमान्तमभ्यन्तरिता विज्ञेया निष्कला द्विज। एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु शिवा धन्या रुतैर्भवेत् ।।३२।।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिरधन्या परिकीर्तिता। सप्तभिश्च तथा धन्या निष्फला परतो भवेत् ।।३३।।
नृणां रोमांच जननी वाहनानां भयप्रदा। ज्वालानला सूर्यमुखी विज्ञेया भयवर्धिनी ।।३४।।
प्रथमं सारंगे दृष्टे शुभे देशे शुभं वदेत्। संवत्सरं मनुष्यस्य अशुभे च शुभं तथा ।।३५।।
तथाविधं नरः पश्येत्सारङ्गं प्रथमेऽहनि। आत्मनश्च तथात्वेन ज्ञातव्यं वत्सरं फलम् ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३१।।

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच

विशन्ति येन मार्गेण वायसा बहवः पुरम्। तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ।।१।।
सेनायां यदि वा सार्थे [1]निविष्टो वायसो [2]रुदन्। वामो भयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरम् ।।२।।
छायाङ्गवाहनोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने। मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभम् ।।३।।

या अपने भाग के लिए झगड़ती हुई एक, दो, तीन, चार शृगालियों का (एक साथ) शब्द करना शुभ माना जाता है। परन्तु पाँच-छह शृगालियों का एक साथ मिलकर शब्द करना अशुभ हुआ करता है ।।३०-३२$\frac{१}{२}$।। सात शृगालियों का एक साथ बोलना शुभ हुआ करता है, परन्तु इससे अधिक शृगालियों का (एक साथ) बोलना मनुष्यों के लिए रोमाञ्चकारी और वाहनों के लिए भयप्रद होता है। ज्वलामुखी (नामक शृगाली-विशेष) का सूर्याभिमुख होकर शब्द करना भयवर्धक हुआ करता है। शुभ देश में हरिण को देखने से एक ही दिन में शुभ फल मिल जाता है, परन्तु अशुभ देश में देखने से एक वर्ष में शुभ फल मिलता है। इसी प्रकार वर्ष के प्रथम दिन में हरिण देखने से वर्ष भर शुभ फल प्राप्त हुआ करता है ।।३३-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में शकुनवर्णन नामक दो सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३१।।

अध्याय २३२

शकुन-वर्णन

पुष्कर बोले-(शत्रु सेना से अवरुद्ध) नगर में जिस मार्ग से बहुत से कौए प्रवेश करें उसी मार्ग से उस पर आक्रमण करना चाहिए ।।१।। यदि समूह में बैठा हुआ कौआ भयभीत या त्रस्त होकर रोता हुआ उड़ जाय तो वह सेना की घोर विपत्ति का सूचक हुआ करता है। यदि यात्रा के समय कौआ मनुष्य की छाया, देह, वाहन, जूते तथा वस्त्र आदि में चोंच मार दे तो उसकी मृत्यु समझनी चाहिए। इसका निराकरण कौए की पूजा करने से किया जा सकता है ।।२-३।।

---

१ क. ङ. प्रहृष्टो। २ घ. छ. रुवन्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रोषितागमकृत्काकः कुर्वन्द्वारि गतागतम् । रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन्वह्निनिवेदकः ।।४।।
न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनम् । पीतं द्रव्यं तथा रुक्मरूप्यमेव तु भार्गव ।।५।।
यच्चैवोपनयेद्द्रव्यं तस्य लब्धिं विनिर्दिशेत् । द्रव्यं वाऽपनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ।।६।।
पुरतो धनलब्धिः स्यादाममांसस्य छर्दने । भूलब्धिः स्यान्मृदः क्षेपे राज्यं रत्नार्पणे महत् ।।७।।
यातुः काकोऽनुकूलस्तु क्षेमः कर्मक्षमो भवेत् । न त्वर्थसाधको ज्ञेयः प्रतिकूलो भयावहः ।।८।।
संमुखेऽभ्येति विरुवन्यात्राघातकरो भवेत् । वामः काकः स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थविनाशकृत ।।९।।
वामोऽनुलोमगः श्रेष्ठः मध्यमो दक्षिणः स्मृतः । प्रतिलोमगतिर्वामो गमनप्रतिषेधकृत् ।।१०।।
निवेदयति यात्रार्थमभिप्रेतं गृहे गतः । एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावहः ।।११।।
कोटरे वासमानश्च[1] महानर्थकरो भवेत् । न शुभस्तूषरे काकः पङ्काङ्कः स तु शस्यते ।।१२।।
अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः । ज्ञेया पतत्रिणोऽन्येऽपि काकवद्भृगुनन्दन ।।१३।।
स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः । इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे ।।१४।।

दरवाजे पर कौए का आना-जाना प्रवासी के पुनरागमन का सूचक हुआ करता है। घर में कौए का किसी लाल अथवा जली हुई वस्तु का गिराना घर में आग लगने की सूचना दिया करता है। कौए के द्वारा सामने गिरायी हुई लाल वस्तु बन्धन की सूचना दिया करती है। अये भार्गव! कौए के द्वारा सामने गिरायी हुई लाल वस्तु बन्धन की सूचना दिया करती है। अये भार्गव! कौए के द्वारा गिरायी हुई पीली व श्वेत वस्तु क्रमशः सोने या चाँदी की प्राप्ति की सूचना देती है। कौआ (घर में) जो वस्तु ले आता है, उसकी प्राप्ति होती है तथा जिस द्रव्य को अपने यहाँ से उठा ले जाता है, उसकी हानि की ओर संकेत करता है ।।४-६।। यदि कौआ सामने की ओर कच्चा मांस काट रहा हो तो धन का लाभ होता है। यदि कौआ (घर में) मिट्टी गिरा दे तो भूमि-लाभ और यदि रत्न गिरा दे तो बहुत बड़े राज्य की प्राप्ति होती है। यदि कौआ यात्री के अनुकूल दिखायी पड़े तो यात्री का कल्याण हुआ करता है और वह अपने कार्य में समर्थ होता है, किन्तु यदि वह यात्री प्रतिकूल हो तो वह कार्य की असफलता तथा भय का सूचक हुआ करता है। यात्रा के समय शब्द करता हुआ कौआ यदि सामने जा जाय तो वह यात्रा में बाधा पहुँचाता है। वाम भाग में कौए का आना शुभ हुआ करता है और दक्षिण भाग में आने से वह धन का विनाश करनेवाला हुआ करता है ।।७-९।। यात्रा करनेवाले की ही दिशा में वाम भाग में कौए का उड़ना श्रेष्ठ और दक्षिण भाग में उड़ना मध्यम कोटि का माना जाता है। परन्तु (यात्री के) वाम भाग में उलटी दिशा में उड़नेवाला कौआ यात्री का निषेध करनेवाला हुआ करता है। (यात्रा के समय) घर में कौए के आ जाने से यात्रा का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। उस समय एक पैर पर खड़ा हुआ और एक आँख से सूर्य की ओर देखता हुआ कौआ भय उत्पन्न करनेवाला हुआ करता है। घोंसले में बैठे हुए कौए का देखना महान् अनर्थकारी हुआ करता है। ऊसर में बैठा हुआ कौआ शुभ नहीं हुआ करता है। किन्तु कीचड़ में बैठा हुआ कौआ शुभ हुआ करता है ।।१०-१२।। मुँह में अपवित्र वस्तु रखे हुए कौए को देखने से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। अये भार्गव! कौए की भाँति अन्य पक्षियों (के शुभाशुभ शकुनों) को समझना चाहिए। छावनी के दक्षिण की ओर इन्द्रमन्दिर के सम्मुख अथवा

---

१ क. ङ. °हानन्दक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेद्भषन्। यस्य जिघ्राति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ।।१५।।
भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथा भुजमदक्षिणम्। यात्राघातकरो यातुर्भवेत्प्रतिमुखागतः ।।१६।।
मार्गावरोधको मार्गे चौरान्वदति भार्गव। अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचीरमुखस्तथा ।।१७।।
सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च। अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशं चैवाशुभं तथा ।।१८।।
अवमूत्र्याग्रतो याति यस्य तस्य भयं भवेत्। यस्यावमूत्र्य व्रजति शुभं देशं तथा द्रुमम् ।।१९।।
मङ्गल्यं च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्थसिद्धये। श्ववच्च राम विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः ।।२०।।
भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं रुतं गवाम्। निशि चौरभयाय स्याद्विकृतं मृत्यवे तथा ।।२१।।
शिवाय स्वामिनो रात्रौ बलीवर्दो नदन्भवेत्। उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं संप्रयच्छति ।।२२।।
[1]अभक्ष्यं भक्षयन्त्यश्च गावो दत्तास्तथा स्वकाः। त्यक्तस्नेहाः स्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः ।।२३।।
भूमिं पादैर्विनिघ्नन्त्यो[2] दीना भीता भयावहाः। आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलग्नमृदः शुभाः ।।२४।।
महिष्यादिषु चाप्येतत्सर्वं वाच्यं विजानता। आरोहणं तथाऽन्येन सपर्याणस्य वाजिनः ।।२५।।
जलोपवेशनं नेष्टं भूमौ च परिवर्तनम्। विपत्करं तुरंगस्य सुप्तं वाऽप्यनिमित्ततः ।।२६।।

राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर भौंकता हुआ कुत्ता क्रमशः ब्राह्मणों, राजा और प्रासादरक्षक की मृत्यु की सूचना दिया करता है। इसी प्रकार घर के अन्दर भौंकनेवाला कुत्ता गृहस्वामी की मृत्यु की सूचना दिया करता है। कुत्ता (यात्रा के लिए उद्यत) जिस मनुष्य के वाम अंग को सूँघ लेता है उसका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है ।।१३-१५।। किन्तु दाहिने अंग और बायीं भुजा को सूँघने से भय उत्पन्न हुआ करता है। यात्री के सामने से आता हुआ कुत्ता यात्रा में विघ्न उत्पन्न करनेवाला हुआ करता है। अये भार्गव! मार्ग को रोककर खड़ा हो जानेवाला कुत्ता मार्ग में चोरों की सूचना दिया करता है। (यात्रा के समय) मुँह में हड्डी लिये कुत्ते को देखने से हानि होती है और रस्सी या चिथड़ा लपेटे हुए कुत्ते को देखना शुभ हुआ करता है। मुख में अमांगलिक वस्तुओं तथा केशों को लिये कुत्ते को (यात्रा के समय) देखना अशुभ हुआ करता है ।।१६-१८।। (यात्रा के समय) जिसके आगे-आगे मूत्र को विसर्जित करता हुआ कुत्ता चलता रहता है उनका कल्याण होता है। हे राम! कुत्ते की भाँति सियार (आदि) का भी उपर्युक्त मांगलिक वस्तुओं और स्थानों के सम्बन्ध से शकुन हुआ करता है। रात्रि में उसका इस प्रकार का शब्द चोरों के भय की सूचना देता है, परन्तु उनका विकृत स्वर (में रँभाना स्वामी की) मृत्यु का सूचक होता है। रात्रि में बैल का जोर से रँभाना स्वामी के कल्याण के लिए होता है। छूटा हुआ बैल राजा को विजय प्रदान करता है ।।१९-२२।। अभक्ष्य तथा ऐसी वस्तुओं का भक्षण करनेवाली जो उन्हें प्रकृति से प्राप्त नहीं है, और अपने बछड़ों से स्नेह रखनेवाली गायें (स्वामी के परिवार में) गर्भक्षय की सूचना देती हैं। ऐसी गायें स्वामी के लिए शुभ होती हैं जो पैरों से भूमि खोदती रहती हों, दीन, भयभीत अथवा भयावह हों, जिनके अंग गीले हों, जिनमें रोमाञ्च हो रहा हो, जिनके शरीर में मिट्टी लगी हुई हो। बुद्धिमान् मनुष्य को भैंसों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार (शुभाशुभ) समझना चाहिए ।।२३-२४$\frac{1}{2}$।। जिसके ऊपर काठी रखी हुई है उस घोड़े के ऊपर (स्वामी के अतिरिक्त) किसी अन्य का सवार होना, घोड़े का जल में बैठ जाना और भूमि पर लोटना अनिष्टकारक हुआ करता है। घोड़े का अकारण सोना भी विपत्तिकारक हुआ करता है। घोड़े का अकस्मात्

---

१ छ. अभय। २ क. ङ. °न्त्यो दिवाभी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यवमोदकयोर्द्वेषस्त्वकस्माच्च न शस्यते। वदनाद्रुधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ।।२७।।
क्रीडन्बकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृतिं वदेत्। साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेही विनष्टये ।।२८।।
वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुन्धराम्। स्वपेद्वा वामपार्श्वेन दिवा वा न शुभप्रदः ।।२९।।
भयाय स्यात्सकृन्मूत्री तथा निद्राविलाननः। आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ।।३०।।
यात्राविघातमाचष्टे वामपार्श्वं तथा स्पृशन्। हेषमाणः शत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः ।।३१।।
ग्रामे व्रजति नागश्चेन्मैथुनं देशहा भवेत्। प्रसूता नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः ।।३२।।
आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत्। मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरो भवेत् ।।३३।।
वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः। दक्षिणं च तथा दन्तं परिमार्ष्टि करेण च ।।३४।।
वृषोऽश्वः कुञ्जरो वाऽपि रिपुसैन्यगतोऽशुभः। खण्डमेघातिवृष्ट्या तु सेनानाशमवाप्नुयात् ।।३५।।
प्रतिकूलग्रहर्क्षात्तु तथा संमुखमारुतात्। यात्राकाले रणे वाऽपि च्छत्रादिपतनं भयम् ।।३६।।
हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वैजयलक्षणम्। काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्भिर्मण्डलक्षयः ।।
प्राचीपश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३२।।

यव तथा मोदक से द्वेष करने लगना अच्छा नहीं माना जाता है। इसी प्रकार उसके मुँह से (बिना किसी कारण के) रक्त बहना और उसका काँपना भी अशुभ हुआ करता है ।।२५-२७।। घोड़े का बगुले, कबूतर एवं मैना के साथ खेल करना मृत्यु का सूचक है। (घोड़े का) आँखों में आँसू भरकर अपनी चिह्वा से पैर चाटना (स्वामी के) विनाश का द्योतक है। (घोड़े का) बायें पैर से भूमि खोदना तथा बायें करवट होकर दिन में सोना शुभ (फल) का देनेवाला नहीं है। (घोड़े का) भय के कारण (दिन में) एक बार मूत्र विसर्जित करना, (अकारण) निद्रालु रहना, (सवार को) अपने ऊपर चढ़ने न देना अथवा उलटे घर को ही भागना और अपने वाम पार्श्व को छूना यात्रा में हानि करनेवाला हुआ करता है ।।२८-३०$\frac{1}{2}$।। पाद-स्पर्श करते ही शत्रु योद्धा के ऊपर (जोर-जोर से) हिनहिनाने लगनेवाला हुआ करता है। गाँव में मैथुन करनेवाला हाथी देश को नष्ट करनेवाला हुआ करता है। नवप्रसूता हथिनी यदि पागल हो जाय तो वह राजा के विनाश के लिए हुआ करती है। यदि हाथी (अपने ऊपर किसी को) चढ़ने न दे, उलटे घर भाग जाय या मद टपकाये तो वह राजा का विनाश करनेवाला हुआ करता है ।।३१-३३।। दाहिने पैर से बायें पैर को बाँधनेवाला या सूँड़ से अपने दाहिने दाँत को रगड़नेवाला हाथी शुभ हुआ करता है। बैल, हाथी तथा घोड़े यदि शत्रु की सेना में मिल जायँ तो अमङ्गल समझना चाहिए। बादल के टुकड़े से होनेवाली अतिवृष्टि सेना का विनाश कर डालती है ।।३४-३५।। यात्रा-काल में या रण में यदि ग्रह-नक्षत्र प्रतिकूल हों और सामने की ओर वायु चल रहा हो तथा (राज) छत्र आदि गिर पड़े तो भय समझना चाहिए। प्रसन्न प्रजा और अनुकूल ग्रह विजय के लक्षण हुआ करते हैं। योद्धाओं के ऊपर कौए आक्रमण करें तो पराजय समझना चाहिए। सेना के प्रयाण के लिए पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा पूर्वोत्तर दिशा शुभ हुआ करती है ।।३६-३७।।

श्री अग्निमहापुराण में शकुन-वर्णन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३२।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रामण्डलचिन्तादि कथनम्

पुष्कर उवाच

सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात्। अस्तं गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ।।१।।
प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां [1]विवर्जयेत्। प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पतौ च तथा ग्रहे ।।२।।
वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा। चतुष्पादे च किंस्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत् ।।३।।
विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि। गण्डे विवर्जयेद्यात्रां रिक्तायां च तिथावपि ।।४।।
उदीची च तथा प्राची तयोरैक्यं प्रकीर्तितम्। पश्चिमा दक्षिणा या दिक्तयोरैक्यं तथैव च ।।५।।
वाय्वग्निदिक्समुद्भूतं परिधं न तु लङ्घयेत्। आदित्यचन्द्रसौरास्तु दिवसाश्च न शोभनाः ।।६।।
कृत्तिकाद्यानिपूर्वेण माघाद्यानि च याम्यतः। मैत्राद्यान्यपरे चाथ वासवाद्यानि वाऽप्युदक् ।।७।।
सर्वद्वाराणि शस्तानि च्छायामानं वदामि ते। आदित्ये विंशतिज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्तिताः ।।८।।
भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे। त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्तिताः ।।९।।

अध्याय २३३

यात्रामण्डलचिन्ता

पुष्कर बोले–(अब मैं) राजधर्म से सम्बद्ध होने के कारण समस्त यात्राओं का वर्णन करूँगा। जब शुक्र अस्त हो, नीचे स्थान में चला गया हो, शत्रु राशि पर स्थित हो या नष्ट हो गया हो तब यात्रा नहीं करनी चाहिए। बुध, दिक्पति और ग्रह की प्रतिकूलता में तथा वैधृति, व्यतीपात, नाग, शकुनि, चतुष्पाद और किंस्तुघ्न योग में (भी) यात्रा का परित्याग कर देना चाहिए ।।१-३।। विपत्तार, नैधन, प्रत्यरि, जन्म तथा गण्ड योग में और रिक्ता तिथि में भी यात्रा वर्जनीय हुआ करती है। (यात्रा विचार से) उत्तर तथा पूर्व और पश्चिम तथा दक्षिण दिशाओं को एक माना गया है। पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पूर्व दिशाओं के दिक्शूल का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। (यात्रा के लिए) रविवार, सोमवार और शनिवार शुभ नहीं हुआ करते हैं ।।४-६।। कृत्तिका से लेकर सात नक्षत्र-समूह पूर्व दिशा में रहते हैं, मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा में रहते हैं, अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा में रहते हैं तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा में रहते हैं। (अग्निकोण से वायुकोण तक परिध दण्ड रहा करता है, अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए, जिससे परिध दण्ड का उल्लंघन न हो) पूर्वोक्त नक्षत्र उन-उन दिशाओं के द्वार हैं, सभी द्वार उन-उन दिशाओं के लिए उत्तम हैं। अब मैं तुम्हें छाया का मान बताता हूँ। रविवार को बीस, सोमवार को सोलह, मङ्गलवार को पन्द्रह, बुध को चौदह, बृहस्पति को तेरह, शुक्र को बारह तथा शनिवार को ग्यारह अंगुल 'छायामान'

---

१ ख. ग. घ. छ. विसर्जयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्तिताः। जन्मलग्ने शक्रचापे संमुखे न व्रजेन्नरः ।।१०।।
शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरिमास्मरन्। वक्ष्ये मण्डलचिन्तां ते कर्तव्यं राजरक्षणम् ।।११।।
स्वाम्यमात्यस्तथा दुर्गः कोषो दण्डस्तथैव च। मित्रं जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ।।१२।।
सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तृन्विनाशयेत्। मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्या महीक्षिता ।।१३।।
आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलं भवेत्। सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु ।।१४।।
उपेतस्तु सुहृज्ज्ञेयः शत्रुमित्रमतः परम्। मित्रमित्रं ततो ज्ञेयं मित्रमित्ररिपुस्ततः ।।१५।।
एतत्पुरस्तात्कथितं पश्चादपि निबोध मे। पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चात्ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ।१६।।
आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते। जिगीषोः शत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ।।१७।।
नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुंगव। निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थः परिकीर्तितः ।।१८।।
निग्रहानुग्रहेऽशक्तः सर्वेषामपि यो भवेत्[1]। उदासीनः स कथितो बलवान्पृथिवीपतिः ।।१९।।
न कस्यचिद्रिपुर्मित्रं कारणाच्छत्रुमित्रके। मण्डलं तव सम्प्रोक्तमेतद्द्वादशराजकम् ।।२०।।
त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः। पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः ।।२१।।
अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिमो मतः। पार्ष्णिग्राहो भवेच्छत्रोर्मित्राणि रिपवस्तथा ।।२२।।

कहा गया है, जो सभी कर्मों के लिए विहित है। जन्म लग्न में तथा सामने इन्द्रधनुष उदित हुआ हो तो मनुष्य यात्रा न करे। शुभ शकुन आदि होने पर श्रीहरि का स्मरण करते हुए विजय यात्रा करनी चाहिए ।।७-१०$\frac{1}{2}$।। अब मैं तुमसे (राज) मण्डल के विषय में बतलाऊँगा जिससे राजा की रक्षा करनी चाहिए। स्वामी, अमात्य, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र तथा देश–ये सातों राज्य के अङ्ग हुआ करते हैं ।।११-१२।। (राजा को) सप्ताङ्ग राज्य में विघ्न डालनेवाले का सर्वनाश कर देना चाहिए। राजा को अपने (मित्रों और हितैषियों) के मण्डल में वृद्धि करना चाहिए। पहला मण्डल तो वह राज्य है, जिसके ऊपर राजा शासन करता है। सामन्तों को शत्रु समझना चाहिए, किन्तु जो सामन्त राजा में आसक्त हों उन्हें मित्र समझना चाहिए। इसी प्रकार शत्रु के मित्र, मित्र के मित्र और मित्र के मित्र शत्रु को भी समझना चाहिए। यह बात मैं पहले भी कह चुका हूँ, अब भी जान लो। तत्पश्चात् उसके पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, आसार और आक्रन्द के आसार हुआ करते हैं ।।१३-१६$\frac{1}{2}$।। विजय की इच्छा रखनेवाले शत्रुयुक्त राजा के लिए मण्डल आवश्यक है या शत्रुमुक्त के लिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। सबका निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ राजा मध्यस्थ कहलाता है और उसमें असमर्थ होता हुआ बलवान् राजा भी उदासीन कहलाता है ।।१७-१९।। यों तो न किसी का कोई मित्र है न शत्रु, परन्तु कारणवश मनुष्य के शत्रु मित्र हुआ करते हैं। मैंने तुम्हें बारह राजाओं का यह मण्डल बतला दिया है। शत्रु तीन प्रकार के होते हैं–कुलक्रमागत, बाद में होनेवाले व्यक्तिगत और कृत्रिम। उनमें क्रमशः पूर्व-पूर्व शत्रु (बादवाले की अपेक्षा) दुर्निवार्य होता है। बाद में होनेवाला व्यक्तिगत शत्रु भी कृत्रिम है–ऐसा मेरा विचार है। (शत्रु राजा का) पार्ष्णिग्राह और उसके शत्रु (आक्रमणकारी राजा के) मित्र हुआ करते हैं। पार्ष्णिग्राह

---

१ क. जयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पार्ष्णिग्राहमुपायैश्च शमयेच्च तथा स्वकम्। मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रशंसन्ति पुरातनाः ।।२३।।
मित्रं च शत्रुतामेति सामन्तत्वादनन्तरम्। शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात्स्वयं शक्नोति चेद्यदि ।।२४।।
प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयम्। यथाऽस्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत् ।।२५।।
जिगीषुर्धर्मविजयी तथा लोकं वशं नयेत् ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यात्रामण्डलचिन्ताकथनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३३।।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

पुष्कर उवाच

सामभेदौ मया प्रोक्तौ दानदण्डौ तथैव च। दण्डः स्वदेशे कथितः परदेशे ब्रवीमि ते ।।१।।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च द्विविधो दण्ड उच्यते। [1]लुण्ठनं ग्रामघातश्च सस्यघातोऽग्निदीपनम् ।।२।।
प्रकाशोऽथ विषं वह्निर्विविधैः पुरुषैर्वधः। दूषणं चैव साधूनामुदकानां च दूषणम् ।।३।।
दण्डप्रणयनं प्रोक्तमुपेक्षां शृणु भार्गव। यदा मन्येत नृपती रणे न मम विग्रहः ।।४।।

को (युद्ध के अतिरिक्त अन्य) उपायों से शान्त करना चाहिए। प्राचीन लोगों का मत है कि मित्र के द्वारा शत्रु का नाश कराना चाहिए ।।२०-२३।। सामन्त होने के कारण मित्र भी कालान्तर में शत्रु बन जाता है। शत्रु को जीतनेवाले राजा में यदि सामर्थ्य हो तो शत्रु का उन्मूलन स्वयं करना चाहिए। राजा का पराक्रम बढ़ने से शत्रु से भय नहीं रह जाता है। विजयाभिलाषी और धर्म से (दूसरों पर) विजय प्राप्त करनेवाले राजा को वही करना चाहिए जिससे प्रजा उद्विग्न न हो और उस पर विश्वास करे। इस प्रकार उसे प्रजाओं को अपने वश में कर लेना चाहिए ।।२४-२६।।

श्री अग्निमहापुराण में यात्रामण्डल चिन्ताकथन नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३३।।

अध्याय २३४

षाड्गुण्य

पुष्कर बोले–मैं साम, भेद और दान दण्ड के विषय में बता चुका हूँ और अपने देश में दिये जानेवाले दण्ड के विषय में भी कह चुका हूँ। अब मैं दूसरे दण्ड के विषय में भी बतलाऊँगा। दण्ड दो प्रकार का कहा गया है–प्रकाश और अप्रकाश। लूट लेना, गाँव नष्ट कर देना तथा आग लगा देना–ये दण्ड प्रकाश दण्ड कहलाते हैं। विष देना, अग्नि देना, अनेक मनुष्यों के द्वारा मिलकर किसी एक का वध करना और शुद्ध जल को दूषित करना–ये सब अप्रकाश दण्ड कहलाते हैं ।।१-३।। अये भृगुनन्दन! मैं दण्डविधान तो बतला चुका हूँ अब (शत्रु की) उपेक्षा के सम्बन्ध में सुनो। जब राजा यह समझे कि युद्ध करने से भी शत्रु के साथ मेरा विग्रह (मनमुटाव) न बढ़ेगा,

---

१ क. ङ. पतनं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनर्थायानुबन्धः स्यात्संधिना च तथा भवेत् । सामलब्धास्पदं चात्र दानं चार्थक्षयंकरम् ।।५।।
भेददण्डानुबन्धः स्यात्तदोपेक्षां समाश्रयेत् । न चायं मम शक्नोति[1] किंचित्कर्तुमुपद्रवम् ।।६।।
न चाहमस्य शक्नोमि तत्रोपेक्षां समाश्रयेत् । अवज्ञोपहतस्तत्र राज्ञा कार्यो रिपुर्भवेत् ।।७।।
मायोपायं प्रवक्ष्यामि उत्पातैरनृतैश्चरन् । शत्रोरुद्वेजनं शत्रोः शिविरस्थस्य पक्षिणः ।।८।।
स्थूलस्य तस्य पुच्छस्थां कृत्वोल्कां विपुलां द्विज । विसृजेच्च ततश्चैवमुल्कापातं प्रदर्शयेत् ।।९।।
एवमन्ये दर्शनीया उत्पाता बहवोऽपि च । उद्वेजनं तथा कुर्यात्कुहकैर्विविधैर्द्विषाम् ।।१०।।
साम्वत्सरास्तापसाश्च नाशं ब्रूयुः [2]परस्य च । जिगीषुः पृथिवीं राजा तेन चोद्वेजयेत्परान् ।।११।।
देवतानां प्रसादश्च कीर्तनीयः परस्य तु । आगतं नो मित्रबलं प्रहरध्वमभीतवत् ।।१२।।
एवं ब्रूयाद्रणे प्राप्ते भग्नाः सर्वे परे इति । क्ष्वेडाः किलकिलाः कार्या वाच्यः शत्रुर्हतस्तथा ।।१३।।
देवाज्ञाबृंहितो राजा संनद्धः समरं प्रति । इन्द्रजालं प्रवक्ष्यामि [3]इन्द्रं कालेन दर्शयेत् ।।१४।।
चतुरङ्गं बलं राजा सहायार्थं दिवौकसाम् । बलं तु दर्शयेत्प्राप्तं रक्तवृष्टिं चरेद्रिपौ ।।१५।।
छिन्नानि रिपुशीर्षाणि प्रासादाग्रेषु[4] दर्शयेत् । षाड्गुण्यं संप्रवक्ष्यामि तद्वरौ संधिविग्रहौ ।।१६।।

अनुबन्ध (जान-बूझकर उपद्रव) करने से अनर्थ हो जायगा, सन्धि करने से भी वही होगा, साम के प्रयोग से लाभ होगा, दान प्रयोग से अर्थक्षय होगा और फूट डालने से दण्ड का परिणाम निकलेगा तब उसे शत्रु की उपेक्षा का आश्रय लेना चाहिए। (राजा जब समझ ले कि) यह शत्रु मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है और मैं भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता हूँ तब उपेक्षा का आश्रय लेना चाहिए। राजा को चाहिए कि (अपने) शत्रु को अवज्ञा से ही मार डाले ।।४-७।। अब मैं छल के उपायों को बतलाऊँगा। उत्पातों और झूठी बातों से शत्रु को उद्विग्न कर देना चाहिए। अये द्विज! शिविर में रहनेवाले मोटे पक्षी की पूँछ में बड़ी-सी उल्का बाँधकर छोड़ दे। इस प्रकार शत्रुओं को बहुत से उल्कापात तथा अन्य प्रकार के बहुत से उत्पात कर-करके दिखाता रहे ।।८-९।। इस प्रकार विविध प्रकार की ऐन्द्रजालिक क्रियाओं से शत्रुओं को उद्विग्न करना चाहिए। ज्योतिषियों तथा तपस्वियों से शत्रु के विनाश की घोषणा करवानी चाहिए। पृथ्वी को जीतने की इच्छा करनेवाले राजा को (विविध उपायों से) शत्रुओं की उद्विग्न करते रहना चाहिए ।।१०-११।। मुझे देवताओं की कृपा प्राप्त है, शत्रु की नहीं-यह संवाद शत्रु तक पहुँचाते रहना चाहिए। (युद्ध में ऐसी घोषणा करानी चाहिए)-सैनिको! हमारी मित्र सेना आ पहुँची है, आप लोग निर्भीक होकर (शत्रु के ऊपर) प्रहार कीजिये। रण में इस प्रकार कहना चाहिए कि सारे शत्रु मर चुके हैं। रण में शत्रुओं को ललकारते रहना चाहिए। किलकारियाँ भरते रहना चाहिए। यह घोषणा भी करते रहना चाहिए कि शत्रु मर गया है। इस प्रकार ज्योतिषियों से आज्ञा लेकर राजा को लड़ाई के लिए संनद्ध हो जाना चाहिए। अब मैं इन्द्रजाल के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। राजा समयानुसार इन्द्र की माया का प्रदर्शन करे ।।१२-१४।। उसमें राजा को यह दिखाना चाहिए कि देवताओं की चतुरङ्गिणी सेना उसकी सहायता के लिए आ गयी है। तत्पश्चात् इन्द्रजाल से शत्रु के ऊपर रक्त की वर्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार शत्रु के कटे हुए सिरों को महलों के ऊपर लटकते हुए दिखाना चाहिए। अब षाड्गुण्य का वर्णन करूँगा, जिसमें सन्धि

---

१ क. ङ. °ति कश्चित्क°। २ क. ङ. परस्परम्। जि°। ३ क. ङ. इन्द्रजाले°। ४ क. ङ. °ग्रे प्रद°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सन्धिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च। द्वैधीभावः संशयश्च षड्गुणाः परिकीर्तिताः ।।१७।।
पणबन्धः स्मृतः संधिरपकारस्तु विग्रहः। जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते ।।१८।।
विग्रहेण स्वके देशे स्थितिरासनमुच्यते। बलार्धेन प्रयाणं तु द्वैधीभावः स उच्यते ।।१९।।
उदासीनो मध्यमो वा संशयात्संश्रयः स्मृतः। समेन संधिरन्वेष्योऽहीनेन च बलीयसा ।।२०।।
हीनेन विग्रहः कार्यः स्वयं राज्ञा बलीयसा। तत्रापि शुद्धपार्ष्णिस्तु बलीयांसं समाश्रयेत् ।।२१।।
आसीनः कर्मविच्छेदं शक्तः कर्त्तु रिपोर्यदा। अशुद्धपार्ष्णिश्चाऽऽसीत विगृह्य वसुधाधिपः ।।२२।।
अशुद्धपार्ष्णिर्बलवान्द्वैधीभावं समाश्रयेत्। बलिना विगृहीतस्तु योऽसन्देहेन पार्थिवः ।।२३।।
संश्रयस्तेन वक्तव्यो गुणानामधमो गुणः। बहुक्षयव्यायायासं तेषां यानं प्रकीर्तितम् ।।२४।।
बहुलाभकरं पश्चात्तदा राजा समाश्रयेत्। सर्वशक्तिविहीनस्तु तदा कुर्यात्तु संश्रयम् ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३४।।

और विग्रह सबसे श्रेष्ठ है। षाड्गुण्य में आनेवाले हैं–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संशय ।।१५-१७।। किसी शर्त के अनुसार बँधने को सन्धि कहते हैं और विग्रह कहते हैं अपकार को। विजय की इच्छा से शत्रु पर चढ़ाई करने को यान कहते हैं। शत्रु से विग्रह करके अपने देश में रहना आसन है। आधी सेना लेकर (युद्ध के लिए) कूच करना द्वैधीभाव है। उदासीन अथवा मध्यम कोटि के शत्रु के आश्रय में रहने को संश्रय (संशय) कहते हैं। सन्धि उससे करनी चाहिए जो समान हो, अपने से हीन न हो अथवा अपने से बलवान् हो। बलवान् राजा को अपने से हीन शत्रु के साथ विग्रह करना चाहिए। यदि राजा के पीछे कोई शत्रु न हो तो उसे बलवान् राजा का आश्रय लेना चाहिए ।।१८-२१।। पीछे की ओर पार्ष्णिग्राह शत्रु के रहने पर भी यदि राजा यह समझे कि वह शत्रु की गति में आधी सेना से ही विघ्न डाल सकता है तो उसे उतनी ही सेना भेजनी चाहिए। बलवान् शत्रु के साथ विग्रह में लगे हुए राजा के द्वारा उसका आश्रय ग्रहण कर लेना अधम गुण माना गया है। ऐसी स्थिति में संश्रय, विनाश, व्यय और आयास का कारण हुआ करता है। राजा को (अपने शत्रु का) आश्रय तभी लेना चाहिए, जब वह बाद में लाभकारी हो अथवा जब (राजा की) सारी शक्ति नष्ट हो चुकी हो ।।२२-२५।।

श्री अग्निमहानुराण में षाड्गुण्य-वर्णन नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३४।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रात्यहिकराजकर्म

पुष्कर उवाच

अजस्रं कर्म वक्ष्यामि दिनं प्रति यदा चरेत् । द्विमुहूर्तावशेषायां रात्रौ निद्रां त्यजेन्नृपः ।।१।।
वाद्यवन्दिस्वनैर्गीतैः [1]पश्येद्गूढांस्ततो नरान् । विज्ञायते न ये लोकास्तदीया इति केनचित् ।।२।।
आयव्ययस्य श्रवणं ततः कार्यं यथाविधि । वेगोत्सर्गं ततः कृत्वा राजा स्नानगृहं व्रजेत् ।।३।।
स्नानं कुर्यान्नृपः पश्चाद्दन्तधावनपूर्वकम् । कृत्वा सन्ध्यां ततो जप्यं वासुदेवं प्रपूजयेत् ।।४।।
वह्नौ[2] पवित्राञ्जुहुयात्तर्पयेदुदकैः पितॄन् । दद्यात्सकाञ्चनीं धेनुं द्विजाशीर्वादसंयुतः ।।५।।
अनुलिप्तोऽलङ्कृतश्च मुखं पश्येच्च दर्पणे । ससुवर्णे घृते राजा शृणुयाद्दिवसादिकम् ।।६।।
औषधं भिषजोक्तं च मङ्गलालम्भनं चरेत् । पश्येद्गुरुं तेन दत्ताऽशीर्वादोऽथ व्रजेत्सभाम् ।।७।।
तत्रस्थो ब्राह्मणान्पश्येदमात्यान्मन्त्रिणस्तथा । प्रकृतीश्च महाभाग प्रतीहारनिवेदिताः ।।८।।
श्रुत्वेतिहासं कार्याणि कार्याणां[3] कार्यनिर्णयम् । व्यवहारं ततः पश्येन्मन्त्रं कुर्यात्तु मन्त्रिभिः ।।९।।

अध्याय २३५

प्रात्यहिक राजकर्म

पुष्कर बोले–अब मैं राजा की दिनचर्या बतलाऊँगा जो उसे निरन्तर करते रहना चाहिए। दो मुहूर्त रात्रि शेष रह जाने पर राजा को बाजों एवं चारणों के (जय) घोषों और गीतों से निद्रा का परित्याग करना चाहिए। तदनन्तर उसे गुप्तचरों से मिलना चाहिए, किन्तु गुप्तचर उसे न देख सकें और कोई भी यह न कह सके कि 'ये आपके मनुष्य हैं।' तत्पश्चात् विधिवत् आय-व्यय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उसके बाद शौच आदि से निवृत्त होकर स्नानागार में जाना चाहिए ।।१-३।। वहाँ मज्जन करके स्नान करना चाहिए और फिर सन्ध्यावन्दन, जप तथा भगवान् वासुदेव का पूजन करना चाहिए ।।४।। तदनन्तर अग्नि में आहुतियाँ डालनी चाहिए, पितरों का तर्पण करना चाहिए, ब्राह्मणों को सोने के साथ गोदान करना चाहिए और उनसे आशीर्वाद प्रप्त करना चाहिए। शरीर में चन्दन लगाकर, आभूषण पहनकर, दर्पण, सुवर्ण तथा घी में मुख देखना चाहिए। तदनन्तर राजा को दिन आदि (के फल) के सम्बन्ध में (ज्योतिषियों से) सुनना चाहिए। राजा को वैद्य की बतायी हुई ओषधियों का सेवन और मांगलिक कर्मों का आचरण करना चाहिए। उसे पहले गुरु से भेंट करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए और तब सभा में जाना चाहिए ।।५-७।। वहाँ बैठकर उसे ब्राह्मण, अमात्य, मन्त्री तथा उन प्रजाओं से भेंट करना चाहिए जिसके लिए द्वारपाल ने निवेदन किया हो। पहले कार्य-विवरण की जानकारी प्रप्त करनी चाहिए फिर कार्यों (के पौर्वापर्य) का निर्णय करना चाहिए और तदनन्तर विवादों का निर्णय करना चाहिए और मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए।

---

१ क. ङ. श्येद्वृद्धांस्तं। २ क. ङ. वह्नावाज्यं च जुहु°। ३. क. ङ. कार्यनिश्चयम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नैकेन सहितः कुर्यान्न कुर्याद्बहुभिः सह। न च मूर्खैर्न चानाप्तैर्गुप्तं न प्रकटं चरेत् ।।१०।।
मन्त्रं स्वधिष्ठितं कुर्याद्येन राष्ट्रं न बाधते। आकारग्रहणे राज्ञो मन्त्ररक्षा परा मता ।।११।।
आकारैरिङ्गितैः प्राज्ञा मन्त्रं गृह्णन्ति पण्डिताः। साम्वत्सराणां वैद्यानां मन्त्रिणां वचने रतः ।।१२।।
राजा विभूतिमाप्नोति [1]वरयन्ति नृपं हिते। मन्त्रं कृत्वाऽथ व्यायामं चक्रे याने च शस्त्रके ।।१३।।
[2]नियुद्धादौ नृपः स्नातः पश्येद्विष्णुं सुपूजितम्। हुतं च पावकं पश्येद्विप्रान्पश्येत्सुपूजितान् ।।१४।।
भूषितो भोजनं कुर्याद्दानाद्यैः सुपरीक्षितम्। भुक्त्वा गृहीतताम्बूलो वामपार्श्वेन संस्थितः ।।१५।।
शास्त्राणि चिन्तयेद्दृष्ट्वा योधान्कोष्ठायुधं गृहम्। अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां कार्याणि च विचिन्त्य तु ।।१६।।
चारान्संप्रेष्य भुक्त्वाऽन्नमन्तः पुरचरो भवेत्। वाद्यगीतै रक्षितोऽन्यैरेवं नित्यं चरेन्नृपः ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रात्यहिकराजकर्मकथनं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३५।।

मन्त्रणा न तो केवल एक व्यक्ति के साथ करनी चाहिए और न बहुतों के साथ। मूर्ख तथा अविश्वसनीय मन्त्रियों के साथ भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए। गुप्त बात को (कभी) प्रकट नहीं करना चाहिए ।।८-१०।। मन्त्रणा को सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित करना चाहिए जिससे राष्ट्र पर किसी प्रकार की विपत्ति न आ सके। राजा को अपनी चेष्टाओं से भी मन्त्रणा को प्रकट नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति आकार और चेष्टाओं से भी मन्त्रणा का पता लगा लेते हैं। ज्योतिषियों, वैद्यों तथा मन्त्रियों की बात माननेवाला राजा ऐश्वर्य प्राप्त किया करता है क्योंकि ये लोग राजा के कल्याण में ही लगे रहते हैं। मन्त्रणा करने के बाद राजा को चक्र, सवारी, शस्त्र और (अभ्यास आदि के लिए किये गये) युद्ध आदि से व्यायाम करना चाहिए। तदनन्तर पुनः स्नान करके यह देखना चाहिए कि भगवान् विष्णु का पूजन तो हो चुका है, अग्नि में आहुतियाँ तो दी जा चुकी हैं और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार तो हो चुका है ।।११-१४।। तदनन्तर (नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से) विभूषित होकर पहले किसी को खिलाकर परीक्षा कर लिये गये भोजन को प्राप्त करना चाहिए। भोजन करके, पान खाकर बायीं करवट लेटकर शास्त्र चिन्तन करना चाहिए। तदनन्तर अपने कोष और योद्धाओं का निरीक्षण करके सायंकालीन सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। उसके बाद कर्त्तव्यों का चिन्तन करते हुए गुप्तचरों को (इधर-उधर) भेजकर अन्तःपुर में चला जाना चाहिए, जहाँ वह सुरक्षित रहकर वाद्यगीत तथा अन्य (भोगों) का आनन्द प्राप्त कर सके। राजा को नित्य इसी प्रकार का आचरण करना चाहिए ।।१५-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में शकुन प्रात्यहिकराजकर्म-कथन नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३५।।

---

१ ख. घ. छ. धारयन्ति। २ छ. निःसत्त्वादौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रणदीक्षा

पुष्कर उवाच

यात्राविधानपूर्वं तु वक्ष्ये साङ्ग्रामिकं विधिम् । सप्ताहेन यदा यात्रा भविष्यति महीपतेः ।।१।।
पूजनीयो हरिः शंभुर्मोदकाद्यैर्विनायकः । द्वितीयेऽहनि दिक्पालान्संपूज्य शयनं चरेत् ।।२।।
शय्यायां वा तदग्रेऽथ देवान्प्रार्च्य मनुं स्मरेत् । नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ।।३।।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः । भगवन्देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन ।।४।।
इष्टानिष्टे मयाऽऽचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वत । यज्जाग्रतो दूरमिति पुरोधामन्त्रमुच्चरेत् ।।५।।
तृतीयेऽहनि दिक्पालान्रुद्रांस्तान्दिक्पतीन्यजेत् । ग्रहान्यजेच्चतुर्थेऽह्नि पञ्चमे [1]चाश्विनौ यजेत् ।।६।।
मार्गे या देवतास्तासां नद्यादीनां च पूजनम् । दिव्यायान्तरी(रि)क्षभौमस्थ(भूमिष्ठ)देवानां च तथा बलिः ।।७।।
रात्रौ भूतगणानां च वासुदेवादि पूजनम् । भद्रकाल्याः श्रियः कुर्यात्प्रार्थयेत्सर्वदेवताः ।।८।।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः । नारायणोऽब्जजो विष्णुर्नारसिंहो वराहकः ।।९।।
शिव ईशस्तत्पुरुषो ह्यघोरो राम सत्यजः । सूर्यः सोमः कुजश्चान्द्रिर्जीवः शुक्रः शनैश्चरः ।।१०।।

अध्याय २३६

रणदीक्षा

पुष्कर बोले–अब मैं (युद्ध के लिए) यात्रा-विधि के साथ-साथ संग्राम की विधि का वर्णन करूँगा। (यात्रा से) सात दिन पूर्व से राजा को यह विधान करना चाहिए। पहले दिन मोदक आदि से भगवान् विष्णु, शङ्कर तथा गणेश की पूजा होनी चाहिए। दूसरे दिन दिक्पालों का पूजन करके शयन करना चाहिए ।।१-२।। वहाँ उसी शय्या पर या उसके सामने लेटकर देवताओं की पूजा करके पुरोहित को इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए–शम्भो! आपको नमस्कार है। त्रिनेत्र, रुद्र, वरदायक, वामन, विरूप तथा स्वप्नाधिपति आपको नमस्कार है। भगवन्! देवदेवेश! शूलधारिन्! वृषवाहन! मुझे नित्य स्वप्न में आप शुभाशुभ घटनाओं को बतला दिया कीजिये और जागृतावस्था में मेरे मन पर होनेवाले प्रभावों को दूर कीजिये ।।३-५।। तीसरे दिन दिक्पतियों और रुद्रों की पूजा करनी चाहिए। चौथे दिन ग्रहों की और पाँचवें दिन अश्विनीकुमारों की पूजा करनी चाहिए। (यात्रा के) मार्ग में आनेवाले देवताओं और नदियों आदि का भी पूजन करना चाहिए। तदनन्तर आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर रहनेवाले देवताओं को बलि देनी चाहिए। रात्रि में भूतगण, वासुदेव, भद्रकाली और लक्ष्मी आदि का पूजन करके सब देवताओं से प्रार्थना करनी चाहिए ।।६-८।। 'वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नारसिंह, वराह, शिव, ईश, तत्पुरुष, अघोर, राम, सत्यज, सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, गणपति, कार्तिकेय, चण्डिका, उमा,

---

१ क. ख. ग. ङ. चाखिलान्यजे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राहुः केतुर्गणपतिः सेनानी च (श्च) ण्डिकाह्युमा । लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा ब्रह्माणी प्रमुखा गणाः ।।११।।
रुद्रा इन्द्रादयो वह्निर्नागास्ताक्ष्र्योऽपरे सुराः । दिव्यान्तरी (रि) क्षभूमिष्ठा विजयाय भवन्तु मे ।।१२।।
[1]मर्दयन्तु रणे शत्रून्संप्रगृह्योपहारकम्[2] । सपुत्रमातृभृत्योऽहं देवा वः शरणं गतः ।।१३।।
चमूनां पृष्ठतो गत्वा रिपुनाशा नमोऽस्तु वः । विनिवृत्तः प्रदास्यामि दत्तादप्यधिकं बलिम् ।।१४।।
षष्ठेऽह्नि विजयस्नानं कर्त्तव्यं चाभिषेकवत् । यात्रादिने सप्तमे च पूजयेच्च त्रिविक्रमम् ।।१५।।
नीराजनोक्तमन्त्रैश्च ह्यायुधं वाहनं यजेत् । पुण्याहजयशब्देन मन्त्रमेतन्निशामयेत् ।।१६।।
दिव्यान्तरी (रि) क्षभूमिष्ठाः सन्त्वायुर्दाः सुराश्च ते । देवसिद्धिं प्राप्नुहि त्वं देवयात्राऽस्तु सा तव ।।१७।।
रक्षन्तु देवताः सर्वा इति श्रुत्वा नृपो व्रजेत् । गृहीत्वा सशरं चापं धनुर्नागेतिमन्त्रतः ।।१८।।
तद्विष्णोरिति जप्त्वाऽथ दद्याद्रिपुमुखे पदम् । दक्षिणं [3]पदं द्वात्रिंशद्दिक्षु प्राच्यादिषु क्रमात् ।।१९।।
नागं रथं हयं चैव धुर्याश्चैवाऽऽरुहेत्क्रमात् । आरुह्य वाद्यैर्गच्छेत पृष्ठतो नावलोकयेत् ।।२०।।
क्रोशमात्रं गतस्तिष्ठेत्पूजयेद्देवता द्विजान् । परदेशं व्रजेत्पश्चादात्मसैन्यं हि पालयन् ।।२१।।
राजा प्राप्य विदेशं तु देशाचारं[4] हि पालयेत् । देवानां पूजनं कुर्यान्न च्छिन्द्यादायमत्र तु ।।२२।।
नावमानयेत्तद्देश्यानागत्य स्वपुरं पुनः । जयं प्राप्यार्चयेद्देवान्दद्याद्दानानि पार्थिवः ।।२३।।

लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ब्रह्माणी, रुद्र, इन्द्र आदि, अग्नि, नाग, गरुड़ तथा आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर रहनेवाले (सभी) देवता मुझे विजय प्रदान करें ।।९-१२।। हे देववृन्द। मैं अपने पुत्र, माता तथा सेवकों के साथ आपकी शरण में आया हूँ; आप मेरे उपहार को स्वीकार करके युद्ध में मेरे शत्रुओं को मसल डालिये। मेरी सेना के पीछे की ओर से शत्रु का नाश कीजिये, आपको नमस्कार है। युद्ध से लौटने पर मैं (पहले) दी हुई बलि से भी अधिक बलि दूँगा। छठे दिन अभिषेक की भाँति विजय-स्नान करना चाहिए। सातवें दिन अर्थात् यात्रा के दिन त्रिविक्रम की पूजा करनी चाहिए ।।१३-१५।। नीराजनोक्त मन्त्रों से शस्त्रों तथा वाहनों की पूजा करनी चाहिए। फिर पवित्र जय शब्द से युक्त इस मन्त्र को राजा के सामने पढ़ना चाहिए-'आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर रहनेवाले देवगण तुम्हें आयु प्रदान करें। तुम्हें देवसिद्धि प्राप्त हो। सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें।' यह मन्त्र सुनकर राजा को (युद्ध के लिए) जाना चाहिए। राजा को 'धनुर्नाग' इत्यादि मन्त्र से धनुष-बाण उठाना चाहिए और 'तद्विष्णो·····' इस मन्त्र से शत्रु के मुख की प्रतिमा पर अपने दाहिने पैर से प्रहार करना चाहिए। तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः हाथी, रथ, अश्व एवं अन्य सवारियों पर चढ़कर बाजों के साथ बत्तीस पग आगे की ओर बढ़ना चाहिए और पीछे की ओर नहीं देखना चाहिए ।।१६-२०।। इस प्रकार एक कोश जाकर देव-ब्राह्मणों की पूजा करके रुक जाना चाहिए। तत्पश्चात् अपनी सेनाओं की रक्षा करते हुए परदेश को जाना चाहिए। विदेश में पहुँचने पर उस देश के आचार का पालन करते हुए देवताओं का पूजन करना चाहिए और वहाँ से पुनः अपने देश लौटने पर तद्देशीय मनुष्यों का अपमान नहीं करना चाहिए। विजय प्राप्त करके राजा को देवताओं की पूजा करनी चाहिए और ब्राह्मणों को दान देना चाहिए ।।२१-२३।। दूसरे दिन लड़ाई होने से पूर्व हाथी, घोड़ों

---

१ क. ङ. न्तु च मे श°। २ च. °म्। अवन्तु मां स्वभृ°। ३ ङ. पदमादिश्य दिक्षु। ४ ख. ग. घ. छ. देशपालं तु पा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वितीयेऽहनि सङ्ग्रामो भविष्यति यदा तदा । स्नापयेद्गजमश्वादि यजेद्देवं नृसिंहकम् ।।२४।।
छत्रादिराजलिङ्गानि शस्त्राणि निशि वैगुणान् । प्रातर्नृसिंहकं पूज्य वाहनाद्यमशेषतः ।।२५।।
पुरोधसाहुतं पश्येद्वह्निं हुत्वा द्विजान्यजेत् । गृहीत्वा सशरं चापं गजाद्यारुह्य वै व्रजेत् ।।२६।।
देशे त्वदृश्यः शत्रूणां कुर्यात्प्रकृतिकल्पनाम् । संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ।।२७।।
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह । व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्तिताः ।।२८।।
गरुडो मकरव्यूहश्चक्रः श्येनस्तथैव च । अर्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूह एव च ।।२९।।
मण्डलः सर्वतोभद्रः सूचीव्यूहश्च ते [1]नव (दश) । व्यूहानामथ सर्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना[2] ।।३०।।
द्वौ पक्षावनुपक्षौ द्वावश्यं पञ्चमं भवेत् । एकेन यदि वा द्वाभ्यां भागाभ्यां युद्धमाचरेत् ।।३१।।
भागत्रयं स्थापयेत्तु तेषां रक्षार्थमेव च । न व्यूहकल्पना कार्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ।।३२।।
मूलच्छेदे विनाशः स्यान्न युध्येच्च स्वयं नृपः । सैन्यस्य पश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महीपतिः ।।३३।।
भग्नसंधारणं तत्र योधानां परिकीर्तितम् । प्रधानभङ्गे सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते ।।३४।।
न संहतान्न विरलान्योधान्व्यूहे प्रकल्पयेत् । आयुधानां तु संमर्दो यथा न स्यात्परस्परम् ।।३५।।
भेत्तुकामः परानीकं संहतैरेव भेदयेत् । भेदरक्ष्याः परेणापि कर्तव्याः संहतास्तथा ।।३६।।

को नहलाकर भगवान् नृसिंह की पूजा करनी चाहिए। रात्रि में छत्र आदि राजचिह्नों, आयुधों और गणों का पूजन करना चाहिए। प्रातःकाल नृसिंह देव तथा वाहन आदि की पूजा करके पुरोहित के द्वारा जिसमें आहुति दी गयी है उस अग्नि का दर्शन करना चाहिए तथा स्वयं हवन करके ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर धनुष-बाण लेकर हाथी पर चढ़कर चल देना चाहिए ।।२४-२६।। शत्रु के देश में कहीं छिपकर सेना का संगठन करना चाहिए। युद्ध के लिए सुसंगठित रूप से थोड़ी ही सेना को भेजना चाहिए किन्तु सेना का विस्तार पर्याप्त रूप से करना चाहिए। सूचीमुख (व्यूह) के रूप में थोड़ी भी सेना बड़ी सेना का सामना कर सकती है। व्यूह दो प्रकार के होते हैं-प्राण्यङ्गरूप और द्रव्यरूप। व्यूह दस होते हैं-गरुड़व्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शकटव्यूह, मण्डलव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह और सूचीव्यूह। समस्त व्यूहों में पाँच प्रकार से सेना का विभाग किया जाता है ।।२७-३०।। इसमें दो भाग पक्ष के रूप में होते हैं, दो भाग पक्षों के पीछे और पाँचवाँ मुख्य भाग। इनमें से एक या दो भागों से ही युद्ध करना चाहिए और तीन भागों को इनकी रक्षा के लिए रखना चाहिए। राजा को स्वयं व्यूह में नहीं जाना चाहिए क्योंकि मूलनाश होने से सर्वनाश हो जाता है। राजा को स्वयं युद्ध भी नहीं करना चाहिए, अपितु उसे अपनी सेना से एक कोश पीछे रहना चाहिए। जिससे आवश्यकता के समय भग्न सैन्य-समूह फिर से उसके द्वारा संगठित किया जा सके। प्रधान सेना के भग्न हो जाने पर वहाँ रुकना नहीं चाहिए ।।३१-३४।। व्यूह में योद्धाओं को न तो बहुत ही अधिक निकट रखना चाहिए और न बहुत दूर जिससे (योद्धाओं के) शस्त्र परस्पर टकराने न लगें। शत्रु के सैन्य-व्यूह को भंग करनेवाले (राजा) को एक साथ संघटित योद्धाओं के द्वारा ही वैसा करना चाहिए और शत्रु से अपने सैन्य-व्यूह की रक्षा भी संघटित योद्धाओं के द्वारा करनी चाहिए। शत्रुओं के बहुत से सैन्य-व्यूहों

---

१ क. ग. ङ. च. छ. नराः। २ ङ. °ना। सपक्षौ द्वौ च पक्षौ द्वौ द्वावश्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यूहं भेदावहं कुर्यात्परव्यूहेषु चेच्छया। गजस्य पादरक्षार्थाश्चत्वारस्तु[1] तथा द्विज ।।३७।।
रथस्य चाश्वाश्चत्वारः समास्तस्य च चर्मिणः। धन्विनश्चर्मिभिस्तुल्याः पुरस्ताच्चर्मिणो रणे ।।३८।।
पृष्ठतो धन्विनः पश्चाद्धन्विनां तुरगा रथाः। रथानां कुञ्जराः पश्चाद्दातव्याः पृथिवीक्षिता ।।३९।।
पदातिकुञ्जराश्वानां धर्मकार्यं प्रयत्नतः। शूराः प्रमुखतो देया[2] नो देया भीरवः क्वचित् ।।४०।।
शूरान्प्रमुखतो दत्त्वा स्कन्धमात्रप्रदर्शनम्। कर्तव्यं भीरुसंघेन शत्रुविद्रावकारकम् ।।४१।।
दारयन्ति पुरस्तात्तु न देया भीरवः पुरः। प्रोत्साहयन्त्येव रणे भीरुञ्शूराः पुरस्थिताः ।।४२।।
प्रांशवः शुकनासाश्च ये[3] चाजिह्मेक्षणा नराः। संहतभ्रूयुगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः ।।४३।।
[4]नित्यहृष्टाः प्रहृष्टाश्च शूरा ज्ञेयाश्च कामिनः। संहतानां हतानां च रणापनयनक्रिया ।।४४।।
प्रतियुद्धं गजानां च तोयदानादिकं च यत्। आयुधानयनं चैव पत्तिकर्म विधीयते ।।४५।।
रिपूणां भेत्तुकामानां स्वसैन्यस्य तु रक्षणम्। भेदनं संहतानां च चर्मिणां कर्म कीर्तितम् ।।४६।।
विमुखीकरणं युद्धे धन्विनां च तथोच्यते। दूरापसरणं यानं सुहतस्य तथोच्यते ।।४७।।
त्रासनं रिपुसैन्यानां रतकर्म तथोच्यते। भेदनं संहतानां च भेदानामपि संहतिः ।।४८।।

में से राजा को अपनी इच्छा से किसी ऐसे व्यूह को भङ्ग करना चाहिए (जिसके भंग होने से अन्य व्यूह स्वतः समाप्त हो जायँ) ।।३५-३७।। हे ब्राह्मण! गजारोही की रक्षा के लिए चार (योद्धाओं) को नियुक्त करना चाहिए, रथारोही के लिए चार अश्वारोहियों को नियुक्त करना चाहिए, अश्वारोही के लिए चार खड्गधारी योद्धाओं को नियुक्त करना चाहिए और एक ढालवाले योद्धा की रक्षा के लिए चार धनुर्धारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। धनुर्धारी, खड्गधारी योद्धा के समान हुआ करते हैं। राजा को रण में सबसे आगे खड्गधारियों को, उनके पीछे धनुर्धारियों को, उनके पीछे अश्वारोहियों को, उनके पीछे रथारोहियों को और रथारोहियों के पीछे गजारोहियों को रखना चाहिए। पैदल, गजारोही और अश्वारोही योद्धाओं में भी जो शूरवीर हों उन्हें सेना के आगे रखना चाहिए, कायरों को नहीं। सेना में कायरों को आगे कभी नहीं रखना चाहिए ।।३८-४०।। क्योंकि वे शत्रुओं का ही उत्साह बढ़ाया करते हैं, परन्तु सेना में आगे रहनेवाले शूर योद्धा शूरवीर कायरों को भी प्रोत्साहित कर दिया करते हैं। शूरवीर उन्हें समझना चाहिए जिनका कद लम्बा हो, नाक तोते की (चोंच की) तरह हो, क्रोधी स्वभाव के हों, कलहप्रिय हों, सदैव प्रसन्न रहते हों और विजय की कामना करते हों ।।४१-४३$\frac{1}{2}$।। संगठित वीरों में से जो मारे जायँ अथवा घायल हों, उनको युद्धभूमि से दूर हटाना, युद्ध के भीतर जाकर हाथियों को पानी पिलाना तथा हथियार पहुँचाना—ये सब पैदल सिपाहियों के कार्य हैं। अपनी सेना का भेदन करने की इच्छा रखनेवाले शत्रुओं से उसकी रक्षा करना और संगठित होकर युद्ध करनेवाले शत्रुवीरों का व्यूह तोड़ना—यह ढाल लेकर युद्ध करनेवाले योद्धाओं का कार्य बताया गया है। युद्ध में विपक्षी योद्धाओं को मार भगाना धनुर्धर वीरों का काम है। अत्यन्त घायल हुए योद्धा को युद्धभूमि से दूर ले जाना, फिर युद्ध में आना तथा शत्रु की सेना में त्रास उत्पन्न करना यह सब रथी वीरों का कार्य बतलाया जाता है। संगठित व्यूह को तोड़ना,

---

१ ख. ग. °क्षार्थंचत्वा°। २ ख. ग. घ. छ. °देयाः स्क°। ३ क. ङ. ये च जि°। ४ क. ङ. नित्यतृष्णाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राकारतोरणाट्टालद्रुमभङ्गश्च सद्गजे । पत्तिभूर्विषमा ज्ञेया रथाश्वानां तथा समा ।।४९।।
सकर्दमा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता । एवं विरचितव्यूहः कृतपृष्ठदिवाकरः ।।५०।।
तथाऽनुलोमशुक्रार्किदिक्पालमृदुमारुताः । योधानुत्तेजयेत्सर्वान्नामगोत्रावदानतः ।।५१।।
भोगप्राप्त्या च विजये स्वर्गप्राप्त्या मृतस्य च । जित्वाऽरीन्भोगसम्प्राप्तिर्मृतस्य च परा गतिः ।।५२।।
निष्कृतिः स्वामिपिण्डस्य नास्तियुद्धसमा गतिः । [1]शूराणां रक्तमायाति तेन पापं त्यजन्ति ते ।।५३।।
घातादिदुःखसहनं रणे तत्परमं तपः । वराप्सरः सहस्राणि यान्ति शूरं रणे मृतम् ।।५४।।
स्वामी सुकृतमादत्ते भग्नानां विनिवर्तिनाम् । ब्रह्महत्याफलं तेषां तथा प्रोक्तं पदे पदे ।।५५।।
त्यक्त्वा सहायान्यो गच्छेद्देवास्तस्य विनष्टये । अश्वमेधफलं प्रोक्तं शूराणामनिवर्तिनाम् ।।५६।।
धर्मनिष्ठे जयो राज्ञि योद्धव्याश्च समाः[2] समैः । गजाद्यैश्च गजाद्याश्च न हन्तव्याः पलायिनः ।।५७।।
न प्रेक्षकाः प्रविष्टाश्च अशस्त्राः पतितादयः । [3]शान्ते निद्राभिभूते च अर्धोत्तीर्णे नदीवने ।।५८।।

टूटे हुए को जोड़ना तथा चहारदीवारी, तोरण (सदर दरवाजा), अट्टालिका और वृक्षों को भङ्ग कर डालना–यह अच्छे हाथी का पराक्रम है। ऊँची-नीची भूमि को पैदल सेना के लिए उपयोगी जानना चाहिए, रथ और घोड़ों के लिए समतल भूमि उत्तम है तथा कीचड़ से भरी हुई युद्ध-भूमि हाथियों के लिए उपयोगी बतायी गयी है ।।४३-४९$\frac{1}{2}$।। इस प्रकार व्यूह की रचना करके सूर्य को पीछे की ओर और शुक्र, शनि, दिक्पाल तथा मन्द समीकरण को अभिमुख करके युद्ध करना चाहिए। (युद्ध के समय) योद्धाओं के नाम, गोत्रों तथा उनके वीरकर्मों का उच्चारण करके उन्हें उत्तेजित करना चाहिए। (उनसे यह कहते रहना चाहिए कि) विजय से भोगप्राप्ति होगी और मरने से स्वर्ग प्राप्त होगा, क्योंकि ऐसा कहा गया है कि युद्ध में शत्रुओं को जीतने से भोगप्राप्ति और मरने से उत्तम गति प्राप्त होती है ।।५०-५२।। स्वामी के ऋण से मुक्ति मिल जाती है, अतएव युद्ध के समान कोई उपाय है ही नहीं। वीर योद्धा के शरीर से जो रक्त निकलता है वह मानो उसका पाप निकलता है। रण में आघात आदि दुःखों को सहना ही परम तप है। रण में मरे हुए वीर के समीप हजारों सुन्दरी अप्सराएँ जाती हैं। युद्ध से भाग जानेवालों का पुण्य उनके स्वामी को प्राप्त हो जाता है और उन्हें पद-पद पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।।५३-५५।। जो अपने सहायकों को छोड़कर भाग जाता है, देवता उसका विनाश कर डालते हैं और जो वीर रण से भागता नहीं है उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। जो राजा धर्म से युक्त होकर युद्ध करता है, उसकी विजय होती है। युद्ध अपने बराबरवालों के साथ करना चाहिए, जैसे हाथी आदि पर सवार योद्धाओं के साथ ही युद्ध करना चाहिए। संग्राम से भागनेवालों को नहीं मारना चाहिए ।।५६-५७।। युद्ध देखनेवाले, निःशस्त्र होकर युद्ध में प्रवेश करनेवाले, गिरे हुए, शान्त तथा निद्रा से अभिभूत पुरुषों को नहीं मारना चाहिए। ऐसी सेना से भी युद्ध नहीं करना चाहिए जो किसी नदी या वन का आधा भाग ही पार कर चुकी हो। दुर्दिन में भी युद्ध नहीं करना चाहिए। शत्रु को नष्ट करने के लिए कूटयुद्ध किया जा सकता है। भुजाओं को फैलाकर जोर-जोर से चिल्लाना चाहिए कि 'शत्रु नष्ट हो गये हैं, मुझे मित्रों की बहुत-सी सेना प्राप्त हो गयी है, (सेना) नायक

---

१ क. ङ. °राणामुत्तमा जातिस्तेन। २ क. ङ. °मैः। राजाद्याश्च। ३ क. ङ. श्रान्ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दुर्दिने कूटयुद्धानि[1] शत्रुनाशार्थमाचरेत्। बाहू प्रगृह्य विक्रोशेद्भग्ना भग्नाः परे इति ।।५९।।
प्राप्तं[2] मैत्रं बलं भूरि नायकोऽत्र निपातितः। सेनानी नि(र्नि)हतश्चायं भूपतिश्चापिविप्लुतः ।।६०।।
विद्रुतानां च योधानां [3]सुखं [4]घातौ विधीयते। धूपाश्च देया धर्मज्ञ तथा च परमोहनाः ।।६१।।
पताकाश्चैव संभारो वादित्राणां भयावहः। संप्राप्य विजयं युद्धे देवान्विप्रांश्च[5] संयजेत् ।।६२।।
रत्नानि राजगामीनि [6]अमात्येन कृते रणे। तस्य स्त्रियो न कस्यापि रक्ष्यास्ताश्च परस्य च ।।६३।।
शत्रुं प्राप्य रणे मुक्तं[7] पुत्रवत्परिपालयेत्। पुनस्तेन न योद्धव्यं देशाचारादि पालयेत् ।।६४।।
ततश्च स्वपुरं प्राप्य ध्रुवेभे प्रविशेद् गृहम्। देवादिपूजनं कुर्याद्रक्षेद्योधकुटुम्बकम् ।।६५।।
संविभागं परावाप्तैः कुर्याद्भृत्यजनस्य च। रणदीक्षा मयोक्ता ते जयाय नृपते ध्रुवा ।।६६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रणदीक्षावर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३६।।

मार गिराया गया है, सेनानी मारा जा चुका है और राजा भी भाग गया है।' (ऐसा कहने से शत्रु में भगदड़ मच जाती है और) भागते हुए योद्धाओं को सुखपूर्वक नष्ट किया जा सकता है ।।५८-६०$\frac{१}{२}$।। अये धर्मज्ञ! शत्रु सेना को मोह में डाल देनेवाला धुआँ भी करना चाहिए। पताकाओं का फहराना और बाणों का साज-बाज (शत्रुओं के लिए) भय बढ़ानेवाला हुआ करता है। युद्ध में विजय प्राप्त करके राजा को ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा करनी चाहिए। अमात्य के द्वारा किये गये युद्ध में प्राप्त रत्न (भी) राजा के हुआ करते हैं, परन्तु शत्रु की स्त्रियाँ किसी की नहीं हो सकती हैं, इसलिए उनकी रक्षा करनी चाहिए। युद्ध में पकड़कर छोड़े गये शत्रु की पुत्र की भाँति रक्षा करनी चाहिए। पुनः उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिए। अपितु (उसके सम्बन्ध में) उसी के देशाचार आदि का पालन करना चाहिए ।।६१-६४।। (युद्ध में विजय प्राप्त करने के) अनन्तर ध्रुव नक्षत्र में राजभवन में प्रवेश करना चाहिए। तदनन्तर पूजन करना चाहिए और युद्ध में लौटे हुए योद्धाओं के कुटुम्बों का पालन करना चाहिए। शत्रुओं के यहाँ से प्राप्त धन को नौकरों-चाकरों में बाँट देना चाहिए। यह रण-दीक्षा मैंने तुम्हें बता दी है। इसके अनुसार युद्ध करने से राजा को विजय अवश्य प्राप्त होती है ।।६५-६६।।

श्री अग्निमहापुराण में रणदीक्षा-वर्णन नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३६।।

---

१ क. ङ. °ध्दादि शत्रूणां संधिमीरयेत्। २ ग. प्तं चित्रबलं। ३ क. ङ. मुखं। ४ क. ङ. खाते। ५ क. ङ. °न्विप्रान्गुरून्यजे°। ६ क. ङ. अनघने। ख. अनयेन। ७ क. ङ. युक्तं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीस्तोत्रम्

पुष्कर उवाच

राज्यलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः। स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत् ।।१।।

इन्द्र उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसंभवाम्। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम् ।।२।।
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि। सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।३।।
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।।४।।
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च। सौम्या सौम्यं[1] जगद्रूपं त्वयैतद्देवि पूरितम् ।।५।।
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः। अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ।।६।।
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्। विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ।।७।।
दाराः पुत्रास्तथाऽगारं सुहृद्धान्यधनादिकम्। भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ।।८।।
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्। देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ।।९।।

अध्याय २३७

श्रीस्तोत्र

पुष्कर बोले–पूर्वकाल में राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने के लिए इन्द्र ने जिस प्रकार लक्ष्मी की स्तुति की थी उसी तरह राजा को भी विजय के लिए (उसकी) स्तुति करनी चाहिए ।।१।।

इन्द्र बोले–मैं सम्पूर्ण लोकों की जननी, सागर से उत्पन्न होनेवाली, प्रफुल्लित कमल के समान नेत्रोंवाली तथा विष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करनेवाली लक्ष्मी को नमस्कार कर रहा हूँ ।।२।। अयि लोकपावनि! तुम सिद्धि हो, तुम स्वधा हो, तुम स्वाहा हो। तुम्हीं सन्ध्या हो, तुम्हीं रात्रि हो, तुम्हीं प्रभा हो, तुम्हीं ऐश्वर्य हो, मेधा हो, श्रद्धा एवं सरस्वती हो। तुम्हीं यज्ञविद्या, महाविद्या तथा गुह्यविद्या हो। अयि सुन्दरि! तुम्हीं आत्मविद्या तथा मोक्ष फल को देनेवाली हो। आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), (वेद) त्रयी वार्ता, दण्डनीति तथा सौम्यरूपा हो। अयि देवि! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हीं से व्याप्त है, अतः यह भी सौम्य है ।।३-५।। अयि देवि! तुम्हारे अतिरिक्त है ही कौन ? देवाधिदेव गदाधारी विष्णु के सर्वयज्ञमय और भोगियों के द्वारा ध्येय शरीर पर तुम्हीं विराजमान रहती हो। अयि देवि! तुम्हारे द्वारा परित्यक्त होकर ये तीनों लोक नष्टप्राय हो गये थे। इन्हें इस समय तुम्हीं ने सँभाल रखा है ।।६-७।। अयि महाभागे! तुम जिस पर कृपादृष्टि डालती हो उसे स्त्री, घर, मित्र, धान्य, आरोग्य, ऐश्वर्य, रिपुक्षय तथा सुख की प्राप्ति हो जाती है। देवि! तुम्हारी कृपादृष्टि को प्राप्त कर लेने पर पुरुषों के लिए कुछ

---

१ ख. ग. घ. छ. °सौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयै°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता। त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ।।१०।।
मानं कोषं तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्। मा शरीरं कलत्रं च त्ययेथाः सर्वपावनि ।।११।।
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गान्मा पशून्मा विभूषणम्। त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।।१२।।
[2]सत्येन समशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः। त्यज(ज्य)न्ते नराः सद्यः संत्यक्ताः ये त्वयामले ।।१३।।
त्वयाऽवलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः। कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निगुणा अपि ।।१४।।
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स[3] कुलीनः स बुद्धिमान्। स शूरः स च विक्रान्तो[4] यस्त्वया देवि वीक्षितः ।।१५।।
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः। पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ।।१६।।
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वाऽपि वेधसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि ना(माऽ)स्मांस्त्याक्षीः कदाचन ।।१७।।

पुष्कर उवाच

एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम्। सुस्थिरत्वं च राज्यस्य सङ्ग्रामविजयादिकम् ।।१८।।
स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तॄणां भुक्तिमुक्तिदम्। श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात्पठेच्च शृणुयान्नरः ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रीस्तोत्रकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३७।।

भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। तुम सभी प्राणियों की माता हो और भगवान् विष्णु पिता हैं। तुमने और भगवान् विष्णु ने चराचर जगत् को व्याप्त कर रखा है ।।८-१०।। अयि सबको पवित्र करनेवाली! तुम मेरे मान, कोष, कवच, गृह, साधन, शरीर तथा स्त्री को न छोड़ो। अयि विष्णु के वक्षःस्थल पर रहनेवाली! मेरे पुत्र, मित्र, पशु तथा आभूषणों का भी परित्याग न करो। अयि निर्मले! जिसे तुम छोड़ देती हो, वह तुरन्त सत्य, शौच, सम तथा शील आदि गुणों से वंचित हो जाता है परन्तु तुम जिस गुणहीन पुरुष की ओर भी दृष्टिपात कर देती हो, वह तुरन्त शील आदि समस्त गुणों, (अच्छे) कुल और ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है ।।११-१४।। अयि देवि! तुम जिसकी ओर देख लेती हो, वह श्लाघ्य, गुणी, धन्य, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर तथा पराक्रमी हो जाता है। अयि विष्णु प्रिये! तुम संसार को धारण करनेवाली हो अतः तुम जिससे पराङ्मुखी हो जाती हो, उसके शील अदि सम्पूर्ण गुण भी तुरन्त अवगुण बन जाते हैं। अयि देवि! ब्रह्मा की जिह्वा भी तुम्हारे गुणों का वर्णन नहीं कर सकती है। अयि कमलनयने! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ और मुझे कभी न छोड़ो ।।१५-१७।।

पुष्कर बोले-इस प्रकार स्तुति करने पर लक्ष्मी ने इन्द्र को राज्य की स्थिरता और संग्रामविजय आदि अभीष्ट वर प्रदान किया। जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ और श्रवण करता है, उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए इसमें श्रीस्तोत्र का सदा पाठ और श्रवण करना चाहिए ।।१८-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में श्रीस्तोत्र कथन नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३७।।

---

२ छ. सत्त्वेन सत्यशौ°। ३ क. ङ. स शूरः स च पण्डितः। गुणवान्स च। ४ ख. ग. विख्यातो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रामोक्तनीतिः

अग्निरुवाच

नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या। जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्मादिवर्धिनीम् ।।१।।

राम उवाच

न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत्। सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम् ।।२।।
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात्। विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ।।३।।
शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता। उत्साहो वाग्मितौदार्यमापत्कालसहिष्णुता ।।४।।
प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता। कुलं शीलं दमश्चेति गुणाः स्पत्तिहेतवः ।।५।।
प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम्। ज्ञानङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम् ।।६।।
कामः क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा। षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ।।७।।
आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्ता दण्डनीतिं च पार्थिवः। तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ।।८।।
आन्वीक्षिक्याऽर्थविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ। अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्या नयानयौ ।।९।।
अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा। वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ।।१०।।

अध्याय २३८

रामोक्त-नीति

अग्निदेव बोले–राम ने लक्ष्मण को जो नीति बतायी थी और पुष्कर ने जिसे परशुराम से कहा था, धर्म आदि को बढ़ानेवाली उस नीति को मैं बतलाऊँगा ।।१।।

राम ने कहा–राजा का कर्त्तव्य चार प्रकार का हुआ करता है–न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना, उसे बढ़ाना, उसकी रक्षा करना और उसे सत्पात्र को (दान में) देना। नीति का मूल विनय है। विनय शास्त्र चिन्तन से प्राप्त होता है। विनय ही इन्द्रियों पर विजय (प्राप्त करता) है (अतएव) इनसे युक्त होकर (ही) पृथ्वी का पालन करना चाहिए ।।२-३।। शास्त्र, प्रजा, धैर्य, दक्षता, प्रौढ़ता, धारण करने की शक्ति, उत्साह, वाचालता, उदारता, आपत्तिकालीन सहिष्णुता, प्रभाव, शुचिता, मैत्री, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुल, शील तथा दम–ये गुण सम्पत्ति के हेतु हुआ करते हैं। विषयरूपी गहन वन में दौड़नेवाले मदमत्त इन्द्रियरूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश के वश में करते रहना चाहिए ।।४-६।। काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, मद–इन छह का परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि इनका परित्याग कर देने पर ही राजा सुखी होता है। राजा को आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), (वेद) त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के ज्ञाता तथा उनके अभ्यास करनेवाले पुरुषों से विनयपूर्वक उनकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।।७-८।। आन्वीक्षिकी से अर्थज्ञान, वेद (त्रयी) से धर्म-अधर्म का ज्ञान, वार्ता से अर्थ-अनर्थ का ज्ञान और दण्डनीति से नीति-अनीति का ज्ञान होता है। अहिंसा, प्रिय और सत्यवचन, पवित्रता, इन्द्रियदमन तथा क्षमा–यह ब्रह्मचारियों और संन्यासियों का सामान्य धर्म कहा गया है ।।९-१०।। राजा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रजाः समनुगृह्णीयात्कुर्यादाचारसंस्थितिम् । वाक्सूनृता दयादानं हीनोपगतरक्षणम् ।।११।।
इतिवृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतम् । आधिव्याधिपरीताय अद्यश्वो वा विनाशिने ।।१२।।
को हि राजा शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् । न हि स्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणं जनम् ।।१३।।
कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् । क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाऽञ्जलिः ।।१४।।
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनायशिवार्थिना । प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च ।।१५।।
देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः । शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ।।१६।।
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम् । प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽमृषानुचेष्टितैः ।।१७।।
कुर्वीताभिमुखान्भृत्यैर्देवान्सुकृतकर्मणा । [1]सद्भावेन हरेन्मित्रं संभ्रमेण च बान्धवान् ।।१८।।
स्त्रीभृत्यान्प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् । अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ।।१९।।
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः । प्राणैरप्युकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ।।२०।।
गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता । स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ।।२१।।
अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता । बन्धुभिर्बद्धसंयोगः स्वजने चतुरश्रता ।।
उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामोक्तनीतिकथनं नामाष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३८।।

को प्रजा के ऊपर अनुग्रह, (देश के) आचारानुकूल आचरण, सत्य, दया, दान, दीन-दुःखियों की रक्षा और सज्जनों का हित करना-ये ही सत्पुरुष का धर्म है। ऐसा कौन-सा राजा है जिसे आधि-व्याधि से युक्त और आज या कल नष्ट होनेवाले शरीर के लिए धर्म के विरुद्ध आचरण करना चाहिए ? अपने सुख की इच्छा से किसी दीन जन को सताना नहीं चाहिए क्योंकि सताये हुए दीन (जन) के क्रोध से राजा का सर्वनाश हो जाता है। जिस प्रकार किसी अपने ही पूज्य व्यक्ति के लिए हाथ जोड़कर व्यवहार किया जाता है उससे भी अधिक विनम्रता से राजा को अपने कल्याण के लिए दुर्जन के साथ व्यवहार करना चाहिए। सज्जनों अथवा दुर्जनों से प्रिय वचन ही बोलना चाहिए क्योंकि देवता तो प्रियभाषी ही हुआ करते हैं और पशु कठोर वचन बोलनेवाले। सदैव शुचि और आस्तिकता से पवित्र मन होकर देवपूजन करना चाहिए ।।११-१६।। देवता की तरह गुरुजनों को और अपनी तरह इष्टमित्रों को समझना चाहिए। प्रणाम से गुरु को, सत्य व्यवहार से सज्जनों को, पुण्य कर्मों से देवताओं को, सद्भावना से मित्र को, स्नेह से बन्धुओं को, प्रेम और दान से क्रमशः स्त्री और सेवकों को तथा (सबके) अनुकूल व्यवहार से अन्य मनुष्यों को प्रसन्न करना चाहिए। दूसरों के कार्यों की निन्दा न करना, सबके साथ मधुर वाणी का व्यवहार, अव्यभिचारी मित्र का प्राणों से भी उपकार करना, घर में आये हुए का आदरपूर्वक आलिङ्गन करना, यथाशक्ति दान देना, सहिष्णुता, अपनी समृद्धि से ईर्ष्या न करना, दूसरों को उद्विग्न न करनेवाली वाणी बोलना, मौन व्रत का आचरण करना, बन्धुओं के साथ मेल-मिलाप रखना, स्वजनों के प्रति उदारता और उचित कार्य करना-ये सब सज्जनों के गुण हुआ करते हैं ।।१७-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में रामोक्तनीति-कथन नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३८।।

---

१ क. ङ. स्वभावेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

राम उवाच

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गः कोषो बलं सुहृत् । परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।।१।।
राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत्सदा । कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ।।२।।
अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता । दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारता ।।३।।
शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढभक्तिता । दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षिता ।।४।।
विनीतत्वं धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणाः । प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ।।५।।
कुर्वीताऽऽत्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः । वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रोबलवान्वशी ।।६।।
नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पपरिग्रहः । पराभियोगप्रसहः सर्वदुष्टप्रतिक्रिया ।।७।।।
परवृत्तान्तवेत्ता च संधिविग्रहतत्त्ववित् । गूढमन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित् ।।८।।
आदाता सम्यगर्थानां विन(नि)योक्ता च पात्रवित् । क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापलवर्जितः ।।९।।
परोपतापपैशू(शु)न्यमात्सर्येर्षा(र्ष्या)नृतातिगः । वृद्धोपदेशसंपन्नः शक्तो मधुरदर्शनः ।।१०।।

अध्याय २३९

राजधर्म

राम बोले–राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल तथा मित्र–ये सातों राज्य के अङ्ग हैं, जो परस्पर उपकारक हुआ करते हैं ।।१।। राज्य के अङ्गों में राजा और मन्त्री के बाद राष्ट्र प्रधान एवं अर्थ का साधन है, अतः उसका सदा पालन करना चाहिए। (इन अङ्गों में पूर्व–पूर्व) अङ्ग पर की अपेक्षा श्रेष्ठ है। कुलीनता सत्त्व (व्यसन और अभ्युदय में भी निर्विकार रहना), युवावस्था, शील, दाक्षिण्य, शीघ्रकारिता, अविसंवादिता, सत्य, वृद्धसेवा, कृतज्ञता, दैवसम्पन्नता, बुद्धि, अक्षुद्र, परिवारता, शक्यसामन्तता, दृढ़भक्तिता, दीर्घदर्शिता, उत्साह, शुद्धचित्तता, स्थूललक्षता, विनीतता और धार्मिकता–ये अच्छे आभिगामिक गुण हैं। जो प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, क्रूरतारहित, गुणवान् पुरुषों का संग्रह करनेवाले तथा पवित्र (शुद्ध) हों, राजा का हितचिन्तक परिचारक बनाये ।।२-५$\frac{१}{२}$।। वाक्चतुर, प्रगल्भ, स्मरण शक्तिवाला, उत्साही, बलवान्, (इन्द्रियों को) वश में करनेवाला, दण्ड देने में निपुण, शिल्प आदि वेत्ता, दूसरों के लगाये हुए अभियोग को सहन कर सकनेवाला, सभी दुष्टों को दण्ड दे सकनेवाला, दूसरों के वृत्तान्त को जाननेवाला, सन्धि–विग्रह के रहस्य को समझनेवाला, गूढ़ मन्त्रणा और प्रचार का ज्ञाता, देश–काल के विभाग का ज्ञान रखनेवाला, सम्यक् प्रकार से धन प्राप्त करनेवाला, (दूसरों से) काम लेनेवाला, पात्र को समझनेवाला, क्रोध, लोभ, भय, द्रोह, दम्भ तथा चञ्चलता से रहित, दूसरे को कष्ट न देनेवाला, पिशुनता, मात्सर्य, ईर्ष्या तथा असत्य से अलग रहनेवाला, वृद्धों के उपदेश से युक्त, मधुरदर्शी, समर्थ, प्रियदर्शी और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुणानुरागस्थितिमानात्मसंपद्गुणाः स्मृताः । कुलीनाः शुचयः शूराः[1] श्रुतवन्तोऽनुरागिणः ।।११।।
दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाः स्युर्महीपतेः । सुविग्रहो जानपदः कुलशीलकलान्वितः[2] ।।१२।।
वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् । स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ।।१३।।
सत्यसत्त्वधृतिस्थैर्यप्रभावारोग्यसंयुतः । कृतशिल्पश्च दक्षश्च प्रज्ञावान्धारणान्वितः ।।१४।।
दृढभक्तिरकर्ता च वैराणां सचिवो भवेत् । स्मृतिस्तत्परताऽर्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः ।।१५।।
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसंपत्प्रकीर्तिता । त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः ।।१६।।
अथर्व वेदविहितं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । साधुतैषाममात्यानां तद्विद्यैः सह बुद्धिमान् ।।१७।।
चक्षुष्मत्तां त शिल्पं च परीक्षेत गुणद्वयम् । स्वजनेभ्यो विजानीयात्कुलं स्थानमवग्रहम् ।।१८।।
परिकर्मसुदक्षं च विज्ञानं धारयिष्णुताम् । गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीति (त) तां तथा ।।१९।।
कथायोगेषु बुध्येत वाग्मित्वं सत्यवादिताम् । उत्साहं च प्रभावं च तथा क्लेशसहिष्णुताम् ।।२०।।
धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्यं चाऽऽपदि लक्षयेत् । भक्तिं मैत्रीं च शौचं च जानीयाद् व्यवहारतः ।।२१।।
संवासिभ्यो बलं सत्त्ववमारोग्यं शीलमेव च । अस्तब्धतामचापल्यं वैराणां चाप्यकीर्तनम् ।।२२।।
प्रत्यक्षतो विजानीयाद्भद्रतां क्षुद्रतामपि । फलानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ।।२३।।

गुणानुरागी राजा श्रेष्ठ है। इस प्रकार राजा के आत्म-सम्पत्ति-सम्बन्धी गुण बताये गये हैं ।।६-१०$\frac{1}{2}$।। राजा के मन्त्रियों को कुलीन, पवित्र, शूर, शास्त्रज्ञ, अनुरागी और दण्डनीति में कुशल होना चाहिए। राजा का मन्त्री वह हो सकता है जो सन्धि-विग्रह आदि का ज्ञाता, कुल, शील तथा कला से युक्त, वाक्चतुर, प्रगल्भ, उत्साही, सोच-समझकर काम करनेवाला, बुद्धिमान्, स्तब्धता, चपलता से वर्जित, मित्रवान्, क्लेश को सहन करनेवाला, पवित्र, सत्य, पराक्रम, धैर्य, स्थिरता, प्रभाव और आरोग्य से सम्पन्न, शिल्प-कुशल, कार्य-निपुण, प्रज्ञावान्, धारणाशक्ति से युक्त, राजा के प्रति दृढ़भक्ति रखनेवाला और वैरियों को न बढ़ानेवाला हो ।।११-१४$\frac{1}{2}$।। स्मरणशक्ति, अर्थोपार्जन में तत्परता, दूसरे का आशय समझना, दृढ़निश्चय, मन्त्रणा को गुप्त रखना ये सब मन्त्रियों के गुण कहे गये हैं। पुरोहित को (वेद) त्रयी और दण्डनीति में कुशल होना चाहिए। उन्हें अन्य ब्राह्मणों के साथ, जो विद्या और चरित्र में उसके समान हों, अथर्ववेद में बतायी हुई विधि से (राजा के कल्याण के लिए) यज्ञ (शान्ति, पौष्टिक) कराना चाहिए ।।१५-१६$\frac{1}{2}$।। मन्त्रियों की सूझ-बूझ और उनकी शिल्प-कुशलता की परीक्षा राजा को स्वयं कर लेनी चाहिए। किन्तु उनके कुल, स्थापना और स्वभाव का पता उन (मन्त्रियों) के स्वजनों से लगाना चाहिए। इसी प्रकार कार्यकुशलता, ज्ञान और सहिष्णुता—इन तीनों गुणों तथा प्रगल्भता और प्रेम की परीक्षा भी कर लेनी चाहिए ।।१७-१९।। उनकी वाक्चतुरता तथा सत्यवादिता की परीक्षा वाग्व्यवहार में और उनके उत्साह, प्रभाव, क्लेश-सहिष्णुता, धैर्य, अनुराग और स्थैर्य की परीक्षा आपत्तिकाल में कर लेनी चाहिए। भक्ति, मैत्री तथा पवित्रता की परख व्यवहार से करनी चाहिए तथा उनके बल, सत्त्व, आरोग्य, शील, शठता, चपलता और शत्रु की प्रशंसा न करने के गुण को सहवासियों से जानना चाहिए। उनकी भद्रता और क्षुद्रता को प्रत्यक्ष व्यवहार से और परोक्ष में किये गये व्यवहार की परीक्षा उनके परिणाम में करनी चाहिए ।।२०-२३।। राज्यभूमि वही

---

१ क. ङ. शूरा गुणव°। २ क. ङ. °लगुणान्वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सस्याकरवती पुण्या खनिद्रव्यसमन्विता । गोहिता भूरिसलिला पुण्यैर्जनपदैर्युता ।।२४।।
रम्या सकुञ्जरबला वारिस्थलपथान्विता । अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ।।२५।।
शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीबलः । सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः ।।२६।।
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान्बली । ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ।।२७।।
पृथुसीमं महाखातमुच्चप्राकारतोरणम्[1] । पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयम्[2] ।।२८।।
जलबद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत् । औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धन्विनं च षट् ।।२९।।
ईवप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपैतामहोचितः । धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये ।।३०।।
पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः । विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ।।३१।।
नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारदः । नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ।।३२।।
प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः । अद्वैधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डवतां मतः ।।३३।।
योगविज्ञानसत्त्वाढ्यं महापक्षं प्रियंवदम् । आयतिक्षममद्वैधं मित्रं कुर्वीत सत्कुलम् ।।३४।।

होती है, जहाँ अन्न प्रचुरता से उपजता हो, खानें पर्याप्त हों, गौओं के लिए चरागाह हो, जल पर्याप्त (मात्रा में) हो, सुन्दर देश बसे हुए हों, जो हाथी, घोड़े, मार्ग, जल-स्थल और नदियों से युक्त हों तथा जो (जलवृष्टि आदि) दैवीकार्यों पर निर्भर न हो ।।२४-२५।। जहाँ शूद्र, कारीगर तथा बनिये रहते हों, खेती अच्छी तरह की जाती हो; जहाँ के निवासी परस्पर अनुरक्त, शत्रुओं से द्वेष करनेवाले, पीड़ा को सहन करनेवाले हों, जो बहुत विस्तृत हो, जहाँ अनेक देशों के लोग रहते हों, प्रजा धार्मिक, बली तथा पशु आदि से सम्पन्न हो और जहाँ का मुखिया विद्वान् हो किन्तु व्यसनी न हो। नगर ऐसा होना चाहिए जिसकी सीमा लम्बी-चौड़ी हो, चारों तरफ गहरी-गहरी खाइयाँ खुदी हों, ऊँची-ऊँची चहारदीवारियाँ तथा ऊँचे-ऊँचे फाटक हों और वह नगर पर्वत पर अथवा नदी, मरुस्थल और वन के समीप बसा हो ।।२६-२८।। जल, पर्वत, वृक्ष, निर्जन स्थान तथा रेगिस्तान में बना हुआ दुर्ग, पर्याप्त जल तथा धन-धान्य से युक्त होना चाहिए, जिससे (विपत्तिकाल में) वहाँ बहुत समय व्यतीत किया जा सके। कोष (खजाना) ऐसा होना चाहिए जिसमें न्याय से सञ्चित अभीष्ट धनराशि हो, जो पिता, पितामह आदि के काल से ही चलता आ रहा हो और जिसे व्यय किया जा सके। ऐसा कोष धर्म आदि की वृद्धि के लिए हुआ करता है ।।२९-३०।। दण्डशास्त्र के वेत्ताओं के अनुसार दण्ड देनेवाला ऐसा होना चाहिए जो पिता-पितामह से चला आ रहा हो, वश में रहनेवाला हो, मेल-मिलापवाला हो, वैतनिक हो, जिसका पौरुष विख्यात हो, सत्कुल में उत्पन्न, कुशल और (नाना प्रकार के) पक्षियों से युक्त हो, नाना प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाला हो, विभिन्न युद्धों में निपुण हो, विभिन्न योद्धाओं से घिरा हुआ हो, हाथी-घोड़ों का संग्रह करनेवाला हो, जिसने विदेशवास, परिश्रम के कार्यों, (विभिन्न) दुःखों और युद्धों में परिश्रम किया हो और जिसमें द्विविधा न हो, उसे प्रायः क्षत्रिय जाति का होना चाहिए। मित्र ऐसा होना चाहिए जो योग, विज्ञान तथा सत्त्व गुण से सम्पन्न, पक्ष लेनेवाला हो, प्रियवक्ता, विपत्ति में साथ देनेवाला और सत्कुलीन हो ।।३१-३४।। दूर से ही अगवानी

---

१ क. ङ. °रगोपुरम्। २ क. ङ. °रित्सहबलाश्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा। वाक्सत्कृत्य प्रदानं च त्रिविधो मित्रसंग्रहः ।।३५।।
धर्मकामार्थसंयोगो मित्रात्तु त्रिविधं फलम्। औरसं तत्र संनद्धं तथा वंशक्रमागतम् ।।३६।।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्। मित्रे गुणाः सत्यताद्याः समानसुखदुःखता ।।३७।।
वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिम्। दक्षता भद्रता दार्ढ्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ।।३८।।
सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम्। यथाकालमुमासीत राजानं सेवको नयात् ।।३९।।
परस्थानगमं क्रौर्यमौद्धत्यं मत्सरं त्यजेत्। विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्याज्ज्यायसा सह ।।४०।।
गुह्यं मर्म च मन्त्रं च न च भर्त्तुः प्रकाशयेत्। रक्ताद्वृत्तिं समीहेत विरक्तं सत्यजेन्नृपम् ।।४१।।
अकार्ये प्रतिषेधश्च कार्ये चापि प्रवर्तनम्। संक्षेपादिति सद्वृत्तिं बन्धुमित्रानुजीविनाम् ।।४२।।
आजीव्यः सर्वसत्त्वानां राजा पर्जन्यवद्भवेत्। आयद्वारेषु चाऽऽप्त्यर्थं धनं चाऽऽददतीति च ।।४३।।
कुर्यादुद्योगसम्पन्नानध्यक्षान्सर्वकर्मसु। कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् ।।४४।।
खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम्। अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत् ।।४५।।
आमुक्तिकेभ्यश्चौरेभ्यः पौरेभ्यो राजवल्लभात्। पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम् ।।४६।।

करना, हृदय खोलकर बात करना और सत्कारपूर्वक (उपहार आदि) प्रदान करना–ये तीन मित्रसंग्रह के उपाय हैं। मित्र से धर्म, अर्थ, काम ये तीन फल मिलते हैं। मित्र चार प्रकार के होते हैं–एक औरस (पुत्र या सगोत्र), दूसरा संनद्ध (सदा साथ रहनेवाला), तीसरा वंशक्रमानुगामी और चौथा व्यसनों से छुड़ानेवाला। सुख-दुःख में समान रूप से भाग लेना तथा सत्य व्यवहार करना–ये मित्र के गुण हैं ।।३५-३७।। अब मैं राजा के अनुजीवियों के कर्त्तव्यों को बताऊँगा। (पहले तो) सेवक को राजा की सेवा करनी चाहिए। दक्षता, भद्रता, दृढ़ता, क्षमाशीलता, क्लेश-सहिष्णुता, सन्तोष, शील तथा उत्साह–ये गुण सेवक को (और भी) विभूषित करते हैं। सेवक को नीति के अनुसार अवसरानुकूल राजा की सेवा करनी चाहिए। उसे (अपने कार्यकाल में) कहीं अन्यत्र जाना नहीं चाहिए और क्रूरता, औद्धत्य तथा मात्सर्य को छोड़ देना चाहिए। सेवक को अपने से श्रेष्ठ के साथ बढ़-बढ़कर बातचीत नहीं करनी चाहिए। स्वामी की गुप्त, रहस्यपूर्ण और मन्त्रणा की बातों को प्रकट नहीं करना चाहिए। अनुरक्त राजा से ही चाकरी की इच्छा करनी चाहिए और (अपने से) विरक्त राजा का परित्याग कर देना चाहिए ।।३८-४१।। उसे अकार्य का परित्याग और कर्त्तव्य का ग्रहण करना चाहिए। संक्षेप में बन्धु, मित्र और सेवक का यही आचरण होना चाहिए। राजा को समस्त प्राणियों के लिए मेघ के समान जीवन देनेवाला होना चाहिए। उसे आय के स्रोतों से धन प्राप्त करके (पुनः प्रजा के कल्याण के लिए प्रजा को ही) दे देना चाहिए। उसे उद्योगी व्यक्तियों को सभी कार्यों का अध्यक्ष बनाना चाहिए। सदाचारी राजा को कृषि, व्यापार, दुर्ग, सेतु (पुल), हाथी फँसाने का वन, खान, सेना तथा सुरंग–इन अष्टवर्गों की रक्षा करनी चाहिए ।।४२-४५।। प्रजा को इन पाँच से भय रहा करता है–शस्त्र धारण करनेवाले, चोर, राजकर्मचारी, राजा के प्रियजन और बाहरी राजा का लोभ। इस भय को देखते हुए राजा को कर लेकर उसे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवेक्ष्यैतद्भयं काल आददीत करं नृपः । अभ्यन्तरं शरीरं स्वं वा (बा) ह्यं राष्ट्रं च रक्षयेत् ।।४७।।
दण्ड्यांस्तान्दण्डयेद्राजा स्वं रक्षेच्च विषादितः । स्त्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन्न कदाचन ।।४८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२३९।।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

राम उवाच

मण्डलं चिन्तयेन्मुख्यं राजा द्वादशराजकम् । अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम् ।।१।।
तथाऽरिमित्रमित्रं च विजिगीषोः पुरः स्मृताः । पार्ष्णिग्राहः स्मृतः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम् ।।२।।
आसारावनयोश्चैवं विजिगीषोश्च मण्डलम् । अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः ।।३।।
अनुग्रहे संहतयोर्निग्रहे व्यस्तयोः प्रभुः । मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः ।।४।।
अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः । सन्धिं च विग्रहं यानमासनादि वदामि ते ।।५।।

अपनी तथा राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य रूप से रक्षा करनी चाहिए। राजा को दण्ड के योग्य मनुष्यों को दण्ड देना चाहिए और विष आदि से अपनी, अपनी स्त्रियों और अपने पुत्रों की रक्षा करनी चाहिए। उसे शत्रुओं का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए ।।४६-४८।।

श्री अग्निमहापुराण में राजधर्म-कथन नामक दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३९।।

अध्याय २४०

षाड्गुण्य-वर्णन

राम बोले–राजा को सदैव बारह राजाओं के मण्डल (बलाबल) का विचार करते रहना चाहिए। विजयाकांक्षी राजा के सम्मुख परस्पर मिले हुए राज्यों में मित्र-अमित्र का व्यवहार इस क्रम से करना चाहिए–उस राजा को जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा के राज्य की सीमा से मिला हुआ हो, शत्रु समझना चाहिए, उस राज्य से भी दूर रहनेवाले राजा को मित्र का मित्र समझना चाहिए और उससे भी अधिक दूर रहनेवाले राजा को शत्रु के मित्र का मित्र समझना चाहिए। विजयाकांक्षी राजा के सहित इन छह राजाओं का अर्ध (राज) मण्डल कहा जाता है। पार्ष्णिग्राह (जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा के पीछे की सीमा से मिला हो) को शत्रु समझना चाहिए, आक्रन्द (जिसका राज्य उससे दूर हो) को मित्र समझना चाहिए और आक्रन्दासार (वह राजा जिसका राज्य उससे भी दूर हो) को मित्र आक्रन्द राजा का मित्र समझना चाहिए। असार (उससे भी दूरवर्ती राज्य के स्वामी) को वैरी पार्ष्णिग्राह का मित्र समझना चाहिए और आक्रन्दासार (वह राजा जिसका राज्य उससे भी दूर हो) आक्रन्दराजा का मित्र समझना चाहिए। वह राजा जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा और शत्रु के राज्य के बीच में हो, मध्यम कहलाता है। वह राजा, जो इन द्वादश राजाओं के मण्डल से बाहर रहता है, सबको एक साथ या अलग-अलग हरा सकता है, उदासीन कहलाता है ।।१-४।। अब मैं सन्धि, विग्रह, यान, आसन आदि के सम्बन्ध में तुमसे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बलवद्विगृहीतेन संधिं कुर्याच्छिवाय च। कपाल उपहारश्च संतानः संगतस्तथा ।।६।।
उपन्यासः प्रतीकारः संयोगः पुरुषान्तरः। अदृष्टनर आदिष्ट आत्माऽपि स उपग्रहः ।।७।।
परिक्रमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणम्। स्कन्धोपनेयः संधिश्च संधयः षोडशेरिताः ।।८।।
परस्परोपकारश्च मैत्रः सम्बन्धकस्तथा। उपहाराश्च चत्वारस्तेषु मुख्याश्च संधयः ।।९।।
बालो वृद्धो दीर्घरोगस्तथा बन्धुबहिष्कृतः। भीरुको भीरुकजनो[1] लुब्धो लुब्धजनस्तथा ।।१०।।
विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान्। अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ।।११।।
दैवोपहतकश्चैव दैवनिन्दक एव च। दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसंकुलः ।।१२।।
स्वदेशस्थो बहुरिपुर्मुक्तः कालेन यश्च ह। सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ।।१३।।
एतैः सन्धिं न कुर्वीत विगृह्णीयात्तु केवलम्। [2]परस्परापकारेण पुंसां भवति विग्रहः ।।१४।।
आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा। देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहम् ।।१५।।
राज्यस्त्रीस्थानदेशानां ज्ञानस्य च बलस्य च। अपहारो मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा ।।१६।।
ज्ञानात्मशक्तिधर्माणां विद्यातो दैवमेव च। मित्रार्थं चापमानश्च तथा बन्धुविनाशनम् ।।१७।।
भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणम्। एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनयः ।।१८।।
सापत्न्यं वास्तुजं स्त्रीजं वाग्जातमपराधजम्। वैरं पञ्चविधं प्रोक्तं साधनैः प्रशमं नयेत् ।।१९।।
किञ्चित्फलं निष्फलं वा संदिग्धफलमेव च। तदात्वे दोषजननमायत्यां चैव निष्फलम् ।।२०।।

बतलाऊँगा। यदि अपने से बलवान् के साथ युद्ध छिड़ गया हो तो उससे सन्धि कर लेने में ही कल्याण है। सन्धि के सोलह भेद हैं—कपाल, उपहार, सन्तान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मा, उपग्रह, परिक्रम, छिन्न, परदूषण और स्कन्धोपनेय ।।५-८।। उनमें मुख्य सन्धियाँ चार हैं—परस्पर उपकार, मित्रता, सम्बन्ध तथा उपहार। बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, बन्धुबहिष्कृत, डरपोक, कायरता उत्पन्न करनेवाले, लोभी, प्रलोभित, विरक्त स्वभाववाले, विषयासक्त, अस्थिर चित्त से विचार करनेवाले, देव-ब्राह्मण-निन्दक, अभागे, भाग्य को न माननेवाले, दुर्भिक्ष से पीड़ित, अपने बल का अनुचित प्रयोग करनेवाले, अपने देश से न निकलनेवाले, शत्रुओं से घिरे रहनेवाले, समय के प्रतिकूल कार्य करनेवाले और सत्य तथा धर्म का परित्याग कर देनेवाले—ये बीस प्रकार के पुरुष ऐसे हैं जिनके साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए, केवल विग्रह ही करना चाहिए ।।९-१३$\frac{1}{2}$।। परस्पर अपकार करने से मनुष्यों में विग्रह होता है। इस लोक में विग्रह उसे ही करना चाहिए, जो अपना अभ्युदय चाहता हो या दूसरे के द्वारा पीड़ित किया गया हो तथा जो देश-काल (के ज्ञान) एवं बल से युक्त हो। राज्य, स्त्री, स्थान, देश, ज्ञान तथा बल का अपहरण, मद, मान, प्रजा को पीड़ा देना, ज्ञान, आत्मशक्ति तथा धर्म का हनन, भाग्य, मित्र के लिए अपमान, बन्धु का विनाश, प्राणियों के ऊपर दया न करना, राजमण्डल को दूषित करना, एक ही चीज के ऊपर अड़े रहना—ये सब झगड़े की जड़ें हैं ।।१४-१८।। वैर पाँच प्रकार का होता है—सापत्न्य भाव से उत्पन्न, द्रव्य के कारण उत्पन्न, वाणी से उत्पन्न तथा अपराध से उत्पन्न। इस वैर को, उपायों से शान्त कर देना चाहिए। जब विग्रह करने से बहुत अल्प फल मिले या कुछ भी फल न मिले,

---

१ क. ङ. भीरुजनको। २ क. ङ. °स्परोप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आयत्यां च तदात्वे च दोषसंजननं तथा। अपरिज्ञातवीर्येण परेण स्तोभितोऽपि वा ।।२१।।
परार्थं स्त्रीनिमित्तं च दीर्घकालं द्विजैः सह। अकालदैवयुक्तेन बलोद्धतसखेन च ।।२२।।
तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितम्। आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा ।।२३।।
इतीमं षोडशविधं न कुर्यादेव विग्रहम्। तदात्वायतिसंशुद्धं कर्म राजा सदाऽऽचरेत् ।।२४।।
हृष्टं पुष्टं बलं मत्वा गृह्णीयाद्विपरीतकम्। मित्रमाक्रन्द आसारो यदा स्युर्दृढभक्तयः ।।२५।।
परस्य विपरीतं च तदा विग्रहमाचरेत्। विगृह्य संधाय तथा संभूयाथ प्रसंगतः ।।२६।।
उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम्। परस्परस्य सामर्थ्यविधातादासनं स्मृतम् ।।२७।।
अरेश्च विजिगीषोश्च यानवत्पञ्चधा स्मृतम्। बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचाऽऽत्मानं समर्पयन् ।।२८।।
द्वैधीभावेन तिष्ठेत काकाक्षिवदलक्षितः। उभयोरपि संपाते सेवेत बलवत्तरम् ।।२९।।
यदा द्वावपि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदौ। तदोपसर्पेत्तच्छत्रुमधिकं वा स्वयं व्रजेत् ।।३०।।
उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः। कुलोद्धतं सत्यमार्यमासेवेत बलोत्कटम् ।।३१।।
तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यं तद्भावभाविता। तत्कारितप्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः श्रुतम् ।।३२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यकथनं नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४०।।

वर्तमान समय में उसे करने से बुरा परिणाम हो, भविष्य में भी वह निष्फल हो, वर्तमान तथा भविष्य दोनों कालों में बुरा ही परिणाम हो, अज्ञात शक्तिवाले शत्रु के द्वारा क्षुब्ध कर दिया गया हो, दूसरे के लिए, स्त्री के निमित्त, दुर्भाग्य के समय, बलाभिमानी मित्र के साथ तत्काल कुछ फल दिखायी दे किन्तु भविष्य में (फल की) सम्भावना न हो या भविष्य में यदि फल हो भी किन्तु तत्काल फल का अत्यन्त अभाव रहे, दीर्घकाल तक चलनेवाला तथा द्विजों के साथ होनेवाला–इन सोलह प्रकार की स्थितियों में विग्रह नहीं करना चाहिए ।।१९-२३$\frac{१}{२}$।। राजा को ऐसा ही कर्म करना चाहिए जो वर्तमान तथा भविष्य दोनों में लाभदायक हो, जब सेना हृष्ट-पुष्ट हो तथा मित्र आक्रन्द और आसार राजा के प्रति भक्ति-भाव रखते हों और उसके शत्रु इससे विपरीत परिस्थिति में हों तभी विग्रह करना चाहिए। सेना का प्रयाण पाँच परिस्थितियों में हुआ करता है–युद्ध के लिए, सन्धि के लिए, (किसी सेना के साथ मिलकर) प्रसंगवश अथवा (युद्ध में) निपुण लोगों के साथ (युद्ध की) उपेक्षा से। शत्रु और विजिगीषु के परस्पर सामर्थ्य के नष्ट हो जाने पर (सेनाओं के रुक जाने को) आसन कहा गया है। यान के समान आसन भी पाँच प्रकार का कहा गया है ।।२४-२७$\frac{१}{२}$।। राजा को दो बलवान् शत्रुओं (की सेनाओं) के बीच अपनी उपस्थिति की घोषणा करते हुए आना चाहिए और वहाँ कौए की आँख के समान स्वयं अलक्षित रहते हुए दोनों सेनाओं को देखते रहना चाहिए। दोनों में संघर्ष छिड़ जाने पर दोनों में जो अधिक बलवान् हो, उसी का साथ करना चाहिए, यदि वे दोनों अपने-अपने साथ में न रहने दें तो उनके शत्रु से जा मिले; जो उनसे अधिक बलवान् हों। यदि बलवान् मनुष्य कुछ अपकार करे और उसकी प्रतिक्रिया करने की सामर्थ्य अपने में न हो तो उस व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए जो सत्कुलोत्पन्न, प्रभावशाली और आर्य हो। शरणार्थी का कर्त्तव्य है कि उसे अपने आश्रयदाता का परमभक्त, आज्ञाकारी और कृतज्ञ होना चाहिए ।।२८-३२।।

श्री अग्निमहानुराण में षाड्गुण्य-कथन नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४०।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामादिकथनम्

राम उवाच

प्रभावोत्साहशक्तिभ्यां मन्त्रशक्तिः प्रशस्यते। प्रभावोत्साहवान्काव्यो जितो देवपुरोधसा ।।१।।
मन्त्रयेतेह कार्याणि नानाप्तैर्ना विपश्चिता। अशक्यारम्भवृत्तीनां कुतः क्लेशादृते फलम् ।।२।।
अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः। अर्थद्वैधस्य संदेहच्छेदनं शेषदर्शनम् ।।३।।
सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः। विपत्तेश्च प्रतीकारः पञ्चाङ्गो मन्त्र इष्यते ।।४।।
मनः प्रसादं श्रद्धा च तथा कारणपाटवम्। सहायोत्थानसंपच्च कर्मणां सिद्धिलक्षणम् ।।५।।
मदः प्रमादः कामश्च सुप्तप्रलपितानि च। भिन्दन्ति मन्त्रं प्रच्छन्नाः कामिन्यो रमतां तथा ।।६।।
प्रगल्भः स्मृतिवान्वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः। अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ।।७।।
निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः। सामर्थ्यात्पादतो हीनो दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः ।।८।।
नाविज्ञातं पुरं शत्रोः प्रविशेच्च न संसदम्। कालमीक्षेत कार्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत् ।।९।।
छिद्रं च शत्रोर्जानीयात्कोषमित्रबलानि च। रागापरागौ जानीयाद्दृष्टिगात्रविचेष्टितैः ।।१०।।

अध्याय २४१

सामादि-कथन

राम बोले–प्रभाव तथा उत्साहशक्ति से मन्त्रशक्ति श्रेष्ठ हुआ करती है, क्योंकि प्रभाववान् और उत्साहवान् शुक्राचार्य को बृहस्पति ने मन्त्रशक्ति के प्रभाव से जीत लिया था ।।१।। इस लोक में कार्यों के सम्बन्ध में अनात्मीय और अविद्वानों के साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए। बिना क्लेश उठाये कठिन कार्य में फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। मन्त्रणा के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं–अविज्ञान का ज्ञान, ज्ञात का निश्चय, जहाँ पर द्विविधा हो वहाँ से सन्देह को हटाकर सहायता और साधनों के उपायों का निश्चय करना, (उचित) देश–काल का विभाग करना और विपत्ति से बचाव ।।२–४।। मानसिक प्रसन्नता, श्रद्धा, साधनपटुता, साहाय्य तथा उत्थान–यह कर्मों की सिद्धि का लक्षण है। मद, प्रमाद, काम, सुप्तप्रलाप तथा रमणकाल में स्त्रियों का विश्वास करना, गुप्त–से–गुप्त मन्त्रणा को भी प्रकट कर दिया करते हैं। राजा का दूत वही हो सकता है जो प्रगल्भ, स्मृतिशील, वाक्चतुर, शस्त्र तथा शास्त्र में निपुण और कर्मठ हो ।।५–७।। दूत तीन प्रकार के हुआ करते हैं–निसृष्टार्थ (अपनी इच्छा से कार्य करनेवाला), मितार्थ (राजा के आदेशानुसार कार्य करनेवाला) और शासनहारक जो किसी विशेष समस्या पर राजा का निर्णय सुनानेवाला हो। इनमें पूर्व–पूर्ववाला दूत बाद–बादवाले दूत की अपेक्षा सामर्थ्य में कम हीन हुआ करता है। उसे शत्रु के अज्ञात नगर अथवा उसकी अज्ञात संसद् में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उसे कार्य करने के लिए शत्रु की प्रतीक्षा करनी चाहिए और (राजा की) अनुज्ञा से (कार्य में) जुट पड़ना चाहिए। राजा को शत्रु की दृष्टि और अंगविकार से उसके दोष, कोष, मित्र, सेना, राग और द्वेष का पता लगा लेना चाहिए। उसे (शत्रु–देश में जाकर, अपने और शत्रु) दोनों पक्षों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्याच्चतुर्विधं स्तोत्रं पक्षयोरुभयोरपि । तपस्विव्यञ्जनोपेतैः सुचरैः सह संवसेत् ।।११।।
चरः प्रकाशो दूतः स्यादप्रकाशश्चरो द्विधा । वणिक्कृषीवलो लिङ्गी भिक्षुकाद्यात्मकाश्चराः ।।१२।।
यायादरिं व्यसनिनं निष्फले दूतचेष्टिते । प्रकृतिव्यसनं यत्स्यात्तत्समीक्ष्य समुत्पतेत् ।।१३।।
अनयाद्व्यस्यति श्रेयस्तस्मात्तद्व्यसनं स्मृतम् । हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकं तथा ।।१४।।
इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम् । दैवं पुरुषकारेण शान्त्या च प्रशमं नयेत् ।।१५।।
उत्थतपितेन नीत्या च मानुषं व्यसनं हरेत् । मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुष्ठानमायतिः ।।१६।।
आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिषेधनम् । व्यसनस्य प्रतीकारो राज्यराजाभिरक्षणम् ।।१७।।
इत्यमात्यस्य कर्मेदं हन्ति स व्यसनान्वितः । हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनं प्रजया भवेत् ।।१८।।
तथाऽन्ये द्रव्यनिचया हन्ति सव्यसना प्रजा । प्रजानामापदि (दा) स्थानां रक्षणं कोषदण्डयोः ।।१९।।
पौराद्याश्चोपकुर्वन्ति संश्रयादिह दुर्दिनम् । तूष्णीं युद्धं जनत्राणं मित्रामित्रपरिग्रहः ।।२०।।
सामन्तादिकृते दोषे नश्येत्तद्व्यसनाच्च तत् । भृत्यानां भरणं दानं प्रजामित्रपरिग्रहः ।।२१।।
धर्मकामादिभेदश्च दुर्गसंस्कारभूषणम् । कोषात्तद्व्यसनाद्धन्ति कोषमूलो हि भूपतिः ।।२२।।
मित्रामित्रवनीहेमसाधनं रिपुमर्दनम् । दूरकार्याशुकारित्वं दण्डात्तद्व्यसनाद्धरेत् ।।२३।।

की स्तुति करनी चाहिए और तपस्वियों के वेश में रहनेवाले गुप्तचरों के साथ निवास करना चाहिए ।।८-११।। प्रकट रूप से रहनेवाले चर को दूत कहते हैं और अप्रकट रूप से भ्रमण करनेवाले दूत को गुप्तचर कहते हैं। इस प्रकार दूत दो प्रकार के हुआ करते हैं। गुप्तचरों को व्यापारी, कृषक, संन्यासी और भिक्षुक आदि के रूप में रहना चाहिए। दूतों की चेष्टाओं के निष्फल हो जाने पर (राजा को) विपत्ति में पड़े हुए शत्रु के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए। प्रजाओं में विपत्ति को देखकर (शत्रु राजा के ऊपर) आक्रमण कर देना चाहिए। अनीति से कल्याण का विनाश हो जाता है इसलिए इसे व्यसन कहते हैं। देवव्यसन कहलानेवाले हैं–अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा महामारी। इनसे भिन्न जितने भी व्यसन हैं वह मनुष्यकृत हुआ करते हैं। देवव्यसन को पुरुषार्थ और शान्ति (आदि उपायों) से शान्त करना चाहिए ।।१२-१५।। मनुष्य के द्वारा उत्पन्न व्यसन को बल तथा नीति से दूर करना चाहिए। मन्त्रणा करना, मन्त्रणा के फल को प्राप्त करना, कार्यानुष्ठान करना, भविष्य को सोचना, आय-व्यय का निरीक्षण करना, दण्ड देना, शत्रु का प्रतिषेध करना, व्यसन का प्रतिकार करना, राज्य तथा राजा की रक्षा करना–ये सब कर्म अमात्य के कार्य हैं किन्तु यदि वह अमात्य स्वयं व्यसनी होता है तो सब कर्मों को नष्ट कर देता है। सुवर्ण, धान्य, वस्त्र, वाहन तथा अन्य द्रव्यों की प्राप्ति प्रजा से होती है ।।१६-१८।। किन्तु यदि प्रजा व्यसनग्रस्त होती है तो वह सबको नष्ट कर देती है। आपत्तिकाल में प्रजा की रक्षा कोष तथा दण्ड से करनी चाहिए। आश्रय में रहनेवाले पुरवासी इत्यादि दुर्दिन में राजा का उपकार करते हैं। चुपचाप युद्ध की तैयारी करना, जनता की रक्षा करना, मित्र-शत्रु में भेद करना–ये सामन्तों के कार्य हैं, किन्तु उन (सामन्तों) के दोष से इन सबका नाश हो जाता है और उनके व्यसन से भी यह नष्ट हो जाते हैं। भृत्यों का भरण, दान, प्रजा तथा मित्रों की सहायता, धर्म-कर्म आदि की परिपूर्णता और दुर्ग-संस्कार आदि कार्य कोष ही के बल पर सिद्ध होते हैं किन्तु कोष में दोष उत्पन्न होने से ये सब नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि राजा का मूल तो कोष ही है ।।१९-२२।। मित्र, शत्रु, पृथिवी तथा सुवर्ण-प्राप्ति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्तम्भयति मित्राणि ह्यमित्रं नाशयत्यपि । धनाद्यैरुपकारित्वं मित्रात्तद्व्यसनाद्धरेत् ।।२४।।
राजा स व्यसनी हन्याद्राजकार्याणि यानि च । वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च ।।२५।।
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनानि महीपतेः । अलस्यं स्तब्धता दर्पः प्रमादो द्वैधकारिता ।।२६।।
इति पूर्वोपदिष्टं च सचिवव्यसनं स्मृतम् । अनावृष्टिश्च पीडादि राष्ट्रव्यसनमुच्यते ।।२७।।
विशीर्णयन्त्रप्राकारपरिखात्वमशस्त्रता । क्षीणया सेनया नद्धं दुर्गव्यसनमुच्यते ।।२८।।
व्ययीकृतः परिक्षिप्तोऽप्रजितोऽसंजितस्तथा । दूषितो दूरसंस्थश्च कोषव्यसनमुच्यते ।।२९।।
उपरुद्धं परिक्षिप्तममानितविमानितम् । अभूतं व्याधितं श्रान्तं दूरायातं नवागतम् ।।३०।।
परिक्षीणं प्रतिहत प्रहताग्रतरं तथा । आशानिर्वेदभूयिष्ठमनृतप्राप्तमेव च ।।३१।।
कलत्रगर्भं निक्षिप्तमन्तःशल्यं तथैव च । विच्छिन्नविविधासारं शून्यमूलं तथैव च ।।३२।।
अस्वाम्यसंहतं वाऽपि भिन्नकूटं तथैव च । दुष्पार्ष्णिग्राहमर्थं च बलव्यसनमुच्यते ।।३३।।
दैवोपपीडितं मित्रं ग्रस्तं शत्रुबलेन च । कामक्रोधादिसंयुक्तमुत्साहादरिभिर्भवेत् ।।३४।।
अर्थस्य दूषणं क्रोधात्पारुष्यं वाक्यदण्डयोः । कामजं मृगया द्यूतं व्यसनं [1]पानकं स्त्रियः ।।३५।।
वाक्पारुष्यं परं लोक उद्वेजनमनर्थकम् । असिद्धिसाधनं दण्डस्तं युक्त्याऽवनयेन्नृपः ।।३६।।

का साधन, शत्रु को विनष्ट करनेवाला तथा विलम्ब से होनेवाले कार्य में शीघ्रता उत्पन्न करनेवाला दण्ड ही हुआ करता है। अतएव दण्ड में किसी प्रकार का दोष इन सबको नष्ट कर देता है। मित्र, मित्रों का सञ्चय करता है, शत्रुओं का संहार करता है और धन इत्यादि से (राजा का) उपकार करता है, किन्तु मित्र यदि व्यसनी हो तो इनका विनाश कर देता है। यदि राजा व्यसनी हो तो वह सभी राजकृत्यों को नष्ट कर दिया करता है। राजा के व्यसन हैं–वाणी और दण्ड की कठोरता, धन का दुरुपयोग, मदिरापान, स्त्रीप्रसंग, मृगया और जुआ। आलस्य, जड़ता, दर्प, प्रमाद, द्विविधा और ऊपर कहे गये दुर्गुण–ये सब मन्त्रियों के व्यसन हैं। अनावृष्टि और पीड़ा आदि राष्ट्र के व्यसन हैं ।।२३–२७।। यन्त्र, चहारदीवारी तथा खाईं का नष्ट होना, शस्त्रों का अभाव, थोड़ी-सी सेना से दुर्ग का निर्माण करना–यह सब दुर्गव्यसन कहलाते हैं। व्यय कर डालना, उधार में लगा देना, वश में न रहना, ठीक से हिसाब न रखना, दूषित कर देना तथा (देश भर में) दूर-दूर तक स्थापित करना–ये सब कोष के व्यसन हैं ।।२८–२९।। उपरुद्ध (कहीं घिरी हुई हो), बिखरी हुई, अनादृत, उपेक्षित, थोड़ी, व्याधिग्रस्त, थकी हुई, दूर से आयी, नयी-नयी प्राप्त की गयी, क्षीण, प्रतिहत, जिसका आगे का भाग नष्ट हो चुका है, अत्यन्त निराश, धोखा खायी हुई, स्त्रीबहुल, छिन्न-भिन्न, विभिन्न आसारों से युक्त, निराधार, असंगठित, टूटे हुए व्यूहोंवाली और दुष्ट पार्ष्णिग्राह से घिरी हुई–ये सब सेना के व्यसन हैं ।।३०–३३।। वह मित्र भी शत्रु ही है जो अमात्यग्रस्त हो, शत्रु-सेना से घिरा हुआ हो, काम-क्रोधादि से युक्त हो और उत्साह आदि से विहीन हो। क्रोधवश धन को नष्ट कर देना, वाणी और दण्ड की कठोरता, मृगया, द्यूतक्रीड़ा, मद्यपान और स्त्रियाँ–ये सब काम से उत्पन्न होनेवाले व्यसन हैं। वाणी की कठोरता प्रजाओं को उद्विग्न करनेवाली और (नाना प्रकार के) अनर्थों को करनेवाली हुआ करती है। इसी प्रकार कठोर दण्ड भी हुआ करता है। अतः राजा को चाहिए कि इन दोनों को छोड़ दे ।।३४–३६।। जो राजा

---

१ ख. ग. पालनं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उद्वेजयति भूतानि दण्डपारुष्यवान्नृपः । भूतान्युद्वेज्यमानानि द्विषतां यान्ति संश्रयम् ।।३७।।
विवृद्धाः शत्रवश्चैव विनाशाय भवन्ति ते । दूष्यस्य दूषणार्थं च परित्यागो महीयसः ।।३८।।
अर्थस्य नीतितत्त्वज्ञैरर्थदूषणमुच्यते । पानात्कार्यादिनो(ष्व)ज्ञानं मृगयातोऽरितः क्षयः ।।३९।।
जितश्रमार्थं मृगयां विचरेद्रक्षिते वने । धर्मार्थप्राणनाशादि द्यूते स्यात्कलहादिकम् ।।४०।।
कालातिपातो धर्मार्थपीडा स्त्रीव्यसनाद्भवेत् । पानदोषात्प्राणनाशः कार्याकार्यविनिश्चयः ।।४१।।
स्कन्धावारनिवेशज्ञो निमित्तज्ञो रिपुं जयेत् । स्कन्धावारस्य मध्ये तु सकोषं नृपतेर्गृहम् ।।४२।।
मौलीभूतं श्रेणिसुहृद्द्विषदाटविकं बलम् । राजहर्म्यं समावृत्य क्रमेण विनिवेशयेत् ।।४३।।
सैन्यैकदेशः संनद्धः सेनापतिपुरःसरः । परिभ्रमेच्चत्वरांश्च मण्डलेन बहिर्निशि ।।४४।।
वार्ताः स्वका विजानीयाद्दूरसीमान्तचारिणः । निर्गच्छेत्प्रविशेच्चैव सर्व एवोपलक्षितः ।।४५।।
सामं दानं च भेदश्च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकम् । मायोपायाः सप्त परे निक्षिपेत्साधनाय तान् ।।४६।।
चतुर्विधं स्मृतं साम उपकारानुकीर्तनात् । मिथः सम्बन्धकथनं मृदुपूर्वं च भाषणम् ।।४७।।
आयाते दर्शनं वाचा तवाहमिति चार्पणम् । यः सम्प्राप्तधनोत्सर्गं उत्तमाधममध्यमः ।।४८।।
प्रतिदानं तदा तस्य गृहीतस्यानुमोदनम् । द्रव्यदानमपूर्वं च स्वयंग्राहप्रवर्तनम् ।।४९।।

प्राणियों को कठोर दण्ड देता है उससे प्रजा उद्विग्न हो जाया करती है और उद्विग्न प्रजा उसके शत्रुओं का आश्रय ले लेती है। इस प्रकार बढ़े हुए शत्रु उस राजा के विनाश का कारण बन जाते हैं। दोष निराकरण के लिए महान् धनराशि का परित्याग करना अर्थदोष है। ऐसा अर्थशास्त्रवेत्ताओं का कहना है। मद्यपान से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक नष्ट हो जाता है और मृगया (में लगे रहने) से शत्रु से विनाश होता है। परिश्रम को जीतने के लिए राजा को किसी सुरक्षित वन में मृगया करनी चाहिए। द्यूतक्रीड़ा से धर्म, अर्थ और प्राणों का नाश होता है और कलह आदि बढ़ता है ।।३७-४०।। स्त्री-व्यसन से समय का नाश और धर्म तथा अर्थ ही हानि होती है। मदिरापान से प्राणों का नाश और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अविवेक उत्पन्न होता है। छावनी के निर्माण में कुशल तथा निमित्तों का ज्ञाता राजा शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। राजा का कोष तथा निवासगृह छावनी के बीच में होना चाहिए। सेना का मुख्य भाग और उसके अन्य भेद जैसे मित्र सेना और आटविक सेना इत्यादि को राजप्रासाद के चारों ओर रहना चाहिए ।।४१-४३।। सेना के एक भाग को जिसके आगे-आगे सेनापति हो, मण्डल बनाकर रात्रि में चौराहों पर भ्रमण करना चाहिए। उसे दूर-दूर तक राज्य की सीमाओं में अपने सम्बन्ध में होनेवाली बातों का पता लगाते रहना चाहिए। बिना किसी के देखे हुए कहीं प्रवेश करना चाहिए और कहीं से निकलना चाहिए। साम, दान, भेद, दण्ड, उपेक्षा, इन्द्रजाल और मायोपाय (षड्यन्त्र)-इन सातों को साधन रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। साम चार प्रकार का कहा गया है-दूसरे के उपकार का वर्णन करना (अर्थात् कृतज्ञता प्रकट करना), परस्पर सम्बन्ध के विषय में बातें करना, मधुर भाषण करना और (शत्रु के) आने पर प्रेमपूर्वक मिलना और 'मैं तुम्हारा ही हूँ' यह कहकर अपने-आपको समर्पण कर देना। पहले कभी न दी गयी वस्तुओं को देना, अपनी इच्छा से किसी वस्तु को ग्रहण करना, अपनी इच्छा से दूसरों को किसी वस्तु को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना, दातव्य ऋण आदि को छोड़ देना या न लेना-इस प्रकार ये दान के पाँच भेद कहे गये हैं ।।४४-४९।। भेदज्ञों ने भेद के तीन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देयश्च प्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतम् । स्नेहरागापनयनसंहर्षोत्पादनं तथा ।।५०।।
मिथोभेदश्च भेदज्ञैर्भेदश्च त्रिविधः स्मृतः । वधोऽर्थहरणं चैव परिक्लेशस्त्रिधा दमः ।।५१।।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकद्विष्टान्प्रकाशतः । [1]उद्विजेत हतैर्लोकस्तेषु पिण्डः [2]प्रशस्यते ।।५२।।
विषेणोपनिषद्योगैर्हन्याच्छस्त्रादिना द्विषः । जातिमात्रं द्विजं नैव हन्यात्सामोत्तरं वशे ।।५३।।
प्रलिम्पन्निव चेतांसि दृष्ट्वा साधु पिबन्निव । ग्रसन्निवामृतं साम प्रयुञ्जीत प्रियं वचः ।।५४।।
मिथ्याभिशस्तः श्रीकाम आहूयाप्रतिमानितः । राजद्वेषी चातिकरस्त्वात्मसंभावितस्तथा ।।५५।।
विच्छिन्नधर्मकामार्थः क्रुद्धो मानी विमानितः । अकारणात्परित्यक्तः कृतवैरोऽपि सान्त्वितः ।।५६।।
हृतद्रव्यकलत्रश्च पूजार्होऽप्रतिपूजितः । एतांस्तु भेदयेच्छत्रौ स्थितान्नित्यान्सुशङ्कितान् ।।५७।।
आगतान्पूजयेत्कामैर्निजांश्च प्रशमं नयेत् । सामदृष्टानुसंधानमत्युग्रभयदर्शनम् ।।५८।।
प्रधानदानमानं च भेदोपायाः प्रकीर्तिताः । मित्रं हतं काष्ठमिव घुणजग्धं विशीर्यते ।।५९।।
त्रिशक्तिर्देशकालज्ञो दण्डेनास्तं नयेदरीन् । मैत्रीप्रधानं कल्याणबुद्धिं सान्त्वेन साधयेत् ।।६०।।

भेद बतलाये हैं–परस्पर स्नेह तथा अनुराग को नष्ट कर देना, दो पक्षों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर देना और भेद डाल देना। दम (भी) तीन प्रकार का हुआ करता है–वध, धन का अपहरण करना और क्लेश देना। दण्ड दो प्रकार का हुआ करता है–प्रकाश और अप्रकाश। समाजद्रोही को प्रकाश रूप में दण्ड देना चाहिए। मृत्युदण्ड अथवा (अपराधी के) शिरश्छेद की अपेक्षा शारीरिक दण्ड अधिक उत्तम माना जाता है ।।५०-५२।। शत्रु को विष, मन्त्र, तन्त्र और शस्त्र आदि (के प्रयोग से) मारना चाहिए; पर केवल जन्म से भी द्विज कहलानेवाले का वध नहीं करना चाहिए अपितु उसे साम आदि (उपायों) के द्वारा वश में करना चाहिए। जिससे बातचीत की जाय उसके मुख का (नेत्रों से) पान करते हुए साम में ऐसे प्रिय वचनों का प्रयोग करना चाहिए जो हृदय का स्पर्श करनेवाले हों और अमृत-सा घोल रहे हों। शत्रु में ऐसे लोगों से भेद करवा देना चाहिए जिनके ऊपर मिथ्या लांछन लगाया गया हो, जिन्हें धन देने के लिए बुलाकर अपमानित किया गया हो, जो राजा से द्वेष करते हों, जिनके साथ दुर्व्यवहार किया गया है, जो आत्माभिमानी हों, धर्म, अर्थ, काम से वंचित हों, क्रोधी हों, अतिमानी हों, अकारण छोड़ दिये गये हों, जिन्हें शत्रुता करके भी सान्त्वना दे दी गयी हो, जिनका धन तथा स्त्री छीन ली गयी हो और जो पूज्य होने पर भी अपमानित किये गये हों–ऐसे लोग यदि अपनी ओर आ जायँ तो उनकी इच्छाओं को पूर्ण करके उनका सत्कार करना चाहिए, किन्तु ऐसे लोग यदि अपनी ओर हों तो उन्हें शान्त करना चाहिए ।।५३-५७½।। शत्रु सेना में भेद उत्पन्न करने के उपाय हैं–साम के प्रयोग, अत्यन्त उग्र भय का प्रदर्शन और (शत्रु के) प्रधान पुरुषों को दान देना तथा उनका सम्मान करना। झूठे मित्रों से घिरा हुआ राजा घुन लगी हुई लकड़ी की भाँति नष्ट हो जाया करता है। त्रिशक्ति (प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति) से सम्पन्न तथा देश-काल के ज्ञाता राजा को दण्ड के द्वारा शत्रुओं को वश में कर लेना चाहिए। जो राजा से मैत्री की भावना रखता हो अथवा उसके कल्याण की कामना करता हो उसे सान्त्वना के द्वारा वशीभूत करना चाहिए ।।५८-६०।। लोभी तथा दरिद्र को दान से, मित्रों को परस्पर

---

१ क. ङ. उद्वेजित ह°। २ क. ङ. प्रकाश्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लुब्धं क्षीणं च दानेन मित्रानन्योन्यशङ्कया । दण्डस्य दर्शनाद्दुष्टान्पुत्रभ्रातादि सामतः ।।६१।।
दानभेदैश्चमूमुख्यान्योधाञ्जनपदादिकान् । सामन्ताटविकान्भेददण्डाभ्यामपराद्धकान् ।।६२।।
देवताप्रतिमानां तु पूजयान्तर्गतैर्नरैः । पुमान्स्त्रीवस्त्रसंवीतो निशि चाद्भुतदर्शनः ।।६३।।
वेतालोल्कापिशाचानां शिवानां च स्वरूपिका । कामतोरूपधारित्वं शस्त्राग्न्यश्माम्बुवर्षणम् ।।६४।।
तमोऽनिलोऽनलो मेघ इति माया ह्यमानुषी । जघान कीचकं भीम आस्थितः स्त्रीस्वरूपताम् ।।६५।।
अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणम् । उपेक्षेयं स्मृता भ्रातोपेक्षितश्च हिडिम्बया ।।६६।।
मेघान्धकारवृष्ट्यग्निपर्वताद्भुतदर्शनम् । दूरस्थानां च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनाम् ।।६७।।
छिन्नपाटितभिन्नानां संसृतानां च दर्शनम् । इतीन्द्रजालं द्विषतां भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ।।६८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामादिकथनं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४१।।

एक-दूसरे से सशंकित रखते हुए, दुष्टों को दण्ड से, पुत्रों और भाइयों को साम से, मुख्य योद्धाओं, देशवासियों, सामन्तों तथा वनसैनिकों को विविध प्रकार के दान से और अपराधियों को दण्डभेद से वश में करना चाहिए। देव-प्रतिमाओं को पूजा से प्रसन्न करना चाहिए। शत्रु को भयभीत करने के लिए विभिन्न प्रकार की माया और इन्द्रजाल आदि का प्रयोग करना चाहिए जैसे रात्रि में पुरुष को स्त्री का वस्त्र पहनकर अद्भुत वेश बनाना चाहिए ।।६१-६३।। कभी वेताल, उल्का, पिशाच तथा शृगाली का रूप धारण करना चाहिए, कभी शस्त्र, अग्नि, जल तथा पत्थर बरसाना चाहिए, कभी अन्धकार, कभी आँधी, कभी आग तथा कभी बादल से वातावरण को भयावह बना देना चाहिए। इस तरह की माया को अमानुषी माया कहते हैं। इसी माया के प्रभाव से भीम ने स्त्री रूप धारण करके कीचक का वध किया था। अन्याय, व्यसन तथा युद्ध में लगे हुए को हटाना उपेक्षा कहलाता है। इसी तरह की उपेक्षा हिडिम्बा ने अपने भाई से की थी ।।६४-६६।। बादल, अन्धकार, वृष्टि, अग्नि तथा पर्वत का अद्भुत रूप दिखलाना, ध्वजा-पताका सहित दूर रहनेवाली सेना को समीप लाकर दिखाना, शत्रु-पक्ष की सेना को छिन्न-भिन्न रूप में दिखलाना-ये सब इन्द्रजाल हैं। शत्रुओं को डराने के लिए इनका प्रयोग करना चाहिए ।।६७-६८।।

श्री अग्निमहापुराण में सामादि-कथन नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४१।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजनीतिः

राम उवाच

षड्विधं तु बलं व्यूह्य देवान्प्रार्च्य रिपुं व्रजेत्। मौलं भूतं श्रोणिसुहृद्द्विषदाटविकं बलम् ।।१।।
पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु बलानां व्यसनं तथा। षडङ्गं मन्त्रकोषाभ्यां पदात्यश्वरथद्विपैः ।।२।।
नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र तत्र भयं भवेत्। सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद्व्यूहीकृतैर्बलैः ।।३।।
नायकः पुरतो यायात्प्रवीरपुरुषावृतः। मध्ये कलत्रं स्वामी च कोषः फल्गु च यद्बलम् ।।४।।
पार्श्वयोरुभयोरश्वा वाजिनां पार्श्वयो रथाः। रथानां पार्श्वयोर्नागा नागानां चाटवीबलम् ।।५।।
पश्चात्सेनापतिः सर्वं पुरस्कृत्य कृती स्वयम्। यायात्संनद्धसैन्यौघः खिन्नानाश्वासयञ्शनैः ।।६।।
यायाद्व्यूहेन महता मकरेण पुरो भये। श्येनेनोद्धतपक्षेण सूच्या वा [1]वीरवक्त्रया ।।७।।
पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञितम्। सर्वतः सर्वतोभद्रं भये व्यूहं प्रकल्पयेत् ।।८।।
कन्दरे शैलगहने निम्नगावनसंकटे। दीर्घाध्वनिपरिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितक्लमम् ।।९।।

अध्याय २४२

राजनीति

राम बोले–देवताओं का पूजन करके छह प्रकार के सैन्यव्यूह की रचना करके शत्रु (से युद्ध) के लिए प्रयास करना चाहिए। मौल, भूत, श्रोणि, सुहृद्, द्विषद् और आटविक–ये सेना के छह अङ्ग हैं ।।१।। इनमें पूर्व-पूर्व प्रकार की सेना क्रमशः अपने बादवाले अङ्ग की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हुआ करती है। इसी क्रम से इनके व्यसन (संकट) के महत्त्व को भी समझना चाहिए। मन्त्र, कोष, पदाति, अश्व, रथ और गज–ये छह सेना के अंग हुआ करते हैं। नदी, पर्वत, वन, दुर्ग आदि स्थानों में जहाँ भय हो वहाँ-वहाँ सेनापति को सैन्यव्यूह बनाकर रहना चाहिए ।।२-३।। सबसे आगे वीर योद्धाओं के साथ सेनानायक को चलना चाहिए। मध्य में स्त्री, स्वामी, कोष तथा जो सेना अशक्त हो गयी है उसको आगे रहना चाहिए। उसके दोनों ओर अश्व, अश्वों के दोनों ओर रथ, रथों के दोनों ओर हाथी, हाथियों के दोनों ओर सफरमैना सैनिक और सबसे पीछे सेनापति को रहना चाहिए। उसे सबको आगे करके स्वयं पर्याप्त सैनिकों को साथ लेकर खिन्न सैनिकों को सान्त्वना देते हुए धीरे-धीरे चलना चाहिए ।।४-६।। सेना को बहुत बड़े मकरव्यूह के रूप में प्रयाण करना चाहिए। आगे किसी भय की शंका होने पर ऊपर पंख उठाये हुए श्येन, सूची अथवा भयंकर मुख के आकार के व्यूह की रचना करनी चाहिए। यदि पीछे से भय उपस्थित हो तो शकटाकार व्यूह की और सब ओर भय हो तो सर्वतोभद्रव्यूह की रचना करनी चाहिए ।।७-८।। गुफा, पर्वतीय दर्रा, नदी तथा लम्बे मार्ग में भूख-प्यास से व्याकुल, परिश्रान्त, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि से पीड़ित, चोरों से

---

१ ख. ग. क्रूरवक्त्रया।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्याधिदुर्भिक्षमरकपीडितं दस्युविद्रुतम् । पङ्कपांशुजलस्कन्धं व्यस्तं पुञ्जीकृतं पथि ।।१०।।
प्रसुप्तं भोजनव्यग्रमभूमिष्ठमसुस्थितम् । चौराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम् ।।११।।
इत्यादौ स्वचमूं रक्षेत्परसैन्यं च घातयेत् । विशिष्टो देशकालाभ्यां भिन्नविप्रकृतिर्बली ।।१२।।
कुर्यात्प्रकाशयुद्धं हि कूटयुद्धं विपर्यये । तेष्ववस्कन्दपालेषु परं हन्यात्समाकुलम् ।।१३।।
अभूमिष्ठं स्वभूमिष्ठः स्वभूमौ चोपजातयः[1] । प्रकृतिप्रग्रहाकृष्टं पाशैर्वनचरादिभिः ।।१४।।
हन्यात्प्रवीरपुरुषैर्भङ्गदानापकर्षणैः । पुरस्ताद्दर्शनं दत्त्वा तल्लक्षकृतनिश्चयान् ।।१५।।
हन्यात्पश्चात्प्रवीरेण बलेनोपेत्य वेगिना । पश्चाद्वा संकुलीकृत्य हन्याच्छूरेण पूर्वतः ।।१६।।
आभ्यां पार्श्वाभिघाती तु व्याख्यातौ कूटयोधने । पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चाद्धन्यास्तु वेगवान् ।।१७।।
पुरः पश्चात्तु विषम[2] एवमेव तु पार्श्वयोः । प्रथमं योधयित्वा तु दूष्यामि त्राटवीबलैः ।।१८।।
श्रान्तं मन्दं निराक्रन्दं हन्यादश्रान्तवाहनम् । दूष्यामित्रबलैर्वाऽपि भङ्गं दत्त्वा प्रयत्नवान् ।।१९।।

लूटी हुई, कीचड़, धूल तथा जल में निमग्न, भोजन के लिए आतुर, रास्ते पर सोयी, अस्थिर, अस्वस्थ, चोर तथा अग्नि-भय से संत्रस्त, वर्षा और आँधी से पीड़ित अपनी सेना की तो रक्षा करनी चाहिए, किन्तु परकीय सेना का विध्वंस करना चाहिए ।।९-११½।। जब आक्रमण के लक्ष्यभूत शत्रु की अपेक्षा विजिगीषु राजा देश-काल की अनुकूलता की दृष्टि से बढ़ा-चढ़ा हो तथा शत्रु की प्रकृति में फूट डाल दी गयी हो और अपना बल अधिक हो तो शत्रु के साथ प्रकाशयुद्ध (घोषित या प्रकट संग्राम) छेड़ दे। यदि विपरीत स्थिति हो तो कूटयुद्ध (छिपी लड़ाई) करे। जब शत्रु की सेना पूर्वोक्त बलव्यसन (सैन्य-संकट) के अवसरों या स्थानों में फँसकर व्याकुल हो तथा युद्ध के अयोग्य भूमि में स्थित हो और सेना सहित विजिगीषु अपने अनुकूल भूमि पर स्थित हो, तब वह शत्रु पर आक्रमण करके उसे मार गिराये। यदि शत्रु-सैन्य अपने लिये अनुकूल भूमि में स्थित हो तो उसकी प्रकृतियों में भेदनीति द्वारा फूट डलवाकर, अवसर देख शत्रु का विनाश कर डाले। जो युद्ध से भागकर या पीछे हटकर शत्रु को उसकी भूमि से बाहर खींच लाते हैं, ऐसे वनचरों (आटविकों) तथा अमित्र सैनिकों ने पाशभूत होकर जिसे प्रकृति प्रग्रह से (स्वभूमि या मण्डल से) दूर-परकीय भूमि में आकृष्ट कर लिया है, उस शत्रु को प्रकृष्ट वीरयोद्धाओं द्वारा मरवा डाले। कुछ थोड़े से सैनिकों को सामने की ओर युद्ध के लिए उद्यत दिखा दे और जब शत्रु के सैनिक उन्हीं को अपना लक्ष्य बनाने का निश्चय कर लें, तब पीछे से वेगशाली उत्कृष्ट वीरों की सेना के साथ पहुँचकर उन शत्रुओं का विनाश कर दे अथवा पीछे की ओर ही सेना एकत्र करके दिखाये और जब शत्रु सैनिकों का ध्यान उधर ही खिंच जाय, तब सामने की ओर से शूरवीर बलवान् सेना द्वारा आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर दे ।।१२-१६।। सामने तथा पीछे की ओर से किये जानेवाले इन दो आक्रमणों द्वारा अगल-बगल से किये जानेवाले आक्रमणों की भी व्याख्या हो गयी अर्थात् बायीं ओर कुछ सेना दिखाकर दाहिनी ओर से और दाहिनी ओर सेना दिखाकर बायीं ओर से गुप्त रूप से आक्रमण करे। कूटयुद्ध में ऐसा ही करना चाहिए। पहले दूष्यबल, अमित्रबल तथा आटविकबल-इन सबके साथ शत्रु-सेना को लड़ाकर थका दे। जब शत्रुबल श्रान्त, मन्द (हतोत्साह) और निराक्रन्द (मित्ररहित एवं निराश) हो जाय और अपनी सेना के वाहन थके न हों, उस दशा में आक्रमण करके शत्रुवर्ग को मार गिराये। अथवा दूष्य

---

१ घ. °जायतः प्र°। २ ख. ग. विषय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जितमित्येव विश्वस्तं हन्यान्मन्त्रव्यपाश्रयः । स्कन्धावारपुरग्रामसस्यस्वामिप्रजादिषु ।।२०।।
विश्रम्य (म्भ) न्तं परानीकमप्रमत्तो विनाशयेत् । अथवा गोग्रहाकृष्टं तल्लक्ष्यं मार्गबन्धनात् ।।२१।।
अवस्कन्दभयाद्रात्रिप्रजागरकृतश्रमम् । दिवासुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकम् ।।२२।।
निशि विश्रब्धसंसुप्तं नागैर्वा खड्गपाणिभिः । प्रयाणे पूर्वयायित्वं वनदुर्गप्रवेशनम् ।।२३।।
अभिन्नानामनीकानां भेदनं भिन्नसंग्रहः । विभीषिकाद्वारघातं कोषरक्षेभकर्म च ।।२४।।
अभिन्नभेदनं मित्रसंधानं रथकर्म च । वनदिङ्मार्गविचये वीवधासारलक्षणम् ।।२५।।
अनुयानापसरणे शीघ्रकार्योपपादनम् । दीनानुसरणं घातः कोटीनां जघनस्य च ।।२६।।
अश्वकर्माथ पत्तेश्च सर्वदा शस्त्रधारणम् । शिविरस्य च मार्गादेः शोधनं बस्तिकर्म च ।।२७।।
संस्थूलस्थाणुवल्मीकवृक्षगुल्मापकण्टकम् । सापसारा पदातीनां भूर्नातिविषमा मता ।।२८।।
स्वल्पवृक्षोपला क्षिप्रलङ्घनीयनगा स्थिरा । निःशर्करा विपङ्का च सापसारा च वाजिभूः ।।२९।।

अथवा अमित्र सेना को युद्ध से पीछे हटने या भागने का आदेश दे दे और जब शत्रु को यह विश्वास हो जाय कि मेरी जीत हो गयी, अतः वह ढीला पड़ जाय, तब मन्त्र बल का आश्रय ले प्रयत्नपूर्वक आक्रमण करके उसे मार डाले। स्कन्धावार (सेना के पड़ाव), पुर, ग्राम, सस्यसमूह तथा गौओं के व्रज (गोष्ठ)–इन सबको लूटने का लोभ शत्रु–सैनिकों के मन में उत्पन्न करा दे और जब उनका ध्यान बँट जाय, तब स्वयं सावधान रहकर उन सबका संहार कर डाले ।।१७-२०$\frac{1}{2}$।। अथवा शत्रु राजा की गायों का अपहरण करके उन्हें दूसरी ओर (गायों को छुड़ानेवालों की ओर) खींचे और जब शत्रु–सेना उस लक्ष्य की ओर बढ़ें, तब उसे मार्ग में ही रोककर मार डाले। अथवा अपने ही ऊपर आक्रमण के भय से रातभर जागने के श्रम से दिन में सोयी हुई शत्रु–सेना के सैनिक जब नींद से व्याकुल हों, उस समय उन पर धावा बोलकर मार डाले। अथवा रात में ही निश्चिन्त सोये हुए सैनिकों को हाथ में तलवार लिये हुए पुरुषों द्वारा मरवा दे। जब सेना कूच कर चुकी हो तथा शत्रु ने मार्ग में ही घेरा डाल दिया हो तो उसके उस घेरे या अवरोध को नष्ट करने के लिए हाथियों को ही आगे-आगे ले चलना चाहिए। वन–दुर्ग में, जहाँ घोड़े भी प्रवेश न कर सकें, वहाँ हाथियों की सहायता से सेना का प्रवेश होता है–वे आगे के वृक्ष आदि को तोड़कर सैनिकों को प्रवेश के लिए मार्ग बना देते हैं। जहाँ सैनिकों की पंक्ति ठोस हो, वहाँ उसे तोड़ देना हाथियों का ही काम है तथा जहाँ व्यूह टूटने से सैनिक पंक्ति में दरार पड़ गयी हो, वहाँ हाथियों के खड़े होने से छिद्र या दरार बन्द हो जाती है। शत्रुओं में भय उत्पन्न करना, शत्रु–दुर्ग के द्वार को माथे की टक्कर देकर तोड़ गिराना, खजाने को सेना के साथ ले चलना तथा किसी उपस्थित भय से सेना की रक्षा करना–ये सब हाथियों द्वारा सिद्ध होनेवाले कर्म हैं ।।२१-२४।। संगठित शत्रु–सेना को छिन्न-भिन्न करना और मित्र–सेना को संगठित करना, रथसेना का काम है। अश्वारोही सेना का कर्त्तव्य है वनों, दिशाओं और मार्गों का पर्यवेक्षण, आवागमन के साधनों और रसद की रक्षा करना, (भागती हुई सेना का) पीछा करना, शीघ्रता के कार्यों का सम्पादन करना, दोनों का अनुसरण करना और श्रेणीबद्ध सेना का वध करना, सदा शस्त्र धारण करना, शिविर और मार्ग आदि को साफ करना, (शत्रु को) मारना ।।२५-२७।। पदाति सेना के लिए वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है, जिसमें बड़े-बड़े सूखे वृक्ष, वल्मीक, वृक्ष, झाड़ियाँ और काँटे न हों, जिसमें निकलने का मार्ग हो और जो अत्यन्त ऊँची-ऊँची न हो। अश्वारोही सेना के लिए वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है, जिसमें थोड़े-थोड़े वृक्ष और पत्थर हों, जहाँ के पर्वतों को शीघ्रता से पार किया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निस्थाणुवृक्षकेदारा रथभूमिरकर्दमा । मर्दनीयतरुच्छेद्यव्रततीपङ्कवर्जिता ।।३०।।
निर्झरागम्यशैला च विषमागजमेदिनी । उरस्यादीनि भिन्नानि प्रतिगृह्णन्बलानि हि ।।३१।।
प्रतिग्रह इति ख्यातो राजकार्यान्तरक्षमः । तेन शून्यस्तु यो व्यूहः स भिन्न इव लक्ष्यते ।।३२।।
जयार्थी न च युध्येत मतिमानप्रतिग्रहः । यत्र राजा तत्र कोषः कोषाधीना हि राजता ।।३३।।
योधेभ्यस्तु ततो दद्यात्किंचिद्दातुं न युज्यते । द्रव्यलक्षं राजघाते तदर्धं तत्सुतार्दने ।।३४।।
सेनापतिवधे [1]तद्वद्दद्याद्धस्त्यादिमर्दने । अथ वा खलु युध्येरन्पत्त्यश्वरथदन्तिनः ।।३५।।
यथा भवेदसंबाधो व्यायामविनिवर्तने । असंकरेण युध्येरन्संकरः संकुलावहः ।।३६।।
महासंकुलयुद्धेषु संश्रयेरन्मतङ्गजम् । अश्वस्य प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः ।।३७।।
[2]इति कल्प्यास्त्रयश्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य तु । पादगोपा भवेयुश्च पुरुषा दशपञ्च च ।।३८।।
विधानमिति नागस्य विहितं स्यन्दनस्य च । अनीकमिति विज्ञेयमिति कल्प्याः नवद्विपाः ।।३९।।
तथाऽनीकस्य रन्ध्रं तु पञ्चधा संप्रचक्षते । इत्यनीकविभागेन स्थापयेद्व्यूहसंपदः ।।४०।।

जा सके, जो स्थिर हो, रेतीली न हो, दलदली न हो और जहाँ निकलने का मार्ग न हो। रथसेना के लिए वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है जिसमें ठूँठ वृक्ष और पर्वत न हो तथा जिसमें कीचड़ भी न हो। हस्तिसेना के लिए वह भूमि उपयुक्त मानी गयी है जिसमें ऐसे वृक्ष हों जो तोड़े जा सकें, लताएँ ऐसी हों, जिन्हें (आसानी से) तोड़ा जा सके, जहाँ कीचड़ न हों, जहाँ निर्झर हो, अगम्य पर्वत हों और जो ऊँची-नीची हो। सेना को उर (वक्षःस्थल) आदि नामों में विभक्त कर देना चाहिए ।।२८-३१।। इस प्रकार की सेना का विग्रह करना ही प्रतिग्रह कहलाता है। जो व्यूह इस (प्रतिग्रह) से शून्य होता है वह छिन्न-भिन्न दिखलायी पड़ता है। विजयाभिलाषी राजा यदि बुद्धिमान् हो तो उसे प्रतिग्रह के बिना युद्ध नहीं करना चाहिए। जहाँ राजा है वहाँ कोष है। कोष के अधीन ही प्रभुता मानी गयी है। (युद्ध में विजय प्राप्त करने पर) योद्धाओं को (पुरस्कार) देना चाहिए, किन्तु थोड़ा-बहुत देना उपयुक्त है। (विरोधी) राजा की मृत्यु पर एक लाख द्रव्य देना चाहिए, उसके पुत्र की मृत्यु पर इसका आधा (पचास हजार) द्रव्य देना चाहिए। सेनापति की मृत्यु पर उसका भी आधा (पचीस हजार) द्रव्य देना चाहिए और हाथी आदि की मृत्यु पर उसका भी आधा (साढ़े बारह हजार) द्रव्य पुरस्कार रूप में देना चाहिए ।।३२-३४½।। अथवा पदाति, अश्व, रथ और हस्तिसेना के साथ (एक साथ) युद्ध करना चाहिए, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि ये सारी सेनाएँ परस्पर सम्बद्ध न हो जायँ। सेनाओं में बिना हलचल उत्पन्न किये हुए युद्ध करना चाहिए, क्योंकि हलचल भयावह हुआ करती है। जब युद्ध में हलचल मची हो तब हस्तिसेना का आश्रय लेना चाहिए। पैदल सेना के तीन योद्धा एक अश्वारोही योद्धा के प्रतिद्वन्द्वी हो सकते हैं ।।३५-३७।। पदातिसेना के पन्द्रह योद्धाओं को हस्तिसेना के एक योद्धा की रक्षा के लिए नियुक्त करना चाहिए। हस्तिसेना के ऐसे-ऐसे नौ योद्धाओं के बराबर पदातिसेना के योद्धाओं को एक रथारोही योद्धा की रक्षा के लिए नियुक्त करना चाहिए। व्यूह बनाकर खड़ी हुई सेना के पाँच प्रकार के दोष कहे गये हैं। उसे इस प्रकार के व्यूहों में खड़ा करना चाहिए ।।३८-४०।। सेना के आवश्यक अङ्ग

---

१ ख. द्याददुष्टादि°। २ क. °ति कृत्वा त्रय°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उरस्य कक्षपक्षांस्तु कल्प्यानेतान्प्रचक्षते। उरः कक्षौ च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ।।४१।।
कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते। उरस्यकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः ।।४२।।
गुरोरेष च शुक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः। तिष्ठेयुः सेनापतयः प्रवीरैः पुरुषैर्वृताः ।।४३।।
अभेदेन च युध्येरन्रक्षेयुश्च परस्परम्। युद्धमध्ये फल्गुसैन्यं युद्धवस्तु जघन्यतः ।।४४।।
युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकम्। उरसि स्थापयेन्नागान्प्रचण्डान्कक्षयोः रथान् ।।४५।।
हयांश्च पक्षयोर्व्यूहो मध्यभेदी प्रकीर्तितः। मध्यदेशे हयानीकं रथानीकं च कक्षयोः ।।४६।।
पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोऽन्तर्भेद्ययं स्मृतः। रथस्थाने हयान्दद्यात्पदातींश्च हयाश्रये ।।४७।।
रथाभावे तु द्विरदान्व्यूहे सर्वत्र दापयेत्। यदि स्याद्दण्डबाहुल्यमाबाधः संप्रकीर्तितः ।।४८।।
मण्डलासंहतो[1] भोगो दण्डस्ते बहुधा शृणु। तिर्यग्वृत्तिस्तु दण्डः स्याद्भोगोऽन्या वृत्तिरेव च ।।४९।।
मण्डलः सर्वतोवृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः। [2]प्रदरो दृढकोऽसह्यश्चापो वै कुक्षिरेव च ।।५०।।
[3]प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसंजयौ। विशालो विजयः सूची स्थूणाकर्णचमूमुखौ ।।५१।।
सर्पाक्ष्यो वलयश्चैव दण्डभेदाश्च[4] दुर्जयाः। अतिक्रान्तः प्रतिक्रान्तः कक्षाभ्यां चैकपक्षतः ।।५२।।

तीन हुआ करते हैं–उरस्, कक्ष और पक्ष। व्यूह शास्त्र के ज्ञाताओं के अनुसार व्यूह सात अङ्गोंवाला हुआ करता है। वे अङ्ग हैं–उर, कक्ष, पक्ष, मध्य, प्रतिग्रह और कोटि (अग्रभाग)। गुरुव्यूह उसे कहते हैं जिसमें उर, कक्ष, पक्ष और प्रतिग्रह (अङ्ग) हुआ करते हैं, किन्तु जिसमें कक्ष नहीं रहते हैं उसे शुक्र-व्यूह कहते हैं। विशिष्ट योद्धाओं से घिरे हुए सेनापतियों को (सेना के आगे रहकर) मिलकर युद्ध करना चाहिए और परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करनी चाहिए। दुर्बल सेना को व्यूह के बीच में रखना चाहिए। युद्ध का प्राण है (सेना का) नायक। जिस सेना में कोई नायक नहीं रहता है, उसका वध कर दिया जाता है ।।४१-४४ $\frac{1}{2}$।। उर नामक व्यूह में गजारोही सेना को खड़ा करना चाहिए और कक्ष में बलशालिनी रथसेना को खड़ा करना चाहिए तथा पक्ष भाग में अश्वारोही सेना को स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार के व्यूह को मध्यभेदी व्यूह कहते हैं। वह व्यूह अन्तर्भेदी व्यूह कहलाता है जिसमें अश्वसेना बीच में रहती है, रथसेना कक्षों में रहती है और हस्तिसेना पक्षों में रहा करती है। उस व्यूह को आबाध व्यूह कहते हैं जिसमें रथ के स्थान में अश्वारोही सेना को खड़ा किया जाता है और रथसेना के अभाव में सर्वत्र हस्तिसेना को खड़ा किया जाता है जिसमें दण्ड का बाहुल्य हुआ करता है ।।४५-४८।। सेना को मण्डलाकार खड़ा करने को भोग-व्यूह कहते हैं। अब मैं तुमसे उन व्यूहों के विषय में कह रहा हूँ जो तिरछी रेखाओं में अथवा गोलाकार रेखाओं में खड़े किये जाते हैं, उनके विषय में सुनो। जहाँ पर सेना पूर्ण वृत्ताकार खड़ी होती है उसे मण्डल-व्यूह कहते हैं और जिसमें सेनाओं को अलग-अलग वृत्तों में खड़ा किया जाता है उसे असंहर्त व्यूह कहते हैं। सेनाओं को विभिन्न रूपों में खड़ा करने से दण्ड के अनेक भेद बन जाते हैं–प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, कुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, सञ्जय, विशाल, वज्र, सूची, स्थाणुकर्ण, चमूमुख, सर्पाक्ष्य और वलय। ये सब भेद दुर्जय माने जाते हैं और ये एक पक्ष से कक्षों को सम्मिलित

---

१ क. °हतौ भो°। २ ख. ग. प्रवरो। ३ क. ख. ग. च. °तिष्ठश्चाप्र°। ४ ख. °श्चतुर्दश। अ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतिक्रान्तस्तु पक्षाभ्यां त्रयोऽन्ये तद्विपर्यये । पक्षोरस्यैरतिक्रान्तः प्रतिष्ठोऽन्यो विपर्ययः ।।५३।।
स्थूणापक्षो धनुष्पक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्ध्वगः । द्विगुणोऽन्तस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्यस्य विपर्ययः ।।५४।।
द्विचतुर्दण्ड इत्येते ज्ञेयः लक्षणतः क्रमात् । गोमूत्रिकाहि सञ्चारी शकटो मकरस्तथा ।।५५।।
भोगभेदाः समाख्यातास्तथा पारिप्लवङ्गकः । दण्डपक्षौ युगोरस्यः शकटस्तद्विपर्यये ।।५६।।
मकरो व्यतिकीर्णश्च शेषः[1] कुञ्जरराजिभिः । मण्डलव्यूहभेदौ तु सर्वतोभद्रदुर्जयौ ।।५७।।
अष्टानीको द्वितीयस्तु प्रथमः सर्वतोमुखः । अर्धचन्द्रक ऊर्ध्वाङ्गो वज्रभेदास्तु संहतेः ।।५८।।
तथा कर्कटशृङ्गी च काकपादी च गोधिका । त्रिचतुष्पञ्चसैन्यानां ज्ञेया आकारभेदतः ।।५९।।
दण्डस्य स्युः सप्तदश व्यूहा द्वौ मण्डलस्य च । असंघातस्य षट्पञ्च भोगस्यैव तु संगरे ।।६०।।
पक्षादीनामथैकेन हत्वा शेषैः परिक्षिपेत् । उरसा वा समाहत्य कोटिभ्यां परिवेष्टयेत् ।।६१।।
परे कोटी समाक्रम्य पक्षाभ्यामप्रतिग्रहात् । कोटिभ्यां जघनं हव्यादुरसा च प्रपीडयेत् ।।६२।।
यतः फल्गु यतो भिन्नं यतश्चान्यैरधिष्ठितम् । ततश्चारिबलं हन्यादात्मनश्चोपबृंहयेत् ।।६३।।
सारं द्विगुणसारेण फल्गुसारेण कल्पयेत्[2] । संहतं च गजानीकैः प्रचण्डैर्दारयेद्बलम् ।।६४।।

करने या वहाँ से हटाने से बनते हैं। उपर्युक्त व्यूह में दो कक्षों को जोड़ देने से और ही व्यूह बन जाता है। उरस् में एक पक्ष और उरस् को जोड़ देने से प्रतिष्ठ नामक व्यूह बन जाता है ।।४९-५३।। स्थूणपक्ष और धनुष्पक्ष नामक व्यूह दो-चार पङ्क्तियों में खड़े हुए योद्धाओं के व्यूहों का ही परिवर्तित रूप है। इन्हें अपने-अपने लक्षणों से ही पहचाना जा सकता है। गोमूत्रिका, अहिसञ्चारी, शकट, मकर, परिप्लवङ्गक-ये सब भोग नामक व्यूह के ही भेद कहे गये हैं। दण्ड के रूप में दो कक्षवर्तिनी सेनाओं को खड़ा करने से युगोरस्य और इसकी विपरीत स्थिति में शकट नामक व्यूह बनता है। मकर नामक व्यूह में हस्तिसेना के योद्धाओं की पङ्क्तियों को बढ़ा देने से शेष नामक व्यूह बन जाता है। सर्वतोभद्र और दुर्जय नामक व्यूह मण्डलव्यूह के ही परिवर्तित रूप हैं ।।५४-५७।। इनमें से पहला व्यूह सब ओर से खुला रहता है और दूसरा आठ सैन्यदलों का बना होता है। वज्र वर्ग के व्यूह के विभिन्न अङ्गों के संयोग से अर्धचन्द्रक और ऊर्ध्वङ्ग नामक व्यूह बनते हैं। तीन, चार और पाँच योद्धाओं को विभिन्न स्थितियों में खड़ा रहने से क्रमशः कर्कट, शृङ्ग, काकपादी और गोधिका नामक व्यूहों का निर्माण होता है। संग्रामदण्ड के सत्रह प्रकार के, मण्डल के दो प्रकार के, असंघात के छह प्रकार के और भोग के पाँच प्रकार के व्यूह हुआ करते हैं ।।५८-६०।। (सेनापति को) पक्ष की ओर से आक्रमण करना चाहिए। अन्य भागों से (शत्रु-सेना को) छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए। अथवा उसे उरस् नामक सेना के अंग से प्रतिपक्षी सेना के साथ युद्ध करना चाहिए और कोटि नामक अङ्ग से उसे घेर लेना चाहिए। तत्पश्चात् पक्ष नामक अङ्गों से (शत्रु-सेना के) कोटि भाग के ऊपर आक्रमण करना चाहिए। कोटिभागों से (शत्रु-सेना के) जघन नामक अङ्ग के ऊपर आक्रमण करना चाहिए। जब शत्रु-सेना थोड़ी हो, अलग-अलग हो और शत्रुओं से घिरी हुई हो तब उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिए और अपनी सेना को बढ़ाते रहना चाहिए ।।६१-६३।। शत्रु-सेना के मुख्य अङ्ग पर उसके दुगुने सैन्य दल से आक्रमण

---

१ क. शेषं कुञ्जरवाजि°। २ ख. ग. घ. पीडयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्यात्कक्षपक्षोरस्यैश्च वर्तमानस्तु दण्डकः । तत्रप्रयोगो दण्डस्य स्थानं तुर्येव [1]दर्शयेत् ।।६५।।
स्याद्दण्डसमपक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः[2] । भवेत्स पक्षकक्षाभ्यामतिक्रान्तो[3] दृढः स्मृतः ।।६६।।
कक्षाभ्यां च प्रतिक्रान्तव्यूहोऽसह्यः स्मृतो यथा[4] । कक्षपक्षावधः स्थाप्योरस्यैः क्रान्तश्च खातकः[5] ।।६७।।
द्वौ दण्डौ वलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः[6] । दुर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः[7] ।।६८।।
कक्षपक्षोरस्यैर्भोगो विषमं[8] परिवर्जयेत्[9] । [10]सर्पचारी गोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः[11] ।।६९।।
विषर्ययोऽमरः प्रोक्तः [12]शर्वशत्रुविमर्दकः । स्यात्कक्षपक्षोरस्यानामेकी भावस्तु मण्डलः[13] ।।७०।।
चक्रपद्मादयो भेदा मण्डलस्व प्रभेदकाः । एवं च सर्वतोभद्रो वज्राक्षवरकाकवत् ।।७१।।
अर्धन्द्रश्च शृङ्गारी ह्यचलो नामरूपतः । व्यूहा यथासुखं कार्याः शत्रूणां बलवारणाः ।।७२।।

अग्निरुवाच

रामस्तु रावणं हत्वा ह्ययोध्यां प्राप्तवान्द्विज । रामोक्तनीत्येन्द्रजितं हतवाँल्लक्ष्मणः पुरा ।।७३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजनीतिकथनं नाम द्वाचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४२।।

करना चाहिए अथवा अपनी सेना के सुरक्षित भाग से आक्रमण करना चाहिए। यदि सेना के कक्ष, पक्ष और उर नामक भाग सामने खड़े हों तो अपनी सेना को दण्डक के रूप में खड़ा कर देना चाहिए। दण्ड रूप में खड़ी हुई सेना में पक्ष और कक्ष नामक अङ्गों को सम्मिलित कर देने से प्रदर नामक (सैन्य) अङ्ग बन जाता है, जिसका सामना करने के लिए दृढ़ व्यूह का निर्माण करना चाहिए ।।६४-६६।। असह्य व्यूह में खड़ी हुई सेना का सामना खातक व्यूह से करना चाहिए। शत्रु-सेना के दो दण्डों से वलय नामक व्यूह का निर्माण होता है जो शत्रु को विदीर्ण करनेवाला हुआ करता है और शत्रु-सेना का भेदन करनेवाली चार दण्डों से बनी हुई सेना को दुर्जय (व्यूह) कहते हैं। भोग नामक सैन्य-दल के उर, पक्ष और कक्ष की स्थिति में परिवर्तन कर देने से क्रमशः सर्पचारी, गोमूत्रिका और शकट की आकार का शकट-व्यूह हुआ करता है। (शकट का) विपरीत (व्यूह) अमरव्यूह कहलाता है जो सभी शत्रुओं का मर्दन करनेवाला हुआ करता है। मण्डल व्यूह में कक्ष, पक्ष और उर आदि में योद्धाओं की स्थिति समान रहती है ।।६७-७०।। चक्र और पद्म आदि भेद मण्डल (व्यूह) के ही हैं। इसी प्रकार सर्वतोभद्र, अर्धचन्द्र, शृङ्गार और अचल मण्डल के ही विभिन्न रूप हैं, जो शत्रु-सेना का सामना करने के लिए सुविधानुसार बना लिये जाते हैं ।।७१-७२।।

अग्निदेव बोले-हे ब्राह्मण देव! (इसी नीति के अनुसार) राम ने रावण को मारकर अयोध्या को पुनः प्राप्त किया और राम के द्वारा बतायी गयी नीति के अनुसार ही प्राचीन काल में लक्ष्मण ने (भी) इन्द्रजित् (मेघनाद) का वध किया था ।।७३।।

श्री अग्निमहापुराण में राजनीति कथन नामक दो सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४२।।

---

१ क. दृश्यते। स्या°। २ क. ङ. °कः। भ°। ३ क. ङ. °न्तो हरःस्मृतः। क°। ४ क. ङ. °था। क°। ५ क. ङ. खादकः। द्वौ। ६ क. ङ. °णा। दु°। ७ क. ङ. नः°। क°। ८ घ. °षयं परिवर्तयन्। स°। ९ क. ङ. °त्। स°। १० क. ङ. सर्वचारी। ११ क. ङ. °तिः। वि°। १२ क. ङ.° र्दनः। स्या°। १३ क. ङ. °लः। च°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुषलक्षणम्

अग्निरुवाच

[1]रामोक्तोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन्नृणां वदे । लक्षणं यत्समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा ।।१।।

समुद्र उवाच

पुंसां च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणां चैव शुभाशुभम् । एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रिगम्भीरस्तथैव च ।।२।।
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा । त्रिबलीमांस्त्रिवनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ।।३।।
पुरुषः स्यात्सुलक्षण्यो विपुलश्च तथा त्रिषु । चतुर्लेखस्तथा यश्च तथैव च चतुः समः ।।४।।
[2]चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुष्कृष्णस्तथैव च । चतुर्गन्धश्चतुर्हस्तः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चसु ।।५।।
षडुन्नीतोष्टवंशश्च सप्तस्नेहो [3]नवामलः । दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ।।६।।
चतुर्दशसमद्वन्द्वः षोडशाक्षश्च शस्यते । धर्मार्थकामसंयुक्तो धर्मो ह्येकाधिको मतः ।।७।।

अध्याय २४३

पुरुषलक्षण

अग्निदेव बोले–हे राजन्! मैंने राम के द्वारा बतलायी गयी नीति को तो कह दिया है, अब मैं स्त्री-पुरुषों के उन लक्षणों को बतलाऊँगा, जिन्हें प्राचीन काल में समुद्र ने गर्ग से कहा था ।।१।।

समुद्र बोला–(अब मैं) स्त्री-पुरुषों के शुभाशुभ लक्षणों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। अये सुव्रत! वह पुरुष सुलक्षण हुआ करता है जो एकाधिक, द्विशुक्ल, त्रिगम्भीर, त्रित्रिक, त्रिप्रलम्ब, त्रिवनत, त्रिवलीवान् और त्रिकालज्ञ हो ।।२-३।। इसी प्रकार जिसके शरीर के चार अङ्गों के ऊपर चार लेखाएँ हों, शरीर के चार अङ्ग विस्तृत और दीर्घ हों, ऊँचाई उपयुक्त हो, आगे के चार दाँत अच्छे हों, जिसके शरीर के चार अङ्ग श्यामवर्ण हों, जिसके शरीर के चार अङ्गों से सुगन्धि आया करती हो, जिसके चार अंग छोटे हों, पाँच अङ्ग लम्बे और पतले हों, छह अङ्ग उठे हुए हों, आठ अङ्गों की अस्थियाँ मजबूत और सीधी हों, जिसके शरीर के सात अङ्ग चिकने हों, नौ अङ्ग निर्मल हों, दस अङ्ग कमल के वर्ण के हों, दस अङ्ग विकाररहित और सुडौल हों, जिसके अङ्ग न्यग्रोधपरिमण्डल के समान हों, शरीर के चौदह अङ्ग युग्म के समान हों अथवा जिसके सोलह नेत्र हों (चौदह ज्ञानचक्षु, दो कर्मचक्षु), वह मनुष्य अपने जीवन में बड़े-बड़े कार्य कर सकता है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों का पालन करते हुए अपने कर्त्तव्य

---

१ छ. रामायोक्ता। २ क. °र्दंष्ट्रः शुक्लः कृष्ण°। ३ ग. महाबलः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तारकाभ्यां विना नेत्रे शुक्लदन्ती द्विशुक्लकः । गम्भीरस्त्रिश्रवोनाभिः सत्त्वं चैकं त्रिकं स्मृतम् ।।८।।
अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचार युक्तता । शौचंस्पृहात्वकार्पण्यमनायासश्च शौर्य (शूर) ता ।।९।।
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बः स्याद् वृषणे भुजयोर्नरः । दिग्देशजातिवर्गाश्च तेजसा यशसा श्रिया ।।१०।।
व्याप्नोति यस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान्नरस्त्वसौ । उदरे वलयस्तिस्त्रो नरं त्रिविनतं शृणु ।।११।।
देवतानां द्विजानां च गुरूणां प्रणतस्तु यः । धर्मार्थकामकालज्ञस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते ।।१२।।
उरो ललाटं वक्त्रं च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान् । द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतौ ।।१३।।
अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटिः शस्तं चतुःसमम् । षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणतः ।।१४।।
दंष्ट्राश्चतस्त्रश्चन्द्राभाश्चतुष्कृष्णं वदामि ते । नेत्रतारौ भ्रुवौ श्मश्रुः कृष्णाः केशास्तथैव च ।।१५।।
नासायां वदने स्वेदे कक्षयोर्वेदगन्धकः[1] । ह्रस्वं लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद्वेदह्रस्वकः ।।१६।।
सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि नखकेशद्विजत्वचः । हनू नेत्रे ललाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरम् ।।१७।।
वक्षः कक्षौ नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका । स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोमदृष्टिर्नखाश्च वाक् ।।१८।।
जान्वोरूर्वोश्च पृष्ठस्थवंशौ द्वौ करनासयोः । नेत्रे नासापुटौ कर्णौ मेढ्रं पायुमुखेऽमलम् ।।१९।।

का पालन करना एकाधिक कहलाता है। द्विशुक्ल उसे कहते हैं जिसके दाँत और कनीनिकाएँ शुक्ल हों। धैर्य, कान और नाभि की गम्भीरता ही त्रिगम्भीरत्व है ।।४-८।। नौ गुणों का होना ही 'त्रित्रिक' कहलाता है। वे गुण हैं—अनसूया, दया, क्षमा, मङ्गलाचार, शुचिता, स्पृहा, अकार्पण्य, अनायासता और शूरता। त्रिलम्ब का अभिप्राय है हाथों, अण्डकोषों और शरीर के नीचेवाले भागों का लम्बा होना। जो व्यक्ति अपने तेज, यश और ऐश्वर्य से सभी दिशाओं को, अपने देश को और अपनी जाति को प्रभावित कर लेता है, उसे त्रिव्यापी कहते हैं। जिसके उदर में तीन रेखाएँ पड़ी हुई होती हैं, उसे त्रिवलीमान् कहते हैं। त्रिविनत उसे कहते हैं जो देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों के प्रति विनम्र रहता है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों की प्राप्ति के अवसर के ज्ञाता पुरुष को त्रिकालज्ञ कहते हैं ।।९-१२।। त्रिविस्तीर्ण उसे कहते हैं जिसका वक्षःस्थल, मस्तक और मुख विस्तृत (विशाल) होता है। जिस व्यक्ति के दोनों हाथ और दोनों पैर ध्वज और छत्रादि चिह्नों से युक्त होते हैं, उसे चतुर्लेख कहते हैं। अङ्गुलियों, हृदय, पीठ और कटि का चौड़ा होना शुभ माना गया है। (पुरुष की) छियानबे अङ्गुलि की लम्बाई मानी गयी है। आगे के चार दाँतों का मोती के समान उज्ज्वल होना चतुर्दंष्ट्र कहलाता है। अब मैं तुम्हें चतुष्कृष्ण बतला रहा हूँ। कनीनिकाओं, भौंहों, दाढ़ी और केशों का काला होना चतुष्कृष्ण कहलाता है ।।१३-१५।। नासिका, मुख और बगल से दुर्गन्ध न आना चतुर्गन्ध कहलाता है। लिङ्ग, ग्रीवा और दोनों जंघाओं का छोटा होना चतुर्ह्रस्व कहलाता है। लम्बे और पतले अङ्गुलियों की पोरें, नाखून, केश, दाँत और पतली त्वचा (भाग्यशाली पुरुष के लक्षण होते हैं), उठी हुई कनपटियाँ, हनु (जबड़ा), नासिका और स्तनों के बीच का स्थान षडोन्नत कहलाता है। सप्तस्निग्ध उस व्यक्ति को कहते हैं जिसकी त्वचा, केश, शरीर के रोयें, नाखून, दृष्टि और वाणी स्निग्ध हुआ करती है। अष्टवंश का अभिप्राय है नासिका, रीढ़ की हड्डी, (दोनों) जङ्घाओं और दोनों घुटने का सीधा होना। मुख, (दोनों) नासपुट, दोनों (पपोटों), मुख,

---

१ छ. °योर्विडग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जिह्वौष्ठौ तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा । शिश्नाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम् ।।२०।।
पाणिपादं मुखं ग्रीवा श्रवणे हृदयं शिरः । ललाटमुदरं पृष्ठं बृहन्तः पूजिता दश ।।२१।।
प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरम् । उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ।।२२।।
पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्वौ वङ्क्षणौ वृषणौ कुचौ । कर्कोष्ठे(ष्ठौ)सक्थिनी जङ्घे हस्तौ बाहू तथाऽक्षिणी ।।२३।।
चतुर्दश समद्वन्द्व एतत्सामान्यतो नरः । विद्याश्चतुर्दश द्व्यक्षैः पश्येद्यः षोडशाक्षकः ।।२४।।
रुक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांसवर्जितम् । दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तं दृष्ट्या प्रसन्नया ।।२५।।
धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्मत्तेभसंनिभा । एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत्सकृत् ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुषलक्षणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम्

समुद्र उवाच

शस्ता स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी । गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ।।१।।

दोनों (गुप्ताङ्ग) और दोनों कर्णकुहरों की स्वच्छता है नवामल। दशपद्म का अभिप्राय है–जिह्वा, तालु, नेत्र (के डोरों), गदेलियों, चरणों, नाखूनों, लिङ्गमणि और मुख का कमल के समान रक्तवर्ण होना ।।१६-२०।। जिस व्यक्ति का मुख, ग्रीवा, कान, वक्षःस्थल, सिर, उदर, मस्तक, हाथ और पैर विकाररहित और सुडौल हआ करता है वह सम्पूर्ण संसार में सम्मानित होता है। दोनों हाथों को फैलाकर खड़े होने पर जिसके दोनों हाथों की लम्बाई और शरीर की लम्बाई बराबर होती है, उसे न्यग्रोध-परिमण्डल कहते हैं। चतुर्दश समद्वन्द्व का अभिप्राय है पैरों, टखनों, नितम्बों, पार्श्वों, उरुसन्धियों, अण्डकोषों, स्तनों, कानों, ओंठों और जङ्घाओं का समान होना। षोडशाक्ष का अभिप्राय है चौदह विद्याओं से उत्पन्न (ज्ञान की) दृष्टि तथा दो स्थूल नेत्र ।।२१-२४।। जिस व्यक्ति का मुख रुक्ष, मांसहीन, दुर्गन्धयुक्त और उभरी हुई नसों से युक्त होता है वह अभागा माना जाता है। भाग्यवान् मनुष्य की वाणी मधुर और गति हाथी के समान होती है। मनुष्य के शरीर में एक ही छिद्र से उत्पन्न होनेवाले दो रोयें ऐसे भय को सूचित करनेवाले होते हैं जिसका प्रतिकार किसी प्रकार नहीं हो सकता है ।।२५-२६।।

श्री अग्निमहापुराण में पुरुष लक्षण कथन नामक दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४३।।

अध्याय २४४

स्त्रीलक्षण

समुद्र बोला–वह स्त्री अच्छी मानी जाती है, जो सर्वसुन्दरी हो, जिसकी गति मत्त गजराज के समान हो और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा। समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ ।।२।।
नाभिः प्रदक्षिणावर्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत्। गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ।।३।।
जठरं च प्रलम्बं च रोमरूक्षा न शोभना। नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ।।४।।
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता। गण्डैर्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ।।५।।
न संहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया। अलक्षणाऽपि लक्षण्या यत्राऽऽकारस्ततो गुणाः ।।
भुवं कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन्मृत्युरेव सा ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रीलक्षणकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

चामरादिलक्षणम्

अग्निरुवाच

चामरो रुक्मदण्डोऽग्न्यश्छत्रं राज्ञः प्रशस्यते। हंसपक्षैर्विरचितं मयूरस्य शुकस्य च ।।१।।

जिसकी दृष्टि मत्त कबूतर के समान हो। उसके केश अत्यन्त काले, शरीर दुबला और रोमरहित हो। उसे सुन्दर होना चाहिए और उसके दोनों पैरों को समान रूप से पृथ्वी का स्पर्श करना चाहिए। तथा उसके दोनों स्तनों को गठा हुआ होना चाहिए। नाभि को दक्षिण की ओर से भँवर के समान और गुप्ताङ्ग को पीपल के पत्ते के समान होना चाहिए। एड़ियों को बीच से झुका हुआ होना चाहिए। नाभि को अंगुष्ठप्रमाण होना चाहिए। रुक्ष रोमावलिवाली स्त्री सुन्दर नहीं हुआ करती है। उसका नाम नक्षत्र, वृक्ष और नदी के नाम पर नहीं होना चाहिए और न उसे झगड़ालू होना चाहिए। उसे न तो लालची होना चाहिए और न कटु बोलनेवाली। उसे सुन्दरी तथा देवता आदि की पूजा करनेवाली होना चाहिए। कपोल महुए के पुष्पों के समान होना चाहिए। उसके (शरीर) में न तो शिराएँ उभरी हुई हों और न रोम हों। भृकुटियों को आपस में मिली नहीं होनी चाहिए। वह पति को प्राणों के समान माननेवाली और पति की प्रिय हो। इस प्रकार की स्त्री (अन्य शुभ) लक्षणों से हीन होने पर भी सुलक्षणा होती है। जहाँ आकार है वहीं गुण होते हैं। जिस स्त्री (के पैर) की छोटी उँगली भूमि का स्पर्श करती है, वह मृत्यु (रूप) ही हुआ करती है ।।१-६।।

श्री अग्निमहापुराण में स्त्रीलक्षण-कथन नामक दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४४।।

अध्याय २४५

चामरादिलक्षण

अग्निदेव बोले–राजा के लिए सोने के दण्ड से युक्त चामर उत्तम होता है। वह हंस, मयूर, शुक तथा बगुली

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पक्षैर्वाऽथ बलाकाया न कार्यं मिश्रपक्षकैः । चतुरस्त्रं ब्राह्मणस्य वृत्तं राज्ञश्च शुक्लकम् ।।२।।
त्रिचतुष्पञ्चषट्सप्त अ(का)ष्टपर्वश्च दण्डकः । भद्रासनं क्षीरवृक्षैः पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैः ।।३।।
विस्तारेण त्रिहस्तं स्यात्सुवर्णाद्यैश्च चित्रितम् । धनुर्द्रव्यत्रयं लोहं शृङ्गं दारु द्विजोत्तम ।।४।।
ज्याद्रव्यत्रितयं चैव वंशभङ्गत्वचस्तथा । दारुचापप्रमाणं तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयम् ।।५।।
तदेव समहीनं तु प्रोक्तं मध्यकनीयसि । मुष्टिग्राहनिमित्तानि मध्ये द्रव्याणि कारयेत् ।।६।।
स्वल्पकोटिस्त्वचाशृङ्गं शार्ङ्गलोहमये द्विज । कामिनीभ्रूलताकारा कोटिः कार्या सुसंयता ।।७।।
पृथग्वा विप्र मिश्रं वा लौहं शार्ङ्गं तु कारयेत् । शार्ङ्गं समुचितं कार्यं रुक्मविन्दुविभूषितम् ।।८।।
कुटिलं स्फुटितं चापं सच्छिद्रं च न शस्यते । सुवर्णं रजतं ताम्रं कृष्णायो धनुषि स्मृतम् ।।९।।
माहिषं शारभं शार्ङ्गं रौहिषं वा धनुः शुभम् । चान्दनं वैतसं सालं धावलं काकुभं [1]तथा ।।१०।।
सर्वश्रेष्ठं धनुर्वंशैर्गृहीतैः शरदि श्रितैः । पूजयेत्तु धनुः खड्गं मन्त्रैस्त्रैलोक्यमोहनैः ।।११।।
अयसश्चाथ वंशस्य शरस्याप्यशरस्य च । ऋजवो हेमवर्णाभाः स्नायुश्लिष्टाः सुपत्रकाः ।।१२।।
रुक्मपुङ्खाः सुपुङ्खास्ते तैलधौताः सुवर्णकाः । यात्रायामभिषेकादौ यजेद्बाणधनुर्मुखान् ।।१३।।

के पंखों से बना हुआ रहता है। किन्तु उसे (कई पक्षियों के) मिले-जुले पंखों का नहीं बना होना चाहिए। ब्राह्मण का छत्र चौकोर तथा राजा का गोलाकार और श्वेत होना चाहिए ।।१-२।। उसके दण्ड में तीन, चार, पाँच, छह, सात या आठ पर्व होने चाहिए। भद्रासन (राजा का आसन) गूलर की लकड़ी का बना होना चाहिए, जिसकी लम्बाई पचास अङ्गुल और चौड़ाई तीन हाथ की होती है उसे सुवर्ण आदि से मढ़ा होना चाहिए। अये द्विजवर! धनुष तीन द्रव्यों-लोहा, सींग, लकड़ी का बना हुआ होता है ।।३-४।। प्रत्यञ्चा भी तीन चीजों की बनी हुई होती है-बाँस का टुकड़ा, छिलका और डोरी। लकड़ी के धनुष की लम्बाई चार हाथों की उत्तम मानी गयी है। वही तीन हाथों का मध्यम और दो हाथों का अधम होता है। मध्य में जहाँ मुट्ठी से पकड़ते हैं, वहाँ उसे अन्य द्रव्यों से मढ़ देना चाहिए। अये द्विज! सींग तथा लोहे के बने धनुष का अग्रभाग छोटा होना चाहिए। उसकी आकृति सुडौल तथा कामिनी की भ्रूलता के समान होनी चाहिए ।।५-७।। धनुष लोहे तथा सींग को मिलाकर अथवा पृथक् बनाना चाहिए। सींग से बने हुए धनुष को सोने के विन्दुओं से विभूषित होना चाहिए। टेढ़ा-मेढ़ा, टूटा हुआ तथा छिद्रवाला धनुष अच्छा नहीं हुआ करता। धनुष के लिए सोने, चाँदी, ताँबे तथा काले लोहे का व्यवहार करना चाहिए। महिष, शरभ तथा रोहिष के सींग का बना धनुष अच्छा माना जाता है। चन्दन, बेंत, साखू, अर्जुन तथा धवल वृक्ष का भी धनुष उत्तम होता है। सबसे उत्तम धनुष तो वह होता है, जो शरद् ऋतु में उत्पन्न होनेवाले बाँसों का बनाया जाता है। धनुष तथा खड्ग की पूजा त्रैलोक्यमोहन मन्त्रों से करनी चाहिए ।।८-११।। बाण लोहे या ऐसे बाँस का बनाना चाहिए जो सीधा तथा स्नायुबद्ध हो, तेल में भिगोया गया हो, जिसका वर्ण सुवर्ण के समान हो, पत्र मनोहर हो और पुङ्ख (बाणमूल) सोने का हो। उनका मूल नुकीला होना चाहिए तथा उन्हें तेल में घुला हुआ और सुन्दर वर्णवाला होना चाहिए। (राजा को) यात्रा तथा अभिषेक आदि के समय धनुष, बाण, पताका और अस्त्र-शस्त्रों का पूजन करना चाहिए। (प्राचीन

---

१ छ. तरुः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सपताकास्त्रसंग्राहसंवत्सरकरान्नृपः । ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गगङ्गातटेऽयजत् ।।१४।।
लोहदैत्यं स ददृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन् । तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद्बली महान् ।।१५।।
ववन्देऽजं च तं देवा अभ्यनन्दन्त हर्षिताः । तस्मात्स नन्दकः खड्गो देवोक्तो हरिरग्रहीत् ।।१६।।
तं जग्राह [1]गले देवो विकोषः सोऽभ्यपद्यत । खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः ।।१७।।
दैत्यः स गदया देवान्द्रावयामास वै रणे । विष्णुना खड्गच्छिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले ।।१८।।
पतितानि तु संस्पर्शान्नन्दकस्य च तानि हि । लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरम् ।।१९।।
ददौ पवित्रमङ्गं ते आयुधाय भवेद्भुवि । हरिप्रसादाद्ब्रह्माऽपि विना विघ्नं हरिं प्रभुम् ।।२०।।
पूजयामास यज्ञेन वक्ष्येऽथो खड्गलक्षणम् । खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते स्मृताः ।।२१।।
कायच्छिदस्त्वार्षिकाः स्युर्दृढाः सूर्पारकोद्भवाः । तीक्ष्णाश्छेदसहा वङ्गास्तीक्ष्णाः स्युश्चाङ्गदेशजाः ।।२२।।
शतार्धमङ्गुलानां च श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्तितम् । तदर्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न धारयेत् ।।२३।।
दीर्घः सुमधुरः शब्दो यस्य खड्गस्य सत्तम । किङ्किणीसदृशस्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ।।२४।।
खड्गः पद्मपलाशाग्रो मण्डलाग्रश्च शस्यते । करवीरदलाग्राभो घृतगन्धः वियत्प्रभः ।।२५।।

काल में) ब्रह्मा ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्वर्गगङ्गा के तट पर धनुष आदि की पूजा की थी ।।१२-१४।। उस समय उनको एक ऐसा लोहे का दैत्य दिखलायी पड़ा जिससे वे घबड़ा उठे। उन्होंने सोचा कि यह कोई यज्ञ में विघ्न डालने के लिए आया है। इतने में अग्नि से एक महाबली पुरुष उत्पन्न हो गया। देवताओं ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और वे आनन्दित हो गये। भगवान् विष्णु ने देवताओं के कहने से नन्दक नामक उस खड्ग को उससे ले लिया। भगवान् ने उस म्यान से रहित खड्ग को मूठ से पकड़ लिया। वह खड्ग नीला था और उसकी मूठ सोने की थी। दैत्य ने (भी) अपने-आपको सौ भुजाओं से युक्त कर लिया। उस दैत्य ने रण में गदा से देवताओं को भगा दिया। विष्णु ने दैत्य के अङ्गों को खड्ग से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ।।१५-१८।। नन्दक (नामक खड्ग) के स्पर्श से वे सभी (कटे हुए शरीरावयव) लौह के बन गये। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु ने दैत्य को मारकर यह वर दे दिया कि 'तुम्हारे पवित्र अङ्ग पृथ्वी पर शस्त्रों के काम में लाये जायँगे।' भगवान् विष्णु की कृपा से ब्रह्मा ने भी निर्विघ्न यज्ञ से उनकी पूजा की। अब मैं खड्ग लक्षण बतलाऊँगा। खटीखट्टर देश में बने हुए खड्ग दर्शनीय होते हैं। उसी तरह ऋषिक देश के खड्ग शरीर को काटनेवाले, सूर्पारक देश के दृढ़, वंग देश के तीक्ष्ण और चोट सहनेवाले तथा अङ्ग देश के बाण तीक्ष्ण होते हैं ।।१९-२२।। पचास अङ्गुल लम्बा खड्ग उत्तम कहा गया है। उसकी आधी लम्बाईवाला मध्यम होता है और उससे कम लम्बाई के खड्ग को नहीं धारण करना चाहिए। जो खड्ग लम्बा तथा किंकिणी के समान सुमधुर शब्द करनेवाला हो, उसका धारण करना अच्छा कहा गया है। जिस खड्ग का अग्रभाग कमलपत्र के समान हो या मण्डलाकार हो, वह प्रशंसनीय होता है। जिसका गन्ध घी के समान, प्रभा आकाश के

---

१ छ.ह° शनैर्देवो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु लिङ्गवत् । काकोलूकसवर्णाभा विषमास्ते न शोभनाः ।।२६।।
खड्गे न पश्येद्वदनमुच्छिष्टो न स्पृशेदसिम् । मूल्यं जातिं न कथयेन्निशि कुर्यान्न शीर्षके ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चामरादिलक्षणकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।२४५।।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नपरीक्षा

अग्निरुवाच

रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपैः । वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागं च मौक्तिकम् ।।१।।
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्यं गन्धशस्यकम् । चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ।।२।।
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीरसं द्विज । स्फटिकं राजपट्टं च तथा राजमयं शुभम् ।।३।।
सौगन्धिकं तथा गञ्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा । गोमेदं रुधिराक्षं च तथा भल्लातकं द्विज ।।४।।
धूलीं मरकतं चैव तुत्थकं सीसमेव च । पीलुं प्रवालकं चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ।।५।।
भुजङ्गममणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम् । टिट्टिभं च तथा पिण्डं भ्रामरं च तथोत्पलम् ।।६।।
सुवर्णप्रतिबद्धानि रत्नानि श्रीजयादिके । अन्तःप्रभत्वं वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ।।७।।

समान और अग्रभाग करवीर पत्र के समान हो, वह भी उत्तम होता है। दो अँगुलियों की चौड़ाई के बराबर लम्बा खड्ग शुभ माना जाता है। खड्गों में रहनेवाले छिद्र आदि के गुण-दोष को लिङ्गवत् समझना चाहिए। कौए और उल्लू के समान वर्णवाली ऊँची-नीची खड्ग शुभ नहीं होती है। खड्ग में न तो मुख देखना चाहिए और न तो उसे जूठे हाथ छूना ही चाहिए। उसके मूल्य तथा जाति को किसी से नहीं बताना चाहिए और न रात्रि में लटकते हुए खड्ग के नीचे सोना चाहिए ।।२३-२७।।

श्री अग्निमहापुराण में चामरादिलक्षण कथन नामक दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४५।।

अध्याय २४६

रत्नपरीक्षा

अग्निदेव बोले–मैं रत्नों का लक्षण बतलाता हूँ। राजा को जिन-जिन रत्नों को धारण करना चाहिए वे हैं–वज्र, मरकत, रत्न, पद्मराग, मौक्तिक, इन्द्रनील, महानील, वैदूर्य, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, स्फटिक, राजपट्ट, राजमय, सौगन्धिक, गञ्ज, शंखब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, भल्लातक, धूली, मरकत, तुत्थक, सीस, पीलु, प्रवालक, गिरिवज्र, भुजङ्गमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर तथा उत्पल। श्री और विजय आदि की प्राप्ति के लिए स्वर्ण में जड़े हुए रत्न को धारण करना चाहिए ।।१-६$\frac{1}{2}$।। जो रत्न अन्दर से चमकता हो और अच्छे स्थान से प्राप्त किया गया हो, उसे ही धारण करना चाहिए। प्रभाहीन, मलिन, खण्डित तथा रेतीले

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुधार्या नैव धार्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तथा। खण्डाः सशर्करा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम् ।।८।।
अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च यत्। षट्कोणं शक्रचापाभं लघुचार्कनिभं शुभम् ।।९।।
शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा। स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैर्मरकतैश्च बिन्दुभिः ।।१०।।
स्फटिकाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्मलाः। [1]जातरङ्गाः भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः ।।११।।
सौगन्धिकोत्थाः काषाया मुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः। विमलास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने ।।१२।।
नागदन्तभवाश्चाग्र्याः कुम्भसूकरमत्स्यजाः। वेणुनागभवाः श्रेष्ठा मौक्तिकं मेघजं वरम् ।।१३।।
वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छ्यं महत्त्वं मौक्तिके गुणाः। इन्द्रनीलं शुभं क्षीरे राजते भ्राजतेऽधिकम् ।।१४।।
रञ्जयेत्स्वप्रभावेण तममूल्यं विनिर्दिशेत्। नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रत्नपरीक्षाकथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४६।।

रत्न को नहीं धारण करना चाहिए। मणि का धारण करना भी शुभ होता है। जो वज्र पानी में तैर सके, जिसका वर्ण इन्द्रधनुष तथा सूर्य के समान हो, जिसमें छह कोने हों और जो लघु, अभेद्य और विमल हो, उसे धारण करना चाहिए। मरकत (मणि) वह अच्छा होता है जो तोते के पंख के समान स्निग्ध, कान्तिमान्, विमल तथा सुवर्ण चूर्ण के समान सूक्ष्म विन्दुओं से युक्त हों। जो स्फटिक तथा पद्मराग अति निर्मल तथा लाल हो, जो वङ्ग या कुरुविन्द देश में उत्पन्न हुआ हो, वह उत्तम होता है ।।७-११।। हे मुने! मुक्ताफल (मोती) वे अच्छे होते हैं जिनका रंग काषाय होता है और जो सीपी से या रक्तकमल से उत्पन्न होते हैं। परन्तु शंख से उत्पन्न होनेवाले और शुभ्र मोती उनसे भी उत्तम होते हैं। हस्तिदन्त, हस्तिशिर, शूकर, मत्स्य तथा वेणु से उत्पन्न होनेवाला मुक्ताफल भी अच्छा होता है। मेघोत्पन्न मौक्तिक को श्रेष्ठ कहा गया है। गोलापन, शुक्लता, स्वच्छता तथा महत्ता–ये मौक्तिक के गुण होते हैं। जो इन्द्रनील (मणि) दूध में डालने से अधिक चमकने लगता है तथा अपने प्रभाव (छवि) से लोगों का अनुरञ्जन करता है, उसे अमूल्य (बहुमूल्यक) समझना चाहिए। नील और रक्तवर्णवाला वैदूर्य हार आदि के लिए अत्युत्तम होता है ।।१२-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में रत्नपरीक्षा नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४६।।

---

१ छ. °जातवङ्गाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तुलक्षणम्

अग्निरुवाच

वास्तुलक्ष्यप्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह। श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।।१।।
घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढ्या रसतश्च भूः। मधुरा च कषाया च अम्लाद्युपरसा क्रमात् ।।२।।
कुशैः शरैस्तथा काशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता। प्राच्यं विप्रांश्च निःशल्यां खातपूर्वं तु कल्पयेत् ।।३।।
चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः। प्राक्तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथाऽर्यमा ।।४।।
दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा। उदङ्महीधरश्चैव आपवत्सौ च वह्निगे ।।५।।
सावित्रश्चैव सविता जयेन्द्रौ नैर्ऋतेऽम्बुधौ। रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वादौ कोणगाद्बहिः ।।६।।
महेन्द्रश्च रविः सत्यो भृशः पूर्वेऽथ दक्षिणे। गृहक्षतोऽर्यमधृती गन्धर्वाश्चाथ वारुणे ।।७।।
पुष्पदन्तोऽसुराश्चैव वरुणो यक्ष एव च। सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धनदस्तथा ।।८।।
नागः करग्रहश्चैशे अष्टौ दिशि दिशि स्मृताः। आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावक्त्र गृहेश्वरौ ।।९।।
पर्जन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः। महेन्द्ररविसत्याश्च भृशोऽथ गगनं तथा ।।१०।।
पवनः पूर्वतश्चैव अन्तरिक्षधनेश्वरौ। आग्नेये चाथ नैर्ऋत्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ ।।११।।

अध्याय २४७

वस्तु लक्षण

अग्निदेव बोले–(अब) मैं वास्तुभूमि का लक्षण बतलाऊँगा। ब्राह्मण आदि वर्णों की भूमि क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण रंग की होनी चाहिए। उन भूमियों में से क्रमशः घी, शोणित, अम्ल तथा मद्य की-सी गन्ध निकलती रहती है। उसका रस क्रमशः मधुर, कषाय, अम्ल और कटु होता है। वह कुश, सरपत, काश तथा दूर्वा से आच्छादित रहती है। ऐसी भूमि पर विप्रों की पूजा करके शल्योद्धार करे (अर्थात् मिट्टी खोदकर) हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओं को निकाल देना चाहिए ।।१-३।। फिर चौंसठ पद भूमि को नापकर मध्य में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए। उनसे चार पग पूर्व की ओर गृहस्वामी तथा अर्यमा की पूजा करनी चाहिए। दक्षिण में विवस्वान् की, पश्चिम में मित्र की और उत्तर में महीधर की पूजा करनी चाहिए। दक्षिण-पूर्व दिशा में आप तथा वत्स की, नैर्ऋत में सावित्र की तथा सविता की, ईशान में जय तथा इन्द्र की और वायव्य में रुद्र और व्याधि (के अधिष्ठाता) देवता की पूजा करनी चाहिए। पुनः पूर्व दिशा में महेन्द्र, रवि, सत्य तथा भृश की, दक्षिण में गृहक्षत, अर्यमा, धृति तथा गन्धर्व की, पश्चिम में पुष्पदन्त, असुर, वरुण तथा यक्ष की और उत्तर में भल्लाट, सोम, अदिति, कुबेर, नाग और करग्रह की पूजा करनी चाहिए ।।४-८$\frac{1}{2}$।। इनकी पूजा करके पूर्व दिशा में महेन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, गगन तथा पवन की, दक्षिण-पूर्व दिशा में अन्तरिक्ष तथा धनेश्वर की; दक्षिण-पश्चिम में मृग तथा सुग्रीव की, पश्चिमोत्तर दिशा में रोग के अधिष्ठाता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ। गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः ।।१२।।
आप्ये दौवारिक सुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलम्। यक्ष्मरोगश्च[1] शेषश्च उत्तरे नागराजकः ।।१३।।
मुख्यो भल्लाटशशिनौ अदितिश्च कुबेरकः। नागो हुताशः श्रेष्ठो वै शक्रसूर्यौ च पूर्वतः ।।१४।।
दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः। पुष्पदन्तो ह्युदग्द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः ।।१५।।
शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रैः प्रार्च्य सुरांश्चरेत्। नन्दे नन्दय वाशिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ।।१६।।
जये भार्गवदायादे प्रजानां जयमावह। पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ।।१७।।
भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम। सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधैर्वृते ।।१८।।
रुचिरे नन्दने नन्दे वाशिष्ठे रम्यतामिह। प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीमये ।।१९।।
सुभगे सुव्रते भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम्। पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते ।।२०।।
भवभूतिकरे देवि गृहे भार्गवि रम्यताम्। अव्यङ्ग्ये चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ।।२१।।
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारम्याम्यहम्। देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ।।२२।।
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव। गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत् ।।२३।।
उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक्स्याद्गृहादितः। उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तमः ।।२४।।

देवता की, दक्षिण में पुष्पदन्त, कुबेर, गृहक्षत, यम, भृश, गन्धर्व तथा नागपैतृक की; पश्चिम में सुग्रीव, दौवारिक, पुष्पदन्त, असुरजल, यक्ष्मा तथा शेष रोगों के अधिष्ठाता देवताओं की तथा उत्तर में नागराज, भल्लाट, शशि, अदिति, कुबेर, नाग तथा अग्नि की पूजा करनी चाहिए। पुनः पूर्व में इन्द्र, सूर्य का, दक्षिण में गृहक्षत, पुष्पदन्त का, पश्चिम में सुग्रीव, उत्तम का और उत्तर में भल्लाट और पुष्पदन्त का पूजन करना चाहिए ।।९-१५।। तदनन्तर मन्त्रपूर्वक शिलान्यास, इष्टकान्यास आदि करके देवतार्चन करना चाहिए। तत्पश्चात् देवियों से इस तरह प्रार्थना करनी चाहिए- "नन्दे! मुझे आनन्दित करो। वाशिष्ठे! वसुओं के साथ आकर मेरा कल्याण करो। भार्गव की पत्नी जये! अपनी प्रजा सहित आकर मेरी पूजा को विजयी बनाइये। अङ्गिरा की पत्नी पूर्णे! मेरी कामनाओं को पूर्ण कीजिये ।।१६-१७।। काश्यप की पत्नी भद्रे! मुझे शुभ मति प्रदान कीजिये। सब प्रकार के बीजों, रत्नों और ओषधियों से युक्त रुचिरे! नन्दने! नन्दे! वाशिष्ठे! यहाँ रमण कीजिये। अयि प्रजापति की पुत्रि! देवि! चतुरस्रे! महीमये! सुभगे! सुव्रते! भद्रे! काश्यपि! मेरे इस घर में रमण कीजिये। अव्यङ्ग्ये! अक्षते! पूर्णे! अङ्गिराकन्ये! इष्टके! मुझे इष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं तुम्हारी प्रतिष्ठा करूँगा ।।१८-२१½।। देश, पुर तथा गृह की स्वामिनि! मुझे मनुष्य, धन, हाथी, घोड़े और गाय-भैंस अधिक मात्रा में दीजिये।" गृह-प्रवेश के दिन भी शिलान्यास करना चाहिए। गृह के उत्तर भाग में पाकर, पूर्व में बरगद, दक्षिण में गूलर और पश्चिम में पीपल का वृक्ष लगाना उत्तम होता है ।।२२-२४।। बायें भाग में उद्यान

---

१ क. ङ. °श्च शोष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासं गृहे शुभम् । सायं प्रातस्तु धर्माप्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।।२५।।
[1]वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः । विडङ्गघृतसंयुक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ।।२६।।
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः । घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ।।२७।।
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम् । आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ।।२८।।
गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रं निधापयेत् । उत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पातिवृद्धिदम् ।।२९।।
मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते । प्रशस्तं चाप्यशोकानां कामिनीपादताडनम् ।।३०।।
खर्जूरनारिकेलादेर्लवणाद्भिर्विवर्धनम् । विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वेषां दोहदं शुभम् ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वास्तुलक्षणकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४७।।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पादिपूजाफलम्

अग्निरुवाच

पुष्पैस्तु पूजनाद्विष्णुः सर्वकार्येषु सिद्धिदः । मालती मल्लिका यूथी पाटलाकरवीरकम्[2] ।१।।
पावन्तिरतिमुक्तश्च (?) कर्णिकारः कुरण्टकः । कुब्जकस्तगरो नीपो वाणो [3]वर्वरमल्लिका ।।२।।

(बगीचा) लगाकर शुभ दिन में गृहवास करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातःकाल, शीतकाल में दोपहर के बाद और वर्षाऋतु में भूमि सूख जाने पर उन रोपे हुए वृक्षों को विडङ्ग (औषध-विशेष) तथा घी मिले हुए जल से सींचना चाहिए। यदि वृक्ष में फल आना समाप्त हो गया हो तो उसके फलने-फूलने के लिए कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, यव तथा घी मिले हुए जल से सींचना चाहिए। मछली मिले हुए जल से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है। भेंड़े तथा बकरे की लेंड़ी (मल) का चूर्ण, यव का चूर्ण, तिल का चूर्ण, गोमांस तथा जल से सात रात सींचने से वृक्षों में फल, पुष्प आदि की वृद्धि होती हैं ।।२५-२९।। मछलीवाले ठंडे जल से आमों का सिञ्चन अच्छा होता है। अशोक वृक्ष के ऊपर कामिनी का चरण-प्रहार अच्छा होता है। खजूर तथा नारियल आदि को नमक मिले हुए जल से सींचने पर वृद्धि होती है। विडङ्ग, मत्स्य तथा मांस के जल के सींचना सब प्रकार के वृक्षों के लिए लाभदायक हुआ करता है ।।३०-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में वास्तुलक्षण-कथन नामक दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४७।।

अध्याय २४८

पुष्पादिपूजाफल

अग्निदेव बोले-पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। मालती, मल्लिका, यूथी, पाटला, करबीर, पावन्ती, अतिमुक्त, कर्णिकार, कुरण्टक, कुञ्जक, तगर, कदम्ब, वाण, बर्बर, मल्लिका, अशोक,

---

१ छ. वर्षारात्रे। २ क. ङ. म्। परेतिरतियुक्तश्च। ३ क. ङ. बर्बरकेतकी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अशोकस्तिलकः कुन्दः पूजायै स्यात्तमालजम्। बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गरजस्य तु ।।३।।
तुलसीकालतुलसीपत्रं वासकमर्चने। केतकीपत्रपुष्पं च पद्मं रक्तोत्पलादिकम् ।।४।।
नाऽऽर्कं नोन्मत्तकं काञ्ची पूजने गिरिमल्लिका। कौटजं शाल्मलीपुष्पं कण्टकारीभवं न हि ।।५।।
घृतप्रस्थेन विष्णोश्च स्नानं गोकोटिसत्फलम्। आढकेन तु राजा स्याद्घृतक्षीरैर्दिवं व्रजेत् ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पादिपूजाकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४८।।

अथैकोनपञ्चाशदरिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदः

अग्निरुवाच

चतुष्पादं धनुर्वेदं वदे पञ्चविधं द्विज। रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाऽऽश्रित्य कीर्तितम् ।।१।।
यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसंधारितं तथा। अमुक्तं बाहुयुद्धं च पञ्चधा तत्प्रकीर्तितम् ।।२।।
तत्र शस्त्रास्त्रसम्पत्त्या द्विविधं परिकीर्तितम्। ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते ।।३।।
क्षेपणीचापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्तितम्। शिलातोमरयन्त्राद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्तितम् ।।४।।

तिलक तथा कुन्द–ये पुष्प और तमाल, बिल्व, शमी, भृंगराज तथा तुलसी–ये पत्र पूजा के लिए उत्तम हैं। केतकी के पत्र-पुष्प तथा रक्तोत्पल आदि कमल भी पूजन के लिए प्रसिद्ध हैं। आक, काञ्ची, गिरिमल्लिका, कुटज, शल्मलीपुष्प तथा कण्टकारिपुष्प से पूजा नहीं करनी चाहिए। एक सेर घी से विष्णु का स्नान कराने से एक करोड़ गो-दान करने का फल होता है। एक अढ़ैया घी से विष्णु को स्नान करानेवाला मनुष्य राजा होता है और घी-दूध से स्नान करानेवाला मनुष्य स्वर्ग को जाता है ।।१-६।।

श्री अग्निमहापुराण में पुष्पादिपूजा-कथन नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४८।।

अध्याय २४९

धनुर्वेद

अग्निदेव बोले–अये ब्राह्मण! धनुर्वेद के चार भेद हैं–रथ, गज, अश्व और पैदल। इसमें योद्धाओं को मिलाकर इसके पाँच भेद कहे जाते हैं। यों तो यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और बाहुयुद्ध–ये पाँचों भी इसी के भेद हैं ।।१-२।। पहले इनके अस्त्र और शस्त्र से दो भेद होते हैं और फिर ऋजु और माया के भेद से भी इन पाँचों के दो-दो भेद हो जाते हैं। (क्षेपड़ी) डाँड़, धनुष तथा यन्त्र आदि से जो युद्ध किया जाता है, उसे यन्त्रमुक्त कहते हैं। शिला, तोमर और यन्त्र आदि से किये जानेवाले युद्ध को पाणिमुक्त, भाले आदि से होनेवाले युद्ध को

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुक्तसंधारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत् । खड्गादिकममुक्तं च नियुद्धं विगतायुधम् ।।५।।
कुर्याद्योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः । धनुः श्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च ।।६।।
तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च । धनुर्वेदे गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ।।७।।
युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं[1] चाऽऽपदि शिक्षया । देशस्थैः शंकरैः राज्ञः कार्या युद्धे सहायता ।।८।।
अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यङ्घ्र्यः श्लिष्टाः स्युः सहिता यदि । दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणस्तथा ।।९।।
बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ । त्रिवितस्त्यन्तरास्थानमेतद्वैशाखमुच्यते ।।१०।।
हंसपङ्क्त्याकृतिसमे दृश्यते यत्र जानुनी । चतुर्वितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम् ।।११।।
हलाकृतिमयं यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम् । वितस्त्यः पञ्चविस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम् ।।१२।।
एतदेव विपर्यस्तं प्रत्यालीढमिति स्मृतम् । तिर्यग्भूतो भवेद्वामो दक्षिणोऽपि भवेदृजुः ।।१३।।
गुल्फौ पार्ष्णिग्रहौ चैव स्थितौ पञ्चाङ्गुलान्तरौ । स्थानं जातं भवेदेतद्द्वादशाङ्गुलमायतम् ।।१४।।
ऋजुजानुर्भवेद्वामो दक्षिणः सुप्रसारितः । अथवा दक्षिणं जानु कुब्जं भवति निश्चलम् ।।१५।।
दण्डायतो भवेदेष चरणः सह जानुना । एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम् ।।१६।।

मुक्तसंधारित, खड्ग आदि से होनेवाले युद्ध को बाहुयुद्ध कहते हैं। युद्धाभिलाषी राजा को कठोर परिश्रमी होना चाहिए तथा उसे युद्ध के निमित्त योग्य पात्रों को चुनना चाहिए। धनुष से होनेवाले युद्ध को मध्यम, खड्ग से होनेवाले को अधम और बाहु से होनेवाले को अति अधम कहा गया है। धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय को नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि इसका अधिकार इन्हीं दो वर्णों को हुआ करता है ।।३-७।। शूद्र को युद्ध का अधिकार केवल आपत्तिकाल में होता है और वह भी उसकी शिक्षा ले लेने के बाद। युद्ध के समय देश में रहनेवाले वर्णसङ्कर लोगों को भी राजा की सहायता करनी चाहिए। (अब धनुर्वेद सीखनेवालों का आसन-स्थानभेद बताते हैं) जिस स्थान-आसन में अँगूठा, एड़ी, हाथ और पैर परस्पर मिले हुए हों, वह समपात स्थान कहलाता है। जिस आसन में दोनों चरण तीन बित्ते की दूरी पर अङ्गुलियों और घुटनों के बल स्थित हों, उसे वैशाख आसन कहते हैं ।।८-१०।। जिसमें दोनों घुटने चार बित्ते की दूरी पर हंसपंक्ति के आकार में स्थित हों, उसे मण्डलस्थान कहते हैं। जिसमें पाँच बित्ते की दूरी पर दाहिना घुटना और जंघाएँ निश्चल भाव से हल के आकार में स्थित हों उसे आलीढ़ कहते हैं (अर्थात् वामपाद प्रसारणपूर्वक दक्षिणपाद संकोचयुक्त अवस्थान को आलीढ़ कहते हैं) और इसके विपरीत स्थिति को प्रत्यालीढ़ कहते हैं ।।११-१२$\frac{1}{2}$।। जिस आसन में बायाँ चरण टेढ़ा और दाहिना सीधा रहता है और दोनों के गुल्फ (घुट्ठी) तथा एड़ी पाँच अँगुलियों की दूरी पर रहती हैं, उसे जात आसन कहते हैं। जिसमें घुटने सहित बायाँ पैर सीधा हो और दाहिना पाँव अच्छी तरह फैला हो अथवा दाहिना घुटना टेढ़ा और निश्चल हो और बायाँ दण्ड के समान सीधा हो, उसे विकट आसन कहते हैं ।।१३-१६।। जिसमें दोनों घुटने मुड़े हुए हों और दोनों चरण ऊपर

---

१ छ. °यं व्याप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जानुनी द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ । अनेन विधियोगेन संपुटं परिकीर्तितम् ।।१७।।
किंचिद्विवर्जितौ पादौ समदण्डायतौ स्थिरौ । दृष्टमेव यथान्यायं षोडशाङ्गुलमायतम् ।।१८।।
स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथमं द्विज । कार्मुकं गृह्य वामेन बाणं दक्षिणकेन तु ।।१९।।
वैशाखे यदि वा जाते स्थितौ वाऽप्यथ वाऽऽयतौ । गुणान्तं तु ततः कृत्वा कार्मुके प्रियकार्मुकः ।।२०।।
अधःकोटिं तु धनुषः फलदेशं तु पत्रिणः । धरण्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्वा तथैव च ।।२१।।
[1]भुजाभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत । तस्य बाणं धनुःश्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः ।।२२।।
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरम् । ज्यया विशिष्टः कर्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ।।२३।।
निवेश्य कार्मुकं नाभ्यां नितम्बे[2] शरसंकरम् । उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः ।।२४।।
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यः स्तनाग्रे दक्षिणे शरः । हरणं तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वं प्रसारयेत् ।।२५।।
नाऽऽभ्यन्तरा नैव बाह्या नोर्ध्वका नाधरा तथा । न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ।।२६।।
समा स्थैर्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता । छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वेणानेन मुष्टिना ।।२७।।
उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः । [3]स्त्रस्तांसो निश्चलग्रीवो मयुराञ्चितमस्तकः ।।२८।।
ललाटनासावक्त्रांसकूर्परेषु[4] समो भवेत् । अन्तरं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं [5]चिबुकस्यांशु(स)कस्य च ।।२९।।
प्रथमं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीये द्व्यङ्गुलं स्मृतम् । तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतं चिबुकांसयोः ।।३०।।

की ओर हों, उसे संपुट आसन कहते हैं। जिसमें दोनों पाँव कुछ फैले हुए हों और दण्ड के समान सीधे और स्थिर हों तथा उनके बीच में सोलह अँगुलियों की लम्बाई हो, उसे स्वस्तिक आसन कहते हैं। अये ब्राह्मण! अपने गुरु को इसी (स्वस्तिक) आसन से प्रणाम करना चाहिए। शिष्य को बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाण लेकर प्रत्यञ्चा चढ़ानी चाहिए ।।१७-१९।। उसे अपने धनुष के प्रति विशेष प्रेम रखना चाहिए। तदनन्तर धनुष के किनारे और बाण के फलक को पृथ्वी के ऊपर रखकर उसे प्रत्यञ्चा के ऊपर चढ़ाना चाहिए। इस समय धनुष के दण्ड और प्रत्यञ्चा के बीच में बारह अंगुल की दूरी होनी चाहिए। प्रत्यञ्चा न तो बहुत लम्बी और न ही बहुत छोटी होनी चाहिए। तत्पश्चात् धनुष को नाभि के समानान्तर उठाकर और तरकस को नितम्ब पर लटकाकर योद्धा को चाहिए कि वह धनुष को अपने नेत्र और कानों के बराबर उठा ले। बाण को दाहिनी मुट्ठी में पकड़कर उसे दाहिने स्तन की ओर उठाना चाहिए। तदनन्तर शीघ्र ही प्रत्यञ्चा को चढ़ाकर उसे पूरी शक्ति से खींचना चाहिए ।।२०-२५।। किन्तु प्रत्यञ्चा को इतना भी नहीं खींचना चाहिए कि बाण (प्रत्यञ्चा और) दण्ड के बीच में आ जाय या उसका बड़ावाला भाग इतनी दूर निकल जाय कि बाण ही हिल जाय और अपने मार्ग से इधर-उधर हट जाय या फिर धनुष के दण्ड से ही टकरा जाय। इस प्रकार निशाने को अपनी पकड़ की सीध में लाकर अपने बाण को छोड़ना चाहिए। इस समय गर्दन दृढ़तापूर्वक सधी हुई हो, सिर मोर की भाँति बिलकुल सीधा हो, वक्षःस्थल उभरा हुआ हो, कन्धे झुके हुए हों, सम्पूर्ण शरीर त्रिभुजाकार झुका हुआ हो और धनुष चलानेवाले की कनपटी, नासिका, मुख और कन्धे घोड़े के समान हों ।।२६-२८ $\frac{1}{2}$।। उत्तम कोटि के बाण को चलाते समय ठुड्डी और कन्धे के बीच में तीन अङ्गुल, मध्यम कोटि के बाण को चलाते समय एक अंगुल स्थान रहना चाहिए।

---

१ क. ङ. °जाभ्यां मन्त्रगुप्ताभ्यां। २ ख. °म्बे सशरं क°। ३ क. ङ. स्त्रस्ताङ्गो। छ. स्त्रस्तांसे। ४ छ. °वत्रांसाः कुर्युरश्वसमं भ°। ५ क. ङ. °कस्याङ्गकस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गृहीत्वा सायकं पुङ्खात्तर्जन्याऽङ्गुष्ठकेन तु । अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयाऽपि च ।।३१।।
तावदाकर्षयेद्वेगाद्यावद्बाणः सुपूरितः । एवं विधमुपक्रम्य मोक्तव्यं विधिवत्खगम् ।।३२।।
दृष्टिमुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद्बाणेन सुव्रत । मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं क्षिपेद् वेगेन पृष्ठतः ।।३३।।
एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज । कूर्परं तदधः कार्यमाकृष्य तु धनुष्मता ।।३४।।
ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यमक्षिश्लिष्टं तु मध्यमम् । श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदैः ।।३५।।
ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद्द्वादश मुष्टयः । चतुर्हस्तं धनुःश्रेष्ठं त्रयः सार्धं तु मध्यमम् ।।३६।।
कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः । अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्तितम् ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नामैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४९।।

अथ पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच

पूर्णायतं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान्[1] । सुनिर्धौतधनुः कृत्वा यक्षभूमौ विधापयेत् ।।१।।
ततो बाणं समागृह्य दंशितः सुसमाहितः । तूणमासाद्य बध्नीयाद्दृढां कक्षां च दक्षिणाम् ।।२।।

बाण के उस भाग को जिसमें पुङ्ख लगे हुए रहते हैं अँगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से पकड़कर तब तक वेगपूर्वक खींचता रहे जब तक पूरा बाण धनुष पर न आ जाय। ऐसा उपक्रम करके विधिपूर्वक बाण को छोड़ना चाहिए ।।२९-३२।। इस प्रकार से बाण चलानेवाला धुनर्धर अपनी दृष्टि और पकड़ के बीच में आनेवाली खड़ी हुई वस्तु को अपने बाण से अवश्य ही बींध देगा। इसके बाद उसे अपना हाथ शीघ्र ही पीठ की ओर मोड़ देना चाहिए। अये सुव्रत! उत्तम कोटि के बाण का दण्ड बारह मुट्ठी और मध्यम तथा निम्न कोटि के बाणों का दण्ड कम्रशः ग्यारह और बारह अंगुल लम्बा होना चाहिए। पदाति योद्धा का उत्तम कोटि का धनुष चार हाथ, मध्यम कोटि का साढ़े तीन हाथ और निम्न कोटि का तीन हाथ लम्बा होना चाहिए। धनुष का प्रयोग अश्वारोही, गजारोही तथा रथारोही योद्धा के द्वारा भी किया जा सकता है ।।३३-३७।।

श्री अग्निमहापुराण में धनुर्वेद-कथन नामक दो सौ उन्चासवाँ अध्याय समाप्त ।।२४९।।

अध्याय २५०

धनुर्वेद-कथन

अग्निदेव बोले-द्विजाति वर्ण के व्यक्ति को गदा आदि आयुधों को मांस से धोकर यज्ञभूमि में स्थापित कर देना चाहिए ।।१।। तत्पश्चात् बाणों का संग्रह करके, कवच धारणपूर्वक एकाग्रचित हो, तूणीर ले, उसे पीठ की ओर दाहिनी काँख के पास दृढ़ता से बाँधे। ऐसा करने से विलक्ष्य बाण भी उस तूणीर में सुस्थिर रहता है। फिर

---

१ क. ङ. °र्गतायुषम्। सु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विलक्ष्यमपि तद्बाणं तत्र चैव सुसंस्थितम्। ततः समुद्धरेद्बाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना ।।३।।
तेनैव सहितं मध्ये शरं संगृह्य धारयेत्। वामहस्तेन वै कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत् ।।४।।
अविषण्णमतिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत्। संपीड्य सिंहकर्णेन पुङ्खेनापि समे दृढम् ।।५।।
वामकर्णोपविष्टं च फलं वामस्य धारयेत्। वर्णान्मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्या च धारयेत् ।।६।।
मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानवित्। दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत् ।।७।।
ललाटपुटसंस्थानं दण्डं लक्ष्ये निवेशयेत्। आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम् ।।८।।
मुक्त्वा बाणं ततः [1]पश्चाद्वर्णाशिक्यं तदा तया। निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः ।।९।।
अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत्तूणाच्चतुरस्त्रं च दक्षिणम्। चतुरस्त्रगतं वेद्यमभ्यसेच्चाऽऽदितः स्थितः ।।१०।।
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं गतं च यत्। निम्नमुन्नतवेधं च अभ्यसेत्क्षिप्रकं ततः ।।११।।
वेध्यस्थानेष्वथैतेषु सत्त्वस्य पुटकाद्धनुः। हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्जयेद्दुस्तरैरपि ।।१२।।
तस्मिन्वेध्यगते विप्र द्वे वेध्ये दृढसंज्ञके। द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ।।१३।।

दाहिने हाथ से तूणीर के भीतर से बाण को निकाले। उसके साथ ही बायें हाथ से धनुष को वहाँ से उठा ले और उसके मध्य भाग में बाण का संधान करे। चित्त में विषाद न आने दे–उत्साह सम्पन्न हो, धनुष की डोरी पर बाण का पुङ्खभाग रखे, फिर 'सिंहकर्ण' नामक मुष्टि द्वारा डोरी को पुङ्ख के साथ ही दृढ़तापूर्वक दबाकर समभाव से संधान करे और बाण को लक्ष्य की ओर छोड़े। यदि बायें हाथ से बाण को चलाना हो तो बायें हाथ में बाण ले और दाहिने हाथ से धनुष की मुट्ठी पकड़े। फिर प्रत्यञ्चा पर बाण इस तरह रखे कि खींचने पर उसका फल या पुङ्ख बायें कान के समीप आ जाय। उस समय बाण को बायें हाथ की (तर्जनी और अंगुष्ठ के अतिरिक्त) मध्यमा अँगुली से भी धारण किये रहे ।।२-६।। बाण चलाने की विधि को जाननेवाला पुरुष उपर्युक्त मुष्टि के द्वारा धनुष को दृढ़तापूर्वक पकड़कर, मन को दृष्टि के साथ ही लक्ष्यगत करके, बाण को शरीर के दाहिने भाग की ओर रखते हुए लक्ष्य की ओर छोड़े। धनुष का दण्ड इतना बड़ा हो कि भूमि पर खड़ा करने पर उसकी ऊँचाई ललाट तक आ जाय। उस पर लक्ष्यवेध के लिए सोलह अंगुल लम्बे चन्द्रक (बाण-विशेष) का संधान करे और उसे भलीभाँति खींचकर लक्ष्य पर प्रहार करे। इस तरह एक बाण का प्रहार करके फिर तत्काल ही तूणीर से अंगुष्ठ एवं तर्जनी अँगुली के द्वारा बारम्बार बाण निकाले। उसे मध्यमा अँगुली से भी दबाकर काबू में करे और शीघ्र ही दृष्टिगत लक्ष्य की ओर चलावे। चारों ओर तथा दक्षिण ओर लक्ष्यवेध का क्रम जारी रखे। योद्धा पहले से ही चारों ओर बाण मारकर सब ओर के लक्ष्य को बेधने का अभ्यास करे। तदनन्तर वह तीक्ष्ण,परावृत्त, गत, निम्न, उन्नत तथा क्षिप्रवेध का अभ्यास बढ़ावे ।।७-११।। वेध्य लक्ष्य के ये जो उपर्युक्त स्थान हैं, इनमें सत्त्व (बल एवं धैर्य) का पुट देते हुए विचित्र एवं दुस्तर रीति से सैकड़ों बार हाथ से बाणों के निकालने एवं छोड़ने की क्रिया द्वारा धनुष का तर्जन करे–उस पर टङ्कार दे। विप्रवर! उक्त वेध्य के अनेक भेद हैं। पहले तो दृढ़, दुष्कर तथा चित्रदुष्कर–ये वेध्य के तीन भेद हैं। ये तीनों ही भेद दो-दो प्रकार

---

१ छ. °श्चादुल्काशिक्षस्तदा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न तु निम्नं च तीक्ष्णं च दृढवेध्ये प्रकीर्तिते। निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्ध्वगतं च यत् ।।१४।।
मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसंज्ञके। एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ।।१५।।
आरोहेत्प्रथमं वीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः। एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोक्तृभिः ।।१६।।
अधिकं भ्रमणं तस्य तस्माद्वेध्यात्प्रकीर्तितम्। लक्ष्यं च योजयेत्तत्र पत्रिपत्रगतं दृढम् ।।१७।।
भ्रान्तं प्रचलितं चैव स्थिरं यच्च भवेदति। समन्तात्ताडयेद्भिन्द्याच्छेदयेद् व्यथयेदपि ।।१८।।
कर्मयोगविधानज्ञो ज्ञात्वैवं विधिमाचरेत्। मनसा चक्षुषा दृष्ट्या योगशिक्षुर्यमं जयेत् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।२५०।।

अथैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच

जितहस्तो जितमतिर्जितदृग्लक्ष्यसाधकः। नियतां सिद्धिमासाद्य ततो वाहनमारुहेत् ।।१।।

के होते हैं। 'नतनिम्न' और 'तीक्ष्ण' ये 'दृढवेध्य' के दो भेद हैं। 'दुष्करवेध्य' के भी 'निम्न' और 'ऊर्ध्वगत'–ये दो भेद कहे गये हैं। 'चित्रदुष्कर वेध्य' के 'मस्तकायन' और 'मध्य' ये दो भेद बताये गये हैं। इस प्रकार इन वेध्यगणों को सिद्ध करके वीरपुरुष पहले दायें अथवा बायें पार्श्व से शत्रु-सेना पर चढ़ाई करे। इससे मनुष्य को अपने लक्ष्य पर विजय प्राप्त होती है। प्रयोक्ता पुरुषों ने वेध्य के विषय में यही विधि देखी और बतायी है ।।१२-१६।। योद्धा के लिए उस वेध्य की अपेक्षा भ्रमण को अधिक उत्तम बताया गया है। वह लक्ष्य को अपने बाण के पुङ्खभाग से आच्छादित करके उसकी ओर दृढ़तापूर्वक शर-संधान करे। जो लक्ष्य भ्रमणशील, अत्यन्त चंचल और सुस्थिर हो, उस पर सब ओर से प्रहार करे। उसका भेदन और छेदन करे तथा उसे सर्वथा पीड़ा पहुँचाये। कर्मयोग के विधान का ज्ञाता पुरुष इस प्रकार समझ-बूझकर उचित विधि का आचरण (अनुष्ठान) करे। जिसने मन, नेत्र और दृष्टि के द्वारा लक्ष्य के साथ एकता-स्थापन की कला सीख ली है, वह योद्धा यमराज को भी जीत सकता है। (पाठान्तर के अनुसार वह श्रम को जीत लेता है–युद्ध करते-करते थकता नहीं) ।।१७-१९।।।

श्री अग्निमहापुराण में धनुर्वेद-कथन नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।।२५०।।

अध्याय २५१

धनुर्वेद-कथन

अग्निदेव बोले–अपने हाथ और अपनी बुद्धि तथा दृष्टि को वश में कर लेने के बाद और लक्ष्य बाँधने का अभ्यास करके (धनुर्विद्या में) निश्चित सिद्धि प्राप्त करके (धनुर्विद्या चलानेवाले) को घोड़े पर सवार होना चाहिए ।।१।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दशहस्तो [1]भवेत्पाशो वृत्तः करमुखस्तथा । गुणकार्पासमुञ्जानां भङ्गस्नाय्वर्कवर्मिणाम् ।।२।।
अन्येषां सुदृढानां च सुकृतं परिवेष्टितम् । तथा त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्यत्सुवर्तितुम् ।।३।।
कर्तव्यं शिक्षकैस्तस्य स्थानं कक्षासु वै तदा । वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत्ततः ।।४।।
कुण्डलस्याऽऽकृतिं कृत्वाऽऽभ्राम्यैकं मस्तकोपरि । क्षिपेत्तूर्णमये तूर्णं पुरुषे चर्मवेष्टिते ।।५।।
वल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च । समयोगविधिं कृत्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितम् ।।६।।
विजित्वा(त्य)तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत् । कट्यां बद्ध्वा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बितम् ।।७।।
दृढं विगृह्य वामेन निष्कर्षेद्दक्षिणेन तु । षडङ्गुलपरीणाहं सप्तहस्तसमुच्छ्रितम् ।।८।।
अयोमय्यः शलाकाश्च वर्माणि विविधानि च । अर्धहस्ते समे चैव [2]तिर्यगूर्ध्वगतं तथा ।।९।।
योजयेद्विधिना येन तथा त्वं गदतः शृणु । तूणचर्मावनद्धाङ्गं स्थापयित्वा नवं दृढम् ।।१०।।
करेणाऽऽदाय लगुडं दक्षिणाङ्गुलकं नवम् । उद्यम्य घातयेद्यस्य नाशस्तेन शिशोर्दृढम् ।।११।।
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां कुर्यात्तस्य निपातनम् । अक्लेशेन ततः कुर्वन्वधे सिद्धिः प्रकीर्तिता ।।
वाहानां श्रमकरणं प्रचारार्थं पुरा तव ।।१२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५१।।

पाश की लम्बाई दस फीट की होनी चाहिए। उसके किनारे पर एक छल्ला बना होना चाहिए। उसका एक किनारा हाथ में रहना चाहिए। छल्ले की रस्सियाँ सूत, मूँज, चमड़े या पशुओं की अँतड़ियों की बनी होनी चाहिए। पाश किसी अन्य वस्तु की डोरी का भी हो सकता है, जिसकी लम्बाई तीस हाथ की हो और जिसे तीन छल्लों के रूप में तह कर लिया गया हो। आचार्य को अपने शिष्य के शरीर के वाम भाग में पड़े हुए पाश को देखना चाहिए। उसके बाद बायें हाथ से पाश को पकड़कर दायें हाथ में ले लेना चाहिए। फिर सिर के ऊपर से घुमाते हुए उसे चमड़े के वेष्टन में रख लेना चाहिए। आचार्य को अपने शिष्य की परीक्षा दौड़ते हुए, चलते हुए या तेज चाल से चलते हुए घोड़े की पीठ में पाश को फेंकने में करनी चाहिए ।।२-६।। खड्ग को कमर में बायीं ओर लटकाना चाहिए। बायें हाथ से दृढ़ता के साथ म्यान को पकड़कर दाहिने हाथ से खड्ग निकाल लेना चाहिए। कवच विविध प्रकार के हुआ करते हैं। लौहदण्ड की मोटाई छह अंगुल तथा लम्बाई सात हाथ होनी चाहिए। चमड़े के वेष्ठन से ढके हुए लगुड को दोनों हाथों से उठाकर और घुमाकर उसे शत्रु के सिर पर पटक देना चाहिए, जिससे उसकी मृत्यु हो जाय। या फिर उसे केवल दाहिने हाथ से ही उठाना चाहिए। गदा-युद्ध में एक ही बार में और एक ही प्रहार से शत्रु को मार डालने में विजय हुआ करती है। युद्ध में हाथों और भुजाओं के प्रयोग के विषय में पहले ही बताया जा चुका है ।।७-१२।।

श्री अग्निमहापुराण में धनुर्वेद-कथन नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५१।।

---

१ क. ङ. °वेद्व्यासोवृ°। २ क. ङ. र्ध्वमधस्तथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम् । संपातं [1]समुदीशं च श्येनपातमथाऽऽकुलम् ।।१।।
उद्धूतमवधूतं च सव्यं दक्षिणमेव च । अनालक्षितविस्फोटौ करालेन्द्रमहासखौ ।।२।।
विकरालनिपातौ च विभीषणभयानकौ । समग्रार्धतृतीयांशपादपादार्धवारिजाः ।।३।।
प्रत्यालीढमथाऽऽलीढं वराहं लुलितं तथा । इति द्वात्रिंशतो(त्का) ज्ञेया (:) खड्गचर्मविधौ(धा)रणे ।।४।।
परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंज्ञितम् । ऊर्ध्वक्षिप्तमधः क्षिप्तं संधारितविधारितम् ।।५।।
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च । एवमेकादश विधा ज्ञेयाः पाशविधारणे ।।६।।
ऋज्वायतं विशालं च तिर्यग्भ्रामितमेव च । पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः ।।७।।
छेदनं भेदनं पातो भ्रमणं [2]शमनं तथा । विकर्तनं कर्तनं च चक्रकर्मेदमेव च ।।८।।
आस्फोटः क्ष्वेडनं भेदस्त्रासान्दोलितकौ तथा । शूलकर्माणि जानीहि षष्ठमाघातसंज्ञितम् ।।९।।
दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम । ऋजुपक्षेषुणापातं तोमरस्य प्रकीर्तितम् ।।१०।।
आहतं विप्रगोमूत्रप्रभूतं कमलासनम् । ततोर्ध्वगात्रं नमितं वामदक्षिणमेव च ।।११।।

अध्याय २५२

धनुर्वेद-कथन

अग्निदेव बोले–ढाल और तलवार धारण करनेवाले योद्धा को वास्तविक युद्ध प्रारम्भ करने के पूर्व बत्तीस प्रकार की पैतरेबाजी करनी चाहिए। पैतरेबाजी के बत्तीस प्रकार ये हैं–भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सम्पात, समुदीश, श्येनपात, आकुल, उद्धूत, अवधूत, वाम, दक्षिण, अनालक्षित, विस्फोट, करालेन्द्र, महासख, विकराल, निपात, विभीषण, भयानक, समग्रवारिज, अर्धवारिज, तृतीयांशवारिज, पादवारिज, पादार्धवारिज, प्रत्यालीढ, आलीढ, वराह और लुलित ।।१-४।। फन्दा डालने की दस विधियाँ हैं–परावृत्त, अपावृत्त, लघु, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, संधारित, विधारित, श्येनपात, गजपात और ग्राहग्राह्य। महापुरुषों ने फन्दा डालने की जिन पाँच विधियों को बतलाया है वे हैं–सीधा, आयत, विशाल, तिर्यग् और भ्रामित। चक्र के कर्म हैं–काटना, छेदना, गिराना, घुमाना और अलग कर देना। शूल के प्रयोग हैं–आस्फोट, क्ष्वेडन, भेदन, भास, आन्दोलित और आघात ।।५-९।। अये द्विजश्रेष्ठ! तोमर का प्रयोग (शत्रु के) नेत्र, भुजा और पार्श्व काटने में करना चाहिए और उसका प्रतिकार सीधे पंखों से युक्त बाण से करना चाहिए। अये विप्र! आहत, गोमूत्रप्रभूत, कमलासन, (शरीर के) ऊर्ध्व, वाम और दक्षिण अङ्गों का नमन,

---

१ ख. समुदीर्णं। २ छ. शयनं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आवृत्तं च परावृत्तं पादोद्धूतमवप्लुतम्। हंसमर्दं विमर्दं च गदाकर्म प्रकीर्तितम् ।।१२।।
करालमवघातं च दंशोपप्लुतमेव च। क्षिप्तहस्तं स्थितं शून्यं परशोस्तु विनिर्दिशेत् ।।१३।।
ताडनं छेदनं विप्र तथा चूर्णनमेव च। मुद्गरस्य तु कर्माणि तथा प्लवनघातनम् ।।१४।।
संश्रान्तमथ विश्रान्तं गोविसर्गं सुदुर्धरम्। भिन्दिपालस्य कर्माणि लगुडस्य च तान्यपि ।।१५।।
अन्त्यं मध्यं परावृत्तं निदेशान्तं द्विजोत्तम। वज्रस्यैतानि कर्माणि पट्टिशस्य च तान्यपि ।।१६।।
हरणं छेदनं घातो[1] भेदनं रक्षणं तथा। कृपाणकर्म निर्दिष्टं पातनं स्फोटनं तथा ।।१७।।
त्रासनं रक्षणं घातो बलोद्धरणमायतम्। क्षेपणीकर्म निर्दिष्टं यन्त्रकर्मैतदेव तु ।।१८।।
सप्ताङ्गमवदंशश्च वराहोद्धतकं तथा। हस्तावहस्तमालीनमेकहस्तावहस्तके ।।१९।।
द्विहस्तबाहुपाशे च कटिरोचितकोद्गते। उरोललाटघाते च भुजाविधमनं तथा ।।२०।।
करोद्धूतं विमानं च पादाहति विपादिकम्। गात्रसंश्लेषणं शान्तं तथा गात्रविपर्ययः ।।२१।।
ऊर्ध्वप्रहारं घातं च गोमूत्रं सव्यदक्षिणे। पारकं तारकं दण्डं कबरीबन्धमाकुलम् ।।२२।।
तिर्यग्बन्धमपामार्गं भौमवेगं सुदर्शनम्। सिंहाक्रान्तं गजाक्रान्तं गर्दभाक्रान्तमेव च ।।२३।।
गदाकर्माणि जानीयान्नियुद्धस्याथ कर्म च। आकर्षणं विकर्षं च बाहूनां मूलमेव च ।।२४।।
ग्रीवाविपरिवर्तं च पृष्ठभङ्गं सुदारुणम्। पर्यासनविपर्यासौ पशुमारमजाविकम् ।।२५।।
पादप्रहारमास्फोटं कटिरेचितकं तथा। गात्राश्लेषं स्कन्धगतं महीव्याजनमेव च ।।२६।।

आवृत्त, परावृत्त, पादोद्धूत, अवप्लुत, हंसमर्द और विमर्द–ये सब गदा के कार्य बतलाये गये हैं ।।१०-१२।। फरसे का कार्य समझना चाहिए– कराल, अवघात, दंशोपप्लुत, क्षिप्रहस्त, स्थित और शून्य। अये विप्र! ताड़न, छेदन, चूर्णन तथा प्लवनघातन–ये मुद्गर के कर्म हैं। भिन्दिपाल के कर्म हैं–संश्रान्त, विश्रान्त, गोविसर्ग और सुदुर्धर। यही सब काम लगुड के भी हैं ।।१३-१५।। कृपाण के कार्य हरण, छेदन, घात, भेदन, रक्षण, पातन और स्फोटन बताये गये हैं। क्षेपणी (नामक अस्त्र) के यह कार्य बताये गये हैं–भयभीत करना, रक्षण, घात, बलोद्धरण और (लड़ाई करती हुई सेना को) फैलने में सहायता करना। यन्त्र का भी यही सब कार्य है। गदा के कार्य हैं–सप्तांश, अवदंश, सुअर के समान आक्रमण करना, गुत्थम-गुत्था, चिपटना, हाथ में हाथ डाल देना, दोनों हाथों से भुजापाश बनाना, कटि में चिपट जाना, वक्षःस्थल और मस्तक पर प्रहार करना, भुजा को तोड़ना, हाथ उठाकर विमान की आकृति बनाना, पैरों से प्रहार करना, पादहीन करना, अंगों में लिपट जाना, उन्हें शान्त कर देना, उन्हें मरोड़ देना, ऊपर की ओर प्रहार करना, हनन करना, (सेना को) गोमूत्र के रूप में तितर-बितर कर देना, (सेना को) दायें-बायें भगा देना, सेना को पार कर लेना, उसके बीच से निकल जाना, उसे दण्ड देना, उसे वेणी के रूप में कर देना, व्याकुल बना देना, तिर्यग्बन्ध, अपामार्ग, भीमवेग, सुदर्शन और सिंह, हाथी तथा गर्दभ की भाँति आक्रमण करना ।।१६-२३½।। आकर्षण, विकर्षण, बाहुमूल, ग्रीवाविपरिवर्त, सुदारुण, पृष्ठभङ्ग, पर्यासन, विपर्यास, पशुमार, अजाविक, पादप्रहार, आस्फोट, कटिरेचितक, गात्राश्लेष, स्कन्धगत, महीव्याजन,

---

१ छ. °तो बलोद्धरणमायतम्। कृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उरोललाटघातं च विस्पष्टकरणं तथा । उद्धूतमवधूतं च तिर्यङ्मार्गगतं तथा ।।२७।।
गजस्कन्धमवक्षेपमपराङ्मुखमेव च । देवमार्गमधोमार्गममार्गगमनाकुलम् ।।२८।।
यष्टिघातमवक्षेपो वसुधादारणं तथा । जानुबन्धं भुजाबन्धं गात्रबन्धं सुदारुणम् ।।२९।।
विपृष्ठं सोदकं शुभ्रं भुजावेष्टितमेव च । संनद्धैः संयुगे भाव्यं सशस्त्रैस्तैर्गजादिभिः ।।३०।।
वराङ्कुशधरौ चोभावेको ग्रीवागतोऽपरः । स्कन्धगौ द्वौ च धानुष्कौ द्वौ च खड्गधरौ गजे ।।३१।।
रथे रथे रणे चैव तुरंगाणां त्रयं भवेत् । धानुष्काणां त्रयं प्रोक्तं रक्षार्थे तुरगस्य च ।।३२।।
धन्विनो रक्षणार्थाय चर्मिणं तु नियोजयेत् । स्वमन्त्रैः शस्त्रमभ्यर्च्य शास्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ।।
यो युद्धे याति स जयेदरीन्संपालयेद्भुवम्[1] ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५२।।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच

व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदम् । स चतुष्पाच्चतुःस्थानश्चतुःसाधन उच्यते ।।१।।

उरोललाटघात, विस्पष्टकरण, उद्धूत, अवधूत, तिर्यङ्मार्गगत, गजस्कन्ध, अवक्षेप, अपराङ्मुख, देवमार्ग, अधोमार्ग, अमार्गगमनाकुल, यष्टिघात, अवक्षेप, वसुधादारण, जानुबन्ध, सुदारुण, गात्रबन्ध, भुजाबन्ध, विपृष्ठ, सोदक, शुभ्र तथा भुजावेष्टित ।।२४-२९½।। युद्ध में कवच धारण करके, अस्त्र-शस्त्र से सम्पन्न हो, हाथी आदि वाहनों पर चढ़कर उपस्थित होना चाहिए। हाथी पर उत्तम अङ्कुश धारण किये दो महावत या चालक रहने चाहिए। उनमें से एक तो हाथी की गर्दन पर सवार हो और दूसरा उसके कंधे पर। इनके अतिरिक्त सवारों में दो धनुर्धर होने चाहिए और दो खड्गधारी। प्रत्येक रथ और हाथी की रक्षा के लिए तीन-तीन धनुर्धर पैदल सैनिक रहने चाहिए। धनुर्धर की रक्षा के लिए चर्म या ढाल लिये रहनेवाले योद्धा की नियुक्ति करनी चाहिए। जो प्रत्येक शस्त्र का उसके अपने मन्त्रों से पूजन करके 'त्रैलोक्यमोहन कवच' पाठ करने के अनन्तर युद्ध में जाता है, वह शत्रुओं पर विजय पाता है और भूतल की रक्षा करता है ।।३०-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में धनुर्वेद-कथन नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५२।।

अध्याय २५३

व्यवहार-कथन

अग्निदेव बोले-अब मैं व्यवहार का वर्णन करूँगा जिससे नीति-अनीति का विवेक हुआ करता है। व्यवहार को चार पादोंवाला, चार स्थानोंवाला और चार साधनोंवाला कहा जाता है ।।१।। वह चार (वर्गों) की हितकारी, चार

---

१ क. ख. ङ. °पातयेद्ध्रुव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्यते । [1]अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ।।२।।
त्रियोनिर्द्व्यभियोगश्च [2]द्विदारो द्विगतिस्तथा । धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।।३।।
चतुष्पाद्व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः । [3]तत्र [4]सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ।।४।।
चरित्रे संग्रहे पुंसां राजाज्ञायां तु शासनम् । सामा ([5]द्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ।।५।।
चतुर्णामाश्रमाणां च रक्षणात्स चतुर्हितः । कर्तारं साक्षिणश्चैव सभ्या) राजानमेव च ।।६।।
व्याप्नोति पादशो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः । धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकपङ्क्तेस्तथैव च ।।७।।
चतुर्णा करणादेष चतुष्कारी प्रकीर्तितः । राजा सपुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ ।।८।।
हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्ग समुदाहृतः । [6](कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यस्मात्प्रवर्तते ।।९।।
त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत् । द्व्यभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ।।१०।।
शङ्कासद्भिस्तु संसर्गात्तत्त्वं षोडाभिदर्शनात् । पक्षद्वयाभिसम्बन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः) ।।११।।
पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः । भूतश्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः समुदाहृतः ।।१२।।
ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत् । दानग्रहणधर्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ।।१३।।
स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः । निक्षेपं नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ।।१४।।

(पक्षों) में व्याप्त और चार प्रकार से कल्याणकारी होता है। वह आठ अंगोंवाला, अठारह पदोंवाला, सौ शाखाओंवाला, तीन उद्गमोंवाला, दो अभियोगोंवाला, दो द्वारोंवाला तथा दो गतियोंवाला हुआ करता है। व्यवहार के चार पाद होते हैं–धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन। इनमें से बादवाला अपने पूर्ववर्ती का साधक हुआ करता है। धर्म सत्य में स्थित रहता है, व्यवहार साक्षियों में विहित रहता है, चरित्र जन–समुदाय में स्थित रहता है और साधन राजाज्ञा में विद्यमान रहता है ।।२–५।। व्यवहार को चतुःसाधन इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह साम आदि उपायों के द्वारा साध्य हुआ करता है। चार आश्रमों की रक्षा करने के कारण उसे 'चतुर्हित' कहा जाता है। उसे 'चतुर्व्यापी' इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह वादी, साक्षी, सभासद और राजा–इन चारों में व्याप्त रहता है। धर्म, अर्थ, यश और लोकव्यवहार को प्रभावित करने के कारण उसे चतुष्कारी कहा जाता है ।।६–७$\frac{1}{2}$।। उसे अष्टज इसलिए कहा जाता है क्योंकि (व्यवहार–निर्णय में) जिन आठ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है वे हैं–राजपुरुष के साथ राजा, सभासद, शास्त्र, गणक, लेखक, सोना, अग्नि और जल। उसे 'त्रियोनि' इसलिए कहा जाता है क्योंकि उसकी उत्पत्ति काम, क्रोध और लोभ से होती है। इन तीनों के विवाद को उत्पन्न करनेवाला त्रियोनि कहा जाता है। शङ्कित और वास्तविक अभियोगों के कारण वह 'द्व्यभियोग' कहलाता है। शङ्का और तत्त्व इन दोनों के छह–छह भेद किये गये हैं। उसे 'द्विद्वार' इसलिए कहा गया है कि उसमें दो पक्ष (पक्ष और विपक्ष) हुआ करते हैं ।।८–११।। (पक्ष और विपक्ष में) जो पहले (राजभाषा में) कुछ कहता है उसे वादी और बाद में बोलनेवाले को प्रतिवादी कहते हैं। व्यवहार को 'द्विगति' इसलिए कहा जाता है क्योंकि उसमें कुछ बातें सत्य और कुछ असत्य हुआ करती हैं। ऋणादान के अन्तर्गत आनेवाला ऋण वह है जो देय हो या अदेय हो, जो दान में दिया गया हो अथवा किसी धार्मिक कृत्य के लिए दिया गया हो। जब कोई व्यक्ति अपने विश्वास के कारण निःशङ्क होकर अपना धन किसी के पास धरोहर के रूप में रख देता है तब उसे बुद्धिमान् लोग 'निक्षेप' कहा करते हैं ।।१२–१४।। जब

---

१ क. °ष्टांशौऽष्टा°। २ छ. द्विहारो। ३ क. °त्र संवेष्टितो। ४ च. सभ्योत्थितो। ५ 'द्युपायसाध्यत्वा'''सभ्या' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ कामात्क्रोधात्'''समुदाहृतः च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वते । तत्सम्भूय समुत्थानं व्यवहारपदं विदुः ।।१५।।
दत्त्वा द्रव्यं च सम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति । दत्ता प्रदानिकं नाम तद्विवादपदं स्मृतम् ।।१६।।
[1]अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते । अशुश्रूषामुपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ।।१७।।
([2]भृत्यानां वेतनस्योक्तो[3] दानादानविधिश्च[4] यः । वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ।।१८।।
निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वाऽपहृत्य वा । विक्रीयते परोक्षं यत्स ज्ञेयोऽस्वाभिविक्रि(क्र)यः ।।१९।।
विक्रीय ([5]पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यच्च न दीयते । विक्रीयासम्प्रदानं तद्विवादपदमुच्यते) ।।२०।।
क्रीत्वा मूल्येन यः पण्यं क्रेता न बहु मन्यते । [6]कृत्वा मूल्यं तु यः पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी ।।२१।।
पाषण्डनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते । समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं[7] स्मृतम् ।।२२।।
सेतुकेदारमर्यादा विकृष्टाकृष्टनिश्चयाः । क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजस्तु सः ।।२३।।
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसां च कीर्त्यते) । स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तु तद्विवादपदं स्मृतम् ।।२४।।
विभागोऽर्थस्य[8] पैत्रस्य पुत्रैर्यस्तु प्रकल्प्यते । दायभागमिति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः ।।२५।।
सहसा क्रियते कर्म यत्किंचिद्बलदर्पितैः । तस्साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ।।२६।।
[9]देशजातिकुलादीनामाक्रोशाद्व्यङ्गसंयुतम्[10] । यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ।।२७।।

बनिये इत्यादि एक साथ मिलकर कोई (व्यावसायिक) कर्म करते हैं, तब उसे सम्भूयसमुत्थान नामक विवाद कहा जाता है। सम्यक् प्रकार से किसी द्रव्य को दान कर देने के पश्चात् जब दान देनेवाला पुनः उसे प्राप्त करने की इच्छा करता है, तब उसे दत्ताप्रदानिक नामक विवाद कहा जाता है। सेवा करने की प्रतिज्ञा करके भी जो व्यक्ति सेवा नहीं करता है, उसे सेवा न करने का विवाद कहते हैं ।।१५-१७।। सेवकों के वेतन को न देने की जो विधि है, उसे वेतनादान नामक विवाद कहते हैं। दूसरे की धरोहर को अथवा दूसरे के खोये हुए धन को प्राप्त करके या उसे चुराकर बेचनेवाले को अस्वामिविक्रयी कहते हैं। मूल्य लेकर किसी वस्तु को बेच देने के बाद भी जब वह वस्तु खरीदार को नहीं दी जाती है तब उसे विक्रीयासम्प्रदान नामक विवाद कहते हैं ।।१८-२०।। मूल्य चुराकर किसी वस्तु को बेचनेवाला व्यक्ति उसके मूल्य को वस्तु के अनुरूप जब नहीं समझता है, तब भी विवाद उठ खड़ा होता है। पाखण्डी अथवा दुराचारी लोगों के द्वारा सद्व्यवहार के लिए की गयी प्रतिज्ञा को 'समय' कहते हैं। इस 'समय' को तोड़ना भी विवाद का कारण बनता है। खेतों के अधिकार के सम्बन्ध में तथा पुल, चरागाह और सीमा को प्राप्त करने या अपने में मिला लेने के सम्बन्ध में जो विवाद होते हैं, उन्हें 'क्षेत्रज' कहा जाता है। जहाँ पर स्त्रियों तथा पुरुषों के विवाह की विधि बतायी जाती है, उसे 'स्त्रीपुंसयोग' नामक विवाद कहते हैं ।।२१-२४।। पैतृक सम्पत्ति के विषय में पुत्रों में जो विवाद उत्पन्न हो जाता है, उसे बुद्धिमान् लोग दायभाग-विवाद कहते हैं। बल के दर्प के कारण जो कार्य सहसा (बिना विचार किये हुए) कर डाला जाता है, उसे साहस कहते हैं और वह भी विवाद का कारण बन जाता है। आक्रोशवश (किसी के) देश, जाति और कुल आदि के प्रतिकूल जिन वचनों का प्रयोग किया जाता है, उसे 'वाक्पारुष्य' कहते हैं ।।२५-२७।। हाथ, पैर,

---

१ ग. समुत्पत्य। २ भृत्यानां...मुच्यते क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ ख. ग. छ. °स्योक्त° दा°। ४ ख. ग. छ. °धिक्रिया। बे°। ५ पण्यं...मुच्यते च. पुस्तके नास्ति। ६ छ. क्रीत्वा। ७ क. ङ. °परं स्मृ°। ८ क. ङ. °स्य योगस्तु पु°। ९ क. ङ. °शकालक्रमादी°। १० ख. ग. च. छ. °क्रोशत्यङ्ग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परगात्रेष्वभिद्रोहो [1]हस्तपादायुधादिभिः । अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ।।२८।।
अक्षवज्रशलाकाद्यैर्देवनं द्यूतमुच्यते । पशुक्रीडावयोभिश्च प्राणिद्यूतं[2] समादिशेत् ।।२९।।
प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः । राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणं तथा ।।३०।।
व्यवहारो[3] दशपदस्तेषां भेदोऽथ वै शतम् । क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ।।३१।।
व्यवहारान्नृपः पश्येज्ज्ञानिविप्रैरकोपनः । शत्रुमित्रसमाः सभ्या अलोमाः श्रुतिवेदिनः ।।३२।।
अपश्यता कार्यवशात्सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत् । रागाल्लोभाद्भयाद्वाऽपि[4] श्रुत्यपेतादिकारिणः ।।३३।।
सभ्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या[5] विवादाद्द्विगुणो दमः । स्मृत्याचारव्यपेतेन [6]मार्गेणाधर्षितः परैः ।।३४।।
आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् । [7]प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ।।३५।।
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् । [8]श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसंनिधौ ।।३६।।
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् । तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ।।३७।।
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः । अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ।।३८।।

अस्त्र, शस्त्र अथवा अग्नि आदि घातक साधनों के द्वारा दूसरे के अङ्गों के प्रति जो अपराध किया जाता है, उसे 'दण्डपारुष्य' कहते हैं। पासे, वज्र और शलाकाओं से जुआ खेलने को द्यूत कहते हैं। पशुक्रीड़ा या पक्षियों से की जानेवाली क्रीड़ा 'प्राणिद्यूत' कहलाती है। इसके अतिरिक्त जो विवाद किसी कोटि में नहीं आता है उसे प्रकीर्णक व्यवहार कहते हैं। उसके अन्तर्गत आते हैं–राजाज्ञा का उल्लंघन और उस (राजा) के कर्म को न करना। व्यवहार के दस अङ्ग होते हैं, उसके सौ भेद होते हैं और मनुष्यों के कार्यों के भेद से वह सौ भेदोंवाला कहा जाता है ।।२८–३१।। राजा को ज्ञानवान् ब्राह्मणों के साथ मिलकर बिना क्रोध किये विवादों का निपटारा करना चाहिए। उसके सभासदों को ऐसा होना चाहिए जो शत्रु मित्र को समान समझते हों, लोभरहित हों, वेदों के ज्ञाता हों। कार्यवश यदि कोई राजा अपने सभासदों के साथ विवादों का निपटारा न कर सके तो उसे इसके लिए किसी ब्राह्मण की नियुक्ति कर देनी चाहिए। राग, लोभ और भय के कारण वेदादि के विरुद्ध कार्य करनेवाले सभासद अलग–अलग दण्ड के भागी हुआ करते हैं। दूसरों के द्वारा बिना दबाव डाले हुए ही जो सभासद स्मृति और आचार के विरुद्ध मार्ग को अपनाता है, उसे विवाद के दुगुने दण्ड का भागी बनना पड़ता है ।।३२–३४।। (अर्थी या वादी) राजा से जो कुछ निवेदन करता है वही व्यवहार का विषय बन जाता है। वादी जो कुछ (मौखिक रूप से) निवेदन करता है उसे प्रत्यर्थी (अथवा प्रतिवादी) के सामने लिखवा लेना चाहिए। उसे लेख में वर्ष, मास, पक्ष, दिन, (वादी का) नाम और उसकी जाति का भी उल्लेख होना चाहिए। वादी के लेख का उत्तर उसी के सामने प्रतिवादी से लिखवा लेना चाहिए। तदनन्तर वादी को अपने कथन को सिद्ध करने के लिए (अन्य) साधनों का उल्लेख करवाना चाहिए। उन साधनों की पुष्टि से वाद सिद्ध माना जाता है, अन्यथा असिद्ध हो जाता है। इस प्रकार विवादों में (उपर्युक्त) चार प्रकार का व्यवहार बताया गया है। प्रथम अभियोग का निर्णय किये बिना (प्रतिवादी के द्वारा वादी के विरुद्ध) अभियोग की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए ।।३५–३८।।

---

१ क. ङ. °पादमुखादि°। २ ख. ग. च. छ. °द्यूतसमाह्वयः। प्र°। ३ ख. ग. छ. °रोऽष्टाद°। ४ ख. ग. छ. °पि स्मृत्य°। ५ क. ख. ग. ङ. °गुणं दमम्। स्मृ°। ६ छ. °र्गेण ध°। ७ क. ख. ग. ङ. च. °र्थितोऽग्र°। ८ ङ. च. °र्थ स्यान्तरं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् । कुर्यात्प्रत्यभियोगं तु कलहे साहसेषु च ।।३९।।
उभयोः प्रतिभूर्गाह्यः समर्थः काम्यनिर्णये । [1]निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम् ।।४०।।
मिथ्याभियोगाद्द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् । [2]साहसस्तेयपारुष्येष्वभिशापात्यये स्त्रियाः ।।४१।।
विचारयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः । ([3]देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च ।।४२।।
ललाटं स्विद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च । स्वभावाद्विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।।४३।।
अभियोगेऽथवा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्तितः । संदिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ।।४४।।
न चाऽऽहूतो वदेत्किञ्चिद्दीनो[4] दण्ड्यश्च स स्मृतः । साक्षिषूभयतः सत्सु) साक्षिणः पूर्ववादिनः ।।४५।।
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः । [5]सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनं तु दापयेत् ।।४६।।
[6]दण्डं पणं वसुं चैव धनिनो धनमेव च । छलं निरस्य दूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ।।४७।।
[7]भूतमप्यनुपन्यस्तं [8]हीयते व्यवहारतः । [9]निह्नुते निखिला (ता?) नेकमेकदेशविभावितम् ।।४८।।
दाप्यः सर्वोनृपेणार्थो न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः । स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः ।।४९।।

अन्य (अधिकारी) के द्वारा निर्णीत अभियोग को पुनः (विचारार्थ) नहीं ग्रहण करना चाहिए। किन्तु कलह और साहस (के अभियोगों) में प्रत्यभियोग स्वीकार कर लेना चाहिए। दोनों पक्षों के द्वारा ऐसे प्रतिभू (जमानत करनेवाले) को स्वीकार कर लेना चाहिए जो वांछित निर्णय में समर्थ हो। (वादी अथवा प्रतिवादी में) किसी एक के लुप्त हो जाने पर प्रतिभू से (अभियोग के) बराबर धन राजा को दिलवाना चाहिए। मिथ्या अभियोग लगानेवाले को अभियोग के दुगुने दण्ड का भागी बनना पड़ता है ।।३९-४०$\frac{1}{2}$।। साहस, चोरी (वाक् अथवा दण्ड), पारुष्य, अभिशाप और स्त्रियों के साथ भागने के अभियोगों पर तुरन्त ही विचार करना चाहिए, अन्य प्रकार के अभियोगों में इच्छानुसार (अभियोगों के निर्णय का) काल निर्धारित किया जा सकता है। वह अभियोग लगानेवाला या साक्षी देनेवाला वाग्दुष्ट कहा जा सकता है जो (राजा के द्वारा बुलाये जाने पर) एक स्थान से दूसरे स्थान को भाग जाता है, होंठ चाटता है, जिसके मस्तक से पसीना आने लगता है, मुँह पीला पड़ जाता है और जो मन, वचन और कर्म से अस्वाभाविक चेष्टाएँ करता है, जो अपने-आप ही (बिना पूछे हुए) कुछ सिद्ध करने लगता है, संदिग्ध बातें करता है, (बुलाने पर) भाग जाता है या बुलाये जाने पर (आकर भी) कुछ बोलता नहीं वह साक्षी दण्डनीय कहा गया है ।।४१-४४$\frac{1}{2}$।। (वादी और प्रतिवादी) दोनों ओर से साक्षियों को प्रस्तुत किये जाने पर पहले वादी के साक्षियों को सुनना चाहिए। पूर्वपक्ष निश्चित हो जाने के बाद ही उत्तर पक्ष (प्रतिवादी) के साक्षियों को सुनना चाहिए। यदि विवाद धन के सम्बन्ध में हो तो (वादी और प्रतिवादी) जो हीन हो, उससे धन दिलवाना चाहिए। जुए में दाँव पर लगायी हुई प्रत्येक वस्तु की चाहे वह धन हो, मणियाँ हों या धनिक की सम्पूर्ण सम्पत्ति ही हो, राजा के व्यवहार का विषय बना लेना चाहिए। इस प्रकार व्यवहार का विषय बनायी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति (उसके अधिकारी को) दिलवा देनी चाहिए, किन्तु जब तक वह (वस्तु किसी पक्ष के द्वारा) राजा को दे न दी जाय तब तक राजा को उसे अपने अधिकार में नहीं कर लेना चाहिए। दो स्मृति-ग्रन्थों में परस्पर विरोध होने पर न्याय, व्यवहार से बलवान् माना गया है ।।४५-४९।। स्थिति यह

---

१ क. ङ. च. भार्गवे। २ क. ख. ग. ङ. च. °रुष्यगोभि°। ३ देशाद्'''सत्सु च. पुस्तके नास्ति। ४ छ. °चिद्धनी द°। ५ छ. सगण°। ६ छ. दत्तं°। ७ छ. °प्यर्थमप्यस्तं। ८ क. ङ. दीयते। ९ छ. °ते निखि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः । प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ।।५०।।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते । सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।।५१।।
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा । पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।।५२।।
परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी । अधिसीमोपनिःक्षेपजडबालधनैर्विना ।।५३।।
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि । आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनम् ।।५४।।
दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष्यमथापि वा । आगमोऽप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागताम् ।।५५।।
आगमोऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकाऽपि यत्र न । आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ।।५६।।
अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति । ([1]आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ।।५७।।
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी । योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य ऋक्थात्तमुद्धरेत् ।।५८।।
न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता । बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत् ।।५९।।
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतस्तथा । मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः[2] ।।६०।।

है कि धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र से अधिक बलवान् माना गया है। प्रमाण तीन माने गये हैं—लेख, भोग और साक्षी। इनमें से किसी एक के अभाव में दिव्य प्रमाण (सौगन्ध आदि) को मान्यता दी गयी है। सभी प्रकार के विवादों में बाद में होनेवाले कार्य अधिक बलशाली हुआ करते हैं, किन्तु अधिदान और क्रय-विक्रय में पहले का कार्य अधिक बलवान् हुआ करता है। (स्वामी के) देखते-देखते और बातचीत करते हुए (यदि कोई व्यक्ति उसकी भूमि के ऊपर अधिकार कर ले तो) बीस वर्ष में भूमि से उसके स्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है। दूसरों के द्वारा उपभोग किये जानेवाले धन से दस वर्षों में ही अधिकार समाप्त हो जाता है। किन्तु सीमा, आधि, धरोहर, मूर्ख, बालक, राजा, स्त्री और श्रोत्रिय, ब्राह्मणों के धन के सम्बन्ध में यह नियम नहीं होता। आधि इत्यादि को हड़प कर लेनेवाले से उसके स्वामी को आधि की वस्तु दिलवानी चाहिए ।।५०-५४।। उसके बराबर अथवा (आधि इत्यादि को हड़प करनेवाली की) शक्ति के अनुरूप दण्ड (का धन) राजा को दिलवाना चाहिए। पूर्व परम्परा से प्राप्त भोग के बिना भी आगम (अधिकार) मान्य हुआ करता है, किन्तु जहाँ लेशमात्र भी निर्विघ्न भोग न हो वहाँ (केवल) अधिकार में बल नहीं रहता। विशुद्ध अधिकार से भोग भी प्रमाणित हो जाता है, किन्तु अविशुद्ध (विघ्नयुक्त) अधिकार से भोग प्रमाणित नहीं हुआ करता है। जिस व्यक्ति ने किसी वस्तु पर (अनुचित) अधिकार कर लिया हो, उसी के अधिकार को समाप्त कर देना चाहिए। (इस प्रकार अनुचित ढंग से अधिकार करनेवाले) उसके पुत्र अथवा पौत्र के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है क्योंकि वहाँ तो भोग ही बलवान् हो जायगा। (अनुचित ढंग से अधिकार करनेवाले) अभियुक्त की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी से अनुचित अधिकार को समाप्त करवा देना चाहिए ।।५५-५८।। ऐसी स्थिति में भोग भी प्रमाणित नहीं हुआ करता है, क्योंकि वह अधिकार से रहित है। बल तथा अधिकार से किये गये व्यवहारों को समाप्त कर देना चाहिए। वह व्यवहार-सिद्ध नहीं हुआ करता है जो स्त्री, शत्रु, मत्त, उन्मत्त, रोगी, दुःखी, बालक और भयभीत के साथ किया

---

१ आगमस्तु…जनपदाय तु च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. निबलमन्त्रप्र०।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति । प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।।६१।।
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं[1] दातुमर्हति । देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय[2] तु) ।।६२।।
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सम्बन्धके[3] । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ।।६३।।
सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा । वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ।।६४।।
ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिम् । दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ।।६५।।
[4]प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् । साध्यमानो नृपं गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम्[5] ।।६६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यवहारकथनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच

गृहीतार्थः क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः । दत्त्वा तु ब्राह्मणायाऽऽदौ नृपतेस्तदनन्तरम् ।।१।।

जाता है। रात्रि में, घर के अन्दर और बाहर तथा असम्बद्ध व्यक्तियों से किया गया व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता है। आधि के नष्ट हो जाने पर राजा के द्वारा धनिक को सौ गुना धन दिलाना चाहिए। यदि उन्हीं विशेषताओं से युक्त आधि को प्राप्त कर सकना असम्भव हो तो आधि के समान वस्तु (उसके स्वामी को) दिलवाना चाहिए। राजा को चोरों द्वारा चुराया गया धन (सम्पूर्ण) जनपद को दे देना चाहिए ।।५९-६२।। बन्धक के साथ किये गये ऋण पर (सौ का) अस्सीवाँ भाग प्रतिमास (ब्याज के रूप में) वृद्धि होगी, अन्यथा (बन्धकरहित ऋण पर) वर्णक्रम के क्रमशः दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होगी। पशुओं और स्त्रियों पर सत्तरवाँ भाग वृद्धि होगी। रसों पर आठ गुनी और वस्त्र, धान्य तथा सोने पर क्रमशः उसकी चार गुनी, तीन गुनी या दो गुनी वृद्धि होगी। अन्य ग्राम में रहनेवाले ऋणकर्त्ता को दिये गये ऋण पर दस प्रतिशत तथा सामुद्रिक यात्रा पर जानेवाले व्यक्ति को दिये गये ऋण पर बीस प्रतिशत वृद्धि होगी। अथवा सभी वर्णों के सभी लोगों को परस्पर निर्धारित ब्याज देना चाहिए। विपत्तिग्रस्त को (ऋण रूप में) धन देनेवाला राजा निन्दनीय नहीं होता है। (निर्धारित दर से) अधिक ब्याज लेनेवाला राजा के द्वारा दण्डनीय हुआ करता है और उसका धन राजा ले लिया करता है ।।६३-६६।।

श्री अग्निमहापुराण में व्यवहारकथन नामक दो सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५३।।

अध्याय २५४

व्यवहारकथन

अग्निदेव बोले–ऋण लेनेवाले व्यक्ति से (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऋण देनेवालों को) क्रमशः ऋण

---

१ क. ख. ग. ङ. °मं दणुम°। २ क. ङ. °पदस्य तु। ३ च. सवर्णके। ४ च. प्रसन्नं। ५ अत्र क. ङ. पुस्तकयोः श्लोकार्धमधिकं तद्यथा--''अनेन विधिना राज्ञा व्यवहारो न सिध्यति'' इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राज्ञाऽधमर्णिको दाप्यः साधिताद्दशकं [1]स्मृतम् । पञ्चकं तु शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ।।२।।
हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत् । ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ।।३।।
दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् । मध्यस्थस्थापितं तत्स्याद्वर्धते न ततः परम् ।।४।।
ऋक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च । पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ।।५।।
अविभक्तैः कुटुम्बार्थं यदृणं तु कृतं भवेत् । दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते व कुटुम्बिनि ।।६।।
न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता । दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ।।७।।
गोपशौण्डिशकैलूषरजकव्याधयोषिताम् । ऋणं दद्यात्पतिस्त्वासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ।।८।।
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम् । स्वयं कृतं वा यदृणं([2]नान्यस्त्री(त्स्त्री)दातुमर्हति ।।९।।
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथ वा । पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं) निह्नवे[3] साक्षिभावितम् ।।१०।।
सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम् । वृथाऽऽदानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ।।११।।

वापस दिलवाना चाहिए। राजा को ऐसे ऋण लेनेवाले से दस प्रतिशत ब्याज दिलवाना चाहिए। जो भाग गया हो और जिसे पकड़ लिया गया हो, किन्तु जिस ऋण देनेवाले को राजा के सम्मुख ही उसका ऋण प्राप्त हो जाय उसे पाँच प्रतिशत ब्याज दिलवाना चाहिए। यदि हीन जाति का ऋण लेनेवाला ऋण चुकाने में असमर्थ हो तो उसे ऋण चुकाने के लिए (ऋण लेनेवाले का) कार्य करना चाहिए। किन्तु भाग लेनेवाला यदि ब्राह्मण हो तो उससे शनैः-शनैः यथाशक्ति ऋण चुकाना चाहिए ।।१-३।। यदि ऋण देनेवाला व्यक्ति ऋण लेनेवाले से वापस किये गये धन को स्वीकार न करे तो ऋण लेनेवाले को उसे किसी मध्यस्थ के पास रख देना चाहिए। उसके बाद से उस ऋण पर ब्याज नहीं लगता है। (ऋण लेनेवाले की मृत्यु के अनन्तर मृतक ऋणी के) धन को तथा उसकी स्त्री को ग्रहण करनेवाला उसके ऋण को चुकाता है और यदि वह (मृतक ऋणी) पुत्रहीन हो तो उसका ऋण उसकी सम्पत्ति को ग्रहण करनेवाले को चुकाना पड़ता है। यदि किसी अविभाजित कुटुम्ब के मुखिया ने कुटुम्ब के लिए ऋण लिया हो तो उसकी मृत्यु के बाद अथवा विदेश चले जाने के बाद ऋण चुकाने का दायित्व उसकी सम्पत्ति को ग्रहण करनेवालों का हुआ करता है। पति और पुत्र के द्वारा किये गये ऋण को चुकाने का दायित्व स्त्री पर नहीं रहता है और न पुत्र के द्वारा लिया गया ऋण पिता को चुकाना पड़ता है। किन्तु यदि वह ऋण कुटुम्ब के लिए लिया गया हो तो यह नियम मान्य नहीं हुआ करता है ।।४-७।। (साधारणतया) स्त्री के द्वारा (कुटुम्ब के लिए) लिया गया ऋण पति को नहीं चुकाना पड़ता है, किन्तु ग्वाले, मदिरा बनानेवाले, नट, धोबियों और बहेलियों की स्त्रियों द्वारा लिये गये ऋण को उनके पतियों को (भी) चुकाना पड़ता है, क्योंकि उन लोगों की जीविका स्त्रियों के अधीन ही हुआ करती है। स्त्री को केवल वही ऋण चुकाना पड़ता है जिसे उसने स्वयं लिया हो या पति के साथ मिलकर लिया हो। इसके अतिरिक्त कोई भी ऋण (साधारणतया) स्त्री को चुकाना नहीं पड़ता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर, उसके प्रवास के बाद और उसके विपत्ति में पड़ जाने पर उसके द्वारा लिया गया ऋण पुत्र-पौत्रों को चुकाना पड़ता है। पुत्र-पौत्रों को वह ऋण भी चुकाना पड़ता है जो पिता के ऊपर अनुचित व्यवहार में साक्षी बनने के लिए आ पड़ा हो। किन्तु पुत्र अपने पिता द्वारा लिये गये उस ऋण को चुकाने के लिए बाध्य नहीं हुआ करता है जो ऋण पिता ने मदिरापान के लिए, कामोपभोग

---

१ क. ख. ङ. शतम्। २ नान्यस्त्री···देयं च. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. निह्नुते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्रातॄणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि। प्रातिभाव्यमृणं[1] साक्ष्यमविभक्तेन च स्मृतम् ।।१२।।
दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते। आधौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि ।।१३।।
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा। न तत्पुत्रा धनं [2]दद्युर्दानाय समुपस्थिताः ।।१४।।
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम्। एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ।।१५।।
प्रतिभूर्दापितो यत्र प्रकाशं धनिनो[3] धनम्। द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ।।१६।।
ससंततिस्त्रीपशव्यं धान्यं द्विगुणमेव च। वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ।।१७।।
आधिः प्रणश्येद्द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते। काले [4]कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति ।।१८।।
गोप्याधिभोगिनो वृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते। नष्टो देयो [5]विनष्टश्च[6] दैवराजकृतादृते ।।१९।।

के लिए तथा जुए के लिए लिया हो। पुत्रों को वह धन भी नहीं चुकाना पड़ता है जो पिता के ऊपर किये गये दण्ड में शेष रह गया हो या व्यर्थ में ही लिया गया हो। भाइयों, दम्पतियों तथा पिता-पुत्रों के द्वारा संयुक्त रूप से लिये गये ऋण में एक-दूसरे का प्रतिभू (जमानत करनेवाला) तथा साक्षी हुआ करता है ।।८-१२।। प्रतिभू के तीन प्रयोजन होते हैं-दर्शन, प्रत्यय और दान। अनधिकृत वस्तु को आधिरूप में रखनेवाले व्यक्ति के पुत्रों को भी ऋण चुकाना पड़ता है। दर्शन और प्रत्यय के लिए जो प्रतिभू होते हैं उनके मरने पर (और ऋण के वापस न होने की स्थिति में) उनके पुत्रों को ऋण चुकाना नहीं पड़ता है, किन्तु जो प्रतिभू ऋण को वापस करने का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं उनके मरने के बाद उनके पुत्रों को ऋण चुकाना पड़ता है। जहाँ एक ऋण लेनेवाले के लिए (संयुक्त रूप से) अनेक प्रतिभू होते हैं वहाँ (ऋणकर्त्ता के द्वारा ऋण वापस न करने पर) सभी प्रतिभू अपने-अपने अंश (के ऋण) को वापस करने के लिए उत्तरदायी हुआ करते हैं। किन्तु जहाँ एक ऋणकर्त्ता के लिए (अलग-अलग) अनेक प्रतिभू हों वहाँ ऋण देनेवाला अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रतिभू से अपने धन को वापस ले सकता है। जहाँ पर किसी प्रतिभू को सबके सामने ऋणकर्त्ता के स्थान में ऋण चुकाना पड़ता है वहाँ ऋण लेनेवालों से प्रतिभू को उसके ऊपर दिये गये धन का दुगुना धन दिलवाना चाहिए ।।१३-१६।। (आधि के रूप में रखी हुई) स्त्रियों अथवा पशुओं की सन्तान को छुड़ाने के लिए दुगुना, वस्त्रों को छुड़ाने के लिए चौगुना और रसों को छुड़ाने के लिए आठ गुना धन देना पड़ता है। ऋण में दिया हुआ मूल धन बढ़ते-बढ़ते यदि दुगुना हो जाय तो आधि पर ऋणकर्त्ता का अधिकार समाप्त हो जाता है। यदि कोई आधि विशेष अवधि के लिए रखी गयी हो तो उस अवधि की समाप्ति होते ही आधि पर उसके स्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है; किन्तु यदि कोई आधि ऐसी हो जिसके फल का उपभोग किया जा सके तो उस पर उसके स्वामी का अधिकार कभी भी समाप्त नहीं होता है। ऐसी आधि पर कोई भी ब्याज नहीं लगता है जिसका उपयोग किया जाता रहा हो या जिससे ऋण देनेवाला कोई लाभ प्राप्त करता रहा हो। दैवयोग से अथवा राजा के किसी से नष्ट हुई अथवा खोयी हुई आधि के अतिरिक्त अन्य किसी आधि के खो जाने पर उसे (उसके स्वामी को) लौटाना पड़ता

---

१ छ. °णं ग्राह्यम°। २ ख. ग. छ. °द्युर्दानाय ये स्थि°। ३ ग. छ. धनिने। ४ छ. कालकृतं। ५ ङ. विशिष्टश्च। ६ क. °श्च देशकालो विभाव्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्ष्यमाणोऽप्यसारताम् । यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ।।२०।।
चरित्रं बन्धककृतं सवृद्धं दापयेद्धनम् । सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिपादयेत् ।।२१।।
उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिर्दण्डोऽन्यथा भवेत् । प्रयोजके सति धनं कुलेऽन्यस्याऽऽधिमाप्नुयात् ।।२२।।
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः । विना धारणकाद्वाऽपि विक्रीणीते ससाक्षिकम् ।।२३।।
यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु[1] । मोच्यश्चाऽऽधिस्तदुत्पाद्यः [2]प्रविष्टे द्विगुणे धने ।।२४।।
व्यसनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य[3] तदर्पयेत् । द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ।।२५।।
न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैवततस्करैः । प्रेषश्चेन्मार्गिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समः ।।२६।।
आजीवन्स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तच्चापि सोदयम् । याचितावाहितन्यासे निक्षेपेष्वप्ययं विधिः ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यवहारकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५४।।

है। जैसे ही (ऋणदाता के द्वारा) आधि स्वीकार कर ली जाती है वैसे ही व्यवहारपूर्ण हो जाता है। यदि ऋणदाता के द्वारा (सम्यक् प्रकार से) रक्षा करने के बाद भी आधि नष्ट हो जाय तो ऋण लेनेवाले को या तो दूसरी वस्तु आधि के रूप में रख देनी चाहिए अन्यथा ऋण देनेवाले को उसका धन वापस कर देना चाहिए ।।१७-२१।। आधि रखनेवाले व्यक्ति को चाहिए कि ऋण को वापस करके आधि को वापस करने के लिए आये हुए ऋणकर्त्ता को आधि वापस कर दे, अन्यथा ऋणदाता दण्ड का भागी होता है। यदि आधि रखनेवाला (उत्तमर्ण) उपस्थित न हो (अर्थात् मर गया हो) तो ऋण लेनेवाला (देय) धन को उस (उत्तमर्ण) के कुल को सौंपकर आधि वापस ले सकता है अथवा आधि का तत्कालीन मूल्य निकाल लिया जाता है और तदनन्तर उसके ऊपर ब्याज लगना बन्द हो जाता है। यदि (आधि को छुड़ाने के समय) ऋणकर्त्ता उपस्थित न हो (अर्थात् मर गया हो या विदेश चला गया हो) तो ऋण देनेवाले को साथियों के सामने आधि को बेच देना चाहिए। यदि आधि रखने के समय इस प्रकार समझौता हो कि (ब्याज के सहित) मूलधन के द्विगुणित हो जाने पर ही ऋण देनेवाला आधि का उपभोग कर सकता है तो जैसे ही आधि से इतना लाभ हो जाय जो मूलधन के दुगुने के समान हो, तो आधि को वापस कर देना चाहिए ।।२२-२४$\frac{१}{२}$।। उस आधि द्रव्य को औपनिधिक कहते हैं जिसमें (चोरी हो जाने इत्यादि का) भय रहता है और जिस (के वास्तविक रूप) को बताये बिना ही ऋणदाता को दे दिया जाता है। उस आधि को (ऋण का धन प्राप्त करने पर) उस रूप में वापस कर देना चाहिए। यदि इस प्रकार की आधि राजा अथवा दैव के द्वारा नष्ट हो जाय या उसे चोर चुरा ले तो उसे वापस नहीं करना पड़ता है; किन्तु यदि ऋण देनेवाला ऋणकर्त्ता से (ऋण देने के लिए) इस प्रकार की आधि को माँगकर उसे वापस करते समय ऋणदाता को परेशान करे तो वह आधि के समान दण्ड का भागी हुआ करता है। यदि कोई ऋणदाता इस प्रकार की आधि से जान-बूझकर कोई लाभ प्राप्त करे तो वह या उसके उत्तराधिकारी दण्ड के भागी होते हैं। यही नियम न्यास अथवा निक्षेप के विषय में भी है ।।२५-२७।।

श्री अग्निमहापुराण में व्यवहारकथन नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५४।।

---

१ क. °लु। मेध्यश्चा°। २ क. °दुत्पन्ने द्वि°। ३ क. ख. ङ. छ. °स्य यद°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिव्यप्रमाणकथनम्

अग्निरुवाच

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः । धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ।।१।।
पञ्चयज्ञक्रियायुक्ताः साक्षिणः पञ्च वा भयः । यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ।।२।।
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः[1] । रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ।।३।।
[2]पतिताप्तार्थसंबन्धिसहायरिपुतस्कराः । असाक्षिणः सर्वसाक्ष्ये[3] चौर्यपारुष्यसाहसे ।।४।।
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् । अब्रुवन्हि नरः साक्ष्यमृणं स दशबन्धकम् ।।५।।
राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात्षट्चत्वारिंशकेऽहनि । न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ।।६।।
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि । साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् ।।७।।
ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा । अग्निदानां च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ।।८।।
तान्सर्वान्समवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् । सुकृतं यत्त्वया किंचिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् ।।९।।

अध्याय २५५

दिव्यप्रमाणकथन

अग्निदेव बोले–किसी अभियोग में पाँच या तीन व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। उन साक्षियों को तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, धर्मात्मा, सीधा-सादा, पुत्रवान्, धनी और पंच महायज्ञों का करनेवाला होना चाहिए। साक्षियों को (वादी तथा प्रतिवादी को) समान जाति या वर्ण का होना चाहिए अथवा सभी जातियों के (वादी-प्रतिवादी) में सभी जाति के साक्षी रह सकते हैं। स्त्री, वृद्ध, बालक, धूर्त, प्रमत्त, उन्मत्त, व्यभिचारी, नट, पाखंडी, छली, अंगहीन, पतित, पक्षपाती, लोभी तथा चोर–ये लोग साक्षी नहीं हो सकते हैं, किन्तु चोरी तथा साहस के अपराधों में (ये) सभी लोग साक्षी हो सकते हैं। दोनों पक्षों की सहमति से एक धार्मिक व्यक्ति को ही साक्षी बनाया जा सकता है। साक्ष्य के लिए प्रस्तुत किया गया व्यक्ति यदि साक्षी बनने से इन्कार करे तो उससे छियालीस दिनों के अन्दर ही ऋण का वह पूरा धन लेना चाहिए, जिस पर ब्याज की दर दस प्रतिशत (तक) हो ।।१-५$\frac{1}{2}$।। जो दुष्ट व्यक्ति (वास्तविकता को) जानते हुए भी साक्षी नहीं देता है वह उतने ही दण्ड और पाप का भागी होता है जितने का झूठी गवाही देनेवाला। वादी और प्रतिवादी के सम्मुख ही साक्षी को यह कहकर सुना देना चाहिए कि यदि तुम झूठी गवाही दोगे तो तुम्हें उन्हीं लोकों में जाना पड़ेगा जहाँ पातकियों, महापातकियों, आग लगानेवालों, स्त्रीहत्या तथा बालहत्या करनेवालों को जाना पड़ता है। यदि तुम झूठ बोलोगे तो तुम्हारे वे सभी पुण्य नष्ट हो जायँगे जिन्हें तुमने सैकड़ों

---

१ क. ङ. °काः। लाक्षाव°। २ ग. °प्ताश्च सं°। छ. °प्तान्नसं°। ३ छ. सर्वसाक्षी। ४ क. ङ. °क्ष्ये धैर्यपा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा। द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा ।।१०।।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः। यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत् ।।११।।
अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः। उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः ।।१२।।
द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः। पृथक्पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ।।१३।।
विवादाद्द्विगुणं [1]दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः। यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः ।।१४।।
स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत्। वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत् ।।१५।।
यः कश्चिदर्थोऽभिमतः स्वरुच्या तु परस्परम्। लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम् ।।१६।।
समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः। सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ।।१७।।
समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत्। मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरि लेखितम् ।।१८।।
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम्। अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः ।।१९।।
अलिपिज्ञ ऋणी यः स्याल्लेखयेत्स्वमतं तु सः। साक्षी वा साक्षिणाऽन्येन सर्वसाक्षिसमीपतः ।।२०।।

जन्म-जन्मान्तरों में संचित किया है। साक्षियों की बातों में दुविधा होने पर अधिक साक्षियों की बात को मानना चाहिए ।।६-१०।। यदि दोनों पक्षों की ओर साक्षियों की संख्या समान हो तो उनमें उन लोगों की बात माननी चाहिए जो अधिक गुणवान् हों। जहाँ पर गुणवान् साक्षियों में भी दुविधा हो वहाँ पर जो अधिक गुणवान् हो उसकी बात माननी चाहिए। विजय उसी की होती है जिसके (द्वारा प्रस्तुत) साक्षी सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले हुआ करते हैं। जिसके साक्षी असत्य भाषण करते हैं, उनकी पराजय निश्चित ही होती है। साक्षियों की गवाही हो चुकने पर विशिष्ट विद्वान् लोग या पूर्व साक्षियों की अपेक्षा दूने अन्य लोग (पूर्व साक्षियों से) भिन्न बात कहें तो पूर्व साक्षियों को झूठी गवाही देनेवाला समझना चाहिए और उन झूठी गवाही देनेवालों को पृथक्-पृथक् दण्ड देना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई साक्षी विवाद करे तो दुगुना दण्ड देना चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों में यदि यही कार्य कोई ब्राह्मण जातीय साक्षी करे तो उसे देश से निष्कासित कर देना चाहिए। जो व्यक्ति गवाही देने के लिए बुलाये जाने पर छिप जाता है, वह आठ गुने दण्ड का भागी होता है, किन्तु ऐसा करनेवाला ब्राह्मण तो देश से बहिष्कृत ही कर दिया जाता है। (यदि सत्य बोलने से) ब्राह्मणों के वध की शंका हो तो झूठी गवाही भी दी जा सकती है ।।११-१५।। (उत्तमर्ण और अधमर्ण में) परस्पर जिस (हिरण्यादि) अर्थ (लेन-देन का) निश्चय स्वेच्छा से किया जाय उसे साक्षियों के सामने लेखबद्ध कर लेना चाहिए। लेख में उत्तमर्ण का नाम पहले आना चाहिए। उस (लेख में) वर्ष, मास, पक्ष, दिन, (दोनों के) नाम, जाति, गोत्र, सतीर्थ तथा पिता के नाम आदि का उल्लेख होना चाहिए। इस प्रकार (लेख) पूर्ण हो जाने पर ऋणी को अपने हाथ से यह लिखना चाहिए कि 'ऊपर जो कुछ लिखाया गया है वह मेरा मत है, जो मैं अमुक का पुत्र हूँ।' साक्षी भी अपने हाथ से अपने-अपने पिता के नाम के सहित इस प्रकार उल्लेख करे कि 'इसमें अमुक नामवाला मैं साक्षी हूँ।' साक्षियों की संख्या समान होनी चाहिए ।।१६-१९।। यदि ऋण लेनेवाला लिखना न जानता हो तो उसे अपना मत (किसी दूसरे से) लिखवा देना चाहिए। (ऋणी अथवा

---

१ क. ख. ङ. द्रव्यं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना । लिखितं ह्यमुकेनाति[1] लेखकोऽन्ते ततो लिखेत्[2] ।।२१।।
विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितं च यत् । तत्प्रमाणं स्मृतं सर्वं [3]बलोपधिकृतादृते ।।२२।।
ऋणं लेख्यकृतं देयं[4] पुरुषैस्त्रिभिरेव तु । आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते ।।२३।।
देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा । भिन्ने छिन्ने तथा दग्धे लेखमन्यत्तु कारयेत् ।।२४।।
संदिग्धार्थविशुद्ध्यर्थं स्वहस्तलिखितं तु यत् । युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबन्धागमहेतुभिः ।।२५।।
लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत्प्रविष्टमधमर्णिनः । धनी चोपगतं दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ।।२६।।
दत्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्धयै चान्यत्तु कारयेत् । साक्षिमच्च भवेद्यत्तु तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ।।२७।।
तुलाग्न्यापो विषं कोषो दिव्यानीह विशुद्धये । महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ।।२८।।
रुच्या वाऽन्यतरः कुर्यादपरो वर्तयेच्छिरः । विनाऽपि शीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ।।२९।।
नाऽऽसहस्राद्धरेत्फालं न तुलां न विषं तथा । नृपार्थेष्वभियोगेषु वहेयुः शुचयः सदा ।।३०।।
सहस्रार्थे तुलादीनि कोषमल्पेऽपि दापयेत् । शतार्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग्भवेत् ।।३१।।

साक्षी के लिए) लिखनेवाले को (लेख के) अन्त में यह लिख देना चाहिए कि (उत्तमर्ण और अधमर्ण) दोनों की प्रार्थना से अमुक का पुत्र अमुक नामवाले मैंने इसे लिखा है। साक्षियों के बिना भी वह लेख प्रमाण माना जायगा जो अपने हाथ से लिखा गया हो किन्तु जिसमें बल तथा छल आदि का प्रयोग न किया गया हो। लेख के आधार पर लिया गया ऋण भी (ऋणी की) तीन पीढ़ियों के द्वारा ही देय हुआ करता है किन्तु जब तक ऋण समाप्त नहीं हो जाता है तब तक (उत्तमर्ण के द्वारा) आधि का भोग किया जाता है ।।२०-२३।। यदि लेख कहीं दूसरे स्थान पर हो, अस्पष्ट हो, नष्ट हो गया हो, मिट गया हो, चोरी चला गया हो, छिन्न-भिन्न हो गया हो या जल गया हो तो उसके स्थान पर दूसरा लेख लिखवाना चाहिए। किसी लेख के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर युक्ति, प्राप्ति, क्रिया, चिह्न, सम्बन्ध और आगम के द्वारा सन्देह का निराकरण किया जा सकता है। जितने-जितने ऋण का भुगतान होता रहे उसका उल्लेख ऋणी के द्वारा लेख के पृष्ठ भाग पर होना चाहिए या उत्तमर्ण को ही उस (लेख) के पीछे अपने हाथ से प्राप्त धन का उल्लेख करते रहना चाहिए। ऋण चुका देने पर लेख को फाड़ देना चाहिए या प्रमाण के लिए (धनिक) से दूसरा लेख लिखवा लेना चाहिए। साक्षियों के सम्मुख लिया गया ऋण साक्षियों के सम्मुख ही चुकाना चाहिए ।।२४-२७।। (किसी अभियोग की) परिशुद्धि के लिए जो दिव्य प्रमाण माने गये हैं, वे हैं- तुला, अग्नि, जल, विष और कोष। किन्तु इनका प्रयोग तभी होता है जब कोई गम्भीर अभियोग हो, और अभियोक्ता चोटी पर (अर्थात् चतुर्थ पाद में पहुँच गया हो)। (वादी और प्रतिवादी में) कोई एक अपनी इच्छा से दिव्य प्रमाण का प्रयोग कर सकता है और दूसरे को इसका परिणाम स्वीकार करना होगा। राजद्रोह तथा (अन्य) पातक में (वादी और प्रतिवादी में) एक के स्वीकार न करने पर भी दूसरा इसका प्रयोग कर सकता है। एक हजार (पण) से कम के अभियोग में हल, तुला तथा विष के दिव्य प्रमाणों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। किन्तु राजा से सम्बद्ध अभियोगों में सदैव पवित्र होकर दिव्य प्रमाणों का प्रयोग करना चाहिए। एक सहस्र (पण) के लिए तुला इत्यादि का तथा उससे कम में अर्थात् पचास (पण) तक कोष के प्रमाण का प्रयोग करना चाहिए। इन प्रमाणों की अशुद्धता पर इनका प्रयोग करनेवाला दण्ड का भागी होता है ।।२८-३१।। वस्त्रों से

---

१ क. ख. ङ. लेखितार्थांस्ततो। छ. लेखकोऽर्थांस्ततो। २ क. नयेत्। ३ छ. °लोपाधि°। ४ ख. ज्ञेयं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सचेलस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम् । कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ।।३२।।
तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् । अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्तविषस्य वा[1] ।।३३।।
तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः[2] । प्रतिमानसमीभूतो रेखां[3] कृत्वाऽवतारितः[4] ।।३४।।
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च, द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये, [5]धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।।३५।।
त्वं तुले सत्यधामाऽसि पुरा देवैर्विनिर्मिता । सत्यं वदस्व कल्याणि संशयान्मा विमोचय ।।३६।।
यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय । शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ।।३७।।
करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् । सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत् ।।३८।।
त्वमेव सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक । साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम ।।३९।।
तस्येत्युक्तवतो लौहं पञ्चाशत्पलिकं [6]समम् । अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ।।४०।।
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ।।४१।।

युक्त, स्नान किये हुए तथा उपवास करनेवाले व्यक्ति को सूर्योदय के समय बुलाकर राजा तथा ब्राह्मण के सामने ही सभी दिव्य प्रमाणों का प्रयोग करवाना चाहिए। स्त्री, बालक, वृद्ध, अन्धे, लँगड़े, ब्राह्मण तथा रोगी के लिए तुला का, क्षत्रिय के लिए अग्नि का, वैश्य के लिए जल का तथा शूद्र के लिए सात सौ की तौल के विष का दिव्य प्रमाण होता है। तुला धारण में कुशल व्यक्तियों के द्वारा अभियुक्त को तुला पर बिठलाकर, समान भार से उसे तौलकर, वहीं पर एक रेखा बनाकर उसे तुला से उतार लिया जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, द्युलोक, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ और धर्म–ये सब मनुष्य के चरित्र को जानते हैं ।।३२-३५।। तदनन्तर तुला को इस प्रकार अभिमन्त्रित करना चाहिए–'अयि तुले! देवताओं ने प्राचीन काल में तुम्हारा निर्माण किया था, तुम सत्य के निवास-स्थान हो। अयि कल्याणि! सत्य बोलो और मुझे संशय से छुड़ाओ। अयि मातः! यदि मैं पापकर्म करनेवाला हूँ तो तुम मुझे नीचे ले जाओ किन्तु यदि मैं शुद्ध हूँ तो तुम मुझे ऊपर ले चलो।' जिस व्यक्ति ने अपने हाथों से धान्यों को मला हो उसके हाथों को चिह्नित करके उनमें पीपल के सात पत्तों को रखकर उतने ही धागों से तुम्हें लपेट देना चाहिए ।।३६-३८।। अये पावक! आप सभी प्राणियों के अन्तःकरण में विचरण किया करते हैं, इसलिए मेरे हाथ में रहकर साक्षी के समान मेरे पाप-पुण्यों को बतला दीजिये–इस प्रकार अग्नि को अभिमन्त्रित करके दोनों हाथों में पचास पलिक भार के तथा अग्नि के समान लाल लोहे के गोले को रख लेना चाहिए। दिव्य प्रमाण के प्रयोग करनेवाले को इस गोले को लेकर धीरे-धीरे सात मण्डल तक जाना चाहिए। प्रत्येक मण्डल सोलह अंगुल (व्यास) का होता है तथा दो मण्डलों के बीच में उतना ही (सोलह अंगुल) का अन्तर रहता है। तदनन्तर अग्नि को छोड़कर (हाथों से) धान्य मलकर यदि वह व्यक्ति जलता नहीं है तो वह (ऋण आदि से) शुद्धि

---

१ क. च.। २ च. °लास्थितः। ३ क. ङ. लीला°। ख. ग. लेखं। ४ च. °त्वा विभावितः। ५ क. धर्मो हि जा°। ६ क. तथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुक्त्वाऽग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् । अन्तरा पतिते पिण्डे संदेहे वा पुनर्हरेत् ।।४२।।
पवित्राणां पवित्र त्वं शोध्यं शोधय पावन । सत्येन माऽभिरक्षस्व [1]वरुणेत्यभिशस्तकम् ।।४३।।
नाभिदध्नोदकस्थस्य [2]गृहीत्वोरू जलं विशेत् । समकालमिषुं मुक्तमानीयाद्यो [3]जवान्नरः ।।४४।।
यदि तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् । त्वं विष ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मे व्यवस्थितम् ।।४५।।
त्रायस्वास्मादमीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम् । एवमुक्त्वा विषं साङ्गं[4] भक्षयेद्धिमशैलजम् ।।४६।।
यस्य वेगैर्विना जीर्णं शुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् । देवानुग्रान्समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत् ।।४७।।
[5]संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्तु प्रसृतित्रयम् । आ चतुर्दशमादह्नो[6] यस्य नो राजदैविकम् ।।४८।।
व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्याद ([7]संशयम् । सत्यवाहनशस्त्राणि गोबीजकनकानि च ।।४९।।
देवतागुरुपादाश्च इष्टापूर्तकृतानि च । इत्येते सुकराः प्रोक्ताः शपथाः स्वल्प) संशये ।।५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिव्यप्रमाणकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५५।।

प्राप्त कर लेता है। यदि लोहे का गोला बीच में ही गिर जाय या कुछ सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उसे (लौह पिण्ड को) फिर से (हाथ में रखकर) ले जाना पड़ता है ।।३९-४२।। अये पावन! आप पवित्रों में पवित्र हैं, मैं शुद्धि योग्य हूँ, अतः आप मुझे शुद्ध कर दीजिये। अये वरुण! आप सत्य से मेरी रक्षा कीजिये–इस प्रकार जिस जल को अभिमन्त्रित किया जा चुका है उस जल में प्रवेश करना चाहिए तथा वहाँ पर नाभि तक गहरे जल में खड़े हुए व्यक्ति की दोनों जङ्घाओं को पकड़ लेना चाहिए। जो व्यक्ति उसी समय छोड़े गये को वेग से जाकर ले आता है और दिव्य प्रमाण का प्रयोग करनेवाला जल में निमग्न होते हुए ही उसे देख लेता है तो वह (ऋण आदि से) शुद्धि प्राप्ति कर लेता है। अये विष! आप ब्रह्म के पुत्र हैं तथा सत्य और धर्म में व्यवस्थित हैं ।।४३-४५।। "आप इस अभियोग से हमारी रक्षा कीजिये। (मेरे) सत्य के कारण आप मेरे लिये अमृत बन जाइये।" ऐसा कहकर हिमालय पर उत्पन्न होनेवाले साङ्ग नामक विष का भक्षण कर लेना चाहिए। जो व्यक्ति बिना विष के फैलाव के उसे पचा ले उसे (ऋण आदि से) शुद्ध समझना चाहिए। (दुर्गा और आदित्य आदि) उग्र देवताओं को पहले जल से स्नान करवाना चाहिए, तत्पश्चात् उस जल को अभिमन्त्रित करके उससे तीन अञ्जलि जल पीना चाहिए। यह जल पीने के चौदह दिनों तक जिसके ऊपर राजा अथवा देवताओं के द्वारा उत्पन्न विपत्ति नहीं आ पड़ती है तो उसे निश्चय ही (ऋण आदि से) शुद्ध माना जाता है। (किसी अपराध का) थोड़ा-सा संशय उत्पन्न होने पर उस संदिग्ध व्यक्ति से शपथ लेकर सत्य कहलाना चाहिए अथवा अपनी शुद्धता को सिद्ध करने के लिए किसी सवारीवाले पशु, गाय, शस्त्र, बीज, स्वर्ण, देवता तथा गुरु के चरण और (मन्दिर तथा तालाब आदि) इष्टापूर्तिकर्मों का स्पर्श करवाना चाहिए ।।४६-५०।।

श्री अग्निमहापुराण में दिव्यप्रमाण कथन नामक दो सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५५।।

---

१ ख. ग. °भिजाप्यक°। २ क. ख. ग. °त्वोरुज°। ३ क. ङ. च. छ. जवीनरः। ४ क. ङ. छ. शार्ङ्गं। ५ क. संस्त्राव्य। ६ क. ङ. च. °शकाद°। ७ संशयम्...स्वल्प च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दायविभागकथनम्

अग्निरुवाच

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्। ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ।।१।।
यदि दद्यात्समानंशान्कार्याः पत्न्यः समांशिकाः। न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ।।२।।
शक्तस्यानीहमानस्य किंचिद्दत्त्वा पृथक् क्रिया। न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यश्च पितृतः कृतः[1] ।।३।।
विभजेयुः सुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं समम्। मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽर्पयेत् ।।४।।
पितृद्रव्यविनाशेन यदन्यत्स्वयमर्जयेत्। मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत् ।।५।।
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः। अनेकपितृकार्याणां[2] पितृतोभागकल्पना ।।६।।
भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ।।७।।
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्। दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात् ।।८।।
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेच्च[3] यः। दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ।।९।।

अध्याय २५६

दायविभागकथन

अग्निदेव बोले–यदि (सम्पत्ति) का विभाजन पिता करे तो वह अपनी इच्छा से पुत्रों का विभाजन कर सकता है। वह यदि चाहे तो ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे अथवा सबको समान अंश ही दे। यदि पुत्रों को समान अंश दिया जाय तो उन पत्नियों को भी समान भाग देना चाहिए, जिन्हें अपने पति अथवा श्वशुर को स्त्रीधन प्राप्त न हुआ हो। शक्तिशाली (धनोपार्जन में समर्थ) तथा (पितृधन की) इच्छा न रखनेवाले पुत्र को थोड़ा-बहुत देकर ही विभाजन हो सकता है। पिता के द्वारा (पुत्रों को) दिया गया न्यूनाधिक अंश भी धर्मसम्मत हुआ करता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर पुत्रों को उसकी सम्पत्ति तथा ऋण दोनों को समान रूप से विभाजित कर लेना चाहिए। माता की सम्पत्ति से ऋण को निकालकर शेष धन पुत्रियाँ प्राप्त कर लेती हैं और उनके अभाव में (पुत्रादि को) दे दिया जाता है ।।१-४।। पितृधन के व्यय किये बिना ही जो धन स्वयं उपार्जित किया जाता है, मित्रों से प्राप्त होता है या विवाह में प्राप्त होता है उसमें दायादों का भाग नहीं होता है। जो धन सामान्य धन की लागत से अर्जित किया जाता है उसमें सबका समान अंश होता है। अनेक पिताओं की सन्तान में (उन) पिताओं (की सम्पत्ति) के अनुसार ही सम्पत्ति का विभाजन होता है। पितामह से प्राप्त भूमि निबन्ध और (सोना, चाँदी आदि) द्रव्य में पिता और पुत्र दोनों का समान अधिकार होता है। पुत्रों में विभाजन हो जाने के बाद सवर्ण पत्नी से उत्पन्न होनेवाला पुत्र भी विभाग का अधिकारी होता है। यह विभाग उसी धन से होता है जो आय-व्यय की शुद्धि के अनन्तर शेष रह जाता है। परम्परा से प्राप्त किन्तु (अन्य लोगों के द्वारा) अपहृत जो धन किसी पुत्र के द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया जाता है तथा जो धन उसे अपनी विद्या के कारण प्राप्त होता है, उसे दायादों को नहीं देना होता है ।।५-९।। माता-पिता के द्वारा जो धन जिसे दे दिया जाता

---

१ क. ङ. च. स्मृतः। २ ख. ग. छ. °काणां तु पि°। ३ क. ङ. °रेत्तु यः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत् । पितुरूर्ध्वं विभजतां माताऽप्यंशं समं हरेत् ।।१०।।
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । [1]भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांऽशं तु तुरीयकं ।।११।।
चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः । क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः ।।१२।।
[2]अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्ते यत्तु दृश्यते । तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः ।।१३।।
अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसावृक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ।।१४।।
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ।।१५।।
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो [3]मतः ।।१६।।
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्मातापिता वा[4] यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ।।१७।।
क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयं कृतः । दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे [5]विन्नः सहोढजः ।।१८।।
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः । पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ।।१९।।
सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः । जातोऽपि दास्यां शूद्रस्य कामतोंऽशहरो भवेत् ।।२०।।

है, वह धन उसी का होता है, किन्तु पिता की मृत्यु के बाद विभाजन होने पर माता भी समान अंश प्राप्त कर लेती है। (पिता के जीवनकाल में) जिन पुत्रों का (यज्ञोपवीत आदि) संस्कार नहीं हो सका हो उनका संस्कार उन पुत्रों के द्वारा किया जाना चाहिए, जिनका संस्कार हो चुका हो। बहनों (के विवाह आदि) का संस्कार भाइयों को अपना-अपना चतुर्थांश देकर करना चाहिए। ब्राह्मणों (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि स्त्रियों) से उत्पन्न (ब्राह्मण आदि) पुत्र अपने-अपने वर्ण के अनुसार क्रमशः चार, तीन, दो, एक भाग प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार क्षत्रिय के पुत्र वर्ण के अनुसार क्रमशः तीन, दो और एक भाग प्राप्त करते हैं तथा वैश्य के पुत्र वर्णक्रम से दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। विभाजन के समय किसी पुत्र के द्वारा जो धन चुरा लिया गया हो, किन्तु बाद में जिसका पता चल गया हो वह धन भी सभी पुत्रों में समान रूप से विभाजित कर दिया जाता है-यह नियम है ।।१०-१३।। पुत्रहीन व्यक्ति के द्वारा नियोग (प्रथा) से अन्य की स्त्री में उत्पन्न पुत्र दोनों (व्यक्तियों) की सम्पत्ति का अधिकारी होता है तथा दोनों का पिण्डदान भी कर सकता है। धर्मपत्नी से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे औरस पुत्र कहते हैं। कन्या का पुत्र (दौहित्र) भी उसी (औरस) के तुल्य है। सगोत्री या परगोत्री द्वारा दूसरे की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे 'क्षेत्रज' कहते हैं। घर में प्रच्छन्न रूप से उत्पन्न होनेवाला पुत्र 'गूढज' कहलाता है। अक्षतयोनि (अविवाहिता) कन्या से उत्पन्न होनेवाले पुत्र को कानीन कहते हैं। वह अपने मातामह का पुत्र माना जाता है। छतयोनि (विवाहिता) कन्या से उत्पन्न होनेवाले पुत्र को पौनर्भव कहते हैं। माता-पिता के द्वारा किसी दूसरे को दे दिया गया पुत्र दत्तक कहलाता है ।।१४-१७।। माता-पिता के द्वारा खरीदा हुआ पुत्र विक्रीत कहलाता है। स्वयं (किसी प्रकार से) प्राप्त पुत्र कृत्रिम कहलाता है। जो पुत्र स्वयं अपने-आपको दे देता है वह 'स्वयं दत्त' होता है। अज्ञातगर्भा स्त्री से विवाह करने के उपरान्त उसके गर्भ में उत्पन्न होनेवाला पुत्र सहोढज कहलाता है, अपने माता-पिता के द्वारा परित्यक्त होकर जो पुत्र किसी अन्य के द्वारा पुत्ररूप में स्वीकार कर लिया जाता है, उसे 'अपविद्ध' कहते हैं। इन पुत्रों में पूर्व के अभाव में ही उसके बाद में आनेवाला पिण्डदान करने तथा सम्पत्ति का अधिकारी होता है। यह विधान सजातीय पुत्रों के सम्बन्ध में ही कहा गया है। किसी दासी से उत्पन्न होनेवाला शूद्र का पुत्र भी उसकी इच्छानुसार (सम्पत्ति में) भाग का अधिकारी होता है ।।१८-२०।। पिता के मर जाने पर सब भाइयों

---

१ क. ङ. गिन्याश्च। २ ख. ग. °पकृतं। ३ ख. यतः। ४ क. ङ. वाऽपि स। ५ छ. वित्तः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्धभागिकम् । अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितृणां सुतादृते ।।२१।।
पत्नीदुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ।।२२।।
एषामभावे [1]पूर्वः स्याद्धनभागुत्तरोत्तरः । स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।।२३।।
वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामृक्थभागिनः । क्रमेणाऽऽचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ।।२४।।
संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः । दद्याच्चापहरेच्चांशं जातस्य च मृतस्य च ।।२५।।
अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यधनं हरेत् । असंसृष्ट्यपि चाऽऽदद्यात्सोदर्यो नान्यमातृजः ।।२६।।
पतितस्तत्सुतः क्लीबः पङ्गुरुन्मत्तको जडः । अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्तव्यास्तु निरंशकाः ।।२७।।
औरसाः क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः । सुताश्चैषां प्रभर्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृताः ।।२८।।
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्तव्या साधुवृत्तयः । निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ।।२९।।
पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् । आधिवेदनिकं चैव स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ।।३०।।
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च । अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः ।।३१।।

को दासी पुत्र को भी अपने अंश का आधा भाग देना चाहिए। जिस दासी पुत्र का कोई भाई न हो तथा उसके पिता का दौहित्र भी न हो वह अपने पिता के सम्पूर्ण धन का अधिकारी होता है। सभी वर्णों में पुत्रहीन मृत्यु को प्राप्त होनेवाले पिता की सम्पत्ति के विभाजन का क्रम यह है–पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भतीजा, सगोत्रज, बन्धु, शिष्य और सतीर्थ्य। इसमें पहले के अभाव में ही दूसरा धन का अधिकारी होता है। सभी वर्णों में पुत्रहीन के मरने पर यही विधान है ।।२१-२३।। वानप्रस्थ, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी की सम्पत्ति के अधिकारी क्रमशः आचार्य, सत्शिष्य, धर्मभ्राता और सहपाठी होते हैं। संसृष्टि (दायादी बँटवारा हो जाने के बाद मित्रतावश पुनः अपने-अपने धन में परस्पर सम्पर्क स्थापित करनेवाले भाई) का उत्तराधिकारी संसृष्टि और सहोदर भाई का उत्तराधिकारी सहोदर होता है। इसी प्रकार (विभाजन के बाद उत्पन्न होनेवाले) संसृष्टी या सहोदर का अपना अंश देना पड़ता है। सहोदर संसृष्टी असहोदर संसृष्टी के धन का अधिकारी नहीं हो सकता है। सोदर यदि असंसृष्टी भी हो तो भी सम्पत्ति पाने का अधिकारी होता है किन्तु अन्य माता से उत्पन्न होनेवाला असंसृष्टी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है। पतित, उसका पुत्र, नपुंसक, पशु, उन्मत्त, जड़, अन्ध, असाध्य रोगी ऐसे व्यक्ति दाय के अधिकारी तो नहीं होते हैं, किन्तु उन्हें भरण-पोषण का अधिकार होता है। इन (पतित आदि) के औरस तथा क्षेत्रज पुत्रों में यदि (उपर्युक्त) दोष न हों तो वे भी दाय के अधिकारी होते हैं और उनकी पुत्रियों का तब तक भरण-पोषण करना चाहिए जब तक उनका विवाह न हो जाय। ऐसे (सम्पत्ति के अधिकारी व्यक्तियों) की पुत्रहीन और साध्वी पत्नियाँ भरण-पोषण की अधिकारिणी होती हैं। किन्तु जो पत्नियाँ व्यभिचारिणी तथा (अपने पतियों के) प्रतिकूल हों उन्हें निष्कासित कर देना चाहिए। पिता, पति तथा भाई के द्वारा दिया गया, विवाह के समय प्राप्त या दूसरी स्त्री के साथ पति का विवाह होने पर जो प्राप्त होता है, उसे स्त्रीधन कहते हैं ।।२४-३०।। बन्धुओं के द्वारा दिया तथा विवाह के समय शुल्क रूप में प्राप्त स्त्रीधन उस समय उस (स्त्री) के बान्धवों को प्राप्त हो जाता है यदि स्त्री सन्तानरहित ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। ब्राह्म आदि चार विवाहों से विवाहित तथा सन्तानरहित मरनेवाली स्त्री का धन उसके पति को प्राप्त होता है। यदि वह पुत्रीवती हो तो

---

१ क. ङ. छ. पूर्वस्य धन°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अप्रजा (ज) स्त्रीधनं [1]भर्तुर्ब्राह्मयादिषु चतुर्ष्वपि । दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ।।३२।।
दत्त्वा कन्यां हरन्दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम् । मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ।।३३।।
दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके । गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ।।३४।।
अधिवित्तस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्धं प्रकीर्तितम् ।।३५।।
विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः । विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दायविभागकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५६।।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सीमाविवादादिनिर्णयः

अग्निरुवाच

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः [2]स्थविरादयः । गोपाः सीमाकर्षिणो ये सर्वे च वनगोचराः[3] ।।१।।
प्रणेयुरेते सीमानं [4]स्थूलाङ्गारतुषद्रुमैः । सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् ।।२।।
सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टादशापि वा । रक्तस्त्रग्वसनाः समां नयेयुः क्षितिचारिणः[5] ।।३।।

उसका धन पुत्रियों को प्राप्त होगा, किन्तु अन्य प्रकार के विवाहों से विवाहित स्त्री का धन (उसके सन्तानरहित मर जाने पर) उसके माता-पिता को प्राप्त हो जाता है। कन्या को देकर उसे पुनः वापस लेनेवाला दण्ड का भागी तो होता ही है, उसे ब्याजसहित सम्पूर्ण व्यय किया हुआ धन भी देना पड़ता है। यदि (सगाई हो जाने के बाद) कन्या की मृत्यु हो जाय तो दोनों ओर के व्यय किये हुए धन को काटकर शेष धन (जो कि कन्या की सगाई के समय दिया गया हो) वापस ले लेना चाहिए ।।३१-३३।। दुर्भिक्ष में, धर्मकृत्य में, व्याधि में और बन्धन में पड़ जाने पर लिया गया स्त्रीधन पति के द्वारा स्त्री को वापस नहीं करना पड़ता है। पति के द्वारा दूसरी स्त्री से विवाह कर लेने से जो स्त्री अपदस्थ हो जाती है और जिसे स्त्रीधन प्राप्त नहीं होता है, उसे (दूसरी स्त्री से विवाह करने में व्यय किये गये धन के) समान धन देना चाहिए। यदि उसे स्त्रीधन मिल चुका हो तो (दूसरी स्त्री से विवाह करने में व्यय किये गये धन का) आधा धन देना चाहिए। किसी के द्वारा विभाजन छिपाने पर जान-पहचानवाले मनुष्यों, बन्धुओं, लेखों तथा विभाजित किये हुए घरों और खेतों से विभाजन को प्रमाणित किया जा सकता है ।।३४-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में दायविभाग कथन नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५६।।

अध्याय २५७

सीमाविवादादिनिर्णय

अग्निदेव बोले-खेत की सीमा के लिए विवाद उठ खड़ा होने पर सामन्तगण, वृद्ध गोप और वनेचर मोटे-मोटे कोयले, भूसा, वृक्ष, सेतु (पुल), वल्मीक, ढाल प्रदेश, हड्डी तथा पत्थरों के ढेर आदि से सीमा का निर्णय करें। चार या आठ या दस सामन्त या गाँव के लोग रक्त, वस्त्र और माला पहनकर सीमा का निर्णय करने के लिए

---

१ क. °र्तुब्रह्मादि°। ख. ग. °तुर्ब्राह्मादि°। २ ख. ग. छ. °रा गणाः। गो°। ३ छ. °राः। नयेयु°। ४ क. ङ. छ. नं स्थला°। ५ ख. ग. छ. °तिधारि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनृते तु पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्। अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तकः ।।४।।
आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु । एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहेषु च ।।५।।
मर्यादायाः प्रभे (वा) देषु क्षेत्रस्य हरणे तथा। मर्यादायाश्च दण्ड्याः स्युरधमोत्तममध्यमाः ।।६।।
न निषेध्योऽप्लबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः। परभूमिं हरन्कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ।।७।।
स्वामिने योऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रकल्पयेत्। ([1]उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः[2] ।।८।।
फालाहतमपि क्षेत्रं यो न कुर्यान्न कारयेत्। स प्रदाप्योऽकृष्टफलं क्षेत्रमन्येन कारयेत्) ।।९।।
[3]माषानष्टौ तु महिषी सस्यघातस्य कारिणी। दण्डनीया तदर्धं तु गौस्तदर्धमजाविकम् ।।१०।।
भक्षयित्वोपविष्टानां[4] द्विगुणो वसतां दमः। सममेषां [5]विधीयेत खरोष्ट्रं महीषीसमम् ।।११।।
[6]यावत्सस्यं विनष्टं तु तावत्क्षेत्री फलं लभेत्। पालस्ताड्योऽथ गोस्वामी पूर्वोक्तं दण्डमर्हति ।।१२।।
पथि ग्रामविवीतान्नेक्षेत्रे दोषो विद्यते। अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ।।१३।।

पैदल ही वहाँ जायँ। उस विवाद में मिथ्या झूठ बोलनेवाला राजा पैदल ही वहाँ जाय। उस विवाद में मिथ्या झूठ बोलनेवाला राजा द्वारा मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। यदि वहाँ कोई (सीमानिर्धारण के लिए) चिह्न न दिखायी दे तो राजा को अपनी इच्छानुसार सीमा का निर्धारण कर देना चाहिए ।।१-४।। उपवन, देवालय, गाँव, प्याऊ, उद्यान, गृह तथा वर्षा-जल प्रवाह आदि के सम्बन्ध में भी यही विधान है। सीमा को भंग करने पर, खेत का अपहरण करने पर तथा मर्यादा का अपहरण करने पर क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम साहस के दण्ड का अधिकारी होता है। किसी (व्यक्ति के लिए) थोड़ी-सी बाधा उत्पन्न करके (बहुतों के लिए) कल्याणकारी सेतु (के निर्माण का) निषेध नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार (भूमि को ग्रहण करनेवाले कुएँ के निर्माण को भी नहीं रोकना चाहिए क्योंकि) वह थोड़ा-सा स्थान लेकर अत्यधिक जल देनेवाला होता है। क्षेत्र स्वामी की अनुमति प्राप्त किये बिना (किसी दूसरे के) खेत में बाँध बाँधने पर उस बाँध की सहायता से उत्पन्न होनेवाले लाभ पर (क्षेत्र) स्वामी का अधिकार होता है और उसके अभाव में उसका लाभ राजा को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति हल चले हुए खेत में भी न स्वयं खेती करता है और न दूसरे से ही करवाता है, उससे खेत की उपज ही नहीं अपितु पूरा खेत ही जोतनेवाले को दिलवा देना चाहिए ।।५-९।। दूसरे की खेती को नष्ट करनेवाली भैंस के स्वामी को आठ मास का दण्ड देना चाहिए, गाय के स्वामी को चार तथा भेंड़-बकरे के स्वामी को दो मास का दण्ड देना चाहिए। खेत इत्यादि खाकर उसमें इन पशुओं के बैठ जाने पर (उसके स्वामी के ऊपर) दुगुना दण्ड किया जाता है। जहाँ पर घास तथा ईंधन संग्रह किया गया हो वहाँ पर भी (इन पशुओं के द्वारा हानि पहुँचाने पर) दण्ड समान हुआ करता है। गधे और ऊँट के द्वारा (खेत आदि को क्षति पहुँचाने पर) दण्ड भैंस के समान ही देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पशु के द्वारा जितनी फसल नष्ट हो क्षेत्र-स्वामी को उतना ही फल प्राप्त होना चाहिए, ग्वाले को पीटना चाहिए और गाय के स्वामी को उपर्युक्त दण्ड देना चाहिए। पशुओं के स्वामी की इच्छा के बिना यदि पशु मार्ग में, घास ईंधन के भांडार अथवा खेत में चले जायँ तो वह दोषी नहीं होता है, किन्तु पशु-स्वामी की इच्छा से ऐसा होने पर वह चोर के समान दण्ड का भागी होता है ।।१०-१३।।

---

१ उत्पन्ने…कारयेत् च. पुस्तके नास्ति। २ क. ख. ङ. °तेः। फला°। ३ छ. माषान°। ४ छ. नां यथोक्ताद्द्विगुणो द°। ५ छ. विवीतेऽपि° ख°। ६ क. ङ. °वत्संख्यं वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकाऽऽगन्तुका च गौः। पालो येषां तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ।।१४।।
यथार्पितान् पशून्गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा। प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ।।१५।।
पालदोषविनाशे तु पाले दण्डो विधीयते। अर्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ।।१६।।
[1]ग्रामेच्छया गोपचारो भूमिराजवशेन वा। द्विजस्तृणैधः पुष्पाणि [2]सर्वतः सर्वदाऽऽहरेत् ।।१७।।
धनुःशतं परीणाहो ग्रामक्षेत्रान्तरं भवेत्। द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतम् ।।१८।।
स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते। हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः ।।१९।।
नष्टापहृतमासाद्य [3]हर्तारं ग्राहयेन्नरम्। देशकालातिपत्तौ वा गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ।।२०।।
विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम्। क्रेता मूल्यं समाप्नोति तस्माद्यस्तत्र विक्रयी ।।२१।।
आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा। पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञस्तेनाप्यभाविते ।।२२।।
हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात्। अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षष्णवतिं पणान् ।।२३।।

साँड़ (देवता आदि के निमित्त) छोड़े हुए पशु, बच्चा देनेवाली, अपने यूथ से भटक जानेवाली, रक्षकविहीन तथा दैव और राजा के द्वारा पीड़ित किये गये पशुओं को छोड़ देना चाहिए। प्रातःकाल जिस दशा में पशु ग्वाले को दिये गये हों उन्हें उसी दशा में (पशु-स्वामी को) वापस कर देना चाहिए। सवेतन ग्वाले के प्रमाद से पशुओं के मर जाने या (अन्य प्रकार से) नष्ट हो जाने पर पशु-स्वामी को पशुओं का मूल्य दिलाना चाहिए। ग्वाले के (प्रमाद आदि) दोष से पशुओं के नष्ट होने पर ग्वाले के ऊपर साढ़े तेरह पणों का दण्ड लगता है और (पशुओं के) स्वामी को (पशुओं के मूल्य के बराबर) द्रव्य देना पड़ता है। गाँव (वालों की) इच्छा से या राजा की इच्छा से गोचारण के लिए भूमि का निर्धारण कर देना चाहिए ।।१४-१७।। ग्राम और क्षेत्र के बीच में सौ धनुष का अन्तर होना चाहिए, छोटे नगर और क्षेत्र के बीच दो सौ धनुष का अन्तर होना चाहिए और नगर तथा क्षेत्र के बीच में चार सौ धनुष का अन्तर होना चाहिए। किसी अन्य के द्वारा (जो वास्तव में सम्पत्ति का स्वामी नहीं है) बेची हुई सम्पत्ति को (धन-स्वामी) खरीदार से वापस ले सकता है, क्योंकि दोष उस खरीदार का होता है जो (ऐसी सम्पत्ति को) चुपचाप खरीद लेता है। दीन व्यक्ति से, चुपचाप बहुत कम मूल्य पर और कुसमय पर (किसी वस्तु को) खरीदनेवाला चोर (समझा जाता) है। खोयी अथवा चोरी गयी हुई वस्तु के खरीदार को चाहिए कि वह चुरानेवाले को पकड़वा दे। यदि देश और काल की बाधा के कारण ऐसा सम्भव न हो तो खरीदार को चाहिए कि वह (चोर से खरीदे हुए) इन धन को स्वयं ले जाकर (वास्तविक) धन-स्वामी को दे दे ।।१८-२०।। अनधिकृत रूप से बेचनेवाले का पता लग जाने पर अपराध की शुद्धि तब हो जाती है जब बेचनेवाले से (वास्तविक) धन-स्वामी को उसका धन प्रप्त हो जाय, राजा को दण्ड का धन प्राप्त हो जाय और खरीदनेवाले को (मूल्य रूप में दिया हुआ) उसका धन उपलब्ध हो जाय। खोयी हुई वस्तु के सम्बन्ध में (अधिकार को) उसके प्राप्ति-स्थान अथवा उपभोग के द्वारा सिद्ध करना चाहिए, अन्यथा उस वस्तु पर अधिकार सिद्ध करनेवाले व्यक्ति को राजा को (उसके मूल्य का) पञ्चमांश दण्ड रूप में देना पड़ता है। राजा को सूचित किये बिना ही जो व्यक्ति खोयी हुई अथवा चोरी गयी वस्तु को ले लेता

---

१ ख. ग्रासेच्छ°। २ छ. °तः स्ववदा°। ३ क. ङ. कर्तारं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शौल्विकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक्संवत्सरात्स्वामी लभते परतो नृपः ।।२४।।
पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे । महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ।।२५।।
स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते । नान्वये सति र्स्वस्वं देयं यच्चान्यसंश्रुतम् ।।२६।।
प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः । देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वा नापहरेत्पुनः ।।२७।।
दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्धमासिकम् । बीजायोवाह्यरत्नस्त्री दोह्यपुंसां प्रतीक्षणम् ।।२८।।
अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपलं रजते शते । अष्टौ त्रपुषि (णि)सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ।।२९।।
शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा । मध्ये पञ्चपला ज्ञेया सूक्ष्मे[1] तु त्रिपला मता ।।३०।।
कार्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः । न क्षयो न च वृद्धिस्तु कौशेये वल्कलेषु च ।।३१।।
देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम् । द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् ।।३२।।
बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते । स्वामिप्राणप्रदो [2]भक्तत्यागान्निष्क्रयणादपि ।।३३।।

है वह छियानबे पण के दण्ड का भागी होता है। खोयी हुई या चोरी गयी जो वस्तु शुल्काधिकारियों अथवा स्थानरक्षकों को प्राप्त हो जाती है उसे एक वर्ष तक उसका स्वामी ले सकता है, किन्तु तदनन्तर उसे राजा ले लेता है ।।२१-२४।। एक खुरवाले (अश्व आदि) के खोकर पुनः मिलने पर उसके स्वामी द्वारा (राजा को उसकी रक्षा के लिए) चार पण देने पड़ते हैं, मनुष्य के लिए पाँच, भैंस, ऊँट और गाय के लिए दो-दो तथा बकरे और भेंड़ों के लिए चौथाई-चौथाई पण देना पड़ता है। किसी को उतना ही धन देना चाहिए, जिससे अपने कुटुम्ब (के हित) का विरोध न हो, किन्तु स्त्री-पुत्र का दान नहीं करना चाहिए। जो परिवारहीन हो वह सब-कुछ दे सकता है, किन्तु किसी से प्रतिज्ञा किया हुआ धन अवश्य देना चाहिए। दी हुई वस्तु, विशेषतया स्थावर वस्तु को सबके सामने ही स्वीकार करना चाहिए, जिसे देने की प्रतिज्ञा की जाय उसे (अवश्य) देना चाहिए और देकर (पुनः उस वस्तु को) वापस नहीं लेना चाहिए ।।२५-२७।। बीज, धातु, सवारी, रत्न, स्त्री, दूध देनेवाले पशु और मनुष्य (के खरीदते समय उन) के परीक्षण के लिए क्रमशः दस दिन, एक दिन, पाँच दिन, सात दिन, एक मास, तीन दिन और पन्द्रह दिन का समय रहता है। अग्नि में (डालने से) सोना नहीं घटता है, सौ पल चाँदी में दो पल घट जाते हैं, (सौ पल) टीन तथा सीसे में आठ पल, ताँबे में पाँच पल और लोहे में दस पल घट जाते हैं। (तागे से वस्त्र बनाने पर माँड़ आदि लगाने के कारण) ऊन तथा कपास के सौ पल भार के तागे में दस पल वृद्धि हो जाती है। मध्यम श्रेणी (के वस्त्र) में पाँच पल तथा सूक्ष्म (वस्त्र) में तीन पल वृद्धि हो जाती है। कामदार (जड़ाऊ) तथा रोम से बने हुए वस्त्र में (कुल भार का एक तिहाई भाग) घट जाता है, किन्तु रेशमी तथा वल्कल वस्त्रों में न तो क्षय होता है और न वृद्धि। किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर देश, काल, भोग और बलाबल को ध्यान में रखते हुए उसके कुशल ज्ञाता जितने क्षय का निश्चय करते हैं उतना देना ही पड़ता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।२८-३२।। जिसे बलपूर्वक दास बनाया गया हो, चोरों के द्वारा बेच दिया गया हो या जिसने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा की हो वह (दासता में जाने से लेकर स्वामी के) उपयुक्त द्रव्य को चुकाकर अथवा (स्वामी से लिये

---

१ ख. सौम्ये। २ च. °गात्तन्निष्क्रयाद°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकः । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ।।३४।।
कृतशिष्योऽपि[1] निवसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे । अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ।।३५।।
राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु । त्रैविद्यं वृत्तिमद्ब्रूयात्स्वधर्मः पाल्यतामिति ।।३६।।
निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् । सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ।।३७।।
गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः । सर्वस्वहरणं कृत्वा त्वं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।।३८।।
कर्तव्यं वचनं[2] सर्वैः समूहहितवादिनाम्[3] । यस्तत्र विपरीतः स्यात्स दाप्यः प्रथमं दमम् ।।३९।।
समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत्तत्तदर्पयेत् । एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत्स्वयम् ।।४०।।
([4]वेदज्ञाः शुचयोऽलुब्धाः भवेयुः कार्यचिन्तकाः । कर्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम्) ।।४१।।
श्रेणिनैगमपाषण्डिगणानामप्ययं विधिः । भेदं चैषां नृपो रक्षेत्पूर्ववृत्तिं च पालयेत् ।।४२।।
गृहीतवेतनः कर्म त्यजन्द्विगुणमावहेत् । अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः ।।४३।।

गये) धन को चुकाकर मुक्त कर दिया जाता है। संन्यास को छोड़कर राजा की दासता में आया हुआ व्यक्ति मरण-पर्यन्त राजा का दास बना रहता है। दासता वर्णों के अनुलोमक्रम से होती है, प्रतिलोमक्रम से नहीं। शिल्प (आदि कार्यों) में पारंगत हो जाने पर भी शिष्य को पूर्वनिर्धारित समय तक गुरु के घर में रहना चाहिए और अपने शिल्प आदि का फल अपने गुरु को देते रहना चाहिए ।।३३-३५।। राजा को अपने नगर में (गृह आदि) स्थान बनाकर वहाँ ब्राह्मणों को बसा देना चाहिए। फिर उन्हें जीविका से सम्पन्न करके उनसे यह कहना चाहिए कि वे अपने धर्म का पालन करते रहें। अपने धर्म के अनुकूल रहते हुए उस धर्म का यत्नपूर्वक पालन करते रहना चाहिए जो सामयिक अथवा राजा के द्वारा निर्धारित किया गया हो। जो गण के द्रव्य का अपहरण करता है, अथवा (राजा तथा समाज के साथ की गयी) सन्धि का उल्लंघन करता है, उसका सर्वस्व हरण करके उसे राष्ट्र से निष्कासित कर देना चाहिए। सब लोगों के हित की बात करनेवालों की बात का पालन सभी को करना चाहिए। जो उसके विपरीत कार्य करता है उसे प्रथम साहस का दण्ड दिया जाता है ।।३६-३९।। समूह के कार्य के लिए भेजे जाने पर (सेवक को) जो-जो वस्तु प्राप्त हो, उसे अपने स्वामी को दे देना चाहिए। जो स्वामी स्वयं इस प्रकार से प्राप्त वस्तु को नहीं दे देता है, उससे वस्तु का ग्यारह गुना दिलाया जाता है। सामूहिक कार्यकर्त्ताओं को वेदज्ञ, पवित्र, लालचरहित तथा निर्धारित कार्य का (सतत) चिन्तन करनेवाला होना चाहिए। ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की बात सबको माननी चाहिए। यही नियम श्रेणि, नैगम और पाखण्डियों के लिए भी होता है। राजा को उसके पृथक्-पृथक् भेदों को सुरक्षित रखना चाहिए तथा उनकी परम्परा से चली आनेवाली वृत्ति की भी रक्षा करते रहना चाहिए ।।४०-४२।। किसी कार्य के लिए वेतन लेकर उस काम को छोड़ देने पर वेतन से दुगुना धन (दण्ड रूप में) देना पड़ता है। बिना वेतन लिये (किन्तु कार्य करना स्वीकार कर लेने पर) कार्य न करने पर वेतन के समान दण्ड दिया जाता है। नौकरों के द्वारा (साधनरूप में प्राप्त होनेवाले) उपकरणों की रक्षा करनी चाहिए। जो व्यक्ति बिना पारिश्रमिक निश्चित किये हुए

---

१ ख. ग. छ. शिल्पोऽपि। २ ख. तेषां। ३ ग. छ. °दिभिः। य°। ४ वेदज्ञाः...समूहहितवादिनाम् ङ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः। अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता ।।४४।।
देशं कालं च योऽतीयात्कर्म कुर्याच्च योऽन्यथा। तत्र तु स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके ।।४५।।
यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्। उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्ये कुर्याद्यथाश्रुतम् ।।४६।।
अराजदैविकं नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः। प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ।।४७।।
प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन्। भृतिमर्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च ।।४८।।
ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु समिकः पञ्चकं शतम्। गृह्णीयाद्धूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् ।।४९।।
स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम्। जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ।।५०।।
प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डले। जितं समभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ।।५१।।
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि। राज्ञा सचिह्ना निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ।।५२।।
द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात्। एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ।।५३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सीमाविवादादिनिर्णयकथनं नाम
सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५७।।

किसी से कुछ कर्म कराता है उसे राजा के द्वारा वाणिज्य, पशु अथवा धान्य का दसवाँ भाग (पारिश्रमिक के रूप में) दिलाना चाहिए। जो सेवक देश और काल का अतिक्रमण करता है तथा जो अन्यथा कार्य करता है (और इस प्रकार अपने स्वामी को हानि पहुँचाता है) उसे स्वामी अपनी इच्छानुसार पारिश्रमिक देता है (न कि पूर्व निर्धारित पारिश्रमिक)। किन्तु स्वामी का अधिक काम होने पर सेवक को अधिक पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए ।।४३-४५।। जो जितना काम करता है उसका उतना ही वेतन होता है। यदि कार्य सिद्ध न हो सके तो भी जितना कार्य हो चुका हो, उसे ध्यान में रखकर पूर्व निश्चयानुसार वेतन देना चाहिए। वह वाहक जिससे कोई बर्तन नष्ट हो जाय और जिसमें कि राजा अथवा देव का कोई हाथ न हो तो उसके बर्तन का मूल्य दिलवाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति प्रस्थान में विघ्न उत्पन्न करे तो उससे वेतन का दूना धन दिलाना चाहिए। द्यूत (आदि) में सौ गुनी वृद्धि होने पर (द्यूत) सभा के स्वामी को धूर्त जुआड़ी से पाँच प्रतिशत लेना चाहिए और अन्य से दस प्रतिशत। जुआ खेलनेवाले की राजा के द्वारा रक्षा की जाती है इसलिए उसे राजा को उसका अंश देना चाहिए। उसे जीते हुए धन को विजेता से धन देकर निकाल देना चाहिए। और क्षमादान होने के कारण उसे सच बात कहनी चाहिए ।।४६-५०।। ऐसे सभामण्डप में जहाँ राजा को उसका अंश प्राप्त हो चुका हो, जो प्रसिद्ध हो तथा जो प्रसिद्ध स्थान में हो वहाँ (अनुचित ढंग से) जीता हुआ धन (हारनेवालों को) दिला देना चाहिए अन्यथा नहीं। (द्यूत में उत्पन्न होनेवाले विवादों में) निर्णायक तथा साक्षी वे (जुआड़ी) ही होते हैं। जाली पासे से जुआ खेलनेवाले राजा के द्वारा चिह्नाङ्कित करके (राज्य से) बहिष्कृत कर दिये जाने चाहिए। चोर (आदि) का पता लगाने के लिए द्यूत में एक ही प्रधान (निरीक्षक) होना चाहिए। प्राणवानों से खेले जानेवाले जुए के सम्बन्ध में भी यह नियम है ।।५१-५३।।

श्री अग्निमहापुराण में सीमाविवादादि निर्णय कथन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५७।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाक्पारुष्यादिप्रकरणम्

अग्निरुवाच

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम् । क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्धत्रयोदश ।।१।।
अभिगन्तास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति च । शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ।।२।।
अर्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च । दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ।।३।।
प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः । वर्णानामानुलोम्येन तस्मादेवार्धहानितः ।।४।।
बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे[1] वाचिके दमः । शस्तस्ततोऽधिकः पादनासाकर्णकरादिषु ।।५।।
अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान्दश । तथा शक्तः प्रतिभुवं दद्यात्क्षेमाय तस्य तु ।।६।।
पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः । उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ।।७।।
त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः । मध्यमो ज्ञातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ।।८।।

अध्याय २५८

वाक्पारुष्यादिप्रकरण

अग्निदेव बोले–जो व्यक्ति सत्य, असत्य अथवा व्याजस्तुतियों के द्वारा ऐसे व्यक्ति का तिरस्कार करता है जो विकलांग, विकलेन्द्रिय अथवा रोगी हो तो उसके ऊपर साढ़े तेरह पणों का दण्ड देना चाहिए। उस व्यक्ति से राजा को पचीस पणों का दण्ड दिलवाना चाहिए, जो किसी व्यक्ति से यह कहता है कि "मैं तुम्हारी माता अथवा बहन के साथ सहवास करूँगा।" जब यही अपराध अपने से अधम वर्णों के प्रति किया जाता है, परस्त्री अथवा अपने से उच्च वर्णों के प्रति किया जाता है तब दण्ड की मात्रा दुगुनी हो जाती है। (संक्षेपतः) दण्ड का निर्धारण वर्ण की उच्चता अथवा नीचता के आधार पर किया जाता है ।।१-३।। अपने से उच्च जातिवाले को अपशब्द कहने पर दण्ड क्रमशः दुगुना और तिगुना होता है, किन्तु अपने से नीची जाति को अपशब्द कहने में दण्ड की मात्रा क्रमशः आधी-आधी होती जाती है। बाहु, ग्रीवा, नेत्र और जंघा को नष्ट करने की धमकी देने पर दण्ड की मात्रा सौ पण होती है किन्तु प्रायः नाक, कान और हाथ काटने की धमकी देने पर दण्ड की मात्रा इसकी आधी अर्थात् पचास पण होती है। यदि इस प्रकार की धमकी देनेवाला व्यक्ति बल में कम हो तो उसे दस पणों का दण्ड देना चाहिए किन्तु यदि इस प्रकार की धमकी देनेवाला शक्ति में अधिक हो तो उसे धमकी दिये जानेवाले व्यक्ति की रक्षा के लिए प्रतिभू प्रस्तुत करना चाहिए ।।४-६।। किसी को पाप लगाने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है और उपपातक का दोष लगाने पर प्रथम साहस के समान दण्ड होता है। (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) के विद्वानों के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने पर उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है, जातियों के समूहों के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने पर मध्यम तथा ग्राम और देशवासियों के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने पर प्रथम साहस का दण्ड

---

१ क. ख. ङ. °शे चाधिकोद°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चाऽऽगमेन च। द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृताद्भयात् ।।९।।
भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः। अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ।।१०।।
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च। हीनेष्वर्धं दमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ।।११।।
विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु। उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्धकः ।।१२।।
उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ। परस्परं तु सर्वेषां शास्त्रे मध्यमसाहसः ।।१३।।
पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान्दश। पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ।।१४।।
शोणितेन विना दुःखं कुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः। द्वात्रिंशतं पणान्दाप्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ।।१५।।
करपाददतो भङ्गे छेदने कर्णनासयोः। मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ।।१६।।
चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने। कन्धराबाहुसक्थ्नां च भङ्गे मध्यमसाहसः ।।१७।।
एकं घ्नतां बहूनां च यथोक्ताद्द्विगुणा दमाः। कलहापहृतं देयं दण्डस्तु द्विगुणः स्मृतः ।।१८।।
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम्। दाप्यो दण्डं च यो यस्मिन्कलहे समुदाहृतः ।।१९।।

दिया जाता है। बिना साक्षी के प्रहार का विवाद उत्पन्न होने पर विवाद का निर्णय चिह्नों से, युक्ति से तथा जनश्रुति से करना चाहिए, क्योकि केवल चिह्न बनाये भी जा सकते हैं। किसी के ऊपर भस्म, कीचड़ अथवा धूल फेंकने पर दस पण का दण्ड दिया जाता है। किन्तु (अश्व और श्लेष्मा आदि) अमेध्य पदार्थों और धूल आदि फेंकने पर दण्ड की मात्रा उससे दुगुनी हो जाती है। यह नियम बराबरवालों के विरुद्ध किये गये अपराधों के सम्बन्ध में है। किन्तु यदि यही अपराध परस्त्री एवं उत्तम वर्णवालों के प्रति हो तो दण्ड की मात्रा दूनी हो जाती है। दण्ड की मात्रा आधी रह जाती है यदि अपराध अपने से हीन के प्रति किया गया हो। यदि यह अपराध मोह और मद आदि के कारण किया गया हो तो कोई दण्ड नहीं होता है ।।७-११।। विप्र को पीड़ित करनेवाले ब्राह्मणेतर जाति (के अपराधी) का अङ्ग काट देना चाहिए। यदि हाथ उठाया ही गया हो तो भी प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिए। यदि अंग से स्पर्श मात्र किया गया हो तो दण्ड आधा रह जाता है। (प्रहार करने के लिए) हाथ और पैर उठाने पर क्रमशः दस और बीस पणों का दण्ड होता है किन्तु परस्पर शस्त्र को उठाने पर सभी (वर्णों) में मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। किसी के चरणों, केशों और वस्त्र को घसीटने पर दस पण का दण्ड होता है। किन्तु किसी को वस्त्र से बाँधकर उसे दृढ़ता से दबाकर जो कोई चरणों से प्रहार करता है उसके ऊपर सौ पणों का दण्ड किया जाता है। बिना रक्त बहाये काष्ठ इत्यादि के द्वारा प्रहार करने पर बत्तीस पणों का दण्ड होता है किन्तु रक्त आ जाने पर दण्ड की मात्रा दुगुनी हो जाती है। हाथ, पैर और दाँत तोड़ देने पर तथा नाक, कान काट लेने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। घाव को खोल देने पर तथा मृत्यु तुल्य प्रहार करने पर भी यही दण्ड दिया जाता है ।।१२-१६।। गति, भोजन और वाणी को अवरुद्ध करने, आँख आदि को फोड़ने और कन्धा, बाहु तथा जंघाओं के तोड़ने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। यदि एक ही व्यक्ति के ऊपर बहुत से व्यक्ति मिलकर प्रहार करें तो उन सबके ऊपर उपर्युक्त दण्ड से दुगुना दण्ड देना चाहिए। कलह में जिस वस्तु का अपहरण कर लिया जाता है उसे तो देना ही पड़ता है, उसका दण्ड भी दूना होता है। कलह आदि में ताड़न आदि से दुःख उत्पन्न करनेवाला उस (व्रण आदि में होनेवाले) व्यय को तो देता ही है, साथ ही उस कलह-विशेष के लिए जो दण्ड निर्धारित किया गया है, उसे भी देता है ।।१७-१९।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन्दण्ड्यः पणान्दश । ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेव[1] निमन्त्रणे ।।२०।।
अभिघाते तथा भेदे छेदे कुड्यावपातने । पणान्दाप्यः पञ्चदश विंशतिं [2]तद्द्वयं तथा ।।२१।।
दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं [3]क्षिप्रन्प्राणहरं तथा । षोडशाऽऽद्यः पणान्दाप्यो [4]द्विगुणो मध्यमं दमम् ।।२२।।
दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा । दण्डः क्षुद्रपशूनां स्याद्द्विपणप्रभृतिः क्रमात् ।।२३।।
लिङ्गस्य च्छेदने मृत्तौ (त्यौ) मध्यमो मूल्यमेव वा । महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणा दमाः ।।२४।।
प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणां तु विंशतेर्द्विगुणा दमाः ।।२५।।
यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् । ([5]यस्त्वेवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम्।।२६।।
आर्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारकः[6] । ([7]संदिष्टस्याप्रदाता च [8]समुद्रगृहभेदकः ।।२७।।
सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः । [9]पञ्चाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ।।२८।।
स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टेनाभिधावकः । अकारेण (रणं?) च विक्रोष्टा चाण्डालश्चोत्तमान्स्पृशन् ।।२९।।
[10]शूद्र ([11]प्रव्रजितानां च दैवे पै (पि)त्र्ये च भोजकः । अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्यो योग्यकर्मकृत् ।।३०।।

नाव आदि पर कर लेने का अधिकारी यदि स्थल पर लगनेवाले कर को ले लेता है तो उसे दस पण दण्ड देना पड़ता है। यही दण्ड तब दिया जाता है जब (श्राद्ध आदि उपयुक्त अवसरों पर) ब्राह्मणों या पड़ोसियों को निमन्त्रण न दिया जाय। दीवाल पर प्रहार करने के लिए, उसमें छेद करने या उसे तोड़ने के लिए और उसे गिरा देने के लिए क्रमशः पाँच, दस और बीस पण का दण्ड दिया जाता है। साथ ही, (उसे पुनः बनाने में होनेवाला) व्यय भी दिलाया जाता है। (किसी के) घर में दुःख को उत्पन्न करनेवाले तथा प्राणी नाशक द्रव्य को फेंकने पर प्रथम अपराध के लिए षोडश पणों का दण्ड दिया जाता है, किन्तु यदि यही अपराध दूसरी बार किया जाता है तो मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। रक्त को बहानेवाले (व्रण आदि) दुःख को उत्पन्न करने पर तथा छोटे-छोटे पशुओं की (सींग आदि) शाखाओं या उनके अङ्गों को काटने पर (अपराध के अनुसार) क्रमशः दो पणों से प्रारम्भ करके दण्ड दिया जाता है। (छोटे पशु के) लिङ्ग को काटने पर या उसे मार डालने पर मध्यम साहस का दण्ड या केवल (पशु का) मूल्य ही दिलाना चाहिए किन्तु बड़े-बड़े पशुओं के सम्बन्ध में यही अपराध होने पर दुगुना दण्ड हो जाता है। जिन वृक्षों की शाखाओं से अङ्कुर फूटते हैं उनकी शाखाओं, स्कन्धों या समूल नष्ट करने पर और उपजीव्य वृक्षों का उन्मूलन करने पर बीस पण और उससे दुगुना दण्ड होता है ।।२०-२५।। जो 'साहस' कराता है उसके ऊपर (साहस करनेवाले से) दुगुना दण्ड किया जाता है। जो व्यक्ति "मैं तुम्हें कुछ दूँगा" ऐसा कहकर किसी से 'साहस' कराता है उसे (साहस करनेवाले से) चौगुना दण्ड देना चाहिए। आर्यजनों की निन्दा करनेवाला, भाई की पत्नी का अपहरण करनेवाला, प्रतिज्ञा करके (किसी वस्तु को) न देनेवाला और सामन्तों तथा कुलीनों आदि का अपहरण करनेवाला पचास पणों के दण्ड का भागी होता है-यह नियम है। स्वच्छन्दतापूर्वक विधवागामी, (सहायतार्थ) पुकारे जाने पर (सहायता के लिए) दौड़ न पड़नेवाला, अकारण (सहायतार्थ) पुकारनेवाला, उत्तम वर्णों का स्पर्श करनेवाला चाण्डाल, दैव

---

१ छ. °देवानि°। २ छ. तत्त्रयं। ३ क. ङ. क्षिप्रप्राण°। ४ ख. ग. च. छ. द्वितीयो। ५ यस्त्वेव····चतुर्गुणम् च. पुस्तके नास्ति। ६ छ. °रदः। सं°। ७ संदिष्ट·····भेदकः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ८ ख. °द्रगृह। ९ पञ्चाशत्····धावकः च.पुस्तके नास्ति। १० क. ख. ग. छ. शूद्रः प्र°। ११ प्रव्रजितानां····वृषशूद्र च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृषशूद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् । साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ।।३१।।
पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः । एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ।।३२।।
वसानस्त्रीन्पणान्दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम् । [1]विक्रयापक्रियादानयाचितेषु पणान्दश ।।३३।।
तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च । एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दण्डमुत्तमम् ।।३४।।
अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् । स नाणकपरीक्षायां दाप्यः प्रथमसाहसम् ।।३५।।
भिषङ्मिथ्याऽऽचरन्दाप्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे मध्यमं राजमानुषेषूत्तमं तथा ।।३६।।
अबध्यं यश्च बध्नाति बध्यं यश्च प्रमुञ्चति । अप्राप्तव्यवहारं च स दाप्यो दममुत्तमम् ।।३७।।
मानेन तुलया वाऽपि योंऽशमष्टमकं हरेत् । द्वाविंशतिपणा[2] (न्दाप्योवृद्धौ हानौ च कल्पितम् ।।३८।।
भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु । पण्येषु प्रक्षिपन्हीनं पणा) न्दाप्यस्तु षोडश ।।३९।।
संभूय कुर्वतामर्घं सबाधं कारुशिल्पिनाम् । अर्थस्य ह्रासं वृद्धिं वा सहस्रो दण्ड उच्यते ।।४०।।
राजनि स्थाप्यते योऽर्थः प्रत्यहं तेन विक्रयः । क्रयो वा[3] विक्रयस्तस्माद्वणिजां लाभकृत्स्मृतः ।।४१।।
स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम् । दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ।।४२।।

और पितृकार्यों में शूद्रों और संन्यासियों को भोजन करानेवाला, असत्य शपथ खानेवाला, अयोग्य होते हुए भी किसी योग्य कर्म को करनेवाला, शूद्रों, बैलों तथा अन्य पशुओं के पुंस्त्व को नष्ट करनेवाला, सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहरण करनेवाला, दासी के गर्भ का विनाश करनेवाला और पिता, पुत्र, बहन, भाई, दम्पति, आचार्य तथा शिष्यों के अनुपयुक्त अवसर पर एक-दूसरे को छोड़ देनेवाला सौ पणों के दण्ड का भागी होता है ।।२६-३२।। दूसरों के वस्त्रों को धारण करनेवाला धोबी तीन पणों के दण्ड का भागी होता है, किन्तु यदि वह दूसरों के वस्त्रों को बेच देता है, बन्धक रख देता है अथवा माँगने पर उधार दे देता है तो वह दस पणों के दण्ड का भागी होता है। जो व्यक्ति नकली तुला, शासन (पत्र), नापने की वस्तुओं और सिक्कों को बनाता है अथवा जो व्यक्ति इनको व्यवहार में लाता है, वे दोनों ही उत्तम साहस के दण्ड के भागी होते हैं। वह सिक्कों की परीक्षा करनेवाला जो सच्चे सिक्के को झूठा बतलाता है अथवा जो झूठे को सच्चा बतलाता है, वह भी उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है ।।३३-३५।। वैद्य यदि पक्षियों की चिकित्सा में असावधानी करे तो वह प्रथम साहस के दण्ड का भागी होता है। साधारण मनुष्यों की चिकित्सा में असावधानी करने पर मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है और राजपुरुषों की चिकित्सा में ऐसा करने पर उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो अबध्य पुरुष को बाँधता है, अथवा बध्य पुरुष को निर्णय के पूर्व ही छोड़ देता है, वह उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। यह दण्ड (वस्तु की) वृद्धि अथवा हानि के अनुपात में न्यूनाधिक हो सकता है। ओषधि, तेल, नमक, सुगन्धित पदार्थ, अन्न तथा गुड़ आदि में निकृष्ट वस्तु को मिलाने पर सोलह पणों का दण्ड दिया जाता है ।।३६-३९।। (राजा के द्वारा निर्धारित मूल्य में) वृद्धि अथवा ह्रास को जानते हुए भी जो व्यापारी (लोभवश) शिल्पकारों आदि को पीड़ित करने के लिए वस्तुओं का दूसरा ही मूल्य लेने लगते हैं, वे एक हजार पणों के दण्ड के भागी होते हैं। राजा के द्वारा जो मूल्य निर्धारित कर दिया जाता है उसी के अनुसार (वस्तुओं का) विक्रय होना चाहिए। उसी मूल्य के द्वारा किया गया क्रय-विक्रय बनियों के लिए लाभकारी माना गया है। जो वस्तु तुरन्त ही बेची जा सके, वह यदि देशी हो तो उस पर पाँच प्रतिशत लाभ लिया जा सकता है। वही वस्तु यदि विदेशी

---

१ छ. °यावक्रयाधान°। २ न्दाप्यो…पणा क. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. च. छ. वा निस्त्रवस्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् । [1]अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च ।।४३।।
गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति । सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते ।।४४।।
विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वे क्रेतर्यगृह्णति । हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ।।४५।।
राजदैवोपघातेन पण्ये दोष उपागते । हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ।।४६।।
अन्यहस्ते च विक्रीतं दृष्टं वा दुष्टवद्यदि । विक्रीणीते दमस्तत्र तन्मूल्याद्द्विगुणो भवेत् ।।४७।।
क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानामविजानता । क्रीत्वा नानुशयः कार्यः कुर्वन्षड्भागदण्डभाक् ।।४८।।
समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम् । लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ।।४९।।
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम् । स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षिताद्दशमांशभाक् ।।५०।।
अर्थप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् । [2]व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीतं राजगामि तत् ।।५१।।
मिथ्यावदन्परीमाणं शुल्कस्थानादपक्रमन् । दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च स व्याजक्रयविक्रयी ।।५२।।

हो तो उस पर दस प्रतिशत लाभ लिया जा सकता है। बेची जानेवाली वस्तु के ऊपर उसमें होनेवाले व्यय को जोड़कर ऐसा मूल्य निर्धारित करना चाहिए जो क्रेता तथा विक्रेता दोनों के अनुकूल हो ।।४०-४३।। किसी वस्तु का मूल्य प्राप्त हो जाने के बाद भी यदि विक्रेता वह वस्तु क्रेता को न दे तो उससे (मूल्य धन पर) ब्याज सहित वह वस्तु दिलवानी चाहिए। यदि क्रेता विदेशी हो तो उसे विदेश में होनेवाले लाभ के साथ वह वस्तु दिलवानी चाहिए। किसी क्रेता के हाथ बेची गयी वस्तु यदि उसके द्वारा (मूल्य चुकाकर) ले न ली जाय और इसमें दोष क्रेता का हो तो उसे (पुनः) बेचा जा सकता है, क्योंकि (वस्तु को न लेने से होनेवाली) हानि केवल क्रेता की ही होनी चाहिए। क्रेता के द्वारा माँगी जाने पर भी बेची गयी वस्तु यदि विक्रेता उसे न दे और उसमें राजा अथवा दैव के कारण कोई दोष उत्पन्न हो जाय तो उसकी हानि का भागी विक्रेता ही हो सकता है। किसी वस्तु को पहले एक के हाथ बेचकर उसे पुनः दूसरे के हाथ बेचने में अथवा वस्तु के दोष जानते हुए भी उसे बेचने में दण्ड की मात्रा वस्तु के मूल्य के दुगुने के बराबर होती है। विक्रेय-वस्तु की हानि अथवा वृद्धि को न जाननेवाले बनिये को उसे अनुचित मूल्य पर नहीं बेचना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर वह (मूल्य के) षष्ठांश दण्ड का भागी होता है ।।४४-४८।। लाभ के लिए एक साथ मिलकर (साझे) में व्यापार करनेवाले बनियों में लाभ-हानि (व्यापार में लगाये गये) द्रव्य के अनुपात में अथवा परस्पर के समझौते के अनुसार होती है। यदि कोई वस्तु (भागीदारों में से) किसी के प्रतिषिद्ध अथवा अनादिष्ट कर्म से या उसके प्रमाद से नष्ट हो जाय तो उसे वह वस्तु देनी पड़ती है, यदि कोई व्यक्ति उसे विनाश से बचा लेता है तो वह उसके दशमांश का भागी हो जाता है। किसी वस्तु का मूल्य राजा के द्वारा निर्धारित किया जाता है, राजा उसका बीसवाँ भाग ले लेता है। यदि कोई वस्तु राजा के द्वारा विक्रय के लिए निषिद्ध कर दी गयी हो या वह राजा के (ही) योग्य हो, फिर भी उसे बेच दिया गया हो तो वह वस्तु (विक्रय के बाद भी) राजा की हो जाती है। विक्रेय वस्तु के परिमाण को मिथ्या बतलानेवाले अथवा चुंगी से बचकर निकल जानेवाले (व्यापारी) से (वस्तु के मूल्य से) आठ गुना धन लिया जाता है। इतना ही उससे भी लिया जाता है जो छल से (किसी वस्तु को) बेचता है ।।४९-५२।।

---

१ क. ङ. च. छ. अथोऽनु°। २ ख. ससिद्धं। ङ. स्वसिद्धं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवाः। ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः ।।५३।।
जिह्मं व्यजेयुर्निर्लोभमशक्तोऽन्येन कारयेत्। अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् ।।५४।।
ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा। पूर्वकर्मापराधी वा तथैवाशुद्धवासकः ।।५५।।
अन्येऽपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः। द्यूतस्त्रीपानशक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ।।५६।।
परद्रव्यगृहाणां च पृ (प्र) च्छका गूढचारिणः। निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ।।५७।।
गृहीतः शङ्कया चौर्ये नाऽऽत्मानं चेद्विशोधयेत्। दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ।।५८।।
चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः। सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।।५९।।
घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते। स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदं वा [1]यत्र गच्छति ।।६०।।
पञ्चग्रामी बहिः क्रोशाद्दशग्राम्योऽथ वा पुनः। बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।।६१।।
प्रसह्यघातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान्। उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीनकौ ।।६२।।

किसी (बनिये) के देशान्तर चले जाने पर अथवा उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके धन को दामाद, बान्धव, जातिजन अथवा (उसके लिए) आये हुए अन्य लोग ले लेते हैं। इन सबके अभाव में वह धन राजा ले लिया करता है। (भागीदारों में से) कुटिल भागीदार को अन्य लोग बिना किसी लाभ के ही हटा दें। यदि कोई (भागीदार) ऐसा करने में स्वयं असमर्थ हो तो उसे दूसरे के द्वारा हटवा देना चाहिए। यही नियम ऋत्विजों, कृषकों और शिल्पकारों के सम्बन्ध में भी है। चोर पकड़नेवाले, चोर को चोरी के माल से अथवा उसके पदचिह्नों से पकड़ते हैं, (चोरी के सन्देह में) वही पकड़ा जाता है जिसने पहले अपराध किया हो अथवा अनुचित स्थान में रहनेवाला हो। चोरी के सन्देह में अन्य ऐसे लोग पकड़े जा सकते हैं जो अपनी जाति और नाम आदि को छिपाते हैं, द्यूत, स्त्री और मदिरापान में आसक्त रहते हैं, (प्रश्न किये जाने पर) जिनके मुख सूख जाते हैं और वाणी लड़खड़ाने लगती है, दूसरों के धन और घरों के सम्बन्ध में पूछताछ करते हैं, गुप्तरूप से विचरण करते हैं, बिना आय के ही (बहुत-सा) व्यय करते रहते हैं और चुरायी गयी वस्तुओं का विक्रय करते हैं ।।५३-५७।। चोरी के सन्देह में पकड़ा गया व्यक्ति यदि (उचित प्रमाणों के द्वारा) अपने को निर्दोष नहीं सिद्ध कर देता है तो उससे चोरी का माल तो दिलाया ही जाता है, उसे चोर का दण्ड भी दिया जाता है। वास्तविक चोर को पकड़ लेने पर उससे चोरी का धन तो दिलवाना ही चाहिए, उसे नाना प्रकार का शारीरिक दण्ड भी देना चाहिए। यदि चोरी के अपराध में कोई ब्राह्मण पकड़ लिया जाय तो उसके शरीर को चिह्नित करके अपने राष्ट्र से बहिष्कृत कर देना चाहिए। ग्राम में कोई हत्या अथवा चोरी होने पर यदि (हत्या करनेवाले अथवा चोर के पदचिह्न) गाँव से बाहर न निकलें तो उसमें ग्रामपति का दोष माना जाता है। यदि कोई अपराध गाँव की सीमा पर हुआ हो तो उसके लिए पूरा गाँव ही दोषी होता है या उसका दोष होता है जहाँ पर अपराधी के पदचिह्न जाते हैं। कई गाँवों के एक कोस की दूरी पर अपराध होने पर आस-पास के पाँच या दस गाँवों का दोष माना जाता है। (धन आदि के लोभ से दूसरों को) बन्दी बना लेनेवाले और घोड़ों तथा हाथियों की चोरी करनेवालों अथवा बलपूर्वक मार डालनेवाले मनुष्यों को सूली पर चढ़ा देना चाहिए ।।५८-६१ $\frac{१}{२}$।। उत्क्षेपकों (जेबकतरों) और गाँठ को खोलकर धन अपहरण करनेवालों को चुटकी से हीन कर देना चाहिए, किन्तु इसी अपराध

---

१ ख. यदि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ[1] । भक्तावदंशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ।।६३।।
दत्त्वा चौरस्य हन्तुर्वा ज्ञानतो[2] दम[3] उत्तमः । शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो[4] दमः ।।६४।।
उत्तमो वाऽधमो वाऽपि पुरुषस्त्रीप्रमापणे । शिलां बद्ध्वा क्षिपेदप्सु नरघ्नीं विषदां स्त्रियम् ।।६५।।
विषाग्निदां निजगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् । विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः [5]प्रमापयेत् ।।६६।।
क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः । राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ।।६७।।
पुमान्संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः । स्वजातावुत्तमो दण्ड अनुलोम्ये तु मध्यमः ।।६८।।
प्रातिलोम्ये वधः पुंसां नार्याः कर्णावकर्तनम् । नीबीस्तनप्रावरणनाभिकेशावमर्दनम् ।।६९।।
अदेशकालसंभाषं सहावस्थानमेव च । स्त्रीनिषेधे शतं दद्याद्द्विशतं तु दमं पुमान् ।।७०।।
प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा । पशूनगच्छञ्शतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गाश्च मध्यमम् ।।७१।।
अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । गभ्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम् ।।७२।।
प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः । कुबन्धेनाऽऽङ्क्य गमयेदन्त्याप्रव्रजितागमे ।।७३।।

की पुनरावृत्ति होने पर एक हाथ और एक पैर से हीन कर देना चाहिए। जो व्यक्ति जान-बूझकर चोर अथवा हत्यारों को भोजन, आवास, अग्नि, जल, मन्त्रणा, उपकरण अथवा व्यय (करने के लिए धन) देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। शस्त्र से प्रहार करने अथवा गर्भपात करने पर भी उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष अथवा स्त्री का वध करने पर अथवा गर्भपात करने पर भी उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष अथवा स्त्री का वध करने पर उत्तम अथवा अधम कोटि का दण्ड दिया जाता है। पुरुषवध करनेवाली और विष देनेवाली स्त्री को पत्थर बाँधकर जल में फेंक देना चाहिए। विष देनेवाली, आग लगानेवाली, अपने से बड़ों का और अपने पुत्रों का वध करनेवाली स्त्री को कान, हाथ, नाक और ओष्ठ काटकर साँड़ों से मरवा देना चाहिए ।।६२-६६।। जो खेत, घर, वन, गाँव, चरागाह अथवा खलिहान में आग लगाते हैं और राजपत्नी से सम्भोग करते हैं, उन्हें चटाई में लपेटकर जला देना चाहिए। यदि कोई पुरुष अपनी ही जाति की परस्त्री के बाल पकड़कर घसीटे तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए। परन्तु उससे नीच जाति की स्त्री होने पर मध्यम साहस का दण्ड ही देना चाहिए। यदि नीच जाति का पुरुष उत्तम जाति की स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करे तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहिए। नारी के कान काटने, नीवी खोलने, स्तन मलने, आँचल हटाने, नाभि या बाल मसलने, असमय या अस्थान में बातचीत करने तथा सहवास करने पर भी यही दण्ड देना चाहिए। निषिद्ध पुरुष के साथ सम्भाषण आदि करने पर स्त्री को सौ पणों का दण्ड दिया जाता है और निषिद्ध स्त्री के साथ पुरुष के द्वारा ऐसा करने पर उसे दो सौ पणों का दण्ड दिया जाता है। जहाँ पर स्त्री-पुरुष दोनों का निषेध होता है वहाँ पर परस्पर सम्भाषण आदि करने पर वही दण्ड होता है जो दोनों के सम्भोग में होता है ।।६७-७० $\frac{1}{2}$।। पशुओं से सम्भोग करनेवाला सौ पणों का दण्डभागी होता है, किन्तु हीन जाति की स्त्री तथा गायों से सम्भोग करनेवाले को मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। सम्भोग योग्य होने पर भी पकड़ी हुई दासियों तथा रखैलों के साथ वैसा करने पर पचास पणों का दण्ड दिया जाता है। दासी के साथ बलात्कार करने पर दस पण का दण्ड दिया जाता है। अन्त्यज स्त्री के साथ सम्भोग करने पर कुबन्धनों में

---

१ क. ङ. च. °कौ। रक्षावहासाग्न्यु°। ख. ग. °कौ। रक्षावकाशाग्न्यु°। २ ङ. साहसे। छ. जानतो। ३ ङ. दण्ड। ४ ङ. °त्तमः सदा। उ.°। ५ ङ. क्षमापयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्यूनं वाऽप्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ।।७४।।
अभक्ष्यैर्दूषयन्विप्रं दण्ड उत्तमसाहसः । [1]कूटवादी स्वर्णहारी विमांसस्य च विक्रयी ।।७५।।
अंगहीनश्च कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् । शक्तो ह्यमोक्षयन्स्वामी दंष्ट्रिणः शृङ्गिणस्तथा ।।७६।।
प्रथमं साहसं दद्याद्विकुष्टे द्विगुणं तथा । [2]अचौर्यं चौर्येऽभिवदन्दाप्यः पञ्चशतं दमम् ।।७७।।
राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं [3]तस्यैवाऽऽक्रोशकं तथा । मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।।७८।।
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्वा जिह्वां प्रवासयेत् । राजयानासनारोढुर्दण्डो मध्यमसाहसः ।।७९।।
द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा । विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ।।८०।।
यो मन्येताजितोऽस्मीति[4]न्यायेनाभिपराजितः । तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ।।८१।।
राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् । निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतम् ।।८२।।
धर्मश्चार्थश्च कीर्तिश्च लोकपङ्क्तिरुपग्रहः । प्रजाभ्यो बहुमानं च स्वर्गस्थानं च शाश्वतम्
पश्यतो व्यवहारांश्च गुणाः स्युः सप्त भूपतेः ।।८३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाक्पारुष्यादिप्रकरणं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५८।।

बाँधकर (राज्य से) निकाल देना चाहिए। राजाज्ञा को घटा-बढ़ाकर लिखनेवाला अथवा परस्त्री की चोरी करनेवाले को छोड़ देनेवाला उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है ।।७१-७४।। अभक्ष्य से ब्राह्मण को दूषित कर देनेवाला उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो व्यक्ति झूठ बोलता है, सोना चुराता है और कुत्सित मांस को बेचता है उसे अंगहीन करके उसके ऊपर उत्तम साहस का दण्ड करना चाहिए। दाँतोंवाले (हाथी इत्यादि) पशुओं के स्वामी (किसी की रक्षा में) समर्थ होने पर भी यदि उसकी रक्षा नहीं करते हैं तो उन्हें प्रथम साहस का दण्ड दिया जाता है और इस प्रकार के पशु-स्वामी यदि (सताये जानेवाले मनुष्य के द्वारा सहायतार्थ) पुकारने पर भी उनकी रक्षा न करें तो उनके ऊपर इसका दुगुना दण्ड दिया जाता है। जो व्यक्ति चोरी न करनेवाले को चोरी लगाता है वह पाँच सौ पणों के दण्ड का भागी होता है ।।७५-७७।। जो राजा के अनिष्ट की बात करता है, उसकी निन्दा करता है, मृत व्यक्ति के शरीर के आभूषण आदि को बेचता है, गुरु को पीटता है और राजा की मन्त्रणा का भेद खोल देता है, उसकी जिह्वा काटकर उसे देश-बहिष्कृत कर देना चाहिए। राजा की सवारी अथवा उसके आसन पर बैठनेवाला मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो व्यक्ति (क्रोधवश) किसी के दोनों नेत्रों को नष्ट कर देता है, राजा के अनिष्ट को बतलाता है और शूद्र होकर ब्राह्मण के रूप में अपने-आपको दिखलाता है, वह आठ सौ पणों के दण्ड का भागी होता है। न्यायपूर्वक पराजित हो जाने पर भी जो अपने को अपराजित समझकर पुनः (न्यायालय में) आता है तो उसके पुनः हार जाने पर दुगुना दण्ड दिया जाता है। अन्यायपूर्वक दण्ड के रूप में राजा के द्वारा जो धन प्राप्त किया जाता है उसे राजा के द्वारा वरुण देवता को समर्पित करके और उसे तीस गुना बढ़ाकर ब्राह्मणों को दे दिया जाना चाहिए। व्यवहार का निर्वाह करनेवाले राजा में ये सात गुण रहा करते हैं- धर्म, अर्थ, कीर्ति, लोकप्रतिष्ठा, शान्ति, प्रजाओं में सम्मान और शाश्वत स्वर्ग-निवास ।।७८-८३।।

श्री अग्निमहापुराण में वाक्पारुष्यादि प्रकरण नामक दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५८।।

---

१ छ. कूटस्वर्णव्यवहारी। २ छ. °चौरं चौरेऽभि°। ३ क. ङ. तथैवाऽऽ°। ४ क. ङ. °नापि प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋग्विधानम्

अग्निरुवाच

ऋग्यजुः सामाथर्वा[1] (र्व) णविधानं पुष्करोदितम् । [2]भुक्तिमुक्तिप्रदं जप्याद्धोमाद्रामाय तद्वदे ।।१।।

पुष्कर उवाच

प्रतिवेदं तु कर्माणि कार्याणि प्रवदामि ते । प्रथममृग्विधानं वै शृणु त्वं भुक्तिमुक्तिदम् ।।२।।
अन्तर्जले तथा होमे [3]जपतो मनसेप्सितम् । कामं करोति गायत्री [4]प्राणायामाद्विशेषतः ।।३।।
गायत्र्या दशसाहस्रो जपो नक्ताशिनो द्विज । बहुस्नातस्य तत्रैव सर्वकल्मषनाशनः ।।४।।
दशायुतानि [5]जप्त्वा यो होमं कुर्यात्स मुक्तिभाक् । प्रणवो हि [6]परं ब्रह्म तज्जपः सर्वपापहा ।।५।।
[7]ओंकारशतजप्तं तु नाभिमात्रोदकस्थितः । जलं पिबेत्स सर्वैस्तु पापैर्वै विप्रमुच्यते ।।६।।
मात्रात्रयं त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः । महाव्याहृतयः सप्त लोका होमोऽखिलाघहा ।।७।।
गायत्री परमा जप्या महाव्याहृतयस्तथा । अन्तर्जले तथा राम प्रोक्तश्चैवाघमर्षणः ।।८।।

अध्याय २५९

ऋग्विधान

अग्निदेव बोले–(अब) मैं ऋग्विधान बतलाऊँगा जो पुष्कर के द्वारा राम को बतलाया गया था। इस जप और हवन के द्वारा (इस संसार में) भोग और (तदनन्तर) मोक्ष प्राप्त होता है ।।१।।

पुष्कर बोले–मैं प्रत्येक वेद के कर्म तथा कार्य तुम्हें बतलाऊँगा। किन्तु पहले भोग और मोक्ष के देनेवाले ऋग्विधान को सुन लो। जल में (खड़े होकर) हवन करते समय गायत्री जप करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती ही हैं। प्राणायाम करते हुए इसका जप करने से विशेष रूप से इच्छापूर्ति होती है। हे द्विज! जो व्यक्ति बहुत बार स्नान करके (केवल) रात्रि में भोजन करते हुए दस हजार गायत्री मन्त्रों का जप करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो एक लाख गायत्री जप करते हुए हवन करता है, वह मोक्ष का भागी होता है। प्रणव (ओंकार) परब्रह्म है, उसका जप सभी पापों का नाशक है ।।२-५।। जो नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर एक सौ बार गायत्री जप करके जल पीता है, वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है। तीन मात्राएँ, तीन वेद, तीन देव, तीन अग्नि, (भूः भुवः स्वः) तीन महाव्याहृतियाँ और सात लोक होते हैं। इन सबसे समन्वित होम सकल पापों का नाशक होता है। अये राम! श्रेष्ठ गायत्री मन्त्र तथा (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियों का जप (तो ऐसे ही) करना चाहिए किन्तु परम मन्त्र गायत्री, महाव्याहृति (भूर्भुवः स्वः) अघमर्षण मन्त्र का जप, जल में (स्थित रहकर) करना चाहिए 'अग्निमीले पुरोहितं' इस सूक्त का देवता अग्नि है। जो व्यक्ति अग्नि को शिरोधार्य करके प्रतिवर्ष इस मन्त्र का

---

१ ख. ग. घ.° °थर्ववि°। २ छ. °क्तिकरंज°। ३ क. ङ. च. जप्यते। ४ क. ङ. °यामो विशे°। ५ ख. ग. छ. °प्त्वाऽथ हविष्याशी स मु°। ६ क. ङ. °रं ज्ञेयः स ब्रह्म सर्वपापनुत्। ओं। ७ क. ङ. ओंकारं तु जपन्नित्यं ना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोऽयं वह्निदैवतः। शिरसा धारयन्वह्निं यो जपेन्परिवत्सरम् ।।९।।
होमं त्रिषवणं भैक्ष्यमनग्निज्वलनञ्चरेत्। अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्तिताः ।।१०।।
ता जपन्प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते। [1]मेधाकामो जपेन्नित्यं सदसस्पमितित्यृचम् ।।११।।
[2]अन्व(म्ब)योयन्नि(न्ती)माःप्रोक्तानवर्चोमृत्युनाशनाः। शुनःशेपमृषिं बद्धः संनिरुद्धोऽथ वाजपेत् ।।१२।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदी वाऽप्यगदो भवेत्। यः इच्छेच्छाश्वतं कामं मित्रं [3]प्राज्ञं पुरन्दरम् ।।१३।।
ऋग्भिः षोडशभिः कुर्यादिन्द्रस्येति दिने दिने। हिरण्यस्तूपमित्येतज्जपञ्शत्रून्प्रबाधते ।।१४।।
क्षैमी भवति [4]चाध्वनि ये ते पन्था जपन्नरः। रौद्रीभिः षड्भिरीशानं स्तुयाद्यो वै दिने दिने ।।१५।।
चरुं वा कल्पयेद्रौद्रं तस्य शान्तिः परा भवेत्। उदित्युद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठन्दिनेदिने ।।१६।।
क्षिपेज्जलाञ्जलीन्सप्त मनोदुःखविनाशनम्। द्विषन्तमित्यथार्धर्चं यद्विप्रान्तं जपन्स्मरेत् ।।१७।।
आगस्कृत्सप्तरात्रेण विद्वेषमधिगच्छति। आरोग्यकामो रोगी वा [5]पुष्कर्यास्योभयं (पुरीष्यासोऽग्नयो) जपेत् ।।१८।।
उत्तमस्तस्य चार्धर्चो [6]जपेद्वैरिविनाशने। उदयत्यायुरक्षय्यं तेजो मध्यं दिने जपेत् ।।१९।।
अस्तं प्रति गते सूर्ये द्विषन्तं प्रति बाधते। न वयश्चे(योने)ति सूक्तानि जपञ्शत्रून्नियच्छति ।।२०।।

जप करता है तथा भिक्षान्न पर रहकर 'त्रिषवण' होम करता है वह (बिना अग्नि के तेज से) प्रज्वलित रहता है ।।६-९$\frac{1}{2}$।। इसके अनन्तर वायु देवता से सम्बद्ध जिन सात ऋचाओं को बताया गया है उनका जप करते हुए तथा संयमपूर्वक रहने से मनुष्य नित्य अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। मेधाकामी को नित्य 'सदसस्पम्' आदि तीन ऋचाओं का जप करना चाहिए। 'अन्वयो यन्निमाः' आदि नौ ऋचाएँ मृत्युनाशक हैं। बन्धन में पड़े हुए व्यक्ति को 'शुनःशेपमृषिम्' आदि सूक्त का जप करना चाहिए। इसका जप करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है और रोगी नीरोग हो जाता है। जो व्यक्ति अनन्त कामनाओं, मित्र, बुद्धि तथा इन्द्र (की मैत्री) चाहता हो उसे प्रतिदिन 'इन्द्रस्येति' आदि सोलहों ऋचाओं का जप करना चाहिए ।।१०-१३$\frac{1}{2}$।। 'हिरण्यस्तूपम्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शत्रुओं को बाधा होती है। 'ये ते पन्था' इत्यादि मन्त्र के जप से मार्ग में सुरक्षा होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन छह रौद्री ऋचाओं से रुद्र की स्तुति करता है अथवा रुद्र के लिए चरु का निर्वाप करता है, उसे परम शान्ति की प्राप्ति होती है। 'उदिति' इत्यादि ऋचा से उदयकालीन सूर्य का नित्यप्रति अनुष्ठान करते हुए जो व्यक्ति सात अञ्जलि जल अर्पण करता है, उसकी मनोव्यथा दूर हो जाती है। अये विप्र! यदि किसी को किसी से विद्वेष करना हो तो उसे 'द्विषन्तम्' इत्यादि ऋचा के आधे भाग का जप करके सात रातों तक 'आगस्कृत्' इत्यादि ऋचा का स्मरण करना चाहिए। आरोग्यकामी को 'पुष्कर्यास्योभयम्' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए ।।१४-१८।। इस ऋचा के अन्तिम अर्धांश का जप करने से शत्रु-नाश होता है। सूर्योदय में उपर्युक्त ऋचा का जप करने से अक्षय आयु तथा मध्याह्न में जप करने से तेज की प्राप्ति होती है और सूर्यास्त हो जाने पर इस ऋचा के जप करने से शत्रु-नाश होता है। 'न वयश्च' इत्यादि सूक्तों का जप करने से (मनुष्य) शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है ।।१९-२०।। 'एकादश

---

१ क. ङ. वामकामो। २ क. ङ. च. अनुयोजन्ति याः प्रो°। ३ क. ङ. प्राप्तं। ४ क. ख. ग. ङ. च. छ. चाध्वानो ये। ५ छ. प्रस्कन्नस्योत्तमं। ६ छ. द्वैविविधासने।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकादश सुपर्णस्य सर्वकामान्विनिर्दिशेत् । आध्यात्मिकीः क इत्येता जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ।।२१।।
आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् । त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरम् ।।२२।।
उपतिष्ठेत्समित्पाणिर्वासांस्याप्नोत्यसंशयम् । आयुरीप्सन्निममिति[1] कौत्सं सूक्तं सदा जपेत् ।।२३।।
अप नः शोशुचदिति स्तुत्वा मध्ये दिवाकरम् । यथा मुञ्चति चेषीकां तथा पापं प्रमुञ्चति ।।२४।।
जातवेदस इत्येतज्जपेत्स्वस्त्ययनं पथि । भयैर्विमुच्यते सर्वैः स्वस्तिमानाप्नुयाद्गृहान् ।।२५।।
व्युष्टायां च तथा रात्र्यामेतदुःस्वप्ननाशनम् । प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद्गर्भविमोचनम् ।।२६।।
जपन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवं तु सप्तकम् । मुञ्चत्याज्यं तथा जुह्वत्सकलं किल्बिषं नरः ।।२७।।
इमामिति जपञ्शश्वत्कामानाप्नोत्यभीप्सितान् । मानस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।।२८।।
औदुम्बरीश्च जुहुयात्समिधश्चाऽऽज्यसंस्कृताः । छित्त्वा सर्वान्मृत्युपाशाञ्जीवेद्रोगविवर्जितः ।।२९।।
ऊर्ध्वबाहुरनेनैव स्तुत्वा शंभुं तथैव च । मानस्तोकेति च ऋचा शिखाबन्धे कृते नरः ।।३०।।
अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशयं विना । चित्रमित्युपतिष्ठेत ([2]त्रिसन्ध्यं भास्करं तथा ।।३१।।
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात् । अधःस्वप्ने(पश्ये)ति च जपन्प्रातर्मध्यंदिने दिने ।।३२।।
[3]दुःस्वप्नं चार्दयेत्कृत्स्नं भोजनं चाऽऽप्नुयाच्छुभम् । उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ।।३३।।

सुपर्णस्य' इत्यादि मन्त्र (का जप) सभी कामनाओं की सिद्धि करता है और 'आध्यात्मिकीः क' इत्यादि ऋचाओं का जप करने से मोक्ष-प्राप्ति होती है। 'आ नो भद्राः' इत्यादि मन्त्र के जप से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति 'त्वं सोमेति' इस सूक्त से द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन करके कुश हाथ में लेकर उपस्थान करता है, उसे निःसन्देह (नवीन) वस्त्रों की प्राप्ति होती है। आयुष्कामी को 'इमम्' इत्यादि कौत्स सूक्त का सदा जप करना चाहिए ।।२१-२३।। मध्याह्न में 'अप नः शोशुचत्' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की स्तुति करने से मनुष्य उसी तरह पाप को छोड़ देता है जैसे (धनुर्धर) बाण को। 'जातवेदस' इत्यादि मन्त्र के जप से मार्ग में कल्याण होता है। वह मार्ग के सभी भयों से छुटकारा पा ही जाता है, कुशलपूर्वक अपने घर से भी लौट आता है। प्रातःकाल इस मन्त्र का जप करने से रात्रि के दुःस्वप्नों का नाश हो जाता है। 'प्रमन्दिन' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शीघ्र प्रसव हो जाता है ।।२४-२६।। 'इन्द्रम्' इत्यादि मन्त्र से स्नान करके सात वैश्वदेव मन्त्रों से अग्नि में आहुति डालने से मनुष्य के सभी पाप दूर हो जाते हैं। 'इमाम्' इत्यादि मन्त्र जप करने से सदैव मनोवांछित फल प्राप्त होता रहता है। शुचितापूर्वक तीन रात उपवास करके 'मानस्तोक' इत्यादि दो ऋचाओं को पढ़ते हुए घी में डुबोयी हुई गूलर की समिधाओं से हवन करने से मनुष्य सभी मृत्युपाशों को काटकर नीरोग होकर जीवित रहता है। भुजाओं को ऊपर उठाकर इसी मन्त्र से शम्भु की स्तुति करके तथा 'मानस्तोक' इत्यादि मन्त्र से बाँधने पर मनुष्य सभी से अजेय हो जाता है ।।२७-३०½।। 'चित्रम्' इत्यादि मन्त्र से तीनों कालों में हाथ में कुश लेकर सूर्य-स्तुति करते हुए अनुष्ठान करने से मनुष्य अभीष्ट धन को प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन प्रातः एवं मध्याह्न में 'अधःस्वप्न' इत्यादि मन्त्र का जप करने से मनुष्य दुःस्वप्न का नाश तो करता ही है, पर्याप्त मात्रा में सुन्दर भोजन भी प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार 'उभे पुमान्' इत्यादि मन्त्र का जप राक्षसों को नष्ट करनेवाला कहा गया है ।।३१-३३।। 'उभे वासा' इत्यादि ऋचा

---

१ ङ. कैश्यं। २ त्रिसन्ध्यं.....सर्वान्कामानवाप्नुयात् च. पुस्तके नास्ति। ३ ख. ग. °प्नं वदते कृत्स्नं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात्। तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ।।३४।।
कया शुभेति च जपञ्जातिश्रैष्ठ्यमवाप्नुयात्। इमं नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।३५।।
[2](पितरित्युपतिष्ठेत) नित्यमर्थमुपस्थितम्। अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः[3] ।।३६।।
वीरान्नयमवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत्सदा। कङ्कतो नेतिसूक्तेन विषान्सर्वान्व्यपोहति ।।३७।।
यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्)। गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ।।३८।।
यो मे राजन्नितीमां तु दुःस्वप्नशमनीमृचम्। अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम् ।।३९।।
अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदङ्ग इमं जपेत्। द्वाविंशकं जपन्सूक्तमाध्यात्मिकमनुत्तमम् ।।४०।।
पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते। कृणुष्वेति जपन्सूक्तं जुह्वदाज्यं समाहितः ।।४१।।
अरातीनां हरेत्प्राणान्रक्षांस्यपि विनाशयेत्। उपतिष्ठेत्स्वयं वह्निं परि (री) त्यृच दिने दिने ।।४२।।
तं रक्षति स्वयं वह्निर्विश्वतो विश्वतोमुखः। हंसः शुचिषदित्येतच्छुचिरीक्षेद्दिवाकरम् ।।४३।।
([4]कृषिं प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि। जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु [5]मुनिः स्वाहान्तपञ्चभिः(?) ।।४४।।
इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च। यथालिङ्गं तु विहरेल्लाङ्गलं तु कृषीबलः ।।४५।।
युक्तो धान्याय सीतायै शुनासीरमथोत्तरम्)। गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः ।।४६।।

के जप से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और 'तमागमन्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से आततायियों से छुटकारा मिल जाता है। 'कयाशुभ' इत्यादि के जप से मनुष्य स्वजाति में सबसे श्रेष्ठ हो जाता है और 'इमं नु सोमम्' इत्यादि जप से वह सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है। 'पितः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से नित्य अर्थ लाभ होता है, यात्रा पर जानेवाले को 'अग्ने नय' इत्यादि सूक्त से घृत का हवन करना चाहिए। जो व्यक्ति सदा 'सुश्लोक' का जप करता है वह सदा पुत्रों को प्राप्त करता है। 'कंकतो न' इत्यादि सूक्त (के जप) से सभी विषों का नाश होता है ।।३४-३७।। 'यो जात' इत्यादि सूक्त से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। 'गणानाम्' इत्यादि सूक्त (का जप करने) से उत्तम स्नेही-जनों की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति यात्रा पर जा रहा हो और जो शत्रु को आया हुआ देखे उसे 'यो मे राजन्' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए। अकल्याण देखनेवाले व्यक्ति को कल्याणकारी 'कुविदङ्ग इमम्' इत्यादि का जप करना चाहिए। पर्वों के अवसरों पर इन्द्रियों को वश में करके बाईस ऋचाओंवाले श्रेष्ठ आध्यात्मिक सूक्त का जप करने से मनुष्य सदैव अभीष्ट की प्राप्ति कर लेता है। जो मनुष्य समाहित चित्त होकर 'कृणुष्व' इत्यादि सूक्त का जप करते हुए हवन करता है, वह शत्रुओं का प्राण हरण तो करता ही है, राक्षसों का भी नाश कर डालता है ।।३८-४१ $\frac{1}{2}$।। जो मनुष्य प्रतिदिन 'परि' इत्यादि ऋचा से अग्नि की उपस्थापना करता है, उसकी रक्षा विश्वतोमुख अग्नि सम्पूर्ण विश्व में करती है। (स्नान आदि से) शुचि होकर 'हंसः शुचिषत्' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का दर्शन करना चाहिए। तदनन्तर विधिपूर्वक चरु बनाकर खेत के मध्य में उक्त ऋचा के अन्त में 'स्वाहा' पद जोड़कर हवन करना चाहिए, तत्पश्चात् इन्द्र, धान्य और हल की रेखा के नाम से आहुतियाँ डालकर सुगन्धित पदार्थों, मालाओं और प्रणाम

---

१ क. ङ. च. यदि। २ पितरित्युपतिष्ठेत क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ इत्य मार्गतः। ४ कृषिं...शुनासीरमथोत्तरम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ क. ङ. च. छ. स्वनी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः । अमोघं कर्म भवति वर्धते सर्वदा कृषिः ।।४७।।
समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् । [1]विश्वानि न इति द्वाभ्यां या ऋग्भ्यां वह्निमर्हति ।।४८।।
स तरत्यापदः सर्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयम् । विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।।४९।।
अग्ने त्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् । प्रजाकामो जपेन्नित्यं वरुणदैवतत्रयम् ।।५०।।
स्वस्त्या त्रयं जपेत्प्रातः सदा स्वस्त्ययनं महत् । स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान्व्रजतेऽध्वनि[2] ।।५१।।
[3]विजिहीष्व वनस्पते शत्रूणां [4]व्यापितं भवेत् । स्त्रिया गर्भप्रमूढाया गर्भमोक्षणमुत्तमम् ।।५२।।
अच्छावदेति सूक्तं च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् । निराहारः क्लिन्नवासा न चिरेण प्रवर्षति ।।५३।।
मनसः काम इ (मि) त्येनां पशुकामो नरो जपेत् । कर्दमेन इति स्नायात्प्रजाकामः शुचिव्रतः ।।५४।।
[5]अश्वपूर्वा इ (र्णामि) ति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः । [6]रोहिते चर्मणि स्नायाद्बाह्मणस्तु यथाविधि ।।५५।।
राजा चर्मणि वैयाघ्रे छागे वैश्यस्तथैव च । दशसाहस्त्रिको होमः प्रत्येकं परिकीर्तितः ।।५६।।
आगार इति सूक्तेन गोष्ठे[7] गां लोकमातरम् । उपतिष्ठेद्व्रजेच्चैव यदीच्छेत्ताः सदाऽक्षयाः ।।५७।।

आदि से देवपूजन करना चाहिए। ऐसा करने से खेत में उपज अधिक होती है, परन्तु यह कर्म बीज बोने, धान्य काटने या खलिहान उठाने के समय ही करना चाहिए ।।४२-४७।। 'समुद्रात्' इत्यादि सूक्त से अग्नि में आहुतियाँ डालने में मनुष्य अग्नि से सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है। जो व्यक्ति 'विश्वानि न' इत्यादि दो ऋचाओं से अग्नि की पूजा करता है वह सभी विपत्तियों से छुटकारा पाकर अक्षय यश, विपुल सम्पत्ति तथा श्रेष्ठ विजय को प्राप्त कर लेता है। 'अग्नेत्वम्' इत्यादि मन्त्र से अग्नि की स्तुति करने से अभीष्ट धन की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति सन्तान की कामना करता है उसे नित्य वरुण देवता से सम्बद्ध तीन ऋचाओं का जप करना चाहिए। 'स्वस्त्या' आदि तीन ऋचाओं का प्रातःकाल जप करने से परम कल्याण होता है। 'स्वस्ति पन्था' इत्यादि का जप करके यात्रा करने से मार्ग कुशलपूर्वक समाप्त हो जाता है। 'विजिहीष्ववनस्पते' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शत्रुओं को व्याधि प्राप्ति होती है और गर्भवती स्त्री को सुगमता से प्रसव होता है ।।४८-५२।। वर्षा की कामना करनेवाले व्यक्ति को 'अच्छावद' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिए। यदि वर्षाकामी निराहार रहकर गीले वस्त्रों को धारण करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करता है तो शीघ्र ही वृष्टि होने लगती है। जो मनुष्य पशु चाहता हो उसे 'मनसः काम' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए। जो सन्तान चाहता हो उसे 'कर्दमेन' इत्यादि मन्त्र से पवित्र मन होकर स्नान करना चाहिए। राज्य चाहनेवाले मनुष्य को 'अश्वपूर्वा' इत्यादि मन्त्र से स्नान करना चाहिए। ब्राह्मण को मृगचर्म पर, क्षत्रिय को व्याघ्रचर्म पर और वैश्य को बकरे के चर्म पर बैठकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए। इस विधि को पूर्ण करने के लिए दस हजार आहुतियों से युक्त यज्ञ करना चाहिए ।।५३-५६।। जो व्यक्ति सदैव अपनी गायों की अक्षयता चाहता है उसे 'आगार' इत्यादि सूक्त से लोकमाता गाय को गोशाला में रखना चाहिए तथा गोचारण स्थान को उनके साथ-साथ

---

१ छ. °श्वानर इ°। २ छ. °मान्प्रव्रजेऽध्व°। ३ छ. °जिगीषुर्वन°। ४ छ. व्याधितं°। ५ ख. अश्वपूर्णा। ६ क. ङ. हरिते। ७ क. ङ. °ष्ठे गोलो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपेतितिसृभी राज्ञो दुन्दुभीनभिमन्त्रयेत् । तेजो बलं च प्राप्नोति शत्रुं चैव नियच्छति ।।५८।।
तृणपाणिर्जपेत्सूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिर्वृतः । ये के[1] च ज्मेत्यृचं जप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।।५९।।
जीमूतसूक्तेन तथा सेनाङ्गान्यभिमन्त्रयेत् । यथालिङ्गं ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून्[2] ।।६०।।
प्राग्नयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयम् । अमीवहेति सूक्तेन भूतानि [3]स्थापयेन्निशि ।।६१।।
संबाधे विषमे दुर्गे बद्धो[4] वा निर्गतः क्वचित् । पलायन्वा गृहीतो वा सूक्तमेतत्तथा जपेत् ।।६२।।
त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् । तेनाऽऽहुतिशतं पूर्णं जुहुयात्त्र्यम्बकेत्यृचा ।।६३।।
समुद्दिश्य महादेवं जीवेदब्दशतं सुखम् । तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेद्दिवाकरम् ।।६४।।
उद्यन्तं मध्यमं चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः । ([5]'न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ।।६५।।
सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात्) । इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम् ।।६६।।
यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद्व्रात्यैर्वा संसृजेत्सह । उपोष्याऽऽज्यं स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ।।६७।।
आदित्येत्यृक्च (चं) सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् । महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ।।६८।।
ऋचं जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात् । द्वाचत्वारिंशतं चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून् ।।६९।।
वाचं महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च । शं नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाऽन्नं प्रयतः शुचिः।।७०।।

जाना चाहिए। 'उपेति' आदि तीन सूक्तों से राजा की दुन्दुभि को अभिमन्त्रित करना चाहिए। इससे मनुष्य तेज और बल की प्राप्ति करता है तथा शत्रु को अपने वश में कर लेता है। चोरों से घिर जाने पर हाथ में तिनके को लेकर 'रक्षोघ्नम्' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिए। 'ये केचज्म' इत्यादि ऋचा का जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'जीमूत' सूक्त से अस्त्र-शस्त्रों को अभिमन्त्रित करके रण में जानेवाला राजा शत्रुओं का संहार कर डालता है ।।५७-६०।। 'प्राग्नय' आदि तीन सूक्तों का जप करने से अक्षय धन की प्राप्ति होती है। 'अमीवह' आदि सूक्त से रात्रि में भूतों की स्थापना करनी चाहिए। विषम परिस्थिति में दुर्ग (किले) के भीतर बाँध दिये जाने पर (भी) इस सूक्त का जप करना चाहिए। तीन रात्रि नियमपूर्वक उपवास करके चरु बनाना चाहिए, तदनन्तर महादेव (शङ्कर) को सम्बोधित करके 'त्र्यम्बक' आदि ऋचा को पढ़कर सौ आहुतियाँ डालने से मनुष्य सुखपूर्वक एवं सौ वर्ष तक जीता है। दीर्घायु तक जीवित रहने की इच्छा करनेवाले मनुष्य को स्नानान्तर 'तच्चक्षुः' इत्यादि ऋचा से उदयकालीन एवं मध्याह्नकालीन सूर्य का उपस्थापन करना चाहिए ।।६१-६४½।। 'नहि' इत्यादि चार ऋचाओं के जप करने से महाभय दूर हो जाता है। इन्हीं में से बादवाली दो ऋचाओं को पढ़कर हवन करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। 'इन्द्रासोम' इत्यादि सूक्त शत्रुनाशक कहा गया है। मोहवश या व्रात्यों के संसर्ग के कारण जिसका व्रत लुप्त हो गया हो, उसे उपवास करके 'अग्ने व्रतपा' इत्यादि मन्त्र से घी की आहुतियाँ देनी चाहिए। 'आदित्य' इत्यादि ऋचा का जप करनेवाला मनुष्य विवाद में विजयी होता है और 'मही' इत्यादि चार सूक्तों के जप से महाभय से मुक्ति होती है ।।६५-६८।। बयालीस ऋचाओंवाले इन्द्रसूक्त का जप करने से शत्रुओं का नाश होता है। 'वाचं मही' इत्यादि के जप से आरोग्य लाभ होता है। भोजन करने के उपरान्त इन्द्रियों को वश में करके 'शं नो भव' आदि दो ऋचाओं को पढ़ते हुए हाथ से हृदय

---

१ ख. केचिन्मेत्यृ°। २ छ. °न्। आग्नेये°। ३ क. निस्वाप°। ४ छ. बन्धो। ५ न हीति····भूतिमाप्नुयात् छ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते । उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत् ।।७१।।
शं नोऽग्नं इति सूक्तेन [1]हुतेनार्थमवाप्नुयात् । कन्या [2]वारितिसूक्तेन दिग्दोषाद्विप्रमुच्यते ।।७२।।
यदद्य कच्चेत्युदिते जप्ते वश्यं जगद्भवेत् । यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता ।।७३।।
वा (व) चोविदमिति त्वेतां जपन्वाचं समश्नुते । पवित्राणां पवित्रं तु पावमान्यो ह्यृचो मताः ।।७४।।
वैखानसा ऋचस्त्रिंशत्पवित्राः परमा मताः । ऋचो द्विषष्टिः प्रोक्ताश्च परस्येत्यृषिसत्तम ।।७५।।
सर्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च । स्वादिष्ठयेति सूक्तानां सप्तषष्टिरुदाहृता ।।७६।।
दशोत्तराण्यृचश्चैताः पावमान्यः शतानि षट् । एतज्जपंश्च जुह्वच्च घोरं मृत्युभयं जयेत् ।।७७।।
आपो हिष्ठेति वारिस्थो जपेत्पापभयार्दने । [3]प्रदेवन्नेति नियतो जपेच्च मरुधन्वसु ।।७८।।
प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायुस्तु विन्दति । प्रावेपामित्यृचमेकां जपेच्च मनसा दिशि ।।७९।।
व्युष्टायामुदिते सूर्ये द्यूते जयमवाप्नुयात् । मा प्रगामेति मूढश्च पन्थानं पथि विन्दति ।।८०।।
क्षीणायुरिति मन्येत यं कंचित्सुहृदं प्रियम् । यत्ते यमामिति[4] स्नातस्तस्य मूर्धानमालभेत् ।।८१।।
सहस्रकृत्वः यञ्चाहं तेनाऽयुर्विन्दते महत् । [5]इदमित्थेति जुहुयाद्घृतं प्राज्ञः सहस्रशः ।।८२।।
पशुकामो गवां गोष्ठे अर्थकामश्चतुष्पथे । वयः [6]सुपर्णा इत्येतां जपन्वै विन्दते श्रियम् ।।८३।।

का स्पर्श करनेवाला रोगग्रस्त नहीं होता है। स्नान कर चुकने के बाद 'उत्तमेदम्' इत्यादि ऋचा से हवन करने से शत्रु की मृत्यु होती है। 'शंनोऽग्ने' सूक्त को पढ़कर हवन करने से धन की प्राप्ति होती है। 'कन्या वाः' सूक्त का जप करने से दिशा दोष नहीं लगता है ।।६९-७२।। सूर्योदय होने पर 'यदद्य कच्च' इत्यादि सूक्त का जप करने से जगत् वशीभूत होता है और 'यद्वाक्' इत्यादि के जप से वाणी सुसंस्कृत होती है। 'वाचो विदम्' इत्यादि के जप से वाक्सिद्धि होती है, पवित्रों में पवित्र, पवमान सम्बन्धिनी तीस ऋचाएँ वैखानस ऋषि से सम्बद्ध हैं। अये ऋषि-श्रेष्ठ! 'परस्य' इत्यादि सूक्त की बासठ ऋचाएँ सभी पापों का नाश करनेवाली, कल्याण देनेवाली तथा पवित्र करनेवाली हैं। 'स्वादिष्ठय' आदि सूक्त में सड़सठ ऋचाएँ बतायी गयी हैं। इस सूक्त के बाद छह सौ दस ऋचाएँ पवमान सोम से सम्बद्ध हैं, जिनके जप से अथवा जिनके द्वारा हवन करने से (अनुष्ठाता) घोर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है ।।७३-७७।। जल में खड़े होकर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि का जप करने से पाप का भय नहीं रह जाता है। प्राणान्तक भय उपस्थित होने पर अथवा जलशून्य मार्गों में नियमपूर्वक 'प्रदेवन्न' इत्यादि का जप करने से शीघ्र ही (पूर्ण) आयु की प्राप्ति हो जाती है। रात्रि में, उषाकाल में और सूर्योदय काल में 'प्रावेपाम्' इत्यादि ऋचा का मानसिक जप करने से जुए में विजय प्राप्त होता है। 'मा प्रगाम' इत्यादि के जप से मार्ग में भटके हुए को मार्ग मिल जाता है। अपने जिस किसी इष्ट मित्र को क्षीणायु समझे, उसे मस्तक से स्नान कराकर 'यत्ते यमाम्' इत्यादि ऋचा से पाँच दिन तक एक-एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करने से उसे दीर्घायु प्राप्त होती है ।।७८-८१ $\frac{1}{2}$।। जो बुद्धिमान् मनुष्य पशुओं की कामना करता हो उसे गोशाला में 'इदमित्था' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घी से हजार बार हवन करना चाहिए। धन की इच्छा करनेवाला व्यक्ति चौराहे पर 'वयः सुपर्णा' इत्यादि ऋचा का जप करने से ऐश्वर्य को प्राप्त करता

---

१ छ. °नान्नम°। २ छ. °वारर्षिसू°। ३ क. ङ. °वमिति। ४ छ. °यमिति° तु स्ना°। ५ छ. इदं मेध्येति। ६ छ. °पर्ण इ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हविष्यन्तीयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते। तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्धते तथा ।।८४।।
या ओषधयः स्वस्त्ययनं सर्वव्याधिविनाशनम्। बृहस्पते अतीत्येतद्वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ।।८५।।
सर्वत्रेति परा शान्तिर्हुयाऽप्रतिरथस्तथा। [1]सूक्तं [2]सांकश्यपं नित्यं प्रजाकामस्य कीर्तितम् ।।८६।।
अहं रुद्रेभिरित्येतद्वाग्मी[3] भवति मानवः। न योनौ जायते विद्वाञ्जपन्रात्रीति रात्रिषु ।।८७।।
रात्रिसूक्तं जपन्रात्रौ रात्रिं क्षेमी नयेन्नरः। कल्पयन्तीति च जपन्नित्यं कृत्वाऽरिनाशनम् ।।८८।।
आयुष्यं चैव वर्चस्यं सूक्तं दाक्षायणं महत्। उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ।।८९।।
अयमग्ने जरीत्येतज्जपेदग्निभये सति। अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत्तद्भयनाशनम् ।।९०।।
ब्राह्मीमासाद्य सूक्ते द्वे ऋचं ब्राह्मीं शतावरीम्। पृथगद्भिर्घृतैर्वाऽथ मेधां लक्ष्मीं च विन्दति[4] ।।९१।।
शास इत्था सपत्नघ्नं संग्रामं विजिगीषतः[5]। ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं गर्भमृत्युनिवारणम् ।।९२।।
अपेहीति जपेत्सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनम्। येनेदमिति वै जप्त्वा समाधिं विन्दते परम्[6] ।।९३।।
मयोभूर्वात इत्येतद्गवां स्वस्त्ययनं परम्[7]। शाम्बरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ।।९४।।

है। हविष्य का भक्षण करते हुए उपर्युक्त मन्त्र का जप करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। 'हविष्यन्तीयम्' इसका अभ्यास करने से सकल पाप एवं उसके सभी रोग छूट जाते हैं और उसकी शारीरिक कान्ति बढ़ने लगती है। 'या ओषधयः' इत्यादि मंगलकारी मन्त्र सभी व्याधियों को नष्ट करनेवाला है। वृष्टिकामी को 'बृहस्पते अतीत्य' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। 'अप्रतिरथः' इत्यादि ऋचा सर्वत्र शान्ति प्रदान करनेवाली होती है। सन्तानार्थी के लिए सदा 'सांकश्यप' नामक सूक्त (उपयुक्त) बताया गया है ।।८२-८६।। सांकश्यप सूक्त का नित्य जप करने से सन्तान लाभ होता है। 'अहं रुद्रेभिः' इत्यादि सूक्त का जप करने से मनुष्य वाग्मी होता है। रात्रि में 'रात्रि' इत्यादि इस ऋचा का जप करनेवाले विद्वान् पुरुष को पुनः माता के गर्भ में नहीं जाना पड़ता है। रात्रि में रात्रिसूक्त का जप करने से मनुष्य कुशलपूर्वक रात्रि व्यतीत करता है और प्रतिदिन 'कल्पयन्ति' इत्यादि ऋचा का जप करने से शत्रुओं का नाश होता है। महान् दाक्षायण सूक्त दीर्घायु तथा ब्रह्मवर्चस् को देनेवाला होता है। व्रतपूर्वक 'उत देवाः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से रोग नाश होता है। अग्नि का भय होने पर 'अयमग्ने जरि' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए। वनों में 'अरण्यान्' आदि मन्त्र का जप करने से वहाँ का भय नष्ट हो जाता है ।।८७-९०।। दो ब्राह्मी ऋचाओं का जप करते हुए जल अथवा घृत से ब्राह्मी अथवा शतावरी का पान करने से बुद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। 'शास इत्था' इत्यादि मन्त्र शत्रु को मारनेवाला है। इससे संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है। 'ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं' इत्यादि ऋचा गर्भमृत्यु का निवारण करनेवाली होती है। पवित्र होकर 'अपेहि' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिए, इससे दुःस्वप्न का नाश होता है। 'येनेदं' इत्यादि के जप से परम शान्ति की प्राप्ति होती है। 'मयोभूर्वात' इत्यादि सूक्त गायों का परम कल्याण करनेवाला है। इसके द्वारा जादू, इन्द्रजाल और माया का निवारण करना चाहिए ।।९१-९४।। मार्ग

---

१ छ. सूत। २ ख. ग. सकाश्यपं। ३ छ. °द्रेति इत्ये°। ४ छ. °ति। भास इत्यस°। ५ छ. °तः। ब्रह्मणोऽग्नि। ६ क. ख. ङ. पराम्। ७ क. ङ. म्°। साबरी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महित्रीणामवोऽस्त्विति[1] पथि स्वस्त्ययनं जपेत् । [2]प्राग्नये विद्विषन्द्वेष्यं[3] जपेच्च रिपुनाशनम् ।।९५।।
वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेच्च गृहदेवताः । जपस्यैष विधिः प्रोक्तो हुते ज्ञेयो विशेषतः ।।९६।।
होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुतेन तु । हुतं शाम्यति चान्नेन अन्नं हेमप्रदानतः ।।९७।।
विप्राशिषस्त्वमोघाः स्युर्बहिः स्नानं तु सर्वतः । सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा ।।९८।।
क्षीरवृक्षास्तथेध्मं तु होमे[4] वै सर्वकामदाः । समिधः कण्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विषम् ।।९९।।
अभिचारे तथा शैलमशनं सक्तवः पयः । दधि भैक्ष्यं फलं मूलमृग्विधानमुदाहृतम् ।।१००।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ऋग्विधानकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२५९।।

अथ षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यजुर्विधानम्

पुष्कर उवाच

यजुर्विधानं वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । ओंकारपूर्विका राम महाव्याहृतयो मताः ।।१।।
सर्वकल्मषनाशिन्यः सर्वकामप्रदास्तथा । आज्याहुतिसहस्रेण देवानाराधयेद्बुधः ।।२।।

में 'महित्रीणामवोऽस्तु' इत्यादि कल्याणकारी मन्त्र का जप करना चाहिए। 'प्राग्नये विद्विषन्' इत्यादि मन्त्र का जप शत्रुनाश के लिए करना चाहिए। 'वास्तोष्पते' मन्त्र से गृह-देवताओं का यजन करना चाहिए। यह सारी विधि जप के सम्बन्ध में बतायी गयी है। इसे ही यज्ञ में भी विशेष रूप से समझना चाहिए। यज्ञ के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिए। पाप-शान्ति तो हवन से ही हो जाती है। हुताग्नि में अन्न और स्वर्ण डालने से उसकी शान्ति होती है। ब्राह्मणों के आशीर्वचन कभी निष्फल नहीं होते हैं। प्रत्येक कार्य के समय बाह्यस्नान (शारीरिक स्नान) भी करना चाहिए। जल, यव, धान्य, दूध, दही, घृत और दूधवाले वृक्ष और यज्ञ में डाले हुए ईंधन सभी कामनाओं को देनेवाले होते हैं। यज्ञ में जो समिधाएँ प्रयुक्त होती हैं वे हैं– कण्टकिनी, राजिका, रुधिर और विष। ऋग्वेद के अनुसार अभिचार में जिन आहुतियों को होमाग्नि में डालना चाहिए वे हैं– दही, भैक्ष्य, फल, कन्द, सत्तू और पर्वतों पर पाया जानेवाला खाद्य ।।९५-१००।।

श्री अग्निमहापुराण में ऋग्विधान कथन नामक दो सौ उन्सठवाँ अध्याय समाप्त ।।२५९।।

अध्याय २६०

यजुर्विधान

पुष्कर बोले–हे राम! (अब) मैं भुक्तिमुक्तिदायक यजुर्विधान के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, सुनो! ओंकारपूर्वक महाव्याहृतियाँ (भू भुवः स्वः) मानी गयी हैं ।।१।। ये सभी पापों का नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाली हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति को एक हजार आज्याहुतियों से देवताओं की आराधना करनी चाहिए। हे राम! (इस

---

१ छ. °मवरोस्त्वि°। २ छ. अग्नये। ३ छ. °षन्नेवं ज°। ४ क. ख. छ. होमा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]मनसः काङ्क्षितं राम मनसेप्सितकामदम्। शान्तिकामो यवैः कुर्यात्तिलैः पापापनुत्तये ।।३।।
धान्यैः सिद्धार्थकैश्चैव सर्वकामकरैस्तथा। औदुम्बरीभिरिध्माभिः पशुकामस्य शस्यते ।।४।।
दध्ना चैवान्नकामस्य पयसा शान्तिमिच्छतः। अपामार्गसमिद्भिस्तु कामयन्कनकं बहु ।।५।।
कन्याकामो घृताक्तानि युग्मशो ग्रथितानि तु। जातीपुष्पाणि जुहुयाद्ग्रामार्थी तिलतण्डुलान् ।।६।।
वश्यकर्मणि शाखोट ([2]वासापामार्गमेव च। विषाश्रृङ्मिश्रसमिधो व्याधिघातस्य भार्गव ।।७।।
क्रुद्धस्तु जुहुयात्सम्यक्) शत्रूणां वधकाम्यया। सर्वव्रीहिमयीं कृत्वा राज्ञः प्रतिकृतिं द्विजः ।।८।।
सहस्रशस्तु जुहुया ([3]द्राजा वशगतो भवेत्। वस्त्रकामस्य पुष्पाणि दूर्वाव्याधिविनाशिनी ।।९।।
ब्रह्मवर्चसकामस्य वासोऽग्रं च विधीयते। प्रत्यङ्गिरेषु जुहुया) त्तुषकण्टकभस्मभिः ।।१०।।
विद्वेषणे च पक्ष्माणि काककौशिकयोस्तथा। कापिलं च घृतं हुत्वा तथा चन्द्रग्रहे द्विज ।।११।।
वचाचूर्णेन संपातात्समानीय च तां वचाम्। सहस्रमन्त्रितां भुक्त्वा मेधावी जायते नरः ।।१२।।
एकादशाङ्गुलं शङ्कुं लौहं खादिरमेव च। द्विषतो वधोऽसीति जपन्निखनेद्रिपुवेश्मनि ।।१३।।
उच्चाटनमिदं कर्म शत्रूणां कथितं तव। चक्षुष्या इति जप्त्वा च विनष्टं चक्षुराप्नुयात् ।।१४।।

प्रकार से किया हुआ यज्ञ कर्म) मनोभिलषित कामनाओं को प्रदान करनेवाला होता है। शान्ति की कामना करनेवाले व्यक्ति को (यह यज्ञ कर्म) जौ से करना चाहिए। और पापों का नाश करने के लिए तिलों से इसका अनुष्ठान करना चाहिए। सभी प्रकार की कामनाओं के लिए धान तथा श्वेत सरसों से यज्ञ करना चाहिए। पशुओं की कामना से गूलर की समिधाओं से किया गया यज्ञ श्रेष्ठ माना गया है ।।२-४।। अन्नकामी को दही तथा शान्ति की कामना करनेवाले को दूध से यज्ञ करना चाहिए। जो व्यक्ति बहुत-से सोने की कामना करता हो उसे अपामार्ग की समिधाओं से यज्ञ करना चाहिए। कन्या की इच्छा करनेवाले को घी में भिगोये हुए तथा दो-दो में बँधे हुए जाती पुष्पों की आहुति देनी चाहिए। वशीकरण के लिए शाखोट, वट और अपामार्ग की आहुति देनी चाहिए। हे परशुराम! व्याधि नाश करनेवाले यज्ञ में विष तथा रक्त से मिली हुई आहुतियाँ देनी चाहिए। क्रुद्ध व्यक्ति को शत्रुओं के वध की इच्छा से सम्यक् प्रकार से उपर्युक्त आहुति देनी चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण धान्यों से राजा की मूर्ति बनाकर उससे एक हजार आहुतियाँ देता है तो राजा उसके अधीन हो जाता है ।।५-८ $\frac{1}{2}$।। वस्त्र की इच्छा करनेवाले के लिए फूलों की आहुति बतायी गयी है। दूब की आहुति व्याधियों का विनाश करनेवाली हुआ करती है। ब्रह्मवर्चस् कामी को सुगन्धियुक्त आहुतियाँ देनी चाहिए और प्रत्यङ्गिरों में भूसी, काँटों तथा भस्म की आहुतियाँ देनी चाहिए। (परस्पर मित्रों में) विद्वेष कराने के लिए चन्द्रग्रहण के दिन कौवे और उल्लू के पंखों तथा कपिला गाय के घृत से आहुति देनी चाहिए ।।९-११।। वचा चूर्ण के ढेर से थोड़े-से चूर्ण को लेकर उसे एक सहस्र मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके खाने से मनुष्य मेधावी हो जाता है। 'द्विषतो वधोऽसीति' इस मन्त्र का जप करते हुए शत्रु के घर में ग्यारह अंगुल लम्बा लोहे अथवा खैर का शंकु (काँटा) गाड़ देना चाहिए। हे परशुराम! मैंने इस प्रकार तुमसे शत्रुओं के उच्चाटन कर्म को बतलाया है। 'चक्षुष्या' इत्यादि मन्त्र का जप करके नष्ट हुए नेत्र को प्राप्त किया जा सकता है ।।१२-१४।।

---

१ ङ. नमतः। २ वासापामार्गमेव·····जुहुयात्सम्यक् च. पुस्तके नास्ति। ३ द्राजा·····जुहुया च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपयुञ्जत इत्येतदनुवाकं तथाऽन्नदम्। तनूनपाग्ने सदिति दूर्वां हुत्वाऽर्तिवर्जितः ।।१५।।
भेषजमसीति दध्याज्यैर्होमः पशूपसर्गनुत्। त्रियम्बकं यजामहे होमः सौभाग्यवर्धनः ।।१६।।
कन्यानाम गृहीत्वा तु कन्यालाभकरः परः। भयेषु तु जपेन्नित्यं भयेभ्यो विप्रमुच्यते ।।१७।।
धुस्तूरपुष्पं सघृतं हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक्। हुत्वा तु गुग्गुलं राम स्वप्ने पश्यति शंकरम् ।।१८।।
युञ्जते मनोऽनुवाकं जप्त्वा दीर्घायुराप्नुयात्। विष्णो रराटमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।।१९।।
रक्षोघ्नं च यशस्यं च तथैव विजयप्रदम्। अयं नो अग्निरित्येत्संग्रामे विजयप्रदम् ।।२०।।
इदमापः प्रवहत स्नाने पापापनोदनम्। विश्वकर्मन्नु हविषा सूचीं लौहीं दशांगुलम् ।।२१।।
कन्याया निखनेद्द्वारि साऽन्यस्मै न प्रदीयते। देव सवितरेतेन हुतेनैतेन चान्नवान् ।।२२।।
अग्नौ स्वाहेति जुहुयाद्बलकामो द्विजोत्तमः। तिलैर्यवैश्च धर्मज्ञ तथाऽपामार्गतण्डुलैः ।।२३।।
सहस्रमन्त्रितां कृत्वा तथा गोरोचनां द्विज। तिलकं च तथा कृत्वा जनस्य प्रियतामियात् ।।२४।।
रुद्राणां च तथा जप्यं सर्वाघविनिषूदनम्। सर्वकर्मकरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः ।।२५।।
अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम्। मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ।।२६।।
ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव। उपद्रुतानां धर्मज्ञ व्याधितानां तथैव च ।।२७।।

'उपयुञ्जते' इत्यादि अनुवाक् (का जप) अन्न प्रदान करनेवाला है। 'तनूनपाग्ने सत्' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर दूर्वा की आहुति देने से दुःखों का नाश होता है। 'भेषजमसि' इत्यादि मन्त्र से दही और आज्य की आहुति पशुओं की पीड़ा को दूर करती है। 'त्रियम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र से किया गया हवन सौभाग्यवर्धन करता है। कन्या (विशेष) का नाम लेकर इस मन्त्र का जप करने से (उस) कन्या की प्राप्ति हो जाती है। किसी भय के उपस्थित होने पर नित्य इस मन्त्र का जप करने से (सभी प्रकार के) भयों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है ।।१५-१७।। (इस मन्त्र को पढ़कर) घी के साथ धतूरे के पुष्पों से हवन करने से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। अये राम! (इसी मन्त्र से) गुग्गुल की आहुति देने से स्वप्न में शंकर का दर्शन होता है। 'युञ्जते मनः' इत्यादि अनुवाक् का जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'विष्णोरराट' इत्यादि मन्त्र सभी विघ्न-बाधाओं का विनाशक होता है। यह मन्त्र राक्षसों का संहार करनेवाला, यश प्रदान करनेवाला तथा विजय दिलानेवाला है। 'अयं नो अग्निः' इत्यादि मन्त्र संग्राम में विजय दिलानेवाला है ।।१८-२०।। (स्नानकाल में) 'इदमापः प्रवहते' इत्यादि मन्त्र का जप करने से (सभी) पापों का नाश होता है। 'विश्वकर्मन्नु हविषा' इस मन्त्र से (अभीष्ट) कन्या के (घर के) द्वार पर दस अंगुल लम्बी लोहे की सुई गाड़ देने से वह कन्या दूसरे को नहीं दी जा सकती है। 'देव सवितरेतेन' इत्यादि मन्त्र से आहुति देने से अन्न लाभ होता है। अये धर्मज्ञ! बल चाहनेवाले श्रेष्ठ द्विज को 'अग्नौ स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से तिल, यव, अपामार्ग और तण्डुल की आहुतियाँ देनी चाहिए। हे द्विज! इसी प्रकार उक्त मन्त्र के गोरोचन को एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करके उसके तिलक लगाने से मनुष्य लोकप्रिय हो जाता है ।।२१-२४।। रुद्र मन्त्रों (रुद्राध्याय) का जप समस्त पापों का नाश करनेवाला होता है। (रुद्र मन्त्रों से किया गया) हवन सभी कार्यों को सिद्ध करनेवाला तथा सर्वत्र शान्ति प्रदान करनेवाला है। अये भार्गव! बकरे, भेड़े, घोड़े, हाथी, बैल, मनुष्य, राजा, बालक, स्त्री, गाँव, नगर तथा देश के ऊपर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]मरके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये। रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ।।२८।।
कूष्माण्डघृतहोमेन सर्वान्पापान्व्यपोहति। सक्तुयावकभैक्षासी नक्तं मनुजसत्तम ।।२९।।
बहिः स्नानरतो मासान्मुच्यते ब्रह्महत्यया। मधुवातेति मन्त्रेण होमादितोऽखिलं लभेत् ।।३०।।
दधिक्राव्णोति हुत्वा तु पुत्रान्प्राप्नोत्यसंशयम्। तथा घृतवतीत्येतदायुष्यं स्याद्घृतेन तु ।।३१।।
स्वस्ति न इन्द्र इत्येतत्सर्वबाधाविनाशनम्। इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम् ।।३२।।
घृताहुतिसहस्रेण तथाऽलक्ष्मीविनाशनम्। स्रुवेण देवस्य त्वेति हुत्वाऽपामार्गतण्डुलम् ।।३३।।
मुच्यते विकृताच्छीघ्रमभिचारान्न संशयः। [2]रुद्र [3]यत्ते पलाशस्य सभिद्भिः कनकं लभेत् ।।३४।।
शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते व्रीहिभिर्जुहुयान्नरः। याः सेना इति चैतच्च तस्करेभ्यो भयापहम् ।।३५।।
यो [4]अस्मभ्यमरातीयाद्धुत्वा कृष्णतिलान्नरः। सहस्रशोऽभिचाराच्च मुच्यते विकृताद्द्विज ।।३६।।
अन्नेनान्नपतेत्येवं हुत्वा चान्नमवाप्नुयात्। हंसः शुचिषदित्येतज्जप्तं तोयेऽघनाशनम्[5] ।।३७।।
[6]चत्वारि शृङ्ग इत्येत्सर्वपापहरं जले। देवा यज्ञेति जप्त्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ।।३८।।

विपत्ति आने पर अथवा महामारी तथा शत्रु का भय उत्पन्न होने पर रुद्रमन्त्रों से घी और करवीर की आहुतियाँ देने से बिलकुल शान्ति हो जाती है ।।२५-२८।। अये राजन्! रात्रि में सत्तू, जौ की काँजी तथा भिक्षान्न को खाकर और (उक्त मन्त्रों को पढ़कर) कुम्हड़े तथा घी की आहुतियाँ देने से सभी पापों का नाश हो जाता है। अये! एक मास तक 'बहिः स्नान' नामक कर्म करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्र से आहुतियाँ देने पर सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। 'दधिक्राव्णा' इत्यादि मन्त्र से आहुतियाँ देने पर निश्चय ही पुत्रों की प्राप्ति होती है। 'घृतवती' इस मन्त्र को पढ़कर दी गयी घी की आहुति (दीर्घ) आयु की प्राप्ति करानेवाली होती है। 'स्वस्ति न इन्द्र' इत्यादि मन्त्र समस्त विघ्न-बाधाओं का नाश करनेवाला है। 'इह गावः प्रजायध्वम्' यह मन्त्र पुष्टिवर्धक है। इसे पढ़कर एक हजार घी की आहुतियाँ देने से दरिद्रता का नाश हो जाता है ।।२९-३२$\frac{1}{2}$।। 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से स्रुवा पर अपामार्ग और तण्डुल चढ़ाकर आहुति देने से शीघ्र ही विकृत अभिचारों (मारण, मोहन आदि उपद्रवों) का नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। 'रुद्र यत्ते' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पलाश की समिधाओं से यज्ञ करने से सुवर्ण लाभ होता है। अग्नि का उत्पात होने पर 'शिवो भव' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर धान से यज्ञ करना चाहिए। 'याः सेना' इत्यादि मन्त्र चोरों के भय को दूर करनेवाला है ।।३३-३५।। अये द्विज! 'या अस्मभ्यमरातीयात्' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर कृष्ण तिल से एक सहस्र आहुतियाँ डालने से मनुष्य विकृत अभिचारों से मुक्त हो जाता है। 'अन्नेनान्नपते' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने से अन्न की प्राप्ति होती है। जल में 'हंसः शुचिषत्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से पापों का नाश होता है। जल में 'चत्वारिशृङ्ग' इत्यादि मन्त्र का जप सभी पापों का नाश करनेवाला है। 'देवा यज्ञ' इत्यादि मन्त्र के जप से मनुष्य ब्रह्मलोक में महत्त्व को प्राप्त कर लेता है। 'वसन्त' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर आज्याहुति देने से सूर्य से वरदान की प्राप्ति होती है। 'सुपर्णोऽसि' इत्यादि मन्त्र का जप

---

१ क. ङ. च. मकरे। ख. ग. नरके। २ क. ङ. रुद्रं यत्ते। ३ छ. °द्र पातु प°। ४ ख. ग. घ. °मयाती। ५ ख. ग. घ. तोयोघ°। ६ छ. °रि भृङ्गेत्वेतत्तु सर्व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वसन्तेति च हुत्वाऽऽज्यमादित्याद्वरमाप्नुयात् । सुपर्णोऽसीति चेत्यस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ।।३९।।
नमः स्वाहेति त्रिर्जप्त्वा बन्धनान्मोक्षमाप्नुयात् । अन्तर्जले त्रिरावर्त्य द्रुपदां सर्वपापमुक् ।।४०।।
इह गावः प्रजायध्वं मन्त्रोऽयं बुद्धिवर्धनः । हुतं तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा[1] ।।४१।।
शं नो देवेति चैतेन हुत्वा पर्णफलानि च । आरोग्यं श्रियमाप्नोति जीवितं च चिरं तथा ।।४२।।
ओषधीः प्रतिमो दध्वं वपने लवनेऽर्थकृत् । अश्वावती पायसेन होमाच्छान्तिमवाप्नुयात्[2] ।।४३।।
तस्मा इति च मन्त्रेण बन्धनस्थो विमुच्यते । युवा सुवासा इत्येव वासांस्याप्नोति चोत्तमम् ।।४४।।
मुञ्चन्तु मा शपथ्या(था)[3]दिसर्वकिल्विषनाशनम् । मा मा हिंसीस्तिलाज्येन[4] हुतं रिपुविनाशनम् ।।४५।।
नमोऽस्तु[5] सर्पेभ्यो हुत्वा घृतेन पायसेन तु । [6]कृणुष्व पाज इत्येतदभिचारविनाशनम् ।।४६।।
दूर्वाकाण्डायुतं हुत्वा काण्डात्काण्डेति मानवः । ग्रामे जनपदे वाऽपि [7]मरकं तु शमं नयेत् ।।४७।।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगात्तथा दुःखात्तुदुःखितः । औदुम्बरीश्च समिधो मधुमान्नो वनस्पतिः ।।४८।।
हुत्वा सहस्रशो राम धनमाप्नोति मानवः । [8]सौभाग्यं महदाप्नोति व्यवहारे तथा जयम् ।।४९।।
अपां गर्भमिति हुत्वा देवं वर्षापयेद्ध्रुवम् । अपः पिबेति च तथा हुत्वा दधि घृतं मधु[9] ।।५०।।

करने से कर्म व्याहृतियों की तरह (पवित्र तथा फलदायक) हो जाता है। 'नमः स्वाहा' इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप करने से (सभी प्रकार के) बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। जल के भीतर 'द्रुपदाम्' इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप सभी पापों का नाशक हुआ करता है ।।३६-४०।। 'इह गावः प्रजायध्वम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर घी, दही, दूध और खीर से हवन करने पर बुद्धि की वृद्धि होती है। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पत्रों तथा फलों से हवन करने से मनुष्य को आरोग्य, धन तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'ओषधीः प्रतिमोदध्वम्' इत्यादि मन्त्र (अनाज के) बोने तथा काटने में लाभदायक होता है। 'अश्वावती' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर खीर से हवन करने पर शान्ति प्राप्ति होती है। 'तस्मै' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने पर बन्धन में पड़ा हुआ मुक्त हो जाता है। 'युवा सुवासाः' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने पर उत्तम वस्त्रों की प्राप्ति होती है। 'मुञ्चन्तु मा शपथ्या' इत्यादि मन्त्र सभी पापों का नाश करनेवाला है। 'मा मा हिंसीः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तिल और घी की आहुति देने से शत्रुओं का नाश होता है ।।४१-४५।। 'नमोऽस्तु' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तथा घी और खीर से यज्ञ करने पर सर्पों का भय नहीं होता। 'कृणुष्व पाजः' इत्यादि मन्त्र अभिचारों का नाश करनेवाला है। 'काण्डात्काण्ड' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर दस हजार दूर्वाओं के पोरों से आहुतियाँ डालने से ग्राम तथा जनपद (देश) में महामारी का उपद्रव नहीं होता है। इससे रोगियों के रोग तथा दुःखियों के दुःख का भी नाश होता है। अये परशुराम! जो मनुष्य 'मधुमान्नो वनस्पतिः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर गूलर की समिधाओं से एक हजार आहुतियाँ देता है उसे धन तथा महान् सौभाग्य की प्राप्ति होती है और वह लोक-व्यवहार में विजयी होता है। 'अपागर्भम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर आहुतियाँ देने से निश्चय ही वर्षा होती है। अये धर्मज्ञ! उसी प्रकार 'आपः पिब' इत्यादि मन्त्र पढ़कर दही, घी एवं मधु से आहुतियाँ देने पर महावृष्टि होती है ।।४६-५०$\frac{1}{2}$।। 'नमस्ते रुद्र' यह मन्त्र

---

१ छ. वा। शतं य इति। २ क. ख. ग. ङ. च °त्। उच्छुष्मा इति चैतेन पवनस्थो। ३ छ. सर्वान्त कविना°। ४ क. ङ. °सीतिबाह्येन। ५ छ. °स्तु सर्वसर्पेभ्यो घृ°। ६ छ. °णुध्वं राज। ७ छ. मकरं। ८ क. ङ. °ग्यं धनमाप्नो°। ९ क. ङ. पयः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रवर्तयति धर्मज्ञ महावृष्टिमनन्तरम् । नमस्ते रुद्र इत्येतत्सर्वोपद्रवनाशनम् ।।५१।।
सर्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् । अध्यवोचदित्यनेन रक्षणं व्याधितस्य तु ।।५२।।
रक्षोघ्नं च यशस्यं च[1] चिरायुः पुष्टिवर्धनम् । सिद्धार्थकानां क्षेपेण पथि चैतज्जपन्सुखी ।।५३।।
असौ यस्ताम्र इत्येतत्पठन्नित्यं दिवाकरम् । उपतिष्ठेत धर्मज्ञ सायं प्रातरतन्द्रितः ।।५४।।
[2]अन्नमक्षयमाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति । प्रमुञ्च धन्वन्नित्येत्तत्षड्भिरायुधमन्त्रणम् ।।५५।।
रिपूणां भयदं युद्धे नात्र कार्या विचारणा । मा नो महान्त इत्येवं बालानां शान्तिकारकम् ।।५६।।
नमो हिरण्यवाहव इत्यनुवाकसप्तकम् । राजिकां कटुतैलाक्तां जुहुयाच्छत्रुनाशनीम् ।।५७।।
नमो वः किरिकेभ्यश्च[3] पद्मलक्षकृतैर्नरः । राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति तथा बिल्वैः सुवर्णकम् ।।५८।।
इमा रुद्रायेति तिलैर्होमाच्च धनमाप्यते । दूर्वाहोमेन [4]चाऽऽज्येन सर्वव्याधिविवर्जितः ।।५९।।
आशुः शिशान इत्येतदायुधानां च रक्षणे । ([5]संग्रामे कथितं राम सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।।६०।।
वाजश्चमेति जुहुयात्सहस्रं पञ्चभिर्द्विज । आज्याहुतीनां धर्मज्ञ चक्षूरोगाद्विमुच्यते) ।।६१।।
शं नो[6] वनस्पतये गृहे होमः स्याद्वास्तुदोषनुत् । अग्न आयूंषिहुत्वाऽऽज्यं द्वेषं नाऽऽप्नोति केनचित् ।।६२।।
अपां फेनेति लाजाभिर्हु (जैश्च हु) त्वा जयमवाप्नुयात् । भद्रा इतीन्द्रियैर्हीनो जपन्स्यात्सकलेन्द्रियः ।।६३।।

सभी उपद्रवों तथा महापातकों का नाशक और सर्वशान्तिकारक है। 'अध्यवोचत्' इत्यादि मन्त्र से रोग नाश, राक्षसों का नाश और यश, दीर्घायु तथा पुष्टि की वृद्धि होती है। इस मन्त्र को पढ़ते हुए मार्ग में उजले सरसों छिटकाने से मनुष्य सुखी होता है। अये धर्मज्ञ! जो व्यक्ति नित्य सायं-प्रातःकाल आलस्यरहित होकर 'असौ यस्ताम्र' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का उपस्थान करता है, उसे अक्षय अन्न तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'प्रमुञ्च धन्वन्' इत्यादि मन्त्र से छह बार अभिमन्त्रित किये गये अस्त्र युद्ध में शत्रुओं के लिए भयदायक होते हैं, इसमें (तनिक भी) संशय नहीं है ।।५१-५५½।। 'मा नो महान्त' इत्यादि मन्त्र बालकों के लिए शान्तिकारक है। 'नमो हिरण्यवाहवे' इत्यादि सातों अनुवाकों को पढ़कर कड़ुवे तेल में भिगोयी हुई राई से हवन करने पर शत्रु का नाश होता है। 'नमो वः किरिकेभ्यश्च' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर एक लाख कमलों से आहुति देनेवाला मनुष्य राज्य वैभव प्राप्त करता है। (इसी मन्त्र को पढ़कर) बिल्वपत्रों से आहुति देनेवाले को सुवर्ण की प्राप्ति होती है। 'इमा रुद्राय' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घी और दूर्वा से आहुति देने पर सभी व्याधियों का नाश हो जाता है। अये परशुराम! 'आशुः शिशानः' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित शस्त्र संग्राम में समस्त शत्रुओं का वध कर देता है ।।५६-६०।। अये द्विज! 'वाजश्चमेति' इत्यादि मन्त्र से पाँच हजार आज्याहुतियाँ डालने से नेत्र रोगों से मुक्ति मिल जाती है। गृह में 'शं नो वनस्पते' इत्यादि मन्त्र से हवन करने से वास्तुदोष (डीह की बुराइयाँ) दूर हो जाते हैं। 'अग्ने आयूंषि' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर आज्याहुतियाँ डालने से किसी से वैर नहीं होने पाता है। 'अपां फेन' इत्यादि मन्त्र से खीलों की आहुतियाँ डालनेवाला मनुष्य विजय प्राप्त करता है। (किसी) इन्द्रिय से हीन मनुष्य 'भद्रा इति' इत्यादि मन्त्र का जप करके सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है। 'अग्निश्च पृथिवी

---

१ क. ङ. च. पीत्वाऽऽयुः°। २ क. ङ. अर्थम°। ३ क. ङ. च. छ. °लक्षाहुतैः°। ४ ख. चानेन। छ. चान्येन। ५ संग्रामे···चक्षु-रोगाद्विमुच्यते ग. पुस्तके नास्ति। ६ ख. नो भवस्येति गृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निश्च पृथिवी चेति वशीकरणमुत्तमम् । अध्वनेति जपन्मन्त्रं व्यवहारे जयी भवेत् ।।६४।।
ब्रह्मराजन्यमिति च कर्मारम्भे तु सिद्धिकृत् । संवत्सरोऽसीति घृतैर्लक्षहोमादरोगवान् ।।६५।।
केतुं कृण्वन्नितीत्येतत्संग्रामे जयवर्धनम् । इन्द्रोऽग्निर्धर्म इत्येतद्रणे धर्मनिबन्धनम् ।।६६।।
[1]धनुर्नागेति मन्त्रश्च धनुर्ग्रहिणिकः परः । यजीतेति(?) तथा मन्त्रो विज्ञेयो ज्याभिमन्त्रणे ।।६७।।
मन्त्रश्चा [2]हिरिवेत्येतच्छराणां मन्त्रणे भवेत् । वह्नीनां पितरित्येतत्तूणमन्त्रः प्रकीर्तितः ।।६८।।
युञ्जतीति तथाऽश्वानां योजने मन्त्र उच्यते । आशुः शिशान इत्येतद्यात्रारम्भणमुच्यते ।।६९।।
विष्णोः क्रमेतिमन्त्रश्च रथारोहणिकः परः । [3]आजङ्घतीति चाश्वानां ताडनीयमुदाहृतम् ।।७०।।
याः सेना अभित्वरीति परसैन्यमुखे जपेत् । दुन्दुभ्य इति चाप्येतद्दुन्दुभीताडनं भवेत् ।।७१।।
एतैः पूर्वहुतैर्मन्त्रैः कृत्वैवं [4]विजयी भवेत् । यमेन दत्तमित्यस्य कोटिहोमाद्विचक्षणः ।।७२।।
रथमुत्पादयेच्छीघ्रं संग्रामे विजयप्रदम् । आ कृष्णेति तथैतस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ।।७३।।
शिवसंकल्पजापेन समाधिं मनसो लभेत् । पञ्चनद्यः(?) पञ्चलक्षं हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात् ।।७४।।
[5]यदा वध्नन्दाक्षायणां मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् । सहस्रकृत्वः कनकं धारयेद्रिपुवारणम् ।।७५।।
इमं जीवेभ्य इति च शिलां लोष्टं चतुर्दिशम् । क्षिपेद्गृहे तदा तस्य न स्याच्चौरभयं निशि ।।७६।।

च' इत्यादि मन्त्र वशीकरण के लिए उत्तम है। 'अध्वन्' इत्यादि मन्त्र का जप करनेवाला व्यक्ति लोक-व्यवहार में विजयी (चतुर) होता है ।।६१-६४।। कार्यारम्भ में 'ब्रह्मराजन्यम्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से कार्य-सिद्धि होती है। 'संवत्सरोऽसि' यह पढ़कर घी की एक हजार आहुतियाँ देने से मनुष्य नीरोग रहता है। 'केतुं कृण्वन्' यह मन्त्र संग्राम में विजय को बढ़ाता है। 'इन्द्रोऽग्निर्धर्म' यह मन्त्र रण में मनुष्य को (रण के) नियमों के प्रति आस्थावान् बनाये रखता है। धनुष धारण के समय 'धनुर्नाग' इत्यादि मन्त्र का जप उत्तम (माना गया) है। उसी तरह धनुष को अभिमन्त्रित करने के लिए 'यजीत' इत्यादि मन्त्र उत्तम माना गया है। 'अहिरिव' इत्यादि मन्त्र से बाणों को अभिमन्त्रित करना चाहिए। 'वह्नीनां पितः' इत्यादि मन्त्र तरकस (को अभिमन्त्रित करने) के लिए कहा गया है ।।६५-६८।। 'युञ्जति' यह मन्त्र अश्वों को (रथादि में) जोतने के लिए कहा गया है। 'आशुः शिशानः' इत्यादि मन्त्र यात्रारम्भ-काल का है। 'विष्णोः क्रम' इत्यादि मन्त्र रथ पर चढ़ने का है। 'आजङ्घति' इत्यादि मन्त्र से अश्वों का ताड़न करना चाहिए। 'याः सेना अभित्वरि' इत्यादि मन्त्र सेनाओं को प्रोत्साहित करने का है। 'दुन्दुभ्य' इत्यादि मन्त्र से दुन्दुभी बजाना चाहिए। इस प्रकार इस पूर्वकथित यज्ञ को करनेवाला मनुष्य विजयी होता है। 'यमेन दत्तम्' इस मन्त्र से एक करोड़ हवन करनेवाला बुद्धिमान् व्यक्ति शीघ्र संग्राम में विजयदायक रथ का निर्माण कर लेता है। 'आकृष्ण' इत्यादि मन्त्र का जप करने से कर्म व्याहृतियों की भाँति (पवित्र तथा फलप्रद) हो जाता है ।।६९-७३।। 'शिव संकल्प' सूक्त का जप करने से मन स्थिर हो जाता है। 'पञ्चनद्यः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पाँच लाख आहुतियाँ डालने से लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। 'यदा बध्नन्दाक्षायणाम्' इस मन्त्र से एक हजार बार सुवर्ण को अभिमन्त्रित करके धारण करने से शत्रु का निवारण होता है। 'इमं जीवेभ्यः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घर के चारों ओर कंकड़-पत्थर फेंकने से रात्रि में चोरों

---

१ छ. धन्वा नागे। २ छ. °हिरथेत्ये°। ३ छ. °जङ्घेती°। ४ क. ङ. विनियोजयेत्। ५ छ. °दा वधूं दाक्षा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परि मे गामनेनेति वशीकरणमुत्तमम् । हन्तुमभ्यागतस्तत्र वशी भवति मानवः ।।७७।।
भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्यं मन्त्रितं तु प्रयच्छति । यस्य धर्मज्ञ वशगः सोऽस्य शीघ्रं भविष्यति ।।७८।।
शं नो मित्र इतीत्येतत्सदा सर्वत्र शान्तिदम् । गणानां त्वा गणपतिं कृत्वा होमं चतुष्पथे ।।७९।।
वशीकुर्याज्जगत्सर्वं सर्वधान्यैरसंशयम् । हिरण्यवर्णाः शुचयो मन्त्रोऽयमभिषेचने ।।८०।।
शं नो देवीरभिष्टये तथा शान्तिकरः परः । एकचक्रेति मन्त्रेण हूतेनाऽऽज्येन भागशः ।।८१।।
ग्रहेभ्यः शान्तिमाप्नोति प्रसादं न च संशयः । गावो भग इति द्वाभ्यां हुत्वाऽऽज्यंगा अवाप्नुयात् ।।८२।।
प्रवादां षः(?)सोपदिति गृ(ग्र)हयज्ञे विधीयते । देवेभ्यो वनस्पत इत द्रुमयज्ञे विधीयते ।।८३।।
गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णोः परमं पदम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकामकरं तथा[1] ।।८४।।

इत्यादि महापुराण आग्नेये यजुर्विधानकथनं नाम
षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६०।।

का भय नहीं होता है। 'परि मे गामनेन' इत्यादि मन्त्र वशीकरण के लिए उत्तम है। इसका जप करने से वध करने के लिए आया हुआ बधिक भी वशीभूत हो जाता है। अये धर्मज्ञ! इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भोजन, ताम्बूल तथा पुष्प आदि जिसको दिया जाता है, वह शीघ्र ही वशीभूत हो जाता है।।७४-७८।। 'शं नो मित्र' इत्यादि मन्त्र सदा सर्वत्र शान्ति को देनेवाला है। 'गणानां त्वा गणपतिं' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर चौराहे पर समस्त धान्यों से हवन करने से सम्पूर्ण जगत् वशीभूत हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। 'हिरण्यवर्णाः शुचयः' इत्यादि मन्त्र अभिषेक के लिए माना गया है। 'शं नो देवीरभिष्टय' इत्यादि मन्त्र परम शान्ति को देनेवाला है। 'एक चक्र' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर ग्रहों के लिए अलग-अलग आज्याहुतियों से शान्ति मिलती है तथा ग्रह अनुकूल हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। 'गावो भग' इत्यादि मन्त्र से दो आज्याहुतियाँ देने से गायों की प्राप्ति होती है। 'प्रवादां षः सोपत्' इत्यादि मन्त्र का विनियोग गृहयज्ञ में किया जाता है और 'देवेभ्यो वनस्पतये' यह मन्त्र वृक्षयज्ञ में विहित है। गायत्री विष्णु का छन्द है, उसे विष्णु का परम पद समझना चाहिए। यह सभी पापों का नाश करनेवाला तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला (हुआ करता) है ।।७९-८४।।

श्री अग्निमहापुराण में यजुर्विधान कथन नामक दो सौ साठवाँ
अध्याय समाप्त ।।२६०।।

---

१ क. ङ. शुभम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामविधानम्

पुष्कर उवाच

यजुर्विधानं कथितं वक्ष्ये साम्नां विधानकम् । संहितां वैष्णवीं जप्त्वा हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् ।।१।।
संहितां छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शंकरम् । स्कान्दीं पैत्र्यां संहितां च जप्त्वास्यात्तु प्रसादवान् ।।२।।
यत इन्द्र[1]भयामहे हिंसादोषविनाशनम् । अवकीर्णी मुच्यते च अग्निस्तिग्मेति वै जपन् ।।३।।
सर्वपापहरं ज्ञेयं परितोषं च तासु च । अविक्रेयं च विक्रीय जपेद्घृतवतीति[2] च ।।४।।
[3]अद्या नो देव सवितर्ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् । अबोध्यग्निरिति मन्त्रेण घृतं राम यथाविधि ।।५।।
अभ्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते । स्त्रीणां यासां तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम ।।६।।
मणिं जातस्य बालस्य बध्नीयात्तदनन्तरम् । सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ।।७।।
सर्पसाम प्रयुञ्जानो नाऽऽप्नुयात्सर्पजं भयम् । माऽघ त्वा वाद्यतेत्येतद्धुत्वा(?) विप्रः सहस्रशः ।।८।।

अध्याय २६१

सामविधान

पुष्कर बोले–मैं यजुर्विधान बतला चुका हूँ अब सामविधान बतलाऊँगा। वैष्णवी संहिता का जप तथा उससे हवन करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। छान्दसी संहिता का भली–भाँति जप करने से भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट होते हैं। स्कन्द संहिता तथा पितृ संहिता का जप करने से प्रसन्नता प्राप्त होती है। 'यत इन्द्र भयामहे' इत्यादि मन्त्र का जप करने से हिंसाजन्य दोष नष्ट होता है। 'अग्निस्तिग्म' इत्यादि मन्त्र का जप करने से भङ्गव्रती व्यक्ति पाप–मुक्त हो जाता है। यह मन्त्र समस्त पापों का नाश करनेवाला तथा आनन्द देनेवाला है। जो न बेचने योग्य वस्तु को बेचता है उसे (उसका प्रायश्चित्त करने के लिए) 'घृतवती' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए ।।१–४।। 'अद्या नो देव सवितः' यह मन्त्र दुःस्वप्न का नाशक है। अये भृगुश्रेष्ठ परशुराम! जिन स्त्रियों के गर्भ नष्ट हो जाते हैं उनका मेखला बन्धन करने ने लिए पहले 'अबोध्यग्निः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर विधिपूर्वक घी से हवन करना चाहिए। पश्चात् अवशिष्ट घी को मेखला पर छिड़ककर उसे उन स्त्रियों को बाँध देना चाहिए ।।५–६।। तदनन्तर बालक के जन्म होने पर तब उसे भी 'सोमं राजानम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर मणि (मेखला) बाँध देनी चाहिए। इससे सभी व्याधियों से मुक्ति हो जाती है ।।७।। 'सर्पसाम' (मन्त्र) का प्रयोग करने से सर्पों का भय नहीं रहता है। 'माऽघत्वा–वाद्यते' इत्यादि मन्त्र से एक हजार बार हवनकर शतावरी (औषध–विशेष) की मणि बाँधने से ब्राह्मण को शस्त्र–

---

१ छ. इन्द्रं भजाम°। २ क. ङ. च. शं नो देवः सवितेति ज्ञेयं। ३ छ. अया।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शतावरि(री)मणिं बद्ध्वा नाऽऽप्नुयाच्छ[1]स्त्रतो भयम्। [2]दीर्घतमसोऽर्क इति हुत्वाऽन्नं प्राप्नुयाद्बहु ।।९।।
समध्यायन्तीति जपन्न म्रियेत पिपासया। त्वमिमा ह्योषधीत्येतज्जप्त्वा व्याधिं न चाऽऽप्नुयात् ।।१०।।
पथि देवव्रतं जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते। यदिन्द्रो मुनये त्वेति हुतं सौभाग्यवर्धनम् ।।११।।
भगो न चित्र[3] इत्येवं नेत्रयोरञ्जनं हितम्। सौभाग्यवर्धनं राम नात्र कार्या विचारणा ।।१२।।
[4]जपेदिन्द्रेति वर्गं च तथा सौभाग्यवर्धनम्। परि प्रिया हि वः कारिः(?)काम्यां संस्त्रावयेत्स्त्रियम् ।।१३।।
सा तं कामयते राम नात्र कार्या विचारणा। रथंतरं वामदेव्यं ब्रह्मवर्चसवर्धनम् ।।१४।।
प्राशयेद्बालकं नित्यं वचाचूर्णं घृतप्लुतम्। इन्द्रमिद्गाथिनं जप्त्वा भवे[5]च्छ्रुतिधरस्त्वसौ ।।१५।।
हुत्वा रथंतरं जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयम्। मयि श्रीरिति मन्त्रोऽयं जप्तव्यः श्रीविवर्धनः ।।१६।।
वैरूप्यस्याष्टकं नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत्। सप्ताष्टकं प्रयुञ्जानः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।१७।।
गव्येषुणेति यो नित्यं सायं प्रातरतन्द्रितः। उपस्थानं गवां कुर्यात्तस्य स्युस्ता सदा गृहे ।।१८।।
घृताक्तं तु यव द्रोणं वात आवातु भेषजम्। अनेन हुत्वा विधिवत्सर्वां मायां व्यपोहति ।।१९।।
प्रदेवो दासेन तिलान्हुत्वा [6]कार्मणकृन्तनम्। अभि [7]त्वां शूर नोनुमो वषट्कारसमन्वितम् ।।२०।।
[8]वामदेव्यसहस्त्रं तु हुतं युद्धे जयप्रदम्। हस्त्यश्वपुरुषान्कुर्याद्बुधः पिष्टमयाञ्शुभान् ।।२१।।

भय नहीं होता। 'दीर्घ तमसोऽर्क' इत्यादि मन्त्र से हवन करने पर प्रचुर अन्न की प्राप्ति होती है ।।८-९।। 'समध्यायन्ति' इत्यादि मन्त्र का जप करने से (कोई भी व्यक्ति) प्यास से नहीं मरता है। 'त्वमिमा ह्योषधि' इत्यादि मन्त्र का जप करने से व्याधि नहीं होती है ।।१०।। मार्ग में देवव्रत मन्त्र का जप करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। 'यदिन्द्रो मुनये त्वा' इत्यादि मन्त्र सौभाग्य की वृद्धि करनेवाला है ।।११।। अये परशुराम! 'भगो न चित्र' इत्यादि मन्त्र से नेत्रों में अञ्जन लगाने से कल्याण होता है। यह मन्त्र सौभाग्य को भी बढ़ानेवाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।१२।। 'इन्द्र' इत्यादि मन्त्र का जप करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है। 'परि प्रिया हि वः कारिः' यह मन्त्र किसी प्रतिकूल कामिनी को सुना देने से वह अनुकूल बन जाती है, इसमें भी कुछ संशय नहीं है ।।१३।। वामदेव ऋषि के द्वारा दृष्ट रथन्तर साम ब्रह्मतेज को बढ़ानेवाला होता है। 'इन्द्रमिद्गाथी' इत्यादि मन्त्र का जप करके घृतमिश्रित बचा चूर्ण बालक को नित्य खिलाने से वह श्रुतिशील हो जाता है ।।१४-१५।। रथन्तर साम का जप तथा उससे हवन करने से निश्चय ही पुत्र की प्राप्ति होती है। 'मयि श्रीः' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए क्योंकि इससे श्रीवृद्धि होती है। वैरूप्याष्टक साम का जप करने से धनलाभ होता है। सप्ताष्टक का जप करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।।१६-१७।। नित्य सायं-प्रातःकाल निरालस्य होकर जो मनुष्य 'गव्येषुणा' इत्यादि मन्त्र से गायों का उपस्थान करता है उसके घर में गायें सदा निवास किया करती हैं ।।१८।। 'वात आवातु भेषजम्' इत्यादि मन्त्र से घृतमिश्रित यव से विधिपूर्वक हवन करके मनुष्य सभी माया (मोह) से अलग हो जाता है ।।१९।। 'प्रदेवो दासेन' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तिल से हवन करने से मनुष्य सभी कर्मों में दक्ष हो जाता है। वषट्कार सहित 'अभि त्वा शूर नो नुमः' इत्यादि मन्त्र तथा वामदेव ऋषि द्वारा इष्ट सहस्त्र मन्त्रों से हवन करने पर युद्ध में विजय होती है। बद्धिमान् व्यक्ति को अपने शत्रु

---

१ क. ङ. °च्छत्रुतो। २ क. ङ. दीर्घ° चमसोऽर्घ इ°। ३ ख. ग. मित्र। ४ जपेदिन्द्रेति···विचारणा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ क. ङ. °वेद्भूति°। ६ क. ङ. कर्मनिकृन्तनम्। ७ छ. त्वा पूर्वपीतये व°। ८ छ. वासकेध्मस°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परकीयानथोद्दिश्य प्रधानपुरुषांस्तथा । सुस्विन्नान्पिष्टकबरान्क्षुरेणोत्कृत्य भागशः ।।२२।।
अभि त्वा शूर नोनुमो मंत्रेणानेन मंत्रवित् । कृत्वा सर्षपतैलाक्तान्क्रोधेन जुहुयात्ततः ।।२३।।
एतत्कृत्वा बुधः कर्म सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात् । गारुडं वामदेव्यं च रथंतरबृहद्रथौ ।।
सर्वपापप्रशमनाः कथिताः संशयं विना ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामविधानं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६१।।

अथ द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथर्वविधानम्

पुष्कर उवाच

साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्वणामथ । [1]शान्तातीयं गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः ।।१।।
भैषज्यं च गणं हुत्वा सर्वान्रोगान्व्यपोहति । त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२।।
क्वचिन्नाऽऽप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयं गणम् । न क्वचिज्जायते राम गणं हुत्वाऽपराजितम् ।।३।।
आयुष्यं च गणं हुत्वा ह्यपमृत्युं व्यपोहति । स्वस्तिमाप्नोति सर्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनं गणम् ।।४।।
श्रेयसा योगमाप्नोति शर्मवर्मगणं तथा । वास्तोष्पत्यगणं हुत्वा वास्तुदोषान्व्यपोहति ।।५।।

के हाथी, घोड़े, सिपाही, मन्त्री आदि-आदि की प्रतिमाएँ पिसे हुए चावल से भली-भाँति बनाकर सरसों के तेल में भिगो देना चाहिए। तदनन्तर चाकू से प्रतिमाओं को काट-काटकर 'अभित्वा शूर नो नुमः' इत्यादि मन्त्र से हवन करना चाहिए ।।२०-२३।। ऐसा करने से संग्राम में उसकी विजय अवश्य होती है। गरुड़, वामदेव्य, रथन्तर तथा बृहद्रथ-ये साम निश्चय ही पापनाशक कहे गये हैं ।।२४।।

श्री अग्निमहापुराण में सामविधान नामक दो सौ इक्सठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६१।।

अध्याय २६२

अथर्वविधान

पुष्कर बोले-साम का विधान तो मैं कह ही चुका हूँ, अब अथर्वण विधान बताऊँगा। शान्तातीयगण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है ।।१।। भैषज्यगण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य रोगों से मुक्त होता है, त्रिसप्तीयगण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य कहीं भी भय को प्राप्त नहीं करता है। अये परशुराम! अपराजित गण मन्त्रों से आहुतियाँ देने पर कहीं भी पराजय नहीं होती है। आयुष्यगण मन्त्रों से दी गयी आहुति अपमृत्यु का निवारण करती है। स्वस्त्ययनगण मन्त्रों से दी गयी आहुति से सर्वत्र कल्याण की प्राप्ति होती है ।।२-४।। शर्मवर्मगण मन्त्रों से दी गयी आहुति कल्याण करती है। वास्तोष्पत्यगण मन्त्रों से दी गयी आहुति वास्तुदोष नष्ट करती है और रौद्रगण

---

१ ख. ग. शातातीयं। ङ. च. शंरातीयं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा रौद्रगणं हुत्वा सर्वान्दोषान्व्यपोहति। एतैर्दशगुणैर्होमो ह्यष्टादशसु शान्तिषु ।।६।।
वैष्णवी शान्तिरैन्द्री च ब्राह्मी रौद्री तथैव च। वायव्या वारुणी चैव कौवेरी भार्गवी तथा ।।७।।
प्राजापत्या तथा त्वाष्ट्री कौमारी वह्निदेवता। मारुद्गणा च [1]गान्धारी शान्तिर्नैर्ऋतकी तथा ।।८।।
शान्तिराङ्गिरसी याम्या पार्थिवी सर्वकामदा। यस्त्वां मृत्युरिति ह्येतज्जप्तं मृत्युविनाशनम् ।।९।।
सुपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजगैर्नैव बाध्यते। इन्द्रेण दत्तमित्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ।।१०।।
[2]इन्द्रेण [3]दण्डमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम्। इमा देवीति मंत्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ।।११।।
देवा मरुत इत्येतत्सर्वकामकरं भवेत्। यमस्य लोकादित्येतद्दुःस्वप्नशमनं परम् ।।१२।।
[4]इन्द्रश्च पञ्च वणिजः पुण्यलाभकरं परम्। [5]कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् ।।१३।।
तुभ्यमेव जपन्नित्यमयुतं तु हुतं भवेत्। अग्ने गोभिर्न इत्येतन्मेधावृद्धिकरं भवेत् ।।१४।।
ध्रुवं ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत्। अलक्तजीवेतिशुना कृषिलाभकरं भवेत् ।।१५।।
अहं ते भग्न इत्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम्। ये मे[6] पाशास्तथाप्येतद्बन्धनान्मोक्षकारणम् ।।१६।।
शपत्वहन्निति रिपून्नाशयेद्धोमजाप्यतः। त्वमुत्तममितीत्येतद्यशोबुद्धिविवर्धनम् ।।१७।।
यथा मृगमतीत्येतत्स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम्। येन चेह दिशं चैव गर्भलाभकरं भवेत् ।।१८।।

मन्त्रों से दी गयी आहुति सभी दोषों का नाश करती है। इन दस गणों के साथ अट्ठारह शान्त्याहुतियाँ देनी चाहिए ।।५-६।। जो इस प्रकार है–'वैष्णवी, ऐन्द्री, ब्राह्मी, रौद्री, वायव्या, वारुणी, कौवेरी, भार्गवी, प्राजापत्या, त्वाष्ट्री, कौमारी, वह्निदेवता, मारुद्गणा, गान्धारी, नैर्ऋतकी, आंगिरसी, याम्या और सर्वकामदा पार्थिवी। 'यस्त्वां मृत्युः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से मृत्यु का नाश होता है ।।७-९।। 'सुपर्णस्त्वा' इत्यादि मन्त्र से आहुति देने पर सर्पों से भय नहीं रहता है। 'इन्द्रेण दत्तम्' इत्यादि मन्त्र सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला है। 'इन्द्रेण दण्डम्' इत्यादि मन्त्र सभी बाधाओं का नाशक है; 'इमा देवी' इत्यादि मन्त्र सभी प्रकार की शान्ति करनेवाला है। और 'देवा मारुतः' इत्यादि सभी कार्यों की सिद्धि करनेवाला है। 'यमस्य लोकात्' इत्यादि मन्त्र दुःस्वप्न को शान्त करनेवाला है ।।१०-१२।। 'इन्द्रश्च पञ्च वणिजः' इत्यादि मन्त्र पुण्य लाभ करानेवाला है, 'कामो मे वाजि' इत्यादि मन्त्र के हवन करने से स्त्रियों की सौभाग्य वृद्धि होती है। 'तुभ्यमेव' इत्यादि मन्त्र का नित्य जप करके 'अग्ने गोभिर्न' इत्यादि मन्त्र से दस हजार आहुतियाँ देने से मेधा बढ़ती है ।।१३-१४।। 'ध्रुवं ध्रुवेण' इत्यादि मन्त्र से हवन करने से स्थान लाभ होता है। 'अलक्त जीव' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने से खेती में लाभ होता है। 'अहं ते भग्न' इत्यादि मन्त्र सौभाग्य को बढ़ानेवाला है। 'ये मे पाशास्तथाप्येत' इत्यादि मन्त्र बन्धन से मोक्ष दिलाता है ।।१५-१६।। 'शपत्वहन' इत्यादि मन्त्र का जप तथा उससे हवन करने से शत्रुओं का नाश होता है। 'त्वमुत्तमम्' इत्यादि मन्त्र यश और बुद्धि को बढ़ानेवाला होता है। 'यथा मृगमती' इत्यादि मन्त्र नारियों के सौभाग्य को बढ़ानेवाला है। 'येन चेह दिशं चैव' इत्यादि मन्त्र गर्भ धारण

---

१ ख. ग. गान्धर्वी। २ इन्द्रेण····भवेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ छ. दत्तमि°। ४ क. ख. ग. ङ. इन्द्रं च प°। ५ क. ङ. च. काममेवाज्जति। ६ क. ङ. च. मे प्राणास्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अयं ते योनिरित्येतत्पुत्रलाभकरं भवेत् । शिवः शिवाभिरित्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम्[1] ।।१९।।
बृहस्पतिर्नः परिपातु पथि स्वस्त्ययनं भवेत् । मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्युनिवारणम् ।।२०।।
अथर्वशिरसोऽध्येता सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्राधान्येन तु मंत्राणां [2]किंचित्कर्म तवेरितम् ।।२१।।
वृक्षाणां यज्ञियानां तु समिधः प्रथमं हविः । आज्यं च व्रीहयश्चैव तथा वै गौरसर्षपाः ।।२२।।
अक्षतानि तिलाश्चैव दधिक्षीरे च भार्गव । दर्भास्तथैव दूर्वाश्च बिल्वानि कमलानि च ।।२३।।
शान्तिपुष्टिकराण्याहुर्द्रव्याण्येतानि सर्वशः । तैलं कणानि धर्मज्ञ राजिका रुधिरं विषम् ।।२४।।
समिधः कण्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत् । आर्षं वै दैवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत् ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽथर्वविधानं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६२।।

अथ त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उत्पातशान्तिः

पुष्कर उवाच

श्रीसूक्तं प्रतिवेदं च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्धनम् । हिरण्यवर्णा हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः ।।१।।
रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः । स्रावन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके ।।२।।

करानेवाला है। 'अयं ते योनिः' इत्यादि मन्त्र पुत्रलाभदायक है। 'शिवः शिवाभिः' इत्यादि मन्त्र सौभाग्यवर्धक है ।।१७–१९।। 'बृहस्पतिर्नः परिपातु' इत्यादि मन्त्र मार्ग में कल्याणकारक है। 'मुञ्चामि त्वा' इत्यादि मन्त्र अपमृत्यु का निवारक माना गया है। 'अथर्वशिरः' का अध्ययन करनेवाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। प्रधान रूप से मन्त्रों की कुछ क्रियाएँ तुम्हें बतला दी गयी हैं ।।२०–२१।। यज्ञिय वृक्षों की समिधाएँ मुख्य हवि हैं। अये भार्गव! घृत, व्रीहि, उजला सरसों, अक्षत, तिल, दही, दूध, कुश, दूर्वा, बिल्वपत्र और कमल– ये द्रव्य शान्ति तथा पुष्टि के कारक हैं ।।२२–२३।। धर्मज्ञ! तेल, कर्ण, राजसर्षप, शोणित, विष तथा कँटीली समिधाएँ इनका प्रयोग अभिचार (मारण, मोहन आदि) कर्म में करना चाहिए। मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का ज्ञान रखकर ही प्रयोग करना चाहिए ।।२४–२५।।

श्री अग्निमहापुराण में अथर्व विधान नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६२।।

अध्याय २६३

उत्पातशान्ति

पुष्कर बोले–प्रत्येक वेद का श्रीसूक्त लक्ष्मीवर्धक है। ऋग्वेद में 'हिरण्यवर्णा हरिणीम्' इत्यादि पन्द्रह ऋचाएँ श्रीसूक्त हैं। यजुर्वेद में 'रथेष्वक्षेसु वाजेति' इत्यादि चार मन्त्र श्रीसूक्त हैं। सामवेद में 'स्रावन्तीय' साम श्रीसूक्त है,

---

१ क. ङ. तत्क्रुद्धं भूयः प्रसादयेत्। बृ°। २ ङ. °त्कर्मावतारि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा । श्री सूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत् ।।३।।
पद्मानि चाथ बिल्वानि हुत्वाऽऽज्यं वा तिलान् श्रियः । एकं तु पौरुषं सूक्तं प्रतिवेदं तु सर्वदम् ।।४।।
सूक्तेन दद्यान्निष्पापो ह्येकैकया जलाञ्जलिम् । स्नात एकैकया पुण्यं विष्णोर्दत्त्वाऽघहा भवेत् ।।५।।
स्नात एकैकया दत्त्वा फलं स्यात्सर्वकामभाक् । महापापोपपापान्तो भवेज्जप्त्वा तु पौरुषम् ।।६।।
कृच्छ्रैर्विशुद्धो जप्त्वा च हुत्वा स्नात्वाऽथ सर्वभाक् । अष्टादभ्यःशान्तिभ्यस्तिस्त्रोऽन्याः शान्तयो वराः ।।७।।
अमृता चाभया सौम्या सर्वोत्पातविमर्दनाः । अमृता सर्व दैवत्या अभया ब्रह्मदैवता ।।८।।
सौम्या च सर्वदेवत्या एका स्यात्सर्वकामदा । अभया या मणिः कार्यो वरुणस्य भृगूत्तमम् ।।९।।
शतकाण्डोऽमृतायाश्च सौम्यायाः शङ्खजो मणिः । तद्देवत्यास्तथा मंत्राः सिद्धौ स्यान्मणिबन्धनम् ।।१०।।
दिव्यान्तरी(रि) क्षभौमादि समुत्पातार्दना इमाः । दिव्यान्तरी(रि) क्षभौमं तु अद्भुतं त्रिविधं शृणु ।।११।।
अहर्क्षवैकृतं दिव्यामान्तरी (रि) क्षं निबोध मे । उल्कापातश्च दिग्दाहः परिवेशस्तथैव च ।।१२।।
गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता च या । चरस्थिरभवं भूमौ भूकम्पमपि भूमिजम् ।।१३।।

इसी प्रकार अथर्ववेद में 'श्रियं धातर्मयि धेहि' इत्यादि मन्त्र श्रीसूक्त हैं। जो मनुष्य श्रीसूक्त का भक्तिपूर्वक जप तथा उससे हवन करता है, उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।।१-३।। कमल, बिल्वपत्र, घी अथवा तिल से यज्ञ करने से श्री प्राप्ति होती है। एक ही पुरुष सूक्त प्रत्येक वेद में पाया जाता है और वह सभी कुछ देनेवाला है। इस सूक्त को पढ़कर विष्णु को एक अञ्जलि जल समर्पण करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। स्नान के बाद (इस सूक्त को पढ़ते हुए) एक अञ्जलि पुष्प समर्पण करने से (सभी) पापों का नाश हो जाता है ।।४-५।। उसी तरह स्नान करने के बाद एक अञ्जलि फल समर्पण करने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं। पुरुषसूक्त का जप करने से महापाप तथा उपपाप नष्ट हो जाते हैं। कृच्छ्रादि व्रतों से शुद्ध होकर स्नान करके (इस पुरुष सूक्त से) जप तथा हवन करने से सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। (पूर्वोक्त) अट्ठारह शान्तियों के अतिरिक्त अमृता, अभया और सौम्या नामक तीन अन्य शान्तियाँ श्रेष्ठ तथा सभी उत्पातों का विनाश करनेवाली हैं ।।६-७½।। उनमें अमृता तथा सौम्या सभी देवताओं से और अभया ब्रह्मदेवता से सम्बद्ध है। एका नामक शान्ति सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। अये भृगुवंशियों में श्रेष्ठ! मणिबन्ध (संस्कार) में बनायी गयी मणि को 'अभया वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र से शुद्ध करना चाहिए। शङ्ख की बनी हुई मणि को 'शतकाण्डोऽमृताया' और सौम्या आदि मन्त्रों से करना चाहिए। इन्हीं मन्त्रों को पढ़कर उक्त संस्कार को समाप्त करना चाहिए ।।८-१०।। आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी में होनेवाले उत्पातों को उन-उन स्थानों के प्रतिनिधि देवताओं के मन्त्रों से शान्त किया जा सकता है। दिव्य, आन्तरिक्ष तथा भौम इन तीन विचित्र उत्पातों को सुनो। आकाश के उत्पात दिन में नक्षत्रों के विचार से होते हैं। अन्तरिक्ष के उत्पात उल्कापात, दिग्दाह, परिवेश हैं ।।११-१२।। (मण्डल) गन्धर्वनगर तथा विकृत वृष्टि कहलाते हैं। भूमिजन्य उत्पात उसे कहते हैं जब पृथ्वी पर चलाचल पदार्थों में भूकम्प उत्पात हो जाता है। उत्पात होने के बाद यदि एक सप्ताह के भीतर वर्षा हो जाय तो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सप्ताहाभ्यन्तरे वृष्टावद्भुतं निष्फलं भवेत् । शान्तिं विना त्रिभिर्वर्षैरद्भुतं भयकृद्भवेत् ।।१४।।
देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च । आरटन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ते हसन्ति च ।।१५।।
अर्चाविकारोपशमोऽभ्यर्च्य हुत्वा प्रजापतेः । अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे च भृशनिःस्वनम् ।।१६।।
न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः । अग्निर्वैकृत्यशमनमग्निमंत्रैश्च भार्गव ।।१७।।
अकाले फलिता वृक्षाः क्षीरं रक्तं स्रवन्ति च । वृक्षोत्पातप्रशमनं शिवं पूज्य च कारयेत् ।।१८।।
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षायोभयं मतम् । अनृतौ त्रिदिनारब्धवृष्टिर्ज्ञेया भयाय हि ।।१९।।
वृष्टिवैकृत्यनाशः स्यात्पर्जन्येन्द्वर्कपूजनात् । नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च ।।२०।।
नद्यो ह्रद प्रस्रवणा विरसाश्च भवन्ति च । सलिलाशयवैकृत्ये जप्तव्यो वारुणो मनुः ।।२१।।
अकालप्रसवा नार्यः कालतो वाऽप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाच्चैव युग्मप्रसवनादिकम् ।।२२।।
स्त्रीणां प्रसववैकृत्ये स्त्रीविप्रादिं प्रपूजयेत् । वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ।।२३।।
विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वै । विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत् ।।२४।।
होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनम् । यानि यानान्ययुक्तानि युक्तानि न वहन्ति च ।।२५।।
आकाशे तूर्यनादाश्च महद्भयमुपस्थितम् । प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ।।२६।।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्या जलं यान्ति स्थलोद्भवाः । स्थलं वा जलजा यान्ति राजद्वारादिके शिवाः ।।२७।।

उत्पात निष्पल हो जाता है। और यदि (इस प्रकार से) उत्पात की शान्ति नहीं की जाती तो तीन वर्ष तक उत्पात अवश्य भय उत्पन्न करनेवाला हुआ करता है ।।१३-१४।। (उस समय) देवताओं की प्रतिमाएँ नाचने लगती हैं, हिलने-डुलने लगती हैं, प्रज्वलित हो जाती हैं, शब्द करती हैं, रोती हैं, पसीने से तर हो जाती हैं, हँसने लगती हैं। प्रतिमाओं का विकार तब शान्त होता है जब ब्रह्मा का पूजन तथा हवन किया जाता है। जिस राष्ट्र में बिना ईंधन के आग जल उठती है और ईंधन होने पर भी वह प्रज्वलित नहीं होती है उस राष्ट्र को राजा लोग उत्पीड़ित करते हैं ।।१५-१७।। वृक्ष यदि असमय में फलने लगे अथवा उनमें से दूध तथा रक्त टपकने लगे तो उस उत्पात का शमन शिव पूजा से करना चाहिए। अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही दुर्भिक्ष के कारण माने गये हैं, बिना ऋतु के यदि तीन दिनों तक वर्षा होती रहे तो उससे भय होता है ।।१८-१९।। वर्षा के उत्पात को दूर करने के लिए पर्जन्य, चन्द्रमा तथा सूर्य की पूजा करनी चाहिए। यदि नदियाँ, झीलें आदि नगर से दूर हटने लगें अथवा उनके अत्यन्त समीप आ जायँ तो उनके उत्पात को दूर करने के लिए वरुण-मन्त्र का जप करना चाहिए ।।२०-२१।। स्त्रियों का असमय में प्रसव होना, समय पर प्रसव न करना अथवा युग्म इत्यादि विकृत प्रसव उत्पन्न करना-इस प्रसव दोषों को दूर करने के लिए स्त्री विप्र आदि का पूजन करना चाहिए। यदि घोड़ी, हथिनी तथा गाय जुड़वे, विजाति के अथवा विकृत बच्चे को जन्म देती है तो वह छह मास में ही मर जाती है ।।२२-२४।। और यह (उत्पात) विदेशी राजा के आक्रमण की भी सूचना देता है। इसे दूर करने के लिए हवन तथा विप्रादि पूजन करना चाहिए। यदि सवारियाँ जुती हुई न हों अथवा जुतने पर भी चलती न हों और आकाश में तूर्यनाद हो तो महान् भय आया हुआ समझना चाहिए। यदि गाँव में वन्य पशु-पक्षी आने लगें, ग्रामीण पशु-पक्षी जंगल की ओर जाने लगें, स्थलचारी जीव जल की ओर दौड़ने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रदोषे कुक्कुटो वासे शिवा चार्कोदये भवेत् । गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्याद्वा मूर्ध्नि लीयते ।।२८।।
[1]मधु वा मक्षिका कुर्यात्काको मैथुनगो दृशि । प्रासादतोरणाद्यानद्वारप्राकारवेश्मनाम् ।।२९।।
अनिमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे । रजसा[2] वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ।।३०।।
केतूदयोपरागौ च च्छिद्रता शशिसूर्ययोः । ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ।।३१।।
अग्निर्यत्र न दीप्येत स्रवन्ते चोदकुम्भकाः । मृतिर्भयं शून्यतादि ह्युत्पातानां फलं भवेत्
द्विजदेवादिपूजाभ्यः शान्तिर्जप्यैस्तु होमतः ।।३२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उत्पातशान्तिकथनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६३।।

अथ चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवपूजावैश्वदेवबलि-वर्णनम्

पुष्कर उवाच

देवपूजादिकं कर्म वक्ष्ये चोत्पातमर्दनम् । आपो हि ष्ठेति तिसृभिः स्नातोऽर्घ्यं विष्णवेऽर्पयेत् ।।१।।

लगें, जलधारी (जीव-जन्तु) स्थल पर आ जायँ, राजद्वार पर शृगालियाँ दीख पड़ें, सन्ध्या समय मुर्गा बाँग दें, सूर्योदय अथवा दोपहर में गीदड़ियाँ चिल्लाने लगें, कबूतर घर में घुस जायँ, मांस-भक्षी पक्षी सिर पर मँडराने लगें ।।२५-२८।। मक्षिका (घरेलू मक्खी) मधु उत्पन्न करने लगे, मैथुन करता हुआ कौआ दिखायी पड़ जाय, सुदृढ़ महल, तोरण, उद्यान, चहारदीवारी तथा घर यदि अकारण ही गिर पड़े तो राजा की मृत्यु होती है। जहाँ दिशाएँ धूलि या धुएँ से व्याप्त दिखायी दें, राहु-केतु का उदय हो, सूर्य-चन्द्रमा में छिद्र दिखायी पड़े, ग्रह और नक्षत्रों में विकार समुत्पन्न हो वहाँ (भी) भय समझना चाहिए। जहाँ अग्नि न जले और पानी के घड़े टपकने लगें वहाँ उत्पात का फल मृत्यु, भय, उदासी आदि होती है। उसकी शान्ति द्विज, देव आदि की पूजा, जप तथा होम से हुआ करती है ।।२९-३२।।

श्री अग्निमहापुराण में उत्पातशान्ति नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६३।।

अध्याय २६४

देवपूजावैश्वदेवबलि-वर्णन

पुष्कर बोले-अब मैं उत्पातों को नष्ट करनेवाले देव पूजा आदि कर्मों को बतलाऊँगा। अये द्विज! स्नानोपरान्त भगवान् विष्णु को 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से अर्घ्य तथा 'हिरण्यवर्णाम्' इत्यादि तीन ऋचाओं से पाद्य

---

१ छ. °धुरा मक्षिकां कु°। २ छ. °साऽद्धाऽथ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हिरण्यवर्णामिति च पाद्यं च तिसृभिर्द्विज। शं न आपो ह्याचमनमिदमापोऽभिषेचनम् ।।२।।
रथे अक्षे च तिसृभिर्गन्धं युवेति वस्त्रकम्। पुष्पं पुष्पवतीत्येवं धूपं [1]धूरसि वाऽप्यथ ।।३।।
तेजोऽसि शुक्रं दीपं स्यान्मधुपर्कं दधीति च। हिरण्यगर्भ इत्यष्टावृचः प्रोक्ता निवेदने ।।४।।
अन्नस्य मनुजश्रेष्ठ पानस्य च सुगन्धिनः। चामरव्यजनोपानच्छत्रं यानासने तथा ।।५।।
यत्किंचिदेवमादि स्यात्सावित्रेण निवेदयेत्। पौरुषं तु जपेत्सूक्तं[2] तेनैव जुहुयात्तथा ।।६।।
अर्चाभावे तथा वेद्यां जले पूर्णघटे तथा। नदीतीरेऽथ कमले शान्तिः स्याद्विष्णुपूजनात् ।।७।।
ततो होमः प्रकर्तव्यो दीप्यमाने विभावसौ। परिसंमृज्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य परिस्तरैः ।।८।।
सर्वान्नाग्रं समुद्धृत्य जुहुयात्प्रयतस्ततः। वासुदेवाय देवाय प्रभवे चाव्ययाय च ।।९।।
अग्नये चैव सोमाय मित्राय वरुणाय च। इन्द्राय च महाभाग इन्द्राग्निभ्यां तथैव च ।।१०।।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः प्रजानां पतये नमः। अनुमत्यै तथा राम धन्वन्तरय एव च ।।११।।
वास्तोष्पत्यै(तये)[3]ततो देव्यै ततः स्विष्टकृतेऽग्नये। स चतुर्थ्यन्तनाम्ना तु हुत्वैतेभ्यो बलिं हरेत् ।।१२।।
तक्षोपतक्षमभितः पूर्वेणाग्निमतः परम्। अश्वानामपि धर्मज्ञ ऊर्णानामानि चाप्यथ ।।१३।।
[4]निरुन्धी धूम्रिणीका च अस्वपन्ती तथैव च। मेघपत्नी च नामानि सर्वेषामेव भार्गव ।।१४।।
आग्नेयाद्याः क्रमेणाथ ततः शक्तिषु निक्षिपेत्। नन्दिन्यै च सुभाग्यै च सुमङ्गल्यै च भार्गव ।।१५।।

समर्पित करना चाहिए। 'शं न आपो' मन्त्र से आचमन तथा 'इदमापो' मन्त्र से स्नान करना चाहिए ।।१-२।। 'रथे अक्षे च' इत्यादि तीन मन्त्रों से गन्ध, युव इत्यादि मन्त्र से वस्त्र, 'पुष्पवती' इत्यादि मन्त्र से पुष्प, 'धूरसि' इत्यादि मन्त्र से धूप, 'तेजोऽसि शुक्रं' इत्यादि मन्त्र से दीप, 'दधि' इत्यादि मन्त्र से मधुपर्क और अये मानवेन्दु! 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि आठ ऋचाओं से अन्न, पान तथा सुगन्धित पदार्थों को समर्पित करना चाहिए ।।३-४$\frac{1}{2}$।। चामर, व्यजन, उपानत् (जूता), छत्र, यान, आसन आदि सभी पदार्थ सावित्री ऋचा से समर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त का जप और उसी से हवन करना चाहिए। प्रतिमा के अभाव में वेदी में, जलपूर्ण घट पर, नदी तट पर तथा कमल में विष्णु की पूजा करने से उत्पातों की शान्ति होती है ।।५-७।। तदनन्तर (विष्णु-पूजा के बाद) प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिए। पहले जल में सम्मार्जन तथा सेचन करके कुशास्तरण करना चाहिए, तत्पश्चात् समस्त मन्त्रों के सारभाग से पवित्रतापूर्वक हवन करना चाहिए। वासुदेव, देव, प्रभु, अव्यय, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, इन्द्राग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति, अनुमति, धन्वन्तरि, वास्तोष्पति, देवी, स्विष्टकृत्, अग्नि- इन पदों को चतुर्थ्यन्त बनाकर अन्त में 'नमः' पद जोड़कर (अर्थात् 'वासुदेवाय नमः' आदि कहकर) आहुतियाँ देनी चाहिए। तदनन्तर इन देवी-देवताओं के लिए बलि देनी चाहिए ।।८-१२।। उसके बाद वेदी के चारों ओर तक्षा और उपतक्षा को, पूर्व में अग्नि को, उसके बाद अश्वों, ऊर्णाओं, निरुन्धी, धूम्रिणीका, अस्वपन्ती और मेघपत्नी को बलि समर्पण करनी चाहिए ।।१३-१४।। तत्पश्चात् अये भार्गव! आग्नेय आदि कोणों में क्रमशः नन्दिनी, सुभागी, सुमंगली और भद्रकाली को स्थूणा

---

१ छ. धूपोऽसि चाप्य°। २ क. ङ. च. छ. °क्तं तदेव। ३ च. तथोदीच्यै त°। ४ क. ङ. निरुक्षी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भद्रकाल्यै ततो दत्त्वा स्थूणायां च तथा श्रिये । हिरण्यकेश्यै च तथा वनस्पतय एव च ।।१६।।
धर्माधर्ममयौ द्वारे गृहमध्ये ध्रुवाय च । मृत्यवे च बहिर्दद्याद्वरुणायोदकाशये ।।१७।।
भूतेभ्यश्च बहिर्दद्याच्चरणे धनदाय च । इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो दद्यात्पूर्वेण मानवः ।।१८।।
यमाय तत्पुरुषेभ्यो दद्याद्दक्षिणतस्तथा । वरुणाय तत्पुरुषेभ्यो दद्यात्पश्चिमतस्तथा ।।१९।।
सोमाय सोम पुरुषेभ्य उदग्दद्यादनन्तरम् । ब्रह्मणे ब्रह्म पुरुषेभ्यो मध्ये दद्यात्तथैव च ।।२०।।
आकाशे च तथा चोर्ध्वे स्थण्डिलाय क्षितौ तथा । दिवा दिवाचरेभ्यश्च रात्रौ रात्रिचरेषु च ।।२१।।
बलिं बहिस्तथा दद्यात्सायं प्रातस्तु प्रत्यहम् । पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्ततः सायं न कारयेत् ।।२२।।
पित्रे तु प्रथमं दद्यात्तत्पित्रे तदनन्तरम् । प्रपितामहाय तन्मात्रे पित्रमात्रे ततोऽर्पयेत् ।।२३।।
तन्मात्रे दक्षिणाग्रेषु कुशेष्वेवं यजेत्पितॄन् । इन्द्रवारुणवायव्या याम्या वा नैऋताश्च ये ।।२४।।
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु इमं पिण्डं मयोद्धतम् । काकपिण्डं तु मंत्रेण शुनः पिण्डं प्रदापयेत् ।।२५।।
विवस्वतः कुले [1]जातौ द्वौ [2]श्यामशबलौ शुनौ । तेषां पिण्डं प्रदास्यामि पथि रक्षतु मे सदा ।।२६।।
सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः । प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ।।२७।।
गोग्रासं च स्वस्त्ययनं कृत्वा भिक्षां प्रदापयेत् । अतिथीन्दीनान्पूजयित्वा गृही भुञ्जीत च स्वयम्

(गृहस्तम्भ) पर, श्री, हिरण्यकेशी तथा वनस्पति को द्वार पर, धर्म-अधर्म को, गृहमध्य में ध्रुव को, बाहर मृत्यु तथा भूतों को, जलाशय में वरुण को और गृह में कुबेर को बलि देनी चाहिए ।।१५-१७।। पूर्व दिशा में इन्द्र तथा उनके गणों को, दक्षिण दिशा में यम तथा उनके गणों को, पश्चिम दिशा में वरुण तथा उनके गणों को, उत्तर दिशा में सोम तथा उनके गणों को, मध्य, ऊपर तथा आकाश में ब्रह्मा तथा उनके गणों को, पृथ्वी पर स्थण्डिल को, दिन में दिवाचरों को और रात्रि में रात्रिचरों को बलि देनी चाहिए ।।१८-२१।। प्रतिदिन सायं-प्रातःकाल बाहर (अदृष्टजीवों को) बलि देनी चाहिए। किन्तु पिण्ड निर्वपण करने के बाद सायंकाल बलि नहीं देनी चाहिए। सबसे पहले पिता के लिए पिण्डदान करना चाहिए, तदनन्तर क्रमशः पितामह, प्रपितामह, प्रपितामह की माता और पिता की माता के लिए पिण्डदान करना चाहिए। इस प्रकार दक्षिणाग्र कुशों पर पितरों का पूजन कर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में 'जो कौए हैं, वे मेरे दिये हुए इस पिण्ड को स्वीकार करें', यह कहते हुए कौओं को पिण्ड देना चाहिए। तदनन्तर कुत्ते के लिए पिण्डदान करना चाहिए ।।२२-२५।। और उस समय यह संकल्प करना चाहिए फिर 'सूर्य के कुल में श्याम, शबल नामक दो कुत्ते हुए हैं। मैं उन्हें पिण्ड दूँगा, वे मार्ग में सदा मेरी रक्षा करते रहें। तत्पश्चात् सबका हित करनेवाली, पवित्र, पापनाशक, त्रिलोकजननी गौएँ मेरे दिये हुए ग्रास स्वीकार करें ।।२६-२७।। यह कहते हुए गायों को ग्रास देना, भिक्षादान करना चाहिए,

---

१ च. जाता दशम्यां द्वादशारुणाः। ते। २ छ. श्यावश°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ।। ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । ॐ प्रजापतये स्वाहा ।।२८।। विष्णुपूजावैश्वदेवबलिस्ते कीर्तितो मया ।।२९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवपूजावैश्वदेवबलिकथनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६४।।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिक्पालादिस्नानम्

अग्निरुवाच[1]

सर्वार्थसाधनं स्नानं वक्ष्ये शान्तिकरं शृणु । स्नापयेच्च सरित्तीरे ग्रहान्विष्णुं विचक्षणः ।।१।। देवालये ज्वरार्त्यादौ विनायकग्रहार्दिते । विद्यार्थिनो[2] ह्रदे गेहे जयकामस्य तीर्थके ।।२।।

अतिथियों तथा दीन-दुःखियों को भोजन कराके स्वयं भोजन करना चाहिए। ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। ॐ प्रजापतये स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से हवन करना चाहिए। इस प्रकार मैंने विष्णुपूजा तथा वैश्वदेव बलि का वर्णन कर दिया ।।२८-२९।।

श्री अग्निमहापुराण में देवपूजा वैश्वदेव बलि कथन नामक दो सौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६४।।

अध्याय २६५

दिक्पालादिस्नान

अग्निदेव बोले-अब मैं सकल प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले तथा शान्ति देनेवाले स्नान को बतलाऊँगा, उसे सुनो। विद्वान् व्यक्ति नदी के तट पर ग्रहों एवं विष्णु का स्नपन करे। (अर्थात् नदी में स्नानकर इनका पूजन करे) यदि विनायक ग्रहजन्य ज्वर आदि की पीड़ा हो तो (उसकी शान्ति के लिए) देवालय में जाकर स्नान करना चाहिए। विद्याभिलाषी जन तालाब तथा गृह में और जयाभिलाषी तीर्थ में स्नान करे ।।१-२।। जिस नारी का गर्भपात हो जाय,

---

१ क. ङ. °च-नित्यं नैमित्तिकं स्ना°। च. °च सर्वार्थसाधकं स्ना°। २ च. °नो ह्रदङ्गे च ज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पद्मिन्यां स्नापयेन्नारीं गर्भो यस्याः स्त्रवेत्तथा । अशोकसंनिधौ स्मायाज्जातो यस्या विनश्यति ।।३।।
पुष्पार्थिन्याञ्च[1] पुष्पाढ्ये पुत्रार्थिन्याञ्च[2] सागरे । गृहे सौभाग्यकामानां सर्वेषां विष्णुसंनिधौ ।।४।।
वैष्णवे रेवतीपुष्ये सर्वेषां स्नानमुत्तमम् । स्नानकामस्य सप्ताहं पूर्वमुत्सादनं स्मृतम् ।।५।।
पुनर्नवां रोचनां च शताङ्गा[3] गुरुणा त्वचम् । मधूकं रजनी द्वे च तगरं नागकेशरम् ।।६।।
अम्बरीं चैव मञ्जिष्ठां मांसीयासकक[4]र्दमैः । प्रियंगुसर्षपं कुष्ठं बलां ब्राह्मीं च कुङ्कुमम् ।।७।।
पञ्चगव्यं सक्तुमिश्रमुद्वर्त्य स्नानमाचरेत् । मण्डले कर्णिकायां च विष्णुं[5] ब्रह्माणमर्चयेत् ।।८।।
दक्षे वामे हरं पूर्वं पत्रे पूर्वादिके क्रमात् । लिखेदिन्द्रादिकान्देवान्सायुधान्सहबान्धवान् ।।९।।
स्नानमण्डलकान्दिक्षु कुर्य्याच्चैव विदिक्षु च । विष्णुब्रह्मेशशक्रादींस्तदस्त्राण्यर्च्य होमयेत् ।।१०।।
एकैकस्य त्वष्टशतं समिधस्तु तिलान्घृतम् । भद्रः सुभद्रः सिद्धार्थः कलशाः पुष्टिवर्धनाः ।।११।।
अमोघश्चित्रभानुश्च पर्जन्योऽथ सुदर्शनः । स्थापयेत्तु घटानेतान्साश्विरुद्रमरुद्गणाः[6] ।।१२।।
विश्वे देवास्तथा दैत्या वसवो मुनयस्तथा । आवेशयन्तु सुप्रीतास्तथाऽन्या अपि देवताः ।।१३।।
ओषधीर्निक्षिपेत्कुम्भे जयन्तीं विजयां जयाम्[7] । शतावरीं शतपुष्पां विष्णुक्रान्ता[8]पराजिताम् ।।१४।।

उसे कमलिनी नदी में स्नान करना चाहिए, जिसके सन्तान होकर नष्ट हो जाती हो, उसे अशोक वृक्ष के निकट स्नान करना चाहिए ।।३।। रजस्वला होने की इच्छुक नारी को पुष्पों से युक्त सरोवर में और पुत्राभिलाषिणी स्त्री को सागर में स्नान करना चाहिए। सौभाग्य की कामना करनेवाले को घर में तथा सभी वस्तुओं की कामना करनेवालों को विष्णु भगवान् (की मूर्ति) के समीप स्नान करना चाहिए। रेवती तथा पुष्य नक्षत्र में वैष्णव पीठ पर स्नान करना सबके लिए उत्तम है। स्नान की इच्छा करनेवाले को स्नान से एक सप्ताह पूर्व उबटन लगाना चाहिए ।।४-५।। पुनर्नवा, रोचना, शताङ्ग, अगर, छाल, मधूक, दो रजनी (अर्थात् हरिद्रा और जतुका), तगर, नागकेशर, अम्बरी, मञ्जिष्ठा, जटामांसी, यासक, कर्दम, प्रियंगु, सरसों, कुष्ठ, बला, ब्राह्मी, कुंकुम और सत्तू मिश्रित पञ्चगव्य का बना उबटन लगाकर स्नान करना चाहिए ।।६-७$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर मण्डलस्थित पुष्पकर्णिका के ऊपर दक्षिण भाग में विष्णु तथा ब्रह्मा की और वाम भाग में शिव की अर्चना करनी चाहिए। तत्पश्चात् पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः रखे पत्रों पर अस्त्रों तथा बान्धवों सहित इन्द्र आदि देवताओं के चित्रों को चित्रित करना चाहिए। विभिन्न दिशाओं में (इस प्रकार के) स्नान मण्डलों की रचना करनी चाहिए। उसके बाद विष्णु, ब्रह्मा, ईश, शक्र आदि देवताओं और उनके अस्त्रों की पूजा करके हवन करना चाहिए ।।८-१०।। एक-एक देवता के लिए एक सौ आठ बार तिल, घी तथा समिधाओं से होम करना चाहिए। तदनन्तर भद्र, सुभद्र, सिद्धार्थ, अमोघ, चित्रभानु, पर्जन्य तथा सुदर्शन नामक पुष्टिवर्धक कलशों की स्थापना करके उनमें 'अश्विनीकुमार' रुद्र, मरुद्गण, विश्वेदेव, दैत्य, वसु, मुनि तथा अन्य देवगणों को श्रद्धापूर्वक प्रवेश कराना चाहिए ।।११-१३।। फिर उन कलशों में जयन्ती, विजया, जया, शतावरी, शतपुष्पा, विष्णुक्रान्ता,

---

१ छ. °र्थिनां च पुण्पाढ्ये। २ छ. °र्थिनां च सा°। ३ छ. °ताङ्गं गु°। ४ छ. कमर्दनैः। प्रि°। ५ क. ङ. छ. °ष्णुं ब्राह्मणं°। ६ च. छ. द्गणन्। वि°। ७ क. ङ. तथा। ८ क. ङ. °क्रान्तां प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्योतिष्मतीमतिबलां चन्दनोशीरकेशरम् । कस्तूरिकां च कर्पूरं बालकं पत्रकं त्वचम् ।।१५।।
जातीफलं लवङ्गं च मृत्तिकां पञ्चगव्यकम् । भद्रपीठे स्थितं साध्यं स्नापयेयुर्द्विजा बलात् ।।१६।।
राजाभिषेकमंत्रोक्तदेवानां होमकाः पृथक् । पूर्णाहुतिं ततो दत्वा गुरवे दक्षिणां ददेत् ।।१७।।
इन्द्रोऽभिषिक्तो गुरुणा पुरा दैत्याञ्जघान ह[1] । दिक्पालस्नानं कथितं सङ्ग्रामादौ जयादिदम्[2] ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिक्पालस्नानविधिकथनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६५।।

अथ षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विनायकस्नानम्

पुष्कर उवाच

विनायकोपसृष्टानां स्नानं सर्वकरं वदे । विनायकः कर्म(र्मा)विघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ।।१।।
गणानामाधिपत्ये च केशवेशपितामहैः । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ।।२।।
विनायकोपसृष्टांस्तु[3] क्रव्यादानधिरोहति । व्रजमानस्तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।।३।।

अपराजिता, ज्योतिष्मती, अतिबला, चन्दन, उशीर, केसर, कस्तूरिका, कर्पूर, बालक, पत्रक, त्वच, जातीफल, लवङ्ग आदि ओषधियाँ तथा मृत्तिका और पञ्चगव्य मिलाना चाहिए। पुनः सुन्दर आसन पर स्थित आराध्य देव को द्विजगण बलपूर्वक स्नान करावें ।।१४-१६।। तदनन्तर साधक राज्याभिषेक-मन्त्रों में कहे देवताओं का पृथक्-पृथक् हवन करें। अन्त में पूर्णाहुति देकर गुरु को दक्षिणा देनी चाहिए। प्राचीन काल में बृहस्पति ने इसी प्रकार स्नान कराया था। तभी वह (इन्द्र) दैत्यों का वध कर सके थे। यही दिक्पाल स्नान है, जिससे संग्राम आदि में विजय इत्यादि की प्राप्ति होती है ।।१७-१८।।

श्री अग्निमहापुराण में दिक्पालस्नान विधि-कथन नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६५।।

अध्याय २६६

विनायकस्नान

पुष्कर बोले-(अब) मैं विनायक द्वारा उपसृष्ट (विघ्न बाधित) व्यक्तियों के लिए शान्तिकारक स्नान को बतला रहा हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने कार्यों में पड़नेवाले विघ्नों को दूर करने के लिए विनायक (गणेश) को गणों का अधिपति नियुक्त किया है। जिस मनुष्य के ऊपर विनायक का उत्पात होता है, वह स्वप्न में अत्यन्त स्नान (करने का अनुभव) करता है। जल तथा मुण्डों को देखता है ।।१-२।। राक्षसों के ऊपर चढ़ता है, चलते हुए अपने को दूसरों के द्वारा अनुगत समझता है, (अर्थात् किसी के न होने पर भी) उसे ऐसा भान होता है कि मेरे पीछे-पीछे

---

१ ख. ग. च. ह। दीक्षास्नानं तु क°। २ ख. च. छ. जयादिकम्। ३ च. °सृष्टस्तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः। कन्या वरं न चाऽऽप्नोति न चापत्यं वराङ्गना ।।४।।
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं लभेत्। धनी न लाभमाप्नोति न कृषिं च कृषीबलः ।।५।।
राजा राज्यं न चाऽऽप्नोति स्नपनं तस्य कारयेत्। हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्ये वैष्णवे भद्रपीठके ।।६।।
गौरसर्षपकल्केन [1]साज्येनोत्सादितस्य च। सर्वौषधैः सर्भगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ।।७।
चतुर्भिः कलशैः स्नानं तेषु सर्वौषधीः क्षिपेत्। अश्वस्थानाद्गजस्तानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् ।।८।।
मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलं तेषु निक्षिपेत्। सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।।९।।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते। भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।।१०।।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः। यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि ।।११।।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा। दर्भपिञ्जलिमादाय[2] वामहस्ते ततो गुरुः ।।१२।।
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च। जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य च ।।१३।।
मितश्च संमितश्चैव तथा [3]शालकंकण्टकौ। कूष्माण्डीं राजपुत्रश्च एतैः स्वाहा समन्वितैः ।।१४।।
नामभिर्बलिमंत्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः। दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ।।१५।।
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च। मत्स्यान्पङ्कांस्तथैवाऽऽमान्पुष्पं चित्रं सुरां त्रिधा ।।१६।।

बहुत-से आदमी आ रहे हैं, सदा अन्यमनस्क रहता है, उद्योग में असफल होता है और अकारण दुःखी रहता है। (विनायक के अप्रसन्न रहने पर) कन्या को वर नहीं मिलता, उत्तम नारी को सन्तान नहीं होती, श्रोत्रिय आचार्यत्व को नहीं प्राप्त करता है, शिष्य को विद्यालाभ नहीं होता है, धनी को धन की प्राप्ति नहीं होती है। किसान खेती (के लाभ) को नहीं प्राप्त करता है ।।३-५।। और राजा को राज्य प्राप्ति नहीं होती है। अतः विनायकोपद्रवग्रस्त-व्यक्ति को सूर्य के उत्तरायण होने पर हस्त, पुष्य तथा अश्विनी नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र में वैष्णव भद्रपीठ पर स्नान कराना चाहिए किन्तु उससे पूर्व घृतमिश्रित उजले सरसों के चूर्ण का बना हुआ उबटन शरीर पर लगाना चाहिए। और सिर के ऊपर सुगन्धित द्रव्यों तथा ओषधियों का लेप करना चाहिए ।।६-७।। तत्पश्चात् चार कलशों के उस जल से उसे स्नान कराना चाहिए, जिसमें सब प्रकार की ओषधियाँ, अश्वस्नान, गजस्नान, वल्मीक, नदियों के संगम तथा तालाब की मृत्तिका, गोरोचन, गन्ध, गुग्गुल डाला गया हो। उस समय यह कहना चाहिए कि ऋषियों ने इन्द्र को जल की सौ धाराओं से नहलाकर पवित्र किया था। इसलिए मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। जल तुम्हें पवित्र करे। राजा, वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षिगण तुम्हें सौभाग्य प्रदान करें ।।८-१०$\frac{1}{2}$ ।। तुम्हारे केशों में, सीमन्त में, ललाट में, कानों में तथा आँखों में जो कुछ दुर्भाग्य है उसे यह जल सदा के लिए नष्ट कर दे। तत्पश्चात् गुरु अपने बायें हाथ में दर्भपिञ्जलि लेकर स्नान किये हुए व्यक्ति के सिर पर गूलर की लकड़ी के बने हुए स्रुव से हवन के रूप में सरसों का तेल डाले ।।११-१३।। स्वाहा पद अन्त में जोड़कर मित, संमित, शालक, कण्टक, कूष्माण्डी तथा राजपुत्र-इन नामों से और नमस्कार युक्त बलिमन्त्रों से हवन (अर्थात् तेल प्रक्षेप) करना चाहिए। तदनन्तर चौराहे पर सूप में कुश बिछाकर उन पर कच्चा-पक्का तण्डुल, मांस-भात, मत्स्य, पंक, आम, विभिन्न

---

१ क. ङ. °ज्येनाऽऽच्छादि°। २ क. ङ. च. ञ्जलमा°। ३ ख. ग. ङ. च. °कंटकटौ कू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलकं पूरिकापूपांस्तथैवैण्डविकास्त्रजः । दध्यन्नं पायसं पिष्टं मोदकं गुडमर्पयेत् ।।१७।।
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वाऽर्घ्यं(घ्र्य)पूर्णमञ्जलिम् ।।१८।।
रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं सुभगे मम । पुत्रं[1] देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ।।१९।।
भोजयेद्ब्रह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि । विनायकं ग्रहान्प्रार्च्य श्रियं[2] कर्मफलं लभेत् ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विनायकस्नानकथनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६६।।

अथ सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादयः

पुष्कर उवाच

स्नानं माहेश्वरं वक्ष्ये राजदेर्जयवर्धनम् । दानवेन्द्राय बलये यज्जगादोशनाः पुरा ।
भास्करेऽनुदिते पीठे प्रातः संस्नापयेद्घटैः ।।१।।
ॐ नमो भगवते रुद्राय च बलाय च । पाण्डरोचितभस्मानुलिप्तगात्राय (तद्यथा) जय जय
सर्वाञ्शत्रून्मूकय कलहविग्रहविवादेषु भञ्जय भञ्जय । ॐ मथ मथ [3]सर्वप्रत्यर्थिकान्योऽसौ युगान्तकाले दिधक्षति ।
इमां पूजां रौद्रमूर्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितम् ।।२।।

प्रकार के पुष्प, तीन प्रकार की सुरा, मूली, पूड़ी, पुआ, ऐण्डविका की माला, दही, अन्न, खीर, पिष्ट, मोदक तथा गुड़ विनायक को समर्पण करना चाहिए ।।१४-१७।। तदनन्तर गणेश जननी पार्वती का उपस्थान करके दूर्वा, सरसों और पुष्पों का अर्घ्य देकर करबद्ध प्रार्थना करे कि 'हे सौभाग्यशालिनी! मुझे रूप दो, यश दो, सौभाग्य दो, पुत्र दो, धन दो और सभी कामनाओं को पूर्ण करो। इसके बाद ब्राह्मण को भोजन कराकर गुरु को एक जोड़ा वस्त्र प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहों के सहित विनायक की आराधना करने से मनुष्य सौभाग्य तथा (सभी) कार्यों में सफलता प्राप्त कर लेता है ।।१८-२०।।

श्री अग्निमहापुराण में विनायक स्नान कथन नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६६।।

अध्याय २६७

माहेश्वरस्नानलक्षकोटि होमादि

पुष्कर बोले-मैं माहेश्वर स्नान को बतलाऊँगा, जो राजाओं आदि के लिए जयवर्धक है और जिसे प्राचीनकाल में शुक्राचार्य ने दानवेन्द्र बलि को बताया था। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व पीठ पर 'ॐ नमो भगवते रुदाय च बलाय च पाण्डरोचितभस्मानुलिप्तगात्राय जय जय । सर्वान्शत्रून्मूकय कलह विग्रह विवादेषु भञ्जय भञ्जय ॐ मथ मथ सर्वप्रत्यर्थिकान्योऽसौ युगान्तकाले दिधक्षति। इमां पूजां रौद्रमूर्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितम् । संवर्तकाग्नि-

---

१ ख. पुत्रान्देहि। २ क. ङ. च. शेषं। ३ च. °र्वषथिका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संवर्तकाग्नितुल्यञ्च त्रिपुरान्तकरः शिवः[1] ।।३।।
सर्वदेवमयः सोऽपि तव रक्षतु जीवितं[2] । लिखि लिखि खिलि स्वाहा ।।४।।
एवं स्नातस्तु मंत्रेण जुहुयात्तिलतण्डुलम् । पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य पूजयेच्छूलपाणिनम् ।।५।।
स्नानान्यन्यानि वक्ष्यामि सर्वदा विजयाय ते । स्नानं घृतेन कथितमायुषो[3] वर्धनं परम् ।।६।।
गोमयेन च लक्ष्मीः स्याद्गोमूत्रेणाघमर्दनम् । क्षीरेण बलवृद्धिः[4] स्याद्दध्ना लक्ष्मीविवर्धनम् ।।७।।
कुशोदकेन पापान्तः पञ्चगव्येन सर्वभाक् । शतमूलेन सर्वाप्तिर्गोशृङ्गोदकतोऽघजित् ।।८।।
पलाशबिल्वकमलकुशस्नानं तु सर्वदम् । वचाहरिद्रे द्वे मुस्तं स्नानं रक्षोहणं परम् ।।९।।
आयुष्यं च यशस्यं च धर्ममेधाविवर्धनम् । हैमाद्भिश्चैव माङ्गल्यं रूप्यताम्रोदकैस्तथा ।।१०।।
रत्नोदकैस्तु विजयः सौभाग्यं सर्वगन्धकैः । फलाद्भिश्च तथाऽऽरोग्यं धात्र्यद्भिः परमां श्रियम् ।।११।।
तिलसिद्धार्थकैर्लक्ष्मीः सौभाग्यं च प्रियंगुणा । पद्मोत्पलकदम्बैः[5] श्रीर्बलं बलाद्रुमोदकैः ।।१२।।
विष्णुपादोदकस्नानं सर्वस्नानेभ्य उत्तमम् । [6]एकाक्येकैककामो यो ह्येकैकं विधिवच्चरेत्[7] ।।१३।।
अक्रन्दयतिसूक्तेन प्रबध्नीयान्मणि करे । कुष्ठपाठावचाशुण्ठीशङ्खलोहादिको मणिः ।।१४।।

तुल्यञ्च त्रिपुरान्तकरः शिवः । सर्वदेवमयः सोऽपि तव रक्षतु जीवितं लिखि लिखि खिलि स्वाहा', इस मन्त्र को पढ़ते हुए घटजल से स्नानकर तिल-तण्डुल से हवन करना चाहिए। तदनन्तर पञ्चामृत से स्नान कराकर भगवान् शूलपाणि (शङ्कर) की पूजा करनी चाहिए ।।१-५।। (अब) मैं सर्वदा विजय को देनेवाले अन्य विविध स्नानों को भी तुम्हें बता रहा हूँ। घृतस्नान अत्यन्त आयुवर्धक माना गया है। गोबर से स्नान करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। गोमूत्र स्नान से पापों का नाश होता है। दुग्धस्नान से बलवृद्धि होती है। दधिस्नान से लक्ष्मी बढ़ती है ।।६-७।। कुशोदक स्नान से पापों का नाश होता है। पञ्चगव्य स्नान से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। शतमूल (मिश्रित जल के) स्नान से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। शृङ्गोदक स्नान से पापक्षय होता है। पलाश, बिल्व, कमल तथा कुश के जल से स्नान करने से सकल कामनाएँ पूर्ण होती हैं। बच, दो प्रकार की हल्दी तथा मुस्त (नागरमोथा) के जल से स्नान करने से राक्षसों का विनाश होता है और आयु, यश, धर्म तथा मेधा बढ़ती है। स्वर्ण, चाँदी तथा ताँबे के जल से स्नान करने से मङ्गल होता है ।।८-१०।। रत्नमिश्रित जल से स्नान करने से विजय होती है। सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से स्नान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। फलों के जल से स्नान करने से आरोग्य लाभ होता है और आँवले के जल से स्नान करने से परम श्री की प्राप्ति होती है। तिल तथा उजले सरसों (मिश्रित जल) से स्नान करने से लक्ष्मी और प्रियङ्गु (मिश्रित जल) से स्नान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। पद्म, उत्पल तथा कदम्ब स्नान से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। और बलाद्रुम (मिश्रित) जल के स्नान से बल प्राप्त होता है ।।११-१२।। विष्णु के चरणोदक से स्नान सभी स्नानों से उत्तम है। अकेला एक ही व्यक्ति यदि उक्त लाभों में से प्रत्येक लाभ की कामना करे तो उसे प्रत्येक स्नान विधिपूर्वक करना चाहिए। 'अक्रन्दयति' इत्यादि सूक्त से हाथ में कुष्ठ, पाठा, बच, शुण्ठी, शङ्ख तथा लोहे आदि की मणि बाँधनी चाहिए। (क्योंकि उससे कल्याण होता है) ।।१३-१४।। भगवान्

---

१ क. ङ. च. परः। ख. शरः। २ क. ङ. च. तं. लिखिनि लिखिनि स्वा°। ३ छ. °युष्यव°। ४ छ. °लबुद्धि। ५ छ. °दम्बैश्र श्री०। ६ छ. °काकी एककामायेत्येकोऽक° वि°। ७ क. ङ. °त्। आक्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वेषामेव कामानामीश्वरो भगवान्हरिः । तस्य संपूजनादेव सर्वान्कामान्समश्नुते ।।१५।।
स्नापयित्वा घृतक्षीरैः पूजयित्वा च पित्तहा । पञ्चमुद्गबलिं दत्वा ह्यतिसारात्प्रमुच्यते ।।१६।।
पञ्चगव्येन संस्नाप्य वातव्याधिं विनाशयेत् । द्विस्नेहस्नपनाच्छ्लेष्मरोगहा वाऽतिपूजया ।।१७।।
घृतं तैलं तथा क्षौद्रं स्नानं तु त्रिरसं परम् । स्नानं घृताम्बु द्विस्नेहं समलं[1] घृततैलकम् ।।१८।।
क्षौद्रमिक्षुरसं क्षीरं स्नानं त्रिमधुरं स्मृतम् । घृतमिक्षुरसं तैलं क्षौद्रं च त्रिरसं श्रिये ।।१९।।
अनुलेपस्त्रिशुक्लस्तु कर्पूरोशीरचन्दनैः । चन्दनागुरुकर्पूरमृगदर्पैः सकुङ्कुमैः ।।२०।।
पञ्चानुलेपनं विष्णोः सर्वकामफलप्रदम् । त्रिसुगन्धं च कर्पूरं तथा चन्दनकुङ्कुमैः ।।२१।।
मृगदर्पं सकर्पूरं मलयं सर्वकामदम् । जातीफलं सकर्पूरं चन्दनं च त्रिशीतकम् ।।२२।।
पीतानि [2]शुकवर्णानि तथा [3]शुक्लानि भार्गव । कृष्णानि चैव रक्तानि पञ्चवर्णानि निर्दिशेत् ।।२३।।
उत्पलं पद्मजाती च त्रिशीतं हरिपूजने । कुंकुमं रक्तपद्मानि त्रिरक्तं रक्तमुत्पलम् ।।२४।।
धूपदीपादिभिः प्रार्च्य विष्णुं शान्तिर्भवेन्नृणाम् । चतुरस्त्रकरे कुण्डे ब्राह्मणाश्चाष्ट षोडश ।।२५।।
लक्षहोमं कोटिहोमं तिलाज्ययवधान्यकैः । ग्रहानभ्यर्च्य गायत्र्या सर्वशान्तिः क्रमाद्भवेत् ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादिकथनं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६७।।

विष्णु सभी कामनाओं के स्वामी हैं इसलिए उनकी पूजा मात्र से ही सभी वांछित फल मिल जाते हैं। घृत–क्षीर से विष्णु का स्नान और उनकी पूजा पित्त दोषों को दूर करती है। (उन्हीं को) मूँग की पाँच बालियाँ देने से अतिसार रोग से छुटकारा मिल जाता है ।।१५–१६।। पञ्चगव्य से स्नान करने से वातव्याधि नष्ट होती है। द्विस्नेह (घी–जल) से स्नान करने से या अत्यधिक (विष्णु की) पूजा करने से कफजन्य रोग दूर हो जाते हैं। घी, तेल तथा मधु का स्नान त्रिरस स्नान कहा गया है। घी और जल का स्नान द्विस्नेह और घी, तेल का स्नान समल स्नान कहलाता है ।।१७–१८।। मधु, इक्षुरस और दूध के स्नान को त्रिमधुर स्नान और घी, इक्षुरस, तेल तथा मधु के स्नान को त्रिरस स्नान कहते हैं। ये (सभी) ऐश्वर्यदायक हुआ करते हैं। कर्पूर, खस तथा चन्दन के अनुलेप को त्रिशुक्ल कहते हैं। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी तथा कुंकुम के अनुलेप को पंचानुलेप कहते हैं। ये दोनों प्रकार के अनुलेप विष्णु को लगाने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।।१९–२०$\frac{1}{2}$।। कर्पूर, चन्दन तथा कुंकुम और कस्तूरी, कर्पूर तथा चन्दन को त्रिसुगन्ध कहते हैं। यह त्रिसुगन्ध सर्वकामनादायक है। अये भार्गव! पीत, हरित, कृष्ण तथा रक्त ये पाँचों वर्ण विष्णु को प्रिय हैं ।।२१–२३।। उत्पल, पद्म तथा जाती (चमेली) को भी त्रिशीत कहते हैं। विष्णु–पूजन में यही विहित है। कुंकुम, रक्त पद्म तथा रक्त उत्पल– इनको त्रिरक्त कहते हैं। धूप, दीप आदि से विष्णु की पूजा करने से मनुष्य को शान्ति मिलती है। चौकोर कुण्ड में आठ या सोलह ब्राह्मणों द्वारा तिल, यव, घी तथा धान से एक लाख तथा एक करोड़ होम कराकर गायत्री मन्त्र से ग्रहों की पूजा करने से क्रमशः सभी उत्पात शान्त हो जाते हैं ।।२४–२६।।

श्री अग्निमहापुराण में माहेश्वरस्नानलक्षकोटि होमादि नामक दो सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६७।।

---

१ च. °लंकृत°। २ छ. शुक्लवर्णानि। ३ छ. शुक्लादि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नीराजनविधिः

पुष्कर उवाच

कर्म सांवत्सरं राज्ञां [1]जन्मर्क्षे पूजयेच्च तम्। मासि मासि च संक्रान्तौ सूर्यसोमादिदेवताः ।।१।।
अगस्त्यस्योदयेऽगस्त्यं [2]चातुर्मास्यं हरिं यजेत्। शयनोत्थापने पञ्चदिनं कुर्यात्समुत्सवम् ।।२।।
[3]प्रोष्ठपादे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृति क्रमात्। शिविरात्पूर्वदिग्भागे शुक्रार्थं भवनं चरेत् ।।३।।
तत्र शक्रध्वजं स्थाप्य शचीं शक्रं च पूजयेत्। अष्टम्यां वाद्यघोषेण तां तु यष्टिं प्रवेशयेत् ।।४।।
एकादश्यां सोपवासो द्वादश्यां केतुमुत्थितम्। यजेद्वस्त्रादिसंवीतं [4]घटस्थं सुरपं शचीम् ।।५।।
वर्धस्वेन्द्र जितामित्र वृत्रहन्पाकशासन। देवदेव महाभाग त्वं हि भूमिष्ठतां गतः ।।६।।
त्वं प्रभुः शाश्वतश्चैव सर्वभूतहिते रतः। अनन्ततेजा वैराजो यशोजयविवर्धनः ।।७।।
तेजस्ते वर्धयन्त्वेते देवाः शक्रः सुवृष्टिकृत्। ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च कार्तिकेयो विनायकः ।।८।।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च भृगवो दिशः। मरुद्गणा लोकपाला ग्रहा यक्षाद्रिनिम्नगाः ।।९।।

अध्याय २६८

नीराजन विधि

पुष्कर बोले– (अपने) जन्म के नक्षत्र में विष्णु का पूजन करना राजाओं का सांवत्सर कर्म कहलाता है। राजा को प्रत्येक मास की संक्रान्ति में सूर्य, चन्द्रमा आदि देवताओं का, अगत्स्त्योदय होने पर (भादों में) अगस्त्य का और चातुर्मास्य में विष्णु का पूजन करना चाहिए। हरिशयन (आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी) तथा हरिजागरण (कार्तिक शुक्लपक्ष की एकादशी) के समय पाँच दिन खूब धूम-धाम से उत्सव मनाना चाहिए ।।१-२।। भादों की शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर शिविर (सैनिकालय) के पूर्व भाग में इन्द्र के लिए भवन का निर्माण करना चाहिए। उसमें इन्द्रध्वज की स्थापना करके इन्द्राणी समेत इन्द्र की पूजा करनी चाहिए। अर्थात् अष्टमी के दिन गाने-बजाने के साथ बाँस की ध्वजा गाड़नी चाहिए ।।३-४।। एकादशी को उपवास करना चाहिए तथा द्वादशी में उस ध्वजा की पूजा करके वस्त्र आदि से आच्छादित घट के ऊपर शची समेत इन्द्र की आराधना करनी चाहिए। अर्चना में इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे इंन्द्र! आपकी वृद्धि हो। हे शत्रुजित्! वृत्रहन्! पाक नामक दैत्य के ऊपर शासन करनेवाले! देवदेव! महाभाग! आप भूमि पृष्ठ पर आये हैं ।।५-६।। आप प्रभु हैं, शाश्वत हैं, सकल प्राणियों के हितसाधक हैं, अनन्त तेजस्वी हैं, विराट् पुरुष के पुत्र हैं, और यश तथा जय को बढ़ानेवाले हैं। देवगण आपके तेज को बढ़ावें। सुख प्रदान करनेवाले शक्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय, विनायक, आदित्य, वसु, रुद्र, भृगु आदि ऋषि, मरुद्गण, लोकपाल, ग्रह, यक्ष, पर्वत, नदियाँ,

---

१ क. ङ. कर्माख्यं। २ क. ङ. च. छ. चातुर्मास्यं। ३ क. ङ. प्रोष्ठपदे। ४ ख. ग. पटस्थं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समुद्राः श्रीर्मही गौरी चण्डिका च सरस्वती । प्रवर्तयन्तु ते तेजो जय शक्र शचीपते ।।१०।।
तव चापि जयान्नित्यं मम संपद्यतां शुभम् । प्रसीद राज्ञां विप्राणां प्रजानामपि सर्वशः ।।११।।
भवत्प्रसादात्पृथिवी नित्यं सस्यवती भवेत् । शिवं भवतु निर्विघ्नं शाम्यन्तामीतयो भृशम् ।।१२।।
मंत्रेणेन्द्रं समभ्यर्च्य जितभूः स्वर्गमाप्नुयात् । भद्रकालीं पटे लिख्य पूजयेदाश्विने जये ।।१३।।
शुक्लपक्षे तथाऽष्टम्यामायुधं कार्मुकं ध्वजम् । छत्रं च राजलिङ्गानि शस्त्राद्यं कुसुमादिभिः ।।१४।।
जाग्रन्निशि बलिं दद्यादिद्वितीयेऽह्नि पुनर्यजेत्[1] । भद्रकालि महाकालि दुर्गे दुर्गार्तिहारिणि ।।१५।।
त्रैलोक्यविजये चण्डि मम शान्तौ जये भव । नीराजनविधिं वक्ष्य ऐशान्यां मन्दिरं चरेत् ।।१६।।
तोरणत्रितयं तत्र गृहे देवान्यजेत्सदा । चित्रां त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ।।१७।।
ततः प्रभृति कर्तव्यं यावत्स्वातौ [2]रविः स्थितः । ब्रह्मा विष्णुश्च शंभुश्च शक्रश्चैवानलानिलौ ।।१८।।
विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः । विश्वे देवा [3]वैश्रवणो गजाश्चाष्टौ च तान्यजेत् ।।१९।।
कुमुदैरावणौ[4] पद्मः पुष्पदन्तश्च वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलः पूजा कार्या गृहादिके[5] ।।२०।।
पुरोधा जुहुयादाज्यं समित्सिद्धार्थकं तिलाः । कुम्भा अष्टौ पूजिताश्च तैः स्नाप्याश्च गजोत्तमाः ।।२१।।
[6]अधः स्वात्यां ददेत्पिण्डांस्ततो हि प्रथमं गजान् । निष्क्रामयेत्तोरणैस्तु गोपुरादि च लङ्घयेत्[7] ।।२२।।

समुद्र, श्री, मही, गौरी, चण्डिका तथा सरस्वती आपकी तेजोवृद्धि करें। अये शक्र! शचीपते! आपकी जय हो और आपकी जय से नित्य मेरा कल्याण हो। आप राजाओं, ब्राह्मणों और प्रजाओं के ऊपर प्रसन्न होइये ।।७-११।। आपके प्रसन्न होने पर पृथ्वी नित्य शस्यसम्पन्ना होगी। मेरा निर्विघ्न कल्याण हो। सभी ईतियाँ (अतिवृष्टिरनावृष्टिः, शलभाः, मूषिकाः खगाः, अत्यासन्नाश्च, राजानः) भली-भाँति शान्त हो जायँ। इस प्रकार इन्द्र की पूजा करनेवाला राजा पृथ्वी-विजयी होकर अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है। आश्विन-शुक्ल-अष्टमी में पट पर भद्रकाली का चित्र चित्रित करके पुष्प आदि से उनकी तथा आयुध, धनुष, पताका, छत्र आदि राजचिह्नों की पूजा करें ।।१२-१४।। रात्रि में जागरण करते हुए बलि देना चाहिए। दूसरे दिन अयि भद्रकालि! महाकालि! दुर्गे! दुर्गतिहारिणि! त्रैलोक्यविजये! चण्डि! मुझे शान्ति एवं विजय प्रदान कीजिये। यह कहकर पुनः पूजन करना चाहिए। अब मैं नीराजना की विधि बतलाऊँगा। (जिसके लिए) उत्तर-पूर्व दिशा में तीन बन्दनवारों से युक्त मन्दिर बनाना चाहिए। उस मन्दिर में नित्य देव-पूजन करना चाहिए। चित्रा नक्षत्र को छोड़कर जब सूर्य स्वाती नक्षत्र में प्रवेश करे तब से लेकर जब तक सूर्य स्वाती में स्थित रहे तब तक ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, शक्र, अग्नि, वायु, गणेश, कार्तिकेय, वरुण, कुबेर, यम, विश्वेदेव, कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन तथा नील (नामक आठ गजों) की पूजा करनी चाहिए ।।१५-२०।। पूजनानन्तर पुरोहित को घी, लकड़ी, उजला सरसों तथा तिल से हवन करके आठ कलशों के जल से उत्तम हाथियों को स्नान कराना चाहिए। तदनन्तर स्वाती नक्षत्र में ही भूमि पर पिण्डदान करके सर्वप्रथम हाथियों को प्रासाद के बन्दनवारों से होकर निकाले, परन्तु उन्हें गोपुर आदि का लंघन न करने दे ।।२१-२२।। उसके बाद राजा को जन-

---

१ क. ङ. त्। तत्रस्था भद्रकाली च दु°। २ क. ङ. कविः। ३ क. ङ. छ. वैश्रवसो। ४ क. ख. ङ. च. °वतौ प°। ५ क. ङ. च. के। परो वा जु°। ६ छ. अश्वा स्नाप्या द°। ७ ख. °त्। विक्रमे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निष्क्रामेयुस्ततः सर्वे राजलिङ्गं गृहे यजेत्। वारुणे वरुणं प्रार्च्य रात्रौ भूतबलिं ददेत् ।।२३।।
विशाखायां गते सूर्ये आश्रमे निवसेन्नृपः। अलंकुर्याद्दिने तस्मिन्वाहनं तु विशेषतः ।।२४।।
पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्तव्या नरहस्तगाः। हस्तिनं तुरगं छत्रं खड्गं चापं च दुन्दुभिम् ।।२५।।
ध्वजं पताकां धर्मज्ञ कालज्ञस्त्वभिमंत्रयेत्। अभिमन्त्र्य ततः सर्वान्कुर्यात्कुञ्जरधूर्गतान् ।।२६।।
कुञ्जरोपरिगौ स्यातां सांवत्सरपुरोहितौ। मंत्रितांश्च समारुह्य तोरणेन विनिर्गमेत् ।।२७।।
निष्क्रम्य नागमारुह्य तोरणेनाथ निर्गमेत्। बलिं विभज्य विधिवद्राजा कुञ्जरधूर्गतः ।।२८।।
उल्मुकानां तु निचयमादीपितदिगन्तरम्। राजा प्रदक्षिणं कुर्यान्त्रीन्वारानसुसमाहितः ।।२९।।
चतुरङ्गबलोपेता सर्वसैन्येन नादयन्। एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्विसर्जितजनस्ततः[1] ।।३०।।
शान्तिनीराजनाख्येयं वृद्धये रिपुमर्दनी ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नीराजनाविधिकथनं
नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६८।।

समूह के साथ उन बन्दनवारों से निकलकर गृह में (अस्त्रादि) राजचिह्नों का पूजन करना चाहिए। फिर जल में वरुण की पूजा करके रात्रि में भूत बलि देनी चाहिए। जब सूर्य विशाखा नक्षत्र में गमन करे उस दिन राजा आश्रम-वास करते हुए वाहनों को विशेष रूप से सुसज्जित करे ।।२३-२४।। तदनन्तर पूजित राजचिह्नों को अपने पुरुषों को देकर हाथी, घोड़े, छत्र, खड्ग, धनुष, दुंदुभि तथा ध्वज-पताका का अभिमन्त्रण करना चाहिए। इस प्रकार अभिमन्त्रित करने के बाद सबको हाथी के पीछे करके हाथी पर ज्योतिषी और पुरोहित के साथ स्वयं जा बैठे। गजारोहण करने के बाद बन्दनवार से निकलकर विधिपूर्वक बलि का विभाजन करना चाहिए ।।२५-२८।। तत्पश्चात् दिशाओं को प्रज्वलित करनेवाले अंगारों की खूब सावधानी से तीन बार प्रदक्षिणा करके चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्दिगन्त को निनादित करते हुए राजमहल में पहुँचाना चाहिए और वहाँ (जाकर) जन-समूह को विदा कर देना चाहिए। इसी को नीराजना शान्ति कहते हैं, जो वृद्धि देनेवाली तथा शत्रु का मर्दन करनेवाली है ।।२९-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में नीराजनविधि-कथन नामक दो सौ अरसठवाँ
अध्याय समाप्त ।।२६८।।

---

१ क. ङ. °जनो जयेत्। शा°। छ. °जलाञ्जलिः। शा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

छत्रादिप्रार्थनामंत्राः

पुष्कर उवाच

छत्रादिमंत्रान्वक्ष्यामि यैस्तत्पूज्य [1]जयादिकम्। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ।।१।।
सूर्यस्य च प्रभावेण वर्धस्व त्वं महामते। पाण्डराभप्रतीकाश हिमकुन्देन्दुसुप्रभ ।।२।।
यथाऽम्बुदश्छादयते शिवायैनां वसुंधराम्। तथाऽऽच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ।।३।।
गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ।।४।।
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धस्व त्वं तुरंगम। तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा ।।५।।
रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च। स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं तु मणिं स्मर ।।६।।
यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत्पितृहा मातृहा तथा। भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ।।७।।
व्रजेस्त्वं तां गतिं क्षिप्रं मा तत्पापं भवेत्तव। विकृतिं माऽपगच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरंगम ।।८।।
रिपून्विनिघ्नन्समरे सह भर्त्रा सुखी भव। शक्रकेतो महावीर्य सुवर्णस्त्वामुपाश्रितः ।।९।।
पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः। काश्यपेयोऽमृताहर्ता नागारिर्विष्णुवाहनः ।।१०।।

अध्याय २६९

छत्रादिप्रार्थना-मन्त्र

पुष्कर बोले–(अब) मैं छत्र आदि के मन्त्र को बतलाता हूँ। जिनसे उनकी पूजा करके राजा जय आदि को प्राप्त कर लेता है! (छत्र की प्रार्थना यह है) 'हे महामते' तुम ब्रह्मा के सत्य वाक्य से और सोम, वरुण तथा सूर्य के प्रभाव से बढ़ते रहो। हे शुक्ल वर्णवाले! हिम, कुन्द तथा इन्द्र के समान प्रभावाले! जैसे मेघ कल्याण के लिए वसुधा को आच्छादित करता है वैसे ही तुम भी विजय और आरोग्य वृद्धि के लिए राजा को आच्छादित कर लो ।।१–३।। (अश्व की प्रार्थना यह है) 'हे अश्व! तुम गन्धर्व–कुल में उत्पन्न हुए हो, तुम उस कुल को दूषित मत करना। ब्रह्मा के सत्य वाक्य से और सोम, वरुण तथा अग्नि के प्रभाव से तुम बढ़ते रहो। सूर्य के तेज से, मुनियों के तप से, रुद्र के ब्रह्मचर्य से और पवन के बल से तुम स्मरण करो कि मैं राजपुत्र हूँ। अपनी कौस्तुभ मणि का भी स्मरण करो ।।४–६।। यदि तुम स्वामिभक्त न होगे तो तुम्हें भी वह गति मिलेगी जो गति ब्रह्मघाती, पितृघाती, मातृघाती, भूमि के लिए झूठ बोलनेवाले और रण से भागनेवाले क्षत्रिय को प्राप्त होती है। अये तुरंगम! रण मार्ग में तुम किसी विकार को प्राप्त न होना। युद्ध में शत्रुओं का नाश करते हुए अपने स्वामी के साथ सुखी रहना। (ध्वजा की प्रार्थना इस प्रकार है–) इन्द्रध्वज! महाशक्तिशालिन्! गरुड़ ने तुम्हारा आश्रय लिया है ।।७–९।। पक्षियों का राजा, विनता का पुत्र, नारायण का वाहन, कश्यप का पुत्र, अमृतहर्ता, नागों का शत्रु, अप्रमेय शक्ति–सम्पन्न, दुर्विजय, रण में देव–शत्रुओं का संहारक महाबली,

---

१ क. ङ. जपादिकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः । महाबलो महावेगो महाकायोऽमृताशनः ।।११।।
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितः स्थितः । विष्णुना देवदेवेन शक्रार्थं स्थापितो ह्यसि ।।१२।।
जयाय भव मे नित्यं वृद्धयेऽथ बलस्य च । साश्ववर्मायुधान्योधान् रक्षास्माकं रिपून्दह ।।१३।।
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ।१४।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च [1]वनान्यष्टौ समाश्रिताः । भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ।।१५।।
वने वने प्रसूतास्ते स्मरयोनिं महागजाः । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ।।१६।।
भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः परिपाल्यताम् । ऐरावताधिरूढस्तु वज्रहस्तः शतक्रतुः ।।१७।।
पृष्ठतोऽनुगतस्त्वेष रक्षतु त्वां स देवराट् । अवाप्नुहि जयं युद्धे सुस्थश्चैव सदा व्रज ।।१८।।
अवाप्नुहि बलं चैव [2]ऐरावतसमं युधि । श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् ।।१९।।
स्थैर्यं गिरेर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरंदरात् । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ।।२०।।
अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतो दिशः । मनवो वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।।२१।।
नागकिंनरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः । प्रमथास्तु सहाऽऽदित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ।।२२।।
शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाऽऽश्रितस्त्वयि । प्रदहन्तु रिपून्सर्वान्राजा विजयमृच्छतु ।।२३।।
यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि[3] समन्ततः । पतन्तु तव शत्रूणां हतानि तव तेजसा ।।२४।।
कालनेमिवधे यद्वद्युद्धे त्रिपुरघातने । हिरण्यकशिपोर्युद्धे वधे सर्वासुरेषु च ।।२५।।

महान् वेगवान्, महाकाय, अमृतभोजी और वायु के समान वेगवाला गरुड़ तुम्हारे समीप रहता है। देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने इन्द्र के लिए तुम्हारी स्थापना की है ।।१०-१२।। तुम मुझे नित्य विजय दो तथा बल वृद्धि प्रदान करो। हमारे शत्रुओं को भस्म करो और घोड़ों, कवचों, आयुधों तथा योद्धाओं की रक्षा करो। (हाथियों की प्रार्थना का मन्त्र यह है-) कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन तथा नील- ये आठों गज देवयोनि में उत्पन्न हुए हैं। इनके पुत्र-पौत्र आठ वनों में रहते हैं। भद्र, मन्द, मृग, गज, संकीर्ण आदि उनके नाम हैं ।।१३-१५।। वे महागज स्मर योनि में उत्पन्न हुए हैं। (यहाँ से प्रार्थना प्रारम्भ होती है-) अये गजेन्द्र! वसु, रुद्र, आदित्य तथा मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें और तुम अपने स्वामी की रक्षा करना और अपने कर्त्तव्य का पालन करना। देवराट् इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर वज्र हाथ में लिये पीछे से तुम्हारा अनुगमन करते हुए तुम्हारी रक्षा करें। तुम युद्ध में जय प्राप्त करो और सदा स्वस्थ होकर गमन करो ।।१६-१८।। तुम युद्ध में ऐरावत के समान बल प्राप्त करो। तुम्हें सोम से श्री, विष्णु से बल, सूर्य से तेज, वायु से वेग, पर्वत से स्थिरता, रुद्र से जय और इन्द्रदेव से यश प्राप्त हो। युद्ध-स्थल की सब दिशाओं में देवताओं के साथ अश्विनीकुमार तुम्हारी रक्षा करें। मनु, वसु, रुद्र, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूत, ग्रह, आदित्यों समेत प्रमथगण, मातृगण सहित भूतेश, इन्द्र, सेनापति स्कन्द और वरुण तुम्हारे ऊपर चढ़कर शत्रुओं को भस्म कर दें। और राजा विजय लाभ करें ।।१९-२३।। चारों ओर शत्रुओं के भेजे हुए जितने दुष्ट हैं, वे तुम्हारे तेज से निहत होकर धराशायी हो जायँ। (पताका की प्रार्थना यह है-) जिस प्रकार तुम कालनेमि, त्रिपुरासर, हिरण्यकशिपु और समस्त असुरगणों के वध-युद्ध में शोभित हुई थी उसी प्रकार आज भी सुशोभित होती रहो और अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करो।

---

१ ख. ग. छ. °श्च बलान्य°। २ ख. ङ. ऐरावणसमं। ३ ख. छ. °भिर्भूष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]शोभिताऽसि तथैवाद्य शोभस्व समयं स्मर । नीलश्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः ।।२६।।
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः । पूतना रेवती लेखा कालरात्रीति पठ्यते ।।२७।।
दहन्त्वाशु रिपून्सर्वान्पताके त्वामुपाश्रिताः । सर्वमेधे महायज्ञे देवदेवेन शूलिना ।।२८।।
सर्वेण जगतश्चैव सारेण त्वं विनिर्मितः । नन्दकस्यापरां मूर्तिं स्मर शत्रुनिबर्हण ।।२९।।
नीलोत्पलदलश्याम कृष्ण दुःस्वप्ननाशन । असिर्विंशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो[2] दुरासदः ।।३०।।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च । इत्यष्टौ तव नामानि पुरोक्तानि स्वयंभुवा ।।३१।।
नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः । हिरण्यं च शरीरं ते दैवतं ते जनार्दनः ।।३२।।
राजानं रक्ष निस्त्रिंश सबलं सपुरं तथा । पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्वदा ।।३३।।
शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सैन्ये यशोऽद्य मे । रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानय नमोऽस्तु ते ।।३४।।
दुन्दभे त्वं सपत्नानां घोषाद्हृदयकम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां यथा विजयवर्धनः ।।३५।।
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः । तथाऽस्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावह ।।३६।।
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथा तु तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे ।।३७।।
मंत्रैः सदाऽर्चनीयास्ते योजनीया जयादिषु[3] । कृतरक्षञ्च विष्णवादेस्त्वभिषेकश्च वत्सरे ।।३८।।
राज्ञोऽभिषेकः कर्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा ।।३९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छत्रादिप्रार्थनामंत्रकथनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६९।।

उस नील-श्वेत रंग की पताका को देखकर राजा के शत्रु विविध भयंकर व्याधियों तथा शस्त्रों से पराजित होकर शीघ्र ही नष्ट हो जायँ ।।२४-२६$\frac{1}{2}$।। अयि पताके! तुम्हारी आश्रित पूतना, रेवती, लेखा तथा कालरात्रि शीघ्र ही शत्रुओं को जला डालें। (खड्ग की प्रार्थना यह है-) नील कमल के पत्र के समान श्याम वर्णवाले! दुःस्वप्न का नाश करनेवाले! शत्रुओं को मारनेवाले! अये खड्ग! सर्वमेध नामक महायज्ञ में त्रिशूलधारी देव-देव शङ्कर ने जगत् के सारभाग से तुम्हारी रचना की है। पूर्व काल में ब्रह्मा ने तुम्हारे यह आठ नाम रखे थे-असि, विंशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल ।।२७-३१।। कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र है, महेश्वर गुरु हैं, हिरण्य शरीर है और जनार्दन देवता हैं। निस्त्रिंश! तुम सेना तथा नगर समेत राजा की रक्षा करो। तुम्हारे पिता ब्रह्मा हैं। वे सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। (कवच की प्रार्थना यह है-) अये कवच! तुम युद्ध में कल्याण करनेवाले हो। आज तुम मुझे सैनिक का यश प्रदान करो। मैं रक्षा के योग्य हूँ, तुम मेरी रक्षा करो। अये निष्पाप! तुम्हें नमस्कार है। (नगाड़े की प्रार्थना यह है-) अयि दुंदुभि! तुम अपने शब्द से शत्रुओं का हृदय कम्पित कर दो, जिससे तुम्हारे राजा की सेना विजयी हो सके। जैसे बादल के गर्जन से गजराज प्रसन्न होते हैं वैसे ही तुम्हारे शब्द से हम लोगों को प्रसन्नता हो। जैसे मेघ-गर्जन से स्त्रियों को भय होता है, वैसे ही तुम्हारे शब्द से रण में हमारे शत्रु भयभीत हों ।।३२-३७।। इस प्रकार मन्त्रों से सदा अस्त्र आदि की पूजा करके रण में उनका उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक वर्ष राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करने के बाद विष्णु आदि का अभिषेक करना चाहिए और ज्योतिषी तथा पुरोहित को राजा का अभिषेक करना चाहिए ।।३८-३९।।

श्री अग्निमहापुराण में छत्रादिप्रार्थना मन्त्र कथन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२६९।।

---

१ क. ख.° भितोऽसि। २ क. ङ. °क्ष्णवर्ष्मा दु°। ख. ग. क्ष्णचर्मा दु°। ३ छ. °षु। घृतकम्बलवि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विष्णुपञ्जरम्

पुष्कर उवाच

त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरम् । शंकरस्य द्विजश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितम् ।।१।।
वागीशेन च शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत्त्वं शृणु जयादिमत् ।।२।।
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी । प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ।।३।।
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः । क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम[1] ।।४।।
क्रूरान्तयमलं चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम् । अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ।।५।।
गदा चेयं सहस्रार्चिः प्रदीप्तपावकोज्ज्वला । रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च नाशनी ।।६।।
शार्ङ्गविस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् । तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन्हन्त्वशेषतः ।।७।।
खड्गधारोज्ज्वलज्योत्स्नानिर्धूता ये समाहिताः । ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ।।८।।
ये कुष्माण्डास्तथा यक्षा ये दैत्या ये निशाचराः । प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या [2]जम्भगाः खगाः ।।९।।
सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः । सर्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशङ्खरवाहताः ।।१०।।

अध्याय २७०

विष्णुपञ्जर

पुष्कर बोले–अये द्विजश्रेष्ठ! प्राचीनकाल में त्रिपुरासुर को मारनेवाले शंकर के लिए ब्रह्मा ने विष्णुपंजर का निरूपण किया था ।।१।। (उसी प्रकार) बल नामक असुर को मारने के लिए जाते हुए इन्द्र को बृहस्पति ने भी इसका उपदेश दिया था। अब मैं इसका स्वरूप बतलाऊँगा, जो विजय आदि को देनेवाला है, उसे सुनो। 'मेरे पूर्व ओर चक्रधारी विष्णु हैं, दक्षिण में गदाधारी विष्णु हैं, पश्चिम में धनुर्धारी विष्णु हैं और उत्तर में खड्गधारी इन्द्र उपस्थित हैं। कोणों में हृषीकेश, कोण–छिद्रों में जनार्दन, भूमि में वाराह रूपी भगवान् विष्णु और आकाश में भगवान् नृसिंह स्थित रहते हैं ।।२–४।। यह निर्मल सुदर्शन चक्र, जो क्रूरों का अन्त करनेवाला है, घूम रहा है। इसकी दुर्दर्शनीय किरण–माला प्रेत और निशाचरों का संहार करनेवाली है। यह गदा सहस्र किरणों से युक्त तथा प्रज्वलित अग्नि के समान उज्ज्वल है। इससे राक्षसों, भूतों, पिशाचों तथा डाकिनियों का नाश होता है। वासुदेव के धनुष का शब्द मेरे सभी शत्रुओं, तिर्यक्, मनुष्य, कूष्माण्ड तथा प्रेत आदि का सर्वनाश कर दे ।।५–७।। जो मेरे उपद्रवी जीव हैं, वे ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल वासुदेव के खड्ग की धार से आहत होकर उसी प्रकार नष्ट हो जायँ, जिस प्रकार गरुड़ से साँप नष्ट हो जाते हैं। जितने कूष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, हिंसक पक्षी, सिंह आदि पशु, विषैले साँप आदि जीव हैं, वे कृष्ण की शंखध्वनि से आहत होकर शान्त हो जायँ ।।८–१०।। जो कूष्माण्डगण मेरी चित्तवृत्ति

---

१ छ.° म। क्षुरा°। २ क. ङ. मञ्जकाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जनाः स्मृतिहारकाः । बलौजसां च हर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ।।११।।
ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः । कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ।।१२।।
बुद्धिस्वास्थ्यं मनः स्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा । ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात् ।।१३।।
पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः । तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति ।।१४।।
यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परो जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः । सत्येन तेनाच्युतनामकीर्तनात्प्रणाशयेत्तु त्रिविधं ममाशुभम् ।।१५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपञ्जरकथनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।२७०।।

अथैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वेदशाखादिकथनम्

पुष्कर उवाच

[1]सर्वानुग्राहका मंत्राश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः । ऋगथर्व तथा साम यजुः संख्या तु लक्षकम् ।।१।।
भेदः सांख्यायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः । शतानि दश मंत्राणां ब्राह्मणा[2] द्विसहस्त्रकम् ।।२।।
ऋग्वेदो हि प्रमाणेन स्मृतो द्वैपायनादिभिः । एकोनद्विसहस्त्रं तु मंत्राणां यजुषस्तथा ।।३।।

का हरण करनेवाले हैं, जो स्मृति के अपहर्त्ता हैं, जो बल, तेज के हर्त्ता हैं, जो छाया को भ्रष्ट करनेवाले हैं, जो उपभोग को छीननेवाले हैं और जो शुभ लक्षणों के नाशक हैं, वे विष्णु के चक्र के शब्द से आहत होकर नष्ट हो जायँ ।।११-१२।। देवाधिदेवेश्वर भगवान् वासुदेव के संकीर्त्तन से मेरी बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ स्वस्थ रहें। जनार्दन भगवान् विष्णु मेरे पीछे, आगे, दक्षिण, उत्तर तथा समस्त कोणों में अवस्थित हैं। जो मनुष्य उन स्तुत्य, ईशान, अनन्त, अच्युत, जनार्दन को प्रणाम करता है, वह विनाश को नहीं प्राप्त होता है। ब्रह्म सबसे परे हैं वैसे हरि भी। वही केशव जगत्स्वरूप हैं। इसलिए उन सत्य रूप अच्युत का नाम कीर्त्तन करने से मेरे तीन प्रकार के अशुभ कर्म नष्ट हो जायँ ।।१३-१५।।

श्री अग्निमहापुराण में विष्णुपञ्जर कथन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७०।।

अध्याय २७१

वेदशाखादि-कथन

पुष्कर बोले–वेदों के मन्त्र सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाले तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देनेवाले हैं। ऋक्, अथर्व, साम तथा यजुर्वेद के मन्त्रों की (सम्पूर्ण) संख्या एक लाख है ।।१।। मन्त्रों के दो भेद हैं–एक सांख्यायन और दूसरा आश्वलायन। द्वैपायन आदि आचार्यों के अनुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद में तीन हजार मन्त्रों को माना है। यजुर्वेद के मन्त्रों की संख्या एक हजार नौ सौ निन्यानबे है ।।२-३।। उसके ब्राह्मणों की शाखाएँ एक हजार छियासी

---

१ क. ङ. सर्वार्थकाममंत्राश्च चतु°। २ क. ब्रह्मणा। ख. ब्रह्मणो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शतानि दश विप्राणां षडशीतिश्च शाखिकाः । काण्वमाध्यंदिनी संज्ञा कठी माध्यकठी तथा ।।४।।
मैत्रायणी च संज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका । वैशम्पायनिकेत्याद्याः शाखा यजुषि संस्थिताः ।।५।।
साम्नः कौथुमसंज्ञैका द्वितीयाऽथर्वणायनी[1] । गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यकं तथा ।।६।।
उक्था ऊहश्चतुर्थश्च मंत्रा नवसहस्रकाः । स चतुःशतकाश्चैव ब्रह्मसंघटकाः स्मृताः ।।७।।
पञ्चविंशतिरेवात्र साममानं[2] प्रकीर्तितम् । सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्वके ।।८।।
सौनकः पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे । मंत्राणामयुतं षष्टिशतं चोपनिषच्छतम् ।।९।।
व्यासरूपी स भगवाञ्शाखाभेदाद्यकारयत् । शाखाभेदादयो विष्णुरितिहासः पुराणकम् ।।१०।।
प्राप्य व्यात्सात्पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः । सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शिंशपायनः ।।११।।
कृतव्रतोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् । शांशपायनादयश्चक्रुः पुराणानां तु संहिताः ।।१२।।
ब्राह्मादीनि पुराणानि हरिविद्या दशाष्ट च । महापुराणे ह्याग्नेये विद्यारूपो हरिः स्थितः ।।१३।।
सप्रपञ्चो निष्प्रपञ्चो मूर्तामूर्तस्वरूपधृक् । तं ज्ञात्वाऽभ्यर्च्य संस्तूय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१४।।
विष्णुर्जिष्णुर्भविष्णुश्च अग्निसूर्यादिरूपवान् । अग्निरूपेण देवादेर्मुखं विष्णुः परा गतिः ।।१५।।
वेदेषु स पुराणेषु यज्ञमूर्तिश्च गीयते । आग्नेयाख्यं पुराणं तु रूपं विष्णोर्महत्तरम् ।।१६।।
आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्त्ता श्रोता जनार्दनः । तस्मात्पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत् ।।१७।।
सर्वविद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम् । सर्वात्महरिरूपं हि पठतां शृण्वतां नृणाम् ।।१८।।

हैं जो इस प्रकार हैं–काण्व, माध्यन्दिनी, कठी, माध्यकठी इत्यादि मैत्रायणी, तैत्तिरीय, वैशम्पायनिक आदि शाखाएँ यजुर्वेद की हैं ।।४–५।। सामवेद की एक शाखा है कौथुमी और दूसरी है आथर्वणायनी। इसके गान भी चार हैं–वेद, आरण्यक, उक्थ और ऊह। इसमें नौ सहस्र मन्त्र हैं। जिनमें चार सौ मन्त्र ब्रह्मप्रतिपादक हैं ।।६–७।। परन्तु साममान पचीस मन्त्रों का ही माना गया है। अथर्व से शाखाप्रवर्तक सुमन्त, जाजलि, श्लोकायनि, शौनक, पिप्पलाद और मुञ्जकेश ऋषि हैं ।।८–८$\frac{1}{2}$।। इसमें सोलह हजार मन्त्र हैं और सौ उपनिषदें हैं। भगवान् ने व्यास का रूप धारण करके वेदों का शाखाभेद किया है। अतएव शाखाभेद, इतिहास, पुराण आदि को विष्णु समझना चाहिए। व्यास से लोमहर्षण सूत ने पुराण आदि को प्राप्त किया। उस सूत के सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, कृतव्रत तथा सावर्णि नामक छह शिष्य हुए। उन्होंने पुराणों की संहिताएँ बनायीं। ब्राह्म आदि अठारहों पुराण भगवान् विष्णु की विद्याएँ हैं। आग्नेय पुराण में सगुण–निर्गुण तथा मूर्त–अमूर्त रूपधारी भगवान् विष्णु ही अवस्थित हैं। ऐसा समझकर उनकी स्तुति–पूजा करने से भुक्ति–मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।९–१४।। विष्णु, जिष्णु, भविष्णु तथा अग्नि और सूर्य आदि के रूप हैं। परमगति रूप भगवान् विष्णु अग्निदेव से देव आदि के मुख हैं। वेद तथा पुराणों में उन्हें यज्ञमूर्ति कहा गया है। आग्नेय पुराण विष्णु का बृहत्तर रूप है। इस पुराण के कर्त्ता तथा श्रोता जनार्दन भगवान् विष्णु ही हैं, इसलिए यह (अग्नि) पुराण महान् सर्ववेदमय, सर्वविद्यामय, सर्वज्ञानमय, पुण्यरूप तथा सर्वश्रेष्ठ है। उस सर्वात्मा

---

१ क. ङ. °नी कोलान्य°। २ क. ङ. शाखामानं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विद्यार्थिनां च विद्याद(म)र्थिनां श्रीधनप्रदम्। राज्यार्थिनां राज्यदं च धर्मदं धर्मकामिना(णा)म् ।।१९।।
स्वर्गार्थिनां स्वर्गदं च पुत्रदं पुत्रकामिना(णा)म्। गवादिकामिनां गोदं ग्रामदं ग्रामकामिना(णा)म् ।।२०।।
कामार्थिनां कामदं च सर्वसौभाग्यसंप्रदम्। गुणकीर्तिप्रदं नृणां जयदं जयकामिनाम् ।।२१।।
सर्वेप्सूनां सर्वदं तु मुक्तिदं मुक्तिकामिनाम्। पापघ्नं पापकर्तृणामाग्नेयं हि पुराणकम् ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वेदशाखादिकथनं नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७१।।

अथ द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुराणदानादिमाहात्म्यम्

पुष्कर उवाच

ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये। लक्षार्धार्धं तु तद्ब्राह्मं लिखित्वा संप्रदापयेत् ।।१।।
वैशाख्यां पौर्णमास्यां च [1]स्वर्गार्थी जलधेनुमत्। पाद्मं द्वादशसाहस्रं ज्येष्ठे दद्याच्च धेनुमत् ।।२।।
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह चार्पयेत् ।।३।।
जलधेनुमदाषाढ्यां विष्णोः पदमवाप्नुयात्। चतुर्दश सहस्राणि वायवीयं [2]हरिप्रियम् ।।४।।

विष्णु रूप पुराण को पढ़ने-सुननेवाले मनुष्यों में से विद्यार्थियों को विद्यालय, धनार्थियों को धनलाभ, राज्यार्थियों को राज्यलाभ, धर्मार्थियों को धर्मलाभ, स्वर्गार्थियों को स्वर्गलाभ, पुत्रार्थियों को पुत्रलाभ, गौ आदि के इच्छुकों को गौ आदि का लाभ, गाँव चाहनेवाले को गाँव का लाभ, कामार्थियों को कामप्राप्ति, जयाभिलाषियों को जयलाभ, सर्वाभिलाषियों को सर्वलाभ और मोक्षाभिलाषियों को मोक्षलाभ होता है। यह (अग्निपुराण) मनुष्यों को अखिल सौभाग्य, गुण तथा यश प्रदान करता है और उससे पापियों का पाप नष्ट होता है ।।१५-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में वेदशाखादि कथन नामक दो सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७१।।

अध्याय २७२

पुराणदानादि माहात्म्य

पुष्कर बोले-प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने मरीचि से जितने श्लोकों में निबद्ध ब्रह्मपुराण को कहा था तदनुसार पचीस हजार श्लोकों से युक्त ब्रह्मपुराण को लिखकर वैशाखी पूर्णिमा के दिन जलधेनु सहित उसे दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। बारह हजार श्लोकों से युक्त पद्मपुराण को लिखकर ज्येष्ठ में धेनु सहित उसे दान करने से मनुष्य स्वर्ग को जाता है ।।१-२।। विष्णुपुराण में पाराशर ने वाराहकल्प के वृत्तान्त को लेकर तेईस हजार श्लोकों को कहा है। अतः उतने श्लोकों से युक्त विष्णुपुराण को लिखकर आषाढ़ की पूर्णिमा में जलधेनु सहित दान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। चौदह हजार श्लोकों से युक्त वायुपुराण भगवान् विष्णु को प्रिय है ।।३-४।। उस

---

१ ख. ग. सहान्नं। २ क. ङ. प्रकीर्तितम्। ख. ग. हरप्रियम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाब्रवीत् । दद्याल्लिखित्वा तद्विप्रे श्रावण्यां गुडधेनुमत् ।।५।।
यत्राधिकृत्य गायत्रीं कीर्त्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ।।६।।
सारस्वतस्य कल्पस्य प्रौष्ठपद्यां तु तद्दद्देत् । अष्टादश सहस्राणि हेमसिंहसमन्वितम् ।।७।।
यत्राऽऽह नारदो धर्मान्बृहत्कल्पाश्रितानिह । पञ्चविंशसहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।।८।।
सधेनुं(नु)चाऽऽश्विने दद्यात्सिद्धिमात्यन्तिकीं लभेत् । यत्राधिकृत्य शत्रूणां धर्माधर्मविचारणा ।।९।।
कार्तिक्यां नवसाहस्रं मार्कण्डेयमथार्पयेत् । अग्निना यद्वसिष्ठाय प्रोक्तं चाऽऽग्नेयमेव तत् ।।१०।।
लिखित्वा पुस्तकं दद्यान्मार्गशीर्ष्यां स [1]सर्वदः । द्वादशैव सहस्राणि सर्वविद्यावबोधनम् ।।११।।
चतुर्दश सहस्राणि भविष्यं सूर्यसंभवम्[2] । भवस्तु मनवे प्राह दद्यात्पौष्यां गुडादिमत् ।।१२।।
सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्तमीरितम् । [3]रथन्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकम् ।।१३।।
माघ्यां दद्याद्वराहस्य चरितं ब्रह्मलोकभाक् । यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्मान्प्राहमहेश्वरः ।।१४।।
आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम् । तद्दत्वा शिवमाप्नोति फाल्गुन्यां तिलधेनुमत् ।।१५।।
[4]चतुर्विंशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम् । भूमै (म्यै) वराहचरितं मानवस्य प्रवृत्तितः ।।१६।।

पुराण में वायु ने श्वेतकल्प के प्रसंग को लेकर धर्मों का निरूपण किया है। इसको लिखकर श्रावणी पूर्णिमा के दिन गुडधेनु ब्राह्मण को समर्पित कर देनी चाहिए। जिस पुराण में गायत्री के प्रसंग से सविस्तार धर्म का निरूपण तथा वृत्रासुर-वध का वर्णन किया गया है, उसे भागवत (पुराण) कहते हैं ।।५-६।। उसमें सारस्वतकल्प तक अठारह हजार श्लोक हैं। उसे लिखकर सोने के सिंह के साथ भाद्रपद की पूर्णिमा में दान करना चाहिए। जिस पुराण में नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग से धर्मों की व्याख्या की है, वह पचीस हजार श्लोकोंवाला नारदीय पुराण है ।।७-८।। उसे लिखकर आश्विनी पूर्णिमा में धेनु सहित दान करने से आत्यन्तिकी सिद्धि प्राप्त होती है। जिस पुराण में शत्रुओं के धर्माधर्म के सम्बन्ध में विचार किया गया है, वह नौ हजार श्लोकों से युक्त मार्कण्डेय पुराण है। उसे कार्तिकी पूर्णिमा में दान करना चाहिए। अग्नि ने जिस पुराण को वशिष्ठ को सुनाया है, वह अग्निपुराण है ।।९-१०।। उसमें बारह हजार श्लोक हैं और उससे समस्त विद्याओं का बोध होता है। उसे लिखकर मार्गशीर्ष की पूर्णिमा में दान करने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। सूर्य से उत्पन्न होनेवाले भविष्यपुराण में चौदह हजार श्लोक हैं। उसे शंकर ने मनु को सुनाया था। उसे गुड़ आदि के साथ पौष की पूर्णिमा में दान करना चाहिए ।।११-१२।। सावर्णि ने नारद को अठारह सहस्र श्लोकोंवाले ब्रह्मवैवर्तपुराण को सुनाया था। उसमें रथंतर का वृत्तान्त और वाराह का चरित्र वर्णित है। माघी पूर्णिमा में उसका दान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है, जिस पुराण में अग्नि लिङ्ग के मध्य में अवस्थित होकर भगवान् शंकर ने धर्मों का निरूपण किया था ।।१३-१४।। उस लिङ्ग पुराण में आग्नेयकल्प तक ग्यारह हजार श्लोक हैं। फाल्गुनी पूर्णिमा में तिलधेनु सहित उसे दान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। वाराहपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं। मानव प्रवृत्ति से लेकर वाराह चरित्र पर्यन्त इस पुराण को भगवान् विष्णु ने भूमि को सुनाया ।।१५-१६।। चैत्र की पूर्णिमा

---

१ क. च. °दः। षौडशै°। २ क. ङ. संस्तव°। ३ छ. स्थान्तरस्य। ४ छ. चतुर्दश°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सहेम गारुडं चैत्र्यां पदमाप्नोति वैष्णवम्[1] । चतुरशीतिसाहस्त्रं स्कान्दं स्कन्देरितं महत् ।।१७।।
अधिकृत्य सधर्माश्च कल्पे तत्पुरुषेऽर्पयेत् । वामनं दशसाहस्त्रं धौमकल्पे हरेः कथाम् ।।१८।।
दद्याच्छरदि विषुवे धर्मार्थादिनिबोधनम् । कूर्मं चाष्टसहस्त्रं च कूर्मोक्तं च रसातले ।।।१९।।
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन दद्यात्तद्धेमकूर्मवत् । त्रयोदश सहस्त्राणि मात्स्यं कल्पादितोऽब्रवीत् ।।२०।।
मत्स्यो हि मनवे दद्याद्विषुवे हेममत्स्यवत् । गारुडं चाष्टसाहस्त्रं विष्णूक्तं तार्क्षकल्पके ।।२१।।
विश्वाण्डाद्गरुडोत्पत्तिं तद्दद्याद्धेमहंसवत् । ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्तु यत् ।।२२।।
तच्च द्वादशसाहस्त्रं ब्रह्माण्डं तद्द्विजेऽर्पयेत् । भारते पर्वसमाप्तौ वस्त्रगन्धस्त्रगादिभिः ।।२३।।
वाचकं पूजयेदादौ भोजयेत्पायसैर्द्विजान् । गोभूग्रामसुवर्णादि दद्यात्पर्वणि पर्वणि ।।२४।।
समाप्ते भारते विप्रं संहितापुस्तकं यजेत् । शुभे देशे निवेश्याय क्षौमवस्त्रादिनाऽऽवृतम् ।।२५।।
नरनारायणौ पूज्यौ पुस्तकं कुसुमादिभिः । गोऽन्नभूहेम दत्वाऽथ भोजयित्वा क्षमापयेत् ।।२६।।
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च । मासकौ द्वौ त्रयश्चैव मासे मासे प्रदापयेत् ।।२७।।
अयनादौ श्रावकस्य दानमादौ विधीयते । श्रोतृभिः सकलैः कार्यं श्रावके पूजनं द्विज ।।२८।।

में सुवर्ण की गरुड़ प्रतिमा सहित इसे दान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। स्कन्द के द्वारा कही हुई स्कन्दपुराण में चौरासी हजार श्लोक हैं। इसके तत्पुरुष कल्प में धर्मों की व्याख्या की गयी है। इसे लिखकर दान करना चाहिए। वामनपुराण में दस हजार श्लोक हैं। उसके धौमकल्प में भगवान् विष्णु की कथा वर्णित है ।।१७-१८।। इससे धर्म, अर्थ आदि का बोध होता है। इसे शरद् ऋतु की विषुव संक्रान्ति में लिखकर दान करना चाहिए। कूर्म भगवान् द्वारा सुनाये गये कूर्मपुराण में आठ हजार श्लोक हैं। इसके रसातल कल्प में इन्द्रद्युम्न का प्रसंग आता है। इसका दान सुवर्ण के कच्छप के साथ करना चाहिए। कल्पादि से लेकर मत्स्यपुराण में तेरह हजार श्लोक हैं ।।१९-२०।। इसे मत्स्य भगवान् ने मनु को सुनाया था। इसे विषुव की संक्रान्ति में सोने के मत्स्य के साथ दान करना चाहिए। गरुड़ पुराण में आठ हजार श्लोक हैं। इसे विष्णु ने सुनाया था। इसके तार्क्षकल्प में विश्वाण्ड से लेकर गरुड़ की उत्पत्ति तक का वर्णन है। इसे सोने के हंस के साथ दान करना चाहिए। ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड माहात्म्य को अपना वर्णनीय विषय बनाकर जिस पुराण को कहा था, वह ब्रह्माण्डपुराण है ।।२१-२२।। उसमें बारह हजार श्लोक हैं। उसे ब्राह्मण को दान करना चाहिए। महाभारत का प्रथम पर्व समाप्त होने पर वस्त्र, गन्ध, पुष्पमाला आदि से कथावाचक की पूजा करके ब्राह्मणों को खीर खिलाना चाहिए। तदनन्तर प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर उन्हें गौ, भूमि, गाँव, सुवर्ण आदि की दक्षिणा देनी चाहिए ।।२३-२४।। इस तरह सम्पूर्ण महाभारत लिख जाने पर ब्राह्मण और (महाभारत) संहिता पुस्तक की पूजा करनी चाहिए। पुस्तक को पवित्र स्थान पर रखकर उसे रेशमी वस्त्र आदि से ढँक देना चाहिए। तत्पश्चात् पुष्प आदि से नर-नारायण तथा पुस्तक की पूजा करके ब्राह्मण को गाय, अन्न, भूमि तथा सुवर्ण देकर भोजन कराके उनसे क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए ।।२५-२६।। तीन मास तक निरन्तर प्रत्येक मास में ब्राह्मण को महादान तथा अन्य विविध प्रकार के रत्नों को प्रदान करना चाहिए। सूर्य (के उत्तर तथा दक्षिण) अयन के प्रारम्भ में कथावाचक

---

१ क. °म्। एकाशी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहासपुराणानां पुस्तकानि प्रयच्छति। पूजयित्वाऽऽयुरारोग्यं स्वर्गमोक्षमवाप्नुयात् ।।२९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुराणदानादिमाहात्म्यकथनं नाम द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७२।।

अथ त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यवंशकीर्तनम्

अग्निरुवाच[1]

सूर्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते। हरेर्ब्रह्मा पद्मगोऽभून्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।।१।।
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्विवस्वांस्तस्य पत्न्यपि। संज्ञा राज्ञी प्रभा तिस्रो राज्ञी रैवतपुत्रिका ।।२।।
रैवतं[2] सुषुवे पुत्रे प्रभातं च प्रभा रवेः। त्वाष्ट्री संज्ञा मनुं पुत्रं यमलौ यमुनां यमम् ।।३।।
छाया संज्ञा च सावर्णि मनुं वैवस्वतं सुतम्। शनिं च तपतीं विष्टिं संज्ञायां चाश्विनौ पुनः ।।४।।
मनोर्वैवस्वतस्याऽऽसन्पुत्रा वै न च तत्समाः। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ।।५।।
नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागाद्यष्ट सत्तमाः। करुषश्च पृषध्रश्च अयोध्यायां महाबलाः ।।६।।
कन्येला च मनोराशीद्बुधात्तस्यां पुरूरवाः। पुरूरवसमुत्पाद्य सेला सुद्युम्नतां गता ।।७।।

को दान देना चाहिए। अये द्विज! वाचक की पूजा सभी श्रोताओं के द्वारा होनी चाहिए, जो व्यक्ति इतिहास-पुराणों की पूजा करके दान देता है, उसे आयु, आरोग्य, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।२७-२९।।

श्री अग्निमहापुराण में पुराणदानादिमाहात्म्य कथन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७२।।

अध्याय २७३

सूर्यवंशकीर्त्तन

अग्निदेव बोले-मैं तुम्हें सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा राजवंश के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ। भगवान् विष्णु से कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप और कश्यप से सूर्य उत्पन्न हुए। सूर्य की तीन पत्नियाँ थीं, जिनके नाम थे- संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञी रैवत की पुत्री थी ।।१-२।। उसने रैवत नामक पुत्र को उत्पन्न किया। सूर्य से प्रभा के प्रभात नामक पुत्र हुआ और त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने मनु तथा यम नामक पुत्रों को और यमुना नामक पुत्री को जन्म दिया। छाया तथा संज्ञा ने सावर्णि मनु, वैवस्वत यम, शनि, तपती तथा विष्टि को उत्पन्न किया। संज्ञा से पुनः अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई ।।३-४।। वैवस्वत मनु के आठ पुत्र हुए जिनके समान कोई दूसरा हुआ ही नहीं, उन आठों श्रेष्ठ पुत्र के नाम थे-इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्राशु, करुष और पृषध्र जो अयोध्या के राजा थे ।।५-६।। मनु की पुत्री का नाम था इला। उससे बुध ने पुरूरवा को जन्म दिया।

---

१ ख. ग. पुष्कर उवाच। २ छ. रेवन्तं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुद्युम्नादुत्कलगयौ [1]विनताञ्चस्त्रयो नृपाः। उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमा ।।८।।
[2]दिक्पूर्वा राजवर्यस्य[3] गयस्य च गया पुरी। वशि (सि) ष्ठवाक्यात्सुद्युम्नः प्रतिष्ठानमवाप ह ।।९।।
तत्पुरूरवसे प्रादात्सुद्युम्नो राज्यमाप्य तु। नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य च वैष्णवः ।।१०।।
अम्बरीषः प्रजापालो धार्ष्टकं धृष्टतः कुलम्। सुकन्यानर्तौ शर्यातेर्वैरोह्यानर्ततो नृपः ।।११।।
आनर्तविषयश्चाऽऽसीत्पुरी चाऽऽसीत्कुशस्थली। रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ।।१२।।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्याऽऽसीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्या सहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ।।१३।।
मुहूर्तभूतं देवस्य मर्त्ये बहुयुगं गतम्। आजगाम जवेनाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ।।१४।।
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम्। भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ।।१५।।
रेवतीं बलदेवाय ददौ ज्ञात्वा [4]ह्यनित्यताम्। तपः सुमेरुशिखरे तप्त्वा विष्णवालयं गतः ।।१६।।
नाभागस्य च पुत्रौ द्वौ वैश्यो ब्राह्मणतां गतौ। करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।।१७।।
शूद्रत्वं च पृषध्रोऽगाद्धिंसयित्वा गुरोश्च गाम्। मनुपुत्रादथेक्ष्वाकोर्विकुक्षिर्देवराडभूत् ।।१८।।
विकुक्षेस्तु ककुत्स्थोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयोधनः। तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगाश्वः पृथोः सुतः ।।१९।।
आयुस्तस्य च पुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्तथा सुताः। युवनाश्वाच्च श्रावन्तः पूर्वे श्रावन्तिका पुरी ।।२०।।

पुरूरवा को उत्पन्न करके इला ने सुद्युम्न से विवाह कर लिया। (इला और) सुद्युम्न से उत्कल, गय तथा विनताश्व नामक तीन राजाओं की उत्पत्ति हुई। उत्कल का राज्य उत्कल (उड़ीसा) में और विनताश्व का राज्य पश्चिम में था ।।७-८।। राजाओं में श्रेष्ठ गय का राष्ट्र पूर्व दिशा में था। उसकी राजधानी गयापुरी थी। वशिष्ठ के वचन से सुद्युम्न ने प्रतिष्ठानपुर को प्राप्त कर लिया था। परन्तु उसने प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा को दे दिया था। नरिष्यन्त के पुत्र शक और नाभाग के विष्णु भक्त राजा अम्बरीष हुए। धृष्ट का कुल धार्ष्टक नाम से प्रसिद्ध हुआ। शर्याति से सुकन्या एवं आनर्त की उत्पत्ति हुई। आनर्त से वैरोह्य नामक राजा उत्पन्न हुआ ।।९-११।। आनर्त की राजधानी कुशस्थली (द्वारका) थी। रेव का पुत्र रैवत था। उसका दूसरा नाम ककुद्मी था। वह सौ भाइयों में सबसे ज्येष्ठ था। वह अपनी पुत्री का वर ढूँढ़ने के लिए ब्रह्मलोक तक गया था। इतने में कई युग बीत गये, परन्तु उसे एक ही क्षण प्रतीत हुआ। जब वह शीघ्रता से अपनी राजधानी को लौटा तो अपने नगर को यादवों से आक्रान्त पाया। अनेक द्वारवाली मनोहर द्वारका को वासुदेव के नेतृत्व में भोज, वृष्णि तथा अन्धक वंशवालों ने व्याप्त कर रखा था ।।१२-१५।। वहाँ पर रैवत अपनी पुत्री बलदेव जी को देकर संसार को अनित्य समझकर सुमेरु पर्वत के शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गये। और तपस्या करके उन्होंने विष्णुलोक को प्राप्त कर लिया। नाभाग के दो वैश्य पुत्र ब्राह्मण हो गये। करूष के कारूष नामक क्षत्रिय पुत्र बड़े ही पराक्रमी योद्धा थे। गुरु की गाय की हत्या करने के कारण पृषध्र शूद्र हो गया। मनुपुत्र इक्ष्वाकु से देवराज विकुक्षि उत्पन्न हुए ।।१६-१८।। विकुक्षि के ककुत्स्थ और उनसे सुयोधन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुयोधन के पृथु नामक पुत्र हुआ। पृथु का पुत्र विश्वगाश्व और उसका पुत्र आयु हुआ। आयु का पुत्र हुआ युवनाश्व और युवनाश्व का श्रावन्त। उसी की राजधानी श्रावन्तिका पुरी थी। श्रावन्त से बृहदश्व और उससे

---

१ छ. वितता°। २ छ. दिक्सर्वा। ३ क. ङ. राजपुत्रस्य। ४ छ. °निन्दिता°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रावन्ताद्बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्ततो नृपः । धुन्धुमारत्वमगमद्धुन्धोर्नाम्ना च वै पुरा ।।२१।।
धुन्धुमारात्त्रयो भूपा दृढाश्वो दण्ड एव च । कपिलोऽथ दृढाश्वात्तु हर्यश्वश्च प्रमोदकः ।।२२।।
हर्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूत्संहताश्वो निकुम्भतः । अकृशाश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ।।२३।।
युवनाश्वो रणाश्वस्य मांधाता युवनाश्वतः । मांधातुः पुरुकुत्सोऽभून्मुचुकु(कु)न्दो द्वितीयकः ।।२४।।
पुरुकुत्सात्त्रसद्दस्युः संभूतो नर्मदाभवः । संभूतस्य सुधन्वाऽभूत्त्रिधन्वाऽथ सुधन्वनः ।।२५।।
त्रिधन्वनस्तु तरुणस्तस्य सत्यव्रतः सुतः । सत्यव्रतात्सत्यरथो हरिश्चन्द्रश्च तत्सुतः ।।२६।।
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद्वृकोऽभवत् । वृकाद्बाहुश्च बाहोश्च सगरस्तस्य च प्रिया ।।२७।।
प्रभा षष्टिसहस्राणां सुतानां जननी ह्यभूत् । तुष्टादौर्वान्नृपादेकं भानुमत्यसमञ्जसम् ।।२८।।
खनन्तः पृथिवीं दग्धाः[1] कपिलेनाथ सागराः । असमञ्जसोंऽशुमांश्च दिलीपोंऽशुमतोऽभवत् ।।२९।।
भगीरथो दिलीपात्तु येन गङ्गाऽवतारिता । भगीरथात्तु नाभागो नाभागादम्बरीषकः ।।३०।।
सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषात्तु श्रुतायुस्तत्सुतः स्मृतः । श्रुतायोर्ऋतुपर्णोऽभूत्तस्य[2] कल्माषपादकः ।।३१।।
कल्माषाङ्घ्रेः सर्वकर्मा ह्यनरण्यस्ततोऽभवत् । अनरण्यात्तु निघ्नोऽथ ([3]दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।।३२।।
तस्य राज्ञो रघुर्जज्ञे तत्सुतोऽपि ह्यजोऽभवत् । तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ।।३३।।

कुवलाश्व नामक राजा की उत्पत्ति हुई। धुन्धु नामक दैत्य को मारने के कारण कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार पड़ गया। धुन्धुमार से तीन राजा हुए– दृढाश्व, दण्ड तथा कपिल। दृढाश्व से परम विनोदी हर्यश्व की उत्पत्ति हुई ।।१९–२२।। हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से संहताश्व की उत्पत्ति हुई। संहताश्व के पुत्र अकृशाश्व तथा रणाश्व हुए। रणाश्व का पुत्र युवनाश्व और युवनाश्व का मान्धाता हुआ। मान्धाता को पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामक दो पुत्र हुए। पुरुकुत्स से नर्मदा (नाम की स्त्री) से त्रसद्दस्यु नामक पुत्र हुआ। संभूत से सुधन्वा और उससे त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ। त्रिधन्वा से तरुण और उससे सत्यव्रत की उत्पत्ति हुई। सत्यव्रत का पुत्र सत्यरथ और उसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ।।२३–२६।। हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और उससे वृक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वृक से बाहु और बाहु से सगर की उत्पत्ति हुई। सगर की पत्नी का नाम प्रभा था। वह साठ हजार पुत्रों की जननी थी। सगर की दूसरी पत्नी भानुमती ने और्व मुनि को सन्तुष्ट करके राजा से एक ही असमंजस नामक पुत्र को उत्पन्न किया। सगर के वे साठ हजार पुत्र पृथ्वी को खोदते हुए कपिल मुनि के द्वारा भस्म कर डाले गये। असमंजस से अंशुमान् और अंशुमान् से दिलीप की उत्पत्ति हुई, दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ, जिसने गंगा को पृथ्वी पर अवतरित किया। भगीरथ से नाभाग और नाभाग से अम्बरीष की उत्पत्ति हुई ।।२७–३०।। अम्बरीष से सिन्धुद्वीप और उससे श्रुतायु उत्पन्न हुआ। श्रुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण और उसका कल्माषपाद हुआ। कल्माषपाद का एक सर्वकर्मा और उसका पुत्र अनरण्य हुआ। अनरण्य से निघ्न और उसका पुत्र दिलीप हुआ ।।३१–३२।। उस राजा दिलीप का पुत्र रघु और रघु का पुत्र अज हुआ। अज से दशरथ की उत्पत्ति हुई। दशरथ के चार पुत्र हुए, जो सब–के–सब नारायण के अंश थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ थे राम। उन्होंने

---

१ छ. दग्धा विष्णुना बहुसा°। २ क. ख. ङ. च. °ऋतप°। ३ दिलीपस्त.....भवत् ख. ग. छ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तस्याग्रजोऽभवत् । रावणान्तकरो राजा ह्ययोध्यायां रघूत्तमः ।।३४।।
वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे[1] तन्नारदश्रवात् । रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्धनौ ।।३५।।
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चाऽऽत्मजः । निषधात्तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात् ।।३६।।
नभसः पुण्डरीकोऽभूत्सुधन्वा च ततोऽभवत् । सुधन्वनो देवानीको ह्यहीनाश्वश्च तत्सुतः ।।३७।।
अहीनाश्वात्सहस्राश्वश्चन्द्रालोकस्ततोऽभवत् । चन्द्रावलोकतस्तारापीडोऽस्माच्चन्द्रपर्वतः ।।३८।।
चन्द्रगिरेर्भानुरथः श्रुतायुस्तस्य चाऽत्मजः । इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः सूर्यवंशधराः स्मृताः ।।३९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यवंशकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७३।।

अथ चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सोमवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

सोमवंशं प्रवक्ष्यामि पठितं पापनाशनम् । विष्णुनाभ्यञ्ज(ब्ज)जो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ।।१।।
सोमश्चक्रे राजसूयं त्रैलोक्यं दक्षिणां ददौ । समाप्तेऽवभृथे सोमं तद्रूपालोकनेच्छवः ।।२।।

रावण को मारा था। वे अयोध्या के रघुवंशी राजाओं में सर्वश्रेष्ठ हुए ।।३३-३४।। नारद के मुख से सुनकर वाल्मीकि ने उनका वर्णन किया था। राम से सीता के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुश से अतिथि का जन्म हुआ। अतिथि का पुत्र निषध हुआ। निषध से नल की उत्पत्ति हुई। नल से नभ का जन्म हुआ। नभ से पुण्डरीक हुआ और उससे सुधन्वा। सुधन्वा से देवानीक और उससे अहीनाश्व की उत्पत्ति हुई ।।३५-३७।। अहीनाश्व से सहस्राश्व और उससे चन्द्रालोक का जन्म हुआ। चन्द्रावलोक से तारापीड और उससे चन्द्रपर्वत की उत्पत्ति हुई। चन्द्रपर्वत से भानुरथ और उससे श्रुतायु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होनेवाले ये राजागण सूर्यवंशी कहे गये हैं ।।३८-३९।।

श्री अग्निमहापुराण में सूर्यवंश-कथन नामक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७३।।

अध्याय २७४

सोमवंशवर्णन

अग्निदेव बोले-अब मैं चन्द्रवंश का वर्णन करूँगा। जिसका पाठ करने से सभी पापों का नाश हो जाता है। विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से अत्रि और अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई ।।१।। सोम ने राजसूय यज्ञ किया और उसकी दक्षिणा में तीनों लोकों को दान कर दिया। यज्ञान्त में अवभृथ स्नान समाप्त होने के बाद

---

१ क. ङ.° क्रे लोकमनोहरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव[1] देव्यः सिषेविरे । लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम् ।।३।।
द्युतिर्विभावसुं त्यक्त्वा पुष्टिर्धातारमव्ययम् । प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहुः(हूः) स्वयम् ।।४।।
कीर्तिर्जयन्तं भर्तारं वसुर्मारीच कश्यपम् । धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दीं सोममेवाभजत्तदा ।।५।।
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा । एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा ।।६।।
न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः । सप्तलोकैकनाथत्वमवाप्तस्तपसा ह्युत ।।७।।
विबभ्राम मतिस्तस्य विनयादनयाहता । बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम् ।।८।।
जहार तरसा सोमो ह्यवमन्याङ्गिरः सुतम् । ततस्तद्युद्धमभवत्प्रख्यातं तारकामयम् ।।९।।
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् । ब्रह्मा निवार्योशनसं तारामाङ्गिरसे ददौ ।।१०।।
तामन्तः प्रसवां दृष्ट्वा गर्भं त्यजावब्रीद्गुरुः । गर्भस्त्यक्तः प्रदीप्तोऽथ प्राहाहं सोमसंभवः ।।११।।
एवं सोमाद्बुधः पुत्रः पुत्रस्तस्य पुरूरवाः । स्वर्गं त्यक्त्वोर्वशी सा तं वरयामास चाप्सराः ।।१२।।
तथा सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च । पञ्च षट्सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ महामुने ।।१३।।
एकोऽग्निरभवत्पूर्वं तेन त्रेता प्रवर्तिता । पुरूरवा योगशीलो गान्धर्वलोकमीयिवान् ।।१४।।
आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसुः । दिविजातः शतायुश्च सुषुवे चोर्वशी नृपात् ।।१५।।
आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा रजिस्तथा । दम्भो विपाप्मा पञ्चाद्यं रजेः पुत्रशतं ह्यभूत् ।।१६।।

सोम रूप को देखने की उत्कण्ठा से कामबाण विह्वल होकर नौ देवियाँ उसकी सेवा में उपस्थित हुईं। लक्ष्मी, सिनीवाली, द्युति, पुष्टि, प्रभा, कुहू, कीर्ति, वसु, धृति क्रमशः नारायण, कर्दम, विभावसु, अविनाशी, विधाता, प्रभाकर, हविष्मान्, जयन्त, मरीचि पुत्र कश्यप और नन्दी को छोड़कर सोम की ही परिचर्या करने लगीं। तब सोम भी उन सबको अपनी भार्या की तरह मानने लगा। परन्तु उन देवियों के पति चन्द्रमा के उस अपराध को सहन न कर सके ।।२–६।। उन्होंने उसे शाप देकर शस्त्रादि से पराजित कर दिया तब उसने फिर तपस्या करके सात लोकों के स्वामित्व को प्राप्त कर लिया। परन्तु अन्याय से अभिभूत उसकी बुद्धि भ्रान्त ही रही। इसलिए उसने बृहस्पति का अपमान करके उनकी पत्नी यशस्विनी तारा का बलपूर्वक हरण कर लिया ।।७–८।। उन दोनों (गुरु और सोम) के बीच तारकामय नाम से प्रख्यात संग्राम छिड़ गया। वह महान् संग्राम देवों और दानवों के बीच हुआ। उसमें लोगों का भारी सर्वनाश हुआ। तब ब्रह्मा ने (दैत्यगुरु) शुक्र को लड़ाई से हटाकर तारा को अङ्गिरस को दे डाला ।।९–१०।। तारा को गर्भिणी देखकर बृहस्पति ने उससे कहा–'गर्भ को गिरा दो।' उस गर्भ से कान्तिमान् बालक का जन्म हुआ। जन्म लेते ही वह बोल उठा– मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। इस प्रकार चन्द्रमा का पुत्र बुध और उसका पुत्र पुरूरवा हुआ। उर्वशी अप्सरा ने स्वर्ग को छोड़कर उस राजा पुरूरवा का वरण किया। हे महामुने! राजा पुरूरवा ने उर्वशी के साथ उनसठ वर्ष व्यतीत किये। पहले एक अग्नि की उपासना की जाती थी। परन्तु पुरूरवा ने तीन अग्नियों की उपासना की पद्धति चलायी। वह योगशील राजा था। उसने गन्धर्वलोक को प्राप्त कर लिया था ।।११–१४।। उससे उर्वशी ने आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु नामक पुत्रों को जन्म दिया था। आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ

---

१ छ. नरदे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजेया इति विख्याता विष्णुदत्तवरो रजिः। देवासुरे रणे दैत्यानबधीत्सुरयाचितः[1] ।।१७।।
शताश्वेन्द्राय पुत्रत्वं दत्वा राज्यं दिवं गतः। रजेः पुत्रैर्हृतं राज्यं शक्रस्याथ सुदुर्मनाः ।।१८।।
ग्रहशान्त्यादिविधिना गुरुरिन्द्राय तद्ददौ। मोहयित्वा रजिसुतानसंस्ते[2] निजधर्मतः ।।१९।।
नहुषस्य सुताः सप्त यतिर्ययातिरुत्तमः। उद्भवः पञ्चकश्चैव शर्यातिमेघपालकौ ।।२०।।
यतिः कुमारभावेऽपि विष्णुं ध्यात्वा हरिं गतः। देवयानी शुक्रकन्या ययातेः पत्न्यभूत्तदा ।।२१।।
वृषपर्वजा शर्मिष्ठा ययातेः पञ्च तत्सुताः। यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।।२२।।
द्रुह्यं चानुं पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। यदुः पुरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सोमवंशकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७४।।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

यदोरासन्पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्रजित्। नीलाञ्जिको रघुः क्रोष्टुः शतजिच्च सहस्रजित् ।।१।।
शतजिद्धैहयो रेणुहयो हय इति त्रयः। धर्मनेत्रो हैहयस्य धर्मनेत्रस्य संहतः ।।२।।

तथा विपाप्मा नामक पाँच पुत्र हुए। रजि के सौ पुत्र हुए जो राजेय नाम से विख्यात थे। रजि को विष्णु का वरदान प्राप्त था। उसने देवासुर संग्राम में देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर दैत्यों का वध किया था ।।१५-१७।। तदनन्तर वह शताश्वेन्द्र को राज्य सौंपकर स्वयं स्वर्ग को चला गया। उस रजि के पुत्रों ने इन्द्र का राज्य छीन लिया। इससे बृहस्पति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने ग्रह-शान्ति आदि उपायों से रजि-पुत्रों को मोहित करके उन्हें अपने धर्म से च्युत करके तथा उनसे राज्य लेकर इन्द्र को वापस कर दिया। नहुष के सात पुत्र- यति, ययाति, उत्तम, उद्भव, पञ्चक, शर्याति तथा मेघपालक हुए ।।१८-२०।। यति ने कौमार्यावस्था में ही विष्णु का ध्यानकर उनको प्राप्त कर लिया। शुक्र की कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ययाति की पत्नियाँ थीं। ययाति के पाँच पुत्र हुए, जिनमें से यदु तथा तुर्वसु को देवयानी ने उत्पन्न किया था। और द्रुह्य, अनु और पुरु को शर्मिष्ठा ने। यदु और पुरु उनके वंश को बढ़ानेवाले हुए ।।२१-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में सोमवंश कथन नामक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७४।।

अध्याय २७५

यदुवंशवर्णन

अग्निदेव बोले-यदु के पाँच पुत्र थे, जिनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम सहस्रजित् और शेष चारों के नाम थे- नीलाञ्जिक, रघु, क्रोष्टु तथा शतजित् ।।१।। शतजित् के हैहय, रेणुहय तथा हय नाम के तीन पुत्र हुए। हैहय का पुत्र

---

१ छ.° तः। गतायेन्द्रा°। २ क. ङ. जिनधर्मतः।

CC-0.JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महिमा संहतस्याऽऽसीन्महिम्नो भद्रसेनकः । भद्रसेनाद्दुर्गमोऽभूद्दुर्गमात्कनकोऽभवत् ।।३।।
कनकात्कृतवीर्यस्तु कृताग्निः करवीरकः । कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तु सोऽर्जुनः ।।४।।
दत्तोऽर्जुनाय तपते सप्त द्वीपमहीशताम् । ददौ बाहुसहस्रं च ह्यजेयत्वं रणे[1] तथा ।।५।।
अधर्मे वर्तमानस्य विष्णुहस्तान्मृतिर्ध्रुवा । दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्जुनः कृतवान्नृपः ।।६।।
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत् । न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति वै नृपाः ।।७।।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च । कार्तवीर्यस्य च शतं पुत्राणां पञ्च वै परम् ।।८।।
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च । जयध्वजश्च नामाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।।९।।
जयध्वजात्तालजङ्घस्तालजङ्घात्ततः सुताः । हैहयानां कुलाः पञ्च भोजाश्चाऽऽवन्तयस्तथा ।।१०।।
वीतिहोत्राः स्वयं जाताः शौण्डिकेयास्तथैव च । वीतिहोत्रादनन्तोऽभूदनन्ताद्दुर्जयो नृपः ।।११।।
क्रोष्टोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरिः स्वयम् । क्रोष्टोस्तु वृजिनीवांश्च स्वाहाऽभूद्वृजिनीवतः ।।१२।।
स्वाहापुत्रो रुषद्गुश्च[2] तस्य चित्ररथः सुतः । शशविन्दुश्चित्ररथाच्चक्रवर्ती हरौ रतः ।।१३।।
शशविन्दोश्च पुत्राणां शतानामभवच्छतम् । धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ।।१४।।
पृथुश्रवाः प्रधानोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयज्ञकः । सुयज्ञस्योशनाः पुत्रस्तितिक्षुरुशनः सुतः ।।१५।।

धर्मनेत्र और धर्मनेत्र का संहत था। संहत का पुत्र महिमा और महिमा का भद्रसेनक था। भद्रसेन से दुर्गम की उत्पत्ति हुई और दुर्गम से कनक की ।।२-३।। कनक से चार पुत्र उत्पन्न हुए-कृतवीर्य, कृताग्नि, करवीरक तथा कृतौजा। कृतवीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुए, जिसने तपस्या के बल से सातों द्वीपों के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का शासकत्व, सहस्र भुजाएँ तथा रण में अजेयत्व प्राप्त कर लिया था ।।४-५।। उसे यह भी वरदान प्राप्त था कि जब वह अधर्माचरण करने लगेगा तब विष्णु के हाथ से निश्चय ही उसकी मृत्यु होगी। उस राजा अर्जुन ने दस हजार यज्ञ किये थे। उनके राष्ट्र में उनके स्मरण मात्र से खोयी हुई वस्तु मिल जाती थी। यह निश्चिय समझना चाहिए कि कोई भी राजा यज्ञ, दान, तप, विक्रम और शास्त्र में कार्तवीर्यार्जुन की समता नहीं कर सकता था। कार्तवीर्य के सौ पुत्र में ज्येष्ठ पाँच पुत्रों के नाम क्रमशः हैं ।।६-८।। शूरसेन, शूर, धृष्टोक्त, कृष्ण तथा जयध्वज थे। जयध्वज के तालजंघ और तालजंघ के अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। हैहयों के भोज, अवन्ति, वीतिहोत्र, स्वयंजात तथा शौण्डिकेय नाम से पाँच कुल प्रसिद्ध हैं। वीतिहोत्र से अनन्त और अनन्त से दुर्जय नामक राजा हुआ ।।९-११।। अब मैं क्रोष्टु के वंश का वर्णन करूँगा। जिसमें साक्षात् भगवान् विष्णु ने अवतार लिया था। क्रोष्टु का पुत्र वृजिनीवान्, वृजिनीवान् का स्वाहा, स्वाहा का रुषद्गु और उसका पुत्र चित्ररथ हुआ। चित्ररथ से चक्रवर्ती तथा हरिभक्त राजा शशविन्दु की उत्पत्ति हुई ।।१२-१३।। शशविन्दु के सौ पुत्र-पौत्र हुए, जो सब-के-सब बुद्धिमान्, सुन्दर तथा महान् तेजस्वी थे। उनमें पृथुश्रवा सबसे ज्येष्ठ था। उसका पुत्र सुयज्ञक हुआ। सुयज्ञक का पुत्र उशना और उसका पुत्र हुआ तितिक्षु ।।१४-१५।। तितिक्षु

---

१ छ. °णेऽरिणा। अ°। २ क. ङ. रुभङ्गुश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तितिक्षोस्तु मरुत्तोऽभूत्तस्मात्कंबलवर्हिषः । पञ्चाशद्रुक्मकवचाद्रुक्मेषुः पृथुरुक्मकः ।।१६।।
हविर्ज्यामघः पापघ्नो ज्यामघः स्त्रीजितोऽभवत् । शैब्यायां[1] ज्यामघादासीद्विदर्भस्तस्य कौशिकः ।।१७।।
लोमपादः क्रथः श्रेष्ठात्कृतिः स्याल्लोमपादतः । कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ।।१८।।
क्रथाद्विदर्भपुत्राश्च कुन्तिः कुन्तेस्तु धृष्टकः । धृष्टकस्य धृतिस्तस्य उदर्काख्यो विदूरथः ।।१९।।
दशार्हपुत्रो व्योमस्तु व्योमाज्जीमूत उच्यते । जीमूतपुत्रो विकलस्तस्य भीमरथः सुतः ।।२०।।
भीमरथान्नवरथस्ततो दृढरथोऽभवत् । शकुन्तिश्च दृढरथाच्छकुन्तेश्च करम्भकः ।।२१।।
करम्भाद्देवरातोऽभूद्देवक्षेत्रश्च तत्सुतः । देवक्षेत्रान्मधुर्नाम मधोर्द्रवरसोऽभवत् ।।२२।।
द्रवरसात्पुरुहूतोऽभूज्जन्तुरासीत्तु तत्सुतः । गुणी तु यादवो राजा जन्तुपुत्रस्तु सात्वतः ।।२३।।
सात्वताद्भजमानस्तु वृष्णिरन्धक एव च । देवावृधश्च चत्वारस्तेषां वंशस्तु विश्रुताः ।।२४।।
भजमानस्य बाह्योऽभूद्वृष्टिः कृमिर्निमिस्तथा । देवावृधाद्बभ्रुरासीत्तस्य श्लोकोऽत्र गीयते ।।२५।।
यथैव शृणुमो दूराद्गुणांस्तद्वत्समन्तिकात् । बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।।२६।।
चत्वारश्च सुता बभ्रोर्वासुदेवपरा नृपाः । [2]कुकुरो भजमानस्तु शिनिः कम्बलबर्हिषः ।।२७।।
[3]कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयो धृतिः । धृतेः कपोतरोमाऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तित्तिरिः ।।२८।।
तित्तिरेस्तु नरः पुत्रस्तस्य[4] चाऽऽनकदुन्दुभिः । पुनर्वसुस्तस्य पुत्र आहुकश्चाऽऽहुकीसुतः ।।२९।।

का पुत्र मरुत्त और उसका पुत्र कंबलवर्हिष हुआ। कंबलवर्हिष का पुत्र रुक्मकवच और उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्मक, हविर्ज्यामघ, पापघ्न, ज्यामघ तथा स्त्रीजित आदि पचास पुत्र हुए। ज्यामघ ने शैब्या से विदर्भ को जन्म दिया। विदर्भ से कौशिक, लोमपाद तथा क्रथ की उत्पत्ति हुई, लोमपाद से कृति और कौशिक से चिदि उत्पन्न हुआ। चिदि से चैद्य नाम से प्रसिद्ध अनेक पुत्र हुए ।।१६-१८।। क्रथ से कुन्ति, कुन्ति से धृष्टक, धृष्टक से धृति और धृति से उदर्क नामक विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र व्योम और व्योम से जीमूत उत्पन्न हुआ। जीमूत का पुत्र विकल और उसका पुत्र भीमरथ हुआ ।।१९-२०।। भीमरथ से नवरथ और उससे दृढ़रथ की उत्पत्ति हुई। दृढ़रथ से शकुन्ति और शकुन्ति से करम्भक उत्पन्न हुआ। करम्भक से देवरात और उससे देवक्षेत्र की उत्पत्ति हुई। देवक्षेत्र से मधु और उससे द्रवरथ उत्पन्न हुआ। द्रवरस से पुरुहूत और उससे जन्तु की उत्पत्ति हुई जो यदुवंश में अत्यन्त गुणवान् राजा था। उसका पुत्र था सात्वत। सात्वत से भजमान, वृष्णि, अन्धक तथा देवावृध नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ।।२१-२४।। भजमान के बाह्य, वृष्टि, कृमि तथा निमि पुत्र हुए। देवावृध से बभ्रु की उत्पत्ति हुई। उसके विषय में श्लोक कहा जाता है- जैसे हम बभ्रु के गुणों को दूर से सुनते हैं वैसे समीप से। बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है और उसका पिता देवावृध देवताओं के समान है ।।२५-२६।। बभ्रु के चार पुत्र हुए जो कृष्णभक्त राजा थे। उनके नाम कुकुर, भजमान, शिनि तथा कम्बलवर्हिष थे। कुकुर का पुत्र धृष्णु, धृष्णु का धृति, धृति का कपोतरोमा और उसका पुत्र तित्तिरि था ।।२७-२८।। तित्तिर का पुत्र नर और उसका पुत्र आनकदुन्दुभि था। आनकदुन्दुभि का पुत्र पुनर्वसु और उसका पुत्र आहुक हुआ।

---

१ छ. सेव्यायां। २ छ. कुहुरो। ३ कुहुरस्य। ४ छ. °स्थ चन्दनदु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आहुकाद्देवको जज्ञ उग्रसेनस्ततोऽभवत्। देववानुपदेवश्च देवकस्य सुताः स्मृताः ।।३०।।
तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय ता ददौ। देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ।।३१।।
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुरापी चेति सप्तमी। नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तासां[1] च पूर्वजः ।।३२।।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूमिपः। सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिकः ।।३३।।
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ।।३४।।
राजाधिदेवपुत्रौ द्वौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः। शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शमीशत्रुजिदादयः ।।३५।।
शमीपुत्रः प्रतिक्षेत्रः प्रतिक्षेत्रस्य भोजकः। भोजस्य हृदिकः पुत्रो हृदिकस्य दशाऽऽत्मजाः ।।३६।।
कृतवर्मा शतधन्वा देवार्हो भीषणादयः। देवार्हात्कम्बलबर्हिरसमौजास्ततोऽभवत् ।।३७।।
सुदंष्ट्रश्च सुवासश्च धृष्टोऽभूदसमौजसः। गान्धारी चैव माद्री च धृष्टभार्ये बभुवतुः ।।३८।।
सुमित्रोऽभूच्च गान्धार्या माद्री जज्ञे युधाजितम्। अनमित्रः शिनिर्धृष्टात्ततो वै देवमीढुषः ।।३९।।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि प्रसेनकः। सत्राजितः प्रसेनोऽथ मणिं सूर्यात्स्यमन्तकम् ।।४०।।
प्राप्यारण्ये चरन्तं तु सिंहो हत्वाऽग्रहीन्मणिम्। हतो जाम्बवता सिंहो जाम्बवान्हरिणा जितः ।।४१।।
तस्मान्मणिं जाम्बवतीं प्राप्यागाद्द्वारकां पुरीम्। सत्राजिताय प्रददौ शतधन्वा जघान तम् ।।४२।।
हत्वा शतधनुं कृष्णो मणिमादाय कीर्तिभाक्। बलयादवमुख्याग्रेऽक्रूराय मणिमार्पयत् ।।४३।।

आहुक के देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसमें से देवक के देववान् तथा उपदेव नामक पुत्र और देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी तथा सुरापी नामक सात पुत्रियाँ हुईं। इन सातों का विवाह वसुदेव से हो गया ।।२९-३१$\frac{1}{2}$।। उग्रसेन के नौ पुत्र हुए जिनमें सबसे ज्येष्ठ का नाम कंस और अन्य आठों का नाम न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शंकु, राजा सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि तथा सुमुष्टिक था। भजमान का पुत्र महारथी विदूरथ हुआ। विदूरथ का राजाधिराज शूर हुआ। शूर के दो पुत्र हुए- शोणाश्व और श्वेतवाहन। शोणाश्व के शमी, शत्रुजित् आदि पाँच पुत्र हुए ।।३२-३५।। शमी का पुत्र प्रतिक्षेत्र और प्रतिक्षेत्र का पुत्र भोजक हुआ। भोजक का पुत्र हृदिक और उसके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह, भीषण आदि दस पुत्र हुए। देवार्ह से कम्बलबर्हि और उससे असमौजा नामक पुत्र हुआ ।।३६-३७।। असमौजा से सुदंष्ट्र, सुवास तथा धृष्ट नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। धृष्ट की दो पत्नियाँ थीं-गान्धारी और माद्री, जिनमें गान्धारी ने सुमित्र को और माद्री ने युधाजित् को उत्पन्न किया। धृष्ट के और भी तीन पुत्र हुए-अनमित्र, शिनि तथा देवमीढुष। अनमित्र से निघ्न और निघ्न से प्रसेनक तथा सत्राजित् की उत्पत्ति हुई। सत्राजित् ने सूर्य से स्यमन्तक मणि प्राप्त करके प्रसेन को दे दी ।।३८-४०।। उसे लेकर प्रसेन वन में विचरण कर रहा था, वहाँ उसे एक सिंह ने मारकर मणि ले ली। उस सिंह को भी मारकर जाम्बवान् ने उससे मणि छीन ली। तत्पश्चात् जाम्बवान् को जीतकर उससे मणि तथा जाम्बवती को प्राप्त करके कृष्ण द्वारका चले आये और मणि सत्राजित् को लौटा दी। परन्तु शतधन्वा ने सत्राजित् को मार डाला। अतः कृष्ण ने शतधन्वा को भी मारकर वह मणि बलदेव आदि प्रमुख यादवों के सामने अक्रूर को दे दी ।।४१-४३।। इससे कृष्ण के ऊपर लगायी गयी लाञ्छना

---

१ ख. ग. °सस्तेषां च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिथ्याभिशस्तिं कृष्णस्य त्वक्त्वा स्वर्गी च संपठन् । सत्राजितो भङ्गकारः सत्यभामा हरेः प्रिया ।।४४।।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिनेः सुतः । सत्यकात्सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद्धुनिर्ह्यभूत् ।।४५।।
धुनेर्युगंधरः पुत्रः स्वाह्योऽभूत्स युधाजितः । ऋषभक्षेत्रकौ तस्य ह्यृषभाच्च स्व(श्व) फल्ककः ।।४६।।
स्व (श्व) फल्कपुत्रो ह्यक्रूरो ह्यक्रूराच्च सुधन्वकः । शूरात्तु वसुदेवाद्याः पृथा पाण्डोः प्रियाऽभवत् ।।४७।।
धर्माद्युधिष्ठिरः पाण्डोर्वायोः कुन्त्यां वृकोदरः । इन्द्राद्धनंजयो माद्र्यां नकुलः सहदेवकः ।।४८।।
वसुदेवाच्च [1]रोहिण्यां रामः सारणदुर्गमौ । वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातःसुषेणकः ।।४९।।
कीर्तिमान्भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः । भद्रदेहः कंस एतान्षड्गर्भान्निजघान ह ।।५०।।
ततो बलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी । चारुदेष्णश्च शा (सा)म्बाद्याः कृष्णाज्जाम्बवतीसुताः ।।५१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यदुवंशकथनं नाम
पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७५।।

दूर हो गयी। इसलिए जो मनुष्य इस प्रकरण का पाठ करता है उसका भी मिथ्यापवाद नष्ट हो जाता है। सत्राजित् का पुत्र भंगकार था। उसने उस घटना के बाद अपनी बहन सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया। अनिमित्र से शिनि की उत्पत्ति हुई, शिनि का पुत्र सत्यक और सत्यक का सात्यकि हुआ। सात्यकि से युयुधान और उससे धुनि की उत्पत्ति हुई ।।४४-४५।। धुनि से युगंधर उत्पन्न हुआ। युगंधर का पुत्र युधाजित और युधाजित के ऋषभ तथा क्षेत्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ऋषभ से श्वफल्कक, श्वफल्कक से अक्रूर और अक्रूर से सुधन्वा की उत्पत्ति हुई। शूर से वसुदेव आदि उत्पन्न हुए। पाण्डु की पत्नी थी पृथा। पाण्डु की भार्या कुन्ती ने धर्मराज से युधिष्ठिर की, वायु से भीम की और इन्द्र से अर्जुन की उत्पत्ति की। उसकी दूसरी पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव का जन्म हुआ ।।४६-४८।। रोहिणी ने वसुदेव से राम, सारण तथा दुर्गम को जन्म दिया। वसुदेव के देवकी से उत्पन्न होनेवाले पहले सुषेण, कीर्तिमान, भद्रसेन, जारुख्य, विष्णु, दासक और भद्रदेह नामक छह पुत्रों को कंस ने मार डाला था। तदनन्तर उनसे बलराम, कृष्ण तथा शुभभाषिणी सुभद्रा की उत्पत्ति हुई। कृष्ण से जाम्बवती ने चरुदेष्ण तथा साम्ब आदि पुत्रों को जन्म दिया ।।४९-५१।।

श्री अग्निमहापुराण में यदुवंश कथन नामक दो सौ पचहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ।।२७५।।

---

१ क. ङ. °हिण्यामादौ जा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादश सङ्ग्रामाः

अग्निरुवाच

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्वरा। देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसाऽन्वितः ।।१।।
धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च। सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च ।।२।।
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती प्रिया। सत्यभामा हरेः सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ।।३।।
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा। सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया जया ।।४।।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोडश। प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्यां भीमाद्याः सत्यभामया ।।५।।
जाम्बवत्यां च साम्बाद्याः कृष्णस्याऽऽसंस्तथा परे। शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः ।।६।।
अशीतिश्च सहस्राणि यादवाः कृष्णरक्षिताः। प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रियः ।।७।।
अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवाः सुमहाबलाः। तिस्रः कोट्यो यादवानां षष्टिर्लक्षाणि दानवाः ।।८।।
मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव सः। कर्तुं [1]धर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः ।।९।।
देवासुराणां सङ्ग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन्। प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः ।।१०।।
सङ्ग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः। तारकामयसङ्ग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ।।११।।

अध्याय २७६

द्वादश-सङ्ग्राम

अग्निदेव बोले– (जन्मान्तर में) कश्यप वसुदेव हुए और उत्तमा अदिति देवकी हुई। धर्म की रक्षा, अधर्म का नाश, देवताओं इत्यादि का पालन और दैत्यों का विध्वंस करने के लिए देवकी ने वसुदेव से कृष्ण को जन्म दिया ।।१–२।। रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, प्रिया, नाग्नजिती, सेविका, गान्धारी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, देवी जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौशल्या, विजया, जया आदि सोलह हजार उनकी पत्नियाँ थीं ।।३–४$\frac{१}{२}$।। कृष्ण ने रुक्मिणी से प्रद्युम्न आदि, सत्यभामा से भीम आदि और जाम्बवती से साम्ब आदि पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उन बुद्धिमान् कृष्ण के एक करोड़ पुत्र थे, जिनके संरक्षण में अस्सी हजार यादव रहा करते थे। प्रद्युम्न से वैदर्भी ने रणप्रिय अनिरुद्ध को जन्म दिया ।।५–७।। अनिरुद्ध से वज्र आदि अत्यन्त महाबली यादव उत्पन्न हुए। यादवों की संख्या तीस करोड़ थी, दानवों की संख्या थी साठ लाख। मनुष्यों को बाधित करनेवाले जीवों का नाश और धर्म की व्यवस्था करने के लिए भगवान् हरि मनुष्य-तन धारण किया करते हैं ।।८–९।। पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए देवों और असुरों के बीच बारह बार युद्ध हुए। इनमें से प्रथम संग्राम का नाम नरसिंह, दूसरे का वामन, तीसरे का वाराह, चौथे का अमृत-मन्थन, पाँचवें का तारकामय, छठे का आजीवक, सातवें का त्रैपुर, आठवें का अन्धकवध, नवें का

---

१ ख. ग. छ. कर्मव्यवस्थान।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रैपुरश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातकः। जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ।।१२।।
हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य च नखैः पुरा। नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कृतवान्नृपम् ।।१३।।
देवासुरे वामनश्च च्छलित्वा बलमूर्जितम्। महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसंभवः ।।१४।।
वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत्। उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ।।१५।।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्। सुरासुरैश्च मथितं देवेभ्यश्चामृतं ददौ ।।१६।।
तारकामयसङ्ग्रामे तदा देवाश्च पालिताः। निवार्येन्द्रं गुरून्देवान्दानवान्सोमवंशकृत् ।।१७।।
विश्वामित्रवशिष्ठात्रिकवयश्च रणे सुरान्। अपालयंस्ते निर्वार्य रागद्वेषादिदानवान् ।।१८।।
पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः। ददाह त्रिपुरं देवपालको दैत्यमर्दनः ।।१९।।
गौरीं जिहीर्षुणा रुद्रमन्धकेनार्दितं हरिः। अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रे चान्धासुरार्दनम् ।।२०।।
अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन्। वृत्रं देववरं[1] विष्णुर्देवधर्मानपालयत् ।।२१।।
शाल्वादीन्दानवाञ्जित्वा हरिः परशुरामकः। अपालयत्सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ।।२२।।
हालाहलं विषं दैत्यं निराकृत्य महेश्वरात्। भयं निर्णाशयामास देवानां मधुसूदनः ।।२३।।

वृत्रघातक, दसवें का जित, ग्यारहवें का हालाहल और बारहवें का नाम कोलाहल था ।।१०-१२।। प्राचीनकाल में देवताओं के रक्षक नृसिंह ने हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नख से फाड़कर प्रह्लाद को राजा बनाया था। देवासुर संग्राम में अदिति से उत्पन्न कश्यप-पुत्र वामन ने बलि को छलकर इन्द्र को राज्य दे दिया था। वाराह ने हिरण्याक्ष को मारकर देवताओं की रक्षा की थी और देवाधिदेव (इन्द्र) के द्वारा स्तुति करने पर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया था ।।१३-१५।। देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया था जिसमें मन्दराचल को मथानी और वासुकि को रस्सी बनाया गया था। मन्थन से जो अमृत निकला उसे भगवान् विष्णु ने देवताओं में बाँट दिया। तारकामय संग्राम में हरि ने इन्द्र और बृहस्पति आदि देवों तथा दानवों को युद्ध में हराकर देवताओं की रक्षा की थी। उस रण में विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि तथा शुक्र ने राग, द्वेष आदि दानवों का निवारण करके देवताओं की रक्षा की थी ।।१६-१८।। पृथ्वी पर त्रिपुरासुर का महान् अत्याचार होने पर देवपालक, दैत्यनाशक और ब्रह्मा तथा शङ्कर के भी रक्षक भगवान् विष्णु ने उस राक्षस को भस्मसात् कर दिया था। गौरी का हरण करने की इच्छा करनेवाले अन्धकासुर द्वारा पीड़ित शंकर के ऊपर कृपा करके भगवान् विष्णु ने रेवती नक्षत्र में उस राक्षस को मार डाला। देवों और असुरों के युद्ध में भगवान् विष्णु ने जल का फेन बनकर वृत्रासुर का वध किया और इस प्रकार देवताओं के धर्म की रक्षा की ।।१९-२१।। परशुराम अवतार में भगवान् विष्णु ने शाल्व आदि दानवों को जीतकर और दुष्ट क्षत्रियों का वध करके देवताओं की रक्षा की। मधुसूदन ने शङ्कर से हालाहल विष लेकर दैत्यों के ऊपर प्रयोग किया जिससे देवता अभय हो गये ।।२२-२३।।

---

१ छ. देवहरं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवासुरे रणे[1] यश्च दैत्यः कोलाहलो जितः। पालिताश्च सुराः सर्वे विष्णुना धर्मपालनात् ।।२४।।
राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः। यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वादशसंख्याकसङ्ग्रामकथनं नाम
षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७६।।

अथ सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

तुर्वसोश्च सुतो [2]वर्गो गोभानुस्तस्य चाऽऽत्मजः। गोभानोरासीत्त्रैशानिस्त्रैशानेस्तु करंधमः ।।१।।
करंधमान्मरुत्तोऽभूद्दुष्यन्तस्तस्य चाऽऽत्मजः। दुष्यन्तस्य बरूथोऽभूद्गाण्डीरस्तु बरूथतः ।।२।।
गाण्डीराच्चैव गान्धारः पञ्च जानपदास्ततः। गान्धाराः केरलाश्चोलाः पाण्ड्याः कोला महाबलाः ।।३।।
द्रुह्यस्तु[3] बभ्रुसेतुश्च बभ्रुसेतोः पुरोवसुः। ततो गान्धारा गान्धारैर्धर्मो धर्माद्घृतोऽभवत् ।।४।।
घृतात्तु विदुषस्तस्मात्प्रचेतास्तस्य वै शतम्। अनडुश्च सुभानुश्च चाक्षुषः परमेषुकः ।।५।।
सुभानोश्च कालानलः कालानलजः सृञ्जयः। पुरंजयः सुञ्जयस्य तत्पुत्रो जनमेजयः ।।६।।

देवासुर संग्राम में कोलाहल नामक दैत्य को मारकर भगवान् विष्णु ने धर्म की रक्षा की, जिससे देववृन्द, राजवृन्द, राजपुत्र-समूह और मुनिगण की रक्षा हुई। ये भगवान् विष्णु के अवतार हैं। इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है और जो कुछ नहीं भी कहा गया है वह सब सत्य समझना चाहिए ।।२४-२५।।

श्री अग्निमहापुराण में द्वादश संग्राम कथन नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७६।।

अध्याय २७७

राजवंश-वर्णन

अग्निदेव बोले-तुर्वसु का पुत्र वर्ग हुआ और उसका पुत्र हुआ गोभानु। गोभानु से त्रैशानि और त्रैशानि से करंधम उत्पन्न हुआ ।।१।। करंधम से मरुत्त और दुष्यन्त की उत्पत्ति हुई। दुष्यन्त से बरूथ और बरूथ से गाण्डीर उत्पन्न हुआ ।।२।। गाण्डीर से गान्धार की उत्पत्ति हुई। गान्धार के नाम से पाँच सबल देश प्रख्यात हुए-गान्धार, केरल, चोल, पाण्ड्य तथा कोल। द्रुह्य से वभ्रुसेतु और वभ्रुसेतु से पुरोवसु की उत्पत्ति हुई। गान्धारी के पुत्र गान्धार ही कहलाये। धर्म से घृत, घृत से विदुष और उससे प्रचेता की उत्पत्ति हुई। प्रचेता के अनडु, सुभानु, चाक्षुष, परमेषुक आदि सौ पुत्र हुए ।।३-५।। सुभानु का पुत्र कालानल और कालानल का पुत्र सृञ्जय हुआ। सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय और उसका पुत्र जनमेजय हुआ।

---

१ क. ङ. °णे दैत्यं पञ्चजनं जघान ह। पा°। २ क. ङ. वंशो। ३ क. ङ. द्रुह्योस्तु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्पुत्रस्तु महाशालस्तत्पुत्रोऽभून्महामनाः । तस्मादुशीनरो ब्रह्मन्नृगायां तु नृगस्ततः ।।७।।
नरायां तु नरश्चाऽसीत्कृमिस्तु कृमितः सुतः । दशायां सुव्रतो जज्ञे दृषद्वत्यां शिविस्तथा ।।८।।
शिवेः पुत्रास्तु चत्वारः पृथुदर्भश्च वीरकः । ([1]कैकेयो भद्रकस्तेषां नाम्ना जनपदाः शुभाः ।।९।।
तितिक्षुरुशीनरजस्तितिक्षोश्च रुषद्रथः । रुषद्रथादभूत्पैलः पैलाच्च सुतपाः सुतः ।।१०।।
महायोगी बलिस्तस्मादङ्गो वङ्गश्च मुख्यकः) । पुण्ड्रः कलिङ्गो बालेयो बलिर्योगी बलान्वितः ।।११।।
अङ्गाद्दधिवाहनोऽभूत्तस्माद्दिविरथो नृपः । दिविरथाद्धर्मरथस्तस्य चित्ररथः सुतः ।।१२।।
चित्ररथात्सत्यरथो लोमपादश्च तत्सुतः । लोमपादाच्चतुरङ्गः पृथुलाक्षश्च तत्सुतः ।।१३।।
पृथुलाक्षाच्च चम्पोऽभूच्चम्पाद्धर्यङ्गकोऽभवत् । हर्यङ्गाच्च भद्ररथो बृहत्कर्मा च तत्सुतः ।।१४।।
तस्मादभूद्बृहद्भानुर्बृहद्भानोर्बृहात्मवान् । तस्माज्जयद्रथो ह्यासीज्जयद्रथाद्बृहद्रथः ।।१५।।
बृहद्रथाद्विश्वजिच्च कर्णो विश्वजितोऽभवत् । कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तदात्मजः ।।१६।।
एतेऽङ्गवंशजा भूपाः पुरोर्वंशं निबोध मे ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजवंशवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७७।।

जनमेजय का पुत्र महाशाल और उसका पुत्र महामना हुआ। महामना का पुत्र उशीनर हुआ। अये ब्रह्मन्! नृगा से नृग, नरा से नर और कृमि से कृमि की उत्पत्ति हुई। दशा से सुव्रत और दृषद्वती से शिवि की उत्पत्ति हुई ।।६-८।। शिवि के चार पुत्र हुए-पृथुदर्भ, वीरक, कैकेय और भद्रक। उनके नामों से चार पवित्र देश प्रसिद्ध हुए। उशीनर का पुत्र तितिक्षु, तितिक्षु का रुषद्रथ, रुषद्रथ का पैल और पैल का पुत्र सुतपा हुआ ।।९-१०।। सुतपा से महायोगी बलि, बलि से अंग, वंग, पुण्ड्र, कलिंग तथा बालेय की उत्पत्ति हुई। अंग से दधिवाहन और उससे राजा दिविरथ, दिविरथ से धर्मरथ और धर्मस्थ से चित्ररथ की उत्पत्ति हुई। चित्ररथ से सत्यरथ और सत्यरथ से लोमपाद की उत्पत्ति हुई। लोमपाद का पुत्र चतुरंग, चतुरंग से पृथुलाक्ष, पृथुलाक्ष का चम्प, चम्प का हर्यङ्ग, हर्यङ्ग का भद्ररथ, भद्ररथ का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का बृहद्भानु, बृहद्भानु का बृहात्मवान्, बृहात्मवान् का जयद्रथ, जयद्रथ का कर्ण, कर्ण का विषसेन और विषसेन का पुत्र पृथुसेन हुआ। यह सभी राजा अंग वंश में हुए थे। अब पुरुवंश का वर्णन सुनो ।।११-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में राजवंश वर्णन नामक दो सौ सतहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ।।२७७।।

---

१ कैकेयो····मुख्यकः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच

पुरोर्जनमेजयोऽभूत्प्राचीवान्नाम तत्सुतः। प्राचीवतो मनस्युस्तु तस्माद्वीतमयो नृपः ।।१।।
शुन्धुर्वीतमयाच्चाभूच्छुन्धोर्बहुविधः सुतः। बहुविधाच्च संयाती रहोवादी च तत्सुतः ।।२।।
तस्य पुत्रोऽथ भद्राश्वो भद्राश्वस्य दशाऽऽत्मजाः। ऋचेयुश्च कृषेयुश्च संतनेयुस्तथाऽऽत्मजः ।।३।।
घृतेयुश्च चितेयुश्च स्थण्डिलेयुश्च सत्तमः। धर्मेयुः सन्नतेयुश्च कृतेयुर्मतिनारकः ।।४।।
तंसुरोधः प्रतिरथः पुरस्तो मतिनारजाः। आसीत्प्रतिरथात्कण्वः कण्वान्मेधातिथिस्त्वभूत् ।।५।।
तंसुरोधाच्च चत्वारो दुष्यन्तोऽथ प्रवीरकः। सुमन्तश्चानयो वीरो दुष्यन्ताद्भरतोऽभवत् ।।६।।
शकुन्तलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारताः। सुतेषु मातृकोपेन (ण) नष्टेषु भरतस्य च ।।७।।
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजः क्रतुभिर्वितथोऽभवत् ।।८।।
स चापि वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै। सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्भं[1] तथैव च ।।९।।
कपिलं च महात्मानं सुकेतुं च सुतद्वयम्। कौशिकं च गृत्सपतिं तथा गृत्सपतेः सुताः ।।१०।।

अध्याय २७८

पुरुवंश-वर्णन

अग्निदेव बोले–पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ और उसका पुत्र प्राचीवान्। प्राचीवान् का पुत्र मनस्यु और उसका पुत्र वीतमय नामक राजा हुआ ।।१।। वीतमय से शुन्धु, शुन्धु से बहुविध, बहुविध से संयाती, संयाती से रहोवादी और रहोवादी से भद्राश्व की उपत्ति हुई। भद्राश्व के दस पुत्र हुए– ऋचेयु, कृषेयु, संनतेयु, घृतेयु, चितेयु, स्थण्डिलेयु, धर्मेयु, सन्नतेयु, कृतेयु तथा मतिनारक हैं ।।२–४।। मतिनारक के तंसुरोध, प्रतिरथ तथा पुरस्त नामक पुत्र हुए। प्रतिरथ से कण्व और कण्व से मेधातिधि का जन्म हुआ। तंसुरोध के दुष्यन्त, प्रवीरक, सुमन्त तथा वीरअनय नामक चार पुत्र हुए। दुष्यन्त से भरत उत्पन्न हुए ।।५–६।। दुष्यन्त और शकुन्तला से बलवान् भरत उत्पन्न हुए, जिनके नाम से भारत वंश (देश) प्रसिद्ध हुआ। माता के कोप के कारण भरत के पुत्रों के नष्ट हो जाने पर मरुतों ने उसे बृहस्पति का पुत्र लाकर दे दिया। जिसका नाम था भरद्वाज। भरद्वाज ने यज्ञों के द्वारा वितथ को उत्पन्न किया ।।७–८।। वितथ से पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनके नाम थे–सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्भ तथा महात्मा कपिल। सुहोत्र ने कौशिक तथा गृत्सपति नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। गृत्सपति के ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र हुए, जिनकी संज्ञा दीर्घतमा

---

१ क. ख. ङ. गर्गं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः [1]काशा दीर्घतमाः सुताः । ततो धन्वन्तरिश्चाऽऽसीत्तत्सुतोऽभूच्चकेतुमान् ।।११।।
केतुमतो हेमरथो दिवोदास इति श्रुतः । प्रतर्दनो दिवोदासाद्भर्गवत्सौ प्रतर्दनात् ।।१२।।
वत्सादनर्क आसीच्च अनर्कात्क्षेमकोऽभवत् । क्षेमकाद्वर्षकेतुश्च वर्षकेतोर्विभुः स्मृतः ।।१३।।
विभोरानर्तः पुत्रोऽभूद्विभोश्च सुकुमारकः । सुकुमारात्सत्यकेतुर्वत्सभूमिस्तु वत्सकात् ।।१४।।
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः । अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ।।१५।।
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् । जह्नोरभूदजकाश्वो बलाकाश्वस्तदात्मजः ।।१६।।
वलाकाश्वस्य कुशिकः कुशिकाद्गाधिरिन्द्रकः । गाधेः सत्यवती कन्या विश्वामित्रः सुतोत्तमः ।।१७।।
देवरातः कतिमुखा विश्वामित्रस्य ते सुताः । शुनः शेपोऽष्टकश्चान्यो ह्यजमीढात्सुतोऽभवत् ।।१८।।
नीलिन्यां शान्तिपरः पुरुजातिः सुशान्तितः । पुरुजातेस्तु बाह्याश्वो बाह्याश्वात्पञ्च पार्थिवाः ।।१९।।
मुकुलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा । यवीनरश्च कृमिलः पाञ्चाला इति विश्रुताः ।।२०।।
मुकुलस्य तु [2]मौकुल्याः [3]क्षात्रोपेता द्विजातयः । चञ्चाश्वोमुकुल्ला(ला)ज्जज्ञेचञ्चाश्वान्मिथुनंह्यभूत् ।।२१।।
दिवोदासो ह्यहल्या च अहल्यायां शरद्वतात् । शतानन्दः शतानन्दात्सत्यधृङ्मिथुनं ततः ।।२२।।
कृपः कृपी दिवोदासान्मैत्रेयः सोमपस्ततः । सृञ्जयात्पञ्चधनुषः सोमदत्तश्च तत्सुतः ।।२३।।

है। दीर्घतमा से धन्वन्तरि की उत्पत्ति हुई। धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् हुआ ।।९-११।। केतुमान् से हेमरथ और उससे दिवोदास का जन्म हुआ। दिवोदास से प्रतर्दन और प्रतर्दन से भर्ग तथा वत्स की उत्पत्ति हुई। वत्स से अनर्क, अनर्क से क्षेमक, क्षेमक से वर्षकेतु, वर्षकेतु से विभु, विभु से आनर्त, आनर्त से सुकुमारक और सुकुमारक से सत्यकेतु उत्पन्न हुआ। वत्सक ने वत्सभूमि को उत्पन्न किया ।।१२-१४।। सुहोत्र का पुत्र बृहत् हुआ। बृहत् के तीन पुत्र हुए अजमीढ़, द्विमीढ़ और पराक्रमी पुरुमीढ़। अजमीढ़ से केशिनी के प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ। जह्नु से अजकाश्व और उससे बलाकाश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बलाकाश्व से कुशिक और कुशिक से गाधि की उत्पत्ति हुई। गाधि की कन्या सत्यवती और पुत्र विश्वामित्र हुए ।।१५-१७।। विश्वामित्र के पुत्र देवरात, कतिमुख तथा शुनः शेप हुए। अजमीढ़ के आठ पुत्र और थे। उसने अपनी नलिनी नामक स्त्री से शान्ति को जन्म दिया। शान्ति से पुरुजाति और पुरुजाति से बाह्याश्व की उत्पत्ति हुई, बाह्याश्व के पाँच पुत्र हुए-मुकुल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर और कृमिल। ये पाँचों पाञ्चाल नाम से प्रख्यात हैं ।।१८-२०।। मुकुल के क्षात्र धर्म से युक्त द्विजाति पुत्र मौकुल्य कहलाये। मुकुल से चञ्चाश्व उत्पन्न हुआ। चञ्चाश्व से दिवोदास तथा अहल्या की उत्पत्ति हुई। अहल्या ने शरद्वान् से शतानन्द को जन्म दिया। शतानन्द से सत्यधृक् उत्पन्न हुआ। सत्यधृक् के कृप और कृपी नामक दो सन्तानें हुईं। दिवोदास से मैत्रेय और मैत्रेय से सोमप की उत्पत्ति हुई। सृञ्जय से पञ्चधनुष और उससे सोमदत्त का जन्म हुआ ।।२१-२३।। सोमदत्त से सहदेव,

---

१ ङ. काशे। २ ख. च. मौद्गल्याः। ३ छ. क्षेत्रोपेता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सहदेवः सोमदत्तात्सहदेवात्तु सोमकः । आसीच्च सोमकाज्जन्तुर्जन्तोश्च पृषतः सुतः ।।२४।।
पृषताद्द्रुपदस्तस्माद्धृष्टद्युम्नोऽथ तत्सुतः । धृष्टकेतुश्च धूमिन्यामृक्षोऽभूदजमीढतः ।।२५।।
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्ततः । यः प्रयागादपाक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ।।२६।।
कुरोः सुधन्वा सुधनुः परीक्षिच्च रिपुंजयः । सुधन्वनः सुहोत्रोऽभूत्सुहोत्राच्च्यवनो ह्यभूत् ।।२७।।
[1]वसुश्रेष्ठोपरिचाराः सप्ताऽऽसन्गिरिकासुताः । बृहद्रथः कुशो वीरो यदुः प्रत्यग्रहो बलः ।।२८।।
मत्स्यकाली कुशाग्रोऽतो ह्यासीद्राज्ञो बृहद्रथात् । कुशाग्राद्वृषभो जज्ञे तस्य सत्यहितः सुतः ।।२९।।
सुधन्वा तत्सुतश्चोर्ज ऊर्जादासीच्च संभवः । संभवाच्च जरासंधः सहदेवश्च तत्सुतः ।।३०।।
सहदेवादुदापिश्च उदापेः श्रुतकर्मकः । परीक्षितस्य दायादो धार्मिको जनमेजयः ।।३१।।
जनमेजयात्रसद्दस्युर्जह्नोस्तु सुरथः सुतः । श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ।।३२।।
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो महिमांस्तथा । सुरथाद्विदूरथोऽभूदृक्ष आसीद्विदूरथात् ।।३३।।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः । प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शंतनुः ।।३४।।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव सोमदत्तस्तु शंतनोः । बाह्लिकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।।३५।।
गङ्गायां शंतनोर्भीष्मः काल्यायां [2]चित्रवीर्यकः । कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे[3] वै चैत्रवीर्यके ।।३६।।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् । पाण्डोर्युधिष्ठिरः कुन्त्यां भीमश्चैवार्जुनस्त्रयः ।।३७।।
नकुलः सहदेवश्च पाण्डोर्माद्र्यां च दैवतः[4] । अर्जुनस्य च सौभद्रः परीक्षिदभिमन्युतः ।।३८।।

सहदेव से सोमक, सोमक से जन्तु, जन्तु से पृषत, पृषत से द्रुपद और द्रुपद से धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति हुई। धूमिनी से धृष्टकेतु का जन्म हुआ। अजमीढ़ का पुत्र ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से संवरण और संवरण से कुरु उत्पन्न हुआ, जिसने प्रयाग से आकर कुरुक्षेत्र का निर्माण किया ।।२४-२६।। कुरु से सुधन्वा, सुधनु से परीक्षित् तथा रिपुंजय की उत्पत्ति हुई। सुधन्वा से सुहोत्र और सुहोत्र से च्यवन उत्पन्न हुआ। गिरिका के सात पुत्र हुए- बृहद्रथ, कुश, वीर, यदु, प्रत्यग्रह, बल तथा मत्स्यकाली। राजा बृहद्रथ से कुशाग्र का जन्म हुआ। कुशाग्र से वृषभ और उससे सत्यहित की उत्पत्ति हुई ।।२७-२९।। सत्यहित से सुधन्वा, सुधन्वा से ऊर्ज, ऊर्ज से सम्भव, सम्भव से जरासंध, जरासंध से सहदेव, सहदेव से उदापि और उदापि से श्रुतकर्मक का जन्म हुआ। परीक्षित् का पुत्र धर्मात्मा जनमेजय हुआ ।।३०-३१।। जनमेजय से ऋसद्दस्यु की उत्पत्ति हुई। जह्नु के पुत्र थे-सुरथ, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। जनमेजय के दो पुत्र हुए सुरथ और महिमान्। सुरथ से विदूरथ और विदूरथ से ऋक्ष की उत्पत्ति हुई। ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, भीमसेन का प्रतीप, प्रतीप का शन्तनु और शन्तनु के पुत्र देवापि, बाह्लिक तथा सोमदत्त। बाह्लिक से सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा तथा शल की उत्पत्ति हुई ।।३२-३५।। शन्तनु ने गंगा से भीष्म और काल्या से चित्रवीर्य को जन्म दिया। चित्रवीर्य की पत्नी से कृष्णद्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न किया। पाण्डु की पत्नी कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की उत्पत्ति हुई और माद्री से नकुल तथा सहदेव की। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु और अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित् हुआ ।।३६-३८।। द्रौपदी पाण्डवों की प्रियतमा थी। उसमें युधिष्ठिर

---

१ छ. वशिष्ठपरिचाराभ्यां स°। २ छ. विचित्रवीर्यकः। ३ छ. °त्रे वै चित्र°। ४ छ. °देवतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्रौपदी पाण्डवानां च प्रिया तस्यां युधिष्ठिरात् । प्रतिविन्ध्यो भीमसेनाच्छुतकीर्तिर्धनंजयात् ।।३९।।
सहदेवाच्छुतसोमः[1] शतानीकस्तु नाकुलिः । भीमसेनाद्धिडम्बायामन्य आसीद्घटोत्कचः ।।४०।।
एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते । गताः कालेन कालो हि हरिस्तं पूजयेद्द्विज ।।
होममग्नौ समुद्दिश्य कुरु [2]सर्वप्रदो यतः ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुवंशवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७८।।

अथैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सिद्धौषधानि

अग्निरुवाच

आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत् । देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसंजीवनीकरम् ।।१।।

सुश्रुत उवाच

(आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभरुगर्दनम् । सिद्धयोगान्सिद्धमंत्रान्मृतसंजीवनीकरान्) ।।२।।

धन्वन्तरिरुवाच

रक्षन्बलं हि ज्वरितं लङ्घितं[3] योजयेद्भिषक् । सविश्वं लाजमण्डं तु तृड्ज्वरान्तं शृतं जलम् ।।३।।

से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से (सुतसोम)*, अर्जुन से श्रुतकीर्ति, सहदेव से श्रुतसोम और नकुल से शतानीक की उत्पत्ति हुई। भीमसेन ने हिडम्बा से घटोत्कच नामक अन्य पुत्र को भी उत्पन्न किया। अये द्विज! ये सब राजा हो गये हैं और होते रहेंगे। इनकी कोई संख्या नहीं है। इनको काल ने कवलित कर लिया है। काल ही हरि हैं। उनकी पूजा करके और उनके निमित्त अग्नि में आहुतियाँ डालनी चाहिए, क्योंकि वे सब-कुछ देनेवाले हैं ।।३९-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में पुरुवंश वर्णन नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७८।।

अध्याय २७९

सिद्धौषध-वर्णन

अग्निदेव बोले–देव धन्वन्तरि ने मृतकों को जीवित करनेवाले जिस आयुर्वेद को सुश्रुत के लिए कहा था उस आयुर्वेद को सार रूप में कहूँगा ।।१।।

सुश्रुत बोले–मृतकों को जीवित करनेवाले सिद्ध योगों एवं सिद्ध मन्त्रों तथा मनुष्य, अश्व एवं हस्ती के रोगों को नष्ट करनेवाले आयुर्वेद को आप मुझसे कहिये ।।२।।

धन्वन्तरि बोले–ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के बल की रक्षा करने के लिए धान का लावा, सोंठ और माँड़ के

---

१ क. ङ. तशर्मा श°। ख. ग. छ. °तकर्माः श°। २ ख. ग. ङ. छ. सर्वप्रदं। * मूल में भीमसेन के पुत्र का नामोल्लेख नहीं है, परन्तु महाभारत के अनुसार उसे यहाँ दे दिया गया।* ३ क. ङ. च. छ. °तं भोज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । षडहे च व्यतिक्रान्ते तिक्तकं पापयेद्ध्रुवम् ।।४।।
स्नेहयेत्त्यक्तदोषं तु ततस्तं च विरेचयेत् । जीर्णाः षष्टिकनीवाररक्तशालिप्रमोदकाः ।।५।।
तद्विधास्ते ज्वरेष्विष्टा यवानां विकृतिस्तथा । मुद्गा मसूराश्चणकाः कुलत्थाश्च सकुष्ठकाः ।।६।।
[1]आढक्यो लावकाद्याश्च [2]कर्कोटककटोलकम्[3] । पटोलं सुफलं निम्बं पर्पटं दाडिमं ज्वरे ।।७।।
अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम् । रक्तपित्ते तथा पानं षडङ्गंशुण्ठिवर्जितम् ।।८।।
सक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरकाः । सकुष्ठचणका मुद्गा भक्ष्या गोधूमका हिताः ।।९।।
साधिता घृतदुग्धाभ्यां क्षौद्रं वृषरसो मधु । अतीसारे पुराणानां शालीनां भक्षणं हितम् ।।१०।।
अनभिष्यन्दि यच्चान्नं लोध्रवल्कलसंयुतम् । मारुतं वर्जयेद्यत्नः कार्यो गुल्मेषु सर्वथा ।।११।।
वाट्यं क्षीरेण चाश्नीयाद्वास्तुकं घृतसाधितम् । गोधूमशालयस्तिक्ता हिता जठरिणामथ ।।१२।।
गोधूमशालयो मुद्गा ब्रह्मर्क्षखदिरोऽभया । पञ्चकोलं जाङ्गलाश्च निम्बधात्र्यः पटोलकाः ।।१३।।
[4]मातुलुङ्गरसाजाजिशुष्कमूलकसैन्धवाः । कुष्ठिनां च तथा शस्तं पानार्थे खदिरोदकम् ।।१४।।

साथ देवे। नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, लालचन्दन, सुगन्धवाला एवं सोंठ से पका हुआ जल तृषा तथा ज्वर-नाश के हेतु पीने को दे। छह दिन बीत जाने पर चिरायता का काढ़ा पिलावे ।।३-४।। निर्दोष ज्वरांश न स्पर्श होने पर स्नेह (ज्वरनाशक ओषधियों से सिद्ध) स्नेह घृत या तेल पान करावे। इसके पश्चात् विरेचन कराये। (भोजन के लिए) पुराना साठी का चावल, नीवार (एक प्रकार का धान जो जल में स्वयं उत्पन्न होता है) लाल चावल, शालि चावल (उत्तम कोटि का बासमती जैसा) प्रमोदक (चावल का एक भेद) एवं इसी प्रकार का अन्य चावल ज्वर में खिलाने के लिए हितकर हैं। यव की रोटी, माँड़, सत्तू आदि भी हितकर हैं। मूँग, मसूर, चना, कुलथी, मोथी (मोट), अरहर, लावा आदि पक्षियों के मांस का रस, करेला, खेकशा, परवल, कुन्दरू, निम्बपत्र का साग, पित्तपापड़ा और अनार ज्वर में दे ।।५-७।। रक्त पित्त के अधःमार्ग (गुदा, लिंग, योनि) से उद्भूत होने पर वमन करावे और ऊर्ध्वमार्ग (मुख, नासिका, अक्षि एवं कर्ण) से उद्भूत होने पर रोगी को विरेचन दे और नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, लालचन्दन और सुगन्धवाला का काढ़ा पिलावे ।।८।। सत्तू, गेहूँ, धान का लावा, यव, शालि (उत्तम प्रकार का चावल), मसूर, मोथी, चना, मूँग और गेहूँ का भोजन हितकर है। घृत एवं दुग्ध में अडूसे का स्वरस पकाकर (और उसे ठण्डा करके) उसमें मधु पिलाकर पीने को दे ।।९-९$\frac{1}{2}$।। अतिसार में पुराना चावल खाने के लिए दे एवं जो भी अन्न अनभिष्यन्दि (कब्जियत) करनेवाले न हों वह खाने को दे। इसमें लोधवृक्ष के छाल का काढ़ा दे। गुल्म रोग (वायुगोला) में वायु से रक्षा करे (अर्थात् वातकारक आहार-विहार न करे), उदर रोग में-दूध एवं फुलका (जवे की बहुत ही पतली रोटी) घृत में बथुई का साग पकाकर खाये। गेहूँ तथा चावल भोजन में दे और कुटकी (सदा विरेचन के लिए) का काढ़ा दे ।।१०-१२।। कुष्ठ रोग में गेहूँ, चावल, मूँग, आँवला, खैर और हरड़, पंचकोल (पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ), जंगली पशुओं का मांस, निम्ब (नीम का पाँचों अंग-जैसे त्वचा, पत्र, पुष्प, फल और सार), तीनों आँवले (पहाड़ी, जमीन का और कलमी), परवल के पत्र, बिजौरे नींबू का रस, काला जीरा, सूखी मूली (जड़), सैन्धव नमक, खदिरोदक (खैर) का काढ़ा अथवा खदिरारिष्ट देना

---

१ छ. °क्यो नारका। २ क. ङ. कठिलक। ३ छ. टोल्वकम्। ४ छ. °जातिशु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मसूरमुद्गौ [1]सूपार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालयः । निम्बपर्पटकौ शाकौ जाङ्गलानां तथा रसः ।।१५।।
विडङ्गं मरिचं मुस्तं कुष्ठं लोध्रं सुवर्चिका । मनः शिला[2] वचा लेपः कुष्ठहा मूत्रपेषितः ।।१६।।
अपूपकुष्ठकुल्माषयवाद्य मेहिनां हिताः । यवान्नविकृतिर्मुद्गाः कुलत्था जीर्णशालयः ।।१७।।
तिक्तरूक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च । तैलानि तिलशिग्रुकविभीतकेङ्गुदानि च ।।१८।।
मुद्गाः सयवगोधूमा धान्यं वर्षस्थितं च यत् । जाङ्गलस्य रसः शस्तो भोजने राजयक्ष्मिणाम् ।।१९।।
कुलत्थमुद्गकोलाद्यैः शुष्कमूलकजाङ्गलैः । पूपैर्वा विष्किरैः सिद्धैर्दधिदाडिमसाधितैः ।।२०।।
मातुलुङ्गरसक्षौद्रद्राक्षाव्योषादिसंस्कृतैः । यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्वासकासिनम् ।।२१।।
दशमूलबलारास्नाकुलत्थैरूपसाधिताः । पेया[3] घृतरसक्वाथाः श्वासहिक्कनिवारणाः ।।२२।।
शुष्कमूलककौलत्थमूलजाङ्गलजै रसैः । यवगोधूमशाल्यन्नं जीर्णं सोशीरमाचरेत् ।।२३।।
शोथवान्सगुडां पथ्यां खादेद्वा गुडनागरम् । तक्रं च चित्रकश्चोभौ ग्रहणीरोगनाशनौ ।।२४।।
पुराणयवगोधूमशालयो जाङ्गलो रसः । मुद्गामलकखर्जूरमृद्वीका बदराणि च ।।२५।।

चाहिए। भोजन में मसूर और मूँग का जूस, बासमती चावल का भात, निम्ब पत्र, पटोल-पत्र का शाक, जंगली पशु-पक्षियों का रस देना चाहिए। लेपन के लिए-वायविडंग, मरिच, नागरमोथा, कूठ, लोध्र, हुरहुर, मैनशिल और वच के साथ गोमूत्र का प्रयोग करे ।।१३-१६।। प्रमेही को यव का अपूप पूआ बनाकर खिलावे एवं यव के अन्य पदार्थ बनाकर खाने को दे। कूठ, कुलथी का भी अनेक प्रकार से अपूप आदि बनाकर दे। भोजन में मूँग एवं कुलथी की दाल, पुराना शाली चावल का भात दे। हरे, तिक्त एवं रुक्ष शाक खाने को दे। (जैसे करेला) तिल, सहिजन, बहेड़ा एवं इंगुदी के तेल का प्रयोग करे। राजयक्ष्मा के रोगी को भोजन के लिए एक वर्ष का पुराना यव एवं गेहूँ की रोटी तथा मूँग की दाल दे। जंगली पशु एवं पक्षियों का मांस का रस भी दे ।।१७-१९।। श्वास कास रोग में रोगी को भोजन के लिए कुलथी, मूँग, सूखा बेर, सूखी मूली और जंगली पशु-पक्षियों के मांस से पूआ बना ले, उसे दधि में भिगो दे और उसमें अनार का रस, बिजौरे नींबू का रस, मधु, मुनक्का, सोंठ, मिर्च, पीपरि मात्रा के अनुसार मिलाकर दे। जवा, गेहूँ तथा बासमती चावल भी खाने को दे। श्वास एवं हिक्का रोग में रोगी को जो पेय मण्डभेद बनाकर या घृत पकाकर या काढ़ा बनाकर दे उसे दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी-भटकैया, बड़ी कटेरी-वनभाँटा, गोखरू, आलू, अरणी, पाढ़, खंभारी और बेल का गूदा), बला (वरिअरा), रास्ना एवं कुलथी ओषधियों से सिद्ध करके दे ।।२०-२२।। शोथ रोगवाले को भोजन के लिए पुराना जवा, गेहूँ और बासमती चावल को सूखी मूली, कुलथी, पुनर्नवा की जड़ तथा जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस से पकाकर दे अथवा गुड़-हरड़ या गुड़-सोंठ को खिलावे। ग्रहणी रोग का नाश करनेवाला मट्ठा एवं चित्रक दोनों ही हैं ।।२३-२४।। वातरोगी के लिए पुराना जवा, गेहूँ तथा बासमती चावल का भात और जंगली पशु-पक्षियों का मांस रस भोजन के लिए दे। मूँग की दाल पकाकर

---

१ क. ङ. छ. पेयार्थं। २ छ. °ला च वालेयः क°। ३ छ. पेयाः पुपरसाः क्वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मधु सर्पिः पयस्तक्रं निम्बपर्पटकौ वृषम् । तक्रारिष्टाश्च शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम् ।।२६।।
हृद्रोगिणो बिरेच्यास्तु पिप्पल्या(ल्यो)हिक्किनां हिताः । तक्रारनालसीधूनि युक्तानि शिशिराम्भसा ।।२७।।
[1]मुस्ता सौवर्चलाऽजाजी[2] मद्यं शस्तं मदात्यये । सक्षौद्रपयसा लाक्षां पिबेच्च क्षतवान्नरः ।।२८।।
क्षयं मांसरसाहारो वह्निसंरक्षणाज्जयेत् । शालयो भोजने रक्ता नीवारकमलादयः ।।२९।।
यवान्नविकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी । पथ्या तथैवार्शसां यन्मण्डस्तक्रं च वारिणा ।।३०।।
मुस्ताभ्यासस्तथा लोपश्चित्रकेण हरिद्रया । यवान्नविकृतिः शालिवास्तूकं ससुवर्चलम् ।।३१।।
ऋषुषैर्वारु (१) गोधूमाः क्षीरेक्षुघृतसंयुताः । मूत्रकृच्छ्रे च शस्ताः स्युः पाने मण्डसुरादयः ।।३२।।
लाजाः सक्तुस्तथा क्षौद्रं शून्यं मांसं परूषकम् । वार्ताकुलावशिखिनश्छर्दिघ्नाः पानकानि च ।।३३।।
शाल्यन्नं तोयपयसी केवलोष्णे शृतेऽपि वा । तृष्णाघ्ने मुस्तगुडयोर्गुटिका वा मुखे धृता ।।३४।।
यवान्नविकृतिः पूपं शुष्कमूलकजं तथा । शाकं पटोलवेत्राग्रमूरुस्तम्भविनाशनम् ।।३५।।
मुद्गाढकमसूराणां सतिलैर्जाङ्गलै रसैः । ससैन्धवघृतद्राक्षाशुण्ठ्याम (ल) ककोलजैः ।।३६।।

उसमें आँवला, खजूर, मुनक्का और बेर डाल दे। मधु, घृत, मट्ठा, तक्रारिष्ट, दुग्ध एवं नीम, पित्तपापड़ा और अड़ूसा का निरन्तर सेवन करावे। हृदय रोगवाले को रोचक ओषधि (जुलाब) दे। हिक्का के रोगी को तीनों प्रकार की पीपरि, मट्ठा, काजी और आसव में ठण्डा जल मिलाकर दे ।।२५-२७।। मदात्यय (मद्य अत्यधिक पीने से होनेवाले) रोग में नागरमोथा, सोंचर और कालाजीरा मिलाकर मद्य ही दे। (रुक्ष मद्य के पीने से उत्पन्न मदात्यय में स्निग्ध मद्य तथा स्निग्ध मद्य के पीने से उत्पन्न मदात्यय में रुक्ष मद्य उपर्युक्त तीनों ओषधि मिलाकर पीने को दे), उरःक्षत (राजयक्ष्मा का एक भेद) में दुग्ध में लाख और मधु मिलाकर दे। क्षय (राजयक्ष्मा) रोग को जठराग्नि की रक्षा करते हुए मांस रस के आहार से शान्त करे। क्षय रोगी को भोजन में बासमती चावल, लाल चावल, कलमी चावल आदि लघु आहार पकाकर दे ।।२८-२९।। अर्श (बवासीर) के रोगी को जवा के बने विविध प्रकार के आहार मांस रस के साथ दे। हुरहुर के पत्ते का शाक खिलावे। कचूर एवं हरड़ का चूर्ण मण्ड से या मट्ठे से जल के साथ दे। नागरमोथा के काढ़े को निरन्तर पिलावे। चित्रक एवं हल्दी एक में पीसकर बवासीर के मस्से पर लेप करे। मूत्रकृच्छ्र (जिसे पेशाब कठिनाई से उतरे तथा पीड़ा हों ऐसे) रोग में खीरा, पपीता खाने को दे। गेहूँ की रोटी दे इनके साथ ही दूध पीने को दे, गन्ना चूसने को दे, आहार में घृत दे। पीने के लिए मण्ड एवं सुरा आदि दे ।।३०-३२।। धान का लावा, सतुआ, मधु, हल्का मांस, फालसा, मोटा लावा पक्षी का मांस, मयूर का मांस और पना ये सब वमन रोग के नाशक हैं। तृषा (जिससे बार-बार अधिक जल पीने पर भी प्यास शान्त नहीं होती है) ऐसे रोग में भोजन के लिए बासमती का चावल दे, दूध और पानी बराबर हिस्से में मिलाकर पका ले, जब थोड़ा-थोड़ा गरम रहे तब पीने को दे या नागरमोथा और गुड़ को पीसकर गोली बनाकर मुख में धारण करे। उरुस्तम्भ (जिसमें दोनों शून्य हो जाते हैं ऐसे) रोग का नाश करने के लिए जवे के बने अनेक प्रकार के भोजन और सूखी मूली का पूआ, पटोल एवं बेल के पत्ते का साग दे ।।३३-३५।। विसर्प रोगवाले को चाहिए कि पुराने गेहूँ तथा जवा की रोटी, बासमती चावल का भात,

---

१ छ. मुक्ताः। २ छ. °जादिम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यूषैः पुराणगोधूमयवशाल्यन्नमभ्यसेत् । विसर्पी ससिताक्षौद्रमृद्वीकादाडिमोदकम् ।।३७।।
रक्तषष्टिकगोधूमयवमुद्गादिकं लघु । [1]काकमाची च वेत्राग्रं वास्तुकं च सुवर्चला ।।३८।।
वातशोणितनाशाय तोयं शस्तं सितं मधु । नासारोगेषु च हितं घृतं दूर्वाप्रसाधितम् ।।३९।।
भृङ्गराजरसे सिद्धं तैलं धात्रीरसेऽपि वा । नस्यं सर्वामयेष्विष्टं मूर्धजन्तूद्भवेषु च ।।४०।।
शीततोयान्नपानं च तिलानां विप्र भक्षणम् । द्विजदार्ढ्यकरं प्रोक्तं तथा तुष्टिकरं परम् ।।४१।।
गण्डूषं तिलतैलेन द्विजदार्ढ्यकरं परम् । विडङ्गचूर्णं गोमूत्रं सर्वत्र कृमिनाशने ।।४२।।
धात्रीफलान्यथाऽऽज्यं च शिरोलेपनमुत्तमम् । शिरोरोगविनाशाय स्निग्धमुष्णं च भोजनम् ।।४३।।
तैलं वा बस्तमूत्रं च कर्णपूरणमुत्तमम् । कर्णशूलविनाशाय सर्वशुक्तानि[2] वा द्विज ।।४४।।
गिरिमृच्चन्दनं लाक्षा मालतीकलिका तथा । संयोज्य या कृता वर्तिः क्षतश्वित्रहरी[3] तु सा ।।४५।।
व्योषं त्रिफलया युक्तं तुत्थकं च तथा जलम् । सर्वाक्षिरोगशमनं तथा चैव रसाञ्जनम् ।।४६।
आज्यभृष्टं शिलापिष्टं लोध्रकाञ्जिकसैन्धवैः । [4]आश्च्योतनविनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ।।४७।।

मूँग, अरहर और मसूर की दाल में सेंधानमक, घृत, सोंठ, मुनक्का, आमला और बेर को डालकर भोजन करे या सेंधानमक से लेकर ये सब चीजें तथा तिल, जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस में डालकर आहार भोजन करे ।।३६-३७।। वात रक्त को नाश करने के लिए मिश्री, मधु, मुनक्का, अनार को जल में घोलकर पिये। लाल चावल, साठी का चावल, गेहूँ और जव की रोटी भोजन करे, मूँग की दाल दे, जो भी लघु आहार हो उसे दे। मकोय, बेंत के अग्रभाग के पत्ते, बथुआ और हुरहुर के पत्ते का साग दे। जल में मधु-मिश्री मिलाकर दे। नासा रोग में दूर्वादि घृत का नस्य ले ।।३८-३९।। भँगरैया के रस में अथवा आँवले के रस में पकाया हुआ तैल सम्पूर्ण मस्तिष्क के रोगों में तथा कृमिजन्य रोगों में लाभकारी होता है। ठण्डे जल के पीने से, ठण्डे ही अन्न पान करने से एवं तिलों के विशेष भक्षण से दाँत दृढ़ हो जाते हैं एवं सन्तुष्टि अधिक मिलती है। तिल के तैल का गंडूष (कुल्ला) लेने से दाँत अत्यन्त दृढ़ हो जाते हैं। जहाँ कृमि नाश करना हो वहाँ विडङ्ग चूर्ण तथा गोमूत्र का प्रयोग खाने-पीने के लिए तथा लेप के लिए भी प्रयोग करना चाहिए ।।४०-४२।। शिरोरोग के विनाश के लिए स्निग्ध एवं उष्ण भोजन करे। सिर पर आँवला का लेप अथवा घृत का लेप उत्तम होता है। कर्णशूल में तैल या बकरे का मूत्र कान में डाले अथवा शुक्त (सिरका) कान में डाले। श्वित्र (सफेद कोढ़) को दूर करने के लिए गेरू, लाल चन्दन, लाही और मालती के पुष्प की कली इन सबको पीसकर बत्ती बना ले उसे समय पर घिसकर लगाने से सम्पूर्ण श्वित्र नष्ट हो जाते हैं ।।४३-४५।। व्योष (सोंठ, मिर्च और पीपरि), त्रिफला (आँवला, हरड़ और बहेड़ा), तूतिया और रसांजन को जल से बारीक पीसकर आँख में अंजन लगाने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। लोध को घी में भूनकर कांजी और सेंधा-नमक के साथ पीसकर आँख में लगाने से नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं। गेरू तथा चन्दन को घिसकर नेत्र के

---

१ छ. काकमारी। २ क. ङ. च. °शुक्लानि। ३ छ. °तशुक्रह°। ४ क. आमवात वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गिरिमृच्चन्दनैर्लेपो बहिर्नेत्रस्य शस्यते। नेत्रामयविघातार्थं त्रिफलां शीलयेत्सदा ।।४८।।
रात्रौ तु मधुसर्पिर्भ्यां दीर्घमायुर्जिजीविषुः। शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीरघृतौ स्मृतौ ।।४९।।
[1]कलविङ्कानि माषाश्च वृष्यौ क्षीरघृतौ तथा। आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववन्मधुकान्विता ।।५०।।
मधुकादिरसोपेता बलीपलितनाशिनी। वचासिद्धघृतं विप्र भूतदोषविनाशनम् ।।५१।।
कव्यं वुद्धिप्रदं चैव तथा सर्वार्थसाधनम्। बलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ।।५२।।
रास्नासहचरैर्वाऽपि तैलं वातविकारिणाम्। अनभिष्यन्दि यच्चान्नं तद्व्रणेषु प्रशस्यते ।।५३।।
सक्तुपिण्डी तथैवाऽऽम्ला पाचनाय प्रशस्यते। पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णं च रोपणे ।।५४।।
तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः। सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदा हिता ।।५५।।
भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम्। तालनिम्बदलं केश्यं जीर्णं तैलं यवा घृतम् ।।५६।।
धूपो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रघृतेन वा। अर्कक्षीरेण संपिष्टं [2]लेपो बीजं पलाशजम् ।।५७।।

ऊपर लेप करने से नेत्र रोग में अधिक लाभ होता है। तथा निरन्तर त्रिफला के सेवन से नेत्र रोग दूर हो जाता है ।।४६-४८।। जीने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति रात्रि में मधु और घृत को (असमान मात्रा में) खावे तो आयु लम्बी हो जाती है। इसी तरह शतावरी के रस में घृत या दुग्ध पकाकर पीने से वह दुग्ध घृत वृष्य हो जाता है (मैथुन की शक्ति बढ़ जाती है)। केवाँच का बीज, उड़द, दूध और घृत वृष्य कहे जाते हैं। मुलहठी मिलाकर त्रिफला का निरन्तर सेवन पूर्व के कहे की भाँति आयुवर्धक है। मुलहठी के रस के साथ त्रिफला का सेवन करने से चमड़े पर झुर्रियाँ और बाल का सफेद होना दूर हो जाता है। वच ओषधि से घृत पकाकर सेवन करने से विशेष तथा अनेक दोषों का नाश हो जाता है। घृत बुद्धिप्रद है और अनेक अर्थों का साधक है। बला के कल्क और काढ़े से सिद्ध घृत आँख में अभ्यंजन के लिए हितकारी है ।।४९-५२।। रास्ना और कटसरैया द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल सम्पूर्ण वात-व्याधियों को दूर करनेवाला है। जो अन्न कब्जियत लानेवाला न हो उसे फोड़ेवाले रोगी को देना चाहिए। व्रण फोड़ा को पकाने के लिए सत्तू का पिण्ड जो कांजी से सानकर बना हो वह हितकर है। पके हुए फोड़े के भेदन के लिए और घाव को भरने के लिए नीम का चूर्ण (नीम के वल्कल का चूर्ण) हितकारी है ।।५३-५४।। उसी तरह सुई के द्वारा उपचार करे (सूची बेध करे) विशेष रूप में (बलिकर्म का अर्थ है कि भोजन का) कुछ भाग देवों तथा पितरों आदि के नाम पर निकालकर बाहर रख दे जिसे कौए, कुत्ते आदि खा जाते हैं। इसी प्रकार सूतिका स्त्री (बच्चा पैदा होने के एक मास तक के प्रायः बच्चों की माँ को सूतिका कहते हैं) की भी जीवाणुओं से सदा रक्षा करनी चाहिए। यह रक्षा हितकारी होती है ।।५५।। नीम के पत्तों का चबाना साँप काटे की दवा है। बाल को काला करने के लिए, झड़ने से बचाने के लिए नीम के पत्तों को एक में महीन पीसकर लेप करे। इसी तरह पुराना तेल और घृत तथा जवा भी केश के लिए हितकारी है। बिच्छू के काटने पर मयूरपत्री और घृत का धूप देना चाहिए तथा मदार के दूध से पलाश का बीज पीसकर लेप करे ।।५६-५७।। और जिसे बिच्छू ने काटा है, विष चढ़ गया

---

१ छ. °लम्बिकानि। २ छ. लोपा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृश्चिकार्तस्य कृष्णा वा शिवा च फलसंयुता। अर्कक्षीरं तिलं तैलं पललं च गुडं समम् ।।५८।।
पानाज्जयति दुर्वारं श्वविषं शीघ्रमेव च। पीत्वा मूलं त्रिवृत्तुल्यं तण्डुलीयस्य सर्पिषा ।।५९।।
सर्पकीटविषाण्याशु जयत्यतिबलान्यपि। चन्दनं पद्मकं कुष्ठं [1]लताम्बूशीरपाटलाः ।।६०।।
निर्गुण्डी सारिवा सेलुर्लूताविषहरोऽगदः। शिरोविरेचनं शस्तं गुडनागरकं द्विज ।।६१।।
स्नेहपाने तथा बस्तौ तैलं घृतमनुत्तमम्। स्वेदनीयः परो वह्निः शीताम्भःस्तम्भनं परम् ।।६२।।
त्रिवृद्धि रेचने श्रेष्ठा वमने मदनं तथा। बस्तिर्विरेको वमनं तैलं सर्पिस्तथा मधु ।।
वातपित्तबलाशानां क्रमेण परमौषधम् ।।६३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सिद्धौषधकथनं नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७९।।

अथाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सर्वरोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच

शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः। शारीराज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः ।।१।।

है, उसे पीपरि या हरडामैनफल के साथ चूर्ण बनाकर पानी के साथ पीने को दे। जिसे विषैले कुत्ते ने काट लिया है उसे मदार का दूध, तिल का तेल, मांस का रस एवं गुड़ सबको बराबर मिलाकर पीने को देने से कुत्ते, सियार आदि कुत्ते के जातिवाले जानवरों का विष दूर हो जाता है। निसोथ और चौराई की जड़ पीसकर घृत के साथ पीने को देने से दुर्निवार सर्प एवं बिच्छू आदि के विष नष्ट हो जाते हैं ।।५८-५९$\frac{1}{2}$।। चन्दन, पद्माख, कूठ, लता, सुगन्धवाला, खश, पाढ़ा, मेउड़ी (निर्गुण्डी), अनन्तमूल और एलुआ (घी कुमार की मज्जा) ये सब ओषधि मकड़ी के विष की दवा हैं। गुड़ एवं शुंठी को मिलाकर नस्य देना सिर का रेचक है (अर्थात् सिर में स्थित कफ, पित्त को बाहर निकाल देता है) स्नेहपान कराने के लिए तथा वस्ति में प्रयोग करने के लिए घृत तथा तेल उत्तम है। स्वेदन के लिए अग्नि उत्तम है तथा स्तम्भन के लिए जल उत्तम है ।।६०-६२।। निसोथ विरेचन (दस्त लाने की दवा) के लिए और मैनफर वमन के लिए श्रेयस्कर है। वायु शमन के लिए वस्ति, पित्त शमन के लिए विरेचन और श्लेष्मा शमन के लिए वमन हितकारी है। इसी तरह वायु शान्त करने के लिए तेल, पित्त शान्त करने के लिए घृत और श्लेष्मा शान्त करने के लिए मधु सर्वोत्तम ओषधि है ।।६३।।

श्री अग्निमहापुराण में सिद्धौषध कथन नामक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२७९।।

अध्याय २८०

सर्वरोगहरौषध

धन्वन्तरि बोले–शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज व्याधियाँ होती हैं। ज्वर, कुष्ठ आदि शारीरिक

---

१ च. °ताश्चोशी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आगन्तवो विधातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः। शारीरागन्तुनाशाय सूर्यवारे घृतं गुडम् ।।२।।
लवणं सहिरण्यं च [1]विप्रायाऽऽर्च्यं समर्पयेत्। चन्द्रे चाभ्यङ्गदो विप्रे सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।।३।।
तैलं शनैश्चरे दद्यादाश्विने गोरसान्नदः। घृतेन पयसा लिङ्गं संस्नाप्य[2] स्याद्गुगुज्झितः ।।४।।
गायत्र्या[3] हावयेद्वह्नौ दूर्वां त्रिमधुराप्लुताम्। यस्मिन्भे व्याधिमाप्नोति तस्मिन्स्थाने बलिः शुभे ।।५।।
मानसानां रुजादीनां विष्णोः स्तोत्रं हरं भवेत्। वातपित्तकफा दोषा धातवश्च तथा शृणु ।।६।।
भुक्तं पक्वाशयादन्नं द्विधा याति च [4]सुश्रुत। अंशेनैकेन किट्टत्वं रसतां चापरेण च ।।७।।
किट्टभागो मलस्तत्र विण्मूत्रस्वेदरूपवान्[5]। नासामलः कर्णमलस्तथा देहमलः स्मृतः ।।८।।
रसभागाद्रसस्तत्र समाच्छोणिततां व्रजेत्। मांसं रक्तात्ततो मेदो मेदसोऽस्थ्नश्च संभवः ।।९।।
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्रागस्तथौजसः। देशमार्तिं बलं शक्तिं कालं प्रकृतिमेव च ।।१०।।
ज्ञात्वा चिकित्सितं कुर्याद्भेषजस्य तथा बलम्। तिथिं रिक्तां त्यजेद्भौमं मन्दभं दारुणोग्रकम् ।।११।।
हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन्प्रतिपूज्य च। शृणु मंत्रमिमं विद्वन्भेषजारम्भमाचरेत् ।।१२।।
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः। ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते ।।१३।।

और क्रोध आदि मानस व्याधि कही जाती हैं। चोट, प्रहार या अन्य किसी प्रकार के बाह्य अभिघात के कारण जो व्याधि होती है उसे आगन्तुक व्याधि कहते हैं। भूख, जरा (बुढ़ापा) आदि व्याधियाँ स्वाभाविक व्याधि कही जाती हैं।।१-१$\frac{१}{२}$।। शारीर एवं आगन्तुक व्याधियों के नाश के लिए रविवार के दिन घृत, गुड़, नमक और सोना (सुवर्ण) को ब्राह्मण की पूजा करके उसे दान दे। सोमवार को शरीर पर मालिश करने की वस्तु तैल उबटन आदि दे। शनैश्चर को तिल का दान करे। कुआर महीने में दूध, दधि और अन्न का दान दे। शिवलिंग की स्थापना करके घृत एवं दुग्ध से स्नान कराये तो रोग से मुक्त हो जाय ।।२-४।। अग्नि में गायत्री मन्त्र से घृत, मधु और गुड़ को दूर्वा में मिलाकर उसी से हवन करे। जिस नक्षत्र में व्याधि उत्पन्न हुई है उस नक्षत्र में शुभ स्थान पर बलि चढ़ावे। मानस रोगों को विष्णु सहस्र नाम के पाठ से दूर करना चाहिए। वायु, पित्त, कफ और धातुओं का वर्णन सुनो–हे सुश्रुत! भुक्त (खाया हुआ) अन्न आमाशय (पेट) सें नीचे जाता है तो उसके दो भाग हो जाते हैं। एक भाग से रस और किट्ट बनता है और दूसरे भाग से रस बनता है ।।५-७।। जो किट्ट भाग बनता है वही मल टट्टी, मूत्र और पसीना है तथा नासिका, कान एवं देहमल भी मल ही है। रस भाग से रस, रक्त से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य, वीर्य से ओज का राग (प्रेम) होता है ।।८-९$\frac{१}{२}$।। रोग, देश, काल एवं रोगी के बल, उसकी प्रकृति और उसकी शक्ति का ज्ञान करके और ओषधि के बल का ज्ञान करके चिकित्सा करे। रिक्ता तिथि मंगलवार मंद संज्ञक नक्षत्र, दारुण और उग्र नक्षत्र को त्यागकर अन्य तिथि, वार और नक्षत्र में चिकित्सा करे। विष्णु, गौ, ब्राह्मण, चन्द्र, सूर्य तथा देवताओं का पूजन करके और इस मन्त्र को पढ़कर चिकित्सा प्रारम्भ करे ।।१०-१२।। ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, ओषधि-समूह और भूतसंघ

---

१ छ. °यापूपमर्चये°। २ ख. °प्य च गुडेन तु। ग°। ३ क. ख. ग. ङ. °त्रया होमये°। ४ ख. शुश्रुम। ५ छ. °ददूषिकाः। ना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ।।१४।।
[1]वातश्लेष्मकरो देशो बहुवृक्षो बहूदकः। अनूप इति विख्यातो जाङ्गलस्तद्विवर्जितः ।।१५।।
किंचिद्वृक्षोदको देशस्तथा साधारणः स्मृतः। जाङ्गलः पित्तबहुलो मध्यः साधारणः स्मृतः ।।१६।।
रुक्षः शीतश्चलो वायुः पित्तमुष्णं कटुत्रयम्। स्थिराम्लस्निग्धमधुरं [2]बलासं च प्रचक्षते ।।१७।।
वृद्धिः समानैरेतेषां विपरीतैर्विपर्ययः। रसाः स्वाद्वम्ललवणाः श्लेष्मला वायुनाशनाः ।।१८।।
कटुतिक्तकषायाश्च वातलाः श्लेष्मनाशनाः। कट्वम्ललवणा ज्ञेयास्तथा पित्तविवर्धनाः ।।१९।।
तिक्तस्वादुकषायाश्च तथा पित्तविनाशनाः। रसस्यैष[3] गुणो नास्ति विपाकस्यैष इष्यते ।।२०।।
वीर्योष्णाः कफवातघ्नाः शीताः पित्तविनाशनाः। प्रभावतस्तथा कर्म ते कुर्वन्ति च सुश्रुत ।।२१।।
शिशिरे च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात्। चयप्रकोपप्रशमाः कफस्य तु प्रकीर्तिताः ।।२२।।
निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत। चयप्रकोपप्रशमाः पवनस्य प्रकीर्तिताः ।।२३।।
मेघकाले च शरदि हेमन्ते च तथा क्रमात्। चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्तिताः ।।२४।।
वर्षादयो विसर्गास्तु हेमन्ताद्यास्तथा त्रयः। शिशिराद्यास्तथाऽऽदाने[4] ग्रीष्मान्ता ऋतवस्त्रयः ।।२५।।
सौम्यो विसर्गस्त्वादानमाग्नेयं परिकीर्तितम्। वर्षादींस्त्रीनृतून्सोमश्चरन्पर्यायशो रसान् ।।२६।।

तेरी रक्षा करें। ऋषियों को जिस प्रकार रसायन लाभकारी हुआ, देवों को अमृत लाभदायक हुआ, उत्तम नागों को जिस प्रकार सुधा लाभदायक हुई उसी तरह यह ओषधि तुम्हारे लिये हो ।।१३-१४।। वायु और श्लेष्मा को उत्पन्न करनेवाला अधिक वृक्ष और जलवाला देश अनूप देश कहा जाता है। वृक्षों और जलों से रहित देश जांगल देश कहा जाता है। जिस देश में थोड़े वृक्ष एवं थोड़ा जल हो वह देश साधारण कहा जाता है। जांगल देश में पित्त की अधिकता होती है और साधारण देश में वायु, पित्त, श्लेष्मा समान रहते हैं। रुक्ष, शीत और चल गुणवाला वायु है। पित्त उष्ण एवं त्रिकटु है (इसमें तिक्त एवं कड़ुवा स्वाद होता है), कफ में स्थिर, अम्ल, स्निग्ध एवं मधुर गुण है ।।१५-१७।। अपने-अपने गुणों के समान गुणवाले आहार से वायु, पित्त और श्लेष्मा की वृद्धि होती है एवं विपरीत गुण-वाले आहार से हानि होती है। मधुर, अम्ल और नमकीन रस श्लेष्मा को बढ़ानेवाला एवं वायु को नष्ट करनेवाला है। कटु, तिक्त एवं कषाय रस वायु को बढ़ानेवाला तथा कफ का विनाश करनेवाला है। कटु, अम्ल एवं लवण (नमकीन) पित्त को बढ़ानेवाला है। तिक्त, मधुर एवं कषाय रस पित्तविनाशक है। रस का यह गुण नहीं है। इनके विपाक का यह गुण है ।।१८-२०।। उष्ण वीर्य पित्तवर्धक और शीत वीर्य कफ-वातवर्धक हैं। सुश्रुत! ओषधियाँ प्रभाव से भी अपने-अपने कर्मों को करती हैं। शिशिर, वसन्त और निदाघ गर्मी में क्रमशः श्लेष्मा का संचय, प्रकोप और प्रशमन होता है। गर्मी में, वर्षा में एवं शरद् तथा रात्रि में वायु का क्रमशः संचय, प्रकोप और शमन होता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त में क्रमशः पित्त का संचय, प्रकोप तथा प्रशमन होता है ।।२१-२४।। वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीनों ऋतुएँ विसर्ग काल कही जाती हैं एवं हेमन्त, वसन्त तथा ग्रीष्म ये तीन ऋतुएँ आदान काल कही जाती हैं। विसर्ग काल सौम्य एवं आदान काल आग्नेय कहा जाता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुओं में सोम (चन्द्र)

---

१ ख. छ. °श्लेष्मातको दे°। च. °श्लेष्मान्तको दे°। २ ख. ग. रसालं। ३ क. ख. ग. छ. °स्यैतद्गुणं ना°। ४ छ. °दानं ग्री°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जनयत्यम्ललवणमधुरांस्त्रीन्यथाक्रमम् । शिशिरादीनृतून्नर्कश्चरन्पर्यायशो रसान् ।।२७।।
विवर्धयेत्तथा तिक्तकषायकटुकान्क्रमात् । यथा रजन्यो वर्धन्ते बलमेवं हि वर्धते ।।२८।।
क्रमशोऽथ मनुष्याणां हीयमानासु हीयते । रात्रिभुक्तदिनानां च वयसश्च तथैव च ।।२९।।
आदिमध्यावसानेषु कफपित्तसमीरणाः । प्रकोपं यान्ति कोपादौ काले तेषां चयः स्मृतः ।।३०।।
प्रकोपोत्तरके काले शमस्तेषां प्रकीर्तितः । अतिभोजनतो विप्र तथा चाभोजनेन च ।।३१।।
रोगा हि सर्वे जायन्ते वेगोदीरणधारणैः । अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशावेकं पानेन पूरयेत् ।।३२।।
आश्रयं पवनादीनां तथैकमवशेषयेत् । व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौषधम् ।।३३।।
कर्तव्यमेतदेवात्र मया सारं प्रकीर्तितम् । नाभेरूर्ध्वमधश्चैव गुदश्रोण्योस्तथैव च ।।३४।।
बलासपित्तवातानां देहे स्थानं प्रकीर्तितम् । तथाऽपि सर्वगाश्चैते देहे वायुर्विशेषतः ।।३५।।
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् । कृशोऽल्पकेशश्चपलो बहुवाग्विषमानलः ।।३६।।
व्योमगश्च तथा स्वप्ने वातप्रकृतिरुच्यते । अकालपलितः क्रोधी प्रस्वेदी मधुरप्रियः ।।३७।।
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते । दृढाङ्गः स्थिरचित्तश्च सुप्रभः स्निग्धमूर्धजः ।।३८।।

क्रमशः रसों में चरता है (इसमें अपना अंश देता है)। अतः अम्ल, लवण और मधुर रसों को यथाक्रम बढ़ाता है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में पर्याय से सूर्य रसों में चरता है। तिक्त, कषाय और कटु रसों को क्रमशः बढ़ाता है। जैसे-जैसे रात्रि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे मनुष्यों का बल बढ़ता जाता है ।।२५-२८।। ज्यों-ज्यों रात्रि छोटी होती जाती है त्यों-त्यों मनुष्यों का बल क्रमशः कम होता जाता है। रात्रि, भोजन, दिन और वय के आदि में कफ की वृद्धि, मध्य में पित्त की तथा अन्त में वायु की वृद्धि होती है। और प्रकोप के पूर्व उन दोषों का संचय होता है ।।२९-३०।। प्रकोप के उत्तर काल में उन दोषों का शमन हो जाता है। हे विप्र! अति भोजन तथा अति अभोजन और मल, मूत्र तथा अपान वायु के आये हुए वेगों के रोकने से एवं न आये हुए वेगों के उदीरण से समस्त रोग उत्पन्न होते हैं। अन्न से पेट के दो भाग को और जल से एक भाग को भर ले। वायु आदि के आश्रय के लिए एक भाग खाली छोड़े। रोग के और रोग के कारण के विपरीत चिकित्सा करे ।।३१-३३।। यही नीरोग रहने के लिए कर्त्तव्य है जिसका सारभूत मैंने कहा। यद्यपि शरीर में नाभि के ऊपर (आमाशय) कफ का स्थान है। नाभि के नीचे (अग्न्याशय तथा पार्श्व में यकृत) पित्त का स्थान है। गुदा तथा श्रोणि के मध्य (पक्वाशय) वायु का स्थान है। तथापि ये तीनों दोष शरीर में व्यापक (सर्वग) हैं। इन्हीं में वायु विशेष रूप से शरीर में सर्वचर है ।।३४-३५।। शरीर के मध्य में हृदय है वही मन का निवास-स्थान है। जो व्यक्ति दुर्बल हो, बाल बहुत कम हो, चञ्चल एवं बहुत बोलनेवाला हो, जिसकी जठराग्नि विषम हो और स्वप्न में आकाश में उड़नेवाला हो उसे वात प्रकृतिवाला कहते हैं। जिसके असमय में ही बाल पक जायँ, क्रोधी हो, पसीना बहुत आवे और मधुर आहार का प्रेमी हो, स्वप्न में प्रकाश की वस्तुएँ दीख पड़ें उसे पित्त प्रकृतिवाला कहा जाता है। जिसके अंग मजबूत (दृढ़) हों, स्थिर चित्तवाला हो, मुख पर तेज टपकता है-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुद्धाम्बुदर्शी स्वप्ने च कफप्रकृतिको नरः । तामसा राजसाश्चैव सात्त्विकाश्च तथा स्मृताः ।।३९।।
मनुष्या मुनिशार्दूल वातपित्तकफात्मकाः । रक्तपित्तं व्यवायाच्च गुरुकर्मप्रवर्तनैः ।।४०।।
कदन्नभोजनाद्वायुर्देहे शोकाच्च कुप्यति । विदाहिनां तथोल्कानामुष्णान्नाध्वनिषेविणाम् ।।४१।।
पित्तं प्रकोपमायाति भयेन च तथा द्विज । अत्यम्बुपानगुर्वन्नभोजिनां भुक्तशायिनाम् ।।४२।।
श्लेष्मा प्रकोपमायाति तथा ये चालसा जनाः । वाताद्युत्थानि रोगाणि ज्ञात्वा शाम्यानि लक्षणैः ।।४३।।
अस्थिभङ्गः कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा । जृम्भणं रोमहर्षश्च वातिकव्याधिलक्षणम् ।।४४।।
नखनेत्रशिराणां तु पीतत्वं कटुता मुखे । तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम् ।।४५।।
आलस्यं च प्रसेकश्च गुरुता मधुरास्यता । उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकव्याधिलक्षणम् ।।४६।।
स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्गस्तैलं पानादि वातनुत् । आज्यं क्षीरं सिताद्यं च चन्द्ररश्म्यादि पित्तनुत् ।।४७।।
सक्षौद्रं त्रिफला तैलं व्यायामादि कफापहम् । सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद्विष्णोर्ध्यानं च पूजनम् ।।४८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वरोगहरौषधादिकथनं
नामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८०।।

चिकने सिर के बाल हों एवं स्वप्न में शुद्ध जल को देखता हो वह कफ प्रकृतिवाला मनुष्य है। ऊपर कहे गये वात प्रकृतिवाले को तामस, पित्त प्रकृतिवाले को राजस एवं कफ प्रकृतिवाले को सात्त्विक कहा जाता है ।।३६-३९।। हे मुनिशार्दूल! मनुष्य वात, पित्त एवं कफात्मक हैं। अत्यधिक मैथुन से तथा बहुत बड़ा कार्य (सामर्थ्य के बाहर का) करने से रक्त पित्त होता है। शरीर में रुक्ष अन्न के सेवन से एवं शोक से वायु कुपित होती है। उष्ण पदार्थों (मिर्च-मसाला आदि) के सेवन से, अग्नि के सेवन से और अध्वगमन से और भय से पित्त का प्रकोप होता है। अधिक जल पीने से, गुरु आहार के सेवन से, भोजन के बाद तुरन्त सो जाने से श्लेष्मा का प्रकोप होता है। जो आलसी व्यक्ति होते हैं उन्हें भी श्लेष्मा का प्रकोप होता है। वातादि से उत्पन्न रोगों को लक्षणों द्वारा समझकर रोगों को शान्त करें ।।४०-४३।। हड्डी का टेढ़ा हो जाना, मुख का स्वाद कषाय होना, मुख सूख जाना, जँभाई आना, रोमांच हो जाना वातिक व्याधि का लक्षण है। नख, नयन और शिराओं का पीला होना, मुख का स्वाद कटु होना, प्यास अधिक लगना, शरीर में दाह एवं गर्मी पैदा होना पित्तजन्य व्याधि का लक्षण है। शरीर में आलस्य बना रहना, मुख में पानी भर आना, शरीर में भारीपन, मुख का मीठापन और उष्ण पदार्थ के सेवन की इच्छा होना, श्लेष्मिक व्याधि का लक्षण है ।।४४-४६।। स्निग्ध तथा उष्ण भोजन, तेल की मालिश एवं तैल का पान वायु को नष्ट करता है। घृत, दुग्ध, मिश्री आदि तथा चन्द्रमा की किरणें पित्तनाशक हैं। मधु के साथ त्रिफला का सेवन, तेल का सेवन और व्यायाम आदि श्लेष्मानाशक हैं सब रोगों की शान्ति के लिए विष्णु का ध्यान और पूजन हितकर है ।।४७-४८।।

श्री अग्निमहापुराण में सर्वरोगहरौषधादि कथन नामक दो सौ अस्सीवाँ
अध्याय समाप्त ।।२८०।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रसादिलक्षणम्

धन्वन्तरिरुवाच

रसादिलक्षणं वक्ष्ये भेषजानां गुणं शृणु। रसवीर्यविपाकज्ञो नृपादीन्रक्षयेन्नरः ।।१।।
रसाः स्वाद्वम्ललवणाः सोमजाः परिकीर्तिताः। कटुतिक्तकषायाश्च तथाऽऽग्नेया[1] महाभुज ।।२।।
त्रिधा विपाको द्रव्यस्य कट्वम्ललवणात्मकः। द्विधा वीर्यं समुद्दिष्टमुष्णं शीतं तथैव च ।।३।।
अनिर्देश्यप्रभावश्च ओषधीनां द्विजोत्तम। मधुरश्च कषायश्च तिक्तश्चैव तथा रसः ।।४।।
शीतवीर्याः समुद्दिष्टाः शेषास्तूष्णाः प्रकीर्तिताः। गुडूची तत्र तिक्ताऽपि भवत्युष्णाऽतिवीर्यतः ।।५।।
उष्णा कषायाऽपि तथा पथ्या भवति मानद। मधुरोऽपि तथा मांस उष्ण एव प्रकीर्तितः ।।६।।
लवणो मधुरश्चैव विपाकमधुरौ स्मृतौ। अम्लोष्णश्च तथा प्रोक्तः शेषाः कटुविपाकिनः ।।७।।
वीर्यपाके विपर्यस्तप्रभावात्तत्र निश्चयः। मधुरोऽपि कटुःपाके यच्च क्षौद्रं प्रकीर्तितम् ।।८।।
क्वाथयेत्षोडशगुणं पिबेद्द्रव्याच्चतुर्गुणम्। कल्पनैषा कषायस्य यत्र नोक्तो विधिर्भवेत् ।।९।।
कषायं तु भवेत्तोयं स्नेहपाके चतुर्गुणम्। द्रव्यतुल्यं समुद्धृत्य द्रव्ये स्नेहं[2] क्षिपेद्बुधः ।।१०।।

अध्याय २८१

रसादि लक्षण

धन्वन्तरि बोले–रस आदि का लक्षण कहूँगा। ओषधियों के गुणों को सुनो। रस, वीर्य और विपाक का जाननेवाला राजा आदि की रक्षा कर सकता है। हे महाभुज, मधुर अम्ल और लवण रस सोम से उत्पन्न (सोमजसौम्य) कहे जाते हैं और कटु, तिक्त एवं कषाय रस आग्नेय (अग्नि से उत्पन्न) कहे जाते हैं ।।१–२।। द्रव्य का तीन प्रकार का विपाक होता है–कटु, अम्ल और लवण। दो वीर्य होता है–उष्ण एवं शीत। ओषधियों का प्रभाव अनिर्देश्य–रसादि द्वारा दोषों को शान्त करने के नियम से रहित होता है। मधुर, कषाय एवं तिक्त रस शीत वीर्य होता है। शेष रस–कटु, लवण और अम्ल उष्ण वीर्य होते हैं किन्तु गुर्च तिक्त होने पर भी वीर्य का अतिक्रमण करके उष्ण होती है ।।३–५।। हरड़ कषाय होने पर भी उष्ण होती है। हे मानद! मांस मधुर होने पर भी उष्ण होता है। लवण और मधुर का विपाक मधुर होता है, अम्ल का उष्ण–शेष रस का कटु विपाक होता है ।।६–७।। वीर्य एवं विपाक के विपरीत प्रभाव अपना कार्य करता है। मधुर रस भी पाक में कटु हो जाता है इसका दृष्टान्त मधु है। काढ़ा बनाने की विधि जिस स्थान पर न कही गयी हो वहाँ पर द्रव्य की मात्रा से १६ गुने जल में द्रव्य पकावे और चतुर्गुण के शेष रहने पर काढ़े को छान ले ।।८–९।। घृत तैल को पकाने के लिए जो काढ़ा घृत या तेल में डाला जाता

---

१ क. ङ. °ग्नेयाः प्रकीर्तिताः। त्रि°। २ छ. °हं पिबेद्ब°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तावत्प्रमाणं द्रव्यस्य स्नेहपादं ततः क्षिपेत् । तोयवर्जं तु यद्द्रव्यं स्नेहद्रव्यं तथा भवेत् ।।११।।
संवर्तितौषधः पाकः स्नेहानां परिकीर्तितः । तत्तुल्यता तु लेह्यस्य तथा भवति सुश्रुत ।।१२।।
स्वच्छमल्पौषधं क्वाथं कषायं चोक्तवद्भवेत् । अक्षं चूर्णस्य निर्दिष्टं कषायस्य चतुष्पलम् ।।१३।।
मध्यमैषा स्मृता मात्रा नास्ति मात्राविकल्पना । वयः कालं बलं वह्निं देशं द्रव्यं रुजं तथा ।।१४।।
समवेक्ष्य महाभाग मात्रायाः कल्पना भवेत् । सौम्यास्तत्र रसाः प्रायो विज्ञेया धातुवर्धनाः ।।१५।।
मधुरास्तु विशेषेण विज्ञेया धातुवर्धनाः । दोषाणां चैव धातूनां द्रव्यं समगुणं तु यत् ।।१६।।
तदेव वृद्धये ज्ञेयं विपरीतं क्षयावहम्[1] । उपक्रमत्रयं प्रोक्तं देहेऽस्मिन्मनुजोत्तम ।।१७।।
आहारो मैथुनं निद्रा तेषु यत्नः सदा भवेत् । असेवनात्सेवनाच्च अत्यन्तं नाशमाप्नुयात् ।।१८।।
क्षयस्य बृंहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् । रक्षणं मध्यकायस्य[2] देहभेदास्त्रयो मताः ।।१९।।
उपक्रमद्वयं प्रोक्तं तर्पणं वाऽप्यतर्पणम् । हिताशी च मिताशी च जीर्णाशी च तथा भवेत् ।।२०।।
ओषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना । रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम ।।२१।।

है वह स्नेह (घृत या तेल) का चतुर्गुण रहे। काढ़े में से द्रव्य निकालकर जितना द्रव्य काढ़े में डाला गया हो उतना ही स्नेह की मात्रा होनी चाहिए। उस स्नेह (घृत या तैल) में पकते समय द्रव्य की मात्रा स्नेह से १/४वाँ भाग (कल्क के रूप में) छोड़ दे। जल के सिवा या जो द्रव्य स्नेह में पकने के लिए छोड़ा जायगा उसे स्नेह द्रव्य कहते हैं ।।१०-११।। स्नेह के पकते समय उसे चलाते रहें जिससे ओषधि का रस स्नेह में मिल जाय इसे स्नेहों का पाक कहते हैं। जिस प्रकार स्नेह पाक किया जाता है उसी तरह अवलेह भी पकाया जाता है। अवलेह में स्नेह की मात्रा जितनी होती है उतनी ही चीनी आदि डालनी चाहिए (अवलेह बनाते समय कुछ द्रव्य पकते समय और कुछ द्रव्य पकने और ठण्डा होने पर छोड़े जाते हैं) ।।१२।। स्वच्छ और थोड़ी ओषधि का क्वाथ बनता है और कषाय पूर्व में कहे हुए की भाँति बनता है। ओषधि के चूर्ण की मात्रा एक तोला ले और कषाय के लिए ४ पल (१६ तोला)। हे महाभाग! यह मात्रा जो ओषधियों की कही गयी है वह मध्यम मात्रा है। मात्रा का निश्चय (विकल्पना) नहीं है। रोगी की उम्र, बल, काल (समय), देश, जठराग्नि, द्रव्य और रोग का विचार करके मात्रा निश्चय करे। इनमें सौम्य रस प्रायः धातुवर्धक होता है ।।१३-१५।। मधुर रस तो विशेष रूप से धातुवर्धक है। दोष एवं धातुओं के जो द्रव्य समगुण होता है वही वृद्धि करता है और जो समगुण नहीं होता वह हानि करता है। हे मनुजों में उत्तम! इस देश में ३ उपक्रम कहे गये हैं– आहार, मैथुन और निद्रा। अतः इन तीनों में सदा प्रयत्नशील रहे। इनके असेवन से और सेवन से मनुष्य नाश को प्राप्त होता है ।।१६-१८।। क्षीण शरीर को बढ़ाने का यत्न (बृंहण) करे और स्थूल शरीर को क्षीण (कर्षण) करने का यत्न करे और मध्यम शरीर (जो न अत्यन्त दुबला हो न अत्यन्त मोटा ही हो) को उसी अवस्था में रखने का यत्न करे। इस प्रकार शरीर के तीन भेद हैं। दो उपक्रम कहा गया है–शरीर को बढ़ाना (तर्पण) तथा शरीर को घटाना (अपतर्पण)। मनुष्य को चाहिए कि वह हितकारक आहार करे एवं आहार को मात्रा से करे तथा पूर्व आहार के जीर्ण होने पर ही आहार करे ।।१९-२०।। हे मनुजोत्तम! ओषधियों की कल्पना पाँच प्रकार की होती है–रस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट (काढ़ा)। ओषधियों के दबाने से जो रस निकलता है उसे रस कहते हैं। कल्क उसे

---

१ क. ङ. भयावहम्। २ क. ख. शुष्ककायस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसश्च पीडको ज्ञेयः कल्क आलोडिताद् भवेत् । क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्युषितो निशि[१] ।।२२।।
सद्योभिशृतपूतं यत्तत्फाण्टमभिधीयते । करणानां शतं चैव षष्टिश्चैवाधिका स्मृता ।।२३।।
यो वेत्ति स ह्यजेयः स्यात्संबन्धे बाहुशौण्डिकः । आहारशुद्धिरग्न्यर्थमग्निमूलं बलं नृणाम् ।।२४।।
ससिन्धुत्रिफलां चाद्यात्सुष्ठु राज्यभिवर्णदाम् । जाङ्गलं च रसं सिन्धुयुक्तं दधि पयः कणाम् ।।२५।।
रसाधिकं समं कुर्यान्नरो वाताधिकोऽपि वा । निदाघे मर्दनं प्रोक्तं शिशिरे च समं बहु ।।२६।।
वसन्ते मध्यमं ज्ञेयं निदाघे मर्दनोल्बणम् । त्वचं तु प्रथमं मर्द्यं मज्जां च तदनन्तरम् ।।२७।।
स्नायूरुधिरदेहेषु अस्थि चातीव मांसलम् । स्कन्धो बाहू तथैवेह तथा जङ्घे सजानुनी ।।२८।।
अरिवन्मर्दयेत्प्राज्ञो जत्रु वक्षश्च पूर्ववत् । अङ्गसंधिषु सर्वेषु निष्पीड्य बहुलं तथा ।।२९।।
प्रसारयेदङ्गसंधीन्न च क्षेपेण चाक्रमात् । नाजीर्णे तु श्रमं कुर्यान्न भुक्त्वा पीतवान्नरः ।।३०।।
दिनस्य तु चतुर्भाग ऊर्ध्वं तु प्रहरार्धके । व्यायामं(मो) नैव कर्तव्यं (व्यः) स्नायाच्छीताम्बुनासकृत् ।।३१।।

कहते हैं–जो द्रव्य चटनी की भाँति पीसकर रख दिया जाय। ओषधियों का जो काढ़ा बनता है उसे शृत कहा है। जिस द्रव्य को सायं भिगोकर रख दे और उसे प्रातः मसलकर छान ले एवं जो जल शेष रह जाता है उसे शृत कहते हैं। जिस द्रव्य को खौलते पानी में उबालकर तुरन्त छान ले उसे फाण्ट कहते हैं। ओषधियों को खिलाने के लिए १६० कारण (सहायक–अनुमान) कहे गये हैं ।।२१–२३।। जो व्यक्ति ऊपर लिखी गयी बातों को जानता है वह अजेय है इस सम्बन्ध में वह जितहस्त (बाहुशौण्डिक) कहा जाता है। आहार की शुद्धि जठराग्नि की रक्षा के लिए है और मनुष्यों का बल अग्निमूलक ही है। सैन्धव नमक के साथ त्रिफला (आँवला, हरड़ और बहेड़ा) को खाने से रानी के समान शरीर का वर्ण खिल जाता है। इसी तरह सैन्धव नमक के साथ जंगली पशु–पक्षियों के मांस का रस भी लेने से त्वचा का वर्ण बढ़ जाता है। दधि, दूध और मांसरस को एक में मिलायें किन्तु मांसरस अधिक रहे। इसमें पीपरि (कणा) का चूर्ण मिलाकर लेने से कितना ही शरीर में वायु अधिक बढ़ा हो लाभ होता है। गर्मी में शरीर पर तेल की थोड़ी मालिश करावे, शिशिर ऋतु में अत्यधिक मालिश करावे ।।२४–२६।। और वसन्त में मध्यम रूप (अधिक न कम) से मालिश करावे। गर्मी में मर्दन केवल ऊपर–ऊपर करावे। त्वचा का मर्दन पहले करावे पश्चात् मज्जा का मर्दन करावे। स्नायु रुधिर (रक्त बहानेवाली शिरा एवं धमनियाँ) मांसल हड्डियाँ, कन्धा, बाँह, जाँघ और घुटने को शत्रु की भाँति मर्दन करे या करावे। सम्पूर्ण शरीर की सन्धियों पर मालिश खूब मर्दन करावे ।।२७–२९।। अंग–सन्धियों को फैलावे और सिकोड़े किन्तु धीरे–धीरे झटके के साथ नहीं फैलावे और न एकाएक फैलावे किन्तु धीरे–ही–धीरे समस्त अंग–सन्धियों का संकोच और प्रसार करे। भोजन के पश्चात् एवं पेय पदार्थ के पीने के पश्चात् व्यायाम न करे एवं अजीर्ण रहने पर भी व्यायाम न करे। दिन के चार भाग के पश्चात् और आधे प्रहर के पूर्व व्यायाम नहीं करना चाहिए। व्यायाम के पश्चात् ठण्डे जल से एक बार स्नान करना चाहिए ।।३०–३१।।

---

१ छ. निशाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वार्युष्णं च श्रमं जह्याद्धृदा श्वासं न धारयेत् । व्यायामश्च कफं हन्याद्वातं हन्याच्च मर्दनम् ।।३२।।
स्नानं पित्ताधिकं हन्यात्तस्यान्ते चाऽऽतपाः प्रियाः । आतपक्लेशकर्माऽऽदौ क्षेमव्यायाम[1] उत्तरः ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रसादिलक्षणकथनं नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८१।।

अथ द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृक्षायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच

वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः । प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तु ।।१।।
दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः समीपे कण्टकद्रुमाः । उद्यानं गृहवासे स्यात्तिलान्वाऽप्यथ पुष्पितान् ।।२।।
गृह्णीयाद्रोपयेद्वृक्षान्द्विजं चन्द्रं प्रपूज्य च । ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तं प्राजेशवैष्णवम् ।।३।।
नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे । प्रवेशयेन्नदीवाहान्पुष्करिण्यां तु कारयेत् ।।४।।
हस्तो मघा तथा मैत्रमाद्यं पुष्यं सवासवम् । जलाशयसमारम्भे वारुणं चोत्तरात्रयम् ।।५।।
सम्पूज्य वरुणं विष्णुं पर्जन्य तत्समाचरेत् । अरिष्टाशोकपुंनागशिरीषाः सप्रियंगवः ।।६।।

उष्ण जल से स्नान करने पर शरीर की थकावट दूर हो जाती है। हृदय से श्वास के वेग को न धारण करे। व्यायाम से कफ तथा मर्दन से वायु का नाश होता है। स्नान से पित्त शान्त होता है। स्नान के बाद धूप प्रिय लगती है। धूप सेवन, कठिन श्रम आदि के पूर्व में ही व्यायाम करना श्रेष्ठ होता है ।।३२-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में रसादिलक्षण कथन नामक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८१।।

अध्याय २८२

वृक्षायुर्वेद-कथन

धन्वन्तरि बोले- वृक्षायुर्वेद को कहूँगा। पाखरि (पाकरि) उत्तर दिशा में, पूर्व में बरगद, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपल शुभ है ।।१।। दक्षिण दिशा में काँटेवाले वृक्ष (बबूर, बेर आदि) समीप में शुभ हैं। गृह के पास उद्यान होना चाहिए। उद्यान में तिल या फूलवाले वृक्षों का रोपण करना चाहिए। रोपण के पूर्व ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा कर ले। वृक्षों के आरोपण, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी और रेवती) अभिजित् (यह मुहूर्त का नाम है दोपहर को नित्य आता है), हस्त, पूर्वाषाढ़ा, शतभिष और मूल नक्षत्रों में करना चाहिए। उद्यान में नदी के प्रवाह का प्रवेश करावे अथवा एक बावली बनवा दे ।।२-४।। पुष्करिणी (जलाशय) बनवाने के लिए हस्त, मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा और तीनों उत्तरा उत्तम माने जाते हैं। जलाशय बनवाने से पूर्व वरुण, विष्णु और पर्जन्य की पूजा करे तब कार्य प्रारम्भ करे। नीम, अशोक, सोपारी, शिरीष, प्रियंगु, कदली (केला), जामुन, वकुल और

---

१ छ. °आमितो नराः इ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अशोकः कदली जम्बुस्तथाबकुलदाडिमाः । सायं प्रातस्तु [1]घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ।।७।।
वर्षारात्रौ भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः । उत्तमा विंशतिर्हस्ता मध्यमाः षोडशान्तराः ।।८।।
स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् । विफलाः स्युर्घना वृक्षाः शस्त्रेणाऽऽदौ हि शोधनम् ।।९।।
विडङ्गघृतपङ्काक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा । फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुग्दैर्यवैस्तिलैः ।।१०।।
धृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा । आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ।।११।।
गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् । उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ।।१२।।
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः । विडङ्गतण्डुलोपेतं [2]मात्स्यं मांसं हि दोहदम् ।।१३।।
सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वृक्षायुर्वेदकथनं नाम द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८२।।

अनार के वृक्ष लगावे। वर्षा के प्रारम्भ में सायंकाल और प्रातःकाल वृक्षों का आरोपण करे और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण उत्तम होता है। वर्षाकाल में रात्रि में वृक्ष लगाना उत्तम है। पृथ्वी के सूख जाने पर वृक्षों को सींचना चाहिए ।।५-७ $\frac{१}{२}$।। वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है, सोलह हाथ का अन्तर मध्यम है एवं बारह हाथ का अन्तर अधम माना जाता है। क्योंकि घने वृक्षों में फल नहीं लगते। वृक्षों के आरोपण से पहले शस्त्र से जमीन पर गड्ढा बनाकर उसकी शुद्धि कर लें ।।८-९।। जिस गड्ढे में वृक्ष लगाया जाय उसे जल से भर दे और उसमें वायविडंग का चूर्ण घृत से लपेटकर छोड़ दे इससे भूमि शुद्ध हो जाती है। जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता हो उसकी जड़ में कुलथी, उड़द, मूँग, तिल और यव के चूर्ण से मिश्रित शीतलजल से सिंचन करे तो सदा पुष्प और फल लदा रहेगा। इसी तरह भेड़ें एवं बकरी की लेंड़ी (गोबर) का चूर्ण, जवा का चूर्ण और तिल का चूर्ण घृत से सानकर शीतल जल में मिला दे और उससे वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं ।।१०-११।। सात रात्रि तक जल में गोमांस रख दे और उससे वृक्ष को सींचने से सभी वृक्ष फल-पुष्प से लदे रहते हैं। मछली के धोवन (जल) से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है और वायविडंग के चावल तथा मछली का मांस वृक्षों का दोहद है (गर्भित होते हैं) और सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट करनेवाला है ।।१२-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में वृक्षायुर्वेद कथन नामक दो सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८२।।

---

१ छ. घर्मातौ। २ छ. मत्स्यं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानारोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच

सिंही शटी निशायुग्मं वत्सकं क्वाथसेवनम् । शिशोः सर्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते ।।१।।
शृङ्गी सकृष्णातिविषां चूर्णितां मधुना लिहेत् । एका चातिविषा काशश्छर्दिज्वरहरी शिशोः ।।२।।
बालैः सेव्या वचा साज्या सदुग्धा वाऽथ तैलयुक् । यष्टिकां शंखपुष्पीं वा बालः क्षीरान्वितां पिबेत् ।।३।।
वाग्रूपसंपद्युक्तायुर्मेधा श्रीर्वर्धते शिशोः । वचा ह्यग्निशिखावासाशुण्ठीकृष्णानिशागदम् ।।४।।
सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातर्मेधाकरं पिबेत् । देवदारुसहाशिग्रुफलत्रयपयोमुचाम् ।।५।।
क्वाथः सकृष्णामृद्वीकाकल्कः सर्वान्कृमीन्हरेत् । त्रिफलाभृङ्गाविश्वानां रसेषु मधुसर्पिषोः ।।६।।
मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्तं रोगे हितं शिशोः । नासारक्तहरो नस्याद्दूर्वारस इहोत्तमः ।।७।।
लशुनार्द्रकशिग्रूणां रसः कर्णस्य पूरणम् । तैलमार्द्रकजात्यं वा शूलनुच्चौष्ठरोगनुत् ।।८।।
जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा । दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजार्तिनुत् ।।९।।

अध्याय २८३

अनेक रोगों को हरण करनेवाली ओषधियाँ

धन्वन्तरि बोले–व्याघ्री, कचूर, हरदी, दारुहरदी तथा इन्द्रजव का काढ़ा माता के दूध के दोष से उत्पन्न बच्चों के सब प्रकार के अतिसार को दूर करता है ।।१।। काकड़ासिंगी, पीपरि और अतीस को बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बना ले, उसमें से मात्रा के अनुसार चूर्ण को मधु से बालक को चटाने पर सभी अतिसार दूर हो जाते हैं। (इसकी मात्रा १–६ माशे तक बल के अनुसार है) केवल अतीस ही अकेला बच्चों के कास, वमन और ज्वर का नाशक है ।।२।। बच्चों को चाहिए कि बच का सेवन घृत और दुग्ध के साथ करें या कड़वे तेल के साथ सेवन करें। अथवा मुलहठी या शंखपुष्पी दुग्ध के साथ हों तो बच्चे की वाणी, स्वरूप, आयु–वृद्धि और श्री की वृद्धि हो जाती है। बच, अग्निशिखा, अडूस, सोंठ, पीपरि, हरदी ओषधि को मुलहठी और सैंधव चूर्ण के साथ बालक प्रातःकाल जल से ले तो बुद्धि की वृद्धि होती है। देवदारु, पृश्निपर्णी, सहिजन, त्रिफला और नागरमोथा का काढ़ा बनाकर उसमें मुनक्का एवं पीपरि का कल्क छोड़कर बालक पीवे तो सब प्रकार की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं ।।३–५$\frac{१}{२}$।। बच्चों के कृमिरोग में त्रिफला, भँगरैया और सोंठ के काढ़े में मधु और घृत मिलाकर देवे तो हितकर होता है। बच्चों का रोग होने पर उसे गोमूत्र में भेड़ का दूध मिलाकर सिंचन करने से बच्चों के रोग दूर हो जाते हैं। नासिका से रक्त हो तो दूब के रस का नस्य लेने से बन्द हो जाता है। लहसुन, अदरख और सहिजन का रस कान की पीड़ा में कान में डालने से लाभ होता है। अदरख रस में तेल पकाकर कुल्ला लेने से ओष्ठ रोग नष्ट होता है तथा मर्दन करने से शूल रोग नष्ट होता है। जायफल, मैनफर, सोंठ, मिर्च, पीपरि और हरदी का काढ़ा बनाकर हरड़ का कल्क बनाकर तैल को पका लेवे। उसको मुख में धारण करने से दाँत की पीड़ा दूर होती है। धनिया, सुगन्धवाला, नारियल, गोमूत्र,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धान्याम्बुनारिकेलं गोमूत्रं क्रमुकविश्वयुक् । क्वाथितं कवलं कार्यं जिह्वाव्याधिप्रशान्तये ।।१०।।
साधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः । गण्डमालागलगण्डौ नासयेन्नस्यकर्मणा ।।११।।
पल्लवैरर्कपूतीकस्नुहीरुग्घातजातिकैः । उद्वर्तयेत्सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनः ।।१२।।
बाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात्कुष्ठनाशिनी । पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित् ।।१३।।
यूथिका वह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक् । तक्रं गुदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या व सगुडाऽभया ।।१४।।
फलदार्वीविशालाजः क्वाथो धात्रीरसोऽथवा । पातव्यो रजनीकल्कः क्षौद्राक्षौद्रप्रमेहिणा ।।१५।।
वासागर्भो व्याधिघातः क्वाथ एरण्डतैलयुक् । वातशोणितहृत्पानात्पिप्पली स्यात्प्लीहाहरी ।।१६।।
सेव्या जठरिणा कृष्णास्नुक्क्षीरबहुभाविता । पयो [1]वाऽरुचिहन्त्र्यग्निविडङ्गव्योषकल्कयुक् ।।१७।।
ग्रन्थिकोग्राऽभया कृष्णा विडङ्गाक्ता घृतं[2] तथा[3] । मांसं तक्रं ग्रहण्यर्शः पाण्डुगुल्मकृमीन्हरेत् ।।१८।।
फलत्रयामृतावासातिक्तभूनिम्बजस्तथा । क्वाथः समाक्षिको हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ।।१९।।
रक्तपित्ती पिबेद्वासास्वरसं ससितं मधु । वरीद्राक्षाबलाशुण्ठीसाधितं वा पयः पृथक् ।।२०।।

सुपारी और सोंठ का क्वाथ बनाकर केवल मुख में कुछ देर धारण करने से जिह्वा की समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं ।।६-१०।। निर्गुण्डी (मेउड़ी) के क्वाथ में करिहारी का कल्क बनाकर सिद्ध किया हुआ तैल के नस्य लेने से गण्डमाला और गलगण्ड नष्ट हो जाता है। त्वचा के रोगों में मदार, डिठोहरी और सेंहुड के अनेक जाति के पत्रों को गोमूत्र में पीसकर उबटन की तरह मालिश करने से सब प्रकार के (खसरा, फोड़ा, फुंसी, अपरस आदि) त्वचा के रोग दूर हो जाते हैं। बाकुची को तिल के साथ मात्रा से एक वर्ष तक सेवन करने पर कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। हरड़, भिलावाँ, तेल और गुड़ मिलाकर पिण्डी बना ले। उसकी मात्रा से सेवन करने पर कुष्ठ अच्छे हो जाते हैं ।।११-१३।। जूही, चित्रक, हरदी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला, हरड़ और बहेड़े का चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ सेवन करने से बवासीर (अर्श) रोग नष्ट हो जाता है। अथवा हरड़ और गुड़ एक साथ निरन्तर लेने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाता है। मधुमेह (डायबिटीज) में मैनफर, दारुहरदी और इन्द्रायण का क्वाथ बनाकर उसमें अथवा आँवले के रस में हरदी का कल्क एवं मधु डालकर पीने से सभी प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ।।१४-१५।। अडूसे के काढ़े में एरण्ड तेल मिलाकर पीने से व्याधियाँ नष्ट होती हैं तथा वातरक्त नष्ट होता है। पीपरि का सेवन करने से प्लीहावृद्धि दूर होती है। उदर रोग में सेंहुड़ के दूध की अनेक भावना देकर पीपरि के सेवन से लाभ होता है। अरुचि रोग में चित्रक, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च एवं पीपरि का कल्क दूध में मिलाकर पीने से अरुचि दूर हो जाती है ।।१६-१७।। भटेसू की जड़ (ग्रन्थिपर्णी), हरड़, पीपरि और वायविडङ्ग से युक्त घृत, मांस या मट्ठे के सेवन से ग्रहणी, बवासीर, पाण्डुरोग, गुल्म और कृमि रोग नष्ट हो जाता है। त्रिफला, गुर्च, अडूसा, कुटकी तथा चिरायता के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से कामला के सहित पांडु रोग नष्ट हो जाता है। रक्त पित्त का रोगी अडूसे के स्वरस में मधु एवं मिश्री मिलाकर पीवे। या शतावरी, मुनक्का, करिअरा और सोंठ को दूध में पकाकर दूध पीवे ।।१८-२०।। क्षय

---

१ छ. वा रुच्यदन्त्यग्नि। २ छ. घृते। ३ छ. स्थिता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वरी विदारी पथ्या च बलात्रयं सवासकम् । श्वदंष्ट्रामधुसर्पिर्भ्यामालिहेत्क्षयरोगवान् ।।२१।।
पथ्याशिग्रुकरञ्जार्कत्वक्सारं मधुसिन्धुमत् । समूत्रं विद्रधिं हन्ति परिपाकाय तन्त्रजित् ।।२२।।
त्रिवृता जीवती दन्ती मञ्जिष्ठा शर्वरीद्वयम् । तार्क्षजं निम्बपत्रं च लेपः शस्तो भगंदरे ।।२३।।
रुग्घातरजनीलाक्षातूर्णाजक्षौद्रसंयुता । वासोवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशनी ।।२४।।
श्यामायष्टिनिशालोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः । समरोचैः शृतं तैलं क्षीरे स्याद्व्रणरोहणम् ।।२५।।
श्रीकार्पासदलैर्भस्म फलोपलवणा निशा । तत्पिण्डीस्वेदनं ताम्रे तत्तैलं स्यात्क्षतौषधम् ।।२६।।
कुम्भीसारं पयोयुक्तं वह्निदग्धं व्रणे लिपेत् (?) । तदेव नाशयेत्सेकान्नारिकेलरजोघृतम् ।।२७।।
विश्वाजमोदसिन्धूत्थचिञ्चात्वग्भिः समाऽभया । तक्रेणोष्णाम्बुना वाऽथ पीताऽतीसारनाशनी ।।२८।।
वत्सकातिविषाविश्वाबिल्वमुस्तशृतं जलम् । सामे पुराणेऽतीसारे सासृक्शूले च पाययेत् ।।२९।।
अहंकारदग्धं [1]सुगतं सिन्धुमुष्णाम्बुना पिबेत् । शूलवानथ वा तद्धि सिन्धुहिङ्गुकणाभया ।।३०।।
कटुरोहात्कणातङ्कलाजचूर्णं मधुप्लुतम् । वस्त्रच्छिद्रगतं वक्त्रे न्यस्तं तृष्णां विनाशयेत् ।।३१।।

रोग में सतावरी, विदारीकन्द, हरड़, बरियरा, गुलशकरी, कंघी की जड़, अडूसा तथा गोखरू का चूर्ण बनाकर मधु एवं घृत (जो समान मात्रा में रहे) के साथ लेह की तरह चाटे तो क्षय रोग नष्ट हो जाता है। हरड़, सहिजन, डिठोहरी और मदार की त्वचा के चूर्ण में मधु तथा सेंधानमक मिलाकर गोमूत्र में पीसकर लेप करने से फोड़ा पक जाता है। निसोथ, जीवन्ती, जमालगोटे की जड़, मजीठ, हरदी, दारुहरदी, गारुड़ी तथा नीम के पत्ते को लेप करने से भगंदर ठीक हो जाता है ।।२१-२३।। सेहुँड़, हरदी, लाख और मोम में मधु मिलाकर बत्ती बना ले, उस बत्ती का उपयोग व्रण शोधन के लिए व्रण में डालने के लिए होता है। काला निशोथ, मुलहठी, हरदी, लोध, पद्मख, कमल, लालचन्दन और काली मिर्च के क्वाथ एवं कल्क से पकाया हुआ तैल घाव (व्रण) पर लगाने से घाव भर जाता है। कपास के पत्तों की राख, मैनफर, सैंधव नमक, हरदी का पिण्ड बनाकर (आग में गर्म करके) स्वेदन करने से कटा हुआ घाव ठीक हो जाता है या इन्हीं ओषधियों के काढ़े और कल्क से ताम्र के पात्र में तैल पकाकर रख लेवे। उसके लगाने से कटा हुआ व्रण ठीक हो जाता है ।।२४-२६।। जलकुम्भी के क्षार को दूध में मिलाकर जले हुए घाव में लेप करे तो व्रण ठीक हो जाता है। वही व्रण नारियल की जटा की राख और घृत मिलाकर गर्म-गर्म रखने से भी ठीक हो जाता है। सोंठ, अजमोदा, सेंधानमक और इमली की त्वचा का चूर्ण बनाकर उसी चूर्ण के बराबर हरड़ का चूर्ण मिला ले। उस चूर्ण को मट्ठे या गर्म जल से पीने पर अतिसार रोग नष्ट हो जाता है। इन्द्र जौ, अतीस, सोंठ, बेल की गुद्दी और नागरमोथा डालकर पकाया हुआ जल पान करने से आमयुक्त पुराने अतिसार को विनष्ट कर देता है ।।२७-२९।। बरगद की जटा को अंगार पर जलाकर राख बना ले उसमें सेंधानमक बराबर मिला ले और गर्म जल से पीने पर शूल का नाश होता है अथवा सेंधानमक, हींग (भूनकर ले) पीपरि तथा हरड़ का चूर्ण गर्म जल से पीने पर शूल नष्ट होता है। कुटकी, पीपरि, धान के लावे के चूर्ण को मधु से मिलाकर मुख में धारण करने से तृष्णा रोग शान्त हो जाता है। पाढ़, दारुहरदी, चमेली के पत्ते, मुनक्का, बरियरा, गंगरेन (गुलशकरी) एवं

---

१ ख. स्वगत°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाठादर्वीजातिदलं द्राक्षामूलबलात्रयैः । साधितं समधु क्वाथं कवलं मुखपाकहृत्[1] ।।३२।।
कृष्णातिविषतिक्तेन्द्रदारुपाठापयोमुचाम् । क्वाथो मूत्रे शृता क्षौद्री[2] सर्वकण्ठगदापहा ।।३३।।
पथ्यागोक्षुरदुःस्पर्शराजवृक्ष [3]शिलाकृतः । कषायः समधुः पीतो मूत्रकृच्छ्रं व्यपोहति ।।३४।।
वंशत्वग्वरुणक्वाथः शर्कराश्मविघातनः । शाखोटक्वाथसक्षौद्रक्षीराशी श्लीपदी [4]भवेत् ।।३५।।
माषार्कत्वक्पयस्तैलं मधुसिक्तं च सैन्धवम् । पादरोगं हरेत्सर्पिर्जलकुक्कुटजं तथा ।।३६।।
शुण्ठीसौवर्चलाहिङ्गुचूर्णं शुण्ठीरसैर्घृतम् । रुजं हरेदथ क्वाथो विद्धि बद्धाग्निसाधने ।।३७।।
सौवर्चलाग्निहिङ्गूनां सदीप्यानां रसैर्युतम् । विड्दीप्यक(सु)युक्तं वा तक्रं गुल्मातुरः पिबेत् ।।३८।।
धात्रीपटोलमुद्गानां क्वाथः साज्यो विसर्पहा । शुण्ठीदारुनवाक्षीरक्वाथो मूत्रान्वितोऽपरः ।।३९।।
सव्योषायोरजः क्षारः फलक्वाथश्च शोथहृत् । गुडशिग्रुत्रिवृद्भिश्च सैन्धवानां रजोयुतः ।।४०।।
त्रिवृताफलजः क्वाथः सगुडः स्याद्विरेचनः । वचाफलकषायोत्थं पयो वमनकृद्भवेत् ।।४१।।
त्रिफलायाः पलशतं[5] पृथग्भृङ्गरजोन्वितम् । विडङ्गं लोहचूर्णं च दशभागसमन्वितम् ।।४२।।

कंघी के जड़ से क्वाथ बना ले उसमें मधु मिलाकर पीने से अथवा ऊपर कही हुई ओषधियों को पीसकर मधु मिलावे। इसकी गोली बनाकर मुख में धारण करने से मुखपाक अच्छा हो जाता है ।।३०-३२।। पीपरि, अतीस, कुटकी, देवदारु, पाड़ और नागरमोथा का काढ़ा तैयार कर ले उसमें गोमूत्र गर्म करके डाल देवे और ठण्डा होने पर मधु डालकर उस काढ़े को पीने से गले के सभी रोग दूर हो जाते हैं। हरड़, गोखरू, जवासा, अमलतास और शिलाजीत के काढ़े को मधु मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है (पेशाब होने की कठिनाई नष्ट हो जाती है)। बाँस के छाल और वरुण ओषधि का काढ़ा शर्करा तथा पथरी रोग को दूर करता है। सिहोंड़ के वृक्ष का काढ़ा मधु के साथ पीवे और केवल दुग्धाहार पर रहे तो हाथीपाँव (श्लीपद) दूर हो जाता है ।।३३-३५।। उड़द, मदार का पत्ता और दूध, तेल, सेंधानमक में मधु मिलाकर लगाने से पैर के रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह जल में चलनेवाली मुर्गी, (बत्तख) के अण्डे से संयुक्त कर घृत पकाकर पैर में लेप करने से पैर के रोग दूर हो जाते हैं। सोंठ, सोंचर तथा हींग का चूर्ण, अजीर्णजन्य पीड़ा को दूर करता है। सोंठ के काढ़े में घृत मिलाकर पीने से भी मन्दाग्नि दूर हो जाती है। गुल्म रोग से पीड़ित रोगी चित्रक तथा अजवायन का क्वाथ बनाकर उसमें मट्ठे के साथ सोंचर, विड्नमक, सेंधा नमक और भूनी हींग का प्रक्षेप डालकर पीवे ।।३६-३८।। आँवला, परवल का पत्ता और मूँग का काढ़ा बनाकर उसमें घी मिलाकर पीने से विसर्प (खुजली) रोग दूर हो जाता है। दूसरा योग यह है कि सोंठ, देवदारु, पथरी और दुधिया के काढ़े में गोमूत्र मिलाकर पीवे। सोंठ, मिर्च, पीपरि, लोहभस्म और यवक्षार को मैनफर के काढ़े में मिलाकर पीने से शोथ रोग नष्ट होता है। तीसरा योग यह है कि सहिजन और निसोथ का काढ़ा बनाकर उसमें गुड़ तथा सेंधा नमक मिलाकर पीवे। निसोथ और मैनफर के काढ़े को गुड़ के साथ पीने से दस्त आते हैं। बच और मैनफर के काढ़े को दूध के साथ पीने से वमन होता है ।।३९-४१।। चार सौ तोला त्रिफला और उतना ही भँगरैया लेकर उसमें (४०) चालीस तोला वायविडंग का चूर्ण और चालीस तोला लोहभस्म, शतावरी, गुडुच और चित्रक सौ-सौ तोला

---

१ क. ङ. °ककृत्। २ ङ.°द्री वार्धकश्च ग°। ३ छ. °लाभधाम्। क्र°। ४ क. ङ. पिबेत्। ५ छ.° ङ्गजभावित°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शतावरी गुडूच्यग्निपलानां[1] पञ्चविंशतिः । मध्वाज्यतिलजैर्लिह्याद्वलीपलितवर्जितः ।।४३।।
शतमब्दं हि जीवेत सर्वरोगविवर्जितः । त्रिफला सर्वरोगघ्नी समधुः शर्करान्विता ।।४४।।
सितामधुघृतैर्युक्ता सकृष्णा त्रिफला तथा । पथ्या चित्रकशुण्ठ्यश्च गुडूची मुशलीरजः ।।४५।।
सगुडं भक्षितं रोगहरं त्रिशतवर्षकृत् । किञ्चिच्चूर्णं जपापुष्पं पीडितं[2] विसृजेज्जले ।।४६।।
तैलं भवेद्घृताकारे किञ्चिच्चूर्णा जलान्वितम् । धूपार्थं दृश्यते चित्रं वृषदंशजरायुना ।।४७।।
पुनर्माक्षिकधूपेन दृश्यते तद्यथा पुरा । कर्पूरजलूकाभेकतैलं पाटलिमूलयुक् ।।४८।।
पिष्ट्वाऽऽलिप्य पदे द्वे च चरेदङ्गारके नरः । तृणोत्थानादिकं व्यूह्य दर्शयन्वै कुतूहलम् ।।४९।।
विषग्रहरुजध्वंसक्षुद्रं कर्म च कामिकम् । तत्ते षट्कर्मकं प्रोक्तं सिद्धिद्वयसमाश्रयम् ।।५०।।
मन्त्रध्यानौषधिकथामुद्रेज्या यत्र मुष्टयः । चतुर्वर्गफलं प्रोक्तं यः पठेत्सदिवं व्रजेत् ।।५१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानारोगहरौषधकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८३।।

मिलाकर उसका काढ़ा बना ले पश्चात् चीनी की चासनी देकर अवलेह बना ले उसमें घृत और तिल का तैल खूब पकाकर सम भाग में मिला दे ठण्डा होने पर मधु मिलाकर चाटे तो उस मनुष्य का न तो अंग शिथिल होता है और न बाल ही पकता है। सौ वर्ष तक वह जीवित रहता है उसे कोई रोग नहीं होता है। मधु एवं शर्करा मिलाकर त्रिफला के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ।।४२-४४।। त्रिफला और पीपरि को घृत, मधु और मिश्री के साथ सेवन करने से, इसी प्रकार हरड़, चिते की जड़, सोंठ, गुर्च, मुसली के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से तीन सौ वर्ष की आयु हो जाती है तथा सब रोग नष्ट हो जाते हैं।।४५-४५ $\frac{१}{२}$।। देवीफूल के चूर्ण को मर्दित करके जल में छोड़े और उस जल तथा चूर्ण को तेल में छोड़े तो तेल घृत के समान हो जाता है। वृषदंश के वायु के साथ धूप देने से कुछ चित्र-सा दीखता है। पुनः मधु के धूप से सब वस्तुएँ पूर्व की तरह दीख पड़ने लगती हैं। कपूर, जोंक, मेंढक का तैल और पाढ़ वृक्ष के मूल की छाल पीसकर पैरों में लेपकर यदि अंगारे पर भी चले तो उसके पैर आग से नहीं जलते। तृण का उठाना आदि कुतूहल को दिखाता हुआ विष को पी जाना, रोग को नष्ट करना, छोटे-बड़े इच्छित कार्यों को करना आदि षट् कर्म कहा जाता है। यह दो प्रकार की सिद्धि के अधीन है (सिद्धि आठ होती है जिनमें दो प्रकार की सिद्धियों से इस प्रकार का चमत्कार दिखाया जा सकता है। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियों का वर्णन सांख्य में पूर्णरूप से है)। मन्त्र, ध्यान, ओषधि और कथा का व्यवहार जहाँ पर होता है वहाँ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) फल मिलता है। जो इन बातों को पढ़ता है वह स्वर्ग को जाता है ।।४६-५१।।

श्री अग्निमहापुराण में नानारोगहरौषध-कथन नामक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८३।।

---

१ छ.° ना शतवि°। २ छ. पिण्डितं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्ररूपौषधकथनम्

धन्वन्तरिरुवाच

आयुरारोग्यकर्तार ओंकाराद्याश्च नाकदाः। ओंकारः परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा चामरो भवेत् ।।१।।
गायत्री परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक्। ॐ नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।।२।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वदः। ॐ ह्रूं नमो विष्णवे मन्त्रोऽयं चौषधं परम् ।।३।।
अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो नीरुजोऽभवन्। भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम् ।।४।।
धर्मः सद्धर्मकृद्धर्मी ह्येतैर्धर्मैश्च निर्मलः। श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः ।।५।।
श्रियःपतिः श्रीपरमो ह्येतैः श्रियमवाप्नुयात्। कामी कामप्रदः कामः कामपालस्तथा हरिः ।।६।।
आनन्दो माधवश्चैव नाम कामाय वै हरेः। रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च ।।७।।
त्रिविक्रमश्च नामानि जप्तव्यानि जिगीषुभिः। विद्यामभ्यस्यतां नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः ।।८।।
दामोदरो बन्धहरः पुष्कराक्षोऽक्षिरोगनुत्। हृषीकेशो भयहरो जपेदौषधकर्मणि ।।९।।
अच्युतं चामृतं मन्त्रं सङ्ग्रामे चापराजितः। जलतारे नारसिंहं पूर्वादौ क्षेमकामवान् ।।१०।।

अध्याय २८४

मन्त्ररूपौषधकथन

धन्वन्तरि बोले–आयु और आरोग्य प्रदान करनेवाले तथा स्वर्ग देनेवाले ओंकार आदि हैं। इसमें ओंकार प्रथम मन्त्र है जिसे जपकर मनुष्य अमर हो जाता है ।।१।। गायत्री परम मन्त्र है, उसे जपकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र सभी प्रयोजनों का साधक है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र सब-कुछ देनेवाला है। 'ॐ ह्रूँ नमो विष्णवे' यह मन्त्र परम ओषधि है ।।२-३।। इससे देवता और असुर नीरोग एवं श्रीयुक्त हुए। इससे प्राणियों का उपकार होता है और धर्म होता है। यह महौषध है। धर्म तथा सद्धर्म करनेवाला धर्मी इन धर्मों से निर्मल होता है–'श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः श्रियःपतिः श्रीपरमः' इनसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ।।४-५ १/२।। 'कामी कामप्रदः, कामः कामपालः और हरिः आनन्दः माधवः' इस हरि के नाम के जपने से कामनाओं की सिद्धि होती है। युद्ध में जय का इच्छुक इस मन्त्र को जपे–'रामः परशुरामः, नृसिंहः, विष्णुः त्रिविक्रमः'। विद्या प्राप्त करने का इच्छुक पुरुषोत्तम को जपे ।।६-८।। बँधा हुआ पुरुष दामोदर के नाम का जप करे, आँख का रोगी 'पुष्कराक्ष' को जपे। हृषीकेश को भय दूर करने के लिए जपे। संग्राम में अपराजित मन्त्र को जपे। जल के तैरने में नारसिंह को जपे तथा कल्याण चाहनेवाला चक्री, गदी, शार्ङ्गी और खड्गी का स्मरण करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं स्मरेत् । [1]सर्वेशमजितं भक्त्या व्यवहारेषु संस्मरेत् ।।११।।
नारायणं सर्वकाले नृसिंहोऽखिलभीतिनुत् । गरुडध्वजश्च विषहृद्वासुदेवं सदा जपेत् ।।१२।।
धान्यादिस्थापने स्वप्ने ह्यनन्ताच्युतमीरयेत् । नारायणं च दुःस्वप्ने दाहादौ जलशायिनम् ।।१३।।
हयग्रीवं च विद्यार्थी जगत्सूतिं सुताप्तये । बलभद्रं शौर्यकाम एकं नामार्थसाधकम् ।।१४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्ररूपौषधकथनं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८४।।

अथ पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृतसंजीवनकरसिद्धयोगः

धन्वन्तरिरुवाच

सिद्धयोगान्पुनर्वक्ष्ये मृतसंजीवनीकरान् । आत्रेयभाषितान्दिव्यान्सर्वव्याधिविमर्दनान् ।।१।।

आत्रेय उवाच

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे । पावनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथ वा ।।२।।
आमलक्यभया कृष्णा वह्निः सर्वज्वरान्तकः । बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मर्यः पाटला स्थिरा ।।३।।

व्यवहार में सर्वेश अजित का स्मरण करे ।।९-११।। सदा नारायण का स्मरण करे। सर्व प्रकार के भयों के उपस्थित होने पर नृसिंह का स्मरण करे। गरुड़ध्वज विष हरने के लिए स्मरण किये जाते हैं। हमेशा वासुदेव का जप करे। धान्य आदि के रखने में, स्वप्न में अनन्त और अच्युत का नाम जपे। दुःस्वप्न में नारायण का, दाह आदि में जलशायी का नाम जपे। विद्यार्थी हयग्रीव का जाप करे तथा पुत्रार्थी जगत्सूति का जाप करे। शौर्य काम के लिए बलभद्र का नाम अर्थसाधक है ।।१२-१४।।

श्री अग्निमहापुराण में मन्त्ररूपौषधकथन नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८४।।

अध्याय २८५

मृतसंजीवनकरसिद्धयोग

धन्वन्तरि बोले–मरे हुए को जीवित करनेवाले सिद्ध योगों को पुनः कहूँगा जो कि आत्रेय द्वारा कहे हुए सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करनेवाले दिव्ययोग हैं ।।१।।

आत्रेय बोले–वायु से उत्पन्न ज्वर में बेल की गुद्दी, आलू, अरणी, पाठ और गम्भारी के छाल का काढ़ा देना चाहिए। या पिपरामूल, गुर्च तथा सोंठ का काढ़ा दोषपाचनार्थ देना उचित है ।।२।। आँवला, हरड़, पीपरि और चित्रक सर्वज्वरनाशक है। बेल की गुद्दी, अरणी, अरलू, गंभारी, पाठ, शालपर्णी, गोखरू, पृश्निपर्णी, भटकैया और

---

१ सर्वेश····संस्मरेत् छ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिकण्टकं पृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिका । ज्वराविपाकपार्श्वार्तिकाशनुत्कुशमूलकम् ।।४।।
गुडूची पर्पटी मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं स्मृतम् ।।५।।
त्रिविद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः । [1]सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरायतः ।।६।।
देवदारुबलावासात्रिफलाव्योषपद्मकैः । सविडङ्गैः सितातुल्यं तच्चूर्णं पञ्चकाम(स)जित् ।।७।।
दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीबिल्वपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडूचीनागवल्लिभिः ।।८।।
यवागूं विधिना सिद्धं कषायं वा पिबेन्नरः । काशहृद्ग्रहणीपार्श्वहिक्काश्वासप्रशान्तये ।।९।।
मधुकं मधुना युक्तं पिप्पलीं शर्करान्विताम् । नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं लवणत्रयम् ।।१०।।
कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् । सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ।।११।।
शृंगवेररसं चैव मधुना सह पाययेत् । अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफान्तकम् ।।१२।।
वटं शृङ्गीशिलालोध्रदाडिमं मधुकं मधु । पिबेत्तण्डुलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम् ।।१३।।
गुडूची वासकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ।।१४।।
वासकस्य रसस्तद्वत्समधुस्ताम्रजो[2] रसः । शिरीषपुष्पसुरसभावितं मरिचं हितम् ।।१५।।

बनभाँटा (ये दस ओषधि दशमूल कहलाती हैं) इन दसों ओषधियों को तथा कुश की जड़ को समान मात्रा में लेकर काढ़ा बनावे, उस काढ़े को ज्वर, अरुचि, अजीर्ण, पसलियों का शूल एवं कास में पिलावे तो सब रोग दूर हो जाते हैं। गुर्च, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंथ पंचभद्र कहा जाता है। इससे बने काढ़े को वातपित्त ज्वर में पिलाना चाहिए ।।३-५।। निशोथ, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला (सोंठ, मिर्च, पीपरि) अमलतास से बने काढ़े में यवक्षार मिलाकर देने से वह दोषों का भेदन करता है और सम्पूर्ण ज्वर नाशक है। देवदारु, वरियरा, अडूसा, त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा), व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि), पद्माख और वायविडङ्ग के काढ़े में मिश्री मिलाकर पिलाने से पाँच प्रकार के कास अच्छे हो जाते हैं। दशमूल, कचूर, रास्ना, पीपरि, बेल की छाल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, भूमि आँवला, भारंगी, गुर्च और पान की जड़ का काढ़ा या उसी काढ़े से लपसी बनाकर लेने से कास रोग, हृदय का रोग, ग्रहणी रोग, पसली का शूल (प्लूरसी), हिक्का एवं श्वास रोग शान्त हो जाता है ।।६-९।। मुलहठी (जेठी मधु) को मधु से, पीपरि को मिश्री से, सोंठ को गुड़ से मिलाकर लेने से हिक्का नष्ट हो जाती है। सेंधानमक, समुद्री नमक और सोंचर तथा सौंफ, काला जीरा, काली मिर्च, मुनक्का, कोंकम (दाक्षिणात्यों की खटाई होती है), अनार का दाना, काला नमक, गुड़ और मधु मिलाकर चाटने से सब प्रकार का अरोचक दूर हो जाता है ।।१०-११।। अदरक के स्वरस को उष्ण करके जब ठण्डा हो जाय तो उसे मधु के साथ लेने से अरुचि, श्वास, कास और बिगड़ा हुआ जुकाम ठीक हो जाता है। वट का अंकुर, काकड़ासिंगी, इलायची, लोध, अनार और मुलहठी के चूर्ण को चावल के पानी में मधु मिलाकर पिलाने से उलटी का आना और प्यास का लगना दूर हो जाता है। गुर्च, अडूस, लोध और पीपरि के चूर्ण को मधु से लेने पर कफयुक्त रक्त आता हो तो उसकी शान्ति हो जाती है और तृषा (प्यास), कास एवं ज्वर नष्ट हो जाता है ।।१२-१४।। अडूस का स्वरस या ताम्र भस्म को मधु से लेने पर पूर्ववत् लाभदायक हैं। सिरसा के फूल के स्वरस से भावित मिर्च भी वही कार्य करती है। मसूर सब रोगों का नाशक है। चौलाई पित्तनाशक

---

१ छ.° संस्कारो। २ ङ. °रस्तारजो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वार्तिनुन्मसूरोऽथ पित्तमुक्तण्डुलीयकम् । निर्गुण्डीसारिवाशेलुरङ्कोलश्च विषापहः ।।१६।।
महौषधामृताक्षुद्रापुष्करग्रन्थिकोद्भवम् । पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायां च मदेषु च ।।१७।।
हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ।।१८।।
शङ्खपुष्पीवचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसैर्युतम् । पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमम् ।।१९।।
पञ्चगव्यं घृतं तद्वत्कुष्ठनुच्चाभयायुतम् । पटोलत्रिफलानिम्बगुडूचीधावनीवृषैः ।।२०।।
सकरञ्जैर्घृतं सिद्धं कुष्ठनुद्वज्रकं स्मृतम् । निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूची वासकं तथा ।।२१।।
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य स (सु) कुट्टितान् । जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।।२२।।
घृतप्रस्थं प्रचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् । पञ्चतिक्तमितिख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।।२३।।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् । विंशतिं श्लैष्मिकान्कासपीनसार्शोव्रणादिकान् ।।२४।।
हन्त्यन्यान्योगराजोऽयं यथाऽर्कस्तिमिरं खलु । त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च ।।२५।।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये । पटोलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा ।।२६।।
गुण्डयेच्च गजेनापि त्रिफलाचूर्णकेन च । त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलमारिचैः ।।२७।।

है। मेउड़ी, अनन्तमूल, शेलु और ढेरा सब विषों का नाशक है। सोंठ, गुर्च, भटकैया, पुष्करमूल और भटेसू के काढ़े में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पीने से मूर्च्छा तथा मद रोग नष्ट हो जाता है ।।१५-१७।। हींग, काला नमक और सोंठ, मिर्च तथा पीपरि को आठ तोला ले, चौगुना गोमूत्र ले तथा चौथाई घृत लेकर पका ले, उसे पागल रोगी को पिलाने से पागलपन नष्ट हो जाता है। शंखपुष्पी, वच और कूठ के कल्क से एवं ब्राह्मी के स्वरस में पकाया घृत पुरानी मृगी रोग तथा पागलपन को नष्ट करता है यह उत्तम बुद्धिवर्धक है। पञ्चगव्य (गोबर, गोमूत्र, दूध, दधि और घृत) एवं घृत का हरड़ के साथ सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। परवल का पत्ता, आँवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, गुरुचि, शालपर्णी, अडूस और करंज (लता करंज के फल) के काढ़े एवं कल्क से सिद्ध हुआ घृत कुष्ठनाशक है। इसे वज्रक घृत की संज्ञा दी गयी है ।।१८-२०$\frac{1}{2}$।। नीम की छाल, परवर का पत्ता, भटकैया, गुरुचि तथा अडूसा को बराबर-बराबर मिलाकर चालीस तोला लेकर अच्छी तरह कूट ले और उस ओषधि को सोलह सेर पानी में पका ले, जब चार सेर जल शेष रह जाय तो छान ले। इस काढ़े में त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा) का कल्क (पानी में चटनी के समान पिसी ओषधि की संज्ञा कल्क है) देकर और एक सेर घृत डालकर पका ले, उस घृत को कुष्ठी को खिलाने से कुष्ठ का विनाश हो जाता है। इस घृत का नाम पञ्चतिक्त है ।।२१-२३।। अस्सी वात रोगों को, चालीस पित्त रोगों को और कास, पीनस, अर्श, व्रण आदि चालीस कफजन्य रोगों का नाश करता है। यह योगराज अन्य रोगों को भी नष्ट करता है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है वैसे ही यह रोगों का नाश करता है ।।२४-२४$\frac{1}{2}$।। त्रिफला के काढ़े से तथा भँगरैया के रस से घाव को धोना चाहिए। इससे गर्मी (सिफलिस) का घाव अच्छा हो जाता है। अथवा गर्मी के घाव पर परवल के पत्ते के बारीक चूर्ण अथवा अनार के छिलके का चूर्ण घाव पर गजपीपरि और त्रिफला के चूर्ण का घाव पर छिड़कन करे। त्रिफला, लोहभस्म, मुलहठी, केंवाच, कमल, काली

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाच्छर्दिकापहम् । सक्षीरान्मार्कवरसान्द्विप्रस्थमधुकोत्पलैः ।।२८।।
पचेत्तु तैलकुडवं तन्नस्यं पलितापहम् । निम्बं पटोलं त्रिफला गुडूची खदिरं वृषम् ।।२९।।
भूनिम्बपाठात्रिफलागुडूचीरक्तचन्दनम् । योगद्वयं ज्वरं हन्ति कुष्ठ (व्रणमसूरिकाः[1] ।।३०।।
पटोलं त्रिफला चैव गुडूचीमुस्तचन्दनैः । सदूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ।।३१।।
कषायोऽयं ज्वरं हन्ति कुष्ठ) विस्फोटकादिजम् । पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः ।।३२।।
खदिराब्जयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तिकृत् । दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारु पुनर्नवा ।।३३।।
ज्वरविद्रधिशोथेषु शिग्रुविश्वजिता हिताः । मधूकनिम्बपत्राणां लेपः स्याद्व्रणशोधनः ।।३४।।
त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधातिबलाकुशाः । निम्बमूलकपत्राणां कषायाः शोधने हिताः ।।३५।।
करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणकृमीन् । धातकीचन्दनबलासमङ्गामधुकोत्पलैः ।।३६।।
दार्वीमेदोन्वितैर्लेपः समर्पिर्व्रणरोपणः । गुग्गुलत्रिफलाव्योषसमांशैर्घृतयोगतः ।।३७।।
नाडीदुष्टव्रणं शूलं भगंदरमुखं हरेत् । हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम् ।।३८।।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् । त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् ।।३९।।

मिर्च और सेंधानमक के काढ़ा तथा कल्क से तथा पके हुए तेल की मालिश से वमन शान्त हो जाता है। दो सेर केंवाच का रस तथा दूध में मुलहठी तथा कमल का कल्क बनाकर एक पाव तेल को पकावे। उसका तेल का नस्य लेने से बाल का पकना रुक जाता है और पका हुआ काला हो जाता है। दो निम्नलिखित योग कुष्ठ तथा बड़ी माता या छोटी माता के ज्वर तथा व्रण को नष्ट कर देता है–(१) नीम के भीतर की छाल, परवल का पत्ता, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), गुरुचि, खैर की लकड़ी और अडूसा। (२) चिरायता, पाढ़, त्रिफला, गुरुचि और लाल चन्दन ।।२५–३०।। परवल का पत्ता, त्रिफला, गुरुचि, नागरमोथा और चन्दन अथवा दूर्वा, रोहिणी, पाठा, हरदी, जवासा का काढ़ा ज्वर, कुष्ठ एवं ज्वर के स्फोट (माता) को दूर करता है। परवल का पत्ता, गुरुचि, चिरायता, अडूस, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, खैर की लकड़ी और नागरमोथा का काढ़ा विस्फोट (माता के ज्वर) को शान्त करता है। दशमूल, गुरुचि, हरड़, देवदारु, पुनर्नवा का क्याथ ज्वर और विद्रधि को शान्त करता है। सहिजन की छाल एवं सोंठ भी माता के ज्वर में हितकर है। मुलहठी तथा नीम के पत्ते का व्रण पर लेप हितकर होता है। इससे व्रण शुद्ध हो जाता है ।।३१–३४।। व्रणशोधन के लिए त्रिफला, खैर की लकड़ी, दारुहरदी, बरगद की छाल, कंघी, कुश, नीम और मूली के पत्रों का काढ़ा हितकर है। डिढोहरी, नीम और मेउड़ी के पत्तों का रस व्रण के कृमियों को नष्ट करते हैं। धव का फूल, लाल चन्दन, वरिअरा, लज्जालु, मुलहठी, कमल, दारुहरदी, मेदा लकड़ी को घिसकर उसमें घृत मिलाकर व्रण पर लेप करने से घाव भर जाता है। गुग्गुल, त्रिफला और व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि) को बराबर की मात्रा में लेकर पीस ले, उसमें घृत मिलाकर लेप करने से नाडी व्रण–नासूर, दुष्ट व्रण, शूल तथा भगंदर को नष्ट करता है ।।३५–३७ $\frac{1}{2}$।। हरड़ को गोमूत्र में भिगोकर शुद्ध कर ले, उसमें तेल और नमक मिलाकर प्रायः एक हरड़ खाने से कफज और वातज रोग नष्ट हो जाते हैं। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) और त्रिफला के काढ़े में सज्जीखार तथा नमक मिलाकर

---

१ व्रणमसूरिकाः''''हन्ति कुष्ठ छ. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफवातात्मकेष्वेव विरेकः कफवृद्धिनुत् । पिप्पलीपिप्पलीमूलवचाचित्रकनागरैः ।।४०।।
क्वथितं वा पिबेत्पेयमामवातविनाशनम् । रास्नां गुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् ।।४१।।
पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे । दशमूलकषायं वा पिबेद्वा नागराम्भसा ।।४२।।
शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः । सामवातकटीशूलपाण्डुरोगप्रणाशनः[1] ।।४३।।
समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याश्च तैलकम् । गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्चूर्णं वा क्वाथमेव च ।।४४।।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् । पिप्पली वर्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ।।४५।।
पटोलत्रिफलातीव्रकटुकामृतसाधितम् । पङ्कं पीत्वा जयत्याशु सदाहं वातशोणितम् ।।४६।।
गुग्गुलं कोष्णशीतेन गुडूचीत्रिफलाम्भसा । बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।।४७।।
सहिङ्गुलवणैः पीतं सद्यो वातरुजापहम् । [2]कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च ।।४८।।
पिप्पली चित्रकं शुण्ठी त्रिफला त्रिवृता वचा । द्वौ क्षारौ [3]शीतला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका ।।४९।।
कोलप्रमाणां गुटिकां पिबेत्सौवीरकायुताम् । शोथावपाके [4]त्रिवृता प्रवृद्धे चोदरादिके ।।५०।।
क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूर्नागरैः शुभम् । सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोफजित् ।।५१।।

पीने से कफज और वातज व्याधियों में ही विरेचन (मल त्याग) होता है। इससे कफ की वृद्धि नष्ट हो जाती है। पीपरि, पिपरामूल, वच, चित्रक एवं सोंठ का काढ़ा पीने से आमवात नष्ट हो जाता है ।।३८-४०$\frac{१}{२}$।। रास्ना, गुरुचि, रेंड़ की जड़, देवदारु और सोंठ के काढ़े को सर्वाङ्गवात में, सामवात में, सन्धि अस्थि और मज्जागत वात में पीने से लाभ होता है। अथवा दशमूल के काढ़े को सोंठ के जल से पीवे तो पूर्वोक्त प्रकार से लाभ होता है। सोंठ तथा गोखरू का काढ़ा सवेरे-सवेरे पीने से आमवात, कमर की पीड़ा और पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है ।।४१-४३।। गन्धप्रसारणी की जड़, शाखा तथा पत्ते के काढ़े और कल्क से पकाया हुआ तैल वातरक्त का नाश करता है तथा गुरुचि का स्वरस, काढ़ा, कल्क या चूर्ण को अधिक दिन सेवन करने से वातरक्त दूर हो सकता है अथवा वर्धमान तथा पिप्पली के सेवन से वही लाभ होता है अथवा गुड़ और हरड़ के सेवन से भी वातरक्त दूर हो जाता है ।।४४-४५।। परवल का पत्ता, त्रिफला, कुटकी और गुरुचि के काढ़े को पीने से दाह से युक्त वातरक्त शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। गुरुचि और त्रिफले के थोड़ा-थोड़ा काढ़े के साथ गुग्गुल को खाने से या बरियरा, पथरी (पुनर्नवा), रेंड़ की जड़, भटकैया, वनभाँटा और गोखरू के काढ़े में हींग तथा सेंधानमक का प्रक्षेप (काढ़े के पक जाने पर उतारकर छान लेने पर) डालकर पीने से तत्काल वातरक्त की पीड़ा शान्त हो जाती है। गुग्गुल, पिपरामूल, पाँचों नमक-सेंधा, समुद्री, विड, सोंचर और रेह (मिट्टी का), पीपरि, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, निशोथ, वच, सज्जीक्षार, यवक्षार, दूर्वा, जमालगोटे की जड़, भड़भड़वा (स्वर्णक्षीरी) और काकड़सिंगी की छोटी बेर के समान गोली बनाकर उसे काँजी के साथ लेने से शोथ एवं व्रणशोथ में लाभ करता है। बढ़े हुए उदर रोग में निशोथ लाभ करता है ।।४६-५०।। देवदारु, पुनर्नवा और सोंठ में दूध पकाकर पिलाने से सूजन दूर हो जाती है। शोथ की शान्ति के लिए मदार का पत्ता, पथरी (पुनर्नवा) और नीम का काढ़ा उपयोगी है। पलाश की लकड़ी की राख को पानी में डालकर और

---

१ छ. °पाचनो रुक्प्रणा°। २ क. ङ. क्वाथितं। ३ छ. शाद्वला। ४ क. ङ. विहिता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणी । साधितं पिबतः सर्पिः पतत्यर्शो न संशयः ।।५२।।
विष्वक्सेनाब्जनिर्गुण्डीसाधितं चापि लावणम्[1] । विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नाग्रक्षीरदारुभिः ।।५३।।
तैलं चतुर्गुणं सिद्धं कटुद्रव्यं जलेन वा । गण्डमालापहं तैलमभ्यङ्गाद्गलगण्डनुत् ।।५४।।
शठीकुनागवलयक्वाथः क्षीररसे युतम् । पयस्यापिप्पलीवासाकल्कं सिद्धं क्षये हितम्[2] ।।५५।।
वचाविडभयाशुण्ठी हिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकान् । द्वित्रिषट्चतुरेकांशसप्तपञ्चा(ञ्चां)शिकाः क्रमात् ।।५६।।
चूर्णं पीतं हन्ति गुल्ममुदरं शूलकासनुत् । पाठानिकुम्भत्रिकटुत्रिफलाग्निसुसाधिताः ।।५७।।
मूत्रेण चूर्णगुटिकागुल्मप्लीहादिमर्दनी । वासानिम्बपटोलानि त्रिफला वातपित्तनुत् ।।५८।।
लिह्यात्क्षौद्रेण विडङ्गचूर्णं कृमिविनाशनम् । विडङ्गसैन्धवक्षारमूत्रेणापि हरीतकी ।।५९।।
शल्लकीबदरी जम्बुपियालाम्रार्जुनत्वचः । पीताः क्षीरेण मध्वक्ताः पृथक्शोणितवारणाः ।।६०।।
बिल्वाम्रधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः । पीता रुन्धत्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ।।६१।।
चाङ्गेरीकोलदध्यम्बुनागरक्षारसंयुतम् । घृतयुक्क्वाथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ।।६२।।
विडङ्गातिविषामुस्तदारुपाठाकलिङ्गकम् । मरीचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ।।६३।।
शर्करासिन्धुशुण्ठीभिः कृष्णा मधुगुडेन वा । द्वे द्वे खादेद्धरातक्यौ जीवेद्वर्षशतं सुखी ।।६४।।

उस जल को (फिल्टर पेपर से) छान ले उसमें तृतीयांश घृत तथा सोंठ, मिर्च, पीपरि का कल्क डालकर पका ले। इसके पश्चात् उस घृत के पीने से बवासीर (अर्श) के मस्से गिर जाते हैं ।।५१-५२।। विष्णुक्रान्ता, नागरमोथा, समुद्री नमक, वायविडंग, चित्रक, सेंधानमक, रास्ना, दुधिया और देवदारु के चौगुने काढ़े में सोंठ, मिर्च, पीपरि (कटुद्रव्य) का कल्क डालकर तैल पका ले। उस तेल का लेप करने से गण्डमाला एवं गलगण्ड नष्ट हो जाते हैं ।।५३-५४।। कचूर और गुलशकरी का काढ़ा और इन्हीं का स्वरस और दूध में क्षीरकाकोली, पीपरि तथा अडूस का कल्क डालकर घृत पकावे। सिद्ध होने पर उस घृत को क्षय रोग में देने से लाभ होता है। वच, विडनमक, हरड़, सोंठ, हींग, कूठ, चित्ता, अजवायन को क्रमशः दो, तीन, छह, चार, एक, सात और पाँचवाँ अंश लेकर चूर्ण बना ले। इसके पीने से गुल्म रोग, शूल रोग, कास रोग नष्ट हो जाते हैं ।।५५-५६$\frac{१}{२}$।। पाढ़, जलकुम्भी, त्रिकटु, त्रिफला और चित्ता को गोमूत्र से पीसकर गोली बना ले, इस गोली के सेवन से गुल्म, प्लीहा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। अडूस, नीम एवं परवल के पत्ते और त्रिफला के सेवन से वात-पित्त से उत्पन्न कष्ट दूर हो जाते हैं। मधु से वायविडंग का चूर्ण चाटने से कृमि रोग दूर हो जाता है। वायविडंग, सेंधानमक, यवक्षार, गोमूत्र से शुद्ध हरड़, सलई की लकड़ी, बेर, जामुन, पियाल, आम और अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण मधु के साथ चाटकर दूध पीने से रक्त का कहीं भी बहना रुक जाता है ।।५७-६०।। बेल, आम (की गुठली का मज्जा), धव का फूल, पाढ़, सोंठ, सेमर के गोंद को समभाग (लेकर चूर्ण बना ले) गुड़ एवं मट्ठा के साथ लेने से दुर्जेय अतिसार नष्ट हो जाता है। नोनियाघास, बेर, दधि, नागरमोथा, सोंठ और सज्जीक्षार का काढ़ा बनाकर उसमें घृत डालकर पीने से काँच (गुदभ्रंश) में होनेवाली पीड़ा का विनाश होता है। वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ़ और इन्द्रयव और मरिच के चूर्ण को लेने से अतिसार से उत्पन्न शोथ नष्ट होता है। प्रत्येक दिन शर्करा, सेंधानमक तथा सोंठ के साथ अथवा पीपल, मधु और गुड़ के

---

१ छ. लावणम्। २ क. °म्। वासावि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिफला पिप्पलीयुक्ता समध्वाज्या तथैव सा। चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम् ।।६५।।
मध्वाज्यशर्करायुक्तं लिड्वा स्त्रीशः पयः पिबेत्। माषपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।।६६।।
चूर्णभागैः समांशैश्च पचेत्पिप्पलिकां शुभाम्। तां भक्षयित्वा च पिबेच्छर्करामधुरं पयः ।।६७।।
नवश्चटकवद्गच्छेद्दश[1] वारान्स्त्रियं ध्रुवम्। समङ्गाधातकीपुष्पलोध्रनीलोत्पलानि च ।।६८।।
एतत्क्षीरेण दातव्यं स्त्रीणां[2] प्रदरनाशनम्। बीजं कौरण्टकं चापि मधुकं श्वेतचन्दनम् ।।६९।।
पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्। द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमम् ।।७०।।
देवदारुनभः कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम्। लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ।।७१।।
वस्त्रपूतं क्षिपेत्कोष्णं सिन्धूत्थं कर्णशूलनुत्। लसुनार्द्रकशिग्रूणां कदल्या वा रसः पृथक् ।।७२।।
बलाशतावरीरास्नामृताः सैरीयकैः पिबेत्। त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम् ।।७३।।
त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिबेन्नरः। चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफरोगनुत् ।।७४।।
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्। गुटिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ।।७५।।
यष्टीमधुवचाकृष्णाबीजानां कुटजस्य च। कल्केनाऽऽलोड्य निम्बस्य कषायो वमनाय सः ।।७६।।

साथ दो-दो हरड़ खाने से सुखपूर्वक सौ वर्ष जीता है ।।६१-६४।। त्रिफला, पीपरि को घृत और मधु से लेने पर सौ वर्ष तक जीता है। आमला के स्वरस से भावित आँवले के चूर्ण को मधु, घृत और शर्करा मिलाकर चाटने से और ऊपर से दूध पीने से मनुष्य स्त्रियों का प्रिय हो जाता है। उड़द, चावल और पीपरि के चूर्ण का और समभाग गेहूँ और यव के चूर्ण का मालपुआ पकाकर खाने के पश्चात् चीनी मिलाकर दूध पीवे तो नये चटक पक्षी की भाँति दस बार स्त्री से सम्भोग करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है ।।६५-६७ $\frac{1}{2}$।। लजाधुर बिरई, धव का फूल, लोध और नीले कमल का चूर्ण दूध के साथ देने से स्त्रियों का प्रदर रोग नष्ट हो जाता है। घुँघुची का बीज, जेठी मधु, सफेद चन्दन, कमल की जड़, जेठी मधु (यह ओषधि इस योग में दो बार आयी है अतः सब ओषधियों से द्विगुण ले), मिश्री और तिल के चूर्ण जल से देने पर गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है। देवदारु, नागरमोथा, कूठ, खस, सोंठ को काँजी में पीसकर सिर पर लेप करे तो सिर की पीड़ा रुक जाती है ।।६८-७१।। सेंधानमक जल में पकाकर वस्त्र से छान ले और उस जल को गरम-गरम कान में डालने से कान की पीड़ा नष्ट हो जाती है अथवा लहसुन का स्वरस या अदरक का स्वरस या सहिजन का स्वरस या केले का स्वरस गरम-गरम कान में डालने से कान की पीड़ा दूर हो जाती है। बरिअरा, सतावरि, रास्ना और गुरुचि का चूर्ण सिरके के साथ ले अथवा त्रिफला में घृत पकाकर पीने से नेत्र का रोग दूर हो जाता है। यह नेत्र को हितकारी, दस्तावर, हृद्य (हृदय) का हितकारी और अग्निदीपन है, कफ रोग को दूर करता है। नीले कमल के पराग को गोबर के रस में घोंटकर गोली बनाकर अंजन करने से दिन तथा रात्रि के अन्धेपन को दूर करता है। नीम के पत्ते के काढ़े में मुलहठी, मधु, वच, पीपरि और इन्द्र जौ का कल्क डालकर पीने को देने से उत्तम वमन होता है ।।७२-७६।। जौ को उबालकर उसी का पानी देने से उत्तम विरेचन

---

१ ''दशवारस्त्रियो ध्रुवम्'' इत्यपि कदाचित्स्यात्। २ क. ख. ङ. °णां प्रसवना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्निग्धस्विन्नयवं तोयं प्रदातव्यं विरेचनम्। अन्यथा योजितं कुर्यान्मन्दाग्निं गौरवारुची ।।७७।।
पथ्यासैन्धवकृष्णानां चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत्। विरेकः सर्वरोगघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंज्ञकः ।।७८।।
सिद्धयोगा मुनिभ्यो य आत्रेयेण प्रदर्शिताः। सर्वरोगहराः सर्वयोगाग्र्याः सुश्रुतेन हि ।।७९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मृतसंजीवनकरसिद्धयोगकथनं नाम
पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८५।।

अथ षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृत्युञ्जयकल्पाः

धन्वन्तरिरुवाच

कल्पान्मृत्युञ्जयान्वक्ष्ये ह्यायुर्दान्रोगमर्दनान्। त्रिशतीरोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलामृता ।।१।।
पलं पलार्धं कर्षं वा त्रिफलां सकलां तथा। बिल्वतैलस्य नस्यं च मासं पञ्चशती कविः ।।२।।
रोगापमृत्युबलिजित्तिलं भल्लातकं तथा। पञ्चाङ्गं वाकुचीचूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः ।।३।।
क्वाथैः कुष्ठं जयेत्सेव्यं चूर्णं नीलकुरुण्टजम्। क्षीरेण मधुना वाऽपि शतायुःखण्डदुग्धभुक् ।।४।।

(टट्टी) आता है। दूसरे प्रकार देने से मन्दाग्नि, शरीर में भारीपन और अरुचि होती है। हरड़, सेंधानमक और पीपरि का चूर्ण गर्म जल से लेने पर उत्तम जुलाब होता है। यह विरेचन सम्पूर्ण रोगों को दूर करता है। इसका नाम नाराच है। आत्रेय ने मुनियों के लिए जिन सिद्ध योगों को बताया था, वे सब रोगहर हैं, सम्पूर्ण योगों में श्रेष्ठ हैं, ऐसा सुश्रुत ने कहा है ।।७७-७९।।

श्री अग्निमहापुराण में मृतसंजीवनसिद्धयोग कथन नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८५।।

अध्याय २८६

मृत्युञ्जयकल्प-वर्णन

धन्वन्तरि बोले-आयु को देनेवाले, रोगों के मर्दन करनेवाले और मृत्यु को जीतनेवाले कल्पों को कहूँगा-मधु, घृत, त्रिफला तथा गुरुचि का सेवन रोगनाशक तथा तीन सौ वर्ष आयु प्रदायक है ।।१।। चार तोला, दो तोला या एक तोला त्रिफला को या एक-एक आँवला, हरड़ और बहेड़ा (सकला) को मधु-घृत से लेने से तथा बिल्व के बीज के तेल का एक मास नस्य लेने से पाँच सौ वर्ष मनुष्य जीता है। इसी तरह भिलाबाँ का तेल सेवन करने से रोग का नाश, अपमृत्यु का नाश होता है और पेट पर की वलियाँ नष्ट हो जाती हैं। छह मास वाकुची के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, खैर के काढ़े से सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। नीली कटसरैया के चूर्ण को दूध और मधु से सेवन करने से तथा दूध और चीनी पीने से सौ वर्ष तक मनुष्य जीता है। जो प्रातःकाल मधु, घृत और सोंठ बराबर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्वाज्यशुण्ठीं संसेव्य पलं प्रातः स मृत्युजित् । वलीपलितजिज्जीवेन्माण्डूकीचूर्णदुग्धपाः ।।५।।
उच्चटा मधुनाकर्षं [1]पयसा मृत्युजिन्नरः । मध्वाज्यैः पयसा वाऽपि निर्गुण्डी मृत्युरोगजित् ।।६।।
पलाशतैलं कर्षैकं षण्मासं मधुना पिबेत् । दुग्धभोजी पञ्चशती सहस्रायुर्भवेन्नरः ।।७।।
ज्योतिष्मतीपत्ररसं पयसा त्रिफलां पिबेत् । मधुनाऽऽज्यं ततस्तद्वच्छतावर्या रजः पलम् ।।८।।
क्षौद्राज्यैः पयसा वाऽपि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् । पञ्चाङ्गं निम्बचूर्णस्य खदिरक्वाथभावितम् ।।९।।
कर्षं भृङ्गरसेनापि रोगजिच्चामरो भवेत् । रुदन्तिकाज्यमधुभुग्दुग्भोजी च मृत्युजित् ।।१०।।
कर्षचूर्णं हरीतक्या भावितं भृङ्गराड्रसैः । घृतेन मधुनाऽऽसेव्य त्रिशतायुश्च रोगजित् ।।११।।
वाराहिका भृंगरसं लोहचूर्णं शतावरी । साज्यं कर्षं पञ्चशती कार्तपूर्णं शतावरी ।।१२।।
भाषितं भृङ्गराजेन मध्वाज्यं (त्रिं) त्रिशती [2]भवेत् । आम्रामृतात्रिवृत्तुल्यं गन्धकं च कुमारिका ।।१३।।
रसैर्विमृज्य द्वे[3] गुञ्जे[4] साज्यं पञ्चशताब्दवान् । अश्वगन्धाफलं[5] तैलं साज्यं खण्डं शताब्दवान् ।।१४।।
पलं पुनर्नवाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् । अशोकचूर्णस्य फलं मध्वाज्यं पयसाऽर्तिनुत् ।।१५।।
[6]निम्बस्य तैलं समधु नस्यात्कृष्णकचः शती । कर्षमक्षं समध्वाज्यं शतायुः पयसा पिबन् ।।१६।।

लेकर ४ तोला प्रतिदिन लेता है वह मृत्यु को जीत लेता है। जो गंडूकपर्णी के चूर्ण को दूध के साथ प्रतिदिन लेता है वह बाल पकने और झुर्रियाँ पड़ने आदि बुढ़ापे के चिह्न से रहित होकर जीता है ।।२-५।। घुमुची की एक तोला जड़ के चूर्ण को मधु से सेवन करके दूध पीवे तो मृत्यु को जीत लेता है। पलाश बीज के एक तोले तेल को छह मास तक मधु से लेने पर जब-जब भूख लगे केवल दूध का ही सेवन करे तो पाँच सौ वर्ष या एक हजार वर्ष तक जीवित रह सकता है ।।६-७।। मालकाकुन के पत्ते के स्वरस को तथा त्रिफला को दूध से पीने से और सतावरी के चूर्ण को मधु और घृत चाटकर पीने से अथवा निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस को मधु और घृत से सेवन करने से अथवा दूध से लेने पर रोग तथा मृत्यु को जीत लेता है। नीम के पञ्चांग (पत्र, पुष्प, फल, जड़ और तने की छाल) के चूर्ण को जो खैर की लकड़ी के काढ़े से भावनाएँ देकर सुखा लिया गया हो उसका एक तोला चूर्ण भँगरैया के स्वरस से पीने पर मनुष्य रोगों को जीत लेता है और अमर हो जाता है। रुद्रवन्ती के चूर्ण को घृत-मधु से ले और केवल दुग्धाहार करे तो मृत्यु को जीत लेता है ।।८-१०।। हरड़ का चूर्ण एक तोला जो भँगरैया के स्वरस से भावित हो उसे घृत और मधु से सेवन करने से मनुष्य तीन सौ वर्ष जीवित रहता है तथा रोगों को जीत लेता है। वाराहीकन्द के चूर्ण को भँगरैया के रस से भावित कर रख ले पश्चात् उस चूर्ण को लौह भस्म और शतावरी के चूर्ण को मिलाकर मात्रा से एक तोला घृत के साथ सेवन करे तो पाँच सौ वर्ष जीता है। अथवा भँगरैया के रस से भावित शतावरी चूर्ण से सोने का भस्म, मधु, घृत मिलाकर सेवन करे तो तीन सौ वर्ष जीता है। आम की गुठली की मज्जा, गुरुचि, निशोथ और गन्धक बराबर-बराबर लेकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर सुखा ले उसमें से दो रत्ती घृत के साथ सेवन करने से पाँच सौ वर्ष की आयु हो जाती है। चार तोले असगन्ध को तेल (तिल का) और घृत और चीनी के साथ लेने से रोग (आर्ति) दूर हो जाते हैं ।।११-१५।। नीम का तेल और मधु मिलाकर नस्य लेने से बाल काले हो जाते हैं और वह सौ वर्ष तक जीता है। बहेड़े के एक तोले चूर्ण को मधु, घृत के साथ

---

१ छ. पयः पा मृ°। २ छ. °त्र। तामं मृतं मततुल्यं। ३ क. ङ. ते। ४ क. ङ. मुस्ते। ५ छ. °न्धापल°। ६ छ. तिलस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभयां सगुडां जग्ध्वा घृतेन मधुरादिभिः। दुग्धान्नभुक्कृष्णकेशोऽरोगी पञ्चाताब्दवान् ।।१७।।
पलं कूष्माण्डिकाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन्। मासं दुग्धान्नभोजी च सहस्त्रायुर्विरोगवान् ।।१८।।
शालूकचूर्णं भृङ्गाज्यं समध्वाज्यं शताब्दकृत्। कटुतुम्बीतैलनस्यं कर्षं शतद्वयाब्दवान् ।।१९।।
त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशताब्दकृत्। शतावर्याः पूर्णयोगः सहस्त्रायुर्बलातिकृत् ।।२०।।
चित्रकेण तथा पूर्वं तथा शुण्ठीविडङ्गतः। लोहेन भृङ्गराजेन बलया निम्बपञ्चकैः ।।२१।।
खदिरेण च निर्गुण्ड्या कण्टकार्याऽथ वासकात्। वर्षाभुवा तद्रसैर्वा भावितो वटिकाकृतः ।।२२।।
चूर्णं घृतैर्वा मधुना गुडाद्यैर्वारिणा तथा। ॐ ह्रूं स इति मन्त्रेण मन्त्रितो योगराजकः ।।२३।।
मृतसंजीवनीकल्पो रोगमृत्युञ्जयो भवेत्। सुरासुरैश्च मुनिभिः सेविता कल्पसागराः ।।
गजायुर्वेदं प्रोवाच पालकाप्योऽङ्गराजकम् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मृत्युञ्जयकल्पकथनं नाम
षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८६।।

चाटकर दूध पी लेवे तो सौ वर्ष की आयु होती है। गुड़ और हरड़ खाकर मधुर भोजन या दुग्ध के साथ भोजन करने से रोगरहित होता है तथा केश काला हो जाता है और पाँच सौ वर्ष जीता है। चार तोला रेक्सवा (सफेद) कोंहड़ा के मज्जा का चूर्ण, मधु, घृत, दूध से ले तथा एक मास तक दूध के साथ अन्नग्रहण करे तो वह रोगरहित हो सौ वर्ष तक जीता है ।।१६-१८।। कमल के जड़ का चूर्ण भँगरैया के रस और घृत के साथ पीवे अथवा मधु एवं घृत के साथ लेने पर मनुष्य एक सौ वर्ष जीता है। कड़ुई लौकी के बीज के एक तोले तेल का नस्य दो सौ वर्ष तक जिलाता है। त्रिफला, सोंठ और पीपरि का चूर्ण बनाकर सेवन करने से तीन सौ वर्ष की आयु हो जाती है और शतावरी का भी चूर्ण मिलाकर लेने से अति बलवान् होता है और हजार वर्ष की आयु मिलती है ।।१९-२०।। शतावरी चूर्ण को चित्रक के काढ़े से, वायविडङ्ग के काढ़े से, लाल भँगरैया के स्वरस से, बरियरा के स्वरस से, नीम के पञ्चाङ्ग के काढ़े से, खदिर क्वाथ से तथा मेउड़ी, भटकैया, अड़ूसा और पथरी के रस से भावना देकर वटी बना ले या चूर्ण ही रहने दे। उस बटी या चूर्ण को घृत, मधु या गुड़ के रस से लेने से हजार वर्ष की आयु होती है। उस योगराज को बनाते समय 'ॐ ह्रूं सः' इस मन्त्र को पढ़े। यह मृत्युञ्जय कल्प रोग तथा मृत्यु को जीतनेवाला है। उस कल्प सिन्धु को देव तथा राक्षस तथा मुनियों ने सेवन किया है। गजायुर्वेद को पालकाप्य जी ने अंगराज से कहा ।।२१-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में मृत्युञ्जयकल्पकथन नामक दो सौ छियासीवाँ
अध्याय समाप्त ।।२८६।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजचिकित्सा

पालकाप्य उवाच

गजलक्ष्मचिकित्सां च लोमपाद वदामि ते। दीर्घहस्ता महोच्छ्वासाः प्रशस्तास्ते सहिष्णवः ।।१।।
विंशत्यष्टादशनखाः शीतकालमदाश्च ये। दक्षिणश्चोन्नतो दन्तो बृंहितं जलदोपमम् ।।२।।
कर्णौ च विपुलौ येषां सूक्ष्मविन्द्वन्वितास्त्वचि[1]। ते धार्या न तथा धार्या वामना ये त्वलक्षणाः ।।३।।
[2]हस्तिन्यः पार्श्वगर्भिण्यो ये च मूढा[3] मतङ्गजाः। वर्षं सत्त्वं बलं रूपं कान्तिः संहननं जवः ।।४।।
सप्तस्थितो गजश्चेदृक्सङ्ग्रामेऽरीञ्जयेत्सदा। कुञ्जराः परमा शोभा शिविरस्य बलस्य च ।।५।।
आहतः कुञ्जरैश्चैव विजयः पृथिवीक्षिता। [4]पाकलेषु च सर्वेषु कर्तव्यमनुवासनम् ।।६।।
[5]घृततैलाभ्यङ्गयुक्तं स्नानं वातविवर्जितम्। स्कन्धेषु च क्रिया कार्या तथा [6]पालकवन्नृपैः ।।७।।
गोमूत्रं पाण्डुरोगेषु रजनीभ्यां घृतं द्विज। आनाहे तैलसिक्तस्य निषेकस्तस्य शस्यते ।।८।।
लवणैः पञ्चभिर्मिश्रा प्रतिपानाय वारुणी। विडङ्गत्रिफलाव्योषसैन्धवैः कवलान्कृतान् ।।९।।

अध्याय २८७

गजचिकित्सा

धन्वन्तरि बोले–हे लोमपाद! हाथी का लक्षण तथा चिकित्सा तुमसे कहता हूँ। जिसकी सूँड़ लम्बी हो, अति बलवान् हो एवं सहनशील हो वह हस्ती प्रशंसनीय माना जाता है। बीस या अठारह नख हों, शीतकाल में जिसके मद बह रहा हो, दाहिना दाँत ऊँचा हो, बादल के समान शरीर बड़ा हो। जिसके कान बड़े-बड़े हों, त्वचा पर छोटे-छोटे विन्दु चिह्नित हों, ऐसे हाथी को रखना चाहिए और जो छोटे हों तथा जिनके अच्छे लक्षण न हों उन्हें नहीं रखना चाहिए ।।१-३।। हथिनियाँ वह अच्छी होती हैं जिनके पेट भारी हों। मतवाले हाथी वे अच्छे होते हैं जिनमें वर्ण, मन (प्रसन्न मन), बल, रूप, कान्ति, शरीर का संघटन और वेग ये सातों बातें हों। वह संग्राम में शत्रुओं को सदा जीत लेता है। हाथी शिविर तथा सेना की परम शोभा है। राजा द्वारा इस प्रकार के हाथियों के आदर करने से उसकी सदा विजय होती है। सम्पूर्ण हाथियों में अनुवासन (तेल लगाना) करते रहना चाहिए ।।४-६।। घृत, तैल का अभ्यङ्ग कराकर निर्वात-स्थान में स्नान करावे। राजा को चाहिए कि पीलवान की तरह अपने हाथों से कन्धे थपथपावे। हे द्विज! हाथी को पाण्डुरोग हो जाय तो हरदी और दारुहरदी के साथ गोमूत्र और घृत पिलावे। कब्जियत होने पर तेल से पेट की सफाई करके तेल की बस्ति दे। पाँचों नमक को शराब में मिलाकर पिलावे। मूर्च्छा होने पर वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु और सेंधानमक से युक्त आहार दे तथा मधु शर्बत पिलावे। सिर के शूल में सिर पर तैल रखे तथा

---

१ छ. °न्वितत्वचौ। ते। २ क. ख. ङ. °स्तिन्वो याश्च ग°। ३ क. ङ. मत्ता। ४ क. ङ. पातालेषु तु स°। ५ छ. तैलपरीपाकं स्थानं। ६ ख. ग. पाकबलेर्नृपः। गो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूर्च्छासु भोजयेन्नागं क्षौद्रं तोयं च पाययेत्। अभ्यङ्गः शिरसः शूले नस्यं चैव प्रशस्यते ।।१०।।
नागानां स्नेहपुटकैः पादरोगानुपक्रमेत्। पश्चात्कल्कषायेण शोधनं च विधीयते ।।११।।
शिखितित्तिरलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः। रसैः सम्भोजयन्नागं वेपथुर्यस्य जायते ।।१२।।
बालबिल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह। अतिसारविनाशाय पिण्डीं भुञ्जीत कुञ्जरः ।।१३।।
नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम्। मागधी नागराजाजी यवागूर्मुस्तसाधिता ।।१४।।
उत्कर्णके तु दातव्या वाराहं च तथा रसम्। दशमूलकुलत्थाम्लकाकमाचीविपाचितम् ।।१५।।
[1]तैलं शृंखलसंयुक्तं गलग्रहगदापहम्। अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः [2]प्रसन्नं पाययेद्घृतम् ।।१६।।
मूत्रभङ्गेऽथ वा बीजं क्वथितं त्रपुषस्य च। त्वग्दोषेषु पिवेन्निम्बं वृषं वा क्वथितं द्विपः ।।१७।।
गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्ठेषु शस्यते। शृङ्गवेरकणाद्राक्षाशर्कराभिः शृतं पयः ।।१८।।
क्षतक्षयकरं पानं तथा मांसरसः शुभः। मुद्गौदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ।।१९।।
त्रिवृद्व्योषाग्निदन्त्यर्कश्यामा क्षीरेभपिप्पली। एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथा परः ।।२०।।
भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः। सर्वानेव समुत्पन्नान्विद्रधीन्समुपाहरेत् ।।२१।।
यष्टिकं मुद्गसूपेन शारदेन तथा पिबेत्। बालबिल्वैस्तथा लेपः [3]कटरोगेषु शस्यते ।।२२।।

तेल का नस्य दे। हाथियों के पैर के रोग में (फोड़े आदि) तेल का पुट दे। बाद में ओषधियों के कल्क तथा काढ़े से शोधन करे ।।७-११।। हाथियों के कम्परोग में मयूर, तित्तिर और लावा पक्षी के मांस के रस में पीपरि तथा काली मिर्च डालकर खिलावे। हाथियों के अतिसार में कच्चे तेल की मज्जा, लोध, धव का फूल और मिश्री मिलाकर खिलावे तथा प्याज खाने को दे। हाथियों के शुण्ड में स्तब्धता होने पर नमक मिलाकर घृत का नस्य दे। उत्कर्णक रोग में पीपरि, सोंठ, अजवायन और नागरमोथा के क्वाथ से यवागू (हलुवा) बनाकर खाने को दे तथा सूअरों के मांस का रस दे। दशमूल, कुलथी, काँजी और मकोय के रस में पकाया हुआ तेल पीने को देने से गलग्रह नष्ट हो जाता है। आठों नमक के साथ घृत पिलाने से भी गलग्रह नष्ट हो जाता है ।।१२-१६।। हाथी को जब पेशाब में अवरोध हो तो खीरे के बीज का काढ़ा बनाकर पिलावे। त्वचा के रोग में नीम या अडूसे का क्वाथ बनाकर पिलावे। कृमि रोग में गोमूत्र में वायविडंग का चूर्ण डालकर पिलावे। अदरक, पीपरि, मुनक्का और मिश्री मिलाकर गर्माया हुआ दूध पिलाने से क्षयक्षय रोग नष्ट हो जाता है। इस रोग में मांस-रस भी दे। अरुचि रोग में मूँग की दाल और चावल में सोंठ, मिर्च और पीपरि डालकर दे। निशोथ, त्रिकटु, चित्रक, जमालगोटे की जड़, मदार, काली निशोथ, दुधिया गजपीपरि के क्वाथ से सिद्धतेल से हाथियों का वायु गोला (गुल्म) ठीक हो जाता है। भेदन तथा द्रावण ओषधि से तेल की मालिश, स्नेहपान और अनुवासन वस्ति से हाथियों की सभी (बाह्य और आभ्यन्तर की) विद्रधि (फोड़े) नष्ट हो जाते हैं ।।१७-२१।। कार्तिक के मूँग के जूस के साथ-साथ साठी चावल का भात खिलाने से तथा कच्चे तेल की मज्जा के लेप से कुष्ठ रोग में लाभ होता है। हाथियों के सभी प्रकार के शूल रोग में वायविडंग,

---

१ च. °लं पानदसं°। छ. °लं भूषण सं°। २ छ. प्रसन्नाः। ३ क. ङ. कुष्ठरोगेषु। ङ. कटुरोगेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विडङ्गेन्द्रयवौ हिङ्गु [1]सरलं रजनीद्वयम् । [2]पूर्वाह्णे दापयेत्पिण्डान्सर्वशूलोपशान्तये ।।२३।।
प्रधानभोजने तेषां षष्टिकव्रीहिशालयः । मध्यमौ यवगोधूमौ शेषा दन्तिनि चाधमाः ।२४।।
यवश्चैव तथैवेक्षुर्नागानां बलवर्धनः । नागानां यवसं शुष्कं तथा धातुप्रकोपणः ।।२५।।
मदक्षीणस्य नागस्य पयःपानं प्रशस्यते । दीपनीयैस्तथा द्रव्यैः शृतो मांसरसः शुभः ।।२६।।
वायसः कुक्कुरश्चोभौ काकोलूककुलं हरिः । भवेत्क्षौद्रेण संयुक्तः पिण्डोद्रेकगदापहः[3] ।।२७।।
कटुमत्स्यविडङ्गानि क्षारः कोषातकीपयः । हरिद्रा चेति धूपोऽयं कुञ्जरस्य जयावहः ।।२८।।
पिप्पलीतण्डुलीतैलं माध्वीकं माक्षिकं तथा । नेत्रयोः परिषेकोऽयं दीपनीयः प्रशस्यते ।।२९।।
पुरीषं चटकायाश्च तथा पारावतस्य च । क्षीरवृक्षः करीषश्च प्रसन्ना चेष्टमञ्जनम् ।।३०।।
अनेनाञ्जितनेत्रस्तु करोति कदनं रणे । उत्पलानि च नीलानि मुस्तं तगरमेव च ।।३१।।
तण्डुलोदकपिष्टानि नेत्रनिर्वापणं परम् । नखवृद्धौ नखच्छेदस्तैलसेकश्च मास्यपि ।।३२।।
शय्यास्थानं भवेच्चास्य करीषैः पांसुभिस्तथा । शरन्निदाघयोः सेकः सर्पिषा च तथेष्यते ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गजचिकित्साकथनं नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८७।।

इन्द्रजौ, हींग, बरिअरा, हरदी तथा आमा हरदी का पिण्ड बनाकर खिलावे तो शूल शान्त हो जाता है। हाथियों का मुख्य भोजन साठी या अन्य चावल का भात है और मध्यम भोजन जवा तथा गेहूँ है और अन्य भोजन अधम माने गये हैं। जौ और गन्ना हाथियों के बल को बढ़ाता है। हाथियों को सूखी जई (जव का भेद अन्न) खिलाने से धातुओं का प्रकोप होता है। मद से क्षीण हाथी को दूध पिलाना चाहिए तथा दीपनीय द्रव्यों के रस में मांसरस पकाकर देना चाहिए ।।२२-२६।। कौआ और कुत्ता, कौआ और उल्लू और बन्दर के मांस का रस मधु मिलाकर देने से हाथियों का पिण्डोद्रेक रोग दूर हो जाता है। कडुई मछली, वायविडंग, यवक्षार, तरोंई का रस और हरदी का धुआँ देने से हाथियों की जीत होती है। नेत्रों के सींचने के लिए पीपरि के दाने, मुलहठी और मधु का प्रयोग करे, इससे दीप्ति बढ़ती है ।।२७-२९।। चटका पक्षी और कबूतर की टट्टी, बरगद आदि का दूध और करसा गोबर का (करीष) को मदिरा में अंजन बनाकर हाथियों के आँख में अञ्जित कर दिया जाय तो रण में बहुतों को मार देता है। नीलकमल, नागरमोथा और तगर को चावल के पानी में पीसकर नेत्र पर लगाने से नेत्र को शान्ति मिलती है। नख बढ़ने पर माह-माह पर नख कटवा दे तथा तेल से सेंक दे। हाथियों के सोने का स्थान करसा और धूल से युक्त होना चाहिए। शरद् और ग्रीष्म में घी का सेंक उत्तम है ।।३०-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में गजचिकित्सा-कथन नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८७।।

---

१ ख. सबलं। २ क.° ह्नो पायसे पिण्डा°। छ. °ह्ने पाययेः°। ३ छ. °ण्डो युद्धे महापदि। क°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्ववाहनसारः

[1]धन्वन्तरिरुवाच

अश्ववाहनसारं च वक्ष्येचाश्वचिकित्सनम्। वाजिनां संग्रहः कार्यो धर्मकर्मार्थसिद्धये ।।१।।
अश्विनी श्रवणं हस्तमुत्तरात्रितयं तथा। नक्षत्राणि प्रशस्तानि हयानामादिवाहने ।।२।।
हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तश्चाश्ववाहने। ग्रीष्मे शरदि वर्षासु निषिद्धं वाहनं हये ।।३।।
तीव्रैर्नचपलैर्दण्डैर्वदने न च ताडयेत्। कीलास्थिसंकुले चैव विषमे कण्टकान्विते ।।४।।
बालुकापङ्कसंछन्ने गर्तागर्तप्रदूषिते। अचित्तज्ञो विनोपायैर्वाहनं कुरुते तु यः ।।।५।।
स वाह्यते हयेनैव पृष्ठस्थः कटिकां विना। छन्दं विज्ञापयेत्कोऽपि सुकृती धीमतां वरः ।।६।।
अभ्यासादभियोगाच्च विना शास्त्रं स्ववाहकः। स्नातस्य प्राङ्मुखस्याथ [2]देवान्वपुषि योजयेत् ।।७।।
प्रणवादिनमोन्तेन स्वबीजेन यथाक्रमम्। ब्रह्मा चित्ते बले विष्णुर्वैनतेयः पराक्रमे ।।८।।
पार्श्वे रुद्रा गुरुर्बुद्धौ विश्वेदेवाश्च मर्मसु। [3]दृगावर्ते दृशीन्द्वर्कौ कर्णयोरश्विनौ तथा ।।९।।

अध्याय २८८

अश्ववाहन-सार

धन्वन्तरि बोले–घोड़ों की सवारी का तत्त्व तथा घोड़ों की चिकित्सा कहूँगा। घोड़ों का संग्रह धर्म, अर्थ और कार्य के लिए करना चाहिए। अश्विनी, श्रवण, हस्त और तीनों उत्तरा घोड़ों की प्रथम सवारी करने के लिए उत्तम माने गये हैं। इसी तरह हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुएँ घोड़ों की सवारी के लिए उत्तम हैं। ग्रीष्म, शरद् और वर्षा घोड़ों की सवारी के लिए निषिद्ध कहा है ।।१–३।। तीव्र और चोखे दण्डों से घोड़ों के मुख पर न मारे। जहाँ पर कील, हड्डी और काँटे अधिक हों वहाँ पर तथा बालू, कीचड़ से युक्त एवं ऊँची–नीची जमीन पर जो सवारी करता है एवं जो घोड़े के मन को नहीं जानता है एवं साज–सज्जा से रहित घोड़ा होता है, उस पर सवारी करता है तो वह घोड़े पर अपना अधिकार नहीं रख सकता अपितु वह घोड़े के वश में ही रहता है अर्थात् घोड़े से वह वाहित होता है। इसी तरह जीन के बिना जो सवारी करता है वह भी घोड़े द्वारा वाहित होता है। घोड़ों की इच्छा को कोई ही सुकृती धीमान् व्यक्ति जानता है। शास्त्रज्ञान के बिना भी अभ्यास और मनोयोग से घोड़ों के चित्त को जानता है। घोड़े को स्नान कराकर पूर्व मुख करके देवों की योजना अश्व के शरीर में करे ।।४–७।। घोड़े के चित्त में ब्रह्मा को लगावे 'ॐ ब्रह्मणे नमः चित्ते', बल में विष्णु को, पराक्रम में गरुड़ को, पार्श्व में इन्द्र को, बुद्धि में बृहस्पति को, मर्म स्थानों में विश्वेदेवों को, शरीर के भँवरी (आवर्त) में दस दिक्पालों को, दृष्टि में चन्द्र और सूर्य को, कानों में अश्विनीकुमारों को, उदर

---

१ क. ङ. अग्निरुवाच। २ क. ङ. °वान्विधिषु यो०°। ३ क. ङ. च. दशावर्ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जठरेऽग्निः स्वधा स्वेदे वाग्जिह्वायां जवेऽनिलः । पृष्ठतो नाकपृष्ठस्तु ([1]खुराग्रे सर्वपर्वताः ।।१०।।
ताराश्च रोमकूपेषु हृदि चान्द्रमसी कला । तेजस्यग्नी रतिः श्रोण्यां ललाटे च जगत्पतिः ।।११।।
ग्रहाश्च हेषिते चैव तथैवोरसि वासुकिः । उपोषितोऽर्चयेत्सादी हयं दक्षश्रुतौ जपेत् ।।१२।।
हय गन्धर्वराजस्त्वं) शृणुष्व वचनं मम । गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूस्त्वं कुलदूषकः ।।१३।।
द्विजानां सत्यवाक्येन सोमस्य गरुडस्य च । रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ।।१४।।
हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जातिं तुरंगम । स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ।।१५।
स्मर त्वं वारुणीं कन्यां स्मर त्वं कौस्तुभं मणिम् । क्षीरोदसागरे चैव मध्यमाने सुरासुरैः ।।१६।।
तत्र देवकुले जातः स्ववाक्यं परिपालय । कुले जातस्त्वमश्वानां मित्रं मे भव शाश्वतम् ।।१७।।
शृणु मित्र त्वमेतच्च सिद्धो मे भव वाहन । विजयं रक्ष मां चैव समरे सिद्धिमावह ।।१८।।
तव पृष्ठं समारुह्य हता दैत्याः सुरैः पुरा । अधुना त्वां समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीम् ।।१९।।
कर्णजापं तपः कृत्वा विमुह्य च तथाऽप्यरीन् । पर्यानयेद्धयं सादी वाहयेद्युद्धगो जयम् ।।२०।।
संजाताः स्वशरीरेण दोषाः प्रायेण वाजिनाम् । हन्यन्तेऽतिप्रयत्नेन गुणाः सादिवरैः पुनः ।।२१।।
सहजा इव दृश्यन्ते गुणाः सादिवरोद्भवाः । नाशयन्ति गुणानन्ये सादिनः सहजानपि ।।२२।।

में अग्नि को, पसीने में स्वधा को, जिह्वा में वाग्देवता को, वेग में वायु को, पृष्ठ पर स्वर्गपृष्ठ को, खुरों के अग्रभाग में सभी पर्वतों को, रोमकूपों में तारागणों को, हृदय में चन्द्रमा की कला को, तेज में अग्नि को, चूतड़ों में रति को, ललाट में जगत् के स्वामी परमात्मा को, घोड़े के हिनहिनाने में ग्रहों को, उर में वासुकि को, दाहिने कान में उपवासी होकर सवारी करनेवाला जपे ।।८-१२।। हे घोड़े! तुम गन्धर्वराज हो मेरे वचन को सुनो। तुम गन्धर्व कुल में उत्पन्न हुए हो अतः कुलदूषक मत बनो। ब्राह्मणों के सत्य वचन से तथा सोम, गरुड़, रुद्र, वरुण और वायु के बल से, अग्नि के तेज से हे घोड़े! तुम अपने पूर्व-जन्म का स्मरण करो। तुम राजेन्द्र पुत्र हो यह स्मरण करो तथा सत्यवाक्य का स्मरण करो। तुम वरुणदेव से उत्पन्न कन्या का स्मरण करो, कौस्तुभ मणि का स्मरण करो। जब क्षीरसमुद्र को देव तथा दानव मथ रहे थे तब तुम उस देवकुल (समुद्र) से उत्पन्न हुए। अपने वचनों का प्रतिपालन करो। तुम घोड़ों के कुल में उत्पन्न हुए हो मेरा शाश्वत मित्र बनो ।।१३-१७।। हे मित्र! तुम इस बात को सुनो। हे वाहन! तुम सिद्ध होवो, तुम मेरी और मेरे विजय की रक्षा करो और समर में सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारे पीठ पर बैठकर देवताओं ने पूर्वकाल में असुरों का संहार किया। इस समय तुम्हारे पीठ पर बैठकर शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करूँगा। इस प्रकार घोड़े के कान में कहकर घुड़सवार शत्रुओं को मोहित करके घोड़े को ले आवे और युद्ध में जाकर जय प्राप्त करे ।।१८-२०।। प्रायः घोड़े में उनके शरीर पर दोष उत्पन्न होते हैं। किन्तु घुड़सवारों द्वारा अति प्रयत्न से वे दोष नष्ट किये जाते हैं और गुण हो जाते हैं। घुड़सवारों द्वारा घोड़े में उत्पन्न किये गये गुण सहज गुण की भाँति दीख पड़ते हैं। बहुत-से घुड़सवार ऐसे भी होते हैं जो घोड़ों के उत्पन्न सहज गुणों को भी नष्ट कर देते हैं। कोई घुड़सवार घोड़े के

---

१ खुराग्रे···गन्धर्वराजस्त्वं च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषांस्तथाऽपरः। धन्यो धीमान्हयं वेत्ति नोभयं वेत्ति मन्दधीः ।।२३।।
अकर्मज्ञोऽनुपायज्ञो वेगासक्तोऽपि कोपनः[1]। [2]जयदण्डरतिश्चित्रो यः शस्तोऽपि न शस्यते ।।२४।।
उपायज्ञोऽथ चित्तज्ञो विशुद्धो दोषनाशनः। गुणार्जनपरो नित्यं सर्वकर्मविशारदः ।।२५।।
प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो वाहभूतलम्। सव्यापसव्यभेदेन वाहनीयः सुसादिना ।।२६।।
आरुह्य सहसा नैव ताडनीयो हयोत्तमः। ताडनाद्भयमाप्नोति भयान्मोहश्च जायते ।।२७।।
प्रातः सादी प्लुतेनैव बल्गामुद्धृत्य चालयेत्। मन्दं मन्दं विना नालं धृतवल्गो दिनान्तरे ।।२८।।
प्रोक्तमाश्वासनं सामभेदोऽश्वेन नियोज्यते। कशादिताडनं दण्डो दानं कालसहिष्णुता ।।२९।।
पूर्वपूर्वविशुद्धौ तु विदध्यादुत्तरोत्तरम्। जिह्वातले विना[3] योगं विदध्याद्वाहने हये ।।३०।।
[4]गुणोत्तरशतां वल्गां सृक्कण्या सह गाहयेत्। विस्मार्य वाहनं कुर्याच्छिथिलानां शनैः शनैः ।।३१।।
हयजिह्वाङ्गमाहीने जिह्वाग्रन्थिं विमोचयेत्। गाढतां मोचयेत्तावद्यावत्स्तोभं न मुञ्चति ।।३२।।
कुर्याच्छतमुरस्त्राणमविलालं च मुञ्चति। ऊर्ध्वाननः स्वभावाद्यस्तस्योरस्त्राणमश्लथम् ।।३३।।

गुणों को जानता है और कोई दोषों को। वह बुद्धिमान् धन्य है जो दोनों बातों को जानकर घोड़े को जानता है। मन्द बुद्धिवाला तो न गुण जानता है न दोष ही ।।२१-२३।। जो घुड़सवार कर्म और उपाय को नहीं जानता, वेग में आसक्त है, क्रोधी है, जय में और दण्ड देने में ही अनुरागी है, ऐसा विचित्र घुड़सवार घोड़ों के गुण-दोष को जाननेवाला भी प्रशस्त नहीं माना जाता। जो उपाय को जानता है, घोड़े की चित्तवृत्ति को पहचानता है, किसी प्रकार का उसमें अवगुण नहीं है और वह दोषों को नष्ट करनेवाला है। नित्य ही गुणों को प्राप्त करने में तत्पर रहता है, सम्पूर्ण अश्व के कर्मों का पण्डित है, वही अच्छा घोड़े का सवार माना जाता है। घुड़शाला में जाकर घोड़े के पगहे (रस्सी) को पकड़कर, दाहिने और बायें के भेद को जानता हुआ अच्छा घुड़सवार घोड़े पर बैठकर एकाएक घोड़े को कोड़ा न मारे क्योंकि ताड़न करने से घोड़ा डर जाता है और डर जाने से घबड़ा जाता है ।।२४-२७।। घुड़सवार को चाहिए कि प्रातःकाल घोड़े की लगाम को ढीला कर दे और घोड़े को कदम (प्लुत) की चाल से टहलावे। सायंकाल तथा घोड़े को जब नाल न लगाया हुआ हो तो लगाम को पकड़कर मन्दगति से टहलावे। घोड़े को पुचकारकर आश्वासन दिया जाता है, उसे साम कहते हैं। भेद-नीति घोड़े में नहीं प्रयुक्त की जाती है। कोड़ा जो घोड़े को मारा जाता है, उसे दण्ड कहते हैं और समय-समय पर सेवा, विश्राम तथा भोजन दिया जाता है उसे दान कहते हैं। पूर्व-पूर्व प्रयोग के असफल होने पर उत्तरोत्तर का विधान करे (जैसे पुचकारने से कार्य न चलने पर कोड़ा मारे और इससे भी काम न चलने पर कुछ काल विश्राम दे) घोड़े की सवारी में उसकी पीठ पर जीन (वितान इस पाठ भेद से अर्थ निकलता है) और जिह्वा तल में लगाम लगावे ।।२८-३०।। दोनों तरफ डोरी में बँधी हुई (गुणोत्तरशतां) लगाम को जीभ के नीचे लगा दे और शिथिल अश्वों को भुलावा दे-देकर धीरे-धीरे सवारी करे। लगाम से घोड़े की जिह्वा का भाग कस उठे तो लगाम की गाँठ को ढीला कर दे। गाढ़ेपन को तब तक ढीला करे जब तक घोड़े का क्षोभ दूर न हो जाय। सौ उरस्त्राण (छाती की रक्षा करनेवाला कवच) घोड़े को लगावे, पीठ पर रेकाब रखे। जो घोड़ा स्वभाव से सिर ऊँचा रखता है उसका उरस्त्राण कसकर लगा होना चाहिए ।।३१-३३।।

---

१ छ. °नः। घनद°। २ छ. °तिच्छिद्रे यः समोऽपि। ३ क. ङ. वितानं यो वि°। ४ क. ङ. गुणेन रसतावृद्धिः सृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विधाय वाहयेद्दृष्ट्या लीलया सादिसत्तमः । तस्य सव्येन पूर्वेण संयुक्तं सव्यवल्गया ।।३४।।
यः कुर्यात्पश्चिमं पादं गृहीतस्तेन दक्षिणः । क्रमेणानेन यो वामे कुरुते वामवल्गया ।।३५।।
पादौ तेनापि पादः स्याद्गृहीतो वाम एव हि । अग्रे चेच्चरणे त्यक्ते जायते सुदृढासनम् ।।३६।।
यौ हृतौ दुष्करे चैव मोटके नाटकायनम् । सव्यहीनं खलीकारो हनने गुणने तथा ।।३७।।
स्वभावं हि तुरंगस्य मुखव्यावर्तनं पुनः । न चैवेत्थं तुरंगाणां पादग्रहणहेतवः ।।३८।।
विश्वस्तं हयमालोक्य गाढमापीड्य चाऽऽसनम् । [1]रोधयित्वा मुखे पादं ग्राह्यतो लोकनं हितम् ।।३९।।
गाढमापीड्य रागाभ्यां वल्गामाकृष्य गृह्यते । तद्बन्धनाद्युग्मपादं [2]तद्वद्वल्गनमुच्यते ।।४०।।
संयोज्य वल्गाया पादान्वल्गामालोच्य वाञ्छितम् । बाह्यपार्ष्णिप्रयोगात्तु यत्र तन्मोटनं मतम् ।।४१।।
प्रलयाविप्लवे ज्ञात्वा क्रमेणानेन बुद्धिमान् । मोटनेन चतुर्थेन विधिरेष विधीयते ।।४२।।
नाऽऽधत्तेऽधश्च यः पादं योऽश्वो [3]लङ्घनमण्डले । मोटनोद्वक्कनाभ्यां तु ग्राहयेत्पादमीदृशम् ।।४३।।
वण्टयित्वाऽऽसने गाढं मन्दमादाय यो व्रजेत् । ग्राह्यते संग्रहाद्यत्र तत्संग्रहणमुच्यते ।।४४।।

उत्तम घुड़सवार को चाहिए कि लीलापूर्वक दृष्टि के संकेतमात्र से घोड़े को चलावे। जो घोड़े की पीठ पर पहले दाहिना पैर रखता है वह घोड़े की लगाम बायें तरफ खींचकर चलावे। जो घोड़े की पीठ पर बायाँ पैर पहले रखता है, उसे चाहिए कि पहले दाहिने तरफ लगाम खींचे। इस क्रम से जो बायें तरफ की लगाम से घोड़े को बायें तरफ मोड़ता है उसको दोनों तरफ से पैरों को घोड़े पर रखने का अभ्यास होता है। वह वाम पैर को ही पहले घोड़े पर रखता है। घोड़े पर पहले पैर उछालकर घुड़सवार सुदृढ़ आसन बना लेता है। कठिन पायदान में जो पैर रखा जाता है वह ठीक है किन्तु घोड़े को यदि दण्ड देना हो तो दाहिने तरफ से दे और यदि कोई गुण सिखाना हो तो भी दाहिने ही तरफ से दे। घोड़े का स्वभाव है कि मुख फैलाते हैं किन्तु वे पैर पकड़ने के लिए नहीं ।।३४-३८।। विश्वस्त अश्व को देखकर तथा उसकी पीठ पर आसन (जीन) को खूब कसकर बाँध दे। इसके बाद मुख में लगाम (पाद) को लगावे इस प्रकार जो घोड़े को ग्रहण किया जाता है उसे लोकन कहते हैं। रस्सी से अच्छी तरह कसकर और लगाम पकड़कर जो घोड़े के दोनों पैर बाँधे जाते हैं उसे वल्गन कहते हैं ।।३९-४०।। लगाम की रस्सी से लगाम को जोड़कर इच्छानुसार जो लगाम को घोड़े के मुख में लगाते हैं और उसे चलाने में एड़ी से चलाते हैं उस स्थिति का नाम मोटन है। चंचलतावश घोड़े को सरपट भागने को तैयार देखकर बुद्धिमान् सवार को चाहिए कि उसे मोटन विधि से ही चलावे (इस गति को कदम कहते हैं)। जो अश्व तेजी से दौड़ते समय पैरों को भूमि पर न रखे (पैर जमीन पर रखता दीख न पड़े) उसे मोड़ने और लगाम को खींचने से वश में लाये और पैर को जमीन पर रखवाकर कदम ले चले। जो सवार आसन पर बैठकर और अपने पैरों से अश्व के पीठ को मन्दरूप से कस लेता है तथा उसे कदम के रूप में चलने के लिए ग्रहण करता है उस क्रिया को संग्रहण कहते हैं ।।४१-४४।।

---

१ छ. रोकयि°। २ छ. °द्वक्कन°। ३ छ. लधनि म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हत्वा पार्श्वप्रहारेण स्थानस्थो व्यग्रमानसम् । वल्गामाकृष्य पादेन ग्राह्यकण्टकपायनम् (?) ।।४५।।
उल्केणा (ना) योऽङ्घ्रिणाऽनेन पार्ष्णिघातांस्तुरंगमः। गृह्यते यत्खलीकृत्य खलीकारः स चेष्यते ।।४६।।
गतित्रये प्रियः पादमादत्ते नैव वाञ्छितः । हत्वा तु यत्र दण्डेन गृह्यते हननं हि तत् ।।४७।।
खलीकृत्य चतुष्केण तुरङ्गो वल्गयाऽन्यया । उच्छ्वास्य ग्राह्यतेऽन्यत्र तत्स्यादुच्छा(च्छ्वा)सनं पुनः ।।४८।।
स्वभावाद्बहिरस्यन्तं तस्यां दिशि तदाननम् । नियोज्य ग्राहयेत्तत्तु मुखव्यावर्तनं मतम् ।।४९।।
ग्राहयित्वा ततः पादं त्रिविधासु यथाक्रमम् । साधयेत्पञ्चधारासु क्रमशो मण्डलादिषु ।।५०।।
([1]आजानूर्ध्वाननं वाहं शिथिलं वाहयेत्सुधीः । अंगेषु लाघवं यावत्तावत्तं वाहयेद्धयम् ।।५१।।
मृदुःस्कन्धे लघुर्वक्त्रे शिथिलः सर्वसन्धिषु । सदा स सादिनो वश्यः संगृह्णीयत्तदा हयम्) ।।५२।।
न त्यजेत्पश्चिमं पादं यदा साधु भवेत्तदा । तदाऽऽकृष्टिर्विधातव्या पाणिभ्यामिह वल्गया[2] ।।५३।।
एकाङ्घ्रिको यथा तिष्ठेदुद्ग्रीवोऽश्वः समाननः । धरायां पश्चिमौ पादावन्तरी (रि) क्षे यदाश्रयौ ।।५४।।
तदा संधारणं कुर्याद्गाढवाहं च मुष्टिना । सहसैवं समाकृष्टो यस्तुरंगो न तिष्ठति ।।५५।।
शरीरं विक्षिपन्तं च साधयेन्मण्डलभ्रमैः । क्षिपेत्स्कन्धं च यो वाहः स च स्थाप्यो हि वल्गया ।।५६।।

पीठ पर बैठकर जो सवार घोड़े के पार्श्व में कोड़े से ताड़ना देकर चलाता है और इस बीच आसन तितर-बितर हो जाता है तो लगाम की रस्सी से लगाम को खींचकर जो वश में किया जाता है उसे कण्टकपायन कहते हैं। उत्कट रूप से रेकाब में पैर डालकर एड़ी से जो ताड़न किया जाता है उस ताड़न को जो अश्व सहन करता है उसे खलीकार कहते हैं। तीनों गतियों में से अभीप्सित और प्रिय गति को जो अश्व नहीं ग्रहण करता और लगाम को धारण करता है इस स्थिति में जो चाबुक से घोड़े को ताड़न प्रदान करता है उसे हनन कहते हैं। चौकड़ी मारता हुआ अश्व जब अन्य रस्सी से वश में किया जाता है तथा जब अश्व उच्छ्वास लेकर पकड़ा जाता है, उसे उच्छ्वासन कहते हैं। अश्व अपने स्वभाव से बाहर उसी दिशा में जब खिंचाव करता है तब उसे बन्धन में करके उसके मुख को खींचा जाता है उसे मुखव्यावर्तन कहते हैं ।।४५-४९।। घोड़ों की तीन प्रकार की गतियों में पैर स्थिर करने के पश्चात् क्रमशः मण्डलादि पञ्चधारा में घोड़े की गति बढ़ावे। घुटने से लेकर ऊपर मुखपर्यन्त जब घोड़ा शिथिल अवस्था में रहे तब उस पर सवारी करनी चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि जब तक घोड़े में हल्कापन रहे तभी तक उस पर चढ़कर दौड़ावे। जब अश्व स्कन्ध को मृदु बना लेता है, मुख को हल्का कर लेता है एवं सम्पूर्ण सन्धियों में शिथिलता आ जाती है तब वह अश्व सवार के वश में हो जाता है, उस समय घोड़े को ग्रहण करे ।।५०-५२।। जब तक घोड़ा ठीक स्थिति में रहे तब सवार को चाहिए कि अपने लगाम के पिछले भाग को न छोड़े, आवश्यकतानुसार लगाम की डोरी से घोड़े को खींचा करे। जिस समय अश्व ऊपर गर्दन करके एक पैर से खड़ा हो जाय अर्थात् आगे के दोनों पैर उठा ले, पिछले दोनों पैर पृथ्वी पर रह जायँ तब सवार अपनी मूँठी से घोड़े की गर्दन पकड़कर चिपक जाय। इस प्रकार रोकने पर भी जो अश्व एकाएक न रुके और शरीर को फेंकता हो तो उसे सरपट की दौड़ से दौड़ाना चाहिए। जो अश्व बार-बार अपने स्कन्ध को नीचे की तरफ बार-बार झटका देता हो उसे लगाम के द्वारा स्थिर करे ।।५३-५६।।

---

१ आजानूर्ध्वाननं हयम् च. पुस्तके नास्ति। २ छ. वा। तत्र त्रिको।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोमयं लवणं मूत्रं क्वथितं मृत्समन्वितम् । अङ्गलेपो मक्षिकादिदंशश्रमविनाशनः ।।५७।।
मध्ये भद्रादिजातीनां मण्डो देयो हि सादिना । दंशनं सूक्ष्मकीटस्य निरुत्साहः क्षुधा हयः ।।५८।।
यथा वश्यस्तथा शिक्षा विनश्यन्त्यतिवाहिताः । अवाहिता न सिध्यन्ति तुङ्गवक्त्रांश्च वाहयेत् ।।५९।।
संपीड्य जानुयुग्मेन स्थिरमुष्टिस्तुरंगमम् । गोमूत्राः कुटिला वेणी पद्ममण्डलमालिकाः ।।६०।।
([1]पञ्चोलूखलिकाः कार्ये गर्वितास्तेऽतिकीर्तिताः । संक्षिप्तं चैव विक्षिप्तं कुञ्चितं च यथाचितम् ।।६१।।
वल्गितावल्गितौ चैव षोढा चेत्थमुदाहृतम् । वीथौ धनुः शतं यावदशीतिर्नवतिस्तथा ।।६२।।
भद्रः सुसाध्यो वाजी स्यान्मन्दो दण्डैकमानसः । मृगजङ्घो मृगो वाजी संकीर्णस्तत्समन्वयात् ।।६३।।
शर्करामधुलाजादः सुगन्धोऽश्वः शुचिर्द्विजः) । तेजस्वी क्षत्रियश्चाश्वो विनीतो बुद्धिमांश्च यः ।।६४।।
शूद्रोऽशुचिश्चलो मन्दो विरूपो विमतिः खलः । वल्गया धार्यमाणोऽश्वो [2]लालकं यश्च [3]दर्शयेत् ।।६५।।
[4]भारेषु योजनीयोऽसौ प्रग्रहग्रहमोक्षणैः । अश्वादिलक्षणं वक्ष्ये शालिहोत्रो यथाऽवदत् ।।६६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽश्ववाहनसारवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८८।।

अश्व को जब मक्खी आदि काटे तथा थक गया हो जो उसे दूर करने के लिए गोबर, नमक, मिट्टी और मूत्र का काढ़ा करके उसका घोड़े के शरीर पर लेप करे। बीच-बीच में हरसिंगार के जाति के वृक्षों के पत्तों के काढ़े में चावल आदि का मण्ड बनाकर देना चाहिए, इससे छोटे कृमि आदि के काटने से तथा भूख से अश्व निरुत्साह न हो जाय। जितना घोड़ा वश में होता जाय उतनी ही शिक्षा देता जाय। घोड़े को अधिक चलाने से वे नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार न चलाने से भी खराब हो जाते हैं, सिद्ध नहीं होते, उन्हें ऊपर मुख करके चलावे ।।५७-५९।। घोड़े की दोनों जानु पर्यन्त मालिश करे एवं हल्की-हल्की मुट्ठी को पीठ पर थपकी देकर मालिश करे और गोमूत्राकार टेढ़ी वेणी सिर पर सँवारे या कमल के आकार की वेणी सँवारे। घोड़े के सिखाने के कार्य में पाँच उलूखलिक नामक (ओखरी के समान) क्रियाएँ होती हैं, वे अति गर्वित कही जाती हैं। उनके छह भेद होते हैं-संक्षिप्त, विक्षिप्त, कुञ्चित, यथाचित, वल्गित और अवल्गित। एक सौ या नब्बे या अस्सी धनुषपर्यन्त दूरी तक भद्र अश्व को खेलावे यह सुखसाध्य अश्व होता है। मन्द अश्व केवल दण्डसाध्य होता है। मृग-जंघ और मृग अश्व मन्द के समान दण्डसाध्य होता है ।।६०-६३।। धान का लावा, मिश्री और मधु खानेवाला सुगन्धित और पवित्र अश्व द्विज कहा जाता है। तेजस्वी अश्व क्षत्रिय तथा विनीत एवं बुद्धिमान् अश्व को वैश्य कहते हैं। अपवित्र, चंचल, मन्द, रूपरहित और बुद्धिहीन अश्व को खल कहते हैं। लगाम लगाने पर जो अश्व फेन को अधिक मुख से छोड़े उसे भार ढोने में लगावे। इस पगहे से घोड़ा बाँधा जा सकता है। इस प्रकार शालिहोत्र के अनुसार अश्वादि का लक्षण कहूँगा ।।६४-६६।।

श्री अग्निमहापुराण में अश्ववाहनसार-वर्णन नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८८।।

---

१ पञ्चोलूखलिकाः''''शुचिर्द्विजः च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. तालकं। ३ क. ङ. दापयेत्। ४ छ. धारासु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वचिकित्सा

शालिहोत्र उवाच

अश्वानां लक्षणं वक्ष्ये चिकित्सां चैव सुश्रुत[1] । हीरदन्तो विदन्तश्च करालः कृष्णतालुकः ।।१।।
कृष्णजिह्वश्च यमजोऽजातमुष्कश्च यस्तथा । द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णकः ।।२।।
खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी । श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च ।।३।।
वानराक्षः कृष्णसटः कृष्णगुह्यस्तथैव च । कृष्णप्रोथश्च शूकश्च यश्च तित्तिरिसंनिभः ।।४।।
विषमः श्वेतपादश्च ध्रुवावर्तविवर्जितः । अशुभावर्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरंगमः ।।५।।
रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवक्षसोः । प्रायेण च ललाटस्थकण्ठावर्ताः शुभा दश ।।६।।
सृक्कण्यां च ललाटे च कर्णमूले निगालके । बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्तास्त्वशुभाः परे ।।७।।
शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससंनिभाः । सुवर्णवर्णाः स्निग्धाश्च प्रशस्तास्तु सदैव हि ।।८।।
दीर्घग्रीवाक्षिकूटाश्च ह्रस्वकर्णाश्च शोभनाः । राज्ञां तुरंगमा यत्र विजयं वर्जयेत्ततः ।।९।।

अध्याय २८९

अश्व-चिकित्सा

शालिहोत्र बोले–हे सुश्रुत! अश्वों के लक्षण तथा चिकित्सा कहूँगा। हीरे के समान दाँतवाला, बिना दाँतवाला, भयानक दाँतवाला, काले तालुवाला, काली जीभवाला, जुड़वाँ उत्पन्न हुआ, अण्डकोष न आया हुआ, दो खुरवाला, सींगवाला, तीन वर्णवाला, बाघ के वर्णवाला, गदहे के वर्णवाला, राख के समान वर्णवाला, सोने के वर्णवाला, डीलवाला, सफेद दागवाला, काकसादी, गदहे के समान बलवाला, वानर के समान आँखवाला, काली जटावाला, काले लिंगवाला, काले ओंठवाला, काले शूकवाला, तिमिर के वर्णवाला, विषम एवं सफेद पैरवाला, लक्षण और भँवर से रहित, अशुभ भँवर से युक्त अश्व वर्जनीय है ।।१–५।। दोनों नासिका के छिद्र में और नासिका के पार्श्व में दो–दो भँवरी, मस्तक और छाती में दो–दो भँवरी और प्रायः मस्तक और कण्ठ में दस–दस भँवरी शुभ मानी गयी है। जितना मस्तक, कान की जड़ में; निगलने के स्थान में, बाहु की जड़ में और गले में भँवरी अशुभ मानी गयी है। जो अश्व सुग्गे की आकृति के समान वर्णवाला हो, इन्द्रवधूटी के समान लालवर्ण का हो और जो कौए के समान काले वर्ण का हो एवं जो सुवर्ण के वर्ण का हो तथा चिकना हो वह प्रशस्त माना गया है ।।६–८।। जो लम्बी गर्दनवाला हो, लम्बे आँख के कोटरे हों और छोटे कानवाला हो वह उत्तम अश्व है। इस प्रकार के अश्व जहाँ पर राजाओं के होते हैं वहाँ उनसे विजय की आशा छोड़ दे। जो अश्व संग्राम में अन्य अश्वों और हाथी को

---

१ च. सुश्रुतात।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पातितस्तु हयो दन्ती शुभदो दुःखदोऽन्यथा । श्रियः पुत्रास्तु गन्धर्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ।।१०।।
अश्वमेधे तु तुरगः पवित्रत्वात्तु हूयते । वृषो निम्बबृहत्यौ च गुडूची च समाक्षिका ।।११।।
[1]सिङ्घाणकहरी पिण्डी स्वेदश्च शिरसस्तथा । हिङ्गु पुष्करमूलं च नागरं साम्लवेतसम् ।।१२।।
पिप्पलीसैन्धवयुतं शूलघ्नं चोष्णवारिणा । नागरातिविषा मुस्ता सानन्ता बिल्वमालिका ।।१३।।
क्वाथमेषां पिबेद्वाजी सर्वातीसारनाशनम् । प्रियंगुसारिवाभ्यां च युक्तमाजं शृतं पयः ।।१४।।
पर्याप्तशर्करं पीत्वा श्रमाद्वाजी विमुच्यते । द्रोणिकायां तु दातव्या तैलवस्तिस्तुरंगमे ।।१५।।
कोष्ठजा वा शिरा वेध्यास्तेन तस्य सुखं भवेत् । दाडिमं त्रिफला व्योषं गुडश्च समभावितः ।।१६।।
पिण्डमेतत्प्रदातव्यमश्वानां कार्श्यनाशनम्[2] । प्रियंगुलोध्रमधुभिः पिबेद्वृषरसं हयः ।।१७।।
क्षीरं वा पञ्चकोलाद्यं कासनाद्धि प्रमुच्यते । प्रस्कन्धेषु च सर्वेषु श्रेय आदौ विशोधनम् ।।१८।।
अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नेहस्यवर्तिक्रमः स्मृतः । ज्वरितानां तुरंगाणां पयसैव क्रियाक्रमः ।।१९।।
लोध्रकरञ्जयोर्मूलं मातुलुङ्गाग्निनागराः । कुष्ठं हिङ्गु वचा रास्ना लेपोऽयं शोथनाशनः ।।२०।।
मञ्जिष्ठा मधुकं द्राक्षा बृहत्यौ रक्तचन्दनम् । त्रपुषीबीजमूलानि शृङ्गाटककशेरुकम् ।।२१।।
अजापयः शृतमिदं सुशीतं शर्करान्वितम् । पीत्वा निरशनो वाजी रक्तमेहात्प्रमुच्यते ।।२२।।

गिरा दे वह सुखदाता है एवं अन्य प्रकार का दुःखदाता है। उत्तम अश्वरत्न जो गन्धर्व अश्व कहा जाता है उससे लक्ष्मी और पुत्र होते हैं ।।९-१०।। अश्वमेध यज्ञ में पवित्र होने के कारण उसका हवन होता है। अडूसा, नीम, भटकैया, वनभाँटा, गुरुचि और मधु कफनाशक हैं। (घोड़े के शीत लगने पर इन्हीं का काढ़ा पिलावे। काढ़ा में मधु न डाले, काढ़ा के ठण्डा होने पर मधु डालकर पिलावे) घोड़े के सिर पर बालू आदि की पोटरी बनाकर स्वेद दे। हींग, पोहकर मूल, सोंठ, अम्लवेत, पीपरि, सेंधानमक के चूर्ण को उष्ण जल से देने पर घोड़े का उदर शूल शान्त हो जाता है ।।११-१२ ½।। सोंठ, अतीस, नागरमोथा, अनन्तमूल, कच्चे बेल का काढ़ा घोड़ों को पिलाने से उसका अतिसार ठीक हो जाता है। लता प्रियंगु और अनन्तमूल के साथ बकरी का दूध पकाकर उसमें पर्याप्त चीनी मिलाकर पिलाने से घोड़े की थकावट दूर हो जाती है ।।१३-१४ ½।। घोड़े की वस्ति देनी हो तो बड़े पात्र (द्रोणी) में तैल रखकर उससे नली को युक्त कर वस्ति दे अथवा कोष्ठ में जानेवाली सिरा को वेध करे। उससे घोड़े को सुख होता है। अनार, त्रिफला, त्रिकटु और गुड़ को सम भाग में पिण्ड बनाकर देने से घोड़े की दुर्बलता दूर होती है। अडूसे के स्वरस या काढ़े को लता प्रियंगु, लोध्र और मधु के साथ देने से या पञ्चकोल से सिद्ध दुग्ध पिलाने से कासना ठीक हो जाता है ।।१५-१७ ½।। पेट के सभी प्रकार के रोगों में पहले शोधन दे उसके पश्चात् अभ्यंग उपटन, स्नेह, नस्य और वर्ती लगावे। घोड़े के ज्वर होने पर दूध से ही उपचार करे ।।१८-१९।। लोध्र, कंजे की जड़, बिजौरा नींबू, चित्रक, सोंठ, कूट, हींग, वच और रास्ना को पीसकर लेप करने से शोथ नष्ट हो जाता है। मजीठ, मुलहठी, मुनक्का, वनभाँटा और भटकैया, लाल चन्दन, खीरे का बीज और जड़, सिंघाड़ा तथा कसेरू को बकरी के दूध में पकाकर और उपवास रखे तो घोड़े के पेशाब से रक्त जाना बन्द हो जाता है ।।२०-२२।। मन्या, हनु और कवल लीलने के स्थान की सिरा का शोथ एवं गलग्रह

---

१ छ. सिंहा गन्धकरी। २ क. ख. ङ. छ. कासना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्याहनुनिगालस्थशिराशोथो गलग्रहः । अभ्यङ्गः कटुतैलेन तत्र तेष्वेव शस्यते ।।२३।।
गलग्रहगदः शोथः प्रायशो गलदेशके । प्रत्यक्पुष्पी तथा वह्निः सैन्धवं सौरसो रसः ।।२४।।
कृष्णाहिङ्गुयुतैरेभिः कृत्वा नस्यं न सीदति । निशे ज्योतिष्मती पाठा कुष्णा कुष्ठं वचा मधु ।।२५।।
जिह्वास्तम्भे च लेपोऽयं गुडमूत्रयुतो हितः । तिलैर्यष्ट्या रजन्या च निम्बपत्रैश्च योजिता ।।२६।।
क्षौद्रेण शोधनी पिण्डी सर्पिषा व्रणरोपणी । अभिघातेन खञ्जन्ति ये ह्यश्वास्तीव्रवेदनाः ।।२७।।
परिषेकक्रिया तेषां तैलेनाऽऽशु रुजापहा । दोषो कोपाभिघाताभ्यां तलजे लिङ्गिते तथा ।।२८।।
शान्तिर्मत्स्यण्डिवृद्धाभ्यां पक्वभिन्ने व्रणक्रमः । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षमधूकवटबिल्वकैः ।।२९।।
प्रभूतसलिलक्वाथः सुखोष्णो व्रणशोधनः । शताह्वानागरं रास्नामञ्जिष्ठाकुष्ठसैन्धवैः ।।३०।।
देवदारुवचायुग्मरजनीरक्तचन्दनैः । तैलं सिद्धं कषायेण गुडूच्याः पयसा सह ।।३१।।
म्रक्षणे वस्तिनस्ये च योज्यं सर्वत्र लिङ्गिते । रक्तस्रावो जलौकाभिर्नेत्रान्ते नेत्ररोगिणः ।।३२।।
खदिरोदुम्बराश्वत्थकषायेण च साधनम् । धात्रीदुरालभातिक्ताप्रियंगुकुङ्कुमैः समैः ।।३३।।
गुडूच्या च कृतः कल्को हितो युक्तावलम्बिने । उत्पाते च शिले श्राव्ये शुष्कशोफे तथैव च ।।३४।।
क्षिप्रकारिणि दोषे च सद्योवेधनमिष्यते । गोशकृन्मञ्जिकाकुष्ठरजनीतिलसर्षपैः ।।३५।।
गवां मूत्रेण पिष्टैश्च मर्दनं कण्डुनाशनम् । शीतो मधुयुतः क्वाथो नासिकायां सशर्करः ।।३६।।

में कडुवे तेल की मालिश ठीक होती है। गलग्रह का रोग प्रायः गले प्रदेश में शोथ कहा जाता है। चिचिडी (अपामार्ग), चित्रक, तुलसी के पत्ते का रस, सैन्धव, पीपरि और हींग मिलाकर नस्य देने से गलग्रह ठीक हो जाता है ।।२३-२४$\frac{1}{2}$।। हरदी, दारुहरदी, मालकागुन, पाठा, पीपरि, कूट, वच और मधु में गुड़ और गोमूत्र मिलाकर उसका जिह्वास्तम्भ में लेप करना लाभकर होता है। तिल, मुलहठी, हरदी, नीम की पत्ती और मधु से बनायी हुई पिण्डी व्रण का शोधन एवं रोपण करनेवाली है। चोट लगने से जो घोड़े लँगड़ाते हैं और उनमें तीव्र वेदना होती है, उनकी तेल से सेंकाई करनी चाहिए जिससे पीड़ा शान्त हो जाती है ।।२५-२७$\frac{1}{2}$।। दोषों के कोप से या चोट लगने से पैर के नीचे फोड़ा हो जाय तो विधारा और चीनी को पकाकर बाँधे जब पककर फूट जाय तो व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए। पीपरि, गूलर, पाकरि, मुलहठी, वट, बिल्व का अधिक जल में बनाया हुआ काढ़ा व्रण का शोधन करनेवाला है। सौंफ, सोंठ, रास्ना, मजीठ, कूट, सेंधानमक, देवदारु, वच (कडुआ और मीठा), हरदी एवं लाल चन्दन (अर्थात् इन द्रव्यों का कल्क बनावे) तथा गुरुचि का काढ़ा और दूध मिलाकर पकावे। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ तेल फोड़े में, वस्ति में, नस्य में और पट्टी बाँधने में उपयुक्त होता है। नेत्र के रोगी को जोंक से नेत्र के अन्त में रक्तस्राव करावे। और खैर, गूलर और पीपरि के काढ़े से धोवे ।।२८-३२$\frac{1}{2}$।। आँवला, धमासा, कुटकी, लता प्रियंगु, कुंकुम तथा गुरुचि का कल्क, अण्डकोष के लटकने, उसमें पीड़ा होने से उसमें पत्थर के समान कड़ा होने पर, या फोड़ा हो जाय तो उसका स्राव कराने में तथा अण्डकोष के सूख जाने पर लेप करने के लिए उत्तम होता है ।।३३-३४।। दोष यदि शीघ्रकारी हो तो, उसका वेध कर देना चाहिए। गौ का गोबर, मजीठ, कूठ, हरदी, तिल तथा सर्षप को गोमूत्र से पीसकर मर्दन करने से घोड़े की खुजली शान्त हो जाती है। घोड़े के रक्त पित्त में काढ़े को ठण्डा करके उसमें मधु तथा शर्करा मिलाकर पिलाने से

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्तपित्तहरः पानादश्वकर्णे[1] तथैव च । सप्तमे सप्तमे देयमश्वानां लवणं दिने ।।३७।।
तथा भुक्तवतां देया प्रतिपाने च वारुणी । जीवनीयैः समधुरैर्मृद्वीकाशर्करायुतैः ।।३८।।
सपिप्पलीकैः शरदि प्रतिपानं सपद्मकैः । विडङ्गपिप्पलीधान्यशताह्वालोध्रसैन्धवैः ।।३९।।
[2]सचित्रकैस्तुरंगाणां प्रतिपानं हिमागमे । लोध्रप्रियंगुकामुस्तापिप्पलीविश्वभेषजैः ।।४०।।
सक्षौद्रैः प्रतिपानं स्याद्वसन्ते कफनाशनम् । प्रियंगुपिप्पलीलोध्रयष्ट्याह्वैः समहौषधैः ।।४१।।
निदाघे सगुडा देया मदिरा प्रतिपानके । लोध्रकाष्ठं सलवणं पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ।।४२।।
भवेत्तैलयुतैरेभिः प्रतिपानं घनागमे । निदाघोद्धृतपित्ता ये शरत्सु पुष्टशोणिताः ।।४३।।
प्रावृड्भिन्नपुरीषाश्च पिबेयुर्वाजिनो घृतम् । पिबेयुर्वाजिनस्तैलं कफवाय्वधिकास्तु ये ।।४४।।
[3]स्नेहात्तापोद्भवो येषां कार्यं तेषां विरूक्षणम् । त्र्यहं यवागू रूक्षा स्याद्भोजनं तक्रसंयुतम् ।।४५।।
शरन्निदाघयोः सर्पिस्तैलं शीतवसन्तयोः । वर्षासु शिशिरे चैव वस्तौ यमकमिष्यते ।।४६।।
गुर्वभिष्यन्दिभक्तानि व्यायामः स्नानमातपम् । वायुवर्जं च वाहस्य स्नेहपीतस्य वर्जितम् ।।४७।।
स्नानं पानं सकृत्कुर्यादश्वानां[4] सलिलागमे । अत्यर्थं दुर्दिने काले पानमेकं प्रशस्यते ।।४८।।
युक्त(क्तं)शीतातपे काले द्विःपानं स्नपनं सकृत् । ग्रीष्मे त्रिस्नानं पानं स्याच्चिरं तस्यावगाहनम् ।।४९।।

रक्त पित्त शान्त होता है। काढ़ा नासिका या कान में छोड़ना चाहिए। सातवें-सातवें दिन घोड़े को नमक देना चाहिए ।।३५-३७।। घोड़े को भोजन कराने के पश्चात् पुनः पीने के लिए शराब पिलावे। शरद् में जीवनीय वर्ग की ओषधियों तथा पीपरि और मधुर ओषधियों में मुनक्का, चीनी और पद्माख मिलाकर प्रतिपान के लिए सन्धान करे। वायविडंग, पीपरि, धनिया, सौंफ, लोध्र एवं सेंधानमक और चित्रक का संधान प्रतिपान के लिए ठण्डी के दिनों में करे। वसन्त में कफनाशक प्रियंगु, पीपरि, लोध्र, मुलहठी और सोंठ का प्रतिपान के लिए सन्धान करके मधु के साथ प्रतिपान के लिए दे ।।३८-४१।। गर्मी के दिनों में मदिरा में गुड़ मिलाकर प्रतिपान के लिए दे। लोध्र की लकड़ी, नमक, तीनों पीपरि और सोंठ का सन्धान कर तैल मिलाकर वर्षा में दे। जिन अश्वों का गर्मी में पित्त निकल गया हो एवं शरद् ऋतु में रक्त की पुष्टि हो गयी हो और वर्षा में पतली टट्टी आ रही हो उन घोड़ों को घृत पिलाना चाहिए। जो अश्व कफ दोष या वायु दोष की अधिकतावाला हो उसे तैल पिलाना चाहिए। स्नेह पिलाने से जिन अश्वों में गर्मी उत्पन्न हो गयी हो उसे रुक्ष पदार्थ देना चाहिए। तीन दिनों तक रुक्ष यवागू पिलाना चाहिए और भोजन मट्ठा के साथ दे ।।४२-४५।। शरत् और गर्मी में घृत, शीत एवं वसन्त में तैल, वर्षा और शिशिर ऋतु में तथा वस्ति में तैल और घृत मिलाकर देना चाहिए। जिस अश्व को स्नेह पान कराया गया हो उसे गरिष्ठ तथा कब्जकारक भोजन, व्यायाम, स्नान, धूप और तेज हवा से बचाकर रखना चाहिए ।।४६-४७।। वर्षा काल में एक बार ही स्नान और प्रतिपान (शराब का) कराना हितकर है। दुर्दिन (जिस दिन मेघ से आच्छादित आकाश हो) में केवल एक पान ही अधिक कराना चाहिए। शीत और धूप के समय एक बार स्नान और दो बार प्रतिपान करावे। ग्रीष्म ऋतु में तीन बार स्नान और

---

१ छ. °कर्णैस्तथै°। २ ख. सचेत्रकै°। ३ छ. स्नेहव्यापद्भ°। ४ क. ख. ङ. समुद्दिष्टमश्वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निस्तुषाणां प्रदातव्या यवानां चतुराढकी। चणकव्रीहिमौद्गानि कलायं वाऽपि दापयेत् ।।५०।।
अहोरात्रेण चार्धस्य यवसस्य तुला दश। अष्टौ शुष्कस्य दातव्याश्चतस्रोऽथ वपुष्मतः ।।५१।।
दूर्वाः पित्तं यवः कासं बुसश्च श्लेष्मसंचयम्। नाशयत्यर्जुनः श्वासं तथा वालो बलक्षयम् ।।५२।।
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लेष्मजाः सांनिपातिकाः। न रोगाः पीडयिष्यन्ति दूर्वाहारं तुरंगमम् ।।५३।।
द्वौ रज्जुबन्धौ दुष्टानां पक्षयोरुभयोरपि। [1]पश्चाद्धनुश्च कर्तव्यो दूरकीलव्यपाश्रयः ।।५४।।
वा (व) सेयुस्त्वास्तृते स्थाने कृतधूपनभूमयः। यत्नोपन्यस्तयवसाः सप्रदीपाः सुरक्षिताः ।।५५।।
कृकवाक्वजकपयो धार्याश्चाश्वगृहे मृगाः ।।५६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वचिकित्साकथनं नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८९।।

अथ नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वशान्तिः

शालिहोत्र उवाच

अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि वाजिरोगविमर्दनीम्। नित्यां नैमित्तिकीं काम्यां विविधां शृणु सुश्रुत ।।१।।
शुभे दिने श्रीधरं च श्रियमुच्चैःश्रवः सुतम्। हयराजं समभ्यर्च्य सावित्रैर्जुहुयाद्घृतम् ।।२।।

पान करावे देर तक जल में तैरावे। भूसी निकालकर चार सेर यव खाने को दे। इसी तरह चना, व्रीहि, मूँग और छोटी काली मटर भी दे ।।४८-५०।। २४ घण्टे में अच्छे शरीरवाले घोड़े को यवस के दस तुला का आधा (पाँच तुला) एवं शुष्क खाद्य पदार्थ आठ तुला या चार तुला देनी चाहिए। दूब पित्त को, जौ कास को, भूसा श्लेष्म के संचय को, अर्जुन श्वास को और वाल बलक्षय को नष्ट करता है। जिस घोड़े को केवल दूब खिलाया जाता है उसे वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक और सान्निपातिक रोग नहीं होते ।।५१-५३।। दुष्ट अश्व के बगलों में दो खूँटी गाड़कर रस्सी से बाँध दे और बहुत दूर पर खूँटी गाड़कर एक पिछाड़ी लगावे। घोड़े को फैले हुए स्थान में धूप करके यत्नपूर्वक यवस (आहार) और दीप रखकर सुरक्षित रखे। घुड़साल में मुर्गी, बकरा, वानर और मृगों को रखना चाहिए ।।५४-५६।।

श्री अग्निमहापुराण में अश्व-चिकित्सा-कथन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।।२८९।।

अध्याय २९०

अश्व-शान्ति

शालिहोत्र बोले-हे सुश्रुत! सुनो, अब मैं नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य अनेक प्रकार की अश्व-शान्ति बतलाऊँगा, जो घोड़ों के रोगों को दूर करनेवाली है। शुभ दिन में श्री विष्णु, लक्ष्मी तथा उच्चैःश्रवा के पुत्र हयराज की अर्चना करके गायत्री-मन्त्र से घृत की आहुति दे ।।१-२।। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए। इससे अश्वों की वृद्धि होती

---

१ क. ङ. श्चाद्धन्वश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यादश्ववृद्धिस्ततो भवेत् । अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां च शान्तिकम् ।।३।।
बहिः कुर्याद्विशेषेण नासत्यौ वरुणं यजेत् । समुल्लिख्य ततो देवीं शाखाभिः परिवारयेत् ।।४।।
घटान्सर्वरसैः पूर्णान्दिक्षु दद्यात्सवस्त्रकान् । यवाज्यं जुहुयात्प्रार्च्य यजेदश्वांश्च साश्विनान् ।।५।।
विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यान्नैमित्तिकमतः शृणु । मकरादौ हयानां च पद्मैर्विष्णुं श्रियं यजेत् ।।६।।
ब्रह्माणं शंकरं सोममादित्यं च तथाऽश्विनौ । रेवन्तमुच्चैः श्रवसं दिक्पालांश्च दलेष्वपि ।।७।।
प्रत्येकं पूर्णकुम्भेषु वेद्यां तत्सौम्यता (या) [1]हुनेत् । तिलाक्षताज्यसिद्धार्थान्देवतानां शतं शतम् ।।
उपोषितेन कर्तव्यं कर्म चाश्वरुजापहम् ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वशान्तिकथनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९०।।

अथैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजशान्तिः

शालिहोत्र उवाच

गजशान्तिं प्रवक्ष्यामि गजरोगविमर्दनीम् । विष्णुं श्रियं च पञ्चम्यां नागमैरावतं यजेत् ।।१।।
ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं शक्रं वैश्रवणं यमम् । चन्द्रार्कौ वरुणं वायुमग्निं पृथ्वीं तथा च खम् ।।२।।

है। आश्विन मास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को (घोड़ों की) बाह्य शान्ति के लिए विशेष रूप से अश्विनीकुमार और वरुण की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर देवी का चित्र बनाकर उसे शाखाओं से ढक देना चाहिए। सभी प्रकार के रसों से परिपूर्ण, वस्त्रों से ढके हुए घड़ों को दसों दिशाओं में रखकर पूजा करनी चाहिए और तदनन्तर यव तथा घृत की आहुति देनी चाहिए। उसके बाद अश्विनीकुमार के साथ घोड़ों के लिए भी यजन करके, ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए ।।३–५।। अब घोड़ों की नैमित्तिक शान्ति के सम्बन्ध में सुनो। मकर संक्रान्ति आदि शुभ पर्वों में कमलों से श्री विष्णु और लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए। कमलों के दलों में ब्रह्मा, शंकर, सोम, सूर्य, अश्विनीकुमार, रेवन्त, उच्चैःश्रवा तथा दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए। वेदी के ऊपर रखे हुए प्रत्येक जलपूरित घड़े में तिल, अक्षत, घी और सरसों से देवताओं की प्रसन्नता के लिए सौ–सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। इससे अश्व में सौम्य गुण बढ़ता है। अश्वपालक को उपवास करके घोड़े के रोगों को दूर करने के लिए अनुष्ठान करना चाहिए ।।६–८।।

श्री अग्निमहापुराण में अश्व–शान्ति–कथन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९०।।

अध्याय २९१

गज–शान्ति

शालिहोत्र बोले–(अब) मैं हाथियों के रोगों को दूर करनेवाली (गज) शान्ति बतलाऊँगा। पञ्चमी तिथि को विष्णु, लक्ष्मी तथा ऐरावत गज की अर्चना करनी चाहिए। (गजों की शान्ति हेतु) ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, यम, चन्द्र, सूर्य, वरुण, वायु, अग्नि, आकाश, शेषनाग, आठों हाथियों, देवयोनियों, विरूपाक्ष (शंकर), महापद्म

---

१ छ. स्थले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शेषं शैलान्कुञ्जरांश्च ये तेऽष्टौ देवयोनयः । विरूपाक्षं महापद्मं भद्रं सुमनसं तथा ।।३।।
कमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नागा अष्टौ होमोऽथ दक्षिणाम् ।।४।।
गजाः शान्त्युदकैः सिक्ता वृद्धौ नैमित्तिकं शृणु । गजानां मकरादौ च ऐशान्यां नगराद्बहिः ।।५।।
स्थण्डिले कमले मध्ये विष्णुं लक्ष्मीं च केसरे । ब्रह्माणं भास्करं पृथ्वीं यजेत्स्कन्दं ह्यनन्तकम् ।।६।।
खं शिवं सोममिन्द्राद्रींस्तदस्त्राणि दले क्रमात् । वज्रं शक्तिं च दण्डं च तोमरं पाशकं गदाम् ।।७।।
शूलं पद्मं बहिर्वृन्ते (त्ते) चक्रे सूर्यं तथाऽश्विनौ । वसूनष्टौ तथा साध्यान्याम्येऽथ नैर्ऋते दले ।।८।।
देवानाङ्गिरसश्चान्याभृगू(गूं)श्च मरुतोऽनिले । विश्वे(श्व) देवांस्तथा दक्षे रुद्रानरौद्रेऽथ मण्डले ।।९।।
वृत्तया रेखया तत्र देवान्वै बाह्यतो यजेत् । सूत्रकारानृषीन्वाणीं पूर्वादौ सरितो गिरीन् ।।१०।।
महाभूतानि कोणेषु ऐशान्यादिषु संयजेत् । पद्मं चक्रं गदां शङ्खं चतुरश्रं तु मण्डलम् ।।११।।
चतुर्द्वारं ततः कुम्भानग्न्यादौ च पताकिकाः । चत्वा(तु)रस्तोरणान्द्वारि(?)नागानैरावतादिकान् ।।१२।।
पूर्वादौ चौषधीभिश्च देवानां भाजनं पृथक् । कृथक्शताहुतीश्चाऽऽज्यैर्गजानर्च्य प्रदक्षिणम् ।।१३।।
नागं वह्निं देवतादीन्वाद्यैर्जग्मुः स्वकं गृहम् । द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्याद्धस्तिवैद्यादिकांस्तथा ।।१४।।

(विधि विशेष), भद्र, सुमनस् और कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, सर्वभौम नामक आठों दिग्गजों की पूजा करनी चाहिए। इसी शान्ति के लिए हवन करके दक्षिणा भी देनी चाहिए ।।१-४।। अब हाथियों की वृद्धि के हेतु नैमित्तिक शान्ति के विषय में सुनो। माङ्गलिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से हाथियों को स्नान कराना चाहिए। शुभ मुहूर्त्त में नगर के बाहर ईशानकोण में गजों की शान्ति करानी चाहिए। पृथ्वी पर एक कमल की स्थापना करके उसके मध्य में विष्णु और लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए। स्थण्डिल के ऊपर बने हुए कमल के बीच में विष्णु और लक्ष्मी का तथा केसर पर ब्रह्मा, सूर्य, पृथ्वी, स्कन्द और (षडानन) अनन्तक का पूजन करना चाहिए ।।५-६।। आकाश, शिव, चन्द्रमा, इन्द्र आदि देवताओं तथा क्रमशः उनके वज्र, शक्ति, दण्ड, तोमर, पाश, गदा, शूल, पद्म आदि आयुधों का पूजन (उस कमल के) दल पर करना चाहिए। दक्षिणाभिमुख होकर कमल के वृन्त के बाहर चक्र में सूर्य, अश्विनीकुमार, आठों वसु तथा (अन्य) साध्य (देवताओं) की पूजा करनी चाहिए ।।७-८।। नैर्ऋतकोण में स्थित (उस) कमल दल पर देवताओं तथा अङ्गिरा, भृगु आदि ऋषियों की अर्चना करनी चाहिए। वायव्यकोण में रखे हुए कमल दल पर पवन देव की दक्षिण दिशा में, विश्वेदेवों की रौद्र मण्डल (अर्थात् ईशानकोण) में (रखे हुए कमल दल पर) एकादश रुद्रों की अर्चना करनी चाहिए। बाहर गोलाकृति रेखा के ऊपर देवताओं का आवाहन तथा पूजन करना चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं में सूत्रकार ऋषियों, वाग्देवता, सरिताओं तथा पर्वतों का पूजन करना चाहिए ।।९-१०।। ईशान आदि कोणों में महाभूतों की अर्चना करनी चाहिए। पद्म, चक्र, गदा, शङ्ख, चौकोर मण्डल, चतुर्द्वार अन्यादि कोणों में संस्थापित घड़ों, छोटी-छोटी पताकाओं, चार तोरण (जो द्वार पर बँधे हों) तथा ऐरावत आदि गजों की भी पूजा करनी चाहिए ।।११-१२।। पूर्वादि दिशाओं में ओषधियों से देवताओं के पात्रों तथा गजों का पृथक् पूजन करके और घृत की सौ आहुतियाँ देकर तदनन्तर प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसके बाद हाथी, वह्नि तथा अन्यान्य देवताओं की परिक्रमा करके गाजे-बाजे के साथ अपने घर को आना चाहिए। ब्राह्मणों तथा हस्ति-चिकित्सा-निपुण वैद्यों को दक्षिणा भी देनी चाहिए ।।१३-१४।। देश-काल के ज्ञाता व्यक्ति को (युद्ध-यात्रा आदि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करिणं तु समारुह्य वदेत्कर्णे तु कालवित् । नागराजे मृते शान्तिं कृत्वाऽन्यस्मिञ्जपेन्मनुम् ।।१५।।
श्रीगजस्त्वं कृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः । गन्धमाल्याग्रभक्तैस्त्वां पूजयिष्यति पार्थिवः ।।१६।।
लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तदा तव । पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे ।।१७।।
तिर्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यं भावमनुस्मर । देवासुरे पुरा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः ।।१८।।
ऐरावतसुतः श्रीमानरिष्टो नाम वारणः । श्रीगजानां तु तत्तेजः सर्वमेवोपतिष्ठिते ।।१९।।
तत्तेजस्तव नागेन्द्र दिव्यभावसमन्वितम् । उपतिष्ठतु भद्रं ते रक्ष राजानमाहवे ।।२०।।
इत्येवमभिषिक्तं तमारोहेत शुभे नृपः । तस्यानुगमनं कुर्युः सशस्त्रा नरपुंगवाः ।।२१।।
शालास्वसौ स्थण्डिलेब्जे दिक्पालादीन्यजेद्बहिः । केसरेषु बलं नागं भुवं चैव सरस्वतीम् ।।२२।।
[1]मध्ये तु डिण्डिमं[2] प्रार्च्य गन्धमाल्यानुलेपनैः । हुत्वा देयस्तु कलशो रसपूर्णो द्विजाय च ।।२३।।
गजाध्यक्षं हस्तिपं च गणितज्ञं च पूजयेत् । गजाध्यक्षाय तं दद्याड्डिण्डिमं सोऽपि वादयेत् ।।
शुभगम्भीरशब्दैः स्याज्जघनस्थोऽभिवादयेत् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गजशान्तिकथनं नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९१।।

में) हाथी पर चढ़कर उसके कान में अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए कुछ कहना चाहिए। गजराज की मृत्यु हो जाने पर उसके शरीर को शान्त करके इस मन्त्र का जप करना चाहिए–हे गजदेव! राजा ने तुम्हें श्रीगजवाला महत्त्व प्रदान किया है। तुम इस राजा के अग्रणी हो। यह राजा चन्दन, माल्य तथा श्रेष्ठ भोजनों से तुम्हारी पूजा करेगा ।।१५–१६।। तदनन्तर उस (राजा) की ही आज्ञा से सभी मनुष्य भी तुम्हारी पूजा किया करेंगे। तुम्हें युद्ध, मार्ग तथा घर में राजा की रक्षा करनी चाहिए। तुम तिर्यग्भाव (पशुत्व भाव) को छोड़कर दिव्य भाव का स्मरण करो। प्राचीन काल में देवासुर-संग्राम में देवताओं ने ऐरावत के पुत्र श्रीमान् अरिष्ट नामक हाथी को श्रीगज के रूप में बनाया था। जिसमें (अन्य) समस्त श्रीगजों का तेज भी व्याप्त हो गया था ।।१७–१९।। हे गजेन्द्र! दिव्य भाव से परिपूर्ण वह समस्त तेज तुम्हारे अन्दर आ जावे। तुम युद्ध में राजा की रक्षा करो। राजा को इस प्रकार से अभिषिक्त हुए हाथी के ऊपर शुभ मुहूर्त में सवारी करनी चाहिए। उसके पीछे–पीछे शस्त्रधारी श्रेष्ठ पुरुषों को चलना चाहिए ।।२०–२१।। गजशाला के बाहर भूमि पर चित्रित कमल में दिक्पालों का यजन करना चाहिए। कमल के केसरों पर सेना, गज, पृथ्वी तथा सरस्वती जी की पूजा करनी चाहिए। कमल के मध्य भाग में डिण्डिम का गन्ध, माल्य तथा अनुलेपन के द्वारा पूजन करना चाहिए। गजाध्यक्ष, हस्तिप (पीलवान) तथा गणितज्ञ (ज्योतिषी) की पूजा भी करनी चाहिए। गजाध्यक्ष को डिण्डिम नामक बाजा देना चाहिए जिसे उस गजाध्यक्ष को बजाना चाहिए। तदनन्तर गजराज के जघन–प्रदेश पर अवस्थित होकर अच्छे–अच्छे गम्भीर शब्दों से उसका अभिवादन करना चाहिए ।।२२–२४।।

श्री अग्निमहापुराण में गजशान्ति कथन नामक दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९१।।

---

१ छ. मध्येषु डिं। २ क. ङ. च. दण्डिनं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गवायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच

गोविप्रपालनं कार्यं राज्ञा गोशान्तिमावदे । गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।१।।
शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् । गवां कण्डूयनं वारिदानं शृङ्गस्य मर्दनम् ।।२।।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि [1]सर्पिः कुशोदकम् । ([2]षडङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नादिनिवारणम् ।३।।
रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवाम् । यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः ।।४।।
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् । गोदानात्कीर्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ।।५।।
गवां श्वासात्पवित्रा भूः स्पर्शनात्किल्विषक्षयः । गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि कुशोदकम्) ।।६।।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् । सर्वाशुभविनाशाय पुराऽऽचरितमीश्वरैः ।।७।।
प्रत्येकं च त्र्यहाभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् । सर्वकामप्रदं चैतत्सर्वाशुभविमर्दनम् ।।८।।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् । निर्मलाः सर्वकामाप्त्या स्वर्गगाः स्युर्नरोत्तमाः ।।९।।

अध्याय २९२

गवायुर्वेद

धन्वन्तरि बोले–गो और ब्राह्मण का पालन करना राजा का कर्त्तव्य है। गो–शान्ति को कहता हूँ। गो पवित्र और मंगलकारी है, गो परलोक प्रतिष्ठित है ।।१।। गौ का गोबर और मूत्र दरिद्रता–नाश का परम उपाय है। गौ को खुजलाना, जल देना और सींग मल देना चाहिए। गोमूत्र, गोबर, गो का दूध, दही, घृत और कुश का पानी ये छह वस्तुएँ पीने से दुःस्वप्न आदि निवारण में अति उत्तम हैं। गोरोचन से विष एवं राक्षसों का नाश होता है। गौओं को ग्रास देना स्वर्ग प्राप्त कराता है। जिस घर में गौ दुःखित रहती है वह घर नरक हो जाता है। दूसरे के गौ को अग्रासन देना स्वर्ग प्राप्त करना है। गौ का हित करनेवाला ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। गोदान से, गौओं के कीर्त्तन से, रक्षा करने से कुल का उद्धार होता है ।।२–५।। गौ के श्वास से भूमि पवित्र हो जाती है। स्पर्शन से पाप क्षीण हो जाता है। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत और कुशोदक का पान करके एक रात्रि उपवास करने से श्वपाकता से भी शुद्धि हो जाती है। सम्पूर्ण अशुभों के नाश के लिए ईश्वर ने पूर्व काल में गौ की रचना की थी ।।६–७।। पञ्चगव्य में से किसी एक का भी तीन दिन तक सेवन करने से महासान्तपन कर्म कहा जाता है। यह सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला तथा सम्पूर्ण अशुभों का नाशक है। इक्कीस दिन तक गौ के दूध मात्र पर रहने से कृच्छ्र से कृच्छ्र व्रत कहा जाता है जो सम्पूर्ण पाप नष्ट करता है। वह नरोत्तम पवित्र होकर सब कामनाओं को प्राप्त करके स्वर्ग जाता है। तीन दिन तक गर्म–गर्म मूत्र पीवे, तीन दिन तक गर्म घृत

---

१ छ. सर्पिश्च रोचना। ष°। २ षडङ्गं...कुशोदकम् ग्रन्थोऽयं च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्। त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ।।१०।।
तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम्। शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद्ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम् ।।११।।
गोमूत्रेणाऽऽचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्याच्च गोरसैः। गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ।।१२।।
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी [1]सगणो भवेत्। विद्यां च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ।।१३।।
गीतैर्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते। गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः ।।१४।।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम्। अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ।।१५।।
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च। हविषा मंत्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ।।१६।।
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः। सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ।।१७।।
गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमम्। गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः ।।१८।।
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।।१९।।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मंत्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।।२०।।
देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः सकलं जगत्। धार्यते वै सदा तस्मात्सर्वे पूज्यतमा मताः ।।२१।।
पिबन्ति यत्र तत्तीर्थं गङ्गाद्या गाव एव हि। गवां माहात्म्यमुक्तं हि चिकित्सां च तथा शृणु ।।२२।।

पीवे, तीन दिन तक गर्म दूध पीवे और बाद के तीन दिन वायु पीवे ।।८-१०।। इसे तप्तकृच्छ्रव्रत कहते हैं। यह व्रत सब पापों का नाश करनेवाला तथा ब्रह्मलोक देनेवाला है। ऊपर की ही वस्तुओं का ठण्डा सेवन करे तो शीतकृच्छ्र कहा जाता है। यह ब्रह्मा का कथन है। यह व्रत ब्रह्मलोक देनेवाला है। गोमूत्र से स्नानकर गोरस का ही भोजन करे। गौओं के भोजन कर लेने के बाद भोजन करे और गौओं के साथ टहले। इस प्रकार गो-व्रत धारण करे। एक मास ऐसा व्रत कर लेने से निष्पाप होकर स्वर्ग को जाता है और गोमती विद्या का जाप करके गोलोक को जाता है ।।११-१३।। स्वर्ग में विमानों में टहलता है, अप्सराओं के गीत एवं नृत्य सुनने व देखने को मिलता है। गौएँ नित्य सुगन्धित रहती हैं। उनकी गन्ध गुग्गुल के गन्ध के समान होती है। प्राणियों की प्रतिष्ठा गौएँ हैं। गौएँ ही परम स्वस्त्ययन हैं। देवों की हवि के लिए अन्न गोरस ही है। समस्त प्राणियों को पवित्र करनेवाली गौएँ हैं। सबकी रक्षा और वहन करनेवाली हैं। मन्त्र से पवित्र करके हवन सामग्री से गोधन आदि के द्वारा देवताओं को भी स्वर्ग में तृप्त करनेवाली हैं ।।१४-१६।। ऋषियों के अग्निहोत्र तथा हवन के लिए गौ ही नियुक्त है। सम्पूर्ण प्राणियों की शरण गौ ही हैं। गौ परम पवित्र हैं। गौ उत्तम मांगल्य वस्तु हैं। गौ ही स्वर्ग की सीढ़ी हैं। और गौ ही धन्य एवं सनातन हैं ।।१७-१८।। गौओं के लिए नमस्कार है, श्रीमती के लिए नमस्कार है। कामधेनु के लिए नमस्कार है। ब्रह्मसुता के लिए नमस्कार है। पवित्रा के लिए नमस्कार है। गौ और ब्राह्मण इन दोनों का कुल एक था, किन्तु प्रयोजन की दृष्टि से वह पृथक्-पृथक् कर दिया गया। गौओं के ऊपर हवि आधारित की गयी तथा ब्राह्मणों के ऊपर मन्त्र आधारित किये गये ।।१९-२०।। देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु और साधुनी पवित्र हैं। ये सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं। इसलिए ये सब सदा पूज्यतम हैं। जहाँ पर गौएँ पानी पीती हों वहाँ तीर्थ है और गौएँ गंगा आदि नदियाँ भी मानी जाती हैं। इस प्रकार गौ का माहात्म्य कहा, अब चिकित्सा सुनो।

---

१ छ. स्वर्गगो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शृङ्गामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात्ससैन्धवम्। शृङ्गवेरबलामांसीकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।।२३।।
कर्णशूलेषु सर्वेषु मज्जिष्ठाहिङ्गुसैन्धवैः। सिद्धं तैलं प्रदातव्यं रसोनेनाथ वा पुनः ।।२४।।
बिल्वमूलमपामार्गं धातकी च सपाटला। कुटजं दन्तशूलेषु[1] लेपात्तच्छूलनाशनम् ।।२५।।
दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं[2] रामविपाचितम्। (मुखरोगहरं[3] ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवम्।।२६।।
शृङ्गवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे। हृच्छूले वस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ।।२७।।
त्रिफला घृतमिश्रा च गवां पाने प्रशस्यते। अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठां चैव प्रदापयेत् ।।२८।।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु[4] तथा शाखागदेषु च। शृङ्गवेरं च भार्ङ्गीं च कासे श्वासे प्रदापयेत् ।।२९।।
दातव्या भग्नसंधाने प्रियंगुर्लवणान्विता। तैलं वातहर पित्ते मधुयष्टीविपाचितम् ।।३०।।
कफे व्योषं च समधु सपुष्टकरजोऽस्त्रजे। तैलाज्यं हरितालं च भग्नक्षतिशृतं ददेत् ।।३१।।
माषास्तिलाः सगोधूमाः पयः[5] क्षीरं घृतं तथा। एषां पिण्डी सलवणा वत्सानां पुष्टिदा त्वियम् ।।३२।।
बलप्रदा विषाणां स्याद्गृहे नाशाय धूपकः। देवदारु वचा मांसी गुग्गुलुर्हिङ्गुसर्षपाः ।।३३।।
ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हितः। घण्टा चैव गवां कार्या धूपेनानेन धूपिता ।।३४।।
अश्वगन्धातिलैः शुक्लं तेन गौः क्षीरिणी भवेत्। रसायनं च पिण्याकं [6]मूर्तौ यो धार्यते (?)गृहे ।।३५।।

जब गौ को सींग सम्बन्धी कोई रोग हो जाय तब सेंधानमक मिलाकर तेल पिलावें। अदरक, बरिअरा, जटामांसी का कल्क बनाकर उसमें मधु मिलाकर पिलावे ।।२१-२३।। सब प्रकार के कर्णशूल में मजीठ, हींग तथा सेंधानमक मिलाकर तेल पकावे अथवा लहसुन के कल्क डालकर तेल पकावे, उस तेल को कान में डाले। बेल की जड़, चिचड़ी, धव का फूल, पाठा और इन्द्र जौ को पीसकर दन्तशूल में लेप करने से वह ठीक होता है। दन्तशूल का नाशक द्रव्यों के क्वाथ और कल्क से पकाया हुआ घृत गौओं के सम्पूर्ण मुखरोग तथा दन्तरोग में मालिश करना उत्तम है। जिह्वा रोग हो तो उसमें सैन्धव मिलाकर मालिश कर दे ।।२४-२६।। अदरक, हरदी, दारुहरदी, त्रिफला का गलग्रह रोग (गलाघोंटू) में काढ़ा बनाकर देना चाहिए। तथा हृदयशूल, वस्तिशूल, वातरोग और क्षयरोग में भी देना चाहिए। घृत और त्रिफला गौ को पिलाना चाहिए। अतिसार रोग में दोनों हरदी तथा पाठा को काढ़े के रूप में देना उचित है। सम्पूर्ण कोष्ठ के रोगों में, श्वास कास में और शाखा के रोग में, अदरक और भारंगी को काढ़े के रूप में देना चाहिए ।।२७-२९।। गौ की कहीं हड्डी टूट जाय तो उसे जोड़ने के लिए लता प्रियंगु में सेंधानमक मिलाकर दे। तेल वात हर है। जेठी मधु से पकाया गया तेल पित्तहर है। कफज रोग में सोंठ, मिर्च, पीपरि का काढ़ा बनाकर उसमें मधु मिलाकर दे। यह रक्तस्राव में भी पुष्टिकारक है। कहीं पर कट-फट गया हो तो गर्म करके तैल घृत में हरताल देवे। उड़द, तिल, गेहूँ, दूध, घृत, खीर की पिण्डी में नमक मिलाकर बछड़े को देने से पुष्टि होती है ।।३०-३२।। गोशाला में विष, ग्रह, रोग आदि को नाश करने के लिए देवदारु, वच, जटामांसी, गुग्गुल, हींग और सर्षप की धूनी दे। इससे धूपित कर गौओं को घण्टा बाँधे। असगंध तथा सफेद तिल मिलाकर देने से गौ में दूध बढ़ जाता है। जो घर पर रसायन तथा खली रखता है, वह भी उचित है। तिल की खली रसायन है जो कि पिण्ड रूप में घर में रखी जाती है ।।३३-३५।। शान्ति कर्म के लिए

---

१ छ. दन्तमूलेषु। २ च.° तं वाम°। ३ क. ङ. मुखरोगहरं···नमोन्ताश्च पुस्तकयोर्नास्ति। ४ च. रोमरोगेषु। ५ छ. पशक्षी°। ६. ख. मत्तो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गवां पुरीषे पञ्चम्यां नित्यं शान्त्यै श्रियं यजेत् । वासुदेवं च गन्धाद्यैरपरा शान्तिरुच्यते ।।३६।।
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां यजेद्धरिम् । हरिं रुद्रमजं सूर्यं श्रियमग्निं घृतेन च ।।३७।।
दधि संप्राश्य गाः पूज्य कार्या वह्निप्रदक्षिणाः । वृषाणां योजयेद्युद्धं गीतवाद्यरवैर्बहिः।।३८।।
गवां तु लवणं देयं ब्राह्मणानां च दक्षिणा । नैमित्तिके माकरादौ यजेद्विष्णुं सह श्रिया ।।।३९।।
स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केसरगान्सुरान् । [1]सुभद्राय रविः पूज्यो बहुरूपो बलिर्बहिः ।।४०।।
खं विश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धिः शान्तिश्च रोहिणी । दिग्धेनवो हि पूर्वाद्याः कृशरैश्चन्द्र ईश्वरः ।।४१।।
दिक्पालाः पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत् । क्षीरवृक्षस्य समिधः सर्षपाक्षततण्डुलान् ।।४२।।
शतं शतं सुवर्णं च कांस्यादिकं द्विजे ददेत् । गावः पूज्या विमोक्तव्याः शान्त्यै क्षीरादिसंयुताः ।।४३।।

अग्निरुवाच

शालिहोत्रः सुश्रुताय हयायुर्वेदमुक्तवान् । पालकाप्योऽङ्गराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत् ।।४४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गवायुर्वेदकथनं नाम द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९२।।

गोबर में पञ्चमी तिथि को सदा श्री का यज्ञ करे। गन्ध, पुष्प आदि से वासुदेव की पूजा को दूसरी शान्ति कहते हैं। आश्विन मास की शुक्लपक्ष की पूर्णिमा के दिन हरि की पूजा करे। हरि, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, लक्ष्मी और अग्नि की घृत से पूजा करे। युद्ध यात्रा करने के पूर्व दही का प्राशन कर, गौ की पूजा और अग्नि की प्रदक्षिणा करके तब बैलों को रथ में युद्ध यात्रा के लिए जोड़े और बाहर में गीत-बाजा आदि की ध्वनि करावे ।।३६-३८।। गौ को नमक और ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। नैमित्तिक मकर आदि संक्रान्ति के पर्व में लक्ष्मी के साथ विष्णु का याग करे। वेदी परं मध्य में कमल बनाकर और केसर से दिशाओं में देवताओं को बनाकर कल्याण के लिए बहुरूपवाले सूर्य की पूजा करे और बाहर बलि दे। आकाश में विश्वरूप (परमात्मा) की और पूर्वादि दिशाक्रम से सिद्धि, ऋद्धि, शान्ति, रोहिणी दिशाओं की गोमाताएँ, चन्द्र और ईश्वर की कृशर (खिचड़ी) से पूजा करे ।।३९-४१।। दिक्पालों को कमल के पत्ते पर तथा घड़ों में और अग्नि में हवन करे। पीपल की लकड़ी की समिधा, सरसों, अक्षत (चावल) का हवन करे। सौ-सौ सुवर्ण की मुद्रा और कांस्य आदि का बर्तन ब्राह्मणों को दे। दूधवाली गौएँ ब्राह्मण को शान्ति कर्म के लिए देनी चाहिए ।।४२-४३।।

अग्निदेव बोले-शालिहोत्र ने सुश्रुत के लिए हयायुर्वेद को कहा और पालकाप्य ने अंगराज के लिए गजायुर्वेद को कहा ।।४४।।

श्री अग्निमहापुराण में गवायुर्वेद-कथन नामक दो सौ बानबेवाँ
अध्याय समाप्त ।।२९२।।

---

१ छ. सुभ्रदाजो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्रपरिभाषा

अग्निरुवाच

[1]मंत्रविद्यामहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदां शृणु । विंशत्यर्णाधिका मंत्रा मालामंत्राः स्मृता द्विज ।।१।।
दशाक्षराधिका मंत्रास्तदर्वाग्बीजसंज्ञिताः । वार्धक्ये सिद्धिदा ह्येते मालामंत्रास्तु यौवने ।।२।।
पञ्चाक्षराधिका मंत्रा सिद्धिदाः सर्वदा परम् । स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधा स्युर्मन्त्रजातयः ।।३।।
स्त्रीमंत्रा वह्निजायान्ता नमोन्ताश्च) नपुंसकाः । शेषाः पुमांसस्ते शस्ता वश्योच्चाटनकेषु[2] च ।।४।
क्षुद्रकियामयध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः । मंत्रावाग्नेयसौम्याख्यौ ताराद्यन्तार्धयोर्जपेत् ।।५।।
तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मंत्र आग्नेय इष्यते । शिष्टाः सौम्याः प्रशस्तौ तौ कर्मणोः क्रूरसौम्ययोः ।।६।।
आग्नेयमंत्रः सौम्यः स्यात्प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः । सौम्यमंत्रस्तथाऽऽग्नेयः फट्कारेणान्ततो युतः ।।७।।
सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मंत्रः सिद्धिं न यच्छति । [3]स्वापकालो महाबाहो जागरो दक्षिणावहः ।।८।।

अध्याय २९३

मन्त्र-परिभाषा

अग्निदेव बोले–अये द्विज! (अब) मैं सांसारिक आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाली मन्त्र विद्या बतलाऊँगा। बीस अक्षरों से अधिक अक्षरोंवाले मन्त्र मालामन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक साथ दस अक्षरों से अधिक अक्षरों-वाले मन्त्र बीजमन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। बीजमन्त्र वृद्धावस्था में सिद्धिदायक होते हैं और मालामन्त्रों से युवावस्था में सिद्धि प्राप्त होती है। पाँच अक्षरों से अधिक अक्षरोंवाले मन्त्र सदा विशेष सिद्धि देनेवाले होते हैं। पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग के भेद से मन्त्रों के तीन भेद किये जाते हैं ।।१-३।। जिन मन्त्रों के अन्त में वह्नि, जाया आदि शब्द हों वे स्त्रीमन्त्र तथा जिनके अन्त में 'नमः' शब्द का प्रयोग हो वे नपुंसक मन्त्र कहलाते हैं। इनसे अतिरिक्त मन्त्र पुँल्लिङ्ग होते हैं। ये पुँल्लिङ्ग मन्त्र वशीकरण तथा उच्चाटन में प्रशस्त बतलाये गये हैं। क्षुद्र कार्यों में, रोग उत्पन्न करने में तथा किसी के विनाश करने में स्त्रीलिङ्गवाले मन्त्र प्रशस्त बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कार्यों में नपुंसकलिङ्गवाले मन्त्रों को उचित कहा गया है। क्रूर और सौम्य कार्यों में क्रमशः आग्नेय और सौम्य नामक मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। जिन मन्त्रों के अन्त में तारा, अग्नि, वियत् (आकाश) शब्द होते हैं वे मन्त्र आग्नेय कहलाते हैं। इनसे भिन्न मन्त्र सौम्य मन्त्र कहलाते हैं। यह दोनों प्रकार के मन्त्र क्रमशः क्रूर और सौम्य कार्यों के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ।।४-६।। आग्नेय मन्त्रों के अन्त में प्रायः 'नमः' शब्द जोड़ देने से वे सौम्य मन्त्र बन जाते हैं। (इसी प्रकार) सौम्य मन्त्रों के अन्त में 'फट्' शब्द जोड़ देने से वे आग्नेय बन जाते हैं। सोया तथा तुरन्त का जगाया हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता है। हे महाबाहो! आग्नेय मन्त्र का फलदायक जागरण काल सायङ्काल है और सौम्य

---

१ छ. 'द्या हरिं व'। २ छ. 'टविषेष। ३ क. ङ. सायंकाले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आग्नेयस्य मनोः ([1]सौम्यमंत्रस्यैतद्विपर्ययात् । प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोरहः ।।९।।
दुष्टर्क्षराशिविद्वेषिवर्णादीन्वर्जयेन्मनून् । राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्यारिः स्वरः कुरून् ।।१०।।
गोपालककुटीं प्रायात्पूर्णामित्युदिता लिपिः । [2]नक्षत्रेषु क्रमाद्योज्यौ स्वरान्त्यौ रेवतीयुजौ ।।११।।
वेला गुरुः स्वराः(रः)शोणः कर्मणैवेति भेदिताः । लिप्यर्णा वशिषु ज्ञेया(:)षष्ठेशादींश्च योजयेत् ।।१२।।
लिपौ चतुष्पथस्थायामाख्यावर्णपदान्तराः । सिद्धाः साध्या द्वितीयस्थाः सुसिद्धा वैरिणः परे ।।१३।।
सिद्धादीन्कल्पयेदेवं सिद्धोऽत्यन्तगुणैरपि । सिद्धे सिद्धो जपात्साध्यो जपपूजाहुतादिना ।।१४।।
सुसिद्धो ध्यानमात्रेण साधकं नाशयेदरिः । दुष्टार्णप्रचुरो यः स्यान्मंत्रः सर्वविनिन्दितः ।।१५।।
प्रविश्य विधिवद्दीक्षामभिषेकावसानिकाम् । श्रुत्वा तन्त्रं गुरोर्लब्धं साधयेदीप्सितं मनुम् ।।१६।।
धीरो दक्षः शुचिर्भक्तो जपध्यानादितत्परः । सिद्धस्तपस्वी कुशलस्तन्त्रज्ञः सत्यभाषणः ।।१७।।
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते । शान्तो दान्तः पटुश्चीर्णब्रह्मचर्यो हविष्यभुक् ।।१८।।
कुर्वन्नाचार्यशुश्रूषां सिद्धोत्साही स शिष्यकः । स तूपदेश्यः पुत्रश्च[3] विनयी वसुदस्तथा ।।१९।।

मन्त्रों का जागरण काल इनसे भिन्न समझना चाहिए। वैसे इन दोनों मन्त्रों का प्रबोध काल दिन ही हुआ करता है ।।७-९।। दुष्ट नक्षत्र राशि और शत्रु (के नाम आदि) का अक्षरों से युक्त मन्त्रों का वर्णन करते रहना चाहिए। राज्यप्राप्ति तथा परोपकार के लिए प्रयुक्त किये जानेवाले मन्त्रों में स्वरयुक्त अक्षरों के विरोधी स्वरों को एक क्रम में रखना चाहिए ।।१०।। गोपाल मन्त्रों की गणना के अनुसार ही अन्य मन्त्रों की गणना करनी चाहिए अथवा उन मन्त्रों को नक्षत्र चक्रों से भी जाना जा सकता है। (ऋ ॠ और ऌ ॡ को छोड़कर) अ से लेकर अः अक्षरों को अश्विनी से रोहिणी तक भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में प्रयुक्त करना चाहिए। नक्षत्र चक्र के विभिन्न कोष्ठकों को सिद्ध (फलित जैसे नवम, प्रथम और पञ्चम कोष्ठक), साध्य (फल देने योग्य, जैसे षष्ठ, दशम, द्वितीय कोष्ठक), सुसिद्ध (भली-भाँति फलित जैसे तृतीय, सप्तम और एकादश कोष्ठक) और अरि (जैसे चतुर्थ, अष्टम और द्वादश कोष्ठक) समझना चाहिए। जिस व्यक्ति को मन्त्र देना हो उसे नाम के अनुसार ही इन मन्त्रों के स्वभाव का पता लगाना चाहिए। सिद्ध मन्त्र का जप करने मात्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, किन्तु साध्य मन्त्र तब फलप्रद होता है जब उसके साथ हवन और पूजन भी किया जाता है। सुसिद्ध मन्त्र का ध्यानमात्र ही अपने उपासक को मोक्ष प्रदान कर देता है। किन्तु अरिष्ट मन्त्र अपने जप करनेवाले को निश्चय ही नष्ट कर देता है। जिस मन्त्र में वर्जित स्वर और वर्ण हों, उन्हें छोड़ ही देना चाहिए ।।११-१५।। विधिपूर्वक अभिषेकपर्यन्त दीक्षा प्राप्त करके और विषय-विशेष के आचार्य से तन्त्र का श्रवण करके उसकी साधना करनी चाहिए। धैर्यशाली, दक्ष, पवित्रान्तःकरण, भक्त, जप और ध्यानादि में विरत, सिद्ध, तपस्वी, क्रियाकुशल, तन्त्रों के मर्मज्ञ, सत्यभाषी, इन्द्रियजित्, अनुग्रहकर्त्ता, सर्वसमर्थ पुरुष ही गुरु कहे जाते हैं और शान्त स्वभाव, जितेन्द्रिय, दक्ष, ब्रह्मचर्यपरायण, हविष्यान्नभोजी, गुरुशुश्रूषा करनेवाला, कार्य में अटल तथा उत्साही व्यक्ति ही शिष्य कहला सकता है। गुरु को सुयोग्य शिष्य, पुत्र और विनयशील तथा दक्षिणा देनेवाले को ही मन्त्रों का उपदेश करना चाहिए ।।१६-१९।। गुरु को शिष्य को तभी मन्त्र देना चाहिए जब वह यह समझ

---

१ सौम्यमंत्र····· दुर्गा गुरु क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ग. छ. °त्रेक्षक्र°। ३ ख. ग. °श्च ह्यभ्यासी व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रं दद्यात्सुसिद्धौ तु सहस्रं देशिको जपेत् । यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा ।।२०।।
पत्रे स्थितं च गाथां च जनयेद्यद्यनर्थकम् । मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः ।।२१।।
क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यन्ते स्वल्पसाधनात् । सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किंचन ।।२२।।
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव[1] एव सः । दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति ।।२३।।
वर्णवृद्ध्या जपह्रासस्तेनान्येषां समूहयेत् । बीजादिद्वित्रिगुणान्मन्त्रान्मालामन्त्रे जपक्रिया ।।२४।।
संख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु । जपाद्दशांशं सर्वत्र साभिषेकं हुतं विदुः ।।२५।।
द्रव्यानुक्तौ घृतं होमे जपोऽशक्तस्य सर्वतः । मूलमन्त्राद्दशांशः स्यादङ्गादीनां जपादिकम् ।।२६।।
जपात्सशक्तिमन्त्रस्य कामदा मन्त्रदेवताः । साधकस्य भवेत्तृप्ता ध्यानहोमार्चनादिना ।।२७।।
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः । जिह्वाजपे शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ।।२८।।
प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वाऽपि मंत्रकर्म समारभेत् । प्रणवाद्याः सर्वमंत्रा वाग्यतो विहिताशनः ।।२९।।

ले कि शिष्य ने कुछ सिद्धि प्राप्त कर ली है। शिष्य को एक मन्त्र का एक सहस्र बार जप करना चाहिए। बिना गुरु मुख से सुने हुए केवल अपनी इच्छा से, छल-बल से अथवा किसी यन्त्रादि में लिखे हुए मन्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी वह निरर्थक होता है। जो साधक जप, होम और विविध प्रकार की अर्चना से युक्त बहुत-सी क्रियाओं से एक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है वह साधक बाद में थोड़े-से साधन से भी मन्त्रों को सिद्ध कर लेता है। जिस पुरुष ने एक मन्त्र को भी भली-भाँति सिद्ध कर लिया है उसके लिए इस संसार में कोई भी कार्य असाध्य नहीं रहता है ।।२०-२२।। फिर जिसने बहुत-से मन्त्रों को सिद्ध कर लिया है उसके विषय में तो कहना ही क्या ? वह साक्षात् शङ्कर रूप ही हो जाता है। स्ववर्णवाले मन्त्र का दस लाख बार जप करने से सिद्धि होती है। वर्णों की वृद्धि के ही क्रम से जप में न्यूनता होती जाती है। इसी प्रकार अन्य मन्त्रों के विषय में भी समझ लेना चाहिए। मालामन्त्रों की अपेक्षा बीजमन्त्रों का जप द्विगुणित और त्रिगुणित तक होना चाहिए। मन्त्रों में जहाँ उनके जप की संख्या न दी गयी हो वहाँ एक सौ आठ या एक हजार आठ संख्या समझ लेनी चाहिए। सभी मन्त्रों के जप की संख्या की दशांश संख्या अभिषेक और हवन के लिए बतायी गयी है ।।२३-२५।। जप के अनन्तर होम के लिए किसी द्रव्य-विशेष का उल्लेख होने पर घृत की ही आहुति देनी चाहिए। यदि कोई घृत की आहुति देने में असमर्थ हो तो उसे (मूल मन्त्रों के अक्षरों की संख्या के) दशांश संख्या में अधिक मन्त्रों का जप और कर लेना चाहिए। मूल मन्त्र (की संख्या की) दशांश (संख्या में) अङ्ग मन्त्रों का जप करना चाहिए। अङ्गों के सहित मन्त्र का जप करने से तथा ध्यान, हवन और अर्चना आदि के द्वारा तृप्त किये गये मन्त्र के देवता साधक के ऊपर प्रसन्न होते हैं और उसकी मनोकामना को पूर्ण करते हैं। जोर-जोर से किये जानेवाले जप की अपेक्षा मन्त्र का मूक जप दसगुना विशिष्ट है, जिह्वा जप (जिस जप में केवल जीभ ही हिलती है) सौ गुना श्रेष्ठ है तथा मानस जप हजार गुना श्रेष्ठ है ।।२६-२८।। मन्त्र का आरम्भ पूर्वाभिमुख अथवा अधोमुख होकर करना चाहिए। समस्त मन्त्रों के आदि में प्रणव (ओङ्कार) का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। साधक को मौन रहकर भोजन करना चाहिए। उसे देवता और आचार्य को तुल्य समझते हुए

---

१ ख. ग. देव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आसीनस्तु जपेन्मन्त्रान्देवताचार्यतुल्यदृक् । कुटी विविक्ता देशाः स्युर्देवालयनदीह्रदाः ।।३०।।
सिद्धौ यवागूपूपैर्वा पयो भक्ष्यं हविष्यकम् । मन्त्रस्य देवता [1]तावत्तिथिवारेषु वै यजेत्[2] ।।३१।।
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ च साधकः । दस्रो यमोऽनलो धाता शशी रुद्रो गुरुर्दितिः ।।३२।।
सर्पाः पितरोऽथ भगोऽर्यमा शीतेतरद्युतिः । त्वष्टा मरुत इन्द्राग्नी मित्रेन्द्रौ निर्ऋतिर्जलम् ।।३३।।
विश्वे देवा हृषीकेशो [3]वासवः सतिलाधिपः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पूषाऽश्विन्यादिदेवताः ।।३४।।
अग्निर्दस्रावुमानिघ्नौ नागश्चन्द्रो दिवाकरः । मातृदुर्गा दिशामीशः कृष्णो वैवस्वतः शिवः ।।३५।।
पञ्चदश्याः शशाङ्कस्तु पितरस्तिथिदेवताः । हरो दुर्गा गुरु) र्विष्णुब्रह्मा लक्ष्मीर्धनेश्वरः ।।३६।।
एते सूर्यादिवारेशा लिपिन्यासोऽथ कथ्यते । केशान्तेषु च वृत्तेषु चक्षुषोः श्रवणद्वये ।।३७।।
नासागण्डौष्ठदन्तेषु द्वे द्वे मूर्धास्ययोः क्रमात् । वर्णान्पञ्चसु वर्गाणां बाहुचरणसंधिषु ।।३८।।
पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमान्न्यसेत् । यादींश्च हृदये न्यस्येदेषां स्युः सप्त धातवः ।।३९।।
त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः । रसाद्यैश्च पयोन्तैश्च लिख्यन्ते च लिपीश्वरैः ।।४०।।
श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः । अग्नीशो [4]भारभूतिश्च तिथीशः स्थाणुको हरः ।।४१।।
दण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः । अक्रूरश्च महासेनः शरण्या देवता अमूः ।।४२।।

स्थिर चित्त होकर मन्त्र का जप करना चाहिए। साधक की कुटी एकान्त स्थान में होनी चाहिए। देवालय, नदी और तालाब ही मन्त्र साधना के लिए उपयुक्त स्थान माने गये हैं ।।२९-३०।। साधक को सिद्धि प्राप्त हो जाने पर यवागू (लप्सी) और पुए के साथ दूध और हविष्यान्न खाना चाहिए। मन्त्र के देवताओं की अर्चना निश्चित तिथियों और दिनों में ही करनी चाहिए। साधक को देवताओं की अर्चना कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा ग्रहण आदि के समय करनी चाहिए। अश्विनीकुमार, यम (यमराज), अनल (अग्नि), ब्रह्मा, चन्द्र, रुद्र, बृहस्पति, दिति (दैत्यों की माता), सर्प, पितृगण, भग, अर्यमा, शीतेतर द्युति (सूर्य), त्वष्टा, मरुत, इन्द्र, वरुण, अज, एकपाद्, अहिर्बुध्न्य, उमा, नाग, चन्द्रमा, सूर्य, दुर्गादि माताएँ, दिशाओं के स्वामी, कृष्ण, यम, शिव, पूर्णिमा का चन्द्रमा, पितृगण-ये विभिन्न तिथियों के देवता हैं। शङ्कर, दुर्गा, बृहस्पति, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, कुबेर ये ही रविवार आदि दिनों के देवता हैं ।।३१-३६।। अब लिपिन्यास बताया जाता है। केशान्तों में, वृत्तों में, दोनों नेत्रों में, दोनों कानों में, नासा, गण्डस्थल, ओष्ठ और दाँतों में, मूर्धा और मुख में दो-दो वर्णों का न्यास करना चाहिए। बाहु और चरण आदि की पाँचों सन्धियों में भी वर्णों का न्यास करना चाहिए। पार्श्वभाग में, पृष्ठभाग में, नाभि तथा हृदय में भी वर्णों का न्यास करना चाहिए। इन वर्णों की सात धातुएँ होती हैं। त्वक् (चर्म), असृक् (खून), मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), मज्जा और शुक्र (वीर्य) ये ही सात धातुएँ हैं ।।३७-३९$\frac{1}{2}$।। मन्त्र बनानेवाले रस से प्रारम्भ करके जल से समाप्त करते हैं। श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर (इन्द्र), अग्नि, ईश, भारभूति, तिथीश, स्थाणु, हर, दण्डी, ईश, भूताधिपति, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासेन-ये देवता शरणागत रक्षक हैं ।।४०-४२।। सूचीश, चण्ड, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, रुद्र,

---

१ ख. ग. तारा तिथि°। २ छ. जपेत्। ३ छ. वायसः। ४ छ. भावभू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]ततः सूचीशचण्डौ च पञ्चान्तकशिवोत्तमौ । तथैव रुद्रकूर्मौ च त्रिनेत्रश्चतुराननः ।।४३।।
अजेशः शर्मसोमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ । अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाऽऽषाढिदण्डिनौ ।।४४।।
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा । शूलगण्डद्विगण्डौ द्वौ समहाकालबालिनौ[2] ।।४५।।
भुजंगश्च पिनाकी च खड्गीशश्च बकः पुनः । श्वेतो भृगुर्गुडाकाक्षः क्षयः संवर्तकः स्मृतः ।।४६।।
रुद्रान्सशक्ता(क्ती)न्विलिखेन्नमोन्तान्विन्यसेत्क्रमात् । अङ्गानि विन्यसेत्सर्वे मन्त्राः साङ्गास्तु सिद्धिदाः ।।४७।।
हल्लेखाव्योमसंपूर्णान्येतान्यङ्गानि विन्यसेत् । हृदादीन्यङ्गमन्त्रान्तैर्योजयेद्धृदये नमः ।।४८।।
स्वाहा शिरस्यथ वषट् शिखायां कवचे च हूम् । वौषण्नेत्रेऽस्त्राय फट्स्यात्पञ्चाङ्गं नेत्रवर्जितम् ।।४९।।
निरङ्गस्याऽऽत्मना चाङ्गं न्यस्य तं नियुतं जपेत् । क्रमेण देवीं वागीशां यथोक्तांस्तु तिलान्हुनेत् ।।५०।।
लिपिदेवी साक्षसूत्रकुम्भपुस्तकपद्मधृक् । कवित्वादि प्रयच्छेत कर्मादौ सिद्धये न्यसेत्[3] ।।
निष्कविर्निर्मलः सर्वे मन्त्राः सिध्यन्ति मातृभिः ।।५१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रपरिभाषाकथनं नाम त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९३।।

कूर्म, त्रिनेत्र, चतुरानन, अज, ईश, कल्याणकर, सोम, ईश, लाङ्गली (बलभद्र), दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढ़ी, दण्डी, अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, शूलगण्ड, द्विगण्ड, महाकाल, बाली, भुजङ्ग, पिनाकी, खड्गी, ईश, बक, श्वेत, भृगु, गुडाकाक्ष, क्षय, संवर्तक और शालियों के सहित रुद्रों को लिखकर उनके अन्त में 'नमो' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। अङ्ग मन्त्रों से भी न्यास करना चाहिए क्योंकि साङ्ग मन्त्र ही सिद्धिदायक हुआ करते हैं ।।४३-४७।। न्यास, हृदयादि सम्पूर्ण अंगों का करना चाहिए। अङ्गन्यास के मन्त्रों से हृदयादि की योजना इस प्रकार करनी चाहिए। 'हृदये नमः', 'शिरसि स्वाहा', 'शिखायां वषट्', 'कवचे हुम्', 'नेत्रे वौषट्'। नेत्र को छोड़कर शेष पञ्चाङ्ग के लिए 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करना चाहिए। यद्यपि मन्त्र निरङ्ग है तथापि उनके अङ्गों की कल्पना स्वयं करके उनका न्यास करना चाहिए और उनका दस लाख बार जप (भी) करना चाहिए। क्रम से वागीश्वरी देवी तथा यथोक्त देवताओं को क्रमशः तिल की आहुति देनी चाहिए। अक्ष (रथ चक्र), सूत्र, कुम्भ, पुस्तक तथा पद्म को धारण करनेवाली लिपि देवी कवित्व शक्ति प्रदान करती है अतः कार्य की सिद्धि के लिए उसका न्यास करना चाहिए। मातृकाओं से सभी मन्त्रों की सिद्धि होती है ।।४८-५१।।

श्री अग्निमहापुराण में मन्त्रपरिभाषाकथन नामक दो सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९३।।

---

१ च. छ. °तः क्रोधीश°। २ छ. 'लवासिनौ'। ३ क. ङ. °तु। विधाधिनिर्म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नागलक्षणानि

अग्निरुवाच

नागादयोऽथ भावादिदशस्थानानि कर्म च । सूतकं दष्टचेष्टेति सुप्त [1]लक्षणसंयुता (?) ।।१।।
शेषवासुकितक्षाख्याः कर्कटाब्जौ महाम्बुजः । शङ्खपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्यकाः ।।२।।
दशाष्टपञ्चत्रिगुणशतमूर्धान्वितौ क्रमात् । विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ नागेषु कीर्तितौ ।।३।।
तदन्वयाः पञ्चशतं तेभ्यो जाता असंख्यकाः । फणिमण्डलिराजीलवातपित्तकफात्मकाः ।।४।।
व्यन्तरा दोषमिश्रास्ते सर्पा दर्वीकराः स्मृताः । रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ।।५।।
गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिताः[2] । राजिलाश्चित्रिताः स्निग्धास्तिर्यगूर्ध्वविराजिभिः ।।६।।
व्यन्तरा मिश्रचिह्नाश्च भूवर्षाग्नेयवायवः । चतुर्विधास्ते षड्विंशभेदाः षोडश गोनसाः ।।७।।
त्रयोदश च राजीला व्यन्तरा एकविंशतिः । येऽनुक्तकाले जायन्ते सर्पास्ते व्यन्तराः स्मृताः ।।८।।
आषाढादित्रिमासैः स्याद्गर्भो मासचतुष्टये । अण्डकानां शते द्वे च चत्वारिंशत्प्रसूयते ।।९।।

अध्याय २९४

नागलक्षण

अग्निदेव बोले–अब मैं नागों की उत्पत्ति, सर्पदंश के अशुभ नक्षत्र आदि सर्पदंश के विविध भेद, दंश के स्थान, मर्मस्थल, सूतक और सर्पदष्ट मनुष्य की चेष्टा–इन सात लक्षणों का वर्णन करता हूँ। शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कट, अब्ज, महाम्बुज, शङ्खपाल और कुलिक–ये आठ नाग श्रेष्ठ बतलाये गये हैं ।।१–२।। इन नागों में से क्रमशः दो नाग ब्राह्मण, दो नाग क्षत्रिय, दो नाग वैश्य और दो नाग शूद्र कहे गये हैं। ये चार वर्णों के नाग क्रमशः दस सौ, आठ सौ, पाँच सौ और फणों से युक्त होते हैं। उपर्युक्त उन्हीं नागों के वंश में पाँच सौ नाग हुए, जिनसे वे असंख्य हो गये। फणी (फणधारी), मण्डली (मण्डलाकृति), राजील (जल–सर्प) तथा वात, पित्त, कफात्मक सर्प व्यन्तर कहलाते हैं। दोष–मिश्रित सर्प दर्वीकर नाम से प्रसिद्ध हैं। रथ के अंग चक्रादि, लाङ्गल (हल), छत्र, स्वस्तिक तथा अंकुश धारण करनेवाले सर्प गोनस नाम से प्रसिद्ध हैं। मन्दगति से चलनेवाले, दीर्घ, विविध मण्डलों से परिपूर्ण, स्निग्ध, तिर्यक् और ऊर्ध्व रेखाओं से युक्त सर्प 'राजिल' कहलाते हैं ।।३–६।। व्यन्तर तथा मिश्र चिह्नवाले सर्प, पृथ्वी, अग्नि तथा वायु के भेदों से चार प्रकार के हुआ करते हैं। उन चार प्रकार के सर्पों के पुनः छब्बीस भेद हो जाते हैं। गोनस के सोलह भेद होते हैं। राजील तेरह प्रकार का होता है और व्यन्तर नामक सर्प के इक्कीस भेद होते हैं। अनिश्चित समय में पैदा होनेवाले सर्प व्यन्तर कहलाते हैं। सर्पिणियाँ आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद मासों में चार मास के लिए गर्भ धारण करती हैं। वे चार मास की अवधि के अनन्तर दो सौ चालीस अण्डे पैदा करती हैं ।।७–९।। यह भी प्रसिद्ध है

---

१ च. छ. °णमुच्यते। शे°। २ क. ङ. °विधैः स्मृताः। ग. विधैः स्थिताः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्पा ग्रसन्ति सूतौघान्विना स्त्रीपुंनपुंसकान् । उन्मीलितेऽक्षिण सप्ताहात्कृष्णो मासाद्भवेद्बहिः ।।१०।।
द्वादशाहात्सुबोधः स्याद्दन्ताः स्युः सूर्यदर्शनात् । द्वात्रिंशद्दिनविंशत्या चतस्रस्तेषु दंष्ट्रिकाः ।।११।।
कराली मकरी कालरात्रिश्च यमदूतिका । एतास्ताः सविषा दंष्ट्रा वामदक्षिणपार्श्वगाः ।।१२।।
षण्मासान्मुच्यते कृत्तिं जीवेत्षष्टिसमाद्वयम् । नागाः सूर्यादिवारेशाः सप्त उक्ता दिवा निशि ।।१३।।
स्वेषां षट्प्रतिवारेषु कुलिकः सर्वसंधिषु । शङ्खेन वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथ वा ।।१४।।
द्वयोर्वा नाडिकामात्रमन्तरं कुलिकोदयः । दुष्टः स कालः सर्वत्र सर्पदंशे विशेषतः ।।१५।।
कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्वत्रयाश्विनी । विशाखाऽऽर्द्रा मघाऽऽश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ।।१६।।
हस्तौ मन्दकुजौ वारौ पञ्चमी चाष्टमी तिथिः । षष्ठी रिक्ता शिवा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्दशी ।।१७।।
संध्याचतुष्टयं दुष्टं दु (द) ग्धयोगाश्च राशयः । एकद्विबहवो दंशा दष्टं विद्धं च खण्डितम् ।।१८।।
अदंशमवगुप्तं स्याद्वंशमेवं चतुर्विधम् । त्रयो द्व्येकक्षता दंशा वेदना रुधिरोल्बणा ।।१९।।
नक्तं त्वेकाङ्घ्रिकूर्माभा दंशाश्च यमचोदिताः । दाही पिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्वितः ।।२०।।

कि सर्पिणियाँ बिना पुँल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक का विचार किये प्रसूत अण्डों को खा जाती हैं। साधारण सर्प सात दिनों के अनन्तर अण्डे ही में नेत्र खोल देते हैं और तब बाहर आते हैं। कृष्ण सर्प एक मास बाद अण्डों से बाहर आता है ।।१०।। सर्पों में बारह दिनों के बाद चेतना आ जाती है। सूर्य के दर्शन के बीस दिन बाद सर्पों के दाँत निकलते हैं। ये बत्तीस होते हैं। इनमें चार दाढ़े (विषैले दाँत) निकलते हैं। ये विषैले दाँत हैं–कराली, मकरी, कालरात्रि और यमदूतिका जो कि मुख में बायें तथा दायें भाग में होते हैं। छह मास के अनन्तर सर्प केंचुल छोड़ते हैं तथा एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहते हैं। सात नाग रविवार इत्यादि दिनों के स्वामी कहे गये हैं ।।११–१३।। शेष आदि सात नाग अपने–अपने वारों में उदित होते हैं किन्तु कुलिक का उदय सबके अन्त में होता है। अथवा शङ्ख और महापद्म के साथ उसका उदय होता है। मतान्तर से शंख और महापद्म के मध्य की दो घड़ियों में कुलिक का उदय होता है। कुलिक योग का समय सभी कार्यों में वर्जनीय और अशुभ फलदायक है। इस समय सर्प के काटने पर यह विशेष रूप से दुष्ट फल देनेवाला होता है ।।१४–१५।। कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद), अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी, हस्त ये नक्षत्र शनैश्चर और मंगलवार–ये दो दिन पञ्चमी, अष्टमी, षष्ठी और रिक्ता (चतुर्थी, चतुर्दशी, नवमी) ये तिथियाँ कल्याणकारिणी हैं तथा पञ्चमी एवं चतुर्दशी तिथियाँ निन्द्य हैं ।।१६–१७।। चारों सन्ध्याएँ, दग्धयोगवाली राशियाँ भी अनिष्टकारिणी हैं। सर्प एक, दो अथवा बहुत–से दाँतों में काटते हैं। ये क्रमशः दष्ट, विद्ध, खण्डित कहलाते हैं। अदंश अवगुप्त कहलाता है। इस प्रकार सर्प–दंशन के चार भेद हैं। तीन, दो अथवा एक दाँत से काटने पर महती वेदना होती है और रक्त की धारा बहने लगती है। रात्रि में एक चरण तथा कूर्म के सदृश दिखायी पड़नेवाला सर्पदंश (का चिह्न) महाभयानक होता है। दाहोत्पादक पिपीलिकास्पर्शी (मानो चीटियाँ लिपटी हों), कण्ठ में शोथ उत्पन्न कर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सतोदो ग्रन्थितो दंशः सविषोऽन्यस्तु निर्विषः । देवालये [1]शून्यगृहे वल्मीकोद्यानकोटरे ।।२१।।
रथ्यासंधौ श्मशाने च नद्यां च सिन्धुसंगमे । द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहेऽब्जे पर्वताग्रतः ।।२२।।
बिलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुड्यके । शिग्रुश्लेष्मान्तकाक्षेषु जम्बूदुम्बरवेणुषु ।।२३।।
वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत्कक्षजत्रुणि । तालौ शङ्खे गले मूर्ध्नि चिबुके नाभिपादयोः ।।२४।।
दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक्सुधीः । लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः ।।२५।।
अपद्वारगतः शस्त्री प्रमादी भूगतेक्षणः । विवर्णवासाः पाशादिहस्तो गद्गदवर्णभाक् ।।२६।।
शुष्ककाष्ठाश्रितः खिन्नस्तिलालक्तकरांशुकः । आर्द्रवासाः कृष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुहः ।।२७।।
कुचमर्दी नखच्छेदी गुदस्पृक्पादलेखकः । केशालुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूतास्तथैकशः ।।२८।।
इडाऽन्या वा वहेद्द्वेधा यदि दूतस्य चाऽऽत्मनः । आभ्यां द्वाभ्यां पुष्टयास्मान्विद्यास्त्रीपुंनपुंसकान् ।।२९।।
दूतः स्पृशति यद्गात्रं तस्मिन्दंशमुदाहरेत् । दूताङ्घ्रिचलनं दुष्टमुत्थितिर्निश्चला शुभा ।।३०।।
जीवपार्श्वे शुभो दूतो दुष्टोऽन्यत्र समागतः । जीवो गतागतैर्दुष्टः शुभो दूतनिवेदने ।।३१।।

देनेवाला, पीड़ादायक तथा गाँठयुक्त दंश को विषयुक्त समझना चाहिए और अन्य दंशों को विषरहित ।।१८-२०½।। देवालय, शून्यगृह, वल्मीक, उद्यान, गली, श्मशान, नदी, नदियों का सगंम, द्वीप, चौराहा, भवन, कमल, पर्वताग्रभाग, बिलद्वार, प्राचीन कूप, जीर्णगृह, दीवार, शिग्रु (वृक्ष-विशेष), श्लेष्मान्तक (लसोड़े का वृक्ष), जामुन, गूलर, बाँस, बरगद, पुरानी खाईं इत्यादि स्थानों में और कान, मुख, हृदय, पार्श्वभाग, जत्रु (गले के नीचे की दो हड्डियाँ), तालु, शंख, ग्रीवा, मस्तक, चिबुक (ठुड्ढी), नाभि और चरण आदि शरीर के अंगों से होनेवाला सर्पदंश अशुभ होता है ।।२१-२४।। हाथ में पुष्प धारण करनेवाला, मधुरभाषी, बुद्धिमान्, सुन्दर वर्ण और चिह्नयुक्त, शुक्लवस्त्र धारण करनेवाला निर्मल और पवित्र (सर्प-विष-वैद्य को बुलाने के लिए भेजे गये) दूत शुभ बताये गये हैं। बुरे मार्ग से आनेवाले, शस्त्रधारी, आलसी, नीचे की ओर देखनेवाले, कुरूप, कुवस्त्रधारी, पाश आदि को हाथ में लेनेवाले, गद्गद वाणी से बोलनेवाले, सूखी लकड़ियाँ लिये हुए, खिन्न आकृतिवाले, तिल तथा लाल वस्त्रों को लिये हुए, भीगे वस्त्रोंवाले, काले और लाल पुष्पों को सिर पर धारण करनेवाले, कुचमर्दन करनेवाले, नखच्छेदन करनेवाले, गुदा का स्पर्श करनेवाले, पैर से भूमि खरोचनेवाले, बालों को उखाड़नेवाले तथा तिनकों को तोड़नेवाले दूत अनिष्टसूचक बताये गये हैं ।।२५-२८।। जिस सर्प ने काटा हो उसका लिंग-ज्ञान विष-वैद्य तथा दूत के वाम, दक्षिण तथा दोनों नासापुटों से निकलनेवाले श्वास के आधार पर हो सकता है। यदि विष-वैद्य के बायें नासापुट से श्वास वेग से निकल रहा हो तो सर्प को स्त्री समझना चाहिए। किन्तु यदि श्वास दूत के दाहिने नासापुट से आ रहा हो तो पुरुष समझना चाहिए। यदि विष-वैद्य और दूत दोनों ही नासापुटों से श्वास ले रहे हों तो सर्प को नपुंसक समझना चाहिए। जिस अंग को (विष-वैद्य के सम्मुख) दूत सहसा अनजान में ही अपने हाथ से छू ले रोगी के उसी स्थान पर सर्पदंश समझना चाहिए। विष-वैद्य के पास आकर दूत का अपने पैरों को हिलाना अशुभ माना जाता है, किन्तु दूत का स्थिर होकर बैठना शुभ माना गया है ।।२९-३०।। दूत के साथ-साथ विष-वैद्य के समीप किसी पशु का आ जाना शकुन माना जाता है, किन्तु किसी पशु का वहाँ पर इधर-उधर घूमना अपशकुनसूचक होता है। दूत की वाणी में जिस प्रकार

---

१ छ. शूद्रगृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दूतस्य वाक्प्रदुष्टा सा पूर्वामजार्धनिन्दिता । विभक्तैस्तस्य वाक्यान्तैर्विषैर्निर्विकालता ।।३२।।
आद्यैः स्वरैश्च काद्यैश्च वर्णैर्भिन्नलिपिर्द्विधा । स्वरजो वसुमान्वर्गी इति ज्ञेया च मातृका ।।३३।।
वाताग्नीन्द्रजलात्मानो वर्गेषु च चतुष्टयम् । नपुंसकाः पञ्चमाः स्युः स्वराः शक्राम्बुयोनयः ।।३४।।
दुष्टौ दूतस्य वाक्पादौ वाताग्नी मध्यमो हरिः । प्रशस्ता वारुणा वर्णा अतिदुष्टा नपुंसकाः ।।३५।।
प्रस्थाने मङ्गलं वाक्यं गर्जितं मेघहस्तिनोः । प्रदक्षिणं फले वृक्षे वामस्य च रुतं जितम् ।।३६।।
शुभा गीतादिशब्दाः स्युरीदृशं स्याद्धि सिद्धये । अनर्थगी रथाक्रन्दो दक्षिणे विरुतं क्षुतम् ।।३७।।
[1]वेश्या [2]विप्रो नृपः कन्या गौर्दन्ती मुरजध्वजौ । क्षीराज्यदधिशङ्खाम्बुच्छत्रं भेरी फलं सुराः[3] ।।३८।।
तण्डुला हेम रूप्यं च सिद्धयेऽभिमुखा अमी । सकाष्ठः सानलः कारुर्मलिनाम्बरवासभृत् ।।३९।।
गलस्थटङ्को गोमायुगृध्रोलूककपर्दिकाः । तैलं कपालकार्पासे निषिद्धे भस्मनष्टये ।।४०।।
विषरोगाश्च सप्त स्युर्धातोर्धात्वन्तराप्तितः । विषदंशो ललाटं यात्यतो नेत्रं ततो मुखम् ।।
आस्याच्च वचनीनाड्यौ(?)धातून्प्राप्नोति हि क्रमात् ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नागलक्षणकथनं नाम चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९४।।

के कारकों का प्रयोग होता है, वे इस बात के सूचक हैं कि रोगी में विष कितनी देर तक रहेगा। वर्णमाला के अक्षरों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, इसमें से स्वरों को शुभ तथा वसुमान वर्ग के अन्तर्गत बताया गया है। व्यञ्जनों के पाँचों वर्गों के प्रथम चार-चार अक्षर क्रमशः वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण देवता से सम्बद्ध हैं। जबकि प्रत्येक वर्ग का पाँचवाँ अक्षर अशुभ तथा नपुंसकलिङ्गवाला होता है और उनके अधिष्ठाता देवता इन्द्र और वरुण कहे गये हैं ।।३१-३४।। वायु तथा अग्नि देवता से सम्बद्ध अक्षरों का दूत की वाणी में आना अशुभसूचक है किन्तु इन्द्र से सम्बद्ध अक्षर मध्यम फलवाले होते हैं। दूत की वाणी में नपुंसकलिङ्ग माने जानेवाले अक्षर सबसे अधिक घातक तथा वरुण से सम्बद्ध अक्षर सबसे अधिक शुभ हुआ करते हैं। रोगी के घर जाते हुए मार्ग में दूत और विष-वैद्य की बातचीत शुभसूचक है। दूत और विष-वैद्य के प्रस्थान-काल में होनेवाला हाथी अथवा मेघ का गर्जन अत्यन्त शुभ समझना चाहिए। विष-वैद्य के प्रस्थान से पूर्व फलदार वृक्ष की परिक्रमा कर लेनी चाहिए। प्रस्थान-काल में वाम भाग में होनेवाले गीतादि शब्द सिद्धिसूचक होते हैं। दाहिनी ओर विलाप, असत्य वार्तालाप और रथ का शब्द अनिष्टकारी होता है ।।३५-३७।। (विष-वैद्य के प्रस्थान-काल में) वेश्या, विप्र, नृप, कन्या, गौ, गज, मुरज, पताका, दूध, घृत, दधि, शंख, जल, छत्र, भेरी, फल, देवता, चावल, सुवर्ण और चाँदी आदि का सम्मुख दिखायी देना शुभ होता है। मलिन वस्त्रवाला, काष्ठधारी, वह्नियुक्त, गले में टङ्क को लिये हुए शिल्पी, शृगाल, गृद्ध, उलूक, कौड़ी, तेल, कपाल और कपास इन सबका दर्शन निषिद्ध बताया गया है। भस्म का दर्शन होना (रोगी के नाश की सूचना देता है)। सात धातुओं के परस्पर सम्पर्क से विष रोग भी सात प्रकार के होते हैं। विष का प्रकोप क्रमशः पहले ललाट, तब नेत्र, मुख और समस्त धातुओं में व्याप्त हो जाता है ।।३८-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में नागलक्षण-कथन नामक दो सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९४।।

---

१ छ. वैश्यो। २ छ. क्षुतो। ३ ख. ग. सुरा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दष्टचिकित्सा

अग्निरुवाच

मंत्रध्यानौषधैर्दष्टचिकित्सां प्रवदामि ते ।।१।।
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठायेति ।।२।।
जपनाद्विषहानिः स्यादौषधं जीवरक्षणम् । साज्यं सकृद्रसं पेयं द्विविधं विषमुच्यते
जङ्गमं सर्पमूषादि शृङ्गादि स्थावरं विषम् । शान्तस्वरान्वितो ब्रह्मा लोहितस्तारकः शिवः ।।३।।
वियतेर्नाममंत्रोऽयं तार्क्ष्यः शब्दमयः स्मृतः ।।४।।
ॐ ज्वल महामते हृदयाय, गरुडविरालशिरसे, गरुडशिखायै, गरुड विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय, अप्रतिहतशासनं हूं फट्, अस्त्राय, उग्र रूपधारक सर्वभयंकर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्राय
सप्तवर्गान्तयुग्माष्टदिग्दलस्वर केशरादिवर्णरुद्धं वह्निराभूतकर्णिकं मातृकाम्बुजम् ।।५।।

अध्याय २९५

दष्टचिकित्सा

अग्निदेव बोले–अब मैं मन्त्रों के ध्यान तथा ओषधियों के प्रयोग से सर्प के द्वारा काटे हुए की चिकित्सा बतला रहा हूँ। 'ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय' इस मन्त्र के जप करने से विष दूर हो जाता है। जीव रक्षा करनेवाली ओषधि यह है कि (सर्पदंश में) घृत के साथ गोबर के रस का पान करना चाहिए। विष दो प्रकार का होता है, सर्प और मूषक आदि का विष जंगम (विष) कहलाता है और सींग आदि (के लग जाने से उत्पन्न) विष स्थावर कहलाता है। वियति नामक (सर्पदंश को दूर करनेवाले) मन्त्र में शान्त स्वर से युक्त ब्रह्मा लोहित, तारक और शिव इन चार देवताओं के बीजाक्षर से वियति सम्बन्धी नाम मन्त्र बनता है। यह मन्त्र शब्दमय 'गरुड़ शिरसे स्वाहा' कहा गया है ।।१–४।। 'ॐ ज्वल महामते हृदयाय नमः' से हृदय का, 'गरुड़ विराल' से सिर का, 'गरुड़ शिखायै वषट्' से शिखा का, गरुड़ विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय हुम् इस मन्त्र से कवच का उग्ररूप धारक सर्वभयङ्कर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा इस मन्त्र से नेत्रों का और 'अप्रतिहतशासनं हूं फट् अस्त्राय फट्' इससे करतल का स्पर्श करना चाहिए। (यह विधि तन्त्रशास्त्र में षडङ्गन्यास के नाम से प्रसिद्ध है।) मातृकामय पद्म में वर्णमाला के विभिन्न वर्ण हुआ करते हैं और आठों दिशाओं की ओर फैले हुए उसके दल स्वर रूप देवताओं से युक्त रहा करते हैं। इसके पूर्वादि दलों में दो–दो के क्रम से समस्त स्वर वर्णों को लिखे। उस (मातृका पद्म) का पराग सप्तवर्ग (सुख की सात अवस्थाओं) से युक्त रहा करता है। उस कमल के केसर भाग को वर्ग के आदि अक्षरों से संयोजित करे तथा कर्णिका में अग्निबीज (रं) लिखे। मन्त्रज्ञ को यह कमल अपने हृदय में स्थापित करके अपने बायें हाथ की हथेली में इसका चिन्तन करना चाहिए। उसे वियति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृत्वा हृदिस्थं तन्मन्त्री वामहस्ततले स्मरेत् । अङ्गुष्ठादौ न्यसेद्वर्णान्वियतेर्भेदिताः कलाः ।।६।।
पीतं वज्रचतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम् । वृत्तार्धमाप्यपद्मार्धं शुक्लं वरुणदैवतम् ।।७।।
त्र्यस्त्रं (स्त्रं?) स्वस्तिकयुक्तं च तैजसं वह्निदैवतम् । वृत्तं विन्दुवृतं वायुदैवतं कृष्णमालिनम् ।।८।।
अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीमध्यपर्यस्तेषु स्ववेश्मसु । सुवर्णनागवाहेन वेष्टितेषु न्यसेत्क्रमात् ।।९।।
वियतेश्चतुरो वर्णान्सुमण्डलसमत्विषः । अरूपे रवतन्मात्रे आकाशे शिवदैवते ।।१०।।
कनिष्ठामध्यपर्वस्थे न्यसेत्तस्याऽऽद्यमक्षरम् । नागानामादिवर्णांश्च स्वमण्डलगतान्न्यसेत् ।।११।।
भूतादिवर्णान्विन्यसेदङ्गुष्ठाद्यन्तपर्वसु । तन्मात्रादिगुणाभ्यर्णानङ्गुलीषु न्यसेद्बुधः ।।१२।।
स्पर्शनादेव तार्क्ष्येण हस्ते हन्याद्विषद्वयम् । मण्डलादिषु तान्वर्णान्वियतेः कवयो जितान् ।।१३।।
श्रेष्ठद्वयङ्गुलिभिर्देहनाभिस्थानेषु पर्वसु । आजानुतः सुवर्णाभमानाभेस्तुहिनप्रभम् ।।१४।।
कुङ्कुमारुणमाकण्ठादाकेशान्तात्सितेतरम् । ब्रह्माण्डव्यापिनं तार्क्ष्यं चन्द्राख्यं नागभूषणम् ।।१५।।
नीलोग्रनाशमात्मानं महापक्षं स्मरेद्बुधः । एवं तार्क्ष्यात्मनो वाक्यान्मंत्रः स्यान्मंत्रिणोविषे ।।१६।।
मुष्टिस्तार्क्ष्यकरस्यान्तः स्थिताऽङ्गुष्ठविषापहा । तार्क्ष्ये हस्तं समुद्यम्य तत्पञ्चाङ्गुलिचालनात् ।।१७।।

नामक मन्त्र के विभिन्न अक्षरों का जो उसकी विभिन्न कलाएँ हैं, अपने दाहिने हाथ के अँगूठे आदि के ऊपर न्यास करना चाहिए ।।५-६।। चतुष्कोण के रूप में फैली हुई किरणें पीतवर्ण की होती हैं और उनके देवता इन्द्र कहे गये हैं। दो भागों में कटे हुए कमल के सदृश अर्धवृत्त का वर्ण श्वेत तथा देवता वरुण होता है। त्रिकोण में स्वस्तिकाकार बना हुआ प्रकाशपुञ्ज अग्नि देवता से सम्बद्ध तथा उसके तेज से युक्त होता है। अन्तिम (बाह्य) विन्दुयुक्त वृत्ताकार मण्डल कृष्णवर्ण तथा वायु देवता से सम्बद्ध होता है ।।७-८।। तत्पश्चात् वियति मन्त्र के मुख्य अक्षरों का न्यास अँगूठे इत्यादि अँगुलियों के मध्यवर्ती स्थानों में करना चाहिए जो सुनहले सर्प से आवेष्टित माने जाते हैं। इस मन्त्र के चार वर्णों की कान्ति उनके सुन्दर मण्डलों के समान है। इस प्रकार न्यास करने के पश्चात् रूपरहित शब्दतन्मात्रमय शिव देवता के आकाश तत्त्व में इस मन्त्र के प्रथम अक्षर को कनिष्ठिका के मध्यपर्व पर स्थित समझना चाहिए। इसी प्रकार नाग शब्द के आदि और अन्तिम अक्षरों का भी उनके मण्डलों में न्यास करना चाहिए ।।९-११।। पृथ्वी आदि भूतों से सम्बद्ध अक्षरों का न्यास अँगूठे आदि अँगुलियों के अन्तिम पर्वों पर करना चाहिए। (पञ्च) तन्मात्राओं से सम्बद्ध अक्षरों का न्यास अँगुलियों पर करना चाहिए। इस प्रकार गरुड़ मन्त्र की शक्ति से समन्वित हाथ के एक स्पर्श से ही सभी प्रकार का स्थावर-जंगम विष दूर हो जाता है। तदनन्तर मन्त्रज्ञ को पृथ्वीमण्डल आदि में विन्यस्त वियति मन्त्र के चारों अक्षरों का अपनी श्रेष्ठ दो अँगुलियों के द्वारा शरीर के नाभिस्थानों और पर्वों में न्यास करे उस (गरुड़ देवता)को घुटनों से नाभि तक स्वर्ण वर्ण का, नाभि से ऊपर हिम धवल, कण्ठ तक केसरिया और केशपर्यन्त श्याम वर्णवाला समझना चाहिए। वह गरुड़ देवता समूचे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। उनका चन्द्र नाम का नागमय आभूषण है। उनकी नासिका का अग्रभाग नीले रंग का है और उनके पंख बड़े विशाल हैं। सर्प दंश की चिकित्सा करनेवाले विष-वैद्य के मन्त्र में इस अलौकिक गरुड़ का वर्णन प्रधान हुआ करता है ।।१२-१६।। इस प्रकार गरुड़ मन्त्र से अभिमन्त्रित हाथ की मुट्ठी का प्रहार सभी प्रकार के सर्प-विषों को दूर करनेवाला होता है। उपर्युक्त मन्त्र

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्याद्विषस्य स्तम्भादींस्तदुक्तमदवीक्षया । आकाशादेष भूबीजः पञ्चार्णाधिपतिर्मनुः ।।१८।।
संस्तम्भयेऽतिविषतो भाषया स्तम्भयेद्विषम् । व्यत्यस्तभूषणो बीजमंत्रोऽयं साधुसाधितः ।।१९।।
संप्लवप्लावययमशब्दाद्यः संहरेद्विषम् । दण्डमुत्थापयेदेष सुजप्ताम्भोऽभिषेकतः ।।२०।।
सुजप्तशङ्खभेर्यादिनिस्वनश्रवणेन वा । संदहत्येव संयुक्तो भूतेजोव्यत्ययात्स्थितः ।।२१।।
भूवायुव्यत्ययान्मंत्रो विषं संक्रामयत्यसौ । अन्तस्थो निजवेश्मस्थो बीजाग्नीन्दुजलाम्बुभिः ।।२२।।
एतत्कर्म नयेन्मंत्री गरुडाकृतिविग्रहः । तार्क्ष्यवरुणगेहस्थस्तज्जपान्नाशयेद्विषम् ।।२३।।
जानुदण्डीमुदितं स्वधाश्रीबीजलाञ्छितम् (?) । स्नानपानात्सर्वविषं ज्वरा(र) रोगापमृत्युजित् ।।२४।।
पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा । पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा ।।२५।।
द्वावेतौ पक्षिराणमंत्रौ विषघ्नावभिमंत्रणात् ।।२६।।
पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि । तन्नो गरुड (:) प्रचोदयात् ।।२७।।
वह्निस्थौ पार्श्वतत्पूर्वौ दन्तश्रीकौ च दण्डिनौ । सकाली लाङ्गली चेति नीलकण्ठाद्यमीरितम् ।।
वक्ष कण्ठशिखाश्वेतं न्यसेत्स्तम्भे सुसंस्कृतौ ।।२८।।

से अभिमन्त्रित पाँचों उँगलियों को सर्प-दंश के ऊपर हिलाने से आगे विष का प्रसार रुक जाता है। हस्तचालन के समय जिस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए, वह इस प्रकार है-आकाश से लेकर पृथ्वीपर्यन्त जो पाँच बीज हैं उन्हें पंचाक्षर मन्त्रराज कहा गया है। उसका स्वरूप है-हूं यं रं वं लं। मन्त्रज्ञ पुरुष इस मन्त्र के उच्चारण मात्र से भीषणतम विष को भी रोक देता है। यह व्यत्यस्तभूषण बीजमन्त्र है। इसको अच्छी तरह साध लिया जाय और इसके आदि में संप्लव प्लावय प्लावय-यह वाक्य जोड़ दिया जाय तो यह और भी अधिक प्रभा श्री हो जाता है। जिस रोगी के ऊपर उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित जल छिड़क दिया जाता है वह निश्चय ही उठकर बिस्तर पर बैठ जाता है ।।१७-२०।। अच्छी तरह साधित मन्त्र से अभिमन्त्रित तुरही अथवा शंख का शब्द ही मरणासन्न रोगी को ठीक कर देता है क्योंकि शक्तिशाली वियति मन्त्र में भू बीज तथा तेजोबीज मन्त्र की शक्ति समन्वित रहती है। तदनन्तर अपने मूल तत्त्वों पृथ्वी, वायु से अलग होकर यह मन्त्र विष के ऊपर आक्रमण करता है तथा तेज अग्नि और जल इन अशेष तत्त्वों से उसे नष्ट कर देता है। विष-वैद्य के इस मन्त्र का सावधानीपूर्वक गरुड़ और वरुण के मन्दिर में जप करना चाहिए। इस अवसर पर उसे अपने-आपको अलौकिक गरुड़ की शक्ति में समन्वित समझकर अपना ध्यान एक भयंकर सर्पद्वेषी गरुड़ के रूप में करना चाहिए। स्वधा और श्री के बीजों से युक्त करके यदि इस मन्त्र को बोला जाय तो इसे जानुदण्डिमन्त्र कहते हैं। इससे जपपूर्वक स्नान और जलपान करने से साधक सब प्रकार के विष, ज्वर, रोग और अपमृत्यु पर विजय पा लेता है ।।२१-२४।। 'पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा' और 'पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा' यह दोनों गरुड़ मन्त्र कहलाते हैं। इनके अभिमन्त्रण से सब प्रकार का विष नष्ट हो जाता है। गरुड़ के लिए गायत्री मन्त्र इस प्रकार है-'पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि। तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात्' उपर्युक्त दोनों पक्षिराज-मन्त्रों को 'रं' बीज से आवृत करके उनके पार्श्व भाग में भी 'रं' बीज जोड़ दे। तदनन्तर दन्त, श्री, दण्डी, काली और लाङ्गली से उन्हें युक्त कर दे और आदि में पूर्वोक्त नीलकण्ठ मन्त्र जोड़ दे। इस प्रकार बताये गये मन्त्र का वक्षःस्थल, कण्ठ और शिखा में न्यास करे। उक्त दोनों मन्त्रों का सन्दर्भ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हर हर हृदयाय नमः कपर्दिने च शिरसि । नीलकण्ठाय वै शिखां कालकूटविषभक्षणाय स्वाहा ।।२९।।
अथ वर्म च कण्ठे नेत्रं कृत्तिवासास्त्रिनेत्रम् । पूर्वाद्यैराननैर्युक्तं श्वेतपीतारुणासितैः ।।३०।।
अभयं वरदं चापं वासुकिं च दधद्भुजैः । यस्योपवीतपार्श्वस्था गौरी रुद्रोऽस्य देवता ।।३१।।
पादजानुगुहानाभिहृत्कण्ठाननमूर्धसु । मंत्रार्णान्न्यस्य करयोरङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु च ।।३२।।
तर्जन्यादितदन्तासु सर्वमङ्गुष्ठयोर्न्यसेत् । ध्यात्वैवं संहरेत्क्षिप्रं बद्धया शूलमुद्रया ।।३३।।
कनिष्ठा ज्येष्ठया बद्धा तिस्रोऽन्याः प्रसृतेर्जवाः(?) । विषनाशे वामहस्तमन्यस्मिन्दक्षिणं करम् ।।३४।।
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय[1] चिः अमलकण्ठाय चिः । सर्वज्ञकण्ठाय चिः क्षिप क्षिप, ॐ स्वाहा ।।
अमलनीलकण्ठाय नैकसर्वविषापहाय । नमस्ते रुद्र मन्यव इति संमार्जनाद्विषं विनश्यति
न संदेहः । कर्णजाप्या [2]उपानहा वा ।।३५।।
यजेद्रुद्रविधानेन नीलग्रीवं महेश्वरम् । विषव्याधिविनाशः स्यात्कृत्वा रुद्रविधानकम् ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दष्टचिकित्साकथनं नाम पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९५।।

करके उन्हें स्तम्भ में अंकित करे। इसके पश्चात् निम्नाङ्कित रूप से न्यास करे–'हर हर हृदयाय नमः कपर्दिने शिरसे स्वाहा नीलकण्ठाय शिखायै वषट् कालकूट विषभक्षणाय स्वाहा हुं फट् कवचाय हुम्, कृत्तिवासो नेत्रत्रयाय वौषट नीलकण्ठाय स्वाहा अस्त्राय फट्। जिनके पूर्व आदि मुख क्रमशः श्वेत, पीत, अरुण, श्याम हैं जो अपने चारों हाथों में क्रमशः अभय, वरद, धनुष तथा वासुकि नाग को धारण करते हैं, जिनके गले में यज्ञोपवीत शोभा पाता है और पार्श्व भाग में गौरी देवी विराजमान हैं, वे भगवान् रुद्र इस मन्त्र के देवता हैं ।।२५–३१।। पैरों, घुटनों, भुजाओं, नाभि, हृदय, ग्रीवा, मुख और सिर में मन्त्र के अक्षरों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर दोनों हाथों के अंगुष्ठ से आदि अँगुलियों में मन्त्राक्षरों का न्यास करके सम्पूर्ण मन्त्र का अंगुष्ठों में न्यास करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान और न्यास करके शीघ्र ही बाँधी गयी शूल–मुद्रा के द्वारा विष का संहार करे। कनिष्ठा अँगुली ज्येष्ठा से बँध जाय और तीन अँगुलियाँ फैल जायँ तो शूल–मुद्रा होती है। विष के प्रभाव को मन्द करने के लिए बायें हाथ का प्रयोग करना चाहिए किन्तु अन्य अवसरों पर दाहिने हाथ से ही काम लेना चाहिए। ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय चिः अमलकण्ठाय चिः, सर्वज्ञकण्ठाय चिः 'क्षिप क्षिप' ॐ स्वाहा अमलनीलकण्ठाय नैकसर्पविषापहाय। नमस्ते रुद्र मन्यवे" इस मन्त्र से (रोगी के शरीर का) सम्मार्जन करने से विष नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्र का रोगी के कान में जप करने से अथवा मन्त्र पढ़ते हुए जूते से रोगी के पास की भूमि पीटने से भी विष उतर जाता है। (विष दूर करने के लिए) रुद्र–विधान से नीलकण्ठ महेश्वर का पूजन करना चाहिए। क्योंकि रुद्र–विधान विष से उत्पन्न होनेवाली सभी व्याधियों का विनाश कर देता है ।।३२–३६।।

श्री अग्निमहापुराण में दष्टचिकित्सा–कथन नामक दो सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९५।।

---

१ ङ. °य टि, अ°। च. °य, इति। अ°। २ ङ. उपलता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चाङ्गरुद्रविधानम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये रुद्रविधानं तु पञ्चाङ्गं सर्वदं परम्। हृदयं शिवसंकल्पः शिरः सूक्तं तु पौरुषम् ।।१।।
शिखाऽद्भ्यः संभृतं सूक्तमाशुः कवचमेव च। [1]शतरुद्रीयसंज्ञस्य रुद्रस्याङ्गानि पञ्च हि ।।२।।
पञ्चाङ्गान्यस्य तं ध्यात्वा जपेद्रुद्रांस्ततः क्रमात्। यज्जाग्रत इति सूक्तं [2]षड्चं मानसं विदुः ।।३।।
ऋषिः स्याच्छिवसंकल्पश्छन्दस्त्रिष्टुवुदाहृतम्। शिरः सहस्रशीर्षेति तस्य नारायणोऽप्यृषिः ।।४।।
देवता पुरुषोऽनुष्टुप्छन्दो ज्ञेयं च त्रैष्टुभम्। अद्भ्यः संभृतसूक्तस्य ऋषिरुत्तरगो नरः ।।५।।
अद्यानां तिसृणां त्रिष्टुप्छन्दोऽनुष्टुब्द्वयोरपि। छन्दस्त्रैष्टुभमन्त्यायाः पुरुषोऽस्यास्ति देवता ।।६।।
आशुरिन्द्रो द्वादशानां छन्दस्त्रिष्टुवुदाहृतम्। ऋषिः प्रोक्तः प्रतिरथः सूक्ते सप्तदशर्चके ।।७।।
पृथक्पृथग्देवताः स्युः पुरुविदङ्गदेवता। अवशिष्टदैवतेषु च्छन्दोऽनुष्टुवुदाहृतम् ।।८।।
असौ यस्ताम्रो भवति पुरुलिङ्गोक्तदेवता। पंक्तिश्छन्दोऽथ मर्माणि त्रिष्टुब्लिङ्गोक्तदेवताः ।।९।।

अध्याय २९६

पञ्चाङ्गरुद्रविधान

अग्निदेव बोले–अब मैं पाँच अङ्गों से युक्त रुद्र विधान का वर्णन कर रहा हूँ। यह सब-कुछ देनेवाला और अत्यन्त श्रेष्ठ है। शिव संकल्प नामक मन्त्र से हृदय, पुरुषसूक्त से सिर, 'अद्भ्यः संभृतं' सूक्त से शिखा और 'आशुः' मन्त्र से कवच का न्यास करना चाहिए। शतरुद्रीय मन्त्र के साथ उपर्युक्त चारों मन्त्र रुद्र विधान के पाँच अङ्ग कहे जाते हैं। पञ्चांगों का ध्यान करके क्रमशः (विभिन्न) रुद्र मन्त्रों का जप करना चाहिए। उसका प्रथम मन्त्र समूह छह ऋचाओं से युक्त 'यज्जाग्रत' नामक मानस-सूक्त है ।।१-३।। इसका ऋषि शिवसंकल्प तथा छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है। सिर के न्यास करने के लिए प्रयुक्त 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि पुरुषसूक्त के ऋषि नारायण, पुरुष देवता और छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् हैं। 'अद्भ्यः सम्भृतः' सूक्त के ऋषि उत्तरग नामक व्यक्ति हैं। प्रथम तीन ऋचाओं का छन्द त्रिष्टुप् है तथा बाद की दो ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् कहा गया है। अन्तिम मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द में है। इसका देवता पुरुष कहा गया है ।।४-६।। 'आशुः' इत्यादि बारह मन्त्रों का देवता इन्द्र तथा छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है। सत्रह ऋचाओं से युक्त इस सूक्त का ऋषि प्रतिरथ है। (इस सूक्त के) विभिन्न मन्त्रों के देवता (भी) भिन्न-भिन्न हैं और पुरुविद् इसका अङ्गदेवता है। अन्य देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों का छन्द 'अनुष्टुप्' है। 'असौ यस्ताम्रो' आदि सूक्त में बहुत-से देवता हैं। उसमें पङ्क्ति छन्द है। 'मर्माणि ते' मन्त्र का त्रिष्टुप् छन्द है और लिङ्गोक्त देवता है ।।७-९।।

---

१ छ. °यमस्त्रं च रु°। २ छ. यदृच°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रौद्राध्याये च सर्वस्मिन्नृषिः स्यात्परमेष्ठ्यथ। प्रजापतिर्वा देवानां कुत्सश्च तिसृणां पुनः ।।१०।।
मनोद्वयोरुगेका स्याद्रुद्रो रुद्राश्च देवताः। आद्योऽनुवाकोऽथ पूर्व एकरुद्राख्यदैवतः ।।११।।
छन्दो गायत्रमाद्याया अनुष्टुप्तिसृणामृचाम्। तिसृणां च तथा पंक्तिरनुष्टुवथ संस्मृतम् ।।१२।।
द्वयोश्च जगतीछन्दो रुद्राणामप्यशीतयः। हिरण्यबाहवस्तिस्त्रो नमो वः किरिकाय च ।।१३।।
पञ्चर्चो रुद्रदेवाः स्युर्मन्त्रे रुद्रानुवाककः। विंशके रुद्रदेवास्ताः प्रथमा बृहती स्मृता ।।१४।।
ऋग्द्वितीया त्रिजगती तृतीया त्रिष्टुबेव च। अनुष्टभो यजुस्तिस्त्र आर्योऽभिज्ञः सुसुद्धिभाक्।
त्रैलोक्यमोहनेनापि विषव्याध्यादिमर्दनम् ।।१५।।
इं श्रीं ह्रीं ह्रूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ।।१६।।
अनुष्टुभनृसिंहेन विषव्याधिविनाशनम् ।।१७।।
ॐ हम्, इम्, उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।।१८।।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्। अयमेव तु पञ्चांगो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।।१९।।
द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ विषव्याधिविमर्दनौ। कुब्जिका त्रिपुरा गौरी [1]चन्द्रिका विषहारिणी ।।२०।।
प्रसादमन्त्रो विषहृदायुरारोग्यवर्धनः। सौरो विनायकस्तद्वद्रुद्रमन्त्राः सदाऽखिलाः ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाङ्गरुद्रविधानं नाम षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९६।।

सम्पूर्ण रौद्राध्याय में ऋषि परमेष्ठि अथवा प्रजापति हैं किन्तु तीन देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों के ऋषि कुत्स हैं। 'मनस्' इत्यादि से प्रारम्भ होनेवाले दो मन्त्रों का देवता रुद्र है किन्तु प्रथम अनुवाक् का देवता एक रुद्र कहा गया है। पहली ऋचा का छन्द गायत्री तथा शेष अन्य ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् है। उससे आगेवाले तीन मन्त्रों का छन्द पङ्क्ति तथा शेष मन्त्रों का छन्द अनुष्टुप् है ।।१०-१२।। इस अनुवाक् के दो-दो मन्त्र जगती छन्द में हैं। इनमें परिगणित ८० (अस्सी) रुद्र इनके देवता हैं। 'हिरण्य-वाहवः' आदि पाँच ऋचाओं के देवता रुद्र हैं। इन ऋचाओं में से पहली ऋचा का छन्द 'बृहती' है। बाद की तीन ऋचाओं का छन्द जगती है और उनके बाद की ऋचा का छन्द त्रिष्टुप् है। उसके बाद चार यजुष् मन्त्र हैं, जिनका छन्द अनुष्टुप् है। इन मन्त्रों को सम्यक् प्रकार से जाननेवाला व्यक्ति आर्य है, वह सभी सिद्धियों का भागी भी है ।।१३-१४ $\frac{1}{2}$।। 'त्रैलोक्यमोहन' नामक मन्त्र से भी विषव्याधि का विनाश हो जाता है। यह मन्त्र है-'इं श्रीं ह्रीं ह्रूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।' अनुष्टुप् नामक छन्द में निबद्ध नृसिंह मन्त्र भी विषव्याधि का विनाशक है। वह मन्त्र है-'ॐ हम् इम् उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तम् सर्वतो मुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।' वह पञ्चांग मन्त्र है जो सभी मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है ।।१५-१९।। बारह और आठ अक्षरोंवाले विष्णु के मन्त्र भी विषव्याधि दूर करनेवाले हैं। कुब्जिका, त्रिपुरा, गौरी और चन्द्रिका देवियाँ विषापहारिणी हैं। 'प्रसाद मन्त्र' विष का अपहरण करनेवाला तथा आरोग्यवर्धक है। सूर्य और विनायक तथा रुद्र के सभी मन्त्र उसी प्रकार (विषापहारक तथा आरोग्यवर्धक) हुआ करते हैं ।।२०-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में पञ्चाङ्ग रुद्र-विधान-कथन नामक दो सौ छियानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९६।।

---

१ छ. चण्डिका।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विषहन्मत्रौषधम्

अग्निरुवाच

ॐ नमो भगवते रुद्राय च्छिन्दच्छिन्दविषं ज्वलितपरशुपाणये च ।
नमो भगवते पक्षिरुद्राय दष्टकमुत्थापयोत्थापय दष्टकं कम्पय कम्पय जल्पय जल्पय
सर्वदष्टमुत्थापयोत्थापय लल लल बन्ध बन्ध मोचय मोचय वररुद्र गच्छ गच्छ वध वध त्रुट
त्रुट वुक वुक भीषय भीषय मुष्टिना विषं संहर संहर ठ ठ ।।१।।
पक्षिरुद्रेण ह विषं नाशमायाति मन्त्रणात् ।।२।।
ॐ नमो भगवते रुद्र नाशय विषं स्थावरजङ्गमं कृत्रिमाकृत्रिममुपविषं नाशय नानाविषं दष्टकविषं
नाशय धम धम दम दम वम वम मेघान्धकारधारावर्ष निर्विषी भव संहर संहर गच्छ गच्छाऽऽवेशयाऽऽवेशय
विषोत्थापनरूपं मन्त्राद्विविषधारणम् । ॐ क्षिप, ॐ क्षिप स्वाहा ॐ ह्रां ह्रीं खीं सः, ठं द्रौं ह्रीं ठः ।।३।।
जपादिना साधितस्तु सर्पान्बध्नाति नित्यशः । एकद्वित्रिचतुर्बीजः कृष्णचक्राङ्गपञ्चकः ।।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सर्वार्थसाधकः ।।४।।
ॐ नमो भगवते रुद्राय [1]प्रेताधिपतये शृणु शृणु गर्ज गर्ज भ्रामय भ्रामय मुञ्च मुञ्च मुह्य मुह्य
कट्ट कट्ट, आविश आविश सुवर्णपतङ्ग [1]रुद्रो ज्ञापयति ठ ठ ।।५।।
पातालक्षोभमन्त्रोऽयं मन्त्रणाद्विषनाशनः । दंशकाहिदंशे सद्यो दष्टः काष्ठशिलादिना ।।६।।
विषशान्त्यै दहेद्दंशज्वालकोकनदादिना । शिरीषबीजपुष्पार्कक्षीरबीजकटुत्रयम् ।।७।।

अध्याय २९७

विषहन्मन्त्रौषध

अग्निदेव बोले–'ॐ नमो भगवते रुद्राय·····संहर ठ ठ' इस पक्षि रुद्र नामक मन्त्र से मन्त्रित करने पर निश्चय ही (सर्प) विष का नाश होता है ।।१–२।। 'ॐ नमो भगवते रुद्र नाशय···द्रौं ह्रीं ठः' इस मन्त्र के जपादि से सिद्ध किया हुआ मन्त्र नित्य सर्पों को बन्धन में डाल देता है। एक द्वि त्रि चतुर्बीजात्मक तथा कृष्णचक्र जिसका पाँचवाँ अङ्ग है। ऐसा 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह मन्त्र समस्त मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है ।।३–४।। 'ॐ नमो भगवते रुद्राय·····ज्ञापयति ठ ठ' इस पाताल क्षोभ नामक मन्त्र के जप से (सर्प) विष का नाश होता है। दंशक सर्प के काट लेने पर काटे हुए भाग को जलते हुए काष्ठ, गरम पत्थर अथवा कोकनद आदि से जला देना चाहिए। इससे विष शान्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष का बीज तथा पुष्प, मदार का दूध और बीज, कटुत्रय (सोंठ, मिर्च, पीपरि), इन ओषधियों के पान, लेपन तथा अञ्जनादि से सर्प–विष का नाश होता है। शिरीष पुष्प के रस से सोंधी हुई सफेद मिर्च के पीने

---

१ छ. °ये गुत्त्व गुत्त्व ग°। २ क. ङ. रुद्रो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषं विनाशयेत्यानलेपनेनाञ्जनादिना। शिरीषपुष्पस्य रसभावितं मरिचं सितम् ।।८।।
[1]पाननस्याञ्जनाद्यैश्च विषं हन्यान्न संशयः। कोषातकीवचाहिङ्गुशिरीषार्कपयोयुतम् ।।९।।
कटुत्रयं समेषाम्भो हरेन्नस्यादिना विषम्। रामठेक्ष्वाकुसर्वाङ्गचूर्णं नस्याद्विषापहम् ।।१०।।
इन्द्रबलाग्निकं द्रोणं तुलसी देविका सहा। तद्रसाक्तं त्रिकटुकं चूर्णं भक्ष्यं विषापहम् ।।११।।
पञ्चाङ्गं कृष्णपञ्चम्यां शिरीषस्य विषापहम् ।।१२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषहन्मन्त्रौषधकथनं नाम सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९७।।

अथाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गोनसादिचिकित्सा

अग्निरुवाच

गोनसादिचिकित्सां च वशिष्ठ शृणु वच्मि ते ।।१।।
ॐ ह्रां ह्रीम्, [2]अमलपक्षि [3]स्वाहा ।।२।।
ताम्बूलखादनान्मन्त्री हरेन्मण्डलिनो विषम्। लशुनं रामठफलं कुष्ठोग्रा व्योषकं विषे ।।३।।
स्नुहीक्षीरं गव्यघृतं पक्वं पीत्वाऽहिजे विषे। अथ राजिलदष्टे च पेया कृष्णा ससैन्धवा ।।४।।

तथा नस्य अञ्जनादि रूप में उसका प्रयोग करने से निश्चित ही विष दूर हो जाता है ।।५-८$\frac{1}{2}$।। कोषातकी, वच, हींग, शिरीष, मदार का दूध, सोंठ, मिर्च और पीपरि–इस सबसे तैयार किये गये जल के न्यास लेने से सर्प-विष दूर हो जाता है। अंकोल और कड़वी तुम्बी के सर्वाङ्ग चूर्ण से नस्य लेने पर विष का अपहरण हो जाता है। इन्द्र (कुटक), बल (वरुण वृक्ष), अग्नि (भेलावाँ), द्रोण, तुलसी और देविका (धत्तूर) के रस में सोंठ, मिर्च और पीपरि के चूर्ण को मिलाकर खाने से सर्पविष दूर हो जाता है। कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि को लाये गये शिरीष पुष्प के (मूल, छाल, पत्ते, पुष्प और फल) इन पाँचों अङ्गों के सेवन से भी सर्प-विष दूर हो जाता है ।।९-१२।।

श्री अग्निमहापुराण में विषहन्मन्त्रौषध-कथन नामक दो सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९७।।

अध्याय २९८

गोनसादि-चिकित्सा

अग्निदेव बोले–हे वशिष्ठ! गोनस आदि (सर्पों) के काटे हुए रोगी की चिकित्सा तुमको बतलाता हूँ, उसे सुनो ।।१।। 'ॐ ह्रां ह्रीम् अमलपक्षि स्वाहा' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित ताम्बूल के खाने से सर्पमन्त्र का ज्ञाता मण्डली सर्प के विष को दूर कर देता है। लहसुन, हींग, कुष्ठ, उग्रा, सोंठ, मिर्च और पीपरि का चूर्ण विष दूर करनेवाला होता है। गाय के घी में सेंहुड़ के दूध को पकाकर पीने से सर्प-विष में लाभ होता है। राजिल नामक सर्प के काटने

---

१ ख.° नलेपाञ्ज°। २ क. ङ. पक्षे स्वा°। ३ क. ङ. ह्रीं पञ्चाङ्गस्वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आज्यं क्षौद्रं शकृत्तोयं [1]पुरीतत्या विषापहम् । सकृष्णाखण्डदुग्धाज्यं पातव्यं तेन माक्षिकम् ।।५।।
व्योषं पिच्छं बिडालास्थिनकुलाङ्गरुहैः समैः । चूर्णितैर्मेषदुग्धाक्तैर्धूपः सर्वविषापहः ।।६।।
रोमनिर्गुण्डिकाकोलवर्णैर्वा लशुनं समम् । मुनिपत्रैः कृतस्वेदं दष्टं काञ्जिकपाचितैः ।।७।।
मूषिकाः षोडश प्रोक्ता रसं कार्पासजं पिबेत् । सतैलं मूषिकार्तिघ्नं फलिनीकुसुमं तथा ।।८।।
सनागरगुडं भक्ष्यं तद्विषारोचकापहम् । चिकित्सा विंशतिः प्रोक्ता[2] लूता विषहरो गणः ।।९।।
पद्मकं पाटली कुष्ठं नतमुशीरचन्दनम् । निर्गुण्डी सारिवा शेलु लूतार्तं सेचयेज्जलैः ।।१०।।
गुञ्जानिर्गुण्डिकङ्कोलपर्णं शुण्ठी निशाद्वयम् । करञ्जास्थि च तत्पङ्कैर्वृश्चिकार्तिहरं शृणु ।।११।।
मञ्जिष्ठा चन्दनं व्योषपुष्पाशिरीषकौमुदम् । संयोज्याश्चतुरो योगा लेपादौ वृश्चिकापहाः ।।१२।।
ॐ नमो भगवते रुद्राय चिवि चिवि च्छिन्द च्छिन्द किरि किरि भिन्द भिन्द खड्गेन च्छेदय च्छेदय
शूलेन भेदय भेदय चक्रेण दारय दारय ॐ हूं फट् ।।१३।।
मंत्रेण मंत्रितो देयो गर्दभादीन्निकृन्तति । त्रिफलोशीरमुस्ताम्बुमांसीपद्मकचन्दनम् ।।१४।।
अजाक्षीरेण पानादौ गर्दभादेर्विषं हरेत् । हरेच्छिरीषपञ्चांगव्योषं शतपदीविषम् ।।१५।।

पर सेंधानमक के साथ कृष्णा (गजपीपरि) का पान करना चाहिए ।।२-४।। घृत, मधु और शकृत्तोय (पशु विष्ठा का जल) नाड़ियों में फैले हुए विष को भी दूर कर देते हैं। गजपीपरि के समस्त अङ्ग, दुग्ध और घी के सहित मधु को पीने से सर्प विष दूर होता है। सोंठ, मिर्च, पीपरि, मयूरपिच्छ, विडाल की हड्डी, नेवले के रोयें इन सबके सम भाग को पीसकर भेड़ के दूध में मिलाकर धूप देने से सब प्रकार का विष दूर हो जाता है। सिन्धुवार, अश्वगन्धा तथा लहसुन भी विषनाशक है। काञ्जी के रस में पकाये हुए अगस्त्य (वृक्ष) के पत्तों से धूनी देने से भी सर्प विष दूर हो जाता है ।।५-७।। मूषकों के सोलह भेद बताये गये हैं। उनके काटने पर कपास के पत्तों का रस पीना चाहिए। फलिनी लता के फूलों के रस को तेल के साथ पीने से भी मूषकों का विष शान्त हो जाता है। मूषक के काटने पर उसके विष से उत्पन्न पीड़ा को दूर करने के लिए गुड़ के साथ नागरमोथा का सेवन करना चाहिए। लूता (रोग-विशेष जिसमें शरीर में फुंसियाँ निकल आती हैं अथवा मकड़ी के मूत्रोत्सर्ग से उत्पन्न होनेवाली फुंसियाँ) आदि के विषों की चिकित्सा बीस प्रकार से बतायी गयी है ।।८-९।। लूता के रोगी के लिए पद्मक, पाटली, अश्वगन्धा, तगर की जड़, खस, चन्दन, म्योड़ी, सारिवा, शेलु ओषधियाँ लाभदायक हुआ करती हैं। लूता के रोगी का उक्त ओषधियों के जल से सेचन करना चाहिए। घुँघुची, म्योड़ी, कंकोल के पत्र, सोंठ, दोनों हल्दी, करञ्जा की छाल तथा उसके लेप से लूता विष से पीड़ित रोगी की पीड़ा दूर होती है। अब बिच्छू के विष को दूर करनेवाली ओषधियों को सुनो ।।१०-११।। मञ्जिष्ठ, चन्दन, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि), कोकाबेली और शिरीष पुष्प के लेप से बिच्छू की पीड़ा शान्त होती है। 'ॐ नमो भगवते····ॐ हूं फट्'-मन्त्र से अभिमन्त्रित त्रिफला (आँवला, हर्रा, बहेड़ा), खस, नागरमोथा, रास्नालता, जटामासी, पद्मक और चन्दन को बकरी के दूध में पीने से गर्दभादि के काटने का विष शान्त हो जाता है ।।१२-१४½।।

---

१ क. ङ. °रीद्वारा वि°। २ 'चिकित्सा विंशतिः प्रोक्ता' इत आरभ्य ''त्वरिताज्ञानमाख्यास्ये'' इत्यस्मात्प्रागध्यायदशक-परिमितोः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सकन्धरं शिरीषास्थि हरेदुन्दूरजं विषम्। व्योषं ससर्पिः पिण्डीतमूलमस्य विषं हरेत् ।।१६।।
क्षारव्योषवचाहिङ्गुविडङ्गं सैन्धवं नतम्। अम्बष्ठाऽतिबला कुष्ठं सर्वकीटविषं हरेत् ।।
यष्टिव्योषगुडक्षीरयोगः[1] शुनो विषापहः ।।१७।।
ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ सुप्रभायै नमः ।।१८।।
यान्यौषधानि गृह्यन्ते विधानेन विना जनैः। तेषां बीजं त्वया ग्राह्यमिति ब्रह्माऽब्रवीच्च ताम् ।।१९।।
तां प्रणम्यौषधीम् पश्चाद्यवान्प्रक्षिप्य मुष्टिना। दश जप्त्वा मन्त्रमिमं नमस्कुर्यात्तदौषधम् ।।२०।।
त्वामुद्धराम्यूर्ध्वनेत्रामनेनैव च भक्षयेत्। नमः पुरुषसिंहाय नमो गोपालकाय च ।।२१।।
आत्मनैवाभिजानाति रणे कृष्ण पराजयम्। अनेन सत्यवाक्येन अगदो मेऽस्तु सिध्यतु ।।२२।।
नमो वैदूर्यमात्रे [2]तत्र रक्ष रक्ष मां सर्वविषेभ्यो गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये ।।२३।।
औषधादौ प्रयोक्तव्यो मन्त्रोऽयं स्थाविरे विषे। मुक्तमात्रे स्थिते ज्वाले पद्मशीताम्बुसेवितम् ।।
पाययेत्सघृतं क्षौद्रं विषिञ्चेत्तदनन्तरम् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गोनसादिचिकित्साकथनं नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९८।।

शतपदी (गोजर) नामक कीट के काटने का विष शिरीष पुष्प के पञ्चांग (मूल, छाल, पत्ते, पुष्प और फल) के साथ सोंठ, मिर्च और पीपरि के सेवन से शान्त हो जाता है। शाखा सहित शिरीष पुष्प की छाल छछुन्दर के विष को शान्त करती है। व्योष (सोंठ, मिर्च और पीपरि), बच, हींग, विडङ्ग, सेंधानमक, नत (तगर की जड़), ब्राह्मी लता, अतिबला तथा कुष्ठ का लेप सभी कीड़ों का विष दूर करता है ।।१५-१६ $\frac{1}{2}$।। यष्टि, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि, गुड़ तथा दूध) के मिश्रण से कुत्ते का विष दूर हो जाता है। ब्रह्मा ने सुभद्रा और सुप्रभा से कहा कि जिन ओषधियों को मनुष्य बिना किसी विधान के ग्रहण करते हैं उन ओषधियों की शक्ति तुमको ले लेना चाहिए। अतः मनुष्य को योग्य है कि किसी भी ओषधि को ग्रहण करते समय 'ॐ सुभद्रायै नमः', 'ॐ सुप्रभायै नमः'– इस मन्त्र का उच्चारण करे। इस मन्त्र से ओषधि को प्रणाम करके तत्पश्चात् मुट्ठी भर यव (इधर-उधर) फेंकना चाहिए। उपर्युक्त मन्त्र का दस बार पुनः जप करके उस ओषधि को प्रणाम करना चाहिए ।।१७-२०।। 'अयि ओषधि! मैं तुम्हें प्रबुद्ध कर रहा हूँ, 'नेत्र को ऊपर करो', ऐसा कहते हुए ओषधि को उखाड़ना चाहिए और निम्नांकित मन्त्र से उसका भक्षण करना चाहिए। 'भगवन् नृसिंह को नमस्कार है, गोपालक (भगवान् कृष्ण) को नमस्कार है। अयि कृष्ण! आप युद्ध में अपने से ही पराजित होते हैं (किसी अन्य से नहीं), इस सत्य वाक्य से मुझमें नीरोगता हो और औषध मेरे लिये सिद्ध हो।' स्थावर विष (को दूर करने) में औषध प्रयोग के पूर्व 'नमो वैदूर्यमात्रे····स्वाहा हरिमाये' मन्त्र का प्रयोग कर लेना चाहिए। यदि विष केवल खाया ही गया हो तो कमल और शीतल जल का प्रयोग करना चाहिए। (शरीर में) विष शेष रह जाने पर घी और मधु मिलाकर पिलाना चाहिए और (विष से उत्पन्न) जलन का अनुभव होने पर रोगी को स्नान कराना चाहिए ।।२१-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में गोनसादिचिकित्सा-कथन नामक दो सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९८।।

---

१ ख. ग. °गः खिलवि°। च. °गः स्यातु वि०°। २ छ. तन्नर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

बालादिग्रहहरबालतन्त्रम्

अग्निरुवाच

बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि बालादिग्रहमर्दनम् । अथ जातदिने वत्सं ग्रही गृह्णाति पापिनी ।।१।।
गात्रोद्वेगो निराहारो नानाग्रीवाविवर्तनम् । तच्चेष्टितमिदं तत्स्यान्मातृणां च बलं हरेत् ।।२।।
मत्स्यमांससुराभक्ष्यगन्धस्त्रग्धूपदीपकैः । लिम्पेच्च धातकीलोध्रमञ्जिष्ठातालचन्दनैः ।।३।।
महिषाक्षेण धूपश्च द्विरात्रे भीषणी ग्रही । तच्चेष्टा कासनिःश्वासौ गात्रसंकोचनं मुहुः ।।४।।
अजामूत्रयुतैः कृष्णा सेव्याऽपामार्गचन्दनैः । गोशृङ्गदन्तकेशैश्च धूपयेत्पूर्ववद्बलिः ।।५।।
ग्रही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दनं मुहुः । जृम्भणं स्वनितं त्रासो गात्रोद्वेगमरोचनम् ।।६।।
केशराञ्जनगोहस्तिदन्तं साजपयो लिपेत् । नखराजीबिल्वदलैर्धूपयेच्च बलिं हरेत् ।।७।।

अध्याय २९९

बालादिग्रहहर-बालतन्त्र

अग्निदेव बोले-(अब) मैं बालक आदि के ग्रहजन्य दोषों को दूर करनेवाले बालतन्त्र का वर्णन कर रहा हूँ। पापिनी नाम की ग्रही (स्त्री ग्रह) बालक के जन्म के दिन से ही बच्चे को पकड़ लेती है। उसके आक्रमण करते ही बच्चे के अंगों में पीड़ा होती है, वह भोजन छोड़ देता है तथा उसकी गर्दन में मरोड़ उत्पन्न हो जाता है, यह तो बच्चे की दशा हो जाती है, उधर माता का भी बल क्षीण हो जाता है ।।१-२।। ग्रही की शान्ति के लिए मछली, मांस, मद्य आदि भक्ष्य पदार्थों की बलि देकर तथा माल्य और धूप, दीप आदि से उसे प्रसन्न करना चाहिए और बच्चे के शरीर के ऊपर धातकी, लोध्र, मंजीठ, ताल, चन्दन आदि का लेप करना चाहिए। और गुग्गुल से धूप देना चाहिए। रात्रि में भीषणी नाम की ग्रही बालक को पकड़ लेती है। उसके द्वारा अभिभूत होने पर बच्चे को खाँसी आती है, श्वास चलने लगती है तथा शरीर में बार-बार सिकुड़न उत्पन्न हो जाती है। उसकी शान्ति के लिए लटजीरा, चन्दन और बकरी के मूत्र के साथ गजपीपरि का सेवन कराना चाहिए। साथ ही, गोशृङ्ग, बबूल, गोदन्त (हड़ताल) और गोकेश की धूप देनी चाहिए तथा उसे भी पूर्ववत् मछली और मांसादि की बलि देनी चाहिए ।।३-५।। तीसरी रात्रि में बालक को घण्टाली नाम की ग्रही पीड़ित करती है, इससे बच्चा बारम्बार रोता है, बार-बार जम्हाई लेता है, चिल्लाता है, भय की मुद्रा दिखलाता है, अंगों में उद्विग्नता होने लगती है तथा उसे कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती। इस ग्रही के द्वारा गृहीत बालक के ऊपर बकरी के दूध में केसर, अञ्जन, गोदन्त (हड़ताल) तथा हस्तिदन्त को मिलाकर लेप करना चाहिए और नख, श्वेत सरसों तथा बेल के पत्तों की धूप देकर (ग्रही के लिए) बलि देनी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेगः प्ररोचनम् । फेनोद्गारो दिशो दृष्टिः कुल्माषैः सासवैर्बलिः ।।८।।
गजदन्ताहिनिर्मोकवाजिमूत्रप्रलेपनम् । सराजीनिम्बपत्रेण [1]वृककेशेन धूपयेत् ।।९।।
हंसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्ध्वधारिणी । मुष्टिबन्धश्च तच्चेष्टा बलिं मत्स्यादिना हरेत् ।।१०।।
मेषशृंगबलालोध्रशिलातालैः शिशुं लिपेत् । फट्कारी तु ग्रही षष्ठी भयमोहप्ररोदनम् ।।११।।
निराहारोऽङ्गविक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिम् । राजी गुग्गुलुकुष्ठेभदन्ताद्यैर्धूपलेपनैः ।।१२।।
सप्तमे मुक्तकेश्यार्तः पूतिगन्धो विजृम्भणम् । नादः प्ररोदनं कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ।।१३।।
बचागोमयगोमूत्रैः श्रीदण्डी चाष्टमे ग्रही । दिशो निरीक्षणं जिह्वाचालनं कासरोदनम् ।।१४।।
बलिः पूर्वैश्च मत्स्याद्यैर्धूपलेपे च हिङ्गुना । वचासिद्धार्थलशुनैश्चोर्ध्वग्राही महाग्रही ।।१५।।
उद्वेजनोर्ध्वनिःश्वासः स्वमुष्टिद्वयखादनम् । रक्तचन्दनकुष्ठाद्यैर्धूपयेल्लेपयेच्छिशुम् ।।१६।।

चाहिए। चतुर्थ रात्रि में (बालक को पीड़ित करनेवाली) ग्रही का नाम काकोली है। उसके द्वारा पीड़ित बालक के शरीर में पीड़ा होती है, वह चिल्लाता है, उसके मुख से फेन (झाग) गिरता है और वह भौचक्का इधर-उधर देखता रहता है। इसकी शान्ति के लिए मदिरा के साथ कुल्थी की बलि देनी चाहिए ।।६-८।। बालक के ऊपर गजदन्त, सर्प की केंचुल तथा घोड़े के मूत्र का लेप करना चाहिए। नीम के पत्ते, सरसों तथा भेड़िये के बालों से धूप देना चाहिए। पञ्चमी रात्रि में बालक को पीड़ित करनेवाली ग्रही का नाम हंसाधिका है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक (बार-बार) जम्हाई लेता है। उसकी श्वास ऊपर की ओर चलने लगती है और वह बारम्बार मुट्ठी बाँधता है। इसकी शान्ति के लिए मछली, मांस, सुरा आदि की बलि देनी चाहिए ।।९-१०।। इसमें बच्चे के ऊपर भेंड़ की सींग, बलालता, लोध्र तथा शिलाताल से लेप करना चाहिए। छठी ग्रही का नाम फट्कारी है। इसके द्वारा पीड़ित शिशु भयभीत रहता है, मूर्च्छित हो जाता है, रोता है, आहार त्याग देता है और अंगों को इधर-उधर फेंकने लगता है। उसकी शान्ति के लिए मछली एवं मांस आदि की बलि देनी चाहिए तथा सरसों, गुग्गुल, कुष्ठ और गजदन्त आदि की धूप देकर इन्हीं का लेप करना चाहिए ।।११-१२।। सातवें दिन की ग्रही का नाम मुक्तकेशी है। इसके द्वारा पीड़ित शिशु के शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। वह जम्हाई लेता है, जोर-जोर से शब्द करता है, रोता है और खाँसता है। उसकी शान्ति के लिए व्याघ्रनख से धूप देना चाहिए। बच तथा गाय के गोबर एवं मूत्र से शिशु के ऊपर लेप करना (भी) लाभदायक है। आठवें दिन बालक को पीड़ित करनेवाली ग्रही का नाम श्रीदण्डी है। उसके द्वारा आक्रान्त शिशु इधर-उधर भौचक्का-सा देखता है, बार-बार जीभ हिलाता है, खाँसता है और रोता है ।।१३-१४।। उसकी शान्ति के लिए पहले कहे हुए मछली और मांस आदि से बलि देनी चाहिए। हींग की धूप देकर बच्चे के शरीर में हींग, बच, सरसों तथा लहसुन का लेप करना चाहिए। नवें दिन बालक को पीड़ित करनेवाली ग्रही का नाम है ऊर्ध्वग्राही। इसके द्वारा पीड़ित बालक सदा विह्वल रहता है, उल्टी श्वास लेता है और अपनी दोनों मुट्ठियों को मुख में डालता है। इस ग्रही के द्वारा अभिभूत बालक को नीरोग करने के लिए रक्तचन्दन, कुष्ठ तथा वानर के नख एवं रोम आदि का धूप देना चाहिए और (बालक के ऊपर) लाल चन्दन आदि इन्हीं वस्तुओं का लेप करना चाहिए। दसवें दिन बालक

---

१ ख. घृतकेशेन। छ. घूतकेशेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कपिरोमनखैर्धूपो दशमी रोदनी ग्रही। तच्चेष्टा रोदनं शश्वत्सुगन्धो नीलवर्णता ।।१७।।
धूपो निम्बेन भूतोग्रराजीसर्जरसैर्लिपेत्। बलिं बहिर्हरेल्लाजकुल्माषकरकौदनम् ।।१८।।
यावत्त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया। गृह्णाति मासिकं वत्सं पूतना [1]शकुनी ग्रही ।।१९।।
काकवद्रोदनं श्वासो मूत्रगन्धोऽक्षिमीलनम्। गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम् ।।२०।।
पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्त्रग्गन्धैस्तैलदीपकः। त्रिविधं पायसं मद्यं तिलं मांसं चतुर्विधम् ।।२१।।
करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्बलिं हरेत्। द्विमासिकं च मुकुटा वपुः पीतं च शीतलम् ।।२२।।
छर्दिः स्यान्मुखशोषादि पुष्पगन्धांशुकानि च। अपूपमोदनं दीपः [2]कृष्णनीरादिधूपकम् ।।२३।।
तृतीये गोमुखी निद्रा सविण्मूत्रप्ररोदनम्। यवाः प्रियङ्गुः [3]पललं कुल्माषं शाकमोदनम् ।।२४।।
क्षीरं पूर्वे ददेन्मध्येऽहनि धूपश्च सर्पिषा। पञ्चभङ्गेन तत्स्नानं चतुर्थे पिङ्गलाऽऽर्तिकृत् ।।२५।।
तनुः शीता पूतिगन्धः शोषः स म्रियते ध्रुवम्। पञ्चमी ललना गात्रसादः स्यान्मुखशोषणम् ।।२६।।

को आक्रान्त करनेवाली ग्रही का नाम रोदनी है ।।१५-१६$\frac{1}{2}$।। इस ग्रही के प्रभाव से शिशु रोता है, उसके शरीर से कुछ सुगन्धि निकलती है और उसका वर्ण कुछ नीला हो जाता है। इसकी शान्ति के लिए नीम की धूप करनी चाहिए और वत्सनाभ, श्वेत सरसों तथा सर्ज वृक्ष के रस को मिलाकर (उसके शरीर पर) लेप करना चाहिए। खील, कुल्थी, नारियल तथा चावल आदि की बलि भी (घर के) बाहर देनी चाहिए ।।१७-१८।। इसी प्रकार तेरहवें दिन तक धूपादि करते रहना चाहिए। एक मास के बच्चे के ऊपर दुष्टा पक्षी का रूप धारण करनेवाली पूतना ग्रही का आक्रमण होता है। उसके द्वारा आक्रान्त बच्चा कौए के समान रोता है, लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ता है, उसके मूत्र में विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न हो जाती है और बच्चा बार-बार नेत्र मूँदता है। उसकी शान्ति के लिए बच्चे को गोमूत्र में स्नान कराना चाहिए तथा गोदन्त (हड़ताल) से धूप देनी चाहिए ।।१९-२०।। रक्तमाल्य और रक्तचन्दन के साथ पीले वस्त्र का द्रान देना चाहिए, तेल का दीपक जलाना चाहिए तथा तीन प्रकार की खीर, मदिरा, तिल और चार प्रकार के उड़द की बलि देनी चाहिए। यह बलि दक्षिण दिशा में करञ्ज वृक्ष के नीचे सात दिनों तक देते रहना चाहिए। दो मास के शिशु को 'मुकुटा' नाम की ग्रही पकड़ती है। इससे बच्चे का शरीर पीला और ठण्डा पड़ जाता है ।।२१-२२।। बार-बार वमन करता है तथा उसके मुख में खुश्की आती है। इसकी शान्ति हेतु पुष्प, गन्ध और वस्त्रादि का दान करना चाहिए। अपूप (पुआ), चावल आदि की बलि देनी चाहिए तथा कालागुरु आदि से धूप, दीप देना चाहिए। तृतीय मास की ग्रही का नाम गोमुखी है। इसके द्वारा आक्रान्त शिशु को निद्रा अधिक सताती है। वह मल, मूत्र अधिक विसर्जित करता है तथा रोता भी अधिक है। इसकी शान्ति के लिए दिन के पूर्व भाग में यव, प्रियंगु लता, मांस, कुल्थी, शाक, चावल तथा दूध की बलि देनी चाहिए। मध्याह्न काल में घृत से धूप देकर पञ्चभङ्ग से स्नान कराना चाहिए। चतुर्थ मास की ग्रही का नाम पिङ्गला है जो कि अत्यन्त पीड़ादायिनी होती है ।।२३-२५।। उसके द्वारा आक्रान्त शिशु का शरीर अत्यधिक शीतल रहता है और शरीर से दुर्गन्ध निकलती है और गला सूख जाता है। वह बालक निश्चय ही मर जाता है। पञ्चम मास की ग्रही का नाम ललना है। उससे आक्रान्त शिशु का शरीर दुर्बल हो जाता

---

१ ख. शकुली। छ. संकुली। २ छ. कृष्णं नी°। ३ च. छ. पलनं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यैर्दक्षिणे बलिः । षण्मासे पङ्कजा चेष्टा रोदनं विकृतस्वरः ।।२७।।
मत्स्यमांससुराभक्तपुष्पगन्धादिभिर्बलिः । सप्तमे तु निराहारा पूतिगन्धादिदन्तरुक् ।।२८।।
पिष्टमांससुरामांसैर्बलिः स्याद्यमुनाष्टमे । विस्फोटशोषणाद्यं स्यात्तच्चिकित्सां न कारयेत् ।।२९।।
नवमे कुम्भकर्ण्यार्तो ज्वरी छर्दति पालके । रोदनं मांसकुल्माषमद्याद्यैरैशके बलिः ।।३०।।
दशमे तापसी चेष्टा निराहारोऽक्षिमीलनम् । घण्टा पताका [1]पिष्टाक्ता सुरामांसबलिः समे ।।३१।।
राक्षस्येकादशी पीडा [2]नेत्रादौ न चिकित्सतम् । [3]चञ्चला द्वादशे श्वासस्त्रासादिकविचेष्टितम् ।।३२।।
बलिः पूर्वेऽथ मध्याह्ने कुल्माषाद्यैस्तिलादिभिः । यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातनं रोदनादिकम् ।।३३।।
तिलमांसमद्यमांसैर्बलिः स्नानादि पूर्ववत् । तृतीये रोदनी कम्पो रोदनं रक्तमूत्रकम् ।।३४।।
गुडौदनं तिलापूपः प्रतिमा तिलपिष्टजा । तिलस्नानं पञ्चपत्रैर्धूपो राजफलत्वचा ।।३५।।

है, मुख में खुश्की आ जाती है, अपान वायु का प्रकोप अधिक हो जाता है और उसका वर्ण पीला पड़ जाता है। इसकी शान्ति के लिए मछली और मांसादि से दक्षिण दिशा में बलि देनी चाहिए। छठे मास की ग्रही का नाम पङ्कजा है। उसके द्वारा आक्रान्त बालक रोता अधिक है और उसके शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है। उसकी शान्ति के लिए मछली, मांस, सुरा, भात, पुष्प, गन्ध आदि की बलि देनी चाहिए। सातवें मास की ग्रही का नाम निराहारा है, इसके द्वारा पीड़ित बालक के शरीर से तीव्र गन्ध निकलती है और बालक के दाँत उगने की पीड़ा होती है। इसकी शान्ति के लिए पिसे हुए उड़द की पीठी, सुरा तथा मांस की बलि देनी चाहिए। आठवें मास की ग्रही का नाम यमुना है। इसके द्वारा पीड़ित बालक के बहुत-से फोड़े निकल आते हैं तथा उसका शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए ।।२६-२९।। नवम मास की ग्रही कुम्भकर्णी है। इससे आक्रान्त शिशु ज्वर-पीड़ित रहता है, व्याकुलतावश रक्षक के ऊपर ही वमन कर देता है और अत्यधिक रोता-चिल्लाता है। इसकी शान्ति के लिए ईशानकोण में उड़द, कुल्थी, मद्य आदि की बलि देनी चाहिए। दसवें मास की ग्रही का नाम तापसी है। इसके द्वारा आक्रान्त शिशु कुछ खाता नहीं है और रह-रहकर नेत्र बन्द करता रहता है। इसकी शान्ति के लिए घण्टा, पताका तथा पिष्टान्न आदि का दान करना चाहिए तथा सुरा, मांस आदि की बलि देनी चाहिए। ग्यारहवीं ग्रही का नाम राक्षसी है। यह शिशु के नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न करती है। इसकी कोई ओषधि नहीं है। बारहवें मास की ग्रही का नाम चञ्चला है। इसके द्वारा आक्रान्त होने पर बच्चे की श्वास गति वेग से चलने लगती है और बच्चा भयभीत-सा होकर चेष्टाएँ करने लगता है ।।३०-३२।। इसकी शान्ति के लिए मध्याह्न में पूर्व दिशा में कुल्थी तथा तिल आदि से बलि देनी चाहिए। द्वितीय वर्ष में बालक को पीड़ित करनेवाली ग्रही का नाम 'यातना' है। वह बच्चों को अनेक प्रकार की यातनाएँ दिया करती है तथा बच्चे को अत्यधिक रुलाती है। इसकी शान्ति के लिए तिल, उड़द, मदिरा और मांस आदि की बलि देनी चाहिए। तथा बालक को पूर्ववत् स्नान कराना चाहिए। तृतीय वर्ष की ग्रही का नाम रोदनी है जिसके आक्रमण से बच्चा रोता तथा काँपता है और उसका मूत्र लाल हो जाता है। इसकी शान्ति के लिए गुड़, चावल, तिल, अपूप (पुआ) और तिल के चूर्ण से बनी हुई प्रतिमा का दान करना चाहिए। बालक को तिलमिश्रित जल से स्नान कराकर पंचपल्लव तथा राजफल (परवल) के छिलके से धूप देनी चाहिए ।।३३-३५।। चतुर्थ वर्ष

---

१ ख. च. छ. पिष्टोक्ता। २ छ. नेत्राद्यं। ३ 'चञ्चला ... विचेष्टितम्' ग. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्थे चटकाशोफो ज्वरः सर्वाङ्गसादनम् । मत्स्यमांसतिलाद्यैश्च बलिः स्नानं च धूपनम् ।।३६।।
चञ्चला पञ्चमेऽब्दे तु ज्वरस्त्रासोऽङ्गसादनम् । मांसौदनाद्यैश्च बलिर्मेषशृङ्गेण धूपनम् ।।३७।।
पलाशोदुम्बुराश्वत्थवटबिल्वदलाम्बुधृक् । षष्ठेऽब्दे धावनी शोषो वैरस्यं गात्रसादनम् ।।३८।।
सप्ताहोभिर्बलिः पूर्वैर्धूपः स्नानं च भृङ्गकैः । सप्तमे यमुना [1]छर्दिरवचोहासरोदनम् ।।३९।।
मांसपायसमद्याद्यैर्बलिः स्नानं च धूपनम् । अष्टमे वा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम् ।।४०।।
कृशरापूपदध्याद्यैर्बलिः स्नानं च धूपनम् । कालाब्दे नवमे बाह्वोरास्फोटो गर्जनं भयम् ।।४१।।
बलिः स्यात्कृशरापूपसक्तुकुल्माषपायसैः । दशमेऽब्दे कलहंसी दाहोऽङ्गकृशता ज्वरः ।।४२।।
पोलिकापूपदध्यन्नैः पञ्चरात्रं बलिं हरेत् । निम्बधूपकुष्ठलेपावेकादशमके ग्रही ।।४३।।
देवदूती निष्ठुरवाग्बलिर्लेपादि पूर्ववत् । बलिका द्वादशे श्वासो बलिलेपादि पूर्ववत् ।।४४।।
त्रयोदशे वायवी च [2]मुखरोगोऽङ्गसादनम् । रक्तान्नगन्धमाल्याद्यैर्बलिः पञ्चदलैः स्नपेत् ।।४५।।

की ग्रही का नाम चटका है। इससे आक्रान्त बालक ज्वरग्रस्त हो जाता है और उसके समस्त अङ्गों में क्षीणता तथा सूजन उत्पन्न हो जाती है। इसकी शान्ति के लिए मछली, मांस तथा तिल आदि की बलि देनी चाहिए। बालक को स्नान कराना चाहिए, उसे धूप भी देनी चाहिए। पञ्चम वर्षवाली ग्रही का नाम चञ्चला है। इसका आक्रमण होने पर शिशु को ज्वर आता है, वह भयभीत बना रहता है, उसके अङ्गों में दुर्बलता आ जाती है। इसके प्रशमनार्थ मांस और चावल की बलि देकर भेंड़ के सींग, पलाश, गूलर, पीपल, बरगद, बेलपत्र तथा रास्ना नामक ओषधि के चूर्ण को मिलाकर धूप देना चाहिए। छठें वर्ष की ग्रही का नाम 'धावनी' है। इससे आक्रान्त शिशु के शरीर में शोष उत्पन्न हो जाता है, वह सूख जाता है और उसमें दुर्बलता आ जाती है ।।३६-३८।। इसकी शान्ति के लिए प्रति सप्ताह धूप तथा बलि देनी चाहिए और भृङ्ग नामक ओषधि मिश्रित जल से बालक को स्नान कराना चाहिए। सप्तम वर्ष की ग्रही का नाम यमुना है। इससे आक्रान्त बालक वमन अधिक करता है, जीभ लड़खड़ाने लगती है। खूब हँसता है और रोता है। इसके दोष के प्रशमन के लिए मांस, खीर तथा मदिरा आदि की बलि देनी चाहिए तथा बालक को स्नान कराकर उसे धूप देनी चाहिए। आठवें वर्ष की ग्रही का नाम 'जातवेदा' है। इसके द्वारा अभिभूत बालक आहार छोड़ देता है और रोता रहता है। इसकी शान्ति के लिए खिचड़ी, अपूप (पुआ) तथा दधि आदि की बलि देनी चाहिए, शिशु को स्नान कराना चाहिए और धूप देनी चाहिए। नवें वर्ष की ग्रही का नाम काला है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक बाहु के जोड़ों को फोड़ता है, घोर शब्द करता है तथा भयभीत रहता है। इसकी शान्ति के लिए खिचड़ी, अपूप, सत्तू, कुल्थी और खीर की बलि देनी चाहिए ।।३९-४१$\frac{१}{२}$।। दसवें वर्ष की ग्रही का नाम कलहंसी है। यह बच्चे के शरीर में दाह, अंगों में कृशता तथा ज्वर पैदा करती है। इसकी शान्ति के लिए पञ्चरात्रि तक गेहूँ की रोटी, अपूप (पुआ) तथा दहीबड़े की बलि देनी चाहिए। नीम के पत्र आदि की धूप करनी चाहिए और शरीर में कुष्ठ नामक ओषधि का लेप करना चाहिए। ग्यारहवें वर्ष की ग्रही का नाम देवदूती है। उसके द्वारा अभिभूत बालक कठोर वाणी बोलता है। उसकी शान्ति के लिए पूर्ववत् बलि देकर उसके शरीर पर लेप करना चाहिए। बारहवें वर्ष की ग्रही का नाम बलिका है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक जल्दी-जल्दी श्वास लेने लगता है। उसकी शान्ति के लिए पूर्ववत् बलि और लेप आदि होनी चाहिए। तेरहवें वर्ष की ग्रही का नाम वायवी है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक के मुख में (नाना प्रकार के) रोग पैदा हो जाते हैं तथा वह शरीर से क्षीण हो जाता है। उसकी शान्ति के लिए रक्त, अन्न, गन्ध, माल्य आदि की बलि देनी चाहिए तथा आम, बरगद, पीपल, पाकड़ तथा गूलर आदि के पत्तों (के जल) से स्नान कराना चाहिए ।।४२-४५।।

---

१ ख. ग. °र्दिर्न रावो हास°। २ छ. °खवाह्याङ्ग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजीनिम्बदलैर्धूपो यक्षिणी च चतुर्दशे। चेष्टा शूलो ज्वरो दाहो [1]मांसभक्ष्यादिकैर्बलिः ।।४६।।
स्नानादि पूर्ववच्छान्त्यै मुण्डिकार्तिस्त्रिपञ्चके। तच्चेष्टाऽसृक्स्त्रवः शश्वत्कुर्यान्मातृचिकित्सनम् ।।४७।।
वानरी षोडशी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः। पायसाद्यैस्त्रिरात्रं च बलिः स्नानादि पूर्ववत् ।।४८।।
गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम्। कुल्माषाद्यैर्बलिः स्नानधूपलेपादि पूर्ववत् ।।४९।।
दिनेशाः पूतना नाम वर्षेशाः [2]सुकुमारिकाः ।।५०।।
ॐ नमः सर्वमातृभ्यो बालपीडासंयोगं भुञ्ज भुञ्ज चुट चुट स्फोटय स्फोटय स्फुर स्फुर गृह्ण
[3]गृह्णाऽऽक्रन्दयाऽऽक्रन्दय, एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति ।।५१।।
हर हर निर्दोषं कुरु कुरु बालिकां बालं स्त्रियं पुरुषं वा, सर्वग्रहाणामुपक्रमात्। चामुण्डे नमो
देव्यै ह्रं ह्रूं ह्री मपसरापसर दुष्टग्रहान्ह्रूं तद्यथा गच्छन्तु गृह्यकाः, अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति ।।५२।।
सर्वबालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोऽयं [4]सर्वकामदः ।।५३।।
ॐ नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च मुञ्च [5]बालं बालिकां वा बलिं गृह्ण गृह्ण जय जय वस वस ।।५४।।
सर्वत्र बलिदानेऽयं रक्षाकृत्पठ्यते मनुः। ब्रह्मा विष्णुः शिवः स्कन्दो गौरी लक्ष्मीर्गणादयः
रक्षन्तु ज्वरदाहार्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम् ।।५५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये बालग्रहहरबालतन्त्रकथनं नाम नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२९९।।

श्वेत सरसों तथा नीम के पत्तों से धूप देना भी लाभदायक है। चौदहवें वर्ष की ग्रही का नाम यक्षिणी है। उसके द्वारा गृहीत बालक शरीर में शूल का अनुभव करता है, ज्वर से पीड़ित रहता है और उसके शरीर में जलन होती रहती है। इसकी शान्ति के लिए मांस तथा मछली आदि की बलि देनी चाहिए तथा पूर्ववत् स्नान, धूप आदि भी होना चाहिए। पन्द्रहवें वर्ष की ग्रही का नाम मुण्डिका है। इसके द्वारा पीड़ित बालक के निरन्तर रक्त प्रवाहित होता रहता है। इसकी चिकित्सा शीघ्र ही करनी चाहिए। सोलहवें वर्ष की ग्रही का नाम वानरी है। इसके द्वारा गृहीत बालक बारम्बार भूमि पर गिरता है, उसे नींद अधिक आती है और उसके शरीर में सदा ही ज्वर बना रहता है। उसकी शान्ति के लिए तीन रात तक खीर आदि की बलि देनी चाहिए तथा बालक को पूर्ववत् स्नान आदि कराना चाहिए ।।४६-४८।। सत्रहवें वर्ष की ग्रही का नाम गन्धवती होता है। इसके द्वारा पीड़ित बालक शारीरिक उद्वेग का अनुभव करता है और रोता अधिक है। इसकी शान्ति के लिए कुल्थी आदि की बलि देकर उसे पूर्ववत् स्नान कराना और धूप देना चाहिए। ये ग्रहियाँ दिनों की स्वामिनी 'पूतना' के नाम से तथा वर्षों की स्वामिनी 'सुकुमारी' के नामों से भी प्रसिद्ध हैं ।।४९-५०।। 'ॐ नमः सर्वमातृभ्यो····वस वस' यह रक्षा करनेवाला मन्त्र सर्वत्र बलिदान के समय पढ़ा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, गौरी, लक्ष्मी तथा सभी गण ज्वर-दाह पीड़ित कुमार की रक्षा करें और उसे सब प्रकार के कष्टों से छुटकारा दिला दें ।।५१-५५।।

श्री अग्निमहापुराण में बालग्रहहरबालतन्त्रकथन नामक दो सौ निन्यान्नबेवाँ अध्याय समाप्त ।।२९९।।

---

१ ख. छ. °भक्षादि°। २ ख. ग. स्वर्गमारिकाः। ३ छ. °ह्वाकट्टयाऽऽकट्टय। ४ छ. सर्वकामिकः। ५ छ. बलिं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिशततमोऽध्यायः

ग्रहहन्मन्त्रादिकथनम्

अग्निरुवाच

[1]ग्रहोपहारमन्त्रादीन्वक्ष्ये ग्रहविमर्दनान् । हर्षेच्छाभयशोकादिविरुद्धा [2]शुचिभोजनात् ।।१।।
गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यथ । त्रिदोषजाः संन्निपाता [3]आगन्तव इति स्मृताः ।।२।।
देवादयो ग्रहा जाता रुद्रक्रोधादनेकधा । सरित्सरस्तडागादौ शैलोपवनसेतुषु ।।३।।
नदीसङ्गे शून्यगृहे बिलद्वार्येकवृक्षके । ग्रहा गृह्णन्ति पुंसश्च [4]श्रियं सुप्तां च गर्भिणीम् ।।४।।
आसन्नपुष्पां नग्नां च ऋतुस्नानं करोति या । अवमानं नृणां वैरं विघ्नं भाग्यविपर्ययम्[5] ।।५।।
देवतागुरुधर्मादिसदाचारादिलङ्घनम् । पतनं शैलवृक्षादेर्विधुन्वन्मूर्धजान्मुहुः[6] ।।६।।
रुदन्नृत्यति रक्ताक्षो [7]हूंरूपोऽनुग्रही नरः । उद्विग्नः शूलदाहार्तः क्षुत्तृष्णार्तः शिरोर्तिमान ।।७।।
देहि देहीति याचेत बालिकामग्रही नरः । स्त्रीमालाभोगस्नानेच्छुरतिकामग्रही नरः ।।८।।

अध्याय ३००

ग्रहहन्मन्त्रादि-कथन

अग्निदेव बोले–अब मैं ग्रहों के द्वारा पीड़ित होने पर उनसे छुटकारा दिलानेवाले उपचार और मन्त्रों को बतलाऊँगा। हर्ष, इच्छा, भय, शोक आदि से, स्वभाव विरुद्ध और अपवित्र भोजन करने से तथा श्रेष्ठ पुरुषों और देवता इत्यादि को क्रुद्ध करने से पाँच प्रकार के उन्माद होते हैं। त्रिदोष (वात–पित्त–कफ) से उत्पन्न तीन प्रकार के तथा सन्निपातज और आगुन्तक ये पाँच प्रकार के उन्माद कहलाते हैं ।।१–२।। भगवान् रुद्र के भीषण क्रोध करने पर देवादिक ग्रह अनेक रूप धारण कर लेते हैं। ग्रह पुरुषों को नदी, सरोवर, तालाब, पर्वत, उपवन, सेतु, नदियों के संगम, शून्यगृह, 'बिलद्वार', अकेले वृक्ष आदि स्थानों में पकड़ लेते हैं। ग्रहों का आक्रमण सोती हुई, गर्भिणी, आसन्न ऋतुकालवाली, नग्न और ऋतुस्नाता स्त्री पर भी हो जाता है ।।३–४$\frac{1}{2}$।। ग्रहों के द्वारा गृहीत व्यक्ति दूसरों का अपमान करने लगता है, सबके साथ वैर–भाव रखने लगता है, सुन्दर कार्यों में विघ्न डालता है, अपने क्रूर कर्मों द्वारा अपने भाग्य को भी बदल देता है, देवाराधन नहीं करता, गुरुजनों की आज्ञा का पालन नहीं करता, धर्म तथा सदाचार आदि का उल्लंघन करता है। पर्वतों तथा वृक्षों पर चढ़कर वहाँ से कूदता है, बारम्बार सिर के बालों को घसीटता है, रोता है, नृत्य करता है, उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, ये 'रूप' ग्रह–विशेष से पीड़ित व्यक्ति के लक्षण हैं। जो उद्विग्न हो जाता है, शूल और दाह से पीड़ित होता है, उसे भूख और प्यास (विशेष) लगती है और वह मस्तक–पीड़ा का अनुभव करने लगता है ।।५–७।। बलि चाहनेवाले ग्रह के द्वारा अभिभूत मनुष्य उक्त लक्षणों के साथ 'कुछ दो, कुछ दो' कहकर याचना करने लगता है। रत्यभिलाषी ग्रह के द्वारा आक्रान्त मनुष्य, स्त्री, माला, भोग तथा स्नान की इच्छा प्रकट करता है।

---

१ छ. ग्रहाप°। २ ख. ग. द्धान्नविभो°। ३ ख. छ. °गन्तुरिति ते स्मृ°। ४ ख. ग. स्त्रियं। ५ ख. छ. र्यंयः। दे°। ६ छ.° र्धजं मुहुः। ७ ख. ग. °पालेग्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महासुदर्शनो व्योमव्यापी विटपनासिकः । पातालनारसिंहाद्या (!) चण्डीमन्त्रा ग्रहार्दनाः ।।९।।
([1]पृश्नीहिङ्गुबचाचक्रशिरीषदयितं परम् । पाशाङ्कुशधरं देवमक्षमालाकपालिनम् ।।१०।।
[2]खट्वाङ्गाब्जादिशक्तिं च दधानं चतुराननम् । अन्तर्बाह्यादिखट्वाङ्ग[3]पद्मस्थं रविमण्डले ।।११।।
आदित्यादियुतं प्रार्च्य उदितेऽर्केऽर्घ्यकं ददेत् । श्वासविषाग्निविप्रकुण्डी हल्लेखासकलो भृगुः (?) ।।१२।।
अर्काय भूर्भुवः स्वश्च ज्वालिनीं कुलमुद्गरम् (?) । पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्रःसद्युतिविश्वकः(कृत्) ।।१३।।
उदारः पद्मधृग्दोर्भ्यां [4]सोमः सर्वाङ्गभूषितः । [5]रव्यादयो ग्रहाः सौम्याः वरदाः पद्मधारिणः ।।१४।।
विद्युत्पुञ्जनिभं वस्त्रं श्वेतः[6] सोमोऽरुणः कुजः । बुधस्तद्वद्गुरुः पीतः शुक्लः शुक्रः[7] शनैश्चरः ।।१५।।
कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्रः केतुरुदाहृतः । वामोरुवामहस्तान्तदक्ष [8]हस्तोरुजानुषु ।।१६।।
स्वनामाद्यैस्तु बीजान्तैर्हस्तौ संशोध्य चास्त्रतः । अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रहृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ।।१७।।
मूलबीजैस्त्रिभिः प्राणध्यायकं(?)न्यस्य साङ्गकम् । प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ।।१८।।
गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्वामर्घ्यं च मन्त्रयेत् । आत्मानं तेन संप्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं च वै ध्रुवम् ।।१९।।
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् । पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ।।२०।।

'महासुदर्शन', 'व्योमव्यापी', 'विटपनासिक' तथा पातालनारसिंह मन्त्र एवं चण्डिका के मन्त्र ग्रहपीड़ा से मुक्ति दिलानेवाले हैं ।।८-९।। सूर्यदेव, पृश्निपर्णी, बच, चक्र (तगर पुष्प) तथा शिरीष पुष्प के प्रेमी हैं। दाहिने हाथों में पाश, अंकुश, अक्षमाला और कपाल को धारण करनेवाले हैं और बायें चार हाथों में खटवाङ्ग नामक अस्त्र, कमल, शक्ति आदि को धारण करते हैं। ये चार मुँहवाले हैं। रवि-मण्डल के अन्दर-बाहर खट्वाङ्ग और पद्म पर स्थित भगवान् सूर्य का आदित्यों के साथ पूजन करना चाहिए। इस प्रकार सूर्य भगवान् की पूजा करके सूर्योदय काल में अर्घ्य देना चाहिए ।।१०-११½।। श्वास (य), विष (ओं), अग्नि (र्), विप्रकुण्डी (ओं), हल्लेखा (ह्रीं) इनको जोड़ देने पर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बनता है 'यो रों ह्रीं अर्काय भूर्भुवः स्वरश्च ज्वालिनी कुलमुद्गर।' इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए। भगवान् सूर्य अरुण कान्तिवाले पद्मासन पर आसीन, रक्तवस्त्रधारी, विश्व को प्रकाशित करनेवाले, उदार तथा भुजाओं पर कमलों को धारण करनेवाले हैं। भगवान् चन्द्रदेव समस्त अंगों से विभूषित हैं। सूर्यादि सभी ग्रह सौम्यरूपवाले वरदायक तथा पद्म धारण करनेवाले हैं ।।१२-१४।। वे सब विद्युत्पुञ्ज के समान वस्त्र धारण करनेवाले हैं। चन्द्रमा का वर्ण श्वेत है, मंगल (ग्रह) का वर्ण रक्त बताया गया है। बुध भी लाल वर्णवाले कहे गये हैं, बृहस्पति का वर्ण पीला है। शुक्र का वर्ण शुक्ल प्रसिद्ध है, शनैश्चर काले कोयले के समान वर्ण के हैं। राहु और केतु धूम्रवर्णवाले कहे गये हैं। बीजमन्त्र के साथ ग्रहों के नामों के आदि अक्षरों से हाथों को शुद्ध करके बायीं जाँघ, बायें हाथ, दायें हाथ, घुटनों, अंगुष्ठादि (उँगलियों), नेत्रों एवं हृदय का न्यास करना चाहिए ।।१५-१७।। अङ्गन्यास के बाद अंगमन्त्रों से युक्त तीन बीजमन्त्रों से पात्र का प्रक्षालन करना चाहिए। ऐसा करने से अस्त्रमन्त्रों का जप करते हुए मूल-मन्त्र से उस (पात्र) को जल से भरना चाहिए। उस जल में गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा दूब छोड़कर उसे मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके उसी को अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रियों के ऊपर छिड़कना चाहिए। तत्पश्चात् आग्नेयादि कोणों एवं मध्य भाग में प्रभूत, विमल, सार, आराध्य और परमसुख नाम से पादपीठों की कल्पना करनी चाहिए ।।१८-२०।।

---

१ 'पृश्नीहिङ्गुवचा''''चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः केवलं छ. पुस्तक एव। २ छ. खट्टाङ्गा°। ३ छ.° °खट्टाङ्गाप°। ४ छ. सौम्यः। ५ छ. रक्ताहृदाद°। ६ छ. °तः सौम्योऽरुः। ७ छ. शुक्लः। ८ छ. हस्ताभयप्रदौ। स्व°।

CC-0. Ms Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

पीठोपरि हृदो मध्ये दिक्षु चैव विदिक्षु च। पीठोपरि हृदाब्जं च केसरेत्वष्ट शक्तयः ।।२१।।
वां दीप्तां वीं तथा सूक्ष्मां वुं जयां वूं च भद्रिकाम्। वें विभूतिं वैं विमलां वोमसिघातविद्युताम् ।।२२।।
वौं सर्वतोमुखीं वं पीठं वः प्रार्च्य रविं यजेत्। आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्षडङ्गेन सुव्रत ।।२३।।
खकारौ दण्डिनौ चण्डौ मज्जादशनसंयुता। मांसदीर्घा जरद्वायुहृदैतत्सर्वदं रवेः(?) ।।२४।।
वह्नीशरक्षोमरुतां दिक्षु पूज्या हृदादयः। स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्ष्वस्त्रं पुरतः सदृक् ।।२५।।
पूर्वादिदिक्षु संपूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः)। [1]पृश्निहिङ्गुवचाचक्रशिरीषलशुनामयैः ।।२६।।
नस्याञ्जनादि कुर्वीत साजमूत्रैर्ग्रहापहैः। पाठापथ्यावचाशिग्रुसिन्धुव्योषैः पृथक्पलैः ।।२७।।
अजाक्षीराढके पक्वं सर्पिः सर्वग्रहान्हरेत्। वृश्चिकाली फला कुष्ठं लवणानि च शार्ङ्गकम् ।।२८।।
अपस्मारविनाशाय तज्जलं त्वभियोजयेत्। विदारिकुशकाशेक्षुक्वाथजं पाययेत्पयः ।।२९।।
द्रोणे सयष्टिकूष्माण्डरसे सर्पिश्च संस्कृतम्। पञ्चगव्यं घृतं तद्वद्योगं ज्वरहरं शृणु ।।३०।।

पीठ के ऊपर हृदय के मध्य भाग में, दिशाओं और विदिशाओं में, हृदयकमल का तथा हृदयकमल के केसरों में आठों शक्तियों का आवाहन करना चाहिए। 'वां' बीजमन्त्र से 'दीप्ता' शक्ति की, 'वीं' बीजमन्त्र से 'सूक्ष्मा' शक्ति की, 'वुं' बीजमन्त्र से जया शक्ति की, 'वूं' बीजमन्त्र से 'भद्रिका' शक्ति की, 'वें' बीजमन्त्र से 'विभूति' शक्ति की, 'वैं' बीजमन्त्र से 'विमला' शक्ति की, 'वोम्' बीजमन्त्र से 'असिघातविद्युता' शक्ति की, 'वौं' बीजमन्त्र से 'सर्वतोमुखी' शक्ति की और 'वं' बीजमन्त्र से पीठ की अर्चना करके सूर्योपासना करनी चाहिए। हे सुव्रत! तत्पश्चात् रवि आदि मूर्तियों का आवाहन करके उन्हें पाद्यादि समर्पित करे और क्रमशः हृदयादि षडङ्गन्यासपूर्वक पूजन करे ।।२१-२३।। 'खकारौ' इत्यादि श्लोक में 'खं खखोल्काय नमः' इस सूर्य मन्त्र का उद्धार किया गया है। सूर्य का यह मन्त्र मनुष्य की सब कामनाओं को पूरा करनेवाला है। अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य और वायव्यकोणों में तथा मध्य में हृदादि पाँच अङ्गों की उनके नाम मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए। वे कर्णिका के भीतर ही पूजनीय हैं। अस्त्र की पूजा अपने सामने की दिशा में करनी चाहिए ।।२४-२५।। पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र की पूजा करनी चाहिए। ग्रहों के दोष को दूर करनेवाले पृश्निपर्णी, हींग, बच, चक्र (तगर का पुष्प), शिरीष और लहसुन के चूर्ण को बकरी के मूत्र में मिलाकर नास, अञ्जन आदि देना चाहिए। पाठा, हरीतकी, वच, शिग्रु (सहिन), सेंधानमक, सोंठ, मिर्च और पीपरि को एक-एक पल लेकर एक आढक (अढैया) बकरी के दूध में पकाकर घृत बना लेना चाहिए, वह घृत समस्त ग्रहों की पीड़ा का निवारण करनेवाला होता है। वृश्चिकाली, कला (नागकेसर), कुष्ठ (ओषधि-विशेष), पाँचों नमक तथा शार्ङ्गक (ओषधि) के मिश्रण से बनाये गये जल का उपयोग अपस्मार (मृगी) के निवारण में करना चाहिए ।।२६-२८$\frac{१}{२}$।। विदारीकन्द, कुश, काश और ईख का क्वाथ पिलाना चाहिए। यष्टि (जीववृक्ष) और कूष्माण्ड के द्रोण परिमाण रस के मिश्रण से बना हुआ घृत ज्वर को दूर करता है। पञ्चगव्य और घृत को मिलाकर देने से

---

१ पृश्नि शब्द स्थाने ख. ग. पुस्तकयोः षष्ठीशब्दो विद्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ भस्मास्त्राय विद्महे । एकदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ।।३१।।
कृष्णोषणनिशारास्नाद्राक्षातैलं गुडं लिहेत् । श्वासवानथ वा भार्गीं सयष्टिमधुसर्पिषा ।।३२।।
पाठातिक्ताकणाभार्गीमथ वा मधुना लिहेत् । धात्री विश्वा सिता कृष्णा मुस्ता खर्जूरमागधी ।।३३।।
पीवरा चेति हिक्काघ्नं तत्त्रयं मधुना लिहेत् । कामलीजीरमाण्डूकीनिशाधात्रीरसं पिबेत् ।।३४।।
व्योषपद्मकत्रिफलाविडङ्गदेवदारवः । रास्नाचूर्णं समं खण्डैर्जग्ध्वा कासहरं ध्रुवम् ।।३५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ग्रहहन्मन्त्रादिकथनं नाम त्रिशततमोऽध्यायः ।।३००।।

अथैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सूर्यार्चनम्

अग्निरुवाच

शय्या तु दण्डी साजेशपावकश्चतुराननः । सर्वार्थसाधकमिदं बीजं पिण्डार्थमुच्यते ।।१।।
स्वयं दीर्घस्वराद्यं च बीजेष्वङ्गानि सर्वशः । खातं साधु विषं चैव सबिन्दुं सकलं तथा ।।२।।

(भी) ज्वर शान्त हो जाता है। 'ॐ भस्मात्राय····प्रचोदयात्' यह मन्त्र भी ज्वरनाशक है ।।२९-३१।। गजपीपरि, मिर्च, हल्दी, रास्ना, द्राक्षा, तेल और गुड़ से बने हुए अवलेह के चाटने से श्वास-रोग दूर होता है। अथवा पाठा, कटुका, पीपरि और भँगरैया के रस को मधु के साथ मिलाकर चाटने से भी श्वास रोग दूर हो जाता है। हिचकी दूर करने के लिए आँवला, अतीस, शक्कर, गजपीपरि, मुस्ता, खजूर, छोटी इलायची और शतावरि के चूर्ण को मधु के साथ चाटना चाहिए। कामली, जीरा, माण्डूकी, हल्दी और आँवला का रस पीने से हिचकी दूर हो जाती है। सोंठ, मिर्च, पीपरि, पद्मक, आँवला, हरड़, बहेड़ा, विडङ्ग और देवदारु का चूर्ण कास को दूर करता है। शक्कर के साथ रास्ना का प्रयोग करने से भी खाँसी निश्चय ही दूर हो जाती है ।।३२-३५।।

श्री अग्निमहापुराण में ग्रहहन्मन्त्रादिकथन नामक तीन सौवाँ अध्याय समाप्त ।।३००।।

अध्याय ३०१

सूर्यार्चन

अग्निदेव बोले-शार्ङ्गी (गकार), दण्डी (अनुस्वारयुक्त) हो। उसके साथ पद्मेश (विष्णु) (ईकार) और पावक (रकार) हो तो इन चार वर्णों के मेल से पिण्डीभूत बीज (ग्रीं) प्रकट होता है। यह गणपति का बीजमन्त्र सभी प्रकार के फलों को देने में समर्थ है ।।१।। इस बीज के आदि में क्रमशः दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ, औ, अः) जोड़कर उनसे अंगन्यास को करे। 'खातम्' आदि श्लोकार्ध से गणपति के पाँच अन्य बीजमन्त्रों का उद्धार किया गया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गणस्य पञ्च बीजानि पृथग्दृष्टफलं महत् ।।३।।
गणंजयाय नम एकदंष्ट्राय चलकर्णिने गजवक्त्राय महोदरहस्ताय ।।४।।
पञ्चाङ्गं सर्वसामान्यं सिद्धिः स्याल्लक्षजाप्यतः ।।५।।
गणाधिपतये गणेश्वराय गणनायकाय गणक्रीडाय ।।६।।
दिग्दले पूजयेन्मूर्तीः पुरावच्चाङ्गपञ्चकम् ।।७।।
वक्रतुण्डायैकदंष्ट्राय महोदराय गजवक्त्राय विकटाय विघ्नराजाय धूम्रवर्णाय ।।८।।
दिग्विदिक्षु यजेदेतांल्लोकां(के)शांश्चैव मुद्रया । मध्यमातर्जनीमध्यगताङ्गुष्ठौ समुष्टिकौ ।।९।।
चतुर्भुजं मोदकाढ्यं दण्डपाशाङ्कुशान्वितम् । दन्तभक्ष्यधरं रक्तं साब्जपाशांकुशैर्वृतम् ।।१०।।
पूजयेत्तं चतुर्थ्यां च विशेषेणाथ नित्यशः । श्वेतार्कमूलेन कृतं सर्वाप्तिः स्यात्तिलैर्हुतैः ।।११।।
तण्डुलैर्दधिमध्वाज्यैः सौभाग्यं वश्यतामियात् । [1]घोषासृक्प्राणधात्वर्दी दण्डी मार्तण्डभैरवः ।।१२।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां [2]कर्ता विश्वपुटीवृतः । ह्रस्वाः स्युर्मूर्तयः पञ्च दीर्घाण्यङ्गानि तस्य च ।।१३।।
सेन्द्रवारुणमीशानवामार्धदयितं रविम् । पाशांकुशधरं देवं ह्यक्षमालाकपालिनम् ।।१४।।

ये बीज पृथक्-पृथक् महान् फल देते हैं ।।२-३।। 'गणंजयाय····महोदरहस्ताय' यह गणपति सामान्य पञ्चांग न्यास है। इस मन्त्र का एक लाख जप करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।४-५।। 'गणाधिपतये····गणक्रीडाय' इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पूर्वादि चार दिशाओं के कमल दलों में गणेश जी के चार विग्रहों का पूजन करे। अंग पंचक का पूजन पूर्व अध्याय में प्रदर्शित क्रम से विदिशाओं और मध्य में करे। 'वक्रतुण्डायैकदंष्ट्राय····धूम्रवर्णाय' गणपति की इन मूर्तियों की कमलचक्र के दिग्वर्ती तथा कोणवर्ती दलों में पूजा करे। फिर इन्द्र आदि लोकपालों तथा उनके अस्त्रों की अर्चना करे। मध्यमा और तर्जनी के मध्य में अँगूठे को डालकर मुट्ठी बन्द कर लेने पर गणेश मुद्रा बनती है। पूजन के समय इस मुद्रा का प्रदर्शन होना चाहिए ।।६-९।। गणपति की उस मूर्ति का ध्यान करना चाहिए जिसके चार हाथ हैं, जो मोदक, दण्ड, पाश और अंकुश से युक्त हैं। दाँतों में उन्होंने भक्ष्य पदार्थ (लड्डू) को दबा रखा है। उनकी अंगकान्ति लाल है। वे कमल, पाश और अंकुश से घिरे हुए हैं। वैसे तो गणपति का पूजन नित्य ही करना चाहिए, चतुर्थी के दिन उनकी पूजा विशेष विधानपूर्वक करनी चाहिए। मदार की जड़ से उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करनेवाला और उनके लिए तिल की आहुति देनेवाला व्यक्ति इस जीवन में सभी सुखों को प्राप्त कर लेता है ।।१०-११।। दही, मधु तथा आज्य से मिले हुए तण्डुलों की आहुति सौभाग्यदायिनी और प्राणियों को वश में करनेवाली होती है। घोष (ह), असृक् (र), प्राण (य), धातु (औ), अर्दी (ओं) तथा दण्डी (अनुस्वार)-यह सब मिलकर सूर्यदेवता का मार्तण्ड वैभव नामक बीज (ह्यौ ओं) बनता है। इसको बिम्ब बीज से संपुटित कर दिया जाय तो यह साधकों को चारों पुरुषार्थों को देनेवाला होता है। पाँच ह्रस्व स्वरों से मूर्तियों का तथा छह दीर्घस्वरों से अंगों का न्यास करे ।।१२-१३।। सूर्य मण्डल का वर्ण लाल होता है, उसका दक्षिणार्ध पुरुष तथा वामार्ध स्त्री देवता के रूप में होता है। इस देवता का पूजन ईशानकोण में होना चाहिए तथा सूर्य और मंगल आदि ग्रहों का पूजन

---

१ ख. ग. घोषसृक्प्रणधात्वर्दाद्दं°। २ घ. °र्ताबिम्बपुटावृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खट्वाङ्गादिकशक्तिं च दधानं चतुराननम् । अन्तर्बाह्ये विषद्धक्तं(?) पद्मस्थं रविमण्डलम् ।।१५।।
आदित्यादियुतं प्रार्च्य [1]उदितेऽर्केऽर्धकं ददेत् । श्वासं विषाग्निविपदण्डीन्दुलेखासकलो भृगुः ।।१६।।
अर्काय भूर्भुवः स्वरेज्वालिकुरस्त्र्यसङ्गकम्(?) । पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्तुसद्युतिबिम्बगः ।।१७।।
उदानः पद्मदृग्दोर्भ्यां धूम्रकेतुरुदाहृतः । ([2]रक्ता हृदादयः सौम्या वरदाः पद्मधारिणः ।।१८।।
विद्युत्पुञ्जनिभः स्वर्कः श्वेतः सोमोऽरुणः कुजः । बुधस्तद्वद्गुरुः पीतः शुक्रिः(?) शुक्रः शनैश्चरः ।।१९।।
कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्रकेतुरुदाहृतः) । वामोरुवामहस्तास्ते दक्षहस्ताभयप्रदाः ।।२०।।
स्वनामाद्यन्तबीजास्ते हस्तौ संशोध्य चास्त्रतः । अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रे हृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ।।२१।।
मूलबीजैस्त्रिभिः प्राणव्यापकं न्यस्य साङ्गकम् । प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ।।२२।।
गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्वामर्घ्यं च मन्त्रयेत् । आत्मानं तेन संप्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं च वैभवम् ।।२३।।
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् । पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ।।२४।।
पीठोपरि हृदाद्यं च केसरेष्वस्त्रशक्तयः । रां दीप्तां रीं तथा सूक्ष्मां रं[3](रुं) जयां रूं च भद्रया ।।२५।।
रें विभूतिं रैं विमलां [4]रोमयोद्याथ विद्युतम् । रौंसर्वतोमुखी रं च पीठं प्रार्च्य रविं यजेत् ।।२६।।
आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्षडङ्गेन सुव्रतः । खकारौ दण्डिनौ चण्डौ मज्जादशनसंयुता ।।२७।।

आग्नेयी दिशाओं में होना चाहिए। सूर्य की अर्चना करनेवाले को पहले स्नान करना चाहिए और तदनन्तर अर्घ्य आदि से सूर्य का पूजन करना चाहिए। आग्नेयी कोण में सूर्य के रूप को पुष्पों की माला का अर्पण करना चाहिए और उनकी काल्पनिक मूर्ति के सम्मुख जलता हुआ दीपक दिखाना चाहिए। सूर्य के लिए रोली, केसर, शीतल जल, रक्त चन्दन, दूर्वा, बाँस के बीज, यव, शालि, श्यामाक, तिल, राजिक और यव, पुष्पों से पूर्ण घट सूर्य को अर्पण करना चाहिए। सूर्योपासक को वही घट अपने सिर के ऊपर धारण करना चाहिए। उसे चारों दिशाओं में जाकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए। ब्रह्मा अरुण वर्ण के हैं। धूमकेतु भुजाओं से युक्त कहे गये हैं। हृदय इत्यादि रक्त वर्ण के सौम्य वर प्रदान करनेवाले हैं ।।१४-१८।। सूर्य विद्युत्पुञ्ज के समान, सोम श्वेत और मंगल अरुण वर्ण के होते हैं। बुध और गुरु पीले, शुक्र शुक्ल, शनैश्चर कृष्ण, राहु अंगार के समान और केतु धूम्रवर्ण का कहा गया है। उन (देवताओं) के बायें और दाहिने हाथ अभय प्रदान करनेवाले हैं। हाथों को शुद्ध करके उन देवताओं के नामों के अन्तिम भाग को बीजमन्त्र मानकर अँगूठा इत्यादि नेत्र तथा हृदय का न्यास करना चाहिए। तीन मूलमन्त्रों से प्राणों और अंगों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर एक पात्र को धोकर और उसे जल से भरकर उसमें गन्ध, पुष्प, अक्षत डालकर उस अर्घ्य को अभिमन्त्रित कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उस जल को अपने-आप तथा पूजन-सामग्री के ऊपर छिड़कना चाहिए। इससे परमसुख की प्राप्ति होती है ।।१९-२३½।। 'री, रूं, रें, रैं रों, रौं तथा रं-इन बीजमन्त्रों से क्रमशः सूर्य की दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, विभूति, विमला, विद्युत्, सर्वतोमुखी मूर्तियों और पीठ की अर्चना करनी चाहिए। व्रती को (उपर्युक्त मन्त्रों से) सूर्य का आवाहन करके हृदय इत्यादि षडङ्गों से उसे पाद्य देना चाहिए। सूर्य के लिए खकार, दण्डी, चण्ड, मज्जा और दशन से युक्त मांसा, दीर्घा तथा हृदया-यह सब-कुछ देनेवाले होते हैं ।।२४-२७½।।

---

१ ख. ग. तेऽर्क उर्ध्वकं। २ रक्ता-केतुरुदाहृतः ग. पुस्तके नास्ति। ३ ग. रूं। ४ °ममोघाऽथ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]मांसादीर्घा जवद्वायुहृदैतत्सर्वदं रवेः । वह्नीशरक्षोमरुतां दिक्षु पूज्या हृदादयः ।।२८।।
स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्षु तं पुरतश्च धृक्(?) । पूर्वादिदिक्षु संपूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः ।।२९।।
आग्नेयादिषु कोणेषु कुजमन्दाहिकेतवः । स्नात्वा विधिवदादित्यमाराध्यार्घ्यपुरःसरम्[2] ।।३०।।
कृतान्तमैशे [3]निर्माल्यं तेजश्चण्डाय दीपितम् । रोचनं कुंकुमं वारि रक्तगन्धाक्षताङ्कुराः ।।३१।।
वेणुबीजयवाः शालिश्यामाकतिलराजिकाः । जपापुष्पान्वितां दत्त्वा पात्रैःशिरसि धार्य तत् ।।३२।।
[4]जानुभ्यामवनीं गत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । स्वविद्यामन्त्रितैः कुम्भैर्नवभिः प्रार्च्य वै ग्रहान् ।।३३।।
ग्रहादिशान्तये स्नानं जप्त्वाऽर्कं सर्वमाप्नुयात् । सङ्ग्रामविजयं सार्गिं बीजदोषं सबिन्दुकम् ।।३४।।
न्यस्य मूर्धादिपादान्तं मूलं पूज्यं च मुद्रया । स्वाङ्गानि च यथान्यासमात्मानं भावयेद्रविम् ।।३५।।
ध्यानं च मारणस्तम्भे पीतमाप्यायने सितम्[5] । रिपुघातविधौ कृष्णं मोहयेच्छक्रचापवत् ।।३६।।
योऽभिषेकजपध्यानपूजाहोमपरः सदा । तेजस्वी ह्यजयः श्रीमान्स युद्धादौ जयं लभेत् ।।३७।।
ताम्बूलादाविदं न्यस्य जप्त्वा [6]दद्यादुशीरकम् । न्यस्तबीजेन हस्तेन स्पर्शनं तद्वशे स्मृतम् ।।३८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यार्चनविधानकथनं नामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०१।।

हृदय इत्यादि के लिए अग्नि इत्यादि दिशाओं में पूजन करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमा, गुरु और शुक्र का पूजन करना चाहिए। आग्नेयी इत्यादि कोणों में मंगल, शनि, राहु और केतु के लिए अर्घ्य देना चाहिए। स्नान के बाद विधिपूर्वक अर्घ्य देकर सूर्य की आराधना करनी चाहिए। यमराज के लिए ईशानकोण में निर्माल्य अर्पण करना चाहिए। रोली, केसर, जल, रक्त चन्दन, चन्दन, अक्षत, दूर्वाङ्कुर, बाँस के बीज, यव, धान, श्यामाक, तिल तथा राई को पात्रों में रखकर उन्हें अपने सिर के ऊपर धारण करना चाहिए ।।२८-३२।। तदनन्तर दोनों घुटनों के सहारे पृथ्वी पर चलकर सूर्य देवता को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। ग्रहादि शान्ति के लिए अपने सम्प्रदाय के मन्त्रों से अभिमन्त्रित किये हुए नौ कलशों से ग्रहों की अर्चना करनी चाहिए। स्नानान्तर सूर्य-मन्त्रों का जप करने से सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। इससे संग्राम में विजय भी होती है। सिर से लेकर पाद पर्यन्त अङ्गन्यास करके सूर्यार्चन करना चाहिए ।।३३-३५।। मारण और स्तम्भन में सूर्य को पीतवर्णयुक्त, किसी को सन्तुष्ट करने में उसे श्वेतवर्णयुक्त, शत्रु का विनाश करने में कृष्णवर्णयुक्त तथा मोहन करने में उसको इन्द्रधनुष के समान वर्ण से युक्त चिन्तन करना चाहिए। जो व्यक्ति सदा सूर्य के अभिषेक, जप, ध्यान, पूजन और हवन में निरत रहता है, वह तेजस्वी, अजेय, ऐश्वर्य-सम्पन्न तथा युद्धादि में विजय प्राप्त करनेवाला होता है। किसी को वश में करने के लिए सूर्यमन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके ताम्बूल आदि में खस को रखकर देना चाहिए ।।३६-३८।।

श्री अग्निमहापुराण में सूर्यार्चन-विधान-कथन नामक तीन सौ एक अध्याय समाप्त ।।३०१।।

---

१ ग. 'सादार्प्याज°'। २ ख. °म्। क्रता°'। ३ ग. °मैष नि°'। ४. 'जानुभ्यामवनी°°°°निवेदयेत् ग. पुस्तके नास्ति। ५ ख. ग. °म्। विद्युत्पात°'। ६ ग. द्याद्वशीकरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामंत्रौषधकथनम्

अग्निरुवाच

वाक्कर्मपार्श्वयुक्शु[1]क्लतोककृते[2] मतो प्लवः । हुतान्ता देशवर्णेयं विद्या मुख्या सरस्वती(?) ।।१।।
अक्षाराशी वर्णलक्षं जपेत्स मतिमान्भवेत् । अत्रिः सवह्निर्नामाक्षिबिन्दुविद्रावकृत्परः ।।२।।
वज्रपद्मधरं शक्रं पीतामावाह्य पूजयेत् । नियुतं होमयेदाज्यतिलांस्तेनाभिषेचयेत् ।।३।।
नृपादिर्भ्रष्टराज्यादीन्राज्यपुत्रादिमाप्नुयात् । हल्लेखा शक्तिदेवाख्या घोषोऽग्निर्दण्डिदण्डवान् ।।४।।
शिवमिष्ट्वा[3] जयेच्छक्तिमष्टम्यादिचतुर्दशीम् । चक्रपाशाङ्कुशधरां सभायां वरदायिकाम् ।
होमादिना च सौभाग्यं कवित्वं पुत्रवान्भवेत् ।।५।।
ॐ ह्रीम् ॐ नमः कामाय सर्वजनहिताय सर्वजनमोहनाय प्रज्वलिताय
सर्वजनहृदयं ममाऽऽत्मगतं कुरु कुरु ओम् ।।६।।
एतज्जपादिना मन्त्रो वशयेत्सकलं जगत् ।।७।।
ॐ, ह्रीं, चामुण्डेऽमुकं दह दह पच पच । मम वशमानयाऽऽनय ठ ठ उ (ओम्) ।।८।।

अध्याय ३०२

नानामन्त्रौषध-कथन

अग्निदेव बोले– वाक् शक्ति को उद्भावित करनेवाला सुसन्तति प्रदाता 'वाक्कर्म' इत्यादि श्लोक में उद्धृत 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' यह ग्यारह अक्षरों का श्री सरस्वती जी का मुख्य मन्त्र संसार–सागर के लिए नौकास्वरूप है। बिना लवण खाये सरस्वती जी के मन्त्राक्षरों का एक लक्ष बार जप करके मूढ़ व्यक्ति भी बुद्धिमान् हो सकता है। अत्रि (द), अग्नि (र्), वामनेत्र (ई) तथा विन्दु से बना 'द्रीं' इन्द्र का यह बीजमंत्र महान् विद्रावणकारी (शत्रु को मार भगानेवाला) है। पहले वज्र और पद्म धारण करनेवाले, पीतवर्ण इन्द्र का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए ।।१–२$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर घृत और तिल की एक लाख आहुतियाँ देकर (इन्द्र देवता) का तिल मिश्रित जल से अभिषेक करना चाहिए। इस विधि से राजा इत्यादि अपने खोये हुए राज्य को तथा पुत्र आदि को प्राप्त कर लेते हैं। अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियों में घोष (ह), अग्नि (र्) और दण्डी (ई) बीजों से युक्त शक्ति मन्त्र का (हल्लेखा ह्री) का जप करना चाहिए। वह (शक्ति नाम की) देवी अपने हाथों में चक्र, पाश और अंकुश को धारण किये रहती है तथा उसका चतुर्थ हाथ अभय प्रदान करनेवाला हुआ करता है। इस शक्ति का पूजन भगवान् शिव की अर्चना के बाद ही करना चाहिए। इस प्रकार पूजन–हवन करने से मनुष्य सौभाग्य, कवित्व और पुत्रों को प्राप्त कर लेता है। 'ॐ ह्रीम्…कुरु ॐ' इस मन्त्र का जप करने से समस्त जगत् को वश में किया जा सकता है ।।३–७।। 'ॐ

---

१ ख. °क्लत्तोकृतमत्कृतो। २ ग. कृतोनतप्लवम्। ह°। ३ ख. °ष्टायजेच्छ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वशीकरणकृन्मन्त्रश्चामुण्डायाः प्रकीर्तितः । फलत्रयकषायेण वराङ्गं क्षालयेद्वशे ।।९।।
[1]अश्वगन्धायवैः स्त्री तु निशा कर्पूरकादिना । पिप्पलीतण्डुलान्यष्टौ मरिचानि च विंशतिः ।।१०।।
बृहतीरसलेपश्च वशे स्यान्मरणान्तिकम् । [2]कटीरमूलत्रिकटुक्षौद्रलेपस्तथा भवेत् ।।११।।
हिमं कपित्थकरसं मागधी मधुकं मधु । तेषां लेपः प्रयुक्तस्तु दंपत्योः स्वस्तिमावहेत् ।।१२।।
सशर्करो योनिलेपात्कदम्बरसको मधु । सहदेवी महालक्ष्मीः पुत्रंजीवी कृताञ्जलिः ।।१३।।
एतच्चूर्णं शिरःक्षिप्तं लोकस्य वशमुत्तमम् । त्रिफलाचन्दनक्वाथप्रस्था द्विकुडवं पृथक् ।।१४।।
भृङ्गहेमरसं दोषा तावती छम्बुकं मधु । घृतैः पक्वा निशाछायाशुष्का लेप्या तु रञ्जनी ।।१५।।
विदारी सजटामांसचूर्णीभूतां सशर्कराम् । मथितां यः पिबेत्क्षीरैर्नित्यं स्त्रीशतकं व्रजेत् ।।१६।।
गुप्तामाषतिलव्रीहिचूर्णं क्षीरसितान्वितम् । अश्वत्थवंशदर्भाणां मूलं वै वैष्णवीश्रियोः ।।१७।।
मूलं दूर्वाश्वगन्धोत्थं पिबेत्क्षीरैः सुतार्थिनी । कौन्तीलक्ष्म्योः शिवाधात्रीबीजं लोध्रवटाङ्कुरम् ।।१८।।
[3](आज्यक्षीरमृतौ पेयं पुत्रार्थं त्रिदिवं स्त्रिया । पुत्रार्थिनी पिबेत्क्षीरं श्रीमूलं सवटाङ्कुरम्) ।।१९।।
श्रीवटाङ्कुरदेवीनां रसं नस्ये पिबेच्च सा । श्रीपद्ममूलमुत्क्षीरमश्वत्थत्तोरमूलयुक् ।।२०।।
[4]तरणं पयसा युक्तं कार्पासफलपल्लवम् । अपामार्गस्य पुष्पाग्रं नवं समहिषीपयः ।।२१।।

ह्रीं चामुण्डे···ठ ठ उ ॐ' यह चामुण्डा देवी का वशीकरण मन्त्र है। इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित त्रिफला के कषाय युक्त जल से योनि का छालन करनेवाली स्त्री सबको वश में कर लेती है ।।८-९।। अश्वगन्धा, यव, हल्दी, कपूर, पीपरि, आठ दाना चावल और बीस दाना मिर्च के सेवन से तथा भटकैया के रस का योनि पर लेप करने से वश में लोग जीवन-पर्यन्त रहा करते हैं। कटीर, पिप्पलीमूल, सोंठ, मिर्च, पीपरि तथा मधु के लेप से भी ऐसा ही फल होता है। चन्दन, कपूर, कपित्थ का रस, छोटी इलायची, मधु और अशोक वृक्ष के पत्तों के रस से बना हुआ लेप दम्पति के लिए कल्याणकारक होता है ।।१०-१२।। कदम्बरस तथा मधु को शक्कर के साथ मिलाकर योनि में लेप करने से दम्पति का कल्याण होता है। सहदेवी (शाखि), महालक्ष्मी और पुत्रंजीवी के चूर्ण को सिर के ऊपर लगाने से सभी लोग वश में हो जाते हैं। त्रिफला और चन्दन का क्वाथ एक प्रस्थ, भृंगहेम का रस दो कुडव, उतनी ही दोषा, मधु-घृत में पकायी गयी हल्दी और शेकालिका के चूर्ण का लेप करने से पुरुष में शक्ति-विशेष का सञ्चय होता है। जो पुरुष विदारीकन्द और जटामासी के चूर्ण के साथ शक्कर मिलाकर दूध के साथ पीता है, वह सौ स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है ।।१३-१६।। पुत्रार्थिनी स्त्री को गुप्ता, उड़द तथा तिल के चूर्ण को दूध में मिलाकर पीना चाहिए। पुत्राभिलाषी स्त्री को भस्म-गन्धी, फलिनी, हड़, आँवला, लोध्र तथा बरगद के अंकुर के चूर्ण को दूध और घी में मिलाकर तीन दिनों तक पीना चाहिए। बेल और बरगद के अंकुर के रस को पीना चाहिए और उसका नस्य भी लेना चाहिए। बेल, कमल की जड़, दूध, पीपल की जड़, कपास के फूल और पत्ते और लटजीरा के पुष्प के अग्रभाग को तुरन्त दुहे गये भैंस के दूध के साथ पीने से भी पुत्रार्थिनी स्त्री को लाभ होता है ।।१७-२१।। उपर्युक्त

---

१ ख. ग. °यवस्त्री। २ ख. ग. कटौ च मू°। ३ 'आज्यक्षीरमृतौ···सवटाङ्कुरम् ग. पुस्तके नास्ति। ४ ख. तरुणं। घ. तरलं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुत्रार्थं चार्धषट्श्लोकैर्योगाश्चत्वार ईरिताः । शर्करोत्पलपुष्पाक्षे लोध्रचन्दन [1]सारिवाः ।।२२।।
स्रवमाणे स्त्रिया गर्भे दातव्यास्तण्डुलाम्भसा । लाजा यष्टिसिताद्राक्षाक्षौद्रसर्पिषि वा लिहेत् ।।२३।।
आटरूष कलाङ्गल्योः काकमाच्याः शिफा पृथक् । नाभेरधः समालिप्य प्रसूते प्रमदा सुखम् ।।२४।।
रक्तं शुक्लं जपापुष्पं रक्तशुक्रस्रुतौ पिबेत् । केशरं बृहतीमूलं गोपीषष्टीतृणोत्पलम् ।।२५।।
साजक्षीरं सतैलं तद्भक्षणं रोमजन्मकृत् । शीर्यमाणेषु केशेषु स्थापनं च भवेदिदम् ।।२६।।
धात्रीभृङ्गरसप्रस्थं तैलं च क्षीरमाढकम् । षष्ट्यञ्जनपलं तैलं तत्केशाक्षिशिरोहितम् ।।२७।।
हरिद्राराजवृक्षत्वक्चिञ्चा [2]लवणलोध्रकौ । पीता खारी हरेदाशु गवामुदरबृंहणम् ।।२८।।
ॐ नमो भगवते त्र्यम्बकायोपशमयोपशमय चुलु चुलु मिलि मिलि भिदि भिदि गोमानिनि चक्रिणि ह्रूं फट ।।२९।।
अस्मिन्ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु शान्ति कुरु कुरु कुरु ठ ठ ठ ।।३०।।
घण्टाकर्णो महासेनो वीरः प्रोक्तो महाबलः । मारीनिर्ना(र्णा) शनकरः स मां पातु जगत्पतिः ।।
श्लोकौ चैव न्यसेदेतौ मन्त्रौ गोरक्षकौ पृथक् ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाविधमन्त्रौषधादिकथनं नाम द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०२।।

साढ़े छह श्लोकों में पुत्र-प्राप्ति के चार योग बताये गये हैं। जिस स्त्री के बार-बार गर्भपात हो जाया करता हो उसे चावल के पानी में मिलाकर शक्कर, कमलपुष्प, कमलनेत्र, लोध्र, चन्दन और सारिवा देना चाहिए। वह (स्त्री) खील, यष्टि, शक्कर, द्राक्षा, मधु तथा घृत को भी चाट सकती है। प्रसव-काल में जिस स्त्री को कुछ कष्ट होता हो उसे आटरूष, कलाङ्गली, काकमाची (मुद्गपर्णी) की जड़ को अलग-अलग कूटकर उसके लेप को नाभि के नीचे लगाना चाहिए। इससे स्त्री का प्रसव सुखपूर्वक होता है ।।२२-२४।। जिस स्त्री के रक्त तथा शुक्र गिरता हो उसे श्वेत और रक्त गुड़हल के फूलों को पिलाने से उक्त रोग शान्त हो जाता है। शरीर के किसी भी अंग में रोयें पैदा करने के लिए केसर, बृहती की जड़, श्यामलता, षष्टी और वल्वज नामक तृण को बकरी के दूध में तथा तेल के साथ मिलाकर खाना चाहिए। यह ओषधि गिरते हुए केशों को (भी) रोकती है। एक-एक प्रस्थ आँवला और भृङ्गराज का रस, एक आढक दूध, एक-एक पल षष्ठी और अञ्जन-इन वस्तुओं के द्वारा निर्मित तेल केश, नेत्र तथा सिर के लिए हितकारी है ।।२५-२७।। हल्दी और प्रियाल की छाल, इमली, नमक और लोध्रक को एक-एक खारी की मात्रा में गायों को पिलाना उनके पेट फूलने के रोग में लाभदायक होता है। 'ॐ नमो···स मां पातु जगत्पतिः' गोरक्षा करनेवाले इन दो श्लोकों तथा मन्त्रों की भी स्थापना करनी चाहिए ।।२८-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में नानाविधमन्त्रौषधादि कथन नामक
तीन सौ दो अध्याय समाप्त ।।३०२।।

---

१ ग. °नमारिवा। २ ग. लपणलोलभौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अङ्गाक्षरार्चनम्

अग्निरुवाच

यदा जन्मर्क्षगश्चन्द्रो भानुः सप्तमराशिगः । पौष्णः कालः स विज्ञेयस्तदा [1]श्वासं परिक्षयेत् ।।१।।
कण्ठोष्ठौ चलतः स्थानाद्यस्य वक्रा च नासिका । कृष्णा जिह्वा च सप्ताहं जीवितं तस्य वै भवेत् ।।२।।
तारो मेषो विषं [2]दन्ती नरो दीर्घो घनारसः । क्रुद्धोल्काय महोल्काय वीरोल्काय शिखा भवेत् ।।३।।
ह्युल्काय सहस्रोल्काय वैष्णवोऽष्टाक्षरो मनुः । कनिष्ठादितदष्टानामङ्गुलीनां च पर्वसु ।।४।।
ज्येष्ठाग्रेण क्रमात्तारं मूर्धन्यष्टाक्षरं न्यसेत् । तर्जन्यां तारमङ्गुष्ठे लग्ने मध्यमया च तत् ।।५।।
तलेऽङ्गुष्ठे तदुत्तारं बीजोत्तारं ततो न्यसेत् । रक्तगौरधूम्रहरिज्जातरूपाः सितास्त्रयः ।।६।।
एवंरूपानिमान्वर्णांस्ता[3] वद्बुद्ध्वा न्यसेत्क्रमात् । हृदास्यनेत्रमूर्धाङ्घ्रितालुगुह्यकरादिषु ।।७।।

अध्याय ३०३

अङ्गाक्षरार्चन

अग्निदेव बोले–जिस काल के चन्द्रमा (किसी के) जन्म के नक्षत्र में होता है तथा सूर्य उसकी राशि से सातवीं राशि पर होता है, वह पौष्ण काल कहलाता है। इस समय (मनुष्य की) श्वास में क्षीणता उत्पन्न हो जाती है ।।१।। जिस व्यक्ति के कण्ठ और ओष्ठ अपने-अपने स्थान से हिलने लगते हैं, जिसकी नासिका टेढ़ी और जीभ काली पड़ जाती है उस पुरुष का जीवन एक सप्ताह तक ही जानना चाहिए ।।२।। ऐसे व्यक्ति को निष्ठापूर्वक नारायण का पूजन करना चाहिए क्योंकि वही इसे सभी प्रकार के भय से बचा सकते हैं। आठ अक्षरवाला वैष्णव मन्त्र यह है–'ॐ नमोनारायणाय' इसमें कराङ्गन्यास का विधान इस प्रकार है–'क्रुद्धोल्काय नमः' से अंगुष्ठ, 'वीरोल्काय नमः' से मध्यमा का, 'अत्युल्काय नमः' से अनामिका का न्यास करना चाहिए। 'महोल्काय नमः' से तर्जनी का और 'सहस्रोल्काय नमः' से कनिष्ठिका का न्यास करना चाहिए। कनिष्ठा से लेकर कनिष्ठा तक आठ अँगुलियों के तीनों पर्वों में अष्टाक्षर मन्त्र के पृथक्-पृथक् आठ अक्षरों को 'प्रणव' तथा 'नमः' से संपुटित करके बोलते हुए अंगुष्ठ के अग्रभाग से उनका क्रमशः न्यास करे। तर्जनी में मध्यमा से युक्त अंगुष्ठ में, करतल में तथा पुनः अंगुष्ठ में प्रणव का न्यास 'उत्तार' कहलाता है। इस न्यास के बाद 'बीजोत्तार' न्यास करे ।।३-५$\frac{1}{2}$।। रक्त, गौर, धूम्र, हरित्, सुनहले तथा श्वेत वर्णवाले अक्षरों का न्यास भी विचारपूर्वक करना चाहिए। मन्त्राक्षरों से हृदय, मुख, नेत्र, मूर्धा, पाद, तालु, गुह्य, हस्त आदि अवयवों का न्यास करना चाहिए। हाथों में और अंगों में बीजन्यास करके फिर अङ्गन्यास करे। जैसे अपने शरीर में न्यास किया

---

१ घ. ग्रासं। २ घ. दण्डी। ३ ग. न्वर्णान्भावबुद्धान्न्यसे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अङ्गानि च न्यसेद्बीजान्न्यस्याथ करदेहयोः । यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासः कार्यः करं विना ।।८।।
हृदादिस्थानगान्वर्णान्गन्धपुष्पैः समर्चयेत् । धर्माद्यग्न्याद्यधर्मादि गात्रे पीठेऽम्बुजं न्यसेत् ।।९।।
पत्रकेसरकिञ्जल्कव्यापिसूर्येन्दुदाहिनाम् । मण्डलं (ल) त्रितयं तावद्भेदैस्तत्र न्यसेत्क्रमात् ।।१०।।
गुणाश्च तत्र सत्त्वाद्याः केसरस्थाश्च शक्तयः । विमलोत्कर्षणीज्ञानक्रियायोगाश्च वै क्रमात् ।।११।।
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा मध्यतस्ततः । योगपीठं समभ्यर्च्य समावाह्य हरिं यजेत् ।।१२।।
पाद्यार्घ्याचमनीयं च पीतवस्त्रविभूषणम् । एतत्पञ्चोपचारं च सर्वं मूलेन दीयते ।।१३।।
वासुदेवादयः पूज्याश्चत्वारो दिक्षु मूर्तयः । विदिक्षु श्रीसरस्वत्यौ रतिशान्ती च पूजयेत्[1] ।।१४।।
शंखं चक्रं गदां पद्मं मुसलं खड्गशार्ङ्गके । वनमालान्वितं दिक्षु विदिक्षु च यजेत्क्रमात् ।।१५।।
अभ्यर्च्य च बहिस्तार्क्ष्यं देवस्य पुरतोऽर्चयेत् । विष्वक्सेनं च सोमेशं मध्ये आवरणाद्बहिः ।।१६।।
इन्द्रादिपरिचारेण संपूज्य समवाप्नुयात् ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽङ्गाक्षरपूजाविधिवर्णनं नाम त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०३।।

जाता है, उसी तरह देव विग्रह में भी करना चाहिए, किन्तु देव शरीर में करन्यास नहीं किया जाता है। देव विग्रह में हृदयादि अंगों में विन्यास वर्णों का गन्ध, पुष्प द्वारा पूजन करे। देव पीठ पर धर्म आदि, अग्नि आदि तथा अधर्म आदि का यथास्थान न्यास करे। फिर उस पर कमल का भी न्यास करना चाहिए ।।६-९।। कमल के दल (पत्र) केसर तथा किञ्जल्क में सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि इन तीनों देवताओं के तीन मण्डलों का भी न्यास करना चाहिए। उनमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का और विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना आदि आठ शक्तियों का न्यास करना चाहिए। ये आठ शक्तियाँ आठ दिशाओं में और नवीं अनुग्रहा शक्ति मध्य में विराजमान है। उस योगपीठ की अर्चना करके उसी के ऊपर श्री हरि का आह्वान करके पूजन कार्य सम्पन्न करना चाहिए ।।१०-१२।। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पीतवस्त्र धारण तथा भूषणाधान पञ्चोपचार को मूल मन्त्र (अष्टाक्षर मन्त्र) से ही करना चाहिए। चारों दिशाओं में वासुदेव आदि चार देवताओं की पूजा करनी चाहिए। विदिशाओं में लक्ष्मी, सरस्वती, रति और शान्ति की अर्चना करनी चाहिए। शंख, चक्र, गदा, पद्म और मुसल, खड्ग, धनुष, वनमाला की पूजा दिशाओं तथा विदिशाओं में क्रम से करनी चाहिए ।।१३-१५।। मण्डल के बाहर गरुड़ का, भगवान् नारायण के समक्ष विष्वक्सेन का तथा मध्य में सोमेश का पूजन कर आवरण के बाहर इन्द्र आदि देवताओं की अर्चना करके मनोवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में अङ्गाक्षर-पूजा-विधि वर्णन नामक तीन सौ तीन अध्याय समाप्त ।।३०३।।

---

१ च. विन्यसेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्राः

अग्निरुवाच

मेषः संज्ञा विषं साज्यमस्ति दीर्घोदकं रसः। एतत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं शिवदं च शिवात्मकम् ।।१।।
([1]तारकादि [2]समभ्यर्च्य देवत्वादि समाप्नुयात्। ज्ञानात्मकं परं ब्रह्म परं बुद्धिः शिवो हृदि) ।।२।।
तच्छक्तिभूतः सर्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्तिभिः। मन्त्राणाः पञ्च भूतानि [3]तन्मन्त्रा विषयास्तथा ।।३।।
प्राणादिवायवः पञ्च ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च। सर्वं पञ्चाक्षरं ब्रह्म तद्वदष्टाक्षरात्मकम् ।।४।।
गव्येन प्रोक्षयेद्दीक्षास्थानं मन्त्रेण चोदितम्। तत्र संभूतसंभारः शिवमिष्ट्वा विधानतः ।।५।।
मूलमूर्त्यङ्गविद्याभिस्तण्डुलक्षेपणादिकम्। कृत्वा [4]चरुं च यत्क्षीरे पुनस्तद्विभजेत्त्रिधा ।।६।।
निवेद्यैकं परं हुत्वा सशिष्योऽन्यद्भजेद्गुरुः। आचम्य सकलीकृत्य दद्याच्छिष्याय देशिकः ।।७।।
दन्तकाष्ठं हृदा जप्तं क्षीरवृक्षादिसंभवम्। संशोध्य दन्तान्संक्षिप्त्वा(प्य)प्रक्षाल्यैतत्क्षिपेद्भुवि ।।८।।

अध्याय ३०४

पञ्चाक्षरादि पूजा-मन्त्र

अग्निदेव बोले–शिव मन्त्र में पाँच अक्षर हैं और वह मन्त्र है, 'नमः शिवाय' यह मन्त्र कल्याणप्रद और कल्याणस्वरूप माना गया है। इस मन्त्र के आदि में तारक (ॐ) लगा देने से यह षडक्षर मन्त्र हो जाता है। इसकी अर्चना करने से देवत्व आदि की प्राप्ति होती है। शिव का ध्यान ज्ञानस्वरूप परब्रह्म और बुद्धिरूप में करना चाहिए। सर्वेश शिव इन्हीं की शक्तियों से उत्पन्न तथा ब्रह्मादि की मूर्तियों से भिन्न है। शिव मन्त्र के पाँच अक्षरों से पञ्चमहाभारत, पञ्चतन्मात्राएँ, पाँच विषय, प्राणादि पाँच वायु, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। यह मन्त्र तथा आठ अक्षरों से युक्त (ॐ नमो नारायणाय) मन्त्र साक्षात् ब्रह्म ही है ।।१-४।। (शिर्वाचन के लिए) दीक्षा-स्थान को गोबर इत्यादि से लीपकर उसे शिवमन्त्र से पवित्र करना चाहिए। तत्पश्चात् समस्त (पूजन) सामग्री को एकत्र करके विधिपूर्वक शिवार्चन करना चाहिए ।।५।। पूजा करनेवाले को मूलमन्त्र, मूर्तिमन्त्र और अङ्गमन्त्रपूर्वक अक्षतों को वहाँ डालना चाहिए। तदनन्तर दूध में चरु तैयार करके उसे तीन भागों में विभाजित कर देना चाहिए। इसमें से एक भाग शिव को अर्पित कर देना चाहिए, दूसरे से हवन करना चाहिए और तीसरे भाग को गुरु-शिष्य दोनों को खाना चाहिए। उसके बाद आचमन एवं सकलीकरण करके शिष्य को गुरु के द्वारा बरगद आदि दूधवाले वृक्षों की एक दातून दी जानी चाहिए जो हृदयमन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित हो। इस प्रकार दाँतों को साफ करके दातून को चीरकर उसके द्वारा जीभ साफ करके बाद में धोकर पृथ्वी पर फेंक दे ।।६-८।। यदि पूर्व दिशा में फेंकने पर वह दातून

---

१ 'तारकादि''''हृदि' ग. पुस्तके नास्ति। २ ख. °भ्यस्य दे°। ३ ख. च. तन्मात्रा। ४ ख. °रू° पचेत्क्षी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वेण सौम्यवारीशगतं शुभमतोऽशुभम् । पुनस्तं शिष्यमायान्तं शिखाबन्धादिरक्षितम् ।।९।।
कृत्वा वेद्यां सहानेन स्वपेद्दर्भास्तरे बुधः । स्वस्वप्नं वीक्ष्य तं शिष्यः प्रभाते श्रावयेद्गुरुम् ।।१०।।
शुभैः सिद्धिपदैर्भक्तिस्तैः पुनर्मण्डलार्चनम् । मण्डलं भद्रकायुक्तं पूजयेत्सर्वसिद्धिदम् ।।११।।
स्नात्वाऽऽचम्य मृदा देहं मन्त्रैरालिप्य कल्पते । शिवतीर्थे नरः स्नायादघमर्षणपूर्वकम् ।।१२।।
हस्ताभिषेकं कृत्वाऽथ प्रायात्पूजागृहं बुधः । मूलेनाब्जासनं कुर्यात्तेन पूरककुम्भकान् ।।१३।।
आत्मानं योजयित्वोर्ध्वं शिखान्ते द्वादशाङ्गुले । संशोध्य दग्ध्वा स्वतनुं प्लावयेदमृतेन च ।।१४।।
ध्यात्वा दिव्यं वपुस्तस्मिन्नात्मानं च पुनर्नयेत् । कृत्वैवं चाऽऽत्मशुद्धिः स्याद्विन्यस्यार्चनमारभेत् ।।१५।।
क्रमात्कृष्णसितश्यामरक्तपीता [1]नगादयः । [2]मन्त्राणां दण्डिनाङ्गानि तेषु सर्वास्तु मूर्तयः ।।१६।।
([3]अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्याङ्गानि सर्वतः । न्यसेन्मन्त्राक्षरं पादगुह्यहृद्वक्त्रमूर्धसु ।।१७।।
व्यापकं न्यस्य मूर्धादि मूलमङ्गानि विन्यसेत्) । रक्तपीतश्यामसितान्पीठपादान्स्वकोणजान् ।।१८।।

उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर जाकर गिरे तो शुभ होता है, अन्यथा अशुभ। पुनः अपने पास आते हुए शिष्य को शिखाबन्धादि से सुरक्षित करके उसके साथ वेदी के ऊपर बिछे हुए कुशास्तरण के ऊपर शयन करना चाहिए। शिष्य को चाहिए कि (शयनकाल में) देखे हुए अपने स्वप्न को प्रभातकाल में अपने गुरु से बताये। यदि स्वप्न शुभ एवं सिद्धिसूचक हुए तो उनसे मन्त्र तथा इष्टदेव के प्रति भक्ति बढ़ती है। तदनन्तर सर्वतोभद्र नामक मण्डल की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि इससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।।९-११।। स्नान और आचमन करने के बाद शरीर के ऊपर मन्त्रों से अभिमन्त्रित की हुई मिट्टी का लेप करना चाहिए। इस प्रकार (शरीर में बने हुए) शिवतीर्थ में अघमर्षण मन्त्रों से स्नान करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को हाथ धोकर पूजागृह में जाना चाहिए और मूलमन्त्र का जप करते हुए पद्मासन लगाकर उसी मन्त्र से पूरक और कुम्भक प्राणायाम की क्रियाओं को करना चाहिए। तदनन्तर सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से जीवात्मा को ऊपर ब्रह्मरन्ध्र-स्थित सहस्रारचक्र में ले जाकर परमात्मा में योजित कर दे। सिर से लेकर शिखापर्यन्त जो बारह अंगुल विस्तृत स्थान है, वही ब्रह्मरन्ध्र है। उसी में स्थित परमात्मा के भीतर जीव को संयोजित करके वायुबीज (यकार) के द्वारा वायु को प्रकट करके उसके द्वारा अपने शरीर को सुखा दे, अग्निबीज (रकार) से अग्नि प्रकट करके शुष्क शरीर को जला दे और जले हुए शरीर से पापपुरुष को अलग कर अमृतबीज (वकार) से उस भस्म को अमृत की धारा से आप्लावित कर दे ।।१२-१४।। तदनन्तर अपने अन्दर दिव्य आत्मा का ध्यान करते हुए मूलमन्त्र के कृष्ण, श्वेत, श्याम, रक्त और पीतवर्णोंवाले नकारादि अक्षरों से अङ्गन्यास करना चाहिए। इन्हीं अंगों में तत्पुरुष आदि पाँच मूर्तियों का भी न्यास करना चाहिए। मन्त्राक्षरों से अँगूठे से लेकर कनिष्ठिका तक तथा पाद, गुह्याङ्गों, मुख और मस्तक इत्यादि सभी अंगों का न्यास करना चाहिए। साथ ही अपने-अपने कोणों में रक्त, पीत, श्याम और श्वेत पाद-पीठों तथा साध्य मन्त्रों का तथा दिशाओं में अधर्मादि का न्यास

---

१ च. नमाद°। २ "मन्त्राणां"...."मूर्तयः" इत्यत्र "मन्त्राणां दण्डभागानां मूलमङ्गानि विन्यसेत्" इति च. पुस्तके वर्तते। ३ "अंगुष्ठादि"...."विन्यसेत्" नास्ति च. पुस्तके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

साध्यान्मन्त्रान्न्यसेद्गात्राण्यधर्मादीनि दिक्षु च । तत्र पद्मं च सूर्यादिमण्डलत्रितयं गुणान् ।।१९।।
पूर्वादिपत्रे वामाद्या नवमी कर्णिकोपरि । वामा ज्येष्ठा क्रमाद्रौद्री काली कलविकारिणी ।।२०।।
बलविकारिणी चाथ बलप्रमथिनी तथा । सर्वभूतदमनी च नवमी च मनोन्मनी ।।२१।।
श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निनिभाऽसिता । कृष्णारुणाश्च ताः शक्तीर्ज्वालारूपाः स्मरेत्क्रमात् ।।२२।।
अनन्तयोगपीठाय आवाह्याथ हृदब्जतः । स्फटिकाभं चतुर्बाहुं फलशूलधरं शिवम् ।।२३।।
साभयं वरदं पञ्चवदनं च त्रिलोचनम् । पत्रेषु मूर्तयःपञ्च स्थाप्यास्तत्पुरुषादयः ।।२४।।
पूर्वे तत्पुरुषः श्वेतो अ(तोऽप्य)घोरोऽष्टभुजोऽसितः । चतुर्बाहुमुखः पीतः सद्योजातश्च पश्चिमे ।।२५।।
([1]वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः । सौम्ये पञ्चास्य ईशान ईशानः सर्वदः सितः ।।२६।।
इष्टा(ष्ट्वाऽ)ङ्गानि यथान्यायमनन्तं सूक्ष्ममर्चयेत्) । [2]सिद्धेश्वरं त्वेकनेत्रं पूर्वादौ दिशि पूजयेत् ।।२७।।
एकरुद्रं त्रिनेत्रं च श्रीकण्ठं च शिखण्डिनम् । ऐशान्यादिविदिक्ष्वेते विद्येशाः कमलासनाः ।।२८।।
श्वेतः पीतः सितो रक्तो धूम्रो रक्तोऽरुणः सितः । शूलाशनिशरेष्वासबाहवश्चतुराननाः ।।२९।।
उमा चण्डीशनन्दीशौ महाकालो गणेश्वरः । वृषो भृङ्गिरिटिस्कन्दानुत्तरादौ प्रपूजयेत् ।।३०।।
कुलिशं शक्तिदण्डौ च खड्गं पाशध्वजौ गदाम् । शूलं चक्रं यजेत्पद्मं पूर्वादौ देवमर्च्य च ।।३१।।

करना चाहिए ।।१५-१८½।। इस प्रकार योगपीठ का चिन्तन करके उसके ऊपर अष्टदल कमल का और सूर्यमण्डल तथा अग्निमण्डल–इन तीन मण्डलों का एवं सत्त्वादि गुणों का चिन्तन करे। अष्टदल कमल के पूर्वादिपत्र के ऊपर वामा आदि आठ शक्तियों का तथा कर्णिका के ऊपर नवमी (मनोन्मनी) शक्ति का न्यास या चिन्तन करे। इन शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं–वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा नवमी मनोन्मनी। श्वेता, रक्ता, सिता, पीता, श्यामा, वह्निनिभा, असिता, कृष्णा, अरुणा वर्ण की ज्वाला रूप इन शक्तियों का स्मरण करना चाहिए ।।१९-२२।। तदनन्तर 'अनन्तयोगपीठाय नमः' से योगपीठ की पूजा करके हृदय-कमल में स्फटिक मणि के समान चतुर्भुज फलशूलधारी अभययुक्त, वर प्रदान करनेवाले, पञ्चमुख और त्रिलोचन शंकर का आवाहन करना चाहिए। (हृदय-कमल के) पत्रों में तत्पुरुष इत्यादि पाँच मूर्तियों की स्थापना करनी चाहिए। पूर्व की ओर श्वेतवर्ण तत्पुरुष की तथा दक्षिण में कृष्णवर्ण के अष्टभुज अघोर देवता की स्थापना करनी चाहिए। पश्चिम की ओर पीतवर्ण के चतुर्भुज और चतुरानन सद्योजात की तथा उत्तर दिशा में स्त्रीविलासी चतुर्मुख चतुरानन अरुणवर्ण के वामदेव की तथा ईशानकोण में पाँच मुँहवाले, गौरवर्ण, सब-कुछ देनेवाले ईशानदेव की स्थापना करनी चाहिए। तदनन्तर नियमानुसार अंग देवताओं की भी यथाविधि अर्चना करनी चाहिए। पूर्व इत्यादि दिशाओं में अनन्त, सूक्ष्म, सिद्धेश्वर (शिवोत्तम) और एकनेत्र की पूजा करनी चाहिए ।।२३-२७।। ऐशानी आदि कोणों में एकरुद्र, त्रिनेत्र, श्रीकण्ठ और शिखण्डी का पूजन करे। ये आठ विघ्नेश्वर कहलाते हैं। इनका आसन कमल का है। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः श्वेत, पीत, सित, रक्त, धूम्र, रक्त, अरुण और सित वर्ण की है। ये सभी चतुर्भुज हैं। इनकी चारों भुजाओं में त्रिशूल, वज्र, बाण और धनुष रहते हैं। इनके मुँह भी चार-चार ही हैं। इसके बाद उत्तरादि दलों में प्रदक्षिण क्रम से उमा, चण्डेश, नन्दीश्वर, महाकाल, गणेश्वर, वृष, भङ्गी और स्कन्द का पूजन करना चाहिए। उसके बाद पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करके वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्म का भी पूजन करना चाहिए ।।२८-३१।।

---

१ 'वामदेवः'''सूक्ष्ममर्चयेत् ख. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. °रं द्वयेक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ततोऽधिवासितं शिष्यं [1]पाययेद्गव्यपञ्चकम् । आचान्तं प्रोक्ष्य नेत्रान्तैर्नेत्रे नेत्रेण बन्धयेत् ।।३२।।
द्वारे प्रवेशयेच्छिष्यं मण्डपस्याथ दक्षिणे । सासनादिकुशासीनं तत्र संशोधयेद्गुरुः[2] ।।३३।।
आदितत्त्वानि संहृत्य परमार्थे लयः क्रमात् । पुनरुत्पादयेच्छिष्यं सृष्टिमार्गेण देशिकः ।।३४।।
न्यासं शिष्ये ततः कृत्वा तं प्रदक्षिणमानयेत् । पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत्कुसुमाञ्जलिम् ।।३५।।
यस्मिन्पतन्ति पुष्पाणि तन्नामाद्यं विनिर्दिशेत् । पार्श्वे यागभुवः खाते कुण्डे सन्नाभिमेखले ।।३६।।
शिवाग्निं जनयित्वेष्ट्वा पुनः शिष्येण चार्चयेत् । ध्यानेनाऽऽत्मनि तं शिष्यं संहृत्य प्रलयः क्रमात् ।।३७।।
पुनरुत्पाद्य तत्पाणौ दद्याद्दर्भांश्च मन्त्रितान् । पृथिव्यादीनि तत्त्वानि जुहुयाद्धृदयादिभिः ।।३८।।
एकैकस्य शतं हुत्वा व्योममूलेन होमयेत् । हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्यादस्त्रेणाष्टाऽऽहुतीर्हुनेत् ।।३९।।
प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यर्थं ततः शेषं समापयेत् । कुम्भं समन्त्रितं प्रार्च्य शिशुं पीठेऽभिषेचयेत् ।।४०।।
शिष्ये तु समयं दत्त्वा स्वर्णाद्यैः स्वगुरुं यजेत् । दीक्षा पञ्चाक्षरस्योक्ता विष्णवादेरेवमेव हि ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाक्षरदीक्षाविधानकथनं नाम चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०४।।

तदनन्तर अधिवासित शिष्य को पञ्चगव्य का पान कराना चाहिए। उसके बाद आचमन कर लेने पर उसका प्रोक्षण करे। इसके बाद नेत्रान्त अर्थात् नूतन शुक्ल वस्त्र की पट्टी से नेत्र मन्त्र (वौषट्) का उच्चारण करते हुए ग्रह शिष्य के नेत्रों को बाँध दे। उसके बाद शिष्य को मण्डप के दक्षिण द्वार से प्रवेश कराकर उसे अपनी दाहिनी ओर बिछे हुए पवित्र कुशासन के ऊपर बैठाना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से पञ्च तत्त्वों का आह्वान करके शिष्य के अन्तःकरण को पवित्र करके उन्हें न्यास द्वारा आहूत परब्रह्म में लीन करा देना चाहिए। फिर सृष्टिमार्ग से देशिक शिष्य के दिव्य शरीर का उत्पादन करे। इसके बाद उस शिष्य के दिव्य शरीर में न्यास करके शिष्य के द्वारा यज्ञ-मण्डप की परिक्रमा करनी चाहिए। तदनन्तर शिष्य को मण्डप के पश्चिम द्वार से प्रवेश कराकर उसके द्वारा पृथ्वी के ऊपर पुष्पाञ्जलि दिलानी चाहिए ।।३२-३५।। जिस वस्तु के ऊपर पहला-पहला फूल गिरे उसके आदि अक्षर से शिष्य का नामकरण करना चाहिए। यज्ञभूमि के पार्श्व में नाभि और मेखला से युक्त कुण्ड में शिवाग्नि को उत्पन्न करके उनमें यज्ञ करके शिष्य के द्वारा भी यजन कराना चाहिए। तदनन्तर ध्यानपूर्वक अपने में आत्मसदृश शिष्य की संहारक्रम से स्थापना करनी चाहिए और पुनः सृष्टिक्रम से उसका उत्पादन करे। तदनन्तर शिष्य के हाथ में अभिमन्त्रित कुशाओं को देकर हृदय इत्यादि मन्त्रों से पृथ्वी इत्यादि तत्त्वों को सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिए फिर आकाश-तत्त्व को मूलमन्त्र से सौ आहुतियाँ देकर अस्त्रमन्त्र से आठ आहुतियाँ देने के उपरान्त पूर्णाहुति देनी चाहिए ।।३६-३९।। तदनन्तर शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करके शेष कर्म पूरा करना चाहिए। अभिमन्त्रित घट की अर्चना करके एक पीठासन पर बिठाकर शिष्य का अभिषेक करना चाहिए। शिष्य को समयाचार का उपदेश देकर निवृत्त हुए गुरु को स्वर्ण इत्यादि की दक्षिणा द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। यह पञ्चाक्षर दीक्षा विष्णु इत्यादि के मन्त्रों में भी उपयुक्त हुआ करती है ।।४०-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में पञ्चाक्षर दीक्षा-विधान-कथन नामक तीन सौ चौथा अध्याय समाप्त ।।३०४।।

---

१ ख. च. °येद्द्रव्य°। २ ख. ग. °रुः। खादि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि

अग्निरुवाच

जपन्वै पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि यो नरः। मन्त्रजप्यादिफलभाक्तीर्थेष्वर्चादि[1] चाक्षयम् ।।१।।
पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायां च गदाधरम्। राघवं चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ।।२।।
जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे। ([2]वाराहं [3]वर्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम् ।।३।।
जनार्दनं च कुब्जास्त्रे मथुरायां च केशवम्। [4]कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम्) ।।४।।
शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्धनाचले[5]। पिण्डारके चतुर्बाहुं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ।।५।।
वामनं च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम्। विश्वेश्वरं तथा शोणे कपिलं पूर्वसागरे ।।६।।
विष्णुं महोदधौ विद्याद्गङ्गासागरसंगमे। वनमाल्यं च किष्किन्ध्यां देवं रैवतकं[6] विदुः ।।७।।
काशीतटे महायोगं विरजायां रिपुंजयम्। [7]विशाखयूपे ह्यजितं नेपाले लोकभावनम् ।।८।।
द्वारकायां बिद्धि कृष्णं मन्दरे मधुसूदनम्। [8]लोकाकुले [9]रिपुहरं शालग्रामे हरिं स्मरेत् ।।९।।
पुरुषं पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुम्। अनन्तं सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम् ।।१०।।

अध्याय ३०५

पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनाम

अग्निदेव बोले–विष्णु जी के पचपन नामों का जप करनेवाला मनुष्य मन्त्रादि के जप–फल को तथा तीर्थ आदि में की गयी अर्चना के अक्षयफल को प्राप्त कर लेता है। पुष्कर क्षेत्र में पुण्डरीकाक्ष का, गया में गदाधर का, चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र का, प्रभास क्षेत्र में दैत्यसूदन का, जयन्ती नगरी में जय का, हस्तिनापुर में जयन्त का, वर्धमान नगर में वाराह का, काश्मीर में चक्रपाणि का, कुब्जास्त्रनगर में जनार्दन का, मथुरा में केशव का, कुब्जाम्रक में हृषीकेश का, गंगाद्वार में जटाधर का, शालग्राम में महायोग का, गोवर्धन पर्वत में हरि का, पिण्डारक में चतुर्बाहु का, शङ्खोद्धार में शङ्खी का (जप करने से भोग और मोक्ष प्राप्त होता है) ।।१–५।। कुरुक्षेत्र में वामन का, यमुना में त्रिविक्रम का, शोण में विश्वेश्वर का, पूर्व सागर में कपिल का, महोदधि में विष्णु का, गंगासागर में वनमाल का, किष्किन्धा नगरी में रैवतक का, काशी तट पर महायोग का, विरजा नगरी में रिपुंजय का, विशाखयूप में अजित का, नेपाल में लोकभावना का, द्वारका में श्रीकृष्ण का, मन्दराचल में मधुसूदन का, लोकाकुल पर्वत पर रिपुदमन का, शालग्राम स्थान में हरि का स्मरण करना चाहिए ।।६–९।। पुरुष वट पर विराट्पुरुष का, विमल नामक स्थान में जगत्प्रभु का, सैन्धवारण्य में अनन्त का, दण्डकारण्य में शार्ङ्गधारी का,

---

१ ख. ग. °क्तीर्थ पूर्वादि। २ 'वाराहं'''जटाधरम् च. पुस्तके नास्ति। ३ ख. ग. कूर्ममाले। ४ ख. ग. कुब्जाव्रते। ५ च. र्घने वने। पि°। ६ च. विरुवकं। ७ ग. °शालय°। ८ ख. लोहार्गले। ९ च. प्रतरणं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्पलावर्तके सौरिं नर्मदायां श्रियः पतिम्। दामोदरं रैवतके नन्दायां जलशायिनम् ।।११।।
गोपीश्वरं च सिन्ध्वब्धौ[1] माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः। सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने ।।१२।।
सर्वपापहरं विन्ध्ये औण्ड्रे तु पुरुषोत्तमम्। आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भुक्तिमुक्तिदम् ।।१३।।
वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम्। पर्वते पर्वते रामं सर्वत्र मधुसूदनम् ।।१४।।
नरं भूमौ तथा व्योम्नि वशिष्ठे गरुड़ध्वजम्। वासुदेवं च सर्वत्र संस्मरन्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।१५।।
नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात्। क्षेत्रेष्वेतेषु यच्छ्राद्धं दानं जप्यं च तर्पणम् ।।१६।।
तत्सर्वं कोटिगुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत्। यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।।१७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चपञ्चाशद्विष्णुकथनं नाम

पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०५।।

अथ षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नारसिंहादिमन्त्राः

अग्निरुवाच

स्तम्भो विद्वेषणोच्चाट उत्सादो भ्रममारणे। व्याधिश्चेति स्मृतं क्षुद्रं तन्मोक्षो वक्ष्यते शृणु ।।१।।

उत्पलावर्तक में शौरि का, नर्मदा में श्रीपति का, रैवतक पर्वत पर दामोदर का, नन्दा में जलशायी का, सिन्ध्वब्ध में गोपीश्वर का, माहेन्द्र पर अच्युत का, सह्यपर्वत पर देवदेवेश का, मागध वन में वैकुण्ठ का, विन्ध्यपर्वत पर सर्वपापहर का, औण्ड्रनगर में पुरुषोत्तम का तथा हृदय में आत्मा का जप करने से ऐहलौकिक तथा पारलौकिक उभयविध सुख प्राप्त होता है ।।१०-१३।। जो मनुष्य प्रत्येक वट वृक्ष में कुबेर का, प्रत्येक चत्वर में शिव का, प्रत्येक पर्वत पर राम का, सभी स्थानों में मधुसूदन का, पृथ्वी तथा आकाश में परमात्मा का, जितेन्द्रिय पुरुषों में गरुड़ध्वज और सर्वत्र वासुदेव का स्मरण करता है वह भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्राप्त कर लेता है ।।१४-१५।। श्री विष्णु के इन नामों का जप करके मनुष्य सभी अभीष्ट प्राप्त कर सकता है। इन उपर्युक्त श्रेत्रों में किये गये श्राद्ध, दान, जप, तर्पण आदि करोड़ों गुना फल देनेवाले होते हैं। इन क्षेत्रों में दानादि करनेवाला मनुष्य मरणानन्तर ब्रह्ममय हो जाता है। जो विष्णु जी के इन नामों को पढ़ता और सुनता है, वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।।१६-१७।।

श्री अग्निमहापुराण में पञ्चपञ्चाशद्विष्णु-कथन नामक तीन सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।३०५।।

अध्याय ३०६

नारसिंहादिमन्त्र

अग्निदेव बोले-स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, उत्सादन (निकालना), भ्रम, मारण और व्याधि-ये समस्त क्षुद्र उपद्रव मन्त्रों द्वारा किये जा सकते हैं। अतएव मैं उन उपद्रवों से मुक्ति पाने का उपाय बतला रहा हूँ, उसे सुनिये।

---

१ ख. सिद्धाद्रौ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ नमो भगवते, उन्मत्तरुद्राय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय, अमुकं ।
वित्रासय वित्रासय, उद्भ्रामय, उद्भ्रामय रुद्रारौद्ररूपेण ह्रूं फट् ।।२।।
श्मशाने निशि जप्तेन त्रिलक्षं मधुना हुनेत् । चिताग्नौ धूर्तसमिद्भिर्भ्राम्यते सततं रिपुः ।।३।।
हेमगैरिकया कृष्णा प्रतिमा हेमसूचिभिः । जप्त्वा विध्येच्च तत्कण्ठे हृदि वा म्रियते रिपुः ।।४।।
[1]खरबालं चिताभस्म ब्रह्मदण्डी च मर्कटी । गृहे वा मूर्ध्नि तच्चूर्णं जप्तमुत्सादकृत्क्षिपेत् ।
भृग्वाकाशौ सदीप्ताग्निर्भृगुवह्निश्च[2] [3]वह्नि फट् ।।५।।
एवं सहस्रारे ।।६।।
ह्रूं फट्, आचक्राय स्वाहा हृदयं विचक्राय शिवः । शिखाचक्रायाथ कवचं विचक्रायाथ नेत्रकम् ।।७।।
सचक्रायास्त्रमुद्दिष्टं ज्वालाचक्राय पूर्ववत् । साङ्गं सुदर्शनं क्षुद्रग्रहहृत्सर्वसाधनम् ।।८।।
मूर्धाक्षिमुखहृद्गुह्यपादे ह्यस्याक्षरान्न्यसेत् । चक्राब्जासनमग्न्याभं दंष्ट्रिणं च चतुर्भुजम् ।।९।।
शङ्खचक्रगदापद्मशलाकाङ्कुशपाणिनम् । चापिनं पिङ्गकेशाक्षमरव्याप्तत्रिविष्टपम् ।।१०।।
नाभिस्तेनाग्निना विद्धा नश्यन्ते व्याधयो ग्रहाः । पीतं चक्रधरं रक्ता अराः श्याममवान्तरम् ।।११।।
नेमिः श्वेता बहिः कृष्णवर्णरेखा च पार्थिवी । मध्ये तारमये वर्णानेवं चक्रद्वयं लिखेत् ।।१२।।

'ॐ नमो भगवते…ह्रूं फट्'– रात्रि के समय इस मन्त्र का श्मशान में तीन लाख जप करके और चिता की अग्नि में धतूरे की लकड़ी से मधु का हवन करने से शत्रु सदा भ्रान्त–सा रहता है और उसे कहीं भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती ।।१–३।। सुनहरे गेरू से शत्रु की कृष्ण प्रतिमा का निर्माण करके उसके सम्मुख उपर्युक्त मन्त्र का जप करते हुए प्रतिमा के कण्ठ अथवा हृदय में सोने की सुई से वेधन करने से शत्रु का नाश होता है। खरबाल, चिताभस्म, ब्रह्मदण्डी, मर्कटी इत्यादि के चूर्ण को उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर किसी के घर में रख देने से अथवा उसके मस्तक पर डाल देने से उसका उत्पादन हो जाता है। 'भृग्वाकाशौ' इत्यादि श्लोकार्ध से 'सहस्रारे ह्रूं फट्' इस मन्त्र का उद्धार होता है। इसका अंगन्यास इस प्रकार है–'आचक्राय…अस्त्राय फट्'। इस अंगन्यास के साथ जपा हुआ सुदर्शन चक्र का उक्त मन्त्र क्षुद्र अभिचारों तथा ग्रह–बाधाओं को दूर करनेवाला और समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है ।।४–८।। मस्तक, नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरण में क्रमशः इस मन्त्र के छह अक्षरों का न्यास करके तदनन्तर चक्रधारी, कमलासन, अग्निप्रभ, दंष्ट्री, चतुर्भुज तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शलाका और अंकुश को हाथ में लिये हुए, धनुर्धारी, पीतकेशनेत्रधारी, चक्र के अरों से त्रैलोक्य को व्याप्त कर लेनेवाले देवता का स्मरण करना चाहिए। उस चक्र की नाभि अग्नि से विद्ध है। उसका चिन्तन करने से समस्त ग्रहजन्य उत्पात एवं व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं। सम्पूर्ण चक्र पीत वर्ण का है। उसके सुन्दर अरे रक्त वर्ण के हैं। उन अरों का अवान्तर भाग श्याम वर्ण का है। चक्र की नेमि श्वेत वर्ण की है। उसमें बाहर की ओर से कृष्ण वर्ण की पार्थिवी रेखा है। अरों से युक्त जो तारमय (ओंकार से युक्त) मध्यभाग है, उसमें समस्त अकारादि वर्ण हैं। इस प्रकार के दो चक्र अंकित करने चाहिए ।।९–१२।।

---

१ ख. ग. °रनालं। २ छ. °गुर्वह्नि°। ३ छ. वर्म।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदावानीय कुम्भोदं गोचरे संनिधाय च। इष्ट्वा सुदर्शनं तत्र याम्ये चक्रे हुनेत्क्रमात् ।।१३।।
आज्यापामार्गसमिधो ह्यक्षतं तिलसर्षपौ। पायसं गव्यमाज्यं च सहस्राष्टकसंख्यया ।।१४।।
हुतशेषं क्षिपेत्कुम्भे प्रतिद्रव्यं विधानवित्। प्रस्थानेन कृतं पिण्डं कुम्भे तस्मिन्निवेशयेत् ।।
विष्णवादि सर्वं तत्रैव न्यसेत्तत्रैव दक्षिणे ।।१५।।
नमो विष्णुजनेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु शान्तये नमः ।।१६।।
दद्यादनेन मन्त्रेण हुतशेषाम्भसा बलिम्। फलके कल्पिते पात्रे पलाशक्षीरशाखिनः ।।१७।।
गव्यपूर्णे निवेश्यैव दिक्ष्वेवं होमयेद्द्विजैः। सदक्षिणमिदं होमद्वयं भूतादिनाशनम् ।।१८।।
गव्याक्तपत्रलिखितैर्लिप्यर्णैः क्षुद्रहृद्धृतम्। दूर्वाभिरायुषे पद्मैः श्रिये पुत्रा (त्र) उदुम्बरैः ।।१९।।
गोसिद्ध्यै सर्पिषा गोष्ठे मेधायै सर्वशाखिना ।।२०।।
ॐ क्षौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय
सर्वभूतविनाशाय सर्वज्वरविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हूं फट् ।।२१।।
मन्त्रोऽयं नारसिंहस्य सकलाघनिवारणः। जप्यादिना हरेत्क्षुद्रग्रहमारीविषामयान्
चूर्णमण्डूकवयसा जलाग्निस्तम्भकृद्भवेत् ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नारसिंहादिमन्त्रकथनं नाम षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०६।।

प्रथम चक्र में जल से भरे घट को सामने रखकर सुदर्शन की अर्चना करके दक्षिण चक्र में घृत, अपामार्ग की टहनी, अक्षत, तिल, सरसों, खीर और दूध इन समस्त वस्तुओं की एक हजार आठ आहुतियाँ देनी चाहिए ।।१३-१४।। यज्ञ की विधा को जाननेवाले को हवन से शेष बचे हुए प्रत्येक द्रव्य को उसी घट में छोड़ देना चाहिए। तदनन्तर एक प्रस्थ (सेर) अन्न से रचित पिण्ड को भी उसी घट में रख देना चाहिए। विष्णु आदि के लिए देय सामग्री को दक्षिण चक्र में रखना चाहिए। 'नमो विष्णुजनेभ्यः···शान्तये नमः'-मन्त्र को पढ़कर हवन से शेष जल से बलि देनी चाहिए। किसी काष्ठफलक पर अथवा पलाश या किसी दूधवाले वृक्ष की लकड़ी से बने गव्य से भरे पात्र में बलि की वस्तु रखकर प्रत्येक दिशा में अर्पित करने के बाद ब्राह्मणों द्वारा हवन कराना चाहिए। दक्षिणा से युक्त ये दोनों होम भूतादि पीड़ा का नाश कर देते हैं ।।१५-१८।। गव्य से भीगे हुए पत्र पर लिखित मन्त्राक्षरों से अभिमन्त्रित घृत का हवन करने से क्षुद्र ग्रहों द्वारा आयी हुई बाधाएँ दूर हो जाती हैं। अभिमन्त्रित दूर्वा से आहुति देने पर आयु की वृद्धि होती है। कमलों से आहुति करने पर लक्ष्मी की बहुलता होती है। गूलर की लकड़ियों से आहुति देने पर पुत्रोत्पत्ति होती है। घृत से हवन करने पर गायों की वृद्धि होती है। समस्त वृक्षों की लकड़ियों से आहुति करने पर मेधा में विलक्षणता आती है। 'ॐ क्षौं···हूं फट्'-नृसिंह भगवान् का मन्त्र समस्त पापों का निवारण करनेवाला है। इसका जप करने से क्षुद्रग्रह, महामारी, विष, रोग आदि सम्पूर्ण बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं। उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित मण्डूकवयस् का चूर्ण जल और अग्नि का स्तम्भन करनेवाला होता है ।।१९-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में नारसिंहादिमन्त्र-कथन नामक तीन सौ छठाँ अध्याय समाप्त ।।३०६।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनमन्त्राः

अग्निरुवाच

वक्ष्ये मन्त्रं चतुर्वर्गसिद्ध्यै त्रैलोक्यमोहनम् ।।१।।

ॐ श्रीं ह्रीं ह्रूं, ॐ नमः पुरुषोत्तमः पुरुषोत्तमप्रतिरूपलक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्री-हृदयदारणत्रिभुवनमदोन्मादकर[1] सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावयाऽऽकर्षयाऽऽकर्षय परमसुभग सर्वसौभाग्यकर कामप्रदामुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैर्भिद भिद पाशेन कट कट अङ्कुशेन ताडय ताडय त्वर त्वर किं तिष्ठसि यावत्तावत्समीहितं मे सिद्धं भवति ह्रूं फट्, नमः ।।२।।

ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवनमनोन्मादकर ह्रूं फट्, हृदयाय नमः कर्षय महाबल ह्रूं फट्, अस्त्राय त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मम वशमानयाऽऽनय ह्रूं फट्, नेत्रत्रयाय त्रैलोक्यमोहन हृषीकेशाप्रतिरूप सर्वस्त्रीहृदयापकर्षण, आगच्छ, आगच्छ नमः ।।३।।

सङ्गाक्षिव्यापकेनैव न्यासं मूलवदीरितम् । इष्ट्वा संजप्य पञ्चाशत्सहस्रमभिषिच्य च ।।४।।
कुण्डेऽग्नौ दैविके वह्नौ चरुं कृत्वां शतं हुनेत् । पृथग्दधि घृतं क्षीरं चरुं साज्यं पयः शृतम् ।।५।।
द्वादशाऽऽहुतिमू(तीर्मू)लेन सहस्रं चाक्षतांस्तिलान् । यवं मधुत्रयं पुष्पं फलं दधि समिच्छतम् ।।६।।
हुत्वा पूर्णाहुतिं शिष्टं प्राशयेत्सघृतं चरुम् । संभोज्य विप्रानाचार्यं तोषयेत्सिद्ध्यते मनुः ।।७।।
स्नात्वा यथावदाचम्य वाग्यतो यागमन्दिरम् । गत्वा पद्मासनं बद्ध्वा शोषयेद्विधिना बपुः ।।८।।

अध्याय ३०७

त्रैलोक्यमोहनमन्त्र

अग्निदेव बोले–(अब मैं) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए त्रैलोक्यमोहन मन्त्र का वर्णन करूँगा। 'ॐ श्रीं ह्रीं···आगच्छ, आगच्छ नमः' इस प्रकार मूलमन्त्रयुक्त व्यापक न्यास बताया गया है। फिर पूजन तथा पचास हजार की संख्या में जप करके अभिषेक करे ।।१–४।। चरु का निर्माण करके कुण्ड की अग्नि तथा दैविक अग्नि में सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। दधि, घृत, दूध, चरु और गर्म दूध–इन द्रव्यों की मूल मन्त्र से बारह–बारह आहुतियाँ तथा अक्षत और तिल की एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिए। यव, मधुत्रय, पुष्प, फल, दधि और समिधाओं की सौ–सौ बार आहुतियाँ दे। तदनन्तर पूर्णाहुति-होम करके हुतावशिष्ट घृत के साथ चरु का प्राशन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराकर और आचार्य को सन्तुष्ट करने पर मन्त्र की सिद्धि होती है ।।५–७।। विधिवत् स्नान तथा आचमन करके मौन होकर यज्ञशाला में जाकर वहाँ पद्मासन लगाकर नियमानुकूल शरीर को सुखाना चाहिए। सर्वप्रथम राक्षसों तथा विघ्नों के विनाशक सुदर्शन

---

१ ख. च. °र सुरासु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्षोघ्नविघ्नकृद्दिक्षु न्यसेदादौ सुदर्शनम् । ([1]पञ्चबीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ।।९।।
अशेषं कल्मषं देहाद्विश्लेषयदनुस्मरेत् । रंबीजं हृदयाब्जस्थं स्मृत्वा ज्वालाभिरादहेत् ।।१०।।
ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाभिस्तु मूर्ध्नि संप्लावयेद्वपुः । ध्यात्वाऽमृतैर्बहिश्चान्तः सुषुम्नामार्गगामिभिः ।।११।।
एवं शुद्धवपुः प्राणानायम्य मनुना त्रिधा । विन्यसेन्न्यस्तहस्तान्तः शक्तिं मस्तकवक्त्रयोः ।।१२।।
गुह्ये गले दिक्षु हृदि कुक्षौ देहे च सर्वतः । आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्यमण्डलात् ।।१३।।
तारेण संपरात्मानं स्मरेत्तं सर्वलक्षणम् ।।१४।।
त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।।१५।।
आत्मार्चनात्क्रतुद्रव्यं प्रोक्षयेच्छुद्धपात्रकम् । कृत्वाऽऽत्मपूजां विधिना स्थण्डिले तं समर्चयेत् ।।१६।।
कूर्मादिकल्पिते पीठे पद्मस्थं गरुडोपरि । सर्वाङ्गसुन्दरं प्राप्तवयोलावण्ययौवनम् ।।१७।।
मदाघूर्णिततामाक्षमुदारं स्मरविह्वलम् । दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषितं सस्मिताननम् ।।१८।।
विष्णुं नानाविधानेकपरिवारपरिच्छदम् । लोकानुग्रहणं सौम्यं सहस्रादित्यतेजसम् ।।१९।।
पञ्चबाणधरं प्राप्तकामै (मा) क्षं द्विचतुर्भुजम् । देवीस्त्रीभिर्वृतं देवीमुखासक्तेक्षणं जपेत् ।।२०।।
चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुसलमङ्कुशम् । पाशं च विभ्रतं चार्चेदावाहादिविसर्गतः ।।२१।।

का सब दिशाओं में न्यास करना चाहिए। साथ ही यह भावना करे कि यह सुदर्शन अस्त्र पाँच क्लेशों के बीजभूत, धूम्रवर्ण एवं प्रचण्ड अनिल रूप मेरे सम्पूर्ण पाप को, जो नाभि में स्थित है, शरीर से अलग कर रहा है। फिर हृदयकमल में स्थित 'रं' बीज का स्मरण करके ऊपर, नीचे तथा अगल-बगल में फैली हुई अग्नि की ज्वालाओं से उस पाप-पुंज को जलाकर भस्म कर दे ।।८-१०।। फिर मूर्धा अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का चिन्तन करके सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से आती हुई अमृत की धाराओं से अपने शरीर को बाहर और भीतर से आप्लावित करे। इस प्रकार शुद्ध होकर मूलमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करके मस्तक तथा मुख में, गुह्य-स्थानों में, गले में, दिशाओं में, हृदय तथा उदर में, समस्त देह में हाथ रखकर और हृत्कमल में ब्रह्मरन्ध्र द्वारा सूर्यमण्डल से समस्त लक्षण युक्त ब्रह्म का ओंकार से आह्वान करके सर्वतोभावेन उसका स्मरण करना चाहिए। 'त्रैलोक्यमोहनाय····प्रचोदयात्' इस मन्त्र से परमात्मा की अर्चना के पश्चात् यज्ञ सम्बन्धी द्रव्यों तथा पात्रों का मार्जन करना चाहिए। विधिपूर्वक आत्मपूजा करने के बाद वेदी पर उस ब्रह्म की अर्चना करे ।।११-१६।। कच्छप आदि के रूप में कल्पित पीठ पर पद्मासन पर अथवा गरुड़ के ऊपर स्थित सर्वाङ्ग सुन्दर, वयस्क, सुन्दर युवा, मद्यपान से लाल नेत्रोंवाले, उदार, स्मर, पीड़ित, दिव्यमालाओं, वस्त्रों तथा आलेपों से सुशोभित, मुस्कराते हुए, अनेक परिवारों और सामग्रियों से शोभित, लोकानुग्रहकारी, सौम्य, सहस्रों सूर्य के समान तेजस्वी, पञ्चबाणधारी, समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, आठ भुजाओंवाले, देवियों से आवृत, उनके मुख की ओर देखते हुए, चक्र, शङ्ख, धनुष, खड्ग, गदा, मुसल, अंकुश तथा पाश को धारण करनेवाले त्रैलोक्यमोहन विष्णु का आवाहन आदि विसर्जनपर्यन्त करे ।।१७-२१।। साथ ही भगवान् की बायीं जाँघ पर बैठी

---

१ 'पञ्चबीजं····चण्डानिलात्मकम् च. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रियं वामोरुजङ्घास्थां श्लिष्यन्तीं पाणिना पतिम् । साब्जवामकरां पीनां श्रीवत्सकौस्तुभान्विताम् ।।२२।।
मालिनं पीतवस्त्रं च चक्राद्याढ्यं हरिं यजेत् ।।२३।।
ॐ सुदर्शन महाचक्रराज धर्मशान्त दुष्टभयङ्कर च्छिद च्छिद विदारय विदारय परममन्त्रान्ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतानि [1]चाऽऽशय चाऽऽशय हूं फट्, ॐ जलचराय स्वाहा खड्गतीक्ष्ण च्छिन्द च्छिन्द खड्गाय नमः शारङ्गाय सशराय हूं फट् ।।२४।।
ॐ भूतग्रामाय विद्महे चतुर्विधाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।।२५।।
संवर्तक श्वसन पोथय पोथय हूं फट्, स्वाहा पाश[2] धम धमाऽऽकर्षयाऽऽकर्षय हूं फट् फट् । अंकुशेन कट्ट हूं फट् ।।२६।।
क्रमाद्भुजेषु मन्त्रैः स्वैरेभिरस्त्राणि पूजयेत् ।।२७।।
ॐ पक्षिराजाय हूं फट् ।।२८।।
तार्क्ष्यं यजेत्कर्णिकायामङ्गदेवान्यथाविधि । शक्तिरिन्द्रादियन्त्रेषु तार्क्ष्याद्या धृतचामराः ।।२९।।
शक्तयोऽन्ते प्रयोज्याऽऽदौ सुरेशाद्याश्च दण्डिना । पीते लक्ष्मीसरस्वत्यौ ([3]रतिप्रीतिजयासिताः ।।३०।।
कीर्तिकान्त्यौ सिते श्यामे) तुष्टिपुष्ट्यौ स्मरोदिते । लोके शान्तं यजेद्देवं विष्णुमिष्टार्थसिद्धये ।।३१।।
ध्यायेन्मन्त्रं जपेद्वैनं जुहुयात्त्वभिषेचयेत् ।।३२।।
ॐ श्रीं क्लीं हूं हूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ।।३३।।
एतत्पूजादिना सर्वान्कामानाप्नोति पूर्ववत् । तोयैः सम्मोहनीपुष्पैर्नित्यं तेन च तर्पयेत् ।।३४।।

हुई अपने हाथ से पति का आलिंगन करनेवाली, बायें हाथ में कमल को धारण करनेवाली, हृष्ट-पुष्ट शरीरवाली, श्रीवत्स और कौस्तुभ चिह्न से सुशोभित लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए। वनमाला से विभूषित पीताम्बरधारी और चक्रादि से युक्त भगवान् विष्णु का भी पूजन करना चाहिए ।।२२-२३।। 'ॐ सुदर्शन···कट्ट हूं फट्' इन मन्त्रों से भगवान् की भुजाओं में स्थित आठ अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ।।२४-२७।। 'ॐ पक्षिराज हूं फट्'-इस मन्त्र से विधिपूर्वक कर्णिका में गरुड़ तथा अन्यान्य अङ्गदेवताओं की पूजा करनी चाहिए। यन्त्रों में शक्ति तथा इन्द्रादि की और चामरादि धारण किये हुए तार्क्ष्य आदि की भी पूजा करनी चाहिए। शक्तियों की पूजा का प्रयोग अन्त में करना चाहिए। पहले देवेश्वर इन्द्र आदि दण्डी सहित पूजनीय हैं। लक्ष्मी और सरस्वती पीतवर्ण की हैं। रति, प्रीति और जया श्वेत वर्ण की हैं। कीर्ति और कान्ति श्वेत वर्ण की हैं। तुष्टि और पुष्टि श्याम वर्ण की हैं। इनमें स्मर-भाव उदित होता है। लोकपाल पर्यन्त देवताओं का पूजन करके अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। निम्नांकित मन्त्र का ध्यान और जप करके हवन तथा अभिषेक करना चाहिए ।।२८-३२।। 'ॐ श्री···विष्णवे नमः'-इस मन्त्र से पूजन करने से मनुष्य समस्त मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उपर्युक्त मन्त्र से अभिमंत्रित धतूरे के पुष्प से युक्त जल से तर्पण करना चाहिए।

---

१ ख. त्रासय। २ छ. °श बन्ध बन्धाऽऽक°। ३ . 'रतिप्रीति····श्यामे' ग. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मा सशक्रश्रीदण्डी बीजं त्रैलोक्यमोहनम् । जप्त्वा त्रिलक्षं हुत्वाऽब्जैर्लक्षं बिल्वैश्च साज्यके ।।३५।।
तण्डुलैः फलगन्धाद्यैर्दूर्वाभिस्त्वायुराप्नुयात् । जपाभिषेकहोमादिक्रियातुष्टो ह्यभीष्टदः ।।३६।।
ॐ ह्रूं नमो भगवते वराहाय भूर्भुवः स्वः पतये । भूपतित्वं मे देहि [1]दापय स्वाहा ।।३७।।
पञ्चाङ्गं नित्यमयुतं जप्त्वाऽऽयू राज्यमाप्नुयात् ।।३८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रैलोक्यमोहनमन्त्रकथनं नाम सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०७।।

अथाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजा

अग्निरुवाच

[2]वक्षः सवह्निर्वामाक्षौ दण्डी श्रीः सर्वसिद्धिदा । महाश्रिये महासिद्धे महाविद्युत्प्रभे नमः ।।१।।
([3]श्रिये देवि विजये नमः । गौरि [4]महाबले बन्ध बन्ध नमः । ह्रूं महाकाये पद्महस्ते ह्रूं फट्, श्रिये नमः । ह्रूं श्रिये फट्, श्रिये नमः[5], श्रिये श्रीद नमः) स्वाहा श्री फट् ।।२।।
अस्याङ्गानि नवोक्तानि तेष्वेक च समाश्रयेत् । त्रिलक्षमेकलक्षं वा जप्त्वाऽक्षाब्जैश्च भूतिदः ।।३।।
श्रीगेहे विष्णुगेहे वा श्रियं पूज्य धनं लभेत् । आज्याक्तैस्तण्डुलैर्लक्षं जुहुयात्खादिरानले ।।४।।

ब्रह्मा, इन्द्र, लक्ष्मी, दण्डी इन पदों से त्रैलोक्यमोहन बीज का उद्धार होता है। यह बीजमन्त्र तीनों लोकों को मोहित करनेवाला है। उपर्युक्त बीजमन्त्र का तीन लक्ष बार जप करके कमल, बेल, घृत, तण्डुल, फल, गन्ध और दूर्वा आदि से हवन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। जप, अभिषेक तथा होमादि क्रियाओं द्वारा प्रसन्न हो यह मन्त्र अभीष्ट फल देता है ।।३३-३६।। 'ॐ ह्रूं···दापय स्वाहा'-इस मन्त्र का पञ्चाङ्ग न्यासपूर्वक नित्य दस हजार जप करने से दीर्घायु और राज्य की प्राप्ति होती है ।।३७-३८।।

श्री अग्निमहापुराण में त्रैलोक्यमोहन मन्त्र-कथन नामक तीन सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।।३०७।।

अध्याय ३०८

त्रैलोक्यामोहनीलक्ष्म्यादि-पूजा

अग्निदेव बोले-वक्ष, वह्नि, वामाक्ष और दण्डी शब्दों से 'श्रीं' बीज का उद्धार होता है। भगवती लक्ष्मी का यह बीजमन्त्र सब सिद्धियों को देनेवाला है। 'महाश्रिये·····श्री फट्' इस मन्त्र के नौ अङ्ग बताये गये हैं। उनमें से किसी एक का आश्रय लेना चाहिए। उपर्युक्त मन्त्र का कमलाक्ष से तीन लक्ष अथवा एक लक्ष जप करके बहुविध ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है। श्रीभवन अथवा विष्णुभवन में श्री की पूजा करके धन की प्राप्ति की जा सकती है ।।१-३$\frac{1}{2}$।। घृत युक्त चावल से खैर की अग्नि में एक लक्ष आहुतियाँ देने से राजा वश में किया जा सकता है।

---

१ घः हृदयाय। २ ग. बलः। ३ °श्रिये····श्रीद नमः ग. पुस्तके नास्ति। ४ खः महावने। ५ छ. °मः, श्रिये फट् श्रीं नमः, श्रि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजा वश्यो भवेद्वृद्धिः श्रीश्च स्यादुत्तरोत्तरम् । सर्षपाम्भोभिषेकेण नश्यन्ते सकला ग्रहाः ।।५।।
बिल्वलक्षहुता लक्ष्मीर्वित्तवृद्धिश्च जायते । शक्रवेश्म चतुर्द्वारं[1] हृदये चिन्तयेदथ ।।६।।
बलाकीं वामनां श्यामां श्वेतपंकजधारिणीम् । ऊर्ध्वबाहुद्वयं (यां) ध्यायेत्क्रीडन्तीं द्वारि पूर्ववत् ।।७।।
ऊर्ध्वीकृतेन हस्तेन रक्तपंकजधारिणीम् । श्वेताङ्गीं दक्षिणे द्वारि चिन्तयेद्वनमालिनीम् ।।८।।
हरितां दोर्द्वयेनोर्ध्वमुद्वहन्तीं सिताम्बुजम् । ध्यायेद्विभीषिकां नाम श्रीदूतीं द्वारि पश्चिमे ।।९।।
शांकरीमुत्तरे द्वारि तन्मध्येऽष्टदलं कजम् । वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।।१०।।
ध्येयास्ते पद्मपत्रेषु शङ्खचक्रगदाधराः । अञ्जनक्षीरकाश्मीरहेमाभास्ते सुवाससः ।।११।।
आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरण्टकः । दमकः सलिलं चेति हस्तिनो रजतप्रभाः ।।१२।।
हेमकुम्भधराश्चैते कर्णिकायां श्रियं स्मरेत् । चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वभुजद्वयाम् ।।१३।।
[2]दक्षिणाभयहस्ताभां वामहस्तवरप्रदाम् । श्वेतगन्धांशुकामेकरौप्यमालास्त्रधारिणीम् ।।१४।।
ध्यात्वा सपरिवारां तामभ्यर्च्य सकलं लभेत् । द्रोणाब्जपुष्पं श्रीवृक्षपर्णं मूर्ध्नि न धारयेत् ।।१५।।
लवणामलकं वर्ज्यं नागादित्यतिथौ क्रमात् । पायसाशी जपेत्सूक्तं श्रियस्तेनाभिषेचयेत् ।।१६।।

सर्व-विध वृद्धि होती है तथा उत्तरोत्तर अधिकाधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। श्री बीज से अभिमन्त्रित सरसों एवं जल के द्वारा अभिषेक करने से समस्त ग्रहजन्य पीड़ा का विनाश हो जाता है ।।४-५।। बेल के द्वारा एक लाख आहुतियाँ देने से सकल एश्वर्य की वृद्धि होती है। हृदय में चार द्वारवाले इन्द्रभवन का स्मरण करना चाहिए। उस इन्द्रभवन के पूर्व द्वार पर ह्रस्व अंगोंवाली, श्यामा, श्वेत कमल से सुशोभित, ऊपर की ओर दोनों हाथों को उठाये हुए क्रीड़ापरायण बलाकी देवी का ध्यान करना चाहिए। दक्षिण द्वार पर ऊपर उठाये हुए हाथ में रक्त कमल को धारण करनेवाली श्वेताङ्गी वनमालिनी का चिन्तन एवं ध्यान करना चाहिए। पश्चिम द्वार पर हरित वर्णवाली दोनों हाथों में श्वेत कमल को धारण किये हुए विभीषिका नाम की श्रीदूती का ध्यान करना चाहिए ।।६-९।। उत्तरी द्वार पर शांकरी देवी का ध्यान करना चाहिए। उस इन्द्रभवन के मध्य में अष्टदल कमल की स्थापना होनी चाहिए। कमल के पत्तों में शङ्ख, चक्र, गदा आदि के धारण करनेवाले क्रमशः अञ्जन, दुग्ध, काश्मीर, हेम सदृश कान्तिवाले, सुवस्त्रधारी, वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का ध्यान करना चाहिए ।।१०-११।। उस अष्टदल कमल के आग्नेय आदि दलों पर क्रमशः गुग्गुलु, कुरण्टक, दमक और सलिल नामक दिग्गजों की भावना करे। रजत के समान श्वेत वर्ण के ये हाथी अपनी सूँड़ में स्वर्ण कलश लिये हुए हैं। कमल की कर्णिका में चतुर्भुजधारिणी, सुवर्णकान्ति, पद्म सहित दो ऊर्ध्वभुजावाली, दक्षिणहस्त से अभयप्रदात्री, वामहस्त से वरदायिनी, श्वेत एवं सुगन्धित वस्त्रों से सुसज्जिता, रजत वर्ण की माला तथा अस्त्रों से सुशोभित सपरिवार लक्ष्मी का ध्यान तथा पूजन करने से सभी अभीष्ट प्राप्त किया जा सकता है। द्रोण तथा कमल का पुष्प और श्रीवृक्ष (बेल) का पत्र मस्तक पर नहीं रखना चाहिए ।।१२-१५।। पञ्चमी और सप्तमी तिथियों को क्रम से नमक और आमला का परित्याग करना चाहिए। खीर का भोजन कर सूक्त का जप करके उसी के द्वारा अभिमन्त्रित जल से लक्ष्मी का अभिषेक करना चाहिए।

---

१ ग. चतुर्वारं। २ च. दक्षिणेऽभयदात्री तां वा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आवाहादिविसर्गान्तां मूर्ध्नि ध्यात्वाऽर्चयेच्छ्रियम् । बिल्वाज्याब्जैः पायसेन पृथग्योगः श्रियै भवेत् ।।१७।।
विषं न हन्ति कालाग्निरद्रिज्योतिरिति द्वयम् ।।१८।।
ॐ ह्रीं [1]महामहिषमर्दिनि ठं ठः, मूलमन्त्रं महिषहिंसिके नमः । महिषशत्रुं भ्रामय भ्रामय, ॐ फ ठ ठं महिषं हेषय हेषय, ॐ हूं महिषं ह्रेषय ह्रेषय हूं महिषं हन हन देवि हूं महिषनिषूदनि फट् दुर्गाहृदयमित्युक्तं साङ्गं सर्वार्थसाधकम् । यजेद्यथोक्तं तां देवीं पीठे चैवाङ्गमध्यग (गा) म् ।।१९-२०।।
ॐ ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा चेति दुर्गायै नमः । वरवर्ण्यै नमः । आर्यायै कनकप्रभायै कृत्तिकायै, अभयप्रदायै कन्यकायै स्वरूपायै ।।२१।।
पत्रस्थाः पूजयेदेता मूर्तीराद्यैः स्वरैः क्रमात् ।।२२।।
चक्राय शङ्खाय गदायै खड्गाय धनुषे बाणाय ।।२३।।
अष्टम्याद्यैरिमां दुर्गां लोकेशां तां यजेदिति । दुर्गायोगः समायुः श्रीस्वामिरक्ताजपादिकृत् ।।२४।।
संसाध्येशानमन्त्रेण तिलहोमो वशीकरः । जयः पद्मैस्तु दूर्वाभिः शान्तिकामः पलाशजैः ।।२५।।
पुष्टिः स्यात्काकपक्षेण मृतिर्द्वेषादिकं भवेत् । ग्रहक्षुद्रभयापत्तिं सर्वमेव मनुर्हरेत् ।।२६।।
ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा ।।२७।।
रक्षाकरीयमुदिता जयदुर्गाङ्गसंयुता । श्यामां त्रिलोचनां देवीं ध्यात्वाऽऽत्मानं चतुर्भुजम् ।।२८।।

मस्तक में श्री का ध्यान करके उनकी आवाहन से विसर्जन तक अर्चना करनी चाहिए। बेल, घृत, कमल और खीर के द्वारा एक साथ या अलग-अलग हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। 'विषम्' इत्यादि श्लोकार्ध से भगवती लक्ष्मी के अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार किया गया है ।।१६-१८।। 'ॐ ह्रीं····महिषनिषूदनि फट्'-यह मन्त्र दुर्गाहृदय कहा गया है। इस मन्त्र का सांग जप करने से समस्त मनोरथों की सिद्धि होती है। दुर्गा देवी का निम्नांकित प्रकार से पीठ एवं अष्टदल कमल पर पूजा करे। 'ॐ ह्रीं दुर्गे····स्वाहा' दुर्गा के इस मन्त्र से दुर्गा, वरवर्णिनी, आर्या, कनकप्रभा, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्यका और सुरूपा-कमल पत्रों पर स्थित इन सभी देवियों की पूजा क्रमशः इनके आद्य स्वरों से करनी चाहिए। जैसे 'दुं दुर्गायै नमः, वं वरवर्णिन्यै नमः' इत्यादि। इनके साथ चक्र, शंख, गदा, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश और खेट इन अस्त्रों का भी पूजन करे। अष्टमी आदि तिथियों में दुर्गा की लोकपाल पर्यन्त आवरण देवताओं के साथ पूजा होनी चाहिए। दुर्गा की यह उपासना पूर्ण आयु, लक्ष्मीप्राप्ति, स्वामी की प्रसन्नता एवं युद्ध में विजय देनेवाली है ।।१९-२४।। ईशान मन्त्र से तिल की आहुति देने से लोग वश में हो सकते हैं। कमलों से हवन करने पर विजय, दूर्वाओं से हवन करने से शान्ति, पलाश के हवन करने से पुष्टि, काकपक्ष से हवन करने से मृत्यु तथा द्वेषादि प्राप्त होते हैं। यह मन्त्र सब प्रकार की ग्रहपीड़ा तथा क्षुद्र भयों को दूर करनेवाला है। 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा'-इस जयदुर्गा नामक मन्त्र का साङ्ग जप करने से दुर्गा सदा रक्षा किया करती हैं। युद्धादि के समय 'मैं श्यामा, त्रिनेत्रधारिणी, चतुर्भुजा, शङ्ख, चक्र, कमल, शूल, खड्ग तथा त्रिशूल को धारण करनेवाली और भयंकर आकृतिवाली देवी हूँ' ऐसा ध्यान करना चाहिए ।।२५-२८$\frac{१}{२}$।।

---

१ ख. °हाविष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शङ्खचक्राब्जशूलासित्रिशूलां रौद्ररूपिणीम् । युद्धादौ संजयेदेतां यजेत्खड्गादिके जये ।।२९।।
ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते च रक्षणि स्वाहा ।।३०।।
युद्धार्थे च जपेन्मन्त्रं शत्रूं जयति योधकः ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लक्ष्म्यादिपूजावर्णनं नामाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०८।।

अथ नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजा

अग्निरुवाच

त्वरिताज्ञानमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।१।।
ओमाधारशक्त्यै नमः । ॐ प्रों पुरु पुरु महासिंहाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ([1]ॐ ह्रीं ह्रूं खे च च्छे क्षः स्त्रीं ह्रूं क्षें ह्रीं फट् त्वरितायै नमः । खे च हृदयाय नमः । च च्छे शिरसे नमः । छे क्षः शिखायै नमः । क्षः स्त्रीं कवचाय नमः,) स्त्रीं ह्रूं नेत्राय नमः । ह्रूं क्षेमस्त्राय फट्, नमः ।।२।।
ॐ त्वरिताविद्यां विद्महे[2] तूर्णविद्यां च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ।।३।।
श्री प्रणीतायै नमः, ह्रूं वामायै नमः । ओंकारायै नमः, ॐ खे च हृदयाय नमः, खेचर्यै नमः, चण्डायै नमः, क्षस्त्री कवचाय नमः । छेदन्यै नमः क्षेपण्यै नमः स्त्रियै ह्रूंकार्यै नमः । क्षेमंकर्यै जयायै विजयायै किंकराय रक्ष । ॐ त्वरिताज्ञया स्थिरो भव वषट् ।।४।।

युद्ध के आरम्भ में इस जयदुर्गा मन्त्र का जप करे। विजय के लिए खड्ग आदि पर दुर्गा का पूजन करना चाहिए। 'ॐ नमो भगवति····स्वाहा'–इस मन्त्र का जप करने से युद्धाभिलाषी योद्धा युद्ध में शत्रुओं को जीत लेता है ।।२९–३१।।

श्री अग्निमहापुराण में लक्ष्म्यादि–पूजा–वर्णन नामक तीन सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।।३०८।।

अध्याय ३०९

त्वरितापूजा

अग्निदेव बोले–अब मैं त्वरिता देवी के इस ज्ञान के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो (इस लोक में) भोग तथा (परलोक में) मोक्ष देनेवाला है ।।१।। पहले 'ओमाधारशक्त्यै नमः' इस मन्त्र से आधारशक्ति का स्मरण और वन्दन करे। फिर सिंहासन की 'ॐ प्रों पुरु पुरु महासिंहाय नमः' इस मन्त्र से तथा आसन की 'ॐ पद्माय नमः' इस मन्त्र से पूजा करे। तदनन्तर 'ॐ ह्रीं ह्रूं····त्वरितायै नमः'–इस मूलमन्त्र का उच्चारण करे। इसका अंगन्यास यह है– खे च हृदयाय नमः, च च्छे शिरसे नमः, छे क्षः शिखायै नमः, क्षः स्त्रीं कवचाय नमः, स्त्रीं ह्रूं नेत्राय नमः, ह्रूं क्षेमस्त्राय फट्, नमः। अंगन्यास के बाद इस गायत्री का जप करे। 'ॐ त्वरिताविद्यां विद्महे तूर्णविद्यां च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।' तदनन्तर श्री प्रणीतायै नमः····स्थिरो भव वषट्'–इत्यादि से प्रणीता आदि देवियों का पूजन करे ।।२–४।। यह विद्या

---

१. 'ओं ह्रीं···कवचाय नमः' च. पुस्तके नास्ति। २. ख. °हे तूर्णवि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तोतला त्वरिता तूर्णेत्येवं विद्येयमीरिता । शिरोभ्रूमस्तके कण्ठे हृदि नाभौ च गुह्यके ।।५।।
ऊर्वोश्च जानुजङ्घोरुद्वये चरणयोः क्रमात् । न्यस्ताङ्गो न्यस्तमन्त्रस्तु समस्तं व्यापकं न्यसेत् ।।६।।
पार्वती शबरी चेशा वरदाभयहिस्तका । मयूरबलया पिच्छमौलिः किसलयांशुका ।।७।।
सिंहासनस्था मायूरबर्हच्छत्रसमन्विता । त्रिनेत्रा श्यामला देवी वनमालाविभूषणा ।।८।।
*विप्राहिकर्णाभरणा क्षत्रकेयूरभूषणा । वैश्यनागकटीबन्धा वृषाहिकृतनूपुरा ।।९।।
एवं रूपात्मिका भूत्वा तन्मन्त्रं नियुतं जपेत् । ईशः किरातरूपोऽभूत्पुरा गौरी च तादृशी ।।१०।।
जपेद्ध्यायेत्पूजयेत्तां सर्वसिद्ध्ये विषादिहृत् । अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिके क्रमात् ।।११।।
अङ्गगायत्री प्रणीता हूंकाराद्या दलाग्रके । फट्कारी चाग्रतो देव्याः श्रीबीजेनार्चयेदिमाः ।।१२।।
लोकेशायुधवर्णास्ताः [1]फट्कारी तु धनुर्धरा । जया च विजया द्वाःस्थे पूज्ये [2]सौवर्णपुष्टिके ।।१३।।
किंकरा बर्बरी मुण्डी लगुडी च तयोर्बहिः । इष्ट्वैवं सिद्धये द्रव्यैः कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत् ।।१४।।
हेमलाभोऽर्जुनैर्धान्यैर्गोधूमैः पुष्टिसंपदः । यवैर्धान्यैस्तिलैः सर्वसिद्धिरीतिविनाशनम् ।।१५।।

तोतला, त्वरिता, तूर्णा इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। इसके अक्षरों का सिर, भ्रू, मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, उरुओं, घुटना, जङ्घा, दोनों चरण आदि अवयवों में न्यास करके समस्त विद्या द्वारा व्यापक न्यास करना चाहिए ।।५-६।। पार्वती, शबरी, ईशा, वरदा, अभयहस्तिका, मयूरबलया, पिच्छमौलि, किसलयांशुका, सिंहासनस्था, मयूरबर्हच्छत्रसमन्विता, त्रिनेत्रा, श्यामला, वनमालाविभूषणा, विप्राहिकर्णाभरणा, क्षत्रकेयूरभूषणा, वैश्यनागकटीबन्धा, वृषाहिकृतनूपुरा नामों से त्वरिता देवी का ध्यान करते हुए साधक स्वयं भी देवीस्वरूप होकर (उपर्युक्त) मन्त्रों का एक लक्ष बार जप करना चाहिए ।।७-९$\frac{1}{2}$।। प्राचीन काल में श्री शंकर भगवान् ने किरात का तथा गौरी ने भी उसी प्रकार का रूप धारण किया था। सर्वविद्यासिद्धि के हेतु और विष इत्यादि के निवारणार्थ गौरी का जप, ध्यान और पूजन करना चाहिए। अष्टसिंहासन पर पूर्वादिक दल में निम्नांकित देवियों की पूजा करनी चाहिए। हृदयादि छह अंगों सहित प्रणीता और गायत्री का पूजन करे। पूर्वादि दलों में हूंकारी आदि की पूजा करे। दलाग्रभाग में देवी त्वरिता के सम्मुख फट्कारी की पूजा करे। इन सब देवियों के नाम मन्त्र के साथ 'श्री' बीज लगाकर उसी से इनकी पूजा करनी चाहिए। हूंकारी आदि के आयुध और वर्ण उस-उस दिशा के दिक्पालों के ही समान है। परन्तु फट्कारी धनुर्धरा है। द्वार पर सोने की छड़ी हाथ में लिये जया और विजया देवियों की पूजा करनी चाहिए। किंकरा, बर्बरी, मुण्डी, लगुडी इन देवियों की पूजा बाहर करनी चाहिए। इस प्रकार सिद्धि के लिए पूजा करके योनि के सदृश बने हुए कुण्ड में द्रव्यों की आहुति करनी चाहिए ।।१०-१४।। अर्जुन पुष्पों से आहुति करने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है, गोधूमादि धान्य की आहुति करने से शारीरिक पुष्टि होती है। यव धान्य (चावल) तथा तिल की आहुति करने से सर्वसिद्धि की प्राप्ति तथा ईतियों (अतिवृष्टि आदि) का विनाश होता है। अक्षों (बहेड़ों) की आहुति से शत्रु उन्मत्त हो

---

१ ख. ग. फलकारा ध°। २ च. र्णयष्टि°। × विप्राहिकर्णाभरणा आदि चार विशेषणों का यह अभिप्राय है कि त्वरिता देवी के कानों के आभूषण ब्राह्मणजातीय दो नाग (अनन्त और कुलिक) हैं, क्षत्रियजातीय दो नाग (वासुकि और शंखपाल) उनके बाजूबन्द हैं। वैश्यजातीय दो नाग (तक्षक और महापद्म) कटि प्रदेश की किंकिणी बने हैं और शूद्रजातीय दो सर्प (पद्म तथा कर्कोटक) देवी के चरणों के नूपुर बने हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अक्षैरुन्मत्तता शत्रोः शाल्मलीभिश्च मारणम् । जम्बूभिर्धनधान्याप्तिस्तुष्टिर्नीलोत्पलैरपि ।।१६।।
रक्तोत्पलैर्महापुष्टिः कुन्दपुष्पैर्महोदयः । मल्लिकाभिः पुरक्षोभः कुमुदैर्जनवल्लभः ।।१७।।
अशोकैः पुत्रलाभः स्यात्पाटलाभिः शुभाङ्गना । आम्रैरायुस्तिलैर्लक्ष्मीर्बिल्वैः श्रीश्चम्पकैर्धनम् ।।१८।।
इष्टं मधुकपुष्पैश्च बिल्वैः सर्वज्ञतां लभेत् । त्रिलक्षजप्यात्सर्वाप्तिर्होमाद्ध्यानात्तथेज्यया ।।१९।।
मण्डलेऽभ्यर्च्य गायत्र्या आहुतीः पञ्चविंशतिम् । दद्याच्छतत्रयं [1]मूलात्पल्लवैर्दीक्षितो भवेत् ।
पञ्चगव्यं पुरा पीत्वा चरुकं प्राशयेत्सदा ।।२०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजाविधिकथनं नाम नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३०९।।

अथ दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामन्त्रादि

अग्निरुवाच

अपरां त्वरिताविद्यां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । पुरे वज्राकुले देवीं रजोभिर्लिखिते यजेत् ।।१।।
पद्मगर्भे दिग्विदिक्षु चाष्टौ वज्राणि वीथिकाम् । द्वारशोभोपशोभां च लिखेच्छीघ्रं स्मरेन्नरः ।।२।।

जाता है। शाल्मली की लकड़ियों से आहुति करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। जामुन के द्वारा आहुति धनधान्य और नील कमल की आहुति से संतोष की प्राप्ति होती है। रक्त कमल की आहुति से महापुष्टि और कुन्दपुष्प की आहुति से महान् अभ्युदय होता है। मल्लिका पुष्प की आहुति से नगर में क्षोभ तथा कुमुद पुष्पों के द्वारा आहुति करने पर जनप्रियता प्राप्त होती है। अशोक पत्रों से आहुति करने पर पुत्रलाभ, गुलाब से आहुति करने से सुन्दर स्त्री, आम के पुष्प की आहुति से आयु, तिल की आहुति से लक्ष्मी, बिल्व से श्री तथा चम्पक पुष्प की आहुति करने पर धन, इष्टवस्तु और बेल की आहुति से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है ।।१५-१८$\frac{1}{2}$।। (उपर्युक्त मन्त्र का) तीन लाख बार जप, होम, ध्यान तथा पूजन से सब प्रकार की प्राप्ति होती है। मण्डल में अर्चना करके त्वरिता गायत्री की पचीस आहुतियाँ देनी चाहिए। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से पल्लवों की तीन सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। इससे व्यक्ति दीक्षित हो जाता है। पहले पञ्चगव्य का प्राशन करके तत्पश्चात् चरु का भक्षण करना चाहिए ।।१९-२०।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरितापूजा-कथन नामक तीन सौ नववाँ अध्याय समाप्त ।।३०९।।

अध्याय ३१०

त्वरितामन्त्रादि

अग्निदेव बोले-अब मैं भुक्ति-मुक्ति को देनेवाली दूसरी त्वरिता विद्या (अर्थात् त्वरिता के मन्त्र आदि) के सम्बन्ध में बताऊँगा। धूलि से निर्मित, वज्रचिह्न से आवृत, चौकोर मण्डल में त्वरिता देवी की पूजा करे। उस मण्डल के भीतर योग पीठ पर कमल-निर्माण होना चाहिए। इस मण्डल की दिशाओं और विदिशाओं में आठ वज्र, वीथिका (गली), द्वारशोभा तथा उपशोभा का उल्लेख करके मनुष्य को त्वरिता देवी का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए-

---

१ क. ख. ग. °लात्पूर्णावै।

CC-0. Jammu Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टादशभुजां सिंहे वामजङ्घा प्रतिष्ठिता। दक्षिणा द्विगुणा तस्याः पादपीठे समीप्सिता ।।३।।
नागभूषां वज्रदण्डे खड्गं चक्रं गदां क्रमात्। शूलं शरं तथा शक्तिं वरदं दक्षिणैः करैः ।।४।।
धनुः पाशं शरं घण्टां तर्जनीं शङ्खमंकुशम्। अभयं च तथा वज्रं वामपार्श्वे धृतायुधम् ।।५।।
पूजनाच्छत्रुनाशः स्याद्राष्ट्रं जयति लीलया। [1]दीर्घायू राष्ट्रभूतिः स्याद्दिव्यादिव्यादि सिद्धिभाक् ।।६।।
तलेतिसप्तपातालाः कालाग्निभुवनान्तकाः। ओंकारादीश्वरा(शमा(?) रभ्य यावद्ब्रह्माण्डवाचकम्[2] ।।७।।
तकाराद्भ्रामयेत्तोयं तोतला त्वरिता ततः। [3]प्रस्तावं संप्रवक्ष्यामि स्वरवर्गं लिखेद्भुवि ।।८।।
तालुवर्गः कवर्गः स्यात्तृतीयो जिह्वतालुकः। चतुर्थस्तालुजिह्वाग्रो जिह्वादन्तस्तु पञ्चमः ।।९।।
षष्ठोऽष्टपुटसम्पन्नो मिश्रवर्गस्तु सप्तमः। ऊष्माणः स्याच्छवर्गस्तु उद्धरेच्च मनुं ततः ।।१०।।
षष्ठस्वरसमारूढमूष्मणान्तं सविन्दुकम्। तालुवर्गं द्वितीयं तु स्वरैकादशयोजितम् ।।११।।
जिह्वातालुसमायोगे प्रथमं केवलं भवेत्। तदेव च द्वितीयं तु अधस्तात्पुनरेव तु ।।१२।।
([4]एकादशस्वरैर्युक्तं प्रथमं तालुवर्गतः। ऊष्मणश्च द्वितीयं तु अधस्ताद्दृश्य(?) योजयेत् ।।१३।।
षोडशस्वरसंयुक्तमूष्मणश्च द्वितीयकम्। जिह्वादन्तसमायोगे प्रथमं योजयेदधः ।।१४।।

'देवी की अट्ठारह भुजाएँ हैं, उनकी बायीं जङ्घा सिंह के ऊपर स्थित है। उनकी दाहिनी जङ्घा उससे दूनी बड़ी आकृति में पादपीठ पर अवस्थित है ।।१-३।। वे नागमय आभूषणों से सुशोभित हैं। वे दायें हाथों में क्रमशः वज्र, दण्ड, खड्ग, चक्र, गदा, शूल, बाण, शक्ति तथा वरद मुद्रा धारण करती हैं और अपने बायें हाथों में धनुष, पाश, शर, घण्टा, तर्जनी, शङ्ख, अंकुश, अभयमुद्रा तथा वज्र नामक आयुध धारण किये हुई हैं। उनकी पूजा करने से शत्रुओं का नाश होता है। तथा दूसरे राष्ट्र पर सरलता से अधिकार हो जाता है। (इतना ही नहीं) दीर्घ आयु, राष्ट्र विभूति और दिव्यादिव्य सब प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं ।।४-६।। तल शब्द से कालाग्निभुवन पर्यन्त सात पाताल अभिप्रेत हैं। ओंकार शब्द ईश्वर से लेकर पूरे ब्रह्माण्ड का वाचक है। इस प्रकार शिव से लेकर कालाग्निरुद्र पर्यन्त सभी भुवनों की त्वरिता आद्य कारण है। यही देवी सृष्टि के प्रारम्भ में जल में तीव्र गति पैदा करती है। अतएव त्वरिता देवी को तोतला कहा गया है। अब मैं उनके पूजन के लिए वर्णों का प्रस्तार बतला रहा हूँ। पहले भूमि पर स्वर वर्ग का उल्लेख करना चाहिए ।।७-८।। तदनन्तर तालु वर्ग क वर्ग का, ततः तीसरे जिह्वा तथा तालु से सम्बन्ध रखनेवाले च वर्ग का, चौथा तालु एवं जिह्वा के अग्रभाग से सम्बन्ध रखनेवाला ट वर्ग, पाँचवाँ जिह्वा तथा दाँतों से सम्बन्ध रखनेवाला त वर्ग, छठा ओष्ठपुट से सम्बद्ध प वर्ग, सातवाँ मिश्र वर्ग तथा आठवाँ सोष्म श वर्ग-इनका क्रमशः उल्लेख करना चाहिए। इसके बाद त्वरिता मन्त्र का उद्धार करना चाहिए। मन्त्र का उद्धार इस प्रकार होता है कि षष्ठ स्वर अकार पर आरूढ़, विन्दु सहित ऊष्म वर्ग का अन्तिम अक्षर होना चाहिए (हूं)। तदनन्तर एकादश स्वर से युक्त तालु वर्ग का द्वितीय अक्षर (खे) और जिह्वा तथा तालु के संयोग से उत्पन्न प्रथम वर्ण (च) और उसके बाद उसी के द्वितीय वर्ण (छ) का प्रयोग करना चाहिए ।।९-१२।। वह एकादश स्वर से युक्त हो (च्छे) तालु वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय सोष्मवर्ण को बाद में प्रयुक्त करना चाहिए और उसे सोलहवें स्वर से युक्त कर दे (क्षः) द्वितीय ऊष्मा और जिह्वा तथा दन्त के संयोग से उत्पन्न होनेवाले प्रथम अक्षर (त) का प्रयोग करना चाहिए।

---

१ ख. °र्घायुराप्तभू°। २ घ. ङ. °मओ° का°। ३ ख. ग. ङ. प्रस्तार°। ४ एकादशस्वरैर्युक्तं·····संयुतम् च. छ. पुस्तकातिरिक्तपुस्तकेषु नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिश्रवर्गादिद्वितीयं तु अधस्तात्पुनरेव तु । चतुर्थस्वरसंभिन्नं तालुवर्गादिसंयुतम्) ।।१५।।
ऊष्मणश्च द्वितीयं तु अधस्ताद्विनियोजयेत् । स्वरैकादशभिन्नं तु ऊष्मणान्तं सविन्दुकम् ।।१६।।
पञ्चस्वरसमारूढं षष्ठं सम्पुटयोगतः । द्वितीयमक्षरं चान्यजिह्वाग्रे तालुयोगतः ।।१७।।
प्रथमं पञ्चमे योज्यं स्वरार्धेनोद्धृता इमे । ओंकाराद्या नमोन्ताश्च जपेत्स्वाहाग्निकार्यके ।।१८।।
ॐ ह्रीं हूं ह्रः, हृदयं हां हश्चेति शिरः । शिखां ह्रीं ज्वल ज्वल शिखा स्यात्कवचं हुलु हुलु द्वयम् ।।१९।।
ह्रीं श्रीं क्षूं नेत्रत्रयाय विद्यानेत्रं प्रकीर्तितम् । क्षौं हः खौं हूं फडस्त्राय गुह्याङ्गानि पुरा न्यसेत् ।।२०।।
त्वरिताङ्गानि वक्ष्यामि विद्याङ्गानि शृणुश्व मे । आदिद्विहृदयं प्रोक्तं त्रिचतुः शिर इष्यते ।।२१।।
पञ्चषष्ठः शिला प्रोक्तं कवचं सप्तमाष्टमात् । तारकं तु भवेन्नेत्रं नवार्धाक्षरलक्षणम् ।।२२।।
तोतलेति समाख्याता वज्रतुण्डे ततो भवेत् । ख ख हूं दशबीजा स्याद्वज्रतुण्डेन्द्रदूतिका ।।२३।।
खेचरी ज्वालिनी ज्वाले खखेति ज्वालिनी दश । वर्चे शरविभीषणि खखेति च शबर्यपि ।।२४।।
छे छेदनि करालिनि खखेति ह कराल्यपि । वक्षः श्रवद्रवप्लवङ्गी ख ख दूती प्लवङ्ग्यपि ।।२५।।

मिश्रवर्ग के द्वितीय वर्ण (र) तथा चतुर्थ स्वर (ई) से युक्त हो। तालु वर्ग के आदि अक्षर (क) का भी प्रयोग करना चाहिए ।।१३-१५।। इसको द्वितीय ऊष्मा के साथ आदि एकादश स्वर से युक्त करे (क्षे)। इसके बाद विन्दु और ऊष्मा वर्ग के अन्तिम अक्षर (ह) का प्रयोग करना चाहिए। जो कि पाँचवें अक्षर (उ) पर आरूढ़ हो (हुं)। ओष्ठ पुट संयोग से दूसरा अक्षर (फ्) और जिह्वाग्र में तालु के योग से उत्पन्न होनेवाले द्वितीय वर्ग (ठ) में पाँचवें वर्ण (ण) और छठे स्वरों का संयोग करना चाहिए। स्वरार्ध के साथ प्रथम वर्ण की योजना करनी चाहिए। इनके आदि में ओंकार और अन्त में नमः जोड़ने पर जो मन्त्र बने, उसका तो जप करे, किन्तु अग्नि कार्य (हवन) में नमः को हटाकर 'स्वाहा' जोड़ देना चाहिए। पूरे सन्दर्भ का तात्पर्य यह है कि 'ॐ हूं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुं फट् नमः' यह मन्त्र जप का है और 'ॐ हूं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुं फट् स्वाहा' यह हवनोपयोगी मन्त्र है ।।१६-१८।। इसका अंगन्यास इस प्रकार है-'ॐ ह्रीं हूं ह्रः हृदयाय नमः' हां हः शिरसे स्वाहा, ह्रीं ज्वलज्वल शिखायै वषट् हनु हनु (अथवा हुलु हुलु) कवचाय हुम्, ह्रीं श्रीं क्षूं नेत्रत्रयाय वौषट्। नवाँ (फ) और आधा अक्षर (ट्) रूप जो तोतला त्वरिता विद्या है, उसी को देवी का नेत्र कहा गया है। 'क्षौं हः खौं हूं फट् अस्त्राय फट्', ये गुह्य अंग मन्त्र हैं। इनका पहले न्यास करना चाहिए। त्वरिता के अंगों का वर्णन आगे चलकर करूँगा। अभी त्वरिता विद्या के अंगों का वर्णन मुझसे सुनो। प्रथम दो बीजाक्षर हृदय हैं। तीसरा और चौथा ये दो अक्षर सिर हैं, पाँचवाँ अथवा छठा शिखा के लिए प्रयुक्त है, सातवाँ और आठवाँ कवच मन्त्र है, और नवाँ तथा आधा अक्षर (फट्) नेत्र मन्त्र कहा गया है। (प्रयोग-ॐ हूं हृदयाय नमः खे च्छे शिरसे स्वाहा, क्षः स्त्री शिखायै वषट्, क्षे हुम् कवचाय हुम्, फट् नेत्रत्रयाय वौषट् ।। १९-२२।। 'तोतले वज्रतुण्डे ख ख हूं' इन दस अक्षरों से युक्त 'वज्रतुण्डिका' नामक 'इन्द्रदूतिका' विद्या है। 'खेचरि ज्वालिनि ज्वाले ख ख' इन दस अक्षरों से युक्त 'ज्वालिनि विद्या' है। 'वर्चे शरविभीषणि ख ख' यह दशाक्षरा 'शबरी विद्या' है। 'छे छेदनि करालिनि ख ख' यह दशाक्षरा 'काली विद्या है। 'वक्षः द्रव द्रव प्लवङ्गि ख ख' यह दशाक्षरा 'प्लवंगदूती विद्या' है ।।२३-२५।।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

([1]स्त्रीबले कलिधुनिनि शासी श्वसनवेगिका । क्षे पक्षे कपिले हस हस कपिला नाम दूतिका) ।।२६।।
हूं तेजोवती रौद्री च मातङ्गी रौद्रिदूतिका । पुटे पुटे ख ख खड्गे फड्ब्रह्मकदूतिका(?) ।।२७।।
वैतालिनि दशार्णाः स्युस्त्यजान्यहिपलालवत् । हृदादिकल्पसादौ स्यान्मध्ये नेत्रं न्यसेत्सुधीः ।।२८।।
पादादारभ्य मूर्धान्तं शिर आरभ्य पादयोः । अङ्घ्रिजानूरुगुह्ये च नाभिहृत्कण्ठदेशतः ।।२९।।
वक्त्रमण्डलमूर्ध्वं च अधोर्ध्वं [2]चाऽऽदिबीजतः । सोमरूपं ततोऽकारं धारामूलसुवासिनम्[3] ।।३०।।
विशन्तं ब्रह्मरन्ध्रेण साधकस्तु विचिन्तयेत् । मूर्धास्यकण्ठहृन्नाभौ गुह्योरुजानुपादयोः ।।३१।।
आदिबीजं न्यसेन्मन्त्री तर्जन्यादि पुनः पुनः । ऊर्ध्वं सोममधः पद्मं शरीरं बीजविग्रहम् ।।३२।।
यो जानाति न मृत्युः स्यात्तस्य न व्याधयो जपात् । यजेज्जपेत्तां विन्यस्य ध्यायेद्देवीं शताष्टकम् ।।३३।।
मुद्रा वक्ष्ये प्रणीताद्याः प्रणीताः पञ्चधा स्मृताः । ग्रथितौ तु करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ निपातयेत् ।।३४।।
तर्जनीं मूर्ध्नि संलग्नां विन्यसेत्तां शिरोपरि । प्रणीतेयं समाख्याता हृद्देशे तां समानयेत् ।।३५।।
ऊर्ध्वं तु कन्यसामध्ये सबीजां तां विदुर्द्विजाः । नियोज्य तर्जनीमध्येऽनेकलग्नां परस्परम् ।।३६।।
ज्येष्ठाग्रं निक्षिपेन्मध्ये भेदनी सा प्रकीर्तिता । नाभिदेशे तु तां बद्ध्वा अङ्गुष्ठाम्बु क्षिपेत्ततः ।।३७।।
कराली तु महामुद्रा हृदये योज्य मन्त्रिणः । पुनस्तु पूर्ववद्ब्रह्मलग्नां ज्येष्ठां समुत्क्षिपेत् ।।३८।।

'स्त्रीबले कलिधुनिनि शासी' यह दशाक्षरा 'श्वसनवेगिका' विद्या है। 'क्षे पक्षे कपिले हस हस' यह दक्षाशरा कपिलदूतिका विद्या है। 'हूं तेजोवति रौद्रि मातङ्गि' यह दशाक्षरा रौद्रीदूतिका विद्या है। 'पुटे पुटे ख ख खड्गे फट्' यह दशाक्षरा ब्रह्मदूतिका विद्या है। वैतालिनि विद्या भी दशार्ण की होती है। अन्य विस्तार की सारहीन बातों को पुआल की भाँति छोड़ देना चाहिए। हृदयादि न्यास में नेत्रन्यास का स्थान मध्य में है ।।२६-२८।। चरणों से लेकर सिर तक और सिर से लेकर चरणों तक-पाद, जानु, उरु, गुह्य, नाभि, हृदय, कण्ठ, मुखमण्डल पर्यन्त ऊपर-नीचे सब स्थानों में आदि बीजमन्त्र से निर्गत 'अकार' का ध्यान करना चाहिए। साधक को सोचना चाहिए कि यह अकार अमृत की धारा एवं सुवास से परिपूर्ण है, ब्रह्मरन्ध्र से मुझमें प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् मस्तक, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्याङ्ग, उरु, जानु तथा चरणों में तथा तर्जनी आदि में बार-बार आदि बीजमन्त्र का न्यास करना चाहिए। बीजविग्रह शरीर के ऊर्ध्वभाग में सोम है और अधोभाग में पद्म है-जिसे ऐसा ज्ञान हो जाता है, उसकी मृत्यु नहीं होती तथा न्यास एवं देवी का ध्यान करके इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से सभी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं ।।२९-३३।। अब मैं प्रणीता आदि मुद्राओं को बतलाऊँगा। प्रणीता पाँच प्रकार की कही गयी है। प्रणीता, सबीजा, भेदनी, कराली और वज्रतुण्डा। हाथों को जोड़कर बीच में अँगूठे को रखकर फिर तर्जनी को ऊपर से लगाकर सिर पर उसका न्यास करे। इस मुद्रा को 'प्रणीता' कहा जाता है। उसे हृदयदेश में लगाना चाहिए। तर्जनी को ऊपर उठाकर कनिष्ठा को मध्य में रखने से 'सबीजा' मुद्रा होती है, ऐसा द्विजगण मानते हैं। मध्य में अनेक अँगुलियों के साथ मिली हुई तर्जनी को रखकर अँगूठे के स्पर्श से बनी हुई 'भेदनी' कहलाती है ।।३४-३६ $\frac{1}{2}$।। नाभिदेश में उस मुद्रा को बाँधकर वहाँ से अँगूठे के द्वारा जल निक्षेप करने से 'कराली' नामक महामुद्रा बन जाती है। उसको हृदय से लगाकर फिर पहले

---

१ 'स्त्रीवले...दूतिका' ग. पुस्तके नास्ति। २ ख. ...दि देशतः। ३ ङ. 'सुकर्षिणम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वज्रतुण्डा समाख्याता वज्रदेशे तु बन्धयेत् । उभाभ्यां चैव हस्ताभ्यां मणिबन्धं तु बन्धयेत् ।।३९।।
त्रीणि त्रीणि प्रसार्येति वज्रमुद्रा प्रकीर्तिता । दण्डः खड्गं चक्रगदा मुद्रा चाऽऽकारतः स्मृता ।।४०।।
अङ्गुष्ठेनाऽऽक्रामेत्त्रीणि त्रिशूलं चोर्ध्वतो भवेत् । एका तु मध्यमोर्ध्वा तु शक्तिरेव विधीयते ।।४१।।
शरं च वरदं चापं पाशं भारं च घण्टया । शङ्खमङ्कुशमभयं पद्ममष्ट च विंशतिः ।।४२।।
ग्रहणी मोक्षणी चैव ज्वालिनी चामृताऽभया । प्रणीताः पञ्च मुद्रास्तु पूजाहोमे च योजयेत् ।।४३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामन्त्रादिकथनं नाम दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१०।।

अथैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामूलमन्त्रादि

अग्निरुवाच

दीक्षादि वक्ष्ये विन्यस्य सिंहवज्राकुलेऽब्जके ।।१।।
त्तु त्तु हेति वज्रदेति पुरु पुरु लुलु लुलु गर्ज गर्ज ह ह सिंहाय नमः ।।२।।
तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारश्चतुरो भवेत् । नवभागविभागेन कोष्ठकान्कारयेद्बुधः ।।३।।
ग्राह्या दिशागताः कोष्ठा विदिशासु विनाशयेत् । बाह्या वै कोष्ठकोणेषु बाह्यरेखाष्टकं स्मृतम् ।।४।।

की तरह ब्रह्मलग्न अँगूठे को ऊपर की ओर उठाना चाहिए। इसका नाम 'वज्रतुण्डा' मुद्रा है। इसे वज्रदेश में बाँधना चाहिए। तीन-तीन अँगुलियों को फैलाकर दोनों हाथों से मणिबन्ध को बाँधने से 'वज्रमुद्रा' बनती है। दण्ड, खड्ग, गदा तथा मुद्रा-ये सब मुद्राएँ अपने-अपने आकार की कही गयी हैं ।।३७-४०।। अँगूठे से तीन अँगुलियों को आक्रान्त करके उनको ऊपर उठावे तो यह त्रिशूल मुद्रा कहलाती है। एकमात्र मध्यमा ऊपर उठी हो तो शक्ति मुद्रा होती है। शर, वरद, चाप, पाश, भार, घण्टा, शंख, अंकुश, अभय तथा पद्म को मिलाकर अट्ठाईस मुद्राएँ होती हैं। ग्रहणी, मोक्षणी, ज्वालिनी, अमृता तथा अभया नामक पाँच प्रणीता मुद्राओं का प्रयोग पूजन और हवन काल में करना चाहिए ।।४१-४३।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरिता मन्त्रादि कथन नामक तीन सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ।।३१०।।

अध्याय ३११

त्वरितामूलमन्त्रादि

अग्निदेव बोले-अब मैं त्वरिता की दीक्षा आदि के विषय में बतलाऊँगा। सिंह, वज्र तथा पद्म के रेखाचित्रों से पूर्ण स्थान में 'त्तु त्तु हेति वज्रदेति पुरु···सिंहाय नमः'-इस मन्त्र से अंगन्यास करके विद्वान् साधक को तिरछी तथा ऊपर की ओर गयी हुई चार-चार रेखाएँ खींचनी चाहिए। उसके बाद नव भागों में विभक्त कोणों का निर्माण करना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि दिशाओं में बनाये गये कोष्ठ शुभकारक होते हैं और विदिशाओं के नाशकारक, फिर कोष्ठ के कोणों से बाहर-आठ बाह्य रेखाएँ खींचनी चाहिए ।।१-४।। ये रेखाएँ बाह्य कोष्ठ के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाह्यकोष्ठस्य बाह्ये तु मध्ये यावत्समानयेत् । वज्रस्य मध्यमं शृङ्गं बाह्यरेखा द्विधार्धतः ।।५।।
बाह्यरेखा भवेद्वक्रा द्विभंगा कारयेद्बुधः । मध्यकोष्ठं भवेत्पद्मं [1]पीतकर्णिकमुज्ज्वलम् ।।६।।
कृष्णेन रजसाऽऽलिख्य कुलिशाशिस (सिश) रार्धता । बाह्यतश्चतुरस्त्रं तु[2] वज्रसंपुटलाञ्छितम् ।।७।।
द्वारे प्रदापयेन्मन्त्री चतुरो वज्रसंपुटान् । ([3]पद्मनाभ भवेद्वामवीथी चैव समा भवेत् ।।८।।
गर्भं रक्तं केसराणि मण्डले दीक्षिताः स्त्रियः । यजेच्च परराष्ट्राणि क्षिप्रं राज्यमवाप्नुयात् ।।९।।
मूर्तिं प्रणवसंदीप्तां हूंकारेण नियोजयेत् । मूलविद्यां समुच्चार्य मरुद्व्योमगतां द्विज ।।१०।।
प्रथमेन पुनश्चैव कर्णिकायां प्रपूजयेत् । एवं प्रदक्षिणं पूज्य एकैकं बीजमादितः ।।११।।
दलमध्ये तु विद्यां गामाग्नेय्यां पञ्च नैर्ऋतम् । मध्ये नेत्रं दिशास्त्रं च गुह्यकाङ्गे तु रक्षणम् ।।१२।।
हुतयः केशरस्थास्तु वामदक्षिणपार्श्वतः । पञ्च पञ्च प्रपूज्यास्तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।।१३।।
लोकपालान्न्यसेदष्टौ बाह्यतो गर्भमण्डले । वर्णान्तमग्निमारूढं षष्ठस्वरविभेदितम् ।।१४।।
पञ्चदशेन चाऽऽक्रान्तं स्वैः स्वैर्नामभियोजयेत् । शीघ्रं सिंहे कर्णिकायां यजेद्गन्धादिभिः श्रिये ।।१५।।
अष्टाभिर्वेष्टयेत्कुम्भैर्मन्त्राष्टशतमन्त्रितैः । मन्त्रमष्टसहस्रं तु जप्त्वाऽङ्गानां दशांशकम् ।।१६।।

बाहर तथा मध्य पर्यन्त आनी चाहिए। वज्र के चित्रों के मध्य में शृंग का चित्र बनाना चाहिए। बाह्य रेखा को मध्य भाग से दो खण्ड कर देना चाहिए। बाह्य रेखा टेढ़ी होनी चाहिए। उसे विद्वान् साधक को दो स्थानों पर काट देना चाहिए। कोष्ठ के मध्य में पीली कर्णिकावाले श्वेत कमल की रचना करनी चाहिए। फिर कृष्णरज से वज्र, खड्ग तथा शर का चित्र बनाकर बाहर की ओर वज्र के चिह्न से चिह्नित चतुरस्त्र का निर्माण करना चाहिए। द्वार पर चार वज्र सम्पुटों का निर्माण करना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से बने हुए मण्डल के केन्द्र विन्दु को रक्तवर्ण के पराग से चिह्नित करना चाहिए। इस प्रकार के बने हुए मण्डल से स्त्रियों को भी दीक्षित किया जा सकता है। यदि कोई राजा इस प्रकार से दीक्षा लेता है तो वह दूसरों के राज्यों पर विजय प्राप्त कर लेता है और अपने भी खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है ।।५-९।। अये द्विज! तत्पश्चात् साधक को वायु और आकाश के बीज (यं हं) से व्याप्त मूल विद्या का उच्चारण करते हुए उसकी प्रणव (ओंकार) से प्रकाशित मूर्ति को 'हूं' कार के साथ स्थापित करना चाहिए। फिर कर्णिका के ऊपर प्रथम मन्त्र से पूजा करके प्रदक्षिणा करनी चाहिए। इस प्रकार आदि से एक-एक बीजमन्त्र से दल के बीच में विद्या तथा गौ की पूजा करके आग्नेय एवं नैर्ऋत्यकोणों में पाँच अङ्ग देवताओं का पूजन करना चाहिए, उसके बाद मध्य में नेत्र की तथा सम्पूर्ण दिशाओं में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए। गुह्याङ्ग में रक्षा की तथा वाम-दक्षिण पार्श्व में केसरों के ऊपर विद्यमान पाँच-पाँच हुतियों की अपने-अपने मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिए ।।१०-१३।। गर्भमण्डल से बाहर आठ लोकपालों की स्थापना करनी चाहिए। वर्णान्त (क्ष) को अग्नि (र) के ऊपर चढ़ाकर उसे छठे स्वर (ऊ) से विभेदित करे और 'पन्द्रहवें स्वर' (अनुस्वार) को उसके सिर पर चढ़ाकर बने 'क्ष्रूं' बीज को आदि में रखकर अपने-अपने नाम मन्त्रों से लोकपालों का पूजना करना चाहिए। श्री प्राप्ति के लिए गन्ध, पुष्पादि से कर्णिका के ऊपर शीघ्र ही सिंह की पूजा करनी चाहिए। फिर उस कमल को एक सौ आठ मन्त्रों से अभिमन्त्रित आठ कलशों से वेष्टित कर आठ हजार मन्त्र का जाप करना चाहिए और उसके दशमांश (अर्थात्

---

१ ग. °तवर्णीवसज्जव°। २ घ. तु चन्द्रसं°। ३ 'पद्मनाभ.....राज्यमवाप्नुयात्' च. पुस्तके नास्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होमं कुर्यादग्निकुण्डे वह्निमन्त्रेण चालयेत् । निक्षिपेद्धृदयेनाग्निं शक्तिं मध्येऽग्निगां स्मरेत् ।।१७।।
गर्भाधानं पुंसवनं जातकर्म च होमयेत् । हृदयेन शतं ह्येकं गुह्याङ्गे जनयेच्छिखिम् ।।१८।।
पूर्णाहुतिं तु विद्यायाः शिवाग्निर्जनितो भवेत् । होमयेन्मूलमन्त्रेण शतं चाङ्गं दशांशतः ।।१९।।
निवेदयेत्ततो देव्यास्ततः शिष्यं प्रवेशयेत् । अस्त्रेण ताडनं कृत्वा गुह्याङ्गानि ततो न्यसेत् ।।२०।।
विद्याङ्गैश्चैव संनद्धं विद्याङ्गेषु नियोजयेत् । [1]पुष्पं[2] क्षिपाययेच्छिष्यमानयेदग्निकुण्डकम्।।२१।।
यवैर्धान्यैस्तिलैराज्यैर्मूलविद्याशतं हुनेत् । स्थावरत्वं पुरा होमं सरीसृपमतः परम् ।।२२।।
[3]पक्षिमृगपशुत्वं च मानुषं ब्रह्ममेव च । विष्णुत्वं चैव रुद्रत्वमन्ते पूर्णाहुतिर्भवेत् ।।२३।।
एकया चैव[4] ह्याहुत्या शिष्यः स्याद्दी (ष्योऽस्य दी) क्षितोभवेत् ।
अधिकारो भवेदेवं शृणु मोक्षमतः परम्[5] ।।२४।।
सुमेरुस्थो यदा मन्त्री सदाशिवपदे स्थितः[6] । परे च होमयेत्स्वस्थोऽकर्मकर्मशतान्दश (?) ।।२५।।
पूर्णाहुत्या तु तद्योगी धर्माधर्मैर्न लिप्यते । मोक्षं याति परं स्थानं यद्गत्वा न निवर्तते ।।२६।।
यथा जले जलं क्षिप्तं जलं देही शिवस्तथा । कुम्भैः कुर्याच्चाभिषेकं जयराज्यादिसर्वभाक् ।।२७।।

आठ सौ मन्त्रों से) अग्निकुण्ड में हवन करना चाहिए। पहले वह्निमन्त्र (रं) से कुण्ड में अग्नि को ले जाय और उठाकर हृदय मन्त्र से अग्नि की स्थापना करे तथा अग्निगामिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिए ।।१४-१७।। फिर गर्भाधान, पुंसवन तथा जातकर्म के लिए हृदय मन्त्र से एक सौ बार हवन करना चाहिए। इसके लिए गुह्याङ्ग मन्त्रों के जप से अग्नि उत्पन्न करना चाहिए। (देवी के मन्त्रों की) विद्या से पूर्णाहुति देनी चाहिए। इससे शिवाग्नि का जन्म सम्पादित होता है। तदनन्तर मूल मन्त्र से सौ बार हवन करके अंग देवता के लिए उसके दशांश की आहुति देनी चाहिए। उसके बाद देवी की स्तुति करके शिष्य का प्रवेश कराना चाहिए। उसे अस्त्र मन्त्र से ताड़न करके गुह्याङ्गन्यास करना चाहिए ।।१८-२०।। विद्याङ्गों में विद्याङ्ग मन्त्रों से कवच की स्थापना करनी चाहिए। उस पर शिष्य से पुष्पार्पण कराकर उसको अग्निकुण्ड के समीप ले जाना चाहिए। उसमें मूलमन्त्र से यव, धान्य, तिल तथा घी की सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। पहले स्थावर को और तदनन्तर जंगम पक्षी, मृग, पशु, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति देनी चाहिए। इस प्रकार एक ही आहुति देने से शिष्य दीक्षित हो जाता है और उसको सभी (धर्म) कर्म करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है ।।२१-२४।। अब शिष्य को मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? इस सम्बन्ध में सुनो। जब मन्त्रसाधक सुमेरु स्थित होकर सदाशिव पद पर अवस्थित हो जाय तब कर्माकर्म की पूर्णता के लिए इस परम पद में एक सौ दस बार एकाग्र चित्त से होम करना चाहिए। जब पूर्णाहुति हो जाय तब वह धर्माधर्म से अलिप्त होकर परम पद मोक्ष को प्राप्त हो जायगा। जहाँ से फिर कहीं लौटना नहीं होता है। जैसे जल में फेंकने से वह जल ही हो जाता है उसी तरह जीव (शिव से मिलकर) शिव हो जाता है। कलशों के जल से अभिषेक करनेवाले को विजय तथा राज्य की प्राप्ति होती है ।।२५-२७।। अनन्तर कुमारी ब्राह्मणी की पूजा करके गुरु आदि को दक्षिणा

---

१ ग. पुष्पाक्षिपायसेच्छि°। २ क. °ष्पं विपाचये°। ख. ष्पं क्षिपापये°। ३ ख. ग. क्षिमूलप°। ४ ख. चैवाऽऽज्याहु°। ५ क. °म्। खमे°। ख. ग. °म्। खमेकस्तोय°। ६ ख. ग. °पदास्थि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]कुमारी ब्राह्मणी पूज्या गुर्वादेर्दक्षिणां ददेत्। यजेत्सहस्रमेकं तु [2]पूजां कृत्वा दिने दिने ।।२८।।
तिलाज्यपूरहोमेन देवी श्रीः कामदा भवेत्। ददाति विपुलान्भोगान्यदन्यच्च समीहते ।।२९।।
जप्त्वा ह्यक्षरलक्षं तु निधानाधिपतिर्भवेत्। द्विगुणेन भवेद्राज्यं त्रिगुणेन च यक्षिणी ।।३०।।
चतुर्गुणेन ब्रह्मत्वं ततो विष्णुपदं भवेत्। षड्गुणेन महासिद्धिर्लक्षेणैकेन पापहा ।।३१।।
दश जप्त्वा देहशुद्ध्यै तीर्थस्नानफलं शतात्। पटे वा प्रतिमायां वा शीघ्रं वै स्थण्डिले यजेत् ।।३२।।
शतं सहस्रमयुतं जपे होमे प्रकीर्तितम्। एवं विधानतो जप्त्वा लक्षमेकं तु होमयेत् ।।३३।।
महिषाजमेधमांसेन[3] नरजेन पुरेण वा। तिलैर्यवैस्तथा लाजैर्व्रीहिगोधूमकाम्बुजैः ।।३४।।
श्रीफलैराज्यसंयुक्तैर्होमयित्वा व्रतं चरेत्। अर्धरात्रेषु संनद्धः खड्गचापशरादिमान् ।।३५।।
एकवासाविचित्रेण रक्तपीतासितेन वा। नीलेन वाऽथ वस्त्रेण देवीं तैरेव चार्चयेत् ।।३६।।
व्रजेद्दक्षिणदिग्भागं द्वारे दद्याद्बलिं बुधः। दूतीमन्त्रेण द्वारादावेकवृक्षे[4] श्मशानके ।।
एवं च सर्वकामाप्तिं भुङ्क्ते सर्वां महीं नृपः ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामूलमन्त्रादिकथनं नामैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३११।।

देनी चाहिए। इस तरह प्रतिदिन पूजा करके एक सहस्र बार तिल और घी से हवन करने से लक्ष्मी देवी कामनाओं को पूर्ण करती हैं और उन विपुल अभीष्ट भोगों को प्रदान करती हैं, जो-जो भी साधक उनसे चाहता है। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख बार जप करने से मनुष्य निधियों का अधिपति हो जाता है। उसका दूना जप करने से राज्य की प्राप्ति होती है। तिगुना जप करने से यक्षिणी सिद्ध हो जाती है, चौगुना जप करने से ब्रह्मपद तथा पाँच-गुना जप से विष्णुपद की प्राप्ति होती है। एक लाख बार इस मन्त्र का जप करने से पापों का नाश होता है ।।२८-३१।। दस बार जप करने से देहशुद्धि होती है और सौ बार जप करने से तीर्थस्थान के फल की प्राप्ति होती है। स्थण्डिल (एक हाथ का बनाया हुआ रेत का चबूतरा) पर पट (पटलिखित चित्र) या प्रतिमा रखकर देवी का पूजन, जप तथा होम एक सौ बार, एक हजार बार अथवा दस हजार बार करना चाहिए। इस प्रकार विधिपूर्वक जप करके एक लाख आहुतियाँ देनी चाहिए। भैंसा, बकरा तथा भेंड़े के मांस से या नर के मांस से अथवा गुग्गुलु, तिल, यव, लावा, व्रीहि, गेहूँ, कमल, श्रीफल एवं घी से हवन करके व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ।।३२-३४½।। आधी रात को कवच, खड्ग, धनुष, बाण तथा केवल एक वस्त्र धारण करके रंग-बिरंगे, लाल, पीले, काले अथवा नीले वस्त्र से देवी का पूजन करना चाहिए। फिर दक्षिण दिशा की ओर कूछ दूर चलकर दूती मन्त्र से द्वार पर बलि चढ़ानी चाहिए। यह बलि द्वार आदि में अथवा एक वृक्षवाले श्मशान में भी दी जा सकती है। ऐसा करनेवाला राजा सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करके भूमण्डल का उपयोग करता है ।।३५-३७।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरिता मूलमन्त्रादि कथन नामक तीन सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।३११।।

---

१ कुमारी.....ददेत् ग. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. पूर्णां। ३ क. ङ. °न मेरजेण परे°। ४ क. ङ. °क्षेण शौन°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताविद्या

अग्निरुवाच

विद्याप्रस्तावमाख्यास्ये[1] धर्मकामादिसिद्धिदम् । नवकोष्ठविभागेन [2]विद्याभेदं च विन्दति ।।१।।
अनुलोमविलोमेन समस्तव्यस्तयोगतः । [3]कर्णाविकर्णयोगेन अत ऊर्द्ध्वं विभागशः ।।२।।
[4]त्रित्रिकेण च योगेन देव्या संनद्धविग्रहः । जानाति सिद्धिदान्मन्त्रान्प्रस्तावान्निर्गतान्बहून् ।।३।।
शास्त्रे शास्त्रे स्मृता मन्त्राः प्रयोगास्तत्र दुर्लभाः । गुरुः स्यात्प्रथमो [5]वर्णः फुल्लपल्लववर्णवत् ।।४।।
प्रस्तावे तत्र चैकार्णा वर्णा द्व्यर्णादयोऽभवन् । ([6]तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चतुरश्चतुरो (?) भजेत् ।।५।।
नव कोष्ठा भवन्त्येवं मध्यदेशे तथाऽऽदिमान् । प्रदक्षिणेन संस्थाप्य प्रस्तावं भेदयेत्ततः ।।६।।
प्रस्तावक्रमयोगेन (ण) प्रस्तावं यस्तु विन्दति । करमुष्टिस्थितास्तस्य साधकस्य हि सिद्धयः ।।७।।
त्रैलोक्यं पादमूले स्यात्रवखण्डां भुवं लभेत् । कपाले तु समालिख्य शिवतत्त्वं समन्ततः ।।८।।
श्मशानकर्पटे वाऽथ बाह्ये निष्क्रम्य मन्त्रवित्) । तस्य मध्ये लिखेन्नाम कर्णिकोपरि संस्थितम् ।।९।।

अध्याय ३१२

त्वरिताविद्या

अग्निदेव बोले–अब मैं धर्म और काम आदि की सिद्धि देनेवाले विद्याप्रस्तार का वर्णन करूँगा। नव कोष्ठों के विभाग से अनुलोम-विलोम भाव से, समस्त व्यस्त योग से, कर्ण और अविकर्ण योग से और अध-ऊर्ध्व विभाग से विद्या के अनेक भेद हो जाते हैं ।।१-२।। कवच धारण करनेवाले साधक त्रित्रिक योग के बल से देवी के सिद्धिदायक मंत्रों तथा प्रस्तारों को जान लेते हैं। अनेक शास्त्रों में, अनेक मन्त्र बतलाये गये हैं। किन्तु उन मन्त्रों का प्रयोग करना कठिन है। 'फुल्ल', 'पल्लव' अथवा 'वर्ण' (पदों) के समान मन्त्र का प्रथम अक्षर गुरु होता है। प्रस्तार में एकाक्षर वर्ण द्व्यक्षर माने गये हैं। चार पड़ी रेखाओं के ऊपर चार समानान्तर खड़ी रेखाएँ खींचकर नौ कोष्ठक बन जाते हैं। इनमें से बीच के कोष्ठक के ऊपर एक वृत्त बनाकर मन्त्र के विभिन्न अक्षरों को एक-एक कोष्ठक में लिखकर प्रस्तार का भेदन कर देना चाहिए ।।३-६।। जो साधक इस मन्त्र प्रस्तार तथा इसके विभिन्न कोष्ठकों में लिखे हुए मन्त्र को जानता है वह सभी सिद्धियों को करतलगत कर लेता है। तीनों लोक उसके चरण पर लोटते हैं और वह पृथ्वी के नवद्वीपों का लाभ कर लेता है। मन्त्रवेत्ता साधक को कपाल (खप्पर) पर शिवमन्त्र लिखकर श्मशान भूमि में जाकर मुर्दे के वस्त्र को उठा लाना चाहिए। इस वस्त्र के ऊपर उपर्युक्त देवी चन्द्र बनाकर उसके प्रत्येक दल पर

---

१ क. ग. ङ. °स्तारमा°। २ क. ङ. °भेदश्च विद्यते। अ°। ३ क. ङ. °र्णाधिक°। च. °र्णाविवर्ण°। ४ क. ङ. °के शिवयो°। ५ ख. ग. °र्णः पहत्युन्नव°। ६ तिर्यगर्ध्वगता.....मंत्रवित् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तापयेत्खादिराङ्गारैर्भूर्जमाक्रम्य पादयोः । सप्ताहादानयेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।१०।।
वज्रसंपुटगर्भे तु द्वादशारे तु लेखयेत् । मध्ये तु गर्भगं नाम सदाशिवविदर्भितम् ।।११।।
कुड्ये फलकके वाऽथ शिलापट्टे हरिद्रया । मुखस्तम्भं गतिस्तम्भं सैन्यस्तम्भं तु जायते ।।१२।।
विषरक्तेन संलिख्य श्मशाने कर्पटे बुधः[१] । षट्कोणं दण्डमाक्रान्तं समन्ताच्छक्तियोजितम् ।।१३।।
मारयेदचिरादेष श्मशाने निहतं रिपुम् । छेदं करोति राष्ट्रस्य चक्रमध्ये न्यसेद्रिपुम् ।।१४।।
चक्रधारां गतां शक्तिं रपुनाम्ना रिपुं हरेत् । तार्क्ष्येणैव तु बीजेन खड्गमध्ये तु लेखयेत् ।।१५।।
विदर्भरिपुनामाथ श्मशानाङ्गारलेखितम् । सप्ताहात्साधयेद्देशं ताडयेत्प्रेतभस्मना ।।१६।।
भेदने छेदने चैव मारणेषु शिवो भवेत् । [२]तारकं नेत्रमुद्दिष्टं शान्तिपुष्टौ नियोजयेत्[३] ।।१७।।
दहनादि प्रयोगोऽयं [४]शाकिनीं चैव कर्षयेत् । मेध्यादिवारुणीं [५]यावद्वक्रतुण्डसमन्वितः ।।१८।।
कुष्ठाद्या (द्य) व्याधिरोगं तु नाशयेन्नात्र संशयः । मध्यादि उत्तरान्तं तु करालीबन्धनाज्जपेत् ।।१९।।
रक्षयेदात्मनो [६]विद्यां प्रतिवादी सदाशिवः । वारुण्यादि ततो न्यस्य [७]ज्वरक्लेशविनाशनम्[८] ।।२०।।
सौम्यादि मध्यमान्तं तु गुरुत्वं जायते वटे । पूर्वादिमध्यमान्तं तु लघुत्वं कुरुते क्षणात् ।।२१।।

शत्रु का नाम लिखना चाहिए। तदनन्तर खैर की लकड़ी से भोजपत्र को तपाकर उसे अपने पैरों के नीचे दबाना चाहिए। ऐसा करने से एक सप्ताह के भीतर चराचर सहित तीनों लोक उसके वशीभूत हो जायँगे ।।७-१०।। वज्र की रेखा से अंकित और सदाशिव मन्त्र के अक्षरों से विदर्भित द्वादश दल कमल के मध्य में अपने शत्रु का नाम लिखना चाहिए। दीवार, तख्ते या शिलापट्ट पर हल्दी से इस प्रकार लिखकर किसी (शत्रु) का वाक्स्तम्भ, गतिस्तम्भ तथा सैन्यस्तम्भ किया जा सकता है ।।११-१२।। विद्वान् साधक को श्मशान के कपड़े पर विष मिश्रित रक्त से षट्कोण बनाना चाहिए, जो कि दण्ड से आक्रान्त तथा चारों ओर से शक्ति से वेष्टित हो। उस दण्ड से श्मशान में शत्रु के चित्र को मारने से शत्रु शीघ्र ही मर जाता है। चक्र के मध्य में शत्रु की प्रतिमा को रख देने से उसका राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो जाता है ।।१३-१४।। चक्र की धारा पर स्थित शक्ति से शत्रु का नाम लेकर प्रहार करने से शत्रु का नाश हो जाता है। गरुड़ के बीजमन्त्र से खड्ग के मध्य में श्मशान के कोयले से शत्रु का नाम विदर्भ विधि से लिखना चाहिए। फिर सात दिन उसके ऊपर प्रेतभस्म छिड़ककर श्मशान की साधना करनी चाहिए। ऐसा करने से साधक भेदन, छेदन तथा मारण कर्मों में शिव के समान सिद्धहस्त हो जाता है। तारक तथा नेत्र मन्त्रों का विनियोग शान्ति तथा पुष्टि कर्म के लिए करना चाहिए ।।१५-१७।। यह कर्म दहनादि प्रयोग कहलाता है। इससे शाकिनी भी आकृष्ट हो जाती है। पूर्वोक्त नौ चक्रों में मध्यगत मन्त्राक्षर से लेकर पश्चिम दिशावर्ती कोष्ठक तक के अक्षरों को वक्रतुण्डा मन्त्र के साथ जपने से यह कुष्ठ आदि व्याधियों का नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। उसी चक्र के मध्य से लेकर उत्तर पर्यन्त अक्षरों का कराली मन्त्र के साथ जप करने से अपनी विद्या की रक्षा वह सदाशिव के समान प्रतिवादी से भी कर लेता है। पश्चिम आदि दिशाओं में न्यास करने से ज्वर का क्लेश मिट जाता है। उत्तर से लेकर मध्यम तक न्यास करने से साधक की इच्छा के अनुसार वट का बीज भी भारी हो जाता है और पूर्व से लेकर मध्यम तक न्यास करने से वह तुरन्त हल्का हो जाता है ।।१८-२१।। भोजपत्र के ऊपर गोरोचन से वज्रयुक्त उपर्युक्त चक्र को बनाकर

---

१ क. ङ. सुधीः। २ ख. कं °तत्त्वमु°। ३ क. ङ. °त्। देहाना रिपुयो°। ४ ''शाकिनी कर्षयेत्क्षणात्'' इति क. ङ. पुस्तकयोः पाठः। ५ क. ङ. °द्वज्रतु°। ६ क. ङ. दीप्त्या। ७ क. ङ. °शोकवि°। ८ क. ङ. °म्। सोश्वादिमध्यमान्तस्तु गु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूर्जे रोचनयाऽऽलिख्य एतद्वज्राकुलं परम्। क्रमस्थैर्मन्त्रबीजैस्तु रक्षां देहेषु कारयेत् ।।२२।।
वेष्टितां[1] भावहेम्ना च रक्षेयं मृत्युनाशिनी। विघ्नपापारिदमनी सौभाग्यायुः प्रदा धृता ।।२३।।
द्यूते रणे च जयदा शक्रसैन्ये न संशयः। वन्ध्यानां पुत्रदा ह्येषा चिन्तामणिरिवापरा ।।२४।।
[2]साधयेत्परराष्ट्राणि राज्यं च पृथिवीं जयेत्। फट् स्त्रीं क्षें हूं लक्षजप्याद्यक्षादिर्वशगो भवेत् ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरिताविद्यासिद्धिकथनं नाम द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१२।।

अथ त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच

ॐ विनायकार्चनं वक्ष्ये यजेदाधारशक्तिकम्। धर्माद्यष्टककन्दं [3]च नालं पद्मं च कर्णिकाम् ।।१।।
[4]केसरं त्रिगुणं पद्मं तीव्रं च ज्वलिनीं यजेत्[5]। नन्दां च सुयशां चोग्रां [6]जीवन्तीं विन्ध्यवासिनीम् ।।२।।
गणमूर्तिं गणपतिं हृदयं स्याद्गणंजयः। एकदन्तोत्कटशिरः शिखायाचलकर्णिने ।।३।।
गजवक्त्राय कवचं हूं फडन्तं [7]तथाऽष्टकम्। महोदरी दण्डहस्तः पूर्वादौ मध्यतो यजेत् ।।४।।

सोने के ताबीज में रखकर भुजा पर बाँध लेने से शरीर की रक्षा हो जाती है। इससे मृत्यु का नाश होता है। इससे विघ्न पापरूपी शत्रु का दमन होता है और सौभाग्य तथा आयु की प्राप्ति होती है। यह विद्या द्यूत में तथा रण में इन्द्र-सेना से भी विजय दिलाती है, इसमें सन्देह नहीं है। यह वन्ध्याओं को पुत्र देती है। इसे दूसरा चिन्तामणि मन्त्र समझना चाहिए। इसके बल से मनुष्य दूसरे के राष्ट्र को जीत सकता है और राज्य तथा पृथिवी प्राप्त कर सकता है। फट् स्त्रीं क्षें हूं-इस मन्त्र को एक लाख बार जपने से यक्ष आदि वशीभूत हो जाते हैं ।।२२-२५।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरिताविद्यासिद्धि-कथन नामक तीन सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१२।।

अध्याय ३१३

नानामन्त्र-कथन

अग्निदेव बोले-अब मैं विनायक की पूजा बतला रहा हूँ। पहले योगपीठ पर आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओं में धर्म आदि आठ तत्त्वों की तथा कन्द, नाल, पद्म, कर्णिका, केसर, त्रिगुण, पद्म की तथा तीव्रा, ज्वलिनी, नन्दा, सुयशा, उग्रा, जीवन्ती, विन्ध्यवासिनी आदि नौ शक्तियों की पूजा करे। तत्पश्चात् गणेश की मूर्ति का पूजन-ध्यान करे। अंगन्यास का प्रकार यह है-गणंजयाय हृदयाय नमः, एकदन्ताय उत्कटाय शिरसे स्वाहा, अचलाकर्णिने शिखायै वषट्, गजवक्त्राय हूं फट् कवचाय हुम्, महोदराय दण्डस्ताय अस्त्राय फट्। इन पाँच अंगो में से चार की तो पूर्वार्ध चार दिशाओं में और पाँचवें की मध्य भाग में पूजा करे ।।१-४।। तदनन्तर गणंजय,

---

१ ख. °तां तारहे। २ साधयेत्परराष्ट्राणि°°°°भवेत् नास्ति च. पुस्तके। ३ क. ङ. च. सनालं पञ्चक°। ४ ख. ग. केशव°। ५ ख. ग. जपेत्। ६ ख. ग. तेजोवतीं°। ७ क. ङ. °थास्त्रक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जयो गणाधिपो गणनायकोऽथ गणेश्वरः। वक्रतुण्ड एकदन्तोत्कटलम्बोदरो गजः ।।५।।
वक्त्रो विकटनामाऽथ हूं पूर्वो विघ्ननाशिने। धूम्रवर्णो महेन्द्राद्यो बाह्ये विघ्नेशपूजनम् ।।६।।
त्रिपुरायजनं वक्ष्ये असिताङ्गो रुरुस्तथा। चण्डः क्रोधस्तथोन्मत्तः कपाली भीषणः क्रमात् ।।७।।
([1]संहारो भैरवो ब्राह्मी मुख ह्रस्वास्तु भैरवाः। ब्रह्माणी षण्मुखा दीर्घा अन्यादौ वटुकाः क्रमात्) ।।८।।
समयपुत्रो व (ब) टुको योगिनीपुत्रकस्तथा। सिद्धपुत्रश्च बटकः कुलपुत्रश्चतुर्थकः ।।९।।
हेतुकः क्षेत्रपालश्च त्रिपुरान्तो द्वितीयकः। अग्निवेतालोऽग्निजिह्वः करालीकाललोचनः ।।१०।।
[2]एकपादश्च भीमाक्ष ऐं क्षें प्रेतस्तथाऽऽसनम्। (ॐ) ऐं ह्रीं द्यौश्च त्रिपुरा पद्मासनसमास्थिता ।।११।।
बिभ्रत्यभयपुस्तं च वामे वरदमालिकाम्। मूलेन हृदयादि स्याज्जालपूर्णं च [3]कार्मुकम् ।।१२।।
गोमध्ये नाम संलिख्य चाष्टपत्रे च मध्यतः। श्मशानादिपटे श्मशानाङ्गारेण विलेखयेत् ।।१३।।
चिताङ्गारपिष्टकेन मूर्तिं ध्यात्वा तु तस्य च। क्षिप्त्वोदरे नीलसूत्रैर्वेष्ट्य चोच्चाटनं भवेत् ।।१४।।
ॐ नमो भगवति जा (ज्वा) लामानि (लि) नि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा ।।१५।।
युद्धे गच्छञ्जपन्मन्त्रं पुमान्साक्षाज्जयो भवेत् ।।१६।।
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः ।।१७।।

गणाधिप, गणनायक, गणेश्वर, वक्रतुण्ड, एकदन्त, उत्कट, लम्बोदर, गजवक्त्र, विकटनामा (विकटानन) इन सब की पद्मदलों में पूजा करे। फिर मध्य भाग में 'हूं विघ्ननाशनाय नमः' 'महेन्द्राय धूम्रवर्णाय नमः' यों बोलकर विघ्ननाशन और धूम्रवर्ण की पूजा करे। फिर बाहर की ओर विघ्नेश की अर्चना करनी चाहिए ।।५-६।। अब मैं त्रिपुरा का पूजन बलता रहा हूँ। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहार इन आठ भैरवों की आठ ह्रस्व स्वरों से तथा ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं की आठ दीर्घ स्वरों से पूजा करके आग्नेयी आदि दिशाओं में क्रमशः चार वटुकों की पूजा करनी चाहिए। समयपुत्र, योगिनीपुत्र, सिद्धपुत्र तथा कुलपुत्र में चार बटुक हैं। इनके बाद आठ क्षेत्रपाल पूजनीय हैं। इनके नाम-त्रिपुरान्त, अग्निवेताल, अग्निजिह्व, कराल, काललोचन, एकपाद तथा भीमाक्ष हैं। इन सबका पूजन करके त्रिपुरा देवी के प्रेत रूप पद्मासन की पूजा करे। जैसे ऐं क्षें प्रेतपद्मासनाय नमः। 'ॐ ऐं ह्रीं द्यौः त्रिपुरायै प्रेतपद्मासनमास्थितायै नमः' इस मन्त्र से प्रेत पद्मासन पर विराजमान त्रिपुरा भैरवी की पूजा करे। उनका ध्यान इस प्रकार है-उनके दायें हाथ में अभयास्त्र तथा पुस्तक विद्यमान है और बायें हाथ में वरदमुद्रा एवं माला। देवी बाणसमूह से भरा तरकस और धनुष भी लिये रहती है। इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्र से हृदयादि न्यास करे। गायों के बीच में अष्टदल कमल के मध्य भाग में शत्रु का नाम श्मशान के कपड़े पर श्मशान के ही कोयले से लिखना चाहिए ।।७-१३।। तत्पश्चात् चिता के कोयलों के चूर्ण से बनी (शत्रु) मूर्ति का ध्यान करके कमर में नीला धागा लपेट देना चाहिए ।।१४।। 'ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा'-इस मन्त्र का जप करते हुए, युद्ध में जाने से मनुष्य निश्चय ही विजय प्राप्त कर लेता है। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः'-इस मन्त्र से उत्तर

---

१ 'संहारो''''क्रमात्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. 'पार्श्वाश्च भीमाख्ये ऐं। ३ ख. ग. कामकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तरादौ च घृणिनी सूर्या पूज्या चतुर्दले । आदित्या प्रभावती च सोमात्रिमधुराच्छ्रियः (?) ।।१८।।
ॐ ह्रीं गौर्यै नमः ।।१९।।
गौरीमन्त्रः सर्वकरो होमाद्ध्यानाज्जपार्चनात् । रक्ता चतुर्भुजा पाशवरदा दक्षिणे परे ।।२०।।
अङ्कुशाभययुक्तां तां प्रार्थ्य सिद्धात्मना पुमान् । जीवेद्वर्षशतं धीमान्न चौरारिभयं भवेत् ।।२१।।
क्रुद्धः प्रसादी भवति युधि मन्त्राम्बुपानतः । [1]अञ्जनं तिलकं वश्यो जिह्वाग्रे कविता भवेत् ।।२२।।
तज्जपान्मैथुनं वश्ये[2] तज्जपा [3]द्योनिवीक्षणम् । स्पर्शाद्वशी तिलहोमात्सर्वं चैव तु सिद्ध्यति ।।२३।।
सप्ताभिमन्त्रितं चान्नं भुञ्जंस्तस्य श्रियः सदा । अर्धनारीशरूपोऽयं लक्ष्म्यादिवैष्णवादिकः ।।२४।।
अनङ्गरूपा शक्तिश्च द्वितीया मदनातुरा । पवनवेगा भुवनपाला वै सर्वसिद्धिदा ।।२५।।
अनङ्गमदनानङ्गमेखलां तां जपेच्छ्रिये । [4]पद्ममध्यदलेषु ह्रीं स्वरान्कादींस्ततः स्त्रियाः ।।२६।।
षट्कोणे वा [5]घटे वाऽथ लिखित्वा स्याद्वशीकरम् । ।।२७।।
ॐ ह्रीं छूं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । ॐ ॐ ।।२८।।
मूलमन्त्रः षडङ्गोऽयं रक्तवर्णे त्रिकोणके । द्रावणी ह्लादकारिणी क्षोभिणी गुरुशक्तिका ।।२९।।
ईशानादौ च मध्ये तां नित्यां पाशाङ्कुशौ तथा । कपालकल्पकतरुं वीणा रक्ता च तद्वती ।।३०।।

आदि दिशाओं में चतुर्दल कमल से, घृणिनी, सूर्या, आदित्या तथा प्रभावती की पूजा करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। ये सभी देवियाँ सुवर्ण गिरि के समान सुन्दर कान्तिवाली हैं। 'ॐ ह्रीं गौर्यै नमः'–इत्यादि गौरी मन्त्र से हवन, उसका ध्यान, जप तथा पूजन करने से सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। भगवती का वर्ण लाल है, भुजाएँ चार हैं, दाहिने हाथों में पाश तथा वरद मुद्रा है और बायें हाथों में अंकुश तथा अभय मुद्रा है–ऐसा ध्यान करते हुए प्रार्थना करनेवाला सिद्धात्मा पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है और उसे चोर तथा शत्रु का भय नहीं रहता ।।१५-२१।। युद्ध में इस मन्त्र को पढ़कर जल पीने से क्रुद्ध व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। इसको पढ़कर तिलक या अंजन लगाकर जिसकी ओर देखा जायगा वही वशीभूत हो जायगा। इसका जप करने से कविता जिह्वाग्रवर्तिनी होती है, मैथुन वशीभूत होता है तथा योनिवीक्षण करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। किसी का स्पर्श कर देने से वह वशीभूत हो जाता है और इस मन्त्र को पढ़कर तिल से हवन करने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।।२२-२३।। इस मन्त्र से सात बार अन्न को अभिमंत्रित करके भोजन करने से सदैव के लिए श्री की प्राप्ति हो जाती है। इसके आदि में लक्ष्मी बीज (श्रीं) और वैष्णव बीज क्लीं जोड़ दिया जाय तो यह अर्धनारीश्वर मन्त्र हो जाता है। रूपा, अनङ्गमदनातुरा, पवनवेगा, भुवनपाला, सर्वसिद्धिदा, अनङ्गमदना तथा अनङ्गमेखला का पूजन करके इस मन्त्र का जप करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। षट्कोण या घट के ऊपर कमलदल के मध्य में ह्रीं स्वर, क आदि वर्ण तथा स्त्री का चित्रण करके मन्त्र का जप करने से वशीकरण सिद्ध होता है। 'ॐ ह्रीं छूं (ऐं) नित्यक्लिन्ने महद्रवे। ॐ, ॐ' यह षडङ्ग मूलमन्त्र कहलाता है। इसे रक्त वर्ण के त्रिकोणात्मक मन्त्र के ऊपर लिखना चाहिए ।।२४-२८$\frac{1}{2}$।। ईशान आदि विदिशाओं में द्रावणी, ह्लादकारिणी, क्षोभिणी और गुरशक्तिका तथा मध्य में नित्या का पूजन करना चाहिए। यह नित्या अपने हाथों में पाश, अंकुश, कपाल, कल्पतरु लिये हुए है। यह रक्तवर्ण तथा रक्तवस्त्र और वीणा धारण

---

१ ख. ङ. अर्जुनं। २ च. वश्यं। ३ ख. ग. निरीक्ष°। ४ ख. ग. ° ले वह्निं स्व।°। ५ ख. पटे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नित्याऽभया मङ्गला च नववीरा च मंगला। दुर्भगा मनोन्मनी पूज्या द्रावा पूर्वादितः स्थिता ।।३१।।
ॐ ह्रीम् अनङ्गाय नमः। ॐ ह्रीं स्मराय नमः ।।३२।।
मन्मथाय च माराय कामायैवं च पञ्चधा। कामाः पाशाङ्कुशौ चापबाणा ध्येयाश्च बिभ्रतः ।।३३।।
रतिश्च विरतिः प्रीतिर्विप्रीतिश्च मतिर्धृतिः। विधृतिः पुष्टिरेभिश्च क्रमात्कामादिकैर्युताः ।।३४।।
ॐ छं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॐ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्षः ॐ छं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा[1] ।।३५।।
[2]आधारशक्तिं पद्मं च सिंहे देवीं हृदादिषु ।।३६।।
ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१३।।

अथ चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताज्ञानम्

अग्निरुवाच

ॐ ह्रीं हूं खे छे क्षः स्त्रीं[3] हूं क्षे ह्रीं फट् त्वरितायै नमः ।।१।।

किये हुए है। नित्या, अभया, मंगला, नववीरा, सुमंगला, दुर्भगा, मनोन्मनी तथा द्रावा की पूजा क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में करनी चाहिए। पाश, अंकुश, धनुष तथा बाण धारण किये हुए पाँच कामदेवों का ध्यान करके इस मन्त्र का जप करना चाहिए 'ॐ ह्रीं अनङ्गाय नम। ॐ ह्रीं स्मराय नमः, ॐ ह्रीं मन्मथाय नमः, ॐ ह्रीं माराय नमः, ॐ ह्रीं कामाय नमः, ये ही पाँच कामदेव हैं ।।२९-३३।। इनके साथ रति-विरति, प्रीति-विप्रीति, मति-विमति, धृति-विधृति तथा तृष्टि-पुष्टि इन युगल कामवल्लभाओं का क्रमशः पूजन करके 'ॐ छं (ऐं) नित्यक्लिन्ने····मदद्रवे स्वाहा', यह नित्यक्लिन्ना विद्या है। सिंहासन पर आधारशक्ति तथा पद्म का पूजन करके उसके दलों में हृदय आदि अंगों की स्थापना एवं पूजन करने के बाद मध्यकर्णिका में देवी की पूजा करनी चाहिए। उसका मन्त्र यह है-ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा' ।।३४-३७।।

श्री अग्निमहापुराण में नानामन्त्र कथन नामक तीन सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१३।।

अध्याय ३१४

त्वरिता-ज्ञान कथन

अग्निदेव बोले-'ॐ ह्रीं····त्वरितायै नमः'-इस मन्त्र से अंगन्यास करके दो भुजाओंवाली अथवा आठ

---

१ एतस्मात्पुरतः-'हरीम्, ॐ ह्रीं नित्यशक्तिन्ने मदद्रवे स्वाहा' इत्यधिकं क. ख. पुस्तके। २ आधारशक्तिं····हृदादिषु नास्ति क. ख. ग. ङ. पुस्तकेषु। ३ ग. हरीं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्वरितां पूजयेन्न्यस्य द्विभुजां चाष्टबाहुकाम् । आधारशक्तिं पद्मं च सिंहे देवीहृदादिकम् ।।२।।
पूर्वादौ गायत्रीं यजेन्मण्डले वै प्रणीतया । [1]हुंकारां खेचरीं चण्डां छेदनीं क्षेपणीं स्त्रियाः ।।३।।
[2]हूंकारीं क्षेमकारीं च फट्कारीं मध्यतो यजेत् । जयां च विजयां द्वारि किंकरं च तदग्रतः ।।४।।
[3]तिलैर्होमश्च सर्वाप्त्यै नामव्याहृतिभिस्तथा । अनन्ताय नमः स्वाहा कुलिकाय नमः स्वाहा ।।५।।
स्वाहा वासुकिराजाय शङ्खपालाय वौषट् (?) । [4]तक्षकाय [5]वषण्नित्यं महापद्माय वै नमः ।।६।।
स्वाहा कर्कोटनागाय षट्पद्माय च वै नमः । लिखेन्निग्रहचक्रं तु एकाशीतिपदैर्नरः ।।७।।
वस्त्रे पदे तनौ[6] भूर्जे शिलायां यष्टिकासु च । मध्ये कोष्ठे साध्यनाम पूर्वादौ पट्टिकासु च ।।८।।
ॐ हूं क्षूं छन्द च्छन्द चतुरः कण्ठकां कालरात्रिकाम्[7] । [8]ऐशादावशुपादो[9] च यमराज्यं च बाह्यतः ।।९।।
[10]कराली नारवमालीकालीलमोक्षमोनली[11] । मामोदेतत्तदेमोना रक्षत स्व स्व भक्ष या[12] ।।१०।।
[13](पमयाटटयाटमोटमा मोटमा । मोमोद्गाभूचिरिभूपाटटवीश्वरीश्चाटट ।।११।।
यमराजाद्बाह्यतो रं तं तोयं मारणात्मकम् । [14]कज्जलं निम्बनिर्यासमज्जासृग्विषसंयुतम् ।।१२।।
[15]अङ्गारेण सभायुक्तं पिङ्गलाधारसंयुतम् । काकपक्षस्य लेखन्या श्मशाने वा चतुष्पथे ।।१३।।

भुजाओंवाली त्वरिता देवी की आधार शक्ति तथा अष्टदल कमल की तथा सिंहासन पर विराजित त्वरिता देवी की तथा उनके चारों तरफ हृदयादि अंगों की पूजा करनी चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं में मण्डल के ऊपर प्रणीता मुद्रा से गायत्री, हूंकारा, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षेपणी, हूंकारी तथा क्षेमकारी का यजन करना चाहिए। मध्य में फट्कारी की, द्वार पर जया, विजया की और उसके आगे किंकर की पूजा करनी चाहिए। नाम त्वरिता मन्त्र तथा (ॐ भूर्भुवः स्वः) व्याहृतियों का उच्चारण करके 'अनन्ताय नमः स्वाहा', 'कुलिकाय नमः स्वाहा', 'वासुकिराजाय स्वाहा', 'शङ्खपालाय' वौषट्, 'तक्षकाय' वषट्, 'महापद्माय नमः', 'कर्कोटनागाय स्वाहा', 'पद्माय नमः' मन्त्रों का पाठ करके तिल से आहुति देने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है ।।१-६$\frac{1}{2}$।। अब मन्त्रों का विधान बताया जा रहा है। वस्त्र, पद, शरीर, भोजपत्र, शिला और यष्टिका के ऊपर, 'ओं हूं क्षूं छन्द च्छन्द' इन चार बीजों को लिखे। फिर ईशान आदि कोणों में भीतर की ओर 'कालरात्रि मन्त्र' लिखे तथा बाहर की ओर यमराज मन्त्र का उल्लेख करे ।।७-९।। कराली नारवमालीकालीलमोक्षमोनली। मामोदेतत्तदेमोना रक्षत स्वस्वभक्ष या' यह कालरात्रि मन्त्र है और 'यमावाटटमवाय माटमोटटमोटमा। वामभूरिरिभूमावा टटरीत्वत्वरीटट' यह यमराज मन्त्र है। इस मन्त्र के बाह्यभाग में चारों ओर 'रं' बीज को लिखे फिर उस (रं) के नीचे 'यं' लिखे। इस प्रकार मारणात्मक निग्रह यन्त्र संपादित होता है। इसको काजल, नीम के गोंद, मज्जा, रक्त, विष, कोयले के चूर्ण से बनी हुई तथा लाल दावात में रखी हुई स्याही और काकपक्ष की बनी

---

१ ग. 'हूं छावां खे°। २ ग. हूंकारं। ३ ख. ग. °र्होमैश्च। ४ ग. य जपान्नित्यं। ५ ख. °षद् तुभ्यं म°। ६ क. ङ. धने। ७ क. ग. ङ. °म्। एशाः ८ ख. दावथ पाः। ९ क. ङ. °शुपदौ°। १० कराली···मोक्षमोनली इत्यत्र काली मारणमाली च काली त्रैलोक्यमोहनीति च. पुस्तके। ११ ग. °लगोक्ष°। १२ ख. °व°। १३ पमयाटट···निक्षिपेत् ग. पुस्तके नास्ति। १४ ख. तज्जलं। १५ 'अंगारेण···संयुतम्।' नास्ति ख. पुस्तके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निधापयेत्कुण्डाधस्ताद्वल्मीके वाऽथ निक्षिपेत्)। विभीतद्रुमशाखाधो यन्त्रं सर्वारिमर्दनम् ।।१४।।
लिखेच्चानुग्रहं चक्रं शुक्लपक्षेऽथ भूर्जके। लाक्षया कुङ्कुमेनाथ खटिकाचन्दनेन वा ।।१५।।
भुवि भित्तौ च पूर्वादि नाम मध्यमकोष्ठके। खण्डेन्दुवारिमध्यस्थमों जं सोवाऽपि घट्टिगम्[१] ।।१६।।
लक्ष्मी श्लोकं शिवादौ च [२]राक्षसादिक्रमाल्लिखेत्। श्रीः सा[३] मा[४] मा[५] मा[६] सा[७] श्रीः सा नौ[८]
या ज्ञे ज्ञेया[९] नौ सा ।।१७।।
माया लीला ला[१०] ली या[११] सा ज्ञेया[१२] नौ सा माया। लीला यत्र षडुक्ता बहिः शीघ्रां दिक्षु च कलशं वह्निः ।।१८।।
पद्मस्थं पद्मचक्रं च मृत्युजित्स्वर्गगं धृतिम्। शान्तीनां परमा शान्तिः सौभाग्यादिप्रदायकम् ।।१९।।
रुद्रे रुद्रसमाः कार्याः कोष्ठकास्तत्र तां लिखेत्। ॐ माद्यां हूं फडन्ता च आदिवर्णमथान्ततः ।।२०।।
विद्यावर्णक्रमेणैव संज्ञा[१३] च वषडन्तिकाम्। अधस्तात्प्रत्यङ्गिरैषा सर्वकामार्थसाधिका ।।२१।।
[१४](एकाशीतिपदे सर्वामादिवर्णक्रमेण तु। आदिमं यावदन्ते स्याद्वषडन्तं च नाम वै ।।२२।।
एषा प्रत्यङ्गिरा चान्या [१५]सर्वकार्यादिसाधनी[१६])। निग्रहानुग्रहं चक्रं चतुःषष्टिपदैर्लिखेत्[१७] ।।२३।।

हुई लेखनी से लिखना चाहिए। इस मन्त्र को श्मशान में, चौराहे पर गाड़ दे, कुण्ड अथवा गड्ढे में फेंक दे या बहेड़े के पेड़ के नीचे गाड़ देना चाहिए। इस प्रकार विधिवत् बनाया हुआ यन्त्र सभी शत्रुओं का नाशक होता है ।।१०-१४।। (अब अनुग्रह चक्र बतलाया जा रहा है) शुक्लपक्ष में भोजपत्र के ऊपर भूमि पर या दीवाल पर लाख, कुंकुम, खड़िया अथवा चन्दन से अनुग्रह चक्र बनाना चाहिए। चक्र के मध्य वृत्त में 'ॐ जं सोवाऽपि घट्टिगम्' मन्त्र लिखना चाहिए। पूर्व की ओर से गणना करने पर बायीं ओर के वृत्त में तथा उसकी परिधि के ऊपर और उसके पश्चिम की ओर भी यही मन्त्र लिखना चाहिए। चक्र के चारों ओर उसके दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम की ओर लक्ष्मी श्लोक पढ़ना चाहिए-'श्रीः सा मा या मा सा श्रीः सा नौ या ज्ञे ज्ञेया नौ सा। मा या ली ला ला ली या मा या ला ली ली ला या। उपर्युक्त पद्मचन्द्र का पूजन एक कमल के मध्य में होना चाहिए। यह चक्र मृत्यु को जीतनेवाला, स्वर्ग ले जानेवाला और धैर्य को देनेवाला है। यही शक्तियों में परमाशान्ति है। और सौभाग्यादि को प्रदान करनेवाला है ।।१५-१९।। भीतिदायक यन्त्रों में यन्त्र को एक सौ ग्यारह कोष्ठकों में विभाजित करना चाहिए। इस चक्र के दोनों किनारे के कोष्ठकों में 'ॐ' से आदि होनेवाले और 'हूं फट्' पर समाप्त होनेवाले बीजमन्त्र को लिखना चाहिए और आदि के वर्णों को (कोष्ठकों) के बीच में लिख देना चाहिए। उपर्युक्त मन्त्रों के नीचे 'वषट्' बीज से समाप्त होनेवाले मन्त्र वर्णों को लिखना चाहिए। यह 'प्रत्यङ्गिरा विद्या' कहलाती है। यह सभी कामनाओं की पूर्ति करानेवाली हुआ करती है। इक्यासी कोष्ठवाले चक्र में आदि से ही वर्णक्रम के अनुसार सम्पूर्ण चक्रों में त्वरिता विद्या के अक्षर लिखे। शेष कोष्ठकों में साध्य का नाम तथा उसके अन्त में 'वषट्' लिखे। यह दूसरी 'प्रत्यङ्गिरा' विद्या है। जो समस्त कार्य आदि की सिद्धि करनेवाली है। चौंसठ कोष्ठ के पद में निग्रहानुग्रह चक्रों को बनाना चाहिए ।।२०-२३।। अमृतिविद्या

---

१ क. ङ. यद्दिशम्। २ क. ङ. च. रक्षरादि। ३ ग. स। ४ ग. मो। ५ ख. या। ६ ख. या। ७ ख. मा। ८ क. ङ. तौ। ९ ग. ज्ञेयां। १० क. ना। ११ क. ङ. या। १२ क. ख. °या लानोलालीसानायाज्ञेवषडंताब°। १३ क. संज्ञा संज्ञा च मध्यमम्। १४ 'एकाशीतिपदे-सर्वकार्यादिसाधनी' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। १५ क. ङ. °कामार्थसा°। १६ ग. °र्यार्थसा°। १७ क. ङ. °पदे लिखे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अमृती सा विद्या[1] चक्रं सः ह्रींनामाथ मध्यतः । फट्काराद्याऽन्यत्रगतां त्रिह्रींकारेण वेष्टयेत् ।।२४।।
कुम्भवद्धारिता सर्वशत्रुहृत्सर्वदायिका । विषं नश्येत्कर्णजपादक्षराद्यैश्च दण्डकैः ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामन्त्रकथनं नाम चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१४।।

अथ पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्तम्भनादिमन्त्राः

अग्निरुवाच

स्तम्भनं मोहनं वश्यं विद्वेषोच्चाटनं वदे । विषव्याधिमरोगं च मारणं [2]शमनं पुनः ।।१।।
भूर्जे कूर्मं समालिख्य[3] ताडनेन षडङ्गुलम् । मुखपादचतुष्केषु[4] ततो मन्त्रं न्यसेद्द्विजः ।।२।।
चतुष्पादेषु क्रींकारं [5]ह्रींकारं मुखमध्यतः । गर्भे विद्यां ततो लिख्य साधकं पृष्ठतो लिखेत् ।।३।।
मालामन्त्रैस्तु [6]संवेष्ट्य इष्टकोपरि संन्यसेत् । पिधाय कूर्मपृष्ठेन करालेनाभिसंपठेत्[7] ।।४।।

नामक इस चक्र में 'क्रीं सः–हुं फट्' मन्त्र को 'ह्रूं' बीजमन्त्रों से तीन बार आवेष्टित कर देना चाहिए। कलश के ऊपर इस चक्र को रखकर मन्त्र का पाठ करने से साधक के सभी शत्रुओं का नाश हो जाता है, और सभी अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है। सर्प से दष्ट अथवा विष के चिह्नों को प्रकट करनेवाले व्यक्ति के कान में इस मन्त्र का जप करने से तथा मन्त्राक्षरों से अंकित दण्ड से शरीर को छूने से सम्पूर्ण विष नष्ट हो जाता है ।।२४–२५।।

श्री अग्निमहापुराण में त्वरितामन्त्र–कथन नामक तीन सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१४।।

अध्याय ३१५

स्तम्भनादिमन्त्र–कथन

अग्निदेव बोले–अब मैं स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, विद्वेषण और उच्चाटन करनेवाले मन्त्रों को बतला रहा हूँ। साथ ही उन मन्त्रों को भी बताऊँगा जो विष, व्याधि और रोगों को दूर करनेवाले तथा (शत्रुओं का) वध और शमन करानेवाले हैं। ताड़ की कलम से भोजपत्र के ऊपर कछुये का छह अंगुल लम्बा चित्र बनाना चाहिए। तदनन्तर उसके अन्दर की ओर के विभिन्न कोष्ठकों में उसके मुँह तथा चारों पैरों में न्यास–क्रिया के अनन्तर द्विज को मन्त्रों को लिखना चाहिए ।।१–२।। उस (कच्छप) के पादप–प्रदेश में बने हुए चतुष्क में 'क्रींकार' मन्त्रों तथा मुख–प्रदेश में 'ह्रींकार' को लिखना चाहिए। उस (कच्छप) के उत्तर प्रदेश में त्वरिता विद्या तथा उसकी पीठ पर शत्रु अथवा उस व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए जिसके विरुद्ध अभिचार किया जा रहा हो। इस चित्र को मालामन्त्रों से आवेष्टित करके एक ईंट के ऊपर रख देना चाहिए। तदनन्तर सम्पूर्ण चित्र को ढककर अभिचार के अनुकूल करालमन्त्रों का पाठ करना चाहिए ।।३–४।। इसके

---

१ क. ङ. च. द्या वज्र° सं ह्रीं। २ क. ख. पासनं। ३ क. ख. च. ताडकेन। ४ क. ङ. ष्के तु त°। ५ ख. ह्रांकारं। ६ क. ख. संन्यस्य। ७ क. ख. ङ. °भिवेष्टयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महाकूर्मं पूजयित्वा पादप्रोक्षं तु निक्षिपेत्। ताडयेद्वामपादेन स्मृत्वा [1]शत्रुं च सप्तधा ।।५।।
ततः संजायते शत्रोः स्तम्भनं मुखरागतः। [2]कृत्वा तु भैरवं रूपं मालामन्त्रं समालिखेत् ।।६।।
ॐ शत्रुमुखस्तम्भनी [3]कामरूपा[4] आलीडिर्करीम्। ह्रीं फं फत्कारिणी मम शत्रूणां देवदत्तानां मुखं
स्तम्भय [5]स्तम्भय ([6]मम सर्वविद्वेषिणां मुखस्तम्भनं कुरु कुरु, ॐ हूं फं फत्कारिणी स्वाहा ।।७।।
पटहेतुं समालिख्य तज्जपन्तं महाबलम्। वामेनैव नगं शूलं संलिखेद्दक्षिणे करे ।।८।।
लिखेन्मन्त्रमघोरस्य संग्रामे स्तम्भयेदरीन् ।।९।।
ॐ नमो भगवत्यै [7]भगमालिनि [8]निर स्फुर[9] निर स्फुर स्पन्द स्पन्द दित्यक्लिन्ने द्रव द्रव)
([10]हूं सः ह्रींकाराक्षरे स्वाहा ।।१०।।
एतेन रोचनाद्यैस्तु [11]तिलकान्मोहयेज्जगत् ।।११।।
ॐ फं हूं फटफटत्कारिणी ह्रीं ज्वल ज्वल) त्रैलोक्यं मोहय मोहय। ॐ गुह्यकालिके स्वाहा ।।१२।।
अनेन तिलकं कृत्वा राजादीनां वशीकरम्। गर्दभस्य रजो गृह्य कुसुमं मृतकस्य[12] च ।।१३।।
नारीरजः क्षिपेद्रात्रौ शय्यादौ द्वेषकृद्भवेत्। गोखुरं च तथा शृङ्गमश्वस्य च खुरं तथा ।।१४।।
शिरः सर्पस्य संक्षिप्तं गृहेषूच्चाटनं भवेत्। [13]करवीरशिफा पीता संसिद्धार्था च मारणे ।।१५।।

बाद महाकूर्म (के चित्र) का पूजन करके उसके ऊपर अपने पैरों को धोने के लिए लाये गये जल को छिड़ककर शत्रु का स्मरण करते हुए बायें पैर से सात बार प्रहार करना चाहिए। ऐसा करने से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है और उसकी सारी बुद्धि नष्ट हो जाती है। साधक को अपना मुँह रँगकर भैरव रूप बनाकर इस प्रकार मालामन्त्र का उल्लेख करना चाहिए–'ॐ शत्रुमुखस्तम्भनी····फं फत्कारिणी स्वाहा।' इसके बाद फट् और हेतु (प्रयोग का उद्देश्य) लिखकर उक्त मन्त्र का जप करते हुए उस महाबली भैरव के बायें हाथ में पर्वत और दाहिने हाथ में शूल बनाना चाहिए। अघोर मन्त्र का उल्लेख करने से संग्राम में शत्रुओं का स्तम्भन कर दिया जाता है ।।५–९।। 'ॐ नमो भगवत्यै····ह्रींकाराक्षरे स्वाहा।' इस मन्त्र को पढ़कर गोरोचन आदि से तिलक लगाने से जगत् मोहित होता है। 'ॐ फं हूं····गुह्यकालिके स्वाहा' इस मन्त्र से तिलक करके मनुष्य राजा आदि को भी अपने वश में कर लेता है ।।१०–१२।। गदहे के बैठने के स्थान की धूलि, शव के ऊपर चढ़ा हुआ फूल और स्त्री के रज को एक में मिलाकर (उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके) किसी की शय्या के ऊपर डालने से उसमें द्वेष उत्पन्न कर देता है। गाय के खुर और सींग को, घोड़े के खुर को तथा सर्प के सिर को (उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके) किसी के घर में फेंकने से उच्चाटन हो जाता है। करवीर के पीले पुष्प की शिफा (जड़) को उपर्युक्त रीति से अभिमन्त्रित करके किसी के ऊपर प्रयोग करने से उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार सर्प और छछुन्दर का रक्त और करवीर के फूलों का

---

१ क. ङ. °त्रु त्रीस°। २ क. ङ. नत्वा। ३ ख. ग. कामरं। ४ क. ङ. °रूपायनी निकरी ह्रीं हरें फट्कारि°। ५ स्तम्भयेति पदं नास्ति ख. ग. च. पुस्तकेषु। ६ मम····द्रव द्रव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ ख. ग. मालिन्यै। ८ च. वि। ९ ग. च. स्पुर। १० हूं सः····ज्वल ज्वल च. पुस्तके नास्ति। ११ ख. °लकैर्मोह°। १२ ख. रजकस्य। १३ ख. ग. °शिखा पी°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यालच्छुच्छुन्दरीरक्तं करवीरं तदर्थकृत् । सरटं षट्पदं चापि तथा कर्कटवृश्चिकम् ।।
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तैले तदभ्यङ्गं च कुष्ठकृत् ।।१६।।
ॐ नवग्रहाय सर्वशत्रून्मम साधय साधय मारय मारय, आं सों[1] मं बुं[2] चुं शुं शं शं को अं स्वाहा ।।१७।।
अनेनार्कशतैरर्च्य श्मशाने तु निधापयेत् । भूर्जे वा प्रतिमायां वा मारणाय रिपोर्ग्रहाः ।।१८।।
ॐ कुञ्जरी ब्रह्माणी, ॐ मञ्जरी माहेश्वरी, ॐ वैताली कौमारी, ॐ काली वैष्णवी, ॐ घोरा वाराही, ॐ बेतालीन्द्राणी, ॐ उर्वशी चामुण्डा, ॐ वेताली चण्डिका, ॐ जयाली यक्षिणी, नव मातरो हे मम शत्रुं गृह्णत, गृह्णत, भूर्जे नाम रिपोर्लिख्य श्मशाने पूजिते म्रियेत् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्तम्भनादिमन्त्रकथनं नाम पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१५।।

अथ षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच

आदौ हुंकारसंयुक्ता [3]खेचच्छेपदभूषिता । वर्गातीतविसर्गेण स्त्रीहूं [4]क्षेपफडन्तिका ।।१।।
[5]सर्वकर्मकरी विद्या विषसर्वादिमर्दनी । ([6]हूंकरच्छेति प्रयोगश्च कालदष्टस्य जीवने ।।२।।
ॐ हूं [7]केक्षः प्रयोगोऽयं विषदष्टप्रमर्दनः) । स्त्रीं हूं फडिति योगोऽयं पापरोगादिकं जयेत्[8] ।।३।।

प्रयोग करने से भी वैसा ही फल होता है। गिरगिट, भ्रमर, केकड़ा और बिच्छू को पीसकर तेल में मिलाकर शरीर में लगाने से कुष्ठ हो जाता है ।।१३-१६।। 'ॐ नवग्रहाय····अं स्वाहा' इस मन्त्र के द्वारा श्मशान में मन्दार के सौ फूलों से ग्रहों का पूजन करना चाहिए। ग्रहों का चित्र या तो भूर्जपत्र के ऊपर बनाना चाहिए या उनकी प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार पूजन करने से निश्चय ही ग्रहों के द्वारा शत्रु का नाश होता है। 'ॐ कुञ्जरी ब्रह्माणी····गृह्णत, गृह्णत' भोजपत्र के ऊपर शत्रु का नाम लिखकर इस मन्त्र से श्मशान में पूजा करने पर निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।।१७-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में स्तम्भनादिमन्त्र-कथन नामक तीन सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१५।।

अध्याय ३१६

नाना मन्त्र-वर्णन

अग्निदेव बोले-हुंकार से युक्त तथा हुं खी क्षं स्त्रीं हुं क्षी फट् आदि मन्त्र सभी कामनाओं की सिद्धि करनेवाला तथा विष और सर्प इत्यादि का नाशक होता है। 'हूं करच्छ' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग काल (रूप सर्प) से काटे हुए व्यक्ति को जीवित करनेवाला होता है। इसी प्रकार 'ॐ हूं केक्षः' मन्त्र का प्रयोग विष तथा दंशनात्मक हुआ करता है। 'स्त्रीं हूं फट्' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग शत्रु और दष्ट आदि का निवारण करनेवाला होता है ।।१-३।।

---

१ ख. सौं। २ ग. मं वुं शुं स फैं स्वा°। ३ ख. °चक्षैप°। ४ क. ङ. °क्षेक्षेफ°। ५ ख. ग. °र्वकारीसर्वहरीविषसंघादि°। ६ ''हूंकरच्छेति····विषदष्टप्रमर्दनः'' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ ग. कक्षः। ८ ख. ग. °त्। खेती च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]खेचेति च प्रयोगोऽयं रिपुदुष्टादि वारयेत्। [2]हूं [3]स्त्रीभूमिति योगोऽयं योषिदादिवशीकरः ।।४।।
खे स्त्रीं खे च प्रयोगोऽयं कालदष्टरिपुं जयेत्। क्षः स्त्री क्षः संप्रयोगोऽयं वशाय विजयाय च ।।५।।
ऐं ह्रीं श्रीं[4] स्फ्रयै स्फ्रयै भगवति ([5]अम्बिके[6]। कुब्जिके। स्फ्रयें स्फं स्फम्, ऊम् उम, उ रण
नमो घोरामुखि च्छां छीं किणि किणि विच्छ्रस्फों ह्रें श्रीं ह्रीम्। ऐं श्रीमति कुब्जिकाविद्या सर्वकरा)
स्मृता ।।६।।
भूयः स्कन्दाय यानाह मन्त्रानीशश्च तान्वदे ।।७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१६।।

अथ सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सकलादिमन्त्रोद्धारः

ईश्वर रुवाच

सकलं निष्कलं शून्यं कलाद्यं [7]स्वमलंकृतम्। [8]क्षपणं क्षयमन्तस्थं कठोष्ठं चाष्टमं शिवम् ।।१।।
[9]प्रासादस्य पराख्यस्य स्मृतरूपं गुहाष्टधा। सदाशिवस्य[10] शब्दस्य रूपस्याखिलसिद्धये ।।२।।

'खे च' इस मन्त्र का प्रयोग शत्रु और दुष्टों का निवारण करता है। 'हूं स्त्रीभूम्' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग स्त्रियों आदि को वश में करनेवाला है। 'खे स्त्रीं खे च' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग मृत्यु (सर्प) दंश और शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त कराता है। 'क्षः स्त्री क्षः' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग वशीकरण तथा विजयकारक माना गया है। 'ऐं ह्रीं···ऐं श्रीमति' यह कुब्जिका विद्या है जो सब-कुछ देनेवाली कही गयी है ।।४-६।। अब मैं उन मन्त्रों को बतलाऊँगा जिन्हें भगवान् शंकर ने स्कन्द को बतलाया था ।।७।।

श्री अग्निमहापुराण में नानामन्त्र-कथन नामक तीन सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१६।।

अध्याय ३१७

सकलादिमन्त्रोद्धार

महेश्वर बोले—अये गुह! प्रसाद नामक शिवमन्त्र आठ प्रकार का होता है—सकल, निष्कल, शून्य, स्वमलङ्कृत, क्षपण, क्षय, अन्तःस्थ और कठोष्ठ। सदा शिव शब्द में जितने अक्षर हैं वे सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं ।।१-२।। इस

---

१ 'खेचेति····वारयेत्' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः। २ क. ङ. हूं स्त्रीं हूं हूमि°। ३ क. ङ. स्त्रीं हूं हूमि°। ४ ख. ग. श्रीं स्कै क्षैं स्प्यैं भ°। छ. श्रीं स्फें कैं क्षौं भ°। ५ 'अम्बिके····सर्वकरा' ख. पुस्तके नास्ति। क. ङ. आम्ब। ६ ग. °के। रक्रां स्त्र स्कूं ॐ नडं रणनमे अरां अखि छं शं छी किल किल बिछे छज्मोप्त्रु श्रं श्रैं श्रीं। छ. °के स्फेम्, ओं भं तं वश नमो अघोराय मुखे व्रा° व्रीं किलि किलि विच्चा स्फौं हें स्फं फौं ह्रीं मैं श्रीमिति कु°। ७ च. °लंहतम्। ८ क. ङ. क्षमणं। ९ क. ङ. च. प्रसादस्य। १० क. ङ. च. °स्य सच्छन्दरू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अमृतश्चांशुमांश्चेन्द्रश्चेश्वरश्चोग्र ऊहकः । एकपादैल ओजाख्य ओषधश्चांशुमान्वशी[1] ।।३।।
अकारादेर्वाचकाश्च ककारादेः क्रमादिमे । कामदेवः शिखण्डी च गणेशः कालशंकरौ ।।४।।
एकनेत्रो द्विनेत्रश्च त्रिशिखो दीर्घबाहुकः । एकपादर्धचन्द्रश्च बलपो योगिनीप्रियः ।।५।।
शक्तीश्वरो महाग्रन्थिस्तर्पकः स्थाणुदन्तुरौ । [2]निधीशो नन्दिपद्मश्च तथाऽन्यः शाकिनीप्रियः ।।६।।
मुखबिम्बो भीषणश्च कृतान्तः प्राणसंज्ञकः । तेजस्वी शक्र उदधिः श्रीकण्ठः सिंह एव च ।।७।।
शशाङ्को [3]विश्वरूपश्च क्षश्च स्यान्नरसिंहकः । सूर्यमात्रासमाक्रान्तं विश्वरूपं तु कारयेत्[4] ।।८।।
अंशुमत्संयुतं कृत्वा शशिबीजं [5]विनायुतम् । ईशानमोजसाऽऽक्रान्तं प्रथमं तु समुद्धरेत् ।।९।।
[6]तृतीयं पुरुषं विद्धि दक्षिणं पञ्चमं तथा । सप्तमं वामदेवं तु सद्योजातं ततः परम् ।।१०।।
रसयुक्तं तु नवमं ब्रह्मपञ्चकमीरितम् । ओंकाराद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्वमन्त्रकाः ।।११।।
सद्योदेवा द्वितीयं तु [7]हृदयं चाङ्गसंयुतम् । चतुर्थं तु शिरो विद्धि ईश्वरं नाम नामतः ।।१२।।
([8]उहकर्णशिखा ज्ञेया विश्वरूपसमन्विता । तन्मन्त्रमष्टसंख्यातं नेत्रं तु दशमं मतम्) ।।१३।।
अस्त्रं शशी समाख्यातं शिवसंज्ञं शिखिध्वजः । नमः स्वाहा तथा वौषड् हूं च षट्क्रमेण तु ।।१४।।

मन्त्र के साथ जो न्यास किया जाता है उसमें 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सभी वर्णों के चित्रों की कल्पना शरीर के विभिन्न अंगों में की जाती है। साथ ही शिव के विभिन्न रूपों की भी कल्पना की जाती है जो उनके प्रतिनिधि देवता हैं। वे रूप हैं–कामदेव, शिखण्डी, गणेश, काल, शंकर, एकनेत्र, द्विनेत्र, त्रिशिख, दीर्घबाहुक, एकपाद, अर्धचन्द्र, बलप, योगिनीप्रिय, शक्तीश्वर, महाग्रन्थि, तर्पक, स्थाणुदन्तुर, निधीश, नन्दि, पद्म, शाकिनीप्रिय, मुखबिम्ब, भीषण, कृतान्त, प्राण, तेजस्वी, शक्र, उदधि, श्रीकण्ठ, सिंह, शशांक, विश्वरूप, क्ष और नरसिंहक ।।३-७$\frac{1}{2}$।। विश्वरूप (ठ) को अंशुमान् (अनुस्वार) तथा ओज (ओकार) से युक्त करके रखा जाय, उसमें शशि बीज (स) का योग न किया जाय तो 'हों'। यह प्रथम बीज उद्धृत होता है, जो ईशान से सम्बद्ध है। तदनन्तर पञ्चमूर्ति न्यास करना चाहिए जिसका विधान इस प्रकार है–मेरे मस्तिष्क में निवास करनेवाले ईशान को नमस्कार, हें तत्पुरुषाय नमः, हुं मेरे हृदय में निवास करनेवाले अघोर को नमस्कार है, हें मेरी भुजाओं में रहनेवाले वामदेव को नमस्कार, हं मेरे पैरों में रहनेवाले सद्योजात को नमस्कार। प्रणव से प्रारम्भ करके चतुर्थी विभक्ति में देवता का नाम लेकर अन्त में 'नमः' कहकर सभी मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ।।८-११।। इसी प्रकार 'ॐ हं सद्योजाताय नमः'। यह सद्योजात देवता का मन्त्र है। द्वितीय, चतुर्थ आदि मात्राएँ दीर्घ हैं, अतः उनका हृदयादि अंगों में न्यास किया जाता है। द्वितीय बीज को बोलकर हृदय में और अङ्गमन्त्र (नमः) बोलकर भी हृदय में न्यास करे। यथा–'हां हृदयाय नमः, हृदि।' चतुर्थ बीज 'शिरोमन्त्र' है जो हकार में ईश्वर तथा अंशुमान् (ं) जोड़ने के सम्पन्न होता है। यथा–'ह्रीं शिरसे स्वाहा, शिरसि।' विश्वरूप (ह) में ऊहक (ऊ) तथा अनुस्वार जोड़ने पर छठा बीज हं बनता है। उसे शिखामन्त्र जानना चाहिए। यथा–'हूं शिखायै वषट्, शिखायाम् हुम् ।' अर्थात् कवच का मन्त्र आठवाँ बीज (हैं) है। यथा–'हैं कवचाय हुम्-बाहुमूलयोः।' दसवाँ

---

१ क. ङ. च. °माञ्शशी। २ क. ङ. °शोऽनन्तप°। ३ ख. °श्च क्षुश्व°। ४ क. ङ. °त्। अङ्गम°। ५ क. ङ. °नासुत°। ६ ख. ग. द्वितीयं। ७ क. छ. °यं चांशसं। ८ उहकर्णशिखा.....मतम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जातिषट्कं हृदादीनां प्रासादं मन्त्रमावदे । ईशानाद्रुद्रसंख्यातं प्रोद्धरेच्चांशुरञ्जितम् ।।१५।।
औषधाक्रान्तशिरसमूहकस्योपरि स्थितम् । अर्धचन्द्रोर्ध्वनादश्च बिन्दुद्वितयमध्यगम् ।।१६।।
तदन्ते विश्वरूपं तु कुटिलं तु त्रिधा ततः । एवं प्रासादमन्त्रश्च सर्वकर्मकरो मनुः ।।१७।।
शिखाबीजं समुद्धृत्य फट्कारान्तं तु चैव फट् । अर्धचन्द्रासनं ज्ञेयं कामदेवससर्पकम् ।।१८।।
महापाशुपतास्त्रं तु सर्वदुष्टप्रमर्दनम् । प्रासादः सकलः प्रोक्तो निष्कलः प्रोच्यतेऽधुना ।।१९।।
सौषधं विश्वरूपं तु रुद्राख्यं सूर्यमण्डलम् । चन्द्रार्धनादसंयोगं [1]विसङ्गं कुटिलं ततः ।।२०।।
निष्कलो भुक्तिमुक्तौ स्यात्पञ्चाङ्गोऽयं सदाशिवः । [2]अंशुमान्विश्वरूपं च आवृतं शून्यरञ्जितम् ।।२१।।
ब्रह्माङ्गरहितः शून्यस्तस्य मूर्तिरसस्तरुः[3] । विघ्ननाशाय भवति पूजितो [4]बालबालशैः ।।२२।।
अंशुमान्विश्वरूपाख्यमूषकस्योपरि स्थितम् । कलाद्यं सकलस्यैव पूजाङ्गादि च सर्वदा ।।२३।।
नरसिंहं कृतान्तस्थं तेजस्वी प्राणमूर्ध्वगम्[5] । अंशुमानूहकाक्रान्तमधोर्ध्वं स्वमलंकृतम् ।।२४।।
चन्द्रार्धनादनादान्तं ब्रह्मविष्णुविभूषितम् । उदधिं नरसिंहं च सूर्यमात्राविभेदितम् ।।२५।।

बीज 'हौं' नेत्रमन्त्र कहा गया है। यथा–'हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, नेत्रयोः।' अस्त्र-मन्त्र वशी (विसर्गयुक्त) है। शिखिध्वज! इसे शिव संज्ञक माना गया है। यथा–'हिः अस्त्राय फट्।' (इससे चारों ओर तर्जनी और अङ्गुष्ठ द्वारा ताली बजाये।) हृदयादि अंगों की छह जातियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं–नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् तथा फट्। अब मैं 'प्रासादमन्त्र' बताता हूँ। 'हीं हौं हूं' ये प्रासादमन्त्र के तीन बीज हैं। इसे 'कुटिल' संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार यह प्रासादमन्त्र समस्त कार्यों को सिद्ध करनेवाला है ।।१२-१७।। 'शिखा' नामक बीजमन्त्र अर्धचन्द्र के चिह्न से युक्त होकर तथा 'फट्कार' से समाप्त होकर शिव के पाशुपतास्त्र से कम शक्तिशाली नहीं होते हैं। वे सभी दुष्टों का मर्दन करनेवाले भी हुआ करते हैं। यहाँ तक मैं सकल नामक प्रसाद मन्त्रों के सम्बन्ध में बतला चुका हूँ। अब निष्कल के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ। निष्कल अथवा पञ्चाङ्ग-मन्त्र नामक शिवमन्त्र औषध, विश्वरूप, रुद्र, सूर्य, अर्धचन्द्र आदि बीजों और (ॐ नामक) नाद मन्त्र से युक्त रहते हैं। इस मन्त्र का जप करने से मनुष्य इस लोक में भी सभी सुखों तथा परलोक में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शून्य नामक मन्त्र अंशुमान् नामक बीजों से युक्त रहते हैं। और उनके पूर्व और परे विश्वरूप नामक बीज रहा करते हैं। किन्तु ब्रह्माङ्ग नामक मन्त्रों से रहित होते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग साधारणतया बालकों तथा मूर्खों द्वारा किया जाता है जिससे उनके ज्ञानार्जन के सभी विघ्न समाप्त हो जाते हैं ।।१८-२२।। 'कलाद्य' नामक मन्त्र में अंशुमान् नामक बीज होता है। उसमें 'विश्वरूपम्' और 'ऊहक' नामक बीज भी रहा करते हैं। पूजन के सभी संस्कारों को उसी विधि से करना चाहिए जो विधि सकल मन्त्रों से पूजन के लिए बतायी गयी है। स्वमलङ्कृत नामक मन्त्रों में नरसिंह और कृतान्त नामक बीज होते हैं। इन मन्त्रों के बाद में अंशुमान तथा ऊहक वर्ग का एक मन्त्र भी आता है। इस मन्त्र से सम्बद्ध न्यास में जिन मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है उसमें अर्धचन्द्र, प्रणव, ब्रह्मा,

---

१ क. ङ. निःसङ्गं। २ अंशुमान्विश्वरूपमित्यत्र, अङ्गुलानि स्वरूपश्च सोऽमृतं शून्यसञ्जितम्' इति क. ङ. पुस्तकयोः।
३ ख. ग. °रसंभरम्। वि। ४ छ. बालाबालिशैः। ५ क. ग. ङ. च. °मूर्धगं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदा कृतं तदा तस्य ब्रह्माण्यङ्गानि पूर्ववत् । ओजाख्यमंशुमद्युक्तं प्रथमं वर्णमुद्धरेत् ।।२६।।
अंशुमच्चांशुनाऽऽक्रान्तं द्वितीयं वर्णनायकम् । अंशुमानीश्वरं तद्वत्तृतीयं मुक्तिदायकम् ।।२७।।
ऊहकश्चांशुनाऽऽक्रान्तं वरुणं प्राणतैजसम् । पञ्चमं तु समाख्यातं कृतान्तं तु ततः परम् ।।२८।।
अंशुमानुदकप्राणः सप्तमं वर्णमुद्धृतम् । पद्ममिन्दुसमाक्रान्तं नन्दीशमेकपादधृक् ।।२९।।
[1]प्रथमं चान्ततो योज्यं क्षपणं दशबीजकम् । अस्याऽऽद्यं च तृतीयं च पञ्चमं सप्तमं तथा ।।३०।।
सद्योजातं तु नवमं द्वितीयं हृदयादिकम् । दश तु प्रणवं यत्तु फडन्तं चास्त्रमुद्धरेत् ।।३१।।
[2]नमस्कारयुतान्यत्र ब्रह्माङ्गानि (णि) [3]तु नान्यथा । द्वितीयादष्टमं यावदष्टौ विद्येश्वरा मताः ।।३२।।
अनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च तृतीयश्च शिवोत्तमः । [4]एकमूर्त्यैकरूपस्तु [5]त्रिमूर्तिरपरस्तथा ।।३३।।
[6]श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च अष्टौ विद्येश्वराः स्मृताः । शिखण्डिनोऽप्यनन्तान्तं मन्त्रान्तं मूर्तिरीरिता ।।३४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सकलादिमन्त्रोद्धारवर्णनं नाम
सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१७।।

विष्णु, उदधि और नरसिंह बीज रहते हैं। शेष सभी कर्म पूर्ववत् किये जाते हैं। पहले ओज नामक बीजमन्त्र को अंशुमत् नामक बीज के साथ संयुक्त करना चाहिए तदनन्तर अंशुमत् नामक बीजमन्त्र को अंशु नामक बीजमन्त्र से युक्त करना चाहिए ।।२३-२६$\frac{1}{2}$।। तीसरा बीज अंशुमान् और ईश्वर शब्दों से बनता है। इस प्रकार से बना हुआ मन्त्र साधक को मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अगला मन्त्र इस प्रकार से बनता है कि पहले ऊहक नामक प्रथम बीज को लिखना चाहिए। उसके साथ ही अंशुबीज और फिर क्रमशः वरुण, प्राग्, तेजस और कृतान्त बीज लिखना चाहिए। सातवें वर्ण में अंशुमान्, ऊहक, प्राण, पद्म, इन्दु और नन्दीश बीज रहते हैं जिनके बाद में एकपादधृक् बीज रहता है। क्षपण नामक मन्त्रों में आदि से दस बीज रहते हैं। मन्त्र के तृतीय, पञ्चम और सप्तम पादों में क्रमशः इनके आधे-आधे अर्थात् पाँच बीज रहते हैं। नवें पाद में सद्योजात देवता का बीज रहता है और दूसरे पाद में हृदयादि मन्त्र रहते हैं। उपर्युक्त दस बीजों से युक्त फट् से अन्त होता है। इस मन्त्र को अस्त्र मन्त्र कहते हैं ।।२७-३१।। उपर्युक्त मन्त्रों से सम्बद्ध अङ्गन्यास में अनन्त, ईश, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकमूर्ति, एकरूप या त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी नामक आठ विघ्नेश्वरों के नामों के साथ 'नमः' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शिखण्डी से लेकर अनन्त तक की मूर्तियाँ इस मन्त्र की मूर्तियाँ कही गयी हैं ।।३२-३४।।

श्री अग्निमहापुराण में सकलादिमन्त्रोद्धार वर्णन नामक तीन सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१७।।

---

१ ख. °मं वा ततो। २ क. ङ. °रमुदाहृत्य ब्र°। ३ क. ङ. तु वाऽन्य°। ४ क. ङ. च. °करुद्रस्तु। ५ क. ङ. °था। शिखण्डश्च। ६ ख. ग. श्रीखण्डश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गणपूजा

ईश्वर रुवाच

विश्वरूपं समुद्धृत्य तेजस्युपरि संस्थितम्। नरसिंहं ततोऽधस्तात्कृतान्तस्तदधो न्यसेत् ।।१।।
प्रणवं तदधः कृत्वा [1]ऊरुकं तदधः पुनः। अंशुमान्विश्वमूर्तिस्थं कण्ठोष्ठे प्रणवादिकः ।।२।।
नमोन्तः स्याच्चतुर्वर्णो विश्वरूपं च कारणम्। सूर्यमात्राहतं ब्रह्मण्यङ्गानीह तु पूर्ववत् ।।३।।
[2]उद्धरेत्प्रणवं पूर्वं प्रस्फुरद्वयमुच्चरेत्। घोरघोरतरं पश्चादनुरूपमतः स्मरेत् ।।४।।
[3]चटशब्दं द्विधा कृत्वा ततः [4]प्रणवमुच्चरेत्। दहेति च द्विधा कार्यं [5]धमेति च द्विधा मतम् ।।५।।
घातमेति द्विधा कृत्वा हूंफडन्तं समुच्चरेत्। अघोरास्त्रं तु नेत्रं स्याद्गायत्री चोच्यतेऽधुना ।।६।।
तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि। [6]तन्नः शिवः प्रचोदयाद्गायत्री सर्वसाधनी ।।७।।
यात्रायां विजयादौ च यजेत्पूर्वं गणं श्रिये। [7]तुर्यास्त्रे तु पुरा क्षेत्रे समन्तादर्कभाजिते ।।८।।
चतुष्पदं त्रिकोणे तु त्रिदलं कमलं लिखेत्। तत्पृष्ठे पदिकावीथिभागि त्रिदलमश्वयुक् ।।९।।
वसुदेवसुतैः साब्जैस्त्रिदलैः पादपट्टिका। तदूर्ध्वे वेदिका देया भागमात्रप्रमाणतः ।।१०।।

अध्याय ३१८

गणपूजा

महेश्वर बोले–पहले विश्वरूप बीज को तेजस् बीज के ऊपर रखना चाहिए। उसके नीचे नरसिंह बीज, उसके नीचे प्रणव मन्त्र, उसके नीचे ऊहक बीज, उसके नीचे अंशुमान् बीज और उसके नीचे हकार तथा प्रणव को रखना चाहिए। प्रथम चार वर्णों के अन्त में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए और पूर्वोक्त रीति से ब्रह्माङ्गों की रचना करनी चाहिए ।।१-३।। पहले प्रणव बीज को अलग करके तदनन्तर उसके घोर घोरतर रूप का स्मरण करना चाहिए। पहले 'चट' शब्द को दो भागों में करके प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। इसी प्रकार 'दह', 'धम' और घातम शब्दों को भी दो-दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए। और उसके बाद में 'हूं' तथा 'फट्' का उच्चारण करना चाहिए। यह अघोर मन्त्र कहलाता है। अब मैं (उसी देवता से सम्बद्ध) गायत्री के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। 'तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्–यह गायत्री सब-कुछ प्रदान करनेवाली है ।।४-७।। यात्रा और विजयादि (कार्यों में) श्री प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम बारह कोष्ठकों से बने हुए चक्र के पूर्व की ओर उसके चतुर्थांश में 'गण' का यजन करना चाहिए। चतुष्पद चक्र के बीच में एक त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर त्रिदल कमल का चित्रण करना चाहिए। उसके पृष्ठ के ऊपर पदिका भाग में सात त्रिदल कमलों का चित्रण करना चाहिए। उसके ऊपर भागमात्र प्रमाण की वेदिका बनानी चाहिए ।।८-१०।।

---

१ ख. ग. उदकं। च. ऊहूकं। २ क. ङ. °णवात्पूर्वं स्फुरद्वयममु°। ३ क. ङ. बहुशब्दं। ४ ग. प्रवरमु°। ५ छ. वमेति। ६ क. ङ. तन्नो रुद्रः प्र°। ७ क. ङ. तुर्यास्त्रे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वारं पद्ममितं काष्ठादुपद्वारं विवर्णितम् । द्वारोपद्वाररचितं मण्डलं विघ्नसूदनम् ।।११।।
आरक्तं कमलं मध्ये बाह्यपद्मानि तद्बहिः । सिता तु वीथिका कार्या द्वाराणि तु यथेच्छया ।।१२।।
कर्णिका पीतवर्णा स्यात्केशराणि तथा पुनः । मण्डलं विघ्नमर्दाख्यं मध्ये गणपतिं यजेत् ।।१३।।
नामाद्यं सवराकं स्याद्देवाच्छक्रसमन्वितम् । शिरोहतं तत्पुरुषेण[1] उमाद्यं च नमोन्तकम् ।।१४।।
गजाख्यं गजशीर्षं च गाङ्गेयं गणनायकम् । त्रिरावर्तं गगनगं गोपतिं पूर्वपङ्क्तिगम् ।।१५।।
विचित्रांशं महाकायं लम्बोष्ठं लम्बकर्णकम् । लम्बोदरं महाभागं विकृतं पार्वतीप्रियम् ।।१६।।
भयावहं च भद्रं च भगणं भयसूदनम् । द्वादशैते दशपङ्क्तौ देवत्रासं च पश्चिमे ।।१७।।
महानादं भासुरं च विघ्नराजं गणाधिपम् । उद्भटस्वनशुण्डौ च महाशुण्डं च भीमकम् ।।१८।।
मन्मथं मधुसूदं च [2]सुन्दरं भावमुष्टकम् । सौम्ये ब्रह्मेश्वरं ब्राह्मं मनोवृत्तिं च संलयम् ।।१९।।
लयं [3]नृत्यप्रियं लौल्यं विकर्णं वत्सलं तथा । कृतान्तं कालदण्डं च यजेत्कुम्भं च पूर्ववत् ।।२०।।
अयुतं च जपेन्मन्त्रं होमयेत्तु दशांशतः । शेषाणां तु दशाहुत्या जपाद्धोमं तु कारयेत् ।।२१।।
पूर्णां दत्त्वाऽभिषेकं तु कुर्यात्सर्वं तु सिध्यति । भूगोश्वगजवस्त्राद्यैर्गुरुपूजां चरेन्नरः ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपूजादि-विधानकथनं नामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३१८।।

इस प्रकार बने हुए मण्डल में कमल के समान द्वार तथा उपद्वार (खिड़की) का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार से बनाया गया मण्डल सभी विघ्नों का नाश करनेवाला होता है। मध्यवर्ती कमल रक्तवर्ण का होना चाहिए जिसके बाहर अन्य कमल रहते हैं, वीथिका श्वेत वर्ण की होती है किन्तु द्वारों को इच्छानुसार वर्णों का बनाया जा सकता है। कमल की कर्णिका तथा पराग पीला होना चाहिए। इसे 'विघ्नमर्द' नामक मण्डल कहते हैं। इसके बीच में गणपति का यजन करना चाहिए ।।११-१३।। तदनन्तर इन्द्र इत्यादि देवताओं के नामों के आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' लगाकर उनकी पूजा करनी चाहिए। मण्डल की पूर्व पंक्ति में गज, गजशीर्ष, गांगेय, गणनायक, त्रिरावर्त, गगनग और गोपति नामक देवताओं का पूजन करना चाहिए। मण्डल की दस पंक्तियों में जिन बारह देवताओं का यजन करना चाहिए उनके नाम हैं–विचित्रांश, महाकाय, लम्बोष्ठ, लम्बकर्णक, लम्बोदर, महाभाग, विकृत, पार्वतीप्रिय, भयावह, भद्र, भगण और भयसूदन। (मण्डल के) पश्चिम की ओर देवत्रास नामक देवता की पूजा करनी चाहिए ।।१४-१७।। इसके बाद क्रमशः महानाद, भासुर, विघ्नराज, गणाधिप, उद्भट, स्वनशुण्ड, महाशुण्ड, भीमक, मन्मथ, मधुसूदन, सुन्दर और भावमुष्टक नामक देवताओं की अर्चना करनी चाहिए। उत्तर की ओर पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मेश्वर, ब्राह्म, मनोवृत्ति, संलय, लय, नृत्यप्रिय, लौल्य, विकर्ण, वत्सल, कृतान्त, कालदण्ड और कुम्भ का यजन करना चाहिए। देवता के मन्त्र का दस हजार बार जप करना चाहिए और उसके दशांश (अर्थात् एक हजार मन्त्रों) से हवन करना चाहिए। पूर्णाहुति देकर अभिषेक करने से सब-कुछ सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर पृथ्वी, गौ, अश्व, गज और वस्त्रादि से गुरु-पूजन करना चाहिए ।।१८-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में गणपूजादि-विधान कथन नामक तीन सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।३१८।।

---

१ क. ङ. °ण गण्डमाद्यं वमो°। २ ख. ग. °रं तारपुष्ट°। ३ ख. ग. भृत्यप्रिय°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

वागीश्वरीपूजा

ईश्वर रुवाच

वागीश्वरीपूजनं च प्रवदामि समण्डलम्। ईश्वरं कालसंयुक्तं मनुं वर्णसमायुतम् ।।१।।
निषाद ईश्वरं कार्यं मनुना चन्द्रसूर्यवत्। अक्षरं न हि देयं स्याद्ध्यायेत्कुन्देन्दुसंनिभाम् ।।२।।
पञ्चाशद्वर्णमालां तु मुक्तास्रग्दामभूषिताम्। वरदाभयाक्षसूत्रपुस्तकाढ्यां त्रिलोचनाम् ।।३।।
लक्षं जपेन्मन्त्रकांस्तु[1] कादान्तं वर्णमालिकाम्। अकारादिक्षकारान्तां [2]विशन्तीं मालवत्स्मरेत् ।।४।।
कुर्याद्गुरुश्च दीक्षार्थं मन्त्रग्राहे तु मण्डलम्। तुर्याग्रमिन्दुभक्तं तु भागाभ्यां कमलं हितम् ।।५।।
वीथिका पदिका कार्या पद्मान्यष्टौ चतुष्पदे। वीथिका पट्टिका बाह्ये द्वाराणि द्विपदानि तु ।।६।।
उपद्वाराणि तद्वच्च कोणबाह्यं द्विपट्टिकम्। सितानि नवपद्मानि कर्णिका कनकप्रभा ।।७।।
केशराणि विचित्राणि कोणान्रक्तेन पूरयेत्। व्योमरेखान्तरं कृष्णं द्वाराणीन्द्रेभमानतः ।।८।।
मध्ये सरस्वतीं पद्मे वागीशी पूर्वपद्मके। हल्लेखा चित्रवागीशी गायत्री विश्वरूपया ।।९।।

अध्याय ३१९

वागीश्वरीपूजा

ईश्वर बोले–अब मैं मण्डल के सहित वागीश्वरी–पूजन का वर्णन करूँगा, साथ ही कालयुक्त ईश्वर और वर्णों से युक्त मन्त्र का भी वर्णन करूँगा। अये निषाद! चन्द्र और सूर्य के समान मन्त्र से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए किन्तु उस मन्त्र के किसी भी अक्षर को छोड़ना नहीं चाहिए। (वागीश्वरी) देवी का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि वह कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान कान्तिवाली है, वर्णमाला के पचास अक्षरों से समन्वित है, मोतियों की माला की लड़ी से विभूषित है, वर और अभय प्रदान करनेवाली है, रुद्राक्ष, यज्ञोपवीत और पुस्तकों से सुशोभित हो रही है, और तीन नेत्रोंवाली है। 'क' से प्रारम्भ कर वर्णमाला के अन्तिम अक्षर से बने हुए मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए। अकार से लेकर क्षकार तक वर्णों में निवास करनेवाली (वागीश्वरी) देवी का स्मरण माला के समान करना चाहिए। दीक्षा के लिए मन्त्र लेने में गुरु को एक मण्डल का निर्माण करना चाहिए। मण्डल में एक वर्ग के ऊपर दो भागों से युक्त कमल रहना चाहिए ।।१–५।। वर्ग के अन्दर वीथिका, पदिका और आठ पद्मों का निर्माण करना चाहिए। बाहर की ओर भी वीथिका, पट्टिका, द्वार, द्विपदों का निर्माण करना चाहिए। उसी प्रकार से बाह्यकोण में द्विपट्टिका और उपद्वारों (खिड़कियों) का चित्रण करना चाहिए। नवकमल श्वेतवर्ण और कर्णिका सुनहरी होती है। इसी प्रकार केशर को नाना प्रकार के रंगों से और कोणों को रक्तवर्ण से रँगना चाहिए। व्योम रेखा के अतिरिक्त अन्य सभी रेखाएँ कृष्णवर्ण की और द्वारों को ऐरावत के मान के अनुसार या श्वेत होना चाहिए। मध्य पद्म पर सरस्वती और पूर्व की ओर के पद्म के ऊपर वागीश्वरी देवी का चित्रण करना चाहिए ।।६–८$\frac{1}{2}$।। इनके अतिरिक्त हल्लेखा,

---

१ ग. °न्मस्तकान्तु एकमाद्यं। २ क. ङ. °न्तीं मणिव°। छ. °न्तीं मातृव°।

CC-0. Jammu Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]शांकरी मतिर्धृतिश्च पूर्वाद्या ह्रीं स्वबीजकाः। [2]ध्येया सरस्वतीवच्च कपिलान्येन होमकः ।।१०।।
संस्कृतप्राकृतकविः काव्यशास्त्रादिविद्भवेत् ।।११।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वागीश्वरीपूजाविधानकथनं नामैकोनविंशत्यधिकत्रिशतमोऽध्यायः ।।३१९।।

अथ विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

मण्डलानि

ईश्वर उवाच

सर्वतोभद्रकान्यष्ट मण्डलानि वदे गुह[3]। शङ्कुना साधयेत्प्राचीमिष्टायां विषुवे सुधीः ।।१।।
चित्रास्वात्यन्तरेणाथ दृष्टसूत्रेण वा पुनः। पूर्वापरायतं सूत्रमास्फाल्य मध्यतोऽङ्कयेत् ।।२।।
कोटिद्वयं तु तन्मध्यादङ्कयेद्दक्षिणोत्तरम्। [4]मत्स्यद्वयं प्रकर्तव्यं स्फालयेद्दक्षिणोत्तरम्[5] ।।३।।
शतक्षेत्रार्धमानेन कोणसंपातमादिशेत्। एवं सूत्रचतुष्कस्य स्फालनाच्चतुरस्त्रकम् ।।४।।

चित्रवागीश्वरी, गायत्री, विश्वरूपा, शांकरी, मति और धृति का भी पूजन करना चाहिए। उनके (पूजन के मन्त्रों में) 'ह्रीं' बीज का प्रयोग करके सरस्वती के समान उनका भी ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर कपिला गाय के आज्य से हवन करना चाहिए। ऐसा करने से साधक संस्कृत और प्राकृत का कवि हो जाता है तथा काव्यशास्त्रादि का ज्ञाता भी हो जाता है ।।९-१०।।

श्री अग्निमहापुराण में वागीश्वरी पूजा-विधान-कथन नामक तीन सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३१९।।

अध्याय ३२०

मण्डल-कथन

महेश्वर बोले-अये गुह! अब मैं सर्वतोभद्र नामक आठ मण्डलों का वर्णन कर रहा हूँ। विद्वान् साधक को इष्ट समय में अथवा जब सूर्य विषुवत् रेखा पर हो, पूर्व दिशा में शङ्कु से (इस मण्डल की) साधना करनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए चित्रा और स्वाती नक्षत्रों को वर्जित समझा जाता है। इसके लिए एक सूत्र का प्रयोग किया जाता है। पहले सूत्र को पूर्व और पश्चिम की ओर फैलाकर उसके बीच में चिह्न बना देना चाहिए ।।१-२।। उसके बीच से उत्तर और दक्षिण की ओर दो अन्य रेखाएँ अङ्कित कर दी जानी चाहिए। वहीं पर दो मछलियों को बनाकर उन्हें उत्तर और दक्षिण की ओर रख देना चाहिए। पचास क्षेत्रों के परिमाण के बराबर कोण-सम्पात का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार से बने चौखट में चार कोण बन जाते हैं ।।३-४।। इस प्रकार से सभी शुभ कर्मों को करनेवाला

---

१ ग. शाकम्बरी। २ क. ङ. °मात्सर°। ३ क. ङ. च. गृहे। ४ क. ङ. च. वात्स्यद्वयं। ५ क. ङ. °म्। क्षात°। ख. ग. °म्। गत°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जायते तत्र कर्तव्यं भद्रं वेदकरं शुभम् । वसुभक्तेन्दुद्विपदे क्षेत्रे वीथी च भागिका ।।५।।
द्वारं द्विपदिकं पद्ममानाद्वै सकपोलकम् । कोणबन्धविचित्रं तु द्विपदं तत्र [1]वर्तयेत् ।।६।।
शुक्लं पद्मं कर्णिका तु पीता चित्रं तु केसरम् । रक्ता वीथी तत्र कल्प्या द्वारं लोकेशरूपकम् ।।७।।
[2]रक्तकोणं विधौ नित्ये नैमित्तिकेऽब्जकं शृणु । असंसक्तं तु संसक्तं द्विधाऽब्जं भुक्तिमुक्तिकृत् ।।८।।
असंसक्तं मुमूक्षूणां संसक्तं तत्त्रिधा पृथक् । बालो युवा च वृद्धश्च नामतः फलसिद्धिदाः ।।९।।
पद्मक्षेत्रे तु [3]सूत्राणि दिग्विदिक्षु विनिक्षिपेत् । वृत्तानि पञ्चकल्पानि पद्मक्षेत्रसमानि तु ।।१०।।
प्रथमे कर्णिका तत्र पुष्करैर्नवभिर्युता । केसराणि चतुर्विंशद्वितीयेऽथ तृतीयके ।।११।।
दलसंधिर्गजकुम्भनिभान्तर्यद्दलाग्रकम् । पञ्चमे व्योमरूपं तु संसक्तं कमलं स्मृतम् ।।१२।
असंसक्ते दलाग्रे तु दिग्भागैर्विस्तराद्भजेत्[4] । भागद्वयपरित्यागाद्वस्त्वंशैर्वर्तयेद्दलम् ।।१३।।
संधिविस्तारसूत्रेण [5]तन्मानान्नाञ्जयेद्दलम्[6] । सव्यासव्यक्रमेणैव [7]वर्धयेत्तद्भवेत्तथा ।।१४।।
अथ वा संधिमध्यात्तु भ्रामयेदर्धचन्द्रवत् । संधिद्वयाग्रसूत्रं वा बालपद्मं तदा भवेत् ।।१५।।

सर्वतोभद्र बन जाता है। इस चक्र की वीथियाँ मण्डल की बाह्य सीमा से दूर पर बनी हुई दो रेखाओं तक विस्तृत रहती हैं। यह मण्डल सम्पूर्ण क्षेत्र के अनुपात से दो पद स्थान में बना रहता है। इस चक्र के ऊपर बना हुआ कमल, शुक्ल, उसकी कर्णिका पीत और उसके केसर विभिन्न रंगों में होते हैं। वहाँ पर जो वीथी बनायी जाती है उसे काल और उसके द्वार को लोकेश (विष्णु) के रूप का (श्याम वर्ण) होना चाहिए ।।५-७।। नित्य और नैमित्तिक दोनों विधियों में मण्डल का कोण रक्तवर्ण हुआ करता है। अब (मध्यवर्ती) कमल के सम्बन्ध में सुनिये। यह कमल दो प्रकार का होता है–असंसक्त (जिसके दल मण्डल का स्पर्श कर रहे हों) और संसक्त (जिसके दल मण्डल का स्पर्श न कर रहे हों)। ये दोनों कमल भोग और मोक्ष को देनेवाले होते हैं। मुमुक्षुओं के लिए अंससक्त और बाल, युवा, वृद्ध इन तीन प्रकार के साधकों के लिए संसक्त कमल का विधान है। ये सभी कमल अपने नाम से ही फल और सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं ।।८-९।। पद्मक्षेत्र में दिशाओं और अवान्तर दिशाओं में सूत्रों को फैला देना चाहिए। तदनन्तर पद्मक्षेत्र के समान पाँच वृत्तों का निर्माण करना चाहिए ।।१०।। प्रथम पद्मक्षेत्र की कर्णिका नवपुष्करों से युक्त होती है और दूसरे तथा तीसरे पद्मक्षेत्र में चौबीस-चौबीस केसर हुआ करते हैं। संसक्त कमल उसे कहते हैं जो पञ्चम क्षेत्र में बना हुआ और विस्तृत रहता है तथा जिसमें दलों की सन्धि गजकुम्भ के समान दलाग्र के बीच में रहा करती है। असंसक्त कमल में दलाग्र दिशाओं में फैले हुए रहते हैं। दो भागों को छोड़कर (अन्य) वस्तुओं के अंशों से दल को संयुक्त कर दिया जाता है। सन्धि विस्तार सूत्र से कमल के दल को आवेष्टित कर देना चाहिए। किन्तु उसका अभ्यञ्जन नहीं करना चाहिए। बायीं ओर और दक्षिण ओर से परिक्रमा करने से वह (मण्डल) और बढ़ जाता है। अथवा उसके बीच से चारों ओर एक अर्धवृत्त बना देना चाहिए अथवा दो संधियों के अग्रवर्ती सूत्र को अधिवृत्त बना देना चाहिए। इस प्रकार से बना हुआ पद्म बालपद्म कहलाता है ।।११-१५।। सन्धि सूत्र के अर्ध

---

१ क. ङ. नर्तयेत्। २ ख. ग. रक्तकोशं। ३ ख. ग. सूक्ष्माणि। ४ क. ख. ग. °द्भवेत्। ५ ख. °न्मात्रात्क्षालये°। ६ ग. च. °येत्कुल°। ७ क. ङ. च. °व वृद्धये सद्भ°।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संधिसूत्रार्धमानेन पृष्ठतः परिवर्तयेत् । तीक्ष्णाग्रं तन्तुवातेन कमलं भुक्तिमुक्तिदम् ।।१६।।
मुक्तौ वृद्धं च वश्यादौ बालं पद्मं समानकम् । नवनाभं नवहस्तं भागैर्मन्त्रात्मकैश्च तत् ।।१७।।
मध्येऽब्जं पट्टिकावीथीद्वारेणाब्जस्य मानतः । कण्ठोपकण्ठमुक्तानि तद्बाह्ये वीथिका मता ।।१८।।
पञ्चभागान्विता सा तु समन्ताद्दशभागिका । दिग्विदिक्ष्वष्ट पद्मानि द्वारपद्मं सवीथिकम् ।।१९।।
तद्बाह्ये पञ्चपदिका वीथिका यत्र भूषिता । पद्मवद्द्वारकण्ठस्तु पदिकं चाष्टकण्ठकम् ।।२०।।
कपोलं पदिकं कार्यं विक्षुद्वारत्रयं स्फुटम् । [1]कोणबन्धं त्रिपट्टं तु द्विपदं वज्रवद्भवेत् ।।२१।।
मध्यं तु कमलं शुक्लं पीतं रक्तं च नीलकम् । पीतं शुक्लं च धूम्रं च रक्तं पीतं च मुक्तिदम् ।।२२।।
पूर्वादौ कमलान्यष्ट शिवविष्ण्वादिकं यजेत् । प्रासादमध्यतोऽभ्यर्च्य शक्रादीनब्जकादिषु ।।२३।।
अस्त्राणि बाह्यवीथ्यां तु विष्ण्वादीनश्वमेधभाक् । पवित्रारोहणादौ च महामण्डलमालिखेत् ।।२४।।
अष्टहस्तं पुरा क्षेत्रं रसपक्षैर्विवर्तयेत् । द्विपदं कमलं मध्ये वीथिका पदिका ततः ।।२५।।
दिग्विदिक्षु ततोऽष्टौ च नीलाब्जानि विवर्तयेत् । मध्यपद्मप्रमाणेन विंशत्पद्मानि तानि तु ।।२६।।
दलसंधिविहीनानि नीलेन्दीवरकाणि च । तत्पृष्ठे पदिका वीथी ([2]स्वस्तिकानि तदूर्ध्वतः ।।२७।।

परिमाण से पीछे की ओर घूम जाना चाहिए। तीक्ष्ण अग्रभागवाला कमल भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। मुक्ति प्राप्ति के लिए वृद्ध कमल तथा वशीकरण आदि के लिए बालपद्म उपयुक्त होता है। 'नवनाभ' कमलचक्र नौ हाथों का होता है और इसके भाग मन्त्र के रूप में रहा करते हैं। कमल के बीच में कमल के परिमाण के अनुसार पट्टिका, वीथी और द्वार रहा करते हैं साथ ही कण्ठ, उपकण्ठ और उसके बाहर वीथिका रहा करती है ।।१६-१८।। उसके पाँच और दस भाग हुआ करते हैं। दिशाओं और अन्तर्दिशाओं में आठ कमल रहते हैं। द्वार पद्म वीथी से युक्त हुआ करता है। उसके बाहर जहाँ पञ्चपदिका वीथिका सुशोभित होती है वहाँ पद्म के समान द्वार-कण्ठ तथा अष्ट कण्ठक पदिक बनाया जाता है। (विभिन्न) दिशाओं में तीन द्वारों से युक्त एक पदिक का निर्माण करना चाहिए। त्रिपट्ट कोणयुक्त और द्विपद वज्रवत् होना चाहिए ।।१९-२१।। मध्य कमल शुक्लवर्ण का होता है तथा शेष दिशाओं के कमल पूर्वादिक्रम से पीत, रक्त, नील, पीत, शुक्ल, धूम्र, रक्त तथा पीतवर्ण के होते हैं। यह कमलचक्र मुक्तिदायक है। पूर्वादि दिशाओं में आठ कमलों तथा शिव और विष्णु आदि का यजन करना चाहिए। प्रासाद के बीच से अर्चना करके पद्म आदि में इन्द्रादि का यजन करनेवाला अश्वमेध का भागी होता है। पवित्रारोहण आदि (संस्कारों) के समय महामण्डल (नामक चक्र) का निर्माण करना चाहिए ।।२२-२४।। आठ हाथ लम्बी भूमि को बारह चौकोर भागों में विभक्त करना चाहिए। उसके बीच में बनाये जानेवाले कमल सम्पूर्ण चित्र के दो पदों के बराबर होने चाहिए और वीथिका को एक पद परिमाण का होना चाहिए। आठों दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओं में आठ नील कमलों की रचना करनी चाहिए। मध्यवर्ती कमल के परिमाण में अन्य बीस कमलों का निर्माण करना चाहिए। इनमें जो नील कमल होते हैं उन्हें दल की सन्धियों से रहित चित्रित करना चाहिए। उनके ऊपर स्वस्तिक की रचना करनी चाहिए ।।२५-२७।।

---

१ क. ङ. °बन्धे त्रिषादं तु त्रिप°। २ 'स्वस्तिकानि''''पीतवीथी' क. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विपदानि तथा चाष्टौ कृतभागकृतानि तु । वर्तयेत्स्वस्तिकांस्तत्र वीथिका पूर्ववद्बहिः ।।२८।।
द्वाराणि कमलं यद्वदुपकण्ठयुतानि तु । रक्तं कोणं पीतवीथी) नीलं पद्मं च मण्डले ।।२९।।
स्वस्तिकादि विचित्रं च सर्वकामप्रदं गुह । पञ्चाब्जं पञ्चहस्तं स्यात्समन्ताद्दशभाजितम् ।।३०।।
द्विपदं कमलं वीथी पट्टिका दिक्षु पङ्कजम् । चतुष्कं पृष्ठतो वीथी पदिका द्विपदाऽन्यथा ।।३१।।
कण्ठोपकण्ठयुक्तानि द्वाराण्यब्जं तु मध्यतः । पञ्चाब्जमण्डले ह्यस्मिन्सितं पीतं च पूर्ववत् ।।३२।।
वैडू(दू)र्याभं दक्षिणाब्जं कुन्दाभं वारुणं कजम् । उत्तराब्जं तु शङ्खाभमन्यत्सर्वं विचित्रकम् ।।३३।।
सर्वकामप्रदं वक्ष्ये दशहस्तं तु मण्डलम् । विकारभक्तं तुर्यास्त्रं द्वारं तु द्विपदं भवेत् ।।३४।।
मध्ये पद्मं पूर्ववच्च विघ्नध्वंसं वदाम्यथ । चतुर्हस्तं पुरं कृत्वा वृत्तं चैव करद्वयम् ।।३५।।
वीथिका हस्तमात्रा तु स्वस्तिकैर्बहुभिर्वृता । हस्तमात्राणि द्वाराणि दिक्षु वृत्तं सपद्मकम् ।।३६।।
पद्मानि पञ्च शुक्लानि मध्ये पूज्यश्च निष्कलः । हृदयादीनि पूर्वादौ विदिक्ष्वस्त्राणि वै यजेत् ।।३७।।
[1]प्राग्वच्च पञ्च पद्मानि बुद्ध्याधारमतो वदे । शतभागे [2]तिथिभागे पद्मं लिंगाष्टकं दिशि ।।३८।।
मेखलाभागसंयुक्तं कण्ठं द्विपदिकं भवेत् । आचार्यो बुद्धिमाश्रित्य कल्पयेच्च लतादिकम् ।।३९।।

वहाँ आठ भागों में विभक्त द्विपदों का निर्माण करके स्वस्तिक की रचना करनी चाहिए और बाहर की ओर पहले के समान वीथिका बना दी जाती है। कमल के समान द्वारों को भी उपकण्ठयुक्त होना चाहिए। इस मण्डल में कोण वीथी पीली और पद्म नील वर्ण का होता है। हे गुह! यह स्वस्तिकादि (मण्डल) विचित्र और सब-कुछ देनेवाला होता है। पञ्चाब्ज (नामक मण्डल) पाँच हाथ विस्तृत तथा चारों ओर के दस भागों में विभक्त रहता है ।।२८-३०।। द्विपद कमल में पट्टिका, वीथी तथा चतुष्क पद्म में पदिका वीथी अन्यथा (सर्वत्र) द्विपदा वीथी हुआ करती है। (इस मण्डल के) द्वार कण्ठोपकण्ठ युक्त होते हैं। बीच में कमल बना रहता है। इस पञ्चाब्ज मण्डल में पूर्व की ओर का कमल श्वेत और पीत, दक्षिण की ओर का कमल वैदूर्य के समान, पश्चिम की ओर का कमल कुन्द के समान, उत्तर की ओर का कमल शंख के समान और अन्य कमल विचित्र वर्ण का होता है ।।३१-३३।। अब मैं दस हाथवाले उस मण्डल के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जो सभी इच्छाओं को पूरा करनेवाला है। उसमें एक चतुष्कोण आकार बनाया जाता है जो समान भागों में विभक्त रहता है। इस मण्डल के द्वार सम्पूर्ण क्षेत्र के दो पदों में विस्तृत रहा करते हैं। अब मैं विघ्नध्वंस नामक पक्ष (मण्डल) के सम्बन्ध में बता रहा हूँ। यह चार हाथ विस्तृत होता है और उसके बीच में एक-दो हाथ का मण्डल बना रहता है। उसकी वीथिका एक हाथ की रहती है और यह बहुत से स्वस्तिक चिह्नों से आवृत रहता है ।।३४-३६।। बीच में पाँच श्वेत कमल बने होते हैं और इसमें निष्कल की पूजा की जाती है। पूर्वादि दिशाओं में हृदय इत्यादि तथा विदिशाओं में अस्त्रों का पूजन होता है और ब्रह्मा का पूजन पूर्वोक्त रीति से पाँचों में होता है। अब मैं बुध्याधार (मण्डल) बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण मण्डल को एक सौ इकतीस भागों में विभक्त करके प्रत्येक दिशा में कमल और आठ लिंग का पूजन होता है। मेखला भाग से युक्त कण्ठ दो पदों के बराबर होता है। आचार्य को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि के अनुसार लतादि का निर्माण करे ।।३७-३९।। चार, छह, पाँच और

---

१ क. ङ. °च्च मध्यब्रह्माणि मध्याधारम्। २ ख. तिथभागे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चतुः षट् [1]पञ्चमाष्टादि खाछिखाग्न्यादि मण्डलम् । [2]खाक्षीन्दुसूर्यगं सर्वं [3]खाछिवैवेन्दुवर्णनात् ।।४०।।
चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि हि । मण्डलानि हरेः शंभोर्देव्याः सूर्यस्य सन्ति च ।।४१।।
[4]दश सप्त विभक्ते तु लतालिङ्गोद्भवं शृणु । दिक्षु पञ्च त्रयं चैकं त्रयं पञ्च च लोपयेत् ।।४२।।
ऊर्ध्वगे द्विपदे लिङ्गं मन्दिरं पार्श्वकोष्ठयोः । मध्ये न[5] द्विपदं पद्ममथ चैकं च पङ्कजम् ।।४३।।
लिङ्गस्य पार्श्वयोर्भद्रे पदद्वारमलोपनात् । [6]तत्पार्श्वशोभाः षड्लोप्य लताः शेषास्तथा हरेः ।।४४।।
ऊर्ध्वं द्विपदिकं लोप्य[7] हरेर्भद्राष्टकं स्मृतम् । रश्मिमालासमायुक्तं [8]वेदलोपाच्च [9]शोभिकम् ।।४५।।
पञ्चविंशतिकं [10]पद्मं ततः पीठमपीठकम् । द्वयं द्वयं रक्षयित्वा उपशोभास्तथाऽष्ट च ।।४६।।
देव्यादिरव्यापकं भद्रं बृहन्मध्ये परं लघु । मध्ये नवपदं पद्मं [11]कोणे भद्रचतुष्टयम् ।।४७।।
त्रयोदशपदं शेषं बुद्ध्याधारस्तु मण्डलम् । [12]शतपत्रं षष्ट्यधिकं बुद्ध्याधारं हरादिषु ।।४८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलविधानकथनं नाम
विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२०।।

आठ आदि कमलों से युक्त मण्डल होता है। बीस-तीस आदि कमलोंवाला भी मण्डल होता है। बारह हजार एक सौ बीस कमलों से युक्त भी सम्पूर्ण मण्डल हुआ करता है। एक सौ बीस कमलों के मण्डल का भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है। श्रीहरि, शिव, देवी तथा सूर्यदेव के चौदह सौ चालीस मण्डल हैं। सत्रह पदों द्वारा सत्रह पदों का विभाग करने पर दो सौ नवासी पद होते हैं। उक्त पदों के मण्डल में लतालिङ्ग का उद्भव कैसे होता है, उसे सुनो। प्रत्येक दिशा में पाँच, तीन, एक, तीन और पाँच पदों को मिटा दे ।।४०-४२।। अब मुख से उस लतादि मण्डप का वर्णन सुनिये जो लिङ्गादि को विभूषित करता है। दिशाओं में पन्द्रह रेखाओं में से आठ रेखाओं को मिटा देना चाहिए। लिङ्ग मन्दिर मण्डल के ऊर्ध्व की ओर होता है जिसका परिमाण दो पद होता है। पार्श्व के कोष्ठकों के बीच में जो पद्म होता है वह द्विपद नहीं माना गया है। लतामण्डप की छह रेखाओं को पूर्वोक्त रीति से मिटाकर ऐसा मण्डल बनाना चाहिए जहाँ पर भगवान् विष्णु का पूजन हो सकता है। विष्णु के लिए भद्राष्टक बनाने में मण्डल के ऊपरी भाग को केवल दो पद ही मिटाना चाहिए। रश्मियों की माला को चार भागों में विभक्त करके शोभिक मण्डल बनता है ।।४३-४५।। इस मण्डल को सुशोभित करने के लिए भीतर, बाहर और देवपीठ पर पचीस कमलों को बनाना चाहिए। प्रत्येक ओर दो-दो कोष्ठ बनाकर आठ उपशोभाओं का निर्माण होता है। देवी इत्यादि के मण्डल के बीच में चार भद्रों का निर्माण किया जाता है। मध्य में नव पद पद्म और कोण में चार भद्रों की रचना होती है। शेष भाग तेरह पद का बताया गया है जिसमें एक सौ साठ कमल रहते हैं। शङ्कर इत्यादि देवताओं के निमित्त ही बुध्याधार मण्डल है ।।४६-४८।।

श्री अग्निमहापुराण में मण्डल-विधान-कथन नामक तीन सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२०।।

---

१ ख. ग. षाड् लक्षमष्टा°। २ क. ङ. खादीन्दुसूर्यगन्धर्व खाक्षिवै वेन्द्रव°। ३ छ. खाक्षिचैवे°। ४ क. ङ. °प्त च दिक्तेषु ल°। ५ क. ङ. न च पदं पद्ममथ चैकायदञ्जलिम्। लि°। ६ क. ङ. °र्श्वयोर्वार्यगोथल। ७ ख. ग. °प्यखेर्भ°। ८ क. ङ. °लोभाच्च। ९ क. ङ. शोभिका। ख. ग. शोभिकाम्। १० क. ङ. पीठ°। ११ क. ङ. °णे मध्यच°। १२ क. ङ. च. शतत्रयं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पः

ईश्वर रुवाच

[1]अस्त्रयागः पुरा कार्यः सर्वकर्मसु सिद्धिदः। मध्ये पूज्यं शिवाद्यस्त्रं वज्रादीन्पूर्वतः क्रमात् ।।१।।
पञ्चवक्त्रं दशकरं रणादौ पूजितं [2]जये। ([3]ग्रहपूजा रविर्मध्ये पूर्वाद्याः सोमकादयः ।।२।।
सर्व एकादशस्थास्तु ग्रहाः स्युर्ग्रहपूजनात्। अस्त्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वोत्पातविनाशिनीम्) ।।३।।
ग्रहरोगादिशमनी मारीशत्रुविमर्दनीम्)। विनायकोपतापघ्नीमघोरास्त्रं जपेन्नरः ।।४।।
लक्षं ग्रहादिनाशः स्यादुत्पातं तिलहोमतः। [4]दिव्ये लक्षं तदर्धेन व्योमजोत्पातनाशनम् ।।५।।
घृतेन लक्षपातेन उत्पाते भूमिजे हितम्। घृतगुग्गुलहोमे च सर्वोत्पातादिमर्दनम् ।।६।।
दूर्वाक्षताज्यहोमेन व्याधयोऽथ घृतेन च। सहस्रेण तु दुःस्वप्ना विनश्यन्ति न संशयः ।।७।।
अयुताद्ग्रहदोषघ्ने यवाद्घृतविमिश्रितात्। विनायकार्तिशमनमयुतेन घृतस्य च ।।८।।

अध्याय ३२१

अघोरास्त्रादिशान्ति

ईश्वर बोले–सभी कर्मों के पहले अस्त्रयाग करना चाहिए। यह याग सभी सिद्धियों को प्रदान करनेवाला होता है। मण्डल के बीच में शिव आदि के अस्त्र का तथा पूर्व की ओर से क्रमशः वज्र आदि का पूजन किया जाता है ।।१।। युद्ध आदि में विजय के लिए पाँच मुख औरे दस हाथोंवाले देवता का पूजन किया जाता है, इस अवसर पर नक्षत्रों की पूजा का विधान यह है कि मध्य में सूर्य तथा चन्द्रादि ग्रहों का पूजन पूर्वादि दिशाओं में किया जाता है। इस ग्रह-पूजन से सभी ग्रह अपने ग्यारहवें स्थान में आ जाते हैं। अब मैं सभी उत्पातों को नष्ट करनेवाली अस्त्रशान्ति के सम्बन्ध में बतलाऊँगा ।।२-३।। यह अस्त्रशान्ति अनिष्ट ग्रहों और रोग आदि (व्याधियों) को शान्त करनेवाली तथा महामारी और शत्रुनाशिनी है। विनायक के द्वारा उत्पन्न किये गये रोगों को नष्ट करनेवाले अघोरास्त्र का एक लाख जप करना चाहिए। इससे (अनिष्ट) ग्रह आदि का नाश हो जाता है और तिल का हवन करने से उत्पात शान्त हो जाता है। दैवी व्याधियाँ उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करने से नष्ट होती हैं किन्तु आकाश से उत्पन्न होनेवाले उत्पात उक्त मन्त्र के पचास हजार बार जप करने से नष्ट हो जाते हैं ।।४-५।। भूमि से उत्पन्न होनेवाले उत्पातों में घृत की एक लाख आहुतियाँ हितकारिणी होती हैं और घृत तथा गुग्गुल का हवन सभी उत्पातों का नाशक होता है। दूर्वा, अक्षत और आज्य के हवन से व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और घी की हजार आहुतियाँ देने से दुःस्वप्नों का विनाश हो जाता है, इसमें कुछ संशय नहीं है ।।६-७।। घृत मिश्रित जौ की दस हजार आहुतियों से विनायक

---

१ क. ङ. 'स्त्रयोगः। २ क. ङ. खयेत्। ३ 'ग्रहपूजा.....विमर्दनीम्' पुस्तके नास्ति। ४ क. ङ. दिव्यं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूतवेतालशान्तिस्तु [1]गुग्गुलैरयुतेन च। महावृक्षस्य भङ्गे तु [2]व्यालकङ्के गृहे स्थिते ।।९।।
अरण्यानां प्रवेशे[3] च दूर्वाज्याक्षतहावनात्[4]। उल्कापाते भूमिकम्पे [5]तिलाज्येनाऽऽहुताच्छिवम् ।।१०।।
[6]रक्तस्त्रावे तु वृक्षाणामयुताद्गुग्गुलोः शिवम्। अकाले फलपुष्पाणां राष्ट्रभङ्गे च मारणे ।।११।।
द्विपदादेर्यदा मारी लक्षार्धाच्च तिलाज्यतः। हस्तिमारीप्रशान्त्यर्थं करिणीदन्तवर्धने ।।१२।।
हस्तिन्यां मददृष्टौ च अयुताच्छान्तिरिष्यते। अकाले गर्भपाते तु जातं यत्र विनश्यति ।।१३।।
विकृता यत्र जायन्ते यात्राकालेऽयुतं हुनेत्[7]। [8]तिलाज्यलक्षहोमस्तु उत्तमा (मः) सिद्धिसाधने ।।१४।।
मध्यमायां तदर्धेन[9] तत्पादादधमासु च। यथा जपस्तथा होमः संग्रामे विजयो भवेत् ।।१५।।
अघोरास्त्रं जपेन्न्यस्य ध्यात्वा पञ्चास्यमूर्जितम् ।।१६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽघोरास्त्रादिशान्तिविधानकथनं
नामैकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२१।।

के द्वारा उत्पन्न विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। भूत-बेताल की शान्ति के लिए गुग्गुल की दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। महावृक्ष के भंग होने पर वन प्रदेश में दूर्वा, आज्य और अक्षत की आहुतियाँ देनी चाहिए। उल्कापात और भूकम्प में तिल और आज्य के हवन से कल्याण होता है ।।८-१०।। रक्तस्राव तथा वृक्षों के उत्पातों में गुग्गुल की दस हजार आहुतियाँ कल्याणकारिणी होती हैं। असमय में वृक्षों में फल और फूल आने पर, राष्ट्रभङ्ग होने पर और महामारी तिल और आज्य की पचास आहुतियों से शान्त होती है। हाथियों की महामारी, हथिनियों का दन्तवर्धन और हथिनियों में मद दृष्टिगत होने पर ऐसी दस हजार आहुतियों से शान्ति होती है। असमय में गर्भपात होने पर उत्पन्न शिशु की मृत्यु हो जाने पर अथवा असमय में विकृत स्नान के उत्पन्न होने पर भी ऐसी दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। तिल और आज्य की एक लाख आहुतियाँ सभी सिद्धियों के लिए पचास हजार तथा नीच जनों के लिए पचीस हजार आहुतियाँ ही सभी सिद्धियों को प्रदान करती हैं। युद्ध में विजयप्राप्ति के लिए जप और आहुतियों की संख्या समान होती है। अघोरास्त्र मन्त्र का जप अंगन्यास करके तथा पञ्चमुख मूर्ति का ध्यान करके करना चाहिए ।।११-१६।।

श्री अग्निमहापुराण में अघोरास्त्रादिशान्ति-विधान-कथन नामक
तीन सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२१।।

---

१ क. ङ. °गुलेनायु°। २ क. ङ. °लकाके गृ°। ३ क. ङ. प्रदेशे। ४ क. ङ. °र्वाज्यघृतहोमवान्। उ°। ५ क. ङ. लाज्यहवनाच्छि°। ६ 'रक्तस्त्रावे''''शिवम्' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ७ क. ङ. यजेत्। ८ क. ङ. °लाष्टल°। ९ ख. ग. °न उत्पा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पाशुपतशान्तिः

ईश्वर रुवाच

वक्ष्ये पाशुपतास्त्रेण शान्तिजापादि पूर्वतः। पादतः पूर्वनाशो हि फडन्तं चाऽऽपदादिनुत् ।।१।।
ॐ नमो भगवते महापाशुपतायातुलबलवीर्यपराक्रमाय [1]त्रिपञ्चनयनाय नानारूपाय नाना प्रहरणोद्यताय सर्वाङ्गरक्ताय भिन्नाञ्जनचयप्रख्याय श्मशानवेतालप्रियाय सर्वविघ्ननिकृन्तनरताय सर्वसिद्धिप्रदाय भक्तानुकम्पिनेऽसंख्यवक्त्रभुजपादाय तस्मिन्सिद्धाय वेतालवित्रासिने शाकिनीक्षोभजनकाय व्याधिनिग्रहकारिणे ([2]पापभञ्जनाय सूर्यसोमाग्निनेत्राय विष्णुकवचाय खड्गवज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वलज्जिह्वाय सर्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे) दुष्टनागक्षयकारिणे, ॐ कृष्णपिङ्गलाय फट्, क्रूराय फट्, वज्रहस्ताय फट्, शक्तये फट्, दण्डाय फट्, ([3]यमाय फट्, खड्गाय फट्, नैर्ऋताय फट्, वरुणाय फट्, वज्राय फट्, पाशाय फट्, ध्वजाय फट्, अङ्कुशाय फट्, गदायै फट्, कुबेराय फट्, त्रिशूलाय फट्,) मुद्गराय फट्, चक्राय फट्, पद्माय फट्, नागास्त्राय फट्, ईशानाय फट्, खेटकास्त्राय फट्, मुण्डाय फट्, मुण्डास्त्राय फट्, कङ्कालास्त्राय फट्, पिच्छिकस्त्राय फट्, क्षुरिकास्त्राय फट्, ब्रह्मास्त्राय फट्, शक्त्यस्त्राय फट्, गणास्त्राय फट्, सिद्धास्त्राय फट्, पिलिपिच्छास्त्राय फट्, गन्धर्वास्त्राय फट्, पूर्वास्त्राय फट्, दक्षिणास्त्राय फट्, वामास्त्राय फट्, पश्चिमास्त्राय फट्, मन्त्रास्त्राय फट्, शाकिन्यस्त्राय फट्, योगिन्यस्त्राय फट्, दण्डास्त्राय फट्, नमोस्त्राय फट्, शिवास्त्राय फट्, ईशानास्त्राय फट्, महादण्डास्त्राय फट्, नागास्त्राय फट्, पुरुषास्त्राय फट्, अघोरास्त्राय फट्, वामदेवास्त्राय फट्, सद्योजातास्त्राय फट्, हृदयास्त्रय फट्, ([4]महास्त्राय फट्, गरुडास्त्राय फट्, राक्षसास्त्राय फट्। दानवास्त्राय फट्, क्षौं नरसिंहास्त्राय फट्, त्वष्ट्रस्त्राय फट्, सर्वास्त्राय फट्,[5]) [6]लः फट्, नः फट् ([7]भः फट्, पः फट्, मः फट्, स्त्रा फट्, ह्रै फट्, भूः फट्, भुवः फट्, स्वः फट्, महः फट्, जनः फट्, तपः फट्, सत्यं फट्, सर्वलोक फट्, सर्वपाताल फट्,

---

अध्याय ३२२

पाशुपतशान्ति

महेश्वर बोले–अब मैं पहले पाशुपतास्त्र के द्वारा शान्ति और जाप आदि का वर्णन करूँगा। मन्त्र का एक-एक पाद पूर्व (जन्म के कर्मों) का नाश करनेवाला होता है और अन्त में आनेवाला 'फट्' विपत्तियों का विनाशक है ।।१।।

---

१ क. ङ. त्रिनयनाय°। २ 'पापभञ्जनाय''''ग्रहनिग्रहकारिणे' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ 'यमाय फट्''''त्रिशूलाय फट्' ख. पुस्तके नास्ति। ४ 'महास्त्राय''''सर्वास्त्राय फट्' ख. पुस्तके नास्ति। ५ छ. °ट्, नः फट्, वः फट्, पः। ६ 'लः' एतदादि भुवः फडित्यन्तग्रन्थस्थाने क. ङ. पुस्तकयोरेवं वर्तते–''नः फट्, या फट्, मः फट्, भां फट्, घ्नं फट्'' इति। ७ 'भः फट्''''वैराग्याय फट्' ग. पुस्तके नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वसत्त्व फट्, सर्वप्राण फट्, सर्वनाडी फट्, सर्वकारण फट्, सर्वदेव फट्, ह्रीं फट्, श्रीं फट्, हूं फट्, [1]स्तूं फट्, आं फट्, लां फट्, वैराग्याय फट्,[2]) मायास्त्राय फट्, कामास्त्राय फट्, क्षेत्रपालास्त्राय फट्[3], हुंकारास्त्राय फट्, भास्करास्त्राय फट्, चन्द्रास्त्राय फट्, विघ्नेश्वरास्त्राय फट्, गौः, गां फट्, ख्रौं ख्रौं फट्, ह्रौ ह्रौं[4] फट्, भ्रामय भ्रामय फट्, संतापय संतापय फट्, छादय च्छादय फट्, उन्मूलयोन्मूलय फट्, त्रासय त्रासय फट्, संजीवय संजीवय फट्, विद्रावय विद्रावय फट्, सर्वदुरितं नाशय नाशय फट्। [5]सकृतावर्तनादेव सर्वविघ्नान्विनाशयेत्। [6]शतावर्तेन चोत्पातान्रणादौ विजयो भवेत् ।।२।। घृतगुग्गुलुहोमाच्च असाध्यानपि साधयेत्। पठनात्सर्वशान्तिः स्यादाशु[7] पाशुपतस्य च ।।३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाशुपतशान्तिकथनं नाम द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२२।।

अथ त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

षडङ्गान्यघोरास्त्राणि

ईश्वर रुवाच

[8]ॐ हूं[9] स इति मन्त्रेण [10]मृत्युरोगादि शाम्यति। लक्षाहुतिभिर्दूर्वाभिः शान्तिं पुष्टिं प्रसाधयेत् ।।१।। अथवा प्रणवेनैव मायया वा षडानन। दिव्यान्तरिक्षभौमानां शान्तिरुत्पातवृक्षके ।।२।।

'ॐ नमो भगवते····नाशय नाशय फट्' इस मन्त्र की एक बार ही आवृत्ति करने पर सभी विघ्नों का नाश हो जाता है, एक सौ बार आवृत्ति करने पर सभी उत्पातों का नाश होकर युद्ध आदि में विजय होती है तथा घृत और गुग्गुल के हवन से असाध्य काम साध्य हो जाता है। इस पाशुपतास्त्र मन्त्र के पाठमात्र से समस्त क्लेशों की शान्ति हो जाती है ।।२-३।।

श्री अग्निमहापुराण में पाशुपतशान्ति कथन नामक तीन सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२२।।

अध्याय ३२३

षडङ्गान्यघोरास्त्राणि

महेश्वर बोले–'ॐ हूं सः' मन्त्र से मृत्यु और रोगादि की शान्ति होती है। इसी मन्त्र से दूर्वा की एक लाख आहुतियाँ शान्ति और पुष्टि की सिद्धि किया करती हैं। हे षडानन, यही मन्त्र जब प्रणव माया के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो दिव्य अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा वृक्षों के उत्पात शान्त हो जाते हैं। 'ॐ नमो भगवति····मानुषान् स्वाहा ॐ'

---

१ छ. स्तुं। २ 'वैराग्याय फट्' एतत्पुरतः नः फट्, यः फट्, इत्यधिकं ख. पुस्तके। ३ ख. ट्। ॐ का°। ४ छ. ह्रीं°। ५ ख. ग. सहस्त्राव°। ६ ख. ङ. °र्ते महौत्पा°। ७ ख. ङ. स्यदास्त्रपा°। ८ क. ङ. ॐ सः, इ°। ग. ॐ हं हूं स इ° च. ॐ जुं स ई°। ९ छ. हं हं स। १० ग. °त्युलोकादि।

CC-0. Jammu Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ नमो भगवति गङ्गे कालि कालि महाकालि महाकालि मांसशोणितभोजने रक्तकृष्णमुखि वशमानय [1]मानुषान् स्वाहा ।।३।।

ॐ लक्षं जप्त्वा दशांशेन हुत्वा स्यात्सर्वकर्मकृत् । वशं नयति शक्रादीन्मानुषेष्वेषु का कथा ।।४।।

अन्तर्धानकरी विद्या मोहनी जृम्भनी तथा । वशं नयति शत्रूणां शत्रुबुद्धिप्रमोहिनी ।।५।।

कामधेनुरियं विद्या सप्तधा परिकीर्तिता । मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शत्रुचौरादिमोहनम् ।।६।।

महाभयेषु सर्वेषु स्मर्तव्यं [2]हरपूजितम् । लक्षं जप्त्वा तिलैर्होमः सिध्येदुद्धारकं शृणु ।।७।।

ॐ हले शूले एहि ब्रह्मसत्येन ([3]विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन) रक्ष मां वाचेश्वराय स्वाहा ।।८।।

दुर्गात्तारयते यस्मात्तेन दुर्गा शिवा मता ।।९।।

ॐ ह्रीं [4]चण्डकपालिनि दन्तान्किट[5] किट क्षिट क्षिट गुह्ये प्राम् ।।१०।।

अनेन मन्त्रराजेन क्षालयित्वा तु तण्डुलान् । त्रिंशद्वाराणि जप्तानि तच्चौरेषु प्रदापयेत् ।।११।।

दन्तैश्चूर्णानि शुक्लानि पतितानि हि शुद्धये ।।१२।।

ॐ ज्वलल्लोचन कपिलजटाभारभास्वर विद्रावण त्रैलोक्य डामर डामर दर दर[6]भ्रम भ्रमाऽऽकट्टाऽऽकट्ट[7] तोटय तोटय मोटय मोटय[8] दह दह पच पच, एवं सिद्धिरुद्रो ज्ञापयति यदि ग्रहोपगतः स्वर्गलोकं देवलोकं वाऽऽरामविहाराचलं तथाऽपि तमावर्तयिष्यामि बलिं गृह्ण गृह्ण ददामि ते स्वाहेति ।।१३।।

क्षेत्रपालबलिं दत्त्वा ग्रहो [9]न्यासाद्रुदन्व्रजेत् । शत्रवो नाशमायान्ति रणे [10]वैरगणक्षयः ।।१४।।

इस मन्त्र का एक लाख जप तथा उस मन्त्र से दी गयी दस हजार आहुतियों से सभी कार्य पूरे हो जाते हैं। इससे जब इन्द्र आदि भी वशीभूत हो जाते हैं तो मनुष्य का कहना ही क्या ।।१-४।। अन्तर्धानकरी, मोहनी तथा जृम्भनी विद्या सबको वशीभूत करनेवाली तथा शत्रुओं की वृद्धि को मोह में डाल देती है। यह कामधेनु विद्या सात प्रकार की कही गयी है। अब मैं उस मन्त्रराज के सम्बन्ध में बताऊँगा जो शत्रु और चोर आदि को मोहित करनेवाला है। सभी प्रकार के महाभयों में शंकर का स्मरण करते रहना चाहिए। इस मन्त्र का एक लाख जप करके तिलों से हवन करने से सभी कुछ सिद्ध हो जाता है। अब आगे उद्धारक मन्त्र सुनो ।।५-७।। 'ॐ हले शूले····'वाचेश्वराय स्वाहा' यह उद्धारक मन्त्र है। पार्वती दुर्गम कार्यों (विपत्ति) से उद्धार करती है, इसलिए उसे दुर्गा कहा गया है ।।८-९।। 'ॐ ह्रीं···गुह्ये प्राम्' इस मन्त्रराज से चावलों को धोकर तीस बार इस मन्त्र का जप करके चोरों को खिलाने से चोरों के दाँतों से टूटकर सफेद चूर्ण के रूप में गिरने से (चोर की) शुद्धि हो जाती है। 'ॐ ज्वलल्लोचन····ददामि ते स्वाहा'। क्षेत्रपाल देवता को बलि देकर ग्रहन्यास करके चिल्लाते हुए (शत्रु की ओर) जाने से शत्रुओं का नाश हो जाता है ।।१०-१४।।

---

१ क. ङ. °षाय स्वाहा। २ क. ङ. हरिपूजनम्। ख. हरपूजनम्। ३ 'विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। विष्णुरुद्रसत्येनेति ख. ग. पुस्तकयोः। ४ क. ङ. च. चण्डिक°। ५ छ. न्किटि किटि क्षिटि क्षिटि गुह्ये फट्, ह्रीम्। ६ क. ङ. °रभ्राम भ्रामाऽऽ°। ७ क. ङ. °ट्टोटय त्रोटय मो°। ८ क. ङ. °य हन हन प°। ९ च. °साद्हृदं व्रजे°। १० क. ङ. वै सग°। ख. वैरिग°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हंसबीजं तु विन्यस्य विषं तु त्रिविधं हरेत्। अगरुं चन्दनं कुष्ठं कुङ्कुमं नागकेसरम् ।।१५।।
नखं वै देवदारुं च समं कृत्वाऽथ धूपकः। माक्षिकेण समायुक्तो [1]देववस्त्रादिधूपनात् ।।१६।।
विवादे मोहने स्त्रीणां मण्डने कलहे शुभः। कन्याया वरणे भाग्ये मायामात्रेण मन्त्रितः ।।१७।।
ह्रीं रोचना नागपुष्पाणि कुङ्कुमं च मनःशिला। ललाटे तिलकं कृत्वा यं पश्येत्स वशी भवेत् ।।१८।।
शतावर्यास्तु चूर्णं तु दुग्धपीतं च पुत्रकृत्[2]। नागकेसरचूर्णं तु [3]घृतपक्वं तु पुत्रकृत् ।।१९।।
पालाशबीजपानेन लभते पुत्रकं तथा ।।२०।।
ओमुत्तिष्ठ चामुण्डे जम्भय जम्भय मोहय मोहयामुकं वशमानय वशमानय स्वाहा ।।२१।।
षड्विंशा सिद्धविद्या सा नदीतीरमृदा स्त्रियम्। [4]कृत्वोन्मत्तरसेनैव नामाऽऽलिख्यार्कपत्रके ।।२२।।
मूत्रोत्सर्गं ततः कृत्वा जपेत्तामानयेत्स्त्रियम् ।।२३।।
ॐ क्षुं सः वषट् ।।२४।।
महामृत्युञ्जयो मन्त्रो जप्याद्धोमाच्च पुष्टिकृत् ।।२५।।
[5]ॐ हं सः, हूं, [6]हूं मः, हः, सौं स्कैः ।।२६।।
मृतसंजीविनी विद्या अष्टार्णा जयकृद्रणे। मन्त्रा ईशानमुख्याश्च धर्मकामादिदायकाः ।।२७।।

इस बीज का न्यास करके (उपर्युक्त मन्त्र का जप करने से) तीन प्रकार के विष दूर हो जाते हैं। अगरु, चन्दन, कुष्ठ, कुंकुम, नागकेसर, नाखून और देवदारु, इन सबको समान मात्रा में लेकर शहद के साथ मिलाकर देव वस्त्र आदि के धूप देने से साधक के विवाद, मोहन, मण्डन और कलह में शुभ फल प्राप्त होता है। माया मन्त्र के द्वारा इसी प्रकार से अभिमन्त्रित करने में कन्या के वरण तथा भाग्य में सफलता प्राप्त होती है ।।१५-१७।। 'ह्रीं' बीज के उच्चारण के साथ मस्तक पर रोली, नागपुष्प, कुंकुम और मैनसिल का तिलक लगाकर जिसकी ओर भी देखा जाता है वह वशीभूत हो जाता है। दूध में शतावरी का चूर्ण मिलाकर पीने से पुत्रोत्पत्ति होती है।। इसी प्रकार घी में पकाकर नागकेसर का चूर्ण खाने से भी पुत्रोत्पत्ति होती है और पलाश के बीज को पीने से भी पुत्र-लाभ होता है। 'ओमुत्तिष्ठ····वशमानय स्वाहा' यह छब्बीस अक्षरोंवाला सिद्ध मन्त्र है। नदी के किनारे की मिट्टी लेकर उससे (अभीष्ट) स्त्री (की आकृति) का निर्माण करके मदार के पत्ते पर धतूरे के रस से उसका नाम लिखकर तत्पश्चात् मूत्रोत्सर्ग करके उस स्त्री के नाम का जप करना चाहिए ।।१८-२३।। 'ॐ क्षुं सः वषट्'-यह महामृत्युञ्जय मन्त्र है। इसका जप और होम पुष्टिकारक होता है। 'ॐ हं सः, हूं, हूं मः, हः, सौं स्कैः'-यह मृतसंजीवनी विद्या है। इसमें आठ अक्षर हैं। यह रण में विजय दिलानेवाली है ।।२४-२६$\frac{1}{2}$।। ईशान आदि देवताओं के मन्त्र धर्म और कामादि प्रदान करनेवाले हुआ करते हैं। वे मन्त्र इस प्रकार हैं-

---

१ क. ख. देहव°। २ क. ङ. पुत्रछत्। ३ क. ङ. घृतपीतं। ४ क. ङ. °त्वोन्मत्तर°। ५ ख. ग. ॐ° हूं सः सौं खौः, मृ°। च. ॐ स हू ह क्षः सौ खौः मृ°। ६ छ. हूं स, हः।

CC-0. NMK Srinagar Collection. Digitized by eGangotri. Digitized by S3 Foundation USA

ईशानः [1]सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् । ब्रह्मणश्चाधिपतिर्ब्रह्म शिवो मेऽस्तु सदाशिवः ।।२८।।
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।।२९।।
ओमघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरतरेभ्यस्तु सर्वतः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।।३०।।
ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो
बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः । सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।।३१।।
ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवे भवे नातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः ।।३२।।
पञ्चब्रह्माङ्गषट्कं च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ।।३३।।
ॐ नमः परमात्मने पराय कामदाय परमेश्वराय योगाय योगसंभवाय [2]सर्वकराय कुरु कुरु [3]सद्य
सद्य भव भव भवोद्भव वामदेव सर्वकार्यकर पापप्रशमन सदाशिव प्रसन्न नमोऽस्तु ते स्वाहा ।।३४।।
हृदयं सर्वार्थदं तु सप्तत्यक्षरसंयुतम् ।।३५।।
ॐ शिव शिवाय नमः शिरः, ॐ शिव हृदये ज्वालिनि स्वाहा शिखा, ॐ शिवात्मक महातेजः सर्वज्ञ
प्रभु [4]संवर्तय महाघोरकवच पिंगल,[5] नमः । महाकवच शिवाज्ञया हृदयं बन्ध [6]बन्ध, ([7]पूर्णय
पूर्णय चूर्णय चूर्णय सूक्ष्मासूक्ष्मवज्रधर [8]वज्रपाशधर वज्रशरीर [9]मच्छरीरमनुप्रविश्य सर्वदुष्टान्स्तम्भय
स्तम्भय [10]हूं ।। [11]अक्षराणां तु कवचं शतं पञ्चाक्षराधिकम् ।।३६।।
ओमोजसे नेत्रम्, ॐ पुस्फुर पुस्फुर तनुरूप तनुरूप) चट चट प्रचट प्रचट कट कट वम वम
घातय घातय [12]हूं फट्, अघोरास्त्रम् ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षडङ्गान्यघोरास्त्रकथनं नाम त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२३।।

'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः····भवोद्भवाय नमः'। अब मैं 'पञ्चब्रह्म' के छह अङ्गों का वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है ।।२७-३३।। 'ॐ नमः परमात्मने···नमोऽस्तु ते स्वाहा' यह सत्तर अक्षरवाला मन्त्र सब-कुछ प्रदान करनेवाला है। 'ॐ शिव शिवाय नमः····दुष्टान्स्तम्भय स्तम्भय हूं' यह एक सौ पाँच अक्षरों का कवच है ।।३४-३६।। ओमोजसे···हूं फट्' यह अघोरास्त्र मंत्र है ।।३७।।

श्री अग्निमहापुराण में षडङ्गान्यघोरास्त्र-कथन नामक तीन सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२३।।

---

१ क. ङ. °र्वमन्त्राणामी°। २ क. ङ. सर्वकाराय। ख. ग. सर्वशंकराय। ३ सद्य सद्येति नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ क. ङ. व्यावर्तय। ख. आवर्तय। ५ 'पिंगल' इत्येतत्परतः ''आयाहि पिंगलः'' इत्यधिकं वर्तते क. ङ. पुस्तकयोः। ६ क. ङ. च. °न्ध अवट् अवट् प्रवट् प्रवट् कर्त्तु 'ध°। ७ न्ध घूर्णय घूर्णय चू°। ''पूर्णय···तनुरूप'' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ८ छ. °शधनुर्वज्राशनिन°। ९ छ. ममशरी°। १० छ. हुम्। ११ ख. ग. अरणार्थक°। १२ क. ङ. च. हुम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रुद्रशान्तिः

ईश्वर रुवाच

शिवशान्तिं प्रवक्ष्यामि कल्पाघोरप्रपूर्वकम् । सप्तकोट्यधिपो घोरा (रो) ब्रह्महत्याद्यघार्दनः ।।१।।
उत्तमाधमसिद्धीनामालयोऽखिलरोगनुत् । दिव्यान्तरी (रि) क्ष भौमानामुत्पातानां विमर्दनः ।।२।।
विषग्रहपिशाचानां ग्रसनः सर्वकामकृत् । प्रायश्चित्तमघो (घौ) घार्तौ दौर्भाग्यार्तिविनाशनम् ।।३।।
एकवीरं तु विन्यस्य ध्येयः पञ्चमुखः सदा । शान्तिके पौष्टिके शुक्लो रक्तो वश्येऽथ पीतकः ।।४।।
स्तम्भने धूम्र उच्चाटमारणे कृष्णवर्णकः । कर्षणे कपिलो मोहे द्वात्रिंशद्वर्णमर्चयेत् ।।५।।
त्रिंशल्लक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः । [1]गुग्गुलघृतयुक्तेन [2]सिद्धे सिद्धार्थसर्वकृत् ।।६।।
अघोरान्नापरो मन्त्रो विद्यते भुक्तिमुक्तिकृत् । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् ।।७।।
अघोरास्त्रमघोरस्तु द्वाविमौ मंत्रराजकौ । जपहोमार्चनाद्युद्धे शत्रुसैन्यं विमर्दयेत् ।।८।।
रुद्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि शिवां सर्वार्थसाधनीम् । पुत्रार्थं ग्रहनाशार्थं विषव्याधिविनष्टये ।।९।।
दुर्भिक्षमारीशान्त्यर्थं दुःस्वप्नं हरणाय च । बलादिराज्यप्राप्त्यर्थं[3] रिपूणां नाशनाय च ।।१०।।

अध्याय ३२४

रुद्रशान्ति-कथन

महेश्वर बोले–अब मैं अघोर कल्प के साथ शिव-शान्ति का वर्णन करूँगा। वह घोर (अथवा अघोर) कल्प सात अस्त्रों का स्वामी, ब्रह्म-हत्यादि पापों का नाशक, उत्तम और अधम नामक सिद्धियों का आगार, सम्पूर्ण रोगों को दूर करनेवाला, द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूलोक के उत्पातों का संहारक, विष, ग्रह और पिशाचों का भक्षक, सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, पाप-पुञ्ज का प्रायश्चित्त और दुर्भाग्य रूप दुःखों का विनाशक है ।।१-३।। एकवीर का न्यास करके सदा पञ्चमुख (देवता) का ध्यान करना चाहिए। शान्ति और पुष्टिकर्मों में क्रमशः उसके शुक्ल और रक्तवर्णों का, वशीकरण में पीत वर्ण का, स्तम्भन में धूम्रवर्ण का, उच्चाटन और मारण में कृष्णवर्ण का, (किसी को अपनी ओर) आकृष्ट करने में कपिलवर्ण का और मोहन में बत्तीस वर्णों का पूजन करना चाहिए। इस मन्त्र का तीस लाख बार जप करना चाहिए और तीन लाख मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिए। गुग्गुल और घृत से इस मन्त्र की सिद्धि करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। अघोर मन्त्र से बढ़कर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला कोई ऐसा मन्त्र है ही नहीं। इससे अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी और अस्नातक स्नातक हो जाता है। अघोरास्त्र और अघोर ये दोनों मन्त्र मन्त्रराज हैं। इनके जप, हवन और पूजन से शत्रु की सेना का विनाश हो जाता है ।।४-८।। अब मैं रुद्रशान्ति का वर्णन करूँगा जो कि कल्याणकारिणी और सभी अभीष्टों को सिद्ध करानेवाली है। यह मन्त्र पुत्र-प्राप्ति, ग्रह-शान्ति, विष-व्याधिविनाश, दुर्भिक्ष और महामारी की शान्ति, दुःस्वप्नहरण, बल तथा राज्य आदि की प्राप्ति, शत्रुओं

---

१ क. ङ. गुग्गुलं घृतसंयुक्तं सि°। २ छ. सिद्धोऽसिद्धोऽर्थ°। ३ क. ङ. °ज्यसिद्ध्यर्थं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अकाले फलिते वृक्षे सर्वग्रहविमर्दने। पूजने तु नमस्कारः [1]स्वाहान्ते हवनं तथा ।।११।।
आप्यायने वषट्कारं पुष्टौ वौषण्नियोजयेत्[2]। चकारद्वितयस्थाने [3]जातियोगं तु कारयेत् ।।१२।।
ॐ रुद्राय[4] ठ, ॐ वृषभाय नमोऽविमुक्तायासंभवाय[5] [6]पुरुषाय पञ्चपूज्याय ईशपुत्रे[7] [8]पौरुषे
[9]पञ्चपञ्चोत्तरे विश्वरूपाय करालाय विकृतरूपाय, ([10]अविकृतरूपाय) ।।१३।।
[11]निकृतौ चापरे काले अप्सु माया च नैर्ऋते ।।१४।।
एक पिङ्गलाय श्वेतपिङ्गलाय [12]कृष्णपिङ्गलाय [13]नमः ।।१५।।
मधुपिङ्गलाय [14]नियतावनन्तायाऽऽर्द्राय शुष्काय पयोगणाय कालतत्त्वे करालाय विकरालाय द्वौ
मायातत्त्वे सहस्त्रशीर्षाय सहस्त्रवक्त्राय सहस्त्रकरचरणाय[15] सहस्त्रलिङ्गाय ।।१६।।
विद्यातत्त्वे सहस्त्राक्षाद्विन्यसेद्दक्षिणे दले ।।१७।।
एकजटाय द्विजटाय त्रिजटाय स्वाहाकाराय स्वधाकाराय वषट्काराय षड्रुद्राय ।।१८।।
ईशतत्त्वे तु वह्निपत्रे स्थिता गुह ।।१९।।
[16]भूपतये[17] [18]पशुपतये उमापतये कालाधिपतये ।।२०।।
सदाशिवाख्यतत्त्वे षट् पूज्याः पूर्वदले स्थिताः ।।२१।।
[19]उमायैकरूपधारिणि, ॐ[20] 'कुरु कुरुरुहिणि रुहिणि रुद्रोऽसि देवानां देव देव विशाख हन हन दह
दह पच पच मथ मथ[21] तुरु तुरु, अरु अरु[22] मुरु मुरु रुद्रशान्तिमनुस्मर कृष्ण-पिङ्गल[23] अकाल-
पिशाचाधिपतिविश्वेश्वराय नमः ।।२२।।
शिवतत्त्वे कर्णिकायां पूज्यौ ह्युमामहेश्वरौ ।।२३।।

के नाश, असमय में फले हुए वृक्ष और सभी ग्रहों के नाश के लिए होता है। इसके पूजन में नमस्कार तथा हवन में स्वाहा का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार आप्यायन में वषट्कार और पुष्टि (के लिए किये गये कर्म) में वौषट् का प्रयोग करना चाहिए। चकार का प्रयोग द्वितीय स्थान में करना चाहिए ।।९-१२।। 'ॐ रुद्राय ठ,····· सहस्त्रलिङ्गाय'–इस मन्त्र से विद्यातत्त्व (रूप कमल के) दक्षिण दल पर सूर्य का आवाहन करना चाहिए ।।१३-१७।। 'एकजटाय·····षड्रुद्राय अये गुह' ये सात विशेषण आकाश में रहनेवाले शिव के हैं। इन नामों को सम्बोधित करते हुए मन्त्र के साथ सदाशिव देवता से युक्त कमल के पूर्वी दल के ऊपर इन मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिए। 'भूपतये·····कालाधिपतये' ।।१८-२०।। शिवतत्त्व रूप कर्णिका के ऊपर उमा और महेश्वर का पूजन इस मन्त्र से करना चाहिए–'उमायैकरूपधारिणी, ॐ कुरु कुरु···विश्वेश्वराय नमः'। शिवतत्त्व रूपी कमल के आकाशवर्ती दल

---

१ क. ङ. °हान्तो हवने मनुः। आ°। छ. हान्तो हवने तथा। आ°। २ ख. °त्। ओंका°। क. ङ. °त्। दका°। ३ ग. यातियोगं। ४ क. ङ. °य नमः, ॐ। छ. °य च चे ॐ। ५ क. ङ. °क्ताय सं°। ६ क. ङ. °य च सूर्याय। छ. °य च पू°। ७ ख. ईशपत्रे। छ. ईशानाय। ८ छ. पौरुषाय। ९ °ञ्च चोत्त°। १० 'अविकृतरूपाय' नास्ति क. ख. ग. ङ. पुस्तकेषु। ११ क. ङ. च. नियतौ। १२ क. ङ. हृष्टपिङ्गलाय। १३ छ. °मः। मधुपिङ्गलाय नमः, म°। १४ ख. ग. निपतिताय। १५ क. ङ. सहस्त्रकिरणाय। १६ क. ङ. भूतपतये। १७ ख. °ये भूतपतये महाभूतपतये प°। १८ 'पशुपतये···कालाधिपतये' नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। १९ छ. °यै कुरू°। २० ख. ग. च. ॐ तुरु तुरु। २१ ख. ग. °थ तुर तुर, अ°। २२ ख. ग. °रु स्वरु स्वरु रु°। २३ क. ख. ङ. च. °ल का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ व्योमव्यापिने व्योमरूपाय सर्वव्यापिने [1]शिवायानन्ताय [2]नाथायानाश्रिताय शिवाय शिवतत्त्वे
[3]नव पदानि व्योमव्याप्यभिधास्य हि ।।२४।।
शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहाराय [4]नमः । ॐ नमः शिवाय [5]सर्वप्रभवे शिवाय,
ईशानमूर्धाय [6]तत्पुरुषाय[7] पञ्चवक्त्राय ।।२५।।
नवपदं पूर्वदले सदाख्ये पूजयेद्गुह ।।२६।।
अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये । [8]ॐ नमो नमः । गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय
सर्वयोगाधिकृताय [9]ज्योतीरूपायाग्निपत्रे[10] हीशतत्त्वे [11]विद्यातत्त्वे तु[12] गम्यते परमेश्वराय[13]
अचेतनाचेतन [14]व्योमनव्यापिन (न्) [15]अरूपिन् । [16]प्रथम तेजस्तेजः ।।२७।।
मायातत्त्वे नैर्ऋते तु कालतत्त्वेऽथ वारुणे ।।२८।।
ॐ धृ धृ[17] नाना वां वामनिधन[18] निधनोद्भव शिव सर्व परमात्मन् । महादेव सद्भावेश्वर
महातेजयोगाधिपते मुञ्च मुञ्च[19] प्रथम प्रथम, ॐ सर्व सर्व, ॐ भव भव, ॐ भवोद्भव सर्वभूतसुखप्रद
वायुपुत्रेऽथ नियतौ पुरुषे चोत्तरे नव ।।२९।।
सर्वसांनिध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रप [20]रानर्चितास्तुत[21] स्तुत साक्षिण साक्षिण [22]तुरु तुरु पतङ्ग पतङ्ग
[23]पिङ्गपिङ्ग [24]ज्ञान ज्ञान शब्द शब्द सूक्ष्म सूक्ष्म शिव शिव [25]सर्वप्रद सर्वप्रद, ॐ नमः शिवाय, ॐ
नमो नमः शिवाय, ॐ नमो नमः ।।३०।।
ईशाने प्राकृते तत्त्वे पूजयेज्जुहुयाज्जपेत् । [26]ग्रहरोगादिमायार्तिशमनी सर्वसिद्धिकृत् ।।३१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रुद्रशांतिविधानकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२४।।

के ऊपर नव पदों का उच्चारण करना चाहिए। उसका मन्त्र यह है–"ॐ व्योमव्यापिने···शिवाय ।।२१-२४।। अये गुह! सद नामक पूर्वदल के ऊपर नवपदोंवाले इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए–'शाश्वताय···पंचवक्त्राय ।।२५-२६।। मायातत्त्व दक्षिण-पश्चिम और कालतत्त्व पश्चिम दल के ऊपर इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए, 'अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये'। ॐ नमो नमः···प्रथम तेजस्तेजः ।।२७।। उत्तर-पश्चिम कोण के दल के ऊपर नियति के लिए और उत्तरवर्ती दल के ऊपर पुरुष के लिए नव बार इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए–ॐ धृ धृ नाना···सर्वभूतसुखप्रद'। उत्तर-पूर्व की ओर स्थित प्राकृत तत्त्व नामक दल के ऊपर पूजन, यजन और जप करना चाहिए। इसके लिए यह मन्त्र है–'सर्वसान्निध्यकर···ॐ नमो नमः'। यह विद्या, ग्रह, रोग, माया और दुःख का विनाश करनेवाली तथा सिद्धियों को देनेवाली है ।।२८-३१।।

श्री अग्निमहापुराण में रुद्रशान्ति-विधान-कथन नामक तीन सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२४।।

---

१ छ. °न्तायाना°। २ 'नाथायानाश्रिताय' इदं पदं नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः। ३ ख. ग. °न तब। ४ 'नमः' इति पदं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ५ ख. ग. °र्वभावशि°। ६ ख. ग. °रुषव°। ७ छ. °षादिप°। ८ ख. ग. ॐ नमः। ९ क. ङ. °ज्योतिरू°। १० छ. °त्रे हौमत°। ११ छ. °धात्वे द्वे याम्यने प°। १२ ख. ग. तु यास्यगोप। १३ छ. °य चे°। १४ क. ङ. व्योमन्। १५ क. ङ. व्यापिन्। छ. व्यापिने। १६ छ. प्रथम। १७ क. ङ. घ. ॐ नाना ॐ वा°। १८ क. ङ. छ. °निधान। १९ छ. प्रमथ, प्रमथ ॐ। २० ख. ग. °पदान°। २१ ख. ग. °त सा°। २२ ख. ग. तरु। २३ क. ङ. 'पिंग पिंग' इति पदद्वयं नास्ति ख. ग. च. पुस्तकेषु। २ ४ 'ज्ञान ज्ञान' इति पदद्वयं नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २५ क. ङ. सर्वद। ख. ग. पद। २६ क. ङ. च. गारिमा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अंशकादिः

ईश्वर उवाच

रुद्राक्षकटकं धार्यं विषमं सुसमं दृढम्। एकत्रिपञ्चवदनं यथालाभं तु धारयेत् ।।१।।
द्विचतुःषण्मुखं शस्तमव्रणं तीव्रकण्टकम्। दक्षबाहौ शिखादौ च [1]धारयेच्चतुराननम् ।।२।।
अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत्। ([2]हैमी वा मुद्रिका धार्या शिवमन्त्रेण चाऽऽर्च्य तु ।।३।।
शिवः शिखा तथा ज्योतिः सावित्रश्चेति गोचराः)। गोचरं तु कुलं ज्ञेयं तेन लक्ष्यस्तु दीक्षितः ।।४।।
प्राजापत्यो महीपालः कापोतो ग्रन्थिकः शिवे। कुटिकाश्चैव वेतालाः पद्महंसाः [3]शिखाकुले ।।५।।
धृतराष्ट्रा बकाः काका गोपाला ज्योतिसंज्ञके। कुटिका [4]साठराश्चैव गुटिका [5]दण्डिनोऽपरे ।।६।।
सावित्री गोचरे चैवमेकैकस्तु चतुर्विधः। सिद्धाद्यंशकमाख्यास्ये येन मन्त्रः सुसिद्धिदः ।७।।
भूमौ तु मातृका लेख्याः [6]कूटयन्त्रविवर्जिताः। मंत्राक्षराणि विश्लिष्य अनुस्वारं नयेत्पृथक् ।।८।।

अध्याय ३२५

अंशकादि-कथन

महेश्वर बोले–विषम संख्यावाले समतल और दृढ़ रुद्राक्षों के कङ्कण को धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष एक, तीन और पाँच मुखवाले होने चाहिए। अथवा जिस प्रकार के रुद्राक्ष प्राप्त हो सकें उन्हें ही धारण करना चाहिए। दो, चार और छह मुखवाले, व्रणरहित और तीव्र कण्टकों से युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ माने गये हैं। चार मुखोंवाले रुद्राक्ष को दाहिनी भुजा में और शिखा आदि के ऊपर धारण करना चाहिए। ऐसा करने से अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी और अस्नातक स्नातक बन जाता है अथवा शिव मन्त्र से अभिमन्त्रित की हुई स्वर्ण-मुद्रिका भी धारण की जा सकती है ।।१-३।। रुद्राक्ष के चार गोचर होते हैं–शिव, शिखा, ज्योति और सावित्र। गोचर का अभिप्राय है कुल। उसके एक लाख जप से मनुष्य दीक्षित हो जाता है। शिव कुल में आनेवाले रुद्राक्ष के भेद हैं–प्राजापत्य, महीपाल, कापोत और ग्रन्थिक। शिखाकुल के रुद्राक्ष हैं–कुटिका, बेताल और पद्महंस। ज्योति नामक कुल के अन्तर्गत हैं–धृतराष्ट्र, बक, काक और गोपाल। सावित्र कुल के रुद्राक्षों के नाम हैं–कुटिका, साठर, गुटिका और दण्डिन्। इनमें से एक-एक रुद्राक्ष के चार-चार भेद हो जाते हैं। अब मैं सिद्धि आदि अंशक का वर्णन करूँगा, जिससे मन्त्र शुभ सिद्धि प्रदान करनेवाला हो जाता है ।।४-७।। कूट मन्त्रों को छोड़कर अन्य सभी मातृक वर्णों को भूमि के ऊपर लिखना चाहिए। मन्त्राक्षरों को अलग-अलग करके अनुस्वारों

---

१ क. ङ. °येदनुवासरम्। २ ''हैमी वा°' इत्यत्र पाठोऽयं दृश्यते क. ङ. पुस्तकयोः-''हैमी धार्याऽसिमन्त्रेण वाच्यं तु शिरसः शिखा। तथा ज्योति समावित्रः सावित्रश्चेति गोचरा इति। ३ क. ङ. शिवाकु°। ४ छ. सागरश्चै°। ५ ख. ग. °ण्डिनौ प°। ६ छ. °टषण्डवि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

साधकस्य तु या संज्ञा तस्या विश्लेषणं चरेत् । मंत्रस्याऽऽदौ तथा चान्ते साधकार्णानि [1]योजयेत् ।।९।।
सिद्धःसाध्यः सुसिद्धोऽरिः संज्ञातो गणयेत्क्रमात् । मंत्रस्याऽऽदौ तथा चान्ते सिद्धिदः स्याच्छतांशतः ।।१०।।
सिद्धादिश्चान्तसिद्धिश्च तत्क्षणादेव सिध्यति । सुसिद्धादिः सुसिद्धान्तः सिद्धवत्परिकल्पयेत् ।।११।।
अरिमादौ तथाऽन्ते च दूरतः परिवर्जयेत् । [2]सिद्धः सुसिद्धश्चैकार्थे अरिः साध्यस्तथैव च ।।१२।।
आदौ सिद्धः स्थितो मन्त्रस्तदन्ते [3]तद्वदेव हि । मध्ये रिपुसहस्राणि न दोषाय भवन्ति हि ।।१३।।
मायाप्रसादप्रणवेनां [4]शकाख्यातमंत्रके । ब्रह्मांशको ब्रह्मविद्या विष्णवङ्गो[5] वैष्णवः स्मृतः ।।१४।।
रुद्रांशको[6] [7]बली वीर इन्द्रांशश्चेश्वरप्रियः । [8]नागांशो [9]नागस्तत्त्वाक्षो [10]यक्षांशो भूषणप्रियः ।।१५।।
गन्धर्वांशोऽतिगीतादिभीमांशो राक्षसांशकः । दैत्यांशः स्याद्युद्धकश्रीर्मानी विद्याधरांशकः ।।१६।।
पिशाचांशो मलाक्रान्तो मंत्रं दद्यान्निरीक्ष्य च । मंत्र एकात्फडन्तः स्याद्विद्या पञ्चशतावधि ।।१७।
बाला विंशाक्षरान्ता च[11] रुद्रा द्वाविंशगायुधा । तत ऊर्ध्वं तु ये मन्त्रा वृद्धा यावच्छतत्रयम् ।।१८।।
अकारादिहकारान्ताः क्रमात्पक्षौ सितासितौ । अनुस्वारविसर्गेण विना चैव स्वरा दश ।।१९।।
ह्रस्वा शुक्ला दीर्घाः श्यामास्तिथयः प्रतिपन्मुखाः । उदिते शान्तिकादीनि भ्रमिते [12]वश्यकादिकम् ।।२०।।

को भी उनसे अलग-अलग कर देना चाहिए। उसी प्रकार साधक के नाम के अक्षरों को भी अलग-अलग करके मन्त्र के आदि और अन्त में इन नामाक्षरों का प्रयोग करना चाहिए। मन्त्राक्षरों और (साधक के) नामाक्षरों को सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि इस क्रम से गिनना चाहिए। इनमें से एक भी अपने शतांश से मन्त्र के आदि और अन्त में प्रयुक्त होने से सिद्धिदायक हुआ करता है ।।८-१०।। सिद्धादि और सिद्धान्त मन्त्र तत्काल सिद्धि प्रदान करता है। सुसिद्धादि और सुसिद्धान्त भी सिद्धवत् ही समझना चाहिए। मन्त्र के आदि और अन्त में 'अरि' का वर्जन करना चाहिए। सिद्ध और सुसिद्ध मन्त्रों को समान फल के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। मन्त्रादि और मन्त्रान्त में सिद्धमन्त्र रहने से तथा बीच में हजारों अरि मन्त्र रहने से (भी) कोई दोष नहीं होता है। माया, प्रसाद और प्रणव नामक मन्त्र भी अंशक मन्त्रों के अन्तर्गत आते हैं। ब्रह्मविद्या, ब्रह्मांश और वैष्णव मन्त्र विष्णु अङ्गवाला कहा गया है। रुद्र मन्त्रों को वीर कहते हैं। इन्द्रांश मन्त्र ईश्वर को प्रिय होते हैं। नागांश मन्त्र सर्पों को प्रभावित करते हैं और यक्षांश मन्त्र आभूषण-प्रिय होते हैं ।।११-१५।। गन्धर्वांश मन्त्रों से गीत आदि में कटुता आती है और राक्षसांशक मन्त्र भय को उत्पन्न करनेवाला है। दैत्यांश मन्त्र युद्ध में ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला और विद्याधरांशक मन्त्र मान बढ़ानेवाला है। पिशाचांश नामक मन्त्र मलाक्रान्त हुआ करता है अतः यह मन्त्र देखभाल करके देना चाहिए। फट् से अन्त होनेवाले मन्त्र से पचास प्रकार की विद्याएँ उत्पन्न होती हैं। बाला विद्या में बीस अक्षर और रुद्र मन्त्र में इक्कीस अक्षर होते हैं। उनके बाद के मन्त्रों में अक्षरों की संख्या बढ़ती ही जाती है और वे तीन सौ तक हो जाते हैं ।।१६-१८।। अकार से लेकर हकार तक (सभी वर्ण) क्रमशः शुक्ल और कृष्ण पक्षों के प्रतीक हैं। अनुस्वार और विसर्ग को छोड़कर दस स्वर होते हैं। इनमें से ह्रस्व स्वर प्रतिपदा से प्रारम्भ होनेवाली शुक्लपक्ष की तिथियों के और दीर्घ स्वर कृष्णपक्ष की तिथियों के प्रतीक

---

१ छ. याजयेत्। २ ख. ग. °द्धः स्वसि°। ३ क. ङ. °देद्बहिः। म°। ४ क. ङ. नाङ्गकस्याङ्गम°। ५ क. ङ. विष्णवंशो। ६ छ. °को भवेद्वीर। ७ क. ङ. च. व्रती। ८ क. ङ. नागाङ्गो। ९ क. ङ. °गस्तद्वक्षो। १० क. ङ. °क्षाङ्गो भू°। ११ क. ङ. च. च रन्ध्राद्वात्रिंशतायु°। ख. च. च वर्णा द्वा°। १२ क. ङ. वशका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]भ्रामिते [2]सन्ध्यया द्वेषोच्चाटने स्तम्भनेऽस्तकम् । इडावाहे शान्तिकाद्यं पिङ्गले कर्षणादिकम् ।।२१।।
मरणोच्चाटनादीनि विषुवे पञ्चधा पृथक् । अधरस्य गृहे पृथ्वी ऊर्ध्वं तेजोऽन्तरा द्रवः ।।२२।।
रन्ध्रपार्श्वे बहिर्वायुः सर्वं व्याप्य महेश्वरः । स्तम्भनं पार्थिवे शान्तिर्जले वश्यादि तेजसे ।
वायौ स्याद्भ्रमणं शून्ये पुण्यं कालं समभ्यसेत् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽशकादिकथनं नाम पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२५।।

अथ षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गौर्यादिपूजा

ईश्वर उवाच

सौभाग्यादेरुमापूजां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । मंत्रध्यानं मण्डलं च मुद्रां होमादिसाधनम् ।।१।।
चित्रभानुं शिवं कालं महाशक्तिसमन्वितम् । इडाद्यं परतोद्धृत्य सदेवं सविकारणम् ।।२।।
द्वितीयं द्वारकाक्रान्तं [3]गौरीगतिपदान्वितम् । चतुर्थ्यन्तं प्रकर्तव्यं गौर्या वै मूलवाचकम् ।।३।।

हैं। शान्ति आदि के लिए किये जानेवाले कर्म उदित वर्णों से करना चाहिए। शान्ति आदि कर्मों को उस समय करना चाहिए जब साधक की इड़ा नाड़ी में रक्त प्रवाह हो रहा हो, आकर्षण आदि कर्म तब करना चाहिए जब रक्त प्रवाह पृथक्-पृथक् पाँच प्रकार के विषुव नाड़ी में हो रहा हो। अधोभाग से श्वास चलने पर पृथ्वी तत्त्व (नासिका के) ऊर्ध्व भाग से श्वास चलने पर तेजस् तत्त्व और इन दोनों के श्वास चलने पर द्रव तत्त्व की प्रधानता समझनी चाहिए। बाहर निकलते समय वायु (नासा) रन्ध्र के पार्श्व भाग से जिस प्रकार स्पर्श करती है उसी से उसकी गति समझी जाती है। महेश्वर सभी प्रकार की वायु में व्याप्त रहता है। पार्थिव तत्त्व की प्रधानता के समय स्तम्भन, जल-तत्त्व की प्रधानता के समय शान्ति और तेजस्तत्त्व की प्रधानता होने पर वशीकरण आदि कर्मों को करना चाहिए। इसी प्रकार वायु तत्त्व की प्रधानता होने पर (शत्रु के लिए) भ्रमण कर्म और शून्यावस्था में पुण्यकर्मों का अभ्यास करना चाहिए ।।१९-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में अंशकादि-कथन नामक तीन सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२५।।

अध्याय ३२६

गौर्यादि-पूजा

महेश्वर बोले-अब मैं उमा की पूजा का वर्णन करूँगा, जिससे सौभाग्य इत्यादि की प्राप्ति होती है और जो भोग प्रदान करनेवाली है। इसके लिए मैं मन्त्र, ध्यान, मण्डल, मुद्रा और होम आदि के साधक का वर्णन करूँगा। इस मन्त्र के बीज हैं-चित्रभानु, शिव, काल और महाशक्ति । इसे इड़ा से प्रारम्भ करना चाहिए। द्वितीय मन्त्र द्वारकनाम बीज तथा गौरी नाम से युक्त रहता है। इसमें गौरी के नामों का चतुर्थी विभक्ति में प्रयोग करना चाहिए। मूल मन्त्र

---

१ ख. ग. त्रासिते। २ क. ङ. मध्यया। ३ छ. °रीप्रीति°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ ह्रीं सः शौ [1]गौर्यै नमः ।।४।।
तत्रार्णत्रितयेनैव जातियुक्तं [2]षडङ्गकम् । आसनं प्रणवेनैव मूर्तिं वै हृदयेन तु ।।५।।
ऊहकं च तथा कालं शिवबीजं समुद्धरेत् । प्राणे [3]दीर्घस्वराक्रान्तं षडङ्गं [4]जातिसंयुतम् ।।६।।
आसनं प्रणवेनात्र मूर्तिन्यासं हृदाऽऽचरेत् । यामलं कथितं वत्स एकवीरं वदाम्यथ ।।७।।
व्यापकं सृष्टिसंयुक्तं वह्निमायाकृशानुभिः । शिवशक्तिमयं बीजं हृदयादिविवर्जितम् ।।८।।
गौरीं यजेद्धेमरूप्यां काष्ठजां[5] शैलजादिकाम् । पञ्चपिण्डां तथाऽव्यक्तां कोणे मध्ये तु पञ्चमम् ।।९।।
ललिता सुभगा गौरी क्षोभनी (णी) चाग्नितः क्रमात् । वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वृत्ते पूर्वादितो यजेत् ।।१०।।
सपीठे वामभागे तु शिवस्याव्यक्तरूपकम् । व्यक्ता द्विनेत्रा त्र्यक्षा वा शुद्धा वा शंकरान्विता ।।११।।
[6]पीठपद्मद्वयस्था वा द्विभुजा वा चतुर्भुजा । सिंहस्था वा वृकस्था वा अष्टाष्टादशसत्कराः ।।१२।।
[7]स्रगक्षसूत्रकलिका गलकोत्पलपिण्डिका । शरं धनुर्वा सव्येन पाणिनाऽन्यतम् महत् ।।१३।।
वामेन पुस्तताम्बूलदण्डाभयकमंडलुम् । गणेशं दर्पणेष्वासान्दद्यादेकैकशः क्रमात् ।।१४।।
व्यक्ताव्यक्ताऽथ वा कार्या [8]पद्ममुद्रा स्मृताऽऽसने । लिङ्गमुद्रा शिवस्योक्ता[9] मुद्रा चाऽऽवाहिनी द्वयोः ।।१५।।

यह है–"ॐ ह्रीं सः शौ गौर्यै नमः'। तीन अक्षरों से युक्त न्यास तथा प्रणव मन्त्र के द्वारा (गौरी के लिए) आसन और हृदय मन्त्र से मूर्ति की उपकल्पना करनी चाहिए ।।१-५।। 'ॐ' कालबीज तथा शिवबीज का उद्धार करे। दीर्घस्वर से आक्रान्त प्राण–'यां यीं' इत्यादि से जातियुक्त षडङ्गन्यास करे। प्रणव से आसन तथा हृदय मन्त्र से मूर्तिन्यास करे। यह मैंने 'यामल मन्त्र' कहा है। अब 'एकवीर' का वर्णन करता हूँ। सृष्टिन्यास से युक्त व्यापक न्यास अग्नि, माया तथा कृशानु द्वारा करे। शिव शक्तिमय बीज हृदयादि से वर्जित है। गौरी की सोने, चाँदी, लकड़ी अथवा पत्थर आदि की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करे। अथवा पाँच पिण्डीवाली मृण्मयी प्रतिमा बनाये। चारों कोणों में अव्यक्त प्रतिमा रहे और मध्य भाग में पाँचवीं व्यक्त प्रतिमा स्थापित करे। आवरण-देवताओं के रूप में क्रमशः ललिता आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए। पहले वृत्ताकार अष्टदल कमल बनाकर आग्नेय आदि कोणवर्ती दलों में क्रमशः ललिता, सुभगा, गौरी और क्षोभणी की पूजा करे। फिर पूर्वादि दलों में वामा, ज्येष्ठा, क्रिया और ज्ञाना का यजन करे ।।६-१०।। शिव के अव्यक्त रूप का पूजन देवी के पीठासन के वाम भाग में करना चाहिए। देवी की कल्पना दो अथवा तीन नेत्रों से युक्त शुद्ध अथवा शंकर के साथ दो पद्मों के पीठ के ऊपर दो या चार भुजाओंवाली सिंहस्थ अथवा वृकस्थ, आठ अथवा अट्ठारह हाथोंवाली माला, रुद्राक्ष, यज्ञोपवीत, मणि-विशेष से युक्त एक बायें हाथ में धनुष अथवा बाण से युक्त, दूसरे बायें हाथ में पुस्तक, ताम्बूल, दण्ड, अभय मुद्रा और कमण्डलु से युक्त करनी चाहिए। क्रमशः दर्पणों में गणेश की कल्पना करनी चाहिए ।।११-१४।। आसन के ऊपर पद्ममुद्रावाली व्यक्त अथवा अव्यक्त देवी का स्मरण करना चाहिए। शिव की मुद्रा लिङ्गमुद्रा कही गयी है और दोनों की मुद्रा आहवनीय मुद्रा

---

१ "गौर्यै नमः" इतिपद° नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ छ. °डङ्गुलम्। ३ क. ख. ग. ङ. °र्घसुरा°। ४ क. ङ. जातसंयुगम्। ५ ख. ग. कांस्यजां। क. ङ. कोष्ठजां। ६ ख. ग. °यस्तारा द्वि°। ७ क. ख. ङ. °का शलाको°। ८ क. ङ. °द्रा स्थिताऽऽ°। ९ "मुद्रयाऽऽवाहनं" तयोः इत्यपि क्वचित्पाठः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिमुद्रा तु योन्याख्या चतुरस्त्रं तु मण्डलम्। चतुर्हस्तं त्रिपत्राब्जं मध्यकोष्ठचतुष्टये[1] ।।१६।।
त्र्यस्त्रार्धे चार्धचन्द्रं तु द्विपदं द्विगुणं क्रमात्। द्विपदं द्वारकण्ठं तु द्विगुणादुपकण्ठतः ।।१७।।
द्वारत्रयं त्रयं दिक्षु अथ वा भद्रके यजेत्। स्थण्डिले वाऽथ संस्थाप्य पञ्चगव्यामृतादिना ।।१८।।
रक्तपुष्पाणि देयानि पूजयित्वा ह्युदङ्मुखः। शतं हुत्वा घृताद्यं च पूर्णादः सर्वसिद्धिभाक् ।।१९।।
बलिं दत्त्वा कुमारींश्च [2]तिस्रो वा चाष्ट भोजयेत्। नैवेद्यं शिवभक्तेषु दद्यान्न स्वयमाचरेत् ।।२०।।
कन्यार्थी लभते कन्यामपुत्रः पुत्रमाप्नुयात्। दुर्भगा चैव सौभाग्यं राजा राज्यं जयं रणे ।।२१।।
अष्टलक्षैश्च वाक्सिद्धिर्देवाद्या वशमाप्नुयुः। अनिवेद्य न चाश्नीयाद्वामहस्तेन[3] चार्चयेत् ।।२२।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तृतीयायां विशेषतः। मृत्युंजयार्चनं वक्ष्ये पूजयेत्कलशोदरे ।।२३।।
[4]हूयमानं च प्रणवो मूर्तिरौजूंस ईदृशम्। मूलं च वौषडन्तेन कुम्भमुद्रां प्रदर्शयेत् ।।२४।।
होमयेत्क्षीरदूर्वाज्यममृतां च पुनर्नवाम्। पायसं च पुरोडाशमयुतं तु जपेन्मनुम् ।।२५।।
चतुर्मुखं चतुर्बाहुं द्वाभ्यां च कलशं दधत्। वरदाभयकं द्वाभ्यां स्नायाद्वै कुम्भमुद्रया ।।२६।।
आरोग्यैश्वर्यदीर्घायुरौषधं मन्त्रितं शुभम्। अपमृत्युहरो ध्यातः पूजितो [5]ह्यत एव सः ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौर्यादिपूजावर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२६।।

कही गयी है। शक्ति मुद्रा योनि मुद्रा है। गौरी-पूजन के लिए बनाया गया मण्डल चौकोर होता है। वह चार हाथ का होता है जिसके मध्य के चौखाने में त्रिदल कमल रहा करता है। तीन हाथों के आधे भाग में अर्धचन्द्र की स्थापना करके क्रमशः उसे दुगुना करना चाहिए। उपकण्ठ से दूना द्वारकण्ठ होता है। तीन द्वारों पर तीन दिशाओं में, भद्रासन के ऊपर अथवा स्थण्डिल के ऊपर देवी की स्थापना करके पञ्चगव्यामृतादि से देवी की पूजा करनी चाहिए। घृत इत्यादि से सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति देने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।।१५-१९।। तदनन्तर देवी को बलि देकर तीन अथवा आठ कुमारियों को भोजन कराना चाहिए और शिव भक्तों को नैवेद्य बाँटकर स्वयं उसका उपभोग नहीं करना चाहिए। (इस पूजन में) कन्याभिलाषी को कन्या तथा पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति होती है। भाग्यहीन को भाग्य प्राप्त होता है और राजा को राज्य तथा युद्ध में विजय होती है। इस मन्त्र का आठ लाख बार जप करने से वाक्सिद्धि होती है और देवादि वश में हो जाते हैं। बिना देवता को दिये हुए भोजन नहीं करना चाहिए और बायें हाथ से पूजन नहीं करना चाहिए। यह पूजन अष्टमी, चतुर्दशी और तृतीया में विशेष रूप से होता है। अब मैं मृत्युञ्जय पूजन के विषय में बतलाऊँगा जिसे कलश के अन्दर करना चाहिए। मूर्ति का आवाहन करके प्रणव के साथ 'ॐ जूं सः' मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। मूल मन्त्र के अन्त में 'वौषट्' का प्रयोग करना चाहिए और कुम्भमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए ।।२०-२४।। दूध, दूर्वा, आज्य, अमृत, पुनर्नवा और खीर का हवन करके दस हजार मन्त्रों का जप करना चाहिए। देवता का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उसके चार मुख और चार भुजाएँ हैं, उसने अपनी दो भुजाओं में कलश को धारण कर रखा है और दो भुजाओं को अभय वरदान देने के लिए उठा रखा है। कुम्भमुद्रा में ही स्नान करना चाहिए। इस देवता का मन्त्र आरोग्य, ऐश्वर्य और दीर्घायु के लिए औषधरूप और शुभ हुआ करता है। वह अपमृत्यु का अपहरण करनेवाला है। इसीलिए इस देवता का ध्यान और पूजन किया जाता है ।।२५-२७।।

श्री अग्निमहापुराण में गौर्यादिपूजा-वर्णन नामक तीन सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२६।।

---

१ ख. °ष्टयम्। त्र्य°। २ ख. ग. स्त्रियो। ३ क. ङ. °न वाऽर्च°। ४ ख. ग. जूमासनं। क. ङ. युग्मासनं। ५ क. ङ. भुवि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

देवालयमाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच

व्रतेश्वरांश्च सत्यादीनिष्ट्वा व्रतसमर्पणम् । अरिष्टशमने शस्तमरिष्टं सूत्रनायकम् ।।१।।
हेमरत्नमयं भूत्यै महाशङ्खं च मारणे । [1]आप्यायने शंखसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्धनम् ।।२।।
स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं रुद्रनेत्रजम् । धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमं ततः ।।३।।
समेरुं मेरुहीनं वा सूत्रं जप्यं तु मानसम् । अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जपं भाष्यं तु कारयेत् ।।४।।
[2]तर्जन्यङ्गुष्ठमाक्रम्य न मेरुं लङ्घयेज्जपे । प्रमादात्पतिते सूत्रे जप्तव्यं तु शतद्वयम् ।।५।।
सर्ववाद्यमयी घण्टा तस्या वादनमर्थकृत् । गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिका भस्मवारिभिः ।।६।।
वेश्मायतनलिङ्गादेः कार्यमेवं विशोधनम् । स्कन्दों नमः शिवायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ।।७।।
गीतः पञ्चाक्षरो वेदे लोके गीतः षडक्षरः । ओमित्यन्ते स्थितः शंभुर्महार्णे[3] वटबीजवत् ।।८।।
क्रमान्नमः शिवायेति ईशानाद्यानि वै विदुः । षडक्षरस्य सूत्रस्य भाष्यं विद्याकदम्बकम् ।।९।।

अध्याय ३२७

देवालय-माहात्म्य

महेश्वर बोले–सत्य इत्यादि व्रतेश्वरों का यजन करके व्रत समर्पण करना चाहिए। यह अनिष्टों को शान्त करने में श्रेष्ठ माना गया है। सोने और रत्नों की बनी हुई माला कल्याण के लिए, (मरे हुए चाण्डाल के दाँतों से बनी हुई) महाशंख नाम की माला मारण में, शंखों की बनी हुई माला पुष्टि करने में और मोतियों की माला पुत्रों की वृद्धि करनेवाली होती है। स्फटिक की बनी हुई माला कल्याणप्रद, रुद्राक्ष की माला मुक्तिप्रद और आँवले के बराबर रुद्राक्षों से बनी माला उससे उत्तम मानी गयी है। मानसिक जप में मेरु से युक्त अथवा मेरु से हीन माले का प्रयोग करना चाहिए। माले को अनामिका और अँगूठों से पकड़ना चाहिए ।।१-४।। जप में तर्जनी और अंगुष्ठ से माले को पकड़ना चाहिए किन्तु जप में मेरु का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यदि प्रमादवश माला (हाथ से) गिर जाय तो मन्त्र को दो सौ बार जपना चाहिए। घण्टा सभी वाद्यों से युक्त होता है और उसका बजाना सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। घण्टे का शोधन गोबर, गोमूत्र, वल्मीक की मिट्टी, भस्म और घर इत्यादि की मिट्टी से करना चाहिए। हे स्कन्द! 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है ।।५-७।। वेद में यह मन्त्र पाँच अक्षरों में गाया जाता है और लौकिक संस्कृत में उसे छह अक्षरों से युक्त गाना चाहिए। 'ॐ शम्भु' इत्यादि अक्षर वट बीज के समान होता है। 'नमः शिवाय' इत्यादि से ही ईशान इत्यादि देवताओं के मंत्रों का ज्ञान होता है। यह षडक्षर सूत्र सभी विद्वाओं का समूह है। 'ॐ नमः शिवाय' इत्यादि मन्त्र उत्कृष्टतम है, इसी के द्वारा (शिव) लिङ्ग का पूजन करना चाहिए क्योंकि लिङ्ग में ही शिव स्थित रहा करते हैं। सभी लोकों में अनुग्रह करनेवाला और

---

१ क. ङ. अघापने। २ क. ङ. °मात्रेण न। ३ क. ङ. °हार्थे बहुबी°। ख. °हार्थ व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदों नमः शिवायेति एतावत्परमं पदम्। अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात्स्थितः शिवः ।।१०।।
अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थमुक्तिदः। यो न पूजयते लिङ्गं न स धर्मादिभाजनम् ।।११।।
लिङ्गार्चनाद् भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत्। वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम् ।।१२।।
रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुपूजनात्। सूर्यः स्यात्सूर्यपूजातः शक्त्यादिः शक्तिपूजनात् ।।१३।।
सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत्फलम्। तत्फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेन्नरः ।।१४।।
त्रिसंध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम्। शतैकादशिकं यावत्कुलमुद्धृत्य नाकभाक् ।।१५।।
भक्त्या वित्तानुसारेण कुर्यात्प्रासादसंचयम्। अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ।।१६।।
भागद्वयं च धर्मार्थं कल्पयेज्जीवनाय च। धनस्य भागमेकं तु अनित्यं जीवितं यतः ।।१७।।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य देवागारकृदर्थभाक्। मृत्काष्ठेष्टकशैलाद्यैः क्रमात्कोटिगुणं फलम् ।।१८।।
अष्टेष्टकसुरागारकारी स्वर्गमवाप्नुयात्। पांशुना क्राडमानोऽपि देवागारकृदर्थभाक् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवालयमाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२७।।

धर्म, काम और मोक्ष को देनेवाला लिङ्ग ही है। जो लिङ्ग का पूजन नहीं करता है, वह धर्म इत्यादि का पात्र नहीं होता है ।।८-११।। शिवलिङ्गार्चन से ही भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः जीवनपर्यन्त उसी का पूजन करना चाहिए। प्राणों का परित्याग श्रेष्ठ है किन्तु बिना शिवलिङ्ग के भोजन करना उचित नहीं है। रुद्र का पूजन करने से (साधक) रुद्रमय हो जाता है। विष्णु का पूजन करने से वह विष्णु हो जाता है, सूर्यार्चन से सूर्य और शक्ति का पूजन करने से शक्त्यादिमय हो जाता है। सभी प्रकार के यज्ञों, तपों, दानों, तीर्थों और वेदों का जो फल होता है वही फल करोड़ों गुना होकर शिवलिङ्ग की स्थापना करनेवाले मनुष्य को प्राप्त हो जाता है। पार्थिव लिंग की स्थापना करके त्रिकाल सन्ध्याओं में बिल्वपत्र से पूजन करने से (साधक) अपने एक सौ ग्यारह पीढ़ियों के साथ स्वर्ग का भागी होता है ।।१२-१५।। अपने धनसंचय के अनुसार भक्तिपूर्वक देवमन्दिर का निर्माण कराना चाहिए। दरिद्र और धनिक को मन्दिर-निर्माण में यथाशक्ति अल्प या अधिक व्यय करने के समान फल मिलता है। संचित धन के दो भाग धर्म कार्य में व्यय करके जीवन-निर्वाह के लिए समभाग रखे, क्योंकि जीवन अनित्य है। देवमन्दिर बनवानेवाला अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति करता है। मिट्टी, लकड़ी, ईंट और पत्थर से मन्दिर निर्माण का क्रमशः करोड़ गुना फल है। आठ ईंटों से भी मन्दिर का निर्माण करनेवाला स्वर्गलोक को प्राप्त हो जाता है। क्रीड़ा में धूलि का मन्दिर बनानेवाला भी अभीष्ट मनोरथ को प्राप्त करता है ।।१६-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में देवालय-माहात्म्य-वर्णन नामक तीन सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२७।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच

[1]छन्दो वक्ष्ये [2]मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम् । सर्वादिमध्यान्तगणौ [3]म्लौ भ्यो ज्रौ[4] स्तौ त्रिका गणाः ।।१।।
[5]ह्रस्वो गुरुर्वा पादान्ते पूर्वयोगाद्विसर्गतः । अनुस्वाराद्व्यञ्जनात्स्याज्जिह्वामूलीयतस्तथा ।।२।।
उपध्मानीयतो दीर्घो [6]गुरुर्ग्लौ नौ गणाविह । वसवोऽष्टौ च चत्वारो [7]वेदादीन्यादिलोकतः[8] ।।३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामाष्टाविंशत्य-
धिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२८।।

अध्याय ३२८

छन्दःसार

अग्निदेव बोले–अब मैं वेद के मूलमन्त्रों के अनुसार पिङ्गलोक्त छन्दों का क्रमशः वर्णन करूँगा। 'मगण', 'नगण', 'भगण', 'यगण', 'जगण', 'रगण', 'सगण' और 'तगण'–ये आठ गण होते हैं। सभी गण तीन-तीन अक्षरों के हैं। इनमें 'मगण' के सभी अक्षर गुरु और 'नगण' के सब अक्षर लघु होते हैं। आदि गुरु होने से 'भगण' तथा आदि लघु होने से 'यगण' होता है। इसी प्रकार अन्त्य गुरु होने से 'सगण' तथा अन्त्य लघु होने से 'तगण' होता है। पाद के अन्त में वर्तमान ह्रस्व अक्षर विकल्प से गुरु माना जाता है। विसर्ग, अनुस्वार, संयुक्त अक्षर (व्यञ्जन), जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय से अव्यवहित पूर्व में स्थित होने पर 'ह्रस्व' भी गुरु माना जाता है, दीर्घ तो गुरु है ही। गुरु का संकेत 'ग' और लघु का संकेत 'ल' है। ये 'ग' और 'ल' गण नहीं हैं। वसु शब्द आठ की और वेद चार की संज्ञा है, इत्यादि बातें लोक के अनुसार जाननी चाहिए ।।१-३।।

श्री अग्निमहापुराण में छन्दःसार-कथन नामक
तीन सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२८।।

---

१ क. ङ. छन्दान्वक्ष्ये। २ ख. ग. °लशब्दैःपि। ३ क. ङ. न्नौ। ख. ग. म्नौ। ४ क. ङ. ज्मौ। ५ ख. ग. °स्वो लघुर्वा। ६ ख. ग. °रुलौ सगलावि°। ७ ख. ग. °दा इत्यादि। ८ छ. °लोपतः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच

छन्दोधिकारे गायत्री देवी चैकाक्षरा भवेत्। [1]पञ्चदशाक्षरा सा स्यात्प्राजापत्याऽष्टवर्णिका ।।१।।
यजुषां षडर्णा गायत्री साम्नां स्याद्द्वादशाशरा। ऋचामष्टादशार्णा स्यात्साम्नां [2]वर्धेत च द्वयम् ।।२।।
ऋचां त्रयं च वर्धेत प्राजापत्याचतुष्टयम्। वर्धेदेकैककं शेषे आसुर्या एकमुत्सृजेत् ।।३।।
उष्णिगनुष्टुब्बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यपि। तानि ज्ञेयानि क्रमशो गायत्र्यो [3]ब्राह्म्य एव ताः ।।४।।
तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य स्युरेकैका [4]आर्ष्यं एव च[5]। प्राग्यजुषां च संज्ञाः स्युश्चतुःषष्टिपदे लिखेत् ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामैकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२९।।

अध्याय ३२९

छन्दःसार

अग्निदेव बोले–(गायत्री छन्द के आठ भेद हैं–आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची तथा ब्राह्मी) 'छन्द' शब्द अधिकार में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् इस पूरे प्रकरण में छन्द शब्द की अनुवृत्ति होती है। 'दैवी' गायत्री एक अक्षर की, 'आसुरी' पन्द्रह अक्षरों की, 'प्राजापत्या' आठ अक्षरों की, 'याजुषी' छह अक्षरों की, 'साम्नी' गायत्री बारह अक्षरों की तथा 'आर्ची' अठारह अक्षरों की है। यदि साम्नी गायत्री में क्रमशः दो-दो अक्षर बढ़ाते हुए उन्हें छह कोष्ठों में लिखा जाय, इसी प्रकार आर्ची गायत्री में तीन-तीन, 'प्राजापत्या' में चार-चार तथा अन्य गायत्रियों में अर्थात् दैवी और याजुषी में क्रमशः एक-एक अक्षर बढ़ जाय एवं आसुरी गायत्री का एक-एक अक्षर क्रमशः छह कोष्ठों में घटता जाय तो उन्हें 'साम्नी' आदि भेदसहित क्रमशः उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द जानना चाहिए। याजुषी, साम्नी तथा आर्ची–इन तीन भेदोंवाले गायत्री आदि प्रत्येक छन्द के अक्षरों को पृथक्-पृथक् जोड़ने पर उन सबको 'ब्राह्मी गायत्री', 'ब्राह्मी-उष्णिक्' आदि छन्द समझना चाहिए। इसी प्रकार याजुषी पहले जो दैवी, आसुरी और प्राजापत्या नामक तीन भेद हैं, उनके अक्षरों को पृथक्-पृथक् छह कोष्ठों में जोड़ने पर जितने अक्षर होते हैं, वे 'आर्षी गायत्री', 'आर्षी उष्णिक्' आदि कहलाते हैं। इनमें दो को स्पष्ट रूप से समझने के लिए चौंसठ कोष्ठों को लिखना चाहिए ।।१-५।।

श्री अग्निमहापुराण में छन्दःसार-कथन नामक तीन सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२९।।

---

१ क. ङ. °दश्यासुरी रम्या प्राजा°। २ क. ङ. °र्धेद्द्वयं द्व°। ३ क. ङ. ह्य्य देव°। ४ छ. आर्य। ५ छ. च। ऋग्य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच

पाद आपादपूरणे[1] गायत्र्यो वसवः स्मृताः। जगत्या आदित्याः पादो विराजो दिश ईरिताः ।।१।।
[2]त्रिष्टुभो रुद्राः पादः स्याच्छन्द एकादिपादकम्। आद्यं चतुष्यादृतुभिस्त्रिपात्सप्ताक्षरैः क्वचित् ।।२।।
([3]सा गायत्री [4]पादनिचृत्प्रतिष्ठाष्टाद्रिषट्त्रिपात्। वर्धमाना षडष्टाष्टा त्रिपात्ष[5]डष्टभूधरैः ।।३।।
[6]गायत्र्यतिपादनिचृन्नागो नवनवर्तुभिः। वाराही [7]रसद्विरन्धैश्छन्दश्चाथ तृतीयकम् ।।४।।
द्विपाद्द्वादशवस्वर्णैस्त्रिपात्तु [8]त्रैष्टुभैः स्मृतम्। उष्णिक्छन्दोऽष्टवस्वर्कैः पादैर्वेदे प्रकीर्तितः ।।५।।
[9]ककुबुष्णिगष्टसूर्यवस्वर्णै [10]स्त्रिभिरेव सः। पुर उष्णिक्सूर्यवसुवस्वर्णैश्च त्रिपाद्भवेत्) ।।६।।
परोष्णिक्परतस्तु स्याच्चतुष्पादृषिभिर्भवेत्[11]। साष्टाक्षरैरनुष्टुप्स्याच्चतुष्पाच्च त्रिपात्क्वचित् ।।७।।

अध्याय ३३०

छन्दःसार

अग्निदेव बोले–पादपूर्ति तक 'पाद' का अधिकार है। गायत्री के एक पाद में आठ अक्षर बताये गये हैं। जगती के एक पाद में बारह अक्षर, विराट् में एक पाद में दस अक्षर, त्रिष्टुप् के एक पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं। छन्दों में एक और उससे अधिक पाद हो सकते हैं। प्रथम (गायत्री) छन्द छह-छह अक्षरवाले चार पादों से युक्त होता है। कहीं-कहीं इसमें सात-सात अक्षरों के तीन पाद भी होते हैं ।।१-२।। यह गायत्री पाद निचृत् कहलाती है। यदि गायत्री के प्रथम पाद में आठ अक्षर, दूसरे में सात अक्षर और तीसरे में छह अक्षर हों तो उसे 'विपरीता' गायत्री कहते हैं। इसमें तीन पाद होते हैं। 'वर्धमाना गायत्री' उसे कहते हैं जिसके प्रथम पाद में छह अक्षर और शेष दो में आठ-आठ अक्षर होते हैं। जिस गायत्री के प्रथम पाद में छह, दूसरे में आठ और तीसरे में सात अक्षर होते हैं उसे 'अतिपादनिचृत्' गायत्री कहते हैं। जिस गायत्री के प्रथम दो पादों में नौ-नौ अक्षर और तीसरे में छह अक्षर होते हैं उसे 'नागी' कहते हैं। किन्तु जिसके प्रथम पाद में छह अक्षर तथा दूसरे और तीसरे पाद में नौ-नौ अक्षर होते हैं उसे 'वाराही' गायत्री कहते हैं ।।३-४।। जब दो चरण आठ-आठ अक्षरों के और एक चरण बारह अक्षरों का हो तो वेद में उसे 'उष्णिक्' नाम दिया गया है। प्रथम और तृतीय चरण आठ अक्षरों के हों और बीच का द्वितीय चरण बारह अक्षरों का हो तो वह तीन पादों का 'ककुप् उष्णिक्' नामक छन्द होता है। जब प्रथम चरण बारह अक्षरों का और द्वितीय-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'पुर उष्णिक्' नामक तीन पादोंवाला छन्द होता है। जब प्रथम और द्वितीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों और तृतीय चरण बारह अक्षरों का हो तो 'परोष्णिक्' छन्द होता है। सात-

---

१ ख. °पूरेण गा°। २ छ. विष्णुतो। ३ 'सा°°°त्रिपाद्भवेत्' च. पुस्तके नास्ति। ४ छ. °त्री पदे नीवृत्तत्प्रतिष्ठाद्रि°। ५ छ. 'त्षड्वसुभू°। ६ छ. °यत्रीतिपदलीवृन्ना°। ७ क. °द्विनवकं वर्धमानर्त्वगष्टभिः। वस्वश्वषट्कवर्णैश्च प्रतिष्ठा तु प्रकीर्तिता।। द्वि°। ८ क. ङ. पात्वर्णेर्जुनैः स्मृ°। ९ ख. °मनुष्टुप्सूर्य°। °१० ख. ग. °स्वर्णाङ्घ्रिभि°। छ. °स्वर्णात्रिभि°। ११ क. ङ. °ष्पान्मुनिभिर्भ°। छ. °ष्पादात्रिभिः°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टार्कसूर्यवर्णैः स्यान्मध्येऽन्ते च क्वचिद्भवेत् । [1]बृहती [2]जगतस्त्रयो गायत्र्याः पूर्वको यदि ।।८।।
तृतीयः पथ्या भवति द्वितीया न्यङ्कुसारिणी । [3]स्कन्धो ग्रीवा क्रौष्टके [4]स्याद्यास्कस्योरो[5] बृहत्यपि ।।९।।
उपरिष्टाद्बृहत्यन्ते पुरस्ताद्बृहती पुनः । क्वचिन्नवकाश्चत्वारो[6] दिग्विदिक्ष्वष्टवर्णिका ।।१०।।
महाबृहती जागतैः स्यात्त्रिभिः सतो बृहत्यपि । [7]ताण्डिनः पङ्क्तिश्छन्दः स्यात्सूर्यार्काष्टाष्टवर्णकैः ।।११।।
[8]पूर्वौ चेदयुजौ सतः पङ्क्तिश्च विपरीतकौ । प्रस्तारपङ्क्तिः पुरतः [9]परादा[10]स्तारपङ्क्तिकः ।।१२।।
[11]विस्तारपङ्क्तिरन्तश्चेद्वहिः संस्तारपङ्क्तिका । अक्षरपङ्क्तिः पञ्चकाश्च चत्वारश्चाल्पशो द्वयम् ।।१३।।

सात अक्षरों के चार चरण होने पर भी 'उष्णिक्' नामक छन्द होता है। आठ-आठ अक्षर के चार चरणों का 'अनुष्टुप्' नामक छन्द होता है। 'अनुष्टुप्' छन्द कहीं-कहीं तीन चरणों का भी होता है। 'त्रिपाद अनुष्टुप्' दो तरह के होते हैं। एक तो वह है, जिसके प्रथम चरण में आठ तथा द्वितीय और तृतीय चरणों में बारह-बारह अक्षर होते हैं। दूसरा वह है, जिसका मध्यम अथवा अन्तिम पद आठ अक्षर का हो तथा शेष दो चरण बारह-बारह अक्षर के हों। यदि एक चरण 'जगती' का (अर्थात् बारह अक्षर का) हो और शेष तीन चरण गायत्री के (अर्थात् आठ-आठ अक्षरों के) हों तो यह चार चरणों का 'बृहती छन्द' होता है। इसमें भी जब पहले का स्थान तीसरा चरण ले ले अर्थात् वही जगती का पाद हो और शेष तीन चरण गायत्री के हों तो उसे 'पथ्याबृहती' कहते हैं। जब पहलेवाला 'जगती' का चरण द्वितीय पाद हो जाय और शेष तीन गायत्री के चरण हों तो 'न्यङ्कुसारिणी बृहती' नामक छन्द होता है। आचार्य क्रोष्टुकि के मत में यह (न्यङ्कुसारिणी) 'स्कन्ध' या 'ग्रीवा' नामक छन्द है। यास्काचार्य ने इसे ही 'उरो बृहती' नाम दिया है। जब अन्तिम (चतुर्थी) चरण 'जगती' का हो और आरम्भ के तीन चरण गायत्री के हों तो 'उपरिष्टाद् बृहती' नामक छन्द होता है। वही 'जगती' का चरण जब पहले हो और शेष तीन चरण गायत्री छन्द के हों तो उसे 'पुरस्ताद् बृहती' छन्द कहते हैं। वेद में कहीं-कहीं नौ-नौ अक्षरों के चार चरण दिखायी देते हैं। वे भी 'बृहती' छन्द के अन्तर्गत हैं। जहाँ पहले दस अक्षर के दो चरण हों, फिर आठ अक्षरों के दो चरण हों, उसे भी 'बृहती छन्द' कहते हैं। केवल 'जगती' छन्द के तीन चरण हों तो उसे 'महाबृहती' कहते हैं। ताण्डी नामक आचार्य के मत में यही 'सतो बृहती' नामक छन्द है ।।५-१०$\frac{1}{2}$।। जहाँ दो पाद बारह-बारह अक्षरों के और दो आठ-आठ अक्षरों के हों, वहाँ 'पङ्क्ति' नामक छन्द होता है। यदि विषम पाद, अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण पूर्वकथनानुसार बारह-बारह अक्षरों के हों और शेष दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे 'सतः पङ्क्ति' नामक छन्द कहते हैं। यदि वे ही चरण विपरीत अवस्था में हों, अर्थात् प्रथम-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के और द्वितीय-चतुर्थ बारह-बारह अक्षरों के हों तो भी वह छन्द 'सतःपङ्क्ति' ही कहलाता है। तब पहले के दोनों चरण बारह-बारह अक्षरों के हों और शेष दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे 'प्रस्तारपङ्क्ति' कहते हैं। जब अन्तिम दो चरण बारह-बारह अक्षरों के हों और आरम्भ के दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'आस्तारपङ्क्ति' नामक छन्द होता है। यदि बारह अक्षरोंवाले दो चरण बीच में हों और प्रथम और चतुर्थ चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे 'विस्तारपङ्क्ति' कहते हैं। यदि बारह अक्षरोंवाले दो चरण बाहर हों, अर्थात् प्रथम एवं चतुर्थ चरण के रूप में हों और बीच में द्वितीय-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो वह 'संस्तार-पङ्क्ति' नामक छन्द होता है। पाँच-पाँच अक्षरों

---

१ क. °तीजागतस्त्र°। २ छ. गत्यस्त्र°। ३ छ. स्कन्धौ। ४ छ. स्याद्यक्षे स्याद्वोबृ°। ५ क. ङ. °स्योबृ°। ६ ख. ग. दिग्दिगष्टाष्ट°। ७ छ. मण्डिलः। ८ घ. ङ. च. °र्वौ वेदयु°। ध. °र्वौ देवयु°। ९ ख. ङ. पश्चादा°। १० क. ङ. °दास्वासप। ११ 'विस्तारपङ्क्ति.....संस्तारपङ्क्तिका' नास्ति क. घ. ङ. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पदपङ्क्तिः पञ्च भवेच्चतुष्कं षट्ककत्रयम् । षट्कपञ्चीभर्गायत्रैः षड्भिश्च जगती भवेत् ।।१४।।
एकेन त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती तथैव जगतीरिता । पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमे मध्येज्योतिश्च मध्यतः ।।१५।।
उपरिष्टाज्ज्योतिरन्त्यादेकस्मिन्पञ्चके तथा । भवेच्छन्दः शङ्कुमती षट्के छन्दः ककुद्मती ।।१६।।
त्रिपादशिशुमध्या स्यात्सा पिपीलिकमध्यमा । विपरीता यवमध्या [1]त्रिवृदेकेन वर्जिता ।।१७।।
[2]भूरिजैकेनाधिकेन [3]विहीना च चिराद्भवेत् । स्वराट्स्याद्द्वाभ्यामधिकं संदिग्धे दैवतादितः ।।१८।।
आदिपादान्निश्चयः स्याच्छन्दसां देवताः क्रमात् । ([4]अग्निः सूर्यः शशी जीवो वरुणश्चन्द्र एव च ।।१९।।

के चार पाद होने पर 'अक्षरपङ्क्ति' नामक छन्द होता है। पाँच अक्षरों के दो ही चरण होने पर 'अल्पशः पङ्क्ति' नामक छन्द कहलाता है। जहाँ पाँच-पाँच अक्षरों के पाँच पाद हों, वहाँ 'पदपङ्क्ति' नामक छन्द जानना चाहिए। जब पहला चरण चार अक्षरों का, दूसरा छह अक्षरों का तथा शेष तीन पाद पाँच-पाँच अक्षरों के हों तो भी 'पदपङ्क्ति' छन्द होता है। आठ-आठ अक्षरों के पाँच पादों को 'पथ्यापङ्क्ति' नामक छन्द कहा गया है। आठ-आठ अक्षरों के छह चरण होने पर 'जगतीपङ्क्ति' नामक छन्द होता है ।।११-१४।। 'त्रिष्टुप्' अर्थात् ग्यारह अक्षरों का एक पाद हो और आठ-आठ अक्षरों के चार पाद हों तो पाँच पादों का 'त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती' नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब एक चरण 'जगती' का अर्थात् बारह अक्षरों का हो और चार चरण 'गायत्री' के (आठ-आठ अक्षरों के) हों तो उस छन्द का नाम 'जगतीज्योतिष्मती' होता है। यदि पहला ही चरण ग्यारह अक्षरों का हो और शेष चार चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'पुरस्ताज्ज्योति' नामक त्रिष्टुप् छन्द होता है और यदि पहला ही चरण बारह अक्षरों का तथा शेष चार चरण आठ-आठ के हों तो 'पुरस्ताज्ज्योति' नामक जगती छन्द होता है। जब मध्यम चरण ग्यारह अक्षरों और आगे-पीछे के दो-दो चरण आठ-आठ के हों तो 'मध्येज्योति' नामक त्रिष्टुप् छन्द होता है, इसी प्रकार जब मध्यम चरण बारह का तथा आदि-अन्त के दो-दो चरण आठ-आठ के हों तो 'मध्येज्योति' नामक जगती छन्द होता है। जब आरम्भ के चार चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तथा अन्तिम चरण ग्यारह अक्षरों का हो तो उसे 'उपरिष्टाज्ज्योति' त्रिष्टुप् कहते हैं। इसी प्रकार जब आदि के चार चरण पूर्ववत् आठ-आठ के हों और अन्तिम पाद बारह अक्षरों का हो तो उसका नाम 'उपरिष्टाज्ज्योति' जगती छन्द होता है। गायत्री आदि सभी छन्दों के एक पाद में यदि पाँच अक्षर हों तथा अन्य पादों में पहले के अनुसार नियत अक्षर ही हों तो उस छन्द का नाम 'शङ्कुमती' होता है। जब एक चरण छह अक्षरों का हो और अन्य चरणों में पहले बताये अनुसार नियत अक्षर ही हों तो उसका नाम 'ककुद्मती' होगा। जहाँ तीन पादवाले छन्द के पहले और दूसरे चरण में अधिक अक्षर हों और बीचवाले में बहुत ही कम हों, वहाँ उस छन्द का नाम 'पिपीलिकमध्या' होगा। इसके विपरीत जब आदि और अन्तवाले पादों के अक्षर कम हों और बीचवाला पाद अधिक अक्षरों का हो तो उस 'त्रिपादगायत्री' आदि छन्द को 'यवमध्या' कहते हैं। यदि 'गायत्री' या 'उष्णिक्' आदि छन्दों में केवल एक अक्षर की कमी हो उसकी 'निचृत्' यह विशेष संज्ञा होती है। एक अक्षर की अधिकता होने पर वह छन्द 'भूरिक्' नाम धारण करता है। इस प्रकार दो अक्षरों की कमी के कारण 'विराट्' और दो अक्षर अधिक होने पर 'स्वराट्' संज्ञा होती है। संदिग्ध अवस्था में आदि पाद के अनुसार छन्द का निर्णय करना चाहिए ।।१५-१८।। इसी प्रकार देवता, स्वर, वर्ण तथा गोत्र आदि के द्वारा संदिग्ध स्थल में छन्द का निर्णय हो सकता है। गायत्री आदि छन्दों के देवता क्रमशः इस प्रकार हैं-अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र तथा विश्वेदेव।

---

१ क. ङ. निछेदैकेन। ख. ग. निवृदेकेन। २ छ. °भूमिजै°। ३ छ. द्विहीना। ४ 'अग्निः.....क्रमात्' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विश्वेदेवाश्च [1]षड्जगत्याः स्वराः षड्जो वृशः क्रमात्) । गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमो धैवतस्तथा ।।२०।।
निषादो वर्णः श्वेतश्च सारङ्गश्च पिशङ्गकः । कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरो गायत्रिमुख्यके[2] ।।२१।।
गोरोचनाभाः कृतयो[3] ह्यतिपूछ(च्छ)न्दो हि श्यामलम् । अग्निर्वैश्यः काश्यपश्च गौतमाङ्गिरसौ क्रमात् ।।२२।।
भार्गवः कौशिकश्चैव वासिष्ठो गोत्रमीरितम् ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नाम त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३०।।

अथैकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दोजातिनरूपणम्

अग्निरुवाच

चतुःशतमुत्कृतिः स्यादुत्कृतेश्चतुरस्त्यजेत् । अभिसंख्या प्रत्यकृतिस्तानि च्छन्दांसि वै पृथक् ।।१।।
[4]कृतिश्चातिधृतिर्धात्री [5]अत्यष्टिश्चाष्टिरित्यतः । [6]अतिशक्वरी [7]शक्वरीति अतिजगती जगत्यपि ।।२।।
छन्दोऽत्र लौकिकं स्याच्च [8]आर्षमात्रैष्टुभात्स्मृतम् । त्रिष्टुप्पङ्क्तिबृहती अनुष्टुबुष्णिगीरितम् ।।३।।

उक्त छन्दों के स्वर हैं–'षड्ज' आदि। उनके नाम क्रमशः ये हैं–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। श्वेत, सारंग, पिशङ्ग, कृष्ण, नील, लोहित (लाल) तथा गौर–ये क्रमशः गायत्री आदि छन्दों के वर्ण हैं। 'कृति' नामवाले छन्दों का वर्ण गोरोचन के समान है और अतिच्छन्दों का वर्ण श्यामल है। अग्निवेश्य, काश्यप, गौतम, अङ्गिरा, भार्गव, कौशिक तथा वशिष्ठ–ये क्रमशः उक्त सात छन्दों के गोत्र बताये गये हैं ।।१९-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में छन्दःसार कथन-नामक तीन सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३०।।

अध्याय ३३१

छन्दोजाति-निरूपण

अग्निदेव बोले–एक सौ चार अक्षरों का 'उत्कृति' छन्द होता है। 'उत्कृति' छन्द में से चार-चार घटाते जायँ तो क्रमशः निम्नाङ्कित छन्द होते हैं– सौ अक्षरों की 'अभिकृति', छानबे अक्षरों की 'संस्कृति', बानबे अक्षरों की 'विकृति', अठासी अक्षरों की 'आकृति', चौरासी अक्षरों की 'प्रकृति', अस्सी अक्षरों की 'कृति', छिहत्तर अक्षरों की 'अधिकृति', बहत्तर अक्षरों की 'धृति', अड़सठ अक्षरों की 'अत्यष्टि', चौंसठ अक्षरों की 'अष्टि', साठ अक्षरों की 'अतिशक्वरी', छप्पन अक्षरों की 'शक्वरी', बावन अक्षरों की अतिजगती तथा अड़तालीस अक्षरों की 'जगती' होती है। यहाँ तक केवल वैदिक छन्द हैं। यहाँ से आगे लौकिक छन्द का अधिकार है। 'गायत्री' से लेकर 'त्रिष्टुप्' तक जो आर्षछन्द वैदिक छन्दों में गिनाये गये हैं, वे लौकिक छन्द भी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–त्रिष्टुप्', पङ्क्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्

---

१ छ. षड्जाद्याः। २ क. ङ. °यत्र्यमुच्यते गो°। ३ ज्योतिश्छन्दो। ४ क. ङ. °तिर्बृहती अ°। छ. तिवृत्ती अ°। ५ क. ङ. अष्टिप्रत्यष्टि°। ६ क. ङ. छ. अतिशकरी। ७ क. ङ. छ. शर्करी। ८ क. ङ. आर्यामात्रैष्टतान्स्मृत°। ख. ग. आर्यामात्रैस्थमस्मृत°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गायत्री स्यात्सुप्रतिष्ठा प्रतिष्ठा मध्यया सह। अत्युक्तात्युक्त आदिश्च [1]एकैकाक्षरवर्जितम्[2] ।।४।।
चतुर्भागो भवेत्पादो [3]गणच्छन्दः [4]प्रदर्श्यते[5]। तावन्तः समुद्रा गणा ह्यादिमध्यान्तसर्वगाः ।।५।।
चतुर्वर्णाः पञ्च गणा आर्यालक्षणमुच्यते। स्वरार्धं च आर्यार्धं स्यादार्यायां [6]विषमेण जः ।।६।।
षष्ठो जो न लघुर्वा स्याद्द्वितीयादिपदं नले। सप्तमेऽन्ते प्रथमा च द्वितीये पञ्चमे नले ।।७।।
अर्धे पदं प्रथमादि षष्ठ एको लघुर्भवेत्। त्रिषु गणेषु पादः स्यादार्या[7] पञ्चार्धके स्मृता ।।८।।
विपुलान्यथ चपला गुरुमध्यगतौ च जौ। द्वितीयचतुर्थौ पूर्वे च चपला मुखपूर्विका ।।९।।
द्वितीये जघनपूर्वा चपलार्या प्रकीर्तिता। [8]उभयोर्महाचपला गीतवाद्यार्धतुल्यका[9] ।।१०।।

और गायत्री। गायत्री छन्द में क्रमशः एक-एक अक्षर की कमी होने पर 'सुप्रतिष्ठा', प्रतिष्ठा' 'मध्या', 'अत्युक्तात्युक्त' तथा 'आदि' नामक छन्द होते हैं ।।१-४।। छन्द के चौथाई भाग को 'पाद' या 'चरण' कहते हैं। पहले 'गणच्छन्द' दिखलाया जाता है। चार लघु अक्षरों की गण संज्ञा होती है। ये गण पाँच हैं। कहीं आदि गुरु, कहीं मध्य गुरु, कहीं अन्त्य गुरु, कहीं सर्वगुरु और कहीं चारों अक्षर लघु होते हैं। अब आर्या का लक्षण बताया जाता है। साढ़े सात गणों की अर्थात् तीस मात्राओं की या तीस लघु अक्षरों की आधी 'आर्या' होती है। आर्या छन्द के विषम गणों में जगण का प्रयोग नहीं होता। किन्तु छठा गण अवश्य जगण होना चाहिए अथवा वह नगण और लघु यानी सब-का-सब लघु भी हो सकता है। जब छठा गण सब-का-सब लघु हो तो उस गण के द्वितीय अक्षर से सुबन्त या तिङन्त लक्षण पद संज्ञा की प्रवृत्ति होती है। यदि छठा गण मध्य गुरु अथवा सर्व लघु हो सातवाँ गण भी सर्व लघु ही हो, तो सातवें गण के प्रथम अक्षर से 'पद' संज्ञा की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार जब आर्या के उत्तरार्ध भाग में पाँचवाँ गण सर्व लघु हो तो उसके प्रथम अक्षर से ही पद का आरम्भ होता है। आर्या के उत्तरार्ध भाग में छठा गण एकमात्र लघु अक्षर का होता है। जिस आर्या के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में तीन-तीन गणों के बाद पहले पाद का विराम होता है, उसे 'पथ्या' माना गया है ।।५-८।। जिस आर्या के पूर्वार्ध में या उत्तरार्ध में अथवा दोनों में तीन गणों पर पाद विराम नहीं होता, उसका नाम 'विपुला' होता है। जिस आर्या छन्द में द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु अक्षरों के बीच में होने के साथ ही जगण अर्थात् मध्यगुरु हों, उसका नाम 'चपला' है। तात्पर्य यह है कि 'चपला' नामक आर्या में प्रथम गण अन्त्यगुरु, तृतीय गण दो गुरु तथा पञ्चम गण आदि गुरु होता है। शेष गण पूर्ववत् रहते हैं। पूर्वार्ध में 'चपला' का लक्षण हो तो उस आर्या का नाम 'मुखचपला' होता है। परार्ध में चपला का लक्षण होने पर उसे जघनचपला कहते हैं। पूर्वार्ध और परार्ध-दोनों में चपला का लक्षण संघटित होता हो तो उसका नाम 'महाचपला' है। जहाँ आर्या के पूर्वार्ध के समान ही उत्तरार्ध भी हो, तो उसे 'गीति' नाम दिया गया है। तात्पर्य यह कि उसके उत्तरार्ध में भी छठा गण मध्यगुरु अथवा सर्वलघु करना चाहिए। उसी प्रकार जहाँ आर्या के उत्तरार्ध के समान ही पूर्वार्ध भी हो, उसे 'उपगीति' कहते हैं। आर्या के पूर्वोक्त क्रम को विपरीत कर देने पर 'उद्गीति' नाम पड़ता है। सारांश यह है कि उसमें पूर्वार्ध को उत्तरार्ध में और उत्तरार्ध को पूर्वार्ध में रखा जाता है। यदि पूर्वार्ध में आठ गण हों तो 'आर्यागीति' नामक छन्द होता है। कोई विशेषता न होने से इसका उत्तरार्ध भी

---

१ क. ङ. °कैकोत्तर°। २ ख. ग. °वर्धित°। ३ क. ङ. गणछन्दं। ४ क. ङ. प्रशस्यते। ५ ख. ग. °ते। भवेन्तः। ६ ख. ङ. °मे नरः। ष°। ७ ख. ग. °ञ्चाब्द्यके। ८ क. ङ. °ला शीतवार्यर्ध। ९ ख. ग. °का। आद्येना°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]अन्त्येनार्धेनोपगीतिरुद्गीतिश्चोत्क्रमात्स्मृता । [2]अर्धे रक्षगणा आर्यागीतिच्छन्दोऽथ मात्रया ।।११।।
[3]वैतालीयं [4]द्विशस्ता स्याच्चतुष्पादे समे नलः । वसवोऽन्ते[5] वनगाश्च गोपुच्छं दशकं भवेत् ।।१२।।
भगणान्ता [6]पातलिका शेषे परे च पूर्ववत् । साकं षड्वा मिश्रयुजि प्राच्यवृत्तिः प्रदर्श्यते ।।१३।।
पञ्चमेन पूर्वासकं तृतीयेन सहस्रयुक् । उदीच्यवृत्तिराद्या स्याद्युगपच्च प्रवर्तकम् ।।१४।।
[7]अयुक्[8] चारुहासिनी स्याद्युगपच्चान्तिका भवेत्[9] । सप्तार्चिवसवश्चैव मात्रासमकमीरितम् ।।१५।।
[10]भवेन्नलरमौ लश्च द्वादशो वानवासिका । [11]विश्लोकः पञ्चमाष्टौ मो चित्रा नवमकश्च लः ।।१६।।
परमुक्ते नोपचित्रा[12] पादाकुलकमित्यतः । [13]गीत्यार्यालोपश्चेत्सौम्या लपूर्वा ज्योतिरीरिता ।।१७।।

ऐसा ही समझना चाहिए। यहाँ भी छठे गण में मध्यगुरु और सर्वलघु–इन दोनों की प्राप्ति थी, उसके स्थान में केवल एक 'लघु' का विधान है। अब 'मात्रा छन्द' बतलाया जाता है जहाँ विषम, अर्थात् प्रथम और द्वितीय चरण में चौदह लघु (मात्राएँ) हों और सम-द्वितीय चतुर्थ चरणों में सोलह लघु हों तथा इनमें से प्रत्येक चरण के अन्त में रगण, एक लघु और एक गुरु हो तो 'वैतालीय' नामक छन्द होता है। वैतालीय छन्द के अन्त में एक गुरु और बढ़ जाय तो उसका नाम 'औपच्छन्दसक' होता है ।।९-१२।। पूर्वोक्त वैतालीय छन्द के प्रत्येक चरण के अन्त में जो रगण, लघु और गुरु की व्यवस्था की गयी है, उसकी जगह यदि भगण और दो गुरु हो जायँ तो उस छन्द का नाम 'आपातलिका' होता है। उपर्युक्त वैतालीय छन्द के अधिकारों में जो रगण आदि के द्वारा प्रत्येक चरण के अन्त में आठ लकारों (मात्राओं) का नियम किया गया है, उनको छोड़कर प्रत्येक चरण में जो 'लकार' शेष रहते हैं उनमें से सम लकार विषम लकार के साथ मिल नहीं सकता। अर्थात् दूसरा तीसरे के और चौथा पाँचवें के साथ संयुक्त नहीं हो सकता; उसे पृथक् ही रखना चाहिए। इससे विषम लकारों का सम लकारों के साथ मेल अनुमोदित होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरणों में लगातार छह लकार पृथक्-पृथक् नहीं प्रयुक्त होने चाहिए। प्रथम और तृतीय चरणों में रुचि के अनुसार किया जा सकता है। अब 'प्राच्यवृत्ति' नामक वैतालीय छन्द का दिग्दर्शन कराया जाता है। जब दूसरे को चौथे चरण में चतुर्थ लकार (मात्रा) पञ्चम लकार के साथ संयुक्त हो तो उसका नाम 'प्राच्यवृत्ति' होता है। शेष लकार पूर्वोक्त प्रकार से ही रहेंगे। जब प्रथम और तृतीय चरण में दूसरा लकार तीसरे के साथ मिश्रित होता है, तब 'उदीच्यवृत्ति' नामक वैतालीय कहलाता है। शेष लकार पूर्वोक्त रूप में ही रहते हैं। जब दोनों लक्षणों की एक साथ ही प्रवृत्ति हो, अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादों में पंचम लकार के साथ चौथा मिल जाय और प्रथम एवं तृतीय चरणों में तृतीय के साथ द्वितीय लकार संयुक्त हो जाय तो 'प्रवृत्तिक' नामक छन्द होता है। जिस वैतालीय छन्द के चारों चरण विषम पादों के ही अनुस्वार हों, अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारों से युक्त हो तथा द्वितीय लकार तृतीय से

---

१ क. ङ. अनन्तेनो°। २ क. ङ. °र्धे च. ख. गणमार्या°। ख. ग. र्धे वसुगण आ°। ३ ख. ग. °ली पङ्क्ति सुरास्या°। ४ छ. द्विस्वरा स्यादयुष्पा°। ५ °क. ङ. °वो तेन नागा°। ६ छ. पाटलिका। ७ ख. ग. अमुकचारहा°। ८ क. ङ. °युष्मारु°। ९ क. ङ. °त्। गताद्विर्व°। ख. ग. °त्। गतादिर्व°। १० क. ङ. °वेत्तु नवमो नश्च द्वास्योवामन। ११ क. ङ. विष्णोः कपञ्चमाष्टौमोचित्रनवमकश्चनः। प°। १२ क. ख. ङ. °पवित्रा। १३ क. ङ. °लोगश्वेत्सौम्या नः पूर्वो ज्यो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्याच्छिखा [1]विपर्यस्तार्धा [2]तूलिका समुदाहृता । [3]एकोनत्रिंशदन्ते गः स्याज्ज्ञेन[4] न समावला[5] ।।१८।।
[6]गु इत्येकगुरुं संख्या [7]वर्णादेश्च[8] विपर्ययात् ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दोजातिनिरूपणं नामैकत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।।३३१।।

मिला हो, उसे 'चारुहासिनी' कहते हैं। जब चारों चरण सम पादों के लक्षण से युक्त हों, अर्थात् सब में सोलह लकार (मात्राएँ) हों और चतुर्थ लकार पञ्चम में मिला हो तो उसका नाम 'अपरान्तिका' है। जिसके प्रत्येक पाद में सोलह लकार हों, किन्तु पाद के अन्तिम अक्षर गुरु ही हों, उसे 'मात्रासमक' नामक छन्द कहा गया है। साथ ही इसी छन्द में नवम लकार किसी से मिला नही रहता। जिस 'मात्रासमक' के चरण में बारहवाँ लकार अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है; किसी में मिलता नहीं, उसका नाम 'वानवासिका' है। जिसके चारों चरणों में पाँचवाँ और आठवाँ लकार लघुरूप में ही स्थित रहता है, उसका नाम 'विश्लोक' है। जहाँ नवाँ भी लघु हो, वह 'चित्रा' नामक छन्द कहलाता है। जहाँ नवाँ लकार दसवें के साथ मिलकर गुरु हो गया हो, वहाँ 'उपचित्रा' नामक छन्द होता है। मात्रासमक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा और उपचित्रा, इन पाँचों में जिस किसी भी छन्द के एक-एक पाद को लेकर जब चार चरणों का छन्द बनाया जाय, तब उसे 'पादाकुलक' कहते हैं। जिसके प्रत्येक चरण में सोलह लघु स्वरूप ही स्थित हों, किसी से मिलकर गुरु न हो गये हों, उस छन्द का नाम 'गीत्यार्या' है। इसी 'गीत्यार्या' में जब आधे भाग की सभी मात्राएँ गुरु रूप में हों और आधे भाग की मात्राएँ लघु रूप में हों तो उसका नाम 'शिखा' होता है। इसी के दो भेद हैं–पूर्वार्ध भाग में लघु-ही-लघु और उत्तरार्ध में गुरु-ही-गुरु हों तो उसका नाम 'ज्योति' बताया गया है। इसके विपरीत पूर्वार्ध भाग में सब गुरु और उत्तरार्ध में सब लघु हों तो 'सौम्या' नामक छन्द होता है। जब पूर्वार्ध भाग में उन्तीस लकार और उत्तरार्ध में इकतीस लकार हों एवं अन्तिम दो लकारों के स्थान में एक-एक गुरु हो तो उसका नाम 'तूलिका' होता है। छन्द की मात्राओं से उसके अक्षरों में जितनी कमी गुरु की संख्या में हो, उतनी लघु संख्या मानी गयी है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई पूछे तो उस आर्या को लिखकर उसकी सभी मात्राओं की गणना करके कहीं लिख ले, फिर अक्षरों की संख्या लिख ले। मात्रा के अंकों में अक्षरों के अंक घटा दे, जितना बचे वह गुरु की संख्या हुई। इसी प्रकार अक्षर संख्या में गुरु की संख्या घटा देने पर जो बचे, वह लघु अक्षरों की संख्या होगी। इस प्रकार वर्ण आदि के अन्तर में गुरु-लघु आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।।१३-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में छन्दोजाति-निरूपण-कथन नामक
तीन सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३१।।

---

१ क. ङ. विस्तरार्धा। २ क. ङ. गुप्तिका। ख. ग. मूलिका। ३ क. ङ. एकेन विंशदन्ते शः स्याजननसमहाबलाः। गु°। ४ ग. °ज्ञेजन। ५ क. ङ. °ला। लई इत्येवं गुरुसं। ६ ख. ग. ग। ७ °र्णाद्दशवि°। ८ छ. °देशवि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

विषमकथनम्

अग्निरुवाच

वृत्तं समं चार्धसमं विषमं च त्रिधा वदे। समं [1]तावत्कृत्वकृतमर्ध[2] समं च कारयेत् ।।१।।
विषमं चैव वा स्यूनमतिवृत्तं समान्यपि[3]। लग्नौ चतुष्प्रमाणी स्यादाभ्यामन्यद्वितानकम् ।।२।।
[4]पादस्याऽऽद्यं तु वक्त्रं स्यात्सनौ न प्रथमा स्मृतौ। वान्यमुश्चतुर्थाद्वर्णात्पथ्यावक्त्रं स्वयोजतः ।।३।।
विपरीतपथ्या न्यासाच्चपला वायुजस्वनः। [5]विपुला[6] युग्मसप्तमः सर्वे तस्यै तस्य च[7] ।।४।।
भौतो वा विपुलानेका वक्त्रजातिः समीरिता। भवेत्पदं चतुरूर्ध्वं चतुर्वृद्ध्या पदेषु च ।।५।।

अध्याय ३३२

विषम-कथन

अग्निदेव बोले–वृत्त के तीन भेद बतलाये गये हैं–सम, अर्धसम और विषम। सम (वृत्त की संख्या) को उतने से गुणित करके अर्धसम (की संख्या) को उतने से ही गुणन करके विषम वृत्त की संख्या निकल आती है। विषम वृत्त अथवा अर्धसम वृत्त को एक राशि से कम करना चाहिए। जो वृत्त गकार और लकार से समाप्त होता है उसे 'समानी' कहते हैं और जो लकार और गकार से समाप्त होता है उसे 'प्रमाणी' कहते हैं। इन (समानी और प्रमाणी नामक वृत्तों) से भिन्न वृत्त वितान कहलाता है ।।१-२।। 'वक्त्र' नामक छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। वक्त्र में किसी भी पाद के प्रथम अक्षर के बाद सगण और नगण का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पथ्यावक्त्र पूर्वोक्त (वृत्त) का ही परिवर्तित रूप है जिसके प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। जिस वक्त्र में (द्वितीय और चतुर्थ) युग्म पाद के चतुर्थ अक्षर के बाद जगण का प्रयोग किया जाता है उसे पथ्यावक्त्र कहते हैं। कुछ आचार्यों के मत से उक्त लक्षण की विपरीतता में भी 'पथ्या' नामक छन्द होता है। जिस छन्द में अयुग्म (प्रथम, तृतीय) पाद में चतुर्थ अक्षर के बाद नगण होता है और युग्म पाद में यगण होता है उसे 'चपला' कहते हैं। जब युग्म (द्वितीय और चतुर्थ) पादों में सप्तम वर्ण लघु होता है तब 'विपुला' नामक छन्द बनता है। कुछ आचार्यों के मत में अयुग्म (प्रथम, तृतीय) और युग्म (द्वितीय,चतुर्थ) सर्वत्र सप्तम वर्ण लघु होना चाहिए। विपुला के अयुग्म पादों में कभी-कभी चतुर्थ अक्षर के बाद भगण अथवा तगण भी आ सकते हैं। इन प्रकार वक्त्र जाति की 'विपुला' अनेक प्रकार की कही गयी है। (अनुष्टुप्) पाद के बाद में प्रत्येक पाद में जहाँ पर चार-चार अक्षरों की वृद्धि हो जाती है उसे 'पदचतुरूर्ध्व' नामक छन्द कहते हैं। चारों पादों के अन्त में दो गुरु अक्षर आने पर 'आपीड' नामक छन्द बनता है,

---

१ ख. ग. °वद् हृदुहृतमर्धस°। च. °वद् हृदुत्कृतधर्मस°। २ क. ङ. °त्कृद्वहृदमर्धस°। ३ ख. ग. °पि। गलौच°। च. °पि। नगौ च°। ४ 'पादस्याऽऽद्यं' इत्यत्र पाठोऽयं क. ख. पुस्तकयोः "यादष्टं नष्टवत्क्रं स्यात्मनौ तत्प्रथमा स्मृतौ। वान्यद्यश्वयथा वर्णापख्यावक्त्रं युयोज न इति।" ५ विपुला "इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोः" विपुलायुग्मसयूर्माः सर्वतः सैवतस्य च° इति। ६ ख. ग. °लाप्रश्नस°। ७ ख. ग. च. डौ तौ वा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]गुरुद्वयात्तु आपीडः [2]प्रत्यापीडो [3]गणादिकः। प्रथमस्य विपर्यासे मञ्जरी [4]लवणी क्रमात् ।।६।।
भवेदमृतधाराख्या [5]उद्धतेत्युच्यतेऽधुना। [6]एकतः ससजसा नः स्युर्नसौ जो गोऽथ भौ न जौ ।।७।।
नो[7] गोऽथ सजसा गोगस्तृतीयचरणस्य च। [8]सौरभे[9] केचन[10] भगा ललितं च नमौ जसौ ।।८।।
उपस्थितं प्रचुपितं प्रथमाद्यौ समौ जसौ[11]। गोगथो मलजा रो गः समौ च रजयाः पदे ।।९।।
[12]वर्धमानं [13]मलौ [14]स्वोन सौ अथो तोजोर ईरिता। शुद्धिविराडार्षभाख्यं वक्ष्ये चार्धसमं ततः ।।१०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषमकथनं नाम
द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३२।।

किन्तु जहाँ पर दो गुरु चारों पादों के आदि में आते हैं वहाँ पर 'प्रत्यापीड' नामक छन्द होता है। प्रथम पाद का दूसरे तथा तीसरे पादों के साथ क्रमशः विपर्यास होने पर 'मञ्जरी', 'लवणी' और 'अमृतधारा' इत्यादि छन्द बनते हैं। अब 'उद्धता' के सम्बन्ध में बताया जा रहा है। 'उद्धता' छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम पाद में सगण, जगण, सगण और लकार होते हैं; द्वितीय पाद में नगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं, तृतीय पाद में भगण, नगण, जगण, लघु और गुरु होते हैं और चतुर्थ पाद में सगण, जगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं ।।३-७।। 'उद्धता' के तृतीय पाद में रगण, नगण, भगण और गुरु रहने पर सौरभ नामक छन्द बनता है। उस (उद्धता) के तृतीय पाद में नगण, मगण, जगण और सगण रहने पर ललित नामक छन्द बनता है। 'उपस्थित प्रचुपित' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम पाद में मगण, सगण, जगण, भगण और दो गुरु होते हैं, द्वितीय पाद में सगण, नगण, जगण, रगण, गुरु होते हैं, तृतीय पाद में तगण, नगण और सगण होते हैं। चतुर्थ पाद में नगण, तगण, नगण, जगण और यगण होते हैं। इस 'उपस्थित प्रचुपित' छन्द के तृतीय पाद के स्थान पर नगण, नगण, सगण, नगण, नगण और सगण होते हैं। तब वह 'वर्द्धमान' नामक छन्द कहलाता है। उसी (उपस्थित प्रचुपित नामक छन्द) के तृतीय पाद के स्थान पर तगण, जगण और रगण होने पर 'शुद्ध विराडार्षभ' नामक छन्द होता है। अब मैं अर्धसमवृत्त के सम्बन्ध में बतलाऊँगा ।।८-१०।।

श्री अग्निमहापुराण में विषम-कथन नामक
तीन सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३२।।

---

१ ख. ग. रुत्वेऽस्य तु आ°। २ क. ङ. °पीडीगकादि°। ३ ख. ग. °णाधिकः। ४ क. ङ. च. नवली। ख. ग. लवनी। ५ ख. ग. उद्गतेत्यु°। ६ क. ङ. °तः शजसा नस्युर्नसौ जोग गो जोऽर्थ भोजमौ। नागो। ख. ग. °तः सजसा नस्युर्नसौ ज्यौ गोऽ°। ७ ख. ग. लो। ८ क. ङ. सौरभं। ९ ख. ग. °भे रनभागाललडितौ च नलौ च सौ। १० क. ङ. केचन भयानलितं तत्वशौदशौ। उ°। ११ ख. ग. जभौ। १२ क. ङ. °मानौस्तौ च नसौ अथोभ्येयो नद्रीरितम्। शु°। १३ ख. ग. तनौ। १४ छ. °लौ स्वौ न अथो भो जोव ई°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्धसमनिरूपणम्

अग्निरुवाच

[1]उपवित्रकं [2]ससमनामथभोज भगामथ। [3]द्रुतमध्या ततभगा गथोननजयाः स्मृताः ।।१।।
वेगवती [4]ससमगा भभभ गोगथो स्मृता। रुद्रविस्तारस्तो सभगासमजा गोगथा स्मृता[5] ।।२।।
रजसा गोगथो[6] द्रोणौ गोगौ वै केतुमत्यपि। आख्यानिकी ततजगा गथो[7] जगतजगागथ ।।३।।
विपरीताख्यानकीर्तिर्जयागा[9] तौ जगोगथ। सीमलौगथ [10]लभभारो भवेद्धरिण[11]वल्लभा ।।४।।
लौ वनौ गाथ नजजा यः स्यादपराक्रमम् (?)। पुष्पिताग्रा [12]नलवया नजजा[13] रो गथो [14]रजौ ।।५।।

अध्याय ३३३

अर्धसमनिरूपण

अग्निदेव बोले–उपवित्रक (अथवा उपचित्रक ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तीन सगण, लघु और गुरु होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीन भगण और दो गुरु होते हैं। 'द्रुतमध्या' उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो तगण, भगण और दो गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ पादों में दो नगण, जगण और यगण होते हैं। जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो सगण, यगण और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीन भगण और दो गुरु होते हैं उसे वेगवती कहा गया है। जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तगण, सगण, भगण और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में सगण, भगण, जगण और दो गुरु होते हैं उसे 'केतुमती' नामक छन्द कहते हैं। 'आख्यानिकी' नामक छन्द वह है जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो तगण, जगण और दो गुरु तथा तृतीय और चतुर्थ पादों में जगण, गुरु, तगण, जगण और दो गुरु होते हैं ।।१-३।। जिसके प्रथम और तृतीय पादों में जगण, तगण, जगण और दो गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं उसे 'विपरीताख्यानकी' कहते हैं। 'हरिणवल्लभा' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तीन सगण, लघु और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में लघु दो भगण और रगण होते हैं। अपराक्रम (अथवा अपरवक्त्र) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो नगण, रगण, लघु और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में नगण, जगण, जगण और रगण होते हैं। 'पुष्पिताग्रा' उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो नगण, रगण और भगण तथा द्वितीय और

---

१ ख. ग. °पचित्रं समसनागथभोऽभगागथो। छ. °पचित्र°। २ क. ङ. समसनाभासश्वमभौभद्रथ। ३ ख. ग. °ध्या भभभ°। ४ ख. ग. समसगाभ भोभगो। ५ क. ङ. °ता। सजगागोगथोभौ वोगोगवेके°। ६ ख. ग. °थो त्रो नौ गो°। ७ ख. ग. थोथ जजगागथ। छ. °थो तत°। ८ छ. °ख्यानिको तौ जया°। ९ ख. ग. °र्तिर्जमगोतौ। १० छ. °भावौभ°। ११ ख. ग. °णप्लुता। नौषणौगथ। १२ क. ङ. ननरजारोजोगथौवसौ। रजथोरजगः जोरोमूलेजवयती। १३ छ. ननव°। छ. °जावोग°। १४ ख. ग. °जौ। रोजथो जरजारो गोमूलयेवम°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वोजथो जवजवागो मूले पनमती शिखा। [1]अष्टाविंशतिनागाभा त्रिंशन्नागं ततो युजि ।।
खञ्जा तद्विपरीता स्यात्समवृत्तं [2]प्रदर्श्यते ।।६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्धसमनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।३३३।।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समवृत्तनिरूपणम्

अग्निरुवाच

यतिर्विच्छेद इत्युक्तस्तत्तन्मध्यान्तयौ गणौ। यौ सः कुमार ललिता तौ गौ चित्रपदा स्मृता ।।१।।
विद्युन्माला[3] सभागस्य गणौ रतलगैर्भवेत्। माणवका क्रीडितकं [4]वनौ हलमुखौ [5]वसः ।।२।।
स्याद्भुजङ्गशिशुसृता[6] नौ मोहं सरुतं [7]ननौ। [8]भवेच्छुद्ध [9]विराड्वृत्तं प्रतिपादं समौ जगौ[10] ।।३।।

चतुर्थ पादों में नगण, जगण, जगण, रगण और गुरु होते हैं। 'पनमती' (अथवा परावती या यवमती ?) नामक छन्द वहाँ पर होता है जहाँ पर प्रथम और तृतीय पादों में रगण, जगण, रगण, जगण तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में जगण, रगण, जगण, रगण और गुरु होते हैं। जिसके प्रथम तथा तृतीय पादों में अट्ठाईस तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीस-तीस अक्षर होते हैं तथा पदान्त में गुरु होता है उसे 'शिखा' कहते हैं। इसके विपरीत यदि प्रथम और तृतीय पादों में तीस-तीस अक्षर और द्वितीय तथा चतुर्थ पादों में अट्ठाईस अक्षर होते हैं उसे 'खञ्जा' कहते हैं। अब 'समवृत्त' के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है ।।४-६।।

श्री अग्निमहापुराण में अर्धसम-निरूपण-कथन नामक तीन सौं तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३३।।

अध्याय ३३४

समवृत्तनिरूपण

अग्निदेव बोले-(पद पाठ के) विच्छेद को यति कहते हैं। जिस (छन्द) के एक पाद में तगण और यगण होते हैं उसे 'तन्मध्या' अथवा (तनुमध्या) कहते हैं। जिसमें दो यगण तथा सगण होता है उसे 'कुमारललिता' कहते हैं। दो तगण और दो गुरु के मिलने से चित्रपदा नामक छन्द कहा गया है। दो भगण और दो गुरु से 'विद्युन्माला' छन्द बनता है। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, तगण, लघु तथा गुरु होते हैं उसे 'माणवकाक्रीडितक' कहते हैं। दो नगण तथा मगण से युक्त प्रत्येक पादवाला छन्द 'भुजङ्गशिशुसृता' कहलाता है। दो नगण से बने हुए दो पादवाला छन्द 'हंसरुत' होता है। जिसके प्रत्येक पाद में सगण, भगण, जगण और गुरु होता है उसे 'शुद्ध विराड्' कहते हैं ।।१-३।।

---

१ ख. ग. °तिलागन्तात्रि°। २ ख. ग. प्रदर्शये। ३ क. ङ. °लाममगणाङ्गणैर्भत°। छ. °ममगणैर्भूतगणैर्भ°। ४ ख. रनौ। ५ ख. च. रसः। ६ च. °शुभृता रौ मोहं मरु°। छ. °शुसुतानौमेहं नमरु°। ७ च. ततौ। ८ ख. °वेच्छब्दद्विरावृत्तं। ९ ख. ग. °द्धचिराद्वृत्तं। १० छ. °गौ। पणवो मलयो मः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]प्रणवो नतयामः स्याज्जौ गौ मयूरसारिणी[2]। [3]सत्तामभसगा वृत्तं भजताद्युपरि स्थिता ।।४।।
रुक्मवन्ती भससगाविन्द्रवज्रा [4]तजौ [5]जगौ। जतौ जगौ [6]तूपपूर्वा वाद्यन्ताद्युपजातयः ।।५।।
दोधकं भग(भ)भागौ स्याच्छालिनी[7] मतभागगौ[8]। यतिः समुद्रा ऋषयो वातोर्मी [9]मभतागगौ ।।६।।
चतुःस्वरा स्याद्भ्रमरी विलसिता मभौ नलौ। समुद्रा अथ ऋषयो वनौ लौ गौ रथोद्धता ।।७।।
[10]स्वागता[11] धनभा गो गो वृत्ताननसमाश्च सः। [12]श्येनीव जवना गः स्याद्रम्या नपरगा गगः ।।८।।
जगती वंशस्था वृत्तं जतौ जावथ तौ [13]जवौ। इन्द्रवंशा तोटकं सैश्चतुर्भिः प्रतिपादितम् ।।९।।
भवेद्द्रुतविलम्बिता नभौ भरावथो नलौ। स्यौ श्रीपरो[14] वसुवेदाञ्जलोद्धतगतिर्जलौजसौ ।।१०।।

प्रणव (अथवा पणव ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में नगण, तगण, भगण तथा भगण रहा करते हैं। 'मयूरसारिणी' वह छन्द है जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, सगण और गकार होता है वह 'सत्ता' नामक छन्द कहलाता है। उपरिस्थिता (अथवा उपस्थिता ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में भगण, जगण और तगण रहते हैं। 'रुक्मवन्ती' नामक छन्द उसे कहा गया है जिसके प्रत्येक पाद में भगण, दो सगण तथा गुरु रहा करते हैं। इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में तगण, जगण, जगण और गुरु रहते हैं। उपेन्द्रवज्रा उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और गुरु होते हैं। (इन्द्रवज्रा) और अन्तिम (उपेन्द्रवज्रा) के (पादों को) मिलाने से उपजाति नामक छन्द बनता है ।।४-५।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में तीन भगण और दो गुरु होते हैं उसे 'दोधक' कहते हैं। 'शालिनी' छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, भगण और दो गुरु होते हैं और उसमें चार तथा सात पर यति होती है। जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, तगण और दो गुरु होते हैं उसे 'वातोर्मी' कहा जाता है और इसमें चार और सात पर यति होती है। भ्रमरी विलसिता (अथवा भ्रमर-विलसित) उस छन्द को कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण और लघु रहते हैं। इसमें चार सौ सात पर यति होती है। रगण, नगण, रगण, लघु और गुरु से बने हुए चार पादोंवाला छन्द 'रथोद्धता' कहलाता है ।।६-७।। 'स्वागता' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में रगण, नगण, भगण और दो गुरु होते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण, सगण और दो गुरु होते हैं उसे 'वृत्ता' (अथवा वृन्ता ?) नामक छन्द कहते हैं। श्येनी नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में रगण, जगण, लघु और गुरु होते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में नगण, मगण, रगण और तीन गुरु होते हैं वह रम्भा नामक छन्द कहलाता है। (यहाँ से जिन छन्दों का वर्णन किया जायंगा वे वैदिक) जगती (के ही भेद) हैं। जिसके प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं वह वंशस्थ कहलाता है। 'इन्द्रवंशा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो तगण, जगण और रगण होते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में चार सगण होते हैं उसे 'तोटक' कहा गया है ।।८-९।। जिसके प्रत्येक पाद में नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं वह 'द्रुतविलम्बित' छन्द होता है। श्रीपरो (अथवा श्रीपुरो ?) नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण और यगण होते हैं और जिसमें आठ और नव पर यति होती है। 'जलोद्धतगति' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में जगण, सगण, जगण और सगण होते हैं तथा जिसमें छह-छह पर यति होती है। 'तत' नामक

---

१ क. ङ. °वोमनजागः स्यादष्टौगोम°। २ ख. ग. °णी। संतान भस°। ३ क. ङ. सताभव समावृ°। ४ क. ङ. ननौ। ५ क. ङ. सगौ। ६ छ. भूतपूर्वा। ७ क. ङ. °नी यतनाग°। ८ ख. °भाभगौ। ९ क. °भभाग°। १० छ. सामता। ११ क. ङ. °ता रणभा। १२ ख. घ. °नीरजरदागः स्याद्रस्यानपरगागनः। ज°। १३ ख. ग. जरौ। १४ छ. श्रीपुटो वसुवेदा जलोद्गतिजलौ जमौ ज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]जसौ वसर्ववश्चाथ ततं ननमराः [2]स्मृतम् । [3]कुसुमविचित्रा द्यौनौ च नौ रम्याचलाक्षिका ।।११।।
भुजङ्गप्रयातं यैः स्याच्चतुर्भिः स्रग्विणी तु रैः । प्रमिताक्षरा गजौ सौ [4]कान्तोत्पीडा[5] मतौ समौ ।।१२।।
वैश्वदेवी ममययाः पञ्चाङ्गा नवमालिनी । नजौ भयौ प्रतिपादं गणा यदि जगत्यपि ।।१३।।
प्रहर्षिणी [6]मवजवा गोपतिर्वह्निदिक्षु च । [7]रुचिरा [8]जभसजगा छिन्ना वेदैर्गृहैः स्मृता ।।१४।।
मत्तमयूरं मतया [9]सतौ वेदग्रहैर्यतिः । गौरी [10]नलनसा गः स्यादसंबाधा नतौ नगौ[11] ।।१५।।
गो ग इन्द्रियनवकौ ननौ रसलगाः स्वराः । स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभा नलगाः स्वराः ।।१६।।
द्विः प्रहरणकलिता वसन्ततिलका नभौ । जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षिणा च सा ।।१७।।
चन्द्रावर्ता ननौ [12]सोमावर्तर्तुनवकः स्मृतः । मणिगुणनिकराऽसौ मालिनी नौ मयौ [13]यसः ।।१८।।

छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण और रगण होते हैं। इसमें भी छह-छह पर यति होती है। 'कुसुमविचित्रा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में नगण, यगण, नगण और यगण होते हैं। 'रम्याचलाक्षिका' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण तथा दो रगण होते हैं। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं उसे 'भुजङ्गप्रयात' कहते हैं। 'स्रग्विणी' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में चार रगण होते हैं। 'प्रमिताक्षरा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में सगण, जगण और दो सगण होते हैं। 'कान्तोत्पीडा' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, सगण और भगण रहते हैं ।।१०-१२।। 'वैश्वदेवी' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में दो भगण और दो यगण होते हैं। इसमें पाँच और सात पर यति होती है। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में नगण, जगण, भगण और यगण होते हैं उसे 'नवमालिनी' कहते हैं। अब 'अतिजगती' नामक छन्दों के अन्तर्गत आनेवाले छन्दों के प्रत्येक पाद का वर्णन किया जायगा। 'प्रहर्षिणी' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, रगण और गुरु होते हैं तथा जिसमें तीन और दस पर यति होती है। 'रुचिरा' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसमें जगण, भगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं तथा जिसमें चार और नव पर यति होती है। 'मत्तमयूर' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, यगण, सगण और गुरु रहते हैं तथा जिसमें चार और नव पर यति होती है। 'गौरी' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में तीन नगण, सगण और गुरु रहते हैं। 'असंबाधा' नामक छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं और इसमें पाँच तथा नौ पर यति होती है ।।१३-१५।। 'अपराजिता' छन्द के प्रत्येक पाद में दो नगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं और जिसमें सात-सात पर यति होती है। 'प्रहरणकलिता' के प्रत्येक पाद में दो नगण, भगण, नगण, लघु और गुरु होते हैं। इसमें भी सात-सात की यति होती है। 'वसन्ततिलका' के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। इसी को एक आचार्य ने 'सिंहोन्नता' और दूसरे ने 'उद्धर्षिणी' कहा है। 'चन्द्रावर्त' के प्रत्येक पाद में चार नगण और सगण होते हैं। यदि इस छन्द में छठें तथा नवें वर्णों पर यति होती है तो इसे 'माला' कहते हैं, किन्तु यदि यति आठवें तथा सातवें वर्णों पर होती है तो इसे 'मणिगुणनिकरा' कहते हैं। मालिनी के प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण और दो यगण होते हैं। आठवें और सातवें पर यति होती है ।।१६-१८।।

---

१ ख. ग. °सौ सर्तव°। २ क. ङ. म °वास्मृ°। ३ छ. °त्रा न्यौ द्यौ नौ नौ रो स्याच्चलाम्बिका। ४ क. ङ. कालोत्पीनामभौस°। ५ ख. ग. °त्पीला म°। ६ ख. ग. मरजरा गो°। ७ क. ङ. °रा ग भ°। ८ ख. ग. जभजसगा। ९ सगौ। १० ख. ग. नननसा मः स्या°। ११ ख. नसौ। १२ ख. ग. °र्तन्नव°। १३ छ. यथः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यतिर्वसुस्वरा भौ वौ [१]नतलमित्रसग्रहाः । [२]ऋषभगजविलसितं ज्ञेया शिखरिणी [३]जगौ[४] ।।१९।।
रसभालभृगुरुद्राः [५]पृथ्वीजसजसा [६]जनौ । गावसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ।।२०।।
[७]वंशपत्रपतितं [८]स्याद्भवना[९] भौ नगौ सदिक् । हरिणी नसमा रः सो नगौ[१०] रसचतुः स्वराः ।।२१।।
[११]मन्दाक्रान्ता समभतं नगौ राब्धिवसुः स्वराः । कुसुमितलता वेल्लिता [१२]मतना यययाः शराः ।।२२।।
[१३]रथाः स्वराः प्रतिरथससजाः सतताश्च गः । शार्दूलविक्रीडितं स्यादादित्यमुनयो यतिः ।।२३।।
कृतिः सुवदना मो रो भनया भनगाः सुराः । यतिर्मुनिरसाश्चाथ[१४] इतिवृत्तं क्रमात्स्मृतम् ।।२४।।
स्रग्धरा [१५]भरता नो मो यपौ त्रिःसप्तका यतिः । [१६]समुद्रकं [१७]भरजा नो वनगा दश भास्कराः ।।२५।।
अश्वललितं नजभा [१८]जभजा भनमीशतः । मत्तक्रीडा [१९]ममनना नौ नग्नौ गोष्टमातिथिः ।।२६।।

'ऋषभगजविलसित' के प्रत्येक पाद में भगण, रगण, तीन नगण और गुरु होते हैं। और सातवें तथा नवें वर्णों पर यति होती है। 'शिखरिणी' के प्रत्येक पाद में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु होते हैं। छठें और ग्यारहवें पर यदि होती है। पृथ्वी के प्रत्येक पाद में जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु होते हैं तथा आठ और नौ पर यति होती है।–ऐसा पिंगलाचार्य ने कहा है। 'वंशपत्रपतित' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, लघु और गुरु होते हैं तथा दस और सात पर यति होती है। हरिणी के प्रत्येक पाद में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं तथा छठें, चौथे और सातवें वर्ण पर यति होती है। 'मन्दाक्रान्ता' के प्रत्येक पाद में सगण, मगण, मगण, तगण, नगण और दो गुरु होते हैं तथा इसमें चौथे, छठें और सातवें पर यति होती है। 'कुसुमलतावेल्लिता' के प्रत्येक पाद में मगण, तगण, नगण और तीन यगण होते हैं तथा पाँचवें, छठें और सातवें पर यति होती है ।।१९-२२।। 'शार्दूलविक्रीडित' के प्रथम पाद में दो सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरु रहते हैं। इसमें बारहवें तथा सातवें वर्णों पर यति होती है। 'सुवदना' के प्रत्येक पाद में भगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, लघु और गुरु होते हैं तथा सात-सात और छह पर यति होती है। इस प्रकार क्रमशः वृत्तों के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है। 'स्रग्धरा' के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, तगण, नगण, भगण और दो यगण होते हैं और प्रत्येक सातवें वर्ण पर यति होती है। 'समुद्रक' के प्रत्येक पाद में भगण, रगण, जगण, नगण, रगण, नगण और गुरु होते हैं। इसमें दसवें और बारहवें वर्णों पर यति होती है। 'अश्वललित' के प्रत्येक पाद में नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, लघु और गुरु होते हैं। तथा इसमें आठवें और पन्द्रहवें पर यति होती है ।।२३-२६।। 'तन्वी' के प्रत्येक पाद में भगण, तगण,

---

१ ख. ग. °लमद्रिस°। २ ख. ग. °भजगजवि°। ३ ख. ग. यसौ। ४ क. ङ. °गौ। नसभानगृहं तु रु°। ५ क. ङ. °थ्वी सजयसापरौ। गा°। ६ ख. ग. °नौ। गोव°। ७ क. °पन्नप°। ८ क. ङ. स्याद्रचनाद्वौ म°। ९ ख. ग. °द्भरतो भौ लगोस°। १० ख. ग. लभौ। ११ ख. ग. °न्ता नभननं न°। छ. °न्ता मभमत। १२ ख. ग. मतोयमययाः पराः। १३ क. ङ. रसासुराप्रतिरथमशताः शतजास्वगः। १४ ख. ग. °श्चाथाग्निभिर्वृत्तं°। १५ क. ङ. °रभारोयो ययौ त्रिः। १६ क. ग. सद्रकण्ठवनीरोनोरामगा। १७ ख. ग. °रनागौतौनोन°। १८ ख. ग. °भजलभमी°। १९ ख. ग. °नवा नौ मग्नौ शोष्ट°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तन्वी भनतसा भो भो लयो बाणसुरार्ककाः । क्रौञ्चपदा भमतता नौ नौ[१] बाणशराष्टतः ।।२७।।
भुजंगविजृम्भितं[२] ममतना [३]ननवासनौ । गष्टेशमुनिभिश्छेदो ह्युपहावाख्यमीदृशम् ।।२८।।
मनना ननता नः सो गणैर्ग्रहरसो रसात् । नौ सप्त रो दण्डदः स्याच्चण्डवृष्टिप्रघातकम्[४] ।।२९।।
[५]रेफवृद्ध्या ननवाः स्युर्व्यालजीमूतमुख्यकाः । शेषे वै प्रतितो ज्ञेयो गाथा प्रस्तार उच्यते ।।३०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समवृत्तनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३४।।

अथ पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रस्तारनिरूपणम्

[६]अग्निरुवाच

छन्दोऽत्र सिद्धं गाथा स्यात्पादे सर्वगुरौ तथा । प्रस्तार [७]आद्यगाथो[८] नः परतुल्योऽथ पूर्वगः ।।१।।

नगण, सगण, भगण, भगण, नगण और यगण होते हैं। इसमें पाँचवें, सातवें और बारहवें वर्णों पर यति होती है। 'क्रौञ्चपदा' के प्रत्येक पाद में भगण, भगण, दो तगण और चार नगण और गुरु रहते हैं। इसमें पाँच, पाँच, आठ और सात पर यति होती है। 'भुजङ्गविजृम्भित' के प्रत्येक पाद में दो मगण, तगण, तीन नगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं। इसमें आठवें, ग्यारहवें और सातवें वर्णों पर यति होती है। 'उपवाहक' के प्रत्येक पाद में मगण, चार नगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु रहते हैं। इसमें नौ, छह, छह और पाँच पर यति होती है। जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण और सात रगण होते हैं उसे दण्डद (अथवा 'दण्डक') कहते हैं। इसे ही 'चण्डवृत्ति प्रघातक' कहते हैं। उसी में एक-एक रगण की वृद्धि करते रहने से व्याल और जीमूत इत्यादि छन्द बन जाते हैं। शेष प्रतित (अथवा प्रचित) हैं। अब गाथा और प्रस्तार का वर्णन किया जा रहा है ।।२७-३०।।

श्री अग्निमहापुराण में समवृत्तनिरूपण नामक तीन सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३४।।

अध्याय ३३५

प्रस्तार-निरूपण

अग्निदेव बोले-यहाँ पर जिन छन्दों का वर्णन नहीं किया गया है; वे सब 'गाथा' (के अन्तर्गत आ जाते) हैं। इसके प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। इन छन्दों में पादों की मात्रा चार से अधिक हो सकती है। ये छन्द अर्धसमवृत्त तथा विषमवृत्त गणों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। (जिस वृत्त की संख्या की जिज्ञासा हो

---

१ ख. ग. नौ यानश°। २ क. ङ. °तं सोसमतना नरसा लगौ। ग°। ३ क. ङ. °नौ। द्व्यष्टास्त्रमु°। ख. ग. नौ। अष्टेशमुनिभिरश्छे°। ४ ख. ग. °प्रपात°। ५ क. ङ. °फवत्याभ्रववर्णा वास्यु°। ६ अयमध्यायो नास्ति ख. पुस्तके। ७ क. ङ. आद्यो गो धो नः। ८ ग. °द्यगाग्रो लः प°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नष्टमध्ये समेऽङ्के नः समेऽर्धविषमे गुरुः। [1]प्रतिलोमगुणं नाद्यं द्विरुद्दिष्टग एकनुत् ।।२।।
संख्याद्विरर्धे रूपे तु शून्यं शून्ये द्विरीरितम्। तावदर्धे तद्गुणितं द्विद्व्यूनं च तदन्ततः ।।३।।
परे पूर्णं परे पूर्णं मेरुप्रस्तारतो भवेत्। नगसंख्या वृत्तसंख्या चार्धाङ्गुलमधोर्धतः[2] ।।४।।
संख्यैव द्विगुणैकोना छन्दःसारोऽयमीरितः ।।५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रस्तारनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३५।।

उसे भूमि पर अलग-अलग अक्षरों में लिख लेना चाहिए। तदनन्तर) लकार को आदि में रखकर प्रतिलोम्य से उसकी दो बार आवृत्ति करनी चाहिए। ऐसा करने पर यदि वह संख्या गुरु हो जाय तो उसे द्विगुणित करके उससे एक कम कर देना चाहिए। छन्द के अक्षरों की संख्या (को भूमि पर रखकर उस) से आधा निकाल देना चाहिए। विषम संख्या से पूर्वोक्त रूप को निकाल देने पर शून्य प्राप्त होता है। शून्य स्थान की दो बार आवृत्ति करनी चाहिए। अर्ध स्थान की संख्या को द्विगुणित कर देना चाहिए। (गायत्री आदि वृत्तों की संख्या को) द्विगुणित करके उसमें से दो कम कर देना चाहिए। इस प्रकार से द्विगुणित संख्या को पूर्णरूप में ही रखना चाहिए, दो कम करके नहीं। एक चौखाना बनाकर उसके ऊपर नीचे से दो कोष्ठक बना देना चाहिए, उसके नीचे तीन या चार जितने भी कोष्ठक अभीष्ट हों, बना देना चाहिए। इसे 'मेरुप्रस्तार' कहते हैं। गायत्री वृत्तों की संख्या को दुगुना करके उसमें से दो घटा देना चाहिए। इस प्रकार द्विगुणित की हुई वृत्त की संख्या एक से कम होने पर प्रस्तार-लेखन का अधिकरण होती है। गुरु और लघु अक्षरों का विस्तार अङ्गुलि परिमाण होता है। नीचे की ओर अङ्गुलि विस्तार स्थान को छोड़कर वृत्त प्रस्तार भेदों को लिखना चाहिए। इस प्रकार छन्दःसार बताया गया है ।।१-५।।

श्री अग्निमहापुराण में प्रस्तार-निरूपण नामक तीन सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३५।।

---

१ क. ङ. °गुणामाद्यं। २ क. ङ. °लतदार्धः°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शिक्षानिरूपणम्

अग्निरुवाच

वक्ष्ये शिक्षां त्रिषष्टिः स्युर्वर्णा वा चतुरा(र)धिकाः । स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।।१।।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ।अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क≍पौ चापि पराश्रितौ ।।२।।
दुस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो [1]लृकारः प्लुत एव च[2] । रङ्गश्च खे अरं [3]प्रोक्तं हकारः पञ्चमैर्युतः ।।३।।
अन्तस्थाभिः समायुक्त औरस्यः [4]कण्ठ्य एव सः । आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।।४।।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।।५।।
प्रातः सवनयोगं तु च्छन्दो गायत्रमाश्रितम् । कण्ठे माध्यंदिनयुतं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।।६।।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् । सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।।७।।

अध्याय ३३६

शिक्षानिरूपण

अग्निदेव बोले–अब मैं शिक्षा का वर्णन करता हूँ। वर्णों की संख्या तिरसठ अथवा चौंसठ भी मानी गयी है। इनमें इक्कीस स्वर, पचीस स्पर्श, आठ यादि और चार यम माने गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, दो पराश्रितवर्ण–जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय (ँक और ँप) और दुःस्पृष्ट लकार–ये तिरसठ वर्ण हैं। इनमें प्लुत लृकार को और गिन लिया जाय तो वर्णों की संख्या चौंसठ हो जाती। रङ्ग (अनुनासिक) का उच्चारण 'खे अरां' की तरह बताया गया है। हंकार 'ङ' आदि पञ्चमाक्षरों और 'य र ल व–इन अन्तःस्थ वर्णों से संयुक्त होने पर 'उरस्य' हो जाता है। इनमें संयुक्त न होने पर वह 'कण्ठस्थानीय' ही रहता है। आत्मा (अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य) संस्कार रूप से अपने भीतर विद्यमान घटपटादि पदार्थों को अपनी बुद्धिवृत्ति से संयुक्त करके अर्थात् उन्हें एक ही बुद्धि का विषय बनाकर बोलने या दूसरों पर प्रकट करने की इच्छा से मन को उनसे संयुक्त करता है ।।१-४।। संयुक्त हुआ मन कायाग्नि–जठराग्नि को आहत करता है। फिर वह जठरानल प्राणवायु को प्रेरित करता है। वह प्राणवायु हृदयदेश में विचरता हुआ धीमी ध्वनि में उस प्रसिद्ध स्वर को उत्पन्न करता है, जो प्रातःसवन कर्म के साधनभूत मन्त्र के लिए उपयोगी है तथा जो 'गायत्री' नामक छन्द के आश्रित है। तदनन्तर वह प्राणवायु कण्ठदेश में भ्रमण करता हुआ 'त्रिष्टुप्' छन्द से युक्त माध्यंदिन-सवन–कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी मध्यम स्वर को उत्पन्न करता है। इसके बाद उक्त प्राणवायु शिरोदेश में पहुँचकर उच्च ध्वनि से युक्त एवं 'जगती' छन्द के आश्रित सायं–सवन–कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी स्वर को प्रकट करता है। इस प्रकार ऊपर की ओर प्रेरित वह प्राण, मूर्धा में टकराकर अभिघात नामक संयोग का आश्रय बनकर, मुखवर्ती कण्ठादि स्थानों

---

१ ख. ग. एकारः। २ क. ङ. च। वक्ष्ये मुखेऽक्षरं प्रो°। ३ ख. ग. प्रोक्तमका°। ४ ख. ग. कण्ठ एकलः। आ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः । स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नार्थप्रदानतः ।।८।।
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ।।९।।
अनुस्वारो विसर्गश्च शषसा रेफ एव च । चिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ।।१०।।
यद्यो भावप्रसंधानमुकारादि परं पदम् । स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ।।११।।
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् । एवमुच्चारणं पापमेवमुच्चारणं शुभम् ।।१२।।
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम् । सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ।।१३।।
न करालो न लम्बोष्णो नाव्यक्तो नानुनासिकः । गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान्वक्तुमर्हति ।।१४।।
(१यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् । एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।।१५।।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते) । उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।।१६।।

में पहुँचकर वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों के पाँच प्रकार के विभाग माने गये हैं। स्वर से, काल से, स्थान से, आभ्यन्तर प्रयत्न से तथा बाह्य प्रयत्न से उन वर्णों में भेद होता है ।।५-८।। वर्णों के उच्चारण स्थान आठ हैं–हृदय, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठद्वय तथा तालु। विसर्ग का अभाव, विवर्तन, सन्धि का अभाव, शकारादेश, षकारादेश, सकारादेश, रेफादेश, जिह्वामूलीयत्व और उपध्मानीयत्व–ये ऊष्मा वर्णों की आठ प्रकार की गतियाँ हैं। जिस उत्तरवर्ती पद में आदि अक्षर 'उकार' हो, वहाँ गुण आदि के द्वारा यदि 'ओ'–भाव का प्रसंधान (परिज्ञान) हो रहा हो, तो उस 'ओकार' को स्वरान्त अर्थात् स्वरस्थानीय जानना चाहिए। जैसे 'गङ्गोदकम्'। इस पद में जो 'ओ' भाव का प्रसंधान है, वह स्वरस्थानीय है। इनसे भिन्न संधिस्थल में जो 'ओभाव' का परिज्ञान होता है, वह 'ओ' भाव ऊष्मा का ही गति-विशेष है, यह बात स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए। जैसे 'शिवो वन्द्यः' इसमें जो 'ओकार' का श्रवण होता है, वह ऊष्मस्थानीय ही है। जो वेदाध्ययन कुतीर्थ से प्राप्त हुआ है, अर्थात् और स्वरित। इनके उच्चारण काल में भी तीन नियम हैं। ह्रस्व, दीर्घ तथा आचारहीन गुरु से ग्रहण किया गया है, वह दग्ध-नीरस-सा होता है। उसमें अक्षरों को खींच-तानकर हठात् किसी अर्थ तक पहुँचाया गया है। वह भक्षित-सा हो गया है, अर्थात् सम्प्रदाय-सिद्ध गुरु से अध्ययन न करने के कारण वह अभक्ष्य-भक्षण के समान निस्तेज है। इस तरह का उच्चारण या पठन पाप माना गया है। इसके विपरीत जो सम्प्रदाय-सिद्ध गुरु से अध्ययन किया जाता है, तदनुसार पठन-पाठन शुभ होता है ।।९-१२।। जो उत्तम तीर्थ–सदाचारी गुरु से पढ़ा गया है, सुस्पष्ट उच्चारण से युक्त है, सम्प्रदाय शुद्ध है, सुव्यवस्थित है, उदात्त आदि शुद्ध स्वर से तथा कण्ठताल्वादि शुद्ध स्थान से प्रयुक्त हुआ है, वह वेदाध्ययन शोभित होता है। न तो विकराल आकृतिवाला, न लम्बे ओठोंवाला, न अव्यक्त उच्चारण करनेवाला, न नाक से बोलनेवाला एवं गद्गद कण्ठ या जिह्वाबन्ध से युक्त मनुष्य ही वर्णोच्चारण में समर्थ होता है। जैसे व्याघ्री अपने बच्चों को दाँतों से पकड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है, किन्तु उन्हें पीड़ा नहीं देती, वर्णों का ठीक इसी तरह प्रयोग करे, जिससे वे वर्ण न तो अव्यक्त (अस्पष्ट) हों और न पीड़ित ही हों। वर्णों के सम्यक् प्रयोग से मानव ब्रह्मलोक में पूजित होता है। स्वर तीन प्रकार के माने गये हैं–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनके उच्चारण काल में भी तीन नियम हैं। ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत। अकार एवं हकार कण्ठस्थानीय हैं। इकार, चवर्ग, यकार

---

१ 'यथा···महीयते' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अपि (चि) । कण्ठ्या कु(व)हाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।।१७।।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः । जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वःस्मृतो बुधैः ।।१८।।
ए ऐ तु कण्ठतालव्या ओ औ कण्ठ्यौ(ष्ठो)ठजौ स्मृतौ । अर्धमात्रा तु कण्ठस्य एकारैकारयोर्भवेत् ।।१९।।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः । अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमाः(म)स्पृष्टाः शलःस्मृताः ।।२०।।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधात्र प्रधानतः । अमोऽनुनासिका नह्नौ(ह्नौ)नादिनो हझषः स्मृताः ।।२१।।
ईशन्नादो (दा) यणश्चैव श्वासिनश्च खफादयः । ईषच्छ्वासं शरं विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिक्षानिरूपणं नाम षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३६।।

एवं शकार–ये तालुस्थान से उच्चारित होते हैं। उकार और पवर्ग–ये दोनों ओष्ठस्थान से उच्चारित होनेवाले हैं। ऋकार, टवर्ग, रेफ एवं षकार–ये मूर्धन्य तथा लृकार, तवर्ग, लकार और सकार–ये दन्तस्थानीय होते हैं। क वर्ग का स्थान जिह्वामूल है। वकार को विद्वज्जन दन्त और ओष्ठों से उच्चारित होनेवाला बताते हैं ।।१३-१८।। एकार और ऐकार कण्ठ-तालव्य तथा ओकार एवं औकार कण्ठोष्ठज माने गये हैं। एकार, ऐकार तथा ओकार और औकार में कण्ठस्थानीय वर्ण अकार की आधी मात्रा या एक मात्रा होती है। 'अयोगवाह' आश्रयस्थान के भागी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। (अच् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ)–ये स्वर स्पर्शाभाव रूप 'विवृत' प्रयत्नवाले हैं। यण् (य, व, र, ल) 'ईषत्स्पृष्ट' एवं शल् (श, ष, स, ह) 'अर्धस्पृष्ट' अर्थात् 'ईषद्विवृत' प्रयत्नवाले हैं। शेष 'हल्' अर्थात् क से लेकर म तक के अक्षर 'स्पृष्ट प्रयत्नवाले' माने गये हैं। इनमें बाह्य प्रयत्न के कारण वर्णभेद जानना चाहिए। 'ञम्' प्रत्याहार में स्थित वर्ण (ञ, म, ङ, ण, न) अनुनासिक होते हैं। हकार और रेफ अनुनासिक नहीं होते। 'हकार', झकार तथा षकार के 'संवार', 'घोष' और 'नाद' प्रयत्न हैं। 'यण्' और 'जश्'–इनके 'ईषन्नाद' अर्थात् अल्पप्राण प्रयत्न हैं। ख, फ आदि का 'विवार', अघोष और 'श्वास' प्रयत्न हैं। चर् (च, ट, त, क, प, श, ष, स) का 'ईषच्छ्वास' प्रयत्न जानना चाहिए। यह व्याकरणशास्त्र वाणी का धाम कहा जाता है ।।१९-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में शिक्षानिरूपण-कथन नामक
तीन सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३६।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यादिलक्षणम्

अग्निरुवाच

काव्यस्य नाटकादेश्च अलंकारान्वदाम्यथ। [1]ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद्वाङ्मयं[2] मतम् ।।१।।
शास्त्रेतिहासवाक्यानां त्रयं यत्र समाप्यते। शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता[3] ।।२।।
अभिधायाः प्रधानत्वात्काव्यं ताभ्यां विभिद्यते। नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।।३।।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा। व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः ।।४।।
सर्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिद्ध्यति। आदिवर्णा द्वितीयाश्च महाप्राणास्तुरीयकाः[4] ।।५।।
वर्गेषु वर्णवृन्दं स्यात्पदं सुप्तिङ्प्रभेदतः। संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।।६।।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्। योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमर्थादयोनिजम् ।।७।।
[5]देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम्। गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम् ।।८।।

अध्याय ३३७

काव्यादिलक्षण

अग्निदेव बोले–अब मैं काव्य, नाटक आदि के अलङ्कारों का वर्णन करता हूँ। ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य वाङ्मय कहलाता है ।।१।। शास्त्र, इतिहास और काव्य ये तीनों वाङ्मय के अन्तर्गत आते हैं। शास्त्र में शब्द प्रधान होता है, इतिहास और कथा ग्रन्थों में इतिवृत्तात्मकता का महत्त्व होता है, तथा काव्य में अभिधा शक्ति की प्रधानता के कारण, काव्यशास्त्र और इतिहास से पृथक् हो जाता है ।।२-२$\frac{1}{2}$।। संसार में मनुष्य जन्म की प्राप्ति बड़ी कठिनता से होती है। मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी उसमें विद्या की उपलब्धि और भी कठिन है तथा कविता करने की शक्ति तो और भी दुष्प्राप्य है, ये सब मिल जाने पर भी लोक, शास्त्र, काव्य, इतिहासादि के अध्ययन द्वारा प्राप्त होनेवाली निपुणता और दुर्लभ है। (यह सब तत्त्ववेत्ताओं द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि) अतत्त्ववेत्ताओं के द्वारा अन्वेषित शास्त्र किसी भी प्रकार से सफल सिद्ध नहीं होता ।।३-४$\frac{1}{2}$।। वर्ण वर्गों में बद्ध हैं। इनमें वर्ग के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ वर्ण महाप्राण कहलाते हैं। वर्ण-समुदाय का नाम पद है। पद के दो भेद हैं–सुबन्त और तिङन्त। निष्कर्ष यह है कि इष्ट अर्थ से युक्त पदों के समूह का नाम वाक्य है। जिस वाक्य-समूह में अलंकार स्पष्ट रूप से दिखायी दें तथा जो गुणों से युक्त और दोषों से मुक्त हो उसे काव्य कहते हैं। काव्य का आधार वेद है अथवा लोक, परन्तु अर्थ की दृष्टि से काव्य अयोनिज है अर्थात् स्वतःसिद्ध है ।।५-७।। काव्य या नाटक में संस्कृत भाषा का प्रयोग देवताओं के मुख से कराना चाहिए, जबकि मनुष्यों के मुख से तीन प्रकार की प्राकृत (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी) का प्रयोग कराना चाहिए। काव्य तीन प्रकार का कहा गया है। गद्य, पद्य और चम्पू ।।८।।

---

१ ख. ग. °निवर्णप°। २ ख. ग. °तदाश्रयं°। ३ क. ङ. तिष्ठता। ४ च. °प्राणाः स्वरूपकाः। क. ङ. °प्राणाः शकारकाः। ५ ख. ग. वेदादीनां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपदः पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते । चूर्णकोत्कलिकावृत्तसंधिभेदात् त्रिरूपकम् ।।९।।
[1]अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भनिर्भरम् । चूर्णकं नामतो दीर्घसमासोत्कलिका भवेत् ।।१०।।
भवेन्मध्यमसन्दर्भं नातिकुत्सितविग्रहम् । वृत्तच्छायाहरं [2]वृत्तसंधिनैतत्किलोत्कटम् ।।११।।
आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा । कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा ।।१२।।
कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात् । कन्याहरण - संग्राम - विप्रलम्भविपत्तयः ।।१३।।
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः । उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा ।।१४।।
वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साऽख्यायिका स्मृता । श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति ।।१५।।
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम् । परिच्छेदो न यत्र स्याद्भवेद्वा [3]लम्बकैः क्वचित् ।।१६।।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम् । भवेत्खण्डकथा याऽसौ कथा परिकथा तयोः ।।१७।।
अमात्यं सार्थकं वाऽपि द्विजं वा नायकं विदुः । स्यात्तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्विधः ।।१८।।
समाप्यते तयोर्नाऽऽद्या सा कथामनुधावति । कथाख्यायिकयोर्मिश्रभावात्परिकथा स्मृता ।।१९।।
भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः । अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ।।२०।।

पद (चरण) रहित पद-समूह गद्य कहलाता है। चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तसन्धि ये तीन इसके रूप कहे गये हैं। जो गद्य अल्पाल्प समास से संयुक्त हो और जिसमें कर्कश शब्दावली का प्रयोग हो उसे चूर्णक गद्य कहते हैं। और जिस गद्य में लम्बे-लम्बे समास हों, उसे उत्कलिका गद्य कहते हैं। जिस गद्य में शब्दावली न तो अति कर्कश हो, न ही अति कोमल हो और न ही समास प्रौढ़ स्तर का हो तथा जिसमें वृत्त की छाया अत्यन्त ही क्षीण हो वह वृत्त-सन्धि गद्य है ।।९-११।। आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा, कथानिका-गद्य काव्य के ये पाँच प्रकार हैं ।।१२।। जिस गद्य काव्य में ग्रन्थकर्त्ता के वंश की प्रशस्ति विस्तारपूर्वक दी हुई हो, कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भजन्य विपत्तियाँ हों, जहाँ रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति अपने चमत्कृत रूप से प्रस्तुत की जाय, जिसके कथा भागों का नाम उच्छ्वास हो और जिसमें चूर्णक नामक गद्य का प्रयोग हो तथा जहाँ कथा नायक के मुख से कही गयी हो अथवा किसी अन्य पात्र के मुख से उसे 'आख्यायिका' नामक गद्य-काव्य कहा जाता है ।।१३-१४$\frac{1}{2}$।। जिस गद्यकाव्य के ग्रन्थकार संक्षेप में श्लोकों द्वारा अपने वंश की प्रशंसा करता है। जहाँ मुख्य कथा को लाने के लिए अवान्तर कथा की सृष्टि की जाती है और जिसमें परिच्छेद नहीं होते अथवा कहीं-कहीं (ग्रन्थ के अन्त में) समस्त वर्ण्य-विषय प्रबन्ध में अनुस्यूत रहता है उसे 'कथा' नाम का गद्य-काव्य कहा गया है। यदि कवि कथा-काव्य में चतुष्पदी का प्रयोग करता है तो उसे 'खण्ड-कथा' कहते हैं। कथा और परिकथा नामक गद्यकाव्यों में राज्य का मन्त्री, व्यापारी अथवा ब्राह्मण नायक होता है। इनमें करुण रस और चार प्रकार का विप्रलम्भ शृङ्गार होता है ।।१५-१८।। इन दो गद्यकाव्य भेदों में से 'कथा' में घटना समाप्त नहीं की जाती है, अपितु अधूरी छोड़ दी जाती है। कथा और आख्यायिका के मिश्रित रूप को परिकथा कहते हैं। कथानिका नामक गद्यकाव्य में, सुखपरक भयानक रस, मध्य में करुण रस और अन्त में अद्भुत रस का परिपाक होता है। इस गद्यकाव्य का केन्द्रीभूत विषय उदात्त न होते हुए भी सुनियोजित अवश्य होना चाहिए ।।१९-२०।। पद्य में

---

१ क. ङ. °ल्पान्यविग्रहं जाति°। २ क. ख. ग. छ. °त्तगन्धिनै°। ३ ख. ग. लम्भकैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा[१] । [२]वृत्तमक्षरसंख्येयमुक्थं तत्कृतिशेषजम् ।।२१।।
मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरिति काश्यप । सममर्धसमं वृत्तं विषमं पैङ्गलं त्रिधा ।।२२।।
सा विद्या नौस्तितार्षूणां गभीरं काव्यसागरम् । महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम् ।।२३।।
कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्यकुटुम्बकम् । सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ।।२४।।
तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नातिदुष्यति । इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।।२५।।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम् । शक्वर्याऽतिजगत्याऽतिशक्वर्या त्रिष्टुभा तथा ।।२६।।
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिजनैश्चारुभिः समैः । [३]मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् ।।२७।।
[४]अतिशक्वरिकाष्टम्यामेकसंकीर्णकैः परः । मात्रयाऽप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः ।।२८।।
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम् । [५]नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रमपादपैः ।।२९।।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः[६] । दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः ।।३०।।
तमसा मरुताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः । सर्ववृत्तिप्रवृत्तं च सर्वभाव[७]प्रभावितम् ।।३१।।
सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं [८]पुष्टं गुणविभूषणैः । अत एव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः ।।३२।।
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस [९]एवात्र जीवितम् । [१०]पृथक्प्रयत्नं निर्वर्त्यं वाग्विक्रमणि(?)रसाद्वपुः ।।३३।।

भी चार पाद होते हैं। वृत्त और जाति इसके दो भेद हैं। जहाँ नियमानुसार अक्षरों की संख्या की जाती है उसे वृत्त, जहाँ मात्राओं की गणना की जाती है उसे जाति छन्द कहते हैं। छन्दःशास्त्र के अनुसार सम, अर्धसम और विषम, छन्द के ये तीन भेद माने गये हैं। छन्दःशास्त्र का ज्ञान काव्यरूपी गम्भीर सागर को पार करने के लिए नाव की तरह सहायक हैं ।।२१-२२$\frac{१}{२}$।। महाकाव्य, कलाप, पर्याबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक और कोष ये पद्य के भेद हैं ।।२३-२३$\frac{१}{२}$।। महाकाव्यों का विभाजन सर्गों में होता है और आरम्भ संस्कृत से होता है। स्वरूप को छोड़ते हुए, अन्य भाषा प्राकृत आदि से आरम्भ करना भी दोष नहीं। इसका इतिवृत्त इतिहास की कथा से सम्बन्धित हो अथवा सभ्यों में प्रचलित हो। मंत्रणा, दूत-प्रेषण, युद्धादि का अति विस्तार न हो। शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा, वक्त्रादि छन्दों से समन्वित हो। सर्गान्त में छन्द बदला हुआ हो और सर्ग अति संक्षिप्त न हो। अतिशक्वरी आदि छन्दों के साथ-साथ कोई सर्ग मात्रा छन्दों से भी रचित होना चाहिए। जिस पद्धति में सज्जनों का अनादर होता है वह निन्दित है अतः यहाँ वह त्याज्य है ।।२४-२८$\frac{१}{२}$।। नगर-वर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, पादप, उद्यान, जलक्रीड़ा, मद्यपानादि उत्सवों तथा दूती वचन, कुलटाओं के विस्मयजनक चरित्रों के साथ-साथ गाढ़ान्धकार, प्रचण्ड पवन आदि आदि लोकातिशायी तत्त्वों की चर्चा से महाकाव्य संयुक्त होना चाहिए। इसका कथानक सब प्रकार की वृत्तियों से समन्वित हो, सब प्रकार के भावों से संकलित हो, रीति तथा रस से संयुक्त हो तथा अलङ्कारों से पुष्ट हो। इस प्रकार के गुणों से संयुक्त महाकाव्य का रचयिता महाकवि कहाता है। इस महाकाव्य में विविध वाक्-कौशलों की प्रधानता होते हुए भी इसकी आत्मा तो रस ही है अतः कवि व्यर्थ के वाग्-विक्रम को छोड़कर इसका कलेवर रससिक्त बनाये और नायक की कथा से चतुर्वर्ग की फल-प्राप्ति को दर्शाये ।।२९-३३$\frac{१}{२}$।। जिसमें केवल एक

---

१ च. त्रिधा। २ क. ङ. °रसंक्षेप° युज्यते तद्विशेषणम्। ३ ''मुक्ता...सर्गकम्'' इत्यत्र ''युक्ता तु भिन्नवृत्ताख्या नातिसंक्षिप्तसङ्गकम्।'' इति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ ख. ङ. °काद्याम्यामे°। ५ ख. ग. °गरान्तरशैः°। ६ ख. ग. °वैः। कृतीव°। ७ क. ङ. °वविभाववित्। शर्वरीतिरजैर्जुष्टं पुणिर्गुण°। ८ ख. ग. °ष्टं गण°। ९ क. ङ. °वानुजीवनम्। १० क. ङ. °यत्ननिवृत्त्यै वासुकिन्निर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]चतुर्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं[2] नायकाख्यया । [3]समानवृत्तिर्निर्व्यूढः कौशिकीवृत्तिकोमलः ।।३४।।
कलापोऽत्र प्रवासः प्रागनुरागाह्वयो रसः । सविशेषकं प्राप्त्यादि संस्कृतेनेतरेण च ।।३५।।
([4]श्लोकैरनेकैः कुलकं [5]स्यात्संदानितकानि तत् । मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्) ।।३६।।
सूक्तिभिः कविविंसहानां सुन्दरीभिः समन्वितः । कोषो ब्रह्मापरिच्छिन्नः स विदग्धाय रोचते ।।३७।।
आभासोपमशक्तिश्च सर्गे यद्भिन्नवृत्तता । मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा ।।३८।।
([6]श्रव्यं चैवाभिनेयं च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः ।।३९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यादिलक्षणकथनं नाम
सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३७।।

ही छन्द का प्रयोग हो, जो कौशिकी वृत्ति के प्रयोग द्वारा कोमल बनाया गया हो, उसे 'कलापक' कहते हैं। इसमें प्रवास और पूर्वराग का समावेश होना चाहिए। 'सविशेषक' उसे कहते हैं जिसमें संस्कृत भाषा अथवा किसी अन्य भाषा में काव्य-सामग्री की प्राप्ति हो। 'कुलक' नामक काव्य में विभिन्न छह छन्दों का प्रयोग होता है इसे 'संदानितक' भी कहते हैं। 'मुक्तक' रचना वह होती है, जिसका प्रत्येक श्लोक सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ होता है ।।३४-३६।। 'कोष' नामक काव्य, शिरोमणि कवियों की प्रभावशाली सूक्तियों का संग्रह होता है। इसमें रस का प्रवाह सतत प्रवहमान होता है। चतुर सहृदयों को यह अति प्रिय होता है। इसमें रसाभास और उपशम की शक्ति होती है और एक ही सर्ग में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग रहता है। इसके दो भेद हैं-'मिश्रित और प्रकीर्णक'। प्रथम तो श्रव्य भी होता है और अभिनेय भी। 'प्रकीर्ण' में एक प्रकार की उक्तियाँ होती हैं ।।३७-३९।।

श्री अग्निमहापुराण में काव्यादिलक्षण-कथन नामक
तीन सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३७।।

---

१ ख. ग. °र्तुर्वक्त्रं च संधिश्च व्याख्या°। २ ख. ग. °श्वव्या°। ३ क. ग. °वृत्तनि°। ४ "श्लोकैरनेकैः....सताम्" च. पुस्तके नास्ति। ५ क. ङ. स्याच्छब्दानितकादि त°। ६ "भव्यं....नाटिका" क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नाटकनिरूपणम्

अग्निरुवाच

नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा। ज्ञेयः [1]समवकारश्च भवेत्प्रहसनं तथा ।।१।।
व्यायोगभाणवीथ्यङ्कत्रोटकान्यथ[2] नाटिका। सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको [3]दुर्मल्लिका तथा ।।२।।
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी [4]हल्लीशकानि च। काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ।।३।।
उल्लाप्यकं प्रेङ्क्षणं च सप्तविंशतिधैव तत्। सामान्यं च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गतिः ।।४।।
सामान्यं सर्वविषयं विशेषः क्वापि वर्तते। पूर्वरङ्गे निवृत्ते द्वौ देशकालावुभावपि ।।५।।
रसभावविभावानुभावा अभिनयास्तथा। अङ्कः स्थितश्च सामान्यं सर्वत्रैवोपसर्पणात् ।।६।।
विशेषोऽवसरे वाच्यः सामान्यं पूर्वमुच्यते। त्रिवर्गसाधनं नाट्यमित्याहुः करणं च यत् ।।७।।
इतिकर्तव्यता तस्य पूर्वरङ्गो यथाविधि। नान्दीमुखानि द्वात्रिंशदङ्गानि पूर्वरङ्गके ।।८।।
देवतानां नमस्कारो गुरूणामपि च स्तुतिः। गोब्राह्मणनृपादीनामाशीर्वादादि गीयते ।।९।।
नाद्य (न्द्य)न्ते सूत्रधारोऽसौ रूपकेषु निबध्यते। गुरुपूर्वक्रमं वंशप्रशंसा पौरुषं कवेः ।।१०।।

अध्याय ३३८

नाटक-निरूपण

अग्निदेव बोले–दृश्यकाव्य सत्ताईस प्रकार का होता है। नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक, प्रेङ्क्षण ।।१-३$\frac{1}{2}$।। नाटक लक्षण की दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, सामान्य और विशेष। प्रथम प्रकार की प्रवृत्तियाँ सब नाटकों में होती हैं और द्वितीय प्रकार की कहीं-कहीं। पूर्व रंग के पश्चात् देश और काल का संकलन, रस, भाव, विभाव, अनुभाव, अभिनय तथा अंक-विभाजन, कार्यावस्थाओं का प्रतिपादन, ये सभी नाटक की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं क्योंकि इनकी उपस्थिति सर्वत्र रहती है। विशेष प्रवृत्तियों का प्रयोग अवसर-विशेष पर होना चाहिए, जबकि सामान्य के विषय में कह दिया है ।।४-६$\frac{1}{2}$।। नाटक त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति) का हेतुभूत साधन है। पूर्व रंग में विधिपूर्वक नान्दी आदि बत्तीस अङ्गों का निर्वाह करना चाहिए। इस स्थल पर देवताओं को नमस्कार, गुरुजनों की प्रशंसा, गौ, ब्राह्मण और राजा के आशीष का गायन किया जाता है ।।७-९।। रूपकों में नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का समावेश किया जाता है। वह सूत्रधार इन पाँच बातों का निर्देश करे–कवि (रूपककार) की गुरु परम्परा, वंशोल्लेख तथा पौरुष (काव्यशक्ति), काव्य (रूपक)

---

१ ख. ग. समरकारश्च। २ ख. ग. °ङ्कतोट°। ३ ख. ग. दुर्मणिका। ४ ख. ग. हन्दीसकानि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्बन्धार्थौ च काव्यस्य पञ्चैतानेष निर्दिशेत् । नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव च ।।११।।
सहिताः सूत्रधारेण संलापं यत्र कुर्वते । चित्रैर्वाक्यैः [1]स्वकार्यार्थे(र्थैः)प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।।१२।।
आमुख्यं तत्तु विज्ञेयं बुधैः प्रस्तावनाऽपि सा । प्रवृत्तकं कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।।१३।।
आमुख्यस्य त्रयो भेदा बीजांशेषूपजायते । कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्[2] ।।१४।।
तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवृत्तकम् । सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा ।।१५।।
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातः स उच्यते । प्रयोगेषु प्रयोगं तु सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।।१६।।
ततश्च प्रविशेत्पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः । शरीरं नाटकादीनामितिवृत्तं प्रचक्षते ।।१७।।
सिद्धमुत्प्रेक्षितं चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ । सिद्धमागमदृष्टं च सृष्टमुत्प्रेक्षितं कवेः ।।१८।।
बीजं बिन्दुः[3] पताका च [4]प्रकरी कार्यमेव च । अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्च चेष्टा अपि क्रमात् ।।१९।।
प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्तिः सद्भाव एव च । नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः ।।२०।।
मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्शश्च तथैव च । तथा [5]निहरणं चेति क्रमात्पञ्चैव संधयः ।।२१।।
अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यत्प्रसर्पति । फलावसानं यच्चैव बीजं तदभिधीयते ।।२२।।
यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा । काव्ये शरीरानुगतं[6] तन्मुखं परिकीर्तितम् ।।२३।।

की पूर्व कथा का सम्बन्ध और प्रयोजन। जहाँ सूत्रधार के साथ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक स्वकार्यसिध्यर्थ चमत्कृत वाक्यों से परस्पर चर्चा करते हैं, नाटक के उसी स्थल को आमुख्य कहते हैं। विद्वानों ने इसे प्रस्तावना भी कहा है। इसके तीन भेद हैं–प्रवृत्तक, कथोद्घात और प्रयोगातिशय। ये तीनों नाटक के बीजांश से ही (यथा विधि) उत्पन्न होते हैं ।।१०-१३ $\frac{1}{2}$।। जहाँ सूत्रधार किसी तत्कालीन चरित्र का आश्रय लेकर वर्णन करे और इस वर्णन के साथ ही तत्सम्बद्ध पात्र का प्रवेश हो तो वह प्रस्तावना प्रवृत्तक कहलाती है। जहाँ पर सूत्रधार के वाक्य को अथवा उसके व्याक्यार्थ को दोहराता हुआ कोई पात्र प्रवेश करे तो उसको कथोद्घात प्रस्तावना कहा जाता है ।।१४-१५ $\frac{1}{2}$।। नाटकों (की प्रस्तावना) में जब सूत्रधार अपने अभीष्ट कर्त्तव्य का सम्पादन कर चुके और तब पात्र का प्रवेश हो तो वह प्रयोगातिशय नाम की प्रस्तावना कहाती है। नाटक के इतिवृत्त (कथानक) को शरीर कहा जाता है। इतिवृत्त के दो भेद हैं–सिद्ध और उत्प्रेक्षित। आगम (शास्त्र) से प्राप्त कथानक सिद्ध कहाता है और कविकल्पना-प्रसूत कथानक उत्प्रेक्षित ।।१६-१८।। नाटक की अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं–बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य और इनकी चेष्टाएँ (कार्यावस्थाएँ) भी पाँच हैं–प्रारम्भ, प्रयत्न, सद्भाव, फलप्राप्ति, फलयोग ।।१९-२०।। नाटक में क्रमशः पाँच सन्धियाँ होती हैं–मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निहरण। जहाँ संकेत मात्र से ही फल-प्राप्ति तक की समस्त कथावस्तु ज्ञात-सी हो जाय, उस कार्यावस्था को बीज कहते हैं ।।२१-२२।। जहाँ चमत्कृत अर्थ, रस आदि से युक्त उपर्युक्त 'बीज' नामक कार्यावस्था होती है वहाँ नाटकीय कथावस्तु का अनुकारक स्थल मुख-सन्धि कहाता है।

---

१ क. ख. ग. °र्थे वीथ्यङ्गैरन्यकाऽपि वा। आ°। २ क. ङ. वर्तयेत्। ३ क. ख. ग. बिन्दु। ४ क. ङ. प्राकरी। ५ छ. निर्वहणं। ६ क. ख. ग. °गता तन्मु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षयः। रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गुह्यानां चैव गूहनम् ।।२४।।
आश्चर्यवदभिख्यातं प्रकाशानां प्रकाशनम्। अङ्गहीनो नरो यद्वन्न [1]श्रेष्ठं काव्यमेव च ।।२५।।
देशकालैर्विना किंचिन्नेतिवृत्तं प्रवर्तते। [2]अतस्तयोरुपादानं नियमात्पदमुच्यते ।।२६।।
देशेषु भारतं वर्षं काले कृतयुगत्रयम्। [3]नर्ते ताभ्यां प्राणभृतां सुखदुःखोदयः क्वचित्।।
सर्गे सर्गादिवार्त्ता च [4]प्रसञ्जन्ती न दुष्यति ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नाटकनिरूपणं नामाष्टात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३८।।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शृङ्गारादिरसनिरूपणम्

अग्निरुवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम्। वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ।।१।।
आनन्दः [5]सहजस्तस्य [6]व्यज्यते स कदाचन। व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ।।२।।
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहङ्कार इति स्मृतः। ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम् ।।३।।

मुख-सन्धि में ही अभीष्ट कथावस्तु की रचना, वृत्त (कथा) का अनुपक्षय अर्थात् अक्षीयमाणस्वरूप, प्रयोग (नाटक) की आनन्दमयी स्थिति, गोपनीय बातों का गोपन, ख्यात (घटना सूत्र) का आश्चर्यमयी पद्धति से कथन, प्रकाशनीय तथ्यों का प्रकाशन, इन नाटकीय गुणों का उल्लेख होना चाहिए। इन उपर्युक्त गुणों से रहित काव्य अंगहीन मनुष्य की भाँति श्रेष्ठ नहीं बन सकता ।।२३-२५।। देश-काल के बिना किसी भी कथानक की रचना नहीं होती, इसलिए नियमपूर्वक उन दोनों का उपादान करना 'पद' कहलाता है। नाटक के दृश्य सदा भारत के ही होने चाहिए और कालों में सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीन का उल्लेख होना चाहिए। देश और काल के सम्यक् उल्लेख के बिना दर्शकों में सुख और दुःख की अनुभूति ठीक प्रकार से नहीं करायी जा सकती। अंक में सृष्टि की आरम्भिक कथा का दिखाना भी दोष नहीं है ।।२६-२७।।

श्री अग्निमहापुराण में नाटक निरूपण-कथन नामक तीन सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३८।।

अध्याय ३३९

शृङ्गारादिरस-निरूपण

अग्निदेव बोले-वह परब्रह्म परमेश्वर अक्षय है। वह शाश्वत, अजन्मा और (समस्त सृष्टि में) परिव्याप्त है। वेदान्त ग्रन्थों में उसे अद्वितीय ज्योतिर्मान् और सामर्थ्यवान् कहा गया है ।।१।। उसका आनन्द स्वाभाविक है पर उसकी अभिव्यक्ति कभी-कभी होती है। उसकी अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य चमत्कार अथवा रस है। उस परब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहलाता है। उस अहंकार से अभिमान की उत्पत्ति हुई और उसी अभिमान में तीन

---

१ क. ङ. श्रेयः। २ क. ख. ग. °दाननि°। ३ ख. च. नर्तिताभ्यां। ग. वर्तिताभ्यां। ४ ख. ग. प्रमज्जन्ती। ५ क. ङ. °हजं ह्येष बाधते स। ६ ख. ज. युज्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]अभिमानाद्रतिः[2] सा च [3]परिपोषमुपेयुषी । [4]व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ।।४।।
तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः[5] । ([6]स्वस्वस्थायिविशेषोऽथ परिघोषस्वलक्षणाः ।।५।।
सत्त्वादिगुणसंतानाज्जायन्ते परमात्मनः । रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते ।।६।।
वीरोऽवष्टम्भजः संकोचभूर्वीभत्स इष्यते । शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः) ।।७।।
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्[7]वीभत्साद्भयानकः । शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः ।।८।।
वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः[7]स्वभावाच्चतुरो रसाः । लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा ।।९।।
अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।१०।।
शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् । स चेत्कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ।।११।।
न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः । भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ।।१२।।
स्थायिनोऽष्टौ रतिमुखाः स्तम्भाद्या व्यभिचारिणः । [8]मनोनुकूलेऽनुभवः सुखस्य रतिरिष्यते ।।१३।।
हर्षादिभिश्च मनसो विकासो हास उच्यते । मनोवैक्लैव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः ।।१४।।
क्रोधस्तैक्ष्ण्यं प्रबोधश्च प्रतिकूलानुकारिणी । पुरुषानुसमोऽप्यर्थो यः स उत्साह उच्यते ।।१५।।

(पृथ्वीलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक) परिव्याप्त हैं। अभिमान से रति का जन्म होता है, और जब रति व्यभिचारी आदि भावों से परिपुष्ट होती है तब उसे शृङ्गार कहते हैं ।।२-४।। रति अथवा शृङ्गार के अनेक भेद हैं काम (शृङ्गार) हास्यादि। प्रत्येक रस का अपना-अपना स्थायीभाव है और उनके स्वरूप स्वनाम से ही स्पष्ट हैं। ये स्थायीभाव परब्रह्म के सत्त्वादिगुणों के प्रसार से ही समुत्पन्न होते हैं। राग (प्रणय) से शृङ्गार की उत्पत्ति होती है। असहिष्णुता से रौद्र रस की, उत्साह से वीर रस की, संकोच अथवा ग्लानि से वीभत्स रस की उत्पत्ति होती है। शृङ्गार रस से हास रस उत्पन्न होता है, रौद्र रस से करुण रस ।।५-७।। वीर से अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है और वीभत्स से भयानक रस की निष्पत्ति होती है। शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त-ये नौ रस हैं। इनमें से रौद्र, वीर, वीभत्स ये चार रस स्वाधीन (स्वाभाविक) हैं (और शेष परजन्य)। जिस प्रकार बिना दान के लक्ष्मी शोभित नहीं होती, इसी प्रकार कविता (वाग्देवी) भी रसों के बिना शोभित नहीं होती। कवि इस अपार काव्य-जगत् का निर्माता है। जिसे जो वस्तु जिस प्रकार अच्छी लगती है यह उसे वैसे ही बनाता है ।।८-१०।। यदि कवि शृङ्गारी प्रकृति का अर्थात् सहृदय होगा तो उसकी सृष्टि अर्थात् रचना भी सरस होगी। पर यदि वह नीरस होगा तो उसका काव्य भी नीरस ही होगा। न तो रस के बिना कोई भाव होता है और न ही भाव के बिना रस। इन भावों से रसों का भावन किया जाता है और रसों के द्वारा भावों का। रत्यादि आठ स्थायी भाव कहाते हैं और स्तम्भादि (आठ) व्यभिचारी भाव सुख के मनोनुकूल अनुभव का नाम रति है ।।११-१३।। हर्षादि से मन का जो विकास होता है उसे हास कहते हैं। प्रिय वस्तु के विनाशादि से मन में होनेवाली विकलता का नाम शोक है। किसी प्रतिकूल परिस्थिति में समुत्पन्न तीक्ष्णता का नाम क्रोध है। हृदय में उत्पन्न पौरुष को 'उत्साह' कहते हैं ।।१४-१५।। किसी

---

१ ख. ग. °मानावृतिः। २ क. ङ. °नात्स्मृतिः। ३ क. ख. °रितोष°। ४ क. ङ. °चारादि°। ५ ख. ग. °शः। सुषुम्नादिविशेषोत्सप°। ६ 'स्वस्वस्थायि''''करुणोरसः' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ७ क. °ख्याः स्वपुष्टाश्चतु°। ख. ग. °ख्याः सुषुष्पाश्चतु°। ८ ख. ग. °कूलोऽनु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्रादिदर्शनाच्चेतोवैक्लव्यं ब्रुवते भयम् । जुगुप्सा च पदार्थानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनाम् ।।१६।।
विस्मयोऽतिशयेनार्थ दर्शनाच्चित्तविस्मृतिः । अष्टौ स्तम्भादयः सत्त्वाद्रजसस्तमसः परम् ।।१७।।
स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयरागाद्युपाहितः । श्रमरागाद्युपेतान्तः क्षोभजन्म वपुर्जलम् ।।१८।।
स्वेदो हर्षादिभिर्देहोच्छ्वासोऽन्तः पुलकोद्गमः । हर्षादिजन्मवान्सङ्गः स्वरभेदो भयादिभिः ।।१९।।
[1]चित्तक्षोभभवस्तम्भो वेपथुः परिकीर्तितः । वैवर्ण्यं च विषादादिजन्मा कान्तिविपर्ययः ।।२०।।
दुःखानन्दादिजं नेत्रजलमश्रु च विश्रुतम् । इन्द्रियाणामस्तमयः प्रलयो लङ्घनादिभिः ।।२१।।
वैराग्यादेर्मनःखेदो निर्वेद इति कथ्यते । मनः पीडादिजन्मा च सादो ग्लानिः शरीरगा ।।२२।।
शङ्काऽनिष्टागमोत्प्रेक्षा स्यादसूया च मत्सरः । मदिराद्युपयोगोत्थं मनःसंमोहनं मदः ।।२३।।
क्रियातिशयजन्माऽन्तः शरीरोत्थक्लमः श्रमः । शृङ्गारादि क्रियाद्वेषश्चित्तस्याऽऽलस्यमुच्यते ।।२४।।
दैन्यं सत्त्वादपभ्रंशश्चिन्तार्थपरिभावनम् । इतिकर्तव्यतोपायादर्शनं मोह उच्यते ।।२५।।
स्मृतिः स्यादनुभूतस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्[2] । मतिरर्थपरिच्छेदस्तत्त्वज्ञानोपनायितः ।।२६।।
व्रीडानुरागादिभवः संकोचः कोऽपि चेतसः । भवेच्चपलताऽस्थैर्यं हर्षचि (श्चि) त्तप्रसन्नता ।।२७।।
आवेशश्च प्रतीकाराशया वैधुर्यमात्मनः । कर्त्तव्ये प्रतिभाभ्रंशो जडतेत्यभिधीयते ।।२८।।

चित्र अथवा भयंकर दृश्य को देखने से चित्त को जो व्याकुलता होती है उसे भय कहते हैं। गन्दी वस्तुओं के निन्दात्मक भाव का नाम जुगुप्सा कहाता है। आठ स्तम्भादि भाव त्रिगुणातीत माने गये हैं, भय या रति की अधिकता के कारण निश्चेष्ट होने का नाम स्तम्भ है। श्रम, प्रणय, भय के आधिक्य के कारण अन्तर्मन्थन द्वारा शरीर पर आनेवाली आर्द्रता को स्वेद कहते हैं। हर्ष, भय आदि के कारण होनेवाले शारीरिक उच्छ्वास को पुलक कहते हैं। हर्ष, भयादि के कारण होनेवाले कण्ठावरोध को स्वरभेद कहते हैं ।।१६-१९।। हृदय के विक्षोभस्वरूप होनेवाले स्तम्भ को वेपथु कहा गया है। विषादादि भयादि के कारण होनेवाली रूप या कवि की म्लानता को वैवर्ण्य कहते हैं। दुःख, आनन्दादि से नेत्रों में उत्पन्न या दृश्यमान जल को अश्रु कहा जाता है। अशनादि के कारण इन्द्रियों की विकलता प्रलय कहलाती है। वैराग्य या दुःख के कारण मन में उत्पन्न खेद को निर्वेद कहते हैं। मानसिक पीड़ादि से प्रसूत अवसाद जब अभिव्यक्त होता है तो उसे ग्लानि कहते हैं ।।२०-२२। अनिष्ट आगमन की कल्पना को आशंका कहते हैं। मात्सर्य को ही असूया कहते हैं। मदिरा आदि के सेवन से जो मानसिक शिथिलता होती है उसे मद कहते हैं। कार्याधिक्य के फलस्वरूप उद्भूत शारीरिक क्लान्ति को श्रम कहते हैं। शृङ्गारादि क्रियाओं से चित्त की उदासी आलस्य कही जाती है। स्वअपमान का चिन्तन करते हुए सत्त्व से अपभ्रंश होने का नाम दैन्य है। करणीय उपाय के न सूझने की अवस्था को मोह कहते हैं ।।२३-२५।। किसी पूर्वानुभूत वस्तु के प्रत्यभिज्ञान को स्मृति कहते हैं। तत्त्वज्ञान की सहायता से अर्थ धारण का नाम मति है। अनुरागादि के कारण चित्त में होनेवाले संकोच को व्रीड़ा कहते हैं। चित्त की अस्थिरता ही चपलता होती है और चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहते हैं। प्रतीकार की भावना से व्यक्ति में आनेवाले उद्वेग को आवेग कहते हैं। कर्त्तव्य में प्रतिभा के कुण्ठित होने को 'जड़ता' कहा गया है ।।२६-२८।। लक्ष्यप्राप्ति से प्राप्त आत्मसंशय की

---

१ क. ङ. °भवरिस्तम्भो। ख. ग. °भतरस्तम्भो। २ ख. °तिवेशनन्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इष्टप्राप्तेरुपचितः संपदाभ्युदयो धृतिः । गर्वः परेष्ववज्ञानमात्मन्युत्कर्षभावना ।।२९।।
भवेद्विषादो दैवादेर्विघातोऽभीष्टवस्तुनि । औत्सुक्यमीप्सिताप्राप्तेर्वाञ्छया तरला स्थितिः ।।३०।।
चित्तेन्द्रियाणां स्तैमित्यमपस्मारोऽनवस्थितिः । [1]युद्धे व्याधादिभिस्त्रासो वीप्सा चित्रचमत्कृतिः ।।३१।।
क्रोधस्याप्रशमोऽमर्षः प्रबोधश्चेतनोदयः । अवहित्थं भवेद्गुप्तिरिङ्गिताकारगोचरा ।।३२।।
रोषतो गुरुवाग्दण्डपारुष्यं विदुरुग्रताम् । ऊहो वितर्कः स्याद्व्याधिर्मनोवपुरवग्रहः ।।३३।।
अनिबद्धप्रलापादिरुन्मादो मदनादिभिः। तत्त्वज्ञानादिना चेतःकषायोपरमः शमः ।।३४।।
कविभिर्योजनीया वै भावाः काव्यादिके रसाः । विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ।।३५।।
विभावो नाम स द्वेधाऽऽलम्बनोद्दीपनात्मकः । रत्यादिभाववर्गोऽयं यमाजीव्योपजायते ।।३६।।
आलम्बनविभावोऽसौ [2]नायकादिभवस्तथा[3] । धीरोदात्तो[4] धीरोद्धतः स्याद्धीरललितस्तथा ।।३७।।
धीरप्रशान्त इत्येवं चतुर्धा नायकः स्मृतः । अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्टः प्रवर्तितः ।।३८।।
पीठमर्दो विटश्चैव विदूषक इति त्रयः । शृंगारे नर्मसचिवा नायकस्यानुनायकाः ।।३९।।
पीठमर्दस्तु कलशः श्रीमांस्तद्देशजो विटः । विदूषको वैहसिक अ(स्त्व)ष्ट नायकनायिकाः ।।४०।।

भावना को धृति कहते हैं। आत्मोत्कर्ष की भावना से दूसरों के तिरस्कार करने या अनादर करने को गर्व कहते हैं। किसी दैवी कारण से प्रिय वस्तु के विनाश से जो आघात पहुँचता है उसे विषाद कहते हैं। ईप्सित वस्तु की प्राप्त्यर्थ जो मन की चंचल अवस्था होती है उसे औत्सुक्य कहते हैं। चित्त की जड़ता और इन्द्रियों की विक्षुब्धावस्था को अपस्मार कहते हैं। युद्ध में अथवा व्याघ्रादि से होनेवाले भय में जो आश्चर्य होता है उसे वीप्सा कहते हैं ।।२९-३१।। क्रोध के शान्त न होने को 'अमर्ष' कहते हैं। चेतना के उदय का नाम 'प्रबोध' है। जब रहस्य इङ्गित और आकार के द्वारा स्पष्ट होता है तो उसे अवहित्था कहते हैं। क्रोध से परुष असंगत शब्दावली के प्रयोग को उग्रता कहते हैं। किसी प्रस्तुत समस्या के आधार पर तर्क-वितर्क की सम्भावना 'ऊहा' है। मन और शरीर की जड़ता को व्याधि कहते हैं। कामादि दशा के कारण जो अन्तर्गत प्रलाप किया जाता है उसे 'उन्माद' कहते हैं। तत्त्वज्ञानादि के कारण चित्त की संसार से उदासीनता को शम कहते हैं ।।३२-३४।। कवियों को चाहिए कि वे काव्य आदि में भावों को सम्बन्धी रसों के साथ संयोजित करें। रत्यादि भावों (स्थायी) के कारण रस उत्कर्ष को पहुँचकर अनुभूति का विषय बनता है। विभाव के आलम्बन और उद्दीपन दो भेद होते हैं। रत्यादि स्थायी भावों का वर्ग इस आलम्बन का ही उपजीवी होता है। यह आलम्बन विभाव नायकादि में ही होता है अथवा नायकादि को आलम्बन विभाव कहते हैं। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त-ये नायक के चार भेद किये गये हैं। प्रत्येक भेद के अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट-ये चार उपभेद होते हैं ।।३५-३८।। शृङ्गार रस में नायक को नायिका से मिलाने में तीन सहायक कहे गये हैं-पीठमर्द, विट और विदूषक ।।३९।। पीठमर्द नायक का कुशल सहायक होता है, विट उसका तद्देशज (अन्तरंग) मित्र होता है और विदूषक विनोदी सहायक। नायक और नायिका के प्रमुख आठ-आठ भेद हैं ।।४०।। कौशिक के

---

१ क. ङ. °द्धेज्यावादि°। २ ख. ग. °काबिभ°। ३ क. ङ. °दिरसस्त°। ४ क. ङ. धीरवृत्तः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वकीया परकीया च पुनर्भूरिति कौशिकाः । सामान्या न पुनर्भूरि[1] इत्याद्या बहुभेदतः ।।४१।।
उद्दीपनविभावास्ते संस्कारैर्विविधैः [2]स्थिताः । आलम्बनविभावेषु भावानुद्दीपयन्ति ये ।।४२।।
चतुः षष्टिकला द्वेधा[3] कर्माद्यैर्गीतिकादिभिः । कुहकं स्मृतिरप्येषा प्रायो हासोपहारकः ।।४३।।
आलम्बनविभावस्य भावैरुद्बुद्धसंस्कृतैः । मनोवाग्बुद्धिवपुषां स्मृतीच्छाद्वेषयत्नतः ।।४४।।
आरम्भ एव विदुषामनुभाव इति स्मृतः । स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते ।।४५।।
मनोव्यापारभूयिष्ठो मनआरम्भ उच्यते । द्विविधः पौरुषः स्त्रैण ईदृशोऽपि प्रसिध्यति ।।४६।।
शोभा विलासो माधुर्यं स्थैर्यं गम्भीर्यमेव च । ललितं च तथौदार्यं तेजोऽष्टाविति पौरुषाः ।।४७।।
नीचनिन्दोत्तमस्पर्धा शौर्यं दाक्षा(क्ष्या)दिकारणम् । मनोधर्मे भवेच्छोभा शोभते भवनं यथा ।।४८।।
भावो हारश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च । दीप्तिर्माधुर्यशौर्ये च प्रागल्भ्यं स्यादुदारता ।।४९।।
स्थैर्यं गम्भीरता स्त्रीणां विभावा द्वादशेरिताः । भावो विलासो हावः स्याद्भावः किंचिच्च हर्षजः ।।५०।।
वाचो युक्तिर्भवेद्वागारम्भो द्वादश एव सः । तत्र भाषणमालापः प्रलापो वचनं बहु ।।५१।।
विलापो दुःखवचनमनुलापोऽसकृद्वचः । संलाप उक्तप्रत्युक्तमपलापोऽन्यथा वचः ।।५२।।

मत में नायिकाएँ तीन प्रकार की हैं–स्वकीया, परकीया और पुनर्भू। कई विद्वानों के विचार में सामान्या नायिका होती है, पुनर्भू नहीं होती। इस प्रकार नायिका के अनेक भेद हैं। इन विविध नायिकाओं में उद्दीप्त करनेवाले संस्कार रहते हैं जो आलम्बन विभावों में विविध भावों को उद्दीप्त कर देते हैं ।।४१-४२।। चौंसठ कलाओं के दो भाग हैं कर्मादि (अभिनय) और गीतादि। इनकी छलपूर्वक की गयी स्मृति भी प्रायः हास्य लानेवाली होती है ।।४३।। मन की स्मृति से, वाणी की इच्छा से, बुद्धि की प्रेरणा से एवं शरीर के यत्न से आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध एवं परिष्कृत भावों के आरम्भ को विद्वानों ने अनुभाव कहा है। क्योंकि इसका अनुभव किया जाता है। इसीलिए इसे अनुभाव कहा जाता है ।।४४-४५।। मानसिक व्यापारों के आधिक्य को ही 'मन आरम्भ' कहा जाता है। वे दो प्रकार के होते हैं पुरुष के और स्त्री के ।।४६।। पुरुष में रहनेवाले भाव आठ प्रकार के होते हैं। शोभा, विलास, माधुर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य, तेज ।।४७।। शूरता और दक्षता (चतुरता) आदि के कारण नीचों की निन्दा, उत्तम जनों के प्रति स्पर्धा की शोभा (मनो व्यापार) कहते हैं। इससे व्यक्ति की शोभा इस प्रकार होती है जैसे प्रसाधनों से भवन की। भाव, हेला, हार, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रागल्भ्य या प्रगल्भता, उदारता, स्थिरता, गम्भीरता–ये बारह प्रकार के विभाव स्त्रियों के माने गये हैं ।।४८-४९$\frac{1}{2}$।। भाव के विलास को ही हाव कहते हैं। इसमें हर्ष रहता है। वचनवक्रता को ही वागारम्भ कहते हैं और वह बारह प्रकार का होता है ।।५०-५०$\frac{1}{2}$।। पारस्परिक भाषण को आलाप कहा गया है। वचनाधिकता या अधिक बोलने को प्रलाप कहते हैं। दुःख में कथित वचन विलाप होते हैं। अनुलाप किसी बात को बार-बार कहने को कहते हैं। संलाप आपस में उक्ति-प्रत्युक्तिपूर्वक कथित वचनों को कहते हैं जबकि अपलाप में रहस्य को छिपाकर इधर-उधर या व्यर्थ की बातें की जायँ ।।५१-५२।। परस्पर ज्ञात किसी बात को दूसरों तक

---

१ ख. ग. °र्भूव इत्या°। २ ख. ग. स्मृताः। ३ ख. ग. °धा प्रवाद्यैर्गीतिका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वार्ता प्रमाणं संदेशो निर्देशः प्रतिपादनम् । [1]तत्त्वदेशोऽतिदेशोऽयमपदेशोऽन्यवर्णनम् ।।५३।।
उपदेशश्च शिक्षावाग्व्याजोक्तिर्व्यपदेशकः[2] । बोधाय एष व्यापारः सुबुद्ध्यारम्भ इष्यते ।।
तस्य भेदास्त्रयस्ते च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ।।५४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शृङ्गारादिरसनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३३९।।

अथ चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रीतिनिरूपणम्

अग्निरुवाच

वाग्विद्यासंप्रतिज्ञाने रीतिः साऽपि चतुर्विधा । पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा ।।१।।
उपचारयुता मृद्वी पाञ्चाली ह्रस्वविग्रहा । अनवस्थितसंदर्भा [3]गौडीया दीर्घविग्रहा ।।२।।
उपचारैर्न [4]बहुभिरुपचारैर्विवर्जिता । नातिकोमलसंदर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा ।।३।।
लाटीया स्फुटसंदर्भा [5]नातिविस्फुरविग्रहा । परित्यक्ताऽभिभूयोऽपि रुपचारैरुदाहृता (?) ।।४।।

पहुँचाने का नाम सन्देश है, जब कि किसी एक को क्रियात्मक रूप देने का नाम निर्देश है। अन्य वस्तु के वर्णन को तत्त्वदेश, अतिदेश और उपदेश कहते हैं ।।५३।। किसी बात का वाणी द्वारा कथन उपदेश कहलाता है जबकि व्याजोक्ति को व्यपदेश कहते हैं। इस वाग्विद्या के सम्यग्ज्ञान के लिए विद्वान् इसके रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति–ये तीन भेद करते हैं ।।५५।।

श्री अग्निमहापुराण में शृङ्गारादिरस-निरूपण-कथन नामक तीन सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३९।।

अध्याय ३४०

रीतिनिरूपण

अग्निदेव बोले–वाग्विद्या का पूर्ण ज्ञान कराने में रीति का स्थान निर्विवाद है। इसके पाञ्चाली, गौड़ी, वैदर्भी और लाटी (लाटजा) चार भेद हैं ।।१।। पाञ्चाल रीति में छोटे-छोटे विग्रह (समास) होने चाहिए और वह कोमल तथा अलंकृत भाषा से संयुक्त हो। गौड़ी रीति में लम्बे-लम्बे समास हों और सन्दर्भ अनवस्थित (क्षीण सम्बन्ध) हों ।।२।। वैदर्भी रीति में न तो अधिक अलंकृत भाषा का प्रयोग हो और न अलंकृत प्रयोग से वह सर्वथा हीन ही हो। इसमें अति कोमल शब्दावली का प्रयोग न हो और वह समास से भी रहित होनी चाहिए ।।३।। लाटी रीति में वाक्य सीधे और सरल होने चाहिए जबकि समास अत्यन्त स्फुट न हो। भाषा का अनावश्यक अलंकरण इसमें नहीं होना चाहिए। यह अधिक लाक्षणिक तत्त्वों से रहित हो ।।४।। क्रियाओं (नायकादि के कार्यों) में नियमपूर्वक व्यवहार

---

१ क. ङ. °त्त्वदोषोऽर्तिदोषोऽयम°। २ क. ग. °कः। वाचोऽपदेशोव्या°। ३ ख. ग. °डीस्थाद्दीर्घ°। ४ क. ङ. च. °चारविव°। ५ च. °स्फुटवि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]क्रियास्वविषमा वृत्तिभारत्यारभटी तथा । [2](कौशिकी सात्त्वती चेति सा चतुर्धा प्रतिष्ठिता ।।५।।
वाक्प्रधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिता । भरतेन प्रणीतत्वाद्भारती रीतिरुच्यते ।।६।।
([3]चत्वार्यङ्गानि भारत्या वीथी प्रहसनं तथा । प्रस्तावना नाटकादेर्वीथ्यङ्गाश्च त्रयोदश ।।७।।
उद्घातकं तथैव [4]स्याल्लपितं स्याद्द्वितीयकम्) । असत्प्रलापो वाक्श्रेणी नालिका विपणं तथा ।।८।।
व्याहारस्त्रिमतं चैव [5]च्छलावस्कन्दिते तथा ।) गण्डोऽथ मृदवश्चैव त्रयोदशमथोचितम् ।।९।।
तापसादेः प्रहसनं परिहासपरं वचः । मायेन्द्रजालयुद्धादिबहुलाऽऽरभटी स्मृता ।।१०।।
संक्षिप्तकारपातौ च वस्तूत्थापनमेव च ।।११।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रीतिनिरूपणं नाम चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४०।।

अथैकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृत्यादावङ्गकर्मनिरूपणम्

अग्निरुवाच

चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म चानयोः । शरीरारम्भमिच्छन्ति प्रायः पूर्वोऽबलाश्रयः ।।१।।

को वृत्ति कहते हैं। इसके भारती, आरभटी, कौशिकी (केशिकी), सात्त्वती ये चार भेद हैं ।।५।। भारती वृत्ति में शब्दों के महत्त्व पर अधिक ध्यान दिया जाता है। और स्त्री पात्रों द्वारा प्राकृत का प्रयोग कराया जाता है। भरतमुनि द्वारा प्रवर्तित या प्रणीत होने के कारण ही इसका नाम भारती वृत्ति है। भारती वृत्ति के चार अंग हैं– वीथी, प्रहसन, नाटक की प्रस्तावना। वीथी के निम्नलिखित तेरह अंग हैं–उद्घातक, लपित, असत्प्रलाप, वाक्श्रेणी, नाटिका, विपण, व्यवहार, त्रिमत, छल, अवस्कन्दित, गंड, मृदु, अथोचित ।।६–९।। प्रहसन नामक एकांकी में तपस्वी आदि के लिए हास्यपरक वचन प्रयुक्त किये जाते हैं। आरभटी वृत्ति में मायावी और अद्भुत दृश्य रहते हैं और युद्ध आदि की बहुलता रहती है। संक्षिप्तक, अवपात और वस्तूत्थापन ये इसके तीन भेद हैं ।।१०–११।।

श्री अग्निमहापुराण में रीति-निरूपण कथन नामक तीन सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४०।।

अध्याय ३४१

नृत्यादावङ्गकर्म-निरूपण

अग्निदेव बोले–नाटक में नायक-नायिका की विशेष चेष्टाएँ और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का कर्म ही शरीरारम्भ (आङ्गिक अभिनय) कहाता है। इनमें चेष्टाएँ प्रायः नारी पात्रों में ही होती हैं ।।१।। ये चेष्टाएँ बारह प्रकार की हैं–

---

१ क. ङ. °यासु नियमो वृ°। २ 'कौशिकी····स्याद्द्वितीयकम्' च. पुस्तके नास्ति। ३ 'चत्वार्यङ्गानि···तथा' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. °ल्लगितं। ५ ख. ग. च. °वश्यंदिते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रमं किलकिंचितम् । ([1]मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ।।२।।
विकृतं क्रीडितं केलिरिति द्वादशधैव सः । लीलेष्टजनचेष्टानुकरणं संवृतक्षये ।।३।।
[2]विशेषान्दर्शयन्किञ्चिद्विलासः सद्भिरिष्यते । हसितक्रन्दितादीनां संकरः किलकिञ्चितम् ।।४।।
विकारः कोऽपि विव्वोको ललितं सौकुमार्यतः । शिरः पाणिरुरः पार्श्वं कटिरङ्घ्रिरिति क्रमात् ।।५।।
अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजायते । अङ्गप्रत्यङ्गयोः कर्म प्रयत्नजनितं विना ।।६।।
न प्रयोगः क्वचिन्मुख्यं तिरश्चीनं च तत्क्वचित् । आकम्पितं कम्पितं च धुतं विधुतमेव च ।।७।।
परिवाहितमाधूतमवधूतमथाऽऽचितम् । निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तं चाप्यधोगतम् ।।८।।
ललितं चेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः । भ्रूकर्म सप्तधा ज्ञेयं पातनं भृकुटीमुखम् ।।९।।
दृष्टिस्त्रिधा रसस्थायिसंचारिप्रतिबिन्धना[3] । [4]षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा) ।।१०।।
नवधा तारकाकर्म भ्रमणं चलनादिकम् । षोढा च नासिका ज्ञेया निःश्वासो नवधा मतः ।।११।।
षोढौष्ठकर्मकं पाद्यं सप्तथा चिबुकक्रिया । [5]कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता ।।१२।।
असंयुतः संयुक्तश्च भूम्ना हस्तः प्रयुज्यते । पताकस्त्रिपताकश्च तथा वै कर्तरीमुखः ।।१३।।
अर्धचन्द्रोत्करालश्च शुकतुण्डस्तथैव च । मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः [6]कटकामुखः ।।१४।।

लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित, विकृत, क्रीडित और केलि ।।२-२ $\frac{1}{2}$।। (वियोगावस्था) क्षीणस्मृति में प्रिय जन की चेष्टाओं के अनुकरण को लीला कहते हैं। भावों के विशेष प्रदर्शन को विद्वान् विलास कहते हैं। हास्य और क्रन्दन आदि का मिश्रित रूप किलकिञ्चित कहाता है। किसी के प्रिय का विकृत रूप प्रस्तुत करने को विव्वोक और (गत्यादि की) सुकुमारता को ललित कहते हैं। सिर, हाथ, वक्ष, पार्श्व, कटि, पाद, इन्हें अंग कहते हैं। भ्रू आदि को प्रत्यङ्ग कहते हैं। अङ्ग और प्रत्यङ्ग के ये अप्रयत्नज अर्थात् स्वाभाविक रूप में ही होने चाहिए। नृत्य में कोई विशिष्ट नियम मुख्य नहीं होता। कहीं-कहीं पर नृत्य का तिरश्चीन प्रयोग भी किया जाता है ।।३-६ $\frac{1}{2}$।। नृत्य में सिर से सम्बन्धित अभिनय तेरह प्रकार का माना गया है। आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अचित, निकुंचित, परावृत्त, उत्क्षिप्त, अधोगत तथा ललित ।।७-८ $\frac{1}{2}$।। भ्रूकर्म-भृकुटिपात सात प्रकार का होता है। रस, स्थायीभाव तथा संचारीभावों से सम्बद्ध दृष्टि तीन प्रकार की है। रस, स्थायी और संचारी के भेद से इस दृष्टि के छत्तीस भेद हैं। इसमें रसजा दृष्टि के भेद आठ हैं। तारिका का कार्य (आँख चलाना) नौ प्रकार का है। नासिका की गति सोलह प्रकार की मानी गयी है और निःश्वास की गति नौ प्रकार की है ।।९-११।। नृत्य में ओष्ठ के कर्म सोलह प्रकार के कहे गये हैं, और चिबुक की क्रियाएँ सात प्रकार की मानी गयी हैं। मुख का प्रदर्शन कलुष आदि के भेद से सोलह प्रकार का है और ग्रीवा की नौ गतियाँ मानी गयी हैं ।।१२।। नृत्य में भूमि पर हाथों का प्रयोग दो प्रकार का है-संयुत और असंयुत। पताका, त्रिपताका, कर्तरीमुख, अर्धचन्द्र, उत्कराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर, कपित्थ, कटकामुख,

---

१ ''मोट्टायितं''''चाष्टधा'' च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °षानुशनं किंचि° ख. ग. °षाद्व्यसनं किंचि°। ३ क. ङ. °सस्तासां चरित्रप्र°। ४ क. ङ. षड्विंशद्भेदभिदुरा वसुधा तं। ५ क. ङ. °लुखादि°। ६ क. ङ. कटुका°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूच्यास्यः पद्मकोषोहि शिराः[1] समृगशीर्षकः । [2]कामूलकालपद्मौ च चतुरभ्रमरौ तथा ।।१५।।
हंसास्यहंसपक्षौ च [3]संदंशमुकुलौ तथा । ऊर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशतिरित्यमी ।।१६।।
असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश । अञ्जलिश्चकपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ।।१७।।
कटको वर्धमानश्चाप्यसङ्गो निषधस्तथा । [4]दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा [5]मकर एव च ।।१८।।
गजदन्तो बहिःस्तम्भो[6] वर्धमानोऽपरे कराः । उरः पञ्चविधं स्यात्तु आभुग्ननर्तकादिकम्[7] ।।१९।।
उदरं त्वनतिक्षामं खण्डं[8] पूर्णमिति त्रिधा । पार्श्वयोः पञ्चकर्माणि जङ्घाकर्म च पञ्चधा ।।२०।।
अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम् ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृत्यादावङ्गकर्मनिरूपणं नामैकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४१।।

अथ द्वाचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अभिनयादिनिरूपणम्

अग्निरुवाच

[9]आभिमुख्यं नयन्नर्थान्विज्ञेयोऽभिनयो बुधैः । चतुर्धा संभवः [10]सत्त्ववागङ्गाहरणाश्रयः ।।१।।

सूच्यास्य, पद्मकोष, अहिशिर, मृगशीर्षक, कामूल, कालपद्म, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष, संदर्श, मुकुल, ऊर्णनाभ, ताम्रचूड–ये चौबीस असंयुत कर कहे गये हैं। अर्थात् नृत्य में इन चौबीस प्रकारों से असंयुत करों का प्रयोग किया जाता है। संयुत करों का प्रयोग तेरह प्रकार से किया जाता है–अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटक, वर्धमान, अप्यसंग, निषध, दोल, पुष्पपुट, कमठ, गजदन्त, बहिःस्तम्भ इत्यादि–इत्यादि ।।१३–१८$\frac{1}{2}$।। नृत्य आदि में वक्ष संचालन पाँच प्रकार से किया जाता है। जैसे आभुग्न नर्तकादि। उदर प्रदर्शन तीन प्रकार से किया जाता है–अनतिक्षाम, खण्ड और पूर्ण। पार्श्व भाग के पाँच कर्म हैं। जंघाओं के कर्म भी पाँच प्रकार के होते हैं। नाटक में नृत्यादि में पादकर्म भी अनेक प्रकार का कहा गया है ।।१९–२१।।

श्री अग्निमहापुराण में नृत्यादावङ्गकर्म–निरूपण कथन नामक तीन सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४१।।

अध्याय ३४२

अभिनयादि-निरूपण

अग्निदेव बोले–नाटक की वर्ण्य-वस्तु को दर्शकों के समक्ष लानेवाला अभिनय ही होता है। वह अभिनय चार प्रकार का होता है–सत्त्वाश्रय, वागाश्रय, अंगाश्रय, आहरणाश्रय। स्तम्भादि सात्त्विक भावों का प्रदर्शन सात्त्विक अभिनय कहलाता

---

१ ख. ग. शिवाः। २ क. ङ. च. °कः। काङ्गुल°। ३ क. ङ. संदर्शमु°। ४ क. ङ. दोलं पुष्पपट°। ५ क. ङ. कमठ। ६ क. ख. बहिस्थश्च व°। ७ क. ङ. भुग्नानिर्गुणादि। ८ क. ङ. खलं। ९ ख. ग. °ख्यं त्वयत्नार्थान्वि°। १० क. ख. ङ. सत्त्वो वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तम्भादिः[1]सात्त्विको वागारम्भो वाचिक आङ्गिकः । शरीरारम्भ आहार्यो बुद्ध्यारम्भप्रवृत्तयः ।।२।।
रसादिविनियोगोऽथ कथ्यते [2]ह्यतिमानतः । तमन्तरेण सर्वेषामपार्थैव स्वतन्त्रता ।।३।।
सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृङ्गारो द्विविधः स्मृतः । प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च तावपि द्विविधौ पुनः ।।४।।
विप्रलम्भाभिधानो यः शृङ्गारः स चतुर्विधः । पूर्वानुरागमानाख्यः [3]प्रवासकरुणात्मकः ।।५।।
एतेभ्योऽन्यतरं जायमानं संभोगलक्षणम् । विवर्तते चतुर्धैव न च प्रागतिवर्तते ।।६।।
[4]स्त्रीपुंसयोस्तद्वदयं तस्य निर्वर्तिका रतिः । निखिलाः सात्त्विकास्तत्र [5]वैवर्ण्यप्रलयौ विना ।।७।।
धर्मार्थकाममोक्षैश्च शृङ्गार उपचीयते । आलम्बनविशेषैश्च तद्विशेषैर्निरन्तरः ।।८।।
शृङ्गारं द्विविधं विद्याद्वाङ्नेपथ्यक्रियात्मकम् । हासश्चतुर्विधोऽलक्ष्यदन्तः स्मित इतीरितः ।।९।।
किंचिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं फुल्ललोचनम्[6] । विहसितं सस्वनं स्याज्जिह्मोपहसितं तु तत् ।।१०।।
सशब्दं पापहसितमशब्दमतिहासितम् । यश्चासौ करुणो नाम स रसस्त्रिविधो भवेत् ।।११।।
धर्मोपघातजश्चित्तविलासजनितस्तथा । शोकः शोकाद्भवेत्स्थायी[7] कः स्थायी पूर्वजो मतः ।।१२।।
अङ्गनेपथ्यवाक्यैश्च रौद्रोऽपि त्रिविधो रसः । तस्य निर्वर्तकः क्रोधः स्वेदो रोमाञ्चवेपथुः ।।१३।।

है। शरीर से सम्बद्ध आंगिक अभिनय तथा बुद्धि से सम्बद्ध आहार्य अभिनय ।।१-२।। अब विस्तारपूर्वक रस आदि का प्रकरण निर्दिष्ट किया जाता है। इसके बिना सब (कवियों एवं सहृदयों) की सार्थकता ही व्यर्थ है। संभोग और विप्रलम्भ ये शृंगार के दो भेद हैं। पुनः इसके दो भेद होते हैं–प्रच्छन्न और प्रकाश। विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। इन चारों से भिन्न रूप से उत्पन्न होनेवाला संभोग शृंगार है। यह इन चारों में विद्यमान रहता है परन्तु इनका अतिक्रमण नहीं करता। इसका सम्बन्ध स्त्री-पुरुष से है। इसका निर्वाह रति स्थायी भाव के द्वारा होता है। इस रस में समस्त सात्त्विकों का समावेश रहता है और वैवर्ण्य तथा प्रलय का अभाव रहता है। धर्मार्थ, काम, मोक्ष तथा आलम्बनादि के द्वारा शृंगार निरन्तर बढ़ता रहता है। शृंगार के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं–साहित्यिक रूप (काव्यादि में), अभिनेय रूप (नाटकादि में) ।।३-८$\frac{1}{2}$।। हास चार प्रकार का होता है। अलक्ष्यदन्त अर्थात् जिसमें दाँत दिखायी न दें, ऐसा हास्य 'स्मित' कहाता है। जिस हास्य में दाँतों का अग्रभाग थोड़ा-थोड़ा दिखायी दे और नेत्रों में भी उल्लास हो उसे 'हसित' कहते हैं। जिस हास्य में मधुर-मधुर शब्द भी हो उसे विहसित और जहाँ मुख भी खुल जाय और शब्द भी हो उसे अपहसित कहते हैं। इस अपहसित हास्य में पाप हँसी रहती है अर्थात् इसमें हास्य का विकृत रूप रहता है ।।९-१०$\frac{1}{2}$।। करुण रस के तीन भेद हैं–धर्महानि द्वारा उद्भूत शोक, चित्तग्लानिजन्य शोक तथा वियोग से उत्पन्न शोक। इनका स्थायी भाव पूर्वज अर्थात् प्रथम का धर्म, द्वितीय का विलास तथा तृतीय का शोक है ।।११-१२।। रौद्र रस के तीन भेद हैं–अङ्गरौद्र, नेपथ्यरौद्र तथा वाक्यरौद्र। इसका निर्वर्तक स्थायी भाव क्रोध है तथा स्वेद, रोमांच, कम्प इसके संचारी भाव

---

१ ख. ग. °को रागारम्भो वाऽधिक। २ छ. ह्यभिमा°। ३ क. ङ. प्रस्तारकरुणामयः। ए°। ४ छ. °स्तदुहयस्तस्य। ५ क. ङ. °वर्त्यप्रलयोऽपि वा। ध°। ६ क. ङ. °म्। बिन्दु° सि°। ७ क. ङ. °यी कुत्सापूर्वः पुनः पुनः। अ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रयम् । वीरस्तस्य च निष्पत्तिर्हेतुरुत्साह इष्यते ।।१४।।
आरम्भेषु भवेद्यत्र वीरमेवानुवर्तते । भयानको नाम रसस्तस्य निर्वर्तकं भयम् ।।१५।।
उद्वेजनः क्षोभन(ण)श्च वीभत्सो द्विविधः स्मृतः । उद्वेजनः स्यात्प्लुत्याद्यैः क्षोभनो(णो)रुधिरादिभिः ।।१६।।
[1]जुगुप्साऽऽरम्भिका तस्य सात्त्विकांशो निवर्तते । काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते ।।१७।।
अलंका (क) रिष्णवस्ते च शब्दमर्थमुभौ त्रिधा । ये व्युत्पत्त्यादिना शब्दमलंकर्तुमिह क्षमाः ।।१८।।
[2]शब्दालङ्कारमाहुस्तान्काव्यमीमांसका [3]विदः । छाया मुद्रा तथोक्तिश्च युक्तिर्गुम्फनया सह ।।१९।।
वाको वाक्यमनुप्रासश्चित्रं दुष्करमेव च । ज्ञेया नवालंकृतयः शब्दानामित्यसंकरात् ।।२०।।
तन्त्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया साऽपि चतुर्विधा । लोकच्छेकार्भकोक्तीनामत्तोक्तेरनुकारतः ।।२१।।
आभाणको हि लोकोक्तिः सर्वसामान्य एव ताः । याऽनुधावति लोकोक्तिश्छाया मिच्छन्ति तां बुधाः।।२२।।
छेका विदग्धा वैदग्ध्यं कलासु कुशला मतिः। तामुल्लिखन्ती छेकोक्तिश्छाया कविभिरिष्यते ।।२३।।
अव्युत्पन्नोक्तिरखिलैरर्भकोक्त्योपलक्ष्यते । तेनार्भकोक्तिश्छाया तन्मात्रोक्तिमनुकुर्वती ।।२४।।
विप्लुताक्षरमश्लीलवचो मत्तस्य तादृशी । या सा [4]भवति मत्तोक्तिश्छायोक्ताऽप्यतिशोभते ।।२५।।
अभिप्रायविशेषेण कविशक्तिं विवृण्वती[5] । मुत्प्रदायिनीति सा मुद्रा सैव[6] शय्याऽपि नो मते ।।२६।।

हैं। वीर रस के तीन भेद हैं–दानवीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर। इस रस की अभिव्यक्ति उत्साह द्वारा होती है। भयानक रस का स्थायीभाव भय है, यह रस वीररस की पूर्वावस्था है। अर्थात् भय के उपरान्त ही वीररस की स्थिति सम्भव होती है ।।१३-१५।। वीभत्स रस के दो भेद हैं–उद्वेजन और क्षोभन। उद्वेजन का प्रदर्शन उछल-कूद द्वारा तथा क्षोभन का प्रदर्शन रुधिरपातादि के द्वारा किया जाता है। इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है तथा इसमें सात्त्विक अंश नहीं रहने पाता ।।१६-१६ $\frac{1}{2}$।। काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। ये अलंकार तीन प्रकार के होते हैं–शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दार्थालंकार। जो अलंकार व्युत्पत्ति अर्थात् शब्दों की विशिष्ट संयोजन-शैली द्वारा शब्द अलङ्कृत करते हैं उन्हें काव्यशास्त्र के ज्ञाता शब्दालंकार कहते हैं। ये अलंकार संख्या में नौ हैं–छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, गुम्फन, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्र, दुष्कर ।।१७-२०।। अन्य के कथन की अनुकृति (तद्वत् अनुकरण) छाया कहाती है। इसके चार भेद हैं–लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति तथा मत्तोक्ति। लोक प्रसिद्ध कथन को लोकोक्ति कहते हैं। यह सर्वमान्य होती है। जब यह लोकोक्ति प्रचलित होती है तो इसे विद्वान् छाया नाम देते हैं ।।२१-२२।। छेक विदग्ध को कहते हैं। कलाओं में प्रदर्शित बुद्धि कौशल वैदग्ध्य कहलाता है। इस विदग्धता का उल्लेख करनेवाली उक्ति को कवियों ने छेकोक्ति छाया कहा है। अव्युत्पन्न अर्थात् अपरिपक्व मस्तिष्क व्यक्ति की उक्ति अर्भकोक्ति कहाती है, इस अर्भकोक्ति मात्र की अनुकर्त्री उक्ति को अर्भकोक्ति छाया कहा जाता है ।।२३-२४।। शब्दाडम्बर तथा अश्लील वचनों से संवलित तथा प्रमत्त व्यक्ति के समान कही गयी उक्ति मत्तोक्ति छाया कहाती है, कही जाने पर यह उक्ति अति सुन्दर लगती है। किसी विशेष अभिप्राय से कवि के बुद्धि-वैभव को प्रदर्शित करनेवाली उक्ति, जो कि पाठकों का मनोरंजन करती है, मुद्रा कहलाती है। हमारे मत से उसे शय्या भी कहना चाहिए ।।२५-२६।। जहाँ पर किसी

---

१ ख. ग. °गुप्सर°। २ क. च. °रनाम्नस्तान्का°। ३ क. च. विदुः। ४ क. ङ. °ति मन्त्रोक्ति°। ५ क. ङ. °ती। उद्धरोतीति। ख. °ती। उदरोभीति। ६ क. ङ. °वसिज्यासिनो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उक्तिः सा[1] कथ्यते यस्यामर्थः कोऽप्युपपत्तिमान् । लोकायात्रार्थविधिना धिनोति हृदयं सताम् ।।२७।।
उभौ विधिनिषेधौ च नियमानियमावपि । विकल्पपरिसंख्ये च [2]तदीयाः षडथोक्तयः ।।२८।।
अयुक्तयोरिव मिथो वाच्यवाचकयोर्द्वयोः । योजनायै कल्पमाना युक्तिरुक्ता मनीषिभिः ।।२९।।
पदं चैव पदार्थश्च वाक्यं वाक्यार्थमेव च । विषयोऽस्याः प्रकरणं प्रपञ्चश्चेति षड्विधः ।।३०।।
गुम्फना रचना [3]चार्था (?) शब्दार्थक्रमगोचरा । शब्दानुकारादर्थानुपूर्वार्थेयं [4]क्रमात्त्रिधा ।।३१।।
उक्तिप्रत्युक्तिमद्वाक्यं वाको वाक्यं[5] द्विधैव तत् । ऋजुवक्रोक्तिभेदेन तत्राऽऽद्यं सहजं वचः ।।३२।।
साऽऽपूर्वप्रश्निका प्रश्नपूर्विकेति द्विधा भवेत् । वक्रोक्तिस्तु भवेद्भङ्ग्या काकुस्तेन कृता द्विधा ।।३३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिनयादिनिरूपणम् नाम द्वाचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४२।।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दालंकाराः

अग्निरुवाच

स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः । एकवर्णोऽनेकवर्णो वृत्तेर्वर्गगणो द्विधा ।।१।।

विशिष्ट बात को लोकव्यवहारानुकूल बनाकर कहा जाता है जिससे वह सहृदयों के हृदय को स्पर्श कर सकती है ऐसे कथन को 'उक्ति' कहा गया है। इसके छह भेद होते हैं–विधि, निषेध, नियम, अनियम, विकल्प तथा परिसंख्या ।।२७-२८।। किन्हीं दो अयुक्त, वाच्य और वाचक के परस्पर मिलानेवाली कल्पना को मनीषियों ने युक्ति कहा है। पद, पदार्थ, वाक्य, वाक्यार्थ, विषय प्रपञ्च, इसके प्रकरणानुसार ये छह भेद होते हैं ।।२९-३०।। शब्दार्थ क्रम को दृष्टि में रखकर जो संयोजन किया जाता है उसे 'गुम्फना' कहते हैं। इस गुम्फना के तीन भेद हैं–शब्दसाम्य को लेकर, अर्थसाम्य को लेकर तथा शब्दों के स्वाभाविक क्रम को समक्ष रखकर ।।३१।। उक्ति-प्रत्युक्तिवाला वाक्य ही वाकोवाक्य कहाता है। उसके दो भेद होते हैं–ऋजु और वक्रोक्ति। स्वाभाविक वचन को ऋजु वाकोवाक्य कहते हैं। इसके भी दो प्रकार हैं–अप्रश्न ऋजु और प्रश्नपूर्वक ऋजु। वक्रोक्ति के भी दो भेद होते हैं–प्रथम भङ्गिमा के द्वारा तथा द्वितीय काकु के द्वारा ।।३२-३३।।

श्री अग्निमहापुराण में अभिनयादि-निरूपण कथन नामक तीन सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४२।।

अध्याय ३४३

शब्दालङ्कार

अग्निदेव बोले–पद और वाक्य में वर्णों की आवृत्ति का नाम अनुप्रास है। इसके दो भेद हैं–एकवर्णगतावृत्ति

---

१ क. ङ. °ते कस्मात्सर्वार्थाभ्युप°। २ क. ङ. °याः स तथो°। ख. ग. °याः षोडशोक्त°। ३ छ. चर्या। ४ ख. °र्वायस्तु क्र°। ५ क. ख. वाक्यविधैव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकवर्णगता वृत्तेर्जायन्ते पञ्च वृत्तयः। मधुरा ललिता प्रौढा भद्रा परुषया सह ।।२।।
मधुरायाञ्च वर्गान्तादधो[1] वर्ग्यारुणौ स्वनौ[2]। ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयोः ।।३।।
न कार्या[3] वर्ग्यवर्णानामावृत्तिः [4]पञ्चमाधिका। महाप्राणोष्मसंयोगप्रविमुक्तलघूत्तरौ ।।४।।
ललिता बलभूयिष्ठा प्रौढा या पणवर्गजा। ऊर्ध्वं रेफेण युज्यन्ते नटवर्गो न पञ्चमाः ।।५।।
भद्रायां परिशिष्टाः स्युः परुषा साऽभिधीयते। भवति यस्यामूष्माणः संयुक्तास्तत्तदक्षरैः ।।६।।
अकारवर्जमावृत्तिः स्वराणामतिभूयसी। अनुस्वारविसर्गौ च पारुष्याय निरन्तरौ ।।७।।
शषसा रेफसंयुक्ताश्चाकारश्चापि भूयसा। अन्तस्था भिन्नमाभ्यां च हः पारुष्याय संयुतः ।।८।।
अन्यथाऽपि गुरुर्वर्णः संयुक्ते परिपन्थिनि। पारुष्यायाऽऽदिमांस्तत्र पूजिता न तु पञ्चमी ।।९।।
[5]क्षेपे शब्दानुकारे च परुषाऽपि प्रयुज्यते[6]। कर्णाटी कौन्तली कौन्ती कौङ्कणी वामनासिका ।।१०।।
द्रावणी माधवी पञ्चवर्णान्तस्थोष्मभिः क्रमात्। अनेकवर्णा वृत्तिर्या भिन्नार्थप्रतिपादिका ।।११।।
यमकं साऽव्यपेतं च व्यपेतं चेति तद्द्विधा। आनन्तर्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानतः ।।१२।।
द्वैविध्येनानयोः स्थानपादभेदाच्चतुर्विधम्। आदिपादादिमध्यान्तेष्वेकद्वित्रिनियोगतः ।।१३।।

तथा अनेकवर्णगतावृत्ति। एकवर्णगतावृत्ति की पाँच वृत्तियाँ हैं–मधुरा, ललिता, प्रौढ़ा, भद्रा और परुषा ।।१-२।। मधुरावृत्ति में वर्गों के अन्तिम वर्णों से पूर्ववर्ती दो कोमल स्वरों (वर्णों) अर्थात् वर्गों के तीसरे और चौथे वर्णों की आवृत्ति होती है। ये वर्ण ह्रस्व 'अ' से पृथग्भूत हों अर्थात् असंयुक्त होने चाहिए, और यदि संयुक्त भी हों तो केवल नकार के ही साथ हों। यहाँ वर्ग्य वर्णों की आवृत्ति पाँच बार से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसमें महाप्राण ऊष्मवर्णों का संयोग न हो और लघु अक्षर उत्तर में हो ।।३-४।। ललिता वृत्ति में अधिक बलवाले कठोर शब्दों का प्रयोग होता है। प्रौढ़ा में 'प' तथा 'ण' वर्ग के शब्दों का प्रयोग होता है। यहाँ 'ट' वर्ग और वर्गों का पंचमाक्षर ऊर्ध्व रेफ से संयुक्त नहीं होते ।।५।। परुषा वृत्ति उसे कहते हैं जिसमें स्वरसम्बन्धी अक्षरों के साथ ऊष्म वर्णों का संयोग रहता है। इसमें अकार को छोड़कर शेष स्वरों की आवृत्ति प्रचुर मात्रा में होती है, अनुस्वार तथा विसर्ग के द्वारा निरन्तर पारुष्य लाया जाता है। इसमें रेफ तथा अकार से संयुक्त श, ष, स का प्रयोग होता है। अन्तस्थवर्णों से संयुक्त रकार और हकार परुषता लाने में समर्थ होता है। इनके अतिरिक्त गुरुवर्ण तथा संयुक्त अक्षर परिपन्थि अर्थात् परुषता के उपयुक्त हैं। वर्गों के आदिम वर्ण तो परुषता लाने में समर्थ हैं पर पंचम वर्ण नहीं। निन्दा में तथा शब्दानुवृत्ति में परुषा वृत्ति का प्रयोग होता है। कर्णाटी, कौन्तली, कौन्ती, कौङ्कणी, वामनासिका, द्रावणी और माधवी नामक (परुषा) वृत्तियों में क्रमशः कवर्ग आदि पंच वर्गों, अन्तस्थवर्णों तथा ऊष्मवर्णों की आवृत्ति (अधिकतया) होती है ।।६-१०$\frac{1}{2}$।। अनेकवर्णावृत्ति में आवृत्तिवर्णों के अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं और ऐसी आवृत्ति यमक कहाती है। इसके दो भेद हैं–अव्यपेत और व्यपेत। अव्यपेत यमक वह कहाता है जहाँ वर्णों की आवृत्ति लगातार होती है। व्यपेत यमक में आवृत्ति व्यवधान के साथ होती है। इन दो भेदों के पुनः स्थान और पाद के क्रम से चार भेद होते हैं। स्थान यमक के तीन भेद होते हैं–आदि, पादमध्य तथा पादान्त। ये यमक के सात भेद हुए। इसी प्रकार पाद यमक के भी एकपाद, द्विपाद

---

१ क. ङ. °धोवक्षावशौधनौ। २ ख. धनौ। ३ क. ङ. °र्यावृक्षव°। ४ क. ङ. °ञ्चधा स्मृताः। म°। ५ क. ङ. क्षेपशब्दानुकारेण प°। ६ क. ङ. प्रपूज्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सप्तधा[1] सप्तपूर्वेण चेत्पादेनोत्तरोत्तरः । एकद्वित्रिपदारम्भस्तुल्यः[2] षोढा तदा परम् ।।१४।।
तृतीयं त्रिविधं पादस्याऽऽदिमध्यान्तगोचरम् । पादान्तयमकं चैव काञ्चीयमकमेव च[3] ।।१५।।
संसर्गयमकं चैव विक्रान्तयमकं तथा । [4]पादादि यमकं चैव तथाऽऽम्रेडितमेव च ।।१६।।
चतुर्व्यवसितं चैव मालायमकमेव च । दशधा यमकं श्रेष्ठं तद्भेदा बहवोऽपरे ।।१७।।
स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य पदस्याऽऽवर्तनाद्द्विधा । भिन्नप्रयोजनपदस्याऽऽवृत्तिं मनुजा विदुः ।।१८।।
द्वयोरावृत्तपदयोः समस्ताः स्यात्समासतः । असमासात्तयोर्व्यस्ता पादे त्वेकत्र विग्रहात् ।।१९।।
वाक्यस्याऽऽवृत्तिरप्येवं यथासंभवमिष्यते । अलंकाराद्यनुप्रासो लघुमप्येवमर्हणात् ।।२०।।
यया कयाचिद्वृत्त्या यत्समानमनुभूयते । तद्रूपादिपदासत्तिः[5] सानुप्रासा रसावहा ।।२१।।
गोष्ठ्यां [6]कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते । प्रश्नः प्रहेलिका [7]गुप्तं च्युतं दत्ते तथोभयम् ।।२२।।
[8]समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः । यत्र प्रदीयते तुल्यवर्णविन्यासमुत्तरम् ।।२३।।
स प्रश्नः स्यादेकपृष्टद्विपृष्टोत्तरभेदतः । द्विधैकपृष्टो द्विविधः समस्तो व्यस्त एव च ।।२४।।
द्वयोरप्यर्थयोर्गुह्यमानशब्दा[9] प्रहेलिका । सा द्विधाऽऽर्थी च शाब्दी च तत्राऽऽर्थी चार्थबोधतः ।।२५।।
शब्दावबोधतः शाब्दी प्राहुः षोढा प्रहेलिकाम् । यस्मिन्गुप्तेऽपि वाक्याङ्गे भाव्यर्थोऽप[10] (पा)रमार्थिकः ।।२६।।

तथा त्रिपाद के क्रम से उत्तरोत्तर सोलह प्रकार बन जाते हैं ।।११-१४।। तीन प्रकार का तीसरा यमक पादादि, पादमध्य, पादान्त, कांची यमक, संसर्ग यमक, विक्रान्त यमक, पादादि यमक, आम्रेडित, चतुर्व्यवसित तथा माला यमक यह दस प्रकार का यमक श्रेष्ठ माना गया है। इस यमक के अन्य भी बहुत से भेद हैं ।।१५-१७।। भिन्न प्रयोजन से आवृत्त पद के दो भेद जानने चाहिए-स्वतन्त्र पदावृत्ति, अस्वतन्त्र पदावृत्ति। इसके भी पुनः दो भेद हैं-समस्त पदावृत्ति तथा असमस्त पदावृत्ति ।।१८-१९।। यमक में यथासंभव वाक्य की आवृत्ति भी होती है। जिस किसी भी वृत्ति से जो समानतां अनुभव की जाती है यह रूपविन्यास की हो या पदविन्यास की वह रसावह वृत्ति अनुप्रास के अन्तर्गत आती है ।।२०-२१।। कवियों की गोष्ठी में पढ़ने मात्र से कुतूहल उत्पन्न करनेवाला कवि का वाग्बन्ध (शब्द-गुम्फन) चित्र कहाता है। नाना अर्थों के अनुयोग से इसके सात भेद होते हैं-प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्तपद, च्युतपद, दत्तपद, च्युतदत्तपद और समस्या ।।२२-२२$\frac{1}{2}$।। जहाँ समान वर्णों के विन्यास द्वारा उत्तर दिया जाता है, उसे 'प्रश्न' कहते हैं। इसके दो भेद हैं-एकपृष्ट प्रश्नोत्तर तथा द्विपृष्ट प्रश्नोत्तर। एकपृष्ट प्रश्नोत्तर के भी दो भेद हैं-समस्त और व्यस्त।।२३-२४।। जहाँ द्व्यर्थक गुह्य शब्दों का प्रयोग हो उसे प्रहेलिका कहते हैं। इसके दो भेद हैं-शाब्दी और आर्थी। अर्थ द्वारा जिसका ज्ञान हो उसे आर्थी और शब्द द्वारा जिसका ज्ञान हो वह शाब्दी कहाती है। उसके छह प्रकार होते हैं ।।२५-२५$\frac{1}{2}$।। जिस किसी वाक्य में वाक्याङ्ग गुप्त होते हुए भी भावी अर्थ (संभावित अर्थ) को सिद्ध करनेवाला हो, उस अङ्ग की आकांक्षा से जब इसका समावेश गूढ़ होते हुए भी किया जाता है तो उसे गुप्त कहते हैं ।।२६-२६$\frac{1}{2}$।।

---

१ क. ङ. °धा पूर्वपूर्वे च नोन्यादे°। २ क. ङ. °ल्यः सोऽर्थस्तदा। ३ क. ङ. च। सत्वहूयमकं°। ख. ग. च। सामुद्रय°। ४ पादादि....इत्यत्र "यमकं वक्रवालश्च संदष्टयमकं तथा" इति क. ङ. पुस्तकयोरधिकं वर्तते। ५ ख. °दि वक्रयदा सद्भिः सा°। ६ ख. °लाहासौ वा°। ७ ख. °प्तं तद्वृत्तान्तमथो°। ८ क. ङ. यमस्या। ९ क. ङ. °मानं श°! १० ख. °र्थोपरिसाधकः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तदङ्गे विहिताकाङ्क्षस्तद्गुप्तं गूढमप्यदः । यत्रार्थान्तरनिर्भासो [1]वाक्याङ्गच्यवनादिभिः ।।२७।।
तदङ्गाविहिताकाङ्क्षस्तच्चु(च्च्यु)तं स्याच्चतुर्विधम् । स्वरव्यञ्जनबिन्दूनां विसर्गस्य च विच्युतेः ।।२८।।
दत्तेऽपि यत्र वाक्याङ्गे द्वितीयोऽर्थः प्रतीयते । [2]दण्डं तदाहुस्तद्भेदाः स्वराद्यैः पूर्ववन्मताः ।।२९।।
अपनीताक्षरस्थाने न्यस्ते वर्णान्तरेऽपि च । भासतेऽर्थान्तरं यत्र च्युतदत्तं तदुच्यते ।।३०।।
सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्मितम् । सा समस्या परस्याऽऽत्मपरयोः कृतिसंकरात् ।।३१।।
दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम् । दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः ।।३२।।
नियमाच्च विदर्भाच्च बन्धाच्च भवति त्रिधा । कवेः प्रतिज्ञा निर्माणरम्यस्य[3] नियमः स्मृतः ।।३३।।
स्थानेनापि स्वरेणापि व्यञ्जनेनापि स त्रिधा । विकल्पः प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते ।।३४।।
प्रातिलोम्यानुलोम्यं च शब्देनार्थेन जायते । अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ।।३५।।
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते । गोमूत्रिकार्धभ्रमणे[4] सर्वतोभद्रमम्बुजम्[5] ।।३६।।
चक्रं चक्राब्जकं दण्डो मुरजाश्चेति चाष्टधा । प्रत्यर्धं प्रतिपादं स्यादेकान्तरसमाक्षरा ।।३७।।

जहाँ किसी वाक्याङ्ग के स्खलन से अन्य अर्थ की प्रतीति हो, उस स्खलित अङ्ग की आकांक्षा से सम्बन्ध निर्वाह हो जाय उसे 'च्युत' कहते हैं। यह चार प्रकार का है–स्वरच्युत, व्यञ्जनच्युत, अनुस्वारच्युत तथा विसर्गच्युत ।।२७-२८।। जहाँ किसी वाक्याङ्ग में किसी वाक्यांश के देने मात्र से द्वितीय अर्थ की प्रतीति होती है उसे 'दत्त' कहते हैं। इसके भी पूर्ववत् स्वर, व्यंजन, अनुस्वार और विसर्गगत चार भेद माने गये हैं ।।२९।। जहाँ हटाये हुए अक्षर के स्थान पर किसी अन्य वर्ण के रखने से अर्थान्तर की प्रतीति होती है उसे च्युतदत्त कहते हैं ।।३०।। विभिन्न श्लोकांशों से सुनियोजित पद्य समस्या कहाता है। इसके दो भेद हैं–आत्मसंकर अर्थात् पद्य के अंशों का संकर तथा पर-संकर अर्थात् अन्य पदों का मिश्रण या संकर ।।३१।। 'दुष्कर' अलंकार में अर्थज्ञान क्लिष्टता साध्य होता है और इससे कवि की शब्दादिगुम्फन में सामर्थ्य का ही परिचय मिलता है। यद्यपि यह अलंकार नीरस होता है तो भी विदग्धों (पण्डितों) को रुचिकर लगता है। इसके तीन भेद हैं : नियम, विदर्भ और बन्ध ।।३२-३२ $\frac{1}{2}$।। कवि-प्रतिज्ञानुसार शब्दों द्वारा रमणीयता की कल्पना नियम कहाती है। यह रमणीयता तीन प्रकार से होती है–(१) यथास्थान शब्दविन्यास द्वारा (२) स्वर द्वारा (३) व्यंजन द्वारा ।।३३-३३ $\frac{1}{2}$।। प्रातिलोम्य अर्थात् प्रतिकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना आनुलोम्य अर्थात् अनुकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना विकल्प कहलाती है। यह प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा होती है ।।३४-३४ $\frac{1}{2}$।। अनेक प्रकार से आवृत्त होनेवाले वर्णों के विन्यास से प्रसिद्ध वस्तुओं (कमल, मुरज, खड्ग आदि) की शिल्प-कल्पना अर्थात् शब्द चित्र को 'बन्ध' कहा गया है। यह बन्ध आठ प्रकार का होता है–गोमूत्रिका, अर्धभ्रमण, सर्वतोभद्र, अंबुज, चक्र, चक्राब्ज, दण्ड और मुरज ।।३५-३६ $\frac{1}{2}$।। जिसमें श्लोक के दोनों-दोनों अर्धभागों तथा प्रत्येक पाद में एक-एक अक्षर के व्यवधान से अक्षरसाम्य प्रयुक्त हो, उसको 'गोमूत्रिका-बन्ध' कहते हैं। 'गोमूत्रिका-बन्ध'

---

१ क. ङ. °क्यार्थच्यवनादपि। त°। २ छ° दत्तं। ३ ख. रसस्य। ४ क. ङ, मरसर्व°। ५ क. ङ. °मच्युतम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विधा गोमूत्रिकां पूर्वामाहुरश्वपदां परे । अन्त्यां गोमूत्रिकां धेनुं जालबन्धं वदन्ति हि ।।३८।।
अर्धाभ्यामर्धपादैश्च कुर्याद्विन्यासमेतयोः । न्यस्तानामिह वर्णानामधोधः क्रमभागिना(णा)म् ।।३९।।
अधोधः स्थितवर्णानां यावत्तुर्यपदं नयेत् । [1]तुर्यपादान्नयेदूर्ध्वं पादार्धं प्र (प्रा) तिलोम्यतः ।।४०।।
तदेव सर्वतोभद्रं त्रिविधं सरसीरुहम् । चतुष्पत्रं ततो विघ्नं चतुष्पत्रे उभे अपि ।।४१।।
अथ प्रथमपादस्य मूर्धन्यं त्रिपदाक्षरम् । सर्वेषामेव पादानामन्ते तदुपजायते ।।४२।।
प्राक्पदस्यान्तिमं [2]प्रत्यक्पादादौ [3]प्रातिलोम्यतः । अन्त्यपादान्तिमं चाऽऽद्यपादादावक्षरद्वयम् ।।४३।।
[4]चतुश्छेदे [5]भवेदष्टच्छदे वर्णत्रयं पुनः । स्यात्षोडशच्छदे द्वयेकान्तरं चेदेकमक्षरम् ।।४४।।
[6]कर्णिकान्ते लिखेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरावलिम् । प्रवेशयेत्कर्णिकायां चतुष्पत्रसरोरुहे ।।४५।।
कर्णिकायां लिखेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च । प्रवेशनिर्गमौ दिक्षु कुर्यादष्टच्छदेऽम्बुजे ।।४६।।
विष्वग्विषमवर्णानां तावत्पत्रावलीजुषाम् । मध्ये समाक्षरन्यासः सरोजे षोडशच्छदे ।।४७।।
द्विधा चक्रं चतुरारं षडरं तत्र चाऽऽदिमम् । पूर्वार्धे सदृशा वर्णाः पादप्रथमपञ्चमाः ।।४८।।

के दो भेद कहे जाते हैं–'पूर्वा गोमूत्रिका' जिसको कुछ काव्यवेत्ता 'अश्वपदा' भी कहते हैं, वह प्रति अर्धभाग में एक-एक अक्षर के बाद में अक्षरसाम्य से युक्त होती है। 'अन्यथा गोमूत्रिका' जिसे धेनुजालबन्ध भी कहते हैं, वह प्रत्येक पद में एक-एक अक्षर के अन्तर से अक्षरसाम्यसमन्वित होती है ।।३७-३८।। गोमूत्रिका-बन्ध के पूर्वोक्त दोनों भेदों का क्रमशः अर्धभागों और अर्धपादों से विन्यास करना चाहिए। यहाँ क्रमशः नीचे-नीचे विन्यस्त वर्णों का, नीचे-नीचे स्थित वर्णों का जब तक चतुर्थ पाद पूर्ण न हो जाय, जब तक नयन करे। चतुर्थ पाद पूर्ण हो जाने पर प्रतिलोम-क्रम से अक्षरों को पादार्ध-पर्यन्त ऊपर ले जाय। इस तरह तीन प्रकार का 'सर्वतोभद्रमण्डल' बनता है। कमलबन्ध के तीन प्रकार से चतुर्दल, अष्टदल और षोडशदल। चतुर्दल कमल को इस प्रकार से आबद्ध किया जाता है–प्रथम पाद के ऊपरी तीन पदोंवाले अक्षर सभी पादों के अन्त में रखे जाते हैं। पूर्वपाद के अन्तिम वर्ण को पिछले पाद के आदि में प्रातिलोम्यक्रम से रखा जाय। अन्तिम पाद के अन्तिम दो अक्षरों को प्रथम पाद के आदि में निविष्ट किया जाय। यह स्थिति चतुर्दल कमल में होती है। अष्टदल कमल में अन्त्यपाद के अन्तिम तीन अक्षरों को प्रथम पाद के आदि में विन्यस्त किया जाता है। षोडश दल कमल में दो अक्षरों के बीच में कर्णिका-मध्यवर्ती एक अक्षर का उच्चारण होता है। कर्णिका के अन्त में ऊपर पत्राकार अक्षरों की पंक्ति लिखे और उसे कर्णिका में प्रविष्ट कराये। यह बात चतुर्दल कमल के विषय में कही गयी है ।।३९-४५।। कर्णिका में एक अक्षर लिखे और दिशाओं तथा विदिशाओं में दो-दो अक्षर लिखे, प्रवेश और निर्गम का मार्ग प्रत्येक दिशा में रखे। यह बात 'अष्टदल कमल' के विषय में कही गयी है। चारों ओर विषम वर्णों का उतनी ही पत्रावली बनाकर न्यास करे और मध्यकर्णिका में सम अक्षरों का एक अक्षर के रूप में न्यास करे। यह बात 'षोडशदल कमल' के विषय में बतायी गयी है। 'चक्रबन्ध' दो प्रकार का होता है–एक चार अरों का और दूसरा छह अरों का। उनमें जो आदिम, अर्थात् चार अरोंवाला चक्र

---

१ ख. °पादान्तिमं प्रत्यक्पादादौ प्र°। २ क. ङ °त्यक्पदा°। ३ क. ङ. °तः। अनुपादान्तिमं वाद्यपदादाव°। ४ क. ङ. चतुष्पदे। ५ क. ङ. °वेच्छब्दच्छेदने च त्र°। ६ क. ङ. °र्णिकातोभयेद्°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अयुजोऽश्वयुजश्चैव तुर्यावप्यष्टमावपि । [1]तस्योदक्प्रागवाक्प्रत्यगरेषु च यथाक्रमम् ।।४९।।
स्यात्पादार्धचतुष्कं तु नाभौ तस्याऽऽद्यमक्षरम् । पश्चिमारावधि न्येन्नेमौ शेषे पदद्वयी ।।५०।।
तृतीयं तुर्यपादान्ते प्रथमौ सदृशावुभौ । वर्णौ पादत्रयस्यापि दशमः सदृशो यदि ।।५१।।
प्रथमे चरमे तस्य षड्वर्णाः पश्चिमे यदि । भवन्ति द्वयन्तरं तर्हि बृहच्चक्रमुदाहृतम्[2] ।।५२।।
समुखारद्वये पादमेकैकं क्रमशो लिखेत् । नाभौ तु वर्णं दशमं नेमौ तुर्यपदं नयेत् ।।५३।।
श्लोकस्याऽऽद्यं तु दशमाः समा आद्यन्तिमौ युजौ । आदौ वर्णः समौ तुर्यपञ्चमावाद्यतुर्ययौः ।।५४।।
द्वितीयप्रातिलोम्येन तृतीयं जायते यदि । पदं विदध्यात्पत्रस्य दण्डश्चक्राब्जकं कृतेः[3] ।।५५।।
द्वितीयौ प्राग्दले तुल्यौ सप्तमौ च तथाऽऽपरौ । सदृशावुत्तरदलौ [4]द्वितीयाभ्यामथार्धयोः ।।५६।।
द्वितीयषष्ठाः सदृशाश्चतुर्थौ पञ्चमावपि । आद्यन्तपादयोस्तुल्यौ परार्धसप्तमावपि ।।५७।।
समं तुर्यं पञ्चमं तु क्रमेण विनियोजयेत् । तुर्यौ योज्यौ तु तद्वच्च दलान्ताः क्रमपादयोः ।।५८।।
अर्धयोरन्तिमाद्यौ तु मुरजे सदृशावुभौ[5] । पादार्धपतितो वर्णः प्रातिलोम्यानुलोमतः ।।५९।।
अन्तिमं परिबध्नीयाद्यावत्तुर्यमिहाऽऽदिमत् । [6]पादात्तुर्याद्यदेवाऽद्यं[7] नवमात्षोडशादपि ।।६०।।

है, उसके पूर्वार्द्ध में समवर्णों की स्थापना करे और प्रत्येक पाद के जो प्रथम, पञ्चम आदि विषम वर्ण हैं, उनको एवं चौथे और आठवें, दोनों समवर्णों को क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के अरों में रखे ।।४६-४९।। उत्तर पादार्ध के चार अक्षरों को नाभि में रखे और उसके आदि अक्षर को पिछले दो अरों में ले जाय। शेष दो पदों को नेमि में स्थापित करे। तृतीय अक्षर को चतुर्थ पाद के अन्त में तथा प्रथम दो समवर्णों को तीन पादों के अन्त में रखे। यदि दसवाँ अक्षर सम हो तो उसे प्रथम अरे पर रखे और छह अक्षरों को पश्चिम अरे पर स्थापित करे। वे दो-दो के अन्तर से स्थापित होंगे। इस प्रकार 'बृहच्चक्र' का निर्माण होगा। बृहच्चक्र बताया गया। सामने के दो अरों में क्रमशः एक-एक पाद लिखे। नाभि में दशम अक्षर अंकित करे और नेमि में चतुर्थ चरण को ले जाय ।।५०-५३।। श्लोक के आदि, अन्त और दशम अक्षर समान हों तथा दूसरे और चौथे चरण के प्रथम, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण भी समान हों। द्वितीय चरण को विलोम क्रम से पढ़ने पर यदि तृतीय चरण बन जाता हो और उसे पत्र के स्थान में स्थापित करे तो उस रचना का नाम 'दण्डचक्राब्जबन्ध' समझना चाहिए। पूर्वदल (पूर्वार्द्ध) में दोनों चरणों के द्वितीय अक्षर एक समान हों और उत्तरार्द्ध में दोनों चरणों के सातवें अक्षर समान हों। साथ ही द्वितीय अक्षरों की दृष्टि से पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध परस्पर समता रखते हों। दूसरे, छठें तथा चौथे, पाँचवें भी एक-दूसरे के तुल्य हों। उत्तरार्ध भाग के सातवें अक्षर प्रथम और चतुर्थ चरणों के उन्हीं अक्षरों के समान हों तो उन तुल्य रूपवाले चतुर्थ और पञ्चम अक्षर की क्रमशः योजना करनी चाहिए ।।५४-५८।। 'मुरजबन्ध' में पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध दोनों के अन्तिम और आदि अक्षर समान होते हैं। पादार्द्ध भाग में स्थित जो वर्ण हैं, उन्हें प्रातिलोम्यानुलोम्य-क्रम से स्थापित करे। अन्तिम अक्षर को इस प्रकार निबद्ध करे कि वह चौथे चरण का आदि अक्षर बन जाय। चौथे चरण में जो आदि

---

१ छ. °स्योपपादप्राक्प्र°। २ क. ङ. °म्। सुमुखर°। ख. °म्। संमुखाच्च द्वयोः पा°। ३ क. ङ. कृतम्। ४ क. ङ. °यायामथ द्वयोः। ५ क. ङ. °भौ। पदे द्विप°। ६ ख. °तुर्यात्पदे वाक्यं न°। ७ क. ङ. °वार्धं न°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अक्षरात्पुटकौ मध्ये मध्येऽक्षरचतुष्टयम् । कृत्वा कुर्याद्यथैतस्य मुरजाकारता भवेत् ।।६१।।
द्वितीयं चक्रशार्दूलविक्रीडितकसंपदम् । गोमूत्रिका सर्ववृत्तैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ।।६२।।
नामधेयं यदि न चेदमीषु[1] कविकाव्ययोः । [2]मित्रधेयानि तुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते तथा ।।६३।।
बाणबाणासनव्योमखड्गमुद्गरशक्तयः । द्विचतुर्थत्रिशृङ्गाटा दम्भोलिमुशलाङ्कुशाः ।।६४।।
पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका । एते बन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेयाः स्वयं बुधैः ।।६५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शब्दालंकारकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्थालङ्काराः

[3]अग्निरुवाच

अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते । [4]तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ।।१।।
अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती । स्वरूपमथ सादृश्यमुत्प्रेक्षातिशयावपि ।।२।।

अक्षर हों, उससे नवें तथा सोलहवें अक्षर पुटक के बीच-बीच में चार-चार अक्षरों का निवेश करे। ऐसा करने से उस श्लोक बन्ध द्वारा मुरज (ढोल) की आकृति स्पष्ट हो जाती है। द्वितीय चक्र 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द से सम्पादित होता है। 'गोमूत्रिका-बन्ध' सभी छन्दों से निर्मित हो सकता है। अन्य सब बन्ध अनुष्टुप् छन्द से निर्मित होते हैं। यदि इन बन्धों में कवि और काव्य का नाम न हो तो मित्र भाव रखनेवाले लोग संतुष्ट होते हैं तथा शत्रु भी खिन्न नहीं होता। बाण, धनुष, व्योम, खड्ग, मुद्गर, शक्ति, द्विशृङ्गार, त्रिशृङ्गार, चतुःशृङ्गार, वज्र, मुसल, अंकुश, रथपद, नागपद, पुष्करिणी, असिपुत्रिका (कटारी या छुरी)-इन सबकी आकृतियों में चित्रबन्ध लिखे जाते हैं। ये तथा और भी बहुत से 'चित्रबन्ध' हो सकते हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुषों को स्वयं जानना चाहिए ।।५९-६५।।

श्री अग्निमहापुराण में शब्दालंकार कथन नामक तीन सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४३।।

अध्याय ३४४

अर्थालङ्कार

अग्निदेव बोले-अर्थों के चमत्कार को 'अर्थालङ्कार' कहते हैं। इसके बिना काव्य, शब्दसौन्दर्य समन्वित होते हुए भी हृदयस्पर्शी नहीं होता। अर्थालङ्कार विहीन काव्यकृति विधवा के समान होती है। ये अलंकार आठ हैं-स्वरूप,

---

१ ख. °षु ध्वानिका°। २ क. ङ. मितिध्येयाभिस्तुष्य°। ३ क. ङ. °च-षड्वङ्गंकरणोऽर्था°। ख. °च-सुभगीकरणोऽर्था°। ४ ख. यं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विभावना विरोधश्च हेतुश्च सममष्टधा । स्वभाव एव भावानां स्वरूपमभिधीयते ।।३।।
निजमागन्तुकं चेति द्विविधं तदुदाहृतम् । सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागन्तुकं तथा ।।४।।
सादृश्यं धर्मसामान्यमुपमा रूपकं तथा । सहोक्त्यर्थान्तरन्यासाविति स्यात्तु चतुर्विधम् ।।५।।
उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः । सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेऽपि विवक्षितम् ।।६।।
किंचिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रवर्तते । समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिनः ।।७।।
विग्रहादभिधानस्य ससमासाऽन्यथोत्तरा । उपमा द्योतकपदेनोपमेयपदेन च ।।८।।
ताभ्यां च विग्रहात्त्रेधा ससमासाऽन्तिमा त्रिधा । विशिष्यमाणा उपमा भवन्त्यष्टादश स्फुटाः ।।९।।
यत्र साधारणो धर्मः कथ्यते गम्यतेऽपि वा । ते धर्मवस्तुप्राधान्याद्धर्मवस्तूपमे उभे ।।१०।।
तुल्यमेवोपमीयेते यत्रान्योन्येन [1]धर्मिणौ । परस्परोपमा[2]सा स्यात्प्रसिद्धेरन्यथा तयोः ।।११।।
विपरीतोपमा[3]सा स्याद्व्यावृत्तेर्नियमोपमा । अन्यत्राप्यनुवृत्तस्तु भवेदनियमोपमा ।।१२।।
समुच्चयोपमाऽतोऽन्यधर्मबाहुल्यकीर्तनात् । बहोर्धर्मस्य साम्येऽपि वैलक्षण्यं विवक्षितम्[4] ।।१३।।
यदुच्यतेऽतिरिक्तत्वं व्यतिरेकोपमा तु सा । यत्रोपमा स्याद्बहुभिः सदृशैः सा बहूपमा ।।१४।।

सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु और सम ।।१-२$\frac{1}{2}$।। वस्तुओं के स्वभाव का तद्वत् उल्लेख ही 'स्वरूप' कहाता है। इसके दो भेद हैं–निज और आगन्तुक। स्वाभाविक वर्णन निज कहाता है तथा कारणवश वर्णन आगन्तुक ।।३-४।। जहाँ साधारण धर्म की समानता दिखायी जाय वहाँ सादृश्य अलंकार होता है। इसके चार प्रकार हैं–उपमा, रूपक, सहोक्ति और अर्थान्तरन्यास ।।५।। उपमा नामक अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमान और उपमेय की समानता में अन्तर होते हुए भी उनकी सदृशता का उल्लेख होता है। इन दिनों में किंचित् सादृश्य दिखाने पर ही लोकव्यवहार का प्रवर्तन किया जाता है ।।६-६$\frac{1}{2}$।। उपमा के दो भेद हैं–समासोपमा और असमासोपमा। समासोपमा के पद संश्लिष्ट होते हैं, जबकि असमासोपमा में उपमा वाचक पद का अथवा उपमेय पद का उल्लेख होता है। इसमें पुनः तीन-तीन भेद होते हैं। इस प्रकार उपमा के कुल अट्ठारह भेद हो जाते हैं ।।७-९।। जहाँ साधारण धर्म का कथन होता है अथवा (कथन के अभाव में) उसकी प्रतीति होती है, वहाँ क्रमशः धर्म की प्रधानता के कारण 'धर्मोपमा' अलंकार होता है और वस्तु (विषय) की प्रधानता के कारण 'वस्तूपमा' अलंकार होता है ।।१०।। जहाँ पर उपमेय और उपमान के साधारण धर्मों की परस्पर तुलना प्रचलित रीति से की जाती है वहाँ 'परस्परोपमा' अलंकार होता है। यदि उपमान और उपमेय के साधारण धर्मों की तुलना लोक-प्रचलित रीति के विरुद्ध की जाय तो 'विपरीतोपमा' अलंकार कहाता है। जहाँ पर उपमेय का ही पृथक् महत्त्व स्थापन किया गया हो वहाँ नियमोपमा अलंकार होता है। जहाँ उपमेय की वैशिष्ट्य स्थापना नियमित रूप से न हो वहाँ अनियमोपमा अलंकार होता है ।।११-१२।। जहाँ उपमान-उपमेय से भिन्न किसी वस्तु के धर्म की बहुलता का वर्णन हो वहाँ समुच्चयोपमा होती है। यहाँ बहुधर्मों का उल्लेख होते हुए वैचित्र्य अवश्य हो। जहाँ उपमान अथवा उपमेय का उत्कर्ष बताया जाय वहाँ व्यतिरेकोपमा अलंकार होता है। अथवा जहाँ पर उपमेय की अनेक उपमानों के साथ उपमा दी जाती है वहाँ बहूपमा अलंकार होता है ।।१३-१४।। जहाँ

---

१ छ. धर्मिणा। २ क. ङ °पसामान्यात्प्रसिद्धेवान्य°। ३ क. ङ. °मा न स्याद्विच्छित्तिर्नि। ४ क. ङ. प्रकीर्तितम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्माः प्रत्युपमानं चेदन्या मालोपमैव सा । उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा ।।१५।।
[1]त्रैलोक्यासंभवि किमप्यारोप्य प्रतियोगिनि । कविनोपमीयते या प्रथते साऽद्भुतोपमा ।।१६।।
प्रतियोगिनमारोप्य तदभेदेन कीर्तनम् । उपमेयस्य सा मोहोपमाऽसौ भ्रान्तिमद्वचः ।।१७।।
उभयोर्धर्मिणोस्तथ्यानिश्चयात्संशयोपमा । उपमेयस्य संशय्य निश्चयान्निश्चयोपमा ।।१८।।
वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थोपमा स्यादुपमानतः । आत्मोपमानादुपमा साधारण्यतिशायिनी ।।१९।।
उपमेयं यदन्यस्य तदन्यस्योपमा मता । यद्युत्तरोत्तरं याति तदाऽसौ गमनोपमा[2] ।।२०।।
प्रशंसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशी तथा । किंचिच्चासदृशी ज्ञेया उपमा पञ्चधा पुनः ।।२१।।
उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते । गुणानां समता दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ।।२२।।
उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमेव वा । सहोक्तिः सहभावेन कथनं तुल्यधर्मिणाम् ।।२३।।
भवेदर्थान्तरन्यासः सादृश्येनोत्तरेण सः । अन्यथोपस्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य च ।।२४।।
अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते । लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्तनम् ।।२५।।

उपमेय की उपमा विभिन्न उपमानों के साधारण धर्म से की जाती है, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। जहाँ उपमेय की तुलना उपमान के विकार से की जाती है वहाँ विक्रियोपमा अलंकार होता है ।।१५।। जहाँ कवि उपमेय में किसी लोकातिशायी बात का आरोप करके उसकी तुलना (उपमान के साथ) करता है वहाँ अद्भुतोपमा अलङ्कार होता है। जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप करके कवि दोनों का अभेद कर देता है वहाँ 'मोहोपमा' अलंकार होता है। यहाँ भ्रान्ति भी बनी रहनी चाहिए ।।१६-१७।। जहाँ उपमेय और उपमान के सामान्य धर्मों का वास्तविक रूप से निश्चय न हो सके वहाँ संशयोपमा जबकि उपमेय के संशय को निश्चित होने को निश्चयोपमा अलंकार कहते हैं ।।१८।। जहाँ उपमेय वाक्यार्थ की उपमान वाक्यार्थ के साथ तुलना की जाय वहाँ 'वाक्यार्थोपमा' अलंकार होता है। जहाँ उपमेय को उपमान बना दिया जाय और उसमें चमत्कारातिशय हो वहाँ असाधारणी उपमा होती है ।।१९।। जहाँ उपमेय किसी अन्य का (उपमान से विपरीत) दिखाया या वर्णित किया जाय वहाँ अन्योपमा अलंकार होता है। यदि उपमा द्वारा उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन हो तो उसे 'गगनोपमा' कहा जाता है ।।२०।। पुनः उपमा के पाँच भेद होते हैं–प्रशंसा, निन्दा, कल्पिता, सदृशी तथा असदृशी ।।२१।। जहाँ गुणों की समता को देखकर उपमान से ही उपमेय का निरूपण कराया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है, अथवा जहाँ उपमेय और उपमान में सादृश्य सम्बन्धी अभेद कहा जाता है उसे रूपक कहते हैं। जहाँ उपमेय और उपमान के साधारण धर्म का सह भाव से (सह, साथ, संगति द्वारा) कथन या उल्लेख हो वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है ।।२२-२३।। जहाँ उत्तर (वाक्य) से सादृश्य दिखाया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जहाँ अन्य रूप में प्रस्तुत वृत्ति को जब अन्य रूप में कहा जाता है तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जहाँ किसी पदार्थ का लोकसीमातिशयी वर्णन हो वहाँ 'अतिशय' अलंकार

---

१ क. ख. ङ. त्रैकाल्यासंभविकमपा°। २ छ. गगनो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवेदतिशयो नाम संभवासंभवाद्द्विधा । गुणजातिक्रियादीनां यत्र[1] वैकल्यदर्शनम् ।।२६।।
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरुच्यते । प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत्किंचित्कारणान्तरम् ।।२७।।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना । संगतीकरणं युक्त्या यदसंगच्छमानयोः ।।२८।।
विरोधपूर्वकत्वेन तद्विरोध इति स्मृतम् । सिसा (षा) धयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः ।।२९।।
कारको ज्ञापक इति द्विधा सोऽप्युपजायते । प्रवर्तते कारकाख्यः प्राक्पश्चात्कार्यजन्मनः ।।३०।।
पूर्वशेष इति ख्यातस्तयोरेव विशेषयोः । कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।।३१।।
अविनाभावनियमो[2] ह्यविनाभावदर्शनात् । ज्ञापकाख्यस्य भेदोऽस्ति नदीपूरादिदर्शनम् ।।३२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्थालङ्कारकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दार्थालंकाराः

अग्निरुवाच

[3]शब्दार्थयोरलंकारो द्वावलंकुरुते समम् । एकत्र निहितो हारः स्तनं ग्रीवामिव स्त्रियाः ।।१।।

होता है। इसके दो भेद हैं–सम्भव तथा असम्भव ।।२४-२५ $\frac{1}{2}$।। जहाँ गुण, जाति, क्रिया आदि में विकलता (परस्पर-विरोध) दिखाया जाता है वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है ।।२६-२६ $\frac{1}{2}$।। जहाँ किसी प्रसिद्ध कारण को हटाकर उसके स्थान पर कारणान्तर की स्थापना की जाती है, और उसे (कारणान्तर को) स्वाभाविकता प्रदान की जाती है, वहाँ विभावना अलंकार होता है ।।२७-२७ $\frac{1}{2}$।। जहाँ परस्पर विरोधी वस्तुओं का विरोधात्मक रूप दिखाकर फिर युक्तिपूर्वक उनका संगत रूप दिखाया जाय वहाँ विरोध अलंकार होता है ।।२८-२८ $\frac{1}{2}$।। अर्थ के साधक को हेतु कहते हैं। इसके दो भेद हैं–कारक तथा ज्ञापक। कारक नामक हेतु कार्य होने के पश्चात् उपस्थित किया जाता है, और ज्ञापक नामक हेतु कार्य-जन्म से पूर्व। उनका कार्य-कारण-भाव से अथवा स्वाभाविक नियम से पूर्व कारक तथा शेष कारक नाम विख्यात है। अविनाभाव के दिखाने से, ज्ञापक हेतु का भेद अविनाभाव नियम ही है। यह अविनाभाव नियम नदी में पूरादि दर्शन की तरह है। अर्थात् जिस प्रकार नदी का पूर (बाढ़) वर्षा का ज्ञापक होता है वैसे ही यहाँ अविनाभाव नियम है ।।२९-३२।।

श्री अग्निमहापुराण में अर्थालङ्कार-कथन नामक तीन सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४४।।

अध्याय ३४५

शब्दार्थालङ्कार

अग्निदेव बोले–शब्दार्थालंकार (उपयालंकार) शब्द और अर्थ, दोनों को समान रूप से उस प्रकार अलंकृत

---

१ क. ङ. यत्तद्वैक°। २ ख. °यमादर्शनाव्यक्तद°। ३ क. ङ. °रो वाचालं°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रशस्तिः कान्तिरौचित्यं संक्षेपो यावदर्थता । अभिव्यक्तिरिति व्यक्तं षड्भेदास्तस्य जाग्रति ।।२।।
प्रशस्तिः परवन्मर्मद्रवीकरणकर्मणः । वाचोयुक्तिर्द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः ।।३।।
प्रेमोक्तिस्तुतिपर्यायौ प्रियोक्तिगुणकीर्तने । कान्तिः सर्वमतो रुच्यवाच्यवाचकसंगतिः ।।४।।
यथा वस्तु तथा रीतिर्यथा वृत्तिस्तथा रसः । ऊर्जस्विमृदुसंदर्भादौचित्यमुपजायते ।।५।।
संक्षेपो वाचकैरल्पैर्बहोरर्थस्य संग्रहः । अन्यूनाधिकता शब्दवस्तुनोर्यावदर्थता ।।६।।
प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि । तस्या भेदौ श्रुतिस्तत्र [1]शाब्दं स्वार्थसमर्पणम् ।।७।।
भवेन्नैमित्तिकी पारिभाषिको द्विविधैव सा । [2]संकेतः परिभाषेति ततः स्यात्पारिभाषिकी ।।८।।
[3]मुख्यौपचारिकी चेति सा च सा च द्विधा द्विधा । साभिधेयस्खलद्वृत्तिरमुख्यार्थस्य वाचकः ।।९।।
यया शब्दो निमित्तेन केनचित्सौपचारिकी । सा च लाक्षणिकी गौणी लक्षणा गुणयोगतः ।।१०।।
[4]अभिधेयाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते । अभिधेयेन सम्बन्धात्सामीप्यात्समवायतः ।।११।।
वैपरीत्यात्क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता । गौणी गुणानामानन्त्यादनन्ता तद्विवक्षया ।।१२।।
अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना । सम्यगाधीयते यत्र स समाधिरिह स्मृतः ।।१३।।

करते हैं जिस प्रकार स्त्रियों के वक्ष का हार उरोजों के साथ-साथ उनके ग्रीवा-सौन्दर्य को भी बढ़ाता है। शब्दार्थालङ्कार के छह भेद स्वीकार किये गये हैं–प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता और अभिव्यक्ति ।।१-२।। दूसरों के हृदय को द्रवित करनेवाले कर्म को प्रशस्ति कहते हैं। प्रशस्ति कथन की शैली दो प्रकार की है–प्रेमोक्ति और स्तुति। प्रेमोक्ति और स्तुति यों तो समानार्थक शब्द हैं; (पर इनमें थोड़ा अन्तर अवश्य है) प्रिय के सम्बन्ध में सामान्य कथन को प्रेमोक्ति कहते हैं और उसके गुण-कीर्त्तन को स्तुति कहते हैं ।।३-३ $\frac{1}{2}$।। सब प्रकार से रुचिकर शब्द एवं अर्थ की संगति को 'कान्ति अलंकार' कहते हैं। जहाँ पर विषयानुकूल रीति, वृत्ति और रस का समावेश दिखाया जाय वहाँ 'औचित्य अलंकार' कहते हैं। इसके दो भेद हैं–ऊर्जस्वी और मृदुसंदर्भ ।।४-५।। जहाँ अल्प शब्दों से अधिक अर्थ की प्रतीति हो, वहाँ 'संक्षेप अलंकार' होता है। जहाँ पर शब्द और वर्ण्य वस्तु, दोनों को न न्यून और न अधिक रूप में प्रस्तुत किया जाय, वहाँ यावदर्थता अलंकार होता है ।।६।। भावप्रकटीकरण का नाम अभिव्यक्ति है। इसके भेद हैं–श्रुति (शब्दस्वार्थसमर्पण) तथा आक्षेप। श्रुति (शब्दस्वार्थसमर्पण) के दो भेद हैं–नैमित्तिकी और पारिभाषिकी। परिभाषा संकेत को कहते हैं। संकेतित अर्थ प्रकट करनेवाली अभिव्यक्ति पारिभाषिकी कहाती है। नैमित्तिकी के पुनः दो भेद हैं–मुख्या तथा औपचारिकी। औपचारिकी अभिव्यक्ति वहाँ मानी गयी है जहाँ किसी कारण-विशेष से अभिधेय (मुख्यार्थ) का स्खलन (बाध) हो जाय। तथा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के वाचक शब्द का ग्रहण हो। इस औपचारिकी के दो भेद हैं–लाक्षणिकी और गौणी। लक्षणा की विशेषताओं के योग के कारण औपचारिकी अभिव्यक्ति वहाँ मानी गयी है, जहाँ किसी कारण-विशेष से अभिधेय (मुख्य) का स्खलन अर्थात् बाध हो जाय, तथा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के वाचक शब्द का ग्रहण हो ।।७-१२।। जहाँ लोक-मर्यादा के आग्रह से एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु में सम्यक् प्रकार से वर्णित किया जाता है वहाँ 'समाधि' अलंकार कहा गया है ।।१३।। जहाँ कर्णेन्द्रिय द्वारा

---

१ ख. ब्दं चार्थ°। २ क. ङ. संज्ञातः। ३ 'मुख्यौपचारिकी···द्विधा' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ ख. ग. °भूता प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद्भाति सचेतनः । स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः ।।१४।।
शब्देनार्थेन यत्रार्थः कृत्वा स्वयमुपार्जनम् । प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषोऽभिधित्सया ।।१५।।
तमाक्षेपं ब्रुवन्त्यत्र स्तुतं स्तोत्रमिदं पुनः । अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ।।१६।।
यत्रोक्तं गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानविशेषणः । सा समासोक्तिरुदिता संक्षेपार्थतया बुधैः ।।१७।।
[2]अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थसूचनम् । पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ।
[3]एषामेकतमस्येव समाख्या ध्वनिरित्यतः ।।१८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शब्दार्थालंकारकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४५।।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यगुणविवेकः

अग्निरुवाच

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् । [4]वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम् ।।१।।

अप्राप्य जिस अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वह आक्षेप का विषय है, इसे ध्वनि भी कहते हैं, क्योंकि इसकी प्रतीति ध्वनि (नामक काव्याङ्ग) से होती है ।।१४।। जहाँ शाब्दिक अर्थ से भाव ग्रहण करके भी किसी विशेष बात को कहने की इच्छा से उसका प्रतिषेध-सा किया जाता है, उसे 'आक्षेप' अलंकार कहते हैं। अवर्णनीय विषय-सामग्री का गुण-कथन स्तुत अथवा स्तोत्र कहाता है ।।१५-१६।। जहाँ विशेषणों की समानता के बल पर कोई अर्थ किसी अन्य पर भी घटने लगे, इस संक्षेप के कारण ऐसे स्थलों में विद्वान् उसे 'समासोक्ति' अलंकार कहते हैं ।।१७।। जहाँ किसी अर्थ (बात) को छिपाकर अन्य अर्थ की सूचना दी जाय वहाँ 'अपह्नुति' अलंकार होता है। प्रकार-विशेष (शैली-विशेष) से कही गयी बात को 'पर्यायोक्त' कहते हैं। इन प्रकारों में से एक प्रकार ध्वनि भी कहा गया है। अथवा इन उपर्युक्त अलंकारों को (श्रुति के भेदों को) सामूहिक रूप से ध्वनि भी कह सकते हैं ।।१८-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में शब्दार्थालङ्कार-कथन नामक तीन सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४५।।

अध्याय ३४६

काव्यगुणविवेक

अग्निदेव बोले-जिस प्रकार असुन्दर शरीरवाली नारियों के लिए रत्नहार भार बन जाता है, उसी प्रकार माधुर्यादि गुणों से रहित काव्य अलंकृत होने पर भी आह्लादक नहीं होता ।।१।। (भरत के अनुसार) गुणों का दोषाभाव रूप

---

१ क. ङ. °तेर्बलसमानार्थो। २ ख. रपाकृत्य। ३ ख. °कत्रसंज्ञेचस°। ४ 'वपुष्यललिते····इति द्विधा' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न च वाच्यं गुणो दोषो[1] भाव एव भविष्यति । गुणाः श्लेषादयो दोषा[2] गूढार्थाद्याः पृथक्कृताः ।।२।।
यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः । संभवत्येष सामान्यो वैशेषिक इति द्विधा ।।३।।
सर्वसाधारणीभूतः सामान्य इति मन्यते । शब्दमर्थमुभौ प्राप्तः सामान्यो भवति त्रिधा ।।४।।
शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः । श्लेषो लालित्यगाम्भीर्ये सौकुमार्यमुदारता[3] ।।५।।
सत्येव यौगिकी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा । सुश्लिष्टसंनिवेशत्वं शब्दानां श्लेष उच्यते[4] ।।६।।
गुणादेशादिना पूर्वं पदसंबद्धमक्षरम् । यत्र संधीयते नैव तल्लालित्यमुदाहृतम् ।।७।।
[5]विशिष्टलक्षणोल्लेखलेख्यमुत्तानशब्दकम् । गाम्भीर्यं कथयन्त्यार्यास्तदेवान्येषु शब्दताम् ।।८।।
अनिष्टु (ष्ठु) राक्षरप्रायशब्दता सुकुमारता । उत्तानपदतौदार्यं युतं श्लाघ्यैर्विशेषणैः ।।९।।
ओजः समासभूयस्त्वमेतत्पद्यादिजीवितम्[6] । आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तमोजसैकेन पौरुषम् ।।१०।।
उच्यमानस्य शब्देन येन केनापि वस्तुनः । उत्कर्षमावहन्नर्थो गुण इत्यभिधीयते ।।११।।
माधुर्यं संविधानं च कोमलत्वमुदारता । प्रौढ़िसामयिकत्वं च तद्भेदाः षट्[7] चकासति ।।१२।।
क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्यं माधुर्यं धैर्यगाहिता । संविधानं परिकरः स्यादपेक्षितसिद्धये ।।१३।।
यत्काठिन्यादिनिर्मुक्तसंनिवेशविशिष्टता । तिरस्कृत्यैव मृदुता भाति कोमलतेति सा ।।१४।।

स्वीकृत करना युक्तिसंगत नहीं है। श्लेष आदि (दस) गुण और गूढ़ार्थ आदि (दस) दोष (अभावात्मक अथवा वैपरीत्य रूप में) परस्पर सम्बद्ध नहीं है ।।२।। जो साधन काव्य में महती शोभा लाता है, उसे गुण कहते हैं। इसके दो भेद हैं–सामान्य और विशेष ।।३।। सर्व प्रकार की रचना में प्राप्य गुण को सामान्य कहते हैं। इसके तीन भेद हैं–शब्दगुण, अर्थगुण तथा शब्दार्थगुण ।।४।। जो काव्य के शरीर रूप शब्द के आश्रित रहता है उसे शब्दगुण कहते हैं। इसके सात भेद हैं–श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी। शब्दों के सघन गुम्फन का नाम श्लेष है ।।५-६।। जिस सन्दर्भ में (व्याकरण सम्बन्धी) गुण, आदेशादि के द्वारा पद में सम्बद्ध अक्षरों में सन्धि नहीं की जाती, वह लालित्य गुण माना गया है ।।७।। गाम्भीर्य गुण उसे कहते हैं जिसमें शब्द तो उत्तान-सुगम हो, पर वर्ण्य-विषय विशिष्ट चिह्न से समन्वित हो। इन विशिष्टताओं से रहित रचना कोरा शब्दजाल है। सुकोमल वर्ण योजना से युक्त शब्दावली में सुकुमार गुण माना गया है। श्लाघ्य विशेषणों से संवलित छिछले (ओज संयुक्त) पदों के प्रयोग में औदार्यगुण रहता है ।।८-१०।। किसी भी प्रकार से प्रस्तुत किये गये विषय में यदि उत्कर्ष का निर्वाह किया गया हो तो ऐसे स्थल पर 'अर्थगुण' रहता है। माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि, सामयिकत्व–ये छह अर्थगुण के भेद हैं। क्रोध, ईर्ष्या आदि भावों की अवस्था के समान गम्भीरता का जहाँ अभाव हो और धैर्य का समावेश हो वहाँ माधुर्य गुण होता है। इष्टध्येय की सिद्धि के लिए जहाँ अमानवीय शक्ति का प्रयोग हो, ऐसे सन्दर्भ में संविधान गुण होता है ।।११-१३।। जो सन्दर्भ क्लिष्टता आदि से रहित होता है, जहाँ प्रयासपूर्वक शब्द नियोजन का त्याग किया जाता है और जिसमें मृदुता का समावेश रहता है, वहाँ कोमलता गुण होता है ।।१४।। जिस रचना में प्रमुख

---

१ ख. ग. दोषाभाव एष भ°। २ ख. ग. °दोषाः शूरार्था°। ३ ख. ग. °ता। रूढिश्च योगि°। ४ क. ख. ग. ङ. °ते। यणा°। ५ क. ङ. °णोपेतरेखामु°। ६ ख. ग. °तद्गद्या°। ७ क. ङ. षडुदाहृताः। क्रो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लक्ष्यते स्थूललक्षत्वप्रवृत्तेर्यत्र लक्षणम् । गुणस्य तदुदारत्वमाशयस्यातिसौष्ठवम् ।।१५।।
अभिप्रेतं प्रतिहतं निर्वाहस्योपपादिकाः । [1]युक्तयो हेतुगर्भिण्यः प्रौढा प्रौढिरुदाहृता[2] ।।१६।।
स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य[3] वा(बा)ह्यान्तः समयोगतः । तत्र व्युत्पत्तिरर्थस्य या सामयिकतेति सा ।।१७।।
शब्दार्थावुपकुर्वाणो नाम्नोभयगुणः स्मृतः । तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासंख्यं प्रशस्यता ।।१८।।
पाको राग इति प्राज्ञैः षट् प्रपञ्चविपञ्चिताः । सुप्रसिद्धार्थपदता प्रसाद इति गीयते ।।१९।।
उत्कर्षवान्गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते । तत्सौभाग्यमुदारत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।२०।।
यथासंख्यमनुद्देशः सामान्यमतिदिश्यते । समये वर्णनीयस्य दारुणस्यापि वस्तुनः ।।२१।।
अदारुणेन शब्देन प्राशस्त्यमुपवर्णनम् । उच्चैः परिणतिः काऽपि पाक इत्यभिधीयते ।।२२।।
मृद्वीकानारिकेलाम्बुपाकभेदाच्चतुर्विधः । आदावन्ते च सौरस्यं मृद्वीकापाक एव सः ।।२३।।
काव्येच्छया विशेषो यः स राग इति गीयते । अभ्यासोपहितः[4] कान्तिं सहजामपि वर्तते ।।२४।।
हारिद्रश्चैव कौसुम्भो नीलीरागश्च च त्रिधा । वैशेषिकः परिज्ञेयो यः स्वलक्षणगोचरः ।।२५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यगुणविवेककथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४६।।

रूप से स्थूल लक्ष्य को ही प्रकट करने में प्रवृत्ति रहती है, और (मूल वस्तु के) आशय का सौष्ठव स्पष्ट रहता है वहाँ 'उदारता' गुण होता है ।।१५।। जहाँ पर अभीष्ट अर्थ के विघातक तत्त्व के लिए प्रौढ़ तथा न्यायोचित युक्तियों का प्रयोग हो वहाँ पर 'प्रौढ़िगुण' कहा गया है ।।१६।। जहाँ स्वतन्त्र रूप से अथवा परतन्त्र रूप से अर्थों की बाह्य और आन्तरिक योग से व्युत्पत्ति दिखायी जाती है वहाँ 'सामयिकता' गुण होता है ।।१७।। शब्द और अर्थ के उपकार करनेवाले गुणों को 'उभय गुण' कहा गया है। इसके छह भेद किये गये हैं–प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक और राग। जहाँ अति प्रसिद्ध अर्थोंवाली पदावली का प्रयोग हो वहाँ प्रसाद गुण रहता है ।।१८-१९।। जिस उक्ति में किसी उत्कर्षयुक्त गुण का समावेश प्रतीत होता है उसे सौभाग्य गुण कहते हैं। मनीषी इसे उदारता भी कहते हैं ।।२०।। सामान्य रूप से प्राप्त गुण को यथासंख्य कहा गया है। यथासमय वर्णनीय कठोर विषय का वर्णन जब कोमल शब्दों से किया जाता है तो वहाँ 'प्राशस्त्य गुण' होता है। जहाँ वर्ण्य-विषय की उत्तम परिणति हो वहाँ 'पाकगुण' कहा जाता है ।।२१-२२।। पाक के चार भेद हैं–मृद्वीकापाक, पाक, नारिकेलपाक और अम्बुपाक। जहाँ आरम्भ में तथा अन्त में सरसता रहती है वहाँ 'मृद्वीकापाक' होता है ।।२३।। काव्यपरम्परानुसार विशेष रूप से प्राप्त गुण राग कहाता है। इसमें स्वाभाविक कान्ति विद्यमान रहती है। हारिद्र, कौसुम्भ और नीलीराग में इसके तीन भेद हैं जो गुण किसी विशेष रचना में व्यक्तिगत रूप से रहें, वैशेषिक गुण कहाते हैं ।।२४-२५।।

श्री अग्निमहापुराण में काव्यगुणविवेक-कथन नामक तीन सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४६।।

---

१ क. ख. ग. मुक्तयो। २ क. ङ. °ता। सुत°। ३ ख. ग. °स्य राद्धान्तः। ४ क. ङ. °तः कीर्तिःसजातिमतिव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यदोषविवेकः

अग्निरुवाच

उद्वेगजनको दोषः [1]सत्यानां स च सप्तधा । वक्तृवाचकवाच्यानामेकद्वित्रिनियोगतः ।।१।।
तत्र वक्ता कविर्नाम [2]प्रथते स च भेदतः । संदिहानोऽविनीतः सन्नज्ञो ज्ञाता चतुर्विधः ।।२।।
निमित्तपरिभाषायामर्थसंस्पर्शिवाचकम् । तद्भेदौ पदवाक्ये द्वे कथितं लक्षणं द्वयोः[3] ।।३।।
असाधुत्वाप्रयुक्तत्वे द्वावेव पदनिग्रहौ । शब्दशास्त्रविरुद्धत्वमसाधुत्वं विदुर्बुधाः ।।४।।
व्युत्पन्नैरनिबद्धत्वमप्रयुक्तत्वमुच्यते । छान्दसत्वमविस्पष्टत्वं[4] च कष्टत्वमेव च ।।५।।
तदसामयिकत्वं च ग्राम्यत्वं चेति पञ्चधा । छान्दसत्वं न भाषायामविस्पष्टमबोधतः[5] ।।६।।
गूढार्थता विपर्यस्तार्थता संशयितार्थता । अविस्पष्टार्थता भेदास्तत्र गूढार्थतेति सा ।।७।।
यत्रार्थो दुःखसंवेद्ये विपर्यस्तार्थता पुनः । विवक्षितान्यशब्दार्थप्रतिपत्तिमलीमसा ।।८।।
अन्यार्थत्वासमर्थत्वे एतामेवोपसर्पतः । संदिह्यमानवाच्यत्वमाहुः संशयितार्थताम् ।।९।।

अध्याय ३४७

काव्यदोषविवेक

अग्निदेव बोले–सहृदयों के हृदय को उद्विग्न (विक्षोभित) करनेवाला तत्त्व काव्यदोष कहलाता है और वह वक्तृ, वाचक और वाच्य के भेद से सात प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार का वक्तृदोष कवि की ओर से ही होता है। इसके चार भेद हैं–संदिहान, अविनीत, सन्नज्ञ तथा ज्ञाता ।।१-२।। निमित्त की परिभाषा में अर्थ का संस्पर्श देनेवाले को वाचक दोष कहते हैं। इसके दो भेद हैं–पद और वाक्य ।।३।। असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व ये दो दोष पद के अन्तर्गत आते हैं। शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण की विरुद्धता को विद्वान् असाधुत्व दोष कहते हैं। विद्वानों से अरचित प्रयोग को दोष माना गया है, अर्थात् कवियों ने जिसका प्रयोग न किया हो। ये पाँच काव्यदोष हैं–छान्दसत्त्व, अविस्पष्ट, कष्टत्व, असामयिकत्व तथा ग्राम्यत्व ।।४-५½ ।। छान्दसत्त्व दोष वहाँ होता है जहाँ कोई ऐसा प्रयोग दिखायी दे जो केवल वैदिक साहित्य में ही प्रयुक्त होता हो। भाषा अर्थात् लौकिक साहित्य में उसका प्रयोग न होता हो। शब्द के अर्थ का अबोध अविस्पष्ट दोष कहाता है, इसके तीन भेद हैं–गूढ़ार्थता, विपर्यस्तार्थता, संशयितार्थता। गूढ़ार्थता दोष वहाँ होता है जहाँ किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान कष्टसाध्य हो। जहाँ पर अभीष्ट अर्थ से विपरीत किसी अन्य अर्थ की धुँधली-सी अथवा अस्पष्ट प्रतीति हो वहाँ विपर्यस्तार्थता दोष होता है ।।६-८।। जहाँ वास्तविक अर्थ की जानकारी न हो सके और पाठक दो अर्थों की संदेहजन्य द्विविधा में ही रह जाय वहाँ संशयितार्थता दोष होता है ।।९।।

---

१ छ. सभ्यानां। २ क. ङ. प्रथमे। ३ ख. ग. °योः। ससाधुत्वाप्रमुक्त°। ४ ख. ग. °ष्टयुद्धं क°। ५ ख. च. °विस्पष्ट°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दोषत्वमनुबध्नाति सज्जनोद्वेजनादृते । असुखोच्चार्यमाणत्वं[1] कष्टत्वं समयाच्युतिः[2] ।।१०।।
असामयिकता[3] नेयामेतां च मुनयो जगुः । ग्राम्यता तु जघन्यार्थप्रतिपत्तिः खलीकृता ।।११।।
वक्तव्यग्राम्यवाच्यस्य वचनात्स्मरणादपि । तद्वाचकपदेनाभिसाम्याद्भवति सा त्रिधा ।।१२।।
दोषः साधारणः "प्रातिस्विकोऽर्थस्य स तु त्रिधा[4]" । अनेकभागुपालम्भः साधारण इति स्मृतः ।।१३।।
क्रियाकारकयोर्भ्रंशो विसंधिः पुनरुक्तता । व्यस्तसंबन्धिता चेति पञ्च साधारणा मताः ।।१४।।
अक्रियत्वं क्रियाभ्रंशो भ्रष्टकारकतां पुनः । कर्त्रादिकारकाभावो विसंधिः संधिदूषणम् ।।१५।।
विगतो वा विरुद्धो वा संधिः स भवति द्विधा । संधेर्विरुद्धता कष्टमपदार्थान्तरागमात् ।।१६।।
पुनरुक्तत्वमाभीक्ष्ण्यादभिधानं द्विधैव तत् । अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरर्थावृत्तिरपि द्विधा ।।१७।।
प्रयुक्तवरशब्देन तथा शब्दान्तरेण च । नाऽऽवर्तते पदावृत्तौ वाच्यमावर्तते पदम् ।।१८।।
व्यस्तसम्बन्धता सुष्ठु संबन्धो व्यवधानतः । संबन्धान्तरनिर्भासात्संबन्धान्तरजन्मनः ।।१९।।
अभावेऽपि तयोरन्तर्व्यवधानात्त्रिधैव सा । अन्तरा पदवाक्याभ्यां प्रतिभेदं पुनर्द्विधा ।।२०।।

जहाँ सहृदयों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को उच्चारण (किसी शब्द-विशेष का) में कष्ट हो, वहाँ कष्ट से उच्चरित होने के कारण कष्टत्व दोष होता है। कविपरम्परा के विरुद्ध कही गयी बात को साहित्यशास्त्रियों ने असामयिकता दोष माना है। ग्राम्यता दोष वहाँ होता है जहाँ किसी शब्द से जघन्य अर्थात् जुगुप्सित अर्थ का आभास हो। इसके तीन भेद हैं–ग्रामीण के वचन का कथन, अन्य वचन से उस कथन का स्मरण तथा तत्कथन का तद्वत् प्रयोग ।।१०-१२।। अर्थ दोष (वाच्यदोष) दो प्रकार के होते हैं–साधारण और प्रातिष्ठिक। सर्वत्र प्रचलित उपालम्भ साधारण दोष कहाता है। इसके पाँच भेद हैं–क्रियाभ्रंश, कारकभ्रंश, विसंधि, पुनरुक्तता और व्यस्त-सम्बन्धिता ।।१३-१४।। जहाँ पर क्रिया का अभाव हो वहाँ अक्रियत्व और जहाँ कर्त्तादिकारक का अभाव होता है वहाँ 'कारकभ्रंश' दोष होता है। संधिदोष को विसन्धि कहते हैं। इसके दो भेद हैं–सन्धि का अभाव और विरुद्धसन्धि। विरुद्धसन्धि वहाँ होती है जहाँ अन्य पदार्थ के आगमन से अर्थ ज्ञान में कष्ट हो ।।१५-१६।। वस्तु का पुनः-पुनः कथन पुनरुक्त दोष कहाता है। इसके दो भेद हैं–पदावृत्ति तथा अर्थावृत्ति। अर्थावृत्ति के भी दो भेद हैं–वर (उचित) शब्द की आवृत्ति से तथा शब्दान्तर (अन्य शब्द) की आवृत्ति से। शब्दावृत्ति में शब्द की आवृत्ति होती है और अर्थावृत्ति में अर्थ की ।।१७-१८।। जहाँ पर सुन्दर सम्बन्ध के निर्वाह में बाधा हो वहाँ व्यस्त सम्बन्धता दोष होता है। इसके तीन भेद हैं–अन्य सम्बन्ध का आभास, अन्य सम्बन्ध का जन्म, इन दोनों के न रहने पर भी अर्थज्ञान में बाधा। पद और वाक्य में होने के कारण पुनः प्रत्येक भेद के दो-दो भेद होते हैं ।।१९-२०।। अर्थ

---

१ ख. ग. °त्व° समयाच्युतिरीरिता। अ°। २ क. ङ. °तिः। समयाऽपिकृता नेमेसतां। च. °तिः। आसामायक°। ३ ख. °तालेया°। ४ ख. ग. °तिष्ठिकोऽ°। ५ छ. द्विधा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(१वाच्यमर्थ्यार्थ्यमानत्वात्तद्द्विधा२ पदवाक्ययोः । ३व्युत्पादितं पूर्ववाच्यं व्युत्पाद्यं चेति भिद्यते ।।२१।।
इष्टव्याघातकारित्वं हेतोः स्यादसमर्थता । असिद्धत्वं विरुद्धत्वमनैकान्तिकता तथा ।।२२।।
एवं सत्प्रतिपक्षत्वं कालातीतत्वसंकरः । पक्षे सपक्षे नास्तित्वं विपक्षेऽस्तित्वमेव तत् ।।२३।।
४काव्येषु५परिपाद्यानां न भवेदप्यरुंतुदम् । एकादश निरर्थत्वं दुष्करादौ न दुष्यति) ।।२४।।
दुःखा करोति दोषज्ञान्मूढार्थत्वं न दुष्करे । न ग्राम्यतोद्वेगकारी प्रसिद्धेर्लोकशास्त्रयोः ।।२५।।
क्रियाभंशेन लक्ष्मास्ति क्रियाध्याहारयोगतः । भ्रष्टकारकताक्षेपबलाध्याहृतकारके६ ।।२६।।
प्रगृह्ये गृह्यते नैव क्षतं विगतसंधिना७ । कष्टपाठाद्विसंधित्वं दुर्वचादौ न दुर्भगम् ।।२७।।
अनुप्रासे पदावृत्तिर्व्यस्तं संबन्धिता शुभा । नार्थसंग्रहणे दोषो व्युत्क्रमाद्यैर्न लिप्यते ।।२८।।
८विभक्तिसंज्ञा लिङ्गानां यत्रोद्वेगो न धीमताम् । संख्यायास्तत्र भिन्नत्वमुपमानोपमेययोः ।।२९।।
अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिः शुभा । कवीनां समुदाचारः समयो नाम गीयते ।।३०।।
सामान्यश्च विशिष्टश्च धर्मवद्भवति द्विधा । सिद्धसैद्धान्तिकानां च कवीनां वा विवादतः ।।३१।।
यः प्रसिध्यति सामान्य इत्यसौ समयो मतः । सर्वे सि(सै)द्धान्तिका येन संचरन्ति निरत्ययम् ।।३२।।

में प्रयोजनीय होने से वाक्यदोष दो प्रकार का होता है–पददोष तथा वाक्यदोष। पददोष व्युत्पादित होता है अर्थात् उच्चारण मात्र से प्रतीत हो जाता है जबकि वाक्यदोष का ज्ञान व्युत्पाद्य अर्थात् व्युत्पत्ति करने पर ही ज्ञात होता है। जहाँ ईप्सित अर्थ में बाधा पहुँचानेवाला कोई कारण हो वहाँ असमर्थता दोष होता है। असिद्धत्व, विरुद्धत्व, अनैकान्तिकता, सत्प्रतिपक्षत्व, कालातीतसंकर, पक्षसपक्ष नास्तित्व, विपक्ष अस्तित्व (ये सब 'हेतु' अलंकार के भेद हैं) दोष काव्य में प्रतिपादित होने पर विशेष मनस्ताप विधायक नहीं होते। दुष्कर (समासादि के कठिन स्थलों पर) आदि में ग्यारह प्रकार का निरर्थत्व (जिसमें निरर्थक शब्द लेते हैं) भी दोष नहीं रहता ।।२१-२४।। दुष्कर स्थल में गूढ़ार्थता दोष नहीं रहता। लोक में तथा शास्त्र में प्रसिद्ध ग्राम्यता भी उद्वेगकारी नहीं होती। क्रियाभ्रंश में क्रिया के अध्याहार करने से यह दोष नहीं रहता। आक्षेप के बल से जहाँ कारक का अध्याहार हो वहाँ भ्रष्टकारकता दोष नहीं रहता ।।२५-२६।। विगतसंधिता से भी कोई विशेष हानि नहीं होती। दुर्वचन आदि में कठिन पाठ के कारण 'विसंधिता' दोष भी नहीं रहता। अनुप्रास में पदावृत्ति के कारण व्यस्तसंबन्धिता दोष भी शुभ माना गया है। अर्थसंग्रहण काल में व्युत्क्रमादि दोष नहीं रहता ।।२७-२८।। जहाँ उपमान और उपमेय का लिंग पृथक्-पृथक् हो वहाँ विभक्तिदोष, संख्यादोष, लिंगदोष उद्वेगकारक नहीं माना गया है। अनेक व्यक्तियों का एक बात को कहना अथवा बहुतों का बहुत बार कहना भी शुभ होता है। कवियों का समुदाचार समय कहाता है ।।२९-३०।। इसके दो भेद हैं–सामान्य और विशेष। सफल सैद्धान्तिकों के अथवा कवियों के विवाद के परिणामस्वरूप जो प्रसिद्ध होता है उसे सामान्य समय (कविख्याति) कहते हैं। इस सामान्य समय के पुनः दो भेद होते हैं, एक तो वह जिसका अनुसरण सब

---

१ 'वाच्यमर्थार्थ्यमानत्वात्तद्द्विधा'''दुष्यति' च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °मर्थोऽन्यमा°। ३ क. ङ. दितापूर्ववाचा व्युत्पादं वेति। ४ ख. ग. °षु पारिसद्या°। ५ क. ङ. रिषेधानां। ६ क. ङ. °के। गृह्यते गृह्यते नै। ख. ग. °के। अगृह्यागृह्यते। ७ क. ख. °धिता। क°। ८ क. ङ. च. °संख्यालि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कियन्त एव वा येन सामान्यस्तेन स द्विधा[1] । छेदसिद्धान्ततोऽन्यः स्यात्केषाञ्चिद्भ्रान्तितो यथा ।।३३।।
तर्कज्ञानं मुनेः कस्य कस्यचित्क्षणभङ्गिका । भूतचैतन्यता[2] कस्य ज्ञानस्य सुप्रकाशता[3] ।।३४।।
[4]प्रज्ञातस्थूलता शब्दानेकान्तत्वं तथाऽर्हतः । शैववैष्णवाशक्तेयसौरसिद्धान्तिनां मतिः ।।३५।।
जगतः कारणं ब्रह्म सांख्यानां सप्रधानकम् । अस्मिन्सरस्वतीलोके संचरन्तः परस्परम् ।।३६।।
बन्धन्ति व्यतिपश्यन्तो यद्विशिष्टः स उच्यते । परिग्रहादप्यसतां सतामेवापरिग्रहात् ।।३७।।
भिद्यमानस्य तस्यायं द्वैविध्यमुपगीयते । प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्यद्बाधितं तदसद्विदुः ।।३८।।
कविभिस्तत्प्रतिग्राहं ज्ञानस्य द्योतमानता । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ।।३९।।
[5]अज्ञानाज्ञाततत्त्वे च ब्रह्मैव परमार्थसत् । विष्णुः सर्गादिहेतुः स शब्दालङ्काररूपवान् ।।
अपरा च परा विद्या तां ज्ञात्वा मुच्यते भवात् ।।४०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यदोषविवेककथनं नाम
सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४७।।

सैद्धान्तिक बिना किसी संकोच के करते हैं और दूसरा वह जिसका अनुसरण कतिपय सैद्धान्तिक ही करते हैं। एक अन्य छेद सिद्धान्त है जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने भ्रान्तित किया है। किसी मुनि का तर्कज्ञान, किसी मुनि का क्षणभंगुर सिद्धान्त, किसी की भूत चैतन्यता और किसी की प्रज्ञातस्थूलता, किसी का शब्दानेकत्व आदि। अर्थात् कोई मुनि तो जगत् को ही तर्कप्रधान मानकर चलता है तो कोई इसे क्षणिक समझता है। कोई प्राणि-चैतन्य को स्वीकार करता है तो कोई जगत् को अपने-आप में प्रकाशमान मानता है, कोई इस स्थूल संसार को ही सब-कुछ समझता है। कोई अर्हत् (जैनागम) जगत् को शब्द रूप ही मानते हैं ।।३१-३४$\frac{1}{2}$।। शैव, वैष्णव, शाक्त तथा सौर सिद्धान्तवादियों के मत से इस संसार का कारण ब्रह्म है जबकि सांख्य इस जगत् को प्रकृतिनिर्मित मानते हैं। इस काव्यजगत् में जो नियम परस्पर व्यवहार काव्याचार द्वारा बनता है उसे विशिष्ट समय कहा गया है। असज्जनों के ग्रहण से तथा सज्जनों के परित्याग से इसके दो भेद होते हैं। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो बँधा होता है उसे असत् और कवियों द्वारा प्रतिगृहीत सत्। ब्रह्म का परमार्थ सत् दो तत्त्वों में विभक्त है-अज्ञान तत्त्व और अज्ञात तत्त्व। सृष्टि का आदि कारण विष्णु है, वही शब्द और अलंकार रूप है। जगत् में अपरा (अप्रत्यक्ष) परा (प्रत्यक्ष) में दो विद्याएँ होती हैं। इन्हें जानकर व्यक्ति संसार से मुक्त हो जाता है ।।३५-४०।।

श्री अग्निमहापुराण में काव्यदोषविवेक-कथन नामक तीन सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४७।।

---

१ क. ङ. °धा। इदं सिद्धं ततोऽन्यत्स्यात्के°। २ क. ङ. कस्माज्ज्ञान°। ३ क. ङ. °ता। षडङ्गुलस्थूलश°। ४ ख. ग. प्रकूलस्थू°। ५ ख. च. °नाज्ज्ञानतस्त्वेकमीक्ष्यैव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

एकाक्षराभिधानम्

अग्निरुवाच

एकाक्षराभिधानं च मातृकं[1] च वदामि ते। अ विष्णुः प्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः ।।१।।
सीमायामव्ययमा च भवेत्संक्रोधपीडयाः। इः कामे रतिलक्ष्म्योरी उः शिवे रक्षकाद्य ऊः ।।२।।
ऋ[2]शब्दे चादितौ ॠस्यात्ऌ लॄ ते वै दितौ गुहे। ए देवी ऐ योगिनी स्यादो ब्रह्मा औ महेश्वरः ।।३।।
अं काम (मे) अः प्रशस्तं स्यात्को ब्रह्मादौ कु कुत्सिते। खं शून्येन्द्रियमुखं गो गंधर्वे च विनायके ।।४।।
गं गीते गो गायने स्याद्घो घण्टा किंकिणीमुखे। ताडने ङश्च विषये स्पृहायां चैव भैरवे[3] ।।५।।
चो दुर्जने निर्मले छश्छेदे जिर्जयने तथा। जं गीते झः प्रशस्ते स्याद्बले ञो गायने च टः ।।६।।
ठश्चन्द्रमण्डले शून्ये [4]शिवे चोद्बन्धने मतः। डश्च रुद्रे ध्वनौ त्रासे ढक्कायां ढा ध्वनौ मतः ।।७।।
णो निष्कर्षे निश्चये च तश्चौरे क्रौडपुच्छके। भक्षणे थश्छेदने दो धारणे शोभने मतः ।।८।।

अध्याय ३४८

एकाक्षराभिधान

अग्निदेव बोले–अब मैं एकाक्षर कोष और मातृकाओं के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। 'अ' का अभिप्राय है विष्णु तथा प्रतिषेध, 'आ' का अभिप्राय है पितामह, वाणी और सीमा। यह 'आ' जब अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है तब यह क्रोध और पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इकार काम में तथा ईकार रति और लक्ष्मी के लिए प्रयुक्त होता है। उकार का प्रयोग शिव के लिए और ऊकार का राक्षस इत्यादि के लिए होता है। ऋकार का प्रयोग शब्द के लिए, ॠकार का प्रयोग अदिति देवता के लिए और ऌ तथा ॡ का प्रयोग क्रमशः दिति और गुह के लिए किया जाता है। एकार का प्रयोग देवी के लिए, ऐकार का योगिनी के लिए, ओकार का ब्रह्मा के लिए और औकार का प्रयोग महेश्वर के लिए होता है ।।१–३।। अं का प्रयोग काम में, और अः का प्रयोग प्रशस्ति के लिए होता है। 'क' ब्रह्मा इत्यादि देवताओं के लिए और 'कु' का प्रयोग कुत्सित के लिए होता है। 'खं' का अर्थ है आकाश, इन्द्रिय, तलवार, गन्धर्व और विनायक। 'गं' का अर्थ गीत और गो का अर्थ है गायन। 'घ' क अर्थ है घण्टा तथा किंकिणि। 'ङ' का अर्थ है ताडन, विषय, इच्छा और भैरव। 'च' का अर्थ है दुर्जन और निर्मल, 'छ' का छेदन करना, 'जि' का जीतना, 'जम्' का गीत, 'झः' का प्रशस्ति और 'ञ' का बल। ट का अर्थ है गायन, 'ठ' का अर्थ है मण्डल, आकाश, शिव और बन्धन। 'ड' का अर्थ है रौद्र ध्वनि और त्रास तथा 'ढ' का अर्थ है ढक्का की ध्वनि ।।४–७।। णकार का अर्थ है निष्कर्ष तथा निश्चय और तकार का अर्थ है चोर तथा नीड़ और पक्षी की दुम। 'थ' का अर्थ है भक्षण करना तथा काटना। 'द' का अर्थ है धारण करना और शोभित

---

१ ख. ग. °तृकार्ण व°। २ ख. च. °ब्दे वाजितौ ऋः स्यादृतो ले स्यात्लृतौ गृहे। ३ ख. ग. °वे। चतुष्करे निर्म°। ४ क. ङ. शिवो बोद्बन्ध। ख. ग. शिवोडोद्बन्ध°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धो धातरि च धूस्तूरे नो वृन्दे सुगते तथा। प उपवने विख्यातः पूश्च झञ्झानिले मतः ।।९।।
फुः फूत्कारे निष्फले च विः (बिः) पक्षी भं च तारके। मा श्रीर्मानं च माता [1]स्याद्योगे यो यातरीरिणे ।।१०।।
रो वह्नौ बलशक्रे च लो विधातरि ईरितः[2]। विश्लेषणे वो वरुणे शयने शश्च शं सुखे ।।११।।
षः श्रेष्ठे सः परोक्षे च सा लक्ष्मीः स [3]कचे मतः। धारणे हस्तथा रुद्रे क्षः क्षेत्रे चाक्षरे मतः ।।१२।।
क्षो नृसिंहे हरौ तद्वत्क्षेत्रपालकयोरपि। मन्त्र एकाक्षरो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।।१३।।
क्षौं [4]हयशिरसे नमः सर्वविद्याप्रदो मनुः। अकाराद्यास्तथा मन्त्रा मातृकामन्त्र उत्तमः ।।१४।।
एकपद्मेऽर्चयेदेतान्नव दुर्गाश्च पूजयेत्। भगवती कात्यायनी कौशिकी चाथ चण्डिका ।।१५।।
प्रचण्डा सुरनायिका उग्रा पार्वती दुर्गया ।।१६।।
ॐ चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।।१७।।
क्रमादि तु षडङ्गं स्याद्गणो गुरुर्गुरुः क्रमात्। अजिताऽपराजिता चाथ जया च विजया ततः ।।१८।।
कात्यायनी भद्रकाली मङ्गला सिद्धिरेवती। [5]सिद्धादिवटुकाः पूज्या हेतुकश्च कपालिकः ।।१९।।
एकपादो भीमरूपो दिक्पालान्मध्यतो नव। [6]ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा [6]मन्त्रसिद्धये ।।२०।।
गौरी पूज्या च धर्माद्याः स्कन्दाद्याः शक्तयो यजेत्। प्रज्ञा ज्ञानक्रिया वाचा वागीशी ज्वालिनी तथा ।।२१।।

करना। 'ध' का अर्थ है विधाता और धतूरे का पुष्प। 'न' का अर्थ है समूह अथवा सुगत। 'प' उपवन के अर्थ में विख्यात है तथा 'पू' झंझावात के अर्थ में माना गया है। 'फु' का अर्थ फूत्कार और निष्फल, 'वि' का अर्थ है पक्षी और 'भ' का अर्थ है तारक। 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी, परिणाम और माता। 'य' का अर्थ है योग तथा यात्रा ।।८-१०।। 'र' का अर्थ है अग्नि, बल और इन्द्र तथा 'ल' विधाता के अर्थ में कहा गया है। 'व' का प्रयोग विश्लेषण और वरुण के अर्थ में, 'श' का शयन अर्थ में और 'शं' का सुख अर्थ में किया जाता है। 'ष' का अर्थ श्रेष्ठ, 'स' का परोक्ष, 'सा' का लक्ष्मी और 'स' का केश कहा गया है। 'ह' का प्रयोग धारण करने तथा रुद्र के लिए, 'क्ष' का प्रयोग क्षेत्र और अक्षर के लिए माना गया है। वह नृसिंह हरि और क्षेत्र तथा पालक के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। यह एकाक्षर मंत्र साक्षात् देवता रूप तथा भोग और मोक्ष का देनेवाला है ।।११-१३।। 'क्षौं' हयशिरसे नमः' यह मन्त्र सभी विद्याओं का देनेवाला है। अकार इत्यादि मन्त्र उस देवता के हैं जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। यह मन्त्र उत्तम कहे गये हैं। इन्हें मातृका मन्त्र कहा गया है। एक पद्म यन्त्र के ऊपर दुर्गा के साथ भगवती, कात्यायनी, कौशिकी, चण्डिका, प्रचण्डा, सुरनायिका, उग्रा और पार्वती आदि नौ देवियों का पूजन करना चाहिए। 'ॐ चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्' इस मंत्र के द्वारा षडङ्ग पूजा-विधि से अजिता, अपराजिता, जया, विजया, कात्यायनी, भद्रकाली, मङ्गला, सिद्धि और रेवती का पूजन करना चाहिए। साथ ही गणों, हेतु, कापालिक, एकपाद, भीमरूप और दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिए। 'ह्री दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा'-यह मन्त्र अर्थसिद्धि के लिए होता है ।।१४-२०।। इसी मन्त्र से कर्म और स्कन्द आदि देवताओं का तथा प्रज्ञा, ज्ञान, क्रिया, वाचा, वागीशी और ज्वालिनी शक्तियों

---

१ क. ङ. °गे या यानवारिणि। रो। २ ख. ग. °तः। श्लेषणे लीर्वो व°। ३ ख. ग. करे। ४ ख. ग. सिद्ध्यादि°। ५ 'ह्रीं''''मन्त्रार्थसिद्धये' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः। ६ ख. ग. °र्थस्य च सि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

([1]वामा ज्येष्ठा च रौद्री च गौरीं ह्रीं च पुरःसरा । ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहेति वा ।।२२।।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सुभगा ललिता तथा) । कामिनी काममाला च इन्द्राद्याः शक्तिपूजनम् ।।२३।।
ॐ गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गं वा गणपतये नमः। षडङ्गो रक्तशुक्लश्च दन्ताक्षपरशूत्कटः ।।२४।।
समोदकोऽथ गन्धादि गन्धोल्कायेति च क्रमात् । गजो महागणपतिर्महोल्कः पूज्य एव च ।।२५।।
कूष्माण्डाय, एकदन्ताय त्रिपुरान्तकाय श्यामदन्तविकटहरहासाय लम्बनासाननाय पद्मदंष्ट्राय
मेघोल्काय धूमोल्काय वक्रतुण्डाय विघ्नेश्वराय विकटोत्कटाय गजेन्द्रगमनाय भुजगेन्द्रहाराय
शशाङ्कधराय गणाधिपतये स्वाहा ।।२६।।
एतैर्मनुभिः स्वाहान्तैः पूज्यस्तिलहोमादिमाऽर्थभाक् । काद्यैराबीजसंयुक्तैस्तैराद्यैश्च नमोन्तकैः ।।२७।।
मन्त्राः पृथक्पृथग्वा [2]स्युद्विरेफद्विर्मुखाक्षिणः । कात्यायनं स्कन्द आह यत्तद्व्याकरणं वदे ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकाक्षराभिधानं नामाष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४८।।

का भी यजन करना चाहिए। इसी प्रकार 'गौरीं ह्रीं' सहित उपर्युक्त मन्त्रों से वामा, ज्येष्ठा और रौद्रा का पूजन करना चाहिए। 'ह्रीं सः महागौर रुद्रदयिते स्वाहा'–इस मन्त्र से ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, सुभगा और ललिता का यजन करना चाहिए। इसी प्रकार कामिनी, काममाला और इन्द्रादि शक्तियों का भी पूजन करना चाहिए ।।२१–२३।। गणपति के पूजन का मुख्य मन्त्र है 'ॐ गं स्वाहा'। इसी मन्त्र से गणेश के छह अंगों का रक्तशुक्ल, दन्ताक्षपरशु। उत्कट, समोदक, गन्धादि और गन्धोल्क का भी पूजन क्रमशः करना चाहिए। इसी प्रकार से गज, महागणपति और महोल्क का भी पूजन करना चाहिए। "कुष्माण्डाय····गणाधिपतये स्वाहा'–इन मन्त्रों से स्वाहाकार से युक्त तिल की आहुतियाँ देने से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। इनके आदि में 'क' बीज तथा अन्त में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए। अथवा इस देवता का पूजन उस विजय मन्त्र से करना चाहिए जिसके आदि में 'हः' और अन्त में 'नमः' का प्रयोग किया जाता है। फिर इन्हीं मन्त्रों द्वारा तिलों से होम आदि करके मन्त्रार्थभूत देवता का पूजन करे। अथवा द्विरेफ, द्विर्मुख एवं द्व्यक्ष आदि पृथक्–पृथक् मन्त्र हो सकते हैं। अब कुमार कार्तिकेय जी ने कात्यायन को जिसका उपदेश किया था, वह व्याकरण बतलाऊँगा ।।२४–२८।।

श्री अग्निमहापुराण में एकाक्षराभिधान नामक तीन सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४८।।

---

१ 'वामा····ललिता तथा' छ. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. स्युर्देवेषद्विषगाद्रिगाः। का°। ख. स्युर्देवद्विक्षुदुथाक्षिगाः। का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

व्याकरणसारः

स्कन्द उवाच

वक्ष्ये व्याकरणं सारं सिद्धशब्दस्वरूपकम्। कात्यायन [1]विबोधाय [2]बालानां बोधनाय च ।।१।।
प्रत्याहारादिकाः संज्ञाः शास्त्रसंव्यवहारगाः ।।२।।
अइउण् ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्। ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्,
खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् ।।३।।
इति प्रत्याहारः ।।४।।
उपदेश इद्धलन्त्यं भवेदजनुनासिकः। आदिवर्णो गृह्यमाणोऽप्यन्त्येनेता सहैव तु ।।५।।
तयोर्मध्यगतानां स्याद्ग्राहकः स्वस्य तद्यथा[3] ।।६।।
[4]अण्, एङ्, अट्, यङ्, (य्) (यञ्) छब् (व्), झम् (ष्) भष्, अक्, इक् (उक्), अण्, इण्,
यण्, परेण[5] णकारेण। अम्, यम्, ङम्, अच्, इच्, (एच्) ऐच्, अय्, मय्, झय्, खय्, जव्, (श्)

अध्याय ३४९

व्याकरण-सार

स्कन्द बोले–कात्यायन! अब मैं बोध के लिए तथा बालकों को व्याकरण का ज्ञान कराने के लिए सिद्ध शब्दरूप सारभूत व्याकरण का वर्णन करता हूँ, सुनो ।।१।। पहले प्रत्याहार आदि सज्ञाएँ बतालायी जाती हैं, जिनका व्याकरणशास्त्रीय प्रक्रिया में व्यवहार होता है। 'अइउण्…हल्' ये माहेश्वर सूत्र एवं 'अक्षरसमाम्नाय' कहलाते हैं। इनमें 'अण्' आदि 'प्रत्याहार' बनते हैं ।।२-४।। उपदेशावस्था में अन्तिम 'हल्' तथा अनुनासिक 'अच्' की 'इत्' संज्ञा होती है। अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण के साथ गृहीत होनेवाला आदि वर्ण उन दोनों के मध्यवर्ती अक्षरों का तथा अपना भी ग्रहण करानेवाला होता है। इसी को 'प्रत्याहार' कहते हैं। जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट होता है–'अण्' एङ्, अट् यम्, अथवा (यञ्) छव्, झष्, भष्, अक्, इक्, उक्। अण्, इण्, यण्–ये तीनों पर णकार अर्थात् लण् सूत्र के णकार से बनते हैं। अम्, यम्, ङम्, अच्, इच्, एच्, ऐच् अय्, मय्, झय्, खय्, जश्, झर्, खर्, चर्, यर्,

---

१ क. ख. ग. ङ. विरोधा°। २ ख. ग. लानामविधारय। प्र°। ३ क. ख. °था एङ् यञ् अण् पूर्वेण णकारेण। छव् अट् झष् भष् अक् अट् ठक् अण् इण् यण् परेण णकारेण। अम् जम् ङम् अच् इच् ऐच् यम् मम् षय् यर् स्वर वर शर अश् हश् वश् झश् जश् अल्। ४ ख. °ण् वङ् अङ् यङ् कररुश्च दुग्धकः षड अक इ उ अण्। ग. °ण् एङ् अङ् कररूश्च दुग्धेकः षड अक इ उ अण्। ५ ख. °ण अय मम जय अव इव वप यम यख यज रठ रख खर अश दृश वश भर जस् श अल हल वल रज ज्वल मल शस इति। ग° ण अय मम जय अव इउ वप यम यख यज ररु रख खर सर अश दश वश भर जस् श अल हल वल रल ज्वल मल शस इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

झव्(र्), खव्(र्) चव्(र्), (यर्), शव्(र्), अस्(श्), हस्(श्), बस्(श्), भस्(बश्), (झश्), अल्, हल्, ब(व)ल्, रल्, झल्, शल्, इति प्रत्याहारः (राः) ।।७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्याकरणसारवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३४९।।

अथ पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

संधिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच

वक्ष्ये [1]संधिं सिद्धरूपं स्वरसंधिमथाऽऽदितः । दण्डाग्रं साऽऽगता दधीदं नदीहते मधूदकम् ।।१।।
[2]पितृषभः, लृकारश्च तवेदं सकलोदकम् । अर्धर्चोऽयं तवल्कारः सैषा सैन्द्री तवौदनम् ।।२।।
खट्वौघोऽभवदित्येवं व्यसुधीर्वस्वलं कृतम् । पित्रर्थोपवनं दात्री नायको लावको नयः ।।३।।
त इह तयिहेत्यादि तेऽत्र योऽत्र जलेऽकजम् । प्रकृतिं नो अहो एहि अ अवेहि इ इन्द्रकम् ।।४।।
उ उत्तिष्ठ कवी एतौ वायू एतौ वने इमे । अमी एत यज्ञभूते एहि देव इम नय ।।५।।
वक्ष्ये संधिं व्यञ्जनानां [3]वाग्यतोजेकमातृकः[4] । षडेते तदिमेऽवादि वाङ्नीतिः षण्मुखादिकम् ।।६।।
वाङ्मनसं वाग्भावादिर्वाक्श्लक्ष्णं तच्छरीरकम् । तल्लुनाति तच्चरेच्च क्रुङ्ङस्ते च सुगाणि(णि)ह ।।७।।

शर्, हश्, अश्, वश्, झश्, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्–ये सभी प्रत्याहार हैं ।।५-७।।

श्री अग्निमहापुराण में व्याकरण-सार वर्णन नामक तीन सौ उञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ।।३४९।।

अध्याय ३५०

संधिसिद्धि-रूप

स्कन्द बोले–कात्यायन! अब सिद्ध संधियों का वर्णन करूँगा। पहले 'स्वर संधि' बतलायी जाती है–दण्डाग्रम्, साऽऽगता, दधीदम्, नदीहते, मधूदकम्, पितृषभः, लृकारः तवेदम्, सकलोदकम्, अर्धर्चोऽयम्, तवल्कारः, सैषा, सैन्द्री, तवौदनम्, खट्वौघोऽभवत्, इत्येवम्, व्यसुधीः, वस्वलंकृतम्, पित्रर्थोपवनम्, दात्री, नायकः, लावकः, नयः, त इह तयिह इत्यादि। तेऽत्र, योऽत्र, जलेऽकजम्। जहाँ सन्धि न होकर प्रकृति रूप ही रह जाता है, उसे 'प्रकृतिभाव' कहते हैं। उसके उदाहरण हैं–नो अहो, एहि, अ अवेहि, इ इन्द्रकम्, उ उत्तिष्ठ, कवी एतौ वायू एतौ, वने इमे, अमी एते, यज्ञभूते, एहि देव, इमं नय ।।१-५।। अब व्यञ्जनसंधि का वर्णन करूँगा–वाग्यतः (वाक्+यतः)। अजेकमातृकः (अच्+एकमातृकः)। षडेते (षट्+एते)। तदिमे (तत्+इमे)। अवादि (अप्+आदि)। वाङ्+नीतिः (वाक्+नीतिः)। षण्मुखः (षट्+मुखः)। वाङ्मनसम् (वाक्+मनसम्) इत्यादि। वाग्भावादिः (वाक्+भावादिः)। वाक्श्लक्ष्णम् (वाक्+श्लक्ष्णम्)। तच्छरीरकम् (तत्+शरीरकम्)। तल्लुनाति (तत्+लुनाति। तच्चरेच्च (तत्+चरेत्+च)।

---

१ क. ङ. संधिस्वरूपं च स्व°। २ ख. ग. °भः, होतृकारश्चैवमिदं सकलं कललो°। ३ ख. ग. वाग्राताष्टैक°। ४ क. ङ. °तो जैक°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवांश्चरन्भवांश्छात्रो भवांष्टीका भवांष्ठकः । भवांस्तीर्थं भवान्स्थेयान्भ(द्भ?)वाँल्लेखा भवाञ्जयः ।।८।।
भवाञ्छेते भवाञ्च्शेते भवाञ्शेते भवाण्डीनः । त्वम्भर्ता त्वङ्करिष्यादिः संधिर्ज्ञेयो विसर्गतः ।।९।।
कश्छिन्द्यात्कश्चरेत्कष्टः कष्ठः कस्थश्च कश्चलेत् । क≍खनेत्क≍ करोति स्म क≍ पठेत्क≍फलेत् वा ।।१०।।
कश्श्वशुरः कः श्वशुरः कस्स्वरः कः स्ववरः । कः फलेत कः शयिता कोऽत्र योधः क उत्तमः ।।११।।
देवा एते भो इह स्वदेवा यान्ति [1]भगो व्रज । [2]सुपूः सुदूरात्रिरत्र वायुर्याति पूनर्न हि ।।१२।।
पुनरेति स यातीह एष याति कः ईश्वरः । ज्योतीरूपं तव च्छत्रं म्लेच्छधीश्छिद्रमाच्छिदत् ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संधिसिद्धरूपकथनं नाम पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५०।।

क्रुङ्ङास्ते (क्रुङ्+आस्ते)। सुगणिह (सुगण्+इह)। भवांश्चरन् (भवान्+चरन्)। भवांश्छात्रो (भवान्+छात्रः)। भवांष्टीका (भवान्+टीका)। भवांष्ठकः (भवान्+ठकः)। भवांस्तीर्थम् (भवान्+तीर्थम्)। भवान्स्थेयान् (भवान्+स्थेयान्)। भवांल्लेखा (भवान्+लेखा)। भवाञ्जयः (भवान्+जयः)। भवाञ्छेते (भवान्+शेते)। भवाञ्च्शेते (भवान्+शेते)। भवाञ्शेते (भवान्+शेते)। भवाण्डीनः (भवान्+डीनः)। त्वम्भर्ता (त्वम्+भर्ता)। त्वङ्करिष्यादिः (त्वम्+करिष्यादिः)। इत्यादि ।।६-९।। अब विसर्ग-संधि के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए। कश्छिन्द्यात् (कः+छिन्यात्), कश्चरेत् (कः+चरेत्), कष्टः, कष्ठः, कस्थः (कः+स्थः), कश्चलेत् (कः+चलेत्), क ≍ खनेत् (कः+खनेत्), क ≍ करोतिस्म (कः+करोतिस्म), क ≍ पठेत्, (कः+पठेत्) क ≍ फलेत् (कः+फलेत्), कश्श्वशुरः (कः+श्वशुरः), कःश्वशुरः (कः+श्वशुरः), कस्स्वरः (कः+स्वरः), कः स्ववरः (कः+स्स्ववरः), कः फलेत्, कः शयिता, कोऽत्र योधः (कः+अत्र+योधः), क उत्तमः (कः+उत्तमः) देवा एते (देवा+एते), भो इह स्व देवा यान्ति (भो+इह+स्वदेवाः+यान्ति)। भगोव्रज (भगः+व्रज), सुपूः (सु+पूर) सुदूरात्रिरत्र (सुदू+रात्रिः+अत्र), वायुर्याति (वायुः+याति), पुनर्नहि (पुनः+नहि), पुनरेति (पुनः+एति), सः यातीह (सः+याति+इह), एष याति (एषः+याति), क ईश्वरः (कः+ईश्वरः), ज्योतीरूपं (ज्योतिः+रूपम्), तवच्छत्रम् (तव+छत्रम्) म्लेच्छधीश्छिद्रमाच्छिदत् (म्लेच्छधीः+छिद्रम्+आच्छिदत्) ।।१०-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में संधिसिद्धिरूप-कथन नामक तीन सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।।३५०।।

---

१ क. ङ. °गोऽनुजः सु°। २ ख. ग. सुपीः स्नहरग्निर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सुब्विभक्तिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच

[1]विभक्तिसिद्धरूपं च कात्यायन वदामि ते । द्वे विभक्ती सुप्तिङश्च सुपः सप्त विभक्तयः ।।१।।
सु औ जसिति प्रथमा अमौट्शसो द्वितीया (यिका) । टा भ्यां भिसिति तृतीया ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थ्यपि ।।२।।
ङसिभ्यांभ्यसः पञ्चमी स्यान्ङसोसामिति षष्ठ्यपि । ङिओस्सुबिति सप्तमी स्यात्स्युः प्रातिपदिकात्पराः ।।३।।
द्विविधं प्रातिपदिकं ह्यजन्तं च हलन्तकम् । प्रत्येकं त्रिविधं तत्स्यात्पुमान्स्त्री च नपुंसकम् ।।४।।
दृश्यन्ते नायकास्तेषामनुक्तानां च वीर्यतः । वृक्षः सर्वोऽथ पूर्वश्च प्रथमश्च द्वितीयकः ।।५।।
तृतीयः खड्गपा वह्निः सखा पतिरहर्पतिः । पटुर्ना ग्रामणीन्द्रश्च खलपूर्मित्रभूः स्वभूः ।।६।।
सुश्रीः सुधीः पिता भ्राता ना कर्ता क्रोष्टुनप्तृकौ । सुरा रा गौस्तथा द्यौर्ग्लौः स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ।।७।।
सुवाक्त्वक्पृषत्सम्राड्जन्मभाक्च सुराडपि । आपो मरुद्भवन्दीव्यन्भवांश्च मघवान्पिबन् ।।८।।
भगवानघवानर्वा वह्निमत्सर्ववित्सुपृत्[2] । [3]सुसीमा कुण्डी राजा च श्वा युवा मघवा तथा ।।९।।
पूषा सुकर्मा यज्वा च [4]सुवर्मा च सुधर्मणा । अर्यमा वृत्रहा पन्थाः [5]सुककुदादिपञ्च च ।।१०।।

अध्याय ३५१

सुब्विभक्तिसिद्ध-रूप

स्कन्द बोले–कात्यायन! अब मैं तुम्हारे सम्मुख विभक्ति-सिद्धरूपों का वर्णन करता हूँ। विभक्तियाँ दो हैं–'सुप् और तिङ्'। 'सुप्' विभक्तियाँ सात हैं। 'सु और जस्'–यह प्रथमा विभक्ति है। 'अम् औट् शस्' यह द्वितीया, 'टा भ्याम् भिस्'–यह तृतीया, 'ङे, भ्याम्, भ्यस्'–यह चतुर्थी, 'ङसि भ्याम् भ्यस्' यह पञ्चमी, 'ङस् ओस् आम्'–यह षष्ठी तथा 'ङि ओस् सुप्'– यह सप्तमी विभक्ति है। ये सातों विभक्तियाँ प्रातिपदिक संज्ञावाले शब्दों से परे प्रयुक्त होती हैं ।।१-३।। प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं–अजन्त और हलन्त। प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते हैं–पुँल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। इनमें से जिसके विषय में नहीं कहा गया है उनके भी प्रतिनिधि शब्द होते हैं, जैसे–वृक्षः, सर्वः, पूर्वः, प्रथमः, द्वितीयकः, तृतीयः, खड्गपा, वह्निः, सखा, पतिः, अहर्पतिः, पटुः, ना, ग्रामणीः, इन्द्रः, खलपूः, मित्रभूः, स्वभूः, सुश्रीः, सुधीः, पिता, भ्राता, ना, कर्ता, क्रोष्टा, नप्ता, सुरः, रा, गौः, द्यौः, ग्लौः–यह सब स्वरान्त पुँल्लिंग शब्द हैं ।।४-७।। सुवाक्, त्वक्, पृषत्, सम्राट्, जन्म, भाक्, सुराट्, आपः, मरुत्, भवन्, दीव्यन्, भवान्, मघवान्, पिबन्, भगवान्, अघवान्, अर्वा, वह्निमत्, सर्ववित्, सुपृत्, सुसीमा, कुण्डी, राजा, श्वा, युवा, मघवा, पूषा, सुकर्मा, यज्वा, सुवर्मा, सुधर्मा, अर्यमा, वृत्रहा, पन्थाः, सुककुद्, आदि, पञ्च, सुगौः, सुराः, सुपूः, चन्द्रमाः,

---

१ ख. ग. °भक्तिं सिद्धरूपां च। २ क. ख. ग. °त्सुपः। सु°। ३ क. ङ. सुसमिक्षिणी रा°। ख. ग. सुसमीकुन्तिरा°। ४ क. ङ. °र्मा वसु°। ५ क. ङ. सुकपत्सुपपञ्च। ख. ग. सुकहकादिकं च कः। प्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रशान्सुतांश्च पञ्चाऽऽद्याः सुगौः सुराः सुपूरपि । चन्द्रमाः सुवचाः श्रेयान्विद्वांश्चोशनसा सह ।।११।।
पेचिवान्गौरनड्वान्गोधुङ्मित्रद्रुहोऽश्वलिट् । स्त्रियां जाया जरा बाला एडका सह वृद्धया ।।१२।।
([1]क्षत्रिया [2]बहुराजा च बहुदासाऽर्श्कबालकाः । माया कौमुदगन्ध्या च सर्वा पूर्वा सहान्यथा) ।।१३।।
द्वितीया च तृतीया च बुद्धिः स्त्री श्रीर्नदी सुधीः । भवन्ती चैव दीव्यन्ती भाती भान्ती च यान्त्यपि ।।१४।।
शृण्वती तुदती कर्त्री तुदन्ती कुर्वती मही । रुन्धती क्रीडन्ती दान्ती पालयन्ती सुराण्यपि(?) ।।१५।।
गौरी पुत्रवती नौश्च [3]वधूर्देवतया भुवा । तिस्रो द्वे कति वर्षाभूः स्वसा माता वरा च गौः ।।१६।।
नौर्वाक्त्वक्प्राच्यवाचीति तिरश्ची समुदीच्यपि । शरद्विद्युत्सरिद्योषिदग्निवित्सस्यदा [4]दृश(ष)त्[5] ।।१७।।
यैषा सा वेदवित्संविद्बह्वी राज्ञी त्वया मया । सीमा पञ्चादयो राजा धूः पूश्चैव दिशा गिरा ।।१८।।
चतस्रो विदुषी चैव केयं दिक् [6]दृक्च तादृशी । असौ स्त्रियां नायकाश्च नायकाश्च नपुंसके ।।१९।।
कुण्डं सर्वं सोमपं च दधि वारि खलप्वथ[7] । मधु त्रपु कर्तृ भर्तृ अतिभर्तृ पयः पुरः ।।२०।।
प्राक्प्रत्यक्च तिर्यगुदग्जगज्जाग्रत्तथा स(श)कृत् । सुसंपच्च सुदण्डीह अहः किं चेदमित्यपि ।।२१।।
षट् सर्पिः श्रेयश्चत्वारि अदोऽन्ये हीदृशाः परे । एतेभ्यः प्रथमादयश्च स्युः प्रातिपदिकात्पराः ।।२२।।
धातुप्रत्ययहीनं यत्स्यात्प्रातिपदिकं तु तत् । प्रातिपदिकात्स्वलिङ्गार्थवचने प्रथमा भवेत् ।।२३।।
संबोधने च प्रथमा उक्ते कर्मणि कर्तरि । कर्म यत्क्रियते तत्स्याद्द्वितीया कर्मणि स्मृता ।।२४।।

सुवचाः, श्रेयान्, विद्वान्, उशनाः, पेचिवान्, गौः, अनड्वान्, गोधुक्, मित्रद्रुह, अश्वलिट्–ये सब पुँल्लिग शब्द हैं। स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं–जाया, जरा, बाला, एडका, वृद्धा, क्षत्रिया, बहुराजा, बहुदासा, अर्कबालका, माया, कौमुदगन्ध्या, सर्वा, पूर्वा, द्वितीया, तृतीया, बुद्धिः, स्त्री, श्रीः, नदी, सुधीः, भवन्ती, दीव्यन्ती, भाती, भान्ती और यान्ती। शृण्वती, तुदती, कर्त्री, तुदन्ती, कुर्वती, मही, रुन्धती, क्रीडन्ती, दान्ती, पालयन्ती, सुराणी, गौरी, पुत्रवती, नौः, वधूः, देवता, भूः, तिस्र, द्वे, कति, वर्षाभूः, स्वसा, माता, वरा, गौः, नौः, वाक्, त्वक्, प्राची, अवाचीः, तिरश्ची, समुदीची, शरद्, विद्युत्, सरित्, योषित्, अग्निवित्, सस्यदा, दृषत्, या, एषा, सा, वेदवित्, संविद्, बह्वी, राज्ञी, त्वया, मया, सीमा, राजा, धूः, पूः, दिशा, गिरा, चतस्रः, विदुषी, का, इयं, दिक्, तादृशी ।।८–१९।। नपुंसकलिंग शब्द हैं–कुण्ड, सर्व, सोमप्, दधि, वारि, खलपू, मधु, त्रपु, कर्तृ, भर्तृ, अतिभर्तृ, पयः, पुरः, प्राक्, प्रत्यक्, तिर्यक्, उदक्, जगत्, जाग्रत्, सकृत्, सुसम्पत्, सुदण्डी, अहः, किम्, इदम्, षट्, सर्पिः, श्रेयः, चत्वारि और अदस्। इन प्रातिपदकों के परे प्रथमा इत्यादि विभक्तियाँ रहा करती हैं ।।२०–२२।। प्रातिपदिक उसे कहते हैं जो धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से रहित अर्थवान् शब्द है। प्रातिपदिक से प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गमात्राधिक्य और वचनमात्र का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। सम्बोधन में तथा उक्त कर्म और कर्त्ता में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जो किया जाता है, उसकी 'कर्म' संज्ञा है। कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जिसकी सहायता से कर्म किया जाता है, उसे 'करण' कहते हैं।

---

१ 'क्षत्रिया'''सहान्यथा' नास्ति छ. पुस्तके। २ क. ङ. बहवो यावद्बहूदामार्थवाकुला। मा°। ३ ख. ग. वसुर्देवगुरुर्भवा। ४ क. ङ. भृशत्। ५ क. ङ. °त्। योषा सा वेदवित्सिद्धिर्हूहूराजावदाम°। ६ ख. ग. षट् च। ७ ख. ग. खलं पृथु। म°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रियते येन करणं कर्ता यश्च करोति सः । अनुक्ते तिङ्कृत्तद्धितैस्तृतीयाकरणे भवेत् ।।२५।।
कारके कर्तरि च सा सम्प्रदाने चतुर्थ्यपि । यस्मै दित्सा (त्सां) धारयते सम्प्रदानं तदीरितम् ।।२६।।
अपादानं यतोऽपैति आदत्ते च भयं यतः । अपादाने पञ्चमी स्यात्स्वस्वाम्यादौ च षष्ठ्यपि ।।२७।।
आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी । एकार्थे चैकवचनं द्वयर्थे द्विवचनं भवेत् ।।२८।।
बहुषु बहुवचनं सिद्धरूपाण्यथो वदे । वृक्षः सूर्योऽम्बुवाहोऽर्को हे रवे हे द्विजातयः ।।२९।।
विप्रौ गजान्महेन्द्रेण [1]यमाभ्यामनिलैः कृतम् । रामाय मुनिवर्याभ्यां केभ्यो धर्माद्धरौ रतिः ।।३०।।
शराभ्यां पुस्तकेभ्यश्च अर्थस्येश्वरयोर्गतिः । बालानां सज्जने प्र तिर्हंसयोः कमलेषु च ।।३१।।
एवं काममहेशाद्याः शब्दा ज्ञेयाश्च वृक्षवत् । सर्वे विश्वे च सर्वस्मै सर्वस्मात्कतरो मतः ।।३२।।
सर्वेषां खं[2] विश्वस्मिञ्शेषं रूपं च वृक्षवत् । एवं चोभयकतरकतमान्यतरादयः ।।३३।।
पूर्वे पूर्वाश्च पूर्वस्मै [3]पूर्वस्मात्सुसमागतः । पूर्वे बुद्धिश्च पूर्वस्मिञ्शेषरूपं तु सर्ववत् ।।३४।।

तथा जो कार्य करता है, उसे 'कर्त्ता' कहते हैं। तिङ्, कृत्, तद्धित, प्रत्ययों और समास से अनुक्त कर्त्ता में और करण में भी तृतीया विभक्ति होती है ।।२३-२५।। कर्त्ता कारक में भी तृतीया का प्रयोग होता है। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। जिसे कुछ देने की इच्छा होती है, उसे सम्प्रदान कहा जाता है। जिससे कुछ दूर होना है ग्रहण किया अथवा जिससे भय होता है उसे अपादान कहते हैं। इसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। स्वस्वामिभाव में षष्ठी विभक्ति होती है। आधार को अधिकरण कहते हैं जिसमें सप्तमी विभक्ति होती है। एक के अर्थ में एकवचन का और दो के अर्थ में द्विवचन का प्रयोग होना चाहिए ।।२६-२८।। इसी प्रकार बहुतों में बहुवचन का प्रयोग होता है। अब मैं उनके सिद्धरूपों को बताऊँगा। ये शब्द इस प्रकार से बनते हैं-(प्रथमा एकवचन) वृक्षः, सूर्यः, अम्बुवाहः, अर्कः, (सम्बोधन एकवचन) हे रवे, (सम्बोधन बहुवचन) हे द्विजातयः। (प्रथमा और द्वितीया द्विवचन) विप्रौ, (द्वितीया बहुवचन) गजान्, (तृतीया एकवचन) महेन्द्रेण, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) यमाभ्याम्, (तृतीया द्विवचन) अनिलैः, (चतुर्थी एकवचन) रामाय, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) मुनिवर्याभ्याम्, (चतुर्थी, पंचमी बहुवचन) केभ्यः (पंचमी एकवचन) धर्मात्, (सप्तमी एकवचन) हरौ, (प्रथमा एकवचन) रतिः, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) शराभ्याम्, (चतुर्थी, पंचमी बहुवचन) पुस्तकेभ्यः, (षष्ठी एकवचन) अर्थस्य, (षष्ठी, सप्तमी द्विवचन) ईश्वरयोः, (प्रथमा एकवचन) गीतः (षष्ठी बहुवचन) बालानाम्, (सप्तमी एकवचन) सज्जने, (प्रथमा एकवचन) प्रीतिः, (षष्ठी, सप्तमी द्विवचन) हंसयोः, (सप्तमी बहुवचन) कमलेषु। इसी प्रकार वृक्ष के समान काम और महेश इत्यादि शब्दों को भी जानना चाहिए ।।२९-३१$\frac{1}{2}$।। 'सर्व' शब्द के प्रथमा बहुवचन, चतुर्थी एकवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी बहुवचन में क्रमशः ये रूप होते हैं-सर्वे, सर्वस्मै, सर्वस्मात्, सर्वेषाम्। कतरत् शब्द का प्रथमा एकवचन में कतरः रूप होता है। ख शब्द का प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में खम् रूप होता है। विश्व शब्द का प्रथमा बहुवचन तथा सप्तमी एकवचन में क्रमशः रूप होते हैं-विश्वे और विश्वस्मिन्। इनके शेष रूप वृक्ष के समान होते हैं। इसी प्रकार उभय कतरत्, कतमः, अन्यतर इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। पूर्व शब्द के प्रथमा बहुवचन में दो रूप होते हैं-पूर्वे और पूर्वाः। पूर्व शब्द के चतुर्थी और पंचमी में क्रमशः पूर्वस्मै और पूर्वस्मात् रूप होते हैं। सप्तमी एकवचन में पूर्वस्मिन् रूप होता है और शेष रूप सर्वशब्द के समान होते हैं ।।३२-३४।।

---

१ क. ङ. °मनशैः कृ°। २ ख. सट्। ३ ख. ग. °स्मात्स्वात्समा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं परावराद्याश्च दक्षिणोत्तरकान्तराः । अपराश्चाधरो नेमाः प्रथमाः प्रथमेऽर्कवत् ।।३५।।
एवं चरमास्तयान्ता अल्पार्धा नेम आदयः(?) । द्वितीयस्मै द्वितीयाय द्वितीयस्माद्वितीयकात् ।।३६।।
द्वितीयस्मिन्द्वितीये च तृतीयश्च तथाऽर्कवत् । सोमपाः सोमपौ ज्ञेयौ सोमपाः सोमपां व्रज ।।३७।।
कीलालपौ सोमपश्च सोमपात्सोमपे दद । सोमपाभ्यां सोमपाभ्यः सोमपः सोमपौ[1] कुलम् ।।३८।।
एवं कीलालपाद्याः स्युः कविरग्निस्तथा[2]ऽरयः । हे कवे कविमग्नी[3] तान्हरीन्सात्यकिना हृतम् ।।३९।।
रविभ्यां रविभिर्देहि वह्नये यः समागतः । [4]अग्नेरग्न्योस्तथाऽग्नीनां कवौ कव्योः कविष्वथ ।।४०।।
एवं सुसृतिरभ्रान्तिः सुकीर्तिः सुधृतिस्तथा । सखा सखायौ सखायः, हे सखे व्रज सत्पतिम् ।।४१।।
सखायं च सखायौ च सखीन्सख्याऽऽगतो दद । सख्ये सख्युश्च सख्युश्च सख्योः शेषः कवेरिव ।।४२।।
पत्या पत्ये च पत्युश्च पत्युः पत्योस्तथाऽग्निवत् । द्वौ द्वौ द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वित्वाद्यर्थे द्वयोर्द्वयोः ।।४३।।

इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, कान्तर, अपर, अधर, शब्दों के रूप भी होते हैं। प्रथम, चरम, अल्प और अर्ध शब्दों के रूप अर्कवत् होते हैं। द्वितीय शब्द के चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी में क्रमशः दो-दो रूप चलते हैं–द्वितीयस्मै द्वितीयाय, द्वितीयस्मात्, द्वितीयकात्, द्वितीयस्मिन्, द्वितीये। तृतीय शब्द के रूप अर्क के समान चलते हैं। सोमपा का प्रथमा एकवचन और बहुवचन में सोमपाः, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में सोमपौ, द्वितीया एकवचन में सोमपाम्, द्वितीया बहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एक वचन में सोमपः रूप होता है। पंचमी एकवचन में कहीं-कहीं सोमपात् रूप भी होता है। चतुर्थी एकवचन में सोमपे, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में 'सोमपाभ्याम्' तथा चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में 'सोमपाभ्यः रूप होता है ।।३५-३८।। इसी प्रकार कीलालपा शब्द के रूप भी हुआ करते हैं। कवि, अग्नि तथा अरि के रूप एक समान हुआ करते हैं। कवि का सम्बोधन के एकवचन में हे कवे, सप्तमी के एकवचन में कवौ, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में काव्योः, सप्तमी के बहुवचन में कविषु रूप होता है। रवि शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में रविभ्याम् तथा तृतीया के बहुवचन में रविभिः रूप होता है। वह्नि शब्द का चतुर्थी एकवचन में वह्नये रूप होता है। अग्नि शब्द का षष्ठी विभक्ति में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः यह रूप होते हैं–अग्नेः, अग्नयोः, अग्नीनाम्। कवौ, कव्योः, कविषु। इसी प्रकार सुसृति, अभ्रान्ति, सुकीर्ति और सुधृति आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। यहाँ इनका प्रथमा का एकवचनान्त रूप दिया गया है। यथा–सुसृतिः, अभ्रान्तिः, सुकीर्तिः, सुधृतिः। अब सखि शब्द के रूप दिये जाते हैं–सखा, सखायौ, सखायः। ये प्रथमा विभक्ति के सभी वचनों के रूप हैं। सम्बोधन के एकवचन में रूप है–हे सखे। जैसे–'हे सखे! सत्पतिं व्रज' अर्थात् हे मित्र! तुम अच्छे स्वामी के पास जाओ ।।३९-४१।। द्वितीया के सभी वचनों के रूप हैं–सखायम्, सखायौ, सखीन्। तृतीया एकवचन में उसका रूप सख्या, चतुर्थी एकवचन में सख्ये, पंचमी और षष्ठी के एकवचन में सख्युः और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में सख्योः रूप होता है। शेष रूप कवि के समान होते हैं। पति शब्द के तृतीया एकवचन में पत्या, चतुर्थी एकवचन में पत्ये, पंचमी और षष्ठी एकवचन में पत्युः, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में पत्योः तथा शेष रूप अग्नि के समान होते हैं। द्वौ शब्द के प्रथमा आदि विभक्तियों में इस प्रकार रूप होते हैं। द्वौ; द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः और द्वयोः। त्रि शब्द के पुँल्लिग में सभी विभक्तियों में क्रमशः ये रूप

---

१ ख. ग. °मपां धनम्। २ क. ख. ग. °था वयः। ३ ख. ग. °ग्नीस्था हरीनस्मान्विषाकृत°। ४ ख. ग. असुर°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रयस्त्रींश्च त्रिभिस्त्रिभ्यस्त्रयाणां च त्रिषु क्रमात् । कविवत्कति कतीति शेषं बहुवचनं स्मृतम् ।।४४।।
नीर्नियौ च नियो हे नीः, नियं नियौ नियो निया । नीभ्यां नीभिर्निये नीभ्यो नियां नियि नियोस्तथा ।।४५।।
सुश्रीः सुधीप्रभृतयो ग्रामणीः पूजयेद्धरिम् । ग्रामण्यौ ग्रामण्यो ग्रामण्यं ग्रामण्या गामणीभिः ।।४६।।
ग्रामण्योर्ग्रामण्यामेवं सेनानीप्रमुखाः [1]सुभूः । सुभुवौ च स्वयंभुवः स्वयंभुवं स्वयंभुवः ।।४७।।
स्वयंभुवा स्वयंभुवि एवं प्रतिभुवादयः । खलपूः खलप्वौ श्रेष्ठौ खलप्वं च खलप्वि च ।।४८।।
[2]एवं शरपूमुखाः स्युः क्रोष्टा क्रोष्टार ईरिताः । क्रोष्टूंश्च क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा क्रोष्टूनां क्रोष्टरीदृशम् ।।४९।।
पिता पितरौ पितरः, हे पितः पितरौ शुभौ । पितृन्पितुः पितुः पित्रोः पितॄणां पितरीदृशम् ।।५०।।
([2]एवं भ्राता च जमातृमुखा नॄणां नॄणां तथा । कर्ता कर्तारौ कर्तॄंश्च कर्तॄणां कर्तरीहशम् ।।५१।।

होते हैं–त्रयः त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम् और त्रिषु। कति शब्द का रूप भी कवि के समान चलता है। और शेष रूप बहुवचन में चलते हैं ।।४२-४४।। 'नी' शब्द के प्रथमा विभक्ति के सभी वचनों में ये रूप होते हैं–नीः, नियौ, नियः, सम्बोधन के एकवचन में इसका रूप होगा हे नीः, द्वितीया के सभी वचनों में इसके रूप होते हैं–नियं, नियौ, नियः। तृतीया के सभी वचनों में रूप हैं–निया, नीभ्यां, नीभिः। चतुर्थी के एकवचन तथा बहुवचन में उसके रूप हैं–निये और नीभ्यः। सप्तमी एकवचन में नियां और नियि तथा द्विवचन में नियोः रूप होता है। सुश्रीः और सुधीः इत्यादि रूप नीः के समान होते हैं। ग्रामणीः शब्द के प्रथमा के सभी वचनों में रूप इस प्रकार होते हैं–ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः। जैसे ग्रामणीः (गाँव का मुखिया) विष्णु का पूजन करे। द्वितीया के एकवचन में इसका रूप होता है ग्रामण्यम्। तृतीया के एकवचन और बहुवचन में इसके रूप क्रमशः ग्रामण्या और ग्रामणीभिः होते हैं ।।४५-४६।। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ग्रामण्योः तथा सप्तमी के एकवचन में उसका रूप 'ग्रामण्याम्' होता है। इसी प्रकार सेनानी इत्यादि शब्दों के रूप भी चलते हैं। सुभू शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में सुभूः और सुभुवौ रूप होते हैं। स्वयंभू के प्रथमा बहुवचन में स्वयंभुवः, द्वितीया के एकवचन और बहुवचन में स्वयंभुवम् और स्वयंभुवः, तृतीया के एकवचन में स्वयंभुवा, सप्तमी के एकवचन में स्वयंभुवि। इसी प्रकार प्रतिभू इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं। खलपू के प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में रूप होते हैं खलपूः और खलप्वौ, द्वितीया के एकवचन में खलप्वम् और सप्तमी के एकवचन के खलप्वि रूप होते हैं ।।४७-४८।। इसी प्रकार 'शरपू' आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। 'क्रोष्टु' शब्द के क्रमशः पाँच रूप इस प्रकार होते हैं–क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ। द्वितीया के बहुवचन में 'क्रोष्टून्'–यह रूप बनता है। तृतीया आदि के स्वरादि प्रत्ययों में दो-दो रूप चलते हैं। एक 'क्रोष्टु' शब्द के, दूसरे 'क्रोष्ट्र' शब्द के। यथा–क्रोष्टुना, क्रोष्ट्रा; क्रोष्टवे, क्रोष्ट्रे; क्रोष्टोः क्रोष्टुः इत्यादि। षष्ठी के बहुवचन में 'क्रोष्टूनाम्' यह एक ही रूप होता है। सप्तमी के एकवचन में क्रोष्टौ, क्रोष्टरि–ये रूप होते हैं। हलादि विभक्तियों में इसके रूप 'शम्भु' आदि शब्दों के समान होते हैं। 'पितृ' शब्द के रूप–१. पिता, पितरौ, पितरः। सम्बोधन में हे पितः। हे पितरौ। हे पितरः! २. पितरम्, पितरौ, पितॄन्। ३. पित्रा, पितृभ्यां, पितृभिः। ४. पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः। ५. पितुः पितृभ्यां, पितृभ्यः। ६. पितुः पित्रोः, पितॄणाम्। ७. पितरि, पित्रोः, पितृषु। इसी प्रकार 'भ्रातृ' और 'जामातृ' आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। भ्राताः, भ्रातरौ, भ्रातरः। जामाता, जामातरौ, जामातरः इत्यादि। 'नृ' शब्द के रूप 'पितृ' शब्द के समान होते हैं। केवल षष्ठी के बहुवचन में उसके नॄणाम्, नृणाम्–ये दो रूप होते हैं। कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तारम्, कर्तारौ। द्वितीया के बहुवचन में कर्तॄन्, षष्ठी के बहुवचन में कर्तॄणाम् और सप्तमी के एकवचन में 'कर्तरि' रूप होते हैं। शेष रूप 'पितृ' शब्द के समान

---

१ क. ख. ग. स्वभूः। २ क. ङ. एव सुलूमु°। २ 'एवं'''सुराय्यपि' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पितृवच्चैवमुद्गाता स्वसा नप्त्रादयः स्मृताः । [1]सुराः सुरायौ सुरायः सुरायां च सुराय्यपि) ।।५२।।
गौः, गावौ गां गा गवा च गोर्गवोश्च गवां गवि । एवं द्यौर्ग्लौश्चापि तथा स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ।।५३।।
सुवाक्सुवाचौ सुवाचा सुवाग्भ्यां च सुवाक्ष्यपि । एवं दिक्प्रमुखाः प्राङ्च प्राञ्चौ प्राञ्चं च भो व्रज ।।५४।।
प्राग्भ्यां (च) प्राग्भिः प्राचां च प्राचि च प्राङ्षु प्राङ्क्ष्वपि ।
एवं ह्युदङ्ङुदीची वा सम्यङ्प्रत्यक्समीच्यपि ।।५५।।
तिर्यङ् तिरश्च सध्यङ् च विश्व (ष्व) द्यङ्पूर्ववत्स्मृताः । अदद्यङ्ङदमुयङ् स्यात्तथाऽमुमुयङीरितः ।।५६।।
अदद्यञ्चो ह्यमुद्री च अदद्यग्भ्यां च पूर्ववत् । तत्त्वतृट् तत्त्वतृषौ च तत्त्वत्ड्भ्यां समागतः ।।५७।।
तत्त्वतृषि, तत्त्वतृट्सु एवं काष्ठतडादयः । भिषग्भिषग्भ्यां भिषजि जन्मभागादयस्तथा ।।५८।।
मरुत्, मरुद्भ्यां मरुति एवं शत्रुजिदादयः । भवान्भवन्तौ भवतां भवंश्चैव भवन्त्यपि ।।५९।।

जानने चाहिए ।।४९-५१।। 'पितृ' के समान उद्गातृ, स्वसृ और नप्तृ इत्यादि शब्द भी माने गये हैं। 'सुरै' शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में रूप हैं–सुराः, सुरायौ, सुरायः। बहुवचन में 'सुरायाम्' और सप्तमी एकवचन में सुरायि। गो शब्द के प्रथमा एकवचन में गौः, द्विवचन में गावौ, द्वितीया एकवचन में गाम् और बहुवचन में गाः, तृतीया एकवचन में गवा; चतुर्थी और पंचमी एकवचन में गोः, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचनों में गवोः, षष्ठी के बहुवचन में गवाम् और सप्तमी के एकवचन में 'गवि' रूप होता है। इसी प्रकार द्यौः और ग्लौः इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। इस प्रकार स्वरान्त पुँल्लिग शब्दों के रूपों का वर्णन किया गया। 'सुवाक्' शब्द का प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में सुवाक्, सुवाचौ, तृतीया के एकवचन में सुवाचा, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में सुवाग्भ्यां और सप्तमी बहुवचन में सुवाक्षु रूप होता है। इसी प्रकार दिक् आदि शब्दों के रूप भी चलते हैं। प्राञ्च् शब्द के प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में प्राङ् और प्राञ्चौ; द्वितीया के एकवचन में प्राञ्चम्; तृतीया, चतुर्थी और पंचमी में प्राग्भ्यां;, तृतीया बहुवचन में प्राग्भिः, षष्ठी बहुवचन में प्राचाम्, सप्तमी एकवचन में प्राचि तथा सप्तमी बहुवचन मे प्राङ्षु और प्राङ्क्षु दो रूप होते हैं। इसी प्रकार उदञ्च् और उदीची तथा सम्यञ्च्; प्रत्यञ्च् और समीची के रूप भी होते हैं ।।५२-५५।। तिर्यञ्च् शब्द के प्रथमा एकवचन में तिर्यङ्; द्वितीया बहुवचन; पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में तिरश्चः रूप होते हैं। इसी प्रकार सध्यञ्च्, विश्वञ्च् आदि शब्द के रूप भी माने गये हैं। अदद्यञ्च्, अदमुद्यञ्च्, अमुमुयञ्च आदि रूप भी एक समान बताये गये हैं। अदद्यञ्च् और अदद्यग्भ्याम् रूप भी इसी प्रकार बनते हैं। तत्त्वतृष् के प्रथमा एकवचन और द्विवचन में तत्त्वतृट् और तत्त्वतृषौ, तृतीया; चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में तत्त्वतृड्भ्याम्, सप्तमी एकवचन में तत्त्वतृषि और सप्तमी बहुवचन में तत्त्वतृट्सु रूप होते हैं। इसी प्रकार काष्ठतृट् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। भिषग् के प्रथमा एकवचन में भिषक्, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में भिषग्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में 'भिषजि' रूप होता है। इसी प्रकार जन्मभाक् इत्यादि रूप भी होते हैं। मरुत् शब्द के प्रथमा एकवचन में मरुत्, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में मरुद्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में मरुति रूप होते हैं। इसी प्रकार शत्रुजित् इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। भवत् शब्द के प्रथमा एकवचन में भवान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में भवन्तौ, षष्ठी-बहुवचन में भवताम्। भवत् शब्द के शतृप्रत्ययान्त रूप 'भवन्' और नपुंसक लिंग में प्रथमा द्विवचन में भवन्ती रूप होते हैं। महत् शब्द के प्रथमा एकवचन में महान्, प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में महान्तौ तथा षष्ठी बहुवचन में महताम् रूप होते हैं। इसी प्रकार भगवद् इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं ।।५६-५९ $\frac{1}{2}$।। मघवन्

---

१ 'सुराः.....सुराय्यपि' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महा महान्तौ महतामेवं भगवदादयः । एवं मघवान्मघवन्तौ अग्निमच्चाग्निमत्यपि ।।६०।।
अग्निचित्स्वेवमेवान्यद्वेद वित्तत्त्ववित्त्वपि । वेदविदामेवमन्यद्यः समस्तेन सर्ववित् ।।६१।।
राजा (च) राजानौ राज्ञः, राज्ञि राजनि (च) राजन् । यज्वा (च) यज्वानस्तद्वत्करी दण्डी च दण्डिनौ ।।६२।।
पन्थाः पन्थानौ च पथः पथिभ्यां पथि चेदृशम् । मन्था ऋभक्षाः पथ्याद्याः पञ्च पञ्च च पञ्चभिः ।।६३।।
प्रतान्प्रतानौ प्रतान्भ्यां हे प्रतांश्च सुशर्मणः । आपोऽपः, अद्भिरप्येवं प्रशांश्चैव प्रशाम्यपि ।।६४।।
कः केन सर्ववित्केषु अयं चेमे [1]इमान्नयः (?) । अनेन चाऽऽभ्याम्रेभिश्च अस्मै चैभ्यः स्वमस्य च ।।६५।।
अनयोरेषामेषु स्याच्चत्वारश्चतुरस्तथा । चतुर्णां च चतुर्ष्वस्ति सुगीः श्रेष्ठः सुगीर्ष्वपि ।।६६।।

शब्द के प्रथमा एकवचन में मघवान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में मघवन्तौ रूप होते हैं। इसी प्रकार अग्निमत् शब्द के रूप भी होते हैं। अग्निचित् के समान वेदवित् और तत्त्ववित् रूप भी होते हैं। वेदवित् के षष्ठी बहुवचन में वेदविदाम् रूप होता है। सर्ववित् शब्द के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं। राजन् शब्द के प्रथमा एकवचन में राजा, प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में राजानौ, द्वितीया बहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में राज्ञः तथा सप्तमी एकवचन में राज्ञि और राजनि रूप होते हैं। इसी प्रकार यज्वा और यज्वानः रूप भी चलते हैं। करी और दण्डी क्रमशः 'करिन्' और 'दण्डिन्' शब्द के प्रथमा एकवचन के रूप हैं। दण्डिन् शब्द का प्रथमा और द्वितीया में दण्डिनौ रूप होता है ।।६०-६२।। 'पथिन्' शब्द के प्रथमा एकवचन में पन्थाः, प्रथमा और द्वितीया में द्विवचन में पन्थानौ, प्रथमा बहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में पथः, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में पथिभ्याम् तथा सप्तमी के एकवचन में पथि रूप होता है। इसी प्रकार मन्थिन्, ऋभुक्षिन् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। पंच शब्द के प्रथमा, द्वितीया और तृतीया में क्रमशः रूप होते हैं–पंच, पंच और पञ्चभिः। प्रतान् शब्द के प्रथमा एकवचन में प्रतान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में प्रतानौ, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में प्रतन्भ्याम् तथा सम्बोधन में हे प्रतान्! रूप होते हैं। सुशर्मन् शब्द के प्रथमा बहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में सुशर्मणः रूप होता है। अप् शब्द के प्रथमा बहुवचन में आपः तथा पञ्चमी और षष्ठी बहुवचन में अपः रूप बनते हैं। तृतीया बहुवचन में अद्भिः रूप भी बनता है। किम् शब्द के पुँल्लिग में प्रथमा एकवचन में कः, तृतीया एकवचन में केन और सप्तमी बहुवचन में केषु रूप बनते हैं। इदम् शब्द के पुँल्लिग के प्रथमा एकवचन में अयम्, प्रथमा बहुवचन में इमे, द्वितीया बहुवचन में इमान्, तृतीया एकवचन में अनेन, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में आभ्याम्, तृतीया बहुवचन में एभिः, चतुर्थी एकवचन में अस्मै, चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में एभ्यः, षष्ठी एकवचन में अस्य, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में अनयोः, षष्ठी बहुवचन में एषाम् और सप्तमी बहुवचन में एषु रूप बनते हैं। चतुर् शब्द के पुँल्लिग की प्रथमा में चत्वारः, द्वितीया में चतुरः, षष्ठी में चतुर्णाम् और सप्तमी में चतुर्षु रूप बनते हैं। सुगिर् शब्द के प्रथमा एकवचन में सुगीः और सप्तमी बहुवचन में सुगीर्षु रूप होते हैं ।।६३-६६।। सुद्यौस् के प्रथमा एकवचन

---

१ ख. ग. °मानपि। अ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुद्यौः सुदिवौ सुद्युभ्यां विड्विषौ विट्सु यादृशः । यादृग्भ्यां चैव विड्भ्यां च षट् षट् षण्णां च षट्स्वपि ।।६७।।
सुवचाः सुवचसा च सुवचोभ्यामथेदृशम् । हे सुवचो हे उशनन्नुशना वोशनस्यपि ।।६८।।
पुर (रु) दंसा अनेहा हे विद्वन्विद्वांस उत्तमाः । विदुषे नमो विद्वद्भ्यां विद्वत्सु च वभूविवान् ।।६९।।
एवं च पेचिवाञ्श्रेयाञ्श्रेयांसौ श्रेयसस्तथा । असौ अमू अमी श्रेष्ठा अमुममूनिहामुना ।।७०।।
अभीभिरमुष्यै बाऽमुष्मादमुष्य वाऽमुयोस्तथा । अमीषाममुष्मिन्नित्येवं (च) गोधुग्भिरागतः ।।७१।।
गोधुक्ष्वित्येवमन्येऽपि [1]मित्रद्रुहो मित्रद्रुहा । मित्रधुग्भ्यां मित्रद्रु (ध्रु) ग्भिरेवं चित्तद्रुहादयः ।।७२।।
स्वलिट् स्वलिड्भ्यां स्वलिहि अनड्वाननडुत्सु च । अजन्ताश्च हलन्ताश्च पुंस्यथोऽ (था) थ स्त्रियां वदे ।।७३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सुब्विभक्तिसिद्धरूपकथनं नामैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५१।।

में सुद्यौः, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में सुदिवौ, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी में सुद्युभ्याम् रूप बनते हैं। विट् शब्द के प्रथमा एकवचन में विट्, प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में विषौ, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में 'विड्भ्याम्' और सप्तमी के बहुवचन में विट्सु रूप बनते हैं। यादृक् शब्द के पुँल्लिग प्रथमा बहुवचन में यादृशः तथा तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में यादृग्भ्याम् रूप बनते हैं। 'षट्' शब्द के प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी और सप्तमी में क्रमशः ये रूप होते हैं–षट्, षट्, षण्णाम् और षट्सु। सुवचस् शब्द के प्रथमा एकवचन में सुवचः, तृतीया एकवचन में सुवचसा, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में 'सुवचोभ्याम्' और सम्बोधन के बहुवचन में हे सुवचः रूप होते हैं। उशनस् शब्द के प्रथमा एकवचन में उशना, सप्तमी एकवचन में उशनसि और सम्बोधन के एकवचन में हे 'उशनन्' रूप बनते हैं ।।६७–६८।। पुरुदंसस् के तृतीया एकवचन में पुरुदंसा और अनेहस् का प्रथमा एकवचन में अनेहा रूप बनते हैं। विद्वस् शब्द के प्रथमा बहुवचन में विद्वांसः, चतुर्थी एकवचन में विदुषे, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में विद्वद्भ्याम्, सप्तमी बहुवचन में विद्वत्सु और सम्बोधन के एकवचन में हे विद्वन्! रूप होता है। इसी प्रकार बभूविस् और पेचिवस् के प्रथमा एकवचन में क्रमशः वभूविवान् और पेचिवान् तथा श्रेयस् शब्द के प्रथमा एकवचन में श्रेयान् और द्वितीया द्विवचन में श्रेयांसौ, द्वितीया बहुवचन, पञ्चमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में श्रेयसः रूप बनते हैं। अदस् (पुँल्लिग) शब्द के प्रथमा एकवचन में असौ, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में अमू, प्रथमा बहुवचन में अमी, द्वितीया एकवचन में अमुम्, द्वितीया बहुवचन में अमून्, तृतीया एकवचन में अमुना, तृतीया बहुवचन में अमीभिः, चतुर्थी एकवचन में अमुष्मै, पञ्चमी एकवचन में अमुष्मात्, षष्ठी एकवचन में अमुष्य, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में अमुयोः,षष्ठी बहुवचन में अमीषाम् और सप्तमी एकवचन में अमुष्मिन् रूप होते हैं। गोधुक् शब्द के तृतीया बहुवचन में गोधुग्भिः और सप्तमी बहुवचन में गोधुक्षु रूप होते हैं। मित्रद्रुह् शब्द के प्रथमा बहुवचन में मित्रद्रुहः, तृतीया एकवचन में मित्रद्रुहा, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में मित्रधुग्भ्याम् और तृतीया बहुवचन में मित्रधुग्भिः रूप होते हैं। इसी प्रकार चित्रद्रह् आदि के रूप भी होते हैं।।६९–७२।। स्वलिट् शब्द के प्रथमा एकवचन में स्वलिट्, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में स्वलिड्भ्याम् और सप्तमी एकवचन में स्वलिहि रूप बनते हैं। अनडुह् शब्द के प्रथमा एकवचन में अनड्वान् और सप्तमी बहुवचन में अनडुत्सु। ये अजन्त और हलन्त पुँल्लिग शब्द हैं। अब मैं अजन्त और हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के विषय में बतलाऊँगा ।।७३।।

श्री अग्निमहापुराण में सुब्विभक्तिसिद्धरूप–कथन नामक तीन सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५१।।

---

१ ख. ग. °त्रधुङ्मित्र। इष्यते। मि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच

रमा रमे रमाः शुभा रमां रमे रमास्तथा। रमया च रमाभ्यां च रमाभिः कृतमव्ययम् ।।१।।
रमायै च रमाभ्यां रमायां (या) (श्च) रमयोः शुभम्। रमाणां च रमायां च रमास्वेवं कलादयः ।।२।।
जरा जरसौ जर (रे) इति जरसश्च जरा जराम्। जरसं च जरास्वेवं सर्वा सर्वे च सर्वया ।।३।।
सर्वस्यै देहि सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वयोस्तथा। शेषं रमावद्रूपं स्याद्द्वे द्वे तिस्रश्च तिसृणाम् ।।४।।
बुद्धिर्बुद्ध्या बुद्धये च बुद्ध्यै बुद्धेश्च हे मते। [1]कविवत्स्यान्मुनीनां च नदी नद्यौ नदीं नदीः ।।५।।
नद्यानदीभिर्नद्यै च नद्यां चैव नदीषु च। कुमारी जृम्भणीत्येवं श्रीः श्रियौ च श्रियः श्रिया ।।६।।

अध्याय ३५२

स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूप

स्कन्द बोले–रमा शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में रूप होते हैं–रमा, रमे, रमाः, द्वितीया के तीनों वचनों में रूप है–रमाम्, रमे, रमाः, तृतीया के तीनों वचनों में–रमया, रमाभ्याम् रमाभिः, चतुर्थी के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः रमायै और रमाभ्याम्, षष्ठी के तीनों वचनों में रमायाः, रमयोः, रमाणाम् तथा सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में रमायाम् और रमासु रूप होते हैं। इसी प्रकार कला इत्यादि के रूप भी होते हैं ।।१-२।। जरा शब्द के प्रथमा के तीनों वचनों में जरा, जरसौ अथवा जरे और जरसः अथवा जराः रूप होते हैं। द्वितीया एकवचन में जराम् अथवा जरसम् और सप्तमी बहुवचन में जरासु रूप होते हैं। सर्व शब्द के स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः सर्वा और सर्वे, तृतीया एकवचन में सर्वया, चतुर्थी एकवचन में सर्वस्यै, पंचमी और षष्ठी एकवचन में सर्वस्याः तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में सर्वयोः रूप बनते हैं। शेष रूप रमा के समान ही होते हैं। द्वि शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया में द्वे, द्वे, त्रि शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया में तिस्रः, षष्ठी में तिसृणाम् रूप बनते हैं ।।३-४।। बुद्धि शब्द के प्रथमा एकवचन में बुद्धिः, तृतीया एकवचन में बुद्ध्या, चतुर्थी एकवचन में बुद्धये अथवा बुद्ध्यै, पंचमी और षष्ठी एकवचन में बुद्धेः रूप बनता है। मति शब्द का सम्बोधन हे मते! रूप बनता है। मति और मुनि के रूप कवि के सामन चलते हैं। नदी शब्द के प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः नदी और नद्यौ, द्वितीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नदीम् और नदीः, तृतीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नद्या और नदीभिः, चतुर्थी के एकवचन में नद्यै, सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नद्याम् और नदीषु रूप बनते हैं। इसी प्रकार कुमारी और जृम्भणी शब्दों के रूप भी चलते हैं। श्री शब्द के प्रथमा के सभी वचनों

---

१ ख. ग. °त्स्यान्मतीनां।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रियै श्रिये स्त्रीं स्त्रियं च स्त्रीश्च स्त्रियः स्त्रिया स्त्रियै । स्त्रियाः स्त्रीणां स्त्रियां च ग्रामण्यां धेन्वै च धेनवे ।।७।।
जम्बूर्जम्ब्वौ च जम्बूश्च जम्बूनां च फलं पिब । वर्षाभ्वौ च पुनर्भ्वौ च मातृर्वाऽपि च गौश्च नौः ।।८।।
वाग्वाचा वाग्भिश्च वाक्षु स्रग्भ्यां स्रजि स्रजोस्तथा । विद्वद्भ्यां चैव विद्वत्सु [1]भवती स्याद्भवन्त्यपि ।।९।।
दीव्यन्ती भाती भान्ती च तुदन्ती च तुदत्यपि । रुदती रुन्धती देवी गृह्णती चोरयन्त्यपि ।।१०।।
दृषद्दृषद्भ्यां दृषदि [2]विशेषविदुषी कृतिः । समित्समिद्भ्यां समिधि सीमा सीम्नि च सीमनि ।।११।।
दामनीभ्यां ककुद्भ्यां च केयमाभ्यां तथाऽऽसु च । गीर्भ्यां चैव गिरा गीर्षु सुभूः सुपूः पुरा पुरि ।।१२।।

में श्रीः, श्रियौ, श्रियः, तृतीया के एकवचन में श्रिया, चतुर्थी के एकवचन में श्रियै अथवा श्रिये रूप बनते हैं। स्त्री शब्द के द्वितीया एकवचन में स्त्रीम् अथवा स्त्रियम्, द्वितीया के बहुवचन में स्त्रीः अथवा स्त्रियः, तृतीया के एकवचन में स्त्रिया, चतुर्थी के एकवचन में स्त्रियै, पंचमी और षष्ठी के एकवचन में स्त्रियाः, षष्ठी के बहुवचन में स्त्रीणाम् और सप्तमी के एकवचन में स्त्रियाम् रूप होते हैं। ग्रामणी का सप्तमी एकवचन में ग्रामण्याम् रूप होता है। धेनु का चतुर्थी एकवचन में धेन्वै रूप बनता है ।।५-७।। जम्बू का प्रथमा एकवचन में तथा द्विवचन में क्रमशः जम्बूः तथा जम्ब्वौ, द्वितीया बहुवचन में जम्बूः और षष्ठी बहुवचन में जम्बूनाम् रूप बनते हैं जैसे–जम्बूनां फलं पिब (अर्थात् जामुन के फल का पान करो)। इसी प्रकार वर्षाभू तथा पुनर्भू का प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में रूप क्रमशः वर्षाभ्वौ और पुनर्भ्वौ होते हैं। मातृ शब्द का द्वितीया बहुवचन में मातृः रूप बनता है। गौ तथा नौ शब्द का प्रथमा तथा सम्बोधन के एकवचन में क्रमशः गौः तथा नौः रूप बनते हैं। वाक् शब्द का प्रथमा एकवचन में वाक्, तृतीया एकवचन में वाचा, तृतीया बहुवचन में वाग्भिः और सप्तमी बहुवचन में वाक्षु रूप बनते हैं। स्रक् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में स्रग्भ्याम्, सप्तमी एकवचन में स्रजि तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में स्रजोः रूप बनते हैं, विद्वस् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में विद्वद्भ्याम् तथा सप्तमी के बहुवचन में विद्वत्सु रूप होते हैं। उकारानुबन्ध भवत् शब्द के स्त्रीलिंग के प्रथमा एकवचन में भवती तथा ऋकारानुबन्ध भवत् शब्द का भवन्ती रूप होता है ।।८-९।। इसी प्रकार दीव्यत् शब्द के नपुंसकलिंग के प्रथमा और द्वितीया में दीव्यन्ती। इसी प्रकार भाती, भान्ती, तुदन्ती, तुदती, रुदती, रुन्धती, देवी, गृह्णती और चोरयन्ती रूप भी बनते हैं। दृषद् शब्द के प्रथमा एकवचन में दृषद्, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी में दृषद्भ्याम् और सप्तमी में दृषदि रूप बनते हैं। समित् शब्द के प्रथमा एकवचन में समित्, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में समिद्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में समिधि रूप बनते हैं। सीमन् शब्द के प्रथमा एकवचन में सीमा और सप्तमी एकवचन में सीम्नि अथवा सीमनि रूप होते हैं ।।१०-११।। दामनी शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में दामनीभ्याम्। ककुद् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में ककुद्भ्याम्। इदम् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में दामनीभ्याम्। ककुद् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में ककुद्भ्याम्। इदम् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में आभ्यां और सप्तमी के बहुवचन में आसु रूप होते हैं। गिर् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में गीर्भ्याम्, तृतीया के एकवचन में गिरा और सप्तमी के बहुवचन में गीर्षु रूप बनते हैं। सुभूः और सुपूः के प्रथमा एकवचन में क्रमशः सुभूः और सूपूः रूप होते हैं। पुर् शब्द के तृतीया एकवचन में पुरा तथा सप्तमी एकवचन में पुरि रूप होते हैं। द्यौस्

---

१ ख. ग. °तीभ्यां भवत्यपि। २ ख. ग. °शेषावि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्यौर्द्युभ्यां दिवि द्युषु (च) तादृश्या तादृशी दिशः । यादृश्यां यादृशी तद्वत्सुयचोभ्यां सुवचः स्वपि ।।
असौ [1]चामुम (मू अ) मूं चामूरमूभिरमुयाऽमुयोः ।।१३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रीलिंगशब्दसिद्धरूपकथनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५२।।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नपुंसकशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच

नपुंसके किं के कानि के कानि ततो [2]जलम् । सर्वं सर्वे च पूर्वाद्याः सोमपं सोमपानि च ।।१।।
ग्रामणि ग्रामणिनी च ग्रामणि ग्रामणीन्यपि । वारि वारिणी वारीणि वारि (री) णां वारिणीदृशम् ।।२।।

शब्द के प्रथमा एकवचन में द्यौः, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में द्युभ्याम्, सप्तमी एकवचन में दिवि और सप्तमी बहुवचन में द्युषु रूप होते हैं। तादृक् के प्रथमा एकवचन में तादृशी और तृतीया के एकवचन में तादृश्या रूप होते हैं। दिक् शब्द के प्रथमा बहुवचन का दिशः रूप है। यादृश् शब्द के प्रथमा एकवचन में यादृशी और सप्तमी एकवचन में यादृश्याम् रूप होते हैं। इसी प्रकार सुवचस् शब्द का तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में सुवचोभ्याम् और सप्तमी में सुवचःसु रूप होता है। अदस् शब्द के प्रथमा एकवचन में असौ, द्विवचन में अमू और बहुवचन में अमूः, द्वितीया के एकवचन में अमूम्, तृतीया के एकवचन में अमुया, बहुवचन में अमूभिः और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में अमुयोः रूप बनते हैं ।।१२-१३।।

श्री अग्निमहापुराण में स्त्रीलिंगशब्दसिद्धरूप-कथन नामक तीन सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५२।।

अध्याय ३५३

नपुंसकसिद्धरूप

स्कन्द बोले–नपुंसक किम् शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों के तीनों वचनों में रूप किम्, के, कानि होते हैं। इसी प्रकार जल शब्द के भी रूप होते हैं। सर्व शब्द के प्रथमा के एकवचन और द्विवचन के रूप बनते हैं सर्वम् और सर्वे। इसी प्रकार पूर्व इत्यादि शब्दों के भी रूप चलते हैं। सोमपा शब्द के प्रथमा एकवचन और बहुवचन में रूप सोमपम् और सोमपानि बनते हैं ।।१।। ग्रामणी शब्द के प्रथमा और द्वितीया के एकवचन और द्विवचन के रूप ग्रामणि और ग्रामणिनी तथा बहुवचन में ग्रामणीनि होते हैं। वारि शब्द के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के तीनों वचनों में रूप होते हैं–वारि, वारिणी, वारीणि, षष्ठी बहुवचन में इसके रूप हैं वारीणाम् और सप्तमी एकवचन में

---

१ ख. ग. चामूरमुममूरमूभिरमुयाव (मु) योः। २ ख. ग. जगत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुचये शुचिने देहि मृदुने मृदवे तथा। त्रपु त्रपुणि (णी) त्रपूणां च खलपूनि खलप्वि च ।।३।।
कर्त्रा च कर्तृणे कर्त्रे अतिर्यतिरिणां तथा। अभिन्यभिनिनी चैव सुवचांसि सुबाक्षु च ।।४।।
यद्यत्विमे तत्कर्माणि इदं चेमे त्विमानि च। ईदृक्त्वदोऽमुनी अमूनि अमुना स्यादमीषु च ।।५।।
अहमावां वयं मां वै आवामस्मान्मया कृतम्। आवाभ्यां च तथाऽस्माभिर्मह्यमस्मभ्यमेव च ।।६।।
मदावाभ्यां मदस्मच्च पुत्रोऽयं मम चाऽऽवयोः। अस्माकमपि चास्मासु त्वं युवां यूयमीजिरे ।।७।।
त्वां (च) युवां च युष्मांश्च त्वया युष्माभिरीरितम्। तुभ्यं युवाभ्यां युष्मभ्यं त्वत्, युवाभ्यां च युष्मच्च ।।८।।
तव युवयोर्युष्माकं त्वयि युष्मासु भारती। उपलक्षणमत्रैव अज्झलन्ताश्च ते स्मृताः ।।९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नपुंसकशब्दसिद्धरूपकथनं नाम
त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५३।।

वारिणि रूप बनते हैं। शुचि शब्द के चतुर्थी एकवचन में शुचये-शुचिने और मृदु के मृदुने अथवा मृदवे रूप बनते हैं। त्रपु शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में और द्विवचन में क्रमशः त्रपु और त्रगुणी रूप बनते हैं। खलपू शब्द के प्रथमा, बहुवचन में खलपूनि तथा सप्तमी एकवचन में खलप्वि रूप बनते हैं ।।२-३।। कर्तृ शब्द के तृतीया एकवचन में कर्त्रा, चतुर्थी एकवचन में कर्त्रे रूप बनता है। अतिर् शब्द के सप्तमी एकवचन में अतिरि और षष्ठी बहुवचन में अतिरिणाम् रूप बनते हैं। अभिनि शब्द के प्रथमा और द्वितीया के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः अभिनि और अभिनिनी रूप होते हैं। सुवच् शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया के बहुवचन में सुवचांसि और सप्तमी के बहुवचन में सुवाक्षु रूप होते हैं ।।४।। यत् शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया एकवचन में यत्, यत्, तत् के प्रथमा तथा द्वितीया एकवचन में तत्, कर्म के प्रथमा तथा द्वितीया के बहुवचन में कर्माणि, इदम् के प्रथमा और द्वितीया के तीनों वचनों में इदम्, इमे, इमानि, ईदृक् शब्द का प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में ईदृक्, अदस् के प्रथमा तथा द्वितीया के तीनों वचनों में अदः, अमुनी, अमूनि, तृतीया एकवचन में अमुना और सप्तमी बहुवचन में अमीषु रूप होते हैं ।।५।। अस्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में अहम्, आवाम्, वयम्, द्वितीया के तीनों वचनों में माम्, आवाम्, अस्मान्, तृतीया के तीनों वचनों में मया, आवाभ्याम्, अस्माभिः, षष्ठी के तीनों वचनों में मम, आवयोः, अस्माकम् और सप्तमी के बहुवचन में अस्मासु रूप होते हैं ।।६-७।। युष्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में त्वम्, युवाम्, यूयम्, द्वितीया के तीनों वचनों में त्वाम्, युवाम्, युष्मान्, तृतीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः त्वया और युष्माभिः, चतुर्थी के तीनों वचनों में तुभ्यम्, युवाभ्याम्, युष्मभ्यम्, पञ्चमी के तीनों वचनों में तव, युवयोः, युष्माकम्, सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः त्वयि और युष्मासु रूप होते हैं। ये उदाहरण उपलक्षण मात्र हैं। इसी प्रकार (अन्य) अजन्त और हलन्त शब्दों के रूप कहे गये हैं ।।८-९।।

श्री अग्निमहापुराण में नपुंसकशब्दसिद्धरूपकथन नामक तीन सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५३।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कारकम्

स्कन्द उवाच

कारकं संप्रवक्ष्यामि विभक्त्यर्थसमन्वितम्[1] । ग्रामोऽस्ति [2]हेमहार्केह नौमि विष्णुं श्रिया सह ।।१।।
स्वतन्त्रः कर्ता विद्यां तां कृतिनः समुपासते । हेतुकर्ता[3] लम्भयते[4] हितं वै कर्मकर्तरि ।।२।।
स्वयं भिद्यते प्राकृतधीः स्वयं च च्छिद्यते तरुः । कर्ताऽभिहित उत्तमः कर्ताऽनभिहितोऽधमः ।।३।।
[5]कर्तानभिहितो धर्मः शिष्ये व्याख्यायते यथा । कर्ता पञ्चविधः प्रोक्तः कर्म सप्तविधं शृणु।।४।।
ईप्सितं कर्म च यथा श्रद्दधाति हरिं यतिः । अनीप्सितं कर्म यथा अहिं लङ्घयते भृशम् ।।५।।
नैवेप्सितं नानीप्सितं दुग्धं संभक्षयन्रजः । भक्षयेदप्यकथितं गोपालो दोग्धि गां पयः ।।६।।
कर्तृकर्माथ गमयेच्छिष्यं ग्रामं गुरुर्यथा । कर्म चाभिहितं पूजा क्रियते वै श्रिये हरेः ।।७।।

अध्याय ३५४

कारक

स्कन्द बोले–अब मैं विभक्त्यर्थ से युक्त कारक के सम्बन्ध में बताऊँगा। इनका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है। 'ग्रामोऽस्ति' यहाँ प्रथमा विभक्ति हुई है। हे महार्क! यहाँ सम्बोधन में प्रथमा है। इह नौमि विष्णुं श्रिया सह यहाँ विष्णुं में द्वितीया हुई है ।।१।। स्वतन्त्र कर्त्ता उसे कहते हैं जो (क्रिया में) स्वतन्त्र रूप से विवक्षित रहता है, जैसे 'विद्यां तां कृतिनः समुपासते' यहाँ कृतिनः कर्त्ता है। हेतुकर्त्ता का 'चैत्रो मैत्रं लम्भयते।' कर्मकर्त्ता का उदाहरण–'स्वयं भिद्यते प्राकृतधीः' (प्राकृत बुद्धि के व्यक्ति में स्वयं भेद उत्पन्न हो जाता है) 'स्वयं च छिद्यते तरुः' (वृक्ष स्वयं काटा जाता है।) जो कर्त्ता उक्त होता है, उसे उत्तम और जो अनुक्त होता है उसे अधम कहते हैं ।।२-३।। अनुक्त कर्त्ता वहाँ पर होता है जैसे–'धर्मः शिष्ये व्याख्यायते' (शिष्य के लिए धर्म की व्याख्या की जाती है)। पाँच प्रकार का कर्त्ता कहा जा चुका है, अब सात प्रकार के कर्म के विषय में सुनो–'ईप्सितम् कर्म' (अभीष्ट को कर्म कहते हैं) जैसे–श्रद्दधाति हरिं यतिः' (यति विष्णु के प्रति श्रद्धा रखता है)। अनीप्सित कर्म जैसे–'अहिम् लङ्घयते भृशम्' (सर्प का अत्यन्त उल्लंघन करता है) ईप्सित और अनीप्सित कर्म जैसे–'दुग्धं सम्भक्षयन् रजः भक्षयेत्' (दुग्ध खाते हुए धूलि खाना चाहिए)। अकथित कर्म जैसे–'गोपालो दोग्धि गां पयः' (ग्वाला गाय से दूध दुहता है) ।।४-६।। कर्तृकर्म–जहाँ प्रयोजक कर्त्ता का प्रयोग होता है, वहाँ प्रयोज्य कर्त्ता कर्म के रूप में परिणत हो जाता है। यथा–'गुरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत्' (गुरु शिष्य को ग्राम भेजे)। यहाँ गुरु प्रयोजक कर्त्ता है, और शिष्य प्रयोज्य कर्त्ता या 'कर्मभूत कर्त्ता' है। 'अभिहित कर्म' 'श्रिये हरेः पूजा क्रियते' (लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए श्री हरि की पूजा की जाती है)। यहाँ कर्म में प्रत्यय होने से पूजा 'उक्त कर्म' है, इसी को 'अभिहित कर्म' कहते हैं। अनभिहित कर्म–जहाँ कर्त्ता में प्रत्यय

---

१ ख. ग. °म्। समोऽस्ति महाकेह। २ क. ङ. हेमहार्क्वेहमासविष्णुः श्रिः°। ३ ख. ग. °र्ता न म्रियते। ४ क. ङ. लभते। ५ ख. ग. °र्तानाभिहितो धर्मः शिष्यो व्याख्यायतेऽन्यथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]कर्मानभिहितं स्तोत्रं हरेः कुर्यात्तु सर्वदम्। करणं द्विविधं प्रोक्तं बाह्यम (मा) भ्यन्तरं तथा ।।८।।
चक्षुषा रूपं गृह्णाति वा (बा) ह्यं दात्रेण तल्लुनेत्। संप्रदानं त्रिधा प्रोक्तं प्रेरकं ब्राह्मणाय गाम् ।।९।।
नरो [2]ददाति नृपतये दासं तदनुमन्तृकम्। अनिराकर्तृकं भर्त्रे दद्यात्पुष्पाणि सज्जनः ।।१०।।
अपादानं द्विधा प्रोक्तं चलमश्वात्तु धावतः। पतितश्चाचलं ग्रामादागच्छति स वैष्णवः ।।११।।
चतुर्धा चाधिकरणं व्यापकं दध्नि वै घृतम्। तिलेषु तैलं देवार्थमौपश्लेषिकमुच्यते ।।१२।।
गृहे तिष्ठेत्कपिर्वृक्षे स्मृतं वैषयिकं यथा। जले मत्स्यो वने सिंहः स्मृतं सामीप्यकं यथा ।।१३।।

होता है, वहाँ कर्म अनभिहित हो जाता है, अतएव उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–'हरेः सर्वदं स्तोत्रं कुर्यात्' (श्री हरि की सर्वमनोरथदायिनी स्तुति करें)। करण दो प्रकार का बतलाया गया है–बाह्य और आभ्यन्तर। 'तृतीया करणे भवेत्' इस नियम के अनुसार करण में तृतीया होती है। आभ्यन्तर का उदाहरण देते हैं–'चक्षुषा रूपं गृह्णाति'। (नेत्र से रूप को ग्रहण करता है।) यहाँ नेत्र 'आभ्यन्तर करण' है, अतः इसमें तृतीया विभक्ति हुई। 'बाह्यकरण' का उदाहरण है–'दात्रेण तल्लुनेत्।' (हसुआ से उसको काटे)। यहाँ दात्र 'बाह्यकरण' है। अतः उसमें तृतीया हुई है। सम्प्रदान तीन प्रकार का बताया गया है। प्रेरक, अनुमन्तृक और अनिराकर्तृक। जो दान के लिए प्रेरित करता हो, वह 'प्रेरक' है। जो प्राप्त हुई किसी वस्तु के लिए अनुमति या अनुमोदन मात्र करता है, वह 'अनुमन्तृक' है। जो न प्रेरक है, न अनुमन्तृक है, अपितु किसी की दी हुई वस्तु को स्वीकार कर लेता है, उसका निराकरण नहीं करता, वह 'अनिराकर्तृक-सम्प्रदान' है। 'सम्प्रदाने चतुर्थी' इस नियम के अनुसार सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। तीनों सम्प्रदानों के क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं–१. 'नरो ब्राह्मणाय गां ददाति' (मनुष्य ब्राह्मण को गाय देता है)। २. 'नरो नृपतये दासं ददाति' (मनुष्य राजा को दास अर्पित करता है)। ३. 'सज्जनः भर्त्रे पुष्पाणि दद्यात्' (सज्जन पुरुष स्वामी को पुष्प दे) ।।७-१०।। अपादान दो प्रकार का होता है–'चल और अचल'। कोई भी अपादान क्यों न हो, ('अपदाने पञ्चमी स्यात्')–इस नियम के अनुसार उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। 'धावतः अश्वात् पतितः' (दौड़ते हुए घोड़े से गिरा) यहाँ चल अपादान है। 'स वैष्णवः ग्रामादायाति' (वह वैष्णव गाँव से आता है) यहाँ अचल अपादान है। अधिकरण चार प्रकार के होते हैं–अभिव्यापक, औपश्लेषिक, वैषयिक और सामीप्यक। जो तत्त्व किसी वस्तु में व्यापक हो, वह आधारभूत वस्तु 'अभिव्यापक अधिकरण' है। यथा–दध्नि घृतम्' (दही में घी है)। 'तिलेषु तैलं देवार्थम्'। (तिल में तेल है जो देवता के उपयोग में आता है)। यहाँ घी दही में और तैल तिल में व्याप्त है। अतः इनके आधारभूत दही और तिल अभिव्यापक अधिकरण हैं। अब 'औपश्लेषिक अधिकरण' बताया जाता है–'कपिर्गृहे तिष्ठेत्' 'वृक्षे च तिष्ठेत्' (बन्दर घर के ऊपर स्थित होता है और वृक्ष पर भी स्थित होता है)। कपि के आधारभूत जो गृह और वृक्ष हैं, उन पर वह सटकर बैठता है। इसीलिए वह 'औपश्लेषिक अधिकरण' माना गया है। अब वैषयिक अधिकरण बताते हैं–विषयभूत अधिकरण को 'वैषयिक' कहते हैं। यथा–'जले मत्स्यः', 'वने सिंहः' (जल में मछली, वन में सिंह)। अब सामीप्यक अधिकरण बतलाते हैं–'गंगायां घोषो वसति' (गंगा में गोशाला बसती है)। यहाँ गंगा

---

१ क. ङ. °र्माभिनिहि°। २ क. ङ. °तिर्थसूयेवासस्तदधिमन्तिकम्। अनिशकर्तृकं दात्रे दद्यात्प्राग्र्योऽपि सज्ज°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गंगायां घोषो वसति औपचारिकमीदृशम् । तृतीया वाऽथ वा षष्ठी स्मृताऽनभिहिते तथा ।।१४।।
विष्णुः सम्पूज्यते लोकैर्गन्तव्यं तेन तस्य वा । प्रथमाऽभिहितकर्तृकर्मणोः प्रणमेद्धरिम् ।।१५।।
हेतौ तृतीया चान्येन वसेद्वृक्षाय वै जलम् । चतुर्थी तादर्थ्येऽभिहिता पञ्चमी पर्युपाङ्मुखैः ।।१६।।
योगे वृष्टः परिग्रामाद्देवोऽयं बलवत्पुरा । पूर्वो ग्रामादृते विष्णोर्न मुक्तिरितरो हरेः ।।१७।।
पृथग्विनाद्यैस्तृतीया पञ्चमी च तथा भवेत् । पृथग्ग्रामाद्विहारेण विना श्रीश्च (श्रियं) श्रिया श्रियः ।।१८।।
कर्मप्रवचनीयाख्यैर्द्वितीया योगतो भवेत् । अन्वर्जुनं च योद्धारो ह्यभितो ग्राममीरितम् ।।१९।।
नमः स्वाहास्वधास्वस्तिवषडाद्यैश्चतुर्थ्यपि । नमो देवाय ते स्वस्ति तुमर्थाद्भाववाचिनः ।।२०।।
पाकाय पक्तये याति तृतीया सहयोगके । हेत्वर्थे कुत्सितेऽङ्गे सा तृतीया च विशेषणे ।।२१।।

का अर्थ है गंगा के समीप। ऐसे वाक्य औपचारिक माने जाते हैं। जहाँ मुख्यार्थ बाधित होने से उसके सम्बन्ध से युक्त अर्थान्तर की प्रतीति होती है, वहाँ 'लक्षणा' होती है। इस तरह के वाक्य प्रयोग को 'औपचारिक' कहते हैं ।। ११-१३ $\frac{१}{२}$।। अभिनिहित कर्त्ता में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। यथा–'विष्णुः सम्पूज्यते लोकैः' (लोगों द्वारा विष्णु पूजे जाते हैं) यहाँ कर्म में प्रत्यय हुआ है। अतः कर्म उक्त है और कर्त्ता अनुक्त। इसलिए अनुक्त कर्त्ता 'लोक' शब्द में तृतीया विभक्ति हुई है। 'तेन गन्तव्यम्, तस्य गन्तव्यम्' (उसको जाना चाहिए) वहाँ उपर्युक्त नियम के अनुसार तृतीया और षष्ठी–दोनों का प्रयोग हुआ है। षष्ठी का प्रयोग कृदन्त के योग में ही होता है। अभिहित कर्त्ता और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। इसलिए 'विष्णुः' में प्रथमा विभक्ति हुई है। 'भक्तः हरिं प्रणमेत्' (भक्त भगवान् को प्रणाम करे)। यहाँ अभिहित कर्त्ता 'भक्त' में प्रथमा विभक्ति हुई है और अनुक्त कर्म 'हरि' में द्वितीया विभक्ति। 'हेतु' में तृतीया विभक्ति होती है। यथा–'अन्नेन वसेत्' (अन्न के हेतु कहीं भी निवास करे)। यहाँ हेतुभूत अन्न में तृतीया विभक्ति हुई है। 'तादर्थ्य' में चतुर्थी विभक्ति कही गयी है। यथा–'वृक्षाय जलम्', (वृक्ष के लिए पानी)। यहाँ वृक्ष शब्द में 'तादर्थ्य' प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति हुई है। 'परि, उप, आङ्' आदि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा–'परिग्रामात् पुरा बलवत् वृष्टोऽयं देवः।' (गाँव से कुछ दूर हटकर दैव ने पूर्वकाल में बड़े जोर की वर्षा की थी) इस वाक्य में 'परि' के साथ योग होने के कारण 'ग्राम' शब्द में पञ्चमी विभक्ति हुई है। दिग्वाचक शब्द, अन्यार्थक शब्द तथा 'ऋते' आदि शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा–पूर्वो ग्रामात्। ऋते विष्णोः। न मुक्तिः इतरो हरेः। पृथक् और बिना आदि के योग में तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे–'पृथग् ग्रामात्' यहाँ 'पृथक्' शब्द के योग में ग्राम शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुई। और पृथग् 'विहारेण' यहाँ 'पृथक्' शब्द के योग में विहार शब्द से तृतीया विभक्ति हुई है। इसी प्रकार 'विना' शब्द के योग में भी जानना चाहिए। 'विना श्रिया'–यहाँ बिना के योग में श्री शब्द से द्वितीया और 'विना श्रियः'–यहाँ विना के योग में श्री शब्द से तृतीया और 'विना श्रियः'–यहाँ 'विना' के योग में 'श्री' शब्द से पञ्चमी हुई है। कर्मप्रवचनीय संज्ञक शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–'अन्वर्जुनं योद्धारः'–योद्धा अर्जुन के सन्निकट प्रदेश में हैं। यहाँ 'अनु' कर्मप्रवचनीय संज्ञक हैं। इसके योग में अर्जुन शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार अभितः, परितः आदि के योग में भी द्वितीया होती है। जैसे–'अभितो ग्राममीरितम्' गाँव के सब तरफ कह दिया है ।।१४-१९।। नमः, स्वाहा, स्वधा, स्वस्ति और वषट् आदि के साथ-साथ चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे–'नमो देवाय' (देवता को नमस्कार) और 'ते स्वस्ति' (तुम्हारा कल्याण हो) तुमुन् के अर्थ में भाववाचक संज्ञाओं के साथ भी चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे–'पाकाय पक्तये याति' (पकाने के लिए जाता है)। सहयोग, हेत्वर्थ, कुत्सित अंग और विशेषण के साथ भी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पिताऽगात्सह पुत्रेण काणोऽक्ष्णा गदया हरिः । अर्थेन निवसेद्भृत्यः काले भावे च सप्तमी ।।२२।।
विष्णौ नते भवेन्मुक्तिर्वसन्ते स गतो हरिम् । नृणां स्वामी नृषु स्वामी नृणामीशः सतां पतिः ।।२३।।
नृणां साक्षी नृषु साक्षी गोषु नाथो गवां पतिः । गोषु सूतो गवां सूतो राज्ञां दायादकोऽस्त्विह ।।२४।।
अन्नस्य हेतोर्वसति षष्ठी स्मृत्यर्थकर्मणि । मातुः स्मरति गोप्तारो नित्यं स्यात्कर्तृकर्मणोः ।।२५।।
अपां भेत्ता तव कृतिर्न निष्ठादिषु षष्ठ्यपि ।।२६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कारकनिरूपणं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५४।।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समासः

स्कन्द उवाच

षोढा समासं वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुनः । नित्यानित्यविभागेन लुगलोपेन च द्विधा ।।१।।
कुम्भकारश्च नित्यः स्याद्धेमकारादिकस्तथा । राज्ञः [1]पुमान्राजपुमाननित्योऽयं समासकः ।।२।।

तृतीया का प्रयोग होता है। जैसे–'पिताऽगात् सह पुत्रेण' (पुत्र के साथ पिता गया) 'काणोऽक्ष्णा' (आँख से काना) 'गदया हरिः' (गदाधारी विष्णु) और 'अर्थेन निवसेद्भृत्यः' (धन के लिए नौकर को रहना चाहिए)। काल और भाव में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे–'वसन्ते स गतो हरिम्' (वह वसन्त में हरि के पास गया)। 'विष्णौ नते भवेन्मुक्तिः' (विष्णु का नमस्कार करने पर मुक्ति होती है)। कुछ अर्थों में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। जैसे–'नृणां स्वामी, नृषु स्वामी, नृणामीशः' (मनुष्यों का स्वामी) सतां पतिः (सज्जनों का स्वामी), 'नृणां साक्षी, नृषु साक्षी' (मनुष्यों का साक्षी) 'गोषु नाथो, गवाम् पतिः' (गायों का स्वामी), 'गोषु सूतो, गवाम् सूतो' (गायों से उत्पन्न), 'राज्ञां दायादकः' (राजाओं का साझीदार) ।।२०–२४।। 'अन्नस्य हेतोर्वसति' (अन्न के लिए रहता है)। जिसका स्मरण किया जाता है उसमें कर्म के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे–'मातुः स्मरति' (माता का स्मरण करता है)। इसी प्रकार कर्त्ता और कर्म के निष्ठा आदि में भी षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे–'अपाम् भेत्ता' (जल का भेदन करनेवाला) 'तव कृतिर्न' (तुम्हारी कृति नहीं है) ।।२५–२६।।

श्री अग्निमहापुराण में कारक-निरूपण कथन नामक तीन सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५४।।

अध्याय ३५५

समास

स्कन्द बोले–अब मैं समास के विषय में बताऊँगा। यह छह प्रकार के होते हैं और पुनः जिसके अट्ठाईस भेद होते हैं। कुछ समास नित्य और कुछ अनित्य होते हैं। उनके दो पैर और होते हैं–लुक् और अलुक् ।।१।। कुछ समास नित्य होते हैं जैसे–कुम्भकार और हेमकार इत्यादि। 'राज्ञः पुमान्' का 'राजपुमान्' हो जाना अनित्य समास

---

१ ख. ग. °जपुंसामनि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कष्टश्रितो लुक्समासः कण्ठेकालादिकस्त्वलुक् । स्यादष्टधा तत्पुरुषः प्रथमाद्याः सुपा सह ।।३।।
प्रथमातत्पुरुषोऽयं पूर्वं कायस्य विग्रहे । पूर्वकायोऽपरकायो ह्यधरोत्तरकायकः ।।४।।
अर्धं कणाया अर्धकणा भिक्षातू (तु) र्यमथेदृशम् । आपन्नजीविकस्तद्वद्द्वितीया माधवाश्रितः ।।५।।
वर्षं भोग्यो वर्षभोग्यो धान्यार्थश्च तृतीयया । चतुर्थी स्याद्विष्णु बलिर्वृकभीतिश्च पञ्चमी ।।६।।
राज्ञः पुमान्राजपुमान्षष्ठी वृक्षफलं तथा । सप्तमी चाक्षशौण्डोऽयमहितो नञ्समासकः ।।७।।
कर्मधारयः सप्तधा नीलोत्पलमुखाः स्मृताः । विशेषणपूर्वपदो विशेष्योत्तरतस्तथा ।।८।।
वैयाकरणखसूचिः शीतोष्णं द्विपदं शुभम् । उपमानपूर्वपदः शङ्खपाण्डुर इत्यपि ।।९।।
उपमानोत्तरपदः पुरुषव्याघ्र इत्यपि । संभावनापूर्वपदो गुणवृद्धिरितीदृशम् ।।१०।।
गुण इति वृत्तिर्वाच्या [1]सुहृदेव सुबन्धुकः । अवधारणापूर्वपदो बहुव्रीहिश्च सप्तधा ।।११।।

है। लुक् समास का उदाहरण है–'कष्टश्रितः' और अलुक् समास का 'कण्ठे काल' इत्यादि। प्रथमा इत्यादि विभक्तियों से युक्त रहने के कारण तत्पुरुष समास आठ प्रकार का होता है। प्रथमान्त आदि शब्द सुबन्त के साथ समस्त होते हैं ।।२-३।। 'पूर्वकायः' इस तत्पुरुष समास में जब 'पूर्व कायस्य' ऐसा विग्रह किया जाता है, तब यह 'प्रथमा तत्पुरुष' समास कहा जाता है। इसी प्रकार 'अपरकायः'–कायस्य अपरम्, इस विग्रह में, 'अधरकायः'– कायस्य अधरम्, इस विग्रह में और 'उत्तरकायः'–कायस्योत्तरम्, इस विग्रह में भी प्रथमा तत्पुरुष समास कहा जाता है। ऐसे ही 'अर्धकणा' इसमें अर्द्धम् कणायाः–ऐसा विग्रह होने से प्रथमा तत्पुरुष समास होता है एवं भिक्षातुर्यम्–इसमें 'तुर्यं भिक्षायाः' ऐसा विग्रह होने से 'तुर्यभिक्षा' और पक्षान्तर में 'भिक्षातुर्यम्'–ऐसा षष्ठी तत्पुरुष होता है। ऐसे ही 'आपन्नजीविकः' यह द्वितीया तत्पुरुष समास है। इसका विग्रह इस प्रकार होता है–'आपन्नो जीविकाम्'। पक्षान्तर में 'जीविकापन्नः' ऐसा रूप होता है। इसी प्रकार 'माधवाश्रितः'–यह द्वितीया समास है, इसका विग्रह 'माधवम् आश्रितः' इस प्रकार है। 'वर्षभोग्यः' यह द्वितीया तत्पुरुष समास है–इसका विग्रह है 'वर्ष भोग्यः'। 'धान्यार्थः' यह तृतीया समास है। इसका विग्रह 'धान्येन अर्थः' इस प्रकार है। 'विष्णुबलिः'– यहाँ 'विष्णवे बलिः'–इस विग्रह में चतुर्थी तत्पुरुष समास होता है। 'वृकभीतिः' यह पञ्चमी तत्पुरुष है। इसका विग्रह 'वृकाद् भीतिः'–इस प्रकार है। 'राजपुमान्' यहाँ 'राज्ञः पुमान्'–इस विग्रह में षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। इसी प्रकार 'वृक्षस्य फलम्' 'वृक्षफलम्' यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है। 'अक्षशौण्डः' (द्यूत क्रीड़ा में निपुण) इसमें सप्तमी तत्पुरुष समास है। अहितः–जो हितकारी न हो, वह–इसमें 'नञ्समास' है ।।४-७।। 'नीलोत्पल' आदि जिसके उदाहरण, वह 'कर्मधारय' समास सात प्रकार का होता है–१. विशेषण पूर्वपद (जिसमें विशेषण पूर्वपद हो और विशेष्य उत्तरपद अथवा)। इसका उदाहरण–'नीलोत्पल' (नीला कमल)। २. विशेष्योत्तर विशेषणपद–इसका उदाहरण है–'वैयाकरणखसूचिः' (कुछ पूछने पर आकाश की ओर देखनेवाला वैयाकरण)। ३. विशेषणोभयपद (अथवा विशेषणद्विपद) जिसमें दोनों पद विशेषण रूप ही हों। जैसे शीतोष्ण (ठण्डा-गरम)। ४. उपमान पूर्वपद–इसका उदाहरण है–'शङ्खपाण्डुरः' (शङ्ख के समान सफेद)। ५. उपमानोत्तरपद–इसका उदाहरण है–'पुरुष व्याघ्रः' (पुरुषो व्याघ्र इव)। ६. सम्भावनापूर्वपद–(जिसमें पूर्वपद सम्भावनात्मक हो) उदाहरण–गुणवृद्धिः (गुण इति वृद्धिः स्यात्) अर्थात् 'गुण' (शब्द बोलने से वृद्धि की सम्भावना होती है)। तात्पर्य यह है कि 'वृद्धि हो'–यह कहने की आवश्यकता हो तो 'गुण' शब्द का ही उच्चारण करना चाहिए। ७. अवधारणपूर्वपद–(जहाँ पूर्वपद में 'अवधारण' (निश्चय) सूचक शब्द का प्रयोग हो, वह)। जैसे–'सुहृदेव सुबन्धुकः' (सुहृद् ही सुबन्धु है)। बहुव्रीहि समास भी सात प्रकार का ही होता है ।।८-११।।

---

१ ख. ग. °हृदामेकबन्धकः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विपदश्च बहुव्रीहिरारूढभवनो नरः । [1]अर्चिताशेषपूर्वोऽयं बह्वङ्घ्रिः परिकीर्तितः ।।१२।।
एते विप्राश्चोपदशाः संख्योत्तरपदस्त्वयम् । संख्योभयपदो यद्वद्द्वित्रा द्वयेकत्रयो नरः ।।१३।।
सहपूर्वपदोऽयं स्यात्समूलोद्धृतकस्तरुः । व्यतिहारलक्षणोऽर्थः केशाकेशि नखानखि ।।१४।।
दिग्लक्ष्या स्याद्दक्षिणपूर्वा द्विगुराभाषितो द्विधा । एकवद्भावि (वी) द्विशृङ्गं पञ्चमूली त्वनेकधा ।।१५।।
द्वन्द्वः समासो द्विविधो हीतरेतरयोगकः । रुद्रविष्णू समाहारो भेरीपटहमीदृशम् ।।१६।।
द्विधाऽऽख्यातोऽव्ययीभावो नामपूर्वपदो यथा । शाकस्य मात्रा शाकप्रति यथाऽव्ययपूर्वकः ।।१७।।
उपकुम्भं चोपरथ्यं प्राधान्येन चतुर्विधः । उत्तरपदार्थमुख्योऽयं द्वन्द्वश्चोभयमुख्यकः ।।१८।।
पूर्वार्थे सोऽव्ययीभावो बहुव्रीहिश्च बाह्यगः ।।१९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समासविभागकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५५।।

---

१. द्विपद, २. बहुपद, ३. संख्योत्तरपद, ४. संख्योभयपद, ५ सहपूर्वपद, ६. व्यतिहारलक्षणार्थ तथा ७. दिग्लक्षणार्थ। 'द्विपद बहुव्रीहि' में दो ही पदों का समास होता है। यथा–'आरूढ़भवनो नरः' (आरूढं भवनं येन सः) इस विग्रह के अनुसार जो भवन पर आरूढ़ हो गया हो, उस मनुष्य का बोध कराता है। 'बहुपद बहुव्रीहि' में दो से अधिक पद समास में आबद्ध होते हैं। इसका उदाहरण है–'अयम् अर्चिताशेषपूर्वः' (अर्चिता अशेषाः पूर्वा यस्य सोऽयम् अर्चिताशेषपूर्वः) अर्थात् जिसके सारे पूर्वज पूजित हुए हों, वह 'अर्चिताशेषपूर्व' है। इसमें 'अर्चित', अशेष' तथा 'पूर्व'–ये तीनों पद समास में आबद्ध हैं। ऐसा समास 'बहुपद' कहा गया है। 'संख्योत्तरपद' का उदाहरण है–'एते विप्रा उपदशाः'–ये ब्राह्मण लगभग दस हैं। इसमें 'दस' संख्या उत्तरपद के रूप में प्रयुक्त है। 'दित्राः द्वयेकत्रयः' इत्यादि संख्योभयपद के उदाहरण हैं। 'सहपूर्वपद' का उदाहरण–'समूलोद्धृतकः तरुः' (सह मूलेन उद्धृतं कं शिखा यस्य सः)। अर्थात् जड़सहित उखड़ गयी है शिखा जिसकी, (वह वृक्ष)–यहाँ पूर्वपद के स्थान में 'सह' (स) का प्रयोग हुआ है। व्यतिहारलक्षण का उदाहरण है–केशाकेशि, नखानखि युद्धम् (आपस में झोंटा-झोंटौवल, परस्पर नखों से बकोटा-बकोटीपूर्वक कलह) ।।१२-१४।। दिग्लक्षणार्थ का उदाहरण–उत्तरपूर्वा (उत्तर और पूर्व के अन्तराल की दिशा)। 'द्विगु' समास दो प्रकार का बतलाया गया है। 'एकवद्भाव' तथा 'अनेकधा' स्थिति को लेकर ये भेद किये गये हैं। संख्यापूर्वपदवाला समास 'द्विगु' है। यह 'कर्मधारय' का ही एक भेद–विशेष स्वीकार किया गया है। 'एकवद्भाव' का उदाहरण है–द्विशृङ्गम् (दो सींगों का समाहार)। 'पञ्चमूली' भी इसी का उदाहरण है। 'अनेकधा' या 'अनेकवद्भाव' का उदाहरण है–'सप्तर्षयः' इत्यादि। 'पञ्चब्राह्मणाः' में समास नहीं होगा, क्योंकि यहाँ संज्ञा नहीं है। 'द्वन्द्व' समास भी दो ही प्रकार का होता है–१.इतरेतरयोगी, २. समाहारवान्। प्रथम का उदाहरण है–रुद्रविष्णू। (रुद्रश्च विष्णुश्च–रुद्र तथा विष्णु) यहाँ इतरेतर–योग है। समाहार का उदाहरण है–भेरीपटहम् (भेरी च पटहश्च, अनयोः समाहारः–अर्थात् भेरी और पटह का समाहार)। यहाँ 'तुर्याङ्ग' होने से इनका एकवद्भाव होता है। अव्ययीभाव समास भी दो तरह का होता है–१. नामपूर्वपद और २. ('यथा' आदि) अव्ययपूर्वपद। प्रथम का उदाहरण है–शाकस्य मात्रा–शाकप्रति। यहाँ 'शाक' पूर्वपद है और मात्रार्थक 'प्रति' अव्यय उत्तरपद। दूसरे का उदाहरण–'उपकुमारम्–उपरथ्यम्' इत्यादि हैं। समास को प्रायः चार प्रकारों में विभक्त किया जाता है–१. उत्तरपदार्थ की प्रधानता से युक्त (तत्पुरुष), २. उभयार्थ-प्रधान द्वन्द्वसमास, ३. पूर्वपदार्थ-प्रधान 'अव्ययीभाव' तथा ४. अन्य अथवा बाह्यपदार्थ-प्रधान 'बहुव्रीहि' ।।१५-१९।।

श्री अग्निमहापुराण में समास-विभाग-कथन नामक तीन सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५५।।

---

१ ख. ग. अर्जिता°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तद्धितः

स्कन्द उवाच

तद्धितं [1]त्रिविधं वक्ष्ये सामान्या वृत्तिरीदृशी[2] । लच्यंसलो वत्सलः स्यादिलचि स्यात्तु फेनिलम् ।।१।।
लोमशः शे पामनो ने इलचि स्यात्तु [3]पिच्छिलम् । अणि प्राज्ञ आर्चिकः स्याद्दन्तादुरचि दन्तुरः ।।२।।
रे स्यान्मधुरं सुशि (षि) रं वे स्यात्केशव ईदृशम् । हिरण्यं ये मालवो वे बलचि स्याद्रजस्वलः ।।३।।
इनौ धनी करी हस्ती धनिकं टिकनीरितम् । पयस्वी विनि मायावी ऊर्णायुर्युसि ईरितम् ।।४।।

अध्याय ३५६

तद्धित

स्कन्द बोले–अब त्रिविध 'तद्धित' का वर्णन करूँगा। 'तद्धित' के तीन भेद हैं–सामान्या वृत्ति तद्धित, अव्यय तद्धित तथा भाववाचक तद्धित। 'सामान्या वृत्ति तद्धित' इस प्रकार है–'अंस' शब्द से 'लच्' प्रत्यय होने पर 'अंसलः' बनता है, इसका अर्थ है बलवान्। 'वत्स' शब्द से 'लच्' प्रत्यय होने पर पर 'वत्सलः' रूप होता है, इसका अर्थ स्नेहवान् है। 'फेन' शब्द से 'इलच्' प्रत्यय होने पर 'फेनिलम्' रूप होता है, इसका अर्थ है–फेनयुक्त जल। लोमादि गण से 'श' प्रत्यय होता है (विकल्प से 'मतुप्' भी होता है)–इस नियम के अनुसार 'श' प्रत्यय होने पर 'लोमशः' प्रयोग बनता है। (मतुप् होने पर 'लोमवान्' होता है। इसी तरह 'रोमशः, रोमवान्'–ये प्रयोग सिद्ध होते हैं), पामादि शब्दों से 'न' होता है–इस नियम के अनुसार 'पाम' शब्द से 'न' होने पर 'पामनः', 'अङ्गात् कल्याणे'–इस वार्तिक के अनुसार 'कल्याण' अर्थ में 'अङ्ग' शब्द से 'न' होने पर 'लक्ष्मणः' (उत्तम लक्षणों से युक्त) ये रूप बनते हैं। वैकल्पिक 'मतुप्' होने पर तो 'पामवान्' आदि रूप होंगे। जिसे खुजली हुई हो, वह 'पामन' या 'पामवान्' है। इसी तरह पिच्छादि शब्दों में 'इलच्' होता है–इस नियम के अनुसार 'इलच्' होने पर 'पिच्छिलः', 'पिच्छवान्', 'उरसिलः', 'उरस्वान्' इत्यादि रूप होते हैं। 'पिच्छिलः' का अर्थ 'पंखवान्' होता है। मार्ग का विशेषण होने पर यह फिसलनयुक्त का बोधक होता है। उरस्वान् का अर्थ मनस्वी समझना चाहिए। (प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः) के अनुसार 'ण' प्रत्यय होने पर प्रज्ञा शब्द से 'प्राज्ञः' (प्रज्ञावान्), श्रद्धा शब्द से श्राद्धः (श्रद्धावान्) और 'अर्चा' शब्द से 'आर्चः' (अर्चावान्) रूप बनते हैं। 'दन्त' शब्द से 'उरच्' प्रत्यय होने पर 'दन्तुरः' यह रूप होता है। 'मधु' शब्द से 'र' प्रत्यय होने पर मधुरम् और सुषि शब्द से 'र' प्रत्यय होने पर 'सुषिरम्', केश शब्द से 'व' प्रत्यय होने पर 'केशवः', 'हिरण्य' तथा 'मणि' शब्दों में 'व' प्रत्यय होने पर 'हिरण्यवः', 'मणिवः'–ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'रजस्' शब्द से 'बलच्' प्रत्यय होने पर 'रजस्वलम्' पद की सिद्धि होती है ।।१-३।। धन, कर तथा हस्त–इन शब्दों से 'इनि' प्रत्यय होने पर क्रमशः 'धनी', 'करी' और 'हस्ती'–ये पद सिद्ध होते हैं। 'धन' शब्द से 'ठन्' प्रत्यय होने पर 'धनिकं कुलम्' या 'धनिकः पुरुषः'–ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'पयस्' तथा 'माया' शब्दों में 'विनि' प्रत्यय होने पर 'पयस्वी', 'मायावी'–ये रूप बनते हैं। 'ऊर्णा' शब्द से मत्वर्थीय 'युस्' प्रत्यय होने पर 'ऊर्णायुः' पद की सिद्धि बतायी गयी है। 'वाच्' शब्द से

---

१ क. ङ. द्विविधं। २ ''गुणवान्मतुपि प्रोक्तश्चूडालश्चालरीदृशम्'' इत्यर्ध° ख. ग. पुस्तकयोरधिकम्। ३ ख. ग. °म्। न प्राज्ञा आलुकः श्राद्धो दन्ता°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाग्मी मिनि आलचि स्याद्वाचालश्चाऽऽटचीरितम् । फलिनो बर्हिणः केकी वृन्दारकस्तथा कनि ।।५।।
आलुचि शीतं न सहते शीतालुश्चैवमीदृशम् । हिमालुरालुचि स्याच्च हिमं न सहते तथा ।।६।।
रूपं वातादुलचि स्याद्वातुलश्चान (ण) पत्यके । वाशिष्ठः कौरवो वास. पाञ्चालः सोऽस्य वासकः ।।७।।
तत्र वासो माथुरः स्याद्वेत्यधीते च चान्द्रकः । [1]व्युत्क्रमं वेत्ति क्रमको नरश्चक्राम कौशकः (?) ।।८।।
प्रियंगूणां भवं क्षेत्रं प्रैयंगवीन (ण) कं खञि । मौद्गीनं कौद्रवीणं च वैदेहश्चान (ण) पत्यके ।।९।।
इञि दाक्षिर्दाशरथिः फकि नाडायनादिकम् । आश्वायनः स्याच्च फञि यञि गार्ग्यश्च वात्स्यकः ।।१०।।
ढकि स्याद्वैनतेयादिश्चाटकैरस्तथैरकि । ढ्रकि गौधेरको रूपं गौधारश्चाऽऽरकीरितम् ।।११।।
क्षत्रियो घे कुलीनः खे ण्ये कौरव्यादयः स्मृताः । यति मूर्धन्यमुख्यादिः सुगन्धिरिति रूपकम् ।।१२।।

'ग्मिनि' प्रत्यय होने पर 'वाग्मी' तथा 'आलच्' प्रत्यय होने पर 'वाचालः'–ये रूप बनते हैं। उसी से 'आटच्' प्रत्यय होने पर 'वाचाटः' रूप बनता है। 'फल' तथा 'बर्ह' शब्दों से 'इनच्' प्रत्यय होने पर क्रमशः 'फलिनः', 'बर्हिणः'–ये रूप बनते हैं। 'वृन्द' शब्द से 'आरकन्' प्रत्यय होने पर 'वृन्दारकः' इन पद की सिद्धि होती है ।।४-५।। 'शीतं न सहते', 'हिमं न सहते'–इस विग्रह में 'शीत' तथा 'हिम' शब्दों से 'आलुच्' प्रत्यय करने पर 'शीतालुः' तथा 'हिमालुः' रूप बनते हैं। 'वात' शब्द से 'उलच्' प्रत्यय होने पर 'वातुलः' रूप बनता है। 'अपत्य' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'वशिष्ठस्यापत्यं पुमान् वाशिष्ठः'। 'कुरोरपत्यं पुमान् कौरवः' (वशिष्ठ की सन्तान 'वाशिष्ठ' कहलाती है। तथा 'कुरु' की सन्तान 'कौरव') 'वहाँ उसका निवास है'–इस अर्थ में सप्तम्यन्त 'समर्थ' शब्द से 'अण्' प्रत्यय होता है। तथा–'मथुरायां वासोऽस्येति माथुरः' (मथुरा में निवास है इसका, इसलिए यह माथुर है) 'सोऽस्य वासः'। वह इसका वासस्थान है, इस अर्थ में भी प्रथमान्त 'समर्थ' से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'उसको जानता और उसको पढ़ता है'–इस अर्थ में द्वितीयान्त 'समर्थ' पद से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'चान्द्रं व्याकरणमधीते तद् वेद वा इति चान्द्रः' (चान्द्र एवं चान्द्रकः स्वार्थे क प्रत्ययः)। 'क्रमादि' शब्दों से 'वुन्' प्रत्यय होता है ('वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है)। 'क्रमं वेत्ति इति क्रमकः'–जो क्रमपाठ को जानता है, वह 'क्रमक' है। इसी तरह 'पदकः', 'शिक्षकः', 'मीमांसकः' इत्यादि पद बनते हैं। 'कोशम् अधीते वेद वा' जो कोश को जानता या पढ़ता है, वह 'कौशक' है ।।६-८।। 'प्रियंगूणां भवं क्षेत्रं' में खञ् प्रत्यय लगाने से 'प्रैयंगवीणकम्' बनता है। मुद्ग शब्द से खञ् होने पर मौद्गीन और कोद्रव से खञ् होने पर कौद्रवीण की सिद्धि होती है। विदेह शब्द से अण् प्रत्यय होने पर वैदेहः शब्द बनता है। अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय लगाने से दाक्षिः, दाशरथिः, फक् प्रत्यय लगाने से नाडायन, फञ् प्रत्यय लगाने से आश्वायन, यञ् प्रत्यय लगाने से गार्ग्यः, वात्स्यकः, ढक् प्रत्यय लगाने से वैनतेयः, ऐरक् प्रत्यय लगाने से चाटकैर, ढक् प्रत्यय लगाने से गौधेरक और आरक् प्रत्यय लगाने से गौधरः शब्द बनते हैं ।।९-११।। 'क्षत्रियः' में 'घ' प्रत्यय, कुलीन में 'ख' प्रत्यय और 'कौरव्य' आदि में 'ण्य' प्रत्यय कहे गये हैं। 'यत्' प्रत्यय लगाने से मूर्धन्य, मुख्य और सुगन्धि आदि शब्द बनते हैं ।।१२।। तारक

---

१ 'व्युत्क्रम'.....कौशकः इत्यत्र ''व्यक्तसंवेत्ति बुरुको नरश्चक्रमशोंऽशकः'' इति क. ङ. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तारकादिभ्य इतचि नभस्तारकितादयः । अनङि स्याच्च कुण्डोघ्नी [1]पुष्पधन्वसुधन्वनौ ।।१३।।
चुञ्चुपि वित्तचुञ्चुः स्याद्वित्तमस्य च शब्दके । चणपि स्यात्केशचणो रूपे स्यात्पटरूपकम् ।।१४।।
ईयसि च पटीयान्स्यात्तरप्यक्षतरादिकम् । पचतितरां च तरपि तमप्यटतितमामपि ।।१५।।
मृदुकल्पः कल्पपि स्यादिन्द्रकल्पोऽर्ककल्पकः । राजदेशीयो देशीये देश्ये देश्यादिरूपकम् ।।१६।।
पटुजातीयो जातीये जानुमात्रं च मात्रचि । ऊरुद्वयसो द्वयसच्यूरुदघ्नं च दघ्नचि ।।१७।।
तयपि स्यात्पञ्चतयो दौवारिकष्ठकीरितम् । सामान्यवृत्तिरुक्ताऽथ अव्ययाख्यश्च तद्धितः ।।१८।।
यस्माद्यतस्तसिलि च यत्र तत्र त(त्र)लीरितम् । अस्मिन्काले ह्यधुना स्यादिदानीं चैव दान्यपि(नीमि) ।।१९।।
सर्वस्मिन्सर्वदा दा स्यात्तस्मिन्काले र्हिलीरितम् । तर्हि होऽस्मिन्काल इह [2]कर्हि कस्मिंश्च कालके ।।२०।।
यथा थालि थमि कथं पूर्वस्यां दिशि संचयेत् । अस्ताति चैव पूर्वस्याः पूर्वादिग्रामणीयकाः ।।२१।।
पुरस्तात्संचरेद्गच्चेत्सद्यस्तुल्येऽहनीरितम् । उतिः पूर्वाब्दे च परुत्पूर्वतरे परार्यपि ।।२२।।
ऐषमोऽस्मिन्संवत्सरे रूपं समसणीरितम् । एद्यवौ परेद्यवि स्यात्परस्मिन्नहनीरितम् ।।२३।।
अद्यास्मिन्नहनि द्ये स्यात्पूर्वेद्युश्च तथैद्युसि । दक्षिणस्यां दिशि [3]वसेद्दक्षिणाद्दक्षिणाद्युभौ ।।२४।।

इत्यादि में 'इतच्' प्रत्यय लगाने से तारकित इत्यादि शब्द बनते हैं। कुण्डोघ्नी, पुष्पधन्वा और सुधन्वा में 'अनङ्' प्रत्यय लगता है ।।१३।। 'चुञ्चुप्' प्रत्यय लगाने से वित्तचुञ्चुः, चणप् प्रत्यय लगाने से 'केशचणः' होता है। 'पटु' शब्द से प्रशस्त अर्थ में 'रूप' प्रत्यय होने पर 'पटुरूपः' पद बनता है। अतिशयार्थ द्योतन के लिए 'तमप्', 'इष्ठन्', 'तरप्' और 'ईयसुन्' ये दोनों दो में से एक श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं और 'तमप्' तथा 'इष्ठन्' ये दोनों बहुतों में से एक की श्रेष्ठता बताते हैं। 'ईयस्' प्रत्यय लगाने से पटीयान्, 'तरप्' प्रत्यय लगाने से अक्षतर, तरप्, आम् प्रत्यय लगाने से पचतितराम् तथा तमप्, आम् प्रत्यय लगाने से अटतितरा शब्द बनते हैं। 'कल्पप्' प्रत्यय लगाने से मृदुकल्पः, इन्द्रकल्पः और अर्ककल्पः शब्द बनते हैं। देशीयर् प्रत्यय लगाने से राजदेशीय, देश्य लगाने से देश्य इत्यादि, जातीय लगाने से पटुजातीयः, 'मात्रच्' लगाने से जानुमात्रम्, 'द्वयसच्' लगाने से ऊरुद्वयसः, दघ्नच् लगाने से उरुदघ्नम् ।।१४-१७।। 'तमप्' लगाने से पञ्चतयः, 'ठक्' लगाने से दौवारिकः बनते हैं। यहाँ तक सामान्य वृत्तियाँ बता दी गयी हैं। अब अव्यय नामक तद्धित प्रत्यय का निरूपण किया जाता है। तसिल् प्रत्यय लगाने से यस्मात् का यतः और त्रल् प्रत्यय लगाने से यत्र, तत्र शब्द बनते हैं। अधुना और दानीम् प्रत्यय लगाने से अस्मिन् काले के स्थान पर अधुना और इदानीम् शब्द बनते हैं ।।१८-१९।। 'दा' प्रत्यय लगाने से सर्वस्मिन् काले का सर्वदा, हिलि् प्रत्यय लगाने से तस्मिन् काले का तर्हि, ह लगाने से अस्मिन् काले का इह, र्हिल् लगाने से कस्मिन् काले का कर्हि शब्द बनते हैं। थाल् प्रत्यय लगाने से यथा, थम् लगाने से कथम्, पूर्वस्यां दिशि इस विग्रह में पूर्व शब्द से पुरः, पुरस्तात्, समाने अहनि इस अर्थ में सद्यः, पूर्वाब्दे इस अर्थ में परुत् और पूर्वतरे वर्षे इस अर्थ में पसरि प्रयोग होते हैं ।।२०-२२।। समसण् प्रत्यय लगाने से 'अस्मिन् संवत्सरे' का ऐषमः, एद्यवि प्रत्यय लगाने से 'परस्मिन्नहनि' अर्थ में परेद्यवि और द्ये तथा द्युस् प्रत्यय लगाने से अस्मिन्नहनि इस अर्थ में अद्य और पूर्वस्मिन् दिने इस अर्थ में पूर्वेद्युः शब्द बनते हैं। 'दक्षिणस्याम् दिशि वसेत्' अर्थ में दक्षिणात् और दक्षिणाहि दोनों रूप होते हैं। इसी प्रकार उत्तरस्यां दिशि वसेत् अर्थ

---

१ क. ङ. °धन्वा सुधन्विनि। चुञ्चु°। ख. ग. °धन्वाअथड्यपि। चुञ्चु। २ ख. क्वेति। ३ क. ङ. वसेत्प्रत्ययेतत्रचेरितम्। उ°। ख. वसेत्प्रत्ययेतस्वधीरितम्। उ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तरस्यां दिशि वसेदुत्तरादुत्तराद्युभौ । [1]उपरि वसेदुपरिष्टाद्भवेद्रिष्टाति ऊर्ध्वकात् ।।२५।।
उत्तरेण च पित्रोक्तमाचि च स्याच्च दक्षिणा । आहौ दक्षिणाहि वसेद्द्विप्रकारं द्विधा च धा ।।२६।।
ध्यमुञि चैकध्यं कुरु त्वं द्वैधं धमुञि चेदृशम् । द्वौ प्रकारौ [2]द्विधा धाचि आसुसुरतरं यथा ।।२७।।
निपातास्तद्धिताः प्रोक्तास्तद्धितो भाववाचकः । पटोर्भावः पटुत्वं त्वे पटुता तलि चेरितम् ।।२८।।
प्रथिमा चेमनि पृथोः सौख्यं सुखात्ष्यञीरितम् । स्तेयं याति च स्तेनस्य ये सख्युः सख्यमीरितम् ।।२९।।
कपेर्भावश्च कापेयं सैन्यं पथ्यं यकीरितम् । आश्वं कौमारकं चाणि रूपं चाणि च यौवनम् ।।
आचार्यकं कनि प्रोक्तमेवमन्येऽपि तद्धिताः ।।३०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तद्धितरूपकथनं नाम
षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५६।।

में उत्तरात् रूप होता है। उपरिवसेत् अर्थ में उपरिष्टाद् तथा ऊर्ध्व शब्द से रिष्टातिल् प्रत्यय होता है ।।२३-२५।। उत्तर शब्द से एनप् प्रत्यय लगने पर 'उत्तरेण' और दक्षिणा शब्द आच् प्रत्यय से होता है। दक्षिणा में आहि प्रत्यय लगाने से दक्षणाहि शब्द बनता है। धा प्रत्यय लगाने से द्विधा शब्द बनता है जिसका अर्थ है दो प्रकार ।।२६।। ध्यमुञ् प्रत्यय लगाने से ऐकध्यम् तथा धमुञ् प्रत्यय लगाने से द्वैध और धाच् प्रत्यय लगाने से द्विधा शब्द बनते हैं। इन सबका अर्थ होता है दो प्रकार। निपातों को भी तद्धित कहा गया है। ये तद्धित भाववाचक होते हैं जैसे–पटोर्भावः में त्व प्रत्यय लगाने से पटुत्वम् और तल् प्रत्यय लगाने से पटुता शब्द बनते हैं। पृथु में इमन् प्रत्यय लगाने से प्रथिमा सुख में ष्यञ् प्रत्यय लगाने से सौख्यम् शब्द बनते हैं। स्तेन में य प्रत्यय लगाने से स्तेय और सखि में य प्रत्यय लगाने से सख्य शब्द बनते हैं ।।२७-२९।। ढक् प्रत्यय लगाने से भी भाववाचक संज्ञाएँ होती हैं जैसे–कपेर्भावः कापेयम्, ष्यञ् करने से सैन्यम् और यत् करने से पथ्यम् रूप होते हैं। अण् प्रत्यय लगाने से आश्वम्, कौमारकं और यौवनम् भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं। आचार्य में कन् प्रत्यय लगाने से आचार्यकम् बनता है। इसी प्रकार अन्य तद्धित प्रत्यय भी होते हैं ।।३०।।

श्री अग्निमहापुराण में तद्धितरूप कथन नामक तीन सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५६।।

---

१ 'उपरि''''ऊर्ध्वकात्' इत्यत्र ''आलोद्यपरिवामेषु प्रविष्टाद्वसतेरपि'' इति दृश्यते क. ङ. पुस्तकयोः। २ क. ख. °धा वावि आमुमुक्षुतरा तथा। ख. °धा वारि अयुयुष्टतरास्तथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

उणादिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच

उणादयोऽभिधास्यन्ते प्रत्यया धातुतः परे । उणि कारुश्च [1]शिल्पी स्याज्जायुर्मायुश्च पित्तकम् ।।१।।
गोमायुरायुर्वेदेषु बहुलं स्युरुणादयः । आयुः स्वादुश्च हेत्वाद्याः किंशारुर्धान्यशूककः ।।२।।
कृकवाकुः कुक्कुटः [2]स्याद्गुरुर्भर्ता मनुस्तथा । शयुश्चाजगरो ज्ञेयः सरुरायुधमुच्यते ।।३।।
स्वरुर्वज्रं त्रपुः सीसमसारं फल्गुरीरितम् । गृध्रश्च क्रनि किरचि मन्दिरं तिमिरं तमः ।।४।।
इलचि सलिलं वारि कल्याणं भण्डिलं स्मृतम् । बुधो विद्वान्क्वसौ स्याच्च शिविरं गुप्तसंस्थितिः ।।५।।
ओतुर्विडालश्च तुनि [3]अभिधानादुगादयः । कर्णः कामी च गृहभूर्वास्तु जैवातृकः स्मृतः ।।६।।
[4]अनड्वान्वहतेर्हिनिः स्याज्जातौ जीवार्णवौषधम् । नौ वह्निरिननि हरिणो मृगः कामी च भाजनम् ।।७।।
करण्डो भाजनं भाण्डं सरण्डश्च चतुष्पदः । तरुरेरण्डः संघातो वरण्डः साम निर्भरम् ।।८।।
स्फारं प्रभूतं स्यान्नप्तप्रत्यये चीरवल्कलम् । कातरो भीरुरुग्रस्तु प्रचण्डो यावसं तृणम् ।।९।।

अध्याय ३५७

उणादिसिद्धरूप

कुमार बोले–धातु के बाद अब उणादि प्रत्ययों का वर्णन किया जा रहा है। उण् प्रत्यय लगाने से कारुः, शिल्पी, जायुः, मायुः, गोमायुः, आयुर्वेद, आयुः, स्वादुः, हेतुः, किंशारु, धान्यशूकक, कृकवाकु, कुक्कुट, गुरु, भर्ता, मनु, शयु, अजगर, सरु, आयुध, स्वरु, वज्र, त्रपु और फल्गु। क्रन् प्रत्यय लगने पर गृध्र बनता है। किरच् प्रत्यय से मन्दिर, तिमिर (अन्धकार) शब्द बनते हैं। इलच् प्रत्यय से सलिल (जल) और कल्याण अर्थवाले भण्डिल शब्द की निष्पत्ति होती है। क्वसु प्रत्यय से बुध अर्थवाला विद्वान् और किरच् से शिविर शब्द बनते हैं। तुन् प्रत्यय से ओतु (विडाल) और कृ धातु से न प्रत्यय होने पर कर्ण, कम् धातु से णिङ् प्रत्यय करने पर कामी, वस् धातु के तुन् करने पर वास्तु, जिसका अर्थ है गृहभूमि और जीव् धातु से आतृकन् करने पर जैवातृक शब्द बनते हैं ।।१-६।। वह् धातु से अनड्वान् शब्द बनता है। जीव् धातु से आतु प्रत्यय करने पर जीवातु होता है, जिसका अर्थ है अर्णव औषध। वह् धातु से नि प्रत्यय से वह्नि, हृ धातु से इनन् प्रत्यय से हरिण बनता है, जिसका अर्थ है मृग, कामी और भाजन। कृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर करण्डः बनता है, जो भाजन और भाण्ड का वाचक है। सृ धातु से अण्डन् करने पर सरण्डः होता है, जो चौपाये का वाचक है। इर् धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर एरण्ड शब्द बनता है, जो वृक्ष का वाचक है। वृ धातु से अण्डन् करने पर वरण्ड बनता है, जो सामवेद का वाचक है। स्फाय् धातु से रक् प्रत्यय करने पर प्रभूतवाची स्फार, चि से क्रन् करने पर वल्कलवाची चीर, भी से क्रुकन् करने पर डरपोकवाची भीरुक,

---

१ क. ङ. श्रेणी। २ ख. ग. स्यात्तरुर्भ°। ३ क. ङ. °नाद्द्वादशाद°। ४ क. ङ. °ड्वानत्र तु स्तौ स्यादाप्तौ जीवन्तिरौष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जगच्चैव तु भूर्लोको (कः) कृशानुर्ज्योतिरर्ककः। वर्वरः कुटिलो धूर्तश्चत्वरं च चतुष्पथम् ।।१०।।
चीवरं भिक्षुप्रावृत्तिरादित्यो मित्र ईरितः। ([1]पुत्रः सूनुः पिता तातः पृदाकुर्व्याघ्रवृश्चिके ।।११।।
गर्तोऽवटोऽथ भरतो नटोऽपरेऽप्युणादयः ।।१२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उणादिसिद्धरूपकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५७।।

अथाष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तिङ्विभक्तिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच

तिङ्विभक्तिं प्रवक्ष्यामि तथाऽऽदेशं समासतः। तिङस्त्रिष्वपि वर्तन्ते भावे कर्मणि कर्तरि[2] ।।१।।
सकर्मकाकर्मकाच्च कर्तरि द्विपदे स्मृताः। सकर्मकाकर्मणि च तदादेशस्तथेरितः ।।२।।
वर्तमाने लडाख्यातो विध्याद्यर्थे लिङीरितः)। विध्यादौ लोडाशिषि च भूतानद्यतने च लङ् ।।३।।
भूते लुङ् लिट् [1]परोक्षेऽथ भाविन्यद्यतने च लुट्। लिङाशिषि च शेषेऽर्थे लृङ्भविष्यति लृङ्भवेत् ।।४।।

उच् से रन् करने पर उग्र, यु से असच् करने पर तृणवाची यावस, गम् से अत् करने पर भूलोकवाची जगत्, कृश् से आनुक् करने पर अग्निवाची कृशानु, अर्च् से क करने पर सूर्यवाची अर्क, वृ से ष्वरच् करने पर कुटिलवाची वर्वर, धूर्व् से तन् करने पर धूर्त, चत् से ष्वरच् करने पर चौराहावाची चत्वर, चि से ष्वरच् करने पर भिक्षुवस्त्रवाची चीवर, मिद् से क्त्र करने पर सूर्यवाची मित्र, पू से क्त्र करने पर पुत्र, सू से नु करने पर सूनु, पा से तृच् करने पर पिता, तन् से तन् करने पर तात, पर्द् से काकु करने पर व्याघ्र और वृश्चिक अर्थवाची पृदाकु, गृ से तन् करने पर गड्ढावाची गर्त और भृ से अतच् करने पर नट अर्थवाची भरत शब्द की निष्पत्ति होती है। ये उणादिसिद्ध रूप हैं। इनके अतिरिक्त भी (बहुत से) उणादि प्रत्यय होते हैं ।।७-१२।।

श्री अग्निमहापुराण में उणादिसिद्धरूप कथन नामक तीन सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५७।।

अध्याय ३५८

तिङ्विभक्तिसिद्धरूप

कुमार बोले–अब मैं संक्षेप से तिङ् विभक्ति तथा आदेश के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। भाव, कर्म और कर्तृ तीनों में तिङ् प्रत्यय रहते हैं। कर्तृ में सकर्मक और अकर्मक से दो पद कहे गये हैं। उसका आदेश सकर्मक और अकर्मक कहे गये हैं। वर्तमान में लट् लकार, विधि आदि में लिङ् लकार, आशीर्वाद में लोट्, अनद्यतन भूत में लङ् लकार, (सामान्य) भूत में लुङ्, परोक्ष में लिट्, अनद्यतन भावी में लुट्, आशी तथा शेष अर्थ में लिङ्, भविष्यत् में लृट् और लृङ्, निमित्त में लिङ् और क्रियातिपत्ति में तङ् प्रत्यय होते हैं। यह आत्मनेपद है इसमें से पहले के

---

१ "पुत्रः...लिङीरितः" ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। २ "सकर्मका कर्तृकाच्च कर्तरि द्विपदे स्मृतः" इत्यधिकं क. ङ. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ तङानावात्मनेपदम् । पूर्वं नव परस्मैपदं [२]तिप्तसन्तीति प्रथमः पुमान् ।।५।।
सिप् थस् थ मध्यमनरो मिप्वस्मश्चोत्तमः पुमान् । त[३]आतामन्ताऽऽत्मने मुख्यस्थासाथां ध्वं च मध्यमः ।।६।।
[४]उत्तम इ वहि महि भूवाद्या धातवः स्मृताः । भुविरेधिः पचिर्नन्दिर्ध्वंसिः श्रंसिः पदिस्त्वदिः ।।७।।
[५]शीङिः क्रीडो जु(डिर्जु)होतिश्च जहातिश्च दधात्यपि । दीव्यतिः स्वपितिर्नहिः सुनोतिर्वसिरेव च ।।८।।
तुदिर्मृशतिर्मुञ्चती रुधिर्भुजिस्त्यजिस्तनिः । शवादिके विकरणे मनिश्चैव करोत्यपि ।।९।।
क्रीडतिर्वृङ् ग्रहिश्चोरिः पा नीरर्चिश्च नायकाः । [६]भुवि स्यात्तिङ् भवति स भवतस्तौ भवन्ति ते ।।१०।।
भवसि त्वं युवां भवथो यूयं भवथ चाप्यहम् । भवाम्यावां भवावश्च भवामो ह्येधते कुलम् ।।११।।
एधेते द्वे तथैधन्ते एधसे त्वं हि मेधया । एधेथे च समेधध्वे एधे ह्येधावहे धिया ।।१२।।
एधामहे हरेर्भक्त्या पचतीत्यादि पूर्ववत् । भूयतेऽनुभूयतेऽसौ भावे कर्मणि वै यकि ।।१३।।
बुभूषति सनीत्येवं [७]णिचि भावयतीश्वरम् । यङि बोभूयते वाद्यं बोभोति स्याच्च यङ्लुकि ।।१४।।
पुत्रीयति पुत्रकाम्यत्येवं पटपटायते । घटयत्यथ सनि णिचि बुभूषयति रूपकम् ।।१५।।
भवेद्भवेतां च लिङि भवेयुश्चः भवेः परे । भवेतं च भवेतैवं भवेयं च [८]भवेव च भवेम च(?) ।।१६।।
एधेत् (च) एधेयातामेधेरन्मनसा श्रिया । एधेथाश्च एधेयाथामेधेध्वमेधेय एधेवहि एधेमहि ।।१७।।

नौ परस्मैपद हैं, जिसके प्रथम पुरुष के तीनों वचनों में क्रमशः ये प्रत्यय होते हैं–तिप्, तस्, अन्ति, मध्यम पुरुष में सिप्, थस्, थ, उत्तम पुरुष में मिप्, वस् और मस् प्रत्यय होते हैं। आत्मनेपद के प्रत्यय इस प्रकार हैं–प्रथम पुरुष–ते, आताम्, अन्त, मध्यम पुरुष में थ, आसाथाम्, ध्वम्, उत्तम पुरुष में इ, वहि, महि, भूव आदि धातुएँ कहीं गयी हैं। इसके अतिरिक्त ये भी धातुएँ होती हैं–एधि, पचि, नन्दि, ध्वंसि, शंसि, पदि, त्वदि ।।१-७।। शी, क्रीड्, हु, हा, धा, दिव्, स्वप्, नह्, सू, वस्, तुद्, मृश्, मृञ्च्, रुध्, भुज्, त्यज्, तन्, वृ, ग्रह्, चुर्, पा, नी और अर्च् आदि धातुओं में शप् आदि विकरण लगते हैं। भू में तिङ् आदि प्रत्यय लगाने से इस प्रकार रूप बनते हैं–सः भवति, तौ भवतः, ते भवन्ति। त्वम् भवसि, युवाम् भवथः, यूयं भवथ। अहं भवामि, आवाम् भवावः, वयम् भवामः। कुलं एधते, द्वे एधेते, ते एधन्ते। त्वम मेधया एधसे, युवाम् मेधया एधेथे, यूयम् मेधया एधध्वे, अहं धिया एधे, आवां धिया एधावहे, वयं धिया एधामहे। इसी प्रकार हरेः भक्त्या पचति इत्यादि रूप पूर्ववत् बनते हैं। भाव और कर्म में यक् प्रत्यय लगाकर भूयते अथवा अनुभूयते रूप बनते हैं ।।८-१३।। सन् प्रत्यय से बुभूषति, णिच् से भावयति, यङ् से बोभूयते और यङ्लुक् से बोभोति, नामधातु से पुत्रीयति, पुत्रकाम्यति, पटपटायते, णिच् से घटयति और सन्-णिच् से बुभूषयति रूप बनते हैं। लिङ् लकार के प्रथम पुरुष में भवेत्, भवेताम्, भवेयुः, मध्यम पुरुष में भवेः, भवेतम्, भवेत और उत्तम पुरुष में भवेयम्, भवेव, भवेम रूप होते हैं ।।१४-१६।। इसी प्रकार एध् धातु के लिङ् लकार में इस प्रकार रूप बनते हैं–प्रथम पुरुष, मनसा श्रिया एधेत, मनसा श्रिया एधेयाताम्, मनसा श्रिया एधेरन्। मध्यम पुरुष, एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्। उत्तम पुरुष, एधेय, एधेवहि, एधेमहि।

---

१ ख. ग. °क्षेऽर्थे भा°। २ ख. ग. °प्तसझीति। ३ ख. ग. आतांझाऽऽत्म°। ४ क. ख. ङ. °म इड्वहिमहिङ् भू°। ५ ख. शीङ्क्रुडौ जु°। ६ ख. लटि। ७ ख. ग. °चि तारय। ८ क. ङ. भवेम।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अस्तु तावद्भवतां लोटि भवन्तु भवताद्भव । भवतं भवत भवानि भवाव च भवाम च ।।१८।।
एधतामेधेतामेधन्तामेधै पचावहै पचामहै । अभ्यनन्ददपचतामपचन्नपचस्तथा ।।१९।।
अभवतमभवतापचमपचावापचाम च । एधेतैधेतामैधध्वमैधे चैधामहीरितम् ।।२०।।
अभूदभूतामभूवन्नभूश्चाभूवमेव लुङ् । ऐधिष्टैधिषातां [1]नरौ (रा) वैधिष्ठा ऐधिषीदृषम् ।।२१।।
लिटि बभूव बभूवतुर्बभूवुश्च बभूविथ । बभूवथुर्बभूय च बभूविव बभूविम ।।२२।।
पेचे पेचाते पेचिरे त्वमेधांचकृषे तथा । एधांचक्राथे [2]पेचिध्वे पेचे पेचिमहे तथा ।।२३।।
लुटि भविता भवितारौ भवितारो हरादयः । भवितासि भवितास्थो भवितास्मस्तथा वयम् ।।२४।।
पक्ता पक्तारौ पक्तारः पक्तासि त्वं शुभौदनम् । पक्ताध्वे पक्ताहे चाहं पक्तास्महे हरेश्चरुम् ।।२५।।
लिङाशिषि सुखं भूयाद्भूयास्तां हरिशंकरौ । भूयासुस्ते च भूयास्त्वं युवां भूयास्तमीश्वरौ ।।२६।।
भूयास्त यूयं भूयासमहं भूयास्म सर्वदा । यक्षीष्ट ह्येधिषीयास्तां यक्षीरन्नेधिषीय च ।।२७।।
यक्षीवह्येधिषीमहि लिङि चायक्ष्यतेति लृङ् । अयक्ष्येतामयक्ष्यन्तायक्ष्येऽयक्ष्येथां युवाम् ।।२८।।
अयक्ष्यध्वमैधिष्यावह्यैधिष्यामह्यरेर्वयम् । लृटि स्याद्भविष्यतीति ऐधिष्यामह ईदृशम् ।।२९।।
एवं विभावयिष्यन्ति बोभविष्यति रूपकम् । घटयेत्पटयेत्तद्वत्पुत्रीयति च काम्यति ।।३०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिङ्विभक्तिसिद्धरूपकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५८।।

लोट् लकार में भू धातु के रूप इस प्रकार होते हैं–प्रथम पुरुष–(अस्तु) भवतु, भवताम्, भवन्तु। मध्यम पुरुष–भव, भवताद्, भवतम्, भवत। उत्तम पुरुष–भवानि, भवाव, भवाम ।।१७-१८।। एध् धातु के लोट् लकार में रूप इस प्रकार चलते हैं–प्रथम पुरुष–एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्। एधै, पचावहै, पचामहै, अभ्यनन्दत्, अपचताम्, अपचन्, अपचः, अभवतम्, अभवत, अपचम्, अपचाव, अपचाम, एधेत, एधेताम्, एधध्वम्, एधे और एधामहि रूप भी विभिन्न धातुओं के विभिन्न लकारों में कहे गये हैं। भू धातु के लुङ् लकार में रूप इस प्रकार चलते हैं–अभूत्, अभूताम्, अभूवन्, अभूः, अभूवम्, एध् धातु के लुङ् लकार में ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिष्ठाः, ऐधिषि। भू धातु के लिट् लकार के रूप हैं–बभूव, बभूवतुः, बभूवुः, बभूविथ, बभूवथुः, बभूव, बभूविव, बभूविम, पच् के लिट् में पेचे, पेचाते, पेचिरे, एध् के लिट् में एधांचकृषे, एधांचक्राथे, पच् के पेचिध्वे, पेचे, पेचिमहे ।।१९-२३।। लुट् लकार के रूप हैं–भविता, भवितारौ, भवितारः, भवितासि, भवितास्थः, वयं भवितास्मः, शुभौदनम् पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः, पक्तासि, पक्ताध्वे, पक्ताहे, पक्तास्महे। आशीर्लिङ् में इस प्रकार रूप होते हैं–सुखं भूयात्, हरिशंकरौ भूयास्ताम्, भूयासुः, भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त, भूयासम्, भूयास्म। यज् और एध् के लिङ् में यक्षीष्ट, एधिषीयास्ताम्, यक्षीरन्, एधिषीय, यक्षीवहि, ऐधिषीमहि। लृङ् लकार में अयक्ष्यत, अयक्ष्येताम्, अयक्ष्यन्त, अयक्ष्ये, अयक्ष्येथाम्, अयक्ष्यध्वम्, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि। भू और एध् के लृट् लकार के रूप हैं–भविष्यति, एधिष्यामहे, भू से णिच् करने पर लृट् में विभावयिष्यन्ति सन् करने पर लृट् में बोभविष्यति, घट् णिच् लिङ् में घटयेत्, पट् णिच् लिङ् में पटयेत्। पुत्र शब्द से नामधातु में क्यच् करने पर पुत्रीयति और काम्यच् करने पर पुत्रकाम्यति रूप होते हैं ।।२४-३०।।

श्री अग्निमहापुराण में तिङ्विभक्तिसिद्धरूप कथन नामक तीन सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।।३५८।।

---

१ छ. नरा। २ ख. ग. ध्वे एधतामेधेय पचावहै पचामहै°। लु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कृत्सिद्धरूपम्

कुमार उवाच

कृतस्त्रिष्वपि विज्ञेया भावे कर्मणि कर्तरि । अज्ल्युट्क्तिन्घञो भावे(च)[1]युजकारत[2]एवच ।।१।।
अचि धर्मस्य विनय उत्करः प्रकरस्तथा । देवो भद्रः श्रीकरश्च ल्युटि रूपं तु शोभनम् ।।२।।
क्तिनि वृद्धिः स्तुतिमती घञि भावोऽथ युच्यपि । कारणा भावनेत्यादि अकारे च चिकित्सया ।।३।।
तथा तव्यो ह्यनीयश्च कर्त्तव्यं करणीयकम् । देयं ध्येयं चैव यति ण्यति कार्यं च कृत्यकाः ।।४।।
कर्तरि क्तादयो ज्ञेया भावे कर्मणि च क्वचित् । गतो ग्रामं गतो ग्राम आश्लिष्टश्च गुरुस्त्वया ।।५।।
शतृशानचौ (च) भवेन्नेधमानो भवन्त्यपि । ण्वल्तृचौ सर्वधातुभ्यो भावको भविता तथा ।।६।।
क्विवन्तश्च स्वयंभूश्च भूते लिटः [3]क्वसुकान् च । बभूविवान्पेचिवांश्च पेचानः श्रद्दधानकः ।।७।।
अणि स्युः तुम्भकाराद्या भूतेऽप्युणादयः स्मृताः । वायुः पायुश्च कारुः स्याद्बहुलं छन्दसीरितम् ।।८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कृत्सिद्धरूपकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५९।।

अध्याय ३५९

कृत्सिद्धरूप

कुमार बोले–भाव, कर्म और कर्तृ इन तीनों में कृत् प्रत्यय होते हैं। अच्, ल्युट्, क्तिन्, घञ्, युच् और अकार प्रत्यय भाववाचक शब्दों में लगते हैं। अच् प्रत्यय लगने से विनयः, अप् प्रत्यय लगने से उत्करः तथा प्रकरः, अच् प्रत्यय से देवः तथा भद्रः और अप् लगने से श्रीकरः शब्द बनते हैं। ल्युट् प्रत्यय में रूप बनता है 'शोभनम्' ।।१-२।। 'क्तिन्' प्रत्यय से वृद्धि, स्तुति और मति, घञ् से भावः, युच् के कारणा, भावना इत्यादि और अकार से चिकित्सा इत्यादि शब्द बनते हैं। तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय लगाने से क्रमशः कर्तव्यम् और करणीयम् शब्द बनते हैं। यत् प्रत्यय से देयम् और ध्येयम् । ण्यत् से कार्यम्। यहाँ तक कृत्यसंज्ञक प्रत्यय कहे गये हैं ।।३-४।। 'क्त' प्रत्यय कर्ता, भाव और कर्म में भी होता है। जैसे–गतोग्रामम्, गतोग्रामः, त्वया गुरुः आश्लिष्टः। शतृ और शानच् प्रत्यय लगाने से भवन् और एधमानः तथा भवन्ती शब्द भी बनते हैं। ण्वुल् और तृच् प्रत्यय सभी धातुओं के साथ लगते हैं, जैसे–भावकः और भविता। स्वयंभूः शब्द क्विप् प्रत्ययान्त है। भूतकाल में लिट् लकार के स्थान पर क्वसु और कानच् प्रत्यय लगाने से बभूविवान्, पेचिवान्, पेचानः, श्रद्दधानकः शब्द बनते हैं। कुम्भकार इत्यादि में अण् प्रत्यय होता है। उणादि प्रत्यय भूत अर्थ में होते हैं। उण् प्रत्यय लगने से वायुः, पायुः और कारुः आदि शब्द बनते हैं। वेद में ये प्रत्यय बहुल प्रकार से (अनियमित रूप से) होते हैं ।।५-८।।

श्री अग्निमहापुराण में कृत्सिद्धरूप कथन नामक तीन सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३५९।।

---

१ क. ङ. °कारानए°। २ ख. ग. °रउ ए°। ३ क. ख. ग. °सुर्भवेत्। ब°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्वर्गपातालादिवर्गाः

अग्निरुवाच

स्वर्गादिनामलिङ्गो यो हरिस्तं प्रवदामि ते। स्वः स्वर्गनाकत्रिदिवा द्यौदिवौ द्वे त्रिविष्टपम् ।।१।।
देवा वृन्दारका लेखा रुद्राद्या गणदेवताः। विद्याधरा (रो) प्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ।।२।।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः। देवद्विषोऽसुरा दैत्याः सुगतः स्यात्तथागतः ।।३।।
ब्रह्माऽऽत्मभूः सुरज्येष्ठो विष्णुर्नारायणो हरिः। रेवतीशो हली रामः कामः पञ्चशरः स्मृतः ।।४।।
लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा स(श)र्वः सर्वेश्वरः शिवः। कपर्दोऽस्य जटाजूटः पिनाकोऽजगवं धनुः ।।५।।
प्रमथाः स्युः पारिषदा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका। द्वैमातुरो गजास्यश्च सेनानीरग्निभूर्गुहः ।।६।।
[1]आखण्डलः शुनासीरः सुत्रामा च दिवस्पतिः। पुलोमजा शचीन्द्राणी [2]देवी तस्य तु वल्लभा ।।७।।
स्यात्प्रासादो वैजयन्तो जयन्तः पाकशासनिः। ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः ।।८।।
ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः। व्योमयानं विमानोऽस्त्री पीयूषममृतं सुधा ।।९।।

अध्याय ३६०

स्वर्गपातालादि वर्ग

अग्निदेव बोले–अब मैं स्वर्गादि नामों के पर्यायों को बतला रहा हूँ। स्वर्ग के पर्यायवाची स्वः, नाक, त्रिदिव, द्योः, दिव और त्रिविष्टप। देव शब्द के पर्याय हैं–वृन्दारक और लेख। रुद्र इत्यादि गण देवता हैं। देवयोनियाँ हैं–विद्याधर, अप्सरस्, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत। देवताओं के शत्रु हैं–असुर, दैत्य। सुगत और तथागत–ये बुद्ध के नाम हैं। आत्मभू और सुरज्येष्ठ ब्रह्मा के नाम हैं। विष्णु, नारायण और हरि विष्णु के नाम हैं। रेवतीश, हली और राम बलराम के नाम हैं। कामदेव के पर्याय हैं–पञ्चशर और स्मर ।।१-४।। लक्ष्मी, पद्मालया और पद्मा–ये लक्ष्मी जी के तथा शर्व, सर्वेश्वर और शिव–ये भगवान् शंकर के नाम हैं। उनकी बँधी हुई जटा के दो नाम हैं–कपर्द और जटाजूट। उनके धनुष के भी दो नाम हैं–पिनाक और अजगव। शिव जी के पार्षद प्रमथ कहलाते हैं। मृडानी, चण्डिका और अम्बिका–ये पार्वती जी के, द्वैमातुर और गजास्य (गजानन)–ये गणेश जी के तथा सेनानी, अग्निभू और गुह–ये स्वामी कार्तिकेय जी के नाम हैं। आखण्डल, शुनासीर, सुत्रामा और दिवस्पति–ये इन्द्र के तथा पुलोमजा, शची और इन्द्राणी–ये उनकी प्रियतमा शची देवी के नाम हैं ।।५-७।। उनके प्रासाद को वैजयन्त कहते हैं। इन्द्रपुत्र का नाम है जयन्त। उनके हाथी के पर्याय हैं–ऐरावत, अभ्रमातङ्ग, ऐरावण और अभ्रभुवल्लभ। उनके आयुध के पर्याय हैं–ह्रादिनी, वज्र, कुलिश, भिदुर और पवि। उनके वाहन को व्योमयान और विमान कहा जाता है। अमृत के पर्याय हैं–पीयूष, अमृत और सुधा। देवसभा को सुधर्मा कहते हैं। आकाश-

---

१ ख. ग. °ण्डलशुनासीरसुत्रामाणो दि°। २ क. ख. ग. °वी हस्तिस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्यात्सुधर्मा देवसभा स्वर्गङ्गा सुरदीर्घिका । स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः ।।१०।।
हाहा हूहूश्च गन्धर्वा अग्निर्वह्निर्धनञ्जयः । जातवेदाः कृष्णवर्त्मा आश्रयाशश्च पावकः ।।११।।
हिरण्यरेताः सप्तार्चिः शुक्रश्चैवाऽऽशुशुक्षणिः । शुचिरप्पित्तमौर्वस्तु वाडवो वडवानलः ।।१२।।
वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम् । त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणो धर्मराजः परेतराट् ।।१३।।
[1]कालोऽन्तको दण्डधरः श्राद्धदेवोऽथ राक्षसः । कौणपास्त्रपक्रव्यादा यातुधानश्च नैर्ऋतिः ।।१४।।
प्रचेता वरुणः पाशी श्वसनः स्पर्शनोऽनिलः । सदागतिर्मातरिश्वा प्राणो मरुत्समीरणः ।।१५।।
जवो[2] रंहस्तरसी तु लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ।।१६।।
सततेऽनारताश्रान्तसंतताविरतानिशम् । नित्यानवरताजस्त्रमप्यथातिशयो भरः ।।१७।।
अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम् । तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढबाढदृढानि च ।।१८।।
गुह्यकेशो यक्षराजो राजराजो धनाधिपः । स्यात्किंनरः किंपुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः ।।१९।।
निधिर्ना शेवधिर्व्योम त्वभ्रं पुष्करमम्बरम्[3] । द्योदिवौ चान्तरिक्षं खं काष्ठाशाककुभो दिशः ।।२०।।
अभ्यन्तरं त्वन्तरालं चक्रवालं तु मण्डलम् । तडित्वान्वारिदो मेघस्तनयित्नुर्बलाहकः ।।२१।।
[4]कादम्बिनी मेघमाला स्तनितं गर्जितं तथा । शम्पाशतह्रदाह्लादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभा ।।२२।।
तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपलाऽपि च । स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषो वृष्टिघातस्त्ववग्रहः ।।२३।।

गंगा को स्वर्गङ्गा और सुरदीर्घिका कहा गया है। उर्वशी इत्यादि को अप्सरस् और स्वर्वेश्या कहा जाता है। अप्सरस् शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग तथा बहुवचन में होता है। गन्धर्वों के नाम हैं हाहा, हूहू। अग्नि के पर्याय हैं–वह्नि, धनञ्जय, जातवेदाः, कृष्णवर्त्मा, आश्रयाश, पावक, हिरण्यरेता, सप्तार्चि, शुक्र, आशुशुक्षणि, शुचि, अप्पित्त, और्व, वाडव, वडवानल। अग्नि की ज्वाला के पर्याय हैं–ज्वाल, कील, अर्चि, हेति और शिखा जो कि स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं। अग्नि की चिनगारी को स्फुलिंग और अग्नि कहते हैं। इनका प्रयोग तीनों लिङ्गों में किया जाता है। यम के पर्याय हैं–धर्मराज, परेतराट्, काल, अन्तक, दण्डधर और श्राद्धदेव। राक्षस के पर्याय हैं–कौणप, आस्त्रप, क्रव्याद्, यातुधान, नैर्ऋति। वरुण के पर्याय हैं–प्रचेता और पाशी। वायु के पर्याय हैं–श्वसन, स्पर्श, अनिल, सदागति, मातरिश्वा, प्राण, मरुत् और समीरण। वेग के पर्याय हैं–जव, रंहस्, तरसी, लघु, क्षिप्र, अर, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण, अविलम्बित और आशु ।।८-१६।। निरन्तर के पर्याय हैं–सतत, अनारत, अश्रान्त, संतत, अविरत, अनिश, नित्य, अनवरत और अजस्र। अतिशय के पर्याय हैं–भर, अतिवेल, भृश, अत्यर्थ, अतिमात्र, उद्गाढ, तीव्र, एकान्त, नितान्त, गाढ, बाढ और दृढ़। कुबेर के पर्याय हैं–गुह्यकेश, यक्षराज, राजराज और धनाधिप। उनके सेवकों के नाम हैं किन्नर, किंपुरुष, तुरङ्गवदन और मयु। निधि के नाम हैं 'निधि' और शेवधि। आकाश के पर्याय हैं–व्योम, अभ्र, पुष्कर, अम्बर, द्यौ, दिव, अन्तरिक्ष और ख। दिशा के पर्याय हैं–आशा, काष्ठा, ककुभ् ।।१७-२०।। अभ्यन्तर और अन्तराल मध्य के तथा चक्रवाल और मण्डल गोलाकार एवं समुदाय के वाचक हैं। मेघ के पर्याय हैं–तडित्वान्, वारिद, मेघ, स्तनयित्नु और बलाहक। मेघावलि के पर्याय हैं–मेघमाला और कादम्बिनी। मेघों के गर्जन के पर्याय हैं–स्तनित तथा गर्जित। विद्युत् के पर्याय हैं–शम्पा, शतह्रदा, ह्लादिनी, ऐरावती, क्षणप्रभा, तडित्, सौदामिनी, चञ्चला और चपला। बिजली के गर्जन को कहते हैं–स्फूर्जथु, वज्र और निर्घोष। अनावृष्टि के पर्याय हैं–वृष्टिघात और अवग्रह ।।२१-२३।। वर्षा की

---

१ ख. ग. कालान्तकः। २ क. ङ. रंहश्च तु रयो ल°। ३ क. ङ. °म्। द्योर्दिवा चा°। ४ ख. ग. °दम्बरी मे°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धारासंपात आसारः शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः । वर्षोपलस्तु करका मेघच्छन्नेह्नि दुर्दिनम् ।।२४।।
अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्धिरपवारणम् । अपिधानतिरोधानपिधानाच्छादनानि च ।।२५।।
अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः । विधुः कुमुदबन्धुश्च बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु ।।२६।।
कला तु षोडशो भागो भित्तं शकलखण्डके । चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना प्रसादस्तु प्रसन्नता ।।२७।।
लक्षणं लक्ष्मकं चिह्नं शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः । सुषमा परमा शोभा तुषारस्तुहिनं हिमम् ।।२८।।
अवश्यायस्तु नीहारः प्रालेयः शिशिरो हिमः । नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम् ।।२९।।
गुरुर्जीव आंगिरस उशना भार्गवः कविः । विधुंतुदस्तमो राहुर्लग्नं राश्युदयः स्मृतः ।।३०।।
सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः । [1]हरिदश्वब्रघ्नपूषद्युमणिर्मिहिरो रविः ।।३१।।
परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले । किरणोस्त्रमयूखांशुगभस्तिघृणिधृष्णयः[2] ।।३२।।
भानुः करो मरीचिः स्त्री पुसयोर्दीधितिः स्त्रियाम् । स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छविद्युतिदीप्तयः ।।३३।।
रोचिः शोचिरुभे क्लीवे प्रकाशो द्योत आतपः । कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति ।।३४।।
तिग्मं तीक्ष्णं खरं तद्वद्दिष्टोऽनेहा च कालकः । घस्रो दिनाहनी चैव सायंसन्ध्या पितृप्रसूः ।।३५।।

झड़ी के पर्याय हैं–धारासम्पात और आसार। जल की बूँदों को कहा जाता है–शीकर और अम्बुकण। ओलों के पर्याय हैं–वर्षोपल और करका। मेघाच्छादित दिन को दुर्दिन कहते हैं। अन्तर्धा, व्यवधा और अन्तर्धि पुँल्लिंग शब्द हैं। अपवारण, अपिधान, तिरोधान, पिधान और आच्छादान ये आठों न दिखायी पड़ने को कहते हैं ।।२४-२५।। चन्द्रमा के पर्याय हैं–अब्ज, जैवातृक, सोम, ग्लौ, मृगाङ्क, कलानिधि, विधु और कुमुदबन्धु। चन्द्रमण्डल को चन्द्रबिम्ब भी कहते हैं। सोलहवें भाग को कला कहते हैं और भाग के पर्याय हैं–भित्त, शकल और खण्ड। चन्द्रिका के पर्याय हैं–कौमुदी और ज्योत्स्ना। प्रसन्नता का पर्याय है–प्रसाद। चिह्न के पर्याय हैं–लक्षण और लक्ष्मक। शोभा के पर्याय हैं–कान्ति, द्युति और छवि। सुषमा कहते हैं रमणीयता को। हिम के पर्याय हैं–तुषार और तुहिन। ओस के पर्याय हैं–नीहार और प्रालेय। शिशिर को हिम कहते हैं। नक्षत्र के पर्याय हैं–ऋक्ष, भ, तारा, तारका और उडु। उडु शब्द विकल्प से स्त्रीलिंग है ।।२६-२९।। बृहस्पति के पर्याय हैं–गुरु, जीव और आंगिरस। शुक्र के पर्याय हैं–उशना, भार्गव और कवि। राहु के पर्याय हैं–विधुंतुद और तम। राशियों के उदय अत्रि को लग्न कहा गया है। मरीचि और अत्रि आदि सप्तर्षि को चित्र शिखण्डि कहते हैं। सूर्य के पर्याय हैं–हरिदश्व, ब्रघ्न, पूषा, द्युमणि, मिहिर और रवि। सूर्यमण्डल के पर्याय हैं–परिवेश, परिधि और उपसूर्य। किरण के पर्याय हैं–उस्त्र, मयूख, अंशु, धृष्णि, भानु, कर, मरीचि और दीधिति। प्रभा, रुक्, रुचि, त्विट्, भा, आभा, छवि, द्युति, दीप्ति, रोचिस्–ये प्रभा के नाम हैं। धूप के नाम हैं–प्रकाश, द्योत और आतप। इनमें से मरीचि स्त्रीलिंग और पुँल्लिंग दोनों में होता है। दीधिति स्त्रीलिंग शब्द है और रोचिः, शोचिः दोनों ही नपुंसकलिंग शब्द हैं। कुछ-कुछ गर्म को कोष्ण, कवोष्ण, मंदोष्ण और कदुष्ण कहते हैं। तीक्ष्ण के पर्याय हैं–तिग्म और खर। समय के पर्याय हैं–दिष्ट, अनेहस् और काल। दिन के पर्याय हैं–घस्र और अहन्। सायंकाल के पर्याय हैं–सन्ध्या और

---

१ "राशीनामुदयो लग्नं तेषु मेषवृषादयः" इति क. ङ. पुस्तकयोरधिकम्। २ ख. ग. °णिरश्मयः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषः प्रत्युषसी अपि । प्राह्णापराह्णमध्याह्नास्त्रिसंध्यमथ शर्वरी ।।३६।।
[1]यामी तमी तमिस्रा च [2]ज्यौत्स्नी चन्द्रिकयाऽन्विता । आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी ।।३७।।
अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ प्रदोषो रजनीमुखम् । स पर्वसंधिः प्रतिपत्पञ्चदश्योर्यदन्तरम् ।।३८।।
पक्षान्तौ पञ्चदश्यौ द्वे पौर्णमासी तु पूर्णिमा । कलाहीने सानुमतिः पूर्णं राका निशाकरे ।।३९।।
अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः । सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ।।४०।।
संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि । कलुषं वृजिनैनोघमंहोदुरितदुष्कृतम् ।।४१।।
स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः । मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः ।।४२।।
स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशातसुखानि च । श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ।।४३।।
भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम् । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः ।।४४।।
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम् । हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम् ।।४५।।
चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः । बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ।।४६।।
प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः । धीर्धारणावती मेधा संकल्पः कर्म मानसम् ।।४७।।
संख्या विचारणा चर्चा विचिकित्सा तु संशयः । अध्याहारस्तर्क ऊहः समौ निर्णयनिश्चयौ ।।४८।।

पितृप्रसू ।।३०-३५।। प्रातःकाल के पर्याय हैं–प्रत्यूष, अहर्मुख, कल्य, उषस् और प्रत्युषस्। दिन के पहरों को प्राह्ण, अपराह्ण और मध्याह्न कहते हैं। सन्ध्या को त्रिसन्ध्य और शर्वरी भी कहते हैं रात्रि के पर्याय हैं–यामी, तमी और तमिस्रा। चन्द्रिका से युक्त रात्रि को ज्योत्स्नी कहते हैं। आगामी तथा वर्तमान दिनों से युक्त रात्रि को पक्षिणी कहा जाता है। आधी रात को अर्धरात्र और निशीथ कहते हैं। रात्रि के प्रारम्भ को प्रदोष कहा जाता है। प्रतिपदा और अमावस्या के बीच को पर्वसन्धि कहते हैं। दोनों अमावस्याओं को पक्षान्त और पूर्णिमा को पूर्णमासी कहा जाता है। एक कला से हीन चन्द्रमा से युक्त रात्रि अनुमति कहलाती है और पूर्ण चन्द्रमण्डल से युक्त रात्रि को राका कहा जाता है। अमावस्या को दर्श और सूर्येन्दुसंगम कहते हैं। जिसमें चन्द्रमा की कला दिखायी पड़ती है उसे सिनीवाली और जिसमें चन्द्रकला अदृश्य होती है उसे कुहू कहते हैं ।।३६-४०।। प्रलय को संवर्त, कल्प, क्षय और कल्पान्त भी कहते हैं। पाप के पर्याय हैं–कलुष, वृजिन, एनस्, अघ, मंहस्, दुरित और दुष्कृत। कर्म के पर्याय हैं–पुण्य, श्रेयस्, सुकृत् और वृष। हर्ष के पर्याय हैं–मुत्, प्रीति, प्रमद, प्रमोद, आमोद, संमद, आनन्दथुः, आनन्द, शर्म, शात और सुख। कल्याण के पर्याय हैं–श्वः, श्रेयस्, शिव, भद्र, मंगल, शुभ, भावुक, भविक, भव्य, कुशल और क्षेम। भाग्य के पर्याय हैं–दैव, दिष्ट, भागधेय, नियति और विधि। आत्मा के पर्याय हैं–क्षेत्रज्ञ और पुरुष। प्रकृति को कहते हैं प्रधान। हेतु से पर्याय हैं–कारण, बीज, निदान और आदिकारण। चित्त के पर्याय हैं–चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृद्, मानस और मन। बुद्धि के पर्याय हैं–मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, प्रेक्षोपलब्धि, चित्, संवित्, प्रतिपद्, ज्ञप्ति और चेतना। धारण करनेवाली बुद्धि मेधा है। संकल्प है मन का कर्म ।।४१-४७।। विचार के पर्याय हैं–संख्या, विचारणा और चर्चा। विचिकित्सा कहते हैं–संशय को, तर्क के पर्याय हैं–अध्याहार और ऊह। निर्णय और निश्चय

---

१ क. ख. ग. यामा। २ क. ङ. ज्योत्स्ना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता भ्रान्तिर्मिथ्यामतिर्भ्रमः । अंगीकाराभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः ।।४९।।
मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः । मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिः श्रेयसामृतम् ।।५०।।
मोक्षोऽपवर्गोऽथाज्ञानमविद्याऽहंमतिः स्त्रियाम् । विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे ।।५१।।
आमोदः सोऽतिनिर्हारी सुरभिर्घ्राणतर्पणः । शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डराः ।।५२।।
अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः । हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरीषत्पाण्डुस्तु धूसरः ।।५३।।
कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः । पीतो गौरो हरिद्राभः पालाशो हरितो हरित् ।।५४।।
रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः । अव्यक्तरागस्त्वरुणः श्वेतरक्तस्तु पाटलः ।।५५।।
श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते । कडारः कपिलः पिङ्गपिशाङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ ।।५६।।
चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे । व्याहार उक्तिर्लपितमपभ्रंशोऽपशब्दकः ।।५७।।
तिङ्सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता । इतिहासः पुरावृत्तं पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।५८।।
आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा । समाहारः संग्रहस्तु प्रवह्लिका प्रहेलिका ।।५९।।
समस्या तु समासार्था स्मृतिस्तु धर्मसंहिता । आख्याह्वे चाभिधानं च वार्ता वृत्तान्त ईरितः ।।६०।।

समान अर्थवाले हैं। नास्तिकता को मिथ्यादृष्टि कहते हैं। भ्रान्ति के पर्याय हैं–मिथ्या मति और भ्रम। स्वीकृति को अंगीकार, अभ्युपगम, प्रतिश्रव और समाधि कहते हैं। मोक्ष से सम्बद्ध बुद्धि को विज्ञान कहा गया है। मुक्ति के पर्याय हैं–कैवल्य और निर्वाण। अमृत के पर्याय हैं–श्रेयस् और निःश्रेयस् ।।४८-५०।। मोक्ष अपवर्ग को कहते हैं। अज्ञान को अविद्या और अहम्मति कहा गया है। ये दोनों स्त्रीलिंग शब्द हैं। मसलने से उत्पन्न होनेवाला तथा मनुष्यों के मन को हरण करनेवाला गन्ध परिमल कहलाता है। अत्यन्त हरण करनेवाले गन्ध को आमोद कहा गया है। सुरभि के पर्याय हैं–घ्राण और तर्पण। श्वेत के पर्याय हैं–शुक्ल, शुभ्र, शुचि, विशद, श्वेत, पाण्डर, अवदात, सित, गौर, वलक्ष, धवल और अर्जुन। पीलिमायुक्त श्वेतवर्ण को हरिण, पाण्डुर और पाण्डु कहते हैं। बहुत हल्का होने पर इस रंग को धूसर कहा गया है। काले रंग के पर्याय हैं–कृष्ण, नील, असित, श्याम, काल, श्यामल और मेचक। पीले रंग को पीत, गौर और हरिद्राभ कहते हैं। हरे को पालाश, हरित तथा हरित् कहते हैं। लाल को रोहित, लोहित और रक्त कहते हैं। लाल कमल के समान रंग को शोण कहते हैं। अरुण उस लालिमा को कहते हैं जो अस्पष्ट होती है और पाटल कहते हैं गुलाबी को। भूरे रंग को श्याव अथवा कपिश कहते हैं और काले के साथ लाल को धूम्र और धूमल। कडार, पिङ्ग, पिशङ्ग, कद्रु और पिङ्गल भूरे रंग का वाचक है। चित्तीदार के पर्याय हैं–चित्र, किर्मीर, कल्माष, शबल, एत और कर्बुर। वाणी के पर्याय हैं–व्यवहार, उक्ति और लपित। अपशब्द को अपभ्रंश कहते हैं ।।५१-५७।। तिङन्त (क्रियापदों) और सुबन्त (संज्ञा पदों) के समूह को वाक्य कहा जाता है। क्रिया उसे कहते हैं जो कारकों से युक्त रहती है। इतिहास कहते हैं प्राचीन वृत्तान्त को। पुराण के पाँच लक्षण हुआ करते हैं। जिसका अर्थ पहले से ज्ञात हो उसे आख्यायिका कहते हैं और जहाँ पर प्रबन्ध की कल्पना की जाती है उसे कथा कहते हैं। संग्रह कहते हैं समाहार को और प्रहेलिका कहते हैं बुझौवल को। संक्षिप्त अर्थवाली समस्या कहलाती है और धर्मसंहिता को स्मृति कहते हैं। आख्या, आह्वा और अभिधान ये नाम के वाचक हैं। वार्ता को वृत्तान्त कहा गया है। हूति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हूतिराकारणाऽऽह्वानमुपन्यासस्तु वाङ्मुखम् । विवादो व्यवहारः स्यात्प्रतिवाक्योत्तरे समे ।।६१।।
उपोद्घात उदाहारो ह्यथ मिथ्याभिशंसनम् । अभिशापो यशः कीर्तिः प्रश्नः पृच्छाऽनुयोगकः ।।६२।।
आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तं [1]कुत्सानिन्दे च गर्हणे । स्यादाभाषणमालापः प्रलापोऽनर्थकं वचः ।।६३।।
अनुलापो मुहुर्भाषा विलापः परिदेवनम् । विप्रलापो विरोधोक्तिः संलापो भाषणं मिथः ।।६४।।
सुप्रलापः सुवचनमपलापस्तु निह्नवः । [2]रुशती वागकल्याणी संगतं हृदयंगमम् ।।६५।।
अत्यर्थमधुरं सान्त्वमबद्धं स्यादनर्थकम् । निष्ठुराश्लीलपरुषं ग्राम्यं वै सूनृतं प्रिये ।।६६।।
सत्यं तथ्यमृतं सम्यङ्नादनिःस्वाननिःस्वनाः । आरवारावसंरावविरावा अथ मर्मरः ।।६७।।
स्वनिते वस्त्रपर्णानां भूषणानां तु शिञ्जितम् । वीणाया निक्वणः क्वाणस्तिरश्चां वाशितं रुतम् ।।६८।।
कोलाहलः कलकलो गीतं गानमिमे समे । स्त्री प्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने [3]तन्त्रीकण्ठान्निसा (षा) दकः ।।६९।।
काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे तारोऽत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु ।।७०।।
समन्वितलयस्त्वेकतालो वीणा तु वल्लकी । विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी ।।७१।।
ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकं तु [4]सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ।।७२।।

आकारणा और आह्वान ये पुकारने के अर्थ में आते हैं। वाणी के आरम्भ को उपन्यास और वाङ्मुख कहते हैं। विवाद और व्यवहार मुकदमेबाजी का नाम है। प्रतिवाक्य और उत्तर ये दोनों समानार्थक हैं ।।५८-६१।। उपोद्घात और उदाहार–ये भूमिका के नाम हैं। झूठा कलंक लगाने को मिथ्याभिशंसन और अभिशाप कहा गया है। यश कहते हैं कीर्ति को और प्रश्न का पर्याय है पृच्छा। किसी बात को दो या तीन बार कहना आम्रेडित कहलाता है और कुत्सा तथा निन्दा कहते हैं तिरस्कार को। परस्पर की बातचीत, आलाप और अनर्थक वाणी को प्रलाप कहा गया है। बार-बार किसी बात को कहना अनुलाप कहलाता है और परिदेवना को विलाप कहा गया है। विरोधी वचनों को विप्रलाप और परस्पर भाषण को संलाप कहते हैं। अच्छी बातचीत को सुप्रलाप तथा किसी बात को छिपाना अपलाप कहलाता है। अकल्याणकारी वाणी रुशती कहलाती है तथा हृदयङ्गम करने को संगति कहा जाता है ।।६२-६५।। अत्यन्त मधुर बातचीत को सान्त्वना तथा अनर्थक बातचीत को अबद्ध कहते हैं। निष्ठुर, अश्लील और परुष को ग्राम्य और प्रियवाणी को सुनृत कहा जाता है। सत्य, तथ्य, ऋत और सम्यक्–ये यथार्थबोधक हैं। नाद, निःस्वान, निःस्वन, आरव, आराव, संराव और विराव अव्यक्त शब्द के वाचक हैं। वस्त्र और पत्रों की ध्वनि को मर्मर, आभूषणों की ध्वनि को शिञ्जित, वीणा की ध्वनि को निक्वण तथा क्वाण और पक्षियों के कलरव को वाशित कहते हैं। कोलाहल और कलकल सामूहिक ध्वनि को कहते हैं। गीत और गान समानार्थक हैं। प्रतिश्रुति और प्रतिध्वान–ये प्रतिध्वनि के वाचक हैं। प्रतिश्रुत् शब्द स्त्रीलिंग है। वीणा के कण्ठ से निषाद आदि स्वर प्रकट होते हैं। सूक्ष्मध्वनि को काकली, मधुर और अव्यक्त ध्वनि को कल, गम्भीर ध्वनि को मन्द्र और अत्यन्त उच्च ध्वनि को तार कहते हैं। लययुक्त को एकताल और वीणा को वल्लकी कहते हैं। सात तन्त्रियों से युक्त वीणा विपञ्ची कहलाती है ।।६६-७१।। वीणा आदि वाद्य 'तत' (तारयुक्त) समूह के अन्तर्गत, मुरज आदि 'आनद्ध' समूह के अन्तर्गत, वंशी आदि 'सुषिर' समूह के अन्तर्गत, कांस्य और ताल आदि 'घन' समूह के अन्तर्गत आते हैं। इन

---

१ ख. ग. निन्दा च। २ क. ङ. छ. उषती। ३ क. ङ. °ण्ठानिषादका। का°। ४ क. ङ. शुषिरं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् । मृदङ्गा मुरजा भेदास्त्वङ्क्यालिङ्ग्योर्ध्वकास्त्रयः ।।७३।।
स्याद्यशः पटहो ढक्का भेर्यामानकदुन्दुभिः (?) । आनकः पटहो भेदा [1]झर्झरीडिण्डिमादयः ।।७४।।
मर्दलः पणवस्तुल्यो क्रियामानं तु तालकः । लयः साम्यं ताण्डवं तु नाट्यं लास्यं च नर्तनम् ।।७५।।
तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम् । राजा भट्टारको देवः साभिषेका च देव्यपि ।।७६।।
शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः । वीभत्सरौद्रौ च रसाः शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः ।।७७।।
उत्साहवर्धनो वीरः कारुण्यं करुणा घृणा । कृपा दया चानुकम्पाऽप्यनुक्रोशोऽप्यथो हसः ।।७८।।
हासो हास्यं च वीभत्सं विकृतं त्रिष्विदं द्वयम् । विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमप्यथ भैरवम् ।।७९।।
दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् । भयंकरं प्रतिभयं रौद्रं तूग्रममी त्रिषु ।।८०।।
चतुर्दश दरस्त्रासौ(सो) भीतिर्भीः साध्वसं भयम् । विकारो मानसो भावोऽनुभावो भावबोधनः (कः) ।।८१।।
गर्वा(र्वोऽ)भिमानोऽहंकारो मानश्चित्तसमुन्नतिः । अनादरः परिभवः [2]परिभावस्तिरस्क्रिया ।।८२।।
व्रीडा लज्जा त्रपा ह्रीः स्यादभिध्यानं धने स्पृहा । कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम् ।।८३।।
स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितं तथा । हेला लीलेत्यमी हावाः क्रियाः शृङ्गारभावजाः ।।८४।।
द्रवकेलिपरीहासाः क्रीडा लीला च कूर्दनम् । स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासः समनाक्स्मितम् ।।८५।।

चारों प्रकार के बाजों का नाम वाद्य, वादित्र और आतोद्य है। मृदङ्ग और मुरज ढोल के नाम हैं। उसके भेद हैं अङ्क्य, आलिङ्ग्य और ऊर्ध्व। यशःपटह को ढक्का तथा भेरी को आनक और दुंदुभि कहते हैं। इसके अन्य भेद हैं–आनक, पटह, झर्झरी और डिण्डिम आदि। मर्दल और पणव समान बाजे हैं। ताल कहते हैं क्रियामान को और लय का अभिप्राय है साम्य। ताण्डव नाट्य के अन्तर्गत तथा लास्य नर्तन में आता है। नृत्य, गीत और वाद्य से युक्त नाट्य अथवा तौर्यत्रिक कहलाता है। राजा को भट्टारक तथा देव शब्दों से तथा अभिषिक्ता रानी को देवी शब्द से सम्बोधित किया जाता है ।।७२-७६।। रस ये हैं–शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स और रौद्र। शृङ्गार, शुचि और उज्ज्वल होता है। उत्साहवर्धन और वीर–ये वीर रस के नाम हैं। कारुण्य, करुणा, घृणा, कृपा, दया, अनुकम्पा और अनुक्रोश ये दया के नाम हैं। हस, हास, हास्य–ये हँसी के नाम हैं। वीभत्स और विकृत–ये वीभत्स के नाम हैं। ये 'रस' अर्थ में पुँल्लिंग और 'रसविशिष्ट' अर्थ में त्रिलिंग हैं। विस्मय, अद्भुत, आश्चर्य, चित्र–ये आश्चर्य के नाम हैं। भैरव, दारुण, भीषण, भीष्म, भयानक, भयङ्कर, प्रतिभय–ये भयानक के नाम हैं। रौद्र, उग्र–रौद्र के नाम हैं। 'अद्भुत' से लेकर 'उग्र' शब्द पर्यन्त चौदहों शब्द त्रिलिंग हैं। दर, त्रास, भीति, भी, साध्वस, भय–ये डर के नाम हैं। मानस विकार का नाम भाव और मानस विकार सूचक कटाक्ष आदि का नाम अनुभाव है। गर्व, अभिमान, अहंकार, मान और चित्तसमुन्नति–ये गर्व के नाम हैं। अनादर, परिभाव और तिरस्क्रिया–ये तिरस्कार के नाम हैं। व्रीडा, लज्जा, त्रपा और ह्री–ये लज्जा के नाम हैं। धन विषयक स्पृहा को अभिध्यान कहते हैं ।।७७-८२ $\frac{1}{2}$।। कौतूहल के पर्याय हैं–कौतुक, कुतुक और कुतूहल। विलास, विव्वोक, विभ्रम, ललित, हेला और लीला–ये स्त्रियों के हाव हैं। ये सभी क्रियाएँ शृंगार भाव से उत्पन्न होती हैं। द्रव, केलि, परिहास, क्रीड़ा, लीला और कूदना क्रीड़ा के नाम हैं। हास के भेद हैं–आच्छुरितक, हास, सोत्प्रास

---

१ ख. ग. 'झर्री डि'। २ ख. ग. परीभा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधोभुवनपातालं छिद्रं श्वभ्रं वपा सुषिः । गर्तावटौ भुविश्वभ्रे तमिश्रं (स्त्रं) तिमिरं तमः ।।८६।।
सर्पः पृदाकुर्भुजगो दन्दशूको बिलेशयः । विषं क्ष्वेडश्च गरलं निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम् ।।८७।।
पयः कीलालममृतमुदकं भुवनं वनम् । भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा कल्लोलोल्लोलकौ च तौ ।।८८।।
पृषन्ति बिन्दुपृषताः कूलं रोधश्च तीरकम् । तोयोत्थितं तत्पुलिनं जम्बालं पङ्ककर्दमौ ।।८९।।
जलोच्छ्वासाः परीवाहाः कूपकास्तु विदारकाः । आतरस्तरपण्यं स्याद्द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी ।।९०।।
कलुषश्चाऽऽविलोऽच्छस्तु प्रसन्नोऽथ गभीरकम् । अगाधं [1]दासकैवर्तौ शम्बूका जलशुक्तयः ।।९१।।
सौगन्धिकं तु कह्लारं नीलमिन्दीवरं कजम् । स्यादुत्पलं कुवलयं सिते कुमुदकैरवे ।।९२।।
शालूकमेषां कन्दः स्यात्पद्मं तामरसं कजम् । नीलोत्पलं कुवलयं रक्तं कोकनदं स्मृतम् ।।९३।।
करहाटः शिफा कन्दः किंजल्कः केशरोऽस्त्रियाम् । खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्पादाः प्रत्यन्तपर्वताः ।।९४।।
उपत्यकाऽद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका । स्वर्गपातालवर्गाद्या उक्ता नानार्थकाञ्शृणु ।।९५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वर्गपातालादिवर्गकथनं नाम षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६०।।

और स्मित। पाताल का पर्याय है–अधोभुवन। छिद्र के पर्याय हैं–श्वभ्र, वपा, सुषि, गर्त और अवट। अन्धकार के पर्याय हैं–तमिस्त्र, तिमिर और तम। सर्प के पर्याय हैं–पृदाकु, भुजंग, दन्दशूक और बिलेशय। विष को क्ष्वेड और गरल कहते हैं। नरक के पर्याय हैं–निरय और दुर्गति। इनमें दुर्गति स्त्रीलिंग हैं ।।८३-८७।। जल के पर्याय हैं–पय, कीलाल, अमृत, उदक, भुवन और वन। तरङ्ग के पर्याय हैं–भङ्ग, ऊर्मि, कल्लोल और उल्लोलक। बिन्दु के पर्याय हैं–पृषत्, बिन्दु और पृषत। तट के पर्याय हैं–कूल, रोधस् और तीर। जल से बने हुए (रेतीले) तट को पुलिन कहते हैं। कीचड़ को जम्बाल, पङ्क और कर्दम कहा जाता है। नाली को जलोच्छ्वास और परिवाह कहते हैं। कुएँ के पर्याय हैं–कूपक और विदारक, (नदी को) पार करने के शुल्क को आतर और तरपण कहा जाता है। काठ के बने हुए जल ले जाने के पात्र को द्रोणी कहा जाता है ।।८८-९०।। कलुष को आविल और साफ पानी को अच्छ और प्रसन्न कहते हैं। गहरे जल को अगाध और गम्भीर कहते हैं। धीवर को दास और कैवर्त कहते हैं। सीपी को शम्बूक कहते हैं। मलकोका को सौगन्धिक और कह्लार कहते हैं। नील कमल को इन्दीवर, कज, उत्पल और कुवलय तथा श्वेत कमल को कुमुद और कैरव कहते हैं। कमलों की जड़ को शालूक कहते हैं। कमल के पर्याय हैं–पद्म, तामरस और कज। नीलकमल को कुवलय और रक्तकमल को कोकनद कहा जाता है। कुमुदिनी की जड़ को करहाट तथा केसर को किञ्जल्क कहते हैं। खान को खनि और आकर कहते हैं। पर्वतों की तलहटियों को पाद कहा जाता है। पर्वत के निकट की भूमि (घाटी) को उपत्यका और उनके ऊपर की भूमि को अधित्यका कहते हैं। स्वर्ग और पाताल आदि वर्ग का वर्णन किया गया है, अब विभिन्न अर्थोंवाले शब्दों को सुनो ।।९१-९५।।

श्री अग्निमहापुराण में स्वर्गपातालादिवर्ग-कथन नामक तीन सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६०।।

---

१ ख. ग. दाशकै°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अव्ययवर्गः

अग्निरुवाच

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे । आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽप्यास्तु स्यात्कोपपीडयोः ।।१।।
पापकुत्सेषदर्थे[1] कु धिङ्निर्भर्त्सननिन्दयोः । चान्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये ।।२।।
स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ प्रकर्षे लङ्घनेऽप्यति । स्वित्प्रश्ने च वितर्के च तु स्याद्भेदेऽवधारणे ।।३।।
सकृत्सहैकवारे स्यादारादद्दूरसमीपयोः । प्रतीच्यां चरमे पश्चादुताप्यर्थविकल्पयोः ।।४।।
पुनः [2]सदार्थयोः शश्वत्साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययोः । खेदानुकम्पासंतोषविस्मयामन्त्रणे वत ।।५।।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । प्रति प्रतिनिधौ वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः ।।६।।
इति [3]हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु । प्राच्यां [4]पुरस्तात्प्रथमे पुरार्थेऽग्रत इत्यपि ।।७।।
यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे । मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ ।।८।।
वृथा निरर्थकाविध्योर्नानाऽनेकोभयार्थयोः । नु पृच्छायां विकल्पे च पश्चात्सादृश्ययोरनु ।।९।।

अध्याय ३६१

अव्ययवर्ग

अग्निदेव बोले–'आङ्' का प्रयोग ईषत्, अभिव्याप्ति और सीमा के अर्थ में होता है। कहीं-कहीं वह प्रगृह्य के रूप में भी होता है और कभी-कभी उससे क्रोध और पीड़ा का अर्थ ज्ञात होता है। 'कु' का प्रयोग पाप, कुत्सा और ईषत् के अर्थ में होता है। धिङ् का अर्थ होता है भर्त्सना और निन्दा। 'च' का अर्थ है अन्वाचय, समाहार, इतरेतर और समुच्चय। 'स्वस्ति' का प्रयोग आशीष, क्षेम, पुण्य इत्यादि में और प्रकर्ष तथा उल्लंघन में भी होता है। स्वित् का अर्थ होता है प्रश्न और वितर्क। 'तु' का प्रयोग भेद और अवधारणा में किया जाता है ।।१-३।। 'सकृत्' का अर्थ है एक बार। 'आरात्' दूर और समीप के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पश्चाद् पश्चिम तथा अन्तिम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। उत का प्रयोग भी और अर्थों के विकल्प में होता है। पुनः का अर्थ है बार-बार। इसी अर्थ में शश्वत् का भी प्रयोग होता है। प्रत्यक्ष और तुल्य के अर्थ में साक्षात् का प्रयोग होता है। वत का प्रयोग खेद, अनुकम्पा, वाक्यारम्भ और विषाद में किया जाता है। प्रति का प्रयोग प्रतिनिधि तथा वीप्सा के अर्थ में होता है ।।४-६।। इति हेतु के अर्थ में तथा प्रकरण और प्रकाश आदि की समाप्ति में प्रयुक्त होता है। पुरस्तात् का प्रयोग पूर्व दिशा, प्रथम, पुरा, प्राचीन काल में और आगे के अर्थ में भी होता है। यावत् और तावत् का प्रयोग साकल्य, अवधि, परिमाण और अवधारणा के अर्थ में होता है। मंगल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न और सम्पूर्णता के अर्थ में अथ प्रयुक्त होता है। वृथा का अर्थ है–निरर्थक और अविधि तथा नाना का प्रयोग अनेक तथा उभय के अर्थ में होता है। पृच्छा और विकल्प में 'नु' का प्रयोग होता है तथा पश्चात् और सादृश्य के अर्थ में 'अनु'

---

१ ख. ग. °र्थे कुः किंधिक्कुत्सन°। २ क. ङ. सहार्थ°। ३ ख. ग. हेतौ प्रकारेण। ४ ख. ग. पुरस्तु प्रथ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे[1] ननु । गर्हा समुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि ।।१०।।
उपमायां विकल्पे वा सामि त्वर्धे जुगुप्सिते । अमा सह समीपे च कं वारिणि च मूर्धनि ।।११।।
इवेत्थमर्थयोरेवं नूनं तर्केऽर्थनिश्चये । तूष्णीमर्थे सुखे जोषं किं पृच्छायां जुगुप्सने ।।१२।।
नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने । अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् ।।१३।।
[2]हूं वितर्के परिप्रश्ने समयान्तिकमध्ययोः । पुनरप्रथमे भेदे[3] निर्निश्चयनिषेधयोः ।।१४।।
स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा । उरर्यूरी चोररी च विस्तारेऽङ्गीकृतौ त्रयम् ।।१५।।
स्वर्गे परे च लोके स्ववार्ता संभाव्ययोः किल । निषेधवाक्यालंकारे जिज्ञासावसरे खलु ।।१६।।
समीपोभयतः शीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः । नामप्रकाशयोः प्रादुर्मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि ।।१७।।
तिरोऽन्तर्धौ तिर्यगर्थे हा विषादशुगर्तिषु । अहहेत्यद्भुते खेदे हि हेतावववधारणे ।।१८।।
चिराय चिररात्राय चिरस्यार्था(द्या)श्चिरार्थकाः । मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः ।।१९।।
द्राग्झटित्यञ्जसाऽह्नाय सपदि द्राङ्मङ्क्षु द्रुते । बलवत्सुष्ठु किमुत विकल्पे किं किमूत च ।।२०।।

का। प्रश्न, अवधारणा, अनुज्ञा, अनुनय और आमन्त्रण में 'ननु' प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग निन्दा, समुच्चय और सम्भावना में भी होता है ।।७-१०।। 'वा' का अर्थ है उपमा और विकल्प। सामि का प्रयोग अर्ध और जुगुप्सा में किया जाता है। अमा का अर्थ है साथ और समीप। 'क' का अर्थ है जल तथा मूर्धा। 'एवम्' का प्रयोग 'इव' तथा 'इत्थम्' के अर्थ में तथा 'नूनम्' का तर्क और निश्चय में किया जाता है। 'जोषम्' का प्रयोग चुपचाप और सुख के अर्थ में होता है। 'किम्' पृच्छा तथा जुगुप्सा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। नाम का प्रयोग स्पष्टतः सम्भावना, क्रोध और कुत्सा अर्थ में किया जाता है। अलम् शब्द भूषण, पर्याप्ति, शक्ति और निषेध का वाचक है। 'हुं' वितर्क और परिप्रश्न के अर्थ में तथा समया निकट और मध्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पुनः का प्रयोग बार-बार तथा भेद के अर्थ में होता है। निः का अर्थ है निश्चय और निषेध ।।११-१४।। 'पुरा' का प्रयोग प्रबन्ध (अविच्छेदेन क्रियाकरण) अर्थ में, चिरन्तन अर्थ में, भूत अर्थ में, समीप और भावी अर्थ में होता है। उररि,ऊरि और उररी इन तीनों का प्रयोग विस्तार और अङ्गीकार में किया जाता है। स्वः का प्रयोग स्वर्ग और परलोक के अर्थ में किया जाता है। किल का अर्थ वार्ता और सम्भावना होता है। निषेध, वाक्यपूर्ति, जिज्ञासा और अवसर के लिए खलु प्रयुक्त होता है। अभितः का प्रयोग निकट, दोनों ओर, शीघ्रता से, सम्पूर्ण रूप से और सामने के अर्थ में किया जाता है। प्रादुः का प्रयोग नाम और प्राकाश्य के अर्थ में होता है। मिथः का अर्थ है-परस्पर अथवा एकान्त में। तिरः का अर्थ है-अन्तर्धान होना और टेढ़ा। विषाद, शोक और दुःख में 'हा' का प्रयोग किया जाता है। 'अहह' का प्रयोग आश्चर्य तथा खेद को सूचित करता है। 'हि' का अर्थ है हेतु और अवधारणा ।।१५-१८।। 'चिर' के अर्थ में ही चिराय, चिररात्राय और चिरस्य आदि प्रयुक्त होते हैं। मुहुः, पुनः पुनः, शश्वत्, अभीक्ष्णम् और असकृत् ये सब समानार्थक हैं। द्राक्, झटिति, अंजसा, आह्नाय, सपदि, द्राङ् और मङ्क्षु का प्रयोग शीघ्रता के अर्थ में किया जाता है। किसी बात पर बल देने के लिए बलवत्, सुष्ठु और किमुत का प्रयोग किया जाता है। विकल्प के अर्थ में भी किम् और किमुत प्रयुक्त होते हैं। 'तु' 'हि'

---

१ ख. ग. °णार्थज्ञानु°। २ क. ङ. हुं। ३ ख. ग. °दे विनाऽऽश्चर्यनि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तु हि च स्म ह वै पादपूरणे [1]पूजनेऽप्यति । दिवाऽह्नीत्थ दोषा च नक्तं च रजनाविति ।।२१।।
तिर्यगर्थे साचि तिरोऽप्यथ संबोधनार्थकाः । स्युः प्याट् पाडङ्ग हे है भोः समया निकषा हिरुक् ।।२२।।
अतर्किते तु सहसा स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः । स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषड्वौषड्वषट्स्वधा ।।२३।।
किंचिदीषन्मनागल्पे प्रेत्यामुत्र भवान्तरे । यथा तथा चैव साम्ये अहो हो इति विस्मये ।।२४।।
मौने तु तूष्णीं तूष्णीकं सद्यः सपदि तत्क्षणे । दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्देऽथान्तरेऽन्तरा ।।२५।।
अन्तरेण च मध्ये स्युः प्रसह्य तु हठार्थकम् । युक्ते द्वे सांप्रतं स्थानेऽभीक्ष्णं शश्वदनारते ।।२६।।
अभावे नह्य नो नापि मा स्म माऽलं च वारणे । पक्षान्तरे चेद्यदि च तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयम् ।।२७।।
प्राकाश्ये प्रादुराविः स्यादोमेवं परमं मते । समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि ।।२८।।
अकामानुमतौ काममसूयोपगमेऽस्तु च । ननु च स्याद्विरोधोक्तौ कच्चित्कामप्रवेदने ।।२९।।
निःषमं दुःषमं गर्ह्ये [2]यथास्वं तु यथायथम् । मृषा मिथ्या च वितथे यथार्थं तु यथातथम् ।।३०।।

'च' 'स्म' 'ह' और 'वै' का प्रयोग पादपूर्ति के लिए किया जाता है। पूजा के अर्थ में अधि का प्रयोग होता है। दिन के अर्थ में दिवा तथा रात्रि के अर्थ में दोषा और नक्तम् प्रयुक्त होते हैं ।।१९-२१।। तिरछे के अर्थ में साचि और तिरः का प्रयोग होता है। प्याट्, पाट्, अङ्ग, हे, है और भोः का प्रयुक्त होता है सम्बोधन के अर्थ में। निकट के अर्थ में समया, निकषा और हिरुक् प्रयुक्त होते हैं। बिना विचारे जो कुछ किया जाता है उसे सहसा कहते हैं। सामने के अर्थ में पुरतः और अग्रतः का प्रयोग होता है। देवताओं को हविष् प्रदान करने में स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट् और स्वधा तथा पितरों को दिये जानेवाले हविष् के लिए स्वधा का प्रयोग होता है। अल्प के अर्थ में किञ्चित्, ईषत् और मनाक् का प्रयोग होता है। परलोक के लिए प्रेत्य और अमुत्र शब्दों का प्रयोग होता है। यथा, तथा और एक साम्य के अर्थ में तथा अहो और हो विस्मय में प्रयुक्त होते हैं। मौन के अर्थ में तूष्णीम् तथा तूष्णीकम् तथा तुरन्त के लिए सद्यः और सपदि का प्रयोग होता है। मध्य के अर्थ में अन्तरे, अन्तरा तथा अन्तरेण शब्दों का प्रयोग होता है। तथा हठपूर्वक किये जानेवाले कर्म में प्रसह्य शब्द का प्रयोग होता है ।।२२-२५$\frac{1}{2}$।। साम्प्रतं और स्थाने ये दोनों शब्द उचित के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। निरन्तरम् के अर्थ में अभीक्ष्णम् और शश्वद् शब्द प्रयुक्त होते हैं। अभाव के अर्थ में नहि, अ नो और न का प्रयोग होता है और प्रतिषेध में मा, स्म, मा और अलम् शब्दों का। पक्षान्तर के लिए चेत् और यदि तथा वास्तविकता के लिए अद्धा और अञ्जसा ये दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं। प्रकट करने के अर्थ में प्रादुः और आविः तथा स्वीकृति, ओम्, एवम् और परमम् प्रयुक्त होते हैं। चारों ओर के अर्थ में समन्ततः, परितः, सर्वतः और विष्वग् शब्द प्रयुक्त होते हैं। अनिच्छया अनुमति और असूया से अंगीकार अर्थ में कायम् का प्रयोग होता है। ननु का प्रयोग विरोधोक्ति में तथा कच्चित् का प्रयोग इष्ट प्रश्न में किया जाता है। निन्दनीय अर्थ में 'निःषमम्' और 'दुःषमम्' प्रयुक्त होते हैं तथा ठीक-ठीक के अर्थ में यथास्वम् और यथायथम् का प्रयोग होता है। असत्य के अर्थ में मृषा और मिथ्या तथा सत्य अर्थ में यथार्थम् और यथायथम् का प्रयोग होता है ।।२६-३०।।

---

१ ख. ग. °ने स्वति। २ ख. ग. °थार्थस्तु य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्युरेवं तु पुनर्वै वेत्यवधारणवाचकाः । प्रागतीतार्थकं नूनमवश्यं निश्चये द्वयम् ।।३१।।
संवद्वर्षेऽवरे त्वर्वागामेवं स्वयमात्मना । अल्पे नीचैर्महत्युच्चैः प्रायो भूम्न्यद्रुते शनैः ।।३२।।
[1]सना नित्ये बहिर्बाह्ये स्मातीतेऽस्तमदर्शने । [2]अस्ति सत्त्वे रुषोक्तावूं प्रश्नेऽ(चा)नुनये त्वयि ।।३३।।
हूं तर्के स्यादुषा रात्रेरवसाने नमो नतौ । पुनरर्थेऽङ्ग निन्दायां दुष्ठु सुष्ठु प्रशंसने ।।३४।।
सायं साये प्रगे प्रातः प्रभाते निकषाऽन्तिके । परुत्परार्यैषमोऽब्दे पूर्वे पूर्वतरे यति ।।३५।।
अद्यात्राह्न्यथ पूर्वेऽह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरापरात् । तथाऽधरान्यान्यतरेतरात्पूर्वेद्युरादयः ।।३६।।
उभयद्युश्चोभयेद्युः परेत्वह्नि परेद्यवि । ह्यो गतेऽनागतेऽ(ह्न्य)ह्नि श्वः परश्वः परेऽहनि ।।३७।।
तदा तदानीं युगपदेकदा सर्वदा सदा । एतर्हि संप्रतीदानीमधुना सांप्रतं तथा ।।३८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽव्ययवर्गकथनं नामैकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६१।।

एवं, तु, पुनः, वै और वा निश्चय अर्थ के वाचक हैं। प्राग् का प्रयोग अतीत के अर्थ में तथा नूनम् और अवश्यम् का प्रयोग निश्चय के अर्थ में किया जाता है। वर्ष के अर्थ में संवत्, इधर के अर्थ में अर्वाक् और आम् तथा एवम् अंगीकार अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। स्वयम् आत्मना (अपने से) अर्थ में आता है। अल्प के अर्थ में नीचैः, महान् के अर्थ में उच्चैः, आधिक्य के अर्थ में प्रायः, अशीघ्रता के अर्थ में शनैः प्रयुक्त होते हैं। नित्य के अर्थ में सना, बाह्य के अर्थ में बहिः, अतीत के अर्थ में स्म और अदर्शन के अर्थ में अस्तम् प्रयुक्त होते हैं। विद्यमान के अर्थ में अस्ति, रोषपूर्ण वाणी के अर्थ में उ, प्रश्न में ऊम् और अनुनय में अयि प्रयुक्त होते हैं। तर्क के अर्थ में हूं, रात्रि की समाप्ति में उषा, प्रणाम में नमः, पुनः के अर्थ में अङ्ग, निन्दा के अर्थ में दुष्ठु और प्रशंसा के अर्थ में सुष्ठु शब्दों का प्रयोग होता है ।।३१-३४।। दिवसावसान के अर्थ में सायं, प्रभात के अर्थ में प्रगे और प्रातः और निकट के अर्थ में निकषा का प्रयोग होता है। अव्यवहित पूर्व वर्ष अर्थ में, परुत् व्यवहित पूर्व वर्ष अर्थ में, परारि और वर्तमान वर्ष अर्थ में ऐषमस् का प्रयोग होता है। दोनों दिनों के लिए उभयेद्यु; आनेवाले दिन के लिए परेद्यवि, बीते हुए दिन के लिए ह्यः, आनेवाले दिन के लिए स्वः और उसके बादवाले दिन को परश्वा शब्द प्रयुक्त होते हैं। तदा और तदानीम्, युगपद् और एकदा, सर्वदा और सदा, सम्प्रति और इदानीम् तथा अधुना और साम्प्रतम् समानार्थक शब्द हैं ।।३५-३८।।

श्री अग्निमहापुराण में अव्ययवर्ग कथन नामक तीन सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६१।।

---

१ ख. ग. सदा। २ "अस्ति"'त्वयि" इत्यत्र "स्वस्ति सत्पुरुषोक्तौ च अप्रश्नेऽनुनये द्वयम्" इति ख. ग. पुस्तकयोः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानार्थवर्गः

अग्निरुवाच

आकाशे त्रिदिवो नाको लोकस्तु भुवने जने । पद्ये यशसि च श्लोकः शरे खड्गे च सायकः ।।१।।
आनकः पटहो भेरी कलङ्कोऽङ्कापवादयोः । मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोम्बुनोः ।।२।।
स्यात्पुलाकस्तुच्छधान्ये संक्षेपे भक्तिसिक्थके । महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः ।।३।।
शालावृकौ कपिश्वानौ मानं स्यान्मितिसाधनम् । सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु ।।४।।
योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु । भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावब्जौ शङ्खनिशाकरौ ।।५।।
काकेभगण्डौ करटौ दुश्चर्मा शिपिविष्टकः । रिष्टं क्षेमाशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाशुभे ।।६।।
व्युष्टिः [1]काले समृद्धौ च दृष्टिर्ज्ञानेऽक्षिण दर्शने । निष्ठा निष्पत्तिनाशान्ताः काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि ।।७।।

अध्याय ३६२

नानार्थवर्ग

अग्निदेव बोले–आकाश और त्रिदिव (स्वर्ग) के अर्थ में नाक शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसी भाँति भुवन तथा जन (समूह) के अर्थ में लोक शब्द, पद्य एवं यश के अर्थ में श्लोक शब्द और शर (बाण) तथा खड्ग के अर्थ में सायक शब्द प्रयुक्त होता है ।।१।। पटह (ढोल) और भेरी (तुरुही) के अर्थ में आनक शब्द, अङ्क (चिह्न) तथा अपवाद (लाञ्छन-निन्दा) के अर्थ में कलङ्क शब्द, मारुत (वायु) वेधा (ब्रह्मा) और ब्रध्न (सूर्य) के अर्थ में पुँल्लिग 'क' शब्द का प्रयोग तथा सिर एवं जल के अर्थ में (नपुंसक लिङ्गवाले) 'क' शब्द का प्रयोग किया जाता है। तुच्छ धान्य संक्षेप (विस्ताररहित) और भक्तसिक्थक (माँड़) के अर्थ में पुलाक शब्द, महेन्द्र (इन्द्र), गुग्गुल (गूगुल), उलूक (उल्लू) तथा सर्प पकड़नेवाले (मदारी) के अर्थ में कौशिक शब्द प्रयुक्त होता है ।।२-३।। वानर तथा कुत्ता के लिए शालावृक (भेड़िया) शब्द, मितिसाधन (तौलने के साधन) के लिए मान शब्द और स्वभाव, निर्मोक्ष (त्याग), निश्चय, अध्याय एवं सृष्टि के अर्थ में सर्ग का प्रयोग किया जाता है। योग शब्द संनहन (कवच), उपाय (साम, दण्ड आदि), ध्यान (चिन्तन), संगति (संगम) तथा युक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भोग शब्द सुख और स्त्री को उपभोग के बदले दिये जानेवाले धन का वाचक है। अब्ज शब्द शंख और चन्द्रमा के अर्थ में आता है। कौआ और हाथी के गण्डस्थल के अर्थ में करट शब्द, दुश्चर्म (बुरे चमड़े) के अर्थ में शिपिविष्ट शब्द प्रयुक्त होता है। रिष्ट शब्द क्षेम, अशुभ और अभाव के अर्थ में और अरिष्ट शब्द शुभ और अशुभ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समय एवं समृद्धि के अर्थ में व्युष्टि शब्द, ज्ञान, नेत्र तथा देखने के अर्थ में दृष्टि शब्द, निष्पत्ति (निष्पादन अथवा सिद्धि), नाश (अदर्शन) और अन्त (विध्वंस) के अर्थ में निष्ठा शब्द और उत्कर्ष, स्थिति (मर्यादा) तथा दिशा के अर्थ में काष्ठा शब्द प्रयुक्त होता है ।।४-७।।

---

१ छ. फले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूगोवाचस्त्विडा इलाः प्रगाढं [1]भृशकृच्छ्रयोः । भृशप्रतिज्ञयोर्बाढं [2]शक्तस्थूलौ दृढौ त्रिषु ।।८।।
विन्यस्तसंहतौ व्यूढौ कृष्णो व्यासेऽर्जुने हरौ । पणौ द्यूतादिषूत्सृष्टे भृतौ मूल्ये धनेऽपि च ।।९।।
मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशुक्लसंध्यादिके गुणः । श्रेष्ठेऽधिपे ग्रामणीः स्याज्जुगुप्साकरुणे घृणे ।।१०।।
[3]तृष्णा स्पृहापिपासे द्वे विपणिः स्याद्वणिक्पथे । विषाभिमरलोहेष तीक्ष्णं क्लीबे खरे त्रिषु ।।११।।
प्रमाणं हेतुमर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु । करणं क्षेत्रगात्रादावीरिणं शून्यमूषरम् ।।१२।।
यन्ता हस्तिपके सूते वह्निज्वाले च हेतयः । श्रुतं शास्त्रावभृ (धृ) तयोर्युगपर्याप्तयोः कृतम् ।।१३।।
ख्याते हृष्टे प्रतीतोऽभिजातस्तु कुलजे बुधे । विविक्तौ पूजविजनौ मूर्च्छितौ मूढसोच्छ्रयौ ।।१४।।
अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु । निदानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ ।।१५।।
प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम् । स्त्री संविज्ज्ञानसंभाषाक्रियाकाराजिनामसु ।।१६।।

भू, गौ और वाणी के अर्थ में इडा तथा इला शब्द, भृश (अतिशय) तथा कृच्छ्र (दुःख) के अर्थ में प्रगाढ़ शब्द, अत्यन्त एवं प्रतिज्ञा (दृढ़ संकल्प) के अर्थ में बाढम् शब्द, शक्त (बलवान्) और स्थूल (मोटे) के अर्थ में दृढ़ शब्द का प्रयोग तीनों लिङ्गों में किया जाता है। विन्यस्त और संहत के अर्थ में व्यूढ शब्द, व्यास, अर्जुन तथा हरि (विष्णु) के अर्थ में कृष्ण शब्द और जुआ आदि में दाँव पर लगाये हुए द्रव्य, वेतन और धन के अर्थ में पण शब्द का प्रयोग होता है। मौर्वी (धनुष की रस्सी), सत्त्व, शुक्ल, संधि (संधिनिग्रह आदि के प्रसंग में) और संधि (जोड़ आदि) के अर्थ में गुण शब्द श्रेष्ठ अधिप के अर्थ में ग्रामणी शब्द तथा जुगुप्सा (निन्दा) और करुणा के अर्थ में घृणा शब्द प्रयुक्त होता है। स्पृहा (ललक) और पिपासा के अर्थ में तृष्णा शब्द, वणिक्पथ (बाजार की गली) के अर्थ में विपणि शब्द, विष, अभिमर (सङ्ग्राम) लोहे और प्रचण्ड के अर्थ में तीक्ष्ण शब्दों का तीनों लिंगों में प्रयोग किया जाता है ।।८-११।। हेतु (कारण), मर्यादा (सीमा), शास्त्र की इयत्ता (प्रतिपाद्य विषय की सीमा) और प्रमाता (ज्ञाता) अर्थ में प्रमाण शब्द, क्षेत्र (खेत) और गात्र (शरीर) के अर्थ में करण शब्द, और शून्य (निराश्रय स्थान) तथा ऊसर (भूमि) के अर्थ में ईरिण शब्द प्रयुक्त होता है। हस्तिपक (पीलवान) और सूत (सारथी आदि) के अर्थ में यन्ता शब्द, अग्नि की ज्वाला के अर्थ में हेति शब्द, शास्त्र और अवधृत (धारणा किया हुआ) के अर्थ में श्रुत शब्द, युग (सत्य युगादि) और पर्याप्त (पूरे) के अर्थ में वृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। ख्यात (विख्यात) और प्रसन्न के अर्थ में प्रतीत शब्द, कुलीन और बुध (पण्डित) के अर्थ में अभिजात शब्द, पवित्र विजन (एकान्त-स्थान) के अर्थ में विविक्त शब्द तथा मूढ (मोहित) और सोच्छ्रय (बुद्धिसमेत) के अर्थ में मूर्च्छित शब्द का प्रयोग किया जाता है। अभिधेय (शब्द का वाच्य अर्थ) धन, वस्तु, प्रयोजन (हेतु), निवृत्ति (विराग) अर्थ में अर्थ शब्द, निपान (प्याऊ), आगम (शास्त्र) ऋषि सेवित जल और गुरु (उपाध्याय) अर्थ में तीर्थ शब्द का प्रयोग होता है ।।१२-१५।। प्राधान्य (मुख्यता) राजलिङ्ग (राजाओं के छत्र-चमरादि चिह्न) और बैल के कन्धे के उठे हुए अंग के अर्थ में ककुद शब्द, ज्ञान (विद्या), संभाषा (संभाषण), क्रियाकार (क्रिया के नियम), अजि (युद्ध) और नाम (संज्ञा) के अर्थ में संवित् शब्द का प्रयोग होता है।

---

१ ख. ग. °शशिक्षयोः। २ ख. शक्तः स्थुले दृढे त्रि°। ३ क. ख. तृष्णे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मे रहस्युपनिषत्स्यादृतौ वत्सरे शरत् । पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु ।।१७।।
त्रिष्विष्टमधुरौ स्वादू मृदू चातीक्ष्णकोमलौ । सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ।।१८।।
विधिर्विधाने दैवेऽपि प्रणिधिः प्रार्थने चरे । वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च सुधा लेपोऽमृतं स्नुही ।।१९।।
स्पृहा संप्रत्ययः श्रद्धा पंडितम्मन्यगर्वितौ । ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे भानू रश्मिदिवाकरौ ।।२०।।
ग्रावाणौ शैलपाषाणौ मूर्खनीचौ पृथग्जनौ । तरुशैलौ शिखरिणौ तनुस्त्वग्देहयोरपि ।।२१।।
आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च । उत्थानं पौरुषे तन्त्रे व्युत्थानं प्रतिरोधने ।।२२।।
निर्यातनं वैरशुद्धो दाने न्यासार्पणेऽपि च । व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे ।।२३।।
मृगयाऽक्षो दिवा स्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ।।२४।।
पैशू (शु) न्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डश्चैव पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ।।२५।।
अकर्मगुह्ये कौपीनं मैथुनं संगतौ रते । प्रधानं परमार्था धीः प्रज्ञानं बुद्धिचिह्नयोः ।।२६।।

धर्म (शास्त्रोक्त कर्म; शुभ पुण्य दान आदि), रहस् (एकान्त) के अर्थ में उपनिषत् शब्द, ऋतु (वसन्तादि) और वत्सर (वर्ष) के अर्थ में शरत् शब्द, व्यवसाय, रक्षण, स्थान, चिह्न, चरण और वस्तु के अर्थ में पद शब्द का प्रयोग किया जाता है। इच्छित और मधुर के अर्थ में स्वादु शब्द, अकठित और कोमल अर्थ में मृदु शब्द, सत्य, साधु (उत्तम) प्रशस्त एवं अभ्यर्हित (पूजनीय) अर्थ में सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है ।।१६-१८।। विधान तथा दैव (भाग्य) के अर्थ में विधि शब्द, प्रार्थना (याचना) और चर (जासूस) के अर्थ में प्रणिधि शब्द, जाया (स्त्री), स्नुषा (पुत्रवधू) और स्त्रीमात्र के अर्थ में वधू शब्द तथा लेप (चूना), अमृत (मोक्ष, जल तथा घृत) एवं स्नुही (सेहुँड़) के अर्थ में सुधा शब्द का प्रयोग होता है। संप्रत्यय (आदर-सत्कार) तथा विश्वास एवं स्पृहा (आकांक्षा) के अर्थ में श्रद्धा शब्द, पण्डितम्मन्य (मूर्ख) और गर्वित (अहंकारी) के अर्थ में समुन्नद्ध शब्द, अधिक्षेप (निन्दा) के अर्थ में ब्रह्मबन्धु शब्द तथा रश्मि (किरण) और दिवाकर के अर्थ में भानु शब्द का प्रयोग किया जाता है। शैल (पर्वत) तथा पाषाण (पत्थर) के अर्थ में ग्रावाण शब्द, मूर्ख एवं नीच के अर्थ में पृथग्जन शब्द, वृक्ष और पर्वत के अर्थ में शिखरी शब्द और चमड़ी तथा देह के अर्थ में तनु शब्द का प्रयोग होता है। यत्न, धृति, बुद्धि, स्वभाव, ब्रह्म और वर्ष्म (देह) के अर्थ में आत्मा शब्द, पौरुष और तन्त्र (कुटुम्ब के कृत्य) के अर्थ में उत्थान शब्द और प्रतिरोधन (तिरस्कार एवं प्रतिबन्ध) के अर्थ में व्युत्थान शब्द का प्रयोग किया जाता है ।।१९-२२।। वैरशुद्धि (वैर के मिटाने), दान और न्यासार्पण (धरोहर के लौटाने) के अर्थ में निर्यातन शब्द, विपत् (विपत्ति), भ्रंश (विनाशन और अधःपतन), कामज (काम द्वारा उत्पन्न) और कोपज (क्रोध द्वारा उत्पन्न मर्मभेदी वाक्य) के अर्थ में व्यसन शब्द प्रयुक्त होता है। मृगया, अक्ष, दिवा, शयन, परिवाद (निन्दा), स्त्रीभोग, मद, तौर्यत्रिक (नाचना, गाना और बजाना) और वृथाट्या (व्यर्थ घूमना) ये दस दोष काम द्वारा उत्पन्न होते हैं। पैशुन्य (चुगुली), साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया (निन्दा), अर्थदोष (व्यर्थ व्यय), वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य ये आठ दोष क्रोध द्वारा उत्पन्न होते हैं ।।२३-२५।। अकार्य और लँगोटी के अर्थ में कौपीन शब्द, संगति तथा रति के अर्थ में मैथुन शब्द, परमात्मा और धी के अर्थ में प्रधान शब्द और बुद्धि तथा चिह्न के अर्थ में अज्ञान शब्द प्रयुक्त होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रन्दने रोदनाह्वाने वर्ष्म देहप्रमाणयोः । आराधनं साधने स्यादवाप्तौ तोषणेऽपि च ।।२७।।
रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः । कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतेऽपि च ।।२८।।
तल्पं शय्याट्टदारेषु डिम्भौ तु शिशुबालिशौ । स्तम्भौ स्थूणाजडीभावौ [1]सभ्ये संसदि वै सभा ।।२९।।
किरणप्रग्रहौ रश्मी धर्माः पुण्ययमादयः । ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु ।।३०।।
प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु । समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः ।।३१।।
अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे सत्यं शपथतथ्ययोः । वीर्यं बलप्रभावौ च रूप्यं रूपे प्रशस्तके ।।३२।।
दुरोदरो द्यूतकारे पणो (णे) द्यूते दुरोदरम् । महारण्ये दुर्गपथे कान्तारः पुंनपुंसकम् ।।३३।।
यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहादिके हरिः । दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे जठरः कठिनेऽपि च ।।३४।।
उदारो दातृमहतोरितरस्त्वन्यनीचयोः । चूडा किरीटं केशाश्च संयतामौलयस्त्रयः ।।३५।।
बलिः करोपहारादौ सैन्यस्थैर्यादिके बलम् । स्त्री कटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च ।।३६।।
शुक्रले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः । द्यूताक्षे सारिफलकेऽप्याकर्षोऽथाक्षमिन्द्रिये ।।३७।।

रोदन और आह्वान के अर्थ में क्रन्दन, देह एवं प्रमाण अर्थ में वर्ष्म, साधन तथा सन्तोष के अर्थ में आराधन शब्द का प्रयोग होता है। स्वजाति में श्रेष्ठ होने पर और मणि अर्थ में रत्न शब्द, चिह्न और प्रधान अर्थ में लक्ष्म शब्द, भूषण, मयूरपंख, तरकस और समुदाय तथा काञ्ची के अर्थ में कलाप शब्द का प्रयोग होता है। शय्या, अटारी और स्त्री के अर्थ में तल्प शब्द, शिशु तथा मूर्ख के अर्थ में डिम्भ शब्द, खंभा और जड़ता के अर्थ में स्तम्भ शब्द, सभ्य (समाजिक) और संसद् (परिषद्) के अर्थ में सभा शब्द प्रयुक्त होता है ।।२६-२९।। किरण और प्रग्रह (घोड़े आदि बाँधने की रस्सी) के अर्थ में रश्मि शब्द, पुण्य (सुकृत) यम (संयम) आदि के अर्थ में धर्म शब्द, पुच्छ (पूँछ) पुण्ड्र (घोड़े आदि के भालचित्र वर्ण) घोड़े का भूषण, प्राधान्य और केतु पताका के अर्थ में ललाम शब्द का प्रयोग होता है। अधीन, शपथ, ज्ञान, विश्वास और हेतु (कारण) अर्थ में प्रत्यय शब्द, शपथ, आचार (शास्त्रीय) काल, सिद्धान्त और संवित् (संभाषा) अर्थ में समय शब्द का प्रयोग होता है। अतिक्रम (उल्लंघन), कृच्छ्र (दुःख), दोष, दण्ड और आपदा अर्थ में अत्यय शब्द, शपथ और तथ्य के अर्थ में सत्य शब्द, बल तथा प्रभाव के अर्थ में वीर्य शब्द और प्रशस्त रूप के अर्थ में रूप्य शब्द प्रयुक्त होता है ।।३०-३२।। जुआरी और बाजी के अर्थ में दुरोदर शब्द, जुए के अर्थ में (नपुंसकलिंग) दुरोदर शब्द, महारण्य (घोर जंगल) और दुर्गम मार्ग के अर्थ में (पुँल्लिग और नपुंसकलिंग में) कान्तार शब्द का प्रयोग होता है। यमराज, पवन, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, विष्णु और सिंह आदि के अर्थ में हरि शब्द, भय और श्वभ्र (गड्ढा) के अर्थ में दर शब्द, कठिन और हीन अर्थ में जठर शब्द का प्रयोग किया जाता है। दाता और महत् (पूज्य) के अर्थ में उदार शब्द, अन्य और नीच के अर्थ में इतर शब्द, चूड़ा (चोटी), मुकुट और संयतकेश (जूड़ा) के अर्थ में मौलि शब्द का प्रयोग होता है। कर (मालगुजारी) तथा उपहार (पूजा-सामग्री) के अर्थ में बलि शब्द, सैन्य और स्थैर्यादि के अर्थ में बल शब्द, स्त्री के कटिवस्त्र के बन्धन रूप अर्थ में तथा परिपण मूलधन अथवा बंधक रखने के अर्थ में नीवी शब्द, शुक्रल (महापराक्रमी), चूहा, श्रेष्ठ, सुकृत (धर्म) और वृषभ (बैल) के अर्थ में वृष शब्द, द्यूत (जुआ), अक्ष (पाशा), सारिफलक (चौपड़) और आकर्षण के अर्थ में आकर्ष शब्द तथा इन्द्रिय अर्थ में नपुंसकलिंग में अक्ष शब्द प्रयुक्त होता है ।।३३-३७।।

---

१ ख. ग. सत्ये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाद्यूताङ्गे च कर्षे च व्यवहारे कलिद्रुमे । उष्णीषः स्यात्किरीटादौ कर्षूः कुल्याभिधायिनी ।।३८।।
प्रत्यक्षेऽधिकृतेऽध्यक्षः सूर्यवह्नी विभावसू । शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ।।३९।।
तेजः पुरीषयोर्वर्च आगः पापापराधयोः । छन्दः पद्येऽभिलाषे च साधीयान्साधुवाढयोः ।।४०।।
व्यूहो वृन्देऽप्यहिर्वृत्रेऽप्यग्नीन्द्वर्कास्तमोनुदः ।।४१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानार्थवर्गनिरूपणं नाम द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६२।।

अथ त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

भूमिवनौषध्यादिवर्गाः

अग्निरुवाच

वक्ष्ये भूपुराद्रिवनौषधिसिंहादिवर्गकान् । भूरनन्ता क्षमा धात्री क्ष्माऽपि कुः स्याद्धरित्र्यपि ।।१।।
मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्स्ना मृत्सा च मृत्तिका । जगत्त्रिविष्टपं लोकं भुवनं जगती समा ।।२।।
अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः । सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च ।।३।।

पुँल्लिग होने पर अक्ष शब्द द्यूताङ्ग (जुए के अंग), कर्ष (सोलह मासे का माप), चक्र (रथ का पहिया), व्यवहार (आय-व्यय की चिन्ता) और बहेड़े के वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किरीट आदि अर्थ में उष्णीष शब्द और कुल्याभिधायिनी (छोटी नदी) के अर्थ में कर्ष शब्द का प्रयोग होता है। प्रत्यक्ष (द्रष्टा) और अधिकारी के अर्थ में अध्यक्ष शब्द, सूर्य और अग्नि अर्थ में विभावसु शब्द प्रयुक्त होता है। शृङ्गार आदि रस, विष, वीर्य, गुण, राग तथा द्रव अर्थ में रस शब्द, तेज और पुरीष (विष्ठा) अर्थ में वर्चस् शब्द, उत्सव तथा तेज (प्रताप) अर्थ में महस् शब्द, पाप तथा अपराध के अर्थ में आगस् शब्द, पद्य और अभिलाषा के अर्थ में छन्दस् शब्द, साधु और वाढ़ (स्वीकार करने) के अर्थ में साधीयस् शब्द का प्रयोग होता है। वृन्द (समुदाय) अर्थ में व्यूह शब्द, वृत्र अर्थ में अहि शब्द, अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य के अर्थ में तमोनुद शब्द का प्रयोग किया जाता है ।।३८-४१।।

श्री अग्निमहापुराण में नानार्थवर्ग-निरूपण नामक तीन सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६२।।

अध्याय ३६३

भूमिवनौषध्यादिवर्ग

अग्निदेव बोले-अब मैं भू, पुर, पर्वत, वन, ओषधि और सिंह आदि वर्गों का वर्णन कर रहा हूँ। भू के पर्यायवाची हैं-अनन्ता, क्षमा, धात्री, क्ष्मा, कु। मृत् और मृत्तिका मिट्टी के अर्थ में और मृत्सा तथा मृत्स्ना अच्छी मिट्टी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।१-१$\frac{1}{2}$।। जगत्, त्रिविष्टप, लोक, भुवन और जगती शब्द भूतल के अर्थ में, अयन, वर्त्म, मार्ग, अध्वा (अध्वन्), पन्था (पथिन्), पदवी, सृति, सरणि, पद्धति, पद्या, वर्तनी और एकपदी शब्द मार्ग के अर्थ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूः स्त्री पुरीनगर्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् । स्थानीयं निगमोऽन्यत्तु यन्मूलनगरात्पुरम् ।।४।।
तच्छाखानगरं वेशो वेश्याजनसमाश्रयः । आपणस्तु निषद्यायां विपणिः पण्यवीथिका ।।५।।
रथ्या प्रतोली विशिखा स्याच्चयो वप्रमस्त्रियाम् । प्राकारो वरणः शालः प्राचीरं (नं) प्रान्ततो वृतिः ।।६।।
भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम् । वासः कुटी द्वयोः शाला सभा संजवनं त्विदम् ।।७।।
चतुःशालं मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम् । चैत्यमायतनं तुल्ये वाजिशाला तु मन्दुरा ।।८।।
हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम् । स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः स्याद्वितर्दिस्तु वेदिका ।।९।।
कपोतपालिकायां तु विटङ्कंपुंनपुंसकम् । कपाटमररं तुल्ये निःश्रेणिस्त्वधिरोहिं (ह) णी ।।१०।।
संमार्जनी शोधनी स्यात्संकरोऽवकरस्तथा । अद्रिगोत्रगिरिग्रावा गहनं काननं वनम् ।।११।।
आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेष (व) यत् । स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम् ।।१२।।
वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिश्रेणीलेखास्तु राजयः । वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः ।।१३।।
[1]ओषध्यः फलपाकान्ताः पलाशी द्रुद्रुमागमाः । स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुः प्रफुल्लोत्फुल्लसंस्फुटाः ।।१४।।

में प्रयुक्त होते हैं। स्त्रीलिंग पूर्, पुरी, नगरी और नपुंसकलिंग पत्तन, पुटभेदन, स्थानीय और निगम नगर के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मूल नगर (राजधानी) से भिन्न जो पुर होता है, उसे शाखा-नगर या उपनगर कहते हैं। वेश्याओं के निवास-स्थान का नाम वेश और वेश्याजनसमाश्रय है। आपण शब्द निषद्या (बाजार, हाट, दुकान)) के अर्थ में आता है। विपणि और पण्यवीथिका-ये दो बाजार की गली के नाम हैं। रथ्या, प्रतोली और विशिखा-ये शब्द गली तथा नगर के मुख्य मार्ग का बोध करानेवाले हैं। खाईं से निकालकर जमा किये हुए मिट्टी के ढेर को चय और वप्र कहते हैं। वप्र शब्द का केवल स्त्रीलिंग में प्रयोग नहीं होता। प्राकार, वरण, शाल और प्राचीर-ये नगर के चारों ओर बने हुए (चहारदीवारी) के नाम हैं। भित्ति और कुड्य-ये दीवाल के वाचक हैं। भित्ति शब्द स्त्रीलिंग है। एडूक ऐसी दीवाल को कहते हैं, जिसके भीतर हड्डी लगायी गयी हो ।।२-६$\frac{1}{2}$।। वास और कुटी पर्यायवाचक हैं। शाला और सभा भी पर्यायवाचक हैं। चार शालाओं से युक्त गृह को संजवन कहते हैं। पर्णशाला और उटज मुनियों की झोपड़ी के अर्थ में और वाजिशाला तथा मन्दुरा अश्वशाला के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। हर्म्य आदि धनिकों के घर के अर्थ में, प्रासाद, देवालय, राजमहल के अर्थ में, द्वार और प्रतीहार दरवाजे के अर्थ में, वितर्दि और वेदिका वेदी या या चबूतरे के अर्थ में, कपोतपालिका तथा विटङ्क कबूतर के दरबे के अर्थ में, कपाट एवं अरर किवाड़ के अर्थ में, निःश्रेणि और अधिरोहणी काठ की सीढ़ी के अर्थ में, संमार्जनी तथा शोधनी झाड़ू के अर्थ में और संकर अवकर तथा अवकार कूड़ा-करकट के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।७-१०$\frac{1}{2}$।। अद्रि, गोत्र, गिरि और ग्राव पर्वत के अर्थ में, गहन, कानन और वन, जंगल के अर्थ में, आराम, उपवन, बगीचे के अर्थ में और प्रमदवन स्त्रियों के उद्यान के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। वीथी, आलि, आवलि, पंक्ति, श्रेणी, लेखा और राजि पंक्ति या रेखा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, वानस्पत्य, फल-पुष्पयुक्त वृक्ष के अर्थ में और फल-पुष्परहित वृक्ष के अर्थ में वनस्पति शब्द का प्रयोग होता है। ओषधि पके फल समेत वृक्ष के अर्थ में, पलाशी, द्रु, द्रुम और अगम पेड़ के अर्थ में, स्थाणु, ध्रुव और शङ्कु शाख, पत्तेरहित वृक्ष के अर्थ में, प्रफुल्ल, उत्फुल्ल और संस्फुट फूले हुए वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।११-१४।। पलाश,

---

१ ख. ग. ओषधिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पलाशं छदनं [1]पर्णमिध्ममेधः समित्स्त्रियाम् । बोधिद्रुमश्चलदलो दधित्थग्राहिमन्मथाः ।।१५।।
तस्मिन्दधिफलः पुष्पफलदन्तशठावपि । उदुम्बरे हेमदुग्धः कोविदारे द्विपत्रकः ।।१६।।
सप्तपर्णो विशालत्वक्कृतमालं (लः) सुवर्णकः । आरेवतव्याधिघातसंपातचतुरङ्गुलाः ।१७।।
स्याज्जम्बीरे दन्तशठो वरुणे [2]तिक्तशाककः । पुंनागे पुरुषस्तुङ्गः केशरो देववल्लभः ।।१८।।
पारिभद्रे निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः । वञ्जुलश्चित्रकृच्चाथ द्वौ पीतनकपीतनौ ।।१९।।
आम्रातके मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ । पीलौ गुडफलः स्रंसी नादेयी चाम्बुवेतसः ।।२०।।
[3]शोभाञ्जने शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीरमोचकाः । रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यादरिष्टः फेनिलः समौ ।।२१।।
गालवः शाबरो [4]लोध्रस्तिरीटस्तिल्वमार्जनौ । शेलुः श्लेष्मातकः शीत उद्दालो बहुवारकः ।।२२।।
[5]वैकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि । तिन्दुकः स्फूर्जकः कालो नादेयी [6]भूमिजम्बुका ।।२३।।
काकतिन्दौ पीलुकः स्यात्पाटलिर्मोक्षमुष्ककौ । क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात्कुम्भी कैटर्यकट्फले ।।२४।।
वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु । सर्जकासनजीवाश्च पीतसालेऽथ मालके ।।२५।।

छदन और पर्ण पत्ते के अर्थ में, इध्म, एधस् और समिध् अग्नि को प्रज्वलित करनेवाले काठ या तृण के अर्थ में, बोधिद्रुम और चलदल पीपल के वृक्ष के अर्थ में, दधित्थ, ग्राही, दधिफल, पुष्पफल और दन्तशठ कैंथ के अर्थ में, उदुम्बर और हेमदुग्ध गूलर के अर्थ में, कोविदार और द्विपत्रक कचनार के अर्थ में, सप्तपर्ण और विशालत्वक् छितवन वृक्ष के अर्थ में, कृतमाल, सुवर्णक, आरेवत और व्याधिघात, संपाक और चतुरङ्गुल–ये सभी शब्द सोनालु अथवा घनबेहड़ा के वाचक हैं। जम्बीर और दन्तशठ जमीरी नींबू के अर्थ में, तिक्तशाक वरुण या वरण के अर्थ में, पुरुषतुङ्ग, केशर और देववल्लभ पुंनाग (नागकेशर) के अर्थ में, निम्बतरु, पारिभद्र (नींबू) के अर्थ में, मन्दार और पारिजात मदार के अर्थ में, वञ्जुल और चित्रकृत् शीशम जाति के वृक्षविशेष के अर्थ में, पीतन और कपीतन आमड़ा के अर्थ में, गुड़पुष्प और मधुद्रुम मधूक (महुवे) के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।।१५-१९½।। गुड़फल और स्रंसी पीलू के अर्थ में, नादेयी जलबेत के अर्थ में, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, आक्षीव और मोचक शोभाञ्जन (सहिजन) के अर्थ में, मधुशिग्रु लाल सहिजन के अर्थ में, अरिष्ट और फेनिल रीठा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। गालव, शाबर, लोध्र, तिरीट, तिल्व और मार्जन लोध के अर्थ में, शेलु, श्लेष्मातक, शीत, उद्दाल और बहुवारक लसोड़े के अर्थ में, विकङ्कत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल और व्याघ्रपाद् कटाय वृक्ष के अर्थ में, तिन्दुक और स्फूर्जक तेंदुआ के अर्थ में, नादेयी और भूमिजम्बुक नारंगी के अर्थ में, काकतिन्दुक और (काक) पीलुक कड़ुआ तेंदुआ के अर्थ में, पाटलि और मोक्ष तथा मुष्कक काली पाटरि के अर्थ में, क्रमुक और पट्टिकाख्य लाल लोध के अर्थ में, कुम्भी, कैटर्य और कट्फल कायफल के अर्थ में, वीरवृक्ष, अरुष्कर, अग्निमुखी और भल्लातकी भिलावाँ के अर्थ में, सर्जक, असन और जीव सखुआ के अर्थ में, सर्ज और अश्वकर्ण, साल के अर्थ में किया जाता है ।।२०-२५।। वीरतरु, इन्द्रद्रु,

---

१ ख. ग. पत्रमि°। २ क. ङ. छ. °शावकः। ३ ख. ग. सौभाञ्जने। ४ ख. °स्तिलकार्जुनौ। ५ ख. विकङ्कतः। ६ क. ङ. छ. °म्बुकः। का°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्जाश्वकर्णौ वीरेन्द्राविन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः । इङ्गुदी तापसतरुर्मोचा शाल्मलिरेव च ।।२६।।
चिरविल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके । प्रकीर्यः पूतिकरजो मर्कट्यङ्गारवल्लरी ।।२७।।
रोही रोहितकः प्लीहशत्रुर्दाडिमपुष्पकः । गायत्री बालतनयः खदिरो दन्तधावनः ।।२८।।
अरिमेदो विट्खदिरे कदरः खदिरे सिते । पञ्चाङ्गुलो वर्धमानश्चञ्चुर्गन्धर्वहस्तकः ।।२९।।
पिण्डीतको मरुवकः पीतदारु च दारु च । देवदारुः पूतिकाष्ठं श्यामा तु महिलाह्वया ।।३०।।
लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियंगुः फलिनी फली । मण्डूकपर्णपत्रोर्णनटकट्वङ्गटुण्टुकाः ।।३१।।
श्योनाकशुकनासर्क्ष दीर्घवृन्तकुटन्नटाः । पीतद्रुः सरलश्चाथ निचुलोऽम्बुज इज्जलः ।।३२।।
काकोदुम्बरिका फल्गुररिष्टः पिचुमर्दकः । सर्वतोभद्रको निम्बे शिरीषस्तु कपीतनः ।।३३।।
वकुलो वञ्जुलः प्रोक्तः पिच्छिलागुरुशिंशपाः । जया जयन्ती तर्कारी कणिका गणिकारिका ।।३४।।
श्रीपर्णमग्निमन्थः स्याद्वत्सको गिरिमल्लिका । कालस्कन्दस्तमालः [1]स्यात्तण्डुलीयोऽल्पमारिषः ।।३५।।
सिन्धुवारस्तु [2]निर्गुण्डी सैवाऽऽस्फीता (स्फोटा) वनोद्भवा । [3]गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा सप्तला [4]नवमालिका ।।३६।।
अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्यात्कुमारी तरणिः सहा । तत्र शोणे कुरबकस्तत्र पीते कुरण्टकः ।।३७।।
नीला झिण्टी द्वयोर्बाणा झिण्टी सैरीयकस्तथा । तस्मिन्रक्ते कुरबकः पीते सहचरी द्वयोः ।।३८।।

ककुभ और अर्जुन अर्जुनवृक्ष के अर्थ में, इङ्गुदी और तापसतरु गोंदी के अर्थ में, मोचा और शाल्मलि सेमर के अर्थ में, चिरबिल्व, नक्तमाल, करज और करञ्जक कंजा के अर्थ में, प्रकीर्य और पूतिकरज काँटेदार कंजे के अर्थ में, मर्कटी, अङ्गारवल्लरी कंजे के भेद-विशेष के अर्थ में, रोही, रोहितक, प्लीहशत्रु और दाडिम-पुष्पक लालकंजे के अर्थ में, गायत्री, बालतनय, खदिर और दन्तधावन खैर या कत्था के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२६-२८।। अरिमेद और विट्खदिर दुर्गन्धवाले खैर के अर्थ में, पञ्चाङ्गुल, वर्धमान और चञ्चु रेड़ वृक्ष के अर्थ में, गन्धर्वहस्तक श्वेतकत्था के अर्थ में, पिण्डीतक और मरुवक मैनफल के अर्थ में, पीतदारु, दारु और पूतिकाष्ठ देवदारु के अर्थ में, श्यामा, महिलाह्वया, लता, गोवन्दिनी, गुन्द्रा, प्रियंगु, फलिनी और फली काकुनि के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, सरिवन के अर्थ में, श्योनाक, शुकनास, ऋक्ष, दीर्घवृन्त और कुटन्नट सोनापाठा के अर्थ में, पीतद्रु और सरल, सरलवृक्ष के अर्थ में, निचुल, अम्बुज और इज्जल बेंत के अर्थ में, काकोदुम्बरिका और फल्गु कढूवरि के अर्थ में, अरिष्ट, पिचुमर्दक और सर्वतोभद्र नीम के अर्थ में, शिरीष और कपीतन शिरसा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२९-३३।। वकुल और वञ्जुल मौलश्री के अर्थ में, पिच्छिला, अगुरु और शिंशपा शीशम के अर्थ में, जया, जयन्ती और तर्कारी ये जैत वृक्ष के अर्थ में, कणिका, गणिकारिका, श्रीपर्ण और अग्निमन्थ अरणी के अर्थ में, वत्सक और गिरिमल्लिका कुरैया के अर्थ में, कालस्कन्द और तमाल ताड़ के अर्थ में, सिन्धुवार और निर्गुण्डी म्योड़ी के अर्थ में, स्फीता अथवा स्फोट और विनोद्भवा जंगली बेला के अर्थ में, गणिका, यूथिका और अम्बष्ठा जूही के अर्थ में, सप्तला और नवमालिका वर्षा की बेल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अतिमुक्तक और पुण्ड्रक मालती लता के अर्थ में, कुमारी, तरणि और सहा कटसरैया के अर्थ में, लाल कटसरैया के अर्थ में कुरबक और पीली कटसरैया के अर्थ में कुरण्टक शब्द प्रयुक्त होता है। नीलझिण्टी के अर्थ में बाणा, साधारण में सैरीयक तथा झिण्टी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। रक्तझिण्टी के अर्थ में कुरबक और पीली झिण्टी के अर्थ में सहचरी

---

१ क. ङ. छ. °त्तन्दुली°। २ ख. ग. °ण्डी तीव्रस्फोटा व°। ३ ख. ग. गलिका। ४ ख. नवमल्लिका।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]धुस्तूरः कितवो धूर्तो रुचको मातुलुङ्गके। समीरणो मरुबकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः ।।३९।।
[2]कुष्ठेरकस्तु[3] पर्णासेऽथास्फीतो वसुकार्कके। शिवमल्ली पाशुपती वृन्दा वृक्षादनी तथा ।।४०।।
जीवन्तिका वृक्षरुहा गुडूची तन्त्रिकाऽमृता। सोमवल्ली मधुपर्णी मूर्वा तु मोरटी तथा ।।४१।।
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि। पाठाऽम्बष्ठा विद्धकर्णी प्राचीना वनतिक्तिका ।।४२।।
कटुः कटंभरा चाथ चक्राङ्गी शकुलादनी। आत्मगुप्ता [4]प्रावृषायी कपिकच्छुश्च मर्कटी ।।४३।।
अपामार्गः शैखरिकः प्रत्यक्पर्णी मयूरकः। [5]फञ्जिका ब्राह्मणी भार्गी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ।।४४।।
मण्डूकपर्णी भण्डीरी समङ्गा कालमेषिका। रोदनी कच्छुराऽनन्ता समुद्रान्ता दुरालभा ।।४५।।
पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी [6]कलशिर्धावनिर्गुहा। निदिग्धिका स्पृशी व्याघ्री क्षुद्रा दुस्पर्शया सह ।।४६।।
अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका। कालमेषी कृष्णफला बाकुची [7]पूतिफल्यपि ।।४७।।
कणोषणोपकुल्या स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली। चव्यं तु चविका [8]काकचिञ्ची गुञ्जे तु कृष्णला ।।४८।।
विश्वा विषा प्रतिविषा वनशृङ्गाटगोक्षुरौ। नारायणी शतमूली कालेयकहरिद्रवः ।।४९।।
दार्वी पंचपचा दारु शुक्ला हैमवती वचा। वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ।।५०।।

शब्द प्रयुक्त होते हैं। धत्तूर, कितव और धूर्त धतूरे के अर्थ में, रुचक और मातुलुङ्गक, बिजौरा नींबू के अर्थ में, समीरण, मरुवक, प्रस्थपुष्प और फणिज्जक मरुआवृक्ष के अर्थ में, कुठेरक पलाश के अर्थ में, आस्फीत वसुक और अर्कक मदार के अर्थ में, शिवमल्ली और पाशुपत अर्जुन वृक्ष के अर्थ में, वृन्दा, वृक्षादनी, जीवन्तिका और वृक्षरुहा बाँदा के अर्थ में, गुडूची, तन्त्रिका, अमृता, सोमवल्ली और मधुपर्णी गिलोय या गुर्च के अर्थ में, मोरटी और मूर्वा, मरोड़फकी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।३४-४१।। मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी और पीलुकर्णी चिनार के अर्थ में, पाठा, अम्बष्ठा, विद्धकर्णी, प्राचीना और वनतिक्तिका पाढरि के अर्थ में, कटु, कटम्भरा, चक्राङ्गी और शकुलादनी कुटकी के अर्थ में, आत्मगुप्ता, प्रावृषायी, कपिकच्छु और मर्कटी केवाँच के अर्थ में, फञ्जिका, ब्राह्मणी और भार्गी भँगरैया के अर्थ में, द्रवन्ती, शम्बरी और वृषा मूसाकानी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।४२-४४।। मण्डूकपर्णी, भण्डीरी, समङ्गा और कालमेषिका मंजीठ के अर्थ में, रोदनी, कच्छुरा, अनन्ता, समुद्रान्ता और दुरालभा अनन्तमूल के अर्थ में, पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, कलशि, धावनि और गुहा पिठवनी के अर्थ में, निदिग्धिका, स्पृशी, व्याघ्री, क्षुद्रा और दुःस्पर्शा भटकटैया के अर्थ में, अवल्गुज, सोमराजी, सुवल्लि, सोमवल्लिका, कालमेषी, कृष्णफला, बाकुची और पूतिफली बकुची के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।४५-४७।। कणा, उषणा और उपकुल्या गजपीपरि के अर्थ में, श्रेयसी और गजपिप्पली छोटी पीपरि के अर्थ में, चव्य, चविका, काकचिञ्ची, गुञ्जा और कृष्णला घुँघुची के अर्थ में, विश्वा, विषा और प्रतिविषा अतसी के अर्थ में, वनशृङ्गार और गोक्षुर गोखरु के अर्थ में, शतमूली सतावरि के अर्थ में, नारायणी, कालेयक, हरिद्रु, दार्वी, पंचपचा और दाह दारुहल्दी के अर्थ में, शुक्ला और हेमवती सफेद बच के अर्थ में तथा वचोग्रगन्धा, षड्ग्रन्था,

---

१ ख. धत्तूरः। २ ख. कुबेर°। ३ ख. °स्तु कर्णा शेखा स्तोतो। ४ ख. ग. प्रावृषायणी। ५ ख. ग. कञ्जिका। ६ ख. ग. °लशी धावनी गुहा। ७ ख. ग. °तिपर्ण्यपि। ८ ख. ग. °कबिम्बी गु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[1]आस्फोता गिरिकर्णी स्यात्सिंहास्यो वासको वृषः । मिशी मधुरिका छत्रा कोकिलाक्षेक्षुरक्षुरा ।।५१।।
विडङ्गोऽस्त्री कृमिघ्नः [2]स्याद्वज्रदुः स्नुक्स्नुही सुधा । मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा बला वाट्यालकस्तथा ।।५२।।
काला मसूरविदला त्रिपुटा त्रिवृता त्रिवृत् । मधुकं क्लीतकं [3]यष्टिमधुका मधुयष्टिका ।।५३।।
विदारी क्षीरशुक्लेक्षुगन्धा क्रोष्ट्री च या सिता । गोपी श्यामा शारिवा स्यादनन्तोत्पलशारिवा ।।५४।।
मोचा रम्भा च कदली भण्टाकी [4]दुष्प्रधर्षिणी । स्थिरा ध्रुवा [5]सालपर्णी शृङ्गी तु वृषभो वृषः ।।५५।।
गाङ्गेरुकी [6]नागबला मुषली तालमूलिका । ज्यो (ज्यौ) त्स्नी पटोलिका जाली अजशृङ्गी विषाणिका ।।५६।।
स्याल्लाङ्गलिक्यग्निशिखा ताम्बूली [7]नागवल्ल्यपि । हरेणू रेणुकः कौन्ती[8] ह्रीबेरी दिव्यनागरम् ।।५७।।
कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु । शैलेयं तालपर्णी तु दैत्या गन्धकु (पु) टी मुरा ।।५८।।
ग्रन्थिपर्णं शुकं [9]बर्हि बला तु त्रिपटा त्रुटिः । शिवा तामलकी चाथ हनुर्हट्टविलासिनी ।।५९।।
कुटं नटं द (दा) शपुरं [10]वानेयं परिपेलवम् । तपस्विनी जटामांसी पृक्का देवी लता लशूः[11] ।।६०।।

गोलोमी और शतपर्विका खुरासानी बच के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। आस्फोता और गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता के अर्थ में, सिंहास्य, वासक और वृष रुसा के अर्थ में, मिशी, मधुरिका और छत्रा सौंफ के अर्थ में, कोकिलाक्ष, इक्षुर और क्षुर तालमखाना के अर्थ में, विडङ्ग और कृमिघ्न वायविडङ्ग के अर्थ में, मृद्वीका, गोस्तनी और द्राक्षा किशमिश (छोहारा) के अर्थ में, बला और वाट्यालक बरियारा के अर्थ में, काला और मसूरविदला कालानिसोत के अर्थ में, त्रिपुटा और त्रिवृता त्रिवृत् निसोत के अर्थ में, मधुक, क्लीतक, यष्टिमधुका और मधुयष्टिक मुलेठी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।४८-५३।। विदारी, क्षीरशुक्ला, इक्षुगन्धा और क्रोष्ट्री भूमि में होनेवाले सफेद कुम्हड़े के अर्थ में, गोपी, श्यामा, शारिवा, अनन्त और उत्पल शारिवा प्रियंगुलता के अर्थ में, मोचा, रम्भा और कदली केला के अर्थ में, भण्टाकी और दुष्प्रधर्षिणी बैगन के अर्थ में, स्थिरा, ध्रुवा, सालपर्णी सरिवन के अर्थ में, शृङ्गी, वृषभ और वृषन काकड़ासिंगी के अर्थ में, गाङ्गेरुकी और नागबला ककड़ी के अर्थ में, मुसली और तालमूलिका मुसली के अर्थ में, ज्यो (ज्यौ) त्स्नी पटोलिका और जाली चचेड़ा के अर्थ में, अजशृङ्गी और विषाणिका मेढ़ासिंगी के अर्थ में, लाङ्गलिकी और अग्निशिखा कलिहारी के अर्थ में, ताम्बूली और नागवल्ली पान के अर्थ में, हरेणू, रेणुका और कौन्ती गगनधूरि के अर्थ में, ह्रीबेरी और दिव्य नागर नेत्रबाला के अर्थ में, कालानुसार्य, वृद्ध अश्मपुष्प और शीतशिव और शिलाजीत के अर्थ में, शैलेय, तालपर्णी, दैत्या, शैलेयथ, गन्धकुटी और मुरा तालीसपत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।।५४-५८।। ग्रन्थिपर्ण, शुक और बर्हि गठिवन के अर्थ में, त्रिपुटा और त्रुटि छोटी इलायची के अर्थ में, शिवा और तामलकी भूमि आँवले के अर्थ में, हनु और हट्टविलासिनी नखी नामक गन्धद्रव्य के अर्थ में, कुटन्नट, दाशपुर, वानेय और परिपेलव मोथा के अर्थ में, तपस्विनी जटामांसी

---

१ क. ख. ग. ङ. °स्फोटा गिरिमल्ली स्या°। २ क. ङ. °ज्रद्रुस्तु गृहा गुहा। मृ°। ख. ग. °ज्रद्रस्तु स्नु°। ३ क. ख. ङ. °ष्टिकाराख्या कारवी स्मृता। वि°। ४ ख. °धर्षणी। ५ ख. ग. शालपर्णी। ६ क. ङ. °गवल्ली सुखताला च मू°। ७ ख. ग. °गपर्ण्यपि। ८ क. ङ. °न्ती ह्रीवेदोदीष्वबालकम्। ख. °न्ती क्लीबेरोदीव्यबालकम्। ९ ख. ग. °हिरिला। १० क. ख. ङ. वालेयं। ११ ख. ग. लघुः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्चूरको द्राविडको गन्धमूली शठी स्मृता। स्यादृक्षगन्धा [1]छगलान्त्रा वेगी वृद्धदारकः ।।६१।।
तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बिका पीलुपर्ण्यपि। चाङ्गेरी चुक्रोऽम्बष्ठा स्वर्णक्षीरी हिमावती ।।६२।।
सहस्रवेधी चुक्रोऽम्लवेतसः शतवेध्यपि। जीवन्ती जीवनी जीवा भूमिनिम्बः किरातकः ।।६३।।
कूर्चशीर्षो मधुकर(रक)श्चन्द्रः [2]कपिवृकस्तथा। दद्रुघ्नः स्यादेडगजो वर्षाभूः शोथहारिणी ।।६४।।
[3]कुनन्दती निकुम्भस्त्रा यमानी वार्षिका तथा। लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः ।।६५।।
वाराही [4]वरदा गृष्टिः काकमाची तु वायसी। शतपुष्पा सितच्छत्राऽतिच्छत्रा मधुरा मिसिः ।।६६।।
अवाक्पुष्पी कारवी च सरणा तु [5]प्रसारणी। [6]कटंभरा भद्रबला कर्बूरश्च शटी ह्यथ ।।६७।।
पटोलः कुलकस्तिक्तः कारवेल्लः कटिल्लकः। कूष्माण्डकस्तु [7]कर्कारुरिर्वारुः कर्कटी स्त्रियौ ।।६८।।
इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्याद्विशाला त्विन्द्रवारुणी। अर्शोघ्नः सूरणः कन्दो मुस्तकः कुरुविन्दकः ।।६९।।
वंशे त्वक्सारकर्मारवेणुमस्करतेजनाः। छत्रातिच्छत्रपालघ्नौ मालातृणकभूस्तृणे ।।७०।।
तृणराजाह्वयस्तालो घोण्टा क्रमुकपूगकौ। शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे हर्यक्षः [8]केशरी हरिः ।।७१।।

के अर्थ में, पृक्का, देवी, लता, लशू, असवरग के अर्थ में, कर्चूरक और द्राविड़क कचूर के अर्थ में, गन्धमूली धतूरे के अर्थ में, ऋक्षगन्धा, छगलान्त्रा, वेगी और वृद्धदारक विधारा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। तुण्डिकेरी, रक्तफला, बिम्बिका और पीलुपर्णी कुंदरू के अर्थ में, चाङ्गेरी, चुक्रिका और अम्बष्ठा अम्लोनिया के अर्थ में, स्वर्णक्षीरी और हिमावती मकोय के अर्थ में, सहस्रवेधी, चुक्र, अम्लवेतस और शतवेधी अमलवेत के अर्थ में, जीवन्ती, जीवनी और जीवा जीवन्ती के अर्थ में, भूमिनिम्ब और किरातक चिरायता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।५९-६३।। कूर्चशीर्ष और मधुरक जीवक के अर्थ में, चन्द्र और कपिवृक कबीला के अर्थ में, दद्रुघ्न और एडगज चकवड़ के अर्थ में, वर्षाभू, शोथहारिणी, कुनन्दती, निकुम्भस्त्रा, यमानी, वार्षिका–लशुन, गृञ्जन, अरिष्ट, महाकन्द और रसोनक लहसुन के अर्थ में, वाराही, वदरा और गृष्टि विलाईकन्द के अर्थ में, काकमाची और वायसी काकजंघा के अर्थ में, शतपुष्पा, सितच्छत्रा, अतिच्छत्रा, मधुरा और मिसी सौंफ के अर्थ में, अवाक्पुष्पी, कारवी, सरणा और प्रसारिणी लता के अर्थ में, कटझरा और भद्रबला कूबड़ीलता के अर्थ में, कर्चूर और शटी आमाहल्दी के अर्थ में, पटोल और कुलक तिक्त परवल के अर्थ में, कारवेल्ल और कटिल्लक करेला के अर्थ में, कूष्माण्डक और कर्कारु कुम्हड़े के अर्थ में, उर्वारुक और कर्कटी ककड़ी के अर्थ में, इक्ष्वाकु और कटुतुम्बी कड़वी लौकी के अर्थ में, विशाला और इन्द्रवारुणी इन्द्रायनि के अर्थ में, अर्शोघ्न, सूरण और कन्द जिमीकन्द के अर्थ में, मुस्तक और कुरुविन्दक मोथा के अर्थ में, त्वक्सार, कर्मार, वेणु, मस्कर और तेजन बाँस के अर्थ में, छत्र, अतिच्छत्र और पालघ्न पानी में उत्पन्न होनेवाले तृण के अर्थ में, माला, तृणक और भूस्तृण नये तृण के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। तृणराज ताड़ के अर्थ में, घोण्टा, क्रमुक और पूग सुपारी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।६४-७०$\frac{1}{2}$।। शार्दूल और द्वीपी व्याघ्र के अर्थ में, हर्यक्ष, केसरी और हरि

---

१ ख. ग. °ला आवेदी गन्धदा°। २ ख. ग. °न्द्रः कम्पिल्वकस्त°। ३ "कुनन्दती"'तथा" इत्यत्र "सकुलदन्ती निगतस्त्रायमाना कर्षिकास्तथा" इति क. ङ. पुस्तकयोः वर्तते। ४ ख. बदरी। ५ ख. ग. °सारिणी। ६ ख. ग. कटुंभरा। ७ क. ङ. °रुरूर्वा°। ८ ख. ग. केसरी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोलः पोत्री वराहः स्यात्कोक ईहामृगो वृकः । लूतोर्णनाभौ तु समौ तन्तुवायश्च मर्कटे ।।७२।।
वृश्चिकः शूककीटः स्यात्सारङ्गस्तोककौ समौ । कृकवाकुस्ताम्रचूडः पिकः कोकिल इत्यपि ।।७३।।
काके तु करटारिष्टौ व (ब) कः[1]कह्व उदाहृतः । कोकश्चक्रश्चक्रवाकः कादम्बः कलहंसकः ।।७४।।
पतङ्गिका पुत्तिका स्यात्सरघा मधुमक्षिका । द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः ।।७५।।
केकी शिख्यस्य वाक्केका शकुन्तिशकुनिद्विजाः । स्त्री पक्षतिः [2]पक्षमूलं चञ्चुस्तोटिरुभे स्त्रियौ ।।७६।।
गतिरुड्डीनसण्डीनौ कुलायो नीडमस्त्रियाम् । पेषी (शी) कोषो द्विहीनेऽण्डं पृथुकः शावकः शिशुः ।।७७।।
पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः संदोहव्यूहकौ गणः । स्तोमौघनिकरव्राता निकुरम्बं कदम्बकम् ।।
संघातसंचयौ वृन्दं पुञ्जराशी तु कूटकम् ।।७८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भूमिवनौषध्यादिवर्गनिरूपणं नाम
त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६३।।

सिंह के अर्थ में, कोल, पोत्री और वराह सुअर के अर्थ में, कोक, ईहामृग और वृक भेड़िया के अर्थ में, लूता, उर्णनाभ, तन्दुवाय और मर्कट मकड़ी के अर्थ में, वृश्चिक और शूककीट बिच्छू के अर्थ में, सारङ्ग और स्तोकक पपीहा के अर्थ में, कृकवाकु और ताम्रचूड़ मुर्गा के अर्थ में, पिक और कोकिल कोयल के अर्थ में, करट और अरिष्ट कौवे के अर्थ में, बक और कह्व बकुला के अर्थ में, कोक और चक्रवाक चकवा के अर्थ में, कादम्ब और कलहंस बत्तख के अर्थ में, पतङ्गिका और पुत्तिका पाँखी के अर्थ में, सरघा और मधुमक्षिका मधुमक्खी के अर्थ में, द्विरेफ, पुष्पलिड्, भृङ्ग, षट्पद, भ्रमर और अलि भँवरे के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।७१-७५।। केकी और शिखी मोर के अर्थ में, शकुन्ति, शकुनि और द्विज पक्षी मात्र के अर्थ में, पक्षति, पक्षमूल, चञ्चु और तोटि, चोंच के अर्थ में, उड्डीन और सण्डीन उड़ने के अर्थ में, कुलाय और नीड़ घोंसले के अर्थ में, पेशीकोष और द्विहीन अण्डे के अर्थ में, पृथुक, शावक, शिशु, पोत, पाक, अर्भक और डिम्भ बच्चे के अर्थ में, संदोह, व्यूह, गण, सोम, ओघ, निकर, व्रात, निकुरम्ब, कदम्बक, संघात, संचय और वृन्द समूह के अर्थ में, पुञ्ज, राशि और कूट अनाज की ढेरी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।७६-७८।।

श्री अग्निमहापुराण में भूमिवनौषध्यादि वर्ग-निरूपण कथन नामक
तीन सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६३।।

---

१ क. ख. कङ्क। २ छ. °लं लञ्चु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गान्वक्ष्येऽथ नामतः । नरः पञ्चजना मर्त्या योषिद्योषाऽबला वधूः ।।१।।
कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साऽभिसारिका । कुलटा पुंश्चल्यसती नग्निका स्त्री च कोटवी ।।२।।
कात्यायन्यर्धवृद्धा या सैरन्ध्री परवेश्मगा । असिक्नी स्यादवृद्धा या मालिनी तु रजस्वला ।।३।।
वारस्त्री गणिका वेश्या भ्रातृजायास्तु यातरः । ननन्दा तु स्वसा पत्युः सपिण्ड(ण्डा)स्तु सनाभयः ।।४।।
समानोदर्यसोदर्यसगर्भसहजाः समाः । सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः ।।५।।
दंपती जंपती भार्यापती जायापती च तौ । गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्बं च कललोऽस्त्रियाम् ।।६।।
गर्भो भ्रूण इमौ तुल्यौ क्लीवं शण्डो(ण्ढो)नपुंसकम् । स्यादुत्तानशया डिम्भो बालो माणवकः स्मृतः ।।७।।
पिचि(च)ण्डिलो बृहत्कुक्षिरभ्रटो नतनासिके । विकलाङ्गस्तु पोगण्ड आरोग्यं स्यादनामयम् ।।८।।
स्यादेडे वधिरः कुब्जे गडुलः ककुरे [1]कुनिः । क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च प्रतिश्यायस्तु पीनसः ।।९।।

अध्याय ३६४

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्ग

अग्निदेव बोले–अब मैं मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों का वर्णन उनके नामानुसार कर रहा हूँ। नर, पञ्चजन, मर्त्य और मनुष्य पुरुषमात्र के अर्थ में, योषित्, योषा, अबला और वधू स्त्रीभाव के अर्थ में, परपुरुषार्थ, संकेत स्थान जानेवाली स्त्री को अभिसारिका कहा जाता है। कुलटा, पुंश्चली और असती व्यभिचारिणी के अर्थ में, नग्निका और कोटवी नग्नस्त्री के अर्थ में, कात्यायनी अर्धबूढ़ी के अर्थ में, सैरन्ध्री दासी से अर्थ में, असिक्नी युवती दासी के अर्थ में, मालिनी रजस्वला के अर्थ में, वारस्त्री और गणिका वेश्या के अर्थ में, याता, देवरानी या जेठानी के अर्थ में, ननन्दा पति की बहन के अर्थ में तथा सपिण्ड और सनाभि भाई-बन्धु के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।१-४।। समानोदर्य, सोदर्य, सगर्भ, सहज सगे भाई के अर्थ में, सगोत्र, बान्धव, ज्ञाति, बन्धु, स्व और स्वजन सगोत्री भाई के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। दम्पती, जम्पती, भार्यापती और जायापती स्त्री-पुरुष के अर्थ में, गर्भाशय, जरायु, उल्ब और कलल गर्भ को लपेटनेवाली झिल्ली के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कलल शब्द पुँल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनों हैं। गर्भ और भ्रूण ये दोनों तुल्य शब्द हैं। क्लीव, शण्ड और नपुंसक हिंजड़े के अर्थ में, उत्तानशया और डिम्भ बच्चे के अर्थ में, बाल और माणवक बालक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।५-७।। पिचिण्डिल और बृहत्कुक्षि तुन्दिल के अर्थ में, अभ्रट और नत-नासिक नकचपटे के अर्थ में, विकलांग और पोगण्ड वामन के अर्थ में, आरोग्य और अनामय आरोग्य के अर्थ में, एड और बधिर बहिरे के अर्थ में, कुब्ज और गडुल कुबड़े के अर्थ में, लूले के अर्थ में कुनि, क्षय, शोष, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा के अर्थ में, प्रतिश्याय और पीनस जुकाम के अर्थ में

---

१ क. ङ. कुणिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्त्री क्षुत्क्षुतं [1]क्षवः पुंसि कासस्तु क्षवथुः पुमान् । शोथस्तु श्वयथुः शोफः पादस्फोटो विपादिका ।।१०।।
किलास सिध्म कच्छ्वां तु पाम पामा विचर्चिका । कोठो मण्डलकं कुष्ठं श्वित्रे दुर्नामकार्शसी ।।११।।
आनाहस्तु विबन्धः स्याद्ग्रहणी रुक्प्रवाहिका । बीजबीर्येन्द्रियं शुक्रं पललं क्रव्यमामिषम् ।।१२।।
बुक्काऽग्रमांसं हृदयं हृन्मेदस्तु वपा वसा । पश्चाद्ग्रीवाशिरा मन्या नाडी तु धमनिः शिरा ।।१३।।
तिलकं क्लोम मस्तिष्कं दूषिका नेत्रयोर्मलम् । अन्त्रं पुरीतद्गुल्मस्तु प्लीहा पुंस्यथ वस्नसा ।।१४।।
स्नायुः स्त्रियां कालखण्डयकृती तु समे इमे । [2]स्यात्कर्परः कपालोऽस्त्री कीकसं कुल्यमस्थि च ।।१५।।
स्याच्छरीरास्थिन कंकालः पृष्ठास्थिन तु कशेरुका । शिरोस्थनि करोटिः स्त्री पार्श्वास्थनि तु [3]पर्शुका ।।१६।।
अङ्गं प्रतीकोऽवयवः शरीरं वर्ष्म विग्रहः । कटो ना श्रोणिफलकं कटिः श्रोणिः ककुद्मती ।।१७।।
पश्चान्नितम्बः स्वीकट्याः क्लीवे तु जघनं पुरः । कूपकौ तु नितम्बस्थौ द्वयहीने [4]कुकुन्दरे ।।१८।।
स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथावुपस्थो वक्ष्यमाणयोः । भगं योनिर्द्वयोः शिश्नो मेढ्रो (ढ्रं) मेहनशेफसी ।।१९।।
पिचि (च) ण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दं कुचौ स्तनौ । चूचुकं तु कुचाग्रं स्यान्न ना क्रोडं भुजान्तरम् ।।२०।।

प्रयुक्त होते हैं। स्त्रीलिंग क्षुत्, पुँल्लिग क्षव और स्त्रीलिंग क्षुत छींक के अर्थ में, कास और क्षवथु खाँसी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। शोथ, श्वयथु और शोफ सूजन के अर्थ में तथा पाद-स्फोट और विपादिका व्यवाइ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किलास और सिध्म सेहुआँ रोग के अर्थ में, कच्छू, पाम, पामा और विचर्चिका खुजली के अर्थ में, कोढ़ और मण्डलक मण्डलाकार कोढ़ के अर्थ में, कुष्ठ और श्वित्र सफेद कोढ़ के अर्थ में, दुर्नामक और अर्श गुदारोग के अर्थ में, आनाह और विबन्ध कब्जियत के अर्थ में, ग्रहणी और प्रवाहिका संग्रहणी के अर्थ में, शुक्र (तेज, रेतस्), बीज और वीर्य-इन्द्रिय बीज के अर्थ में, पलल, क्रव्य और आमिष मांस के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।८-१२।। बुक्का और अग्रमांस कलेजे के अर्थ में, हृदय और हृत् हृदय के अर्थ में, मेद, वपा और वसा चर्बी के अर्थ में, पश्चाद्ग्रीवा, शिरा और मन्या गले की पिछली नस के अर्थ में, नाड़ी, धमनी और शिरा नाड़ी के अर्थ में, तिलक और क्लोम पेट में पानी की झिल्ली (फेफड़ा) के अर्थ में, मस्तिष्क और गोर्द मस्तक-स्नेह के अर्थ में, दूषिका नेत्रों के मैल के अर्थ में, अन्त्र और पुरीतत् आँत के अर्थ में, गुल्म और प्लीहा पिलही के अर्थ में, वस्नसा और स्नायु वायु-वाहिनी नाड़ी के अर्थ में, कालखण्ड और यकृत् दाहिनी कुक्षि के मांस खण्ड (कलेजे) के अर्थ में, कर्पर और कपाल सिर की हड्डी के अर्थ में, कीकस, कुल्य और अस्थि हड्डी के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है ।।१३-१५।। कंकाल शरीर की हड्डी के अर्थ में, कशेरुका पीठ की रीढ़ के अर्थ में, करोटि सिर की हड्डी के अर्थ में, 'पर्शुका' पसली के अर्थ में, अंग, प्रतीक और अवयव अंग के अर्थ में, शरीर, वर्ष्म और विग्रह शरीर के अर्थ में, कट, श्रोणिफलक, कटि, श्रोणि और ककुद्मती कटि के अर्थ में, 'नितम्ब' स्त्री की कटि के पिछले भाग के अर्थ में और उसके आगेवाले भाग के अर्थ में जघन शब्द प्रयुक्त होता है। कूपक और ककुन्दर नितम्ब के दोनों गड्ढों के अर्थ में, स्फिच तथा कटिप्रोथ स्त्री के दोनों कूल्हों के अर्थ में, उपस्थ, भग और योनि भग के अर्थ में और शिश्न, मेढ्र, मेहन और शेफस् लिंग के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पिचण्ड, कुक्षि, जठर, उदर और तुन्द पेट के अर्थ में, कुच स्तन के अर्थ में, चूचुक और कुचाग्र कुच के अग्रभाग के अर्थ में, क्रोड और भुजान्तर गोद के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।१६-२०।।

---

१ क. ङ. च. क्षम्यं। २ ग. छ. °त्कर्पूरः। ३ ख. ग. पार्श्वकम्। ४ ख. ग. ककुन्दरे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री संधी तस्यैव जत्रुणी । पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् ।।२१।।
प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्याद्वियुते तते । अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ।।२२।।
पाणौ चपेटप्रतलप्रहस्ता विस्तृताङ्गुलौ । बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः सकनिष्ठवान्(ष्ठिकः) ।।२३।।
कम्बुग्रीवा त्रिरेखा साऽवटुर्घाटा कृकाटिका । अधः स्याच्चिबुकं चोष्ठादथ गण्डौ गलो हनुः ।।२४।।
अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने । चिकुरः कुन्तलो बालः प्रतिकर्म प्रसाधनम् ।।२५।।
आकल्पवेशौ नेपथ्यं [1]प्रत्यक्षं खेलयोगजम् । चूडामणिः शिरोरत्नं तरलो हारमध्यगः ।।२६।।
कर्णिका तालपत्रं स्याल्लम्बनं स्याल्ललन्तिका । मञ्जीरो नूपुरं पादे किङ्किणी छुद्रघण्टिका ।।२७।।
दैर्घ्यमायाम आरोहः परिणाहो विशालता । पटच्चरं जीर्णवस्त्रं संव्यानं चोत्तरीयकम् ।।२८।।
रचना स्यात्परिस्पन्द आभोगः परिपूर्णता । समुद्गकः संपुटकः प्रतिग्राहः पतद्ग्रहः ।।२९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गनिरूपणं नाम
चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६४।।

स्कन्ध, भुजशिर और अंस कन्धे के अर्थ में, जत्रुणी कन्धे के समीप हँसुली के अर्थ में, पुनर्भव, कररुह, नख और नखर नाखून के अर्थ में, अँगूठे से लेकर तर्जनी तक फैलाये हुए हाथ को प्रादेश, अँगूठे से मध्यमा तक को ताल और अनामिका तक फैलाये हुए हाथ को गोकर्ण कहते हैं। अँगूठे और कनिष्ठिका के मध्य भाग को, जो बारह अंगुल विस्तृत रहता है, वितस्ति (बालिस्त) कहा जाता है। चपेट, प्रतल और प्रहस्त अँगुलियों के बीच के भाग हथेली (चटकने) के अर्थ में, रत्नि और अरत्नि मुट्ठी बाँधे हाथ के अर्थ में, कम्बुग्रीवा और ग्रीवा (गले) के अर्थ में, अवटु, घाटा और कृकाटिका घाँटी के अर्थ में, चिबुक ओष्ठ के नीचेवाले भाग (ठुड्डी) के अर्थ में, गण्ड और कपोल गाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और चिबुक के नीचे की हड्डी के अर्थ में हनु शब्द का प्रयोग होता है। अपांग नेत्र के किनारे के अर्थ में, कटाक्ष तिरछी चितवन के अर्थ में, चिकुर, कुन्तल और बाल केश के अर्थ में, प्रतिकर्म और प्रसाधन शब्द शृंगार करने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२१-२५।। आकल्प, वेश और नेपथ्य अलंकार रचनादि की शोभा के अर्थ में, शिरोरत्न चूड़ामणि के अर्थ में, तरल हार के मध्य में रहनेवाली बड़ी मणि के अर्थ में, कर्णिका तर्की के अर्थ में, तालपत्र ऐरन के अर्थ में, लम्बन और ललन्तिका लम्बी कण्ठी के अर्थ में, मञ्जीर और नूपुर पायजेब के अर्थ में, किंकिणी और छुद्रघण्टिका घूँघुर के अर्थ में, दैर्घ्य, आयाम और आरोह (लम्बाई) के अर्थ में, परिणाह और विशालता चौड़ाई के अर्थ में, पटच्चर और जीर्ण वस्त्र फटे-पुराने वस्त्र के अर्थ में, संव्यान और उत्तरीयक दुपट्टे के अर्थ में, रचना और परिस्पन्द शिल्पादि रचना के अर्थ में, आभोग और परिपूर्णता पूर्णता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ढक्कनदार पेटी को समुद्गक और सम्पुटक कहते हैं। प्रतिग्राह और पतद्ग्रह- ये पीकदान के नाम हैं ।।२६-२९।।

श्री अग्निमहापुराण में नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्र वर्ग-निरूपण-कथन नामक तीन सौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६४।।

---

१ ख. ग. °क्षं स्वेन यो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मवर्गः

अग्निरुवाच

वंशोऽन्ववायो गोत्रं स्यात्कुलान्यभिजनान्वयौ । मन्त्रव्याख्याकृदाचार्य आदेष्टा त्वध्वरे व्रती ।।१।।
यष्टा च यजमानः स्याज्ज्ञात्वाऽऽरम्भ उपक्रमः । सतीर्थ्याश्चैकगुरवः सभ्याः सामाजिकास्तथा ।।२।।
सभासदः सभास्तारा ऋत्विजो याजकाश्च ते । अध्वर्यूद्गातृहोतारो यजुः सामर्ग्विदः क्रमात् ।।३।।
चषालो यूपकटकः समे स्थण्डिलचत्वरे । आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः ।।४।।
पृषदाज्यं सदध्याज्ये परमान्नं तु पायसम् । उपाकृतः पशुरसौ योऽभिमन्त्र्य क्रतौ हतः ।।५।।
परं पराकं शमनं प्रोक्षणं च वधार्थकम् । पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः ।।६।।
वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याऽप्युपासनम् । नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम् ।।७।।
मुख्यः स्यात्प्रथमः कल्पोऽनुकल्पस्तु ततोऽधमः । कल्पे विधिक्रमौ ज्ञेयौ विवेकः पृथगात्मता ।।८।।
संस्कारपूर्व ग्रहणं स्यादुपाकरणं श्रुतेः । भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी ।।९।।
ऋषयः सत्यवचसः स्नातकश्चाऽप्लुतव्रती । [1]ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते ।।१०।।

अध्याय ३६५

ब्रह्मवर्ग

अग्निदेव बोले–वंश, अन्ववाय, गोत्र, कुल और अभिजन वंश के अर्थ में, मन्त्रों की व्याख्या करनेवाले के अर्थ में आचार्य, यज्ञ में व्रत की दीक्षा ग्रहण करनेवाले के अर्थ में आदेष्टा, यष्टा और यजमान का प्रयोग होता है। उपक्रम आरम्भ करने के अर्थ में, सतीर्थ्य और एकगुरु सहपाठी के अर्थ में, सभ्य, सामाजिक, सभासद और सभास्तार सभा में बैठनेवाले के अर्थ में, ऋत्विक् याजक के अर्थ में, अध्वर्यु, उद्गाता और होता क्रमशः यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी (ऋत्विक्) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। चषाल और यूपकटक यज्ञस्तम्भ के अर्थ में, स्थण्डिल यज्ञ के चबूतरे के अर्थ में, आमिक्षा दधियुक्त पके हुए दुग्ध के अर्थ में, पृषदाज्य दहीयुक्त घृत के अर्थ में, पायस खीर के अर्थ में, उपाकृत यज्ञ में हत होनेवाले अभिमन्त्रित पशु के अर्थ में, परम्पराक, शमन और प्रोक्षण यज्ञीय पशु के वध के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा और अर्हणा पूजा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।१-६।। वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या और उपासन सेवा के अर्थ में, नियम व्रत के अर्थ में, प्रथमकल्प मुख्य विधान के अर्थ में, अनुकल्प गौण विधि के अर्थ में, विधि और क्रम कल्प के अर्थ में, विवेक और पृथगात्मता प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान के अर्थ में, उपाकरण विधानपूर्वक वेदाध्ययन के अर्थ में, भिक्षु, परिव्राट्, कर्मन्दी, पाराशरी और मस्करी संन्यासी के अर्थ में, सत्यवचस् ऋषि के अर्थ में, स्नातक, आप्लुतवती वेदाध्ययन समाप्त करके दूसरे (गृहस्थ) आश्रम में प्रविष्ट होने के अर्थ में, निर्जितइन्द्रियग्राम और यति जितेन्द्रिय के अर्थ में, यम शरीरमात्र से साध्य होनेवाले नित्यकर्म के

---

१ ख. ग. ये संयतेन्द्रि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शरीरसधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः। नियमस्तु स यत्कर्मानित्यमागन्तुसाधनम् ।।
स्याद्ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपि ।।११।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मवर्गनिरूपणं नाम पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६५।।

अथ षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

क्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच

मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्। राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः ।।१।।
चक्रवर्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः। मन्त्री धीसचिवोऽमात्यो महामात्राः प्रधानकाः ।।२।।
द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाक्षदर्शकौ। भौरिकः कनकाध्यक्षोऽथाध्यक्षाधिकृतौ समौ ।।३।।
अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः। सौविदल्लाः कञ्चुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्च ते ।।४।।
षण्डो वर्षवरस्तुल्याः [1]सेवकार्थ्यनुजीविनः। विषयानन्तरो राजा शत्रुर्मित्रमतः परम् ।।५।।
उदासीनः परतरः पार्ष्णिग्राहस्तु पृष्ठतः। चरः स्पशः स्यात्प्रणिधिरुत्तर काल आयतिः ।।६।।

अर्थ में, नियम कभी-कभी होनेवाले विशेष कर्म के अर्थ में, ब्रह्मभूय, ब्रह्मत्व और ब्रह्मसायुज्य ब्रह्म में लीन होने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।७-११।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मवर्ग-निरूपण कथन नामक तीन सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६५।।

अध्याय ३६६

क्षत्रविट्शूद्रवर्ग

अग्निदेव बोले–मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय और विराट्–ये क्षत्रिय के वाचक हैं। जिस राजा के सामने सभी सामन्त नरेश मस्तक झुकाते हैं, उसे अधीश्वर कहते हैं। चक्रवर्ती सार्वभौम महाराजाधिराज के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मन्त्री, धीसचिव और अमात्य मन्त्री के अर्थ में, महामात्र प्रधानमन्त्री के अर्थ में, प्राड्विवाक् और अक्षदर्शक धर्माध्यक्ष (न्यायाधीश) के अर्थ में, भौरिक सुवर्ण सिक्के के अध्यक्ष के अर्थ में (नैष्किक चाँदी के सिक्के के अध्यक्ष के अर्थ में), अध्यक्ष और अधिकृत अधिकारी के अर्थ में, अन्तर्वेशिक अन्तःपुर के अध्यक्ष के अर्थ में, सौविदल्ल, कञ्चुकी, स्थापत्य और सौविद रनिवास के सेवक के अर्थ में, षण्ड और वर्षवर हिंजड़े के अर्थ में, सेवक, अर्थी और अनुजीवी सेवक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अपने राज्य की सीमा पर रहनेवाला राजा शत्रु होता है और शत्रु की राज्य-सीमा पर रहनेवाला राजा अपना मित्र होता है ।।१-५।। उदासीन शत्रु-मित्र से भिन्न राजा के अर्थ में, विजिगीषु राजा के पीछे रहनेवाले राजा को पार्ष्णिग्राह कहते हैं। चर, स्पश, प्रणिधि जासूस के अर्थ में, आयति, उत्तरकाल भविष्य के अर्थ

---

१ ख. ग. °काद्यानु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुदर्कः फलमुत्तरम् । अदृष्टं वह्नितोयादि दृष्टं स्वपरचक्रजम् ।।७।।
भद्रकुम्भः पूर्णकुम्भो भृङ्गारः कनकालुका । प्रभिन्नो गर्जितो मत्तो वमथुः करशीकरः ।।८।।
[1]स्त्रियां सृणिस्त्वङ्कुशोऽस्त्री परिस्तोमः कुथो द्वयोः । कर्णीरथः प्रवहणं दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियाम् ।।९।।
आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः । भटा योधाश्च योद्धारः कञ्चुको वारणोऽस्त्रियाम् ।।१०।।
शीर्षण्यं च शिरस्त्रेऽथ तनुत्रं वर्म दंशनम् । आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत् ।।११।।
व्यूहस्तु बलविन्यासश्चक्रं चानीकमस्त्रियाम् । एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका ।।१२।।
पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् । सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ।।१३।।
अनीकिनी दशानीकिन्योऽक्षौहिण्यो गजादिभिः । धनुः कोदण्ड इष्वासौ (सः) कोटिरस्याटनी स्मृता[2] ।।१४।।

में, तत्काल, तदात्व वर्तमान के अर्थ में, उदर्क आगामी फल के अर्थ में, अदृष्ट भय, अग्नि, जल आदि जनित भय के अर्थ में, दृष्ट भय अपने तथा अन्य सेनाजनित भय के अर्थ में, भद्रकुम्भ और पूर्णकुम्भ पूर्णकलश के अर्थ में, भृङ्गार, कनकालुका झारी के अर्थ में, प्रभिन्न, गर्जित और मत्त मदश्रावी हाथी के अर्थ में, वमथु और करशीकर हाथी के सूँड़ से निकले हुए जल के अर्थ में, अंकुश और सृणि अंकुश के अर्थ में, परिस्तोम और कुथ हाथी के ऊपर पड़े हुए चित्र-विचित्र झूले के अर्थ में, कर्णीरथ और प्रवहण डोला के अर्थ में, दोला और प्रेङ्खादि पालकी डोला के अर्थ में, अधोरण, हस्तिपद, हस्त्यारोह और निषादी पीलवान के अर्थ में, भट, योधा और योद्धा सैनिक के अर्थ में, कञ्चुक और वारण कवच (बख्तर) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग स्त्रीलिंग के अतिरिक्त सभी लिङ्गों में होता है ।।६-१०।। शीर्षण्य टोप के अर्थ में, तनुत्र, वर्म और दंशन कवच के अर्थ में, आमुक्त, प्रतिमुक्त, पिनद्ध, अपिनद्ध, पहने हुए झिल्लिम के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। व्यूह और बल विन्यास मोर्चे के अर्थ में, चक्र और अनीक सेना के अर्थ में, 'पत्ति' एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े और पाँच पैदलवाली सेना के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पत्ति के प्रत्येक अंग को क्रमशः तिगुना करने पर विशेष नाम की सेना का निर्माण होता है। जैसे-पत्ति के अंगभूत १ हाथी, १ रथ, ३ घोड़े और ५ पैदल को क्रमशः तिगुना करने पर ३ हाथी, ३ रथ, ९ घोड़े तथा १५ पैदल की सेना मुख नामक सेना होती है। इसी प्रकार सेनामुख के प्रत्येक अंग को क्रमशः तिगुना करने पर 'गुल्म' नामक सेना, गुल्म के अंग को तिगुना करने पर 'गण' नामक सेना, गण को तिगुने करने पर 'वाहिनी' नामक सेना, वाहिनी को तिगुना करने पर 'पृतना' नामक सेना, पृतना को तिगुना करने पर 'चमू' नामक सेना, चमू को तिगुना करने पर 'अनीकिनी' नामक सेना और अनीकिनी को तिगुना करने पर 'अक्षौहिणी' नामक सेना तैयार होती है।

'उपर्युक्त सेना-विशेष में गजादि निर्णयचक्र'

सेना	पत्ति	सेनामुख	गुल्म	गण	वाहिनी	पृतना	चमू	अनीकिनी	अक्षौहिणी
गजरथ	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
घोड़े	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	६५६१	६५६१०
पैदल	५	१५	४५	१३५	४०५	१२१५	३६४५	१०९३५	१०९३५०

धनु, कोदण्ड और इष्वास धनुष के अर्थ में, कोटि और अटनी धुनष के अन्तिम भाग के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।११-१४।।

---

१ छ. °यां शृणि°। २ ख. ग. °ता। लस्त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नस्तकस्तु धनुर्मध्यं मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः । पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः ।।१५।।
तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः । असिर्ऋष्टिश्च निस्त्रिंशः करवालः कृपाणवत् ।।१६।।
त्सरुः खड्गस्य मुष्टौ [1]स्यादीली तु [2]करपालिका । द्वयोः कुठारः सु(स्व)धितिश्छुरिका चासिपुत्रिका ।।१७।।
प्रासस्तु कुन्तो विज्ञेयः सर्वला तोमरोऽस्त्रियाम् । वैतालिका बोधकरा मागधा बन्दिनस्तु तौ (ते) ।।१८।।
संशप्तकास्तु समयात्संग्रामादनिवर्तिनः । पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम् ।।१९।।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यहंपूर्विका स्त्रियाम् । अहमहमिका सा स्याद्योऽहंकारः परस्परम् ।।२०।।
शक्तिः पराक्रमः प्राणः शौर्यं स्थानसहोबलम् । मूर्च्छा तु कश्मलं [3]मोहोऽप्यवमर्दस्तु पीडनम् ।।२१।।
अभ्यवस्कन्दनं त्वभ्यासादनं विजयो जयः । [4]निर्वासनं संज्ञपनं [5]मारणं प्रतिघातनम् ।।२२।।
स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः । विशो भूमिस्पृशो वैश्या वृत्तिर्वर्तनजीवने ।।२३।।
कृष्यादिवृत्तयो ज्ञेयाः कुसीदं वृद्धिजीविका । उद्धारोऽर्थप्रयोगः स्यात्कणिशं शस्यमञ्जरी ।।२४।।
[6]किंशारुः सस्यशूकं स्यात्स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः । धान्यं व्रीहिः स्तम्बकरिः कंडगरो बुषं(सं)स्मृतम् ।।२५।।

नस्तक, धनुर्मध्य धनुष के मध्यभाग के अर्थ में, मौर्वी, ज्या, शिञ्जिनी और गुण धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा) के अर्थ में, पृषत्क, बाण, विशिख, अजिह्मग, खग और आशुग बाण के अर्थ में, तूण, उपासङ्ग, तूणीर, निषंग और इषुधि तरकस के अर्थ में, असि, ऋष्टि, निस्त्रिंश, करवाल और कृपाण तलवार के अर्थ में, त्सरु खड्ग की मूठ के अर्थ में, ईली और करवालिका गुप्ती के अर्थ में, कुठार और सुधिति फरसा के अर्थ में, छुरिका और असिपुत्रिका छुरी के अर्थ में, प्रास और कुन्त भाला के अर्थ में, सर्वला और तोमर गँड़ासे के अर्थ में, वैतालिक और बोधकर प्रातःकाल राजा को जगानेवाले के अर्थ में, मागध और बन्दी वंशपरम्परा के गुणगान करनेवाले के अर्थ में, संशप्तक युद्धस्थल से न भागनेवाले वीर के अर्थ में, पताका, वैजयन्ती, केतन और ध्वज पताका के अर्थ में, अहंपूर्विका 'मैं पहले मैं' पहले के अर्थ में और अहमहमिका आपस में होड़ करने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।१५-२०।। शक्ति,पराक्रम, प्राण, शौर्य, स्थान, सहस् और बल–ये सभी शब्द बल के वाचक हैं। मूर्च्छा, कश्मल और मोह मूर्च्छा के अर्थ में, अवमर्द और पीड़न कष्ट पहुँचाने के अर्थ में, अभ्यवस्कन्दन और अभ्यासादन शत्रु को धर दबाने के अर्थ में, जय और विजय जीतने के अर्थ में, निर्वासन, संज्ञापन, मारण और प्रतिघातन वध करने के अर्थ में, पञ्चता, कालधर्म दिष्टान्त, प्रलय और अत्यय मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। विश्, भूमिस्पृश् और वैश्य वैश्यजाति के अर्थ में, वृत्ति वर्तन, जीवन और जीविका के उपाय के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२१-२३।। कृषि और पशुपालन वैश्य जाति की जीविका कही गयी है। कुसीद, वृद्धि-जीविका और अर्थप्रयोग ब्याज से चलायी जानेवाली जीविका के अर्थ में, उद्धार ऋण के अर्थ में, कणिश और शस्यमञ्जरी धान आदि की बाली के अर्थ में, किंशारु और शस्यशूक जवा आदि के अग्रभाग (टूँड़) के अर्थ में, स्तम्ब गुच्छे के अर्थ में, धान्य, व्रीहि और स्तम्बकरि धान्य सामान्य के अर्थ में, कडङ्गर और बुष भूसा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२४-२५।।

---

१ क. ङ. स्यादाली। ख. स्यादानी तु। २ ख. ग. करवालिका। ३ क. ख. ग. मोहः पटहाडम्बरौ समौ। अ°। ४ ख. ग. निर्वापणम्। ५ क. ग. ङ. सारणं। ६ ख. ग. किंसारः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

माषादयः शमीधान्ये शूकधान्ये यवादयः । तृणधान्यानि नीवाराः शूर्प प्रस्फोटनं स्मृतम् ।।२६।।
स्यूतप्रसेवौ कण्डोलपिटौ [1]कटकिनिञ्जकौ । समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे ।।२७।।
पौरोगवस्तदध्यक्षः सूपकारास्तु वल्लवाः । आरालिका आन्धसिकाः सूदा औदनिका गुणाः ।।२८।।
क्लीवेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना कर्कर्यालुर्गलन्तिका । आलिंजरः स्यान्मणिकं सुषवी कृष्णजीरके ।।२९।।
आरनालस्तु कुल्माषं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम् । निशा हरिद्रा पीता स्त्री खण्डे मत्स्यण्डिफाणिते ।।३०।।
कूर्चिका क्षीरविकृतिः स्निग्धं मसृणचिक्कणम् । पृथुकः स्याच्चिपिटको धाना भ्र(भृ)ष्टयवाः स्त्रियः ।।३१।।
जेमनं [2]लेह आहारो माहेयी सौरभी च गौः । युगादीनां च वोढारो युग्यप्रासङ्ग्यशाटकाः(कटाः) ।।३२।।
चिरप्रसूता वष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका । संधिनी वृषभाक्रान्ता वेहद्गर्भोपघातिनी ।।३३।।
पण्याजीवो ह्यापणिको न्यासश्चोपनिधिः पुमान् । विपणो विक्रयः संख्या संख्येये ह्यादश त्रिषु ।।३४।।
विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः । संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तस्तासु चाऽऽनवतेः स्त्रियः ।।३५।।
पङ्क्तेः [3]शतसहस्रादि क्रमाद्दशगुणोत्तरम् । मानं तुलाऽङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ।।३६।।

माष आदि (उड़द, मूँग, मोथी, राजमाष, कुलथी, चना, तिल, काकण्ड और चीवर) शमी धान्य के अर्थ में, जौ (टूँड़वाले अनाज) आदि शूक धान्य के अर्थ में, तृणधान्य और नीवार तिन्नी आदि के अर्थ में, प्रस्फोटन और सूर्प सूप के अर्थ में, स्यूत और प्रसेव बोरा के अर्थ में, कण्डोल और पिट बाँस के झाबे के अर्थ में, कट और किनिञ्जक चटाई के अर्थ में, रसवती, पाकस्थान और महानस रसोईघर के अर्थ में, पौरोगव रसोई के अध्यक्ष के अर्थ में, सूपकार, वल्लव, आरालिक, आन्धसिक, सूद, औदनिक और गुण रसोईदार के अर्थ में, अम्बरीष और भ्राष्ट्र भूँजनेवाले पात्र खपरी आदि के अर्थ में, कर्करी, आलू और गलन्तिका करवा के अर्थ में, आलिञ्जर और मणिक मेढुका के अर्थ में, सुषवी काले जीरा के अर्थ में, आरनाल और कुल्माष कांजी के अर्थ में, वाह्लीक, हिंगु और रामठ हींग के अर्थ में, निशा, हरिद्रा और पीता हल्दी के अर्थ में, मत्स्यण्डी और फाणित खाँड़ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।२६-३०।। कूर्चिका और क्षीरविकृति खोवा के अर्थ में, स्निग्ध, मसृण और चिक्कण चिकने के अर्थ में, पृथुक और त्रिपिटक चिउरा के अर्थ में, धाना और भ्रष्टयवा बहुरी के अर्थ में, जेमन, लेह और आहार भोजन के अर्थ में, माहेयी, सौरभी और गौ गाय के अर्थ में, युग्य और प्रासंग्य कन्धे पर जुआ ढोनेवाले बैल के अर्थ में, शाकट गाड़ी खींचनेवाले बैल के अर्थ में, चिरप्रसूता और वष्कयिणी देर से ब्याई हुई गाय (बकेना) के अर्थ में, धेनु, नवसूतिका नयी ब्याई गाय के अर्थ में, संधिनी गर्भिणी गाय के अर्थ में, वेहत् और गर्भोपघातिनी गर्भपात करानेवाली गाय के अर्थ में, पण्याजीव और आपणिक क्रय-विक्रय करनेवाले (साहूकार) के अर्थ में, न्यास और उपनिधि धरोहर के अर्थ में, विपण और विक्रय बेचने के अर्थ में, एक से दस तक और क्षीरस्वामी के मत से दस से अट्ठारह तक तथा बीस से आरम्भ कर सौ तक की संख्या तीनों लिङ्गों में एकवचन होती है। संख्यार्थ में प्रयोग करने पर ये संख्याएँ द्विवचन और बहुवचन में प्रयुक्त होती हैं और नब्बे तक की संख्याओं के रूप स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं ।।३१-३५।। पंक्ति को दस गुना करने पर शत और इसे दस गुना करने पर सहस्र की संख्या बनती है। इसी प्रकार क्रमशः सभी संख्याओं को दस गुना करने पर शेष सभी संख्याएँ बन जाती हैं। मान तीन प्रकार के होते हैं-तुलामान, अंगुलिमान और प्रस्थमान।

---

१ ख. °किणिञ्जकौ। २ क. ङ. छ. लेप। ३ ख. ग. °स्त्राणि क्र°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् । सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ।।३७।।
तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः । कार्षापणः कार्षिकः स्यात्कार्षिके ताम्रिके पणः ।।३८।।
द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु । रीतिः स्त्रियामारकूटो ना स्त्रियामथ ताम्रकम् ।।३९।।
शुल्वमौदुम्बरं लौहे तीक्ष्णं कालायसायसी । क्षारः काचोऽथ चपलो रसः सूतश्च पारदे ।।४०।।
गरलं माहिषं शृङ्गं त्रपुसीसकपिच्चटम् । हिण्डीरोऽब्धिकफः फेनो मधूच्छिष्टं तु सिक्थकम् ।।४१।।
रङ्गवङ्गे पिचुस्थूलो कूलटी तु मनःशिला । यवक्षारश्च पाक्यः स्यात्त्वक्क्षीरा[1] वंशलोचना ।।४२।।
वृषला जघन्यजाः शूद्राश्चाण्डालान्त्याश्च शं(सं)कराः । कारुः शिल्पी संहतैस्तैर्द्वयोः श्रोणिः सजातिभिः ।।४३।।
रङ्गाजीवश्चित्रकरस्त्वष्टा तक्षा च वर्धकिः । नाडिंधमः स्वर्णकारो नापितान्तावसायिनः ।।४४।।
जाबालः स्यादजाजीवो देवाजीवस्तु देवलः । जायाजीवास्तु शैलूषा भृतको भृतिभुक्तथा ।।४५।।
विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः । विहीनोऽपसदो जाल्मो भृत्ये दासेरचेटकाः ।।४६।।
पटुस्तु पेशलो दक्षो मृगयुर्लुब्धकः स्मृतः । चाण्डालस्तु दिवाकीर्तिः पुस्तं लेप्यादिकर्मणि ।।४७।।

पाँच गुंजे (रत्ती) का एक माशा होता है। अक्ष और कर्ष १६ माशे के अर्थ में, कर्षचतुष्टय पल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। एक अक्ष सोने को 'सुवर्ण' और 'विस्त' कहते हैं तथा एक पल सुवर्ण का नाम 'कुरुविस्त' है। सौ पल की एक 'तुला' होती है। यह स्त्रीलिंग शब्द है। भार बीस तुला के अर्थ में, कार्षापण, कार्षिक चाँदी के रुपये के अर्थ में, पण ताँबे के पैसे के अर्थ में, द्रव्य, वित्त स्वापतेय, रिक्थ, ऋक्थ, धन और वसु धन के अर्थ में, रीति और आरकूट पीतल के अर्थ में, ताम्र, शुल्व और औदुम्बर ताँबे के अर्थ में, तीक्ष्ण, कालायस और अयस् लोहे के अर्थ में, क्षार और काँच काँच के अर्थ में, चपल, रस, सूत और पारद पारा के अर्थ में, गरल भैंस के सींग के अर्थ में, त्रपु, सीसक और पिच्चट सीसे के अर्थ में, हिण्डीर, अब्धिकफ और फेन समुद्र फेन के अर्थ में, मधूच्छिष्ट और सिक्थक मोम के अर्थ में, रङ्ग और वङ्ग राँगा के अर्थ में, पिचु और तूल रुई के अर्थ में, कूनटी, मनःशिला मैनसिल के अर्थ में, यवक्षार और पाक्य जवाखार के अर्थ में, त्वक्क्षीरी और वंशलोचना वंशलोचन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।३६-४२।। वृषल और जघन्यज शूद्र जाति के अर्थ में, संकर चाण्डाल के अर्थ में, कारु शिल्पी के अर्थ में, श्रेणि सजातीय शिल्प-संघ के अर्थ में, रङ्गाजीव और चित्रकार रँगरेज के अर्थ में, त्वष्टा, तक्षा और वर्धकि बढ़ई के अर्थ में, नाडिंधम और स्वर्णकार सोनार के अर्थ में, नापित और अन्तावसायी नाई के अर्थ में, जाबाल और अजाजीव गड़ेरिया के अर्थ में, देवाजीव और देवल पण्डा पुजारी के अर्थ में, जायाजीव और शैलूष नट के अर्थ में, भृतक और भृतिभुक् मजदूर के अर्थ में, विवर्ण, पामर, नीच, प्राकृत, पृथग्जन, विहीन, अपसद और जाल्म नीच के अर्थ में, भृत्य, दासेर और चेटक सेवक के अर्थ में, पटु, पेशल और दक्ष चतुर के अर्थ में, मृगयु और लुब्धक बहेलिया के अर्थ में, दिवाकीर्ति चाण्डाल के अर्थ में, पुस्त लीपनेवाले के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।।४३-४७।।

---

१ ख. ग. 'क्षरी वं'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वर्करस्तरुणः पशूः । मञ्जूषा पेटकः [1]पेडा तुल्यसाधारणौ समौ ।।४८।।
प्रतिमा स्यात्प्रतिकृतिर्वर्गा ब्रह्मादयः स्मृताः ।।४९।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये क्षत्रविट्शूद्रवर्गनिरूपणं नाम षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६६।।

अथ सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सामान्यनामलिङ्गानि

अग्निरुवाच

सामान्यान्यथ वक्ष्यामि नामलिङ्गानि तच्छृणु । सुकृती पुण्यवान्धन्यो महेच्छस्तु महाशयः ।।१।।
प्रवीणनिपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः । [2]स्युर्वदान्यस्थूललक्षदानशौण्डा बहुप्रदे ।।२।।
कृती कृतज्ञः कुशल आसक्तोद्युक्त उत्सुकः । इभ्य आढ्यः परिवृढो ह्यधिभूर्नायकोऽधिपः ।।३।।
लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणः श्रीलः [3]स्वतन्त्रः स्वैर्यपावृतः । खलपूः स्याद्बहुकरो दीर्घसूत्रश्चिरक्रियः ।।४।।
जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात्कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः । कर्मशूरः कर्मठः स्याद्भक्षको घस्मको (रो) ऽद्मरः ।।५।।

पञ्चालिका और पुत्रिका गुड़िया के अर्थ में, वर्कर तरुण पशु के अर्थ में, मञ्जूषा, पेटक और पेटा पेटारी के अर्थ में, प्रतिमा और प्रतिकृति मूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण आदि वर्गों का वर्णन किया गया है ।।४८-४९।।

श्री अग्निमहापुराण में क्षत्रविट्शूद्रर्गनिरूपण-कथन नामक तीन सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६६।।

अध्याय ३६७

सामान्यनामलिङ्ग-कथन

अग्निदेव बोले–अब मैं सामान्यतः नामलिंगों का वर्णन करूँगा। आप उसे सुनिये। सुकृति, पुण्यवान् और धन्य–ये शब्द पुण्यात्मा और सौभाग्यशाली पुरुष के लिए आते हैं। जिनकी अभिलाषा, आशय या अभिप्राय महान् हों उन्हें महेच्छ और महाशय कहते हैं। प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, विज्ञ, निष्णात और शिक्षित-सुयोग्य एवं कुशल के अर्थ में आते हैं। वदान्य, स्थूललक्ष, दानशौण्ड और बहुप्रद–ये अधिक दान करनेवाले के वाचक हैं। कृती, कृतज्ञ और कुशल–ये भी प्रवीण, चतुर एवं दक्ष के ही अर्थ में आते हैं। आसक्त, उद्युक्त और उत्सुक–ये उद्योगी और कार्यपरायण पुरुष के लिए प्रयुक्त होते हैं। अधिक धनवान् को इभ्य और आढ्य कहते हैं। परिवृढ, अधिभू, नायक और अधिप–ये स्वामी के वाचक हैं। लक्ष्मीवान्, लक्ष्मण तथा श्रील–ये शोभा और श्री से सम्पन्न पुरुष के अर्थ में आते हैं। स्वतन्त्र, स्वैरी और अपावृत शब्द स्वाधीन अर्थ के बोधक हैं। खलपू और बहुकर–खलिहान या मैदान साफ करनेवाले पुरुष के अर्थ में तथा दीर्घसूत्र और चिरक्रिय–ये आलसी, बहुत विलम्ब से काम पूरा करनेवाले पुरुष के बोधक हैं। बिना विचारे काम करनेवाले को जाल्म और असमीक्ष्यकारी कहते हैं। जो कार्य करने में ढीला हो, वह कुण्ठ कहलाता है। कर्मशूर और कर्मठ–ये उत्साहपूर्वक कार्य करनेवालों के वाचक हैं। खानेवाले को भक्षक, घस्मर और अद्मर कहते हैं ।।१-५।।

---

१ ख. ग. पेटा। २ ख. ग. °लक्ष्यदा°। ३ क. ग. °न्त्रः स्थैर्यगौरवः। ख°। ख. ग. °न्त्र स्थैर्य आवृ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लोलुपो गर्धलो गृध्नुर्विनीतप्रश्रितौ तथा[1] । धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च निभृतः प्रतिभान्विते ।।६।।
प्रगल्भो भीरुको भीरुर्वन्दारुरभिवादके । भूष्णुर्भविष्णुर्भविता ज्ञाता विदुरविन्दुकौ ।।७।।
मत्तशौण्डोत्कटक्षीवाश्चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः । देवानञ्चति देवद्र्यङ्विष्वद्र्यङ् [2]विश्वगञ्चति ।।८।।
यः सहाञ्चति सध्र्यङ्स[3] स तिर्यङ्यस्तिरोऽञ्चति । वाचोयुक्तिः पटुर्वाग्मी वावदूकश्च वक्तरि ।।९।।
स्याज्जल्प(ल्पा)कस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक् । अपध्वस्तो धिक्कृतः स्याद्बद्धे कीलितसंयतौ ।।१०।।
वरणः शब्दनो नान्दीवादी नान्दीकरः समौ । व्यसनार्तोपरक्तौ द्वौ बद्धे कीलितसंयतौ ।।११।।
विहस्तव्याकुलौ तुल्यौ नृशंसक्रूरघातकाः । पापो धूर्तो वञ्चकः स्यान्मूर्खे वैदेहवालिशौ ।।१२।।
कदर्ये कृपणक्षुद्रौ मार्गणो याचकार्थिनौ । अहंकारवानहंयुः शुभंयुस्तु शुभान्वितः ।।१३।।
कान्तं मनोरमं रुच्यं हृद्याभीष्टे ह्यभीप्सिते । असारं फल्गु शून्यं वै मुख्यवर्यवरेण्यकाः ।।१४।।
श्रेयाञ्श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्प्राग्र्याग्रीयमग्रियम् । वड्रोरुविपुलं पीनपीव्नी तु स्थूलपीवरे ।।१५।।

लोलुप, गर्धल और गृध्नु–ये लोभी के पर्याय हैं। विनीत और प्रश्रित–ये विनययुक्त पुरुष का बोध करानेवाले हैं। धृष्णु और वियात–ये धृष्ट के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्रतिभाशाली पुरुष के अर्थ में निभृत और प्रगल्भ शब्द का प्रयोग होता है। भीरुक और भीरु–डरपोक के, वन्दारु और अभिवादक प्रणाम करनेवाले के, भूष्णु, भविष्णु और भविता होनेवाले के तथा ज्ञाता, विदुर और विन्दुक–ये जानकार के वाचक हैं। मत्त, शौण्ड, उत्कट और क्षीव–ये मतवाले के अर्थ में आते हैं। चण्ड और अत्यन्तकोपन–ये अधिक क्रोध करनेवाले पुरुष के बोधक हैं। देवताओं का अनुकरण करनेवालों को देवद्र्यङ् और सब ओर जानेवाले को विष्वद्र्यङ् कहते हैं। इसी प्रकार साथ चलनेवाला सध्र्यङ् और तिरछा चलनेवाला तिर्यङ् कहलाता है। वाचोयुक्ति पटु, वाग्मी और वावदूक–ये कुशलवक्ता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बहुत अनाप-शनाप बकनेवाले को जल्पाक, वाचाल, वाचाट और बहुगर्ह्यवाक् कहते हैं। अपध्वस्त और धिक्कृत–ये धिक्कार हुए पुरुष के वाचक हैं। कीलित और संयत शब्द बद्ध (बँधे हुए) का बोध करानेवाले हैं ।।६-१०।। वरण और शब्दन–ये आवाज करनेवाले के अर्थ में आते हैं। नान्दी पाठ करनेवालों को नान्दीवादी और नान्दीकर कहते हैं। व्यसनार्त और उपरक्त–ये पीड़ित के अर्थ में आते हैं। विहस्त और व्याकुल–ये शोकाकुल पुरुष का बोध कराते हैं। नृशंस, क्रूर, घातक और पाप–ये दूसरों से द्रोह करनेवाले निर्दय मनुष्य के वाचक हैं। ठग को धूर्त और वञ्चक कहते हैं। वैदेह (वैधेय) और वालिश–ये मूर्ख के वाचक हैं। कृपण और क्षुद्र–ये कदर्य (कंजूस) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मार्गण, याचक और अर्थी–ये याचना करनेवाले के अर्थ में आते हैं। अहङ्कारी को अहङ्कारवान् और अहंयु तथा शुभ के भागी को शुभान्वित और शुभंयु कहते हैं। कान्त, मनोरम और रुच्य–ये सुन्दर अर्थ के वाचक हैं। हृद्य, अभीष्ट और अभीप्सित–ये प्रिय के समानार्थक शब्द हैं। असार, फल्गु तथा शून्य–ये निस्सार अर्थ का बोध करानेवाले हैं। मुख्य, वर्य, वरेण्यक, श्रेयान्, श्रेष्ठ और पुष्कल–ये श्रेष्ठ के वाचक हैं। प्राग्र्य, अग्र्य, अग्रीय तथा अग्रिय शब्द भी इसी अर्थ में आते हैं। वड्र, उरु और विपुल–ये विशाल अर्थ के बोधक हैं। पीन, पीवन्, स्थूल और पीवर–ये स्थूल या मोटे अर्थ का बोध करानेवाले हैं ।।११-१५।।

---

१ क. ख. ग. ङ. °था। लिङ्गानि लिङ्गिनः साधुर्निभृ°। २ ङ. छ. विश्वद्यङ्विश्वग°। ३ ख. ग. स घूर्णितः प्रचलायितः। वा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु । मात्राकुटीलवकणा भूयिष्ठं पुरुहं पुरु ।।१६।।
अखण्डं पूर्णसकलमुपकण्ठान्तिकाभितः । समीपे संनिधाभ्यासौ नेदिष्ठं सुसमीपकम् ।।१७।।
सुदूरे तु दविष्ठं स्याद्वृत्तं निस्तलवर्तुले । उच्चप्रांशून्नतोदग्रा ध्रुवो नित्यः सनातनः ।।१८।।
आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि । चञ्चलं तरलं चैव कठोरं जठरं दृढम् ।।१९।।
प्रत्यग्रोऽभिनवो [1]नव्यो नवीनो नूतनो नवः । एकतानोऽनन्यवृत्तिरुच्चण्डमविलम्बितम् ।।२०।।
उच्चावचं नैकभेदं संबाधकलिलं तथा । तिमितं स्तिमितं क्लिन्नमभियोगस्त्वभिग्रहः ।।२१।।
स्फातिवृद्धौ प्रथा ख्यातौ समाहारः समुच्चयः । अपहारस्त्वपचयो विहारस्तु परिक्रमः ।।२२।।
प्रत्याहार उपादानं निर्हारोऽभ्यवकर्षणम् । विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः स्यादास्या त्वासना स्थितिः ।।२३।।
संनिधिः संनिकर्षः स्यात्संक्रमो दुर्गसंचरः । उपलम्भस्त्वनुभवः प्रत्यादेशो निराकृतिः ।।२४।।
परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम् । अनुमा पक्षहेत्वाद्यैर्डिम्बे भ्रमरविप्लवौ ।।२५।।

स्तोक, अल्प, क्षुल्लक, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, दभ्र, कृश, तनु, माया, त्रुटि, लव और कण–ये स्वल्प या सूक्ष्म अर्थ के वाचक हैं। भूयिष्ठ, पुरुह और पुरु–ये अधिक अर्थ के बोधक हैं। अखण्ड, पूर्ण और सकल–ये समग्र के वाचक हैं। उपकण्ठ, अन्तिक, अभितः, संनिधि और अभ्यास–ये समीप अर्थ में आते हैं। अत्यन्त निकट को नेदिष्ठ कहते हैं। बहुत दूर के अर्थ में दविष्ठ शब्द का प्रयोग होता है। वृत्त, निस्तल और वर्तुल–ये गोलाकार के वाचक हैं। उच्च, प्रांशु, उन्नत और उदग्र–ये ऊँचा के अर्थ में आते हैं। ध्रुव, नित्य और सनातन–ये नित्य अर्थ के बोधक हैं। आविद्ध, कुटिल, भुग्न, वेल्लित और वक्र–ये टेढ़े का बोध करानेवाले हैं। चञ्चल और तरल–ये चपल के अर्थ में आते हैं। कठोर, जठर और दृढ़–ये समानार्थक शब्द हैं। प्रत्यग्र, अभिनव, नव्य, नवीन, नूतन और नव–ये नये के अर्थ में आते हैं। एकतान और अनन्यवृत्ति–ये एकाग्र चित्तवाले पुरुष के बोधक हैं। उच्चण्ड और अविलम्बित–ये फुर्ती के वाचक हैं। उच्चावच और नैकभेद–ये अनेक प्रकार के अर्थ में आते हैं। सम्बाध और कलित–ये संकीर्ण एवं गहन के बोधक हैं। तिमित, स्तिमित और क्लिन्न–ये आर्द्र या भीगे हुए के अर्थ में आते हैं। अभियोग और अभिग्रह–ये दूसरे पर किये हुए दोषारोपण के नाम हैं। स्फाति शब्द वृद्धि के और प्रथा शब्द ख्याति के अर्थ में आता है। समाहार और समुच्चय–ये समूह के वाचक हैं। अपहार और अपचय–ये ह्रास का बोध करानेवाले हैं। विहार और परिक्रम–ये घूमने के अर्थ में आते हैं ।।१६-२२।। प्रत्याहार और उपादान–ये इन्द्रियों को विषयों से हटाने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। निर्हार तथा अभ्यवकर्षण–ये शरीर में धँसे हुए शस्त्रादि को युक्तिपूर्वक निकालने के अर्थ में आते हैं। विघ्न, अन्तराय और प्रत्यूह–ये विघ्न का बोध करानेवाले हैं। आस्या, आसना और स्थिति–ये बैठने की क्रिया के बोधक है। संनिधि और संनिकर्ष–ये समीप रहने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किले में प्रवेश करने की क्रिया को संक्रम और दुर्ग-संचर कहते हैं। उपलम्भ और अनुभव–ये अनुभूति के नाम हैं। प्रत्यादेश और निराकृति–ये दूसरे के मत का खण्डन करने में आते हैं। परिरम्भ, परिष्वङ्ग, संश्लेष और उपगूहन–ये आलिंगन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पक्ष और हेतु आदि के द्वारा निश्चित होनेवाले ज्ञान का नाम अनुमा या अनुमान है। बिना हथियार की लड़ाई

---

१ ख. ग. 'व्योह्यस्त्रमत्यन्तपश्चिमम्। ए'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

असंनिकृष्टार्थज्ञानं शब्दाद्धि शाब्दमीरितम्। सादृश्यदर्शनात्तुल्ये बुद्धिः स्यादुपमानकम् ।।२६।।
कार्यं दृष्ट्वा विना न स्यादर्थापत्तिः परार्थधीः। प्रतियोगिन्यगृहीते भुवि नास्तीत्यभावकः ।।२७।।
[1]इत्यादिनामलिङ्गो हि [2]हरिरुक्तो नृबुद्धये ।।२८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यनामकथनं नाम सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६७।।

अथाष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रलयवर्णनम्

अग्निरुवाच

चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो यः प्राणिनां लयः। सदा विनाशो जातानां ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।।१।।
चतुर्युगसहस्रान्ते प्राकृतः प्रकृतौ लयः। लय आत्यन्तिको ज्ञानादात्मनः परमात्मनि ।।२।।
नैमित्तिकस्य कल्पान्ते वक्ष्ये रूपं लयस्य ते। चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ।।३।।

तथा भयभीत होने पर किये हुए शब्द का नाम डिम्ब, भ्रमर (या डमर) तथा विप्लव है। शब्द के द्वारा जो परोक्ष अर्थ का ज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञान कहते हैं। समानता देखकर जो उसके तुल्य वस्तु का बोध होता है, उसका नाम उपमान है। जहाँ कोई कार्य देखकर कारण का निश्चय किया जाय, अर्थात् अमुक कारण के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है–इस प्रकार विचार करके जो दूसरी वस्तु अर्थात् कारण का ज्ञान प्राप्त किया जाय, उसे अर्थापत्ति कहते हैं। प्रतियोगी का ग्रहण न होने पर जो ऐसा कहा जाता है कि 'अमुक' वस्तु पृथ्वी पर नहीं है उसका नाम अभाव है। इस प्रकार मनुष्यों का ज्ञान बढ़ाने के लिए मैंने नाम और लिङ्गस्वरूप श्रीहरि का वर्णन किया है ।।२३-२८।।

श्री अग्निमहापुराण में सामान्यनाम-कथन नामक तीन सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६७।।

अध्याय ३६८

प्रलय-वर्णन

अग्निदेव बोले–प्रलय के चार प्रकार हैं। उत्पन्न वस्तुओं और प्राणियों का सदा विनाश होते रहना 'नित्यलय', ब्रह्ममय समस्त सृष्टि का नाश होना 'नैमित्तिक लय' और चारों युगों के सहस्र बार व्यतीत होने पर प्रकृतिजनित समस्त वस्तुओं का प्रकृति में लीन हो जाना 'प्राकृत लय' तथा ज्ञान द्वारा आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना 'आत्यन्तिक लय' कहलाता है। (अब) मैं उस नैमित्तिक लय का विवरण बता रहा हूँ जो कल्प के अन्त में चारों युगों के सहस्र बार व्यतीत होने और भूमण्डल के क्षीणप्राय होने पर सम्भव होता है ।।१-३।। उस समय

---

१ 'इत्यादि…नृबुद्धये' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ ख. ग. °क्तो न दृश्यते। °ङ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी । ततः सत्त्वक्षयः स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पतिः ।।४।।
स्थितो जलानि पिबति भानोः सप्तसु रश्मिषु । भूपातालसमुद्रादितोयं नयति संक्षयम् ।।५।।
ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपबृंहिताः । त एव रश्मयः सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः ।।६।।
दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज । कूर्मपृष्ठसमा भूः स्यात्ततः कालाग्निरुद्रकः ।।७।।
शेषा हि श्वाससंपातः[1] पातालानि दहत्यधः । पातालेभ्यो भुवं विष्णुर्भुवः स्वर्गं दहत्यतः ।।८।।
अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तथा । ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ।।९।।
गच्छन्ति ते महर्लोकं महर्लोकाज्जनं ततः । रुद्ररूपी जगद्दग्ध्वा मुखनिःश्वासतो हरेः ।।१०।।
उत्तिष्ठन्ति ततो मेघा नानारूपाः सविद्युतः । शतं वर्षाणि वर्षन्तः शमयन्त्यग्निमुत्थितम् ।।११।।
सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि शतं मरुत् । मुखनिःश्वासतो विष्णोर्नाशं नयति तान्घनान् ।।१२।।
वायुं पीत्वा हरिः शेषे शेते चैकार्णवे प्रभुः । ब्रह्मरूपधरः सिद्धैर्जलगैर्मुनिभिः स्तुतः ।।१३।।
आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्मधुसूदनः ।।१४।।
कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ । द्विपरार्धं ततो व्यक्तं प्रकृतौ लीयते द्विज ।।१५।।

सौ वर्षों तक निरन्तर अत्यन्त भीषण अनावृष्टि होती रहती है, जिससे समस्त प्राणियों का संक्षय हो जाता है। जगदीश्वर भगवान् विष्णु सूर्य की सातों किरणों में स्थित रहकर समस्त जल पी जाते हैं। इस प्रकार पृथिवी, पाताल और समुद्र आदि के जल के सूख जाने पर जल पीने के कारण बढ़ी हुई सूर्य की वे सातों किरणें (पृथक्-पृथक्) सात सूर्य के रूप में परिणत हो जाती हैं। अये द्विज! उन्हीं सातों सूर्यों द्वारा पाताल तल आदि समस्त त्रैलोक्य के भस्मसात् होने पर यह पृथ्वी कछुवे की पीठ की भाँति कठोर हो जाती है। (सर्वप्रथम) कालाग्निरूपी रुद्रदेव नागराज शेष के श्वास द्वारा पाताल को भस्म करते हैं। पाताल से निकली हुई अग्नि द्वारा पृथिवी तथा पृथिवी से निकली हुई अग्नि द्वारा विष्णुदेव स्वर्ग को भस्म कर डालते हैं। उस समय यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य जलती हुई भट्ठी की भाँति दिखायी देता है। तत्पश्चात् उस अग्नि से संतप्त होकर दोनों लोकों के निवासी प्राणी महर्लोक को चले जाते हैं और महर्लोक से पुनः जनलोक की यात्रा प्रारम्भ करते हैं ।।४-९$\frac{1}{2}$।। रुद्ररूपी कालाग्नि द्वारा सम्पूर्ण संसार के जल जाने पर भगवान् विष्णु के निःश्वास द्वारा विद्युत् समेत अनेक भाँति के मेघ उत्पन्न होते हैं, जो सौ वर्ष तक निरन्तर बरसते हुए इस प्रचण्ड अग्नि को शान्त कर देते हैं। सप्तर्षि के स्थान में पहुँचकर वायु इस (अगाध) जल में सौ वर्ष तक ठहरकर भगवान् विष्णु के निःश्वास से उत्पन्न हुए उन मेघों को नष्ट करता रहता है। उस समय ब्रह्मरूपधारी प्रभु नारायण देव वायु पान करते हुए उस एकार्णव में शयन करते हैं, जिनकी स्तुति सिद्ध और मुनिगण वहाँ भी पहुँचकर किया करते हैं। इस प्रकार भगवान् मधुसूदन अपनी मायारूपी और दिव्यरूपवाली उस योगनिद्रा को प्राप्तकर अपने को वासुदेव के रूप में समझते हुए शयन करते रहते हैं। एक कल्प तक शयन करने के अनन्तर ब्रह्मस्वरूप नारायण देव जागकर पुनः इस संसार का निर्माण करते हैं और द्विज! व्यक्त रूप यह सारा ब्रह्माण्ड द्विपरार्ध काल तक प्रकृति में लीन

---

१ छ. °पातात्पाता°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद्गुण्यते [1]स्थले । ततोऽष्टादशमे (के) भागे परार्धमभिधीयते ।।१६।।
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः [2]प्रलयः स्मृतः । आनवृष्ट्याऽग्निसंपर्कात्कृते संज्वलने द्विज ।।१७।।
महदादेर्विकारस्य [3]विशेषान्तस्य संक्षये । कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।।१८।।
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणम् । [4]आत्मगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ।।१९।।
रसात्मिकाश्च तिष्ठन्ति ह्यापस्तासां रसो गुणः । पीयते ज्योतिषा तासु नष्टास्वग्निश्च दीप्यते ।।२०।।
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुर्ग्रसति भास्क (स्व) रम्। नष्टे ज्योतिषि वायुश्च बली दोधूयते महान् ।।२१।।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः । वायौ नष्टे तु चाऽऽकाशं नीरवं तिष्ठति द्विज ।।२२।।
आकाशस्याथ वै शब्दं भूतादिर्ग्रसते च खम् । अभिमानात्मकं खं च भूतादिं ग्रसते महान् ।।२३।।
भूमिर्याति लयं चाप्सु आपो ज्योतिषि तद्व्रजेत् । वायौ वायुश्च खे खं च अहंकारे लयं स च ।।२४।।
महत्तत्त्वे महान्तं च प्रकृतिर्ग्रसते द्विज । व्यक्ताऽव्यक्ता च प्रकृतिर्व्यक्तस्याव्यक्तके लयः ।।२५।।
पुमानेकाक्षरः शुद्धः सोऽप्यंशः परमात्मनः । प्रकृतिः पुरुषश्चैतौ लीयते परमात्मनि ।।२६।।
न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः । सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ।।२७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६८।।

रहता है। एक संख्या को दस से गुणा करके उसे पुनः आठ बार दस-दस से गुणा करने पर जो संख्या बनती है उसे परार्ध कहा जाता है। अये द्विज! परार्ध के दुगुने समय तक प्राकृतिक वस्तुओं आदि का प्रकृति में लीन रहना प्राकृत लय कहलाता है। यह अनावृष्टि और अग्निदाह द्वारा उत्पन्न होता है ।।१०-१७।। भगवान् कृष्ण की इच्छा से जनित उस प्रलय में महदादि विकारों का उस अपने विशेष (सूक्ष्मताओं) में लीन होने पर जल सर्वप्रथम भूमि के गन्धादि गुणों को नष्ट करता है। तत्पश्चात् गन्धहीन होने पर पृथिवी नष्ट हो जाती है। केवल रसात्मक वस्तुएँ और जल ही शेष रह जाते हैं, किन्तु उनके रस रूपी गुण को तेज पी जाता है, जिससे नष्ट हुई अग्नि पुनः प्रदीप्त हो जाती है। उसी प्रकार तेज के उस रोचनशील गुण को वायु ग्रसित कर लेता है, जिसके कारण उस ज्योति के नष्ट होने पर वायु अत्यन्त प्रचण्ड होकर सबको कम्पित करने लगता है। अये द्विज! वायु के स्पर्श गुण को आकाश नष्ट कर देता है और वायु के विनष्ट होने पर आकाश नितान्त नीरव हो जाता है ।।१८-२२।। उस समय आकाश के शब्द रूपी गुण को भूत (सूक्ष्म तत्त्व) आदि नष्ट करते हैं और अहंकार उन तत्त्वों को तथा उन्हें महान् नष्ट करता है। इस प्रकार पृथ्वी का लय जल में और जल का लय तेज में, तेज का लय वायु में, वायु का लय आकाश में और आकाश का लय अहंकार में हो जाता है। अये द्विज! प्रकृति महान् को महत्तत्त्व में विलीन करती है। प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त दोनों है। व्यक्त का अव्यक्त में लय होता है। एकाक्षर तथा शुद्ध पुरुष जो परमात्मा का ही अंश है, प्रकृति के साथ उस परमात्मा में विलीन होता है जिस सर्वेश्वर में नाम और जाति आदि की कल्पना नहीं होती है तथा जो केवल सत्तामात्र, ज्ञानात्मा, आत्मा से परे और ज्ञेय रूप है ।।२३-२७।।

श्री अग्निमहापुराण में नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलय-वर्णन नामक तीन सौ अरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।३६८।।

---

१ क. ख. ग. मुने। २ क. ख. सलयः। ३ छ. विशाषा°। ४ ख. ग. आत्तगन्धा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्त्योर्निरूपणम्

अग्निरुवाच

आत्यन्तिकं लयं वक्ष्ये ज्ञानादात्यन्तिको लयः । आध्यात्मिकादिसंतापं ज्ञात्वा स्वस्य विरागतः ।।१।।
आध्यात्मिकस्तु संतापः शारीरो मानसो द्विधा । शारीरो बहुभिर्भेदैस्तापोऽसौ श्रूयतां द्विज ।।२।।
([1]त्यक्त्वा जीवो भोगदेहं[2] गर्भमाप्नोति कर्मभिः । आतिवाहिकसंज्ञस्तु देहो भवति वै द्विज ।।३।।
केवलं स मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते । याम्यैः पुंभिर्मनुष्याणां तच्छरीरं द्विजोत्तम) ।।४।।
नीयते याम्यमार्गेण नान्येषां प्राणिनां मुने । ततः स्वर्याति नरकं स भ्रमेर्घ (द्ध) टयन्त्रवत् ।।५।।
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन्फलभूमिरसौ स्मृता । यमो योनि (नी) श्च नरकान्निरूपयति कर्मणा ।।६।।
पूरणीयाश्च तेनैव यमं चैवानुपश्यताम् । वायुभूताः प्राणिनश्च गर्भं ते प्राप्नुवन्ति हि ।।७।।
यमदूतैर्मनुष्यस्तु नीयते तं च पश्यति । धर्मी च पूज्यते तेन पापिष्ठस्ताड्यते गृहे ।।८।।
शुभाशुभं कर्म तस्य चित्रगुप्तो निरूपयेत् । बान्धवानामशौचे तु देहे खल्वातिवाहिके ।।९।।

अध्याय ३६९

आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपण

अग्निदेव बोले–(अब) मैं उस आत्यन्तिक लय का वर्णन कर रहा हूँ जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है और वह ज्ञान अपने आध्यात्मिक आदि संताप के जान लेने पर ही विराग द्वारा उत्पन्न होता है। अये द्विज! शारीरिक और मानसिक भेदों से वह आध्यात्मिक संताप दो प्रकार का होता है। शारीरिक संताप अनेक भेदोंवाला होता है, उन्हें सुनो। अये द्विज! यह जीव अपने भोग शरीर का त्याग करके कर्मानुसार गर्भ में जाता है। उस समय उसकी 'अतिवाहिक' संज्ञा होती है। द्विजोत्तम! मनुष्यों का मृत्युकाल उपस्थित होने पर यम के दूतगण दक्षिण रास्ते से उनका शरीर यमपुरी पहुँचा देते हैं। तत्पश्चात् वह जीव वहाँ पहुँचकर नीचे-ऊपर होनेवाले घटयन्त्र की भाँति अपने कर्मानुसार स्वर्ग और नरक आया-जाया करता है। अये मुने! अन्य प्राणियों के लिए वैसी व्यवस्था नहीं है ।।१-५।। ब्रह्मन्! यह लोक कर्मभूमि है और परलोक फलभूमि। यमराज जीव को उसके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों तथा नरकों में डाला करते हैं। यमराज ही जीवों द्वारा नरकों को भरते हैं। वे ही इनके नियामक हैं। जीव वायु रूप होकर गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। यम के दूतों द्वारा मनुष्य वहाँ पहुँचकर यमराज का दर्शन करता है। धार्मिक होने से यमराज द्वारा वहाँ उसका सुसम्मान होता है और पापी होने से उसे ताड़ना मिलती है। वहाँ चित्रगुप्त उसके शुभाशुभ कर्म को बता देते हैं। अये धर्मज्ञ! वह अतिवाहिक संज्ञक जीव अन्त्येष्टि क्रिया में बान्धवों द्वारा दिये गये पिण्डदान भोजन

---

१ 'त्यक्त्वा''''द्विजोत्तम' च पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °हं सर्वमा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिष्ठन्नयति धर्मज्ञ दत्तपिण्डाशनं ततः। तं त्यक्त्वा प्रेतदेहं तु प्राप्यान्यं प्रेतलोकतः ।।१०।।
वसेत्क्षुधातृषायुक्त आमश्राद्धान्नभुङ्नरः। आतिवाहिकदेहात्तु प्रेतपिण्डैर्विना नरः ।।११।।
न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डांस्तत्रैव सोऽश्नुते। कृते सपिण्डीकरणे नरः सम्वत्सरात्परम् ।।१२।।
प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते। भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभा (भ) शुभसंज्ञितौ ।।१३।।
भुक्त्वा तु भोगदेहेन [1]कर्मबन्धान्निपात्यते। तं देहं [2]परतस्तस्माद्भक्षयन्ति निशाचराः ।।१४।।
पापे तिष्ठति चेत्स्वर्गं तेन भुक्तं तदा द्विज। तदा द्वितीयं गृह्णाति भोगदेहं तु [3]पापिनाम् ।।१५।।
भुक्त्वा तु पापं वै पश्चाद्येन भुक्तं त्रिविष्टपम्। शुचीनां श्रीमतां गेहे स्वर्गभ्रष्टोऽभिजायते ।।१६।।
पुण्ये तिष्ठति चेत्पापं तेन भुक्तं तदा भवेत्। तस्मिन्संभक्षिते देहे शुभं गृह्णाति विग्रहम् ।।१७।।
कर्मण्यल्पावशेषे तु नरकादपि मुच्यते। मुक्तस्तु नरकाद्याति तिर्यग्योनिं न संशयः ।।१८।।
जीवः प्रविष्टो गर्भं तु कललेऽप्यत्र तिष्ठति। घनीभूतं द्वितीये तु तृतीयेऽवयवास्ततः ।।१९।।
चतुर्थेऽस्थीनि त्वङ्मासं पञ्चमे रोमसंभवः। षष्ठे चेतोऽथ जीवस्य दुःखं विन्दति सप्तमे ।।२०।।
जरायुवेष्टिते देहे मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिस्तथा। मध्ये क्लीवं तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्थितिः ।।२१।।

से वञ्चित ही रह जाता है क्योंकि उसे उसके त्यागपूर्वक प्रेतलोक से प्राप्त अनेक प्रेतशरीर को धारण करके सदैव भूख-प्यास से व्याकुल ही रहना पड़ता है। उस आम (कच्चा) श्राद्ध-भोजी प्राणी प्रेत पिण्डदान के बिना अपने उस आतिवाहिक शरीर से मुक्त नहीं हो पाता है। इसलिए वह उन्हीं पिण्डों का भोजन करता है। इस प्रकार सपिण्डन हो जाने पर वर्ष के अनन्तर वह प्राणी उस प्रेत शरीर को त्यागकर भोग देह धारण करता है ।।६-१२½।। यह दोनों शुभ और अशुभ संज्ञक देह भोगदेह की कही जाती है जिनके द्वारा वह फलों के उपभोगपूर्वक अपने कर्मबन्धन को शिथिल करता है। उस देह के पतित होने पर राक्षसगण उसका भक्षण कर जाते हैं। अये द्विज! उस पापी अवस्था में भी उसे स्वर्ग का उपभोग प्राप्त होता है किन्तु उस समय उसे दूसरी (शुभ) भोगदेह प्राप्त हो जाती है। पाप का परिणाम भोगने के अनन्तर वह जीव जो स्वर्ग-सुख का भी अनुभव कर लेता है और भी सम्पन्न तथा पवित्र कुल में जन्म ग्रहण करता है। उस पुण्य कुल एवं अवस्था में रहते हुए भी उसे पाप के परिणाम भोगने पड़ते हैं किन्तु पश्चात् उसे शुभ शरीर की प्राप्ति हो जाती है। कुछ थोड़े से कर्म शेष रहने पर उसे नरक से मुक्त कर दिया जाता है किन्तु वहाँ से मुक्त होने पर भी उसे तिर्यग् (पक्षी) आदि की योनि प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं है ।।१३-१८।। जीव जिस गर्भ में प्रविष्ट होता है उसमें पहले मास में (स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य का) कलल होता है अर्थात् कल-कल शब्द होते हुए वह पकता है। दूसरे मास में वह घनीभूत होता है, तीसरे मास में उसमें अवयव उत्पन्न होते हैं, चौथे मास में हड्डियाँ, चमड़े और मांस बन जाते हैं और पाँचवें मास में रोम उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर के सर्वाङ्ग सम्पन्न होने पर छठे मास में उसमें जीव प्रविष्ट होता है और सातवें मास में उसे (नाना प्रकार के) कष्टों का अनुभव होने लगता है। जरायुवेष्टित देह में रहकर सिर से अञ्जलि लगाये वह प्राणी गर्भ के भीतर नपुंसक होने पर मध्य में, स्त्री होने पर बायें और पुरुष होने पर दाहिनी ओर स्थित रहता

---

१ क. ख. ग. °र्म स्वर्गान्नि°। २ क. ख. ङ. पततस्त°। ३ क. ख. पातितम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिष्ठत्युदरभागे तु पृष्ठस्याभिमुखस्तथा। यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ तां स वेत्ति न संशयः ।।२२।।
सर्वं च वेत्ति वृत्तान्तमारभ्य [1]नरजन्मनः। [2]अन्धकारे च महतीं पीडां विन्दति मानवः ।।२३।।
मातुराहारपीतं तु सप्तमे मास्युपाश्नुते। अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजते तथा ।।२४।।
[3]व्यवायपीडामाप्नोति मातुर्व्यायामके तथा। व्याधिश्च व्याधितायां स्यान्मुहूर्तं शतवर्षवत् ।।२५।।
संतप्यते कर्मभिस्तु कुरुतेऽथ मनोरथान्। गर्भाद्विनिर्गतो ब्रह्मन्मोक्षज्ञानं करिष्यति ।।२६।।
सूतिवातैरधोभूतो निःसरेद्योनियन्त्रतः। पीड्यमानो मासमात्रं करस्पर्शेन दुःखितः[4] ।।२७।।
खशब्दात्क्षुद्रश्रोतांसि देहे श्रोत्रं विविक्तता। श्वासोच्छ्वासौ गतिर्वायोर्वक्रसंस्पर्शनं तथा ।।२८।।
अग्रे रूपं दर्शने स्यादूष्मा पङ्क्तिश्च पित्तकम्। मेधा वर्णं बलं छाया तेजः शौर्यं शरीरके ।।२९।।
जलात्स्वेदश्च रसनं देहे वै संप्रजायते। [5]क्लेदो वसा रसा रक्तं शुक्रमूत्रकफादिकम् ।।३०।।
भूमेर्घ्राणं [6]केशनखं रोमं च शिरसस्तथा। मातृजानि मृदून्यत्र त्वङ्मांसहृदयानि च ।।३१।।
नाभिर्मज्जा शकृन्मेदः क्लेदान्यामाशयानि च। पितृजानि शिरा स्नायुः शुक्रं चैवाऽऽत्मजानि तु ।।३२।।
कामक्रोधौ भयं हर्षो धर्माधर्मात्मता[7] तथा। आकृतिः स्वरवर्णौ तु मेहनाद्यं तथा च यत् ।।३३।।
तामसानि तथा ज्ञानं प्रमादालस्यतृट्क्षुधाः। मोहमात्सर्यवैगुण्यशोकायासभयानि च ।।३४।।

है। पीठ की ओर मुख किये स्थित रहता है। जिस योनि में वह रहता है उसे उसका पूर्ण ज्ञान रहता है इसमें संशय नहीं। उसे अपने पूर्व जन्म के समस्त वृत्तान्त का वहाँ स्मरण होता है तथा उस अंधकार में उसे मार्मिक पीड़ा का घोर अनुभव भी होता है ।।१९-२३।। सातवें मास में माँ के अन्न-जल को प्राप्त करता है। इसी प्रकार आठवें, नवें मास में उसे अत्यन्त उद्विग्न होना पड़ता है। उसे माँ के शारीरिक परिश्रम की पीड़ा का अनुभव होता है। इतना ही नहीं, अपितु माता में किसी प्रकार की व्याधि उत्पन्न होने पर उसको मुहूर्त्त मात्र में सौ वर्ष की पीड़ा का अनुभव होने लगता है। उस समय वह अपने कर्म-बन्धनों से संतप्त होता है और उसमें अनेक प्रकार के मनोरथ उत्पन्न हो जाते हैं। 'अये ब्रह्मन्! इस गर्भ से निकलकर मैं मोक्ष-ज्ञान ही प्राप्त करूँगा'-इस प्रकार की प्रार्थना करता है। पश्चात् प्रसूतिवायु द्वारा नीचे जाकर योनि-यन्त्र के बाहर निकलता है जो एक मास तक पीड़ित और कर-स्पर्श से दुःखी हो जाया करता है। उसकी देह में आकाश शब्द द्वारा दोनों कानों के निर्माण एवं उसकी विविक्तता होती है और वायु द्वारा श्वास, उच्छ्वास, गति और स्पर्श, अग्नि द्वारा (सबके) रूप को देखना तथा ऊष्मा, पङ्क्ति, पित्त, बुद्धि, वर्ण, बल, छाया, तेज और शौर्य उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार जल द्वारा स्वेद, जिह्वा, क्लेद, वसा, रस, रक्त, वीर्य, मूत्र और कफ आदि उत्पन्न होते हैं ।।२४-३०।। पृथ्वी द्वारा नाक, केश, नाखून, सिर के लोम तथा मातृजन्य (माता के अनुसार) कोमल त्वचा, मांस और हृदय का निर्माण होता है। नाभि, मज्जा, यकृत, मेदा, आमाशय, नाड़ी, स्नायु, वीर्य, काम, क्रोध, भय, हर्ष, धर्म, अधर्म, आकृति, स्वर-वर्ण तथा लिंग आदि की रचना पिता के अनुसार होती है। ज्ञान, प्रमाद, आलस्य, भूख, प्यास, मोह, मात्सर्य, गुणहीनता, शोक, आयास और भय तमोगुण द्वारा उत्पन्न होते

---

१ क. ख. ङ. °नवज°। २ छ. अन्धकारं। ३ छ. °वाये पी°। ४ ख. ग. °तः।। शब्दादिक्षुद्रस्त्रोतांसि देहे श्रोताविधिं तथा। श्वा°। ५ ख. ग. °दो रक्तं वसारक्तं शु°। ६ छ. °खं गौरवं स्थिरतोऽस्थितः। मां°। ७ ख. ग. °मार्थता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कामक्रोधौ तथा शौर्यं यज्ञेप्सा बहुभाषिता। अहंकारः परावज्ञा राजसानि महामुने ।।३५।।
धर्मेप्सा मोक्षकामित्वं परा भक्तिश्च केशवे। दाक्षिण्यं व्यवसायित्वं सात्त्विकानि विनिर्दिशेत् ।।३६।।
चपलः क्रोधनो भीरुर्बहुभाषी कलिप्रियः। स्वप्ने गगनश्चैव बहुवातो नरो भवेत् ।३७।।
अकालपलितः क्रोधी महाप्राज्ञो रणप्रियः। स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी बहुपित्तो नरो भवेत् ।।३८।।
([1]स्थिरमित्रः स्थिरोत्साहः स्थिराङ्गो द्रविणान्वितः। स्वप्ने जलसितालोकी बहुश्लेष्मा नरो [2]भवेत्) ।।३९।।
रसस्तु प्राणिनां देहे जीवनं रुधिरं तथा। लेपनं च तथा मांसं मेहस्नेहकरं तु तत् ।।४०।।
धारणं त्वस्थिमज्जा स्यात्पूरणं वीर्यवर्धनम्। शुक्रवीर्यकरं ह्योजः प्राणकृतज्जीवसंस्थितिः ।।४१।।
ओजः शुक्रात्सारतरमापीतं हृदयोपगम्। षडङ्गं सक्थिनी बाहुमूर्धाजठरमीरितम् ।।४२।।
षट् त्वचा बाह्यतो यद्वदन्या रुधिरधारिका। किलासधारिणी चान्या चतुर्थी कुण्डधारिणी ।।४३।।
[3]पञ्चमीमिन्द्रियस्थानं[4] षष्ठी प्राणधरा मता। कला सप्तमी मांसधरा द्वितीया रक्तधारिणी ।।४४।।

हैं। काम, क्रोध, शौर्य, यज्ञ की इच्छा, बहुभाषिता, अहंकार, दूसरे की अवहेलना करना रजोगुण द्वारा उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार धर्म की इच्छा, मोक्ष की कामना, भगवान् की उत्तम भक्ति, दाक्षिण्य और व्यवसायी होना सत्त्वगुण द्वारा प्राप्त होते हैं। वायु की अधिकता से मनुष्य चपल, क्रोधी, भीरु, बहुभाषी, कलहप्रिय और स्वप्न में आकाश की यात्रा करनेवाला होता है ।।३१-३७।। जिसके असमय में ही बाल सफेद हो जायँ, जो क्रोधी, महाबुद्धिमान् और युद्ध को पसन्द करनेवाला हो, जिसे सपने में प्रकाशमान वस्तुएँ अधिक दिखायी देती हों, उसे पित्तप्रधान प्रकृति का मनुष्य समझना चाहिए। जिसकी मैत्री, उत्साह और अंग सभी स्थिर हों, जो धन आदि से सम्पन्न हो तथा जिसे स्वप्न में जल एवं श्वेत पदार्थ का अधिक दर्शन होता है, उस मनुष्य में कफ की प्रधानता रहती है। प्राणियों के शरीर में रस जीवन देनेवाला होता है, रक्त लेपन का कार्य करता है तथा मांस मेहन एवं स्नेहन क्रिया का प्रयोजक है। हड्डी और मज्जा का काम है शरीर को धारण करना। वीर्य की वृद्धि शरीर को पूर्ण बनानेवाली होती है। ओज शुक्र एवं वीर्य का उत्पादक है वही जीव की स्थिति एवं प्राण की रक्षा करनेवाला है। ओज शुक्र की अपेक्षा भी अधिक सार वस्तु है। वह हृदय के समीप रहता है। और उसका रंग कुछ-कुछ पीला होता है। दोनों जंघे (ये समस्त पैर के उपलक्षण हैं), दोनों भुजाएँ, उदर और मस्तक-ये छह अंग बताये गये हैं। त्वचा के छह स्तर हैं। एक तो वही है, जो बाहर दिखायी देती है। दूसरी वह है, जो रक्त धारण करती है। तीसरी किलास (धातु-विशेष) और चौथी कुण्ड (धातु-विशेष) को धारण करनेवाली है। पाँचवीं त्वचा इन्द्रियों का स्थान है और छठी प्राणों को धारण करनेवाली मानी गयी है। कला भी सात प्रकार की है-पहली मांस धारण करनेवाली, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी जिगर एवं प्लीहा को आश्रय देनेवाली, चौथी मेदा और अस्थि

---

१ 'स्थिरमित्रः.....भवेत्' छ. पुस्तके नास्ति। २ क. ख. ग. °त्। श्रीरस्थिप्रा°। ३ 'पञ्चमी.....मता' नास्ति छ. पुस्तके। ४ क. ङ. °मी चित्रधिष्टानं ष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यकृत्प्लीहाश्रया चान्या मेदोधराऽस्थिधारिणी । मज्जाश्लेष्मपुरीषाणां धरा पक्वाशयस्थिता ।।
षष्ठी पित्तधरा शुक्रधरा शुक्राशयाऽपरा ।।४५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणं
नामैकोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६९।।

अथ सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शरीरावयवाः

अग्निरुवाच

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं धीः खं च भूतगम् । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः खादिषु तद्गुणाः ।।१।।
पायूपस्थौ करौ पादौ वाग्भवेत्कर्म खं तथा । उत्सर्गानन्दकादानगति[1] वागादिकर्म तत् ।।२।।
पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यत्र पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च । इन्द्रियार्थाश्च पञ्चैव महाभूता मनोधिपाः ।।३।।
आत्माऽव्यक्तश्चतुर्विंशत्तत्त्वानि[2] पुरुषः परः । संयुक्तश्च वियुक्तश्च यथा मत्स्योदके उभे ।।४।।
अव्यतमाश्रितानीह रजः सत्त्वतमांसि च । [3]आन्तरः पुरुषो जीवः स परं ब्रह्म कारणम् ।।५।।

धारण करनेवाली, पाँचवी मज्जा, श्लेष्मा और पुरीष को धारण करनेवाली, जो पक्वाशय में स्थित रहती है, छठी पित्त धारण करनेवाली और सातवीं शुक्र धारण करनेवाली है। वह शुक्राशय में स्थित रहती है ।।३८-४५।।

श्री अग्निमहापुराण में आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्ति-निरूपण नामक
तीन सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३६९।।

अध्याय ३७०

शरीरावयव

अग्निदेव बोले–कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका–ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आकाश सभी भूतों में व्यापक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–ये क्रमशः आकाश आदि पाँच भूतों के गुण हैं। गुदा, उपस्थ (लिङ्ग या योनि), हाथ, पैर और वाणी–ये कर्मेन्द्रिय कहे गये हैं। मलत्याग, विषयजनित आनन्द का अनुभव, ग्रहण, चलन तथा वार्तालाप–ये क्रमशः उपर्युक्त इन्द्रियों के कार्य हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियों के विषय, पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, आत्मा (महत्तत्त्व), अव्यक्त (मूल प्रकृति) ये चौबीस तत्त्व हैं। इन सबसे परे है–पुरुष। वह इनसे संयुक्त भी रहता है और पृथक् भी, जैसे मछली और जल–ये दोनों एक साथ संयुक्त भी रहते हैं वियुक्त भी। रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण–ये अव्यक्त के आश्रित हैं। अन्तःकरण की उपाधि से युक्त पुरुष 'जीव' कहलाता है, वही निरुपाधिक स्वरूप से 'परब्रह्म' कहा गया है जो सबका कारण है ।।१-५।। उस पुरुष

---

१ ख. ग. °तिश्वासादिकर्मतः। प°। २ ख. ग. °त्त्वादिपु°। ३ क. ख. ग. अन्तरः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स याति परमं स्थानं यो वेत्ति पुरुषं परम् । सप्ताऽऽशयाः स्मृता देहे रुधिरस्यैक आशयः ।।६।।
[1]श्लेष्मणश्चाऽऽमपित्ताभ्यां पक्वाशयस्तु पञ्चमः । वायुमूत्राशयः सप्त स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ।।७।।
पित्तात्पक्वाशयोऽग्नेः स्याद्योनिर्विकशिता [2]द्युतौ । पद्मवद्गर्भाशयः स्यात्तत्र धत्ते सरक्तकम् ।।८।।
शुक्रं स्वशुक्रतश्चाङ्गं कुन्तलान्यत्र कालतः । न्यस्तं शुक्रमतो योनौ नैति गर्भाशयं मुने ।।९।।
ऋतावपि च योनिश्चेद्वातपित्तकफावृता । भवेत्तदा विकाशित्वं नैव तस्यां प्रजायते ।।१०।।
बुक्कात्पुक्कसकप्लीहकृतकोष्ठाङ्गहृद्व्रणाः[3] । तण्डकश्च महाभाग निबद्धान्याशये मतः ।।११।।
रसस्य पच्यमानस्य साराद्भवति देहिनाम् । प्लीहा यकृच्च धर्मज्ञ रक्तफेनाच्च पुक्कसः ।।१२।।
रक्तं पित्तं च भवति [4]तथा तण्डकसंज्ञकः । भेदो रक्तप्रसाराच्च बुक्कायाः संभवः स्मृतः ।।१३।।
रक्तमांसप्रकाराच्च भवन्त्यन्त्राणि देहिनाम् । [5]सार्धत्रिव्यायाम (व्याम) संख्यानि तानि नृणां विनिर्दिशेत् ।।१४।।
त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणां प्राहुर्वेदविदो जनाः । रक्तवायुसमायोगात्कामे[6] यस्योद्भवः स्मृतः ।।१५।।
कफप्रसाराद्भवति हृदयं पद्मसंनिभम् । अधोमुखं तच्छुषिरं यत्र जीवो व्यवस्थितः ।।१६।।
चैतन्यानुगता भावाः सर्वे तत्र व्यवस्थिताः । तस्य वामे यथा प्लीहा दक्षिणे च यथा यकृत् ।।१७।।

श्रेष्ठ (परब्रह्म) को पूर्ण तथा जाननेवाला (जीव) परम स्थान (मोक्ष) की प्राप्ति करता है। इस देह में सात आशय हैं। पहला रुधिर का आशय, दूसरा श्लेष्मा का आशय, तीसरा आमाशय, चौथा पित्त का आशय, पाँचवाँ पक्वाशय, छठा वायु का आशय और सातवाँ मूत्राशय होता है। स्त्रियों के आठवाँ गर्भाशय भी होता है। पित्त के तीक्ष्ण होने पर पक्वाशय द्वारा योनि का विकास होता है, जिसके भीतर कमल के आकार की भाँति गर्भाशय रहता है और जो रक्त समेत शुक्र धारण करता है। जिस समय शुक्र द्वारा अङ्गों और समयानुसार सिर के केश की उत्पत्ति होती है उस समय (अर्थात् बच्चे के गर्भाशय में रहते समय) योनि में गिरा हुआ वीर्य गर्भाशय में नहीं पहुँचता है। हे मुने! ऋतुकाल में भी वात, पित्त और कफ से घिरी हुई होने के कारण योनि में विकास नहीं होता है (अर्थात् उस समय गर्भ धारण नहीं हो सकता है) ।।६-१०।। बुक्का से पुक्कस, प्लीहा, यकृत्, कोष्ठाङ्ग, हृदय, व्रण तथा तण्डक होते हैं। ये सभी आशय में निबद्ध हैं। प्राणियों के पकाये जानेवाले रस के सार से प्लीहा और यकृत् होते हैं। हे धर्म के ज्ञाता! रक्त के फेन से पुक्कस की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार रक्त, पित्त तथा तण्डक भी उत्पन्न होते हैं। मेदा और रक्त के प्रसार से बुक्का की उत्पत्ति होती है। रक्त और मांस के प्रसार से देहधारियों की आँतें बनती हैं। पुरुष की आँतों का परिमाण साढ़े तीन व्याम लम्बी बतलाते हैं। रक्त और वायु के संयोग से काम का उदय होता है ।।११-१५।। कफ से प्रसार से कमल की भाँति हृदय उत्पन्न होता है जिसके कोषाशय में यह जीव अधोमुख किये स्थित रहता है। उस स्थान में चैतन्य आदि उसके सभी भाव अनुगत होते रहते हैं। ठीक उसी प्रकार से जैसे उसके बायें भाग में प्लीहा और दाहिनी ओर यकृत् रहता है। उस कमल के दाहिनी ओर क्लोम रहता है। इस देह में कफ और

---

१ ख. ग. °ष्मणः श्वासपि°। २ क. ङ. क्षुतौ। ख. धुतौ। ग. द्रुता। ३ क. ङ. °णाः। उण्डरुश्च। ख. °णाः। डुण्डुकश्च। ४ क. ङ. °था डण्डुक°। ५ ख. ग. °व्याससं। ६ ख. ग. °त्कालीय°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिणे च तथा क्लोम पद्मस्यैवं प्रकीर्तितम् । श्रोतांसि यानि देहेऽस्मिन्कफरक्तवहानि च ।।१८।।
तेषां भूतानुमानाच्च भवतीन्द्रियसंभवः । नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद्भवति पैतृकम् ।।१९।।
कृष्णं च मण्डलं वातात्तथा भवति मातृकम् । पित्तात्त्वङ्मण्डलं ज्ञेयं मातापितृसमुद्भवम्।।२०।।
मांसासृक्कफजा जिह्वा मेदोसृक्कफमांसजौ । वृषा (ष) णौ दश प्राणस्य ज्ञेयान्यायतनानि तु ।।२१।।
मूर्धा हृन्नाभिकण्ठाश्च जिह्वा शुक्रं च शोणितम् । गुदं वस्तिश्च गुल्फं च [1]कण्डुराः षोडशेरिताः ।।२२।।
द्वे करे द्वे च चरणे चतस्रः पृष्ठतो गले[2] । देहे पादादिशीर्षान्ते [3]जालानि चैव षोडश ।२३।।
मांसस्नायुशिरास्थिभ्यश्चत्वारश्च[4] पृथक्पृथक् । मणिबन्धनगुल्फेषु निबद्धानि परस्परम् ।।२४।।
षट् कूर्चानि[5] स्मृतानीह हस्तयोः पादयोः पृथक् । ग्रीवायां च तथा मेढ्रे कथितानि मनीषिभिः ।।२५।।
पृष्ठवंशस्योपगताश्चतस्रो मांसरज्जवः । [6]तावन्त्य(त्य)श्च तथा पेश्यस्तासां बन्धनकारिकाः ।।२६।।
[7]सीरण्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्धानमाश्रिताः । एकैका मेढ्रजिह्वास्ता अस्थिषष्टिशतत्रयम् ।।२७।।
सूक्ष्मैः सह चतुः षष्टिर्दशना विंशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयम् ।।२८।।
षष्ट्यङ्गुलीनां द्वे पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् । चत्वार्यरत्न्योरस्थीनि जङ्घयोस्तद्वदेव तु ।।२९।।
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांशसमुद्भवम्(द्भवे) । अक्षस्थानांशकश्रोणिफलके चैवमादिशेत्[8] ।।३०।।

रक्त आदि के वाहक कान आदि हैं, वे उन्हीं पञ्चभूतों द्वारा उत्पन्न इन्द्रियों से ही उत्पन्न होनेवाले हैं। दोनों नेत्रमण्डल का श्वेतभाग कफ से उत्पन्न तथा पैतृक होता है। नेत्रों का कृष्णभाग माता तथा वात के अंश से प्रकट होता है। पित्त द्वारा माता-पिता के सम्मिश्रण से त्वक् मण्डल उत्पन्न होता है ।।१६-२०।। मांस, रक्त और कफ के सम्मिश्रण से जिह्वा की रचना होती है। मेदा, रक्त, कफ तथा मांस से अण्डकोष की उत्पत्ति होती है। प्राणी के दस स्थान बताये गये हैं—मूर्धा, हृदय, नाभि, कण्ठ, जिह्वा, शुक्र, शोणित, गुदा, वस्ति (मूत्राशय) तथा गुल्फ। सोलह कण्डुरा होते हैं। हाथ पैर में दो-दो पीठ और गले में चार-चार इस प्रकार देह में करण से सिर तक सोलह जाल होते हैं। ये मांस, स्नायु (नसें), शिरा (धमनी नाड़ी) से पृथकृ-कृथक् मणिबन्ध और गुल्फ (एड़ी) में चार रूपों में निबद्ध हैं। हाथ और पैर से पृथक्-पृथक् ग्रीवा तथा लिङ्ग में कूर्च होते हैं ।।२१-२५।। पृष्ठ के मध्य भाग में जो मेरुदण्ड है, उसके निकट चार मांसमयी डोरियाँ हैं तथा उतनी ही पेशियाँ भी हैं, जो उन्हें बाँधे रखती हैं। सात सीरणियाँ हैं। उनमें से पाँच तो मस्तक के आश्रित हैं और एक-एक मेढ्र (लिङ्ग) तथा जिह्वा में हैं। हड्डियाँ अठारह हजार हैं। सूक्ष्म और स्थूल—दोनों मिलकर चौंसठ दाँत हैं। बीस नख हैं। इनके अतिरिक्त हाथ और पैरों की शलाकाएँ हैं। जिनके चार स्थान हैं। अँगुलियों में साठ, एड़ियों में दो, गुल्फों में चार, अरत्नियों में चार और जंघों में भी चार हड्डियाँ हैं। घुटनों में दो, गालों में दो, ऊरुओं में दो तथा फलकों के मूलभाग में भी दो ही हड्डियाँ हैं। इन्द्रियों के स्थानों तथा श्रोणिफलकों में भी इसी प्रकार दो-दो हड्डियाँ बतायी गयी हैं ।।२६-३०।।

---

१ क. ख. ग. कण्डराः। २ ख. ग. °ले। द्वे द्वे पा°। ३ ख. ग. जानुनी द्वे च षो°। ४ छ. °स्थिन्यश्च°। ५ ख. ग. °द् कूर्पाणि स्मृ°। ६ छ. नवत्यश्च। ७ क. ङ. सीवन्यश्च। ख. ग. सीदन्त्यश्च। ८ क. ख. °त्। तथा हस्ते त°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भगास्तोकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च । ग्रीवायां च तथाऽस्थीनि जत्रुकं च तथा हनुः ।।३१।।
तन्मूलं द्वे ललाटाक्षिगण्डनासाङ्घ्र्यवस्थिताः । पर्शुकास्तालुकैः सार्धमर्बुदैश्च द्विसप्ततिः ।।३२।।
द्वे शङ्खके कपालानि चत्वार्येव शिरस्तथा । उरः सप्तदशाऽस्थीनि संधीनां द्वे शते दश ।।३३।।
अष्टषष्टिस्तु शाखासु षष्टिश्चैकविवर्जिता । अन्तरा वै त्र्यशीतिश्च स्नायोर्नवशतानि च ।।३४।।
त्रिंशाधिके द्वे शते तु अन्तराधौ तु सप्ततिः । ऊर्ध्वगाः षट् शतान्येव शाखास्तु कथितानि तु ।।३५।।
पञ्च पेशीशतान्येव चत्वारिंशत्तथोर्ध्वगाः । चतुः शतं तु शाखासु अन्तराधौ च षष्ठिका ।।३६।।
स्त्रीणां चैकाधिका वै स्याद्विंशतिश्चतुरुत्तरा । स्तनयोर्दश योनौ च त्रयोदश तथाऽऽशये ।।३७।।
गर्भस्य च चतस्रः स्युः शिराणां च शरीरिणाम् । त्रिंशच्छतसहस्राणि तथाऽन्यानि नवैव तु ।।३८।।
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि रसं देहे वहन्ति ताः । केदार इव कुल्याश्च क्लेदलेपादिकं च यत् ।।३९।।
द्वासप्ततिस्तथा [1]कोट्यो व्योम्नामिह महामुने । मज्जाया मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज ।।४०।।
मूत्रस्य चैव पित्तस्य श्लेष्मणः शकृतस्तथा । रक्तस्य सरसस्यात्र क्रमशोऽञ्जलयो मताः ।।४१।।
अर्धार्धाभ्यधिकाः सर्वाः पूर्वपूर्वाञ्जलेर्मताः । अर्धाञ्जलिश्च शुक्रस्य तदर्धं च तथौजसः ।।४२।।
रजसस्तु तथा स्त्रीणां चतस्रः कथिता बुधैः । शरीरं मलदोषादिपिण्डं ज्ञात्वाऽऽत्मनि त्यजेत् ।।४३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शरीरावयवविभागवर्णनं नाम सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७०।।

भग में भी थोड़ी-सी हड्डियाँ हैं। पीठ में पैंतालीस और गले में भी पैंतालीस हैं। गले की हँसली; ठोड़ी तथा उसकी जड़ में दो-दो अस्थियाँ हैं। ललाट, नेत्र, कपोल, नासिका, चरण, पसली, तालु तथा अर्बुद-इन सब में सूक्ष्म रूप से बहत्तर हड्डियाँ हैं। मस्तक में दो शंख और चार कपाल हैं तथा छाती में सत्रह हड्डियाँ हैं। संधियाँ दो सौ दस बतायी गयी हैं। इनमें से शाखाओं में अड़सठ तथा उनसठ हैं और अन्तरा में तिरासी संधियाँ बतलायी गयी हैं। स्नायु की संख्या नौ सौ है, जिनमें से अन्तराधि में दो सौ तीस हैं, सत्तर ऊर्ध्वगामी हैं और शाखाओं में छह सौ स्नायु हैं। पेशियाँ पाँच सौ बतलायी गयी हैं। इनमें चालीस तो ऊर्ध्वगामिनी हैं, चार सौ शाखाओं में हैं और साठ अन्तराधि में हैं। स्त्रियों की मांसपेशियाँ पुरुषों की अपेक्षा सत्ताईस अधिक हैं। उनमें दस दोनों स्तनों में, तेरह योनि में तथा चार गर्भाशय में स्थित हैं ।।३१-३७।। देहधारियों के शरीर में तीस लाख नौ तथा छप्पन हजार नाड़ियाँ हैं। जैसे छोटी-छोटी नालियाँ क्यारियों में पानी बहाकर ले जाती हैं, उसी प्रकार वे नाड़ियाँ सम्पूर्ण शरीर में रस को प्रवाहित करती हैं। क्लेद और लेप आदि उन्हीं के कार्य हैं। महामुने! इस देह में बहत्तर करोड़ छिद्र या रोम-कूप हैं तथा मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, मल, रक्त और रस-इनकी क्रमशः 'अञ्जलियाँ' मानी गयी हैं। इनमें से पूर्व-पूर्व अञ्जलि की अपेक्षा उत्तरोत्तर सभी अञ्जलियाँ मात्रा में डेढ़ गुनी अधिक हैं। एक अञ्जलि में आधी वीर्य की आधी ओज की है। विद्वानों ने स्त्रियों के रज की चार अञ्जलियाँ बतायी हैं। यह शरीर मल और दोष आदि का पिण्ड है, ऐसा समझकर अपने अन्तःकरण में इसके प्रति होनेवाली आसक्ति का त्याग करना चाहिए ।।३८-४३।।

श्री अग्निमहापुराण में शरीरावयवविभाग-वर्णन नामक तीन सौ सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ।।३७०।।

---

१ ख. ग. °ट्यो रोम्णामि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नरकनिरूपणम्

अग्निरुवाच

उक्तानि [1]यममार्गाणि[2] वक्ष्येऽथ मरणे नृणाम् । ऊष्मा प्रकुपितः काये [3]तीव्रवायुसमीरितः ।।१।।
शरीरमुपरुध्याथ कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै । छिनत्ति प्राणस्थानानि पुनर्मर्माणि चैव हि ।।२।।
शैत्यात्प्रकुपितो वायुश्छिद्रमन्विष्यते ततः । द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ।।३।।
ऊर्ध्वं तु सप्त च्छिद्राणि अष्टमं वदनं तथा । एतैः प्राणो विनिर्याति प्रायशः शुभकर्मणाम् ।।४।।
अधः पायुरुपस्थं च अनेनाशुभकारिणाम् । मूर्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया ।।५।।
अन्तकाले तु सम्प्राप्ते प्राणऽपानमुपस्थिते । तमसा संवृते ज्ञाने संवृतेषु च मर्मसु ।।६।।
स जीवो नाभ्यधिष्ठानाच्चाल्यते मातरिश्वना । बाध्यमानश्चाऽऽनयते अष्टाङ्गाः प्राणवृत्तिकाः ।।७।।
च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु । प्रपश्यन्ति च तं सिद्धा [4]देवा दिव्येन चक्षुषा ।।८।।
गृह्णाति तत्क्षणाद्योगे शरीरं चाऽऽतिवाहिकम् । आकाशवायुतेजांसि विग्रहादूर्ध्वगामिनः ।।९।।
जलं मही च पञ्चत्वमापन्नः पुरुषः स्मृतः । आतिवाहिकदेहं तु यमदूता नयन्ति तम् ।।१०।।

अध्याय ३७१

नरक-निरूपण

अग्निदेव बोले–अब मैं उन यम के मार्गों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जो मनुष्यों के मरने पर प्राप्त होते हैं। शरीर में ऊष्मा के प्रकुपित होने पर उसे तीव्र वायु कहा जाता है। वह शरीर में अवरोध उत्पन्न करके, सम्पूर्ण दोषों को अवरुद्ध करके प्राण-स्थानों और गर्भ-स्थानों को काट देती है। तदनन्तर शैत्य से प्रकुपित वायु अपने निर्गमन के लिए छिद्र खोजती हैं। दो नेत्र, दो कान, दो नासापुट, ऊर्ध्ववायुस्थान और मुख इन आठ मार्गों से प्रायः पुण्यात्माओं का प्राण निकलता है। पाप कर्म करनेवाले के प्रांणवायु उपस्थ स्थानों से निकलते हैं। जीव योगियों के मस्तक को तोड़कर इच्छानुसार निकल जाता है ।।१-५।। अन्तकाल उपस्थित होने पर जब प्राणवायु अपानवायु से मिलती है, ज्ञान अज्ञान से आवृत हो जाता है और सभी मर्मस्थान अवरुद्ध हो जाते हैं। उस समय जीव वायु के द्वारा नाभि-स्थान से विचलित कर दिया जाता है और पुनः अवरुद्ध होकर प्राणवायु के आठ अंगों से मिल जाता है उस समय गिरते हुए, उत्पन्न होते हुए और योनियों में प्रविष्ट होते हुए उसे सिद्ध जन तथा देवगण अपने दिव्य चक्षु से देखा करते हैं। उस समय से वह जीव सूक्ष्म शरीर को ग्रहण कर लेता है। वह पुरुष ऊर्ध्वगामी शरीर से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी में मिलकर पञ्चत्व प्राप्त कर लेता है। उस समय यमदूत उस सूक्ष्म शरीर को लेकर चलते हैं ।।६-१०।।

---

१ क. ङ. °ममोक्षाणि। २ ख. ग. र्गादि व°। ३ क. ख. °वायुः स°। ४ ख. ग. देवं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

याम्यं मार्गं महाघोरं षडशीतिसहस्रकम् । अन्नोदकं नीयमानो बान्धवैर्दत्तमश्नुते ।।११।।
यमं दृष्ट्वा यमोक्तेन चित्रगुप्तेन चेरितान् । प्राप्नोति नरकान्रौद्रान्धर्मी शुभपथैर्दिवम् ।।१२।।
भुज्यन्ते पापिभिर्वक्ष्ये नरकांस्ताश्च यातनाः । अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ।।१३।।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः । घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ।।१४।।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी । षष्ठी तरलताराख्या सप्तमी च भयानका ।।१५।।
भयोत्कटा कालरात्री महाचण्डा च चण्डया । कोलाहला प्रचण्डाख्या पद्मा नरकनायिका ।।१६।।
पद्मावती भीषणा च भीमा चैव करालिका । विकराला महावज्रा त्रिकोणा पञ्चकोणिका ।।१७।।
सुदीर्घा वर्तुला सप्तभूमा चैव [1]सुभूमिका । [2]दीप्तमायाऽष्टाविंशतयः कोटयः पापिदुःखदाः ।।१८।।
अष्टाविंशतिकोटीनां पञ्च पञ्च च नाय (यि) काः । रौरवाद्याः शतं चैकं चत्वारिंशच्चतुष्टयम् ।।१९।।
तामिश्रमन्धतामिश्रं महारौरवरौरवौ । असिपत्रं (त्र) वनं चैव लोहभारं तथैव च ।।२०।।
नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च । संजीवनं महावीचि तपनं संप्रतापनम् ।।२१।।
[3]संघातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् । लोहशङ्कुमृजीषं च प्रधानं शाल्मलीं नदीम् ।।२२।।
नरकान्विद्धि [4]कोटीशनागान्वै घोरदर्शनान् । पात्यन्ते पापकर्मणि एकैकस्मिन्बहुष्वपि ।।२३।।
[5]मार्जारोलूकगोमायुगृध्रादिवदनाश्च ते । तैलद्रोण्यां नरं क्षिप्त्वा ज्वालयन्ति हुताशनम् ।।२४।।

वहाँ वह महाभयंकर छियासी हजार योजन यम के मार्ग से ले जाया जाता हुआ अपने बन्धुओं के द्वारा दिये गये अन्न और जल को प्राप्त करता है। यम को देखकर यम के कहने से चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित भयङ्कर नरकों को प्राप्त करता है किन्तु धार्मिक व्यक्ति कल्याणप्रद मार्गों से स्वर्गलोक को चला जाता है। अब मैं उन नरकों का तथा उन यातनाओं का वर्णन करूँगा जिनका भोग पापियों द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के नीचे अट्ठाईस करोड़ नरक हैं। सप्तम तल के नीचे घोर अन्धकार में रहनेवाले घोर नामक नरक प्रथम कोटि में हैं। उनके नीचे सुघोर, अतिघोर, महाघोर और पाँचवाँ घोर नामक नरक है। उसके नीचे छठा तरलतर और सातवाँ भयानक नामक नरक कहा गया है ।।११-१५।। भयोत्कटा, कालरात्रि, महाचण्डा, चण्डया, कोलाहला, प्रचण्डा और पद्मा, नरकनायिका, पद्मावती, भीषणा, भीमा, करालिका, विकराला, महावज्रा, त्रिकोणा, पंचकोणिका, सुदीर्घा, वर्तुला, सप्तभूमा, सुभूमिका और दीप्तमाया इत्यादि अट्ठाईस करोड़ नरकों की पाँच-पाँच नायिकाएँ हैं। रौरव इत्यादि पाँच सौ चौंसठ नरक हैं। जिनके नाम हैं—तामिश्र, अन्धतामिश्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, लोहभार, कालसूत्र, महानरक, संजीवन, महावीचि, तपन, सम्प्रतापन, संघात, सकाकोल, कुड्मल, पूतिमृत्तिक, लोहशंकु, ऋजीष और शाल्मली—इनमें करोड़ों नाग रहा करते हैं और उनका दर्शन अत्यन्त भयंकर होता है। एक-एक अथवा अनेक पाप कर्मों के लिए मनुष्य इनमें डाल दिये जाते हैं ।।१६-२३।। वहाँ बिल्ली, उलूक, शृगाल और गृध्र आदि के समान मुखवाले यमदूत इन्हें तेल के कड़ाह में डालकर आग जला देते हैं।

---

१ ख. ग. सुधूलिका। २ ख. ग. दीप्तायामष्टविंशत्याः को°। ३ ख. ग. संहारकं स°। ४ ख. °शसंख्यान्वै। ५ ख. ग. °र्जारवृकगो°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अम्बरीषेषु चैवान्यांस्ताम्रपात्रेषु चापरान् । अयस्पात्रेषु चैवान्यान्बहुवह्निकणेषु च ।।२५।।
शूलाग्रारोपितांश्चान्ये छिद्यन्ते नरकेऽपरे । ताड्यन्ते कशाभिस्तु भोज्यन्ते चाप्ययोगुडान् ।।२६।।
यमदूतैर्नराः पांशून्विष्ठारक्तकफादिकान् । तप्तं मद्यं पाययन्ति पाटयन्ति पुनर्नरान् ।।२७।।
यन्त्रेषु पीडयन्ति स्म भक्ष्यन्ते वायसादिभिः । तैलेनोष्णेन सिच्यन्ते छिद्यन्ते नैकधा शिरः ।।२८।।
हा तातेति क्रन्दमानाः स्वकं निन्दन्ति कर्म ते । महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्यगर्हितान् ।।२९।।
कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह । मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति ।।३०।।
खरपुक्कश (स) म्लेच्छानां मद्यपः स्वर्णहार्यपि । कृमिकीटपतङ्गत्वं गुरुगस्तृणगुल्मताम् ।।३१।।
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः । स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ।।३२।।
यो येन संस्पृशत्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते । अन्नहर्ता मायावी स्यान्मूको वागपहारकः ।।३३।।
धान्यं हृत्वाऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः । तैलहृत्तैलपायी स्यात्पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ।।३४।।
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च । अरण्ये निर्जने[1] देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ।।३५।।
रत्नहारी हीनजातिर्गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान् । पत्रं शाकं शिखी हृत्वा मुखरो धान्यहारकः ।।३६।।

कुछ पापियों को तवों में, कुछ को ताम्रपात्रों में, कुछ को लौहपात्रों में और कुछ को बहुत-से अग्निकणों में डाल देते हैं। अन्य पापियों को काँटों से युक्त नरक में डालकर उन्हें छेदा जाता है। कुछ को चाबुकों से पीटा जाता है और कुछ को लोहे के ठोकरों को खाना पड़ता है। यमदूतों के द्वारा मनुष्यों को धूलि, विष्ठा, रक्त, कफ इत्यादि तथा तप्त मद्य पिलाया जाता है और उन्हें पुनः विदीर्ण किया जाता है। उन्हें यन्त्रों में पीसा जाता है और कौवों इत्यादि के द्वारा उनका भक्षण किया जाता है, उनके ऊपर गर्म तेल छिड़का जाता है और अनेक बार उनका सिर काटा जाता है ऐसा किये जाने पर हा तात! हा तात! चिल्लाते हुए अपने कर्मों की निन्दा करते हैं क्योंकि इन्हें बड़े-बड़े पापों से उत्पन्न होनेवाले घोर नरकों को प्राप्त करना पड़ता है। वे बड़े-बड़े पापी अपने कर्मों के नष्ट होने पर पुनः इस संसार में उत्पन्न होते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाला मृग, कुत्ता, शूकर और उष्ट्रों की योनि में जाता है ।।२४-३०।। मदिरापान करनेवाला गधा, नीच और म्लेच्छों की योनि प्राप्त करता है। सोने को चुरानेवाला कीट-पतङ्गों की योनि प्राप्त करता है। गुरुगामी तृण और गुल्म होता है। ब्रह्महत्या करनेवाला क्षयरोगी, सुरापान करनेवाला, काले दाँतोंवाला, सोने को चुरानेवाला, कुरूप नाखूनोंवाला और गुरु की शय्या पर जानेवाला दुश्चर्मवाला होता है। जो जिस वस्तु का स्पर्श करता है वह उसके चिह्न से चिह्नित हो जाता है। अन्न को चुरानेवाला मायावी और झूठ बोलनेवाला मूक होता है। धान्य को चुरानेवाला अतिरिक्त अंग से युक्त, चुगलखोर दुर्गन्धयुक्त नासिकावाला होता है। तेल चुरानेवाले को तेल पीना पड़ता है और गप लगानेवाला दुर्गन्धयुक्त मुखवाला होता है। परस्त्री और ब्राह्मणों के धन को चुरानेवाला, वन अथवा निर्जन स्थान में ब्रह्मराक्षस होता है ।।३१-३५।। रत्नों को चुरानेवाला हीन जाति में उत्पन्न होता है और अच्छे-अच्छे सुगन्धित पदार्थों को चुरानेवाला छछूँदर, शाक-पात चुरानेवाला मयूर, धान्य को चुरानेवाला कौवा, पशु का

---

१ ख. ग. निर्जले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अजः पशुं पयः काको यानमुष्ट्रः फलं कपिः । मधु दंशः फलं गृध्रो गृहकाक उपस्करम् ।।३७।।
श्वित्री वस्त्रं सारसं च झिल्ली लवणहारकः । उक्त आध्यात्मिकस्तापः शस्त्राद्यैराधिभौतिकः ।।३८।।
ग्रहाग्निदेवपीडाद्यैर (रा) धिदैविक ईरितः । त्रिधा तापं हि संसार ज्ञानयोगाद्विनाशयेत् ।।३९।।
कृच्छ्रैर्व्रतैश्च दानाद्यैर्विष्णुपूजादिभिर्नरः ।।४०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकनिरूपणं नामैकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७१।।

अथ द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमनियमाः

अग्निरुवाच

संसारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकम् । ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता ।।१।।
चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनोः परः । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।।२।।
यमाः पञ्च स्मृता विप्र [1]नियमा भुक्तिमुक्तिदाः । शौचं संतोषतपसी स्वाध्यायेश्वरपूजने ।।३।।
भूतापीडा ह्यहिंसा स्यादहिंसा धर्म उत्तमः । [2]यथा गजपदेऽन्यानि पदानि [3]पथगामिनाम् ।।४।।

अपहरण करनेवाला बकरा, दूध चुरानेवाला कौवा, सवारी को चुरानेवाला ऊँट, फल को चुरानेवाला बन्दर, मधु को चुरानेवाला मक्खी, फल को चुरानेवाला गृध्र और अन्य सामग्री को चुरानेवाला गृहकाक होता है। वस्त्र और सरस वस्तुएँ चुरानेवाला श्वेत कुष्ठ से युक्त और नमक चुरानेवाला झींगुर होता है। यह आध्यात्मिक ताप का वर्णन किया गया है। शस्त्र आदि से कष्ट की प्राप्ति होना आधिभौतिक ताप है। आधिदैविक ताप उसे कहते हैं जो ग्रह, अग्नि, देवताजन्य पीड़ाओं से उत्पन्न होता है। तीनों प्रकार के तापों से युक्त इस संसार का विनाश ज्ञान, योग, हठयोग, व्रत और दान आदि तथा विष्णु के पूजन आदि से करना चाहिए ।।३६।।

श्री अग्निमहापुराण में नरक-निरूपण कथन नामक तीन सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७१।।

अध्याय ३७२

यम-नियम

अग्निदेव बोले-(अब) मैं सांसारिक संतापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए अष्टाङ्ग योग का वर्णन करूँगा जो ब्रह्म को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान है। योग कहते हैं चित्त की एकाग्रता को। चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है जो कि जीवात्मा और ब्रह्मात्मा से परे रहा करता है। हे विप्र! यम पाँच कहे गये हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। भोग और मोक्ष को प्रदान करनेवाले नियम हैं-शौच, सन्तोष, तपस्, स्वाध्याय और ईश्वरपूजन ।।१-३।। प्राणियों को कष्ट न देना अहिंसा है। अहिंसा ही उत्तम धर्म है। जिस प्रकार पथिकों के सभी पद हाथी के पद

---

१ छ. 'मादभुक्ति'। २ ख. 'था नागप'। ३ क. ख. ङ. 'पदगा'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमभिधीयते । उद्वेगजननं हिंसा संतापकरणं तथा ।।५।।
रुक्कृतिः शोणितकृतिः पैशुन्यकरणं तथा । हितस्यातिनिषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ।।६।।
सुखापह्नुतिः संरोधो वधो दशविधा च सा । यद्भूतहितमत्यन्तं वचः सत्यस्य लक्षणम् ।।७।।
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।।८।।
मैथुनस्य परित्यागो ब्रह्मचर्यं तदष्टधा । स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।।९।।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।१०।।
ब्रह्मचर्यं क्रियामूलमन्यथा [1]विफला क्रिया । वशिष्ठश्चन्द्रमाः शुक्रो देवाचार्यः पितामहः ।।११।।
तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तेऽपि स्त्रीभिर्विमोहिताः । गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधाः सुराः ।।१२।।
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् । माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति ।।१३।।
यस्माद्दृष्टमदा नारी तस्मात्तां नावलोकयेत् । यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।।१४।।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ।।१५।।
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् । देहस्थितिनिमित्तस्य वस्त्रादेः स्यात्परिग्रहः ।।१६।।
शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः । शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यम (मा) भ्यन्तरं तथा ।।१७।।

में समाहित हो जाते हैं उसी प्रकार अहिंसा में सभी धर्मों का अन्तर्भाव बतलाया गया है। अहिंसा के दस प्रकार होते हैं–किसी को उद्विग्न करना, संतप्त करना, रोगी बनाना, रक्त निकालना, चुगली करना, हित का प्रतिषेध करना, मर्म भेदन करना, सुख को छिपाना, अवरोध उत्पन्न करना और वध करना। सत्यवाणी का लक्षण यह है कि उससे प्राणियों का अत्यन्त हित होना चाहिए। सत्य बोलना चाहिए किन्तु प्रिय बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए। प्रिय असत्य नहीं बोलना चाहिए, यही सनातन धर्म है ।।४-८।। मैथुन का परित्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है। स्मरण, कीर्त्तन, क्रीड़ा, दर्शन, गुप्तभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और कर्मरूप विद्वानों ने मैथुन के इन आठ प्रकारों को बताया है। ब्रह्मचर्य ही सभी कर्मों का मूल और ब्रह्मचर्य का अभाव सभी कर्मों को विफल बनानेवाला होता है। वशिष्ठ, चन्द्रमा, शुक्राचार्य, बृहस्पति और ब्रह्मा ये सभी तपोवृद्ध और वयोवृद्ध थे। तथापि ये सभी स्त्रियों के द्वारा मोहित कर लिये गये। मदिरा तीन प्रकार की होती है–गौडी, पैष्टी और माध्वी। चौथी प्रकार की मदिरा है स्त्री जिससे यह सारा जगत् मुग्ध हो जाता है। मदिरा का पान करने से प्रमत्तता उत्पन्न होती है किन्तु स्त्रियों को देखने मात्र से ही मद उत्पन्न होता है अतएव उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए ।।९-१३$\frac{1}{2}$।। बलपूर्वक दूसरे के धन का अपहरण करने से और देवताओं को दी गयी आहुति का भक्षण करने से मनुष्य निश्चय ही पक्षियोनि को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य को कभी भी दूसरे (के धन) का संग्रह नहीं करना चाहिए चाहे उसे वस्त्र के रूप में शरीर ढकने को लँगोटी, शीत से बचने के लिए गुदड़ी और पैरों के खड़ाऊँ ही क्यों न मिले। वस्त्र इत्यादि का संग्रह तो केवल शरीर की रक्षा के लिए ही होता है क्योंकि कर्ममय शरीर की रक्षा यत्नपूर्वक करनी ही चाहिए। शौच दो प्रकार का बताया गया है–बाह्य शौच तथा आभ्यन्तर शौच। बाह्य

---

१ ख. ग. °फलाः क्रियाः। व°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथाऽऽन्तरम् । उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ।१८।।
यथा कथंचित्प्राप्त्या च संतोषस्तुष्टिरुच्यते । मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं तप उच्यते[1] ।।१९।।
तज्जयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते । वाचिकं मन्त्रजप्यादि मानसं रागवर्जनम् ।।२०।।
शारीरं देवपूजादि सर्वदं तु त्रिधा तपः । प्रणवाद्यास्ततो वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ।।२१।।
वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् । अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्धमात्रया ।।२२।।
तिस्रो मात्रास्त्रयो वेदा लोका भूरादयो गुणाः । जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तिश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।२३।।
[2]ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्ददेवीमहेश्वराः । प्रद्युम्नः श्रीर्वासुदेवः सर्वमोङ्कारकः क्रमात् ।।२४।।
[3]अमात्रो नष्टमात्रस्य [4]द्वैतस्यापगमः शिवः । ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो मुनिः ।।२५।।
चतुर्थी मात्रा गान्धारी प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते । तत्तुरीयं परंब्रह्म ज्योतिर्दीपो घटे यथा ।।२६।।
तथा हृत्पद्मनिलयं ध्यायेन्नित्यं जपेन्नरः । प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।।२७।।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् । एतदेकाक्षरं ब्रह्म एतदेकाक्षरं परम् ।।२८।
एतदेकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् । छन्दोऽस्य देवी गायत्री अन्तर्यामी ऋषिः स्मृतः ।।२९।।

शौच वह है जो मिट्टी और जल द्वारा उत्पन्न होता है और आभ्यन्तर शौच कहते हैं भावनाओं की शुद्धि को। दोनों प्रकार के शौचों से युक्त मनुष्य ही पवित्र होता है अन्य नहीं। जिस किसी वस्तु को प्राप्त कर लेने से उत्पन्न होनेवाला सन्तोष तुष्टि कहलाता है और तप कहते हैं मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को ।।१४-१९।। उसे ही सभी धर्मों से जीतना चाहिए क्योंकि वह परम धर्म कहा गया है। तप तीन प्रकार का होता है। मन्त्र जप आदि से होनेवाला तप वाचिक, विराग से उत्पन्न होनेवाला तप मानसिक और देवताओं के पूजन आदि से उत्पन्न होनेवाला तप शारीरिक कहलाता है। तीनों प्रकार का तप सभी कुछ प्रदान करनेवाला होता है। वेद ओंकार से आरम्भ होता है इसीलिए उनका पर्यवसान प्रणव में ही हो जाता है। सम्पूर्ण वाङ्मय प्रणवमय है इसलिए प्रणव का अभ्यास करना चाहिए। ओंकार में अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा रहते हैं। ओंकार के तीनों अक्षर तीन मात्राओं, तीन वेदों, तीनों लोकों, तीन गुणों के प्रतीक हैं। तीन अवस्थाएँ होती हैं-जागृत्, स्वप्न और सुषुप्ति। तीन देवता हैं-ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अथवा स्कन्द देवी अथवा महेश्वर अथवा प्रद्युम्न, श्री और वासुदेव। ये सभी क्रमशः ओंकार के ही प्रतीक हैं। अमात्र का अर्थ है जिसकी मात्रा नष्ट हो गयी। यह है द्वैत का अभाव जिसे शिव कहा जाता है। जिसने ओंकार को जान लिया वही मुनि है अन्य मुनि नहीं है ।।२०-२५।। ओंकार की चतुर्थी मात्रा गान्धारी है जो मस्तक के ऊपर प्रयुक्त दिखायी पड़ती है। वही अन्तिम परब्रह्म है। जैसे घट में ज्योतिर्दीप रहा करता है उसी प्रकार हृदय-कमल में ब्रह्म रहा करता है मनुष्य को निरन्तर उसका ध्यान और जप करते रहना चाहिए। प्रणव, धुनष और ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। अप्रमत्त व्यक्ति के द्वारा उस (लक्ष्य) का वेधन करना चाहिए जिससे बाण स्थानीय आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है। यह प्रणव रूप एकाक्षर ही परब्रह्म है। इस एकाक्षर का ज्ञान कर लेने से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। देवी गायत्री इसका छन्द और अन्तर्यामी ऋषि कहा गया है।

---

१ ख. ग. °ते। तत्तपः स°। २ 'ब्रह्मा'''महेश्वराः' छ. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. °त्रोऽनन्तमा°। ४ ख. ग. °तस्योप°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवता परमात्माऽस्य नियोगो भुक्तिमुक्तये। भूरग्न्यात्मने हृदयं भुवः प्रा (प्र) जापत्यात्मने ।।३०।।
शिरः स्वः सूर्यात्मने च शिखा कवचमुच्यते। ॐ भूर्भुवः स्वः कवचं सत्यात्मने ततोऽस्त्रकम् ।।३१।।
विन्यस्य पूजयेद्विष्णुं जपेद्वै भुक्तिमुक्तये। जुहुयाच्च तिलाज्यादि सर्वं संपद्यते नरे ।।३२।।
यस्तु द्वादशसाहस्रं जपमन्वहमाचरेत्। तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ।।३३।।
अणिमादि कोटिजप्याल्लक्षात्सारस्वतादिकम्। वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रो विष्णोर्वै त्रिविधो मखः ।।३४।।
[1]त्रयाणामीप्सितेनैकविधिना हरिमर्चयेत्। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ।।३५।।
स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देव तथा गुरौ ।।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ।।३६।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमनियमनिरूपणं नाम
द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७२।।

परमात्मा इसका देवता है और विनियोग भुक्ति और मुक्ति के लिए किया जाता है। भूः अग्न्यात्मा का हृदय, भुवः प्रजापत्यात्मा का सिर और स्वः सूर्यात्मा का शिखारूप कवच कहा जाता है। इसीलिए ॐ भूः भुवः स्वः सत्यात्मा के लिए कवचस्वरूप है ।।२६-३१।। इसके द्वारा न्यास करके विष्णु का पूजन करना चाहिए तथा भू और मोक्ष के लिए इसी का जप करना चाहिए। इसके द्वारा तिल और आज्यादि की आहुति देने से मनुष्य सर्व-सम्पन्न हो जाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन इस मन्त्र का बारह हजार जप करता है उसे बारह महीनों में ही परब्रह्म का प्रकाश प्राप्त हो जाता है। इसका एक करोड़ बार जप करने से अणिमा इत्यादि सिद्धियाँ तथा एक लाख जप करने से सारस्वत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। विष्णु का यज्ञ तीन प्रकार का होता है—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र। तीनों प्रकार की सिद्धि के लिए एक विधि से विष्णु का पूजन करना चाहिए। पृथ्वी के ऊपर दण्डवत् गिरकर नमस्कार के द्वारा जो व्यक्ति विष्णु की अर्चना करता है वह व्यक्ति जिस गति को प्राप्त करता है, उस गति को सौ यज्ञों से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जिस महात्मा पुरुष की भक्ति देवता और गुरु में समान होती है उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।।३२-३६।।

श्री अग्निमहापुराण में यम-नियम-निरूपण कथन नामक
तीन सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७२।।

---

१ ख. ग. °नैव वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आसनप्राणायामप्रत्याहाराः

अग्निरुवाच

आसनं कमलाद्युक्तं तद्बद्ध्वा चिन्तयेत्परम्। शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।।१।।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्। तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।।२।।
उपविश्याऽऽसने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये। समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।।३।।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्। पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ।।४।।
ऊरुभ्यामुपरि स्थाप्य बाहू तिर्यक्प्रयत्नतः। दक्षिणं करपृष्ठं च न्यसेद्वामतलोपरि ।।५।।
उन्नम्य शनकैर्वक्त्रं मुखं विष्टभ्य चाग्रतः। प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्याऽऽयामो निरोधनम् ।।६।।
नासिकापुटमङ्गुल्याऽऽपीड्यैव च परेण च। औदरं रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः ।।७।।
बाह्येन वायुना देहं[1] दृतिवत्पूरयेद्यथा। तथा पूर्णश्च संतिष्ठेत्पूरणात्पूरकः स्मृतः ।।८।।
न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहिः स्थितम्। सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः ।।९।।

अध्याय ३७३

आसनप्राणायाम-प्रत्याहार

अग्निदेव बोले–कमल इत्यादि आसन बताये गये हैं इस आसन को लगाकर पवित्र स्थान में जाकर परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। आसन न तो अत्यन्त ऊँचा होना चाहिए और न तो अत्यन्त नीचा। यह वस्त्र, मृगचर्म अथवा कुश का होना चाहिए। मन को एकाग्र करके चित्त, इन्द्रिय और कर्मों को अपने वश में करके उस आसन के ऊपर बैठकर आत्म-शुद्धि के लिए योग में संलग्न होना चाहिए। पहले शरीर, सिर और ग्रीवा को एक साथ स्थिर करना चाहिए तदनन्तर दिशाओं की ओर देखते हुए केवल अपने नासिकाग्र का अवलोकन करना चाहिए। दोनों एड़ियों के द्वारा अण्डकोषों और जनदनेन्द्रिय को छिपा लेना चाहिए ।।१-४।। दोनों जंघाओं के ऊपर बाँहों को प्रयत्नपूर्वक तिरछी करके रखना चाहिए। दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग को बायें हाथ की हथेली के ऊपर रखना चाहिए। धीरे-धीरे मुख को उठाकर आगे की ओर स्थिर कर लेना चाहिए। शरीर में रहनेवाली वायु प्राणवायु कहलाती है उसका रोकना आयाम कहलाता है। एक उँगली से नासिकापुट को दबाकर दूसरे नासिकापुट से पेट की वायु को बाहर निकाला जाता है, इसलिए उसे रेचक कहते हैं। तदनन्तर बाहरी वायु के द्वारा शरीर को मशक के समान वायु से भरना चाहिए। इस प्रकार शरीर को वायु से पूर्ण करने को पूरक कहा गया है। कुम्भक उस क्रिया को कहते हैं जिसमें साधक न तो अन्दर की वायु को छोड़ता है, न तो बाहर की वायु को ग्रहण करता है अपितु पूर्ण घट की भाँति निश्चल बना रहता है ।।५-९।।

---

१ क. ङ. °हं भूमिव°। ख. ग. °हं भृतिव°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कन्यकः सुकृदुद्घातः स वै द्वादशमात्रिकः । मध्यमश्च वि(द्वि)रुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ।।१०।।
उत्तमश्च त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशत्तालमात्रकः । स्वेदकम्पाभिघातानां जननश्चोत्तमोत्तमः ।।११।।
अजितां नाऽऽरुहेद्भूमिं हिक्काश्वासादयस्तथा । जिते प्राणे स्वल्पदोषविण्मूत्रादि प्रजायते ।।१२।।
आरोग्यं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् । बलवर्णप्रसादश्च सर्वदोषक्षयः फलम् ।।१३।।
जपध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वितः । इन्द्रियाणां जयार्थाय सगर्भं धारयेत्परम् ।।१४।।
ज्ञानवैराग्ययुक्ताभ्यां प्राणायामवशेन च । इन्द्रियांश्च(याणि)विनिर्जित्य सर्वमेव जितं भवेत् ।।१५।।
इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्गनरकावुभौ । निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ।।१६।।
शरीरं रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिनः । मनश्च सारथिः प्रोक्तः प्राणायामः कशः स्मृतः ।।१७।।
ज्ञानवैराग्यरश्मिभ्यां[1] मायया विधृतं मनः । शनैर्निश्चलतामेति प्राणायामैकसंहितम् ।।१८।।
जलविन्दुं कुशाग्रेण मासे मासे पिबेत्तु यः । संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः ।।१९।।
इन्द्रियाणिप्रसक्तानि प्रविश्य विषयोदधौ । आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहारः स उच्यते ।।२०।।
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं मज्जमानं यथाऽम्भसि । भोगनद्यतिवेगेन ज्ञानवृक्षं समाश्रयेत् ।।२१।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आसनप्राणायामप्रत्याहारनिरूपणं नाम त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७३।।

एक बार ओंकार के उच्चारण को कन्यक कहते हैं जिसमें बारह मात्राएँ होती हैं। दो बार ओंकार का उच्चारण मध्यम कहलाता है। इसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं और तीन बार ओंकार के उच्चारण को उत्तम कहा गया है। इसमें छत्तीस ताल का मात्राएँ होती हैं। इनमें क्रमशः स्वेद, कम्प और अभिघात उत्पन्न होता है। हिचक और श्वास रोगियों को (योग की अजिता भूमि में पदार्पण नहीं करना चाहिए)। प्राणवायु को जीत लेने पर मलमूत्र इत्यादि दोष कम हो जाते हैं। योग के फल हैं–आरोग्य, शीघ्रगामित्व, उत्साह, स्वरसौष्ठव, बल, वर्ण का निखार तथा सभी दोषों का विनाश। जप और ध्यान के बिना किया गया योग अगर्भ और जप तथा ध्यान से किया हुआ योग सगर्भ कहलाता है। इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए सगर्भ योग का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान, वैराग्य और प्राणायाम से इन्द्रियों को जीत लेने से सभी कुछ जीता जा सकता है। इन्द्रियाँ ही स्वर्ग और नरक दोनों हैं। इन्द्रिय-निग्रह स्वर्ग के लिए और उन्हें स्वतन्त्र छोड़ देना नरक के लिए होता है ।।१०-१६।। शरीर को रथ कहा गया है और इन्द्रियाँ उसके घोड़े हैं, मन सारथि और प्राणायाम चाबुक कहा गया है। ज्ञान और वैराग्य के द्वारा माया इस मन को पकड़ रखती है। जो केवल प्राणायाम के द्वारा ही शनैः-शनैः निश्चलता को प्राप्त करता है। एक सौ वर्षों तक प्रतिमास कुशाग्र से जलबिन्दु का पान करना और प्राणायाम करना ये दोनों एक समान हैं। विषय-सागर में प्रवेश करके (विषयों में) आसक्त इन्द्रियों को पकड़कर निगृहीत करना प्रत्याहार कहलाता है। जिस प्रकार जल में डूबता हुआ व्यक्ति किसी वस्तु का सहारा लेकर अपने-आपको बाहर निकाल लेता है उसी प्रकार भोग नदी में निमज्जित होनेवाले को ज्ञान वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए ।।१७-२१।।

श्री अग्निमहापुराण में आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार निरूपण कथन नामक तीन सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७३।।

---

१ ख. ग. °श्मिभ्यामायम्य वि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ध्यानम्

अग्निरुवाच

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुर्चिन्ता मुहुर्मुहुः। अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ।।१।।
आत्मनः समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च। ब्रह्मचिन्ता समा शक्तिर्ध्यानं नाम तदुच्यते ।।२।।
ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च। प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते ।।३।।
ध्येयावस्थितचित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित्। ध्यानमेतत्समुद्दिष्टं प्रत्ययस्यैकभावना ।।४।।
एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजेत्। कुलं स्वजनमित्राणि समुद्धृत्य हरिर्भवेत् ।।५।।
एवं मुहूर्तमर्धं वा ध्यायेद्यः श्रद्धया हरिम्। सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः ।।६।।
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम्। एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत तत्त्ववित् ।।७।।
योगाभ्यासाद्भवेन्मुक्तिरैश्वर्यं चाष्टधा महत्। ज्ञानवैराग्यसंपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ।।८।।
विष्णुभक्तः सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः। मूर्तामूर्तं परं ब्रह्म हरेर्ध्यानं हि चिन्तनम् ।।९।।
सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरिः। अणिमादिगुणैश्वर्यं मुक्तिर्ध्यानप्रयोजनम् ।।१०।।
फलेन योजको विष्णुरतो ध्यायेत्परेश्वरम्। गच्छंस्तिष्ठन्स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि ।।११।।

अध्याय ३७४

ध्यान

अग्निदेव बोले–चिन्ता करने के अर्थ में 'ध्यै' धातु का प्रयोग होता है। बार-बार एकाग्र मन से विष्णु का चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है। मन और आत्मा से सभी उपाधियों को छोड़कर ब्रह्मचिन्तन करना ही ध्यान कहलाता है। ध्यान योग्य आलम्बन में मन को स्थिर करके अन्य प्रकार की प्रतीति से मुक्त होना ध्यान कहलाता है। ध्येय में चित्त को स्थित करके यत्र-तत्र उसी की प्रतीति का विश्वास करना ध्यान कहलाता है। इस प्रकार ध्यानावस्थित होकर जो व्यक्ति अपने शरीर का परित्याग करता है वह अपने कुल, स्वजन और मित्रों का उद्धार करके विष्णु हो जाता है ।।१-५।। जो व्यक्ति इस प्रकार एक अथवा आधे क्षण श्रद्धापूर्वक विष्णु का ध्यान करता है वह जिस गति को प्राप्त कर लेता है उसे सभी यज्ञों द्वारा भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का प्रयोजन–इन चारों को जानकर तत्त्ववेत्ता व्यक्ति को योग में लग जाना चाहिए। योगाभ्यास से मोक्ष और आठ प्रकार का महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। ध्याता पुरुष वह कहलाता है जो ज्ञान और वैराग्य से युक्त, श्रद्धावान्, क्षमाशील, विष्णुभक्त और सदा उत्साहवान् रहता है। परब्रह्म मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में रहता है। विष्णु का चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। विष्णु सकल, निष्कल, ज्ञेय, सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं। ध्यान का प्रयोजन है अणिमा आदि गुण, ऐश्वर्य और मोक्ष ।।६-१०।। विष्णु ही फल को देनेवाले हैं अतः चलते, रुकते, सोते, जागते, आँखें खोले या आँखें बन्द किये हुए परमेश्वर (विष्णु) का ध्यान करते रहना चाहिए।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वाऽपि ध्यायेत्सततमीश्वरम् । स्वदेहायतनस्यान्ते मनसि स्थाप्य केशवम् ।।१२।।
हृत्पद्मपीठिकामध्ये [1]ध्यानयोगेन पूजयेत् । ध्यानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः ।।१३।।
तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति बाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः । हिंसादोषविमुक्तित्वाद्विशुद्धिश्चित्तसाधनः ।।१४।।
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः । तस्मादशुद्धं संत्यज्य ह्यनित्यं बाह्यसाधनम् ।।१५।।
यज्ञाद्यं कर्म संत्यज्य योगमत्यर्थमभ्यसेत् । विकारमुक्तमव्यक्तं भोग्यभोगसमन्वितम् ।।१६।।
चिन्तयेद्धृदये पूर्वं क्रमादादौ गुणत्रयम् । तमः प्रच्छाद्य रजसा [2]सत्त्वेन च्छादयेद्रजः ।।१७।।
ध्यायेत्त्रिमण्डलं पूर्वं कृष्णं रक्तं सितं क्रमात् । सत्त्वोपाधिगुणातीतः पुरुषः पञ्चविंशकः ।।१८।।
ध्येयमेतदशुद्धं च त्यक्ताशुद्धं विचिन्तयेत् । ऐश्वर्यं पङ्कजं दिव्यं पुरुषोपरि संस्थितम् ।।१९।।
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं शुद्धं विकसितं सितम् । नालमष्टाङ्गुलं तस्य नाभिकन्दसमुद्भवम् ।।२०।।
पद्मपत्राष्टकं ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम् । कर्णिकाकेशरं नालं ज्ञानवैराग्यमुत्तमम् ।।२१।।
विष्णुधर्मश्च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत् । तद्धर्मज्ञानवैराग्यं शिवैश्वर्यमयं परम् ।।२२।।
ज्ञात्वा पद्मासनं सर्वं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात् । तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिम् ।।२३।।

मनुष्य चाहे पवित्र हो या अपवित्र उसे निरन्तर ईश्वर का ध्यान करते रहना चाहिए। शरीरान्त में मन में केशव को स्थापित करके हृदय-कमलासन में ध्यानयोग से ईश्वर का पूजन करना चाहिए। ज्ञानयज्ञ अत्यन्त शुद्ध और सभी दोषों से रहित है। इसलिए ध्यानयज्ञ से ही मोक्ष प्राप्त होता है (केवल) बाह्य शुद्ध यज्ञों से नहीं। हिंसा और दोष से विमुक्त होने के कारण विशुद्धि ही चित्त का साधन है। इसलिए ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ और मोक्ष फल को देनेवाला है। इसलिए बाह्य साधन को छोड़ देना चाहिए क्योंकि वह अशुद्ध और अनित्य होता है। यज्ञ इत्यादि कर्मों को छोड़कर निरन्तर योग का ही अभ्यास करना चाहिए क्योंकि वह विकाररहित, अव्यक्त और भोग्य भोगों से युक्त रहता है ।।११-१६।। सर्वप्रथम क्रमशः हृदय में तीनों गुणों का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर रजोगुण से तमोगुण तथा सत्त्वगुण से रजोगुण को आच्छादित करके सूर्यमण्डल का ध्यान करना चाहिए। उसका क्रम यह है कि पहले कृष्ण फिर रक्त और अन्त में श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। सत्त्व आदि गुणों से युक्त पंचत्रिंशात्मक पुरुष होता है। यह ध्येय अशुद्ध होता है। चिन्तन उस पुरुष का करना चाहिए जो अत्यन्त शुद्ध होता है। पुरुष के ऊपर एक दिव्य और ऐश्वर्यसम्पन्न कमल स्थित रहता है। वह बारह अंगुल विस्तृत, शुद्ध, विकसित और श्वेत वर्ण का होता है। उसका नाल आठ अंगुल का होता है और उसकी उत्पत्ति नाभिरूपी कन्द से होती है। अणिमा इत्यादि आठ गुणों को कमल के आठ दल समझना चाहिए। ज्ञान और वैराग्य उसके क्रमशः कर्णिका-केशर और नाल हैं। विष्णु धर्म उसका कन्द है। इस प्रकार उस कमल का चिन्तन करना चाहिए। वह धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा परम शिव और ऐश्वर्य से युक्त रहता है ।।१७-२२।। पद्मासन को जान लेने से सभी दुःखों का अन्त हो जाता है। उस कमल की कर्णिका के बीच में शुद्ध दीपशिखा की आकृतिवाले

---

१ क. ख. ङ. °नमार्गेण पू°। २ ख. ग. °त्त्वेनाऽऽच्छा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम् । कदम्बगोलकाकारं तारं रूपमिव स्थितम् ।।२४।।
ध्यायेद्वा रश्मिजालेन दीप्यमानं समन्ततः । [1]प्रधानं पुरुषातीतं स्थितं पद्मस्थमीश्वरम् ।।२५।।
ध्यायेज्जपेच्च सततमोंकारं परमक्षरम् । मनःस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात् ।।२६।।
तद्भूतं निश्चलीभूतं लभेत्सूक्ष्मेऽपि संस्थितम् । नाभिकन्दे स्थितं नालं दशाङ्गुलसमायतम् ।।२७।।
नालेनाष्टदलं पद्मं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । सकर्णिके केसराले सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ।।२८।।
अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधरः । पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथ वाऽष्टभुजो हरिः ।।२९।।
शार्ङ्गाक्षवलयधरः पाशांकुशधरः परः । स्वर्णवर्णः श्वेतवर्णः सश्रीवत्सः सकौस्तुभः ।।३०।।
वनमाली स्वर्णहारी स्फुरन्मकरकुण्डलः । रत्नोज्ज्वलकिरीटश्च पीताम्बरधरो महान् ।।३१।।
सर्वाभरणभूषाढ्यो वितस्तिर्वा यथेच्छया । अहं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ।।३२।।
ध्यानाच्छ्रान्तो जपेन्मन्त्रं जपाच्छ्रान्तश्च चिन्तयेत् । जपध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति ।।३३।।
जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् । जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाऽऽधयो ग्रहाः ।।३४।।
भुक्तिर्मुक्तिर्मृत्युजयो जपेन [2]प्राप्नुयात्फलम् ।।३५।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्याननिरूपणं नाम चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७४।।

अंगुष्ठमात्र निर्मल ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए। कदम्ब, गोलक के आकार के रूप में उसकी स्थिति रहती है। वह चारों ओर से रश्मि-समूह के द्वारा दीप्त रहा करता है। वह प्रधान पुरुषातीत, निश्चल और कमलासनस्थ रहता है। निरन्तर ओंकार रूप परम अक्षर का ध्यान और जप करना चाहिए। उससे ही सूक्ष्म नाभिकन्द के ऊपर निश्चल रूप से एक कमल स्थिर रहता है जिसका नाल दस अंगुल विस्तृत है। नाल के ऊपर अष्टदल कमल है जो बारह अंगुल विस्तृत है। कर्णिकाओं और केसर के सहित वह सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमण्डल का प्रतीक होता है। अग्निमण्डल के बीच में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करनेवाले चतुर्भुज अथवा अष्टभुज भगवान् विष्णु निवास करते हैं ।।२३-२९।। वे मृगचर्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं। दूसरे पाश और अंकुश को धारण करनेवाले हैं। उनका रंग स्वर्णिम और श्वेत है। वे श्रीवत्स और कौस्तुभ को धारण करनेवाले, वनमाली और स्वर्ग की कान्ति को चुरानेवाले हैं। उनका कुण्डल भासमान तथा मुकुट रत्नों से उज्ज्वल रहता है। वे पीताम्बर धारण करनेवाले सभी आभूषणों से विभूषित और स्वेच्छा से रूप धारण करनेवाले हैं। मैं ब्रह्मज्योति आत्मा वासुदेव विमुक्त और ओंकार हूँ। इस प्रकार ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करना चाहिए और विष्णु का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार जप और ध्यान करनेवाले से विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। (साधारण) यज्ञ जप यज्ञ की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं करते हैं। जप करनेवाले के पास आधियाँ, व्याधियाँ और ग्रह नहीं पहुँचते हैं। जप करने से भोग, मोक्ष और मृत्यु के ऊपर विजय फल रूप में प्राप्त होते हैं ।।३०-३५।।

श्री अग्निमहापुराण में ध्यान-निरूपण नामक तीन सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७४।।

---

१ ख. ग. °धानपु°। २ ख. ग. °याद्धरिम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

धारणा

अग्निरुवाच

धारणा [1]मनसो[2] ध्येये संस्थितिर्ध्यानवद्द्विधा । [3]मूर्तामूर्तहरिध्यानमनोधारणतो हरिः ।।१।।
[4]यद्बाह्यावस्थितं लक्ष्यं तस्मान्न चलते मनः । तावत्कालं प्रदेशेषु धारणा मनसि स्थितिः ।।२।।
कालावधिपरिच्छिन्नं देहे संस्थापितं मनः । न प्रच्यवति यल्लक्ष्याद्धारणा साऽभिधीयते ।।३।।
धारणा द्वादशायामा[5] ध्यानं द्वादशधारणाः । ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ।।४।।
धारणाभ्यासयुक्तात्मा यदि प्राणैर्विमुच्यते । कुलैकविंशमुत्तार्य स्वर्याति परमं पदम् ।।५।।
यस्मिन्यस्मिन्भवेदङ्गे योगिनां व्याधिसंभवः । तत्तदङ्गं धिया व्याप्य धारयेत्तत्त्वधारणम् ।।६।।
आग्नेयी वारुणी चैव[6] ऐशानी चामृतात्मिका । साग्निः शिखा फडन्ता च विष्णोः कार्या द्विजोत्तम ।।७।।
नाडीभिर्विकटं दिव्यं शूलाग्रं वेधयेच्छुभम् । पादाङ्गुष्ठात्कपोलान्तं रश्मिमण्डलमादृतम् ।।८।।
तिर्यक्चाधोर्ध्वभागेभ्यः प्रयान्त्योऽतीव तेजसा । चिन्तयेत्साधकेन्द्रस्तं यावत्सर्वं महामुने ।।९।।

अध्याय ३७५

धारणा

अग्निदेव बोले–ध्येय में मन की स्थिति को धारणा कहा गया है। ध्यान के समान वह भी दो प्रकार की होती है। साकार और निराकार रूप में भगवान् विष्णु का चिन्तन और धारणा करना, बाह्य अवस्थित लक्ष्य से मन का चञ्चल न होना और उन प्रदेशों में मन की स्थिति ही धारणा है। जिस समय शरीर में काल और समय से परे रहनेवाला मन शरीर में स्थापित रहता है और वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता है उस समय धारणा होती है। धारणा में द्वादश आयाम होते हैं और ध्यान में द्वादश धारणाएँ रहा करती हैं। इस प्रकार से बारह ध्यानों को धारणा कहते हैं। धारणा के अभ्यास से युक्त आत्मा जिस समय प्राणों से मुक्त हो जाती है उस समय वह स्वर्ग में जाकर परमपद को प्राप्त कर लेती है ।।१-५।। योगियों को जिस-जिस अंग में व्याधि की उत्पत्ति होती है उस-उस अंग में बुद्धि को व्याप्त करके तत्त्वचिन्तन करना चाहिए। अये द्विजोत्तम! विष्णु के लिए आग्नेयी, वारुणी, ऐशानी और अमृतात्मिका धारण अग्नि के साथ फट् का उच्चारण करके शिखा बाँधनी चाहिए। नाड़ियों के द्वारा विकट और दिव्य शूलाग्र का बन्धन करना चाहिए। ऐसा करने से पैर के अँगूठे से कपोल तक शरीर रश्मियों से मण्डित हो जाता है और वह तिर्यक्, नीचे तथा ऊपर सभी ओर अत्यन्त तेज से व्याप्त हो जाता है। हे महामुने! श्रेष्ठ साधक

---

१ क. ङ. °मथ संध्याय सं°। २ ख. ग. °नसि ध्येयसं°। ३ 'मूर्ताभूर्त…हरिः' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ 'यद्बाह्यावस्थितं…मनः' इत्यत्र 'यदा व्यवसितं लक्षत्तत्तस्माल्लभते मनः' इति क. ङ. पुस्तकयोः। ५ क. ङ. °शाज्ञेया ज्ञेयं द्वादशध्यानकम्। यस्मि°। ६ क. ङ. °नी चैव तैजसी। सा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भस्मीभूतं शरीरं स्वं ततश्चैवोपसंहरेत् । शीतश्लेष्मादयः पापं विनश्यन्ति द्विजातयः ।।१०।।
शिरो [1]धीरं विचारं च कण्ठं चाधोमुखे स्मरेत् । ध्यायेदच्छिन्नचित्तामा[2] भूयोभूतेन चाऽऽत्मना ।।११।।
स्फुरच्छीकरसंस्पर्शप्रभूते[3] हिमगामिभिः । धाराभिरखिलं विश्वमापूर्य भुवि चिन्तयेत् ।।१२।।
ब्रह्मरन्ध्राच्च संक्षोभाद्यावदाधारमण्डलम् । सुषुम्नान्तर्गतो भूत्वा संपूर्णेन्दुकृतालयम् ।।१३।।
संप्लाव्य हिमसंस्पर्शतोयेनामृतमूर्तिना । क्षुत्पिपासाक्रमप्रायसंतापपरिपीडितः ।।१४।।
धारयेद्वारुणीं मन्त्री तुष्ट्यर्थं चाप्यतंत्रितः । वारुणी धारणा प्रोक्ता ऐशानी (नीं) धारणां शृणु ।।१५।।
व्योम्नि ब्रह्ममये पद्मे प्राणापाने क्षयं गते । प्रसादं चिन्तयेद्विष्णोर्यावच्चिन्ता क्षयं गता ।।१६।।
महाभावं जपेत्सर्वं ततो व्यापक ईश्वरः । अर्धेन्दुं परमं शान्तं निराभासं निरञ्जनम् ।।१७।।
असत्यं सत्यामाभाति तावत्सर्वं चराचरम् । यावत्स्वस्यन्दरूपं तु न दृष्टं गुरुवक्त्रतः ।।१८।।
दृष्टे तस्मिन्परे तत्त्वे आब्रह्म सचराचरम् । प्रमातृमानमेयं च ध्यानहृत्पद्मकम्पनम् ।।१९।।
मातृमोदकवत्सर्वं जपहोमार्चनादिकम् । विष्णुमन्त्रेण वा कुर्यादमृतां धारणां वदे ।।२०।।
सम्पूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत्कमलं तन्त्रिमुष्टिगम् । शिरःस्थं चिन्तयेद्यत्नाच्छशाङ्कायुतवर्चसम् ।।२१।।

को इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए। भस्मीभूत शरीर का उपसंहरण इस प्रकार करना चाहिए जिससे शीत और श्लेष्मा आदि नष्ट हो जाते हैं ।।६-१०।। सिर और विचार को स्थिर करके कण्ठ को नीचे की ओर करके निरन्तर आत्मा का चिन्तन करते रहना चाहिए। हिमवत् शीतल अमृतमूर्ति जल के द्वारा क्षोभवश ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक का चिन्तन करे। सम्पूर्ण चक्रमण्डल को आप्लावित करके सुषुम्ना नाड़ी के भीतर होकर पूर्ण चन्द्रमण्डल का चिन्तन करे। क्षुधा और पिपासा के संताप से प्राप्त होनेवाले क्लेशों से अत्यन्त पीड़ित होकर तुष्टि के लिए वारुणीतत्त्व को धारण करना चाहिए। वारुणी धारणा के सम्बन्ध में बतलाया जा चुका है, अब ऐशानी धारणा के सम्बन्ध में सुनो ।।११-१५।। प्राण और अपान नामक वायु के क्षीण हो जाने पर योगी को हृदयाकाश में ब्रह्ममय कमल के ऊपर विराजमान भगवान् विष्णु की कृपा का चिन्तन उस समय तक करना चाहिए जब तक कि चिन्तन ही (स्वयं) समाप्त न हो जाय। तदनन्तर उसे महाभाव का जप करना चाहिए। उस समय एक अर्धचन्द्र परम शान्त आभासरहित निरञ्जन रूप में सर्वव्यापक ईश्वर गुरु के मुख से निकलता हुआ प्रतीत होता है जिससे यह सारा असत्य चराचर सत्य के रूप में भासित होने लगता है। उस परम तत्त्व के दिखायी पड़ने पर ब्रह्म से लेकर सचराचर पर्यन्त प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय ध्यान और हृदय-कमल तथा जप, होम और पूजन इत्यादि सब-कुछ मातृ-मोदक (खिलौने) के समान प्रतीत होने लगते हैं। विष्णुमन्त्र के द्वारा जिस अमृतधारणा को करना चाहिए उसके सम्बन्ध में भी मैं बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण चन्द्राकार कमल को तान्त्रिक की मुष्टिगत समझना चाहिए। सिर में चन्द्रमा के तेज का ध्यान करना चाहिए।

---

१ छ. रं च कारं। २ ख. ग. °त्तार्थः पापो भू°। ३ ख. °भूतमिह गा°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि शिवकल्लोलपूर्णितम् । तथा हृत्कमले ध्यायेत्तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत् ।।
साधको विगतक्लेशो जायते धारणादिभिः ।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धारणानिरूपणं नाम पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७५।।

अथ षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समाधिः

अग्निरुवाच

यदात्ममात्रं निर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम् । चैतन्यरूपवद्ध्यानं तत्समाधिरिहोच्यते ।।१।।
ध्यायन्मनः संनिवेश्य यस्तिष्ठेदचलः स्थिरः । निर्वातानलवद्योगी समाधिस्थः प्रकीर्तितः ।।२।।
न शृणोति न चाऽऽघ्राति(?) न पश्यति न [1]रस्यति । न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ।।३।।
न चाभिमन्यते किंचिन्न च बुध्यति काष्ठवत् । एवमीश्वरसंलीनः[2] समाधिस्थः स गीयते ।।४।।
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता । ध्यायतो विष्णुमात्मानं समाधिस्थस्य योगिनः ।।५।।

आकाश में सम्पूर्ण मण्डल को कल्याणमयी लहरियों से युक्त समझकर हृदय-कमल में उसका ध्यान करना चाहिए और उसके बीच में अपने शरीर का स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार धारणा इत्यादि से साधक सभी क्लेशों से रहित हो जाता है ।।१७-२२।।

श्री अग्निमहापुराण में धारणा-निरूपण नामक तीन सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७५।।

अध्याय ३७६

समाधि

अग्निदेव बोले-मन की वह स्थिति जब वह आत्मोन्मुख, भासरहित, प्रशान्त सागर के समान स्थिर और चैतन्य स्वरूप होता है तो उसे समाधि कहा जाता है। ध्यान करते हुए मन को वश में रखकर अचल और स्थिर रहनेवाला, वायुहीन और अग्नि के समान रहनेवाला योगी समाधिस्थ कहलाता है ।।१-२।। उस समय वह न तो कुछ सुनता है, न सूँघता है, न देखता है, न आस्वादन करता है, न स्पर्श का अनुभव करता है, न संकल्प करता है, न कुछ समझता है और न कुछ जानता है। इस प्रकार काष्ठ के समान प्रतीत होनेवाला ईश्वर में लीन रहनेवाला योगी समाधिस्थ कहलाता है ।।३-४।। जिस प्रकार निर्वाण को प्राप्त होनेवाले दीपक में स्थिरता उत्पन्न हो जाती है, समाधिस्थ योगी की समता उसी से की जाती है। अपने-आपको विष्णुमय ध्यान करते हुए समाधिस्थ योगी के सभी दिव्य कर्म सिद्धि

---

१ छ. वम्यति। २ ख. ग. °लीनो यस्तिष्ठेदचलस्थिरः। य°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दिव्याः सिद्धप्रसूचकाः । पातितः [1]श्रावणो धातुर्दशनस्वाङ्गवेदनाः ।।६।।
प्रार्थयन्ति च तं देवा भोगैर्दिव्यैश्च योगिनम् । नृपाश्च पृथिवीदानैर्धनैश्च सुधनाधिपाः ।।७।।
वेदादिसर्वशास्त्रं च स्वयमेव प्रवर्तते । अभीष्टच्छन्दो विषयं काव्यं चास्य प्रवर्तते ।।८।।
रसायनानि दिव्यानि दिव्याश्चौषधयस्तथा । समस्तानि च शिल्पानि कलाः सर्वाश्च विन्दति ।।९।।
सुरेन्द्रकन्या इत्याद्या गुणाश्च प्रतिभादयः । तृणवत्तां त्वजेद्यस्तु तस्य विष्णुः प्रसीदति ।।१०।।
अणिमादिगुणैश्वर्यैः शिष्ये ज्ञानं प्रकाश्य च । भुक्त्वा भोगान्यथेच्छातस्तनुं त्यक्त्वा लयात्ततः ।।११।।
तिष्ठेत्स्वात्मनि विज्ञान आनन्दे ब्रह्मणीश्वरे । मलिनो हि यथाऽऽदर्श आत्मज्ञानाय न क्षमः ।।१२।।
[2]तथा विपक्षकरण आत्मज्ञानाय न क्षमः । सर्वाश्रयान्निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् ।।१३।।
योगयुक्तस्तु सर्वेषां योगान्नाऽऽप्नोति वेदनाम् । आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ।।१४।।
तथाऽऽत्मैको ह्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान् । ब्रह्म खानिलतेजांसि जलभूक्षितिधातवः ।।१५।।
इमे लोका एष चाऽऽत्मा तस्माच्च सचराचरम् । मृद्दण्डचक्रसंयोगात्कुम्भकारो यथा घटम् ।।१६।।
करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः । करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु ।।१७।।
सृजत्यात्मानमात्मैवं संभूय करणानि च । [3]कर्मणा दोषमोहाभ्यामिच्छयैव स बध्यते ।।१८।।

के सूचक हुआ करते हैं। इस प्रकार के योगी से देवता सभी दिव्य भोगों के द्वारा प्रार्थना किया करते हैं। राजा उनकी प्रार्थना पृथ्वी दान से और धनिक धन से किया करते हैं। वेद आदि समस्त शास्त्र स्वयं ही उसके लिए प्रवृत्त हुआ करते हैं। उसके लिए सभी अभीष्ट छन्द और काव्य भी प्रवर्तित होने लगते हैं। वह (समाधिस्थ योगी) सभी दिव्य रसायन ओषधियों, समस्त शिल्प और सभी कलाओं को प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति देवेन्द्र की कन्या इत्यादि तथा प्रतिभा इत्यादि गुणों का तृणवत् परित्याग कर देता है उससे विष्णु प्रसन्न होते हैं ।।५-१०।। अणिमा इत्यादि गुणों से सम्पन्न वह योगी शिष्य में अपने ज्ञान को प्रकाशित करके तथा सभी भोगों का उपभोग करके इच्छानुसार अपने शरीर का परित्याग कर देता है। इसके बाद वह आत्मभूत, विज्ञानस्वरूप और आनन्दमय ब्रह्म में लीन हो जाता है। जिस प्रकार शीशा धुँधला होने पर उसमें अपना रूप दिखायी नहीं पड़ता है उसी प्रकार इन्द्रियों के विरुद्ध होने पर आत्मज्ञान नहीं हो पाता है। आत्मा अपने शरीर में वेदना को स्वयं प्राप्त किया करती है। किन्तु योगी अपने योग के कारण किसी भी वेदना को प्राप्त नहीं करता है। जिस प्रकार एक ही आकाश घटादि में अलग-अलग दिखायी पड़ता है और जिस प्रकार विभिन्न जलाधारों में एक ही सूर्य अनेक रूपों में दिखायी पड़ता है उसी प्रकार अनेक शरीरों में रहनेवाली एक ही आत्मा अनेक रूपों में दिखायी पड़ती है। ब्रह्म, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये ब्रह्म के स्वरूप हैं ।।११-१५।। ये सम्पूर्ण लोक आत्मा ही हैं। आत्मा से ही चराचर जगत् की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी, दण्ड और चक्र के संयोग से घड़े का निर्माण करता है अथवा घर बनानेवाला तिनके, मिट्टी और लकड़ी से घर का निर्माण करता है उसी प्रकार आत्मा ही विभिन्न इन्द्रियों को लेकर विभिन्न योनियों में अपने-आपका सृजन करती है। जीव कर्म, दोष, मोह और इच्छा से बँध जाता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है।

---

१ क. ख. ङ. °णो वार्तेदिश कालादिवे°। २ 'तथा'''क्षमः' छ. पुस्तके नास्ति। ३ ख. ग. °णा द्वेष°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञानाद्विमुच्यते जीवो धर्माद्योगी न रोगभाक् । वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ।।१९।।
विक्रियाऽपि च दृष्ट्वैवमकाले प्राणसंक्षयः । अनन्ता रश्मयस्तस्य [1]दीपवद्यः स्थितो हृदि ।।२०।।
सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः । ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ।।२१।।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् । यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् ।।२२।।
तेन देवनिकायानि धामानि प्रतिपद्यते । येनैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः ।।२३।।
इह कर्मोपभोगाय तैश्च संचरते हि सः । बुद्धीन्द्रियाणि सर्वाणि मनः कर्मेन्द्रियाणि च ।।२४।।
अहंकारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि । अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते ।।२५।।
ईश्वरः सर्वभूतस्य सदसन्सदसच्च सः । बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्ता ततोऽहंकारसंभवः ।।२६।।
तस्मात्खादीनि जायन्त एकोत्तरगुणानि तु । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।।२७।।
यो यस्मिन्नाश्रितश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते । सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्तिताः ।।२८।।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यते हि सः । अनादिरादिमान्यश्च स एव पुरुषः परः ।।२९।।
लिङ्गेन्द्रियैरुपग्राह्यः स विकार उदाहृतः । यतो वेदाः[2] पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ।।३०।।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मयं भवेत् । पितृयानोपवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चाऽऽन्तरम् ।।३१।।

धर्म के कारण योगी रोग का भोग नहीं करता है। जिस प्रकार बत्ती, पात्र और तेल के योग से दीपक बनता है इनमें से एक के अभाव में भी दीपक रह नहीं सकता उसी प्रकार योग और धर्म के बिना विकार (रोग) की प्राप्ति देखी जाती है और इस प्रकार अकाल में ही प्राणों का क्षय हो जाता है। हृदय में दीपक के समान रहनेवाली आत्मा में अनन्त रश्मियाँ रहा करती हैं ।।१६-२०।। जो श्वेत, कृष्ण, भूरी, नीली, कपिल, पीली और लाल होती हैं उनमें से ऊपर की ओर जानेवाली एक रश्मि सूर्यमण्डल का भेदन करके और ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ऊपर को गयी है, उससे योगी परमगति को प्राप्त कर लेता है। इससे भिन्न जो सौ रश्मियाँ ऊपर की ओर स्थित रहती हैं उनके द्वारा देवताओं के निवास-स्थान प्राप्त हो जाते हैं। इनमें से कुछ रश्मियाँ नीचे की ओर रहती हैं जिनकी कान्ति अत्यन्त कोमल मानी गयी हैं। कर्मों का उपभोग करने के लिए आत्मा उन्हीं के साथ संचरण करती है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, कर्मेन्द्रियाँ, अहंकार, बुद्धि और पृथ्वी इत्यादि से युक्त इस शरीर में अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञ रूप से रहता है ।।२१-२५।। ईश्वर ही सभी प्राणियों की सत्ता और अभाव का कारण है। बुद्धि से अव्यक्त की उत्पत्ति होती है जिससे अहंकार उत्पन्न होता है उससे भिन्न-भिन्न गुणोंवाले आकाश इत्यादि उत्पन्न होते हैं। उनके गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनमें से जो गुण जिस तत्त्व के आश्रित रहता है वह उसी में लीन भी हो जाता है। सत्त्व, रज और तम इसी के गुण कहे गये हैं। यह आत्मा रजोगुण और तमोगुणों के द्वारा व्याप्त होकर चक्रवत् भ्रमित होता रहता है। जो अनादि होते हुए भी आदिवान् है वही परम पुरुष है। जिसका ग्रहण लिंग और इन्द्रियों के द्वारा होता है उसे विकार कहा गया है। जिससे वेद, पुराण, सभी विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य और अन्य वाङ्मय उत्पन्न होता है वही परमात्मा है। पितृयानमार्ग की उपवीथी से लेकर अगस्त्य तारा के बीच का जो मार्ग है, उससे प्रजाकामी यजमान स्वर्ग को चले जाते हैं ।।२६-३१$\frac{1}{2}$।।

---

१ ख. ग. °परूपःस्थि°। २ क. घ. ङ. देवाः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेमाग्निहोत्रिणो यान्ति प्रजाकामा दिवं प्रति। ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः ।।३२।।
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः। पुनरावर्तने बीजभूता धर्मप्रवर्तकाः ।।३३।।
सप्तर्षिनागवीथ्याश्च देवलोकं समाश्रिताः। तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः ।।३४।।
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया। यत्र यत्रावतिष्ठन्ते तावदाहू (भू) त संप्लवम् ।।३५।।
वेदानुवचनं यज्ञा ब्रह्मचर्यं तपो दमः। श्रद्धोपवासः सत्यत्वमात्मनो ज्ञानहेतवः ।।३६।।
सत्त्वाश्रयैर्निदिध्यास्यः समस्तैरेवमेव तु। द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ।।३७।।
य एवमेनं विन्दन्ति ये चाऽऽरण्यकमाश्रिताः। उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ।।३८।।
क्रमात्ते संभवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम्। अयनं देवलोकं च सवितारं सविद्युतम् ।।३९।।
ततस्तान्पुरुषोऽभ्येत्य मानसी ब्रह्म लौकिकान्। करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ।।४०।।
यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो जनाः। धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ।।४१।।
पितृलोकं चन्द्रमसं नभो वायुं जलं महीम्। क्रमात्ते संभवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च ।।४२।।
एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मनः। दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथवा कृमिः ।।४३।।
हृदये दीपवद्ब्रह्मध्यानाज्जीवोऽमृतो भवेत्। न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ।।४४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समाधिनिरूपणं नाम षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७६।।

जो आठ गुणों से युक्त तथा दानशील हैं वे भी उसी भाँति यात्रा करते हैं। अट्ठासी हजार गृहस्थ मुनि पुनरावर्तन में बीजभूत और धर्मप्रवर्तक माने गये हैं। सप्तर्षियों के मार्ग तथा सर्वलोक के मार्ग देवलोक की ओर उन्मुख रहा करते हैं। मनुष्य सभी प्रकार के आरम्भ से रहित इन मार्गों को तपस्या, ब्रह्मचर्य, अनासक्ति और बुद्धि के द्वारा प्रलय-पर्यन्त प्राप्त कर लेता है। आत्मज्ञान के हेतु हैं—स्वाध्याय, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप, दम, श्रद्धा, उपवास और सत्य ।।३२-३६।। सभी द्विजातियों के द्वारा सत्त्वगुण का आश्रय लेकर आत्मतत्त्व का श्रवण, मनन, निदिध्यासन और दर्शन करना चाहिए। जो लोग इस प्रकार से आत्मा को प्राप्त करते हैं अथवा वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले द्विज परम श्रद्धा से युक्त होकर जिस सत्य की उपासना करते हैं वे क्रमशः उसी से युक्त हो जाते हैं। स्फुलिंग, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्यमण्डल तथा विद्युत् इत्यादि को मानस पुरुष प्राप्त कर लेता है। जिससे लौकिक पुरुष ब्रह्ममय होकर पुनरावृत्ति से मुक्त हो जाते हैं ।।३७-४०।। यज्ञ, तप, दान से स्वर्गलोक को जीतनेवाले मनुष्य, धूम, निशा, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक, चन्द्रमा, आकाश, वायु, जल और पृथ्वी पर होते हुए क्रमशः इस लोक में पुनः आ जाते हैं। जो व्यक्ति आत्मा के इन दो मार्गों को नहीं जानता है वह सर्प, पतङ्ग, कीट अथवा कृमि होता है। हृदय में दीपक के समान ब्रह्म का ध्यान करने से जीव अमर हो जाता है और वह गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है जो न्याय से प्राप्त होनेवाले धन में रुचि रखनेवाला, तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाला और सत्यवादी होता है ।।४१-४४।।

श्री अग्निमहापुराण में समाधि निरूपण नामक तीन सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७६।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच

ब्रह्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि संसाराज्ञानमुक्तये। [1]अयमात्मा परं ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ।।१।।
देह आत्मा न भवति दृश्यत्त्वाच्च घटादिवत्। प्रसुप्ते मरणे देहादात्माऽन्यो ज्ञायते ध्रुवम् ।।२।।
देहः स चेद्व्यवहरेदविकार्यादिसंनिभः। चक्षुरादीनिन्द्रियाणि नाऽऽत्मा वै करणं त्वतः ।।३।।
मनो धीरपि आत्मा न दीपवत्करणं त्वतः। प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्ते चित्प्रभावतः ।।४।।
जाग्रत्स्वप्ने च चैतन्यं संकीर्णत्वान्न बुध्यते। विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्ते[2] ज्ञायते यतः ।।५।।
अतो नाऽऽत्मेन्द्रियं तस्मादिन्द्रियादिकमात्मनः। अहंकारोऽपि नैवाऽऽत्मा देहवद्व्यभिचारतः ।।६।।
उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्वहृदिस्थितः। सर्वद्रष्टा च भोक्ता च नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ।।७।।
समाध्यारम्भकाले च एवं संचिन्तयेन्मुनिः। यतो ब्रह्मण आकाश खाद्वायुर्वायुतोऽनलः ।।८।।

अध्याय ३७७

ब्रह्मज्ञान

अग्निदेव बोले–अब मैं संसार और अज्ञान से मुक्त होने के लिए ब्रह्मज्ञान का वर्णन करूँगा। 'मैं ही आत्मा हूँ,' 'मैं परब्रह्म हूँ', इस प्रकार विचार करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह शरीर आत्मा नहीं हो सकता है क्योंकि वह घट इत्यादि की भाँति दृश्य रहा करता है। सोने और मरने के समय निश्चय ही यह आत्मा शरीर से भिन्न ज्ञात होने लगती है। आत्मा शरीर इसलिए भी नहीं हो सकती है क्योंकि आत्मा विकाररहित हुआ करती है। चक्षु इत्यादि इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हो सकती हैं। क्योंकि वे करण (आत्मा के साधन) मात्र हैं। मन और बुद्धि भी आत्मा नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि वे भी दीपक के समान करण (आत्मज्ञान के साधन) मात्र हैं। प्राण भी आत्मा नहीं है क्योंकि सुषुप्ति काल में भी उस (आत्मा) का प्रभाव बना ही रहता है। यह चैतन्य अत्यन्त संकीर्ण होने के कारण जागृति और स्वप्न में ज्ञात नहीं होता है किन्तु विज्ञानरहित होने पर प्राण सुषुप्ति में भी ज्ञात हो जाता है ।।१-५।। इन्द्रिय आदि भी आत्मा नहीं है और न अहंकार ही आत्मा है क्योंकि वह जिस शरीर में रहता है उसके अनुसार आचरण करने लगता है। उपर्युक्त सभी वस्तुओं से भिन्न रहनेवाली आत्मा सभी के हृदय में स्थित रहा करती है। रात्रि में प्रकाशमान दीपक के समान वही सर्वद्रष्टा और सर्वभोक्ता होती है। मुनि को समाधि के आरम्भ-काल में इस प्रकार ध्यान करना चाहिए–ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि के जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से सूक्ष्म शरीर

---

१ ख. ग. अहमा°। २ ख. ग. प्रसु ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्नेरापो जलात्पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकम् । अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन्पञ्चीकृतान्यतः ।।९।।
स्थूलं शरीरं ध्यात्वाऽस्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् । पञ्चीकृतानि भूतानि तत्कार्यं च विराट् स्मृतम् ।।१०।।
एतत्स्थूलं शरीरं हि आत्मनोऽज्ञानकल्पितम् । इन्द्रियैरथ विज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ।।११।।
विश्वस्तदभिमानी स्यात्रमेतदकारकम् । अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्यं लिङ्गमुच्यते ।।१२।।
संयुक्तं सप्तदशभिर्हिरण्यगर्भसंज्ञितम् । शरीरमात्मनः सूक्ष्मं लिङ्गमित्यभिधीयते ।।१३।।
जाग्रत्संस्कारजः स्वप्नः प्रत्ययो विषयात्मकः । आत्मा तदुपमानी स्यात्तैजसो ह्यप्रपञ्चतः ।।१४।।
स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हि कारणम् । आत्मा [1]ज्ञानं च साभासं [2]तदध्याहृतमुच्यते ।।१५।।
न सन्नासन्न सदसदेतत्सावयवं न तत् । निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ।।१६।।
भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्वाच्यं बन्धसंसारकारकम् । एकं स ब्रह्मविज्ञानात्प्राप्तं नैव च कर्मभिः ।।१७।।
सर्वात्मना हीन्द्रियाणां संहारः कारणात्मनाम् । बुद्धेः स्थानं सुषुप्तं स्यात्तद्द्वयस्याभिमानवान् ।।१८।।
प्राज्ञ आत्मा त्रयं चैतन्मकारः प्रणवः स्मृतः । अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ।।१९।।
अहं साक्षी च चिन्मात्रो जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च । नाज्ञानं चैव तत्कार्यं संसारादिकबन्धनम् ।।२०।।
नित्यशुद्धबन्ध (बुद्ध) मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विमुक्त ओम् ।।२१।।

उत्पन्न हुआ है। अलग-अलग रहनेवाले पञ्चमहाभूतों से ही पञ्चभूतात्मक शरीर निर्मित हुआ है। इस प्रकार स्थूल शरीर का ध्यान करते हुए ब्रह्म में उसके लय का चिन्तन करना चाहिए। सम्मिलित रूप से पञ्चमहाभूतों को ही विराट् कार्य कहा गया है ।।६-१०।। यह स्थूल शरीर आत्मा के ज्ञान से निर्मित हुआ है। धीर लोग इसे इन्द्रियों के द्वारा विशेष रूप से जान लेते हैं। इन्द्रियों के द्वारा होनेवाले ज्ञान को ही जागरण कहा जाता है। विश्व और उसका अभिमानी देवता कारकरहित है। अपञ्चीकृत भूतों को ही लिङ्ग रूप कार्य कहा जाता है। वह सत्रह अवयवों से युक्त हिरण्यगर्भ संज्ञक सूक्ष्म शरीर और आत्मा का चिह्न कहा जाता है। स्वप्न जागरण के संस्कारों से ही उत्पन्न होता है जिसका ज्ञान विषयात्मक होता है। तेज से उत्पन्न होनेवाले अप्रपंच से ही उपमानी आत्मा उत्पन्न होती है। इसका कारण स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में से एक ही है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है किन्तु आभास से युक्त होकर उसे अध्याहृत कहा जाता है ।।११-१५।। यह आत्मा न तो अस्तित्व से और न अनस्तित्व से उत्पन्न हुआ है, न सावयव है और न निरवयव, न भिन्न है न अभिन्न, अपितु भिन्नाभिन्न, अनिर्वाच्य और इस संसार के बन्धनों को उत्पन्न करनेवाली है। वह एक ब्रह्मविज्ञान से प्राप्त होता है कर्मों से नहीं। आत्मा से कारणात्मक इन्द्रियों का संहार होता है और बुद्धि का स्थान सुषुप्ति ले लेती है। इन्द्रिय और बुद्धि दोनों आत्मा से सम्बद्ध हैं और इन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा-ये तीनों प्रणव के मकार के समान होते हैं। प्रणव में अकार, उकार एवं मकार तीन अक्षर रहते हैं। मैं चित्स्वरूप और जागृति एवं स्वप्नादि का साक्षी हूँ। मैं संसार इत्यादि बन्धनों का कारणभूत अज्ञानी नहीं हूँ ।।१६-२०।। मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द, ब्रह्म, परमज्योतिविमुक्त ओंकार हूँ। मैं

---

१ ख. ग. °नं रसा°। २ ख. ग. °दव्याकृत°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अहं ब्रह्म परं ज्ञानं समाधिर्बन्धघातकः। चिरमानन्दकं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।।२२।।
अयमात्मा परं ब्रह्म तद्ब्रह्म त्वममी (सी)ति च। गुरुणा बोधितो जीवो ह्यहं ब्रह्मास्मि वाह्यतः ।।२३।।
सो(योऽ)ऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम्। मुच्यतेऽसारसंसारादब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद्भवेत् ।।२४।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञाननिरूपणं नाम सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७७।।

अथाष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्यव[1](ब)नलोज्झितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ।।१।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरादिकार्यविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विराडात्मविवर्जितम् ।।२।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिराजाग्रत्स्थानविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विश्वभावविवर्जितम् ।।३।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिराकाराक्षरवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाक्पाण्यङ्घ्रिविवर्जितम् ।।४।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पायूपस्थविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्चक्षुरुज्झितम् ।।५।।

वह हूँ जो समाधि के बन्धनों का नाश करनेवाला, चिरकाल तक आनन्द देनेवाला सत्य और अनन्त है। मैं परब्रह्म आत्म-स्वरूप हूँ। गुरु के द्वारा इस प्रकार का ज्ञान कराये जाने पर कि 'तू ब्रह्म है' जीव यह समझने लगता है कि मैं ब्रह्म हूँ। मैं आदित्यस्वरूप और अखण्ड ओंकार हूँ। इस प्रकार विचार करते हुए ब्रह्मज्ञानी असार संसार से मुक्त होकर ब्रह्म हो जाता है ।।२१-२४।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मज्ञाननिरूपण नामक तीन सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७७।।

अध्याय ३७८

ब्रह्मज्ञान

अग्निदेव बोले–मैं परब्रह्म हूँ और अग्निरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और कार्यरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और विराट् आत्मा से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जाग्रत् स्थान से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी भावों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और आकार तथा अक्षर से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और मलमूत्र इन्द्रियों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और कान, त्वचा और चक्षु से रहित ज्योति हूँ ।।१-५।। मैं परब्रह्म और रसरूपरहित

---

१ क. ङ. °व्यनिललिप्सता। अ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अहं ब्रह्म परं ज्योती रसरूपविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वगन्धविवर्जितम् ।।६।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्पर्शशब्दविवर्जितम् ।।७।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मनोबुद्धिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिश्चित्ताहंकारवर्जितम् ।।८।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ।।९।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समानपरिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ।।१०।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शोकमोहविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः क्षुत्पिपासाविवर्जितम् ।।११।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शब्दोद्भूतादिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्हिरण्यगर्भवर्जितम् ।।१२।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्वप्नावस्थाविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तैजसादिविवर्जितम् ।।१३।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरपकारादिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सभाज्ञानविवर्जितम् ।।१४।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरध्याहृतविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सत्त्वादिगुणवर्जितम् ।।१५।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सदसद्भाववर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वावयववर्जितम् ।।१६।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्भेदाभेदविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सुषुप्तिस्थानवर्जितम् ।।१७।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राज्ञभावविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मकारादिविवर्जितम् ।।१८।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मानमेयविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मितिमातृविवर्जितम् ।।१९।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः साक्षित्वादिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः कार्यकारणवर्जितम् ।।२०।।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ।।२१।।

ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी प्रकार के गन्धों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जिह्वा तथा नासिका से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और स्पर्श और शब्द से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और मन तथा बुद्धि से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और चित्त तथा अहंकार से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और प्राण और अपान वायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और व्यान तथा उदान वायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और समान वायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जरा-मरणरहित ज्योति हूँ ।।६-१०।। मैं परब्रह्म और शोक तथा मोहरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और भूख-प्यास से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और शब्द तथा उत्पत्ति आदि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और हिरण्यगर्भ रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और स्वप्नावस्था रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और तेज आदि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और अपकारादि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभाज्ञान रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और अध्याहाररहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सत्त्वादिगुण रहित ज्योति हूँ ।।११-१५।। मैं परब्रह्म और सदसद्भावरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी अवयवों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और भेदाभेदरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सुषुप्ति स्थानरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और प्राज्ञभावरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और साक्षित्वादिरहित ज्योति हूँ। यह ब्रह्म शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से रहित तथा जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इत्यादि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नित्यशुद्धबुद्धमुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म सविज्ञानं विमुक्त ओम् ।।२२।।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समाधिर्मोक्षदः परः ।।२३।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञानकथनं नामाष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७८।।

अथैकोनाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच

यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पदम् । ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतौ लयम् ।।१।।
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः । प्रीतितापविषादादेर्विनिवृत्तिर्विरक्तता ।।२।।
संन्यासः कर्मणां त्यागः कृतानामकृतैः सह । अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन्निवर्तते ।।३।।
चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते । परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ।।४।।
[1]विष्णुनाम्ना च देवेषु वेदान्तेषु च गीयते । यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ।।५।।
निवृत्तैर्ज्ञानयोगेन [2]ज्ञानमूर्तिः स चेक्ष्यते । ह्रस्वदीर्घप्लुताद्यं तु वचस्तत्पुरुषोत्तमः ।।६।।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने । आगमोक्तं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ।।७।।

से युक्त तुरीया अवस्थात्मक है। यह ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द और अद्वितीय है। ॐ मैं ब्रह्म हूँ। ज्ञानयुक्त ब्रह्म और विमुक्त हूँ। मैं परब्रह्म हूँ तथा श्रेष्ठ मोक्ष को प्रदान करनेवाला हूँ ।।१६-२३।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मज्ञानकथन नामक तीन सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।३७८।।

अध्याय ३७९

ब्रह्मज्ञान

अग्निदेव बोले–यज्ञ के द्वारा देवताओं को और तपस्या के द्वारा विराट् पुरुष के पद को प्राप्त किया जाता है। कर्म संन्यास से ब्रह्म और वैराग्य से प्रकृति में लय प्राप्त होता है। ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है–ये पाँच गतियाँ कही गयी हैं। वैराग्य कहते हैं प्रीति, ताप और विषाद इत्यादि से निवृत्ति को। किये हुए अथवा न किये हुए कर्मों का त्याग ही संन्यास कहलाता है। इसमें अव्यक्त आदि में विकार हुआ करता है। चेतन और अचेतन ज्ञान के भेद को ज्ञान कहा जाता है। सबका आधार परमेश्वर परमात्मा ही है। देवताओं और उपनिषदों में विष्णु के नाम से उसी का गान किया जाता है। यज्ञेश्वर कहते हैं यज्ञ पुरुष को जिसका यजन यज्ञ के द्वारा किया जाता है। वही इस संसार से विरक्त रहनेवालों के द्वारा ज्ञान के कारण ज्ञानमूर्ति कहा जाता है। वही पुरुषोत्तम है और वाणी में रहनेवाला ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इत्यादि विकार वही है। हे महामुनि! उसी की प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म हेतु रूप कहे गये हैं। ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है–शास्त्रोक्त और विवेकजन्य ।।१-७।। शास्त्रोक्त

---

१ ख. ग. °नाम च। २ ख. ग. नगम्यः स इज्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्द (शब्दब्रह्म) परं च यत् ।।८।।
वेदादिविद्या ह्यपरमक्षरं ब्रह्म सत्परम्। तदेतद्भगवद्वाच्यमुपचारेऽर्चनेऽन्यतः ।।९।।
संभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः। नेता गमयिता स्रष्टा गकारोऽयं महामुने ।।१०।।
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ।।११।।
वसन्ति विष्णौ भूतानि स च धातुस्त्रिधात्मकः। एवं हरौ हि भगवाञ्शब्दोऽन्यत्रा (त्रो) पचारतः ।।१२।।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानाम (मा) गतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।।१३।।
ज्ञानशक्तिः परैश्वर्यं वीर्यं तेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ।।१४।।
खाण्डिक्य (क्यो) जनकायाऽऽह योऽयं केशिध्वजः पुरा। अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या आत्मस्वमिति ? या मतिः ।।१५।।
अविद्याभवसंभूतिर्बीजमेतद्द्विधा स्थितम्। पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमाश्रितः ।।१६।।
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम्। इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तेद्देहोत्पातितेषु च ।।१७।।
करोति पण्डितः साम्यमनात्मनि कलेवरे। सर्वदेहोपकाराय कुरुते कर्म मानवः ।।१८।।
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम्। निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ।।१९।।
दुःखज्ञानमयो धर्मः प्रकृतेः स तु नाऽऽत्मनः। जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात्तथापि हि ।।२०।।
[1]शब्दास्ते कादिका धर्मास्तत्कृत्वा वै महामुने। तथाऽऽत्मा प्रकृतौ सङ्गादहंमानादिभूषितः ।।२१।।

ज्ञान शब्द ब्रह्म और विवेकजन्य ज्ञान परब्रह्म है। ब्रह्म दो प्रकार का जानना चाहिए शब्दब्रह्म और परब्रह्म। वेदादि विद्याएँ शब्दब्रह्म कहलाती हैं वही भगवान् की वाणी है जो उपचार और अर्चन से भिन्न है। भगवत् शब्द से जो भकार है उसके दो अर्थ हैं–पोषण करनेवाला और सबका आधार तथा गकार का अर्थ है–नेता (कर्मफल की प्राप्ति करानेवाला), गमयिता (प्रेरक), ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छह की भग संज्ञा है। विष्णु में सभी भूत प्राणियों का निवास रहता है। वह तीन प्रकार की धातुओं से बनता है। इसी प्रकार विष्णु के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया जाता है किन्तु अन्यत्र उपचार से जाना जाता है ।।८–१२।। भगवान् उसे कहते हैं जो प्राणियों की उत्पत्ति, लय, अगति, गति, विद्या और अविद्या को जानता है। ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज तथा सभी अत्याज्य गुण भगवान् शब्द से सूचित किये जाते हैं। खाण्डिक्य केशिध्वज ने जनक से जिस योग को बताया था वह इस प्रकार है–अनात्मा में आत्मा अथवा अनात्मा को आत्मा समझने की बुद्धि अविद्या से होती है। इसके बीज दो प्रकार पंचभूतात्मक शरीर में मोहान्धकार से युक्त आत्मा रहा करती है जो 'अहम्' इस प्रकार की कुमति से युक्त रहती है। इसी प्रकार पुत्र–पौत्र और उनसे उत्पन्न होनेवालों के प्रति भी ऐसी ही बुद्धि बन जाती है। विद्वान् व्यक्ति अनात्मभूत शरीर मे समभाव रखता है। जिससे मनुष्य सभी के शरीर के उपकारार्थ कर्म किया करता है ।।१३–१८।। जब पुरुष शरीर से भिन्न है तो वह सारा कर्म केवल बन्धन का ही कारण होता है। किन्तु ज्ञानमय और निर्मल आत्मा मुक्त रहा करती है। दुःख और ज्ञानमय धर्म प्रकृति का है आत्मा का नहीं। जैसे जल का अग्नि के साथ संग नहीं होता है किन्तु पतीली इत्यादि के द्वारा दोनों का साथ हो जाता है। तथा खलखलाहट आदि की अव्यक्त ध्वनि भी होने लगती है महामुनि! उसी प्रकार यह आत्मा प्रकृति के संसर्ग

---

१ क. ख. ग. ङ. शब्दोद्रेका'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भजते प्राकृतान्धर्मानन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः। बन्धाय विषयासङ्गं मनो निर्विषयं धिये ।।२२।।
विषयात्तत्समाकृष्य ब्रह्मभूतं हरिं स्मरेत्। आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुने ।।२३।।
विचार्य स्वात्मनः शक्त्या लौहमाकर्षको यथा। आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ।।२४।।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते। विनिष्पन्दः समाधिस्थः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।२५।।
यमैः सनियमैः स्थित्वा प्रत्याहृत्या [1]मरुज्जवैः। प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहारेण चेन्द्रियैः ।।२६।।
वशीकृतैस्ततः कुर्यात्स्थितं चेतः शुभाश्रये। आश्रयश्चेतसो ब्रह्म मूर्तं चामूर्तकं द्विधा ।।२७।।
सनन्दनादयो ब्रह्मभावभावनया युताः। कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावरान्तकाः ।।२८।।
हिरण्यगर्भादिषु च ज्ञानकर्मात्मिका द्विधा। त्रिविधा भावना प्रोक्ता विश्वं ब्रह्म उपास्यते ।।२९।।
प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ।।३०।।
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजमक्षरम्। अशक्यं प्रथमं ध्यातुमतो [2]मूर्तादि चिन्तयेत् ।।३१।।
मद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना। भवत्यभेदो भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ।३२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञाननिरूपणं नामैकोनाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३७९।।

से अहम् और मानादि से युक्त हो जाती है। प्राकृत धर्मों का सेवन करनेवाला अव्यय कहलाता है। विषयासक्त मन बन्धन के लिए और विषयरहित मन ज्ञान के लिए होता है। इसलिए उस मन को विषय से हटाकर ब्रह्मरूप विष्णु का स्मरण करना चाहिए। अये मुने! इस प्रकार आत्मा को ब्रह्म में लगा देना चाहिए। जिस प्रकार चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है उसी प्रकार ब्रह्म अपनी शक्ति से अपने स्वरूप में मिला लेता है। आत्मप्रयत्नसापेक्ष जो मन की विशिष्ट गति होती है ।।१९-२४।। उसका ब्रह्म से संयोग होने से योग कहा जाता है। निष्पन्दरहित समाधिस्थ साधक परब्रह्म को प्राप्त करता है। यम-नियमों से युक्त होकर और प्राणायाम से वायु और प्रत्याहार से इन्द्रियों को वश में करके चित्त को शुभ आश्रय में लगा देना चाहिए। चित्त का आश्रय ब्रह्म दो प्रकार का होता है-निराकार और साकार। सनन्दन इत्यादि ब्रह्मभाव की भावना से युक्त रहते हैं किन्तु देवताओं से लेकर स्थावरपर्यन्त अन्य प्राणी कर्म भावना से युक्त रहते हैं। हिरण्यगर्भ आदि में ज्ञान और कर्मात्मक दो प्रकार की भावना होती है। कहीं-कहीं यह भावना तीन प्रकार की भी कही जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है इस भाव से उपासना की जाती है ।।२५-२९।। ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं जिसमें भेद नष्ट हो जाता है जो सत्तामात्र होता है और जो वाणी के द्वारा आत्मसंवेद्य रहा करता है। यह निराकार विष्णु का परमरूप है जो अज और अक्षर होता है। इस प्रथम निराकार विष्णु की उपासना अशक्य होने से उसके मूर्त रूप का चिन्तन करना चाहिए। तदनन्तर परमात्मा के साथ एकाकार होकर उसका अज्ञानजन्य भेद अभेद में परिवर्तित हो जाता है ।।३०-३२।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मज्ञाननिरूपण नामक तीन सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।३७९।।

---

१ ख. श. °ज्जयैः। प्रा°। २ ख. ग. मूर्तानि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अद्वैतब्रह्मविज्ञानम्

अग्निरुवाच

अद्वैतब्रह्मविज्ञानं [1]वक्ष्ये यद्भवतोऽगदत् । शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत् ।।१।।
मृगसङ्गान्मृगोभूत्वा ह्यन्तकाले स्मरन्मृगम् । जातिस्मरो [2]मृगं त्यक्त्वा देहं योगात्स्वतोऽभवत् ।।२।।
अद्वैतब्रह्मभूतश्च जडवल्लोकमाचरत् । क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोगममन्यत ।।३।।
उवाह शिविकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः । गृहीतो विष्टिना ज्ञानी उवाहाऽऽत्मक्षयाय तम् ।।४।।
ययौ [3]जडगतिः पश्चाद्ये त्वन्ये त्वरितं ययुः । शीघ्राञ्शीघ्रगतीन्दृष्ट्वा अशीघ्रं तं नृपोऽब्रवीत् ।।५।।

राजोवाच

किंश्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिविका मम । किमायाससहो न त्वं पीवा[4] नासि निरीक्ष्यसे ।।६।।

अध्याय ३८०

अद्वैतब्रह्म-विज्ञान

अग्निदेव बोले–अब मैं उस 'अद्वैत ब्रह्मविज्ञान' का वर्णन करूँगा, जिसे भरत ने (सौवीरराज को) बतलाया था। प्राचीन काल की बात है, राजा भरत शालग्राम क्षेत्र में रहकर भगवान् वासुदेव की पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृग के प्रति आसक्ति हो गयी थी इसलिए अन्तकाल में उसी का स्मरण करते हुए प्राण त्यागने के कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनि में भी वे 'जातिस्मर' हुए–उन्हें पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रहा। अतः उस मृग शरीर का परित्याग करके वे स्वयं ही योगबल से एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्म का पूर्ण बोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे। तो भी लोक में जड़वत् व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट-पुष्ट देखकर सौवीर नरेश के सेवक ने बेगार में लगाने के योग्य समझा। सेवक के कहने से वे सौवीरराज की पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगार में पकड़ जाने पर अपने प्रारब्ध भोग का क्षय करने के लिए राजा का भार वहन करने लगे, परन्तु उनकी गति मन्द थी। वे पालकी में पीछे की ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे थे। राजा ने देखा, अन्य कहार शीघ्रगामी हैं तथा तीव्र गति से चल रहे हैं। यह जो नया आया है बहुत मन्द है। तब वे बोले ।।१-५।।

राजा बोले–अरे, क्या थक गये ? अभी तो थोड़ी दूर ही तक मेरी पालकी को ले चले हो। क्या तुम इतने भी परिश्रम को सहन नहीं कर सकते हो ? क्या तुम मोटे नहीं दिखायी दे रहे हो ।।६।।

---

१ क. ङ. बदे यद्भावतोऽगमत्। २ छ. मृगस्त्यक्त्वा। ३ क. ङ. छ. जलगतिः। ४ ख. ग. छ. °वानसि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मण उवाच

नाहं पीवा न वै वोढा शिविका भवतो मया । न श्रान्तोऽस्मि न वाऽऽयासो वोढव्योऽसि महीपते ।।७।।
भूमौ पादयुगं तस्थौ जङ्घे पादद्वये स्थिते । ऊरू जङ्घाद्वयावस्थौ[1] तदाधारं तथोदरम् ।।८।।
वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ । स्कन्धस्थितेयं शिविका मम [2]भारोऽत्र[3] किंकृतः ।।९।।
शिविकायां स्थितं चेदं देहं त्वदुपलक्षितम् । तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ।।१०।।
अहं त्वं च तथाऽन्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव । गुणप्रवाहपतितो गुणवर्गो हि यात्ययम् ।।११।।
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते । अविद्यासंचितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ।।१२।।
[4]आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ।।१३।।
यदा नोपचयस्तस्य यदा नापचयो नृप । तदा पीवा न(ना)सीति[5] त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम् ।।१४।।
भूजङ्घापादकट्यूरुजठरादिषु संस्थिता । शिविकेयं तथा स्कन्धे तदा भारः[6] समस्त्वया ।।१५।।
तदन्यजन्तुभिर्भूपशिविकोत्थानकर्मणा । शैलद्रव्यगृहीतोत्थः पृथिवीसंभवोऽपि वा ।।१६।।
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप । सोढव्यः स महाभारः कतरो नृपते मया ।।१७।।
यद्द्रव्या शिविका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः । भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ।।१८।।

ब्राह्मण बोला–हे राजन्! न तो मैं मोटा हूँ, न मैं तुम्हारी पालकी को वहन कर रहा हूँ, न मैं थका हुआ हूँ और न तो तुम्हारा वहन किया जा रहा है। मेरे दोनों पैर पृथ्वी पर स्थित हैं। मेरी दोनों जङ्घाएँ मेरे दोनों पैरों पर स्थित हैं, ऊरुद्वय जङ्घाओं पर आधारित हैं और उनका आधार उदर है। वक्षःस्थल, दोनों भुजाएँ और दोनों कन्धे उदर पर स्थित हैं। यह पालकी तो मेरे कन्धों पर स्थित है इससे मेरे ऊपर क्या भार पड़ा है। इस पालकी पर सवार तुम्हारा शरीर ही तुम हो। जैसे तुम्हारे शरीर को तुम कहा जाता है वैसे ही यहाँ मेरे शरीर को मैं। अये राजन्! मैं, तुम तथा अन्य सभी इन्हीं पञ्चभूतों से ढोये जा रहे हैं। गुणों के प्रवाह में बहकर गुणवर्ग इसी प्रकार से चलता रहता है। अये राजन्! सत्त्व आदि ये सभी गुण कर्मों के अधीन हैं। सभी जीवों में जो यह कर्म है वह अविद्या के द्वारा संचित है ।।७-१२।। यह आत्मा शुद्ध, अमर, शान्त, निर्गुण और प्रकृति के परे रहनेवाली है। सभी जन्तुओं में इस एकात्मा की न तो वृद्धि होती है और न उसका नाश ही। हे राजन्! यदि आत्मा की वृद्धि नहीं होती है तो उसकी क्षति भी नहीं हो सकती है। फिर क्या तुम स्थूल नहीं हो, इस प्रकार तुमने किस युक्ति से कहा है। जिस प्रकार पृथ्वी, जंघा, कटि, उदर आदि के ऊपर यह पालकी रखी हुई है उसी प्रकार कन्धे के ऊपर भी उसका भार तुम्हारे समान ही है। अये राजन्! इस सम्बन्ध में अन्य जन्तु अधिक श्रेष्ठ नहीं हैं। पालकी के अतिरिक्त वृक्षों, पर्वतों, द्रव्यों तथा पृथ्वी पर रहनेवाले अस्तित्व को रात-दिन सभी जन्तु वहन किया करते हैं। हे राजन्! क्योंकि यह पुरुष (आत्मा) प्राकृत कारणों से भिन्न है इसलिए मेरे द्वारा कोई भार कैसे वहन किया जा सकता है। यह पालकी उसी भूत समुदाय से बनी हुई है जिससे अन्य द्रव्य बने हुए हैं और जिन्हें हम अज्ञान अथवा अहंकार के कारण अपने रूप में समझने

---

१ क. ङ. °यावास्था त°। २ छ. भावोऽत्र। ३ क. ङ. °रो न कि°। ४ 'आत्मा…जन्तुषु' च पुस्तके नास्ति। ५ ख. ग. °सीतीत्थं क°। ६ क. ङ. छ. भावः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तच्छ्रुत्वोवाच[1] राजा तं गृहीत्वाऽङ्घ्री क्षमाप्य च । प्रसादं कुरु त्यक्त्वेमां शिविकां ब्रूहि शृण्वते ।।
यो भवान्यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ।।१९।।

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां योऽहमित्येतद्वक्तुं नैव च शक्यते । उपभोगनिमित्तं च सर्वत्राऽऽगमनक्रिया ।।२०।।
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ [2]देश (शा) द्युपपादकौ । धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देशादिमृच्छति ।।२१।।

राजोवाच

योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते । आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ।।२२।।

ब्राह्मण उवाच

[3]शब्दोऽहमिति दोषाय नाऽऽत्मन्येष तथैव तत् । अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ।।२३।।
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः । तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः ।।२४।।
त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरः सराः । अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ।।२५।।
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता । का वृक्षसंज्ञा जाताऽस्य दारुसंज्ञाऽथ वा नृप ।।२६।।
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति चेतनः । न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम् ।।२७।।

लगते हैं। यह सुनकर राजा ने उसके चरणों को पकड़कर उससे क्षमा याचना करते हुए कहा–कृपा करके इस पालकी को छोड़कर यह बताइये कि आप कौन हैं ? और आपका यहाँ पर आगमन कैसे हुआ ।।१३-१९।।

ब्राह्मण बोला–हे राजन्! मेरी बात सुनिये, मैं क्या हूँ यह मैं बतला ही नहीं सकता हूँ। मैं यहाँ सर्वत्र इसलिए घूम रहा हूँ जिससे मैं अपने कर्मों का भोग कर सकूँ। यहाँ पर जिस सुख और दुःख का उपभोग किया जाता है वे धर्म और अधर्म से उत्पन्न होते हैं और उनका उपभोग करने के लिए प्राणियों को देश-देशान्तरों में भटकना पड़ता है ।।२०-२१।।

राजा बोले–अये ब्राह्मण! तुम क्यों नहीं कह सकते हो कि जो कुछ सत् है मैं वही हूँ। हे द्विज! आत्मा में 'मैं' शब्द का प्रयोग दूषित नहीं कहा जाता है ।।२२।।

ब्राह्मण बोला–आत्मा में 'मैं' शब्द का प्रयोग यद्यपि दूषित नहीं है तथापि अनात्मा में आत्मज्ञान भ्रान्ति का लक्षण है। जब शरीरों में एक ही पुरुष (आत्मा) निवास करता है तो 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ'–इस प्रकार का कथन ही व्यर्थ है। हे राजन्! आप राजा हैं, यह पालकी है, हम लोग वाहक हैं और यह सब लोक आपका है–यह कथन असत्य है। वृक्ष से लकड़ी ली गयी है जिसकी यह पालकी बनी हुई है, जिसके ऊपर आप बैठे हुए हैं किन्तु हे राजन्! तुम्हें इस पालकी पर बैठा हुआ देखकर कोई भी मनुष्य यह नहीं कहता है कि महाराज वृक्ष के ऊपर बैठे हुए हैं। इसी प्रकार आपको किसी लकड़ी पर बैठा हुआ देखकर कोई यह नहीं कहेगा कि आप पालकी पर बैठे हुए हैं ।।२३-२७।। लकड़ी

---

१ ख. ग. °च यानं तु हित्वा शीघ्रं क्ष°। २ ग. देशाद्युपकारकौ। ३ ख. ग. °ब्दोऽयमि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिविका दारुसंघातो रचनास्थितिसंस्थितः । अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिविका त्वया ।।२८।।
पुमान्स्त्री गौरयं वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः । देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ।।२९।।
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुकं नृप । एतेनाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ।।३०।।
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् । तथाऽपि वाङ्नाहमेतदुक्तं मिथ्या न युज्यते ।।३१।।
पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाय्वादिलक्षणः । ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ।।३२।।
यदन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम । तदेषोऽहमयं चान्यो वाक्तुमेवमपीष्यते[1] ।।३३।।
परमार्थभेदो न नगो न पशुर्न च पादपः । शरीराच्च विभेदाश्च या एते कर्मयोनयः ।।३४।।
यस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभरात्मकम् । तच्चान्यच्च [2]नृपेत्थं तु न सत्सम्यगनामयम् ।।३५।।
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः । पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वां भूप वदाम्यहम् ।।३६।।
त्वं किमेतच्छिरः किं तु शिरस्तव तथोदरम् । किमु पादादिकं त्वं वै तवैतत्किं महीपते ।।३७।।
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः । कोऽहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिन्तय पार्थिव ।।
तच्छ्रुत्वोवाच राजा तमवधूतं द्विजं हरिम् ।।३८।।

राजोवाच

श्रेयोऽर्थमुद्यतः प्रष्टुं कपिलर्षिमहं द्विज । तस्यांशः कपिलर्षेस्त्वं मत्कृतेदा (ज्ञा) नदो भुवि ।।३९।।
ज्ञानवीच्युदधेर्यस्माद्यच्छ्रेयस्तच्च मे वद ।।४०।।

के समूह को पालकी तभी कहा जाता है जबकि वह एक विशेष प्रकार की रचना में परिणत हो जाती है। हे राजन्! तभी आप लकड़ी और पालकी का भेद कर पाते हैं। यह पुरुष है, यह स्त्री है, यह गाय है, यह घोड़ा है, यह पक्षी है, यह वृक्ष है सभी शरीरधारियों के ये नाम कर्म के हेतु हुआ करते हैं। हे राजन्! दाँत और तालु की सहायता से जिह्वा 'मैं' शब्द का उच्चारण करती है किन्तु 'मैं' शब्द उन अवयवों का नहीं हो सकता है क्योंकि वे वाणी को उत्पन्न करने के हेतु ही हैं। वाणी ही किसलिए अपने 'मैं' शब्द का प्रयोग करती है तथापि मैं वाणी नहीं हूँ यह कथन भी असत्य होने से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है ।।२८-३१।। हे राजन्! जब सिर और पायु इत्यादि रूप यह पिण्ड आत्मा से अलग है तो मैं उसके लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग कैसे कर सकता हूँ। हे राजन्! मुझसे जो कुछ भिन्न हैं वही यह मैं हूँ, यह भी कहा जा सकता है। यह पर्वत है, यह पशु है, यह वृक्ष है इस प्रकार का भेद पारमार्थिक भेद नहीं होता है। ये भेद शरीरगत ही हैं जो कि कर्मों का जन्म-स्थान कहा गया है। इस लोक में जो राजा है अथवा जो राजा का योद्धा है-ये सब भेद समीचीन नहीं हैं। आप सारी प्रजा के राजा हैं, अपने पिता के पुत्र हैं इसलिए हे राजन्! आपको क्या कहूँ। तुम सिर हो क्या ? ये सिर और उदर तुम्हारे ही नहीं हैं ? क्या आप पाद इत्यादि हैं ? क्या ये सब आपके नहीं हैं ? आप समस्त अवयवों से भिन्न रहा करते हैं। हे राजन्! मैं क्या कहूँ, इस विषय में बड़ी चतुरता से विचार करो। यह सुनकर राजा ने उस अवधूत रूप विष्णु से कहा ।।३२-३८।।

राजा बोले-अये ब्राह्मण! अपने कल्याण के लिए मैंने ऋषि कपिल से भी यही पूछना चाहा था, आप उन्हीं कपिल ऋषि के अंश हैं और इस पृथ्वी पर मुझे ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। ज्ञान रूपी तरंगों से तरङ्गित सागर में जो भी मेरे लिये कल्याणकारी हो मुझसे बताइये ।।३९-४०।।

---

१ ख. ग. °ते। पुमान्न देवो न च गौर्न प°। २ ख. °पेष्टं तु न सत्संकल्पमानयम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मण उवाच

भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं न पृच्छसि। श्रेयांसि परमार्थानि अशेषाण्येव भूपते ।।४१।।
देवताराधनं कृत्वा धनसम्पत्तिमिच्छति। पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव किं नृप ।।४२।।
विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः। यज्ञादिका क्रिया न स्यान्नास्ति द्रव्योपपत्तिता[1] ।।४३।।
परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते। एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।।४४।।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः। परं (र) ज्ञानमयोऽसङ्गी गुणजात्यादिभिर्विभुः ।।४५।।
[2]निदाघऋतुसंवादं वदामि द्विज तं शृणु। [3]ऋतुर्ब्रह्मसुतो ज्ञानी तच्छिष्योऽभूत्पुलस्त्यजः ।।४६।।
निदाघः प्राप्तविद्योऽस्मान्नगरे वै पुरे स्थितः। देविकायास्तटे तं च तर्कयामास वै ऋतुः ।।४७।।
दिव्ये वर्षसहस्रेऽगान्निदाघमवलोकितुम्। निदाघो वैश्वदेवान्ते भुक्त्वाऽन्नं शिष्यमब्रवीत् ।।
भुक्त्यन्ते तृप्तिरुत्पन्ना[4] तुष्टिदा साऽक्षया यतः ।।४८।।

ऋतुरुवाच

क्षुदस्ति यस्य भुक्तेऽन्ने तुष्टिर्ब्राह्मण जायते। न मे क्षुदभवत्तृप्तिं कस्मात्त्वं परिपृच्छसि ।।४९।।
क्षुक्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज[5]। पृष्टोऽहं तत्त्वया ब्रूयां तृप्तिरस्त्येव मे सदा ।।५०।।
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं ततः[6]। अतोऽहं प्रत्यगात्माऽस्मीत्येतदर्थे भवेत्कथम् ।।५१।।

ब्राह्मण बोला–तुम बार-बार कल्याण की बात पूछते हो, परमार्थ के विषय में नहीं पूछते हो। हे राजन्! सभी कल्याण मोक्ष ही हैं। देवताओं का पूजन करके मनुष्य धन और सम्पत्ति की इच्छा करता है, पुत्रों की इच्छा करता है और राज्य की इच्छा करता है। हे राजन्! क्या उसी को कल्याण कहते हैं। विवेकियों के लिए परमात्मा के साथ संयोग ही कल्याणकारी होता है, यज्ञ इत्यादि कर्म और द्रव्य इत्यादि की प्राप्ति नहीं। परमात्मा और आत्मा का संयोग ही परमार्थ कहलाता है। जो एक सर्वव्यापी, सब में समान, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे रहा करता है। आत्मा, जन्म और वृद्धि आदि से रहित, सर्वगत और अवयव होती है। वह सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानमय, अनासक्त, गुण और जाति आदि से रहित विभु है ।।४१-४५।। हे द्विज! अब मैं तुमसे निदाघ और ऋतु के संवाद को कहता हूँ, उसे सुनो! ऋतु ब्रह्मपुत्र और ज्ञानी था। उसका एक शिष्य था–पौलस्त्य। निदाघ बड़ा विद्वान् था। ऋतु ने देविका-तट पर उससे विवाद प्रारम्भ किया। वह दिव्य हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद निदाघ से मिलने के लिए गया। निदाघ ने वैश्वदेव बलि देकर अन्न खाकर शिष्य से कहा–भोग के बाद तृप्ति उत्पन्न हुई है जो सन्तोषजनक और अविनाशिनी है ।।४६-४८।।

ऋतु बोला–हे ब्राह्मण! जो भूखा होता है वह भोजन करने से संतुष्ट होता है। जब मैं भूखा ही नहीं था तो तुम मेरी तुष्टि के सम्बन्ध में क्या पूछते हो। हे ब्राह्मण! भूख और प्यास नामक जो शारीरिक धर्म है वह मुझमें है ही नहीं इसलिए तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मैं निरन्तर सन्तुष्ट ही रहता हूँ। यह पुरुष (आत्मा) सर्वगत और आकाशवत् व्यापी हुआ करता है। इसलिए मैं प्रत्यगात्मा हूँ यह कैसे हो सकता है। वह मैं न जानेवाला हूँ, न आनेवाला

---

१ क. ख. ग. ङ. °पपादिता। २ क. ख. ग. ङ. °ऋभुसंवादमद्वैतबुद्धये शृ°। ३ ख. ग. झभुर्ब्र°। ४ ख. ग. तुष्टिं गन्ता क्व वासकः। ऋभुरु°। ५ ख. ग. °ज। ततः क्षुत्संभवा तावत्तृप्ति°। ६ ख. ग. °तः। कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्ये°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सोऽहं गन्ता न चाऽऽगन्ता नैकदेशनिकेतनः । त्वंचान्योन भवेन्ना(र्ना)पि नान्यस्तत्तोऽस्मि वाऽप्यहम् ।।५२।।
मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरी भवेत् । पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ।।५३।।
ऋतुरस्मि तवाऽऽचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज । इहाऽऽगतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ।।५४।।
एकमेवमिदं विद्धि न भेदः सकलं जगत् । वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ।।५५।।
ऋतुर्वर्षसहस्रान्ते पुनस्तन्नगरं ययौ । निदाघं नगरप्रान्त एकान्ते स्थितमब्रवीत् ।।
एकान्ते स्थीयते कस्मान्निदाघ ऋतुमब्रवीत् ।।५६।।

निदाघ उवाच

भो विप्र जनसंवादो महानेष नरेश्वरः । [1]प्रविवीक्ष्य पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ।।५७।।

ऋतुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः । कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो द्विजोत्तम ।।५८।।

निदाघ उवाच

[2]योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुत्थितम् । अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिवारस्तथेतरः ।।५९।।
गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्येष स भूपतिः । ऋतुराह गजः कोऽत्र राजा चाऽऽह निदाघकः ।।६०।।
ऋतुर्निदाघ आरूढो दृष्टान्तं पश्य वाहनम् । उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ।।६१।।

हूँ और न एक स्थान में रहनेवाला हूँ। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और न मैं तुमसे भिन्न हूँ। जिस प्रकार मिट्टी का बना हुआ घर मिट्टी के लेप से स्थिर होता है उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओं से स्थिर होता है ।।४९-५३।। हे ब्राह्मण! मैं ऋतु हूँ, तुम्हारा आचार्य तुमको बुद्धि देनेवाला है। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ और जब तुम्हें ज्ञान हो जायगा तब मैं चला जाऊँगा। इस सारे जगत् को एक ही समझो, इसमें कोई भेद नहीं हैं क्योंकि यह जगत् वासुदेव नामक परमात्मा का स्वरूप है। एक हजार वर्ष बीत जाने पर ऋतु उस नगर में गया और नगर के एक प्रदेश में रहनेवाले से बोला–निदाघ ने ऋतु से कहा ।।५४-५६।।

निदाघ बोला–हे ब्राह्मण! जनता में यह बात फैल गयी है कि महाराज नगर में आकर उसका निरीक्षण करेंगे। इसीलिए मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ ।।५७।।

ऋतु बोला–यहाँ कौन राजा है और कौन प्रजा है। हे द्विजोत्तम! तुम्हीं मुझे यह बताओ क्योंकि तुम ज्ञानी हो ।।५८।।

निदाघ बोला–जो व्यक्ति इस उत्तम तथा पर्वत की चोटी के समान ऊँचे गजराज के ऊपर बैठा हुआ है वही राजा है और जो लोग इसके चारों ओर हैं वे ही उसकी प्रजा है। यह जो नीचे है वही हाथी है और जो इसके ऊपर है वही राजा है। निदाघ ने उत्तर दिया–हे ऋतु! तुम नीचे बैठो और मैं तुम्हारे ऊपर सवार हो जाऊँ तो

---

१ ख. प्रविविक्षुः। २ 'योऽयं…समुत्थितम्' नास्ति क. ख. ङ. पुस्तकेषु।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋतुः प्राह निदाघं तं कतमस्त्वामहं वदे। उक्तो निदाघस्तं नत्वा प्राह मे त्वं गुरुर्ध्रुवम् ।।६२।।
नान्यस्माद्द्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा। ऋतुः प्राह निदाघं तं ब्रह्मज्ञानाय चाऽऽगतः ।।६३।।
परमार्थं सारभूतमद्वैतं दर्शितं मया ।।६४।।

ब्राह्मण उवाच

निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत्। सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदाऽऽत्मनि ।।६५।।
अवाप मुक्तिं ज्ञानात्स तथा त्वं मुक्तिमाप्स्यसि। एकः समस्तं त्वं चाहं विष्णुः सर्वगतो[1] यतः ।।६६।।
पीतनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः। भ्रान्तिदृष्टिभिरात्माऽपि तथैकः स पृथक्पृथक् ।।६७।।

अग्निरुवाच

मुक्तिं ह्यवाप भवतो [2]ज्ञानसारेण भूपतिः। संसाराज्ञानवृक्षारि ज्ञानं ब्रह्मेति चिन्तय ।।६८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽद्वैतब्रह्मविज्ञाननिरूपणं नामाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३८०।।

ऊपर रहनेवाला मैं राजा और नीचे रहनेवाले तुम हाथी बन जाओगे। ऋतु ने निदाघ से कहा मैं तुमसे क्या कह रहा हूँ। इस प्रकार कहने पर निदाघ ने प्रणाम करके ऋतु से कहा कि तुम निश्चय ही मेरे गुरु हो क्योंकि तुमने मुझको अद्वैत ज्ञान से संस्कृत कर दिया है। ऋतु ने निदाघ से कहा मैं ब्रह्मज्ञान देने के लिए ही यहाँ आया था इसलिए मैंने सारभूत, परमार्थभूत अद्वैत का उपदेश दिया है ।।५९-६४।।

ब्राह्मण बोला–उस उपदेश से ब्राह्मण भी अद्वैतमय हो गया। उस समय से वह अपने में बिना किसी भेद के सभी प्राणियों को देखने लगा। उसने ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लिया उसी प्रकार तुम भी मोक्ष प्राप्त कर लोगे। एक ही विष्णु मुझमें, तुममें और सबमें विद्यमान है। जिस प्रकार एक ही आकाश पीले और नीले आदि भेदों में दिखायी पड़ता है उसी प्रकार जिनकी दृष्टि भ्रम से युक्त है उन्हें एक ही आत्मा अलग-अलग दिखायी पड़ती है ।।६५-६७।।

अग्निदेव बोले–राजा ने आपके द्वारा ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लिया था। ब्रह्म का चिन्तन करो क्योंकि उसका ज्ञान संसार के अज्ञान रूपी वृक्ष को नष्ट करनेवाली अग्नि है ।।६८।।

श्री अग्निमहापुराण में ब्रह्मविज्ञान-निरूपण नामक तीन सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।।३८०।।

---

१ क. ख. ग. ङ. °र्वनिदाघक। पी°। २ क. ख. ग. ज्ञानात्सौवीर भू°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गीतासारः

अग्निरुवाच

गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमम् । [1]कृष्णो यमर्जुनायाऽऽह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदम् ।।१।।

भगवानुवाच

गतासुरगतासुर्वा न शोच्यो देहवानजः । आत्माऽजरोऽमरोऽभेद्यस्तस्माच्छोकादिकं त्यजेत् ।।२।।
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात्कामस्ततः क्रोधः क्रोधात्संमोह एव च ।।३।।
संमोहात्स्मृतिवभ्रंशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति । दुःसङ्गहानिः सत्संगान्मोक्षकामी च कामनुत् ।।४।।
कामत्यागादात्मनिष्ठः स्थिरप्रज्ञस्तदोच्यते । या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।।५।।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः । आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।६।।
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन । तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।।७।।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यति ।।८।।

अध्याय ३८१

गीतासार

अग्निदेव बोले–(अब मैं) गीतासार बतलाऊँगा जो सभी गीताओं में उत्तमोत्तम है और जिसे प्राचीनकाल में कृष्ण ने अर्जुन से कहा था। वह (गीतासार) भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है ।।१।।

श्री भगवान् बोले–शरीरधारियों के मरने-जीने का शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, अजर, अमर और भेदरहित है। इसलिए शोक इत्यादि का परित्याग कर देना चाहिए। जब मनुष्य विषयों का चिन्तन करता रहता है तो उसकी विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति से कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, कामनाओं से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से सम्मोह उत्पन्न होता है, सम्मोह से स्मृति नष्ट होती है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है। सत्सङ्ग से दुःसङ्गति दूर होती है और मोक्ष की इच्छा करनेवाला कामनाओं का त्याग कर देता है। कामनाओं के परित्याग से आत्मनिष्ठा उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य स्थिरप्रज्ञ कहलाता है। जो सभी प्राणियों की रात्रि है उसमें संयमी जागता है और जिसमें सभी प्राणी जागते हैं वह ज्ञानी मनुष्य के लिए रात्रि होती है, जो व्यक्ति अपने-आप में ही सन्तुष्ट रहता है उसका किसी से भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है ।।२-६।। न तो उसे होनेवाले कार्य से कुछ प्रयोजन रहता है और न तो न होनेवाले कार्य से ही कुछ प्रयोजन रहता है। हे वीर! वह गुण और कर्मों के विभाग को भलीभाँति समझता है। सभी गुण गुणों में ही रहा करते हैं–ऐसा समझकर वह उनमें आसक्त नहीं होता है। वह ज्ञान रूपी नौका के द्वारा सभी इच्छाओं को पार कर लेता है। अये अर्जुन!

---

१ छ. °ष्णोऽर्जुनाय यमाह।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।।९।।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा । [1]सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।।१०।।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।११।।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति । दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।।१२।।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१३।।
चतुर्विधा भजन्ते मां ज्ञानी चैकत्वमास्थितः । अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।।१४।।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः । अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।।१५।।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर । अन्तकाले स्मरन्मां च मद्भावं यात्यसंशयः[2] ।।१६।।
यं यं भावं स्मरन्नन्ते त्यजेद्देहं तमाप्नुयात् । प्राणं न्यस्य भ्रुवोर्मध्ये अन्ते प्राप्नोति मत्परम् ।।१७।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन्देहं त्यजंस्तथा । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः [3]सर्वा मम विभूतयः ।।१८।।
श्रीमन्तश्चोर्जिताः सर्वे ममांशाः प्राणिनः स्मृताः । अहमेको विश्वरूप इति ज्ञात्वा विमुच्यते ।।१९।।
क्षेत्रं शरीरं यो वेत्ति क्षेत्रज्ञः स प्रकीर्तितः । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।२०।।
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।२१।।

जो व्यक्ति आसक्तिरहित होकर सभी कर्मों को ब्रह्मार्पण करके करता है उसकी ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है। वह पापकर्मों से उसी प्रकार अछूता रहता है जिस प्रकार जल में रहनेवाला कमलपत्र जल से अछूता रहता है। समदर्शी योगी सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को और अपने-आप में सभी प्राणियों का दर्शन करता है। योगभ्रष्ट व्यक्ति पवित्रों और धनवानों के घर में जन्म ग्रहण करता है ।।७-११।। हे तात! (सबका) कल्याण करनेवाला दुर्गति को प्राप्त नहीं करता है। यह मेरी दैवीमाया गुणमयी और कठिनता से जानी जानेवाली है। इस माया से वही लोग पार हो सकते हैं जो मेरी शरण में आ जाते हैं। हे भरतवंश में श्रेष्ठ! चार प्रकार के लोग मेरी सेवा करते हैं-दुःखी, जिज्ञासु, धन के इच्छुक और ज्ञानी। इनमें से ज्ञानी ही (मेरे) एकत्व में स्थित होता है। ब्रह्म अविनाशी और सर्वश्रेष्ठ है। स्वभाव ही अध्यात्म कहा जाता है। प्राणियों और उनके भावों को उत्पन्न करनेवाला ज्ञानकर्म कहा जाता है। संसार तथा उससे सम्बद्ध ज्ञान नश्वर होता है। किन्तु आत्मज्ञान अनन्त कहा गया है। देहधारियों में श्रेष्ठ! कर्मयोगी मनुष्यों के यज्ञों में मैं ही रहा करता हूँ। अन्तकाल में मेरा स्मरण करते हुए निश्चय ही मनुष्य मुझे प्राप्त कर लेता है ।।१२-१६।। अन्त समय में मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है उसी को वह प्राप्त करता है। दोनों भृकुटियों के बीच में प्राणों को रखकर मेरा ध्यान करते हुए और 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए जो व्यक्ति प्राणों को छोड़ता है वह मुझे प्राप्त करता है। ब्रह्म से लेकर अणुपर्यन्त सभी मेरी विभूतियाँ हैं। धनवान् तथा वीर प्राणी मेरे ही अंश कहे गये हैं। मैं ही विश्वरूप हूँ, ऐसा जान लेने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। क्षेत्र कहते हैं शरीर को और उसको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही मेरा ज्ञान माना गया है। पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त दस इन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियों के विषय,

---

१ क. ख. ग. ङ. °भूतस्थमात्मा°। २ ख. ग. °शयम्। यं। ३ छ. सर्वे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः । एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।२२।।
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।२३।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।२४।।
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।२५।।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।२६।।
अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्वं तत्त्वज्ञानानुदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।२७।।
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यं ज्ञा (यज्ज्ञा) त्वामृतमश्नुते । [1]अनादि परमं ब्रह्म सत्त्वं नाम तदुच्यते ।।२८।।
सर्वतः पाणिपादान्तं स (दं तत्स) र्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।२९।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तं [2]सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।३०।।
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिकेऽपि यत् ।।३१।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् । भूतभर्तृ च विज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।।३२।।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य संस्थितम् ।।३३।।
ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन (ण) चापरे ।।३४।।

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, उन सबका समूह, चेतना और धैर्य इन सबको संक्षेपतः विकारयुक्त क्षेत्र कहा गया है ।।१७-२२।। ज्ञान के विषय हैं—मानरहित होना, दम्भरहित होना, अहिंसा, क्षमा, ऋजुता, आचार्य-पूजा, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, विषयों से वैराग्य, अहंकारहीनता, जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख और दोषों का ज्ञान, पुत्र, कलत्र और गृह आदि में अनासक्ति, इष्ट और अनिष्ट में नित्य समान रूप से रहना, मेरे प्रति अनन्य भाव से दोषरहित भक्ति, एकान्तवास, जनसमूह से वैराग्य, अध्यात्मज्ञान, निष्ठा और तत्त्वज्ञान जो कुछ इससे भिन्न है उसे अज्ञान कहा गया है। अब मैं उसे बताऊँगा जो जानने योग्य है और जिसे जानकर अमृत की प्राप्ति होती है। वह अनादि और परब्रह्म है जिसे सत्त्व कहा जाता है ।।२३-२८।। उसके हाथ और पैर सब ओर फैले रहते हैं, उसके नेत्र, सिर और मुख सभी ओर रहते हैं। वह लोक में सब-कुछ सुननेवाला और सबको आवृत करके रहता है। वह सभी इन्द्रियों के गुणों से आभासित होते हुए भी सभी इन्द्रियों से रहित होता है। वह आसक्तिहीन, सबका भरण करनेवाला, निर्गुण और गुणों का भोक्ता है। वह प्राणियों के बाहर और भीतर रहता है। वही चर और अचर है। सूक्ष्म होने के कारण वह अविज्ञेय है और दूर होते हुए भी निकट है। वह अविभक्त होते हुए भी प्राणियों में विभक्त-सा रहता है। वही प्राणियों का भरण करनेवाला, विज्ञेय, सबको ग्रसित करनेवाला और सबसे शक्तिशाली है। वह ज्योतियों में भी ज्योति और अन्धकार से परे रहनेवाला कहा गया है। वही ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य और सबके हृदयों में रहनेवाला है ।।२९-३३।। कुछ लोग ध्यान में अपने में अपनी आत्मा को देखते हैं। अन्य लोग इसे सांख्य योग से देखते हैं और दूसरे इसे कर्मयोग से देखते हैं।

---

१ ख. ग. दिमत्परम् ब्रह्म न सत्तन्नासदु°। २ क. ङ. °र्वभूतेषु नि°। ख. ग. °र्वभूतेभ्यो नि°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते। तेऽपि चाऽऽशु तरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।३५।।
सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।३६।।
गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते। मानावमानमित्रारितुल्यस्त्यागी स निर्गुणः ।।३७।।
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।३८।।
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च। अहिंसादिः क्षमा चैव दैवी[1] संपत्ततो नृणाम् ।।३९।।
न शौचं नापि वाऽ(चा)चारो ह्यासुरी संपदोद्भवः। [2]नरकत्वात्क्रो(दाः क्रो)धलोभकामास्तस्मात्त्रयं त्यजेत् ।।४०।।
यज्ञस्तपस्तथा दानं सत्त्वाद्यैस्त्रिविधं स्मृतम्। आयुः सत्त्वं बलारोग्यसुखायान्नं तु सात्त्विकम् ।।४१।।
दुःखशोकामयायान्नं तीक्ष्णरूक्षं तु राजसम्। अमेध्योच्छिष्टपूत्यन्नं तामसं नीरसादिकम् ।।४२।।
यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः। यज्ञः फलाय[3] दम्भाय राजसस्तामसः क्रतुः ।।४३।।
श्रद्धामन्त्रादिविध्युक्तं तपः शारीरमुच्यते। देवादिपूजाऽहिंसादि वाङ्मयं तप उच्यते ।।४४।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं स्वाध्यायसज्जपः। मानसं [4]चित्तसंशुद्धिर्मौनमात्मविनिग्रहः ।।४५।।
सात्त्विकं च तपोऽकामं फलाद्यर्थं तु राजसम्। तामसं परपीडायै सात्त्विकं दानमुच्यते ।।४६।।

अन्य लोग उसे न जानते हुए भी दूसरों से सुनकर उसकी उपासना किया करते हैं। ब्रह्म के श्रवण में लगे हुए भी वे लोग शीघ्र ही (संसार-सागर को) पार कर लेते हैं। सत्त्व से ज्ञान और रजस् से लोभ उत्पन्न होता है। तमोगुण के प्रमाद और मोह तथा संसार से अज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार से रहनेवाले गुणों में जो अविचल भाव से स्थित रहता है और मान-अपमान तथा शत्रु-मित्र में समान व्यवहार करनेवाला और त्यागी होता है वही निर्गुण है। ज्ञान का जो अश्वत्थ तरु है उसकी जड़ें ऊपर की ओर और शाखाएँ नीचे की ओर रहती हैं। उसे अव्यय कहा गया है तथा छन्द ही उसके पत्ते हैं। इस प्रकार जो उस अश्वत्थ तरु को जाननेवाला है वही वेदज्ञ है ।।३४-३८।। इस संसार में प्राणियों की सृष्टियाँ दो प्रकार की हैं—एक दैवी और दूसरी आसुरी। अहिंसा इत्यादि और क्षमा दैवी सम्पत्ति हैं तथा अशौच और अनाचार आसुरी सम्पत्तियों से उत्पन्न होते हैं। क्रोध, लोभ और काम नरक के हेतु हैं इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए। यज्ञ, तप एवं दान सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के कहे गये हैं। सात्त्विक अन्न, आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य और सुख के लिए होता है। तीखा और रूखा अन्न राजस है जो दुःख, शोक, रोग के लिए होता है। नीरस इत्यादि अमेध्य, उच्छिष्ट और दुर्गन्धयुक्त अन्न तामस कहा गया है। सात्त्विक यज्ञ वह कहलाता है जो बिना किसी कामना के विधिपूर्वक किया जाता है। फल के लिए किया जानेवाला यज्ञ राजस और दम्भ के लिए किया जानेवाला यज्ञ तामस है। श्रद्धा मन्त्र इत्यादि और विधिपूर्वक किया गया तप शारीरिक तप कहा गया है तथा देव आदि की पूजा और हिंसादि वाङ्मय तप कहा जाता है ।।३९-४४।। उद्विग्न न करनेवाला वाक्य सत्य कहलाता है। जप कहते हैं स्वाध्याय को जिससे मन की शुद्धि होती है और मौन से आत्म-निग्रह होता है। इच्छारहित तप सात्त्विक और फल इत्यादि के लिए किया गया तप राजस कहलाता है तथा तामस तप उसे कहते हैं जो दूसरों को पीड़ित करने के लिए किया जाता है। (उचित) देश आदि में दिया गया दान तामस दान कहा गया है।

---

१ छ. °पत्तितो। २ "नरकत्वात्क्रो (क्षः क्रो)....त्रयं त्यजेत्" इत्यत्र "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेदिति क. ङ. पुस्तकयोः पाठः। ३ क. ङ. °दम्भार्थ। ४ क. ङ. °शुद्धेर्मौ°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशादौ [1]चैव दातव्यमुपकाराय राजसम् । अदेशादाववज्ञातं तामसं दानमीरितम् ।।४७।।
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ।।४८।।
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।।४९।।
तामसः [2]कर्मसंयोगान्मोहात्क्लेशभयादिकात् । राजसः सात्त्विकोऽकामात्पञ्चैते कर्महेतवः ।।५०।।
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् । त्रिविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।५१।।
एकं ज्ञानं सात्त्विकं स्यात्पृथग्ज्ञानं तु राजसम् । अतत्त्वार्थं तामसं स्यात्कर्माकामाय सात्त्विकम् ।।५२।।
कामाय राजसं कर्म मोहात्कर्म तु तामसम् । सिद्ध्यसिद्ध्योः समः कर्ता सात्त्विको राजसो ह्यपि ।।५३।।
शठोऽलसस्तामसः स्यात्कार्यादिधीश्च सात्त्विकी । [3]कार्यार्थं सा राजसी स्याद्विपरीता तु तामसी ।।५४।।
मनोधृतिः सात्त्विकी स्यात्प्रीतिकामेति राजसी । तामसीतुप्र(पुत्र(?))शोकादौ सुखं[4] सत्त्वात्तदन्तगम् ।।५५।।
सुखं तद्राजसं चाग्रे अन्ते दुःखं तु तामसम् । अतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।।५६।।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य विष्णुं सिद्धं च विन्दति । कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।।५७।।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं च वेत्ति यः । सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो ध्रुवम् ।।५८।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गीतासारनिरूपणं नामैकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३८१।।

'ॐ तत्सत्' इस प्रकार से ब्रह्म का त्रिविध निर्देश किया गया है। यज्ञ और दान आदि कर्म मनुष्यों को भोग और मोक्ष देनेवाले होते हैं। कर्म का फल तीन प्रकार का होता है–अनिष्ट, इष्ट और इष्टानिष्ट। यह उन्हीं के लिए होता है जो बिना त्याग के शरीर छोड़ते हैं। संन्यासियों में यह कभी भी नहीं होता है। कर्म के हेतु पाँच हैं–तामस हेतु जो कर्म संयोग और मोह से होता है, राजस हेतु जो क्लेश और भय आदि से होता है और सात्त्विक हेतु जो कामनाओं के नाश से होता है ।।४५-५०।। भेदरहित ज्ञान सात्त्विक, पृथग् ज्ञान राजस और तत्त्वहीन ज्ञान तामस कहा गया है। जो कर्म बिना किसी कामना के किया जाता है वह सात्त्विक कर्म, जो किसी कामना से किया जाता है वह राजस कर्म और जो मोहवश किया जाता है वह तामस कर्म कहलाता है। कार्य की सफलता और असफलता में समान रूप से रहनेवाला कर्त्ता सात्त्विक है, जो राजस कर्त्ता के विपरीत इन दोनों में से किसी से प्रभावित नहीं होता है और तामस कर्त्ता शठ तथा आलसी हुआ करता है। कार्य के आदि में रहनेवाली बुद्धि सात्त्विकी, कार्य के लिए रहनेवाली बुद्धि राजसी और इन दोनों से विपरीत रहनेवाली बुद्धि तामसी कहलाती है। मानसिक धैर्य बुद्धि सात्त्विक, प्रीति की इच्छा करनेवाली राजसी और शोक आदि में रहनेवाली बुद्धि तामसी है, सात्त्विक सुख आदि से अन्त तक रहता है ।।५१-५५।। राजसिक कर्म अन्त में सुखकारी होता है और तामसिक कर्म आदि और अन्त दोनों में दुःखदायी होता है। इसलिए प्राणियों की प्रवृत्ति सात्त्विक कर्मों में ही होनी चाहिए उसी प्रवृत्ति से यह सब-कुछ व्याप्त है। अपने धर्म से विष्णु की आलोचना करके मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है जो व्यक्ति मन, वचन और कर्म से सभी अवस्थाओं और सभी कालों में ब्रह्म से लेकर अणुपर्यन्त इस जगत् और विष्णु को जानता है वह भगवद्भक्त निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ।।५६-५८।।

श्री अग्निमहापुराण में गीतासार-निरूपण नामक तीन सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।३८१।।

---

१ ख. ग. °व विज्ञातमु°। २ क. ङ. °संन्यासो मोहा°। ख. ग. °संत्यागो मोहा°। ३ क. ग. °र्यादिधीरा°। ४ ख. ग. ङ. °त्वाद्य उत्तमः। सु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्व्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमगीता

अग्निरुवाच

यमगीतां प्रवक्ष्यामि उक्ता या [1]नाचिकेतसे । पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सताम् ।।१।।

यम उवाच

आसनं शयनं यानं परिधानगृहादिकम् । वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ।।२।।
भोगेषु श (ष्वस) क्तिः सततं तथैवाऽऽत्मावलोकनम् । श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि ।।३।।
[2]सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता । श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि ।।४।।
आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम् । श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रगीतकम् ।।५।।
आध्यात्मिकादिखुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया । श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ।।६।।
अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः । तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम् ।।७।।
कर्तव्यमिति यत्कर्म ऋग्यजुः सामसंज्ञितम् । कुरुते श्रेयसेऽसङ्गाज्जैगीषव्येण गीयते ।।८।।
हानिः सर्वविधित्सानामात्मनः सुखहैतुकी । श्रेयः परं मनुष्याणां देवलोद्गीतमीरितम् ।।९।।

अध्याय ३८२

यमगीता

अग्निदेव बोले–अब मैं वह यमगीता सुनाऊँगा जो नचिकेता को सुनायी गयी थी जिसके पढ़ने और सुनने से मुमुक्षु सज्जनों को भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।।१।।

यम बोले–ये मनुष्य स्वयं अस्थिर होते हुए भी मोहवश स्थिर रहनेवाले आसन, शयन, यान, परिधान और गृह आदि की इच्छा करते हैं–यह कितने आश्चर्य की बात है। कपिल ने पहले ही बताया है कि भोगों में अनासक्ति तथा निरन्तर आत्मदर्शन ही मनुष्यों का परम कल्याण है। पंचशिख ने भी यही कहा है कि सर्वत्र समदर्शित्व, निर्ममत्व और असंगता मनुष्यों के परम कल्याण का साधन है। गर्भ से लेकर जन्म और बाल्य आदि अवस्थाओं का ज्ञान मनुष्यों के परम कल्याण का हेतु है–यह गंगाविष्णु का गान है। जनक के द्वारा बताया गया मनुष्यों का परम कल्याण इसमें है कि वह आध्यात्मिक आदि दुःखों को क्षणिक समझकर धैर्यपूर्वक सहन करे। 'जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अभिन्न हैं। इनमें भेद की प्रतीति का निवारण करना परम कल्याण का हेतु है'–यह ब्रह्मा का सिद्धान्त है। जैगीषव्य के अनुसार अनासक्त भाव से कल्याण के लिए ऋक्, यजु और साम के द्वारा बताये गये कर्म को करना कल्याणकारक है ।।२-८।। देवल के द्वारा वर्णित है कि सब प्रकार से अपने द्वारा किये जानेवाले कर्मों का नाश ही सभी सुखों

---

१ छ. माचिकेतसे। २ 'सर्वत्र...निर्ममत्वमसङ्गता' नास्ति ख. पुस्तके।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कामत्यागात्तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम् । कामिनां नहि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत् ।।१०।।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कार्यं कर्म परोऽब्रवीत् । श्रेयसां श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरिः ।।११।।
पुमांश्चाधिगतज्ञानो भेदं नाऽऽप्नोति सत्तमः । ब्रह्मणा विष्णुसंज्ञेन परमेणाव्ययेन च ।।१२।।
ज्ञानं विमानमास्तिक्यं सौभाग्यं रूपमुत्तमम् । तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ।।१३।।
नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् । नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित् ।।१४।।
न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ।।१५।।
इत्येव संस्मरन्प्राणान्यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् । यत्तद्ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ।।१६।।
अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठं च यत्परम् । परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदिस्थितः ।।१७।।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम् । केचिद्विष्णुं हरं केचित्केचिद्ब्रह्माणमीश्वरम् ।।१८।।
इन्द्रादिनामभिः केचित्सूर्यं सोमं च कालकम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ।।१९।।
स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नाऽऽवर्तते पुनः । सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः ।।२०।।
ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या [1]तदाप्नुयात् । आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।।२१।।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांश्चेति गोचरान् ।।२२।।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः । यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।।२३।।

का हेतु है। सनक के द्वारा कामियों का जो विज्ञान बताया गया है वह है कामनाओं का परित्याग जो कि सुख और परब्रह्म के समान है। कर्म दो प्रकार के होते हैं–प्रवृत्त कर्म और निवृत्त कर्म। इनमें से निवृत्त कर्म सर्वश्रेष्ठ और कल्याणों में भी परमकल्याण तथा ब्रह्मरूप विष्णु है। ज्ञानी पुरुष विष्णुसंज्ञक और अव्यय ब्रह्म से कभी भेद को नहीं प्राप्त होता है। तपस्या के द्वारा मनुष्य ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य, सौभाग्य, श्रेष्ठरूप तथा अन्य मनोवांछित कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।।९-१३।। विष्णु के समान कोई ध्येय नहीं है, उपवास से बढ़कर कोई तप नहीं है, नीरोग के समान कोई धन्य नहीं है और गंगा के समान कोई नदी नहीं है। जगद्गुरु विष्णु को छोड़कर अन्य कोई बान्धव नहीं है। भगवान् विष्णु ही नीचे, ऊपर, आगे, शरीर में, इन्द्रिय में, मन में और सुख में हैं। इस प्रकार स्मरण करते हुए जो व्यक्ति अपने प्राणों को छोड़ता है वह विष्णु हो जाता है। ब्रह्म से ही सब-कुछ उत्पन्न होता है और उसी में स्थित रहता है। वह ब्रह्म जो अग्राह्य, अनिर्देश्य, सुप्रतिष्ठित और सर्वश्रेष्ठ है वही परस्पर रूप से विष्णु के रूप में सभी के हृदय में स्थित रहता है। कुछ लोग यज्ञेश की इच्छा करते हैं और कुछ लोग यज्ञपुरुष की इच्छा करते हैं। कुछ लोग विष्णु की, कुछ लोग शिव की और कुछ ब्रह्मा की कामना करते हैं ।।१४-१८।। कुछ लोग इन्द्र इत्यादि नामों से सूर्य, सोम, काल, ब्रह्म से लेकर अणु तक सम्पूर्ण जगत् को और विष्णु को सम्बोधित करते हैं। वही विष्णु और वही परब्रह्म है जिससे पुनरावृत्ति नहीं होती है। उसे सुवर्ण इत्यादि महादान से, पुण्यतीर्थों में स्नान करने से, ध्यान और व्रतों से तथा पूजा और धर्मोपदेश सुनने से प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा को रथी समझिये, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को रस्सी। इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को चाबुक कहा गया है। बुद्धिमानों ने आत्मा, इन्द्रिय और मन से युक्त रहनेवाले को भोक्ता कहा है। जो ज्ञानवान् तथा विरक्त नहीं होता है वह मोक्ष पद को प्राप्त नहीं करता है और संसार में लौट आता है किन्तु जो व्यक्ति ज्ञानवान् होता है और जिसका मन परब्रह्म में निरत

---

१ ख. ग. तमाप्नु°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न सत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति। यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।।२४।।
स तत्पदमवाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते। विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।।२५।।
सोऽध्वानं परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्। इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।।२६।।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।।२७।।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः। एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।।२८।।
दृश्यते त्वग्र(ग्र्य)या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमा(नआ)त्मनि ।।२९।।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि। ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योगं यमाद्यैर्ब्रह्म सद्भवेत् ।।३०।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। यमाश्च नियमाः पञ्च शौचं सन्तोषसत्तपः ।।३१।।
स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकम्। प्राणायामो वायुजयः प्रत्याहारः स्व(ख)निग्रहः ।।३२।।
शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत्प्रधारणम्। निश्चलत्वात्तु धीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते ।।३३।।
पौनः पुण्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा। ध्यानं स्मृतं समाधिस्तु अहंब्रह्मात्मसंस्थितिः ।।३४।।
घटध्वंसाद्यथाऽऽकाशमभिन्नं नभसा भवेत्। मुक्तो जीवो ब्रह्मणैवं सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ।।३५।।
आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा। जीवो ह्यज्ञानतत्कार्यमुक्तः स्यादजरामरः ।।३६।।

रहता है वह उस परमपद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से उसे फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता है ।।१९-२३½।। ज्ञानरूपी सारथी और मनरूपी रस्सियों से युक्त मनुष्य उस मार्ग को प्राप्त करता है जो विष्णु का परमपद कहा गया है। इन्द्रियों से परे विषय है, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। उस आत्मा से परे अव्यक्त और अव्यक्त से भी परे परमपुरुष है। उस परमपुरुष से परे कुछ भी नहीं है। वही सबकी पराकाष्ठा और परमगति है। इन सभी प्राणियों में गूढ़ रूप से रहनेवाली आत्मा प्रकाशित नहीं होती है। वह तो केवल सूक्ष्मद्रष्टा लोगों के द्वारा सूक्ष्म और अग्रबुद्धि के द्वारा देखी जाती है। विद्वान् को अपनी वाणी और मन पर नियन्त्रण करना चाहिए और आत्मा में ज्ञान को नियन्त्रित करना चाहिए क्योंकि यम आदि से ब्रह्म और आत्मा का योग जान लेने से मनुष्य सद्ब्रह्म हो जाता है ।।२४-३०।। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजा। पद्म आदि आसन हैं। प्राणायाम वायु से उत्पन्न होता है और प्रत्याहार कहते हैं आत्मनिग्रह को। हे ब्राह्मण! किसी शुभ वस्तु में निश्चल रूप से चित्त के लगाने को ही बुद्धिमानों ने धारणा कहा है। उन्हीं विषयों में पुनः-पुनः मन लगाना ध्यान कहा गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार की स्थिति समाधि कहलाती है। जिस प्रकार घड़े के टूट जाने पर (उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाला) आकाश आकाश में मिल जाता है उसी प्रकार ब्रह्म से युक्त होने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है क्योंकि वह ब्रह्मस्वरूप ही है। ब्रह्म ही आत्मा है जिसे अज्ञान के कारण जीव समझा जाता है। यह जीव अज्ञान तथा उसके कार्यों से मुक्त अजर और अमर है ।।३१-३६।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निरुवाच

वशिष्ठ यमगीतोक्ता पठतां भुक्तिमुक्तिदा। आत्यन्तिको लयः प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमयः ।।३७।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमगीताकथनं नाम द्व्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३८२।।

अथ त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आग्नेयमहापुराणमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच

आग्नेयं ब्रह्मरूपं ते पुराणं कथितं मया। सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं [1]विद्याद्वयमयं महत् ।।१।।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या विद्या विष्णुर्जगज्जनिः। छन्दः शिक्षाव्याकरणं(ण) निघण्टुज्योतिराख्यकाः ।।२।।
निरुक्तधर्मशास्त्रादिमीमांसान्यायविस्तराः। आयुर्वेदपुराणाख्या धनुर्गन्धर्वविस्तराः ।।३।।
[2]विद्या सैवार्थशास्त्राख्या वेदान्तान्या[3](?)हरिर्महान्। इत्येषा चापरा विद्या परविद्याऽक्षरं परम् ।।४।।
यस्य भावोऽखिलं विष्णुस्तस्य नो बाधते कलिः। अनिष्ट्वा तु महायज्ञानकृत्वाऽपि पितृस्वधाम् ।।५।।
कृष्णमभ्यर्चयन्भक्त्या नैनसो भाजनं भवेत्। सर्वकारणमत्यन्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।।६।।
अन्यतन्त्रादिदोषोत्थो विषयाकृष्टमानसः। कृत्वाऽपि पापं गोविन्दं ध्यायन्पापैः प्रमुच्यते ।।७।।

अग्निदेव बोले–हे वशिष्ठ! मैंने जिस यमगीता को कहा है उसका पाठ करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही आत्यन्तिक लय कहा गया है और यही वेदान्तियों की बुद्धि से युक्त रहता है ।।३७।।

श्री अग्निमहापुराण में यमगीता-कथन नामक तीन सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।।३८२।।

अध्याय ३८३

अग्निमहापुराण-माहात्म्य

अग्निदेव बोले–मैंने तुमसे ब्रह्मरूप अग्निपुराण कह दिया है। यह सप्रपञ्च और निष्प्रपञ्च (परा) दोनों विद्याओं से युक्त है। प्रथम प्रकार की विद्या के अन्तर्गत आनेवाले विषय हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छन्दःशास्त्र, शिक्षा, व्याकरण, निघण्टु, ज्योतिष, निरुक्त, धर्मशास्त्र, मीमांसा, न्याय, आयुर्वेद, पुराण, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। द्वितीय प्रकार की विद्या में आनेवाला है वेदान्त दर्शन तथा वह ज्ञान जो ब्रह्म-साक्षात्कार करा देता है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक विष्णु का चिन्तन करता रहता है उसे कलि पीड़ित नहीं करता है। चाहे वह महायज्ञों का अनुष्ठान न करे या पितरों को बलि न दे ।।१-५।। भक्तिपूर्वक कृष्ण की अर्चना करने से मनुष्य पाप का भागी नहीं होता है। सभी के कारणभूत विष्णु का ध्यान करने से मनुष्य किसी दुःख में नहीं फँसता है। जो व्यक्ति गोविन्द (कृष्ण) का ध्यान करता है, वह सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। चाहे उनमें अन्य प्रकार के तन्त्रों से उत्पन्न होनेवाले

---

१ विद्धयद्व°। २ ख. ग. °द्याश्चैवा°। ३ ख. ग. °साद्या हरिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तद्ध्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः । तत्कर्म यत्तदर्थीयं किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।८।।
न तत्पिता तु पुत्राय न शिष्याय गुरुर्द्विजः । परमार्थं परं ब्रूयाद्यदेतत्ते मयोदितम् ।।९।।
संसारे भ्रमता लभ्यं पुत्रदारधनं वसु । सुहृदश्च तथैवान्ये नोपदेशो द्विजेदृशः ।।१०।।
किं पुत्रदारैर्मित्रैर्वा किं मित्रक्षेत्रबान्धवैः । उपदेशः परो बन्धुरीदृशो यो विमुक्तये ।।११।।
द्विविधो [1]भूतसर्गोऽयं दैव आसुर एव च । विष्णुभक्तिपरो दैवो विपरीतस्तथाऽऽसुरः ।।१२।।
एतत्पवित्रमारोग्यं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । सुखप्रीतिकरं नृणां मोक्षकृद्यत्तवेरितम् ।।१३।।
येषां गृहेषु लिखितमाग्नेयं हि पुराणकम् । पुस्तकं स्थास्यति सदा तत्र नेशुरुपद्रवाः ।।१४।।
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः । आग्नेयं ये हि शृण्वन्ति अहन्यहनि मानवाः ।।१५।।
यो ददाति तिलप्रस्थं सुवर्णस्य च माषकम् । शृणोति श्लोकमेकं च आग्नेयस्य तदाप्नुयात् ।।१६।।
अध्यायपठनं चास्य गोप्रदानाद्विशिष्यते । अहोरात्रकृतं पापं श्रोतुमिच्छोः प्रणश्यति ।।१७।।
कपिलानां शते दत्ते यद्भवेज्ज्येष्ठपुष्करे । तदाग्नेयं पुराणं हि पठित्वा फलमाप्नुयात् ।।१८।।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च धर्मं विद्याद्द्वयात्मकम् । आग्नेयस्य पुराणस्य शास्त्रस्यास्य समं न हि ।।१९।।
पठन्नाग्नेयकं नित्यं शृण्वन्वाऽपि पुराणकम् । भक्तो वशिष्ठ मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२०।।

दोष हों, चाहे उसका मन विषयों में आसक्त हो अथवा वह पापकर्म ही क्यों न करता है। अधिक कहने से क्या लाभ ? वही ध्यान है जिसमें गोविन्द हों, वही कथा है जिसमें केशव हों और वही कर्म है जो उन (कृष्ण) के उद्देश्य से किया गया हो। मैंने तुमसे जिस परमार्थ की बात की है उसे न तो कोई पिता अपने पुत्र से करता है और न कोई गुरु अपने शिष्य से। हे द्विज! इस संसार में भटकनेवाला व्यक्ति पुत्र, कलत्र, धन, मित्र तथा अन्य वस्तुओं को तो प्राप्त कर लेता है किन्तु उसे ऐसा उपदेश कभी भी प्राप्त नहीं होता है ।।६-१०।। पुत्रों, स्त्रियों और मित्रों से क्या लाभ ? मित्रों, क्षेत्रों और बन्धनों से भी क्या ? इस प्रकार का उपदेश ही बन्धु है जो मोक्ष को प्रदान करनेवाला है। प्राणियों की सृष्टि दो प्रकार की है–दैवी और आसुरी। विष्णु की भक्ति में लीन रहनेवाले लोग दैवी तथा उनसे भिन्न आसुरी सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं। मैंने तुम्हें जो उपदेश दिया है वह पवित्र, नीरोग करनेवाला, शुभ, दुःस्वप्नों का नाशक, मनुष्यों में सुख और प्रीति को उत्पन्न करनेवाला तथा मोक्षप्रद है। जिनके घर में लिखा हुआ अग्निपुराण विद्यमान रहता है वहाँ सदैव उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निपुराण सुनते हैं उनके लिए तीर्थों से क्या, गोदानों से क्या, यज्ञों से क्या और उपवासों से क्या ? एक प्रस्थ तिल तथा एक माशा सोना देने से वही फल प्राप्त होता है जो फल अग्निपुराण का एक श्लोक सुनने से प्राप्त होता है ।।११-१६।। अग्निपुराण के एक अध्याय का पाठ गोदान से भी बढ़कर होता है। इसके सुनने की इच्छामात्र से ही रात-दिन के पापों का नाश हो जाता है। अग्निपुराण का पाठ करने से वही फल प्राप्त होता है जो ज्येष्ठ पुष्कर क्षेत्र में सौ कपिला गायों के दान से होता है। धर्म दो प्रकार का होता है–प्रवृत्त और निवृत्त। उन दोनों प्रकार के धर्मों की समता अग्निपुराण से नहीं की जा सकती है। हे वशिष्ठ! अग्निपुराण का पाठ और श्रवण करनेवाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जिस घर में अग्निपुराण

---

१ क. छ. 'तमार्गोऽ'।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नोपसर्गा न चानर्था न चौरारिभयं गृहे । तस्मिन्स्याद्यत्र चाऽऽग्नेयपुराणस्य हि पुस्तकम् ।।२१।।
न गर्भहारिणी भीतिर्न च बालग्रहा गृहे । यत्राऽऽग्नेयं पुराणं स्यान्न पि (पै) शाचादिकं भयम् ।।२२।।
शृण्वन्विप्रो वेदविस्त्यात्क्षत्रियः पृथिवीपतिः । ऋद्धिं प्राप्नोति वैश्यश्च शूद्रश्चाऽऽरोग्यमृच्छति ।।२३।।
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं समदृग्विष्णुमानसः । ब्रह्माऽऽग्नेयं पुराणं सत्तत्र नश्यन्त्युपद्रवाः ।।२४।।
दिव्यान्तरी (रि) क्षभौमाद्या दुःस्वप्नाद्यभिचारकाः । यच्चान्यद्दुरितं किंचित्तत्सर्वं हन्ति केशवः ।।२५।।
पठतः शृण्वतः पुंसः पुस्तकं यजतो महत् । आग्नेयं श्रीपुराणं हि हेमन्ते यः शृणोति वै ।।२६।।
प्रपूज्य गन्धपुष्पाद्यैरग्निष्टोमफलं लभेत् । शिशिरे पुण्डरीकस्य वसन्ते चाश्वमेधजम् ।।२७।।
ग्रीष्मे तु वाजपेयस्य राजसूयस्य वर्षति । गो सहस्रस्य शरदि फलं तत्पठतो ह्यतौ ।।२८।।
आग्नेयं हि पुराणं[1] यो भक्त्याऽग्रे पठतो हरेः । सोऽर्चयेच्च वशिष्ठेह ज्ञानयज्ञेन केशवम् ।।२९।।
यस्याऽऽग्नेयपुराणस्य पुस्तकं तस्य वै जयः । लिखितं पूजितं गेहे भक्तिर्मुक्तिः करेऽस्ति हि ।।३०।।
इति कालाग्निरूपेण गीतं मे हरिणा पुरा । आम्नायं हि पुराणं वै [2]ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम् ।।
विद्याद्वयं वशिष्ठेदं भक्तेभ्यः कथयिष्यसि ।।३१।।

वशिष्ठ उवाच

व्यासाऽऽग्नेयपुराणं ते रूपं विद्याद्वयात्मकम् । कथितं ब्रह्मणो विष्णोरग्निना कथितं यथा ।।३२।।

की पुस्तक होती है उस घर में न रोग, न अनर्थ, न चोरों का भय और न तो गर्भपात का भय होता है, न बालकों को सतानेवाले ग्रह होते हैं और न वहाँ पिशाचादि का भय रहता है ।।१७-२२।। जो व्यक्ति प्रतिदिन अग्निपुराण को पढ़ता और सुनता है वह समदर्शी और विष्णुप्रिय हो जाता है। जहाँ अग्निपुराण रहता है वहाँ सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। (अग्निपुराण का अध्ययन करने से) भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य, अन्तरिक्ष में होनेवाले तथा पृथ्वी से सम्बद्ध दुःस्वप्न इत्यादि अभिचार तथा अन्य सभी प्रकार के पापों का नाश करते हैं। हेमन्त ऋतु में अग्निपुराण का पाठ और श्रवण करने से मनुष्य को यज्ञ से भी महान् फल प्राप्त होता है। सुगन्धित पदार्थों और पुष्प इत्यादि से शिशिर ऋतु में भगवान् कृष्ण का पूजन करने से अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है तथा वसन्त ऋतु में ऐसा करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। ग्रीष्म ऋतु में ऐसा करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है और वर्षा ऋतु में इसके करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। शरद् ऋतु में इस (अग्निपुराण) का पाठ करनेवाले को एक हजार गायें प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु के सम्मुख अग्निपुराण का पाठ करता है, हे वशिष्ठ! वह तो ज्ञानयज्ञ के द्वारा भगवान् कृष्ण की ही पूजा करता है ।।२६-२९।। जिसके पास अग्निपुराण की पुस्तक होती है उसकी (सर्वत्र) विजय होती है और जिसके घर में उसका लेखन और पूजन होता है उसके घर में भोग और मोक्ष दोनों ही आ जाते हैं। मैंने प्राचीनकाल में अग्नि के रूप में भगवान् विष्णु के लिए कहा था क्योंकि यह अग्निपुराण दोनों ब्रह्मविद्याओं का स्थान है। हे वशिष्ठ! इन दोनों विद्याओं को भक्तों से ही कहना चाहिए ।।३०-३१।।

वशिष्ठ बोले—अये व्यास! दोनों प्रकार की विद्याओं से युक्त इस अग्निपुराण को आपने ब्रह्मा से वैसे ही

---

१ ख. णं वै ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम्। सो°। २ क. ङ. °यात्मकम्।

Sarai's Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

सार्धं देवैश्च मुनिभिर्मह्यं सर्वार्थदर्शकम्। पुराणमग्निना गीतमाग्नेयं ब्रह्मसंमितम् ।।३३।।
यः पठेच्छृणुयाद्व्यास लिखेद्वा लेखयेदपि। श्रावयेत्पाठयेद्वाऽपि पूजयेद्धारयेदपि ।।३४।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो दिवं व्रजेत्। लेखयित्वा पुराणं यो दद्याद्विप्रेभ्य उत्तमम् ।।३५।।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति कुलानां शतमुद्धरेत्। एकं श्लोकं पठेद्यस्तु पापपङ्काद्विमुच्यते ।।३६।।
तस्माद् व्यास सदा श्राव्यं शिष्येभ्यः सर्वदर्शनम्। शुकाद्यैर्मुनिभिः सार्धं श्रोतुकामैः पुराणकम् ।।३७।।
आग्नेयं पठितं ध्यातं शुभं स्याद्भुक्तिमुक्तिदम्। अग्नये तु नमस्तस्मै येन गीतं पुराणकम् ।।३८।।

व्यास उवाच

वशिष्ठेन पुरागीतं सूतैतत्ते मयोदितम्। परा विद्याऽपरा विद्या स्वरूपं परमं पदम् ।।३९।।
आग्नेयं दुर्लभं रूपं प्राप्यते भाग्यसंयुतैः। ध्यायन्तो ब्रह्म चाऽऽग्नेयं पुराणं हरिमागताः ।।४०।।
विद्यार्थिनस्तथा विद्यां राज्यं राज्यार्थिनो गताः। अपुत्राः पुत्रिणः सन्ति नाश्रया आश्रयं गताः ।।४१।।
सौभाग्यार्थी च सौभाग्यं मोक्षं मोक्षार्थिनो गताः। लिखन्तो लेकयन्तश्च निष्पापाश्च श्रियं गताः ।।४२।।
शुकपैलमुखैः सूत आग्नेयं तु पुराणकम्। रूपं चिन्तय यातासि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ।।४३।।
श्रावय त्वं च शिष्येभ्यो भक्तेभ्यश्च पुराणकम् ।।४४।।

कहा है जैसे अग्नि ने विष्णु से कहा था। देवताओं और मुनियों के साथ अग्नि ने मुझे इस पुराण को सुनाया है जो सर्वार्थदर्शी तथा ब्रह्मसम्मित हैं। अये व्यास! जो व्यक्ति इस पुराण को पढ़ता या सुनता है, लिखता या लिखवाता है, दूसरे को सुनवाता या दूसरे से पढ़वाता है, इसका पूजन करता है या इसको धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चला जाता है। इस उत्तम पुराण को लिखवाकर जो व्यक्ति ब्राह्मणों को देता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है और अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है। इसका एक श्लोक पढ़नेवाला पाप से छुटकारा पा जाता है। इसलिए हे व्यास! इसे सुननेवाले शुक आदि मुनियों के साथ इस पुराण को सभी शिष्यों को सुनाना चाहिए क्योंकि यह पुराण सर्वदर्शी है। इस शुभ अग्निपुराण का पाठ और ध्यान भोग और मोक्ष देनेवाला हुआ करता है, इसलिए मैं उस अग्निदेव को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने इस पुराण का गान किया है ।।३२-३८।।

व्यास बोले–हे सूत! मैंने जो कुछ कहा है वह वशिष्ठ के द्वारा पहले ही कहा जा चुका है। यही परा और अपरा विद्या है और परमपद का स्वरूप भी। अग्निपुराण का दुर्लभ रूप भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। अग्निपुराण और ब्रह्म का ध्यान करने से विष्णु की प्राप्ति हो जाती है। विद्यार्थियों को विद्या, राज्य की इच्छा करनेवालों को राज्य, पुत्रहीनों को पुत्र, निराश्रयों को आश्रय, सौभाग्य की कामना करनेवालों को सौभाग्य और मोक्षार्थियों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसके लिखने और लिखाने से मनुष्य निष्पाप होकर लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं। हे सूत! यह अग्निपुराण शुक और पैल के मुखों से सुनाया गया है। तुम इसके रूप का चिन्तन करो जिससे तुम्हें निश्चय ही भोग और मोक्ष प्राप्त होगा। तुम भी अपने शिष्यों और भक्तों को यह पुराण सुनाओ ।।३९-४४।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूत उवाच

व्यासप्रसादादाग्नेयं पुराणं श्रुतमादरात् । आग्नेयं ब्रह्मरूपं हि मुनयः शौनकादयः ।।४५।।
भवन्तो नैमिषारण्ये यजन्तो हरिमीश्वरम् । तिष्ठन्तः श्रद्धया युक्तास्तस्माद्वः समुदीरितम् ।।४६।।
अग्निना प्रोक्तमाग्नेयं पुराणं वेदसंमितम् । ब्रह्मविद्याद्वयोपेतं भुक्तिदं मुक्तिदं महत् ।।४७।।
नास्मात्परतरः सारो नास्मात्परतरः सुहृत् । नास्मात्परतरो ग्रन्थो नास्मात्परतरा गतिः ।।४८।।
नास्मात्परतरं शास्त्रं नास्मात्परतरा श्रुतिः । नास्मात्परतरं ज्ञानं नास्मात्परतरा स्मृतिः ।।४९।।
नास्मात्परो ह्यागमोऽस्ति नास्माद्विधा पराऽस्ति हि । नास्मात्परः स्यात्सिद्धान्तो नास्मात्परममङ्गलम् ।।५०।।
नास्मात्परोऽस्ति वेदान्तः पुराणं परमं त्विदम् । [1]नास्मात्परतरं भूमौ विद्यते वस्तु दुर्लभम् ।।५१।।
आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन्सर्वविद्याः प्रदर्शिताः । सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह ।।५२।।
हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः । आगमो वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया ।।५३।।
पवित्रारोहणादीनि प्रतिमालक्षणादिकम् । प्रासादलक्षणाद्यं च मन्त्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः ।।५४।।
शैवागमस्तदर्थश्च शाक्तेयः सौर एव च । मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च ।।५५।।
प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम् । द्वीपो भुवनकोषश्च द्वीपवर्षादिनिम्नगाः ।।५६।।

सूत बोले–शौनक आदि मुनिवरो! मैंने श्री व्यास जी की कृपा से श्रद्धापूर्वक अग्निपुराण का श्रवण किया है। यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है। आप सब लोग श्रद्धायुक्त होकर इस नैमिषारण्य में भगवान् श्री हरि का यजन करते हुए निवास करते हैं अतः (आपको सर्वोत्तम अधिकारी समझकर) मैंने आपसे इस पुराण का वर्णन किया है। 'अग्निदेव' इस पुराण के वक्ता हैं, अतएव यह 'आग्नेय पुराण' कहलाता है। इसे वेदों के तुल्य माना गया है। यह 'ब्रह्म' और 'विद्या'–दोनों से युक्त है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला श्रेष्ठ साधन है। इससे बढ़कर सर्वोत्तम सार, इससे उत्तम सुहृद्, इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ तथा इससे उत्कृष्ट कोई गति नहीं है। इस पुराण से बढ़कर शास्त्र नहीं है, इससे उत्तम श्रुति नहीं है, इससे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है तथा इससे उत्कृष्ट कोई स्मृति नहीं है। इससे श्रेष्ठ आगम, इससे श्रेष्ठ विद्या, इससे श्रेष्ठ सिद्धान्त और इससे श्रेष्ठ मंगल नहीं है। इससे बढ़कर वेदान्त भी नहीं है। यह पुराण सर्वोत्कृष्ट है। इस पृथ्वी पर अग्निपुराण से बढ़कर श्रेष्ठ और दुर्लभ वस्तु कोई नहीं है ।।४५-५१।। इस अग्निपुराण में सब विद्याओं का प्रदर्शन (परिचय) कराया गया है। भगवान् के मत्स्य आदि सम्पूर्ण अवतार, गीता और रामायण का भी इससे वर्णन है। 'हरिवंश' और 'महाभारत' का भी परिचय है। नौ प्रकार की सृष्टि का भी दिग्दर्शन कराया गया है। वैष्णव आगम का भी गान किया गया है। देवताओं की स्थापना के साथ ही दीक्षा तथा पूजा का उल्लेख किया गया है। पवित्रारोहण आदि की विधि, प्रतिमा के लक्षण आदि तथा मन्दिर के लक्षण आदि का वर्णन है। साथ ही भोग और मोक्ष देनेवाले मन्त्रों का उल्लेख है। शैव आगम और उनके प्रयोजन, शाक्त आगम, सूर्य सम्बन्धी आगम, मण्डल, वास्तु और भाँति-भाँति के मन्त्रों का वर्णन है। प्रतिसर्ग का परिचय कराया गया है। ब्रह्माण्ड-मण्डल तथा भुवनकोश का भी वर्णन है। द्वीप, वर्ष आदि और नदियों का भी उल्लेख है। गया, गङ्गा तथा प्रयाग आदि तीर्थों की

---

१ ख. °स्मात्सार°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गयागङ्गाप्रयागादितीर्थमाहात्म्यमीरितम् । ज्योतिश्चक्रं ज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णवः ।।५७।।
मन्वन्तरादयो गीता धर्मा वर्णादिकस्य च । अशौचं द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।।५८।।
राजधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च । व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम् ।।५९।।
सूर्यवंशः सोमवंशा धुनर्वेदश्च वैद्यकम् । गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसा न्यायविस्तरः ।।६०।।
पुराणसंख्यामाहात्म्यं छन्दो व्याकरणं स्मृतम् । अलंकारो निघण्टुश्च शिक्षाकल्प इहोदितः ।।६१।।
नैमित्तिकः प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः स्मृतः । वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगो ह्यष्टाङ्ग ईरितः ।।६२।।
स्तोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्याष्टादश स्मृताः । ऋग्वेदाद्याः परा ह्यत्र परा विद्याऽक्षरं परम् ।।६३।।
सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणो रूपमीरितम् । [1]इदं पञ्चदशसाहस्रं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।६४।।
देवेलोके दैवतैश्च पुराणं पठ्यते सदा । लोकानां हितकामेन संक्षिप्योद्गीतमग्निना ।।६५।।
सर्वं ब्रह्मेति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः । शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि यः पठेत्पाठयेदपि ।।६६।।
लिखेल्लिखापयेद्वाऽपि पूजयेत्कीर्तयेदपि । (पुराणपाठकं चैव पूजयेत्प्रयतो नृपः ।।६७।।
गोभूहिरण्यदानाद्यैर्वस्त्रालंकारतर्पणैः । तं सम्पूज्य लभेच्चैव पुराणश्रवणात्फलम् ।।६८।।

महिमा का वर्णन किया गया है। ज्योतिश्चक्र (नक्षत्र-मण्डल), ज्योतिष आदि विद्या तथा युद्ध जयार्णव का भी निरूपण है। मन्वन्तर आदि का वर्णन तथा वर्ण और आश्रम आदि के धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही अशौच, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित्त का भी ज्ञान कराया गया है ।।५२-५८।। राजधर्म, दानधर्म, भाँति-भाँति के व्रत, व्यवहार, शान्ति तथा ऋग्वेद आदि के विधान का भी वर्णन है। सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक, गान्धर्व वेद, अर्थशास्त्र, मीमांसा, न्यायविस्तर, पुराण-संख्या, पुराण-माहात्म्य, छन्द, व्याकरण, अलंकार, निघण्टु, शिक्षा और कल्प आदि का भी इसमें निरूपण किया गया है ।।५९-६१।। नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक लय का वर्णन है। वेदान्त, ब्रह्मज्ञान और अष्टाङ्ग योग का निरूपण है। स्तोत्र, पुराण-महिमा और अष्टादश विद्याओं का प्रतिपादन है। ऋग्वेद आदि अपरा विद्या, परा विद्या तथा परम अक्षर तत्त्व का भी निरूपण है। इतना ही नहीं, इसमें ब्रह्म के सप्रपञ्च (सविशेष) और निर्विशेष (निष्प्रपञ्च) रूप का वर्णन है। यह पुराण पन्द्रह हजार श्लोकों का है। देवलोक में इसका विस्तार एक अरब श्लोकों में है। देवता सदा इस पुराण का पाठ करते हैं। सम्पूर्ण लोकों का हित करने के लिए अग्निदेव ने इसका संक्षेप में वर्णन किया है। शौनकादि मुनियो! आप इस सम्पूर्ण पुराण को ब्रह्ममय ही समझें। जो इसे सुनता या सुनाता, पढ़ता या पढ़ाता, लिखता या लिखवाता तथा इसका पूजन और कीर्त्तन करता है, वह परम शुद्ध हो सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके कुलसहित स्वर्ग को जाता है ।।६२-६६$\frac{1}{2}$।। राजा को चाहिए कि संयमशील होकर पुराण के वक्ता का पूजन करे। गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि का दान दे, वस्त्र और आभूषण आदि से तृप्त करते हुए वक्ता का पूजन करके मनुष्य पुराण-श्रवण का पूरा-पूरा फल पाता है।

---

१ ख. ग. °दं चतुर्दश°। ङ. °दं द्वादश°।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणान्ते च वै कुर्यादवश्यं द्विजभोजनम्)। निर्मलः प्राप्तसर्वार्थः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् ।।६९।।
शरयन्त्रं पुस्तकाय सूत्रं वै पत्रसंचयम्। पट्टिकाबन्धवस्त्रादि दद्याद्यः स्वर्गमाप्नुयात् ।।७०।।
यो दद्याद् ब्रह्मलोकी स्यात्पुस्तकं यस्य वै गृहे। तस्योत्पातभयं नास्ति भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।७१।।
यूयं स्मरत आग्नेयं पुराणं रूपमैश्वरम्। सूतो गतः पूजितस्तैः शौनकाद्या हरिं ययुः ।।७२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आग्नेयपुराणमाहात्म्यकथनं नाम
त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३८३।।

पुराण-श्रवण के पश्चात् निश्चय ही ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। जो इस पुस्तक के लिए शरयन्त्र (पेटी), सूत, पत्र (पन्ने), काठ की पट्टी, उसे बाँधने की रस्सी तथा वेष्टनवस्त्र आदि दान करता है, वह स्वर्गलोक को जाता है। जो अग्निपुराण की पुस्तक का दान करता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है। जिसके घर में यह पुस्तक रहती है, उसके यहाँ उत्पात का भय नहीं रहता है। वह भोग और मोक्ष को प्राप्त करता है। मुनियो! आप लोग इस अग्निपुराण को ईश्वर रूप मानकर सदा इसका स्मरण रखें ।।६७-७२।।

श्री अग्निमहापुराण में अग्निपुराण-माहात्म्य-कथन नामक
तीन सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।३८३।।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत अग्निपुराण समाप्त।

आदि से अन्त तक समस्त श्लोकों की संख्या ११४५७

ॐ श्री कृष्णाय नमः ॐ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्म सिहं अमर सिंह
पुस्तक विक्रेता,
हरिद्वार- 249401
दूरभाष 0133 425619

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Sunil Kumar Book Seller (01334 223865

Near Ganga Talkies, Upper Road, Haridwar - 249 401

We deals in Veda, Upnishad, Smriti Puran, Upasana, Ramayan, Geeta, Mahabharat, Sukh Sagar, Yantra-Mantra-Tantra, Karmkand Vyayam Astrology, Vrat Stories Mahatmya Lagan, Teva, Janam Patri,Original Ancient, Handwritten, Bhragusamhita Mahashastra, Black Book, Red Book, Golden Book, Ravana Samhita, Manas Pyush (7 Volums), Allopathic, Ayurvedic, Nature Treatment Books & all books of Geeta Press Gorakhpur New Year Panchang, Diary, Calender and All study books Sampoornanand University. Books in Nepali Language.

NOTE : BOOKS ARE SENT BY V.P.P. ALSO

C... Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA